## प्रथम स्कन्ध


| | | |
|---|---|---|
| १ | श्रीसूतजी से शौनकादि ऋषियों का प्रश्न | ७९ |
| २ | भगवत् कथा और भगवद् भक्ति का माहात्म्य | ९७ |
| ३ | भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन | ११३ |
| ४ | महर्षि व्यास का असन्तोष | १३१ |
| ५ | श्रीभगवान् के यश कीर्तन का माहात्म्य और देवर्षि नारदजी के पूर्व जन्म का चरित्र | १४२ |
| ६ | नारदजी के पूर्व चरित्र का अवशिष्ट भाग | १६३ |
| ७ | अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का वध तथा अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा का मानमर्दन | १७६ |
| ८ | श्रीभगवान् द्वारा गर्भस्थ परीक्षित् की रक्षा कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और महाराज युधिष्ठिर का शोक | १९८ |
| ९ | युधिष्ठिर आदि का भीष्म के पास जाना तथा श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए भीष्मजी का प्राणत्याग करना | २१८ |
| १० | भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका गमन | २३७ |
| ११ | भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश वर्णन | २५१ |
| १२ | परीक्षित् का जन्म वर्णन | २६६ |
| १३ | विदुरजी के उपदेश से प्रेरित धृतराष्ट्र और गान्धारी का वन गमन | २७६ |
| १४ | भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में युधिष्ठिर की अनेक प्रकार की शङ्का | २९७ |
| १५ | श्रीकृष्ण विरह व्याकुल पाण्डवों का परीक्षित् को राज्य देकर स्वर्गारोहरण करना | ३१० |

| | | |
|---|---|---|
| १६ | पृथिवी धर्मसंवाद | ३३१ |
| १७ | महाराज परीक्षित् द्वारा कलियुग का निग्रह | ३४५ |
| १८ | राजा परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि का शाप | ३६१ |
| १९ | राजा परीक्षित् का अनशन व्रत और शुकदेवजी का आगमन | ३८० |

## द्वितीयस्कन्ध

| | | |
|---|---|---|
| १ | ध्यान विधि और भगवान् के विराट् स्वरूप का वर्णन | ३९६ |
| २ | श्रीभगवान् के स्थूल एवं सूक्ष्म रूपों की धारणा तथा क्रममुक्ति एवं सद्योमुक्ति का वर्णन | ४१३ |
| ३ | कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना तथा भक्ति की प्रधानता का वर्णन | ४३३ |
| ४ | राजा परीक्षित् का सृष्टि विषयक प्रश्न और श्रीशुकदेवजी द्वारा कथा का आरम्भ | ४४३ |
| ५ | सृष्टि का वर्णन | ४५४ |
| ६ | विराट् स्वरूप की विभूतियों का वर्णन | ४७० |
| ७ | श्रीभगवान् के लीलावतारों का वर्णन | ४८८ |
| ८ | राजा परीक्षित के अनेक प्रश्न | ५१७ |
| ९ | ब्रह्माजी द्वारा भगवद्धाम का दर्शन और भगवान् के द्वारा उनको चतु:श्लोकी भागवत का उपदेश | ५२८ |
| १० | भागवत के दस लक्षण ( भागवत के प्रतिपाद्य दश विषयों का निरूपण) | ५४७ |

## तृतीय स्कन्ध

| | | |
|---|---|---|
| १ | उद्धावजी से विदुरजी की भेंट | ५६९ |
| २ | श्रीउद्धवजी द्वारा श्रीभगवान् की बाललीलाओं का वर्णन | ५९१ |
| ३ | श्रीभगवान् के दूसरे चरित्रों का वर्णन | ६०४ |
| ४ | उद्धवजी से आज्ञा लेकर विदुरजी का मैत्रेय महर्षि के पास जाना | ६१४ |
| ५ | विदुरजी के प्रश्नों को सुनकर मैत्रेय महर्षि का सृष्टि का वर्णन करना | ६२७ |
| ६ | विराट् शरीर की उत्पत्ति का वर्णन | ६५० |
| ७ | विदुरजी के प्रश्न | ६६३ |
| ८ | ब्रह्माजी की उत्पत्ति | ६७८ |
| ९ | ब्रह्माजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति | ६९३ |
| १० | दस प्रकार की सृष्टियों का वर्णन | ७१३ |
| ११ | मन्वन्तर आदि कालों का विभाग | ७२४ |
| १२ | सृष्टि का विस्तार | ७४० |
| १३ | वाराहवतार की कथा | ७५६ |
| १४ | दिति का गर्भ धारण | ७७६ |
| १५ | जय विजय को सनकादिकों का शाप | ७९३ |
| १६ | जय विजय का वैकुण्ठ से पतन | ८१७ |

| | | |
|---|---|---|
| १७ | हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष का जन्म और हिरण्याक्ष की दिग्विजय यात्रा | ८३३ |
| १८ | हिरण्याक्ष और वाराह भगवान का युद्ध | ८४४ |
| १९ | हिरण्याक्ष का वध | ८५५ |
| २० | ब्रह्माजी द्वारा की गयी अनेक प्रकार की सृष्टियों का वर्णन | ८६७ |
| २१ | महर्षि कर्दम की तपस्या और भगवान् का वरदान | ८८५ |
| २२ | देवहूति के साथ कर्दम प्रजापति का विवाह | ९०४ |
| २३ | कर्दम और देवहूति का विहार | ९१६ |
| २४ | श्रीकपिलदेवजी का जन्म | ९३५ |
| २५ | भगवान् कपिल द्वारा भक्तियोग का वर्णन | ९५० |
| २६ | महदादि भिन्न-भिन्न तत्त्वों की उत्पत्ति का वर्णन | ९६५ |
| २७ | प्रकृति पुरुष विवेक से मुक्ति प्राप्ति का वर्णन | ९८९ |
| २८ | अष्टाङ्ग योग की विधि | ९९८ |
| २९ | भक्ति काल और काल की महिमा | १०१६ |
| ३० | शरीरादि में आसक्त पुरुष की अधोगति का वर्णन | १०३० |
| ३१ | मनुष्य योनि को प्राप्त हुए जीव की गति का वर्णन | १०४० |
| ३२ | धूमदि मार्ग तथ अर्चिरादि मार्ग से जाने वाले जीवों की गति का वर्णन एवं भक्ति योग की उत्कृष्टता का वर्णन | १०५८ |
| ३३ | देवहूति को तत्त्वज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति | १०७१ |


## चतुर्थ स्कन्ध


| | | |
|---|---|---|
| १ | स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन | १०८४ |
| २ | शङ्करजी तथा दक्ष प्रजापति का परस्पर में मनोमालिन्य | ११०२ |
| ३ | सती का दक्ष के यज्ञ में जाने के लिए आग्रह | १११४ |
| ४ | सती देवी का योगाग्नि में प्रवेश | ११२४ |
| ५ | वीरभद्र कृत दक्षयज्ञविध्वंस तथा दक्षवध | ११४० |
| ६ | ब्रह्मादि देवताओं का कैलास जाकर शङ्करजी को प्रसन्न करना | ११५० |
| ७ | दक्ष प्रजापति के यज्ञ की पूर्ति | ११६६ |
| ८ | ध्रुव का वनगमन | ११९२ |
| ९ | ध्रुव का वरदान प्राप्त करके घर लौटना | १२१५ |
| १० | उत्तम का मारा जाना और ध्रुव का यक्षों के साथ युद्ध | १२३७ |
| ११ | स्वायम्भुव मनु का ध्रुव को युद्ध बन्द करने के लिए समझाना | १२४६ |
| १२ | ध्रुवजी को कुबेर का वरदान और विष्णु लोक की प्राप्ति | १२५८ |
| १३ | प्रचेतोपाख्यान | १२७४ |
| १४ | राजा वेन की कथा | १२८७ |

| | | |
|---|---|---|
| १५ | महाराज पृथु का अविर्भाव ओर उनका राज्याभिषेक | १३०० |
| १६ | बन्दीजनों द्वारा महाराज पृथु की स्तुति | १३०७ |
| १७ | महाराज पृथु का पृथिवी पर कोप और पृथिवी द्वारा उनकी स्तुति | १३१६ |
| १८ | पृथ्वी का दोहन | १३२७ |
| १९ | महाराज पृथु के सौ अश्वमेघ यज्ञ | १३३६ |
| २० | महाराज विष्णु की यज्ञशाला में भगवान् विष्णु का प्राकट्य | १३४८ |
| २१ | महाराज पृथु का अपनी प्रजा को उपदेश | १३६२ |
| २२ | महाराज पृथु को सनकादि का उपदेश | १३८० |
| २३ | महराज पृथु की तपस्या और परलोक गमन | १४०२ |
| २४ | पृथु की वंश परम्परा और प्रचेताओं को रुद्र का उपदेश | १४१४ |
| २५ | पुरञ्जनोपाख्यान का प्रारम्भ | १४४१ |
| २६ | राजा पुरञ्जन का आखेट के लिए वन में जाना और रानी का क्रुद्ध होना | १४६१ |
| २७ | पुरञ्जनपुरी पर चण्डवेग का आक्रमण और कालकन्या का चरित्र | १४७० |
| २८ | पुरञ्जन को स्त्री योनि की प्राप्ति और अविज्ञान के उपदेश से उसकी मुक्ति | १४७९ |
| २९ | पुरञ्जनोपाख्यान का तात्पर्य | १४९९ |
| ३० | प्रचेताओं को भगवान् विष्णु का वरदान | १५२९ |
| ३१ | प्रचेताओं को नारदजी का उपदेश और उनका परमपद लाभ | १५४६ |

## पाँचवाँ स्कन्ध

| | | |
|---|---|---|
| १ | प्रियव्रत चरित्र | १५५८ |
| २ | आग्नीध्र चरित्र | १५७६ |
| ३ | राजा नाभि का चरित्र | १५८६ |
| ४ | ऋषभदेवजी का राज्य शासन | १५९४ |
| ५ | ऋषभदेवजी का अपने पुत्रों को उपदेश और स्वयं अवधूत वृत्ति का ग्रहण | १६०० |
| ६ | ऋषभदेव का देहत्याग करना | १६१७ |
| ७ | भरत चरित्र | १६२५ |
| ८ | भरतजी का मृग के मोह में पड़कर मृग की योनि में जन्म लेना | १६३२ |
| ९ | भरतजी का ब्राह्मण वंश में जन्म | १६४३ |
| १० | जड भरत और रहूगण की भेंट | १६५२ |
| ११ | राजा रहूगण को भरतजी का उपदेश | १६६४ |
| १२ | राजा रहूगण का प्रश्न और भरतजी का समाधान | १६७३ |
| १३ | भवाटवी का वर्णन और रहूगण का संशय नाश | १६८१ |

| | | |
|---|---|---|
| १४ | भवाटवी का स्पष्टीकरण | १६९३ |
| १५ | भरतजी के वंश का वर्णन | १७११ |
| १६ | भुवन कोश का वर्णन | १७१६ |
| १७ | गङ्गाजी का विवरण और भगवान् शङ्कर कृत सङ्कर्षण देव की स्तुति | १७२६ |
| १८ | भिन्न-भिन्न वर्षों का वर्णन | १७३७ |
| १९ | किम्पुरुष और भारतवर्ष का वर्णन | १७५४ |
| २० | जम्बूद्वीप से भिन्न छह द्वीपों का वर्णन | १७६७ |
| २१ | सूर्य के रथ और उसकी गति का वर्णन | १७८० |
| २२ | भिन्न-भिन्न ग्रहों की स्थिति और गति का वर्णन | १७८८ |
| २३ | शिशुमार चक्र का वर्णन | १७९४ |
| २४ | राहु आदि की स्थिति तथा अतल आदि नीचे के लोकों का वर्णन | १७९८ |
| २५ | श्रीसङ्कर्षणदेव का विवरण और स्तुति | १८११ |
| २६ | नरकों की विभिन्न गतियों का वर्णन | १८१७ |

## छठा स्कन्ध

| | | |
|---|---|---|
| १ | अजामिलोपाख्यान का प्रारम्भ | १८३२ |
| २ | भगवान् विष्णु के दूतों के द्वारा भागवत धर्म का निरूपण और अजामिल का परम धाम गमन | १८५५ |
| ३ | यम और यमदूतों का संवाद | १८७२ |
| ४ | दक्ष प्रजापति के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और श्रीभगवान् का प्रादुर्भाव | १८८७ |
| ५ | श्रीनारदजी के उपदेश से दक्ष पुत्रों की विरक्ति और नारदजी को दक्ष का शाप | १९०७ |
| ६ | दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं के वंश का विवरण | १९२२ |
| ७ | बृहस्पति द्वारा देवताओं का परित्याग और विश्वरूप का देवगुरु के रूप में वरण | १९३२ |
| ८ | विश्वरूप द्वारा इन्द्र को नारायण कवच का उपदेश | १९४३ |
| ९ | विश्वरूप का वध देवताओं का वृत्रासुर से पराजित होना, श्रीभगवान् की आज्ञा से देवताओं का दधीचि ऋषि के पास जाना | १९५६ |
| १० | देवताओं द्वारा दधीचि ऋषि की हड्डियों द्वारा वज्र का निर्माण और वृत्रासुर की सेना पर आक्रमण | १९७९ |
| ११ | वृत्रासुर की वीर वाणी और भगवत्प्राप्ति | १९८९ |
| १२ | वृत्रासुर का वध | १९९९ |
| १३ | इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आक्रमण | २००९ |
| १४ | वृत्रासुर के पूर्वजन्म का चरित्र | २०१७ |
| १५ | चित्रकेतु को अङ्गिरा महर्षि और देवर्षि नारद का उपदेश | २०३४ |
| १६ | चित्रकेतु का वैराग्य और उनको भगवान् सङ्कर्षण का दर्शन | २०४२ |
| १७ | चित्रकेतु को पार्वतीजी का शाप | २०६७ |
| १८ | अदिति और दिति के सन्तानों की तथा मरुद्गणों की उत्पत्ति | २०७९ |
| १९ | पुंसवन व्रत की विधि | २०९९ |

## सातवाँ स्कन्ध


१ नारदयुधिष्ठिर संवाद और जय विजय की कथा २१०८
२ हिरण्याक्ष का वध होने पर हिरण्यकशिपु का अपनी माता ओर कुटुम्बियों को समझाना २१२५
३ हिरण्यकशिपु की तपस्या और वर प्राप्ति २१४६
४ हिरण्यकशिपु के अत्याचार और प्रह्लाद के गुणों का वर्णन २१५८
५ हिरण्यकशिपु के द्वारा प्रह्लादजी को मारने का प्रयास २१७१
६ प्रह्लादजी का असुर बालकों को उपदेश २१९०
७ प्रह्लादजी द्वारा माता के गर्भ में प्राप्त हुए उपदेश का वर्णन २२०२
८ भगवान् नृसिंह का प्राकट्य एवं हिरण्यकशिपु का वध तथा ब्रह्मादि देवताओं द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति २२१९
९ प्रह्लादजी द्वारा नृसिंह भगवान् की स्तुति २२४३
१० प्रह्लादजी का राज्याभिषेक और त्रिपुरदाह की कथा २२७२
११ मानव धर्म, वर्ण धर्म और स्त्री धर्म का वर्णन २२९२
१२ ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ आश्रमों के नियम २३०४
१३ यतिधर्म का निरूपण और अवधूत प्रह्लद संवाद २३१४
१४ गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार का वर्णन २३२९
१५ गृहस्थों के लिए मोक्ष धर्म का वर्णन २३४०


## आठवाँ स्कन्ध


१ मन्वन्तरों का वर्णन २३६८
२ ग्राह के द्वारा गजेन्द्र का पकड़ा जाना २३७९
३ गजेन्द्र द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और उसकी सङ्कट से मुक्ति २३८८
४ गज और ग्राह का पूर्व चरित और उनका उद्धार २४०१
५ देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना और ब्रह्माकृत भगवान् की स्तुति २४०८
६ देवताओं और दैत्यों का मिलकर समुद्र मन्थन का उद्योग करना २४२५
७ समुद्र मन्थन प्रारम्भ और भगवान् शङ्कर द्वारा विष का पान २४३७
८ समुद्र से अमृत की उत्पत्ति और भगवान् का मोहिनी अवतार २४५३
९ मोहिनी रूपधारी भगवान् के द्वारा अमृत का वितरण २४६५
१० देवासुर संग्राम २४७५
११ देवासुर संग्राम की समाप्ति २४८८
१२ श्रीभगवान् के मोहिनी रूप को देखकर शङ्करजी का मोहित होना २४९९
१३ आगामी सात मन्वन्तरों का वर्णन २५१४
१४ मनु आदि के पृथक-पृथक कर्मों का निरूपण २५२२

| | | |
|---|---|---|
| १५ | राजा बलि की स्वर्ग पर विजय | २५२५ |
| १६ | महर्षि कश्यप द्वारा अदिति को पयोव्रत का उपदेश | २५३६ |
| १७ | श्रीभगवान् का प्रकट होकर अदिति को वर देना | २५५१ |
| १८ | वामन भगवान् का प्रकट होकर राजा बलि की यज्ञशाला में जाना | २५६० |
| १९ | भगवान् का बलिराजा से तीन पग पृथिवी माँगना, बलि का वचन देना, शुक्राचार्य का उनको देने से रोकना | २५७१ |
| २० | भगवान् वामन का विराट रूप धारण कर दो ही पग में पृथिवी और स्वर्ग को नाप लेना | २५८५ |
| २१ | बलि का बाँधा जाना | २५९५ |
| २२ | राजा बलि के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और भगवान् का उन पर प्रसन्न होना | २६०३ |
| २३ | बलि का सुतल लोक जाना | २६१६ |
| २४ | भगवान् के मत्स्यावतार की कथा | २६२५ |


## नवाँ स्कन्ध


| | | |
|---|---|---|
| १ | वैवस्तमनु के पुत्र राजा सुद्युम्न की कथा | २६४४ |
| २ | पृषध्र आदि मनु के पाँच पुत्रों का वंश वर्णन | २६५३ |
| ३ | महर्षि च्यवन और सुकन्या का चरित्र राजा शर्याति का वंश | २६६२ |
| ४ | नाभाग और अम्बरीष की कथा | २६७० |
| ५ | महर्षि दुर्वासा के कष्ट की निवृत्ति | २६९१ |
| ६ | इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा | २६९८ |
| ७ | राजा त्रिशङ्कु और हरिश्चन्द्र की कथा | २७१३ |
| ८ | सगर चरित्र | २७२१ |
| ९ | भगीरथ चरित्र और गङ्गावतरण | २७३० |
| १० | भगवान् श्रीराम की लीलाओं का वर्णन | २७४४ |
| ११ | भगवान् श्रीराम की शेष लीलाओं का वर्णन | २७६१ |
| १२ | इक्ष्वाकुवंश के शेष राजाओं का वर्णन | २७७१ |
| १३ | राजा निमि के वंश का वर्णन | २७७५ |
| १४ | नन्दवंश का वर्णन | २७८१ |
| १५ | ऋचीक जमदग्नि और परशुराम जी का चरित्र | २७९४ |
| १६ | श्रीपरशुरामजी द्वारा क्षत्रिय संहार और विश्वामित्रजी के वंश की कथा | २८०६ |
| १७ | क्षत्रवृद्ध रजि आदि राजाओं के वंश का वर्णन | २८१५ |
| १८ | ययाति चरित | २८२० |
| १९ | ययाति का गृहत्याग | २८३२ |
| २० | पूरु के वंश राजा दुष्यन्त और भरत के चरित्र का वर्णन | २८४० |
| २१ | भरत के वंश का वर्णन राजा रन्तिदेव की कथा | २८५१ |

| | | |
|---|---|---|
| २२ | पाञ्चाल कौरव और मगध देशीय राजाओं का वर्णन | २८६१ |
| २३ | अनु, द्रह्यु, तुर्वसु और यदु के वंश का वर्णन | २८७१ |
| २४ | विदर्भ के वंश का वर्णन | २८७९ |

## दसवाँ स्कन्ध (पूर्वार्ध)

| | | |
|---|---|---|
| १ | श्रीभगवान् के द्वारा पृथिवी को आश्वासन, वसुदेव देवकी का विवाह, और कंस के द्वारा देवकी के छह पुत्रों की हत्या | २८९४ |
| २ | श्रीभगवान् का गर्भप्रवेश और देवताओं द्वारा गर्भस्तुति | २९१६ |
| ३ | भगवान् श्रीकृष्ण का प्रकाट्य | २९३४ |
| ४ | कंस के हाथ से छूटकर योगमाया का आकाश में जाकर भविष्यवाणी करना | २९५३ |
| ५ | गोकुल में श्रीभगवान् का जन्ममहोत्सव | २९६५ |
| ६ | पूतना का उद्धार | २९७४ |
| ७ | शकटभंजन और तृणावर्त उद्धार | २९८७ |
| ८ | श्रीभगवान् के नामकरण संस्कार और बाल लीला | २९९८ |
| ९ | भगवान् श्रीकृष्ण का ऊखल में बाँधा जाना | ३०१५ |
| १० | यमलार्जुन का उद्धार | ३०२२ |
| ११ | श्रीभगवान् का गोकुल से वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर और बकासुर का उद्धार | ३०३६ |
| १२ | अघासुर का वध | ३०५२ |
| १३ | ब्रह्माजी को मोह और उसका नाश | ३०६८ |
| १४ | ब्रह्माजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति | ३०९१ |
| १५ | धेनुकासुर का उद्धार और कालीयनाग के विष से ग्वाल बालो को बचाना | ३१२१ |
| १६ | कालिय पर कृपा | ३१३५ |
| १७ | कालिय के कालियह्रद में आने की कथा और श्रीभगवान् का व्रजवासियों को दावानल से बचाने की कथा | ३१६० |
| १८ | प्रलम्बासुर का वध | ३१६६ |
| १९ | गायों और गोपों की दावानल से रक्षा | ३१७५ |
| २० | वर्षा एवं शरद् ऋतु का वर्णन | ३१७९ |
| २१ | वेणुगीत | ३१९४ |
| २२ | चीरहरण लीला | ३२०५ |
| २३ | यज्ञपत्नियों पर कृपा | ३२१५ |
| २४ | इन्द्रयज्ञ निषेध | ३२३१ |
| २५ | भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण | ३२४२ |
| २६ | श्रीनन्दजी से भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव के विषय में गोपों की बातचीत | ३२५२ |
| २७ | भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक | ३२५८ |

| | | |
|---|---|---|
| २८ | वरुण लोक से नन्दजी को छुडाकर लाना | ३२६८ |
| २९ | रासलीला का आरम्भ | ३२७५ |
| ३० | भगवान् श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की दशा | ३२९४ |
| ३१ | गोपी गीत | ३३०९ |
| ३२ | श्रीभगवान् का प्रकट होकर गोपियों को सान्त्वना प्रदान करना | ३३२० |
| ३३ | महारास | ३३२९ |
| ३४ | सुदर्शन और शंखचूड का उद्धार | ३३४५ |
| ३५ | युगल गीत | ३३५३ |
| ३६ | अरिष्टासुर का वध एवं कंस का अक्रूरजी को व्रज में भेजना | ३३६४ |
| ३७ | केशी और व्योमासुर का उद्धार तथा नारदजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति | ३३७५ |
| ३८ | अक्रूरजी की व्रज की यात्रा | ३३८६ |
| ३९ | भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी का मथुरा गमन | ३४०२ |
| ४० | अक्रूरजी द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति | ३४२० |
| ४१ | भगवान् श्रीकृष्ण का मथुरा में प्रवेश | ३४३२ |
| ४२ | भगवान् कृष्ण की कुब्जा पर कृपा धनुर्भङ्ग तथा कंस की बेचैनी | ३४४७ |
| ४३ | कुबलयापीड का वध और अखाड़े में प्रवेश | ३४५८ |
| ४४ | चाणूर मुष्टिक आदि पहलवानों तथा कंस का वध | ३४६९ |
| ४५ | भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी का यज्ञोपवीत संस्कार और गुरुकुल में निवास | ३४८३ |
| ४६ | उद्धवजी की व्रजयात्रा | ३४९८ |
| ४७ | उद्धव और गोपियों की वार्ता और भ्रमरगीत | ३५१३ |
| ४८ | भगवान् श्रीकृष्ण का कुब्जा और अक्रूरजी के घर जाना | ३५३९ |
| ४९ | अक्रूरजी का हस्तिनापुर गमन | ३५५१ |

## दशम स्कन्धः ( उत्तरार्धः )

| | | |
|---|---|---|
| ५० | श्रीभगवान् का जरासन्ध से युद्ध और द्वारकापुरी का निर्माण | ३५६१ |
| ५१ | कालयवन का भस्म होना और मुचुकुन्द की कथा | ३५७७ |
| ५२ | द्वारका गमन, बलरामजी का विवाह, भगवान् श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणी जी का संदेश लेकर ब्रह्मण का आना | ३५९५ |
| ५३ | रुक्मिणी हरण | ३६०९ |
| ५४ | शिशुपाल के साथी राजाओं की हार और रुक्मी की हार एवं श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह | ३६२५ |
| ५५ | प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर का वध | ३६४१ |
| ५६ | स्यमन्तक मणि की कथा जाम्बवती और सत्यभामा के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का विवाह | ३६५२ |
| ५७ | स्यमन्तक हरण शतधन्वाका वध अक्रूरजी को फिर से द्वारका बुलाना | ३६६४ |
| ५८ | भगवान् श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाहों की कथा | ३६७५ |

| | | |
|---|---|---|
| ५९ | भौमासुर का वध एवं सोलह हजार एक सौ राज कन्याओं के साथ श्रीभगवान् का विवाह | ३६९० |
| ६० | श्रीकृष्ण रुक्मिणी संवाद | ३७०५ |
| ६१ | श्रीभगवान् की सन्तति का वर्णन और अनिरुद्धजी के विवाह में रुक्मी का मारा जाना | ३७२८ |
| ६२ | उषा अनिरुद्ध मिलन | ३७३९ |
| ६३ | भगवान् श्रीकृष्ण के साथ बाणासुर का युद्ध | ३७४८ |
| ६४ | नृग राजा की कथा | ३७६४ |
| ६५ | श्रीबलरामजी का व्रजगमन | ३७७७ |
| ६६ | पौण्ड्रक एवं काशिराज का वध | ३७८५ |
| ६७ | द्विविद का उद्धार | ३७९५ |
| ६८ | कौरवों पर बलरामजी का कोप और सम्ब का विवाह | ३८०२ |
| ६९ | नारदजी द्वारा श्रीभगवान् की गृहचर्या का दर्शन | ३८१५ |
| ७० | भगवान् श्रीकृष्ण की नित्यचर्या और उनके पास जरासन्ध के कैदी राजाओं के दूत का आना | ३८२८ |
| ७१ | भगवान् श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पधारना | ३८४४ |
| ७२ | पाण्डवों के राजसूय यज्ञ का आयोजन और जरासन्ध का वध | ३८५८ |
| ७३ | जरासन्ध के जेल से मुक्त हुए राजाओं की विदाई और श्रीभगवान् का इन्द्रप्रस्थ लौट आना | ३८७३ |
| ७४ | भगवान् श्रीकृष्ण की अग्रपूजा और शिशुपाल का वध | ३८८४ |
| ७५ | राजसूय यज्ञ की पूर्ति और दुर्योधन का अपमान | ३८९८ |
| ७६ | शाल्व के साथ यादवों का युद्ध | ३९०९ |
| ७७ | शाल्व का वध | ३९१७ |
| ७८ | दन्तवक्त्र और विदूरथ का वध तथा तीर्थ यात्रा में बलरामजी द्वारा सूतजी का वध | ३९२७ |
| ७९ | बल्वल का वध एवं बलरामजी की तीर्थ यात्रा | ३९३८ |
| ८० | भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सुदामाजी का स्वागत | ३९४६ |
| ८१ | श्रीदामाजी को ऐश्वर्य की प्राप्ति | ३९५८ |
| ८२ | भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी से गोप गोपियों की भेंट | ३९७० |
| ८३ | श्रीभगवान् की पटरानियों के साथ द्रौपदी की बातचित | ३९८४ |
| ८४ | श्रीवसुदेवजी का यज्ञोत्सव | ३९९९ |
| ८५ | श्रीभगवान् द्वारा वसुदेवजी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश और देवकीजी के मृत छह पुत्रों को लौटा लाना | ४०२० |
| ८६ | सुभद्राहरण और श्रीभगवान् का मिथिला पुरी में राजा जनक और श्रुतदेव के यहाँ एक ही साथ जाना | ४०४१ |
| ८७ | वेदस्तुति | ४०५८ |
| ८८ | शिवजी के सङ्कट की निवृत्ति | ४१०८ |
| ८९ | महर्षि भृगद्वारा त्रिदेवों की परीक्षा तथा भगवान् द्वारा ब्राह्मण के मरे बालकों को वापस लाना | ४११९ |
| ९० | भगवान् श्रीकृष्ण के लीला विहार का वर्णन | ४१३५ |

## ग्यारहवाँ स्कन्ध


| | | |
|---|---|---|
| १ | यदुवंश को ऋषियों का शाप | ४१५१ |
| २ | वसुदेवजी के पास श्रीनारदजी का आना और उनको राजा जनक और नवयोगेश्वरों का संवाद सुनाना | ४१६१ |
| ३ | माया माया से पार होने के उपाय एवं ब्रह्म तथा कर्म योग का निरूपण | ४१८३ |
| ४ | भगवान् के अवतारों का वर्णन | ४२०८ |
| ५ | भक्तिहीन पुरुषों की गति और श्रीभगवान् की पूजा विधि का वर्णन | ४२१८ |
| ६ | देवताओं की स्वधाम पधारने के लिए भगवान् से प्रार्थना यादवों की प्रभास क्षेत्र जाने की तैयारी करते देखकर उद्धवजी का भगवान् के पास आना | ४२३९ |
| ७ | अवधूतोपाख्यान के अन्तर्गत पृथिवी से लेकर कबूतर तक आठ गुरुओं की कथा | ४२५७ |
| ८ | अवधूतोपाख्यान अजगर से लेकर पिङ्गला तक नव गुरुओं की कथा | ४२८१ |
| ९ | अवधूतोपाख्यान कुरर से लेकर भृंगी तक के सात गुरुओं की कथा | ४२९७ |
| १० | लौकिक तथा पारलौकिक भोगों की असारता का निरूपण | ४३१० |
| ११ | भागर्व यदु संवाद | ४३२५ |
| १२ | सत्सङ्ग की महिमा और कर्म तथा कर्मत्याग की विधि | ४३४४ |
| १३ | श्रीभगवान् द्वारा हंस रूप से सनकादि को उपदेश | ४३५५ |
| १४ | भक्तियोग की महिमा और ध्यान विधि का वर्णन | ४३७४ |
| १५ | भिन्न-भिन्न सिद्धियों के नाम और उनका लक्षण | ४३९० |
| १६ | श्रीभगवान् की विभूतियों का वर्णन | ४४०३ |
| १७ | वर्णाश्रम धर्म निरूपण | ४४१७ |
| १८ | वानप्रस्थ और संन्यासी के धर्म | ४४३६ |
| १९ | भक्ति ज्ञान और यम नियमादि साधनों का वर्णन | ४४५२ |
| २० | ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का निरूपण | ४४६९ |
| २१ | गुणदोष व्यवस्था का स्वरूप और रहस्य | ४४८४ |
| २२ | तत्त्वों की संख्या और पुरुष प्रकृति विवेक | ४५०४ |
| २३ | एक अतितितिक्षु ब्राह्मण का इतिहास | ४५२९ |
| २४ | सांख्ययोग वर्णन | ४५५१ |
| २५ | तीनों गुणों की वृत्तियों का वर्णन | ४५६३ |
| २६ | पुरुरवा की वैराग्योक्ति | ४५७७ |
| २७ | क्रिया योग का वर्णन | ४५८९ |
| २८ | परमार्थ निरूपण | ४६०७ |
| २९ | भागवत धर्मों का निरूपण और उद्धवजी का बदरिकाश्रम गमन | ४६२९ |
| ३० | यदुकुल का संहार | ४६४८ |
| ३१ | श्रीभगवान् का स्वधाम गमन | ४६६२ |

## द्वादशस्कन्धः


| | | |
|---|---|---|
| १ | कलियुग के राज वंशों का वर्णन | ४६७१ |
| २ | कलियुग के धर्म | ४६८२ |
| ३ | राज्य युगधर्म और कलि के दोषों से बचने के उपाय | ४६९५ |
| ४ | चार प्रकार का प्रलय | ४७१० |
| ५ | श्रीशुकदेवजी का अन्तिम उपदेश | ४७२५ |
| ६ | परीक्षित् की परमागति तथा जनमेजय द्वारा सर्पक्षत्र | ४७३१ |
| ७ | अथर्वाद की शाखाएँ और पुराणों के लक्षण | ४७५६ |
| ८ | तपस्यारत महर्षि मार्कण्डेय को वरदान की प्राप्ति | ४७६५ |
| ९ | मार्कण्डेय महर्षि को माया का दर्शन | ४७८१ |
| १० | महर्षि मार्कण्डेय को भगवान् शिव का वरदान | ४७९२ |
| ११ | श्रीभगवान् के अङ्ग, उपाङ्ग तथा आयुधों के रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणों का वर्णन | ४८०४ |
| १२ | श्रीमद्भागवत की संक्षिप्त विषय सूची | ४८२० |
| १३ | विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या और श्रीमद्भागवत की महिमा | ४८३९ |
| श्लोकानुक्रमणिका | | ४८४७ |

।। ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ।।

।। श्रीगोपालकृष्णाय नमः ।।

ॐ नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ।

# प्रथम स्कन्ध

## प्रथम अध्याय

### श्रीसूतजी से शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

**जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।**
**तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥**

**अन्वयः—** अस्य यतो जन्मादि अन्वयात् इतरतश्च यः अर्थेषु अभिज्ञः स्वराट् यः हृदा आदिकवये ब्रह्म तेने, यत् सूरयः मुह्यन्ति तेजोवरिमृदां विनिमये यथा त्रिसर्गः अमृषा स्वेन धाम्ना सदानिरस्तकुहकं परं सत्यं धीमहि ।।१।।

**अनुवाद—** जिनसे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय हाते हैं, जो सभी सद्रूप पदार्थों में अनुगत और असत् पदार्थों से पृथक् हैं वे जड़ नही चेतन हैं वे परतंत्र नहीं स्वयंप्रकाश हैं । वे ही ब्रह्मा को भी अपने सङ्कल्प मात्र से वेदों का ज्ञान प्रदान किये । जिन परंब्रह्म के विषय में विज्ञ पुरुष भी मोहित हो जाते हैं । जैसे तेजोमय सूर्य रश्मियों में जल का भ्रम हो जाता है, जल में स्थल का भ्रम होता है, उसी तरह उन परंब्रह्म में त्रिगुणात्मिका जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी सत्य के तरह प्रतीत होती है स्वयंप्रकाश वे ब्रह्म माया और माया के कार्यों से पूर्णरूप से मुक्त हैं ।।१।।

**भावार्थदीपिका**

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि । यस्याऽऽस्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे ।।१।।
विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् । श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमाम तत् ।।२।।
माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ । वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ ।।३।।
संप्रदायानुरोधेन पौर्वापर्यानुसारतः । श्रीभागवतभावार्थदीपिकेयं प्रतन्यते ।।४।।
क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं क्षीरवारिधेः । किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः ।।५।।
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् । यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ।।६।।

श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्कुरः सज्जनिः स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालबालोदयः ।
द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः सहस्राण्यलं पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽतिसुलभे वर्वर्ति सर्वोपरि ।।७।।

अथ नानापुराणशास्त्रप्रबन्धैश्चित्तप्रसत्तिमलभमानस्तत्र तत्रापरितुष्यन्नारदोपदेशतः श्रीमद्भगवद्गुणानुवर्णनप्रधानं भागवतशास्त्रं प्रारिप्सुर्वेदव्यासस्तत्प्रत्यूहनिवृत्त्यादिसिद्धये तत्प्रतिपाद्यपरदेवतानुस्मरलक्षणं मङ्गलमाचरति–जन्माद्यस्येति । परं परमेश्वरं धीमहि। ध्यायतेर्लिङि छन्दसम् । ध्यायेमेत्यर्थः । बहुवचनं शिष्याभिप्रायम् । तमेव स्वरूपतटस्थलक्षणाभ्यामुपलक्षयति ।

यत्र स्वरूपलक्षणं सत्यमिति । सत्यत्वे हेतुः – यत्र यस्मिन्ब्रह्मणि त्रयाणां मायागुणानां तमोरजःसत्त्वानां सर्गो भूतेन्द्रियदेवतारूपोऽमृषा सत्यः । यत्सत्यतया मिथ्यासर्गोऽपि सत्यवत्प्रतीयते तं परं सत्यमित्यर्थः । अत्र दृष्टान्तः – तेजोवारिमृदां यथा विनिमय इति । विनिमयो व्यत्ययोऽन्यस्मिन्नन्यावभासः । स यथाऽधिष्ठानसत्तया सद्वत्प्रतीयत इत्यर्थः । तत्र तेजसि वारिबुद्धिर्मरीचितोये प्रसिद्धा । मृदि काचादौ वारिबुद्धिर्वारिणि च काचादिबुद्धिरित्यादि यथायथमूह्यम् ।

यद्वा तस्यैव परमार्थसत्यत्वप्रतिपादनाय तदितरस्य मिथ्यात्वमुक्तम् । यत्र मृषैवायं त्रिसर्गो न वस्तुतः सन्निति । यत्रेत्यनेन प्रतीतमुपाधिसंबन्धं वारयति । स्वेनैव धाम्ना महसा निरस्तं कुहकं कपटं मायालक्षणं यस्मिंस्तम् । तटस्थलक्षणमाह– जन्मादीति। अस्य विश्वस्य जन्मस्थितिभङ्गा यतो भवन्ति तं धीमहीति । तत्र हेतुः अन्वयादितरतश्च । अर्थेष्वाकाशादिकार्येषु परमेश्वरस्य सद्रूपेणान्वयादकार्येभ्यश्च खपुष्पादिभ्यस्तद्व्यतिरेकात् ।

यद्वा अन्वयशब्देनानुवृत्तिः, इतरशब्देन व्यवृत्तिः । अनुवृत्वात्सद्रूपं ब्रह्म कारणं मृत्सुवर्णादिवत् । व्यावृत्तत्वाद्विश्वं कार्यं घटकुण्डलादिवदित्यर्थः ।

यद्वा सावयवत्वादन्वयव्यतिरेकाभ्यां यदस्य जन्मादि तद्यतो भवतीति संबन्धः ।

तथ च श्रुतिः – '**यतो वा इमानि भूतनि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति** ।।' इत्याद्या। स्मृतिश्च- '**यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे । यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये** ।।' इत्याद्या।

तर्हि किं प्रधानं जगत्कारणत्वाद्ध्येयमभिप्रेतं नेत्याह । अभिज्ञो यस्तम् । '**स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति । स इमाँल्लेकनसृजत**' इत श्रुतेः । '**ईक्षतेर्नाशब्दम्**' इति न्यायाच्च ।

तर्हि किं जीवो ध्येयः स्यान्नेत्याह । स्वराट् स्वेनैव राजते यस्तम् । स्वतः सिद्धज्ञानमित्यर्थः ।

तर्हि किं ब्रह्मा ध्येयः '**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**' इति श्रुतेः । नेत्याह- तेन इति। आदिकवये ब्रह्मणेऽपि ब्रह्म वेदं यस्तेने प्रकाशितवान् । '**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वे यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये**' इति श्रुतेः ।

ननु ब्रह्मणोऽन्यतो वेदाध्ययनमप्रसिद्धम् । सत्यम्, तत्तु हृदा मनसैव तेने विस्तृतवान् । स्वेन बुद्धिवृत्तिप्रवर्तकत्वेन गायत्र्यर्थो दर्शितः ।

वक्ष्यति हि– **प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि । स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ।।**' इति ।

ननु ब्रह्मा स्वयमेव सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन वेदमुपलभतां नेत्याह । यद्यस्मिन्ब्रह्मणि सूरयोऽपि मुह्यन्तीति । तस्माद्ब्रह्मणोऽपि पराधीनज्ञानत्वात्स्वतः सिद्धज्ञानः परमेश्वर एव जगत्कारणम् । अतएव सत्योऽसतः सत्ताप्रदत्वाच्च परमार्थसत्यः सर्वज्ञत्वेन च निरस्तकुहकस्तम् ।

धीमहीति गायत्र्या प्रारम्भेण च गायत्र्याख्यब्रह्मविद्यारूपमेतत्पुराणमिति दर्शितम् । यथोक्तं मत्स्यपुराणे पुराणदानप्रस्तावे-
'**यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते।।**
**लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम् । प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम्।।**
**अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम्** ।

पुराणानतरे च—

**ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः। हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ।।**
**गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः** ।

पद्मपुराणेऽम्बरीषं प्रति गौतमोक्तिः—

**अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु । पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम्** ।। इति ।
अतएव भागवतं नामान्यदित्यपि न शङ्कनीयम् ।।१।।

## भाव प्रकाशिका

**वागीशा० इत्यादि-** जिनके मुख में वागीशा (सरस्वती) का निवास है, वक्ष: स्थल में लक्ष्मीजी का निवास है तथा जिनके हृदय में ज्ञान का निवास है उन नृसिंह भगवान् का मैं भजन करता हूँ ॥१॥ **विश्वसर्ग० इत्यादि-** सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि और उसका संहार आदि नव लक्षणों से लक्षित तथा सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय स्वरूप परंप्राप्य भगवान् श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥ **माधवो० इत्यादि-** लक्ष्मीपति भगवान् नारायण और उमाधव (शङ्करजी) ये दोनों ही सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं तथा सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले हैं। वे दोनों परस्पर में एक दूसरे की आत्मा हैं तथा उन दोनों को परस्पर में प्रणाम करना प्रिय है। ऐसे लक्ष्मीपति भगवान् नारायण और शङ्करजी दोनों की मैं वन्दना करता हूँ ॥३॥ **सम्प्रदाय इति-** सम्प्रदाय के अनुसार तथा पौर्वापर्य भाव के अनुसार इस श्रीमद्भागवत पुराण की भावार्थदीपिका नामक टीका का मैं विस्तार करता हूँ ॥४॥ **क्वाहम्० इत्यादि-** कहाँ तो मेरी मन्द बुद्धि तथा कहाँ तो श्रीमद्भागवत रूपी क्षीरससागर का मन्थन, दोनों में किसी भी प्रकार का तारतम्य नहीं है, फिर भी जिस तरह क्षीरससागर में मन्दराचल पर्वत भी डूब जाता है, उसमें परमाणु की कौन सी बात है ? उसका तो पता भी नहीं चल सकेगा। इस श्लोक में श्रीधर स्वामी ने श्रीमद्भागवत को क्षीरसागर के समान बतलाकर उसका अर्थ निर्णय करने में सर्वथा असमर्थ अपनी बुद्धि को असमर्थ बतलाया हैं ॥५॥ **मूकम्० इत्यादि-** जिनकी कृपा गूङ्गे को भी वाचाल बना देती है और लङ्गड़े से पर्वत को पार करवा देती है मै उन परमानन्द स्वरूप भगवान् लक्ष्मीपति की वन्दना करता हूँ ॥६॥ **श्रीमद्० इत्यादि-** श्रीमद्भागवत रूपी कल्पवृक्ष की उत्पत्ति ओङ्कार से ही हुयी है। यह बारह स्कन्ध रूपी बड़ी शाआओं से युक्त है तथा भक्ति रूपी आलबल (थाला) में इसकी उत्पत्ति हुयी है। यह तीन सौ बत्तीस अध्यायों से सुशोभित हो रहा है। वे अध्याय ही इसकी छोटी शाखायें हैं। इसके अठारह हजार श्लोक रूपी पत्ते हैं जो सभी अभिप्रेत कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। इस तरह से अत्यन्त सुलभ यह महापुराण सभी पुराणों से श्रेष्ठ हैं ॥७॥

**अथ० इत्यादि-** अनेक पुराण शास्त्रों के प्रणयन के द्वारा चित्त की शान्ति नहीं प्राप्त कर सकने के कारण असन्तुष्ट महर्षि बादरायण ने नारदजी के उपदेश को प्राप्त करके श्रीभगवान् के गुणों का जिसमें प्रधान रूप से वर्णन किया गया है ऐसे भागवत शास्त्र को प्रारम्भ करने की इच्छा से, उसकी रचना में सम्भावित विघ्नों के विनाश के लिए, इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य परादेवता का स्मरण रूपी मङ्गलाचरण **जन्माद्यस्य०** इत्यादि श्लोक से महर्षि व्यास करते हैं। परम् शब्द परमेश्वर का बोधक है, उन परमेश्वर का हम, धीमहि अर्थात् ध्यान करते हैं। **ध्यै-चिन्तायाम्** धातु का लिङ्लकार में छान्दस रूप धीमहि पद है। इसका अर्थ है ध्यायेम = हम सभी ध्यान करें। शिष्यों के बहुत्व के अभिप्राय से महर्षि बादरायण बहुवचनान्त प्रयोग करते हैं। **तमेव० इत्यादि** उन परमेश्वर का इस श्लोक में स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण बतलाया गया हैं।

**तत्र स्वरूप०** परमेश्वर का स्वरूप लक्षण सत्यम् है। परमेश्वर के सत्यत्व में कारण है उस परंब्रह्म में ही माया के सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीनों गुणों के कार्य पञ्च महाभूतों, इन्द्रयों और इन्द्रियों के अधिष्ठात देवताओं की सृष्टि अमृषा = सत्य है। उनकी सत्यता के ही कारण मिथ्या भी सृष्टि सत्य प्रतीत होती है। **अत्र दृष्टान्त० इत्यादि** इस विषय में दृष्टान्त उपन्यस्त करते हुए कहते है- **तेजोवरिमृदाम्० इत्यादि** जैसे तेज जल और पृथिवी का परस्पर में होने वाले विनिमय के समान एक वस्तु में दूसरे वस्तु की होने वाली प्रतीति ही विनिमय शब्द वाच्य है। वह अधिष्ठान की सत्यता के कारण सत्य के समान प्रतीत होता है। **तत्रतेजसि०** तेज में (गर्मी के दिनों में चिलचिलाती हुयी धूप में) जल की प्रतीति प्रसिद्ध है। इसी को मृगमरीचिका कहते हैं। उसी तरह मिट्टी तथा काच आदि में जल की बुद्धि होती है तथा जल में भी काच इत्यादि का भी भ्रम होता है। इसी तरह दूसरे प्रकार के होने वाले भ्रमों की भी कल्पना कर लेनी चाहिए।

**यद्वा० इत्यादि-** अथवा उस परमेश्वर को परमार्थ सत्य प्रतिपादित करने के लिए उससे भिन्न सभी वस्तुओं के मिथ्यात्व को बतलाया गया है । उस परंब्रह्म में यह जगत् की सृष्टि मिथ्या ही है । वह सत्य नही है । यत्र इस पद के द्वारा प्रतीत होने वाले उपाधि के सम्बन्ध का निषेध किया गया है । उस परम्ब्रह्म के अपने ही तेज से माया रूपी कपट का उनसे सम्बन्ध नहीं होता है । परंब्रह्म के तटस्थ लक्षण को बतलाते हुए महर्षि जन्मादि० इत्यादि कहते है । अर्थात् जिस परंब्रह्म से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय = संहार होते हैं उस परंब्रह्म का हम ध्यान करते है । इसके हेतु को बतलाते हुए कहते हैं- **अन्वयात् इतरतश्च ।** क्योंकि आकाश आदि कार्यों में परंब्रह्म का सत् रूप से अन्वय (सम्बन्ध) है और कार्यव्यतिरिक्त आकाश पुष्प आदि में परंब्रह्म का व्यतिरेक (सम्बन्ध) का अभाव है ।

**यद्वा० इत्यादि-** अथवा अन्वय शब्द से अनुवृत्ति (अनुगत प्रतीति) की तथा **इतर =** शब्द के द्वारा व्यावृति (नहीं रहने) को बतलाया गया है । सभी कार्य पदार्थों में अनुवृत्त (सद्रूप से वर्तमान) होने के कारण सत् स्वरूप ब्रह्म जगत् के कारण हैं । मिट्टी और सुवर्ण के समान । अर्थात् जैसे घट तथा मणिक आदि में अनुवृत्त होने वाली मिट्टी घट तथा मणिक आदि का कारण है । उसी तरह हार आदि में सुवर्ण की चूकि अनुगत प्रतीति होती है अतएव हार इत्यादि का कारण सुवर्ण है । उसी तरह सभी आकाशादि कार्यों में अनुगत ब्रह्म सभी कार्य पदार्थों का कारण है । **व्यवृत्तत्वात्० इत्यादि-** ब्रह्म में इन सबों की व्यावृत्ति होने के कारण सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का कार्य है । घट तथा कुण्डल के समान ।

**यद्वासावयवत्वात्० इत्यादि-** समस्त घट पटादि कार्य सावयव हैं अतएव वे ब्रह्म के कार्य हैं और निरवयव ब्रह्म इन समस्त कार्यों के कारण है । इस जगत् की जिससे जन्मादि (सृष्टि, स्थिति और संहार) होते है, वह ब्रह्म है इस तरह से इन सबों का अन्वय वयतिरेक के द्वारा जगत् का ब्रह्मकार्यत्व सिद्ध होता है ।

**तथा च श्रुतिः-** श्रुति भी कहती है- **यतो वा इमानि० इत्यादि-** अर्थात् जिससे ये सारे भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए भूत जिसके द्वारा रक्षित होते है, और प्रलय काल की बेला आने पर जिसमें लीन हो जाते हैं वही ब्रह्म है ।

**स्मृतिश्च च यतः सर्वाणि० इत्यादि-** स्मृति भी कहती है- युग का प्रारम्भ होने पर जिससे ये सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं और प्रलय काल के आने पर जिसमें वे लीन हो जाते हैं । यह स्मृति भी जगत् के ब्रह्मकार्यत्व का प्रतिपादन करती है ।

**तर्हिकिम्-** अब प्रश्न उठता है कि यहाँ जगत् के कारण रूप से प्रधान (प्रकृति) के ध्यान का विधान किया क्या है ? तो ऐसी बात नहीं है, क्योंकि प्रकृति जड़ा है वह सृष्टि से पहले ईक्षण रूप सङ्कल्प नहीं कर सकती है । सङ्कल्प करना चेतना का कार्य है । श्रुति कहती है—

**स ईक्षत लोकानुसृजा इति । स इमान् लोकानसृजत ।।**

अर्थात् उस कारण तत्त्व ने ईक्षण रूप सङ्कल्प किया कि मैं लोकों की सृष्टि करूँ और उसने अपने सङ्कल्प मात्र से जगत् की सृष्टि कर दी । किञ्च प्रकृति के जगत् कारणत्व का निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं— **ईक्षतेर्ना शब्दम्** अर्थात् प्रकृति को जगत् का कारण नहीं माना जा सकता है क्योंकि श्रुति ईक्षण पूर्वक सृष्टि को बतलाती है और प्रकृति के जगत् कारणत्व में कोई शब्द भी प्रमाण नहीं है ।

**तर्हि कि जीवोध्येयः इत्यादि-** इस पर दूसरे दार्शनिक कहते हैं कि क्या जीव ही जगत् के कारण रूप से ध्येय है । क्योंकि वह तो ज्ञाता है । अतएव जगत् की सृष्टि करने का सङ्कल्प कर सकता है; तो इसके उत्तर

में ग्रन्थकार कहते हैं- **नेत्याह स्वाराट्** अर्थात् जगत् का जो कारण है वह अभिज्ञ होते हुए **स्वराट्** भी है। **स्वराट्** शब्द की व्युत्पत्ति है **स्वेनैव राजते यस्तम्** जो अपने से ही प्रकाशित होता है, वह स्वराट् है अर्थात् उसे स्वतः सिद्ध ज्ञान वाला होना चाहिए। जीवात्मा का ज्ञान परमात्मा द्वारा प्रदत्त है। अतएव वह स्वराट् नहीं हो सकता है। स्वराट् शब्द का अर्थ स्वत्रंत भी होता है किन्तु जीवात्मा स्वतंत्र नहीं अपितु परमात्मा के परतन्त्र है, अतएव वह ध्येय नहीं हो सकता है।

**तर्हि किं ब्रह्मा ध्येयः**- तो फिर क्या यहाँ पर जगत् के कारण रूप से ब्रह्माजी को ध्येय बतलाया गया है ? श्रुति भी कहती है—

**'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।'**

अर्थात् सृष्टि से पूर्व हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी ही थे। वे सम्पूर्ण भूतसमूह के पति थे। अतएव ब्रह्माजी को ही जगत् के कारण के रूप में ध्येय यह माना जाय क्या ? तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि महर्षि कहते हैं- **तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये।** अर्थात् जिस जगत् के कारण ने आदि कवि ब्रह्माजी के लिए वेदों को प्रकाशित किया। दूसरी श्रुति भी कहती हैं–

**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोत् तस्मै।**
**तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥**

अर्थात् जिस जगत् के कारण भूत परंब्रह्म सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम ब्रह्माजी की सृष्टि करते हैं और जिस परमात्मा ने ब्रह्माजी को वेदों का ज्ञान प्रदान किया उन आत्मबुद्धि प्रकाश स्वरूप देवता की मुमुक्षु मै शरणागति करता हूँ। इससे पता चलता है कि जगत् के कारण ब्रह्माजी नहीं है।

**ननु० इत्यादि-** अब प्रश्न उठता है कि ब्रह्माजी दूसरे से भिन्न से वेदों का अध्ययन किए यह अर्थ प्रसिद्ध नहीं है। तो इसके उत्तर में महर्षि बादरायण कहते हैं **हृदा** अर्थात् परंब्रह्म ने अपने मानसिक सङ्कल्प के ही द्वारा ब्रह्माजी को वेदों का ज्ञान प्रदान कर दिया। वे स्वयं ही बुद्धि की वृत्ति के प्रवर्तक है। अतएव उन्होंने ब्रह्माजी के लिए गायत्री के अर्थ को प्रकाशित कर दिया।

**वक्ष्यति हि० इत्यादि-** आगे चलकर महर्षि बादरायण स्वयं कहेंगे भी **'प्रचोदिता०' इत्यादि** अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी के हृदय में सद्ब्रह्म विषयक ज्ञान का प्रकाश करने के लिए जिन परं ब्रह्म के द्वारा प्रेरित सरस्वती, ब्रह्माजी के हृदय में स्वरूपतः आविर्भूत हो गयीं उन अज्ञान विनाशक ऋषियों में अग्रगण्य परंब्रह्म मुझ पर प्रसन्न हो जायँ।

**ननु ब्रह्मा सुप्तप्रबुद्ध इत्यादि-** अर्थात् यदि यह मान लिया जाय कि जिस तरह सोने से पहले रहने वाले समस्त ज्ञानों को जीव स्वापकाल में भूल जाता है और फिर जगने के पश्चात् स्वयम् उन ज्ञानों को प्राप्त कर लेता है, उसी तरह ब्रह्माजी भी प्रलयकाल से पहले विद्यमान ज्ञान को प्रलयकाल में सो जाने के कारण भूल जाते हैं और जगने के पश्चात् वे अपने पूर्वकल्प में विद्यमान ज्ञान को स्वयं प्राप्त कर लेते हैं , तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है। जिस ब्रह्म के विषय में दिव्य ज्ञान सम्पन्न दिव्य सूरिजनों को भी भ्रम हो जाता है। और ब्रह्माजी तो पराधीन ज्ञान वाले हैं; अतएव स्वतः सिद्धज्ञान सम्पन्न परमेश्वर ही जगत् के कारण हैं। फलतः वे सत्य हैं। असत् पदार्थों को भी सत्ता प्रदान करने के कारण परमेश्वर परमार्थ सत्य हैं, वे सर्वज्ञ हैं अतएव उनके साथ माया का सम्बन्ध नहीं हो पाता है। ऐसे परमेश्वर का हम ध्यान करते है।

**धीमहीति- धीमहि** गायत्री मन्त्र का पद है उस गायत्री के द्वारा ही इस श्रीमद्भागवत पुराण का प्रारम्भ किया

गया है । इससे स्पष्ट सूचित किया गया है कि यह पुराण गायत्री नामक ब्रह्म विद्या स्वरूप है । मत्स्य पुराण के पुराण दान के प्रकरण में कहा भी गया है—

**यत्राधिकृत्य गायत्री वण्येते धर्म विस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते ।।**
**लिखित्वा तच्च यो दद्यात् हेमसिंह समन्वितम् । प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम् ।।**
**अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत् प्रकीर्तितम् ।**

अर्थात् जिसमें गायत्री को ही आधार बनाकर धर्म का वर्णन किया गया है, तथा जो वृत्रासुर के वध की कथा से युक्त है, उसे ही भागवत कहा जाता है । उसको लिखकर सुवर्ण निर्मित सिंह के साथ भाद्रपदमास की पूर्णिमा तिथि को जो दान देता है, वह परम पद को प्राप्त करता है । उस पुराण में अठारह हजार श्लोक बतलाये गये हैं । दूसरे पुराण में भी कहा गया है—

**ग्रन्थोष्टादश सहस्रो द्वादशस्कन्ध सम्मितः हयग्रीव ब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ।**
**गायत्र्या च समारम्भः तद् वै भागवतं विदुः ।**

जो ग्रन्थ अठारह हजार श्लोकों वाला है तथा जिसमें बारह स्कन्ध है । तथा जिसका गायत्री के धीमहि पदसे प्रारम्भ किया गया है उसी को भागवत कहा गया है । **पद्मपुराणे० इत्यादि-** पद्मपुराण में भी राजा अम्बरीष से महर्षि गौतम ने कहा है-

**अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु । पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ।।**

अर्थात् हे अम्बरीष शुकदेवजी के द्वारा उपदिष्ट श्रीमद्भागवत का नित्य ही श्रवण करो । यदि तुम अपने संसार चक्र का नाश चाहते हो तो अपने मुख से भी भागवत को पढो । अतएव जो लोग यह कहते हैं कि भागवत नामक इससे भिन्न देवी भागवत को ही भागवत कहा जाता है उनकी वह शङ्का ठीक नहीं है ।।१।।

**धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।**
**श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ।।२।।**

**अन्वयः**— अत्र परमो धर्मः प्रोज्झितकैतवः, अत्र वेद्यं वास्तवं वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् कृतिभिः शुश्रुषुभिः अत्र हरिः सद्यः हृद्यवरुध्यते रचित परैः किं वा ?।।२।।

**अनुवाद**— महामुनि व्यासजी द्वारा रचित इस श्रीमद्भागवत महापुराण में मोक्ष पर्यन्त फल की कामना से रहित श्रेष्ठधर्म का प्रतिपादन किया गया है । इसमें शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों द्वारा जानने योग्य तीनों संतापों के विनाशक और कल्याणप्रद वास्तव वस्तु परमात्मा का निरूपण किया गया है । उस पुराण को सुनने की इच्छा वाले महापुरुषों के हृदय में शीघ्र ही परमात्मा विराजमान हो जाते हैं, अतएव दूसरे शास्त्रों से क्या लाभ हैं ?।।२।।

**भावार्थदीपिका**

इदानीं श्रोतृप्रवर्तनाय श्रीभागवतस्य काण्डत्रयविषयेभ्यः सर्वशास्त्रेभ्यः श्रैष्ठ्यं दर्शयति– धर्म इति । अत्र श्रीमति सुन्दरे भागवते परमो धर्मो निरूप्यते । परमत्वे हेतुः– प्रकर्षेणोज्झितं कैतवं फलाभिसन्धिलक्षणं कपटं यस्मिन्सः । प्रशब्देन मोक्षाभिसन्धिरपि निरस्तः । केवलमीश्वराराधनलक्षणो धर्मो निरूप्यत इति अधिकारितोऽपि धर्मस्य परमत्वमाह। निर्मत्सराणां परोत्कर्षासहनं मत्सरः, तद्रहितानाम् । सतां भूतानुकम्पिनाम् । एवं कर्मकाण्डविषयेभ्यः शास्त्रेभ्यः श्रैष्ठ्यमुक्तम्। ज्ञानकाण्डविषयेभ्योऽपि श्रैष्ठ्यमाह– वेद्यमिति । वास्तवं परमार्थभूतं वस्तु वेद्यं नतु वैशैषिकाणामिव द्रव्य गुणादिरूपम्। यद्वा वास्तवशब्देन वस्तुनोंऽशो जीवः, वस्तुनः शक्तिर्माया, वस्तुनः कार्य जगच्च, तत्सर्वं वस्त्वेव न ततः पृथगिति वेद्यम् ।

अयत्नेनैव ज्ञातुं शक्यमित्यर्थः । ततः किमत आह । शिवदं परमसुखदम् । किंच आध्यात्मिकादितापत्रयोन्मूलनं च । ज्ञानकाण्डविषयेभ्यः श्रैष्ठ्यं दर्शितम् । कर्तृतोऽपि श्रैष्ठ्यमाह । महामुनिः श्रीनारायणस्तेन प्रथमं संक्षेपतः कृते ।

देवताकाण्डविषयगतं श्रैष्ठ्यमाह- किं वेति । परैः शास्त्रैस्तदुक्तसाधनैर्वेश्वरो हृदि किं वा सद्य एवावरुध्यते स्थिरीक्रियते। वा शब्दः कटाक्षे । किंतु विलम्बेन कथंचिदेव । अत्र तु शुश्रूषुभिः श्रोतुमिच्छद्भिरेव तत्क्षणादेवावरुध्यते । इदमेव तर्हि किमिति सर्वे न शृण्वन्ति तत्राह- कृतिभिरिति । श्रवणेच्छा तु पुण्यैर्विना नोत्पद्यत इत्यर्थः । तस्मादत्र काण्डत्रयार्थस्यापि यथावत्प्रतिपादनादिदमेव सर्वशास्त्रेभ्यः श्रेष्ठम्, अतो नित्यमेतदेव श्रोतव्यमिति भावः ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में महर्षि बादरायण श्रीमद्भागवत के श्रवण में लोगों को प्रवृत्त करने के लिए तीनों काण्डों कर्मकाण्ड, दैवतकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के विषयों तथा सभी शास्त्रों से श्रीमद्भागवत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन **धर्मः प्रोज्झितकैतवः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । **अत्र श्रीमति० इत्यादि** इस सुन्दर श्रीमद्भगावत पुराण में श्रेष्ठ धर्म का निरूपण किया जा रहा है । उस धर्म की श्रेष्ठता इसलिए है कि यह धर्म उज्झित कैतव है । अर्थात् इसमें फलाभिसन्धि रूप कपट का पूर्णरूप से परित्याग कर दिया गया है । अतएव निष्काम धर्म होने के कारण यह श्रेष्ठ धर्म है ।

**प्रोज्झित** पद में प्र उपसर्ग के द्वारा बतलाया गया है कि इस पुराण में मोक्ष की प्राप्ति रूपी फल का भी परित्याग कर दिया गया है । इस महापुराण में केवल ईश्वराराधन रूपी धर्म का निरूपण किया गया है । अतएव अधिकारी की दृष्टि से भी इस धर्म की श्रेष्ठता बतलायी गयी है । **निर्मत्सराणां सताम्०** के द्वारा यह कहा गया है कि यह धर्म मत्सर रहित जीवों पर कृपा करने वाले महापुरुषों का धर्म है । दूसरे के होने वाले उत्कर्ष को देखकर जलने को मत्सर कहते हैं । यह धर्म मत्सर रहित महापुरुषों का है । इस तरह से महर्षि ने कर्मकाण्ड विषयक शास्त्रों से भागवत धर्म की श्रेष्ठता को बतलाया है ।

**ज्ञानकाण्डविषये-** भागवत धर्म ज्ञानकाण्ड के विषयों से भी श्रेष्ठ है, इस अर्थ का प्रतिपादन करते हुए महर्षि बादरायण कहते हैं- **वेद्यम्० इत्यादि** अर्थात् इसमें वास्तव अर्थात् परमार्थ वस्तु को ही वेद्य बतलाया गया है, न कि वैशेषिकों के समान द्रव्य गुण आदि को । **यद्वा० इत्यादि-** अथवा वास्तव शब्द से वस्तुभूत परंब्रह्म के अंश जीव, वस्तुभूत ब्रह्म की शक्ति माया, ब्रह्म के कार्य जगत् ये सभी वस्तु स्वरूप हैं, वस्तुभूत परंब्रह्म से अलग नहीं है । इस तरह से जानना चाहिए । अतएव इस श्रीमद्भागवत के माध्यम से आसानी से ये सब जाने जा सकते हैं । यदि कहें कि इससे क्या हुआ तो महर्षि कहते हैं **शिवदम्** अर्थात् यह धर्म परम सुख को प्रदान करने वाला है तथा **तापत्रयोन्मूलनम्** अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक संसार के इन तीनों सन्तापों को विनष्ट करने वाला है । इस तरह से महर्षि बादरायण ने भागवत प्रोक्त धर्म को ज्ञान काण्ड के विषयों से श्रेष्ठता भी प्रतिपादित की है । महामुनि शब्द से श्रीनारायण ही कहे गये हैं उन्होंने पहले इसका संक्षेप में निर्माण किया था और व्यासजी ने उसका विस्तार किया ।

**देवताकाण्डविषय० इत्यादि** दैवत काण्ड विषयक शास्त्रों के विषयों से इसकी श्रेष्ठता बतलाते हुए महर्षि व्यास ने कहा **किं वा० इत्यादि** अर्थात् दूसरे शास्त्रों और उनमें बतलाये गये साधनों से क्या ईश्वर सद्यः हृदय में स्थिर हो जा सकते हैं ? अर्थात कभी नहीं हो सकते । वा शब्द के द्वारा व्यासजी ने कटाक्ष किया है । उन शास्त्रों से तो बहुत देर से और बड़ी मुश्किल से ईश्वर हृदय में प्रवेश करते हैं । इस श्रीमद्भागवत शास्त्र को सुनने के ईक्षुक लोगों द्वारा तो तत्क्षण ही ईश्वर हृदय में स्थापित कर लिए जाते हैं ।

**इदमेव तर्हीं इत्यादि-** तो फिर प्रश्न उठता है कि सभी लोग इस श्रीमद्भागवत का ही श्रवण क्यों नहीं करते हैं ? तो इसके उत्तर में महर्षि कहते हैं कि पुण्यों के बिना श्रवणेच्छा होती ही नहीं हैं । अतएव पुण्यवान् पुरुषों को ही इसको सुनने की इच्छा होती है । इस तरह तीनों काण्डों के अर्थों का इसमें यथार्थ रूप से प्रतिपादन किए जाने के कारण यह श्रीमद्भागवत शास्त्र ही सभी शास्त्रों से श्रेष्ठ है । फलतः सदा इसका ही श्रवण करना चाहिए ॥२॥

**निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।**
**पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥३॥**

**अन्वयः—** हे भुवि भावुकाः निगमकल्पतरोः गलितं शुकमुखादमृत द्रवसंयुतम् फलम् भागवतं रसम् आलयं मुहुः पिबत ॥३॥

**अनुवाद—** हे भूलोक में विद्यमान रस के मर्म को जानने वाले भक्तजन, वेदरूपी कल्प वृक्ष के पके हुए तथा शुकदेवजी रूपी तोते के मुख से जिसका संयोग हो गया है, ऐसे अमृत के समान अत्यन्त आस्वाद्य रस से परिपूर्ण श्रीमद्भागवत रूपी फल के रस का आपलोग आजीवन बार-बार पान करें ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

इदानीं तु न केवलं सर्वशास्त्रेभ्यः श्रेष्ठत्वादस्य श्रवणं विधीयते, अपितु सर्वशास्त्रफलरूपमिदम्, अतः परमादरेण सेव्यमित्याह- निगमेति । निगमो वेदः स एव कल्पतरुः सर्वपुरुषार्थोपायत्वात्तस्य फलं भागवतं नाम । तत्तु वैकुण्ठगतं नारदेनानीय मह्यं दत्तम् । मया च शुकस्य मुखे निहितम् । तच्च तन्मुखाद्भुवि गलितं शिष्यप्रशिष्यादिरूपपल्लवपरम्परया शनैरखण्डमेवावतीर्णं नतूच्चनिपातेन स्फुटितमित्यर्थः ।

एतच्च भविष्यदपि भूतवन्निर्दिष्टम् । अनागताख्यानेनैवास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तेः । अत एवामृतरूपेण द्रवेण संयुतम् । लोके हि शुकमुखस्पृष्टं फलममृतमिव स्वादु भवतीति प्रसिद्धम् । अत्र शुको मुनिः । अमृतं परमानन्दः स एव द्रवो रसः । **'रसो वै सः' 'रसँ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति'** इति श्रुतेः । अतो हे रसिका रसज्ञास्तत्रापि भावुका हे रसविषेषभावनाचतुराः । अहो भुवि गलितमित्यलभ्यलाभोक्तिः । इदं भागवतं नाम फलं मुहुः पिबत ।

ननु त्वगष्ट्यादिकं विहाय फलाद्रसः पीयते कथं फलमेव पातव्यं तत्राह । रसं रसरूपम् । अतस्त्वगष्ट्यादेर्हेयांशस्याभावात्फलमेव कृत्स्नं पिबत । अत्र च रसतादात्म्यविवक्षया रसवत्त्वस्याविवक्षितत्वाद्गुणवचनेऽपि रसशब्दे मतुपः प्राप्त्यभावात्तेन विनैव रसं फलमिति सामानाधिकरण्यम् । तत्र फलमित्युक्ते पानासंभवो हेयांशप्रसक्तिश्च भवेदिति तन्निवृत्त्यर्थं रसमित्युक्तं रसमित्युक्तेऽपि गलितस्य रसस्य पातुमशक्यत्वात्फलमिति द्रष्टव्यम् । न च भागवतामृतपानं मोक्षेऽपि त्याज्यमित्याह । आलयं लयो मोक्षः । अभिविधावाकारः । लयमभिव्याप्य । नहीदं स्वर्गादिसुखवन्मुक्तैरुपेक्ष्यते किं तु सेव्यत एव । वक्ष्यति हि-

**आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥**

इति ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में महर्षि व्यास बतलाते हैं कि इसके श्रवण का विधान केवल इसलिए नहीं किया जा रहा है कि यह सभी शास्त्रों से श्रेष्ठ है, अपितु इसलिए किया जा रहा है कि यह सभी शास्त्रों का फल है । अतएव इसका सेवन अत्यन्त आदर पूर्वक करना चाहिए । इसी बात को वे **निगम० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । निगम शब्द से वेद को कहा जाता है वही कल्पतरु है, क्योंकि वह कल्पतरु के ही समान सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है । उस वेद नामक वृक्ष के फल का नाम भागवत है । **तत्तु० इत्यादि-** उस भागवत रूपी फल

को वैकुण्ठ से लोकर नारदजी ने मुझे प्रदान किया है । मैंने भी उसको शुक के मुख में डाल दिया । वह फल शुक के मुख से पृथिवी पर गिर पड़ा शिष्य प्रशिष्य रूपी पल्लवं की परम्परा से पृथिवी पर धीरे से गिर पड़ा। अतएव फटा नहीं; अपितु अखण्ड ही रहा क्योंकि वह ऊपर से नहीं गिरा था ।

**एतच्च० इत्यादि-** यह शिष्य परम्परा पृथिवी पर उस फल का गिरना भविष्यत् कालिक हैं । श्रीमद्भागवत प्रणयन काल में तो वह फल पृथिवी पर आया ही नहीं था; किन्तु सर्वज्ञ होने के कारण उसका महर्षि ने भूतकाल के समान निर्देश किया है; क्योंकि अनागत काल में ही इस शास्त्र की प्रवृत्ति हुयी । शुकदेव रूपी तोते के मुख से इसका संयोग होने के कारण यह अमृत के समान अत्यन्त आस्वाद्य रस से भर गया है । **लोके हि** संसार में भी प्रसिद्ध है कि जिस फल को तोता अपने मुख से छू लेता है वह अमृत के समान स्वादिष्ट हो जाता है। यहाँ शुकदेवजी को ही तोता कहा गया है । अमृत शब्द से परमानन्द को कहा गया है । वह परमानन्द ही इस भागवत रूपी फल का रस है ।

**रसौ वै० इत्यादि-** श्रुति भी कहती है कि परब्रह्म रस के समान परमानन्द स्वरूप हैं । **'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।'** उस रस स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त करके जीव आनन्द युक्त हो जाता है । **अतो हे० इत्यादि-** हे रस विशेष के ज्ञाता रसज्ञ पुरुषों यह पृथिवी पर गिरा हुआ भागवत रूपी फल अलभ्य लाभ है । अतएव इस भागवत नामक फल का आपलोग बार-बार पान करें ।

**ननु० इत्यादि-** यदि कहा जाय कि छिलका तथा गुठली इत्यादि को हटा कर ही फल के रस का पान किया जाता है फल का पान कैसे किया जा सकता हैं ? इसीलिए व्यासजी ने कहा– **रसम्** अर्थात् यह फल रस स्वरूप है । इसमें छिलका तथा गुठली का अभाव है अतएव सम्पूर्ण फल को ही पीजिए । **अत्र च रसतादात्म्य० इत्यादि** यहाँ पर रस से अभेद की विवक्षा के ही कारण तथा रसवत्व की विवक्षा का अभाव होने के कारण, गुण के वाचक भी रस शब्द में मतुप् प्रत्यय की प्राप्ति का अभाव होने के कारण मतुप् के बिना ही रस का फल के साथ सामानाधिकरण्य है । यदि फल शब्द का ही प्रयोग होता तो उसका पान करना सम्भव नहीं होता तथा त्याज्यांश की भी प्रसक्ति होती । उसकी निवृत्ति के लिए रस शब्द का प्रयोग किया गया है । रस ही यदि कहा जाता तो फिर पृथिवी पर गिरे हुए रस का पान करना सम्भव नहीं था । इसीलिए महर्षि ने फल कहा है । रस स्वरूप यह फल है । इस भागवत रूपी अमृत का पान मुक्तावस्था में भी ज्याज्य नहीं है । इसी अर्थ का बोध कराने के लिए **आलयम्** पद का प्रयोग किया गया है । लय मोक्ष का वाचक है । अपितु **अभिविधावाकारः** इस सूक्ति के अनुसार इसका पान तब तक किया जाता है जब तक मुक्ति बनी रहे । जिस तरह मुक्तजीव स्वर्गादि सुख की उपेक्षा कर देते हैं उसी तरह से भागवत रस का वे उपेक्षा नहीं करके सेवन करते रहते हैं महर्षि व्यास आगे चलकर स्वयं कहेंगे भी—

**आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ।।**

अर्थात् आत्माराम (अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले) मुनिजन, श्रीभगवान् के विषय में निर्ग्रन्थ होते हैं । वे सभी कामनाओं से रहित होकर श्रीभगवान् की भक्ति किया करते हैं, क्योंकि श्रीभगवान् के गुण ही ऐसे हैं ।।३।।

**नैमिशेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः । सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ।।४।।**

**अन्वयः**— अनिमिषक्षेत्रे नैमिषे शौनकादायः ऋषयः स्वर्गाय लोकाय सहस्रसमम् सत्रम् आसत ।।४।।

**अनुवाद**— भगवान् विष्णु के क्षेत्र नैमिषारण्य में एक बार ऋषिगण स्वर्ग (वैकुण्ठ लोक) की प्राप्ति की इच्छा से एक हजार वर्षों में पूरा होने वाले याग का अनुष्ठान कर रहे थे ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेवमनेन श्लोकत्रयेण विशिष्टदेवतानुस्मरणपूर्वकं प्रारिप्सितस्य शास्त्रस्य विषयप्रयोजनादिवैशिष्ट्येन सुखसेव्यत्वेन च श्रोतॄनभिमुखीकृत्य शास्त्रमारभते- नैमिश इति । ब्रह्मणा विसृष्टस्य मनोमयस्य चक्रस्य नेमिः शीर्यते कुण्ठीभवति यत्र तन्नेमिशं, नेमिशमेव नैमिशम् । तथा च वायवीये-

**एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते । यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसः शुभः ।।**
**इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं सृष्ट्वा मनोमयम् । प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः ।।**
**तेऽपि हृष्टतमा विप्राः प्रणम्य जगतां प्रभुम् । प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्व्यशीर्यत ।।**
**तद्वनं तेन विख्यातं नैमिशं मुनिपूजितम् ।**

इति ।

नैमिष इति पाठे वराहपुराणोक्तं द्रष्टव्यम् । तथाहि गौरमुखमृषिं प्रति भगवद्वाक्यम्—

**एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा । उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम् ।।**
**अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेतन्नैमिषारण्यसंज्ञितम् । भविष्यति यथार्थं वै ब्राह्मणानां विशेषकम् ।।**

इति । अनिमिषः श्रीविष्णुः अलुप्तदृष्टित्वात् । तस्य क्षेत्रे । तथा चात्रैव शौनकादिवचनं '**क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयम्**' इति । स्वः स्वर्गे गीयत इति स्वर्गायो हरिः, स एव लोको भक्तानां निवासस्थानं तस्मै । तत्प्राप्तय इत्यर्थः । सहस्रं समाः संवत्सरा अनुष्ठानकालो यस्य तत्सत्रं सत्रसंज्ञकं कर्मोद्दिश्य आसत उपविविशुः । यद्वा आसताऽकुर्वतेत्यर्थः । आलभेत निर्वपति उपयन्तीत्यादिवत्प्रत्ययोच्चारणमात्रार्थत्वेनाऽऽस्तेर्धात्वर्थस्याविवक्षितत्वात् ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार से तीन श्लोकों द्वारा विशिष्ट देवता परब्रह्म के स्मरण पूर्वक जिसको प्रारम्भ करना अभिप्रेत है उस शास्त्र का विषय तथा प्रयोजन आदि से विशिष्ट तथा जिसका सेवन सुखपूर्वक किया जा सकता है उस शास्त्र के प्रति श्रोताओं को अभिमुख करके महर्षि व्यास प्रारम्भ **नैमिशे० इत्यादि** श्लोक से करते हुए कहते हैं । **ब्रह्मणा० इत्यादि-** ब्रह्माजी के द्वारा छोड़े गये मनोमय चक्र का नेमि जहाँ पर शीर्ण हो जाता है, अर्थात् कुण्ठित हो जाता है, उस स्थान को नेमिश कहते है । नेमिश शब्द से स्वार्थ में प्रत्यय होकर नैमिश शब्द व्युत्पन्न होता है । **तथा च० इत्यादि-** वायु पुराण में कहा भी गया है । मैंने इस मनोमय चक्र की सृष्टि की है, उसको मैं छोड़ रहा हूँ । इसकी नेमि जहाँ पर शीर्ण हो जाय वह स्थान तपस्या की दृष्टि से शुभ है । यह कहकर सूर्य के समान देदीप्यमान मनोमय चक्र की सृष्टि करके तथा महान् देवता श्रीभगवान् को नमस्कार करके ब्रह्माजी ने उसे छोड़ा । वे सभी ऋषिगण भी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक जगत् के स्वामी ब्रह्माजी को प्रणाम करके उस चक्र के पीछे गये और जहाँ पर वह नेमि (चक्र) गिर पड़ा वही मुनिजनों के द्वारा पूजित नैमिश नामक वन विख्यात हो गया ।

**नैमिष इति पाठे० इत्यादि-** नैमिष इस पाठ के विषय में वराहपुराण में कहे गये निम्नांकित श्लोकों को देखना चाहिए । **तथाहि० इत्यादि-** वे श्लोक है गौरमुख मुनि के प्रति श्रीभगवान् का वाक्य है **एवम्० इत्यादि-** इस तरह से करके श्रीवराह भगवान् ने गौरमुख नामक मुनि से कहा मैंने चक्र के द्वारा दानवों की सेना को इस वन में मार दिया है अतएव वन का यथार्थ नाम नैमिष होगा यह ब्राह्मणों के लिए विशेष फल प्रदान करने वाला होगा ।

**अनिमिष इति-** अनिमिष शब्द श्रीभगवान् विष्णु का नाम है क्योंकि उनकी दृष्टि कभी लुप्त नहीं होती है । उन भगवान् विष्णु के क्षेत्र में ऋषिगण उस सत्र को कर रहे थे । इसीलिए इस श्रीमद्भागवत में ही शौनक आदि महर्षियों ने कहा है- '**क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम्** ।' उस भगवान् विष्णु के क्षेत्र में हमलोग इस दीर्घ कालिक सत्र करने के लिए बैठे हैं ।

**स्वर्गाय** शब्द भगवान् विष्णु का बोधक है इस अर्थ को बतलाते हुए श्रीधरस्वामी कहते हैं **स्वः स्वर्गे गीयते इति स्वर्गायः ।** अर्थात् स्वर्गलोक में जिनका गायन किया जाता है वे भगवान् विष्णु ही स्वर्गाय हैं । उनका ही लोक भक्तों का निवास स्थान है उस भगवान् विष्णु की प्राप्ति के लिए यह स्वर्गाय पद का अर्थ है ।

**सहस्रसममासत०** इस पद की व्युत्पत्ति बतलाते हुए वे कहते हैं- **सहस्रं समाः संवत्सराः अनुष्ठनकालो यस्य तत् सत्रसंज्ञकं कर्मोद्दिश्य आसते = उपविविशुः'** अर्थात् एक हजार वर्ष जिसके अनुष्ठान का समय है उस सत्र संज्ञक कर्म को करने के लिए वे ऋषि बैठ गये ।

अथवा आसत शब्द का अर्थ है किए । आलभेत, निर्वपति उपयन्ति इत्यादि पदों के समान प्रत्यय का उच्चारण मात्र ही अर्थ होने के कारण **आस** धातु का अर्थ आसत पद में विवक्षित हीं है ।।४।।

**त एका तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः । संत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ।।५।।**

**अन्वयः**— ते तु एकदा प्रातर्हुतहुताग्नयः मुनयः सत्कृतम् आसीनम् सूतम् इदम् आदरात् पप्रच्छु ।।५।।

**अनुवाद**— एक दिव वे ऋषिगण प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि कृत्यों से निवृत्त होकर बैठे हुए सूतजी का पूजन किए और उनसे आदर पूर्वक पूछे ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

सायंकाले हुता एव हुता अग्नयो यैस्ते । यद्वा हूयत इति हुतं दध्यादि तेन हुता अग्नयो यैस्ते । यद्वा प्रातःकाले हुता एव हुता अग्नयो यैस्ते । अनेन नित्यनैमित्तिकहोमसाकल्यं दर्शितम् । इदं वक्ष्यमाणमादरात्पप्रच्छुः ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

सायंकाल ही जिस अग्नि में जिन लोग ने होम कर दिया था वे ऋषिगण हुताग्नि शब्द वाच्य हैं । **यद्वा० इत्यादि-** अथवा जिन का होम किया जाता है उन दधि इत्यादि से जिन लोगों ने होम कर दिया था । अथवा प्रातःकाल ही जिन लोगों ने अग्नि में होम कर दिया था उन ऋषियों ने । इस तरह से **हुताग्नयः** पद के द्वारा नित्य तथा नैमित्तिक आदि सभी होमों को सूचित किया गया है । जिन बातों को आगे कहा जाना है उन बातों को आदर पूर्वक ऋषियों ने सूतजी से पूछा ।।५।।

ऋषय ऊचुः

**त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ । आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ।।६।।**

**अन्वयः**— हे अनघ ! त्वया खलु सेतिहासानि पुराणानिः यानि उत धर्मशास्त्राणि तानि अपि अधीतानि आख्यातानि अपि ।।६।।

### ऋषियों ने कहा

**अनुवाद**— हे निष्पाप सूतजी ! आपने इतिहासों के साथ सभी पुराणों को तथा जितने भी धर्मशास्त्र हैं उन सबों का विधिपूर्वक अध्ययन किया है तथा उन सबों की व्याख्या भी की है ।

### भावार्थ दीपिका

विविदिषितानर्थान्प्रष्टुं सूतस्य सर्वशास्त्रज्ञानातिशयमाहुः- त्वयेति त्रिभिः श्लोकैः । इतिहासो महाभारतादिस्तत्सहितानि। न केवलमधीतानि अपित्वाख्यातान्यपि व्याख्यातानि च । उत अपि यानि धर्मशास्त्राणि तान्यपि ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

जिन अर्थों को जानना अभिप्रेत है उन अर्थों को पूछने के लिए सूतजी के सभी शास्त्रों के ज्ञानों के आतिशय्य

को उनलोगों ने **त्वया खलु० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा है । इतिहास शब्दसे महाभारत, रामायण इत्यादि को कहा गया है । उन इतिहासों के साथ पुराणों का आपने अध्ययन किया है । केवल आपने अध्ययन ही नहीं किया है, अपितु उन सबों की व्याख्या भी आपने की है, यह **आख्यातान्यपि** पद का अर्थ है। **धर्मशास्त्राणि यान्युत** इसका अर्थ है कि केवल इतिहासों और पुराणों का ही नहीं अपितु जितने भी धर्मशास्त्र हैं उन सबों की भी आपने व्याख्या की है ॥६॥

**यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः। अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥७॥**
**वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात्। ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥८॥**

**अन्वयः**— वेदविदाम् श्रेष्ठो भगवान् बादरायणः अन्ये च मुनयः परावरविदः यानि विदुः हे सूत त्वम् तदनुग्रहात् तत् सर्वं वेत्थ । स्निग्धस्य शिष्यस्य उत गुरवः गुह्यम् अपि ब्रूयुः ॥७-८॥

**अनुवाद**— वेदज्ञों में श्रेष्ठ भगवान् बादरायण ने तथा दूसरे जो पर तत्त्व एवं अवर तत्त्व के ज्ञाता हैं उन मुनियों ने, जिन विषयों को जाना है, उन सभी ज्ञानों को आप वास्तविक रूप से जानते हैं, क्योंकि गुरुजन अपने प्रेमी शिष्यों को गुप्त से गुप्त भी अर्थों को बता दिया करते हैं ॥७-८॥

### भावार्थ दीपिका

किंच यानीत्यादि । विदां विदुषां मध्ये श्रेष्ठो व्यासो यानि वेद । परावरे सगुणनिर्गुणे ब्रह्मणी विदन्तीति तथा ॥७॥ वेत्थ जानासि । सौम्य हे साधो । तेषामनुग्रहात् । तत्त्वतो ज्ञाने हेतुमाह ब्रूयुरिति । स्निग्धस्य प्रेमवतः उत एव । गुह्यं रहस्यमपि ब्रूयुरेव ॥८॥

### भावप्रकाशिका

**किञ्च० इत्यादि-** विदाम् पद का अर्थ है विद्वानों में, अर्थात् महर्षि बादरायण वेद के विद्वानों में श्रेष्ठ हैं। वे जिन अर्थों को जानते हैं । **परावरविदः** पद के पर शब्द से निर्गुण ब्रह्म और अवर शब्द से सगुण ब्रह्म को कहा गया है । उन दोनों प्रकार के ब्रह्म को जानने वालों को **परावरविद्** कहा गया है। **वेत्थ** पद का अर्थ है आप जानते हैं । **सौम्य** पद का अर्थ है हे साधु पुरुष ! उन सभी ऋषियों की कृपा से आप जानते है । ऋषियों द्वारा किए जाने वाले अनुग्रह के कारण **ब्रयु० इत्यादि** के द्वारा कहा गया है । यह **स्निग्ध** पद का अर्थ है प्रेमी, उत्त शब्द एवार्थक है । गुह्यमपि का अर्थ है अत्यन्त गोपनीय भी अर्थ को बतला ही देते हैं ॥७-८॥

**तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम् । पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥९॥**

**अन्वयः**— हे आयुष्मन् तत्र-तत्र अञ्जसा पुंसाम् एकान्ततः श्रेयः यद्विनिश्चितम् तत् नः शंसितुम् अर्हसि ॥९॥

**अनुवाद**— हे आयुष्मन् ! उन सभी शास्त्रों में संसारी जीवों के लिए नियमतः कल्याणकारी रूप से आप जो निश्चित किए हों उसको आप हमलोगों को बतलायें ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

अञ्जसा ग्रन्थार्जवेन । एकान्ततः श्रेयोऽव्यभिचारि श्रेयः साधनम् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

मूल के **अञ्जसा** पद का अर्थ है ग्रन्थानुसार सरलता पूर्वक । **एकान्ततः** पद का अर्थ है नियमतः कल्याण का साधन ॥९॥

**टिप्पणी**— इस अध्याय में सूतजी के प्रति शौनकादि महर्षियों ने छह प्रश्नों को किया है जीवों का नियमतः

कल्याणकारी साधन क्या है ? अवतारों का प्रयोजन क्या हैं ? अवतारों के कर्म क्या हैं ? किस अवतार की कथा कैसी है ? कृष्णावतार के चरित का वर्णन और भगवान् के अपने लोक में चले जाने पर धर्म किसके शरण में गया ? कहा भी गया है—

**पुंसामेकान्ततः श्रेयश्चावतारप्रयोजनम् । तस्य कर्माण्यपि तथा चावतार कथा अपि ।। कृष्णवतार चरितं, धर्मः कं शरणं गतः ।**

उन प्रश्नों में से **पुसामेकान्ततः श्रेयः** से लेकर **येनात्मा सम्प्रसीदति** पर्यन्त पहला प्रश्न वर्णित हैं ।

**प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः । मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे सभ्य ! अस्मिन् कलौ युगे, जनाः प्रायेण अल्पायुषः मन्दाः सुमन्दमतयः मन्दभाग्या, उपद्रुताः ।।१०।।

**अनुवाद**— हे साधो ! इस कलियुग में लोग प्रायः अल्पआयु वाले, कल्याण के साधनों का अनुष्ठान करने में आलसी, मन्दबुद्धि वाले, और अनेक प्रकर के उपद्रवों से ग्रस्त रहते हैं ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

अन्येऽपि बहुना कालेन बहुशास्त्रश्रवणादिभिर्विनिश्चिन्वन्तु नेत्याहुः- प्रायेणेति । हे सभ्य साधो, अस्मिन्युगे कलावल्पायुषो जनास्तत्रापि मन्दा अलसास्तत्रापि सुमन्दमतयस्तत्रापि मन्दभाग्या विघ्नाकुलास्तत्राप्युपद्रुता रोगादिभिः ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि दूसरे लोग भी बहुत समय में और अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके कल्याण के साधन का निश्चय कर लें तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि महर्षियों ने कहा- **प्रायेण० इत्यादि-** हे सभ्य = हे साधो ! इस कलियुग में लोग अल्पायु हो गये हैं । उस पर भी वे मन्द अर्थात् आलसी हो गये हैं । यही नहीं वे मन्दबुद्धि वाले तथा मन्दभाग्य वाले हो गये हैं । साथ-ही-साथ वे रोग आदि के कारण सदा उपद्रव ग्रस्त बने रहते हैं ।।१०।।

**भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः। अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ॥ ब्रूहि नः श्रद्धधानानां येनात्मा संप्रसीदति ॥११॥**

**अन्वयः**— (शास्त्रणि च) भूरीणि, भूरिकर्माणिः विभागशः श्रोतव्यानि, अतः हे साधो ! अत्र यत्सारम् तत् मनीषया समुद्धृत्य श्रद्धानानां ब्रूहि, येनात्मा संप्रसीदति ।।११।।

**अनुवाद**— वे शास्त्र भी अनेक हैं, उनमें अनेक प्रकार के कर्मों का साधन रूप से वर्णन है । यहीं नहीं वे इतने बड़े हैं कि उनका विभाग करके ही श्रवण किया जा सकता है । अतएव हे साधो ! आप अपनी बुद्धि के अनुसार उनके सार भाग को हमलोगों को बतलायें । हम सभी श्रद्धालु हैं । जिससे की हमारे अन्तःकरण की शुद्धि हो सके उसको आप हमलोगों को बतलाएँ ।

**भावार्थदीपिका**

न च बहुशास्त्रश्रवणेऽपि तावतैव फलसिद्धिरित्याहुः- भूरीणीति । भूरीणि कर्माण्यनुष्ठेयानि येषु तानि । समुद्धृत्य यथावदुद्धृत्य । येनोद्धृतवचनेनात्मा बुद्धिः संप्रसीदति सम्यगुपशाम्यति ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

केवल अनेक शास्त्रों के श्रवण मात्र से ही कल्याणकारी साधन का निश्चय हो जाय तो ऐसी भी बात नहीं है । इस बात को बतलाते हुए ऋषिगण कहते हैं- **भूरीणि० इत्यादि-** उन शास्त्रों में आत्मकल्याण के साधन

रूप से अनेक अनुष्ठेय कर्म बतलाये गये हैं। मूल के समुद्धृत्य पद का अर्थ है ज्यों के त्यों उन शास्त्रों से निकाल कर, हमें बतलायें। जिस उपदिष्ट वचन के द्वारा हमलोगों का अन्तःकरण अच्छी तरह से निर्मल हो जाय ॥११॥

**सूत जानासि भद्रं ते भगवान्सात्वतांपतिः। देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे सूत ! ते भद्रम्, सात्त्वतां पतिः भगवान्, देवक्याम् वसुदेवस्य, यस्य चिकीर्षया जातः तत् त्वं जानासि ॥१२॥

**अनुवाद**— हे सूतजी आपका कल्याण हो, आप यह भी जानते हैं कि यदुवंशियों के स्वामी श्रीभगवान् किस कार्य को करने के लिए माता देवकी के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र के रूप में जन्म लिए ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

प्रश्नान्तरं- सूत जानासीरति पञ्चभिः। भद्रं त इत्यौत्सुक्येनाशीर्वादः। (विस्तरेणाशीर्वादवचनेन विष्णुकथाविधातो भवतीति संग्रहेणोक्तम्। तथाहि 'सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः स च विभ्रमः। यन्मुहूर्त क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत्।' इति) भगावान्निरतिशयैश्वर्यादिगुणः। सात्त्वतां सच्छब्देन सत्त्वमूर्तिर्भगवान्स उपास्यतया विद्यते येषामिति सत्त्वन्तो भक्ताः। स्वार्थेऽण् राक्षसवायसादिवत्। तस्य चाश्रवणमार्षम्। तदेवं सत्वन्त इति भवति। तेषां पतिः पालकः। यस्यार्थविशेषस्य चिकीर्षया वसुदेवस्य भार्यायां देवक्यां जातः ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

**सूतजानासि इत्यादि** पाँच श्लोकों से श्रीभगवान् के अवतारों के प्रयोजन के विषय में प्रश्न किया गया है। **भद्रम्** पद के द्वारा महर्षियों ने उत्सुकता वशात् सूतजी को आशीर्वाद दिया है। यदि वे विस्तार से (सूतजी) को आशीर्वाद देने लगते तो भगवान् विष्णु की कथा को आगे बढ़ाने में बाधा होती अतएव **भद्रम्** (आपका कल्याण हो) इस पद के द्वारा अत्यन्त संक्षेप में उन लोगों ने आशीर्वाद दिया है। **तथा हि० इत्यादि-** कहा भी गया है—

**सा हानि स्तन्महच्छिद्रं स मोह सा च विभ्रमः। यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्तयेत् ॥**

अर्थात् जिस मुहूर्त अथवा जिस क्षण में भगवान् वासुदेव का चिन्तन न किया जाय वही जीवन की सबसे बड़ी हानि है। जीवन का सबसे बड़ा विघ्न है, वह जीवन का मोह है और वही जीवन का सबसे बड़ा विकार है।

**भगवान्० इत्यादि** श्रीभगवान् निःसीम ऐश्वर्य और निःसीम कल्याण गुणों से सम्पन्न हैं। **सात्वताम्** पद के सत् से सत्त्वमूर्ति भगवान् कहे गये हैं। वे भगवान् ही जिनके उपास्य है वे सत्त्वन्त पद वाच्य भक्त हैं। जिस तरह राक्षस वायस आदि शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय करके इन शब्दों की सिद्धि हुयी हैं उसी तरह सत्त्वन्त पद बना है। वैदिक प्रयोग होने के कारण उसका अण् श्रवण नहीं होता है। उनके पालक होने के कारण भगवान् सात्वताम् पति हैं। जिस कार्य विशेष को करने के लिए भगवान् माता देवकी के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र के रूप में जन्म लिए उसे आप जानते हैं ॥१२॥

**तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम्। यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग शुश्रूषमाणानां तत् अनुवर्णितुम् अर्हसि। यस्य अवतारः भूतानां क्षेमाय च भवाय च भवति ॥१३॥

**अनुवाद**— हे तात ! उसे हम सुनना चाहते हैं, अतएव उसे आप हमलोगों को सुनायें; क्योंकि श्रीभगवान् का अवतार जीवों के कल्याण के लिए तथा उनकी प्रेममयी समृद्धि के लिए होता है ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे सूत, तन्नोऽनुवर्णयितुमर्हसि। सामान्यतस्तावद्यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय पालनाय। भवाय समृद्धये ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

हे सूतजी ! उसे आप हमलोगों को सुनायें, क्योकि सामान्यतः श्रीभगवान् के अवतार जीवों के क्षेम अर्थात् पालन और समृद्धि के लिए होते हैं ।।१३।।

**आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् । ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ।।१४।।**

**अन्वयः**— घोराम् संसृतिम् आपन्नः नरः विवशः सन् यन्नाम गृणन् ततः सद्यः विमुच्येत । यत् स्वयं भयम् विभेति ।।१४।।

**अनुवाद**— इस भयङ्कर सृष्टि के चक्र में पड़ा हुआ भी जीव यदि विवश भी होकर श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण कर लेता है तो वह शीघ्र ही उस विपत्ति से मुक्त हो जाता है; क्योंकि भगवान् से तो भय भी भयभीत रहता हैं ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

तत्प्रभावमनुवर्णयंतस्तद्यशः श्रवणौत्सुक्यमाविष्कुर्वन्ति- आपन्न इति त्रिभिः । संसृतिमापन्नः प्राप्तः । विवशोऽपि गृणन्। ततः संसृते । अत्र हेतुः- यद्यतो नाम्नो भयमपि स्वयमेव बिभेति ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

**तत् प्रभावम्० इत्यादि-** श्रीभगवान् के प्रभाव का वर्णन करते हुए ऋषियों ने श्रीभगवान् के यश को सुनने की उत्सुकता को अभिव्यक्त करते हुए **आपन्नः इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा- **संसृतिमापन्नः** पद का अर्थ है सृष्टि के चक्र में पड़ा हुआ । **विवशोऽपि गृणन्** का अर्थ है विवश हो कर भी यदि भगवान् के नाम का उच्चारण कर लेता है तो उसी के कारण वह सृष्टि चक्र से छूट जाता है । उसका कारण है कि श्रीभगवान् के नाम से तो भय स्वयम् भयभीत रहता है ।।१४।।

**यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः । सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ।।१५।।**

**अन्वयः**— हे सूत ! यत्पादसंश्रयाः प्रशमायनाः मुनयः उपस्पृष्टाः सद्यः पुनन्ति, स्वर्धुन्यापः तु अनुसेवया ।।१५।।

**अनुवाद**— हे सूतजी ! जिन श्रीभगवान् के चरणों के शरण में रहने वाले परम शान्त मुनिजन स्पर्श कर लेने मात्र से शीघ्र ही पवित्र बना देते हैं और गङ्गाजी का जल तो दीर्घकाल तक सेवन करने से पवित्र बनाता हैं ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

किंच यस्य पादः संश्रयो येषामत एव प्रशमोऽयनं वर्त्म आश्रयो वा येषां ते मुनय उपस्पृष्टाः सन्निधिमात्रेण सेविताः सद्यः पुनन्ति । स्वर्धुनी गङ्गा आपस्तु तत्पादान्निःसृता नतु तत्रैव तिष्ठन्त्यतस्तत्संबन्धेनैव पुनन्त्योऽप्यनुसेवया पुनन्ति नतु सद्य इति मुनीनामुत्कर्षोक्तिः ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

**किञ्च० इत्यादि-** श्रीभगवान् के चरण कमल ही जिन लोगों का आश्रय है वे मुनि प्रशमायन हैं । अत्यधिक शान्ति सम्पन्न हैं । प्रशमायन अर्थात् शान्तिमय जिनका अर्थ है, उन मुनि जनों की सन्निध में रहकर उनका सेवन करने मात्र से ही वे मुनिजन शीघ्र ही पवित्र बना देते हैं । गङ्गाजी का जल तो श्रीभगवान् के चरणों से निकला है । वह जल श्रीभगवान् के चरणों में ही नहीं रहता है अतएव गङ्गाजी का जल श्रीभगवान् के चरणों का सम्बन्ध होने के कारण पवित्र बनाने का काम करता है । किञ्च गङ्गाजी का जल तब पवित्र बनता है जब कि उसका सेवन दीर्घकाल तक किया जाय । वह शीघ्र पवित्र नहीं बनाता है इसतरह से गङ्गाजी के जल की अपेक्षा मुनियों की उत्कृष्टता बतलायी गयी है ।।१५।।

**को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः । शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— तस्य भगवतः को वा शुद्धिकामः पुण्य श्लोकेड्य कर्मणः तस्य भगवतः कलिमलापहम् यशः न शृणुयात् ॥१६॥

**अनुवाद**— अपनी आत्मशुद्धि चाहने वाला कौन ऐसा मनुष्य होगा जो जिनकी लीलओं का पुण्यात्मा पुरुष गायन किया करते हैं उन श्रीभगवान् के यश को नहीं सुनना चाहेगा ?॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

पुण्यश्लोकैरीड्यानि स्तव्यानि कर्माणि यस्य तस्य यशः । कलिमलापहं संसारदुःखोपशमनम् ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

**पुण्यश्लोके० इत्यादि-** पुण्यात्मा पुरुषों के द्वारा जिनके कर्म स्तुति करने योग्य हैं उन श्रीभगवान के यश को कौन नहीं सुनना चाहेगा ? क्योंकि श्रीभगवान् का यश तो कलिकाल के मल स्वरूप दुःखों को विनष्ट कर देने वाला है ॥१६॥

**तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः । ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥१७॥**

**अन्वयः**— लीलया कला दधतः तस्य उदाराणि कर्माणि सूरिभिः परिगीतानि तानि श्रद्दधानानां नः ब्रूहि ॥१७॥

**अनुवाद**— जो भगवान् लीला से ही अवतारों को धारण करते हैं उनके उदार कर्मों का गायन नारदादि देवर्षियों ने विस्तार से किया है । उसको आप श्रद्धा सम्पन्न हमलोगों को सुनायें ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

प्राश्नन्तरं- तस्येति । उदाराणि महन्ति विश्वसृष्ट्यादीनि । सूरिभिर्नारदादिभिः । कला ब्रह्मरुद्रादिमूर्तीः ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

**तस्य इत्यादि-** इस श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के कर्म के विषय में मुनियों ने प्रश्न किया है । **उदाराणि** पद के द्वारा भगवान् के विश्वसृष्टि इत्यादि महान् कर्मों को कहा गया है । **सूरि** शब्द से नारद आदि महर्षियों को कहा गया है । **कला** शब्द के द्वारा श्रीभगवान् की ब्रह्मारुद्र आदि मूर्तियों को कहा गया है । अर्थात् ब्रह्मा रुद्र आदि भी श्रीभगवान् की मूर्ति विशेष हैं ॥१७॥

**अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः । लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे धीमन् अथ आत्ममायया स्वैरम् लीलाविदधतः ईश्वरस्य हरेः शुभाः अवतारकथाः आख्याहि ॥१८॥

**अनुवाद**— हे महाबुद्धिमान् सूतजी इसके पश्चात् अपनी योगमाया से अपनी इच्छा के अनुसार लीला करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीहरि के अवतार की कथा का आप वर्णन करें ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

अथेति प्रश्नान्तरे । अवतारकथाः स्थित्यर्थमेव तत्तदवसरे ये मत्स्याद्यवतारास्तदीयाः कथाः स्वैरं लीलाः कुर्वतः । श्रीकृष्णावतारप्रयोजनप्रश्नेनैव तच्चरितप्रश्नोऽपि जात एवेति ज्ञातव्यम् ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

तीसरे प्रश्न के पश्चात् चौथे प्रश्न में अवतार की कथा को सूचित करने के लिए मूल में अथ शब्द का प्रयोग किया गया है । **अवतारकथाः इत्यादि-** अवतारों की कथा जगत् की स्थिति के ही लिए श्रीभगवान् भिन्न-भिन्न अवसरों पर मत्स्य आदि अवतारों को धारण करते हैं । विभिन्न अवतारों में भगवान् जो अपनी इच्छा के

अनुसार लीला करते हैं, उन सबों का आप वर्णन करें । भगवान् श्रीकृष्ण के अवतारों के प्रयोजन विषयक प्रश्न के ही द्वारा उन अवतारों के चरित के विषय में प्रश्न हो गया यह जानना चाहिए ॥१८॥

**वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे । यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥१९॥**

**अन्वयः**— वयं तु उत्तमश्लोक विक्रमे न वितृप्यामः । यत् शृण्वताम् रसज्ञानाम् पदे-पदे स्वादु स्वादु ॥१९॥

**अनुवाद**— हमलोगों को पुण्य कीर्ति श्रीभगवान् की लीलाओं को सुनने से तृप्ति नहीं होती है; क्योंकि जो रसों के ज्ञाता होते हैं उन लोगों को श्रीभगवान् की लीलाओं में प्रत्येक पद में नये-नये रसास्वाद की अनुभूति होती है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

अत्यौत्सुक्येन पुनरपि तच्चरितान्येव श्रोतुमिच्छतस्तत्रात्मनस्तृप्त्यभावमावेदयन्ति- वयं त्विति । योगयागादिषु तृप्ताः स्म । उद्गच्छति तमो यस्मात्स उत्तमस्तथाभूतः श्लोको यस्य तस्य विक्रमे तु विशेषेण न तृप्यामोऽलमिति न मन्यामहे । तत्र हेतुः- यद्विक्रमं शृण्वताम् । यद्वा अन्ये तृप्यन्तु नाम वयं तु नेति तु शब्दस्यान्वयः । अयमर्थः- त्रेधा ह्यलंबुद्धिर्भवति उदरादिभरणेन वा, रसाज्ञानेन वा, स्वादुविशेषाभावाद्वा । तत्र शृण्वतामित्यनेन श्रोत्रस्याकाशत्वादभरणमित्युक्तम् । रसज्ञानामित्यनेन चाज्ञानतः पशुवत्तृप्तिर्निराकृता । इक्षुभक्षणवद्रसान्तराभावेन तृप्तिं निराकरोति । पदेपदे प्रतिक्षणं स्वादुतोऽपि स्वादु ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

**अत्यौत्सुक्येन० इत्यादि**— अत्यधिक उत्सुकता होने के कारण पुनः श्रीभगवान् के चरितों को सुनने की इच्छा करते हुए ऋषिगण अपनी आत्मा की तृप्ति के अभाव को ही निवेदित करते हुए **वयम् तु० इत्यादि**— श्लोक को कहते हैं । हमलोग योग तथा याग इत्यादि के विषय में तो तृप्त हो गये हैं । उत्तमश्लोक पद की व्युत्पत्ति बतलाते हुए कहते हैं । जिसमें से अज्ञान स्वरूप अन्धकार निकल गया है उसे उत्तमाः कहते हैं । इस तरह का जिसका श्लोक अर्थात् यश है उसे उत्तमश्लोक कहते हैं । ऐसे उत्तमश्लोक श्रीभगवान् ही हैं । उन श्रीभगवान् के विक्रम अर्थात् लीलाओं के विषय में हमलोगों की तृप्ति नहीं होती है । अर्थात् हम शौनकादिकों के हृदय में ऐसा कभी नहीं होता है कि हमलोगों ने श्रीभगवान् की लीलाओं को बहुत सुन लिया अब उन सबों को सुनना अनावश्यक है । उस तृप्ति के अभाव का कारण बतलाते हुए कहते हैं— **यद् विक्रमं शृण्वताम्० इत्यादि ।** श्लोक में प्रयुक्त तु शब्द का यह भी अभिप्राय हो सकता है कि दूसरे लोग भले ही तृप्त हों किन्तु हमलोगों को तृप्ति नहीं होती है ।

**अथमर्थः इत्यादि-** कहने का अभिप्राय यह है कि अलम् बुद्धि तीन प्रकार से होती है— १. पेट इत्यादि के भर जाने पर अलम् बुद्धि होती है । २. रस का ज्ञान नहीं होने पर अलम् बुद्धि होती है और ३. जानने योग्य वस्तु में स्वादुत्व विशेष का अभाव होने पर भी अलम् बुद्धि होती है ।

**तत्र शृण्वताम्०** इस पद के द्वारा यह भी अर्थ सूचित होता है कि आकाश विशेष को ही श्रोत्र शब्द से अभिहित किया जाता है । जिस तरह आकाश कभी भरता नहीं है उसी तरह श्रीभगवान् के यशों का श्रवण करने से हमलोगों के कान भरते नहीं है । अतृप्त ही रह जाते हैं । **रसज्ञानाम्** पद के ज्ञानाभाव के कारण होने वाली पशु की वृत्ति का निषेध किया गया है । **इक्षु भक्षणवत्० इत्यादि**— जैसे ईख चूसने वाले को चूकि एक ही रस की प्राप्ति होती है उसमें दूसरे रस की प्राप्ति नहीं होती है अतएव ईख चूसने वाले को तो तृप्ति हो जाती है किन्तु श्रीभगवान् की प्रत्येक लीलाओं में नये-नये ही रस की अनुभूति होती है । अतएव प्रत्येक लीलाएँ प्रतिक्षण नये-नये ही रस से युक्त प्रतीत होती हैं अतएव उन सबों का श्रवण करने से तृप्ति नहीं होती है ॥१९॥

**कृतवान्किल वीर्याणि सह रामेण केशवः । अतिमर्त्यानि भगवान्गूढः कपटमानुषः ॥२०॥**

**अन्वयः**— गूढः कपटमानुषः भगवान् केशवः, रामेण सह अतिमर्त्यानि वीर्याणि कृतवान् किल ॥२०॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण अपने को छिपाये हुए थे अतएव वे मनुष्य के समान प्रतीत होते थे । किन्तु वे बलरामजी के साथ मिलकर उन्होंने ऐसी लीलाएँ भी की जिन सबों को कोई मनुष्य नहीं कर सकता है ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

अतः श्रीकृष्णचरितानि कथयेत्याशयेनाहुः- कृतवानिति । अतिमर्त्यानि मर्त्याननितिक्रान्तानि गोवर्धनोद्धरणादीनि । मनुष्येष्वसंभावितानीत्यर्थः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि भगवान् श्रीकृष्ण के चरित अत्यन्त स्वादिष्ट हैं अतएव आप भगवान् श्रीकृष्ण की ही लीलाओं का वर्णन करें । इस बात को शौनकादि महर्षियों ने सूतजी से **कृतवान्० इत्यादि** श्लोक से कहा है **अतिमर्त्यानि** पद का अर्थ है जिसे कोई मनुष्य नहीं कर सकता है जैसे गोवर्धन पर्वत को धारण करना इत्यादि । ऐसे कर्म मनुष्यों के लिए असंभावित हैं ॥२०॥

**त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् । कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— पुंसां सत्त्वहरं दुस्तरं कलिं निस्तितीर्षतां नः दुस्तरम् अर्णवं निस्तीर्षतां कृते कर्णधार इव त्वं नः धात्रा संदर्शितः ॥२२॥

**अनुवाद**— यह कलियुग मनुष्यों के अन्तःकरण की पवित्रता और शक्ति को विनष्ट कर देने वाला है अतएव इसको पार कर पाना हमलोगों के लिए कठिन है । जैसे दुस्तर समुद्र को पार करने की इच्छा वालों के लिए कोई कर्णधार मिल जाय उसी तरहसे ब्रह्माजी ने आपसे हमलोगों को मिला दिया है । अब आपके मुख से श्रीहरि की कथा को सुनते-सुनते हमलोग इसको आसानी से पार कर लेंगे ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

अस्मिंश्च समये त्वद्दर्शनमीश्वरेणैव संपादितमित्यभिनन्दन्ति- त्वमिति । कलिं संसारं निस्तर्तुमिच्छताम् । अर्णवं तितीर्षतां कर्णधारो नाविक इव ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

इस समय तो आपका दर्शन श्रीभगवान् ने ही काराया है । इस तरह से सूतजी के दर्शन की प्रशंसा करते हुए ऋषिगण **त्वम्० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । इस कलिरूपी संसार को पार करने की इच्छा वाले हमलोगों के लिए आप समुद्र पार करने की इच्छा वालों को कर्णधार अर्थात् नाविक के समान मिल गये हैं ॥२२॥

**ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि । स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥२३॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे नैमिषेयोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

**अन्वयः**— धर्मवर्मणि ब्रह्मण्ये योगेश्वरे कृष्णे स्वां काष्ठाम् उपेते अधुना धर्मः कं शरणं गतः ॥२३॥

**अनुवाद**— धर्म रक्षक, ब्राह्मणों के भक्त, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के, अपने धाम में पधार जाने पर धर्म ने किसकी शरण ली है ?॥२३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के नैमिषोपाख्यान के अन्तर्गत पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥**

### भावार्थ दीपिका

पुनः प्रश्नान्तरं- ब्रूहीति । धर्मस्य वर्मणि कवचवद्रक्षके । स्वां काष्ठां मर्यादाम् । स्वस्वरूपमित्यर्थः । अस्य चोत्तरं कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह इत्ययं श्लोकः ।।२३।।

**इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।**

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने फिर प्रश्न किया है **ब्रूहि इत्यादि** धर्मवर्मवर्मणि इस पद का अर्थ है कि जिस तरह कवच कवचधारी की रक्षा करता है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण धर्म की रक्षा करते हैं । स्वां काष्ठाम् का अर्थ है अपनी मर्यादा को प्राप्त कर लेने पर अर्थात् अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेने पर । इस छठे प्रश्न का उत्तर तीसरे अध्याय के **कृष्णे स्वधामोपगते० इत्यादि** ४३-४४ श्लोकों के द्वारा दिया गया हैं ।।२३।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।**

# दूसरा अध्याय

## भगवत् कथा और भगवद् भक्ति का माहात्म्य

व्यास उवाच

**इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः । प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१।।**

**अन्वयः**— इति विप्राणाम् सम्प्रश्नसंहृष्टः रौमहर्षणिः तेषां वचः प्रतिपूज्य प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१।।

### महर्षि व्यास ने कहा

**अनुवाद**— इस तरह से उन ब्राह्मणों के द्वारा किए गये प्रश्न को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर रोमहर्षण नामक सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।१।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रथमेऽध्याये षट् प्रश्ना मुनिभिः कृता । द्वितीये तूत्तरं सूतश्चतुर्णामाह तेष्वथ ।।१।। विप्राणां इत्येवंभूतैः सम्यक् प्रश्नैः सम्यग् हृष्टो रोमहर्षणस्य पुत्र उग्रश्रवास्तेषां वचः प्रतिपूज्य सत्कृत्य प्रवक्तुमुपचक्रमे उपक्रान्तवान् ।।१।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से पहले अध्याय में मुनियों ने छह प्रश्नों को किया है । उनमें से चार (शास्त्रों के सार, श्रीभगवान् के पराक्रम, श्रीभगवान् द्वारा अवतारों में किए जाने वाले कर्म तथा पालन) विषयक प्रश्नों का उत्तर इस दूसरे अध्याय में सूतजी ने दिया है । **विप्राणाम्० इत्यादि** शौनकादि ब्राह्मणों द्वारा इस तरह से अच्छी तरह से किए गये प्रश्नों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए रोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने उन ब्राह्मणों के प्रश्नों का समादर करके उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।१।।

सूत उवाच

**यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।**
**पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ।।२।।**

### भावार्थ दीपिका

पुनः प्रश्नान्तरं- ब्रूहीति । धर्मस्य वर्मणि कवचवद्रक्षके । स्वां काष्ठां मर्यादाम् । स्वस्वरूपमित्यर्थः । अस्य चोत्तरं कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह इत्ययं श्लोकः ।।२३।।

**इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।**

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने फिर प्रश्न किया है **ब्रूहि इत्यादि** धर्मवर्मवर्मणि इस पद का अर्थ है कि जिस तरह कवच कवचधारी की रक्षा करता है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण धर्म की रक्षा करते हैं । स्वां काष्ठाम् का अर्थ है अपनी मर्यादा को प्राप्त कर लेने पर अर्थात् अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेने पर । इस छठे प्रश्न का उत्तर तीसरे अध्याय के **कृष्णे स्वधामोपगते० इत्यादि** ४३-४४ श्लोकों के द्वारा दिया गया हैं ।।२३।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।**

# दूसरा अध्याय

## भगवत् कथा और भगवद् भक्ति का माहात्म्य

व्यास उवाच

**इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः । प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१।।**

**अन्वयः**— इति विप्राणाम् सम्प्रश्नसंहृष्टः रौमहर्षणिः तेषां वचः प्रतिपूज्य प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१।।

### महर्षि व्यास ने कहा

**अनुवाद**— इस तरह से उन ब्राह्मणों के द्वारा किए गये प्रश्न को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर रोमहर्षण नामक सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।१।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रथमेऽध्याये षट् प्रश्ना मुनिभिः कृता । द्वितीये तूत्तरं सूतश्चतुर्णामाह तेष्वथ ।।१।। विप्राणां इत्येवंभूतैः सम्यक् प्रश्नैः सम्यग् हृष्टो रोमहर्षणस्य पुत्र उग्रश्रवास्तेषां वचः प्रतिपूज्य सत्कृत्य प्रवक्तुमुपचक्रमे उपक्रान्तवान् ।।१।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से पहले अध्याय में मुनियों ने छह प्रश्नों को किया है । उनमें से चार (शास्त्रों के सार, श्रीभगवान् के पराक्रम, श्रीभगवान् द्वारा अवतारों में किए जाने वाले कर्म तथा पालन) विषयक प्रश्नों का उत्तर इस दूसरे अध्याय में सूतजी ने दिया है । **विप्राणाम्० इत्यादि** शौनकादि ब्राह्मणों द्वारा इस तरह से अच्छी तरह से किए गये प्रश्नों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए रोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने उन ब्राह्मणों के प्रश्नों का समादर करके उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।१।।

सूत उवाच

**यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।**
**पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ।।२।।**

**अन्वयः**— अनुपेतम् अपेतकृत्यं यं प्रव्रजन्तम् विरहकातरः द्वैपायनः पुत्रेति आजुहाव । तन्मयतया तरवः अभिनेदुः तं सर्वभूत हृदयं मुनिम् आ नतोऽस्मि ॥२॥

### सूतजी ने कहा

**अनुवाद**— जिस समय शुकदेवजी का यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं सम्पन्न हो पाया था, तथा जिनको वैदिक कर्मों को करने का अवसर भी नहीं आया था, उनको संन्यास ग्रहण करने के उद्देश्य से अकेले वन में जाते हुए देखकर विरह से व्याकुल व्यासजी पुत्र ! पुत्र ! कहकर पुकारने लगे । उस समय शुकदेवजी के अपने भीतर व्याप्त होने के कारण उनकी ओर से वृक्षों ने उत्तर दिया, उन सभी जीवों के हृदय में निवास करने वाले श्रीशुकदेव मुनि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

प्रवचनस्योपक्रमो नाम गुरुदेवतानमस्कार इति । तमाह- यमिति त्रिभिः । तत्र स्वगुरोः शुकस्यैश्वर्यं तच्चरितेनैव द्योतयन्नाह- यमिति । यं प्रव्रजन्तं संन्यस्य गच्छन्तम् । अनुपेतं मामुपनयस्वेत्युपनयनार्थमाचार्यमनुपसन्नम् । यद्वा केनाप्यनुपेतमननुगतम्। एकाकिनमित्यर्थः । तत्र हेतुः- अपेतकृत्यं कृत्यशून्यं कर्ममार्गेऽप्रवर्तमानं नैष्ठिकत्वात् । द्वैपायनो व्यासो विरहात्कातरो भीतः सन् पुत्र ३ इति प्लुतेनाजुहावाहूतवान् । दूरादाह्वाने प्लुते सत्यपि सन्धिरार्षः । तदा तन्मयतया शुकरूपतया तरवोऽभिनेदुः प्रत्युत्तरमुक्तवन्तः । पितुः स्नेहानुबन्धपरिहाराय यो वृक्षरूपेणोत्तरं दत्तवानित्यर्थः । तं मुनिमानतोऽस्मि। तन्मयत्वोपपादनाय विशेषणम् । सर्वभूतानां हृन्मनः अयते योगबलेन प्रविशतीति सर्वभूतहृदयस्तम् ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

उस समय अपने भीतर शुकदेवजी के व्याप्त होने के कारण शुकदेव रूप से वृक्षों ने शुकदेवजी की ओर से व्यासजी को उत्तर दिया । अर्थात् पिता के स्नेह रूपी बन्धन को दूर करने के लिए शुकदेवजी ने वृक्षरूप से उनको उत्तर दिया । उन तत्त्व मनन परायण शुकदेवजी को मैं नमस्कार करता हूँ । शुकदेवजी के तन्मयत्व का प्रतिपादन करने के लिए **सर्वभूतहृदयम्** यह विशेषण दिया गया है । योग के बल से सभी भूतों के मन में प्रवेश कर जाने वाला होने के कारण शुकदेवजी को सर्वभूत हृदयम् कहा गया है ॥२॥

**यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।**
**संसारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥३॥**

**अन्वयः**— यः स्वानुभावम् अखिलश्रुतिसारम्, अन्धं तमः अतितितीर्षताम् संसारिणाम् करुणया एकम् अध्यात्मदीपम् पुराणगुह्यम्, आह तम् मुनीनाम् गुरुम् व्याससूनुम् उपयामि ॥३॥

**अनुवाद**— जिन शुकदेवजी ने भगवत् स्वरूप का अनुभव कराने वाले, सम्पूर्ण श्रुतियों के सार स्वरूप, घोर अज्ञानान्धकार से परिपूर्ण इस संसार को पार करना चाहने वाले संसारी जीवों पर कृपा करके अद्भुत दीपक के समान इस श्रीमद्भागवत नामक रहस्यमय पुराण का वर्णन किया उन मुनियों के भी गुरु श्रीशुकदेवजी की मैं शरणागति करता हूँ ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

तत्कृपालुतां दर्शयन्नाह— य इति । अन्धं गाढं तमः संसाराख्यमतितर्तुमिच्छताम् । पुराणानां मध्ये गुह्यं गोप्यम् । तत्र हेतुत्वेन चत्वारि विशेषणानि स्वो निजोऽसाधारणोऽनुभावः प्रभावो यस्य तत्स्वानुभावम् । अखिलश्रुतीनां सारम् । एकमद्वितीयम्। अनुपममित्यर्थः । आत्मानं कार्यकारणसंघातमधिकृत्य वर्तमानमात्मतत्त्वमध्यात्मं तस्य दीपं साक्षात्प्रकाशकम् । उपयामि शरणं व्रजामि ॥३॥

भाव प्रकाशिका

**तत्कृपालुताम्० इत्यादि-** श्रीशुकदेवजी की कृपालुता का वर्णन **यः स्वानुभाव इत्यादि** श्लोक से करते हैं । यह संसार अज्ञानान्धकार से परिपूर्ण है । संसार में पड़े हुए जो संसारी जीव इससे बाहर निकलना चाहते हैं, उन संसारी जीवों पर कृपा करके शुकदेवजी ने इस पुराण का वर्णन किया है । **पुराणगुह्यम्** पद का अर्थ है कि यह पुराण सभी पुराणों में अत्यन्त गोपनीय है । इस पुराण की गोपनीयता का प्रकाशन चार विशेषणों से होता है । इस पुराण का अपना असाधारण प्रभाव है, अतएव यह स्वानुभाव है । सम्पूर्ण श्रुतियों का सार स्वरूप होना यह इस पुराण की दूसरी विशेषता है । इस पुराण के समान दूसरा कोई भी पुराण नहीं है । अतएव यह एक अर्थात् अद्वितीय है । **अध्यात्मदीपम्** का अर्थ है कार्य कारण समूह को अपना आश्रय बनाकर रहने वाली आत्मा को अध्यात्म कहते हैं । उस आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने के कारण यह पुराण अध्यात्मदीप है। **उपयामि पद** का अर्थ है मैं शरणागति करता हूँ ।।३।।

**नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।४।।**

**अन्वयः—** नारायणं, नरोत्तमं नरम्, सरस्वतीं देवीं, व्यासं चैव नमस्कृत्य ततः जयमुदीरयेत् ।।४।।

**अनुवाद—** मनुष्यों में श्रेष्ठ अवतार नर-नारायण को, सरस्वती देवी को तथा व्यासजी को नमस्कार करने के पश्चात् संसार तथा अन्तःकरण पर विजय कराने वाले इस श्रीमद्भागवत नामक ग्रन्थ का पाठ करना चाहिए ।।४।।

भावार्थ दीपिका

जयत्यनेन संसारमिति जयो ग्रन्थस्तमुदीरयेदिति स्वयं तथोदीरयन्नन्यान्पौराणिकानुपशिक्षयति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस ग्रन्थ का अध्ययन करके मनुष्य संसार पर तथा अपने अन्तःकरण पर विजय प्राप्त कर सकता है । अतएव इस ग्रन्थ का नाम जय है । इसका उच्चारण कैसे करना चाहिए इस बात की शिक्षा सूतजी स्वयम् इस ग्रन्थ का उच्चारण करके दूसरे पौराणिकों को देते हैं ।।४।।

**मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् । यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ।।५।।**

**अन्वयः—** मुनयः भवद्भिः यत् लोकमङ्गलम्, कृष्णसंप्रश्नः कृतः तदहं साधुपृष्टः, येन आत्मा सम्प्रसीदति ।।५।।

**अनुवाद—** हे मुनियों ! आपलोगों ने जो संसार का मङ्गल करने वाले भगवान् कृष्ण के विषय में प्रश्न किया है, वह आपलोगों ने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इससे आत्मा (अन्तःकरण) पवित्र होता है ।।५।।

भावार्थदीपिका

तेषां वचः प्रतिपूज्येति यदुक्तं तत्प्रतिपूजनं करोति । हे मुनयः ! साधु यथा भवति तथाऽहं पृष्टः । यतो लोकानां मङ्गलमेतत् । यद्यतः कृष्णविषयः संप्रश्नः कृतः । सर्वशास्त्रार्थसारोद्धारप्रश्नस्यापि कृष्णे पर्यवसानादेवमुक्तम् ।।५।।

भावप्रकाशिका

इससे पहले प्रथम श्लोक में **तेषां वचः प्रतिपूज्यः** यह जो कहा है उसके अनुसार मुनियों की वाणी का समादर करते हुए सूतजी कहते हैं, हे मुनियों ! आपलोगों ने बहुत अच्छा प्रश्न किया हैं । क्योंकि यह तो संसारी जीवों के लिए मङ्गलमय है । आप लोगों ने यह प्रश्न श्रीकृष्ण के विषय में किया है । सभी शास्त्रों के सारभूत अर्थ के प्रकाशन से संबद्ध भी प्रश्न का पर्यवसान भगवान् श्रीकृष्ण में ही होता है यह सूतजी ने मुनियों से कहा ।।५।।

**स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति ।।६।।**

**अन्वयः—** पुंसां स वै परमो धर्मः यतः अधोक्षजे अहैतुकी अप्रतिहता भक्तिः भवति यया आत्मा सम्प्रसीदति ।।६।।

**अनुवाद**— मनुष्यों के लिए वही परम धर्म (सर्वश्रेष्ठ) धर्म है । जिससे श्रीभगवान् में निरन्तर बनी रहने वाली निष्काम भक्ति हो । जिस भक्ति से आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करके हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र यत्प्रथमं पृष्टं सर्वशास्त्रसारमैकान्तिकं श्रेयो ब्रूहिति तत्रोत्तरम् । स वै पुंसामिति । अयमर्थः- धर्मो द्विविधः । प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च । तत्र यः स्वर्गाद्यर्थः प्रवृत्तिलक्षणः सोऽपरः । यतस्तु धर्माच्छ्रवणादरादिलक्षणा भक्तिर्भवति स परो धर्मः स एवैकान्तिकं श्रेय इति । कथंभूता । अहैतुकी हेतुः फलानुसन्धानं तद्रहिता । अप्रतिहता विघ्नैरनभिभूता ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

शौनकादि मुनियों ने सर्वप्रथम यह जो पूछा है कि आप सभी शास्त्रों के सारभूत अर्थ को बतलाइये उसी का उत्तर सूतजी ने **सस वै पुंसाम् इत्यादि** श्लोक से दिया है । कहने का अभिप्राय है कि धर्म दो प्रकार का होता है प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्तिलक्षण । जो धर्म स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिए किए जाते हैं वह प्रवृत्ति रूप अपर धर्म है । जो श्रीभगवान के चरित के श्रवण तथा समादर आदि भक्ति स्वरूप धर्म होता है, वह पर धर्म है । वही मनुष्यों के लिए ऐकान्तिक कल्याण है । अब प्रश्न होता है कि वह भक्ति कैसी हो ? तो उसका उत्तर है **अहैतुकी** अर्थात् फल विशेष की इच्छा से रहित हो । वह विघ्नों के द्वारा अभिभूत भी नहीं होती हो ॥६॥

**वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः । जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ॥७॥**

**अन्वयः**— भगवति वासुदेवे प्रयोजितः भक्तियोगः अशु यद् ज्ञानं वैराग्यं च जनयति तदहैतुकम् ॥७॥

**अनुवाद**— भगवान् वासुदेव में जो भक्ति की जाती है, वह शीघ्र ही जिस ज्ञान तथा वैराग्य को उत्पन्न करती है, वह निष्काम होता है ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

ननु 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' इत्यादिश्रुतिभ्यो धर्मस्य ज्ञानाङ्गत्वं प्रसिद्धं तत्कुतो भक्तिहेतुत्वमुच्यते । सत्यम् तत्तु भक्तिद्वारेणेत्याह- वासुदेव इति । अहैतुकं शुष्कतर्काद्यगोचरमौपनिषदमित्यर्थः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न उठता है कि **'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति ।'** अर्थात् ज्ञानी पुरुष वेदवाक्य के आलोक में यज्ञ, दान, तपस्या तथा उपवास के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं । इस तरह की श्रुतियों से स्पष्ट है कि धर्म ज्ञान का अङ्ग है, अतएव उसको भक्ति को उत्पन्न करने वाला कैसे कहा जा सकता है ? तो उसका उत्तर है कि आपकी बात पूर्ण सत्य नहीं है । ज्ञान भक्ति के द्वारा ही उत्पन्न होता है, इस बात को **वासुदेवे इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । **अहैतुकम्** कहकर यह बतलाया गया है वह ज्ञान शुष्क तर्क का विषय नहीं है। अतएव वह उपनिषद् प्रतिपाद्य ज्ञान है ॥७॥

**धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः । नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥८॥**

**अन्वयः**— पुंसां स्वनुष्ठितः यः धर्मः यदि विष्वक्सेनकथासु रतिं न उत्पादयति तदा केवलम् श्रम एव ॥८॥

**अनुवाद**— मनुष्यों के द्वारा अच्छी तरह से अनुष्ठित धर्म यदि श्रीभगवान् की कथा में प्रेम नहीं उत्पन्न करता है, तो उस धर्म का अनुष्ठान केवल श्रम है, उससे कोई भी लाभ नहीं है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

व्यतिरेकमाह- धर्म इति । यो धर्म इति प्रसिद्धः स यदि विष्वक्सेनस्य कथासु रतिं नोत्पादयेत्तर्हि स्वनुष्ठितोऽपि सन्नयं

श्रमो ज्ञेयः । ननु मोक्षार्थस्यापि धर्मस्य श्रमत्वमस्त्येवात आह । केवलम् । विफलः श्रम इत्यर्थः । नन्वस्ति तत्रापि स्वर्गादिफलमित्याशङ्क्यैवकारेण निराकरोति । क्षयिष्णुत्वान्न तत्फलमित्यर्थः । ननु 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति' इत्यादिश्रुतेर्न तत्फलस्य क्षयिष्णुत्वमित्याशङ्क्य हि शब्देन साधयति । 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति तर्कानुगृहीतया श्रुत्या क्षयिष्णुत्वप्रतिपादनात् ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त धर्म के विपरीत बतलाते हुए सूतजी **धर्म० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । जो धर्म रूप से प्रसिद्ध है वह यदि श्रीभगवान् की कथाओं में प्रेम नहीं उत्पन्न करता है तो अच्छी तरह से अनुष्ठान किए जाने पर भी उसको केवल श्रम ही जानना चाहिए । **ननु मोक्षार्थस्यापि० इत्यादि**- अब प्रश्न होता है कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए भी जिस धर्म का अनुष्ठान किया जाता है, वह भी तो श्रमरूप ही है । अतएव सूतजी ने केवल शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् वह श्रम व्यर्थ है । **नन्वस्ति० इत्यादि**- यदि यह कहें कि उसका भी फल स्वर्ग इत्यादि की प्राप्ति है ही तो इस शङ्का का निराकरण **एव** शब्द के द्वारा किया गया है । अर्थात् स्वर्गादि की प्राप्ति क्षयिष्णु है अतएव वह फल कोई फल नहीं है । **ननु अक्षय्यम्० इत्यादि**— यदि यह कहा जाय कि सकाम कर्मों का भी फल अक्षय होता है । श्रुति कहती हैं— **अक्षय्यं ह वै चातुर्मासस्य याजिनः सुकृतं भवति** । अर्थात् चातुर्मास्य आदि सकाम कर्मों का फल भी अक्षय होता है । इस तरह की श्रुतियाँ सकाम कर्मों का फल अक्षय बतलाती हैं । अतएव स्वर्गादि फल क्षयिष्णु नहीं है । तो स्वर्गादि फलों की क्षयिष्णुता की सिद्धि **हि** पद के द्वारा की गयी है ।

**तद् यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामूत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते** । अर्थात् जिस तरह कर्मों से अर्जित लौकिक वस्तु क्षीण होती हैं उसी तरह पुण्यकर्मों के द्वारा अर्जित पारलौकिक स्वर्गादि लोक भी क्षयिष्णु होते हैं, यह तर्कानुगृहीत श्रुति भी पुण्यार्जित स्वर्गादि की क्षयिष्णुता बतलाती हैं ।।८।।

**धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते । नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लभाय हि स्मृतः ।।९।।**

**अन्वयः**— आपवर्गस्य हि धर्मस्य अर्थः अर्थाय न उपकल्पते धर्मैकान्तस्य अर्थस्य कामोलाभाय नहि स्मृतः ।।९।।

**अनुवाद**— मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले धर्म का प्रयोजन धन की प्राप्ति नहीं है अर्थ केवल धर्म के लिए है भोग विलास उसका फल नहीं माना गया है ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं हरिभक्तिद्वारा तदितरवैराग्यात्मज्ञानपर्यन्तः परो धर्म इत्युक्तम् । अन्ये तु मन्यन्ते । धर्मस्यार्थः फलं, तस्य च कामः फलं, तस्य चेन्द्रियप्रीतिः, तत्प्रीतेश्च पुनरपि धर्मार्थादिपरम्परेति । यथाहुः- 'धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते' इत्यादि । तन्निराकारोति- धर्मस्येति द्वाभ्याम् । आपवर्ग्यस्योक्तन्यायेनापवर्गपर्यन्तस्य धर्मस्यार्थाय फलत्वायार्थो नोपकल्पते योग्यो न भवति तथार्थस्याप्येवंभूतधर्माव्यभिचारिणः कामो लाभाय फलत्वाय नहि स्मृतो मुनिभिः ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

उस सकाम कर्म रूप धर्म से भिन्न धर्म श्रीहरि की भक्ति के द्वारा संसार से वैराग्य तथा आत्मज्ञान पर्यन्त होता है । वही परम धर्म है । **अन्ये तु० इत्यादि**— दूसरे लोग तो मानते हैं कि धर्मानुष्ठान का फल अर्थ की प्राप्ति है, और अर्थ का फल काम की प्राप्ति है । काम प्राप्ति का फल इन्द्रियों का सन्तुष्ट होना है और इन्द्रियों की सन्तुष्टि का फल पुनः धर्म अर्थ आदि की प्राप्ति है । **यथाहुः इत्यादि**— जैसा कि उनलोगों ने कहा ही है धर्म से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, उस अर्थ का सेवन (उपयोग) क्यों नहीं किया जाय । इत्यादि । उन लोगों के कथन का निराकरण **धर्मस्य० इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा किया गया है ।।९।।

**कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता । जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥१०॥**

**अन्वयः**— कामस्य लाभः इन्द्रिय प्रीतिः न अपितु यावता जीवेत् इह जीवस्य लाभः तत्त्वजिज्ञासा इह कर्मभिः स्वर्गादि प्राप्ति न ॥१०॥

**अनुवाद**— भोग विलास का फल इन्द्रियों को तृप्त करना नहीं है, अपितु भोग उतना ही करे जितने से जीवन चल जाय । जीवन का फल तत्त्व जिज्ञासा है कर्मों द्वारा स्वर्गादि की प्राप्ति नहीं ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

कामस्य च विषयभोगस्येन्द्रियप्रीतिर्लाभः फलं न भवति किंतु यावता जीवेत तावानेव कामस्य लाभः । जीवनपयाप्ति एव कामः सेव्य इत्यर्थः । जीवस्य जीवनस्य च पुनः कर्मानुष्ठानद्वारा कर्मभिर्य इह प्रसिद्धः सोऽर्थो न भवति किंतु तत्त्वजिज्ञासैवेति ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

विषयोपभोग रूपी काम का फल इन्द्रियों की सन्तुष्टि नहीं है । किन्तु जितने से जीवन चल जाय उतने ही विषयों का उपभोग करना चाहिए । अर्थात् जितना जीवन जीने के लिए पर्याप्त हो उतना ही विषयोपभोग करे । जीवों के जीवन का फल कर्मानुष्ठान द्वारा स्वर्गादि फलों की प्राप्ति नहीं है अपितु जीवन का उद्देश्य तत्त्वजिज्ञासा है ॥१०॥

**वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥११॥**

**अन्वयः**— यज्ज्ञानम् अद्वयम् तदेव तत्त्वम् इति तत्त्वविदः वदन्ति । तदेव तैः तैः वादिभिः ब्रह्म इति, परमात्मा इति भगवान् इति शब्द्यते ॥११॥

**अनुवाद**— जिस ज्ञान को तत्त्वज्ञ पुरुष ज्ञाता ज्ञेय आदि भेदों से रहित अखण्ड या अद्वय कहते हैं उसी ज्ञान को कोई वादी ब्रह्म कहता है, कोई परमात्मा कहता है और कोई भगवान् कहता हैं ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु च तत्त्वजिज्ञासा नाम धर्मजिज्ञासैव धर्म एव हि तत्त्वमिति केचित्तत्राह । तत्त्वविदस्तु तदेव तत्त्वं वदन्ति । किं तत् । यज्ज्ञानं नाम । अद्वयमिति क्षणिकविज्ञानपक्षं व्यावर्तयति । ननु तत्त्वविदोऽपि विगीतवचना एव । मैवम् । तस्यैव तत्त्वस्य नामान्तरैरभिधनादित्याह । औपनिषदैर्ब्रह्मेति, हैरण्यगर्भैः परमात्मेति, सात्वतैर्भगवानित्यभिधीयते ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

**ननु० इत्यादि** यदि कोई यह कहे कि धर्म के विषय में होने वाली जिज्ञासा को तत्त्वजिज्ञासा कहते हैं अतएव धर्म ही तत्त्व है, यह कुछ विचारक कहते है । तो इसके उत्तर में कहते हैं— तत्त्वों के ज्ञाता पुरुष तो तत् शब्द वाच्य को ही तत्त्व कहते हैं । तो प्रश्न है कि तत् शब्द के द्वारा किसको कहा जाता है । तो इसका उत्तर है कि ज्ञान को ही तत् शब्द से कहा जाता है । उसी को कुछ लोग अद्वय अखण्ड या अद्वितीय कहते हैं । यह कहकर क्षणिक विज्ञानात्मवादी बौद्धों के मत का खण्डन किया गया है ।

**ननुतत्त्वविदोऽपि० इत्यादि** यदि कोई यह कहे कि तत्त्वों के भी द्वारा कहे गये वचनों के विषय में विवाद है तो इसके उत्तर में कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है । उस तत्त्व को ही भिन्न-भिन्न विचारकों ने भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया है । औपनिषद मतावलम्बी उसको ब्रह्म शब्द से कहते हैं । ब्रह्ममतावलम्बी उसी को परमात्मा कहते हैं और वैष्णव जन उसी को भगवान् शब्द से अभिहित करते हैं ॥११॥

**तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया । पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥१२॥**

**अन्वयः**— श्रद्दधाना मुनयः ज्ञानवैराग्ययुक्तया श्रुतगृहीतया भक्त्या तत् आत्मानं च आत्मनि पश्यन्ति ॥१२॥

**अनुवाद**— श्रद्धा सम्पन्न मुनिजन भागवत के सुनने से प्राप्त ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त भक्ति के द्वारा उस परमतत्त्वस्वरूप परमात्मा का अपने हृदय में ही साक्षात्कार करते हैं ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

तच्च तत्त्वं सपरिकरया भक्त्यैव प्राप्यत इत्याह । तच्चेत्यन्वयः । ज्ञानवैराग्ययुक्तयेत्यत्र ज्ञानं परोक्षम् । तच्च तत्त्वमात्मनि क्षेत्रज्ञे पश्यन्ति । किं तत् । आत्मानं परमात्मानम् । श्रुतेन वेदान्तादिश्रवणेन गृहीतया प्राप्तयेति भक्तेर्दार्ढ्यमुक्तम् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

उस परमात्मतत्त्व की प्राप्ति ज्ञान तथा वैराग्य रूपी परिकरों से युक्त ही भक्ति के द्वारा होती है, इस बात को बतलाते हुए **तच्च० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । **ज्ञानवैराग्ययुक्तया०** इस पद में जो ज्ञान परोक्ष है उसी तत्व को क्षेत्रज्ञ जीवात्मा में देखते हैं । यदि कहें कि वह क्या है तो इसका उत्तर है कि वही परमात्म तत्त्व है । अर्थात् वेदान्त आदि के श्रवण से जिस भक्ति की प्राप्ति होती है उसके द्वारा उस तत्त्व का साक्षात्कार होता है । इस तरह से यहाँ पर भक्ति की सुदृढता बतलायी गयी है । कहने का अभिप्राय है कि वेदान्तों तथा श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का श्रवण करने से भक्ति सुदृढ हो जाती है । उसी भक्ति के द्वारा परमात्म तत्त्व का अपने हृदय में मुनिजन साक्षात्कार करते हैं ॥१२॥

**अतः पुंभिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः । स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— अतः हे द्विजश्रेष्ठाः पुम्भिः वर्णाश्रमविभागशः स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिः हरितोषणम् ॥१३॥

**अनुवाद**— अतएव हे शौनक आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों मनुष्यों द्वारा अपने वर्णों तथा आश्रमों के लिए शास्त्रों द्वारा विहित धर्मों का विभागपूर्वक अनुष्ठित धर्म की पूर्णरूप से सिद्धि इसी में है कि भगवान् प्रसन्न हो जायँ ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

धर्मस्य फलं भक्तिर्नार्थकामादिकमितीममर्थमुपपाद्योपसंहरति- अत इति । हे द्विजश्रेष्ठाः । हरितोषणं हरेराराधनम् । संसिद्धिः फलम् ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

धर्म का फल भक्ति है अर्थ काम इत्यादि की प्राप्ति नहीं; इस अर्थ का उपसंहार करते हुए सूतजी कहते हैं— **अतः इति** हे द्विजों में श्रेष्ठ शौनक आदि महर्षियों ! हरितोषण का अर्थ श्रीहरि की आराधना है । संसद्धि अर्थात् फल ॥१३॥

**तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतांपतिः । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥१४॥**

**अन्वयः**— तस्मात् एकेन मनसा नित्यदा सात्त्वतां पतिः भगवान् श्रोतव्यः कीर्तितव्यः ध्येयः पूज्यश्च ॥१४॥

**अनुवाद**— अतएव एकाग्रमन से नित्य मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीभगवान् का श्रवण, कीर्तन, ध्यान और पूजन करना चाहिए ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

यस्माच्च भक्तिहीनो धर्मः केवलं श्रम एव तस्माद्भक्तिप्रधान एव धर्मोऽनुष्ठेय इत्याह- तस्मादिति। एकेनैकाग्रेण मनसा॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि भक्ति से रहित धर्म केवल श्रम स्वरूप होने के कारण व्यर्थ है अतएव भक्ति प्रधान ही धर्म का अनुष्ठान

करना चाहिए। इस बात को **तस्मात् इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है। **एकेन मनसा** पद का अर्थ एकाग्रमन से है ।।१४।।

**यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्। छिन्दन्ति कोविदास्तय को न कुर्यात्कथारतिम् ।।१५।।**

**अन्वयः**— यद् अनुध्या असिना युक्ताः कोविदाः कर्म ग्रन्थिनिबन्धनम् छिन्दन्ति तस्य कथा रतिम् को न कुर्यात्।।१५।।

**अनुवाद**— जिस श्रीहरि के ध्यान रूपी तलवार से ज्ञानी पुरुष कर्म की ग्रन्थि रूपी अहङ्कार के बन्धन को काट डालते हैं। उन श्रीहरि की कथा में कौन पुरुष प्रेम नहीं करेगा ?।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

भक्तिरहितो धर्मः केवलं श्रम एवति प्रपञ्चितम्। इदानीं तु भक्तेर्मुक्तिफलत्वं प्रपञ्चयति– यदिति यस्यानुध्या अनुध्यानं सैवासिः खड्गस्तेन युक्ता विवेकिनो ग्रन्थिमहङ्कारं निबध्नाति यत्कर्म तच्छिन्दन्ति तस्य कथायां रतिं को न कुर्यात् ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

भक्ति रहित धर्म केवल श्रम स्वरूप होने के कारण व्यर्थ है इस अर्थ का विस्तार के साथ वर्णन किया जा चुका है। **इदानीम्० इत्यादि** अब इस अर्थ का विस्तार **यत्० इत्यादि** श्लोक से करते हैं कि भक्ति का फल मुक्ति की प्राप्ति ही है। **यदनुध्यासिना** पद का विग्रह है **यद् अनुध्या सैव असिः तेन।** अर्थात् जिन श्रीहरि का ध्यान ही तलवार है उस ध्यान रूपी तलवार के द्वारा विवेकी पुरुष अहङ्कार रूपी ग्रन्थि को काट डालते हैं। वह अहङ्कार ही मनुष्य को कर्म के बन्धन में बाँधने का काम करता है, उसको काट डालने का काम करते हैं। उन श्रीहरि की कथा में कौन प्रेम नहीं करेगा ?।।१५।।

**शुश्रुषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः। स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ।।१६।।**

**अन्वयः**— हे विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् महत् सेवया श्रद्दधानस्य शुश्रूषोः वासुदेव कथा रुचिः स्यात् ।।१६।।

**अनुवाद**— हे विप्रो ! पवित्र तीर्थों का सेवन करने से निष्पाप पुरुष महापुरुषों की सेवा करता है। उससे उसकी उस धर्म में श्रद्धा होती है। श्रद्धा सम्पन्न व्यक्ति में भगवत् कथा को सुनने की इच्छा उत्पन्न होती है। उसके पश्चात् उस शुश्रूषु पुरुष की श्रीहरि की कथा में रुचि उत्पन्न होती है ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

ननु सत्यमेव कर्मनिर्मूलनी हरिकथारतिस्तथापि तस्यां रुचिर्नोत्पद्यते किं कुर्मस्तत्राह– शुश्रूषोरिति। पुण्यतीर्थनिषेवणान्निष्पापस्य महत्सेवा स्यात्, तया च तद्धर्मश्रद्धा, ततः श्रवणेच्छा, ततो रुचिः स्यादित्यर्थः ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

**ननु० इत्यादि** यदि कोई यह कहे कि यह सत्य है कि श्रीहरि की कथा कर्मों का नाश करती है, किन्तु श्रीहरि की कथा में प्रेम ही नहीं उत्पन्न होता है, उसके लिए क्या किया जाय ? इस पर सूतजी ने **शुषूषोः इत्यादि** श्लोक से कहा है कि पुण्यतीर्थों का सेवन करने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। उसके कारण वह महापुरुषों की सेवा करता है। उस सेवा के द्वारा उसकी सर्वश्रेष्ठ धर्म में श्रद्धा उत्पन्न होती है। तदनन्तर उसमें श्रीहरि की कथा को सुनने की इच्छा होती है। तदनन्तर श्रीहरि की कथा मे उस शुश्रूषु पुरुष का प्रेम उत्पन्न हो जाता है ।।१६।।

**शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः। हृद्यन्तस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ।।१७।।**

**अन्वयः**— पुण्यश्रवणकीर्तनः सताम्सुहृत् कृष्णः स्वकथां शृण्वताम् हृद्यन्तः स्थितः हि अभद्राणि विधुनोति ।।१७।।

**अनुवाद**— जिनके यश तथा कीर्तन ये दोनों पवित्र हैं ऐसे सज्जन पुरुषों (सन्तों) के सुहृत् भगवान श्रीकृष्ण

अपनी कथा सुनने वाले मनुष्यों के हृदय में स्थित रहकर उनके जो काम इत्यादि की वासनायें हैं उन सबों को विनष्ट कर देते हैं ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

ततश्च शृण्वतामिति । पुण्ये श्रवणकीर्तने यस्य सः । सतां सुहृद्धितकारी । हृदि यान्यभद्राणि कामादिवासनास्तानि । अन्तस्थो हृदयस्थः सन् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

**ततश्च० इत्यादि-** उसके पश्चात् श्रीभगवान् की कथा सुनने वालों के जिनका श्रवण और कीर्तन पवित्र है ऐसे श्रीभगवान् सन्त महापुरुषों के सुहृत अर्थात् कल्याणकारी है । वे उन लोगों के हृदय में विद्यमान कामादिवासना रूपी जो दोष हैं उन सबों को उन लोगों के हृदय में ही रहकर विनष्ट कर देने का काम करते हैं ॥१७॥

**नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया । भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥१८॥**

**अन्वयः—** अभद्रेषु नष्टप्रायेषु नित्यं भागवतसेवया उत्तमश्लोके भगवति नैष्ठिकी भक्तिः भवति ॥१८॥

**अनुवाद—** जब सभी काम वासना आदि दोषों के प्रायः विनष्ट हो जाने पर भगवद् भक्तों का श्रीमद्भागवत का नित्य ही सेवन करने से उत्तम यश वाले श्रीभगवान् में निश्चल भक्ति होती है ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

ततश्च नष्टप्रायेष्विति । सर्वाभद्रनाशस्य ज्ञानोत्तरकालत्वात्प्रायग्रहणम् । भागवतानां भागवतशास्त्रस्य वा सेवया । नैष्ठिकी निश्चला विक्षेपकाभावात् भक्तिः भवति ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके पश्चात् हृदय की कामादि वासनाएँ प्रायः नष्ट हो जाती हैं । यहाँ पर प्रायः शब्द के प्रयोग का यह अभिप्राय है कि सभी वासनाएँ तो ज्ञानोत्पत्ति के पश्चात् ही होती है । भागवतों की सेवा को भी भागवत सेवा कहते हैं तथा श्रीमद्भागवत की भी सेवा को भागवत सेवा कहते हैं । नैष्ठिकी भक्ति का अर्थ है निश्चल भक्ति; क्योंकि कामादि वासनाओं का नाश हो जाने से भक्ति में विशेषता उत्पन्न करने वाला कोई नहीं रह जाता है ॥१८॥

**तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये । चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥१९॥**

**अन्वयः—** तदा ये रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च एतैः अनाविद्धं चेतः सत्त्वे स्थितम् प्रसीदति ॥१९॥

**अनुवाद—** उस समय रजोगुण तथा तमोगुण से जन्य जो काम तथा लोभ इत्यादि की भावनाएँ हैं उनके नष्ट हो जाने से जब इन सबों से चित्त दूषित नहीं होता है तब वह सत्त्वगुण में स्थित होकर पवित्र एवं निर्मल हो जाता है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

रजश्च तमश्च ये च तत्प्रभवा भावाः कामादयः एतैरनाविद्धमनभिभूतम् । प्रसीदत्युपशाम्यति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

रजोगुण एवं तमोगुण और उनसे उत्पन्न काम इत्यादि की भावना इन सबों से जब चित्त अभिभूत नहीं होता है तो वह प्रसन्न हो जाता है । प्रसीदति का अर्थ है शान्त हो जाता है ॥१९॥

**एवंप्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः । भगवत्तत्त्व विज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ॥२०॥**

**अन्वयः—** एवं भगवद्भक्ति योगतः मुक्तसङ्गस्य प्रसन्न मनसः भगवत्तत्त्वविज्ञानं जायते ॥२०॥

**अनुवाद**— इस तरह प्रेममयी भक्ति के कारण जब संसार की सारी आसक्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं तो भक्त का मन प्रसन्न हो जाता है और उसके हृदय में भगवत् तत्त्व का विज्ञान अपने आप आविर्भूत हो जाता है ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

भगवद्भक्तियोगतः प्रसन्नमनसोऽत एव मुक्तसङ्गस्य ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की भक्ति करने के कारण जिसका मन प्रसन्न हो गया है उसके फलस्वरूप संसार की आसक्ति से रहित पुरुष का विज्ञान अपने आप आविर्भूत हो जाता है ॥२०॥

**भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥२१॥**

**अन्वयः**— आत्मनि ईश्वरे दृष्टे एव हृदयग्रन्थिः भिद्यते, सर्वसंशयाः छिद्यन्ते अस्य कर्माणि क्षीयन्ते च ॥२१॥

**अनुवाद**— हृदय में आत्मा स्वरूप श्रीभगवान् का साक्षात्कार होते ही हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सारे सन्देह विनष्ट हो जाते हैं और कर्मों के बन्धन क्षीण हो जाते हैं तथा अपने आप आत्मा प्रसन्न हो जाता है ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

विज्ञानफलमाह- भिद्यत इति । हृदयमेव ग्रन्थिश्चिज्जडग्रथनरूपोऽहङ्कारः । अतएव सर्वे संशया असंभावनादिरूपाः । कर्माण्यनारब्धफलानि । आत्मनि स्वरूपभूते ईश्वरे दृष्टे साक्षात्कृते सति । एवकारेण विज्ञानानन्तरमेवेति दर्शयति ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

**भिद्यते० इत्यादि-** श्लोक के द्वारा सूतजी विज्ञान का फल बतलाते हैं । हृदय ही ग्रन्थि है अर्थात् ज्ञान स्वरूप आत्मा और जड़ की ग्रन्थिरूप अहङ्कार है । ग्रन्थि के टूट जाने के ही कारण असंभावनादि रूप सभी संदेह विनष्ट हो जाते हैं तथा जिन कर्मों का फल मिलना प्रारम्भ नहीं हुआ है वे क्षीण हो जाते हैं । हृदय में ही स्वरूपभूत ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है । एव शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि हृदय में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् ही हृदय की ग्रन्थि का भेदन होता है ॥२१॥

**अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा । वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— अतः कवयः वै नित्यम् भगवति वासुदेवे आत्मप्रसादनीम् भक्तिं परमया मुदा कुर्वन्ति ॥२२॥

**अनुवाद**— इसीलिए ज्ञानी पुरुष भगवान् वासुदेव की आत्मप्रसाद को प्रदान करने वाली प्रेमाभक्ति को सदा बड़े ही आनन्द पूर्वक करते हैं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र च सदाचारं दर्शयन्नुपसंहरति– अत इति । आत्मनः प्रसादनीं मनःशोधनीम् । वासुदेवे भक्तिं कुर्वन्तीति भजनीयविशेषो दर्शितः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

विज्ञान के विषय में सत् पुरुषों के आचरण का निरूपण **अतौ वै० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । **आत्मप्रसादनीम्** का अर्थ है मन को शुद्ध बनाने वाली । भगवान् वासुदेव की नित्य निरन्तर भक्ति करते हैं इस कथन के द्वारा भजनीय विशेष को बतलाया गया है । अर्थात् सर्वश्रेष्ठ भजन के योग्य भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं इस बात को बतलाया गया है ॥२२॥

**सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ।**
**स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥२३॥**

**अन्वयः**— सत्त्वं रजः तमः इति प्रकृतेः गुणाः तैः युक्तः एकः (एव) परः पुरुषः अस्य स्थित्यादये इह हरिविरिञ्चि हरेति संज्ञाः धत्ते । तत्र नृणां श्रेयांसि खलु सत्त्वतनोः (हरेः एव) स्युः ॥२३॥

**अनुवाद**— सत्त्व रजस् एवं तमस् ये तीनों प्रकृति के गुण हैं । इन तीनों से युक्त एक ही परम पुरुष इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के लिए विष्णु, ब्रह्मा, शिव इन तीन नामों को धारण करते हैं, किन्तु मनुष्यों का कल्याण तो सत्त्वप्रधान श्रीहरि से ही होता है ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवोपपादयितुं ब्रह्मादीनां त्रयाणामेकात्मकत्वेऽपि वासुदेवस्याधिक्यमाह- सत्त्वमिति । इह यद्यप्येक एव परः पुमानस्य विश्वस्य स्थित्यादये स्थितिसृष्टिप्रलयार्थे हरिविरिञ्चिहरेतिसंज्ञाः केवलं भिन्ना धत्ते । हरिविरिञ्चिहरा इति वक्तव्ये सन्धिरार्षः । तत्र तेषां मध्ये श्रेयांसि शुभफलानि सत्त्वतनोर्वासुदेवादेव स्युः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करने के लिए ब्रह्मा आदि के एकात्मक होने पर भी वासुदेव रूप की श्रेष्ठता को **सत्त्वम् इत्यादि** श्लोक बतलाते हैं । यद्यपि परम पुरुष एक ही हैं किन्तु इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के लिए विष्णु, ब्रह्मा और शिव की अलग-अलग नाम मात्र को वे धारण करते हैं । यद्यपि यहाँ पर हरिविरिञ्चिहराः ही कहना चाहिए । क्योंकि हरिश्च विरिञ्चिश्च हरश्च इस विग्रह में **हरिविरिञ्चिहराः** यही रूप बनता है फिर भी आर्ष प्रयोग होने के कारण यहाँ सन्धि कर दी गयी है । **तत्र० इत्यादि-** इन तीनों में शुभ फलों की प्राप्ति तो सत्त्व प्रधान भगवान् वासुदेव से ही होती है ॥२३॥

**पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः । तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— यथा पार्थिवात् दारुणः धूमः तस्मात्त्रयीमयः अग्निः तथा तमसः तु रजः तस्मात् सत्त्वम् यद्ब्रह्म दर्शनम् ॥२४॥

**अनुवाद**— जिस तरह पृथिवी से उत्पन्न होने वाले काष्ठ से उत्पन्न धूम श्रेष्ठ है और उससे उत्पन्न होने वाली अग्नि श्रेष्ठ है क्योंकि वेदोक्त यागादि के द्वारा वह सद्गति प्रदान करने वाली है, उसी तरह तमोगुण से रजोगुण श्रेष्ठ है और उससे सत्त्वगुण श्रेष्ठ है क्योंकि वह भगवद् दर्शन कराने वाला है ।

### भावार्थ दीपिका

**उपाधिवैशिष्ट्येन फलवैशिष्ट्यं सदृष्टान्तमाह ।** पार्थिवात्स्वतःप्रवृत्तिप्रकाशरहिताद्दारुणः काष्ठात्सकाशाद्धूमः प्रवृत्तिस्वभावस्त्रयीमयो वेदोक्तकर्मप्रचुरः । ईषत्कर्मप्रत्यासत्तेः । तस्मादप्यग्निस्त्रयीमयः । साक्षात्कर्मसाधनत्वात्। एवं तमसः सकाशाद्रजो ब्रह्मदर्शनं ब्रह्मप्रकाशकम् । तुशब्देन लयात्मकात्तमसः सकाशाद्रजसः सोपाधिकज्ञानहेतुत्वेन किंचिद्ब्रह्म-दर्शनप्रत्यासत्तिमात्रमुक्तं, नतु सर्वथा तत्प्रकाशकत्वं विक्षेपकत्वात् । यत्सत्त्वं तत्साक्षाद्ब्रह्मदर्शनम् । अतस्तद्गुणोपाधीनां ब्रह्मादीनामपि यथोत्तरं वैशिष्ट्यमिति भावः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

उपाधि की भिन्नता से फल की भिन्नता हो जाती है । इस बात को दृष्टान्त पूर्वक **पार्थिवात्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । जिस तरह पृथिवी से उत्पन्न होने वाले स्वतः प्रवृत्ति एवं प्रकाश से रहित काष्ठ से प्रवृत्ति स्वभाव वाला धूम उत्पन्न होता है, वह ऋग्यजुः सामवेद प्रोक्त कर्मप्रचुर होता है । उससे थोड़े से कर्म की प्रत्यासत्ति होती

है । उस धूम से त्रयी स्वरूप अग्नि की उत्पत्ति है । क्योंकि वह कर्मों का साक्षात् साधन है । इसी तरह तमस् से रजोगुण उत्पन्न होता है और उससे ब्रह्म का प्रकाश करने वाले सत्त्वगुण की उत्पत्ति होती है । मूल के तु शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि लय स्वरूप तमोगुण से रजोगुण की उत्पत्ति होती है । वह ज्ञान का सोपाधिक कारण है । उसके द्वारा अल्पमात्रा में ब्रह्म दर्शन की प्रत्यासत्ति बतलायी गयी है । रजोगुण ब्रह्म का पूर्ण रूप से प्रकाशक नहीं है, क्योंकि वह ब्रह्मज्ञान का विक्षेपक है जो सत्त्वगुण है वह साक्षात् ब्रह्म का प्रकाशक है । अतएव उन गुण रूपी उपाधियों से जो ब्रह्मा आदि युक्त होते हैं उनमें उत्तरोत्तर वैशिष्ट्य है ।

कहने का अभिप्रय है कि प्रलय स्वरूप तमोगुण में ब्रह्मज्ञान का लेश भी नहीं होता है । उसके बाद कर्म स्वभाव वाले रजोगुण में शुद्ध ब्रह्मज्ञान की आशङ्का होती है, क्योकि रजोगुण के विक्षेपक होने के कारण उससे सर्वदा ब्रह्म का प्रकाश नहीं होता है और प्रकाश स्वभाव वाले सत्त्वगुण में तो ब्रह्म का साक्षात् प्रकाश उसी तरह से होता है जिस तरह अग्नि में साक्षात् प्रकाश होता है ।।२४।।

**भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् । सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ।।२५।।**

**अन्वयः**— मुनयः अग्रे क्षेमाय विशुद्धं सत्त्वं भगवन्तम् भेजिरे अथ ये इह तान् अनु ते क्षेमाय कल्पन्ते ।।२५।।

**अनुवाद**— प्राचीन युगों में मुनिगण कल्याण प्राप्त करने के लिए विशुद्ध सत्त्व स्वरूप भगवान् विष्णु की आराधना किया करते थे और जो लोग उन मुनियों का ही इस लोक में अनुगमन करते हैं वे लोग भी कल्याण को प्राप्त करते हैं ।।२५।।

### भावार्थ दीपिका

वासुदेवभक्तौ पूर्वाचारं प्रमाणयति- भेजिर इति । अथातो हेतोरग्रे पुराविशुद्धं सत्त्वं सत्त्वमूर्तिं भगवन्तमधोक्षजम् । अतो येताननुवर्तन्ते त इह संसारे क्षेमाय कल्पन्ते ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् वासुदेव की भक्ति पूर्वक किए गये ऋषियों के आचरण को ही प्रमाणित करते हुए सूतजी कहते हैं— **भेजिरे इत्यादि** इसीलिए प्राचीन काल में मुनिगण सत्त्वमूर्ति भगवान अधोक्षज विष्णु की आराधना करते थे। अतएव जो कल्याणकामी पुरुष उन मुनियों का अनुसरण करते हैं वे कल्याणभाजन होते हैं ।।२५।।

**मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ । नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ।।२६।।**

**अन्वयः**— अथ शान्ता अनसूयवः मुमुक्षवः घोररूपान् भूतपतीन् हित्वा शान्ताः नारायणकलाः भजन्ति ।।२६।।

**अनुवाद**— जो लोग इस संसार सागर से पार जाना चाहते हैं वे मुमुक्षु पुरुष किसी की भी निन्दा नहीं करते हैं, किन्तु वे घोर रूप वाले भूतों के स्वामी भैरव, पितृगण अथवा प्रजेशों इत्यादि का परित्याग करके भगवान् विष्णु और उनकी कला स्वरूप श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि का ही भजन करते हैं ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

नन्वन्यानपि केचिद्भजन्तो दृश्यन्त । सत्यम् । मुमुक्षवस्त्वन्यान्न भजन्ति किंतु सकामा एवेत्याह- मुमुक्षव इति द्वाभ्याम्। भूतपतीनिति पितृप्रजेशादीनामुपलक्षणम् । अनसूयवो देवतान्तरानिन्दकाः सन्तः ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि कुछ लोग तो भगवान् विष्णु को छोड़कर दूसरे ही देवताओं का भजन करते हैं यह लोक में देखा जाता है; तो यह बात तो ठीक; है किन्तु जो मुमुक्षु पुरुष होते हैं वे दूसरे देवता की नहीं बल्कि भगवान् नारायण की ही आराधना करते हैं । उन देवताओं की आराधना करने वाले लोग कामना विशेष से उनकी

आराधना करते हैं । इस बात को **मुमुक्षुवः इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । **भूतपतीन्०** यह पद पितरों तथा प्रजापतियों का भी उपलक्षण है । वे मुमुक्षु पुरुष अनसूयु होते हैं अर्थात् किसी दूसरे की निन्दा नहीं करते हैं ॥२६॥

**रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै । पितृभूतप्रजेशादीञ्छ्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥२७॥**

**अन्वयः**— श्रियैश्वर्य प्रजेप्सवः रजस्तमः प्रकृतयः पितृभूतप्रजेशादीन् भजन्ति, ते वै समशीलाः ॥२७॥

**अनुवाद**— धन, ऐश्वर्य और सन्तान चाहने वाले रजोगुणी और तमोगुणी प्रकृति वाले लोग भूतों, प्रेतों और प्रजापतियों की आराधना करते हैं, क्योंकि उनका स्वभाव भूतों आदि से मिलता जुलता है ।

**भावार्थ दीपिका**

रजस्तमसी प्रकृतिः स्वभावो येषां ते । अतएव पितृभूतादिभिः समं शीलं येषाम् । श्रिया सहैश्वर्यं प्रजाश्चेप्सन्तीति तथा ते ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

**रजस्तमः प्रकृतयः** पद का अर्थ है कि जिन लोगों का स्वभाव ही रजोगुण तथा तमोगुणमय है । अतः रजोगुणी तथा तमोगुणी प्रकृति वाले होने के कारण उनका स्वभाव पितरों तथा भूतों आदि के ही समान होता है। वे धन के साथ-साथ ऐश्वर्य और सन्तान को भी चाहते हैं ॥२७॥

**वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः । वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८॥**

**अन्वयः**— वेदाः वासुदेव पराः मखाः वासुदेव पराः, योगाः वासुदेवपराः क्रियाः वासुदेव पराः ॥२८॥

**अनुवाद**— सभी वेद भगवान् श्रीकृष्ण का ही प्रतिपादन करते हैं, सभी यज्ञों के द्वारा भगवान् वासुदेव की ही आराधना की जाती है । सभी योग भगवान् श्रीकृष्ण की ही प्राप्ति के लिए किए जाते है और सभी क्रियाओं का पर्यवसान भगवान् श्रीकृष्ण में ही होता है ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

मोक्षप्रदत्वाद्वासुदेवो भजनीय इत्युक्तं सर्वशास्त्रतात्पर्यगोचरत्वादपीत्याह द्वाभ्याम् । वासुदेव एव परस्तात्पर्यगोचरो येषां ते । ननुः वेदा मखपरा दृश्यन्त इत्याशङ्क्य तेऽपि तदाराधनार्थत्वात्तत्परा एवेत्युक्तम् । योगा योगशास्त्राणि । तेषामप्यासन-प्राणायामादिक्रियापरत्वमाशङ्क्य तासामपि तत्प्राप्त्युपायत्वात्तत्परत्वमुक्तम् ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् वासुदेव ही मोक्ष को प्रदान करते हैं, अतएव उनका ही भजन करना चाहिए इस बात का प्रतिपादन किया जा चुका है अब आगे के दो श्लोकों से यह बतलाया जा रहा है कि चूकि सभी शास्त्रों का तात्पर्य भगवान् वासुदेव में ही है, अतएव भी उनका ही भजन करना चाहिए । **वासुदेव एव० इत्यादि** सभी वेदों का तत्पर्य भगवान् वासुदेव में ही है । **ननुवेदा० इत्यादि** यदि कोई यह कहे कि वेद तो यज्ञों का भी प्रतिपादन करते हैं। इस तरह की शङ्का करके कहते हैं कि यज्ञ भी भगवान् वासुदेव के आराधन स्वरूप ही होते हैं, अतएव उन सबों के तात्पर्य के विषय भगवान् वासुदेव ही हैं । **योगाः** शब्द से योगशास्त्र को कहा गया है । यदि कोई कहे कि योग तो आसन, प्राणायाम आदि का ही प्रतिपादन करते हैं, अतएव वे भगवान वासुदेव के प्रतिपादक नहीं हैं तो इस शङ्का का उत्तर है कि आसन आदि क्रियाएँ भी भगवान् वासुदेव की प्राप्ति के उपाय हैं, और वे क्रिया रूप हैं अतएव उनको वासुदेव परक कहा जाता है ॥२८॥

**वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः । वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥२९॥**

**अन्वयः**— ज्ञानं वासुदेवपरम्, तपः वासुदेवपरम्, धर्मः वासुदेवपरः गतिः वासुदेवपरा ॥२९॥

**अनुवाद**— ज्ञान से भगवान् वासुदेव की ही प्राप्ति होती है, तपस्या भी भगवान् वासुदेव की प्राप्ति के लिए ही की जाती है, धर्मों का अनुष्ठान भगवान् वासुदेव की प्रसन्नता के लिए किया जाता है और सभी गतियो का पर्यवासन भगवान् वासुदेव में ही होता है ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

ज्ञानं ज्ञानशास्त्रम् । ननु च तज्ज्ञानपरमेवेत्याशङ्क्य ज्ञानस्यापि तत्परत्वमुक्तम् । तपोऽत्र ज्ञानम् । धर्मो धर्मशास्त्रं दानव्रतादिविषयम् । ननु तत्स्वर्गपरमित्याशङ्क्य गम्यत इति गतिः स्वर्गादिफलं सापि तदानन्दांशरूपत्वात्तत्परैवेत्युक्तम् । यद्वा वेदा इत्यनेनैव तन्मूलत्वात्सर्वाण्यपि वासुदेवपराणीत्युक्तम् । तत्र ननु तेषां मखयोगक्रियादिनानार्थपरत्वान्न तदेकपरत्वमित्याशङ्क्य मखादीनामपि तत्परत्वमित्युक्तमिति द्रष्टव्यम् ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

मूल में ज्ञान शब्द से ज्ञानशास्त्र को कहा गया है । उस ज्ञानशास्त्र का तात्पर्य ज्ञान के ही प्रतिपादन में है ऐसी आशंका करके कहा गया है कि ज्ञान के द्वारा चूकि भगवान् वासुदेव की ही प्राप्ति होती है, अतएव ज्ञानशास्त्र के प्रतिपाद्य भगवान् वासुदेव ही हैं । मूल का तप शब्द ज्ञान का बोधक है । धर्मशब्द धर्मशास्त्र का बोधक है। वह दान तथा व्रत का ही प्रतिपादन करता है, अतएव वे धर्मशास्त्र स्वर्ग की प्राप्ति के साधनों का प्रतिपादन करते हैं । इस तरह की आशङ्का करके कहते हैं कि स्वर्गादि रूपी फल की गतियाँ भी उन भगवान् वासुदेव के आनन्दांश रूप होने के कारण वे भी भगवान् वासुदेव परक ही हैं ।

**यद्वा वेदा इत्यनेनैव० इत्यादि**— अर्थात् ज्ञान, तप, मख और गतियाँ सबके सब वेदमूलक होने के कारण वे सबके सब वेद प्रतिपाद्य भगवान् वासुदेव परक हैं । यदि कहें कि वेद तो मख, योग क्रिया इत्यादि अनेक विषयों का प्रतिपादन करते हैं अतएव उन सबों के द्वारा केवल भगवान् वासुदेव का प्रतिपादन नहीं माना जा सकता है। इस तरह की आशङ्का करके यज्ञादि को भगवान् वासुदेव का ही प्रतिपादक बतलाया गया है ॥२९॥

**स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया । सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥३०॥**

**अन्वयः**— स एव असौ अगुणः विभुः भगवान् गुणमय्या सदसद्रूपया आत्ममायया अग्रे इदं ससर्ज ॥३०॥

**अनुवाद**— शास्त्रों में प्रख्यात गुणों से रहित, तथा व्यापक भगवान् सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों से युक्त अपनी माया के द्वारा सृष्टि के पूर्व इस जगत् की सृष्टि किए ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

ननु जगत्सर्गतत्प्रवेशनियमनादिविलासयुक्ते वस्तुनि सर्वशास्त्रसमन्वयो दृश्यते कथं वासुदेवपरत्वं सर्वस्य तत्राह- स एवेति चतुर्भिः । एतैरेव श्लोकैस्तस्य कर्माण्युदाराणि ब्रूहीति प्रश्नस्योत्तरमुक्तम् । सदसद्रूपया कार्यकारणात्मिकया । अगुणश्चेत्यन्वयः। स्वतो निर्गुणोऽपि सन्नित्यर्थः ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि सभी शास्त्रों का समन्वय जगत् की सृष्टि तथा उसमें प्रवेश करके उसका नियमन करने वाले परंब्रह्म में ही देखा जाता है, अतएव उन सबों को वासुदेव परक कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? तो उसका उत्तर **स एव इत्यादि** चार श्लोकों से दिया गया है ।

**एतैरेव० इत्यादि-** इन्हीं चार श्लोकों के द्वारा उन श्रीभगवान् के महान कर्मों का आप वर्णन करें इस प्रश्न का उत्तर भी दिया गया है। **सदसद्रूपया** पद का अर्थ है कार्य कारण स्वरूप माया के द्वारा **अगुणश्च** को अर्थ है स्वाभाविक रूप से निर्गुण ॥३०॥

**तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव । अन्तः प्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥३१॥**

**अन्वयः**— एषु गुणेषु तया विलसितेषु अन्तःप्रविष्टः विज्ञानेन विजृम्भितः अपि गुणवान् इव आभाति ॥३१॥

**अनुवाद**— उस माया के विलास स्वरूप इन सत्त्व, रजस् एवं तमस् नामक गुणों में प्रविष्ट होने के कारण स्वभावत: विज्ञानानन्दस्वरूप होने पर भी श्रीभगवान् उन गुणों से युक्त के समान प्रतीत होते हैं ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

भगवतो जगत्कारणत्वमुक्तम् । प्रेवशनियमनलक्षणां लीलामाह- तयेति । विलसितेषूद्भूतेषु गुणेष्वाकाशादिष्वन्तः प्रविष्टः सन् गुणवानिव मदधीना एते गुणा इत्यभिमानवानिव नतु वस्तुतस्तथा । यतो विज्ञानेन चिच्छक्त्या विजृम्भितोऽत्यूर्जितः॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के जगत् कारणत्व को बतलाया जा चुका है अब इस श्लोक में श्रीभगवान् के सभी वस्तुओं के भीतर प्रवेश करके उनके नियमन लीला को बतलाया जा रहा है। **तयाविलासितेषु** पद का अर्थ है कि उस माया से ही उत्पन्न गुणों से जन्य आकाश आदि के भीतर प्रवेश करके गुणवान् के समान प्रतीत होते हैं। अर्थात् ये सभी गुण मेरे ही अधीन हैं, इस तरह के अभिमान से युक्त के समान प्रतीत होते हैं। किन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं हैं; क्योंकि भगवान् तो विज्ञान से विजृम्भित हैं, अर्थात् चित् शक्ति के द्वारा अत्यन्त ऊर्जा सम्पन्न हैं ?॥३१॥

**यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु । नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥३२॥**

**अन्वयः**— यथाहिस्वयोनिषु दारुषु अवहितः एकः अग्निः नाना इव आभाति तथा विश्वात्मा पुमान् भूतेषु नानेव आभाति ॥३२॥

**अनुवाद**— जिस तरह अपने अभिव्यञ्जक काष्ठों मे लगायी गयी एक ही अग्नि, काष्ठों की अनेकता के कारण अनेक के समान प्रतीत होती है, उसी तरह सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप परमात्मा के सभी भूतों में प्रविष्ट होने के कारण अनेक के तरह प्रतीत होते हैं ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

बहुरूपत्वलीलामाह- यथेति । स्वयोनिषु स्वाभिव्यञ्जकेषु अवहितो निहितः । विश्वात्मा पुमान्परमेश्वरः । भूतेषु प्राणिषु अन्तर्यामिणोऽपि प्रतियोनिनानात्वेन नानात्वमिवोच्यते । क्षेत्रज्ञरूपेण वा ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

**यथा इत्यादि** श्लोक के द्वारा परमात्मा की बहुरूपत्व लीला को बतलाया गया है। स्वयोनिषु पद का अर्थ है अपने अभिव्यञ्जक, अवहित अर्थात् लगायी गयी विश्वात्मापुमान् का अर्थ है परमेश्वर अर्थात् भूतेषु पद का अर्थ प्राणियों में अन्तर्यामी होने पर भी परमात्मा अनेक योनियों में अनेक के समान कहे जाते हैं। अथवा वे क्षेत्रज्ञ (जीव) रूप से अनेक प्रतीत होते हैं ॥३२॥

**असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः । स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥३३॥**

**अन्वयः**— असौ भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः गुणमयैः भावैः स्वनिर्मितेषु भूतेषु निर्विष्टः सन् तद्गुणान् भुंक्ते ॥३३॥

**अनुवाद**— भगवान् ही भूत सूक्ष्म (तन्मात्राएँ) इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण आदि गुणों के कार्यभूत भावों के

द्वारा अपने ही निर्मित अनेक प्रकार की योनियों में प्रवेश करके तत्-तत् योनियों के अनुरूप विषयों का भोग करते हैं ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**

भोगरूपां लीलामाह- असाविति । असौ हरिर्भूतसूक्ष्माणि चेन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि चात्मा मनश्च तैः स्वयं निर्मितेषु भूतेषु चतुर्विधेष्विति भोगे स्वातन्त्र्यं द्योत्यते । तद्गुणांस्तत्तदनुरूपान्विषयानिच्छया भुङ्क्ते भोजयतीति णिजर्थो वा ज्ञेयः । भुङ्क्ते पालयतीति वा । तदा त्वात्मनेपदमार्षम् । 'भुजोऽनवने' इति स्मरणात् ।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

**असौ इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् की भोग स्वरूपिणी लीला को बतलाया जा रहा है । **असौ० इत्यादि** श्रीहरि ही भूतसूक्ष्मों अर्थात् पञ्चतन्मात्राओं, श्रोत्र आदि इन्द्रियों तथा मन आदि के द्वारा निर्मित चारो प्रकार के देव, मनुष्य, तिर्यक् तथा स्थावर जीवों में प्रवेश करके भोगों को भोगने में स्वतंत्र के समान प्रतीत होते हैं। तद्गुणान् भुङ्क्ते का अर्थ है उन चारो प्रकार की योनियों के अनुसार उनके विषयों का भोग करते हैं या भोग कराते है । यहाँ णिच् प्रत्ययान्त अर्थ समझना चाहिए । अर्थात् जीवों को उन विषयों का भोग करने के लिए प्रेरित करते हैं । अथवा भुङ्क्ते पद का अर्थ पालन करते हैं भी हो सकता है । किन्तु ऐसी स्थिति में **आत्मनेपद** का प्रयोग आर्ष समझना चाहिए । अन्यथा **भुजोऽनवने** इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार परस्मै पद का प्रयोग होना चाहिए ।।३३।।

**भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः । लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ।।३४।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

**अन्वयः**— लीलावतारानुरतः लोक भावनः एष वै, देवर्तियङ्नरादिषु सत्त्वेन लोकान् भावयति ।

**अनुवाद**— जगत् की रचना करने वाले देव, मनुष्य, तिर्यक् तथा स्थावर आदि योनियों में प्रवेश करके लीलावतारों को ग्रहण करने वाले श्रीभगवान् ही सत्त्वगुण के द्वारा जीवों का पालन करते हैं ।।३४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।**

**भावार्थ दीपिका**

इदानीं 'सूत जानासि' इति प्रश्नस्योत्तरमाह । भावयति पालयति । एतत्तु सर्वावतारसाधारणं प्रयोजनम् । विशेषतः कृष्णावतारस्य कुन्तीस्तुतौ वक्ष्यते । लोकभावनो लोककर्ता । देवादिषु ये लीलावतारास्तेष्वनुरतोऽनुरक्तः ।।३४।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकाख्यटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।**

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक के द्वारा **सूत जानासि' इत्यादि** श्लोक से पूछे गये प्रश्न का उत्तर सूतजी दे रहे हैं । भावयति पद का अर्थ पालन करते हैं । जगत् का पालन करना श्रीभगवान् के सभी अवतारों का समान रूप से प्रयोजन है । भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार का विशेष प्रयोजन सूतजी कुन्ती की स्तुति में बतलायेंगे । **लोकभावनः** पद का अर्थ है लोकों का निर्माण करने वाले देवताओं आदि में प्रवेश करके जो श्रीभगवान् के लीलावतार होते हैं, उन सबों को ग्रहण करने में श्रीभगवान् लगे रहते हैं ।।३४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय की भार्वार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२।।**

# तीसरा अध्याय

## भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन

सूत उवाच

**जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः । संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ।।१।।**

**अन्वयः**— आदौ लोकसिसृक्षया भगवान् महदादिभिः पौरुषंरूपं जगृहे तस्मात् षोडशकलं सम्भूतम् ।।१।।

**श्रीसूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— सृष्टि के प्रारम्भ में जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से भगवान् ने महदादिकों से पुरुष रूप धारण कर लिया और उनमें दश इन्द्रियाँ एक मन और पाँच भूत ये सोलह कलाएँ उत्पन्न हो गयीं ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

अवतारकथाप्रश्ने तृतीये तूत्तराभिधा । पुरुषाद्यवतारोक्त्या तत्तच्चारित्रर्णनैः ।।१।। यदुक्तं 'अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः' इति तदुत्तरत्वेनावतारानुक्रमिष्यन्प्रथमं पुरुषावतारमाह- जगृह इति पञ्चभिः । महदादिभिर्महदहङ्कारपञ्चतन्मात्रैः संभूतं सुनिष्पन्नम् । एकादशेन्द्रियाणि पञ्च महाभूतानीति षोडश कला अंशा यस्मिन् । यद्यपि भगवद्विग्रहो नैवं भूतस्तथापि विराड्जीवान्तर्यामिणो भगवतो विराड्रूपेणोपासनार्थमेवमुक्तमिति द्रष्टव्यम् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

मुनियों ने जो अवतार कथा के विषय में प्रश्न किया था । उसका उत्तर इस तीसरे अध्याय में पुरुष आदि अवतारों को बतलाकर तथा उन अवतारों के चरित्र वर्णन के द्वारा दिया गया है ।

**यदुक्तम्० इत्यादि**— मुनियों ने यह जो कहा है कि हे महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप श्रीभगवान् के अवतारों की शुभ कथाओं को बतलायें उसके उत्तर रूप से अवतारों के वर्णन का प्रारम्भ करते हुए सूतजी ने प्रथम पुरुष अवतार को **जगृहे इत्यादि** पाँच श्लोक के द्वारा बतलाया है । **महदादिभिः** पद का अर्थ है महान् अहङ्कार तथा पञ्च तन्मात्राओं से उस पुरुष में ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा एक मन) तथा पाँच महाभूत ये सोलह कलायें अंश रूप से उत्पन्न हो गयीं ।

**यद्यपि० इत्यादि**— यद्यपि श्रीभगवान् का दिव्य विग्रह इस प्रकार का नहीं है फिर भी जीवों के अन्तर्यामी भगवान् का विराट् रूप से इस प्रकार का वर्णन उपासना के लिए किया गया है, यह जानना चाहिए ।।१।।

**यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः । नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ।।२।।**

**अन्वयः**— अम्भसिशयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः यस्य नाभिह्रदाम्बुजात् विश्वसृजाम् पतिः ब्रह्मा आसीत् ।।२।।

**अनुवाद**— कारण जल में शयन करके योगिनिद्रा का विस्तार करने वाले जिन श्रीभगवान् के नाभिसरोवर में उत्पन्न कमल से प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

कोऽसौ भगवानित्यपेक्षायां तं विशिनष्टि । यस्याम्भसि एकार्णवे शयानस्य विश्रान्तस्य । तत्र च योगः समाधिस्तद्रूपां निद्रां विस्तारयतो नाभिरेव ह्रदस्तस्मिन्यदम्बुजं तस्मात्सकाशाद्ब्रह्मासीदभूत्पाद्ये कल्पे । स पौरुषं रूपं जगृहे ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

वे भगवान् कौन हैं ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर उन श्रीभगवान् का निरूपण करते हुए कहते हैं । एकार्णव के जल में शयन करने वाले तथा समाधि रूपी निद्रा का विस्तार करने वाले श्रीभगवान् की नाभि ही

# तीसरा अध्याय

## भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन

सूत उवाच

**जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः । संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥१॥**

**अन्वयः**— आदौ लोकसिसृक्षया भगवान् महदादिभिः पौरुषंरूपं जगृहे तस्मात् षोडशकलं सम्भूतम् ॥१॥

**श्रीसूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— सृष्टि के प्रारम्भ में जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से भगवान् ने महदादिकों से पुरुष रूप धारण कर लिया और उनमें दश इन्द्रियाँ एक मन और पाँच भूत ये सोलह कलाएँ उत्पन्न हो गयीं ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

अवतारकथाप्रश्ने तृतीये तूत्तराभिधा । पुरुषाद्यवतारोक्त्या तत्तच्चारित्रवर्णनैः ॥१॥ यदुक्तं 'अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः' इति तदुत्तरत्वेनावतारानुक्रमिष्यन्प्रथमं पुरुषावतारमाह- जगृह इति पञ्चभिः । महदादिभिर्महदहङ्कारपञ्चतन्मात्रैः संभूतं सुनिष्पन्नम् । एकादशेन्द्रियाणि पञ्च महाभूतानीति षोडश कला अंशा यस्मिन् । यद्यपि भगवद्विग्रहो नैवं भूतस्तथापि विराड्जीवान्तर्यामिणो भगवतो विराड्रूपेणोपासनार्थमेवमुक्तमिति द्रष्टव्यम् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

मुनियों ने जो अवतार कथा के विषय में प्रश्न किया था । उसका उत्तर इस तीसरे अध्याय में पुरुष आदि अवतारों को बतलाकर तथा उन अवतारों के चरित्र वर्णन के द्वारा दिया गया है ।

**यदुक्तम्० इत्यादि**— मुनियों ने यह जो कहा है कि हे महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप श्रीभगवान् के अवतारों की शुभ कथाओं को बतलायें उसके उत्तर रूप से अवतारों के वर्णन का प्रारम्भ करते हुए सूतजी ने प्रथम पुरुष अवतार को **जगृहे इत्यादि** पाँच श्लोक के द्वारा बतलाया है । **महदादिभिः** पद का अर्थ है महान् अहङ्कार तथा पञ्च तन्मात्राओं से उस पुरुष में ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा एक मन) तथा पाँच महाभूत ये सोलह कलायें अंश रूप से उत्पन्न हो गयीं ।

**यद्यपि० इत्यादि**— यद्यपि श्रीभगवान् का दिव्य विग्रह इस प्रकार का नहीं है फिर भी जीवों के अन्तर्यामी भगवान् का विराट् रूप से इस प्रकार का वर्णन उपासना के लिए किया गया है, यह जानना चाहिए ॥१॥

**यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः । नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥२॥**

**अन्वयः**— अम्भसिशयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः यस्य नाभिहृदाम्बुजात् विश्वसृजाम् पतिः ब्रह्मा आसीत् ॥२॥

**अनुवाद**— कारण जल में शयन करके योगनिद्रा का विस्तार करने वाले जिन श्रीभगवान् के नाभिसरोवर में उत्पन्न कमल से प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

कोऽसौ भगवानित्यपेक्षायां तं विशिनष्टि । यस्याम्भसि एकार्णवे शयानस्य विश्रान्तस्य । तत्र च योगः समाधिस्तद्रूपां निद्रां विस्तारयतो नाभिरेव ह्रदस्तस्मिन्यदम्बुजं तस्मात्सकाशाद्ब्रह्मासीदभूत्पाद्ये कल्पे । स पौरुषं रूपं जगृहे ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

वे भगवान् कौन हैं ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर उन श्रीभगवान् का निरूपण करते हुए कहते हैं । एकार्णव के जल में शयन करने वाले तथा समाधि रूपी निद्रा का विस्तार करने वाले श्रीभगवान् की नाभि ही

(ह्रद) है । उस ह्रद में उत्पन्न कमल से पाद्मकल्प में ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । उन श्रीभगवान् ने ही पौरुष रूप को धारण किया ॥२॥

**यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः । तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥३॥**

**अन्वयः**— यस्यावयव संस्थानैः लोकविस्तरः कल्पितः । तद् वै भगवतः रूपम् विशुद्धम् सत्त्वमूर्जितम् ॥३॥

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान् के अङ्गों के संस्थानों से जगत् के विस्तार की कल्पना हुयी श्रीभगवान् का वह रूप विशुद्ध है तथा रजोगुण एवं तमोगुण से अमिश्रित शुद्धसत्त्व सम्पन्न है ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

कीदृशं रूपं तदाह- यस्येति । ननु कीदृशो विग्रहस्तस्य योऽम्भसि शेते स्म तदाह । तत्तस्य भगवतो रूपं तु विशुद्धं रजआदिगुणान्तरेणासंभिन्नमत एवोर्जितं निरतिशयं सत्त्वम् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् का वह रूप किस प्रकार का है ? इस बात को **यस्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । **ननु० इत्यादि** प्रश्न है कि श्रीभगवान् का वह रूप कैसा है, जो एकार्णव के जल में सोया था ? उसी को बतलाते हुए कहते है श्रीभगवान् का वह रूप विशुद्ध है । वह रजोगुण तथा तमोगुण के मिश्रण से रहित होने के कारण शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न हैं ॥३॥

**पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।**
**सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥४॥**

**अन्वयः**— योगिनः अदभ्रचक्षुषा अदोरूपम् पश्यन्ति यत् । सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम्, सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकम् सहस्रमौल्यम्बर कुण्डलोल्लसत् वर्तते ॥४॥

**अनुवाद**— योगिजन अपनी दिव्य दृष्टि से श्रीभगवान् के उस रूप का दर्शन करते हैं । श्रीभगवान् का वह अद्भुत रूप हजारों पैरों, हजारों जङ्घाओं, हजारों भुजाओं तथा हजारों मुखों से युक्त है । उसमें हजारो शिर, हजारो कान, हजारो नेत्र तथा हजारों नाक हैं । वह हजारों मुकुट, हजारों प्रकार के वस्त्र तथा हजारों कुण्डलों से सुशोभित है ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

एतच्च योगिनां प्रत्यक्षमित्याह- पश्यन्तीति । अद्भ्रमनल्पं ज्ञानात्मकं यच्चक्षुस्तेन । सहस्रमपरिमितानि यानि पादादीनि तैरद्भुतम् । सहस्रं मूर्धादयो यस्मिंस्तत् । सहस्रं यानि मौल्यादीनि तैरुल्लसच्छोभमानम् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के इस पौरुष रूप का साक्षात्कार योगिजन किया करते है । योगियों का वह नेत्र दिव्य है । उससे वे उस रूप को देखते हैं । वह रूप अपरिमित्त पैरों आदि के कारण अद्भुत है । उसमें हजारों शिर इत्यादि हैं, और उनके जो हजारों मुकुट इत्यादि हैं उन सबों से वह सुशोभित है ॥४॥

**एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् । यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥५॥**

**अन्वयः**— एतत् नानावताराणां निधानम् अव्ययम् बीजम् यस्य अंशांशेन देवतिर्यङ् नरादयः सृज्यन्ते ॥५॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् का यह रूप अनेक अवतारों का अक्षय कोश है तथा यह कभी भी विकृत नहीं होने वाला अवतारों का बीज है । श्रीभगवान् के इस रूप के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश से देवताओं, पशु-पक्षियों, मनुष्यों तथा स्थावरों आदि की सृष्टि होती है ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

एतत्तु कूटस्थं न त्वन्यावतारवदाविर्भावतिरोभाववदित्याह- एतदिति । एतदादि नारायणरूपम् । निधीयतेऽस्मिन्निति निधानम् । कार्यावसाने प्रवेशस्थानमित्यर्थः । बीजमुद्गमस्थानम् । बीजत्वेऽपि नान्यबीजतुल्यं किंत्वव्ययम् । न केवलमवताराणामेव बीजं किंतु सर्वप्राणिनामपीत्याह । यस्यांशो ब्रह्मा तस्यांशो मरीच्यादिस्तेन ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का यह रूप कूटस्थ है । अर्थात् वह सदैव एक समान बना रहता है । दूसरे अवतारों के समान इसका न तो आविर्भाव होता है और न तिरोभाव होता है । इसी बात को **एतत्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । यही आदि रूप है और यही भगवान् का नारायण रूप है । कोश के वाचक निधान शब्द की व्युत्पत्ति **निधीयते अस्मिन्** है । अर्थात् जिसमें रखा जाय उसे निधान कहते है । जब अवतारों का कार्य समाप्त हो जाता है तो वे अवतार इसी रूप में प्रवेश कर जाते हैं । बीज कहकर बतलाया गया है कि यह अवतारों का बीज अर्थात् उद्‌गम स्थान है । बीज होने पर भी यह दूसरे बीजों से भिन्न इसलिए है कि इसमें कभी भी कोई विकार नहीं आता है । **न केवलम्० इत्यादि-** यह केवल अवतारों का ही बीज नहीं है अपितु यह समस्त प्राणियों का भी बीज है । ब्रह्माजी उनके अंश हैं और ब्रह्माजी के अंश मरीचि आदि हैं । यही अंशांश शब्द का अर्थ है । श्रीभगवान् के उस अंशाश से ही सभी देव तिर्यक् तथा स्थावरादि प्राणियों की उत्पत्ति होती है ।।५।।

**स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः । चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ।।६।।**

**अन्वयः**— स एव देवः प्रथमं कौमारं सर्गम् आस्थितः ब्रह्मा दुश्चरं अखण्डितम् ब्रह्मचर्यं चचार ।।६।।

**अनुवाद**— उन्हीं श्रीभगवान् ने प्रथम कौमार सर्ग में रहकर सनक, सनन्दन सनातन और सनत् कुमार इन चार ब्राह्मणों के रूप में अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत का पालन रूप कठोर तपस्या किए ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

सनत्कुमाराद्यवतारं तच्चरित्रं चाह- स एवेति । कौमार आर्षः प्राजापत्यो मानव इत्यादीनि सर्गविशेषनामानि । **यः पौरुषं रूपं जगृहे स एव देवः कौमाराख्यं सर्गमास्थितः सन् ब्रह्मा ब्राह्मणो भूत्वा ब्रह्मचर्यं चचार । प्रथमद्वितीयादिशब्दा** निर्देशमात्रापेक्षया ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

**स एव० इत्यादि** श्लोक के द्वारा प्रथम सनत्कुमार नामक आद्यवतार का तथा उनके चरित्र का वर्णन किया गया है । कौमार, आर्ष, प्राजापत्य मानव इत्यादि भिन्न-भिन्न सृष्टियों के नाम हैं । **यः पौरुषम्० इत्यादि-** जिन श्रीभगवान् ने पौरुष रूप का धारण किया था वे ही कौमार सर्ग में स्थित रहकर ब्राह्मण होकर, अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किए । प्रथम, द्वितीय इत्यादि केवल निर्देश का प्रतिपादन करने वाले शब्द हैं ।।६।।

**द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् । उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ।।७।।**

**अन्वयः**— अस्य भवाय यज्ञेशः रसातलगतां महीम् उद्धरिष्यन् द्वितीयं सौकरं वपुः उपादत्त ।।७।।

**अनुवाद**— इस जगत् का कल्याण करने के लिए यज्ञों के स्वामी श्रीभगवान् रसातल में गयी हुयी पृथिवी का उद्धार करने के लिए दूसरे अवतार में अपना सूकर का रूप बना लिए ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

वराहावतारमाह- द्वितीयमिति । अस्य विश्वस्य भवायोद्भवाय महीमुद्धरिष्यन्निति कर्मोक्तिः एवं सर्वत्रावतारस्तत्कर्म चोक्तमित्यनुसंधेयम् ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

**द्वितीयं तु० इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के वराहावतार का वर्णन किया गया है। इस जगत् की उत्पत्ति के लिए पृथिवी का उद्धार करने की इच्छा से भगवान् ने वराहावतार धारण किया। इसके द्वारा वराहावतार के कर्म का वर्णन किया गया है। इस तरह से श्रीभगवान् के सभी अवतारों तथा उनके कर्मों का वर्णन किया गया है। इस बत का अनुसन्धान करना चाहिए ।।७।।

**तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः । तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ।।८।।**

**अन्वयः**— तृतीयम् ऋषिसर्गः च सः देवर्षित्वमुपेत्य सात्त्वतं तन्त्रम् आचष्टे यतः कर्मणां नैष्कर्म्यम् भवति ।।८।।

**अनुवाद**— तीसरी ऋषियों की सृष्टि में श्रीभगवान् देवर्षि नारद होकर सात्त्वत तन्त्र (नारद पञ्चरात्र) का उपदेश दिये जिसमें कि यह बतलाया गया है कि कर्मों से कर्म का बन्धन किस तरह से नहीं होता है ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

नारदावतारमाह- तृतीयमिति । ऋषिसर्गमुपेत्य । तत्र च देवर्षित्वमुपेत्येत्यर्थः । सात्वतं वैष्णवं तत्रं पञ्चरात्रागममाचष्टोक्तवान्। यतस्तन्त्रात् । निर्गतं कर्मत्वं बन्धहेतुत्वं येभ्यस्तानि निष्कर्माणि तेषां भावो नैष्कर्म्यम् । कर्मणामेव मोचकत्वं यतो भवति तदाचष्टेत्यर्थः ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

**तृतीयम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा नारदावतार का वर्णन किया गया है। तीसरे ऋषियों की सृष्टि में श्रीभगवान् नारद के रूप में अवतीर्ण हो गये। इस सृष्टि में सात्वत तन्त्र अर्थात् वैष्णव तन्त्र पाञ्चरात्रागम का उपदेश दिए। उस तन्त्र के अनुसर अनुष्ठान करने पर कर्मों का कर्मत्व नहीं रह जाता है। अर्थात् वे बन्धन कारक नहीं होते है। **निर्गतं कर्मत्वं बन्ध हेतुत्वं येभ्यः तानि निष्कर्माणि तेषां भावो नैष्कर्म्यम्** यह नैष्कर्म्य शब्द का विग्रह है। अर्थात् इस तन्त्र में जिन कर्मों का उपदेश किया गया है, उन कर्मों के द्वारा ही संसार के बन्धन से मुक्ति हो जाती है ।।८।।

**तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी । भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ।।९।।**

**अन्वयः**— तुर्ये धर्मकला सर्गे नरनारायणौ ऋषी भूत्वा आत्मोपशमोपेतं दुश्चरं तपः अकरोत् ।।९।।

**अनुवाद**— चौथी सृष्टि में धर्म की पत्नी कलादेवी के गर्भ से नर नारायण नामक दो ऋषियों के रूप में अवतीर्ण होकर श्रीभगवान् इन्द्रियों के संयम रूपी कठोर तपस्या किए ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

नरनारायणावतारमाह- तुर्ये इति । तुर्ये चतुर्थेऽवतारे । धर्मस्य कला अंशः । भार्येत्यर्थः । 'अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी' इति श्रुतेः । तस्याः सर्गे । ऋषी भूत्वेत्येकावतारत्वं दर्शयति ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

**तुर्ये० इत्यादि-** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के नर-नारायणवतार का वर्णन किया गया है। यह भगवान् का चौथा अवतार है। **धर्म कला** शब्द धर्म की पत्नी का बोधक है। यहाँ कला शब्द पत्नी का बोधक है। श्रुति भी कहती है **अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी** अर्थात् पत्नी पुरुष का आधा भाग होती है। धर्म की पत्नी के गर्भ से श्रीभगवान् नर-नारायण इन दो ऋषियों के रूप में अवतीर्ण हुए। अतएव नर और नारायण दोनों मिलकर श्रीभगवान् का एक ही अवतार है ।।९।।

**पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् । प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः आसुरये कालविप्लुतम् तत्वग्रामविनिर्णयम् सांख्यं आसुरये प्रोवाच ॥१०॥

**अनुवाद**— पाँचवे सर्ग में भगवान् सिद्धों के स्वामी कपिल के रूप में अवतीर्ण होकर समय की विपरीतता के कारण लुप्त हुए तथा तत्त्व समूह का निर्णय रूप सांख्य दर्शन का उपदेश आसुरि नामक ब्राह्मण को दिये ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

कपिलावतारमाह- पञ्चम इति । आसुरये तन्नाम्ने ब्राह्मणाय । तत्त्वानां ग्रामस्य सङ्घस्य विनिर्णयो यस्मिन् शास्त्रे तत्सांख्यम् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

**पञ्चमः इत्यादि** श्लोक के द्वारा पाञ्चवें कपिल अवतार का वर्णन किया गया है । आसुरि नामक ब्राह्मण को इस अवतार में भगवान् ने सांख्य दर्शन का उपदेश दिया । तत्त्वग्राम विनिर्णयम् का अर्थ है जिसमें तत्त्वों के ग्राम अर्थात् समूह का निर्णय किया गया है, वह शास्त्र सांख्य शास्त्र है ॥१०॥

**षष्ठमत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया । आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥११॥**

**अन्वयः**— अनसूयया वृतः षष्ठम् अत्रेः अपत्यत्वं प्राप्तः अलर्काय प्रह्लादादिभ्यः आन्वीक्षिकीम् ऊचिवान् ॥११॥

**अनुवाद**— अनसूया के द्वारा वरदान माँगे जाने पर षष्ठ अवतार में महर्षि अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय हुए और उन्होंने अलर्क तथा प्रह्लाद आदि को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

दत्तात्रेयावतारमाह- षष्ठमिति । अत्रेरपत्यत्वं तेनैव वृतः सन् प्राप्तः 'अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टः' इति वक्ष्यमाणत्वात्। कथं प्राप्तः । अनसूयया मत्सदृशापत्यमिषेण मामेवापत्यं वृतवानिति दोषदृष्टिमकुर्वन्नित्यर्थः । आन्वीक्षिकीमात्मविद्याम् । प्रह्लादादिभ्यश्च । आदिपदाद्यदुहैहयाद्या गृह्यन्ते ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

**षष्ठम्** इत्यादि श्लोक के द्वारा दत्तात्रेय अवतार का वर्णन किया जा रहा है । भगवान् स्वयं अत्रि महर्षि के अपत्य रूप से अनसूया के द्वारा वृत्त थे, और वे उनके पुत्र हो गये । इसी बात को दूसरे स्कन्ध के सातवें अध्याय के चतुर्थ श्लोक में कहा भी जायेगा कि **अत्रेरपत्यमभिकांक्षत आह तुष्ट** अर्थात् अत्रि महर्षि के पुत्र के रूप में वरदान माँगे जाने पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने कहा । उसी के फलस्वरूप वे उनके पुत्र हुए । भगवान् ने अनसूया के द्वारा माँगे जाने वाले वरदान में किसी भी प्रकार की दोष दृष्टि नहीं किया और जान लिया कि अनसूया ने मेरे सदृश पुत्र का वरदान माँगने के बहाने मुझको ही माँगा है । आत्मविद्या को ही अन्वीक्षिकी विद्या कहते है । उसका उपदेश उन्होंने प्रह्लाद आदि को दिया । आदि शब्द से हैहय तथा यदु आदि को समझना चाहिए ॥११॥

**ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत । स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— ततः सप्तमे रुचेः आकूत्यां यज्ञः अभ्यजायत । सः यामाद्यैः सुरगणैः सह स्वायम्भुवम् मन्वन्तरम् अपात् ॥१२॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् सातवें अवतार में भगवान् रुचि प्रजापति के पुत्र आकूती देवी के गर्भ से यज्ञ के रूप में अवतीर्ण हुए और याम आदि देवताओं के साथ उन्होंने स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

यज्ञावतारमाह- तत इति । स यज्ञो यामाद्यैः स्वस्यैव पुत्रा यामा नाम देवास्तदाद्यैः सह स्वायंभुवं मन्वन्तरं पालितवान्। तदा स्वयमिन्द्रोऽभूदित्यर्थः ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

**ततः इत्यादि** श्लोक के द्वारा यज्ञावतार का वर्णन किया गया है । वे यज्ञ भगवान् अपने ही याम नामक पुत्रों के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर का पालन (रक्षा) किए उस समय वे स्वयम् इन्द्र बन गये ।।१२।।

**अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः । दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।।१३।।**

**अन्वयः**— अष्टमे उरुक्रमः नाभेः मेरु देव्यां सर्वाश्रम नमस्कृतम् धीराणां वर्त्म दर्शयन् जातः ।।१३।।

**अनुवाद**— आठवें अवतार में श्रीभगवान् सभी आश्रमियों के द्वारा वन्दनीय परमहंसों के मार्ग का उपदेश करने की इच्छा से मेरुदेवी के गर्भ से महाराज नाभि के पुत्र ऋषभदेव के रूप में अवतीर्ण हुए ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

ऋषभावतारमाह- अष्टम इति । सर्वाश्रमनमस्कृतमन्त्याश्रमं पारमहंस्यं वर्त्म धीराणां दर्शयन्नाभेराग्नीध्रपुत्रादृषभो जातः ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

**अष्टमे० इत्यादि** श्लोक के द्वारा ऋषभावतार का वर्णन किया गया है । सभी आश्रमियों के द्वारा अन्तिम परमहंसों के मार्ग का उपदेश देने की इच्छा से महाराज आग्नीध्र के पुत्र महाराज नाभि के पुत्र ऋषभदेव के रूप में अवतीर्ण हुए ।।१३।।

**ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः । दुग्धेमामौषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ।।१४।।**

**अन्वयः**— हे विप्राः ऋषिभिः याचितः सः नवमं पार्थिवं वपुः भेजे । सः इमाम् ओषधीः दुग्धे । तेन अयम् (अवतारः) उशत्तमः ।।१४।।

**अनुवाद**— हे विप्रों ऋषियों के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर वे भगवान् नवें अवतार में महाराज पृथु का शरीर धारण करके गोरूप धारिणी पृथिवी से सभी औषधियों का दोहन किये । अतएव यह अवतार अत्यन्त मनोहर था ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

पृथ्ववतारमाह- ऋषिभिरिति । पार्थिवं वपुः राजदेहं पृथुरूपम् । पाठान्तरे पृथोरिदं पार्थवम् । औषधीरित्युपलक्षणम्। इमां पृथ्वीं सर्वाणि वस्तूनि दुग्ध अदुग्ध । अडागमाभावस्त्वार्षः । हे विप्राः, तेन पृथिवीदोहनेन सोऽयमवतार उशत्तमः कमनीयतमः । **'वश कान्तौ'** इत्यस्मात् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

**ऋषिभिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा पृथु अवतार का वर्णन किया गया है । **पार्थिवं वपुः** का अर्थ है कि राजा पृथु के शरीर को धारण किए । पार्थवम् भी पाठान्तर है । **पार्थवम्** की व्युत्पत्ति **पृथोरिदम् पार्थवम्** है । अर्थात् उन्होंने पृथु का शरीर धारण किया है । औषधि पद सभी वस्तुओं का उपलक्षण है । इस पृथिवी से सभी वस्तुओं को दूहा । आर्ष प्रयोग होने के कारण यहाँ पर अट् का आगम नहीं हुआ है । हे विप्रो ! पृथ्वी का दोहन करने के कारण यह अवतार अत्यन्त मनोहर है । **वश् कान्तौ** धातु से उशत्तम शब्द व्युत्पन्न हुआ है ।।१४।।

**रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुदोषधिसंप्लवे । नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— चाक्षुषोदधि संप्लवे सः मात्स्यं रूपं जगृहे । महीमय्याम् नावि वैवस्तं मनुमारोप्य अपात् ॥१५॥

**अनुवाद**— चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्र का सम्पलव होने पर वे भगवान् मत्स्यावतार धारण किए और पृथिवीमयी नौका पर वैवस्वत मनु को बैठाकर उनकी रक्षा किए ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

मत्स्यावतारमाह- रूपमिति । चाक्षुषमन्वन्तरे य उदधीनां संप्लवः संश्लेषस्तस्मिन् । यद्यपि मन्वन्तरावसाने प्रलयो नास्ति तथापि केनचित्कौतुकेन सत्यव्रताय माया प्रदर्शिता यथाऽकाण्डे मार्कण्डेयायेति द्रष्टव्यम् । महीमय्यां नावि, नौकारूपायां मह्यामित्यर्थः । अपाद्रक्षितवान् । वैवस्वतमिति भाविनी संज्ञा ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

**रूपम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा मत्स्यावतार का वर्णन किया गया है । चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्रों का संप्लव (प्रलय) नहीं हुआ था किन्तु कौतुक वशात् श्रीभगवान् ने राजा सत्यव्रत को माया प्रदर्शित किया । यह उसी तरह से हुआ जिस तरह बिना अवसर के ही भगवान् ने मार्कण्डेय को अपनी माया से प्रलय का दर्शन कराया । उस समय पृथिवी नौका बन गयी । अपात् शब्द का अर्थ है रक्षा किया । वैवस्वत मनु उसके पश्चात् हुए ॥१५॥

**सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् । दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥१६॥**

**अन्वयः**— एकादशे विभुः सुरासुराणां उदधिं मथ्नताम् एकादशे कमठरूपेण मन्दराचलम् पृष्ठे दध्रे ॥१६॥

**अनुवाद**— जिस समय देवता और दैत्य मिलकर समुद्र का मंथन कर रहे थे उस समय वे ग्यारहवें अवतार में कमठ (कच्छप) का रूप धारण करके अपने पीठ पर मन्दराचल पर्वत को धारण किए ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

कूर्मावतारमाह । कमठः कूर्मस्तद्रूपेणैकादशेऽवतारे विभुर्दध्रे दधार ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

**सुरासुराणाम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कच्छपावतार का वर्णन किया गया है । ग्यारहवें अवतार में जगद् में व्यापक श्रीभगवान् ने कमठ रूप को धारण किया ॥१६॥

**धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च । अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥१७॥**

**अन्वयः**— द्वादशमं धान्वन्तरम् त्रयोदशमम् मोहिन्या स्त्रिया अन्यान् मोहयन् सुरान् अपाययत् ॥१७॥

**अनुवाद**— बारहवें धन्वन्तरि अवतार धारण करके तथा तेरहवें अवतार में मोहिनी स्त्री का रूप धारण करके असुरों को मोहित करके श्रीभगवान् ने देवताओं को अमृत पिलाया ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

धन्वन्तर्यवतारमाह । धान्वन्तरि धन्वन्तरिरूपम् । द्वादशमादिप्रयोगस्त्वार्षः । त्रयोदशममेव रूपं तच्चरितेन सह दर्शयति । अपाययदित्यत्र सुधामित्यध्याहारः । मोहिन्या स्त्रिया तद्रूपेणान्यानसुरान्मोहयन् । धन्वन्तरिरूपेणामृतमानीय मोहिन्याऽपाययदित्यर्थः ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

**धान्वतरम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा धन्वन्तरि अवतार और मोहिनी अवतार का वर्णन किया गया है । धान्वन्तर शब्द के द्वारा धन्वन्तरि रूप को कहा गया है । द्वादशम आदि शब्दों का आर्ष प्रयोग है । तेरहवें रूप

का वर्णन उस रूप के द्वारा किए गये चरित के साथ दिखाया गया है । **अपाययत्** पद के साथ **सुधाम्** पद का अध्याहार करना चाहिए । मोहिनी स्त्री के रूप के द्वारा असुरों को मोहित करके धन्वन्तरि रूप से अमृत को लाकर मोहिनी रूप से देवताओं को भगवान् ने अमृत पिलाया ।।१७।।

**चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् । ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ।।१८।।**

**अन्वयः**— चतुर्दशम् नारसिंहं (रूपं) विभ्रत् उर्जितम् दैत्येन्द्रम् वक्षसि एरकाम् कटकृत् यथा करजैः ददार ।।१८।।

**अनुवाद**— चौदहवां नरसिंह रूप धारण करके भगवान् महाबलवान् दैत्यों के राजा हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को अपने नखों से उसी तरह से चीर दिये जिस तरह चटाई बनाने वाला सींक को अपने नखों से चीर देता है ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

नृसिंहावतारमाह । नारसिंहं रूपं विभ्रत् । एरकां निर्ग्रन्थि तृणम् ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

**चतुर्दशं इत्यादि** श्लोक के द्वारा नरसिंहावतार का वर्णन किया गया है । नरसिंह रूप धारण करके । एरका गांठ रहित तृण विशेष (सींक) को कहते हैं ।।१८।।

**पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः । पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टम् ।।१९।।**

**अन्वयः**— पञ्चदशं वामनकं (रूपं) कृत्वा त्रिविष्टपम् प्रत्यादित्सुः प्रदत्रयं याचमानः बलेः अध्वरम् अगात् ।।१९।।

**अनुवाद**— पन्द्रहवाँ वामन रूप धारण करके बलि से स्वर्ग लोक को ले लेने की इच्छा से श्रीभगवान् बलि से तीन डग पृथिवी की याचना करने के लिए उसके यज्ञ में गये ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

वामनावतारमाह- पञ्चदशमिति । दुष्टानां मदं वामयतीति वामनकं रूपम् । ह्रस्वं वा । प्रत्यादित्सुस्तस्मादाच्छिद्य ग्रहीतुमिच्छुः ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

**पञ्चदशम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा वामनावतार का वर्णन किया गया है । दुष्टों के मद को दूर करने वाले वामन रूप को धारण किए भगवान् । अथवा छोटा रूप धारण किए । **प्रत्यादित्सुः** पद का अर्थ है बलि से छिनकर ले लेने के इच्छुक ।।१९।।

**अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् । त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ।।२०।।**

**अन्वयः**— षोडशमे अवतारे ब्रह्मद्रुहः नृपान् पश्यन् कुपितः महीम् त्रिःसप्तकृत्वः निःक्षत्राम् अकरोत् ।।२०।।

**अनुवाद**— सोलहवें परशुरामावतार में ब्राह्मणों के द्रोही राजाओं को देखकर क्रुद्ध हुए भगवान् इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से रहित बना दिए ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

परशुरामावतारमाह- अवतार इति । त्रिस्त्रिगुणं यथा भवति तथा सप्तकृत्वः सप्तवारानेकविंशतिवारानित्यर्थः ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

**अवतारे० इत्यादि** श्लोक के द्वारा परशुरामावतार का वर्णन किया गया है । **त्रिःसप्तकृत्वः का** अर्थ हैं इक्कीस बार ।।२०।।

**ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् । चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥२१॥**

**अन्वयः**— ततः सप्तदशे पराशरात् सत्यवत्यां जातः अल्पमेधसः पुंसः दृष्ट्वा वेदतरोः शाखाः चक्रे ॥२१॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् सत्रहवें अवतार में सत्यवती माता के गर्भ से महर्षि पराशर के पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर उन्होंने वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग किया ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**— व्यासावतारमाह— तत इति । अल्पमेधसोऽल्पप्रज्ञान्पुंसो दृष्ट्वा तदनुग्रहार्थं शाखाश्चक्रे ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**— **ततः इत्यादि** श्लोक के द्वारा व्यासावतार का वर्णन किया गया है । **अल्पमेधसः इत्यादि**— अल्पबुद्धि वाले पुरुषों को देखकर व्यासजी ने एक ही वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग उन मनुष्यों पर कृपा करने के लिए किया ॥२१॥

**नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया । समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— अतः परम् सुरकार्यचिकीर्षया नरदेवत्वमापन्नः समुद्रनिग्रहादीनि विर्याणि चक्रे ॥२२॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् अठारहवें अवतार में श्रीभगवान् देवताओं का कार्य सम्पन्न करने की इच्छा से राजा के रूप में रामावतार ग्रहण करके सेतुबन्धन तथा रावणवध इत्यादि वीरतापूर्ण लीलाओं को किए ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

रामावतारमाह- नरेति । नरदेवत्वं राघवरूपेण प्राप्तः सन् । अतः परमष्टादशे ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

**नरदेवत्वम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीरामावतार का वर्णन किया गया है । श्रीराम रूप से राजा का शरीर धारण करके अठारहवें अवतार में समुद्र बन्ध तथा रावण वध का कार्य किए ॥२२॥

**एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी । रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— एकोनविंशे, विंशतिमे भगवान् वृष्णिषु रामकृष्णौ इति जन्मनी प्राप्य भुवोभारम् अहरत् ॥२३॥

**अनुवाद**— उन्नीसवें और बीसवें अवतारों में भगवान् यदुवंश में बलराम एवं श्रीकृष्ण के रूप में जन्म लेकर पृथिवी के भार को हल्का किए ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

रामकृष्णावतारमाह- एकोनेति विंशतितम इति वक्तव्ये तकारलोपश्छन्दोनुरोधेन । रामकृष्णावित्येवं नामनी जन्मनी प्राप्य ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

**एकोनविंशे इत्यादि** श्लोक से श्रीभगवान् के बलराम और श्रीकृष्णावतार का वर्णन किया गया है । यद्यपि विंशतितमे कहना चाहिए अतएव **छन्दोभंग** से बचने के लिए **विंशतिमे** यह प्रयोग किया गया हैं । यहाँ पर तकार का लोप छन्द शास्त्र के अनुसार हो गया है । राम और कृष्ण इन दो नामों से जन्म लिया भगवान् ने ॥२३॥

**ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् । बुद्धो नाम्नाऽजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥२४॥**

**अन्वयः**— ततः कलौ युगे सम्प्रवृत्ते सुरद्विषाम् मोहाय कीकटेषु अजन सुतः बुद्धो नाम्ना भविष्यति ॥२४॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् कलियुग के आ जने पर श्रीभगवान् देव द्रोहियों को मोहित करने के लिए मगध प्रदेश में अजन के पुत्र बुद्ध के नाम से अवतीर्ण होंगे ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

बुद्धावतारमाह- तत इति । अजनस्य सुतः । 'जिनसुत' इति पाठे जिनोऽपि स एव । कीकटेषु मध्ये गयाप्रदेशे ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

**ततः इत्यादि** श्लोक के द्वारा बुद्धावतार का वर्णन किया गया है । **अजनसुतः** अर्थात् अजन नामक राजा के पुत्र जहाँ **जिनसुतः** पाठ है, वहाँ भी वही अर्थ है । अजन का ही नाम जिन है । गया प्रदेश को ही कीकट प्रदेश कहते हैं । वहीं पर भगवान् का बुद्धावतार होगा ॥२४॥

**अथासौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु । जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥२५॥**

**अन्वयः**— अथ युगसन्ध्यायाम् दस्युप्रायेषु राजसु असौ जगत्पतिः विष्णयशसः कल्किनाम्ना भविष्यति ॥२५॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् कलियुग के संध्याकाल में जब राजागण प्रायः लुटेरे हो जायेंगे उस समय वे जगत् के स्वामी विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के कल्कि नामक पुत्र के रूप में अवतीर्ण होंगे ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

कल्क्यवतारमाह- अथेति । युगसन्ध्यायाम् । कलेरन्ते विष्णुयशसो ब्राह्मणात्सकाशाज्जनिता जनिष्यते ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

**अथासौ० इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के कल्की अवतार का वर्णन किया गया है । **युगसन्ध्यायाम्** का अर्थ कलियुग के अन्त में भगवान् विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में जन्म लेंगे ॥२५॥

**अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः । यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥२६॥**

**अन्वयः**— हे द्विजाः यथा अविदासिनः सरसः सहस्रशः कुल्याः स्युः तथा सत्त्वनिधेः हरेः असंख्येयाः अवताराः स्युः ॥२६॥

**अनुवाद**— हे शौनक आदि महर्षियों ! जिस तरह अगाध सरोवर से हजारों नालियाँ निकलती हैं, उसी तरह सत्त्वनिधि श्रीहरि के असंख्य अवतार होते हैं ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुक्तसर्वसंग्रहार्थमाह- अवतारा इति । असङ्ख्येयत्वे दृष्टान्तः- यथेति । अविदासिन उपक्षयशून्यात् । 'दसु उपक्षये' इत्यस्मात् । सरसः सकाशात्कुल्याः क्षुद्रप्रवाहाः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन अवतारों का वर्णन नहीं किया जा सका उन सबों का संग्रह करने के लिए **अवतारा० इत्यादि** श्लोक कहा गया है । भगवान् के अवतारों की असंख्येयता का दृष्टान्त उस अक्षय सरोवर से दिया गया है जिससे हजारों छोटी-छोटी नालियाँ निकलती हैं । विदासी पद दसु उपक्षये धातु से व्युत्पन्न है और पयुदास नञ् करके अविदासी पद व्युत्पन्न हुआ है ॥२६॥

**ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः । कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥२७॥**

**अन्वयः**— स प्रजापतयः ऋषयः मनवः तथा महौजसः मनुपुत्रा सर्वे हरेरेव कलाः ॥२७॥

**अनुवाद**— सभी प्रजापतिगण, ऋषिगण, मनुगण तथा महाओजस्वी मनुओं के पुत्रगण ये सबके सब श्रीहरि के अंश हैं ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

विभूतीराह- ऋषय इति ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

**ऋषयः इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् की विभूतियों को बतलाया गया है ।।२७।।

**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् । इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ।।२८।।**

**अन्वयः**— एते पुंसः अंशकलाः कृष्णस्तु स्वयं भगवान् इन्द्रारिव्याकुलं लोकं युगे-युगे मृडयन्ति ।।२८।।

**अनुवाद**— ये सभी अवतार श्रीभगवान् के अंशावतार अथवा कलावतार हैं किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान ही है । दैत्यों के उत्पातों से व्याकुल जगत् को ये सभी अवतार सुखी बनाने का काम करते हैं ।।२८।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र विशेषमाह- एते चेति । पुंसः परमेश्वरस्य केचिदंशाः केचित्कलाविभूतयश्च । तत्र मत्स्यादीनामवतारत्वेन सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्त्वेऽपि यथोपयोगमेव ज्ञानक्रियाशक्त्याविष्करणम् । कुमारनारदादिष्वाधिकारिकेषु यथोपयोगमंशकलावेशः। तत्र कुमारादिषु ज्ञानावेशः । पृथ्वादिषु शक्त्यावेशः । कृष्णस्तु भगवान्साक्षान्नारायण एव । आविष्कृतसर्वशक्तित्वात् । सर्वेषां प्रयोजनमाह । इन्द्रारयो दैत्यास्तैर्व्याकुलमुपद्रुतं लोकं मृडयन्ति सुखिनं कुर्वन्ति ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

**एते च० इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के अवतार विशेष को बतलाया गया है । **पुंसः इत्यादि** इन सभी अवतारों में से कुछ अवतार परमेश्वर के अंश हैं और कुछ अवतार कला तथा विभूति रूप हैं । उनमें भी **मत्स्य इत्यादि** भी भगवान् के अवतार हैं अतएव उन अवतारों में भी सर्वज्ञत्व तथा शक्तिमत्त्व रहता है । किन्तु उन अवतारों में उपयोग के अनुकूल ही ज्ञान, क्रिया तथा शक्ति आविर्भूत होते हैं । कुमारावतार, नारदाावतार आदि अधिकारियों में उपयोगानुकूल ही अंशों तथा कलाओं का आवेश होता है । कुमार आदि में ज्ञान का आवेश था। पृथु आदि में भगवान् की शक्ति का आवेश था । भगवान् कृष्ण तो साक्षात् नारायण ही हैं । क्योंकि इनमें श्रीभगवान् की सारी शक्तियाँ आविर्भूत हैं । इन सभी अवतारों का प्रयोजन यही है कि जब जगत् इन्द्र के शत्रु दैत्यों के द्वारा उपद्रव ग्रस्त होने के कारण व्याकुल हो जाता है तो ये अवतार समय-समय से जगत् को सुखी बनाने का काम करते हैं ।।२८।।

**जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः । सायंप्रातर्गृणन्भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ।।२९।।**

**अन्वयः**— यः नरः भगवतः एतत् गुह्यं जन्म प्रयतः सायं प्रातः भक्त्या गृणन् भवेत् सः दुःखग्रामात् विमुच्यते ।।२९।।

**अनुवाद**— जो मनुष्य श्रीभगवान् के इन गोपनीय जन्मों की कथा को नियम पूर्वक भक्ति से भरकर सायंकाल एवं प्रातःकाल पढ़ते हैं वे सभी दुःखों से छूट जाते हैं ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

एतत्कीर्तनफलमाह- जन्मेति । गुह्यमतिरहस्यं जन्म । प्रयतः शुचिः सन् । दुःखग्रामात्संसारात् ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

इन अवतारों के कीर्तन का फल **जन्म० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । श्रीभगवान् के ये जन्म अत्यन्त रहस्यमय हैं । **प्रयतः** का अर्थ है पवित्रता पूर्वक अर्थात् एकाग्रमन से **दुःखग्रामात् विमुच्यते** का अर्थ है संसार से मुक्त हो जाता हैं ।।२९।।

**एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः । मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥३०॥**

**अन्वयः**— एतद्रूपम् अरूपस्य चिदात्मनः हि भगवतः मायागुणैः महददिभिः आत्मानि विरचितम् ॥३०॥

**अनुवाद**— जीवों का यह जो स्थूल शरीर है, रूपादि रहित तथा ज्ञान स्वरूप परमात्मा की माया के गुण महत् तत्त्व आदि से परमात्मा में ही कल्पित हैं ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

विमुच्यत इति यदुक्तं तत्र कथं देहद्वयसंबन्धे सति तद्विमुक्तिरित्याशङ्क्य देहद्वयसंबन्धस्य भगवन्मायोत्थाविद्याविलसितत्वादेतच्छ्रवणादिजनितविद्यया तन्निवृत्तिरुपपद्यत इत्याशयेनाह- एतदिति पञ्चभिः । अरूपस्य चिदेकरसस्यात्मनो जीवस्यैतत्स्थूलं रूपं शरीरं भगवतो या माया तस्य गुणैर्महदादिरूपैर्विरचितम् । क्व आत्मनि । आत्मस्थाने शरीरं कृतमित्यर्थः ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

उनतीसवे श्लोक में जो **विमुच्यते** कहा गया है उसके विषय में प्रश्न उठता है कि दो देहों का सम्बन्ध रहने पर उसकी कैसे मुक्ति हो सकती है ? इस तरह की आशङ्का करके कहते हैं, दो देहों का सम्बन्ध श्रीभगवान् की माया से उत्पन्न अविद्या का विलास रूप होने के कारण इन अवतारों के श्रवण जन्य विद्या के द्वारा निवृत्ति हो जाने में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है । स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीरों की मुक्ति हो जाती है। इसी अर्थ का प्रतिपादन **एतत् इत्यादि** पाँच श्लोकों से किया गया है । **अरूपस्य चिदात्मनः** इन दो पदों का अर्थ है कि जीवात्मा रूप रहित तथा ज्ञानमात्र स्वरूप है । उसी का यह स्थूल रूप शरीर है । यह भगवान् की माया के जो महत् इत्यादि गुण हैं उन सबों से विरचित है । अर्थात् आत्मा के स्थान में शरीर निर्मित हैं ॥३०॥

**यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले । एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥३१॥**

**अन्वयः**— यथा अबुद्धिभिः मेघौघः नभसि, पार्थिवः रेणुः वा अनिले आरोपयन्ति एवम् अबुद्धिभिः द्रष्टरि आत्मनि आतानि दृश्यत्वम् आरोपितम् ॥३१॥

**अनुवाद**— जिस तरह अज्ञानी लोग वायु के ऊपर रहने वाले मेघ समूह का आकश में अरोप करते हैं, उसी तरह अज्ञानी पुरुष द्रष्टा आत्मा में दृश्यत्व का आरोप करते हैं ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

कथमित्यपेक्षायां स्वरूपावरणेन तदध्यासत इति सदृष्टान्तमाह- यथेति । यथा वाय्वाश्रितो मेघौघो नभस्याकाशेऽबुद्धिभिरज्ञैरारोपितः । यथा वा पार्थिवो रेणुस्तद्गतं धूसरत्वञ्चानिले । एवं द्रष्टर्यात्मनि दृश्यत्वं दृश्यत्वादिधर्मकं शरीरमारोपितमित्यर्थः ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि आत्मा में शरीर का अरोप कैसे होता है ? तो इसका उत्तर है कि आत्मा के स्वरूप के अज्ञान के द्वारा आवृत हो जाने के कारण उसमें शरीर का आरोप हो जाता है । इस बात को **दृष्टान्तोपन्यास** पूर्वक बतलाते हैं । **यथावाय्वाश्रितः इत्यादि** जैसे वायु के आधार पर रहने वाले मेघ के समूह का आरोप अज्ञानी पुरुष आकाश में करते हैं । अथवा जैसे पृथिवी की धूल और धूल में रहने वाले धूसरत्व का आरोप अज्ञानी जन वायु में करते हैं, उसी तरह से अज्ञानीपुरुष द्रष्टा आत्मा में, दृश्यत्वादि धर्म से युक्त शरीर का आरोप करते हैं ॥३१॥

**अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् । अदृष्टाश्रुतमवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥३२॥**

**अन्वयः**— अतः परं यत् अव्यक्तम्, अव्यूढगुणव्यूहितम् अदृष्टश्रुतवस्तुत्वात् स जीवः यत् पुनर्भवः ॥३२॥

**अनुवाद**— जो इस स्थूल शरीर से भिन्न है, जो अपरिणत हाथ पैर आदि गुणों से निर्मित है तथा आकार विशेष से रहित होने के कारण अव्यक्त (सूक्ष्म) है । वह किसी दृष्ट अथवा श्रुत पदार्थ के समान नहीं होने के कारण अदृष्टाश्रुत वस्तु है वही जीव है । उसी का बार-बार जन्म होता है ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच अतः स्थूलाद्रूपात्परमन्यदपि रूपमारोपितमित्यनुषङ्गः । कथंभूतं तत् । यदव्यक्तं सूक्ष्मम् । तत्र हेतुः- अव्यूढगुणव्यूहितम् । व्यूहः करचरणादिपरिणामः । तथा अव्यूढा अपरिणता ये गुणास्तैर्व्यूहितं रचितम् आकारविशेषरहितत्वादव्यक्तमित्यर्थः । एतदेव कुतस्तत्राह । अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात् । यच्चाकारविशेषवद्वस्तु तदस्मदादिवदृश्यते। श्रूयते वा इन्द्रादिवत् । इदं तु न तथा । तर्हि तस्य सत्त्वे किं प्रमाणं तत्राह । स जीवो जीवोपाधिः **'जीवो जीवेन निर्मुक्तो' 'जीवो जीवं विहाय'** इत्यादौ जीवोपाधौ लिङ्गदेहे जीवशब्दप्रयोगात् । जीवोपाधितया कल्प्यत इत्यर्थः । ननु स्थूलमेव भोगायतनत्वाज्जीवस्योपाधिरस्तु किमन्यकल्पनयेत्यत आह । यद्यस्मात्सूक्ष्मात्पुनर्भवः पुनर्जन्म । उत्क्रान्तिगत्यागतीनां तेन विनाऽसंभवादिति भावः ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में जीव का निरूपण किया गया है इस स्थूल शरीर से भिन्न इसके भीतर रहने वाला जो लिङ्ग शरीर है वही आरोपित है । वह अरोपित शरीर कैसा है ? तो इसका उत्तर है, वह अव्यक्त अर्थात् सूक्ष्म है । उसके सूक्ष्म होने का हेतु है अव्यूढगुणव्यूहितम् । हाथ पैर आदि के परिणाम को व्यूह कहते है । जो अपरिणत गुण हैं । उन सबों से वह रचित है । फलतः आकार विशेष से रहित होने के कारण वह अव्यक्त है । प्रश्न है कि वह अव्यक्त कैसे है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है क्योंकि वह अदृष्टाश्रुत वस्तु है । अर्थात् हमलोग जिन वस्तुओं को देखते अथवा सुनते हैं वे वस्तुएँ इन्द्रादि के समान आकार विशेष से युक्त होती हैं किन्तु यह जो सूक्ष्म शरीर है वह आकार विशेष से रहित है अतएव अदृष्टाश्रुत है ।

**तर्हि तस्य० इत्यादि-** तो प्रश्न होता है कि उस शरीर के सद्भाव में क्या प्रमाण है तो इसका उत्तर देते हैं— उसका उत्तर है कि वही जीव है । अर्थात् जीवोपाधि है । इसीलिए **जीवो जीवेन निर्मुक्तः** अर्थात् जीव-जीव (लिङ्ग शरीर) से मुक्त हो गया । इसी तरह यह भी प्रयोग होता है **जीवो जीवं विहाय** अर्थात् जीव जीव को (लिङ्ग शरीर को) छोड़कर । ऐसे प्रयोगों में जीवोपाधि जो लिङ्ग शरीर है उसी के अर्थ में जीव शब्द का प्रयोग देखा जाता है । उस लिङ्गशरीर की ही जीवोपाधि रूप से कल्पना की जाती है ।

**ननुस्थूलमेव० इत्यादि-** प्रश्न होता है कि भोगों का आश्रय तो स्थूल शरीर है, क्योंकि उसी शरीर में रहकर जीव सुख-दुःख इत्यादि भोगों को भोगता है । अतएव उसी को जीवोपाधिमान लेना चाहिए, उससे भिन्न सूक्ष्मशरीर की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है- **यत्पुनर्भवः** क्योंकि उसके सूक्ष्म होने के ही कारण पुनर्जन्म होता है अर्थात् बार-बार जन्म होता है । यदि उस सूक्ष्म जीवोपाधि को नहीं स्वीकार किया जाय तो **उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्** इस सूत्र का समन्वय नहीं हो सकता है । इस सूत्र में जीव के शरीर से निकलने, तत् तत् लोकों में जाने और फिर विभिन्न लोकों से आने वाला बतलाया गया है । यदि वह सूक्ष्म हो तो यह सम्भव नहीं हो पायेगा ॥३२॥

**यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा । अविद्ययात्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— इमे सदसद्रूपे आत्मन अविद्यया अरोपिते यत्र एव संविदा प्रतिषिद्धे तद्ब्रह्म दर्शनम् ॥३३॥

**अनुवाद**— स्थूल और सूक्ष्म ये दोनों शरीर आत्मा में अविद्या के द्वारा आरोपित हैं । जब आत्मा के स्वरूप का ज्ञान हो जाने से इन दोनों शरीरों का आरोप दूर हो जाता है, तब ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवमुपाधिद्वयमुक्त्वा तदपवादेन जीवस्य ब्रह्मतामाह- यत्रेति । यत्र यदा इमे स्थूलसूक्ष्मे रूपे स्वसंविदा श्रवणमननादिभक्त्या स्वरूपसम्यग्ज्ञानेन प्रतिषिद्धे भवतः । ज्ञानेन प्रतिषेधार्हत्वे तमेव हेतुमाह । अविद्ययात्मनि कृते कल्पिते इति हेतोः । तद्ब्रह्म। तदा जीवो ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः । कथंभूतम् । दर्शनं ज्ञानैकस्वरूपम् ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से दो उपाधियों का वर्णन करके उन दोनों उपाधियों का बाध हो जाने पर जीव ब्रह्म हो जाता है, इस बात को बतलाने के लिए **यत्रेमे० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । अत्र अर्थात् जिस समय ये स्थूल और सूक्ष्म रूप वाली दोनों उपाधियाँ, **स्वसंविदा** अर्थात् श्रवण मनन इत्यादि भक्ति के द्वारा स्वरूप का अच्छी तरह से ज्ञान हो जाने के कारण प्रतिषिद्ध हो जाती हैं अर्थात् दूर हो जाती है । ये दोनों उपाधियाँ ज्ञान के द्वारा आत्मा में कल्पित हैं । कल्पित होने के ही कारण मिथ्या हैं और मिथ्या वस्तु का ज्ञान से बाध हो ही जाता है। इन दोनों उपाधियों का बाध हो जाना ही ब्रह्मदर्शन है । अर्थात् उस समय जीव ब्रह्म ही हो जाता है । वह दर्शन ज्ञानमात्र स्वरूप है ।।३३।।

**यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः । संपन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ।।३४।।**

**अन्वयः**— यदि वैशारदी देवी एषा माया उपरता तदा सम्पन्नः स्वमहिम्नि महीयते एव इति विदुः ।।३४।।

**अनुवाद**— जब यह ईश्वर की संसार चक्र से क्रीडा करने वाली यह माया निवृत्त हो जाती है, तो वही माया विद्यारूप से परिणत हो जाती है और इस सम्पूर्ण अविद्या के विनष्ट हो जाने के कारण जीव ब्रह्म स्वरूप होकर अपनी महिमा में ही विराजित हो जाता है यह ज्ञानी पुरुष जानते हैं ।।३४।।

### भावार्थ दीपिका

तथापि भगवन्मायायाः संसृतिकारणभूताया विद्यमानत्वात्कथं ब्रह्मता तत्राह- यदीति । यदीत्यसंदेहे संदेहवचनम् '**यदि वेदाः प्रमाणं स्युः**' इतिवत् । वैशारदी विशारदः सर्वज्ञ ईश्वरस्तदीया देवी संसारचक्रेण क्रीडन्ती एषा माया यद्युपरता भवति। किमित्युपरता भवेत्तत्राह । मतिर्विद्या । अयं भावः- यावदेषाऽविद्यात्मनाऽऽवरणविक्षेपौ करोति तावन्नोपरमति । यदा तु सैव विद्यारूपेण पारिणता तदा सदसद्रूपं जीवोपाधिं दग्ध्वा निरिन्धनाग्निवत्स्वयमेवोपरमेदिति । तदा संपन्नो ब्रह्मस्वरूपं प्राप्त एवेति विदुस्तत्त्वज्ञाः किमतः । यद्येवं स्वे महिम्नि परमानन्दस्वरूपे महीयते पूज्यते विराजत इत्यर्थः ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

यह प्रश्न होता है कि दोनों उपाधियों के बाधित हो जाने पर भी माया तो बनी ही रहती है ऐसी स्थिति में मोक्ष का होना कैसे सम्भव है ? क्योंकि संसार का कारण तो वह माया ही है । तो इसका उत्तर **यदि० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । विना सन्देह के जहाँ पर संदेह व्यक्त किया जाता है, वहाँ यदि शब्द का प्रयोग होता है । जैसे **यदि वेदाः प्रमाणं स्युः।**' इस वाक्य में यदि शब्द से प्रामाणिक भी वेदों के विषय में यदि शब्द से संदेह व्यक्त किया गया है ।

**वैशारदी० इत्यादि**— विशारद शब्द वाच्य सर्वज्ञ ईश्वर हैं माया उनकी है; अतएव माया वैशारदी है । वह देवी है अर्थात् संसार चक्र से क्रीडा करती है । जब वह माया उपरत हो जाती है अर्थात् क्रीडा करना बन्द कर देती है तो वही माया मति अर्थात् विद्या स्वरूपिणी हो जाती है । और वह स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर रूपी उपाधि को विनष्ट करके उसी तरह से विनष्ट हो जाती है जिस तरह से अग्नि सम्पूर्ण इन्धनों को जलाकर नष्ट हो जाती है । उस समय जीव सम्पन्न हो जाता है अर्थात् वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है और ऐसा हो जाने पर वह अपने ब्रह्मस्वरूप में विराजमान हो जाता है ।।३४।।

**एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च । वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥३५॥**

**अन्वयः**— अकर्तुः अजनस्य हृत्पतेः एवं कवयः जन्मानि, कर्माणि च वेदगुह्यानि वर्णयन्ति ॥३५॥

**अनुवाद**— अजन्मा और अकर्ता इदयेश्वर परमात्मा के वास्तव में जन्म और कर्म नहीं होते हैं फिर भी तत्त्वज्ञ पुरुष उसके जन्मों और कर्मों का वर्णन वेदों के रहस्य रूप से करते हैं ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

यथा जीवस्य जन्मादि माया एवमीश्वरस्यापि जन्मादि मायेत्याह- एवमिति । अकर्तुः कर्माणि । अजनस्य जन्मानि हृत्पतेरन्तर्यामिणः ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस तरह जीवों के जन्म आदि माया जन्य हैं उसी तरह ईश्वर के भी जन्मादि माया मात्र है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **एवम्० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । अकर्ता भी ईश्वर के कर्म और अजन्मा ईश्वर के जन्म माया रूप हैं हृत्पतेः अर्थात् अन्तर्यामी परमेश्वर के ॥३५॥

**स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।**
**भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥३६॥**

**अन्वयः**— स वा अमोघलीलः इदं विश्वम् सृजति, अवति, अत्ति किन्तु अस्मिन् न सज्जते । भूतेषु च अन्तर्हितः षड्गुणेशः षाड्वर्गिकं जिघ्रति किन्तु स्वतंत्रः सः न सज्जते ॥३६॥

**अनुवाद**— ईश्वर की लीला अमोघ है । वे इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, इसकी रक्षा करते हैं और प्रलय काल के आने पर वे इसका संहार कर देते हैं, किन्तु वे जगत् से आसक्त नहीं होते हैं । क्योंकि इन कार्यों को करने में वे स्वतन्त्र हैं । वे सभी भूतों के अन्तर्यामी रूप से रहकर मन सहित छह इन्द्रियों के विषयो को उनसे दूर रहकर उसी तरह से ग्रहण करते है । वे छहो इन्द्रियो के स्वामी हैं उनके विषयों से वे अनासक्त रहते हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

तर्हि जीवादीश्वरस्य को विशेषः स्वातन्त्र्यमेव विशेष इत्याह- सा वा इति । षाड्वर्गिकमिन्द्रियषड्वर्गविषयं जिघ्रति दूरादेव गन्धवद्गृह्णाति न तु सज्जत इत्यर्थः । कुतः । षड्गुणेशः षडिन्द्रियनियन्ता ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न होता है कि यदि जीव और ईश्वर दोनों के जन्मादि माया से होते हैं तो फिर जीव और ईश्वर में क्या भेद है ? तो इसके उत्तर में ईश्वर की स्वतन्त्रता को ही विशेष रूप से बतलाते हुए **स वा० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । **षाड्वर्गिकं** शब्द से इन्द्रियों के षड्वर्ग विषयों को बतलाया गया है । वे अन्तर्यामी षड्वर्ग विषयों को गन्ध के समान दूर से ही ग्रहण करते हैं किन्तु वे उन विषयों में आसक्त नहीं होते हैं; क्योंकि वे षड्गुणेश हैं अर्थात् इन्द्रियों के नियामक हैं ॥३६॥

**न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातुरवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः ।**
**नामानि रूपाणि नमोवचोभिः सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥३७॥**

**अन्वयः**— कश्चित् कुमनीष अज्ञः जन्तुः निपुणेन मनोवचोभिः नामानि रूपाणि च नटचर्यामिव सन्तन्वत; अस्य धातुः ऊतीः न अवैति ॥३७॥

**अनुवाद**— कोई भी कुबुद्धि युक्त अज्ञानी मनुष्य अपनी तर्क की कुशलता के द्वारा मन से रूपों (शरीरों) तथा वाणी से नामों का अच्छी तरह से विस्तार करने वाले इस परमेश्वर की लीलाओं को नहीं जान सकता है ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

ननु किमीश्वरस्य सृष्ट्यादिकर्मभिर्विषयभोगैर्वा तत्राह- न चेति । धातुर्जगद्विधातुरीश्वरस्य ऊतीर्लीलाः कुमनीषः कुबुद्धिर्निपुणेन तर्कादिकौशलेन नावैति न जानाति । मनसा रूपाणि वचसा नामानि संतन्वतः सम्यग्विस्तारयतः । वचोभिरिति बहुत्वं श्रुत्यभिप्रायेण। मनोवचोभिः सहेति वा ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि ईश्वर को सृष्टि आदि कर्मों को करने से अथवा विषयों के भोग से क्या प्रयोजन है ? तो इसका उत्तर **न चास्य० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । जगत् के निर्माता ईश्वर की **ऊतीः** अर्थात् लीला को **कुमनीषः** कुबुद्धि मनुष्य तर्क इत्यादि की कुशलता के द्वारा नही जान सकता है । **मनसा० इत्यादि** वे अपने मन से ही रूपों का तथा वाणी से नामों का अच्छी तरह से विस्तार करते हैं । **वचोभिः** में बहुवचनान्त प्रयोग **'यतो वाचो निर्वर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह'** इस श्रुति के अभिप्राय से किया गया है । अथवा मन एवं वाणियों के साथ ।।३७।।

**स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ।**
**योऽमायया सन्ततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ।।३८।।**

**अन्वयः**— यः अमायया सन्ततया अनुवृत्या तत्पादसरोजगन्धम् भजेत सः दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः परस्य धातुः पदवीम् वेद ।।३८।।

**अनुवाद**— जो निष्कपट भाव से बिना किसी कामना के ही निरन्तर सेवा के द्वारा श्रीभगवान् के चरण कमलों की सुगन्धि का सेवन करता है वही निःसीम पराक्रम सम्पन्न चक्रधारी श्रीभगवान् के स्वरूप को जान पाता है ।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

भक्तस्तु कथंचिज्जनातीत्याह- स वेदेति । अमाययाऽकुटिलभावेन । सन्ततया निरन्तरया । अनुवृत्त्या आनुकूल्येन भजेत् ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् की लीला को किसी प्रकार से भक्त ही जान पाता है । इस अर्थ का प्रतिपादन **स वेद० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । **अमायया इत्यादि** जो अकुटिलभाव से निरन्तर अनुवृत्ति अर्थात् सेवा के द्वारा श्रीभगवान् के चरण रूपी कमलों के पराग का सदा अनुकूल रूप से सेवन करता है वही श्रीभगवान् की पदवी अर्थात् स्वरूप को जान पाता है ।।३८।।

**अथेह धन्या भगवन्त इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ।**
**कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ।।३९।।**

**अन्वयः**— अथ इह भगवन्तः धन्याः यत् अखिललोकनाथे वासुदेवे इत्थम् सर्वात्मकम् आत्मभावं कुर्वन्ति । यत्र भूयः उग्रः परिवर्तभावः न ।।३९।।

**अनुवाद**— अतएव आपलोग कृतार्थ हैं क्योंकि इस प्रकार के प्रश्नों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् में ऐकान्तिक मनोभाव को लगाते हैं । उसके करने पर मनुष्यों के जन्म मरण आदि का चक्र समाप्त हो जाता है ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

भक्तिमार्गे प्रवृत्तानृषीनभिनन्दति- अथेति । यतो भक्त एव भगवत्तत्त्वं जानाति । अथ अतो भगवन्तः सर्वज्ञा भवन्तो धन्याः कृतार्थाः । कुतः । यद्यस्मादित्थं प्रश्नैर्वासुदेव आत्मभावं मनोवृत्तिं कुर्वन्ति । सर्वात्मकमैकान्तिकम् । यत्र यस्मिन्भावे सति भूयः उग्रो गर्भवासादिदुःखरूपः परिवर्तो जन्मरणाद्यावर्तो न भवति ॥३९॥

**भाव प्रकाशिका**

भक्ति मार्ग में प्रवृत्त शौनकादि ऋषियों का अभिनन्दन करते हुए सूतजी **अथेह० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । चूकि भक्त ही भगवत् तत्त्व को जानते हैं अतएव सर्वज्ञ आपलोग धन्य अर्थात् कृतार्थ हैं । क्योंकि इस प्रकार के प्रश्नों के द्वारा भगवान्; वासुदेव में ऐकान्तिक आत्मभाव (मनोवृत्ति) करते हैं । उस भाव के हो जाने पर पुनः गर्भवास आदि दुःखरूप जन्म-मरण इत्यादि का चक्र समाप्त हो जाता है ॥३९॥

**इद भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् । उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥४०॥**

**अन्वयः**— भगवान् ऋषिः ब्रह्मसम्मित्तम् उत्तमश्लोकचरितं इदं भागवतं नाम पुराणम् चकार ॥४०॥

**अनुवाद**— ऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि व्यास ने सम्पूर्ण वेद के समान तथा उत्तम श्लोक श्रीभगवान् के चरित से युक्त इस श्रीमद्भागवत नामक पुराण की रचना की है ॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

सूत किमेतच्छास्त्रमपूर्व कथयसि तत्राह । ब्रह्मसंमितं सर्ववेदतुल्यम् । उत्तमश्लोकस्य चरितं यस्मिस्तत् । ऋषिर्व्यासः ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

ऋषियों के द्वारा यह पूछे जाने पर कि आप कोई अपूर्व (नवीन) शास्त्र कह रहे हैं क्या ? तो इसके उत्तर में कहते हैं— **अथेह० इत्यादि-** ब्रह्म संमितम् अर्थात् सम्पूर्ण वेद के समान । जिसमें उत्तम श्लोक श्रीभगवान् का चरित है वह उत्तम श्लोक चरित है । ऋषि शब्द महर्षि व्यास का वाचक है ॥४०॥

**निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् । तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥४१॥**

**अन्वयः**— तत् लोकस्य निःश्रेयसाय धन्यं, महत् स्वस्त्यनं इदम् आत्मवताम् वरम् सुतम् ग्राहयामास ॥४१॥

**अनुवाद**— संसार का कल्याण करने के लिए उन्होंने उस धन्य (सर्वश्रेष्ठ) अत्यन्त मङ्गलमय इस श्रीमद्भागवत नामक पुराण को आत्मज्ञों में श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजी को उन्होंने पढ़ाया ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्सम्प्रदाय प्रवृत्तिमाह सुतम् शुकम् ॥४१॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्रीमद्भागवत पुराण के सम्प्रदाय के प्रारम्भ को **निःश्रयेसाय० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । सुतम् पद से शुकदेवजी को कहा गया है ॥४१॥

**सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् । स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥४२॥**

**अन्वयः**— सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् । स तु महाराजं परीक्षितम् संश्रावयामास ॥४२॥

**अनुवाद**— इस ग्रन्थ में सभी वेदों तथा इतिहासों के सारभाग को निकालकर रख दिया गया है । वे शुकदेवजी इस पुराण को महाराज परीक्षित को सुनाये ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्रीमद्भागवत पुराण में सम्पूर्ण वेदों तथा इतिहासों के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अर्थों का सन्निवेश किया गया है । इस पुराण को श्रीशुकदेवजी ने सर्वप्रथम राजा परीक्षित् को सुनाया ॥४२॥

**प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः। तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः॥४३॥**
**अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात्। सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति॥४४॥**

**अन्वयः**— हे विप्राः ! गङ्गायां प्रायोपविष्टम् परमर्षिभिः परीतम् तत्र भूरितेजसः विप्रर्षेः कीर्तयतः तत्र निविष्टं तदनुग्रहात् अहम् तत्र अध्यगमं सोऽहम् यथा अधीतं यथामति वः श्रावयिष्यामि ॥४३-४४॥

**अनुवाद**— हे विप्रों गङ्गा के तट में मरण काल पर्यन्त के लिए उपवास करके बैठे हुए तथा परमर्षियों के द्वारा घिरे हुए राजा परीक्षित् को जब विप्रर्षि (शुकदेवजी) श्रीमद्भागवत सुना रहे थे उस समय वहाँ पर बैठे हुए मैंने उसको उनकी कृपा से ही सुना, अतएव मैने जैसा पढ़ा है उसको अपनी बुद्धि के अनुसर आपलोगों को सुनाऊँगा ॥४३-४४॥

### भावार्थ दीपिका

प्रायेण मृत्युपर्यन्तानाशकेनोपविष्टमिति परमवैराग्योक्तिः । हे विप्राः । विप्रर्षेः सकाशात् ॥४३॥ अध्यगमं ज्ञातवानस्मि। तत्र कीर्तयतस्तत्र निविष्ट इति चान्वयभेदात्तत्रपदावृत्तिरदोषः । यथाऽधीतं नतु स्वमतिविलसितम् । तत्रापि यथामति स्वमत्यनुसारेण। संक्षेपतः कथितं विस्तरतः श्रावयिष्यामि ॥४४॥

### भाव प्रकाशिका

गङ्गा तट में मृत्यु काल पर्यन्त उपवास करने के लिए बैठे हुए यह **प्रायोपविष्टम्** पद का अर्थ है । यह कहकर राजा परीक्षित् के परम वैराग्य को सूचित किया गया है । हे विप्रों शुकदेवजी की सन्निधि में मैंने इस श्रीमद्भागवत शास्त्र का अध्ययन किया । यदि कोई कहे कि **तत्र कीर्तयतः** तथा **तत्र निविष्टः** इस वाक्य में दो बार तत्र पद का सन्निवेश किए जाने के कारण पुनरावृत्ति नामक दोष है तो ऐसी बात इसलिए नहीं है कि दोनों तत्र पदों का अन्वय अलग-अलग है । फलतः उक्त दोष का अभाव है । **यथाधीतम्** कहकर सूतजी ने यह बतलाया है कि जैसा मैने अध्ययन किया है, वैसा ही मैं सुनाऊँगा न कि अपनी बुद्धि से कल्पना करके सुनाऊँगा । **यथामति** का अभिप्राय है कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सुनाऊँगा । जो संक्षेप में कहा गया है । उसको विस्तार पूर्वक सुनाऊँगा ॥४३-४४॥

**कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदृशामेष पुराणाकोऽधुनोदितः ॥४५॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

**अन्वयः**— कृष्णे धर्मज्ञानादिभिः सह स्वधामोपगते कलौ नष्टदृशाम् अधुना पुराणार्कः उदितः ॥४५॥

**अनुवाद**— जब भगवान् श्रीकृष्ण धर्म तथा ज्ञान आदि के साथ अपने धाम में चले गये, उसके पश्चात् कलियुग में जो लोग अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे हो रहे है, उनके लिए ज्ञान के प्रकाशक पुराण रूपी सूर्य का उदय हुआ है ॥४५॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥**

**भावार्थ दीपिका**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भार्वाथदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।३।।**

**नोट**— श्रीमद्भागवत के गीताप्रेस संस्करण में **कलौ नष्टदृशाम्०** श्लोक के पश्चात् **अहं चाध्यगमम इत्यादि** श्लोक मुद्रित है ।

# चौथा अध्याय

## महर्षि व्यास का असन्तोष

व्यास उवाच

**इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् । वृद्धः कुलपतिः सूतं वह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ।।१।।**

**अन्वयः**— दीर्घसत्रिणाम् मुनीनां वृद्धः कुलपतिः वहवृचः शौनकः इति ब्रुवाणं सूतं संस्तूय अब्रवीत् ।।१।।

**व्यासजी ने कहा**

**अनुवाद**— दीर्घ कालीन सत्र में सम्मिलित हुए मुनियों में विद्यावयोवृद्ध, कुलपति ऋग्वेदी शौनक महर्षि ने उपर्युक्त बातों को कहने वाले सूतजी की प्रशंसा करके कहा ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

तुर्ये भागवतारम्भकारणत्वे वर्ण्यते । व्यासस्यापरितोषस्तु तपःप्रवचनादिभिः ।।१।। इत्येवं प्रसन्नतया श्रावयिष्यामीति ब्रुवाणम् । मुनीनां बहूना मध्ये एकेन वक्तव्ये यो वृद्धो वृद्धेष्वपि बहुषु यः कुलपतिर्गणमुख्यस्तेष्वपि बहुषु यो बह्वृचः ऋग्वेदी तेन वक्तव्यम् । अत एवंभूतत्वाच्छौनकोऽब्रवीत् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

चौथे अध्याय में तपस्या तथा प्रवचन आदि के द्वारा होने वाले असन्तोष को इस श्रीमद्भागवत पुराण के प्रारम्भ के कारण रूप से वर्णन किया गया है । यह इस अध्याय का सारांश है ।

**इत्येवम्० इत्यादि-** इस तरह से मैं सुनाऊँगा, इस बात को सुनकर प्रसन्नता पूर्वक सुनाऊँगा यह कहने वाले सूतजी को । **मुनीनाम्० इत्यादि** नियम है कि यदि बहुत मुनि हों तो उनमें से किसी एक वृद्ध को बोलना चाहिए । अनेक वृद्धों में भी जो कुलपति (सबों में मुख्य) हो और उन सबों में भी जो ऋग्वेदी हो उसको बोलना चाहिए । अतएव इन सभी गुणों से युक्त शौनक महर्षि ने कहा ।।१।।

शौनक उवाच

**सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर । कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवान् शुकः ।।२।।**

**अन्वयः**— हे महाभाग सूत ! हे सूत ! हे वदतां वर ! भागवतीम् यां पुण्यां कथां भगवान् शुकः प्राह तां नो वद ।।२।।

**शौनक महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे महाभाग सूतजी जिस पवित्र श्रीमद्भागवत की कथा को शुकदेवजी ने कहा था उसी कथा को आप हमलोगों को सुनाइये ।।२।।

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भार्वाथदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।३।।**

**नोट**— श्रीमद्भागवत के गीताप्रेस संस्करण में **कलौ नष्टदृशाम्०** श्लोक के पश्चात् **अहं चाध्यगमम इत्यादि** श्लोक मुद्रित है ।

# चौथा अध्याय

## महर्षि व्यास का असन्तोष

व्यास उवाच

**इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् । वृद्धः कुलपतिः सूतं वह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥१॥**

**अन्वयः**— दीर्घसत्रिणाम् मुनीनां वृद्धः कुलपतिः वहवृचः शौनकः इति ब्रुवाणं सूतं संस्तूय अब्रवीत् ।।१।।

**व्यासजी ने कहा**

**अनुवाद**— दीर्घ कालीन सत्र में सम्मिलित हुए मुनियों में विद्यावयोवृद्ध, कुलपति ऋग्वेदी शौनक महर्षि ने उपर्युक्त बातों को कहने वाले सूतजी की प्रशंसा करके कहा ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

तुर्ये भागवतारम्भकारणत्वे वर्ण्यते । व्यासस्यापरितोषस्तु तपःप्रवचनादिभिः ।।१।। इत्येवं प्रसन्नतया श्रावयिष्यामीति ब्रुवाणम् । मुनीनां बहूना मध्ये एकेन वक्तव्ये यो वृद्धो वृद्धेष्वपि बहुषु यः कुलपतिर्गणमुख्यस्तेष्वपि बहुषु यो बह्वृचः ऋग्वेदी तेन वक्तव्यम् । अत एवंभूतत्वाच्छौनकोऽब्रवीत् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

चौथे अध्याय में तपस्या तथा प्रवचन आदि के द्वारा होने वाले असन्तोष को इस श्रीमद्भागवत पुराण के प्रारम्भ के कारण रूप से वर्णन किया गया है । यह इस अध्याय का सारांश है ।

**इत्येवम्० इत्यादि-** इस तरह से मैं सुनाऊँगा, इस बात को सुनकर प्रसन्नता पूर्वक सुनाऊँगा यह कहने वाले सूतजी को । **मुनीनाम्० इत्यादि** नियम है कि यदि बहुत मुनि हों तो उनमें से किसी एक वृद्ध को बोलना चाहिए । अनेक वृद्धों में भी जो कुलपति (सबों में मुख्य) हो और उन सबों में भी जो ऋग्वेदी हो उसको बोलना चाहिए । अतएव इन सभी गुणों से युक्त शौनक महर्षि ने कहा ॥१॥

शौनक उवाच

**सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर । कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवान् शुकः ॥२॥**

**अन्वयः**— हे महाभाग सूत ! हे सूत ! हे वदतां वर ! भागवतीम् यां पुण्यां कथां भगवान् शुकः प्राह तां नो वद ।।२।।

**शौनक महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे महाभाग सूतजी जिस पवित्र श्रीमद्भागवत की कथा को शुकदेवजी ने कहा था उसी कथा को आप हमलोगों को सुनाइये ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

यत् यां कथामाह ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

यत् शब्द के द्वारा कहा गया है कि जिस कथा को शुकदेवजी ने सुनाया था ।।२।।

**कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना । कुतः संचोदितः कृष्णः कृतवान्संहितां मुनिः ।।३।।**

**अन्वयः**— इयं कथा कस्मिन् युगे, कस्मिन् स्थाने केन हेतुना प्रवृत्ता, केन संचोदितः कृष्णः मुनिः संहितां कृतवान् ।।३।।

**अनुवाद**— यह कथा किस युग में ? किस स्थान पर हुयी । तथा किस कारण से किसके द्वारा प्रेरित होकर कृष्णद्वैपायन मुनि ने इस पारमहंस्य संहिता का निर्माण किया ?।।३।।

### भावार्थ दीपिका

कस्मिन्वा स्थाने । केन हेतुनेति महाभारतादिधर्मशास्त्राणि कृतवतः पुनरेतत्संहिताकरणे किं कारणमित्यर्थः । कुत इति सार्वविभक्तिकस्तसिः । केन प्रवर्तित इत्यर्थः । कृष्णो व्यासः ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

यह कथा किस स्थान पर हुयी ? महाभारत आदि धर्मशास्त्रों का प्रणयन कर लेने के पश्चात् इस संहिता के निर्माण का कारण क्या था ? **कुतः** पद में सार्वविभक्तिक तसिल् प्रत्यय हुआ है । अर्थात् किसके द्वारा प्रेरित होकर महर्षि व्यास ने इसका प्रणयन किया ।।३।।

**तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः । एकान्तमतिरुन्निदो गूढो मूढ इवेयते ।।४।।**

**अन्वयः**— तस्य पुत्रो महायोगी, समदृक् निर्विकल्पकः, एकान्तमतिः उन्निद्रः गूढ मूढ इव इयते ।।४।।

**अनुवाद**— महर्षि व्यास के पुत्र श्रीशुकदेवजी महायोगी हैं ।, वे समदर्शी, भेदभाव से रहित, एकमात्र श्रीभगवान् के चिन्तन में लीन रहने वाले, तथा संसार रूपी निद्रा से जगे हुए हैं वे छिपे हुए रहने के कारण मूढ (अज्ञानी) के समान प्रतीत होते हैं ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

यदुक्तं **'स तु संश्रावयामास'** इति तच्छुकस्य व्याख्यानादिकं कथं घटितमिति प्रष्टुं तस्यासङ्गोदासीनतामाह द्वाभ्याम्–तस्येति । समदृक् समं ब्रह्म पश्यति । अतो निर्विकल्पकः । स्वार्थे कः । निरस्तभेदः । किंच एकस्मिन्नेवान्तः समाप्तिर्यस्यास्तथाभूता मतिर्यस्य सः । यत् उन्निद्रो मायाशयनादुद्बुद्धः **'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी'** इति स्मृतेः । अतएव गूढोऽप्रकटः। मूढ इव प्रतीयते ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

यह जो कहा जा चुका है कि व्यासजी ने उसे शुकदेवजी को पढ़ाया । ऐसी स्थिति में यह कैसे कहा जा सकता है ? कि यह शुकदेवजी का व्याख्यान है । उसी को पूछने के लिए शुकदेवजी की आसक्ति रहित उदासीनता को **तस्य० इत्यादि** दो श्लोकों को कहा गया है । जो एक समान ब्रह्म को देखे उसको समदर्शी कहते हैं । अतएव वे निर्विकल्पक अर्थात् भेदभाव से रहित हैं । निर्विकल्पक में स्वार्थ में क प्रत्यय हुआ है । निर्विकल्पक का अर्थ है भेद रहित । **एकस्मिन्नेवान्तः समाप्तिर्यस्याः तथा भूता मतिः** यह एकान्तमति शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है । इसका अर्थ है जिसकी एक ही परमात्मा में मति लगी रहती है । क्योंकि वे **उन्निद्र** हैं अर्थात् मायारूपी निद्रा से जगे हुए हैं भगवद् गीता में कहा भी गया है **या निशा० इत्यादि** अर्थात् जो माया सभी संसारियों के लिए रात्रि के

समान अज्ञान रूपी अन्धकारमयी है, उसमें ज्ञानीपुरुष जगाता रहता है। शुकदेवजी तो स्वयम् अपने को छिपाये रहते हैं फलतः वे अज्ञानी के समान प्रतीत होते हैं ॥४॥

**दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ।**
**तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥५॥**

**अन्वयः**— आत्मजम् अनुयान्तम् अनग्नमपि ऋषिं दृष्ट्वा देव्यः ह्रिया परिदधुः सुतस्य न इति तत् चित्रं वीक्ष्य मुनौ पृच्छति, जगदुः यत् तव स्त्रीपुंभिदा अस्ति, विविक्तदृष्टेः सुतस्य तु न ॥५॥

**अनुवाद**— संन्यास के लिए वन में जाते हुए अपने पुत्र के पीछे व्यासजी जा रहे थे, उस समय वस्त्र धारण किए हुए भी महर्षि व्यास को देखकर स्त्रियों ने लज्जा के कारण वस्त्र को धारण कर लिया, किन्तु उनके पुत्र श्रीशुकदेवजी को देखकर उन सबों ने वस्त्र नहीं धारण किया। इस विचित्र बात को देखकर जब व्यासजी ने उसका कारण पूछा तो उन सबों ने बतलाया कि आपको स्त्री तथा पुरुष में होने वाले भेद का ज्ञान है, किन्तु आपके पुत्र शुकदेवजी की दृष्टि तो शुद्ध है, उनको स्त्री और पुरुष में होने वाले भेद का ज्ञान नहीं है ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

निर्विकल्पकत्वं प्रपञ्चयति- दृष्ट्वेति। आत्मजं शुकं प्रव्रजन्तमनुगच्छन्तमृषिं व्यासमनग्नमपि दृष्ट्वा जले क्रीडन्त्यो देव्योऽप्सरसो ह्रिया लज्जया परिदधुर्वस्त्रपरिधानं कृतवत्यः। अनग्नमपीत्यनेनार्थात्तत्सुतो नग्न इत्युक्तम्। नग्नस्य पुरतो गच्छतः सुतस्य तु ह्रिया न परिदधुः। तच्चित्रं वीक्ष्य। इयं स्त्री अयं पुमानिति भिदा भेदस्तवास्ति। विविक्ता पूता दृष्टिर्यस्य ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी की निर्विकल्पकता की व्याख्या करते हुए शौनक महर्षि **दृष्टवा० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं। संन्यास ग्रहणार्थ वन में जाते हुए अपने पुत्र शुकदेवजी के पीछे जाते हुए महर्षि व्यास को अनग्न भी देखकर जल में क्रीडा करती हुयी अप्सराओं ने लज्जा के कारण वस्त्रों को धारण कर लिया। **अनग्नमपि** के अपि शब्द के द्वारा ज्ञात होता है कि उनके पुत्र शुकदेवजी नग्न थे। उन नग्न शुकदेवजी को सामने से जाते हुए देखकर अप्सराओं ने वस्त्र नहीं धारण किया। इस विचित्रता को देखकर व्यासजी ने उसका जब कारण पूछा तो उन सबों ने बतलाया कि आपको स्त्री तथा पुरुष में होने वाले भेद का ज्ञान है और आपके पुत्र तो विविक्त दृष्टि हैं उनकी दृष्टि पवित्र है। अतएव उनको इस भेद का ज्ञान नहीं है ॥५॥

**कथमालक्षितः पौरैः संप्राप्तः कुरुजाङ्गलान् । उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये ॥६॥**

**अन्वयः**— कुरुजाङ्गलान् सम्प्राप्तः गजसाह्वये उन्मत्तमूकजडवत् विचरन् सः पौरैः कथमालक्षितः ?॥६॥

**अनुवाद**— कुरुजाङ्गल प्रदेश में जाकर हस्तिनापुर में पागल गूङ्गे तथा जड के समान विचरण करते हुए उनको नगर वासियों ने कैसे पहचाना ?॥६॥

### भावार्थ दीपिका

एवंभूतोऽसौ कथमालक्षितो ज्ञातः। कुरवो जाङ्गलाश्च देशविशेषास्तान्संप्राप्तः प्रथमं ततो गजसाह्वये विचरन्। गजेन सहित आह्वयो नाम यस्य तस्मिन्हस्तिनापुरे। हस्ती नाम राजा तेन निर्मितत्वात् ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के शुकदेवजी कैसे पहचान लिए गये ? कुरु तथा जाङ्गल नाम के देश विशेष है। वहाँ जाकर उसके पश्चात् गजसाह्वय (हस्तिनापुर में) विचरण करते हुए। गज के साथ जिसका नाम लिया जाता है, वह हस्तिनापुर है। उसका निर्माण चूकि हस्ती नामक राजा ने कराया था अतएव उसका नाम हस्तिनापुर है ॥६॥

**कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह । संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥७॥**

**अन्वयः**— हे तात ! कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेः मुनिना सह संवादः समभूत् यत्र एषा सात्त्वती श्रुतिः ॥७॥

**अनुवाद**— किञ्च पाण्डव नन्दन राजर्षि परीक्षित् का किस प्रकार मनन चिन्तन परायण शुकदेवजी का संवाद हुआ, जहाँ यह भागवती संहिता कही गयी ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

एवंभूतेन मुनिना सह । यत्र संवादे एषा सात्वती भागवती श्रुतिः संहिता ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार के मुनि शुकदेवजी के साथ जिस संवाद में यह भागवती श्रुति की संहिता कही गयी ॥७॥

**स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहयेधिनाम् । अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥८॥**

**अन्वयः**— महाभागः सः तु गृहमेधिनाम् गृहेषु तदाश्रमम् तीर्थीकुर्वन् गोदोहनमात्रं हि अवेक्षते ॥८॥

**अनुवाद**— महाभाग शुकदेवजी तो गृहस्थों के द्वार पर उनके आश्रम को पवित्र बनाने के लिए उतने ही देर तक रुकते हैं जितनी देर में एक गौ दूही जा सकती हैं ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

एतद्याख्यानं बहुकालवस्थानापेक्षम्, तस्य त्वेकत्रावस्थानं दुर्लभमित्याह- स इति । गोदोहनमात्रं कालं प्रतीक्षते, तदपि न भिक्षार्थं, किंतु तेषामाश्रमं गृहं तीर्थीकुर्वन्पवित्रीकुर्वंस्तस्मादेवंभूतोऽत्र वक्तेत्याश्चर्यम् ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

इस ग्रन्थ का प्रवचन करने के लिए तो अत्यधिक समय की अपेक्षा होती है, उतनी देर तक उनका कहीं एक स्थान पर रुकना असम्भव है । इस अर्थ का प्रतिपादन **स तु० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । **गोदोहोनमात्रम्० इत्यादि** वे तो गृहस्थों के द्वार पर उतने ही समय तक रुकते हैं जितनी देर में एक गौ दुह ली जाय । वह भी वे भिक्षा प्राप्त करने के लिए नहीं अपितु वे गृहस्थों के गृह को पवित्र बनाने के लिए रुकते हैं । अतएव ऐसे इस पुराण के वक्ता हैं यह तो आश्चर्य की बात है ॥८॥

**अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् । तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥९॥**

**अन्वयः**— हे सूत ! अभिमन्युसुतं भागवतोत्तमं प्राहुः तस्य महाश्चर्यं जन्म कर्माणि च नः गृणीहि ॥९॥

**अनुवाद**— हे सूतजी ! अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् को तो उत्तम भगवद्भक्त कहा गया है; उनके आश्चर्यमय जन्म और कर्मों को भी आप हमलोगों को सुनायें ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

श्रोतुस्तु चरितमतीवाश्चर्यमतः कथयेत्याह- अभिमन्युसुतमिति पञ्चभिः । गृणीहि कथय ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्रीमद्भागवत पुराण के श्रोता राजा परीक्षित् का भी चरित अत्यन्त आश्चर्यमय है । अतएव उसें भी आप सुनायें इस बात को **अभिमन्युसुतम् इत्यादि** पाँच श्लोकों से कहा गया है । गृणीहि का अर्थ है कि कहें ॥९॥

**स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः । प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— पाण्डूनाम् मानवर्धनः सम्राट् सः अधिराट्श्रियम् अनादृत्य कस्य वा हेतोः गङ्गायाम् प्रायोपविष्टः? ॥१०॥

**अनुवाद**— महाराज पाण्डु के वंश का सम्मान बढ़ाने वाले वे सम्राट् थे । वे साम्राज्यलक्ष्मी का परित्याग करके किस कारण से मृत्युकाल पर्यन्त अनशन का व्रत लेकर गङ्गा के तट पर बैठे थे ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

सम्राट् चक्रवर्ती । वेति वितर्के । कस्य वा हेतोः कस्मात्कारणात् । अधिराट्श्रियं अधिराजां श्रियं संपदमनादृत्य ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

चक्रवर्ती राजा को सम्राट् कहते हैं । वा शब्द का वितर्क के अर्थ में प्रयोग किया गया है । वे किस कारण से राजाओं के भी राजा की सम्पत्ति का अनादर करके यह **अधिराट्श्रियम् अनादृत्य** का अर्थ है ॥१०॥

**नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हानीय धनानि शत्रवः ।**
**कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥११॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग ! शत्रवः ह आत्मनः शिवाय धनानि आनीय **यत् पादनिकेतम् नमन्ति** अहो स युवा वीरः असुभिः सह दुस्त्यजां श्रियम् कथम् ऐषत ॥११॥

**अनुवाद**— हे सूतजी ! शत्रुगण अपने आत्मकल्याण के लिए धन लाकर जिनकी चरणचौकी को नमस्कार करते थे । यह आश्चर्य की बात है कि वे युवा वीर अपने प्राणों के साथ जिसको त्यागना कठिन है उस लक्ष्मी को क्यों त्यागने की इच्छा किए ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

यस्य पादनिकेतं चरणपीठम् । ह स्फुटम् । धनान्यानीय शत्रवो नमन्ति । अङ्ग हे सूत । युवा तरुण एव ऐषत ऐच्छत्। अत्रार्षमात्मनेपदम् । असुभिः प्राणैः सह ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

जिनकी चरणचौकी को यह **पादनिकेतम्** पद का अर्थ है । ह यह अव्यय प्रसिद्धि का द्योतक है । शत्रुगण धनों को लाकर नमस्कार करते थे । **अङ्ग** यह सूतजी का सम्बोधन है । **युवैषत** का अर्थ है कि युवा अवस्था में ही चाहे । ऐषत में आत्मने पद आर्ष प्रयोग होने के कारण है । सहासुभिः पद का अर्थ है प्राणों के साथ ॥११॥

**शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ।**
**जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— ये उत्तमश्लोकपरायणा जनाः लोकस्य शिवाय, भवाय, भूतये जीवन्ति नात्मार्थम् । असौ पराश्रयम् कलेवरम् कुतः निर्विद्य मुमोच ॥१२॥

**अनुवाद**— जिन लोगों का जीवन श्रीभगवान् के आश्रित होता है वे लोग जगत् का कल्याण अभ्युदय और समृद्धि के लिए जीवित रहते हैं । उसमें उनका अपना कोई भी स्वार्थ नहीं होता है । उनका शरीर तो परार्थ होता है, ऐसे राजा परीक्षित् किस कारण से विरक्त होकर उसे त्यागना चाहे ?॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

विरक्तस्य किं धनादिभिरिति चेत्तत्राह- शिवायेति । लोकस्य शिवाय सुखाय भवाय समृद्ध्यै भूतये ऐश्वर्याय च ते जीवन्ति न त्वात्मार्थम् । एवं सत्यसौ राजा निर्विद्य विरज्यापि परेषामाश्रयं कलेवरं कुतो हेतोर्मुमोच । न हि परोपजीवनं स्वयं त्यक्तुयुचितमित्यर्थः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई कहे कि विरक्त पुरुष को धन इत्यादि से क्या प्रयोजन है ? तो इसके उत्तर में **शिवाय० इत्यादि**

श्लोक कहा गया है । अर्थात् ऐसे लोगों का जीवन जगत् के **शिवाय** अर्थात् सुख के लिए, **भवाय** अर्थात् समृद्धि के लिए और **भूतये** अर्थात् ऐश्वर्य के लिए होता है । अपने लिए नहीं होता । ऐसे राजा संसार से विरक्त होकर भी दूसरों के आश्रयभूत शरीर को क्यों त्यागना चाहे ? दूसरों के आश्रय भूत वस्तु का स्वयं त्याग देना तो उचित नहीं है ॥१२॥

**तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किंचन । मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥१३॥**

**अन्वयः**— छान्दसात् अन्यत्र वाचां विषये त्वाम् अहम् स्नातं मन्ये । इह यत् किंचन पृष्टः तत्सर्वं नः समाचक्ष्व ॥१३॥

**अनुवाद**— वेदवाणी को छोड़कर अन्य शास्त्रों में मैं आपको पारंगत मानता हूँ । अतएव मैंने जो कुछ भी आपसे पूछा है, उन सभी विषयों को हमलोगों को सुनाइये ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

यत्किंचन पृष्टोऽसि तत्सर्वं नोऽस्मभ्यं समाचक्ष्व । यद्यस्माद्वाचां विषये गिरां गोचरेऽर्थे स्नातं पारंगतं त्वां मन्ये । छान्दसादन्यत्र वैदिकव्यतिरेकेण । अत्रैवर्णिकत्वात् ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

जो कुछ भी मैंने पूछा है उन सभी विषयों को आप हमलोगों को सुनाइये । क्योंकि शास्त्रों के विषय में आपको मैं पारंगत मानता हूँ । **छान्दसादन्यत्र** का अर्थ है वैदिक विषयों को छोड़कर । ऐसा इसलिए कि आप त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों) से भिन्न शूद्र वर्ण के हैं । और शूद्रों का वेदाध्ययन में अधिकार नहीं है। फलतः आप वेद को छोड़कर अन्य शास्त्रों में पारंगत हैं ॥१३॥

सूत उवाच

**द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये । जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥१४॥**

**अन्वयः**— तृतीये युगपर्यये द्वापरे समनुप्राप्ते पराशरात् वासव्यां योगी हरेः कलया जातः ॥१४॥

**अनुवाद**— इस चतुर्युगी के तीसरे युग द्वापर युग के आ जाने पर उपरिचर वसु के वीर्य से उत्पन्न वसुकन्या सत्यवती के गर्भ से पराशर महर्षि के पुत्र योगी व्यासजी उत्पन्न हुए । वे श्रीहरि के कलावतार थे ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

कस्मिन्युग इत्यादिप्रश्नानां व्यासजन्मकथनपूर्वकमुत्तरमाह- द्वापर इति । द्वापरे समनुप्राप्ते । कदेत्यपेक्षायामाह । तृतीये युगस्य पर्यये परिवर्ते । वासव्यामुपरिचरस्य वसोर्वीर्याज्जतायां सत्यवत्यां योगी ज्ञानी व्यासो जातः ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

किस युग में श्रीमद्भागवत की कथा प्रारम्भ हुयी इत्यादि जो महर्षि शौनक के प्रश्न हैं उन सबों का उत्तर व्यासजी के जन्म वर्णन पूर्वक **द्वापरे० इत्यादि** श्लोक से सूतजी ने दिया है । द्वापर युग के आ जाने पर यह कब कथा हुयी इस प्रश्न का उत्तर है । तीसरे युग द्वापर के आ जाने पर, उपरिचर वसु के वीर्य से उत्पन्न सत्यवती के गर्भ से ज्ञानी व्यासजी का जन्म हुआ । यहाँ योगी शब्द का अर्थ ज्ञानी है ॥१४॥

**स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचिः । विविक्त एव आसीन उदिते रविमण्डले ॥१५॥**

**अन्वयः**— कदाचित् सः सरस्वत्याः शुचिः जलं स्पृश्य रविमण्डले उदिते विविक्ते एव आसीन आसीत् ॥१५॥

**अनुवाद**— एक बार वे सरस्वती नदी के पवित्र जल में स्नान आदि करके सूर्योदय हो जाने पर एकान्त में महर्षि व्यास अकेले बैठे थे ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

जलमुपस्पृश्य जले स्नानादिकं कृत्वेत्यर्थः । आसीनो बभूवेति शेषः । विविक्ते देश इत्यादि चित्तैकाग्र्यार्थमुक्तम् । अनेनैव वदरिकाश्रमस्थानं सूचितम् ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

जलमुपस्पृश्य का अर्थ है जल में स्नान आदि करके बैठे हुए थे । एकान्त स्थान में इत्यादि चित्त की एकाग्रता को सूचित करने के लिए कहा गया है । इसके द्वारा यह सूचित होता है कि वह बदरिकाश्रम का स्थान था ।।१५।।

**परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा । युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ।।१६।।**
**भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् । अश्रद्दधानान्निसत्त्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ।।१७।।**
**दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्यमुनिर्दिव्येन चक्षुषा । सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ।।१८।।**

**अन्वयः**— परावरज्ञः स अमोघदृक् ऋषिः युगे-युगे भुवि प्राप्तं अव्यक्तरंहसा कालेन, युगधर्मव्यतिकरं, च तत्कृतम् भौतिकानां भावानां च शक्तिह्रासं, अश्रद्धधानान्, निःसत्त्वान्, दुर्मेधान्, ह्रसितायुषः जनान् वीक्ष्य मुनिः दिव्येन चक्षुषा सर्ववर्णाश्रमाणां यत् हितम् तद् दध्यौ ।।१६-१८।।

**अनुवाद**— अतीत एवं अनागत को जानने वाले वे ऋषि प्रत्येक युग में पृथिवी पर होने वाले वर्णाश्रम धर्मों के सांकर्य तथा कालकृत भौतिक पदार्थों के शक्ति के ह्रास को एवं श्रद्धारहित, धैर्यरहित मन्दमति वाले लोगों जिनकी आयु का ह्रास हो गया है ऐसे लोगों को देखकर तथा दौर्भाग्यग्रस्त लोगों को देखकर, अमोघदृष्टि वाले वे महर्षि सभी वर्णों के हितों का अपनी दिव्यदृष्टि से ध्यान किए ।।१६-१८।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र च स ऋषिर्युगधर्मव्यतिकरादिकं वीक्ष्य सर्ववर्णाश्रमाणां यद्धितं तद्दध्याविति तृतीयेनान्वयः । परावरज्ञोतीतानागतवित् । अव्यक्तं रंहो वेगो यस्य तेन कालेन युगधर्माणां व्यतिकरं सङ्करं प्राप्तं वीक्ष्य । तथा भुवि युगे युगे । भौतिकानां भावानां शरीरादीनाम् । तत्कृतं कालकृतम् निःसत्त्वान्धैर्यशून्यान् । दुर्मेधान्मन्दमतीन् ।।१६-१८।।

### भाव प्रकाशिका

वहाँ पर वे ऋषि **युगधर्मव्यतिकरादिकम्** अर्थात् युगधर्मों का सांकर्य देखकर, सभी वर्णों और आश्रमों के कल्याणकारी विषय का ध्यान किये । परावरज्ञः अर्थात् अतीत तथा अनागत को जानने वाले । **कालेनाव्यक्तरंहसा** अर्थात् जिसके वेग को नहीं जाना जा सकता है ऐसे काल के द्वारा युगधर्मों के सांकर्य को देखकर जो पृथिवी पर प्रत्येक युग में होता है तथा शरीर आदि की शक्ति को कालकृत ह्रास धैर्यशून्य एवं मन्दमति वाले लोगों को देखकर ।।१६-१८।।

**चातुर्होत्रं कर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् । व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ।।१९।।**

**अन्वयः**— वैदिकं चातुर्होत्रं प्रजानां शुद्धं कर्म इति वीक्ष्य एवं वेदम् यज्ञसन्तत्यै चतुविधं व्यदधात् ।।१९।।

**अनुवाद**— वेदों में वर्णित चातुर्होत्र (होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता और ब्रह्मा इन चार ऋत्विजों द्वारा सम्पादित किया जाने वाला) कर्म (अग्निष्टोम आदि कर्म) लोगों को शुद्ध कर देता है । यह विचार करके यज्ञों का विस्तार करने के लिए एक ही वेद का उन्होंने चार भागों में विभाग कर दिया ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

ततश्च होत्रोपलक्षिताश्चत्वार ऋत्विजश्चतुर्होतारस्तैरनुष्ठेयं कर्म चातुर्होत्रम् । शुद्धं शुद्धिकरम् । यज्ञसन्तत्यै यज्ञानामविच्छेदाय ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

अतएव होत्र शब्द के द्वारा उपलक्षित होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा ही चार होता है । उन लोगों के द्वारा किए जाने वाले कर्म को चातुर्होत्र कहा जाता है । शुद्धं शब्द का अर्थ शुद्धि करने वाला है । **यज्ञसन्तत्यै** का अर्थ है यज्ञों के निरन्तर होते रहने के लिए ।।१९।।

**ऋग्यजुःसमामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः । इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ।।२०।।**

**अन्वयः**— ऋग्यजुः सामाथर्वाख्याः चत्वारः वेदा उद्धृताः च इतिहासपुराणं पञ्चमो वेद उच्यते ।।२०।।

**अनुवाद**— उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदों को अलग-अलग किया और इतिहास पुराणों को पाँचवाँ वेद कहते हैं ।।२०।।

**भावार्थ दीपिका**

चातुर्विध्यमेवाह- ऋगिति । उद्धृताः पृथक्कृताः ।।२०।।

**भाव प्रकाशिका**

ऋग् इत्यादि श्लोक के द्वारा वेदों के चार भेदों को बतलाया गया है । उद्धृताः शब्द का अर्थ है, पृथक् किया ।।२०।।

**तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः । वैशंपायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ।।२१।।**

**अन्वयः**— तत्र ऋग्वेदधरः पैलः, जैमिनिः कविः, सामगः, यजुषाम् उतएक एव निष्णातः वैशम्पायनः ।।२१।।

**अनुवाद**— उनमें से ऋग्वेद के ज्ञाता पैल हुए, सामवेद के विद्वान् जैमिनि महर्षि हुए और यजुर्वेद के निष्णात स्नातक वैशम्पायन हुए ।।२१।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

उन वेदों में तीन वेदों के ज्ञाताओं का नाम इस श्लोक में बतलाया गया है । उन चारो वेदों में से ऋग्वेद के ज्ञाता महर्षि पैल हुए, सामवेद के विद्वान महर्षि जैमिनि हुए और यजुर्वेद के ज्ञाता वैशम्पायन महर्षि हुए । ये सभी महर्षि व्यास के ही शिष्य हैं ।।२१।।

**अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः । इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ।।२२।।**

**अन्वयः**— अथर्वाङ्गिरसां दारुणः समन्तु मुनिः आसीत्, इतिहासपुराणानां च ज्ञाता मे पिता रोमहर्षणः आसीत् ।।२२।।

**अनुवाद**— अथर्ववेद के ज्ञाता दरुण महर्षि के पुत्र सुमन्तु मुनि थे और इतिहास पुराणों के ज्ञाता मेरे पिता रोमहर्षण सूत हुए ।।२२।।

**भावार्थ दीपिका**

दारुणः क्रूरः अथर्वोक्ताभिचारादिप्रवृत्तेः ।।२२।।

**भाव प्रकाशिका**

सुमन्त मुनि को दारुण इसलिए कह गया है कि वे अथर्ववेद के ज्ञाता बतलाये गये क्रूर कर्मों में प्रवृत्त थे । साथ ही वे दरुण मुनि के पुत्र भी थे ।।२२।।

**त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा । शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ।।२३।।**

**अन्वयः**— ते एते ऋषयः स्वं स्वं वेदम् अनेकधा व्यस्यन् । शिष्यैः प्रशिष्यैः तच्छिष्यैः ते वेदाः शाखिनः अभवन् ।।२३।।

**अनुवाद**— उन सभी ऋषियों ने अपने-अपने वेदों को अनेक प्रकार से विभक्त किया। फलतः शिष्यों, प्रशिष्यों तथा उनके भी शिष्यों के द्वारा वे वेद अनेक शाखाओं वाले हो गये ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यस्यन्विभक्तवन्तः ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

मूल के व्यस्यन् शब्द का अर्थ विभाजित किया है ॥२३॥

**त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा। एवं चकार भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥२४॥**

**अन्वयः**— त एव वेदाः यथा दुर्मेधैः पुरुषै धार्यन्ते एवं कृपणवत्सलः भगवान् व्यासः चकार ॥२४॥

**अनुवाद**— उन वेदों को कमबुद्धि वाले लोग जैसे धारण कर सकें वैसा ही, कम बुद्धि वाले लोगों पर कृपा करने वाले महर्षि भगवान् व्यास ने बना दिया ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

वेदविभागप्रयोजनमाह- त एवेति। ये पूर्वमतिमेधाविभिर्धार्यन्ते स्म त एव ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

**त एव इत्यादि** श्लोक के द्वारा वेदों के विभाग का प्रयोजन बतलाया गया है। जिन वेदों को अत्यन्त मेधावी पुरुष धारण करते थे उन वेदों को ही यहाँ **त एव** के द्वारा कहा गया है ॥२४॥

**स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा। कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह॥**
**इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— कर्मश्रेयसि मूढानां स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयीश्रुतिगोचरा न (भवति इति) तेषाम् इह एवं श्रेयः भवेत् इति मुनिना कृपया भारतम् आख्यानं कृतम् ॥२५॥

**अनुवाद**— कल्याणकारी कर्मों के करने के प्रकार के विषय में अज्ञानी, वेदों के श्रवण के अनधिकारी स्त्रियों, शूद्रों तथा पतितद्विजों को इसी से कल्याण हो जाय इस तरह सोचकर महर्षि व्यास ने महाभारत नामक इतिहास का प्रणयन किया ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच स्त्रीशूद्रेति। द्विजबन्धवस्त्रैवर्णिकेष्वधमास्तेषाम्। कर्मरूपे श्रेयः- साधने एवं भवेदनेनैव प्रकारेण भवतु। इति अतएव तेषां कृपया भारताख्यानं मुनिना कृतम् ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

**स्त्री शूद्र० इत्यादि** श्लोक के द्वारा महाभारत के प्रणयन का प्रयोजन बतलाया गया है। त्रैवर्णिकों में जो पतित होते हैं उन लोगों का द्विजबन्धु कहते हैं। उन सबों का **कर्मश्रेयसिमूढानां** का अर्थ है कि वे कर्म रूपी कल्याण के साधन के विषय में यह कर्म ऐसे होना चाहिए इस बात को नहीं जानते हैं। अतएव उन स्त्री, शूद्र तथा द्विजबान्धवों पर कृपा करके महर्षि व्यास ने महाभारत का प्रणयन किया ॥२५॥

**एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः। सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ॥२६॥**

**अन्वयः**— हे द्विजाः एवं सदा भूतानां श्रेयसि प्रवृतस्य सर्वात्मकेनापि ततः यदा हृदयं न अतुष्यत् ॥२६॥

**अनुवाद**— हे द्विजों इस प्रकार से सदा जीवों का कल्याण करने में ही लगे रहने वाले महर्षि व्यास का उस सर्वात्मक कर्म के द्वारा भी जब हृदय सन्तुष्ट नहीं हुआ ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

एवमनेन प्रकारेण । भूतानां श्रेयसि हिते । सर्वात्मकेनापि कर्मणा ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से सबों का कल्याण करने के लिए कर्मों को करते रहने पर भी व्यासजी का मन सन्तुष्ट नहीं हुआ ॥२६॥

**नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ । वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥२७॥**

**अन्वयः**— नातिप्रसीदद्धृयः शुचौ सरस्वत्याः तटे विविक्तस्थः सः धर्मवित् विर्तकयन् इदं प्रोवाच ॥२७॥

**अनुवाद**— व्यासजी का हृदय मन बहुत अधिक प्रसन्न नहीं था, वे धर्मज्ञ सरस्वती नदी के पवित्र तट पर एकान्त में बैठे हुए विचार करके कहे ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

न अतिप्रसीदत् हृदयं यस्य सः । चित्ताप्रसत्तौ हेतुं वितर्कयन्निदमुवाच स्वगतम् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

इन सभी लोकोपकारी कार्यों के करने पर भी व्यासजी का मन खिन्न ही था उनका मन पूर्णरूप से प्रसन्न नहीं था अपने मन की अप्रसन्नता के कारण के विषय में विचार करते हुए वे अपने मन में ही कहने लगे ॥२७॥

**धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः । मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि, गुरवः अग्नयः सम्मानिताः निर्व्यलीकेन च अनुशासनं गृहीतम् ॥२८॥

**अनुवाद**— मैंने ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदों, गुरुजनों तथा अग्नियों का सम्मान किया और निष्कपट भाव से उनकी आज्ञाओं का पालन किया ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

निर्व्यलीकेन निष्कपटबुद्ध्या मानिताः पूजिताः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

मैंने निष्कपट बुद्धि से सबों की पूजा की है । फिर भी मेरा मन प्रसन्न क्यों नही है? इस तरह से महर्षि व्यास मन-ही-मन सोच रहे थे ॥२८॥

**भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः । दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥२९॥**

**अन्वयः**— भारतव्यपदेशेने हि आम्नायार्थः च दर्शितः । यत्र उत स्त्रीशूद्राभिः धर्मादि दृश्यते ॥२९॥

**अनुवाद**— महाभारत के व्याज से मैंने वेदों के अर्थों को स्पष्ट कर दिया है और उसके माध्यम से स्त्री शूद्र आदि भी अपने धर्म को जान लेते हैं ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि स्त्री शूद्र इत्यादि तो वेदों का अध्ययन नहीं कर सकते हैं । उन लोगों के ही कल्याण के लिए मैंने महाभारत की रचना की है और उसके माध्यम से वे लोग अपने धर्म को जान भी लेते हैं । फिर भी न जान क्यों मैं असन्तुष्ट ही हूँ ॥२९॥

**अथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः । असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥३०॥**

**अन्वयः**— मे दैह्यः आत्मा विभुः अथापि बत आत्मना असंपन्नः ब्रह्मवर्चसि असत्तम इव आभाति ॥३०॥

**अनुवाद**— मेरे शरीर के भीतर रहने वाली आत्मा व्यापक है फिर भी वह अपने रूप से ब्रह्मवर्चस सम्पन्न होने पर भी असम्पन्न अर्थात् तादात्म्य अप्राप्त के समान प्रतीत होती हैं ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

दैह्यः देहे भव आत्मा जीवो वस्तुतो विभुः परिपूर्ण एव । आत्मना स्वेन रूपेणासंपन्नस्तादात्म्यमप्राप्त इवाभाति । ब्रह्मवर्चसं वेदश्रवणाध्यापनोत्कर्षजं तेजस्तत्र साधवो ब्रह्मवर्चस्यास्तेषु सत्तमोऽतिश्रेष्ठोऽपि । यद्वा न केवलसंपन्न इवाभाति प्रत्युत ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मवर्चसवानप्यसत्तम इवाभाति । पाठान्तरे कमनीयतमोऽपीति ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

देह के भीतर रहने वाली आत्मा ही दैह्य आत्मा है । वह आत्मा वास्तविक रूप से परिपूर्ण है । फिर भी वह अपने स्वरूप से तादात्म्य अप्राप्त के समान प्रतीत होती है । वेदों के श्रवण तथा अध्यापन जन्य उत्कर्ष के कारण तेज से सम्पन्न पुरुषों को ब्रह्मवर्चस्य कहते है । उन सबों में मैं सत्तम अर्थात् श्रेष्ठ भी हूँ । अथवा केवल असम्पन्न (तादात्म्याप्राप्त) अपितु ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न होने पर भी असत्तम अश्रेष्ठ के समान प्रतीत होता हूँ । उशत्तमः यह पाठान्तर के अनुसार कमनीयतमः भी अर्थ होगा ॥३०॥

**किंवा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः । प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥३१॥**

**अन्वयः**— किंवा परमहंसानां प्रियाः भागवताः धर्माः मया प्रायेण न निरूपिताः ते एव हि अच्युतप्रियाः ॥३१॥

**अनुवाद**— अथवा इसका यह कारण है कि मैंने अब तक परमहंसों के प्रिय भागवत धर्मों को प्रायः नहीं निरूपीत किया है और वे ही धर्म भगवान् अच्युत को प्रिय हैं ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

असंपत्तौ हेतुं स्वयमेवाशङ्कते- किंवेति । प्रायेण भूयस्त्वेन । हि यस्मात्त एव धर्मा अच्युतस्य प्रियाः ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

व्यासजी आशंका करते हैं कि मेरे असंतोष का यह कारण है क्या कि मैंने अब तक प्रायः भागवत धर्मों का वर्णन नहीं किया है ? भागवत धर्म ही परमहंसों को प्रिय हैं और वे ही धर्म भगवान् अच्युत को भी प्रिय हैं । इसीलिए मेरी आत्मा असंतुष्ट के समान प्रतीत होती है ॥३१॥

**तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः । कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— एवं आत्मानं खिलम् मन्यमानस्य खिद्यतः तस्य कृष्णस्य प्रागुदाहृतम् आश्रमं नारदः अभ्यगात् ॥३२॥

**अनुवाद**— इस तरह से आत्मा को अपूर्ण मानकर खिन्न होने वाले उन कृष्णद्वैपायन महर्षि के पूर्वोक्त आश्रम में नारदजी आ गये ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

खिलं न्यूनम् । खिद्यतः खेदं प्राप्नुवतः । कृष्णस्य व्यासस्य । प्रागुदाहृतं सरस्वतीतीरस्थम् ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

खिल शब्द का अर्थ न्यून है । **खिद्यतः** अर्थात् खिन्न । **कृष्णस्य** अर्थात् व्यासजी को, अर्थात् जिस समय व्यासजी अपने आप में अपने को अपूर्ण मानकर खिन्न हो रहे थे उसी समय उनके सरस्वती नदी के तट पर विद्यमान आश्रम में नारदजी आ गये ॥३२॥

**तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः । पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥३३॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

**अन्वयः**— तम् आगतम् अभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय सुरपूजितम् नारदम् विधिवत् पूजयामास ॥३३॥

**अनुवाद**— नारदजी को आये हुए जानकर व्यासजी सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए देवताओं से पूजित नारदजी की उन्होंने विधिपूर्वक पूजा की ॥३३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥**

**भावार्थ दीपिका**

तं नारदमागतमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय विधिवत्पूजयामास । सुरपूजितमिति ब्रह्मलोकादागतमित्यर्थः ॥३३॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥**

**भाव प्रकाशिका**

नारदजी को आये हुए जानकर व्यासजी उनको देखकर सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए उनकी सविधि पूजा किए ॥३३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥४॥**

# पाँचवाँ अध्याय

## श्रीभगवान् के यश कीर्तन का माहात्म्य और देवर्षि नारदजी के पूर्व जन्म का चरित्र

सूत उवाच

**अथ तं सुखमासीनं उपासीनं बृहच्छ्रवाः । देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥१॥**

**अन्वयः**— अथ बृहच्छ्रवाः वीणापाणिः सुखमासीनः देवर्षिः स्मयन्निव उपासीनं विपर्षिं प्राह ॥१॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् परमयशस्वी वीणा हाथ में धारण किए हुए तथा सुखपूर्वक बैठे हुए देवर्षि नारदजी मुस्कुराते हुए के समान अपने सन्निकट में बैठे हुए व्यासजी से पूछे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

पञ्चमे सर्वधर्मेभ्यो हरिकीर्तनगौरवम् । व्यासचित्तप्रसादाय नारदेनोपदिश्यते ॥१॥ **उप समीपे आसीनम्** विप्रर्षिं व्यासम् बृहच्छ्रवा महायशा स्मयन्नीषद्हसन्निवेत्येनेन मुखप्रसत्तिद्योत्यते । यद्वा इवेत्यनधिकारार्थम् । अहोमहानपिमुह्यति ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

पाञ्चवें अध्याय में व्यासजी के चित्त की प्रसन्नता के लिए नारदजी ने हरिकीर्तन का महत्त्व बतलाया है ॥१॥ उपासीनम् पद का अर्थ है सन्निकट में बैठे हुए विप्रर्षि शब्द से व्यासजी को कहा गया है । **वृहच्छ्रवाः** का अर्थ महायशस्वी है । अल्प हास को स्मय कहते हैं । इसी को मुसकाना भी कहते है । **स्मयन्निव** पद के द्वारा नारदजी के मुख की प्रसन्नता द्योतित की गयी है ।

**तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः । पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥३३॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

**अन्वयः**— तम् आगतम् अभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय सुरपूजितम् नारदम् विधिवत् पूजयामास ॥३३॥

**अनुवाद**— नारदजी को आये हुए जानकर व्यासजी सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए देवताओं से पूजित नारदजी की उन्होंने विधिपूर्वक पूजा की ॥३३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।**

**भावार्थ दीपिका**

तं नारदमागतमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय विधिवत्पूजयामास । सुरपूजितमिति ब्रह्मलोकादागतमित्यर्थः ॥३३॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।**

**भाव प्रकाशिका**

नारदजी को आये हुए जानकर व्यासजी उनको देखकर सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए उनकी सविधि पूजा किए ॥३३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।**

# पाँचवाँ अध्याय

## श्रीभगवान् के यश कीर्तन का माहात्म्य और देवर्षि नारदजी के पूर्व जन्म का चरित्र

सूत उवाच

**अथ तं सुखमासीनं उपासीनं बृहच्छ्रवाः । देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥१॥**

**अन्वयः**— अथ बृहच्छ्रवाः वीणापाणिः सुखमासीनः देवर्षिः स्मयन्निव उपासीनं विपर्षिं प्राह ॥१॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् परमयशस्वी वीणा हाथ में धारण किए हुए तथा सुखपूर्वक बैठे हुए देवर्षि नारदजी मुस्कुराते हुए के समान अपने सन्निकट में बैठे हुए व्यासजी से पूछे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

पञ्चमे सर्वधर्मेभ्यो हरिकीर्तनगौरवम् । व्यासचित्तप्रसादाय नारदेनोपदिश्यते ॥१॥ **उप समीपे आसीनम्** विप्रर्षिं व्यासम् बृहच्छ्रवा महायशा स्मयन्नीषद्हसन्निवेत्येनेन मुखप्रसत्तिर्द्योत्यते । यद्वा इवेत्यनधिकारार्थम् । अहोमहानपिमुह्यति ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

पाञ्चवें अध्याय में व्यासजी के चित्त की प्रसन्नता के लिए नारदजी ने हरिकीर्तन का महत्त्व बतलाया है ॥१॥ उपासीनम् पद का अर्थ है सन्निकट में बैठे हुए विप्रर्षि शब्द से व्यासजी को कहा गया है । **बृहच्छ्रवाः** का अर्थ महायशस्वी है । अल्प हास को स्मय कहते हैं । इसी को मुसकाना भी कहते है । **स्मयन्निव** पद के द्वारा नारदजी के मुख की प्रसन्नता द्योतित की गयी है ।

अथवा **इव** पद के द्वारा यह द्योतित किया गया है कि व्यासजी यद्यपि मोह के अधिकारी नहीं है फ़िर भी मोह कर रहे हैं । नारदजी ने सोचा कि ये इतने महान् होकर भी मोहित हो रहे हैं । यही सोच कर वे मुस्कुराये ॥१॥

नारद उवाच

**पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना । परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥२॥**

**अन्वयः**— हे महाभाग पाराशर्य भवतः शारीरः आत्मा वा मानसः एव कच्चित् आत्मना परितुष्यति ॥२॥

**अनुवाद**— आपका शरीराभिमानी आत्मा तथा मन अभिमानी आत्मा अपने कर्म और चिन्तन से प्रसन्न हैं क्या?॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

शारीरः शरीराभिमान्यात्मात्मना तेन शरीरेण कच्चित्किं परितुष्यति । मानस आत्मा मनोभिमानी तेन मनसा परितुष्यति। कच्चिन्नो वा ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

शरीर में रहने वाली शरीराभिमानी आत्मा अपने उस शरीर संतुष्ट है क्या ? तथा मन अभिमानी आत्मा मन से आप प्रसन्न हैं या नहीं ?॥२॥

**जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्भुतम् । कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥३॥**

**अन्वयः**— ते जिज्ञासितम् अपि सुसम्पन्नम् यः त्वम् सर्वार्थपरिबृंहितम् भारतम् कृतवान् ॥३॥

**अनुवाद**— आपकी जिज्ञासा तो अच्छी तरह से पूर्ण हो गयी होगी ? क्योंकि आपने सभी अर्थों से परिपूर्ण अद्भुत महाभारत की रचना की है ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

ते जिज्ञासितं ज्ञातुमिष्टं धर्मादि यत्तत्सर्वं सुसंपन्नं सम्यक् ज्ञातम् । अपिशब्दादनुष्ठितं चेत्यर्थः । **'अयि'** इति पाठे संबोधनम् । सुसंपन्नत्वे हेतुः- महदद्भुतमित्यादि । सर्वैरर्थैर्धर्मादिभिः परिबृंहितं परिपूर्णम् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

आपको जो धर्म आदि जानना अभिप्रेत है, वह सब कुछ आप को ज्ञात हो गया होगा । सुसम्पन्नमपि शब्द के अपि शब्द के द्वारा यह भी बोधित होता है कि आपने उसका अनुष्ठान कर लिया होगा । **अयि** यह पाठ जहाँ पर है वहाँ पर अयि शब्द सम्बुद्धिपद होगा । सुसम्पन्नता का हेतु है **महदद्भुतम् इत्यादि** । अर्थात् यह भारत ग्रन्थ रूप से महान् और अर्थ की दृष्टि से अद्भुत है । यही महदद्भुतम् का अभिप्राय है । यह भारत ग्रन्थ धर्म आदि से परिपूर्ण है ॥३॥

**जिज्ञासितमधीतं च ब्रह्म यत्तत्सनातनम् । अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥४॥**

**अन्वयः**— यत् सनातनं ब्रह्म तत् च जिज्ञासितम् अधीतञ्च । अथापि हे प्रभो ! अकृतार्थ इव आत्मानम् (कथं) शोचसि ?॥४॥

**अनुवाद**— जो सनातन ब्रह्म है उनके विषय में आपने अच्छी तरह से विचार किया है और उनको आपने जान भी लिया है, फिर हे प्रभो ! आप अकृतार्थ पुरुष के समान अपनी आत्मा के विषय में क्यों शोक कर रहे हैं ?॥४॥

### भावार्थ दीपिका

किंच यत् सनातनं नित्यं परं ब्रह्म तच्च त्वया जिज्ञासितं विचारितमधीतमधिगतं प्राप्तं चेत्यर्थः । अथापि शोचसि तत्किमर्थमिति शेषः ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

जो सनातन परंब्रह्म हैं उनके विषय में आपने अच्छी तरह से विचार किया है । तथा अधीतम् अर्थात् उस परंब्रह्म को आपने प्राप्त भी कर लिया है, फिर भी आप शोक कर रहे हैं इसका कारण क्या हैं ?।।४।।

व्यास उवाच

**अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे ।**
**तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वात्मभवमभूतम् ।।५।।**

**अन्वयः**— इदं सर्वं त्वया उक्तम् मे अस्त्येव तथापि मे आत्मा न परितुष्यते । हे (नारद) तन्मूलं अव्यक्तम् आत्मभवात्मभूतम् अगाधबोधं त्वा पृच्छामहे ।।५।।

### व्यासजी ने कहा

**अनुवाद**— आपने जो कुछ कहा वह सब कुछ मैंने कर लिया है फिर भी मेरी आत्मा सन्तुष्ट नहीं है । हे नारदजी उसका कारण क्या है इसें मैं नहीं जानता हूँ । इसे मैं आपसे ही पूछता हूँ क्योंकि आप ब्रह्माजी के पुत्र हैं और आपका ज्ञान अगाध है ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

आत्मा शारीरो मानसश्च । तन्मूलं तस्यापरितोषस्य कारणम् । अव्यक्तमस्फुटम् । हे नारद ! त्वा त्वां पृच्छाम । आत्मभवो ब्रह्मा तस्यात्मनो देहादुद्भूतस्तम् । अत एवागाधोऽतिगम्भीरो बोधो यस्य तं त्वाम् ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

यहाँ आत्मा शब्द से शरीराभिमानी तथा मन अभिमानी दोनों प्रकार की आत्माएँ अभिप्रेत हैं । तन्मूलम् अव्यक्तम् का अर्थ है कि उस असन्तोष का कारण क्या है ? इसका पता मुझको नहीं चल रहा है । हे नारदजी! इस असन्तोष का कारण मैं आपसे इसलिए पूछ रहा हूँ कि आप ब्रह्माजी के पुत्र है । यहाँ पर **आत्मभाव** शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है । उनसे उत्पन्न होने के कारण नारदजी **आत्मभवात्मभूत** हैं और उनका ज्ञान अगाध है ।।५।।

**स वै भवान्वेद समस्तगुह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ।**
**परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ।।६।।**

**अन्वयः**— स वै भवान् समस्तगुह्यम् वेद । यत् पुराणः पुरुषः उपासितः । सः परावरेशः गुणैरसङ्गः विश्वं सृजति अवति अत्ति च ।।६।।

**अनुवाद**— हे नारदजी ! आप समस्त गोपनीय रहस्यों को जानते हैं, क्योंकि आपने पुराण पुरुष परमात्मा की उपासना की है । जो परमात्मा प्रकृति के सत्त्व, रजस् एवं तमस् से असम्पृक्त ही रहकर अपने मानसिक सङ्कल्प मात्र से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, सृष्ट जगत् की रक्षा और प्रलय काल के आने पर सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं ।।६।।

### भावार्थदीपिका

अगाधबोधतां प्रपञ्चयन्नाह- स वा इति द्वाभ्याम् । सर्वगुह्यज्ञान हेतुः- यद्यस्मात्पुराणः पुरुष उपासितस्त्वया । कथंभूतः। परावरेशः कार्यकारणनियन्ता । मनसैव सङ्कल्पमात्रेण गुणैः कृत्वा विश्वं सृजतीत्यादि ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

**स वै भवान्० इत्यादि** दो श्लोकों से नारदजी की अगाधबोधता का विस्तार करते हुए व्यासजी कहते हैं कि आप समस्त गोपनीय रहस्यों को जानते हैं उसका कारण यह है कि आपने पुराण पुरुष परमात्मा की उपासना की है । वे परमात्मा परावरेश हैं अर्थात् सम्पूर्ण कार्य कारण तत्त्वों के नियामक हैं । और वे अपने सङ्कल्प मात्र से इस त्रिगुणात्मक जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं ॥६॥

**त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ।**
**परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥७॥**

**अन्वयः**— अर्क इव त्रिलोकीम् पर्यटन् आत्मसाक्षी । परावरे ब्रह्मणि धर्मतः व्रतैश्च स्नातस्य मे न्यूनं अलं विचक्ष्व ॥७॥

**अनुवाद**— सूर्य के समान त्रैलोक्य में विचरण करने वाले आप योग के बल से सबों के भीतर प्रवेश करके वायु के समान सञ्चरण करने वाले हैं आप आत्मसाक्षी अर्थात् बुद्धि की वृत्ति को जानने वाले है । अतएव योग के द्वारा परं ब्रह्म तथा वेदव्रत के द्वारा अवरब्रह्म (शब्द ब्रह्म) में निष्णात हैं मुझमें यह जो अपूर्णता है उसके कारण का आप विचार करें ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

किंच त्वं त्रिलोकीं पर्यटन्नर्क इव सर्वदर्शी । योगबलेन प्राणवायुरिव सर्वप्राणिनामन्तश्चरः सन्नात्मसाक्षी बुद्धिवृत्तिज्ञः। अतः परे ब्रह्मणि धर्मतो योगेन निष्णातस्य । तदुक्तं याज्ञवल्क्येन— 'इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ।' इति । अवरे च ब्रह्मणि वेदाख्ये व्रतैः स्वाध्यायनियमैर्निष्णातस्य मेऽलमत्यर्थं यन्नयूनं तद्विचक्ष्व वितर्कय ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

आप त्रैलोक्य में पर्यटन करते रहते है । अतएव जिस तरह त्रैलोक्य में पर्यटन करते हुए सूर्य सबकुछ देखते हैं उसी तरह से आप भी सर्वदर्शी हैं । आप अपने योग के बल से सभी प्राणियों के अन्तःकरण में प्रवेश करके सम्पूर्ण शरीर में सञ्चरण करने वाले वायु के समान सञ्चरण करते हैं । फलतः आप आत्मसाक्षी अर्थात् बुद्धि की वृत्ति के ज्ञाता हैं । मैं भी **धर्मतः** अर्थात् योग बल के द्वारा परंब्रह्म के विषय में तथा वेद व्रत के द्वारा शब्द ब्रह्म के विषय में निष्णात् हूँ ।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा भी है **इज्याचार० इत्यादि** यज्ञ, सदाचार, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, दान तथा वेदाध्ययन इन कर्मों का परम धर्म यही है कि वे योग के द्वारा आत्मदर्शन करें । फिर भी मुझमें बहुत अधिक न्यूनता है, उसके कारण का आप विचार करें ॥७॥

नारद उवाच

**भवताऽनुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् । येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥८॥**

**अन्वयः**— भवता भगवतः अमलं यशः अनुदित प्रायम् । येन असौ न तुष्यते तद् दर्शनम् खिलम् एव मन्ये ॥८॥

**अनुवाद**— आपने श्रीभगवान् के निर्मल यश का वर्णन प्रायः नहीं किया । जिसके द्वारा परमात्मा सन्तुष्ट नहीं होते हैं, उस दर्शन को मैं अपूर्ण ही मानता हूँ ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

अनुदितप्रायमनुक्तप्रायम् । अमलं भगवद्यशो विना येनैव धर्मादिज्ञानेनासौ भगवान्न तुष्येत तदेव दर्शनं ज्ञानं खिलं न्यूनं मन्येऽहम् ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

**अनुदितप्रायम्** का अर्थ है अवर्णित प्राय । भगवान् के निर्मल यश से भिन्न जिन धर्म आदि के ज्ञान से भगवान् को सन्तोष नहीं होता है, वही ज्ञान खिल अर्थात् अधूरा होता है ऐसा मैं मानता हूँ ॥८॥

**यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः । न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥९॥**

**अन्वयः**— हे मुनिवर्य भवता यथा धर्मादयश्चार्था अनुकीर्तिताः तथा वासुदेवस्य महिमा नहि अनुवर्णिताः ॥९॥

**अनुवाद**— आपने जिस तरह से धर्म आदि पुरुषार्थों का वर्णन किया है, उस तरह भगवान् वासुदेव की महिमा का वर्णन नहीं किया है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

ननु भगवद्यश एव तत्र तत्रानुवर्णितं तत्राह- यथेति । चशब्दाद्धर्मादिसाधनानि च । तथा धर्मादिवत्प्राधान्येन वासुदेवस्य महिमा न ह्युक्त इत्यर्थः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि महाभारत आदि ग्रन्थों में श्रीभगवान् के यश का ही वर्णन किया गया है । तो इस पर **यथा० आदि** श्लोक कहते हैं । **धर्मादयश्च का च शब्द** धर्म आदि के साधनों को भी बतलाता है । अर्थात् आपने जिस तह से धर्म और धर्म के साधनों का वर्णन किया है उन धर्मादि के ही समान प्रधान रूप से भगवान् वासुदेव की महिमा का वर्णन आपने नहीं किया हैं ॥९॥

**न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।**
**तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥१०॥**

**अन्वयः**— यद् वचः चित्रपदं जगत् पवित्रं हरेः यशः कर्हिचित् न प्रगृणीत् तदवायसं तीर्थम् उशन्ति । यत्र उशिक्क्षयाः मानसाः हंसाः न निरमन्ति ॥१०॥

**अनुवाद**— रस, अलङ्कार आदि से अलंकृत पदों से युक्त जिस वाणी के द्वारा श्रीहरि के जगत् को पवित्र बना देने वाली महिमा का वर्णन नहीं किया जाता है उस वाणी को तो परमहंस जन उस अपवित्र स्थान के समान मानते हैं; जहाँ पर कौओं के लिए उच्छिष्ट फेंका जाता है । मानसरोवर के कमल वन में बिहार करने वाले हंसों के समान सत्त्वप्रधान मन में रमण करने वाले यतिजन उसमें कभी भी रमण नहीं करते हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

वासुदेवव्यतिरिक्तान्यविषयज्ञानवदेवान्यविषयं वाक्चातुर्यं च खिलमेवेत्याह- नेति । चित्रपदमपि यद्वचो हरेर्यशो न प्रगृणीत तद्वायसं तीर्थं काकतुल्यानां कामिनां रतिस्थानमुशन्ति मन्यन्ते । कुतः । मानसाः सत्त्वप्रधाने मनसि वर्तमाना हंसा यतयो यत्र न निरमन्ति कर्हिचिदपि नितरां न रमन्ते । उशिक्क्षया उशिक् कमनीयं ब्रह्म क्षयो निवासो येषां ते । यथा प्रसिद्धा हंसा मानसे सरसि चरन्तः कमनीयपद्मखण्डनिवासास्त्यक्तविचित्रान्नादियुक्तेऽप्युच्छिष्टगर्ते काकक्रीडास्थाने न निरमन्ति इति श्लेषः ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् वासुदेव से भिन्न ज्ञान के ही समान अन्य विषयक वाणी की निपुणता भी अपूर्ण ही होती है, इस अर्थ का प्रतिपादन **न यद्वचश्चित्रपदम्० इत्यादि** श्लोक से किया जा रहा है । **चित्रपदमपि० इत्यादि** रसालङ्कार आदि से अलंकृत भी जो वाणी श्रीहरि के यश का वर्णन नहीं करती है, वह वाणी वायस तीर्थ है । अर्थात् कौओं के समान कामी पुरुषों के ही लिए रमणीय मानी जाती है । क्योंकि सत्त्व प्रधान अपने मन में रमण करने वाले

जो परमहंस यतिजन हैं । वे कमनीय ब्रह्म में निवास करते हैं और वे उस वाणी को उसी तरह से रमणीय नहीं मानते है जैसे मान सरोवर में सञ्चरण करने वाले तथा कमनीय कमल वन में निवास करने वाले हंस अपने निवास स्थान को त्यागकर, अनेक प्रकार के उच्छिष्ट अन्नों को डालने के स्थान वाले गढ़े में कभी भी रमण नहीं करते हैं ।

इस श्लोक में परमहंस पक्ष में **मानस** शब्द सत्त्व प्रधान मन का, **हंस** शब्द परमहंस का और **उशिक्क्षय** शब्द कमनीय ब्रह्म रूपी निवास स्थान का बोधक है । और हंस अर्थ में **मानस** शब्द मानसरोवर का, **हंस** शब्द हंस का और **उशिक्क्षयाः** शब्द कमनीय कमलवन रूपी निवास स्थान का बोधक है ।

**उशिक्क्षयाः** पद की व्युत्पत्ति भी अर्थ भेद के कारण दो प्रकार की है । उशिक् अर्थात् कमनीयं ब्रह्म क्षयः निवासो येषां ते, यह परमहंस पक्ष में व्युत्पत्ति है और उशिक् कमनीयं कमलवनं क्षयः निवासो येषां की यह हंस पक्ष में व्युत्पत्ति है । इस तरह इस श्लोक में श्लेषालङ्कार हैं ॥१०॥

**तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।**
**नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥११॥**

**अन्वयः**— अबद्धवती अपि यस्मिन् प्रतिश्लोकम् अनन्तस्य यशोऽङ्कितानि नामानि तद् वाग्विसर्गः जनताघविप्लवः यत् साधवः शृण्वन्ति, गायन्ति, गृणन्ति च॥११॥

**अनुवाद**— इसके विपरीत जो वाणी अप शब्द से युक्त होने के कारण सुन्दर रचना से युक्त भी नहीं है तथा जिसके प्रत्येक श्लोक में श्रीभगवान् के यश को सूचित करने वाले नामों का सन्निवेश होता है, वह वाणी जन समूह के पापों को प्राणष्ट कर देने वाली होती है । क्योंकि साधुजन उसी को सुनते हैं गाते हैं और उसी का उच्चारण भी करते हैं ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

विनापि पदचातुर्यं भगवद्यशःप्रधानं वचः पवित्रमित्याह- तदिति । तद्वाग्विसर्गः स चासौ वाग्विसर्गो वाचः प्रयोगः जनानां समूहो जनता तस्या अघं विप्लावयति नाशयतीति तथा सः । यस्मिन्वाग्विसर्गे अबद्धवत्यप्यपशब्दादियुक्तेऽपि प्रतिश्लोकमनन्तस्य यशसाङ्कितानि नामानि भवन्ति । तत्र हेतुः- यद्यानि नामानि साधवो महान्तो वक्तरि सति शृण्वन्ति । श्रोतरि सति गृणन्ति । अन्यदा तु स्वयमेव गायन्ति कीर्तयन्ति ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

जिसमें रस, भाव तथा अलङ्कारों के सन्निवेश रूपी पद का चातुर्य नहीं रहता है किन्तु जिसमें भगवान् के यश की ही प्रधानता होती है वह वाणी पवित्र होती है, इसी अर्थ का प्रतिपादन **तद्वग्विसर्गः इत्यादि** श्लोक से किया गया है । **'स चाऽसौ वाग्विसर्गः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार **तद्वाग्विसर्गः** शब्द का अर्थ उस वाणी का प्रयोग है । **जनानां समूहो जनता** इस व्युत्पत्ति के अनुसार जनता शब्द जन समूह का बोधक है । उस वाणी का प्रयोग जन समूह के पापों का प्रणाशक होता है । जो वाणी का प्रयोग अपशब्द आदि से युक्त होने पर भी उसके प्रत्येक श्लोक में श्रीभगवान् के यश के बोधक उनके नामों का सन्निवेश रहता है । उसका कारण यह है कि सन्त महापुरुष उस वाणी के प्रयोग को किसी वक्ता के रहने पर सुनते है । तथा श्रोताओं के रहने पर उसी वाणी को सुनाते हैं और किसी के भी नहीं रहने पर वे उसका स्वयं गायन और कीर्तन करते हैं ॥११॥

**नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।**
**कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— अच्युतभाववर्जितम्, निरञ्जनम्, नैष्कर्म्यम् अपि ज्ञानम् अलं न शोभते । शश्वत् अभद्रम्, किंच अकारणम् अपि यत् ईश्वरे न अर्पितं तत् पुनः कुतः शोभेत ।।१२।।

**अनुवाद**— निरञ्जन अर्थात् उपाधियों का निवर्तक होने के कारण निर्मल तथा मोक्ष की प्राप्ति के साधन भूत भी कर्म जो भगवान् की भक्ति की भावना से रहित होता है वह अत्यन्त सुशोभित नहीं होता है । जो साधन तथा सिद्धि दोनों ही दशाओं में अमङ्गलमय होता है, वह काम्यकर्म अथवा जिसको भगवान् को नहीं समर्पित किया गया है, वह निष्कामकर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता ?।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

भक्तिहीनं कर्म शून्यमेवेति कैमुत्यन्यायेन दर्शयति– नैष्कर्म्यमिति । निष्कर्म ब्रह्म तदेकाकारत्वान्निष्कर्मतारूपं नैष्कर्म्यम्। अज्यतेऽनेनत्यञ्जनमुपाधिस्तन्निवर्तकं निरञ्जनम् । एवंभूतमपि ज्ञानमच्युते भावो भक्तिस्तद्वर्जितं चेदलमत्यर्थ न शोभते । सम्यगापरोक्ष्याय न कल्पत इत्यर्थः तदा शश्वत्साधनकाले फलकाले चाभद्रं दुःखरूपं यत्काम्यं कर्म यदप्यकारणमकाम्यं तच्चेति चकारस्यान्वयः। तदपि कर्म ईश्वरे नार्पितं चेत्कुतः पुनः शोभेत बहिर्मुखत्वेन सत्त्वशोधकत्वाभावात् ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

भक्ति की भावना से रहित कर्म शून्यस्वरूप (व्यर्थ) ही होता हे, इस अर्थ का प्रतिपादन कैमूत्य न्याय से **नैष्कर्म्यमि० इत्यादि** श्लोक से बतलाया जा रहा है । ब्रह्म निष्कर्म है; क्योंकि ब्रह्म की प्राप्ति कर्मो की निवृत्ति के द्वारा ही होती है । उस ब्रह्म के समान आकार वाला होने के कारण उस ज्ञान को नैष्कर्म्य कहते हैं । निष्कर्म अर्थात् मोक्ष का साधन होने के कारण उस ज्ञान को नैष्कर्म्य कहते हैं । **निष्कर्मणः मोक्षस्य साधनं नैष्कर्म्यं** यह नैष्कर्म्य शब्द की व्युत्पत्ति है । उपाधि के निवर्तक ज्ञान को निरञ्जन ज्ञान कहते है । निरञ्जन का अर्थ है निर्मल। **अज्यते अनेन** इस व्युत्पत्ति के अनुसार अञ्जन शब्द उपाधि का बोधक है, और उसको दूर करने वाले ज्ञान को निरञ्जन कहते हैं ।

इस प्रकार का भी ज्ञान यदि श्रीभगवान् की भक्ति से रहित है, तो वह ज्ञान पूर्ण रूप से नहीं सुशोभित होता है । अर्थात् उसके द्वारा परम तत्त्व का अच्छी तरह से साक्षात्कार नही हो सकता है । ऐसी स्थिति में जो साधनकाल तथा सिद्धिकाल दोनों ही स्थितियों में दुःख रूप होने के कारण अमङ्गलमय ही है, वह काम्य कर्म, तथा निष्कामकर्म भी यदि ईश्वर को नहीं समर्पित किया गया है तो वह कैसे सुशोभित हो सकता है ? क्योंकि वह बहिर्मुख होने के कारण अन्तःकरण को शुद्ध नहीं बना सकता है ।।१२।।

**अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ।**
**उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम् ।।१३।।**

**अन्वयः**— अथो, महाभाग भवान् अमोधदृक् शुचिश्रवाः, सत्यरतः, धृतव्रतः । तत् अखिलबन्धमुक्तये, उरुक्रमस्य विचेष्टिम् समाधिना अनुस्मर ।।१३।।

**अनुवाद**— अतएव हे महाभाग व्यासजी, आपकी दृष्टि अमोघ हैं, आपका यश पवित्र हैं, आप सदा सत्य भाषण करते हैं तथा आप दृढव्रत हैं । अतएव आप सम्पूर्ण जीवों की मुक्ति के लिए समाधि के द्वारा श्रीभगवान् की लीलाओं का स्मरण कीजिये ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं भक्तिशून्यानि ज्ञानवाक्चातुर्यकर्मकौशलानि व्यर्थान्येव यतः, अतो हरेश्चरितमेवानुवर्णयेत्याह । अथो यतः कारणात् । अमोघा यथार्था दृक् धीर्यस्य, शुचि शुद्धं श्रवो यशो यस्य, सत्ये रतः, धृतानि व्रतानि येन स भवानेवं महागुणस्तावत्।

अत उरुक्रमस्य विविधं चेष्टितं लीलां समाधिना चित्तैकाग्र्येणाखिलस्य बन्धमुक्तये हे महाभाग्यनिधे, त्वमनुस्मर, स्मृत्वा च वर्णयेत्यर्थः । एतच्च वाक्यान्तरमिति मध्यमपुरुषप्रयोगो नानुपपन्नः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से इस अर्थ का प्रतिपादन किया गया है कि भक्ति से रहित ज्ञान वाणी की निपुणता तथा कर्मों की कुशलता ये सब-के-सब व्यर्थ हैं । अतएव आप श्रीभगवान् के चरित का ही वर्णन करें इस अर्थ का प्रतिपादन **अथो० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जा रहा है । अतएव हे महाभाग व्यासजी ! आप अमोघदृष्टि वाले हैं । **अमोधा दृष्टिः यस्य सः** यह अमोघदृक् पद की व्युत्पत्ति है । **आप शुचिश्रवाः** अर्थात् आपका यश पवित्र है। **शुचि शुद्धं, श्रवः यशो यस्य सः** यह **शुचिश्रवाः** शब्द की व्युत्पत्ति है । आप सत्य वक्ता है एवं आप दृढव्रत है । आप अपने व्रतों का पालन करते हैं । इन सभी गुणों से सम्पन्न आप चित्त की एकाग्रता रूपी समाधि के द्वारा श्रीभगवान् की विविध प्रकार की चेष्टाओं का स्मरण सभी जीवों के संसार के बन्धन से मुक्ति के लिए करें और स्मरण करके उसका वर्णन करें ।

यदि कोई यह कहे कि **भवान्** इस कर्तृ पद के अनुसार स्मरतु यह क्रियापद का प्रयोग किया जाना चाहिए फलतः स्मर इस मध्यम पुरुष की क्रिया पद का प्रयोग कैसे ? तो इसका उत्तर है कि इस श्लोक का उत्तरार्द्ध दूसरा वाक्य है अतएव इसमें स्मर पद का प्रयोग अनुपन्न नहीं है ॥१३॥

**ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ।**
**न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— ततः पृथग्दृशः अन्यथा यत् किञ्चन विवक्षतः तत् कृत रूपनामभिः दुःस्थिता मतिः वाताहतनौरिव कुचत्रित् क्वापि आस्पदम् न लभेत ॥१४॥

**अनुवाद**— जो मनुष्य श्रीभगवान् की लीला के अतिरिक्त और कुछ कहने की इच्छा करता हैं वह उस इच्छा के द्वारा ही निर्मित अनेक नामों और रूपों के चक्र में फँस जाता है । उसकी बुद्धि चञ्चल हो जाती है वह कभी भी तथा कही भी उसी तरह से स्थिर नहीं हो पाती है जिस तरह वायु के द्वारा प्रेरित नौका कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती है ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषान्तरमाह– तत इति । तत उरुक्रमचेष्टितात्पृथग्दृशोऽत एवान्यथा प्रकारान्तरेण यत्किंचिदर्थान्तरं विवक्षतस्तया विवक्षया कृतैः स्फुरितै रूपैर्नामभिश्च वक्तव्यत्वेनोपस्थितैर्दुःस्थिताऽनवस्थिता सती मतिः कदाचित्क्वापि विषये आस्पदं स्थानं न लभेत, वातेनाऽऽहता आघूर्णिता नौरिव । तदुक्तं गीतासु— **'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन । बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।'** इत्यादि ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् की लीला से भिन्न बातों का वर्णन करने पर होने वाले दूसरे दोषों का वर्णन **ततोऽन्यथा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जा रहा है । उरुक्रम श्रीभगवान् का नाम है, क्योंकि उन्होंने त्रिविक्रमावतार में अपना डेग बढाकर एक ही डेग में पृथिवी के ऊपर के सभी लोकों को नाप लिया था । **उरवः क्रमाः यस्य सः** यह उरुक्रम शब्द का विग्रह है । उन श्रीभगवान् की लीला से भिन्न बातों का जो दूसरे प्रकार से वर्णन करने की इच्छा करते हैं, उनकी उस इच्छा के ही कारण उत्पन्न अनेक नामों और रूपों से वर्णनीय रूप से उपस्थित विषय के कारण उन लोगों की बुद्धि दुःस्थित अर्थात् चञ्चल हो जाती है । फलतः वह बुद्धि किसी भी विषय में स्थिर नहीं हो पाती

है। यह उसी तरह से कभी भी तथा किसी भी विषय में स्थिर नहीं होती है जैसे वायु के चक्रवात में फँसी हुयी नौका कहीं भी अपने रुकने योग्य स्थान को नहीं प्राप्त कर पाती है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् ने कहा भी हैं— **व्यवसायात्मिकाबुद्धि इत्यादि** अर्थात् जिन लोगों की बुद्धि निश्चयात्मिका होती है उन लोगों के वर्णनीय विषय एक मात्र परमात्मा ही हैं और जिन लोगों की बुद्धि निश्चयात्मिका नहीं है, उन लोगों की वह बुद्धि अनेक विषयिणी होती है तथा उसकी अनन्त शाखायें हो जाती हैं ॥१४॥

**जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यतिक्रमः ।**
**यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥१५॥**

**अन्वयः**— स्वभावरक्तस्य धर्मकृते जुगुप्सितम् अनुशासतः तव अयं महान् व्यतिक्रमः यद्वाक्यतः धर्म इति स्थितः इतरः जनः तस्य निवारणं न मन्यते।

**अनुवाद**— स्वभाव से ही सकाम कर्मों में अनुराग रखने वाले लोगों को आपने महाभारतादि के व्याज से उन कर्मों को करने का जो उपदेश दे दिया है, वह महान् अन्याय है; क्योंकि उन वाक्यों को ही पशु हिंसादि निन्दित कर्मों को धर्म मानने वाले लोग, उन कर्मों का निषेध करने वाले वाक्यों को ठीक नहीं मानते हैं ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं हरियशो विना भारतादिषु कृतं धर्मादिवर्णनमकिंचित्करमित्युक्तम्। प्रत्युत विरुद्धमेव जातमित्याह- जुगुप्सितमिति जुगुप्सितं निन्द्यं काम्यकर्मादि तत्र स्वभावत एव रक्तस्य अनुरागिणः पुरुषस्य धर्मकृते धर्मार्थमनुशासतः प्रेरयतस्तव महानयं व्यतिक्रमोऽन्यायः। कुत इत्यत आह। यस्य वाक्यतोऽयमेव मुख्यो धर्म इति स्थिर इतरः प्राकृतो जनः। तस्य काम्यकर्मादिरन्येन तत्त्वज्ञेन क्रियमाणं निवारणं स्वयमेव वा त्वया क्रियमाणम्। यद्वा **'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'** इत्यादिश्रुत्या क्रियमाणं निवारणं यथार्थमेतदिति न मन्यते, किंतु प्रवृत्तिमार्गानधिकृतविषयं तदिति कल्पयति। तदुक्तं मतान्तरोपन्यासे भट्टैः **'तत्रैवं शक्यते वक्तुं येऽन्धपङ्ग्वादयो नराः। गृहस्थत्वं न शक्ष्यन्ति कर्तुं तेषामयं विधिः।।** नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं वा परिव्राजकतापि वा। तैरवश्यं ग्रहीतव्या तेनादावेतदुच्यते।। इत्यादि ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीहरि के यश से रहित महाभारत आदि में जो धर्मों का वर्णन किया गया है वह केवल व्यर्थ ही नहीं है, अपितु वह विरुद्ध भी है, इस अर्थ का प्रतिपादन, **जुगुप्सितम्** इत्यादि श्लोक से किया गया है। जुगुप्सित का अर्थ है निन्दित, इस प्रकार के जो काम्यकर्म हैं उन कर्मों को करने में संसारी जीव स्वाभाविक रूप से लगा रहता है। उनको आपने धार्मिक रूप से करने की प्रेरणा की है, यह आपका बहुत बड़ा व्यतिक्रम (अन्याय) है।

**कुतः इत्यादि-** इसका कारण यह है कि उसी को मुख्य धर्म मानने वाले संसारी मनुष्यों को उन काम्य कर्म आदि से भिन्न तत्त्वज्ञान के द्वारा यदि कोई दूसरा अथवा स्वयं आप ही निषेध करें तो उस निषेध को वे संसारी जीव उचित नहीं मानते हैं। श्रुति स्वयं कहती है- **न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः** अर्थात् काम्य कर्मों, या सन्तानों, या धन से किसी ने मुक्ति नहीं प्राप्त की अपितु ज्ञानी पुरुष इन सबों के त्याग के ही द्वारा मुक्ति की प्राप्ति किये। किन्तु काम्य कर्मों का निषेध करने वाली इस श्रुति को लोग नहीं मानते हैं।

इन वाक्यों को सुनकर वे कहते हैं कि यह जो काम्य कर्मों का निषेध वाक्य है, वह उन्हीं लोगों के लिए है जो लोग प्रवृत्ति मार्ग के अधिकारी नहीं है। मतान्तर का उपन्यास करते हुए कुमारिल भट्ट ने कहा भी है उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि जो लोग लङ्गड़े तथा अन्धे है जो गाहर्स्थ्य का पालन करने में असमर्थ हैं

उन लोगों के ही लिए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य तथा संन्यास का विधान किया गया है । अतएव उन लोगों को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य इत्यादि का पालन अवश्य करना चाहिए । इसीलिए इसको सर्व प्रथम कहा गया है । इत्यादि ॥१५॥

**विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ।**
**प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभो ॥१६॥**

**अन्वयः**— अनन्तपारस्य अस्य विभोः विचक्षणः निवृत्तितः एव सुखम् वेदितुम् अर्हति हे विभो ! अनात्मनः गुणैः प्रवर्तमानस्य ततः भवान् चेष्टितं दर्शय ॥१६॥

**अनुवाद**— देश और काल की सीमा से रहित इस सर्व व्यापक परमात्मा के निर्विकल्प सुखात्मक स्वरूप को कोई विचक्षण निपुण व्यक्ति ही जान सकता है । जो अनात्मज्ञ देहाभिमानी हैं वे परमात्मा के उस सुखात्मक स्वरूप को नहीं जान सकते हैं क्योंकि वे प्रकृति के गुणों से प्रेरित होते हैं । उन्हीं जीवों के कल्याण के लिए आप भगवान् की लीलाओं का वर्णन करें ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु यद्येवं प्रवृत्तिमार्गो निन्द्यते सर्वक्रियानिवृत्त्यास्य विभोः सुखं निर्विकल्पकसुखात्मकं स्वरूपं वेदितुं ज्ञातुमर्हति न पुनरविचक्षणः प्रवृत्ति स्वभावः । विभुत्वे हेतुः- न अन्तः कालतः, पारं च देशतो यस्य तस्य विभोश्चेष्टितम् । ततः कारणात् हे विभो, अनात्मनो देहाद्यभिमानिनोऽत एवं गुणैः सत्त्वादिभिः प्रवर्तमानस्य जनस्य दर्शय भवानिति । त्वमित्यर्थः । पाठान्तरे हे भवान्निति संबोधनम् ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न उठता है कि यदि इस प्रकार से प्रवृत्ति मार्ग की निन्दा की जाती है और निवृत्ति मार्ग में सभी कर्मों के त्याग से ही परमात्मा से सुख स्वरूप अनुभूति हो सकती है, तो फिर श्रीभगवान् के यश का कीर्तन करने से क्या लाभ है ? तो उसके उत्तर में विचक्षणः इत्यादि श्लोक कहते हैं । कोई निपुण व्यक्ति ही सभी कर्मों के परित्याग से ही परमात्मा के सुखात्मक निर्विकल्पक स्वरूप को जान सकता है । जो विचक्षण नहीं है वह परमात्मा के उस स्वरूप को नहीं जान सकता है क्योंकि वह तो स्वभाव से ही प्रवृत्ति मार्गानुयायी होता है ।

**विभुत्वे० इत्यादि-** परमात्मा के विभुत्व का कारण बतलाते हुए कहा गया है कि वे अनन्तपार हैं, अर्थात् वे देश और काल की सीमा से परे हैं । अर्थात् वे सभी देशों और सभी कालों में व्यापक हैं । उन परमात्मा की लीलाओं का वर्णन उन आत्मज्ञ देहाद्यमिमानी जीवों, जो प्रकृति के गुणों सत्त्व रजस् आदिओं के द्वारा प्रवृत्त होते हैं, उन जीवों के कल्याण के लिए ही आप भगवान् की लीलाओं का वर्णन करें । पाठान्तर होने पर भवन् यह सबोधन होगा ॥१६॥

**त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।**
**यत्र क्व वाऽभद्रमभूदमुष्य किं को वार्थआप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥१७॥**

**अन्वयः**— अथ स्वधर्मं त्यक्त्वा हरेः चरणाम्बुजं भजन् यदि ततः अपक्वः पतेत् अमुष्य यत्र क्व वा अभद्रमभूत्किम्। स्वधर्मतः अभजताम् कः वा अर्थः आप्तः ॥१७॥

**अनुवाद**— अपने वर्णाश्रम का त्याग करके श्रीहरि के चरण कमलों की सेवा करने वाले की भक्ति का परिपाक हुए बिना उससे पहले ही उसकी मृत्यु हो जाय तो भी उसका कही अमङ्गल होता है क्या ? अर्थात् नहीं होता है । किञ्च जो लोग अपने धर्म का पालन करने में लगे रहते है, भगवान् का भजन नहीं करते हैं वे ही लोग क्या प्राप्त कर लेते हैं ?॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

एवं तावत्काम्यधर्मादेरनर्थहेतुत्वात्तं विहाय हरेर्लीलैव वर्णनीयेत्युक्तम् । इदानीं तु नित्यनैमित्तिकस्वधर्मनिष्ठामप्यनादृत्य केवलं हरिभक्तिरेवोपदेष्टव्येत्याशयेनाह- त्यक्त्वेति । ननु स्वधर्मत्यागेन भजन् भक्तिपरिपाकेन यदि कृतार्थो भवेत्तदा न काचिच्चिन्ता, यदि पुनरपक्व एव म्रियेत ततो भ्रश्येद्वा तदा स्वधर्मत्यागनिमित्तोऽनर्थः स्यादित्याशङ्क्याह । ततो भजनात्कथंचित्पतेद्भ्रश्येन्म्रियेत वा यदि तदापि भक्तिरसिकस्य कर्मानधिकारान्नानर्थशङ्का । अङ्गीकृत्याप्याह । वाशब्दः कटाक्षे । यत्र क्व वा नीचयोनावप्यमुष्य भक्तिरसिकस्याभद्रमभूत्किम् । नाभूदेवेत्यर्थः भक्तिवासनासद्भावादिति भावः । अभजद्भिस्तु केवलं स्वधर्मतः को वा अर्थ आप्तः । अभजतामिति षष्ठी तु संबन्धमात्रविवक्षया ।।१७।।

### भावप्रकाशिका

इस तरह से काम्य कर्म आदि चूकि अनर्थ के साधन हैं अतएव उसको छोड़कर श्रीहरि की लीला का ही वर्णन करना चाहिए यह कहा जा चुका है । अब **त्यक्त्वा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा यह बतलाया जा रहा है कि नित्य नैमित्तिक आदि अपने धर्म की निष्ठा का भी परित्याग करके श्रीहरि की भी भक्ति का ही उपदेश करना चाहिए ।

**ननु स्वधर्म त्यागेन० इत्यादि** अब प्रश्न होता है कि अपने धर्म का परित्याग करके जो श्रीहरि की भक्ति करता है, उसकी भक्ति का यदि परिपाक हो जाता है तब तो कोई चिन्ता की बात नहीं है; किन्तु परिपक्व हुए बिना ही उसके बीच में ही वह मर जाता है, अथवा उससे भ्रष्ट हो जाता है तब तो स्वधर्म त्यगजन्य अनर्थ होगा ही इस प्रकार की शङ्का करके कहते हैं यदि वह भक्ति से भ्रष्ट हो जाता है अथवा वह बीच में ही मर जाता है तो भी जो भक्ति रसिक होता है उसका कर्म करने का अधिकार ही नहीं होता है; अतएव उसके अनर्थ की शङ्का नहीं की जा सकती है । **अङ्गीकृत्याप्याह** उसको स्वीकार करके भी कहते हैं **यत्र क्ववा० इत्यादि** नीच योनि में भी उस भक्तिरसिक का अमङ्गल होता है क्या ? अर्थात् नहीं होता है । क्योंकि उस व्यक्ति में भक्ति की वासना का सद्भाव बना रहता है । **अभजद्भिस्तु० इत्यादि-** जो लोग भगवद् भक्ति नहीं करते हैं, उन लोगों को अपने धर्म मात्र के पालन से ही क्या प्राप्त हो जाता है ? **अभजताम्** पद में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति हुयी है ।।१७।।

**तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।**
**तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ।।१८।।**

**अन्वयः—** कोविदः तस्यैव हेतोः प्रयतेत यत् उपरि अधः भ्रमताम् न लभ्येत । तत् अन्यतः सुखं तु गम्भीरंहसा कालेन सर्वत्र लभ्यते ।।१८।।

**अनुवाद—** विज्ञ पुरुष को चाहिए वह उसी सुख की प्राप्ति के लिए प्रयास करे जो सुख ब्रह्मलोक से लेकर स्थावर पर्यन्त की योनियों में भ्रमण करने वाले जीवों को नहीं प्राप्त होता है । उससे भिन्न सुख तो गम्भीर वेग वाले काल के द्वारा सर्वत्र उसी तरह अपने आप मिलता रहता है जिस तरह दुःख की प्राप्ति बिना प्रयास के ही होती रहती है ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

ननु स्वधर्ममात्रादपि **'कर्मणा पितृलोकः'** इति श्रुतेः पितृलोकप्राप्तिफलमस्त्येव तत्राह- तस्यैवेति । तस्यैव हेतोस्तदर्थं यत्नं कुर्यात् । यत् उपरि ब्रह्मपर्यन्तमधः स्थावरपर्यन्तं च भ्रमद्भिर्जीवैर्न लभ्यते । षष्ठी तु पूर्ववत् । तत्तु विषयसुखमन्यत एव प्राचीनकर्मणा सर्वत्र नरकादावपि लभ्यते दुःखवत् । यथा दुःखं प्रयत्नं विनापि लभ्यते तद्वत् । तदुक्तम् **'अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम् । सुखान्यपि तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ।'** इति ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि वर्णाश्रम धर्मों के भी पालन से **कर्मणा पितृलोकः** श्रुति के अनुसार पितृलोक की प्राप्ति होती ही है तो इसके उत्तर में **तस्यैव हेतोः** इत्यादि श्लोक को पढ़ते हैं। अर्थात् उसी सुख की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए जो ब्रह्मलोक से लेकर नीचे के स्थावर पर्यन्त में भ्रमण करने वाले जीवों को न प्राप्त हो सके। यहाँ भी सम्बन्ध सामान्य की ही विवक्षा में षष्ठी विभक्ति है। विषय जन्य सुख की प्राप्ति तो पूर्व कर्मों के अनुसार नरक आदि में भी उसी तरह प्राप्त होते हैं जिस तरह दुःखों की प्राप्ति बिना प्रयास के ही होती रहती है। कहा भी गया है— जिस तरह से शरीरधारियों को बिना चाहे भी दुःख की प्राप्ति होती रहती है उसी तरह सुखों की भी प्राप्ति होती रहती है। इस लोक में दैन्य की अधिकता होती हैं ॥१८॥

**न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम्।**
**स्मरन्मुकुन्दांघ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥१९॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग, मुकुन्दसेवीजनः जातु कथंचन अन्यवद् संसृतिं न व्रजेत् मुकुन्दांधयुपगूहनं पुनः स्मरन्। विहातुं न इछेत् यतः रसग्रहः ॥१९॥

**अनुवाद**— हे व्यासजी! श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करने वाला मनुष्य यदि किसी प्रकार निन्दित योनि में भी चला जाता है तो वह केवल कर्मनिष्ठ के समान जन्ममृत्युमय संसार चक्र में नहीं पड़ता है क्योंकि फिर श्रीभगवान् के चरणों का आलिङ्गन स्मरण करके वह उसे छोड़ना नहीं चाहता है क्योंकि उसे श्रीभगवान् के चरणों का रस प्राप्त हो चुका रहता है ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

यदुक्तं यत्र क्व वाऽभद्रमभूदिति तदुपपादयति- न वा इति। मुकुन्दसेवी जनो जातु कदाचित्कथंचन कुयोनिगतोऽपि संसृतिं नाव्रजेन्नाविशेत्। अङ्गरहो। अन्यवत्केवलकर्मनिष्ठवदिति वैधर्म्ये दृष्टान्तः। कुत इत्यत आह। मुकुन्दाङ्घ्रेरुपगूहनमालिङ्गनं पुनः स्मरन्विहातुं नेच्छेत्। यतोऽयं जनो रसग्रहः रसेन रसनीयेन गृह्यते वशीक्रियते। यद्वा रसे रसनीये ग्रह आग्रहो यस्य। तदुक्तं भगवता- **यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन। पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः**॥' इति ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

सत्रहवें श्लोक में **'यत्र क्ववा भद्रमभूत्'** अर्थात् भगवद् भक्त का कहीं भी अमङ्गल होता है क्या? यह जो कहा गया है उसी का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं। **न वै जनः इत्यादि** श्रीभगवान् भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करते हैं; अतएव उनका एक नाम मुकुन्द है। **मुं च कुं च ददातीति** यह मुकुन्द शब्द की व्युत्पत्ति है। भगवान् मुकुन्द की सेवा करने वाला मनुष्य यदि किसी तरह कुयोनि में भी चला जाता है तो भी वह केवल कर्मनिष्ठ के समान जन्ममरणमय संसारचक्र में नहीं पड़ता है। अन्यवत् पद के द्वारा वैधर्म्य में दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है।

**कुत इत्यादि** यदि कहें कि ऐसा क्यों होता है तो इसके उत्तर में कहते हैं क्योंकि वह उस योनि में भी जाकर श्रीभगवान् के चरण कमलों के आलिङ्गन का स्मरण करता है और उसको छोड़ना नहीं चाहता है ऐसा इसलिए होता है कि उसके पहले श्रीभगवान् के चरणों की सेवा जन्य आनन्द का अनुभव उसे हो चुका है। श्रीभगवान् के अनवद्य चरणों के वश में वह हो चुका रहता है। अथवा उसका श्रीभगवान् के सेवनीय चरणों में आग्रह बना रहता है।

**तदुक्तम्० इत्यादि** भगवद् गीता में भगवान् ने कहा भी है वह पुनः मुक्ति की प्राप्ति करने का प्रयास करता है। अपने पूर्व जन्म के अभ्यास के कारण वह विवश होकर भक्ति के मार्ग में आ जाता है ॥१९॥

**इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसंभवाः ।**
**तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥२०॥**

**अन्वयः**— यतः जगत्स्थाननिरोधसंभवाः । इदं विश्वं भगवान् इव इतरः च तद्धि भवान् स्वयं वेद । तथापि भवतः वै प्रादेशमात्रं प्रदर्शितः ॥२०॥

**अनुवाद**— जिन भगवान् से इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं वे भगवान् ही यह विश्व हैं, फिर भी वे इस जगत् से भिन्न हैं, इस बात को आप स्वयं जानते हैं, मैंने तो आपको केवल दिशा निर्देश मात्र किया है ॥२०॥

## भावार्थ दीपिका

तदेवं भगवल्लीलां प्राधान्येन वर्णयेत्युक्तं, तत्र को भगवान् काश्च तस्य लीला इत्यपेक्षायामाह । इदं विश्वं भगवानेव। स त्वस्माद्विश्वस्मादितरः । ईश्वरात्प्रपञ्चो न पृथगीश्वरस्तु प्रपञ्चात्पृथगित्यर्थः । तत्र हेतुः- यतो भगवतो हेतोर्जगतः स्थित्यादयो भवन्ति । अनेनैव लीला अपि दर्शिताः । यद्वा इदं विश्वं भगवान् । इतर इव यः स जीवोऽपि भगवान् । चेतनाचेतनः प्रपञ्चस्तद्व्यतिरेकेण नास्ति स एवैकस्तत्त्वमित्यर्थ; । हिशब्देन **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** इत्यादिप्रमाणं सूचितम् । तद्धि स्वयमेव भवान्वेद । प्रादेशमात्रमेकदेशमात्रं **'आचार्यवान्पुरुषो वेद'** इत्यादिश्रुत्यर्थसंपादनाय प्रदर्शितम् ॥२०॥

## भाव प्रकाशिका

इस तरह से नारदजी ने व्यासजी को बतलाया कि आप श्रीभगवान् की लीला का ही प्रधान रूप से वर्णन करें । अब प्रश्न होता है कि भगवान् कौन हैं ? और उनकी लीला क्या है ? इसके उत्तर में **इदं हि विश्वम् इत्यादि** श्लोक कहा गया है । यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् ही हैं । मूल के इव शब्द का ही अर्थ **भगवानेव** का एव है । वे भगवान् तो इस सम्पूर्ण जगत् से भिन्न ही हैं । यह प्रपञ्च ईश्वर से अलग नहीं है किन्तु ईश्वर प्रपञ्च से भिन्न हैं ।

**तत्र हेतुः इत्यादि** ईश्वर के जगत् से भिन्न होने के कारण को बतलाते हुए कहा गया है क्योंकि श्रीभगवान् ही जगत् की सृष्टि पालन और संहार करते हैं । इसी कथन के द्वारा श्रीभगवान् की लीला भी बतला दी गयी है। अर्थात् जगत् की सृष्टि, पालन और उसका संहार ये सब श्रीभगवान् की लीलायें है । **यद्वा० इत्यादि** अथवा इसका यह भी अर्थ है कि यह विश्व भगवन् ही है और उनसे भिन्न यह जो जीव है, वह भी भगवान् है । यह चेतनाचेतनात्मक प्रपञ्च श्रीभगवान् से पृथक् नहीं है । एक मात्र तत्त्व श्रीभगवान् ही है । **तद्धि के हि** शब्द के द्वारा इस कथन में **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है । इस प्रमाण को सूचित किया गया है ।

**तद्धि इत्यादि-** इन सारी बात को आप स्वयं जानते हैं मैंने तो उसके देश को बतलाकर दिशा निर्देश मात्र किया है । उसका एक मात्र उद्देश्य है कि **आचार्यवान् पुरुषो वेद** इस श्रुति के अर्थ की पूर्ति होती है । श्रुति का अर्थ है कि आचार्य के माध्यम से ही पुरुष शास्त्रीय तत्त्व को जान पाता है ॥२०॥

**त्वमात्मनात्मानमवेह्यमोघदृक् परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ।**
**अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— हे अमोघदृक्त्वम् आत्मना आत्मानं परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् अजम् जगतः शिवाय प्रजातम् अवेहि तत् महानुभावाभ्युदयम् अधिगण्यताम् ॥२१॥

**अनुवाद**— हे अमोघ दृष्टि सम्पन्न व्यास जी ! आप अपने को परम पुरुष परमात्मा की कला, अजन्मा, तथा जगत् का कल्याण करने के लिए उत्पन्न जानें । अतएव महान् प्रभाव सम्पन्न श्रीभगवान् की अधिकाधिक लीलाओं का आप वर्णन करें ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

न च तवाचार्यापेक्षा ईश्वरावतारत्वादित्याह- त्वमिति । हे अमोघदृक्, त्वमात्मना स्वयमात्मानमजमेव सन्तं जगतः शिवाय प्रजातमवेहि । कुतः परस्य पुंसः कलामंशभूतम् । तत्तस्मान्महानुभावस्य हरे रभ्युदयः पराक्रमः अधि अधिकं गण्यतां निरूप्यताम् ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

**न च० इत्यादि** व्यासजी ! आपको आचार्य की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप तो स्वयं ईश्वर के अवतार हैं । इस बात को नारदजी ने **त्वम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा है । हे अमोघ दृष्टि सम्पन्न । आप अपने को स्वयम् ही अजन्मा तथा जगत् का कल्याण करने के लिए आविर्भूत जानें । क्योंकि आप परम पुरुष परमात्मा के अंश हैं । अतएव आप महान् प्रभाव सम्पन्न श्रीहरि के पराक्रमों का आधिकाधिक रूप से निरूपण करें ।।२१।।

**इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।**
**अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ।।२२।।**

**अन्वयः**— कविभिः पुंसः तपसः, श्रुतस्य वास्विष्टस्य, सूक्तस्य यज्ञ दतयोः इदमेव अविच्युतः अर्थः निरूपितः यत् उत्तमश्लोकगुणानुकीर्तनम् ।।२२।।

**अनुवाद**— विद्वानों ने इस बात का प्रतिपादन किया है कि मनुष्य की तपस्या वेदाध्ययन, अच्छी तरह से किये गये यज्ञ, तथा स्वाध्याय ज्ञान और दान का यही नित्य फल है कि श्रीभगवान् की लीलाओं तथा गुणों का वर्णन किया जाय ।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

अनेनैव तपआदि सर्वं तव सफलं स्यादित्याह- इदं हीति । श्रुतादयो भावे निष्ठाः । इदमेव हि तपःश्रवणादेरविच्युतो नित्योऽर्थः फलम् । किं तत् । उत्तमश्लोकस्य गुणानुवर्णनमिति यत् ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

ऐसा ही करने से आपके तप आदि सबके सब सफल हो सकते हैं इस बात को नारदजी ने **इदं हि इत्यादि** श्लोक से कहा है । **श्रुत इत्यादि** में भाव के अर्थ निष्ठा **'क्त'** प्रत्यय हुआ है । वेदाध्ययन तथा तपस्या आदि का नित्य फल यही है कि उत्तमश्लोक श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन किया जाय ।।२२।।

**अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ।**
**निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ।।२३।।**

**अन्वयः**— मुने अहं तु पुरा अतीतभवे वेदवादिनाम् कस्याश्चन दास्याः अभवम् । बालक एव प्रावृषि निर्विविक्षताम् योगिनां शुश्रूषणे निरूपितः ।।२३।।

**अनुवाद**— हे मुने ! मैं तो पूर्व कल्प में पूर्व जन्म में वेदवादी ब्राह्मणों की किसी दासी का पुत्र था । बाल्यावस्था में विद्यमान भी मैं वर्षा ऋतु में एक स्थान पर निवास करने वाले उन योगियों की सेवा में नियुक्त कर दिया गया ।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गतो हरिकथाश्रवणादिफलं स्ववृत्तान्तेन प्रपञ्चयति- अहमिति । अहं पुरा पूर्वकल्पेऽतीतभवे पूर्वजन्मनि वेदवादिनां दास्याः सकाशादभवं जातोऽस्मि । निरूपितो नियुक्तः । क्व । योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि वर्षोपलक्षिते चातुर्मास्ये । निर्विविक्षतां निवेशमेकत्र वासं कर्तुमिच्छताम् ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

सत्सङ्ग के द्वारा श्रीहरि की कथा सुनने को मिलना रूपी फल नारदजी अपने वृत्तान्त के द्वारा बतला रहे हैं। **अहम्० इत्यादि** मैं पूर्व कल्प में पूर्वजन्म में वेदवादी (वैदिक ब्राह्मणों) की किसी दासी के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ था। **निरूपितः** पद का अर्थ नियुक्त कर दिया गया है। अर्थात् बाल्यावस्था में ही वर्षा ऋतु से प्रारम्भ होने वाले चातुर्मास्य में एकत्र निवास करने के इच्छुक उन योगियों की सेवा में लगा दिया गया ॥२३॥

**ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ।**
**चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥२४॥**

**अन्वयः**— अपेताखिलचापले, दान्ते, अधृतक्रीडनके, अनुवर्तिनि, शुश्रूषमाणे अल्पभाषिणि मयि अर्भके, यद्यपि तुल्यदर्शनाः तथापि कृपां चक्रुः ॥२४॥

**अनुवाद**— बालसुलभ सभी प्रकार की चपलताओं से रहित, जितेन्द्रिय, खिलौनों से नहीं खेलने वाले, आज्ञा का पालन करने वाले, सेवा करने वाले तथा अल्प बोलने वाले मुझ बालक पर यद्यपि वे समदर्शी थे फिर भी कृपा किए ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

अपेतानि गतान्यखिलानि चापलानि यस्मात्तस्मिन्। दान्ते नियतेन्द्रिये। अधृतक्रीडनके त्यक्तक्रीडासाधने। अनुवर्तिन्यनुकूले ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

सभी प्रकार की चपलताओं से रहित यह **अपेतखिलचापले** पद का अर्थ है। **दान्ते** शब्द जितेन्द्रिय का बोधक है। अर्थात् जितेन्द्रिय मुझ पर। अधृतकीऽनके। अर्थात् खिलौनों से नहीं खेलने वाले। अनुवर्तिनि अर्थात् अनुकूल रहने वाले। ये सभी बालक नारदजी की विशेषताएँ हैं। अर्थात् नारदजी बचपन में इन सभी गुणों से सम्पन्न थे ॥२४॥

**उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्विषः ।**
**एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥२५॥**

**अन्वयः**— द्विजैः अनुमोदितः उच्छिष्टलेपान् सकृत् भुञ्जेस्म एवं अपास्तकिल्विषः एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसः तद्धर्मे एव आत्मरुचिः प्रजायते स्म ॥२५॥

**अनुवाद**— उन ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्त करके मैं उनके उच्छिष्ट पात्रों में लगे हुए अन्न को एक बार खा लेता था उससे मेरे सारे पाप विनष्ट हो गये। इस तरह उनकी सेवा करने वाले मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया और मेरी रुचि परमात्मभजन रूपी उनके ही धर्म में हो गयी ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

उच्छिष्टस्य लेपान्पात्रलग्रांस्तैर्द्विजैरनुज्ञातः सन् भुञ्जे स्म। तेन भोजनेनापास्तकिल्विषो जातोऽस्मि। तेषां धर्मे परमेश्वरभजने एवात्मनो मनसो रुचिः प्रजायते स्म इत्यनुषङ्गः ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

उन ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर उनके उच्छिष्ट पात्रों में जो अन्न लगा रहता था, उसको मैं एक बार खा लेता था। उस अन्न के खाने से मेरे सारे पाप दूर हो गये और मेरी रुचि ब्राह्मणों के भजन रूपी धर्म में हो गयी ॥२५॥

**तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ।**
**ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः ॥२६॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग तत्र अन्वहम् कृष्णकथाः प्रगायताम् अनुग्रहेण मनोहराः ताः श्रद्धया अनुपदं विशृण्वतः मम प्रियश्रवसि रुचिः अभवत् ॥२६॥

**अनुवाद**— हे व्यासजी ! वहाँ प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं का गायन करने वाले उन महात्माओं की कृपा से मनोहर उन भगवल्लीलाओं के प्रत्येक पदों को श्रद्धा पूर्वक ध्यान पूर्वक सुनने वाले मेरी प्रियकीर्ति श्रीभगवान् में स्वाभविक रूप से रुचि हो गयी ॥२६॥

**भावार्थदीपिका**

अशृणवं श्रुतवानस्मि । मे श्रद्धया ममैव स्वतःसिद्धया नत्वन्येन बलाज्जनितया । अतो ममेत्यस्यापौनरुक्त्यम् । अनुपदं प्रतिपदम् । प्रियं श्रवो यशो यस्य तस्मिन् ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

मूल के **अशृणवम्** पद का अर्थ मैं सुनता था **मे श्रद्धया** का अर्थ है मेरी स्वाभाविक श्रद्धा के कारण जो किसी दूसरे के द्वारा प्रेरित होकर नहीं । अतएव यह नहीं कहा जा सकता है कि **'मे'** तथा **'मम'** इन दोनों पदों का प्रयोग होने से इस श्लोक में पुनरुक्त दोष है । **अनुपदम्** का अर्थ है प्रत्येक पद को प्रियंश्रवो यशः यस्य तस्मिन् यह **प्रियश्रवसि** पद का विग्रह है अर्थात् जिन श्रीभगवान् को यश प्रिय है उन श्रीभगवान् में ॥२६॥

**तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ।**
**ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥२७॥**

**अन्वयः**— हे महामुने ! तदा तस्मिन् लब्ध रुचेः प्रियश्रवसि मे अस्खलिा मतिः अभवत् । यया अहम् एतत् सदसत् ब्रह्मणि मयि स्वमायया कल्पितं पश्ये ॥२७॥

**अनुवाद**— हे महामुने व्यासजी ! उस समय मेरी रुचि श्रीभगवान् में हो गयी थी । उसके फल स्वरूप मेरी बुद्धि श्रीभगवान् में सुदृढ हो गयी । उसके कारण इस जगत् प्रपञ्च से भिन्न ब्रह्मस्वरूप मुझमें यह स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर मेरी ही माया (अविद्या) के द्वारा अपने में कल्पित रूप से देखने लग गया ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रियं श्रवो यस्य तस्मिन्भगवति लब्धरुचेर्ममास्खलिताऽप्रतिहता मतिरभवदित्यनुषङ्गः । यया मत्या परे प्रपञ्चातीते ब्रह्मरूपे मयि सदसत्स्थूलं सूक्ष्मं चैतच्छरीरं स्वमायया स्वाविद्यया कल्पितं नतु वस्तुतोऽस्तीति तत्क्षणमेव पश्यमि ॥२७॥

**भावप्रकाशिका**

जिन श्रीभगवान् को लीलाएँ प्रिय हैं, उनमें मेरी अस्खलिता अप्रतिहत (सुदृढ) बुद्धि हो गयी । उस बुद्धि के कारण मैं इस प्रपञ्च से ऊपर उठ गया । इस प्रकार के ब्रह्म स्वरूप मुझमें ही यह स्थूल और सूक्ष्म शरीर कल्पित है इस प्रकार मैंने उसी क्षण जान लिया । कल्पित है यह कहकर बतलाया गया है कि ये दोनों प्रकार के शरीर मिथ्या हैं वास्तविक नहीं हैं ॥२७॥

**इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ।**
**संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्तात्मरजस्तमोपहा ॥२८॥**

**अन्वयः**— इत्थं शरत्प्रावृषिकौ ऋतू अनुसवम् महात्मभिः मुनिभिः संकीर्त्यमानम् अमलं यशः शृण्वतः मे आत्मरजस्तमोऽपहा भक्तिः प्रवृत्ता ॥२८॥

**अनुवाद**— इस तरह वर्षा तथा शरत् इन दोनों ऋतुओं में तीनों कालों में महात्मा मुनियों के द्वारा कीर्तन किए जाने वाले श्रीहरि के निर्मल यश को सुनने के कारण मुझमे रजोगुण तथा तमोगुण को विनष्ट करने वाली भक्ति उत्पन्न हो गयीं ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

एवं शुद्धे त्वंपदार्थे ज्ञाते देहादिकृतविक्षेपनिवृत्तेस्तत्कारणभूतरजस्तमोनिवर्तिका दृढा भक्तिर्जातेत्याह- इत्थमिति । हरेर्यशः अनुसवं त्रिकालम् ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह **तत्त्वमसि वाक्यगत त्वं** पदार्थ का ज्ञान हो जाने पर देहादि के द्वारा होने वाले विक्षेपों (विघ्नों) का नाश हो गया । उसके कारण रजोगुण और तमोगुण को विनष्ट करने वाली भक्ति का मुझमें उदय हो गया ॥२८॥

**तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः । श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ॥२९॥**
**ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् । अन्ववोचन्गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥३०॥**

**अन्वयः**— एवम् अनुरक्तस्य, प्रश्रितस्य, हतैनसः श्रद्दधानस्य, दान्तस्य, अनुचरस्य च बालस्य मे दीनवत्सलाः ते गमिष्यन्तः कृपया तत् गुह्यतमं ज्ञानम् अन्ववोचन् यत् साक्षात् भगवता उदितम् ॥२९-३०॥

**अनुवाद**— इस तरह उन मुनियों से प्रेम करने वाले, विनयी, निष्पाप, श्रद्धा सम्पन्न, जितेन्द्रिय तथा उनकी सेवा करने वाले मुझको जाने की इच्छा वाले तथा दीनों पर वात्सल्य प्रदर्शित करने वाले उन मुनियों ने मुझ बालक को उस रहस्यमय ज्ञान का उपदेश दे दिया जिस ज्ञान को स्वयम् श्रीभगवान् ने कहा है ॥२९-३०॥

### भावार्थ दीपिका

तस्येति । तस्य ज्ञानशुद्धत्वंपदार्थस्य दृढभक्तिमतो मे । प्रश्रितस्य विनीतस्य ॥२९॥ गुह्यतममिति । साधनभूतधर्मतत्त्वज्ञानं गुह्यम् । तत्साध्यं विविक्तात्मज्ञानं गुह्यतरम् । तत्प्राप्येश्वरज्ञानं गुह्यतमम् । भगवतोदितं भागवतं शास्त्रमन्ववोचन्नुपदिष्टवन्तः ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

चूकि ज्ञान के द्वारा मेरा त्वं पदार्थ अर्थात् अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य शुद्ध हो गया था । अतएव सुदृढ भक्ति सम्पन्न तथा विनीत मुझको मुनियों ने गुह्यतम ज्ञान का उपदेश दे दिया । साधनभूत धर्मतत्त्व का ज्ञान गुह्य है । उसके द्वारा साध्यभूत ऐकान्तिक आत्मज्ञान गुह्यतर है एवं उस ज्ञान के द्वारा प्राप्य ईश्वर का ज्ञान गुह्यतम है। भगवतोदितम् का अर्थ है भागवत शास्त्र का उपदेश कर दिया ॥२९-३०॥

**येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः । मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— येन एव अहं वेधसः भगवतो वासुदेवस्य मायानुभावं अविदम् येन तत् पदं गच्छन्ति ॥३१॥

**अनुवाद**— उसी ज्ञान से मैंने जगत् के कर्ता भगवान् श्रीकृष्ण की माया के प्रभाव को जान सका उसी ज्ञान से लोग परम पद को प्राप्त करते हैं ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

तदेव ज्ञानं पूर्वोक्तत्वंपदार्थज्ञानाद्विवेकेन दर्शयति- येनैवेति । अविदं ज्ञातवानहम् ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त त्वम् पदार्थ के ज्ञान जन्य विवेक के द्वारा ही मैं **अविदम्** श्रीभगवान् की माया के प्रभाव को जान सका ॥३१॥

**एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् । यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् यत् ईश्वरे ब्रह्मणि भगवति भावितम् कर्म एतत् तापत्रयचिकित्सितम् ।।३२।।

**अनुवाद**— हे व्यासजी सम्पूर्ण जगत् के नियामक सम्पूर्ण जगत् में व्यापक श्रीभगवान् को अपने समस्त कर्मो को समर्पित कर देना ही संसार के आध्यात्मिक आदि तीनों तापों के दूर करने की दवा है ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

तत्साधनधर्मरहस्यं च सूचितमित्याह- एतदिति । तापत्रयस्याध्यात्मिकादेश्चिकित्सितं भेषजं निवर्तकम् । सत्त्वशोधकमिति यावत् । किं तत् । भगवति भावितं समर्पितं यत्कर्म तत् । कथंभूते भगवति । ईश्वरे सर्वनियन्तरि । एवमपि च ब्रह्मण्यप्रच्युतपूर्णरूपे ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

**एतत्० इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा उसके साधन भूत धर्म के रहस्य को सूचित किया गया है । संसार में प्राप्त होने वाले आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों प्रकार के संतापों को दूर करने वाली वही औषधि है अर्थात् वही अन्तःकरण को शुद्ध करने वाला है । अब प्रश्न उठता है कि वह क्या है तो इसका उत्तर है अपने समस्त कर्मो को श्रीभगवान् को समर्पित कर देना ही वह साधन है । वे ही श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर अर्थात् नियामक हैं तथा ब्रह्म हैं । अर्थात् पूर्ण ब्रह्म हैं उनके स्वरूप में कभी भी कोई भी विकार नहीं आता है ।।३२।।

**आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत । तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— हे सुव्रत येन भूतानां यश्च आमये जायन्ते तदेव हि चिकित्सितम् आमयं द्रव्यं न पुनाति किम् ।।३३।।

**अनुवाद**— हे सुन्दर व्रत वाले व्यासजी जिस पदार्थ के सेवन से मनुष्यों को रोग उत्पन्न हो जाता है उसी द्रव्य का यदि चिकित्सा विधि से सेवन किया जाय तो वह उस रोग को दूर नहीं कर देता है क्या ?।।३३।।

### भावार्थ दीपिका

ननु संसारहेतोः कर्मणः कथं तापत्रयनिवर्तकत्वम् । सामग्रीभेदेन घटत इति सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम् । य आमयो रोगो येन घृतादिना जायते तदेव केवलमामयकारणभूतं द्रव्यं तमामयं न पुनाति । न निवर्तयतीत्यर्थः । किंतु चिकित्सितं द्रव्यान्तरैर्भावितं सत्पुनात्येव यथा ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि कर्म तो संसार के बन्धन का साधन है वह संसार के सन्तापत्रय का विनाशक कैसे हो सकता है ? तो इसका उत्तर है कि सामग्रीभेद के कारण ऐसा होता है । इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक दो श्लोकों के द्वारा कहा गया है । जिन घृत आदि का सेवन करने से जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे अकेले घृत आदि का सेवन रोग का कारण होते हैं वे उस रोग को दूर नहीं कर सकते हैं । किन्तु वह जब चिकित्सा विधि से दूसरे द्रव्यों से मिश्रित कर दिया जाता है तो वही उस रोग को जैसे दूर कर देता है, उसी तरह संसार का कारणभूत कर्म श्रीभगवान् को समर्पित कर दिए जाने पर संसार के बन्धन को दूर कर देने का काम करता है ।।३३।।

**एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः । त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥३४॥**

**अन्वयः**— एवं नृणां सर्वे क्रियायोगाः संसृति हेतवः ते एव परे कल्पिता; आत्मविनाशाय कल्पन्ते ।।३४।।

**अनुवाद**— ऐसे तो मनुष्यों के द्वारा किए जाने वाले सभी कर्म संसार के बन्धन के कारण बनते हैं । किन्तु परमात्मा को समर्पित कर दिए जाने पर वे ही कर्मों की निवृत्ति के साधन बन जाते हैं ।

### भावार्थ दीपिका

तथा आत्मविनाशाय कर्मनिवृत्तये कल्पन्ते समर्था भवन्ति । परे ईश्वरे कल्पिता अर्पिताः सन्तः । अत्र च प्रथमं महत्सेवा, ततश्च तत्कृपा, ततस्तद्धर्मश्रद्धा, ततो भगवत्कथाश्रवणं, ततो भगवति रतिः, तया च देहद्वयविवेकात्मज्ञानं, ततो दृढा भक्तिः, ततो भगवत्तत्त्वज्ञानं, ततस्तत्कृपया सर्वज्ञत्वादिभगवद्गुणाविर्भाव इति क्रमो दर्शितः ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

ईश्वर को समर्पित कर दिए जाने वाले कर्म ही कर्मों की निवृत्ति के साधन बन जाते हैं । यहाँ पर यह क्रम बतलाया गया है कि पहले महापुरुषों की सेवा होती है, उसके पश्चात् महापुरुषों की कृपा प्राप्त होती है । उसके पश्चात् महापुरुषों के कर्मों में श्रद्धा होती है, उसके पश्चात् भगवत् कथा सुनने को मिलती है, उसके पश्चात् श्रीभगवान् में प्रेम उत्पन्न हो जाता है, इस प्रेम के द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के देहों के भेदज्ञानजन्य आत्मज्ञान होता है उसके पश्चात् भक्ति सुदृढ हो जाती है । उसके पश्चात् भगवत् तत्त्व का ज्ञान होता है । उसके पश्चात् श्रीभगवान् की कृपा से भगवद् गुणों का आविर्भाव होता है ।।३४।।

**यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् । ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ।।३५।।**

**अन्वयः**— अत्र यत् भगवत् परितोषणम् कर्म क्रियते तदधीनं यत् ज्ञानं तत् भक्तियोगसमन्वितम् भवति ।।३५।।

**अनुवाद**— इस लोक में श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाले जिन कर्मों को किया जाता है उसके द्वारा जिस ज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह भक्तियोग से युक्त होता है ।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

ननु च ज्ञानेनाज्ञानप्राप्तकर्मनाशस्तच्च ज्ञानं भक्तियोगाद्भवति कथं कर्मणा कर्मनाशः स्यात्तत्राह- यदत्रेति ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि ज्ञान के द्वारा अज्ञान जन्य कर्म का नाश होता है । वह ज्ञान भक्ति योग के द्वारा उत्पन्न होता , किन्तु कर्मों के द्वारा कर्म का नाश कैसे होता है ? इसके उत्तर में **यदत्र० इत्यादि** श्लोक कहा गया है। अर्थात् इस कर्म भूमि में कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित कर दिए जाने के कारण श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाला जो कर्म पुरुषों के द्वारा किया जाता है, जो भक्ति योग से युक्त ज्ञान होता है वह उस कर्म के अधीन ही होता है । श्रीभगवान् को अर्पित किए गये कर्म के द्वारा भगवद्भक्ति युक्त ज्ञान उत्पन्न होता है । और कर्म निवर्तक भक्ति के साथ ज्ञान के उत्पादन द्वारा कर्मों का नाश हो जाता है ।।३५।।

**कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् । गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ।।३६।।**

**अन्वयः**— यत्र असकृत् भगवत् शिक्षया कर्माणि कुर्वाणा कृष्णस्य गुण नामानि, गृणन्ति कृष्णंच अनुस्मरन्ति ।।३६।।

**अनुवाद**— जब मनुष्य बार-बार श्रीभगवान् सम्बन्धी शिक्षा के द्वारा कर्मों को करते हैं तो वे श्रीभगवान् के गुणों के सूचक नामों का उच्चारण करते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण भी करते हैं ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

भगवदर्पणेन क्रियमाणं कर्म भक्तियोगं जनयतीति सदाचारेण दर्शयति । यत्र यदा भगवतः शिक्षया कर्माणि भवन्ति श्रीकृष्णस्य गुणनामानि गृणन्त्यनुस्मरन्ति च कृष्णमित्यर्थः । इयं च भगवच्छिया '**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्** ।।' इति ।।३६।।

### भावप्रकाशिका

श्रीभगवान् को अर्पण करने के लिए जो कर्म किया जाता है वह कर्म भक्तियोग को उत्पन्न करता है इस अर्थ का प्रतिपादन सदाचार के द्वारा बतलाते हैं । जब मनुष्य श्रीभगवान् की शिक्षा के द्वारा कर्मों को करते हैं तब

वे भगवान् के गुणों के सूचक नामों का उच्चारण करते हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण भी करते हैं भगवान् की शिक्षा यह है कि—

**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।** (भगवद् गीता)

अर्थात् हे अर्जुन ! तुम जो करते हो, जो भोजन करते हो, जो होम करते हो तथा जो दान करते हो वह सबकुछ मुझको अर्पित कर दो ॥३६॥

**नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥३७॥**
**इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम्। यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान्॥३८॥**

**अन्वयः**— भगवते वासुदेवाय तुभ्यं नमः, धीमहि । प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय सङ्कर्ष्णाय च नमः इति मूर्त्यभिधानेन, अमूर्तिकम् मन्त्रमूर्तिं यज्ञपुरुषं यः यजते स सम्यग् दर्शनः ॥३७-३८॥

**अनुवाद**— भगवान् वासुदेव को नमस्कार है, हम आपको नमस्कार करते हैं, हम आपका ध्यान करते है। सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध को भी नमस्कार है । इस तरह से जो पुरुष मूर्तिवाचक मन्त्र के द्वारा मूर्ति व्यतिरिक्त मूर्तिशून्य यज्ञपुरुष भगवान् का पूजन करता है उसी का ज्ञान पूर्ण और यथार्थ है ॥३७-३८॥

### भावार्थ दीपिका

कीर्तनस्मरणरूपभक्तिहेतुत्वमुक्तं, ज्ञानहेतुत्वमाह द्वाभ्याम्- नम इति । नमो धीमहि मनसा नमनं कुर्वीमहि ॥३७॥ अमूर्तिकं मन्त्रोक्तव्यतिरिक्तमूर्तिशून्यम् । यजते पूजयति स पुमान्सम्यग्दर्शनो भवति ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

कीर्तन तथा स्मरण रूप भक्ति के हेतुत्व का प्रतिपादन किया जा चुका है अब ज्ञान के हेतुत्व का प्रतिपादन **नमो भगवते तुभ्यम्० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा किया जा रहा है । नमो धीमहि का अर्थ है मन से हम आपको नमस्कार करते हैं । **अमूर्तिकम्** का अर्थ है मन्त्रोक्त मूर्ति से भिन्न मूर्ति से रहित **यजते** अर्थात् पूजा करता है । उसी मनुष्य का ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ है यह **सम्यग्दर्शनः** का अर्थ है । यद्यपि श्रीभगवान् की कोई भी प्राकृत मूर्ति नहीं है किन्तु मूर्ति के वाचक मन्त्र के द्वारा मन्त्र के ध्यान में बतलाये गये मूर्ति का मन्त्र पढ़ने से वह मूर्ति अविर्भूत हो जाती है । इस तरह से यज्ञपुरुष भगवान् की आराधना करने वाले व्यक्ति का ही ज्ञान पूर्ण और यथार्थ है ॥३७-३८॥

**इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् । अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः ॥३९॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् इमं मदनुष्ठितम् स्वनिगमम् अवेत्य केशवः मे ज्ञानम् ऐश्वर्यं स्वस्मिन् भक्तिं च अदात् ॥३९॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन मेरे द्वारा अपने उपदेश का पालन किया गया जानकर प्रसन्न हुए भगवान् केशव ने मुझको ज्ञान, ऐश्वर्य और अपने में मुझको भक्ति प्रदान किया ॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

एवं कृतवति मयि हरिः स्वसदृशं ज्ञानादिकं दत्त्वानित्याह । इमं स्वनिगमं स्वोपदेशं मदनुष्ठितं मयानुष्ठितमवेत्य ज्ञात्वा। भावं च प्रीतिं च ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से मेरे द्वारा श्रीभगवान् के उपदेश का पालन किए जाने पर श्रीभगवान् ने अपने सदृश ही मुझको ज्ञान इत्यादि प्रदान किया । **इमं स्वनिगममवेत्य** का अर्थ है मेरे द्वारा अपने उपदेश का अनुष्ठान जानकर भाव शब्द प्रीति का बोधक है ॥३९॥

**त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ।**
**प्रख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां यत्क्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥४०॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे व्यासनारदसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

**अन्वयः**— हे अदभ्रश्रुत त्वमपि विभोः विश्रुतम् आख्याहि येन विदां बुभुत्सितं समाप्यते यत् दुःखैः मुहुरर्दितात्मनाम् क्लेश निर्वाणम् उशन्ति, अन्यथा न ॥४०॥

**अनुवाद**— हे पूर्णज्ञान सम्पन्न व्यासजी आप भी श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रख्यात यश (लीलाओं) का वर्णन करें जिन लीलाओं को जान लेने पर विद्वान् की जानने की इच्छा पूरी हो जाती है तथा जिन लोगों को दुखों ने बार-बार रौंद डाला है उनके दुःखों को दूर करने वाला उसी को लोग मानते है । उसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय नहीं हैं ॥४०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिव्रप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥**

### भावार्थ दीपिका

अतस्त्वमप्येवं कुर्वित्याह- त्वमिति । अदभ्रमनल्पं श्रुतं यस्य हे अदभ्रश्रुत, विभोर्विश्रुतं यशः प्रख्याहि कथय । येन विश्रुतेन बुद्धेन विदां विदुषां बुभुत्सितं बोद्धुमिच्छा समाप्यते । यद्यतो दुःखैः पीडितानां क्लेशशान्तिं प्रकारान्तरेण न मन्यन्ते ॥४०॥

**इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥**

### भाव प्रकाशिका

आप भी मेरे ही समान श्रीभगवान् को अपने सभी कर्मों को समर्पित कर दें । इस बात को **त्वमप्यदभ्रश्रुत० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । **अदभ्रमलं श्रुतं यस्य तत्सम्बुद्धौ** यह अदभ्रश्रुत पद का विग्रह है । अर्थात् हे पूर्ण ज्ञान सम्पन्न व्यासजी आप भी व्यापक श्रीभगवान् के विख्यात यश (लीलाओं) का वर्णन करें । श्रीभगवान् के यश का ज्ञान हो जाने पर विद्वानों (ज्ञानियों) की जिज्ञासा शान्त हो जाती है । तथा बार-बार दुःखों से पीड़ित प्राणियों के दुःखों की शान्ति का साधन श्रीभगवान् की लीलाओं का ज्ञान ही माना जाता है अन्य प्रकार से दुःखों की शान्ति नहीं मानी जाती हैं ॥४०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की श्रीशिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥५॥**

# छठा अध्याय

## नारदजी के पूर्व चरित्र का अवशिष्ट भाग

सूत उवाच

**एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च । भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥**

**अन्वयः**— देवर्षेः एवं जन्म कर्म च निशम्य सत्यवती सुतः भगवान् व्यासः तं भूयः पप्रच्छ ॥१॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— देवर्षि नारद के जन्म और कर्म को इस प्रकार से सुनकर माता सत्यवती के पुत्र ऐश्वर्य सम्पन्न व्यासजी ने नारदजी से पुनः पूछा ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यासस्य प्रत्ययार्थं च षष्ठे प्राग्जन्मसंभवम् । स्वभाग्यं नारदः प्राह कृष्णसंकथनोद्भवम् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

नारदजी को विश्वास दिलाने के लिए नारदजीने छठे अध्याय में पूर्वजन्म में भगवान् श्रीकृष्ण की कथा से उत्पन्न अपने भाग्य का वर्णन किया है ॥१॥

व्यास उवाच

**भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव । वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥२॥**

**अन्वयः**— तव विज्ञानादेष्टृभिः भिक्षुभिः विप्रवसिते आद्ये वयसि वर्तमानः भवान् ततः किम् अकरोत् ॥२॥

**व्यासजी ने कहा**

**अनुवाद**— आपको ज्ञानोपदेश करने वाले महात्माओं के चले जाने पर बाल्यावस्था में रहने वाले आप ने उसके पश्चात् क्या किया ?॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वयमपि तथा चिकीर्षुर्गुरूपदेशानन्तरभावि तच्चरितं पृच्छति– भिक्षुभिरिति । विप्रवसिते दूरदेशगमने कृते सति । विज्ञानस्यादेष्टृभिरूपदेशकर्तृभिः ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

व्यासजी नारदजी के ही समान आचरण करने की इच्छा से गुरुओं के उपदेश के पश्चात् नारदजी ने जो किया उनके उस चरित को व्यासजी ने **भिक्षुभिः इत्यादि** श्लोक से पूछा अर्थात् विज्ञान का उपदेश करने वाले मुनियों के **विप्रवसिते** अर्थात् दूर देश में चले जाने पर ॥२॥

**स्वायंभुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः । कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥३॥**

**अन्वयः**— हे स्वायम्भुव ते परं वयः कया वृत्त्या वर्तितम् । काले प्राप्ते च इदं कलेवरम् कथम् उदस्राक्षीः ॥३॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी, आपकी शेष आयु किस प्रकार से व्यतीत हुयी तथा मृत्यु का समय आ जाने पर आपने इस दासीपुत्र का शरीर किस प्रकार से त्यागा ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

परं वय उत्तरमायुः । ते त्वया वर्तितं नीतम् । इदमिति दासीपुत्रभूतं कलेवरमुदस्राक्षीरुत्सृष्टवानसि ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

ज्ञानोपदेष्टा गुरुओं के चले जाने के बाद बची हुय आयु को आपने कैसे बिताया । और मृत्यु काल के आने पर दासीपुत्र रूपी शरीर को आपने कैसे त्यागा ?॥३॥

**प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम । न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥४॥**

**अन्वयः—** एषकालः सर्वनिराकृतिः । हे सुरसत्तम एष प्राक्कल्प विषयां ते स्मृतिं कथं न व्यवधात् ॥४॥

**अनुवाद—** यह काल सबों को विनष्ट कर देने वाला है । हे देवश्रेष्ठ नारदजी पूर्वकल्प की बातों को याद रखने वाली आपकी स्मृति को यह काल कैसे विनष्ट नहीं किया ? व्यवधात में अट् का आगम आर्ष प्रयोग के कारण नहीं हुआ है ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

एष कल्पान्तलक्षणः कालस्ते स्मृति कथं न व्यवधान्न खण्डितवान् । अडागमाभावस्त्वार्षः । हि यत एष निराकृतिरपलापो यस्मात्सः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

कल्प का अन्त होने पर भी काल ने आपकी स्मृति को किस कारण से नहीं विनष्ट कर सका ? व्यवधात् में अट् के आगम का अभाव आर्ष प्रयोग के कारण नहीं हुआ है ॥४॥

नारद उवाच

**भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम । वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ॥५॥**

**अन्वयः—** मम विज्ञानादेष्टृभिः भिक्षुभिः विप्रवसिते आद्ये वयसि वर्तमान एतत् अकार्षम् ॥५॥

### नारदजी ने कहा

**अनुवाद—** मुझको ज्ञानोपदेश करने वाले सन्तों के चले जाने पर बाल्यावस्था में विद्यमान मैंने यह किया ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

अकारषं कृतवानहम् । रेफषकारयो विश्लेषश्छन्दोऽनुरोधेन ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

छन्दो भङ्ग से बचने के लिए अकारषम् इस पद में रकार और षकार का विलेष हो गया है । अन्यथा अकार्षम् यह पद होना चाहिए । अकार्षम् का अर्थ है मैंने किया ॥५॥

**एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी । मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ॥६॥**

**अन्वयः—** मे जननी एकात्मजा योषित् मूढा, किङ्करी च, अनन्यगतौ आत्मजे मयि स्नेहानुबन्धनम् चक्रे ॥६॥

**अनुवाद—** मैं अपनी माता का इकलौता पुत्र था । मेरी माँ एक तो स्त्री थी, दूसरे मूढ (अज्ञानी) थी और तीसरे दासी थी मेरा भी कोई दूसरा सहारा नहीं था अतएव वह अपने पुत्र प्रेम में ही मुझको को बाँध रखा था॥६॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र तावत्कंचित्कालं तत्रैव मातृस्नेहयन्त्रितो न्यवसमित्याह त्रिभिः । एक एवाहमात्मजो यस्याः सा । योषिदिति मूढेति च स्नेहानुबन्धे हेतुः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

माता के ही स्नेह पाश में बन्धा हुआ मैंने कुछ समय तक वहीं निवास किया इस बात को नारदजी ने

तीन श्लोकों द्वारा बतलाया। जिसका केवल मैं ही पुत्र था यह एकात्मजा पद का अर्थ है। मुझमें उसके स्नेहानुबन्धन का कारण यह था कि वह मूढ स्त्री थी ॥६॥

**साऽस्वतन्त्रा न कल्पासीद्योगक्षेमं ममेच्छती। ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥७॥**

**अन्वयः**— अस्वतन्त्रा सा मम योगक्षेमम् इच्छती कल्पा न आसीत् दारुमयी योषा यथा लोकः ईशस्य हि वशे ॥७॥

**अनुवाद**— वह मेरे योगक्षेम का निर्वाह करना चाहकर भी परतन्त्र होने के कारण नहीं कर पाती थी। जिस तरह कठपुतली नचाने वाले की इच्छा के अनुसार कठपुतली नाचती है, उसी प्रकार यह जगत् परमात्मा की इच्छा के ही अधीन है ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

किंकरीत्यस्यार्थं प्रपञ्चयति- सेति। अस्वतत्रा सा। अतो न कल्पा न समर्था आसीत्। दारुमयी योषेत्यतिपारवश्ये दृष्टान्तः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

अपनी माता के किंकरित्व को ही विस्तार से **साऽस्वतंत्रा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है। वह परतन्त्र होने के कारण मेरे योगक्षेम का निर्वाह करने में असमर्थ थी। पारतन्त्र्य में कठपुतली को दृष्टान्त रूप से उपन्यस्त किया गया है ॥७॥

**अहं च तद्ब्रह्मकुलं ऊषिवांस्तदवेक्षया। दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥८॥**

**अन्वयः**— अहं च तत् अवेक्षया तद् ब्रह्मकुले उषिवान्। तदा अहम् दिग्देशकालाव्युत्पन्नः पञ्चहायनः बालक आसम् ॥८॥

**अनुवाद**— मैं भी अपनी माता के स्नेह पाश की समाप्ति की प्रतीक्षा करता हुआ उस ब्राह्मण परिवार में ही रह रहा था। उस समय देश तथा काल से अपरिचित मैं पाँच वर्ष का बालक था ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं सा स्नेहं चक्रेऽहं च दिगादिष्वनभिज्ञोऽतस्तत्रैव न्यवसमित्याह। अहं च तस्मिन्ब्रह्मकुले तस्या मातुः स्नेहानुबन्धस्यावेक्षया। कदा विरमेदिति प्रतीक्षयेत्यर्थः। ऊषिवान्वासं कृतवान्। पञ्चहायनः पञ्चवर्षः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

मेरी माँ मुझसे इस प्रकार से प्रेम करती थी और मैं भी दिग् देश और काल से अपरिचित था अतएव उस ब्राह्मण परिवार में ही रहने लगा। इस बात को **अहं च० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। मैं भी उस ब्राह्मण के परिवार में अपनी माता के स्नेह के बन्धन के समाप्त होने की प्रतीक्षा करते हुए रहने लगा। उस समय मेरी अवस्था पाँच वर्ष की थीं। **पञ्चहायनः** पद क अर्थ पाँच वर्ष का है ॥८॥

**एकदा निर्गतां गेहादुहन्तीं निशि गां पथि। सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥९॥**

**अन्वयः**— एकदा गां दुहन्तीं निशि गेहात् निर्गताम् पथि पदा स्पृष्टः कालचोदितः कृपणां तां अदशत् ॥९॥

**अनुवाद**— एक दिन गौ दूहने के लिए रात में जब घर से बाहर गयी थी उस समय पैर से छू जाने के कारण काल के द्वारा प्रेरित सर्प ने उसे काट लिया ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

गेहान्निर्गतां गां दुहन्तीम् हेतौ शतृप्रत्ययः। दोग्धुं निर्गतामित्यर्थः। पदा पादेनास्पृष्ट ईषदाक्रान्तः अदशदखादत् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

गौ दूहने के लिए घर से निकली हुयी उसको पैर से छू जाने के कारण सर्प ने काट लिया। दुहन्तीम् में हेतु के अर्थ में शतृ प्रत्यय हुआ है। अतएव इसका अर्थ दूहने के लिए है ॥९॥

**तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः। अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥११॥**

**अन्वयः**— तदा तदहम् भक्तानां शमम् अभीप्सतः ईशस्य अनुग्रहं मन्यमानः उत्तरां दिशम् प्रातिष्ठम् ॥११॥

**अनुवाद**— उस समय उस माता की मृत्यु को भक्तों पर कृपा करने वाले श्रीभगवान् की कृपा मानकर मैं उत्तर दिशा में चल पड़ा ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

तन्मातुर्मरणं भक्तानां शं कल्याणमभीप्सत ईशस्यानुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं प्रस्थितोऽस्मि ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

माता की उस मृत्यु को भक्तों का कल्याण करने की इच्छा वाले श्रीभगवान् की कृपा मानने वाले मैंने उत्तर दिशा में प्रस्थान किया ॥१०॥

**स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान्। खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च॥११॥**
**चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान्। जलाशयान् शिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥१२॥**
**चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः। नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम् ॥१३॥**
**एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत्। घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाजिरम्॥१४॥**

**अन्वयः**— तत्र स्फीतान् जनपदान्, पुरग्रामव्रजाकरान् खेटखर्वट वाटीश्च वनानि, उपवनानि च, चित्रधातुविचित्राद्रीन् इभभुग्नभुजद्रुमान् शिवजलान् जलाशयान् चित्रस्वनैः पत्ररथैः विभ्रद्भ्रमरश्रियः सुरसेविताः नलिनीः एक एव अतियातः अहम्, नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचक गह्वरम् व्यालोलूकशिवाजिरम् प्रतिभयाकारं, घोरं महत् विपिनम् अद्राक्षम् ॥११-१४॥

**अनुवाद**— जाते हुए मैंने मार्ग में समृद्ध देशों, नगरों, ग्रामों गोशालाओं, खेटों (कृषकों के ग्रामों) खर्वटों (पर्वत की तराई) में वसे ग्रामों, वाटिकाओं, उद्यानों, उपवनों, रङ्गविरङ्गे धातुओं से युक्त होने के कारण मनोहर पर्वतों, जिनकी शाखाओं को हाथियों ने तोड़ दिया था ऐसे वृक्षों, सुन्दर जल से भरे जलाशयों, देवताओं द्वारा सेवन किए जाने योग्य कमलों से मनोहर ध्वनि करने वाले पक्षियों तथा मँडराने वाले भौरों की शोभा से युक्त सरोवरों को अकेले पार करके मैंने नरकट, बाँस सेठा, कुश तथा कीचक से भरे हुए एवं सर्प, उल्लू तथा स्यार से भरे हुए अत्यन्त भयङ्कर एक महान् वन को देखा ॥११-१४॥

### भावार्थ दीपिका

स्फीतान् जनपदादीनतियातः सन् महद्विपिनमद्राक्षमिति चतुर्थेनान्वयः। जनपदादिषु नानागुणदोषयुक्तेषु समदृष्टिः सन्गतोऽहमिति तात्पर्यार्थः। स्फीतान्समृद्धान्। जनपदान्देशान्। तत्र तस्यां दिशि। पुरग्रामव्रजाकरान्। तत्र पुराणि राजधान्यः। ग्रामा भृगुप्रोक्ताः- **'विप्राश्च विप्रभृत्याश्च यत्र चैव वसन्ति ते। स तु ग्राम इति प्रोक्तः शूद्राणां वास एव च।।'** इति। व्रजा गोकुलानि। आकरा रत्नाद्युत्पत्तिस्थानानि तान्। खेटाः कर्षकग्रामाः। खर्वटा गिरितटग्रामाः, भृगुप्रोक्ता वा **एकतो यत्र तु ग्रामो नगरे चैकतः स्थितम्। मिश्रं तु खर्वटं नाम नदीगिरिसमाश्रयम्** ।। इति वाट्यः पूगपुष्पादीनां वाटिकास्ताः। वनानि स्वतः सिद्धवृक्षाणां समूहाः। उपवनानि रोपितवृक्षाणां समूहाः। तानि च ॥११॥ चित्रैर्धातुभिः स्वर्णरजताद्यैर्विचित्रानद्रींश्च। इभैर्भग्ना भुजाः शाखा येषां ते द्रुमायेषु तान्। शिवानि भद्राणि जलानि येषां तान्। नलिनीः सरसीः ॥१२॥ चित्राः स्वना येषां तैः पत्ररथैः पक्षिभिस्तन्नादप्रबुद्धैरित्यर्थः। विभ्रमद्भिर्भ्रमरैः श्रीः शोभा यासां ता नलिनीरतियातोऽतिक्रम्य गतः सन्महद्विपिनं

वनमद्राक्षम् । कीदृशम् । नलवेणुशराणां स्तम्बैः कुशैः कीचकैश्च गह्वरं दुर्गमम् । तत्र वेणुजातय एव विपुलान्तरालगर्भाः कीचकाः ।।१३।। घोरं दुःसहम् । प्रतिभयाकारं भयङ्कररूपम् । व्यालादीनामजिरं क्रीडास्थानम् ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

**स्फीतान्० इत्यादि-** समृद्ध जनपदों (देशों) आदि को पार करके मैंने एक बहुत बड़े वन को देखा । इस तरह से इस श्लोक के चतुर्थ चौदहवें श्लोक से इसका अन्वय है । अर्थात् अनेक प्रकार के दोषों तथा गुणों से युक्त जनपदों में समान दृष्टि रखने वाला मैं जा रहा था । **स्फीतान् जनपदान्** अर्थात् समृद्ध देशों को मैंने उस दिशा में देखा । नगरों अर्थात् राजधानियों, ग्रामों, गो समूहों तथा रत्नों के उत्पत्ति स्थानों को देखते हुए ।

ग्राम शब्द को निरूपित करते हुए महर्षि भृगु ने कहा है— **'विप्रश्च विप्रभृत्याश्च यत्र चैव वसन्ति ते । स तु ग्राम इति प्रोक्तः ।'** जहाँ पर ब्राह्मण तथा ब्राह्मणों के भृत्य रहते हैं, उस स्थान को ग्राम शब्द से अभिहित किया जाता है । खेट अर्थात् कृषकों के ग्राम, खर्वट अर्थात् पर्वत की तराई में वसे ग्राम । महर्षि भृगु ने कहा भी है—

**एकतो यत्र तु ग्रामो नगरं चैकतः स्थितम् । मिश्रं तु खर्वटं नाम नदी गिरिसमाश्रयम् ।।**

जिसके एक भाग में ग्राम हो और दूसरे भाग में नगर हों इन दोनों से मिश्रित तथा नदी तथा पर्वत के किनारे वसे हुए ग्राम को खर्वट कहते हैं । सुपारी तथा पुष्पों आदि की वाटिका को वाटी कहते है । स्वाभाविक रूप से उत्पन्न वृक्षों के समूह को वन कहते हैं । रोपे गये वृक्षों के समूह को उपवन कहते हैं । उन सबों को देखते हुए अनेक प्रकार के सुवर्ण रजत आदि धातुओं से अद्भुत बने पर्वतों को जिन वृक्षों की शाखाओं को हाथियों ने तोड़ दिया था ऐसे वृक्षो को सुन्दर स्वच्छ जलों से परिपूर्ण जलाशयों को, अनेक प्रकार की बोली बोलने वाले पक्षियों तथा मँडराते हुए भ्रमरों की शोभा से युक्त कमलों वाले सरोवरों को पार करके जाते हुए मैंने नरकट, बाँस सेठा कुश तथा कीचक से भरे हुए सर्प, उल्लू तथा स्यारों के क्रीडा स्थान रूप प्रतिभयङ्कर (मूर्तिमान भय स्वरूप) बहुत बड़े वन को अकेले जाते हुए मैंने देखा ।।११-१४।।

**परिश्रान्तेन्द्रियात्माहं तृट्परीतो बुभुक्षितः । स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ।।१५।।**
**तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आश्रितः । आत्मनात्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम् ।।१६।।**

**अन्वयः**— परिश्रान्तेन्द्रियात्मा, तृट्प्ररीतः बुभुक्षितः नद्या ह्रदे स्नात्वा पीत्वा उपस्पृष्टः गतश्रमः अहं तस्मिन् निर्मनुजे अरण्ये पिप्पलोपस्थे आश्रितः आत्मना आत्मस्थं यथाश्रुतम् आत्मानम् अचिन्तयम् ।।१५-१६।।

**अनुवाद**— मेरी इन्द्रियाँ और शरीर थक गये थे, मुझे भूख तथा प्यास लगी थी; अतएव नदी के ह्रद में मैंने स्नान करके पानी पिया और मेरी थकान दूर हो गयी उस मनुष्य रहित वन में पिप्पल के नीचे बैठा हुआ मैंने मन से हृदय में विद्यमान परमात्मा का रूप जैसा सुना था उसीविधि से ध्यान किया ।।१५-१६।।

**भावार्थ दीपिका**

परिश्रान्तानीन्द्रियाण्यात्मा देहश्च यस्य । तृषा परीतो व्याप्तः । उपस्पृष्ट आचान्तः ।।१५।। पिप्पलोपस्थे अश्वत्थमूले। आश्रित उपविष्टः । आत्मना बुद्ध्या मनसा वा । आत्मस्थं हृदिस्थम् । आत्मानं परमात्मानम् ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

परिश्रान्तानि इन्द्रियाणि आत्मा देहश्च यस्य यह परिश्रान्तेन्द्रियात्मा पद का विग्रह है । अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ और मन थक गये थे तथा भूखा एवं प्यासा हुआ मैं उपस्पृष्टः अर्थात् आचमन करके, पिप्पलोपस्थे अर्थात् पिप्पल की जड़ में, आश्रितः बैठा हुआ मैं आत्मना अर्थात् मन अथवा बुद्धि के द्वारा आत्मस्थ हृदय में विद्यमान परमात्मा का मैंने ध्यान किया ।।१५-१६।।

**ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा । औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥१७॥**

**अन्वयः**— भवानिर्जितचेतसा चरणाम्भोजं ध्यायतः औत्कण्ठयाश्रु कलाक्षस्य में हृदि हरिः शनैः आसीत् ॥१७॥

**अनुवाद**— भक्तिभाव से भरे हुए चित्त में मैंने जब श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान किया उस समय श्रीभगवान् के दर्शन की उत्कण्ठा के कारण मेरे नेत्रों में आँसू भर गया था, और धीरे-धीरे श्रीहरि मेरे हृदय में प्रकट हो गये ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

भावेन भक्त्या निर्जितं वशीकृतं यच्चेतस्तेन । औत्कण्ठ्येनाश्रुकलायुक्ते अक्षिणी यस्य ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

**भावेन भक्त्या निर्जितं यच्चेतः तेन** यह भाव निर्जित चेतसा पद का विग्रह है और इस का अर्थ है भक्ति के अधीन हुए अन्तः करण के द्वारा औत्कण्ठ्याश्रकल्पाक्षस्य पद का विग्रह है औत्कण्ठ्येन अश्रु कलायुक्ते अक्षिणी यस्य अर्थात् परमात्म दर्शन की उत्कण्ठा के कारण जिसके नेत्रों में आँसू भर गया था ऐसे नारदजी ने परमात्मा का ध्यान किया ॥१७॥

**प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः । आनन्दसंप्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे मुने ! प्रेमातिभर निभिन्न पुलकाङ्गः अतिनिर्वृतः आनन्दसम्पल्वे लीनः अहं उभयम् न अपश्यम् ॥१८॥

**अनुवाद**— हे व्यासजी ! प्रेमातिशय्य के कारण मेरे सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया, मैं तो कृतार्थ हो गया और आनन्द के महाप्रवाह में मग्न मैं आत्मा और परमात्मा को नहीं देख सका ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रेम्णोऽतिभरेण निर्भिन्नपुलकान्यङ्गानि यस्य । आनन्दानां संप्लवे महापूरे परमानन्दे । उभयमात्मानं परं च ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गः पद का अर्थ है प्रेमातिशय्य के कारण जिसके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया था । इस पद का विग्रह है प्रेम्णः अतिभरेण निर्भिन्नपुलकानि अङ्गानि यस्य । इस प्रकार का मैं आनन्द के महाप्रवाह में मग्न हो गया था और कृतार्थ हो गया । फलतः उस समय मैं आत्मा तथा परमात्मा दोनों को नहीं देख सका ॥१८॥

**रूपं भगवतो यत्तन्मनः कान्तं शुचापहम् । अपश्यन्सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥१९॥**

**अन्वयः**— भगवतः यत् मनः कान्तं शुचापहम् रूपं तत् अपश्यन् अहम् वैकलव्याद् दुर्मना इव सहसा उत्तस्थे ॥१९॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् का जो मनोज्ञ तथा शोक को विनष्ट करने वाला रूप था उसको नहीं देखने के कारण मैं व्याकुल हो गया और उदास के समान अचानक मेरा ध्यान भङ्ग हो गया ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

मनसः कान्तमभीष्टम् । शुचा शोकस्तामपहन्तीति तथा तत् । उत्तस्थे व्युत्थितोऽस्मि ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

**मनः कान्तम्** का अर्थ मन को प्रिय लगने वाला । **शुचापहम्** का अर्थ है शोक को विनष्ट करने वाला **उत्तस्थे** का अर्थ है मैं समाधि से उठ गया । अर्थात् समाधि काल में श्रीभगवान् का जो मनोहर रूप था उसके दिखना बन्द होते ही मैं व्याकुल हो गया और उदास होने के कारण मेरी समाधि टूट गयी ॥१९॥

**दिदृक्षुस्तदऽहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि । वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥२०॥**

**अन्वयः**— तत् भूयः दिदृक्षुः मनः हृदि प्रणिधाय अवितृप्तः वीक्षमाण अपि न अपश्यम् आतुरः इव अभवम् ॥२०॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के उस रूप को पुनः देखने के इच्छुक अतृप्त मैंने मन को हृदय में स्थिर करके देखने की कोशिश की किन्तु उस रूप को पुनः मैं नहीं देख सका फलतः मैं बेचैन सा हो गया ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

हृदि मनः प्रणिधाय स्थिरीकृत्यावितृप्तोऽहमातुर इवाभवमिति शेषः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के उस रूप को मैं पुनः देखना चाहा और उसके लिए हृदय में मन को स्थिर करके देखने की कोशिश भी किया; किन्तु श्रीभगवान् के उस रूप का पुनः दर्शन नहीं हुआ । फलतः मैं अतृप्त ही रह गया और उसके कारण मैं बेचैन सा हो गया ॥२०॥

**एवं यतन्तं विजने मामाहागोचरो गिराम् । गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥२१॥**

**अन्वयः**— एवम् विजने यतन्तम् गिराम् अगोचरः (ईश्वरः) गम्भीरश्लक्षणया वाचा शुचः प्रशमयन् इव माम् आह ॥२१॥

**अनुवाद**— इस तरह से निर्जन वन में प्रयास करते हुए मुझको वाणी के अविषयभूत ईश्वर ने गम्भीर तथा मधुर वाणी से मानो मेरे शोक को शान्त करते हुए कहा ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

गिरामगोचरः संवेदनस्य विषयभूत ईश्वरः ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

मैं उस निर्जन वन में श्रीभगवान् के रूप का पुनः दर्शन करने का प्रयास कर रहा था उसी समय मुझको आकाशवाणी के माध्यम से मेरे शोक को शान्त करते हुए के समान ईश्वर ने गम्भीर और मधुर वाणी से कहा। ईश्वर को **गिराम्** अगोचर इसलिए कहा गया है कि ईश्वर का वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता है । उनको तो ज्ञान के ही माध्यम से जाना जा सकता है ॥२१॥

**हन्तास्मिन् जन्मनि भवान्मा मा द्रष्टुमिहार्हति । अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— हन्त, अस्मिन् जन्मानि इह भवान् मा मा द्रष्टुमर्हति । अविपक्वकषायाणाम् कुयोगिनाम् अहं दुर्दर्शः ॥२२॥

**अनुवाद**— नारदजी आप इस जन्म में मेरा दर्शन नहीं कर सकते हैं, जिनके काम आदि की वासनायें विनष्ट नहीं हुयी हैं उन अनिष्पन्न योग वाले योगियों के लिए मैं दुर्दर्श हूँ ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

हन्तेति सानुकम्पसंबोधने । मा इति माम् । द्रष्टुं नार्हति । यतः न विपक्वा दग्धाः कषाया मलाः कामादयो येषां तेषां कुयोगिनामनिष्पन्नयोगानाम् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

**हन्त** इस अव्यय पद का प्रयोग अनुकम्पा पूर्वक संबोधन करने के अर्थ में होता है । अर्थात् इस जन्म में तुम मेरा दर्शन इसलिए नहीं कर सकते हो कि जिन योगियों के काम आदि रूपी कषाय अन्तःकरण के मल दूर नहीं हुए हैं जिनका योग परिपूर्ण नहीं हुआ है ऐसे योगी कुयोगी हैं । और कुयोगी मेरा दर्शन नहीं कर सकते हैं । तुम्हारी भी ये वासनाएँ दूर नहीं है, अतएव तुम कुयोगी हो । फलतः तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकते हो।

**कुयोगिनाम्** पद का कु शब्द निन्दार्थक नहीं है, अपितु ईषदर्थक है। अर्थात् जिन लोगों ने अल्प मात्रा में योग किया है, वे कुयोगी हैं ॥२२॥

**सकृद्यद्दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ । मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ते यत् सकृत् रूपं दर्शित तत् एतत् कामाय । मत्कामः साधुः सर्वान् हृच्छयान् मुञ्चति ॥२३॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप नारद ! मैंने जो तुमको अपना एक बार रूप दिखया वह इसलिए कि तुम्हारा मुझमें अनुराग हो । मुझको देखने की इच्छा वाले पुरुष के हृदय के सारे दोष धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

कुतस्तर्हि दृष्टोऽसि तत्राह । सकृद्दर्शितं मयेति यदेतत्कामाय मय्यनुरागाय । त्वत्कामेन किमित्यत आह । मत्कामः पुमान् । हृच्छयान्कामान् ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि आप कुयोगियों को दर्शन नहीं देते हैं तो फिर आपने मुझे दर्शन कैसे दिया? तो इसका उत्तर है **सकृद्दर्शितम्०** एक बार मैंने अपना रूप इसलिए दिखाया कि उससे तुम्हारा मुझमें प्रेम बढ़े। यदि कहो कि आपके प्रेम बढ़ने से क्या लाभ है ? तो इसका उत्तर है कि मुझसे प्रेम करने वाले साधु पुरुष के हृदय की सारी कामनाएँ धीरे-धीरे नष्ट हो जाती हैं ॥२३॥

**सत्सेवयाऽदीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः । हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ॥२४॥**

**अन्वयः**— अदीर्घया सत्सेवयापि ते मति मयि दृढा संजाता अतएव अवद्यं इमं लोकं हित्वा मत् जनताम् गन्ता असि ॥२४॥

**अनुवाद**— यद्यपि तुमने दीर्घ काल तक महापुरुषों की सेवा नही की है फिर भी तुम्हारी बुद्धि मुझमें स्थिर हो गयी है । अतएव तुम इस निन्दित शरीर को त्यागकर मेरा पार्षद बन जाओगे ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

अदीर्घयापि सतां सेवया । अवद्यं निन्द्यम् । इमं लोकं देहं हित्वा । मज्जनतां मत्पार्षदतां गन्तासि ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

प्रायः दीर्घकाल तक महापुरुषों की सेवा करने पर ही मनुष्यों की उनकी कृपा से मुझमें सुदृढ बुद्धि होती है, किन्तु तुमने तो अल्प काल तक ही महापुरुषों की सेवा की है फिर भी तुम्हारी बुद्धि मुझमें सुदृढ हो गयी। उसके फल स्वरूप तुम अपने इस दासीपुत्र रूप निन्दित शरीर का परित्याग करके मेरे पार्षद हो जाने वाले हो ॥२४॥

**मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् । प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥२५॥**

**अन्वयः**— मयि निबद्धा इयं मति कर्हिचित् न विपद्येत । प्रजासर्गनिरोधेऽपि मदनुग्रहात स्मृतिश्च भवेत् ॥२५॥

**अनुवाद**— मुझको प्राप्त करने का जो तुम्हारा सुदृढ निश्चय है वह कभी भी नहीं टूटेगा और मेरी कृपा के कारण प्रलयकाल हो जाने पर भी तुम्हे मेरी स्मृति बनी रहेगी ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

प्रजानां सर्गे सृष्टौ निरोधे संहारेऽपि । प्रजासर्गस्य निरोध इति वा ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

प्रजा सर्गनिरोधेऽपि का अर्थ है सृष्टि का संहार हो जाने पर भी अथवा प्रजाओं की सृष्टि रुक जाने पर भी ।

इस श्लोक में श्रीभगवान् ने नारदजी को आशीर्वाद दिया है कि प्रलय काल के हो जाने पर भी तुम्हारा जो मुझको प्राप्त करने का सुदृढ निश्चय है वह नहीं टूटेगा। तथा प्रलय काल के हो जाने पर भी तुम्हें मेरी स्मृति बनी रहेगी ॥२५॥

**एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ।**
**अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णाऽवनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥२६॥**

अन्वयः— नभोलिङ्गम् महद्भूतम् अलिङ्गम् ईश्वरम् एतावदुक्त्वा उपरराम अनुकम्पितः अहं च महतां महीयसे तस्मै शीर्ष्णा अवनामं विदधे ॥२६॥

**अनुवाद**— आकाश के समान अव्यक्त सबों के नियामक ईश्वर इतना ही कहकर चुप हो गये और उन परमात्मा की कृपा प्राप्त मैंने महान् से भी महान् ईश्वर को शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

तत् प्रसिद्धं महद्भूतम्। **'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः' इत्यादिश्रुतेः**। कीदृशम्। ईश्वरं सर्वनियन्तृ। नभसि लिङ्गं मूर्तिर्यस्य तन्नभोलिङ्गम्। सन्निहितमपि न लिङ्ग्यत इत्यलिङ्गं तस्मै अदृष्टाय भगवतेऽवनामं प्रणामं विदधे कृतवानहम्। तेनानुकम्पितः सन् ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

**महद्भूतम्** यह परमात्मा के नाम का प्रथमा एक वचन का रूप है। श्रीभगवान् का महत् नाम है इसमें प्रमाण **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितामेतद् यदृग्वेदः'** इत्यादि श्रुति है। इस श्रुति में भगवान् के ही लिए महतोभूतस्य का प्रयोग किया गया है। श्रुति का अर्थ है इस महत्भूत परमात्मा के ऋग्वेद आदि वेद निःश्वास हैं। अर्थात् जिस तरह से श्वास लेने के लिए किसी प्रयास को नहीं करना पड़ता है, उसी तरह परमात्मा के प्रयास के बिना ही वेद उत्पन्न हो गये। **महतो भूतस्य** यहाँ जो सन्धि नहीं हुयी है उसका कारण है कि यह आर्ष प्रयोग है। अन्यथा महद्भूतस्य यह प्रयोग होता। वे परमात्मा ईश्वर अर्थात् सबों के नियामक हैं। **नमो लिङ्गम्** का अर्थ है हार्दाकाश में उस परमात्मा की लिङ्ग मूर्ति है। यहाँ नभस शब्द हार्दाकाश का और लिङ्ग शब्द मूर्ति का बोधक है। **अलिङ्गम्** कहने का अभिप्राय है कि परमात्मा हार्दाकाश में रहने के कारण अत्यन्त सन्निकट हैं किन्तु दिखायी नहीं पड़ते हैं। उन नहीं दिखायी पड़ने वाले परमात्मा को मैनें प्रणाम किया। मैंने परमात्मा को प्रणाम इसलिए किया मैंने परमात्मा की कृपा प्राप्त कर ली थी ॥२६॥

**नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ।**
**गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥२७॥**

**अन्वयः**— हतत्रपः अनन्तस्य गुह्यानि, भद्राणि कृतानि नामानि पठन् स्मरन् च विमदः विमत्सरः तुष्टमनाः गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन् गां पर्यटन् आसम् इति शेषः ॥२७॥

**अनुवाद**— उसी समय से लज्जा का परित्याग करके अनन्त परमात्मा के मङ्गलमय नामों को पढ़ते हुए तथा श्रीभगवान् को स्मरण करते हुए मद तथा मत्सर से रहित मैं सभी प्रकार के स्पृहाओं से रहित होकर पृथिवी पर पर्यटन करने लगा ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

अनन्तस्य नामानि पठन्ननवरतं गृणन् हतत्रपस्त्यक्तलज्जो विमत्सरो जातोऽस्मि इति शेषः ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के नामों को निरन्तर पढ़ते रहने के कारण मेरा सबों से द्वेष समाप्त हो गया और मैं लज्जा का परित्याग करके सदा श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने लगा ।।२७।।

**एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः । कालः प्रादुरभूत्काले तडित्सौदामनी यथा ।।२८।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् एवं कृष्णमतेः असक्तस्य अमलात्मनः मम, काले तडित सौदामिनी यथा कालः प्रादुरभूत् ।।२८।।

**अनुवाद**— इस प्रकार कृष्ण परायण, आसक्ति रहित, तथा शुद्ध अन्तःकरण वाले मेरा आचानक मृत्यु काल आ जाने पर उसी तरह मृत्यु हो गयी जैसे अचानक बिजली चमक जाती है ।।२८।।

### भावार्थ दीपिका

काले स्वावसरे कालो मृत्युः प्रादुरभूदाविर्बभूव । अकस्मात्प्रादुर्भावे दृष्टान्तः- तडिदिवेति । सौदामनीति विशेषण स्फुटत्वप्रदर्शनार्थम् । तथा हि सुदामामाला तत्र भवा सौदामनी मालाकारेत्यर्थः । यद्वा सुदामानामा कश्चित्स्फटिकपर्वतः । ततः **'तेनैकदिक्'** इति सूत्रेणाण् । स्फटिकादिमयपर्वतप्रन्ते भवा हि विद्युदतिस्फुटा भवति तद्वदित्यर्थः । यद्वा तडिदित्यन्तिके इत्यर्थः **'तडिदित्यन्तिकवधयोः'** इति नैरुक्तस्मरणात् ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

हे व्यासजी समय आने पर मेरी मृत्यु अचानक हो गयी । मृत्यु के अकमस्मात् होने का उदाहरण **तडित् सौदामनी यथा** कहकर दिया गया है । तडित् का सौदामनी विशेषण उसके स्पष्ट प्रकाश को सूचित करने के लिए प्रयुक्त है । सुदामा माला को कहते है । उससे उत्पन्न होने के कारण सौदामनी कहा गया है । अर्थात् बिजली जैसे माला के आकार की चमकती है उसी तरह । अथवा सुदामा नामक एक स्फटिक का पर्वत है । सुदामा शब्द से **तेनैकदिक्** सूत्र से अण् प्रत्यय करके स्त्रीत्व की विवक्षा में सौदामनी पद व्युत्पन्न है । स्फटिकादिमय पर्वत के सन्निकट में बिजली अत्यधिक चमकती है । यहाँ पर तडित शब्द सन्निकट के अर्थ में प्रयुक्त है । निरुक्त में कहा गया भी गया है । **'तडिदित्यन्तिकवधयोः'** अर्थात् तडित शब्द का प्रयोग सन्निकट तथा वध के अर्थ में होता हैं ।।२८।।

**प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् । आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पाञ्चभौतिकः ।।२९।।**

**अन्वयः**— तां शुद्धां भागवतीं तनुम् मयि प्रयुज्यमाने आरब्धकर्म निर्वाणः पाञ्चभौतिकः न्यपतत् ।।२९।।

**अनुवाद**— जिस समय श्रीभगवान् मुझे भगवत् पार्षद का शुद्ध शरीर प्रदान कर रहे थे उस समय प्रारब्ध कर्म के समाप्त हो जाने के कारण मेरा यह पाञ्चभौतिक शरीर नष्ट हो गया ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

प्रयुज्यमाने मयि तामिति । अयमर्थः- **'हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि'** इति या भागवती भगवत्पार्षदरूपा शुद्धा सत्त्वमयी तनुः प्रतिश्रुता तां प्रति भगवता मयि प्रयुज्यमाने नीयमाने आरब्धं यत्कर्म तन्निर्वाणं समाप्तं यस्य, आरब्धकर्मणो निर्वाणमेव निर्वाणं यस्येति वा । स पञ्चभूतात्मको देहो न्यपतत् । अनेन पार्षदतनूनामकर्मारब्धत्वं शुद्धत्वं नित्यत्वमित्यादि सूचितं भवति ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

**'प्रयुज्माने मयि ताम्'** इस श्लोक का अर्थ यह है कि श्रीभगवान् ने यह जो कहा था कि इस निन्दित शरीर का त्याग करके मेरा पार्षद बनोगे, इस प्रतिज्ञा के अनुसार पार्षद स्वरूप शुद्ध सात्त्विक शरीर को जब श्रीभगवान् मुझे दे रहे थे उस समय मेरा जो प्रारब्ध कर्म था उसकी निर्वाण अर्थात् समाप्ति हो गयी और मेरा पाञ्चभौतिक

शरीर विनष्ट हो गया। इस कथन से यह अर्थ सूचित हो गया कि पार्षदों का शरीर कर्मारब्ध नहीं होता है। वह शुद्ध सात्त्विक तथा नित्य शरीर होता है ॥२९॥

**कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः । शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ॥३०॥**

**अन्वयः**— कल्पान्ते उदन्वतः अम्भसि शयाने शिशयिषोः विभोः अन्तः अनुप्राणं अन्तः विविशे ॥३०॥

**अनुवाद**— कल्प के अन्त में जिस समय भगवान् नारायण एकार्णव के जल में शयन करते हैं उस समय उनके हृदय में शयन करने के इच्छुक ब्रह्माजी जब इस सम्पूर्ण जगत् को समेट कर प्रवेश करने लगे उस समय मैं भी उनके श्वास के साथ उनके हृदय में प्रवेश कर गया ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

इदं त्रैलोक्यमादायोपसंहृत्योदन्वत एकार्णवस्याम्भसि शयाने श्रीनारायणे शिशयिषोः शयनं कर्तुमिच्छोर्विधातुर्ब्रह्मणोऽन्तर्मध्यमनुप्राणं निःश्वासेन सह विविशे प्रविष्टोऽहम्। **'ततोऽवतीर्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः। अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूयाथ विष्णुना ।।'** इति कौर्मोक्तिः। **'स्वायनेऽम्भसि'** इति पाठे स्वायने स्वस्यायने आश्रयेऽम्भसि शिशयिषोर्ब्रह्मण इति श्रीनारायणेनाभेदविलक्षयोक्तमित्यवगन्तव्यम् ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

एकार्णव के समय में जब भगवान् नारायण शयन करते हैं उस समय त्रैलोक्य को समेट कर श्रीभगवान् के भीतर शयन करने के इच्छुक ब्रह्माजी उनमे प्रवेश करने लगे उस समय उनके निःश्वास के साथ मैं भी श्रीभगवान् में प्रवेश कर गया। कूर्म पुराण में कहा भी गया है **ततोऽवतीर्य० इत्यादि** अर्थात् उस समय अवतीर्ण होकर ब्रह्माजी चक्रधारी भगवान् के शरीर में प्रवेश करके भगवान् विष्णु के साथ एकात्मकता को प्राप्त करके वैष्णवी निद्रा में सो गये। जहाँ पर **स्वायनेऽम्भसि** यह पाठ है वहाँ पर अपने आश्रय जल में ब्रह्माजी के यह अर्थ होगा। भगवान् नारायण से अभेद को बतलाने की इच्छा से ऐसा कहा गया है, यह समझना चाहिए ॥३०॥

**सहस्रयुगपर्यन्त उत्थायेदं सिसृक्षतः । मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥३१॥**

**अन्वयः**— सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थाय इदं सिसृक्षतः प्राणेभ्यः मरीरीचिमिश्राः ऋषयः अहं च जज्ञिरे ॥३१॥

**अनुवाद**— एक हजार युग बीत जाने के पश्चात् जब ब्रह्मजी जगे तो उन्होंने जगत् की सृष्टि की; उस समय उनके प्राणों से मरीचि आदि ऋषिगण और मैं भी प्रकट हुआ ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

प्राणेभ्य इन्द्रियेभ्यः अहं मरीचिमिश्रास्तन्मुख्या ऋषयश्च जज्ञिरे ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी पूरे एक हजार चतुर्युगी पर्यन्त सोते रहे उसके पश्चात् जब वे जगे उस समय उनकी सृष्टि करने की इच्छा हुयी। उसी समय उनके प्राणों अर्थात् इन्द्रियों से मरीचि जिनमें प्रधान थे वे सभी ऋषिगण उत्पन्न हो गये ॥३१॥

**अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कन्दितव्रतः । अनुग्रहन्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥३२॥**

**अन्वयः**— महाविष्णोः अनुग्रहात् क्वचित् अविघात गतिः अस्कन्दित व्रतः अहम् त्रीन् लोकान् अन्तर्बहिश्च पर्येमि ॥३२॥

**अनुवाद**— भगवान् महाविष्णु की कृपा प्राप्त होने के कारण अप्रतिहत गति वाला मैं तथा अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला मैं तीनों लोकों के भीतर तथा उससे बाहर वैकुण्ठ आदि लोकों में भ्रमण करता रहता हूँ ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**— ये कर्मिणस्ते बहिर्न यान्ति । ये तपआदिभिर्ब्रह्मलोकं गतास्तेऽन्तर्न यान्ति । अहं तु महाविष्णोरनुग्रहादखण्डितब्रह्मदेवेनेश्वरेण दत्ताम् । स्वराः **'निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवतपञ्चमा'** इति सप्त एव ब्रह्म, ब्रह्माभिव्यञ्जकत्वात् । तेन विभूषिताम् । स्वतः सिद्धसप्तस्वरामित्यर्थः मूर्च्छयित्वा मूर्च्छनालापवतीं कृत्वा ।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

नारदजी ने कहा है कि मैं भ्रमण करता रहता हूँ किन्तु उस भ्रमण का उद्देश्य क्या है ? तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् की आज्ञा से संसार के जीवों का कल्याण करने के लिए भ्रमण करता रहता हूँ । यह चार श्लोकों से नारदजी ने कहा है । **देवेन दत्ताम्** यह देवदत्ताम् पद का विग्रह है । यहाँ देव शब्द ईश्वर का वाचक है । अर्थात् ईश्वर के द्वारा प्रदत्त जो स्वर ब्रह्म से विभूषित है, निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम धैवत तथा पञ्चम ये सात स्वर ब्रह्माभिव्यञ्जक हैं, उन सबों से विभूषित अर्थात् स्वाभाविक रूप से सात स्वरों से सिद्ध इस वीणा को मूर्छना के आलाप से युक्त करके मैं भ्रमण करता हूँ ।।३३।।

**प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः । आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ।।३४।।**

**अन्वयः**— स्ववीर्याणि प्रगायतः तीर्थपादः प्रियश्रवाः आहूत इव मे चेतसि शीघ्रं दर्शनं याति ।।३४।।

**अनुवाद**— जब उन श्रीभगवान् की लीलाओं का मैं गान करता हूँ उस समय तीर्थपाद तथा प्रियश्रवा श्रीभगवान् मेरे अन्तःकरण में प्रवेश करके मुझे शीघ्र ही दर्शन दे देते हैं ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

स्वप्रयोजनमाह- प्रगायत इति ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में अपने लीला गायन का प्रयोजन बतलाते हुए नारदजी ने कहा कि मैं श्रीभगवान् की लीलाओं का गायन करते रहता हूँ । श्रीभगवान् को तीर्थपाद इसलिए कहा गया है कि उनके चरण कमल तीर्थों के समान अत्यन्त पवित्र हैं और सबों को पवित्र बनाने का काम करते हैं । उनको अपनी लीलाये अत्यन्त प्रिय है । उनको सुनकर श्रीभगवान् नारदजी के अन्तःकरण में प्रवेश करके शीघ्र ही उनको दर्शन देने लगते हैं ।।३४।।

**एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः । भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ।।३५।।**

**अन्वयः**— मुहु; मात्रा स्पर्शेच्छया आतुरचितानाम् एतद्धि हरिचर्यानुवर्णनम् भवसिन्धु प्लवः दृष्टः ।।३५।।

**अनुवाद**— बार-बार विषयोपभोग की इच्छा से जिनका मन चञ्चल बना रहता है उन लागों को इस संसार सागर को पार करने के लिए श्रीहरि की लीलाओं का गायन ही जहाज के समान हैं यह मेरा अपना अनुभव हैं ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

परप्रयोजनमाह- एतद्धीति । मात्रा विषयास्तेषां स्पर्शा भोगास्तेषामिच्छया आतुराणि चित्तानि येषां तेषां हरिचर्यानुवर्णनं यदेतदेव भवसिन्धौ प्लवः पोतः । न केवलं श्रुतिप्रामाण्येन किंत्वन्वयव्यतिरेकाभ्यां दृष्ट एवेत्यर्थः ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की लीलाओं के गायन से सिद्ध होने वाले दूसरों के प्रयोजन को नारदजी ने **एतद्धि इत्यादि** श्लोक से कहा है । बार-बार विषयों का भोग करने की इच्छा से जिन लोगों का चित्त व्याकुल बना रहता है, उन लोगों के इस संसार सागर को पार करने के लिए श्रीभगवान् की लीलाओं का गायन ही जहाज के समान है । इस अर्थ की सिद्धि केवल श्रुति प्रमाण के ही द्वारा नहीं होती है; अपितु अन्वय व्यतिरेक के द्वारा भी इस अर्थ की सिद्धि होती है ।।३५।।

**यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः । मुकुन्दसेवया यद्वत्तथात्माऽद्धा न शाम्यति ॥३६॥**

**अन्वयः**— मुहु कामलोभहतः आत्मा मुकुन्दसेवया शाम्यति तथा यमादिभिः योगपथैः न शाम्यति ॥३६॥

**अनुवाद**— बार-बार काम लोभ आदि से संतप्त आत्मा जिस तरह से श्रीभगवान् की सेवा से शान्त होती है उस तरह से यम नियम आदि योग के द्वारा नहीं शान्त होती है ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

एतदेवेत्युक्तमवधारणमनुभवेन द्रढयति– यमादिभिरिति । यमादिभिस्तथा न शाम्यति । यद्वन्मुकुन्दसेवयाऽद्धा साक्षादात्मा मनः शाम्यति । कथंचिन्मुकुन्दसेवामात्रेण शाम्यति किं पुनस्तद्गुणवर्णनेनेति भावः ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

**एतदेव इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहे गये निश्चय का अनुभव के द्वारा सुदृढ करते हुए **यमादिभिः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । यमादि योगरूपी साधनों के द्वारा आत्मा को उतनी शान्ति नहीं मिलती है । जितनी शान्ति श्रीभगवान् की किसी तरह भी की गयी सेवा से होती है । श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करने पर तो क्या कहना है ?॥३६॥

**सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ । जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ॥३७॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! अहं त्वया यत् पृष्टः तदिदं भवतः आत्मतोषणं मे जन्म कर्मरहस्यम् सर्वं आख्यताम् ॥३७॥

**अनुवाद**— आपने मुझसे जो कुछ पूछा था उन आपकी आत्मा को सन्तोष दिलाने वाले अपने जन्म तथा कर्मों के सम्पूर्ण रहस्यों का मैंने वर्णन कर दिया ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

भवतो मनःपरितोषकं चाख्यातम् ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

आपने मुझसे मेरे जन्म तथा रहस्यों के विषय में प्रश्न किया था । उन सारी बातों का वर्णन मैंने आपके मन के सन्तोष के लिए किया है ॥३७॥

सूत उवाच

**एवं संभाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् । आमन्त्र्य वीणां रणयन्ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥३८॥**

**अन्वयः**— एवं सम्भाष्य वासवीसुतम् आमन्त्र्य यादृच्छिकः मुनिः भगवान् नारदः वीणां रणयन् ययौ ॥३८॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से सारी बातें कहकर सत्यवती के पुत्र व्यासजी से विदा लेकर अपना कोई भी सङ्कल्प तथा प्रयोजन नहीं होने के कारण ऐश्वर्य सम्पन्न नारद मुनि वीणा बजाते हुए चले गये ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

आमन्त्र्यानुज्ञाप्य । यादृच्छिकः स्वप्रयोजनसङ्कल्पशून्यः ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

व्यासजी से उपर्युक्त सारी बातों को करके नारदजी व्यासजी से विदा माँगे और बीणा बजाते हुए वे स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करने के लिए चल पड़े ॥३८॥

**अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः । गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥३९॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

**अन्वयः**— अहो अयं देवर्षिः धन्यः यत् तन्त्र्या शार्ङ्गधन्वनः कीर्तिं गायन् माद्यन् आतुरं जगत् रमयति ॥३९॥

**अनुवाद**— अरे ये देवर्षि धन्य हैं, क्योंकि वीणा बजाकर श्रीभगवान् के यश को गाते हुए आनन्द मग्न होते हैं और इस सन्ताप सन्तप्त जगत् को आनंदित करते हैं ॥३९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के व्यासनारदसंवाद के अन्तर्गत छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।**

**भावार्थ दीपिका**

हरिकथागायकनारदभाग्यं श्लाघते- अहो इति । माद्यन् हृष्यन् । तन्त्र्या वीणया ॥३९॥

**इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।**

**भाव प्रकाशिका**

श्रीहरि की कथा का गान करने वाले नारदजी की प्रशंसा करते हुए **अहो० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । हृष्यन् पद का अर्थ है प्रसन्न होते हैं । तन्त्र्या का अर्थ है वीणा के द्वारा इस श्लोक में सूतजी नारदजी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि नारदजी धन्य हैं, क्योंकि वे वीणा बजा-बजाकर श्रीभगवान् की लीलाओं को गाते हैं और आनन्दित होते हैं और संताप-संतप्त इस जगत् को भी आनन्दित करते हैं ॥३९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के छठे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।६।।**

# सातवाँ अध्याय

## अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का वध तथा अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा का मानमर्दन

शौनक उवाच

**निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः । श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ।।१।।**

**अन्वयः**— हे सूत ! भगवान् बादरायणः तदभिप्रेतं श्रुतवान् ततः नारदे निर्गते स विभुः किम् अकरोत् ।।१।।

**शौनक महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे सूतजी ! भगवान् बादरायण ने नारदजी के अभिप्राय को सुना, उसके पश्चात् जब नारदजी चले गये तो फिर व्यासजी ने क्या किया ?।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

अथ भागवतश्रोतुर्जन्म वक्तुं परीक्षितः । सुप्तबालवधाद्द्रौणेर्दण्डः सप्तम उच्यते ।।१।। तस्य नारदस्याभिप्रेतं श्रुतवान् सन् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

इसके पश्चात् इस सातवें अध्याय में भागवत के श्रोता महाराज परीक्षित् के जन्म और कर्म को बतलाने

के लिए सोए हुए द्रौपदी के बालकों का वध करने वाले अश्वत्थामा को अर्जुन द्वारा दण्डित किए जाने का वर्णन किया जा रहा है। उपर्युक्त प्रकार से व्यासजी ने नारदजी के अभिप्राय को जान लिया और उसके पश्चात् जब नारदजी चले गये तो व्यासजी ने क्या किया ? यह शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा ॥१॥

सूत उवाच

**ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे । शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥२॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यां पश्चिमे तटे ऋषीणां सत्रवर्धनः शम्याप्रास इति आश्रमः प्रोक्तः ॥२॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— ब्रह्मनदी सरस्वती के पश्चिम तट पर शम्याप्रास नामक आश्रम है। वहाँ ऋषियों का सत्र निरन्तर चलता रहता है ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मनद्यां ब्रह्मदैवत्यायां ब्राह्मणैराश्रितायां च। सत्रं कर्म वर्धयतीति तथा ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

सरस्वती नदी के अधिष्ठातृ देवता ब्रह्माजी हैं। उसके तट पर ब्राह्मणों का निवास है। वहीं पर शम्याप्रास नामक एक आश्रम है। उस आश्रम में सत्रकर्म (यज्ञकर्म) चलता ही रहता है ॥२॥

**तस्मिन्स्व आश्रमे व्यासो बदरीषण्डमण्डिते । आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥३॥**

**अन्वयः**— बदरीषण्डमण्डिते स्वे आश्रमे अपः उपस्पृश्य आसीनः व्यासः स्वयम् मनः प्रणिदध्यौ ॥३॥

**अनुवाद**— बेर के वन से अलंकृत अपने उसी आश्रम में जल का आचमन करके अपने आश्रम में बैठे हुए व्यासजी ने स्वयं अपने मन को समाहित किया ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

बदरीणां षण्डेन समूहेन मण्डिते। मनः प्रणिदध्यौ स्थिरीचकार। समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् इति नारदोपदिष्टं ध्यानं कृतवानित्यर्थः ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

उस शम्याप्रास आश्रम में ही व्यासजी का आश्रम था। वह बेर के पेड़ों के समूह से अलंकृत था। नारदजी के चले जाने के पश्चात् व्यासजी ने जल का अचमन किया फिर बैठ कर उन्होंने अपने मन को स्थिर किया और नारदजी ने यह जो कहा था कि समाधि के द्वारा आप श्रीभगवान् की लीलाओं का स्मरण करें। उसी के अनुसार उन्होंने ध्यान किया। **बदरीणां षण्डेन समूहेन मण्डिते** यह बदरीषण्ड मण्डित पद का विग्रह हैं ॥३॥

**भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले । अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदुपाश्रयाम् ॥४॥**

**अन्वयः**— भक्तियोगेन अमले मनसि सम्यक् प्रणिहिते पूर्वं पुरुषं तदुपाश्रयां मायां च अपश्यत् ॥४॥

**अनुवाद**— भक्तियोग के द्वारा निर्मल मन के स्थिर हो जाने पर व्यासजी ने आदि पुरुष परमात्मा और उनके अधीन रहने वाली माया को देखा ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रणिहिते निश्चले। अत्र हेतुः- भक्तियोगेनामले। पूर्वं प्रथमं पुरुषमीश्वरमपश्यत्। **पूर्णम्** इति वा पाठः। तदुपाश्रयामीश्वराश्रयां तदधीनां मायां चापश्यत् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

जब व्यासजी ने ध्यान किया उस समय भक्ति की भावना के कारण उनका मन निर्मल हो गया था और उनका मन पूर्ण रूप से एकाग्र हो गया । उसके फलस्वरूप व्यासजी ने पहले आदि पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार किया और उसके साथ ही श्रीभगवान् के अधीन रहने वाली माया का भी साक्षात्कार किया । व्यासजी का मन पूर्ण रूप से निश्चल इसलिए हो गया कि उनका मन भक्तियोग के कारण निर्मल हो गया था ॥४॥

**यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥५॥**

**अन्वयः**— यया, सम्मोहितो जीवः परोऽपि आत्मानं त्रिगुणात्मकम् मनुते तत्कृतम् अनर्थं च अभिपद्यते ॥५॥

**अनुवाद**— उस माया से ही मोहित होने के कारण तीनों गुणों से रहित होने पर भी जीव अपने को त्रिगुणात्मक मान लेता है और उसके कारण होने वाले अनर्थों को भी भोगता है ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

ईशमायाकृतां च जीवानां संसृतिमपश्यदित्याह- ययेति । यया संमोहितः स्वरूपावरणेन विक्षिप्तः परोऽपि गुणत्रयाद्यतिरिक्तोऽपि तत्कृतं त्रिगुणत्वाभिमानकृतमनर्थं च कर्तृत्वादिकं प्राप्नोति ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

व्यासजी ने परमात्म की माया से निर्मित सृष्टि को देखा, इस बात को **यया० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । माया अपनी आवरण शक्ति के द्वारा जीवों को मोहित कर देती है । उसका स्वरूप ढँक जाता है । और फिर वह जगत् का विस्तार करती है । जीव यद्यपि माया से परे है । फिर भी वह माया से मोहित होने के कारण अपने में त्रिगुणात्मकत्व का अभिमान कर लेता है । फलतः वह अपने में कर्तृत्व आदि को प्राप्त कर लेता है ॥५॥

**अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे । लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥६॥**

**अन्वयः**— अजानतो लोकस्य अनर्थोपशमं अधोक्षजे साक्षात् भक्तियोगम् विद्वान् सात्त्वतसंहिताम् चक्रे ॥६॥

**अनुवाद**— अज्ञानी संसार के अनर्थों को शान्त करने का साधन श्रीभगवान् में की जाने वाली भक्ति है, इस बात को जानने वाले व्यासजी ने इस सात्वतसंहिता श्रीमद्भागवत की रचना की ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

अनर्थमुपशमयति योऽधोक्षजे साक्षाद्भक्तियोगस्तं चापश्यत् । एतत्सर्वं स्वयं दृष्ट्वा एवमजानतो लोकस्यार्थे सात्वसंहितां श्रीभागवताख्यां चक्रे । तदनेन श्लोकत्रयेण भागवतार्थः संक्षेपतो दर्शितः । एतदुक्तं भवति- विद्याशक्त्या मायानियन्ता नित्याविर्भूतपरमानन्दस्वरूपः सर्वज्ञः सर्वशक्तिरीश्वरस्तन्मायया संमोहितस्तिरोभूतस्वरूपस्तद्विपरीतधर्मा जीवस्तस्य चेश्वरभक्त्या लब्धज्ञानेन मोक्ष इति तदुक्तं विष्णुस्वामिना '**ह्लादिन्या संविदाश्लिष्टः सच्चिदानन्द ईश्वरः । स्वाविद्यासंवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः॥**' तथा '**स ईशो यद्वशे माया स जीवो यस्तयार्दितः । स्वाविर्भूतपरानन्दः स्वाविर्भूतसुदुःखभूः। स्वादृगुत्थविपर्यासभवभेदजभीशुचः । यन्मायया जुषन्नास्ते तमिमं नृहरिं नुमः ॥**' इत्यादि ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् में की गयी भक्ति अनर्थ का नाश कर देती है उस भक्ति का भी व्यासजी ने साक्षात्कार किया। इन सारी बातों को स्वयं देखकर तथा इस बात को नहीं जानने वाले संसार का कल्याण करने के लिए उन्होंने श्रीमद्भागवत नाम की सात्वत-संहिता का निर्माण किया इस तरह इन तीन श्लोकों द्वारा श्रीमद्भागवत के अर्थ का संक्षेप में वर्णन किया गया है ।

**एतदुक्तं भवति-** कहने का अभिप्राय है कि नित्य ही आविर्भूत स्वरूप वाले परमानन्द स्वरूप सर्वज्ञ ईश्वर

विद्या शक्ति के द्वारा माया का नियमन करते हैं। परमात्मा की माया से जिसका स्वरूप तिरोहित हो जाता है, ईश्वर के विपरीत धर्म वाला जीव इस ईश्वर की भक्ति के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

**तदुक्तं विष्णुस्वामिना० इत्यादि** विष्णु स्वामी ने कहा भी है **ह्लादिन्या० इत्यादि** अर्थात् ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप (विशिष्ट) हैं और सम्पूर्ण क्लेश समूह के आश्रयभूत जीव अपनी ही अविद्या (अज्ञान) से तिरोहित स्वरूप वाला है। और यह भी कहा गया है कि जिसके अधीन माया रहती है वही ईश्वर है तथा जो माया के द्वारा मोहित किया जाता है, वही जीव है। ईश्वर का अपना परमानन्द आविर्भूत रहता है और जीव अपने में आविर्भूत सुख-दुःख का आश्रय होता है। अपनी दृष्टि जन्य विपर्यास के कारण ही संसार में प्रतीत होने वाले भेद तज्जन्य भय तथा शोक होते है। **यन्मायया०** जिस परमात्मा की माया का जीव प्रेम पूर्वक सेवन करता है उन भगवान् नृसिंह को हम नमस्कार करते हैं ॥६॥

**यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे । भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥७॥**

**अन्वयः**— यस्यां श्रूयमाणायां वै पुसः परमपुरुषे कृष्णे शोकमोहभयापहा भक्तिः उत्पद्यते ॥७॥

**अनुवाद**— उस भागवत संहिता का श्रवण कर लेने पर निश्चित रूप से मनुष्य की परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में ऐसी भक्ति उत्पन्न हो जाती है जो शोक-मोह तथा भय को विनष्ट करने वाली होती है ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

संहिताया अनर्थोपशामकत्वं दर्शयति- यस्यामिति। यस्यां वै श्रूयमाणायामेव, किं पुनः श्रुतायामित्यर्थः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

**यस्यां वै० इत्यादि** श्लोक के द्वारा यह बतलाया गया है कि श्रीमद्भागवत नामक संहिता सभी अनर्थों को विनष्ट कर देती है। **यस्यां वैश्रूयमाणायाम्** के द्वारा यह बतलाया गया है कि जब श्रीमद्भागवत संहिता सुनते समय ही अनर्थों को विनष्ट कर देती है तो फिर सुन लेने पर क्या कहना है ?॥७॥

**स संहितां भागवतीं कृत्वाऽनुक्रम्य चात्मजम् । शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥८॥**

**अन्वयः**— सः मुनिः भागवतीम् संहितां कृत्वा च निवृत्तिनिरतं आत्मजम् शुकम् अनुक्रम्य अध्यापयामास ॥८॥

**अनुवाद**— वे महर्षि व्यास भागवती संहिता का निर्माण करके निवृत्ति मार्ग को अपनाये हुए अपने पुत्र शुकदेवजी को संशोधित करके पढ़ाये ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

अनुक्रम्य शोधयित्वा ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के अनुकम्य का अर्थ है शोधित करके ॥८॥

शौनक उवाच

**स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः । कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥९॥**

**अन्वयः**— स वै मुनिः निवृत्ति निरतः सर्वत्रोपेक्षकः आत्मारामः कस्य वा (हेतोः) एताम् बृहतीं (संहिताम्) समभ्यसत् ॥९॥

### शौनक महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— वे शुकदेव मुनि तो निवृति परायण, सभी वस्तुओं में उपेक्षा बुद्धि रखने वाले तथा अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले थे फिर वे किसलिए इस विस्तृत संहिता का अध्ययन किये ?॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

कस्य वा हेतोः । बृहतीं वितताम् ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

कस्य वा के पश्चात् हेतोः पद का अध्याहार करना चाहिए । बृहतीम् पद का अर्थ है विस्तृत अर्थात् शुकदेवजी जब आत्माराम थे निवृत्ति मार्ग के पथिक थे तथा सर्वत्र उपेक्षा बुद्धि रखते थे फिर उनको इस विस्तृत संहिता का अध्ययन करने की कौन सी आवश्कता पड़ी ?।।९।।

सूत उवाच

**आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ।।१०।।**

**अन्वयः**— आत्मारामा निर्ग्रन्था अपि मुनय ऊरुक्रमे अहैतुकीं भक्तिं कुर्वन्ति हरिः इत्थंभूतगुणः ।।१०।।

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— आत्मा में ही रमण करने वाले तथा जिनके अज्ञान की गाँठ खुल गयी है ऐसे ज्ञानी पुरुष श्रीभगवान् की विना किसी प्रयोजन के ही भक्ति करते हैं, क्योंकि श्रीहरि के गुण ही ऐसे हैं ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

निर्ग्रन्थाः ग्रन्थेभ्यो निर्गताः । तदुक्तं गीतासु- **यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।'** इति । यद्वा ग्रन्थिरेव ग्रन्थः (निवृत्तः क्रोधाहंकाररूपो ग्रन्थिर्येषां ते) निवृत्तहृदयग्रन्थय इत्यर्थः । ननु मुक्तानां किं भक्त्येत्यादिसर्वाक्षेपपरिहारार्थमाह- इत्थंभूतगुण इति ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

निर्ग्रन्थाः शब्द अर्थ है कि जो अहङ्कार की ग्रन्थियों से रहित हैं । श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान् ने स्वयं भी कहा है **यदा ते० इत्यादि** अर्थात् जब तुम्हारी बुद्धि मोह रूपी कीचड़ को पार कर जायेगी तब ही तुम संसार सागर को पार कर पाओगे । अथवा ग्रन्थि ही ग्रन्थ है । अर्थात् जिनके हृदय की ग्रन्थियाँ समाप्त हो चुकी हैं । ऐसे भी ज्ञानी पुरुष भगवान् की भक्ति करते हैं । **ननु मुक्तानाम्** अर्थात् जो ज्ञानी-पुरुष जीवन मुक्त हो चुके हैं, उन लोगों को भक्ति से क्या लाभ है ? इस तरह के सभी आक्षेपों के परिहार के लिए कहा गया है कि श्रीभगवान् के गुण ही ऐसे हैं कि वे मुक्तों को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं ।।१०।।

**हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः । अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ।।११।।**

**अन्वयः**— हरेर्गुणाक्षिप्तमतिः नित्यं विष्णुजनप्रियः भगवान् बादरायणिः महदाख्यानम् अध्यगात् ।।११।।

**अनुवाद**— श्रीहरि के गुणों से आकृष्टबुद्धि वाले तथा सदा भगवान् के भक्तों से प्रेम करने वाले, महाज्ञानी महर्षि बादरायण के पुत्र श्रीशुकदेवजी इस महान् ग्रन्थ का अध्ययन किए ।।११।।

**भावार्थ दीपिका**

ननु भक्तिं कुर्वन्तु नाम, एतच्छास्त्राभ्यासे शुकस्य किं कारणमित्यत आह- हरेरिति । अध्यगादधीतवान् । विष्णुजनाः प्रिया यस्येति । व्याख्यानादिप्रसङ्गेन तत्सङ्गतिकाम इति भावः । एतेन **तस्य पुत्रो महायोगी** इत्यादिना शुकस्य व्याख्याने प्रवृत्तिः कथमिति यत्पृष्टं तस्योत्तरमुक्तम् ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न है कि मुक्त जीव भी भगवान् की भक्ति करते हैं तो ठीक है उसका कारण क्या हैं ? तो इसके उत्तर में **हरेर्गुणाक्षिप्त० इत्यादि** श्लोक कहते है । अध्यगात् पद का अर्थ है अध्ययन किया । विष्णुजन-प्रियः का

विग्रह है । **विष्णुजनाः प्रियाः यस्य** । अर्थात् व्याख्यान आदि के प्रसङ्ग में भागवतों की सङ्गति की कामना होने के कारण उन्होंने इस विस्तृत संहिता का अध्ययन किया । इस कथन के द्वारा शौनक महर्षि ने यह जो पूछा था कि उनके पुत्र महायोगी शुकदेवजी की प्रवचन करने में प्रवृत्ति कैसे हुयी ? इसका उत्तर दिया गया ॥११॥

**परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलायनम् । संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— अथ राजर्षेः परीक्षितः जन्म कर्म विलायनम् पाडुपुत्राणां संस्थां कृष्णकथोदयं च वक्ष्ये ॥१२॥

**अनुवाद**— हे शौनक जी ! मैं राजर्षि राजा परीक्षित् के जन्म, कर्म तथा मुक्ति, पाण्डवों के स्वर्गारोहण तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं के प्रारम्भ का वर्णन करूँगा ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

यदन्यत्पृष्टं परीक्षितः प्रायोपवेशन श्रवणं कथमिति **'तस्य जन्म महाश्चर्यम्'** इत्यादिना तस्योत्तरं वक्तुमाह- परीक्षित इति । विलायनं मुक्तिं मृत्युं वा । संस्थां महाप्रस्थानम् । श्रीकृष्णकथानामुदयो यथा भवति तथा ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

यह जो पूछा गया था कि राजा परीक्षित मारण काल पर्यन्त उपवास का व्रत लेकर क्यों बैठे थे, उन्होंने भागवत संहिता श्रवण कैसे किया, उनके रहस्यमय जन्म और कर्म रूपी महा आश्चर्य का वर्णन करें इत्यादि का उत्तर देने के लिए **परीक्षितोऽथ इत्यादि** श्लोक कहा गया है । विलायन शब्द से मुक्ति अथवा मोक्ष को कहा गया है । संस्था से महाप्रस्थान को कहा गया है । और इन सबों से भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं का उदय कैसे होता है ? उसको हम बतलायेंगे ॥१२॥

**यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ।**
**वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ॥१३॥**
**भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ।**
**उपाहरद्विप्रियमेव तस्य तज्जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥१४॥**

**अन्वयः**— यदा मृधे कौरवसृञ्जयानाम् वीरगतिं गतेषु, अथो वृकोदराविद्ध गदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे, भर्तुः प्रियं स्म इति पश्यन् द्रौणिः स्वपतां कृष्णा-सुतानां शिरांसि उपाहरत् तत् तस्य विप्रियमेव तत् जुगुप्सितं कर्म सर्वे विगर्हयन्ति ॥१३-१४॥

**अनुवाद**— जब कौरवों तथा पाण्डवों की सेना के अनेक वीरों की युद्ध में मृत्यु हो गयी थी उसके पश्चात् भीम के द्वारा किए गये गदा के प्रहार से घृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन की दोनों जंघाएँ टूट चुकी थीं उस समय अपने स्वामी दुर्योधन का प्रिय समझकर अश्वत्थामा द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों के शिर को काटकर दुर्योधन को दिखाया, वह दुर्योधन को अप्रिय ही लगा क्योंकि ऐसे निन्दित कार्य की सबलोग निन्दा ही करते हैं ॥१३-१४॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र परीक्षितो जन्म निरूपयिष्यन्नादौ तावद्गर्भस्थ एवाश्वत्थाम्नो ब्रह्मास्त्रात्कृष्णेन रक्षित इति वक्तुं कथां प्रस्तौति- यदेत्यादिना। यदा द्रौणिरश्वत्थामा कृष्णासुतानां द्रौपदीपुत्राणां शिरांस्युपाहरत्तदा तन्माताऽरुदत्तां च सान्त्वयन्किरीटमाल्यर्जुन आहेति तृतीयेनान्वयः। किमिति बालानां शिंरास्यानीतवानित्यपेक्षायामाह । मृधे युद्धे । यद्यपि पाण्डवा अपि कौरवा एव तथापि सृञ्जयवंशजो धृष्टद्युम्नः सेनापतिरिति सृञ्जयानामित्युक्तम् । वीरगतिं स्वर्गम् । अथो अनन्तरम् । वृकोदरेणाविद्धायाः क्षिप्ताया गदाया अभिमर्शेनाभिघातेन भग्नावुरुदण्डौ यस्य तथाभूते घृतराष्ट्रपुत्रे दुर्योधने सति ॥१३॥ भर्तुर्दुर्योधनस्य । स्मेति वितर्के । इत्येवं प्रियं स्यादिति पश्यन्। तस्य तद्विप्रियमेवेति वाक्यान्तरम् । विप्रियत्वे हेतुः जुगुप्सितमिति ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

परीक्षित् के जन्म का निरूपण करने की इच्छा से सर्वप्रथम गर्भ में ही विद्यमान परीक्षित् की अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से रक्षा भगवान् श्रीकृष्ण ने की इस कथा को बतलाने के लिए **यदा मृधे० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है। जब अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पुत्रों का शिर काट दिया। उस समय उन सबों की रोती हुयी माता द्रैपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए अर्जुन ने कहा मैं अश्वत्थामा का शिर काटकर लाऊँगा। **किमिति० इत्यादि** प्रश्न है कि अश्वत्थामा पुत्रों का शिर क्यों काटकर दुर्योधन के पास लाया ? इस प्रकार की आशङ्का होने पर कहा **यदा मृधे० इत्यादि** मृधे का अर्थ है युद्ध में। यद्यपि पाण्डव भी कुरुवंशीय ही थे फिर भी पाण्डवों की सेना के सेनापति सृञ्जय वंशीय घृष्टद्युम्न थे इसीलिए पाण्डवों को सृञ्जयानाम् कहा गया है। वीरगतिं गतेषु का अर्थ है स्वर्ग में चले गये थे। उसके पश्चात् भीम के द्वारा किए गये गदा के प्रहार से धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन की दोनों जङ्घायें टूट गयी थीं। उस समय अपने स्वामी दुर्योधन का प्रिय समझकर अश्वत्थामा द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों के शिरों को काटकर दुर्योधन के समक्ष लाया। वह दुर्योधन को बुरा ही प्रतीत हुआ। बुरा लगने का कारण था कि उसने यह निन्दित कार्य किया था।

श्लोक के अथ शब्द आनन्तर्य का वाचक है। **वृकोदराविद्धगदाभिमर्श भग्नोरुदण्डे** पद का विग्रह इस प्रकार हैं। वृकोदरेण भीमेन, अविधायाः क्षिप्तायाः गदायाः अभिमर्शेन अभिघातेन भाग्नौ उरूदण्डौ यस्य। चौदहवें श्लोक में प्रयुक्त स्म अव्यय वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है ॥१३-१४॥

**माता शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना ।**
**तदारुदद्वाष्यकलाकुलाक्षी तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ॥१५॥**

**अन्वयः**— तदा शिशूनां सुतानां निधनं निशम्य घोरं परितप्यमाना वाष्पकलाकुलाक्षी माता अरुदत् तां सान्त्वयन् किरीटमाली आह ॥१५॥

**अनुवाद**— अपने पुत्रों की मृत्यु को सुनकर अत्यन्त सन्तप्त होती हुयी उन सबों की माता द्रौपदी की आँखों में आँसू भर गये थे और वह रोने लगी। द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए अर्जुन ने कहा ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

घोरं दुःसहं यथा भवति। वाष्पस्य कलाभिर्विन्दुभिराकुले अक्षिणी यस्याः। किरीटस्यैकत्वेऽपि तदग्राणां बहुत्वात्किरीटमालीत्युक्तम् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

पुत्रों की मृत्यु द्रौपदी के लिए असह्य थी इस अर्थ को सूचित करने के लिए **धोरम्** पद का प्रयोग किया गया है। **वाष्पस्य कलाभिः विन्दुभिः आकुले अक्षिणी यस्याः सा यह वाष्पकलाकुलाक्षी** पद का विग्रह है किरीट के एक होने पर भी उसके अग्रभाग अनेक थे अतएव अर्जुन किरीटमाली हैं ॥१५॥

**तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ।**
**गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥१६॥**

**अन्वयः**— भद्रे ! ते शुचः तदा प्रमृजामि यदा आततायिनः ब्रह्मबन्धोः शिरः गाण्डीवमुक्तैः विशिखैः उपाहरे दग्ध पुत्रा त्वम् यत् आक्रम्य स्नास्यसि ॥१६॥

**अनुवाद**— कल्याणि ! तुम्हारे शोक का अपनोदन मैं तब करूँगा जब कि उस आततायी ब्राह्मणाधम के

शिर को गाण्डीव धनुष से छोड़े गये बाणों से काटकर लाऊँगा और पुत्रों की अन्त्येष्टि क्रिया के पश्चात् तुम उस शिर पर पैर रखकर स्नान करोगी ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

शुचः शोकाश्रूणि । प्रमृजामि परिमार्जयामि । यद्यदा ब्रह्मबन्धोर्ब्राह्मणाधमस्य आततायिन इति '**अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ।**' इति स्मरणादत्राततायी शस्त्रपाणिस्तेन च पुत्रहन्तृत्वं लक्ष्यते। गाण्डीवाद्धनुषो मुक्तैर्विशिखैर्बाणैरुपाहरे त्वत्समीपमानयामि । यच्छिर आक्राम्यासनं विधाय । दग्धपुत्रा सती ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

**शुच** शब्द से शोकजन्य आंसुओं को कहा गया है । प्रमृजामि का अर्थ है दूर करूँगा । यत् शब्द यदा का बोधक है । ब्रह्म बन्धु का अर्थ है अधम ब्राह्मण । आततायियों का निरूपण करते हुए कहा गया है । **अग्निदो गरदश्चैव० इत्यादि** अर्थात् दूसरों के घर में आग लगाने वाले, दूसरे को विष खिलाकर मार डालने वाले, दूसरों पर प्रहार करने के लिए सदा हाथ में शस्त्र धारण किए रहने वाले, दूसरों के धन को चुराने वाले, दूसरे के खेत का अपहरण करने वाले तथा दूसरों की पत्नी को छीन लेने वाले ये छहो आततायी है । यहाँ पर **आततायी** शब्द से हाथ में शस्त्र धारण करके पुत्रों को मारने के कारण अश्वत्थामा को आततायी कहा गया है । **गाण्डीवाद् धनुषो० इत्यादि** गाण्डीव धनुष से छोड़ गये बाणों से अश्वत्थामा के शिर को काटकर तुम्हारे पास लाऊँगा और उस पर तुम अपने पैरों को रखकर अपने पुत्रों को जलाने के पश्चात् स्नान करोगी ॥१६॥

**इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सान्त्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः ।**
**अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥१७॥**

**अन्वयः**— इति वल्गुविचित्रजल्पै प्रियां सान्त्वयित्वा अच्युतमित्रसूतः दंशितः उग्रधन्वा कपिध्वजः रथेन गुरुपुत्रं अन्वाद्रवद् ॥१७॥

**अनुवाद**— इस तरह की मनोहर तथा विचित्र बातों से प्रिय पत्नी द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करके जिनके मित्र तथा सारथि भगवान् श्रीकृष्ण हीं है ऐसे कवच बाँधे हुए तथा भयङ्कर धनुष धारण किए हुए अर्जुन ने रथ के द्वारा अपने गुरु के पुत्र अश्वत्थामा का पीछा किया ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

वल्गवो रम्या विचित्रा जल्पा भाषणानि तैः । सोऽर्जुनः । अच्युत एव मित्रं सूतश्च यस्य । दंशितो बद्धकवचः । उग्रं धनुश्चापं यस्य । कपिर्हनुमान् ध्वजे यस्य सः । गुरोः पुत्रं रथेनान्वाद्रवदन्वधावत् ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

**अर्जुनने** उपर्युक्त प्रकार के मनोज्ञ तथा अद्भुत बातों से अपनी पत्नी द्रौपदी को सान्त्वाना प्रदान की और भगवान् श्रीकृष्ण रूपी मित्र और सारथि वाले अर्जुन ने कवच बाँधकर तथा भयङ्कर धनुष धारण करके रथ पर सवार होकर अश्वत्थामा का पीछा किया ।

**वल्गुविचित्रजल्पैः** का विग्रह **वल्गवः रम्याः विचित्रा जल्पा भाषणानि तैः** है । **अच्युतमित्रसूतः** पद का विग्रह **अच्युत एव मित्रम् सूतश्च यस्य** है । अर्जुन को कपिध्वज इस लिए कहा जाता है कि अर्जुन के ध्वज पर हनुमानजी सदा विराजमान रहते थे । **'उग्रं' धनुर्यस्य सः** यह उग्रधन्वा पद का विग्रह है ॥१७॥

**तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्कुमारहोद्विग्नमना रथेन ।**
**पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां यावद्गमं रुद्रभयाद्यथा कः ॥१८॥**

**अन्वयः**— रथेन आपतन्तं तं दूरात् विलक्ष्य उद्विग्नमनाः स कुमारहा, रुद्रभयाद् को यथा यावद्गमं उर्व्यां पराद्रवत्।।१८।।

**अनुवाद**— रथ से पीछा करने वाले अर्जुन को दूर से ही देखकर भयभीत तथा बच्चों को मारने वाले अश्वत्थामा अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा से रुद्र के भय से भागने वाले ब्रह्माजी के समान पृथिवी पर उतने दूर तक भागा जितना वह भाग सकता था ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

आपतन्तमाधावन्तम् । स द्रौणिः । कुमारहा बालघाती । उद्विग्नमनाः कम्पितहृदयः । प्राणपरीप्सुः प्राणान् लब्धुमिच्छुर्न तु कीर्तिम् । यावद्गमं यावद्गन्तुं शक्यं तावदुर्व्यां पराद्रवदपलायत । को ब्रह्मा मृगो भूत्वा सुतां जब्धुमुद्यतः सन् रुद्रस्य भयाद्यथा पलायते स्म । 'अर्क' इति पाठे वामनपुराणकथा सूचिता । तथा हि विद्युन्माली नाम कश्चिद्राक्षसो माहेश्वरस्तस्मै रुद्रेण सौवर्णं विमानं दत्तम्, ततोऽसावर्कस्य पृष्ठतो भ्राम्यन्विमानदीप्त्या रात्रिं विलोपितवान्, ततोऽर्केण निजतेजोभिर्द्रावयित्वा तद्विमानं पातितम्, तच्छ्रुत्वा कुपिते रुद्रे भयादर्कः पराद्रवत्, ततो रुद्रस्य क्रूरदृष्ट्या दन्दह्यमानः पतन्वाराणस्यां पतितो लोलार्कनाम्ना विख्यात इति ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

पीछा करते हुए अर्जुन को दूर से ही देखकर द्रोणाचार्य का पुत्र जो बालघाती था वह भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता था, अपनी कीर्ति की नहीं जितना दूर तक वह भाग सकता था उतने दूर तक भागा।

**रुद्रभयात् कः** का अर्थ है कि ब्रह्मा जब मृग का रूप धारण करके अपनी पुत्री के साथ ही सङ्गम करने के लिए तैयार हो गये थे उस समय क्रुद्ध रुद्र को देखकर भाग चले । जहाँ पर रुद्रभयाद् यथार्कः यह पाठ है तो उसके द्वारा वामन पुराणकी निम्नाङ्कित कथा सूचत होती है ।

विद्युन्माली नामक एक राक्षस था वह रुद्र का भक्त था । प्रसन्न होकर शिवजी ने उसको सोने का रथ प्रदान किया । उसके पश्चात् सूर्य के पीछे भ्रमण करते हुए उसने रात्रि को ही विलुप्त कर दिया । यह देखकर सूर्य ने अपने तेज से उसके विमान को द्रव बनाकर गिरा दिया । रुद्र ने जब सुना कि उस विमान को सूर्य ने गिरा दिया है तो वे कुपित हो गये । रुद्र के कुपित हो जाने पर भयभीत होकर सूर्य भाग चले । उस रुद्र की क्रोधभरी दृष्टि से देखे जाने के कारण जलते हुए सूर्य वाराणसी में जाकर गिर पड़े उसी समय से वे लोलार्क के नाम से विख्यात हो गये ।।१८।।

**यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् । अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेन आत्मत्राणं द्विजात्मजः ।।१९।।**

**अन्वयः**— यदा श्रान्तवजिनम् आत्मानम् अशरणम् ऐच्छत तदा द्विजात्मजः ब्रह्मशिरः अस्त्रं आत्मत्राणम् मेने ।।१९।।

**अनुवाद**— जब उसने देखा कि हमारे अश्व थक गये हैं अतएव अब हमारा रक्षक कोई नहीं तो अश्वत्थामा ने अपना रक्षक ब्रह्मास्त्र नामक अस्त्र को ही माना ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

अशरणं रक्षकरहितम् । ननु पलायनमेव रक्षकमस्ति, न, तस्यापि कुण्ठितत्वादित्याह । श्रान्ता वाजिनो यस्य तम् । ब्रह्मशिरोऽस्त्रं ब्रह्मास्त्रम् । द्विजात्मज इत्यदीर्घदर्शितामाह ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

जब अश्वत्थामा ने देखा कि मेरे रथ के घोड़े थक गये है अब मेरी रक्षा कोई नहीं कर सकता है तब उसने सोच लिया कि अब मेरी रक्षा ब्रह्मास्त्र नामक अस्त्र से ही हो सकती है । यदि कोई कहे कि वह भाग करके ही अपनी जान बचा सकता था तो इसका उत्तर है कि उसके घोड़े थक गये थे वे चल नहीं पाते थे । ब्रह्मशिरः ब्रह्मास्त्र

का ही वाचक है अश्वत्थामा के लिए द्विजात्मज शब्द के प्रयोग के द्वारा उसकी अदीर्घदर्शिता को सूचित किया गया है ॥१९॥

**अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः । अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥२०॥**

**अन्वयः**— अथ प्राणकृच्छ्र उपस्थिते सः उपसंहारम् अजानन् सलिलम् उपदृश्य समाहितः सन् तत् संदधे ॥२०॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् प्राण सङ्कट उपस्थित हो जाने पर अश्वत्थामा यद्यपि ब्रह्मास्त्र का उपसंहार नहीं जानता था फिर भी उसने जल का आचमन करके उसका प्रयोग कर दिया ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

तद्ब्रह्मास्त्रम् । समाहितः कृतध्यानः । उपसंहारमजानतोऽपि संधाने हेतुः- प्राणकृच्छ्र इति ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र का उपसंहार नहीं जानता था फिर भी प्राणसङ्कट उपस्थित होने के कारण ध्यान करके उसने उसका प्रयोग कर दिया ॥२०॥

**ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतोदिशम् । प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥२१॥**

**अन्वयः**— ततः प्रादुष्कृतं सर्वतोदिशम् प्रचण्डं तेजः अभिप्रेक्ष्य ततः प्राणापदम् अभिप्रेक्ष्य जिष्णुः विष्णुम् उवाच॥२१॥

**अनुवाद**— उस अस्त्र से सभी दिशाओं में फैलने वाले प्रचण्ड तेज को देखकर तथा उससे प्राणसङ्कट को देखकर अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

ततोऽस्त्रात् सर्वतोदिशं प्रादुष्कृतं तेजोऽभिप्रेक्ष्य ततः प्राणापदं चाभिप्रेक्ष्य ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

उस अस्त्र से चारो तरफ फैलने वाले भयङ्कर तेज को देखकर तथा उसके कारण प्राणसङ्कट को देखकर अर्जुन ने उसके विषय में भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा ॥२१॥

अर्जुन उवाच

**कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयङ्कर । त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥२२॥**

**अन्वयः**— हे भक्तानामभयङ्कर महाभाग कृष्ण संसृतेः दह्यमानानाम् एकः त्वम् अपवर्गः असि ॥२२॥

**अनुवाद**— हे भक्तों को अभय बनाने वाले महाभाग कृष्ण संसारचक्र में जलने वालों के संसार संताप को केवल आप ही विनाशक है ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रस्तुतं विज्ञापयितुं प्रथमं स्तौति- कृष्णेति चतुर्भिः । संसृतेर्हेतोर्दह्यमानानां तस्या अपवर्गोऽपवर्जयिता । नाशक इत्यर्थः॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रस्तुत तेज के विषय में बतलाने के लिए चार श्लोकों के द्वारा अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशसां करते हैं । अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा संसारचक्र में संतप्त जीवों के संताप को दूर करने वाले एक मात्र आप ही हैं ॥२२॥

**त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ।**
**मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥२३॥**

**अन्वयः**— त्वम् साक्षात् ईश्वरः प्रकृतेः परः आद्यः पुरुषः चित् शक्त्या मायां व्युदस्य कैवाल्ये आत्मनि स्थितः ॥२३॥

**अनुवाद**— आप साक्षात् ईश्वर हैं, प्रकृति से परे परम पुरुष हैं तथा इस जगत् के कारणभूत पुरुष हैं। यद्यपि आप कारण पुरुष हैं फिर भी सदा निर्विकार रहते हैं आप अपनी चित् शक्ति के द्वारा माया को दूर करके कैवल्य रूप आत्मा में स्थित रहते हैं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

यतस्त्वमीश्वरः साक्षात् कुतः यतः प्रकृतेः परः पुरुषः । तत्कुतः । यत आद्यः कारणम् । कारणत्वेऽप्यविकारितामाह। मायां व्युदस्याभिभूय कैवल्यरूपे आत्मन्येव स्थित इति ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि आप साक्षात् ईश्वर हैं, अतएव सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं, क्योंकि आप प्रकृति से परे परम पुरुष हैं अतएव आप जगत् के आदि कारण हैं ।

श्रीभगवान् जगत् के कारण होने पर भी निर्विकार ही रहते हैं इस बात को कहते हुए अर्जुन ने कहा कि आप माया को अभिभूत करके कैवल्य स्वरूप अपनी आत्मा में ही स्थित हैं ॥२३॥

**स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः । विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— स एव भगवान् मायामोहितचेतसः जीवलोकस्य स्वेन वीर्येण धर्मादि लक्षणं श्रेयः विधत्से ॥२४॥

**अनुवाद**— माया को अभिभूत करके अपनी आत्मा में स्थित ही आप माया से मोहित जीव समूह के द्वारा स्थित होकर अपने प्रभाव के द्वारा धर्मादि रूप कल्याण प्रदान करते हैं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

त्रिवर्गदातापि त्वमेवेत्याह- स इति । यस्त्वं मायामभिभूय स्थितः स एव मायाभिभूतस्य जनस्य धर्मादिफलमुपासितः सन्विधत्से । वीर्येण प्रभावेण ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने कहा कि हे भगवन् आप ही जीवों को धर्म, अर्थ तथा काम इस त्रिवर्ग को प्रदान करते हैं। जो आप माया को अभिभूत करके स्थित हैं वे ही आप मायाभिभूत जीवों की उपासना से प्रसन्न होकर उन सबों को अपने प्रभाव से धर्मादि रूप त्रिवर्ग को प्रदान करते हैं, यही इस श्लोक का अभिप्राय हैं ॥२४॥

**तथायं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया । स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥२५॥**

**अन्वयः**— अयं च त अवतारः भुवः भारजिहीर्षया, अनन्यभावानां स्वानां च असकृत् अनुध्यानाय ॥२५॥

**अनुवाद**— आपका यह अवतार पृथिवी का भार उतारने के लिए तथा आपके जो अनन्य भक्त हैं उनके बार-बार ध्यान करने के लिए हुआ है ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

तथा चानेनावतारेण तव साधुपक्षपातो लक्ष्यत इत्याह- तथेति । किं भूभारहरणं मदिच्छामात्रेण न भवति तत्राह । स्वानां ज्ञातीनामनुध्यानाय च तथानन्यभावानामेकान्तभक्तानां च ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

**तथायम्० इत्यादि** श्लोक से अर्जुन ने कहा कि इस अवतार के द्वारा आपका सज्जनों के प्रति पक्षपात लक्षित होता है । यदि भगवान् कहें कि पृथिवी के भार का अपहार मेरी इच्छा मात्र से नहीं हो सकता है क्या कि उसके लिए मेरा यह अवतार हुआ है, तो इसके उत्तर में अर्जुन ने कहा बन्धु बान्धवों तथा आपके जो अनन्य भक्त हैं उनके ध्यान के लिए आपका अवतार हुआ है ।।२५।।

**किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् । सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ।।२६।।**

**अन्वयः**— हे देवदेव । इदं किंस्वित् कुतो वा एति इति अहम् न वेद्मि सर्वतोमुखम् परमदारुणं तेजः आयाति ।।२६।।

**अनुवाद**— मुझे इस बात का पता नहीं चलता है कि यह क्या है ? तथा कहाँ से आ रहा है चारो ओर फैलता हुआ अत्यन्त भयङ्कर तेज आ रहा है ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

एवं स्तुत्वा प्रस्तुतं विज्ञापयति- किमिति । किमात्मकमिदं कुतो वा आयातीति । स्विद्वितर्के ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से भगवान् की स्तुति करके अर्जुन ने प्रस्तुत बात बतलायी कि यह क्या है और कहाँ से आ रहा है ? स्वित् अव्यय का प्रयोग वितर्क के अर्थ में हुआ हैं ।।२६।।

श्रीभगवानुवाच

**वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् । नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ।।२७।।**

**अन्वयः**— प्राणवाधे उपस्थिते इदं द्रोणपुत्रस्य प्रदर्शितं, ब्राह्मं अस्त्रं वेत्थ असौ संहारं न वेद ।।२७।।

**अनुवाद**— प्राण सङ्कट उपस्थित होने के कारण द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के द्वारा प्रयुक्त इसे तुम ब्रह्मास्त्र समझो । अश्वत्थामा इसको लौटाना नहीं जानता है ।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

इदं द्रोणापुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रम् । तेन च प्राणबाधे प्राप्ते प्रदर्शितं केवलम् । न तत्प्रयोगे कुशल इत्यर्थः । यतोऽसावुपसंहारं न वेद । एतच्च त्वं तु वेत्थ जानासि ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

इसको तुम ब्रह्मास्त्र जानो । प्राणसङ्कट उपस्थित होने पर उसने इसका केवल प्रदर्शन किया है । इसके प्रयोग में अश्वत्थामा कुशल नहीं है क्योंकि वह इसका उपसंहार नहीं जानता है । तुम तो इसके उपसंहार को जानते हो ।।२७।।

**नह्यस्यान्यतमं किंचिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् । जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ।।२८।।**

**अन्वयः**— अस्य प्रत्यवकर्शनं किंचिदन्यतमं अस्त्रं न त्वम् अस्त्रज्ञः असि, अस्त्रतेजसा हि उनद्धम् अस्त्रतेजः जहि ।।२८।।

**अनुवाद**— किसी भी दूसरे अस्त्र में इसको क्षीण करने की शक्ति नहीं है । तुम तो अस्त्रज्ञ हो, अतएव ब्रह्मास्त्र के ही तेज से इसके उत्कट तेज को नष्ट कर दो ।।२८।।

### भावार्थ दीपिका

प्रत्यवकर्शनं कृशत्वकरम् । निवर्तकमित्यर्थः । अतस्तदस्त्रतेज उन्नद्धमुत्कटं ब्रह्मास्त्रतेजसैव जहि घातय । त्वत्प्रयुक्तं चास्त्रं तदुपसंहृत्य स्वयमुपशाम्येत् । यतस्त्वमस्त्रज्ञोऽसि ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् ने कहा कि इस अस्त्र के तेज को क्षीण करने वाला कोई भी दूसरा अस्त्र नहीं है। तुम तो शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता ही अतएव ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके इसका जो भयङ्कर तेज है उसको तुम शान्त कर दो ॥२८॥

सूत उवाच

**श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा। स्पृष्ट्वापस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥२९॥**

**अन्वयः**— भगवता प्रोक्तं श्रुत्वा परवीरहा फाल्गुन अपः स्पृष्ट्वा तं परिक्रम्य ब्राह्माय ब्राह्मं संदधे ॥२९॥

### सूतजी ने कहा

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन ने जल का आचमन किया और भगवान् श्रीकृष्ण की परिक्रमा की तथा उस ब्रह्मास्त्र को निवर्तित करने के लिए ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

परे शत्रवस्त एव वीरास्तान्हन्तीति तथाविधः फाल्गुनोऽर्जुनोऽपः स्पृष्ट्वाचम्य तं श्रीकृष्णं परिक्रम्य प्रदक्षिणीकृत्य। ब्राह्माय ब्रह्मास्त्रं निवर्तयितुम् ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की बातों को सुनकर अर्जुन जल का अचमन करके भगवान् की परिक्रमा किए और अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को लौटाने के ही लिए उसे विनष्ट करने के लिए नहीं, ब्रह्मास्त्र का अनुसंधान किये ॥२९॥

**संहत्यान्योन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते। आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥३०॥**

**अन्वयः**— उभयोः शरसंवृते तेजसी अन्योन्यम् संहत्य रोदसीखं च आवृत्य अर्कवह्निवत् ववृधाते ॥३०॥

**अनुवाद**— बाणों से वेष्टित दोनों ब्रह्मास्त्रों का तेज परस्पर में एक दूसरे से टकराकर सूर्य तथा संवर्तकाग्नि के समान तेज आकाश और अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर फैल गया ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

ततश्चोभयोर्ब्रह्मास्त्रयोस्तेजसी शरैः संवृते संवेष्टिते परस्परं मिलित्वा ववृधाते अवर्धेताम्। किं कृत्वा। रोदसी द्यावापृथिव्यौ खमन्तरिक्षं चावृत्य। यथा प्रलये सङ्कर्षणमुखाग्निरुपरिस्थितोऽर्कश्च संहत्य वर्धेते तद्वत् ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

अर्जुन के द्वारा ब्रह्मास्त्र का संधान कर दिए जाने के पश्चात् दोनों ब्रह्मास्त्रों का बाणों से वेष्टित तेज परस्पर में एक दूसरे से टकराकर इतना बढ़ा कि वह भूलोक से लेकर स्वर्गलोक पर्यन्त व्याप्त हो गया। जैसे प्रलयकाल में सङ्कर्षण के मुख से निकली हुयी अग्नि और सूर्य का तेज दोनों बढ़ते हैं उसी तरह से वे दोनों तेज बढ़े ॥३०॥

**दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तयोस्त्रींल्लोकान्प्रदहन्महत्। दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥३१॥**

**अन्वयः**— त्रीन् लोकान् प्रदहन् तयोः महत् तेजः दृष्ट्वा तु दह्यमानाः सर्वाः प्रजाः, सांवर्तकम् अमंसत् ॥३१॥

**अनुवाद**— तीनों लोकों के जला देने वाली अर्जुन तथा अश्वत्थामा दोनों के अस्त्रों की महान अग्नि को देखकर जलती हुयी सी सारी प्रजाओं ने समझ लिया कि यह प्रलयाग्नि है ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

तयोर्द्रौणिफाल्गुनयोः। तेन दह्यमानाः सांवर्तकः प्रलयाग्निममंसत मेनिरे ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

अश्वत्थामा और अर्जुन दोनों के ब्रह्मास्त्र जब एक दूसरे से टकराये तो उन दोनों से आविर्भूत तेज तीनों लोकों को जलाने लगा। उससे जलती हुयी प्रजाओं ने समझा, कि लगता है कि यह प्रलय कालीन अग्नि हैं ॥३१॥

**प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् । मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनो द्वयम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— तम् प्रजोपप्लवम् लोकव्यतिकरं च आलक्ष्य अर्जुनः वासुदेवस्य मतं द्वयम् संजहार ॥३२॥

**अनुवाद**— उस अग्नि के कारण प्रजाओं तथा लोकों का नाश देखकर अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण की अनुमति प्राप्त करके उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा लिया ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

लोकानां व्यतिकरं व्यत्ययं नाशमित्यर्थः । वासुदेवस्य मतं चालक्ष्य ब्रह्मास्त्रद्वयमुपसंहृतवान् ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

श्लोक का व्यतिकर शब्द नाश का बोधक है। अर्जुन ने देखा कि इन दोनों ब्रह्मास्त्रों के तेज से संसार संतप्त हो रहा है। ऐसे तो लोगों का नाश हो जायेगा। उन्होंने देखा कि श्रीभगवान् को भी यही अभिमत है। उन्होंने उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा लिया ॥३२॥

**तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् । बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥३३॥**

**अन्वयः**— ततः तरसा दारुणं गौतमी सुतम् आसाद्य आमर्षताम्राक्ष रशनया पशुं यथा बबन्ध ॥३३॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् वेग पूर्वक भयङ्कर कर्म करने वाले गौतमी देवी के पुत्र अश्वत्थामा को पकड़कर क्रोध से लाल आँखें किए हुए अर्जुन ने यज्ञ पशु के समान उसे रस्सी से बाँध लिया ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

गौतमवंशजा गौतमी कृपी तस्याः सुतम् । अमर्षेण कोपेन ताम्रे अक्षिणी यस्य सः । निष्कृपत्वे दृष्टान्तः- पशुं यथेति। तस्य बन्धनं धर्म इत्यत्र दृष्टान्तः- यथा याज्ञिकः पशुमिति । रशनया रज्वा ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

अश्वत्थामा की माता का नाम कृपी था; किन्तु गौतम वंश में उत्पन्न होने के कारण उनको गौतमी कहा गया है।

दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा लेने के पश्चात् अर्जुन वेग पूर्वक अश्वत्थामा के पास पहुँच गये और अश्वत्थामा को पकड़कर उन्होंने उसको उसी तरह से बाँध दिया, जिस तरह से यज्ञ पशु को बाँध दिया जाता है। **पशुं रशनया यथा** कहकर यह सूचित किया गया है कि जिस तरह यज्ञपशु को बाँधना धर्म है, उसी तरह निन्दित कर्म करने वाले अश्वत्थामा को भी बाँध देना धर्म ही है ॥३३॥

**शिबिराय निनीषन्तं रज्ज्वा वद्ध्वा रिपुं बलात् । प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥३४॥**

**अन्वयः**— बलात् रिपुं रज्ज्वा बद्ध्वा शिविराय निनीषन्तं प्रकुपित अम्बुजेक्षणः भगवान् प्राह ॥३४॥

**अनुवाद**— शत्रु को बल पूर्वक रस्सी से बाँधकर शिविर में लाने के इच्छुक अर्जुन को कमल के समान मनोहर नेत्र वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने क्रोध करके कहा ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

शोकरोषादियुक्तस्याप्यर्जुनस्य धर्मनिष्ठाख्यापनाय श्रीकृष्णवाक्यम् । तदाह षड्भिः शिबिराय राजनिवेशाय नेतुमिच्छन्तम्। प्रकुपित इवेति ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि अर्जुन शोक तथा क्रोध दोनों से युक्त थे फिर भी अर्जुन की धर्मनिष्ठता को बोधित करने के लिए भगवान् ने उनसे कहा भगवान् के वाक्यों कि छह श्लोकों में कहा गया है । जहाँ पर राजाओं का निवास होता है, उसे शिविर कहते हैं । प्रकुपित इव कहकर श्रीधरस्वामी कहते हैं कि श्रीभगवान् कुपित नहीं थे फिर भी कुपित के समान कहे ॥३४॥

**मैनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि । योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥३५॥**

**अन्वयः**— यः असौ निशि सुप्तान् अनागसः बालकान् अवधीत् एनं त्रातुं न अर्हसि इमं ब्रह्मबन्धुम् जहि ॥३५॥

**अनुवाद**— अर्जुन इसने रात्रि में सोए हुए निरपराध बालकों का वध किया है अतएव आप इसको बचाएं मत, अपितु इसका आप वध कर दें ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

अनागसो निरपराधान् ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् ने अर्जुन से कहा कि इसने रात्रि में सोए हुए निरपराध बालकों का वध किया है । यह अधम ब्राह्मण है इसको आप बचाइये नहीं इसका वध कर दीजिये ॥३५॥

**मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् । प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥३६॥**

**अन्वयः**— मत्तम् प्रमत्तम्, उन्मत्तम्, सुप्तम्, बालम्, स्त्रियम्, जडम्, प्रपन्नम्, विरथम् भीतम् रिपुम् धर्मवित् न हन्ति ॥३६॥

**अनुवाद**— मद्य का सेवन करने से मत्त, असावधान तथा ग्रह या बात इत्यादि के कारण पागल हुए, सोए हुए, बालक, स्त्री, उद्योग रहित, शरणागत, जिसका रथ टूट गया हो तथा भयभीत शत्रु का धर्मज्ञ पुरुष वध नहीं करते हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

रिपोरपि सुप्तस्य बालस्य च वधो न धर्म इत्यन्यार्थैर्दर्शयति- मत्तमिति । मत्तं मद्यादिना । प्रमत्तमनवहितम् । उन्मत्तं ग्रहवातादिना । जडमनुद्यमम् प्रपन्नं शरणागतम् । विरथं भग्नरथम् ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

शत्रु का भी बालक यदि सोया हो तो उसका वध करना धर्म नहीं पाप है । इस बात को श्रीभगवान् अन्य अर्थों को उपन्यस्त करते हुए कहते हैं । धर्मज्ञ पुरुष इन दश प्रकार के शत्रुओं को नहिं मारते हैं— १. मत्त (जो मद्यापन करके मत्त हो गया हो), २. प्रमत्त, (असावधान), ३. उन्मत्त (ग्रह अथवा वात इत्यादि के कारण पागल हो गया हो), ४. सुप्त (सोये हुए), ५. बालम् (बालक), ६. स्त्री, ७. जड, ८. प्रपन्न (शरणागत), ९. विरथ (जिसका रथ टूट गया हो), १०. भयभीत ॥३६॥

**स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥३७॥**

**अन्वयः**— यः अधृणः खलः परप्राणैः स्वप्राणान् पुष्णाति तस्य हि श्रेयः तद्वधः यद् दोषात् पुमान् अधः याति ॥३७॥

**अनुवाद**— जो क्रूर और दुष्ट दूसरे को मार करके अपने प्राणों की रक्षा करता है उसका इसी में कल्याण है कि उसका वध कर दिया जाय । अन्यथा उस पाप के कारण वह मनुष्य नरक में जाता हैं ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

तद्वधो दण्डरूपस्तस्यैव श्रेयः पुरुषार्थः । यद्यतो दण्डप्रायश्चित्तरहिताद्दोषात्स पुमानधो यातीति । तथा च स्मरन्ति– **'राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । विधूतकल्मषा यान्ति स्वर्गं सुकृतिनो यथा ।।'** इति ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

अश्वत्थामा का जो दण्ड रूप से तुम वध करोगे उससे उसका ही कल्याण होगा, क्योंकि दण्ड रूपी प्रायश्चित्त से रहित दोष के कारण पापी मनुष्य नरक में जाता है । स्मृतियों में कहा भी गया है **राजभिर्धृतदण्डस्तु० इत्यादि** अर्थात् पाप करने वाले मनुष्य को जब राजा दण्ड दे देता है, तो उस दण्ड के कारण वह मनुष्य निष्पाप हो जाता है और वह पुण्यवानों के समान स्वर्ग में जाता है ।।३७।।

**प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम । आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ।।३८।।**

**अन्वयः**— मम शृण्वतः भवता प्रतिश्रुतं यत् हे मानिनि यः ते पुत्रहा तस्य शिर आहरिष्ये ।।३८।।

**अनुवाद**— मेरे सामने आपने द्रौपदी के समक्ष प्रतिज्ञा की है कि हे मानिनि ! जिसने तुम्हारे पुत्रों को मारा है मैं उसका शिर काटकर लाऊँगा ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।

**तदसौ वध्यतां पाप आतताय्यात्मबन्धुहा । भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान्कुलपांसनः ।।३९।।**

**अन्वयः**— हे वीर असौ आततायी आत्मबन्धुहा कुलपांसनः पापः भर्तुश्च विप्रियं कृतवान् तद असौ वध्यताम्।।३९।।

**अनुवाद**— हे वीर ! यह अततायी अपने बान्धवों को मारने वाला तथा अपने वंश को विनष्ट करने वाला है । यही नहीं यह अपने स्वामी दुर्योधन के भी विरुद्ध कार्य किया है, अतएव उसको मार दो ।।३९।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।

सूत उवाच

**एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः । नैच्छद्धन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ।।४०।।**

**अन्वयः**— एवं धर्मं परीक्षता कृष्णेन चोदितः महान् पार्थः यद्यपि आत्महनं तं गुरुसुतं हन्तुं नैच्छत् ।।४०।।

**अनुवाद**— इस तरह से अर्जुन के धर्म की परीक्षा लेने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्ररित किया फिर भी महान् अर्जुन अपने पुत्रों को मारने वाले अपने गुरु अश्वत्थामा के पुत्र को नही मारना चाहें ।।४०।।

**भावार्थ दीपिका**

यद्यपि चोदितस्तथापि हन्तुं नैच्छत् आत्महनं पुत्रहन्तारमपि । यतो महान् ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि भगवान् ने अर्जुन को प्रेरित किया कि अर्जुन अश्वत्थामा का वध कर दें किन्तु अर्जुन अश्वत्थामा का वध नहीं करना चाहे, क्योंकि अश्वत्थामा आचार्य द्रोण का पुत्र था । और महान् होने के कारण अर्जुन का हृदय विशाल था ।।४०।।

**अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविन्दप्रियसारथिः । न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान्हतान् ।।४१।।**

**अन्वयः**— अथ स्वशिबिरम् उपेत्य गोविन्दप्रियसारथिः अर्जुनः हतान् आत्मजान् शोचन्त्यै प्रियायै तं न्यवेदयत्।।४१।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् अपने शिबिर में आकर, भगवान् गोविन्द जिनके प्रिय सारथि थे, वे अर्जुन अपने मारे गये पुत्रों के विषय में शोक करने वाली द्रौपदी को अश्वत्थामा को निवेदित कर दिये ।।४१।।

**भावार्थ दीपिका**

गोविन्दः प्रियः सारथिर्यस्य सः । आत्मजान् शोचन्त्यै ।।४१।।

**भाव प्रकाशिका**

अर्जुन के भगवान् प्रियतम थे और उनके सारथि का भी काम किये अतएव अर्जुन को **गोविन्दप्रिय सारथिः** कहा गया है । जिस समय द्रौपदी अपने पुत्रों के विषय में शोक कर रही थी उसी समय वे अश्वत्थामा को द्रौपदी को सौंप दिए ।।४१।।

**तथाऽऽहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।**
**निरीक्ष्य कृष्णाऽपकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ।।४२।।**

**अन्वयः**— तथा आहृतम् पशुवत् पाशबद्धं कर्मजुगुप्सितेन, अवाङ्मुखम् अपकृतं गुरोः सुतम् निरीक्ष्य वामस्वभावा कृष्णा कृपया ननाम च ।।४२।।

**अनुवाद**— इस तरह अपमान पूर्वक लाये गये, पशु के समान पाश में बाँधे गये, निन्दित कर्म करने के कारण नीचे मुख किए हुए अपकारी तथा अपने गुरु के पुत्र अश्वत्थामा को देखकर सुन्दर स्वभाव वाली द्रौपदी का हृदय कृपा से भर गया और उसने अश्वत्थामा को प्रणाम किया ।।४२।।

**भावार्थ दीपिका**

तथा परिभवेनाहृतमानीतम् । कर्मणो जुगुप्सितेन दोषेणावाङ्मुखमधोवदनम् । अपकृतमपकारिणम् । कृपया निरीक्ष्य। वामः शोभनः स्वभावो यस्याः सा ।।४२।।

**भाव प्रकाशिका**

अनादर पूर्वक लाये गये अश्वत्थामा को दौपद्री ने देखा । अश्वत्थामा उस समय निन्दित कर्म करने के कारण नीचे मुख किए हुए थे अपकारी भी अश्वत्थामा को देखकर सुन्दर स्वभाव वाली द्रौपदी ने उनको प्रणाम किया ।।४२।।

**उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती । मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ।।४३।।**

**अन्वयः**— अस्य बन्धनानयनं असहन्ती च उवाच मुच्यतां मुच्यताम् एष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ।।४३।।

**अनुवाद**— अश्वत्थामा को बान्धकर लाने को नहीं सह सकने के कारण द्रौपदी ने कहा इनको खोल दीजिए खोल दीजिए ये ब्राह्मण हैं ब्राह्मण सबों के गुरु होते हैं ।।४३।।

**भावार्थ दीपिका**

ननाम चोवाच चेति चकाराभ्यां संभ्रमः सूचितः । बन्धनेनाऽऽनयनमसहमाना ।।४३।।

**भाव प्रकाशिका**

**नानाम च उवाच च** इन दो चकारों के द्वारा द्रौपदी की शीघ्रता को सूचित किया गया, वह अश्वत्थामा को बाँधकर लाये जाने को नहीं बर्दास्त कर पा रही थी । उसने शीघ्रता से कहा कि ये ब्रह्मण हैं ब्राह्मण सबों का गुरु होता है । इनको आप शीघ्र ही बन्धनमुक्त कर दीजिए ।।४३।।

**सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः । अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ।।४४।।**
**स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते । तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी।।४५।।**

**अन्वयः**— यदनुग्रहात् सरहस्यः सविसर्गोपसंयमः धनुर्वेदः अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितः स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते तस्यात्मनोऽर्धं पत्नी कृपी न अन्वगात् वीरसूः आस्ते ।।४४-४५।।

**अनुवाद**— जिनकी कृपा से आपने गोप्यमन्त्रों के साथ अस्त्र प्रयोगों तथा उपसंहार के साथ धनुर्वेद तथा अस्त्र समूह की शिक्षा प्राप्त की है । वे द्रोणाचार्य आपने पुत्र के रूप में ये विद्यमान हैं । उनके शरीर के आधा भाग उनकी पत्नी कृपी हैं । वे द्रोणाचार्य के साथ अपना शरीर त्याग नहीं कीं क्योंकि वे वीर पुत्र की माता हैं ।।४४-४५।।

### भावार्थ दीपिका

सरहस्यो गोप्यमन्त्रसहितः । विसर्गोऽस्त्रप्रयोगः उपसंयमः ताभ्यां सहितोऽस्त्रसमूहश्च ।।४४।। किंच तस्य द्रोणस्यात्मा देहस्तस्यार्धं कृपी आस्ते । अर्धत्वे हेतुः- पत्नी । **'अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी'** इति श्रुतेः । **जायापती अग्निमादधीयातां'** इति श्रुतेरुभयोरेकाकारत्वावगमाच्च । ननु भर्तरि मृते सा कथं जीवति तत्राह- नान्वगाद्भर्तारम् । यतो वीरसूः पुत्रवती ।।४५।।

### भाव प्रकाशिका

द्रौपदी ने कहा कि आपने जिन दोणाचार्य की कृपा प्राप्त करके गोप्यमन्त्रों वाले अस्त्रों के प्रयोग तथा उन अस्त्रों के उपसंहार के साथ धनुर्वेद तथा अस्त्रसमूह की शिक्षा प्राप्त की है वे ही द्रोणाचार्य अपने पुत्र के रूप में विद्यमान हैं । उन भगवान् द्रोणाचार्य के शरीर का आधा भाग उनकी पत्नी कृपी हैं । श्रुति भी कहती हैं- **अर्द्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नीं** अर्थात् पत्नी पति के शरीर का आधाभाग होती है । **जयापती अग्निमादधीयाताम् ।** पत्नी तथा पति दोनों मिलकर अग्न्याधान करें । इस श्रुति के द्वारा दोनों की एकाकारता सूचित होती हैं । प्रश्न है कि पति के मर जाने पर कृपी कैसे जीवित हैं तो इसका उत्तर है कि वे वीर पुत्र की माता हैं ।।४४-४५।।

**तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् । वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः ।।४६।।**

**अन्वयः**— हे धर्मज्ञ महाभाग तत् कुलम् भवद्भिः गौरवम् । तत् अभीक्ष्णशः पूज्यं वन्द्यं वृजिनं प्राप्तुं नार्हति ।।४६।।

**अनुवाद**— हे धर्मज्ञ महाभाग ! उनका वंश आपलोगों के द्वारा गौरव प्राप्त है । अतएव सदा पूज्य तथा वन्दनीय उस कुल को आप दुःख नहीं दे सकते हैं ।

### भावार्थ दीपिका

तत्तस्माद्गौरवं गुरोः कुलं भवद्भिः कर्तृभिर्वृजिनं दुःखं प्राप्तुं नार्हति । किंतु पूज्यं वन्द्यं च ।।४६।।

### भाव प्रकाशिका

अतएव गौरव प्राप्त गुरु के वंश को आप दुःखी न बनायें क्योंकि वह वंश तो सदा पूजनीय एवं वन्दनीय है ।।४६।।

**मारोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता । यथाहं मृतवत्सार्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ।।४७।।**

**अन्वयः**— यथा मृतवत्सा आर्ता अश्रुमुखी अहं मुहुरोदिमि तथा अस्य पतिदेवता जननी गौतमी मारोदीत् ।।४७।।

**अनुवाद**— जिस तरह पुत्रों के मर जाने के कारण आर्त बनी हुयी तथा आँसुओं भरे मुख वाली मैं बार-बार रो रही हूँ उसी तरह पतिव्रता इनकी माता गौतम वंशोद्भूत कृपी न रोएँ ।।४७।।

### भावार्थ दीपिका

मृतवत्सा मृतपुत्रा ।।४७।।

### भाव प्रकाशिका

मूल का मृतवत्सा पद का अर्थ है जिसके पुत्र मर गये हैं ।।४७।।

**यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः । तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितम् ॥४८॥**

**अन्वयः**— यैः अकृतात्मभिः राजन्यैः ब्रह्मकुलं कोपितम् तत्कुलम् शुचार्पितम् ब्रह्मकुलम् सानुबन्धं आशु प्रदहति ।।४८।।

**अनुवाद**— जो अनात्मज्ञ क्षत्रिय ब्राह्मणों के वंश को क्रुद्ध बना देते हैं उनके सपरिवार वंश को ब्राह्मणों का शोकसंतप्त वंश शीघ्र ही भस्म कर देता है ।।४८।।

### भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषमाह- यैरिति । तेषां राजन्यानां कुलं कर्म । कथंभूतम् । सानुबन्धं सपरिवारम् । शुचा शोकेनार्पितं व्याप्तं च । ब्रह्मकुलं कर्तृ । प्रदहति ।।४८।।

### भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों के वंश को कुपित बनाने पर अनात्मज्ञ क्षत्रियों के वंश को ब्राह्मण का शोक सन्तप्त वंश भस्म कर देता है इस भस्म क्रिया में अनात्मज्ञ क्षत्रियों का वंश कर्म है और शोक सन्तप्त ब्राह्मणों का वंश कर्ता है ॥४८॥

सूत उवाच

**धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् । राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ॥४९॥**

**अन्वयः**— हे द्विजाः धर्म्यं, न्यायं, सकरुणं, निर्व्यलीकं सममहत् वचः श्रुत्वा राजा धर्मसुत; प्रत्यनंदत् ।।४९।।

### सूतजी ने कहा

**अनुवाद**— हे शौनकादि ऋषियों द्रौपदी के धर्म युक्त, न्यायानुकूल करुणाभरी, निष्कपट, तथासमता पूर्ण होने के कारण महत्त्व पूर्ण वाणी को सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने उसका अभिनन्दन किया ।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

धर्म्यमित्यादयो वचसः षड्गुणाः पूर्वश्लोकषट्के द्रष्टव्याः । तत्र धर्म्ये धर्मादनपेतं मुच्यतां मुच्यतामिति । न्याय्यं न्यायादनपेतं सरहस्यं इत्यादि । सकरुणं तस्यात्मनोऽर्धमिति । निर्व्यलीकं तद्धर्मज्ञेति । समं मारोदीदिति। दुःखसाम्योक्तेः । महत् यैः कोपितमिति निष्ठुरोक्त्या हितोपदेशात् । एवं भूतं राज्ञ्या वचो हे द्विजाः, राजा प्रत्यनन्ददनुमोदितवान् ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

द्रौपदी की वाणी के धर्म्य इत्यादि छह गुण बतलाये गये है वे सभी गुण इससे पहले के छह श्लोकों से सूचित है । धर्म्य का अर्थ है धर्मयुक्त । वह **मुच्यताम् मुच्यताम्** इत्यादि श्लोक में है । न्याय्यम् का अर्थ है न्यायानुकूल यह गुण **सरहस्यो धनुर्वेदः** इत्यादि श्लोक से स्पष्ट है । **तस्यात्मनोर्द्धम इत्यादि** से द्रौपदी की वाणी की करुणा युक्तता सूचित होती है । उस वाणी की कपट रहितता **तद् धर्मज्ञ इत्यादि** श्लोक से स्पष्ट है । **मारोदित् इत्यादि** श्लोक से समता युक्त वाणी प्रतीत होती है । क्योंकि इस श्लोक में दुःख की समता बतलायी गयी है। द्रौपदी की वाणी की श्रेष्ठता **यैः कोपितम्** इत्यादि निष्ठुर वाणी से ज्ञात होती है । इस श्लोक में द्रौपदी ने कल्याण का उपदेश किया है ।

इस प्रकार की द्रौपदी की वाणी का महाराज युधिष्ठिर ने अनुमोदन किया ।।४९।।

**नकुलः सहदेवश्च ययुधानो धनंजयः । भगवान्देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥५०॥**

**अन्वयः**— नकुलः सहदेवः युयुधानः धनंजयः भगवान् देवकीपुत्रः ये च तत्र अन्ये तथा याश्च योषितः तत्र आसन् ते सर्वे द्रौपद्याः वचसः समर्थनम् आकार्षुः ।।५०।।

**अनुवाद**— नकुल, सहदेव, युयुधान, अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण तथा वहाँ पर विद्यमान जो दूसरे लोग थे वे सब तथा वहाँ जो स्त्रियाँ थीं वे भी द्रौपदी की बात का समर्थन कीं ।।५०।।

### भावार्थ दीपिका

नकुलादयश्च प्रत्यनन्दन । ययुधानः सात्यकिः ।।५०।।

### भाव प्रकाशिका

नकुल इत्यादि जो थे उन लोगों ने तथा सात्यकि ने भी द्रौपदी का समर्थन किया । सात्यकि का ही नाम युयुधान है ।।५०।।

**तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः । न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून्वृथा ।।५१।।**

**अन्वयः**— तत्र अमर्षितः भीमः आह यः सुप्तान् शशून् न भर्तुः न आत्मनः च अर्थे अपितु वृथा अहन् तस्य वध एव श्रेयान् स्मृतः ।।५१।।

**अनुवाद**— वहाँ पर क्रुद्ध हुए भीम ने कहा कि जिसने न तो अपने स्वामी के लिए और न अपने लिए बल्कि व्यर्थ ही सोये हुए बालकों को मारा है, उसका तो वध ही कल्याणकारी कहा गया है ।।५१।।

### भावार्थ दीपिका

तस्य तथाविधस्य द्रौणेर्वध एव श्रेष्ठः । अन्यथाऽस्य नरकपातप्रसङ्गात् । तदाह- न भर्तुरिति । अहन् जघान ।।५१।।

### भाव प्रकाशिका

भीम ने कहा कि यह पापी है, अतएव इस तरह का पाप करने वाले का तो वध करना ही श्रेष्ठ है । यदि इसका वध नहीं किया गया तो फिर यह नरकगामी होगा ।।५१।।

**निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः । आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ।।५२।।**

**अन्वयः**— भीमगदितं, द्रौपाद्यश्च निशम्य चतुर्भुजः सख्युः वदनं आलोक्य हसन्निव इदम् आह ।।५२।।

**अनुवाद**— भीम की तथा द्रौपदी की दोनों की बातों को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण अपने मित्र अर्जुन के मुख को देखकर हँसते हुए के समान यह कहे ।।५२।।

### भावार्थ दीपिका

चतुर्भुजोक्तेरयं भावः- भीमे तं हन्तुं प्रवृत्ते द्रौपद्यां च सहसा तन्निवारणे प्रवृत्तायामुभयोः संवरणायाविष्कृतचतुर्भुज इति। संदिहानस्य सख्युर्जुनस्य ।।५२।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को चतुर्भुज कहने का अभिप्राय यह है कि भीम जब उसको मारने लग जायेंगे । और द्रौपदी उनको रोकने लग जायेगी तो दोनों को रोकने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना चतुर्भुज रूप बना लिया । उस समय संदेह में पड़े हुए अर्जुन के मुख को देखकर भगवान् मुस्कुराते हुए कहे ।।५२।।

श्रीभगवानुवाच

**ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः । मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ।।५३।।**

**अन्वयः**— ब्रह्मबन्धुः न हन्तव्यः आततायी वधार्हणः मयैव उभयम् आम्नातम् त्वम् अनुशासनम् परिपाहि ।।५३।।

**अनुवाद**— अधम भी ब्राह्मणको नहीं मारना चाहिए, और आतातायी का वध कर ही देना चाहिए, इन दोनों बातों को मैने शास्त्र में कहा है, अतएव तुम मेरी आज्ञा का पालन करो ।।५३।।

### भावार्थ दीपिका

वधार्हणो वधार्हः । मयैव शास्त्रकृता ब्राह्मणो न हन्तव्यः' तथा 'आततायिनमायान्तमपि वेदान्तपारगम् । जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ।।' इति च वदता । तदुभयमप्यनुशासनं परिपालय ।।५३।।

**भाव प्रकाशिका**

वधार्हण शब्द का अर्थ है वध कर देने योग्य श्रीभगवान् ने कहा कि शास्त्रों का निर्माता मैं ही हूँ शास्त्रों में मैंने कहा है कि **ब्राह्मणो न हन्तव्यः** ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए। तथा मैंने यह भी कहा है **अप्ततायिनम्० इत्यादि** यदि वेदान्त शास्त्र में पारंगत भी कोई आततायी मारने की इच्छा से आ रहा हो तो उसका वध कर देना चाहिए। उसको मारने से ब्रह्महत्या का दोष नहीं लगता है। अतएव मेरी इन दोनों आज्ञाओं का तुम पालन करो ॥५३॥

**कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम्। प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ॥५४॥**

**अन्वयः**— प्रियाम् सान्त्वयता त्वया यत् प्रतिश्रुतं तत् सत्यं कुरु। भीमसेनस्य, पाञ्चाल्या, मह्यमेव च प्रियं कुरु ॥५४॥

**अनुवाद**— अपनी प्रिया द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए तुमने जो प्रतिज्ञा की थी उसको सत्य करो भीमसेन, द्रौपदी और मेरा भी प्रिय कार्य करो ॥५४॥

**भावार्थ दीपिका**

तव च प्रतिज्ञां पूरयेत्याह- कुर्विति। प्रियां सान्त्वयता त्वया यत्प्रतिश्रुतं हननं तच्च सत्यं कुरु प्रियं च कुरु। मह्यं मम। तत्र वधे भीमस्य प्रियं भवति। अवधे द्रौपद्याः। द्वये श्रीकृष्णस्य ॥५४॥

**भाव प्रकाशिका**

**कुरुप्रतिश्रुतम् इत्यादि** वाक्य से भगवान् ने कहा तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए तुमने जो अश्वत्थामा के वध की प्रतिज्ञा की थी उसको सत्य करो और द्रौपदी का प्रिय कार्य भी करो और मेरा भी प्रिय करो। मारने पर भीम का प्रिय होता है। नहीं मारने पर द्रौपदी का प्रिय होता है। दोनों में कोई भी होने से श्रीकृष्ण का प्रिय होता है ॥५४॥

सूत उवाच

**अर्जुनः सहसाज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना। मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥५५॥**

**अन्वयः**— हरेः हार्दम् सहसा आज्ञाया अर्जुन; असिना द्विजस्य मूर्धजम् सह मूर्धन्यां मणिं जहार ॥५५॥

**अनुवाद**— अर्जुन ने श्रीभगवान् के हृदय की बात सहसा जान ली और तलवार से बालों के साथ अश्वत्थामा के शिर में विद्यमान मणि को निकाल लिया ॥५५॥

**भावार्थ दीपिका**

हार्दमभिप्रायमाज्ञाय ज्ञात्वा। न ह्यशक्यमुभयं विदध्यादतोऽस्यायमभिप्राय इति ज्ञात्वेत्यर्थः। असिना खड्गेन। मूर्धन्यं मूर्धनि जातम्। सहमूर्धजं सकेशम् ॥५५॥

**भाव प्रकाशिका**

अर्जुन ने श्रीभगवान् के हार्दिक अभिप्राय को जान लिया। एक ही समय में वध और अवध दोनों तो किया नहीं जा सकता है। अतएव इनका यही अभिप्राय है इस बात को जानकर तलवार से अश्वत्थामा के शिर में विद्यमान मणि को बालों के साथ उन्होंने उतार लिया ॥५५॥

**विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम्। तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ॥५६॥**

**अन्वयः**— रशनाबद्धं, बालहत्याहतप्रभम्, तेजसा मणिना हीनं विमुच्य शिबिरात् निरयापयत् ॥५६॥

**अनुवाद**— रस्सी से बँधे हुए, बालकों की हत्या करने के कारण जिसकी कान्ति समाप्त हो गयी थी तेज से रहित तथा मणि से रहित अश्वत्थामा को खोलकर अर्जुन ने अपने शिबिर से निकाल दिया ॥५६॥

**भावार्थ दीपिका**

मणिना च हीनम् । निरयापयन्निः सारितवान् ।।५६।।

**भाव प्रकाशिका**

बालहत्या के कारण अश्वत्थामा का तेज समाप्त हो गया था ओर वह मणि से भी हीन हो गया था इस तरह के अश्वत्थामा को अर्जुन ने अपने शिबिर से निकाल दिया ।।५६।।

**वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा । एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ।।५७।।**

**अन्वयः—** वपनं दविणादानं, तथा स्थानात् निर्यापणं एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधः अन्यः दैहिकः न ।।५७।।

**अनुवाद—** शिर मूंड़ देना, धन छिन लेना और स्थान से निकाल देना अधम ब्राह्मणों का यही वध है, शारीरिक वध नहीं ।।५७।।

**भावार्थ दीपिका**

अनेन श्रीकृष्णोक्तं सर्वं संपादितमित्याह- वपनमिति ।।५७।।

**भाव प्रकाशिका**

**वपनम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा यह बतलाया गया है कि अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रोक्त सारे कार्यों को किया ।।५७।।

**पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया । स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ।।५८।।**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे द्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

**अन्वयः—** पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवा कृष्णया सह मृतानां स्वानां निर्हरणादिकम् यत् कृत्यम् तत् चक्रुः ।।५८।।

**अनुवाद—** पुत्रों के शोक से आतुर बने हुए सभी पाण्डवों ने द्रौपदी के साथ अपने मरे हुए लोगों की दाहादि अन्त्येष्टि क्रिया को किया ।।५८।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के अश्वत्थामा निग्रह नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।**

**भावार्थ दीपिका**

निर्हरणं दाहार्थं नयनम् ।।५८।।

**इति श्रीमद्भागवते प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।**

**भाव प्रकाशिका**

जलाने के लिए लाये जाने को निर्हरण कहा गया है ।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के सातवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।७।।**

# आठवाँ अध्याय

## श्रीभगवान् द्वारा गर्भस्थ परीक्षित् की रक्षा कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और महाराज युधिष्ठिर का शोक

सूत उवाच

**अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् । दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥१॥**

*अन्वयः*— अथ सम्परेतानां, उदकमिच्छताम् स्वानाम् उदकं दातुं स्त्रियः पुरस्कृत्य सकृष्णा स्त्रियः गङ्गायां ययुः॥१॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् सभी पाण्डव मरे हुए तथा जल चाहने वाले स्वजनों का तर्पण करने के लिए स्त्रियों को आगे करके भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गङ्गाजी में गये ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

अष्टमे कुपितद्रौणेरस्त्राद्रक्षा परीक्षितः । श्रीकृष्णेन स्तुतिः कुन्त्या राज्ञः शोकश्च कीर्त्यते ॥१॥ ते पाण्डवाः संपरेतानां मृतानां गङ्गायामुदकं दातुं सकृष्णाः श्रीकृष्णेन सहिताः । स्त्रियः स्त्रीः पुरस्कृत्याग्रतः कृत्वा । तस्मिन्कार्ये स्त्रीपुरःसरत्वविधानात् ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में अश्वत्थामा के अस्त्र से परीक्षित् की भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा रक्षा, कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति तथा महाराज युधिष्ठिर के शोक का वर्णन है ॥१॥ वे पाण्डव मरे हुओं के जलदान करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण के साथ तथा स्त्रियों को आगे करके गङ्गाजी में गये । तर्पण करने में स्त्रियों को आगे करके जाने का शास्त्र विधान करता है ॥१॥

**ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः । आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥२॥**

*अन्वयः*— ते सर्वे जलं निनीय पुनः भृशं विलप्य हरिपादाब्जरजःपूतसरित्जले पुनः आप्लुताः ॥२॥

**अनुवाद**— उन लोगों ने जलदान करके, उसके पश्चात् मरे लोगों के गुणों का स्मरण करके बहुत विलाप किया पुनः श्रीहरि के चरण कमल की धूलि से पवित्र जलवाली गङ्गा नदी में उन लोगों ने स्नान किया ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

निनीय दत्त्वा । हरिपादाब्जरजोभिः पूता या सरिद्गङ्गा तस्या जले । पुनर्ग्रहणादादावपि स्नाता इति गम्यते ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

**निनीय** पद का अर्थ है देकर । श्रीहरि के चरण कमलों से पवित्र जो गङ्गा नदी उसके जल में । पुनः शब्द के प्रयोग से पता चलता है कि उन लोगों ने स्नान करके ही जलदान किया और अन्त में भी स्नान किया। कहने का अभिप्राय यह है कि सभी पाण्डवों ने गङ्गा नदी में पहले स्नान किया, उसके बाद जलदान किया और उसके पश्चात् पुनः स्नान किया ॥२॥

**तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहानुजम् । गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥३॥**
**सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धून् शुचार्पितान्। भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥४॥**

*अन्वयः*— तत्र आसीनं सहानुजम् कुरुपतिं, धृतराष्ट्रम्, पुत्रशोकार्तां गान्धारीं, पृथां, कृष्णां च हतबन्धून सुचार्पितान् भूतेषु कालस्य अप्रतिक्रियाम् दर्शयन् मुनिभिः सहमाधवः सान्त्वयामास ॥३-४॥

**अनुवाद**— वहाँ गङ्गातट में बैठे हुए अपने अनुजों के साथ युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र तथा पुत्रों के शोक से संतप्त गान्धारी, कुन्तीं तथा द्रौपदी को जो मारे गये अपने बान्धवों के शोक से संतप्त थे उन सभी लोगों को मुनियों के साथ भगवान् ने यह बतलाते हुए सान्त्वना प्रदान किया कि सभी प्राणियों के विषयों में होने वाली काल की गति को कोई नहीं रोक सकता है । सभी प्राणी काल के अधीन हैं ॥३-४॥

**भावार्थ दीपिका**

कुरुपतिं युधिष्ठिरम् । सहानुजं भीमादिभिः सहितम् । (पुत्रशोकार्तामिति तिसृणां विशेषणम्) ॥३॥ मुनिभिः सहितः॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

तीसरे श्लोक में **सहानुजं कुरुपतिं** शब्द से भीमादि के साथ युधिष्ठिर को कहा गया है । पुत्र शोकार्ताम् पद गान्धारी, कुन्ती तथा द्रौपदी इन तीनों का विशेषण है । कहने का अभिप्राय है कि जलदान और स्नान करने के पश्चात् गङ्गातट पर ही बैठकर अपने अनुजों के साथ युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र और पुत्रों के शोक से सन्तप्त गान्धारी, कुन्ती तथा द्रौपदी ये तीनों स्त्रियाँ अपने बान्धवों के मारे जाने के कारण शोक सन्तप्त हो गयीं । उन सबों को धौम्य आदि मुनियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण ने समझाया कि संसार के सभी जीव काल के अधीन हैं । काल को कोई भी रोक नहीं सकता है इस संसार के सभी प्राणियों की मृत्यु होनी ही है ॥३-४॥

**साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वराज्त्यं कितवैर्हृतम् । घातयित्वाऽसतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥५॥**
**याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः । तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥६॥**

**अन्वयः**— कितवैः हृतम् अजातशत्रोः स्वं राज्यं साधयित्वा कचस्पर्शक्षतायुषः असतो राज्ञः घातयित्वा, त्रिभिः उत्तमकल्पकैः अश्वमेधैः तं याजयित्वा शतमन्योरिव तत् पावनं यशः दिक्षुः आतनोत् ॥५-६॥

**अनुवाद**— धूर्त दुर्योधन आदि के द्वारा छल से छिन लिए गये; अजातशत्रु युधिष्ठिर के राज्य को उन्हें दिलाकर, द्रौपदी के बालों का स्पर्श करने के कारण जिनकी आयु क्षीण हो गयी थी ऐसे दुष्ट राजाओं का वध कराकर, उत्तम सामग्रियों से युक्त युधिष्ठिर के तीन अश्वमेध यज्ञों को कराकर, इन्द्र के समान महाराज युधिष्ठिर के यश को भगवान् श्रीकृष्ण ने सभी दिशाओं में फैला दिया ॥५-६॥

**भावार्थ दीपिका**

कितवैर्धूर्तैर्दूर्योधनादिभिः । द्रौपद्याः कचग्रहणादिना क्षतं नष्टमायुर्येषां तान् ॥५॥ याजयित्वेत्यादिभाविकथासंक्षेपः । शतमन्योः शतक्रतोरिव ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

धूर्त दुर्योधन आदि ने महाराज युधिष्ठिर के राज्य को छल पूर्वक छिन लिया था, उनके उस राज्य को भगवान् ने दिलाया । तदर्थ द्रौपदी के केशों का स्पर्श करने के कारण जिन राजाओं की आयु क्षीण हो गयी थी उन पापी राजाओं का श्रीभगवान् ने वध करवा दिया । उसके पश्चात् भगवान् ने महाराज युधिष्ठिर से उत्तम सामग्रियों द्वारा तीन अश्वमेध यागों को कराया । उसके द्वारा श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर के यश को दशो दिशाओं में उसी तरह फैला दिया जिस तरह सौ अश्वमेध यज्ञ करने वाले इन्द्र का यश सभी दिशाओं में फैला हुआ है ॥५-६॥

**आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः । द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥७॥**
**गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकां रथमास्थितः । उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥८॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! पाण्डुपुत्रांश्च आमान्त्र्य द्वैपायनादिभिः विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः शैनेयोद्धवसंयुतः द्वारकां गन्तुं कृतमतिः रथमास्थितः भगवान् भयविह्वलाम् अभिधावन्तीम् उत्तराम् उपलेभे ॥७-८॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! पाण्डवों से विदा लेकर, द्वैपायन आदि पूजित ब्राह्मणों के द्वारा पूजित सात्यकि तथा उद्धव के साथ द्वारका जाने के लिए रथ पर बैठे हुए श्रीभगवान् ने देखा कि भय से व्याकुल उत्तरा सामने से दौड़ती हुयी आ रही है ॥७-८॥

**भावार्थ दीपिका**

शैनेयः शिनेर्नप्ता सात्यकिस्तेन चोद्धवेन च संयुतः ॥७॥ रथमास्थितः सन्नुत्तरां परीक्षिन्मातरम् । भयेन विह्वलां व्याकुलाम् । अभिमुखं धावन्तीमुपलेभे ददर्श ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**— शिनि के नाती सात्यकि को शैनेय कहा गया है । श्रीभगवान् द्वारका जाने के लिए पाण्डवों से आज्ञा माँगे । उसके पश्चात् जिन व्यास आदि महर्षियों की भगवान् ने पूजा की थी वे महर्षि गण भी श्रीभगवान् का बहुत सत्कार किये । उसके पश्चात् वे सात्यकि तथा उद्धवजी के साथ रथ पर बैठ गये । उसी समय भगवान् ने देखा कि उत्तरा दौड़ती हुयी चली आ रही है । वह अत्यन्त भयभीत भी थी ॥७-८॥

उत्तरोवाच

**पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते । नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥९॥**

**अन्वयः**— हे महायोगिन्, देवदेव, जगत्पते ! मां पाहि पाहि त्वदन्यम् अभयं न पश्ये, यत्र मृत्युः परस्परम् ॥९॥

**अनुवाद**— हे महायोगिन् ! हे देवाधिदेव ! हे जगत् के स्वामिन् आप मेरी रक्षा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये। आपसे भिन्न कोई भी मेरा रक्षक नहीं है यहाँ तो सब एक दूसरे की मृत्यु के कारण हैं ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

उत्तरा श्रीकृष्णं प्रार्थयते- पाहि पाहीति द्वाभ्याम् । अन्यस्तु प्रार्थनायोग्यो नास्तीत्याह । त्वत् त्वत्तोऽन्यमभयं भयरहितं न पश्यामि । यत्र लोके परस्परमन्योन्यं मृत्युर्भवति ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना करती हुयी उत्तरा ने कहा— हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा करें । वह अत्यन्त घबरा गयी थी अतएव दोबार कही कि रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये । इस समय कोई दूसरा प्राथनीय नहीं है । आपसे भिन्न कोई भी भय रहित नहीं है । अतएव आप ही मुझे अभय प्रदान कर सकते हैं । इस लोक में तो सभी एक-दूसरे की मृत्यु के कारण बने हुए हैं ॥९॥

**अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो । कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे विभो ! हे ईश ! तप्तायसः शरः माम् अभिद्रवति । मां कामो दहतु मे गर्भं मा निपात्यताम् ॥१०॥

**अनुवाद**— हे सम्पूर्ण जगत् में व्यापक ! हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक जलता हुआ लोहे का बाण मेरी ओर आ रहा है । यह मुझको भले ही जला डाले, किन्तु यह मेरे गर्भ को न गिराये ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र प्रस्तुतं भयमावेदयति । अभिद्रवत्यभिमुखमायाति । तप्तमायस लोहमयं शल्यं यस्य सः । अतिकार्पण्येनाह- काममिति । कामं यथेच्छम् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

उपस्थित भय को बतलाती हुयी उत्तरा ने कहा यह जलता हुआ लोहे का बाण मेरी ओर दौड़ता हुआ आ रहा है । उसने अत्यन्त विह्वल होकर कहा कि यह बाण मुझे भले ही जला दे किन्तु यह मेरे गर्भ को न विनष्ट करे ॥१०॥

सूत उवाच

**उपधार्य वचस्तस्या भगवान्भक्तवत्सलः । अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥११॥**

**अन्वयः**— तस्याः वचः उपधार्य भक्तवत्सलः भगवान् इदं अपाण्डवं कर्तुम् द्रौणे अस्त्रम् अबुध्यत ॥११॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— उत्तरा की बातों को सुनकर भक्त वत्सल भगवान् ने यह जान लिया कि इस संसार को पाण्डवों से रहित बनाने के लिए यह अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

पराभवेनातिकुपितस्य द्रौणेरपाण्डवं पाण्डवशून्यमिदं विश्वं कर्तु प्रवृत्तं ब्रह्मास्त्रमबुध्यत ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् तो भक्तवत्सल हैं । उन्होंने उत्तरा की वाणी को सुना और जान लिया कि पराभाव के कारण अत्यन्त क्रुद्ध हुए अश्वत्थामा का यह ब्रह्मास्त्र है । अश्वत्थामा ने इस विश्व को पाण्डव शून्य बना देने के लिए इसका प्रयोग किया है ॥११॥

**तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान् । आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे मुनिश्रेष्ठ तर्हि एव पाण्डवाः आत्मनोऽभिमुखान् दीप्तान् पञ्च सायकान् अभिलक्ष्य अथ अस्त्राणि उपाददुः ॥१२॥

**अनुवाद**— हे मुनिश्रेष्ठ ! उसी समय पाण्डवों ने भी अपने सामने देदीप्यमान पाञ्च बाणों को आते हुए देखकर अपने अपने अस्त्रों को उठा लिया ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

अतएव बहुमुखं तदागतमित्याह- तर्ह्येवेति । तर्ह्येव तदानीमेव ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

वह ब्रह्मास्त्र अनेक बाणों के रूप में आया इस बात को **तर्ह्येव इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **तर्ह्येव** का अर्थ है उसी समय । एक ही ब्रह्मास्त्र छह रूप में आया था । एक रूप से वह उत्तरा के सामने से आ रहा था और पाँच रूपों में वह पाञ्च पाण्डवों के सामने बाण के रूप में आ रहा था । आते हुए उन बाणों को देखकर उसका प्रतिकार करने के लिए पाण्डवों ने अपना-अपना अस्त्र उठा लिया ॥१२॥

**व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् । सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥१३॥**

**अन्वयः**— अनन्यविषयात्मनाम् तेषां तत् व्यसनं वीक्ष्य विभुः स्वास्त्रेण सुदर्शनेन स्वानां रक्षां व्यधात् ॥१३॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् में ही निष्ठा करने वाले पाण्डवों की उस दुष्परिहर विपत्ति को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने भक्त पाण्डवों की रक्षा अपने अस्त्र सुदर्शन चक्र से की ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मास्त्रस्यास्त्रान्तरैरनिवर्त्यत्वात्तद्दुष्परिहरं व्यसनं वीक्ष्य । अनन्यविषय आत्मा येषाम् । स्वैकनिष्ठानामित्यर्थः ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने देखा कि ब्रह्मास्त्र का किसी दूसरे अस्त्र से निवारण नहीं किया जा सकता है, अतएव यह तो पाण्डवों पर भयङ्कर विपत्ति है । पाण्डव मेरे भक्त हैं । उन पाण्डवों की रक्षा श्रीभगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र नामक अस्त्र के प्रयोग से की ॥१३॥

**अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः । स्वमाययावृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ॥१४॥**

**अन्वयः**— सर्वभूतानाम् आत्मा योगेश्वरः हरिः अन्तस्थः सन् स्वमायया वैराट्याः गर्भं कुरुतन्तवे आवृणोत् ॥१४॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् तो सभी जीवों की आत्मा हैं ये योगेश्वर श्रीहरि कुरुवंश को चलाने के लिए विराट् की पुत्री उत्तरा के भीतर स्थित रहकर उसके गर्भ को अपनी माया से ढँक दिए ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

वैराट्या उत्तराया अन्तःस्थः सन् गर्भमावृतवान् । तत्र हेतुः- यत आत्मान्तर्यामी । योगेश्वर इति बहिःस्थस्यापि प्रवेशघटनार्थमुक्तम् । कुरूणां तन्तवे सन्तानाय । पाण्डवानामपि कुरुवंशजत्वादेवमुक्तम् ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् उत्तरा के भी हृदय में विद्यमान थे अतएव उन्होंने उत्तरा के गर्भ को ही माया से ढँक दिया। उसका कारण यह था कि श्रीभगवान् तो अन्तर्यामी हैं, योगेश्वर हैं अतएव वे बाहर भी रहकर भीतर प्रवेश करके इन सभी कार्यों को करने में समर्थ हैं । कुरुतन्तवे पद का अर्थ है कुरुवंशियों की सन्तान के लिए यह सारा कार्य भगवान् ने किया, चूकि पाण्डव भी कुरुवंशी ही हैं अतएव कुरुतन्तवे कहा गया है ॥१४॥

**यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् । वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद्भृगूद्वह ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे भृगूद्वह ! यद्यपि ब्रह्मशिरः अस्त्रं तु अमोघम्, अप्रतिक्रियं च किन्तु वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यत्॥१५॥

**अनुवाद**— हे भृगुवंशीय शौनकजी यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है, उसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता है; किन्तु वह भगवान् श्रीकृष्ण के तेज के समक्ष आकर विल्कुल शान्त हो गया ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

अमोघमप्रतिक्रियं च । समशाम्यत् संशान्तमासीत् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्मास्त्र एक ऐसा अस्त्र है जो कभी भी विफल नहीं होता है और उसका निवारण करने वाला कोई दूसरा अस्त्र भी नहीं है; किन्तु श्रीभगवान के तेज के सामने वह तेज बिल्कुल शान्त हो गया; क्योंकि श्रीभगवान् का तेज तो सभी तेजों से श्रेष्ठ है । उसके सामने सभी तेज शान्त हो जाते हैं ॥१५॥

**मामंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते । य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हन्त्यजः ॥१६॥**

**अन्वयः**— सर्वाश्चर्यमये अच्युते, एतत् आश्चर्यं मा मंस्थाः । यः अजः इदं जगत् सृजति, अवति हन्ति च ॥१६॥

**अनुवाद**— सर्वाश्चर्यमय भगवान् अच्युत हैं, अतएव उनके द्वारा किए गये इस कार्य को आश्चर्य नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वे अजन्मा भी होकर इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं रक्षा करते है और प्रलय काल के आ जाने पर इसका संहार कर देते हैं ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

एतद्ब्रह्मास्त्रशमनमाश्चर्यं मामंस्था न मन्यस्व । इदं जगत् ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि शौनकजी भगवान् के तेज के समक्ष ब्रह्मास्त्र जो शान्त हो गया उसे आप आश्चर्य न मानें । भगवान् तो सभी आश्चर्यों से युक्त हैं । वे सर्वशक्तिमान् हैं जो चाहें कर सकते हैं । उनके लिए कुछ भी आश्चर्य नहीं है ॥१६॥

**ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णाया । प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥१७॥**

अन्वयः— प्रयाणाभिमुखं कृष्णम् वीक्ष्य ब्रह्मतेजो विनिर्मुक्तैः कृष्णया च सह सती पृथा इदमाह ॥१७॥

**अनुवाद-** द्वारका जाने के लिए उद्यत भगवान् कृष्ण से ब्रह्मास्त्र के तेज से मुक्त हुए अपने पुत्रों तथा द्रौपदी के साथ सती पृथा ने कहा ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

कृष्णया सह ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

मूल के कृष्णया पद के पश्चात् सह पद का अध्याहार करना चाहिए । कुन्ती ने देखा कि मेरे पुत्र ब्रह्मास्त्र के तेज से जिनकी कृपा से बचे हैं । वे भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका जाने के लिए तैयार हैं । अतएव सती साध्वी कुन्ती ने अपने पुत्रों और द्रौपदी के साथ इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति की ॥१७॥

कुन्त्युवाच

**नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् । अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— आद्यं पुरुषं प्रकृतेः परम, ईश्वरं, अलक्ष्यं, सर्वभूतानाम्, अन्तः बहिः अवस्थितम् त्वा नमस्ये ॥१८॥

**कुन्तीदेवी ने कहा**

**अनुवाद**— हे आदि पुरुष आपको नमस्कार करती हूँ । आप प्रकृति से ऊपर हैं तथा प्रकृति के भी नियामक हैं । सभी भूतों के भीतर और बाहर आप अवस्थित हैं फिर भी आपको कोई जान नहीं पाता है । ऐसे आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वा त्वां नमस्ये नमस्करोमि । ननु कनिष्ठं मां कथं नमस्करोषि तत्राह । आद्यं पुरुषम् । कुतः । प्रकृतेः परम् । तत्कुतः। ईश्वरं प्रकृतेरपि नियन्तारम् । अतएव सर्वभूतानामन्तर्बहिश्च पूर्णत्वेनावस्थितम् । तथाप्यलक्ष्यम् ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

कुन्ती देवी ने कहा हे भगवन् आपको मैं नमस्कार करती हूँ । यदि आप कहें कि मैं तो छोटा हूँ और आप मुझसे बड़ी हैं फिर भी क्यों नमस्कार कर रही हैं । उसके उत्तर में कुन्ती देवी ने कहा आप आदि पुरुष है, क्योंकि आप प्रकृति से भी परे हैं । यदि आप पूछे कि यह कैसे तो इसका उत्तर है कि आप प्रकृति के भी नियन्ता हैं । अतएव आप सभी भूतों के भीतर और बाहर दोनों प्रकार से व्याप्त होकर भी उस प्रकार का प्रतीत नहीं होते हैं ॥१८॥

**मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाऽधोक्षजमव्ययम् । न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥१९॥**

**अन्वयः**— अहम् अज्ञा, माया जवनिकाच्छन्नम्, अधोक्षजम् अव्ययं नाट्यधरः नटः यथा मूढदृशा न लक्ष्यसे ॥१९॥

**अनुवाद**— मैं तो अज्ञानी हूँ आपकी भक्ति करना नहीं जानती हूँ और आप अपनी माया रूपी जवनिका (पर्दा) से अपने को ढँके रहते है । मनुष्य जो कुछ भी इन्द्रियों के द्वारा जानता है, उसके मूल में (अधः) आप ही विद्यमान रहते हैं । आप सर्वदा सभी अवस्थाओं में निर्विकार बने रहते हैं । आप अज्ञानी जीवों द्वारा उसी तरह से नहीं जाने जाते हैं जैसे नाटक करने वाले नट को अज्ञानी जीव नहीं पहचान पाते हैं ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र हेतुः- मायैव जननिका तिरस्करिणी तया आच्छन्नं प्रतिच्छन्नम् । अतोऽहमज्ञा भक्तियोगानभिज्ञा केवलं नमस्यामि। अधः अक्षजमिन्द्रियजं ज्ञानं यस्मात्तम् । अव्ययमपरिच्छिन्नम् । तत्प्रपञ्चः मूढदृशा देहाभिमानिना पुंसा त्वं न लक्ष्यसे ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

कुन्ती देवी ने भगवान् को अलक्ष्य बतलाया । अलक्ष्य होने का कारण बतलाते हुए कहा कि आप अपनी माया रूपी पर्दे से अपने को छिपाये रहते हैं । अतएव मैं भक्ति को नहीं जानने के कारण अज्ञा हूँ । केवल आपको नमस्कार करती हूँ । आप तो अधोक्षज हैं । अर्थात् मनुष्य इन्द्रियों के माध्यम से जो कुछ भी जानता है, उसके मूल में आप बने रहते हैं आप अव्यय अर्थात् अपरिच्छिन्न हैं । यही कारण है कि इस तरह से देहाभिमानी पुरुष आपको नहीं जान पाते हैं ।।१९।।

**तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् । भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ।।२०।।**

**अन्वयः**— परमहंसानाम् मुनीनाम्, अमलात्मनाम् अपि तथा अतः भक्तियोग विधानार्थं (त्वाम् वयम्) स्त्रियः हि कथं पश्येम ।।२०।।

**अनुवाद**— जो आत्मा और अनात्मा के ज्ञान से सम्पन्न हैं जो सदा तत्वों का मनन करते हैं । तथा रागद्वेष आदि दोषों से रहित होने के कारण जो निर्मल अन्तःकरण वाले हैं ऐसे परमहंसों के लिए भी आप उसी तरह अलक्ष्य हैं ऐसे आपकी भक्तियोग करने के लिए हम स्त्रियाँ आपको कैसे जानें ।।२०।।

**भावार्थ दीपिका**

किंच परमहंसानामात्मानात्मविवेकिनां ततो मुनीनां मननशीलानामपि ततश्चामलात्मनां निवृत्तरागादीनामपि तथा तेन निजमहिम्ना न लक्ष्यसे, अतो भक्तियोगं विधातुं त्वां वयं स्त्रियः कथं हि पश्येम । यद्वा परमहंसादीनामपि भक्तियोगविधानार्थं त्वां आत्मारामाणामप्यचिन्त्यनिजगुणैराकृष्य भक्तियोगं विधातुं कारयितुमवतीर्णमित्यर्थः ।।२०।।

**भाव प्रकाशिका**

जो परमंहंस पुरुष हैं, वे आत्मा क्या है ? तथा अनात्मा क्या है ? इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं । जो सदा तत्त्वों का ही चिन्तन किया करते हैं तथा रागद्वेष आदि अन्तःकरण के दोषों से रहित जिनका अन्तःकरण है; ऐसे निर्मल अन्तःकरण वाले पुरुषों के लिए भी आप अलक्ष्य ही हैं । ऐसे आपकी भक्ति करने में असमर्थ हम स्त्रियाँ आपको कैसे जान सकती हैं ? अथवा जो परमहंस इत्यादि हैं उनमें भक्तियोग का विधान करने के लिए आप अपने अचिन्त्य गुणों के द्वारा उन लोगों को भी आकृष्ट करके उनके द्वारा भी भक्तियोग कराने के लिए आप अवतीर्ण हुए हैं ।।२०।।

**कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च । नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ।।२१।।**

**अन्वयः**— कृष्णाय, वासुदेवाय, देवकीनन्दनाय, नन्दगोपकुमारायगोविन्दाय च नमो नमः ।।२१।।

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, वसुदेवजी के पुत्र तथा सम्पूर्ण जगत् के आश्रय भगवान् वासुदेव को नमस्कार है, देवकी माता को आनन्दित करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, नन्दगोप के कुमार भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है तथा भगवान् गोविन्द को नमस्कार है ।।२१।।

**भावार्थ दीपिका**

ज्ञानभक्त्योरशक्यत्वमुक्त्वा पुनः केवलं नमस्करोति- कृष्णायेति द्वाभ्याम् ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने स्त्रियों के लिए ज्ञान योग तथा भक्तियोग को करना अशक्य बतलाकर पुनः भगवान् श्रीकृष्ण को **कृष्णाय० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा केवल नमस्कार किया हैं ॥२१॥

**नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने । नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥२२॥**

**अन्वयः**— पङ्कजनाभाय नमः, पङ्कजमालिने नमः, पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजाङ्घ्रये नमस्ते ॥२२॥

**अनुवाद**— जिनकी नाभि से ब्रह्माजी का जन्म स्थान कमल उत्पन्न है ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है, कमल की माला धारण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है, कमल के समान मनोहर नेत्र वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है तथा कमल के समान कोमल चरणों वाले आप श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

पङ्कजं नाभौ यस्य । पङ्कजानां मालास्ति यस्य । पङ्कजवत्प्रसन्ने नेत्रे यस्य । पङ्कजाङ्कितावङ्घ्री यस्य तस्मै ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

जिनकी नाभि में कमल है ऐसे भगवान् को नमस्कार है, जिनकी माला कमलों की है, ऐसे भगवान् को नमस्कार है, कमल के समान मनोहर जिनके दोनों नेत्र हैं ऐसे भगवान् को नमस्कार है तथा जिनके चरणों में कमल का चिह्न बना हुआ है ऐसे आप श्रीभगवान् को नमस्कार हैं ॥२२॥

**यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचार्पिता ।**
**विमोचिताहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥२३॥**
**विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।**
**मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चाऽऽस्म हरेऽभिरक्षिताः ॥२४॥**

**अन्वयः**— हे हृषीकेश यथा खलेन कंसेन रुद्धा चिरं शुचार्पिता देवकी विमोचिता हे विभो अहं च सहात्मजा त्वयैव नाथेन विपद्गणात् मुहुःविमोचिता । विषात्, महाग्नेः, पुरुषाद दर्शनात् असत् सभायाः वनवासकृच्छ्रतः मृधे मृधे अनेकमहारथास्त्रतः, द्रौण्यस्त्रतः च हे हरे अभिरक्षिताः च आस्म ॥२३-२४॥

**अनुवाद**— हे हृषीकेश ! जिस तरह दुष्ट कंस के द्वारा कैद की गयी तथा दीर्घकाल से शोकग्रस्त देवकीजी की आपने रक्षा की थी उसी प्रकार पुत्रों के साथ आपने मेरी भी रक्षा विपत्तियों से बार-बार की है । विष से, लाक्षागृह की अग्नि से, हिडिम्बासुर आदि राक्षसों द्वारा देखे जाने पर, दुष्ट दुर्योधन आदि की द्यूत सभा में तथा वनवास कालीन विपत्ति से, अनेक बार के युद्धों में महारथियों के महास्त्रों से तथा अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से आपने हम सबों की रक्षा की है ॥२३-२४॥

### भावार्थ दीपिका

तत्कृतोपकाराननुस्मरति- यथेति द्वाभ्याम् । अयमर्थः- मातृतोऽपि मय्यधिका तव प्रीतिः । तथा हि, हे हृषीकेश, यथा देवकी कंसेन रुद्धा त्वया विमोचिता, अहं च तथैव किं विमोचितेति काक्वा महान्विशेष उक्तः । तं दर्शयति- सातिचिरं रुद्धा सती तस्मादेव सकृद्विमोचिता तथा शुचार्पिता च सती न च तस्याः पुत्रा रक्षिताः । अस्ति चान्यो नाथस्तस्याः । अहं तु विपद्गणात्तत्रापि मुहुः शीघ्रं च सात्मजा च त्वयैव च नाथेनेति ॥२३॥ विपद्गणमेव दर्शयति । विषाद्भीमस्य विषमोदकदानात्। महाग्नेर्जतुगृहदाहात्। पुरुषादा हिडिम्बादयो राक्षसास्तेषां दर्शनात् । असत्सभाया द्यूतस्थानात् । अभितो रक्षिता आस्म अभवाम ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा किए गये उपकारों को **यथा० इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा कुन्ती देवी स्मरण करती हैं । कहने का अभिप्राय है कि आपका अपनी माता से भी मुझ पर अधिक स्नेह है वह इस प्रकार से है कि हे हृषीकेश ! जिस तरह कंस के द्वारा कैद की गयी देवकी को आपने कैद से मुक्त किया किन्तु मैं भी क्या उसी तरह से मुक्त हुयी हूँ ? मुझको तो आपने बार-बार विपत्तियों से बचाया है । उसीको वे बतलाती हैं । देवकी तो दीर्घकाल से कैद की गयी थीं और दीर्घकाल से शोक सन्तप्त थीं उनको आपने एक ही बार मुक्त किया । आपने देवकी के पुत्रों की भी रक्षा नहीं की । उसका कारण यह था कि देवकी के दूसरे रक्षक वसुदेवजी हैं । मेरी तो बार-बार तथा शीघ्र ही आपने रक्षा की क्योंकि मेरे नाथ तो आप ही हैं ।।२३।।

उन विपत्तियों को वे बतलाती हैं विषमय मिष्ठान्न खाने पर आपने भीम की रक्षा की; लाक्षागृह में जली हुयी भयङ्कर अग्नि से, हीडिम्बासुर आदि राक्षसों द्वारा देखे जाने पर, आपने रक्षा की । दुर्योधन आदि दुष्टों के द्यूत स्थान से भी आपने रक्षा की । इस तरह हम आपके द्वारा बार-बार रक्षित हैं ।।२४।।

**विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो । भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ।।२५।।**

**अन्वयः**— हे जगद्गुरो ! नः तत्र-तत्र शश्वत् विपदः एव सन्तु यत् अपुनर्भव दर्शनम् भवतः दर्शनम् ।।२५।।

**अनुवाद**— हे जगद्गुरो हमलोगों पर बार-बार सदा विपत्तियाँ ही आती रहें, क्योंकि उससे आपका दर्शन होता है । और आपके दर्शन से संसार चक्र से मुक्ति मिल जाती है ।।२५।।

### भावार्थ दीपिका

यत् यासु विपत्सु । कीदृशं दर्शनम् । नास्ति पुनरपि भवदर्शनं यस्मात् ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

हमलोगों पर सदा विपत्तियाँ इसलिए आती रहें कि उन विपत्तियों में आपका दर्शन होता है और वह दर्शन ऐसा है कि उससे फिर इस संसार का दर्शन नहीं होता । अर्थात् जन्म मृत्यु के चक्र रूपी इस संसार से मुक्ति मिल जाती हैं ।।२५।।

**जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् । नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरम् ।।२६।।**

**अन्वयः**— जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिः एधमानमदः पुमान् अकिंचन गोचरम् त्वाम् वै अभिधातुं न अर्हति ।।२६।।

**अनुवाद**— सद्वंश में जन्म, एश्वर्य, ज्ञान तथा श्री से जिसका मद बढ़ता है वह पुरुष तो आपका नाम भी नहीं ले सकता है, क्योंकि आप अकिञ्चन पुरुषों को ही दर्शन देते हैं ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

संपदस्तु श्रेयः परिपन्थिन्य इत्याह- जन्म सत्कुले । जन्मादिभिरेधमानो मदो यस्य सः । अभिधातुं श्रीकृष्णगोविन्देति वक्तुमपि । अकिंचनानां गोचरं विषयभूतम् ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

सम्पत्तियाँ तो मुक्ति की विरोधिनी हैं इस बात को **जन्मैश्वर्य० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । सद्वंश में जन्म, ऐश्वर्य, ज्ञान तथा धन सम्पत्ति से तो मनुष्य का मद ही बढ़ता है । इन सबों से जिस व्यक्ति का मद (अहङ्कार) बढ़ जाता है वह व्यक्ति तो श्रीभगवान् के कृष्ण गोविन्द इत्यादि नामों का भी उच्चारण नहीं कर सकता है । क्योंकि आप तो अकिञ्चन जीवों के विषय हैं । अकिञ्चन शब्द का अर्थ है जिसके पास इन जन्मादिकों में

से कुछ भी नहीं है । अकिञ्चन शब्द का दूसरा अर्थ है कि जो मनुष्य आपसे भिन्न किसी भी वस्तु को परमार्थ नहीं मानता है, ऐसे जो आपके ऐकान्तिक भक्त हैं, वह भी अकिञ्चन हैं । ऐसे अकिञ्चन भक्तों को ही आप दर्शन देते हैं ॥२६॥

**नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये । आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥२७॥**

**अन्वयः**— अकिंचन वित्ताय, निवृत्तगुणवृत्तये, आत्मारामाय, शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥२७॥

**अनुवाद**— अकिञ्चन पुरुषों के परम धन स्वरूप आपको नमस्कार है, माया के गुणों के संस्पर्श से भी रहित आपको नमस्कार है, अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले आपको नमस्कार है, परमशान्त स्वरूप आपको नमस्कार है तथा कैवल्य (मोक्ष) को प्रदान करने वाले आप को नमस्कार हैं ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रस्तुतमनोरथपूरणाय पुनः प्रणमति । अकिंचना भक्ता एव वित्तं सर्वस्वं यस्य तस्मै । ततः किम् । निवृत्ता गुणवृत्तयो धर्मार्थकामविषया यस्मात्तस्मै । तत्कुतः । आत्मारामाय । तत्कुतः । शान्ताय रागादिरहिताय । किंच कैवल्यपतये कैवल्यं दातुं समर्थाय ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने मनोरथ की पूर्ति करने के लिए कुन्ती पुनः श्रीभगवान् को प्रणाम करती हैं अकिंचन भक्त ही जिन श्रीभगवान् के सर्वस्व हैं, ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है । जिनके श्रीभगवान् से धर्म, जो सत्त्वादि गुणों के फल हैं धर्म, अर्थ, काम, वे सदैव जिनसे दूर रहा करते हैं, ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है । अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कमार है । रागादि से रहित होने के कारण परम शान्त श्रीभगवान् को नमस्कार है, किञ्च कैवल्य रूपी मोक्ष प्रदान करने में समर्थ श्रीभगवान् को नमस्कार है । अकिञ्चनविताय पद में समान्यतः षष्ठी तत्पुरुष समास करके अकिञ्चन के परम धन स्वरूप अर्थ किया जाता है । किन्तुश्रीधरस्वामी अकिंचन वित्ताय पद में कर्मधारय समास करके कहते हैं- अकिञ्चना भक्ता एवं वित्तं यस्य तस्मै । अर्थात् अकिंचन भक्त ही श्रीभगवान् के परम धन हैं । यह अर्थ बड़ा ही मनोहर है ॥२७॥

**मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् । समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥२८॥**

**अन्वयः**— अहं त्वां कालम् ईशानम्, अनादिनिधनं, विभुम् सर्वत्र समं चरन्तम् भूतानां यन्मिथः कलिः ॥२८॥

**अनुवाद**— मैं आपको काल स्वरूप, सबों के नियामक, आदि और अन्त से रहित होने के कारण नित्य, व्यापक तथा सर्वत्र समान रूप से संचरण करने वाला मानती हूँ । कारण भूत आपके ही कारण संसार के सभी प्राणियों में परस्पर में स्वतः कलह हो रहा है । आपमें किसी भी प्रकार का वैषम्य नहीं है ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु देवकीपुत्रं मां कथमेवं स्तौषि तत्राह । मन्ये त्वां कालं नतु देवकीपुत्रम् । तत्र हेतवः- ईशानं नियन्तारम् । अनादिनिधनमाद्यन्तशून्यम् । विभुं प्रभुम् । समं यथा भवति तथा सर्वत्र चरन्तम् । ननु पार्थसारथेः कथं मम साम्यं तत्राह। यद्यतस्त्वत्तो निमित्तभूताद्भूतानामेव मिथः कलिः कलहो भवति नतु स्वतस्त्वयि वैषम्यम् ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि मैं तो देवकी का पुत्र हूँ । तुम मेरी इस तरह से स्तुति क्यों कर रही हों तो इस पर कुन्ती देवी कहती हैं- **मन्ये त्वाम्० इत्यादि** मैं तो आपको काल स्वरूप मानती हूँ केवल देवकी पुत्र नहीं मानती। ऐसा इसलिए कि आप सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता हैं, आदि और अन्त से रहित होने के कारण नित्य हैं, आप सबों के स्वामी तथा सर्वत्र व्यापक हैं, तथा समान रूप से सर्वत्र संचरण करने वाला मानती हूँ ।

यदि आप कहें कि मैं तो अर्जुन का सारथि हूँ आप मुझमें साम्य कैसे कह सकती हैं ? तो इस पर कुन्ती कहती हैं **यत भूतानां मिथः कलिः** । आपके ही लिए इस संसार के सभी प्राणियों में परस्पर में कलह हो रहा है । अतएव आपमें वैषम्य का लेश भी नहीं है ॥२८॥

**न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ।**
**न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मतिर्नृणाम् ॥२९॥**

**अन्वयः**— हे भगवन् ! नृणां विडम्बनम् ईहमानस्य भवतः चिकीर्षितं कश्चित् न वेद, यस्य तव कश्चित् दयितः नास्ति कर्हिचित् द्वेष्यः न च अस्ति । यस्मिन् त्वयि नृणाम् मतिः विषमा ॥२९॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! मनुष्यों के समान लीला करना चाहने वाले आप क्या करना चाहते हैं, इस बात को कोई भी नहीं जानता है । आपका न तो कोई प्रिय है और न तो कोई द्वेष्य है । आपके विषय में मनुष्यों की ही बुद्धि विषमतामयी है ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

ननु निग्रहानुग्रहरूपं मयि प्रसिद्धं वैषम्यमत आह– न वेदेति । नृणां विडम्बनमनुकरणमीहमानस्य कुर्वतः । यस्मिंस्त्वयि विषमा मतिरनुग्रहनिग्रहरूपा भवति ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरी विषमता के विषय में तो प्रसिद्ध हैं कि मैं किसी पर कृपा करता हूँ और किसी का निग्रह करता हूँ । तो इस पर कुन्ती देवी ने कहा **न वेद० इत्यादि** । आप तो मनुष्यों का अनुकरण करना चाहते हैं और उसके अनुसार लीलाएँ करते भी है, किन्तु आप क्या करना चाहते हैं यह कोई भी नहीं जानता है । आपको न तो कोई प्रिय है और न तो अप्रिय, मनुष्य ही आपके विषय में निग्रह तथा अनुग्रह रूपी विषम बुद्धि करते हैं ॥२९॥

**जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः । तिर्यङ्नृषिषु यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम् ॥३०॥**

**अन्वयः**— हे विश्वात्मन् ते अजस्य जन्म, अकर्तुः कर्म यत् तिर्यङ्नृ षिषु यादःसु यत् जन्म तत् अत्यन्त विडम्बनम् ॥३०॥

**अनुवाद**— हे विश्वात्मन् ! आजन्मा होकर जो आप जन्म लेते है और अकर्ता होकर भी तत्-तत् कर्मों को करते हैं एवं तिर्यकों में, मनुष्यों में, ऋषियों एवं जलचरों में जो जन्म लेते हैं वह आपकी लीला ही हैं ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

ते अजस्य जन्म । अकर्तुः कर्म । तिर्यक्षु वराहादिरूपेण । नृषु रामादिरूपेण । ऋषिषु वामनादिरूपेण । यादःसु मत्स्यादिरूपेण ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! आप यद्यपि अजन्मा हैं फिर भी जन्म लेते हैं अकर्ता हैं फिर भी तत्-तत् कर्मों को करते हैं। आप तिर्यक् योनि में वराह आदि रूप से जन्म लेते हैं, मनुष्यों में श्रीराम आदि रूप से, ऋषियों में वामन आदि रूप से तथा जलचरों में मत्स्य कूर्म आदि रूप से जो कर्म करते हैं वह अत्यन्त आश्चर्यमय आपकी लीला ही है ॥३०॥

**गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम् ।**
**वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥**

**अन्वयः**— कृतागसि त्वयि तावद् गोपी दाम आददे अश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य ते या दश सा मां विमोहयति यत् भीरपि विभेति ॥३१॥

**अनुवाद**— आपने जब दही का भाण्ड फोड़ दिया था उस अपराध के कारण गोपी (यशोदाजी) ने अपने हाथ में आपको बाँधने के लिए रस्सी ले लिया था उस समय रोने के कारण आँसुओं से मिलकर आपके आँखों का अञ्जन आपके पूरे मुख पर फैल गया था। उस मुख को आप भयभीत हुए से नीचे करके खड़े थे, आपकी वह दशा मुझको मोहित करती है। क्योंकि आपके भय से तो भय भी भयभीत रहता है ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

नरविडम्बनमत्याश्चर्यमित्याह- गोपीति। गोपी यशोदा त्वयि कृतागसि दधिभाण्डस्फोटनं कृतवति यावद्दाम रज्जुमाददे जग्राह तावत्तत्क्षणमेव या ते दशावस्था सा मां विमोहयति। किंभूतस्य। अश्रुभिः कलिलं व्यामिश्रमञ्जनं ययोस्ते च ते संभ्रमेण व्याकुले अक्षिणी यस्मिंस्तद्वक्त्रं निनीयाधः कृत्वा ताडयिष्यतीति भयस्य भावनया स्थितस्य। यद्यतस्त्वत्तो भीरपि स्वयं बिभेति तस्य ते दशा ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् द्वारा मनुष्यों का अनुकरण करना अत्याश्चर्यमय है, इस बात को बतलाती हुए कुन्ती देवी कहती हैं **गोप्याददे० इत्यादि**। आपने जब दधि का मटका फोड़ दिया था उस अपराध के कारण यशोदाजी ने आपको बाँध देने के लिए अपने हाथ में रस्सी उठा लिया। उस समय आप की जो दशा हुयी उसको सोचकर मुझे भी मोह होता है। उस समय रोने के कारण आपकी आँखों का अञ्जन आंसू से मिलकर मुख पर फैल गया था। ऐसे मुख को आप नीचे करके भयभीत से खड़े हो गये थे। आपको भय था कि माँ मुझको मारेगी। आपके भय से तो भय भी भयभीत रहता है, आपकी वह दशा सोचकर मुझे भी मोह होता है ॥३१॥

**केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये। यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— केचित् त्वम् यदोः प्रियस्य अन्ववाये मलयस्य चन्दनम् इव पुण्य श्लोकस्य कीर्तये जातम् अजम् आहुः ॥३२॥

**अनुवाद**— कुछ लोगों ने यह कहा है कि यदु के प्रियवंश में पुण्य कीर्ति महाराज युधिष्ठिर की कीर्ति को फैलाने के लिए अजन्मा भी आप उसी तरह से जन्म लिए हैं जिस तरह मलयाचल की कीर्ति के लिए उस पर चन्दन का वृक्ष उत्पन्न होता है ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

अतएव जगन्मोहनतया दुर्ज्ञेयत्वात्तव जन्मादि बहुधा वर्णयन्तीत्याह- केचिदिति चतुर्भिः। पुण्यश्लोकस्य युधिष्ठिरस्य कीर्तये। यदोरेव कीर्तय इति वा। मलयस्य कीर्तये वंशे वा चन्दनं यथा ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

आपका जन्म आदि जगत् को मोहित कर देने वाला है अतएव उसके दुर्ज्ञेय होने के कारण विचारक पुरुष उसका अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। इस बात को कुन्ती देवी ने केचित् इत्यादि चार श्लोकों में कहा है। पुण्य श्लोकस्य कीर्तये का अर्थ महाराज् युधिष्ठिर की कीर्ति को बढ़ाने के लिए है। यदि पुण्यश्लोकस्य पद को यदोः का विशेषण मान लिया जाय तो अर्थ होगा कि पवित्र कीर्ति वाले यदु की कीर्ति को फैलाने के लिए शेष अर्थ अनुवाद के ही समान हैं ॥३२॥

**अपरे वासुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात्। अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— अपरे (कथयन्ति यत् पूर्वजन्मनि) वसुदेवदेवकीभ्यां (सुतपा पृश्निरूपेण) याचितः अजः त्वम्, अस्य, क्षेमाय सुरद्विषां वधाय च अभ्यगात् ॥३३॥

**अनुवाद**— दूसरे लोगों का कहना है कि वसुदेव और देवकी ही पूर्वजन्म में सुतपा और पृश्नि के रूप

में आपसे पुत्र होने का वरदान माँगा था अतएव आप वसुदेवजी के पुत्र के रूप में देवकीजी के गर्भ से उत्पन्न हुए ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

तथा वसुदेवस्य भार्यायां देवक्यामज एव त्वमभ्यगात् । पुत्रत्वमिति शेष: प्रथमपुरुषस्त्वार्ष: । अर्भत्वमिति पाठ: सुगम: । ताभ्यामेव पूर्वं सुतप:पृश्निरूपाभ्यां याचित: सन् । अस्य जगत: क्षेमाय ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने कहा कि दूसरे तरह कि लोगों का कहना है कि वसुदेव और देवकी ने पूर्व जन्म में सुतपा और पृश्नि के रूप में तपस्या किया था और आपसे पुत्र होने का वर माँगा था । उसी के फल स्वरूप आप वसुदेव की पत्नी देवकीजी के गर्भ से अजन्मा भी होकर जन्म लिए । आपके जन्म का प्रयोजन इस जगत् का कल्याण और देव शत्रुओं का वध है । **अभ्यगात्** यह प्रथम पुरुष का प्रयोग आर्षप्रयोग होने के कारण है, अन्यथा **अभ्यगा:** यह पद होता ॥३३॥

**भारावतरणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ । सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थित: ॥३४॥**

**अन्वय:**— अन्ये उदधौ भूरिभारेण सीदन्त्या: नौरिव भूरि भारेण सीदन्त्या: भुव: भारावतरणाय आत्मभुवा अर्थित: जात: ॥३४॥

**अनुवाद**— दूसरे लोग कहते हैं कि समुद्र में अत्यधिक भार के कारण डगमगाने वाली नौका के समान, दैत्यों के अत्यधिक पापों के भार से पीडित पृथिवी के भार को उतारने के लिए ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थित होकर आप अवतार ग्रहण किए हैं ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मभुवेति ब्रह्मप्रार्थनस्य प्राधान्यविवक्षया ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

दूसरे लोगों के अनुसार आपके इस अवतार का प्रधान कारण है ब्रह्माजी की प्रार्थना ॥३४॥

**भवेऽस्मिन्क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभि: । श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥३५॥**

**अन्वय:**— केचन अस्मिन् भवे, अविद्याकामकर्मभि: क्लिश्यमानानां श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन् जात: इति ॥३५॥

**अनुवाद**— दूसरे लोगों का कहना है कि इस संसार में अज्ञान, कामना तथा कर्मों के कारण पीड़ित लोगों द्वारा सुनने तथा स्मरण किए जाने योग्य लीलाओं को करने की इच्छा से आपने यह अवतार ग्रहण किया है ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

मतान्तरम् । परमानन्दस्वरूपाज्ञानमविद्या ततो देहाद्यभिमानात्कामस्तत: कर्माणि तै: क्लिश्यमानानां तन्निवृत्तये श्रवणाद्यर्हाणि कर्माणि करिष्यन् ॥३५॥

### भाव प्रकाशिका

दूसरे मतों को उपन्यस्त करती हुयी कुन्ती देवी कहती हैं कि कुछ लोगों के अनुसार परमानन्द स्वरूप विषयक अज्ञान से मोहित जीवों के हृदय में कामना उत्पन्न होती है, उसके पश्चात् वे उस कामना के अनुसार कर्मों को करते है । इस तरह अज्ञान कामना तथा कर्म इन तीनों के द्वारा वे जीव इस संसार में क्लेश का अनुभव करते हैं । उन जीवों के कल्याण के लिए, उन लोगों द्वारा सुनने योग्य तथा स्मरण किए जाने योग्य लीलाओं को करने के लिए ही आपने इस अवतार को ग्रहण किया है ॥३५॥

**शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।**
**त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥३६॥**

अन्वयः— जनाः तव ईहितं अभीक्ष्णशः शृण्वन्ति, गायन्ति, गृणन्ति, स्मरन्ति, नन्दन्ति त एव तावकं पदाम्बुजम् अचिरेण पश्यन्ति भवप्रवाहोपरमं च कुर्वन्ति ॥३६॥

अनुवाद— आपके भक्तजन आपकी इन लीलाओं को बार-बार सुनते हैं, गाते हैं, उच्चारण करते हैं, स्मरण करते हैं तथा आनन्दित होते हैं । वे ही भक्तजन आपके चरण कमलों का शीघ्र ही साक्षात्कार कर लेते हैं और इस जन्म मरण के प्रवाह रूप संसारचक्र को अवरुद्ध कर देते हैं ॥३६॥

### भावार्थ दीपिका

अस्य पक्षस्य सिद्धान्ततामभिप्रेत्य श्रवणादिफलमाह– शृण्वन्तीति । नन्दन्त्यन्यैः कीर्त्यमानमभिनन्दन्ति । ये जनाः । ईहितं चरितम् । तावकं त्वदीयं पदाम्बुजं त एव पश्यन्त्येव, अचिरेणैवेति च सर्वत्रावधारणम् । कीदृशम् । भवप्रवाहस्य जन्मपरम्पराया उपरमो यस्मिंस्तत् ॥३६॥

### भाव प्रकाशिका

इसमें पहले के पक्ष को ही सिद्धान्त रूप से मानकर कुन्तीदेवी श्रीभगवान् की लीलाओं के श्रवण आदि के फल को बतलाती हैं । नन्दन्ति का अर्थ है कि दूसरों द्वारा आपकी लीलाओं का कीर्तन किए जाने पर उसका अनुमोदन करते हैं । **ईहित** शब्द चरित का बोधक है । जो भक्तजन आपके चरण कमलों का साक्षात्कार करते हैं । यहाँ सर्वत्र **एव** इस अवधारणार्थक पद का अन्वय करना चाहिए । वे भक्त शीघ्र ही साक्षात्कार करते हैं । इसके कर लेने पर उनके इस जन्मपरम्परा का विराम हो जाता है ॥३६॥

**अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।**
**येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥३७॥**

अन्वयः— हे स्वकृतेहित प्रभो । सुहृदः अनुजीविनः नः अपि अद्य जिहाससि स्वित् । राजसु योजितांहसाम् येषां नः भवतः पदाम्बुजात् अन्यत् परायणं न ॥३७॥

**अनुवाद**— अपने लोगों के लिए अपेक्षित कार्यों को करने वाले हे प्रभो ! आपके सम्बन्धी तथा अनुजीवी हमलोगों को आज आप छोड़ना चाहते हैं क्या ? पृथिवी के अन्य राजाओं को हमलोगों ने तो दुःखी ही बनाया है, अतएव वे हमारे विरोधी हैं । ऐसे हमलोगों का आश्रय आपके चरण कमलों से भिन्न कोई नहीं है ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं तवास्मत्परित्यागोऽनुचित इत्याशयेनाह– अपीति चतुर्भिः । हे प्रभो , सुहृदोऽतिस्निग्धाननुजीविनश्च नोऽद्यापि स्वित् किंस्वित्त्वं जिहाससि । येषामस्माकमन्यत्परायणं नैवास्ति । तत्कुतः । राजसु योजितमंहो दुःखं यैस्तेषाम् । स्वानां कृतमीहितमपेक्षितं येन तस्य संबोधनम् । विसर्गान्तपाठे त्वंपदविशेषणम् ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

अब कुन्ती देवी बतलाती हैं कि इस समय हमलोगों को छोड़ना अनुचित है । इस बात को वे **अप्यद्य० इत्यादि** चार श्लोकों के द्वारा बतलाती हैं । वे कहती हैं कि हे प्रभो ! हमलोग आपके अत्यन्त स्निग्ध अनुचर हैं । आप तो अपने लोगों के लिए उनके अपेक्षित कार्यों को करते ही हैं । क्या आप हमलोगों को छोड़ देना चाहते हैं ? आपके अतिरिक्त हमलोगों का कोई दूसरा आश्रय नहीं है । हमलोगों ने पृथिवी को दूसरे राजाओं को दुःख ही दिया है, अतएव वे हमारे विरोधी हैं । यदि **स्वकृतेहितः** पाठ होगा तो वह त्वम् पद का विशेषण हो जायेगा।

**योजितांहसाम्** का **योजितम् अंहः दुखम् यै ते तेषाम्** यह विग्रह है। **स्वकृतेहित** का विग्रह **स्वानां कृतम् इहितम् अपेक्षितं येन तत् संबुद्धौ** है ।।३७।।

**के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः । भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ।।३८।।**

**अन्वयः**— ईशितुः विना हृषीकाणाम् इव यर्हि भवतः अदर्शनः तर्हि यदुभिः सह पाण्डवा वयम् नामरूपाभ्याम् के ?।।३८।।

**अनुवाद**— जिस तरह आत्मा के बिना इन्द्रियों की सत्ता समाप्त हो जाती है, उसी तरह जब आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो यादवों और हम पाण्डवों के नाम और रूप की सत्ता कैसे रह पायेगी ?।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

ननु तव बन्धवो यदवाः पुत्राश्च पाण्डवाः शूरा समर्थाश्च तत्किं कार्पण्यं भाषसेऽत आह- के वयमिति । यर्हि भवतोऽदर्शनं यदा त्वमस्मान्न पश्यसि तदा नामरूपाभ्यां नाम्ना विख्यात्या रूपेण समृद्ध्या च यदुभिः सहिताः पाण्डवा नाम के वयं न केऽपि। अतितुच्छा इत्यर्थः । हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशितुर्जीवस्यादर्शने यथा न किंचिन्नाम च रूपं च तद्वत् ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम्हारे बान्धव यदुवंशी हैं और तुम्हारे पुत्र पाण्डव वीर और समर्थ भी हैं ऐसी स्थिति में तुम इतनी दीनतापूर्ण बातें क्यों कहती हो ? तो इसके उत्तर में कुन्ती देवी ने कहा **के वयम्० इत्यादि** जब आप हमलोगों को नहीं देखेंगे तो ऐसी स्थिति में नाम मात्र से व्याप्त तथा रूप से समृद्ध सभी यादव और पाण्डवों की क्या स्थिति होगी ? कुछ भी नहीं । यह उसी तरह से हो जायेगा जिस तरह से आत्मा के शरीर से निकल जाने पर न तो इन्द्रियों का नाम रह जाता है और न रूप रह जाता है ।।३८।।

**नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधरः । त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ।।३९।।**

**अन्वयः**— हे गदाधर ! स्वलक्षणविलक्षितैः त्वत् पदै अङ्किता इयं यथा भाति तत्र इयं न शोभिष्यते ।।३९।।

**अनुवाद**— हे गदाधर ! आपके विलक्षण चरण चिह्नों से अङ्कित यह कुरुजाङ्गल प्रदेश की भूमि जिस तरह इस समय सुशोभित होती है, वह आपके यहाँ से चले जाने पर इस तरह से नहीं सुशोभित होगी ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

किंच । यथेदानीमियमस्मत्पाल्या भूमिः स्वैरसाधारणैर्वज्राङ्कुशादिभिर्लक्षणैर्विलक्षितैश्चि- ह्नितैस्त्वत्पदैरङ्किता सती भाति। तत्र तदा त्वयि निर्गते सति न शोभिष्यते ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

जिस तरह से हमलोगों के द्वारा पालन की जाने वाली कुरुजाङ्गल प्रदेश की भूमि अपने असाधारण वज्र अङ्कुश आदि चिह्नों से चिह्नित आपके चरणों से अङ्कित होने के कारण सुशोभित होती है, आपके चले जाने पर यह उस तरह से सुशोभित नहीं होगी ।।३९।।

**इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः । वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ।।४०।।**

**अन्वयः**— तव वीक्षितैः एव इमे सुपक्वौषधि वीरुधः स्वृद्धा इमे जनपदाः वनाद्रिनद्युदन्वन्तः एधन्ते ।।४०।।

**अनुवाद**— आपके देखने मात्र से ही पकी हुयी फसलों तथा लताओं और वृक्षों से अच्छी तरह से समृद्ध ये जनपद तथा वन, पर्वत, नदी तथा समुद्र भी समृद्ध हो रहे हैं ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

अपि च इमे जनपदा देशाः स्वृद्धाः सुसमृद्धाः सन्तः ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

आपके देखने से ही ये जनपद भी समृद्ध हैं ॥४०॥

**अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे । स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥४१॥**

**अन्वयः**— अथ हे विश्वेश ! विश्वात्मन् । विश्वमूर्ते मे स्वकेषु पाण्डुषु वृष्णिषु च दृढं इमं स्नेह पाशम् छिन्धि ॥४१॥

**अनुवाद**— हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! हे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा ! हे सम्पूर्ण जगत् शरीरक भगवन्! आप मेरे जो अपने पाण्डव एवं यदुवंशी हैं उनमें लगी हुयी मेरी ममता का जो बन्धन है, उसे आप काट दें ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**

गमने पाण्डवानामकुशलमगमने च यादवानामित्युभयतो व्याकुलचित्ता सती तेषु स्नेहनिवृत्तिं प्रार्थयते- अथेति । विश्वेशेत्यादिसंबोधनानि स्नेहपाशच्छेदे सामर्थ्यख्यापनाय । दृढं सन्तम् ॥४१॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के चले जाने पर पाण्डवों के अकुशल को और नहीं जाने पर यदुवंशियों के अकुशल को सोचकर कुन्ती देवी का चित्त व्याकुल हो गया; अतएव वे भगवान् से प्रार्थना करती हैं कि मेरा पाण्डवों एवं यादवों में स्नेह का जो बन्धन हैं, उसको आप दूर कर दें । कुन्ती देवी ने श्रीभगवान् को विश्वात्मन् इत्यादि सम्बोधनों से श्रीभगवान् के स्नेह पाश के बन्धन के काटने के सामर्थ्य को बोधित करने के लिए उनको संबोधित किया है । क्योंकि उनका पाण्डवों एवं यादवों में अत्यधिक स्नेह हैं ॥४१॥

**त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् । रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥४२॥**

**अन्वयः**— हे मधुपते ! उदन्वति गङ्गौघ इव मे त्वयि अनन्यविषया मतिः असकृत् रतिम् उद्वहतात् ॥४२॥

**अनुवाद**— जिस तरह गङ्गाजी की धारा निरन्तर समुद्र में ही गिरती है, उसी तरह अन्य सारे विषयों को त्यागकर मेरी बुद्ध सदा आप में ही प्रेम करें ॥४२॥

**भावार्थ दीपिका**

ततः किमत आह– त्वयीति । अनन्यविषया सती मे मतिः रतिमुद्वहतात् । अनवच्छिन्नां प्रीतिं करोत्वित्यर्थः । ओघं पूरम् । यथा गङ्गा प्रतिबन्धं न गणयत्येवं मतिरपि विघ्नान्मा गणयत्विति भावः ॥४२॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि पाण्डवों और यादवों में रहने वाले प्रेम के बधन को काट देने से तुमको क्या मिलेगा? तो इसके उत्तर में कुन्ती देवी कहती हैं **त्वयि मे० इत्यादि** जिस तरह से गङ्गा का अविरल प्रावाह निरन्तर समुद्र में हीं गिरता है, उसी तरह से हमारी भी अनन्य विषयिणी बुद्धि आपसे निरन्तर प्रेम करती रहे । जिस तरह गङ्गा का प्रवाह किसी विघ्न की परवाह नहीं करता है उसी तरह से मेरी भी बुद्धि विघ्नों की परवाह किए बिना निरन्तर आप में ही लगी रहे ॥४२॥

**श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।**
**गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥४३॥**

**अन्वयः**— हे कृष्णसख श्रीकृष्ण वृष्णिऋषभ, अवनिध्रुग राजन्यवंशदहन, अनपवर्गवीर्य, गोविन्द, गोद्विज सुरार्ति हरावतार, योगेश्वर, अखिलगुरो भगवान् ते नमः ॥४३॥

**अनुवाद**— हे अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण ! हे यदुवंशियों में श्रेष्ठ ! हे पृथिवी से द्रोह करने वाले राजाओं

के वंश को जला देने वाले, भगवन् ! आपका पराक्रम कभी भी क्षीण नहीं होता है । हे गोविन्द ! आपका यह अवतार गौओं, ब्राह्मणों तथा देवताओं के कष्ट को दूर करने के लिए हुआ है । हे योगेश्वर, हे चराचर के गुरु भगवन् आपको नमस्कार है ।।४३।।

**भावार्थ दीपिका**

एवमभ्यर्थ्य पुनः प्रणमति । हे श्रीकृष्ण, ते नमः उपकाराननुस्मरन्ती बहुधा संबोधयति । कृष्णसखार्जुनस्य सखे । वृष्णीनामृषभ श्रेष्ठ । अवन्यै भूम्यै द्रुह्यन्ति ये राजन्यास्तेषां वंशस्य दहन । एवमप्यनपवर्गवीर्याक्षीणप्रभाव । गोविन्द प्राप्तकामधेन्वैश्वर्य गोद्विजसुराणामार्तिहरोऽवतारो यस्येति ।।४३।।

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार से प्रार्थना करके कुन्ती देवी श्रीभगवान् के उपकारों का स्मरण करती हुयी श्रीभगवान् को नमस्कार कीं तथा उनको अनेक संबोधनों से सबोंधित करती हैं- वे कहती हैं हे अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण ! आप वृष्णिवंशियों में श्रेष्ठ हैं । पृथिवी से द्रोह करने वाले राजाओं के वंश को भस्म कर देने वाले आप अग्नि के समान हैं । ऐसा होने पर भी आप अनपवर्गवीर्य हैं । अर्थात् आपका प्रभाव कभी भी क्षीण नहीं होता है । हे गोविन्द ! आप कामधेनु के समान ऐश्वर्य सम्पन्न हैं । क्योंकि आपकी सारी कामनाएँ पूर्ण हैं । आपका यह अवतार गौओं ब्राह्मणों तथा देवताओं के कष्ट को दूर करने वाला है । **अवनिध्रुग्राजन्यवंशदहन** इस पद का विग्रह इस प्रकार हैं **अवन्यै भूम्यै द्रुह्यन्ति ये राजन्याः तेषा वंशस्य दहन** ।।४३।।

सूत उवाच

**पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः । मन्दं जहसा वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ।।४४।।**

**अन्वयः**— पृथया इत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः वैकुण्ठः मायया मोहयन्निव मन्दं जहास ।।४४।।

सूतजी ने कहा

**अनुवाद**— इस तरह कुन्ती देवी द्वारा मनोहर पदों से स्तुति किए गये सम्पूर्ण महिमा सम्पन्न श्रीभगवान् अपनी माया से मोहित करते हुए के समान मुस्कुराने लगे ।।४४।।

**भावार्थ दीपिका**

कलानि मधुराणि पदानि येषु तैर्वाक्यैः परिणूतः स्तुतोऽखिल उदयो महिमा यस्य सः । णु स्तुतावित्यस्मात् । परिणुतेति वक्तव्ये दीर्घश्छन्दोनुरोधेन । मन्दमीषत् । तस्य हास एव माया । वक्ष्यति हि हासो जनोन्मादकरी च माया इति ।।४४।।

**भाव प्रकाशिका**

मधुर पदों से युक्त वाक्यों से कुन्ती देवी द्वारा स्तुति किए गये तथा सम्पूर्ण महिमा सम्पन्न श्रीभगवान् अपनी माया से मोहित करते हुए के समान मन्द-मन्द मुस्काने लगे । श्रीभगवान्‌की हँसी ही माया है । कहेंगे भी **'हासो जनोन्मादकरी च माया'** अर्थात् श्रीभगवान् की हँसी मनुष्यों को उन्मत्त बना देने वाली माया है । परिपूर्वक **'णुस्तुतौ'** धातु से परिणुत पद व्युत्पन्न होता है किन्तु छन्द की दृष्टि से यहाँ पर परिणूत में दीर्घ उकार किया गया है ।।४४।।

**तां बाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् । स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन्प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ।।४५।।**

**अन्वयः**— ताम् बाढम् इत्युपामन्त्र्य गजसाह्वयम् प्रविश्य, स्त्रियश्च उपामन्त्र्य स्वपुरं यास्यन् राज्ञा प्रेम्णा निवारितः ।।४५।।

**अनुवाद**— भगवान् ने कहा ठीक है आपका मुझमें प्रेम होगा । उसके पश्चात् हस्तिनापुर में प्रवेश करके सुभद्रा द्रौपदी आदि स्त्रियों से विदा लेकर जब भगवान् अपनी नगरी द्वारका जाना चाहते थे, उस समय महाराज युधिष्ठिर ने उनको जाने से प्रेम पूर्वक रोक लिया ।।४५।।

### भावार्थ दीपिका

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिरिति यत्प्रार्थितं तद्वाढमित्यङ्गीकृत्य रथस्थानाद्गजसाह्वयमागत्य पश्चात्तां चान्याश्च सुभद्राप्रमुखाः स्त्रिय उपामन्त्र्यानुज्ञाप्य स्वपुरं यास्यन् राज्ञा युधिष्ठिरेण प्रेम्णाऽत्रैव किंचित्कालं निवसेति संप्रार्थ्य निवारितः ।।४५।।

### भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने यह प्रार्थना किया था कि आपमें मेरी अनन्य विषयिणी बुद्धि बनी रहे तो उसके विषय में भगवान् ने कहा कि ठीक है । उस रथ स्थान से हस्तिनापुर में प्रवेश करने के पश्चात् वे कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्रा आदि स्त्रियों से विदा लेकर अपनी द्वारकापुरी में जाने की इच्छा वाले श्रीभगवान् को महाराज युधिष्ठिर ने प्रेम पूर्वक प्रार्थना किया कि यहाँ ही कुछ दिन रहें और उन्होंने श्रीभगवान् को जाने से रोक लिया ।।४५।।

**व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुध्यत शुचार्पितः ।।४६।।**

**अन्वयः**— ईश्वरेहाज्ञैः व्यासाद्यैः अद्भुतकर्मणा कृष्णेन इतिहासैः प्रबोधितेऽपि राजा शुचार्पितः न अबुध्यत ।।४६।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की इच्छा को नहीं जानने वाले व्यास आदि महर्षियों द्वारा तथा अद्भुत कर्मों को करने वाले श्रीभगवान् के द्वारा इतिहासों के माध्यमों से सान्त्वना प्रदान करने पर भी अपने बन्धु बान्धवों के शोक से सन्तप्त राजा युधिष्ठिर को सान्त्वना नहीं प्राप्त हुयी ।।४६।।

### भावार्थ दीपिका

अथ भीष्मनिर्याणोत्सवं वक्तुमुपोद्घातकथां प्रस्तौति । व्यासाद्यैः प्रबोधितोऽपि शुचा व्याप्तः सन्नाबुध्यत विवेकं न प्राप। कुतः ईश्वरेहाया अज्ञैः । स्वभक्तभीष्मनिर्याणमहोत्सवाय राज्ञा सह कुरुक्षेत्रं गन्तव्यं तत्र तन्मुखेनैवायं प्रबोधनीय इतीश्वराभिप्रायःकार्यद्वयविधायकस्तमजानद्भिरित्यर्थः । श्रीकृष्णेनापि प्रबोधितो नाबुध्यत् । अत्र हेतुः- अद्भुतकर्मणेति । यथा कुरुपाण्डवसंधानार्थं गतोऽपि यथोचितमेव वदन्नपि विग्रहमेव दढीकृतवानेवमत्रापि प्रबोधयन्नबोधमेव दृढीचकारेत्यर्थः ।।४६।।

### भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् भीष्म के परधाम गमनोत्सव का वर्णन करने के लिए उपोद्घात कथा को **व्यासाद्यैः इत्यादि** श्लोक से उपन्यस्त किया गया है । राजा युधिष्ठिर शोक सन्तप्त थे । उनको अपने मारे गये बान्धवों के विषय में शोक था । उन ईश्वर की इच्छा को नहीं जानने वाले व्यास आदि महर्षियों ने भी उन्हें समझाया । ईश्वर की इच्छा थी कि अपने भक्त भीष्म के परधाम गमनमहोत्सव को देखने के लिए राजा युधिष्ठिर के साथ कुरुक्षेत्र चलना चाहिए और वहीं पर उनके ही मुख से युधिष्ठिर को प्रबोधित करवाना चाहिये । इन दो विषयों से सम्बद्ध था श्रीभगवान् का अभिप्राय, किन्तु व्यास आदि महर्षि भगवान् के इस अभिप्राय को नहीं जानते थे । भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा भी समझाये जाने पर वे सन्तुष्ट नहीं हुए । इसका कारण यह था कि भगवान् तो अद्भुत कर्मों को करने वाले हैं । जैसे कौरवों और पाण्डवों की सन्धि कराने के लिए गये हुए वे उसके अनुकूल बातों को करके भी श्रीभगवान् ने युद्ध को ही सुदृढ बना दिया, उसी तरह से राजा को समझाते हुए श्रीभगवान् ने राजा के अबोध को ही सुदृढ कर दिया ।।४६।।

**आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन्सुहृदां वधम् । प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ।।४७।।**

**अन्वयः**— हे विप्राः प्राकृतेन आत्मना स्नेहमोहवशं गतः, राजा धर्मसुतः सुहृदांवधम् चिन्तयन् आह ।।४७।।

**अनुवाद**— हे शौनकादि महर्षियों अपने अविवेक प्राप्त चित्त के द्वारा मरे हुओं के प्रति स्नेह होने के कारण और जीवितों के प्रति मोहग्रस्त होने के कारण धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने संबन्धियों के विषय में शोक करते हुए कहे ।।४७।।

### भावार्थ दीपिका

अबोधमेव प्रपञ्चयति- आहेति षड्भिः । प्राकृतेनाविवेकव्याप्तेनात्मना चित्तेन । हे विप्राः ।।४७।।

### भाव प्रकाशिका

महाराज युधिष्ठिर के अविवेक का ही **आह० इत्यादि** छह श्लोकों से विस्तार से सूतजी वर्णन करते हैं। मूल के **प्राकृतेनात्मना** पद का विग्रह है, **प्राकृतेन अविवेकव्याप्तेन आत्मना ।** अर्थात् अविवेक ग्रस्त चित्त के द्वारा ।।४७।।

**अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः । पारक्यस्यैव देहस्य बह्वयो मेऽक्षौहिणीर्हताः ।।४८।।**

**अन्वयः**— अहो मे दुरात्मनः हृदि रूढं अज्ञानं पश्यत, पारक्यस्यैव देहस्य कृते मे बह्वयः अक्षौहिणीः हताः ।।४८।।

**अनुवाद**— मुझ दुरात्मा के हृदय में रूढ अज्ञान को तो देखो कि कुत्ते तथा शृङ्गाल के भोजन भूत इस शरीर के लिए मेरी कई अक्षौहिणी सेना मार दी गयी ।।४८।।

### भावार्थ दीपिका

पारक्यस्य श्वशृगालाद्याहारस्य देहस्यार्थे । मे मया । अक्षौहिणीरक्षौहिण्यः । अक्षौहिणीप्रमाणं तु व्यासेनोक्तम्- '**अक्षौहिणी प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः । संख्यागणनतत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ।। शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः । गजानां च प्रसंख्यानमेतदेव प्रकीर्तितम् । ज्ञेयं शतसहस्त्रं तु सहस्राणि नवैव तु । नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चैव हि । पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च । दशोत्तराणि षट् प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः । एतामक्षौहिणीं प्राहुर्यथावदिह संख्यया ।**' इति ।।४८।।

### भाव प्रकाशिका

यह शरीर पारक्य है अर्थात् कुत्तों और स्यारों का भोजन स्वरूप है, इसी शरीर के लिए मैंने अपनी अनेक अक्षौहिणी सेना को मरवा दिया । अक्षौहिणी सेना के प्रमाण को बतलाते हुए महर्षि व्यास ने महाभारत में कहा हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों अक्षौहिणी सेना की संख्या और प्रमाण के विषय में संख्या तत्त्व को जानने वालों ने कहा है कि उसमें इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर रथ होते हैं तथा इतने ही हाथी होते हैं । उसमें एक लाख नब्बे हजार तीन सौ पचास मनुष्य तथा संख्या तत्त्व को जानने वाले लोगों ने उसमें अश्वों की संख्या पैंसठ हजार छह सौ दश बतलायी है । इस तरह से अक्षौहिणी सेना की संख्या ठीक-ठीक बतलायी गयी हैं ।।४८।।

**बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः । न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ।।४९।।**

**अन्वयः**— बाल-द्विज-सुहृन्मित्र-पितृभ्रातृगुरुद्रुहः मे अयुतायुतैः अपि वर्षैः निरयात् मोक्षः न स्यात् ।।४९।।

**अनुवाद**— बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र चाचा तथा गुरु से द्रोह करने वाले मेरी नरक से करोड़ों वर्षों में भी मुक्ति नहीं हो सकती है ।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

सुहृदः संबन्धिनः । मित्राणि सखायः । पितरः पितृव्याः ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर कह रहे हैं कि मैंने बालकों, ब्राह्मणों, सम्बन्धियों, मित्रों तथा चाचाओं एवं द्रोणाचार्य इत्यादि गुरुओं से इस युद्ध के माध्यम से द्रोह किया है । अतएव इसके फलस्वरूप मुझे करोड़ों वर्षों में भी नरक से मुक्ति नहीं मिलेगी ।।४९।।

**नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् । इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥५०॥**

**अन्वयः**— प्रजाभर्तुः राज्ञः धर्मयुद्धे द्विषाम् वधः एनः न इति शासनं वचः मे बोधाय न कल्पते ॥५०॥

**अनुवाद**— प्रजाओं के स्वामी राजा के द्वारा धर्मयुद्ध में शत्रुओं का मारा जाना पापकारक नहीं होता है, यह शास्त्रीय वाक्य मुझे संतुष्ट नहीं कर पाता है ॥५०॥

### भावार्थ दीपिका

स्मृत्याद्यनुशासनाद्धर्मयुद्धे न दोष इति चेत्तत्राह- नैनो राज्ञ इति । द्विषां वध एनः पापं न भवतीति यच्छासनं शिक्षारूपं वचः कुतो न कल्पते । यतस्तद्वचः प्रजाभतुरेव । अयं भावः । स्वप्रजानामन्यतो बाधे प्रसक्ते तद्वधोऽनुज्ञातः दुर्योधनेन तु प्रजायां पाल्यमानायां मया केवलं राज्यलोभेन हतत्वात्पापमेवेदमिति ॥५०॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहा जाय कि स्मृतियों की वाणी है कि धर्मयुद्ध करने में पाप नहीं होता है तो इसके उत्तर में **नैनो राज्ञः इत्यादि** श्लोक कहा गया है । यदि कहें कि धर्मयुद्ध में शत्रुओं को मारना पाप कारक नहीं होता है यह जो उपदेशात्मक वाक्य है उसे आप क्यों नहीं मानते हैं तो इसका उत्तर है कि वह वाक्य प्रजा के स्वामी के लिए है । कहने का अभिप्राय है कि अपनी प्रजा के दूसरे द्वारा वाधित होने पर उसका वध करने के लिए शास्त्र आज्ञा देता है । दुर्योधन के द्वारा ही प्रजापालन किया जा रहा था, मैंने तो केवल राज्य के लोभ से इन सबों को मारा अतएव यह तो पाप ही है ॥५०॥

**स्त्रीणं मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः । कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥५१॥**

**अन्वयः**— इइ यः असौ मद्हतबन्धूनां स्त्रीणां द्रोहः उत्थितः तत् गृहमेधीयैः कर्मभिः अहं व्यपोहितुं कल्पो न ॥५१॥

**अनुवाद**— इस युद्ध में जिनके बान्धव मार दिए गये हैं ऐसी स्त्रियों का जो द्रोह रूपी पाप मैंने किया है उसको मैं गृहस्थोचित यज्ञ यागादि कर्मों के द्वारा दूर नहीं कर सकता हूँ ॥५१॥

### भावार्थ दीपिका

किंच ! युद्धे पुंसां बधो भवतु नाम धर्मः स्त्रीणां तु मया हता बन्धवो यासां तासां योऽसौ द्रोहोऽनुद्दिष्टोऽप्युत्थितस्तं व्यपोहितुमपाकर्तुं कल्पः समर्थो नाहम् । गृहमेधीयैर्गृहाश्रमविहितैः ॥५१॥

### भाव प्रकाशिका

दूसरी बात है कि मान लें कि युद्ध में पुरुषों का वध धर्म हैं किन्तु जिन स्त्रियों के बान्धवों को मैंने मार दिया है, उन सबों का जो अवर्णित द्रोह हुआ है, उसको तो मैं इन गृहस्थाश्रमोचित विहित यज्ञादि के द्वारा दूर नहीं ही कर सकता हूँ ॥५१॥

**यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् । भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥५२॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथम स्कन्धे कुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

**अन्वयः**— यथा पङ्केन पङ्काम्भः (स्वच्छीकर्तं न शक्यते) सुरया वा सुराकृतम् तथैव यज्ञैः एकां भूतहत्याम् मार्ष्टुम् न अर्हति ॥५२॥

**अनुवाद**— जिस तरह कीचड़ से गन्दे जल को स्वच्छ नहीं किया जा सकता है, अथवा मदिरा से मदिरा

की अपवित्रता को दूर नहीं किया जा सकता है, उसी तरह हिंसा बहुल अश्वमेधादि यज्ञों के द्वारा एक भी प्राणी की हत्या का प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता है ।।५२।।

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति तथा युधिष्ठिर के संताप का वर्णन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।**

### भावार्थ दीपिका

ननु '**सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते य उ चैनमेवं वेद**' इति श्रुतेः पापमश्वमेधेन नश्येदेवेत्याशङ्क्य अविवेकविजृम्भितं हेतुवादमाश्रित्य निराकरोति- यथेति । यथा घनपङ्केन पङ्काम्भो न मृज्यते, यथा वा सुरालेशकृतमपावित्र्यं वह्वया सुरया न मृज्यते तथैव भूतहत्यामेकां प्रमादतो जातां बुद्धिपूर्वहिंसाप्रायैर्यज्ञैर्मार्ष्टुं शोधयितुं नार्हतीति ।।५२।।

**इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽध्यायः ।।८।।**

### भाव प्रकाशिका

**सर्व पाप्मानम् इत्यादि** श्रुति कहती है कि अश्वमेध यज्ञ करने वाला मनुष्य सभी पापों तथा ब्रह्महत्या जन्य पापों को भी नष्ट कर देता है, जो इस तरह से जानता है । इस श्रुति के अनुसार अश्वमेध याग करने से मनुष्य पापों को विनष्ट कर देता है, इस तरह की शङ्का करके युधिष्ठिर तर्क को अपनाकर उसका खण्डन करते हुए कहते हैं— जिस तरह कीचड़ से गदले पानी को साफ नहीं किया जा सकता है अथवा थोड़ी सी भी मदिरा जन्य अपवित्रता को वहुत अधिक मदिरा के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, उसी तरह प्रमादवशात् एक भी प्राणी की की गयी हत्या का प्रायश्चित्त इन बुद्धि पूर्वक किए जाने वाले हिंसा बहुल यज्ञों के द्वारा नहीं किया जा सकता है ।।५२।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।**

# नवाँ अध्याय

## युधिष्ठिर आदि का भीष्म के पास जाना तथा श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए भीष्मजी का प्राणत्याग करना

सूत उवाच

**इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया । ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ।।१।।**

**अन्वयः**— इति प्रजाद्रोहात् भीतः ततः सर्वधर्मविवित्सया, विनशनं प्रागात्, यत्र देवव्रतः अपतत् ।।१।।

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से प्रजाद्रोह से भयभीत महाराज युधिष्ठिर सभी धर्मों को जानने के लिए कुरुक्षेत्र गये जहाँ पर भीष्मजी शरशय्या पर पड़े थे ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

युधिष्ठिराय भीष्मेण सर्वधर्मनिरूपणम् । कृष्णस्तुतिश्च मुक्तिश्च नवमे तस्य वर्ण्यते । यदर्थं तस्याविवेकः श्रीकृष्णेन संवर्धितस्तद्दर्शयति- इतीति । सर्वेषां धर्माणां विवित्सया वेदितुमिच्छया। विनशनं कुरुक्षेत्रम् । देवव्रतो भीष्मः ।।१।।

### भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में भीष्मजी द्वारा युधिष्ठिर को सभी धर्मों का उपदेश तथा उनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति एवं उनकी मुक्ति का वर्णन किया गया है ।।१।।

**यदर्थमित्यादि**— भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस कार्य को करने के लिए राजा युधिष्ठिर के अविवेक को बढ़ाया उसी को **इति भीतः इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है **सर्वधर्मविवित्सया** पद का विग्रह है **सर्वेषां धर्माणां विवित्सया वेदितुमिच्छया** । अर्थात् सभी धर्मों को जानने की इच्छा से विनशन कुरुक्षेत्र का नाम है । भीष्मजी का एक नाम देवव्रत है ।।१।।

**तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः । अन्वगच्छन्रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ।।२।।**

**अन्वयः**— हे विप्राः तदा सदश्वैः स्वर्णभूषितैः रथैः ते सर्वे भातरः तथा व्यासधौम्यादयः अन्वगच्छन् ।।२।।

**अनुवाद**— हे शौनकादि विप्रों ! उस समय अच्छे घोड़ों से युक्त तथा स्वर्ण जटित रथों पर सवार होकर वे सभी भाई गये तथा व्यास धौम्य इत्यादि विप्रों ने भी राजा युधिष्ठिर का अनुगमन किया ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

सन्तः श्रेष्ठा अश्वा सेषु तै रथैः ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

जिनमें श्रेष्ठ अश्व जुते थे ऐसे रथों से ।।२।।

**भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनंजयः । स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ।।३।।**

**अन्वयः**— विप्रर्षे ! सधनञ्जयः भगवानापि रथेन अन्वगच्छत् तैः स नृपः गुह्यकैः कुबेर इव व्यरोचत् ।।३।।

**अनुवाद**— हे विप्रर्षे शौनकजी अर्जुन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी रथ से उनके साथ गये । इन सबों से राजा युधिष्ठिर यक्षों द्वारा अनुगमन किए जाते हुए कुबेर के समान सुशोभित हुए ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**— भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुन के साथ रथ से राजा युधिष्ठिर के पीछे-पीछे गये । उससे राजा युधिष्ठिर की उसी तरह शोभा हो रही थी जिस तरह गुह्यकों (यक्षों) द्वारा अनुगमन किये जाने वाले कुबेर की शोभा होती है ।।३।।

**दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् । प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ।।४।।**

**अन्वयः**— दिवश्च्युतम् अमरम् इव भूमौ निपतितं भीष्मं दृष्ट्वा चक्रिणा सह सानुगाः पाण्डवाः प्रणेमुः ।।४।।

**अनुवाद**— स्वर्ग से गिरे हुए देवता के समान पृथिवी पर पड़े हुए भीष्म को देखकर अनुचरों से युक्त पाण्डवों ने भगवान् श्रीकृष्ण के साथ उनको प्रणाम किया ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

सानुगाः परिवारसहिताः ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

मूल के सानुगाः पद का अर्थ परिवार के साथ है ।।४।।

**तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम । राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं भरतपुङ्गवम् ।।५।।**

**अन्वयः**— तत्र हे सत्तम ! भरतपुङ्गवम् द्रष्टुं सर्वे ब्रह्मर्षयः देवर्षयः च राजर्षयः च आसन् ।।५।।

**अनुवाद**— हे महर्षियों में श्रेष्ठ शौनकजी उसी समय भरतवंशियों में श्रेष्ठ भीष्मजी को देखने के लिए वहाँ पर सभी ब्रह्मर्षि, सभी देवर्षि तथा सभी राजर्षि गण भी आ गये ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र तदा । तत्रासन् । तत्क्षणमेवागता इत्यर्थः । भरतपुङ्गवं भीष्मम् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में दो बार तत्र् शब्द का प्रयोग हुआ है । उसमें प्रथम तत्र शब्द का अर्थ है उसी क्षण और दूसरे तत्र शब्द का अर्थ है वहाँ पर, भरतपुङ्गव शब्द से भीष्मजी को कहा गया है ॥५॥

**पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः । बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ॥६॥**
**वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः । कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥७॥**
**अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोऽमलाः । शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ॥८॥**

**अन्वयः**— पर्वतः, नारदः, धौम्यः, भगवान् बादरायणः, बृहदश्वः, भरद्वाजः, सशिष्यः रेणुकासुतः, वसिष्ठः, इन्द्रप्रमदः त्रितः, गृत्समदः, असितः, कक्षीवान्, गौतमः, अत्रिः, कौशिकः अथ सुदर्शनः, अन्येच अमलाः ब्रह्मरातादयः मुनयः कश्यपाङ्गिरसादयः आजग्मुः ॥६-८॥

**अनुवाद**— हे शौनकजी पर्वत, नारद, धौम्य भगवान् व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, अपने शिष्यों के साथ परशुरामजी, वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन, दूसरे भी शुद्धहृदय वाले शुकदेवजी इत्यादि महर्षिगण, कश्यप महर्षि तथा आङ्गिरस महर्षि के पुत्र बृहस्पति आदि वहाँ आयें ॥६-८॥

**भावार्थ दीपिका**

रेणुकासुतः परशुरामः ब्रह्मरातः शुकः । आङ्गिरसो बृहस्पतिः ॥६-८॥

**भाव प्रकाशिका**

रेणुकासुत परशुरामजी का नाम है । ब्रह्मरात शुकदेवजी का नाम हैं । और आङ्गिरस बृहस्पति का नाम है क्योंकि वे आङ्गिरा महर्षि के पुत्र हैं ॥६-८॥

**तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः । पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥९॥**

**अन्वयः**— समेतान्तान् महाभागान् उपलभ्य देशकालविभागवित् वसूत्तमः उपलभ्य पूजयामास ॥९॥

**अनुवाद**— आये हुए उन सभी महाभागों का जानकार वसुओं में श्रेष्ठ भीष्मजी उन सबों की पूजा किए ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

वसूत्तमो भीष्मः । देशकालविभागविदित्युत्थातुमशक्यत्वाच्छयान एव मनसा वाचा च पूजयामासेत्यभिप्रायः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

वसूत्तम शब्द से भीष्मजी को कहा गया है । देश तथा काल के विभाग को जानने वाले भीष्मजी उठने में असमर्थ थे, अतएव सोये-सोये ही मन तथा वाणी से उनलोगों की पूजा किए ॥९॥

**कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् । हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— माययोपात्तविग्रहम् हृदिस्थं जगदीश्वरम् आसीनं कृष्णं च तत्प्रभावज्ञः पूजयामास ॥१०॥

**अनुवाद**— माया के द्वारा शरीर धारण किए हुए, हृदय में विद्यमान जगत् के स्वामी सामने विद्यमान भगवान् श्रीकृष्ण की भी उन्होंने मन से पूजा की ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

हृदिस्थं सन्तं पुरतश्चासीनं पूजयामास ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

हृदय में विद्यमान तथा सामने बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण की उन्होंने मन ही मन पूजा की ॥१०॥

**पाण्डुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसङ्गतान् । अभ्याचष्टानुरागास्रैरन्धीभूतेन चक्षुषा ॥११॥**

**अन्वयः**— प्रश्रयप्रेमसङ्गतान्, उपासीनान् पाण्डुपुत्रान् अनुरागास्रैः अन्धीभूतेन चक्षुषा अभ्यचष्ट ॥११॥

**अनुवाद**— नम्रता एवं प्रेम पूर्वक सन्निकट में बैठे हुए पाण्डुपुत्रों को प्रेमाश्रुओं से भरे नेत्रों से देखकर उन्होंने कहा ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

उपासीनान् समीपे उपविष्टान् । प्रश्रयो विनयः प्रेम स्नेहस्ताभ्यां सङ्गतानुपसन्नान् । पाठान्तरे ताभ्यामवनतान् । अभ्याचष्टाभ्यभाषत् । अनुरागास्रैः स्नेहाश्रुभिरन्धीभूतेन चक्षुषोपलक्षितः । ददर्शेति वा ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

सभी पाण्डव भीष्मजी के सन्निकट में विनय एवं नम्रता पूर्वक बैठे थे, उन सबों को देखकर भीष्मजी की आँखों में प्रेमाश्रुभर गया । उन्होंने पाण्डवों से कहा अभ्याचष्ट का अर्थ देखा भी होगा ॥११॥

**अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः । जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥१२॥**

**अन्वयः**— अहो कष्टम्, अहो अन्याय्यम् यत् धर्मनन्दना यूयं विप्रधर्माच्युताश्रयाः क्लिष्टं जीवितुं नार्हथ ॥१२॥

**अनुवाद**— यह अत्यन्त निन्दित तथा महा अन्याय की बात है की आप लोग धर्मपुत्र हैं । ब्रह्मण, धर्म और भगवान् अच्युत के आश्रित हैं । आपलोग कष्ट पूर्वक जीने के योग्य नहीं थे ॥१२॥

**भावार्थदीपिका**

अभिभाषणमाह अहो इत्येकादशभिः । हे धर्मनन्दनाः, क्लिष्टं यथा भवत्येवं जीवितुं नार्हथ यूयमिति यदेतदहो कष्टं जुगुप्सितम् । अहो अन्याय्यं चैतत् । यतो यूयं विप्रा धर्मोऽच्युतश्चाश्रयो येषां ते ॥१२॥

**भावप्रकाशिका**

भीष्मजी ने जो कहा उसको **अहोकष्टम्० इत्यादि** ग्यारह श्लोकों में कहा गया है । भीष्मजी ने कहा कि तुमलोग धर्मपुत्र हो, कष्ट पूर्वक जीने के योग्य नहीं हो, किन्तु कष्ट भोगना पड़ा यह अत्यन्त निन्दित है । तथा यह अत्यन्त अन्यायमय है । क्योंकि आपलोगों के आश्रय तो ब्राह्मण, धर्म और भगवान् श्रीकृष्ण थे।

यद्यपि युधिष्ठिर ही धर्मपुत्र थे, फिर भी सभी पाण्डवों को धर्मपुत्र कहने का अभिप्राय है कि पाण्डवों में युधिष्ठिर ही प्रधान थे और उन्हीं के अनुसार सभी पाण्डव रहते थे ॥१२॥

**संस्थितेऽतिरथे पाण्डौ पृथा बालप्रजा बधूः । युष्मत्कृते बहून्क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहूः ॥१३॥**

**अन्वयः**— अतिरथे पाण्डौ संस्थिते तोकवती बालप्रजा वधूः पृथा युष्मत्कृते बहून् क्लेशान् मुहुः प्राप्ता ॥१३॥

**अनुवाद**— अतिरथी पाण्डु की मृत्यु हो जाने पर उस समय तुमलोग बहुत छोटे थे । बाल प्रजाओं वाली बधू कुन्ती तुमलोगों के कारण बार-बार बहुत अधिक कष्टों को भोगी ॥१३॥

### भावार्थदीपिका

किंच संस्थिते मृते । बालाः प्रजाः पुत्रा यस्याः सा । वधूश्चेति दैन्यं प्रदर्शितम् । तोकान्यपत्यानि तद्वती । अपत्यैः सह क्लेशान्प्राप्तेत्यर्थः ॥१३॥

### भावप्रकाशिका

महाराज पाण्डु अतिरथ वीर थे उनकी मृत्यु हो जाने पर चूकि तुम लोग बहुत छोटे थे । इन छोटे बच्चों वाली वधू कुन्ती ने बार-बार तुमलोगों के साथ ही बहुत अधिक कष्ट भोगा ॥१३॥

**सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् । सपालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥१४॥**

**अन्वयः**— भवतां यत् अप्रियं तत् सर्वं कालकृतम् मन्ये, धनावलिः वायोः इव यद्वशे सपालः लोकः ॥१४॥

**अनुवाद**— मैं मानता हूँ कि आपलोगों को जो कष्ट भोगना पड़ा वह सब कुछ कालकृत ही है । जिस काल के अधीन लोकपालों सहित यह सारा जगत् उसी तरह रहता है जिस तरह वायु के अधीन मेघ समूह रहता है ॥१४॥

### भावार्थदीपिका

कालकृतत्वेन शोकं वारयति-सर्वमिति द्वाभ्याम् । भवतामपि । यद्वशे यस्य वशवर्ती ॥१४॥

### भावप्रकाशिका

भीष्मजी ने कहा कि आपलोगों को जो कष्टों को भोगना पड़ा वह सब कुछ कालकृत है । उसमें किसी दूसरे का हाथ नहीं है । काल सबको अपने वश में रखता है । काल के ही अधीन सभी लोकपाल रहा करते है । इसका उदाहरण उन्होंने बतलाया जिस तरह वायु जिधर चाहती है उसी तरफ मेघ समूह को उड़ा ले जाती हैं ॥१४॥

**यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः । कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥१५॥**

**अन्वयः**— यत्र धर्मसुतो राजा, गदापाणिः वृकोदरः, अस्त्री कृष्णः, गाण्डीवं चापं, सुहृत् कृष्णः ततः विपत् :॥१५॥

**अनुवाद**— अन्यथा जहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर राजा हों, भीम जैसे गदाधारी हो, अर्जुन जैसे अस्त्र धारण करने वाले हों जहाँ गाण्डीव जैसा धनुष हो एवं भगवान् श्रीकृष्ण जैसे सम्बन्धी भी हों वहाँ पर विपत्ति कैसे सम्भव थीं ?॥१५॥

### भावार्थदीपिका

अहो दुर्घटघटनापटुः काल इत्याह- यत्रेति । कृष्णोऽर्जुनः अस्त्री धन्वी । ततस्तत्रापि विपत् । पुण्यशारीरबलास्त्रनैपुण्यशस्त्रदेवसंपत्तावपीत्यर्थः ॥१५॥

### भावप्रकाशिका

यह काल असम्भव को भी सम्भव करने में अत्यन्त निपुण है, इस अर्थ का प्रतिपादन **यत्र० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इस श्लोक में कृष्ण शब्द से अर्जुन को उसको धनुर्धारी बतलाया गया है । जहाँ पर पुण्य, शारीरिक बल, अस्त्र की निपुणता शस्त्र तथा देवता ये सभी विद्यमान हों वहाँ पर भी विपत्ति होना तो आश्चर्य की बात है । तुम पाण्डवों में सारे सुख के साधन विद्यमान थे फिर भी काल के अधीन रहने वाले तुम लोगों को कष्ट हुआ । यह काल का ही कार्य हैं ॥१५॥

**न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्पुमान्वेद विधित्सितम् । यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ॥१६॥**

**अन्वयः**— राजन् अस्य विधित्सितम् कर्हिचित पुमान् न वेद । यद्विजिज्ञासया युक्ता कवयः अपि मुह्यन्ति ॥१६॥

**अनुवाद**— राजन् ! ये कालरूपधारी श्रीकृष्ण कब क्या करना चाहते हैं ? इस बात को कोई मनुष्य कभी नहीं जान सकता है । इनके विषय में विशेष रूप से जिज्ञासा से युक्त ज्ञानी पुरुष भी मोहित हो जाते हैं ॥१६॥

### भावार्थदीपिका

ननु कृष्णं कथं कालोऽतिक्रमेदित्यपेक्षायामाह । न ह्यस्य श्रीकृष्णस्येत्यङ्गुल्या निर्दिशति । विधित्सितं कर्तुमिष्टं यत्। यस्य विधित्सितस्य जिज्ञासया ।।१६।।

### भावप्रकाशिका

यदि कहे कि भगवान् श्रीकृष्ण का अतिक्रमण काल कैसे कर सकता है ? तो इसके उत्तर में भीष्मजी **नह्यस्य० इत्यादि** श्लोक कहते है । ये श्रीकृष्ण स्वयं काल हैं । इसलिए उनका अङ्गुल्या निर्देश करके कहते हैं कि ये क्या करना चाहते हैं ? इस बात को कोई भी नहीं जान सकता है । श्रीभगवान् की विधित्सा के विषय में जिज्ञासा से युक्त ज्ञानी पुरुष भी मोहित हो जाते हैं ।।१६।।

**तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ । तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ।।१७।।**

**अन्वयः**— तस्मात् हे भरतर्षभ इदं दैवतन्त्रं व्यवस्य तस्य अनुविहितः हे नाथ ! हे प्रभो ! अनाथाः प्रजाः पाहि ।।१७।।

**अनुवाद**— अतएव हे भरतवंश में श्रेष्ठ युधिष्ठिर, यह सबकुछ सुख दुःख परमात्माधीन है, इस बात का निश्चय करके आप इनका अनुवर्ती होकर हे कुल परम्परागत स्वामिन् ! हे समर्थ प्रभो ! आप अनाथ प्रजाओं का पालन करें ।।१७।।

### भावार्थदीपिका

इदं सुखदुःखादि दैवतन्त्रमीश्वराधीनं व्यवस्य निश्चित्य तस्येश्वरस्यानुविहितोऽनुवर्ती सन् । कर्तरि क्तः । हे नाथ कुलपरम्परागतस्वामिन्, प्रभो समर्थ, अनाथाः प्रजाः पाहि ।।१७।।

### भावप्रकाशिका

संसार में प्राप्त होने वाले सुख और दुःख परमात्माधीन हैं, इस बात का निश्चय करके इन परमात्म का अनुवर्ती बनकर हे कुल परम्परा से प्राप्त स्वामिन् ! हे समर्थ ! आप अब अनाथ प्रजाओं का पालन करें । अनुविहितः में कर्ता के अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ हैं ।।१७।।

**एष वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् । मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ।।१८।।**

**अन्वयः**— एष वै साक्षात् भगवान् आद्यः पुमान् नारायणः मायया लोकं मोहयन् वृष्णिषु गूढः चरति ।।१८।।

**अनुवाद**— ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं ये आदि पुरुष नारायण हैं, ये अपनी माया द्वारा जगत् को मोहित करके यदुवंशियों में छिपकर लीला कर रहे हैं ।।१८।।

### भावार्थदीपिका

अनुविधेयः परमेश्वरश्च श्रीकृष्ण एवेत्याह । एष एव भगवान्सर्वेश्वरः । यत आद्यः पुमान् । तच्च कुतः । यतो नारायणः साक्षात् ।।१८।।

### भावप्रकाशिका

श्रीकृष्ण भगवान् का अनुवर्तन करना चाहिए ये परमेश्वर हैं । अतएव भगवान् अर्थात् सर्वेश्वर हैं ये ही आदि पुरुष हैं क्योंकि ये साक्षात् नारायण ही हैं ।।१८।।

**अस्यानुभावं भगवान्वेद गुह्यतमं शिवः । देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान्कपिलो नृप ।।१९।।**

**अन्वयः**— नृप अस्य गुह्यतमं अनुभावं भगवान् शिवः वेद देवर्षिः नारदः भगवान् कपिलश्च साक्षात् वेद ।।१९।।

**अनुवाद**— इनके रहस्यात्मक प्रभाव को भगवान् शिव, देवर्षि नारद तथा भगवान् कपिल साक्षात् जानते हैं ।।१९।।

**भावार्थदीपिका**

तदुपपादयति- अस्येति । अनुभावं प्रभावम् ।।१९।।

**भावप्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण के नारायणत्व का प्रतिपादन करते हुए भीष्मजी कहते हैं कि इनके रहस्यात्मक प्रभाव को भगवान् शङ्कर साक्षात् जानते हैं, देवर्षि नारद तथा भगवान् कपिल भी साक्षात् जानते हैं ।।१९।।

**यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् । अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ।।२०।।**

**अन्वयः**— यं त्वं मातुलेयम् प्रियं मित्रम्, सुहृत्तमम् मन्यसे अथ सौहृदात् सचिवं, दूतम् सारथिम् च अकरोः सोऽयं परमेश्वरः ।।२०।।

**अनुवाद**— जिनको तुम अपना ममेरा भाई मानते हो, अत्यन्त स्नेहिल सम्बन्धी, मानते हो और इनके सौहार्द के कारण तुमने इनको अपना सचिव, दूत तथा सारथि भी बना डाले ये साक्षात् परमेश्वर हैं ।।२०।।

**भावार्थदीपिका**

त्वमज्ञानाद्यमेवं मन्यसे । मातुलेयं देवक्याः सुतम् । प्रियं प्रीतिविषयम् । मित्रं प्रीतिकर्तारम् । सुहृत्तममुपकारानपेक्ष्योपकारकं च । सौहृदाद्विश्वासात् । अकरोः कृतवानसि । सचिवं मन्त्रिणम् ।।२०।।

**भावप्रकाशिका**

तुम अज्ञान के कारण जिनको ममेरा भाई, देवकी का पुत्र मानते हो, प्रिय मित्र मानते हो तथा सुहृत्तम मानते हो अर्थात् यह मानते हो कि उपकार की अपेक्षा किए बिना ही उपकार करने वाले हैं तथा विश्वास के कारण तुमने इनको अपना सचिव, दूत बनाये और सारथि भी बनाया ये परमेश्वर हैं ।।२०।।

**सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहंकृतेः । तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ।।२१।।**

**अन्वयः**— सर्वात्मनः समदृशः, अद्वयस्य अनहंकृतेः, निरवद्यस्य तत् कृतं क्वचित् मतिवैषम्यं न ।।२१।।

**अनुवाद**— सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहङ्कार रहित तथा निष्पाप परमात्मा में कर्म को लेकर कहीं भी किसी प्रकार की बुद्धि की विषमता नहीं होती हैं ।।२१।।

**भावार्थदीपिका**

नन्वीश्वरश्चेत्कथं नीचे सारथ्यादौ प्रवृत्तस्तत्राह- सर्वेति । अस्य तत्कृतं नीचोच्चकर्मकृतं मम योग्यमयोग्यमिति मतेर्वैषम्यं क्वचिदपि नास्ति । कुतः । निरवद्यस्य रागादिशून्यस्य । तत्कुतः । अनहंकृतेः । तच्च कुतः । अद्वयस्य । तदपि कुतः । समदृशः। तत्रापि हेतुः- सर्वस्यात्मनः । यथेष्टं वा हेतुहेतुमद्भावः ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि ये यदि ईश्वर हैं तो फिर सारथि जैसे नीच कर्म को करने में इनकी प्रवृत्ति कैसे हुयी ? तो इसका उत्तर **सर्वात्मनः इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । इन भगवान् श्रीकृष्ण की नीच कर्म को लेकर या उच्च कर्म को लेकर यह कार्य मेरे योग्य है यह मेरे योग्य नहीं है, इस प्रकार की बुद्धि की विषमता कही भी नहीं हैं, क्योंकि ये तो निरवद्य हैं, अर्थात् राग द्वेष आदि दोषों से रहित हैं, ऐसा इसलिए कि इनमें अहङ्कार है ही नहीं वह भी इसलिए है कि वे भेद रहित होने के कारण अद्वितीय हैं । समदर्शी हैं तथा सर्वात्मा है । अर्थात् समदर्शित्व के कारण सर्वात्मा हैं । समदर्शित्व और सर्वात्मत्व में हेतुहेतुमद्भाव है ।।२१।।

**तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम् । यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥२२॥**

**अन्वयः**— तथापि हे भूप ! एकान्तभक्तेषु अनुकम्पितम् पश्य यत् असून् त्यजतः मे साक्षात् कृष्णः दर्शनमागतः ॥२२॥

**अनुवाद**— फिर भी हे राजन् ! इनकी अपने ऐकान्तिक भक्तों पर अनुकम्पा तो देखो कि अपने प्राणों का त्याग करते समय ये भगवान् श्रीकृष्ण मुझे साक्षात् दर्शन देने के लिए आ गये ॥२२॥

### भावार्थदीपिका

तथापि समत्वेऽपि । हे भूप, अनुकम्पितमनुकम्पाम् ॥२२॥

### भावप्रकाशिका

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण समदर्शी हैं फिर भी इनकी अपने ऐकान्तिक भक्तों पर होने वाली कृपा को तो देखो इस समय मैं अपने प्राणों का परित्याग करने जा रहा हूँ और इस समय ये भगवान् मुझ पर कृपा करके मुझे साक्षात् दर्शन देने के लिए आ गये हैं ॥२२॥

**भक्त्यावेश्य मनोयस्मिन्वाचा यन्नाम कीर्तयन् । त्यजन्कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥२३॥**

**अन्वयः**— भक्त्या यस्मिन् मनः आवेश्य, वाचा यन्नामगृणन्, कलेवरम् त्यजन् योगी कामकर्मभिः मुच्यते ॥२३॥

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान में भक्ति के द्वारा अपने मन को लगाकर उनके नामों का उच्चारण करते हुए अपने शरीर का त्याग करने वाला योगी कामनाओं तथा कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥२३॥

### भावार्थदीपिका

इदानीं स्वदेहत्यागपर्यन्तं श्रीकृष्णावस्थानं प्रार्थयते-भक्त्येति द्वाभ्याम् ॥२३॥

### भावप्रकाशिका

अब भीष्मजी **भक्त्यावेश्य० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि तब तक वे उनके सामने बने रहें जब तक कि वे अपने शरीर का परित्याग करते हैं ॥२३॥

**स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ।**
**प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥२४॥**

**अन्वयः**— यावद् इदं कलेवरम् अहम् हिनोमि तावत् सः प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसत्मुखाम्बुजः ध्यानपथः चतुर्भुजः देवदेवः भगवान् प्रतीक्षताम् ॥२४॥

**अनुवाद**— भीष्मजी ने कहा जब तक मैं इस शरीर का परित्याग करता हूँ तब तक मनोहर हँसी और लाल कमल के समान मनोहर नेत्रों से युक्त मुख कमल वाले, जिनका ध्यान में ही चतुर्भुज रूप से दर्शन होता है ऐसे देवताओं के भी आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ मेरे शरीर त्याग की प्रतीक्षा करें ॥२४॥

### भावार्थदीपिका

यावदिति विलम्बं द्योतयति । अहं हिनोमि त्यजामीति स्वातन्त्र्यम् । इदमित्यनात्मत्वेन ज्ञातम् । प्रसन्नहासेनरुणलोचनाभ्यां चोल्लसद्रुचिरं मुखाम्बुजं यस्य । ध्यानस्य पन्था विषयः । योऽन्यैश्चिन्त्यते केवलं सोऽग्रतः स्थितः सन्मां प्रतीक्षतामित्यर्थः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

भीष्मजी **यावत्** पद का प्रयोग करके शरीर त्याग करने में होने वाले विलम्ब को सूचित करते हैं । **अहं हिनोमि** इस वाक्यांश के द्वारा उन्होंने शरीर त्याग के विषय में अपने स्वतन्त्र्य को सूचित किया है । **इदम्** शब्द के द्वारा उन्होंने सूचित किया है कि शरीर आत्मा से भिन्न है । **ध्यानपथः** अर्थात् ध्यान में प्रतीत होने वाले ।

जिन श्रीभगवान् का दूसरे लोग चिन्तन करते हैं वे भगवान् मेरे आँखों के सामने स्थित रहकर मेरे शरीर त्याग की प्रतीक्षा करें। **प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लन्मुखाम्बुजः** पद का विग्रह इस प्रकार है प्रसन्नहासेन अरुण लोचनाभ्याम् च उल्लसद्रुचिरं मुखाम्बुजम् यस्य सः ॥२४॥

सूत उवाच

**युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपञ्जरे । अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणामनुशृण्वताम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— तदाकर्ण्य युधिष्ठिरः शरपञ्जरे शयानं ऋषीणां च अनुशृण्वताम् विविधान् धर्मान अपृच्छत् ॥२५॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— भीष्मजी के उस वाक्य को सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने शरशय्या पर सोये हुए भीष्मजी से ऋषियों के सामने ही अनेक धर्मों के विषय में प्रश्न किए ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

तत् सानुकम्पं वाक्यमाकर्ण्य ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

भीष्मजी के अनुकम्पायुक्त वाक्य को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने भीष्मजी से अनेक धर्मों के रहस्यों के विषय में पूछा ॥२५॥

**पुरुषस्वभाविहितान्यथावर्णं यथाश्रमम्। वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥२६॥**
**दानधर्मान्राजधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः । स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः ॥२७॥**
**धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथा मुने। नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित्॥२८॥**

**अन्वयः**— हे मुने ! तत्त्ववित् भीष्मः यथावर्णं यथाश्रमम् पुरुषस्वभावविहितान् वैराग्यरागोपाधिभ्याम् आम्नातोभय लक्षणान् दानधर्मान्, राजधर्मान, मोक्षधर्मान् स्त्रीधर्मान्, भगवद्धर्मान् विभागशः समास व्यासयोगतः धर्मार्थकाममोक्षान् च सहोपायान् यथा नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास ॥२६-२८॥

**अनुवाद**— हे शौनकजी ! तत्त्ववेता भीष्मजी ने वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार पुरुषों के स्वाभाविक धर्मरूप से बतलाये गये वैराग्य तथा राग रूपी उपाधियों के कारण निवृत्ति तथा प्रवृत्ति इन दोनों प्रकार के धर्मों का वर्णन किया। उन्होंने, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म तथा भगवद्धर्म को अलग-अलग विभाग पूर्वक संक्षेप में तथा विस्तार से वर्णन किया। हे मुने ! उन्होंने धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों का तथा उनकी प्राप्ति के साधनों का भी अनेक आख्यानों और इतिहासों के माध्यम से वर्णन किया ॥२६-२८॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरुषस्वभावेन विहितान्नरजातिसाधारणान् वर्णयामासेति तृतीयेनान्वयः। यथावर्णं वर्णधर्मान्। यथाश्रममाश्रमधर्मांश्च। वैराग्यरागाभ्यामुपाधिभ्यां क्रमेणाम्नतमुभयं निवृत्तिप्रवृत्तिरूपं लक्षणं येषां तान् ॥२६॥ पुनस्तत्रैव विशेषमाह- दानेति। मोक्षधर्मान् शमदमादीन्। भगवद्धर्मान् हरितोषणान् द्वादश्यादिनियमरूपान्। समासव्यासौ संक्षेपविस्तारौ तावेव योगावुपायौ ततस्ताभ्याम्॥२७॥ धर्मादींश्च यथाधिकारं प्रतिनियतोपायसहितान्। यथा यथावत् नानाख्यानेषु ये इतिहासास्तेषु यथा सन्ति तथा वर्णयामासेति ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

पुरुष स्वभाव के अनुसार मनुष्य जाति के लिए समान रूप से बतलाये गये धर्मों का वर्णन किया **यथावर्णम्** अर्थात् तत्-तत् वर्णों के जो धर्म हैं, एवं तत्-तत् आश्रमों के जो धर्म हैं उन वैराग्योपधि से युक्त निवृति धर्मों एवं रागोपाधि से युक्त प्रवृत्ति धर्मों का भी उन्होंने वर्णन किया।

**पुनस्तत्रैव विशेषम्० इत्यादि-** उसके पश्चात् उन सबों में होने वाली विशेषताओं को बतलाते हुए कहते हैं- **दानधर्मान्० इत्यादि** दानधर्म, शम दम इत्यादि रूप मोक्षधर्मों द्वादशी आदि तिथियों को उपवास आदि के नियमों से युक्त श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले मोक्षधर्मों को, उनके उपायों के साथ उन्होंने संक्षेप में तथा विस्तार से बतलाया । इनमें जो धर्म जिसके लिए बतलाये गये हैं, उनके पालन में जिन लोगों का अधिकार है, तथा उनके अनुष्ठान के जो निश्चित किए गये उपाय हैं, इन सबों के साथ उन्होंने बतलाया । अनेक आख्यानों तथा इतिहासों में वे जैसे वर्णित किए गये हैं वैसे ही उन सबों को उन्होंने युधिष्ठिर को बतलाया ॥२६-२८॥

**धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः । यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥२९॥**

**अन्वयः**— धर्मं प्रवदतः तस्य सः उत्तरायणः कालः समुपस्थितः यः छन्दमृत्योः योगिनः वाञ्छितः ॥२९॥

**अनुवाद**— इस तरह से धर्मोपदेश करते हुए वह उत्तरायण का समय आ गया जिसको अपनी इच्छा के अनुसार शरीर त्याग करने वाले योगिजन चाहते हैं ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

छन्देनेच्छया मृत्युर्यस्य ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

इन सभी धर्मों का उपदेश करते हुए दक्षिणायन का काल समाप्त हो गया और उत्तरायण आ गया । यह वही समय है जिस समय में योगिजन अपनी इच्छा के अनुसार शरीर त्याग करते हैं । **छन्दमृत्योः** पद का विग्रह **छन्देन इच्छया मृत्युः यस्य** है ॥२९॥

**तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसङ्गं मन आदिपूरुषे ।**
**कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ॥३०॥**

**अन्वयः**— तदा सहस्रणीः गिरः उपसंहृत्य, पुरःस्थिते लसत्पीतपटे चतुर्भुजे आदिपुरुषे कृष्णे आमीलितदृक् विमुक्त सङ्गम् मनः व्यधारयत् ।

**अनुवाद**— उस समय भीष्मजी ने बोलना बन्द कर दिया और सामने विद्यमान सुन्दर पीताम्बर धारण किए हुए, चतुर्भुज रूपधारी आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में अपने निःसङ्ग मन को तथा खुली हुयी आँखों को लगा दिया ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

सहस्रणीर्युद्धे समीपस्थान् सहस्रं रथिनो नयति पालयतीति सहस्रणीर्भीष्मः । **'सहस्रिणीः'** इति पाठे सहस्रार्थवतीर्गिरः। लसन्तौ पीतौ पटौ यस्य तस्मिन् अमीलितदृगेव मनो व्यधारयत् ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

सहस्रणी उस वीर को कहते हैं जो युद्ध में अपने सन्निकटस्थ एक हजार रथियों की रक्षा करता है । भीष्मजी सहस्रणी थे । जहाँ पर सहस्रिणी पाठ है, वहाँ पर हजारों अर्थों वाली वाणी अर्थ होगा । **लसत् पीतपटे** का विग्रह है, **लसन्तौ पीतौ पटौ यस्य तस्मिन्** है । भीष्मजी ने अपनी मन को सभी विषयों से समेट कर भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया और एकटक से वे भगवान् श्रीकृष्ण को देखने लगे ॥३०॥

**विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ।**
**निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजन् जनार्दनम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— तदीक्षयैव आशु गतायुधव्यथः विशुद्धया धारणया हताशुभः, निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमः जन्यं विसृजन् जनार्दनं तुष्टाव ॥३१॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् का दर्शन करने मात्र से ही उनकी आयुधों के प्रहार की जो व्यथा थी दूर हो गयी, और श्रीभगवान् में विशुद्ध धारणा होने के कारण उनके समस्त अशुभ विनष्ट हो गये। उन्होंने अपनी सारी इन्द्रियों के विलास का परित्याग कर दिया तथा इस शरीर का परित्याग करने की इच्छा करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ।।३१।।

### भावार्थ दीपिका

अनयैव विशुद्धया धारणया हतमशुभं यस्य सः। तस्य श्रीकृष्णस्येक्षया कृपादृष्टयैव गत आयुधश्रमो यस्य सः। अतएव निवृत्तः सर्वेन्द्रियवृत्तीनां विभ्रमो विविधं भ्रमणं यस्मात्सः। जन्यं देहं जनार्दनमस्तौत् ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

इसी धारणा के द्वारा जिनके समस्त अशुभ विनष्ट हो गये थे तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा दृष्टि के कारण जिनकी आयुध प्रहार जन्य व्यथा समाप्त हो गयी थी, अतएव उनकी इन्द्रियों का चाञ्चल्य समाप्त हो गया था। इस प्रकार के भीष्मजी अपने इस शरीर को त्यागने की इच्छा से श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ।।३१।।

भीष्म उवाच

**इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।**
**स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ।।३२।।**

**अन्वयः**— इति सात्त्वपुङ्गवे विभूम्नि, स्वसुखमुपगते भगवति क्वचिद् विहर्तुम् प्रकृतिमुपेयुषि वितृष्णा भक्तिः उपकल्पिता यद्भवप्रवाहः ।।३२।।

### श्रीभीष्मजी ने कहा

**अनुवाद**— अब मैं सात्त्वतों में श्रेष्ठ स्वेतर समस्त वस्त्वपेक्षया महान् होने के कारण अनन्त तथा स्वरूप भूत परमानन्द में स्थित रहते हुए कभी-कभी कहीं पर विहार करने के लिए अपनी योगमाया को जो अपनाते हैं ऐसे श्रीभगवान् में अपनी निष्काम बुद्धि को समर्पित करता हूँ। जिससे यह सृष्टि परम्परा चलती है ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

परमफलरूपां श्रीकृष्णे रतिं प्रार्थयितुं प्रथमं स्वकृतमर्पयति। इति नानाधर्माद्युपायैर्मतिर्मनोधारणलक्षणा उपकल्पिता समर्पिता। क्व। सात्वतानां पुङ्गवे श्रेष्ठे भगवति। वितृष्णा निष्कामा। अवितृष्णेति वा छेदः। अवितृप्तेत्यर्थः। विगतो भूमा यस्मात्तस्मिन्। यमपेक्ष्यान्यत्र महत्त्वं नास्तीत्यर्थः। तदेव परमैश्वर्यमाह। स्वसुखं स्वस्वरूपभूतं परमानन्दमुपगते प्राप्तवत्येव। क्वचित् कदाचिद्विहर्तुं क्रीडितुं प्रकृतिं योगमायामुपेयुषि स्वीकृतवति नतु स्वरूपतिरोधानेन जीववत्पारतन्त्र्यमित्यर्थः। विहर्तुमिति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयति। यद्यतः प्रकृतेर्भवप्रवाहः सृष्टिपरम्परा भवति ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेमाभक्ति का होना ही जीवन का सबसे बड़ा फल है। उसके लिए प्रार्थना करने के लिए अपने किए हुए कर्मो को श्रीभगवान् को समर्पित करते हुए भीष्मजी कहते हैं। **इतिमतिरुपकल्पिता०** **इत्यादि** अनेक प्रकार के धर्मादि साधनों से मनोधारणा स्वरूपिणी बुद्धि को मैंने लगा दी है। यदि पूछें कि किस में तो इसका उत्तर है। यदुवंशियों में श्रेष्ठ पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दी है। वह जो मेरी निष्काम बुद्धि है, सभी कामनाओं से रहित है। यदि अवितृष्णा पदच्छेद करें तो उसका अर्थ होगा अवितृप्त। क्योंकि श्रीभगवान् का दर्शन करने से मेरी बुद्धि तृप्त नहीं हुयी है। वे भगवान् विभूमा है, अर्थात् उनसे महान् कुछ भी नहीं है। **विगतो भूमा यस्मात् तस्मिन्** यह **विभूम्नि** पद का विग्रह है। वही श्रीभगवान् का परम ऐश्वर्य है। वे श्रीभगवान् अपने स्वरूपभूत

परमानन्द में स्थित रहकर ही जब कभी लीला करना चाहते हैं तो वे उसके लिए अपनी योगमाया को अपना लेते हैं। उसी से यह सृष्टि का प्रवाह प्रवृत्त होता है। वे जैसे जीव अपने स्वरूप के माया के द्वारा तिरोहित हो जाने के कारण माया के परतन्त्र हो जाता है वैसे भगवान् माया के परतन्त्र न होकर स्वतन्त्र रूप से लीलाओं को करते हैं ॥३२॥

**त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।**
**वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥३३॥**

**अन्वयः**— त्रिभुवन कमनं तमालवर्णं रविकगौरवराम्बरं, अलककुलावृताननाब्जं वपुः दधाने विजयसखे मे अनवद्या रतिः अस्तु ॥३३॥

**अनुवाद**— त्रैलोक्य में सबसे सुन्दर तमाल पत्र के समान श्याम वर्ण वाले, प्रातःकलीन सूर्य की किरणों के समान पीले श्रेष्ठ पीताम्बर को धारण किए हुए, काले घुंघराले केशों से आच्छन्न मुख कमल वाले शरीर को धारण करने वाले अर्जुन के मित्र भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी अहैतुकी (फलाभिसंधि) रहित प्रेममयी बुद्धि बनी रहे ॥३३॥

**भावार्थदीपिका**

इदानीं श्रीकृष्णमूर्तिं वर्णयन् रतिं प्रार्थयते । त्रिभुवनकमनं त्रिलोक्यामेकमेव कमनीयं यत्तद्वपुर्दधाने रतिर्मेऽस्तु । कथंभूतं वपुः । तमालवन्नीलो वर्णो यस्य तत् । प्रातःकालीना रवेः करा इव स्वत एव गौरे पीते वरे निर्मले चाम्बरे यस्मिंस्तत् अलककुलैरुपर्यावृतमाननाब्जं यस्मिंस्तत् । विजयसखे पार्थसारथौ अनवद्या अहैतुकी फलाभिसन्धिरहिता रतिरस्तु ॥३३॥

**भावप्रकाशिका**

अब भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर का वर्णन करते हुए भीष्मजी उनमे प्रेमाभक्ति की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि त्रैलोक्य सुन्दर शरीर को धारण करने वाले श्रीभगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि हो। श्रीभगवान् का वह शरीर तमाल पत्र के समान श्याम वर्ण का है। वे प्रातःकालीन सूर्य के समान पीले दो श्रेष्ठ पीताम्बरों को धारण किए हुए हैं। काले घुंघराले केश उनके मुख कमल पर लटके हुए हैं। ऐसे श्रीभगवान् अर्जुन के मित्र हैं। ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् में मेरी निष्काम प्रेममयी बुद्धि बनी रहें ॥३३॥

**युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ।**
**मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥३४॥**

**अन्वयः**— युधि, तुरगरजो विधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये मम निशित शरैः विभिद्यमानत्वचि विलसत् कवचे कृष्णे आत्मा अस्तु ॥३४॥

**अनुवाद**— युद्ध में अश्वों के खुर से उठी हुयी धूलि से घूसरित चारो ओर फैले हुए बालों से विकीर्ण स्वेद विन्दुओं से अलंकृत मुख वाले, मेरे तीक्ष्ण बाणों से टूटे हुए कवच वाले भगवान् श्रीकृष्ण में मेरा मन लगा रहे ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

विजयसखित्वमेवानुवर्णयन् रतिं प्रार्थयते । युधि युद्धे तुरगाणां खुररजस्तुरगरजस्तेन विधूम्रा धूसारास्ते च ते विष्वञ्च इतस्ततश्चलन्तः कचाः कुन्तलास्तैर्लुलितं विकीर्णं श्रमवारि स्वेदबिन्दुरूपं तेन भक्तवात्सल्यद्योतकेनालंकृतमास्यं यस्य तस्मिन् श्रीकृष्णे ममात्मा मनोऽस्तु रमतामित्यर्थः । पुनः किंभूते । मदीयैर्निशितैस्तीक्ष्णैः शरैर्विभिद्यमाना त्वग्यस्य तस्मिन् । शरैरेव विलसत्त्रुट्यत् कवचं यस्य तस्मिन् ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण की अर्जुन के साथ मित्रता का ही वर्णन करते हुए उनमें अपने प्रेममयी बुद्धि की प्रार्थना करते हुए भीष्मजी **युधि० इत्यादि** श्लोक में कहते हैं युद्ध में अश्वों के खुर से निकली हुयी धूलि से जिनके केश धूलिधूसरित हो गये थे। वे श्रीभगवान् के मुखमण्डल पर फैलकर उनके मुख के पसीने को हटाने का काम करते थे ऐसे मुखमण्डल वाले भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहे। किञ्च मेरे तीक्ष्ण बाणों से जिनके कवच टूट गये थे और मेरे बाण उनकी त्वचा को छेद रहे थे ऐसे भगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहे। इस वर्णन से भीष्मजी ने श्रीभगवान् की भक्तवत्सलता का द्योतन किया हैं ॥३४॥

**सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ।**
**स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥३५॥**

**अन्वयः**— सखिवचो निशम्य निजपरयोः बलयोर्मध्ये सपदि रथं निवेश्य स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे मम रतिः अस्तु ॥३५॥

**अनुवाद**— अपने मित्र अर्जुन की बातों को सुनकर अपनी और शत्रु की सेनाओं के बीच में शीघ्र ही रथ को लाकर स्थित तथा अपनी दृष्टिमात्र से शत्रु के सैनिकों की आयु को छीन लेने वाले अर्जुन के मित्र भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहे ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच सपदीति '**सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत । यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ॥**' इति सख्युरर्जुनस्य वचो निशम्य सपदि तत्क्षणमेव स्वपरयोर्बलयोः सैन्ययोर्मध्ये रथं निवेश्य स्थिते पार्थसखे मम रतिरस्तु । तत्र स्थित्वा कृतं सख्यं दर्शयति । परस्य दुर्योधनस्य सैनिकानामायुरक्ष्णा कालदृष्ट्या हृतवति । असौ भीष्मोऽसौ द्रोणोऽसौ कर्ण इत्यादितत्तत्प्रदर्शनव्याजेन दृष्ट्यैव सर्वेषामायुराकृष्यार्जुनस्य जयं कृतवति ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

किञ्च अर्जुन के हे अच्युत जिससे कि मैं इन युद्ध करने की कामना से तैयार शत्रुओं की सेना को देख लूं अतएव आप इन दोनों सेनाओं के बीच मेरे रथ को खड़ा कीजिये। इस वाणी को सुनकर उसी क्षण अपनी और शत्रु की सेनाओं के बीच में रथ को लाकर स्थित अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण भगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि हो। वहाँ पर स्थित होकर उन्होंने जो मित्रभाव दिखाया उसको भीष्मजी ने कहा— उन्हांने दुर्योधन के सैनिकों की अपनी काल दृष्टि के द्वारा आयु को ही छिन लिया। ये भीष्म हैं ये द्रोणाचार्य हैं इत्यादि विभिन्न लोगों को दिखाने के बहाने सबों की आयु को खींचकर अर्जुन को जिन्होंने विजय दिलाया उन भगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि हो ॥३५॥

**व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ।**
**कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥३६॥**

**अन्वयः**— व्यवहितपृतनामुखं निरीक्षय दोषबुद्ध्या स्वजनवधाद् विमुखस्य आत्मविद्यया यः कुमातिम् अहरत् तस्य परमस्य चरणरतिः मे अस्तु ॥३६॥

**अनुवाद**— दूरस्थ शत्रुओं की सेना में प्रमुख हमलोगों को देखकर दोष बुद्धि के उत्पन्न हो जाने से युद्ध में स्वजनों का वध करने से विमुख हुए अर्जुन के अज्ञान को जिन्होंने आत्मविद्या का उपदेश देकर दूर कर दिया उन परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहें ॥३६॥

### भावार्थ दीपिका

न केवलमर्जुनस्य सपत्नायुर्हरणेनैव जयमावहत् । किंत्वविद्याहरणेनापीत्याह । व्यवहिता दूरे स्थिता या पृतना तस्या मुखमिव मुखमग्रे स्थितान् । भीष्मादीन्निरीक्ष्येत्यर्थः । स्वजनवधाद्विमुखस्य निवृत्तस्य । तदुक्तं गीतासु **एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ।'** इति । कुमतिमहं हन्तेत्यादिकुबुद्धिम् ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

केवल शत्रुओं की आयु को छिनकर ही श्रीभगवान् अर्जुन को विजयी बनायें हो ऐसी बात नहीं है, अपितु उन्होंने अर्जुन के अज्ञान को भी दूर किया और उसके द्वारा उन्होंने अर्जुन को विजयी बनाया इस बात को भीष्मजी ने **व्यवहित० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा है । उन्होंने कहा— कि अर्जुन ने जब दूर से ही शत्रुओं की सेना को देखा और उसमें प्रमुख रूप से हमलोगों को देखा तो उसने सोचा कि इन लोगों का युद्ध में वध करना तो महापाप है । उसने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा भगवन् मैं इन लोगों से युद्ध नहीं कर सकता । गीताकार कहते हैं- **एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये० इत्यादि** अर्थात् युद्ध के मैदान में श्रीभगवान् से इस तरह से कहकर अर्जुन रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ गये । उनहोंने धनुष बाण को रख दिया और उस समय उनका मन शोक से व्याकुल हो गया।

इस तरह से सोचना वस्तुतः अर्जुन का अज्ञान ही था वे सोचते थे कि मैं मारने वाला हूँ । अर्जुन के इस प्रकार के अज्ञान को आत्मविद्या का उपदेश देकर श्रीभगवान् ने दूर किया और अर्जुन को विजयी बनाया ।।३६।।

**स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।**
**धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ।।३७।।**

**अन्वयः**— स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञां अधिकं ऋतम् कर्तुम् रथस्थः अवप्लुतः, धृतरथचरणः इभं हन्तुं सिंह इव गतोत्तरीयः अभ्ययात् येन गुः अचलत् ।

**अनुवाद**—श्रीभगवान् ने प्रतिज्ञा की थी कि इस युद्ध में मैं बिना शस्त्र धारण किए हुए सहायता करूँगा। मैंने भी प्रतिज्ञा की थी की मैं भगवान् से शस्त्र उठवाकर ही रहूँगा । भीष्म पितामह के बाणों से व्याकुल अर्जुन को देखकर भगवान् रथ से पृथिवी पर कूद पड़े और अपने हाथ में चक्र उठाकर भीष्मजी पर टूट पड़े । उसी को याद करके भीष्मजी कहते हैं कि भगवान् तो सबकुछ करने में समर्थ हैं वे अपनी इच्छा मात्र से ही मुझे मार सकते थे, किन्तु मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए भगवान् अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ दिए । वे रथ से कूदकर अपने हाथ में चक्र उठाकर इतने वेग से मेरे सामने दौड़ पड़े कि पृथिवी काँप गयी और उनका उत्तरीय रास्ते में ही गिर पड़ा वे ऐसे मुझपर झपटे जैसे हाथी को मारने के लिए सिंह उस पर टूट पड़ा है ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

मम तु महान्तमनुग्रहं कृतवानित्याह द्वाभ्याम् । स्वनिगममशस्त्र एवाहं साहाय्यमात्रं करिष्यामीत्येवंभूतां स्वप्रतिज्ञां हित्वा श्रीकृष्णं शस्त्रं ग्राहयिष्यामीत्येवंरूपां मत्प्रतिज्ञामृतं सत्यं यथा भवति तथा अधि अधिकां कर्तुं यो रथस्थः सन् अवप्लुतः सहसैवावतीर्णः सन् योऽभ्ययादभिमुखमधावत् । इभं हन्तुं हरिः सिंह इव । किंभूतः । घृतो रथचरणश्चक्रं येन सः । तदा च संरम्भेण मानुष्यनाट्यविस्मृतेरुदरस्थसर्वभूतभुवनभारेण प्रतिपदं चलद्गुश्चलन्ती गौः पृथ्वी यस्मात्सः । तेनैव संरम्भेण पथि गतं पतितमुत्तरीयं वस्त्रं यस्य स मुकुन्दो मे गतिर्भवत्वित्युत्तरेणान्वयः ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

भीष्मजी ने कहा कि श्रीभगवान् ने अर्जुन को विजयी बनाया और मेरे ऊपर तो उन्होंने बहुत बड़ी कृपा की । इस बात को इन दो श्लोकों के द्वारा वे कहते हैं । भगवान् की प्रतिज्ञा थी कि विना शस्त्र धारण किए ही मैं सहायता करूँगा । उन्होंने अपनी इस प्रतिज्ञा को तोड़ दी । मेरी जो यह प्रतिज्ञा थी कि मैं श्रीकृष्ण से शस्त्र

उठवाकर ही रहूँगा मेरी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप से सत्य करने के लिए वे जो रथ पर बैठे थे सहसा कूद पड़े और अपने हाथ में सुदर्शन चक्र उठाकर मेरे सामने उसी तरह दौड़ पड़े जिस तरह से कोई सिंह किसी हाथी को मारने के लिए उस पर टूट पड़ता है ।

उस समय मानवीय लीला करते हुए श्रीभगवान् इस बात को भूल गये कि उनके उदर में ही सम्पूर्ण जगत् का निवास है । उनके प्रत्येक डेग के भार से पृथिवी काँप रही थी और उनका उत्तरीय बीच मार्ग में ही गिर पड़ा था । ऐसे भगवान् मुकुन्द मेरे एक मात्र आश्रय बनें । यह अगले श्लोक से अन्वित है ॥३७॥

**शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।**
**प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवन् गतिर्मुकुन्दः ॥३८॥**

**अन्वयः**— मे शितविशिखहतः विशीर्णदंश क्षतजपरिप्लुतः आततायिनः मद्वधार्थम्प्रसभं य अभिससार स भगवान् मुकुन्दः मे गतिः भवतु ॥३८॥

**अनुवाद**— मेरे तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से जिनका कवच टूट गया था, और वे रक्त से सराबोर हो गये थे, उसके पश्चात् मुझ आततायी का वध करने के लिए जो भगवान् वेग से दौड़ पड़े वे ही भगवान् मुकुन्द मेरे एक मात्र आश्रय हों ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं यदाऽभ्ययात्तदा स्मयमानस्याततायिनो धन्विनो मे शितैस्तीक्ष्णैर्विशिखैर्हतोऽतो विशीर्णदंशो विध्वस्तकवचः क्षतजेन रुधिरेण परिप्लुतो व्याप्तः सन् प्रसभं बलाद्वारयन्तमर्जुनमप्यतिक्रम्य मद्वधार्थमभिससाराभिमुखं जगाम । एवं यो लोकप्रतीत्यार्जुनपक्षपातीव लक्षितो वस्तुतस्तु ममैवानुग्रहं कृतवान्यन्मद्भक्तेनोक्तं वचो मा मृषाऽस्त्विवति स भगवान्मे गतिर्भवत्वित्यर्थः ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

भीष्मजी कहते हैं जब भगवान् हाथ में चक्र धारण करके मेरे समक्ष दौड़े उस समय मैं मुस्कुरा रहा था। मुझे गर्व था कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा सत्य कर ली और श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा टूट गयी । इस तरह से त्रैलोक्याधिपति से द्रोह करने के कारण धनुष धारण किए मैं अतातायी था । मेरे तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से भगवान् का कवच टूट गया था और वे रक्त से सराबोर हो गये थे । अर्जुन उनको बलपूर्वक रोक रहे थे; किन्तु वे माने नहीं अपितु मुझ पर टूट ही पड़े । यह देखकर लोगों को लगा कि भगवान् अर्जुन के पक्षपाती हैं किन्तु वह तो श्रीभगवान् का मुझ पर अनुग्रह था वे सोचे मेरी प्रतिज्ञा टूट जाय किन्तु मेरे भक्त भीष्म की प्रतिज्ञा तो सुरक्षित रहे । ऐसे भगवान् एकमात्र मेरे आश्रय रहें ॥३८॥

**विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ।**
**भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोयमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ॥३९॥**

**अन्वयः**— विजयरथकुटुम्बे आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि, तच्छ्रिया ईक्षणीये भगवति मुमुर्षोः मे रतिः अस्तु, यमिह निरीक्ष्य हताः गताः सरूपम् ॥३९॥

**अनुवाद**— अर्जुन के रथ की रक्षा में सावधान रहने वाले, अपने दाहिने हाथ में अश्वों को हाँकने के लिए चाबुक धारण करने वाले तथा बायें हाथ में घोड़ों की लगाम धारण करने वाले दर्शनीय शोभा से सम्पन्न श्रीभगवान् में मेरी परम प्रीति हो ॥३९॥

### भावार्थदीपिका

तदेवमन्यायैरपि भृत्यरक्षाव्यग्रे कृष्णे रतिमाशास्ते । विजयोऽर्जुनस्तस्य रथ एव कुटुम्बमकृत्यशतैरपि रक्षणीयो यस्य तस्मिन् । आत्तं तोत्रं प्रतोदो येन तस्मिन् । धृताश्च ते हयानां रश्मयः प्रग्रहास्ते सन्ति यस्य तस्मिन् । **'ब्रीह्यादिभ्यश्च'** इत्यनकारान्तादपि रश्मिशब्दादिनिः । तच्छ्रिया तया सारथ्यश्रिया ईक्षणीये शोभमाने । मुमूर्षोर्मर्तुमिच्छोः । नत्वन्यायवर्तिनि किमिति रतिः प्रार्थ्यतेऽत आह । भगवत्यचिन्त्यैश्वर्ये । तदाह । इह युद्धे हताः सर्वे यं निरीक्ष्य सरूपं तत्समानं रूपं गताः प्राप्ता इति दिव्यदृष्ट्या पश्यन्नाह ।।३९।।

### भावप्रकाशिका

इस तरह से अन्यायों के द्वारा भी अपने भक्त की रक्षा करने में व्यग्र रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण में अपने प्रीति की प्रार्थना करते हुए भीष्मजी **विजयरथ० इत्यादि** कहते हैं अर्जुन का एक नाम विजय था । उनका रथ ही श्रीभगवान् का कुटुम्ब है, उसकी रक्षा सैकड़ों अकृत्यों से भगवान द्वारा रक्ष्य है । तथा वे चाबुक धारण किए हुए है । तोत्र चाबुक का नाम है । तथा वे अश्वों के लगाम को धारण करने वाले हैं । रश्मिनि शब्द में इनि प्रत्यय नकारान्त नही होने पर भी **ब्रीह्यादिभ्यश्च** इस सूत्र से इनी हुआ है । उन श्रीभगवान् के सारथिरूप की शोभा भी दर्शनीय थी । उस श्री से सुशोभित श्रीभगवान् में मेरी प्रीति बनी रहे । भगवत् शब्द का प्रयोग करके उनको अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न कहा गया है । इस युद्ध में जो मारे गये हैं वे सबके श्रीभगवान् के इस सौन्दर्य को देखकर सारूप्य मुक्ति को प्राप्त कर लिए हैं इस बात को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर उन्होंने कहा ।।३९।।

**ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।**
**कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ।।४०।।**

**अन्वयः**— ललितगति विलास वल्गुहासप्रणयनिरीक्षण कल्पितोरुमानाः उन्मदान्धाः यस्य कृतम् अनुकृतवत्यः गोपवध्वः किल प्रकृतिम् अगन् ।।४०।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की मनोहर चाल, विलास, हावभाव युक्त चेष्टाएँ, मधुरमुसकान तथा प्रेम पूर्वक अवलोकन के द्वारा अत्यन्त सम्मानित, जिनकी गोवर्धन धारण आदि लीलाओं का अनुकरण करके गोपियाँ सारूप्य मुक्ति को प्राप्त कर लीं उन्हीं श्रीभगवान् में मेरा परम प्रेम हो ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

क्षत्रधर्मेण युध्यमानास्तत्सरूपं प्रापुरित्येतन्न चित्रम् । यतो मदान्धा अपि प्रापुरित्याह । ललितगतिश्च विलासश्च वल्गुहासादिश्च मञ्जुगत्यादिभिरात्मीयैस्तदीयैर्वा कल्पित उरुर्मानः पूजा यासां ताः । अत उत्कटेन मदेनान्धा विवशाः । अतएव तदेकचित्तत्वेन तस्य कृतं कर्म गोवर्धनोद्धरणादिकमनुकृतवत्यो गोपवध्वो यस्य प्रकृतिं स्वरूपमगन्नगमन् । मकारलोपस्त्वार्षः किल प्रसिद्धम्। तस्मिन्मे रतिरस्त्विति पूर्वेणैवान्वयः ।।४०।।

### भाव प्रकाशिका

क्षत्रिय धर्म के अनुसार उनसे युद्ध करने वाले श्रीभगवान् की सरूपता को प्राप्तकर लिए यही आश्चर्य नहीं है, अपितु मदान्ध गोपियों ने भी उनकी सरूपता प्राप्त कर ली । श्रीभगवान् की मनोहर चाल, विलास, हाव-भाव पूर्ण चेष्टाएँ, मधुर हँसी तथा प्रेम पूर्वक अवलोकन के द्वारा जिन सबों ने अत्यधिक सम्मान प्राप्त कर लिया था वे उन्मदान्ध अत्यधिक मद के कारण मदमत्त बनी हुयी गोपियाँ श्रीभगवान् के विरह से व्याकुल होकर उनके द्वारा की गयी गोवर्धनधारण आदि की लीलाओं का अनुकरण करके हीं सरूप मुक्ति को प्राप्त कर ली यह प्रसिद्ध है, उन्हीं श्रीभगवान् में मेरी अत्यन्त प्रेममयी बुद्धि बनी रहे, इस तरह से इसका पहले के श्लोक से अन्वय है ।।४०।।

**मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तःसदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।**
**अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥४१॥**

**अन्वयः**— युधिष्ठिरराजसूये मुनिगणनृपवर्यसंकुले अन्तः सदसि एषाम् अर्हणम् उपपेदे, ईक्षणीयः एष आत्मा मम दृशिगोचरः आविः अस्ति ॥४१॥

**अनुवाद**— युधिष्ठिर के राजसूर्य यज्ञ के अवसर पर मुनि समूह तथा श्रेष्ठ राजाओं से भरी हुयी सभा के भीतर जिन्होंने इन पाण्डवों के द्वारा अग्रपूजा प्राप्त की ऐसे देखने योग्य सबों की अन्तरात्मा ये भगवान् मेरी इस मृत्यु की बेला में मेरी आँखों के सामने विराजमान हैं, इन्हीं श्रीभगवान् में मेरा अत्यन्त प्रेम होए ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**

जगत्पूज्यतामनुस्मरन्नाह । मुनिगणैर्नृपवर्यैश्च सङ्कुले व्याप्तेऽन्तःसदसि सभामध्ये युधिष्ठिरस्य राजसूये एषां मुनिगणादीनामीक्षणीयः अहो रूपमहो महिमेत्येवमाश्चर्येण विलोकनीयः सन्नर्हणमुपपेदे प्राप । एष जगतामात्मा दृशिगोचरो दृष्टिविषयः सन्नाविः प्रकटो वर्तते । अहो मे भाग्यमिति भावः ॥४१॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की जगत् पूज्यता का स्मरण करते हुए भीष्मजी मुनिगण इत्यादि श्लोक को कहते हैं । मुनिसमूहों तथा श्रेष्ठ राजाओं से भरी हुयी सभा के बीच में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर इन मुनि समूहों के द्वारा कितनी महान है इनकी महिमा यह सोचकर आश्चर्य पूर्वक देखने योग्य ये श्रीभगवान् इन पाण्डवों के द्वारा अग्रपूजा को प्राप्त किए इस प्रकार के सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् इस मेरे शरीर त्याग की बेला में मेरी आँखों के सामने विराजमान हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है ॥४१॥

**तमिममहमज शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।**
**प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥४२॥**

**अन्वयः**— आत्मकल्पितानाम् शरीरभाजाम् हृदि-हृदि धिष्ठितम् एकम् अर्कम् अनेकधा प्रतिदृशमिव विधूतभेदमोहःतम् इमम् अजम् समधिगतोऽस्मि ॥४२॥

**अनुवाद**— उन श्रीभगवान् के ही द्वारा कल्पित शरीरधारियों के प्रत्येक हृदय को अधिष्ठित करने वाले अधिष्ठान भेद के कारण प्रत्येक देखने वालों को भ्रम के कारण अनेक दिखने वाले एक ही सूर्य के समान इन अजन्मा श्रीभगवान् को मैंने प्राप्त कर लिया है ।

**भावार्थ दीपिका**

सोऽहं कृतार्थोऽस्मीत्याह । तमिममजं सम्यगधिगतः प्राप्तोऽस्मि । सम्यक्त्वमाह । विधूतभेदमोहः । तदर्थं भेदस्यौपाधिकत्वमाह। आत्मकल्पितानां स्वयं निर्मितानां शरीरभाजां प्राणिनां हृदि हृदि प्रतिहृदयं धिष्ठितमधिष्ठितम् । अधिष्ठाय स्थितमिति यावत् । अकारलोपस्त्वार्षः । नैकधा अनेकधा । अधिष्ठानभेदनेकधा भातमित्यर्थः । अत्र दृष्टान्तः- सर्वप्राणिनां दृशं दृशं प्रत्येकमेवार्कमनेकधा प्रतीतमिवेति ॥४२॥

**भाव प्रकाशिका**

**तमिम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा भीष्मजी बतलाते हैं कि मैं तो कृतार्थ हो गया हूँ । क्योंकि मैंने उस अज परमात्मा को अच्छी तरह से प्राप्त कर लिया है । प्राप्ति की सम्यक्ता को बतलाते हुए उन्होंने कहा— मेरा भेदमोह समाप्त हो गया है । वे परमात्मा अपने से ही निर्मित इन प्रत्येक शरीरधारियों के हृदय में अधिष्ठित होकर विराजमान हैं, फिर भी वे अधिष्ठानों की भिन्नता के कारण अनेक रूप में प्रतीत होते हैं, यह उसी तरह से प्रतीति होती

है जिस तरह सूर्य के एक होने पर अधिष्ठान की भिन्नता के कारण: अनेक सूर्य प्रतीत होते है । **'धिष्ठितम्** में अकार का लोप आर्ष प्रयोग के कारण हो गया है ।।४२।।

सूत उवाच

**कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः । आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ।।४३।।**

**अन्वयः**— मनोवाग्दृष्टि वृत्तिभिः कृष्ण एव भगवति आत्मन्यात्मानम् आवेश्य सः अन्तःश्वासः उपारमत् ।।४३।।

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— मन, वाणी तथा दृष्टि की वृत्तियों को आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण में भीष्मजी ने लीन कर दिया और उनके श्वासों का विराम हो गया ।।४३।।

**भावार्थ दीपिका**

मनोवाग्दृष्टीनां वृत्तिभिः । परमात्मनि श्रीकृष्णे । अन्तरेव विलीनः श्वासो यस्य सः ।।४३।।

**भाव प्रकाशिका**

भीष्मजी के मन, वाणी और दृष्टियाँ अपनी-अपनी वृत्ति के साथ भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो गयीं और उन्होंने अन्तिम श्वास लिया ।।४३।।

**सम्पद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले । सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ।।४४।।**

**अन्वयः**— निष्कले ब्रह्मणि सम्पद्यमानं भीष्मम् आज्ञाय ते सर्वे दिनात्यये व्यांसि इव तुष्णीं बभूवुः ।।४४।।

**अनुवाद**— निष्कल ब्रह्म में लीन हुए भीष्मजी को जानकर वे सभी उसी तरह से मौन हो गये जिस तरह दिन के बीत जाने पर पक्षीगण बोलना बन्द कर देते हैं ।।४४।।

**भावार्थ दीपिका**

निष्कले निरुपाधौ परात्मनि । संपद्यमानं मिलितमाज्ञायालक्ष्य । वयांसि पक्षिण इव ।।४४।।

**भाव प्रकाशिका**

उपाधि रहित अखण्ड ब्रह्म में भीष्मजी को मिल गये जानकर वे सभी लोग जो वहाँ पर भीष्मजी को देखने के लिए आये थे, उसी तरह से चुप हो गये जिस तरह दिन के बीत जाने पर पक्षीगण बोलना बन्द कर देते हैं।।४४।।

**तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः । शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ।।४५।।**

**अन्वयः**— तत्र देवमानवादिताः दुन्दुभयो नेदुः राज्ञां साधवः शशंसुः खात् पुष्पवृष्टयः पेतुः ।।४५।।

**अनुवाद**— उस समय देव मानवों ने दुन्दुभियों को बजाया, सज्जन राजाओं ने प्रशंसा किया और आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुयी ।।४५।।

**भावार्थ दीपिका**

देवैर्मानवैश्च वादिताः । राज्ञां मध्ये ये साधवोऽनसूयवः ।।४५।।

**भाव प्रकाशिका**

देवताओं और मानवों ने दुनदुभियों को बजाया जो असूया रहित राजागण थे वे उनकी प्रशंसा किए ।।४५।।

**तस्य निर्हरणादीनि संपरेतस्य भार्गव । युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ।।४६।।**

**अन्वयः**— हे भार्गव ! सम्परेतस्य तस्य निर्हरणादीनि कारयित्वा युधिष्ठिरः मुहूर्तं दुःखितः अभवत् ।।४६।।

**अनुवाद**— हे भृगुवंशी शौनकजी ! मरे हुए भीष्मजी की दाहादि क्रियाओं को राजा युधिष्ठिर ने कराया और कुछ समय तक के लिए वे दुःखी हुए ।।४६।।

### भावार्थ दीपिका

निर्हरणादीनि दाहसंस्कारादीनि । सम्यक् परेतस्य । मुक्तस्यापीत्यर्थः ।।४६।।

### भाव प्रकाशिका

निर्हरणादीनि पद से दाहादि संस्कार आदि को कहा गया है । **सम्परेतस्य** का अर्थ केवल मरे हुए ही नहीं है अपितु मुक्त हुए भी है ।।४६।।

**तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः । ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान्प्रययुः पुनः ।।४७।।**

**अन्वयः**— हृष्टाः मुनयः कृष्णं गुह्यनामभिः तुष्टुवुः । ततः कृष्णहृदयाः ते पुनः स्वाश्रमान् प्रययुः ।।४७।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् प्रसन्न हुए मुनिजन उनके गोपनीय नामों से भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति किए और उसके पश्चात् फिर भगवान् श्रीकृष्ण को अपने हृदय में धारण किए हुए वे लोग अपने-अपने आश्रमों में चले गये ।।४७।।

### भावार्थ दीपिका

तस्य गुह्यनामभिर्वेदोक्तैः । कृष्ण एव हृदयं येषां ते कृष्णहृदयाः ।।४७।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के वेदोक्त रहस्यात्मक नामों से मुनियों ने उनकी स्तुति की । वे ऋषिगण कृष्णहृदय थे। अर्थात् भगवान् ही उनके हृदय थे ।।४७।।

**ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् । पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ।।४८।।**

**अन्वयः**— ततः सह कृष्णः गजाह्वयम् गत्वा युधिष्ठिरः पितरं तपस्विनीम् गान्धारीं च सान्त्वयामास ।।४८।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर में जाकर महाराज युधिष्ठिर अपने पिता धृतराष्ट्र को तथा पुत्रों के दुःसह शोक से सन्तप्त गान्धारी को सान्त्वना प्रदान किये ।।४८।।

### भावार्थ दीपिका

पितरं धृतराष्ट्रम् । तपस्विनीं सन्तापवतीम् ।।४८।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में **पितरम्** पद से धृतराष्ट्र को कहा गया है । **तपस्विनीम्** पद से पुत्रों के दुःसह शोक से युक्त गान्धारी को कहा गया है ।।४८।।

**पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः । चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ।।४९।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

**अन्वयः**— पित्रा अनुमतः वासुदेवानुमोदितः विभुः राजा पितृपैतामहं राज्यं धर्मेण चकार ।।४९।।

**अनुवाद**— पिता धृतराष्ट्र की आज्ञा प्राप्त करके तथा भगवान् श्रीकृष्ण से अनुमोदित होकर राजा युधिष्ठिर अपने पिता तथा पितामह की परम्परा से प्राप्त राज्य का प्रशासन करने लगे ।।४९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के युधिष्ठिर को राज्यलाभ नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।**

### भावार्थ दीपिका

राजा युधिष्ठिरः अनुमतोऽनुज्ञातः ।।४९।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।**

**भाव प्रकाशिका**

इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने राजा युधिष्ठिर को राज्य करने के आज्ञा प्रदान कर दी और भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका समर्थन भी कर दिया। इसके पश्चात् अपने पिता पितामह की परम्परा से प्राप्त राज्य का उन्होंने धर्मपूर्वक प्रशासन किया ॥४९॥

**इस तरह श्रीमद्भागावत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के नवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।९।।**

# दशवाँ अध्याय

## भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका गमन

शौनक उवाच

**हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।**
**सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥१॥**

**अन्वयः**— स्वरिक्थस्पृध आततायिनः हत्वा धर्मभृतां वरिष्ठः राजा युधिष्ठिर प्रत्यवरुद्धभोजनः अनुजैः सह कथं प्रवृत्तः ततः किमकारषीत् ॥१॥

शौनकजी ने कहा

**अनुवाद**— अपने पैतृक संम्पति से स्पर्धा करने वाले आततायियों को मारकर धार्मिकों में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर बन्धुजन वियोग के कारण भोजन करना भी बन्द कर दिये थे, वे अपने छोटे भाइयों के साथ राज्य करने में कैसे प्रवृत्त हुए और उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया ?॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

दशमे कृतकार्यस्य हस्तिनापुरतो हरेः । स्त्रीभिः संस्तूयमानस्य वर्ण्यते द्वारकागमः ॥१॥ राज्यं चकारेत्युक्तं तत्र पृच्छति- हत्वेति । स्वस्य रिक्थे धने स्पर्धन्ते स्म ये ते तथा । यद्वा स्वरिक्थाय स्पृत्संग्रामो येषामत एव धनादिहरणादाततायिनस्तान्हत्वा प्रत्यवरुद्धभोजनो बन्धुवधदुःखेन सङ्कुचितभोगो, राज्यलाभेन प्राप्तभोगो वा । कथं राज्ये प्रवृत्तः, प्रवृत्तो वा ततः किमकार्षीत् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

दशवें अध्याय में जिन्होंने अपना काम पूरा कर लिया था तथा स्त्रियाँ जिनकी स्तुति कर चुकी थीं ऐसे श्रीहरि का हस्तिनापुर से द्वारका गमन का वर्णन किया गया है ॥१॥

नवें अध्याय के अन्त में कहा गया है कि युधिष्ठिर ने राज्य किया उसी के विषय में **हत्वा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा शौनक जी पूछते हैं । **स्वरिक्थस्पृधः** इसका विग्रह है— **स्वस्य रिक्थे धनेस्पृहन्ति ये ते तथा** । अर्थात् उनकी अपनी सम्पत्ति के विषय में जो स्पर्धा करते थे । अथवा स्वरिक्थाय स्पृत् संग्रामो येषाम्, अर्थात् अपनी सम्पत्ति के लिए जिन सबों के साथ संग्राम हुआ ऐसे धन आदि का हरण करने वाले आतयियों को मारकर बान्धवों के दुःख के कारण जिन्होंने भोजन भी करना बन्द कर दिया था अथवा राज्य के प्राप्त हो जाने से जिन्होंने भोगों को प्राप्त कर लिया था ऐसे राजा युधिष्ठिर पुनः राज्य करने में कैसे प्रवृत्त हुए और उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया ॥१॥

सूत उवाच

**वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ।**
**निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥२॥**

**अन्वयः**— कुरोः वंशदवाग्नि निर्हृतं वंशं संरोहयित्वा भवभावनः ईश्वरः हरिः युधिष्ठिरं, निजराज्ये निवेश्य प्रीतमना बभूव ॥२॥

**अनुवाद**— कलहाग्नि के द्वारा कुरु का वंश तो दग्ध ही हो गया था उसको तथा सम्पूर्ण सृष्टि को उज्जीवित करने वाले सम्पूर्ण जगत् के प्रशासक श्रीहरि पुनः अङ्कुरित करके तथा राजा युधिष्ठिर को उनके राज्य पर बैठाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

राज्यप्रवृत्तौ श्रीकृष्णस्य प्रीतिं पर्यालोच्य प्रवृत्त इत्याशयेनोत्तरमाह । वंशं कुरोः संरोहयित्वा परीक्षिद्रक्षणेन संरोह्याङ्कुरितं कृत्वा । कथंभूतम् । वंशदवाग्निनिर्हृतं वंश एव दवो वनं तस्मादुद्भूतो यः क्रोधरूपोऽग्निस्तेन निर्हृतं दग्धम् । निजराज्ये निवेश्य च ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

युधिष्ठिर ने देखा कि मेरे राज्य करने से भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्नता होगी, इस बात का विचार करके वे राज्य करने में प्रवृत्त हुए । उसी अभिप्राय से सूतजी ने कहा कुरु के विनष्ट वंश को परीक्षित् की रक्षा करके श्रीभगवान् ने उसको पुनः अङ्कुरित कर दिया । कुरु का वंशरूपी दवाग्निसे ही विनष्ट हो चुका था । वंशदवाग्निनिर्हृतम् पद का विग्रहार्थ इस प्रकार है वंश रूपी वन में परस्पर में उत्पन्न क्रोध रूपी जो अग्नि थी उसी ने उसको जला दिया था । उस वंश को भगवान् ने पुनः अङ्कुरित कर दिया और उसके बाद उन्होंने युधिष्ठिर को उनके राज्य सिंहासन पर बैठा दिया । इन दो कार्यों को करके श्रीहरि को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी ॥२॥

**निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ।**
**शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥३॥**

**अन्वयः**— भीष्मोक्तम् अथ अच्युतोक्तं निशम्य प्रवृत्त विज्ञानविधूतविभ्रमः अजिताश्रयः अनुजानुवर्तितः राजा युधिष्ठिरः परिध्युपान्ताम्गाम् इन्द्र इव शशास ॥३॥

**अनुवाद**— भीष्मजी के उपदेशों को सुनकर तथा भगवान् कृष्ण के वचनों को सुनकर महाराज युधिष्ठिर के विज्ञान का उदय हो गया और उनकी भ्रान्ति विनष्ट हो गयी । उसके पश्चात् भगवान् के आश्रय में रहकर तथा अपने छोटे भाइयों द्वारा अनुवर्तित किए जाते हुए उन्होंने समुद्र पर्यन्त की पृथिवी का इन्द्र के समान प्रशासन किया ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रवृत्तौ हेतुमुक्त्वा किमकार्षीदित्यस्योत्तरमाह । प्रवृत्तं यद्विज्ञानं परमेश्वराधीनं जगन्न स्वतन्त्रमित्येवंभूतं तेन विधूतो विभ्रमोऽहंकर्तेत्येवंभूतो मोहो यस्य सः । अनुजैरनुवर्तितः सेवितः सन् । अजितः श्रीकृष्ण एवाश्रयो यस्य सः । परिधिः समुद्रस्तत्पर्यन्तां गां पृथ्वीं पालयामास ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज युधिष्ठिर की राज्य में होने वाली प्रवृत्ति का कारण बतलाकर, उन्होंने क्या किया ? इस प्रश्न का उत्तर सूतजी ने **निशम्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा दिया है । भीष्मजी के उपदेश को सुनकर तथा भगवान्

श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर युधिष्ठिर को यह ज्ञान हो गया कि यह जगत् परमात्मा के अधीन है, स्वतंत्र नहीं है, उसके कारण उनको जो यह भ्रम था कि मैं युद्ध करने वाला हूँ यह भ्रम मिट गया। उसके पश्चात् वे अपने छोटे भाइयों द्वारा सेवित होते हुए तथा भगवान् श्रीकृष्ण को ही अपना आश्रय मानते हुए समुद्र पर्यन्त की पृथिवी का पालन करने लगे ।।३।।

**कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही । सिषिचुः स्म व्रजान्गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ।।४।।**

**अन्वयः**— पर्जन्यः कामं ववर्ष, मही सर्वकामदुधा उधस्वतीः मुदा गावः पयसा व्रजान् सिसिचुः स्म ।।४।।

**अनुवाद**— युधिष्ठिर के राज्य में मेघ पर्याप्त मात्रा में वर्षा करते थे, पृथिवी सभी काम्य पदार्थों को उत्पन्न करती थी, बड़े-बड़े थनों वाली गायें अपने दूध से गोशालाओं को प्रसन्नता पूर्वकर सीचंती रहती थीं ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

तस्य राज्यमनुवर्णयति-काममिति त्रिभिः । मही सर्वकामदोग्ध्री बभूव । व्रजान् गोष्ठानि । ऊधस्वतीरूधस्वत्यः ऊधः क्षीराशयस्तद्वत्यः । स्थूलोधस इत्यर्थः । सिषिचुरभ्यषिञ्चन् ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

युधिष्ठिर के राज्य का वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं। कामम् कहने का अभिप्राय है कि उनके राज्य में प्रतिवर्ष तीन बार वर्षा होती थी। उनके राज्य की भूमि सभी काम्य पदार्थों को उत्पन्न करती थी। बड़े-बड़े थनों वाली गायें प्रसन्नता पूर्वक गोशालाओं को अपने दूध से सींचती रहती थीं ।।४।।

**नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः । फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ।।५।।**

**अन्वयः**— नद्यः समुद्राः गिरयः सवनस्पतिवीरुध अनु ऋतु तस्य वै सर्वाः ओषधयः तस्य कामम् फलन्ति।।५।।

**अनुवाद**— नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वनस्पतियाँ, लताएँ, ओषधियाँ, प्रत्येक ऋतुओं में यथेष्ट मात्रा में अपनी-अपनी वस्तुओं को राजा को प्रदान करती थीं ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

अन्वृतु ऋतावृतौ ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

**अन्वृतौ** पद का अर्थ है प्रत्येक ऋतुओं में ।।५।।

**नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः । अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ।।६।।**

**अन्वयः**— अजातशत्रौ राज्ञि आधयो व्याधयः दैवभूतात्मा हेतवः क्लेशाः न अभवन् ।।६।।

**अनुवाद**— युधिष्ठिर के राज्य में किसी भी जीव को न तो आधियाँ (मानसिक कष्ट) और न तो व्याधियाँ (रोग) होती थीं दैवक, भौतिक तथा दैहिक संताप भी किसी को नहीं होता था ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

आधयो मनोव्यथाः । व्याधयो रोगाः । क्लेशाः शीतोष्णादिकृताः । दैवं च भूतानि चात्मा च हेतुर्येषामाधिदैविकादीनां वै जन्तूनां नाभवन् ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

मानसिक कष्ट को अधि कहा जाता है तथा रोग इत्यादि को व्याधि कहा जाता है। गर्मी अथवा ठंढी से होने वाले कष्ट को क्लेश कहते है। ये सब युधिष्ठिर के राज्य में किसी भी जीव को नहीं होते थे, किसी को

दैहिक दैविक तथा भौतिक सन्ताप भी नहीं होता था। सबलोग हर प्रकार से सुखी थे। **दैवभूतात्महेतवः** का विग्रह है **दैवं च, भूतानि च आत्मा च हेतुः येषां ते** ॥६॥

**उषित्वा हास्तिनपुरे मासान्कतिपयान्हरिः। सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥७॥**
**आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम्। आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥८॥**

**अन्वयः**— सुहृदां च विशोकाय, स्वसुः च प्रियकाम्यया हरिः कतिपयान् मासान् हस्तिन पुरे उषित्वा तम् अभिवाद्य, परिष्वज्य च आमन्त्र्य अभ्यनुज्ञातः कैश्चित् परिष्वक्तः अभिवादितः रथम् आरुरोह ॥७-८॥

**अनुवाद**— अपने सम्बन्धियों का शोक मिटाने के लिए तथा अपनी बहन सुभद्रा की प्रसन्नता के लिए श्रीहरि कुछ महीने हस्तिनापुर में रहकर राजा युधिष्ठिर को प्रणाम करके उनका आलिङ्गन किए और उसके बाद जब उन्होंने आज्ञा माँगी तो युधिष्ठिर उनको जाने की आज्ञा दे दिए। उसके पश्चात् कुछ लोगों से आलिङ्गित और अभिवादित होकर भगवान् रथ पर चढ गये ॥७-८॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं द्वारकागमनं निरूपयितुमाह- उषित्वेति। स्वसुः सुभद्रायाः। तं युधिष्ठिरम् ॥७-८॥

### भाव प्रकाशिका

अब श्रीभगवान् के द्वारका गमन का वर्णन करने के लिए सूतजी ने उषित्वा इत्यादि श्लोक को कहा है। स्वसुः शब्द का अर्थ है सुभद्रा का। तम् शब्द से युधिष्ठिर को कहा गया है ॥७-८॥

**सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा। गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥९॥**
**वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः। न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥१०॥**

**अन्वयः**— सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, विराटतनया, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सुः, गौतमः, यमौ, वृकोदरः, धौम्यः, मत्स्यसुतादयः स्त्रियश्च विमुह्यन्तः शार्ङ्गधन्वनः विरहं न सेहिरे ॥९-१०॥

**अनुवाद**— सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, विराट पुत्री उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सुः, गौतमवंशीय कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीम, धौम्य तथा सत्यवती इत्यादि स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के विरह को नहीं सह सकीं वे सब मूर्छित जैसे हो गयीं ॥९-१०॥

### भावार्थ दीपिका

युयुत्सुर्धृतराष्ट्राद्वैश्यायां जातः। गौतमः कृपः। यमौ नकुलसहदेवौ ॥९॥ अन्याश्च स्त्रियः। मत्स्यसुता उत्तरा। तस्याः पुनर्ग्रहणं गर्भरक्षककृष्णविरहे मोहाधिक्यात्। यद्वा मत्स्यसुता सत्यवती ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र के वैश्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र युयुत्सु थे। गौतम शब्द से कृपाचार्य को कहा गया है। नकुल और सहदेव को यमौ शब्द से कहा गया है। मत्स्यसुता उत्तरा हैं, उनका दोबार नाम यहाँ इसलिए आया है कि उनके गर्भ के रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण का विरह होने से अधिक मोह था। अथवा मत्स्यसुता शब्द से सत्यवती को कहा गया है ॥९-१०॥

**सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः। कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥११॥**
**तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम्। दर्शनस्पर्शसँल्लापशयनासनभोजनैः ॥१२॥**

**अन्वयः**— सत्सङ्गात् मुक्त दुःसङ्गः बुधः यस्य रोचनं कीर्त्यमानं यशः सकृत् आकर्ण्य हातुं न उत्सहते तस्मिन् दर्शन-स्पर्श-संल्लाप-शयन-आसन भौजनैः न्यस्तधियः पार्थाः भगवतो विरहं कथं सहेरन् ॥११-१२॥

**अनुवाद**— सत्सङ्ग के कारण जिसका दुःसङ्ग छूट गया है ऐसे विज्ञ पुरुष वर्णन किए जाने वाले जिन श्रीभगवान् के मनोहर यश को एक बार भी सुनकर उसे नहीं छोड़ना चाहता है, उस श्रीभगवान् के साथ-साथ देखने, स्पर्श करने, बातें करने, सोने, बैठने तथा भोजन करने के कारण जिनकी बुद्धि उनमें ही लग गयी थे वे पाण्डव उन श्रीभगवान् के विरह को कैसे सह सकते थे ॥११-१२॥

**भावार्थ दीपिका**

तेषां कृष्णविरहासहनं कैमुत्यन्यायेनाह-सत्सङ्गादिति द्वाभ्याम् । सतां सङ्गाद्धेतोर्मुक्तः पुत्रादिविषयो दुःसङ्गो येन सः। सद्भिः कीर्त्यमानं रुचिकरं यशः सकृदप्याकर्ण्य सत्सङ्गं त्यक्तुं न शक्नोति ॥११॥ दर्शनादिभिस्तस्मिन् श्रीकृष्णे न्यस्ता अध्यस्ता धीर्येषां ते ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

वे पाण्डव भगवान् श्रीकृष्ण के विरह को नहीं सह पा रहे थे इस बात का **सत्सङ्गात्० इत्यादि** दो श्लोकों से कैमुत्यन्याय से बतलाते हैं। सत्सङ्ग के कारण जिसका पुत्रादि विषयक दुःसङ्ग छूट गया हो, वह व्यक्ति भगवान् के मनोहर यश को एक बार भी सुनकर उसे छोड़ना नहीं चाहता है, क्योंकि भगवान् का यशरूपी सत्सङ्ग अत्यन्त आकर्षक होता है। पाण्डव तो भगवान् श्रीकृष्ण के साथ ही एक दूसरे को देखते थे, उनका स्पर्श करते थे उनसे बातें करते थे, सोते थे, बैठते थे और साथ ही भोजन करते थे, अतएव पाण्डवों की चित्तवृत्ति, श्रीभगवान् में ही समर्पित हो गयी थी इसीलिए वे उन भगवान् श्रीकृष्ण का वियोग नहीं सह पा रहे थे ॥११-१२॥

**सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः । वीक्षन्तः स्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥१३॥**

**अन्वयः**— अनुद्रुतचेतसः ते अनिमिषैः अक्षैः तम् वीक्षन्तः स्नेहसंवद्धा तत्र तत्र विचेलुः ॥१३॥

**अनुवाद**— उन सबों का अन्तःकरण द्रवित हो गया था वे अपनी निर्निमेष नेत्रों से श्रीभगवान् को देख रहे थे और इधर-उधर चल रहे थे। क्योंकि वे सभी पाण्डव श्रीभगवान् से स्नेह के बन्धन में बंधे हुए थे ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

अतएवानिमिषैर्नेत्रैस्तमेव वीक्षमाणास्तत्र तत्रार्हणानयनाद्यर्थं चलन्ति स्म। यतः स्नेहेन सम्यग्बद्धाः। अतएव तमनुद्रुतानि गतानि चेतांसि येषां ते ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि सभी पाण्डव श्रीभगवान् के साथ स्नेह के बन्धन में बन्धे थे। अतएव जाते हुए श्रीभगवान् श्रीकृष्ण को निर्मिमेष नेत्रों से देख रहे थे। और वहाँ पर विद्यमान पूजन की सामग्री लाने के लिए चल रहे थे। उन सभी पाण्डवों का चित्त जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा था ॥१३॥

**न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते । निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ॥१४॥**

**अन्वयः**— अगारात् निर्याति देवकी सुते औत्कण्ठ्यात् उद्गलद्बाष्पम् बान्धवस्त्रियः अभद्रम् नो स्यात् इति न्यरून्धन्॥१४॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण के घर से निकलते समय उत्कण्ठावशात् स्त्रियों के नेत्र आँसू के जल से भर गये किन्तु उनके बान्धवों की स्त्रियों ने आँसुओं को इसलिए रोक लिया कि कोई अमङ्गल न हो जाय ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

अगारान्निर्याति निर्गच्छति सति। औत्कण्ठयादासक्त्यतिशयाद्धेतोरुद्गलत् स्रवद्बाष्पमश्रुन्यरुन्धन्नेष्वेव स्तम्भितवत्यः। तत्र हेतुः- अभद्रं नो स्यादमङ्गलं मा भूदित्येतदर्थम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका जाने के लिए घर से निकलने लगे तब उनके बान्धवों की स्त्रियों के नेत्रों में आँसू छलछला गये, क्योंकि उन सबों की भगवान् श्रीकृष्ण में अत्यधिक आसक्ति बढ गयी थी, किन्तु उन सबों ने आंसुओं को अपने नेत्रों में ही इसलिए रोक लिया कि श्रीभगवान् को रास्ते में कोई अमङ्गल न हो ।।१४।।

**मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः । धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ।।१५।।**

**अन्वयः**— मृदङ्ग, शङ्ख भेर्यः वीणापणवगोमुखाः धुन्धुर्यानकघण्टाद्याः तथा दुन्दुभयःनेदुः ।।१५।।

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण के जाते समय मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी वीणा, ढ़ोल, नरसिंधे, धुन्धुरी, नगारे घण्टे तथा दुन्दुभियाँ इत्यादि बाजे बजने लगे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

मृदङ्गादयो दश वाद्यभेदाः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जिस समय भगवान् जाने लगे उस समय उनके मङ्गल के लिए अनुवाद में गिनाये गये दश प्रकार के बाजे बजने लगे ।।१५।।

**प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया । ववृषुः कुसुमैः कृष्णे प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ।।१६।।**

**अन्वयः**— दिदृक्षया, प्रासादशिखरारूढाः प्रेमवीडास्मितेक्षणाः कुरुनार्यः कृष्णे कुसुमैः ववृषुः ।।१६।।

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण के जाते समय उनको देखने की इच्छा से अट्टालिकाओं के ऊपर चढी हुयी कुरुवंश की नारियाँ प्रेम, लज्जा तथा मुस्कान युक्त नेत्रों से देखती हुयी भगवान् के ऊपर पुष्पों की वर्षा की ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

प्रेमव्रीडास्मितपूर्वकमीक्षणं यासां ताः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

प्रेम, लज्जा तथा मुसकान पूर्वक अपने नेत्रों से जाते हुए कुरुवंश की नारियों ने पुष्पों की वर्षा की ।।१६।।

**सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् । रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ।।१७।।**

**अन्वयः**— प्रियः गुडाकेशः प्रियतमस्य रत्नदण्डं, मुक्तादामविभूषितम् सितातपत्रं जग्राह ह ।।१७।।

**अनुवाद**— भगवान् के प्रिय अर्जुन ने अपने प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण के रत्न निर्मित दण्डों वाले तथा मोतियों के झालर से सुशोभित श्वेत छत्र को अपने हाथ में ले लिया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

गुडाका निद्रा तस्या ईशो जितनिद्रोऽर्जुनः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन का एक नाम गुडाकेश है । गुडाका निद्रा को कहते हैं, अर्जुन ने निद्रा पर विजय प्राप्त कर लिया था अतएव उनका नाम गुडाकेश है ।।१७।।

**उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते । विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ।।१८।।**

**अन्वयः**— उद्धवः सात्यकिः चैव परमाद्भुते व्यजने जगृहतुः विकीर्यमाणः कुसुमैः मधुपति पथिरेजे ।।१८।।

**अनुवाद**— भगवान् के अत्यन्त अद्भुत दोनों चामरों को उद्धव और सात्यकि ने धारण किया । रास्ते में भगवान् श्रीकृष्ण पर पुष्पों की वर्षा की जा रही थी और भगवान् श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यजने चामरे जगृहतुः । मधुपतिः श्रीकृष्णः ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

उद्धव और सात्यकि दोनों भगवान् के दोनों अद्भुत चामर को पकड़ लिए, भगवान् पर मार्ग में पुष्पों की वर्षा की जा रही थी । उससे भगवान् श्रीकृष्ण की अत्यन्त शोभा हो रही थी ॥१८॥

**अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः । नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१९॥**

**अन्वयः**— तत्र-तत्र द्विजेरिताः सत्याः आशिषः अश्रूयन्त ता निर्गुणस्य गुणात्मनः अनुरूपाः आसन् ॥१९॥

**अनुवाद**— जहाँ-तहाँ ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारण किए गये श्रीभगवानृ के लिए सत्य आशीर्वाद भी सुनायी पड़ रहे थे । वे निर्गुण भगवान के लिए तो अनुरूप नहीं थे किन्तु मनुष्यावतार धारण करके लीला करने वाले सभी गुणों से सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के लिए तो अनुरूप ही थे ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

सत्याः श्रीकृष्णे तासामव्यभिचारात्, किंतु नानुरूपाश्चानुरूपाश्च । निर्गुणस्य परमानन्दस्य सुखी भवेत्यादयो नानुरूपा मानुष्यनाट्यावतारेऽनुरूपाश्चेत्यर्थः । सन्धिरार्षः ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

सर्वगुण सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण में पूर्णरूप से पाये जाने के कारण वे आशीर्वचन सत्य थे निर्गुण अर्थात् परमानन्द स्वरूप श्रीभगवान् के लिए सुखी रहें इस तरह का आशीर्वाद अनुरूप नहीं था किन्तु मानवावतार धारण करके, लीला करने वाले श्रीभगवान् के लिए तो वे आशीर्वचन अनुरूप हीं थे । नानुरूपानुरूपाः पद में की गयी सन्धि आर्ष हैं ॥१९॥

**अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् । कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥२०॥**

**अन्वयः**— उत्तमश्लोकचेतसाम् कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः संजल्पः अन्योन्यम् आसीत् ॥२०॥

**अनुवाद**— जिन सबों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा था वे युधिष्ठिर के नगर की स्त्रियाँ सबों को सुनने में मनोहर ही आपस में बातें करती थीं ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वासां श्रुतीनां मनोहरः । उपनिषदोऽपि मूर्तिमत्यः सत्यस्तं संजल्पमभ्यनन्दन्नित्यर्थः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

उन नारियों की बातों का अभिनन्दन मूर्तिमान श्रुतियाँ भी करती थीं क्योंकि उनकी बातें सभी श्रुतियों से मनोहर थीं ॥२०॥

**स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ।**
**अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशिसुप्तशक्तिषु ॥२१॥**

**अन्वयः**— अयं किल स वै पुरातनः पुरुषः, यः गुणेभ्यः अग्रे अविशेषे आत्मनि एक आसीत् । जगदात्मनि ईश्वरे, निमीलितात्मनि, सुप्तशक्तिषु ॥२१॥

**अनुवाद**— वे आपस में कहती थी कि ये भगवान् श्रीकृष्ण परम पुरुष हैं। प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होने से पहले प्रलयकाल में भी अपने निर्विशेष स्वरूप में एक मात्र स्थित थे। उस समय भी जीवात्माएँ जगत् की आत्मा परमात्मा में लीन थीं और महदादि सारी शक्तियाँ अव्यक्त में लीन थीं ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र तेजः सौन्दर्याद्यतिशयेन विस्मिताभ्यः सखीभ्योऽन्याः स्त्रियः कथयन्ति। नात्र विस्मयः कार्यः, साक्षादीश्वरत्वादस्येति। स वा इति चतुर्भिः। वै स्मरणे। किलेति प्रसिद्ध्या प्रमाणद्योतकम्। य एक एवाद्वितीयः पुरुष आसीत् एवायं श्रीकृष्णः। कुत्रासीत्। अविशेषे आत्मनि निष्प्रपञ्चे निजस्वरूपे। कदा अग्रे गुणेभ्यो गुणक्षोभात्पूर्वम्। तथा निशि प्रलये च। तस्य लक्षणम्। जगतामात्मनि जीवे। निमीलितात्मनि। निमीलितात्मन्निति लुप्तसप्तम्यन्तं पदम्। जातावेकवचनम्। ईश्वरे लीनरूपेषु जीवेषु सत्स्वित्यर्थः। ननु जीवानां ब्रह्मत्वात्कथं लयस्तत्राह। सुप्तासु शक्तिषु सतीषु। जीवोपाधिभूतसत्त्वादिशक्तिलय एव जीवलय इत्यर्थः ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण के तेज तथा सौन्दर्यातिशय्य को देखकर आश्चर्यित सखियों से दूसरी सखियाँ कहती थीं भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में आश्चर्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे तो साक्षात् ईश्वर हैं। इस बात को उन सबों ने **सवै किलायम्० इत्यादि** चार श्लोकों में कहा है। यहाँ वै यह अव्यय स्मरणार्थक है। किल शब्द प्रसिद्धि के अनुसार प्रमाण का द्योतक है। वे कहती थीं कि सृष्टि से पहले जब प्रकृति में न तो क्षोभ उत्पन्न हुआ था और न तो गुणों का उद्रेक हुआ था। उस समय जो एक मात्र अद्वितीय पुरुष थे वे ही ये श्रीकृष्ण हैं। उस समय जगत् की आत्मा परमात्मा में सभी जीव लीन हो गये थे। यदि कहें कि **जीवो ब्रह्मैव नापरः** इस सूक्ति के अनुसर जीव तो ब्रह्म है, ब्रह्म में उसका लय कैसे सम्भव है ? तो इसका उत्तर है कि जब महदादि सभी शक्तियाँ सुप्त हो जाती हैं, अर्थात् अपने कारणभूत प्रकृति में लीन हो जाती हैं उस समय जीवों की उपाधि भूत सत्त्व आदि शक्तियों का भी लय हो जाता है। इसी को जीवों का लय कहा जाता है।

**निमीलितात्मन्** यह लुप्त सप्तम्यन्त पद है। यहाँ पर जाति के अर्थ में एक वचनान्त प्रयोग हैं ॥२१॥

**स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम्।**
**अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ॥२२॥**

**अन्वयः**— स एव भूयः अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानः निजवीर्यचोदितां सिसृक्षतीम् स्वजीवमायाम् अनुससार शास्त्रकृत्।

**अनुवाद**— वे ही परम पुरुष पुनः सृष्टिकाल के आ जाने पर नाम रूप से रहित निर्विशेष स्वरूप नाम और रूप के निर्माण करने की इच्छा से अपनी काल शक्ति के द्वारा प्रेरित प्रकृति का अनुसरण किए। वह प्रकृति परमात्मा के अंशभूत जीव को मोहित करने का काम करती है तथा सृष्टि में प्रवृत्त होती। उन्होंने ही व्यवहार के लिए वेद आदि शास्त्रों की रचना की ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

तदेवं सृष्टेरादौ प्रलयानन्तरं च निष्प्रपञ्चावस्थानमुक्त्वा सृष्टिप्रलययोर्मध्ये सप्रपञ्चावस्थानमाहुः। स एवाप्रच्युतस्वरूपस्थितिरेव प्रकृतिमनुससाराधिष्ठितवान्। भूयः पुनः। सृष्टिप्रवाहस्यानादित्वात्। कीदृशीम्। निजवीर्यचोदितां स्वकालशक्तिप्रेरिताम्। स्वांशभूतानां जीवानां मायां मोहिनीम्। अतएव सिसृक्षतीं स्त्रष्टुमिच्छन्तीम्। किमर्थमनुससार। अनामरूपे आत्मनि जीवे रूपनामनी विधातुमिच्छन्। उपाधिसृष्ट्या जीवानां भोगायेत्यर्थः। कर्माणि च विधातुं वेदान्कृतवानित्याहुः- शास्त्रकृदिति ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से सृष्टि के प्रारम्भ में और प्रलय के पश्चात् प्रपञ्चरहित परमात्मा की स्थिति को कहकर सृष्टि और प्रलय के बीच में परमात्मा की स्थिति का वर्णन करती हुयी उन नारियों ने कहा कि जिन श्रीभगवान् के स्वरूप और स्थिति में किसी प्रकार का विकार नहीं आता है वे भगवान् पुनः प्रकृति को अधिष्ठित किए क्योंकि सृष्टि का प्रवाह तो अनादि है। अतएव परमात्मा अपनी कालशक्ति के द्वारा प्रकृति को अधिष्ठित किए। वह प्रकृति ही माया है। वह माया परमात्मा के अंशभूत जीवों को मोहित करने का काम करती है तथा वह सृष्टि करने के कार्य में प्रवृत्त होती है। परमात्मा ने प्रकृति को इसलिए अधिष्ठित किया कि नाम तथा रूप से रहित जीवों को मैं नाम और रूप प्रदान कर दूँ; जिससे कि वे जीव इस नाम और रूप रूपी उपाधि के द्वारा भोगों को भोग सकें। वे कर्मों को भी करें एतदर्थ परमात्मा ने शास्त्रों का ब्रह्माजी इत्यादि के द्वारा प्रवर्तन कराया ॥२२॥

**स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।**
**पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥२३॥**

**अन्वयः**— स वै अयं यत् पदम् अत्र जितेन्द्रिया, निर्जितमातरिश्वनः सूरयः भक्त्युत्कलितात्मना पश्यन्ति नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुम् अर्हति ॥२३॥

**अनुवाद**— निश्चित रूप से ये ही परमात्मा हैं जिनके चरण कमलों का साक्षात्कार योगिजन अपनी इन्द्रियों को वश में करके तथा अपनी प्राण वायु को वश में करके भक्ति की भावना से प्रफुल्लित हृदय में करते हैं। इनके ही द्वारा अन्तःकरण की पूर्ण रूप से शुद्धि हो सकती है, योग के द्वारा नहीं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

अस्य दर्शनमतिदुर्लभमस्माभिर्लब्धमित्याहुः। स वै अयम्। यस्य पदं स्वरूपमङ्घ्रि वा। निर्जितो मातरिश्वा प्राणो यैः। ह्रस्वत्वमार्षम्। ते सूरय एव पश्यन्ति। केन। भक्त्या उत्कलित उत्कण्ठितोऽमलो य आत्मा बुद्धिस्तेन। **'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या'** इति श्रुतेः। बुद्धिवैमल्यस्याप्ययमेव हेतुरित्याहुः। ननु हे सखि, एष एव सत्त्वं बुद्धिं परिमार्ष्टुं सम्यक् शोधयितुमर्हति नतु योगादय इत्यर्थः। यद्वा नु अहो एष सत्त्वं ज्ञानं परिमार्ष्टुं नाशयितुं दूरगमनेनाप्रत्यक्षीभवितुं नार्हति, किंत्वनेन सहैव गन्तव्यमित्यर्थः ॥२३॥

### भावप्रकाशिका

उन नारियों ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन जिसको हमलोगों ने प्राप्त किया है वह अत्यन्त दुर्लभ है। इस बात को उन सबों ने **स वा अयम् इत्यादि** श्लोक से कहा है। **यत्पदम्** के पद शब्द का अर्थ स्वरूप तथा चरण दोनों है। अर्थात् योगिजन अपने हृदय में भगवान् के स्वरूप अथवा चरण का साक्षात्कार करते हैं। निर्जित मातरिश्वन का विग्रह है। **निर्जित मातरिश्वा प्राणो यैः ते**। अर्थात् जिन लोगों ने अपनी प्राणवायुको अपने वश में कर लिया है, ऐसे ही सूरिजन श्रीभगवान् का साक्षात्कार करते हैं। **मातरिश्वनः** में ह्रस्व आर्ष प्रयोग होने के कारण है **अन्यथा मातरिश्वानः** पद होना चाहिए। उन परमात्मा के साक्षात्कार करने के साधन का वर्णन करते हुए उन सबों ने कहा **भक्त्युकलितात्मलात्मना** भक्ति की भावना से उत्कण्ठित अर्थात् निर्मल जो आत्मा अर्थात् बुद्धि उसके द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। श्रुति भी कहती है **दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या** अर्थात् श्रवण मनन तथा निदिध्यासन के संस्कार से सम्पन्न मन के द्वारा ही परमात्मसाक्षात्कार होता है।

नारियों न कहा कि बुद्धि की शुद्धि परमात्मा के द्वारा होती है। इस बात को उन सबों ने कहा **नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति** अर्थात् हे सखि ये बुद्धि को अच्छी तरह शुद्ध बना सकते है योग के द्वारा बुद्धि की शुद्धि नहीं हो सकती है।

**नन्वेष० इत्यादि** का यह भी अर्थ किया जा सकता है कि ये दूर जाकर हमलोगों के ज्ञान को नष्ट नहीं कर सकते है अर्थात् हमलोगों को भी इनके ही साथ चलना चाहिए ।।२३।।

**स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ।**
**य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ।।२४।।**

**अन्वयः**— हे सखि स वै अयम् यःगुह्यवादिभिः वेदेषु गुह्येषु च अनुगीत सत्कथः । यः एक एव ईशः आत्मलीलया जगत् सृजति, अवति अत्ति च किन्तु तत्र सज्जते न ।।२४।।

**अनुवाद**— हे सखि ! ये ही ईश्वर हैं जिनकी सुन्दर लीलाओं का वर्णन व्यास आदि रहस्यवादी ऋषियों ने गोपनीय वेदों और शास्त्रों में किया है । जो ईश्वर अकेले ही अपनी लीलामात्र से जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते है, फिर भी वे उसमें स्वयं आसक्त नहीं होते हैं ।।२४।।

**भावार्थ दीपिका**

पुण्यश्लोकतामाहुः । हे सखि, यो वेदेषु रहस्यागमेषु च रहस्यनिरूपकैरनुगीतसत्कथः । अनुगीताः सत्यः कथा यस्य स एवायम् । गानप्रकारमाहुः- य एक ईश इत्यादि ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

उन नारियों ने श्रीभगवान् की पुण्यश्लोकता का वर्णन करते हुए कहा— हे सखि ! ये वे भगवान् हैं जिनकी सत्य कथाओं का वर्णन रहस्यवादी जो व्यास आदि ऋषिगण हैं उन लोगों ने वेदों तथा रहस्यागमों में किया है। उनके द्वारा श्रीभगवान् की कथाओं का वर्णन करने का प्रकार यह है कि ये परमात्मा अपनी लीलामात्र से इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार का कार्य अकेले करते हैं, किन्तु ये उसमें आसक्त नहीं होते हैं ।।२४।।

**यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल ।**
**धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ।।२५।**

**अन्वयः**— यदा हि तमोधियो नृपाः अधर्मेण जीवन्ति, तत्र एष हि युगे, युगे भवाय रूपाणि दधत् किल सत्त्वतः भगं, सत्यम्, ऋतम्, दयाम् धत्ते ।।२५।।

**अनुवाद**— जब तामसी बुद्धि वाले राजागण अधर्म पूर्वक अपना पेट पालने लग जाते हैं उस समय ये ही भगवान् जगत् का कल्याण करने के लिए प्रत्येक युग में अपने शुद्ध सात्त्विक गुण के द्वारा भग (ऐश्वर्य) सत्य (सत्यप्रतिज्ञत्व) ऋत (यथार्थोपदेश) दया (भक्तों पर कृपा) तथा अद्भुत कर्म रूपी यश को धारण करते हैं ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**

एवंभूतस्य नानावतारे कारणमाहुः- यदा हीति । तमोव्याप्ता धीर्येषां ते नृपा यदाऽधर्मेण जीवन्ति केवलं प्राणान्पुष्णन्ति तत्र तदैव एष भवाय स्थित्यै सत्त्वतो विशुद्धसत्त्वेन रूपाणि दधद्भगादीनि धत्ते प्रकटयति । युगे युगे तत्तदवसरे । भगमैश्वर्यम्। सत्यं सत्यप्रतिज्ञत्वम् । ऋतं यथार्थोपदेशकत्वम् । दयां भक्तकृपाम् । यशोऽद्भुतकर्मत्वम् ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार के परमात्मा जो अनेक अवतारों को धारण करते हैं उसका कारण बतलाती हुई उन नारियों ने कहा **यदा हि० इत्यादि** श्लोक । स्त्रियों ने कहा कि जब तमोगुणी प्रकृति वाले राजागण अधर्म परायण हो जाते है और केवल अपने ही प्राणों के पोषण में लग जाते हैं, उस समय पर श्रीभगवान् अनेक अवतारों को धारण करते हैं और अपने शुद्ध सत्त्वगुण के द्वारा, ऐश्वर्य आदि को धारण करते हैं ।।२५।।

**अहो अलं श्लाध्यतमं यदोः कुलमहो अलंपुण्यतमं मधोर्वनम् ।**
**यदेष पुंसामृषभः श्रियः प्रियः स्वजन्मना चंक्रमणेन चाञ्चति ॥२६॥**

**अन्वयः**— अहो ! यदोः कुलं श्लाध्यतमं यदेष पुंसाम् ऋषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना अञ्चति अहो मर्धोर्वनम् अलं पुण्यतमं यदेष चङ्क्रमणेन च अञ्चति ॥२६॥

**अनुवाद**— अरे यह महाराज यदु का वंश अत्यन्त प्रशंसनीय है क्योंकि इसको पुरुषों में अग्रगण्य लक्ष्मीपति श्रीभगवान् ने सम्मानित किया है और यह मथुरा भी अत्यन्त पवित्र है, क्योंकि यहाँ पर श्रीभगवान् ने भ्रमण करके इसको पवित्र बना दिया है ॥२६॥

**भावार्थदीपिका**

विशेषतः श्रीकृष्णावतारसौभाग्यं वर्णयन्ति- अहो इति पञ्चभिः । यद्यस्मादेषु पुरुषोत्तमः श्रियः पतिः स्वजन्मना यदोः कुलमञ्चति पूजयति सत्करोति । अतः श्लाघ्यतमं तत् । चङ्क्रमणेन च मधोर्वनं मथुरां सत्करोत्यतस्तत्पुण्यतममिति । तमेवर्थस्याप्यत्यन्तातिशयेऽलमिति । तत्राप्याश्चर्ये अहो इत्युक्तम् ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

वे स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार जन्य सौभाग्य का वर्णन विशेष रूप से करती हुयी **अहो अलम्० इत्यादि** पाँच श्लोकों को कहती हैं । चूकि ये लक्ष्मीपति अपने जन्म से यदुवंश को सम्मानित किए हैं अतएव यह वंश अत्यन्त प्रशंसनीय है । मधुवन इसलिए अत्यन्त प्रवित्र है कि यहाँ पर श्रीभगवान् अपने भ्रमण के द्वारा उसे सम्मानित किए हैं ॥२६॥

**अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ।**
**पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥२७॥**

**अन्वयः**— अहो बत स्वर्यशसः तिरस्करी कुशस्थली भुवः पुण्ययशस्करी यत् प्रजाः यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं नित्यं पश्यन्ति स्म ॥२७॥

**अनुवाद**— यह आश्चर्य की बात है कि स्वर्ग के यश को तिरस्कृत करने वाली कुशस्थली द्वारकापुरी पृथिवी के पवित्र यश को बढ़ा रही है । ऐसा इसलिए है कि वहाँ की प्रजाएँ कृपादृष्टि युक्त एवं मुस्कान युक्त अपने स्वामी श्रीभगवान् का नित्य ही दर्शन करती हैं ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

द्वारकां श्लाघन्ते । अहो वताऽत्याश्चर्यम् । किं तत् । कुशस्थली द्वारका । स्वर्ग उत्कृष्ट इति यद्यशस्तस्य तिरस्करी परिभवकर्त्री । भुवश्च पुण्ययशःकर्त्री भवति । यद्यतो यत्रत्याः सर्वाः प्रजाः । स्वानुग्रहेणेषितं प्रेषितम् । स्मितपूर्वकोऽवलोको यस्य तम् । यद्वा अनुग्रहार्थमिषितमिष्टम् । **'अनुग्रहेषितम्'** इति पाठे स्वानुग्रहार्थमुषितं कृतानि वासम् ऐकपद्यपाठे त्वनुग्रहेणेषितं यत्स्मितं तत्पूर्वकोऽवलोको यस्य तम् । स्वस्यात्मनः पतिं श्रीकृष्णं न तु पित्रादिवद्देहमात्रपतिं नित्यं न पश्यन्ति स्म । नैतत्स्वर्गेऽस्तीत्यर्थः ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

द्वारका की प्रशंसा करती हुयी वे कहती हैं यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है । अहो बत का प्रयोग अत्यन्त आश्चर्य के अर्थ में हुआ है । यदि कहो कि क्या आश्चर्य हैं ? तो इसका उत्तर है कि कुशस्थली (द्वारकापुरी) स्वर्ग के उत्कृष्ट यश को तिरस्कृत कर रही है । और भूलोक के पवित्र यश को बढ़ा रही है । उसका कारण यह है कि वहाँ प्रजायें अनुग्रह पूर्वक तथा मन्दमुस्कान से युक्त देखने वाले अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का नित्य ही दर्शन करती हैं ॥२७॥

**नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।**
**पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियः संमुहुहुर्यदाशयाः ॥२८॥**

**अन्वयः**— सखि ! गृहीतपाणिभिः हि नूनं व्रत स्नानहुतादिना ईश्वरः समर्चितः याः अस्य अधरामृतं पिबन्ति । यदाशयाः व्रजस्त्रियः संमुमुहुः ॥२८॥

**अनुवाद**— हे सखि ! इनकी पाणिगृहीता पत्नियों ने निश्चित रूप से ईश्वर की व्रतों तथा तीर्थों में स्नानों एवं होम इत्यादि के द्वारा अच्छी तरह से पूजा की होगी क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्ण के अधरामृत का पान करती हैं । जिस अधरामृत को याद करके व्रज की स्त्रियाँ बार-बार मूर्छित हो जाती हैं ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

हे सखि ! अस्य गृहीतपाणिभिः पत्नीभिरीश्वरोऽयमेव नूनं जन्मान्तरेषु समर्चितः । यस्मिन्नधरामृते आशयश्चित्तं यासां ता संमोहं प्राप्ता इति मनोहरत्वमुक्तम् ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

वे स्त्रियाँ परस्पर में बातें करती हुयी कहती हैं कि इन भगवान श्रीकृष्ण की पत्नियों ने जन्मान्तर में निश्चित रूप से इनकी व्रत, स्नान तथा होम इत्यादि के द्वारा अच्छी तरह से पूजा की होंगी क्योंकि वे इनके अधरामृत का पान करती हैं । जिस अधरामृत को याद करके व्रज की नारियाँ मूर्छित सी हो जाती हैं ॥२८॥

**या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिण : ।**
**प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥२९॥**
**एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं वत साधु कुर्वते ।**
**यासां गृहात्पुष्करलोचनः पतिर्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥३०॥**

**अन्वयः**— या हि स्वयम्बरे चैद्य प्रमुखान् शुष्मिणः प्रमथ्य वीर्यशुक्लेन हृताः या प्रद्युम्न साम्बाम्बसुतादयः अपराः, याश्च भौमवधे सहस्रशः आहृताः एताः अपास्तपेशलम् निरस्तशौचं परं स्त्रीत्वम् बत साधु कुर्वते यासां गृहात् आहृतिभिः हृदि स्पृशन्, पुष्करलोचनः पति जातु न अपैति ॥२९-३०॥

**अनुवाद**— स्वयम्बर में जिस रुक्मिणी का भगवान् ने अपने पराक्रम से हरण किया, तथा दूसरी जो प्रद्युम्न साम्ब अम्ब आदि की मातायें रुक्मिणी, जाम्बवती सत्यभामा नाग्नजीति इत्यादि पटरानियाँ तथा नरकासुर का वध करके जिन हजारों नारियों को भगवान् लाये, उन सबों ने स्वातन्त्र्य आदि से रहित तथा पावित्र्य रहित केवल स्त्रीत्व को ही पवित्र और सुन्दर बना दिया । जिन सबों के हृदय को सुन्दर वचनों तथा पारिजातादि उपहारों के प्रदानादि के द्वारा आनन्दमय बनाते हुए भगवान् उन सबों के भवन से कभी भी बाहर नहीं निकलते हैं, उन सबों के सौभाग्य और महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ॥२९-३०॥

### भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयन्ति-या इति द्वाभ्याम् । वीर्यं प्रभाव एव शुल्कं मूल्यं तेन । शुष्मिणो बलिष्ठान् । प्रद्युम्नश्च साम्बश्च अम्बश्च सुता यासां रुक्मिणीजाम्बवतीनाग्नजितीनां ता आदिर्यासां सत्यभामादीनां ताः । याश्चापराः । अस्य श्लोकस्योत्तरश्लोकेनान्वयः। एताः स्त्रीत्वमेव परं केवलं साधु शोभनं कुर्वते । किंभूतम् । अपास्तं गतं पेशलं भद्रं स्वातन्त्र्यं यस्मात्तत् । निरस्तं शौचं शुचित्वं यस्मात्तथाभूतमपि । जातु कदाचिदपि नापैति न निर्गच्छति । आहृतिभिर्व्याहारैः । यद्वा पारिजातादिप्रियवस्त्वाहरणैः । हृदि स्पृशन्नानन्दयन् ॥२९-३०॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों का ही विस्तार वे सब **यावीर्यशुल्केन इत्यादि** श्लोकों से करती हुयी कहती हैं अपने प्रभाव रूपी शुल्क के द्वारा रुक्मिणी को भगवान् ने स्वयम्बर में शिशुपाल आदि बलवान तथा मदमत्त राजाओं का मंथन करके हरण किया तथा प्रद्युम्न, साम्ब तथा अम्ब इत्यादि पुत्रों की जो माताएँ हैं ऐसी रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा तथा नाग्नजीती इत्यादि आठ पटरानियाँ है, तथा भौमासुर का वध करने के पश्चात् जिन हजारों स्त्रियों को भगवान् लाये उन सबों की महिमा और भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है। श्रीभगवान् की इन सभी पत्नियों ने स्वातन्त्र्य, मङ्गल तथा पवित्रता से रहित स्त्रीत्व को अत्यन्त मङ्गलमय तथा पवित्र बना दिया। इन स्त्रियों के गृह से कमलनयन भगवान् कभी बाहर भी नहीं निकलते हैं और अपने प्रेमपूर्ण वचनों से तथा पारिजात आदि उपहारों को प्रदान आदि क्रियाओं के द्वारा उन पत्नियों के हृदय को आनन्दमय बनाते रहते हैं ॥२९-३०॥

**एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् । निरीक्षणेनाभिनन्दन्सस्मितेन ययौ हरिः ॥३१॥**

**अन्वयः**— एवं विधाः गदन्तीनां पुरयोषिताम् गिरः सस्मितेन निरीक्षणेन अभिनन्दन हरिः ययौ ॥३१॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से बात करने वाली उन नगर की नारियों की बातों का मुसकान पूर्ण अवलोकन के द्वारा अभिनन्दन करते हुए श्रीहरि चले गये ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

एवंविधा विचित्रा गिरः सस्मितेन निरीक्षणेनाभिनन्दन् स हरिर्ययौ ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

हस्तिनापुर की नारियों की इस प्रकार की विचित्र वाणियों का मुस्कानपूर्ण अवलोकन के द्वारा अभिनन्दन करते हुए श्रीभगवान् द्वारका चले गये ॥३१॥

**अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः । परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— अजातशत्रुः स्नेहात् परेभ्यः शङ्कित मधुद्विषः गोपीथाय चतुरङ्गिणीम् सेनां प्रायुंक्त ॥३२॥

**अनुवाद**— युधिष्ठिर को यह शङ्का हो गयी कि बीच में शत्रुगण इन पर आक्रमण न कर दें, अतएव स्नेह के कारण वे मधुनामक दैत्य को मारने वाले श्रीभगवान् की रक्षा के लिए चतुरङ्गिणी सेना को उनके साथ लगा दिए ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

मधुद्विषोऽवि गोपीथाय रक्षणाय स्नेहात् परेभ्यः शत्रुभ्यः शङ्कितः सन् पायुंक्त **'हस्त्यश्वपदातं'** सेनाङ्गं स्याच्चतुर्विधम्। इत्येवंचतुरङ्गिणीम् पृतनां सेनाम् ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

रास्ते में जाते हुए श्रीभगवान् पर शत्रुगण कहीं आक्रमण न कर दें इस शङ्का से राजा युधिष्ठिर ने भगवान् की रक्षा करने के लिए उनके साथ चतुरङ्गिणी सेना भेज दिया। यह उन्होंने श्रीभगवान के प्रति स्नेह होने के कारण किया॥३२॥

**अथ दूरागताञ्छौरिः कौरवान्विरहातुरान् । संनिवर्त्य दृढं स्निग्धान्प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥३३॥**

**अन्वयः**— दूरागतान् विरहातुरान् दृढं स्निाग्धान् कौरवान् शौरिः संनिवर्त्य प्रियैः सह स्वनगरीं ययौ ॥३३॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् दूर आये हुए, विरह से व्याकुल अत्यन्त स्निग्ध कुरुवंशी पाण्डवों को लौटाकर श्रीहरि अपने प्रिय उद्धव आदि के साथ अपनी नगरी द्वारका चले गये ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

पाण्डोः कुरुवंशजत्वात् पाण्डवा अपि कौरवा एव तान् प्रियैरुद्धवादिभिः सह ।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

पाण्डु भी कुरुवंश में ही उत्पन्न हुए थे इसलिए पाण्डव भी कुरुवंशी ही हैं। वे श्रीभगवान् के साथ उन्हें भेजने के लिए बहुत दूर तक चले गये थे। यह देखकर उन पाण्डवों को भगवान् ने लौटाया और अपने प्रिय उद्धव सात्यकि इत्यादि के साथ वे अपनी नगरी द्वारकापुरी के लिए प्रस्थान किए ।।३३।।

**कुरुजाङ्गलपाञ्चालाञ्शूरसेनान्स यामुनान्। ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ।।३४।।**
**मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान्। आनर्तान्भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ।।३५।।**

**अन्वयः**— कुरुजाङ्गलपाञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान् ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्रं, मत्स्यान्, सारस्वतान् अथ मरुधन्वम् सौवीराभीरयोः परान् अतिक्रम्य आनर्तान् उपागात् तत्र विभुः मनाक् श्रान्तवाहः अभवत् ।।३४-३५।।

**अनुवाद**— हे भृगुवंशीय शौनकजी श्रीभगवान् कुरुजाङ्गल प्रदेश, शूरसेन प्रदेश, यमुना के तटवर्ती ब्रह्मावर्त प्रदेश, कुरुक्षेत्र, मत्स्य प्रदेश, सारस्वत प्रदेश, मरुधन्व प्रदेश को पारकर सौ वीर और आभीर प्रदेश के पश्चात् द्वारका देश में आ गये। वहाँ बहुत अधिक चलने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण के रथ के घोड़े कुछ थक गये थे ।।३४-३५।।

**भावार्थ दीपिका**

कुरुक्षेत्रं कुरुदेशान्तरगतमेव। क्रमोऽत्र न विवक्षितः ।।३४।। मरुर्निरुदको देशः। धन्वोऽल्पोदकः। आनर्ताख्यो द्वारकादेशः। स विभुरुपागात्प्राप्तः। हे भार्गव। मनागीषत् श्रान्ता वाहा यस्य सः ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

जहाँ बहुत कम पानी मिलता है वह धन्व प्रदेश है। जहाँ पानी ही नहीं मिलता है वह मरु प्रदेश है कुरुक्षेत्र कुरुदेश के अन्तर्गत ही है। यहाँ पर देशों का क्रम नहीं विवक्षित है, उन सबों का नाम केवल गिना दिया गया है। आनर्त शब्द से द्वारका देश ही कहा गया है। द्वारका प्रदेश में आकर श्रीकृष्णभगवान् के रथ के घोड़े थोड़ा थक से गये थे ।।३४-३५।।

**तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः। सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ।।३६।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

**अन्वयः**— तत्र तत्र ह तत्रत्यैः प्रत्युद्यतार्हणः हरिः सायं पश्चात् दिशं भेजे तदा गविष्ठः गाम् गतः ।।३६।।

**अनुवाद**— विभिन्न स्थानों पर वहाँ के लोगों से उपायन प्राप्त करके श्रीहरि सायंकाल पश्चिम दिशा में पहुँचे उस समय स्वर्गस्थ सूर्य अस्त हो गये ।।३६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।**

**भावार्थ दीपिका**

तत्र तत्र देशे तत्रत्यैर्जनैः। प्रत्युद्यतानि निवेदितान्यर्हणान्युपायनानि यस्मै सः। सायमपराह्णे पश्चाद्दिशं पश्चिमां दिशं भेजे प्राप्तः। तदा च गविष्ठः स्वर्गस्थः सूर्यो गामुदकं गतः प्रविष्टोऽस्तं गत इत्यर्थः। अद्भ्य वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति, इति श्रुतेः। यद्वा तदा सायङ्काले जाते रथादवतीर्य गविष्ठो भूमौ स्थितस्ततो गां जलाशयं गतः सन् पश्चाद्दिशं सन्ध्यां भेजे। उपासितवानित्यर्थः ।।३६।।

**इति श्रीमद्भागवात महापुराणे भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।**

**भाव प्रकाशिका**

रास्ते में विभिन्न स्थानों पर वहाँ के लोगों ने श्रीभगवान् को उपहार प्रदान किया। उसके पश्चात् सायंकाल श्रीभगवान् पश्चिम दिशा के द्वारका प्रदेश में आ गये। उस समय स्वर्गस्थ सूर्य जल में प्रवेश कर गये थे। अर्थात् सूर्यास्त हो गया था। श्रुति भी कहती है **अद्भयो वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति** अर्थात् ये सूर्य जल से उदित होते हैं और सायंकाल ये सूर्य जल में प्रवेश कर जाते हैं। अथवा सायंकाल हो जाने पर श्रीभगवान् रथ से पृथिवी पर उतरकर खड़े हुए उसके पश्चात् जलाशय पर जाकर वे सायंकालिक संध्योपासन किए ॥३६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के दशवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ॥१०॥**

# ग्यारहवाँ अध्याय

## भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश वर्णन

सूत उवाच

**आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धान् जनपदान्स्वकान् । दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥१॥**

**अन्वयः**— सः स्वृद्धान् स्वकान् आनर्तान् उपव्रज्य तेषां विषादं शमयन्निव दरवरं दध्मौ ॥१॥

सूतजी ने कहा

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण अच्छी तरह से समृद्ध अपने द्वारका प्रदेश में प्रवेश करके वहाँ के लोगों के विषाद को शान्त करते हुए के समान अपने श्रेष्ठ पाञ्चजन्य नामक शङ्ख को बजाये ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

आनर्तैः स्तूयमानस्य पुरीं निर्विश्य बन्धुभिः । एकादशे रतिः सम्यग्यादवेन्द्रस्य वर्ण्यते । उत्सवैरुच्चलत्पौरमुदञ्चद्-ध्वजतोरणम्। उल्लसद्रत्नदीपालि स्वपुरं प्रभुराविशत् । स्वृद्धान्समृद्धान् । दरवरं पाञ्चजन्यं शङ्खम् । दध्मौ वादितवान् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

आनर्त देशवासियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में प्रवेश करके अपने बान्धवों के प्रति प्रेम को प्रदर्शित किए इस बात का वर्णन ग्यारहवें अध्याय में किया गया है । जब नगर के लोग उत्सव मना रहे थे उस समय ध्वजा और तोरण से सुशोभित और रत्नदीपों से प्रकाशित अपने नगर में श्रीभगवान् प्रवेश किए । सायंकाल की बेला में भगवान् कृष्ण द्वारका प्रदेश के लोगों के विषाद को शान्त करते हुए अपने पाञ्चजन्य नामक श्रेष्ठ शङ्ख को बजाये ॥१॥

**स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा ।**
**दाध्मायमानः करकञ्जसंपुटे यथाऽब्जषण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥२॥**

**अन्वयः**— ऊरुक्रमस्य अधरशोणशोणिमा दाध्मायमानः धवलोदरः दरः करकञ्जसम्पुटे अब्जषण्डे उत्स्वनः कलहंसः यथा उच्चकाशे ॥२॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण की ओठों की लाली से लाल बना हुआ बजाया जाता हुआ श्वेत वर्ण का शङ्ख श्रीभगवान् के करकमलों में इस तरह से सुशोभित हो रहा था जैसे लाल रङ्ग के कमल के ऊपर बैठा हुआ कोई राजहंस जोर-जोर से ध्वनि कर रहा हो ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

स इति । दरः शङ्खो दाध्मायमानो भगवता आपूर्यमाण उच्चकाशेऽतिशयेन शुशुभे इत्यन्वयः । कथंभूतो दरः । धवलमुदरं यस्य सः । तथाप्युरुक्रमस्य कृष्णस्याधरस्य यः शोणगुणस्तेन शोणिमा यस्य सः । करकञ्जे करकमले तयोः संपुटे मध्ये वर्तमानः । कथमुच्चकाशे । अब्जषण्डे रक्तकमलसमूहे कलहंसो राजहंस उत्स्वन उच्च शब्दो यथा तद्वत् ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

दर शङ्ख को कहते हैं । इस श्लोक से बतलाया जा रहा है कि श्रीभगवान् का पाञ्चजन्य शङ्ख तो श्वेत वर्ण का था, किन्तु उसको बजाते समय श्रीभगवान् के लाल-लाल ओठों के सम्पर्क के कारण उसमें भी लालिमा संक्रान्त हो गयी और भगवान् के दोनों हाथों के बीच में विद्यमान वह उजला शङ्ख उसी तरह से सुशोभित हो रहा था जैसे लाल कमल के ऊपर बैठा हुआ कोई उजला राजहंस जोर से ध्वनि कर रहा हो ।।२।।

**तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् । प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ।।३।।**

**अन्वयः**— तम् जगद्भयभयावहम् निनदम् उपश्रुत्य सर्वाः प्रजाः भर्तृदर्शनलालसाः प्रत्युद्ययुः ।।३।।

**अनुवाद**— संसार के भय को भयभीत करने वाली उस ध्वनि को सुनकर सारी प्रजाएँ अपने स्वामी के दर्शन की लालसा से नगर से बाहर निकल आयी ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

जगतो यद्भयं तस्य भयावहम् । प्रत्युद्ययुः प्रत्युज्जग्मुः । भर्तुर्दर्शने लालसौत्सुक्यं यासां ताः ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

**जगतो यद्भयम् तस्य भयावहम् जगद्भयभयावहम्** पद का विग्रह है । इसका अर्थ है जगत् के भय को भयभीत कर देने वाला । इस प्रकार के भगवान् के शङ्ख की ध्वनि को सुनकर सारी प्रजायें भगवान् का दर्शन करने की लालसा से नगर से बाहर निकल आयी । **भर्तृदर्शनलालसाः** पद का विग्रह है **भर्तुः दर्शनस्य लालसा औत्सुक्यं यासां ताः ।।३।।**

**तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः। आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा।।४।।**
**प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा। पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ।।५।।**

**अन्वयः**— तत्र आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा उपनीत बलयः रवे आदृता दीपम् इव । सर्वं सुहृदम् अवितारम् पितरम् अर्भका इव प्रीत्युत्फुल्लमुखाः हर्षगद्गदयागिरा प्रोचुः ।।४-५।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् तो आत्माराम है, वे आत्मलाभ से ही सदा पूर्णकाम हैं उनको प्रजाओं ने उसी तरह से उपहार प्रदान किया जिस तरह कोई प्रेम पूर्वक सूर्य को दीपक दिखाता है । उसके पश्चात् उन प्रजाओं ने जिस तरह सुहृद अपने पिता की स्तुति बालक करते हैं उसी तरह से उन प्रजाओं ने भी प्रसन्नता पूर्वक तथा हर्षातिरेक के कारण गद् गद् वाणी से श्रीभगवान् की स्तुति की ।।४-५।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र तस्मिन् श्रीकृष्णे उपनीताः समर्पिता बलय उपायनानि याभिस्ताः । निरपेक्षेऽपि तस्मिन्नादरेण समर्पणं दृष्टान्तः- रवेर्दीपमिवेति । पितरमर्भका इव तं सर्वसुहृदमवितारं प्रोचुरित्युत्तरेणान्वयः । सुहृत्त्वेनैवावितारं नतु कामेन । अत्र हेतुः- आत्मारामम् । तत्रापि हेतुः- परमानन्दनिजस्वरूपलाभेनैव पूर्णकामम् ।।४-५।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् तो सभी वस्तुओं से निरपेक्ष हैं । किन्तु प्रजाओं ने उनको उसीतरह से उपहारों को प्रदान किया जिस तरह से कोई प्रेमपूर्वक सूर्य को दीपक दिखाता है । सूर्य तो स्वयं प्रकाश है सभी वस्तुओं को प्रकाशित

करते हैं उनको दीपक दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है फिर भी अर्चना करने वाले उनकी प्रसन्नता के लिए उन्हें दीपक दिखाते ही हैं। इसके पश्चात् प्रजाओं ने सबों के रक्षक श्रीभगवान् की उसी तरह से स्तुति की जिस तरह से अपने सभी पुत्रों का कल्याण चाहने वाले और सबों की रक्षा करने वाले अपने पिता की बालक स्तुति करते हैं।

भगवान् के उपायन निरपेक्ष होने के कारण को बतलाते हुए कहा गया है कि भगवान् तो आत्माराम हैं। उसका भी कारण यह है कि आत्मलाभ से ही पूर्णकाम हैं ।।४-६।।

**नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ।**
**परायणं क्षेममिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परप्रभुः ।।६।।**

**अन्वयः**— हे नाथ वयम् विरिञ्चिवैरिञ्च्य सुरेन्द्रसेवितम् इहक्षेमम् इच्छताम् परं परायणम् ते अङ्घ्रिपंकजम् नताः स्म यत्र पर प्रभुः कालः न प्रभवेत् ।।६।।

**अनुवाद**—हे नाथ ! ब्रह्मा सनकादि तथा इन्द्र जिसकी वन्दना करते हैं, इस लोक में कल्याण चाहने वाले लोगों के लिए जो सर्वश्रेष्ठ आश्रय हैं ऐसे आपके चरण कमलों की हम सदा वन्दना करते हैं। आपके उन चरणों की वन्दना करने वालों का; ब्रह्मा इत्यादि को भी अपने वश में रखने वाला काल कुछ नहीं विगाड़ पाता हैं ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

किमूचुरित तदाह- नताः स्मेति । विरिञ्चो ब्रह्मा । वैरिञ्च्याः सनकादयः । इह संसारे परं क्षेममिच्छतां परायणं परमं शरणम् । कुतः । परेषां ब्रह्मादीनां प्रभुरपि कालो यत्र प्रभुर्न भवेत् ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

उन प्रजाओं ने श्रीभगवान् से क्या कहा ? इस बात को **नताः स्म० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। विरिञ्च ब्रह्माजी का नाम है और वैरिञ्च्य अर्थात् ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र सनकादि हैं। प्रजाओं ने कहा कि हे नाथ! हमलोग आपके चरण कमलों की सदा वन्दना करते हैं। आपके इन चरणों की वन्दना ब्रह्माजी, सनकादि महर्षि तथा इन्द्र भी किया करते हैं। आपके ये चरण उन लोगों के सर्वश्रेष्ठ रक्षक हैं जो लोग इस संसार में आत्म कल्याण प्राप्त करना चाहते हैं। आपके चरणों के शरणागत जीवों का काल कुछ भी नहीं विगाड़ पाता है। जो काल ब्रह्माजी को भी अपने वश में रखता है उसका आपके भक्तों पर कोई भी वश नहीं चलता है ।।६।।

**भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ।**
**त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ।।७।।**

**अन्वयः**— हे विश्वभावन त्वम् नः भवाय भव । त्वमेव नः माता, पिता सुहृत्, पतिः, सद्गुरुः परमं दैवतम् च यस्य तव अनुवृत्त्या वयम् कृतिनः बभूविम ।।७।।

**अनुवाद**—हे विश्वभावन ! आप ही हमलोगों का कल्याण करें। आप ही हमारे माता, पिता, सुहृद्, स्वामी, सद्गुरु तथा परमाराध्य देवता हैं। आपके ही चरण कमलों की सेवा करने के कारण हम सभी कृतार्थ हैं ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

अतो भवायोद्भवाय नोऽस्माकं त्वं भव । हे विश्वभावन । कृतिनः कृतार्था बभूविम जाता वयम् ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

प्रजाएँ कहती हैं कि हमलोग आपके शरण में है अतएव आप हमलोगों का कल्याण करें। हमारे माता,

पिता सुहृद् स्वामी, सद्गुरु तथा परमाराध्य आप ही हैं । आप से ही हमारे सारे सम्बन्ध हैं और आपके चरणों की सेवा करने के कारण हम सभी कृतार्थ हुए हैं ।।७।।

**अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ।**
**प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ।।८।।**

**अन्वयः**— अहो वयम् सनाथा भवता स्मः यत् त्रैविष्टपानाम् अपि दूरदर्शनम् प्रेम-स्मित-स्निग्धनिरीक्षणाननम् तव सर्वसौभगम् रूपं पश्येम ।।८।।

**अनुवाद**— यह हमलोगों का परम सौभाग्य है कि हमलोग आपसे सनाथित हैं । उसी के कारण जिनका दर्शन देवताओं को भी मिलना कठिन है ऐसे आपको प्रेमपूर्ण मुस्कान से तथा स्निग्ध नेत्र से युक्त आपके मुख का तथा आपके सर्वाङ्ग सुन्दर रूप का हम लोग दर्शन करते हैं ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

कृतार्थत्वमेवाहुः । अहो भवता वयं सनाथाः स्मः । यद्यस्मात्तव रूपं पश्येम । त्रैविष्टपानामपि दूरे दर्शनं यस्य तत्। देवानामपि दुर्लभदर्शनमित्यर्थः । प्रेम्णा यत्स्मितं तद्युक्तं स्निग्धं निरीक्षणं यस्मिंस्तदाननं यस्मिंस्तद्रूपम् । सर्वेषु चाङ्गेषु सौभगं यस्मिंस्तत् ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

**अहोसनाथा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा प्रजाएँ अपनी कृतार्थता का ही वर्णन करती हैं । वे कहती हैं कि आप हमारे स्वामी हैं यह हमलोगों का परम सौभाग्य है । यही कारण है कि हमलोग आपके प्रेमपूर्ण मुस्कान तथा स्नेह भरे नेत्रों से युक्त मुखड़े का तथा आपके सवाङ्ग व्याप्त सौन्दर्य से युक्त रूप का दर्शन करते हैं । आपके इस रूप का दर्शन तो देवताओं को भी दुर्लभ हैं ।।८।।

**यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्कुरून्मधून्वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।**
**तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ।।९।।**

**अन्वयः**— भो अम्बुजाक्ष यर्हि भवान् सुहृद्दिदृक्षया कुरून् अथ मधून् अपससार तर्हि हे अच्युत नः क्षणः अब्दकोटिः इव रविं विना अक्ष्णोः इव भवेत् ।।९।।

**अनुवाद**— हे कमलनयन भगवन् ! जब आप अपने संबन्धियों को देखने के लिए हस्तिनापुर अथवा मथुरा चले जाते हैं तब हे अच्युत ! आपके बिना हमलोगों का एक-एक क्षण करोड़ों वर्ष के समान अथवा सूर्य के बिना आँखों के समान बड़े कष्ट से वितता है ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

अर्भका इव सकरुणमाहुः । यर्हि यदा । भो अम्बुजाक्ष । नो भवानिति पाठे न इत्यनादरे षष्ठी । अस्माननादृत्यापससारापहाय जगाम । कुरून्हस्तिनापुरम् । मधून्मथुरां वा । तत्र तदा । रविं विना आन्ध्यादक्ष्णोर्यथैकोऽपि क्षणोऽब्दकोटिप्रतिमो भवेत् । एवं तव नः त्वदीयानामस्माकमीत्यर्थः ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

बालकों के समान अत्यन्त करुण होकर प्रजाओं ने कहा **नो भवान्** जहाँ पाठ है वहाँ **नः** में षष्ठी विभक्ति अनादर के अर्थ में होगी और अर्थ होगा । हे कमलनयन जब हमलोगों की परवाह किए बिना आप अपने सम्बन्धियों को देखने के लिए हस्तिनापुर अथवा मथुरा चले जाते हैं उस समय हमलोगों का एक-एक क्षण बितना मुस्किल हो जाता है । जिस तरह सूर्य के बिना आखों की बेचैनीमय स्थिति हो जाती है उसी तरह ।।९।।

**इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः । शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— इति प्रजानां च उदीरिताः वाचः शृण्वानः भक्तवत्सलः भगवान् दृष्ट्या अनुग्रहं वितन्वन् पुरीम् प्राविशत् ॥१०॥

**अनुवाद**— इस तरह से प्रजाओं द्वारा कही गयी बातों को सुनते हुए भक्तवत्सल भगवान् अपनी दृष्टि के द्वारा उन सबों पर कृपा करते हुए अपनी नगरी द्वारकापुरी में प्रवेश कर गये ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

इति च एवंविधा अन्याश्चोच्चारिता वाचः शृण्वन् दृष्ट्या साभिनन्दनावलोकेनानुग्रहं कुर्वन् पुरीं द्वारकां प्राविशत् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से प्रजाओं के द्वारा कही गयी दूसरी भी बातों को भी भगवान् सुनते हुए तथा अपनी दृष्टि द्वारा अभिनन्दनमयी दृष्टि के द्वारा उन प्रजाओं पर कृपा करते हुए द्वारका पुरी में प्रवेश कर गये ॥१०॥

**मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः । आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥११॥**

**अन्वयः**— नागैः भोगवतीम् इव आत्मतुल्यबलैः मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः रक्षिताम् पुरीं प्राविशत् ॥११॥

**अनुवाद**— जिस तरह नागों द्वारा नागो की नगरी भोगवती सुरक्षित है, उसी तरह अपने सदृश ही बल वाले मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक तथा यदुवंशियों द्वारा सुरक्षित अपनी द्वारकापुरी में वे प्रवेश किए ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

तां द्वारकां स्तौति पञ्चभिः । स्वतुल्यबलैर्मधुभोजादिभिर्गुप्तां रक्षिताम् ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त द्वारका का वर्णन पाञ्च श्लोकों द्वारा किया गया है। भगवान् के सदृश ही बलवाले मधु भोज इत्यादि वंशीयों से वह द्वारका पुरी संरक्षित थी ॥११॥

**सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः । उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— सर्वर्तु सर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः उद्यानोपवनारामैः वृत्तपद्माकरश्रियम् (पुरीं प्राविशत् )॥१२॥

**अनुवाद**— वह नगरी सभी ऋतुओं के सभी विभवों से युक्त थी वह स्थान स्थान पर पवित्र वृक्षों लताओं तथा आश्रमों से युक्त थी, उद्यानों, उपवनों और पुष्पवाटिकाओं से युक्त तथा कमलों से भरे सरोवरों की शोभा से वह सम्पन्न थी ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वेष्वृतुषु सर्वे विभवाः पुष्पादिसम्पदो येषां ते पुण्यवृक्षा लताश्रमा लतामण्डपाश्च येषु तैरुद्यानादिभिर्वृता ये पद्माकराः सरांसि तैः श्रीः शोभा यस्यां ताम् । उद्यानं फलप्रधानम् । उपवनं पुष्पप्रधानम् । आरामः क्रीडार्थं वनम् ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

सभी ऋतुओं में होने वाली सम्पूर्ण ऐश्वर्य पुष्प इत्यादि से युक्त पवित्र वृक्षों, लताश्रमों अर्थात् ललितमण्डपों, से युक्त उद्यानों आदि से घिरे हुए कमलों से भरे हुए सरोवरों की शोभा से सम्पन्न फलों से भरे उद्यानों, पुष्पों से भरे उपवनों तथा क्रीडावनों से युक्त द्वारकापुरी में भगवान् ने प्रवेश किया ॥१२॥

**गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् । चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तःप्रतिहतातपाम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम्, चित्रध्वजपताकाग्रैः अन्तः प्रतिहतातपाम् (पुरीं प्रविशतत्)॥१३॥

**अनुवाद**— नगर के द्वार पर तथा गृहों के द्वार पर एवं मार्गों में श्रीभगवान् के स्वागत के लिए जिसमें उत्सव पूर्वक तोरण लगाये गये थे, गरुड आदि के चित्रों से युक्त ध्वजाओं तथा विजय प्रदान करने वाले यन्त्रों के चित्रों से चित्रित पताकाओं से जिसके भीतर घूप नहीं लगती थी ऐसी द्वारकापुरी में श्रीभगवान् प्रवेश किए ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

गोपुरं पुरद्वारम् । द्वारं गृहद्वारम् । कृतानि कौतुकेनोत्सवेन तोरणानि यस्यां ताम् । गरुडादिचिह्नाङ्किता ध्वजाः । जयप्रदयन्त्राङ्किताः पताकाः । चित्राणां ध्वजपताकानामग्रैरन्तः प्रतिहत आतपो यस्यां ताम् ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

उस नगरी में नगर द्वार पर तथा गृहों के द्वार पर एवं मार्गों में लोग श्रीभगवान् का स्वागत करने के लिए तोरण बाँधे थे, गरुड आदि के चित्रों से चित्रित ध्वजों तथा विजयप्रद यन्त्रों से चित्रित पताकाओं के कारण उस नगरी में धूप का कोई भी असर नहीं होता था ॥१३॥

**संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् । सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ॥१४॥**

**अन्वयः**— संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम्, गन्धजलैः सिक्तां फलपुष्पाङ्कुराक्षतैः उप्ताम् पुरीं प्राविशत् ॥१४॥

**अनुवाद**— उस नगरी के राजमार्ग, गलियाँ, बाजार तथा चौराहे झाड़कर सुगन्धित जल से सींच दिए गये थे तथा श्रीभगवान् के स्वागतार्थ बरसाये गयें फल, पुष्प, अक्षत और अङ्कुर उसमें विखरे हुए थे ऐसी द्वारकापुरी में भगवान् प्रवेश किए ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

संमार्जितानि निःसारितरजस्कानि महामार्गादीनि यस्यां ताम् । महामार्गा राजमार्गाः । रथ्या इतरमार्गाः आपणकाः पण्यवीथयः । चत्वराण्यङ्गनानि फलादिभिरुप्तामवकीर्णाम् ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

राजमार्ग तथा दूसरे मार्ग वाजार की गलियों तथा चौराहों को झाड़कर साफ कर दिया गया था और उन सबों को सुगन्धित जलों से सींच दिया गया था तथा श्रीभगवान् के स्वागत के लिए बरसाये गये फल तथा पुष्प जहाँ विखे हुए थे ऐसी द्वारकापुरी में श्रीभगवान् प्रवेश किए ॥१४॥

**द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः । अलंकृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥१५॥**

**अन्वयः**— गृहाणां द्वारि द्वारि च दध्यक्षतफलेक्षुभिः, पूर्णकुम्भैः, धूपदीपकैः बलिभिः अलङ्कृताम् (पुरीं प्राविशत्) ॥१५॥

**अनुवाद**— प्रत्येक गृहों के द्वारों पर, दधि, अक्षत, फल, ईख, जलभरे कलश तथा धूप-दीप आदि पूजा की सामग्री सजाकर रख दी गयी थी । ऐसी द्वारका नगरी में श्रीभगवान् प्रवेश किए ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण के स्वागत के लिए नगर के प्रत्येक द्वारों पर दधि, अक्षत, ईख, जलभरे कलश तथा धूप दीप इत्यादि पूजा की सामग्री सजाकर रख दी गयी थी, इस प्रकार की द्वारकापुरी में भगवान् प्रवेश किए ॥१५॥

**निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः। अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥१६॥**
**प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः। प्रहर्षवेगोच्छशितशयनासनभोजनाः ॥१७॥**
**वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः। शङ्ख तूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ॥**
**प्रत्युज्जग्मू रथैर्हष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥१८॥**

**अन्वयः**— प्रेष्ठम् आयान्तम् निशम्य महामनाः वसुदेवः अक्रूरश्च उग्रसेनश्च अद्भुत विक्रमः रामश्च, प्रद्युम्नः, चारुदेष्णः च जाम्बवती सुतः साम्बः प्रहर्षवेगोच्छ्शितशयनासन भोजनाः वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ससुमङ्गलैः ब्राह्मणैः शङ्खतूर्य निनादेन, ब्रह्मघोषेण च आदृताः च प्रणयागत साध्वसाः प्रत्युज्जग्मुः ।।१६-१८।।

**अनुवाद**— अपने प्रियतम श्रीकृष्ण भगवान् को आते हुए सुनकर अत्यन्त उदार वासुदेवजी, अक्रूरजी, उग्रसेनजी अद्भुत पराक्रमी बलरामजी, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, जाम्बवती के पुत्र साम्ब ये सबके सब हर्षातिरेक के कारण, शयन, आसन तथा भोजन करना छोड़कर गजराज को आगे करके श्रीभगवान् का स्वागत करने के लिए मङ्गलमय ब्राह्मणों, शङ्ख, तूरी आदि वाद्यों की ध्वनि पूर्वक तथा वेद पाठ के द्वारा स्मरण पूर्वक अगवानी करने के लिए आदर पूर्वक रथों पर चढ़कर आगे आये ।।१६-१८।।

### भावार्थ दीपिका

प्रेष्ठान्तरात्मानमायान्तं निशम्य श्रुत्वा वसुदेवादयः प्रत्युज्जग्मुरिति चतुर्थेनान्वयः । प्रहर्षवेगेनोच्छशितान्युल्लङ्घितानि शयनादीनि यैस्ते । **'शश प्लुतगतौ'** । वारणेन्द्रं मङ्गलार्थं पुरतः कृत्वा । ससुमङ्गलैः सुमङ्गलपुष्पादितद्युक्तपाणिभिः ब्रह्मघोषो मन्त्रपाठः प्रणयेन स्नेहेनागतं साध्वसं संभ्रमो येषां ते । वारमुख्या नटादयश्च प्रत्युज्जग्मुः ।।१६-१८।।

### भाव प्रकाशिका

अपने प्रियतम अन्तरात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को आते हुए सुनकर वसुदेवजी आदि ने उनकी अगवानी की इसका उन्नीसवें श्लोक से सम्बन्ध है । इन वसुदेवजी आदि ने शीघ्रता से जाने के लिए अपने शयनादि क्रियाओं का परित्याग कर दिया । उन लोगों ने मङ्गल के लिए गजराज को आगे कर लिया था । अपने हाथों में मङ्गलमय पुष्प आदि को ले लिया था और शङ्ख आदि बाद्यों की ध्वनि तथा वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हुए वे लोग रथ पर चढ़कर स्नेहातिरेक के कारण शीघ्रता से अगवानी किए । श्रीभगवान् की अगवानी वेश्याओं ने तथा नटों आदि ने भी किया ।।१६-१८।।

**वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः। लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ।।१९।।**
**नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधबन्दिनः। गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ।।२०।।**

**अन्वयः**— तद्दर्शनायोत्सुकाः लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः शतशो वारमुख्याश्च यानै तत् प्रत्युज्जग्मुः । नट-नर्तकगन्धर्वाः सूतमागधबन्दिनः च उत्तमश्लोकचरितानि अद्भुतानि गायन्ति स्म ।।१९-२०।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के दर्शन के लिए उत्कण्ठित जिनके मुख तथा कपोलों पर चमकते हुए कुण्डल सुशोभित हो रहे थे ऐसी सैकड़ों मुख्यवाराङ्गनायें सवारियों पर चढ़कर श्रीभगवान् की अगवानी करने के लिए गयीं। उस समय अनेक नट, नर्तक, गन्धर्व, सूत, मागध और बन्दीजन भगवान श्रीकृष्ण के अद्भुत चरित्रों का गायन कर रहे थे ।।१९-२०।।

### भावार्थ दीपिका

लसत्कुण्डलैर्निर्भातानि यानि कपोलानि तैर्वदनेषु श्रीः शोभा यासां ताः । वारमुख्या नर्तक्यः । वेश्या इति यावत् । अद्भुतानि चेति चकारस्य बन्दिनश्चेत्यन्वयः । नटा नवरसाभिनयचतुराः । तालाद्यनुसारेण नृत्यन्तो नर्तकाः । गन्धर्वा गायकाः। **'सूता पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः । वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः ।'** ते सर्वे गायन्ति चेत्यन्वयः। उत्तमश्लोकस्याद्भुतानि चरित्राणि भक्तवात्सल्यादीनि ।।१९-२०।।

### भाव प्रकाशिका

चमकते हुए कुण्डलों से प्रकाशित होने वाले कपोलों की शोभा से सुशोभित मुख वाली नर्तकियाँ भी भगवान्

की अगवानी करने के लिए गयीं। उस समय श्रीभगवान् के भक्तवात्सल्य से सम्बद्ध चारितों का गायन नट, नर्तक, गन्धर्व, सूत, मागध तथा बन्दीगण भी कर रहे थे।

श्रीभगवान् के यश उत्तम कोटि के हैं, इसलिए भगवान् का नाम उत्तम श्लोक है। नवरसों का अभिनय करने में निपुण व्यक्ति को नट कहा गया है। ताल आदि के अनुसार नृत्य करने वालों को नर्तक कहा जाता है। गाने वालों को गन्धर्व कहते हैं।

सूतों मागधों और बन्दिजनों को निम्नाङ्कित सूक्ति से परिभाषित किया गया है-

**सूताः पौराणिकाः प्रोक्ताः मागधा वंशशंसकाः। बन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्ताव सदृशोक्तयः॥**

अर्थात् जो पुराणों के ज्ञाता होते हैं उनको सूत कहा गया है, राजाओं के वंशों का वर्णन करने वालों को मागध कहा जाता है। बन्दीजनों की बुद्धि निर्मल होती है, वे प्रसङ्ग के अनुसार ही वर्णन करते हैं॥१९-२०॥

**भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम्। यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे॥२१॥**

**अन्वयः**— तत्र भगवान् बन्धूनां, पौराणाम्, अनुवर्तिनाम् यथाविधि उपसंगम्य सर्वेषां मानम् आदधे॥२१॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण भी वहाँ अपने बान्धवों, नागरिकों, तथा सेवकों से यथायोग्य मिलकर सबों का समादर किए॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

यथाविधि यैः सह यथोचितं तैस्तथा समागमं कृत्वा। सर्वेषां मानमादधे कृतवानित्यर्थः॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसके साथ जिस विधि से मिलना चाहिए वैसे ही उन सबों से मिलकर भगवान् सबों का यथोचित्त सम्मान किए॥२१॥

**प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः। आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः॥२२॥**
**स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि। आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्बन्दिभिश्चाविशत्पुरम्॥२३॥**

**अन्वयः**— प्रह्वाभिवादन-श्लेष-स्पर्श-स्मितेक्षणैः अभिमतैः वरैश्च आश्वपाकेभ्यः आश्वास्य विभुः स्वयम् गुरुभिः, सदारैः, विप्रैः स्थविरैः अपि आशीर्भिः युज्यमानः अन्यैः वन्दिभिः च पुरम् आविशत्॥२२-२३॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् किसी को तो शिर झुकाकर प्रमाण किए, किसी का अभिवादन किए, किसी का आलिङ्गन किए, किसी से हाथ मिलाये तथा किसी को देखकर मुस्कुरा दिए, किसी को प्रेम पूर्वक देखे; जिसको जैसी इच्था थी उसको वैसा ही वरदान दिए। इस तरह श्रीभगवान् चाण्डाल पर्यन्त सबों को सन्तुष्ट किए।

स्वयम् भी वे गुरुजनों, सपत्नीक ब्राह्मणों, तथा वृद्धों से आशीर्वाद प्राप्त करके दूसरे लोगों तथा बन्दीजनों के साथ अपनी नगरी में प्रवेश किए॥२२-२३॥

**भावार्थ दीपिका**

तदाह- प्रह्वेति। प्रह्वं प्रह्वत्वं शिरसा नतिः। अभिवादनं वाचा नतिः। आश्वास्याभयं दत्त्वा। श्वपाकानभिव्याप्य वरैरभीष्टदानैश्च मानं कृतवान्। अन्यैश्च वन्दिभिश्च॥२२-२३॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने सबों का जो सम्मान किया उसी का वर्णन **प्रह्वाभिवादन० इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं। शिर झुकाकार प्रणाम करने को प्रह्वा कहते हैं। वाणी से नमस्कार करने को अभिवादन कहते हैं। अभय

प्रदान करने को आश्वासन कहते हैं । श्रीभगवान् ने चाण्डाल इत्यादि सबों को अभिप्रेत वरदान देकर उन सबों का सम्मान किया इसके बाद वे दूसरे बन्दीजनों के साथ नगर में प्रवेश किए ।।२२-२३।।

**राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः । हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ।।२४।।**

**अन्वयः**— हे विप्र ! कृष्णे राजमार्गं गते तत् ईक्षणमहोत्सवाः द्वारकायाः कुलस्त्रियः हर्म्याणि आरुरुहुः ।।२४।।

**अनुवाद**— हे शौनकजी ! जब भगवान् श्रीकृष्ण राजमार्ग पर जा रहे थे उस समय उनके दर्शन को ही महोत्सव मानने वाली द्वारका की कुलस्त्रियाँ उनको देखने के लिए अट्टालिकाओं पर चढ़ गयीं ।।२४।।

**भावार्थ दीपिका**

हे विप्र शौनक ! तस्येक्षणेन महानुत्सवो यासां ताः ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

विप्र शब्द से यहाँ शौनकजी को कहा गया है । द्वारका की कुल स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन को ही अपना महोत्सव मानती थीं ।।२४।।

**नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम्। न वितृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामाङ्गमच्युतम्।।२५।।**
**श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम्। बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम्।।२६।।**

**अन्वयः**— यस्य उरः श्रियः निवासः, मुखम् दृशम् पानपात्रम् बाहवः लोकपालानां निवासः, पदाम्बुजम् सारङ्गाणाम् निवास श्रियः धामाङ्गम् अच्युतम् नित्यं निरीक्षमाणानाम् द्वारकौकसाम् दृश नहि वितृप्यन्ति ।।२५-२६।।

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में सौन्दर्यलक्ष्मी का निवास स्थान है, उनका मुखारविन्द नेत्रों द्वारा सौन्दर्यामृत पान करने के लिए पानपात्र है, उनकी भुजाओं में लोकपालों का निवास है, तथा श्रीभगवान् के चरण में शास्त्रों के सार स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का गायन करने वाले भक्तों का निवास स्थान है ऐसे सौन्दर्य लक्ष्मी के आश्रयभूत अङ्गों वाले भगवान् श्रीकृष्ण को नित्य ही देखने वाले द्वारका वासियों की स्त्रियों के नेत्र पूर्ण रूप से कभी भी तृप्त नहीं होते हैं ।।२५-२६।।

**भावार्थ दीपिका**

यद्यस्मान्नित्यं सदाऽच्युतं निरीक्षमाणानामपि दृशो नैव तृप्यन्त्यतः आरुरुहुः । कथंभूतम् । श्रियः शोभाया धामस्थानमङ्गं यस्य तम् । एतदेवाभिनयेनाह । श्रियो लक्ष्म्याः यस्योरो वक्षो निवासः । यस्य मुखं सर्वप्राणिनां दृशां सौन्दर्यामृतपानाय पात्रम्। यस्य बाहवो लोकपालानां निवासः । सारं श्रीकृष्णं गायन्तीति सारङ्गा भक्तास्तेषां यस्य पदाम्बुजं निवासः तं निरीक्षमाणानां दृश इति पूर्वेणान्वयः ।।२५-२६।।

**भाव प्रकाशिका**

चूकि सदैव भगवान् अच्युत का दर्शन करने वाले द्वारका वासियों की स्त्रियों की कभी भी देखने से तृप्ति नहीं होती है, अतएव वे कुलस्त्रियाँ अट्टालिकाओं पर चढ़ गयीं, क्योंकि श्रीभगवान् के अङ्ग शोभा के आश्रय हैं ऐसे भगवान् को देखने से तृप्ति नहीं होती है । इसी को अभिनय पूर्वक बतलाते हैं— श्रीभगवान् का वक्षःस्थल लक्ष्मीजी का निवास स्थान है । श्रीभगवान् का मुख सभी प्राणियों के नेत्रों के लिए श्रीभगवान् के सौन्दर्य रूपी अमृत का पान करने के लिए पात्र है । उनकी भुजाओं में लोकपालों का निवास है, सभी शास्त्रों के सारभूत श्रीकृष्ण का गायन करने वाले भक्तों का निवास उनके चरण कमल है । इस श्लोक का पच्चीसवे श्लोक के साथ अन्वय हैं ।।२५-२६।।

**सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ।**
**पिशङ्गवासा वनमालया बभौ घनो यथाऽर्कोडुपचापवैद्युतैः ॥२७॥**

**अन्वयः**— पथि सितातपत्रव्यजनैः उपास्कृतः प्रसूनवर्षैः अभिवर्षितः पिशङ्गवासा वनमालया च अर्कोडुपचापवैद्युतैः धनः यथा बभौ ॥२७॥

**अनुवाद**— द्वारका के राजमार्ग पर श्वेतछत्र तथा चामरों से मण्डित चारो ओर से बरसाये जा रहे फूलों की वर्षा से पीताम्बर से वनमाला से भगवान् उसी तरह से सुशोभित हो रहे थे जैसे श्याम वर्ण का मेघ सूर्य तारों से युक्त चन्द्रमा इन्द्रधनुष तथा विद्युत् से सुशोभित हो रहा हो ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

सितैरातपत्रव्यजनैरुपस्कृतो मण्डितः । अर्कश्चोडुपो नक्षत्रसहितश्चन्द्रश्च चापमिन्द्रधनुश्च वैद्युतं विद्युत्तेजश्च तैः । अर्कश्छत्रस्योपमानम् । नक्षत्राणि पुष्पवृष्टेः । चन्द्रः परिभ्रमकृतमण्डलाकारयोश्चामरव्यजनयोः । चापं वनमालायाः विद्युत्तेजः पिशङ्गवाससोः । अभूतोपमेयम् । यदि धनस्योपरि सूर्यबिम्बमुभयतश्चन्द्रो सर्वतो नक्षत्राणि मध्ये च मिलितं चापद्वयं स्थिरं विद्युत्तेजश्च यदि भवेत्तर्हि स धनो यथा भाति तथा हरिर्बभावित्यर्थः ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

द्वारका के राजमार्ग पर जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण श्वेत छत्र से आवृत्त थे और चामरों से उनको हवा की जा रही थी । वे पीताम्बर और वनमाला धारण किए थे । इन सबों से अलंकृत भगवान् की शोभा सूर्य, तारों सहित चन्द्रमा, इन्द्रधनुष और विद्युत् से अलंकृत श्याम वर्ण के मेघ के समान हो रही थी । सूर्य छत्र के उपमान हैं, नक्षत्र पुष्पों के उपमान हैं, चन्द्रमा चारो ओर घुमाये जा रहे चामरों के उपमान हैं इन्द्रधनुष वनमाला का उपमान है, विद्युत् का तेज पीताम्बरों का उपमान है । इस श्लोक में अभूतोपमा अलङ्कार हैं । यदि मेघ के ऊपर सूर्य का बिम्ब हो और उसके दोनों ओर दो चन्द्रमा, चारो ओर तारे हों, बीच में मिले हुए दो इन्द्र धनुष हों तथा विद्युत् का स्थिर तेज हो इस प्रकार का श्याम मेघ जैसे सुशोभित होए उसी तरह की शोभा श्रीहरि की हो रही थीं ॥२७॥

**प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः। ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥२८॥**
**ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः। हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः॥२९॥**

**अन्वयः**— पित्रोः गृहं प्रविष्टः देवकी प्रमुखाः सप्त शिरसा ववन्दे । स्वमातृभिः परिष्वक्तः । स्नेह स्नुतपयोधराः ताः पुत्रम् अङ्के आरोप्य हर्षविह्वलितात्मानः नेत्रजैः जलैः सिषिचुः ॥२८-२९॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण सर्वप्रथम अपने माता-पिता के गृह में प्रवेश किए और देवकी आदि अपनी सातो माताओं के चरणों पर शिर रखकर उनकी वन्दना किए, माताओं ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने हृदय से लगा लिया । उन माताओं के स्तनों से स्नेह के कारण दूध प्रवाहित होने लगा । उन लोगों ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी गोद में बैठा लिया और अपने स्नेहाश्रुओं से उनके शिर को भिङ्गो दिया ॥२८-२९॥

### भावार्थ दीपिका

देवकीप्रमुखाः सप्त ववन्द इति मातृसौन्दर्यादादरविशेषज्ञापनार्थमुक्तम् । अष्टादशापि वसुदेवभार्या मातृतुल्यत्वान्नमस्कृता एव । नेत्रजैर्जलैर्हर्षाश्रुभिः ॥२८-२९॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी सातो माताओं को प्रणाम करके उनकी प्रार्थना की । देवकीजी उन सबों में सुन्दर

थीं उनके प्रति आदर विशेष को बोधित करने के लिए **देवकीप्रमुखाः सप्तववन्दे** कहा गया है वसुदेवजी की अठारहो पत्नियाँ माता के ही तुल्य थीं अतएव श्रीभगवान् उन सबों को भी नमस्कार किए । **नेत्रजैर्जलैः** अर्थात् आँसुओं से ॥२८-२९॥

**अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् । प्रसादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥३०॥**

**अन्वयः**— अथ सर्वकाममनुत्तमम् स्वभवनं अविशत् यत्र च षोडश सहस्राणि पत्नीनां प्रसादाः ॥३०॥

**अनुवाद**— इसके पश्चात् श्रीभगवान् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले सर्वोत्तम अपने महल में प्रवेश किए जिसमे सोलह हजार पत्नियों के अलग-अलग महल थे ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वगृहप्रवेशमाह- अथेति । सहस्राणि च षोडशेति च करादष्टोतरशतानीतिच ज्ञेयम् ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

**अथ इत्यादि** श्लोक से श्रीभगवान् के अपने गृह में प्रवेश का वर्णन किया गया है । सहस्राणि षोडशेति च के चकार का अर्थ है कि सोलह हजार एक सौ आठ महल थे ॥३०॥

**पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ।**
**उत्तस्थुरारात् सहसासनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनानाः ॥३१॥**

**अन्वयः**—प्रोष्य गृहान् उपागतं पतिं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः, व्रतैः व्रीडितलोचनानाःपत्न्यः आरात् आसनाशयात् सहसा साकं उत्तस्थुः ॥३१॥

**अनुवाद**— परदेश में रहकर घर आये अपने पति श्रीभगवान् को दूर से ही देखकर प्रोषित भर्तृका के नियमों तथा शय्या तथा आसन का त्याग करके श्रीभगवान् की पत्नियाँ अचानक एक साथ खड़ी हो गयीं ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रोष्य देशान्तरे उषित्वा आरात् दूरादेव विलोक्य संजातो मनसि महोत्सवो यासाम् ताः आसनादाशयाच्च आसनाद देहेनोत्तस्थुः । आशयोऽन्तः करणं तस्मादप्यात्मनोत्तथुः श्रीकृष्णेनात्मनः संश्लेषेऽन्तः करणव्यवधानमपि ता नसहन्तेत्यर्थः। व्रीडितानि लोचनान्याननानि च यासां ताः अपाङ्गैरेव वीक्षणाद् व्रीडितलोचनाः अवनतमुखत्वाद् व्रीडिताननाः साकं व्रतैः हास्य क्रीडावर्जनादिनियमा अपि ताभ्य उत्तस्थुरित्यर्थः । धृतव्रता उत्तस्थुरिति वा । व्रतानि च याज्ञवल्क्येनोक्तानि–

**क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं पर गृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ इति ॥३१॥**

**भाव प्रकाशिका**

**प्रोष्य** अर्थात् दूसरे देश में रहकर । **अरात्** अर्थात् दूसरे ही देखकर जिन सबों के मन में अत्यधिक प्रसन्नता हो गयी थी । वे सब अपने शरीर से आसन से उठकर खड़ी हो गयीं और अन्तःकरण से उठ खड़ी हुई । श्रीकृष्ण के द्वारा आत्मालिङ्गन के समय वे सब अपने अन्तःकरण के भी व्यवधान को नहीं सह सकीं । उस समय उन सबों के नेत्र और मुख लज्जा के कारण झुक गये थे । कटाक्षपातों से ही उन सबों के नेत्र लज्जित हो गये और उन सबों ने अपना मुख झुका लिया था । साथ ही साथ प्रोषित पतिका के हँसी करना, क्रीडा करना आदि के परित्याग आदि नियमों का भी परित्याग कर दिया । अथवा व्रत धारण किए हुए ही उठकर खड़ी हो गयीं । प्रोषित पतिका के व्रत का महर्षि याज्ञवल्क्य ने बतलाया भी है— १. क्रीडा करना, २. अपने शरीर को अलंकृत करना, अपने शरीर को अलंकृत करना, ३. समाज में जाकर उत्सव देखना, ४. हँसना तथा ५. दूसरे के घर जाना, प्रोषित भर्तका का इन पाँच कामों को त्याग देना चाहिए ॥३१॥

**तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् ।**
**निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥३२॥**

**अन्वयः**— हे भृगुवर्य ! दुरन्तभावाः ताः अन्तरात्मना, दृष्टिभिः आत्मजैश्च तं पतिं परिरेभिरे । विलज्जतीनां नेत्रयोः अम्बु निरुद्धम् अपि आस्रवत् ॥३२॥

**अनुवाद**— हे भृगुवंशियों में श्रेष्ठ शौनकजी ! जिन सबों का भाव अत्यन्त गम्भीर था । उन सबों ने सर्वप्रथम मन से, उसके पश्चात् दृष्टि से तथा उसके पश्चात् पुत्रों के व्याज से शरीर से उनका आलिङ्गन किया । उन सबों की आखों में जो प्रेमाश्रु आ गये थे उनको उन सबों ने अत्यधिक लज्जा के कारण बहुत रोका किन्तु वे रुक नहीं सकें ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

आयान्तं तं पतिं दर्शनात्पूर्वमात्मना बुद्ध्यान्तर्हृदये परिरेभिरे ततो दृष्टिभिस्ततः समीपमागतमात्मजैः पुत्रैर्गृहीतकण्ठमालिङ्गयन्त्य इव स्वयमालिङ्गितवत्य इत्यर्थः । अत्र हेतुः- दुरन्तभावा गम्भीराभिप्रायाः । तदा च तासां नेत्रयोर्निरुद्धमप्यम्बु बाष्पं वैक्लव्याद्वैवश्यादास्रवदीषत्सुस्राव । अतएव धैर्यहान्या विलज्जतीनाम् । हे भृगुवर्य । चित्रं शृण्विति ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

आते हुए अपने पति को देखने से पूर्व उन सबों ने अपने मन से पति का आलिङ्गन किया, उसके पश्चात् श्रीभगवान् को अपनी आँखों से देखकर दृष्टि से आलिङ्गन किया, श्रीभगवान् के समीप आ जाने पर जब श्रीभगवान् अपने पुत्रों को उठाकर गले से लगा रहे थे उस समय आलिङ्गित होते हुए के समान उन सबों ने भगवान् का शरीर से आलिङ्गन किया । इसका कारण यह था कि उन सबों का भाव गम्भीर था । उस समय उन सबों के नेत्रों में जो प्रेमाश्रु आ गये थे उन सबों ने लज्जावशात् उसे बहुत रोकना चाहा किन्तु वे आँसू बाहर निकल ही आये । हे भृगुवर्य इस आश्चर्य को आप सुनें ॥३२॥

**यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् ।**
**पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥३३॥**

**अन्वयः**— यद्यपि रहः गतः असौ पार्श्वगतः तथापि तस्य अङ्घ्रियुगं (आसांकृते) पदे पदे नवं नवम् (एव) यत् श्रीः कर्हिचित् न जहाति तत् पदात् का विरमेत् ॥३३॥

**अनुवाद**— यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त में उन सबों के पास ही रहते थे फिर भी श्रीभगवान् के दोनों चरणकमल उन सबों को प्रतिक्षण नवीन ही प्रतीत होते थे । श्रीभगवान् के जिन चरणों को लक्ष्मीजी नहीं छोड़ना चाहती हैं उन चरणों को कौन रमणी छोड़ सकती हैं ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

पार्श्वगतः समीपस्थस्तत्रापि रहोगत एकान्ते प्रवर्तते स्म । पदे पदे प्रतिक्षणं नवं नवमेव । अत्र कैमुत्यन्यायः । का विरमेतेति । चला चञ्चलस्वभावापि ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

यद्यपि श्रीभगवान् एकान्त में उन सबों के समीप ही बने रहते थे फिर भी श्रीभगवान् के चरण युगल उन पत्नियों को प्रतिक्षण नवीन ही प्रतीत होते हैं । और ऐसा होना भी स्वाभाविक ही है; क्योंकि भगवान् के जिन चरणों का चञ्चल स्वभाव वाली लक्ष्मी भी नहीं छोड़ना चाहती हैं उन चरणों को कोई पत्नी कैसे छोड़ सकती हैं ?॥३३॥

**एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ।**
**विधाय वैरं श्वसनो यथाऽनलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥३४॥**

**अन्वयः**— यथा श्वसनः (परस्पर संघर्षेण) अनलम् (उत्पाद्य वंशान् विनाशयति एवमेव) क्षितिभारजन्मनाम्, अक्षैहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् नृपाणां मिथः वैरं विधाय वधेन उपरतः ॥३४॥

**अनुवाद**— जिस तरह वायु बाँसों में संघर्ष उत्पन्न करके अग्नि को उत्पन्न कर देती है और उससे बांसों को जला देती है, उसी तरह आयुध हीन भी रहकर भगवन् पृथिवी के भार रूप से जन्म लेने वाले तथा कई अक्षौहिणी सेनाओं से युक्त होने के कारण तेजस्वी राजाओं में परस्पर में वैर उत्पन्न करके स्वयम् उपरत हो गये ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

उक्तं श्रीकृष्णचरितं संक्षिप्याह- एवमिति द्वाभ्याम् । क्षितेर्भाराय जन्म येषाम् । अक्षौहिणीभिः कृत्वा परिवृत्तं सर्वतः प्रसृतं तेजः प्रभावो येषाम् । श्वसनो वायुर्वेणूनामन्योन्यसंघर्षेणानलं विधाय मिथो दाहेन यथोपशाम्यति तद्वत् ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस श्रीकृष्ण चरित का वर्णन किया जा चुका है उसी को संक्षेप में एवम् इत्यादि दो श्लोकों से कहते हैं । **क्षितिभारजन्मनाम्** पद का विग्रह है **क्षितेर्भाराय जन्म येषाम्** । जिन सबों का जन्म पृथिवी पर पाप का भार बढ़ाने के ही लिए होता है । अक्षौहिणी सेनाओं को ही लेकर जिन सबों का प्रभाव सब ओर फैला था, ऐसे राजागण को । वायु जिस तरह से बाँस में संघर्ष कराकर अग्नि को उत्पन्न कर देती है वही अग्नि बाँसों को भस्म करके अन्त में स्वयं शान्त हो जाती है । उसी तरह अपने हाथ में आयुध धारण किए बिना ही उन राजाओं में वैर पैदा करके एक दूसरे के द्वारा उन सबों का वध भी करवाकर भगवान् शान्त हो गये ॥३४॥

**स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया । रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतो यथा ॥३५॥**

**अन्वयः**— स एष भगवान् स्वमायया अस्मिन् नरलोके अवतीर्णः स्त्रीरत्नकूटस्थः प्राकृतो यथा रेमे ॥३५॥

**अनुवाद**— वे ही ये भगवान् अपनी माया का आश्रय लेकर इस मनुष्य लोक में अवतीर्ण हुए और स्त्रीरत्न समूह के बीच रहकर प्राकृत मनुष्य के समान रमण किए ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

स्त्रीरत्नकूटस्थ उत्तमस्त्रीकदम्बस्थः ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

उत्तम कोटि के स्त्री समूह में स्थित यह **स्त्रीरत्नकूटस्थ** पद का अर्थ हैं ॥३५॥

**उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ।**
**संमुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥३६॥**

**अन्वयः**— यासाम् उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहास-व्रीडावलोक-निहतः मदनः अपि संमुह्य चापम् अजहात् ताः प्रमदोत्तमाः कुहकैः यस्य इन्द्रियं विमथितुम् न शेकुः । **अथवा** यासाम् उद्दाम भावपिशुनामल वल्गुहास व्रीडावलोक निहतः अमदनः महादेवोऽपि संमुह्य पिनाकम् अजहात् ताः प्रमदोत्तमाः कुहकैः यस्य इन्द्रियं विमथितुम् न शेकुः ॥३६॥

**अनुवाद**— जिन सबों की निर्मल और मनोहर हँसी उन सबों के उन्मुक्त हार्दिक भावों को सूचित करने वाली थी उनके लज्जापूर्ण अवलोकन के कारण मोहित (किङ्कर्तव्य विमूढ) कामदेव भी अपने धनुष का परित्याग कर दिये थे उन कामिनियों का काम विलास श्रीभगवान् की इन्द्रियों में क्षोभ नहीं पैदा कर सका ।

अथवा इस श्लोक का यह भी अर्थ है कि जिन सबों की निर्मल और मनोहर हंसी उन सबों के हृदय के उन्मुक्त भाव को अभिव्यक्त करने वाली होती है, उन स्त्रियों की लज्जा तथा अवलोकन के द्वारा प्रताडित होकर काम की भावना रहित महादेवजी भी मोहित होकर अपने पिनाक का परित्याग कर दिए, ऐसी पुराणों में प्रख्यात कोई आख्यायिका है, यह प्राचीनों का कहना है । इसी प्रकार कामिनियों का कामद्बोधक विलास श्रीभगवान् की इन्द्रियों में क्षोभा पैदा नहीं कर सका ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

नन्वेवं स्त्रीसङ्गादिभिः संसारप्रतीतेः कथं भगवानवतीर्ण इत्युच्यते तत्राह- उद्दामेति द्वाभ्याम् । यासामुद्दामो गम्भीरो यो भावोऽभिप्रायस्तस्य पिशुनः सूचकोऽमलो वल्गुः सुन्दरो हासो व्रीडावलोकश्च ताभ्यां निहतः अमदनः श्रीमहादेवोऽपि संमुह्य लज्जया चापं पिनाकमजहात् । एवंप्रभावा याः स्त्रिय इत्येतावद्विवक्षितम् । यद्वा भगवतो मोहिनीरूपेण महेशोऽपि मोहित एवमेताश्च तादृग्विलासा एवेति तथोक्तम् । ताः कुहकैः कपटैर्विभ्रमैर्यस्येन्द्रियं मनो विमथितुं क्षोभयितुं न शेकुर्न शक्ताः । अथवा निहतस्ताडितो मदनोऽपि जगद्विजयी संमुह्य तत्तत्कर्तव्यतामूढः संश्चापं धनुर्लज्जयाऽजहाज्जहौ । ताश्च प्रमदोत्तमाः कामविजयिन्योऽपीत्यादिपूर्ववत् ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि श्रीभगवान् भी स्त्रियों आदि का संङ्ग करते है अतएव वे संसारी ही प्रतीत होते हैं, यह कैसे कहा जाता है श्रीभगवान् ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । इसका उत्तर उद्दाम इत्यादि दो श्लोकों से दिया गया है । उन सबों के गम्भीर अभिप्राय की सूचना उन नारियों की मनोज्ञ हँसी लज्जापूर्वक देखने के कारण कामरहित शङ्करजी भी मोहित होकर लज्जा के कारण अपने पिनाक का परित्याग कर दिए । इस प्रकार की वे स्त्रियाँ थीं। या भगवान् ने अपनी मोहिनी रूप से शङ्करजी को भी मोहित कर दिया इस प्रकार के विलास वाली स्त्रियाँ जिन श्रीभगवान् के मन आदि इन्द्रियों को मोहित नहीं कर सकीं अथवा इन सबों के द्वारा प्रताडित होकर किं कर्तव्य विमूढ जगद् विजयी काम भी लज्जित होकर अपना धनुष त्याग दिया । इस तरह की काम को भी जित लेने वाली नारियाँ भी श्रीभगवान् के मन को मोहित नही कर सकीं ।।३६।।

**तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् । आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ।।३७।।**

**अन्वयः**— तम् असङ्गम् अपि लोकः सङ्गिनम् आत्मौपम्येन व्यापृण्वानं मनुजं मन्यते, यतः अयम् अबुधः ।।३७।।

**अनुवाद**— उन आसक्ति रहित श्रीभगवान् को यह संसार इसलिए आसक्त मानता है कि यह संसार अज्ञानी हैं और अपने ही समान श्रीभगवान् को कार्यों को करते हुए देखता है ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

तं श्रीकृष्णमयं प्राकृतो लोक आत्मौपम्येन स्वसादृश्ये सङ्गिनं मनुजं मन्यते । अत्र हेतुः- व्यापृण्वानं व्याप्रियमाणम्। यतोऽयमबुधोऽतत्त्वज्ञः ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

उन आसक्ति रहित भगवान श्रीकृष्ण को यह जो अज्ञान संसार है वह अपने ही समान आसक्त मनुष्य मानता है उसका कारण यही है कि सत्यभामा आदि में आसक्त रहने के कारण वे पारिजात आदि का हरण किए । यह सब इसीलिए है कि यह संसार तत्त्वज्ञ नहीं है ।।३७।।

**एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः । न युज्यते सदात्मस्थैर्यया बुद्धिस्तदाश्रया ।।३८।।**

**अन्वयः**— ईशस्य एतदेव ईशनम् यत् प्रकृतिस्थ अपि तद्गुणैः न युज्यते यथा सदा आत्मस्थैः तदाश्रया बुद्धिः न युज्यते।।३८।।

**अनुवाद**— परमात्मा का यही ईश्वरत्व है कि प्रकृति में भी रहकर वे प्रकृति के गुणों से संबद्ध नहीं होते हैं। यह उसी तरह से होता है जिस तरह श्रीभगवान् को अपना आश्रय बनाने वाली बुद्धि प्राकृतिक गुणों से लिप्त नहीं होती है ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

कुत इत्यपेक्षायामैश्वर्यलक्षणमाह- एतदिति । ईशस्य ईशनमैश्वर्य नामैतदेव । किं तत् । प्रकृतिस्थोऽपि तस्या गुणैः सुखदुःखादिभिः सदा न युज्यते इति यत् । यथात्मस्थैरानन्दादिभिरात्माश्रयापि बुद्धिर्न युज्यते तद्वत् । वैधर्म्ये दृष्टान्तो वा । आत्मस्थैः सत्ताप्रकाशादिभिर्यथा बुद्धिर्युज्यत इति । एवं वा । असदात्मा देहस्तत्रस्थैर्गुणैस्तदाश्रया बुद्धिस्तदुपाधिर्जीवो यथा युज्यते एवं प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैर्न युज्यत इति यदेतदीशनमीशस्येति ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

यह क्यों होता है ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर ऐश्वर्य का स्वरूप **एतद्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं। परमात्मा का यही ऐश्वर्य है कि प्रकृति में स्थित रहकर भी वे प्रकृति के गुणों सुख दुःख आदि से कभी भी सम्बद्ध नहीं होते हैं। यह उसी तरह से होता है जिस तरह आत्माश्रित भी बुद्धि प्रकृति के गुणों से कभी लिप्त नहीं होती है। आत्म व्यतिरिक्त शरीर में रहने वाली बुद्धि भी शरीर के सुख दुःख आदि से युक्त नहीं होती है। किन्तु शरीरोपहित जीव शरीर के गुणों से युक्त होता है। अतएव प्रकृति में रहकर भी उसके गुणों से युक्त नहीं होना ही ईश्वर का ईश्वरत्व हैं ॥३८॥

**तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः । अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

**अन्वयः**— भर्तुः अप्रमाण विदः मूढाः अबला स्त्रैणम् रह अनुव्रतं च यथा मतयः ईश्वरम् मेनिरे ॥३९॥

**अनुवाद**— अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा को नहीं जानने वाली अज्ञानी स्त्रियों ने उनको अपने वशवर्ती तथा सदा कामपरायण उसी तरह मानती थीं जिस तरह कोई अहङ्कारी ईश्वर को भी अपने ही समान मानता हैं ॥३९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश वर्णन नामक ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥**

**भावार्थ दीपिका**

तत्पत्न्योऽपि तस्य तत्त्वं न जानन्तीत्याह । तं स्त्रैणमात्मवश्यं रह एकान्तेऽनुव्रतमनुसृतं च मेनिरे । भर्तुरप्रमाणविदः प्रमाणमियत्तां महिमानमजानन्त्य इत्यर्थः । ईश्वरं क्षेत्रज्ञं मतयोऽहंवृत्तयो यथा स्वाधीनं स्वधर्मयोगिनं मन्यन्ते तद्वत् । यद्वा यथा यथा तासां मतयः कल्पनास्तथा तथा तमीश्वरं स्त्रैणादिरूपं मेनिरे इत्यर्थः ॥३९॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥**

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ भी उनके तत्त्व को नहीं जानती थीं उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने अधीन और अपने में ही सदा आसक्त रहने वाला माना। ऐसा इसलिए कि वे अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा को नहीं जानती थीं। यह उसी तरह से है जिस तरह से कोई अहङ्कारी व्यक्ति ईश्वर को अपने ही समान मनुष्य मानता है। अथवा वे पत्नियाँ जैसी कल्पना करती थीं उसी तरह से भगवान् श्रीकृष्ण को स्त्रैण मानती थीं॥३९॥

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥११॥**

# बारहवाँ अध्याय

## परीक्षित् का जन्म वर्णन

### शौनक उवाच

**अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा । उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥१॥**

**अन्वयः**— अश्वत्थाम्नः । उपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णः उरुतेजसा उत्तराया गर्भः हतः पुनः ईशेन आजीवितः ॥१॥

**शौनक महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र के द्वारा उत्तरा का गर्भ तो विनष्ट ही हो गया था ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको फिर से जीवित कर दिया ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरोक्तं यत्प्रसङ्गाय द्रौणिदण्डादि विस्तरात् । द्वादशे तु तदेवाथ परीक्षिज्जन्म वर्ण्यते ॥ '**परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्म-कर्मविलायनम् । संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥**' इति प्रतिज्ञाय पाण्डवानां राज्यस्थितिरुपोद्धातरूपा सप्रसङ्गं सप्तमाध्यायमारभ्य निरूपिता । इदानीमौपोद्घातिकमुक्तानुवादपूर्वकं पृच्छति- अश्वत्थाम्नेति। उपसृष्टेन विसृष्टेन । तस्य जन्मादि ब्रूहीत्युत्तरेणान्वयः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसके प्रसङ्ग में पहले अश्वत्थामा के दण्ड आदि का विस्तार से वर्णन किया जा चुका है । उस परीक्षित् के जन्म का वर्णन बारहवें अध्याय में किया जा रहा है । इससे पहले सूतजी ने कहा है कि मैं राजा परीक्षित् के जन्म कर्म तथा उनकी मुक्ति का वर्णन, पाण्डवों का स्वर्गारोहण तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कथा का प्रारम्भ इन सारी बातों का वर्णन करूँगा, इस तरह से प्रतिज्ञा करके पाण्डवों को राज्य की प्राप्ति का सप्रसङ्ग वर्णन सातवें अध्याय से प्रारम्भ करके यहाँ तक किया गया । इस अध्याय में उपोद्घात में कही गयी बातों का अनुवाद पूर्वक शौनक महर्षि ने **अश्वत्थाम्नो० इत्यादि** श्लोक से पूछा कि अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र के द्वारा उत्तरा का गर्भ तो विनष्ट हो ही गया था, उसको भगवान् श्रीकृष्ण ने पुनः जीवित कर दिया ॥१॥

**तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः। निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान्यथा ॥२॥**
**तदिदं श्रोतुमिच्छामो गदितुं यदि मन्यसे। ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः॥३॥**

**अन्वयः**— तस्य महाबुद्धेः महात्मनः जन्म, कर्माणि निधनं च यथैव आसीत् यस्य ज्ञानम् शुकः आदात् सः प्रेत्य यथा गतवान् तदिदं श्रोतुम् इच्छामः यदि गदितुम् मन्यसे (तदा) श्रद्दधानानां नः ब्रूहि ॥२-३॥

**अनुवाद**— उन महाबुद्धिमान् महात्मा परीक्षित् का शुकदेवजी ने जिनको ज्ञान प्रदान किया था उन परीक्षित् के जन्म, कर्म तथा निधन जैसे हुए तथा मृत्यु के पश्चात् उन्होंने जैसे मुक्ति को प्राप्त किया उन सारी बातों को हमलोग सुनना चाहते हैं, यदि आप उसे ठीक समझें तो श्रद्धा सम्पन्न हमलोगों को सुनायें ॥२-३॥

**भावार्थ दीपिका**

स परीक्षित् । प्रेत्य देहं त्यक्त्वा । प्रार्थये नत्वाज्ञापयामीत्याह । गदितुं यदि मन्यसेऽनुग्रहेण तर्हि ब्रूहीति । यस्य ज्ञानमदाच्छुकः इति श्रवणेच्छायां कारणम् ॥२-३॥

**भाव प्रकाशिका**

वे परीक्षित् मृत्यु के पश्चात् जिस तरह से मुक्ति प्राप्त किए उसे आप बतलायें, यह मेरी प्रार्थना है न कि

मैं आपको आज्ञा दे रहा हूँ । यदि उसे आप कहने योग्य समझें तो कृपा करके बतलायें । उसको सुनने की इच्छा इसलिए है कि राजा परीक्षित् को श्रीशुदकेवजी ने ज्ञानोपदेश किया था ।।२-३।।

सूत उवाच

**अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रञ्जयन्प्रजाः । निस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादानुसेवया ।।४।।**

**अन्वयः**— कृष्णपादाब्जसेवया सर्वकामेभ्यः निःस्पृहः धर्मराजः पितृवद् प्रजाः रञ्जयन् अपीपलत् ।।४।।

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा करने के कारण धर्मराज युधिष्ठिर समस्त भोगों से निःस्पृह हो गये थे । वे पिता के ही समान प्रजाओं को प्रसन्न रखते हुए उन सबों का पालन किए ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

निस्पृहस्यापि राज्ञः श्रीकृष्णानुग्रहात्तादृक् पौत्रः समजनीति वक्तुं तस्य श्रीकृष्णे भक्त्युद्रेकमाह- अपीपलदिति त्रिभिः। पितृवदपीपलत् पालयामास ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर निःस्पृह थे फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से उनको परीक्षित् जैसा पौत्र प्राप्त हुआ इस बात को बतलाने के लिए सूतजी ने राजा युधिष्ठिर का भगवान् कृष्ण में भक्ति के उद्रेक को **अपीपलत् इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा । युधिष्ठिर ने अपने पिता पाण्डु के ही समान प्रजाओं का पालन किया ।।४।।

**सम्पदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही। जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम्।।५।।**
**किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः। अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ।।६।।**

**अन्वयः**— हे द्विजाः ! सम्पदः क्रतवः लोकाः महीषी, भ्रातरः मही, जम्बूद्वीपाधिपत्यं त्रिदिवं गतं यशः च ते सुरस्पार्हाः ते कामाः राज्ञः क्षुधितस्य इतरे यथा मुकुन्दमनसः राज्ञः मुदः अधिजह्रुः:किम् ।।५-६।।

**अनुवाद**— हे महर्षियों ! अतुल सम्पतियाँ, किये गये याग, उसके फल स्वरूप अधिकृत लोक, पत्नी, भाईगण, पृथिवी, जम्बूद्वीप का साम्राज्य, स्वर्गपर्यन्त फैला हुआ यश तथा देवताओं के लिए भी स्पृहणीय भोग सामग्री, जिस तरह से भूखे के लिए भोजन व्यतिरिक्त भोग्य पदार्थ अच्छे नहीं लगते हैं, उसी तरह जिनका मन सदा भगवान् में लगा रहता था उन महाराज की प्रसन्नता को वे सभी भोग्य पदार्थ नही बढा सके क्या ? अर्थात् जिस तरह भूखे को भोजन से भिन्न कोई भी दूसरी वस्तु अच्छी नहीं लगती है, उसी तरह राजा युधिष्ठिर को ये सारी भोग सामग्रियाँ आकृष्ट नहीं कर सकीं ।।५-६।।

**भावार्थ दीपिका**

क्रतवस्तदुपार्जिता लोकाश्च । सुरस्पार्हाः सुराणां स्पृहणीयास्ते सम्पदादयः कामा विषया राज्ञः किं मुदं प्रीतिमधिजह्रुः कृतवन्तः । न कृतवन्त इत्यर्थः । अत्र हेतुः । मुकुन्दे एव मनो यस्येति । क्षुधितस्यान्नैकमनसो यथेतरे स्रक्चन्दनादयो न कुर्वन्ति तद्वत् ।।५-६।।

**भाव प्रकाशिका**

यज्ञों के करने के फलस्वरूप राजा युधिष्ठिर जिन लोकों पर अधिकार प्राप्त कर लिए थे वे लोक तथा देवताओं के लिए भी स्पृहा योग्य सम्पत्ति इत्यादि भोग की सामग्रियाँ क्या राजा युधिष्ठिर को प्रसन्न कर सकीं ? अपितु वे नहीं कर सकीं । उसका कारण यह था कि उनका मन सदा भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था उनको श्रीभगवान् से भिन्न दूसरी वस्तुएँ उसी तरह अच्छी नहीं लगती थीं जिस तरह भूखे को भोजन से भिन्न कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती हैं ।।५-६।।

**मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन । ददर्श पुरुषं कंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥७॥**

**अन्वयः**— हे भृगुनन्दन ! मातुर्गर्भगतः, अस्त्रतेजसा दह्यमानः स वीरः तदा कंचित् पुरुषं ददर्श ॥७॥

**अनुवाद**— हे भृगुनन्दन शौनकजी ! अपनी माता के गर्भ में विद्यमान तथा ब्रह्मास्त्र के तेज से जलते हुए उस वीर शिशु ने किसी पुरुष को देखा ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह-मातुरिति । सः परीक्षित् ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

प्रस्तुत परीक्षित् के जन्मादि का वर्णन **मातुःगर्भगतः इत्यादि** श्लोक से प्रारम्भ किया गया है । सः शब्द से परीक्षित् को कहा गया है ॥७॥

**अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् । अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥८॥**
**श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् । क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ॥**
**परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहुः ॥९॥**
**अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः । विधमन्तं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥१०॥**

**अन्वयः**— अङ्गुष्ठमात्रम् अमलम् स्फुरत्पुरटमौलिनम्, अपीच्यदर्शनम् श्यामं, तडिद् वाससम् अच्युतम्, श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुम् तप्तकाञ्चनकुण्डलम्, क्षतजाक्षं, गदापाणिम्, आत्मनः सर्वतोदिशम्, उल्काभां गदाम् मुहुः भ्रामयन्तम्, स्वगदया गोपतिः निहारम् इव अस्त्र तेजः'विधमन्तं पुरुषं सनिकर्षे असौ कः इति पर्यैक्षत ॥८-१०॥

**अनुवाद**— गर्भस्थ शिशु ने देखा कि एक पुरुष अङ्गुष्ठ परिमाणक है, उसका स्वरूप निर्मल है, उसके शिर पर सुवर्ण का मुकुट चमक रहा है, वह देखने में अत्यन्त सुन्दर तथा श्याम वर्ण का है । वह विद्युत् के समान चमकने वाले पीताम्बर को धारण किए है तथा निर्विकार है । उसकी सुन्दर तथा लम्बी भुजायें है । वह अपने कानों में तप्त सुवर्ण के कुण्डलों को धारण किए हुए है । उसकी आखें लाल हैं तथा वह अपने चारो ओर उल्का के समान अपनी गदा को घुमा रहा है । वह अपनी गदा के द्वारा ब्रह्मास्त्र के तेज को उसी तरह विनष्ट कर रहा है जिस तरह सूर्य कुहरे को विनष्ट कर देते हैं । अपने सन्निकट में इस प्रकार के पुरुष को देखकर उस शिशु ने सोचा कि यह कौन है ?॥८-१०॥

### भावार्थ दीपिका

पुरटं सुवर्णम् । स्फुरन् पुरटमौलिर्यस्यास्ति तम् । **'व्रीह्यादिभ्यश्च'** इति इनिप्रत्ययः । अपीच्यमतिसुन्दरं दृश्यत इति दर्शनं रूपं यस्य तम् । तडिद्वाससी यस्येति श्याममिति च पदाभ्यां विद्युद्युक्तमेघोपमा सूचिता । अच्युतमविकारम् । तप्तं दाहोत्तीर्णं यत्काञ्चनं तन्मये कुण्डले यस्य । क्षतजाक्षं संरम्भादत्यारक्तनेत्रम् । अहो मद्भक्तस्यापि गर्भेऽस्त्रपीडेति क्रोधादिति भावः । अस्त्रतेजो विधमन्तं विनाशयन्तम् । नीहारं हिमं गोपतिः सूर्य इव । (एवंविधं गर्भगतो बालः) संन्निकर्षे समीपे ददर्श। दृष्ट्वा चासौ क इति पर्यैक्षत वितर्कितवान् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

पुरट सुवर्ण को कहते है । उस पुरुष के शिर पर सुवर्ण का मुकुट चमक रहा था । मौलिनम् में **व्रीह्यादिभ्यश्च** इस सूत्र से इनि प्रत्यय हुआ है । उस पुरुष का रूप देखने में अत्यन्त मनोहर था । उस पुरुष के दोनों वस्त्र बिजली के समान चमक रहे थे और उसका शरीर श्याम वर्ण का था । **ताडिद्वाससम् और श्यामम्** इन दोनों पदों के द्वारा विद्युत् से युक्त मेघ की उपमा सूचित होती है । अच्युत शब्द के द्वारा उस पुरुष को निर्विकार बतलाया

गया है। उस पुरुष के कानों के दोनों कुण्डल तपाये गये सुवर्ण के समान चमक रहे थे। क्रोध के कारण पुरुष की आँखें लाल हो गयी थीं। उसको इस बात का क्रोध था कि मेरे भक्त को भी यह ब्रह्मास्त्र पीडित कर रहा है। वह पुरुष अपनी गदा के तेज से ब्रह्मास्त्र के तेज को उसी तरह विनष्ट कर रहा था जिस तरह सूर्य अपने तेज से कुहरे को विनष्ट कर देते हैं। इस प्रकार के पुरुष को उस गर्भस्थ शिशु ने अपने सन्निकट में देखा। उस पुरुष को देखकर वह सोचने लगा कि ये कौन पुरुष हैं ?॥८-१०॥

**विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब्विभुः । मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥११॥**

**अन्वयः**— धर्मगुप् विभुः अमेयात्मा भगवान् हरिः तत् विधूय दशमास्यस्य मिषतः तत्रैव अन्तर्दधे ॥११॥

**अनुवाद**— अप्रमेय धर्म की रक्षा करने वाले, सर्व व्यापक, ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीहरि उस ब्रह्मास्त्र के तेज को विनष्ट करके दश मास के उस बालक की आँखों के सामने से अन्तर्धान हो गये ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

अमेयात्मा कथं तद्विधूतवानित्यवितर्क्यरूपः । धर्मं गोपायतीति धर्मगुप् । यद्वा धर्मं गोपायन्तीति धर्मगुपो राजानस्तत्प्रभुस्तेषामपि पालकत्वात् । दशमासपरिच्छेद्यस्य तस्य मिषतः पश्यतो यत्र दृष्टस्तत्रैवान्तर्हितो नत्वन्यत्र गतः । यतो विभुः सर्वगतः ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अमेयात्मा हैं, उनको पूर्णरूप से कोई भी नहीं जान सकता है। उन्होंने ब्रह्मास्त्र के तेज को कैसे विनष्ट कर दिया इसको तर्क के द्वारा कोई नहीं जान सकता है। श्रीभगवान् धर्म की रक्षा करते हैं अतएव धर्मगुप् हैं। अथवा धर्म की रक्षा करने वाले जो राजागण हैं उन राजाओं की रक्षा भगवान् करते हैं अतएव वे धर्मगुप् हैं। धर्मं गोपायतीति धर्मगुप् अथवा धर्मं गोपान्तीति धर्मगुपः राजानः तत्प्रभुः । यह दोनों प्रकार की व्युत्पत्ति है। वे भगवान् ब्रह्मास्त्र के तेज को विनष्ट करके दश मास के उस शिशु के सामने से अन्तर्धान हो गये क्योंकि वे सर्वव्यापक हैं ॥११॥

**ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये । जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ॥१२॥**

**अन्वयः**— ततः सानुकूलग्रहोदये सर्वगुणोदर्के पाण्डोः वंशधरः ओजसा पाण्डुरिव जज्ञे ॥१२॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् जिस समय सभी अनुकूल ग्रहों का उदय हो गया था उस सभी गुणों को प्रदान करने वाले काल में पाण्डु के वंश को बढ़ाने वाले तथा पाण्डु के ही समान ओजस्वी परीक्षित् का जन्म हुआ ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

उदर्क उत्तरफलम्। सर्वगुणानामुत्तरोत्तराधिक्यसूचके लग्ने। तत्र हेतुः-अनुकूलैरन्यैर्ग्रहैः सहितानां शुभग्रहाणामुदयो यस्मिन्॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

उदर्क फल को कहते हैं। सभी गुणों के उत्तरोत्तर आधिक्यसूचक लग्न में तथा दूसरे अनुकूल ग्रहों के साथ जिस लग्न में शुभ ग्रहों का उदय हो गया था उस लग्न में परीक्षित् का जन्म हुआ ॥१२॥

**तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः । जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— तस्य जन्मनः प्रीतमना राजा धौम्य कृपादिभिः मङ्गलम् वाचयित्वा जातकं कारयामास ॥१३॥

**अनुवाद**— उस बालक के जन्म से प्रसन्न हुए राजा युधिष्ठिर धौम्य तथा कृपाचार्य इत्यादि ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन कराकर जातकर्म कराये ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

जातकं जातकर्म । मङ्गलं पुण्याहम् ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

प्रसन्न होकर युधिष्ठिर ने उस बालक का पुण्याह वाचन कराकर जातकर्म कराया ।।१३।।

**हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् । प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ।।१४।।**

**अन्वयः**— तीर्थवित् नृपतिः प्रजतीर्थे विप्रेभ्यः हिरण्यम्, गाम् महीम् ग्रामान् हस्ती, वरान् अश्वान् स्वन्नं च प्रादात् ।।१४।।

**अनुवाद**— तीर्थवेत्ता, राजा युधिष्ठिर प्रजातीर्थ के समय ब्राह्मणों को सुवर्ण, गौ, पृथिवी, ग्राम, हाथी, श्रेष्ठ घोड़े तथा सुन्दर अन्न का दान दिये ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

वरान् श्रेष्ठान् । स्वन्नं शोभनमन्नं च । तीर्थविद्दानकालज्ञः । **'यावन्न च्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ।'** इति वचनात्ततः पूर्वं प्रादात् । आमान्नं वा प्रजातीर्थे पुत्रोत्पत्तिपुण्यकाले । **'पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम्'** इति स्मृतेः । **'देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति हि नृपश्रेष्ठ पुण्याहमिति चाब्रुवन् ।'** इति च ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर ने श्रेष्ठ कोटि के हाथियों और अश्वों का दान दिया । नालच्छेदन से पहले सूतक नहीं होता है कहा भी गया है—

**यावन्न च्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ।।**

अर्थात् जब तक उत्पन्न शिशु के नाल का छेदन नहीं होता है तब तक सूतक नहीं लगता है । नालच्छेदन के पश्चात् ही सूतक का विधान किया गया है । इस वाक्य के अनुसार उन्होंने नालच्छेदन से पूर्व ही दान किया अथवा पुत्रोत्पत्ति के पुण्यकाल में प्रजातीर्थ में आमान्न कच्चा अन्न दान किया । पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् और नालच्छेदन से पहले का कार्य प्रजातीर्थ कहलाता है । स्मृति में यह भी कहा गया है— **पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम् ।** अर्थात् पुत्र के उत्पन्न होने पर तथा व्यतीपात योग में दिया गया दान अक्षय होता है । दूसरी भी स्मृति कहती है—

**देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति हि नृपश्रेष्ठ ! पुण्याहम् इति चाब्रुवन् ।।**

अर्थात् हे राजश्रेष्ठ द्विजातियों के यहाँ पुत्र उत्पन्न होने पर देवता तथा पितृगण पुण्याह का उच्चारण करते हुए आते हैं ।।१४।।

**तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितम् । एष ह्यस्मिन्प्रजातन्तौ कुरूणां पौरवर्षभः ।।१५।।**
**दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि । रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ।।१६।।**
**तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः। भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ।।१७।।**

**अन्वयः**— तुष्टाः ब्राह्मणा प्रश्रयान्वितम् तम् राजानम् ऊचुः पौरवर्षभ कुरूणाम् शुक्ले अस्मिन् प्रजातन्तौ अप्रतिघातेन दैवेन संस्थाम् उपेयुषि वः अनुग्रहार्थम् प्रभविष्णुना विष्णुना एषः रातः अतएव एषः विष्णुरात इति नाम्ना लोके भविष्यति। अयम् महान् महाभागवतो भविष्यति इति न संदेहः ।।१५-१७।।

**अनुवाद**—ब्राह्मणों ने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त विनीत राजा युधिष्ठिर से कहा— हे पुरुवंशियों में अग्रगण्य काल की दुर्निवार गति के कारण यह पवित्र पुरुवंश मिट ही जाने वाला था; किन्तु आपलोगों पर कृपा करने के लिए भगवान्

विष्णु ने यह वंश आपलोगों को प्रदान किया है और आपके वंश की रक्षा की है । अतएव इसका नाम विष्णुरात होगा। संसार में इसका महान् यश फैलेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है । क्योंकि यह महाभागवत होगा ।।१५-१७।।

**भावार्थ दीपिका**

हे पौरवर्षभ, कुरूणां कुरुवंश्यानां शुक्ले शुद्धेऽस्मिन्प्रजातन्तौ । दैवेन । कथंभूतेन । अप्रतिघातेन दुर्वारेण । संस्थां नाशमुपेयुषि गति सति वः युष्माकं अनुग्रहार्थाय यस्मात्प्रभवनशीलेन श्रीविष्णुना रातो दत्तस्तस्माल्लोके विष्णुरात इति नाम्ना भविष्यति महाभागवतश्च । गुणैश्च महान् भविष्यति नात्र संदेह इति तं राजानं ब्राह्मणा ऊचुरिति त्रयाणामन्वयः ।।१५-१७।।

**भाव प्रकाशिका**

हे पुरुवंशियों में श्रेष्ठ राजन् कुरुवंशियों का शुद्ध वंश जब कि दुर्निवार काल की गति के कारण विनष्ट ही हो जा रहा था, उस समय आपलोगों पर कृपा करने के लिए सब कुछ करने में समर्थ भगवान् विष्णु ने आपलोगों को यह सन्तान प्रदान किया है । अतएव इस बालक का नाम लोक में विष्णुरात होगा । यह निसन्देह महायशस्वी होगा । इसके गुण महान् होंगे और यह महाभागवत होगा । इस तरह से संतुष्ट हुए ब्राह्मणों ने राजा युधिष्ठिर से कहा ।।१५-१७।।

युधिष्ठिर उवाच

**अप्येष वंश्यान्राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः । अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ।।१८।।**

**अन्वयः**— हे सत्तमाः एष वंश्यान् राजर्षीन् पुण्यश्लोकान् महात्मनः साधुवादेन यशसा अनुवर्तिता स्वित् ।।१८।।

**युधिष्ठिर ने कहा**

**अनुवाद**— हे महापुरुषों ! यह हमारे वंश के पवित्र कीर्ति वाले तथा महात्मा राजर्षियों का अपनी सत् कीर्ति तथा यश के द्वारा अनुसरण करेगा क्या ?।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**

महाभागवतो भविष्यतीत्युक्ते हृष्टः पृच्छति । अपिस्वित् किंस्वित् । साधुवादेन यशसा सत्कीर्त्या चानुवर्तिता भविष्यतीति पूर्वस्यैवातः परमप्यनुषङ्गः ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

यह महाभागवत होगा यह कहने पर प्रसन्न होकर राजा ने पूछा क्या यह सत्कीर्ति और यश के द्वारा अपने वंश के राजाओं के समान होगा ? अतएव इसका भी इससे पहले के श्लोक से सम्बन्ध है ।।१८।।

ब्राह्मणा ऊचुः

**पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः । ब्रह्मण्यः सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यथा ।।१९।।**

**अन्वयः**— पार्थ (एषः) साक्षात् मानवः इक्ष्वाकुरिव प्रजाविता दाशरथिः रामः यथा सत्यसन्धः ब्रह्मण्यः (भविष्यति) ।।१९।।

**अनुवाद**— धर्मराज ! यह साक्षात् मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के समान प्रजाओं की रक्षा करेगा तथा महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम के समान सत्य का पालन करने वाला तथा ब्राह्मणों का भक्त होगा ।।१९।।

**भावार्थ दीपिका**

हे पार्थ, प्रजानामविता रक्षकः । मानवो मनोः पुत्रः । ब्राह्मणेभ्यो हितः । सत्यप्रतिज्ञश्च श्रीरामो यथा ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणों ने कहा पार्थ यह मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के समान प्रजाओं की रक्षा करेगा । महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम के समान ब्राह्मणों का हितकारी और सत्यवक्ता होगा ।।१९।।

**एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः । यशो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥२०॥**

**अन्वयः**— एषः औशीनरः शिविः यथा दाताशरण्यश्च, यज्वनाम् दौष्यन्तिः इव स्वानाम् यशः वितनिता ॥२०॥

**अनुवाद**— यह उशीनर नरेश शिवि के समान दान करने वाला तथा शरणागत रक्षक होगा और यज्ञ करने वालों में दुष्यन्त के पुत्र भरत के समान तथा अपने वंश वालों के यश का विस्तार करेगा ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

उशीनरदेशाधिपतिः शिविः । येन स्वमांसं श्येनाय दत्त्वा शरणागतः कपोतो रक्षितः । स्वानां ज्ञातीनां यज्वनां च यशोविस्तारको दौष्यन्तिर्भरत इव ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

जिस तरह उशीनर देश के स्वामी शिवि ने अपना मांस बाज को देकर शरणागत कपोत की रक्षा किया, उसी तरह का यह दाता तथा शरणागत रक्षक होगा । अपने वंश वालों तथा यज्ञ करने वालों के यश का विस्तार यह दुष्यन्त पुत्र भरत के समान करेगा ॥२०॥

**धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः । हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥२१॥**
**मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव । तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ॥२२॥**
**पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः । आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥२३॥**
**सर्वसद्गुणमाहात्म्य एष कृष्णमनुव्रतः । रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥२४॥**
**धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः । आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥२५॥**

**अन्वयः**— एषः धन्विनामग्रणीः द्वयोः अर्जुनयोः तुल्यः हुताशः इव दुर्धर्षः, समुद्र इव दुस्तरः, मृगेन्द्र इव विक्रान्तः, हिमवान् इव निषेव्यः, असौ बसुधा इव तितिक्षुः, पितरौ इव सहिष्णुः, पितामहसमः साम्ये गिरिशोपमः प्रसादे, रमाश्रयः देवोः यथा, सर्वभूतानामाश्रयः, एषः सर्वसद्गुण माहात्म्ये कृष्णम् अनुव्रतः, रन्तिदेव इव उदारः, ययातिः इव धार्मिकः, धृत्या बलिसमः, कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः, एषः अश्वमेधानां आहर्ता वृद्धानां पर्युपासकः च भविष्यति ॥२१-२५॥

**अनुवाद**— यह धनुधारियों में सहस्त्रार्जुन और अर्जुन के समान अग्रगण्य होगा, यह अग्नि के समान दुर्धर्ष होगा और समुद्र के समान दुस्तर होगा । यह सिंह के समान पराक्रम सम्पन्न होगा और हिमालय के समान सेवनीय होगा । यह पृथिवी के समान तितिक्षु और माता-पिता के समान सहनशील होगा । इसमें ब्रह्माजी के समान समता होगी, शङ्करजी के समान यह कृपा करने वाला होगा, यह लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के समान सबों का आश्रय होगा और सभी सद्गुणों की महिमा धारण करने में यह भगवान् श्रीकृष्ण का अनुयायी होगा । यह राजा रन्तिदेव के समान उदार होगा तथा ययाति के समान धार्मिक होगा । यह बलि के समान धैर्ययुक्त होगा तथा भगवान् श्रीकृष्ण में प्रह्लाद के समान निष्ठावान् होगा । यह अनेक अश्वमेध यागों को करेगा तथा वृद्धों की सेवा करने वाला होगा ॥२१-२५॥

### भावार्थ दीपिका

अर्जुनयो पार्थकार्तवीर्ययोः । हिमवानिव सतां निषेव्योऽनन्यगतिकत्वेन । वसुधेव तितिक्षुः क्षन्ता । प्रीत्या मातापितराविव सहिष्णुः । पितामहो ब्रह्मा तेन समः समत्वे । रमाश्रयो हरिः । सर्वैः सद्गुणैर्माहात्म्यं यत्तस्मिन् । श्रीकृष्णतुल्यः । धृत्या धैर्येण। सद्ग्रहः सन् भद्रो ग्रहोऽभिनिवेशो यस्य सः । आहर्ता कर्ता ॥२१-२५॥

### भाव प्रकाशिका

**अर्जुनयोः** पद के द्वारा कार्तवीर्य सहस्त्रार्जुन तथा पार्थ अर्जुन दोनों को कहा गया है । वह अनन्य गतिक होने के कारण हिमालय के समान सेवनीय होगा । समता के विषय में यह ब्रह्माजी के समान होगा । **रमाश्रयः**

पद से लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु को कहा गया है । सभी सद्गुणों से सम्पन्न वह भगवान् श्रीकृष्ण का अनुगमन करने वाला होगा । उसमें बलि के समान धैर्य होगा । उसका सद्वस्तुओं में अभिनिवेश होगा और अश्वमेधादि यज्ञों को करेगा ।।२१-२५।।

**राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् । निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ।।२६।।**
**तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् । प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः ।।२७।।**
**जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्यासससुतादसौ । हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् ।।२८।।**

**अन्वयः**— एषः राजर्षीणां जनयिता, उत्पथगामिनाम् शास्ता भुवः धर्मस्य कारणात् एषः कलेः निग्रहीता, द्विजपुत्रोप सर्जितात् तक्षकात् आत्मनः मृत्युं उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः हरेः पदं प्रपत्स्यते । व्याससुतात् मुनेः असौ आत्मयाथात्म्यं जिज्ञासितम्, इदम् गङ्गायाम् हित्वा अकुतोभयं यास्यति ।।२६-२८।।

**अनुवाद**— यह राजर्षि पुत्रों (जनमेजय आदि) को उत्पन्न करेगा, मर्यादा का उल्लंघन करने वालों का यह प्रशासन करेगा । पृथिवी तथा धर्म की रक्षा करने के लिए यह कलियुग को निगृहीत करेगा । ब्राह्मण के पुत्र के द्वारा प्रेरित तक्षक के द्वारा अपनी मृत्यु को सुनकर संसार से विरक्त होकर श्रीभगवान् के चरणों में शरणागति करेगा। उसके पश्चात् महर्षि व्यास के पुत्र से आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके, अपने इस शरीर को गङ्गा में त्यागकर मुक्ति को प्राप्त कर लेगा यह निश्चित है ।।२६-२८।।

### भावार्थ दीपिका

राजर्षीणां जनमेजयादीनाम् । द्विजपुत्रेण प्रेरितात्तक्षकादात्मनो मृत्युमुपश्रुत्य विरक्तः सन् हरेः पदं प्रपत्स्यते भजिष्यति। ततश्च जिज्ञासितमात्मनो याथात्म्यं येन सः । इदं शरीरं गङ्गायां हित्वाऽकुतोभयं पदं यास्यति । अद्धा निश्चयेन ।।२६-२८।।

### भाव प्रकाशिका

राजर्षि शब्द से जनमेजय आदि को कहा गया है । अर्थात् इसके जनमेजय आदि राजर्षि पुत्र होंगे । यह जब जानेगा की ब्राह्मण पुत्र के द्वारा प्रेरित होकर तक्षक से मेरी मृत्यु होगी तो वह संसार से विरक्त होकर श्रीभगवान् के चरणों को ही अपने रक्षक रूप से वरण कर लेगा । उसके पश्चात् आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके यह अपने इस पाञ्चभौतिक शरीर का गङ्गा में परित्याग कर देगा तथा मुक्ति को प्राप्त कर लेगा यह निश्चित है । **सम्यग्विचारपूर्वकम् ज्ञातम् आत्मनो भगवतः स्वरूपयाथात्म्यं निर्णयो येन । यह जिज्ञासितात्मयाथात्म्यम्ः** पद की व्युत्पत्ति है । अर्थात् अच्छी तरह से आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जिसने जान लिया है ।।२६-२८।।

**इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः । लब्धापचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ।।२९।।**

**अन्वयः**— इति राज्ञे उपादिश्य जातककोविदाः सर्वे विप्राः लब्धापचितयः सन्तः स्वकान् गृहान् प्रतिजग्मुः ।।२९।।

**अनुवाद**— इस तरह जातक शास्त्र को जानने वाले ज्योतिषी सभी ब्राह्मण राजा को इस तरह से बातें बतलाकर तथा राजा के द्वारा पूजा प्राप्त करके अपने-अपने घर चले गये ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

लब्धा अपचित्तिः पूजा यैस्ते ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

अर्थात् राजा से पूजा प्राप्त करके वे ज्योतिषी ब्राह्मणगण अपने घर चले गये ।।२९।।

**स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः । गर्भदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेत नरेष्विह ।।३०।।**

**अन्वयः**— स एष लोकविख्यातः परीक्षित् इति । यत् प्रभुः गर्भदृष्टम् अनुध्यायन् इह नरेष्विह परीक्षेत ।।३०।।

**अनुवाद**— वही बालक लोक में परीक्षित् के नाम से विख्यात हुआ। वह समर्थ बालक गर्भ में देखे गये पुरुष का चिन्तन करते हुए लोक में मनुष्यों की परीक्षा करता है कि कहीं ये तो वह पुरुष नहीं है ?।।३०।।

### भावार्थ दीपिका

परीक्षिदिति नाम निर्वक्ति-स एष इति। यद्यस्मात्प्रभुः समर्थः सन् गर्भे दृष्टं पुरुषमनुध्यायन्निह दृश्यमानेषु नरेषु मध्ये सर्वमपि नरं परीक्षेताऽयमसौ भवेन्नो वेति विचारयेदतः परीक्षिदिति विख्यातः। '**पूर्वदृष्टम्**' इति वा पाठः। तदा मातृगर्भे पूर्वं दृष्टमित्यर्थः।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में परीक्षित् इस नाम का अर्थ बतलाते हैं— चूकि यह समर्थ पुरुष गर्भ में देखे गये पुरुष का चिन्तन करते हुए, इस संसार में दिखाई देने वाले सभी मनुष्यों को यह सोचकर परीक्षा करता है कि कहीं ये ही तो वह पुरुष नहीं हैं ?।।३०।।

**स राजपुत्रो ववृध आशु शुक्ल इवोडुपः। आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ।।३१।।**

**अन्वयः**— स राजपुत्रः शुक्ल अन्वहम् काष्ठाभिः आपूर्यमाणः उडुप इव पितृभिः काष्ठाभिः आपूर्यमागः आशु ववृधे।।३१।।

**अनुवाद**— वह राजकुमार शुक्ल पक्ष में कलाओं के द्वारा प्रतिदिन बढ़ने वाले चन्द्रमा के समान अपने पितृजनों द्वारा चौसठो कलाओं से परिपूर्ण किया जाता हुआ शीघ्र ही बड़ा हो गया ।।३१।।

### भावार्थ दीपिका

शुक्ले शुक्लपक्षे स प्रसिद्ध उडुपोऽन्वहं यथा काष्ठाभिः पञ्चदशकलाभिरापूर्यमाणो वर्धते, एवं पितृभिर्युधिष्ठिरादिभिः कामैश्चतुःषष्ठिकलाभिश्चापूर्यमाणो ववृधे ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

जिस तरह शुक्ल पक्ष में पन्द्रह कलाओं से परिपूर्ण होते हुए चन्द्रमा प्रतिदिन बढ़ते हैं उसी तरह वह राजकुमार भी प्रतिदिन अपने पितृजनों द्वारा चौसठ कलाओं की शिक्षा प्राप्त करते हुए शीघ्र ही बड़ा हो गया ।।३१।।

**यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया। राजाऽलब्धधनो दध्यावन्यत्र करदण्डयोः ।।३२।।**

**अन्वयः**— ज्ञातिद्रोहजिहासया राजा अश्वमेधेन यक्ष्यमाणः करदण्डयोः अन्यत्र अलब्धधनः दध्यौ ।।३२।।

**अनुवाद**— उसी समय राजा युधिष्ठिर अपने बान्धवों के वध का प्रायश्चित्त करने के लिए अश्वमेध यज्ञ करना चाहे किन्तु कर तथा दण्ड के रूप में वसूले गये धन से भिन्न धन नहीं प्राप्त होने के कारण वे चिन्तित हो गये ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

पूर्वमपकृष्योक्तानश्वमेधान् स्वावसरे सप्रकारं कथयति। ज्ञातिद्रोहस्य हानेच्छया यक्ष्यमाणः करदण्डयोरन्यत्र ताभ्यां विनाऽलब्धधनो दध्यौ चिन्तयामास। करदण्डजस्य परिजनभरणमात्रोपक्षीणत्वात् ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

पहले कहे गये अश्वमेधों का उचित समय पर विशेष रूप से वर्णन करते हैं। राजा युधिष्ठिर अपने बान्धवों के वधजन्य पाप को दूर करने की इच्छा से ऐसे धन से अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे जो धन कर तथा दण्ड के रूप में नहीं प्राप्त हुआ हो। किन्तु वैसा धन उनको इसलिए नहीं मिला कि वह तो परिजनों के भरण-पोषण में ही समाप्त हो चुका था। अतएव राजा युधिष्ठिर चिन्तित हो गये ।।३२।।

**तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः। धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः ।।३३।।**

**अन्वयः**— तदभिप्रेतम् आलक्ष्य अच्युतचोदिताः भ्रतरः उदीच्यां दिशि भूरिशः प्रहीणं धनम् आजह्रुः ।।३३।।

**अनुवाद**— राजा के अभिप्राय को जानकर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरित उनके भाइयों ने उत्तर दिशा में छोड़ दिये गये बहुत अधिक धन को ला दिया ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रहीणं मरुत्तस्य यज्ञे ब्राह्मणैस्त्यक्तं सुवर्णपात्रादिकमानीतवन्तः ।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

प्राचीन काल में राजा मरुत्त ने यज्ञ किया था उस यज्ञ में सभी पात्र सुवर्ण के थे । यज्ञ समाप्त हो जाने पर राजा ने उन सभी पात्रों को उत्तर दिशा में फेंकवा दिया । उन्होंने ब्राह्मणों को भी इतना धन दिया कि वे उस धन को नहीं ले जा सके अतएव वे भी उस धन को वही छोड़कर चले गये । चूंकि परित्यक्त धन पर राजा का ही अधिकार होता है, अतएव भगवान् ने उस धन को मँगवा लिया और उसी धन से राजा युधिष्ठिर का यज्ञ कराया । उसी धन को यहाँ मरुत्त के यज्ञ में छोड़ा गया धन कहा गया है उन सभी सुवर्ण पात्रों को पाण्डवों से भगवान् ने मँगवा लिया ।।३३।।

**तेन संभृतसंभारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्हरिम् ।।३४।।**

**अन्वयः**— तेन संभृत संभारः भीतः राजा युधिष्ठिरः त्रिभिः वाजिमेधैः यज्ञैः हरिम् समयजत् ।।३४।।

**अनुवाद**— उसी धन से पाप के भय से भयभीत राजा युधिष्ठिर यज्ञ के उपकरणों को एकत्रित करके तीन अश्वमेध यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना किए ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

संभृतसंभारः संपादितयज्ञोपकरणः । भीतो ज्ञातिद्रोहात् ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

उसी धन से सभी साधनों को तैयार करके धर्मभीरु राजा युधिष्ठिर तीन अश्वमेध यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना किए ।।३४।।

**आहूतो भगवान्राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् । उवास कतिचिन्मासान्सुहृदां प्रियकाम्यया ।।३५।।**

**अन्वयः**— राज्ञा आहूतः भगवान् द्विजैः नृपम् याजयित्वा सुहृदां प्रियकाम्यया कतिचिन् मासान् उवास ।।३५।।

**अनुवाद**— राजा युधिष्ठिर के द्वारा आहूत भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणों द्वारा राजा युधिष्ठिर का यज्ञ करवाकर अपने संबन्धियों की प्रसन्नता के लिए वहीं पर कुछ महीने निवास किए ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

राजा युधिष्ठिर ने श्रीभगवान् को बतलाया तो भगवान् हस्तिनापुर में आये और ब्राह्मणों द्वारा उनके यज्ञ को सम्पन्न कराये । अपने सम्बन्धी पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए वे वहाँ कुछ महीनों तक निवास भी किए ।।३५।।

**ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः । ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनो यदुभिर्वृतः ।।३६।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षो नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! ततः राज्ञा कृष्णया सह बन्धुभिः अभ्यनुज्ञातः यदुभिः वृतः सार्जुनः द्वारवतीं ययौ ।।३६।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् राजा युधिष्ठिर द्रौपदी तथा बान्धवों से आज्ञा प्राप्त करके भगवान् यादवों से घिरे हुए अर्जुन के साथ द्वारका पुरी गये ।।३६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के परीक्षित् के जन्म आदि उत्कर्ष का वर्णन नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।**

**भावार्थ दीपिका**

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।**

**भाव प्रकाशिका**

यज्ञ समाप्त होने के पश्चात् कुछ महीने बीत जाने पर राजा युधिष्ठिर, द्रौपदी तथा बान्धवों से आज्ञा लेकर भगवान् यदुवंशियों से घिरे हुए अर्जुन के साथ द्वारकापुरी चले गये ।।३६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१२।।**

# तेरहवाँ अध्याय

## विदुरजी के उपदेश से प्रेरित धृतराष्ट्र और गान्धारी का वन गमन

सूत उवाच

**विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् । ज्ञात्वाऽगादधस्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सितः ॥१॥**

**अन्वयः**— विदुरः तीर्थयात्रायां मैत्रेयात् आत्मनः गतिं ज्ञात्वा तया अवाप्तविवित्सितः हस्तिनपुरम् अगात् ॥१॥

**अनुवाद**— विदुरजी तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में मैत्रेय महर्षि से आत्मा (परमात्मा) की गति (प्राप्यत्व) को जानकर, उस आत्म गति के विषय में प्राप्त ज्ञान के ही द्वारा जो कुछ उनको जानना था वे जान लिए और उसके पश्चात् वे हस्तिनापुर आये ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

निर्गमो धृतराष्ट्रस्य विदुरोक्त्या त्रयोदशे । उक्तः पौत्राभिषेकेण वक्तुं राज्ञो महापथम् । इदानीं परीक्षितः कलिनिग्रहादिकर्माणि कथयिष्यन् विदुरागमनेन धृतराष्ट्रप्रस्थानं ततोऽर्जुनागमनं ततः श्रीकृष्णान्तर्धानं निशम्य पाण्डवप्रस्थानं च निरूपयति त्रिभिरध्यायैः। गतिं हरिम् । तयात्मगत्याऽवाप्तं विवित्सितं ज्ञातुमिष्टं सर्वं येन ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

अपने पौत्र परीक्षित् के राज्याभिषेक पूर्वक युधिष्ठिर के महामार्ग (स्वर्गारोहरण) को बतलाने के लिए विदुरजी के उपदेश से धृतराष्ट्र के हस्तिनापुर से निकलकर चले जाने का वर्णन इस तेरहवें अध्याय में किया गया है । **इदानीम् इत्यादि** अब परीक्षित् के कलि के निग्रह आदि कर्मों का वर्णन करने के लिए विदुर के आने से धृतराष्ट्र के वन प्रस्थान का, उसके पश्चात् अर्जुन के द्वारकापुरी से आगमन का, उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने के समाचार को सुनकर पाण्डवों के प्रस्थान का निरूपण तीन अध्यायों से किया जा रहा है । इस श्लोक में गति शब्द से श्रीहरि को कहा गया है । अर्थात् जीव के लिए एकमात्र प्राप्य श्रीहरि ही हैं । इस ज्ञान के विषय भूत श्रीकृष्ण तत्त्व का ज्ञान हो जाने के कारण विदुरजी जो कुछ भी जानना चाहते थे वह सबकुछ जान लिए और उसके पश्चात् वे तीर्थ यात्रा से हस्तिनापुर लौट आये ॥१॥

**यावतः कृतवान्प्रश्नान्क्षत्ता कौषारवाग्रतः । जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥२॥**

**अन्वयः**— क्षता कौषारवाग्रतः यावतः प्रश्नान् कृतवान् जातैकभक्तिः गोविन्दे तेभ्यश्च ह उपरराम ॥२॥

**अनुवाद**— विदुरजी ने मैत्रेयजी के समक्ष जितने प्रश्नों को किया उन सबों का उत्तर सुनने से पहल ही श्रीभगवान् में भक्ति उत्पन्न हो जाने के कारण वे उपरत हो गये ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह । यावतः कर्मयोगव्रतादिविषयान् प्रश्नान्प्रथमं कृतवान् । कौषारवस्य मैत्रेयस्य पुरतः । पश्चात्रिचतुःप्रश्नार्थज्ञानमात्रेण गोविन्दे जातैकभक्तिः कृतार्थः संस्तेभ्यः प्रश्नेभ्य उपरराम । ततः परं न विजिज्ञासितवान् ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

उसी बात का वर्णन करते हुए सूतजी कहते है— विदुरजी ने कर्मयोग तथा व्रत इत्यादि विषयक जितने प्रश्नों को मैत्रेय महर्षि के समक्ष किया था, उन सबों में तीन चार प्रश्नों का उत्तर सुनने मात्र से उनकी भगवान् गोविन्द में ऐकान्तिक भक्ति उत्पन्न हो जाने से वे कृतार्थ हो गये, उसके आगे वे प्रश्नों का उत्तर नहीं जानना चाहे।।२।।

**तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः । धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ।।३।।**
**गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी । अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ।।४।।**
**प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् । अभिसंगम्य विधिवत्परिष्वङ्गाभिवादनैः ।।५।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! बन्धुं तं आगतं दृष्ट्वा, सहानुजः धर्मपुत्रः, धृतराष्टः, युयुत्सुः, सूतः, शारद्वतः, पृथा, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी, अन्याश्च जामयः पाण्डोः ज्ञातयः, ससुताः स्त्रियः तन्वे आगतं प्राणम् इव प्रहर्षेण प्रत्युज्जग्मुः ।।३-५।।

**अनुवाद**— हे शौनकजी ! अपने बान्धव (चाचा) विदुरजी को आये हुए देखकर अपने छोटे भाइयों के साथ महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, सञ्जय, शारद्वत, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी (द्रोणाचार्य की पत्नी) पाण्डव परिवार के अन्य सभी स्त्री पुरुष, अपने पुत्रों के साथ स्त्रियाँ, जैसे मृत शरीर में प्राण आ गये हों उसी तरह अत्यधिक प्रसन्नता से आलिङ्गन और प्रणाम पूर्वक उनसे मिलकर उनकी अगवानी किए ।।३-५।।

### भावार्थ दीपिका

सूतः सञ्जयः । शारद्वतः कृपः । पृथा कुन्ती । कृपी द्रोणभार्या । जामयो ज्ञातिभार्याः । अन्याश्च स्त्रियः । प्राणं तन्व इवेति कुतश्चिन्मूर्च्छादिदोषतः प्राणेऽवसन्ने सति तन्वः कराङ्घ्र्यादयो निश्चेष्टा भवन्ति पुनस्तस्मिन्नाविर्भूते यथोत्तिष्ठन्ति तद्वत्।।५।।

### भाव प्रकाशिका

सूत शब्द से संजय को, शारद्वत शब्द से कृपाचार्य को, पृथा शब्द से कुन्ती को, कृपी शब्द से द्रोणाचार्य की पत्नी को, जामी शब्द से परिवार वालों की पत्नियों को कहा गया है । इसके अतिरिक्त दूसरी भी स्त्रियाँ विदुरजी की आगवानी में गयीं । कहीं पर मूर्छा आदि के कारण शरीर शिथिल हो जाता है, हाथ पैर इत्यादि चेष्टा विहीन हो जाते हैं और जब वह व्यक्ति होश में आ जाता है, तो वे अङ्ग पहले जैसे काम करने लगते हैं, इसी अर्थ को **प्राणं तन्व इवागतम्** के द्वारा कहा गया है । विदूरजी के आ जाने से अगवानी करने वाले लोगों में जैसे प्राण का सञ्चार हो गया ।।३-५।।

**मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः । राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् ।।६।।**

**अन्वयः**— विरहौत्कण्ठ्य कातराः प्रेमवाष्पौघं मुमुचुः । कृतासनपरिग्रहम् तम् राजा अर्हयाञ्चके ।।६।।

**अनुवाद**— विरह जन्य उत्कण्ठा से कातर बने हुए उन सब लोगों ने प्रेमाश्रु को बहाया उसके पश्चात् आसन पर बैठे हुए विदुरजी की राजा युधिष्ठिर ने पूजा की ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

विरहेण यदौत्कण्ठ्यं तेन कातरा विवशाः ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी युद्ध प्रारम्भ होने से पहले ही तीर्थयात्रा में चले गये थे। अतएव विदुरजी से नहीं मिलने के कारण विरह की व्यथा से व्याकुल वे लोग एक साथ बैठकर प्रेमाश्रु को बहाये ॥६॥

**तं भुक्तवन्तमासीनं विश्रान्तं सुखमासने । प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥७॥**

**अन्वयः**— भुक्तवन्तम्, विश्रान्तम् आसने सुखम् आसीनम् च तम् प्रश्रयावनतो राजा तेषां शृण्वताम् प्राह ॥७॥

**अनुवाद**— भोजन एवं विश्राम करके जब विदुरजी सुखपूर्वक अपने आसन पर बैठे हुए थे तब नम्रता पूर्वक राजा युधिष्ठिर ने सबों के सामने ही विदुरजी से पूछा ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

तं विदुरम् ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

इस **श्लोक में तम्** शब्द से विदुरजी को कहा गया है ॥७॥

युधिष्ठिर उवाच

**अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् । विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥८॥**

**अन्वयः**— समातृकाः विषाग्न्यादेः विपद्गणात् यत् मोचिताः युष्मत् पक्षच्छाया समेधितान् नः स्मरथ अपि ॥८॥

**युधिष्ठिर ने कहा**

**अनुवाद**— अपनी माता के साथ हमलोगों को जो विषमिश्रित अन्न के भोजन तथा लाक्षागृह की अग्नि रूपी भयङ्कर विपत्तियों से जो आपने हमलोगों को बचाया है, हमलोग जो आपकी ही छत्र-छाया में बड़े हुए ऐसे हमलोगों को आप कभी स्मरण करते थे क्या ?॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

पक्षिणो ह्यपत्यानि यथातिस्नेहेन पक्षच्छायया वर्धयन्ति तद्वद्युष्मत्पक्षपातच्छायया समेधितान्वर्धितान्नोऽस्मान्किं स्मरथ। समेधितत्वमेवाह । विपद्गणाद्यस्मान्मोचिताः स्मः ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

जैसे पक्षी अपने बच्चों को अत्यन्त स्नेह पूर्वक अपने पङ्खों की छाया में पालते-पोषते हैं, उसी तरह आपके पक्षपात की छाया में बढ़े हुए हमलोगों को क्या आप कभी स्मरण करते थे। क्योंकि आपने हमलोगों को विपत्ति समूह से बचाया है ॥८॥

**कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम् । तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥९॥**

**अन्वयः**— क्षितिमण्डलं चरद्भिः वः कया वृत्त्या इह भूतले वर्तितम् कानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानि ?॥९॥

**अनुवाद**— पृथिवी पर सञ्चरण करते हुए आपने किस वृत्ति से अपना जीवन निर्वाह किया ? इस पृथिवी पर आपने किन-किन तीर्थों और मुख्य क्षेत्रों का सेवन किया ?॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

वो युष्माभिः कया वृत्त्या वर्तितं देहवृत्तिः कृता । कानि च तीर्थादीनि सेवितानीति ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

आप पृथिवी पर सञ्चरण करते हुए किस वृत्ति से अपनी जीवन यात्रा चलाते थे ? तथा आपने किन-किन मुख्य तीर्थों आदि का सेवन किया ?॥९॥

**भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो । तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे विभो ! भवद्विधाः तीर्यभूताः भागवताः स्वान्तस्थेन गदाभृता तीर्थानि तीर्थी कुर्वन्ति ॥१०॥

**अनुवाद**— हे विभो ! आप जैसे भगवान् के प्रिय भक्त स्वयं तीर्थ स्वरूप होते हैं, और वे अपने हृदय में विद्यमान श्रीभगवान् के द्वारा तीर्थों को भी पवित्र बनाने का काम करते हैं ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

भवता च तीर्थाटनं न स्वार्थं किंतु तीर्थानुग्रहार्थमित्याह-भवद्विधा इति । मलिनजनसंपर्केण मलिनानि तीर्थानि सन्तः पुनः स्वयं तीर्थीकुर्वन्ति । स्वान्तं मनस्तत्रस्थेन । स्वस्यान्तः स्थितेनेति वा ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

आप जैसे भगवतों के द्वारा किया जाने वाला तीर्थाटन अपने लिए नहीं होता है, अपितु वह तीर्थों पर कृपा करने के लिए होता है । इस बात को युधिष्ठिर ने **भवदविधा० इत्यादि** श्लोक से कहा है । आप जैसे भागवत पापी लोगों के सम्पर्क से जब तीर्थ मलीन हो जाते है, तब उन सबों को पवित्र बनाने के लिए तीर्थों में जाते हैं । भागवतों के मन में श्रीभगवान् का निवास होता है । उन भगवान् के सम्पर्क से तीर्थ पवित्र हो जाया करते हैं ॥१०॥

**अपि नः सुहृदस्तात बान्धवाः कृष्णदेवताः । दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ॥११॥**

**अन्वयः**— हे तात अपि नः सुहृदः बान्धवाः कृष्णदेवताः यदवः स्वपुर्याम् सुखमासते इति दृष्टाः श्रुता वा ? ॥११॥

**अनुवाद**— हे तात ! हमारे भी सुहृद तथा भाई बन्धु जो भगवान् श्रीकृष्ण को देवता मानते हैं, यदुवंशियों को आपने द्वारका में सुख पूर्वक रहते हुए देखा अथवा सुना है ?॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

अपि किं सुखमासते भवद्भिः क्वापि दृष्टाः श्रुताः वा ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा युधिष्ठिर ने पूछा की यदुवंशी हमारे भाई बन्धु हैं, वे हमारे सुहृत् हैं । वे लोग भगवान् कृष्ण को ही अपना आराध्य मानते हैं । आप द्वारका में जाकर उन लोगों को सुख पूर्वक रहते हुए देखा है क्या ? यदि देखा नहीं है तो आप उन लोगों के विषय में सुने हैं क्या ?॥११॥

**इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत् । यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— इति धर्मराजेन उक्तः यथा अनुभूतं तत् सर्वं यदुकुलक्षयं बिना क्रमशः समवर्णयत् ॥१२॥

**अनुवाद**— इस तरह से धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा पूछे जाने पर विदुरजी ने जैसा अनुभव किया था उन सारी बातों को उन्होंने क्रमशः बतला दिया किन्तु यदुवंश के विनाश को उन्होंने नहीं बतलाया ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

युधिष्ठिर ने विदुरजी से जो कुछ भी पूछा था उन सारी बातों को उन्होंने उसी तरह क्रमशः बतलाया जिस तरह से उन्होंने तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में अनुभव किया था, किन्तु उन्होंने यदुवंश के विनाश की बात को नहीं बतलाया॥१२॥

**नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् । नावेदयेत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥१३॥**

**अन्वयः**— ननु दुखितान् द्रष्टुम् अक्षमः सकरुणः स्वयमुपस्थितम् दुर्विषहम, अप्रियम् न आवेदयेत् ॥१३॥

**अनुवाद**— क्योंकि दुखितों को देखने में असमर्थ करुणायुक्त व्यक्ति को चाहिए कि जो अपने आप उपस्थित असह्य अप्रिय बात हो उसे न सुनाये ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

यदुकुलक्षयावर्णने कारणमाह- नन्विति ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने पाण्डवों को यदुकुल के क्षय की बात को नहीं सुनाया । उसका कारण **नन्वप्रियम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । नियम यही है कि जो व्यक्ति करुणा, युक्त हो उसको चाहिए कि वह स्वयम ज्ञात हो जाने वाली असह्य अप्रिय घटना को न बतलाये । विदुरजी पाण्डवों को दुःखी देखने में असमर्थ थे । इसीलिए उन्होंने यादवों के विनाश रूपी असह्य अप्रिय बात पाण्डवों को नहीं बतलाया ।।१३।।

**कंचित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् । भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ।।१४।।**

**अन्वयः**— अथ देववत् सुखम् सत्कृतः ज्येष्ठस्य भ्रातुः श्रेयस्कृत् सर्वेषां प्रीतिम् आवहन् कंचित् कालम् अवात्सीत् ।।१४।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् देवताओं के समान राजा युधिष्ठिर द्वारा समादृत विदुरजी अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र का कल्याण करने के लिए सबों को प्रसन्न रखते हुए विदुरजी कुछ समय तक हस्तिनापुर में ही निवास किये ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

श्रेयस्कृत्तत्त्वमुपदिशन् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र को आत्म कल्याणकारी विषयों का उपदेश देते हुए विदुरजी हस्तिनापुर में निवास किए ।।१४।।

**अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु । यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ।।१५।।**

**अन्वयः**— यावत् यमः शापात् वर्षशतं शूद्रत्वं दधार तावत् अर्यमा अघकारिषु यथावत् दण्डं दधार ।।१५।।

**अनुवाद**— माण्डव्य ऋषि के शाप के कारण यम सौ वर्षो तक शूद्रत्व को धारण किए थे उतने समय तक अर्यमा ही पापियों को उचित दण्ड देने का काम करते थें ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

ननु शूद्रोऽसौ कथमुपदिशेत् । न ह्यसौ शूद्रः किंतु यमस्तद्रूपेणासीत् । किं तत्र कारणं यमे चात्रागतेऽमुत्र को दण्डधर इत्यपेक्षायामाह-अविभ्रदिति । धृतवानित्यर्थः । माण्डव्यस्य शापात् । तथाहि । क्वचिच्चोराननु धावन्तो राजभटा माण्डव्यस्य ऋषेस्तपश्चरतः समीपे तान् संप्राप्य तेन सह निबध्यानीय राज्ञे निवेद्य तदाज्ञया सर्वान् शूलमारोपयामासुः । ततो राजा तमृषिं ज्ञात्वा शूलादवतार्य प्रसादयामास । ततो मुनिर्यमं गत्वा कुपित उवाच कस्मादहं शूलमारोपित इति । तेनोक्तं त्वं बाल्ये शलभं कुशाग्रेणाविध्य क्रीडितवानिति । तच्छ्रुत्वा माण्डव्यस्तं शशाप । बाल्येऽजानतो मे महान्तं दण्डं यतस्त्वं कारितवानतः शूद्रो भवेति ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि विदुरजी तो दासी पुत्र होने के कारण शूद्र थे, वे कैसे उपदेश दे सकते थे ? तो इसका उत्तर है कि वे शूद्र नहीं थे अपितु यमराज ही उस रूप में वहाँ विद्यमान थे । अब प्रश्न होता है कि यमराज के शूद्र होने का कारण क्या था ? यमराज के मर्त्यलोक में आ जाने पर पापियों को दण्ड देने का काम कौन करता था ? तो इसका उत्तर **अबिभ्रमदर्यमा० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । **अबिभृत्** पद का अर्थ है धारण किया । माडव्य महर्षि के शाप का कारण क्या था ? तो उसका उत्तर **अबिभ्रत०** श्लोक है । एक समय चोरों के पीछे दौड़ते हुए राजा के सिपाहियों ने तपस्या करने वाले मण्डव्य ऋषि के सन्निकट से ही चोरों को पकड़ा

उन सबों के साथ बाँधकर वे ऋषि को भी लाये, उन सबों को सिपाहियों ने राजा को समर्पित कर दिया । राजा की आज्ञा से उन सबों ने सबों को शूलारोपण कर दिया । राजा ने जब जाना कि ये तो ऋषि हैं तो उनको शूल पर से उतरवाकर राजा ने उनसे क्षमा प्रार्थना की । उसके पश्चात् क्रुद्ध होकर मुनि यमराज के पास गये और पूछे कि मैं शूल पर क्यों चढ़ाया गया ? यमराज ने कहा आपने बाल्यावस्था में कीड़े को कुश से छेद कर उसके साथ क्रीडा की । यमराज की बात को सुनकर माण्डव्य ऋषि ने यमराज को शाप दिया । बाल्यावस्था में मैं तो अज्ञानी था उसके बदले में मुझको इतना बड़ा दण्ड तुमने दिया अतएव तुम सौ वर्षों तक शूद्र रहोगे माण्डव्य महर्षि के इस शाप से ही यमराज सौ वर्षों तक शूद्र रहे ।।१५।।

**युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलन्धरम् । भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ।।१६।।**

**अन्वयः**— लब्धराज्यः युधिष्ठिरः कुलन्धरं पौत्रं दृष्ट्वा लोकपालाभैः भार्तृभिः परया श्रिया मुमुदे ।।१६।।

**अनुवाद**— राज्य के प्राप्त हो जाने पर राजा युधिष्ठिर अपने वंश को बढ़ाने वाले पौत्र परीक्षित् को देखकर लोकपालों के समान कान्ति वाले अपने छोटे भाइयों के साथ अपनी अतुलनीय सम्पत्ति को देखकर प्रसन्न रह रहे थे।।१६।।

**भावार्थ दीपिका**

इदानीं राज्यस्यापकर्षं निरूपयितुमुत्कर्षं निगमयति- युधिष्ठिर इति । कुलन्धरं वंशधरम् ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

अब राज्य का अपकर्ष दिखाने के लिए सूतजी राज्य के उत्कर्ष का वर्णन करते हैं कुलन्धर का अर्थ है वंश को बढ़ाने वाले ।।१६।।

**एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया । अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ।।१७।।**

**अन्वयः**— एवं गृहेषु सक्तानां तदीहया प्रमत्तानां अविज्ञातः परमदुस्तरः कालः अत्यक्रामत् ।।१७।।

**अनुवाद**— इसी तरह से गृहकार्यों में लगे हुए परमात्मा की इच्छा के ही अनुसार प्रमत्त बने हुए पाण्डवों के लिए अत्यन्त भयङ्कर काल आ गया ।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**

तदीहया गृहव्यापारेण प्रमत्तानाम् । अत्यक्रामदायुःकालोऽतिक्रान्तः । यद्वा तानभ्यभवदित्यर्थः ।।१७।।

**भाव प्रकाशिका**

परमात्मा की इच्छा से गृह व्यापार में अत्यन्त असावधन बने हुए पाण्डवों की आयु बीत चली । अथवा उन पाण्डवों को काल ने अभिभूत कर दिया ।।१७।।

**विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत । राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ।।१८।।**

**अन्वयः**— विदुरः तत् अभिप्रेत्य, धृतराष्ट्रम् अभाषत । राजन् शीघ्रं निर्गम्यताम्, इदम् आगतं भयं पश्य ।।१८।।

**अनुवाद**— उस भयङ्कर काल को देखकर विदुरजी ने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र से कहा कि राजन् इस भयङ्कर काल को देखिए और शीघ्र ही यहाँ से निकल चलिये ।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी ने उस भयङ्कर काल को जान लिया कि अब सबों की मृत्यु की बेला आ गयी है, इसीलिए उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा कि मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता है । यह अत्यन्त भयङ्कर समय है; अतएव आपको यहाँ से निकल जाना चाहिए । इसमें विलम्ब करना ठीक नहीं है ।।१८।।

**प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो । स एव भगवान्कालः सर्वेषां नः समागतः ॥१९॥**

**अन्वयः**— प्रभो ! यस्य इह कुतश्चित् कर्हिचित् प्रतिक्रिया न, स एव नः सर्वेषां भगवान् कालः समागतः ॥१९॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! इस लोक में जिसका कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता, वे ही हम सबों के भगवान् काल आ गये हैं ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु तत्प्रतीकारः क्रियतां किं निर्गमनेन तत्राह- प्रतिक्रियेति । सर्वेषामिति । यैः प्रतिकर्तव्यं तेषामपीत्यर्थः ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहे कि उसको रोकना चाहिए यहाँ से निकल चलने से कौन सा लाभ है? तो इसका उत्तर है कि जो रोकने वाले हैं उनकी भी मृत्यु की बेला आ गयी है । काल तो स्वयम् भगवान् का रूप है, काल को कौन रोक पायेगा ?॥१९॥

**येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि । जनःसद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥२०॥**

**अन्वयः**— येन चैव अभिपन्नः अयं जनः प्रियतमैः प्राणैः अपि सद्यः वियुज्यते अन्यैः धनादिभिः किमुत ?॥२०॥

**अनुवाद**— जिस काल से ग्रस्त होकर यह मानव शीघ्र ही अपने अत्यन्त प्रिय प्राणों से भी वियुक्त हो जाता है तो फिर धनों की क्या बात है ?॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

कथं धनादिवियोगः सोढुं शक्योऽत आह-येन चेति । अभिपन्नोऽभिग्रस्तः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि इन धनादिकों को कैसे त्यागा जा सकता है ? तो इसके उत्तर में **येन चैव० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । अर्थात् सबों को अपना प्राण अत्यन्त प्रिय है । उस काल से जब मनुष्य ग्रस्त हो जाता है तो मनुष्य को शीघ्र ही अपने प्राणों को भी त्यागना पड़ जाता है तो फिर इन धन आदि की कौन सी बात है ?॥२०॥

**पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः । आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥२१॥**

**अन्वयः**— ते पितृ-भ्रातृ सुहृत् पुत्राः हताः, वयः विगतम्, आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहम् उपाससे ॥२१॥

**अनुवाद**— आपके पिता, भाई, मित्र पुत्र सबके सब मारे जा चुके हैं, अवस्था भी ढल चुकी है, शरीर को बुढापे ने ग्रस्त कर लिया है और आप स्वयम् दूसरों के घर में रह रहे हैं ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

कथं धनादिवियोगः सोढुं शक्योऽत आह-येन चेति । अभिपन्नोऽभिग्रस्तः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

अब आपका यहाँ रहना अत्यन्त दीनता है । इस बात को बतलाने के लिए विदुरजी **पितृभातृ० इत्यादि** सात श्लोकों के द्वारा पहले वैराग्य को उत्पन्न करते हैं । यहाँ आत्मा शब्द से शरीर को कहा गया है ॥२१॥

**अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान् । भीमेनावर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥२२॥**

**अन्वयः**— अहो जन्तोः जीविताशा महीयसी यया भवान् गृहपालवत् भीमेन आवर्जितं पिण्डम् आदत्ते ॥२२॥

**अनुवाद**— मनुष्य की जीने की आशा कितनी बलवती होती है ? उसी के कारण आप अपने पुत्रों को मारने वाले भीम के हाथों से दिए गये अन्न को कुत्ते के समान खाते हैं ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

येन पुत्रा हतास्तेन भीमेन दत्तं पिण्डं गृहपाल इव । गृहपालः श्वा ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

गृहपाल कुत्ते को कहते हैं । जिस भीम ने आपके पुत्रों को मार डाला उसी भीम के हाथों से दिए गये भोजन को आप कुत्ते के समान खा रहे हैं ।।२२।।

**अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः । हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ।।२३।।**

**अन्वयः**— येषां अग्निः निसृष्टः गरो दत्तः, दाराः च दूषिताः, धनं क्षेत्रं च हृतम् तद् दत्तै असुभिः कियत् ।।२३।।

**अनुवाद**— जिन पाण्डवों को आप आग में जलाना चाहे, विष मिश्रित अन्न खिलाया, उनकी पत्नी को अपमानित किए, और उनके धन और भूमि को छिन लिए उन्हीं पाण्डवों के द्वारा दिए गये अन्न से प्राणों को पोषने से क्या लाभ है ?।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

निसृष्टः प्रक्षिप्तः । गरो विषम् । दूषिता अवमताः तद्दत्तैरन्नादिभिर्लब्धैरसुभिः कियत्प्रयोजनम् । न किंचिदित्यर्थः ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि इन पाण्डवों को मार डालने के लिए आपने लाक्षागृह में आग लगवा दी, विष भी आपने दिया, और इन सबों की पत्नी को अपमानित किया, इन्हीं पाण्डवों के द्वारा प्रदत्त अन्न से प्राणों का पोषण करने में आपका कौन सा गौरव है ?।।२३।।

**तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः । परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ।।२४।।**

**अन्वयः**— तस्य कृपणस्य जिजीविषोः अनिच्छतः अपि तव अयं देहः जरया जीर्णः वाससी इव परैति ।।२४।।

**अनुवाद**— इस तरह से दैन्य का अनुभव करते हुए भी जीवित रहने वाले आपका यह वार्द्धक्य के कारण जीर्ण हुआ शरीर उसी तरह क्षीण होता जा रहा है जिस तरह जीर्ण वस्त्र क्षीण होता जाता है ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

तस्यापि तवैव दैन्यमनुभवतोऽपि परैति क्षीयते । अतएव धीरो भवेति ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से दीनता पूर्वक जीवन जीने के इच्छुक भी आपका यह शरीर वार्द्धक्य के कारण क्षीण होता जा रहा है । अतएव आपको धैर्य धारण करना चाहिए ।।२४।।

**गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः । अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ।।२५।।**

**अन्वयः**— मुक्तबन्धनः विरक्तः अविज्ञातगतिः यः गतस्वार्थम् इमं देहम् जह्यात् स वै धीरः उदाहृतः ।।२५।।

**अनुवाद**— सम्पूर्ण सांसारिक बन्धनों से मुक्त, संसार से विरक्त तथा अपने लोग जिसे जान न सके इस तरह से जो पुरुष यश एवं धर्म रूपी स्वार्थ से रहित इस शरीर का परित्याग कर देता है, वही धीर कहलाता हैं ।।२५।।

### भावार्थ दीपिका

किंलक्षणो धीर इत्यपेक्षायामाह । गतस्वार्थं यशोधर्मादिशून्यम् । मुक्तबन्धनस्त्यक्ताभिमानः । क्व गत इत्यविज्ञाता गतिर्यस्य । स धीरः । प्राप्तदुःखस्य स्वयं सहनेन मुक्तिप्राप्तेः ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

अब प्रश्न है कि धीर किसको कहते हैं ? तो इसके उत्तर में कहा गया है **गतस्वार्थम्० इत्यादि** अर्थात् आपका यह शरीर यश एवं धर्म प्राप्ति के लिए अनुपयोगी हो चुका है। अतएव इस देह में स्वीयत्वाभिमान को आप त्याग दें ओर सांसारिक समस्त सम्बन्ध रूपी बन्धनों से आप रहित हो जायँ। आप कहाँ चले गये इस बात को कोई जान न सके इस तरह से अपने सभी लोगों से दूर जाकर जो इस शरीर का परित्याग कर देता है, वही धीर कहलाता है ॥२५॥

**यः स्वकात्परो वेह जातनिर्वेद आत्मवान्। हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥२६॥**

**अन्वयः**— यः आत्मवान् स्वकात् परतः वा इह निर्वेदः हृदि हरिं कृत्वा गेहात् प्रव्रजेत् सः नरोत्तमः ॥२६॥

**अनुवाद**— जो आत्मज्ञ पुरुष स्वयम् अथवा दूसरे के उपदेश को सुनकर संसार से उदासीन हो जाता है और अपने हृदय में श्रीहरि को स्थापित करके घर से निकल जाता है वही उत्तम पुरुष है ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

नरोत्तमस्तु ततः प्रागेव कृतप्रतीकारः। स्वकात्स्वत एव। परतः परोपदेशतो वा ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

उत्तम पुरुष तो वह होता है जो कि अपने अथवा दूसरे के उपदेश को सुनकर संसार से विरक्त हो जाता है और अपने हृदय में श्रीहरि का ध्यान करते हुए घर से चुपचाप निकल जाता है ॥२६॥

**अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान्। इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥२७॥**

**अन्वयः**— इतः अर्वाक् कालः प्रायशः पुंसां गुणविकर्षणः अथ स्वैः अज्ञातगतिः भवान् उदीचीं दिशं यातु ॥२७॥

**अनुवाद**— इसके आगे जो काल आयेगा वह मनुष्यों के गुणों को घटाने वाला होगा; अतएव आप अपने लोगों से छिपकर जिससे कि कोई जान न सके ऐसे आप उत्तर दिशा में चले जाइये ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वं तु नरोत्तमो नाभूः, अत इदानीं धीरो भवेत्याह-अथेति। अर्वागर्वाचीनः एष्यन्नित्यर्थः। गुणान् धैर्यदयादीन् विकर्षत्याच्छिनत्तीति तथा ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

आप नरोत्तम तो नहीं हो सके अतएव आप धीर पुरुष बनें। इस बात को विदुरजी ने **अथोदीचीम्० इत्यादि** श्लोक से कहा है। अर्वाक् शब्द आगे आने वाले अर्थ का बोधक है। यह आने वाला समय गुणों को घटाने वाला होगा ॥२७॥

**एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधितो ह्याजमीढः।**
**छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥२८॥**

**अन्वयः**— एवं विदुरेण अनुजेन बोधितः प्रज्ञाचक्षुः आजमीढः राजा स्वेषु द्रढिम्नः स्नेह पाशान् छित्त्वा भ्रातृसंदर्शिताध्वा निश्चक्राम ॥२८॥

**अनुवाद**— इस तरह से अपने छोटे भाई विदुर के द्वारा उपदेश दिए जाने पर प्रज्ञाचक्षु (जन्मान्ध) तथा अजमीढ के वंश में उत्पन्न धृतराष्ट्र अपने लोगों में विद्यमान अत्यन्त सुदृढ स्नेहपाश के बन्धन को काटकर अपने भाई के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर घर से निकल कर चल पड़े ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

आजमीढोऽजमीढवंशजः । प्रज्ञाचक्षुरन्धः । एवं बोधितः सन् । द्रढिम्नश्चित्तदार्ढ्यात् भ्रात्रा संदर्शिताऽध्वा बन्धमोक्षयोर्मार्गो यस्य सः ।।२८।।

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी के उपदेश को सुनकर अजमीढ के वंश में उत्पन्न राजा धृतराष्ट्र के प्रज्ञानेत्र खुल गये । उन्होंने अपने लोगों से सम्बद्ध स्नेह के बन्धन को काट दिया; वे घर से निकल पड़े और विदुरजी के द्वारा उपदिष्ट संसार से मुक्ति के मार्ग पर वे चल पड़े ।।२८।।

**पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ।**
**हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः ।।२९।।**

**अन्वयः**— प्रयान्तं पतिं पतिव्रता सुबलस्य साध्वी पुत्री मनस्विनां सत् सम्प्रहार इव न्यस्तदण्डप्रहर्षम् हिमालयं अनुजगाम ।।२९।।

**अनुवाद**— हिमालय में जाते हुए अपने पति का राजा सुबल की साध्वी पुत्री तथा पतिव्रता गान्धारी ने उनके साथ ही योगियों को सुख देने वाले हिमालय में उसी तरह गयी जिस तरह से वीरों पर न्याय पूर्वक किया गया प्रहार उनको सुख ही देता है ।।२९।।

**भावार्थ दीपिका**

सुबलस्य पुत्री गान्धारी साध्वी सुशीला हिमालयं प्रयान्तं पतिमनुजगाम । ननु कथं सा सुकुमारी हिमादिदुःखबहुलं हिमवन्तं गताऽत आह । न्यस्तदण्डानां प्रहर्षो यस्मिंस्तम् । दुःखदमपि केषांचित्प्रहर्षहेतुर्भवतीत्यत्र दृष्टान्तः । मनस्विनां शूराणां युद्धे संस्तीव्रः संप्रहारो यथा । पाठान्तरे संत्संप्रहारं युद्धं यथेति ।।२९।।

**भाव प्रकाशिका**

धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी पतिव्रता और सुशीला नारी थीं । उन्होंने देखा कि उनके पति धृतराष्ट्र हिमालय में जा रहे हैं, और यह देखकर गान्धारी उनके पीछे-पीछे हिमालय में चली गयी । यदि कोई कहे कि हिमलाय तो वर्फ आदि के कारण बहुत दुःख देने वाला है सुकुमारी गान्धारी वहाँ कैसे गयी ? तो इसका उत्तर है **न्यस्तः त्यक्तो दण्डो भूतद्रोहो यैस्तेषां भूतसुहृदाम् योगिनामिति यावत् प्रहर्षकरम्** । अर्थात् जिन लोगों ने जीवों से द्रोह करना छोड़ दिया है । ऐसे सभी भूतों के सुहृद योगियों को हिमालय सुख ही देता है, दुःख नहीं देता । यह उसी तरह से होता है जिस तरह युद्ध में वीरों को तीव्र सम्प्रहार सुख देता है जहाँ **सत्प्रहारम्** यह पाठ है उसके अनुसार **सत्सम्प्रहारम्** पद का अर्थ होगा युद्ध ।।२९।।

**अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ।**
**गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ।।३०।।**

**अन्वयः**— कृतमैत्रः हुताग्निः अजातशत्रुः तिलगोभूमिरुक्मैः विप्रान् नत्वा, गुरून् वन्दनाय गृहं प्रविष्टः पितरौ सौबली च न अपश्यत् ।।३०।।

**अनुवाद**— मित्र देवताक संन्ध्या वन्दन करके तथा अग्निहोत्र करके युधिष्ठिर ब्राह्मणों को प्रणाम किए और उनको तिल गौ, भूमि तथा सुवर्ण दान दिए । इसके पश्चात् वे अपने गुरुजनों को प्रणाम करने के लिए जब गृह में प्रवेश किए तो उन्होंने, धृतराष्ट्र, विदुर और गान्धारी को नहीं देखा ।।३०।।

**भावार्थ दीपिका**

कृतं मैत्रं मित्रदैवत्यं सन्ध्यावदनं येन । नत्वा संपूज्य । पितरौ विदुरधृतराष्ट्रौ ।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

**कृतमैत्रः** पद की विग्रह है **कृतं मैत्रं मित्रश्रदैवत्यं सन्ध्यावन्दनं येन** । मूल में पितरौ शब्द से धृतराष्ट्र और विदुर दोनों कहे गये हैं । संध्या वन्दन के अधिष्ठातृ देवता चूकि मित्र है अतएव संध्या वन्दन को मैत्र शब्द से कहा गया है । युधिष्ठिर ने नित्य संन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्र कर्म को किया और उसके पश्चात् ब्राह्मणों को नमस्कार किया तथा उनको दान दिया । उसके पश्चात् जब वे गृह में गये तो उनको धृतराष्ट्र, विदुर और गान्धारी ये तीनों नहीं मिले ॥३०॥

**तत्र संजयासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः । गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥३१॥**

**अन्वयः**— उद्विग्नमानसः तत्र आसीनं संजयं पप्रच्छ गावल्गणे, नः वृद्धः नेत्रयोः हीनश्च तातः क्व ॥३१॥

**अनुवाद**— उद्विग्नमना होकर युधिष्ठिर ने वहाँ पर बैठे हुए सञ्जय से पूछा कि हे गावल्गणे ! मेरे वृद्ध तथा नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र कहा हैं ?॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

हे गावल्गणे गवल्गणस्य पुत्र सञ्जय ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

सञ्जय को गावल्गण इसलिए संम्बोधित किया गया है कि वे गवल्गण के पुत्र थे । गवल्गणस्य अपत्यं पुमान् इस अर्थ में गवल्गण शब्द से **अतइञ** सूत्र से इञ् प्रत्यय होकर गावल्गणि शब्द बनता है और उसका सम्बोधन में रूप हैं गावल्गणे ॥३१॥

**अम्बा च हतपुत्रार्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत्। अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः स भार्यया ॥**
**आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत् ॥३२॥**

**अन्वयः**— हतपुत्रार्ता अम्बा सुहृत् पितृव्यः च क्व गतः हतबन्धुः दुःखितः सः अकृत प्रज्ञे मयि शमलं आशंसमानः गङ्गायाम् अपतत् किम् ?॥३२॥

**अनुवाद**— पुत्रों के मारे जाने के कारण दुःखिनी माता गान्धारी और मेरे सुहत् मेरे चाचा विदुरजी कहाँ गये ? कहीं महाराज धृतराष्ट्र बान्धवों के मारे जाने के कारण दुःखी होकर अपनी पत्नी गान्धारी के साथ गङ्गा में तो नहीं कूद गये ?॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

अकृतप्रज्ञे मन्दमतौ । शमलमपराधमाशंसमान आशङ्कमानः । भार्यया सह ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ने कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं हो गया कि अपने बान्धवों के मारे जाने के कारण दुःखी धृतराष्ट्र मन्दबुद्धि मुझसे किसी प्रकार के पाप की शङ्का करके अपनी पत्नी गान्धारी के साथ गङ्गा में तो नहीं कूद गये ॥३२॥

**पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् । अराक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥३३॥**

**अन्वयः**— पितरि पाण्डौ उपरते सुहृदः सर्वान् शिशून् नः व्यसनतः अरक्षताम् इमौ पितृव्यौ इतः क्व गतौ ॥३३॥

**अनुवाद**— मेरे पिता पाण्डु की मृत्यु हो जाने पर हमारे प्रिय हम सभी बच्चों को इन दोनों चाचाओं ने विपत्तियों से बचाया ऐसे मेरे दोनों चाचा यहाँ से कहाँ चले गये ?॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

यावरक्षतां तौ । इतः स्थानात् ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन दोनों चाचाओं ने हमसबों की रक्षा की वे इस स्थान से कहाँ चले गये ?॥३३॥

सूत उवाच

**कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः । आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥३४॥**

**अन्वयः**— आत्मेश्वरम् अचक्षाणः विरहकर्शितः सूतः कृपया स्नेह वैकल्यात् अतिपीडितः न प्रत्याह ॥३४॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— अपने स्वामी धृतराष्ट्र को नहीं देखकर विरह से दुःखी सञ्जय कृपा तथा स्नेह के कारण व्याकुल होने के कारण अत्यन्त पीडित होने से कुछ भी नहीं बोले ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

कृपया स्नेहवैक्लव्याच्चातिपीडित आत्मेश्वरं धृतराष्ट्रमपश्यन् । विरहकर्शितश्च सूतः संजयो न प्रत्युत्तरमाह ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

कृपा तथा स्नेह के कारण अत्यन्त दुःखी सञ्जय अपने स्वामी धृतराष्ट्र को नहीं देखने के कारण विरह से व्याकुल थे; अतएव राजा युधिष्ठिर का उत्तर नहीं दिए ॥३४॥

**विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना । अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥३५॥**

**अन्वयः**— पाणिभ्यां अश्रूणि विमृज्य, आत्मना आत्मानम् विष्टभ्य प्रभोः पादौ अनुस्मरन् अजातशत्रुं प्रत्यूचे ॥३५॥

**अनुवाद**— अपने दोनों हाथों से आँसुओं को पोंछकर, बुद्धिपूर्वक अपने मन को धैर्य सम्पन्न बनाकर अपने स्वामी धृतराष्ट्र के चरणों का स्मरण करते हुए वे युधिष्ठिर से कहे ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मना बुद्ध्यात्मानं मनो विष्टभ्य धैर्ययुक्तं कृत्वा । प्रभोर्धृतराष्ट्रस्य ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

सञ्जय ने बुद्धिपूर्वक अपने मन को धैर्ययुक्त बनाया और अपने स्वामी धृतराष्ट्र के चरणों का स्मरण करके वे युधिष्ठिर से कहे ॥३५॥

संजय उवाच

**नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन । गान्धार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥३६॥**

**अन्वयः**— हे महाबाहो, कुलनन्दन, वः पित्रोः गन्धार्या वा व्यवसितं अहं न वेद, महात्मभिः मुषितः अस्मि ॥३६॥

**संजय ने कहा**

**अनुवाद**— हे महाबाहो कुलनदंन युधिष्ठिर ! मैं आपके दोनों चाचाओं और गान्धारी के सङ्कल्प को नहीं जानता हूँ, मुझको तो उन महात्माओं न ठग लिया ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

गान्धार्याश्च । व्यवसितं निश्चितम् । यतो मुषितो वञ्चितोऽस्मीति ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

संजय ने युधिष्ठिर से कहा कि आपके दोनों चाचाओं और गान्धारी इन तीनों का क्या सङ्कल्प है, इस विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ; क्योंकि इन लोगों ने मुझे कुछ भी नहीं बतलाया । मुझे तो इन लोगों ने ठग ही लिया॥३६॥

**अथाजगाम भगवान्नारदः सहतुम्बुरु । प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ।।३७।।**

**अन्वयः**— अथ तुम्बुरुः सह भगवान् नारदः आजगाम सानुजः प्रत्युत्थाय, अभिवाद्य अभ्यर्च्य इव आह ।।३७।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् वहाँ पर तुम्बुरु के साथ भगवान् नारदजी आये उनको देखकर राजा अपने भाइयों के साथ खड़े होकर उनकी पूजा करते हुए कहने लगे ।।३७।।

**भावार्थ दीपिका**

एवं कंचित्कालं शोचति तस्मिन्नथ नारद आजगाम । अत्रास्ति क्वचित्पुस्तके पाठान्तरं तदुल्लङ्घ्य यथासंप्रदायं व्याख्यायते। शोकवेगादभ्यर्चयन्निवाह राजा नत्वभ्यर्चयत् '**शोकाक्रान्तः कृपाविष्टः श्रद्धया रहितः पुमान् । गुरुदेवद्विजातीनां पूजनं न समाचरेत् ।**' इति स्मृतेः ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह कुछ देर तक जब युधिष्ठिर शोच ही रहे थे उसी समय वहाँ पर तुम्बुरु के साथ महिमा सम्पन्न नारदजी आ गये । यहाँ पर किसी-किसी पुस्तक में **अभ्यर्चयन् मुनिम्** यह पाठ भेद है किन्तु उस पाठान्तर पर ध्यान न देकर यहाँ सम्प्रदायानुसारी व्याख्या की गयी है । चूकि राजा युधिष्ठिर को उस समय शोक था और शोकग्रस्त व्यक्ति को महापुरुषों की पूजा नहीं करनी चाहिए, इसलिए सूतजी ने अभ्यर्चयन्निव कहा है । अर्थात् उन्होंने नारदजी की पूजा नहीं कि बल्कि उनका केवल सत्कार और प्रणाम किया । स्मृति भी कहती है— **शोकाक्रान्तः इत्यादि** अर्थात् शोक ग्रस्त कृपायुक्त, तथा श्रद्धारहित पुरुष को गुरु, देवता और ब्राह्मण की पूजा नहीं करनी चाहिए ।।३७।।

युधिष्ठिर उवाच

**नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन्क्व गतावितः । अम्बा वा हतपुत्रार्ता क्व गता च तपस्विनी।।**
**कर्णधार इवापारे भगवान्पारदर्शकः ।।३८।।**

**अन्वयः**— भगवन् अहं पित्रोः गतिं न वेद यत् इतः क्व गतौ वा हतपुत्रा आर्ता तपस्विनी अम्बा च क्व गता भगवान् अपारे पारदर्शकः कर्णाधार इव ।।३८।।

**युधिष्ठिरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे भगवन् ! मुझे अपने दोनों चाचाओं का पता नहीं चल रहा है कि वे दोनों यहाँ से कहाँ चले गये, तथा पुत्रों के मारे जाने के कारण आर्त बनी हुयी माता गन्धारी कहाँ गयीं । हे भगवन् इस अपार दुःख सागर में पार को दिखाने वाले आप ही कर्णधार हैं, अतएव आप ही उन लोगों के विषय में बतलायें ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

नाहं वेद वेद्मि । तपस्विनी दुःखयुक्ता । अपारे शोकार्णवे भगवांस्त्वमेव पारदर्शकः । अतो ब्रूहीति शेषः ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

युधिष्ठिर ने नारदजी से कहा कि अपने दोनों चाचा और दुःखिनी चाची का मुझे पता नहीं चल रहा है अतएव मैं अपार शोक सागर में डूब रहा हूँ । आप ही मेरे लिए सहारा हैं आप उन लोगों का पता बतलाइये ।।३८।।

**अथाबभाषे भगवान्नारदो मुनिसत्तमः । मा कंचन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ।।३९।।**

**अन्वयः**— अथ मुनिसत्तमः भगवान् नारदः आबभाषे । राजन् कंचन मा शुचः यत् जगत् ईश्वरवशं वर्तते ।।३९।।

**अनुवाद**— इसके बाद मुनियों में श्रेष्ठ ऐश्वर्य सम्पन्न नारदजी ने कहा— राजन् किसी के भी विषय में आप शोक मत कीजिये । यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वर के अधीन है ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

आदावेव यथावृत्तकथने शोकेन मूर्च्छितः पतेदिति प्रथमं तावच्छोकमुपशमयति । कंचन मा शुचो मा शोचः । न केवलं तानेव । यद्यस्मादीश्वराधीनं जगत् ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

नारदजी ने सोचा कि यदि मैं सारी घटना ठीक-ठीक बतला दूँ तब तो युधिष्ठिर प्रारम्भ में ही मूर्छित होकर गिर जायेंगे । अतएव सर्वप्रथम वे उनके शोक को शान्त करते हुए कहे कि यह सारा जगत् परमात्मा के अधीन है, अतएव आपका किसी के विषय में शोक करना व्यर्थ है । परमात्मा की जैसी इच्छा होती है, उसे कोई रोक नहीं सकता है ।।३९।।

**लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः । स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ।।४०।।**

**अन्वयः**— इमे सपालाः लोकाः यस्य ईशितुः बलिम् आवहन्ति सः भूतानि संयुनक्ति स एव वियुनक्ति च ।।४०।।

**अनुवाद**— ये सारे लोक तथा लोकपाल जिस नियामक परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं, वे ही परमात्मा जीवों को मिलने तथा विलग करने का काम करते हैं ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह-लोका इति । संयुनक्ति संयोजयति । वियुनक्ति वियोजयति च ।।४०।।

### भाव प्रकाशिका

**लोकाः इत्यादि** श्लोक के द्वारा परमात्मा के सम्पूर्ण जगत् नियामकत्व का वर्णन करते हुए नारदजी कहते हैं कि सारा जगत् परमात्मा का नियाम्य है । सारे लोक और लोकपाल परमात्मा की ही पूजा करते हैं । वे ही परमात्मा किसी व्यक्ति को किसी से मिलाने और किसी से विलग करने का काम करते हैं ।।४०।।

**यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः । वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः ।।४१।।**

**अन्वयः**— यथा नसि प्रोता तन्त्यां स्वदामभिः बद्धाः ईशितुः बलिम् आवहन्ति तथा वाक्तन्त्यां नामभिः बद्धाः मनुष्याः ईशितुः बलिमावहन्ति ।।४१।।

**अनुवाद**— जैसे छोटी सी रस्सी से नाक में नथे हुए तथा अपनी बड़ी रस्सी में बंधे हुए बैल अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करते हैं उसी तरह कर्तव्य तथा अकर्तव्य का निर्देश करने वाली वेदवाणी रूपी रस्सी में बन्धे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नामधारी मनुष्य जगत् नियामक परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं ।।४१।।

### भावार्थ दीपिका

गावो बलीवर्दा नसि नासिकायां प्रोतास्तन्त्यां दीर्घतन्त्यां दामभिर्बद्धाः स्वामिनो बलिं वहन्ति यथा एवं वाक्तन्त्यां कर्तव्याकर्तव्यविधायकवेदलक्षणायां नामभिर्ब्राह्मणो ब्रह्मचारीत्यादिवर्णाश्रमलक्षणैर्बद्धाः परमेश्वरस्य बलिं तेन प्रेरिताः सर्वे वहन्तीत्यर्थः ।।४१।।

### भाव प्रकाशिका

जैसे बैल नाक में छोटी रस्सी से नथे हुए बड़ी रस्सी में बन्धे रहते हैं और अपने मालिक की आज्ञा का पालन करते हैं, उसी तरह कर्तव्य एवं अकर्तव्य का विधान करने वाले वेद की वाणी में बन्धे हुए ब्राह्मण आदि तथा ब्रह्मचारी आदि अपने-अपने वर्णों एवं आश्रमों रूपी रस्सी में बन्धे रहकर परमात्मा की आराधना उन्हीं के द्वारा प्रेरित होकर किया करते हैं । अतएव आप अनावश्यक शोक न करें ।।४१।।

**यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह । इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥४२॥**

**अन्वयः**— यथा इह कीडितुः इच्छया क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमौ स्याताम् तथैव ईशेच्छया नृणाम् संयोगवियोगौ भवतः इति शेषः ॥४२॥

**अनुवाद**— जिस तरह इस संसार में क्रीडा करने वाले व्यक्ति की इच्छा से ही क्रीड़ा के साधन भूत खिलौनों का संयोग और विलगाव होता है, उसी तरह से नियामक परमात्मा की ही इच्छा से मनुष्यों का मिलना और विछुडने का काम होता है ॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तौ पारतन्त्र्यमुक्त्वा संयोगवियोगयोरप्याह-यथेति । क्रीडोपस्कराणां क्रीडासाधनानां (दारुरचितमेषादीनाम्) ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

ऊपर के श्लोक में बतलाया गया है कि मनुष्यों की किसी भी कार्य में प्रवृत्ति परमात्मा की इच्छा के अनुसार ही होती है । जीव स्वतंत्र रूप से किसी कार्य को करने में समर्थ नहीं है । इस श्लोक में यह बतलाते हैं कि किसी भी जीव का संयोग और विप्रयोग भी परमात्मा की इच्छा के अधीन ही होता है । क्रीडा के साधनभूत खिलौनों को ही क्रीडोपस्कर कहते हैं । जैस क्रीडा करने वाला जब चहाता है तब एक खिलौना को दूसरे खिलौना से मिला देता है और जब चाहता है तो दोनों को अलग-अलग कर देता है । उसी तरह ईश्वर जब चाहते हैं तो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से मिला देते हैं और जब चाहते हैं तो उन दोनों को अलग-अलग कर देते हैं । लकड़ी के बनाये हुए भेंड़ा क्रीडोपस्कर के उदाहरण हैं ॥४२॥

**यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् । सर्वथा न हि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥४३॥**

**अन्वयः**— यत् लोकं ध्रुवं मन्यसे, वा अध्रुवम्, न ध्रुवं न अध्रुवं सर्वथा मोहजात् स्नेहात् अन्यत्र ते हि शोच्या न ॥४३॥

**अनुवाद**— यदि आप जीव को नित्य मानें, या अनित्य मानें, या न तो नित्य मानें और न अनित्य मानें इन चारों ही पक्षों में शोक करना व्यर्थ है । यह तो अज्ञानजन्य स्नेह से भिन्न कुछ है ही नहीं ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

ईश्वराधीनत्वान्न शोकः कार्य इत्युक्तम् । शोकतत्त्वे च विचार्यमाणे निर्विषयोऽयं शोक इत्याह । यद्यदि लोकं जनं ध्रुवं जीवरूपेण । अध्रुवं देहरूपेण । न चेति । न ध्रुवं नाप्यध्रुवम् । शुद्धब्रह्मरूपेणानिर्वचनीयत्वेन वा उभयं वा चिज्जडांशतः। सर्वथा चतुर्ष्वपि पक्षेषु ते पित्रादयो न शोच्याः स्नेहादन्यत्र । स्नेह एव केवलं शोकहेतुः स चाज्ञानमूल इत्यर्थः ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि जो कुछ भी होता है वह ईश्वर की इच्छा के अधीन होता है अतएव शोक करना व्यर्थ है । शोक तत्त्व पर यदि विचार किया जाय तो इस शोक का कोई विषय नहीं है । क्योंकि यदि आप मनुष्य को जीव रूप से नित्य मानें अथवा देह रूप से अनित्य मानें, अथवा उसे न तो नित्य मानें और न अनित्य मानें अथवा शुद्ध ब्रह्म होने के कारण तथा अनिर्वचनीय होने के कारण अथवा चित् तथा जडांश होने के कारण दोनों ही मानें, इन चारो ही पक्षों में तुम्हें अपने चाचा इत्यादि के विषय में शोक नहीं करना चाहिए । उन्होंने कहा कि केवल स्नेह ही शोक का कारण है और स्नेह अज्ञान मूलक है ।

जीव के विषय में चारो पक्षों को स्पष्ट करते हुए दीपिकाकार ने कहा ध्रुव और अध्रुव ये दो पक्ष हुए और न ध्रुव और न अध्रुव ये दो पक्ष हुए इस तरह से चार पक्ष हो गये । यदि ध्रुव है तो उसका नाश नहीं हो सकता है । और यदि अध्रुव है तो उसका विनाश होकर ही रहेगा । यह जीव न तो ध्रुव ही कहा जा सकता है और

न तो अध्रुव ही कहा जा सकता है । भावार्थदीपिकाकार ने उसे उभयम् कहा है । उसका अभिप्राय है कि वह चित् रूप से ध्रुव है और देहाध्यास रूप से अध्रुव है ॥४३॥

**तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः । कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ॥४४॥**

**अन्वयः**— तस्मात् हे अङ्ग ! मां विना अनाथाः कृपणाः ते कथं वर्तेरन् । इति अज्ञानकृतम् आत्मनः वैक्लव्यं जहि॥४४॥

**अनुवाद**— अतएव हे धर्मराज आप अपने इस अज्ञानजन्य मन की विकलता को छोड़ दीजिये कि मेरे बिना दीन तथा अनाथ वे कैसे रहेंगे ॥४४॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्मान्मां विना कथं ते वर्तेरन्नित्यात्मनो मनसो वैक्लव्यं व्याकुलतां त्यज ॥४४॥

**भाव प्रकाशिका**

नारदजी ने युधिष्ठिर से कहा कि आप अपने मन की इस विकलता को छोड़ दीजिये कि मेरे बिना वे कैसे रहेंगे ?॥४४॥

**कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः । कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥४५॥**

**अन्वयः**— अयं पाञ्चभौतिकः देहः काल-कर्म-गुणाधीनः परम् सर्पग्रस्तः यथा अन्यान् तु कथं गोपायेत् ॥४५॥

**अनुवाद**— यह पाञ्चभौतिक शरीर, काल, कर्म तथा गुणों के अधीन होने के कारण पराधीन है । अजगर के मुँह में पड़े हुए के समान यह दूसरों की रक्षा कैसे कर सकता है ?॥४५॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र त्वद्देहतस्तेषां वृत्तिरेतत्तावन्नास्तीत्याह । कालो गुणक्षोभकः । कर्म जन्म निमित्तम् । गुणा उपादानम् । तदधीनः पाञ्चभौतिको जडस्तद्विभागे नाशवांश्च । सर्पग्रस्तोऽजरगिलितो यथाऽन्यं न रक्षति तद्वत् ॥४५॥

**भाव प्रकाशिका**

आपके अधीन ही उन लोगों की वृत्ति हो ऐसी बात नहीं है । कालगुणों में क्षोभ उत्पन्न करता है कर्म जन्म का कारण है, गुण ही उपादान कारण हैं उसके ही अधीन यह पाँच भौतिक जड़ शरीर है। उन सबों का विभाग होने पर यह नष्ट हो जाता है । जैसे अजगर के मुँह में स्वयं पड़ा हुआ दूसरों की रक्षा नहीं कर सकता है उसी तरह से इस शरीर से दूसरों की रक्षा नहीं हो सकती हैं ॥४५॥

**अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् । फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥४६॥**

**अन्वयः**— अहस्तानि सहस्तानाम् अपदानि चतुष्पदाम् फल्गूनि महताम् इत्थम् जीवः जीवस्य जीवनम् ॥४६॥

**अनुवाद**— बिना हाथ वाले खरगोश, कबूतर इत्यादि पक्षी हाथ वाले मनुष्यों के; बिना पैर वाले तृण आदि पैर वाले पशुओं के तथा छोटे जीव बड़े जीवों के जीवन आहार हो जाते हैं इस तरह एक जीव दूसरे जीव के जीवन (आहार) हैं ॥४६॥

**भावार्थ दीपिका**

ईश्वरेण विहिता वृत्तिश्च सर्वतः सुलभैवेत्याह । अहस्तानि पश्वादीनि । अपदानि तृणादीनि । तत्र तेष्वहस्तादिष्वपि फल्गून्यल्पानि । एवं जीवः सर्वोऽपि जीवस्य सर्वस्य जीवनं जीविका । एतेनैव सर्वतो मृत्युग्रासत्वं चोक्तम् ॥४६॥

**भाव प्रकाशिका**

परमात्मा के द्वारा प्रदत्त जीविका सर्वत्र सुलभ है इस बात को अहस्तानि इत्यादि के द्वारा कहा गया है ।

हाथ रहित पशु आदि हाथ वाले मनुष्यों के आहार बन जाते हैं हस्तहीनों में भी छोटे जीव बड़े जीवों के अहार बन जाते हैं इस तरह सभी जीव सभी जीवों की जीविका हैं । इस कथन से ही यह बतलाया गया है कि जो जहाँ कहीं भी रहता है, वह मृत्यु का ग्रास बनता ही है ।।४६।।

**तदिदं भगवान्राजन्नेक आत्मात्मनां स्वदृक् । अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ।।४७।।**

**अन्वयः**— राजन् तदिदं भगवान् एकः आत्मनाम् आत्मा स्वदृक् अन्तरः अन्तरः भाति तं मायया उरुधा पश्य ।।४७।।

**अनुवाद**— राजन् ये एक मात्र भगवान् ही सभी आत्माओं की आत्मा हैं वे स्वयम्प्रकाश हैं वे ही सबों के भीतर और बाहर प्रतीत हो रहे है, माया के कारण ही उनकी अनेक रूप से प्रतीति होती है ।।४७।।

### भावार्थ दीपिका

मोहनिवृत्त्यर्थं द्वैतस्यावस्तुत्वमाह । तदिदमहस्तसहस्तादिरूपं जगत् । स्वदृग्भगवानेव न ततः पृथक् । स चैक एव न तु नाना । ननु सजातीयविजातीयभेदे प्रत्यक्षे कुत एतत्तत्राह । आत्मनां भोक्तॄणामात्मा स्वरूपम् । अतो न सजातीयभेदः। अन्तरोऽनन्तरश्च अन्तर्बहिश्च भोक्तृभोग्यरूपश्च भाति । अतो न विजातीयभेदोऽपि । नन्वेकः कथं तथा प्रतीयतेऽत आह । मायया बहुधा भाति तं पश्येति ।।४७।।

### भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर के मोह की निवृत्ति के लिए नारदजी ने भेद की प्रतीति को इस श्लोक में अवास्तविक बतलाया है । यह जगत् अहस्त सहस्त इत्यादि रूप है । यह स्वयम्प्रकाश भगवत् स्वरूप ही है, उनसे भिन्न नहीं है वे एक हैं अनेक नहीं । यदि कोई कहे कि सजातीय एवं विजातीय भेद तो प्रत्यक्षतः प्रतीत होते हैं अतएव भेद का निषेध कैसे किया जा सकता है ? तो इसके उत्तर में उन्होंने कहा— भोक्ता आत्माओं का स्वरूप आत्मा ही है अतएव सजातीय भेद नहीं माना जा सकता है । आत्मा ही भीतर और बाहर भोक्ता और भोग्य रूप से प्रतीत होता है । अतएव विजातीय भेद को भी नहीं स्वीकारा जा सकता है ।

**नन्वेकः इत्यादि** अब प्रश्न है कि यदि आत्मा एक ही है तो वह अनेक रूप में कैसे प्रतीत होता है तो इसके उत्तर में कहा गया है एक ही आत्मा माया के कारण अनेक रूप से प्रतीत होती है । इस बात को आपको जानना चाहिए ।।४७।।

**सोऽयमद्य महाराज भगवान्भूतभावनः । कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभवाय सुरद्विषाम् ।।४८।।**

**अन्वयः**— महाराज ! अद्य सोऽयम् भूतभावनः भगवान् सुरद्विषाम् अभवाय कालरूपः अस्याम् अवतीर्णः ।।४८।।

**अनुवाद**— हे महाराज ! इस समय जीवों को जीवन देने वाले भगवान् देव द्रोहियों का विनाश करने के लिए इस पृथिवी पर अवतीर्ण हुए हैं ।।४८।।

### भावार्थ दीपिका

क्वासावस्तीदृशो महामायावी, द्वारकायामित्याह-सोऽयमिति । अस्यां भूम्याम् । अभवाय नाशाय ।।४८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि आप पूछें कि वे महामायावी भगवान् द्वारका में ही हैं क्या ? तो इसका उत्तर है कि वे भूमि पर अवतीर्ण हुए हैं और असुरों का विनाश करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं ।।४८।।

**निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते । तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ।।४९।।**

**अन्वयः**— देवकृत्यं निष्पादितम्, अवशेषं प्रतीक्षते यावदिह ईश्वरः भवेत् तावद् यूयम् अवेक्षध्वम् ।।४९।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् देवताओं का कार्य पूरा कर चुके हैं, अब थोड़े से बचे हुए कार्य की वे प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब तक श्रीभगवान् इस भूलोक में हैं तब तक आपलोग उनका दर्शन करें ।।४९।।

**भावार्थ दीपिका**

तर्हि श्रीकृष्णोऽत्रास्तीत्यत्रैवास्थां मा कृथा इत्याह । तच्च देवानां कार्यं तेन निष्पादितं, केवलमवशेषं प्रतीक्षते । यदुकुलक्षयमिति हृदिस्थम् । ततो निजं धाम यास्यति ततो यूयमपि गच्छतेत्यर्थः । तच्च भूतमपि विदुरवदेव नावर्णयत् ।।४९।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ ही है इस बात को आपलोग न सोचें । उन्होंने देवताओं का कार्य पूरा कर लिया है, केवल बचे हुए कार्य की वे प्रतीक्षा कर रहे है । उनके हृदय में बचा हुआ कार्य यदुकुल का विनाश था उसके पश्चात् वे अपने लोक में चले जायेंगे । अतएव आपलोग भी जायँ । यद्यपि यदुकुल का नाश हो ही गया था किन्तु जिसतरह विदुरजी ने उसका वर्णन नहीं किया था उसी तरह उन्होंने भी उसका वर्णन नहीं किया ।।४९।।

**धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया । दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामश्रमं गतः ।।५०।।**

**अन्वयः**— धृतराष्ट्रः भ्रात्रा भार्यया गान्धार्या च सह हिमवतः दक्षिणेन ऋषीणाम् आश्रमं गतः ।।५०।।

**अनुवाद**— धृतराष्ट्र अपने भाई विदुरजी तथा अपनी पत्नी गान्धारी के साथ हिमालय की दक्षिण दिशा में ऋषियों के आश्रम में चले गये हैं ।।५०।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेवं शोकमास्थां च निवार्य जिज्ञासवे तस्मै यथावृत्तं कथयति-धृतराष्ट्र इति षड्भिः । हिमवतो दक्षिणे भागे ।।५०।।

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से शोक तथा आस्था को दूर करके जिज्ञासु युधिष्ठिर को यथार्थ वृत्तान्त **धृतराष्ट्रः इत्यादि** छह श्लोकों से कहते हैं वे बतलाये कि धृतराष्ट्र हिमालय के दक्षिण भाग में ऋषियों के आश्रम में चले गये हैं ।।५०।।

**स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् । सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ।।५१।।**

**अन्वयः**— स स्वर्धुनी सप्तानां प्रीतये नाना सप्तभिः स्रोतोभिः सप्तधाव्यधात् यत् सप्तस्रोत प्रचक्षते ।।५१।।

**अनुवाद**— जहाँ पर गङ्गाजी ने सात ऋषियों की प्रसन्नता के लिए पृथक्-पृथक् सात स्रोतों में अपने को विभक्त कर दिया जिसे सप्तस्रोत (सप्त सरोवर) कहते हैं ।।५१।।

**भावार्थ दीपिका**

तदपि कुत्रेत्याह-स्रोतोभिरिति । या वै प्रसिद्धा स्वर्धुनी सा आत्मानं यत्र सप्तधा व्यधात् । किमर्थम् । नाना पृथक् सप्तभिः स्रोतोभिः प्रवाहैः सप्तानामृषीणां प्रीतये । अतएव तत्तीर्थं सप्तस्रोतो वदन्ति ।।५१।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि पूछें कि ऋषियों के किस आश्रम में गये हैं तो इसका उत्तर है **स्रोतोभिः इत्यादि** जो प्रसिद्ध देवनदी गङ्गाजी है जहाँ पर सात ऋषियों की प्रसन्नता के लिए अपने को सात अलग-अलग धाराओं में विभक्त कर दिया है, जिसे सप्तस्रोत कहते हैं वहीं पर चले गये हैं ।।५१।।

**स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि । अब्भक्ष उपशान्तात्मा स आस्ते विगतैषणः ।।५२।।**

**अन्वयः**— यस्मिन् अनुसवनं स्नात्वा, यथाविधि अग्नीन् हुत्वा अब्भक्षः उपशान्तात्मा स विगतैषणः आस्ते ।।५२।।

**अनुवाद**— वहाँ वे त्रिकालस्नान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके आहार के रूप में जल को लेते हैं और शान्त चित्त वाले हो गये हैं । उनकी सारी इच्छाएँ समाप्त हो गयी हैं । इस तरह से वे निवास करते हैं ।।५२।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र तेन कृतमष्टाङ्गयोगमाह-स्नात्वेति चतुर्भिः । तत्र स्नानं होमोऽब्भक्षणं चेति नियमा उक्ताः भक्षस्थाने अपां स्वीकारादब्भक्षः। उपशान्त आत्मा यस्य सः । विगताः पुत्राद्येषणा यस्मादिति यमा उक्ताः ।।५२।।

### भाव प्रकाशिका

वहाँ पर धृतराष्ट्र अष्टाङ्ग योग करते हैं इस बात को **स्रोतोभि० इत्यादि** चार श्लोकों से बतलाया गया है । उसमें स्नान, होम और जलाहार ये नियम बतलाये गये हैं । भोजन के स्थान पर जल लेने के कारण उनको अब्भक्ष कहा गया है । उपशान्त आत्मा (चित्तं) यस्य सः, यह उपशान्तात्मा पद का विग्रह है । अर्थात् वे शान्त चित्त वाले हो गये हैं । उनकी सारी अभिलाषाएँ समाप्त हो गयी हैं । इस तरह से योग के अङ्ग यम को बतलाया गया है ।।५२।।

**जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः । हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ।।५३।।**
**विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् । ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ।।५४।।**
**ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः । निवर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ।।५५।।**

**अन्वयः**— जितासनः, जितश्वासः, प्रत्याहृतषडिन्द्रियः हरिभावनया ध्वस्त रजः सत्त्वतमोमलः । विज्ञानात्मनि संयोज्य, क्षेत्रज्ञे प्रविलप्य, अम्बरे घटाम्बरम् इवतम् आधारे ब्रह्मणि प्रविलाप्य, निरुद्धकरणाशयः ध्वस्त मायागुणोदर्कः निवर्तिता खिलाहारः स्थाणुः इव अचलः आस्ते ।।५३-५५।।

**अनुवाद**— उन्होंने आसन को जितकर, श्वास को भी जित लिया है । उन्होंने छहो इन्द्रयों को उनके विषयों से लौटा लिया है । श्रीहरि की भावना से युक्त उन्होंने सत्त्व, रजस् एवं तमस् मलों को विनष्ट कर दिया है । अहङ्कार को बुद्धि से संयुक्त करके उसे क्षेत्रज्ञ आत्मा में उन्होंने लीन कर दिया है । उसको भी महाकाश में घटाकाश के समान सबों के आधार ब्रह्म में उन्होंने मिला दिया है । अपनी सभी इन्द्रियों और मन को अवरुद्ध करके इन्द्रियों के विषयों को बाहर से ही लौटा दिया है तथा माया के गुणों के परिणामों को विनष्ट कर दिया है । समस्त कर्मों का परित्याग करके वे इस समय स्थाणु के समान स्थिर हो गये हैं ।।५३-५५।।

### भावार्थ दीपिका

जितासन इत्यादिना आसनप्राणायामप्रत्याहारा उक्ताः । हरिभावनयेति धारणोक्ता । ध्वस्ता रजःसत्त्वतमोरूपा मला यस्येति फलतो ध्यानमुक्तम् ।।५३।।

### भाव प्रकाशिका

**जितासनः इत्यादि** श्लोक से धृतराष्ट्र के द्वारा पालन किए जाने वाले आसन, प्राणायाम प्रत्याहार को बतलाया गया है । **हरिभावनया० इत्यादि** के द्वारा धारणा कही गयी है । उसके फलस्वरूप उन्होंने सत्त्व, रजस् तथा तमस् रूपी मलों को विनष्ट कर दिया है, यह कहकर ध्यान नामक योगाङ्ग को कहा गया है ।।५३।।

### भावार्थ दीपिका

समाधिमाह-विज्ञानेति द्वाभ्याम् । आत्मानं मनोऽहङ्कारास्पदं स्थूलदेहाद्वियोज्य विज्ञानात्मनि बुद्धौ संयोज्यैकीकृत्य तं च विज्ञानात्मानं दृश्यांशाद्वियोज्य क्षेत्रं द्रष्टरि प्रविलाप्य तं च क्षेत्रज्ञं द्रष्ट्रंशाद्वियोज्याधारे आश्रयसंज्ञे ब्रह्मणि प्रविलाप्य । घटाम्बरं घटोपाधेर्वियोज्य यथा महाकाशे प्रविलाप्यते तद्वत् ।।५४।।

### भाव प्रकाशिका

**विज्ञानात्मनि० इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा समाधि नामक अन्तिम योगाङ्ग को कहा गया है । **आत्मानम्०**

**इत्यादि** अहङ्कार के विषयभूत मन को स्थूल देह से वियुक्त करके तथा ज्ञान स्वरूप बुद्धि में उसको संयुक्त करके उन्होंने उसको एक कर दिया है । उस विज्ञान स्वरूप आत्मा को दृश्यांश से अलग करके क्षेत्रज्ञ द्रष्टा आत्मा में लीन करके । उस क्षेत्रज्ञ को भी द्रष्टा रूपी अंश से पृथक् करके उसे आश्रय संज्ञक ब्रह्म में उन्होंने लीन कर दिया है । यह ठीक उसी तरह से है जिस तरह घटोपहित आकाश को घटरूपी उपाधि से अलग करके जैसे महाकाश में मिला दिया जाता है उसी तरह ।।५४।।

**भावार्थ दीपिका**

व्युत्थानाभावमाह-ध्वस्तेति । अन्तर्गुणक्षोभाद्वा वहिरिन्द्रियविक्षेपाद्वा व्युत्थानं भवेत्, तदुभयं तस्य नास्ति । यतो ध्वस्तो मायागुणानामुदर्क उत्तरफलं वासना यस्य सः । निरुद्धानि करणानि चक्षुरादीन्याशयो मनश्च यस्य सः । अतएव निवर्तितोऽखिल आहारो भोज्यमिन्द्रियैर्विषयाहरणं वा येन सः । स्थाणुरिव निश्चल आस्ते ।।५५।।

**भाव प्रकाशिका**

आभ्यन्तर गुणों के क्षोभ के कारण अथवा बाह्येन्द्रियों के विक्षेप के कारण किसी भी प्रकार से उनको व्युत्थान नहीं होता है, क्योंकि उन्होंने माया के गुणों का फल जो वासना है उसको उन्होंने विनष्ट कर दिया है । उन्होंने चक्षुरादि बाह्यइन्द्रियों और मन को भी अपने वश में कर लिया है । उन्होंने सभी प्रकार के आहारों का परित्याग कर दिया है । वे न तो किसी प्रकार का भोज्य आहार लेते हैं और न तो इन्द्रियों के विषयों का अनुभव करते हैं । वे स्थाणु के समान निश्चल हो गये हैं ।।५५।।

**तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः । स वा अद्यतनाद्राजन्परतः पञ्चमेऽहनि ॥**
**कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ।।५६।।**

**अन्वयः**— संन्यास्तखिल कर्मणः तस्य अन्तरायो मैव अभूः । राजन् स वै अद्यतनात् परतः पञ्चमे अहनि स्वं कलेवरं हास्यति तच्च भस्मीभविष्यति ।।५६।।

**अनुवाद**— राजन् उन्होंने अपने समस्त कर्मों का परित्याग कर दिया है, आप उनके कार्य में विघ्न न बनें । निश्चित रूप से आज के पाँचवें दिन वे अपने शरीर का परित्याग कर देंगे और उनका वह शरीर भस्म हो जायेगा ।।५६।।

**भावार्थ दीपिका**

तथाभूतमप्यानेतुमुद्यतं प्रत्याह-तस्येति । अन्तरायो विघ्नः । मैवाभूरित्यडागमश्छान्दसः । दर्शनमपि तावत्कुर्यामित्युद्यतं। प्रत्याह । स वै अद्यतनादह्नः परत उत्तरत्र । स्वं स्वाधीनम् । तर्हि तद्दाहार्थं गमिष्यामि नेत्याह-तच्चेति ।।५६।।

**भाव प्रकाशिका**

उस तरह के भी धृतराष्ट्र को लाने के लिए उद्यत युधिष्ठिर को उन्होंने कहा आप उनके कार्यों में विघ्न न करें । अभूः में अट् का आगम वैदिक प्रयोग है । राजा ने कहा कि उनका मैं दर्शन ही कर लूँ तो उनसे नारदजी ने कहा वे आज के बाद पाँचवें दिन अपने अधीन शरीर का परित्याग कर देंगे । यदि कहो कि उस शरीर को जलाने के लिए मैं जाऊँ तो ऐसी भी बात नहीं है । उनका वह शरीर अपने आप जल जायेगा ।।५६।।

**दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे । बहिःस्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनुवेक्ष्यति ।।५७।।**

**अन्वयः**— सहोटजे पत्युः देहे अग्निभिः दह्यमाने बहिः स्थिता साध्वी पत्नी तम् अग्निम् पतिम् अनुवेक्ष्यति ।।५७।।

**अनुवाद**— झोपड़ी के साथ पति के देह को अग्नि के द्वारा जलते हुए देखकर झोपड़ी के बाहर बैठी हुयी उनकी साध्वी पत्नी पति के उसी अग्नि में प्रवेश कर जायेगी ।।५७।।

### भावार्थ दीपिका

तर्हि गान्धार्यानयनाय गमिष्यामि नेत्याह । पत्युर्देहे सहोटजे पर्णशालासहिते योगाग्निना सह गार्हपत्यादिभिर्दह्यमाने तस्य पत्नी बहिः स्थिता सती तं पतिमन्वग्निं वेक्ष्यति प्रवेक्ष्यति ।।५७।।

### भाव प्रकाशिका

यदि युधिष्ठिर कहें कि तो फिर मैं गान्धारी को लेकर आऊँगा । तो ऐसा भी नहीं करना चाहिए इस बात को **दह्यमाने० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । झोपड़ी के साथ पति के शरीर को योगाग्नि से जलते हुए देखकर झोपड़ी से बाहर बैठी हुयी उनकी सुशील पत्नी उसी अग्नि में अपने पति के साथ प्रवेश कर जायेगी ।।५७।।

**विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन । हर्षशोकयुतस्तस्माद्गन्ता तीर्थसिषेवकः ।।५८।।**

**अन्वयः**— हे कुरुनन्दन ! तदाश्चर्यं निशाम्य तीर्थसिषेवकः विदुरस्तु हर्षशोकयुतः तस्मात् गन्ता ।।५८।।

**अनुवाद**— हे कुरुनन्दन ! उस आश्चर्य को देखकर तीर्थों का सेवन करने के इच्छुक विदुर जी तो धृतराष्ट्र की मुक्ति हो जाने के कारण हर्ष से एवं उनकी मृत्यु हो जाने के कारण शोक से युक्त होकर वहाँ से चले जायेंगे ।।५८।।

### भावार्थ दीपिका

तर्हि विदुरानयनार्थं गन्तव्यमेव नेत्याह । विदुरस्तु तन्निशाम्य दृष्ट्वा भ्रातुः सुगत्या हर्षस्तन्मृत्युना शोकश्च ताभ्यां युक्तस्तस्मात्स्थानात्तीर्थानि सेवितुं गन्ता गमिष्यति ।।५८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि युधिष्ठिर कहें कि तो फिर विदुरजी को लाने के लिए मुझे जाना चाहिए तो वह भी ठीक नहीं; क्योंकि उस आश्चर्य को देखकर अपने भाई की सद्गति के कारण हर्ष से तथा उनकी मृत्यु के कारण शोक से युक्त विदुरजी उस स्थान से तीर्थों की सेवा करने के लिए चले जायेंगे ।।५९।।

**इत्युक्त्वाथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः । युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ।।५९।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

**अन्वयः**— इत्युक्त्वा अथ तुम्बुरुः सह नारदः स्वर्गं अरुहत् तस्य वचः हृदि कृत्वा युधिष्ठिरः शुचः अजहात् ।।५९।।

**अनुवाद**— इस तरह से कहने के पश्चात् नारदजी तुम्बुरु के साथ स्वर्ग लोक में चले गये । उनकी वाणी को हृदय में रखकर युधिष्ठिर ने शोक का परित्याग कर दिया ।।५९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।**

### भावार्थ दीपिका

शुचः शोकान् ।।५९।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।**

### भाव प्रकाशिका

मूल का शुचः पद शोक का बोधक है ।।५९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१३।।**

# चौदहवाँ अध्याय

## भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में युधिष्ठिर की अनेक प्रकार की शङ्का

सूत उवाच

**संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया। ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥१॥**
**व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः। ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥२॥**

**अन्वयः**— बन्धु द्विदृक्षया पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य विचेष्टितम् च ज्ञातुम् जिष्णौ द्वारकायां प्रस्थिते कतिचित् मासाः व्यतीताः तदा अर्जुनः नायात् कुरुद्वहः घोररूपाणि निमित्तानि ददर्श ॥१-२॥

**अनुवाद**— अपने बान्धवों को देखने की इच्छा से तथा पवित्र यश वाले भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टओं तथा अभिप्राय को जानने के लिए अर्जुन के द्वारका गये हुए कुछ महीने बीत गये, किन्तु वहाँ से अर्जुन नहीं आये और इधर राजा युधिष्ठिर भयङ्कर शकुनों को देखते थे ॥१-२॥

### भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे त्वरिष्टानि दृष्ट्वा राजा विशङ्कितः। अश्रृणोदर्जुनात्कृष्णतिरोधानमितीर्यते। कृष्णस्य चेति चकारेणाभिप्रायं च ज्ञातुम्। कतिचित्सप्त। तदा कालातिक्रमेऽपि ततो द्वारकातो नायात् नागतः। निमित्तान्युत्पातान्। कुरूद्वहो युधिष्ठिरः ॥१-२॥

### भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अपशकुनों को देखकर राजा अनेक प्रकार की शङ्का करने लगे थे। उसके पश्चात् उन्होंने अर्जुन के मुख से भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन की बात को सुना।

**कृष्णस्य च** के चकार के द्वारा अभिप्राय को ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् अर्जुन अपने बान्धवों को देखने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टाओं और अभिप्राय को जानने के लिए द्वारका गये थे। उनके द्वारका गये हुए सात महीने बीत गये थे किन्तु अर्जुन वहाँ से नहीं लौटे और इधर राजा युधिष्ठिर अनेक प्रकार के अपशङ्कुनों को देख रहे थे ॥१-२॥

**कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः। पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥३॥**
**जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम्। पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥४॥**
**(कन्याविक्रयिणं तातं सुतं पित्रोरपोषकम्। ब्राह्मणान्वेदविमुखान् शूद्रान्वै ब्रह्मवादिनः) ॥**
**निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम्। लोभाद्यधर्म प्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥५॥**

**अन्वयः**— विपर्यर्स्तुधर्मिणः कालस्य रौद्रां गतिं, क्रोध लोभानृतात्मनाम् नृणां पापीयसीं वार्ताम्, जिह्मप्रायं व्यवहृतम् शाठ्यमिश्रं च सौहृदम्, पितृ-मातृ-सुहृद-भ्रातृ-दम्पतीनां च कल्कनम्, कन्याविक्रयिणं तातम्, पित्रोः अपोषकम्, सुतम्, वेदविमुखान्, ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः वै शूद्रान्, अत्यरिष्टानि निमित्तानि काले अनुगते तु नृणाम् लोभाद्य धर्म प्रकृतिं दृष्ट्वा नृपः अनुजं उवाच ॥३-५॥

**अनुवाद**— जिसमें ऋतुओं के धर्म उलटा हो गये हैं ऐसे काल की भयङ्कर गति को, क्रोध, लोभ तथा मिथ्या भाषण करने वाले मनुष्यों की पापमयी जीविका को, कपटयुक्त व्यवहार को, ठगी युक्त मित्रता को, पिता, माता, भाई, मित्र, भाई तथा मित्रता को, पिता, माता, मित्र भाई तथा पति-पत्नी में होने वाल कलह आदि को, कन्या बेंचने वाले पिता को, माता-पिता का पोषण नहीं करने वाले पुत्र को, वेदाध्ययन पराङ्मुख ब्राह्मणों को, ब्रह्मवादी शूद्रों को, अत्यन्त अशुभ शकुनों को तथा काल का अनुसरण करने वाले मनुष्यों की लोभ आदि अधर्म से युक्त प्रकृति को देखकर राजा युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाई भीम से कहा ॥३-५॥

### भावार्थ दीपिका

रौद्रां घोराम् । तदेवाह । विपर्यस्ता ऋतुधर्मा यस्मिंस्तस्य । वार्तां जीविकाम् । क्रोधलोभानृतैर्युक्त आत्मा येषाम् । जिह्मप्रायं कपटबहुलम् । व्यहतं व्यवहारम् । शाठ्यं वञ्चनं सौहृदं सख्यम् । पित्रादीनां स्वप्रतियोगिभिः कल्कनं कलहादि । अत्यरिष्टान्यत्यन्तमशुभानि दृष्ट्वा । नृणां लोभाद्यधर्मप्रकृतिं च दृष्ट्वा । अनुजं भीमम् ।।३-५।।'

### भाव प्रकाशिका

अर्जुन के द्वाराका गये हुए बहुत दिन बीत गये थे, इधर महाराज युधिष्ठिर को अनेक प्रकार के अपशकुन दिखाई देने लग गये थे, अतएव वे चिन्तित से हो गये और अपने भाई भीम के आगे अधो वर्णित बातें कहने लगे । उस समय काल की गति भयङ्कर हो गयी थी जिस ऋतु में जो होना चाहिए उसके उलटा ही हो रहा था, लोग कपटमय व्यवहार करने लग गये थे, एक मित्र भी दूसरे मित्र को ठगता था । माता-पिता, भाई तथा पति-पत्नी आपस में कलह करने लगे थे । पिता, कन्या बेचने का काम करता था, पुत्र वृद्ध माता-पिता को त्याग देता था । ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ते थे और शूद्र ब्रह्मज्ञान की बातें करते थे । इस तरह अत्यन्त अशुभ शकुन होते थे । काल के प्रभाव के कारण लोगों की प्रकृति लोभ आदि अधर्मों से युक्त हो गयी थी । इन्हीं सारी बातों को देखकर युधिष्ठिर चिन्तित हो रहे थे ।।३-५।।

युधिष्ठिर उवाच

**संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया । ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम्।।६।।**
**गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः । नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ।।७।।**

**अन्वयः**— भीमसेन, तवानुजः जिष्णुः बन्धुदिदृक्षया पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ज्ञातुं द्वारकायां प्रेषितः अधुना सप्त मासाः गताः कस्य वा हेतोः नायाति अञ्जसा अहम् इदम् न वेद ।।६-७।।

### युधिष्ठिर ने कहा

**अनुवाद**— भीमसेन तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन को बान्धवों को देखने के लिए तथा पवित्र यश वाले भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टाओं को जानने के लिए मैंने द्वारका भेजा । अर्जुन के गये हुए सात महीने बीत गये और अभी तक अर्जुन नहीं आये । उनके नहीं आने का कारण क्या है, इस बात को मैं समझ नहीं पा रहा हूँ ।।६-७।।

**भावार्थ दीपिका**— वेति वितर्के कस्माद्धेतोर्नायातीत्यहं न वेद्मि ।।६-७।।

**भाव प्रकाशिका**— सातवें श्लोक का वा शब्द वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है । युधिष्ठिर ने कहा कि अर्जुन क्यों नहीं आ रहा है ? इस बात का मुझे पता नहीं चलता है ।।६-७।।

**अपि देवर्षिणा दिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः । यदात्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ।।८।।**

**अन्वयः**— अपि देवर्षिणा दिष्टः अयं सः कालः उपस्थितः यदा भगवान् आत्मनः आक्रीडम् अङ्गम् उत्सिसृक्षति ?।।८।।

**अनुवाद**— देवर्षि नारद के द्वारा उपदिष्ट वह काल आ गया है क्या ? जिस काल में श्रीभगवान् क्रीडा के साधन भूत अपने लीला विग्रह का परित्याग करना चाहते हैं ?।।८।।

### भावार्थ दीपिका

अपि किम् । यदा आत्मन आक्रीडं क्रीडासाधनमङ्गं मनुष्यनाट्यमुत्स्रष्टुमिच्छति स कालः प्राप्तः ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

अपि शब्द का अर्थ क्या है ? युधिष्ठिर भीम से पूछते है कि यह वही काल आ गया है क्या ? जिस समय श्रीभगवान् मनुष्य नाट्य के साधनभूत अपने लीलाविग्रह (शरीर) का त्याग करना चाहते हैं ?।।८।।

**यस्मान्नः संपदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ।**
**आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥९॥**

**अन्वयः**— यस्मात् नः संपदः, राज्यं, दाराः, प्राणाः, कुलं, प्रजाः, यदनुग्रहात् सपत्नविजयः, लोकाश्च आसन् ॥९॥

**अनुवाद**— उन्हीं श्रीभगवान् से हमलोगों को सम्पत्ति, राज्य, पत्नियाँ, प्राण, वंश और प्रजाएँ प्राप्त हुयीं तथा उनकी कृपा से ही हमलोगों को शत्रुओं पर विजय प्राप्त हुयी एवं हमारा लोकों पर अधिकार प्राप्त हुआ ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

अस्माकं सर्वपुरुषार्थत्वे हेतुः श्रीकृष्णोऽतस्तद्वियोगं विनाऽनिष्टं न स्यादित्याशयेनाह । यस्मात् श्रीकृष्णाद्धेतोः । एतच्चोपरिष्टादर्जुनः स्पष्टीकरिष्यति । लोकाश्च यज्ञकरणानुरूपा यस्यानुग्रहात् ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

हमलोगों के समस्त पुरुषार्थों की प्राप्ति के एक मात्र साधन भगवान् श्रीकृष्ण हैं अतएव उनके वियोग के बिना हमलोगों के अनिष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती है । भगवान् श्रीकृष्ण ने ही हमलोगों को सम्पत्ति तथा राज्य आदि को प्राप्त कराया है । इन सारी बातों को अर्जुन स्पष्ट करेंगे । हमलोगों ने जैसा यज्ञ किया है हमलोगों ने उसके अनुकूल ही लोकों की प्राप्ति हुयी हैं ॥९॥

**पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान्भौमान्सदैहिकान् । दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे नरव्याघ्र नः बुद्धि मोहनम् अदूराद भयं शंसतः दारुणान् दिव्यान्, भौमान् सदैहिकान् उत्पातान् पश्य ॥१०॥

**अनुवाद**— हे मनुष्यों में महाबलवान् हमलोगों की बुद्धि को मोहित करने वाले सन्निकट भविष्य में सम्भव भय को सूचित करने वाले भयङ्कर आकाश से होने वाले उल्कापात इत्यादि, भूमि से होने वाले भूकम्प इत्यादि और शरीर में होने वाले रोग इत्यादि उत्पातों को देखो ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

अदूरात्संनिहितम् । नोऽस्माकम् । आशंसत उत्पातान् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

ये जो दिव्य, भौम तथा शारीरिक उत्पात होते हैं उन सबों से तात होता है कि निकट भविश्य में कोई भयङ्कर भय हमलोगों के समक्ष उपस्थित होने वाला है ॥१०॥

**ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः । वेपथुश्चापि हृदय आराद्दास्यन्ति विप्रियम् ॥११॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग मह्यम् ऊर्वक्षिबाहवः पुनः पुनः स्फुरन्ति । हृदये वेपयुश्च अरात् विप्रियं दास्यन्ति ॥११॥

**अनुवाद**— हे अङ्ग ! मेरी जङ्घायें, नेत्र तथा भुजाएँ बार-बार फड़क रहे है । मेरे हृदय में कँप हो रहा है उससे लगता है कि सन्निकट भविष्य में मेरा कोई अनिष्ट होने वाला है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

दैहिकानाह- ऊर्विति । ऊर्वादयो वामाः स्फुरन्ति । वेपथुः कम्पश्च हृदये वर्तते । एते मह्यमारात्सन्निहितं विप्रियं दास्यन्ति ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

शारीरिक उत्पातों को बतलाते हुए युधिष्ठिर कहते है ऊर्वक्षि बाहवः इत्यादि उन्होंने बतलाया है कि मेरी जङ्घायें, नेत्र और भुजाएँ बार-बार फड़क रही है तथा रह-रहकर हृदय काँपने लगता है इससे सूचित हो

रहा है कि सन्निकट भविष्य में हमलोगों पर कोई भयङ्कर विपत्ति आने वाली हैं । **आरात्** शब्द सन्निकटस्थ का बोधक है ।।११।।

**शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना । मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरौति ह्यभीरुवत् ।।१२।।**

**अन्वयः**— एषा अनलानना, शिवा उद्यन्तम् आदित्यम् अभिरौति, हे अङ्ग ! अयम् सारमेयः माम् अभीरुवत् अभिरौप्ति।।१२।।

**अनुवाद**— जिसके मुख से आग निकल रही है, ऐसी यह स्यारिन न उगते हुए सूर्य की ओर मुख करके रो रही है । हे भाई ! यह कुत्ता मेरी ही ओर मुख करके निडर होकर चिल्ला रहा है ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

भौमानाह सार्धैस्त्रिभिः । शिवा क्रोष्ट्री उद्यन्तं आदित्यभिरौत्युद्यत्सूर्याभिमुखं क्रोशति । अनलानना अग्निं मुखेन वमन्ती। अङ्ग हे भीम । मामभिलक्ष्य सारमेयः श्वाऽभिरौति प्लुतं भषति । अभीरुवन्नि शङ्कम् ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

इन साढ़े तीन श्लोकों में महाराज युधिष्ठिर पृथिवी पर होने वाले उत्पातों को बतलाते हैं— स्यारिन का रोना अत्यन्त अमङ्गलमय होता है, उसमें भी सूर्योदय के समय में जिसके मुख से आग निकल रही हो ऐसी स्यारिन का सूर्य की ओर मुख करके रोना तो महाअमङ्गलमय होता है । किन्तु यह अग्नि को उगलती हुयी स्यारिन् सूर्य की ओर मुख करके रोती है यह कुत्ता भी मेरी ओर मुख करके निडर होकर रो रहा है । यह भी अमङ्गल का सूचक हैं ।।१२।।

**शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे । वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ।।१३।।**

**अन्वयः**— शस्ताः मां सव्यं कुर्वन्ति अपरे पशवः दक्षिणम् हे पुरुषव्याघ्र मम वाहांश्च रुदतः लक्षये ।।१३।।

**अनुवाद**— हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! गौ आदि पशु मुझको बायीं ओर करके जाते हैं और दूसरे बूरे पशु मुझे दाहिनी ओर करके जाते हैं । मैं देखता हूँ कि मेरे घोड़े आदि वाहन रो रहे हैं ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

शस्ता गवादयो मां सव्यं वामं कुर्वन्ति अपरे गर्दभाद्याः प्रदक्षिणं कुर्वन्ति । वाहानश्वान् ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

ये गौ आदि मङ्गलमय पशु मुझको बायीं ओर करके जाते है और गधे इत्यादि बुरे पशु मुझको दाहिनी ओर करके जाते हैं, यह दोनों ही अपशकुन है बाहनों का रोना भी अमङ्गलमय ही माना जाता है ।।१३।।

**मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन्मनः । प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रो शून्यमिच्छतः ।।१४।।**

**अन्वयः**— अयम् कपोतः मृत्युदूतः मनः कम्पयन् उलूकः पत्युलूकश्च अनिद्रौ कुह्वानैः शून्यम् इच्छतः ।।१४।।

**अनुवाद**— यह कबूत्तर मृत्यु का दूत है । मन को कँपा देने वाला उल्लू और उसका विरोधी कौआ ये दोनों रात को नहीं सोकर कठोर वाणी को बोलते हैं ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**

अयं कपोतो मृत्युदूतो मृत्युसूचकः । उलूको घूकः । प्रत्युलूकस्तत्प्रतिपक्षो घूकः काको वा । कुह्वानै कुत्सितशब्दैर्विश्वं शून्यं कर्तुमिच्छतः ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

यह कबूतर तो मृत्यु की सूचना दे रहा है । उल्लू और उसके विरोधी कौआ ये दोनों ही रात्रि को नहीं सोते हैं । कठोर वाणी बोलते रहते हैं । इससे भी मेरा मन काँपता है, क्योंकि ये सबके सब अपशकुन हैं ॥१४॥

**धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः । निर्घातश्च महानासीत्साकं च स्तनयित्नुभिः ॥१५॥**

**अन्वयः**— धूम्रा दिशः परिधयः अद्रिभिः सह भूः कम्पते । स्तनयित्नुभिः साकं महान् निर्घातश्च आसीत् ॥१५॥

**अनुवाद**— दिशायें धुंधली हो गयी हैं, सूर्य और चन्द्रमा के चारो ओर बार-बार मेडर बैठता है । पर्वतों के साथ पृथिवी काँपती है । बिना मेघ के ही बिजली गिरती है और जोर से गर्जना भी होती है ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

धूम्रा धूसरा दिशः परिधयोऽग्निमिव लोकमावृण्वन्ति । दिव्यानाह सार्धाभ्याम् । निर्घातो निरभ्रवज्रपातः । स्तनयित्नवोऽत्र गर्जितानि तैः सह ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में भौम उत्पातों का वर्णन है तथा उत्तरार्द्ध में दिव्य उत्पातों का वर्णन है । दिशाओं का धूसर होना, पर्वतो तथा पृथिवी का काँपना ये सब पार्थिव उत्पात हैं । सूर्य चन्द्रमा के चारो ओर बार-बार मेंडर का बैठना भी अमङ्गल है । आकाश में बिना मेघ के बिजली का चमकना और गर्जना भी अमङ्गल है । ये सभी हो रहे हैं ॥१५॥

**वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः । असृग्वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥१६॥**

**अन्वयः**— रजसा तमः विसृजन् खर स्पर्शः वायुः वाति जलदा सर्वतः बीभत्सम् इव असृक् वर्षन्ति ॥१६॥

**अनुवाद**— धूलि से अन्धकार बनाने वाली रुक्ष वायु चल रही है और चारो ओर मेघ डरावना दृश्य उपस्थित करके रक्त की वर्षा करते हैं ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

तमो विशेषेण सृजन् । असृग्रक्तम् ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

दिव्य उत्पातों का ही वर्णन करते हुए महाराज युधिष्ठिर कहते हैं कि धूल भरी आँधी चल रही है, इससे अन्धकार हो जाता है मेघ से रक्त की वर्षा होती है जो कि भयावह दृश्य है ॥१६॥

**सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि । ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥१७॥**

**अन्वयः**— हतप्रभं सूर्यं पश्य दिवि मिथः ग्रहमर्दं भवति, ससंकुलैः भूतगणैः रोदसी ज्वलिते इव ॥१७॥

**अनुवाद**— देखो सूर्य का प्रकाश मन्द हो गया है, आकाश में परस्पर में ग्रह एक दूसरे से टकरा जा रहे हैं । शङ्करजी के गण भूतों से भरी भीड़ में पृथिवी आकाश में जैसे आग लगी हो ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

ग्रहाणां मर्दं युद्धम् । भूता रुद्रानुचरास्तेषां गणैः सङ्कुलैर्व्यामिश्रैः प्राणिभिः सहितैः । रोदसी द्यावापृथिव्यौ ज्वलिते प्रदीप्ते इव च पश्येति ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

आकाश में ग्रहों का जैसे युद्ध हो रहा हो । सूर्य की ज्योति मन्द सी पड़ गयी है । भूतों से भरी भीड़ में पृथिवी और आकाश में जैसे आग लगी हो । ये सभी आकाश में होने वाले अमङ्गलमय अपशकुन हैं ॥१७॥

**नद्योनदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च । न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥१८॥**

**अन्वयः**— नद्यः नदाः क्षुभिताः सरांसि मनांसि (च क्षुभितानि) अग्निः आज्येन न ज्वलति अयं कालः किं विधास्यति इति न जाने ॥१८॥

**अनुवाद**— नदियाँ, नद, सरोवर और लोगों के मन क्षुब्ध हो गये हैं । अग्नि घी से नहीं जल रही है । यह काल न जाने क्या करने वाला है ?॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

पुनर्भौमानाह-नद्य इति सार्धैस्त्रिभिः । प्राणिनां मनांसि च ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

**नद्य० इत्यादि** साढ़े तीन श्लोकों से फिर भौतिक उत्पातों का वर्णन करते हैं । नदियाँ, नदों, सरोवरों और मन में क्षोभ उत्पन्न हो गया है । इस समय घी डालने पर अग्नि नहीं प्रज्वलित हो रही है । न जाने कौन सा अमङ्गल यह काल दिखलायेगा ?॥१८॥

**न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः । रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१९॥**

**अन्वयः**— वत्साः न पिबन्ति, मातरः च न दुह्यन्ति, गावः अश्रुमुखाः रुदन्ति, ऋषभाः व्रजे न हृष्यन्ति ॥१९॥

**अनुवाद**— बछड़े अपनी माताओं का दूध नहीं पीते हैं, गौएँ दूहने नहीं देती हैं । गौओं की आँखों से आँसू निकल रही है और गोशालाओं में बैल उदास रहते हैं ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

दुह्यन्तीति कर्मकर्तर्यार्षम् । न प्रस्नुवन्तीत्यर्थः ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

दुह्यन्ति यह कर्मकर्ता में यह आर्ष प्रयोग । बछड़ों का दूध न पीना गौओं का दूहने नहीं देना, गौओं की आँखों से आँसू निकलना और बैलों का उदास रहना ये सबके-सब अमङ्गल के सूचक हैं ॥१९॥

**दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च । इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥**
**भ्रष्टश्रियो निरानन्दा किमघं दर्शयन्ति नः ॥२०॥**

**अन्वयः**— दैवतानि रुदन्ति इव स्विद्यन्ति हि उच्चलन्ति च, इमे जनपदाः ग्रामः पुरोद्यानाकराश्रमाः भ्रष्टश्रियः निरानन्दाः नः किम् अघं दर्शयन्ति ?॥२०॥

**अनुवाद**— ये देवमूर्तियाँ जैसे रो रही हैं, इनसे पसीना निकलता हैं तथा ये हिलने लग जाती हैं । ये देश, ग्राम, नगर, उद्यान, खदान और आश्रम श्रीहीन हो गये हैं और आनन्द रहित हो गये हैं । न जाने ये हमारे किस दुःख की सूचना देती हैं ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

दैवतानि प्रतिमाः । अघं दुःखम् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

दैवत शब्द देव मूर्तियों का बोधक है और अघ शब्द दुःख का बोधक है । मूर्तियों का रोना, उनसे पसीना निकलना इत्यादि जो कुछ भी इस श्लोक में वर्णित है वह सबके सब भावी दुःख के सूचक हैं ॥२०॥

**एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः । अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥२१॥**

**अन्वयः**— एतैः महोत्पातैः मन्ये नूनं हतसौभगा भूः अनन्यपुरुषश्रीभिः भगवतः पदैः हीना ॥२१॥

**अनुवाद**— इन महा उत्पातों को देखकर मुझे तो लगता है कि जिसका सौभाग्य विनष्ट हो गया है ऐसी यह पृथिवी निश्चित रूप से दूसरे के चरणों में नहीं पाये जाने वाले वज्र, अङ्कुश आदि चिह्नों से चिह्नित श्रीभगवान् के चरण चिह्नों से रहित हो गयी है ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

एतैर्महोत्पातैः कृत्वा । न विद्यतेऽन्येषु पुरुषेषु श्रीर्वज्राङ्कुशादिशोभा येषां तैर्भगवतः पदैर्हीना भूरित्यहं मन्ये ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

अनन्य पुरुषश्रीभिः का विग्रह है, **न विद्यते अन्येषु पुरुषेषु श्रीः वज्राङ्कुशादिशोभा येषां तैः** अर्थात् दूसरे पुरुषों के चरणों में नहीं पाये जाने वाली व्रज अङ्कुश आदि की शोभा से युक्त । श्रीभगवान् के चरण चिह्नों से यह हतभाग्य भूमि रहित हो गयी है ॥२१॥

**इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा । राज्ञः प्रत्यागमद्ब्रह्मन्यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥२२॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! दृष्टारिष्टेन चेतसा तस्य राज्ञः इति चिन्तयतः यदुपुर्याः कपिध्वजः प्रत्यागात् ॥२२॥

**अनुवाद**— हे शौनकजी ! अपशकुनों के देखने के कारण इस तरह से जब राजा युधिष्ठिर चिन्तन कर ही रहे थे उसी समय द्वारका से अर्जुन आ गये ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्य राज्ञ इत्येवं दृष्टान्यरिष्टानि येन तेन चेतसा चिन्तयतः सतः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

अपशकुनों को देखने के कारण राजा उपर्युक्त प्रकार से जब चिन्ता ही कर रहे थे उसी समय द्वारका से अर्जुन आ गये ॥२२॥

**तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् । अधोवदनमब्बिन्दून्मुञ्चन्तं नयनाब्जयोः ॥२३॥**
**विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः । पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— पादयोः निपतितम् अयथापूर्वं आतुरम् अधोवदनम्, नयनाब्जयोः अब्बिन्दून मुञ्चतम्, विच्छायम्, अनुजम् विलोक्य नृपः नारदेरितम् संस्मरन् सुहृन्मध्ये पृच्छति स्म ॥२३-२४॥

**अनुवाद**— आते ही अर्जुन युधिष्ठिर के चरणों पर गिर पड़े । वे उस समय इतना आतुर थे कि जितना वे कभी भी पहले अतुर नहीं हुए थे, वे नीचे मुँह किए हुए थे तथा उनके कमलवत् नेत्रों से आँसू बह रहा था। उनका हृदय उद्विग्न था, वे शोभा विहीन लगते थे । इस प्रकार के अपने छोटे भाई अर्जुन को देखकर राजा युधिष्ठिर को नारदजी की कही हुयी बातें याद आ गयीं । उन सबों को स्मरण करते हुए वे अपने सुहृदों के बीच में ही अर्जुन से पूछे ॥२३-२४॥

**भावार्थ दीपिका**

अयथापूर्वं निपतितम् । तदेवाह- आतुरमित्यादि । अपां बिन्दनश्रूणि नेत्राभ्यां विसृजन्तमित्यर्थः । उद्विग्नं कम्पितं हृदयं यस्य सः । विच्छायं विगतकान्तिम् ॥२३-२४॥

### भाव प्रकाशिका

अर्जुन आकर राजा युधिष्ठिर के चरणों पर उस तरह से गिर पड़े जिस तरह वे पहले कभी नहीं उनके चरणों पर गिरे थे। अर्जुन की आतुरता भी अभूतपूर्व थी। उनकी आँखों से आँसू निकल रहे थे। उनका हृदय काँप रहा था तथा उनकी कान्ति भी समाप्त हो गयी थी ॥२३-२४॥

युधिष्ठिर उवाच

**कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते। मर्धुभोजदशार्हार्हाः सात्वतान्धकवृष्णयः ॥२५॥**

**अन्वयः**— क्वचित् आनर्तपुर्यां नः स्वजनाः मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सात्त्वत, अन्धक तथा वृष्णय सुखमासते ?॥२५॥

**अनुवाद**— द्वारका पुरी में हमारे बान्धव, मधु भोज, दर्शाह, अर्ह सात्त्वत अन्धक तथा वृष्णिवंशी सुख पूर्वक हैं न ?॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

स्वजना बान्धवाः ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

श्लोक का स्वजन शब्द बान्धवों का बोधक है। युधिष्ठिर ने बतलाया कि द्वारकापुरी में रहने वाले, मधुवंशी, भोजवंशी, दशार्हवंशी, अर्हवंशी, सात्त्वतवंशी, अन्धकवंशी तथा वृष्णिवंशी हमारे बान्धव हैं। वे सब कुशल पूर्वक हैं न ॥२५॥

**शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्त वाथ मारिषः। मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥२६॥**

**अन्वयः**— मारिषः मातामहः शूरः कच्चित् स्वस्ति आस्ते ? कच्चित् सानुजः मातुलः आनकदुन्दुभिः कुशली आस्ते ?॥२६॥

**अनुवाद**— समादरणीय हमारे नाना शूरसेनजी प्रसन्न हैं न ? हमारे मामा वसुदेवजी अपने अनुज के साथ कुशल पूर्वक हैं न ? ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

किं वक्ष्यतीति शङ्कया व्यवहितक्रमेण पृच्छति- शूर इत्यादिना। मारिषो मान्यो मातामहः शूरो नाम यादवः कुन्त्याः पिता। आनकदुन्दुभिर्वसुदेवः ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

अर्जुन न जाने क्या उत्तर देंगे इस शङ्का से राजा युधिष्ठिर बिना किसी क्रम के ही उनसे **शूरइत्यादि** श्लोक से पूछ रहे हैं। समादरणीय शूरसेन जो यदुवंशी हैं वे कुन्ती के पिता हैं और युधिष्ठिर के नाना हैं। वसुदेवजी का एक नाम आनकदुन्दुभि है। वे युधिष्ठिर के मामा है उन दोनों के कुशल के विषय में युधिष्ठिर ने पूछा ॥२६॥

**सप्त स्वसारस्तत्पत्नयो मातुलान्यः सहात्मजाः। आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— देवकीप्रमुखाः सप्तस्वसारः तत्पत्न्यः, मातुलान्यः सहात्मजाः सस्नुषाः स्वयं क्षमं आसते :॥२७॥

**अनुवाद**— देवकी आदि सात बहनें जो उनकी पत्नियाँ हैं और हमारी मातुलानियाँ हैं वे अपने पुत्रों तथा बहुओं के साथ कुशल पूर्वक हैं न?॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

स्वसारः परस्परम्। वसुदेवक्षेमेण तासामपि क्षेमं पृष्टमेव, तथापि पृथक् पृच्छति-स्वयमिति ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

आपस में बहन लगने वाली देवकी इत्यादि जो उनकी सात पत्नियाँ हैं, वे सब भी सुखपूवक हैं न ? यद्यपि वसुदेवजी के कल्याण पूछने से ही उन सबों का कल्याण पूछ लिया गया फिर भी अलग से युधिष्ठिर ने उन सबों का कल्याण पूछा यह **स्वयम्** इस पद से पता चलता हैं ॥२७॥

**कच्चिद्राजाहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः । हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ॥२८॥**

**अन्वयः**— असत्पुत्रः अहुकः अस्य अनुजः । च जीवति कच्चित् हृदीकः ससुतः अक्रूरः जयन्तगदसारणाः ।।२८।।

**अनुवाद**— असत् पुत्र वाले आहुक (उग्रसेन) उनके छोटे भाई हृदीक, जयन्त, गद तथा सारण और अपने पुत्रों के साथ अक्रूरजी जीवित हैं न ?॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

आहुक उग्रसेनः । असन् पुत्रो यस्य । अतएव जीवमात्रमेव पृष्टम् । अनुजश्च देवकः । हृदीकः सुतः कृतवर्मा । जयन्तादयः कृष्णभ्रातरः ।।२८।।

**भाव प्रकाशिका**

जिनका पुत्र कंस दुष्ट था वे आहुक (उग्रसेन) जीवित हैं न ? उग्रसेन के जीवन के ही विषय में पूछा गया है । उनके छोटे भाई देवक कृतवर्मा, ये सभी तथा कृष्ण के भाई जयन्त गद और सारण कुशल से हैं न ?॥२८॥

**आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः । कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान्सात्वतां प्रभुः ॥२९॥**

**अन्वयः**— ये कच्चित् शत्रुजिदादयः कुशलं आसते ? कच्चित् सात्त्वतां प्रभुः रामः सुखं आस्ते ।

**अनुवाद**— जो शत्रुजित् इत्यादि हैं वे सभी कुशल पूर्वक हैं न ? सात्त्वत् वंशियों के स्वामी बलरामजी सुख पूर्वक हैं न ?॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२९।।

**भाव प्रकाशिका**— यहाँ पर बलरामजी को ही राम कहा गया है ॥२९॥

**प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः । गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥३०॥**

**अन्वयः**— वृष्णीनां महारथः प्रद्युम्नः सुखम् आस्ते ? उत गम्भीररयः भगवान अनिरुद्धः वर्धते ।।३०।।

**अनुवाद**— वृष्णिवंशियों में महारथी प्रद्युम्नजी सुख पूर्वक तो हैं ? अथवा युद्ध करने में महावेग सम्पन्न भगवान् अनिरुद्ध समृद्धि सम्पन्न हैं न ?॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्ववृष्णीनां मध्ये महारथः । गम्भीररयो युद्धे महावेगः वर्धते मोदत इत्यर्थः ।।३०।।

**भाव प्रकाशिका**

सभी यदुवंशियों में महारथी प्रद्युम्नजी है, और युद्ध करने में अत्यधिक वेग सम्पन्न अनिरुद्ध जी हैं । ये लोग तो कुशल से हैं न ॥३०॥

**सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः । अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥३१॥**

**अन्वयः**— सुषेणः चारुदेष्णः जाम्बवती सुतः साम्बः अन्ये कार्ष्णिप्रवराः ऋषभादयः स पुत्राः कुशलाः सन्ति न ?।।३१।।

**अनुवाद**— सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवती के पुत्र साम्ब तथा दूसरे भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र ऋषभ इत्यादि अपने पुत्रों के साथ सकुशल हैं न ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

कृष्णस्यापत्यानि कार्ष्णयस्तेषु प्रवराः ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

**कृष्णस्य अपत्यानि तेषां प्रवराः** यह कार्ष्णिप्रवराः पद का विग्रह है । इसका अर्थ है कि भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्रों में श्रेष्ठ ऋषभ इत्यादि अपने पुत्रों के साथ सकुशल हैं न ?॥३१॥

**तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः । सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥३२॥**
**अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः । अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ॥३३॥**

**अन्वयः**— तथैव शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः अनुचरा ये च सुनन्दनन्दशीर्षण्याः अन्ये सात्वतर्षभाः रामकृष्णभुजाश्रयाः अपि स्वस्ति आसते । बद्धसौहृदाः अस्माकं कुशलं अपि स्मरन्ति ॥३२-३३॥

**अनुवाद**— तथा भगवान् श्रीकृष्ण के श्रुतदेव उद्धव इत्यादि जो अनुचर हैं, जिनमें सुनन्द और नन्द प्रमुख हैं ऐसे यदुवंशियों में श्रेष्ठ पुरुष हैं जो भगवान् राम कृष्ण की भुजाओं की छत्र-छाया में रहने वाले हैं वे सभी कुशल पूर्वक हैं न ? क्या सुदृढ सौहार्द सम्पन्न वे हमलोगों की कुशलता का स्मरण भी करते हैं ॥३२-३३॥

**भावार्थ दीपिका**

सुनन्दनन्दौ शीर्षण्यौ मुख्यौ येषां ते ॥३२-३३॥

**भाव प्रकाशिका**

इन दोनों श्लोकों में राजा युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण के अनुचरों तथा भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं की छत्र-छाया में रहने वाले यदुवंशियों के विषय में अर्जुन से पूछा है । उन्होंने यह भी पूछा है कि क्या वे लोग हमलोगों का भी कभी स्मरण करते हैं ?॥३२-३३॥

**भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः । कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥३४॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मण्यः भक्तवत्सलः भगवान् गोविन्दः अपि पुरे सुधर्मायां सुहृद्वृतः कच्चित सुखम् आस्ते ॥३४॥

**अनुवाद**— ब्राह्मणभक्त भक्तवत्सल भगवान् गोविन्द भी अपनी नगरी द्वारका की सुधर्मा सभा में अपने सुहृदों के साथ सुखपूर्वक हैं क्या ?॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

भगवति सुखमास्त इति प्रश्नस्यानौचित्यमाशङ्क्याह- पुर इत्यादि ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् के विषय में वे सुख पूर्वक हैं न ? इस तरह से किए जाने वाले प्रश्न को अनुचित समझकर राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि अपनी नगरी की सुधर्मा सभा में वे सुखपूर्वक हैं न ?॥३४॥

**मङ्गलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च । आस्ते युदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान्॥३५॥**
**यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः। क्रीडन्ति परमानन्द महापौरुषिका इव ॥३६॥**

**अन्वयः**— लोकानाम् मङ्गलय क्षेमायच भवायच अनन्तसखः आद्यः पुमान् यदुकुलाम्मोधौ आस्ते । यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपूर्याम् महापौरुषिका इव अर्चिताः यादवाः परमानन्दं कीडन्ति ॥३५-३६॥

**अनुवाद**— सम्पूर्ण जगत् का मङ्गल करने के लिए, पालन करने के लिए, तथा उद्भव करने के लिए बलरामजी के साथ आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण यदुवंश रूपी क्षीरार्णव में निवास कर रहे हैं न। उनके ही बाहुबल से संरक्षित द्वारकापुरी में सबों से पूजित यदुवंशी, महापुरुष भगवान् विष्णु के पार्षदों के समान परमानन्द को प्राप्त करके क्रीडा करते हैं ॥३५-३६॥

### भावार्थ दीपिका

भगवतोऽत्रावस्थाने हि लोकानां मङ्गलं नान्यथेत्याशयेनाह चतुर्भिः । मङ्गलाय शुभाय । क्षेमाय लब्धपालनाय । भवायोद्भवाय । अनन्तसखो बलभद्रसहायः । अर्चिताः सर्वैः पूजिताः । परमानन्दं यथा भवति तथा । महापुरुषो विष्णुस्तदीया महापौरुषिका वैकुण्ठनाथानुचरा इव ॥३५-३६॥

### भाव प्रकाशिका

जब तक भगवान् इस लोक में हैं तब तक ही जगत् का मङ्गल हो रहा है, अन्यथा नहीं हो सकता है, इसी अभिप्राय से वे चार श्लोकों को कहते है । **मङ्गलाय** का अर्थ मङ्गल के लिए है । लब्ध वस्तु का पालन करने के क्षेम कहते है । उद्भव (उत्पत्ति) को ही भव कहते हैं । अनन्त सखः का अर्थ है बलभद्रजी के साथ । अर्चिताः का अर्थ है सबों से पूजित । परमानन्द का अर्थ है महानन्द सम्पन्न । महापुरुष भगवान् विष्णु हैं उनके पार्षदों को महापौरुषिक कहते हैं । शेष अर्थ अनुवाद के ही समान है ॥३५-३६॥

**यत्पादशुश्रूषणमुख्य कर्मणा सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ।**
**निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥३७॥**

**अन्वयः**— यत्पादशुश्रूषणमुख्य कर्मणा सत्यादयः द्व्यष्टसहस्रयोषितः संख्ये त्रिदशान् निर्जित्य वज्रायुधवल्लभोचिताः तदाशिषः हरन्ति ॥३७॥

**अनुवाद**— उन श्रीभगवान् के चरणों की सेवा रूपी मुख्य कर्म के द्वारा ही सत्यभामा इत्यादि सोलह हजार श्रीभगवान् की पत्नियाँ युद्ध में इन्द्रादि देवताओं को परास्त करके इन्द्रकी पत्नी शची के ही उपभोग के योग्य तथा उनके अभीष्ट देवभोग योग्य पारिजात आदि का उपभोग करती हैं ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

यस्य पादशुश्रूषणमेव मुख्यं तपआदिभ्यः श्रेष्ठं यत्कर्म तेन । सत्यभामादयः संख्ये युद्धे श्रीकृष्णबलेन त्रिदशान्देवान्निर्जित्य। तदाशिषो देवभोग्यान्पारिजातादीन् । वज्रायुधस्य बल्लभा शची तस्य उचिताः ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरणों की सेवा तपस्या आदि कर्मों से श्रेष्ठ है । उसी के द्वारा सत्यभामा आदि रानियाँ, युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा देवताओं को परास्त करके देवताओं के ही द्वारा उपयोग किए जाने योग्य पारिजात इत्यादि जो इद्राणी के उपयोग के योग्य हैं, उनका उपभोग करती हैं ॥३७॥

**यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविना यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहूः ।**
**अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥३८॥**

**अन्वयः**— यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनः अकुतोभया हि यदुप्रवीराः, बलात् आहृताम् सुरसत्तमोचिताम् सुधर्मां अंघ्रिभिः मुहुः अधिक्रामन्ति ॥३८॥

**अनुवाद**— जिन भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं के प्रभाव को अपना उपजीव्य बनाने वाले निर्भय यदुवंशी वीर बलपूर्वक जीतकर लयी गयी श्रेष्ठ देवताओं के लिए उचित सुधर्मा सभा में अपने पैरों को रख कर चलते हैं ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

यद्बाहुदण्डप्रभावोपजीविनः सुधर्मामङ्घ्रिभिरधिक्रामन्ति स गोविन्दः सुखमास्ते इति गतपञ्चमश्लोकेनान्वयः ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

जिन भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं के प्रभाव को अपना उपजीव्य बनाने वाले निर्भय यदुवंशी वीर देवताओं के लिए उचित सुधर्मा सभा को अपने पैरों से आक्रान्त करते हैं वे भगवान् गोविन्द सुख पूर्वक हैं न। इस तरह इसका सम्बन्ध पीछे के पाञ्चवें श्लोक से है ।।३८।।

**कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे । अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ।।३९।।**

**अन्वयः**— तात कच्चित् ते अनामयम् मे भ्रष्टतेजा विभासि । तात चिरोषितः अलब्धमानः किं वा अवज्ञातः ।।३९।।

**अनुवाद**— हे भाई यह बतलाओ तुम स्वयम् कुशल पूर्वक हो न मुझे तो तुम तेजोहीन से प्रतीत हो रहे हो। वहाँ बहुत दिन तक रहने के कारण तुम्हारा कोई सम्मान नहीं किया क्या ? अथवा किसी ने तुम्हारा अपमान किया है ?।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

इदानीं तस्यैव कुशलं पृच्छति । कच्चिदिति षड्भि; । अनामयमारोग्यम् । न लब्धो येन बन्धुभ्यः सकाशात् । किंवा तैः प्रत्युतावज्ञातस्तिरस्कृतः । यतश्चिरोषितो बहुकालं तत्र स्थितः ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

इस समय राजा युधिष्ठिर अर्जुन का ही कुशल **कच्चित्० इत्यादि** छह श्लोकों से पूछ रहे हैं। अनामय आरोग्य को कहते हैं। **अलब्धमानः** का विग्रह है। न लब्धो मानो येन बन्धुभ्यः सकाशात्। अर्थात् जिसका बान्धवों ने सम्मान नहीं किया है। अवज्ञात अर्थात् तिरस्कृत अर्थात् द्वारका में बहुत दिनों तक रहने के कारण किसी ने तुम्हारा सम्मान नहीं किया है क्या ? या किसी ने तुम्हारा तिरस्कार किया है ?।।३९।।

**कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः । न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ।।४०।।**

**अन्वयः**— कच्चित् अभावैः अमङ्गलै शब्दादिभिः अभिहतः, अर्थिभ्यः आशया यत् प्रतिश्रुतम् उक्तम् न दतम्।।४०।।

**अनुवाद**— किसी ने प्रेम शून्य अमङ्गल मय शब्दों आदि के द्वारा तुमको दुःखी बनाया है क्या, अथवा किसी याचक से याचना करने पर देने की प्रतिज्ञा करके उसको वह वस्तु नहीं दे सके हो ?।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

अभावैरिति छेदः । प्रेमशून्यैः । अमङ्गलैः परुषैः शब्दादिभिर्नाभिहतो न ताडितोऽसि किम् । यद्वा अर्थिभ्यः किमपि दास्यामीति नोक्तं किम् । यद्वा आशया सह यथा आशा भवति तथा दास्यामीति प्रतिश्रुतं यत्तन्न दत्तं किम् ।।४०।।

### भाव प्रकाशिका

**हतो भावैः** में अभावैः यह पदच्छेद करना चाहिए। अभावैः का अर्थ है प्रेम शून्य। अमङ्गल अर्थात् कठोर शब्दों के द्वारा तुम दुःखी तो नहीं बनाये गये हो न ? अथवा याचकों को तुमने कहा है कि नहीं दूँगा। अथवा मैं दूगा इस तरह से प्रतिज्ञा करके पुनः आशा युक्त होने पर उसे नहीं दे पाये क्या ?।।४०।।

**कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् । शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ।।४१।।**

**अन्वयः**— शरणप्रदः त्वं कच्चित् ब्राह्मणं, बालं, गाम्, वृद्धम् रोगिणम् स्त्रियं शरणोपसृतं सत्त्वं न अत्याक्षीः ।।४१।।

**अनुवाद**— तुम शरणागत रक्षक हो किन्तु तुमने किसी शरणागत ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी, स्त्री अथवा किसी दूसरे प्राणी का परित्याग तो नहीं कर दिए हो ?।।४१।।

### भावार्थ दीपिका

अन्यद्वा शरणागतं सत्त्वं प्राणिमात्रं न त्यक्तवानसि किम् । यतस्त्वं पूर्वं शरणप्रद आश्रयप्रदः ।।४१।।

### भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि पहले तो तुम शरणागत रक्षक थे, किन्तु किसी शरणागत प्राणी का तुमने परित्याग कर दिया है क्या ? जिसके कारण निस्तेज प्रतीत होते हो ?।।४१।।

**कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् । पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि।।४२।।**

**अन्वयः**— कच्चित्वं अगम्यां न अगमः ? गम्यां वा स्त्रियं असत्कृतां अगमः । अथवा पथिर्वात्वम् नोत्तमैः असमै वा पराजितः ।।४२।।

**अनुवाद**— तुमने किसी अगम्या स्त्री के साथ सङ्गम तो नहीं किया है ? अथवा किसी गम्या स्त्री से असत्कार पूर्वक गमन किया है या रास्ते में तुम किसी अपने बराबरी वाले से अथवा अपने से हीन बलवाले से पराजित तो नहीं हुए हो ?।।४२।।

### भावार्थ दीपिका

अगम्यामिति छेदः । निन्दितां स्त्रियं नागमः किं न गतवानसि । असत्कृतां मलिनवस्त्रादिना नागमः किम् । नोत्तमैरनुत्तमैः समैरित्यर्थः । असमैरधमैर्वा किं न पराजितोऽऽसीत्यर्थः ।।४२।।

### भाव प्रकाशिका

**नागमोगम्याम् में अगम्याम्** इस तरह पदच्छेद करना चाहिए । धर्मशास्त्र के अनुसार अगम्या स्त्री के साथ सङ्गम करना तथा गम्या स्त्री के साथ सङ्गम न करना या अनादर पूर्वक उसके साथ सङ्गम करना भी पाप है । युधिष्ठिर पूछ रहे हैं कि तुमने ऐसा तो नहीं किया है जिसके कारण भ्रष्ट तेज के समान प्रतीत हो रहे हो । या मार्ग में तुम किसी अपने समान बल वाले, अथवा हीन बलवाले से पराजित तो नहीं हो गये हो ।

मूल के **असत्कृताम्** का अर्थ यह है कि अनादर पूर्वक अथवा मलिन वस्त्र धारण करके गम्या स्त्री के साथ सङ्गम करना भी अनादर पूर्वक गमन है ।

**नोत्तमैः** पद का विग्रह है **न उत्तमैः अनुत्तमैः समैरित्यर्थः ।**

अपने समान बलवाले अथवा हीन बल वाले से पराजय भी तेजो राहित्य का कारण हो सकता है । ऐसा तो तुम्हारे साथ नहीं हुआ है न ?।।४२।।

**अपिस्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान् । जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ।।४३।।**

**अन्वयः**— अपिस्वित् त्वम् सम्भोज्यान् वृद्धबालकान् भुंक्थाः अथवा जुगुप्सितम् किञ्चित कर्म यदक्षमम् न कृतवान् ।।४३।।

**अनुवाद**— अथवा तुम वृद्धों तथा बालकों को भोजन कराये ही बिना भोजन तो नही कर लिए हो अथवा कोई अक्षम्य निन्दित कर्म तो नहीं किए हो ?।।४३।।

### भावार्थ दीपिका

संभोजनार्हान्वृद्धान्बालकांश्च किंस्वित्पर्यभुङ्क्थाः त्यक्त्वा भुक्तवानसि किम् । अक्षमं कर्तुमयोग्यं यत्तन्न कृतवानसि किम् ।।४३।।

### भाव प्रकाशिका

धर्मशास्त्र के अनुसार वृद्धों और बालकों को भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करना चाहिए । कहीं ऐसा

तो नहीं हुआ है कि तुम वृद्धों और बालकों को भोजन कराये बिना ही भोजन कर लिए हो । अथवा तुमने कोई अक्षम्य निन्दित कर्म तो नहीं कर लिया है, जिसके कारण इस तरह से तेजोभ्रष्ट हो गये हो ।।४३।।

**कच्चित्प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना । शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ।।४४।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

**अन्वयः**— कच्चित् अथ प्रेष्ठतमेन, हृदयेन आत्माबन्धुना रहितः सन् शून्यः अस्मि इति नित्यं मन्यसे अन्यथा ते रुक् न ?।।४४।।

**अनुवाद**— अथवा अपने प्रियतम, अभिन्न हृदय श्रीकृष्ण से मैं सदा के लिए रहित हो गया हूँ इस तरह से अपने को शून्य मान रहे हो, अन्यथा तुमको इतनी उदासी नहीं हो सकती थी ।।४४।।

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के युधिष्ठिरवितर्क नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।**

**भावार्थ दीपिका**

नित्यं सदा प्रेष्ठतमेन हृदयेनान्तरङ्गेण स्वबन्धुना श्रीकृष्णेन रहितः शून्योऽस्मीति मन्यसे । अन्यथा ते रुक् मनः पीडा न घटेत ।।४४।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमे स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।**

**भाव प्रकाशिका**

या मैं अपने प्रियतम तथा अन्तरङ्ग मित्र श्रीकृष्ण से रहित होने के कारण अब शून्य हो गया हूँ इस तरह से मानकर इतना उदास हो गया हो । अन्यथा तुमको इतनी उदासी नहीं हो सकती थी ।।४४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के चौदहवें अध्याय की भावार्थदीपिका नाम टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१४।।**

ॐ

# पन्द्रहवाँ अध्याय

## श्रीकृष्ण विरह व्याकुल पाण्डवों का परीक्षित् को राज्य देकर स्वर्गारोहरण करना

सूत उवाच

**एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽऽविकल्पितः । नानाशङ्कास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥१॥**

**अन्वयः**— एवं कृष्णसखः कृष्णविश्लेष कर्षितः कृष्णः भ्रात्रा राज्ञा नानाशङ्कास्पदं रूपम् आविकल्पितः ॥१॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण के मित्र तथा भगवान् श्रीकृष्ण के विश्लेषजन्य विरह व्यथा से दुःखी अर्जुन से उनके भाई राजा युधिष्ठिर ने अनेक प्रकार की शङ्काओं से ग्रस्त होने के कारण अनेक प्रश्नों को पूछा ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

कलिप्रवेशमालक्ष्य धुरं न्यस्य परीक्षिति । आरुरोह नृपः स्वर्गमिति पञ्चदशेऽब्रवीत् । कृष्णोऽर्जुनः आविकल्पित इति छेदः । नानाशङ्कास्पदं रूपमालक्ष्य विकल्पित इत्यर्थः । प्रतिभाषितुं नाशक्नोदित्युत्तरेणान्वयः । तत्र हेतवः– कृष्णाविश्लेषेण कर्शितः कृशः कृतः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

पृथिवी पर कलि के प्रवेश को देखकर राजा युधिष्ठिर परीक्षित् को राज्य का भार सौंप कर स्वर्गारोहरण कर गये, इस अर्थ का प्रतिपादन इस पन्द्रहवें अध्याय में किया गया है ।

श्लोकस्थ दूसरा कृष्ण शब्द अर्जुन का बोधक है । **राज्ञाऽऽविकल्पितः** में **आविकल्पितः** पदच्छेद है । राजा युधिष्ठिर ने अनेक प्रकार की शङ्काओं के योग्य अर्जुन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण के विरह की व्यथा से व्याकुल तथा भगवान् श्रीकृष्ण के मित्र अर्जुन से अनेक प्रकार के प्रश्नों को पूछा; किन्तु श्रीकृष्ण भगवान् के विरह के कारण कमजोर हो गये अर्जुन उसका उत्तर नहीं दे सकें ।।१।।

**शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः । विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ।।२।।**

**अन्वयः**— शोकेन शुष्यत् हृतसरोजः हतप्रभः तमेव विभुं अनुध्यायन् प्रतिभाषितुम् न अशक्नोत् ।।२।।

**अनुवाद**— शोक के कारण जिनका हृदय कमल और मुख सुख गया था, अतएव कान्ति विहीन अर्जुन, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का ही चिन्तन करते हुए राजा युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकें ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

शोकेन हेतुना । वदनं च हृच्च ते एव सरोजे । शुष्यती वदनहृत्सरोजे यस्य सः । हता प्रभा तेजो यस्य सः ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

शोक के कारण जिनके हृदय कमल तथा मुखकमल दोनों सूख गये थे, ऐसे अर्जुन निष्प्रभ हो गये थे । वे राजा युधिष्ठिर का उत्तर नहीं दे पाये ।

**वदनहृत्सरोजः** का विग्रह है **वदनं च हृच्च त एव सरोजे शुष्यती वदनहृत् सरोजे यस्य सः शुष्यत् वदनहृत्सरोजः हतप्रभः** का विग्रह है **हता प्रभा यस्य सः** ।।२।।

**कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनामृज्य नेत्रयोः। परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ।।३।।**
**सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन्। नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्‌गदया गिरा ।।४।।**

**अन्वयः**— कृच्छ्रेण शुचः संस्तभ्य पाणिना नेत्रयोः परामृज्य, परोक्षेण, विरहोत्कण्ठ्यकरतरः सन् सारथ्यादिषु सख्यं मैत्रीम् सौहृदम् च संस्मरन् वाष्पगद्‌गदया गिरा अग्रजम् नृपम् इत्याह ।।३-४।।

**अनुवाद**— बड़ी ही कठिनाई से अपने शोक को रोककर तथा हाथ से दोनों नेत्रों को पोंछकर । भगवान् श्रीकृष्ण के नहीं दिखायी पड़ने के कारण प्रेमजन्य उत्कण्ठा के बढ़ जाने के कारण कातर बने हुए अर्जुन सारथि आदि कर्मों में श्रीभगवान् की हितैषी की भावना, मित्रता तथा संबन्धित्व का स्मरण करते हुए अपने बड़े भाई तथा राजा युधिष्ठिर से रुँधे हुए गले से कहे ।।३-४।।

### भावार्थ दीपिका

शुचः शोकाश्रूणि यान्युद्गच्छन्ति तानि नेत्रयोरेव संस्तभ्य गलितानि च पाणिना आमृज्य परोक्षेण दर्शनागोचरेण श्रीकृष्णेन हेतुना समुन्नद्धमधिकं यत्प्रेमौत्कण्ठ्यं तेन कातरो व्याकुलः सन्नृपमित्याहेत्युत्तरेणान्वयः । सख्यं हितैषिताम् । मैत्रीमुपकारिताम्। सौहृदं सुहृत्त्वं चात् संबन्धितां च । वाष्पेण कण्ठावरोधाद्गद्गदया ।।३-४।।

### भाव प्रकाशिका

शोकजन्य जो आँसू आँख से निकल रहे थे उन सबों को उन्होंने बड़ी ही कठिनाई से रोका और निकले हुए आँसुओं को उन्होंने हाथ से पोंछा इसके बाद दर्शन के अविषय बने हुए भगवान् श्रीकृष्णके विषय में अत्यधिक

प्रेमजन्य उत्कण्ठा थी उसके कारण व्याकुल बने हुए अर्जुन ने राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार से कहा। इसका अन्वय अगले चौथे श्लोक से हैं ॥३॥

भगवान् की हितैषिता, उपकार करने की भावना, सुहृदता और संबन्धिता इत्यादि का स्मरण करने के कारण उनका कण्ठावरोध हो गया था उन्होंने अपनी घर्घर वाणी से कहा ॥४॥

अर्जुन उवाच

**वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा। येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥५॥**

**अन्वयः**— येन देवविस्मापनं महत् तेजः अपहृतं तेन बन्धुरूपीणा हरिणा अहं वञ्चितः ॥५॥

**अर्जुन ने कहा**

**अनुवाद**— जिन्होंने देवताओं को भी आश्चर्यित कर देने वाले मेरे महान् तेज को छिन लिया उन बन्धुरूपधारी श्रीहरि ने मुझको ठग लिया है ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

येन मां वञ्चयता। देवान्विस्मापयति यत् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

अर्जुन ने बतलाया कि मेरा ऐसा महान् तेज था कि उसको देखकर देवता भी आश्चर्यित हो जाते थे। किन्तु मेरे साथ वञ्चना करके श्रीहरि ने उसको मुझसे छिन लिया ॥५॥

**यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः। उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥६॥**

**अन्वयः**— यथा उक्थेन रहितः एषः मृतकः प्रोच्यते तथा यस्य क्षणवियोगेन लोकः हि अप्रियदर्शनः ॥६॥

**अनुवाद**— जिस तरह प्राण के शरीर से निकलते ही शरीर उसी क्षण मृत कहलाने लगता है उसी तरह श्रीकृष्ण का वियोग हो जाने के कारण मुझे यह सारा जगत् अप्रिय लगने लगा है ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

यस्य क्षणवियोगेनेत्यादि यच्छब्दानां तेनाहमद्य मुषित इति सप्तमश्लोकस्थेन तच्छब्देन सम्बन्धः। प्रियस्याप्यप्रियत्वे दृष्टान्तः उक्थेन प्राणेन। एष पित्रादिः ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

यस्य क्षणवियोगेन इत्यादि श्लोक के यत् पद का अग्रिम सातवें अर्थात् तेरहवें श्लोक के तेन मुषितः इत्यादि के तत् शब्द से सम्बन्ध हैं। प्रिय वस्तु के अप्रिय होने का दृष्टान्त है कि जैसे पिता इत्यादि का प्रिय शरीर भी प्राण रहित होते ही अप्रिय लगने लगता है ॥६॥

**यत्संश्रयाद्द्रुपदगेहमुपागतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम्।**
**तेजो हृतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाधिगता च कृष्णा ॥७॥**

**अन्वयः**— यत् संश्रयात् स्वयम्वरमुखे द्रुपदगेहमुपागतानां स्मरदुर्मदानाम् राज्ञाम् सज्जीकृतेन धनुषा मया तेजः हृतम् खलु सज्जीकृतेन धनुषा मत्स्यः अभिहतः कृष्णा च अधिगता ॥७॥

**अनुवाद**— उन श्रीभगवान् का ही आश्रय प्राप्त करने के कारण द्रौपदी स्वयम्बर के समय राजा द्रुपद के यहाँ आये हुए कामोन्मत्त राजाओं के तेज का मैंने हरण कर लिया और धनुष पर बाण को चढ़ाकर मत्स्यवेध किया तथा द्रौपदी को प्राप्त किया ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णोपकाराननुस्मरति–यत्संश्रयादिति दशभिः । यस्य संश्रयाद्बलात् स्मरेण कामेन दुर्मदानामतिमत्तानां तेजः प्रभावो हृतं धनुर्ग्रहणेनैव । पश्चात्तद्धनुः सज्जीकृतं च । तेन च मत्स्यो यत्रोपरि भ्रमन्विद्धः । ततस्तान्विजित्य द्रौपदी प्राप्ता च ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

अब अर्जुन दश श्लोकों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा किए गये उपकार का स्मरण करते हैं । जिन भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रय के बल से काम से अत्यन्त मत्त बने हुए राजाओं के तेज का मैंने अपहरण धनुष धारण करके ही कर लिया और उसके द्वारा यन्त्र के ऊपर घूमते हुए मत्स्य का वेध किया उसके पश्चात् सभी राजाओं को जितकर मैंने द्रौपदी को प्राप्त किया ।।७।।

**यत्सन्निधावहमु खाण्डवमग्नयेऽदामिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ।**
**लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ।।८।।**

**अन्वयः**— यत् सन्निधौ अहम् सामरगणं इन्द्रं तरसा विजित्य खाण्डवम् अग्नये अदाम्, मयकृता अद्भुत शिल्पमाया सभा लब्धा ते अध्वरे नृपतयः दिग्भ्यः बलिम् अहरन् ।।८।।

**अनुवाद**— जिन श्रीकृष्ण भगवान् के सन्निधान मात्र से मैंने देवगणों के साथ इन्द्र को बलपूर्वक परास्त करके खाण्डव को अग्नि देव को उनकी तृप्ति के लिए प्रदान कर दिया तथा मय नामक दैत्य के द्वारा अद्भुत माया से निर्मित सभा को प्राप्त किया । जिसके कारण विभिन्न दिशाओं से आपके यज्ञ में आये हुए राजाओं ने आपको उपहार प्रदान किया ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

उ इति विस्मये । खाण्डवमिन्द्रस्य वनमग्नयेऽदां दत्तवानस्मि । खाण्डवदाहे रक्षितेन मयेन कृता च सभा लब्धा अद्भुतशिल्परूपा माया यस्यां सा । ते अध्वरे यागे राजसूये ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

अहम् उ का उ शब्द विस्मय के अर्थ में प्रयुक्त है । अर्जुन ने कहा कि भगवान् के सन्निकर्ष मात्र से मैंने इन्द्र के खाण्डव नामक वन को इन्द्र से जीतकर उसे अग्नि को मैंने प्रदान कर दिया । खाण्डवदाह के समय मैंने मय नामक दानव की रक्षा कर ली, उससे प्रसन्न होकर उसने मुझे ऐसी सभा प्रदान की जिसमें अद्भुत शिल्परूपी माया थी । और उनकी ही कृपा के कारण विविध दिशाओं से आकर राजाओं ने आपको राजसूय यज्ञ में उपहार प्रदान किया ।।८।।

**यत्तेजसा नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ।**
**तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरे ते ।।९।।**

**अन्वयः**— यत् तेजसा गजायुत सत्त्ववीर्यः आर्यः अनुजः मखार्थे नृपशिरोऽङ्घ्रिम् अहन् । तेन प्रमथनाथमखाय आहृताः भूयः यत् मोचितः तत् ते अध्वरे बलिम् अनयन् ।।९।।

**अनुवाद**— उन्हीं श्रीभगवान् के तेज से मेरे बड़े भाई और आपके अनुज जो दश हजार हाथियों के बल से सम्पन्न हैं वे भीम, राजाओं के शिर पर पैर रखने वाले जरासन्ध को मार सके । उस जरासन्ध के द्वारा महाभैरव के यज्ञ में बलि प्रदान करने के लिए बन्दी बनाकर लाये गये जिन राजाओ को भगवान् ने मुक्त किया वे ही राजा आपके राजसूय यज्ञ में आपको उपहार प्रदान किए ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

अनन्तरश्लोको विगीतस्तथापि व्याख्यायते । नृपशिरःअङ्घ्रिर्यस्य तं जरासन्धं तवानुजो भीमो मखार्थमहन् हतवान्। तन्निर्जयं विना राजसूय मखानुपपत्तेः । गजायुतस्येव सत्त्वमुत्साहशक्तिवीर्यं बलं च यस्य सः । तं हत्वा प्रमथनाथो महाभैरवस्तस्य मखाय ये राजानस्तेनाहृतास्ते च यद्यस्मान्मोचितास्तत्तस्मात्तेऽध्वरे बलिमानीतवन्तः ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक के विषय में विवाद है । कुछ लोग इसको भागवत का मानते हैं और कुछ लोग इसको भागवत का नहीं मानते हैं फिर भी मैं इसकी व्याख्या करता हूँ ।

**नृपशिरस्स्वाङ्घ्रिः इत्यादि** राजाओं के शिर पर पैर रखने वाले जरासन्ध को राजसूय यज्ञ करने के लिए आपके भाई भीम ने जिसका वध किया था, क्योंकि उसको परास्त किए बिना राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता था। उन भीम की दश हजार हाथियों के समान उत्साह शक्ति थी और बल था । जरासन्ध को मारने के बाद महाभैरव के यज्ञ में बलि देने के लिए जिन राजाओं को वह बन्दी बनाकर लाया था उन राजाओं को श्रीभगवान् ने मुक्त कर दिया । वे ही राजागण आपके यज्ञ में आपको उपहार प्रदान किए थे ।।९।।

**पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ।**
**स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यैस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ।।१०।।**

**अन्वयः**— तव पत्न्याः अधिमखक्लृप्तमहाभिषेक श्लाघिष्ठचारु कवरं कितवैः समायाम् विकीर्य स्पृष्टं पतिताश्रुमुख्याः यैः तत्स्त्रियः हतेशविमुक्तकेशाः अकृत ।।१०।।

**अनुवाद**—आपकी पत्नी महारानी द्रौपदी के राजसूय यज्ञ के महान् अभिषेक से पवित्र हुए उन सुन्दर केशों को जिन दुष्टों ने भरी सभा में छूने का साहस किया उन केशों को विखेरकर तथा आँखों में आँसू भरकर जब भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ीं तो उन सबों की स्त्रियों को भगवान् ने ऐसा बना दिया कि पतियों के मारे जाने के कारण उन सबों ने स्वयम् अपना केश खोल दिया ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

यैः कितवैर्दुःशासनादिभिस्तव पत्न्याः कबरं विकीर्योन्मुच्य स्पृष्टमाकृष्टं तेषां स्त्रियो हतेशा अतएव वैधव्याद्विमुक्तकेशा अकृत चकार । कथंभूतं कबरम् । अधिमुखं राजसूयमधिकृत्य क्लृप्तो रचितो यो महाभिषेकस्तेन श्लाघ्यतमम् । चारु रम्यम्। यत्स्मरणात्तदानीमेवास्मत्कृपया प्राप्तस्य श्रीकृष्णस्य नमने पादयोः पतितान्यश्रूणि मुखाद्यस्याः पत्न्याः । पदशब्दसापेक्षस्यापि पतितशब्दस्याश्रुपदेन समासो नित्यसापेक्षितत्वात् ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

जिन दुष्ट दुशासन आदि ने आपकी पत्नी द्रौपदी के केशों को खोलकर खींचा था उन दुष्टों की पत्नियाँ पतियों के मारे जाने के कारण विधवा हो गयीं और उनके केश हमेशा-हमेशा के लिए खुल गये । **कथंभूतम्० इत्यादि-** द्रौपदी के केशों का वर्णन करते हुए कहते हैं राजसूय यज्ञ में सम्पन्न महाभिषेक के कारण प्रशंसनीय तथा मनोहर वे केश थे । द्रौपदी के द्वारा स्मरण किए जाने के कारण हमलोगों पर कृपा करने के लिए पधारे हुए श्रीकृष्ण को प्रणाम करते समय उसके मुख से जो आंसू भगवान् के पैर पर गिरे । उसके कारण भगवान् ने उन सबों के पतियों का वध करवाकर उनकी पत्नियों के केश को हमेशा के लिए बन्धनमुक्त बना दिया ।

**पतिताश्रुमुख्याः** में पद शब्द की अपेक्षा होने पर भी पति शब्द का अश्रुपद के साथ समास नित्य सापेक्ष होने के कारण हुआ है ।।१०।।

**यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग्यः ।**
**शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्ताममंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः ॥११॥**

**अन्वयः**— यः वनम् एत्य अरिविहितात् दुर्वाससः कृच्छ्रात् नः जुगोप । शाकान्नशिष्टम् उपयुज्य यतः अयुताग्रभुक् यः सलिले विनिमग्न संघः त्रिलोकीं तृप्ताम् अमंस्त ॥११॥

**अनुवाद**— जो भगवान् श्रीकृष्ण वन में आकर शत्रु के द्वारा आयोजित महर्षि दुर्वासा के भयङ्कर शाप से केवल शाक को ही खाकर हमलोगों की रक्षा किये । जिससे कि दश हजार शिष्यों से पहले भोजन करने वाले महर्षि दुर्वासा और जल में अघमर्षण करने के लिए प्रविष्ट मुनियों का समूह त्रिलोकी को ही तृप्त मान लिया ॥११॥

## भावार्थ दीपिका

शिष्याणामयुतस्याग्रे तत्पङ्क्तौ भुङ्क्ते यस्तस्माद्दुर्वाससो हेतोररिणा दुर्योधनेन रचितं यद्दुरन्तं कृच्छ्रं शापलक्षणं तस्मात्सकाशान्नोऽस्मान्वनमेत्य जुगोप । किं कृत्वा । शाकमेवान्नं तस्मिन्नेव पात्रेऽवशिष्टमुपयुज्य जग्ध्वा । यत उपयोगात्सलिले विनिमग्नो मुनीनां सङ्घस्त्रिलोकीं तृप्ताममंस्त । एवं हि भारते कथा— **'कदाचिद्दुर्वाससो दुर्योधनेनातिथ्यं कृतम् । तेन च परितुष्टेन वरं वृणीष्वेत्युक्ते दुर्वाससः शापात्पाण्डवा नश्येयुरिति मनसि विधाय दुर्योधनेनोक्तम् । युधिष्ठिरोऽस्मत्कुलमुख्यः, अतस्तस्यापि भवतैवमेव शिष्यायुतसहितेनातिथिना भवितव्यं, किंतु द्रोपदी यथा क्षुधा न सीदेत्तथा तस्यां भुक्तवत्यां तद्गृहं गन्तव्यमिति । ततश्च तथैव दुर्वाससि प्राप्ते परमादरेण युधिष्ठिरेण माध्याह्निकं कृत्वा आगम्यतामिति विज्ञापितो मुनिसङ्घोऽघमर्षणाय जले निममज्ज । तत्र चिन्तातुरया द्रौपद्या स्मृतमात्रः श्रीकृष्णोऽङ्कस्थां रुक्मिणीं हित्वा तत्क्षणमेव भक्तवत्सलतया चागतः । तया चावेदिते वृत्तान्ते भगवतोक्तं- हे द्रौपदि, अहं च बुभुक्षितोऽस्मि प्रथमं मां भोजयेति । तया चातिलज्ज्योक्तं- स्वामिन्, मद्भोजनपर्यन्तमक्षयमप्यन्नं सूर्यदत्तस्थाल्यां मया च सर्वान्नंसंभोज्य भुक्तमतो नास्त्यन्नमिति । तथाप्यतिनिर्बन्धेन स्थालीमानाय्य तत्कण्ठलग्नं किंचिच्छाकान्नं प्राश्योक्तमनेन विश्वात्मा भगवान्प्रीयताम् । अथ भोक्तुं मुनिसङ्घामाह्वयेति भीमं प्रहितवान् । स च तावतातितृप्तो वृथापाकभयेन पलायितः' इति ॥११॥**

## भाव प्रकाशिका

दश हजार शिष्यों की पंक्ति में सबसे पहले भोजन करने वाले जो दुर्वासा महर्षि थे उनको दुर्योधन ने भेजा था, उनके भयङ्कर शाप रूप कष्ट से जो भगवान् श्रीकृष्ण वन में आकर हमलोगों की रक्षा किए । प्रश्न है कि कैसे रक्षा किए ? तो इसका उत्तर है कि उस पात्र में ही लगे हुए शाक नामक भोज्य पदार्थको खाकर भगवान् के उस शाक के खाते ही अघमर्षण करने के लिए जल में निमग्न मुनि समूह ने त्रिलोकी को ही तृप्त मान लिया।

**एवं ही भारते कथा** महाभारत ग्रन्थ में यह कथा आयी है कि एक बार दुर्योधन ने महर्षि दुर्वासा का आतिथ्य सत्कार किया । उससे प्रसन्न होकर महर्षि दुर्वासा ने कहा वरदान माँगो । दुर्योधन ने सोचा कि महर्षि के शाप से ही पाण्डवों का नाश हो जाय । यह विचार करके दुर्योधन ने कहा हमारे वंश में मुख्य युधिष्ठिर हैं । अतएव आप इसी तरह अपने दश हजार शिष्यों के साथ उनके अतिथि बनें । किन्तु द्रौपदी भूख के कारण दुःखी न हो अतएव जब वह भोजन कर ली हो उसके बाद ही आप जायँ ।

उसके पश्चात् दुर्वासा ऋषि उसी तरह उनके यहाँ गये । युधिष्ठिर ने अत्यन्त आदर के साथ कहा आपलोग मध्याह्न की क्रिया करके आयें । इस तरह से कहने पर मुनियों का समूह अघमर्षण करने के लिए जल में प्रवेश कर गया । उस समय अत्यन्त चिन्तित द्रौपदी ने भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण किया । स्मरण करते ही भगवान् श्रीकृष्ण अपने गोद में बैठी हुयी रुक्मिणी को छोड़कर भक्तवत्सलता के कारण उसी समय वहाँ आ गये ।

द्रौपदी के द्वारा सारा वृत्तान्त बतलाये जाने पर भगवान् ने कहा— द्रौपदी मैं भूखा हूँ मुझे पहले भोजन कराओ अत्यन्त लज्जा पूर्वक द्रौपदी ने कहा— हे स्वामिन् ! मेरे भोजन पर्यन्त ही सूर्य के द्वारा प्रदत्त स्थाली में अक्षय अन्न रहता है । सबों को खिलाकर मैंने भी भोजन कर लिया है । अतएव अन्न बिल्कुल नहीं है ।

फिर भी अतिथि श्रीभगवान् ने आग्रह पूर्वक उस स्थाली को मँगवाकर उस स्थली के कण्ठ में सटे शाक के पत्ते को खाकर कहा इससे विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न हो जायँ । उसके पश्चात् मुनि समूह को भोजन करने के लिए बुलाने के लिए भीम को उन्होंने भेजा । उतने मात्र से तृप्त मुनिसमूह व्यर्थ भोजन बनवाने के भय से भाग गया ।।११।।

**यत्तेजसाऽथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे ।**
**अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम् ।।१२।।**

**अन्वयः**— अथ यत् तेजसा युधि सगिरिजः भगवान् शूलपाणिः विस्मापितः निजम् अस्त्रम् मे अदात् अन्येऽपि च, अहम् अमुना एव कलेवरेण महेन्द्र भवने महत् अर्धासनम् प्राप्तः ।।१२।।

**अनुवाद**— उन्हीं श्रीभगवान् के तेज से सम्पन्न मैंने पार्वतीजी के साथ विद्यमान भगवान् शिव को युद्ध में आश्चर्यित कर दिया था और उससे प्रसन्न होकर शिवजी ने मुझे अपना पाशुपतास्त्र नामक अस्त्र प्रदान किया तथा दूसरे लोकपाल भी मुझे अपना अस्त्र प्रदान किए । किञ्च इसी शरीर से मैंने इन्द्र की सभा में इन्द्र के आसन पर बैठने का सम्मान प्राप्त किया ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

गिरिजासहितो विस्मापितः सन्निजं पाशुपतमस्त्रम् । अन्येऽपि लोकपाला निजान्यस्त्राण्यदुः । अन्यप्याश्चर्यमाह- अमुनेति। महत इन्द्रस्यासनार्धम् ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

अर्जुन कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के ही तेज से मैंने पार्वतीजी के साथ विद्यमान भगवान् शङ्कर को युद्ध में आश्चर्यित कर दिया था और वे प्रसन्न होकर मुझे अपना पाशुपतास्त्र प्रदान किए और दूसरे लोकपाल भी मुझको अपना अस्त्र प्रदान किए । दूसरा आश्चर्य यह कि इसी शरीर से मैंने इन्द्र के आधे आसन पर बैठने का सौभाग्य भी प्राप्त किया ।।१२।।

**तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ।**
**सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ।।१३।।**

**अन्वयः**— हे आजमीढ तत्रैव विहरतः सेन्द्राः देवा अरातिवधाय गाण्डीवलक्षणं मे यदनुभावितं भुजदण्डयुमं श्रिताः तेन भूम्ना पुरुषेण अहम् अद्य मुषितः ।।१३।।

**अनुवाद**— हे अजमीढवंशावतंस उस स्वर्ग लोक में विहार करते समय इन्द्र सहित सभी देवगण निवात कवच नामक दैत्य शत्रुओं का वध करने के लिए गाण्डीव धनुष से सुशोभित तथा श्रीभगवान् के प्रभाव से युक्त मेरी दोनों भुजाओं का सहारा लिया, वे ही भूमाविद्या में वर्णित पुरुष श्रीभगवान् ने मुझको ठग लिया ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

तत्रैव स्वर्गे क्रीडतो गाण्डीवं लक्षणं चिह्नं यस्य तत् । अरातयो निवातकवचा दैत्यास्तेषां वधार्थमाश्रितवन्तः । येनानुभावितं प्रभावयुक्तं कृतम् । हे आजमीढ युधिष्ठिर । तेन मुषितो वञ्चितोऽस्मि । कथंभूतेन । भूम्ना निजमहिमावस्थानेन ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

स्वर्ग में ही विहार करने वाले गाण्डीव धनुष से सुशोभित मेरी भुजाओं का सहारा इन्द्रादि देवताओं ने निवात कवच दैत्यों को मारने के लिए लिया। जिन भगवान की ही कृपा से मैं प्रभाव सम्पन्न हुआ। हे आजमीढ युधिष्ठिर उन्हीं विपुल महिमा सम्पन्न श्रीभगवान् ने मुझको ठग लिया ॥१३॥

**यद्वान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपारमेको रथेन ततरेऽहमतीर्यसत्त्वम् ।**
**प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ॥१४॥**

**अन्वयः**— यद्बान्धवः अहम् कुरुबलाब्धिम् अनन्तपारम् अतीर्यसत्त्वम् एकः अहम् रथेन ततरे। मया परेषां बहुधनं प्रत्याहृतम्, तेजास्पदं मणिमयं च शिरोभ्यः हृतम् ॥१४॥

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान् श्रीकृष्ण का बान्धव मैं भीष्म तथा द्रोण रूप अपराजेय वीरों से युक्त कौरवों की अनन्तपार समुद्र के समान सेना को अकेले रथ पर सवार होकर पार कर गया और राजा विराट् के गोधन को लौटा लाने के समय उनके बहुमूल्य अलङ्कारों तथा शिर पर चमकते हुए मुकुटों को भी मैं उतार लाया ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्बान्धव इत्यादिश्लोकत्रयस्यापि तेन मुषितोऽहमिति पूर्वेणैव संबन्धः। श्रीकृष्णबान्धव एक एवाहं कौरवसैन्याब्धिं नास्त्यन्तो गाम्भीर्येण, पारं च देशतो यस्य तं ततरे तीर्णवानुत्तरगोग्रहे। अतीर्याणि दुस्तराणि सत्त्वानि तिमिङ्गिलादीनि भीष्मादिरूपाणि यस्मिन्। परैर्नीतं गोधनं प्रत्याहृतम्। परेषां च शिरोभ्यः सकाशात्तेजास्पद प्रभावस्यास्पदमुष्णीषरूपं मणिमयं मुकुटरत्नरूपं च बहुधनं तान्मोहनास्त्रेण मोहयित्वा हृतम्। यद्बान्धवेन मया ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

यद्बान्धव इत्यादि तीन श्लोकों का भी मुषितोऽहम् इस पहले के श्लोक से ही सम्बन्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण का बान्धव अकेला ही मैं जिसकी गम्भीरता और देश का कोई अन्त नहीं था ऐसी कौरवों की सेना रूपी सागर को मैंने पार कर लिया।

उसके पश्चात् विराट की गौओं को लौटा लाने के समय दुस्तर पराक्रम वाले तिमिङ्गिल इत्यादि सभान भीष्म इत्यादि वीरों से पार पाना असम्भव था ऐसे शत्रुओं के द्वारा ले जाये जाते हुए गोधन को मैं लौटा लाया और शत्रुओं के शिरों से तेज तथा प्रभावयुक्त उष्णीश स्वरूप मणिमय मुकुट रूपी बहुत धनों को गन्धर्वास्त्र से मोहित करके ले आया। यह सबकुछ मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का बान्धव होने के कारण ही कर सका ॥१४॥

**यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ।**
**अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे विभो ! यः भीष्म कर्ण–गुरु–शल्य चमूषु अदभ्र राजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु मम अग्रेचरः रथयूथपानाम् दृशा आयुः मनांसि च सह ओजः आर्च्छत् ॥१५॥

**अनुवाद**— महाराज ! भीष्म, कर्ण, गुरुद्रोण तथा शल्य एवं दूसरे बड़े-बड़े राजाओं और क्षत्रिय वीरों के रथों से कौरवों की सेना सुशोभित थी जो भगवान् मेरे आगे-आगे चलते हुए अपनी दृष्टि मात्र से ही उन सभी महारथी यूथपतियों की आयु, मन, उत्साह और बलको छीन लिया करते थे। उन्होंने ही आज मुझको ठग लिया ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

अदभ्रा अनल्पा ये राजन्यवर्यास्तेषां रथमण्डलैर्मण्डितासु भीष्मादीनां चमूषु सारथिरूपेण ममाग्रेचरः सन् हे विभो, तेषां रथयूथपानामायुरादीनि यो दृशा दृष्ट्यैवाच्र्छत् हतवान्। मनांसीत्युत्साहादिशक्तिम्। सहो बलम्। ओजः शस्त्रादिकौशलम् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

अदभ्र शब्द अत्यधिक का बोधक है। बहुत अधिक श्रेष्ठ राजाओं के रथ समूह से सुशोभित भीष्म आदि की सेनाओं में सारथि रूप से मेरे आगे चलते हुए हे महाराज ! उन रथ यूथपों की आयु आदि को जो भगवान् अपनी दृष्टिमात्र से छिन लिए। मनांसि शब्द से उत्साह शक्ति को, सह शब्द से बल को तथा ओजः शब्द से शस्त्रादि कौशल को कहा गया है। इन सबों को भगवान् छिन लिए ॥१५॥

**यद्दोःषु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्तशलसैन्धववाह्लिकाद्यैः ।**
**अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नो पस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ॥१६॥**

**अन्वयः**— यद् दोःषु प्रणिहितं मा गुरु-भीष्म-कर्ण-द्रौणि-निर्गत-शल-सैन्धव बाह्लिकाद्यै निरूपितानि अमोघमहिमानि अस्त्राणि आसुराणि हरिदासम् इव न पस्पृशुः ॥१६॥

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान् के हाथों में मैंने अपने को डाल दिया था उसके कारण आचार्य द्रोण, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, सिन्धुदेशाधिपति जयद्रथ, शन्तुनु के भाई बह्लोक आदि के द्वारा चलाये गये कभी भी विफल नहीं होने वाले अस्त्र मुझको उसी तरह छू नहीं पाये जिस तरह दैत्यों के द्वारा प्रयुक्त अस्त्र भगवद् भक्त प्रह्लाद को स्पर्श नहीं कर पाते थे ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

यस्य दोःषु भुजेषु मा मां प्रणिहितं स्थापितं तैरेव गुर्वादिभिर्निरुपितानि प्रयुक्तान्यस्त्राणि न स्पृशन्ति स्म। गुरुर्द्रोणः। त्रिगर्तस्त्रिगर्तदेशाधिपतिः सुशर्मा। शलः शल्यः। सैन्धवः सिन्धुदेशाधिपतिर्जयद्रथः। वाह्लिकः शन्तनोर्भ्राता। अमोघो महिमा येषां तथाभूतान्यपि। पाठान्तरेऽपि स एवार्थः। प्रतीकाराकरणेऽप्यस्पर्शे दृष्टान्तः- नृहरिदासं प्रह्लादमिवेति ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

जिन भगवान् के हाथों में समर्पित मुझको आचार्य द्रोण आदि के द्वारा प्रयुक्त अमोघ अस्त्र मुझको छू तक नहीं सके। यहाँ गुरु शब्द से द्रोणाचार्य को, त्रिगर्त शब्द से त्रिगर्त देशाधिपति सुशर्मा को, शल शब्द से शल्य को और सैन्धव शब्द से सिन्धु देशाधिपति जयद्रथ को कहा गया है। **अमोघमहिमानि** पद का विग्रह, **अमोघो महिमा येषां तानि** है। **अमोघमहितानि** इस पाठान्तर का भी वही अर्थ है। प्रतिकार नहीं करने पर भी स्पर्श नहीं कर सकने का उदाहरण भगवान् नृसिंह के भक्त प्रह्लाद को दिया गया है ॥१६॥

**सौत्ये वृतः कुमतिनात्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ।**
**मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥१७॥**

**अन्वयः**— भव्याः यदपादपद्मम् अभवाय भजन्ति, सः आत्मदः ईश्वरः कुमतिना मे सौत्ये वृतः रथिनः अरयः यदनुभावनिरस्तचित्ताः श्रान्तवाहम् भुविष्ठं मां न प्राहरन् ॥१७॥

**अनुवाद**— श्रेष्ठ पुरुष संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जिनके चरण कमलों की सेवा करते हैं; उन अपने को भी दे डालने वाले परमात्मा को मैंने सारथि रूप से वरण किया, यह मेरी निन्दित मति का परिणाम है। जिन श्रीभगवान् के प्रभाव से ही जिनकी बुद्धि मारी गयी थी ऐसे रथी शत्रुगण उस समय मुझ पर प्रहार नहीं कर सके जब थके हुए अश्वों वाला मैं पृथिवी पर खड़ा था ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

स्वापराधमनुस्मरन् संतप्यमान आह। सौत्ये सारथ्ये कुमतिना मे मया स वृतः। कुमतित्वमेवाह-आत्मद इत्यादिना। अभवाय मोक्षाय। भव्याः श्रेष्ठाः। श्रान्ता वाहा अश्वा यस्य तं माम्। जयद्रथवधे हि जलपानं विनाऽश्वाः श्रान्तास्ततो

रथादवतीर्य बाणैर्भुवं भित्त्वा मया जलं संपादितम् । तदा यस्यानुभावेन निरस्तचित्ता अरयो मां न प्रहृतवन्तः स सौत्ये वृत इति कुमतित्वम् ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

अपने अपराध का स्मरण करते हुए संताप करते हुए अर्जुन ने कहा मेरी यह कुमति ही है कि मैंने उनको अपना सारथि बनाया । अपनी कुमतित्व का वर्णन करते हुए अर्जुन ने कहा वे ईश सम्पूर्ण जगत् के नियामक ईश्वर थे और अपने तक को दे देने वाले थे । श्रेष्ठ पुरुष उनके चरणों की सेवा मुक्ति प्राप्त करने के लिए करते है । जब जयद्रथ वध के समय पानी पिए बिना मेरे अश्व थक गये थे उस समय मैं रथ से पृथिवी पर उत्तर गया था और बाणों से पृथिवी का भेदन करके जल उत्पन्न किया । उस समय उन श्रीभगवान् के प्रभाव के ही कारण मेरे रथी शत्रुओं की बुद्धि मारी गयी थी, क्योंकि भूमि पर खड़े मुझ पर सभी शत्रुओं ने प्रहार नहीं किया ।।१७।।

**नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ।**
**संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ।।१८।।**

**अन्वयः**— हे नरदेव, माधवस्य उदार-रुचिर-स्मितशोभितानि हे पार्थ ! हे अर्जुन हे सखे ! हे कुरुनन्दन ! इति हृदि स्पृशानि संजल्पितानि नार्माणि स्मर्तुः मम हृदयं लुठन्ति ।।१८।।

**अनुवाद**— हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान् के उदार, मनोहर तथा मुसकान से युक्त हे अर्जुन ! हे पार्थ ! हे कुरुनन्दन ! इस तरह की हृदय स्पशी, परिहास भरी वाणियों को स्मरण करने वाले मेरे हृदय में उथल-पुथल मच जाता है ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

हे नरदेव, उदारं गम्भीरं रुचिरं च यत् स्मितं तेन शोभितानि नर्माणि परिहासवाक्यानि तथा कार्यप्रस्तावेषु हे पार्थेत्यादीनि मधुराक्षराणि संजल्पितानि च हृदिस्पृशानि मनोज्ञानि माधवस्य यान्येतानि तानीदानीं स्मर्तुर्मम हृदयं लुठन्ति लोठयन्ति क्षोभयन्ति। णिजभाव आर्षः ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने कहा हे राजन् ! श्रीभगवान् के उदार, गम्भीर्य पूर्ण तथा मनोहर मुसकानसे सुशोभित परिहास भरे वाक्यों तथा कार्य प्रारम्भ करते समय हे पार्थ इत्यादि मधुर अक्षरों से युक्त वाक्यों को जो हृदय स्पर्शी तथा मनोहर थे उन श्रीकृष्ण वाक्यों को स्मरण करते ही मेरे हृदय में उथल-पुथल मच जाता है ।।१८।।

**शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ।**
**सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महितया कुमतेरघं ते ।।१९।।**

**अन्वयः**— शय्यासनाटन विकत्थन भोजनादिष्वैक्याद् वयस्य ऋतवान् इति विप्रलब्धः तदापि महान् महितया सख्युः सखेव, तनयस्य पितृवत् कुमतेः मे सर्वम् अघं सेहे ।।१९।।

**अनुवाद**— सोने, बैठने, टहलने तथा आत्मश्लाघा के समय सदा एक साथ रहने के कारण कभी-कभी मैं यह कहकर उपहास करता था कि आप तो सत्यवादी हैं, उस समय महामहिमा से समन्न होने के कारण जिस तरह से कोई मित्र अपने मित्र के तथा पिता अपने पुत्र के अपराधों को सह लेता है, उसी तरह से वे मुझ कुबुद्धि के सारे अपराधों को सह लेते थे ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

विकत्थनं स्वगुणश्लाघनादि । शय्यादिष्वैक्यादव्यतिरेकाद्धेतोः । कदाचिद्व्यभिचारं दृष्ट्वा हे वयस्य, ऋतवान् सत्ययुक्तस्त्वमिति वक्रोक्तया विप्रलब्धस्तिरस्कृतोऽपि । 'ऋभुमान्' इति पाठे ऋभवो देवाः सेवकाः सन्ति यस्य सः । असौ महानपि मया वयस्य इति मत्वा विप्रलब्धस्तिरस्कृत इत्यर्थः । 'ऋतमान्' इति पाठे वत्त्वाभाव आर्षः । मे अघमपराधमसहत। महितया महत्त्वेन । ऐकपद्ये अतिमहत्त्वेनेत्यर्थः । सख्युरघं सखेव । तनयस्याघं पितेव ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

अपने गुणों की प्रशंसा करने आदि को विकत्थन कहते हैं, सोने आदि के समय सदा एक साथ रहने के कारण, कभी उनमें देर हो जाने पर मैं व्यंग्य करता था कि मित्र तुम तो बड़े सत्यवादी हो ? इस तरह से कहकर मैं उनका तिरस्कार कर देता था । किन्तु वे महान् थे और मेरे द्वारा तिरस्कृत होने पर भी अपनी महत्ता के कारण मेरे सभी अपराधों को उसी तरह से सह लेते थे जैसे कोई मित्र अपने मित्र के तथा पिता अपने पुत्र के अपराधों को सह लेता है । ऋभुमान पाठ होने पर अर्थ होगा जिनके ऋभु आदि देवता सेवक हैं । ऋतमान् पाठ होने पर वत्त्व का अभाव आर्ष प्रयोग के कारण मानना चाहिए ।।१९।।

**सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ।**
**अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन्गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ।।२०।।**

**अन्वयः**— हे नृपेन्द्र ! सोऽहं प्रियेण सख्या पुरुषोत्तमेन रहितः, सुहृदाहृदयेन शून्यः हे अङ्ग अध्वनि, उरुक्रमपरिग्रहम् रक्षन् असद्भिः गोपैः अबला इव विनिर्जितः अस्मि ।।२०।।

**अनुवाद**— हे नृपेन्द्र ! वही मैं अपने प्रिय मित्र पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भगवान् से रहित होकर अपने मित्र रूप हृदय से शून्य हो गया हूँ हे राजन् ! रास्ते में श्रीभगवान् की सोलह हजार स्त्रियों की रक्षा करते समय नीच गोपों द्वारा किसी अबला के समान पराजित कर दिया गया हूँ ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

त्वया शङ्कितं पराजयं चापि प्राप्तोऽहमित्याह । तेन सख्या रहितोऽतो हृदयेन शून्यः । अङ्ग हे राजन्, उरुक्रमस्य परिग्रहं षोडशसहस्रस्त्रीलक्षणम् । असद्भिर्नीचैः अबला योषेव ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

आपके द्वारा शङ्कित मैं पराजित भी हुआ हूँ । उन अपने मित्र श्रीकृष्ण से रहित होने के कारण मैं हृदय से रहित हो गया हूँ, क्योंकि वे तो मेरे हृदय में थे । हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार स्त्रियों को लाता हुआ मैं उन सबों की रक्षा नहीं कर सका और नीच गोपों ने मुझे किसी अबला नारी के समान हरा दिया ।।२०।।

**तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ।**
**सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ।।२१।।**

**अन्वयः**— तद्वै धनुः त इषवः स रथः, ते हयाः अहं सः रथी यतः नृपतयः आनमन्ति ईश रिक्तम् सर्वं तत् क्षणेन भस्मन् हुतम्, कुहकराद्धम्, ऊष्याम् उप्तमिव क्षणेन असत् अभूत् ।।२१।।

**अनुवाद**— मेरा गाण्डीव धनुष वही है वे ही मेरे बाण हैं मेरा रथ भी वही है और वही मैं रथी भी हूँ। जिसको राजागण शिर झुकाया करते थे । श्रीभगवान् के अभाव में वह सबकुछ भस्म में किए गये होम के समान कपट पूर्वक की गयी सेवा और उषर में बोये गये बीज के समान व्यर्थ हो गया ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णवियोग एवात्र हेतुर्नान्य इत्याह-तदिति । यतो येभ्यो नृपतय आनमन्ति ईशेन रिक्तं शून्यमसत्कार्याक्षमं सन्मन्त्रविधानैरपि भस्मानि हुतमिव । अतिप्रीतादपि कुहकान्मायाविनः सकाशाद्राद्धं लब्धं यथा असत् । सम्यक्कर्षणादिनाप्यूषरभूमावुप्तं बीजमिव ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

इसका कारण भी भगवान् श्रीकृष्ण का वियोग ही है, दूसरा कोई भी नहीं जिन सबों को राजागण नमस्कार करते हैं श्रीकृष्ण के बिना वे सभी साधन उसी तरह से कार्य करने में असमर्थ हो गये जिस तरह मन्त्रों तथा विधान पूर्वक भी भस्म में किया गया होम व्यर्थ हो जाता है । अथवा मायावियों से अत्यन्त प्रेम पूर्वक भी प्राप्त किया गया धन व्यर्थ हो जाता है, अथवा जिस तरह अच्छी तरह से जोतकर भी ऊषर भूमि में बोया गया बीज नहीं जमता है ॥२१॥

**राजंस्त्वयाभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे। विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥२२॥**
**वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम्। अजानतामिवान्योन्यं चतुष्पञ्चावशेषिताः ॥२३॥**

**अन्वयः**— राजन् त्वया अभिपृष्टानां विप्रशापविमूढानाम् वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथित चेतसाम् अजानतामिव मिथः मुष्टिभिः निघ्नताम् सुहृत् पुरे न सुहृदाम् चतुः पञ्च अवशेषिताः ॥२२-२३॥

**अनुवाद**— हे राजन् ! आपने जिनलोगों के विषय में पूछा है वे ब्राह्मणों के शाप से अज्ञानी बने हुए वारुणी मदिरा पीकर मदोन्मत्त होकर एक दूसरे को नहीं पहचानते हुए परस्पर में एक दूसरे पर एरका मुष्टि से प्रहार करने के कारण हमारे सुहृदों की नगरी में हमारे सुहृदों में केवल चार पाँच लोग ही बचे हुए हैं ॥२२-२३॥

### भावार्थ दीपिका

सुहृत्पुरे त्वया पृष्टानां नः सुहृदां मध्ये चत्वारः पञ्च वाऽवशेषिताः । तत्र हेतुः-विप्रशापेत्यादि । वारुणीमन्नमयीम् । अजानतामिवान्योन्यमेरकामुष्टिभिर्निघ्नताम् ॥२२-२३॥

### भाव प्रकाशिका

आप जिन द्वारकावासी हमारे सुहृदों के विषय में पूछे हैं उनमें से केवल चार-पाँच ही लोग बचे हैं, उसका कारण यह है कि ब्राह्मणों के शाप के कारण अज्ञानी बने हुए सबों ने अन्नमयी वारुणी मदिरा को पी ली और वे मदमत्त हो गये । एक दूसरे को जैसे वे पहचान ही नहीं पाते थे और वे एरका की मुष्टि से वज्र कल्प प्रहार करके विनष्ट हो गये ॥२२-२३॥

**प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् । मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ॥२४॥**

**अन्वयः**— प्रायेण एतद् भगवतः विचेष्टितम् यत् भूतानि मिथः निघ्नन्ति भावयन्ति च ॥२४॥

**अनुवाद**— प्रायः यह भगवान् की ही चेष्टा है जिसके कारण एक जीव दूसरे को मारते हैं और उसका पालन भी करते हैं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

अवशेषिता इत्यनेनोक्त हेतुकर्तारमाह त्रिभिः-प्रायेणेति । भावयन्ति पालयन्ति ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

यह जो कहा गया है कि अब केवल चार पाँच ही बचे हैं, उसके कर्ता हेतुको प्रायेण इत्यादि तीन श्लोकों से बतलाया गया है । भावयन्ति पद का अर्थ पालन करते हैं ॥२४॥

**जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः। दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥२५॥**
**एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः। यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्संजहार ह ॥२६॥**

**अन्वयः**— राजन् यद्वत् जले जलौकसां महान्तः अणीयसः अदन्ति, दुर्बलान् बलिनः महान्तमिथः बलिनः, एवं विभुः बलिष्ठैः महद्भिः यदुभिः इतरान् यदुभिः अन्योन्यं यदून् भूभारान् संजहार ह ॥२५-२६॥

**अनुवाद**— हे राजन् ! जिस तरह जल में रहने वाले छोटे जलचरों को बड़े जलचर को खा जाते हैं, दुर्बलों को बलवान् मार देते हैं, और बलवानों में भी एक बलवान् दूसरे बलवान् को मार डालते हैं, उसी तरह परमात्मा ने बलवान् यदुवंशियों के द्वारा दूसरे बड़े राजाओं को विनष्ट करके पृथिवी के भारभूत यदुवंशियों में भी एक यदुवंशी से दूसरे यदुवंशी का नाश कराकर पृथिवी के भार को दूर कर दिया है ॥२५-२६॥

### भावार्थ दीपिका

जलौकसां मत्स्यादीनां मध्ये महान्तः स्थूला अणीयसः यथाऽदन्ति भक्षयन्ति । एवं बलिष्ठैर्महद्भिः पाण्डवैर्दुर्योधनजरासन्धादीन्निहत्य, यदुभिरितरान् शाल्वादीन्निहत्य, यदून्यदुभिरन्योन्यं निहत्य, भगवान् भुवो भारभूतान् संहृतवान् ॥२५-२६॥

### भाव प्रकाशिका

जिस तरह जल में रहने वाली मछलियों आदि में जैसे बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा जाती हैं, इसी तरह बलवान् तथा महान् पाण्डवों के द्वारा दुर्योधन जरासन्ध आदि को विनष्ट करके, यदुवंशियों द्वारा शाल्व इत्यादि को मारकर तथा परस्पर में यदुवंशियों द्वारा यदुवंशियों का नाश कराकर पृथिवी के भारभूत इन सबों को उन्होंने विनष्ट कर दिया ॥२५-२६॥

**देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च । हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ॥२७॥**

**अन्वयः**— देशकालार्थयुक्तानि, हृत्तापोपशामनि गोविन्दाभिहितानि स्मरतः मे चित्तम् हरन्ति ॥२७॥

**अनुवाद**— देश काल और प्रयोजनोपयोगी तथा हृदय के संताप को शान्त करने वाली जिन बातों को भगवान् गोविन्द ने मुझको बतलाया था उन सबों का स्मरण करने वाले मेरे चित्त को वे बातें आकृष्ट करती हैं ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

अतः परं वक्तुं न शक्नोमीति सूचयन्नाह । देशकालोचितार्थयुक्तानि मनःपीडोपशमकराणि च गोविन्दस्य वचनानि स्मरतो मे मम चित्तं हरन्त्याकर्षन्ति ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

इससे अधिक कुछ भी कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ इस अर्थ को सूचित करते हुए उन्होंने कहा देश कालोचित अर्थ से युक्त तथा मन की पीडा को शान्त करने वाली गोविन्द की बातों का स्मरण करने वाले मेरे हृदय को वे बातें आज भी आकृष्ट करती हैं ॥२७॥

**एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् । सौहार्देनातिगाढेन शान्तासीद्विमला मतिः ॥२८॥**

**अन्वयः**— एवं अतिगाढेन सौहार्देन कृष्णपादसरोरुहम् चिन्तयतः जिष्णोः विमला मतिः शान्ता आसीत् ॥२८॥

**अनुवाद**— इस तरह अत्यन्त प्रगाढ प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का चिन्तन करने वाले अर्जुन की बुद्धि निर्मल बुद्धि शान्त हो गयी ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

एवमिति सूतोक्तिः । अतिदृढेन स्नेहेन कृष्णपादसरोरुहं चिन्तयतोऽर्जुनस्य मतिः शान्ता विशोका विमला विरक्ता चासीत् ।।२८।।

**भाव प्रकाशिका**

एवम् इत्यादि यह सूतजी की उक्ति है । इस तरह प्रगाढ प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का चिन्तन करते हुए अर्जुन की बुद्धि शान्त अर्थात् शोकरहित तथा विमल अर्थात् विरक्त हो गयी ।।२८।।

**वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा । भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ।।२९।।**

**अन्वयः**— वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यान परिबृंहितरंहसा । भक्त्या अर्जुनः निर्मथिताशेष कषायधिषणः अभूत् ।।२९।।

**अनुवाद**— भगवान् वासुदेव के निरन्तर चिन्तन के कारण जिसका वेग बढ़ गया था उस भक्ति के द्वारा मथित अर्जुन के हृदय के सारे विकार बाहर निकल गये ।।२९।।

**भावार्थ दीपिका**

मतिवैमल्यफलमाह । वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानेन परिबृंहितं रंहो वेगो यस्यास्तया भक्त्या निर्मथिता उन्मूलिता अशेषाः कषायाः कामादयो यस्याः सा धिषणा बुद्धिर्यस्य सः । ज्ञानं पुनरध्यगमदित्युत्तरेणान्वयः ।।२९।।

**भाव प्रकाशिका**

अर्जुन की बुद्धि की विमलता का फल बतलाते हुए सूतजी ने कहा— भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का ध्यान करने से जिसका वेग बढ़ गया था । उस भक्ति के द्वारा, उनकी बुद्धि के सारे विकार विनष्ट हो गये और उन्होंने पुनः ज्ञान प्राप्त कर लिया यह आगे के श्लोक से इसका सम्बन्ध है ।।२९।।

**गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्धनि । कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ।।३०।।**

**अन्वयः**— भगवत् संग्राममूर्धनि यत् ज्ञानं गीतं कालकर्मतमोरुद्धं विभुः तत् पुनरध्यगमत् ।।३०।।

**अनुवाद**— संग्राम के समय भगवान् श्रीकृष्ण जो ज्ञान अर्जुन को दिए थे, वह काल, कर्म तथा भोगाभि निवेश के कारण विस्मृत सा हो गया था उसको उन्होंने पुनः प्राप्त कर लिया ।।३०।।

**भावार्थ दीपिका**

कालेन कर्मभिस्तमसा भोगाभिनिवेशेन च रुद्धमावृतं सत् ।।३०।।

**भाव प्रकाशिका**

काल, कर्म तथा भोगाभिनिवेश रूपी अज्ञान के कारण वह ज्ञान अवरुद्ध हो गया था उस ज्ञान को अर्जुन ने पुनः प्राप्त कर लिया ।।३०।।

**विशोको ब्रह्मसंपत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः । लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसंभवः ।।३१।।**

**अन्वयः**— ब्रह्मसम्पत्त्या विशोकः संछिन्नद्वैतसंशयः लीनप्रकृतिनैर्गुण्यात् अलिङ्गत्वात् असंभवः ।।३१।।

**अनुवाद**— ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होते ही वे विशोक हो गये अर्थात् उनके माया का आवरण भङ्ग हो गया। उसके कारण उनका द्वैत रूपी संशय समाप्त हो गया । मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार के ज्ञान होने से अविद्या नामक जो प्रकृति है, वह भी लीन हो जाती है । उसके कारण सूक्ष्म शरीर का भङ्ग हो जाने से वह जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**

ज्ञानफलमाह-विशोक इति । एतदेव शोकहेत्वभावेनोपपादयति । शोकस्य हि हेतुर्द्वैतभ्रमस्तस्य देहस्तस्य लिङ्गं तस्य

गुणास्तेषामविद्या । तत्र ब्रह्मसंपत्त्या वेदान्तश्रवणेन ब्रह्माहमिति ज्ञानेन लीना प्रकृतिरविद्या यस्मिंस्तन्नैर्गुण्यं भवति न तु सुषुप्तिप्रलययोरिवाविद्याशेषः । तस्मान्नैर्गुण्याद्गुणकार्यलिङ्गनाशः । अलिङ्गत्वाच्चासंभवः सम्यग्भोगाय भवति पुनःपुनरिति सम्भवः स्थूलदेहस्तद्रहितः । ततश्च तत्परिच्छेदाभावात्संछिन्नो द्वैतलक्षणः संशयो भ्रमो यस्य स विशोको जात इति ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

अर्जुन को जो ज्ञान प्राप्त हो गया था । उस ज्ञान का विशेष फल **विशोक इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । शोक के हेतु के अभाव के द्वारा इसी अर्थ का प्रतिपादन किया जा रहा है । शोक का हेतु द्वैतभ्रम (भेदभ्रम) है । उसका कारण देह है उसका कारण लिङ्ग (कारण) शरीर है । उसका कारण गुण है । उन गुणों का कारण अविद्या है । वेदान्त श्रवण के द्वारा मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार का ज्ञान हो जाता है । उस ज्ञान से प्रकृति के लीन हो जाने से नैर्गुण्य की प्राप्ति हो जाती है । उस समय जिस तरह सुषुप्ति तथा प्रलय काल में अविद्या बची ही रहती है, उस तरह से अविद्या बची नहीं रहती । उसके कारण नैर्गुण्य हो जाने के कारण गुण के कार्य लिङ्ग शरीर का नाश हो जाता है । अलिङ्ग हो जाने के कारण जन्म-मरण का चक्र मिट जाता है । जीव जो भोगों को प्राप्त करने के लिए बार-बार जन्म लेता है उसको सम्भव कहते हैं । अर्थात् स्थूल देह की प्राप्ति अलिङ्ग हो जाने के कारण उस स्थूल देहाभिमान छूट जाता है । फलतः उस परिच्छेद का अभाव हो जाने से उसकी द्वैतभावना विनष्ट हो जाती है अतएव वह विशोक हो जाता है ॥३१॥

**निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च । स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥३२॥**

**अन्वयः**— भगवन्मार्गं यदुकुलस्य संस्थां च निशम्य निभृतात्मा युधिष्ठिरः स्वपथाय मतिं चक्रे ॥३२॥

**अनुवाद**— भगवान् के स्वधामगमन, और यदुवंश के विनाश का वृत्तान्त सुनकर निश्चित मति वाले युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण का निश्चय कर लिया ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

भगवतो मार्गमालक्ष्य यदुकुलस्य संस्थां नाशं श्रुत्वा नारदोक्तं चानुस्मृत्य स्वःपथाय स्वर्गमार्गाय । निभृतात्मा निश्चलचित्तः ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के मार्ग को जानकर तथा यदुकुल के विनाश को सुनकर एवं नारदजी द्वारा कही गयी बातों का स्मरण करके निश्चल बुद्धि वाले युधिष्ठिर ने स्वर्ग के मार्ग को अपनाने का निश्चय कर लिया ॥३२॥

**पृथाप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ।**
**एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥३३॥**

**अन्वयः**— धनंजयोदितं यदूनां नाशं भगवद्गतिं च अनुश्रुत्य पृथा अपि एकान्तभक्त्या भगवति अधोक्षजे निवेशितात्मा संसृतेः उपरराम ॥३३॥

**अनुवाद**— अर्जुन के द्वारा वर्णित यदुवंश के नाश और भगवान् के स्वधाम गमन की बात को सुनकर कुन्ती भी अपनी ऐकान्तिक भक्ति के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में ही अपने मन को लगाकर संसार चक्र से मुक्त हो गयीं ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

तां दुर्विज्ञेयाम् । वक्ष्यति ह्येकादशे- 'सौदामिन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् । गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः' इति । संसृतेरुपरराम जीवन्मुक्ता बभूव । देहं जहाविति वा ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवद् गति को दुर्विज्ञेय बतलाते हुए ग्यारहवें स्कन्ध में कहेंगे भी—

**सौदामिन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् । गतिर्नलक्ष्यते मर्त्यैः तथा कृष्णस्य दैवतैः ।।**

अर्थात् जिस तरह मेघमण्डल को हटाकर जाने वाली विद्युत् की गति जैसे कोई नहीं जान पाता है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण की स्वधाम गमन की गति को देवता तथा मनुष्य कोई नहीं जान सका । **संसृतेः उपरराम** का अर्थ है वह जीवन्मुक्त हो गयी अथवा अपने शरीर का त्याग कर दी ।।३३।।

**ययाहरद्भुवो भारं तां तनुं विजहावजः । कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ।।३४।।**

**अन्वयः**— अजः यया भुवो भारम् अहरद् तां तनुं कण्टकं कण्टकेन इव विजहौ द्वयं चापि ईशितुः समम् ।।३४।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् ने जिस शरीर से पृथिवी के भार को दूर किया उस शरीर को उसी तरह से उन्होंने त्याग दिया जिस तरह से कोई एक काँटे से दूसरे काँटे को निकालकर दोनों को फेंक देता है । क्योंकि दोनों श्रीभगवान् के लिए संहार्य होने के कारण एक समान थे ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेवमुक्तमपि यादवेभ्यो भगवतो वैलक्षण्यमबुद्ध्वा तत्साम्यं वदतो मन्दमतीन्प्रति वैलक्षण्यं स्पष्टयति द्वाभ्याम् । यया यादवरूपया तन्वा भुवो भारं कण्टकेन कण्टकमिवाहरत् । यादवतनुर्भरतनुश्चेति द्वयमपीश्वरस्य संहार्यत्वेन सममेव ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से यह बात बतलायी गयी कि यादवों से भगवान् की विलक्षणता को न जानकर दोनों में समता बतलाने वाले मन्दबुद्धि वालों के प्रति यादवों से भगवान् की विलक्षणता को दो श्लोकों से स्पष्ट करते हैं । जिस यादव रूपी शरीर के द्वारा भगवान् ने पृथिवी के भार को; जिस तरह से कोई एक काँटे से दूसरे काँटे को निकालता है उसी तरह दूर किए और उसके बाद उन्होंने अपने उस शरीर को त्याग दिया । क्योंकि चाहे यादव शरीर हो अथवा पृथिवी का भारभूत शरीर हो ये दोनों श्रीभगवान् के लिए समान रूप से संहार्य थे ।।३४।।

**यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः । भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ।।३५।।**

**अन्वयः**— यथा भगवान् मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्यात् तथा येन भूभारः क्षपितः तच्च कलेवरम् जहौ ।।३४।।

**अनुवाद**— जिस तरह श्रीभगवान् मत्स्य आदि रूपों को धारण करते हैं और नट के समान उसका त्याग भी कर देते हैं, उसी तरह से उन्होंने जिस शरीर से पृथिवी के भार को उतारा उस श्रीकृष्ण शरीर का उन्होंने त्याग कर दिया ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

श्रीकृष्णमूर्तेर्विशेषमाह- यथेति । तान्यपि यथा धत्ते जहाति च । तदाह । यथा नटो निजरूपेण स्थितोऽपि रूपान्तराणि धत्तेऽन्तर्धत्ते च तथा तदपि कलेवरं जहौ । अन्तरधादित्यर्थः ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीकृष्ण शरीर की विशेषता उन्होंने **यथा० इत्यादि** श्लोक से बतलायी है । जिस तरह से भगवान् मत्स्य इत्यादि रूपों को धारण करते हैं और उनका परित्याग कर देते है । या जैसे नट अपने रूप में स्थित रहकर भी विभिन्न रूपों को धारण करता है और फिर उन रूपों को त्याग देता है । उसी तरह से भगवान् ने भी अपने श्रीकृष्ण शरीर का परित्याग कर दिया ।।३५।।

**यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ।**
**तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः कलिरन्ववर्तत ॥३६॥**

**अन्वयः**— यदा श्रवणीयसत्कथः भगवान् मुकुन्दः इमां महीम् स्वतन्वा जहौ तदा अहः एव अप्रतिबुद्धचेतसाम् अधर्म हेतुः कलिः अन्ववर्तत ॥३६॥

**अनुवाद**— जिनकी कथाएँ सुनने के योग्य हैं वे भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले भगवान् मुकुन्द जिस दिन अपने शरीर से इस पृथिवी का परित्याग किए उसी दिन अज्ञानी मनुष्यों को अधर्म में लगाने वाला कलियुग आ गया ॥३६॥

### भावार्थ दीपिका

युधिष्ठिरस्य स्वर्गारोहप्रसङ्गाय कलिप्रवेशमाह-यदेति । स्वतन्वा जहौ । सतनोरेव वैकुण्ठारोहात् । श्रवणार्हा सती कथा यस्य । तदा यदहस्तस्मिन्नेव । अहरिति लुप्तसप्तम्यन्तं पदम् । अप्रतिबुद्धचेतसामविवेकिनां इति । विवेकिनां तु न प्रभुरित्युक्तम्। अन्ववर्ततेति पूर्वमेवांशेन प्रविष्टस्य तेन रूपेणानुवृत्तिरुक्ता ॥३६॥

### भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण के प्रसङ्ग को उपन्यस्त करने के लिए **यदा इत्यादि** श्लोक के द्वारा सूतजी कलि के प्रवेश का वर्णन करते हैं। **स्वतन्वा जहौ** का अभिप्राय है कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने शरीर के साथ ही अपने लोक में चले गये। **श्रवणीय सत्कथः** का विग्रह है **श्रवणीया सती कथा यस्य** । अर्थात् श्रीभगवान् की सत्कथा सुनने योग्य है। जिस दिन श्रीभगवान् ने पृथिवी का परित्याग किया उसी दिन पृथिवी पर कलियुग आ गया। **अहः** यह लुप्त सप्तम्यन्त पद है। अविवेकियों द्वारा किए जाने वाले अधर्म का कारण कलि है। कलि अविवेकियों का ही स्वामी है विवेकियों का नहीं। चूकि कलियुग पहले ही अंशतः प्रविष्ट हो गया था। उसी रूप से उसकी अनुवृत्ति यहाँ बतलायी गयी है ॥३६॥

**युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तथात्मनि ।**
**विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७॥**

**अन्वयः**— बुधः युधिष्ठिरः तत् परिसर्पणम् पुरे राष्ट्रे, गृहे, तदात्मनि लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं विभाव्य गमनाय पर्यधात् ॥३७॥

**अनुवाद**— ज्ञानी युधिष्ठिर उसका (कलिका) प्रसार नगर, राष्ट्र, गृह और प्राणियों में लोभ, असत्य, कपट, हिंसा आदि अधर्म समूह को देखकर महा प्रस्थान करने का निश्चय कर लिए ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

बुधो युधिष्ठिरः । तस्य कलेः परिसर्पणं प्रसरणं विलोक्य । कथंभूतम् । लोभाद्यधर्मचक्रं यस्मिन् । जिह्मं कौटिल्यम्। पर्यधात्तदुचितं परिधानमकरोत् ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ज्ञानी थे। उन्होंने सर्वत्र कलि के प्रसार को देखा। उस कलि में लोभ, असत्य, छल तथा हिंसा आदि अधर्म समूह विद्यमान था। जिह्म कुटिलता को कहते है। इस प्रकार के कलि को देखकर उन्होंने महाप्रस्थानानुकूल अपने परिधान को धारण कर लिया ॥३७॥

**स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः । तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्गजाह्वये ॥३८॥**

**अन्वयः**— स्वराट् गुणैः आत्मनः सुसमं विनयिनं पौत्रम् तोयनीव्याः भूमेः पतिं गजाह्वये अभ्यसिंचत् ॥३८॥

**अनुवाद**— सम्राट् युधिष्ठिर ने गुणों के विषय में अपने ही समान विनीत अपने पौत्र परीक्षित् को समुद्र पर्यन्त की पृथिवी के स्वामी के रूप में हस्तिनापुर में अभिषिक्त किया ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मनः स्वस्य गुणैः सुसममतिसदृशम् । तोयं परिवेषाकारेण सर्वतः समुद्रोदकमेव नीवी परिधानविशेषो यस्यास्तस्या भूमेः पतित्वेनाभिषिक्तवान् ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

सम्राट् युधिष्ठिर ने देखा कि उनके पौत्र परीक्षित् में वे सारे गुण विद्यमान हैं जो उनमें हैं, साथ ही वह विनीत भी है इसलिए उन्होंने समुद्र पर्यन्त पृथिवी के स्वामी के रूप में परीक्षित् को हस्तिनापुर में अभिषिक्त कर दिया । **तोपनीव्याः** पद का विग्रह है **तोयम् परिवेषाकारेण सर्वतः स्थितम् समुद्रोदकम् एव नीवी परिधान विशेषो यस्याः तस्याः ।।३८।।**

**मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः । प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥३९॥**

**अन्वयः**— तथा मथुरायां शूरसेनाधिपतिं वज्रम् कृत्वा प्राजापत्याम् इष्टिं निरूप्य ईश्वरः अग्नीन् अपिबत् ॥३९॥

**अनुवाद**— और उन्होंने मथुरा में शूरसेन को पति के रूप में अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को अभिषिक्त करके प्राजापत्य इष्टि की और अग्नियों को उन्होंने अपनी आत्मा में स्थापित कर लिया ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

वज्रमनिरुद्धस्य पुत्रम् । निरूप्य कृत्वेत्यर्थः । अपिवदात्मनि समारोपयामास । ईश्वरः समर्थः ॥३९॥

**भाव प्रकाशिका**

समर्थ युधिष्ठिर ने अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को शूरसेनाधिपति बनाकर अपनी आत्मा में ही अग्नियों को स्थापित किया ॥३९॥

**विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् । निर्ममो निरहङ्कारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥४०॥**

**अन्वयः**— तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् विसृज्य निर्ममः निरहङ्कारः संछिन्नाशेष बन्धनः ॥४०॥

**अनुवाद**— उन्होंने वहीं पर अपने वस्त्र तथा आभूषण इत्यादि को त्याग दिया और ममता तथा अहङ्कार से रहित होकर सारे बान्धन्नों को काट दिया ॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

संछिन्नान्यशेषाणि बन्धनान्युपाधयो येन ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

उन्होंने समस्त उपाधियों को काट दिया ॥४०॥

**वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् । मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ॥४१॥**

**अन्वयः**— वाचं मनसि जुहाव, तत्प्राणे, तम् च इतरे, सोत्सर्गमपानं मृत्यौ तं पञ्चत्वे अजोहवीत् ॥४१॥

**अनुवाद**— उन्होंने वाणी को मन में लीन कर दिया, मन को प्राण में, प्राण को अपान में, क्रिया के साथ अपान को मृत्यु में तथा उसको पाँच भौतिक शरीर में लीन कर दिया ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

तदेव दर्शयति द्वाभ्याम् । वाचमित्युपलक्षणम् । सर्वेन्द्रियाणि मनसि प्रविलापितवानित्यर्थः । तच्च मनः प्राणे, प्राणाधीनप्रवृत्तित्वात् । तं च प्राणमितरे अपाने, तेनाकर्षणात् । अपानव्यापार उत्सर्गस्तत्सहितमपानं मृत्यौ तदधिष्ठातृदेवतायाम्। अनेनैव वागादिष्वपि तत्तत्कर्मसाहित्यं ज्ञेयम् । तं मृत्युं पञ्चत्वे पञ्चभूतानामैक्ये देहे । देहस्यैव मृत्युर्नात्मन इति भावितवानित्यर्थः। अजोहवीदिति यङ्लुगन्ताल्लुङि रूपम् ।।४१।।

### भाव प्रकाशिका

उसी को **वाचं जुहाव० इत्यादि** दो श्लोकों से स्पष्ट करते हैं । युधिष्ठिर ने वाणी आदि समस्त इन्द्रियों को मन में लीन किया, उसको प्राण में लीन किया, प्राण को अपान में लीन किया क्योंकि अपान प्राण का आकर्षण करता है । अपान का व्यापार उत्सर्ग है । उसके साथ अपान को उन्होंने मृत्यु में अर्थात् मृत्यु के अधिष्ठातृ देवता में लीन किया । इस तरह वाणी आदि को भी उनकी क्रियाओं के साथ ही लीन करने की क्रिया को समझना चाहिए। उस मृत्यु को भी पञ्चभूतों के एकीभूत शरीर में लीन किया । क्योंकि मृत्यु तो देह की ही होती है आत्मा की नहीं । इस तरह से उन्होंने भावना की । अजोहवीत् यह यङ्लगन्त लुङ् लकार का रूप है ।।४१।।

**त्रित्वे हुत्वाथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः । सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ।।४२।।**

**अन्वयः**— पञ्चत्वम् त्रित्वे हुत्वा मुनिः तत् च एकत्वे अजुहोत् सर्वम् आत्मनि अजुहवीत्, आत्मानम् अव्यये ब्रह्मणि अजोहवीत् ।।४२।।

**अनुवाद**— शरीर को मृत्यु रूप जानकर मनन शील युधिष्ठिर ने उसको त्रिगुण में मिला दिया, त्रिगुण को प्रकृति में मिला दिया, सबों के कारण स्वरूप प्रकृति को आत्मा में उन्होंने लीन किया और आत्मा को अविनाशी ब्रह्म में विलीन कर दिया ।।४२।।

### भावार्थ दीपिका

त्रित्वे गुणत्रये पञ्चत्वं देहम् । तच्च त्रित्वमेकत्वे अविद्यायाम् । सर्वं सर्वारोपहेतुमविद्यामात्मनि जीवे । अजोहवीदिति वक्तव्ये अजुहवीदित्यार्षम् । एवं शोधितमात्मानं ब्रह्मण्यव्यये कूटस्थे । न तस्यान्यत्रलय इत्यर्थः ।।४२।।

### भाव प्रकाशिका

देह के तीनों गुणों में उन्होंने लीन किया । उन तीनों गुणों को प्रकृति (अविद्या) में लीन किया । अविद्या ही सभी आरोपों का हेतु है । उस अविद्या को उन्होंने आत्मा में लीन किया । **अजोहवीत्** कहना चाहिए किन्तु उसके स्थान में अजुहवीत् यह आर्ष प्रयोग है । इस प्रकार से शोधित आत्मा को उन्होंने कूटस्थ ब्रह्म में लीन किया । आत्मा का ब्रह्मव्यतिरिक्त में लय नहीं हो सकता है ।।४२।।

**चीरवासा निराहारो बद्धवाङ्मुक्तमूर्धजः । दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ।।४३।।**
**अनवेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा । उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ।।**
**हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः ।।४४।।**

**अन्वयः**— चीरवासा निराहारः बद्धवाक्, मुक्तमूर्धजः आत्मनः रूपम् जडोन्मत्तपिशाचवत् दर्शयन्, अनपेक्षमाणः बधिरः यथा अश्रृण्वन् निरगात् । महात्मभिः पूर्वगताम् हृदि परंब्रह्मध्यायन् उदीचीम् आशां प्रविवेश यतो गतः न आवर्तेत ।।४३-४४।।

**अनुवाद**— उन्होंने शरीर पर चीर वस्त्र धारण कर लिया, आहार का परित्याग कर दिया और मौन धारण कर लिया एवं अपने केशों को खोल दिया, वे अपने रूप को जड, या उन्मत्त या पिशाच के समान दिखाने लगे। वे किसी की अपेक्षा किए बिना ही, बहरे के समान किसी की बात सुने बिना ही घर से निकल पड़े । हृदय में

परब्रह्म का ध्यान करते हुए जिस दिशा में ज्ञानी पुरुष पहले जा चुके हैं उस उत्तर दिशा में वे चले गये। जिस दिशा में जाकर कोई लौटता नहीं है ॥४३-४४॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवमात्मप्रतिपत्तिमुक्त्वा बाह्यस्थितिमाह- चीरवासा इति द्वाभ्याम्। बद्धवाङ्मौनी। अनवेक्षमाणोऽनुजादिप्रतीक्षामकुर्वन् आशां दिशम्। गतपूर्वां पूर्वं प्रविष्टाम्। महात्मभिर्विवेकवद्भिः। यतो यां दिशं गतः ॥४४॥

### भाव प्रकाशिका

इससे पहले के दो श्लोक में आत्मा की स्थिति को बतलाकर सूतजी राजा युधिष्ठिर की वाह्यस्थिति का वर्णन **चीरवासा० इत्यादि** दो श्लोकों में करते है। बद्धवाक् का अर्थ है कि उन्होंने मौन धारण कर लिया। **अनवेक्षमाणः** का अर्थ है कि वे अपने अनुजों की प्रतीक्षा किए बिना ही उस उत्तर दिश में चल दिए जिस दिशा में पहले ज्ञानी पुरुष जा चुके हैं उस दिशा में जाकर कोई पुनः नहीं लौटता है ॥४३-४४॥

**सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः। कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥४५॥**

**अन्वयः**— भुवि, प्रजाः अधर्ममित्रेण स्पृष्टाः दृष्ट्वा कृतनिश्चयाः तमनु सर्वे भ्रातरः निर्जग्मुः ॥४५॥

**अनुवाद**— पृथिवी पर सारी प्रजा को अधर्म के मित्र कलि के द्वारा स्पृष्ट देखकर उनके सभी छोटे भाई भी निश्चय करके उनके पीछे घर से निकल गये ॥४५॥

### भावार्थ दीपिका

अधर्मो मित्रं यस्य तेन ॥४५॥

### भाव प्रकाशिका

जिसका अधर्म ही मित्र है, उस कलि के द्वारा पृथिवी की सारी प्रजाओं को प्रभावित देखकर भीम, अर्जुन आदि युधिष्ठिर के सभी भाई भी घर से निकल गये ॥४३॥

**ते साधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वात्यन्तिकमात्मनः। मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥४६॥**

**अन्वयः**— साधुकृतसर्वार्थाः ते आत्मनः आत्यन्तिकं ज्ञात्वा वैकुण्ठचरणाम्बुजम् मनसा धारयामासुः ॥४६॥

**अनुवाद**— उन लोगों ने जीवन के धर्म आदि समस्त प्रयोजनों को अच्छी तरह से सम्पन्न कर लिया था अतएव आत्मा के अन्तिम शरण रूप से वैकुण्ठाधिपति भगवान् के चरण कमल को जानकर उसीको अपने मन में वे लोग धारण किए ॥४६॥

### भावार्थ दीपिका

साधु सम्यक् कृताः सर्वेऽर्था धर्मादयो यैः। अतएव वैकुण्ठस्य चरणाम्बुजमेवात्यन्तिकं शरणं ज्ञात्वा ॥४६॥

### भाव प्रकाशिका

जीवन का प्रयोजन है अच्छी तरह से धर्मादि का अनुष्ठान। सभी पाण्डव उन सभी प्रयोजनों को पूरा कर लिए थे। उन लोगों ने जान लिया था कि आत्मा के अन्तिम रक्षक श्रीभगवान् के चरण कमल ही है। अतएव उन लोगों ने अपने मन में भगवान् के चरण कमलों को धारण किया ॥४६॥

**तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे। तस्मिन्नारायणपदे एकान्तमतयो गतिम् ॥४७॥**
**अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः। विधूतकल्मषास्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥४८॥**

**अन्वयः**— तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या परेविशुद्धधिषणाः एकान्तमतयः ते विरजेनात्मनैव हि असद्भि विषयात्मभिः दुरवापाम् गतिम् तस्मिन् नारायणपदे विधूत कल्मषास्थानं अवापुः ॥४७-४८॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान करने के कारण जिनकी भक्ति उद्रिक्त हो गयी थी। फलतः उनकी बुद्धि भी सर्वथा शुद्ध हो गयी थी। उनकी बुद्धि के केवल श्रीभगवान् में ही लगे रहने के कारण वे अपने निष्कल्मष आत्मा के द्वारा उस गति को प्राप्त कर लिए जिसे विषयासक्त कोई भी दुष्ट व्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। श्रीभगवान् का चरण ही निष्पाप पुरुष का निवास स्थान है उन्हीं भगवान् नारायण के चरण कमलों को उन लोगों ने प्राप्त कर लिया ॥४७-४८॥

### भावार्थ दीपिका

कथंभूते पदे। विधूतकल्मषाणामास्थानं निवासस्थानं यत्तस्मिन्। विरजेनात्मनैव गतिं प्रापुर्नतु षोडशकलेन लिङ्गेन। गतेर्वा विशेषणम्। विरजेनात्मनैवावस्थानरूपां गतिं ते विधूतकल्मषाः प्रापुरिति ॥४७-४८॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् का चरण कमल निष्पाप पुरुषों का निवास स्थान है, उसी में उन लोगों ने गति प्राप्त कर ली। उन लोगों ने रजोगुणादि से रहित ही आत्मा के द्वारा प्राप्त किया, सोलह अवयवों वाले लिङ्ग शरीर से नहीं; क्योंकि उन लोगों के सारे पाप विनष्ट हो गये थे ॥४७-४८॥

**विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान्। कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥४९॥**

**अन्वयः**— आत्मवान् विदुरोऽपि प्रभासे देहं विसृज्य कृष्णावेशेन तच्चितः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥४९॥

**अनुवाद**— प्रभास क्षेत्र में अपने शरीर को त्याग कर भगवान् श्रीकृष्ण की भावना से भूषित चित्त वाले आत्मज्ञ विदुरजी भी पितृगणों के साथ अपने लोक (यमलोक) में चले गये ॥४९॥

### भावार्थ दीपिका

विदुरोऽपि तीर्थान्यटन्प्रभासे श्रीकृष्णावेशेन कृष्णे चित्तमावेश्य देहं परित्यज्य तच्चित्त एव संस्तदानीं नेतुमागतैः पितृभिः सह स्वक्षयं स्वाधिकारस्थानं ययौ ॥४९॥

### भाव प्रकाशिका

तीर्थाटन करते हुए विदरुजी भी प्रभास क्षेत्र में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेमावेश में श्रीकृष्ण में ही अपने चित्त को लगाकर अपने देह का परित्याग करके उनको लेने के लिए आये हुए पितरों के साथ अपने अधिकार स्थान यमलोक में चले गये ॥४९॥

**द्रौपदी च तदाज्ञाय पतीनामनपेक्षताम्। वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराप तम् ॥५०॥**

**अन्वयः**— द्रौपदी च तदा पतीनाम् अनपेक्षताम् आज्ञाय भगवति वासुदेवे एकान्तमतिः सती तम् आप ॥५०॥

**अनुवाद**— द्रौपदी ने जब यह जान लिया कि उनके पति उनसे अनपेक्ष हो गये हैं तो उन्होंने अपनी बुद्धि केवल श्रीभगवान् में लगा दी और श्रीभगवान् को ही प्राप्त कर लिया ॥५०॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मानं प्रत्यनपेक्षतां तदा ज्ञात्वा तमाप ॥५०॥

### भाव प्रकाशिका

द्रौपदी ने जब जाना कि उनके पति उनसे अपेक्षा रहित हो गये हैं तो उन्होंने अपना मन एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया और अन्त में उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लिया ॥५०॥

**यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति संप्रयाणम् ।**
**शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥५१॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पाण्डवस्वर्गारोहरणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

**अन्वयः**— यः भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानाम् एतत् अलंस्वस्त्ययनम् पवित्रं इति संप्रयाणम् श्रद्धया शृणोति सः हरौ भक्तिं लब्ध्वा सिद्धिम् उपैति ।।५१।।

**अनुवाद**— जो व्यक्ति भगवान् के प्रिय पाण्डु के पुत्रों (पाण्डवों) के इस अत्यन्त मङ्गलमय तथा पवित्र महाप्रयाण की कथा को श्रद्धा पूर्वक सुनता है वह निश्चित रूप से भगवान् की भक्ति को प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥५१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पाण्डवस्वर्गारोहण नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।**

### भावार्थ दीपिका

इति एवं यत्संप्रयाणम् । अलमतिशयेन स्वस्त्ययनं मङ्गलास्पदम् । अलं पवित्रं च ।।५१।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायाम् टीकायाम् पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।**

### भाव प्रकाशिका

पाण्डवों का यह जो महाप्रयाण है वह अत्यन्त मङ्गलमय है और अत्यन्त पवित्र भी है ॥५१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१५।।**

# सोलहवाँ अध्याय

## पृथिवी धर्मसंवाद

सूत उवाच

**ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह ।**
**यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा ॥१॥**

**अन्वयः**— हे विप्र ! ततः द्विजवर्यशिक्षया महाभागवतः परीक्षित् महीं शशास सूत्याम् अभिजातकोविदः यथा समादिशन् तथा महद्गुणः ॥१॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— पाण्डवों के परधाम गमन के पश्चात् हे शौनकजी महाभागवत राजा परीक्षित् पृथिवी का प्रशासन श्रेष्ठ ब्राह्मणों की शिक्षा के अनुसार करने लगे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

ततश्च षोडशे भूमिधर्मयोः कलिखिन्नयोः । संवादे वर्ण्यते प्राप्तिः पालकस्य परीक्षितः । द्विजवर्याणां शिक्षया सदुपदेशेन। सूत्यां जन्मनि । अभिजातकोविदा जातकर्मविदः । हे विप्र, महतां गुणा यस्मिन् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके पश्चात् सोलहवें अध्याय में कलि से खिन्न हुए भूमि तथा धर्म के संवाद का तथा पृथिवी के पालक राजा परीक्षित् का संवाद वर्णित है । श्रेष्ठ ब्राह्मणों के उपदेशानुसार राजा परीक्षित् पृथिवी का प्रशासन करते थे। जन्म के समय ज्योतिषियों ने परीक्षित् के जिन गुणों का वर्णन किया था वे सभी गुण उनमें विद्यमान थे ।।१।।

**स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावत्तीम् । जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत्सुतान् ।।२।।**

**अन्वयः**— सः उत्तरस्य तनयाम् इरावतीम् उपयेमे तस्याम् जनमेजयादीन् चतुरः सुतान् उत्पादयत् ।।२।।

**अनुवाद**— उन्होंने उत्तर की पुत्री इरावती के साथ विवाह किया और उससे जनमेजय आदि चार पुत्रों को उत्पन्न किया ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

जनमेजयादीनित्यक्षराधिक्यं छान्दसम् । **'उत्पादयन्'** इति पाठे हेतौ शतृप्रत्ययः । सुतानुत्पादयितुमिरावतीमुपयेम इति वाक्ययोजना ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

**जनमेजयादीन् इत्यादि** श्लोक के प्रथम पाद में एक अक्षर अधिक छन्दस प्रयोग होने के कारण है । टिप्पणीकार का कहना है कि **'प्रधानकर्मण्याख्येये न्यादीनामाहुर्द्विकर्मणाम् ।' इत्यादि** के समान नव अक्षरों का एक चरण वाला यह अनुष्टुप् विशेष है । उत्पादयत् इस पाठ में हेतु के अर्थ में शतृप्रत्यय समझना चाहिए । उन्होंने पुत्रों को उत्पन्न करने के लिए इरावती के साथ विवाह किया यह वाक्य योजना है ।।२।।

**आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान् । शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षगोचराः ।।३।।**

**अन्वयः**— सः शारद्वतं गुरुं कृत्वा गङ्गायाम्त्रीन् अश्वमेधान् आजहार यत्र देवा अक्षगोचराः ।।३।।

**अनुवाद**— उन्होंने कृपाचार्य को गुरु बनाकर गङ्गा के तट पर तीन अश्वमेध यज्ञों को किया, उस यज्ञ में देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते थे ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

आजहार कृतवानित्यर्थः । शारद्वतं कृपम् । यत्र येष्वश्वमेधेषु देवा दृष्टिगोचरा बभूवुः ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

शारद्वत कृपाचार्य का नाम है । परीक्षित् ने कृपाचार्य को अपना गुरु बनाकर गङ्गा के तट पर तीन अश्वमेध यज्ञों को किया उन यज्ञों में देवता प्रत्यक्ष रहते थे ।।३।।

**निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् । नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ।।४।।**

**अन्वयः**— सः वीरः ववचित् दिग्विजये नृप लिङ्गधरं शूद्रं पदा गोमिथुनं ध्नन्तम् कलिम् ओजसा निजग्राह ।।४।।

**अनुवाद**— वीर राजा परीक्षित् एक बार दिग्विजय के प्रसङ्ग में राजा का रूप बनाये हुए एक शूद्र को जो अपने पैरों से दो गौ के जोड़े को मारते हुए देखा और उसको बलपूर्वक पकड़कर उन्होंने दण्डित किया ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

निजग्राह निगृहीतवान् । कलिमेव निर्दिशति–नृपेति ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

उन्होंने कलि को ही निगृहीत किया । वह राजा का चिह्न धारण किए हुए था और एक गौ और एक बैल को पैर से मार रहा था ।।४।।

शौनक उवाच

**कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः। नृदेवचिह्नधृक् शूद्रः कोऽसौ गां यः पदाऽहनत्॥५॥**
**तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम्। अथवाऽस्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम्॥६॥**

अन्वयः— दिग्विजये नृपः कलिं कस्य हेतो केवलं निजग्राह (हतवान् नहि यतः) असौ नृदेवचिह्नधृक् शूद्रःकः यः गां पदा अहनत् । हे महाभाग ! यदि कृष्ण कथाश्रयम् अथवा अस्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम् तत्कथ्यताम् ॥५-६॥

**शौनक महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— दिग्विजय के प्रसङ्ग में राजा ने कलि को केवल दण्ड ही देकर क्यों छोड़ दिया, उसे मारा क्यों नहीं ? एक तो वह राजा का चिह्न धारण किए हुए था दूसरे शूद्र था और गौ को अपने पैरों से मार रहा था उसको नहीं मारने का कारण क्या था ? हे महाभाग सूतजी यदि इस वृत्तान्त का सम्बन्ध भगवान् की कथा से हो अथवा श्रीभगवान् के चरण कमलों के पराग का पान करने वाले सन्तों से इसका सम्बन्ध हो तो इसको आप मुझे बतलाइये ॥५-६॥

**भावार्थ दीपिका**

कस्य हेतोरति । अयमर्थः- कलिं कस्माद्धेतोः केवलं निजग्राह नतु हतवान् । यतोऽसौ शूद्रः अतिकुत्सितः । यो गां पदाऽहनदहन्निति । अस्य विष्णोः पदाम्भोजयोर्मकरन्दस्तं लिहन्त्यास्वादयन्ति ये तेषां सतां महतां वा कथाश्रयमिति समासान्निष्कृष्टस्यानुषङ्गः । तर्हि कथ्यताम् ॥५-६॥

**भाव प्रकाशिका**

शौनकजी के **कस्य हेतोः** कहने का अभिप्राय है कि राजा परिक्षित् कलि का केवल निग्रह करके क्यों छोड़ दिये ? और उसको मारे नहीं । क्योंकि एक तो वह अत्यन्त निन्दित शूद्र था और वह पैर से गौ के जोड़े को मारता था, अतएव उसका तो उन्हे वध ही कर देना चाहिए था । इस बात का यदि भगवान् की कथा से सम्बन्ध हो अथवा भगवान् विष्णु के चरणारविन्द के पराग का रस पान करने वाले सन्तों की कथा से सम्बन्ध हो तो बतलाइये ॥५-६॥

**किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः। क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ॥**
**इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥७॥**

**अन्वयः**— अन्यै असदालापैः किम् यद् आयुषः असद् व्यर्थः । हे अङ्गः । क्षुद्रायुषाम् मर्त्यानाम् नृणाम् ऋतम् इच्छताम् इह भगवान् मृत्युः उपहूतः ।।७।।

**अनुवाद**— दूसरी व्यर्थ की बातों से क्या लाभ है ? उससे तो आयु व्यर्थ में ही नष्ट हो जाती है । हे अङ्ग मरणशील मनुष्य होकर भी जो लोग मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उन लोगों के ही कल्याण के लिए यहाँ इस शोमित्र कर्म में यमराज को नियुक्त किया गया है ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

नो चेत्किमन्यैरसद्भिरालापैः । यद्यैरायुषो वृथा क्षयः । अस्माकमयं सत्रप्रयत्नोऽपि हरिकथामृतपानार्थ एवेत्याह सार्धाभ्याम्। क्षुद्रमल्पमायुर्येषाम् । अतो मर्त्यानां मरणधर्मवताम् । तथापि ऋतं सत्यं मोक्षमिच्छताम् । यो मृत्युः स इह सत्रे शमितुरिदं शामित्रं कर्म पशुहिंसनं तदर्थमुपहूतः । ततः आह-न कश्चिदिति ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि इसका भगवान् अथवा भागवतों की कथा से सम्बन्ध हो अन्यथा दूसरे व्यर्थ की बातों से क्या लाभ

है ? क्योंकि उन सभी बातों से तो व्यर्थ ही में आयु का क्षय ही होना है । हमलोगों का यह सत्र करने का प्रयोजन श्रीहरि की कथा रूपी अमृत का पान करना है । इस बात को डेढ श्लोक से कहा गया है । मरणशील मनुष्यों की आयु तो अत्यल्प है किन्तु ऐसा होकर भी जो लोग मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं । उनके कल्याण के लिए यह शामित्र कर्म आयोजित है । जो मृत्यु है उसको शान्त करने के लिए यह शामित्र कर्म है । इसमें पशुओं की हिंसा नहीं होने वाली है । इसीलिये यहाँ यमराज को आहूत किया गया है । अतएव व्यर्थ की बातों को करने से कोई लाभ नहीं है । इस बात को **न कश्चित्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥७॥

**न कश्चिन्म्रियते तावद्यावदास्त इहान्तकः। एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः ॥**
**अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ॥८॥**

**अन्वयः**— यावद् इहान्तकः तावत् कश्चित् न म्रियते । एतदर्थं हि परमर्षिभिः भगवान् आहूतः । अहो नृलोके हरिलीलामृतं वचः पीयेते ॥८॥

**अनुवाद**— जब तक यहाँ पर यमराज हैं तब तक कोई नहीं मरेगा । इसीलिए परमर्षियों ने भगवान् को यहाँ आहूत किया है । जिसका बड़ा ही भाग्य होता है वही मनुष्य लोक में श्रीहरि के लीलामृत का पान करने का अवसर प्राप्त करता है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

ततोऽपि किमत आह । अहो नृलोके हरिलीलामृतं वचः पीयेतेत्येतदर्थम् । हरिलीलैवामृतं यस्मिंस्तत् ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

उससे भी क्या लाभ है तो उसके उत्तर में कहते हैं, **अहोनृलोके० इत्यादि** इस संसार में रहने वाले मनुष्य का सबसे बड़ा भाग्य यही है कि वह इस लोक में श्रीहरि की लीलामृत से युक्त वाणी का श्रवण करे । ऐसी वाणी जिसमें श्रीहरि की लीला रूपी अमृत विद्यमान हो ॥८॥

**मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै । निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥९॥**

**अन्वयः**— मन्दायुषः मन्दस्य, मन्दप्रज्ञस्य आयुः नक्तं निद्रया दिवा च व्यर्थकर्मभिः ह्रियते ॥९॥

**अनुवाद**— अल्पआयु वाले मनुष्य जो मन्द हैं अर्थात् आलासी हैं तथा उनकी बुद्धि भी अल्प होती है, ऐसे मनुष्य की आयु रात्रि में सोने में और दिन में व्यर्थ के कर्मों को करने में ही बीत जाती हैं ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

तदभावे वृथैव जीवनमित्याह । मन्दस्यालसस्य । नक्तं रात्रौ यद्वय आयुस्तन्निद्रया ह्रियते । दिवा अह्नि च यद्वयस्तद्व्यर्थकर्मभिरपह्रियते ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में बतलाया जा रहा है कि लीलामृत पान के बिना जीवन व्यर्थ ही हो जाता है । कम आयु वाले आलसी मनुष्य की आयु रात्रि में सोने में ही बीत जाती है और दिन में वह व्यर्थ के कर्मों को करने में ही अपनी आयु बिता देता है ॥९॥

सूत उवाच

**यदा परीक्षित्कुरुजाङ्गले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ।**
**निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौण्डिराददे ॥१०॥**

**अन्वयः**— यदा कुरुजाङ्गले वसन परीक्षित् निज चक्रवर्तिते कलिं प्रविष्टां अनतिप्रियां वार्तां निशम्य ततः संयुगशौण्डिः सः शरासनम् आददे ॥१०॥

**अनुवाद**— कुरुजाङ्गल प्रदेश में रहते हुए राजा परीक्षित् ने अपने राज्य में कलि के प्रवेश विषयक वार्ता को सुना तो उन्हें कष्ट भी हुआ और प्रसन्नता भी हुयी कि इसी बहाने मुझे युद्ध करने का अवसर मिला। उसके पश्चात् युद्ध करने में निपुण वे अपने हाथ में धनुष को उठा लिए ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र तावत्कलिनिग्रहप्रसङ्गमाह–यदेति। यदा निजचक्रवर्तिते स्वसेनया पालिते देशे कलिं प्रविष्टं शुश्राव, तदा तामनतिप्रियां वार्तां किंचित्प्रियाम्। च युद्धकौतुकसंपत्तेः निशम्य ततः शरासनं दुष्टनिग्रहार्थमाददे। संयुगे शौण्डिर्युद्धे प्रगल्भः। पाठान्तरे युद्धे शौरिः कृष्णतुल्यः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

सर्वप्रथम सूतजी कलियुग के निग्रह के प्रसङ्ग को **यदा इत्यादि** श्लोक से उपन्यस्त करते हैं। जब राजा परिक्षित् अपनी सेना के द्वारा पालित देश में कलि के प्रवेश की बात को सुने तो उनको यह बात कुछ प्रिय भी लगी, क्योंकि उनको युद्ध करने का कुतूहल हो गया। उसके पश्चात् दुष्टों का निग्रह करने के लिए उन्होंने धनुष को उठा लिया। **संयुग शौडिः** शब्द का अर्थ है युद्ध करने में निपुण जहाँ **संयुगशौरिः** पाठ है वहाँ अर्थ होगा युद्ध करने में कृष्ण के समान ॥१०॥

**स्वलंकृतं श्यामतुरङ्गयोजितं रथं मृगेन्द्रध्वजमाश्रितः पुरात्।**
**वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥११॥**

**अन्वयः**— स्वलंकृतम्, श्यामतुरङ्गयोजितं मृगेन्द्रध्वजम् रथम् आश्रितः रथाश्वद्विपपत्ति युक्तया सेनाया परिवृतः दिग्विजयाय पुरात् निर्गतः ॥११॥

**अनुवाद**— जिसमें श्याम वर्ण के अश्व जुते थे ऐसे अलंकृत तथा सिंह के चिह्न से चिह्नित ध्वज वाले रथ पर सवार होकर रथ, अश्व, हाथी और पैदल सेना से घिरे हुए वे अपनी सेना के साथ दिग्विजय प्राप्त करने के लिए अपने नगर से निकल पड़े ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

ततश्च दिग्विजयाय निर्गतः ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

दुष्ट कलि का निग्रह करने के लिए राजा अपनी सेना के साथ अपनी नगरी से निकल पड़े ॥११॥

**भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून्। किंपुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— भद्राश्वं, केतुमालं च भारतं, उत्तरान्कुरुन्, किंपुरुषादीनि, वर्षाणि विजित्य, बलिं जगृहे ॥१२॥

**अनुवाद**— भद्राश्ववर्ष, केतुमालवर्ष, भारतवर्ष, उत्तरकुरुवर्ष, किंपुरुषवर्ष आदि वर्षों को जितकर उन सबों में उन्होंने उपहार प्राप्त किया ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

भद्राश्वादीनि पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरतः समुद्रलग्नानि वर्षाणि। मेरोः सर्वत इलावृतम्। तत उत्तरतो रम्यकं हिरण्मयं च। दक्षिणतो हरिवर्षं किंपुरुषं च। तानि विजित्य ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण समुद्र से सटे हुए भद्राश्व आदि वर्षों को उन्होंने जीत लिया और वहाँ

उन्होंने उपहार भी प्राप्त किया । सुमेरु पर्वत के चारो ओर इलावृत वर्ष है, सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में रम्यक और हिरण्यमय वर्ष है । सुमेरु के दक्षिण दिशा में हरिवर्ष और कुरुवर्ष है । इन सबों को जीतकर वे उपहार प्राप्त किए ।।१२।।

**तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम्। प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ।।१३।।**
**आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः। स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे।।१४।।**
**तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः। महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः ।।१५।।**

**अन्वयः**— तत्र तत्र स्वपूर्वेषां महात्मनाम् कृष्णमाहात्म्य सूचकम् प्रगीयमानं यशः उपशृण्वन्, अश्वथाम्नः अस्त्रतेजसः, परित्रातम् आत्मानं, स्नेहं च वृष्णिपार्थानाम् तेषां केशवे भक्तिम् च उपशृण्वन्, तेभ्यः परमसंतुष्टः, प्रीत्युजृम्भितलोचनः महाधनानि वासांसि हारान् च ददौ ।।१३-१५।।

**अनुवाद**— उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने पूर्वज महात्माओं का भगवान् श्रीकृष्ण के माहात्म्य सूचक गाये जाते हुए यश सुनते हुए, अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के तेज से भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित अपने को, यदुवंशियों और पाण्डवों में परस्पर में होने वाले प्रेम को तथा पाण्डवों की भगवान् श्रीकृष्ण में होने वाली भक्ति को वे सुने इन सभी बातों को करने वाले लोगों से राजा अत्यन्त सन्तुष्ट थे । प्रेमातिरेक के कारण उनके नेत्रकमल विकसित हो गये और महामनस्वी राजा परीक्षित् ने उन लोगों को बहुमूल्य वस्त्रों को तथा हारों को प्रदान किया ।।१३-१५।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रगीयमानं यशः यशआदीनि शृण्वंस्तेभ्यो ददाविति तृतीयेनान्वयः ।।१३-१५।।

**भाव प्रकाशिका**

गाये जाने वाले यश को लोगों के मुख से राजा परीक्षित् ने सुना । उन यश आदि को सुन कर वे महामनस्वी प्रसन्न हो गये तथा उन लोगों को बहुमूल्य वस्त्रों एवं हारों को प्रदान किए ।।१३-१५।।

**सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् ।**
**स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ।।१६।।**

**अन्वयः**— सारथ्य-पारषद-सेवन-सख्य-दौत्य-वीरासन-अनुगमन्-स्तवन-प्रणामम्-स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत् प्रणतिं च शृण्वन् नृपतिः विष्णोः चरणारविन्दे भक्तिं करोति ।।१६।।

**अनुवाद**— उन यशोगान करने वाले लोगों के मुख से राजा परीक्षित् ने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमातिरेक के कारण, पाण्डवों के सारथि बन गये, उनके सभापति बने, वे पाण्डवों की सेवा भी करते थे, वे पाण्डवों के सखा बने तथा पाण्डवों के दूत बनने का भी काम किए रात्रि को भगवान् हाथ में खड्ग लेकर पाण्डवों के शिविर की रक्षा रात्रि में करते थे, पाण्डवों के पीछे-पीछे चलते थे, पाण्डवों की स्तुति करते थे तथा पाण्डवों को प्रणाम भी करते थे । वे अपने स्नेहपात्र पाण्डवों के चरणों में संसार को झुका दिये । इन सारी बातों को सुनकर राजा परीक्षित् भगवान् विष्णु के चरणकमलों में भक्ति करते थे ।।१६।।

**भावार्थ दीपिका**

किञ्च स्निग्धेषु पाण्डवेषु विष्णोर्यानि सारथ्यादीनि कर्माणि तानि शृण्वन् । तथा विष्णोर्जगत्कर्तृकां प्रणतिं च शृण्वन्। नृपतिः । परीक्षिद्विष्णोश्चरणारविन्दे भक्तिं करोति स्म । पारषदमिति रेफषकारयोर्विश्लेषश्छान्दसः । तत्र पार्षदं सभापतित्वम्। सेवनं चित्तानुवृत्तिः । वीरासनं रात्रौ खड्गहस्तस्य तिष्ठतो जागरणम् ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

उन्होंने यशोगान करने वाले लोगों के मुख से सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्नेह के पात्र पाण्डवों के सारथि आदि का भी काम किए। उन्होंने यह भी सुना कि भगवान् ने सम्पूर्ण जगत् को पाण्डवों के चरणों में झुकाकर प्रणाम करवाया। वे रात्रि में अपने हाथ में खड्ग धारण करके पाण्डवों के शिविर की रक्षा भी करते थे। इन सारी बातों को सुनकर राजा परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों की भक्ति करते थे ॥१६॥

**तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् । नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीतन्निबोध मे ॥१७॥**

**अन्वयः**— एवं पूर्वेषाम् अन्वहम् वृत्तिम् वर्तमानस्य, नातिदूरे किल यत् आश्चर्यम् आसीत् तत् मे निबोध ॥१७॥

**अनुवाद**— इस तरह से अपने पूर्वजों की वृत्ति का प्रतिदिन अनुवर्तन करने वाले राजा के साथ बहुत जल्दी ही जो आश्चर्यकारी घटना हुयी, उस आश्चर्य को आप मुझसे सुनें ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

वृत्तिमनुवर्तमानस्य सतः। नातिदूरे शीघ्रमेव ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् भी अपने पूर्वज पाण्डवों की ही वृत्ति का अनुगमन करते थे। उनके जीवन में शीघ्र ही जो आश्चर्यकारी घटना हुयी उसको आप मुझसे सुनें ॥१७॥

**धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गाम् । पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— एकेन पद चरन् धर्मः, विच्छायां गाम् उपलभ्य, विवत्साम् मातरम् इव अश्रुवदनाम् उपलभ्य पृच्छति स्म ॥१८॥

**अनुवाद**— बैल का रूप धारण करके एक पैर से चलता हुआ धर्म मृतवत्सा माता के समान दुःखी पृथिवी से मिलकर पूछे ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

धर्मों वृषरूपः। विच्छायां हतप्रभाम्। गां गोरूपां पृथ्वीम्। विवत्सां नष्टापत्याम् ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

वृष का रूप धारण किए धर्म, जो एक पैर पर चल रहा था, वह गौ रूप धारिणी पृथिवी से मिला। वह गौ जिसका बच्चा मर गया हो ऐसी निष्प्रभ माता के समान गौ से पूछा ॥१८॥

धर्म उवाच

**कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छायाऽसि म्लायतेषन्मुखेन ।**
**आलक्षये भवतीमन्तराधिं दूरे बन्धुं शोचसि कंचनाम्ब ॥१९॥**

**अन्वयः**— भद्रे ! कच्चित् ते आत्मनः अनामयम्? ईषत् म्लायता मुखेन विच्छायासि, भवतीम् अन्तराधिम् आलक्षये। अम्ब ! कञ्चन दूरे बन्धुं शोचसि ॥१९॥

### धर्म ने कहा

**अनुवाद**— हे भद्रे ! तुम्हारा कुशल तो है न ! कुछ मलीन होते हुए मुख के कारण तुम श्रीहीन प्रतीत होती हो, लगता है तुम्हारे मन में बहुत अधिक कष्ट है। हे अम्ब ! तुम अपने किसी दूर देश में विद्यमान अपने बान्धव को सोच रही हो क्या ?॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

ते आत्मनो देहस्य यद्यपि वहिरामयो न लक्ष्यते तथाप्यन्तर्मध्ये आधिः पीडा यस्यास्तां त्वामालक्षये । केन । यतो विच्छायासि, अत ईषन्म्लायता वैवर्ण्यं भजता मुखेन लिङ्गेन । तत्र कारणानि कल्पयन्पृच्छति-दूरेबन्धुमित्यादिपञ्चभिः । दूरे स्थितं बन्धुम् ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

वृष रूपधारी धर्म ने कहा कि तुम्हारे शरीर में तो कोई रोग नही दिखता है, लेकिन मुझे लगता है कि तुम्हारे मन में बहुत अधिक पीडा है, इसीलिए तुम श्रीहीन सी प्रतीत हो रही हो । यह तुम्हारे थोड़ा सा मलिन पड़े हुए मुख के कारण प्रतीत होता है । उसके विषय में कारण की कल्पना करते हुए **दूरे बन्धुम्० इत्यादि** पाञ्च श्लोकों से वह पूछता है दूर देश में विद्यमान किसी अपने बन्धु के विषय में सोचती हो क्या ?।।१९।।

**पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ।**
**आहो सुरादीन्हृतयज्ञभागान्प्रजा उतस्विन्मघवत्यर्षति ।।२०।।**

**अन्वयः**— पादैः न्यूनम् एकपादं माम् शोचसि वा वृषलैः भोक्ष्यमाणम् आत्मानं शोचसि । आहो हृतयज्ञभागान् सुरान् शोचसि, उतस्वित् अवर्षति मधवति शोचसि ।।२०।।

**अनुवाद**— क्या तीन पादों के विनष्ट हो जाने के कारण एक पैर वाले मेरे विषय में सोचती हो क्या ? अथवा अपने विषय में सोच रही हो कि मेरे ऊपर शूद्र प्रशासन करेंगे ? अथवा जिनके यज्ञों का भाग छिन लिया गया है, उन देवताओं के विषय में तुम सोच रही हो क्या ? अथवा इन्द्र के द्वारा वर्षा नहीं किए जाने के कारण अकाल से पीड़ित अपने विषय में तुम सोच रही हो ?।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

त्रिभिः पादैर्न्यूनमत एवैकपादम् । मा मां मल्लक्षणं जनमित्यर्थः । वृषलैरित ऊर्ध्वं भोक्ष्यमाणम् । पुंस्त्वमात्मपदविशेषणत्वात् । हृता यज्ञभागा येषां तान् । यज्ञाद्यकरणात् ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

तीन पैरों के नहीं रहने के कारण एक पैर वाले मेरे विषय में सोचती हो क्या ? मेरे जैसे व्यक्ति के विषय में सोचती हो ? अब इसके बाद मेरे ऊपर प्रशासन शूद्र करेंगे यह सोचकर दुःखी हो क्या ? मे आत्मा पद का विशेषण होने के कारण भोक्ष्यमाणम् में पुल्लिङ्ग है यज्ञ आदि के नहीं किए जाने के कारण जिनके भाग अपहृत हो गये हैं ऐसे देवताओं के विषय में सोच रही हो क्या ?।।२०।।

**अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान् शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ।**
**वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ।।२१।।**

**अन्वयः**— हे उर्वि देवि ! अरक्ष्यमाणाः स्त्रियः अथो पुरुषादैः इव आर्तान् बालान् शोचसि ? कुकर्मणि ब्रह्मकुले वाचं देवीं शोचसि, वा अब्रह्मण्ये राजकुले शोचसि, अथवा कुलाग्र्यान् शोचसि ।।२१।।

**अनुवाद**— हे पृथिवी देवि ! आप क्या पतियों के द्वारा जिनकी रक्षा नहीं की जा रही है, उन स्त्रियों के विषय में सोच रही हैं, अथवा राक्षस के समान पिताओं के द्वारा आर्त बने हुए बालकों के विषय में सोचती हो? अथवा निन्दित कर्म करने वाले ब्राह्मणों के हाथ में पड़ी हुयी विद्यादेवी के विषय में आप सोच रही हो । या नास्तिक राजाओं के विषय में आप सोच रही हो, अथवा श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न दुःखी ब्राह्मणों के विषय में आप सोच रही हो ?।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

हे उर्वि पृथ्वि, भर्तृभिररक्ष्यमाणाः स्त्रियः पितृभिररक्ष्यमाणान्बालान्प्रत्युत तैरेव निर्दयैरार्तान् क्लिष्टान् । वाचं देवीं सरस्वतीं कुकर्मणि दुराचारे स्थितान् । कुलाग्र्यान्ब्राह्मणोत्तमान्सेवकान् ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

हे पृथिवी ! आप क्या पतियों के द्वारा जिनकी रक्षा नहीं की जा रही है उन स्त्रियों के विषय में सोच रही हो ? अथवा अपने पिता के द्वारा जिनकी रक्षा नही की जा रही है उन बालकों के विषय में सोच रही हो ? जिन बालकों के पिता ही राक्षसों के समान उन बालकों को अत्यधिक कष्ट देते है, उन बालकों के विषय में सोच रही हो अथवा दुराचारी ब्राह्मणों के हाथ में पड़ी हुयी सरस्वती देवी के विषय में सोचती हो ? अथवा ब्राह्मणों के द्रोही राजाओं के विषय में सोचती हो ? या सेवक बने हुए ब्राह्मणों के विषय में तुम सोचती हों ?।।२१।।

**किं क्षत्रबन्धून्कलिनोपसृष्टान् राष्ट्राणि वा तैरवतोषितानि ।**
**इतस्ततो वाशनपानवासः स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ।।२२।।**

**अन्वयः**— किं कलिना उपसृष्टान् क्षत्रबन्धून् वातैः अवरोपितानि राष्ट्राणि वा अशन-पान स्नान व्यवावायोन्मुखम् जीवलोकम् शोचसि ।।२२।।

**अनुवाद**— आप कलि दोष से व्याप्त राजाओं को या उन सबों से व्याप्त राष्ट्रों को; खान-पान-निवास-स्नान तथा मैथुन के विषय में मनमानी करने वाले मनुष्यों के विषय में सोच रही हैं क्या ?।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

उपसृष्टान् व्याप्तान् अवरोपितान्युद्वासितानि । व्यवायो मैथुनम् । इतस्ततो निषेधानादरेण सर्वतोऽशनादिषून्मुखं प्रवर्तमानं जीवलोकं वा ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

उपसृष्ट पद व्याप्त का बोधक है, अवरोपितानि का अर्थ है विनष्ट कर दिए गये । व्यवाय का अर्थ है मैथुन इन सबों के विषय में जो शास्त्रों में नियम बतलाये गये हैं, उन सबों का अनादर करने वाले जीव समूह के विषय में आप सोच रही हैं क्या ?।।२२।।

**यद्वाम्ब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ।**
**अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ।।२३।।**

**अन्वयः**— यद्वा हे धारित्रि अम्ब ते भूरिभारकृतावतारस्य अन्तर्हितस्य हरेः स्मरती विसृष्टाऽसि कर्माणि शोचसि ?।।२३।।

**अनुवाद**— अथवा हे धरती माँ आपके अत्यधिक भार को दूर करने के लिए अवतार ग्रहण करने वाले श्रीभगवान् के अन्तर्धान हुए श्रीहरि को स्मरण कर रही हो, जिन श्रीहरि ने तुमको त्याग दिया है, जिनकी लीलाएँ मोक्षकामी पुरुषों के आश्रय हैं, उन श्रीहरि के विषय में शोच रही हो क्या ?।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

हे अम्ब मातः हे धरित्रि, ते तव यो भूरिभारस्तस्यावतारणार्थं कृतावतारस्य कर्माणि स्मरन्ती तेन विसृष्टा सती शोचसि। निर्वाणं विलम्बितमाश्रितं येषु तानि । पाठान्तरे निर्वाणं विडम्बितमुपहसितं यैः । मोक्षादप्यधिकसुखानीत्यर्थः ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

हे मातः पृथिवी ! तुम्हारे ऊपर जब बहुत भार बढ़ जाता है उस समय तुम्हारे भारातिशय्य को दूर करने के लिए श्रीभगवान् अवतार ग्रहण करते हैं । जहाँ पर **निर्वाण विडम्बितातिं** पाठ हैं उसका अर्थ होगा कि मोक्ष

से भी अधिक सुख देते हैं । तथा जो भगवान् तुमको छोड़कर अपने लोक में चले गये हैं उनके विषय में तुम सोचती हो क्या ?।।२३।।

**इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं वसुन्धरे येन विकर्शितासि ।**
**कालेन वा ते बलिनां बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमम्ब सौभगम् ।।२४।।**

**अन्वयः**— हे वसुन्धरे ! येन त्वं विकर्शितासि इदं तवाधिमूलम् मम आचक्ष्व, हे अम्ब ! बलिनाम् बलियसा कालेन ते सुरार्चितम् सौभागम् हृतम् शोचसि ।।२४।।

**अनुवाद**— हे भूदेवि ! आप तो धनधान्य की खान हैं । जिसके कारण आप इतना दुखी है, अपनी उस अन्तर्व्यथा का कारण मुझे बतलाइये । अथवा सभी बतलवानों से भी बलवान् काल ने देवताओं से पूजित जो आपका सौभाग्य है उसको आप से छिन लिया है उसके विषय में आप दुःखी हैं ?।।२४।।

**भावार्थ दीपिका**

हे अम्ब, ते सौभाग्यं कालेन वा हृतम् ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

धर्म ने कहा कि आप तो वसुन्धरा हैं, अर्थात् समस्त धन-धान्यों की खान हैं, आप इतना दुःखी क्यों हैं? क्या आप देवताओं के द्वारा भी पूजित होने वाले अपने सौभाग्य के विषय में सोच रही हैं जिसको काल ने आपसे छिन लिया है ? काल के समान तो कोई भी बलवान् नहीं है । आप उसी के विषय में सोचकर दुःखी हो रही हैं क्या ?।।२४।।

धरण्युवाच

**भवान्हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि । चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ।।२५।।**

**अन्वयः**— हे धर्म ! भवान् हि यत् मामनु पृच्छसि तत् सर्वं वेद येन त्वम् चतुर्भिः लोकसुखावहैः पादैः वर्तसे ।।२५।।

**अनुवाद**— पृथिवी ने कहा हे धर्म ! आप जो कुछ मुझसे पूछ रहे हैं वह सबकुछ आप जानते हैं, क्योंकि संसार को सुख प्रदान करने वाले आपके चार चरण हैं ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**

भवान् जानात्येव तथापि वक्ष्यामीत्याह । येन हेतुभूतेन त्वं चतुर्भिः पादैर्वर्तसे । यत्र च सत्यादयो महागुणा न िवयन्ति (न क्षीयन्ते स्म) तेन श्रीनिवासेन रहितं लोकं शोचमीति षष्ठेनान्वयः ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

पृथिवी ने कहा— आप तो जानते ही हैं, फिर भी मुझसे पूछे रहे हैं, तो मैं आपको बतला रही हूँ क्योंकि आपके चार चरण हैं, और वे सभी चरण संसार को सुख देने वाले हैं जिन श्रीभगवान् के सत्यादि गुण कभी क्षीण नहीं होते हैं, उन भगवान् श्रीनिवास से रहित हो गया है संसार; उस संसार के विषय में मैं सोचती हूँ इस श्लोक का सम्बन्ध आगे के छठे श्लोक से हैं ।।२५।।

**सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः संतोष आर्जवम् ।**
**शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ।।२६।।**
**ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः । स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं मार्दवमेव च ।।२७।।**
**प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः। गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः।।२८।।**

**एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः । प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥२९॥**
**तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन सांप्रतम् । शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥३०॥**

अन्वयः— सत्यं, शौचम् दया, क्षान्तिः, त्यागः, सन्तोषः आर्जवम्, शमः दमः, तपः साम्यम्, तितिक्षा, उपरतिः, श्रुतम्, ज्ञानम्, विरक्तिः, ऐश्वर्यम्, शौर्यं तेजः बलं स्मृतिः, स्वातंत्र्यम्, कौशलम्, कान्तिः, धैर्यम्, मार्दवम्, प्रागल्भ्यं, प्रश्रयः, शीलम् सह, ओजः, बलम्, भगः, गाम्भीर्यम्, स्थैर्यम्, आस्तिक्यम्, कीर्तिः मानः, अनहंकृतिः, एते च अन्ये च महत्त्वम् इच्छद्भिः प्रार्थ्याः महागुणाः यत्र नित्याः कदाचन न वियन्ति । तेन गुणपात्रेण श्रीनिवासेन रहितं पाप्मना कलिना ईक्षितम् लोकम् साम्प्रतम् शोचामि ॥२६-३०॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् में सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तप, समता, तितिक्षा, उपरति, शास्त्रविचार, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शौर्य, तेज, बल, स्मृति, स्वातन्त्र्य, कौशल, कान्ति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनय, शील, साहस, उत्साह, बल, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्ति, गौरव और अहङ्कार राहित्य ये जो अप्राकृत गुण हैं, तथा महत्त्वाकांक्षी पुरुषों के द्वारा वांछित महान गुण कभी क्षीण नहीं होते हैं, उन सभी गुणों के एक मात्र आश्रय श्रीभगवान् से रहित और पापी कलियुग के द्वारा दृष्ट संसार के विषय में सोचती हूँ ॥२६-३०॥

## भावार्थ दीपिका

सत्यं यथार्थभाषणम् । शौचं शुद्धत्वम् । दया परदुःखासहनम् । क्षान्तिः क्रोधप्राप्तौ चित्तसंयमनम् । त्यागोऽर्थिषु मुक्तहस्तता । संतोषोऽलंबुद्धिः । आर्जवमवक्रता । शमो मनोनैश्चल्यम् । दमो वाह्येन्द्रियनैश्चल्यम् । तपः स्वधर्मः । साम्यमरिमित्राद्यभावः । तितिक्षा परापराधसहनम् । उपरतिर्लाभप्राप्तावौदासीन्यम् । श्रुतं शास्त्रविचारः । ज्ञानमात्मविषयम् । विरक्तिर्वैतृष्ण्यम् । ऐश्वर्यं नियन्तृत्वम् । शौर्यं संग्रामोत्साहः । तेजः प्रभावः । बलं दक्षत्वम् । स्मृतिः कर्तव्याकर्तव्यार्थानुसन्धानम् । स्वातन्त्र्यमपराधीनता । कौशलं क्रियानिपुणता । कान्तिः सौन्दर्यम् । धैर्यमव्याकुलता । मार्दवं चित्ताकाठिन्यम् । प्रागल्भ्यं प्रतिभातिशयः । प्रश्रयो विनयः । शीलं सुस्वभावः । सहओजोबलानि मनसो ज्ञानेन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणां च पाटवानि । भगो भोगास्पदत्वम् । गाम्भीर्यमक्षोभ्यत्वम् । स्थैर्यमचञ्चलता । आस्तिक्यं श्रद्धा । कीर्तिर्यशः । मानः पूज्यत्वम् । अनहंकृतिर्गर्वाभावः । एते एकोनचत्वारिंशत् । अन्ये च ब्रह्मण्यशरण्यत्वादयो महान्तो गुणा यस्मिन्नित्याः सहजा न वियन्ति न क्षीयन्ते स्म । तेन गुणपात्रेण गुणालयेन । पाप्मना पापहेतुना ॥२६-३०॥

## भाव प्रकाशिका

यथार्थ बात को कहने को सत्य कहते हैं, शुद्धता को ही शौच कहते हैं, दूसरे के दुःख को नहीं सह सकने को दया कहते हैं, क्रोध हो जाने पर भी चित्त को संयमित करके क्षमाकर देने को क्षान्ति कहते हैं, मुक्त हस्त होकर अर्थियों को देने को त्याग कहते हैं, अब और नहीं चाहिए इस प्रकार की बुद्धि को सन्तोष कहते हैं । सीधे पन को आर्जव कहते हैं, मन की निश्चलता को शम कहते हैं वाह्येन्द्रियों को अपने वश में रखने को दम कहते हैं अपने धर्म के पालन को तप कहते है, शत्रु तथा मित्र के भाव से रहित होकर सबों को एक समान देखने को साम्य कहते है, दूसरे के अपराध को सहने को तितिक्षा कहते हैं । लाभ की प्राप्ति होने पर भी उससे उदासीन बने रहने को उपरति कहते हैं । शास्त्रों के चिन्तन को श्रुत कहते हैं । आत्मविषयक ज्ञान को ज्ञान कहते हैं, किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा का नहीं होना ही विरक्ति है । नियामकता को ऐश्वर्य कहते हैं । संग्राम में सदा उत्साह के बने रहने को शौर्य कहते हैं । प्रभाव सम्पन्नता को तेज कहते हैं । दक्षता (निपुणता) को बल कहते हैं । करने योग्य तथा नहीं करने योग्य के विचार को स्मृति कहते हैं । विषयों के पराधीन नहीं रहने का स्वातन्त्र्य कहते हैं, कार्यों को करने की निपुणता को कौशल कहते हैं, सौन्दर्य को कान्ति कहते हैं । व्याकुल न होने को

धैर्य कहते है । चित्त की कठिनता का न होने को ही मार्दव कहते हैं । प्रतिभा की अतिशयता को प्रागल्भ्य कहते हैं, नम्रता को प्रश्रय कहते हैं, स्वभाव के सुन्दर होने को शील कहते हैं, सह, ओज एवं बल इन तीनों से मन, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियों में कार्य करने की क्षमता बढ़ती है । भोग की योग्यता को भग कहते हैं । क्षोभ राहित्य को गाम्भीर्य कहते हैं । चाञ्चल्य राहित्य को स्थैर्य कहते हैं, श्रद्धा को ही अस्तिक्य कहते हैं । यश को ही कीर्ति कहते हैं, पूज्यत्व को मान कहते हैं । गर्व के अभाव को अनहंकृति कहते हैं ।

ये श्रीभगवान् के उनतालिस दिव्य गुण हैं । इसके अतिरिक्त उनमें ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों का भक्त होना) शरण्य (रक्षक होना), इत्यादि महान् गुण सदैव बने रहते हैं, अतएव उनके ये गुण स्वाभाविक है । उनके ये गुण कभी भी क्षीण नहीं होते हैं । इन सभी गुणों के एक मात्र आश्रय हैं श्रीभगवान् तथा कलियुग । सारे पापों का साधन है । उस पापकारी कलियुग की दृष्टि के विषय बने हुए जगत् के विषय में मैं सोचती हूँ ॥२६-३०॥

**आत्मानं चानुशोचामि भगवन्तं चामरोत्तमम् । देवान्पितृनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाश्रमान् ॥३१॥**

**अन्वयः**— अहम्, आत्मानम्, अमरोत्तमम् भवन्तम्, देवान् पितृन् ऋषीन् साधून् तथा सर्वान् वर्णान् अनुशोचामि ॥३१॥

**अनुवाद**— मैं अपने विषय में, देवताओं में श्रेष्ठ आपके विषय में, देवताओं, पितरों, ऋषियों, साधुजनों तथा सभी ब्राह्मणादि वर्णों के विषय में सोच रही हूँ ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

पृथिवी ने कहा कि मैं अपने विषय में, आप (धर्म) के विषय में, देवताओं, पितरों, ऋषियों, साधुओं तथा ब्राह्मणादि सभी वर्णों के विषय में चिन्तित हूँ । क्योंकि पापी कलियुग इन सबों को दूषित कर देने वाला है ॥३१॥

**ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्षकामास्तपः समचरन्भगवत्प्रपन्नाः ।**
**सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥३२॥**

**अन्वयः**— यदपाङ्गमोक्षकामाः भगवत् प्रपन्नाः ब्रह्मादयः बहुतिथं तपः समचरन् सा श्रीः स्ववासम् अरविन्दवनम् विहाय अनुरक्ता सती यत्पादसौभगम् अलं भजते ॥३२॥

**अनुवाद**— जिस लक्ष्मी जी का कृपा कटाक्ष प्राप्त करने के लिए श्रीभगवान् के शरणागत ब्रह्मा इत्यादि उत्तम देवता बहुत समय तक तपस्या किए वे ही लक्ष्मीजी अपने निवास स्थान कमल वन का परित्याग कर प्रेम पूर्वक अनुरक्त होकर श्रीभगवान् के चरण कमलों के सौन्दर्य का सदा सेवन करती हैं ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्य विरहो दुःसह इत्याह चतुर्भिः । ब्रह्मादयो यस्याः श्रियोऽपाङ्गमोक्षः स्वस्मिन् दृष्टिपातस्तत्कामाः सन्तो बहुतिथं बहुकालं तपः समचरन्सम्यक्चरन्ति स्म । भगवद्भिरुत्तमैः प्रपन्ना आश्रितापि सा श्रीर्यस्य पादलावण्यमलमनुरक्ता सती सेवते ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

उन श्रीभगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन है इस बात को पृथिवी देवी ने **ब्रह्मादयः इत्यादि** चार श्लोकों से कहा है । **ब्रह्मा इत्यादि** देवता जिस श्रीदेवी के कृपाकटाक्ष को प्राप्त करने के लिए बहुत दिनों तक तपस्या किए वे उन उत्तम देवताओं के आश्रय रूप से जाने जाने पर भी श्रीदेवि जिन भगवान् के चरणों के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उनके चरणों में अत्यधिक अनुरक्त रहकर उन दोनों चरणों की सेवा करती हैं, उन श्रीभगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन है ॥३२॥

**तस्याहमब्जकुलिशांकुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृताङ्गी ।**
**त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोकान्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥३३॥**

**अन्वयः**— तस्य अब्जकुलिशाङ्कुश केतुकेतैः श्रीमत्पदैः समलंकृताङ्गी सती भगवतः विभूतिम् उपलभ्य त्रीन् लोकान् अत्यरोचे, तदन्ते उत्समयन्तीं मां व्यसृजत् ।।३३।।

**अनुवाद**— उन श्रीभगवान् के कमल, वज्र, अङ्कुश, ध्वजा आदि के चिह्नों से चिह्नित श्रीचरणों से विभूषित होने के कारण मुझे बहुत अधिक वैभव की प्राप्ति हुयी थी । मैं तीनों लोकों से भी अधिक सुशोभित हो गयी थी । उसके नाशक समय आ जाने पर अत्यधिक गर्विली मुझको श्रीभगवान् ने त्याग दिया ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

तस्य भगवतः श्रीमद्भिः पदैः । केतुर्ध्वजः । अब्जादयः केताश्चिह्नानि येषां तैः । यद्वा अब्जादीनामाश्रयैः सम्यगलंकृतमङ्गं यस्याः साऽहं ततो भगवतो विभूतिं संपदमुपलभ्य प्राप्य त्रीन् लोकानतिक्रम्य अरोचे शोभितवत्यस्मि । पश्चात्तस्या विभूतेरन्ते नाशकाले प्राप्ते सत्युत्स्मयन्तीं गर्वं कुर्वाणां मां स व्यसृजत्त्यक्तवान् ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

कमल, वज्र, अङ्कुश तथा ध्वजा इत्यादि के चिह्नों से युक्त शोभा सम्पन्न श्रीभगवान् के चरणों से अथवा कमल आदि के आश्रयभूत श्रीभगवान् के चरणों से मेरे अङ्ग अच्छी तरह से अलंकृत हो गये थे । इस प्रकार की मैं श्रीभगवान् से विभूति को प्राप्त करके तीनों लोकों से भी अधिक सुशोभित होने लग गयी थी । उसके पश्चात् मेरी उस विभूति के नाश का काल आने पर मैं अपने पर गर्व करने लग गयी थी यह देखकर लगता है कि श्रीभगवान् ने मुझे त्याग दिया है ॥३३॥

**यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ।**
**त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण संपादयन्यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥३४॥**

**अन्वयः**— यो वै आत्मतन्त्रः आसुरवंशराज्ञाम् मम् अतिभरम् अक्षौहिणीशतम् अपानुदत् ऊन पदम् दुःस्थम् त्वाम् पौरुषेण आत्मनि सम्पादयन् युदुषु रम्यम् अङ्गम् अबिभ्रत् ।।३४।।

**अनुवाद**— स्वतन्त्र रहने वाले जो परमात्मा आसुर वंश में उत्पन्न राजाओं के मेरे ऊपर अत्यन्त भार स्वरूप सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओं को विनष्ट कर दिए तथा पैरों के कम हो जाने के कारण तुमको अपने पौरुष से सर्वाङ्ग पूर्ण बना देने की इच्छा से जिन्होंने यदुवंश में अत्यन्त मनोहर शरीर वाले के रूप में अवतीर्ण हुए उन श्रीभगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन हैं ।।३४।।

### भावार्थ दीपिका

किंच यो वै आसुरो वंशो येषां तेषां राज्ञामक्षौहिणीशतरूपं ममातिभरं भारमपनीतवान् । त्वां चोनपदत्वाद्दुःस्थं सन्तं पौरुषेण पुरुषकारेणात्मनि स्वस्मिन् संपूर्णपदं सुस्थं संपादयन् । **'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः'** इति हेतौ शतृप्रत्ययः । संपादयितुमित्यर्थः । अविभ्रत् धृतवानित्यर्थः ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् तो स्वतंत्र है । अतएव वे हमारे ऊपर भार बने हुए जिन असुर वंश वाले राजाओं की सैकड़ों अक्षौहिणी सेना थी उनकी उस सेना को भगवान् ने विनष्ट करके मेरे अत्यधिक भार को दूर कर दिया, तथा तीन पैरों के कम होने के कारण तुम दुःखी थे, तुमको अपने ही पौरुष से पूर्ण बनाने के लिए जिन भगवान् ने अत्यन्त सुन्दर शरीर धारण करके यदुवंश में अवतार ग्रहण किया उन भगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन है।

**सम्पादयन्** पद में **लक्षण हेत्वोः क्रियायाः** इस सूत्र से हेतु के अर्थ में शतृप्रत्यय हुआ है और उसका अर्थ है सम्पादित करने के लिए ।।३४।।

**का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ।**
**स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्किताया: ।।३५।।**

**अन्वयः**— यः प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः मधुमानिनीनां समानम् स्थैर्यं अहरत् यदङ्घ्रिविटङ्कितायाः मम रोमोत्सवः तस्य पुरुषोत्तमस्य विरहं का वा सहेत ।।३५।।

**अनुवाद**— जिन्होंने अपने प्रेम पूर्ण दृष्टिपात मधुर मुसकान तथा प्रेमभरी बातों से मधुमानिनियों सत्यमामा इत्यादि के मान के साथ-साथ उनके धैर्य को भी छिन लिया तथा जिनके चरण कमलों के संस्पर्श से निरन्तर रोमाञ्चित मैं आनन्दमग्न रहती थे उन पुरुषोत्तम भगवान् के विरह को कौन बर्दास्त कर सकती है ?।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

तस्य विरहं का वा सहेत । प्रेमावलोकश्च रुचिरस्मितं च वल्गुजल्पश्च तैर्मधुमानिनीनां सत्यभामादीनां समानं गर्वसहितं स्थैर्यं स्तब्धत्वं योऽहरत् । यस्याङ्घ्रिणा रजस्युत्थितेन विटङ्किताया अलंकृतायाः सस्यादिमिषेण रोमोत्सवो भवति ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

उन पुरुषोत्तम भगवान् के विरह को कौन रमणी बर्दास्त कर सकती है ? जिन भगवान् ने अपने प्रेमपूर्वक चितवन, मधुर मुस्कान और मनोहर बातों से सत्यभामा इत्यादि द्वारकापुरी की मानिनियों के मान के साथ-साथ उनके धैर्य को भी अपहृत कर लिया तथा जिनके चरणों से निकली धूलि से अलंकृत मुझको सस्य सम्पत्ति के व्याज से रोमोत्सव हो जाया करता था ।।३५।।

**तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा । परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ।।३६।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पृथ्वीधर्मसंवादो नाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

**अन्वयः**— तयोः पृथिवी धर्मयोः एवं कथयतोः तदा परीक्षित् नाम राजर्षिः प्राचीं सरस्वतीम् प्राप्तः ।।१६।।

**अनुवाद**— जिस समय वे दोनों पृथिवी और धर्म आपस में इस तरह से बातें कर रहे थे उसी समय परीक्षित् नामक राजर्षि प्राची सरस्वती में आ गये ।।३६।।

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पृथिवीधर्मसंवाद नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।**

### भावार्थ दीपिका

कथयतोः सतोः प्राचीं पूर्ववाहिनीं सरस्वतीं कुरुक्षेत्रे ।।३६।।

**इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां षोडशोऽध्यायः ।।१६।।**

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से जब धर्म और पृथिवी परस्पर में बातें कर ही रहे थे उसी समय पूर्व बाहिनी सरस्वती कुरुक्षेत्र में परीक्षित् नामक राजर्षि आ गये ।।३६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के सोलहवें अध्याय की भावार्थदीपिका नामक टीका की भावप्रकाशिका नामक शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१६।।**

# सत्रहवाँ अध्याय

## महाराज परीक्षित् द्वारा कलियुग का निग्रह

सूत उवाच

**तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् । दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ॥१॥**

**अन्वयः**— तत्र राजा नृपलाञ्छनम् दण्डहस्तं वृषलम् गोमिथुनम् अनाथवत् हन्यमानम् ददृशे ॥१॥

**अनुवाद**— वहाँ पर राजा परीक्षित् ने देखा कि राजा का वेष बनाये हुए कोई शूद्र अपने हाथ में दण्डा लेकर गौ और बैल के जोड़े को ऐसे पीट रहा था जैसे वे अनाथ हों ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

**ततः सप्तदशे राज्ञः कलेर्निग्रह उच्यते । तस्यैवं वीर्यभाजोऽपि वैराग्यं वक्तुमद्भुतम् ।।** हन्यमानं ताड्यमानम् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

सोलहवें अध्याय के बाद सत्रहवें अध्याय में राजा परीक्षित् के द्वारा कलि के निग्रह का वर्णन इसलिए किया जा रहा है कि इस तरह के पराक्रम से सम्पन्न राजा परीक्षित् के अद्भुत वैराग्य का आगे वर्णन किया जा सके।

**ताड्यमानम्** का अर्थ मारे जाते हुए है । अर्थात् वह शूद्र गौ और बैल के जोड़े को बड़ी ही निर्दयता के साथ मार रहा था ॥१॥

**वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् । वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम् ॥२॥**

**अन्वयः**— शूद्रताडितम् तदैकेन सीदन्तम् बिभ्यतम्, वेपमानम् मेहन्तमिव मृणालधवलं वृषं ददृशे ॥२॥

**अनुवाद**— एक पैर से खड़ा तथा दुःखी भयभीत, काँपते हुए तथा डर के मारे मूत्र त्याग करते हुए मृणाल तन्तु के समान श्वेत वर्ण के बैल को शूद्र के द्वारा पीटे जाते हुए राजा ने देखा ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

मृणालं पद्मकन्दस्तद्वद्धवलम् । भयान्मेहन्तं मूत्रयन्तम् । इवेत्यनेन पादावशेषो धर्मो भयान्मूत्रयन्निव प्रतिक्षणं क्षीयमाणांशस्तस्याप्यनिर्वाहात्कम्पमान इवेति दर्शितम् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

कमल के डंठल के समान श्वेत वर्ण के तथा भय के कारण मूत्र त्याग करते हुए के समान बैल को राजा ने देखा। यह कहकर बतलाया गया है कि जिसका केवल एक ही पैर बचा था और वह भय के कारण मूत्र त्याग कर रहा था अर्थात् प्रत्येक क्षण क्षीण होता जा रहा था । बचे हुए धर्म के अंश का निर्वाह नहीं होने के कारण जैसे वह काँप रहा हो ॥२॥

**गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् । विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां यवसमिछतीम् ॥३॥**

**अन्वयः**— धर्मदुघां दीनाम् भृशंशूद्रपदाहताम्, विवत्सां साश्रुवदनाम् क्षामां यवसम् इच्छन्तीम् गां च ददृशे ॥३॥

**अनुवाद**— धर्म के साधनभूत दूध दधि घृत इत्यादि को पैदा करने वाली, दीन, शूद्र के पैरों द्वारा बहुत अधिक प्रताडित, बछड़े रहित, जिसकी आंखों से आसू बह रहे थे, दुर्बल, तथा भूख के कारण घास खाना चाहने वाली गौ को राजा ने देखा ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**— धर्मदुघां हविर्दोग्ध्रीम् । क्षामां कृशाम् । यवसं तृणम् । अत्र सस्यादिप्रसवक्षयाद्विवत्सेव । यज्ञाद्यभावात् कृशा । अतएव यज्ञभागमिच्छन्ती पृथ्वीति सूचितम् ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

धर्मदुघां का अर्थ है हविष्य को उत्पन्न करने वाली, क्षामाम् अर्थात् अत्यन्त दुर्बल, यवस अर्थात् तृण खाना चाहने वाली, सस्यादि के नहीं उत्पन्न करने के कारण विवत्सा के समान पृथिवी थी । यज्ञ इत्यादि के नहीं होने के कारण वह कृश थी, अतएव यज्ञ के भाग को प्राप्त करना चाहती थी पृथिवी, इस अर्थ को भी सूचित किया गया है ।।३।।

**पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् । मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ।।४।।**

**अन्वयः**— कार्तस्वरपरिच्छदम् रथम् आरूढः समारोपितकार्मुकः राजा मेघगम्भीरया वाचा पप्रच्छ ।।४।।

**अनुवाद**— सुवर्ण जटित रथ पर बैठे हुए और धनुष को चढ़ाये हुए राजा ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से पूछा ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

कार्तस्वरं सुवर्णं तन्मयः परिच्छदः यस्य । स्वर्णनिबद्धमित्यर्थः । सज्जीकृतकार्मुकः ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् सुवर्णमय परिच्छदों से युक्त रथ पर बैठे हुए थे और धनुष को चढ़ाये हुए थे । उन्होंने उस शूद्र से मेघ की गर्जना के समान गम्भीर वाणी से पूछा ।।४।।

**कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान्बली । नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः ।।५।।**

**अन्वयः**— मच्छरणे लोके त्वं कः यः बली सन् बलात् अबलान् हंसि ? नटवत् वेषेण नरदेवः, किन्तु कर्मणा अद्विजः असि ?।।५।।

**अनुवाद**— अरे तुम कौन हो ? जो मेरे राज्य में बलवान् होकर भी बलपूर्वक दुर्बल पशुओं को मार रहे हो ? तुम नट के समान राजा का वेष बनाये हो किन्तु तुम्हारा कर्म शूद्र का है ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

हंसि घातयसि । राजाहमिति चेत्तत्राह । नट इव वेषमात्रेण नरदेवोऽसि । कर्मणा त्वद्विजः शूद्रः ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

**हंसि घातयसि** । अर्थात् तुम कौन हो ? जो इन दुर्बल पशुओं को मार रहे हो ? यदि कहो कि मैं राजा हूँ तो ऐसी बात नहीं है तुम किसी नट के समान राजा का वेष बनाये हो, तुम्हारा कर्म तो शूद्र का है ।।५।।

**कस्त्वं कृष्णे गते दूरं सहगाण्डीवधन्वना । शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन्वधमर्हसि ।।६।।**

**अन्वयः**— गाण्डीवधन्वना सह कृष्णे दूरं गते त्वम् कः यः रहसि अशोच्यान् प्रहरन् शोच्योऽसि अतः वधम् अर्हसि ।।६।।

**अनुवाद**— गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के परंधाम गमन कर जाने पर तुम कौन हो ? जो एकान्त में निरपराधों को मार रहे हो, अतएव तुम वध कर दिए जाने के योग्य हों ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

अशोच्यान्निरपराधान् रहसि यस्त्वं प्रहरन् प्रहरसि स शोच्यः सापराधोऽस्यतो वधमर्हसि ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

निर्जन स्थान में निरपराध जीवों को मारने वाले तुम अपराधी हो अतएव तुम वध कर दिए जाने के योग्य हो ।।६।।

**त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् । वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन् ॥७॥**

**अन्वयः**— मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् नः परिखेदयन् वृषरूपेण कश्चिद् देवः किम् ?॥७॥

**अनुवाद**— कमल नाल के समान श्वेत वर्ण वाले, तीन पैरों से रहित होने पर भी एक ही पैर से संचरण करने वाले तथा मुझको अत्यधिक चिन्तित बनाने वाले आप कोई देवता हैं क्या ? इस तरह से राजा ने धर्म से पूछा ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

**वृषं** प्रत्याह । त्वं वा कः । स्वयमेव संभावयति । किं कश्चिद्देवो वृषरूपेणास्मान् परिखेदयन् वर्तसे ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

राजा ने धर्म से पूछा कि आप कौन हैं ? राजा ने स्वयम् ही विचार करते हुए कहा क्या आप कोई देवता है ? जिससे हमें चिन्तित बना रहे हैं क्योंकि आपके तीन पैर नहीं है एक ही पैर से आप चल फिर रहे हैं यही देखकर मुझको कष्ट हो रहा है ॥७॥

**न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते । भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन्विना ते प्राणिनां शुचः ॥८॥**

**अन्वयः**— पैरवेन्द्राणाम् दोर्दण्डपरिरम्भिते अस्मिन् भूतले ते विना प्राणिनां शुचः जातु न अनुपतन्ति ॥८॥

**अनुवाद**— पुरुवंशी राजाओं की भुजाओं से संरक्षित इस भूतल पर आपको छोड़कर किसी भी प्राणी के शोकाश्रु नहीं गिरते हैं ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

**दोर्दण्डैः** परिरम्भिते परिरम्भितवत्सुरक्षिते ते शुचोऽश्रूणि विनान्येषामश्रूणि नानुपतन्तीति खेदहेतुत्वं दर्शितम् ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

भुजाओं से परिरम्भित आर्थात् परिरम्भित के समान सुरक्षित इस पृथिवी पर, आपकी शोकाश्रुओं को छोड़कर किसी दूसरे प्राणी के शोकाश्रु नहीं गिरते हैं । नानुपतन्ति पद के द्वारा राजा को होने वाले खेद के कारण को बतलाया गया है ॥८॥

**मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद्भयम् । मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥९॥**

**अन्वयः**—हे सौरभेय ! मा अनुशुचः ते वृषलद्भयं व्येतु । हे अम्ब ! खलानांशास्तरि मयि मा रोदीः ते भद्रम् अस्तु ॥९॥

**अनुवाद**— हे सौरभेय (धेनुपुत्र) अब आप शोक न करें, इस शूद्र से आप निर्भय हो जायँ । हे गो माता मैं दुष्टों को दण्डित करने वाला हूँ, मेरे रहते आप न रोएँ । आपका कल्याण हो ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

एवमुक्ते पुनरपि शोचन्तं प्रत्याह । भो सुरभेः पुत्र, मा शुचः शोकं मा कुरु । व्येतु अपयातु । गां प्रत्याह । हे अम्ब मातः, शास्तरि मयि जीवति सति ते भद्रमेवाऽतो मा रोदीः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहने के पश्चात् भी शोक करने वाले धर्म से राजा ने कहा हे धेनुपुत्र ! आप शोक न करें। आप इस शूद्र से निर्भय रहें । गाय से राजा ने कहा आप न रोएँ । जब तक मैं जीवित हूँ तब तक आपका कल्याण हो । व्येतु पद का अर्थ दूर हो जाय है ॥९॥

**यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्वयसाधुभिः । तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे साध्वि ! यस्य राष्ट्रे सर्वाः प्रजाः असाधुभिः त्रस्यन्ते तस्य मत्तस्य कीर्तिः आयुः भगः गतिश्च नश्यन्ति ॥१०॥

**अनुवाद**— हे देवि ! जिस राजा के राज्य में दुष्टों के उपद्रव के कारण प्रजायें भयभीत रहती हैं, उस राजा के यश, आयु, भोग तथा परलोक नष्ट हो जाते हैं ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

मद्धितार्थमेवैनं हनिष्यामि न तवोपकारायेत्याह-यस्येति द्वाभ्याम् । हे साध्वि, सर्वा याः काश्चिदपीत्यर्थः असाधुभिस्त्रस्यन्ते पीड्यन्त इत्यर्थः । भगो भाग्यम् । गति परलोकः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

इस शूद्र का वध मैं अपने ही कल्याण के लिए करूँगा तुम्हारा उपकार करने के लिए नहीं । इस बात को राजा ने **यस्य इत्यादि** दो श्लोकों से कहा । हे साध्वि ! अर्थात् हे देवि ! जिस राजा के राज्य में सारी प्रजायें दुष्टों के उत्पात के कारण भयभीत रहती हैं, उस राजा के यश, आयु और भग (भाग्य) तथा परलोक ये सबके सब विनष्ट हो जाते हैं ॥१०॥

**एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः । अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥११॥**

**अन्वयः**— आर्तानाम् अर्तिनाशनम् एष हि राज्ञां परमो धर्मः । अतः भूतद्रुहम् असत्तमम् एनं वाधिष्यामि ॥११॥

**अनुवाद**— दुखियों के दुःख को दूर करना यही राजाओं का सबसे बड़ा धर्म है, अतएव महादुष्ट और प्राणियों को पीड़ित करने वाले इस शूद्र का मैं वध करूँगा ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**— नही है ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा ने कहा कि मैं इस बात को जानता हूँ कि राजाओं का यह सबसे बड़ा धर्म है कि वे दुखियों के दुःख को दूर करें । यह शूद्र महादुष्ट है और प्रजाओं से द्रोह करता है अतएव मैं इसका वध कर देता हूँ ॥११॥

**कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद । माभूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे चतुष्पद सौरभेय ! तव त्रीन् पादान् कः अवृश्चत् कृष्णानुवर्तिनां राज्ञां राष्टे त्वादृशाः मा भुवन् ॥१२॥

**अनुवाद**— हे चार पैर वाले सुरभिनन्दन ! आपके तीन पैरों को किसने काट दिया है ? भगवान् श्रीकृष्ण के अनुयायी राजाओं के राज्य में आपके जैसे दुःखी किसी को भी नहीं होना चाहिए ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

पुनरपि शोचन्तं वृषं प्रत्याह । कः अवृश्चच्चिच्छेद । त्वादृशास्त्वद्विधा दुःखिताः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

शोक करते हुए वृष से राजा ने फिर कहा आपके तीन् पैरों को किसने काटा है ? मैं भगवान् श्रीकृष्ण का अनुयायी राजा हूँ । मेरे राज्य मैं आपके जैसे दुःखी किसी को भी नहीं होना चाहिए ॥१२॥

**आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् । आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे वृष ! वः भद्रम् अकृतागसाम् साधूनाम् आत्मवैरूप्यकर्तारम्, पार्थानां कीर्तिदूषणम् आख्याहि ॥१३॥

**अनुवाद**— वृष ! आपका कल्याण हो । निरपराध सज्जनों का अङ्गभङ्ग करने वाले तथा पाण्डवों की कीर्ति को दूषित करने वाले को आप बतलायें ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

वो भद्रमस्तु । आत्मनस्त्व पादच्छेदेन वैरूप्यं कृतवन्तं कीर्तिं दूषयतीति तथा तमाख्याहि ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

आपलोगों का कल्याण हो आपके पैरों को काटकर आपके शरीर को विरूप बना देने वाले तथा पाण्डवों की कीर्ति को दूषित करने वाले को आप बतलाइये ।।१३।।

**जनेऽनागस्यघं युञ्जन्सर्वतोऽस्य च मद्भयम् । साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ।।१४।।**

**अन्वयः**— अनागसि जने अघं युञ्जन् अस्य च सर्वतः मद्भयं भवतु । असाधु दमने कृते साधूनां भद्रमेव स्यात् ।।१४।।

**अनुवाद**— निरपराध को सताने वाले इसको चाहे यह जहाँ कहीं भी रहे मुझसे भय होना चाहिए । दुष्टों का दमन कर दिए जाने पर सज्जनों का कल्याण होता ही है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

ननु तदाख्याने कृते कथं भद्रं स्यादित्यत आह । यस्मादनागसि जने योऽघं दुःखं युञ्जन् कुर्वन् भवत्यस्यैवंभूतस्य मत्तः सकाशात् सर्वत्रापि भयं भवति, ततः साधूनां भद्रं भवेदेवेति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि उसको बतलाने से कल्याण कैसे सम्भव है ? तो इसका उत्तर है कि जो कोई भी निरपराध को इस तरह से पीडित करता है, इस तरह के लोगों को मुझसे सदा भयभीत रहना चाहिए इस तरह से दुष्टों का दमन करने से साधु पुरुषों का कल्याण होता ही है ।।१४।।

**अनागस्स्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः । आहर्ताऽस्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ।।१५।।**

**अन्वयः**— अनागस्सु भूतेषु य निरङ्कुशः इह आगः कृत् तस्य साक्षात् अमर्त्यस्यापि साङ्गदम् भुजं आहर्ता अस्मि ।।१५।।

**अनुवाद**— इस संसार में निरपराध भी जीव का जो अपराध करता है, वह चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हो उसके बाजूबन्द से अलंकृत भुजा को मैं काट डालूँगा ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

एतस्य दण्डेऽहमसमर्थ इति माशङ्कीरित्याह-अनागःस्विति । आगस्कृदपराधकर्ता । तस्यामर्त्यस्य देवस्यापि भुजमाहर्तास्म्याहरिष्यामि । साङ्गदमित्यनेन मूलत उत्पाट्याहरिष्यामीति दर्शितम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इस दुष्ट को दण्डित करने में मैं असमर्थ हूँ आप इस तरह की शङ्का न करें इस बात को राजा ने **अनागः सु० इत्यादि** श्लोक से कहा— अपराधी को आगस्कृत् कहते हैं । निरपराधों को दण्डित करने वाला चाहे देवता ही क्यों न हो उसकी भुजा को मैं जड़ से ही काट दूँगा इस बात को साङ्गदम् कहकर सूचित किया गया है ।।१५।।

**राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्यानुपालनम् । शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ।।१६।।**

**अन्वयः**— अनापदि इह उत्पथान् अन्यान् यथा शास्त्रम् शासतः राज्ञः स्वधर्मस्य अनुपालनम् परमो धर्मः ।।१६।।

**अनुवाद**— बिना किसी आपत्ति के दूसरे कुमार्ग गामियों को इस लोक में शास्त्रानुसार प्रशासन करना ही राजा का सबसे बड़ा धर्म है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेकस्य निग्रहेणान्यस्यानुग्रहे तव किं प्रयोजनं तत्राह-राज्ञो हीति । अन्यानधर्मिष्ठान् । शासतो दण्डयतः ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

अब प्रश्न उठता है कि एकका प्रशासन करने और दूसरे पर अनुग्रह करने में आपका कौन सा प्रयोजन है ? तो इस पर राजा ने कहा कि अधार्मिकों को शास्त्रानुसार दण्ड देकर अपने धर्म का पालन करना ही राजाओं का सबसे बड़ा धर्म है ॥१६॥

धर्म उवाच

**एतद्वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः । येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ॥१७॥**

**अन्वयः**— पाण्डवेयानाम्, वः एतत् आर्ताभयं वचः युक्तम् । येषां गुणगणैः कृष्णः दौत्यादौ भगवान् कृतः ॥१७॥

**अनुवाद**— धर्म ने कहा— पाण्डवों के वंश में उत्पन्न हुए आपके द्वारा दुःखी जीवों को अभय प्रदान करने वाली आपकी वाणी आपके स्वरूपानुरूप ही है । जिन पाण्डवों के गुणसमूहों ने भगवान् को उनके (पाण्डवों के) दूतकर्म और सारथि कर्म में भी लगा दिया ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

आर्तानामभयं यस्मात्तद्वचो वो युष्माकं युक्तमुचितमेव ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

धर्म ने कहा कि आप तो उन पाण्डवों के वंश में उत्पन्न हुए हैं जिन पाण्डवों के गुण से आकृष्ट होकर श्रीभगवान् उनके दूत तथा सारथि भी बन गये । अतएव आपकी आर्तजीवों को अभय प्रदान करने वाली वाणी उचित ही है ॥१७॥

**न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ । पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे पुरुषर्षभ ! वाक्यभेदविमोहिता : वयम् तं पुरुषं न विजानीमः यतः क्लेशबीजानि ॥१८॥

**अनुवाद**— हे पुरुषो में श्रेष्ठ परीक्षित् ! शास्त्रों के विभिन्न वाक्यों से मोहित हुए उस पुरुष को नहीं जानता हूँ जिससे कि क्लेशों के कारण उत्पन्न होते हैं ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

वयं तु यतः पुरुषात्प्राणिनां क्लेशहेतवो भवेयुस्तं पुरुषरूं न विजानीमः । यतो वादिनां वाक्यभेदैर्विमोहिताः ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस पुरुष से प्राणियों को प्राप्त होने वाली क्लेशों के बीज उत्पन्न होते हैं, उस पुरुष को मैं नहीं जानता हूँ, क्योंकि हमलोग वादियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के वाक्यों के कारण मोहित हैं ॥१८॥

**केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः । दैवमन्येऽपरे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— केचित् विकल्पवसनाः आत्मानमेव आत्मनः प्रभुम् आहुः, अन्ये दैवम् अपरे कर्म, अपरे स्वभावम् प्रभुम् आहुः ॥१९॥

**अनुवाद**— जो लोग किसी प्रकार के द्वैत को नहीं मानते हैं, वे लोग अपने को ही अपने दुःख का कारण बतलाते है दूसरे लोग दैव (भाग्य) को, उनसे भिन्न लोग कर्म को तथा तीसरे प्रकार के लोग स्वभाव को ही दुःख का कारण मानते हैं ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

वाक्यभेदानेवाह । विकल्पं भेदं वसते आच्छादयन्ति ये योगिनस्ते आत्मानमेवात्मनः प्रभुं सुखदुःखप्रदमाहुः । तदुक्तम् '**आत्मैव ह्यात्मनो वन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः**' इति । यद्वा विकल्पैः कुतर्कैः प्रावृता नास्तिकाः । एवं हि ते वदन्ति । न

तावद्देवतादीनां प्रभुत्वम्, कर्माधीनत्वात् । न च कर्मणः स्वाधीनत्वादचेतनत्वाच्च । अतः स्वयमेव प्रभुर्न चान्यः कश्चिदिति। अन्ये दैवज्ञा दैवं ग्रहादिरूपां देवताम् । परे तु मीमांसकाः कर्म । अपरे लौकायतिकाः स्वभावम् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

वादियों के वाक्य भेद को ही बतलाते हुए धर्म ने कहा जो योगी जन भेद को नहीं मानते हैं, वे अपने को ही सुख-दुःख का प्रदाता मानते हैं । कहा भी गया है- **आत्मैव० इत्यादि** आत्मा ही आत्मा का बन्धु (सुख प्रदाता) है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु (दुःखप्रदाता) है । अथवा विकल्प शब्द कुतर्क का वाचक है । उन कुतर्कों से युक्त जो नास्तिक पुरुष हैं, वे भी अपने को ही सुख दुःख का कारण मानते हैं । वे किसी देवता के प्रभुत्व को नहीं मानते हैं वे सबकुछ कर्मो के अधीन मानते हैं । कर्म तो अपने अधीन रहने वाले हैं तथा अचेतन भी हैं । अतएव वे अपने को ही प्रभु मानते हैं, अपने से भिन्न किसी दूसरे को नियामक नहीं मानते हैं । दूसरे जो ज्योतिषी हैं वे ग्रह रूपी देवताओं को ही सुख तथा दुःख देने वाला मानते हैं । मीमांसक कर्मो को ही सुख एवं दुःखों को देने वाला मानते हैं । और चार्वाकि स्वभाव को ही सुख एवं दुःख को देने वाला मानते हैं ॥१९॥

**अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः । अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया ॥२०॥**

**अन्वयः**— केष्वपि अप्रतर्क्यात् अनिर्देश्यात् इति निश्चयः । राजर्षे अत्र स्वमनीषया अनुरूपं विमृश ॥२०॥

**अनुवाद**— कुछ वादियों का निश्चय है कि सुख एवं दुःख के कारण को न तो तर्क के द्वारा जाना जा सकता है और न तो उसका वाणी के द्वारा निर्देश ही किया जा सकता है, अतएव आप अपनी बुद्धि के अनुसार उसका विचार करें ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

केष्वपि सेश्वरेषु मध्ये । केष्वपीति दुर्लभत्वं दर्शितम् निश्चय इति सिद्धान्तत्वम् । अप्रतर्क्यान्मनोऽगोचरादनिर्देश्या- द्वचनागोचरात्परमेश्वरात्सर्वं भवतीति विमृश विचारय स्वबुद्ध्या ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

जो लोग ईश्वर कों मानते हैं, उन लोगों के दुर्लभत्व को केष्वपि पद के द्वारा बतलाया गया है । निश्चय पद के द्वारा उनके कथन को सिद्धान्तानुकूल कहा गया है । वे लोग बतलाते हैं कि सुख और दुःख के कारणों को न तो तर्क के द्वारा जाना जा सकता है और न तो वाणी से सबकुछ करने वाले परमात्मा है इस बात का बुद्धि पूर्वक विचार करो ॥२०॥

सूत उवाच

**एवं धर्मे प्रवदति स सम्राड्‌द्विजसत्तम । समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्टतम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— हे द्विजसत्तम ! एवं धर्मे प्रवदति विखेदः स सम्राट् समाहितेन मनसा तम् पर्यचष्ट ॥२१॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे द्विज ! श्रेष्ठ शौनकजी धर्म के इस तरह कहने पर राजा परीक्षित् का खेद शान्त हो गया उन्होंने शान्तमना होकर उससे कहा ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

विखेदो गतमोहः । पर्यचष्ट प्रत्यभाषत ज्ञातवानिति वा ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

धर्म की बातों को सुनकर राजा परीक्षित् का अज्ञान समाप्त हो गया और उन्होंने धर्म से कहा अथवा उसको धर्म रूप से जान लिया ॥२१॥

राजोवाच

**धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् । यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥**

**अन्वयः**— हे धर्मज्ञ धर्मं ब्रवीषि अतः वृषरूपधृक् धर्मः असि यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥

**राजा ने कहा**

**अनुवाद**— हे धर्मज्ञ ! आप धर्म की बातें करते हैं, अतएव निश्चित रूप से आप वृष का रूप धारण किए धर्म हैं; क्योंकि पापी को जिस स्थान की प्राप्ति होती है, वही स्थान चुगली करनने वालों को भी प्राप्त होता है ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

अनिर्धारितमिव ब्रुवन्घातकं जानन्नपि न सूचयेदित्येवंरूपं धर्मं ब्रवीष्यतो धर्मोऽसि । सूचने को दोष इत्यत आह-यदिति। स्थाानं नरकादि ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने घातक को भी आप अनिर्धारित के समान बतला रहे हैं, क्योंकि घातक को जानते हुए नहीं बतलाना चाहिए । इस तरह से आप धर्मोपदेश कर रहे हैं । अतएव आप धर्म ही हैं । यदि कहें कि घातक को सूचक को कह देने पर कौन सा दोष होता है ? तो उसे बतला रहे हैं । जो स्थान पाप करने वाले को मिलता है, वही स्थान उसके सूचक को भी मिलता है । अर्थात् उसको भी नरकादि की प्राप्ति होती है ॥२२॥

**अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा । चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥२३॥**

**अन्वयः**— अथवा नूनं भूतानाम् चेतसः वचसः चापि देवमायायाः गतिः अगोचरा इति निश्चयः ॥२३॥

**अनुवाद**— अथवा यह भी निश्चित है कि जीवों के मन तथा वाणी के द्वारा परमात्मा की माया की गति को नहीं जाना जा सकता है ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्वा अज्ञानादप्यकथनं भवतीत्याह-अथवेति । देवस्य मायाया गतिर्वध्यघातकलक्षणा वृत्तिर्भूतानां चेतसो वचसश्चागोचरा सुज्ञेया न भवतीति निश्चय इत्यर्थः ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

अथवा नहीं जान पाने के कारण भी नहीं कहा जा सकता है, इस बात को राजा ने **अथवा० इत्यादि** श्लोक से कहा है । परमात्मा की बध्यघातक रूपी वृत्ति जीवों के मन और वाणी का विषय नहीं बनती है । अतएव वह आसानी से जानने योग्य नहीं है यह निश्चित है ॥२३॥

**तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः । अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥२४॥**

**अन्वयः**— तपः शौचम् दया सत्यम् इति तव पादाः प्रकीर्तिताः । अधर्मांशैः स्मय सङ्गमदैः त्रयः भग्नाः ॥२४॥

**अनुवाद**— तपस्या, पवित्रता, दया और सत्य ये आपके चार-चरण बतलाये गये है, इनमें अधर्म के अंश भूत गर्व आसक्ति और मद के कारण आपके तीन चरण टूट गये हैं ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

धर्मोऽसाविति ज्ञात्वा तस्य पादानुवादेन व्यवस्थामाह-तप इति द्वाभ्याम् । अधर्मपादैस्तव त्रयः पादास्त्रिभिरंशैर्भग्नाः । स्मयो विस्मयः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

राजा ने उसे धर्म जानकर उसके चरणों का अनुवाद करके **तपः इत्यादि** दो श्लोक से व्यवस्था बतलाया। अधर्म के तीन चरणों के द्वारा आपके तीन चरण टूट चुके हैं। अधर्म के तीन चरण हैं स्मय (गर्व) आसक्ति और मद, उन सबों से धर्म के तप पवित्रता और दया नामक तीन चरण टूट चुके हैं। स्मय-विस्मय (गर्व) को कहते हैं ॥२४॥

**इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः । तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥२५॥**

**अन्वयः**— धर्मं इदानीं ते सत्यं पादः यतः निर्वर्तयेत् तम् अनृतेन एधितः अधर्मः कलिः जिघृक्षति ॥२५॥

**अनुवाद**— हे धर्म ! इस समय आपका सत्य नामक पाद अवशिष्ट है जिससे कि आप आत्मधारण कर सकें। उसको असत्य के द्वारा समृद्ध बना हुआ अधर्म रूपी कलि विनष्ट कर देना चाहता है ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं कलौ हे धर्म, ते पादश्चतुर्थोऽशस्तत्रापि सत्यमेवास्ति। यतः सत्याद्भवानात्मानं निर्वर्तयेत् कथंचिद्धारयेत् यद्वा पुरुषस्त्वां साधयेत्। तमपि पादमनृतेन संवर्धितः कलिः कलिरूपोऽयमधर्मो ग्रहीतुमिच्छति, तत्रेयं स्थितिः कृतयुगे प्रथमं संपूर्णश्चतुष्पाद्धर्मः। त्रेतायां चतुर्णामपि पादाना मध्ये स्मयेन तपः, सङ्गेन शौचं, मदेन दया, अनृतेन सत्यमित्येवं चतुर्थांशो हीयते। द्वापरे त्वर्धम् कलौ चतुर्थोऽशोऽवशिष्यते सोऽप्यन्ते विनङ्क्ष्यतीति ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

हे धर्म ! इस समय कलियुग में आपके चरणों का चौथा अंश सत्य बचा हुआ है। उससे आप किसी तरह आत्मधारण किए हैं। अथवा सत्य को अपनाकर मनुष्य धर्म को प्राप्त कर सकता है। आपके उस चरण को असत्य के द्वारा समृद्ध बना हुआ कलि अर्थात् कलि रूपी अधर्म, विनष्ट कर देना चाहता है।

**तत्रेयं स्थितिः इत्यादि-** धर्म के चार चरणों की स्थिति इस प्रकार है। सत्ययुग में पहले धर्म के चारो चरण विद्यमान थे वह चतुष्पाद था त्रेतायुग में स्मय (गर्व) नामक अधर्मांश से चारो पैरों में से तप गर्व के द्वारा शौच आसक्ति के द्वारा, दया मद के द्वारा और सत्य अनृत (मिथ्या) भाषण के द्वारा इन सबों का चतुर्थांश विनष्ट हो जाता है। द्वापर में आधा विनष्ट हो जाता है कलियुग में चतुर्थांश बचा रहता है, और कलियुग के अन्त में वह भी विनष्ट हो जायेगा ॥२५॥

**इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती । श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥२६॥**

**अन्वयः**— इयं च भूः भगवता न्यसितोरुभरा सती श्रीमद्भिः तत् पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥२६॥

**अनुवाद**— ये भूदेवी हैं, श्रीभगवान ने इनके महान् भार को उतार दिया था। श्रीभगवान् के ऐश्वर्य पूर्ण चरणों के विन्यास से ये सर्वत्र उत्सवमयी बनी रहती थीं ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

न्यासितोऽन्योन्यद्वारेणावतारित उरुर्भरो भारो यस्याः। कृतं कौतुकं मङ्गलं यस्याः सा ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने दुष्ट क्षत्रिय राजाओं में वैर उत्पन्न करके एक के द्वारा दूसरे का विनाश कर पृथिवी के महान् भार को उतार दिया था। उस समय ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीभगवान् के चरण विन्यास के द्वारा पृथिवी मङ्गलमयी हो गयी थी ॥२६॥

**शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताऽधुना । अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥२७॥**

**अन्वयः**— अधुना साध्वी उज्झिता दुर्भगा इव अश्रुकलाशोचति । यत् अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्राः माम् भोक्ष्यन्तीति ॥२७॥

**अनुवाद**— साध्वी भू देवी परमात्मा से परित्यक्त हो जाने के कारण अभागिनी के समान आँखों में आँसू भरकर सोच रही हैं कि अब राजा का वेष बनाकर ब्राह्मणद्रोही शूद्र मेरा उपभोग करेंगे ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

अश्रूणि कलयति मुञ्चतीत्यश्रुकला । तेन उज्झिता त्यक्ता सती शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति शोचति ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

इस समय ये भूदेवी अपनी आँखों से आँसू बहाती हुयी सोच रही हैं कि आगे आने वाले समय में शूद्र ही राजा होंगे । राजा का वेष बनाये हुए वे ब्राह्मणद्रोही होंगे । वे ही सब मेरा उपभोग करेंगे ॥२७॥

**इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः । निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥२८॥**

**अन्वयः**— इति महारथः धर्मं महीं च सान्त्वयित्वा धर्महेतवे निशातम् खड्गम् आददे ॥२८॥

**अनुवाद**— इस तरह से महारथी परीक्षित् भूदेवी और धर्म को सान्त्वना प्रदान करके अधर्म के कारण भूत कलियुग को मारने के लिए हाथ में तीक्ष्ण खड्ग ले लिए ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

निशातं निशितम् । अधर्मस्य हेतुर्यः कलिस्तं हन्तुमित्यर्थः ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने अधर्म के कारणभूत कलि को मारने के लिए अपने हाथ में अत्यन्त तीक्ष्ण खड्ग ले लिया ॥२८॥

**तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् । तत्पादमूलं शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥२९॥**

**अन्वयः**— तं जिघांसुम् अभिप्रेत्य नृपलाञ्छनम् विहाय भयविह्वलः शिरसा तत्पादमूलं समगात् ॥२९॥

**अनुवाद**— राजा परीक्षित् को मारने की इच्छा वाला जानकर कलि ने अपने राजा के चिह्न का परित्याग कर दिया और भय से काँपता हुआ वह राजा परीक्षित् के चरणों पर गिर पड़ा ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

हथ में तीक्ष्ण खड्ग ग्रहण किए हुए राजा को देखकर कलियुग ने जान लिया कि राजा मुझको मार देना चाहते हैं । यह जानकर उसने राजा के चिह्न को जो धारण किया था उसका परित्याग कर दिया और राजा के चरणों पर गिर पड़ा ॥२९॥

**पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः । शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥३०॥**

**अन्वयः**— पादयोः पतितं वीक्ष्य दीनवत्सलः शरण्यः श्लोक्यः राजा न अवधीत् हसन् इव कृपया इदं आह ॥३०॥

**अनुवाद**— पैरों पर गिरे हुए कलि को देखकर दीनों पर दया करने वाले तथा शरणागतों की रक्षा करने वाले राजा परीक्षित् ने उसका वध नहीं किया, वे दया करके हँसते हए के समान कलि से कहे ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

शरण्य आश्रयार्हः । श्लोक्यः सत्कीर्त्यर्हः ।।३०।।

**भाव प्रकाशिका**

राजा परीक्षित् आश्रयण करने के योग्य तथा सत्कीर्ति के योग्य थे । उन्होंने कृपा करके कलि को मारा नहीं अपितु कलियुग से कहा ।।३०।।

राजोवाच

**न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किंचित् ।**
**न वर्तितव्यं भवता कथंचन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ।।३१।।**

**अन्वयः**— गुडाकेश यशोधराणां बद्धाञ्जलेः ते किञ्चित् भयं न अस्ति त्वम् अधर्मबन्धुः, अतएव भवता मदीये क्षेत्रे कथञ्चन न वर्तितव्यम् ।।३१।।

**अनुवाद**— अर्जुन के यशस्वी वंश में उत्पन्न किसी भी वीर से हाथ जोड़े हुए तुमको कोई भी भय नहीं है, किन्तु तुम अधर्म बन्धु हो, अतएव तुमको मेरे राज्य में किसी भी प्रकार से नहीं रहना चाहिए ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**

गुडाकेशोऽर्जुनस्तस्य यशोधरा ये वयं तेषां तान्प्रति बद्धोऽञ्जलिर्येन तस्य ते भयं न किंतु मदीये क्षेत्रे कथंचन केनाप्यंशेन न वर्तितव्यम्। यस्मात्त्वमधर्मस्य बन्धुः ।।३१।।

**भाव प्रकाशिका**

गुडाकेश अर्जुन का नाम है । उनके यश को धारण करने वाले हमलोगों से किसी भी प्रकार से तुमको भय नहीं है; क्योंकि तुमने हाथ जोड़ लिया है । किन्तु तुमको मेरे राज्य के किसी भी अंश में नहीं रहना होगा, क्योंकि तुम अधर्म बन्धु हो ।।३१।।

**त्वां वर्तमानं नरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ।**
**लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ।।३१।।**

**अन्वयः**— नरदेवदेहेषु वर्तमानं त्वाम् अनु, लोभः अनृतम् चौर्यम्, अनार्यम्, अंहः, ज्येष्ठा, माया, कलहः दम्भः अवृतं च अयम् अधर्म पूगः अनुप्रवृत्तः ।।३२।।

**अनुवाद**— तुम्हारे राजाओं के देह में रहने के कारण ही, लोभ, झूठ, चोरी, दुर्जनता, अंह (स्वधर्मत्यग) अलक्ष्मी, कपट, कलह और दम्भ यह अधर्म समूह इतना बढ़ा है ।।३२।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेवाह । राजदेहेषु वर्तमानं त्वामनु सर्वतः प्रवृत्तः । अनार्यं दौर्जन्यम् । अंह स्वधर्मत्यागः । ज्येष्ठा अलक्ष्मीः । माया कपटम् ।।३२।।

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त बात को ही बतलाते हुए राजा परीक्षित् कहते हैं कि चूकि तुम राजाओं के शरीर में निवास कर रहे हो उसी के कारण सब जगह अनार्य (दुर्जनता) अंहः (स्वधर्म त्याग) माया (कपट) इत्यादि ये सारे अधर्म समूह इतना बढ़े हुए हैं, अतएव तुम मेरे राज्य में नहीं रह सकते हो ।।३२।।

**न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ।**
**ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥३३॥**

**अन्वयः**— तत् अधर्मबन्धो ! यत्र वितानविज्ञाः यज्ञैः यज्ञेश्वरम् यजन्ति एतादृशे धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ब्रह्मावर्ते न वर्तितव्यम् ॥३३॥

**अनुवाद**— अतएव हे अधर्मबन्धो ! जहाँ पर यज्ञ की विधि को जानने वाले यज्ञों के द्वारा यज्ञों के स्वामी श्रीभगवान् की आराधना करते हैं, उस सत्य एवं धर्म पूर्वक रहने योग्य इस ब्रह्मावर्त में तुमको नहीं रहना चाहिए ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्तस्माद्धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये वर्तितुमर्हे ब्रह्मावर्ते देशे । यज्ञस्य वितानं विस्तारस्तत्र विज्ञा निपुणाः ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

यह ब्रह्मावर्त नामक देश है । यहाँ पर सत्य एवं धर्म का पालन पूर्वक ही निवास किया जा सकता है । यहाँ पर यज्ञ का विस्तार करने में निपुण पुरुष यज्ञों के द्वारा यज्ञों के स्वामी श्रीहरि की आराधना करते हैं, अतएव तुमको इस देश में विल्कुल नहीं रहना चाहिए ॥३३॥

**यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ।**
**कामानमोघान्स्थिरजङ्गमानामन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥३४॥**

**अन्वयः**— यस्मिन् इज्यामूर्तिः इज्यमानः भगवान् हरिः यजताम् शं तनोति कामान् अमोघान् करोति । एषः वायुः इव स्थावरजङ्गमानां आत्मा ॥३४॥

**अनुवाद**— जिस ब्रह्मवर्त देश में यज्ञमूर्ति श्रीहरि यज्ञों के द्वारा आराधित किए जाते हैं । भगवान् श्रीहरि यज्ञों को करने वालों का कल्याण करते हैं और उनकी कामनाओं को सफल बना देते हैं । वे वायु के समान सम्पूर्ण चराचर में आत्मा रूप से उनके भीतर और बाहर विद्यमान रहते हैं ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

इज्या यागस्तद्रूपा मर्तिर्यस्य । शं क्षेमं कामांश्च । नन्विन्द्रादयो देवा इज्यन्ते नतु हरिस्तत्राह- स्थिरेति । एष स्थावरादीनामात्मेति । तथापि जीववन्न परिच्छिन्न इत्याह–अन्तर्बहिरिति । यथा वायुः प्राणरूपेणान्तस्थोऽपि बहिरप्यस्ति तद्वत्सर्वान्तर्यामीश्वरोऽपीति ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की मूर्ति इज्या रूपिणी है । जो लोग इसका यजन करते हैं भगवान् श्रीहरि उनका कल्याण करते हैं और उनकी सारी कामनाओं को पूर्ण करते हैं । इस जगत् में जितने भी जड-चेतन पदार्थ हैं उन सबों के भीतर वे अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं और बाहर-अन्तर प्रदेश तक उसी तरह से व्यापक रहते हैं जिस तरह वायु सभी वस्तुओं के भीतर और बाहर दोनों प्रकार से व्यापक है ॥३४॥

सूत उवाच

**परीक्षितैमवादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः । तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥३५॥**

**अन्वयः**— एवम् परीक्षिता आदिष्टः जातवेपथुः सः कलिः उद्यतम् दण्डपाणिमिव उद्यतासिं इदम् आह ॥३५॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजा परीक्षित् के द्वारा इस तरह से आदेश दिए जाने पर काँपता हुआ कलि दण्ड उठाये हुए यमराज के समान तलवार उठाये हुए राजा परीक्षित् से कहा ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

उद्यतासिमुद्यतखड्गम् । दण्डपाणिं यमम् । उद्यतमुद्युक्तम् ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

राजा परीक्षित् उसी तरह से खड्ग उठाये थे जिस तरह मानो यमराज दण्ड देने के लिए तैयार हों । उनसे काँपते हुए कलि ने कहा ।।३५।।

कलिरुवाच

**यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया । लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ।।३६।।**

**अन्वयः**— हे सार्वभौम ! यत्र क्वचन तवाज्ञया वत्स्यामि तत्र तत्रापि आतेषुशरासनम् त्वाम् लक्षये ।।३६।।

**कलि ने कहा**

**अनुवाद**— हे सार्वभौम ! आपकी आज्ञानुसार जहाँ कहीं पर भी मैं रहूँगा वहाँ सर्वत्र मैं धनुष बाण धारण किए हुए आपको देखूँगा । अर्थात् आपका भय मुझे सर्वदा बना रहेगा ।।३६।।

**भावार्थ दीपिका**

अत्र न वस्तव्यमिति या तवाज्ञा तया यत्र क्वापि वत्स्यामि किंतु तत्र तत्राप्यात्तो गृहीत इषुः शरासनं च येन तं त्वामेव लक्षये ।।३६।।

**भाव प्रकाशिका**

आपने यह जो आज्ञा दी है कि तुमको यहाँ नहीं रहना चाहिए अतएव जहाँ कहीं भी रहूँगा वहाँ सर्वत्र आप मुझको धनुष एवं बाण को धारण किए हुए दिखायी पड़ेंगे ।।३६।।

**तन्मे धर्मभृतांश्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि । यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ।।३७।।**

**अन्वयः**— तत् हे धर्मभृतां श्रेष्ठ मे स्थानं निर्देष्टुम् अर्हसि यत्रैव ते अनुशासनम् आतिष्ठन् नियतं वत्स्ये ।।३७।।

**अनुवाद**— अतएव हे धार्मिकों में श्रेष्ठ ! आप मुझको ऐसे स्थान को बतला दें जहाँ पर मैं आपकी आज्ञा का पालन करते हुए निश्चल रूप से निवास कर सकूँ ।।३७।।

**भावार्थ दीपिका**

तत्तस्मात् । नियतो निश्चलः । वत्स्ये वत्स्यामि ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

कलि ने राजा से प्रार्थना किया कि आप मुझे ऐसा स्थान बतला दें जहाँ मैं निश्चल होकर निवास कर सकूँ और आपकी आज्ञा का पालन करता रहूँ ।।३७।।

सूत उवाच

**अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ । द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ।।३८।।**

**अन्वयः**— तदा अभ्यर्थितः तस्मै कलये, द्यूतं, पानं, स्त्रियः, सूना यत्र चतुर्विधः अधर्म तथा विधानि स्थानानि ददौ ।।३८।।

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— कलियुग के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर उस कलि को द्यूत, जुआ खेलने के स्थान, पान, मदशाला, स्त्रियाँ तथा सूना (कसाईखाना) इन चार स्थानों को प्रदान किया जहाँ पर चार प्रकार के अधर्म होते हैं ।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

पानं मद्यादेः । सूना प्राणिवधः । द्यूतेऽनृतम् । पाने मदः । पूर्वं मदो दयानाशकत्वेनोक्तोऽत्र तु गर्वद्वारा तपोनाशकत्वेन। स्त्रीषु सङ्गः । हिंसायां क्रौर्यं दयानाशकमिति ज्ञेयम् । यद्यपि सर्वं सर्वत्र संभवति, तथापि प्राधान्येनानृतादीनां द्यूतादिषु यथासङ्ख्यं ज्ञेयम् । द्वादशस्कन्धे तु **'सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप'** इत्यत्र दानशब्देन शौचमेवोक्तम् । मनः शुद्धिरूपत्वाद्भूताभयदानस्य । **'त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः । अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसन्तोषविग्रहैः'** इत्यत्र चाऽसन्तोषशब्देन तस्य हेतुर्गर्वो लक्ष्यते । विग्रहशब्देन च तद्धेतुः स्त्रीसङ्ग इत्यविरोधः ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

मदिरा आदि को पीने को **पानं** शब्द से अभिहित किया गया है । प्राणियों के वध को सूना कहते हैं । द्यूत में झूठ बोलना पड़ता, मदिरा पान से मद नामक पाप होता है । इससे पहले पचीसवें श्लोक में मद को दया का नाश करने वाला कहा गया है और यहाँ पर गर्व के द्वारा तप का नाश कहा गया है । स्त्रियों में आसक्ति बढ़ती है । हिंसा करने से दया का नाश करने वाली क्रूरता बढ़ती है ।

**यद्यपि सर्वम्० इत्यादि-** यद्यपि सभी पाप इन सभी स्थानों में होते हैं । फिर भी प्रधान रूप से द्यूत इत्यादि में मिथ्या भाषण आदि पाप होते है । अतएव द्यूत इत्यादि को क्रमशः अनृत इत्यादि का जनक जानना चाहिए। **द्वादशस्कन्धे तु० इत्यादि सत्यं दया तपो दानम्० इत्यादि** श्लोक में दान शब्द से शौच को ही कहा गया है, क्योंकि जीवों को अभय प्रदान करने से मन की शुद्धि होती है । **त्रेतायाम्० इत्यादि** त्रेता में धर्म के चरणों का चतुर्थांश अधर्म के अनृत, हिंसा, असन्तोष तथा विग्रह के द्वारा धीरे-धीरे ह्रास होता है । इस श्लोक में असन्तोष शब्द के द्वारा उसके कारणभूत गर्व को लक्षित किया गया है तथा विग्रह शब्द के द्वारा उसके कारण भूत स्त्री सङ्ग को लक्षित किया गया है । इस तरह से कहीं भी विरोध नहीं है ।।३८।।

**पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः । ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ।।३९।।**

**अन्वयः—** पुनश्च प्रभुः याचमानाय जातरूपम् अदात् । ततः अनृतं, मदं, कामं, रजः पञ्चमम् वैरं च जायते ।।३९।।

**अनुवाद—** उसके पश्चात् भी कलियुग के द्वारा याचना किए जाने पर राजा परीक्षित् ने कलि के लिए सुवर्ण को निवास स्थान के रूप में प्रदान किया । इस तरह कलि के पाँच निवास स्थान हो गये । उन पाँचों स्थानों में क्रमशः मिथ्याभाषण, मद, काम, रजोगुण और वैर ये पाँच प्रकार के पाप होते हैं ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

चतुर्विधस्याप्येकत्रैवावस्थानं देहीति पुनर्याचमानाय जातरूपं सुवर्णं दत्तवान् । ततः सुवर्णदानात् अनृतम्, मदम्, काममिति स्त्रीषु सङ्गम्, रज इति रजोमूलां हिंसाम्, एतानि चत्वारि पञ्चमं वैरं चाददिति ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

इन चारो प्रकार के अधर्मों के एक स्थान में स्थिति आप मुझे प्रदान करें इस प्रकार से याचना किए जाने पर राजा ने उसे सुवर्ण को प्रदान किया ।

उस सुवर्ण प्रदान से, मिथ्या भाषण, मद, काम, स्त्रियों में आसक्ति रूपी काम, रजस् शब्द से रजोगुण मूलक हिंसा इन चार प्रकार के अधर्म स्थान को तथा पाँचवे वैर के स्थान को उन्होंने कलियुग को प्रदान किया।।३९।।

**अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः । औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ।।४०।।**

**अन्वयः—** तन्निदेशकृत अधर्म प्रभवः कलिः औत्तरेयेण दत्तानि अमूनि पञ्च स्थानि न्यवसत् ।।४०।।

**अनुवाद—** राजा परीक्षित् की आज्ञा का पालन करने वाला अधर्म का मूल कारण कलि, राजा परीक्षित् के द्वारा प्रदत्त इन्हीं पाञ्च स्थानों में रहने लगा ।।४०।।

**भावार्थ दीपिका**

औत्तरेयेण परीक्षिता अमून्यमीषु स्थानेषु न्यवसदित्यर्थः। तस्य राज्ञो निदेशकृदाज्ञाकृत् ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

उत्तरा के पुत्र परीक्षित् के द्वारा प्रदत्त इन्हीं पाँचों स्थानों में कलि राजा परीक्षित् की आज्ञाओं का पालन करता हुआ रहने लगा ॥४०॥

**अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित्। विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥४१॥**

**अन्वयः**— अथ बुभूषुः पुरुषः धर्मशीलो राजा, लोकपतिः गुरुश्च एतानि क्वचित् न सेवेत ॥४१॥

**अनुवाद**— अतएव आत्मकल्याण कामी पुरुष विशेष रूप से धार्मिक राजा, लोक स्वामी, तथा गुरुजनों को आसक्ति पूर्वक कभी भी इन सबों का सेवन नहीं करना चाहिए ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**

अथ इति हेतोः बुभूषुरुद्भवितुमिच्छुः। स्त्रीसुवर्णयोरसेवनं नाम तयोरनासक्तिः ॥४१॥

**भाव प्रकाशिका**

इसीलिए जो पुरुष आत्मकल्याण करना चाहाता है, वह तथा धार्मिक राजा लोगों के स्वामी (नेता) तथा धर्मोपदेष्टा गुरुजनों को इन सभी वस्तुओं का सेवन कभी भी नहीं करना चाहिए। स्त्री तथा सुवर्ण के असेवन का अर्थ है कि इन दोनों में आसक्ति न रखे ॥४१॥

**वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति। प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥४२॥**

**अन्वयः**— वृषस्य नष्टान् त्रीन् पादान् तपः शौचं दयाम् इति प्रतिसंदधे आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥४२॥

**अनुवाद**— इस तरह से कलि का निग्रह करके राजा धर्म के तप, शौच और दया इन तीन चरणों को प्रवर्तित किए और पृथिवी को सान्वना प्रदान किए ॥४२॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं कलिं निगृह्य वृषस्य पादान्प्रतिसंदधे तपआदीनि प्रवर्तितवानित्यर्थः ॥४२॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से कलियुग को निगृहीत करके तथा धर्म और पृथिवी को आश्वासन प्रदान करके राजा परीक्षित् ने टूटे हुए धर्म के तप, शौच और दया रूप पैरों को प्रवर्तित किए ॥४२॥

**स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम्। पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ॥४३॥**

**अन्वयः**— अरण्यं विविक्षता पितामहेन राज्ञा उपन्यस्तम् पार्थिवोचितम् आसनम् एतर्हि स एष अध्यास्ते ॥४३॥

**अनुवाद**— वन में जाते समय पितामह राजा युधिष्ठिर के द्वारा प्रदत्त राजसिंहासन पर ही राजा परीक्षित् विराजमान हैं ॥४३॥

**भावार्थ दीपिका**

युष्मदीयसत्रप्रवृत्तिरपि तत्प्रभावादेवेत्याह त्रिभिः। एतर्हीदानीं युधिष्ठिरेणारण्यं प्रवेष्टुमिच्छता उपन्यस्तं समर्पितमासनमध्यास्ते। अधुना आस्ते पालयत इति वर्तमानसमीप्ये वर्तमानवन्निर्देशः स्मेत्यध्याहारो वा ॥४३॥

**भाव प्रकाशिका**

सूतजी ने कहा कि आप लोग यह जो सत्र चला रहे हैं वह इसलिए चल रहा है कि यह राजा परीक्षित्

का प्रभाव है । इस बात को उन्होंने तीन श्लोकों में कहा— इस समय वन जाते समय राजा युधिष्ठिर के द्वारा प्रदत्त राज सिंहासन पर राजा परीक्षित् ही विराजमान हैं । इस समय वे इस राज्य का पालन कर रहे हैं । **अध्यास्ते** पद में वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग वर्तमान सामिप्य के अर्थ में हुआ है । अथवा यहाँ पर स्म पद का अध्याहार भी किया जा सकता है ।।४३।।

**आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् । गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ।।४४।।**

**अन्वयः**— अधुना महाभागः चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः सः राजर्षिः महाह्वये कौरवेन्द्रश्रिया उल्लसन् आस्ते ।।४४।।

**अनुवाद**— इस समय महाभाग, चक्रवर्ती महान् यशस्वी वे ही राजर्षि परीक्षित् हस्तिनापुर में कौरवकुल की राज्यालक्ष्मी से सुशोभित हैं ।।४४।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।४४।।

**भाव प्रकाशिका**

सूतजी ने शौनकादि महर्षियों को बतलाया कि राजा परीक्षित् महाभाग तथा चक्रवर्ती होने के साथ-साथ महायशस्वी हैं । इस समय वे ही हस्तिनापुर के राजा हैं ।।४४।।

**इत्थंभूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः । यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ।।४५।।**

इतिश्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथमस्कन्धे कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

**अन्वयः**— अयम् अभिमन्यु सुतः नृपः इत्थंभूतानुभावः यस्य क्षोणीं पालयतः यूयं सत्राय दीक्षिताः ।।४५।।

**अनुवाद**— ये अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न है । उनके ही पृथिवी पालकत्व काल में आपलोग इस दीर्घकालिक सत्र के लिए दीक्षित हुए हैं ।।४५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के कलिनिग्रह नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।**

**भावार्थ दीपिका**

सत्राय सत्रं कर्तुं दीक्षिता दीक्षां कृतवन्तः ।।४५।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।**

**भाव प्रकाशिका**

सत्राय दीक्षिताः का अर्थ है कि आपलोग इस दीर्घ कालिक सत्र को करने के लिए दीक्षित हुए हैं ।।४५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१७।।**

# अठारहवाँ अध्याय

## राजा परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि का शाप

सूत उवाच

**यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः । अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥१॥**

**अन्वयः**— यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टः अद्भुत कर्मणः भगवतः कृष्णस्य अनुग्रहात् मातुरुदरे न मृतः ॥१॥

**अनुवाद**— जो परीक्षित् अश्वत्थामा के अस्त्र से जल जाने पर भी अद्भुत कर्मों को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा के कारण अपनी माता की कोख में नहीं मरे ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

राज्ञस्त्वष्टादशे तस्य ब्रह्मशापो निरूप्यते । स चानुग्रह एवास्य जातो वैराग्यमावहन् ॥१॥ परीक्षितो निर्याणमत्याश्चर्यं वक्तुं तत्संभावनाय जन्माश्चर्यमनुस्मारयति-यो वा इति । विप्लुष्टो निर्दग्धः सन् ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

अठारहवें अध्याय में राजा परीक्षित् को ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त शाप का वर्णन किया गया है । श्रीभगवान् की कृपा से ही राजा परीक्षित् वैराग्य सम्पन्न हो गये ॥१॥

राजा परीक्षित् के अत्यन्त आश्चर्यमय परमपद गमन का वर्णन करने के लिए परीक्षित् के आश्चर्यमय परीक्षित् के आश्चर्यमय जन्म की याद दिलाते हुए सूतजी **योवा० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । विप्लुष्टः पद का अर्थ है जले हुए ॥१॥

**ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् । न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥२॥**

**अन्वयः**— ब्रह्म कोपोत्थितात् तक्षकात् प्राणविप्लवात् उरुभयात् भगवति अर्पिताशयः यः न संमुमोह ॥२॥

**अनुवाद**— ब्राह्मण के क्रोध से उत्पन्न तक्षक के काट लेने के कारण उत्पन्न प्राणनाश से भी राजा परीक्षित् इसलिए भयभीत नहीं हुए कि उनका मन भगवान् में उस समय लगा था ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

ब्रह्मकोपादुत्थितात्तक्षकाद्यः प्राणविप्लवः प्राणनाशस्तस्माद्यदुरु भयं तस्मात्र संमुमोह । तत्र हेतुः- यस्तु भगवत्येवार्पिताशय इति ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण के क्रोध के कारण उत्पन्न तक्षक के काट लेने पर उत्पन्न प्राणनाश के भय से राजा परीक्षित् भयभीत नहीं हुए । उसका कारण यह था कि उस समय उनका मन श्रीभगवान् में लगा हुआ था ॥२॥

**उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः । वैयासकेर्जहौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥३॥**

**अन्वयः**— विज्ञाताजितसंस्थितिः वैयासकेः शिष्यः सर्वतः सङ्गम् उत्सृज्य गङ्गायां स्वकलेवरं जहौ ॥३॥

**अनुवाद**— जिन्होंने मृत्युकाल में परमात्म साक्षात्कार कर लिया था ऐसे शुकदेवजी के शिष्य राजा परीक्षित् ने सब ओर से अपनी आसक्ति का परित्याग करके गङ्गा नदी में अपने शरीर का परित्याग कर दिया ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

किंतु उत्सृज्येति । वैयासकेः शुकस्य शिष्यः सन् । विज्ञाता अजितस्य हरेः संस्थितिस्तत्त्वं येन सः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् शुकदेवजी के शिष्य बनकर अपनी मृत्यु की बेला में परमात्मा का साक्षात्कार कर लिए थे; अतएव वे मृत्यु की विभीषिका से भयभीत नहीं हुए। **विज्ञाताजितसंस्थितिः** पद का विग्रह इस प्रकार है। **विज्ञाता अजितस्य हरेः संस्थितिः येन**। इसका अर्थ होगा कि उन्होंने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया था। किन्तु विजयध्वजी कार ने इस पद का विग्रह इस तरह से किया है **विज्ञातः अजितः श्रीहरिः संस्थितौ मृत्युकाले येन सः** ॥३॥

**नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम्। स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥४॥**

**अन्वयः**— उत्तमश्लोकवार्तानां तत्कथामृतम् जुषताम्, तत्र पदाम्बुजम् स्मरताम् अन्तकाले अपि सम्भ्रमः न स्यात् ॥४॥

**अनुवाद**— जो लोग सदा श्रीभगवान् की चर्चा करते हैं और जो लोग सदा श्रीभगवान् के कथामृत का सेवन करते हैं तथा इन दोनों ही साधनों के द्वारा जो लोग उनके चरण कमल का स्मरण करते हैं, उनलोगों को मृत्यु काल में भी किसी प्रकार का मोह नहीं होता है ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

न चैतच्चित्रमित्याह। उत्तमश्लोकस्यैव वार्ता येष्वत एव नित्यं तत्कथारूपममृतं जुषतां संभ्रमो मोहो न स्यात् ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि भगवद्भक्त को मृत्यु की विभीषिका जन्य भय भी नहीं होता है, क्योंकि वे लोग बातें भी श्रीभगवान् की ही करते हैं, एवं नित्य ही भगवान् के कथामृत का सेवन करते हैं ऐसे लोगों को किसी प्रकार का मोह होता ही नही है ॥४॥

**तावत्कलिर्न प्रभवेत्प्रविष्टोऽपीह सर्वतः। यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥५॥**

**अन्वयः**— यावत् उर्व्याम् अभिमन्यवः एकराट् महान् ईशः तावत् इह सर्वतः प्रविष्ट अपि कलिः न प्रभवेत् ॥५॥

**अनुवाद**— जब तक इस पृथिवी पर एक मात्र चक्रवर्ती महान् राजा अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित् हैं तब तक भूलोक में पूर्ण रूप से प्रवेश करके भी कलियुग अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता है ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

तस्मिन्राज्ञि सुतरां तन्न चित्रमित्याशयेनाह-तावदिति। अभिमन्योः पुत्र एकराट् चक्रवर्ती ईशः पतिर्यावत् ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के भी विषय में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; इस बात को **तावत् कलिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है। अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् चक्रवर्ती सम्राट् थे। इसलिए उनके भय से भयभीत कलियुग पृथिवी पर पूर्ण रूप से प्रवेश करके भी अपने प्रभाव को नहीं प्रदर्शित कर सकता था ॥५॥

**यस्मिन्नहविन यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम्। तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥६॥**

**अन्वयः**— यस्मिन् अहनि, जर्ह्येव भगवान् गाम् उत्ससर्ज तदैव अधर्मप्रभवः कलिः इह अनुवृत्तः ॥६॥

**अनुवाद**— जिस दिन जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथिवी का परित्याग किए उसी समय अधर्म का मूल कारण कलियुग पृथिवी पर प्रवृत्त हो गया ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

ननु तदा कलेरप्रवेश एवास्तु, इह प्रविष्टोऽपि न प्राभवदिति कुतस्तत्राह-यस्मिन्नहनि। यर्हि यस्मिन्नेव क्षणे। गां पृथ्वीम्। अनुवृत्तः प्रविष्टः अधर्मस्य प्रभवो यस्मिन् ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि तब तो उस समय तक कलि का पृथिवी पर प्रवेश ही नहीं हुआ होगा ? तो ऐसी बात नहीं है । कलि तो उसी दिन पृथिवी पर आ गया जिस दिन जिस समय भगवान् ने इस पृथिवी का परित्याग किया । वह कलि ही अधर्मका मूल कारण है । किन्तु वह राजा परीक्षित् के प्रशासन काल तक अपना प्रभाव नहीं प्रदर्शित कर सकता है ।।६।।

**नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् । कुशलान्याशु सिध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ।।७।।**

**अन्वयः**— सारङ्ग इव सारभुक् सम्राट् कलिं न अनुद्वेष्टि, यतः कलौ कुशलानि आशु सिध्यन्ति न इतराणि कृतानि ।।७।।

**अनुवाद**— भौंरे के समान सार तत्त्वग्राही राजा कलियुग से इसलिए द्वेष नहीं करते हैं कि इस युग में अच्छे कर्मों की शीघ्र ही सिद्धि हो जाती है और बुरे कर्म किए गये भी फलद नहीं होते हैं ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

नन्वधर्महेतुं कलिं सर्वथा किं न हतवांस्तत्राह– नानुद्वेष्टीति । सारङ्गो भ्रमर इव सारग्राही । सारमाह । यद्यस्मिन्कुशलानि पुण्यान्याशु सङ्कल्पमात्रेण फलन्ति । इतराणि पापान्याशु न सिध्यन्ति । यतस्तानि कृतान्येव सिध्यन्ति नतु सङ्कल्पितमात्राणीति।।७।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि अधर्म का कारणभूत कलि है । उसको राजा परीक्षित् ने क्यों नहीं मार दिया ? उसका उत्तर **नानुद्वेष्टि० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । राजा परीक्षित् कलियुग से द्वेष नहीं करते हैं क्योंकि जिस तरह भौंरा केवल पराग का ही पान करता है उसी तरह राजा परीक्षित् भी सारग्राही हैं । इस युग का गुण है कि इस युग में अच्छे कार्यों का सङ्कल्प भी शीघ्र ही फलद हो जाता है और पाप कर्म किए जाने पर भी फल नहीं देते हैं केवल सङ्कल्प मात्र की तो कोइ बात ही नहीं है ।।७।।

**किं न बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा । अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ।।८।।**

**अन्वयः**— बालेषु शूरेण, धीर भीरुणा कलिना किनु यः प्रमत्तेषु नृषु अप्रमत्तः वृक इव वर्तते ।।८।।

**अनुवाद**— बालकों पर वीरता दिखाने वाले तथा धीर पुरुष से डरने वाले भेंडिये के समान प्रमादी जीवों के प्रति सावधान रहने वाले कलियुग से क्या होने वाला है ?।।८।।

### भावार्थ दीपिका

ननु दोषाधिक्यादद्वेष एव युक्तः, न, धीरेषु तस्याकिंचित्करत्वादित्याह-किं न्विति । किं नु तेन भवेत् । बालेष्वधीरेषु। अप्रमत्तोऽवहितः सन् यो वृक इव वर्तते ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि कलियुग में तो दोष ही अधिक है अतएव उसके प्रति द्वेष बुद्धि से उसको मार देना ही उचित था, तो ऐसा कहना इसलिए उचित नहीं है कि कलियुग धैर्य सम्पन्न व्यक्ति का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है । ऐसे कलियुग से क्या मतलब है, जो लोग धैर्यहीन हैं, उन्हीं लोगों के प्रति सावधान रहकर उन लोगों को वह अपना विषय बनाता है । वह तो उस भेंडिये के समान है जो बच्चों पर तो वीरता दिखाता है और बड़े बलवान् लोगों को देखते ही डरकर भाग जाता है ।।८।।

**उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया । वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ।।९।।**

**अन्वयः**— वासुदेवकथोपेतम् एतत् पुण्यं पारीक्षितं आख्यानं मया वः उपवर्णितम् यद् अपृच्छत् ।।९।।

**अनुवाद**— शौनकादि महर्षियों भगवान् वासुदेव की कथा से युक्त इस पवित्र परीक्षित् आख्यान को मैंने आपलोगों को सुनाया इसी को आपलोगों ने पूछा था ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

पारीक्षितमाख्यानम् । अपृच्छत पृष्टवन्तो यूयम् ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

सूतजी ने कहा कि शौनकादि महर्षियों मैंने आपलोगों को यह भगवान् वासुदेव की कथा से युक्त राजा परीक्षित् के इस पवित्र आख्यान को सुना दिया । इसी के विषय में आपलोगों ने प्रश्न भी किया था ।।९।।

**या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः । गुणकर्माश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ।।१०।।**

**अन्वयः**— कथनीयोरुकर्मणः भगवतः याः याः गुणकर्माश्रयाः कथाः ताः बुभूषुभिः संसेव्याः ।।१०।।

**अनुवाद**— महान् कर्मों को करने वाले श्रीभगवान् की जो वर्णन करने योग्य कथाएँ हैं, तथा जिन कथाओं का श्रीभगवान् के कर्मों तथा गुणों से सम्बन्ध हैं, उन कथाओं का सेवन आत्मकल्याण चाहने वाले पुरुषों को करना चाहिए ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

किं बहुना नरैरेतावदेव कर्तव्यमिति सर्वशास्त्रार्थसारं कथयति-या या इति । कथनीयान्युरूणि कर्माणि यस्य तस्य गुणकर्मविषयाः । बुभूषुभिः सद्भावमिच्छद्भिः ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है, मनुष्यों को इस श्लोक में बतलाये जाने वाले कार्यों को ही करना चाहिए । अतएव शास्त्रों के सार को बतलाते हुए सूतजी **या याः इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । श्रीभगवान् के कर्म महान् तथा वर्णनीय हैं । उन श्रीभगवान् के गुणों एवं कर्मों से सम्बन्ध रखने वाली जो कथाएँ है, कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को उन सभी कथाओं का सेवन करना चाहिए ।।१०।।

ऋषय ऊचुः

**सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः । यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ।।११।।**

**अन्वयः**— हे सौम्य सूत शाश्वतीः समाः जीव यःत्वम् मर्त्यानां हि नः कृष्णस्य विशदम् अमृतम् यशः शंससि ।।११।।

**ऋषयों ने कहा**

**अनुवाद**— हे सौम्य स्वभाव वाले सूतजी ! आप युगों तक जीवित रहें क्योंकि आप हम मर्त्य जीवों को भगवान् श्रीकृष्ण के अमृतमय विशद यश को सुना रहे हैं ।।११।।

**भावार्थ दीपिका**

पुनर्विस्तरेण कथनार्थं सूतोक्तिं तत्सङ्गं चाभिनन्दन्ति-सूतेति त्रिभिः । शाश्वतीः समा अनन्तान्वत्सरान् जीव । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । विशुद्धं यशः कीर्तयसि । तच्चास्माकं मर्त्यानाममृतं मरणनिवर्तकम् ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

फिर विस्तार से परीक्षित् की कथा को कहने के लिए सूतजी की बातों की तथा उनकी सङ्गति की प्रशंसा करते हुए शौनक महर्षि ने **सूत जीव० इत्यादि** तीन श्लोकों में कहा कि हे सूतजी आप अनन्त वर्षों तक जीवित रहें । यहाँ **शाश्वतीः समाः** में अत्यन्त संयोग के अर्थ में द्वितीया विभक्ति है । क्योंकि आप हमलोगों को भगवान्

श्रीकृष्ण के विशुद्ध यश को सुनाते हैं। वह हम मरणशील जीवों की मृत्यु को दूर करने वाले अमृत के समान है ॥११॥

**कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान्। आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ॥१२॥**

**अन्वयः**— अस्मिन् अनाश्वासे कर्मणि धूम धूम्रात्मनां नः भवान् गोविन्दपादपद्मासवं मधु आपाययति ॥१२॥

**अनुवाद**— इन यज्ञ रूपी कर्मों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है, और इन यज्ञादि कर्मों के धूम से हमलोगों का शरीर धूमिल हो गया है। आप हमलोगों को भगवान् गोविन्द के चरण कमलों का मादक मधु पीलाकर तृप्त कर रहे हैं ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच अस्मिन्कर्मणि सत्रेऽनाश्वासेऽविश्वसनीये। वैगुण्यबाहुल्येन फलनिश्चयाभावात्। धूमेन धूम्रो विवर्ण आत्मा शरीरं येषां तानस्मान्। कर्मणि षष्ठी। आसवं मकरन्दम्। मधु मधुरम् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

किञ्च यह सत्र रूपी कर्म ऐसा हैं कि इस पर यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि यह अपना फल प्रदान करेगा ही; क्योंकि इसके अनुष्ठान में अनेक प्रकार के विघ्न सम्भव हैं। अतएव इसके फल का निश्चय नहीं किया जा सकता है; और इस यज्ञ कर्म के धूम से हमलोगों का शरीर धूमिल हो गया है। और आप भगवान् गोविन्द के चरण कमल के मकरन्द से संबद्ध मधुर कथा को सुनाकर हमलोगों को आप्यायित कर रहे हैं ॥१२॥

**तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥१३॥**

**अन्वयः**— भगवत् साङ्गिसङ्गस्य, लवेन अपि न स्वर्गं न अपुनर्भवम् तुलयाम मर्त्यानाम् आशिषः किमुत ॥१३॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के भक्तों के सत्सङ्ग के लवमात्र की भी तुलना न तो स्वर्ग से की जा सकती है और न तो मोक्ष से की जा सकती है, ऐसे मनुष्यों को राज्यादि से प्राप्त होने वाले भोगों से इसकी तुलना कैसे की जा सकती है ?॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

भगवत्सङ्गिनो विष्णुभक्तास्तेषां सङ्गस्य यो लवोऽत्यल्पः कालस्तेनापि स्वर्गं न तुलयाम समं न पश्याम। न चापवर्गम्। संभावनायां लोट्। मर्त्यानां तुच्छा आशिषो राज्याद्या न तुलयामेति किमु वक्तव्यम् ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् विष्णु के भक्त भगवत् सङ्गी है। उनका जो होने वाला सङ्ग है, उसके अत्यल्प भाग की भी तुलना न तो स्वर्ग सुख से की जा सकती है और न मुक्ति से ही की जा सकती है। तुलयाम में सम्भावना के अर्थ में लोट् लकार हुआ है। ऐसी स्थिति में राज्यादि जन्य भोगों की तुलना उससे नहीं करते हैं, इस बात को क्या कहना है ? वह तो अर्थत: ही सिद्ध है ॥१३॥

**को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तमैकान्तपरायणस्य।**
**नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ॥१४॥**

**अन्वयः**— को नाम रसवित् कथायां तृप्येत्, महत्तमैकान्तपरायणस्य अगुणस्य गुणानाम् ये भवपाद्ममुख्याः योगेश्वराः ते अन्तं न जग्मुः ॥१४॥

**अनुवाद**— कौन ऐसा रसज्ञ प्राणी होगा जो श्रीभगवान् की कथाओं को सुनने से तृप्त हो जायेगा। जो

भगवान् महापुरुषों के लिए एकमात्र आश्रय हैं तथा निर्गुण (प्राकृतिक गुणों से रहित हैं), उनके गुणों के अन्त का पता शिवजी तथा ब्रह्माजी आदि योगेश्वर भी नहीं लगा सके । क्योंकि भगवान् के गुण अनन्त हैं ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

एवं सत्सङ्गमभिनन्द्य श्रवणौत्सुक्यमाविष्कुर्वन्ति-को नामेति । रसविद्रसज्ञः । महत्तमानामेकान्तेन परमायनमाश्रयो यस्तस्य कथायाम् । अगुणस्य प्राकृतगुणरहितस्य । कल्याणगुणानामन्तं ये योगेश्वरास्तेऽपि न जग्मुरेतावन्त इति न परिगणयाञ्चक्रुः भवः शिवः पाद्मो ब्रह्मा च मुख्यौ येषां ते ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सत्सङ्ग की प्रशंसा करके महर्षि शौनक भगवत् कथा के श्रवण की उत्सुकता को अभिव्यक्त करते हुए **को नाम रसवित् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । रसवित् रस के वेत्ता पुरुष को कहते हैं; श्रीभगवान् महापुरुषों के लिए एक मात्र आश्रय हैं, उन श्रीभगवान् की कथाओं को सुनने से कोई कैसे तृप्त हो सकता है? श्रीभगवान् अगुण हैं अर्थात् वे प्राकृतिक गुणों से रहित हैं और वे अनन्त कल्याण गुणों के आश्रय है । उन श्रीभगवान् के कल्याणगुणों के अन्त का पता लगाने वाले शिवजी तथा ब्रह्माजी इत्यादि जो योगेश्वर हैं; वे भी उनके गुणों का अन्त नहीं पा सके ॥१४॥

**तन्नौ भवान्वै भगवत्प्रधानो महत्तमैकान्तपरायणस्य ।**
**हरेरुदारं चरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे विद्वन् भवान् वै भगवत् प्रधानः शुषूषतां नः हरेः उदारं विशुद्धं चहिरतं वितनोतु ॥१५॥

**अनुवाद**— हे विद्वन् ! आपके प्रधान सेव्य श्रीभगवान् ही हैं ऐसे आप सुनना चाहने वाले हमलोगों को श्रीहरि के धर्मार्थ काममोक्ष प्रदान करने वाले विशुद्ध चरित को सुनायें ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

नोऽस्माकं मध्ये भगवान्प्रधानं सेव्यो यस्य स भवान्नः हरेश्चरितं विस्तारयतु ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

हमलोगों के बीच में विद्यमान आपके प्रधान सेव्य श्रीभगवान हैं । ऐसे आप सुनना चाहने वाले हमलोगों को महापुरुषों के एक मात्र आश्रय श्रीहरि के धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाले विशुद्ध चरित को सुनायें ॥१५॥

**स वै महाभागवतः परीक्षिद्येनापवर्गाख्यमभ्रबुद्धिः ।**
**ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— स वै महाभागवतः परीक्षित् अदभ्रबुद्धिः येन वैयासकिः शब्दितेन ज्ञानेन अपवर्गाख्यं खगेन्द्रध्वजपादमूलम् भेजे ॥१६॥

**अनुवाद**— वे महाभागवत परीक्षित् महान् बुद्धि सम्पन्न थे, उन्होंने शुकदेवजी द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के द्वारा मोक्ष नामक गरुडध्वज भगवान् विष्णु के चरणों के सन्निध्य को प्राप्त किया ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

तच्च शुकपरीक्षित्संवादेन कथयेत्याहुः- स वा इति द्वाभ्याम् । वैयासकिना श्रीशुकेन शब्दितेन कथितेन येन ज्ञानेन ज्ञानसाधनेनापवर्ग इत्याख्या यस्य तत् खगेन्द्रध्वजस्य हरेः पादमूलं भेजे ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

शौनकजी ने कहा कि श्रीभगवान् के चरित को आप शुक-परीक्षित् संवाद के माध्यम से सुनायें । इस बात को उन्होंने **स वै० इत्यादि** दो श्लोकों के माध्यम से कहा । व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेवजी द्वारा उपदिष्ट ज्ञान रूपी साधन के द्वारा राजा परीक्षित् अपवर्ग (मोक्ष) नामक भगवान् गरुडध्वज के चरणों को प्राप्त कर लिए ॥१६॥

**तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ।**
**आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम् ॥१७॥**

**अन्वयः**— तत् असंवृतार्थम् अत्यद्भुतयोगनिष्ठम् । अनन्तचरितोपपन्नम् भागवताभिरामम् परं पुण्यं पारीक्षितम् आख्यानम् आख्याहि ॥१६॥

**अनुवाद**— ज्यों के त्यों, अत्यन्त, भगवत् प्रेम की अद्भुत योगनिष्ठा से युक्त, श्रीभगवान् की लीलामयी कथाओं से युक्त, भगवद् भक्तों को अत्यन्त प्रिय, अत्यन्त पवित्र महाराज परीक्षित् के चरित का आप वर्णन करें ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

तदसंवृतार्थं यथा तथा आख्याहि । तदेव निर्दिशन्ति । परीक्षिते कथितं पारीक्षितमायानं श्रीभागवतं पुराणम् । परं पुण्यं सत्त्वशोधकम् । अत्यद्भुते योगे निष्ठा यस्य । अनन्तस्याचरितैरुपपन्नं युक्तम् । अतएव भागवतानामभिरामं प्रियम् । एतैर्विशेषणैः कर्मज्ञानभक्तियोगप्रकाशकत्वं दर्शितम् ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के चरित को आप ज्यों के त्यों हमलोगों को सुनायें । उसी को बतलाते हुए शौनक महर्षि कहते हैं राजा परीक्षित् के विषय में वर्णित आख्यान को पारीक्षित् कहते हैं अर्थात् परीक्षित् से संबद्ध श्रीमद्भागवत पुराण को जो अन्तःकरण को स्वच्छ बनाने वाला होने के कारण अत्यन्त पवित्र है । जिसकी अत्यन्त अद्भुत योग में निष्ठा है तथा अनन्त श्रीभगवान् की लीलाओं से युक्त होने के कारण भगवद् भक्तों को जो अत्यन्त प्रिय है उस परीक्षित् के आख्यान का आप वर्णन करें । इन सभी विशेषणों से यह बतलाया गया है कि राजा परीक्षित् की कथा कर्मयोग, ज्ञानयोग एव भक्तियोग का प्रकाशक है ॥१७॥

सूत उवाच

**अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः ।**
**दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ॥१८॥**

**अन्वयः**— विलोमजाता जन्मभृतः अपि वयं वृद्धानुवृत्त्या अद्य अहो, यतः महत्तमानामाभिधानयोगः दौष्कुल्यम् आधिं शीघ्रं विधुनोति ॥१८॥

**अनुवाद**— विलोम जाति में उत्पन्न होने पर भी वृद्ध पुरुषों की सेवा करने के कारण आज हम धन्य हो गये; क्योंकि महापुरुषों के साथ बातें करने का अवसर नीच वंश में उत्पन्न होने की मनोव्यथा को शीघ्र ही विनष्ट कर देती है ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

श्रीभागवतव्याख्याने लब्धप्रसङ्गं महतामादरपात्रमात्मानं श्लाघते द्वाभ्याम् । अहो इत्याश्चर्ये । ह इति हर्षे । वयमिति बहुवचनं श्लाघायाम् । प्रतिलोमजा अप्यद्य जन्मभृतः सफलजन्मान आस्म जाताः । वृद्धानामनुवृत्त्या आदरेण । ज्ञानवृद्धः शुकस्तस्य सेवयेति वा । यतो दुष्कुलत्वं तन्निमित्तमाधिं च मनःपीडां महत्तमानामभिधानयोगो लौकिकोऽपि संभाषणलक्षणः संबन्धो विधुनोत्यपनयति ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीमद्भागवत की कथा कहने का प्रसङ्ग प्राप्त होने के कारण सूतजी दो श्लोकों के द्वारा अपनी प्रशंसा करते हैं। अहो इस अव्यय का प्रयोग आश्चर्य के अर्थ में किया गया है। ह इस अव्यय का प्रयोग हर्ष के अर्थ में हुआ है। वयम् इस बहुवचनान्त पद का प्रयोग प्रशंसा के अर्थ में है। सूतजी अपनी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यद्यपि मैं प्रतिलोम जाति में उत्पन्न हुआ हूँ किन्तु आज मेरा जन्म सफल हो गया; क्योंकि ज्ञान वृद्ध शुकदेवजी की मैंने सेवा की है। महापुरुषों के साथ बात-चित भी करने का अवसर प्राप्त होने के कारण नीच जाति में उत्पन्न होने की मनोव्यथा को विनष्ट कर देता है ॥१८॥

**कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य महत्तमैकान्तपरायणस्य ।**
**योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो महद्गुणत्वाद्यमनन्तमाहुः ॥१९॥**

**अन्वयः**— महत्तमैकान्तपरायणस्य तस्य नाम गुणतः कुतः । यः अनन्तशक्तिः भगवान् अनन्तः यम् महद्गुणत्वात् अनन्तम् आहुः ॥१९॥

**अनुवाद**— महापुरुषों के लिए जो एक मात्र आश्रय हैं, उन श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने वाले के विषय में फिर क्या कहना है। जो श्रीभगवान् अनन्त शक्तियों से सम्पन्न हैं तथा देश, काल एवं वस्तु की सीमा से रहित हैं। जिन श्रीभगवान के महान् गुणों से सम्पन्न होने के कारण ही महापुरुषों ने अनन्त कहा है ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

कुतः पुनः किं पुनर्वक्तव्यं तस्यानन्तस्य नाम गृणतः पुंसो महत्तमानामभिधानयोगो दौष्कुल्यं विधुनोतीति । यद्वा नाम गृणतः पुनः कुतो दौष्कुल्यमिति । यद्वा गृणतः पुंसस्तस्य नाम दौष्कुल्यं विधुनोतीति किं वक्तव्यमिति कैमुत्यन्यायमेवाह । अनन्ताः शक्तयो यस्य । स्वतोऽप्यनन्तः किंच महत्सु गुणा यस्य स महद्गुणः तस्य भावस्तस्मात् । यं गुणतोऽप्यनन्तमाहुः ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् अनन्त के नामों का उच्चारण करने वाले पुरुष के विषय में क्या कहना है ? महापुरुषों के साथ बातचित करने का अवसर भी नीच वंश में उत्पन्न होने की मनोव्यथा को विनष्ट कर देता है। अथवा श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने वाले के नीच जाति का होने का प्रसङ्ग ही कहाँ हैं। अथवा उच्चारण किया जाने वाला भगवान् का नाम नीच वंशोत्पन्नत्व को ही विनष्ट कर देता है। यह क्या कहना है, यह तो अपने आप ही सिद्ध है। इसतरह कैमुत्यन्याय को यहाँ पर बतलाया गया है। भगवान् में अनन्त शक्तियाँ हैं अतएव वे अनन्त शक्ति शब्द से अभिहित किए जाते हैं। वे स्वयं भी अनन्त है। अथवा जिनके गुण महापुरुषों में पाये जाते हैं ऐसे महद्गुण सम्पन्नता के कारण भी भगवान् को अनन्त शब्द से अभिहित किया गया है ॥१९॥

**एतावताऽलं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ।**
**हित्वेतरान्प्रार्थयतो विभूतिर्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥२०॥**

**अन्वयः**— गुणैः असाम्यानतिशायनस्य ननु एतावता सूचितेन अलम् यत् प्रार्थयतः इतरान् हित्वा विभूतिः अनभीप्सोः यस्य अङ्घ्रिरेणुम् जुषते ॥२०॥

**अनुवाद**— जब कोई भगवान् के गुणों की ही समता नहीं कर सकता है तो फिर उनसे बढ़कर कहाँ से कोई होगा ? उनके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि लक्ष्मीजी को प्राप्त करने की इच्छा से जो उनकी प्रार्थना करते हैं उन सबों को त्यागकर लक्ष्मीजी नहीं चाहने वाले भी श्रीभगवान् के चरणरजों का प्रेमपूर्वक सेवन करती हैं ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति त्रिभिः- एतावतेति । तस्य यदसाम्यानतिशायनं च गुणैस्तत्साम्यं तदाधिक्यं चान्यस्य नास्तीत्यस्यार्थस्य ज्ञानमेतावता सूचितेनैवालं प्रर्याप्तं कस्तद्विस्तरो वक्तुं शक्नोति । तदेवाह । इतरान्ब्रह्मादीन्प्रार्थयमानान् हित्वा विभूतिर्लक्ष्मीरनभीप्सोरपि यस्याङ्घ्रिरेणुं सेवत इति ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों का ही विसतार से वर्णन **एतावतालम्० इत्यादि** तीन श्लोकों से किया जा रहा है । श्रीभगवान के गुणों के ही कारण उनका साम्यातिशय राहित्य है । अतएव श्रीभगवान् के गुणों के समान गुणों वाला कोई दूसरा नहीं है और न तो उनसे बढ़कर ही गुणों वाला कोई है । इस प्रकार का जो ज्ञान है उसके विषय में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि भगवान् के गुणों का विस्तार से वर्णन कौन कर सकता है ? इसी बात को बतलाते हुए सूतजी कहते हैं **हित्वा० इत्यादि** दूसरे ब्रह्माजी इत्यादि लक्ष्मीजी की प्रार्थना करते हैं कि वे उनको प्राप्त हो जायँ, किन्तु उन प्रार्थना करने वालों को त्यागकर लक्ष्मीजी उन श्रीभगवान् के चरणों की सेवा अत्यन्त प्रेम पूर्वक करती हैं, जिन श्रीभगवान् को लक्ष्मीजी को प्राप्त करने की लालसा है ही नहीं ।।२०।।

**अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ।**
**सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः ।।२१।।**

**अन्वयः**— अथापि यत्पादनखावसृष्टं विरिञ्चोपहृतअर्हणाम्भः सेशं जगत् पुनाति लोके मुकुन्दात् को नाम अन्यतमः भगवत् पदार्थः ।।२१।।

**अनुवाद**— किञ्च जिन श्रीभगवान् के चरणों के नख से निकले हुए तथा ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त पूजनीय जल गङ्गाजी के रूप में शङ्करजी के साथ ही सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बनाता है, उन भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले श्रीमुकुन्द से भिनन दूसरा कौन नाम है जो भगवान् पद का वाच्यार्थ बन सके ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

अथेत्यर्थान्तरे । यस्य पादनखादवसृष्टं निःसृतमपि विरिञ्चेनोपहृतं समर्पितमर्हणाम्भोऽर्घोदकमीशसहितं जगत्पुनाति । विरिञ्चोपहृतं सेशमिति च तयोरप्युपासकत्वमुक्तम् । तस्मान्मुकुन्दव्यतिरिक्तः को नाम भगवत्पदस्यार्थः । स एव सर्वेश्वर इत्यर्थः ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

यहाँ अथ शब्द का अर्थान्तर के अर्थ में प्रयोग हुआ है । जिन श्रीभगवान् के चरणों से निकला हुआ जल जिसे ब्रह्माजी ने शङ्करजी को अर्घोदक के रूप में प्रदान किया वह गङ्गाजी के रूप में शङ्करजी के साथ ही सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बनाता है । **विरिञ्चिचोपहृतं सेशम्** कहने का अभिप्राय है कि वह शङ्करजी के साथ ही ब्रह्माजी को भी पवित्र बन दिया । इस तरह ब्रह्माजी और शिवजी दोनों के उपासकत्व की प्रतीति होती है । अतएव भगवान् मुकुन्द को छोड़कर दूसरा कौन है जिसको भगवान् पद से अभिहित किया जाय । फलतः भगवान् विष्णु ही सर्वेश्वर सिद्ध होते हैं ।।२१।।

**यात्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ।**
**व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ।।२२।।**

**अन्वयः**— यत्रानुरक्ताः धीराः सहसा एव देहादिषु ऊढं सङ्गं व्यपोह्य, तत् अन्त्यं पारमहंस्यं व्रजन्ति यस्मिन् अहिंसोपशमः स्वधर्मः ।।२२।।

**अनुवाद**— उन श्रीभगवान् में अनुरक्त ज्ञानी पुरुष अचानक ही शरीर आदि में गृहीत आसक्ति का परित्याग करके उस अन्तिम पारमहंस्य आश्रम को अपना लेते हैं जिसमें अहिंसा और उपशम ही अपना धर्म हो जाता है ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

धीराः सन्तः । ऊढं धृतम् । अन्त्यं परमकाष्ठापन्नम् । तदाह । यस्मिन्नहिंसा उपशमश्च स्वाभाविको धर्मः ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

सूतजी बतलाते हैं कि श्रीभगवान् में जब सुदृढ प्रेम हो जाता है, उस समय ज्ञानी पुरुष इन शरीरादिकों में जो आसक्ति हो गयी है, उसको अचानक बिना किसी हिचक के ही त्याग देते हैं और जीवन का जो अन्तिम आश्रम है उस संन्यास आश्रम को अपना लेते हैं और उस आश्रम में हिंसा का त्याग रूपी अहिंसा और उपशम ये दोनों अपना स्वाभाविक धर्म बन जाता है ॥२२॥

**अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ।**
**नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे अर्यमणः अहं हि भवद्भिः पृष्टः यावान् आत्मावगमः अत्र वक्ष्ये । यथा पतत्त्रिणः आत्मसमं नभः पतन्ति तथा समं विपश्चितः विष्णु गतिम् ॥२३॥

**अनुवाद**— हे सूर्य के समान देदीप्यमान महर्षिगण, आपलोगों ने जो मुझसे पूछा है उसे मैं अपने ज्ञान के अनुसार बतलाता हूँ । जिस तरह पक्षीगण अपनी शक्ति के अनुसार ही आकाश में उड़ते हैं उसी तरह ज्ञानी पुरुष भी अपने ज्ञान के अनुसार ही भगवान् की लीलाओं का वर्णन करते हैं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

एवं स्वभाग्यमभिनन्द्य पारीक्षितोपाख्यानं वक्तुमाह-अहं हीति । हे अर्यमणः हे सूर्यास्त्रयीमूर्तयः, अत्र यावानात्मावगमो मम ज्ञानं तावदाचक्षे प्रवक्ष्यामि । तथाहि । यथा पक्षिणो नभ आत्मसमं स्वशक्त्यनुरूपमेवोत्पतन्ति न कृत्स्नं, तथा विपश्चितोऽपि विष्णोर्गतिं लीलां समं स्वमत्युनरूपमेव वदन्तीत्यर्थः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से अपने भाग्य की सराहना करने के पश्चात् सूतजी ने परीक्षितोपाख्यान का वर्णन करने के लिए **अहंहि० इत्यादि** श्लोक को कहा है । उन्होंने कहा— हे सूर्य के समान देदीप्यमान प्रकाश सम्पन्न त्रयीमूर्ति महर्षियों इस विषय में मेरी जितनी जानकारी है । उसी के अनुसार मैं परीक्षित् चरित का वर्णन करूँगा । उदाहरणार्थ-पक्षीगण अपनी शक्ति के ही अनुसार आकाश में उड़ते हैं, वे सम्पूर्ण आकाश में तो उड़कर जा नहीं सकते हैं। उसी तरह विद्वान् पुरुष भी अपनी ज्ञानशक्ति के अनुसार ही भगवान् की लीलाओं का वर्णन करते हैं । वे भगवान् की सारी लीलाओं का वर्णन तो नहीं कर सकते हैं ॥२३॥

**एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वनं । मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥२४॥**
**जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् । ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— एकदा धनुः उद्यम्य वने मृगयां विचरन् मृगानुगतः श्रान्तः भृशम् क्षुधितः तृषितः जलाशयम् आचक्षाणः तम् आश्रमम् प्रविवेश । आसीनम् शान्तम् मीलितलोचनम् मुनिं ददर्श ॥२४-२५॥

**अनुवाद**— एक बार राजा परीक्षित् वन में आखेट के प्रसङ्ग में विचरण करते हुए तथा मृग का पीछा करते हुए बहुत अधिक थक गये भूखे तथा प्यासे राजा जलाशय की खोज करते हुए एक आश्रम में प्रवेश कर गये। उन्होंने आसन पर बैठे हुए शान्त तथा नेत्रों को बन्द किए हुए ऋषि को देखा ॥२४-२५॥

**भावार्थ दीपिका**

संप्रति कथामुपक्षिपति-एकदेति । अचक्षाणोऽपश्यन् तं प्रसिद्धमाश्रमम् । तस्मिंश्च मुनिं शमीकम् ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

अब **एकदा० इत्यादि** श्लोक से सूतजी ने कथा प्रारम्भ की । उन्होंने कहा— राजा परीक्षित् एक बार धनुष धारण करके वन में मृगया विहार कर रहे थे । एक मृग का पीछा करते हुए वे बहुत थक गये और भूख तथा प्यास के मारे वे जलाशय को खोजते हुए एक आश्रम में प्रवेश कर गये । वह शमीक मुनि का आश्रम था। वहाँ उन्होंने आसन पर बैठे हुए, शान्त तथा आँखें बन्द किए हुए शमीक मुनि को देखा ॥२४-२५॥

**प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् । स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥२६॥**
**विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च । विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥२७॥**

**अन्वयः**— प्रतिरुद्धेन्द्रिय प्राणमनोबुद्धिम् उपारतम् स्थानत्रयात् परं प्राप्तं ब्रह्मभूतम्, अविक्रियम्, विप्रकीर्णजटा रौरवेण अजिनेन छन्नं तथा भूतम् विशुष्यत् तालुः उदकम् अयाचत् ॥२६-२७॥

**अनुवाद**— इन्द्रिय, प्राण, मन तथा बुद्धि के अवरुद्ध हो जाने के कारण संसार से ऊपर उठे हुए, जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर तुरीयावस्था को प्राप्त कर गये अतएव विकार रहित ब्रह्म स्वरूप ऋषि की जटायें विखरी हुयी थी और रुरु मृग के चर्म को वे ओढे हुए थे, उस प्रकार के मुनि से प्यास से जिनका तालु सुख रहा था वे राजा जल माँगे ॥२६-२७॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रतिरुद्धाः प्रत्याहृता इन्द्रियादयो येन तम् । अत एवोपरतम् । स्थानत्रयाज्जग्रदादिलक्षणात्परं तुरीयं पदं प्राप्तम् अतएव ब्रह्मभूतत्वादविक्रियम् । विप्रकीर्णाभिर्जटाभिराच्छन्नम् । रुरुर्मृगविशेषस्तस्य चर्मणा चाच्छन्नम् । विशेषेण शुष्यत्तालु यस्य सः। तथाभूतं मुनिमुदकमयाचत ॥२६-२७॥

**भाव प्रकाशिका**

उस समय महर्षि अपनी इन्द्रियों, प्राण, मन तथा बुद्धि को निरुद्ध कर दिये थे, अतएव वे संसार से ऊपर उठ चुके थे । जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर उठकर वे तुरीयावस्था को प्राप्त कर लिए थे । फलतः वे ब्रह्मस्वरूप तथा निर्विकार हो गये थे महर्षि उनकी जटायें विखरी हुयी थीं और वे रुरु मृग के चर्म को ओढ़े हुए थे । इस प्रकार के महर्षि से राजा ने जल माँगा । उस समय प्यास के कारण राजा का कण्ठ सूखा जा रहा था ॥२६-२७॥

**अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्घसूनृतः । अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥२८॥**

**अन्वयः**— अलब्धतृणभूम्यादिः न संप्राप्तार्घसुनृतः अवज्ञातम् इव आत्मानं मन्यमानः चुकोप ह ॥२८॥

**अनुवाद**— बैठने के लिए तृण आसन तथा भूमि आदि राजा को नहीं प्राप्त हुआ, राजा को किसी ने न तो अर्घ प्रदान किया और न तो उनको किसी ने प्रिय वाणी से सत्कृत किया । उससे राजा ने मान लिया कि वहाँ पर उनका अपमान हुआ है । अतएव वे क्रुद्ध हो गये ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

न लब्धं तृणं तृणासनं भूम्याद्युपवेशस्थानं च येन सः । न संप्राप्तोऽर्घः सूनृतं प्रियवचनं य येन सः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

**अलब्ध तृण भूम्यादिः** पद का विग्रह है । **न लब्धं तृणं तृणासनं भूम्याद्युपवेशन स्थानं येन सः । असंप्राप्तार्घसुनृतः** का विग्रह है न **सम्प्रातोऽर्घः सुनृतं प्रियवचनं च येन सः** । अर्थात् वहाँ पर किसी ने राजा को न तो बैठने के लिए कोई तृण निर्मित आसन ही दिया और न तो उनको भूमि पर ही बैठ जाने के लिए किसी ने कहा । इसी तरह उनको न तो किसी ने न तो अर्घ प्रदान किया और न तो किसी ने प्रियवाणी से उनका सत्कार ही किया । यह देखकर राजा ने मान लिया कि यहाँ तो मेरा अपमान हो रहा है । राजा मन ही मन क्रुद्ध हो गये ॥२८॥

**अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः । ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च॥२९॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! क्षुततृड्भ्याम् अर्दितात्मनः सहसा तस्य ब्राह्मणं प्रति अभूतपूर्वः मत्सरः मन्युरेव च अभूत् ॥२९॥

**अनुवाद**— हे शौनकजी भूख तथा प्यास से व्याकुल राजा परीक्षित् के मन में ब्राह्मण के प्रति अचानक अभूतपूर्व द्वेषमयी बुद्धि हो गयी और क्रोध उत्पन्न हो गया । राजा के जीवन में इससे पहले किसी ब्राह्मण के प्रति द्वेषबुद्धि और क्रोध कभी नहीं हुआ था ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

मत्सरस्तदुत्कर्षासहनम् ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा के मन में महर्षि शमीक के प्रति द्वेष बुद्धि हो गयी । दूसरे के उत्कर्ष को नहीं सह पाने को ही मत्सर कहते हैं यह राजा के जीवन में इस प्रकार का पहला अवसर था ॥२९॥

**स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा । विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥३०॥**

**अन्वयः**— स तु रुषा विनिर्गच्छन् धनुष कोट्या गतासुम् उरगं निधाय पुरमागमत् ॥३०॥

**अनुवाद**— वे राजा क्रोध करके आश्रम से निकलते हुए अपने धनुष के अग्रभाग से मरे हुए सर्प को उठाकर ऋषि के गले में उसे डालकर अपने नगर में आ गये ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

गतासुं मृतम् । धनुष्कोट्या चापाग्रेण ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा क्रोध के आवेश में थे, उन्होने एक मरे हुए सर्प को अपने धनुष के अग्रभाग से उठाकर ऋषि के गले में डाल दिया ॥३०॥

**एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः । मृषासमाधिराहोस्वित्किं तु स्यात्क्षत्रबन्धुभिः ॥३१॥**

**अन्वयः**— एषः मीलितेक्षणः किं निभृताशेषकरणः आहोस्वित् क्षत्रबन्धुभिः किं नु स्यात् इति मृषा समाधिः ॥३१॥

**अनुवाद**— आँखों को बन्द किए ये मुनिः वस्तुतः अपनी इन्द्रियों की वृत्तियों का निरोध कर लिए हैं अथवा यह जानकर कि क्षत्रियों के आने जाने से क्या होता है ? यह सोचकर झूठी समाधि लगा रखे हैं यही सोचकर राजा ने ऋषि के गले में मरा साँप डाल दिया ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्पनिधाने राज्ञोऽभिप्रायमाह । एष किं प्रत्याहृतसर्वेन्द्रियः सन् मीलितेक्षणः स्थितो यद्वा क्षत्रबन्धुभिरागतैर्गतैर्वा किं नु स्यादित्यवज्ञया मृषासमाधिः सन्निति जिज्ञासयेत्यर्थः ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

ऋषि के गले में सर्प डालते समय राजा के मन में यह जानने की इच्छा हो गयी थी कि ये आँखे बन्द किए हुए ऋषि वस्तुत अपनी इन्द्रियों आदि का निग्रह कर लिए हैं अथवा यह सोचकर कि क्षत्रियों के आने-जाने से क्या होता है ? आँखे बन्द किए हुए झूठी समाधि लगाये हुए हैं ॥३१॥

**तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः । राज्ञाऽघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥३२॥**

**अन्वयः**— तस्य अतितेजस्वी बालकः पुत्रः विहरन् सन् अर्भकैः राज्ञा अघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्र इदम् अब्रवीत् ॥३२॥

**अनुवाद**— उन शमीक ऋषि का बालक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी था वह बालकों के साथ खेल रहा था। बालकों से उसने जब यह सुना कि राजा ने मेरे पिता को दुःख दिया है तो उसने बालकों के बीच में ही कहा ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

तस्य पुत्रः शृङ्गीनामा । अतितेजस्वी तपोबलसंपन्नः । अघं दुःखम् । तत्र अर्भकमध्ये ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

ऋषि शमीक के पुत्र का नाम शृङ्गी था । शृङ्गी ऋषि यद्यपि बालक थे और बालकों के साथ खेल रहे थे। फिर भी वे अत्यन्त तेजस्वी थे । उनको तपस्या का बल प्राप्त था । उन्होंने बालकों से जब यह सुना कि राजा ने उनके पिता को दुःख पहुँचाया है तो वे क्रुद्ध हो गये, उन्होंने बालकों के बीच में ही निम्नलिखित बातों को कहा ॥३२॥

**अहो अधर्मः पालानां पीव्नां बलिभुजामिव । स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥३३॥**

**अन्वयः**— पीव्नां बलिभुजामिव पालानां अहो अधर्मः स्वामिनि अधं कुर्वतां दासानाम् द्वारपानां शुनामिव ॥३३॥

**अनुवाद**— उच्छिष्ट भोजन खा करके मोटे हुए कौओं के समान भोजन करके मोटे हुए राजाओं का यह कितना बड़ा पाप है । यह उसी तरह से है जिस तरह उच्छिष्टभोजी भृत्य स्वामी का अपकार करने लग जाय या द्वार की रक्षा करने वाला कुत्ता स्वामी को काटने के लिए दौड़ने लगे ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

पालानां राज्ञाम् । पीव्नां पुष्टानाम् । अधर्ममेव निर्दिशति । स्वामिनि दासानां यदघं पापाचरणं बलिभुजां काकानामिव शुनामिव चेति ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

ये खाकर मोटे हुए राजागण अपने स्वामी ब्राह्मणों के प्रति पाप करने लगे हैं । यह तो उसी तरह से है जैसे खाकर मोटे हुए भृत्य, या द्वारों का रक्षक कुत्ता या बलिभोजी उच्छिष्ट भोजी कौआ अपने स्वामी का ही अपकार करने लगे ॥३३॥

**ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः । स कथं तद्गृहे द्वास्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति ॥३४॥**

**अन्वयः**— ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुः हि द्वारपालो निरूपितः द्वाःस्थःसःकथं तद्गृहे सभाण्डं भोक्तुमर्हति ॥३४॥

**अनुवाद**— ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को अपना द्वारपाल नियुक्त किया है । द्वार पर रहने वाला वह अपने स्वामी के घर में घुसकर स्वामी के ही पात्र में कैसे भोजन कर सकता है ?॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

दासत्वं दर्शयति-ब्राह्मणैरिति । सभाण्डं भाण्डे एव स्थितम् ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

क्षत्रिय ब्राह्मणों के दास हैं, इस बात का निरूपण करते हुए ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को द्वार पर रहकर घर की रखवाली करने का काम सौंपा है । वह द्वार पर रहने वाला स्वामी के घर में घुसकर स्वामी के ही पात्र में भोजन करने का अधिकारी कैसे हो सकता है ?।।३४।।

**कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् । तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ।।३५।।**

**अन्वयः**— उत्पथगामिनां शास्तरि भगवति कृष्णे गते, तद्भिन्न सेतून् अद्य अहं शास्मि मे बलम् पश्यत ।।३५।।

**अनुवाद**— उन्मार्ग गामियों का प्रशासन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम गमन कर जाने के पश्चात् मर्यादा का उल्लंघन करने वाले इन राजाओं को आज मैं दण्ड देता हूँ । तुमलोग मेरा बल देखो ।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

तत्तदनन्तरम् । अहं शास्मि दण्डयामि ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के पश्चात् इन राजाओं को मैं दण्डित कर रहा हूँ । तुमलोग मेरे बल को देखो इस तरह से शृङ्गी ऋषि ने बालकों से कहा ।।३५।।

**इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् । कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ।।३६।।**

**अन्वयः**— रोषताम्राक्षः वयस्यान् ऋषिबालकान् इति उक्त्वा कौशिक्यापः उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ।।३६।।

**अनुवाद**— क्रोध से आँखें लाल किए हुए बालक शृङ्गीं अपने मित्र बालको से इस बात को कहकर कौशिकी नदी के जल का आचमन करके वाणी रूप वज्र (शाप) का प्रयोग किया ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

इति वयस्यानुक्त्वा रोषेण ताम्रे अक्षिणी यस्य सः । कौशिकी नदी तस्या अपः । सन्धिरार्षः । वाग्वज्रं शापम् ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से अपने मित्रों से कहकर ऋषि कुमार ने कौशिकी नदी के जल से आचमन करके शाप दे दिया ।।३६।।

**इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि । दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ।।३७।।**

**अन्वयः**— इति लङ्घितमर्यादम् कुलाङ्गरम् मे तत द्रुहम् सप्तमे अहनि प्रेरितः तक्षकः दंक्ष्यति ।।३७।।

**अनुवाद**— इस प्रकार से मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाले अपने वंश के लिए अङ्गार स्वरूप तथा मेरे पिता से द्रोह करने वाले राजा को आज के सातवें दिन मेरे द्वारा प्रेरित होकर तक्षक काट लेगा ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

इत्येवं सर्पनिक्षेपेण । दङ्क्ष्यति भक्षयिष्यति । पाठान्तरे भस्मीकरिष्यति । स्मेति । पादपूरणे । कुलस्स्याङ्गारतुल्यम्। मे मया । ततेति ह्रस्वत्वमार्षम् ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से मेरे पिता के गले में सर्प डालने से मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाले, अपने वंश के लिए अङ्गार के समान उसको विनष्ट करने वाले राजा को मेरे द्वारा प्रेरित होकर तक्षक आज के सातवें दिन काट लेगा।

दंक्ष्यति के स्थान पर जहाँ पर धक्ष्यति पाठ भेद हैं वहाँ पर भस्म कर देगा यह अर्थ होगा। **दंक्ष्यति स्म** में **स्म** का प्रयोग पादपूर्ति के लिए है। **ततद्रुहम्** में तत यह ह्रस्व पाठ आर्ष प्रयोग है ॥३७॥

**ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो गलेसर्पकलेवरम्। पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥३८॥**

**अन्वयः**— ततः बालः आश्रमं अभ्येत्य गले सर्पकलेवरम्, पितरं वीक्ष्य दुःखार्तः मुक्तकण्ठः रुरोद ॥३८॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् वह बालक अपने आश्रम में आकर तथा पिता के गले में सर्प को देखकर दुःख से आर्त हो गया और जोर-जोर से रोने लगा ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

गले सर्पकलेवरं यस्येत्यलुक्समासः मुक्तकण्ठः उच्चैरित्यर्थः ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

गले सर्पकालेवरम् इस पद में अलुक् समास है, अर्थात् विभक्ति का लुक् नहीं हुआ है। मुक्त कण्ठः का अर्थ है जोर-जोर से। अर्थात् पिता के गले में सर्प के शरीर को देखकर वह बालक अत्यन्त दुःखी होकर जोर-जोर से रोने लगा ॥३८॥

**स वा आङ्गिरसो ब्रह्मन् श्रुत्वा सुतविलापनम्। उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ॥३९॥**
**विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि। केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥४०॥**

**अन्वयः**— स वै आङ्गिरसः सुतविलापनं श्रुत्वा शनकैः नेत्रे उन्मील्य स्वांसे मृतोरगम् दृष्ट्वा, विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ, कस्मात् हि रोदिषि वा केन ते प्रतिकृतम्? इत्युक्तः स न्यवेदयत् ॥३९-४०॥

**अनुवाद**— अङ्गिरा गोत्रीय वे शमीक महर्षि अपने पुत्र का रुदन सुनकर धीरे-धीरे अपनी आँखों को खोले और गले में मरे सर्प को देखकर उसे हटाकर अपने पुत्र से पूछे— वत्स! तुम्हारा किसने अपकार किया है? ऋषि के द्वारा इस तरह पूछे जाने पर बालक ने सारी बातें बता दी ॥३९-४०॥

**भावार्थ दीपिका**

तं सर्पं विसृज्य। केनापकारः कृतः ॥३९-४०॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने गले से मरे सर्प को हटाकर ऋषि ने अपने पुत्र से पूछा तुम्हारा किसने अपकार किया है?॥३९-४०॥

**निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत्।**
**अहो बतांहो महदज्ञ ते कृतमल्पीयसि द्रोह उरुर्दमोधृतः ॥४१॥**

**अन्वयः**— अतदर्हं नरेन्द्रं शप्तं निशम्य स ब्राह्मणः आत्मजम् न अभ्यनन्दत्। अहो अज्ञ बत ते महत् अंहः कृतम् यत् अल्पीयसि द्रोहे उरुः दमः त्वया धृतः ॥४१॥

**अनुवाद**— शाप के अयोग्य राजा को अभिशप्त सुनकर ब्राह्मण शमीक ऋषि ने अपने पुत्र की सराहना नही की। उन्होंने कहा मूर्ख बालक तुमने बहुत बड़ा पाप किया है; क्योंकि अत्यन्त छोटे अपराध के लिए तुमने राजा को इतना बड़ा दण्ड दे दिया है ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**

अनभिनन्दनवाक्यमहो इत्यादि। बत कष्टम्। ते त्वया महत्पापं कृतम्। द्रोहे अपराधे। दमो दण्डः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

द्रोह शब्द अपराध का बोधक है और दम शब्द दण्ड का बोधक है । पुत्र की बातों को सुनकर शमीक ऋषि ने उसकी प्रशंसा नहीं किया । उन्होंने कहा— मुझे कष्ट है कि तुमने छोटे से अपराध के बदले में राजा को इतना बड़ा दण्ड दे दिया यह तुम्हारा अनुचित कार्य है ॥४१॥

**न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ।**
**यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ॥४२॥**

**अन्वयः**— अविपक्व बुद्धे पराख्यं नरदेवं नृभिः सम्मातुम् न अर्हसि यत् दुर्विषहेण तेजसा गुप्ता अकुतोभया प्रजाः भद्राणि विन्दन्ति ॥४२॥

**अनुवाद**— ऋषि ने कहा— वत्स ! तुम्हारी बुद्धि परिपक्व नहीं हुयी है । राजा परमात्मा का रूप होता है । उसकी तुलना तुम सामान्य मनुष्य से नहीं कर सकते हो । राजा के असह्य तेज के कारण ही सारी प्रजाएँ निर्भय रहती हैं और कल्याण को प्राप्त करती हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

परो विष्णुरित्याख्या खयातिर्यस्य तं नरदेवम् । नृभिः संमातुं समं द्रष्टुम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

राजा की ख्याति भगवान् विष्णु के रूप में है । उस राजा को तुम सामान्य मनुष्यों के समान नहीं देख सकते हो ॥४२॥

**अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः ।**
**तदा हि चोरप्रचुरो विनङ्क्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥४३॥**

**अन्वयः**— नरदेवनाम्नि अलक्ष्यमाणः लोकः अविवरुथवत् तदा हि चोरप्रचुरः अरक्ष्यमाणः अविबरुथवत् क्षणात् विनंक्ष्यति ॥४३॥

**अनुवाद**— हे वत्स ! जब राजा नामक भगवान् विष्णु इस लोक में नहीं रहेंगे उस समय चोरों से संसार भर जायेगा और किसी रक्षक के नहीं रहने पर वह क्षणभर में विनष्ट हो जायेगा, जिस तरह रक्षक से रहित भेड़ों का समूह विनष्ट हो जाता है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अलक्ष्यमाणेऽदृश्यमाने । अविवरुथवन्मेषसङ्घवत् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

राजा नामक भगवान् विष्णु के नहीं दिखायी देने पर चोर बहुल तथा रक्षक रहित संसार उसी तरह विनष्ट हो जायेगा जिस तरह रक्षक से रहित मेष समूह (भेड़ समूह) विनष्ट हो जाता है ॥४३॥

**तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात् ।**
**परस्परं घ्नन्तिशपन्ति वृञ्जते पशून् स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवो जनाः ॥४४॥**

**अन्वयः**— अद्य नष्टनाथस्य वसोः विलुम्पकात् यत् पापम् तत् अनन्वयमपि अद्य नः उपैति । पुरुदस्यवो जनाः परस्परं घ्नन्ति, शपन्ति, पशून् स्त्रियः अर्थान् वृञ्जते ॥४४॥

**अनुवाद**— राजा के विनष्ट हो जाने के कारण संसार की सम्पत्ति को लूटने वाले लुटेरों के द्वारा किए गये

पाप का हमसे सम्बन्ध नहीं होने पर भी हमको भी वह पाप लगेगा; क्योंकि हमारे ही चलते राजा का नाश हुआ है। राजा के नहीं रहने पर दस्युप्रचुर सभी लोगों के हो जाने पर वे परस्पर में एक दूसरे को मारते हैं। एक दूसरे को गाली देते हैं और उनके पशुओं स्त्रियों और धनों को लूट लेने का काम करते हैं ॥४४॥

### भावार्थ दीपिका

नष्टो नाथो यस्य लोकस्य तस्य वसोर्वसुनो धनस्य विलुम्पकादपहर्तुश्चोरादेर्हेतोर्यत्पापं भविष्यति तदस्मन्निमित्तत्वादस्मानुपैष्यति। अनन्वयं सम्बन्धशून्यमेव। तदेव पापं दर्शयति-परस्परमिति। शपन्ति परुषं वदन्ति। पश्वादीन्वृञ्जतेऽपहरन्ति। पुरुदस्यवश्चोरबहुलाः ॥४४॥

### भाव प्रकाशिका

जिन लोगों के स्वामी का नाश हो जाता है उन लोगों की सम्पत्ति को लूटने वाले लोगों के द्वारा जो पाप किया जाता है उन सबों के हमलोगों के कारण ही होने के कारण यद्यपि उसका सम्बन्ध हमलोगों से नहीं है, फिर भी उसका पाप हमलोगों को लगेगा ही। उन लोगों के द्वारा किए जाने वाले पापों को बतलाते हुए ऋषि कहते हैं सभी लोगों के चोरप्राय हो जाने पर वे आपस में एक दूसरे को मारते हैं, गाली देते हैं, उनके पशुओ, स्त्रियों और सम्पत्तियों को लूट लेते हैं ॥४४॥

**तदार्यधर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमय ।**
**ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनां कपीनामिव वर्णसङ्करः ॥४५॥**

**अन्वयः**— तदा नृणाम् वर्णाश्रमाचारयुतः त्रयीमयः आर्यधर्मः विलीयते। अथकामाभिनिवेशितात्मनाम् शुनां कपनीनाम्। इव वर्ण सङ्करः जायते ॥४५॥

**अनुवाद**— उस समय मनुष्यों के वर्णों एवं आश्रमों के आचार युक्त वेदत्रयी के द्वारा प्रतिपादित आर्य धर्म का नाश हो जाता है। अर्थ एवं काम लोलुप मनुष्यों में कुत्तों और वानरों के समान वर्णसांकर्य हो जाता है ॥४५॥

### भावार्थ दीपिका

आर्यधर्मः सदाचारः शुनां कपीनामिवार्थकामयोरेवाभिनिवेशितचित्तानाम् ॥४५॥

### भाव प्रकाशिका

आर्य धर्म सदाचार को ही कहते हैं। किन्तु चेरप्राय लोगों के हो जाने पर तो सदाचारमय आर्यधर्म नष्ट ही हो जाता है। लोग भी अर्थपरायण और कामपरायण हो जाते हैं। उसके फलस्वरूप मनुष्यों में भी उसी तरह से वर्णसाङ्कर्य का साभ्राज्य हो जाता है जिस तरह काम परायण वन्दरों और कुत्तों में वर्णसङ्कर्य हो जाता है ॥४५॥

**धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः। साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ॥**
**क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ॥४६॥**

**अन्वयः**— स तु नरपतिः धर्मपालः सम्राट् बृहच्छ्रवाः साक्षात् महाभागवतः हयमेधयाट् राजर्षिः क्षुत् तृट्श्रमयुतः दीनः अस्मत् शापं नैव अर्हति ॥४६॥

**अनुवाद**— राजा परीक्षित् धर्म के रक्षक हैं, वे सम्राट (चक्रवर्ती राजा हैं) वे महायशस्वती हैं तथा साक्षात् महाभागवत हैं। उन्होंने अश्वमेघ याग किया है। वे राजर्षि, भूख तथा प्यास से व्याकुल होने के कारण दीन हो गये होंगे। अतएव वे हमलोगों के शाप के पात्र नहीं हैं ॥४६॥

### भावार्थ दीपिका

एवं राजमात्रस्य शापानर्हत्वमुक्त्वा प्रस्तुत विशेषमाह–धर्मपाल इति सार्धेन । हयमेधयाडश्वमेधयाजी । नन्वेवंभूतश्चेत्तत्कुतोऽपकृतवांस्तत्राह–क्षुतृडिति । स्वागतप्रश्नाभावेनावज्ञातः प्रत्युत शापं कथमर्हतीथ्यर्थः ।।४६।।

### भाव प्रकाशिका

पहले यह बतलाया जा चुका है कि राजा शाप के पात्र नहीं होते हैं । अब राजा परीक्षित् की विशेषताओं को बतलाते हुए महर्षि शमीक ने कहा राजा धर्म के रक्षक हैं और अवमेध याग किए हुए है । यदि कोई यह कहे कि यदि राजा इस तरह की विशेषताओं से सम्पन्न थे तो उन्होंने महर्षि का अनुपकार क्यों किया ? इसका उत्तर है कि वे राजा भूख तथा प्यास से व्याकुल थे । उनका हमलोगों को स्वागत करना चाहिए था ऐसी स्थिति में वे शाप के योग्य कैसे हो सकते हैं ?।।४६।।

**अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना । पापं कृतं तद्भगवान्सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ।।४७।।**

**अन्वयः**— अपापेषु स्वभृत्येषु अपक्वबुद्धिना त्वया । पापं कृतं तत् सर्वात्मा भगवान् क्षुन्तुम् अर्हति ।।४७।।

**अनुवाद**— निरपराध अपने भी अनुचर के प्रति बुद्धि के परिपक्व नहीं होने के कारण बालक होने के कारण तुमने अपराध किया है, उसको सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् क्षमा करें ।।४७।।

### भावार्थ दीपिका

अस्य महापापस्यान्यत्प्रायश्चित्तमदृष्ट्वा पापमावेदयन् भगवन्तं प्रार्थयते–अपापेष्विति ।।४७।।

### भाव प्रकाशिका

मेरे पुत्र के द्वारा किए गये इस महान् अपराध का कोई भी दूसरा प्रायश्चित नहीं हो सकता है यह सोचकर ऋषि श्रीभगवान्से अपापेषु० इत्यादि श्लोक के द्वारा क्षमा प्रार्थना करते हैं ।।४७।।

**तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हतापि वा ।**
**नास्य तत्प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ।।४८।।**

**अन्वयः**— प्रभवोऽपि हि तद्भक्ताः तिरस्कृताः विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ताः हता अपि वा अस्य तत् न प्रतिकुर्वन्ति ।।४८।।

**अनुवाद**— बदला लेने में सक्षम होने पर भी भगवद् भक्त दूसरों के द्वारा किए गये अपमान, धोखे बाजी, शाप, अभद्रशब्द व्यवहार तथा प्रताड़ना करने वाले का बदला नहीं लेते हैं ।।४८।।

### भावार्थ दीपिका

राजा चेत्प्रतिशापं दद्यात्तर्हि निष्कृतिर्भवेदपि तत्तु न संभवति तस्यमहाभागवतत्वादित्याह । तिरस्कृता निन्दिताः । विप्रलब्धा वञ्चिताः । क्षिप्ता अवज्ञाताः । हतास्ताडिताः । अस्य तिरस्कारादिकर्तुः । न तत्प्रतीकारं कुर्वन्ति । तद्भक्ता विष्णुभक्ताः । प्रभवः समर्थाः अपि ।।४८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि उस शाप के बदले में राजा भी शाप दे दे तो उसका प्रायश्चित भी हो सकता था किन्तु वह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि राजा तो महाभागवत हैं । इस बात को ऋषि ने **तिरस्कृता० इत्यादि** श्लोक से कहा है । तिरस्कृत अर्थात् निन्दित विप्रलब्ध ठगे गये, आर्त, अपमानित तथा मारे गये भगवान् के भक्त उसका प्रतिकार करने में समर्थ होकर भी तिरस्कृत आदि करने वाले से बदला नहीं चुकाते हैं ।।४८।।

**इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः । स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिन्तयत् ॥४९॥**

**अन्वयः**— इति पुत्रकृताघेन सः महामुनिः अनुतप्तः स्वयं राज्ञा विप्रकृतः तदघं नैव अचिन्तयत् ॥४९॥

**अनुवाद**— इस तरह से अपने पुत्र के द्वारा किए गये अपराध के कारण महामुनि शमीक बहुत अधिक दुःखी हुए किन्तु अपने विषय में राजा के द्वारा किए गये अपराध के विषय में ऋषि ने सोचा भी नहीं ॥४९॥

### भावार्थ दीपिका

विप्रकृतोऽपकृतः । अघमपराधम् ॥४९॥

### भाव प्रकाशिका

**विप्रकृतः** अपकार किए गये, अघ अर्थात् अपराध पुत्र ने जो राजा को शाप दे दिया था उसके विषय में तो शमीक महर्षि को बड़ा कष्ट हुआ, किन्तु राजा ने उनका जो अपराध किया था उसके विषय में उन्होंने सोचा भी नहीं ॥४९॥

**प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः । न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥५०॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथम स्कन्धे विप्रशापोपलम्भनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

**अन्वयः**— परैः द्वन्द्वेषु योजिता साधवः प्रायशः न व्यथयन्ति न हृष्यन्ति यतः आत्मा अगुणाश्रयः ॥५०॥

**अनुवाद**— महात्माओं का यह स्वभाव होता है कि दूसरे लोगों के द्वारा दुःख अथवा सुख को प्राप्त करके वे न तो दुःखी होते हैं और न तो प्रसन्न होते है, क्योंकि आत्मा तो गुणों का आश्रय है नहीं ॥५०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के विप्रशापोपलम्भन नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥**

### भावार्थ दीपिका

युक्तं चैतदित्याह-प्रायश इति द्वन्द्वेषु सुखदुःखादिषु । अगुणाश्रयः सुखदुःखाद्याश्रयो न भवति ॥५०॥

**इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥**

### भाव प्रकाशिका

सूतजी ने ऋषियों से कहा कि ऋषि शमीक जो अपने पुत्र के द्वारा ही किए गये अपराध से दुःखी थे और राजा के द्वारा किए गये अपराध के विषय में उन्होंने सोचा भी नहीं, यह उचित ही था । क्योंकि सन्तों का यह स्वभाव ही होता है कि वे दूसरे के द्वारा दिए गये सुख अथवा दुःख से न तो प्रसन्न होते हैं और न दुःखी होते हैं । वे जानते हैं कि आत्मा गुणों का आश्रय नहीं होता है ॥५०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥१८॥**

# उन्नीसवाँ अध्याय

## राजा परीक्षित् का अनशन व्रत और शुकदेवजी का आगमन

सूत उवाच

**महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ।**
**अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥१॥**

**अन्वयः**— अथ महीपति आत्मकृतं तत् गर्ह्यं कर्म विचिन्तयन् सुदुर्मनाः चिन्तयति स्म अहो मया निरागसि, गूढतेजसि ब्रह्मणि अनार्यवत् नीचम् कृतम् ॥१॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् राजा अपनी राजधानी में जाकर अपने द्वारा किए गये उस निन्दित कर्म की चिन्ता करते हुए अत्यन्त दुःखी हो गये । वे सोच रहे थे अरे मैंने अपने तेज को छिपाये रखने वाले तथा निरपराध ब्राह्मण के साथ अनार्य के समान बड़ा ही नीच कर्म किया है ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रायोपविष्टे गङ्गायां राज्ञि योगिजनावृते । शुकस्यागमनं तत्र प्रोक्तमेकोनविंशके ॥१॥ स्वकृतं तत्कर्म मुनिस्कन्धे सर्पप्रक्षेपणं गर्ह्यं निन्द्यं चिन्तयन्सुदुर्मना जातः । चिन्तामेवाह सार्धाभ्याम्-अहो इति । नीचं पापम् । अमीवमिति पाठे स एवार्थः। ब्रह्मणि ब्राह्मणे । गूढं गुप्तं तेजो यस्य तस्मिन् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

उपवास करके योगिजनों से घिरे हुए राजा परीक्षित् के गङ्गाजी ते तट पर बैठ जाने पर वहाँ पर शुकदेवजी के आगमन का वर्णन उन्नीसवें अध्याय में किया गया है ॥१॥

राजा परीक्षित् मुनि के गले में सर्प डालना रूपी अपने निन्दित कर्म की चिन्ता करते हुए राजा अत्यन्त दुःखी हो गये । राजा की चिन्ता का ही वर्णन **अहो मया० इत्यादि** डेढ श्लोक में किया गया है । नीच शब्द पाप का बोधक है । जहाँ **अमीवम्** यह पाठ भेद है वहाँ भी यही अर्थ है । ब्रह्म शब्द ब्राह्मण का बोधक । गूढ तेजसि पद का विग्रह है । **गूढ तेजो यस्य तस्मिन्** । अर्थात् जिनका तेज छिपा हुआ है उन ब्राह्मण के प्रति मैंने महान् अपराध किया है ॥१॥

**ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ।**
**तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥२॥**

**अन्वयः**— ततः कृतदेवहेलनात् नातिदीर्घात् मे दुरत्ययं व्यसनं ध्रुवम् तत् मे अघनिष्कृताय कामं अद्धा अस्तु यथा पुनरेवम् न कुर्याम् ॥२॥

**अनुवाद**— उस ब्राह्मण देवता का अपकार करने के कारण अत्यधिक कष्ट मुझको शीघ्र ही मिलेगा । वह कष्ट निश्चित रूप से मुझको साक्षात् मिले, जिससे कि मैं पुनः इस प्रकार का अपराध न करूँ ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

कृतं यद्देवहेलनमीश्वरावज्ञापापमित्यर्थः । तस्मान्मे व्यसनं भविष्यति तत्तु नातिदीर्घात्कालादचिरादेवास्तु तत्राप्यद्धा साक्षान्ममैव न पुत्रादिद्वारेणेति प्रार्थना । काममसंकोचतः । एवं प्रार्थनायाः प्रयोजनम् । अघस्य निष्कृताय प्रायश्चित्ताय । यथा पुनरेवं न कुर्यामिति ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

परमात्मा का अपमान रूपी जो मैंने पाप किया है । अतएव उसके कारण मुझपर शीघ्र ही कोई बहुत बड़ी विपत्ति आयेगी । वह दण्ड जो है वह मुझको ही साक्षात् मिलना चाहिए । पुत्रादि के द्वारा नहीं । इस तरह राजा ने श्रीभगवान् से प्रार्थना किया । वह जितना दण्ड मिलना हो उतना मिले । इस प्रकार की प्रार्थना का प्रयोजन है कि उससे मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जाय जिससे कि मैं पुनः ऐसा पाप न करूँ ।।२।।

**अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ।**
**दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ।।३।।**

**अन्वयः**— प्रकोपितो ब्रह्मकुलानलः अभद्रस्य मे अद्यैव राज्यं, बलम् ऋद्धंकोशं च दहतु येन मे पुनः द्विजदेवगोम्यः पायीयासी धी न अभूत ।।३।।

**अनुवाद**— क्रुद्ध ब्राह्मणवंश की क्रोधाग्नि आज ही मेरे राज्य, सेना और समृद्ध कोश को जलाकर भस्म कर दे जिससे कि मुझ पापी की पुनः कभी, देवताओं, ब्राह्मणों और गौओं के विषय में ऐसी बुद्धि न हो ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

एवं साक्षात्स्वस्यैव व्यसनं संप्रार्थ्य ततः प्रागेव किंचित्प्रार्थयते । अद्यैव मे राज्यादि दहतु प्रकोपितं ब्रह्मकुलमेवानलः पुनर्द्विजादीन्पीडयितुं धीर्मे मा भून्न भवेदित्यर्थः ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से साक्षात् अपने कष्ट की प्रार्थना करके उससे पहले ही कुछ प्रार्थना करते हैं । वे कहते हैं कि ब्राह्मणवंश की जो क्रोधाग्नि है वह आज ही क्रुद्ध होकर मेरे राज्य सेना तथा कोश को भस्म कर दे ।।३।।

**स चिन्तन्नित्थमथाशृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ।**
**स साधु मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ।।४।।**

**अन्वयः**— इत्थं चिन्तयन् सः अथ मुनेः सुतोक्तः तक्षकाख्यः निऋति यथा तथा अशृणोत् । सः तक्षकाख्यं साधुमेने यतः प्रसक्तस्य न चिरेण विरक्तिकारणम् ।।४।।

**अनुवाद**— जब राजा परीक्षित् इस तरह से सोच ही रहे थे कि उसी समय शमीक प्रेषित शिष्य से मुनि के पुत्र के द्वारा उक्त सातवें दिन उनकी मृत्यु जैसे हो जायेगी उसके विषय में उन्होंने सुना । उन्होंने तक्षक की विषाग्नि को अच्छा ही माना, क्योंकि उसके द्वारा विषयों में आसक्त राजा की शीघ्र ही विरक्ति हो गयी ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

इत्थं चिन्तयन्स राजा मुनेः सुतेनोक्तः सप्तमेऽहनिं निर्ऋतिर्मृत्युर्यथा भविष्यति तथाऽशृणोत् । शमीकप्रेषितशिष्याच्छ्रुत्वा च स तक्षकस्य विषाग्निं साधु मेने । यतो विषयेषु प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से जब राजा चिन्तन ही कर रहे थे उसी समय उन्होंन सुना कि मुनि के पुत्र ने उनको उसके सातवें दिन मृत्यु का शाप दे दिया है । महर्षि शमीक के द्वारा प्रेषित शिष्य से उस समाचार को सुनकर राजा ने तक्षक की विषाग्नि को अच्छा ही माना, क्योंकि उससे विषय में आसक्ति से शीघ्र विरक्ति हो जाती है ।।४।।

**अथो विहायेममलुं च लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् ।**
**कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ।।५।।**

**अन्वयः**— अथो पुरस्तात् हेयतया विमर्शितौ इमम् अमूं च लोकं विहाय कृष्णांघ्रिसेवाम् अधिमन्यमानः अमर्त्यनत्द्यां प्रायम् उपाविशत् ।।५।।

**अनुवाद**— राजा पहले से ही जिसे त्याज्य समझते थे उन लोक और परलोक दोनों को त्यागकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हुए वे गङ्गानदी के तट पर आमरण अनशन का व्रत लेकर बैठ गये ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

अथो अनन्तरमुभौ लोकौ पुरस्ताद्राज्यमध्य एव हेयतया विचारितौ विहाय श्रीकृष्णाङ्घ्रिसेवामेवाधिमन्यमानः सर्वपुरुषार्थाधिकां जानन् प्रायमनशनं तस्मिन्नित्यर्थः । तत्सङ्कल्पेनोपाविशदिति यावत् । यद्वा प्रायं प्रकृष्टमयनं शरणं यथा भवति तथा ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् राजा परीक्षित् अपने राज्य काल में ही जिन लोक और परलोक दोनों को त्याज्य मान चुके थे उन दोनों लोकों का ही परित्याग करके तथा भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ मानते हुए गङ्गा के तट पर आमरण अनशन का व्रत लेकर बैठ गये । अथवा **प्रायम्** पद का यह भी अर्थ है कि जिससे प्रकृष्ट आश्रय की प्राप्ति होती है, वैसे राजा बैठ गये ॥५॥

**या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ।**
**पुनाति लोकानुभयत्र सेशान् कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥६॥**

**अन्वयः**— लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री या वै सेशान् उभयत्र लोकान् पुनाति तां कःमरिष्यमाणः न सेवेत ॥६॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का पराग लेकर प्रवाहित होने वाले गङ्गाजी का जो जल तुलसीजी की सुगन्धि से मिश्रित है तथा जो लोकपालों के साथ दोनों लोकों को पवित्र बनाता है कौन ऐसा मरने वाला व्यक्ति होगा जो उसका सेवन न करे ?॥६॥

### भावार्थ दीपिका

अमर्त्यनद्यामिति विशेषणस्य फलमाह । या गङ्गा लसन्ती श्रीर्यस्यास्तुलस्यास्तया विमिश्रा ये कृष्णाङ्घ्रिरेणवस्तैरभ्यधिकं सर्वोत्कृष्टं यदम्बु तस्य नेत्री तद्वाहिनी । उभयत्र अन्तर्बहिश्च सेशान् लोकपालैः सहितान् लोकान् पुनाति । मरिष्यमाण आसन्नमरणः। मरणस्यानियतकालत्वात्सर्वोऽपि तथा । अतस्ता को न सेवेत ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

पाँचवें श्लोक में गङ्गाजी को अमर्त्य नदी कहा गया है । उस विशेषण के फल को बतलाते हुए कहते हैं । **या गङ्गा० इत्यादि** जो गङ्गाजी श्रीसम्पन्न तुलसी से मिश्रित जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरण रज से युक्त अत्यधिक जल को प्रवाहित करती हैं । वे लोकपालों सहित इस लोक को तथा परलोक को पवित्र करती हैं, उन गङ्गाजी का सन्निकट भविष्य में मरने वाला कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो सेवन न करे ?॥६॥

**इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ।**
**दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥७॥**

**अन्वयः**— सः पाण्डवेयः विष्णुपद्याम् प्रायोपवेशम् प्रति व्यवच्छिद्य अनन्यभावः, मुनिव्रतः मुक्तसमस्तसङ्गः मुकुन्दाङ्घ्रिम् दध्यौ ॥७॥

**अनुवाद**— पाण्डववंशावतंस राजा परीक्षित् गङ्गा नदी के तट पर आमरण अनशन का व्यवच्छिद्य (निश्चय करके) अनन्यमना होकर तथा मुनियों का व्रत लिए हुए तथा सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित होकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का ध्यान करने लगे ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

इत्येवं विष्णुपद्यां गङ्गायां प्रायोपवेशं प्रति व्यवच्छिद्य निश्चित्य । पाण्डवेय इति तत्कुलौचित्यं दर्शयति । नास्त्यन्यस्मिन् भावो यस्य सः । कुतः । मुनिव्रत उपशान्तः । तत्कुतः । मुक्तः समस्तसङ्गो येन सः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से गङ्गा नदी के तट पर आमरण अनशन का निश्चय करके । पाण्डवेय पद का प्रयोग करके उनके वंश के औचित्य को बतलाया गया है । अनन्यभावः का विग्रह है **नास्त्यन्यस्मिन् भावोयस्य** अर्थात् उनका श्रीभगवान् को छोड़कर किसी दूसरे में भाव नहीं था । वे मौन व्रत धारण किए हुए थे परीक्षित्; उनकी सब ओरे से असक्ति भी समाप्त हो गयी थी ॥७॥

**तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः ।**
**प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥८॥**

**अन्वयः**— तत्र प्रायेण तीर्थापदेशैः भुवनं पुनाना महानुभावाः सशिष्याःमुनयः आजग्मुः स्वयं हि सन्तः तीर्थानि पुनन्ति ॥८॥

**अनुवाद**— वहाँ पर प्रायः तीर्थ के बहाने संसार को पवित्र बनाने वाले महान् प्रभाव वाले मुनिगण अपने शिष्यों के साथ आ गये । सन्तजन तो स्वयं ही तीर्थों को पवित्र करने का काम करते हैं ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र तदा तद्दर्शनार्थं मुनय उपागता न तु तीर्थस्नानार्थम् । कृतार्थत्वात् । ननु तादृशानामपि तीर्थयात्रा दृश्यते तत्राह- प्रायेणेति । तीर्थयात्राव्याजैः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

वहाँ पर राजा को देखने के लिए मुनिगण आ गये तीर्थ में स्नान करना उनका उद्देश्य नहीं था; क्योंकि वे ऋषिगण कृतार्थ थे । यदि कहें कि वैसे लोग भी तीर्थ यात्रा करते हुए देखे जाते हैं तो इसका उत्तर **प्रयेण० इत्यादि** से दिया गया है । वे सभी तीर्थ यात्रा के व्याज से वहाँ आये थे ॥८॥

**अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ।**
**पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥९॥**
**मेघातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ।**
**मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥१०॥**
**अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ।**
**नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥११॥**

**अन्वयः**— अत्रिः वसिष्ठः च्यवनः शरद्वान्, अरिष्टनेमिः भृगुः अङ्गिराः, पराशरः, गाधिसुतः, रामः, उतथ्यः, इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ, मेधातिथिः, देवालः अर्ष्टिषेणः, भारद्वाजः गौतमः, पिप्पलादः, मैत्रेय, और्वः कवषः, कुम्भयोनिः, द्वैपायनः भगवान् नारदश्च । अन्ये च देवर्षि ब्रह्मर्षिवर्याः, राजर्षियाः, अरुणादयः च । नानार्षेयप्रवरान् समेतन् अभ्यर्च्य शिरसा ववन्दे ॥९-११॥

**अनुवाद**— उस समय वहाँ पर अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेघातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय,

और्व, कवष, अगस्त्य, व्यास, भगवान् नारद, इन सबों के अतिरिक्त और भी कई श्रेष्ठ देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा श्रेष्ठ राजर्षिगण भी वहाँ आये। वहाँ पर अनेक गोत्रों के मुख्य ऋषियों की पूजा करके राजा परीक्षित् ने उनके पैरों पर शिर रखकर प्रणाम किया और उनकी वन्दना की है ॥९-११॥

### भावार्थ दीपिका

**अरुणादयः काण्डर्षित्वविशेषेण पृथक् निर्दिष्टाः। नाना यान्यार्षेयाणि ऋषीणां गोत्राणि तेषु प्रवरान् श्रेष्ठान्। शिरसा भुवं स्पृष्ट्वा ववन्दे ॥९-११॥**

### भाव प्रकाशिका

अरुण आदि के काण्डविशेष के ऋषि होने के कारण उनका अलग निर्देश किया गया है। अनेक जो ऋषियों के गोत्र हैं उनमें से श्रेष्ठ ऋषि वहाँ आ गये थे राजा ने सबों के पैरों पर शिर रखकर प्रणाम किया ॥९-११॥

**सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत्।**
**विज्ञापयामास विविक्तचेता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥१२॥**

**अन्वयः**— अथ तेषु सुखोपविष्टेषु कृतप्रणामः विविक्तचेता राजा अभिगृहीतपाणिः अग्रे उपस्थितः स्वचिकीर्षितं विज्ञापयामास ॥१२॥'

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उन सभी महर्षियों के सुख पूर्वक बैठ जाने पर राजा ने शुद्ध हृदय से सबों को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उन सभी लोगों के सामने खड़े होकर उन्होंने अपने अभिप्रेत बातों का निवेदन किया ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

विज्ञापनार्थं पुनः कृतप्रणामः। विविक्तं शुद्धं चेतो यस्य। अभिगृहीतौ संयोजितौ पाणी येन सः। स्वचिकीर्षितं प्रायोपवेशनादियुक्तमयुक्तं वेति विज्ञापयामास ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

राजा सबों के सामने अपनी बातें कहना चाहते थे इसलिए उन्होंने उन सभी ऋषियों को फिर प्रणाम किया, उन्होंने शुद्ध हृदय से हाथ जोड़कर सबों से निवेदित किया कि आमरण अनशन व्रत ठीक है कि नहीं ॥१२॥

राजोवाच

**अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः।**
**राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टं बतगर्ह्यकर्म ॥१३॥**

**अन्वयः**— अहो वयं नृपाणां धन्यतमाः महत्तमानुग्रहणीयशीलाः। वत गर्ह्यकर्म राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद् दूराद् विसृष्टं ॥१३॥

**अनुवाद**— हम सभी राजाओं में धन्य है क्योंकि आप सभी महापुरुषों के अनुग्रह का पात्र बन गया हूँ निन्दित कर्म करने वाला राजाओं का वंश ब्राह्मणोंके चरणोदक से दूर चला जाता है ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

अनुमोदनेनानुग्रहमालक्ष्यात्मानं श्लाघते-अहो इति। नृपाणां महत्तमैरनुग्रहणीयं शीलं वृत्तं येषां ते। एतच्च राज्ञामतिदुर्लभमित्याह। ब्राह्मणानां पादशौचात् पादक्षालनोदकात् '**दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि समुत्सृजेत्**' इति स्मृतेः, दूरे हि तैस्तद्विसृज्यते। ततोऽपि दूरादेव विसृष्टं क्षिप्तम्। तत्रापि स्थातुमयोग्यमित्यर्थः। गर्ह्यं कर्म यस्येत्यात्मानमुद्दिश्योक्तम् ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

महर्षियों के द्वारा अनुग्रह को देखकर राजा अपनी प्रशंसा करते हैं राजाओं के बीच में हम इसलिए धन्य हैं कि हमारा शील महापुरुषों के अनुग्रह का विषय हो गया है। यह राजाओं के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। निन्दित कर्म करने वाले राजागण के वे **'दूरादुच्छिष्ट' इत्यादि** सूक्ति के अनुसार ब्राह्मणों के भी चरणों से दूर फेंक देते हैं ॥१३॥

**तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ।**
**निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥१४॥**

**अन्वयः**— तस्यैव अघस्य, गृहेषु अभीक्ष्णम् व्यासक्तचित्तस्य मे द्विजशापरूपः निर्वेदमूलः परावरेशः यत्र प्रसक्तः आशुभयम् धत्ते ॥१४॥

**अनुवाद**— निन्दित कर्म करने के कारण मैं पाप रूप हो गया हूँ। निरन्तर गृह में ही मेरा चित्त लगा रहता है। ऐसे मुझ पर संसार से वैराग्य के कारणभूत ब्राह्मण के शाप रूपी परमात्मा ने कृपा की ही। इस प्रकार के शाप से डरा हुआ संसार में आसक्त पुरुष शीघ्र ही वैराग्य को धारण कर लेता है ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

आस्तां तावदनुग्रहः, ब्रह्मशापोऽपि भगवत्प्रसादादेव जात इत्याह। तस्य गर्ह्यकर्मण एव। अतोऽघस्य पापात्मनो गृहेष्वासक्तचित्तस्य मे स्वप्राप्तये परावराणामीश एव द्विजशापतया बभूव। यत्र यस्मिन् शापे सति गृहेषु प्रसक्तो भयं धत्ते निर्विण्णो भवति। यतो निर्वेदमूलो निर्वेदो वैराग्यं मूलं प्राप्तिकारणं यस्मिन्। स्वस्य वैराग्यप्राप्यत्वात्तस्य च भयमूलत्वात्तदर्थं द्विजशापं कारितवानित्यर्थः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

यह भी भगवान् की कृपा ही है। ब्राह्मण का शाप भी श्रीभगवान् की कृपा से ही हुआ है। उस निन्दित कर्म करने वाले राजवंश का होने के कारण मैं भी पाप स्वरूप हूँ। गृहादि में आसक्तचित्त वाले मुझको प्राप्त होने के ही लिए सम्पूर्ण जगत् के स्वामी ब्राह्मण का शाप बन गये हैं। उस शाप के हो जाने से गृह परिवार में आसक्त चित्त वाले व्यक्ति को भय उत्पन्न हो जाता है। उसके फलस्वरूप उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। परमात्मा तो निर्वेद मूल हैं। अर्थात् निर्वेद (संसार से वैराग्य) ही परमात्मा की प्राप्ति का मूल कारण है। परमात्मा तो संसार से वैराग्य के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। वैराग्य तब होता है जबकि संसार से भय हो जाय। इसीलिए परमात्मा ने मुझे ब्राह्मण से शाप दिलवाया है ॥१४॥

**तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ।**
**द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे विप्राः गङ्गा देवी च ईशे धृतचित्तम् उपयातं मा प्रतियन्तु द्विजोपसृष्टः कुहकः तक्षको वा अलं दशतु विष्णगाथाः गायत ॥१५॥

**अनुवाद**— हे ब्राह्मणों ! हे गङ्गा देवी ! आपलोग मुझे शरणागत समझें मैंने अपने चित्त को परमात्मा में लगा दिया है। ब्राह्मण के द्वारा निर्मित कोई माया अथवा स्वयं तक्षक ही मुझे आकर डंस ले, मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है। आप लोग मुझे भगवान् विष्णु की लीलाओं को ही सुनायें ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

तान्प्रार्थयते-तमिति द्वाभ्याम्। तं मा मामुपयातं शरणागतं प्रतियन्तु जानन्तु। देवी देवतारूपा गङ्गा च प्रत्येतु। वाशब्दः प्रतिक्रियानादरे। गाथाः। कथाः ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों की प्रार्थना **तं मोपयातम्** इन दो श्लोकों से करते हुए ब्राह्मणों से कहते हैं आपलोग मुझे अपना शरणागत समझें, अथवा गङ्गा देवी भी मुझे शरणागत समझें। वा शब्द का प्रयोग प्रतिक्रिया के अनादर के अर्थ में है। अर्थात् वे मेरे इस कथन समर्थन की कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने अपने चित्त को परमात्मा में लगा दिया है। अब आप लोग मुझे भगवान् विष्णु की ही कथाओं को सुनाएँ ॥१५॥

**पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ।**
**महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥१६॥**

**अन्वयः**— यां यां योनिमुपयामि पुनः अनन्ते भगवति रतिः तदाश्रयेषु प्रसङ्गः सर्वत्र द्विजेभ्यो नमः मैत्री अस्तु ॥१६॥

**अनुवाद**— मैं आपलोगों से ही आशीर्वाद माँगता हूँ कि मैं जिस-जिस योनि में जन्म लूँ पुनः मेरा भगवान् अनन्त में प्रेम हो, तथा भगवद् भक्तों का सत्सङ्ग प्राप्त होए। मैं सभी ब्राह्मणों को नमस्कार करूँ और सबों में मेरा प्रेम बना रहे ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

स आश्रयो येषां तेषु प्रकृष्टः सङ्गो भूयात्। तस्यां तस्यां सृष्टौ जन्मनि ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

तदाश्रयेषु प्रसङ्गः का अर्थ है कि भगवद् भक्तों में मेरा प्रकृष्ट सङ्ग हो सभी जन्मों में भगवान् विष्णु की भक्ति करूँ, ब्राह्मणों को सदा नमस्कार करूँ यही मैं आप लोगों से आशीर्वाद माँगता हूँ ॥१६॥

**इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ।**
**उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥१७॥**

**अन्वयः**— स्वसुतन्यस्तभार धीरः राजा इति अध्यवसाययुक्त समुद्रपत्न्याः दक्षिणे कूले उदङ्मुखः प्राचीन मूलेषु कुशेषु आस्ते ॥१७॥

**अनुवाद**— जिन्होंने अपने पुत्र जनमेजय पर राज्य का भार डाल दिया था, वे धैर्य सम्पन्न राजा परीक्षित् इस तरह का निश्चय करके गङ्गा के दाहिने तट पर पूर्वाग्र कुशों के आसन पर उत्तराभिमुख होकर बैठ गये ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

अध्यवसायो निश्चयः। प्राचीनानि प्रागग्राणि मूलानि येषां तेषु प्रागग्रेषु कुशेष्वास्ते स्म। स्वसुते जनमेजये न्यस्तो भारो राज्यं येन सः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

अध्यवसाय, निश्चय को कहते है। राजा उपर्युक्त प्रकार से निश्चय करके कुशों से निर्मित आसन पर गङ्गाजी के दाहिने तट पर बैठ गये। उनके आसन के कुशों के मूल पूर्वाग्र थे। वे उत्तर की ओर मुख करके बैठे थे ॥१७॥

**एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिविदेवसङ्घाः ।**
**प्रशस्य भूमौ व्यकिरन्प्रसूनैर्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥१८॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् नरदेवदेवे एवं प्रायोपविष्टे दिविदेवसंघाः प्रशस्य भूमौ मुदा प्रसूनै व्याकिरन् दुन्दुभयश्च नेदुः ॥१८॥

**अनुवाद**— चक्रवर्ती सम्राट् राजा परीक्षित् के इस प्रकार से आमरण अनशनव्रत पर बैठ जाने पर स्वर्ग में देवताओं के समूह ने उनकी प्रशंसा की और प्रसन्नतापूर्वक भूमि पर फूलों की वर्षा की तथा बार-बार दुन्दुभियों को बजाया ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

मुदा व्याकिरन् । देवसङ्घैर्वादिता दुन्दुभयो नेदुः ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

आमरण अनशन पर बैठे हुए राजा परीक्षित् के ऊपर प्रसन्न होकर देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की तथा बार-बार दुन्दुभियों को बजाया ॥१८॥

**महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ।**
**ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा यदूत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— ये वै प्रजानुग्रहशीलसाराः समुपागताः ते साधु इति प्रशस्य अनुमोदमानाः यदूमत्तश्लोकगुणाभिसमम् इति ऊचुः ॥१९॥

**अनुवाद**— प्रजाओं पर कृपा करने के शील रूपी प्रधान गुण से सम्पन्न जो महर्षि वहाँ आये थे वे साधु! साधु !! कहकर राजा के निश्चय की प्रशंसा किए और उनके इस कार्य का अनुमोदन करते हुए उनलोगों ने कहा कि राजा का यह कार्य भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों से प्रभावित होने के कारण अत्यन्त सुन्दर है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रजानुग्रहे शीलं स्वभावः सारो बलं च येषाम् उत्तमश्लोकगुणैरभिरूपं सुन्दरम् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

**प्रजानुग्रहशील साराः** का अर्थ है जिनका प्रजाओं पर कृपा करने का स्वभाव है और उसी में जो अपने बल का सदुप्रयोग करते हैं, ऐसे वहाँ पर उपस्थित महर्षियों ने राजा के आमरण अनशन व्रत की सराहना की और कहा कि यह कार्य भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों से युक्त होने के कारण अत्यन्त सुन्दर है ॥१९॥

**न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ।**
**येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥२०॥**

**अन्वयः**— हे राजर्षि वर्य ! कृष्णं समनुव्रतेषु भवत्सु इदंवै चित्रं न ये राजकिरीटजुष्टं अध्यासनं भगवत् पार्श्वकामाः सद्यः जहुः ॥२०॥

**अनुवाद**— हे राजर्षिवर्य ! भगवान् श्रीकृष्ण के अनुयायी आप पाण्डुवंशीयों के लिए यह कोई आश्चर्य जनक कार्य नहीं है । श्रीभगवान् के सान्निध्य की प्राप्ति की कामना से आप पाण्डु वंशीयों ने उस सिंहासन का शीघ्र ही परित्याग कर दिया जिस सिंहासन की सेवा बड़े-बड़े राजा अपने किरीट से किया करते थे ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

भवत्सु पाण्डोर्वंश्येषु । ये जहुरिति युधिष्ठिराद्यभिप्रायेण ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षियों ने कहा कि आप पाण्डुवंशीय चक्रवर्ती सम्राटों ने भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए अपने समृद्धराज्य का परित्याग कर दिया अतएव आपका यह भगवत् सान्निध्य प्राप्त्यर्थ आमरण अनशन व्रत करना कोई आश्चर्यकारी नहीं है । राजा युधिष्ठिर ने भी यही किया था ॥२०॥

**सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य कलेवरं यावदसौ विहाय ।**
**लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥२१॥**

**अन्वयः**— वयं सर्वे अद्य इहतावद् आस्महे यावत् अयं भागवतप्रधानः असौ कलेवरं विहाय विरजस्कं विशोकं परं लोकं यास्यति ॥२१॥

**अनुवाद**— आज से हमलोग तब तक यहाँ रहेंगे जब तक ये भगवद् भक्तों में प्रधान राजा परीक्षित् इस शरीर का परित्याग करके माया तथा शोक रहित परमात्मा के श्रेष्ठ लोक में नहीं चले जाते हैं ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

परस्परं संमत्रयन्ते-सर्व इति । परं श्रेष्ठं लोकम् । तत्र हेतुः-विरजस्कं निर्मायं विशोकं च यास्यतीति । कुतस्तत्राह- अयमिति ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

सभी महर्षियों ने आपस में मन्त्रणा की कि हमलोग यहाँ पर तब तक बने रहेंगे तब तक कि राजा परीक्षित् इस शरीर का परित्याग करके माया और शोक से रहित श्रेष्ठ लोक में नहीं चले जाते हैं ॥२१॥

**आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्समं मधुच्युद्गुरु चाव्यलीकम् ।**
**आभाषतैतानभिनन्द्य युक्तं शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥२२॥**

**अन्वयः**— परीक्षित् समं, मधुच्युत्, गुरु अव्यलीकम् च तत् ऋषिगणवचः आश्रुत्य युक्तान् एतान् अभिनन्द्य विष्णोः चरितानि शुश्रूषमाणः आभाषत ॥२॥

**अनुवाद**— पक्षपात रहित, अमृतस्रावी, अर्थ गौरव सम्पन्न तथा सत्य ऋषियों की उस वाणी को सुनकर उन योग युक्त महर्षियों का अभिनन्दन करके भगवान् के चरित्र को सुनने की इच्छा से उन ऋषियों से राजा परीक्षित् ने कहा ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

आश्रुत्याकर्ण्य । समं पक्षपातशून्यम् । मधुच्युदमृतस्रावि । गुरु गम्भीरार्थम् । अव्यलीकं सत्यम् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

ऋषिगण जो मन्त्रणा कर रहे थे उनके वे निर्णीत वाक्य सर्वथा सम (पक्षपात रहित) मधुच्युत् (अमृत के समान अत्यन्त मधुर) गुरु (अर्थगौरवसम्पन्न) तथा अव्यलीक (सत्य) थे । उन बातों को सुनकर राजा ने उन महर्षियों की बातों का समर्थन किया, क्योंकि वे ऋषि युक्तयोगी थे । और भगवान की कथा सुनने की इच्छा से उन्होंने महर्षियों से कहा ॥२२॥

**समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ।**
**नेहाथवामुत्र च कश्चनार्थ ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— त्रिपृष्ठे, मूर्तिधराः वेदा यथा भवन्तः सर्वे सर्वतः समागताः परानुग्रहम् आत्मशीलम् ऋते भवताम् इह अथवा अमुत्र कश्चन अर्थः न ॥२३॥

**अनुवाद**— जिस तरह स्वर्गलोक से ऊपर सत्यलोक में वेद शरीर धारण करके रहते हैं, उसी तरह आप सभी लोग सभी ओर से पधारे हैं । आप लोगों का यही स्वभाव है कि आपलोग दूसरे जीवों पर कृपा करते हैं, इसके अतिरिक्त लोक अथवा परलोक में आपलोगों का कोई भी दूसरा प्रयोजन नहीं है ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

त्रयाणां लोकानां पृष्ठे उपरि सत्यलोके वेदा यथा मूर्तिधरा भवन्ति तत्तुल्याः । ज्ञानातिशयमुक्त्वा कृपालुतामाह- नेहेति। भवतां प्रयोजनं परानुग्रहं विना नास्ति । तर्हि स एवार्थः स्यात्, न । आत्मशीलं स्वस्वभावम् ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

तीनों लोकों के ऊपर जो सत्यलोक है वहाँ पर सभी वेद जिस तरह शरीर धारण करके रहते हैं आप सभी लोग मूर्तिमान वेद के समान हैं और सभी ओर से यहाँ पधारे हैं। इस तरह से महर्षियों के ज्ञानातिशय्य को बतलाकर राजा ने उन महर्षियों की कृपालुता का वर्णन करते हुए कहा। आपलोगों का एक मात्र प्रयोजन है दूसरों पर कृपा करना। यही आपलोगों का स्वभाव है। अतएव उसी कार्य को होना चाहिए ॥२३॥

**ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम्।**
**सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥२४॥**

**अन्वयः**— ततश्च हे विप्राः वः विश्रभ्य इमं पृच्छ्यं विपृच्छे सर्वात्मना म्रियमाणैःच इति कृत्यतायाम्, शुद्धं कृत्यं विप्पृच्छे हे अभियुक्ताः तत्र आमृशत ॥२४॥

**अनुवाद**— अतएव हे महर्षियों आपलोगों पर विश्वास करके पूछने योग्य यह पूछ रहा हूँ कि सबों को सभी अवस्थाओं में तथा शीघ्र मरने वालों को कौन सा शुद्ध कर्म करना चाहिए ? इस विषय पर आपलोग विचार करें ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

पृच्छ्यं प्रष्टव्यम्। विश्रभ्य विश्वासं कृत्वा। एवं कर्तव्यमित्यस्य भाव इतिकृत्यता तस्मिन्विषये। सर्वात्मना सर्वावस्थासु यत्कृत्यं विशेषतश्च म्रियमाणैस्तच्च शुद्धं पापसंपर्करहितमामृशत विचारयत ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने कहा— हे महर्षियों आपलोगों पर विश्वास करके पूछने योग्य बात यह पूछ रहा हूँ कि मनुष्य को सभी अवस्थाओं में तथा विशेष रूप से सन्निकट भविष्य में मरने वालों को कौन सा पाप रहित कर्म करना चाहिए, इस विषय पर आपलोग विचार करें ॥२४॥

**तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः।**
**अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥२५॥**

**अन्वयः**— तत्र गाम् अटमानः अनपेक्षः अलक्ष्यलिङ्गः निजलाभ तुष्टः स्त्रीबालैः वृतः, अवधूतवेषः भगवान् व्यासपुत्रः यदृच्छया अभवत् ॥२५॥

**अनुवाद**— जिस समय सभी महर्षि परस्पर में याग, योग, तप तथा दान को लेकर विवाद कर रहे थे उसी समय पृथिवी पर भ्रमण करने वाले, किसी से, जिनका वर्ण, तथा आश्रम रूपी बाह्य कोई भी चिह्न लक्षित नहीं हो रहा था वे आत्मलाभ के कारण सन्तुष्ट रहने वाले तथा स्त्रियों एवं बालकों से घिरे हुए ऐसे अवधूत वेष में विद्यमान महर्षि व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी वहाँ अचानक आ गये ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र तेषु यागयोगतपोदानादिभिर्विवदमानेषु सत्सु यदृच्छया गां पर्यटन्व्यासपुत्रस्तत्राभवत्प्राप्तः। न लक्ष्यमाश्रमादिलिङ्गं यस्य। अवधूतोऽवज्ञया जनैस्त्यक्तो यस्तस्येव वेषो यस्य सः ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् की बात को सुनकर कोई यज्ञ को बतला रहा था, तो कोई योग का महत्त्व दे रहा था, तो कोई तपस्या का, कोई दान का, इस तरह से परस्पर में जब महर्षिगण विवाद कर रहे थे, उसी समय वहाँ व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी अचानक आ गये। वे पृथिवी पर भ्रमण करते हुए वहाँ आये थे, वे सबों से तथा सभी वस्तुओं से निरपेक्ष थे, वे किस वर्ण के हैं तथा किस आश्रम के हैं, इस बात का सूचक कोई भी उनका वाह्य चिह्न दिखायी

नहीं देता था। आत्मलाभ हो जाने के कारण वे अपने आप में संतुष्ट थे। वे अवधूत वेष में थे। अर्थात् ऐसा वेष जिसका लोगों ने त्याग कर दिया था अर्थात् सर्वजन परित्यक्त उनका वेष था। क्योंकि वे नग्न थे और स्त्रियाँ और बच्चे उनको घेर रखे थे। इस प्रकार के शुकदेवजी वहाँ अचानक आ गये ॥२५॥

**तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ।**
**चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥२६॥**
**निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षसमावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च ।**
**दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥२७॥**
**श्यामं सदाऽपीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ।**
**प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— द्वयष्टवर्षं सुकुमारकरोरुबाह्वंश कपोलगात्रम् चार्वायतवक्षोन्नत तुल्यकर्ण सुभ्र्वावाननं कम्बुसुजातकण्ठम्, निगूढजत्रुम् पृथुतुङ्गवक्षसमम् आवर्तनाभिं, वलिवल्गूदरं च, दिगम्बरं, वक्त्रकीर्णकेशं प्रलम्बवाहुं, स्वमरोतमाभम्, श्यामं सदापीच्यवयो अङ्गलक्ष्म्या रुचिरस्मितेन च स्त्रीणां मनोज्ञं, गूढवर्चसम् अपि तल्लक्षणज्ञाः मुनयः स्वासनेभ्यः तं प्रत्युत्थिताः ॥२६-२८॥

**अनुवाद**— सोलह वर्ष की अवस्था वाले, अत्यन्त कोमल, हाथ, पैर, ऊरू (जङ्घे), भुजाएँ, दोनों कंधे, दोनों गाल तथा शरीर वाले, मनोहर तथा विस्तृत नेत्रों वाले, उठी हुयी नाक, एक समान कान, सुन्दर भौहों तथा मुख वाले, शङ्ख के समान मनोहर कण्ठ वाले, ढंकी हुयी हँसली वाले विस्तृत तथा उठे हुए वक्षःस्थल वाले, आवर्त के समान गहरी नाभि वाले, त्रिबली से मनोहर उदर (पेट) वाले, नग्न तथा विखरे हुए केश जिनकें मुख पर आ गये थे, लम्बी भुजाओं वाले तथा देवताओं के समान सुन्दर कान्ति वाले श्याम वर्ण वाले, अत्युत्तम युवावस्था के कारण अथवा शरीर की कान्ति और मनोहर मुसकान के द्वारा ब्रह्मतेज के छिपाये रखने पर भी उनके लक्षण को जानने वाले मुनिगण ने उनको देखकर अपने आसन से उठकर शुकदेवजी की अगवानी की ॥२६-२८॥

### भावार्थ दीपिका

तमित्यादीनां प्रत्युत्थिता इति तृतीयश्लोकेनान्वयः। द्विगुणान्यष्टौ वर्षाणि यस्य। सुकुमारौ कोमलौ पादौ कराबूरू बाहू अंसौ कपोलौ गात्रं च यस्य। चारुणी आयते अक्षिणी यस्मिन्। उन्नता नासा यस्मिन्। लम्बह्रस्वादिवैषम्यं विना तुल्यौ कर्णौ यस्मिन्। शोभने च भ्रुवौ यस्मिन् एवंभूतमाननं यस्य कम्बुवद्रेखात्रयाङ्कितः सुष्ठु जातः कण्ठो यस्य। कण्ठस्याधोभागयोः स्थिते ते अस्थिनी जत्रुणी। मांसेन निगूढे जत्रुणी यस्य। पृथु विस्तीर्णं तुङ्गमुन्नतं च वक्षो यस्य। आवर्तवन्नाभिर्यस्य। बलिभिस्तिर्यङ्निम्नरेखाभिर्वल्गु रम्यमुदरं यस्य। दिश एवाम्बरं यस्य। वक्त्रविकीर्णाः केशा यस्य। प्रलम्बौ बाहू यस्य। स्वमरेषु श्रेष्ठदेवेषूत्तमो हरिस्तद्वदाभा यस्य तम्। सदा अपीच्यमत्युत्तमं यद्वयो यौवनं तेन याऽङ्गलक्ष्मीर्देहकान्तिस्तया रुचिरस्मितेन च। गूढवर्चसमपि प्रत्युत्थितास्तं दृष्ट्वा प्रत्युद्गमं कृतवन्त इत्यर्थः ॥२६-२८॥

### भाव प्रकाशिका

**तम्** इत्यादि शुकदेवजी के सारे विशेषणों के वाचक पदों का आगे के तीसरे **प्रत्युत्थिताः** श्लोक से अन्वय है। शुकदेवजी की अवस्था सोलह वर्ष की थी, उनके हाथ, पैर, दोनों जङ्घे, दोनों भुजाएँ, तथा दोनों गालों से युक्त शरीर कोमल था। उनकी दोनों फैली हुयी और मनोहर आँखें थी, नाक उठी हुयी थी, दोनों कान बराबर मात्रा में लम्बे थे उनकी दोनों भौहे और मुख मनोहर थे। उनका कण्ठ शङ्ख के समान तीन रेखाओं से युक्त और सुन्दर था कण्ठ के नीचे की हंसली मांस से भरी हुयी होने के कारण छिपी हुयी थी, उनका वक्षःस्थल विस्तृत

तथा उठा हुआ था तथा आवर्त (जल के चकोह) के समान उनकी गहरी नाभी थी तथा त्रिबली के कारण उनका उदर मनोहर दिखता था, वे दिगम्बर (नग्न) रूप में थे, उनके विखरे हुए केश मुख पर लटक रहे थे, दोनों भुजाएँ लम्बी थीं, उनकी कान्ति देवता के समान सुन्दर थी, उनका वर्ण श्याम था सदा उत्तम युवावस्था से युक्त शरीर की सुन्दरता तथा मनोहर मुसकान के कारण स्त्रियों के लिए वे मन मोहक थे । उनका तेज यद्यपि छिपा हुआ था फिर भी उनके लक्षण को जानने वाले मुनिगण उनको देखते ही पहचान गये, और अपने आसन से उठकर उनलोगों ने उनकी (शुकदेवजी की) अगवानी की ॥२६-२८॥

**स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ।**
**ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥२९॥**

**अन्वयः**— स विष्णुरातः आगताय तस्मै अतिथये शिरसा सपर्यां आजहार, ततः अबुधाः स्त्रियः अर्भकाः च निवृत्ताः पूजितः सः महासने उपविवेश ॥२९॥

**अनुवाद**— राजा परीक्षित् आये हुए अतिथि श्रीशुकदेवजी को शिर झुकाकर प्रणाम किए और उनकी पूजा किए । शुकदेवजी की इस महिमा को देखकर उनको नही जानने वाली स्त्रियाँ और बालक गण वहाँ से लौट गये और राजा के द्वारा पूजित होकर शुकदेवजी महान् आसन पर विराजमान हो गये ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

शिरसैव सपर्यामाजहारात्मनिवेदनं कृतवान् । तेन सहागताः स्त्र्यादयो निवृत्ताः । स चोपविवेश सन्धिरार्षः ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने आये हुए शुकदेवजी की पूजा शिर झुकाकर प्रणाम पूर्वक की । शुकदेवजी के साथ जो स्त्रियाँ और बच्चे वहाँ तक आये थे उन सबों ने उनका जब इस प्रकार से समादर देखा तो वे वहाँ से लौट कर चले गये । राजा परीक्षित् के द्वारा पूजित शुकदेवजी महान् आसन पर बैठ गये ॥२९॥

**स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजार्षिदेवर्षिसङ्घैः ।**
**व्यरोचतालं भगवान्यथेन्दुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥३०॥**

**अन्वयः**— महीयसां महान् सः तत्र, ब्रह्मर्षि राजर्षि देवर्षि संघैः संवृतः ग्रहर्क्षतारानिकरैः भगवान् इन्दुः यथा अलं व्यरोचत ॥३०॥

**अनुवाद**— राजर्षियों तथा देवर्षियों के समूह से घिरे हुए महानो में भी महान् शुकदेवजी की शोभा, ग्रह, नक्षत्र, तथा तारों से घिरे हुए ऐश्वर्य सम्पन्न चन्द्रमा के समान अत्यधिक हो रही थी ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

स भगवान् ब्रह्मर्ष्यादिसङ्घैः संवृतः सन्नलं व्यरोचत । ग्रहाः शुक्रादयः । ऋक्षाण्यश्विन्यादीनि । अन्यास्ताराः ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्मर्षि आदि से घिरे हुए भगवान् शुकदेवजी की शोभा ग्रहों नक्षत्रों एवं तारों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान अत्यधिक हो रही थी । ग्रह शब्द से शुक्र आदि तथा अश्विनी आदि नक्षत्र एवं तारों को लेना चाहिए ॥३०॥

**प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ।**
**प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृताञ्जलिर्नत्वा गिरा सूनृतयाऽन्वपृच्छत् ॥३१॥**

**अन्वयः**— प्रशान्तम्, आसीनम्, अकुण्ठमेधसं मुनिम् अभ्युपेत्य अवहितः कृताञ्जलिः महाभागवतः राजा मूर्ध्ना प्रणम्य पुनः नत्वा सुनृतया गिरा अन्वपृच्छत् ॥३१॥

**अनुवाद**— शान्त भाव से बैठे हुए तथा किसी भी विषय में जिनकी मेधा कुण्ठित नहीं थी ऐसे मुनि शुकदेवजी के सन्निकट आकर सावधान तथा हाथ जोड़े हुए महाभागवत राजा परीक्षित् उनको शिर झुकाकर प्रणाम किए तदनन्तर उनसे प्रश्न पूछने के लिए पुनः प्रणाम करके उनसे मधुर वाणी से पूछे ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**

न कुण्ठा सर्वार्थेषु मेधा यस्य तम् । प्रणम्य प्रश्नार्थं पुनर्नत्वा ।।३१।।

**भाव प्रकाशिका**

शुकदेवजी शान्त भाव से बैठ गये । उनकी बुद्धि किसी भी विषय में कुण्ठित नही थी । उनके पास महाभागवत राजा परीक्षित् आये, वे सावधान और हाथ जोड़े हुए थे । उन्होंने सर्वप्रथम शिर झुकाकर श्रीशुकदेवजी को प्रणाम किया । उसके पश्चात् प्रश्न पूछने के लिए उन्होंने शुकदेवजी को पुनः प्रणाम किया तथा अत्यन्त मधुर वाणी में उनसे प्रश्न किये ।।३१।।

**अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः । कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ।।३२।।**

**अन्वयः**— अहो ब्रह्मन् अद्यवयं क्षत्रबन्धवः सत्सेव्या यतः, भवद्भिः अतिथिरूपेण कृपया तीर्थकाः कृताः ।।३२।।

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् यह मुझ क्षत्रिय का बहुत बड़ा भाग्य है कि हम सत् पुरुषों के द्वारा सेवनीय हो गये, क्योंकि आज आप हमारे अतिथि बनकर मुझे पवित्र बना दिए हैं ।।३२।।

**भावार्थ दीपिका**

सूनृतां गिरमाह-अहो इति पञ्चभिः । सतां सेव्या जाताः । यतः अतिथिरूपेण हेतुना तीर्थका योग्याः कृता ।।३२।।

**भाव प्रकाशिका**

**अहो इत्यादि** पाञ्च श्लोकों से राजा परीक्षित् की सुन्दर वाणी का वर्णन करते हैं । राजा परीक्षित् ने कहा हे ब्रह्मन् आज हम क्षत्रिय भी सत्पुरुषों के द्वारा सेवनीय हो गये हैं । क्योंकि आज आप हमारे अतिथि बनकर हमको उस योग्य बना दिये हैं ।।३२।।

**येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः । किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ।।३३।।**

**अन्वयः**— येषां संस्मरणात् वै पुंसा गृहाः सद्यः शुध्यन्ति दर्शनस्पर्शपादशौच आसनादिभिः पुनः किम् ।।३३।।

**अनुवाद**— जिन आप जैसे महापुरुषों को स्मरण करने मात्र से ही गृहस्थों के गृह सद्यः पवित्र हो जाते हैं तो फिर, दर्शन, स्पर्श, पादप्रक्षालन तथा आसन प्रदान आदि करने पर क्या कहना है ?।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है।

**भाव प्रकाशिका**

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से कहा कि आप जैसे महापुरुषों का केवल नाम स्मरण कर लेने मात्र से ही गृहस्थों का गृह पवित्र हो जाता है । आज तो मुझे आपका दर्शन करने, स्पर्श करने, पाद प्रक्षालन करने का एवं आसन प्रदान करने का अवसर प्राप्त हो गया है । अतएव हमारी योग्यता के विषय में आज क्या कहना है । मुझे आपने कृतार्थ कर दिया ।।३३।।

**सान्निध्यात्ते महायोगिन् पातकानि महान्त्यपि । सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ।।३४।।**

**अन्वयः**— हे महायोगिन् ! ते सान्निध्यात् महान्ति अपि पातकानि सद्यः तथैव नश्यन्ति यथा भगवतः विष्णोः सन्निध्यात् सुरेतरा सद्यः नश्यन्ति ।।३४।।

**अनुवाद**— हे महायोगिन् आपके सान्निध्य मात्र से बड़े-से-बड़े भी पाप उसीतरह विनष्ट हो जाते हैं जिस तरह से भगवान् विष्णु के सन्निधान मात्र से बड़े-बड़े पापी दैत्य इत्यादि भी विनष्ट हो जाते हैं ।

**भावार्थ दीपिका**

विष्णोः सान्निध्यादसुरादय इव ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् विष्णु के सान्निध्य मात्र को प्राप्त करके मय इत्यादि असुर भी विनष्ट हो गये ।।३४।।

**अपि मे भगवान्प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः । पैतृष्वस्रेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ।।३५।।**

**अन्वयः**— पाण्डुसुतप्रियः पैतृष्वास्रेय तद्गोत्रस्य आत्तबान्धवः भगवान् कृष्णः अपि मे प्रीतः ।।३५।।

**अनुवाद**— पाण्डवों के प्रिय अपने फुफेरे भाइयों की प्रसन्नता के लिए, उनके गोत्र में उत्पन्न होने के कारण मुझसे भी अपना सम्बन्ध मानकर भगवान् श्रीकृष्ण भी आज मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

पाण्डुसुतानां प्रियोऽतस्तेषां पैतृष्वस्रेयानां प्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्य मे आत्तं स्वीकृतं बन्धुकृत्यं येन सः ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों के प्रिय हैं । वे अपने फुफेरे भाई पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए, पाण्डवों के गोत्र में उत्पन्न मुझसे भी अपना सम्बन्ध स्वीकार कर लिए हैं और मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं ।।३५।।

**अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् । नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ।।३६।।**

**अन्वयः**— अन्यथा अव्यक्तगतेः संसिद्धस्य वनीयसः ते दर्शनम् नितरांम्रियमाणानां नृणाम् नः कथम् दर्शनम् ?।।३६।।

**अनुवाद**— यदि भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा नहीं होती तो अव्यक्त गति वाले, वन में रहने वाले तथा परम सिद्ध आपका दर्शन, शीघ्र ही मर जाने वाले मुझ जैसे मनुष्य को कैसे होता ? ।।३६।।

**भावार्थ दीपिका**

अन्यथा श्रीकृष्णप्रसादं विना । अव्यक्ता गतिर्यस्य । म्रियमाणानां नितरां कथं स्यात् । वनयिता याचयिता वनयितृतमो वनीयांस्तय । अत्युदारतया मां याचेथा इति प्रवर्तकस्येत्यर्थः ।।३६।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि भगवान् श्रीकृष्ण की मुझ पर कृपा नहीं होती तो फिर आपका दर्शन मुझको कैसे मिलता ? क्योंकि आपकी अव्यक्त गति हैं । आपकी गति को कोई नहीं जानता है, साथ ही आप परम सिद्ध हैं तथा वन में रहने वाले है और मैं तो शीघ्र ही मर जाने वाला मनुष्य हूँ । **वनीयसः** पद की व्याख्या है वन में रहने वाले को वनीय यानी वनवासी कहते हैं । इस ऋषि समुदाय की अपेक्षा अत्यधिक वन में रहने वाले हैं । श्रीधर स्वामी भी लिखते हैं **वनयिता** अर्थात् याचना करने वाले । सर्वोत्तम वनयितृ (याचना करने वाले) होने के कारण वनीयान् हैं । अर्थात् अत्यन्त उदार होने के कारण मुझसे याचना करो इस तरह से प्रेरित करने वाले हैं आप । ऐसे आपका दर्शन मुझको कैसे सम्भव था ?।।३६।।

**अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् । पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ।।३७।।**

**अन्वयः**— अत इह योगिनां परमं गुरुम् पृच्छामि यत् सर्वथा म्रियमाणस्य पुरुषस्य यत् कार्यम् संसिद्धिं च पृच्छामि ।।३०।।

**अनुवाद**— अतएव मैं योगियों के परम गुरु आप से यह पूछ रहा हूँ कि मरने वाले पुरुष को इस लोक में कौन सा कार्य करना चाहिए जिससे कि मुक्ति की प्राप्ति हो ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

सम्यक् सिद्धिर्यस्मात्तम् । कार्यं कर्तुं योग्यम्, कर्तव्यं त्वावश्यकमिति भेदः । अतएव सर्वथा म्रियमाणस्य पुरुषस्य यस्मिन्कृते संसिद्धिर्मोक्षलक्षणा सिद्धिर्भवति तत्त्वां योगिनां गुरुं पृच्छामि ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने कहा कि जो मनुष्य शीघ्र ही मर जाने वाला हो, उसको कौन सा ऐसा कार्य करना चाहिए कि जिसके करने से सम्यक् सिद्धिरूप मुक्ति मिल जाय ? आप योगियों के परम गुरु हैं । यही मैं आपसे पूछ रहा हूँ ।।३७।।

**यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो । स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ।।३८।।**

**अन्वयः**— हे प्रभो ! नृभिः यच्छ्रोतव्यम्, यत् जाप्यं, यत् कर्तव्यम् यत् स्मर्तव्यम्, यत भजनीयं वा यद्वा विपर्ययम् तद्ब्रूहि ।।३८।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! इस संसार में मनुष्यों को जो सुनना चाहिए, जो जपना चाहिए, जो करना चाहिए, जिसका स्मरण करना चाहिए, तथा जिसका भजन करना चाहिए तथा जिसे न तो सुनना चाहिए, न जपना चाहिए, न करना चाहिए, न स्मरण करना चाहिए और न जिसका भजन (सेवन) करना चाहिए उसको आप मुझे बतलायें ।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

यच्छ्रोतव्यं यज्जाप्यं यत्कर्तव्यं यत्स्मर्तव्यं तद्ब्रूहि । विपर्ययमश्रोतव्यामादि ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा ने सभी कल्याणकामी पुरुषों के द्वारा श्रोतव्य, जपने योग्य, अवश्य करने योग्य, स्मरण करने योग्य तथा सेवन करने योग्य तथा जिसको नहीं सुनना आदि चाहिए ऐसे साधनों के विषय में शुकदेवजी से पूछा है । इस तरह सैंतीसवें और अड़तीसवें इन दोनों श्लोकों में राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से दो बातों को पूछा है । १. मियमाण पुरुष को मुक्ति की प्राप्ति कैसे होती है तथा २. इस संसार में कल्याण चाहने वाले पुरुषों को क्या करना चाहिए ? इस सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत महापुराण में इन्हीं दोनों बातों का उत्तर दिया गया है ।।३८।।

**नूनं भगवतो ब्रह्मन्गृहेषु गृहमेधिनाम् । न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ।।३९।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! गृहमेधिनाम् गृहेषु भगवतः क्वचित् गोदोहनम् अपि हि अवस्थानं न लक्ष्यते ।।३९।।

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप तो किसी गृहस्थ के घर पर गोदोहन काल पर्यन्त भी नहीं रुकते हैं अतएव इसी समय आप मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दीजिए ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

तव दर्शनस्य पुनर्दुर्लभत्वादिदानीमेव कथनीयमित्याशयेनाह-नूनमिति । गोदोहनमात्रकालमपि अस्माकं भाग्यवशात्त्वद्दर्शनं जातमिति भावः ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

**नूनम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा राजा परीक्षित् ने कहा कि आपका दर्शन दुर्लभ है, अतएव आप इसी समय मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें । क्योंकि आप तो किसी गृहस्थ के यहाँ गोदोहन काल अर्थात् मुहूर्त के आठवें भाग के बराबर भी समय तक नहीं ठहरते हैं । मेरे भाग्य से ही आपका दर्शन हुआ है ।।३९।।

सूत उवाच

**एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा । प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥४०॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां
प्रथमस्कन्धे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥
समाप्तोऽयं प्रथमस्कन्धः ॥१॥

**अन्वयः**— एवमाभाषितः राज्ञा श्लक्षणया गिरा पृष्टः धर्मज्ञः भगवान् बादरायणिः प्रत्यभाषत ॥४०॥

**अनुवाद**— इस तरह से **अहो अद्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा अपनी ओर आकृष्ट करके राजा परीक्षित् द्वारा मधुर वाणी से पूछे जाने पर धर्मज्ञ तथा ब्रह्मावास शुकदेवजी राजा परीक्षित् के वाक्यों का उत्तर देना प्रारम्भ किए ॥४०॥

**इस तरह से श्रीमद्भागवम महापुराण नामक अठारह हजार श्लोकों वाली पारमहंस्य संहिता के प्रथम स्कन्ध के शुकागमन नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥**

**यह पहला स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ॥१॥**

**भावार्थ दीपिका**

एवमहो इत्यादिकया श्लक्ष्णया मधुरया गिरा आभाषितोऽभिमुखीकृतः पृष्टश्च । आर्यं धर्मजमाहतारिमवनौ कृत्वा परीक्षिन्नृपं ब्रह्मास्त्रादभिरक्षितं कलिजयख्यातं च कृत्वा भुवि । अन्ते यः शुकरूपतः स्वपरमज्ञानोपदेशेन तं शापादावदमुं नामामि परमानन्दाकृतिं माधवम् ॥१॥

**इति श्रीमद्भागवगतभावार्थदीपिकायां श्रीधरस्वामिविरचितायां प्रथमस्कन्धटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥**

**भाव प्रकाशिका**

**अहोअद्य० इत्यादि** श्लोकों के द्वारा मधुर वाणी से शुकदेवजी को अपनी ओर आकृष्ट करके राजा परीक्षित् ने उनसे उपर्युक्त प्रश्नों को पूछा और शुकदेवजी ने उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥४०॥

**आर्यं० इत्यादि** अपने पूज्य धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को पृथिवी का अजातशत्रु राजा बनाकर, ब्रह्मास्त्र से रक्षित राजा परीक्षित् को कलि विजयी रूप से पृथिवी पर विख्यात बनाकर, अन्त में शुकदेव महर्षि के रूप में परमात्मा के ज्ञानोपदेश के द्वारा परीक्षित् की ब्रह्मशाप से रक्षा जिन्होंने की उन लक्ष्मीपति परमानन्द स्वरूप भगवान् माधव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के श्रीधरस्वामी द्वारा प्रणीत भावार्थदीपिका नामक प्रथम स्कन्ध की टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥१९॥**

**इस तरह यह पहला स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ॥१॥**

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

# द्वितीयस्कन्ध

## प्रथम अध्याय

### ध्यान विधि और भगवान् के विराट् स्वरूप का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप । आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ।।१।।**

अन्वयः— नृप आत्मवित् संमतः, पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः, लोकहितं प्रश्नः कृतः एव वरीयान् ।।१।।

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् आपने आत्मज्ञ पुरुषों के अभिमत (अनुकूल) तथा पुरुषों को सुनने, करने, जपने, स्मरण करने योग्य सभी वस्तुओं में श्रेष्ठ वस्तु विषयक तथा लोक कल्याणकारी प्रश्न किया है । अतएव यह श्रेष्ठ प्रश्न है ।।१।।

भावार्थ दीपिका

द्वितीये तु दशाध्यायैः श्रीभागवतमादितः । उद्देशलक्षणोक्तिभ्यां संक्षेपेणोपवर्ण्यते ।।१।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये कीर्तनश्रवणादिभिः। स्थविष्ठे भगवद्रूपे मनसो धारणोच्यते ।।२।। यन्नामकीर्तनं दानतपोयोगादिसत्फलम् । तं नित्यं परमानन्दं हरिं नर नम स्मर ।।३।। अथ द्वितीयस्कन्ध व्याख्या । उक्तः पूर्वमुपोद्घातः सप्रसङ्गः शुकागतः । राज्ञा पृष्ट नृणां कृत्यमथाह शुकसन्मुनिः ।।४।। राज्ञः प्रश्नमभिनन्दति–वरीयानिति । ते त्वया पुंसां श्रोतव्यादिषु मध्ये यः परः श्रेष्ठगोचरः प्रश्नः कृतः एष वरीयान् । यतो लोकहितमेतत्, मोक्षहेतुत्वात् । आत्मविदां मुक्तानां च संमतो यतः ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध में दश अध्याओं के माध्यम से उद्देश (पदार्थों के नाम का निर्देश) पूर्वक पदार्थों के स्वरूप निरूपकधर्म वर्णन रूप लक्षण के द्वारा श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ से लेकर अन्ततक के पदार्थों का संक्षेप में वर्णन किया गया है ।।१।। सर्वप्रथम इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय में कीर्तन तथा श्रवण आदि के द्वारा श्रीभगवान् का जो स्थूल रूप है उसमें मन की धारणा का वर्णन किया गया है ।।२।। हे मनुष्य ! कीर्तन, दान, तप तथा योग इत्यादि साधनो के जो सर्वोत्तम फल हैं उन परमानन्द स्वरूप श्रीहरि को नमस्कार पूर्वक निरन्तर स्मरण करो ।।३।।

**अथ द्वितीय स्कन्ध व्याख्या-** इन तीन श्लोकों द्वारा वर्णित भागवत शास्त्र सार का वर्णन करने के पश्चात् भावार्थ दीपिका व्याख्या के लेखक श्रीधर स्वामी दूसरे स्कन्ध की व्याख्या को प्रारम्भ करते हैं । इससे पहले प्रसङ्ग निरूपण के साथ-साथ श्रीमद्भागवत महापुराण का शुकदेवजी के आगमन रूप उपोद्घात का वर्णन प्रथम स्कन्ध

में किया जा चुका है । प्रतिपाद्य अर्थ को ध्यान में रखकर उसकी सिद्धि के लिए जो दूसरे विषयों का वर्णन किया जाता है उसी को उपोद्घात कहते हैं, कहा भी गया है **'चिन्तां प्रकृत सिद्ध्यर्थमुपोद्घातं विदुः बुधाः ।'** उसके पश्चात् इस द्वितीय स्कन्ध में शुकदेव महर्षि ने जिसे राजा ने प्रथम प्रश्न के रूप में पूछा है उस अवश्य कर्तव्य का वर्णन किया है ।।४।।

**राज्ञः प्रश्नमभिनन्दति० इत्यादि-** राजा परीक्षित् के द्वारा किए गये प्रश्न का अनुमोदन करते हुए शुकदेवजी **वरीयान् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । मनुष्यों के द्वारा श्रोतव्य आदि में श्रेष्ठ पदार्थ क्या है, उसे आप बतलायें यह जो आपने प्रश्न किया है, यह श्रेष्ठ प्रश्न है । क्योंकि आपका यह जो प्रश्न है सम्पूर्ण संसार के लिए कल्याणकारी है, क्योंकि वह पदार्थ मोक्षप्राप्ति का साधन है, तथा जो आत्मज्ञ पुरुष हैं उनके अभिमत है ।।१।।

**श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः । अपश्यतामात्मत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ।।२।।**

**अन्वयः**— राजेन्द्र ! आत्मतत्त्वम् अपश्यताम् गृहमेधिनाम्, नृणाम् गृहेषु श्रोतव्यादीनि सहस्रशः सन्ति ।।२।।

**अनुवाद**— हे राजाओं में श्रेष्ठ राजन् ! परीक्षित् जिन लोगों ने आत्मतत्त्व का साक्षात्कार नहीं किया है, ऐसे गृहस्थ मनुष्यों के लिए घरों में सुनने जानने और स्मरण आदि करने योग्य कार्य तो हजारों हैं ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

तत्र तावत्स्वाभाविकक्रियाणामनर्थहेतुत्वं वदन् **ब्रूहि यद्वा विपर्ययम्'** इत्यस्योत्तरमाह- श्रोतव्यादीनीति त्रिभिः । गृहेषु सक्तानामत एव गृहमेधिनां तद्गतपञ्चसूनापराणाम् । मेधति हिंसार्थः ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

सर्वप्रथम शुकदेवजी यह बतलाते हैं कि स्वाभाविक रूप से जो क्रियायें की जाती है, वे सबके सब अनर्थकारी ही हैं । यह कहकर राजा ने यह जो कहा था कि जिन कार्यों को नहीं करना चाहिए उन कार्यों के विषयमें शुकदेवजी बतलायें । उन्हीं को गृह में भी **श्रोतव्यदीनि** तीन श्लोकों में बतलाते हैं । गृह में जो आसक्त बने रहते हैं ऐसे लोगों को कहा जाता है । गृहमेधी का अर्थ है गृहस्थ । गृहस्थों को गृहमेधी इसलिए कहा जाता है कि वे प्रतिदिन पाँच प्रकार से जीवों की हत्या करते रहते हैं । गृहमेधी पद में मेध धातु से निष्पन मेधी पद का अर्थ हिंसा करने वाला है मेध धातु हिंसार्थक है ।।२।।

**निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः। दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा।।३।।**
**देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि । तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ।।४।।**

**अन्वयः**— राजन् नक्तं निद्रया, व्यवायेन च वा वयः ह्रियते, दिवा च अर्थेहया कुटुम्ब भरणेन वा ह्रयते, देहापत्यकलत्रेषु आत्मसैन्येषु असत्स्वपि च दिवा ह्रियते, तेषां प्रमत्तः निधनं पश्यन् अपि न पश्यति ।।३-४।।

**अनुवाद**— राजन् ! मनुष्य सोने में अथवा स्त्री प्रसङ्ग में ही रात्रि को तथा आयु को बिता देता है । दिन को वह धन प्राप्त करने की इच्छा से कार्य करता रहता है, अथवा परिवार के ही पालन-पोषण में लगा रहता है । अपने शरीर, सन्तान, पत्नी आदि में अथवा अपनी सेना के सङ्गठन में लगा रहता है । यद्यपि ये सबके सब असत् पदार्थ हैं, अतएव मिथ्याभूत हैं । वह अपने पिता इत्यादि को मरते हुए भी देखता है, फिर भी वह यह नहीं सोचता है कि मुझे भी इन सारी वस्तुओं को छोड़कर मरना है । अतएव उसका देखना भी नहीं देखने के तुल्य है ।।३-४।।

### भावार्थ दीपिका

तैश्च वृथैवायुर्व्ययो भवतीत्याह । नक्तं रात्रौ यद्वय आयुस्तन्निद्रया व्यवायेन रत्या वा ह्रियते । दिवा अह्नि यद्वयस्तत् अर्थेहया अर्थार्थमुद्यमेन, सिद्धेऽर्थे कुटुम्बपोषणेन वा । चकारावनुक्तसमुच्चार्थौ । ननु नश्वरकुटुम्बाद्यर्थं कथमायुर्व्ययं कुर्यात्तत्राह। देहादिषु आत्मनः सैन्येषु परिकरेष्वसत्सु मिथ्याभूतेष्वपि प्रमतः प्रसक्तस्तेषां पित्रादिदृष्टान्तेन नाशं पश्यन्नपि नानुसंधत्ते ।।३-४।।

### भाव प्रकाशिका

उन गृह कार्यों में व्यर्थ ही आयु बीत जाती है, इस बात को शुकदेवजी कहते हैं- गृहस्थ मनुष्य रात्रि में अपनी आयु को या तो सोने में बिता देता है अथवा स्त्री के साथ सङ्गम करने में बिता देता है । दिन में वह अपनी आयु को धन कमाने की इच्छा से उद्योग करता हुआ बिता देता है । जब धन की प्राप्ति हो जाती है तो उससे अपने परिवार के पालन में अपनी आयु को बिताता है । श्लोक का दो चकार उन अर्थों को सूचित करता है जिनको यहाँ पर नहीं कहा गया है । यदि कोई कहे कि परिवार तो नश्वर है, उसके लिए वह क्यों अपनी आयु बितायेगा । तो इसका उत्तर है कि देह, पुत्र, पत्नी इत्यादि तथा अपनी सेना इत्यादि यद्यपि परिकर होने के कारण असत् पदार्थ हैं । फलतः वे मिथ्या हैं किन्तु उसी में आसक्त होकर मनुष्य देखता है कि हमारे माता-पिता यह सब कुछ छोड़कर चले गये, किन्तु वह यह नहीं सोचता है कि एक दिन मुझे भी इन सबों को छोड़कर जाना है ।।३-४।।

**तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ।।५।।**

**अन्वयः**— तस्मात् हे भारत ! अभयम् इच्छता सर्वात्मा, भगवान् ईश्वरः हरिः श्रोतव्यः कीर्तितव्यः स्मर्तव्यः च ।।५।।

**अनुवाद**— अतएव हे भरतवंशी राजन् अभयपद (मोक्ष) प्राप्त करना चाहने वाले को चाहिए कि वह सबों की आत्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करे ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

एवं विपर्ययप्रश्नोत्तरमुक्त्वा श्रोतव्यादिप्रश्नस्योत्तरमाह-तस्मादिति । हे भारत भरतवंश। सर्वात्मेति प्रेष्ठत्वमाह । भगवानिति सौन्दर्यम् । ईश्वर इत्यावश्यकत्वम् । हरिरिति बन्धहारित्वम् । अभयं मोक्षमिच्छता ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से राजा परीक्षित् के द्वारा पृष्ट विपर्यय शब्द वाच्य अश्रोतव्यादि का वर्णन करके श्रोतव्यादि (सुनने योग्य) विषयक प्रश्न का उत्तर शुकदेवजी ने **तस्माद्० इत्यादि** श्लोक से दिया है । उन्होंने बतलाया कि जो पुरुष मोक्ष प्राप्त करना चाहे उसे सर्वात्मा, भगवान् तथा ईश्वर श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिए। श्रीभगवान् को सर्वात्मा कहकर उनके प्रियतमत्व को बतलाया गया हैं । परमेश्वर प्रेष्ठ (प्रियतम) इसलिए हैं कि श्रुति उनको प्रियतम बतलाती है । **भगवान्** इस विशेषण के द्वारा परमात्मा के सौन्दर्य को बतलाया गया है । **ईश्वर** पद के द्वारा आवश्यकत्व को बतलाया गया है । **हरिः** पद के द्वारा परमात्मा के बन्धहारित्व को बतलाया गया है ।।५।।

**एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ।।६।।**

**अन्वयः**— पुंसाम् एतावान् परः जन्मलाभः यत् सांख्ययोगाभ्याम् स्वधर्मपरिनिष्ठया च अन्ते नारायणस्मृतिः ।।६।।

**अनुवाद**— मानव जन्म प्राप्त करने का सबसे बड़ा लाभ यही है कि मनुष्य, ज्ञान, भक्ति अथवा अपने धर्म की निष्ठा के द्वारा अपने जीवन के अन्त में भगवान् नारायण का स्मरण करे ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

अतः परमन्यच्छ्रेयो नास्तीत्याह । एतावानेव जन्मनो लाभः फलम् । तमाह-नारायणस्मृतिरिति। सांख्यादिभिः साध्य इति तेषां स्वातन्त्र्येण लाभत्वं वारयति । सांख्यमात्मानात्मविवेकः । योगोऽष्टाङ्गः । अन्ते तु स्मृतिः परो लाभः । न तन्महिमा वक्तुं शक्य इत्यर्थः ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

जीवन के अन्त में परमात्मा के स्मरण से बढ़कर मानव जीवन का दूसरा कोई लाभ है ही नहीं । मानव जन्म प्राप्त करने का यही फल है । उस फल को शुकदेवजी ने बतलाया कि जीवन के अन्त में भगवान् नारायण का स्मरण ही हो जाना मानव जीवन का सबसे बड़ा लाभ है । गीता में भी भगवान् ने कहा कि जो मनुष्य अपने जीवन के अन्त में ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म (वेद) का जप करते हुए तथा मेरा स्मरण करते हुए अपने शरीर का त्याग करता है वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।

**सांख्ययोगाभ्याम्** पद के द्वारा यह बतलाया गया है कि ये सभी साधन स्वतन्त्र रूप से मुक्ति रूपी फल प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं । **सांख्य** शब्द से आत्मा और अनात्मा के भेद पूर्वक ज्ञान को कहा गया है और योग शब्द से अष्टाङ्ग योग को बतलाया गया है । जीवन के अन्त में परमात्मा का स्मरण करना ही मानव जीवन का सबसे बड़ा लाभ है । उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।।६।।

**प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः । नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ।।७।।**

**अन्वयः**— हे राजन् ! विधिषेधतः निवृत्ताः नैर्गुण्यस्थाः मुनयः प्रायेण हरेः गुणानुकथने रमन्तेस्म ।।७।।

**अनुवाद**— हे राजन् ! विधि एवं निषेध की मर्यादा से ऊपर उठे हुए तथा निर्गुण ब्रह्म में स्थित मुनिजन प्रायः श्रीहरि के दिव्य गुणों के वर्णन में ही रमे रहते हैं ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र सदाचारं प्रमाणयति-प्रायेणेति । विधिषेधतो विधिनिषेधाभ्यां निवृत्ता नैर्गुण्ये ब्रह्मणि स्थिता अपि । स्म प्रसिद्धम् ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

नारायण स्मृति में सत्पुरुषों के आचरण को उपन्यस्त करके उसकी प्रामाणिकता का प्रातिपादन **प्रायेण० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । विधिशास्त्र तथा निषेध शास्त्र की मर्यादा से ऊपर उठे हुए तथा ब्रह्म में स्थित रहने वाले मुनिगुण भी प्रायः परमात्मा के अनन्त तथा दिव्य गुणों के वर्णन में ही रमे रहते हैं । स्म पद के द्वारा इस अर्थ की प्रसिद्धि को सूचित किया गया है ।

**नैर्गुण्ये रमन्ते स्म०** इस श्लोकांश के द्वारा यह सूचित किया गया है कि नैर्गुण्य पद के द्वारा परंब्रह्म में गुणों के अत्यन्ताभाव के प्रतिपादन में तात्पर्य न होकर परमात्मा में प्राकृतिक गुणों का ही अभाव अभिप्रेत है। अन्यथा भगवान के गुणों के वर्णन का प्रसङ्ग ही कैसे हो सकता है । अतएव निर्गुणत्व का अर्थ यहाँ पर परमात्मा के प्राकृत गुण रहितत्व तथा दिव्य गुण सम्पन्नत्व रूप ही स्वीकार करना चाहिए ।।७।।

**इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् । अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ।।८।।**

**अन्वयः**— इदं भागवतं नाम ब्रह्मसंमितम् पुराणम् अहम् द्वापरादौ पितुः द्वैपायनात् अधीतवान् ।।८।।

**अनुवाद**— इस श्रीमद्भागवत नामक पुराण सम्पूर्ण वेद के सदृश है, इसको मैंने द्वापर के अन्त में अपने पिता बादरायण से पढ़ा ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

किमिदमपूर्वं कथयसि, सत्यम्, अत्यपूर्वमेवेदमित्याह । इदं भगवत्प्रोक्तं तन्नामैकप्रधानं पुराणं ब्रह्मसंमितं सर्ववेदतुल्यम् यद्वा ब्रह्म सम्यक् मितं येन । कुतस्त्वया प्राप्तमत आह-अधीतवानिति । द्वैपायनात्पितुः । कदा । द्वापरादौ द्वापरः आदिर्यस्य कालस्य तस्मिन् द्वापरान्ते इत्यर्थः । शन्तनुसमकाले व्यासावतारप्रसिद्धेः ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कोई कहे कि आप यह अपूर्व सी बात कैसे कह रहे हैं तो इसका उत्तर है कि यह अपूर्व ही बात है । यह मैं जो कह रहा हूँ वह अत्यन्त अपूर्व है । यह भगवान् के द्वारा प्रोक्त भागवत पुराण है इसमें श्रीभगवान् के नामों की प्रधानता बतलायी गयी है । यह सभी वेदों के समान होने के कारण ब्रह्मसंहिता है । अथवा इसको ब्रह्मसंमित कहने का अभिप्राय यह है कि इस पुराण के द्वारा ब्रह्म का खूब अच्छी तरह से ज्ञान हो जाता है । **ब्रह्म सम्यक् मितं येन** यह ब्रह्मसंमितम् पद का विग्रह है । प्रश्न होता है कि आपने इस पुराण को कहाँ से प्राप्त किया ? तो इसका उत्तर है कि मैंने इसको अपने पिता महर्षि द्वैपायन से पढा है । फिर प्रश्न होता है कि कब आपने पढा तो इसका उत्तर है द्वापरादौ । द्वापर युग के अन्त में । **द्वापरादौ०** पद का विग्रह है **द्वापरः आदिर्यस्य कालस्य** । अर्थात् जिस काल के आदि में द्वापर विद्यमान हों, अर्थात् द्वापर के अन्त में। क्योंकि यह प्रसिद्धि है कि व्यासजी का अवतार राजा शन्तनु के समय में हुआ था ।।८।।

**परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया । गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ।।९।।**

**अन्वयः**— राजर्षे ! नैर्गुण्ये परिनिष्ठितोऽपि उत्तमश्लोकलीलया, गृहीतचेताः यत् आख्यानम् अधीतवान् ।।९।।

**अनुवाद**— राजर्षे ! यद्यपि मैं परमात्मा के निर्गुण स्वरूप में ही पूर्ण रूप से निष्ठित था फिर भी उत्तम श्लोक भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं से आकृष्ट चित्त वाला होने के कारण मैंने इस पुराण का अध्ययन किया ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

सिद्धस्य तव कुतोध्ययने प्रवृत्तिस्तत्राह-परिनिष्ठतोऽपीति । गृहीतचेता आकृष्टचित्तः ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि आप तो परम सिद्ध हैं फिर भी इस पुराण के अध्ययन में आपकी प्रवृत्ति कैसे हुयी ? इसका उत्तर **परिनिष्ठितो० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । अर्थात् मैं यद्यपि निर्गुण ब्रह्म में ही परिनिष्ठित था । फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं ने मेरे चित्त को आकृष्ट कर लिया, उसी के कारण श्रीभगवान् की लीला की प्रधानता होने के कारण मैंने इसका अध्ययन किया ।।९।।

**तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् । यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती ।।१०।।**

**अन्वयः**— भवान् महापौरुषिकः ते तत् अभिधास्यामि यस्य श्रद्दधताम् सती मतिः मुकुन्दे आशु स्यात् ।।१०।।

**अनुवाद**— आप महापुरुष भगवान् विष्णु के भक्त हैं, अतएव मैं आपको उस पुराण को सुनाऊँगा । उस पुराण में श्रद्धा रखने वाले मनुष्यों की शुद्धबुद्धि श्रीभगवान् में शीघ्र ही लग जाती हैं ।।१०।।

### भावार्थ दीपिका

महापरुषो विष्णुस्तदीयः । यस्य यस्मिन् श्रद्धां कुर्वताम् । सती अहैतुकी ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

महापुरुष भगवान् विष्णु हैं । उनके भक्त ही महापौरुषिक शब्द से कहे जाते हैं । शुकदेवजी ने कहा कि राजन् आप तो भगवान् विष्णु के भक्त हैं । अतएव मैं आपको श्रीमद्भागवत पुराण सुनाऊँगा । उस पुराण में जो

मनुष्य श्रद्धा रखता है उसकी श्रीभगवान् में शीघ्र ही अहैतुकी बुद्धि बन जाती है। वह भगवान् की निष्काम आराधना करने लग जाता है ॥१०॥

**एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् । योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥११॥**

**अन्वयः**— हे नृप ! एतत् निर्विद्यमानानां, अकुतोभयम् इच्छताम्, योगिनां च हरेर्नामानुकीर्तनम् निर्णीतम् ॥११॥

**अनुवाद**— जो लोग इस संसार से विरक्त हो गये हैं, जो लोग मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं ऐसे योगिजनों के लिए सभी शास्त्रों में यही निर्णय किया गया है कि वे श्रीभगवान् के नामों का प्रेम पूर्वक कीर्तन करें ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

साधकानां सिद्धानां च नातः परमन्यच्छ्रेयोऽस्तीत्याह-एतदिति। इच्छतां कामिनां तत्तत्फलसाधनमेतदेव। निर्विद्यमानानां मुमुक्षूणां मोक्षसाधनमेतदेव। योगिनां ज्ञानिनां फलं चैतदेव निर्णीतम्। नात्र प्रमाणं वक्तव्यमित्यर्थः ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

साधकों तथा सिद्धों के लिए इस श्रीमद्भागतव श्रवण से बढ़कर कोई भी दूसरा कल्याणकारी साधन नहीं है। सभी शास्त्रों में यही निर्णय किया गया है कि सभी साधकों तथा सिद्धों को परमात्मा के नामों का कीर्तन करना चाहिए इस विषय में किसी प्रमाण को उपन्यस्त करने की आवश्यकता नहीं है ॥११॥

**किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह । वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥१२॥**

**अन्वयः**— प्रमत्तस्य परोक्षैः बहुभिः हायनैः इह किम्। विदितं मुहूर्तंवरं यतः श्रेयसे घटेत ॥१२॥

**अनुवाद**— अपनी मृत्यु के प्रति असावधान रहने वाले मनुष्यों के बीते हुए अनेकों वर्षों से क्या लाभ है? उससे तो अच्छा यही है कि जान लिया जाय कि एक ही मुहूर्त मेरे जीवन का अवशिष्ट है क्योंकि वैसा जानकर कल्याण के साधन के प्रति कुछ भी तो प्रयास किया जा सकता है ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

अल्पमेवायुरवशिष्टं किमहं साधयेयमिति मा शुच इत्याह-किमिति त्रिभिः। परोक्षैरलक्षितैर्हायनैर्वर्षैः। विदितं वृथा यातीति ज्ञातम्। यतो येन ज्ञानेन। घटेत यत्नं कुर्यात् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि परीक्षित् कहें कि मेरी तो बहुत कम आयु बची हुयी है, ऐसी स्थिति में मैं क्या कर सकता हूँ इसके उत्तर में शुकदेवजी ने कहा कि जो मनुष्य अपनी मृत्यु के प्राति असावधान हो उसको कुछ भी पता नहीं चलता है कि हमारे इतने वर्ष कैसे बीत गये ? उस व्यक्ति के व्यर्थ में बीते हुए अनेक वर्षों से तो वह एक भी मुहूर्त अच्छा है जिसके विषय में व्यक्ति यह जान ले कि अब मुझे एक ही मुहूर्त जीवित रहना है क्योंकि उस एक ही मुहूर्त में वह आत्मकल्याण का प्रयास कर सकता है। आपके तो अभी सात दिन बाकी हैं ॥१२॥

**खट्वाङ्गो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः । मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— खट्वाङ्गो नाम राजर्षि, इह आयुषः इयत्ताम् ज्ञात्वा मुहूर्तात् सर्वम् उत्सृज्य अभयं हरिं गतवान् ॥१३॥

**अनुवाद**— खट्वाङ्ग नामक राजर्षि को जब इस बात का पता चल गया कि अब मेरी आयु एक मुहूर्त ही है तो वे सब कुछ का त्याग करके श्रीहरि की शरणागति करके मुक्ति प्राप्त कर लिए ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

खट्वाङ्गो हि देवपक्षे स्थित्वा दैत्यानजयत्, ततः प्रसन्नैर्देवैर्वरं वृणीष्वेत्युक्ते तेनोक्तं प्रथमं तावन्ममायुः कथ्यतामिति,

ततो देवैरुक्तं तत्तु मुहूर्तमात्रमस्तीति, ततोऽतिशीघ्रं विमानेन भुवमेत्य हरिं शरणं गत इति । यत इयं स्वर्गभूमि रजोधिका । कर्मभूमिः पृथ्वी ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

राजर्षि खट्वाङ्ग देवताओं की ओर से युद्ध करते हुए विजय प्राप्त किए । प्रसन्न होकर देवताओं ने कहा आप वरदान माँगें । राजा ने कहा आपलोग मेरी आयु बतलायें । देवताओं ने कहा राजर्षे ! अब आपकी आयु केवल एक मुहूर्त बची है । उसके पश्चात् राजा शीघ्रता पूर्वक विमान से पृथिवी पर आ गये और श्रीभगवान् की शरणागति करके मुक्ति को प्राप्त कर लिए । वे जान गये कि स्वर्गभूमि रजोगुण प्रधान है यहाँ मुक्ति सम्भव नहीं है । पृथिवी कर्मभूमि है । अतएव वे पृथिवी पर आकर श्रीभगवान् की शरणागति किए ।।१३।।

**तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवितावधिः । उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्सांपरायिकम् ।।१४।।**

**अन्वयः**— हे कौरव्य ! एतर्हि तवापि जीवितावधिः सप्ताहम् । तावत् यत् साम्परायिकम् तत्सर्वम् उपकल्पय ।।१४।।

**अनुवाद**— हे कुरुवंशीय राजन् ! परीक्षित् अभी तो तुम्हारे पास सात दिन तक जीवन की अवधि है । इसी बीच में ही तुम अपने परम कल्याण के लिए जो कुछ भी करना हो कर लो ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

तव तु एतर्ह्यपि इदानीमपि । तावदिति तावता कालेन साम्परायिकं पारलौकिकं साधनं संपादय ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

राजन् आपके पास तो अभी भी जीने के लिए सात दिन का समय बचा है । इतने समय में तुम सारे पारलौकिक साधनों को सम्पन्न कर लो ।।१४।।

**अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः । छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम्।।१५।।**

**अन्वयः**— अन्त काले तु आगते गतसाध्वसः पुरुष असङ्ग शस्त्रेण देहे, ये च तम् अनु स्पृहां छिन्द्यात् ।।१५।।

**अनुवाद**— मृत्यु की बेला आ जाने पर मनुष्यों को चाहिए कि वह भय का त्याग करके तथा अनासक्ति रूपी शस्त्र के द्वारा शरीर तथा शरीर से सम्बनध रखने वाले पुत्र-पत्नी आदि से प्राप्त होने वाली सुख की इच्छा रूपी ममता को काट डाले ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र वैराग्यं तावदाह-अन्तकाल इति । गतसाध्वसो मृत्युभयशून्यः । असङ्गो नाम अनासक्तिस्तेन शस्त्रेण स्पृहां सुखेच्छां, तं देहमनु ये पुत्रकलत्रादयस्तेष्वपि स्पृहां छिन्द्यात् ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम वैराग्य का उपदेश देते हुए शुकदेवजी **अन्तकाले० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । गतसाध्वसः का अर्थ है भयरहित होकर । असङ्ग अनासक्ति को कहते हैं । अर्थात् मृत्यु की बेला हो जाने पर मनुष्य को भयरहित होना चाहिए । वह शरीर और शरीर से सम्बन्ध रखने वाले पुत्र, मित्र तथा कलत्र में होने वाली ममता को अनासक्ति रूपी शास्त्र के द्वारा काट दें ।।१५।।

**गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः । शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने।।१६।।**
**अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम् । मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ।।१७।।**

**अन्वयः**— गृहात् प्रव्रजितः धीरः पुण्यतीर्थ जलाप्लुतः, विधिवत् कल्पितासने, शुचौ विविक्त आसीनः, त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परमं शुद्धं मनसा अभ्यसेत् । ब्रह्मबीजम् अविस्मरन् जितश्वासः मनः यच्छेत् ।।१६-१७।।

**अनुवाद**— वह धैर्य सम्पन्न पुरुष अपने घर से निकल जाय, पवित्र तीर्थ के जल में जाकर स्नान करे, विधिपूर्वक निर्मित पवित्र आसन पर एकान्त में बैठ जाय। उसके पश्चात् तीन मात्राओं अ, उ, म् इन तीन मात्राओं से युक्त परम पवित्र प्रणव का मन में ही जप करे। उसके बाद प्राण वायु को वश में करके मन को अपने वश में कर ले, उस समय प्रणव जप को भूलना नहीं चाहिए, जप करते रहना चाहिए ॥१६-१७॥

### भावार्थ दीपिका

किंच गृहात्प्रव्रजितो निर्गतः। गृहे स्थितस्य पुनरप्यासक्तिसंभवात्। तत्राष्टाङ्गयोगमाह। धीर इति ब्रह्मचर्यादियमोपलक्षणम्। पुण्यतीर्थेति स्नानदिनियमोपलक्षणम्। आसनमाह-शुचाविति। विविक्ते एकान्ते। विधिवत् कुशाजिनचैलैः क्रमेण निर्मिते। जपगर्भं प्राणायामं वक्तुं जप्यमाह। त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं त्रिवृत्रिभिरकारादिभिर्वर्तितं ग्रथितं ब्रह्माक्षरं प्रणवं मनसाऽभ्यसेदावर्तयेत्। मनसेन्द्रियप्रत्याहारं वक्तुं प्राणायामेन मनोनियमनमाह। मनो यच्छेद्वशीकुर्यात्। ब्रह्मबीजं प्रणवमविस्मरन्नेव। जितश्वासः सन् ॥१६-१७॥

### भाव प्रकाशिका

उस पुरुष को धैर्य धारण करके गृह का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि गृह में रहने पर हो सकता है, फिर उसकी पत्नी, पुत्र तथा परिवार में आसक्ति हो जाय। उसके पश्चात् शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् के अष्टाङ्गयोग का उपदेश देते हुए कहा। उस पुरुष की धीर कहकर ब्रह्मचर्य आदि जो यम बतलाये गये हैं उनके पालन को कहा गया है। पुण्यतीर्थ जल में स्नान रूपी नियम का पालन बतलाया गया है। **शुचौ० इत्यादि** के द्वारा आसन का निर्देश किया गया है। आसन को चैलाजिनकुशोत्तर के नियम के अनुसार निर्मित होना चाहिए। तथा एकान्त एवं पवित्र स्थान में उस आसन पर बैठना चाहिए।

जप युक्त प्राणायाम को बतलाने के लिए जपने योग्य मन्त्र को बतलाते हुए शुकदेवजी ने कहा कि अ, उ और म् इन तीन मात्राओं से निर्मित प्रणव का मन में ही जप करें। मन के द्वारा इन्द्रियों के प्रत्याहार अर्थात् विषयों से विमुख बनाने के लिए प्राणायाम के द्वारा मन के नियमन को बतलाते हुए कहा गया है कि मन को अपने वश में करना चाहिए ॥१६-१७॥

**नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः। मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥१८॥**

**अन्वयः**— बुद्धि सारथिः मनसा विषयेभ्यः अक्षान् नियच्छेत् कर्मभिः आक्षिप्तं मनः शुभार्थे धिया धारयेत् ॥१८॥

**अनुवाद**— बुद्धि की सहायता से मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा ले, तथा कर्म की वासनाओं से चञ्चल हुए मन को विचार के द्वारा रोककर उसको श्रीभगवान् के मङ्गलमय रूप में लगा देना चाहिए ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

प्रत्याहारमाह। नियच्छेन्निगृह्णीयात्। अक्षानिन्द्रियाणि। निश्चियात्मिका बुद्धिः सारथिर्यस्य सः। धारणामाह। मन इति। पुनश्च कर्मभिस्तद्वासनाभिराक्षिप्तमाकृष्टम्। शुभार्थे भगवद्रूपे ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

**नियच्छेत्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा योग के पाँचवें अङ्ग प्रत्याहार को बतलाया जा रहा है। नियच्छेत् का अर्थ है कि निगृहीत करे। निश्चयात्मिका बुद्धि रूपी सारथि वाले पुरुष को चाहिए कि वह मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा ले। धारणा को बतलाते हुए उन्होंने कहा कि कर्मों की वासना से चञ्चल बने हुए मन को बुद्धिपूर्वक परमात्मा के शुभ रूप (मङ्गलमय रूप) में लगा दे। मन को किसी शुभाश्रय में लगा देने को ही धारण कहते हैं। प्रत्याहार को परिभाषित करते हुए महर्षि पतञ्जलि ने कहा **स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारे**

**इन्द्रियाणाणां प्रत्याहारः** अर्थात् जब इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध नहीं होता है उस समय इन्द्रियाँ चित्त का अनुकरण करने लग जाती है, इसी को प्रत्याहार कहते हैं ।।१८।।

**तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा। मनो निर्विषयं युंक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत् ॥**
**पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥१९॥**

**अन्वयः**— तत्र अव्युच्छिन्नेन चेतसा एकावयवं ध्यायेत् ततः निर्विषयं मनः युंक्त्वा किंचन न स्मरेत् विष्णोः तत् परमं पदं यत्र मनः प्रसीदति ।।१९।।

**अनुवाद**— उस समय अपने सम्पूर्ण अन्त:करण के द्वारा श्रीभगवान् के किसी एक अङ्ग का ध्यान करे । उसके पश्चात् विषयों की वासना से रहित मन को परमात्मा के उस अङ्ग में इस प्रकार से लगा दे कि वह किसी दूसरे विषय का स्मरण न कर सके भगवान् विष्णु का वही परमपद है । जिसको प्राप्त करके मन भगवत्प्रेम रूपी आनन्द से भर जाता है ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

ध्यानमाह-तत्रेति । एकमेकं पादाद्यवयवम् । अव्युच्छिन्नेन समग्ररूपादवियुक्तेन । आश्रयविशेषेण सामान्यतश्चित्तस्थिरीकरणं धारणा । अवयवविभावनया तद्दाढर्यं ध्यानमिति भेदः । समाधिमाह । निर्विषयं मनो युंक्त्वा समाधाय । स्थिरीभूते मनसि स्फुरत्परमानन्दमात्राकारं कृत्वेत्यर्थः । प्रसीदति उपशाम्यति ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

**तत्र० इत्यादि** श्लोक के द्वारा ध्यान को बतलाया गया है । श्रीभगवान् के मङ्गलमय रूप के एक-एक अङ्ग का मुमुक्षु पुरुष ध्यान करे उस समय उसके अन्त:करण में श्रीभगवान् के सम्पूर्ण रूप से विच्छिन्न नहीं होना चाहिए । उस प्रकार के मन से वह श्रीभगवान् के किसी एक अङ्ग का ध्यान करना चाहिए । आश्रय विशेष के साथ सामान्यत: चित को स्थिर करने को धारण कहते है । तथा अवयव की भावना से उस धारणा को दृढ करने को ध्यान कहते हैं । यही ध्यान और धारणा में भेद है । विषयों की वासना से रहित मन को परमात्मा के उस अङ्ग में समाहित करे । परमात्मा के उस अङ्ग में स्थिर बने हुए मन में जब केवल परमानन्द आकार की ही प्रतीति हो, किसी दूसरे वस्तु की प्रतीति नहीं हो ऐसी स्थिति में मन परमात्मा के प्रेमरूपी परमानन्द में मग्न हो जाता है इसी को समाधि कहते हैं ।।१९।।

**रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः । यच्छेद्धारणया धीरो हन्ति या तत्कृतं मलम् ॥२०॥**

**अन्वयः**— धीरः रजस्तमोभ्याम् आक्षिप्तं विमूढं आत्मनः मनः धारणया यच्छेत् या तत्कृतं मलम् हन्ति ।।२०।।

**अनुवाद**— यदि फिर रजोगुण एवं तमोगुण के द्वारा आक्षिप्त (क्षुब्ध) मन हो जाय तो अपने मन को धारण के द्वारा वश में करना चाहिए, क्योंकि धारणा रजोगुण एवं तमोगुण जन्य मल को विनष्ट कर देने का काम करती है ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

गुणवशात्पुनरपि क्षोभे सति धारणामेव स्थिरीकुर्यादित्याह । रजसा आक्षिप्तं तमसा विमूढं स्वीयं मनो निरुध्यात् । तत्कृतं रजस्तमोभ्यां कृतम् ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

समाधिस्थ हो जाने पर भी ऐसा हो सकता है कि गुणों के कारण मन में क्षोभ उत्पन्न हो जाय । उस स्थिति में धारणा को ही स्थिर करना चाहिए, क्योंकि धारणा रजोगुण एवं तमोगुण जन्य दोष को विनष्ट कर देने का काम करती है ।।२०।।

**यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः । आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥२१॥**

**अन्वयः**— यतः संधार्यमाणायां भद्रम् आश्रयं इच्छतः योगिनः भक्तिलक्षणः योगः आशु सम्पद्यते ।

**अनुवाद**— क्योंकि धारणा के स्थिर हो जाने पर सुखात्मक अपने आश्रय का साक्षात्कार करने वाले योगी का भक्ति रूपी योग शीघ्र ही सम्पन्न हो जाता है । अर्थात् योगी की उस शुभाश्रय में ही भक्ति हो जाती है ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

यतो यस्यां क्रियमाणायां भद्रं सुखात्मकाश्रयं विषयं पश्यतस्तत्रैव प्रीतिर्भवति ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस धारणा के सम्पन्न हो जाने पर सुखमय विषय को देखने से उस विषय में ही प्रीति हो जाती हैं ॥२१॥

राजोवाच

**यथा संधार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता । यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् संमता धारणा, यथा यत्र संधार्यते, यादृशी वा संधार्यते, पुरुषस्य, मनोमलम् आशु हरेत् तद्वद ॥२२॥

**राजा ने कहा**

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! सभी योगियों के लिए अभिमत धारण जिस तरह से की जाती है, जिस वस्तु के विषय में की जाती है तथा और जिस तरह से की जाती है, जिससे कि वह पुरुष के मनोमल को शीघ्र ही विनष्ट कर देती है, उसे आप मुझे बतलायें ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

यथा यत्र यादृशी चेतिकर्तव्यताविषयतत्तद्विशेषाणां प्रश्नाः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में यथा, यत्र तथा यादृशी, ये धारणा करने के प्रकार के विषय में प्रश्न हैं । अर्थात् धारणा किस तरह से की जाती है, उस धारणा का आश्रय क्या हो, और उस धारणा का स्वरूप क्या है ? इन तीनों विषयों में प्रश्न किया गया है क्योंकि कहा जा चुका है कि धारणा मनोमल को शीघ्र ही दूर करने का काम करती है ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

**जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः । स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ॥२३॥**

**अन्वयः**— जितासनः, जितश्वासः, जितसङ्ग, जितेन्द्रियः धिया भगवतः स्थूले रूपे मनः संधारयेत् ॥२३॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् आसन, श्वास, आसक्ति और इन्द्रियों को अपने वश में करके बुद्धि पूर्वक भगवान् के स्थूल रूप में मन को लगाना चाहिए ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

यथेत्यस्योत्तरं-जितासन इति । विषयमाह-स्थूल इति सार्धेन ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा ने यथा पद के द्वारा जो धारणा करने के प्रकार के विषय में प्रश्न किया है उसका उत्तर दिया गया है । स्थूल इत्यादि डेढ श्लोक से धारणा के विषय को बतलाया गया है । जिसको परीक्षित् ने यत्र संमता कहकर पूछा था ॥२३॥

**विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् । यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥२४॥**

**अन्वयः**— अयम् विशेषः तस्य स्थवीयसाम् स्थविष्ठः देहः यत्र इदं भूतं, भव्यं भवच्च विश्वं दृश्यते ॥२४॥

**अनुवाद**— यह सम्पूर्ण जगत् उस परमात्मा का स्थूल से भी अत्यन्त स्थूल शरीर है । उसी में यह भूतकालिक, भविष्यत्कालिक तथा वर्तमानकालिक जगत् दिखायी पड़ता है ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

विशेषो विराड्देहः अतिस्थूलानामपि स्थूलतरः । सत् कार्यमात्रम् ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा का विराट् शरीर है । जितने भी स्थूल पदार्थ हैं, उन सबों से यह अधिक स्थूल है । इससे स्थूल कुछ भी नहीं । श्लोक के सत् शब्द के द्वारा सम्पूर्ण कार्य जगत् को बतलाया गया है ॥२४॥

**आण्डकोशे शरीरेस्मिन्सप्तावरणसंयुते । वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान्धारणाश्रयः ॥२५॥**

**अन्वयः**— सप्तावरण संयुते, अस्मिन् आण्डकोशे शरीरे यः असौ वैराजः पुरुषः सः भगवान् धारणाश्रयः ॥२५॥

**अनुवाद**— जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत् तत्त्व और प्रकृति इन सात आवरणों से युक्त इस ब्रह्माण्ड रूपी शरीर में जो वैराज पुरुष हैं वे ही भगवान् धारण के विषय हैं, उनकी ही धारण की जाती है ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

अस्य चोपलक्षणत्वे विषयत्वं, वस्तुतस्तु विराड् जीवनियन्ता भगवानेव विषय इत्याह । आण्डकोशान्तर्वर्तिनि कटाह एव पृथिव्यावरणम् । ततः अप्तेजोवाय्वाकाशाहंकारमहत्तत्त्वानीति सप्त ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

यह सम्पूर्ण जगत् उपलक्षण रूप से विषय है । वास्तविकता तो यह है कि जीवों के नियामक भगवान् ही धारणा के विषय हैं । ब्रह्माण्ड तो उनका उपलक्षण है । ब्रह्माण्ड के भीतर रहने वाला कटाह ही पृथिवी रूपी आवरण है । अतएव जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति ये सात ब्रह्माण्ड के आवरण है । इस ब्रह्माण्ड को विराट् इसलिए कहा जाता है कि बाहर से तो यह देखने में कपित्थ फल के समान गोल आकार वाला है किन्तु इसके भीतर चरण इत्यादि अवयवों से युक्त कच्छप के समान आकार वाले ब्रह्मा नामक अपने अभिमानी जीव का विशेष रूप से भोग्य होने के कारण उसके विराजमान रहने के कारण विराट् कहा जाता है । उसमें (ब्रह्माण्ड में) उपास्य रूप से रहने के कारण भगवान् को वैराज कहा जाता है ॥२५॥

**पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ।**
**महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ॥२६॥**
**द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च ।**
**महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥२७॥**
**उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ।**
**तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥२८॥**

**अन्वयः**— हे महीयते ! एतस्य हि पादमूलं पातालं पठन्ति, पार्ष्णिप्रपढे रसातलम् अथ विश्वसृजः गुल्फौ महातलम् तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे, द्वे जानुनी सुतलम् वितलं अतलं च विश्वमूर्तेः उरूद्वयम्, महीतलम् तत् जघनम् नभस्तलम् नाभिसरः गृणन्ति, अस्य उरःस्थलम् ज्योतिरनीकम्, महः वै ग्रीवा, अस्य जनः तपः रराटीम् सहस्रशीर्ष्णः आदिपुंसः शीर्षाणि तु सत्यम् ॥२६-२८॥

**अनुवाद**— हे राजन् ! परीक्षित् तत्त्वज्ञ पुरुष इस विराट् पुरुष के पैरों का मूल स्थान पैर का तलवा पाताल को बतलाते हैं, रसातल को इस विराट् पुरुष की एंड़ी और पैर का पञ्जा बलाते हैं, महातल ही इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले विराट् पुरुष के दोनों गुल्फ हैं, तलातल ही इस विराट् पुरुष के दोनों जङ्घे हैं, सुतल ही उनके दोनों घुटने हैं, अतल और वितल ये दोनों विश्वशरीरक भगवान् के दोनों उरू प्रदेश (जंङ्घे) हैं । राजन् भूतल ही पेंडू हैं, । आकाश को ही विश्वरूप परमात्मा का नाभिसरोवर बतलाते हैं । ज्योति समूह को ही उनका वक्षःस्थल बतलाते है । महर्लोक ही उनकी ग्रीवा हैं । जनलोक उनका मुख है । तपोलोक उनका ललाट है तथा सत्य लोक ही सहस्त्रशीर्षा आदि पुरुष का शिर है ।।२६-२८।।

### भावार्थ दीपिका

विराड्देहतज्जीवतदन्तर्यामिणामभेदमारोप्योपासनं कर्तव्यमित्याशयेनाह । पातालं पादमूलं पादस्याधोभागम् । पातालादीनां तदवयवता विधीयते । पातालादीन्यतलान्तान्यधस्तनादारभ्य सप्त भूविवराणि । पठन्ति गृणन्तीत्यादिप्रमाणप्रदर्शनम् । पार्ष्णिप्रपदे पादस्य पश्चात्पुरोभागौ । ऊरुद्वयस्याधोभागे वितलम, उत्तरभागे अतलमिति ज्ञेयम् । नाभिरेव सरः । ज्योतिरनीकं ज्योतिषां समूहं स्वर्गम् । महर्लोकं ग्रीवेति गृणन्ति । तपोलोकं रराटीं ललाटम् । सत्यं सत्यलोकम् ।।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

परमात्मा के विराट् शरीर उसके भीतर रहने वाले जीव तथा उसके अन्तर्यामी में अभेद का अरोप करके उपासना करनी चाहिए । इसी अभिप्राय से शुकदेवजी ने **पातलमेतस्य० इत्यादि** श्लोकों से विश्वशरीरक परमात्मा का वर्णन किया है । पाताल आदि को ही परमात्मा के पैरों की एंडी और पंजा बतलाया गया है । पाताल से लेकर अतल पर्यन्त पृथिवी के नीचे जो सात पाताल हैं उनको विराट् पुरुष के अङ्ग प्रामाणिक पुरुष बतलाते हैं यह कहकर इस वर्णन में शुकदेवजी प्रमाणों को उपन्यस्त करते हैं । पार्ष्णिप्रपदौ पद के द्वारा पैर की एंडी और पैर के पञ्जों को कहा गया है ।

दोनों जङ्घों के नीचे के भाग में वितल है, ऊपर तथा ऊपर के भाग में अतल को जानना चाहिए विराट् पुरुष की नाभि ही सरोवर है ।।२६-२७।।

ज्योतियों के समूह रूप स्वर्ग को ज्योतिरनीक कहा गया है । महर्लोक को ग्रीवा बतलाते हैं, तपोलोक को ललाट तथा सत्यलोक को शिरोभाग बतलाते हैं ।।२८।।

**इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ।**
**नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गन्धो मुखग्निरिद्धः ।।२९।।**

**अन्वयः**— इन्द्रादयः उस्राः बाहवः दिशः कर्णौ आहुः शब्दः अमुष्य श्रोत्रम्, नासत्यदस्रौ परमस्य नासे, अस्य घ्राणः गन्धः मुखम् इद्धः अग्निः आहुः ।।२९।।

**अनुवाद**— उन विश्वशरीरक परमात्मा के तेजः सम्पन्न इन्द्रादि देवता ही भुजाएँ हैं दिशाएँ ही उनके दोनों कान हैं, शब्दों का आश्रय आकाश ही श्रोत्रेन्द्रिय हैं, दोनों अश्विनी कुमार उनकी नाकों के दोनों छिद्र हैं, और गन्ध ही घ्राणेन्द्रिय है, प्रदीप्त अग्नि को ही तत्त्वज्ञों ने परमात्मा का मुख बतलाया है ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

उस्रा देवाः तेजोमयशरीरत्वात् ते बाहव इत्याहुः । दिशोऽस्मदादिश्रोत्राधिष्ठात्र्यो देवताः कर्णौ, श्रोत्रस्याधिष्ठानम् । शब्दस्तु श्रोत्रविषयः स तस्य श्रोत्रेन्द्रियम् । एवं नासिकादिष्वपि । नासत्यदस्रावश्विनौ नासे नासापुटे । इद्धो दीप्तः ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

इन्द्र इत्यादि देवतागण उस विश्वरूप परमात्मा की भुजाएँ है, क्योंकि उनके तेजोमय शरीर हैं । दिक् शब्द से हम संसारी जीवों की जो श्रोत्रेन्द्रिय हैउसकी अधिष्ठातृ देवता को कहा गया है । वे ही विश्वरूप भगवान् के दोनों कान हैं, अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय के अधिष्ठान हैं । शब्द श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है वही उस विश्वरूप परमात्मा का श्रेत्रेन्द्रिय है । इसी तरह से नासिका आदि के भी विषय मे समझना चाहिए । दोनों अश्विनी कुमार परमात्मा के नाक के छिद्र हैं । देदीप्यमान अग्नि ही परमात्मा के मुख हैं ॥२९॥

**द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ।**
**तद्भ्रूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३०॥**

**अन्वयः**— द्यौः अक्षिणी, पतङ्गः चक्षुः, अहनी विष्णोः पक्ष्माणि, परमेष्ठिधिष्ण्यम् तद्भ्रूविजृम्भः, आपः अस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३०॥

**अनुवाद**— अन्तरिक्ष ही भगवान् विष्णु के दोनों नेत्र है । सूर्य ही उनकी चक्षुरिन्द्रिय हैं, दिन और रात दोनों भगवान् विष्णु के दोनों पलक हैं, ब्रह्मलोक ही उनका भ्रूविलास है । जल ही तालु है और रस ही उनकी जीभ है ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

द्यौरन्तरिक्षम् । अक्षिणी नेत्रगोलके । चक्षुरिन्द्रियम् । पतङ्गः सूर्यः । अहनी रात्र्यहनी । परमेष्ठिधिष्ण्यं ब्रह्मपदम् । तालु अधिष्ठानम् । जिह्वा इन्द्रियम् ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

अन्तरिक्ष ही भगवान् के दोनों नेत्र है । उस अन्तरिक्ष में विद्यमान सूर्य ही उनकी चक्षुरिन्द्रिय है । रात और दिन ये दोनों भगवान् विष्णु के नेत्रों की पलके हैं । ब्रह्माजी का लोक ही भगवान् की भौहों का विलास है । जल ही उनका तालु है । भगवान् का तालु ही जल का आधार है । रस ही उनकी रसनेन्द्रिय है ॥३०॥

**छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ।**
**हासो जनोन्मादकरी च माया दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः ॥३१॥**

**अन्वयः**— छन्दांसि अनन्तस्य शिरः गृणन्ति, यमः दंष्ट्रा, द्विजानि स्नेहकलाः, जनोन्मादकरी माया च हासः, यद् दुरन्त सर्गः अपाङ्गमोक्षः ॥३१॥

**अनुवाद**— वेद को ही तत्त्वज्ञ पुरुष श्रीभगवान् का शिरोभाग (ब्रह्मरन्ध्र) बतलाते हैं, यम ही उनकी दाढें हैं, और पुत्रों आदि में होने वाला जो स्नेह का अत्यल्प अंश होता है वे ही उनके दाँत हैं । संसार को मोहित करके उन्मत्त बना देने वाली माया ही उनकी हँसी है, यह अपार सृष्टि ही उनका कटाक्षपात है ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

छन्दांसि वेदाः । शिरो ब्रह्मरन्ध्रम् । स्नेहकलाः पुत्रादिस्नेहलेशाः । द्विजानि दन्ताः । षण्ढत्वमार्षम् । दुरन्तोऽपारः सर्ग इति यत् स तस्य कटाक्षः ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

छन्दः शब्द से वेदों को कहा गया है । वेद ही परमात्मा के शिरोभाग हैं । यहाँ पर शिरोभाग ब्रह्मरन्ध्र का बोधक है । यमराज ही उनकी दाढें हैं और पुत्र पत्नी आदि में जो स्नेह होता है, वही परमामा के दाँत हैं । स्नेह का

भी वर्ण श्वेत है और दाँतों का भी वर्ण श्वेत है । माया ही संसारी जीवों को मोहित करके उनको उन्मत्त बना देती है । परमात्मा की हँसी भी मोहित कर देने वाली होती है । यह अपार सृष्टि ही परमात्मा के कटाक्षपात हैं ॥३१॥

**व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ।**
**कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयाऽस्थिसङ्घाः ॥३२॥**

**अन्वयः**— व्रीडा उत्तरोष्ठः, लोभः अधर, धर्मः स्तनः, अधर्मपथः अस्य पृष्ठः, कः तस्य मेढ्रं, मित्रौ वृषणौ, समुद्राः कुक्षिः, गिरयः अस्थि संघा च ॥३२॥

**अनुवाद**— लज्जा ही विश्वरूप परमात्मा के ऊपर का ओष्ठ है, लोभ ही परमात्मा का अधर है, धर्म ही उनका स्तन है और अधर्ममार्ग ही उनकी पीठ है । प्रजापति ब्रह्माजी उनके मूत्रेन्द्रिय हैं, मित्रावरुण नामक दोनों देवता उनके दोनों अण्डकोश हैं, सभी समुद्र ही उनकी कोख हैं और पर्वत ही उन विश्वशरीर की हड्डियाँ हैं ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

अधर्ममार्गोऽस्य पृष्ठभागः । कः प्रजापतिः । मित्रौ मित्रावरुणौ ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

अधर्म मार्ग ही उनका पृष्ठ भाग है । कः शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है, वे ही उनके मूत्रेन्द्रिय हैं तथा मित्रावरुण देवता उनके दोनों अण्डकोश स्थानी हैं ॥३२॥

**नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ।**
**अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्मगुणप्रवाहः ॥३३॥**

**अन्वयः**— हे नृपेन्द्र विश्वतनो अस्य नद्यः नाड्यः अथ महीरुहा तनूरुहाणि, अनन्तवीर्यः मातरिश्वा श्वसितम्, वयः गतिः गुणप्रवाहः कर्म च ॥३३॥

**अनुवाद**— सम्पूर्ण जगत् शरीरक परमात्मा की नदियाँ ही नाडियाँ है, वृक्ष ही उनके रोम हैं, निःसीम पराक्रम सम्पन्न वायु ही उनके श्वास है, वयः शब्द वाच्य काल ही उनकी गति है और प्राणियों का संसार ही उनकी क्रीडा हैं ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

अनन्तं वीर्यं यस्य सः । वयः कालस्तस्य गमनम् । गुणप्रवाहः प्राणिनां संसारः कर्म तस्य क्रीडा ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

अनन्त वीर्यः पद का विग्रह है अनन्तं वीर्यं यस्य सः । अर्थात् अनन्त पराक्रम सम्पन्न वायु ही उनका निःश्वास है । वायु शब्द काल का बोधक हैं, वह काल ही विश्व शरीरक परमात्मा की गति है । गुणप्रवाह शब्द प्राणियों के संसार का बोधक है । वह परमात्मा की क्रीडा है ॥३३॥

**ईशस्य केशान्विदुरम्बुवाहान् वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ।**
**अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥३४॥**

**अन्वयः**— हे कुरुवर्य ज्ञानिनः अम्बुवाहान् ईशस्य केशान्, भूम्नः वासः तु संध्याम्, ते अव्यक्तं हृदयम् आहुः सर्वविकार कोशः सः चन्द्रमाः च मनः विदुः ॥३४॥

**अनुवाद**— हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ परीक्षित् ज्ञानी पुरुषों ने जल भरे मेघों को ही परमात्मा का केश कहा है, सन्ध्या को ही उन वैपुल्य गुण सम्पन्न परमात्मा का वस्त्र कहा है । उन लोगों ने प्रकृति को ही परमरत्मा का हृदय और सभी विकारों का आश्रय चन्द्रमा को ही उनका मन कहा है ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

भूम्नो विभोः अव्यक्तं प्रधानम् । सः प्रसिद्धश्चन्द्रमास्तदीयं मनः । सर्वेषां विकाराणां कोश इवाश्रयभूतम् ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

भूमन् शब्द विभुत्व का वाचक है । परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण विभु हैं, अव्यक्त शब्द से प्रकृति कही गयी है । मेघ ही परमात्मा के केश हैं संध्यायें उनका वस्त्र हैं तत्त्वज्ञों ने प्रकृति को उनका हृदय कहा है सभी विकारों का आश्रय चन्द्रमा ही परमात्मा का मन है ।।३४।।

**विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ।**
**अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ।।३५।।**

**अन्वयः**— महिम् विज्ञानशक्तिम् गिरित्रम् अन्तःकरणम्, अश्व अश्वतरी ऊष्ट्र–गजाः नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ।।३५।।

**अनुवाद**— ज्ञानी पुरुष महत् तत्त्व को परमात्म का, चित्त कहते है, रुद्र को उनका अहङ्कार कहते हैं, अश्व, खच्चर, ऊँट और हाथी आदि उनके नख हैं तथा सभी हिरण आदि मृग एवं गौ आदि पशु परमात्मा के कटि प्रदेश में स्थित हैं ।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

विज्ञानशक्तिं चित्तम् । महिं महत्तत्त्वम् । अन्तःकरणमहंकारम् । गिरित्रं श्रीरुद्रम् गर्दभाद्वडवायामुत्पन्ना अश्वतरी ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

मूलका विज्ञान शक्ति चित्त का बोधक है, महि महत् तत्त्व का बोधक है, अन्तः करण शब्द अहङ्कार का बोधक है, गिरित्र श्रीरुद्र का बोधक है । गधे से घोड़ी के पेट से उत्पन्न होने वाले बच्चे को खच्चर कहते हैं ।।३५।।

**वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ।**
**गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ।।३६।।**

**अन्वयः**— वयांसि तद् विचित्रं व्याकरणम्, मनुः मनीषा, मनुजः निवासः गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीः, असुरानीकवीर्यः ।।३६।।

**अनुवाद**— विभिन्न प्रकार के पक्षिगण उन श्रीभगवान् के विचित्र रचना कौशल हैं । मनु उनकी बुद्धि हैं, मनुष्य उनके निवास स्थान हैं । गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सराएँ परमात्मा के स्वरों और उनकी स्मृतियाँ हैं । असूर समूह उनका पराक्रम है ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

वयांसि पक्षिणः । तस्य व्याकरणं **'नामरूपे व्याकरवाणि'** इति श्रुत्युक्तं शिल्पनैपुणम् । यथाहुः–**'येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः । मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति ।।'** इति । मनुः स्वायंभुवः, मनीषा बुद्धिः, मनुजः पुरुषः, निवास आश्रयः । **'पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा'** इति श्रुतेः । गन्धर्वादीनां द्वन्द्वैक्यम् । गन्धर्वादयः स्वरस्मृतीः। षड्जादिस्वरस्मृतय इत्यर्थः । असुरानीकं वीर्यं यस्य सः । **'स्वरः स्मृतिरसुरानीकवर्यः'** इति पाठे गन्धर्वादयः स्वरः असुरसमूहश्रेष्ठः प्रह्लादः स्मृति स्तस्येति ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार के पक्षीगण ही उनके व्याकरण हैं **'नाम रूपे व्याकरवाणि'** श्रुति में बतलायी गयी उनकी शिल्पकला हैं, कहा भी गया है **'येन शुक्लीकृताः' इत्यादि** अर्थात् जिन परमात्मा ने हंसों को श्वेत बनाया शुकपक्षियों को हरा बनाया मयूर को चित्र-विचित्र बनाया, वे ही परमात्मा तुम्हारी वृत्ति का विधान करेंगे । मनु

शब्द से स्वायम्भुव मनु को कहा गया है । वे ही परमात्मा की बुद्धि है, मनु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य उनके निवास स्थान हैं । श्रुति भी कहती है **पुरुषत्वे चा विस्तारामात्मा** पुरुषत्व में आत्मा विस्तृत नहीं है । गन्धर्व विद्याधर चारणाप्सर: में समाहार द्वन्द समास होने के कारण एक वचनान्त प्रयोग हुआ है । गन्धर्व इत्यादि परमात्मा की षड्ज आदि सातो स्वरों की स्मृतियाँ हैं । असुरों की सेना ही परमात्मा का पराक्रम है । जहाँ पर स्वर: स्मृतिरसुरानीकवर्य: पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि गन्धर्व आदि स्वर है, असुर समूह में श्रेष्ठ प्रह्लाद स्मृति हैं ।।३६।।

**ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्रूरुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्ण: ।**
**नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मक: कर्म वितानयोग: ।।३७।।**

**अन्वय:**— ब्रह्माननं, क्षत्रभुज: महात्मा, विड् ऊरू अङ्घ्रिश्रित कृष्णवर्ण:, नाना भिधामभीज्यगणोपपन्न: द्रव्यात्मक: वितानयोग: कर्म ।।३७।।

**अनुवाद**— ब्राह्मण ही परमात्मा के मुख है, क्षत्रिय ही भुजाएँ हैं, ऐसे परमात्मा की वैश्य ही जघाएँ है कृष्ण वर्ण का शूद्र उनके पैर हैं तथा अनेक नाम वाले अभीज्या (देवगण) वसु रुद्र इत्यादि देवताओं के जो गण है उनसे युक्त जो द्रव्यात्मक यज्ञ है, वही परमात्मा का कार्य है ।।३७।।

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्म विप्रस्तस्याननं मुखम् । क्षत्रं क्षत्रियो भुजौ यस्य । विड् वैश्य ऊरू यस्य । अङ्घ्रिश्रित: कृष्णवर्ण: शूद्रो यस्य। नानाभिधा नामानि येषां ते च ते अभीज्या देवास्तेषां गणैर्वसुरुद्रादिभिरुपपन्नो युक्तो द्रव्यात्मको हवि:साध्यो वितानयोगो यज्ञप्रयोगस्तस्य कर्म कार्यम् । आवश्यकोऽभिप्रेत इत्यर्थ: ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मण ही उस परमात्मा के मुख हैं, क्षत्रिय ही भुजा हैं, महान् आत्मा वैश्य परमात्मा की दोनों जङ्घाएँ है । उनके पैरों में रहने वाला कृष्ण वर्ण ही शूद्र हैं । अनेक नामों वाले देवताओं का जो वसु, रुद्र इत्यादि समूह है उन सबों से युक्त द्रव्यात्मक यज्ञ ही परमात्मा का कर्म है । अर्थात् वह उनको आवश्यक रूप से अभिप्रेत है ।।३७।।

**इयानसावीश्वरविग्रहस्य य: संनिवेश: कथितो मया ते ।**
**संधार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे मन: स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किंचित् ।।३८।।**

**अन्वय:**— इयान् असौ, ईश्वर विग्रहस्य य: संनिवेश: ते मया कथित: अस्मिन् स्थविष्ठे वपुषि स्वबुद्ध्या मन: संधार्यते। यत: किञ्चित् न अस्ति ।।३८।।

**अनुवाद**— राजन् परमात्मा के स्थूल शरीर का इतना ही अवयव संस्थान है, इसे मैंने आपको सुना दिया। परमात्मा के इस अत्यन्त स्थूल शरीर में ही अपनी बुद्धि की सहायता से मन को लगाना धारणा है । परमात्मा के इस स्थूल शरीर से भिन्न इसमें कुछ भी नहीं हैं ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

इयानेतावान्सन्निवेशोऽवयवसंस्थानम् । अस्मिन्स्वबुद्ध्या मन: संधार्यते मुमुक्षुभि: । यतो व्यतिरिक्तं किंचिन्नास्ति तस्मिन् ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

विश्व शरीरक परमात्मा के अवयवों का इस अध्याय के छब्बीसवें श्लोक से लेकर सैंतीसवें श्लोक तक विस्तार से वर्णन करने के पश्चात् शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि विराट् पुरुष परमात्मा के स्थूल शरीर के इतने ही अङ्ग है । इस स्थूल शरीर में मन को लगने को धारणा कहते हैं । इन वर्णित अवयवों से भिन्न कोई भी अवयव इस शरीर में नहीं हैं ।।३८।।

**स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ।**
**तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥३९॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे महापुरुषसंस्थानुवर्णने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

**अन्वयः**— स्वप्नजनेक्षिता एकः यथा सः सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा तं सत्यम्, आनन्दनिधिं भजेत अन्यत्र न सज्जेत् यतः आत्मपातः ॥३९॥

**अनुवाद**— जिस तरह स्वप्न देखने वाला पुरुष एक होता है, और वह स्वापकालिक अनेक पुरुषों को देखता है, उसी तरह परमात्मा भी एक हैं, वे ही सबों की बुद्धियों की वृति के द्वारा सबकुछ अनुभव करते हैं । उन सत्य स्वरूप आनन्दनिधि परमात्मा का ही भजन करना चाहिए । उससे भिन्न किसी भी वस्तु में वह आसक्त न हो, क्याकि दूसरी वस्तु की धारणा करने पर तो आत्मपात की सम्भावना होती है ॥३९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के महापुरुष संस्थानुवर्णन नामक पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।**

### भावार्थ दीपिका

तदेवं चित्तस्थैर्यार्थं विराड्देहजीवेश्वराणामभेदेनोपासनमुक्तं, तत्र तु देहजीवावीश्वरे प्रविलाप्य स एव ध्येय इति निर्धारयति- स इति । सर्वेषां धीवृत्तिभिरनुभूत सर्वं येन स एक एव सर्वान्तर आत्मा तमेव सत्यं भजेत । अन्यत्रोपलक्षणे न सज्जेत् । यत आसङ्गादात्मनः पातः संसारो भवति । एकस्य तत्तदिन्द्रियैः सर्वानुभूतौ दृष्टान्तः-स्वप्नजनानामीक्षिता यथेति । स्वप्ने हि कदाचिद्बहून्देहान्प्रकल्प्य जीवस्तत्तदिन्द्रियैः सर्वं पश्यति तद्वत् । ईश्वरस्य तु विद्याशक्तित्वान्न बन्धः ॥३९॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।**

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से चित्त की स्थिरता के लिए विराट् देह, जीव तथा ईश्वर की अभेद पूर्वक उपासना बतलायी गयी । उसमें भी देह तथा जीव को अच्छी तरह से ईश्वर में ही लीन करके ईश्वर का ही ध्यान करना चाहिए इस बात का निर्धारण करते हुए शुकदेवजी **'स सर्वधीवृत्ति' इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । सबों की ज्ञानकी इन्द्रिय स्वरूप वृत्तियों के द्वारा सबका अनुभव करने वाले परमात्मा एक ही हैं । वे ही सबों की अन्तरात्मा है । अतएव उन आनन्दनिधि सत्य स्वरूप आत्मा का भजन करना चाहिए । परमात्मा के उपलक्षणभूत किसी भी दूसरी वस्तु में आसक्ति न रखे । क्योंकि परमात्मशरीरव्यतिरिक्त में आसक्ति होने पर आत्मपात होता है ।

एक ही परमात्मा सबों की इन्द्रियों के द्वारा सबों का अनुभव करता है । इसमें दृष्टान्त उपन्यस्त करते हुए उन्होंने कहा जैसे स्वप्न में दिखायी देने वाले लोगों का द्रष्टा एक ही पुरुष होता है । वह स्वप्न काल में अनेक देहों की कल्पना करके अपनी विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा सब कुछ देखता हैं, उसी तरह परमात्मा एक ही हैं परमात्मा सबों को देखता है । ईश्वर चूकि विद्या शक्ति से सम्पन्न होता है अतएव उसको संसार का बन्धन नहीं होता है॥३९॥

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।**

# द्वितीय अध्याय

## श्रीभगवान् के स्थूल एवं सूक्ष्म रूपों की धारणा तथा क्रममुक्ति एवं सद्योमुक्ति का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**एवं पुरा धारणयात्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ।**
**तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाऽप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥१॥**

**अन्वयः**— एवं धारणया तुष्टात् हरेः पुरा नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य आत्मयोनिः अप्ययात् प्राक् इदं यथा तमथ अमोघ दृष्टिः ससर्ज ॥१॥

**अनुवाद**— इस तरह से धारण के द्वारा प्रसन्न हुए श्रीहरि से सृष्टि के प्रारम्भ में नष्ट हुयी सृष्टि विषयिणी स्मृति को प्राप्त करके अमोघ दृष्टि सम्पन्न ब्रह्माजी प्रलयकाल से पहले यह जगत् जैसा था उसी प्रकार से इसकी रचना किए ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

द्वितीये तु ततः स्थूलधारणातो जितं मनः । सर्वसाक्षिणि सर्वेशे विष्णौ धार्यमितीर्यते ॥१॥ दृश्यालम्बनरूपैवमुक्ता वैराजधारणा इहोच्यते तु तत्साध्या सर्वान्तर्यामिधारणा ॥२॥ तत्र तावत्पूर्वोक्तधारणाया अवान्तरफलमाह । एवं या धारणा तया तुष्टाद्धरेः पुरा प्रलयसमये नष्टां सृष्टिस्मृतिं प्रत्यवरुध्य लब्ध्वा ब्रह्मा अप्ययात्प्रागिदं विश्वं यथासीत्तथा ससर्ज । व्यवसायात्मिका बुद्धिर्यस्य सः । अत एवामोघा दृष्टिर्यस्येति । अतस्तया धारणया विश्वसृष्टिसामर्थ्यं भवति ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरे स्कन्ध के दूसरे अध्याय में स्थूल धारणा के द्वारा अपने मन को वश में करे । अतएव सबों का साक्षी तथा सबों के स्वामी भगवान् विष्णु की धारणा करनी चाहिए यह कहा गया है ॥१॥

**दृश्यालम्बन० इत्यादि-** इस तरह दृश्य आलम्बन रूपा वैराज की धारणा कही गयी है । इस अध्याय में वैराज धारणा के द्वारा प्राप्त होने वाली सर्वन्तर्यामी परमात्मा की धारणा बतलायी जा रही है ॥२॥

**एवंतावत्० इत्यादि-** सर्वप्रथम पूर्वोक्त धारणा के अवान्तर फल को बतलाया जा रहा है । इस तरह की स्थूल धारणा जो बतलायी गयी है उसके द्वारा प्रसन्न हुए श्रीहरि से प्रलय के काल में जो सृष्टि विषयिणी स्मृति नष्ट हो गयी थी उसे प्राप्त करके ब्रह्माजी प्रलयकाल से पहले यह जगत् जैसा था उसी तरह के विश्व की सृष्टि उन्होंने कर दी; क्योंकि ब्रह्माजी निश्चयात्मिका बुद्धि से सम्पन्न थे । उसी धारणा से जगत् की सृष्टि का सामर्थ्य उत्पन्न होता है ॥१॥

**शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ।**
**परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः ॥२॥**

**अन्वयः**— शाब्दस्य हि ब्रह्मणः एष पन्था यत् अपार्थै नामभिः धीः ध्यायति । तत्र मायामये वासनया शयानः परिभ्रमन् अर्थान् न विन्दते ॥२॥

**अनुवाद**— वेदों की ऐसी वर्णन शैली है कि उसके कारण साधक अर्थशून्य स्वर्गादि नामों के द्वारा विभिन्न प्रकार की इच्छाओं को करता है । वह मायामय मार्ग में सुख की वासना से स्वप्न देखने के समान विभिन्न लोकों में जाकर भी निर्दोष सुख को नहीं प्राप्त कर पाता है ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

उपासनाफलादपि विरक्तस्य शुद्धात्मधारणायामधिकारः । अतो वैराग्यार्थं सर्वं कर्मफलं निन्दति । शाब्दं शब्दमयम्। ब्रह्म वेदः । तस्य एष पन्थाः कर्मफलबोधप्रकारः । कोऽसौ । अर्थशून्यैरेव स्वर्गादिनामभिः साधकस्य धीर्ध्यायति तत्तदिच्छां करोतीति यत् । अपार्थत्वमेवाह । तत्र मायामये पथि सुखमिति वासनया शयानः स्वप्नान्पश्यन्निव परिभ्रमन्नर्थान्न विन्दति । तत्तल्लोकं प्राप्तोऽपि निरवद्यं सुखं न लभत इत्यर्थः ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

शुद्ध आत्मा की धारणा में उसी का अधिकार होता है जो उपासना के फल को भी नहीं प्राप्त करना चाहता है । अतएव वैराग्य की प्राप्ति के लिए वे सभी कर्मों के फलों की निन्दा करते हैं । वेद को ही शब्दमय ब्रह्म कहते हैं । ब्रह्म शब्द वेद का वाचक है । उस वेद का यही मार्ग है कि वह तत्-तत् कर्मों के फलों का वर्णन करता है । अर्थशून्य ही स्वर्ग इत्यादि नामों से साधक की बुद्धि विभिन्न प्रकार के सुखों की प्राप्ति की इच्छा करती है । उसके द्वारा की जाने वाली इच्छा को निरर्थक बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं । उस मायामय मार्ग में सुख की वासना से सोए हुए स्वप्न द्रष्टा जैसे स्वप्न देखता है, उसी तरह तत्-तत् लोकों में भ्रमण करता हुआ जीव शुद्ध सुख को नहीं प्राप्त कर पाता है ।।२।।

**अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ।**
**सिद्धेऽन्यथाऽर्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ।।३।।**

**अन्वयः**— अतः अप्रमत्तः व्यवसायबुद्धिः कविः नामसु यावदर्थः यतेत । तत्र परिश्रमं समीक्षमाणः अन्यथासिद्ध अर्थे न यतेत ।।३।।

**अनुवाद**— अतएव प्रमाद रहित तथा निश्चयात्मिका बुद्धि सम्पन्न विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह नाम मात्र वालों से उतना ही व्यवहार करे जितना शरीर निर्वाह के लिए अपेक्षित हो । यदि प्रारब्धवशात् संसार के पदार्थ अपने आप मिल जायँ तो वह उनको प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले परिश्रम को व्यर्थ समझकर उनकी प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करे ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

तर्हि सर्वथा कर्मफलत्यागे सद्य एव देहपातः स्यादित्याशङ्क्याह । अतः कविर्नामसु नाममात्रेषु भोग्येषु यावताऽर्थेनार्थो देहनिर्वाहो यस्य स तथाभूतः स्यात् । अप्रमत्तस्तावन्मात्रेऽप्यनासक्तः । व्यवसायबुद्धिर्नेदं सुखमिति निश्चयवान् । तदापि तत्र तस्मिन्नर्थेऽन्यथैव सिद्धे सति तत्र यत्ने परिश्रमं पश्यन्न यतेत ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

यदि सभी कर्मों के फल का त्याग कर दिया जाय तब तो शीघ्र ही शरीर का पात हो जायेगा । इस प्रकार की शङ्का करके कहते हैं अतएव विज्ञपुरुष को चाहिए कि वह केवल नाम प्रधान भोग्य वस्तुओं में उतना ही आसक्त हो जितने से उसके शरीर का निर्वाह हो जाय । और उन प्राप्त वस्तुओं में भी उसकी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। उसको यह मन में निश्चय रखना चाहिए कि वस्तुतः इन वस्तुओं में सुख नहीं है । वह भी वस्तु यदि अपने आप प्राप्त हो जाय तो उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास किए जाने में होने वाले परिश्रम को देखकर उसके लिए प्रयास न करे ।।३।।

**सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैर्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ।**
**सत्यञ्जलौ किं पुरुधाऽन्नपात्र्या दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ।।४।।**

**अन्वयः**— क्षितौ सत्यां कशिपोः प्रयासैः किम् ? बाहौ सर्वसिद्धे हि उपबर्हणैः किम् ? सत्यञ्जलौ पुरुधा अन्नपात्र्या किम् ? दिग् बल्कलादौ सति दुकूलैः किम् ?।।४।।

**अनुवाद**— यदि सोने के लिए पृथिवी अपने आप प्राप्त है तो फिर शय्या प्राप्त करने के लिए प्रयास करने से क्या लाभ है ? यदि भुजाएँ स्वतः प्राप्त हैं तो फिर तकियों की क्या आवश्यकता है ? यदि परमात्मा ने अञ्जलि रूपी पात्र प्रदान ही किया है तो बहुत अधिक वर्तनों को प्राप्त करना व्यर्थ है । जब दिगम्बर रहा जा सकता है अथवा बल्कल धारण करके रहा जा सकता है तो वस्त्रों की क्या आवश्यकता है ?॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्यथा सिद्धिमाह द्वाभ्याम् सत्यामिति । कशिपोः शय्यायाः । स्वतःसिद्धे बाहौ सति उपबर्हणैरुच्छीर्षकैः । पुरुधा बहुप्रकारयाऽन्नपात्र्या भोजनपात्रेण ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

विभिन्न वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए प्रयास करने को व्यर्थ बतलाते हुए शुकदेवजी **सत्याम्० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं । कशिपु शब्द शय्या का बोधक है । अपने आप प्राप्त भुजाओं के रहने पर तकिया के लिए प्रयास करना व्यर्थ है । उपबर्हण शब्द तकिया का बोधक है । अन्नपात्री शब्द भोजन पात्र का बोधक है ॥४॥

**चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ।**
**रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नापसन्नान् कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥५॥**

**अन्वयः**— पथि चीराणि न सन्ति किम्, परभृतः अङ्घ्रिपाः भिक्षां न दिशन्ति किम् ? सरितः अपि अशुष्यन् । गुहाः रुद्धा किम् । उपसन्नान् अजितः न अवति किम् । कवयः धनदुर्मदान्धान् कस्माद् भजन्ति ?॥५॥

**अनुवाद**— राजन् ! मार्ग में वस्त्र के टुकड़े नहीं पड़े हैं क्या कि दूसरें से कपड़े माँगे जायँ । दूसरों का पालन करने वाले वृक्ष फलों एवं पुष्पों की भिक्षा नहीं प्रदान करते हैं क्या ? कि दूसरों से भोजन माँगा जाय। जल प्रदान करने वाली सारी नदियाँ सूखी भी नहीं हैं और रहने के लिए पर्वतों की गुफायें बन्द भी नहीं हुयी हैं । अतएव दूसरों से जल और निवास स्थान की याचना करना अनावश्यक है । शरण में आये हुए जीवों की रक्षा करना श्रीभगवान् छोड़ दिए हैं क्या ? अतएव किस कारण से ज्ञानी पुरुष धन के मद से मदमत्त बने हुए धनिकों की सेवा करते हैं ?॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु दिक्सद्भावो नाम नग्नत्वमेव, बल्कलमन्नं तोयं वासस्थानं तु याच्ञाप्रयत्नं विना कथं प्राप्येत तत्राह । चीराणि वस्त्रखण्डानि परान्बिभ्रति पुष्णन्ति फलादिभिर्ये । गुहाः गिरिदर्यः । ननु कदाचिदेषामलाभे किं कार्यं तत्राह । अजितो हरिरुपसन्नान् शरणागतान्किं नावति न रक्षति । किंशब्दस्य पूर्वत्रापि संबन्धः । धनेन यो दुर्मदस्तेनान्धान्नष्टविवेकान् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न होता है कि आपने दिशाओं के सद्भाव को बतलाकर दिगम्बर का उपदेश दिया है अतएव उससे तो काम चल सकता है । किन्तु बल्कलवस्त्र, अन्न, जल और निवास स्थानकी प्राप्ति तो बिना माँगे नहीं हो सकती है । अतएव उसके लिए तो याचना करनी ही होगी तो इसके उत्तर में शुकदेवजी कहते हैं वस्त्र के फटे पुराने टुकड़े रास्ते में पड़े ही रहते हैं, उनसे भी काम चलाया जा सकता है । वृक्षों का स्वभाव ही है कि दूसरों का भरण व पोषण करते रहते हैं । वे अपने पास में आये हुए मनुष्यों को फल तथा पुष्प आदि की भिक्षा प्रदान करते रहते है । उससे भोजन का काम चल जायेगा रहने के लिए पर्वतों की गुफाएँ खुली हुयी हैं उनमें रहा जा सकता है ।

**ननु कदाचिदेषाम्० इत्यादि-** यदि कहें कि कभी ऐसा भी हो सकता है कि ये वस्तुएँ उपलब्ध न हों

पायें। ऐसी स्थिति में याचना तो करनी ही होगी। तो इसके उत्तर में शुकदेवजी पूछते हैं कि क्या शरणागत जीवों की रक्षा करना भगवान् छोड़ दिए हैं क्या ? इससे पहले भी सर्वत्र किम् शब्द का सम्बन्ध करना चाहिए। ये सारी आवश्यकता की वस्तुएँ यदि अपने आप प्राप्त है तो जो लोग धन के मद से मदमत्त हैं जिनका विवेक नष्ट हो गया है, ऐसे धनिकों की सेवा विज्ञ परुष भी क्यों करते हैं ?॥५॥

**एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः ।**
**तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥६॥**

**अन्वयः**— एवं आत्मा, प्रियः अर्थः अनन्तः भगवान् स्वचित्ते स्वतः एव सिद्धः। निर्वृतः नियतार्थः तं भजेत। यत्र संसार हेतूपरमश्च ॥६॥

**अनुवाद**— इस तरह से सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप हाने के कारण अत्यन्त प्रियतम अनन्त परमात्मा हृदय में अपने आप विराजमान हैं। अतएव संसार से विरक्त होकर उनकी ही सेवा करनी चाहिए, क्योंकि उनकी सेवा करने से इस संसार के बन्धन का कारण जो अज्ञान है उसका अपने आप नाश हो जाता है ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

तदा तेन किं कर्तव्यं हरिस्तु सेव्य इत्याह। एवं विरक्तः संस्तं भजेत। भजनीयत्वे हेतवः-स्वचित्ते स्वत एव सिद्धः। यत आत्मा अतएव प्रियः। प्रियस्य च सेवा सुखरूपैव। अर्थः सत्यो न त्वनात्मवन्मिथ्या। भगवान् भजनीयगुणश्च अनन्तश्च नित्यः। य एवं भूतस्तं भजेत् नियतार्थो निश्चितस्वरूपः। तदनुभवानन्देन निर्वृतः सन्निति स्वतः सुखात्मत्वं दर्शितम्। किंच यत्र यस्मिन्भजने सति संसारहेतोरविद्याया उपरमो नाशो भवति ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई पूछे तो फिर क्या करना चाहिए ? तो उसका उत्तर है कि आत्मकल्याण चाहने वाले को श्रीहरि की ही सेवा करनी चाहिए। उपर्युक्त प्रकार से संसार से विरक्त हो जाना चाहिए। श्रीभगवान् इसलिए सेवनीय हैं कि वे अपने आप अन्तःकरण में विराजमान हैं। उसका कारण है कि वे ही आत्मा है। आत्मा से बढ़कर कोई भी दूसरी वस्तु प्रिय नहीं होती है। वे भगवान् सम्पूर्ण जगत् में व्यापक होने के कारण अनन्त हैं वे देश काल एवं वस्तु की सीमा से परे हैं। उन प्रियतम परमात्मा की सेवा सुख स्वरूप होती है। वे सत्य हैं। आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं के समान मिथ्या नहीं है।

**भगवान् भजनीय गुणश्च० इत्यादि-** भगवान् में सेवोचित गुण ये हैं कि वे अनन्त हैं और नित्य हैं इस प्रकार के परमात्मा की सेवा करनी चाहिए। वे निश्चित स्वरूप वालें हैं। श्रीभगवान् की सेवा से उत्पन्न आनन्द से उपासक परमानन्द सम्पन्न हो जाता है। यह कहकर शुकदेवजी ने बतलाया कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से सुखात्मक हैं। दूसरी बात यह है कि उन परमात्मा की सेवा करने से संसार रूपी बन्धन का कारण अज्ञान भी विनष्ट हो जाता है ॥६॥

**कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्तामृते पशूनसतीं नाम युञ्जयात् ।**
**पश्यञ्जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापाञ्जुषाणम् ॥७॥**

**अन्वयः**— वैतरण्यां पतितं स्वकर्मजान् परितापान् जुषाणम् जनं पश्यन् पशून् ऋते कः नाम तां परानुचिन्ताम् अनादृत्य असतीम् युञ्जयात् ॥७॥

**अनुवाद**— यम के द्वार पर विद्यमान वैतरणी नदी में गिरे हुए तथा अपने किए हुए कर्मों के फल को भोगने वाले मनुष्य को देखकर भी पशुओं को छोड़कर कौन ऐसा मनुष्य होगा जो उन परमात्मा की धारणा रूपी चिन्ता

का परित्याग करके असत् विषयों के भोग का चिन्तन करेगा ? क्योंकि वियोपभोग का ही फल है वैतरणी नदी में गिरकर अनेक प्रकार के कर्म फलों को भोगना ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

एतदेवान्यचिन्तानिन्दया द्रढयति-क इति । तां तथाभूतां परस्य हरेरनुचिन्तां धारणामनादृत्य पशून्कर्मजडान्विना । **'यथा पशुरेवायं स देवानाम्'** इति श्रुतेः । असतीं विषयचिन्तां को नाम कुर्यात् । तया चिन्तया वैतरण्यां पतितं, तत्र च स्वकर्मजानाध्यात्मिकादिक्लेशान्सेवमानं जनं पश्यन् । वैतरणी यमस्य द्वारस्था नदी तत्तुल्यत्वात्संसृतिर्वैतरणी ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

इस बात का समर्थन अन्य चिन्ताओं की निन्दा के माध्यम से **कस्ताम् इत्यादि** श्लोक द्वारा करते हैं । पशुओं के समान तत्-तत् कर्मों के अनुष्ठान में ही लगे रहने वाले कर्म जड़ों को छोड़ कर दूसरा कौन ऐसा मनुष्य होगा जो उपर्युक्त प्रकार की परमात्मानुचिन्तन रूपी धारणा का परित्याग करके अपने को असत् (मिथ्या) विषयों की सेवा में लगा देगा ? केवल कर्मों के अनुष्ठान में ही लगे रहने वाले की निन्दा करती हुयी श्रुति भी कहती है **'यथा पशुरेवायं स देवानाम्'** वह कर्मों के ही करने में लगे रहने वाला देवताओं के पशु के समान है । उन असत् कर्मों की चिन्ता में कौन लग सकता है ? कर्मों का ही निरन्तर चिन्तन करने के कारण वे जीव अपने कर्मजन्य अनेक प्रकार के क्लेशों को वैतरणी नदी में गिरकर भोगते रहते हैं । ऐसे जीवों को देखकर भी वह कैसे केवल कर्मपरायण हो सकता है ? यम के द्वार पर विद्यमान नदी का नाम वैतरणी है । उसमें गिरकर वे जीव अनेक प्रकार के कष्टों को भोगते हैं । उस वैतरणी नदी के ही समान यह सृष्टि रूपी वैतरणी है ।।७।।

**केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।**
**चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति ।।८।।**

**अन्वयः**— केचित् स्वदेहान्तः हृदयावकाशे वसन्तम् प्रादेशमात्रं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं चतुर्भुजं पुरुषं धारणया स्मरन्ति ।।८।।

**अनुवाद**— कुछ ऐसे भी भाग्यवान् साधक हैं जो अपने शरीर के भीतर विद्यमान हृदयाकाश में रहने वाले, प्रादेशमात्र शरीर वाले, कमल, चक्र, शङ्ख तथा गदा धारण करने वाले चार भुजाओं वाले पुरुष परमात्मा का धारणा के द्वारा स्मरण करते हैं ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

तामेवं धारणां सविशेषणामाह-केचिदिति षड्भिः । स्वदेहस्यान्तर्मध्ये यद्धृदयं तत्र योऽवकाशस्तस्मिन्वसन्तम् । प्रादेशस्तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्विस्तारः, स एव मात्रा प्रमाणं यस्येति हृदयपरिमाणं तत्रोपचर्यते । कञ्जं पद्मम् । रथाङ्गं चक्रम् ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

उस विशेषण विशिष्ट धारणा का **केचित्० इत्यादि** छह श्लोकों के द्वारा वर्णन करते हैं । अपने शरीर के भीतर जो हृदयाकाश है उसमें रहने वाले, प्रादेशमात्र शरीरक, हृदय के भीतर जो अवकाश है उसमें रहने वाले शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करने वाले परमात्मा का ध्यान करने वाले कुछ ही भाग्यवान पुरुष हैं । अङ्गूठे से लेकर तर्जनी पर्यन्त की दूरी को प्रादेश मात्र कहते है । हृदय के भीतर रहने वाले अन्तर्यामी परमात्मा का भी परिमाण प्रादेश मात्र ही है ।।८।।

**प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम् ।**
**लसन्महारत्नहिरण्मयाङ्गदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ।।९।।**

**अन्वयः**— प्रसन्नवक्त्रं, नलिनायतेक्षणम्, कदम्बकिञ्जलकपिशङ्गवाससम्, लसन्महारत्नहिरण्मयाङ्गदम् स्फुरन् महारत्न किरीट कुण्डलम् स्मरन्ति ।।९।।

**अनुवाद**— वे साधक प्रसन्नमुख वाले, कमल दल के समान सुन्दर तथा बड़े-बड़े नेत्रों वाले, कदम्ब पुष्प के समान पीताम्बर धारण किए हुए, जड़े गये महारत्नों से सुशोभित बिजाइठ धारण किए हुए एवं देदीप्यमान रत्न जटित किरीट तथा कुण्डल धारण किए हुए श्रीभगवान् का अपने हार्दाकाश में स्मरण करते हैं ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

नलिनं पद्मं तद्वत्प्रसन्ने आयते दीर्घे ईक्षणे यस्य। कदम्बकुसुमस्य किञ्जल्का: केसरास्तद्वत्पिशङ्गे पीते वाससी यस्य। लसन्ति महारत्नानि येषु तानि सुवर्णमयान्यङ्गदानि यस्य। स्फुरन्ति च तानि महारत्नानि च तन्मयानि किरीटकुण्डलानि यस्य ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रयुक्त सभी पद श्रीभगवान् के विशेषण हैं। हार्दाकाश में विराजमान श्रीभगवान् का मुख प्रसन्न एवं सुन्दर है। जिस तरह विकसित कमल के दल चौड़े और सुन्दर होते हैं उसी तरह श्रीभगवान् के नेत्र भी विस्तृत और मनोहर हैं, यह **नलिनायतेक्षणम्** पद का अर्थ है। कदम्ब पुष्प के पराग जिस तरह पीले होते हैं, उसी तरह के पीले पीताम्बरों को भगवान् धारण किए हुए हैं। वे अपनी भुजाओं में जिन विजाइठों को धारण किए हुए उनमें अत्यन्त मूल्यवान् रत्न जड़े हुए हैं। उनके किरीट और कुण्डलों के महान् रत्न चमक रहे हैं, इस प्रकार के श्रीभगवान् की धारणा साधक अपने हार्दाकाश में करते हैं ॥९॥

**उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ।**
**श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकन्धरमम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽऽचितम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपाद पल्लवम् श्रीलक्ष्मणम् कौस्तुभरत्नकन्धरं अम्लानलक्ष्म्या वनमालया अचितम् पुरुषं स्मरन्ति ॥१०॥

**अनुवाद**— योगेश्वरों ने अपने विकसित हृदय कमल की कर्णिका रूपी स्थान पर श्रीभगवान् के चरण कमलों को स्थापित कर रखा है। श्रीभगवान् श्रीवत्स नामक लक्ष्मीजी के चिह्न से सुशोभित हैं, उनके गले में कौस्तुभ मणि लटक रही है तथा तरोताजी शोभा से युक्त वनमाला को धारण किए हुए श्रीभगवान् का वे साधक अपने हृदय में धारणा के द्वारा चिन्तन करते हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

उन्निद्रं विकसितं यद्धृत्पङ्कजं तस्य कर्णिकैवाऽऽलयः स्थानं तस्मिन्। योगेश्वरैरास्थापितौ पादपल्लवौ यस्य। श्रीरेव लक्ष्म चिह्नं तद्युक्तम्। पामादिविहितो मत्वर्थीयो नप्रत्ययः। कौस्तुभरत्नं कन्धरायां यस्य। अम्लाना लक्ष्मीः शोभा यस्यास्तया वनमालया अचितं व्याप्तम् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के भी सभी पद श्रीभगवान् के विशेषण हैं। इन सभी पदों का विग्रह भी भावार्थ दीपिका में स्पष्ट है। वेदों में हृदय को कमलाकृति बतलाया गया है वह हृदय विकसित कमल के समान है। उसके बीच में विद्यमान जो कर्णिका है वही श्रीभगवन् का निवास स्थान है। योगेश्वरों ने अपने उस हृदय रूपी कमल की कर्णिका पर श्रीभगवान के लाल-लाल पल्लवों के समान अत्यन्त कोमल चरणों को स्थापित कर दिया है। उन श्रीभगवान् के वक्षस्थल में श्रीलक्ष्मी का पीतवर्ण का चिह्न विद्यमान है। तथा उनके गले में कौस्तुभ मणि लटक रही है। वे भगवान् जिस वनमाला को धारण किए हैं उसकी शोभा बिल्कुल तरोताजी है। उस माला से सुशोभित भगवान् की धारणा साधक जन किया करते हैं ॥१०॥

**विभूषितं मेखलयाऽङ्गुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ।**
**स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलैर्विरोचमानाननहासपेशलम् ॥११॥**

**अन्वयः**— मेखलया, महाधनैः अङ्गुलीयकै, महाधनैः नूपुर कङ्कणादिभिः विभूषितम्, स्निग्धामलकुञ्चितनीलकुन्तलैः विरोचमानं हासपेशलम् आननम् पुरुषं हृदयावकाशे धारणया स्मरन्ति ॥११॥

**अनुवाद**— कमर में करधनी, अङ्गुलियों में बहुमूल्य अङ्गूठी, चरणों में नुपूर और हाथ में कङ्गन आदि आभूषणों को धारण किए हुए चिकने स्वच्छ घुघराले तथा काले केशों से सुशोभित एवं मन्दमुसकान से मनोहर मुख वाले श्रीभगवान् का वे अपने हार्दाकाश में धारणा के द्वारा स्मरण करते हैं ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

स्निग्धत्वादिविशिष्टैः कुन्तलैर्विरोचमाने आनने यो हासस्तेन पेशलं सुन्दरम् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

काले घुंघराले केश जिस पर लटक आये हैं ऐसे मुस्कान से मनोहर बने मुख से युक्त श्रीभगवान् की धारणा करे ॥११॥

**अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् ।**
**ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयाऽवतिष्ठते ॥१२॥**

**अन्वयः**— अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् चिन्तामयम् एनम् ईश्वरम् मनः यावद् धारणया अवतिष्ठेत् तावत् ईक्षेत् ॥१२॥

**अनुवाद**— लीला पूर्ण उन्मुक्त हास्य एवं अवलोकन से सुशोभित भौहों के द्वारा जिनका बहुत अनुग्रह सूचित होता है ऐसे चिन्तन के द्वारा आविर्भूत श्रीभगवान् का तब तक साधक को दर्शन करते रहना चाहिए जब तक मन धारणा के द्वारा उनमें लगा रहे ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

अदीनमुदारं यल्लीलाहसितं तेन यदीक्षां तस्मिन्नुल्लसन्तो ये भ्रूभङ्गा भ्रूविक्षेपास्तैः संसूचितो भूरिरनुग्रहो येन। चिन्तामयं चिन्तया आविर्भवन्तम् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक का पूर्वाद्ध एक ही पद है, और वह श्रीभगवान् का विशेषण है । इसका विग्रह भी भावार्थ दीपिका में दिया गया है । इस पद का अभिप्राय है कि श्रीभगवान लीला पूर्वक उन्मुक्त भाव से मुसकुरा रहे हैं। उसके कारण उनकी उठी हुयी जो सुन्दर भौहें हैं उसके द्वारा वे अपने भक्तों पर विपुल मात्रा में अनुग्रह की वर्षा कर रहे हैं । धारणा के समय इस प्रकार से हृदय में आविर्भूत परमात्मा का तब तक ध्यान के माध्यम से दर्शन करते रहना चाहिए जब तक कि धारणा के द्वारा मन उनमें लगा रहे ॥१२॥

**एकैकशोऽङ्गानि धियाऽनुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ।**
**जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत् परं परं शुध्यति धीर्यथा यथा ॥१३॥**

**अन्वयः**— गदाभृतः पादादिहसितं यावत् एकैकशः अङ्गानि धिया अनुभावयेत् । यथा-यथा धीः शुद्धयति तथा-तथा जितं-जितं स्थानम् अपोह्य परं परं धारयेत् ॥१३॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के पैर से लेकर मुसकान युक्त मुख पर्यन्त एक-एक अङ्ग का बुद्धि के द्वारा ध्यान करना

चाहिए, जैसे-जैसे बुद्धि शुद्ध होकर स्थिर होती जाती है, वैसे ही वैसे श्रीभगवान् का जो-जो अङ्ग स्वाभाविक रूप से प्रकाशित होने लगे उस-उस को छोड़कर उसके ऊपर के घुटना जङ्घा इत्यादि अङ्गों की धारणा करता जाय ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

अस्यैव ध्यानमाह-एकैकश इति । अनुभावयेद्ध्यायेत् । यद्यज्जितमयत्नतः स्फुरितं पादगुल्फादिस्थानमवयवस्तत्तदपोह्य त्यक्त्वा परं परं जङ्घाजान्वादि धारयेद्ध्यायेत् शुध्यति तस्मिन्निश्चला भवति ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के ही ध्यान को एकैकशः इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीशुकदेवजी बतलाते हैं । साधक को चाहिए कि वह श्रीभगवान् के पैर से लेकर मुख पर्यन्त एक-एक अङ्ग की धारणा करे । ध्यान के अभ्यास के कारण श्रीभगवान् का जो-जो अङ्ग स्वाभाविक रूप से बुद्धि में प्रकाशित होने लगे, उसको छोड़कर उससे ऊपर के अङ्गों का ध्यान करना चाहिए श्रीभगवान् की धारणा से जैसे-जैसे बुद्धि शुद्ध होती जाती है, वैसे ही वैसे चित्त स्थिर होता जाता है ॥१३॥

**यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ।**
**तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत् ॥१४॥**

**अन्वयः**— यावत् अस्मिन् परावरे द्रष्टरि विश्वेश्वरे भक्तियोगः न जायेत तावत् क्रियावसाने पुरुषस्य स्थवीयः रूपं प्रयतः स्मरेत् ॥१४॥

**अनुवाद**— राजन् ! जब तक स्वेतर समस्त जीवों से श्रेष्ठ, द्रष्टा, तथा सम्पूर्ण जगत् के नियामक परमात्मा में साधक का प्रेम पूर्ण भक्तियोग नहीं उत्पन्न हो जाय तब तक वह अपनी नित्य नैमित्तिक क्रियाओं के अन्त में परम पुरुष परमात्मा के इस स्थूल रूप का प्रयत्न पूर्वक स्मरण करता रहे ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तवैराजधारणाया एतद्धारणाङ्गत्वमाह-यावदिति । परे ब्रह्मादयोऽवरे यस्मात् । कुतः विश्वेश्वरे द्रष्टरि न तु दृश्ये, चैतन्यघनत्वात् । भक्तियोगः प्रेमलक्षणः । क्रियावसाने आवश्यककर्मानुष्ठानानन्तरम् । अनेन कर्मापि भक्तियोगपर्यन्तमेवेत्युक्तम्। प्रयतो नियमतत्परः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त वैराज धारण का यह धारणा अङ्ग है इस बात को **यावन्न० इत्यादि** श्लोक से शुकदेवजी ने बतलाया है । श्रीभगवान् को परावर इस लिए कहा गया है कि ब्रह्मा इत्यादि देवता भी श्रीभगवान् की अपेक्षा हीन कोटि के हैं । वे भगवान् सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं । वे द्रष्टा है, दृश्य नहीं है क्योंकि वे ज्ञान घन स्वरूप हैं उन परमात्मा में जब तक भक्तियोग साधक का नहीं उत्पन्न हो जाय तब तक आवश्यक कर्मों के अनुष्ठान के पश्चात् नियम पूर्वक परमात्मा के इस स्थूल रूप का ध्यान करना चाहिए । यह कहकर उन्होंने यह बतलाया कि कर्मों का अनुष्ठान भी तब तक ही करना चाहिए जब तक भक्तियोग नहीं उत्पन्न हो जाय । उसके पश्चात् तो सभी कर्मों का त्याग ही हो जाता है ॥१४॥

**स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यतिर्यदा जिहासुरिममङ्ग लोकम् ।**
**काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥१५॥**

**अन्वयः**— अङ्ग ! यदा यतिः इमम् लोकम् जिहासुः तदा देशे काले च मनः न सज्जयेत अपितु सुखं स्थिरं च आसनं आश्रितः जितासुः मनसा प्राणं नियच्छेत् ॥१५॥

**अनुवाद**— राजन् जब घर से निकला हुआ योगी, इस लोक का परित्याग करना चाहे तो वह तीर्थादि पुण्य स्थानों तथा उत्तरायण आदि काल विशेष में मन को आसक्त न करे, क्योंकि देश और काल योगी की सिद्धि (मुक्ति प्राप्ति) के साधन नहीं हैं अपितु वह सुख पूर्वक स्थिर आसन पर बैठकर जितेन्द्रिय होकर अपने प्राणों का जीते ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

एवं तावदासन्नमृत्योः पुंसः कृत्यमुक्तम्, इदानीं तस्यैव स्वयं देहं त्यक्तुमिच्छतः कृत्यमाह-स्थिरमिति सार्धैश्चतुर्भिः । अङ्ग हे राजन्, एवंभूतो यतिर्यदा इमं लोकं देहं जिहासुर्हातुमिच्छति, तदा देशे पुण्यक्षेत्रे काले चोत्तरायणादौ मनो न सज्जयेत् सङ्गं न प्रापयेत् । न हि देशकालौ योगिनः सिद्धिहेतू, किंतु योग एवेति दृढनिश्चयो भूत्वा स्थिरं सुखकरं चासनमास्थितः प्राणं नियच्छेदित्यर्थः ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

यहाँ तक जिसकी मृत्यु सन्निकट होए ऐसे व्यक्ति के द्वारा किए जाने वाले आवश्यक कर्मों को बतलाया गया है । अब शुकदेवजी शरीर त्याग करने के इच्छुक राजा परीक्षित् को उनके द्वारा किए जाने योग्य कर्मों को **स्थिरं सुखम्** इत्यादि साढे चार श्लोकों द्वारा बतला रहे हैं । वे कहते हैं— राजन् ! जब संसार से विरक्त योगी इस लोक का परित्याग करना चाहता है तब उसे पुण्य क्षेत्र इत्यादि देशों तथा उत्तरायण काल इत्यादि में अपने मन को नहीं लगाना चाहिए; क्योंकि योगियों को सिद्धि किसी देश विशेष अथवा काल विशेष के द्वारा नहीं प्राप्त होती है अपितु योग के द्वारा ही उनको सिद्धि (मुक्ति) मिलती है, यह दृढ निश्चय कर लेना चाहिए । उसके पश्चात् योगी को सुखप्रद और स्थिर आसन पर बैठकर इन्द्रियों को अपने वश के करके प्राणों को नियन्त्रित करना चाहिए ॥१५॥

**मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि ।**
**आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्यात् ॥१६॥**

**अन्वयः**— स्व अमलया बुद्ध्या मनः नियम्य एतां क्षेत्रज्ञे निनयेत् तम् आत्मनि, आत्मानम् आत्मनि अवरुध्य धीरः लब्धोपशान्तिः कृत्यात् विरमेत ॥१६॥

**अनुवाद**— अपनी निर्मल बनी बुद्धि के द्वारा मन को विषयों से हटाकर उसको बुद्धि में लीन कर दे। उसके पश्चात् बुद्धि को क्षेत्रज्ञ में लीन करे । क्षेत्रज्ञ को आत्मा में लीन करे और आत्मा को परमात्मा में लीन करे । उसके पश्चात् शान्ति प्राप्त वह धीर पुरुष सभी कर्मों से विरक्त हो जाय ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

तत् गृहीतविषयं मनो बुद्ध्या निश्चयरूपया नियम्य तन्मात्रं कृत्वा, एता बुद्धिं क्षेत्रज्ञे बुद्ध्यादिद्रष्टरि निनयेत्प्रविलापयेत्। तं च क्षेत्रज्ञमात्मनि शुद्धे । तं च शुद्धमात्मानमात्मैवाहमित्यामनि शुद्धे ब्रह्मण्यवरुध्यैकीकृत्य लब्धोपशान्तिः प्राप्तनिर्वृतिः सन् कृत्याद्विरमेत, ततः परं प्राप्याभावात् ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

योगी को चाहिए कि वह सर्वप्रथम वह अपनी निर्मल बुद्धि के द्वारा विषय प्रवण मन को विषयों से हटा ले । उसके पश्चात् वह उस मन को अपनी स्वच्छ बुद्धि में लीन कर दे । उसके पश्चात् उस बुद्धि को क्षेत्रज्ञ में लीन करे । उस क्षेत्रज्ञ को शुद्ध आत्मा अन्तर्यामी में लीन करे । उस शुद्ध आत्मा की मैं आत्मा ही हूँ इस प्रकार से मानते हुए उसे शुद्ध ब्रह्म में लीन करके शान्ति प्राप्त कर ले । और शान्ति प्राप्त करके वह अपने प्रयास से विरत हो जाय क्योंकि परंब्रह्म की प्राप्ति से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु उसके लिए प्राप्य रह ही नहीं जाती है ॥१६॥

**न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ।**
**न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥१७॥**

**अन्वयः**— यत्र अनिमिषां परः प्रभुः कालः न, कुतः, नुदेवाः, ये जगताम् ईशिरे । यत्र सत्त्वं न, रजः तमश्च न, न वै विकारः, न महान्, न प्रधानम् ॥१७॥

**अनुवाद**— जिस अवस्था में देवताओं का भी नियामक काल कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता है, तो देवता वहाँ पर क्या कर सकते हैं ? और मनुष्यों के नियामक राजागणों के विषय में क्या कहना है ? वे तो उस अवस्था में कुछ भी नहीं कर सकते हैं । उस अवस्था में सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, अहङ्कार महान् तथा प्रकृति भी नहीं रहती है ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह-न यत्रति । यत्रात्मस्वरूपे कालो न प्रभुः किमपि कर्तुं न समर्थः । अतएव देवा न प्रभव इत्याह । अनिमिषां देवानां परः प्रभुः कालोऽपि यत्र न प्रभुस्तत्र कुतो नु देवाः प्रभवेयुः । दैवनियम्यानां तु जगतां प्राणिनां का वार्तेत्याह-जगतामिति। कुतो न प्रभवन्तीत्यपेक्षायां निरुपाधित्वादित्याह-न यत्रेति । यद्वा जगत्कारणान्यपि न यस्य सृष्ट्यादौ प्रभवन्तीत्याह-न यत्रेति । विकारोऽहङ्कारः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

**न यत्र इत्यादि** श्लोक के द्वारा उपर्युक्त अवस्था का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं जिस ब्रह्मरूप आत्मा के विषय में काल कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता है, तो काल के नियाम्य भूत देवता अथवा मनुष्य क्या कर सकते हैं ? अब प्रश्न उठता है कि उस आत्मा के स्वरूप के विषय में काल, देवता अथवा मनुष्य कुछ भी क्यों नहीं कर पाते हैं तो उसके उत्तर में बतलाते हैं कि जीव की वह स्थिति निरूपाधिक है । सोपाधिक अवस्था में ही जीवात्मा पर कालादि का प्रभाव होता है । उस ब्रह्मस्वरूप आत्मा के विषय में सत्त्व, रजस, तमस् अहङ्कार महान् अथवा प्रकृति का भी संस्पर्श नहीं रहता है । उस स्थिति में पहुँचा हुआ उपासक शुद्ध आत्मस्वरूप होता है श्लोक में विकार शब्द से अहङ्कार को कहा गया है ॥१७॥

**परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ।**
**विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥१८॥**

**अन्वयः**— यत् अतत् नेति-नेति उत्सिसृक्षवः दौरात्म्यम् विसृज्य अर्हपदं पदे पदे हृदा उपगुह्य अनन्य सौहृदाः सन्तः तद् वैष्णवं पदं परं आमनन्ति ॥१८॥

**अनुवाद**— चूकि योगिजन, आत्म व्यतिरिक्त वस्तुओं को यह नहीं यह नहीं इस प्रकार से कहकर त्याग देना चाहते हैं । देह आदि में आत्मत्व का परित्याग करके पूज्य भगवान् विष्णु के पद को प्रतिक्षण हृदय से लगाकर, श्रीभगवान् के चरणों से ही जिन योगियों का सौदार्ह है, वे लोग भगवान् विष्णु के ही पद को सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

निरूपाधित्वं कुत इत्यत आह-परमिति । यद्यस्मात् अतत् आत्मव्यतिरिक्तं नेति नेतीत्येवमुत्स्रष्टुमिच्छवो दौरात्म्यं देहाद्यात्मत्वं विसृज्य अर्हस्य पूज्यस्य श्रीविष्णोः पदं पदे पदे क्षणे क्षणे हृदा उपगुह्य आश्लिष्य नान्यस्मिन्सौहृदं येषां तथाभूताः सन्तस्तद्वैष्णवं पदम् अतएव परं सर्वतः श्रेष्ठमामनन्तीत्यन्वयः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

आत्मा के उस स्वरूप को निरूपाधिक बतलाते हुए कहते हैं— चूकि आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं को त्याग देने की इच्छा वाले योगिजन यह नहीं, यह नहीं इस तरह से कहकर देहादि में होने वाले आत्मत्व भ्रम को त्यागकर पूज्य भगवान् विष्णु के पद (चरणों) को ही सदा हृदय से लगाकर उससे भिन्न सभी वस्तुओ से सौहार्द रहित वे श्रीभगवान् के चरणों को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं ॥१८॥

**इत्थं मुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः ।**
**स्वपार्ष्णिनापीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥१९॥**

**अन्वयः**— विज्ञानदृग्वीर्यः सुरन्धिताशयः व्यवस्थितः मुक्तिः तु इत्थम् उपरमेत् स्वपार्ष्णिना गुदं निपीड्य ततः अनिलं षट्सु स्थानेषु उन्नमयेत् ॥१९॥

**अनुवाद**— शास्त्रजन्य ज्ञान दृष्टि के बल से जिसके चित्त की वासना नष्ट हो गयी है उस योगी को अपने शरीर का त्याग इस तरह करना चाहिये । सर्वप्रथम वह अपनी एंडी से गुदा को दबाकर स्थिर हो जाय उसके पश्चात् बिना घबड़ाहट के प्राणवायु को वह ऊपर की ओर ले जाय ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

तस्मादित्थं ब्रह्मत्वेन व्यवस्थितो मुनिरुपरमेत् । तुशब्देन **'यदि प्रयास्यन्'** इति वक्ष्यमाणात्सकामाद्विशेष उक्तः । तमाह। विज्ञायतेऽनेनेति विज्ञानं शास्त्रं तेन जाता दृग् ज्ञानं तस्य वीर्य बलं तेन सुरन्धिता विहिंसिता आशया विषयवासना यस्य सः । इदानीं तस्य देहत्यागप्रकारमाह । स्वपार्ष्णिना पादमूलेन गुदं मूलाधारमापीड्य निरुध्यानिलं प्राणमुन्नमयेदूर्ध्वं नयेत् जितःक्लमो येन । षट्सु स्थानेषु नाभ्यादिषु ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्म की प्राप्ति के प्रकार को बतलाने के लिए इस श्लोक में देह से उत्क्रमण करने के प्रकार को बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं— इस प्रकार से ब्रह्म रूप से व्यवस्थित योगी ऊपरत हो जाय । श्लोक के तु शब्द के द्वारा इस अध्याय के बाइसवें श्लोक में जिसको बतलाया जायेगा उस सकाम उत्क्रमण की अपेक्षा इसकी विशेषता बतलायी गयी है । इसी को बतलाते हुए कहते है शास्त्रजन्य ज्ञान के बल से जिसने अपनी चित्त की वासना को नष्ट कर दिया है, उसी के देह त्याग के प्रकार को बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं कि सर्वप्रथम अपनी एंडी से अपने मूलाधारचक्र गुदा को दबाकर प्राण वायु को ऊपर की ओर बिना किसी घबड़ाहट के नाभि आदि के क्रम से ऊपर की ओर ले जाय ॥१९॥

**नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ।**
**ततोऽनुसंधाय धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥२०॥**

**अन्वयः**— नाभ्यां स्थितं हृदि अधिरोप्य तस्मात् उदानगत्या मुनि तं नयेत। ततः धिया अनुसंधाय शनकैः स्वतालुमूलं नयेत ॥२०॥

**अनुवाद**— मनस्वी योगी को चाहिये कि वह नाभिचक्र (मणि पूरक चक्र) में स्थित वायु को हृदय चक्र (अनाहतचक्र) में स्थापित करके, वहाँ से उदान वायु के द्वारा वक्षः स्थल के ऊपर विशुद्धिचक्र में लाये उस वायु को धीरे-धीरे तालु के मूल में विशुद्धिचक्र के अग्रभाग में लाये ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

नाभ्यां मणिपूरके स्थितं हृदि अनाहतचक्रेऽधिरोप्य । उरसि कण्ठादधोदेशे स्थिते विशुद्धिचक्रे । मनस्वी जितचित्तः। स्वतालुमूलं तस्यैव चक्रस्याग्रदेशम् । ततो बहुधा गमनसंभवाच्छनकैरित्युक्तम् ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

नाभि में विद्यमान मणिपूरकचक्र में स्थित वायु को हृदय में विद्यमान अनाहतचक्र में स्थापित करे फिर उस वायु को वक्षःस्थल से ऊपर तथा कण्ठ के नीचे विद्यमान विशुद्धिचक्र में लाकर जिसने अपने मन को वश में कर लिया है जिसने वह योगी तालु के मूल में विद्यमान उस चक्र के अग्रभाग में वायु को धीरे-धीरे लाये, अन्यथा वह दूसरी ओर चली जा सकती है ॥२०॥

**तस्माद्भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत निरुद्धसप्तास्वयनोऽनपेक्षः ।**
**स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परं गतः ॥२१॥**

**अन्वयः**— तस्माद् भ्रुवोः अन्तरम् उन्नयेत निरुद्धसप्तास्वयनः । अनपेक्षः मुहूर्तार्धम् स्थित्वा अकुण्ठदृष्टिः मूर्धम् निर्भिद्य परं गतः विसृजेत् ॥२१॥

**अनुवाद**— उस विशुद्धिचक्र से प्राण वायु को दोनों भौहों के मध्य में स्थित आज्ञाचक्र में लाये । यदि उसको किसी लोक में जाने की इच्छा न हो ता वह प्राणों के निकलने के जो सात (दो आँख, दो नाक, दो कान और मुख) मार्गो को रोककर वहाँ दो घड़ी (आधा मुहूर्त) ठहरकर अपने ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके शरीर तथा इन्द्रियों आदि का त्याग कर दे ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

तस्माद्भ्रुवोरन्तरमाज्ञाचक्रम् । निरुद्धानि श्रोत्रे नेत्रे नासिके मुखं चेत्येवं सप्तास्वयनानि प्राणमार्गा येन सः । अनपेक्षश्चेत्परं ब्रह्म गतः सन् मूर्धन्मूर्धनि ब्रह्मरन्ध्रे निर्भिद्य देहमिन्द्रियाणि च विसृजेत् ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

उस विशुद्धि चक्र के अग्रभाग से प्राणवायु को दोनों भौहों के बीच में विद्यमान आज्ञा चक्र में लाये फिर दोनों आँख, दोनों नाक, दोनों कान एवं मुख इन सातो प्राण के निकलने के मार्ग को रोककर यदि योगी की किसी लोक में जाने की इच्छा न हो तो वह वहाँ प्राण वायु के साथ आधा मुहूर्त (दो घड़ी) तक रहकर मुर्धा प्रदेश में विद्यमान ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके शरीर तथा इन्द्रियों आदि को त्याग देना चाहिए ॥२१॥

**यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् ।**
**अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥२२॥**

**अन्वयः**— नृप यदि पारमेष्ठ्यं उत वैहायसानाम् यद्विहारम् अष्टाधिपत्यम् गुण सन्निवाये प्रयास्यन् मनसा इन्द्रियैः च सहैव गच्छेत् ॥२२॥

**अनुवाद**— राजन् यदि योगी की इच्छा हो कि मैं ब्रह्मलोक में जाऊँ और अणिमा आदि आठो सिद्धियों को प्राप्त करके आकाशचारी सिद्धों के साथ विहार करूँ अथवा ब्रह्माण्ड के सभी प्रदेशों में विचरण करूँ तो उसे मन तथा इन्द्रियों को साथ लेकर ही शरीर से निकलना चाहिए ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

सद्योमुक्तिमुक्त्वा क्रममुक्तिप्रकारमाह–यदीति दशभिः । यदि तु पारमेष्ठ्यं पदं प्रयास्यन्भवति । उत वैहायसानां खेचराणां सिद्धानां क्रीडास्थानम् । कीदृशम् । अष्टावाधिपत्यान्यणिमाद्यैश्वर्याणि यस्मिंस्तदपि प्रयास्यन् । क्व गुणसन्निवाये गुणसमुदायरूपे ब्रह्माण्डे । सर्वत्रेत्यर्थः । तर्हि देहत्यागावसरे मनश्चेन्द्रियाणि च न त्यजेत्, किंतु तैः सहैव तत्तल्लोकभोगार्थं गच्छेत् ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

सद्यःमुक्ति का वर्णन करने के बाद क्रममुक्ति के प्रकार का वर्णन **यदि प्रयास्यन्० इत्यादि** दश श्लोकों

द्वारा करते हैं । यदि योगी ब्रह्मलोक में जाना चाहे अथवा आकाश में चलने वाले सिद्धों का जो विहार स्थल है उसमें जाकर अणिमा आदि आठ सिद्धियों को प्राप्त करके विहार करना चाहे अथवा त्रिगुणमय ब्रह्माण्ड में ही सर्वत्र विचरण करना चाहे तो उसको देहत्याग के समय मन तथा इन्द्रियों का त्याग नहीं करना चाहिए, उसे उन लोकों में भोगों को प्राप्त करने के लिए मन एवं इन्द्रियों के साथ ही जाना चाहिए ॥२२॥

**योगेश्वराणां गतिमाहुरन्तर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् ।**
**न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति विद्यातपो योगसमाधिभाजाम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— पवनान्तरात्मनाम् विद्या तपो-योग-समधिभाजाम् योगेश्वराणाम् त्रिलोक्य अन्तः बहिः गतिमाहुः, कर्मभिः तं गतिम् न आप्नुवन्ति ॥२३॥

**अनुवाद**— वायु के भीतर जिनका लिङ्ग शरीर होता है, ऐसे विद्या (उपासना) तप (भगवद् धर्म) योग (अष्टाङ्ग योग तथा समाधि) एवं ज्ञान से युक्त योगेश्वरों की गति त्रिलोकी के भीतर और बाहर दोनों ओर बतलायी गयी है केवल कर्म करने वाले; योगेश्वरों की गति को नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

यतः कर्मगतिवन्न योगगतिःपरिच्छिन्नेत्याह । योगेश्वराणां त्रिलोक्या अन्तर्बहिश्च महर्लोकादिषु ब्रह्माण्डाद्बहिश्च गतिमाहुः। अत्र हेतुः- पवनस्यान्तः आत्मा लिङ्गशरीरं येषामिति । विद्या उपासना, तपो भगवद्धर्म, योगोऽष्टाङ्गः समाधिर्ज्ञानं, तान्येव भजन्ति तेषां या गतिस्ताम् ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि कर्म गति के समान योग की गति सीमित नहीं होती है, उसका कारण यह है कि योगेश्वरों का लिङ्ग शरीर वायु के भीतर अत्यन्त सूक्ष्म होता है । वे उपासना भगवद् धर्म, अष्टाङ्गयोग तथा ज्ञान से सम्पन्न होते हैं । अतएव योगेश्वरों की गति को केवल कर्म के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता है । योगेश्वरों की गति त्रिलोकी के भीतर और बाहर बिना किसी रोक-टोक के होती है ॥२३॥

**वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा ।**
**विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— नृप ! विहायसां ब्रह्मपथेन गतः सुषुम्नया वैश्वानरं याति, शोचिषा विधूतकल्मषः उदस्तात् हरेः चक्रं शैशुमारं प्रयाति ॥२४॥

**अनुवाद**— हे नृप ! आकाश नामक ब्रह्ममार्ग से जाकर सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा योगी अग्नि के अभिमानी देवता के लोक में जाता है । उसके ऊपर भगवान् विष्णु के शिशुमार चक्र में जाता है ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

तामाह वैश्वानरमित्यष्टभिः । शोचिषा ज्योतिर्मय्या विधूतस्त्यक्तः कल्को मलो येन सः । क्वाप्यसज्जमान इत्यर्थः । उदस्तादुपरिष्टाद्वर्तमानं हरेः संबन्धि तारारूपम् । नारायणाधिष्ठितमित्यर्थः । शैशुमारं चक्रं पञ्चमस्कन्धे वक्ष्यमाणं शिशुमाराश्रयं ज्योतिश्चक्रम् । चक्रस्थान्यादित्यादि ध्रुवान्तानि पदानि प्रयातीत्यर्थः ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

वैश्वानरम् इत्यादि आठ श्लोकों के द्वारा योगेश्वरों की गति का वर्णन करते हुए शुकदेवजी कहते हैं— आकाशस्थ ब्रह्मलोक मार्ग से गया हुआ योगी अग्नि के अभिमानी देवता के लोक में जाता है । वहाँ वह सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा जाता है । सुषुम्ना नाड़ी शरीर के बाहर भी फैली हुयी है । इस बात को वे उसको प्रकाशमयी बतलाकर

कहते हैं। वहाँ पर उसके सारे मल विनष्ट हो जाते है। उसकी कहीं भी आसक्ति नहीं होती है, उसके ऊपर श्रीहरि का जो तारा रूपी शिशुमार नामक ज्योतिश्चक्र है, उसमें वह जाता है। वह चक्र स्थानी आदित्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त के स्थानों में वह जाता है ॥२४॥

**तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः ।**
**नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा रमन्ते ॥२५॥**

**अन्वयः**— विष्णोः तत् तु विश्वनाभिम् अतिवर्त्य अणीयसा विरजेन आत्मना एकः अन्यैः नमस्कृतम् ब्रह्मविदाम् उपैति यत् कल्पायुषोः विबुधा रमन्ते ॥२५॥

**अनुवाद**— विष्णोः तत् तु विश्वनाभिम् अतिवर्त्य आणीयसा विरजेन आत्मना एकः अन्यैः नमस्कृतम् ब्रह्मविदाम् उपैति यत् कल्पायुषः विबुधा रमन्ते ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

तद्विष्णोश्चक्रम्। विश्वस्य नाभिं सूर्याद्याश्रयभूतम्। आविष्टलिङ्गत्वान्नाभिशब्दस्य न षण्ढत्वम्। अतिवर्त्यातिक्रम्य। परतः स्वर्गिणां गत्यभावादेक एव निर्मलेन लिङ्गशरीरेण ब्रह्मविदां स्थानमन्यैर्नमस्कृतं महर्लोकमुपैति। यत् यस्मिन्विबुधा महाकल्पायुषा भृग्वादयः ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

शिशुमार चक्र नामक भगवान् विष्णु का चक्र सूर्य आदि सम्पूर्ण विश्व का आश्रय है। आविष्ट लिङ्ग (अजहल्लिङ्ग) होने के कारण ही यहाँ नाभि शब्द का नपुंसक लिङ्ग में प्रयोग नहीं हुआ है। उस शिशुमारचक्र को पार करके योगी अपने अत्यन्त सूक्ष्म तथा निर्मल शरीर के द्वारा अन्य जीवों से नमस्कृत महर्लोक में अकेले जाता है। उस लोक में महाकल्प पर्यन्त जीने वाले भृगु आदि महर्षि रहते हैं ॥२५॥

**अथो अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ।**
**निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं यद्द्वैपरार्ध्यं तदु पारमेष्ठ्यम् ॥२६॥**

**अन्वयः**— अथो अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्यमानं विश्वं निरीक्ष्य सिद्धेश्वरजष्टधिष्ण्यं तदुपारमेष्ठयं, यद् द्विपरार्ध्यम् ॥२६॥

**अनुवाद**— कल्प के अन्त में शेषनाग के मुख से निकली हुयी अग्नि से भस्म होते हुए विश्व को देखकर योगी उस ब्रह्मलोक में चला जाता है जहाँ पर बड़े-बड़े सिद्धेश्वर विमानों पर निवास करते हैं। उस ब्रह्मलोक की आयु ब्रह्माजी की आयु के ही समान दो परार्द्धों की है ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

अथो अनन्तरं कल्पान्ते स विश्वं त्रैलोक्यमतिशयेन दह्यमानं निरीक्ष्य, तत्राप्यूष्मप्राप्तेः। यत् द्विपरार्धस्यायि तत्पारमेष्ठ्यं पदं प्रति निर्याति। सिद्धेश्वरैर्जुष्टानि धिष्ण्यानि विमानानि यस्मिंस्तत्। उत इति श्रैष्ठ्यं सूचितम् ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् कल्प के अन्त में शेष के मुख से निकली हुयी अग्नि के द्वारा जलते हुए विश्व को देखकर महर्लोक में उष्णता हो जाने के कारण जो दो परार्ध पर्यन्त रहने वाला है, उस ब्रह्मलोक में योगी चला जाता है। उस लोक में योगेश्वरों के द्वारा अधिष्ठित विमान रहते है। उत इस अव्यय के द्वारा ब्रह्मलोक की श्रेष्ठता को सूचित किया गया है ॥२६॥

**न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् ।**
**यच्चित्ततोऽदः कृपयाऽनिदंविदां दुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥२७॥**

**अन्वयः**— यत्र न शोकः, न जरा, न मृत्यु न आर्ति न च कुतश्चित् उद्वेगः, किंतु यत् चित्ततः, अदः अनिदं विक्षं कृपया दुरन्त दुःखप्रभवानुदर्शनात् ऋते ॥२७॥

**अनुवाद**— उस ब्रह्मलोक में शोक, जरा (बुढ़ापा), मृत्यु, आर्ति तथा किसी भी प्रकार का उद्वेग भी नहीं है अपितु इस ब्रह्मलोक को नहीं जानने के कारण संसार के जीवों को होने वाले कष्ट को देखकर जो संताप होता है, वहाँ के लोगों का केवल यह कष्ट है ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह-न यत्रेति । । अर्तिर्दुःखम् । उद्वेगो भयम् । किंतु चित्ततो हेतोर्यद्दुखं अदः ऋते तदेकं विना तत्कुतो भवति। अनिदंविदामिदं भगवतो ध्यानमजानतां प्राणिनां दुरन्तदुःखो यः प्रभवो जन्म तस्यानुदर्शनात्तेषां कृपया । यद्वा चित्तमोदो मनः पीडेति यत् तद्विना कुतश्चिदपि यत्र शोकादयो न सन्तीति । तत्र ब्रह्मलोकं गतानां त्रिविधा गतिः । ये पुण्योत्कर्षेण गतास्ते कल्पान्तरे पुण्यतारस्तम्येनाधिकारिका भवन्ति ये तु हिरण्यगर्भाद्युपासनाबलेन गतास्ते ब्रह्मणा सह मुच्यन्ते । ये तु भगवदुपासकास्ते स्वेच्छया ब्रह्माण्डं भित्त्वा वैष्णवं पदमारुहन्ति ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

**न यत्र० इत्यादि** श्लोक के द्वारा ब्रह्मलोक की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है आर्ति दुःख को कहते हैं । उद्वेग भय का बोधक है । शुकदेवजी बतला रहे हैं कि उस ब्रह्मलोक में शोक, जरा, मृत्यु, दुःख, भय इत्यादि कोई भी कष्ट नही है । केवल उन अज्ञानी जीवों को होने वाले कष्ट को देखकर उनको कष्ट होता है कि ये अज्ञानी जीव श्रीभगवान् के ध्यान को करना नहीं जानते हैं । उस ब्रह्मलोक में गये जीवों की तीन प्रकार की गति होती हैं—

१. जो लोग पुण्यातिरेक के कारण ब्रह्मलोक में जाते हैं, वे कल्पान्तर में अपने पुण्य के अनुसार वहाँ के कोई अधिकारी होते हैं ।

२. जो जीव ब्रह्माजी इत्यादि की उपासना के द्वारा ब्रह्मलोक में जाते हैं वे ब्रह्माजी के साथ ही मुक्त हो जाते हैं ।

३. जो लोग श्रीभगवान् की उपासना करके ब्रह्मलोक में जाते हैं वे अपनी इच्छा के अनुसार ब्रह्माण्ड का भेदन करके श्रीभगवान् के लोक में चले जाते हैं ॥२७॥

**ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनाऽपोऽनलमूर्तिरत्वरन् ।**
**ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिङ्गम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— ततो विशेषं प्रतिपद्य योगी निर्भयः त्वरन् तेनात्मना अपः अनलः मूर्ति ज्योतिर्मयः काले वायुमुपेत्य, वाय्वात्मना बृहदात्मलिङ्गं खम् प्राप्नोति ॥२८॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् ब्रह्मलोक में पहुँचा हुआ योगी निर्भय होकर अपने सूक्ष्म शरीर (लिङ्ग शरीर) को पृथिवी में मिला देता है । उसके पश्चात् शीघ्रता किए बिना वह पृथिवी रूप से जल को और जल रूप से अग्निमय आवरण को प्राप्त करता है । उसके पश्चात् वह ज्योति रूप से वायुरूप आवरण को प्राप्त करके वहाँ से ब्रह्म की अनन्तता के बोधक आकाश रूप आवरण में आ जाता है ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र प्रस्तुतस्य भगवद्भक्तस्य ब्रह्माण्डभेदनप्रकारमाह- तत इत्यादिना । तत्रेयं प्रक्रिया-ईश्वराधिष्ठितायाः प्रकृतेः केनचिदंशेन महत्तत्त्वं भवति । तस्यांशेनाहंकारः । तस्यांशेन शब्दतन्मात्रद्वारा नभः तस्यांशेन स्पर्शतन्मात्रद्वारा वायुः । तस्यांशेन रूपतन्मात्रद्वारा तेजः । तस्यांशेन रसतन्मात्रद्वारा आपः तदंशेन गन्धतन्मात्रद्वारा पृथ्वी । तैश्च मिलितैश्चतुर्दशभुवनात्मकं विराट्शरीरम् । तस्य च पञ्चाशत्कोटियोजनविशालस्य पृथिव्येवाण्डकटाहविशेषशब्दवाच्या कोटियोजनविशालं प्रथमावरणम् पञ्चाशत्कोटियोजनविशालमित्येके । ततश्चाबादीनां ये परिणता अंशास्तान्येवोत्तरोत्तरं दशगुणान्यावरणानि । अष्टमं तु प्रकृत्यावरणं व्यापकमेव । तदेवं स्थिते पृथिव्याद्यावरणभेदप्रकारः कथ्यते । ततो विशेषं प्रतिपद्य । लिङ्गदेहेन पृथिव्यात्मतां प्राप्येत्यर्थः। एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम् । निर्भयः कथं यास्यामीति शङ्काशून्यः । तेनात्मना पृथिवीरूपेण तन्निरन्तरा अपः प्रतिपद्य । अत्वरंस्त्वरामकुर्वन् तत्तदात्मत्वेन क्लेददाहादिशङ्काभावाद्यथेष्टं भोगान्भुञ्जान इत्यर्थः । एवं ज्योतिर्मयः सन् । काले भोगावसाने । बृहदात्मनो लिङ्गं परमात्ममूर्तित्वेनोपासनेषूक्तम् । यद्वा वेदशब्दात्मना तस्य प्रमापकमिति ।।२८।।'

### भाव प्रकाशिका

जिसका वर्णन यहाँ पर उपक्रान्त है उस भगवद् भक्त के द्वारा किए जाने वाले ब्रह्माण्ड भेदन के प्रकार का वर्णन **ततो० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जा रहा है । ब्रह्माण्डभेदन की प्रक्रिया इस प्रकार की है । परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित प्रकृति अपने अंश विशेष के द्वारा महत्तत्त्व बन जाती है । महत् तत्त्व के अंश से अहङ्कार उत्पन्न होता है । अहङ्कार के अंश विशेष से शब्द तन्मात्रा द्वारा आकाश उत्पन्न होता है । आकाश के अंश विशेष से स्पर्श तन्मात्रा द्वारा वायु की उत्पत्ति होती है । वायु के अंश विशेष से रूप तन्मात्रा द्वारा तेज की उत्पत्ति होती है । तेज के अंश विशेष से रस तन्मात्रा द्वारा जल की उत्पत्ति होती है, जल के अंश विशेष से रस तन्मात्रा द्वारा पृथिवी की उत्पत्ति होती है उन सबों के सम्मिश्रण द्वारा चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है । वह ब्रह्माण्ड पचास करोड़ योजन विशाल है । उसका पृथिवी ही प्रथम आवरण है । उसी को अण्डकटाह कहते है। यह पहला आवरण एक करोड़ योजन ऊँचा है । कुछ लोग इस प्रथम आवरण को पचास करोड़ योजन ऊँचा मानते हैं । अतएव जल आदि के जो परिणत अंश हैं वे ही पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर दश-दश गुना अधिक आवरण हैं, आठवाँ आवरण प्रकृति का है । वही व्यापक है इस प्रकार से आवरणों के ही भेदन का प्रकार इस श्लोक में कहा जा रहा है ।

**ततो विशेषंप्रतिपद्य० इत्यादि** योगी अपने लिङ्ग शरीर में पृथिवी तत्त्व को प्राप्त कर जाता है अर्थात् वह अपने को पृथिवी में मिला देता है । इस तरह से आगे भी समझना चाहिए । निर्भयः कहने का अर्थ है कि योगी को इस प्रकार की शङ्का ही नहीं होती है कि मैं कैसे बाहर जाऊँगा ।

**तेनात्म० इत्यादि-** वह पृथिवी रूप से ही जल के आवरण में चला जाता है । उसके बाद वह जल रूप से तेज के आवरण में चला जाता है । वहाँ उसको किसी प्रकार की शीघ्रता नहीं रहती हैं क्योंकि उसको इस प्रकार की शङ्का भी नहीं होती है कि मैं भींग जाऊँगा या जल जाऊँगा वह यथेष्ट मात्रा में भोगो को भोगता हुआ ही उत्तरोत्तर आवरण में जाता है । वह तेजोमय रूप से वायु के आवरण में चला जाता है । वहाँ पर भी भोगों के अन्त में वह उस आकाश के आवरण में चला जाता है । जिसको उपासनाओं के प्रसङ्ग में परमात्मा की मूर्ति कहा गया है । वह अपने गुण स्वरूप वेद शब्द के द्वारा परमात्मा का बोधक है ।।२८।।

**घ्राणेन गन्धं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ।**
**श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ।।२९।।**

**अन्वयः**— घ्राणेन गन्धं, रसनेन रसं, दृष्ट्या तु रूपम्, त्वचा श्वसनम्, श्रोत्रेण नभोगुणत्वं च उपेत्य योगी प्राणेन च आकूतिम् उपैति ।।२९।।

**अनुवाद**— इस प्रकार जब योगी स्थूल आवरणों को पार करता है उस समय उसकी इन्द्रियाँ भी अपने सूक्ष्म अधिष्ठान में लीन होती जाती हैं, इस बात को बतलाते हुए कहते हैं कि वह घ्राणेन्द्रिय के द्वारा गन्ध तन्मात्रा में, रसनेन्द्रिय के द्वारा रस तन्मात्रा में चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा रू तन्मात्रा में, त्वगिन्द्रिय के द्वारा स्पर्श तन्मात्रा में और श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा शब्द तन्मात्रा में एवं कर्मेन्द्रियाँ अपनी-अपनी क्रिया शक्ति में लीन में होकर अपने सूक्ष्म स्वरूप को प्राप्त कर लेती हैं ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

इन्द्रियार्थानां भूतसूक्ष्माणामतिक्रममाह । घ्राणेनाधिष्ठितेन गन्धमुपेत्य । श्वसनं स्पर्शम् । नभोगुणत्वं शब्दात्मताम् । प्राणेन तत्तत्कर्मेन्द्रियेण । आकूतिं तत्तत्क्रियाम् ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा इन्द्रियों के विषयभूतसक्ष्मों के अतिक्रमण को बतलाया गया है । वह घ्राण रूपी अधिष्ठान के द्वारा गन्धतन्मात्रा को प्राप्त करके, रसनेन्द्रिय के द्वारा रस तन्मात्रा को चक्षुन्द्रिय के द्वारा रूप तन्मात्रा तथा (वगिन्द्रिय के द्वारा) स्पर्श तन्मात्रा को तथा श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा शब्द तन्मात्रा को प्राप्त करके तथा भिन्न-भिन्न कर्मेन्द्रियों के द्वारा तत्-तत् क्रियाओं को प्राप्त करके योगी, आवरणों को पार करता है ।।२९।।

**स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् ।**
**संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसन्निरोधम् ।।३०।।**

**अन्वयः**— सः भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षम् मनोमयम् देवमयम् विकार्यं संसाद्य तेन सह गत्या गुणसन्निरोधम् विज्ञान तत्त्वं याति ।।३०।।

**अनुवाद**— योगी इस तरह से पञ्च भूतों के स्थूल तथा सूक्ष्म आवरणों को पार करके मन एवं इन्द्रियों के अधिष्ठाता अहङ्कार को प्राप्त करता है । यहाँ विकार्य शब्द से अहङ्कार को कहा गया है । वह भूतसूक्ष्मों को तामस अहङ्कार में लीन करता है एवं इन्द्रियों तथा मन के अधिष्ठाता देवताओं को सात्त्विक अहङ्कार में लीन करता है। उसके पश्चात् अहङ्कर के साथ लय रूपी गति के द्वारा वह महत् तत्त्व में प्रवेश करता है । और अन्त में सभी गुणों के लय स्थान प्रकृति नामक आवरण में लीन हो जाता है ।।३०।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं स्थूलसूक्ष्मभूतातिक्रममुक्त्वा तदावरणभूताहङ्कारप्राप्त्या महदादिप्राप्तिमाह । स योगी विकार्यं संसाद्य विज्ञानतत्त्वं याति । विविधं कार्यमस्येति विकार्योऽहङ्कारः । स त्रिविधः, तामसो राजसः सात्त्विक इति । तत्र तामसाज्जडानि भूतसूक्ष्माणि जायन्ते । राजसाद्बहिर्मुखानि दशेन्द्रियाणि । सात्त्विकान्मन इन्द्रियदेवताश्च । तेषां लयश्च तत्तदहङ्कारे तत्र भूतसूक्ष्माणामिन्द्रियाणां च सन्निकर्षं लयस्थानं तामसं, राजसं च मनोमयं देवमयं च सात्त्विकं प्राप्य । गत्या एवं गमनेन । तेनाहङ्कारेण सह विज्ञानतत्त्वं महत्तत्त्वं याति । ततो गुणानां सन्निरोधो लयो यस्मिंस्तत्प्रधानं याति ।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह स्थूल एवं सूक्ष्म भूतों के आवरणों के अतिक्रमण का वर्णन करके शुकदेवजी उसके आवरणभूत अहङ्कार की प्राप्ति के द्वारा महदादि की प्राप्ति का वर्णन करते हैं । वे बतलाते हैं कि वह योगी अहङ्कार को प्राप्त करके विज्ञान को प्राप्त कर लेता है । विविधं कार्यमस्य इस विग्रह के अनुसार विकार्य शब्द अहङ्कार का बोधक है । वह अहङ्कार तीन प्रकार का होता है, तामस, राजस एवं सात्त्विक । तामसाहङ्कार से जड भूतसूक्ष्म उत्पन्न होते हैं । राजसाहङ्कारसे बहिर्मुख दश इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है । सात्त्विक अहङ्कार से मन और इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न होते है । उन सबों का उन्हीं अहङ्कारों में लय हो जाता है ।

भूतसूक्ष्मों तथा इन्द्रियों का लय स्थान तामसाहङ्कार है । राजस मनोमय तथा देवमय सात्त्विक अहङ्कार को प्राप्त करके उसी में लीन हो जाते हैं । गति शब्द गमन का बोधक है । उस अहङ्कार के साथ योगी महत् तत्त्व (विज्ञान तत्त्व) को प्राप्त करता है ! उसके पश्चात् जिसमें सभी गुणों का लय हो जाता है उस प्रधान में वह लीन हो जाता है ॥३०॥

**तेनात्मनात्मानमुपैति शान्तमानन्दमानन्दमयोऽवसाने ।**
**एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽङ्ग ॥३१॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग तेन आत्मना आनन्दमयः अवसाने शान्तम् आनन्दम् आत्मानम् उपैति । यः एतां भगवतीं गतिं गतः स वै पुनः इह न विषज्जते ॥३१॥

**अनुवाद**— उस प्रधान रूप से आनन्दमय योगी उपाधियों के समाप्त हो जाने पर शान्त (विकार रहित) तथा आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । जो कोई भी इस भगवन्मयी गति को प्राप्त कर लेता है। वह फिर इस संसार में नहीं आता है ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

तेनात्मना प्रधानरूपेणानन्दमयः सन्नुपाधीनामवसाने शान्तमविकृतमानन्दं परमात्मानमुपैति न विषज्जते नावर्तत इत्यर्थः ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

उस प्रधान रूप से आनन्दमय स्वयम् उपाधियों के समाप्त हो जाने पर निर्विकार आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । यह गति भगवन्मयी गति है । इस गति से जाने वाला मनुष्य पुनः इस संसार में नहीं आता है ॥३१॥

**एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च ।**
**ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेवः ॥३२॥**

**अन्वयः**— हे नृप एते सृती वेदगीते सनातने च येत्वयाभिपृष्टे ते वर्णिते । ये वै पुरा ब्रह्मण पृष्टः आराधितो भगवान् वासुदेव आह ॥३२॥

**अनुवाद**— राजन् ! ये दो गतियाँ (सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति) वैदिक और सनातन हैं । प्राचीन काल में पूजन से प्रसन्न हुए भगवान् वासुदेव ब्रह्माजी द्वारा पूछे जाने पर इन दोनों गतियों का वर्णन किए थे ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

सृती मार्गौ, प्रकारावित्यर्थः । हे नृप, (अनपेक्षो) 'निर्भिद्य मूर्धन् विसृजेत्परं गतः' इति या सद्योमुक्तिः सैका सृतिः। 'यदि प्रयास्यन्' इत्यादिना क्रममुक्तिश्च द्वितीया सृतिः । एते सृती वेदेन गीते उक्ते ननु स्वोत्प्रेक्षिते । तत्र 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' इति सद्योमुक्तिः । 'तेऽर्चिरभिसंभवन्ति' इत्यादिना क्रममुक्तिश्च वेदेनोक्ता । यद्वा 'न कर्मभिसतां गतिमाप्नुवन्ति- इति दक्षिणमार्गस्यापि सूचितत्वादेते सृती इति द्विवचनम् । त्वयाऽभिपृष्टे 'यच्छ्रोतव्यं' इत्यादिप्रश्नेन, अर्थान्मुक्तिविषये द्वे अपि सृती पृष्टे । 'ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् इति दक्षिण मार्गोऽप्यर्थात्पृष्टः एवं त्वया च ये पृष्टे एते सृती सुखरूपो निर्विघ्नाश्च नास्त्येव ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त ये दोनों मुक्ति के मार्ग हैं, सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति । हे राजन् अनपेक्ष पुरुष ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके शरीर त्याग कर दे, इस तरह से मैंने सद्योमुक्ति नामक एक मार्ग को बतलाया है । **यदि प्रयास्यन्** इत्यादि श्लोकों के द्वारा मैंने क्रम मुक्ति को बतलाया है । यही दूसरा मुक्ति का मार्ग हैं । ये दोनों गतियाँ वेद वर्णित है

मनः कल्पित नहीं है। इसी का वर्णन श्रीभगवान् ने गीता के **यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते०** इत्यादि श्लोक के द्वारा सद्यो मुक्ति का वर्णन किया है। इस श्लोक का अर्थ है कि जिस अवस्था में उपासक के हृदय की सारी कामनायें समाप्त हा जाती हैं, उसी समय मर्त्य उपासक अमृत हो जाता है और इस लोक में ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। **'तेर्चिरिभिसम्भवन्ति'** यह श्रुति क्रम मुक्ति का वर्णन करती है। अथवा **न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति** इस वाक्य के द्वारा दक्षिण मार्ग (धूमादि मार्ग) के भी सूचित किए जाने के कारण एते सृती यह द्विवचनान्त प्रयोग किया गया है। राजन् आपने भी मुझसे जो (यच्छ्रोतव्यम्) इत्यादि प्रश्न के द्वारा जिन दोनों मार्गों को पूछा था उन दोनों को मैंने कह दिया। आपने **ब्रूहि यद्वा विपर्ययम्** इस वाक्य के द्वारा दक्षिण मार्ग को पूछा था। इस तरह से आपने जिन दोनों मार्गों के विषय में पूछा था वे ये ही दोनों गतियाँ हैं ॥३२॥

**न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह। वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥३३॥**

**अन्वयः**— इह संसृतौ विशतः इतः अन्यः शिवः पन्था नहि यतः भगवति वासुदेवे भक्तियोगो भवेत् ॥३३॥

**अनुवाद**— इस सृष्टि चक्र में पड़े हुए जीवों के लिए इन दोनों मार्गों से बढ़कर दूसरा कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं हैं जिससे कि भगवान् वासुदेव में भक्तियोग उत्पन्न हो सके ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

सन्ति संसरतः पुंसो बहवो मोक्षमार्गास्तपोयोगादयः, समीचीनस्त्वयमेवेत्याह नहीति। यतोऽनुष्ठिताद्भक्तियोगो भवेदतोऽन्यः शिवः सुखरूपो निर्विघ्नश्च नास्त्येव ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

इस संसारचक्र में संसरण करने वाले पुरुषों के लिए तपस्या योग इत्यादि अनेक मोक्ष के मार्ग हैं, किन्तु उन सबों में ये ही दोनों मार्ग समीचीन हैं। दूसरा कोई भी मार्ग समीचीन नहीं है जिसका अनुष्ठान करने से भगवान् वासुदेव में भक्तियोग उत्पन्न हो सके। अतएव सुख स्वरूप तथा निर्विघ्न ये ही दोनों मार्ग हैं ॥३३॥

**भगवान्ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया। तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥३४॥**

**अन्वयः**— कूटस्थो भगवान् ब्रह्मा कार्त्स्न्येन मनीषया अन्वीक्ष्य तद् अध्यवस्यत् यत् आत्मनि रतिर्भवेत् ॥३४॥

**अनुवाद**— निर्विकार भगवान् ब्रह्माजी ने तीन बार सम्पूर्ण वेदों का अवलोकन करके निश्चय किया जिसके द्वारा श्रीभगवान् में प्रेम हो वही सर्वश्रेष्ठ मार्ग हैं ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

कुत एतदत आह। भगवान्ब्रह्मा। कूटस्थो निर्विकारः। एकाग्रचित्तः सन्नित्यर्थः त्रिस्त्रीन्वारान् कार्त्स्न्येन ब्रह्म वेदमन्वीक्ष्य विचार्य। यत आत्मनि हरौ रतिर्भवेत्तदेव मनीषया अध्यवस्यत् निश्चितवान् ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

ये दोनों मार्ग सर्वश्रेष्ठ हैं यह कैसे कहा जा सकता है तो इसके उत्तर में शुकदेवजी कहते हैं **भगवान् ब्रह्म० इत्यादि** अर्थात् ब्रह्माजी निर्विकार हैं। वे ब्रह्माजी एकाग्रचित्त से सम्पूर्ण वेदों का अवलोकन करके विचार किए और निश्चय किए कि जिससे परमात्मा में प्रेमात्मिका भक्ति उत्पन्न हो वही सर्वश्रेष्ठ मार्ग हैं ॥३४॥

**भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः। दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥३५॥**

**अन्वयः**— भगवान् हरिः सर्वभूतेष स्वात्मना दृश्यैः बुद्धयादिभिः अनुमापकैः लक्षणै द्रष्टा लक्षितः ॥३५॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीहरि ही सम्पूर्ण चराचर भूतों में आत्मा रूप से लक्षित होते हैं, इन दृश्य बुद्धि आदि अनुमापक साधनों में वे द्रष्टा रूप से लक्षित होते हैं ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

नन्वनुभूतेऽर्थे रतिर्भवति, अननुभूते तु भगवति कथं रतिः स्यात्तत्राह । भगवान् लक्षितो दृष्टः कथम् । स्वात्मना क्षेत्रज्ञान्तर्यामितया । कैः दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिः । तदेव द्वेधा दर्शयति । दृश्यमानं जनानां दर्शनं स्वप्रकाशं द्रष्टारं विना न घटत इत्यनुपपत्तिमुखेन लक्षणैः स्वप्रकाशान्तर्यामिलक्षक तथा बुद्ध्यादीनि कर्तृप्रयोज्यानि, करणत्वात् वास्यादिवत् इति व्याप्तिमुखेनानुमापकैः । स्वतन्त्रश्च कर्त्रेत्येवमीश्वरसिद्धिः ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि प्रेम उसमें ही होता है जो विषय अनुभूत होता है । परमात्मा का तो अनुभव हुआ नहीं है, अतएव उनमें प्रेम कैसे हो सकता है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है कि परमात्मा का तो अपनी आत्मा के द्वारा क्षेत्रज्ञ के अन्तर्यामी रूप से दर्शन होता है । अब प्रश्न है कि उस अन्तर्यामी का साक्षात्कार कैसे होता है? इसका उत्तर है कि दृश्य बुद्धि आदि के द्वारा होता है । वह दो प्रकार से होता है । लोगों को दृश्य पदार्थों का दर्शन स्वप्रकाश द्रष्टा के बिना नहीं हो सकता है, इस प्रकार की अनुपपत्ति होने के कारण स्वप्रकाश अन्तर्यामी का ज्ञान **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** **'यतो वा इमानि'** इत्यादि लक्षण वाक्यों से होता है । तथा इस प्रकार के अनुमानों से भी होता है । बुद्धि आदि का प्रयोजक कोई न कोई कर्ता होगा; क्योंकि बुद्धि आदि तो करण है । वासी (वसूली) आदि के समान । अर्थात् कर्ता के द्वारा प्रयुक्त होने पर जैसे वसूली आदि के द्वारा चौकी आदि का निर्माण होता है, उसी तरह अन्तर्यामी आत्मा के द्वारा भी प्रेरित होकर बुद्धि आदि इन्द्रियाँ दर्शनादि का कार्य करती हैं । कर्त्ता स्वतन्त्र होता है । महर्षि पाणिनि भी कहते हैं । **स्वतन्त्रःकर्ता** क्रिया के करने में जो स्वतंत्र होता है, उसे ही कर्ता कहते हैं । जो करण होता है वह कर्ता के द्वारा की जाने वाली क्रिया में साधकतम होता है । महर्षि पाणिनि ने कहा है **साधकतमं करणम्** । करण सर्वदा कर्ता के अधीन ही रहकर कार्य करता है । इस तरह से ईश्वर की अन्तर्यामी रूप से सिद्धि हो जाती है ।।३५।।

**तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ।।३६।।**

**अन्वयः**— तस्मात् हे राजन् हरिः नृणाम् सर्वात्मना, सर्वत्र, सर्वदा श्रोतव्यः कीर्तितव्यः स्मर्तव्यः च ।।३६।।

**अनुवाद**— अतएव राजन् परीक्षित् मनुष्यों को चाहिए कि वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सर्वत्र तथा सर्वदा भगवान् श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करें ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

यच्छ्रोतव्यमित्यादि प्रश्नोत्तरमुपसंहरति- तस्मादिति ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने यह जो पूछा था कि जो सुनना चाहिए उसी प्रश्न के उत्तर का उपसंहार इस श्लोक के द्वारा शुकदेवजी ने किया है ।।३६।।

**पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् ।**
**पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ।।३७।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

**अन्वयः**— सताम् आत्मनः भगवतः ये श्रवण पुटेषु सम्भृतम् कथामृतम् पिबन्ति ते विषय विदूषिताशयं पुनन्ति, तच्चरण सरोरुहान्तिकम् व्रजन्ति ।।३७।।

**अनुवाद**— सन्त महापुरुषों की आत्मा स्वरूप परमात्मा के कथामृत को अपने कर्णपुट रूपी दोनों में भरकर जो लोग पीते हैं, वे विषयों के द्वारा दूषित हुए अपने अन्त:करण को पवित्र बना देते हैं, और उसके फलस्वरूप वे श्रीभगवान् के चरण कमलों के सन्निध्य को प्राप्त कर लेते हैं ।।३७।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध के पुरुषसंस्थान वर्णन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।**

## भावार्थ दीपिका

श्रवणादिफलमभिनयेनाह-पिबन्तीति । सतामात्मन आत्मत्वेन प्रकाशमानस्य कथैवामृतम् । विषयैर्विदूषितं मलिनीकृतमाशयं पुनन्ति शोधयन्ति । तस्य चरणपद्मान्तिकं श्रीविष्णुपदं व्रजन्ति ।।३७।।

**इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्याय: ।।२।।**

## भाव प्रकाशिका

श्रवण आदि के फल को **पिबन्ति इत्यादि** श्लोक के द्वारा अभिनय पूर्वक बतलाते हैं । श्रीभगवान् सन्त पुरुषों की आत्मा रूप से ही प्रकाशित होते हैं । उनकी कथा ही अमृत है । उस कथामृत का जो अपने कानों से श्रवण करते हैं, वे अपने विषयों के दोष से दूषित अन्त:करण को शुद्ध बना देते हैं । उसके फलस्वरूप श्रीभगवान् के चरण कमलों के सन्निधान को वे प्राप्त कर लेते हैं ।।३७।।

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध के द्वितीय अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२।।**

# तीसरा अध्याय

## कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना तथा भक्ति की प्रधानता का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम । नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥१॥**

**अन्वयः**— यद् भवान् मम पृष्टवान् यत् मनुष्येषु म्रियमाणानां कर्तव्यम् तत् एवम् एतन्निगदितम् ॥१॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— आपने मुझसे यह जो पूछा था कि म्रियमाण मनीषी मनुष्यों को क्या करना चाहिए ? उसका उत्तर मैंने विगत अध्याय में दे दिया ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

तृतीये विष्णुभक्तेषु वैशिष्ट्यं शृण्वतो मुनेः । भक्त्युद्रेकेण तत्कर्मश्रवणादर ईर्यते ॥१॥ इदानीमन्यदेवताभजनस्यापि पुत्रादिभजनवदेव तुच्छफलत्वेन हेयत्वं वक्तुं पूर्वोक्तमनुवदति–एवमिति । ममेति माम् । कदाचिद्दैवयोगेन मनुष्यत्वं प्राप्तेषु जीवेषु ये मनीषिणस्तेषां तत्रापि ये म्रियमाणास्तेषां विशेषत एवमेतद्धरिकथाश्रवणादिकं निगदितं विहितमित्यर्थः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

तीसरे अध्याय में भगवान् विष्णु की भक्ति का वैशिष्ट्य सुनने वाले मुनियों में भक्ति का उद्रेक हो जाता है अतएव श्रीभगवान् की लीलाओं को सुनने से होने वाले आदर का वर्णन किया जाता है ॥१॥

**इदानीम्०** इस अध्याय में जिस तरह पुत्रों इत्यादि की सेवा तुच्छ है, उसी तरह अन्य देवताओं की भी आराधना त्याज्य है, इस बात को बतलाने के लिए पूर्वोक्त अर्थ का अनुवाद एवम् शब्द से किया गया है । मम शब्द का अर्थ मुझको है ।

भाग्यवशात् मनुष्यत्व प्राप्त जीवों में जो मनीषी हैं तथा मरने ही वाले है, उन जीवों के लिए श्रीहरि की कथा विशेष रूप से विहित है । यह इस श्लोक का अभिप्राय है ॥१॥

**ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् । इन्द्रमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥२॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मवर्चसकामः ब्रह्मणस्पतिं यजेत, इन्द्रियकामः इन्द्रम्, प्रजाकामः प्रजापतींन् यजेत् ॥२॥

**अनुवाद**— ब्रह्मवर्चस (ब्रह्मतेज) चाहने वाले को ब्रह्माजी की आराधना करनी चाहिए, इन्द्रियों की पटुता चाहने वाला इन्द्र की पूजा करे, प्रजा (सन्तान) चाहने वाला प्रजापतियों की पूजा करे ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मणस्पतिं वेदस्य पतिं ब्रह्माणम् । इन्द्रियपाटवकामस्त्विन्द्रम् । प्रजाकामः प्रजापतीन् दक्षादीन् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणस्पति शब्द वेदों के स्वामी ब्रह्माजी का बोधक है । इन्द्रियों की पटुता चाहने वाला इन्द्र की पूजा करे और सन्तान चाहने वाला दक्ष इत्यादि प्रजापतियों की पूजा करे ॥२॥

**देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् । वसुकामो वसून्रुद्रान् वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥३॥**

**अन्वयः**— श्रीकामः मायां देवीम्, तेजः कामः विभावसुम्, वसुकामः वसून् वीर्यवान् वीर्यकामः रुद्रान् यजेत् ॥३॥

**अनुवाद**— श्रीचाहने वाले को दुर्गा देवी की पूजा करनी चाहिए, तेज चाहने वाला अग्नि की पूजा करे, धन चाहने वाला वसुओं की आराधना करे और गला काटने आदि साहसिक कार्य करने वाले को रुद्रों की पूजा करनी चाहिए ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

मायां दुर्गाम् । विभावसुमग्निम् । वसुकामो धनार्थी । वीर्यं प्रभवस्तत्कामो वीर्यवान्सन् रुद्रान् यजेत् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

माया शब्द से दुर्गादेवी को कहा गया है, विभावसु अग्नि को कहते है । धन चाहने वाले को वसुओं की पूजा करनी चाहिए, पराक्रम चाहने वाले पराक्रमियों को रुद्रों की पूजा करनी चाहिए ॥३॥

**अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ।**
**विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥४॥**

**अन्वयः**— अन्नाद्यकामः तु अदितिम्, स्वर्गकामः अदितेः सुतान्, राज्यकामः विश्वान्देवान् विशाम् संसाधकः साध्यान् यजेत् ॥४॥

**अनुवाद**— अन्न इत्यादि चाहने वाले को अदिति की आराधना करनी चाहिए, स्वर्गप्राप्त करना चाहने वाले को देवताओं की आराधना करनी चाहिए, राज्य चाहने वाले को विश्वेदेवों की पूजा करनी चाहिए और प्रजाओं को अनुकूल बनाये रखना चाहने वाले को साध्य देवताओं की आराधना करनी चाहिए ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्नाद्यं भोज्यं भक्ष्यं च अदितेः सुतान् द्वादशादित्यान् । विशां देशस्थप्रजानां स्वाधीनतामिच्छन् साध्यान्यजेत् ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

भोज्य तथा भक्ष्य पदार्थों को अन्नाद्य शब्द से कहा गया है । भोज्य भक्ष्य पदार्थों को चाहने वाले को अदिति की पूजा करनी चाहिए । स्वर्ग चाहने वाले को अदिति के पुत्र द्वादशादित्यों की आराधना करनी चाहिए । अपने देश की प्रजाओं को अपने अधीन बनाना चाहने वाला राजा साध्य देवताओं की पूजा करे ।।४।।

**आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत्। प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ।।५।।**

**अन्वयः**— आयुष्कामः अश्विनौ देवौ, पुष्टिकामः इलाम्, प्रतिष्ठा कामः पुरुषः लोकमातरौ रोदसी यजेत् ।।५।।

**अनुवाद**— आयु चाहने वाला दोनों अश्विनी कुमारों की पूजा करें; पुष्टि चाहने वाला पृथिवी की तथा प्रतिष्ठा चाहने वाला पुरुष पृथिवी और आकाश की पूजा करे ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

इलां पृथ्वीम् । प्रतिष्ठा स्थानादप्रच्युतिः । रोदसी द्यावाभूमी ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

इला शब्द पृथिवी का वाचक है, अपने स्थान पर बने रहने को प्रतिष्ठा कहते हैं । रोदसी शब्द द्युलोक (अकाश) और भूमि दोनों का वाचक है । द्युलोक और भूमि ये दोनों लोक माताएँ हैं ।।५।।

**रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सर उर्वशीम् । आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत् परमेष्ठिनम् ।।६।।**

**अन्वयः**— रूपाभिकामः गन्धर्वान्ः स्त्रीकामः अप्सरउर्वशीम्, सर्वेषाम् आधिपत्यकामः परमेष्ठिनाम् यजेत् ।।६।।

**अनुवाद**— सौन्दर्य प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष गन्धर्वों का यजन करे; सुन्दर स्त्री प्राप्त करना चाहने वाले को उर्वशी नामक अप्सरा की पूजा करनी चाहिए, और सबों पर स्वामित्व प्राप्त कने की इच्छा वाला ब्रह्माजी का यजन करें ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

अप्सराश्चासावुर्वशी च ताम् ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

अप्सरउर्वशीम् पद का विग्रह है अप्सराश्चा सौ उर्वशी ताम् । इस तरह इसपद में कर्मधारय समास हैं ।।६।।

**यज्ञं यजेद्यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम् । विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थं उमां सतीम् ।।७।।**

**अन्वयः**— यशः कामः यज्ञं यजेत्, कोश कामः प्रचेतसम् यजेत विद्याकामः गिरिशं यजेत, दाम्पत्यार्थं सतीम् उमाम् यजेत् ।।७।।

**अनुवाद**— यश की कामना वालों को यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना करनी चाहिए, कोश प्राप्त करने की इच्छा वाले को प्रचेता की आराधना करनी चाहिए, विद्या प्राप्त करने की इच्छा वाले को शिवजी की पूजा करनी चाहिए और पति-पत्नी में प्रेम चाहने वाले को पतिव्रता पार्वती जी की पूजा करनी चाहिए ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

यज्ञं यज्ञोपाधिं विष्णुम् । कोशो वसुसंचयः । वसुकाम इत्यत्र धनमात्रमिति भेदः । दाम्पत्यमन्योन्यप्रीतिस्तदेवार्थो यस्य सः ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

यज्ञ शब्द से यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु को कहा गया है । धन संपत्ति के संचय को ही वसु कहते है ।

अतएव धन सम्पत्ति के संचय को चाहने वाले को प्रचेता की आराधना करनी चाहिए । यदि कोई कहे कि तीसरे श्लोक में वसु चाहने वाले को वसुओं की पूजा करने की बात कही गयी है और यहाँ कोश चाहने वाले के लिए प्रचेता की आराधना करने की बात कैसे कही गयी हैं ? यह तो पुनरुक्ति है । तो इसका उत्तर है कि वसुशब्द केवल धन का बोधक है और कोश शब्द धनसंपत्ति के संचय को कहा जाता है । अतएव यह दोनों में अन्तर है । दाम्पत्य शब्द का अर्थ है, पति और पत्नी में रहने वाला परस्पर में एक दूसरे के प्रति प्रेम, उसकी प्राप्ति के लिए पार्वती देवी की आराधना करनी चाहिए ।।७।।

**धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वन्पितॄन्यजेत् । रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ।।८।।**

**अन्वयः—** धर्मार्थम्, उत्तमश्लोकम् तन्तुन् तन्वन् पितॄन् रक्षाकामः पुण्यजनान् ओजस्कामः मरुद्गणान् यजेत् ।।८।।

**अनुवाद—** धर्म की प्राप्ति करना चाहने वाले भगवान् विष्णु की उपासना करे, सन्तान की वृद्धि चाहने वाले को पितृगणों की आराधना करनी चाहिए, बाधाओं से बचने की इच्छा वाले को यक्षों की पूजा करनी चाहिए तथा बल चाहने वाले को मरुद्गणों की आराधना करनी चाहिए ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

धर्मार्थो धर्मकामः । उत्तमश्लोकोपाधिं विष्णुम् । तन्तुं तन्वन् संतानवृद्धिमन्विच्छन् । रक्षा बाधानिवृत्तिस्तत्कामः । पुण्यजनान्यक्षान् । ओजो बलं तत्कामो मरुद्गणान्देवान् ।।८।।

**भाव प्रकाशिका**

धर्म चाहने वाले को उत्तम श्लोक नामक भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए, सन्तान की वृद्धि चाहने वाले को पितरों की पूजा करनी चाहिए । जो होने वाली बाधाओं को दूर करना चाहे वह यक्षों की पूजा करे तथा बल प्राप्त करने की इच्छा वाले को मरुद्गण नामक देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।।८।।

**राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्वभिचरन्यजेत् । कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् ।।९।।**

**अन्वयः—** राज्यकामः मनून् देवान्, अभिचरन् तु निर्ऋतिम्, काम कामः सोमम्, अकामः परम् पुरुषं यजेत् ।।९।।

**अनुवाद—** राज्य की प्राप्ति के लिए मन्वन्तरों के अधिपति देवताओं की पूजा करनी चाहिए । अभिचार कर्म करने के लिए निर्ऋति देवता की आराधना करे । भोगों की प्राप्ति के लिए चन्द्रमा की आराधना करे और निष्कामत्व की प्राप्ति के लिए परम पुरुष परमात्मा की आराधना करे ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

राज्यं राजत्वं तत्कामो मनून्देवान्मन्वन्तरपालान् । राज्ञः कर्म राज्यं तत्कामो विश्वान्देवानिति विशेषः । अभिचरञ्छत्रुमरणमिच्छन् निर्ऋतिं राक्षसम् । कामकामो भोगेच्छुः । आकामो वैराग्यकामः । पुरुषं परं प्रकृतिव्यतिरेकोपाधिमीश्वरम् ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

राज्य शब्द से यहाँ राजत्व को कहा गया है । उसकी प्राप्ति के लिए मन्वन्तरों के अधिपति देवताओं की पूजा करनी चाहिए । राजा के कर्म को राज्य कहते हैं उसकी प्राप्ति के लिए विश्वेदेवों की उपासना करे; अतएव यहाँ पर द्विरुक्ति नहीं है । शत्रुओं को मारने के कर्म को अभिचार कर्म कहते हैं । उसको करने के लिए निर्ऋति देवता की पूजा करे । भोगों को चाहने वाला चन्द्रमा की पूजा करे । जो वैराग्य सम्पन्न होना चाहे वह परम पुरुष प्रकृति रूपी उपाधि से रहित पुरुष ईश्वर की आराधना करे ।।९।।

**अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः । तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— अकामः सर्वकामः वा मोक्षकामःउदारधीः तीव्रेण भक्तियोगेन परम् पुरुषं यजेत् ॥१०॥

**अनुवाद**— बुद्धिमान पुरुष चाहे निष्काम हो, या सभी प्रकार की वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा वाला हो या मोक्ष चाहने वाला हो वह तीब्र भक्तियोग के द्वारा परम् पुरुष परमात्मा की आराधना करे ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

अकाम एकान्तभक्तः उक्तानुक्तसर्वकामो वा पुरुषं पूर्णं निरूपाधिम् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

यहाँ अकाम शब्द से ऐकान्तिक भक्त को कहा गया है । सर्वकाम शब्द का अर्थ है कि जो ऊपर बतलायी गयी हैं अथवा नहीं बतलायी गयी हैं, उन सभी कामनाओं से युक्त पुरुष, अथवा जो मोक्ष प्राप्त करना चाहता हो वह पुरुष सभी उपाधियों से रहित पूर्ण पुरुष परमात्मा की आराधना करे ॥१०॥

**एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः । भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसङ्गतः ॥११॥**

**अन्वयः**— इह यजताम् एतावान् एव निःश्रेयसोदयः यत् भागवतसङ्गतः भगवति अचलः भावः ॥११॥

**अनुवाद**— इस संसार में जितने भी उपासक हैं, उन सबों का सर्वाधिक हित इसी में है कि भगवद् भक्तों की सङ्गति को प्राप्त करके श्रीभगवान् में निश्चल प्रेमभाव को प्राप्त कर ले ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

पूर्वोक्तनानादेवतायजनस्यापि संयोगपृथक्त्वेन भक्तियोगफलत्वमाह-एतावानिति । इन्द्रादीनपि यजतामिह तत्तद्यजनेन भागवतानां संगतो भगवत्यचलो भावो भक्तिर्भवतीति यत् एतावानेव निःश्रेयसस्य परमपुरुषार्थस्योदयो लाभः । अन्यत्तु सर्वं तुच्छमित्यर्थः ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

इससे पहले जितने भी देवताओं की आराधना बतलायी गयी है उस सबों का संयोगपृथक्त्वन्याय से भक्तियोग ही फल है । इस बात को **एतावानेव० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । इन्द्र इत्यादि देवताओं की आराधना करने से भगवद् भक्तों का सङ्ग मिलता है । उसके फल स्वरूप भगवान् में जो निश्चल भक्ति का उदय होता है, वही परम पुरुषार्थ का उदय रूपी लाभ है । इससे भिन्न सारी बातें तुच्छ (व्यर्थ) हैं ।

**संयोग पृथक्त्व का अर्थ है** संबन्ध की भिन्नता । भिन्न-भिन्न देवताओं की आराधना करने से भिन्न-भिन्न फलों की सिद्धि ही पृथक्त्व है । विभिन्न देवताओं की आराधना करने से पापों का नाश हो जाता है उसके फलस्वरूप भगवान् के भक्तों की सङ्गति होती है । भागवतों का सङ्ग मिलने से श्रीभगवान् में अविचल भक्ति होती है । इसी को संयोग कहते है । इन दोनों का समुदित रूप ही संयोगपृथक्त्व कहलाता है । उदाहरणार्थ खैर का यूप होना चाहिए । इस सूक्ति के अनुसार खैर का स्तम्भ यज्ञ का अङ्ग है । और **खादिरोवीर्यकामस्य** इस सूक्ति के अनुसार वीर्य चाहने वाले को यज्ञ में खैर की लकड़ी का ही स्तम्भ बनाना चाहिए । इस तरह से वह वीर्य (पराक्रम) प्रदान करने वाला भी है । उसी तरह अनेक देवताओं की आराधना विभिन्न फलों को प्रदान करने वाली होने के साथ ही श्रीभगवान् की भक्ति को भी प्रदान करती है । इस तरह दोनों प्रकार का फल प्रदान करने वाले इन्द्रादि देवताओं की आराना श्रीहरि की भक्ति की प्राप्ति की कामना से ही करनी चाहिए । इसीलिए गोपियों ने कात्यायनी देवी की आराधना श्रीभगवान् को पति बनाने की कामना से की थी ॥११॥

**ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ।**
**कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥**

**अन्वयः**— यत् आप्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रं संमतपथः भक्तियोगः, कः निर्वृतः हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

**अनुवाद**— जिस भागवत सङ्गति से ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि उसके कारण राग आदि गुणों का समूह पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है और उसके पश्चात् अन्तःकरण शुद्ध होने से आनन्द का अनुभव होने लगता है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति नहीं रहती है । कैवल्य मोक्ष का सर्व सम्मत मार्ग भक्तियोग हो जाता है । भगवान् की ऐसी कथाओं का चस्का लग जाने पर उससे कौन प्रेम नहीं करेगा ?॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

भागवतसङ्गत इत्यनेन सूचितां हरिकथारतिं स्तौति-ज्ञानमिति । यत् यासु कथासु ज्ञानं भवति । कीदृशम् । आ सर्वतः प्रतिनिवृत्तमुपरतं गुणोर्मीणां रागादीनां चक्रं समूहो यस्मात्तत् । उत अनन्तरम् । तद्धेतुरात्मप्रसादश्च । यत्र यासु मनःप्रसादहेतुः, गुणेषु विषयेष्वसङ्गो वैराग्यं च । उभयत्रेति पाठे इहामुत्र च गुणेष्वसङ्गः । कैवल्यमित्येव संमतः पन्थाः यो भक्तियोगः । निर्वृतः श्रवणसुखेन । अन्यत्रानिर्वृत इति वा । तासु हरिकथासु को रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

ग्यारहवें श्लोक के **भागवत सङ्गतः** के द्वारा सूचित श्रीहरिकथा की प्रशंसा **ज्ञानं यदा** इस श्लोक से करते हैं । श्रीहरि कथाओं से ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि उससे सभी प्रकार के रागादि समूह पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाते हैं । अन्तःकरण स्वच्छ हो जाता है और विषयों से वैराग्य हो जाता है तथा मुक्ति प्राप्ति के मार्ग स्वरूप श्रीभगवान् में प्रेमा भक्ति की उत्पत्ति हो जाती है उससे तृप्त हुआ कौन ऐसा मानव होगा जो श्रीभगवान् की कथाओं से प्रेम न करे ॥१२॥

शौनक उवाच

**इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः। किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— इति अभिव्याहृतं निशम्य भरतर्षभः राजा वैयासिकिम् ऋषिं कविम् किम् अन्यत् भूयःपृष्टवान् ॥१३॥

**शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा**

**अनुवाद**— श्रीशुकदेवजी द्वारा कही गयी इन बातों को सुनकर भरतवंशियों में श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ने परंब्रह्म का साक्षात् करने वाले शब्दब्रह्मनिष्ठ शुकदेवजी से दूसरी कौन सी बात पूछा ?॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

अभिव्याहृतमुक्तम् । ऋषिं परब्रह्मदर्शिनम् । कविं शब्दब्रह्मनिष्णातम् ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में शुकदेवजी के लिए दो विशेषणों का प्रयोग किया गया है— १. **ऋषिम्** इसका अर्थ है परंब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले और कवि शब्द का अर्थ है वेदविद्यानिष्णात । इस तरह से शुकदेवजी ने उपर्युक्त बातों को राजा परीक्षित् को बतलाया था ॥१३॥

**एतच्छुश्रूषतां विद्वन् सूत नोऽर्हसि भाषितुम् । कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— हे विद्वन् सूत एतत् शुश्रूषतां नः भाषितुम् अर्हसि । सतां सदसि हरिकथोदर्काः कथाः ध्रुवम् स्युः ॥१४॥

**अनुवाद**— हे विज्ञ सूतजी हमलोग इसे सुनना चाहते हैं अतएव इसे आप हमलोगों को सुनाएँ क्योंकि सत् पुरुषों की सभा में उस कथा को तो अवश्य होनी चाहिए जिसका पर्यवसान श्रीहरि की कथाओं में होता हो ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

श्रवणेच्छायां हेतुः-हरिकथा एव उदर्कः उत्तरफलं यासु ताः कथाः सतां भागवतानां सदसि सभायां स्युः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

शौनकादि महर्षियों ने राजा परीक्षित् के द्वारा जिज्ञासित बातों को सुनने की इच्छाका कारण बतलाते हुए कहा कि भागवतों की सभा में तो उन कथाओं को अवश्य कहा जाना चाहिए जिन कथाओं का पर्यवसान श्रीहरि की कथाओं में होता हो । अतएव हमलोग उसे सुनना चाहते हैं ॥१४॥

**स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथः। बालक्रीडनकैः क्रीडन् कृष्णक्रीडां य आददे॥१५॥**

**अन्वयः**— स वै महारथः पडवेयः राजा भागवतः यः बालकीडनकैः कीडन् कृष्णक्रीडाम् आददे ॥१५॥

**अनुवाद**— निश्चित रूप से महारथी तथा पाण्डुवंशावतंस राजा परीक्षित् भगवद्भक्त थे, वे बाल्यावस्था में बालकों के खिलौनों द्वारा भी भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीडाओं को ही किया करते थे ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-स वा इति द्वाभ्याम् । कृष्णपूजादिरूपां क्रीडां यः स्वीकृतवान् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात का ही विस्तार से वर्णन **सवै० इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा किया गया है । राजा परीक्षित् महारथी थे । वे पाण्डवों के वंश का संवर्धन करने वाले थे । वे भगवद्भक्त थे क्योंकि बाल्यावस्था में भी जब वे खिलौनों से खेला करते थे तो भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा रूपी खेल खेला करते थे ॥१५॥

**वैयासकिश्च भगवान् वासुदेवपरायणः। उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥१६॥**

**अन्वयः**— भगवान् वैयासकिश्च वासुदेव परायणः । सतां समागमे हि उरुगायगुणोदाराः कथाः स्युः ॥१६॥

**अनुवाद**— भगवत स्वरूप शुकदेवजी भी भगवान् वासुदेव के भक्त थे । ऐसे भागवतों का समागम होने पर तो श्रीभगवान् की महती कथाओं की चर्चा अवश्य हुयी होगी ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

उरुगायस्य गुणैरुदारा महत्यः कथाः स्युः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का एक नाम उरुगाय है । जहाँ पर भगवद् भक्तों का समागम होता है वहाँ पर श्रीभगवान् के गुणों से परिपूर्ण होने के कारण महान् कथाओं का होना स्वाभाविक ही है । अतएव उस कथा को आप हमलोगों को सुनायें ॥१६॥

**आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ। तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥१७॥**

**अन्वयः**— उत्तम श्लोकवार्तया यत्क्षणः नीतः तस्य ऋते, यन् असौ उद्यन् अस्तं च पुंसाम् आयुः हरति ॥१७॥

**अनुवाद**— जो समय श्रीभगवान् सम्बन्धी चर्चा के द्वारा व्यतीत होता है, उसके अतिरिक्त समय और आयु को उदय और अस्त होते हुये सूर्य व्यर्थ में ही हरण करते रहते हैं ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

किंच वृथैव क्षीयमाणमायुर्हरिकथया सफलं कुर्वित्याशयेनाह त्रिभिः । आयुरिति । असौ सूर्यः उद्यन्नुद्गच्छन्नस्तमदर्शनं च यन् गच्छन् । यत् येन क्षणो नीतस्तस्य आयुः ऋते वर्जयित्वा वृथैव हरति ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

**आयुर्हरति० इत्यादि** तीन श्लोकों द्वारा बतलाया जा रहा है कि व्यर्थ ही विनष्ट होने वाली आयु को श्रीहरि की कथा के द्वारा ही सुफल बनाना चाहिए। ये सूर्य उदय और अस्त होते हुए जिसका समय श्रीहरि की कथा में बितता है उसको छोड़कर दूसरों की आयु का व्यर्थ में ही हरण करते हैं ॥१७॥

**तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत । न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥१८॥**

**अन्वयः**— तरवः न जीवन्ति किम्, उत भस्त्राः न श्वसन्ति किम्, अपरे ग्राम पशव न खादन्ति, न मेहन्ति किम् ॥१८॥

**अनुवाद**— वृक्ष जीवित नहीं रहते है क्या ? लुहार की धौंकनी श्वास नहीं लेती है क्या ? ग्रामपशु तथा दूसरे पशु खाने और मैथुनादि क्रियाओं को नहीं करते हैं क्या ?॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

ननु जीवनमेव तेषामायुषः फलमस्ति तत्राह-तरव इति । ननु तेषां श्वासो नास्ति तर्हि, भस्त्राश्चर्मकोशाः । ननु तासामाहारादिकं नास्ति तत्राह । न खादन्ति नाश्नन्ति, न मेहन्ति रेतःसेकं मैथुनं न कुर्वन्ति किम् । उत अपि । नराकारं पशुं मत्वाह-अपरे इति ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि भगवत् कथा पराङ्मुख मनुष्यों की आयु का जीवित रहना ही फल है तो ऐसी स्थिति में उन मनुष्यों में और वृक्षों में क्या अन्तर है ? वे भी जीवित रहते हैं । यदि कहें, कि वृक्ष जीवित तो रहते हैं किन्तु वे मनुष्य क तरह श्वास नहीं लेते हैं तो इसका उत्तर है कि श्वास तो लुहार की भाथी भी लेती है । यदि कहें कि लुहार की भाथी श्वास तो लेती है किन्तु वह आहार आदि को ग्रहण नहीं करती है । तो इसका उत्तर है कि इन नराकृति पशुओं के समान ग्रामपशु भी खाते हैं तथा मैथुनादि क्रियाओं को करते हैं अतएव ये मनुष्य तो उन पशुओं के ही समान हैं ॥१८॥

**श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः । न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥१९॥**

**अन्वयः**— यत् कर्णपथा जातु गदाग्रजः नाम न उपेतः सः पशुः पुरुषः श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः ॥१९॥

**अनुवाद**— जिसके कानों में कभी भी भगवान् श्रीकृष्ण की कथा नहीं पड़ी वह मनुष्य कुत्ता, ग्राम सूकर, ऊँट तथा गधे के समान जानने योग्य हैं ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह । श्वादिभिः संस्तुतः सदृशो निरूपितः । यस्य कर्णपथं कदाचिदपि नागतः । स अवज्ञास्पदत्वाच्छ्वभिः, कश्मलविषयासक्तत्वाद्विड्वराहैर्ग्रामसूकरैः, कण्टकवद्दुःखदविषयासक्तत्वादुष्ट्रैः भारवाहित्वात्खरैस्तुल्य इत्यर्थः ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करते हुए कहते है जिस व्यक्ति ने अपने कानों से श्रीभगवान् की कथा को नहीं सुना है वह कुत्ते के समान अपमान का पात्र है, निन्दित विषयोपभोग में आसक्त रहने के कारण ग्रामसूकर के समान है, कण्टकपूर्ण दुःख प्रदान करने वाले विषयों में आसक्त रहने के कारण कंटीले पदार्थों को खाने वाले ऊँट के समान तथा पारिवारिक भार वहन करने के कारण भारवाही गधे के समान है ॥१९॥

**बिले बतोरुक्रम विक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।**
**जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥२०॥**

**अन्वयः**— उरुक्रमस्य विक्रमान् न शृण्वतः नरस्य कर्णपुटे बत बिले । हे सूत उरुगायगाथाः न गायती असती जिह्वा दुर्दुरिका इव ॥२०॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की लीलाओं को नहीं सुनने वाले मनुष्य के दोनों कान वस्तुतः बिल के ही समान है तथा हे सूत जी भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं का कभी गायन नहीं करने वाली मनुष्य की दोष दूषित जीभ मेढक की जीभ के समान व्यर्थ है ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्याङ्गानि च निष्फलानीत्याह- बिले इति पञ्चभिः । बतेति खेदे । न शृण्वतोऽशृण्वतो नरस्य ये कर्णपुटे ते बिले वृथारन्ध्रे । न चेदुपगायति तस्य जिह्वा असती दुष्टा दुर्दुरो भेकस्तदीया जिह्वेव ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवत्कथा पराङ्मुख रहने वाले मनुष्य के अङ्ग भी व्यर्थ हैं, इस बात का प्रतिपादन **बिले बतोरुक्रम० इत्यादि** पाँच श्लोकों से बतलाते हैं । बत पद का प्रयोग खेद के अर्थ में हुआ है । श्रीभगवान् की कथा को कभी नहीं सुनने वाले मनुष्य के दोनों कान बिल के समान हैं तथा भगवन्नामोचारण नहीं करने वाली उसकी दोष दूषित जीभ बरसाती मेढक के जीभ के समान व्यर्थ हैं ॥२०॥

**भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।**
**शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥२१॥**

**अन्वयः**— पट्टकिरीटजुष्टं मुकुन्दं अपि यत् उत्तमाङ्गं न नमेत् तत् परं भारः, वा यत् लसत्काञ्चनकङ्कणौ हरेः सपर्यां न कुरुतः करौ शावौ ॥२१॥

**अनुवाद**— रेशमी वस्त्र तथा मुकुट से युक्त भी वह शिर अत्यन्त भार स्वरूप है जो भगवान् के समक्ष प्रणाम करने के लिए नहीं झुकता है तथा सुवर्ण निर्मित कङ्कणों से युक्त वे दोनों हाथ मूर्दे के हाथ के समान हैं जो श्रीभगवान् की सेवा में नहीं लगते हैं ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

पट्टवस्त्रोष्णीषेण किरीटेन च जुष्टमपि शिरो यदि न नमेत्तर्हि केवलं भार एव । शवो मृतकस्तत्करतुल्यौ । लसती काञ्चनकङ्कणे ययोस्तौ । अप्यर्थे वाशब्दः ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

रेशमी वस्त्र से निर्मित पगड़ी और मुकुट से युक्त वह शिर केवल भार स्वरूप है यदि वह भगवान् मुकुन्द को प्रणाम करने के लिए नहीं झुकता है । जिन हाथों से श्रीभगवान् की सेवा नहीं की जाती हैं, वे सुवर्ण निर्मित कङ्कणों से भूषित हाथ भी मूर्दे के हाथ के समान व्यर्थ हैं । इस श्लोक का वा शब्द अप्यर्थक है ॥२१॥

**बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ।**
**पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥२२॥**

**अन्वयः**— नराणां ये नेत्रे विष्णोः लिङ्गानि न निरीक्षतः ते बर्हायिते, नृणां यौ पादौ हरेः क्षेत्राणि न व्रजतः तौ द्रुमजन्म भाजौ ॥२२॥

**अनुवाद**— मनुष्यों के जो नेत्र श्रीभगवान् की मूर्तियों का दर्शन नहीं करते हैं वे नेत्र मयूर पिच्छ में विद्यमान नेत्रों के समान व्यर्थ हैं तथा मनुष्यों के जो पैर श्रीभगवान के क्षेत्रों की यात्रा नहीं करते हैं वे दोनों पैर वृक्ष होने के लायक हैं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

ये नयने विष्णोर्मूर्तीर्न निरीक्षेते ते बर्हायिते मयूरपिच्छनेत्रतुल्ये । द्रुमवज्जन्म भजत इति तथा । वृक्षमूलतुल्याविति‍र्थः ।।२२।।

**भाव प्रकाशिका**

जिन नेत्रों के द्वारा भगवान् की मूर्तियों का दर्शन नहीं किया जाता है, वे नेत्र उसी तरह से व्यर्थ हैं जिस तरह मयूर पिच्छ में रहने वाले नेत्र व्यर्थ हैं । तथा मनुष्यों के वे पैर भी वृक्ष ही होने लायक है जिन पैरों से भगवान् के क्षेत्रों की यात्रा नहीं की जाती है । वे पैर वृक्ष की जड़ के समान हैं ।।२२।।

**जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ।**
**श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ।।२३।।**

**अन्वयः**— यस्तु मर्त्यः भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु अभिलभेत सः जीवन् शवः, यस्तु मनुजः विष्णुपद्याः तुलस्याः गन्धं न वेद सः श्वसन शवः ।।२३।।

**अनुवाद**— जिस मनुष्य ने भगवद् भक्तों के चरणों की धूलि को कभी भी अपने शिर पर नहीं चढ़ाया वह जीवित मुर्दा है तथा जिसने कभी भी श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ी हुयी तुलसी की गन्ध को नहीं सूंघा वह श्वास लेता हुआ मुर्दा है ।।२३।।

**भावार्थ दीपिका**

नाभिलभेत अभितो न स्पृशेन्न धारयेत् । श्रीविष्णुपद्याः श्रीविष्णुपदलग्नायाः । न वेदेति अवघ्राय नाभिनन्देदित्यर्थः ।।२३।।

**भाव प्रकाशिका**

जिसने जीवन में श्रीभगवान् के भक्तों के चरणों की धूलि को अपने शिर पर चढ़ाने के लिए नहीं प्राप्त किया वह जीते जी मुर्दा है तथा जिसने श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ी हुयी तुलसी को सूंघकर उसकी सराहना कभी नहीं की वह श्वास लेते हुए मुर्दे के समान है ।।२३।।

**तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।**
**न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ।।२४।।**

**अन्वयः**— बत तदिदं हृदयं अश्मसारं यद्गृह्यमाणैः हरिनामधेयैः न विक्रियेत । यदा विकारः तदा नेत्रे जलम् गात्ररुहेषु हर्षः ।।२४।।

**अनुवाद**— निश्चित रूप से वह हृदय पत्थर के समान अत्यन्त कठोर है जो उच्चारण किए जाने वाले श्रीहरि के नामों को सुनकर पिघल नहीं जाता है । जब हरिनामों को सुनकर हृदय में विकार उत्पन्न होता है उस समय आँखों में आँसू भर जाते हैं तथा रोओं में रोमाञ्च हो जाता है ।।२४।।

**भावार्थ दीपिका**

अश्मवत् सारो बलं काठिन्यं यस्य । विक्रियालक्षणमाह-अथेति । गात्ररुहेषु रोमसु हर्ष उद्गमः ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

अश्म पत्थर को कहते हैं उसके समान कठोर को अश्मसार कहा जाता है । भगवन् नाम संकीर्तन को सुनकर जिस हृदय में विकार नहीं उत्पन्न होता है, वह हृदय पत्थर के समान कठोर है । जब हृदय में विकार उत्पन्न हो जाता है तो आँखों में अश्रुजल भर जाता है और रोमाञ्च हो जाता है । रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।।२४।।

**अथाभिधेह्यङ्ग मनोनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ।**
**यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधु पृष्टः ॥२५॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

**अन्वयः**— अथ हे अङ्ग अनुकूलं प्रभाषसे साधुपृष्टः भागवतप्रधानः आत्मविद्याविशारदः वैयासकिः यत् नृपतिं आह तत् अभिधेहि ॥२५॥

**अनुवाद**— हे सूतजी आप अत्यन्त अनुकूल बातें सुनाते हैं । राजा परीक्षित् द्वारा अच्छी तरह से पूछे जाने पर आत्मविद्या में पारङ्गत श्रीशुकदेवजी ने राजा को जो कहा उसे आप हमें सुनायें ॥२५॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के तृतीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।**

### भावार्थ दीपिका

यस्मादभक्तस्य सर्वमेतद्व्यर्थम् । मनसोऽनुकूलं प्रियं च ब्रूषे । अथ अतः साधु पृष्टः सन् वैयासकिर्नृपतिं प्रति यदाह तदभिधेहीति ॥२५॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।**

### भाव प्रकाशिका

चूकि भगवद् भक्ति से रहित मनुष्यों के ये सारे देह तथा इन्द्रियों की पटुता आदि व्यर्थ है । और आप हमलोगों के अनुकूल बातें कहते हैं । अतएव राजा के द्वारा नियमानुसार प्रशन किए जाने पर श्रीशुकदेवजी ने राजा को जो कुछ भी सुनाया उन सारी बातों को आप हमलोगों को सुनाइये ॥२५॥

**इस तरह श्रीमद्भागवतमहापुराण के द्वितीयस्कन्ध के तृतीय अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।३।।**

# चौथा अध्याय

## राजा परीक्षित् का सृष्टि विषयक प्रश्न और श्रीशुकदेवजी द्वारा कथा का आरम्भ

सूत उवाच

**वैयासकेरिति वचस्तत्वनिश्चयमात्मनः । उपधार्य मतिं कृष्ण औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥१॥**

**अन्वयः**— वैयासकेः इति आत्मनः तत्त्वनिश्चयम् वचः उपधार्य औतरेयः कृष्णे सतीं मतिं व्यधात् ॥१॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— श्रीशुकदेवजी के भगवत्तत्त्वनिश्चयात्मक इस वाणी को अपने मन में धारण करके उत्तरा के पुत्र राजा परीक्षित् ने भगवान् श्रीकृष्ण में अपनी शुद्ध बुद्धि को लगा दी ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

तुर्ये परीक्षिता पृष्टं सृष्ट्यादि हरिचेष्टितम् । शुकेन ब्रह्मतत्पुत्रसंवादेनोपवर्ण्यते ॥१॥ राज्ञ प्रश्नं कथयितुं तस्य प्राक्तनीं स्थितिमाह चतुर्भिः । वैयासकेः शुकस्य इति एवं भूतमात्मनस्तत्त्वस्य निश्चयो यस्मात् तद्वचः उपधार्य आकलय्य सतीं कृष्ण एव सेव्यो नान्य इत्येवं भूताम् ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

इस चौथे अध्याय में राजा परीक्षित् के द्वारा सृष्टि तथा श्रीहरि की चेष्टाओं के विषय में पूछे गये प्रश्न का उत्तर शुकदेवजी ने ब्रह्माजी तथा उनके पुत्र नारदजी के संवाद क माध्यम से दिया है ॥१॥

राजा के प्रश्न का वर्णन करने के लिए उसके पहले की स्थिति का वर्णन **वैयासकेः इत्यादि** चार श्लोकों के द्वारा किया गया है । श्रीशुकदेवजी के इस प्रकार से आत्मतत्त्व की निश्चायिका वाणी का विचार करके राजा ने भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवा करनी चाहिए दूसरे किसी की नहीं, इस प्रकार की अपनी शुद्धबुद्धि को भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया ॥१॥

**आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु । राज्ये चाविकले नित्यं विरूढां ममतां जहौ ॥२॥**

**अन्वयः**— आत्म-जाया-सुत-आगार-पशु-दविण-बन्धुषु अविकले राज्ये च नित्यं विरूढां ममतां जहौ ॥२॥

**अनुवाद**— राजा ने शरीर, पत्नीं, पुत्र, गृह, पशु, सम्पत्ति तथा बान्धवों में एवं निष्कण्टक राज्य में जो नित्य के अभयास के कारण ममता सुदृढ हो गयी थी उसका त्याग कर दिया ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मा देहः । पशवो गजादयः ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

आत्मा शब्द से शरीर को कहा गया है और पशु शब्द से हाथी घोड़े इत्यादि कहे गये हैं । इन सभी वस्तुओं में जो राजा की ममता अत्यन्त सुदृढ हो गयी थी उसका राजा ने शुकदेवजी की बाणी को सुनकर त्याग कर दिया ॥२॥

**पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः । कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ॥३॥**

**अन्वयः**— हे सत्तमाः कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानाः महामनाः हे सत्तमाः यन्मां पृच्छथ इमम् एव अर्थं प्रपच्छ ।

**अनुवाद**—हे श्रेष्ठ महर्षियों ! भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव श्रवण में श्रद्धा करने वाले महामनस्वी राजा परीक्षित् उसी प्रश्न को पूछा जिसे आपलोग मुझसे पूछ रहे हैं ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

इममेवार्थं हरिलीलालक्षणम् ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

अर्थात् जिस तरह से आपलोग मुझ से श्रीहरि की लीला के विषय में पूछते हैं उसी तरह से राजा ने भी शुकदेवजी से श्रीहरि की लीला के ही विषय में पूछा ॥३॥

**संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् । वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥४॥**

**अन्वयः**— संस्थां विज्ञाय त्रैवर्गिकं यत् कर्म तत् संन्यस्य, भगवति वासुदेवे आत्मभावं दृढं गतः ॥४॥

**अनुवाद**— राजा अपनी मृत्यु के विषय में जानकर धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी संपूर्ण कर्मों से संन्यास लेकर भगवान् श्रीकृष्ण में आत्मभाव को पूर्ण रूप से प्राप्त हो गये थे ऐसे राजा श्रीशुकदेवजी से पूछे ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

संस्थां मृत्युम् । त्रैवर्गिकं धर्मार्थकामप्रधानम् । संन्यस्य त्यक्त्वा आत्मभावं परमप्रेम्णा भगवदात्मत्वं गतः प्राप्तः सन् पप्रच्छ ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् इस बात को जान गये की मेरी मृत्यु सात दिन में हो जाने वाली है। इसीलिए उन्होंने धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी सभी कर्मों से संन्यास ले लिया। वे अत्यन्त प्रेम पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण में आत्मभाव को प्राप्त हो गये थे। इस प्रकार के राजा ने शुकदेवजी से पूछा ॥४॥

राजोवाच

**समीचीनं वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवानघ। तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥५॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! ब्रह्मन् सर्वज्ञस्य तव वचः समीचीनम्, हरेः कथाः कथयतः तव मह्मम् तमः विशीर्यते ॥५॥

### राजा ने कहा

**अनुवाद**— हे निष्पाप ब्रह्मन् ! आप सर्वज्ञ हैं, आपकी वाणी समीचीन है (सुन्दर है)। आपके द्वारा श्रीहरि की कथा कहे जाने के कारण मेरा अज्ञान दूर हो रहा है ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

मह्यं मम तमोऽज्ञानं विशीर्यते नश्यति तव कथयतः सतः। अतः समीचीनम् ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

आप जो श्रीभगवान् की कथा कह रहे हैं, उसको सुनकर मेरा अज्ञान विनष्ट हो रहा है, अतएव आपकी वाणी अत्यन्त सुन्दर है ॥५॥

**भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया। यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥६॥**

**अन्वयः**— आत्ममायया भगवान् अधीश्वरैः दुर्विभाव्यं इदं विश्वं यथा सृजते तदिदम् अहं भूयः विवित्सामि ॥६॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् अपनी माया के द्वारा ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा भी नहीं जानने योग्य इस सम्पूर्ण जगत् की रचना कैसे करते है ? इस बात को मैं पुनः जानना चाहता हूँ ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

पुनश्च वेदितुमिच्छामि। इदं दुर्विभाव्यमवितर्क्यं विश्वं यथा सृजति ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

मैं पुनः यह जानना चाहता हूँ कि श्रीभगवान् अपनी माया के द्वारा इस अवितर्क्य जगत् की सृष्टि कैसे करते हैं ॥६॥

**यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छते पुनः। यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान्॥**
**आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन् करोति विकरोति च ॥७॥**

**अन्वयः**— विभुः यथा गोपायति पुनःयथा संयच्छते। यां यां शक्तिम् उपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान्, आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकरोति च ॥७॥

**अनुवाद**— वे व्यापक परमात्मा किस तरह से जगत् की रक्षा करते हैं और अन्त में वे किस प्रकार से इसका संहार भी कर देते हैं। अनेक शक्तियों से सम्पन्न परम-पुरुष किस-किस शक्ति को अपनाकर स्वयं क्रीडा करते हैं ? और ब्रह्मादि रूप वाले जगत् को क्रीडा कराते हैं, वे किस तरह से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं और अन्त में इसे विनष्ट कर देते हैं ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

गोपायति पालयति। संयच्छते संहरते। पुरुशक्तिर्बहुशक्तिमान्। क्रीडन् यथा करोति। आत्मानं ब्रह्मादिरूपिणं क्रीडयन् विकरोति विविधं करोति ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने पूछा कि परमात्मा किस प्रकार से संसार की रक्षा करते हैं ? और किस प्रकार से इस जगत् का संहार करते हैं ? किन-किन शक्तियों को अपना कर परमात्मा इस जगत् को खिलौना बना देते हैं और ब्रह्मा आदि रूप से उसके साथ वे किस तरह से अपने को अनुरञ्चित करते है ? वे किस तरह से इस जगत् का निर्माण करके इसका अनेक रूपों में विस्तार करते हैं ?॥७॥

**नूनं भगवतो ब्रह्मन् हरेरद्भुतकर्मणः । दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥८॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! अद्भुत कर्मणः भगवतः हरेः चेष्टितम् कविभिः अपि दुर्विभाव्यं इव आभाति ॥८॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! अद्भुत कर्मों को करने वाले भगवान् श्रीहरि की चेष्टाएँ निश्चित रूप से बड़े-बड़े विज्ञ पुरुषों के लिए भी दुर्विभाव्य के समान है। अर्थात् वे प्रयास करके भी उसे नहीं समझ सकते हैं ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् को अद्भुत कर्म करने वाला बतलाकर यह कहा गया है कि श्रीभगवान् की चेष्टाओं को बड़े-बड़े विज्ञ पुरुष भी नहीं जान सकते हैं तो औरों की कौन कहें ?॥८॥

**यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपि वा । बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥९॥**

**अन्वयः**— एकः पुरुष रूपेण युगपत् प्रकृतेः गुणः भूरिशः विभर्ति वा जन्माभिः कर्माणि कुर्वन् क्रमशः अपि विभर्ति ॥९॥

**अनुवाद**— एक ही परमात्मा पुरुष रूप से प्रकृति के अनेक गुणों को धारण करते हैं अथवा ब्रह्मा आदि अवतार रूप से जन्मों के द्वारा कर्मों को करते हुए क्रमशः प्रकृति के गुणों को धारण करते हैं ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

एकः पुरुषरूपेण युगपत्, जन्मभिर्ब्रह्माद्यवतारैः क्रमशो वा यथा प्रकृतेर्गुणान्गृह्णाति ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

परमात्मा तो एक ही हैं वे अनेक कर्मों को करते हैं। तदर्थ वे अकेले पुरुष रूप से ही प्रकृति के अनेक गुणों को धारण करते हैं, अथवा ब्रह्मा आदि अवतार रूपी जन्मों के द्वारा क्रमशः प्रकृति के गुणों को धारण करते हैं ?॥९॥

**विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान्यथा । शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान्खलु ॥१०॥**

**अन्वयः**— भवान् खलु शाब्दे परस्मिन् च ब्रह्मणि निष्णातः अतएव भगवान् यथा मे एतत् विचकित्सितम् ब्रवीतु ॥१०॥

**अनुवाद**— राजा ने कहा आप वेद तथा परंब्रह्म दोनों के पूर्ण से ज्ञाता हैं, अतएव आप मेरे इन संदेहों को यथोचित रूप से दूर करें ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

विचिकित्सितं संदिग्धम्। शाब्दे ब्रह्मणि विचारेण निष्णातः परस्मिन्ननुभवेन ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

विचकित्सतसं देहास्पद विषय को कहते हैं। राजा ने शुकदेवजी से निवेदन किया कि हे भगवन् आप तो शब्दब्रह्म तथा परब्रह्म दोनों के पूर्ण रूप से ज्ञाता हैं। फलतः आप मेरे इन संदहों को यथोचित रूप से दूर करें ।।१०।।

सूत उवाच

**इत्युपामन्त्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः । हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ।।११।।**

**अन्वयः**— इति राज्ञा हरेः गुणानुकथने उपामन्त्रितः हृषीकेशम् अनुस्मृत्य प्रतिवक्तुम् उपचक्रमे ।।११।।

सूतजी ने कहा

**अनुवाद**— इस तरह राजा परीक्षित् के द्वारा श्रीहरि के गुणों का वर्णन करने के लिए प्रार्थना किए जाने पर भगवान् हृषीकेश का स्मरण करके श्रीशुकदेवजी ने उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।११।।

**भावार्थ दीपिका**

उपामन्त्रितः प्रार्थितः । प्रचक्रमे देवतागुरुनमस्कारादिरूपमुपक्रमं कृतवानित्यर्थः ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

उपामन्त्रितः पद का अर्थ है प्रार्थित । अर्थात् उपर्युक्त प्रकार से राजा के द्वारा श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करने के लिए राजा के प्रार्थना करने पर श्रीशुकदेवजी ने उनके प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।११।।

श्रीशुक उवाच

**नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।**
**गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ।।१२।।**

**अन्वयः**— सदुदभवस्थितिनिरोधलीलया, गृहीतशक्तित्रितयाय, देहिनामन्तर्भवाय, अनुपलक्ष्य वर्त्मने भूयसे, परस्मै पुरुषाथ नमः ।।१२।।

**अनुवाद**— संसार की, सृष्टि, स्थिति और संहार रूप लीला करने के लिए जो परमात्मा सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीन शक्तियों को धारण करके विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर का रूप धारण करते हैं, अन्तर्यामी स्वरूप होने के कारण जिनकी प्राप्ति के मार्ग को जाना नहीं जा सकता है, ऐसे निःसीम महिमा सम्पन्न परम पुरुष को नमस्कार है ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेवाह त्रयोदशभिः । परस्मै सर्वोत्तमाय । तत्र हेतुः-भूयसे अपरिमितमहिम्ने । तद्दर्शयति । सतः प्रपञ्चस्य उद्भवादिषु निमित्तभूता या लीला तया गृहीतं ब्रह्मादिरूपेण रज आदि शक्तित्रितयं येन तस्मै । अन्तर्भवाय अन्तर्यामिणे । अतएव सर्वान्तरत्वादनुपलक्ष्यं वर्त्म यस्य ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् को नमस्कार करते हुए शुकदेवजी अपने प्रवचन का उपक्रम तेरह श्लोकं में करते हैं। वे कहते है कि परमात्मा परंपुरुष है । अर्थात् वे ही सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं । भूयसे कहकर उन्होंने श्रीभगवान् को अनन्त महिमा सम्पन्न बतलाया । वे भगवान् इस जगत् की सृष्टि, स्थिति (रक्षा) तथा संहार लीला करने के लिए करते है । अर्थात् जगत् के जन्मादि का मुख्य प्रयोजन भगवान् की लीला है । वे इस कार्य को करने के लिए, सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इन तीन शक्तियों को अपनाकर विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर रूप हो जाते हैं । वे सभी शरीरधारियों

के शरीर में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं। अतएव उनकी प्राप्ति के मार्ग को आसानी से नहीं जाना जा सकता है। ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।१२।।

**भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाखिलसत्त्वमूर्तये ।**
**पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ।।१३।।**

**अन्वयः**— भूयः सद्वृजिनच्छिदे, असतामसंभवाय, अखिलसत्त्वमूर्तये, पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानाम् पुंसां अनुमृग्यदाशुषे नमः ।।१३।।

**अनुवाद**— सत् पुरुषों के दुःख को दूर करने वाले, दुष्टों की समृद्धि को रोक देने वाले, सम्पूर्ण जीव शरीरक तथा पारमहंस्य आश्रम में पुरुषों को उनके अभीष्ट पदार्थ को प्रदान करने वाले श्रीभगवान् को पुनः नमस्कार हैं ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

विचित्रफलदातृत्वमनुस्मरन् प्रणमति । भूयः पुनश्च नमः । सतां धर्मवर्तिनां वृजिनच्छिदे दुःखहन्त्रे । असतामधर्मशीलानामसंभवायानुद्भवहेतवे । अखिलसत्त्वमूर्तये, तत्तद्देवतादिरूपेण तत्तत्फलदायेत्यर्थः । समग्रसत्त्वमूर्तये इति वा । पुनरिति पूर्वोक्तोभयवैलक्षण्यमाह । पारमहंस्ये प्रत्यङ्निष्ठारूपे आश्रमे व्यवस्थितानां पुंसामनुमृग्यमेतन्निरसनेन पुनःपुनर्मृग्यं यदात्मतत्त्वं तस्य दाशुषे दात्रे ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् विचित्र फलों को प्रदान करने वाले हैं इस बात का स्मरण करके पुनः इस श्लोक से शुकदेवजी उनको नमस्कार करते हैं। वे भगवान् धार्मिक पुरुषों के कष्ट को दूर करते हैं, तथा जो अधार्मिक मनुष्य हैं उनकी होने वाली समृद्धि को रोक देने का काम करते हैं। सम्पूर्ण जगत् उनकी ही मूर्ति (शरीर) हैं। वे उन जीवों को विभिन्न देवताओं का रूप धारण करके उन सभी जीवों को फल प्रदान करते हैं। पुनः उन दोनों प्रकारों से विलक्षणता बतलाते हुए कहते हैं, पारमहंस्य आश्रम में आत्मानिष्ठा स्वरूप है। उस आश्रम को अपनाने वाले संन्यस्त पुरुषों के अभिप्रेत अर्थ को प्रदान करने वाले हैं ऐसे भगवान् को वे पुनः नमस्कार करते हैं ।।१३।।

**नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।**
**निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ।।१४।।**

**अन्वयः**— सात्वतां ऋषभाय नमो नमस्ते अस्तु, कुयोगिनाम् विदूरकाष्ठाय निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि रंस्यते नमः ।।१४।।

**अनुवाद**— भगवद् भक्तों का पालन करने वाले श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है। भगवद् भक्ति विहीन जीवों को जिनकी दिशा भी अत्यन्त दूर है अर्थात् उन लोगों के लिए श्रीभगवान् दुर्ज्ञेय हैं। श्रीभगवान् के समान ही कोई नहीं है, अतएव उनसे महान् होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। ऐसे ऐश्वर्य से सम्पन्न अपने धाम में विहार करने वाले श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**

सात्त्वतां भक्तानामृषभाय पालकाय । कुयोगिनां भक्तिहीनानां विदूरा काष्ठा दिगपि यस्य । दुर्ज्ञेयायेत्यर्थः । तदेवं वैषम्यप्रतीतावपि निर्दोषत्वायाचिन्त्यमैश्वर्यमाह । निरस्तं साम्यमतिशयश्च यस्य यदपेक्षया अन्यस्य साम्यमतिशयश्च नास्ति, तेन राधसा ऐश्वर्येण स्वधामनि स्वरूपे ब्रह्मणि रममाणाय ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् भक्तों का पालन करते हैं तथा जो लोग भक्ति की भावना से विहीन हैं, ऐसे जीवों के लिए उनकी दिशा भी बहुत दूर है। अर्थात् उन जीवों के लिए श्रीभगवान् दुर्ज्ञेय हैं। श्रीभगवान् का ऐसा ऐश्वर्य है कि उनके

समान ही कोई नहीं है तो फिर उनसे अधिक ऐश्वर्यशाली कोई कैसे हो सकता है ? इस प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न श्रीभगवान् अपने धाम में सदा रमण किया करते हैं । ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥१४॥

**यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।**
**लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१५॥**

**अन्वयः**— यत् कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं, यच्छ्रवणं यदर्हणम् लोकस्य कल्मषं सद्यः विधुनोति, तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१५॥

**अनुवाद**— जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवों के पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देता है उन पुण्यकीर्ति श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार हैं ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वसाधनेभ्यो भक्तेः श्रैष्ठ्यमनुस्मरन्प्रणमति । यत्कीर्तनमिति द्वाभ्याम् । अर्हणं पूजनम् । सुभद्रं मङ्गलं श्रवो यशो यस्य तस्मै ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

सभी साधनों की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता का स्मरण करते हुए श्रीशुकदेवजी पुनः नमस्कार **यत् कीर्तनम्० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । अर्हण पूजन को कहते है । श्रीभगवान् की लीलाएँ मङ्गलमय हैं अतएव वे सुभद्रश्रवा हैं ॥१५॥

**विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ।**
**विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१६॥**

**अन्वयः**— विचक्षणाः यच्चरणोपसादनात् उभयतः सङ्गं व्युदस्य गतक्लमाः ते ब्रह्मगतिं विन्दति तस्मै सुभदश्रवसे नमो नमः ॥१६॥

**अनुवाद**— विवेकी पुरुष जिनके चरणों की शरणागति करके लोक और परलोक दोनों में होने वाली आसक्ति का परित्याग करके विना किसी परिश्रम के ही ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेते हैं, उन मङ्गलमय यश वाले श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

विचक्षणा विवकिनो यस्य चरणयोरुपसादनादुपसत्तेर्भजनादन्तरात्मनो मनस उभयत्रेह च परत्र च सङ्गं व्युदस्य निरस्य। गतक्लमाः प्रयासरहिताः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

विवेकी पुरुष जिन श्रीभगवान् के चरणों की शरणागति करके लोक एवं परलोक दोनों में होने वाली आसक्ति को अपनी अन्तरात्मा से निकालकर बिना किसी प्रयास के ही ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेते हैं उन मङ्गलमय यश वाले भगवान् को बार-बार नमस्कार है ॥१६॥

**तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।**
**क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१७॥**

**अन्वयः**— तपस्विनः, दानपराः, यशस्विनः, मनस्विनः मन्त्रविदः सुमङ्गलाः, यदर्पणं विना क्षेमं न विन्दन्ति तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१७॥

**अनुवाद**— बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी मन्त्रवेत्ता तथा सदाचार परायण भी अपने तप, दान आदि को श्रीभगवान् को समर्पित किए बिना कल्याण नहीं प्राप्त करते हैं, उन श्रीभगवान् को बार-बार नमस्कार है ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

भक्तिशून्यानां सर्वसाधनवैफल्यं दर्शयन्नमति-तपस्विन इति । मनस्विनो योगिनः । सुमङ्गलाः सदाचाराः । यस्मिंस्तपआद्यर्पणं विना । सुभद्रश्रवसे इत्यस्यावृत्तिर्यशःश्रवणादेः प्राधान्यज्ञापनाय ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

जो लोग भगवान् की भक्ति से रहित है, उन लोगों के द्वारा साधन रूप से अपनाये गये तप, दान, मनस्विता, यश, मन्त्र तथा सदाचार तब तक कल्याणप्रद नहीं होते हैं, जब तक कि उन साधनों को श्रीभगवान् को समर्पित नहीं कर दिया जाय । सुभद्रश्रवसे इस पद को बार-बार कहने का अभिप्राय है श्रीभगवान् का यश ही प्रधान हैं ।।१७।।

**किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ।**
**येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ।।१८।।**

**अन्वयः**— किरात-हूण-आन्ध्र-पुलिन्द-पुल्कस, आभीरकङ्काः यवनाः खसादयः अन्ये च ये पापाः यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ।।१८।।

**अनुवाद**— किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन, तथा खस जाति के मनुष्य तथा दूसरे भी पापी मनुष्य जिन श्रीभगवान के शरणागत जीवों के शरणागत हो जाने पर शुद्ध हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान श्रीभगवान् को बार-बार नमस्कार है ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

भक्तेः परमशुद्धिहेतुत्वं दर्शयन्नाह । किरातादयो ये पापजातयोऽन्ये च ये कर्मतः पापरूपास्ते यदुपाश्रया भागवतास्तदाश्रयाः सन्तः शुध्यन्ति । असंभावनाशङ्कां परिहरति, प्रभविष्णवे प्रभवनशीलायेति ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

भक्ति परम शुद्धि का साधन है इस बात को **किरात्त० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । किरात इत्यादि जो पापमयी जातियाँ हैं तथा जो पाप कर्म करने वाले लोग हैं, वे भी भगवद् भक्तों के शरणागत हो जाने पर शुद्ध हो जाते हैं । यदि कहें कि यह कैसे हो सकता है ? तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् प्रभविष्णु हैं, वे असम्भव को भी सम्भव बना देते हैं, ऐसे भगवान् को नमस्कार है ।

किरात इत्यादि जातियों का परिचय इस प्रकार है । शबर पुरुष से पर्णशबरी जाति की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को वैदेहक कहते हैं । वैदेहक पुरुष से पुल्कसी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न को हूण कहते हैं । वैदेहक के पुत्र को आन्ध्र कहते हैं । निष्ठय पुरुष से किराती स्त्री के गर्म से उत्पन्न पुत्र को पुलिन्द कहते हैं । शूद्र पुरुष से ब्राह्मणी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को चाण्डाल कहते है । चाण्डाल पुरुष के पुत्रः को पुल्कस कहते हैं । ब्राह्मण पुरुष से वैश्यानारी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को अम्बष्ठ कहते हैं । अम्बष्ठ की अविवाहिता पुत्री के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न पुत्र को आभीर कहते हैं । कर्परा को कङ्क कहा जाता है । राजा से वैश्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को यवन कहते हैं । तुरुष्कों की ही एक जाति शक जाति है ।।१८।।

**स एष आत्मात्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ।**
**गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलिङ्गो भगवान्प्रसीदताम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— अत्मवताम् आत्मा अधीश्वरः त्रयीमयः धर्ममयः, तपोमयः, गतव्यलीकैः अजशङ्करादिभिः वितर्क्य लिङ्गः स एष भगवान् प्रसीदताम् ।।१९।।

**अनुवाद**— जो भगवान् ज्ञानियों की आत्मा है, भक्तों के स्वामी हैं, कर्मकाण्डियों के लिए वेदमूर्ति हैं, धार्मिकों के लिए धर्ममूर्ति हैं और तपस्वियों के लिए तपोमय हैं । ब्रह्मा तथा शिव आदि बड़े-बड़े देवता निष्कपटभाव से उन श्रीभगवान् का चिन्तन करते हैं वे ही श्रीभगवान् मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वोपास्यत्वमनुस्मरन् प्रार्थयते । स एष आत्मवतां धीराणामात्मा आत्मत्वेनोपास्य इत्यर्थः । त्रयीमयत्वादिविशेषणैस्तत्तन्मार्गेणोपास्यत्वं विवक्षितम् । गतव्यलीकैर्निष्कपटैर्भक्तैर्वितर्क्यमत्याश्चर्येण वीक्षणीयं लिङ्गं मूर्तिर्यस्य स प्रसीदतु ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

वे श्रीभगवान् सबों के लिए उपास्य हैं, इस बात का स्मरण करते हएु श्रीशुकदेवजी उनकी प्रार्थना करते हैं कि वे भगवान् आत्मज्ञानियों के लिए आत्मा रूप से उपास्य हैं । **त्रयीमयत्व** इत्यादि विशेषणों के द्वारा विभिन्न मार्गावलम्बियों के लिए उनकी उपास्यता बतलायी गयी है । वे भक्तों के द्वारा स्वामी रूप से उपास्य हैं, वैदिकों के लिए वेदमूर्ति के रूप से उपास्य हैं । धार्मिकों द्वारा धर्ममूर्ति रूप से तथा तपस्वयों द्वारा तपोमूर्ति रूप से उपास्य हैं । जो भगवान् के निष्कपट भक्त हैं उन ब्रह्माजी तथा शङ्करजी द्वारा उनकी मूर्ति अत्यन्त आश्चर्यमयी रूप से अवलोकनीय है । ऐसे भगवान् प्रसन्न हों ।।१९।।

**श्रियःपतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियांपतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।**
**पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्त्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः ॥२०॥**

**अन्वयः**— श्रियः पतिः, यज्ञपतिः प्रजापतिः, धियां पतिः, लोकपतिः, धरापतिः अन्धकवृष्णिसात्त्वताम् पतिः गतिः च सतां पतिः भगवान् मे प्रसीदताम् ।।२०।।

**अनुवाद**— जो भगवान् लक्ष्मीजी के पति पालक हैं, यज्ञों के भोक्ता (स्वामी) हैं, प्रजाओं के पालक हैं बुद्धि के स्वामी हैं, लोकों के स्वामी है तथा पृथिवी के स्वामी हैं जो भगवान् अन्धकवंशियों वृष्णिवंशियों एवं यदुवंशियों के स्वामी और आश्रय हैं वे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वपालकत्वमनुस्मरन्नाह- श्रिय इति । गतिश्च सर्वापत्सु रक्षकः ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

पति शब्द पालक और स्वामी दोनों का समान रूप से बोधक है । श्रीभगवान् के सर्वपालकत्व का स्मरण करते हुए शुकदेवजी श्रीभगवान् की प्रार्थना करते हैं । जो भगवान् लक्ष्मीजी, यज्ञ, प्रजाएँ, बुद्धि, सम्पूर्ण जगत् पृथिवी, तथा साधु पुरुष इन सबों के एक मात्र रक्षक हैं । वे ही अन्धकवंशियों, वृष्णिवंशियों तथा यदुवंशियों के पालक तथा सभी अवस्थाओं में रक्षक हैं वे ही भगवान् श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों ॥२०॥

**यदङ्घ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धियाऽनुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ।**
**वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान्प्रसीदताम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— विवेकिनः यदंघ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धिया आत्मनः हि तत्त्वम् अनुपश्यन्ति कवयः च यथारुचम् एतत् वदन्ति सः भगवान् मुकुन्दः मे प्रसीदताम् ॥२१॥

**अनुवाद**— विवेकी पुरुष जिन श्रीभगवान् की चिन्तन पूर्ण समाधि से निर्मल बनी हुयी बुद्धि के द्वारा आत्म तत्त्व का साक्षात्कार करते हैं । ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिनका अपनी-अपनी रुचि के अनुसार वर्णन करते हैं, वे ही भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले श्रीभगवान मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

ज्ञानप्रदत्वमनुस्मरन्नाह-यदङ्घ्रीति द्वाभ्याम् । यस्याङ्घ्र्योरनुध्यानमेव समाधिस्तेन धौतया शोधितया । यथारुचं रुच्यनुसारेण सगुणनिर्गुणादिभेदैः । यद्वा रुक् प्रतिभा । यथामतीत्यर्थः ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही ज्ञान प्रदान करने वाले हैं, इस बात का स्मरण करते हुए शुकदेवजी दो श्लोकों द्वारा कहते हैं कि जिन श्रीभगवान् के चरणों का निरन्तर चिन्तन ही समाधि है । उससे श्रीभगवान् के चरणों का चिन्तन करने वाले की बुद्धि निर्मल हो जाती है । उन श्रीभगवान् का साक्षात्कार करने के पश्चात् भिन्न-भिन्न विवेकी पुरुष अपनी रूचि के अनुसार ही श्रीभगवान् का वर्णन करते हैं, वे ही भगवान् हम पर प्रसन्न हो जायँ ॥२१॥

**प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ।**
**स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— पुरा अजस्य हृदि सतीं स्मृतिं वितन्वता येन प्रचेदिता सरस्वती किल आस्यतः स्वलक्षणा प्रादुरभूत सः ऋषीणाम् ऋषभः मे प्रसीदताम् ॥२२॥

**अनुवाद**— कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी के हृदय में सृष्टि विषयिणी स्मृति को जागृत करने के लिए जिन परमात्मा के द्वारा प्रेरित सरस्वती ब्रह्माजी के मुख से वेदाङ्गों के साथ वेद के रूप में प्रकट हुयी ऐसे ज्ञान प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् मुझपर प्रसन्न होएँ ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

किंच पुरा कल्पादावजस्य हृदि सतीं सृष्टिविषयां स्मृतिं वितन्वता येन प्रचोदिता सती सरस्वती तस्य मुखतः किल प्रादुर्भूता स्वानि लक्षणानि शिक्षाद्युक्तानि यस्याः सा । ऋषीणां ज्ञानप्रदानामृषभः श्रेष्ठः ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी के हृदय में सृष्टि विषयिणी स्मृति को उत्पन्न करने के लिए जिन श्रीभगवान् के द्वारा प्रेरित सरस्वती ब्रह्माजी के मुख से शिक्षा इत्यादि वेदाङ्गों के साथ वेदों के रूप में प्रकट हुयी ऐसे ज्ञान प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥२२॥

**भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरा विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ।**
**भुंक्ते गुणान् षोडश षोडशात्मकः सोऽलंकृषीष्ट भगवान्वचांसि मे ॥२३॥**

**अन्वयः**— यः विभुः महद्भिः भूतैः इमाः निर्माय अमूषु यत् पुरुषः शेते षोडशात्मकः षोडश गुणान् भुंक्ते सः भगवान् मे वचांसि अलङ्कृषीष्ट ॥२३॥

**अनुवाद**— जो परमात्मा पञ्चमहाभूतों से इन शरीरों का निर्माण करके उन सबों में जीव रूप से शयन करते हैं और (पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पाञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पाञ्च प्राण और मन इन) सोलह कलाओं से युक्त होकर इनके द्वारा सोलह विषयों का भोग करते है, वे सर्वभूतमय भगवान् मेरी वाणी को अलंकृत करें ।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

इदानीं स्ववाचं श्रोतृजनाह्लादिनीं शृङ्गारकरुणादिशोभां प्रार्थयते-भूतैरिति । स मे वचांस्यलंकृषीष्ट अलंकरोतु । अन्यस्य वचसामन्येनालंकारासंभवमाशङ्क्य तस्यान्तर्यामितामाविष्करोति । यो महद्भिर्भूतैरिमाः पुरः शरीराणि सृष्ट्वा अमूषु पूर्ष्वन्तर्यामितया शेते वसति । अत्र पुरुषसमाख्यां प्रमाणयति । यद्यस्मात्पूरुष इति । अतएव य एकादशेन्द्रियपञ्चभूतरूपान्षोडशगुणान्कला भुङ्क्ते प्रकाशयति पालयतीति वा । तदा त्वात्मनेपदमार्षम् । अत्र हेतुः-यतः षोडशानामात्मा चेतयिता । स्वार्थे कः । नत्वत्र जीवत्वमुच्यते प्रार्थनाविरोधात् ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

**भूतैमर्हद्भिः इत्यादि** इस श्लोक से शुकदेवजी श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी वाणी को श्रोताओं को आह्लादित करने वाली तथा शृङ्गार तथा करुण आदि रसों आदि की शोभा से सम्पन्न बना दें । वे भगवान् मेरी वाणी को अलंकृत कर दें । दूसरे की वाणी को दूसरा कोई कैसे अलंकृत कर सकता है; इस तरह की आशङ्का करके वे श्रीभगवान् के अन्तर्यामित्व को ही अविष्कृत करते हैं । जो परमात्मा महाभूतों के द्वारा इन शरीरों का निर्माण करते हैं और इन शरीरों में अन्तर्यामी रूप से निवास करते है । जीव के इस पुरुष नाम को प्रमाणित करते हुए कहते है कि वे पूरुष हैं । अतएव ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पञ्चभूत रूप सोलह कलाओं का वे भोग करते है । अथवा प्रकाशित करते हैं या पालन करते है । किन्तु ऐसा अर्थ करने पर **भुंक्ते** पद में आत्मनेपद का प्रयोग आर्ष मानना होगा । उसका कारण है कि वे सोलह कलाओं को ज्ञान युक्त बना देते है । आत्मा शब्द में स्वार्थ में ही कप्रत्यय हुआ है । यहाँ पर जीवत्व को इसलिए नहीं कहा गया है कि उसको वैसा मानने पर प्रार्थना का विरोध होगा ।।२३।।

**नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे । पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ।।२४।।**

**अन्वयः**— सौम्याः ज्ञानमयं यन्मुखाम्बुरुहासवम् पपुःतस्मै अमिततेजसे भगवते व्यासाय नमः ।।२४।।

**अनुवाद**— सन्त पुरुषों ने जिनके मुख रूपी कमल के पराग रूपी ज्ञानमय आसव का पान किया उन निःसीम तेजस्वी भगवान् वासुदेव के अवतार व्यासजी को मेरा नमस्कार है ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

श्रीव्यासं नमस्करोति-नम इति । सौम्या भक्ताः । यस्य मुखाम्बुरुहे आसवो मकरन्दस्तम् ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

**नम० इत्यादि** श्लोक के द्वारा वे श्रीव्यासजी को नमस्कार करते हैं । सौम्य शब्द से यहाँ पर भक्तों को कहा गया है । **यन्मुखाम्बुरुहासवम्** का विग्रह है जिनका मुख रूपी कमल में विद्यमान पराग रूपी आसव उसका पान भक्तों ने किया ।।२४।।

**एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते । वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ।।२५।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुरणे द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

**अन्वयः**— राजन् विपृच्छते नारदाय वेदगर्भः आत्मभूः एतद वाभ्यधात् यत् साक्षात् हरिः आत्मनः आह ।।२५।।

**अनुवाद**—हे राजन् नारदजी के द्वारा पूछे जाने पर वेदगर्भ ब्रह्माजी ने उनको वही बतलाया था जिसको साक्षात् श्रीहरि ने ब्रह्माजी को बतलाया था, उसी को मैं आपको बतला रहा हूँ ॥२५॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।**

भावार्थ दीपिका

इदानीं प्रश्नोत्तरतया ब्रह्मनारदसंवादं प्रस्तौति- एतदिति । उत्पत्तिसमय एव वेदा गर्भे यस्य सः । साक्षाद्धरिर्यदाह ॥२५॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थ दीपिकाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।**

भाव प्रकाशिका

**एतत्० इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा प्रश्नोत्तर रूप में ब्रह्मा एवं नारदजी के संवाद को प्रस्तुत करते हैं। ब्रह्माजी को वेदगर्भ इसलिए कहा जाता है कि उत्पत्ति काल में ही उनके भीतर वेद विद्यमान थे ॥२५॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौथे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।**

# पाँचवाँ अध्याय

## सृष्टि का वर्णन

नारद उवाच

**देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज । तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ।।१।।**

**अन्वयः**— हे भूतभावनपूर्वज देवदेव ते नमः अस्तु । यत् ज्ञानम् आत्मतत्त्वनिदर्शनम् तत् विजानीहि ।।१।।

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे भूतभावन तथा सबों द्वारा पूजित ! हे देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी आप मुझको वह ज्ञान प्रदान करें जिस ज्ञान के द्वारा आत्मतत्त्व का पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाता है ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

पञ्चमे नारदेनाथ पृष्टः सृष्ट्यादि वक्त्यजः । हरेर्लीलां विराट्सृष्टिं कालकर्मादिशक्तिभिः ।।१।। नारदाय विपृच्छते वेदगर्भोऽभ्यधादित्युक्तं, तत्र नारदप्रश्नमाह-देवदेवेति । हे भूतभावन, अतएव सर्वेषां पूर्वज अनादे, ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं तत्साधनं यत्तद्विजानीहि । विशेषेण ज्ञापयेत्यर्थः । कथंभूतम् । आत्मतत्त्वं नितरां दृश्यते येन तत् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

पाँचवे अध्याय में नारदजी के द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने सृष्टि का वर्णन किया । साथ ही उन्होंने श्रीहरि की लीला का वर्णन तथा काल कर्म आदि शक्तियों से युक्त विराट् की सृष्टि का वर्णन किया ।।१।।

नारदजी के द्वारा पूछे जाने पर वेदगर्भ ब्रह्माजी ने इस तरह से कहा— नारदजी के प्रश्न का वर्णन करते हुए वे कहते है देव-देव इत्यादि । अर्थात् हे भूतभावन देवताओं में श्रेष्ठ अतएव सबों के पूर्वज आप हैं, क्योंकि आप अनादि हैं । आत्मतत्त्व के ज्ञान के साधनभूत ज्ञान का आप उपदेश दें । **विजानीहि** पद का अर्थ है कि विशेष रूप से उपदेश दें । वह ज्ञान जिस ज्ञान के द्वारा आत्मा अच्छी तरह से दिखायी देती है ।।१।।

**यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो । यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥२॥**

**अन्वयः**— प्रभो इदं जगत् यद्रूपम्, यदधिष्ठानम् यतः सृष्टम्, यत्संस्थम् यत परम् तत् तत्त्वं तत्त्वतः वद ॥२॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! इस जगत् जिसके द्वारा प्रकाशित है, इसका जो आधार है, जिसके द्वारा निर्मित है, जिसमें लीन होता है तथा जिसके अधीन रहता है, तथा यदात्मक है, उस तत्त्व को आप तात्त्विक रूप से बतलायें ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

उपलक्षणभूतं विश्वमेवात्मज्ञानसाधनमतस्तद्विशेषं पृच्छति । यद्रूपं येन रूप्यते प्रकाश्यते । यदधिष्ठानं यदाश्रयम् । यतो येन सृष्टम् । यत्संस्थं यस्मिँल्लीयते । यत्परं यदधीनम् । यच्चेति यदात्मकम् । स्वतः सत्कारणतो वेत्यर्थः । तस्य तत्त्वं याथार्थ्यं तत्त्वतो वद ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्म का उपलक्षण स्वरूप यह जगत् ही है आत्मज्ञान का साधन है । अतएव इस जगत् की विशेषताओं के विषय में नारदजी पूछते हैं । यद्रूपम् का अर्थ है कि यह जगत् जिसके द्वारा प्रकाशित होता है । उस तत्त्व को आप मुझे बतलायें । इस जगत् का जो आधार है तथा इस जगत् के जो स्रष्टा हैं, उनको मुझे आप बतलायें। प्रलयकाल के आने पर यह जगत् जिसमें लीन हो जाता है यह जिसके अधीन हैं तथा यह यदात्मक है, उस तत्त्व को आप मुझे यथार्थ रूप से बतलायें ॥२॥

**सर्वं ह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः । करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥३॥**

**अन्वयः**— एतत् हि सर्वं भवान् वेद भवान् भूतभव्यभवत्प्रभुः विज्ञानावसितं विश्वं तव करामलकवत् ॥३॥

**अनुवाद**— आप इन सारी बातों को जानते हैं, क्योंकि आप भूतकालिक भविष्यत्कालिक तथा वर्तमान कालिक सभी वस्तुओं के स्वामी हैं । विशिष्ट ज्ञान के द्वारा निश्चित किया गया यह सम्पूर्ण जगत् आपको करामलकवत् प्रत्यक्ष है ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

न जानामीति न वक्तव्यमित्याह-सर्वमिति । भूतं जातं, भव्यं जनिष्यमाणं, भवत् जायमानं, तेषां प्रभुर्यतः, अतो विशिष्टेन ज्ञानेनावसितं निश्चितम् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

आप यह नहीं कह सकते हैं कि मैं इसे नहीं जानता हूँ क्योंकि आप भूतकालिक, भविष्यत्कालिक एवं वर्तमानकालिक सभी वस्तुओं के स्वामी हैं अतएव विशिष्ट ज्ञान के द्वारा आपने इसको निश्चित किया है ॥३॥

**यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः । एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥४॥**

**अन्वयः**— त्वं यद्विज्ञानः यदाधारः, यत्परः यदात्मकः एकः त्वम् आत्ममायया भूतैरेव भूतानि सृजसि ॥४॥

**अनुवाद**— आपको यह ज्ञान किससे मिला ? आप किसके आधार पर स्थित हैं ? आपका स्वामी कौन हैं? आपका स्वरूप क्या है ? अकेले ही आप अपनी माया से पञ्चभूतों के द्वारा भूतों की सृष्टि कर लेते हैं ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

आस्तामिदम्, आदौ तावत्त्वामेव कथयेत्याह । यतो विज्ञानं यस्य । कस्तव विज्ञानद इत्यर्थः । यदाधारः कस्तवाश्रयः यत्परो यदधीनः । यदात्मको यत्स्वरूपः । मम तु त्वमेव स्वतन्त्रः परमेश्वर इति बुद्धिः । तव तपश्चरणेन तु पराशङ्क्या पृच्छामीत्याह सार्धैश्चतुर्भिः । एकोऽसहायः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

इन सारी बातों को रहने दें सर्वप्रथम आप अपने ही विषय में बतलायें कि आपका यह जो ज्ञान है उस ज्ञान को आपको किसने प्रदान किया ? आपका आश्रय कौन है ? आप किसके अधीन हैं ? आपका रूप क्या है ? मेरे मतानुसार तो आप ही स्वतंत्र परमेश्वर हैं; किन्तु आप तपस्या करते हैं इसके कारण मुझे शङ्का है, अतएव ही आपसे मैं इन सारी बातों को साढे चार श्लकों से पूछता हूँ । आप बिना किसी सहायक के ही सृष्टि का काम करते हैं ।।४।।

**आत्मन्भावयसे तानि न पराभावयन्स्वयम् । आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ।।५।।**

**अन्वयः**— आत्मशक्तिम् आवष्टभ्य अक्लमः उर्णनाभिः इव तानि स्वयम् पराभावयन् आत्मनि भावयसे ।।५।।

**अनुवाद**— जिस तरह मकड़ी बिना किसी प्रयास के ही अपने मुख से जाल निकालकर उसमें क्रीड़ा करती हैं, उसी तरह आप भी बिना किसी प्रयास के ही दीन जीवों को अपने में ही उत्पन्न करते हैं किन्तु आपमें किसी प्रकार का विकार नहीं आता है ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

आत्मनि भावयसे पालयसि स्वयमेव पराभवमप्रापयन् अक्लमः श्रमरहितः । यथोर्णनाभिरात्मन एव शक्तिमवष्टभ्य सृजति तद्वत् ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

आप इन जीवों को अपने में ही प्रलीन करते हैं किन्तु आपको इस कार्य को करनें में किसी भी प्रकार के श्रम का अनुभव नहीं होता है । जिस तरह उर्णनाभि मकड़ी अपनी ही शक्ति से जाल की रचना कर देती है, और उसमें उसको थोड़ा सा भी श्रम नहीं होता है ।।५।।

**नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो । नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किंचिदन्यतः ।।६।।**

**अन्वयः**— हे विभो ! अस्मिन् नामरूपगुणैः भाव्यं सत् असत् परं अपरं समं वा किञ्चित् अन्यतः अहं न वेद ।।६।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! इस जगत् मे नाम रूप और गुणों से जानने योग्य सत् असत्, उत्तम, अधम या सम किसी भी ऐसी वस्तु को नहीं जानता हूँ जो आपसे भिन्न किसी दूसरे से उत्पन्न हो ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

तस्मादहं त्वस्मिन्विश्वस्मिन्परमुत्तममपरमधमं समं मध्यमं च । तत्रापि नाम मनुष्यादि, रूपं द्विपदत्वादि, गुणः शुक्लत्वादिस्तैर्भाव्यं साध्यं, तत्रापि सदसत्स्थूलं सूक्ष्मं च किंचिदप्यन्यतो न वेद किंतु त्वत्त एव सर्वं भवतीति मन्ये ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

नारदजी ने कहा अतएव मैं इस सम्पूर्ण जगत् में परम (उत्तम) अपर (अधम) सम (मध्यम) जो नाम के द्वारा जानने योग्य मनुष्य आदि रूप से जानने योग्य द्विपदत्व आदि तथा गुण रूप से जानने योग्य शुक्लत्व आदि इन सबों के द्वारा साध्य उनमें सत् असत् स्थूल अथवा सूक्ष्म ऐसी किसी भी वस्तु को मैं नहीं जानता हूँ जो आपको छोड़कर किसी दूसरे से उत्पन्न हो । यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है ।।६।।

**स भवानचरद्धोरं यत्परः सुसमाहितः । तेन खेदयसे नस्त्वं पराशङ्कां प्रयच्छसि ।।७।।**

**अन्वयः**— स भवान् सुसमाहितः घोरम् तप अचरत् तेन नः खेदयसे, परां शङ्कां च प्रयच्छसि ।।७।।

**अनुवाद**— इस तरह से सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाले आपने पूर्ण रूप से समाहित होकर घोर तपस्या

की उसके कारण मुझे यह शङ्का होती है, कि क्या आपसे भी बढ़कर कोई है क्या ? जिसको प्रसन्न करने के लिए आपने तपस्या की ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

स तथाविधोऽपि भवांस्तपोऽचरदिति यत्तेन नोऽस्मान्खेदयसे मोहयसि । यतः पराशङ्कामीश्वरान्तराशङ्कां प्रयच्छसि ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार के सबों की सृष्टि करने वाला भी होकर आपने जो घोर तपस्या की उससे हमको मोह के साथ-साथ यह शङ्का होती है कि आपसे भी बड़ा कोई है क्या जिसको प्रसन्न करने के लिए आपने यह तपस्या की ?।।७।।

**एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर । विजानीहि यथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ।।८।।**

**अन्वयः**— हे सर्वज्ञ, हे सकलेश्वर,'पृच्छतः मे एतत् सर्वं विजानीहि यथैव अहम् इदम् अनुशासितः बुध्ये ।।८।।

**अनुवाद**— हे सर्वज्ञ, हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ब्रह्माजी मैंने जो आप से पूछा है इन सारी बातों को मुझे आप इस तरह से बतलायें कि आपके द्वारा उपदिष्ट होकर मैं इन सारी बातों को जान सकूँ ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

यथैवाहं त्वयाऽनुशासितः शिक्षितः सन्बुध्ये बुध्येयं तथा विजानीहि विशेषेण ज्ञापय ।।८।।

**भाव प्रकाशिका**

नारदजी ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि आप इन सारी बातों को मुझे इस तरह से बतलायें कि आपके द्वारा उपदिष्ट होकर इन सारी बातों को मैं जान सकूँ ।।८।।

ब्रह्मोवाच

**सम्यक्कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् । यदहं चोदितः सौम्य परधर्मप्रदर्शने ।।९।।**

**अन्वयः**— हे वत्स ! कारुणिकस्य ते इदं विचिकित्सितम् सम्यक् यतः हे सौम्य ! अहं परधर्मप्रदर्शनं चोदितः ।।९।।

**अनुवाद**— हे वत्स ! तुम करुणा करने वाले हो अतएव तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही अच्छा है क्योंकि इस प्रश्न के द्वारा प्रेरित होकर भगवद् धर्म का निरूपण करने में मैं प्रवृत्त हो रहा हूँ ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रश्नमभिनन्दति । वत्स हे पुत्र, तवेदं विचिकित्सितं संदेहः तत्पूर्वकः प्रश्नोऽयं सम्यगित्यर्थः । यतः कारुणिकस्य तवायं प्रश्नः। अत्र हेतुः-यत् परधर्मप्रदर्शने भगवद्वीर्यप्रकाशने प्रवर्तितोऽस्मि । अतस्त्वं जिज्ञासुरपि मयि कृपामेव कृतवानित्यर्थः।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रश्न की प्रशंसा करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि तुम्हारा यह प्रश्न बहुत अच्छा है, क्योंकि यह तुम करुणा करने वाले का प्रश्न है । इस प्रश्न के द्वारा मैं श्रीभगवान् के पराक्रम को ही प्रकाशित करने में प्रवृत्त हो रहा हूँ । फलतः तुमने जिज्ञासु होने के साथ ही मुझ पर कृपा भी किया है ।।९।।

**नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भो । अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ।।१०।।**

**अन्वयः**— भोः तव तत् च अपि अनृतं न यथा मां प्रब्रवीषि । यतः मतः परम् अविज्ञाय मोह एतावत्त्वम् ।।१०।।

**अनुवाद**— नारद ! आपने जो मेरे विषय में जो कुछ कहा है वह भी मिथ्या नहीं है, क्योंकि जब तक मुझसे महान् तत्त्व परमात्मा का ज्ञान नहीं होता है, तब तक तो मैं सम्पूर्ण जगत् का ईश्वर हूँ हीं ।।१०।।

### भावार्थ दीपिका

ननु त्वमेव भगवानित्युक्तं मया 'एकः सृजसि भूतानि' इत्यादिना । सत्यम्, यथा मामीश्वरत्वेन प्रभाषसे तदपि तव भाषणं नात्यन्तमनृतम् । यतः कारणादेतावत्प्रभावस्य भाव एतावत्त्वं मे अस्ति, किंतु मत्तः परमीश्वरमविज्ञाय ब्रूषे । अतः सादृश्यात्तवेयं भ्रान्तिर्न तु बुद्धिपूर्वमनृतमित्यर्थः । यत ईश्वरान्ममैतावत्त्वं तमविज्ञायेति वान्वयः ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

यदि तुम यह कहो कि मैंने आपको यह जो कहा है कि आप ही भगवान् हैं । आप ही अकेले जगत् की सृष्टि करते हैं । यह सब जो तुमने मेरे विषय में कहा है मुझको तुमने ईश्वर कहा है, वह भी तुम्हारा कहना सत्य ही है । क्योंकि इस प्रकार का मेरा प्रभाव भी है किन्तु इन सारी बातों को तुम इसलिए कह रहे हो कि तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं हैं, कि मुझसे महान् ईश्वर हैं । अतएव ईश्वर और मुझमें सादृश्य होने के कारण तुमको मुझमें ईश्वरत्व का भ्रम है । तुमने जानकर यह बात नहीं कहा है, अतएव तुम्हारा कहना असत्य नहीं है । अथवा ईश्वर की अपेक्षा मेरी सीमितता को नहीं जानने के कारण तुमने मेरे विषय में ऐसा कहा है ।।१०।।

**येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् । यथाऽर्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ।।११।।**

**अन्वयः**— यथा अर्कः, अग्निः यथा सोमः ऋक्ष ग्रहतारका यथा येन स्वरोचिषा रोचितं विश्वम् अहम् रोचयामि ।।११।।

**अनुवाद**— जिस तरह सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ऋक्ष, ग्रह तथा तारे परमात्मा से ही प्रकाश को प्राप्त करके इस सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं उसी तरह मैं भी उन स्वयम्प्रकाश परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित विश्व को में सृष्टि के द्वारा प्रकाशित करने का काम करता हूँ ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

तर्हि कोऽसावीश्वर इत्यपेक्षायां भक्त्या नमस्कुर्वन्नेव तं कथयति त्रिभिः । येन स्वप्रकाशेन रोचितं प्रकाशितमेव प्रकाशयामि सृष्ट्याऽभिव्यक्तं करोमि । यथाऽर्कादयश्चैतन्यप्रकाश्यमेव प्रकाशयन्ति । तथाच श्रुतिः-'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि वे ईश्वर कौन हैं ? इस प्रकार की शङ्का होने पर भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् को नमस्कार करते हुए ब्रह्माजी तीन श्लोकों में बतलाते हैं । **येन० इत्यादि** जिन स्वयम्प्रकाश परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित जगत् को मैं सृष्टि के माध्यम से अभिव्यक्त करने का काम करता हूँ यह उसी तरह से है जैसे सूर्य इत्यादि ज्ञानमात्र स्वरूप परब्रह्म के द्वारा प्रकाशित ही जगत् को प्रकाशित करने का काम करते हैं । श्रुति भी कहती हैं- **न तत्र सूर्यो भाति० इत्यादि** उस परमात्मा के समक्ष न सूर्य, न चन्द्रमा, न तारे प्रकाशित होते हैं । बिजलियाँ भी परमात्मा के समक्ष नहीं प्रकाशित होती हैं । तो फिर अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकती है ? उस परमात्मा के प्रकाश को ही प्राप्त करके सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे इत्यादि प्रकाशित होते हैं । उस परमात्मा के ही प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है ।।११।।

**तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि । यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ।।१२।।**

**अन्वयः**— तस्मै भगवते वासुदेवाय नमः, धीमहि यत् दुर्जयया मायया जनाः मा जगद्गुरुम् ब्रुवन्ति ।।१२।।

**अनुवाद**— उन भगवान् वासुदेव को नमस्कार है हम उन्हीं का ध्यान करते हैं । उन श्रीभगवान् की माया से ही मोहित होकर लोग मुझको ही जगद्गुरु कहते हैं । भगवान् की उस माया को पार करना बड़ा ही कठिन है ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

तस्मै नमो धीमहि । यस्य मायया विमोहिताः सन्तो युष्मदादयो मां जगद्गुरुं जगत्कारणं वदन्ति तस्मै ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

हम उन भगवान् वासुदेव को मन से नमस्कार करते है जिन श्रीभगवान् की माया से मोहित होकर तुमलोग मुझको ही जगत् का कारण कह रहे हो ।।१२।।

**विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया । विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ।।१३।।**

**अन्वयः**— यस्य ईक्षापथे स्थातुम् विलज्जमानया अमुया विमोहिता दुर्धियः मम अहम् इति विकत्थन्ते ।।१३।।

**अनुवाद**— भगवान् की आँखों के सामने लज्जित होने के कारण नहीं रूकने वाली माया के द्वारा मोहित ये सभी अज्ञानी जीव यह मेरा है, यह मैं हूँ, इस प्रकार से आत्मश्लाधा करते हैं ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

यन्माययेति मायासंबन्धोक्तेस्तस्या दुर्जयत्वोक्तेश्च तस्यापि किमस्ति संसारो नैवेत्याह । मत्कपटमसौ जानातीति यस्य दृष्टिपथे स्थातुं विलज्जमानयैव तस्मिन्स्वकार्यमकुर्वत्या अमुया मायया विमोहिता अस्मदादयो दुर्धियोऽविद्यावृतज्ञाना एव केवलं विकत्थन्ते श्लाघन्ते । अनेन 'यद्रूपम्' इत्यस्य प्रश्नस्योत्तरमुक्तं भवति ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

यन्मायया इस पद से परमात्मा का माया से सम्बन्ध प्रतीत होता है । उस माया को दुर्जय बतलाया गया है । अब प्रश्न होता है कि उस माया का ही संसार है क्या ? तो इसका उत्तर है कि नहीं । यह माया जानती है कि ये परमात्मा मेरे कपट को जानते हैं । अतएव यह परमात्मा के समक्ष ठहरने में लज्जित होती है । वह परमात्मा के प्रति अपना मोहन रूप कार्य नहीं करती है । उस माया से हम लोग (देव मनुष्यादि सभी) अज्ञानी हो गये हैं । अविद्या ने हम लोगों के ज्ञान को आच्छादित कर दिया है । उसके फलस्वरूप हमलोग आत्मश्लाघा करते रहते हैं । इस कथन के द्वारा यद्रूपम् यह जो प्रश्न किया गया था उसका उत्तर दिया गया है ।।१३।।

**द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च । वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ।।१४।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! द्रव्यं, कर्म च, कालश्च, स्वभावः, जीवः एव च । तत्त्वतः वासुदेवात् परः अर्थः च न अस्ति ।।१४।।

**अनुवाद**— हे आत्म स्वरूप नारद द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव तथा जीव ये सभी वस्तुतः भगवान् वासुदेव से भिन्न नहीं हैं ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं स्वस्मादन्यं परमेश्वरं निरूप्येदानीं 'यदधिष्ठानम्' इत्यादिनवप्रश्नानां स एवाधिष्ठनादिकं सर्वमित्युत्तरं वक्तुं तद्व्यतिरेकेणान्यस्यासत्त्वमाह-द्रव्यमिति । द्रव्यं महाभूतान्युपादानरूपाणि । कर्म जन्मनिमित्तम् । कालस्तत्क्षोभकः । स्वभावस्तत्परिणामहेतुः । जीवो भोक्ता । वासुदेवात्परोऽन्योऽर्थो नास्ति, कारणाव्यतिरेकात्कार्यस्य ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से अपने से भिन्न परमेश्वर को बतलाकर ब्रह्माजी अब नारदजी के नव प्रश्नों में यदधिष्ठानम् के उत्तर में परमेश्वर ही जगत् के अधिष्ठान आदि सबकुछ हैं, इस बात को बतलाने के लिए परमेश्वर व्यतिरिक्त की सत्ता का अभाव बतलाते हुए **द्रव्यम् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । द्रव्य शब्द से उपादान कारण रूप महाभूतों को कहा गया है । जन्म के निमित्त कारण को कर्म कहते हैं, जगत् में क्षोभ उत्पन्न करने वाला काल है, जगत् के परिणाम का जो कारण है वही स्वभाव है, जीव शब्द से भोक्ता को कहा गया है । ये सबके सब भगवान् वासुदेव से भिन्न नहीं हैं; क्योंकि भगवान् वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं तथा कारण तथा कार्य में अभेद होता हैं ।।१४।।

**नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः । नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥१५॥**
**नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः । नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥१६॥**

**अन्वयः**— वेदाः नारायणपराः देवा नारायणाङ्गजाः, लोकाः नारायणपराः मखाः नारायणपराः योगाः नारायण पराः, तपः नारायणपरं, ज्ञानं नारायण परं, गतिः नारायण परा ॥१५-१६॥

**अनुवाद**— वेदों के परं प्रतिपाद्य भगवान् नारायण ही हैं । सभी देवता भगवान् नारायण के अङ्गों से उत्पन्न हैं, सम्पूर्ण लोगों के परं कारण भगवान् नारायण हैं, तथा सभी यज्ञों के आराध्य भगवान् नारायण ही हैं । सभी योगों के द्वारा प्राप्य भगवान् नारायण हैं, तपों से भी आराध्य भगवान् नारायण ही हैं । ज्ञान के भी ज्ञेय भगवान् नारायण हैं तथा भगवान् नारायण ही सबों के एक मात्र आश्रय हैं ॥१५-१६॥

### भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् नारायणः परः कारणं येषां ते । अनेनैव शास्त्रयोनित्वप्रतिपादनेनेश्वरे प्रमाणं सर्वज्ञत्वादिकं चोक्तम् । देवाश्च तदङ्गाज्जाता अतो न तद्व्यतिरिक्ताः । लोकाः स्वर्गादयस्तदानन्दांशाः । मखास्तत्साधनभूताः । योगः प्राणायामादिः। तपस्तत्साध्यं चित्तैकाग्र्यम् । ज्ञानं तत्साध्यम् । गतिस्तत्फलम् । अनेनैव सर्वं तदधीनमित्युक्तम् ॥१५-१६॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही विस्तार से वर्णन **नारायण पराः इत्यादि** दो श्लोकों से किया जा रहा है । नारायण पराः का विग्रह है **नारायणः परः कारणं येषां ते ।** अर्थात् वेदों के परम् कारण भगवान् नारायण ही हैं । वे ही वेद प्रतिपाद्य हैं । इस तरह से **परमेश्वर** के शास्त्रयोनित्व का प्रतिपादन किया गया है । इस प्रतिपादन के द्वारा ईश्वर में प्रमाण को उपन्यस्त करके उनके सर्वज्ञत्वं इत्यादि को बतलाया गया है । देवता भी श्रीभगवान् के अङ्गों से उत्पन्न होने के कारण उनसे भिन्न नहीं हैं । स्वर्ग आदि लोक भी परमात्मा के आनन्द के अंश स्वरूप हैं । यज्ञ परमात्मा की प्राप्ति के साधन स्वरूप है । योग के द्वारा प्राप्य भगवान् नारायण ही हैं तथा भगवान् नारायण ही तपस्याओं के द्वारा प्राप्य हैं । ज्ञान के द्वारा भगवान् नारायण को ही जाना जाता है । परमात्मा की प्राप्ति रूपी फल को ही गति कहते हैं । इस तरह से सबकुछ परमात्मा ही है इस अर्थ का प्रतिपादन किया गया ॥१५-१६॥

**तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः । सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥१७॥**

**अन्वयः**— तेन सृष्टः अहम् तस्य द्रष्टुः अपि ईशस्य कूटस्थस्य, अखिलात्मनः इच्छयैव अभिचोदितः सृज्यं सृजामि ॥१७॥

**अनुवाद**— मैं उन परमेश्वर के ही द्वारा सृष्ट हूँ । वे ही द्रष्टा, स्वामी, निर्विकार तथा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं । मैं उनके सङ्कल्प से प्रेरित होकर उनके द्वारा सृज्य पदार्थों की सृष्टि करता हूँ ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

तर्हि त्वं किं करोषीत्यपेक्षायामाह । तस्य सृज्यमपि तेन सृष्टोऽहं सृजामि । ईक्षया कटाक्षेण । तत्र हेतवः- द्रष्टुरित्यादयः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न उठता है कि जब सबकुछ परमेश्वर का ही है तो आप क्या करते हैं ? तो इसका उत्तर है कि मैं परमात्मा के ही द्वारा सृष्ट हूँ और परमात्मा के सङ्कल्प के द्वारा प्रेरित होकर उनके द्वारा सृज्य पदार्थों की मैं सृष्टि करता हूँ क्योंकि वे ही द्रष्टा और स्वामी हैं ॥१७॥

**सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः । स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥१८॥**

**अन्वयः**— निर्गुणस्य विभोः सत्त्वं, रजस्तमः इति त्रयः गुणाः स्थिति सर्गनिरोधेषु मायया गृहीताः ॥१८॥

**अनुवाद**— भगवान् माया के गुणों से रहित हैं। सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के लिए रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण माया के द्वारा स्वीकार किए गये हैं ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

ननु कुतोऽयं जीवेश्वरविभागः, यतस्त्वं प्रेर्यः स च प्रेरकः स्यादित्यपेक्षायां जीवेश्वरविभागहेतुमाह त्रिभिः-सत्त्वमिति। निर्गुणस्यापीश्वरस्यैते त्रयो गुणा बध्नन्तीत्युत्तरेणान्वयः। कथंभूताः। तेनैव स्वातन्त्र्येण स्थित्याद्यर्थं मायया गृहीताः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यह जीव और ईश्वर का विभाग कैसे होता है। जिसके कारण आप प्रेर्य हैं और ईश्वर आपके पेरक हैं? इस प्रकार का प्रश्न होने पर ब्रह्माजी तीन श्लोकों कों द्वारा जीव और ईश्वर के विभाग के हेतु को बतलाते हैं। वे **सत्त्वम्० इत्यादि** श्लोक पढते हैं। निर्गुण भी परमात्मा के ये तीन गुण बन्धन करने का काम करते हैं। वे गुण कैसे हैं? तो उत्तर है कि उसके द्वारा (गुणत्रय के द्वारा) ही स्वतंत्रता पूर्वक रहने के लिए माया ने इन तीनों गुणों को स्वीकार किया है ॥१८॥

**कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः। बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥१९॥**

**अन्वयः**— मुक्तं मायिनं पुरुषं द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः गुणाः कार्यकारणकर्तृत्वे नित्यदा बध्नन्ति ॥१९॥

**अनुवाद**— वस्तुत सर्वदा मुक्त भी परमात्मा को द्रव्य, ज्ञान तथा क्रिया का सहारा लेकर ये तीनों गुण जीव को कार्य, कारण और कर्तृत्व के अभिमान से बाँधने का काम करते हैं ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

वस्तुतः सर्वदा मुक्तमपि मायिनं मायाविषयं पुरुषं जीवं बध्नन्ति क्व। कार्यमधिभूतं, कारणमध्यात्मं, कर्ताऽधिदैवतं तेषां भावस्तत्त्वं तस्मिन्। द्रव्यं महाभूतानि, ज्ञानशब्देन देवताः, क्रिया इन्द्रियाणि, तदाश्रयास्तेषां कारणभूतास्तत्तदभिमानेन बध्नन्ति ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

वास्तविकता यह है कि मायी पुरुष परमात्मा सर्वदा मुक्त हैं किन्तु माया अपने विषयभूत जीव को बाँधने का काम करती हैं। उस समय द्रव्य (महाभूत) ज्ञान (देवता) तथा क्रिया (इन्द्रियाँ) उसके आश्रय होते हैं। उसके द्वारा माया जीव को कार्यत्वाभिमान के द्वारा अधिभूत को, कारणत्वाभिमान रूप अध्यात्म को तथा कर्तृत्वाभिमान से अधिदैवत को बाँधने का काम करती है ॥१९॥

**स एष भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः। स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन् सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन्! स एष भगवान् अधोक्षजः, एभिः, त्रिभिः लिङ्गैः स्वलक्षितगतिः। सः सर्वेषां मम च ईश्वरः ॥२०॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् नारदजी इन्हीं तीनों आवरणों से श्रीभगवान् अपने को आच्छादित कर लेते हैं उसके फल स्वरूप लोग उनकी गति को नहीं जान पाते हैं। वे सबों के तथा मेरे भी स्वामी हैं ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

अतः स एष वश्यमाय एभिगुणैर्लिङ्गैर्जीवानामावरकैरुपाधिमिः। सुष्ठुलक्षिता गतिस्तत्त्वं यस्य सः, स्वैर्भक्तैरेव लक्षिता गतिस्तत्त्वं यस्येति वा ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

वे ही परमात्मा इन तीनों गुण रूपी उपाधियों से जीवों को अपने अधीन कर देते हैं। उन परमात्मा की गति को अच्छी तरह से नहीं जाना जा सकता है। अथवा भक्तजन ही उनकी गति को जान पाते हैं। ये दोनों ही अर्थ स्वलक्षितगतिः पद के हैं ॥२०॥

**कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया । आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥२१॥**

**अन्वयः**— हे आत्मन् ! विबुभुषुः मायेशः स्वया मायया यदृच्छया प्राप्तं कालं, कर्म, स्वभावं च उपाददे ॥२१॥

**अनुवाद**— हे आत्म स्वरूप नारद एक से अनेक होने की इच्छा वाले परमात्मा ने अपनी माया से अपने स्वरूप में प्राप्त, काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

तस्य सृष्टिप्रकारमाह-कालमिति । कर्म जीवादृष्टम् । विबुभूषुर्विविधं भवितुमिच्छन् ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

परमात्मा के द्वारा की जाने वाली सृष्टि के प्रकार को **कालम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है। सृष्टि के प्रारम्भ में अपनी ही माया के द्वारा अपने स्वरूप में प्राप्त काल, कर्म तथा स्वभाव को परमात्मा ने एक से अनेक होने की इच्छा से स्वीकार किया ॥२१॥

**कालाद्गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः । कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥२२॥**

**अन्वयः**— पुरुषाधिष्ठितात् कालात् गुणव्यतिकरः स्वभावतः परिणामः कर्मणः महतः जन्म अभूत् ॥२२॥

**अनुवाद**— परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित काल ने गुणों में क्षोभ पैदा कर दिया, स्वभाव ने उन सबों को परिणाम अर्थात् रूपान्तरित कर दिया और कर्म ने महत् तत्त्व को उत्पन्न कर दिया ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

गुणानां व्यतिकरः क्षोभः साम्यत्यागः । स्वभावतः परिणामो रूपान्तरापत्तिः । पुरुष ईश्वरस्तेनाधिष्ठितत्वं त्रयाणां विशेषणम् । महतः महत्तत्वस्य ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित होकर काल ने प्रलय काल में जो प्रकृति में गुणों का साम्य था उसमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया अर्थात् उन गुणों में वैषम्य उत्पन्न कर दिया, परमात्माधिष्ठित ही स्वभाव ने उन सबो का परिणाम कर दिया अर्थात् उन सबों के रूप में परिवर्तन ला दिया और ईश्वराधिष्ठित ही कर्म ने महत् तत्त्व को उत्पन्न कर दिया ॥२२॥

**महतस्तु विकुर्वाणाद्रजःसत्त्वोपबृंहितात् । तमःप्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥२३॥**

**अन्वयः**— रजः सत्त्वोपबृंहितात् विकुर्वाणात् महतः तु तमः प्रधानः द्रव्यज्ञानकियात्मकः अभवत् ॥२३॥

**अनुवाद**— रजोगुण और सत्त्वगुण से उपबृंहित होने के कारण विकृत महत् तत्त्व से द्रव्य, ज्ञान और क्रियात्मक विकार उत्पन्न हुआ ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्विक्रियमाणात् तस्य च क्रियाज्ञानशक्तित्वात्रिगुणत्वेऽपि रजःसत्त्वाभ्यामुपबृंहितत्वम्, अहंकारस्य त्वावराकत्वात्तमःप्रधानत्वम् । अत एवहंकारकार्येषु तामसमाकाशादिकं बहु । राजसं सात्त्विकं चाल्पम् । एवं तदुपाधिकेषु जीवेष्वपि तथैव तामसाधिक्यम् ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

विकृत होने वाले महत्तत्त्व क्रिया, ज्ञान एवं शक्ति इन तीनों से युक्त होने के कारण त्रिगुण होने पर भी वह रजोगुण और सत्त्वगुण से उपबृंहित हुआ और उससे अहङ्कार उत्पन्न हुआ । अहङ्कार चूकि आवरक होता है अतएव उसमें तमोगुण की प्रधानता रहती है, रजोगुण और सत्त्वगुण अल्पमात्रा में रहते हैं ।

अतएव अहङ्कार के जो कार्य होते हैं, उनमें तामस अकाश आदि की अधिकता होती है। राजस एवं सात्त्विक अंश अल्पमात्रा में रहते हैं। इसीलिए अहंकारोपाधिक जीवों में भी तामस अधिक होता है ॥२३॥

**सोऽहंकार इति प्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्त्रिधा। वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ॥**
**द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥२४॥**

**अन्वयः**— सःअहङ्कार इति प्रोक्तः विकुर्वन् त्रिधा समभूत् वैकारिकः तैजसः च तामसः च। हे प्रभो ! तद्भिदा द्रव्यशक्तिः, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्तिः इति ॥२४॥

**अनुवाद**— वह विकार अहङ्कार कहलाया। वह अहङ्कार भी विकृत होकर तीन प्रकार का हुआ वैकारिक, तैजस और तामस। हे नारदजी वैकारिक अहङ्कार ज्ञान शक्ति से युक्त है, तैजस अहङ्कार क्रिया शक्ति से युक्त है तथा तामस (भूतादि) अहङ्कार द्रव्यशक्ति से युक्त हुआ ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

स च विकुर्वन् रूपान्तरं गच्छन्। त्रैविध्यमेवाह। वैकारिकः सात्त्विकः। तैजसो राजसः तामसः भूतादिः। यद्भिदा यस्य भेदः द्रव्यशक्तित्यादीनि प्रातिलोम्येन त्रयाणां लक्षणानि। द्रव्ये महाभूताख्ये शक्तिर्यस्य। क्रियासु इन्द्रियेषु शक्तिर्यस्य ज्ञानेषु वेदेषु शक्तिर्यस्य। हे प्रभो बोद्धुं शक्त ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

वह अहङ्कार भी विकृत होकर तीन प्रकार का हुआ। वैकारिक अर्थात् सात्त्विकअहङ्कार, तैजस अर्थात् राजस अहङ्कार और तामस अर्थात् भूतादिअहङ्कार। द्रव्य शक्ति इत्यादि इन तीनों के विपरीत क्रम से विशेष होते हैं। अर्थात् भूतादि अहङ्कार द्रव्यशक्ति से युक्त है, तैजस अहङ्कार क्रिया शक्ति प्रधान है और वैकारिक अहङ्कार ज्ञानशक्ति प्रधान है।

महाभूत नामक द्रव्य में तामसाहङ्कार की प्रधानता होती है, तैजस इन्द्रियों में क्रियाशक्ति की प्रधानता होती है और वेदों में ज्ञान शक्ति की प्रधानता होती है। हे प्रभो ! अर्थात् जानने में समर्थ हे नारदजी ॥२४॥

**तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः। तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिङ्गं यद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥२५॥**

**अन्वयः**— विकुर्वाणात् भूतादेः तामसात् अपि नभः अभूत् तस्य मात्रा गुणः च शब्दः यद् द्रष्ट दृश्ययोः लिङ्गम् ॥२५॥

**अनुवाद**— विकृत होते हुए उस महाभूतों के कारण रूप तामस अहङ्कार से आकाश की उत्पत्ति हुयी और उस आकाश की तन्मात्रा और गुण दोनों शब्द ही है। शब्द से ही द्रष्टा और दृश्य का बोध होता हैं ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

भूतादेरिति तामसस्य विशेषणम्। ननु तामसाठाथमं शब्दो भवतीति प्रसिद्धम्। सत्यम्। स तु तस्य नभसो मात्रा सूक्ष्मं रूपम्। गुणश्चासाधारणो व्यावर्तको धर्मः। शब्दद्वारा नभ उत्पद्यत इत्यर्थः। एवमेव स्पर्शादिष्वपि द्रष्टव्यम्। शब्दश्च लक्षणं लिङ्गमिति। कुड्याद्यन्तरितेन केनचिदुच्चैर्गजो गज इत्युक्ते यो गजद्रष्टा यश्च तेन दृश्यो गजस्तयोर्लिङ्गं बोधकम। लिङ्गविशेषणत्वाद्यच्छब्दस्य षण्ढत्वम् ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

भूतादि तामस अहङ्कार का विशेषण है। प्रश्न होता है कि तामस अहङ्कार से सर्वप्रथम शब्द तन्मात्र उत्पन्न होती है यह प्रसिद्ध है। आप तासम अहङ्कार से आकाश की उत्पत्ति कैसे कहते हैं ? तो इसका उत्तर है कि शब्द तन्मात्रा आकाश का सूक्ष्म रूप है। वह आकाश का असाधारण धर्म है। अतएव शब्द तन्मात्रा से आकाश की उत्पत्ति होती है इसीतरह स्पर्श आदि तन्मात्राओं के विषय में जानना चाहिए। शब्द ही लिङ्ग है। दिवाल

इत्यादि से व्यवहित कोई व्यक्ति यदि जोर से कहता है, हाथी हाथी उस शब्द को सुनकर उससे देखे जाने वाले हाथी और द्रष्टा दोनों का ज्ञान होता है। यत् शब्द लिङ्ग का विशेषण होने के कारण नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त है ॥२५॥

**नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः । परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥२६॥**

**अन्वयः**— विकुर्वाणात् आकाशात् स्पर्शगुणः अनिलः परान्वयात् शब्दवान् च प्राणः ओजः सहः बलम् तस्य रूपम् ॥२६॥

**अनुवाद**— विकृत होने वाले आकाश से स्पर्श गुण वाले वायु की उत्पत्ति हुयी। आकाश से भी सम्बन्ध होने के कारण उसमें शब्द नामक भी गुण है। इन्द्रियों में स्फूर्ति और प्राण में देह धारण की शक्ति, ओज और बल वायु के ही कारण है ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

परस्य नभसः कारणत्वेनान्वयाच्छब्दवांश्च वायुः। तस्यैव लक्षणं प्राणो देहधारणम्। ओजःसहोबलानीन्द्रियमनःशरीराणां पाटवानि तेषां हेतुरित्यर्थः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

वायु का असाधारण गुण स्पर्श है। उसका अपने कारणभूत आकाश से सम्बन्ध होने के कारण उसमें शब्द भी हैं। वायु के कारण प्राण देह को धारण किए रहता है। ओज, सह तथा बल ये इन्द्रिय मन और शरीर की पटुता रूप हैं। इन सबों का कारण वायु ही हैं ॥२६॥

**वायोरपि विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः । उदपद्यत तेजो वै रूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥२७॥**

**अन्वयः**— कालकर्मस्वभावतः, विकुर्वाणात् वायोरपि रूपवत् स्पर्शशब्दवत् तेजः उदपद्यत ॥२७॥

**अनुवाद**— काल, कर्म और स्वभाव से विकृत होने वाले वायु से भी रूप, स्पर्श तथा शब्द गुण वाले तेज की उत्पत्ति हुयी ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

उदपद्यत उत्पन्नम्। स्वतो रूपवत्तेजो वायुर्नभसोः कारणभूतयोरन्वयात्स्पर्शशब्दवच्यः। एवमम्भसः पृथिव्याश्च परान्वयाधिक्याद्गुणाधिक्यम् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

**उदपद्यत** का उत्पन्न हुआ यह अर्थ है। तेज स्वभावतः रूपवान होता है। अपने कारणभूत वायु तथा आकाश से भी सम्बन्ध होने के कारण तेज में स्पर्श और शब्द होते हैं। इस तरह जल एवं पृथिवी का भी अपने कारण से सम्बन्ध होने के कारण उनमें गुणों की अधिकता जाननी चाहिए ॥२७॥

**तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदम्भो रसात्मकम् । रूपवत्स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात् ॥२८॥**

**अन्वयः**— विकुर्वाणात् तेजसः रसात्मकम् रूपवत् स्पर्शवत् च घोषवत् च अम्भः परान्वयात् आसीत् ॥२८॥

**अनुवाद**— विकृत होने वाले तेज से रसयुक्त जल की उत्पत्ति हुयी अपने कारणभूत वायु से अन्वित होने के कारण वह स्पर्श तथा शब्द से भी युक्त था ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

घोषः शब्दः ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

तेज से जल की उत्पत्ति हुयी और वह रूप, स्पर्श और शब्द से युक्त हुआ । उसमें अपने कारण भूत वायु के स्पर्श और शब्द नामक गुण हो गये । रस जल का अपना असाधारण गुण हैं ॥२८॥

**विशेषस्तु विकुर्वाणादम्भसो गन्धवानभूत् । परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥२९॥**

**अन्वयः**— विकुर्वाणात् अभ्भसः तुः, गन्धवान् विशेषः अभूत् परान्वयात् रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः अभूत् ॥२९॥

**अनुवाद**— विकृत होने वाले जल से गन्ध से युक्त पृथिवी की उत्पत्ति हुयी । अपने कारण से सम्बन्ध होने के कारण उसमें रूप, रस, शब्द तथा स्पर्श नामक भी गुण आ गये । अधिक गुणों से युक्त होने के कारण पृथिवी को विशेष शब्द से अभिहित किया गया है ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

विशेषः पृथ्वी । पृथिव्याश्च परान्वयाधिक्याद्गुणाधिक्यम् ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

विशेष शब्द से पृथिवी को कहा गया है । अधिक गुण सम्पन्न तेज नामक कारण से सम्बन्ध होने के कारण स्वेतर भूतों की अपेक्षा उसमें अधिक गुण हुए ॥२९॥

**वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश । दिग्वतार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥३०॥**

**अन्वयः**— वैकारिकात् मनः जज्ञे दिग्वातार्कप्रचेतोऽशिवबह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः वैकारिकाः देवाः दश ॥३०॥

**अनुवाद**— सात्त्विक अहङ्कार से मन तथा दशो इन्द्रियों के अधिष्ठातृ दिक् वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति नामक देवताओं की भी उत्पत्ति हुयी ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

मनःशब्देनैव तदधिष्ठाता चन्द्रोऽपि द्रष्टव्यः । अन्ये च दश देवा वैकारिकाः सात्त्विकाहंकारकार्याः । तानाह । दिशश्च वातश्च अर्कश्च प्रचेताश्च अश्विनौ च, एते पञ्च श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानामधिष्ठातारः वह्निश्च इन्द्रश्च उपेन्द्रश्च मित्रश्च कश्च प्रजापतिः, एते पञ्च वाक्पाणिपादपायूपस्थानामधिष्ठातारः ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

मन शब्द का प्रयोग होने से ही उसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा की भी उत्पत्ति स्वीकार करना चाहिए । अन्य जो दश देवता बतलाये गये हैं वे सात्त्विक हैं तथा अहङ्कार के कार्य हैं, वे देवता हैं दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता और दोनों अश्विनी कुमार, ये पाञ्चो देवता क्रमशः श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियो के अधिष्ठातृ देवता हैं । अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति ये पाञ्चो देवता क्रमशः वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ नामक कर्मेन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं ॥३०॥

**तैजसात्तु विकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन् । ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ॥**
**श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मढ्राङ्घ्रिपायवः ॥३१॥**

**अन्वयः**— विकुर्वाणात् तैजसात् दश इन्द्रियाणि, ज्ञानशक्तिः बुद्धिः क्रियाशक्तिः, प्राणः तु तैजसौ । श्रोत्रत्वग् घ्राण दृग् जिह्वा वाग् दोःमेढः अङ्घ्रि-पायवः इमानि दश इन्द्रियाणि सन्ति ॥३१॥

**अनुवाद**— विकृत होने वाले तैजस अहङ्कार से दश इन्द्रियाँ ज्ञानशक्ति बुद्धि तथा क्रियाशक्ति प्राण ये दोनों तैजस हैं, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, त्वगिन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, रसनेन्द्रिय वागिन्द्रिय, पाणीन्द्रिय, पादेन्द्रिय, पाय्विन्द्रिय तथा उपस्थेन्द्रिय ये दश इन्द्रियाँ हैं ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

यतो ज्ञानशक्तिर्बुद्धिः क्रियाशक्तिः प्राणश्च तैजसाहंकारकार्यौ । अतो ज्ञानक्रियाविशेषरूपाणीन्द्रियाण्यपि तैजसादभवन्नित्यर्थः। तान्याह-श्रोत्रमिति । दोः पाणिः । मेढ्रमुपस्थः । क्रमस्त्वत्र न विवक्षितः ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

चूकि ज्ञानशक्ति बुद्धि तथा क्रियाशक्ति प्राण ये दोनों भी राजसाहङ्कारजन्य हैं अतएव इन्द्रियाँ भी ज्ञानविशिष्ट और क्रियाविशिष्ट हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानविशिष्ट हैं और कर्मेन्द्रियाँ क्रियाविशिष्ट हैं। और ये सब तैजस अहङ्कार से उत्पन्न हैं। उन सबों को श्रोत्रत्वग इत्यादि पद से कहा गया है। मूल में इन्द्रियों का क्रम विवक्षित नहीं हैं ।।३१।।

**यदैतेऽसङ्गता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः । यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ।।३२।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मवित्तम यदा भूतेन्द्रियमनोगुणा, भावाः असङ्गताः यदायतननिर्मणे न शेकुः ।।३२।।

**अनुवाद**— हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ नारदजी जब तक, पञ्चभूत, इन्द्रियाँ, मन और सत्त्व, रजस्, तथा तमस् ये सभी भावपदार्थ संगठित नहीं थे तब तक ये अपने रहने के आश्रय भूत शरीर का निर्माण नहीं कर सके ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

एवं कारणसृष्टिमुक्त्वा कार्यसृष्टिमाह । यदा एते असङ्गता अमीलिता आसन्, अतएव यदा आयतनस्य शरीरस्य निर्माणे न शेकुः ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से कारण तत्त्वों की सृष्टि को बतलाकर कार्यसृष्टि को इस श्लोक से बतलाते हैं कि जब तक उपर्युक्त वर्णित सभी भावपदार्थ असंगठित थे तब तक वे अपने आश्रयभूत शरीर का निर्माण नहीं कर सके।।३२।।

**तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः । सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ।।३३।।**

**अन्वयः**— तदा भगवत्शक्तिचोदिता अन्योन्यं संहत्य सदसत् उभयं भावमुपादाय अदः ससृजुः ।।३३।।

**अनुवाद**— उस समय भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर वे परस्पर में मिल गये और आपस में कारण-कार्यभाव को स्वीकार करके व्यष्टि एवं समष्टि रूप शरीर और ब्रह्माण्ड दोनों की रचना किए ।।३३।।

### भावार्थ दीपिका

तदा सदसत्त्वं प्रधानगुणभावमुपादाय स्वीकृत्य । उभयं समष्टिव्यष्ट्यात्मकं शरीरम् ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

उस समय प्रधान एवं गौणभाव को अपनाकर उन सबों ने समष्टि एवं व्यष्टि शरीर और ब्रह्माण्ड दोनों को उत्पन्न किया ।।३३।।

**वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् । कालकर्मस्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत् ।।३४।।**

**अन्वयः**— उदकेशयम् तत् अण्डम्, वर्षपूगसहस्रान्ते काल कर्म स्वभवस्थः जीवः अजीवम् अजीवयत् ।।३४।।

**अनुवाद**— एक हजार वर्ष तक जल में पड़े रहने पर उस निर्जीव ब्रह्माण्ड को काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करके जीव शब्द वाच्य परमात्मा ने उसको जीवित कर दिया ।।३४।।

### भावार्थ दीपिका

कालकर्मस्वभावानधिष्ठाय स्थितो जीवयतीति जीवः परमात्मा अजीवमचेतनमजीवयच्चेतयति स्म ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

जिस ब्रह्माण्ड का निर्माण पञ्चमहाभूत, इन्द्रियाँ मन एवं गुणों ने मिलकर किया था वह ब्रह्माण्ड एक हजार वर्ष तक जल में पड़ा रहा। वह निर्जीव था। उसको काल, कर्म तथा स्वभाव को अधिष्ठित करके परमात्मा ने जीवित कर दिया अर्थात् चेतनारहित उसको चेतना से युक्त कर दिया। जीवित करने का काम करने के कारण परमात्मा को जीव शब्द से अभिहित किया गया है ॥३४॥

**स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः । सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥३५॥**

**अन्वयः**— अण्डं निर्भिद्यः स एव पुरुषः सहस्रोर्वङ्घ्रि बाहवक्षः सहस्राननशीर्षवान् तस्मात् निर्गतः ॥३५॥

**अनुवाद**— उस अण्डे को फोड़कर वे ही विराट् पुरुष हजारों जंघाओं, चरणों, भुजाओं, नेत्रों, मुखों तथा शिरों से युक्त होकर निकले ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

निर्भिद्य पृथकृत्य स्थित इत्यर्थः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

निर्भद्य अर्थात् पृथक्-पृथक् करके जो परमात्मा उस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किये थ वे ही विराट् पुरुष के रूप में उससे निकले। उनके जङ्घा इत्यादि अवयव हजारों की संख्या में थे ॥३५॥

**यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति मनीषिणः । कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥३६॥**

**अन्वयः**— यस्य अवयवैः इह मनीषिणः कट्यादिभिः सप्त अधोलोकान् जघानादिभिः सप्तउर्ध्वं लोकान् कल्पयन्ति॥३६॥

**अनुवाद**— उन्हीं विराट् पुरुष के अङ्गों में मनीषीपुरुष लोकों की कल्पना करते हैं। विराट् पुरुष के कमर से नीचे के भागों में पृथिवी के नीचे के सात पातालों की कल्पना करते हैं ओर पेडू के ऊपर के भागों में सात स्वर्गों की कल्पना उपासना करने के लिए करते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तदवयवैर्लोकरचनामाह-यस्येति। कटिरित्यूरुमूलयोः पश्चाद्भागः। जघनं पुरोभागः। अधः सप्तलोकान् अतलादीन्। ऊर्ध्वं भूरादीन् सप्त ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

उस विराट् पुरुष के अङ्गों से ही लोकों की रचना बतलाते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि जङ्घा के मूल के पीछे के भाग को कटि कहते हैं और आगे के भाग को जङ्घा कहते हैं। नीचे के अत्तल आदि सात लोक हैं और ऊपर के भूलोक आदि सात लोक हैं ॥३६॥

**पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः । ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥३७॥**

**अन्वयः**— अस्य पुरुषस्य मुखं ब्रह्म, क्षत्रम् एतस्य बाहवः भगवतः ऊर्वोः वैश्यः पद्भ्यां शुद्रः अभ्यजायत ॥३७॥

**अनुवाद**— विराट् पुरुष का मुख ही ब्राह्मण हैं, इसकी भुजाएँ ही क्षत्रिय है। श्रीभगवान् के दोनों ऊरूभाग ही वैश्य हैं और पैर ही शूद्र की उत्पत्ति का स्थान हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

वर्णानां तत उत्पत्तिं दर्शयति-पुरुषस्येति। ब्रह्म ब्राह्मणो मुखमिति कार्यकारणयोरभेदविवक्षयोक्तम्। बाहव इति च। क्षत्रं क्षत्रियः ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

विराट् पुरुष के अङ्गों से वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं यहाँ ब्रह्म शब्द, ब्राह्मण का वाचक है। ब्राह्मण उस विराट् पुरुष का मुख है यह कारण और कार्य में अभेद की विवक्षा से कहा गया है। अर्थात् विराट् पुरुष के मुख से ब्रह्मण वर्ण की उत्पत्ति हुयी। इसी तरह क्षत्रिय वर्ण की भुजाओं से उत्पत्ति हुयी, ऊरुओं से वैश्य वर्ण की उत्पत्ति हुयी और पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुयी ।।३७।।

**भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।**
**हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ।।३८।।**

**अन्वयः**— पद्भ्यां भूर्लोकः, भुवर्लोकः नाभितः, स्वर्लोकः हृदा, महात्म्नः, महर्लोकः, उरसा कल्पितः ।।३८।।

**अनुवाद**— विराट् पुरुष के पैरों में भूलोक की कल्पना की गयी है नाभि में भुवर्लोक की कल्पना की गयी है हृदय में स्वर्लोक की कल्पना की गयी है और वक्षःस्थल में महर्लोक की कल्पना की गयी है ।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

इदानीमुपासनार्थं लोककल्पनाभेदान्दर्शयन् सप्तलोकपक्षमाह द्वाभ्याम्। भूर्लोकः पातालमारभ्य। पद्भ्यां कटिपर्यन्ताभ्याम्।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

अब उपासना के लिए लोकों की कल्पना के भेदों को बतलाते हुए दो श्लोकों द्वारा सप्त लोक पक्ष का वर्णन करते हैं। पाताल से लेकर भूलोक पर्यन्त की कल्पना पैरों से लेकर कटि पर्यन्त प्रदेश में की गयी हैं ।।३८।।

**ग्रीवायां जनलोकाश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् । मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ।।३९।।**

**अन्वयः**— ग्रीवायां च जनलोकः, स्तनद्वयात् तपोलोकः मूर्धभिः तु सत्यलोकः कल्पितः स एव सनातनः ब्रह्मलोकः ।।३९।।

**अनुवाद**— विराट् पुरुष की ग्रीवा में जनलोक की, दोनों स्तनों में तपोलोक की, और शिरोभाग में सत्य लोक की कल्पना की गयी है, उसके ऊपर ही सनातन ब्रह्मलोक है वही वैकुण्ठ हैं ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

स्तनद्वयादित्युपासनार्थत्वादूर्ध्वाधोभागवैपरीत्यं न दोषः । यद्वा स्तनच्छब्दं कुर्वद्यदोष्ठद्वयं तस्मादित्यर्थः ब्रह्मलोको वैकुण्ठाख्यः, सनातनो नित्यः नतु सृज्य प्रपञ्चान्तर्वर्तीत्यर्थः ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

दोनों स्तनों में तपोलोक की कल्पना की गयी है और ग्रीवा में महलोक की कल्पना की गयी है। यह उलटा क्रम प्रतीत होता है। तो इस कल्पना का उद्देश्य उपासनार्थ है। अतएव ऊपर के अङ्ग और नीचे के अङ्ग को लेकर कल्पना करने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है अथवा स्तन शब्द दोनों ओष्ठ के अर्थ में प्रयुक्त मान लें और उसी में तपोलोक की कल्पना होती है। यह ब्रह्मलोक ही वैकुण्ठ है वही सनातन और नित्य है। यह सृज्य प्रपञ्च के अन्तर्गत नहीं है ।।३९।।

**तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरूभ्यां वितलं विभोः।**
**जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम् ।।४०।।**
**महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ।**
**पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ।।४१।।**

**अन्वयः**— तत्कट्यां च अतलं कल्पतं, ऊरुभ्यां वितलं, विभोः जानुभ्यां शुद्धं सुतलम् जंघाभ्यां तु तलातलम्, गुल्फाभ्यां तु महातलम्, प्रपदाभ्यां रसातलम्, पादतलतः पाताल इति लोकमयः पुमान् ।।४०-४१।।

**अनुवाद**— उस विराट् पुरुष की कटि में अतल, जङ्घों मे वितल, धुटनों में पवित्र सुतल, जङ्घाओं में तलातल गुल्फों में महातल पञ्जों और एड़ियों में रसातल, तथ पैर के तलवों में पाताल को जानना चाहिए। इस तरह विराट् पुरुष सर्वलोक मय है ॥४०-४१॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं चतुर्दशलोकपक्षं दर्शयति। तत्र जघनादिभिर्भूरादयः पूर्वोक्ता एव सप्त, कट्यादिभिरधः सप्तलोकानाह-तत्कट्यामिति द्वाभ्याम्। शुद्धं हरिभक्तिनिवासत्वात् ॥४०-४१॥

### भाव प्रकाशिका

अब चतुर्दश लोक पक्ष को बतलाते हैं। जङ्घे से लकर भूर्लोक पर्यन्त पूर्वोक्त सात लोक हैं। कटि के नीचे के सात लोकों को तत्कट्याम् इत्यादि दो श्लोकों द्वारा बतलाया गया हैं सुतल इसलिए पवित्र है कि वहाँ श्रीहरि की भक्ति का निवास है ॥४०-४१॥

**भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः।**
**स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥४२॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुरणे द्वितीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

**अन्वयः**— भूर्लोकः पद्भ्यां कल्पितः, अस्य नाभितः भुवर्लोकः मूर्ध्ना स्वर्लोकः कल्पितः इति लोकल्पना ॥४२॥

**अनुवाद**— अथवा विराट् पुरुष के दोनों पैरों में भूर्लोक की कल्पना की गयी है। विराट् पुरुष की नाभि में भुवर्लोक की कल्पना की गयी है। विराट् पुरुष के शिरोभाग में स्वर्लोक की कल्पना करनी चाहिए ॥४२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥**

### भावार्थ दीपिका

त्रिलोकपक्षमाह। भूर्लोकः पातालादिसहितः ॥४२॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥**

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में त्रिलोक पक्ष का वर्णन किया गया है। भूर्लोकः शब्द से पाताल सहित भूलोक को ग्रहण करना चाहिए ॥४२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के पाञ्चवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥५॥**

# छठा अध्याय

## विराट् स्वरूप की विभूतियों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

**वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः । हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥१॥**

**अन्वयः**— वाचांबह्नेः च क्षेत्रं मुखं, छन्दसां सप्त धातवः, हव्यकव्यामृतान्नानां सर्वरसस्य च जिह्वा क्षेत्रम् ॥१॥

**ब्रह्माजी ने कहा**

**अनुवाद**— उन विराट् पुरुष के मुख से वाणी और उसके अधिष्ठातृ देवता अग्नि की उत्पत्ति हुयी । वैदिक सातो छन्दों की उत्पत्ति उनकी सातो धातुओं से हुयी । देवता, पितृगण और देवताओं के अमृतमय अन्न रसनेन्द्रिय से और सभी प्रकार के रसों की उत्पत्ति विराट पुरुष की जिह्वा से हुयी हैं ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

षष्ठे विराड्विभूतिश्च प्रोक्ताऽऽध्यात्मादिभेदतः । दृढीकृतं च पूर्वोक्तं सर्वं पुरुषसूक्ततः ॥१॥ इदानीं वैराजस्य विभूतिः सप्रपञ्चमनुवर्ण्यते । वाचामस्मदादिवागिन्द्रियाणां तदधिष्ठातुर्वह्नेश्च तस्य मुखं क्षेत्रमुत्पत्तिस्थानम् । छन्दसां गायत्र्यादीनां सप्तानां तस्य सप्तधातवस्त्वगादयः क्षेत्रम् । हव्यं देवानामन्नम् । कव्यं पितृणाम् । अमृतं तदुभयशेषो मनुष्याणाम् । तेषामन्नानां सर्वरसस्य मधुरादेः षड्विधस्य चकारादस्मदादिरसनेन्द्रियस्य तदधिष्ठातुर्वरुणस्य चैतस्य जिह्वा क्षेत्रमुत्पत्तिस्थानम् । एवं सर्वत्रानुक्तमुन्नेयम् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

छठे अध्याय में अध्यात्म इत्यादि भेद से विराट् की विभूति बतलायी गयी है और पूर्वोक्त सारी बातों का समर्थन पुरुष सूक्त के द्वारा किया गया है ॥१॥

**इदानीम्० इत्यादि-** इस समय वैराज की विभूति का वर्णन विस्तार के साथ किया जा रहा है । वाणी तथा वाणी के अधिष्ठातृ देवता अग्नि का उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष का मुख है । गायत्री आदि सात (गायत्री, त्रिष्टुप्, उष्णिक्, जगती, बृहती, पंक्ति और अनुष्टुप्) इन छन्दों के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष के त्वक् आदि (चर्म, मांस, रुधिर, मेदस्, मज्जा एवं अस्थियाँ हैं) देवताओं के अन्न को हव्य कहते हैं, पितरों के अन्न को कव्य कहते हैं तथा उन दोनों से अवशिष्ट मनुष्यों के अन्न ये सब अमृत स्वरूप हैं उन सभी अन्नो, सभी मधुर आदि अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त रसों तथा हमलोगों की रसनेन्द्रिय तथा उसके अधिष्ठातृ देवता के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की जिह्वा है ॥१॥

**सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने । अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥२॥**

**अन्वयः**— सर्वासूनाम् च वायोश्च तन्नासे परमायने, अश्विनोः ओषधीनाम् तथा मोदप्रमोदयोः घ्राणः ॥२॥

**अनुवाद**— हमलोगों के सभी प्राणों तथा वायु के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की नाक के छिद्र हैं । मोद तथा प्रमोद सामान्य तथा विशेष गन्धों) के भी विराट् पुरुष के नाक के छिद्र ही श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थान हैं ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वासूनामस्मदादिप्राणानां तस्य नासे नासारन्ध्रे परमायने उत्तमक्षेत्रे । मोदप्रमोदयोश्च सामान्यविशेषगन्धयोर्घ्राणा घ्राणेन्द्रियं परमायनम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के प्राण, अपान, समान व्यान तथा उदान इन सभी प्राणों तथा सामान्य एवं विशेष गन्धों के श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की नाकों के छिद्र हैं ।।२।।

**रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी । कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ।।३।।**

**अन्वयः**— रूपाणां, तेजसां चक्षुः दिवः सूर्यस्य अक्षिणी, दिशाम् तीर्थानाम् च कर्णौ, आकाश शब्दयोः श्रोत्रम् क्षेत्रम् ।।३।।

**अनुवाद**— सभी रूपों तथा तेजों की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष की चक्षुरिन्द्रियाँ हैं स्वर्ग लोक और सूर्य की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष के दोनों नेत्र गोलक हैं । दिशाओं तथा तीर्थों के उत्पत्ति का स्थान दोनों कान हैं और आकाश तथा शब्द की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष की श्रोत्रेन्द्रिय है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

रूपाणां तेजसां रूपप्रकाशानां च चक्षुरिन्द्रियम् । अक्षिणी नेत्रगोलके । सर्वत्र षष्ठ्यन्तानां प्रथमान्तं क्षेत्रं द्रष्टव्यम् । कर्णौ श्रोत्राधिष्ठाने । श्रोत्रमिन्द्रियम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

सभी रूपों तथा रूपों के प्रकाशक तेजों के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की चक्षुरिन्द्रिय है । स्वर्गलोक और सूर्य के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की दोनों आँखें हैं । सर्वत्र प्रयुक्त षष्ठ्यन्त पदों का अर्थ प्रथमान्त क्षेत्र करना चाहिए । कर्ण शब्द से श्रेत्रेन्द्रिय का अधिष्ठान स्थान बतलाया गया है । श्रोत्र शब्द से श्रोत्रेन्द्रिय कहा गया है। श्रोत्रेन्द्रिय के अधिष्ठान (रहने के स्थान) कान है ।।३।।

**तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् । त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ।।४।।**

**अन्वयः**— वस्तु साराणां सौभगस्य भाजनम् तद्गात्रम् स्पर्शवायोः सर्वमेधस्य च अस्य त्वक् क्षेत्रम् ।।४।।

**अनुवाद**— विराट् पुरुष का शरीर सभी वस्तुओं के सार तथा सौन्दर्य का उत्पत्ति स्थान है । सभी यज्ञों स्पर्श तथा वायु का उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की त्वगिन्द्रिय है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तस्य गात्रं शरीरं वस्तूनां ये सारास्तेषां भाजनं स्थानम् । अस्य त्वक्स्पर्शस्य वायोश्चेत्यर्थः । सर्वस्य मेधस्य यज्ञस्य ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सभी वस्तुओ के जो सारभाग हैं तथा सौन्दर्य का उत्पत्तिस्थान उस विराट् पुरुष का सम्पूर्ण शरीर है और स्पर्श, वायु तथा सभी यज्ञों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष की त्वगिन्द्रिय है ।।४।।

**रोमाण्युद्भिज्जातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः । केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् ।।५।।**

**अन्वयः**— उद्भिज् जातीनाम् रोमाणि वा यैस्तु यज्ञः संभृतः । शिलालोहाभ्रविद्युताम् अस्य केशाश्मश्रुनखानि क्षेत्राणि।।५।।

**अनुवाद**— सभी वृक्ष जातियों के उत्पत्तिस्थान उनके रोम हैं अथवा जिन वृक्षों से यज्ञ का कार्य किया जाता है उन वृक्षों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष के रोम हैं । उनके केश मेघों के, श्मश्रु विद्युतों के तथा पैरों एवं हाथों के नख शिलाओं और लोहों के उत्पत्तिस्थान हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

उद्भिज्जतातीनां सर्ववृक्षाणाम् । यैर्वृक्षैर्यज्ञः सम्यक् साधितस्तेषामेव वा । केशा मेघानां क्षेत्रम्, पूर्वं तथोक्तेः । श्मश्रूणि विद्युताम् । पादकरनखानि शिलालोहानामिति सादृश्यादूह्मम् ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

उद्भिज्जाति के जितने भी वृक्ष हैं उन सबों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष के रोएँ हैं । अथवा जिन वृक्षों से यज्ञ अच्छी तरह सम्पन्न किया जाता है, उन्हीं वृक्षों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष के रोम हैं । केश मेंधों के उत्पत्तिस्थान हैं । उनके श्मश्रु विद्युत् के उत्पत्तिस्थान हैं । पैरों तथा हाथों के नख ही शिलाओं तथा लोहों के उत्पत्तिस्थान हैं । सादृश्य के कारण ऐसा अर्थ करना चाहिए ॥५॥

**बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् । विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ॥६॥**

**अन्वयः**— क्षेमकर्मणाम् लोकपालानाम् प्रायशः बाहवः । भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च विक्रमः ॥६॥

**अनुवाद**— विराट् पुरुष की भुजाओं से प्रायः लोकों की रक्षा करने वाले लोकपालों की उत्पत्ति हुयी । उनके पादविन्यास से भूर्लोक, भुवर्लोक एवं स्वर्लोक की उत्पत्ति हुयी है क्षेम और रक्षा की भी उत्पत्ति उनके चरणों से ही हुयी हैं ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

क्षेमकर्मणां पालनकर्तृणाम् । विक्रमः पादन्यासो भूरादिलोकानामास्पदमाश्रयः । भूरादिशब्दानामव्ययत्वात्षष्ठ्या लुक् क्षेमो लब्धशरणम् । शरणं भयाद्रक्षणम् ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी बतला रहे हैं कि संसार की रक्षा करने वाले लोकपालों की उत्पत्ति विराट् पुरुष की भुजाओं से हुयी हैं । उनके चरणविन्यासों से भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक की उत्पत्ति हुयी है । भूः आदि शब्दों के अव्यय होने के कारण भू भूंवः स्वः इन तीनों की षष्ठी विभक्ति का लुक् हुआ है । प्राप्त वस्तु की रक्षा करने को क्षेम कहते हैं किसी की भय से रक्षा करने को शरण कहते है । श्रीभगवान् के चरण विन्यास ही क्षेम और शरण हैं ॥६॥

**सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् । अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥**
**पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः ॥७॥**

**अन्वयः**— सर्वकामवरस्य अपि हरेः चरणः आस्पदम् । अपाम् वीर्यस्य, सर्गस्य, पर्जन्यस्य प्रजापतेः पुंसः शिश्नः प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः तु उपस्थः ॥७॥

**अनुवाद**— सभी कामनाओं की पूर्ति के स्थान विराट् पुरुष के चरण ही हैं । विराट् पुरुष का लिङ्ग जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ तथा प्रजापति की उत्पत्ति का स्थान है । विराट् पुरुष का जननेन्द्रिय मैथुनजन्य आनन्द का उत्पत्ति स्थान है ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वेषां कामनां वरस्य वरुणस्यापि हरेरङ्घ्रिरास्पदम् । वीर्यस्य शुक्रस्य । शिश्नोऽधिष्ठानम् उपस्थस्त्विन्द्रियम् । प्रजात्यानन्दः सन्तानार्थः संभोगस्तेन या निर्वृतिस्तापहानिस्तस्याः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

सभी कामनाओं की पूर्ति का भी स्थान विराट् पुरुष के चरण हैं । जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापति का उत्पत्ति स्थान लिङ्ग है । शिश्न शब्द से लिङ्ग को कहा गया है । उपस्थ इन्द्रिय है । सन्तानोत्पत्ति के लिए किए जाने वाले संभोग और तज्जन्य आनन्द की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष की उपस्थेन्द्रिय हैं ॥७॥

**पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद । हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥८॥**

**अन्वयः**— नारद ! यमस्य, मित्रस्य, परिमोक्षस्य पायुः । हिंसायाः, निऋतेः मृत्योः निरयस्य गुदः स्मृतः ॥८॥

**अनुवाद**— हे नारद ! विराट् पुरुष की पायु इन्द्रिय ही यम, मित्र तथा मलत्याग का उत्पत्ति स्थान है और हिंसा, निऋति, मृत्यु और नरक का उद्गम स्थान विराट् पुरुष का गुदाद्वार है ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

परिमोक्षस्य मलत्यागस्य पायुरिन्द्रियम् । गुदः स्थानम् । निर्ऋतेरलक्ष्म्या ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

गुदः स्थान मल द्वार को कहते है । यम, मित्र, मलत्याग इन सबों का उद्गम स्थान पायुरिन्द्रिय है । हिंसा अलक्ष्मी, मृत्यु, तथा नरक का उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष का गुदाद्वार हैं ॥८॥

**पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः । नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥९॥**

**अन्वयः**— पश्चिमः पराभूतेः अधर्मस्य तमसः च अपि, नदनदीनाम् नाड्यः गोत्रणाम् अस्थिसंहति उद्गमस्थानम् ॥९॥

**अनुवाद**— विराट् पुरुष की पीठ पराजय अधर्म और अज्ञान का उद्गम स्थान है । नदियों और नक्षत्रों का उद्गम स्थान विराट् पुरुष की नाडियाँ हैं तथा पर्वतों का उद्गमस्थान विराट् पुरुष के अस्थिसमूह हैं ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

तमसोऽज्ञानस्य । पश्चिमः पृष्ठभाग गोत्राणां गिरीणामस्थिसंघातः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

विराट् पुरुष की पीठ अज्ञान का उत्पत्ति स्थान है । गोत्र शब्द वाच्य पर्वतों की उत्पत्ति विराट् पुरुष के अस्थिसमूह से हुयी ॥९॥

**अव्यक्तरससिन्धूनां भूतानां निधनस्य च । उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— अव्यक्त-रस-सिन्धूनां भूतानां निधनस्य च पुंसः उदरम् विदितम् मनसः हृदयम् पदम् ॥१०॥

**अनुवाद**— प्रकृति अन्नों के सारभूत रस विशेष, समुद्र तथा जीवों की मृत्यु का स्थान विराट् पुरुष का उदर है और मन का उद्गम स्थान हृदय है ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

अव्यक्तं प्रधानम्, रसोऽन्नादिसारः, सिन्धवः समुद्रास्तेषाम् । निधनस्य लयस्य । उदरं पदं स्थानं विदितं ज्ञानिभिः । मनसोऽस्मदादिलिङ्गशरीरस्य ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

अव्यक्त शब्द वाच्य प्रकृति अन्नों के सारभूत रसविशेष, समुद्र तथा जीवों की मृत्यु का उद्गम स्थान विराट् पुरुष का उदर है; यह ज्ञानियों ने कहा है । मन: शब्द वाच्य हमलोगों के लिङ्ग शरीर का उद्गम स्थन विराट् पुरुष का हृदय है ॥१०॥

**धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च । विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥११॥**

**अन्वयः**— धर्मस्य, मम, तुभ्यं च कुमाराणं, भवस्य च विज्ञानस्य सत्त्वस्य च आत्मा परायणम् ॥११॥

**अनुवाद**— धर्म का, मेरा, तुम्हारा, सनकादियों का, शङ्करजी का, विज्ञान का और सत्त्व का आश्रय विराट् पुरुष का चित्त है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

तुभ्यं तव । कुमाराणां सनकादीनाम् । भवस्य श्रीरुद्रस्य । आत्मा चित्तं परमयनम् ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

धर्म, ब्रह्माजी का, नारदजी का, सनकादिक महर्षियों का, शङ्करजी का और सत्त्व अन्तःकरण का परम आश्रय विराट् पुरुष का चित्त ही है ।।११।।

**अहं म्भवान्भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः । सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः ।।१२।।**
**गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः । पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः ।।१३।।**
**अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः । ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः ।।१४।।**
**सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् । तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ।।१५।।**

**अन्वयः**— अहम्, भवान् भवः च त इमे अग्रजा मुनयः सुरासुरनराः नागाः खगाः, मृगसरीसृपाः, गन्धर्वाप्सरसः यक्षाः रक्षोभूतगणोरगाः, पशवः पितरः, सिद्धाः विद्याध्राः चारणाः द्रुमाः अन्येच विविधा जीवाः, जलस्थलनभौकसः, ग्रहर्क्षकेतवः, ताराः तडितः, स्तनयित्नवः सर्वं इदं यत् भूतं भव्यं भवत् च इदं विश्वं तेन आवृतं किञ्च सः वितस्तिम् अधितिष्ठति ।।१२-१५।।

**अनुवाद**— मैं (ब्रह्माजी) तुम (नारदजी) शङ्करजी तुम्हारे बड़े भाई सनकादिक महर्षिगण, देवता, असुर, मनुष्य, नाग, मृग, रेंगने वाले जीव, गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, सर्प, पशु, पितृगण, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष, अनेक प्रकार के दूसरे जीव जो आकाश, जल अथवा पृथिवी पर रहते हैं, ग्रह, नक्षत्र केतु, तारे, विद्युत् और मेघ यह सम्पूर्ण जगत् विराट् पुरुषमय हैं । यह सम्पूर्ण विश्व जो कभी हुआ, या होगा अथवा है, ये सबके सब उस विराट् पुरुष से धिरे हैं । यह सम्पूर्ण विश्व विराट पुरुष के एक वितस्ति वित्ता मात्र में स्थित है । इस विश्व का परिमाण विराट् पुरुष का एक वित्ता है ।।१२-१५।।

**भावार्थ दीपिका**

एवं तावत्परमेश्वराज्जातं विश्वं ततो न भिन्नम् । यथा कुण्डलं सुवर्णान्न पृथक् । स तु सर्वनियन्ता सर्वप्रकाशको नित्यमुक्त इत्यर्थादुक्तम् । एतदेव पुरुषसूक्तार्थकथनेन द्रढ्यति । तत्र 'सहस्रशीर्षा' इत्यर्धर्चस्य 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इत्यादेश्च ऋक्त्रयस्यार्थः पूर्वाध्याय एव दर्शितः । 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यस्यार्थं दर्शयति । अहं भवानिति सार्धत्रिभिः । ते तव अग्रजा इमे सनकादयो मरीच्यादयश्च जलं च स्थलं च नभश्चौकांसि येषां ते । नभौकस इति सन्धिरार्षः । सर्वमिदं पुरुष एव न ततः पृथगित्यर्थः । प्रपञ्चेन तस्या परिच्छेदं वक्तुं स भूमिम्' इत्यस्यार्थमाह तेन पुरुषेण । विश्वमिति भूमिपदस्यार्थः । वितस्तिमिति दशाङ्गुलपदस्य, अधीत्यतिशब्दस्य, आवृतमिति वृत्वेत्यस्य, स च वितस्तिमधिकं व्याप्य तिष्ठतीत्याधिक्यमात्रं विवक्षितं, नतु परिमाणम् अनुपयोगादपरिच्छिन्नत्वाच्च ।।१२-१५।।

**भाव प्रकाशिका**

परमात्मा से उत्पन्न होने वाला यह जगत् उनसे भिन्न नहीं है । यह उसी तरह से है जैसे सुवर्ण से निर्मित कुण्डल सुवर्ण से भिन्न नहीं होता है । वे परमेश्वर जो हैं वे सबों के नियामक हैं, सबों के प्रकाशक है और नित्य मुक्त हैं यह अर्थतः ही सिद्ध हो जाता है । इस अर्थ का प्रतिपादन ब्रह्माजी ने पुरुषसूक्त का वर्णन करके किया है । पुरुष सूक्त के **सहस्रशीर्षा इत्यादि** आधे मन्त्र का तथा **ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीत् इत्यादि** तीन मन्त्रों का अर्थ इससे पहले के अध्याय में बतलाया जा चुका है । **अहं भवान् इत्यादि** साढे तीन श्लोकों द्वारा ब्रह्माजी ने **पुरुष एवेदं सर्वम्** इस मन्त्र का अर्थ बतलाया है । **वितस्तिम्** इस पद के द्वारा श्रुति के **दशाङ्गुलम्** पद का अधि इस अव्यय के द्वारा **अति** पद का अर्थ बतलाया गया है । परमेश्वर विराट् पुरुष के वित्तामात्र प्रपञ्च को अधिक

व्याप्त करके रहता है यह कहने का इतना ही मात्र अभिप्राय है कि वह प्रपञ्च की अपेक्षा अधिक व्यापक है। यहाँ परिमाण विवक्षित नहीं है। क्योंकि परिमाण प्रतिपादन का कोई उपयोग नहीं है और विराट् पुरुष परिच्छिन्न हैं भी नहीं ।।१२-१५।।

**स्वधिष्ण्यं प्रतपन्प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ । एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ।।१६।।**

**अन्वयः**— यथा असौ प्राणः स्वधिष्ण्यं प्रतपन् बहिश्च प्रतपति, एवं पुमान् विराजं प्रतपन् अन्तर्बाहिश्च प्रतपति ।।१६।।

**अनुवाद**— जैसे प्रकाशित होने वाले सूर्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए उसके बाहर भी प्रकाशित होते हैं, उसी तरह परमात्मा भी अपने शरीरभूत विराट् को प्रकाशित करते हुए उसके बाहर भी प्रकाशित होते हैं ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

एतत्सदृष्टन्तमाह । असौ प्राण आदित्यः 'असौ वा अदित्यः प्राणः' इति श्रुतेः । स्वधिष्ण्यं मण्डलं प्रकाशयन्यथा बहिश्च प्रकाशयति एवं विराड्देहं प्रकाशयन् ब्रह्माण्डमन्तर्बहिश्च प्रकाशयति ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का प्रतिपादन दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक करते हैं। जैसे दूर देश में विद्यमान प्राण शब्द वाच्य आदित्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए उसके बाहर भी प्रकाशित होते हैं उसी तरह परमेश्वर भी अपने विराट् देह को प्रकाशित करते हुए ब्रह्माण्ड के भीतरी भाग को और बाहर भी प्रकाशित करते हैं। प्राण शब्द आदित्य का वाचक है इसमें **'असौ वा आदित्यः प्राणः'** यह श्रुति ही प्रमाण हैं ।।१६।।

**सोऽमतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् । महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ।।१७।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् यत् मर्त्यमन्नम् अत्यगात् ततः पुरुषस्य एष महिमा दुरत्ययः सः अमृतस्य अभयस्य ईशः ।।१७।।

**अनुवाद**— हे नारदजी ! जो कुछ भी मनुष्य की क्रिया और सङ्कल्प से बनता है, ईश्वर उससे परे हैं। वह अमृत अभयप्रद (मोक्ष) का स्वामी है। इसीलिए परमेश्वर की महिमा का कोई पार नहीं पा सकता है ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

नित्यमुक्तत्वं दर्शयितुं 'उतामृतत्वस्य' इत्यस्यार्थमाह– स इति । अभयस्येति मन्त्रगतामृतपदव्याख्या । अन्नेनेति पदं विभक्तिव्यत्ययेन व्याचष्टे । मर्त्ये मरणधर्मकमन्नं कर्मफलं यस्मादत्यगादतिक्रान्तवान् । अतो न केवलं सर्वात्मकः, किंत्वमृतत्वस्य निजानन्दस्यापीश्वर इत्यर्थः । प्रपञ्चात्मकस्य कुतो नित्यमुक्तत्वमित्याशङ्क्य तत्परिहाराय 'एतावानस्य' इत्यस्यार्थमाह– महिमेति। प्रपञ्चात्मकस्याप्यमृतेशत्वमित्येष महिमा दुरत्ययोऽपारः । प्रपञ्चानिभिभूतत्वादिति भावः ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

यह विराट् पुरुष नित्यमुक्त है इस बात को बतलाने के लिए ब्रह्माजी **सोऽमृतस्य इत्यादि** श्लोक के द्वारा **उतामृतत्वस्येशानो इत्यादि** श्रुति का अर्थ बतलाते हैं। श्लोक के **अभयस्य** पद के द्वारा मन्त्र के अमृत पद की व्याख्या की गयी है। मन्त्र के अन्नेन पद की व्याख्या अन्नम् पद से विभक्ति को परिवर्तित करके कहा गया है। मर्त्यम् पद के द्वारा मरणशील अन्न कर्मफल को कहा गया है। चूकि वह विराट् पुरुष कर्म फल का अतिक्रमण किए हुए है, अतएव वह केवल सर्वात्मक ही नहीं है अपितु वह अमृतत्त्व अर्थात् अपने आनन्द का भी स्वामी है। यह प्रपञ्चात्मक विराट् कैसे नित्य मुक्त हो सकता है तो इस प्रकार की शङ्का का परिहार करने के लिए **एतावानस्य** इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्माजी ने **महिमैष इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया है। अर्थात् प्रपञ्चात्मक भी परमेश्वर की महिमा अपार है; क्योंकि वह प्रपञ्च से अभिभूत नहीं है ।।१७।।

**पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः । अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥१८॥**

**अन्वयः**— पुंसः पादेषु सर्वभूतानि स्थिति पदोविदुः त्रिमूर्ध्नः मूर्धसु अमृतं क्षेमम् अभयं अधायि ॥१८॥

**अनुवाद**— सम्पूर्ण लोक परमेश्वर के एक पद मात्र (अंश मात्र) हैं । उनके अंश मात्र लोकों में समस्त प्राणियों का निवास है । भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक के ऊपर महर्लोक विद्यमान है । उसके ऊपर जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक विद्यमान हैं । उन लोकों में क्रमशः अमृत, क्षेम और अभय का निवास रहता है ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

मन्त्रेण चैतावानस्य महिमा विभूतिः, स तु ज्यायान्महत्तर इति वदताऽयमेवार्थ उक्तः । तदेवमीश्वरो नित्यमुक्त इत्युक्तं **'तदाश्रितानां भूतानां बन्धमोक्षौ व्यवस्थया'** इति दर्शयन् **'पादोऽस्य विश्वा भूतानि'** इत्यस्यार्थमाह-पादेष्विति । तिष्ठन्त्यत्रेति स्थितयो भूरादिलोकास्ते पादा इव पादा अंशा यस्य स स्थितिपात् तस्य पादेष्वंशभूतेषु लोकेषु सर्वाञ्जीवान्विदुः । मन्त्रे तु **'पादोऽस्य विश्वा भूतानि'** इति सामानाधिकरण्यमधिष्ठानाधिष्ठेयाभेदविवक्षया । पाद इत्येकवचनं च सामान्याभिप्रायेणेति व्याख्यातं भवति । भूतेषु फलवैचित्र्यं दर्शयन् । **'त्रिपादस्यामृतं दिवि'** इत्यस्यार्थमाह । अस्येश्वरसंबन्धि त्रिपादमृतं नित्यसुखं दिवि ऊर्ध्वलोकेषु । न त्रिलोक्यामित्यर्थः । तदेव त्रिपाच्छब्दोक्तं त्रैविध्यं दर्शयन्नाह । त्रयाणां लोकानां मूर्धा महर्लोकस्तस्य मूर्धानस्तदुपरितनलोकास्तेषु यथाक्रममममृतादिकमधायि निहितम् । तत्र त्रिलोक्यां नश्वरमेव सुखम् । महर्लोकस्य क्रममुक्तिस्थानत्वेऽपि कल्पान्ते तत्रत्यानां स्थानत्यागान्नाविनाशिसुखम् । जनलोके त्वमृतमविनाशिसुखम् । यावज्जीवं स्वस्थानापरित्यागात् । किंतु महर्लोकवासिनां कल्पान्ते त्रिलोकदाहोष्मपीडितानां तदा तत्र गमनादक्षेमदर्शनमस्ति । तपोलोके तस्याभावात्क्षेममेव । वक्ष्यति हि **'त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या सङ्कर्षणाग्निना । यान्त्युष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः'** इति । सत्यलोके त्वभयं मोक्षः, तत्प्रत्यासत्तेः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

**एतावानस्य० इत्यादि** मन्त्र के द्वारा यह कहा गया है कि इतना उस पुरुष की महिमा अर्थात् विभूति है और वह पुरुष उससे भी महान् है । इस बात को बतलाने वाले मन्त्र के द्वारा यही बतलाया गया है । इस तरह सिद्ध हो गया कि ईश्वर नित्य ही मुक्त हैं । उसके अधीन रहने वाले भूतों की बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था को बतलाते हुए ब्रह्माजी **पादोऽस्य विश्वाभूतानि** इस मन्त्र का अर्थ पादेषु इस वाक्य से कहे हैं । उस ईश्वर में भूलोक अदि लोक है वे चरणों के समान हैं । पाद शब्द यहाँ अंश का बोधक है । वे लोक जिसके चरण है वह स्थिति पाद है । उसके अंश भूत लोकों में सभी जीवों को ज्ञानी पुरुष जानते हैं । मन्त्र में जो सामानाधिकरण्य अधिष्ठान और अधिष्ठेय के अभेद की विवक्षा से किया गया है । **पादोऽस्य** में पाद शब्द का एकवचनान्त प्रयोग जाति की विवक्षा से किया गया है । इस तरह से इस बात की व्याख्या की गयी है । प्रत्येक भूतों को अलग-अलग फल की प्राप्ति को बतलाते हुए **त्रिपादस्यामृतं दिवि** श्रुति का अर्थ बतलाया गया है । उसका अर्थ है कि ईश्वर सम्बन्धी अमृतत्रिपाद है । अर्थात् वहाँ सदा सुख ही बना रहता है । वह ऊपर के लोकों में विद्यमान है वह अमृतत्रिपाद त्रिलाकी के भीतर नहीं है । उस त्रिपाद शब्द से उक्त की त्रिविधता बतलाते हुए त्रिमूर्ध्नः कहा गया है । इसका विग्रह है त्रयाणां लोकानां मूर्धा । वह महर्लोक है । उस महर्लोक के ऊपर विद्यमान जो लोक हैं उन लोकों में क्रमशः अमृत, क्षेभ तथा अभय विद्यमान हैं । त्रिलोकी में रहने वाला सुख तो नश्वर है । यद्यपि महर्लोक क्रममुक्ति का स्थान है, किन्तु कल्प का अन्त होने पर वहाँ के भी जीव महर्लोक का त्यग कर देते हैं । अतएव वहाँ का भी सुख अविनाशी नहीं है । जनलोक में तो अमृत अर्थात् अविनाशी सुख रहता है । क्योंकि वहाँ के जीव जीवनभर उस लोक का परित्याग नहीं करते हैं । किन्तु महर्लोक में रहने वाले जीव कल्पान्त में त्रिलोकदाह की गर्मी से पीड़ित होकर जनलोक में चले जाते हैं । अतएव वहाँ उनको सुख नहीं मिलता है । तपोलोक में दुख का अभाव है अतएव वहाँ क्षेम का निवास है । आगे चलकर कहा भी जायेगा—

**त्रिलोक्यां० इत्यादि-** अर्थात् कल्प के अन्त में संकर्ष के मुख से निकली हुयी अग्नि से जब त्रैलोक्य जलने लग जाता है तो उसकी गर्मी से सन्तप्त महर्लोकवासी जीव महर्षि भृगु इत्यादि जनलोक में चले जाते हैं। सत्यलोक में तो अभय पद वाच्य मोक्ष का निवास है। क्योंकि सत्यलोक का वैकुण्ठ लोक से सन्निधान हैं ॥१८॥

**पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः । अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरा गृहमेधोऽबृहद्व्रतः ॥१९॥**

**अन्वयः**— अप्रजानां ये आश्रमाः त्रयः पादाः त्रिलोक्याः बहिश्चासन् अपरः अबृहद्व्रतः गृहमेधः स त्रिलोक्याः अन्तः॥१९॥

**अनुवाद**— जिन लोकों में पुत्र-पौत्र इत्यादि नहीं होते हैं, वे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी ये तीनों आश्रम त्रिलोकी के भीतर नहीं रहते हैं, वे उसके बाहर के लोकों में रहते हैं, जिसमें महान् ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं किया जाता है, ऐसे गृहस्थ त्रिलोकी के भीतर ही रहते हैं ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

एतदेव वैचित्र्यमधिकारिभेदेनोपपादयन् **'त्रिपादूर्ध्व'** इत्यस्यार्थमाह । नहि प्रजायन्ते पुत्रादिरूपेणेत्यप्रजा नैष्ठिकब्रह्मचारिवानप्रस्थयतयस्तेषामाश्रमास्त्रिलोक्या बहिरासन्, गृहमेधस्त्वन्तः । यस्माद्बृहद्व्रतो ब्रह्मचर्यव्रतरहितः ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

इसी विचित्रता को अधिकारी के भेद से प्रतिपादित करते हुए ब्रह्माजी **त्रिपादूर्ध्वमुदैत् इत्यादि** मन्त्र का अर्थ बतलाते हैं जिन आश्रमों में जीवों की पुत्र आदि रूप से उत्पत्ति नहीं होती है । उन आश्रमों को अप्रजा कहते है । ऐसे आश्रम नैष्ठिकब्रह्मचारी वानप्रस्थ तथा संन्यासियों का आश्रम हैं । वे त्रिलोकी के बाहर हैं और गृहमेधी (गृहस्थ) तो त्रिलोकी के भीतर ही रहते हैं । क्योंकि गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्यव्रत रहित होता है ॥१९॥

**सृति विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे । यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयाः ॥२०॥**

**अन्वयः**— साशनानशने उभे सृती विष्वङ् विचक्रमे यद् विद्या च अविद्या च । पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥२०॥

**अनुवाद**— शास्त्रों में दो प्रकार के मार्ग वर्णित हैं भोगप्रद तथा मोक्षप्रद । इन दोनों में से एक अविद्या रूप है, जो सकाम पुरुषों के लिए है और दूसरा उपासना रूप मोक्ष प्रदान करने वाला है । इन दोनों को क्रमशः धूमादिमार्ग या दक्षिणमार्ग तथा अर्चिरादिमार्ग या उत्तरमार्ग कहा जाता है । मनुष्य इन दोनों में किसी एक में ही जाता है किन्तु परमात्मा तो उभयाश्रय (दोनों के आधार) हैं ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

अयं चाधिकारभेद एकस्यैवावस्थाभेदेन न त्वत्यन्तभिन्नविषय इति दर्शयन् **'ततो विष्वङ्'** इत्यस्यार्थमाह । विविधं सुष्ठु अञ्चतीति विष्वङ् पुरुषः क्षेत्रज्ञः सृती मार्गौ दक्षिणोत्तरौ विचक्रमे चलति स्म । कथंभूते सृती, साशनानशने भोगापवर्गप्राप्तिसाधनभूते । अत्र हेतुत्वेन पुनर्विशेषणम् । यद्यतः अविद्या कर्मरूपा एका विद्या च तत्साधनोपासनारूपान्या ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

यह अधिकार भेद एक के ही अवस्था भेद के कारण है । यह अत्यन्त भिन्न विषयक नहीं हैं इस बात को बतलाते हुए ब्रह्माजी ने **ततो विष्वङ्व्यक्रामत** क्षेत्रज्ञ पुरुष इन दोनों मार्गों पर चलता है । यह विष्वङ् शब्द का विविधं (सुष्ठु) अञ्चतीति, इस विग्रह के अनुसार अर्थ हैं । द्विवचनान्त सृती पद दक्षिण एवं उत्तर इन दोनों मार्गों का बोधक है । साशनानशने पद के द्वारा दोनों मार्गों को क्रमशः भोग तथा मोक्षप्रद बतलाया गया है । उनमें एक सृति अविद्या अर्थात् कर्म रूप है और दूसरी मोक्षप्राप्ति के साधन भूत उपासना रूप है । इसको विद्या भी कहते हैं ॥२०॥

**यस्मादण्डं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः । तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ॥२१॥**

**अन्वयः**— यस्माद् भूतेन्द्रिय गुणात्मकः विराट् अण्डं जज्ञे तत् गोभिः विश्वं अतपन् सूर्य इव द्रव्यम् अत्यगात् ॥२१॥

**अनुवाद**— जिस तरह सूर्य सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हुए भी सबों से अलग है, उसी तरह से जिस परमात्मा से पञ्चभूत, इन्द्रिय और गुणमय विराट् की उत्पत्ति हुयी है वे इन समस्त वस्तुओं के भीतर और बाहर रहते हुए भी उससे पूर्ण रूप से पृथक् हैं ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं विराडन्तवर्तिनां फलवैचित्र्यमुक्त्वा तत्कारणेश्वरस्य तद्वैलक्षण्यं दर्शयितुं **'तस्माद्विराडजायत'** इत्यस्यार्थमाह । यस्मादण्डं जज्ञे, तत्र च भूतेन्द्रियगुणात्मको विराट् च जज्ञे, स ईश्वरस्तद्विश्वं विराड्देहं द्रव्यमण्डं च अतिक्रान्तवान् । सूर्य इवेति पूर्वोक्त एव दृष्टान्तः ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से ब्रह्माण्डन्तर्वर्ती जीवों के फलों की भिन्नता को बतलाकर उसके कारणभूत परमेश्वर की उससे भिन्नता को बतलाने के लिए **तस्माद्विराडजायत** इस श्रुत्यंश का अर्थ बतलाया गया है । और उसीसे भूतेन्द्रिय गुणात्मक विराट् भी उत्पन्न हुआ । वे ईश्वर अपने सम्पूर्ण विराट् देह और द्रव्य अण्ड से भिन्न हैं । सूर्य के समान। यह दृष्टान्त बतलाया गया है । जिस तरह सूर्य सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हुए उससे भिन्न हैं उसी तरह परमेश्वर सबों से अपने विराट् देह और ब्रह्माण्ड से भिन्न हैं ॥२१॥

**यदाऽस्य नाभ्यान्नलिनादहमासं महात्मनः । नाविदं यज्ञसंभारान्पुरुषावयवादृते ॥२२॥**

**अन्वयः**— यदा अहम् अस्य महात्मनः नाभ्यात् नलिनाद् आसं पुरुषावयवात् ऋते यज्ञ संभारान् न अविदम् ॥२२॥

**अनुवाद**— जिस समय इस विराट पुरुष के नाभिकमल से मेरा जन्म हुआ उस समय मुझको इस पुरुष के अङ्गों के अतिरिक्त कोई भी दूसरी यज्ञ की सामग्री नहीं मिली ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

नन्वेवं पुरुष एव चेत्सर्वं। तर्हि यज्ञस्य तत्साधनानां चापृथग्भावाद्यज्ञैः पुरुषाराधनं न सिध्येदित्याशङ्क्य तत्परिहाराय **'यत्पुरुषेण हविषा'** इत्यादिमन्त्रार्थं संगृह्य दर्शयति- यदेत्यादिना । अस्येति विराडन्तर्यामिणः । तस्यैव प्रकृतत्वात् । नाभौ भवं नाभ्यं तस्मात् । यज्ञस्य संभारान्साधनानि नापश्यम् ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि पुरुष ही सम्पूर्ण जगत् है तो यज्ञ तथा उसके साधनों की अभिन्नता के कारण यज्ञों के द्वारा पुरुष की आराधना सिद्ध नहीं हो सकती है, इस तरह की आशङ्का करके उसका परिहार करने के लिए **यत् पुरुषेण हविषा इत्यादि** मन्त्र के अर्थ को **यदास्य इत्यादि** श्लोक के द्वारा संक्षेप में ब्रह्माजी ने बतलाया। श्लोक के अस्य पद के द्वारा विराट् के अन्तर्यामी परमेश्वर का परामर्श किया गया है; क्योंकि यहाँ उसी का वर्णन प्रसङ्ग प्राप्त है । नाभि से उत्पन्न होने के कारण कमल को नाभ्य कहा गया है । ब्रह्माजी ने कहा कि उस पुरुष के अवयवों से भिन्न किसी भी वस्तु को मैंने नहीं देखा ॥२२॥

**तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः । इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥२३॥**
**वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् । ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥२४॥**
**नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च । देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तन्त्रमेव च ॥२५॥**
**गतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणम् । पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥२६॥**

**अन्वयः**— हे सत्तम तेषु यज्ञस्य पशवः वनस्पतयः कुशाः, इदं देवयजनं, उरु गुणान्वितः कालः, वस्तूनि, ओषधयः स्नेहा, रस-लोह-मृदः, जलम्, ऋचः यजूंषि, सामानि, चातुर्होत्रं च , नामधेयानि, मन्त्राः च, दक्षिणाः च व्रतानि च, देववानुक्रमः, कल्पः, सङ्कल्पः, तन्त्रम् एव च गतयः मतयः, श्रद्धा, प्रायश्चितं समर्पणम् एते सम्भाराः मया पुरुषावयवैः सम्भृताः।।२३-२६।।

**अनुवाद**— मैंने पुरुष के अवयवों में ही, यज्ञ के पशु स्तम्भ (यूप) वनस्पति, कुश, यह यज्ञभूमि, यज्ञ के योग्य काल, यज्ञ के लिए आवश्यक वस्तु औषधियाँ, तिल, चावल, यव, आदि अन्न) घृत आदि स्नेह, छहोरस, लोहा, मिट्टी, जल, ऋक्, यजुष् और साम, चातुर्होत्र, यज्ञों के नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओं के नाम, पद्धति ग्रन्थ (कल्प) सङ्कल्प, तन्त्र (अनुष्ठान की रीति, गति, मति, श्रद्धा) प्रायश्चित तथा समर्पण इन समस्त यज्ञ सामग्रियों को प्राप्त किया ।।२३-२६।।

### भावार्थ दीपिका

तदा तेषु संभारेषु साध्येषु सत्सु **'पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृताः'** इति चतुर्थेनान्वयः । वनस्पतयो यूपाः । देवयजनं यज्ञभूमिः । इदं चेति वचनात् यज्ञार्हे स्थाने उपविष्टः कथयतीति गम्यते । बहुगुणान्वितो वसन्तादिकालः । वस्तूनि पात्रादीनि। ओषधयो ब्रीह्यादयः । स्नेहा घृतादयः । रसा मधुरादयः, सुवर्णादीनि लोहानि, मृदश्च जलं च, चातुर्होत्रं हौत्रादिकं कर्म । नामधेयानि ज्योतिष्टोमादीनि । ऋगादीनामुक्तत्वान्मत्रा इति स्वाहाकारादयः । देवतानामनुक्रम उद्देशः । कल्पो बौधयनादिकर्मपद्धतिग्रन्थः । अनेनाहं यक्ष्य इति सङ्कल्पः । तन्त्रमनुष्ठानप्रकारः । गतयो विष्णुक्रमाद्याः । मतयो देवताध्यानानि। कृतस्य भगवति समर्पणम् ।।२३-२६।।

### भाव प्रकाशिका

उस समय जिन यज्ञ की सामग्रियों को एकत्रित करना था, उस सबों को मैंने पुरुष के अवयवों से ही एकत्रित किया । इस तरह से इस श्लोक का चौथे श्लोक से अन्वय है । श्लोक में वनस्पति शब्द से यूप (स्तम्भ) को कहा गया है । देवयजन शब्द यज्ञभूमि का बोधक है । इदं शब्द के द्वारा यज्ञ के योग्य स्थान पर बैठे हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं, यह प्रतीत होता है । यज्ञ के योग्य वसन्त ऋतु आदि काल को काल शब्द से कहा गया है । वस्तु शब्द से पात्र इत्यादि को कहा गया है । धान आदि अन्नों को ओषधि शब्द से कहा गया है । घृत आदि को स्नेह कहा गया है । मधुर इत्यादि षट् रसों को रसा शब्द से कहा गया है । सुवर्ण आदि को लोह शब्द से कहा गया है । मिट्टी, जल, तथा चातुर्होत्र अर्थात् होत्रादि कर्म भी ब्रह्माजी ने उस पुरुष के अवयवों से ही प्राप्त किया । ज्योतिष्टोम इत्यादि यज्ञों के नाम, ऋग् आदि वेदों के मन्त्र स्वाहाकार आदि यज्ञ के देवताओं के उद्देश (नाम) बोधायन आदि महर्षियों द्वरा प्रणीत बौधायान कर्म पद्धति इत्यादि ग्रन्थों को कल्प शब्द से कहा गया है । इससे मैं यज्ञ करूँगा । इत्यादि रूप सङ्कल्पों तथा अनुष्ठान के प्रकार इन सबों को ब्रह्माजी ने विराट् पुरुष के अवयवों से ही प्राप्त किया । गति शब्द से यज्ञ के अन्त में **विष्णोः क्रमोऽस्यभिमतिहा'** इस मन्त्र से यजमान के द्वारा की जाने वाली गति विशेष को कहा गया है, मति शब्द से देवताओं के ध्यान को और सभी कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित करना इन सबों को ब्रह्माजी ने उस पुरुष के अवयवों से ही प्राप्त किया ।।२३-२६।।

**इति संभृतसंभारः पुरुषावयवैरहम्। तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम्।।२७।।**

**अन्वयः**— इति पुरुषावयवैः संभृतसंभारः अहम् तमेव, यज्ञं पुरुषं तेनैव अयजम् ।।२७।।

**अनुवाद**— इस प्रकार से पुरुषों के अवयवों से सामग्रियों को एकत्रित करके मैंने उस यज्ञपुरुष परमात्मा का उसी सामग्री समूह से मैंने यजन किया ।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

संभृताः संपादिताः संभारा येन सोऽहम् । तेनैव यज्ञेनैव । अनेन **'यज्ञेन यज्ञमयजन्त'** इति मन्त्रार्थः सूचितः ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से यज्ञ की सारी सामग्रीको एकत्रित करके मैंने उस यज्ञ के द्वारा ही उस परमपुरुष का यजन किया । इस श्लोक के द्वारा **यज्ञेन यज्ञमयजन्त इत्यादि** मन्त्र के अर्थ को सूचित किया गया है ॥२७॥

**ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव । अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥२८॥**

**अन्वयः**— ततः ते इमे भ्रातरः नव प्रजानां पतयः सुसमाहिताः व्यक्तम् अजयन् ॥२८॥

**अनुवाद**—उसके पश्चात् तुम्हारे जो नव प्रजापति भाई हैं इन लोगों ने अपने चित्त को अच्छी तरह से समाहित करके विराट् तथा अन्तर्यामी रूप से स्थित परमात्मा का यजन किया ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

तेन देवा अयजन्त इत्यस्यार्थ सप्रपञ्चं दर्शयति- तत इति द्वाभ्याम् । व्यक्तिमिन्द्रादिरूपेण । अव्यक्तं स्वतः । अनेन **'पुरुषं जातमग्रतः'** इत्यस्यार्थौ दर्शितः ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

**ततस्ते इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा **तेन देवा अयजन्त' इत्यादि** का विस्तार के साथ वर्णन करते हैं । व्यक्त का अर्थ है इन्द्रादि रूप से व्यक्त तथा अव्यक्त अर्थात् स्वयम् इन दोनों रूपों में विद्यमान यज्ञपुरुष ईश्वर का यजन किया इस श्लोक के द्वारा **'पुरुषं जातमग्रतः'** इस मंत्र के अर्थ को बतलाया गया है ॥२८॥

**ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे । पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥२९॥**

**अन्वयः**— ततः च काले मनवः अपरे ऋषयः पितरः विवुधाः दैत्याः मनुष्याः क्रतुभिः विभुम् ईजिरे ॥२९॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् समय-समय पर मनुओं, दूसरे ऋषियों, पितरों, देवताओं, दैत्यों तथा मनुष्यों ने यज्ञों के द्वारा परमात्मा की आराधना की ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

काले स्वस्वावसरे ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

जिस मनु, देवता, ऋषि इत्यादि का जब समय आया तो उन लोगों ने भी परमात्मा की आराधना यज्ञों के द्वारा की ॥२९॥

**नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् । गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥३०॥**

**अन्वयः**— तत् स्वतः अगुणः सर्गादौ गृहीतमायोरुगुणः यः तस्मिन् नारायणे भगवति इदं विश्वम् आहितम् ॥३०॥

**अनुवाद**— जो परमात्मा स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक गुणों से रहित हैं, किन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में अनेक गुणों को ग्रहण कर लेते हैं, ऐसे भगवान् नारायण में ही यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

**'यदधिष्ठानम्'** इत्येतत्प्रश्नोत्तरार्थमुपसंहरति-नारायण इति । आहितमधिष्ठितम् । भगवत्त्वे हेतुः-यः स्वतोऽगुणः । सर्गादौ गृहीता मायया उरवो गुणा येन स तस्मिन् ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

नारदजी ने यह जो पूछा था कि इस जगत् का अधिष्ठान कौन है ? उसी के उत्तर का उपसंहार करते हुए ब्रह्माजी **नारायणो इत्यादि** श्लोक को कहे हैं । आहित शब्द का अर्थ है अधिष्ठित । भगवान् नारायण के भगवत्त्व

का कारण स्वाभाविक रूप से प्राकृत गुण रहित बतलाया गया है । वे भगवान् सृष्टि के प्रारम्भ में माया के अनेक गुणों को धारण कर लेते हैं ॥३०॥

**सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः । विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥३१॥**

**अन्वयः**— तन्नियुक्तः अहं सृजामि, तद्वशः हरः हरति, पुरुष रूपेण त्रिशक्ति धृक् विश्वं परिपाति ॥३१॥

**अनुवाद**— उन परमेश्वर के ही द्वारा नियुक्त होकर मैं सृष्टि करने का काम करता हूँ, शङ्करजी उनके ही अधीन रहकर जगत् का संहार करते हैं और माया की सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों शक्तियों को धारण करने वाले परमात्मा ही पुरुष रूप से जगत् का पालन करते हैं ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

**'यत्परस्त्वम्'** इत्येतत्प्रश्नोत्तरं यदुक्तं **'स एष भगवान्सर्वेषां मम चेश्वरः'** इति तदुपसंहरति- पालनं तु स्वयमेव करोतीत्याह-विश्वमिति । पुरुषरूपेण विष्णुरूपेण । त्रिशक्तिर्माया तां धरतीति तथा सः ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

नारदजी ने जो पूछा था कि आप जिसके अधीन हैं, उसका जो उत्तर ब्रह्माजी ने दिया था उसी का उपसंहार इस श्लोक से किया गया है । ब्रह्माजी ने कहा था कि वे भगवान् ही सबों के तथा मेरे स्वामी है उसी का उपसंहार उन्होंने मैं सृष्टि करने का काम करता हूँ, यह कहकर किया है । जगत् का पालन तो भगवान् स्वयं ही करते हैं, इस बात को उन्होंने विश्वम् इत्यादि श्लोक के उत्तरार्ध से किया है । पुरुष रूपेण का अर्थ है विष्णु के रूप से। वे भगवान् तीन शक्तियों से युक्त माया को धारण करते हैं ॥३१॥

**इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि । नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— हे तात ! यथेदमनुपृच्छसि इति ते अभिहितम् । भगवतः अन्यत् किञ्चत् सदसदात्मके न भाव्यम् ॥३२॥

**अनुवाद**— हे तात ! आपने जो कुछ भी पूछा था वह मैंने बतला दिया । श्रीभगवान् से भिन्न इस जड़चेतनात्मक जगत् में कुछ भी नहीं हैं ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

यच्चेदं विश्वं यदात्मकश्च त्वमित्येवमादिसर्वप्रश्नानां सामान्योत्तरं, यदुक्तं **'वासुदेवात्परो ब्रह्मन् न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः'** इति **'पुरुष एवेदं सर्वम्'** इति श्रुत्या च यद्दृढीकृतं तदुपसंहरति-इतीति । सदसदात्मकं कार्यकारणात्मकं भाव्यं सृज्यं भगवतः सकाशादन्यत्पृथङ् न भवतीत्यभिहितम् ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

नारदजी ने यह जो पूछा था कि यह सम्पूर्ण जगत् जैसा है और आपकी जो आत्मा हैं, उसको आप मुझे बतलायें । इस तरह से पूछे गये सभी प्रश्नों का सामन्य उत्तर यह है कि हे ब्रह्मन् भगवान् वासुदेव से भिन्न कुछ भी नहीं है । इसी बात का समर्थन **पुरुष एवेदं सर्वम्** इस श्रुति से भी किया गया है । उसी का उपसंहार **इति तेऽभिहितम्** इत्यादि श्लोक से किया गया है । इस तरह सदसदात्मक अर्थात् कार्य कारण रूप जो सृज्य जगत है वह श्रीभगवान् से भिन्न नहीं है ॥३२॥

**न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ।**
**न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥३३॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग यत् मे हृदौतण्ठ्यवता हरिः धृत अतएव मे भारती मृषा न उपलक्ष्यते, मे मनसः क्वचिन् मृषा गतिः न मे हृषीकाणि असत् पथे न पतन्तीति ॥३३॥

**अनुवाद**— हे नारद ! मैं उत्कण्ठा पूर्ण हृदय से प्रेम पूर्वक श्रीभगवान् को धारण करता हूँ अतएव मेरी वाणी कभी भी असत्य होती हुयी नहीं दिखायी देती है, मेरा मन भी कभी असत् सङ्कल्प नहीं करता है और मेरी इन्द्रियाँ भी कभी असत् मार्ग में प्रवृत्त नहीं होती हैं ।।३३।।

### भावार्थ दीपिका

यदुक्तं एतावत्त्वं यतो हि मे, तमविज्ञाय मामीश्वरं प्रब्रवीषि इति तदुपपाद्योपसंहरति– न भारतीति । यद्यस्मान्मे मया औत्कण्ठ्यं भक्त्युद्रेकस्तद्युक्तेन हृदा हरिर्धृतो ध्यातः अङ्ग हे नारद । अतो मे वाङ्मनइन्द्रियाणां वृत्तयः सत्यार्थाः, नतु मत्प्रभावेणेत्यर्थः ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने पहले यह जो कहा है कि मेरी इतनी ही स्थिति है । उसको तुम नहीं जानते हो इसीलिए मुझे ईश्वर कहते हो । उसी का उपपादन करके ब्रह्माजी **न भारती इत्यादि** श्लोक के द्वारा उपसंहार करते हैं । चूंकि मैं भक्ति के उद्रेक हो जाने के कारण उत्कण्ठा पूर्वक हृदय में परमात्मा को धारण करता हूँ, इसीलिए मेरी वाणी, मन तथा इन्द्रियों की वृत्ति सत्य वस्तु विषयिणी होती है । मेरे प्रभाव से वे असत्य वस्तु विषयक नहीं होती हैं ।।३३।।

**सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः ।**
**आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तं नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः ।।३४।।**

**अन्वयः**— सः अहं समाम्नायमयः तपोमयः प्रजापतीनाम् अभिवन्दितः पतिः, निपुणं योगं आस्थाय समाहितः सन् यतः आत्मसंभवः तं न अध्यगच्छम् ।।३४।।

**अनुवाद**— वही मैं वेद मूर्ति तथा तपोमूर्ति हूँ सभी प्रजापति मेरी वन्दना करते हैं और मैं उन सबों का स्वामी हूँ । मैंने पूर्वकाल में सर्वाङ्ग योग का अनुष्ठान किया किन्तु जिससे मेरी उत्पत्ति हुयी है उन परमात्मा को मैं नहीं जान सका ।।३४।।

### भावार्थ दीपिका

अत्र स्वानुभवमेवान्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रमा जयति द्वाभ्याम् । सोऽहं समाम्नायादिभिः सर्वोत्कृष्टोऽपि योगमाश्रित्यापि यत आत्मने मम संभवो जन्म तमेव न ज्ञातवान्, कुतोऽन्यस्य वार्ता । एतच्च तृतीयस्कन्धे पद्मोद्भवे वक्ष्यते ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी अन्वयव्यतिरेक के द्वारा अपने अनुभव को ही दो श्लोकों द्वारा प्रमाणित करते हैं उपर्युक्त प्रकार का मैं सबों से उत्कृष्ट होकर तथा योग को धारण करके भी अपने मूल कारण परमात्मा को ही नहीं जान सका तो दूसरे के विषय में मैं क्या कहूँ ? इस बात को तीसरे अध्याय में कमल की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में बतलायेंगे ।।३४।।

**नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम् ।**
**यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वान्तमथापरे कुतः ।।३५।।**

**अन्वयः**— अहं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं मुमङ्गलम् तत् चरणं नतः अस्मि यः आत्ममायाविभवं नभो यथा स्वान्तम् पर्यगात् अथ अपरे कुतः ।।३५।।

**अनुवाद**— मैं श्रीभगवान् के उन चरणों को नमस्कार करता हूँ जो चरण अपने शरण में आये हुए जीवों के संसार के बन्धन को काट देते हैं, जो कल्याणमय तथा मङ्गलमय हैं । उन श्रीभगवान् की माया की शक्ति अपार

है । वे अपनी महिमा के अन्त को स्वयम् उसी प्रकार नहीं जानते हैं जिस प्रकार आकाश अपने अन्त को नहीं जानता है । ऐसी स्थिति में दूसरा कोई परमात्मा की महिमा का अन्त कैसे जान पायेगा ?॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

तदा समीयुषां शरणागतानां संसारनिवर्तकं मङ्गलावहं सुसेव्यं च तस्य चरणं नतोऽस्मि । ततोऽचिन्त्यमहिमत्वेन ज्ञातवानस्मीति कैमुत्यन्यायेनाह–यो हीति । स्वमायाविस्तारं यः स्वयमपि पर्यगात् । परिशब्दो निषेधे । तावानिति न ज्ञातवानित्यर्थः । अपरे कुतो जानीयुः । तस्य चरणं नतोऽस्मीति पूर्वेण संबन्धः । ननु सर्वज्ञः कथं न जानाति अन्ताभावादिति दृष्टान्तेनाह । यथा स्वस्यान्तं नभो नाप्नोति तद्वत् । न हि खपुष्पादर्शनं सार्वज्ञ्यं विहन्तीति भावः । तथा च वक्ष्यति द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः' इत्यादि । श्रुतिश्च **'यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद'** इति ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

उसके पश्चात् शरणागत जीवों के भव बन्धन को दूर करने वाले मङ्गलप्रद तथा सुसेव्य श्रीभगवान् के चरणों को ही मैं नमस्कार करता हूँ । इस तरह से मैंने यह जान लिया कि श्रीभगवान् की महिमा अचिन्त्य है इस बात को मैंने अपने आप जान लिया है । जो परमात्मा स्वयम् भी अपनी माया के विस्तार को नहीं जान सके । पर्यगात् मे परि शब्द निषेधार्थक है । अर्थात् यह नहीं जान सके परमात्मा की माया इतनी ही है । तो फिर दूसरे लोग उसको कैसे जान सकते हैं ? इसीलिए मैं उनके चरणों में ही नतमस्तक हूँ । यदि कोई कहे कि परमात्मा तो सर्वज्ञ हैं, वे कैसे नहीं जान सके तो इसका उत्तर है कि जैसे आकाश स्वयम् अपने अन्त को नहीं जानता हैं उनकी महिमा का कोई अन्त है ही नहीं तो उसका अन्त वे कैसे जानेंगे ? आकाश पुष्प का अदर्शन परमात्मा की सर्वज्ञता को विनष्ट नहीं कर सकता है । भगवान् के विषय में दशवें स्कन्ध के सत्तासीवें अध्याय के एकतालिसवें श्लोक में कहेंगे भी कि द्युलोक के स्वामीगण ही आपके अन्त को नहीं जान सकें क्योंकि ब्रह्माण्ड अनन्त हैं । आप भी नहीं जान सके कि आवरणों से विशिष्ट कितने ब्रह्माण्ड हैं । श्रुति भी कहती हैं **यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्गवेद यदि वा न वेद** अर्थात् हे वत्स जो इस माया के स्वामी परमाकाश त्रिपाद् विभूति में रहते हैं वे भी इस माया के अन्त को जानते हैं कि नहीं जानते हैं यह कोई निश्चित नहीं है ।।३५।।

**नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ।**
**तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ।।३६।।**

**अन्वयः**— न अहं न यूयं न वामदेव यद् ऋतां गतिं न विदुः तदा अपरे सुराः किमुत ? तन्मायया विनिर्मितं इदं मोहित बुद्धयः वयं आत्मसमं विचक्ष्महे ।।३६।।

**अनुवाद**— मैं तुमलोग, मेरे पुत्र, तथा शङ्करजी जिन परमात्मा के सत्य स्वरूप को नहीं जान पाते हैं । उनकी माया से निर्मित इस जगत् के भी विषय में हमलोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार केवल अन्दाजा लगाते हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

एतत्प्रपञ्चयति–नाहमिति द्वाभ्याम् । वामदेवो रुद्रः । यस्य ऋतां गतिं परमार्थस्वरूपम् । किंत्विदं प्रपञ्चरूपं तस्य मायया विनिर्मितं विचक्ष्महे विद्मः । तदप्यात्मसमं स्वज्ञानानुरूपमेव, न तु कृत्स्नम् । मोहितबुद्धय इत्ययं तदज्ञाने प्रपञ्चाज्ञाने च हेतुः ।।३६।।

**भाव प्रकाशिका**

माया के विस्तार के अज्ञेयत्व का ही विस्तार से वर्णन करते हुए ब्रह्माजी **नाहम् इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । वामदेव शङ्करजी का नाम हैं । मैं शङ्करजी तथा तुमलोग जिस परमात्मा के परमार्थ स्वरूप को नहीं जानते

हैं । अपितु उन परमात्मा की माया के द्वारा निर्मित माया द्वारा रचित इस जगत् को भी नहीं जानते हैं । वह भी हमलोग अपने-अपने ज्ञान के अनुसार ही जानते हैं, पूर्णरूप से नहीं जानते हैं । परमात्मा का ज्ञान न होने और माया का ज्ञान होने के कारण हमलोनों की बुद्धि का मोहित होना है ।।३६।।

**यस्यावतारकर्माणि गायन्ति ह्यस्मदादयः । न यं विदन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ।।३७।।**

**अन्वयः**— अस्मदादयः यस्य अवतार कर्माणि गायन्ति यं तत्त्वेन न विदन्ति तस्मै भगवते नमः ।।३७।।

**अनुवाद**— हमलोग जिस परमात्मा के अवतार की लीलाओं का ही गायन करते है उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हैं, उन परमात्मा को नमस्कार है ।।३७।।

**भावार्थ दीपिका**

ननु सर्वेऽपि तं वर्णयन्तो दृश्यन्ते तत्राह- यस्येति ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि देखा जाता है कि सबलोग परमात्मा का वर्णन करते हैं तो ब्रह्माजी ने कहा कि हमलोग तो उनके अवतार की लीलाओं का वर्णन करते हैं उनके स्वरूप को नहीं जानते हैं ।।३७।।

**ए एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः । आत्मात्मन्यात्मनात्मानं संयच्छति च पाति च ।।३८।।**

**अन्वयः**— स एष आद्यः पुरुषः अजः कल्पे कल्पे आत्मनि आत्मना आत्मानं संयच्छति च पाति च ।।३८।।

**अनुवाद**— वे ही आदि पुरुष अजन्मा और पुरुषोत्तम हैं । वे ही प्रत्येक कल्पों में अपने आप में अपने आपकी सृष्टि करते हैं और रक्षा करते हैं ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

अवतारकर्माणि संक्षेपतो दर्शयति । स एष आद्यो भगवान् यः पुरुषावतारः सन्सृष्ट्यादि करोति । आत्मात्मन्यात्मनात्मानमिति। कर्ता अधिकरणं साधनं कर्म च स्वयमेवेत्यर्थः । पुरुषावतारः सृष्ट्यादीनि च कर्माणीति संक्षेपोक्तिः ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

**एष० इत्यादि** इस श्लोक से संक्षेप में अवतारों के कर्मो को बतलातें हैं । वे ही भगवान् आदि हैं वे ही पुरुषावतार धारण करके सृष्टि आदि के कर्मों को करते हैं । वे ही आत्मा (कर्त्ता) आत्मनि (अधिकरण) आत्मना (साधन) और आत्मानम् (कर्म) इस सृष्टि में स्वयं हैं । पुरुषावतार धारण करना और सृष्टि आदि कर्मो को इस तरह से अवतार के कर्मों को संक्षेप में कहा गया है ।।३८।।

**विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् । सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ।।३९।।**

**अन्वयः**— विशुद्धं, केवलं, ज्ञानं, प्रत्यक् सम्यगवस्थितम् सत्यं पूर्णम् अनाद्यन्तं निर्गुणम् नित्यम् अद्वयम् ।।३९।।

**अनुवाद**— माया के लेश से रहित होने के कारण विशुद्ध हैं, केवल ज्ञान स्वरूप हैं, और अन्तरात्मा के रूप में सदा एक समान बने रहते हैं । वे त्रिकाल सत्य हैं पूर्ण हैं तथा आदि अन्त से रहित हैं । वे सत्त्व आदि तीनों गुणों से रहित सनातन एवं अद्वितीय हैं ।।३९।।

**भावार्थ दीपिका**

**'न यं विदन्ति तत्त्वेन'** इत्युक्तं किं तत्तत्त्वमित्यपेक्षायामाह । ज्ञानं केवलं सत्यं तत्त्वम् । घटाद्याकारवृत्तिज्ञानव्यवच्छेदार्थं विशेषणानि । विशुद्धं विषयाकारशून्यम् । यतः प्रत्यक् सर्वान्तरम् । अतएव सम्यक् संदेहादिरहितम्। अवस्थितं स्थिरम् । यतो निर्गुणम् । गुणकार्यं हि गुणव्यतिकराच्चञ्चलं भवति । यद्यपि वृत्तिज्ञानमपि स्वरूपज्ञानमेवेति

न चाञ्चल्यादिदोषयुक्तं तथाप्यन्तःकरणवृत्तिदोषैस्तथा तथा भवतीति व्यवच्छिद्यते। एभिरेव विशेषणैः सत्यत्वमपि समर्थितम्। किंच यद्विकारवत्तदसत्यं दृष्टं, न चास्य जन्मादयः षड्विकाराः सन्तीत्याह। अनाद्यन्तं जन्मनाशरहितम्। अतएव जन्मानन्तरास्तित्वलक्षणोऽपि विकारो नास्ति। वृद्धिविपरिणामापक्षयाश्च न सन्ति। यतः पूर्णम्। सर्वत्र हेतुः- नित्यमद्वयं नित्यं सर्वदा द्वैतप्रतीतिसमयेऽपि परमार्थतोऽद्वयमिति ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने यह जो कहा है कि जिस परमात्मा को हमलोग तत्त्वतः नहीं जान पाते हैं तो यहाँ प्रश्न होता है कि तत्त्व क्या है ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा वे केवल ज्ञान स्वरूप हैं और सत्य तत्त्व हैं। जिस तरह से तलाब का जल नालियों के माध्यम से खेत में जाकर खेत के जैसा चतुष्कोण आदि आकार वाला होता है, उसी के आकार का बन जाता है, उसी तरह से अन्तःकरण की वृत्ति चक्षुरादि इन्द्रियों के माध्यम से निकलकर घटादि विषयों से संसक्त होकर घट आदि के आकार वाला हो जाती है, उसी को घटाद्याकार वृत्ति ज्ञान कहते है, उससे उसकी भिन्नता बतलाने के लिए इन ज्ञान के विशेषणों को बतलाया गया है। वह विशुद्ध है अर्थात् विषयों के सम्बन्ध से रहित है, वह प्रत्येक अर्थात् सबों के भीतर विद्यमान रहता है। इसीलिए वह सम्यक्ज्ञान है। अर्थात उसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। वह अवस्थित अर्थात् स्थिर है क्योंकि वह निर्गुण है। गुणों के मिश्रण से ही ज्ञान में चञ्चलता आती है।

**यद्यपि वृत्तिज्ञानमपि० इत्यादि** यद्यपि वृत्ति ज्ञान भी स्वरूप ज्ञान ही है। उसमें चाञ्चल्यादि दोष नहीं है फिर भी अन्तःकरण की वृत्ति के दोष से ही वह अनेक प्रकार का हो जाता है अतएव यह तत्त्व ज्ञान उससे भिन्न है। इन्हीं विशेषणों से उसका सत्यत्व भी समर्थित हो जाता है।

**किञ्च० इत्यादि** दूसरी बात यह है कि लोक में देखा जाता है कि जो विकारों से युक्त होता है, वह असत्य होता है, किन्तु इस तत्त्वभूत ज्ञान में वस्तुओं में पाये जाने वाले जन्म आदि षड्विकार नहीं हैं। वह आदि और अन्त (विनाश) से रहित है। अतएव जन्म के पश्चात् होने वाले अस्तित्व इत्यादि भी विकार उसमें नहीं हैं। उस ज्ञान में वृद्धि, विपरिणाम तथा अपक्षय आदि भी विकार नहीं है क्योंकि वह पूर्ण हैं। वह नित्य ही अद्वय हैं अर्थात् भेद प्रतीति के काल में भी अद्वितीय बना रहता है। अतएव वह परमार्थतः अद्वितीय हैं ।।३९।।

**ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः। यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ।।४०।।**

**अन्वयः**— हे ऋषे यदा मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः तदा विदन्ति, यदा असत् तर्कैः विप्लुतम् तिरोधीयेत ।।४०।।

**अनुवाद**— हे ऋषे ! जब मुनिगण अपने अन्तःकरण, इन्द्रियाँ और शरीर को शान्त कर लेते हैं, उसी समय वे उसको जान पाते हैं, जिस समय दुस्तर्कों के द्वारा उस तत्त्व को आच्छन्न कर दिया जाता है उस समय वह ज्ञान प्रतीत नहीं होता हैं ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

अत्र विद्वदनुभवं प्रमाणयति। हे ऋषे नारद, प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः प्रसन्नदेहेन्द्रियमनसो यदा भवन्ति तदा विदन्ति। अन्यदा तदज्ञाने कारणमाह। यदा तदेव प्रकाशमानमेवासतां तर्कैर्विप्लुतं स्यात्तदा तिरोधीयेतेति ।।४०।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी अपने इस प्रतिपादन में विद्वानों के अनुभव को प्रमाण रूप से उपन्यस्त करते हैं। हे ऋषे नारद! जब मुनिजन प्रसन्न, देह, इन्द्रिय और मन से युक्त होते हैं तो उनलोगों को वह ज्ञान प्रकाशित होता है। उससे भिन्न काल में उसका ज्ञान नहीं होने का कारण बतलाते हुए वे कहते हैं- जब वह प्रकाशित होने वाला ज्ञान असत् पुरुषों के कुतर्कों से उपप्लुत (उपद्रवगस्त) हो जाता है तो वह ज्ञान तिरोहित हो जाता है ।।४०।।

**आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ।**
**द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥४१॥**

**अन्वयः**— परस्य आद्यः अवतारः पुरुषः, कालः स्वभावः, सदसत् मनः च द्रव्यं, विकारः, गुणः, इन्द्रियाणि, विराट् स्वराट् स्थास्नु, चरिष्णु च तस्य अवताराः सन्ति ।

**अनुवाद**— परम पुरुष परमात्मा का प्रथम अवतार पुरुषावतार है, काल, स्वभाव, सदसत् मन (महत् तत्त्व) द्रव्य (महाभूत) विकार (अहङ्कार) सत्त्व आदि गुण, विराट् समष्टि शरीर, स्वराट् (वैराज) स्थास्नु (स्थावर वृक्ष आदि) चरिष्णु (जङ्गम ये सब भी) भगवान् के अवतार ही हैं ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

अवतारान्विस्तरेणाह-आद्य इत्यादि यावदध्यायसमाप्ति । परस्य भूम्नः पुरुषः प्रकृतिप्रवर्तकः । यस्य **'सहस्रशीर्षा'** इत्युक्तो लीलाविग्रहः स आद्योऽवतारः । वक्ष्यति हि **'भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् । स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ।'** यथोक्तम् **'विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यतो विदुः । प्रथमं महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते'** इति । यद्यपि सर्वेषामविशेषेणावतारत्वमुच्यते, तथापि कालश्च स्वभावश्च सदसदिति कार्यकारणात्मिका प्रकृतिश्च एताः शक्तयः, मनआदीनि कार्याणि, ब्रह्मादयो गुणावताराः, दक्षादयो विभूतय इति विवेक्तव्यम् । मनो महत्तत्वम् । द्रव्यं महाभूतानि । क्रमोऽत्र न विवक्षितः । विकारोऽहंकारः । गुणः सत्त्वादिः । विराट् समष्टिशरीरम् । स्वराट् वैराजः । स्थास्नु स्थावरम् । चरिष्णु जङ्गमं च व्यष्टिशरीरम् ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् के अवतारों का विस्तार से वर्णन **आद्यः इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं परम पुरुष परमात्मा का प्रथम अवतार पुरुषावतार है । वही प्रकृति का प्रवर्तक है । **सहस्रशीर्षा इत्यादि** मन्त्र से उस पुरुष का लीला विग्रह बतलाया गया है । वही परमात्मा का पहला अवतार है । आगे चलकर कहेंगे भी अपने से सृष्ट पञ्चमहाभूतों के द्वारा विराट् पुरुष की रचना करके उसमें भगवान् नारायण अपने एक अंश से प्रवेश कर गये और पुरुष शब्द से अभिहित किए गये । कहा भी गया है **विष्णोस्तु० इत्यादि** भगवान् विष्णु के तीन रूपों को मुनियों ने पुरुष रूप से जाना है । उनका पहला रूप महत्तत्त्व की सृष्टि करने वाला है । दूसरा ब्रह्माण्ड में स्थित रूप है । तीसरा रूप सभी प्राणियोंके भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित है । इन तीनों रूपों को जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

**यद्यपि सर्वेषामविशेषेण० इत्यादि** यद्यपि इस श्लोक में उक्त सबों को समान रूप से भगवान् का अवतार कहा गया है फिर भी काल, स्वभाव सदसत् तथा कारण-कार्य स्वरूप प्रकृति ये सभी शक्तियाँ हैं । मन आदि कार्य हैं । ब्रह्मा आदि उनके गुणावतार हैं तथा दक्ष इत्यादि उनकी विभूतियाँ हैं । इन सबों का इस प्रकार से विभाग करना चाहिए ।

मन महत्तत्व को कहा गया है । महाभूतों को द्रव्य कहा गया है । यहाँ पर क्रम विवक्षित नहीं है । विकार शब्द से अहङ्कार को और गुण शब्द से सत्त्व आदि गुणों को कहा गया है । समष्टि शरीर को विराट् कहा गया है । स्वराट् शब्द वाच्य वैराज है । स्थावरों को स्थास्नु और जङ्गमों को चरिष्णु कहा गया है । ये सब व्यष्टि शरीर हैं ॥४१॥

**अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च ।**
**स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥४२॥**

**गन्धर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ।**
**ये वा ऋषीणामृषभाः पितृणां दैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः ॥**
**अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूतकूष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥४३॥**
**यत्किंच लोके भगवन्महस्वदोजःसहस्वद्बलवत्क्षमावत् ।**
**श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥४४॥**

**अन्वयः**— अहम् भव यज्ञः इमे दक्षादयाः प्रजेशा स्वर्लोकपालाः खगलोकपालाः, नृलोकपालाः तललोकपालाः, गन्धर्वविद्याधरचारणेशाः ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः, ये वा ऋषीणां ऋषभाः पितृणां वा ऋषभाः दैत्येन्द्र सिद्धेश्वर दानवेन्द्राः, ये च अन्ये प्रेतपिशाचभूतकुष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः, यत् किञ्च भगवत् महस्वत् ओजः सहस्वत् बलवत् क्षमावत् श्री ह्री विभूत्यात्मवत् अद्भूतार्णं रूपवत् अस्वरूपम् तत्परंतत्त्वम् ।।४२-४४।।

**अनुवाद**— मैं शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि प्रजापति तुम और तुम्हारे जैसे अन्य भक्त, स्वर्ग लोक के रक्षक, पक्षियों के रक्षक गरुड आदि, मनुष्य लोक के राजा, गन्धर्व, विद्याधर तथा चारणों के अधिनायक, यक्ष, राक्षस, सर्प और नागों के स्वामी, महर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज तथा प्रेत, पिशाच भूत, कूष्माण्ड, जल-जन्तु, मृग तथा पक्षियों के स्वामी, एवं संसार में जितनी भी वस्तुएँ ऐश्वर्य सम्पन्न तेजः सम्पन्न, इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल या क्षमा से युक्त हैं, अथवा विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूति से युक्त हैं, एवं जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्णवाली हैं रूपवान् या रूप रहित हैं वे परं तत्त्वमय भगवत् स्वरूप हैं ।।४२-४४।।

### भावार्थ दीपिका

अहं ब्रह्मा । भवो रुद्रः । यज्ञो विष्णुः । दक्षादयो य इमे प्रजेशाः । तललोकपालाः पातालाधिपतयः । गन्धर्वादीनामीशाः। यक्षादीनां नाथाः । रक्षोरगेति सन्धिरार्षः । ऋषीणां पितृणां च श्रेष्ठाः । प्रेतादीनामधीशाः । किं बहुना, यत्किंचिद्भगवदादि तत्सर्वं परमेव तत्त्वमित्यन्वयः । भगवदैश्वर्ययुक्तम्, महस्वत्तेजोयुक्तम् । ओजः सहसी इन्द्रियमनः शक्ती तद्युक्तम् । बलं दाक्ष्यम् । श्रीशोभा ह्रीकर्मजुगुप्सा, विभूतिः संपत्ति, आत्मा बुद्धिस्तद्युक्तम् । अर्णो वर्णः । अद्भुतार्णमाश्चर्यवर्णमित्यर्थः । रूपमेव स्वरूपम्, रूपवदस्वरूपं च यत्तत्सर्वं परं तत्त्वं तद्विभूतिरित्यर्थः ।।४४।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि मैं, शङ्कर, विष्णु, दक्ष इत्यादि जो प्रजापति हैं वे पातालों के जो स्वामी हैं गन्धर्वों आदि के स्वामीगण हैं, यक्षों आदि के स्वामीगण रक्षोरग में जो गुणसन्धि हुयी है वह आर्ष है । जो ऋषियों और पितरों में श्रेष्ठ हैं, जो प्रेतों आदि के स्वामी है । बहुत अधिक क्या कहें जो कुछ भी ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न वस्तुएँ हैं वे सबके सब परमतत्त्व स्वरूप ही हैं । ऐश्वर्य युक्त, तेजः सम्पन्न, ओज तथा सहः सम्पन्न, इन्द्रियशक्ति तथा मनः शक्ति से युक्त सभी वस्तुएँ परं तत्त्व स्वरूप है । बल अर्थात् दक्षता, श्रीअर्थात् शोभा, ह्री लज्जा, सम्पत्ति, आत्मा तथा बुद्धि से युक्त भी वस्तुएँ परंतत्त्व स्वरूप हैं । अर्ण वर्ण को कहते हैं । अद्भुतार्ण अर्थात् अद्भुत वर्ण से युक्त रूप का अर्थ स्वरूप है तथा रूपवान् अर्थात् स्वरूप से रहित जो कुछ भी है वह सब परंब्रह्म की विभूति हैं ।।४२-४४।।

**प्राधान्यतो यानृष आमनन्ति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः ।**
**आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥४५॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

**अन्वयः**— हे ऋषे, यान् भूम्नः पुरुषस्य प्राधान्यतः लीलावतारान् आमनन्ति तान् कर्णकषायशोषान् पीयताम् सुपेशान् इमान् ते अनुक्रमिष्ये ।।४५।।

**अनुवाद**—उस परम पुरुष के जिन प्रधान-प्रधान लीलावतारों का वर्णन शास्त्रों में किया गया हे, वे सबके सब श्रवणेन्द्रियों के दोषों को दूर करने वाले हैं अतएव उन सबों का आप श्रवण करें मैं उन सबों को क्रमशः सुनाता हूँ ।।४५।।

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।**

**भावार्थ दीपिका**

शुद्धसत्त्वावतारान्वक्तुमाह- प्राधान्यत इति । असत्कथाश्रवणैर्ये कर्णयोः कषाया मलास्तान् शोषयन्तीति तथा तान् । सुपेशान्सुन्दरान् । सकारलोपश्चार्षः । हे ऋषे, ते तुभ्यमनुक्रमिष्ये, तदनुक्रमेणामृतं त्वया पीयतामित्यर्थः । यद्वा पीयतामिति शत्रन्तम् । आपितवतां कर्णकषायशोषानित्यर्थः।।४५।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां षष्ठोऽधयः।।६।।**

**भाव प्रकाशिका**

परमात्मा के शुद्ध सात्त्विक अवतारों का वर्णन करने के लिए ब्रह्माजी **प्रधान्यतः इत्यादि** श्लोक को बतलाते है । असत् कथाओं के सुनने से जो कानो में दोष आ जाते हैं उन सबों को विनष्ट करने का काम करते हैं । श्रीभगवान् के जो लीलामृतावतार हैं वे अत्यन्त सुन्दर हैं । सुपेशस् शब्द के सकार का आर्ष लोप हो गया है । हे ऋषे मैं उन सबों को क्रमशः सुनाता हूँ उसे आप अपने कानों से सुनें । अथवा पीयताम् पद को शतृ प्रत्ययान्त भी माना जा सकता है । पीङ् पाने इस दिवादिक धातु से शतृप्रत्यय करके पीयताम् बना है उसका अर्थ है उन कर्णकषाओं को विनष्ट करने वाले लीलावतारों को पूर्णरूप से सुनें ।।४५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के छठे अध्ययाय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।६।।**

# सातवाँ अध्याय

## श्रीभगवान् के लीलावतारों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

**यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनु सकलयज्ञमयीमनन्तः ।**
**अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥१॥**

**अन्वयः**— यत्र क्षितितलोद्धरणाय उद्यतः अनन्तः सकल यज्ञमयीं कौडीं तनुंविभ्रत अन्तर्महार्णव उपागतं तम् आदिदैत्यम् व्रजधरः इन्द्रम् इव दंष्ट्रया ददार ॥१॥

**अनुवाद**— प्रलयकालीन जल में डूबी हुयी पृथिवी का उद्धार करने के लिए तैयार श्रीभगवान् अपने सम्पूर्ण यज्ञमय सूकर शरीर धारण किए हुए जल के भीतर ही युद्धार्थ आये हुए आदि दैत्य हिरण्याक्ष को अपनी द्रंष्ट्रा से उसी तरह चिर दिए जिस तरह व्रज धारण करके इन्द्र ने पर्वतों के पंख को काट डाला था ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

सप्तमे भगवल्लीलावतारा ब्रह्मणोदिताः । नारदाय तु तत्कर्म प्रयोजनगुणैः सह । यत्र यदा क्षितितलोद्धरणार्थ वाराहीं तनुं विभ्रत्सन्नुद्यंतोऽनन्तस्तदा तं सुप्रसिद्धं हिरण्याक्षं दंष्ट्रया ददार ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में ब्रह्माजी ने नारदजी को श्रीभगवान् के लीला अवतारों को उनके गुणों प्रयोजनों तथा कर्मों के साथ सुनाया था उसी का वर्णन किया गया हैं ॥१॥

**यत्र इत्यादि** जब पृथिवी का उद्धार करने के लिए सूकर शरीर धारण किए हुए श्रीभगवान् उद्यत हुए तो उस समय उन्होंने प्रख्यात उस हिरण्याक्ष नामक दैत्य को अपने दाँतों से चिर दिया ॥१॥

**जातो रुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ।**
**लोकत्रयस्य महतीमहरद्यदार्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥२॥**

**अन्वयः**— रुचेः आकूतिसुतः जातः सुयज्ञः दक्षिणायाम् सुयमान् अमरान् अजनयत् लोक त्रयस्य महतीम् अर्तिं अहरत् तदनु स्वायम्भुवेन मनुना हरिः इति उक्तः ॥२॥

**अनुवाद**— रुचि प्रजापति की पत्नी के गर्भ से सुयज्ञ नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर उन्हांने अपनी पत्नी दक्षिणा के गर्भ से सुयम नामक देवताओ को उत्पन्न किया और त्रैलोक्य के बहुत बड़े कष्ट को उन्होंने दूर किया । उसके कारण उनके मातामह स्वायम्भुव मनु ने उनका नाम हरि रखा ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

यज्ञावतारमाह । रुचेः प्रजापतेः सकाशात्तद्भार्याया आकूतेः सूनुः सुतः सुयज्ञो नाम जातः । स च स्वभार्यायां दक्षिणायां सुयमान्देवानजनयत् । स एवेन्द्रः सन् यदा आर्तिमहरत्तदा पूर्वं सुयज्ञ इत्युक्तोऽप्यनु पश्चान्मनुनना मातामहेन हरिरित्युक्तः । अनेन देवोत्पादनं लोकत्रयार्तिहरणं च तस्य कर्म दर्शितम् । एवं सर्वत्रावतारस्तत्कर्म च ज्ञेयम् ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के यज्ञावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्मजी ने कहा रूचि प्रजापति की पत्नी आकूति देवी के गर्भ से भगवान् सुयज्ञ नामक उनके पुत्र हुए । उन्होंने दक्षिणा नामक अपनी पत्नी के गर्भ से सुयम नामक देवताओं को उत्पन्न किया और उन्होंने त्रैलोक्य के बहुत बड़े कष्ट को दूर किया । इसीलिए स्वयम्भुव मनु ने उनका नाम हरि रखा । अर्थात् वे ही भगवान् इन्द्र रूप से त्रैलोक्य के कष्ट को दूर किये । उसके कारण भगवान् का जो सुयज्ञ नाम था उनके मातामह ने उसके पश्चात् उनका नाम हरि रख दिया । इस प्रतिपादन से ब्रह्माजी ने भगवान् के दो कर्मो को बतलाया देवताओं का उत्पादन और त्रैलोक्य के कष्ट का हरण । इस तरह से सभी अवतारों तथा उनके कर्मो को जानना चाहिए ॥२॥

**जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ।**
**ऊचे ययात्मशमलं गुणसङ्गपङ्कमस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥३॥**

**अन्वयः**— हे द्विज ! कर्दमगृहे देवहुत्यां नवभिः स्त्रीभिः समं, जज्ञे । स्वमात्रे आत्मगतिं उचे । यया अस्मिन् आत्मशमलं गुणसङ्गपङ्कम् विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥३॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् महर्षि कर्दम की पत्नी के गर्भ से अपनी नव बहिनों के साथ पुत्र रूप में उत्पन्न हुए । उन्होंने अपनी माता देवहूति को आत्मज्ञान का उपदेश दिया । उस आत्मज्ञान को प्राप्त करके माता देवहूति

ने इस जन्म में ही हृदय के समस्त मलों तथा गुणों की आसक्ति रूपी समस्त कीचड़ को धो दिया और कपिल भगवान् के स्वरूप को प्राप्त हो गयीं ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

कपिलावतारमाह । कर्दमस्य प्रजापतेर्गृहे च तद्भार्यायां देवहूत्यां जज्ञे । नवभिः स्त्रीभिर्भगिनीभि सह । स च स्वमात्रे आत्मगतिं ब्रह्मविद्यामुक्तवान् यया आत्मगत्या सा आत्मनः शमलं मलिनीकरणं गुणसङ्गरूपं पङ्कमस्मिन्नेव जन्मनि विधूय कपिलस्य गतिं मुक्तिं प्राप्तवती ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् के कपिलावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी ने कहा कर्दम प्राजपति के गृह में उनकी पत्नी देवहूति के गर्भ से भगवान् अपनी नव बहिनों के साथ पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए । उन्होंने अपनी माता देवहूति को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया । उस आत्मविद्या के द्वारा माता देवहूति इसी जन्म में आत्मा के मलिनीकरण रूप गुणों की आसक्ति रूपी कीचड़ को दूर करके मुक्ति को प्राप्त कर लीं ॥३॥

**अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो दत्तो मयाऽहमिति यद्भगवान्स दत्तः ।**
**यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥४॥**

**अन्वयः**— अपत्यम् अभिकांक्षतः अत्रेः तुष्टः मया अहम् दत्तः इति आह स भगवान् दत्तः । यत्पाद पङ्कज परागपवित्रदेहाः यदु हैहयाद्याः उभयीं योगर्द्धिम् आपुः ॥४॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् को अपने पुत्र रूप में प्राप्त करना चाहने वाले महर्षि अत्रि से प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे कहा मैं अपने को दे दिया । उसके कारण वे भगवान् दत्त कहलाये । उनके चरण कमलों की धूलि रूपी पराग से पवित्र शरीर वाले यदु तथा हैहयवंशी सहस्रार्जुन भोग तथा मोक्ष रूप दोनों सिद्धियों को प्राप्त किये ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

दत्तात्रेयावतारमाह । मयाऽहमेव तुभ्यं दत्त इति यद्यत आह ततः स नाम्ना दत्तो जातः स्वभक्तेभ्यो योगैश्वर्यदानं तच्चरितं च दर्शयति । यस्य पादपङ्कजयोः परागस्तेन पवित्रा देहा येषां ते । उभयीमैहिकीमामुष्मिकीं च भुक्तिमुक्तिरूपां वा ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् के दत्तात्रेयावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि पुत्र को प्राप्त करना चाहने वाले महर्षि अत्रि से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने कहा कि मैंने अपने को ही आपको दे दिया; अतएव उनका नाम दत्त हुआ। इस रूप में भगवान् अपने भक्तों को योग का ऐश्वर्य प्रदान किए और अपना चरित भी प्रदर्शित किए अतएव उनका नाम दत्त है । उन दत्त भगवान् के चरण कमलों के पराग रूप धूलि से पवित्र शरीर वाले यदु तथा सहस्रार्जुन आदि लौकिक तथा पारलौकिक अथवा भोग तथा मोक्ष रूपी सिद्धि को प्राप्त किए ॥४॥

**तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् ।**
**प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥५॥**

**अन्वयः**— आदौ लोकसिसृक्षया मे तपः तप्तः सनात् स्वतपसः सः चतुः सनः अभूत प्राक् कल्प संपलव विनष्ट आत्मतत्त्वं सम्यक् जगाद मुनयः आत्मन् अचक्षत ॥५॥

**अनुवाद**— सृष्टि के प्रारम्भ में मैने लोको की सृष्टि करने के लिए घोर तपस्या की उस अखण्ड तपस्या से वे परमात्मा सन नाम से युक्त सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन चार रूप वाले हो गये । इन चार रूप वाले श्रीहरि ने प्रलय के कारण विनष्ट हुए पूर्वकल्प के ज्ञान का ऋषियों को उपदेश दे दिया । उस उपदेश से मुनियों ने अपने मन मे उस आत्मज्ञान का साक्षात्कार किया ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

कुमारावतारमाह । मे मया आदौ यत्तपस्तप्तं तस्मात्स्वतपसो मत्तपसो हेतोः सहरिश्चतुःसनोऽभूत् । सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातन इति चत्वारः सनशब्दा नाम्नि यस्य सः । कथंभूतात्स्वतपसः । सनादखण्डितात् । यद्वा स्वतपसः सनाद्दानात् समर्पणादित्यर्थः । षणु दाने । स च पूर्वकल्पस्य संप्लवे प्रलये विनष्टमुच्छिन्नसंप्रदायमात्मतत्त्वमिहास्मिन्कल्पे सम्यग्जगादोक्तवान् । सम्यक्त्वं दर्शयति । यदगदितमात्रमेव मुनय आत्मन् आत्मनि मनस्यचक्षत साक्षादपश्यन् ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी कुमारावतार का वर्णन करते हैं । सृष्टि के प्रारम्भ में सृष्टि करने की इच्छा से मैंने घोर तपस्या की मेरे उस सन नामक अखण्ड तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् सन शब्द से युक्त चार रूप वाले हो गये सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार अथवा मेरी इस तपस्या को मेरे द्वारा परमात्मा को ही समर्पित किए जाने के कारण चार रूप वाले हो गये । यह षणुदाने धातु से सनशब्द व्युत्पन्न है ।

**सच पूर्वकल्पस्य० इत्यादि** वे भगवान् पूर्व कल्प के प्रलय होने के कारण आत्मज्ञान विनष्ट हो गया था । उसका सम्प्रदाय इस कल्प में उन्होंने मुनियों को अच्छी तरह से उपदेश द्वारा दिया । उस उपदेश मात्र से मुनियों ने उस ज्ञान का अपने मन में साक्षात्कार किया ॥५॥

**धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ।**
**दृष्ट्वात्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः ॥६॥**

**अन्वयः**— दक्षदुहितरि धर्मस्य पत्न्यां मूर्त्यां नर नारायणः अजनिष्ट । स्वतपः प्रभावः दृष्ट्वा अनङ्गस्य पृतना देव्यः भगवतः नियमावलोपं घटितुम् न शेकुः ॥६॥

**अनुवाद**— दक्षप्रजापति की पुत्री तथा धर्म की पत्नी मूर्ति देवी के गर्भ से भगवान् नर-नारायण रूप दो मूर्तियों के रूप में अवतीर्ण हुए । श्रीभगवान् की तपस्या के प्रभाव को देखकर काम की सेना रूपी अप्सरायें श्रीभगवान् के नियम का लोप नहीं कर सकीं ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

नरनारायणावतारमाह । धर्मस्य पत्न्यां दक्षदुहितरि मूर्तिसंज्ञायां नारायणो नर इति मूर्तिद्वयेन जातः । कथंभूतः । स्वोऽसाधारणस्तपः प्रभावो यस्य । तदेवाह । अनङ्गस्य पृतनाः देव्योऽप्सरसो भगवतः सकाशादआत्मनः स्वप्रतिरूपा उर्वश्याद्याः स्त्रीर्दृष्ट्वा तस्य नियमावलोपं व्रतभङ्गं घटितुं साधयितुं न शेकुः । यद्वा आत्मनः स्वस्य यो नियमस्तपोनाशनरूपस्तस्यावलोपं तत्र दृष्ट्वा भगवतः घटयितुं न शेकुरिति । एतच्चाख्यानमेकादशे भविष्यति ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् के नरनारायणावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि धर्म की पत्नी तथा दक्ष की पुत्री मूर्ति देवी के गर्भ से भगवान् ने नर तथा नारायण इन दो मूर्तियों के रूप में अवतार ग्रहण किया । उनके असाधारण तप के प्रभाव को देखकर काम की सेना रूपी अप्सराओं ने श्रीभगवान् के सन्निकट में अपने से भी सुन्दर उर्वशी को देखकर श्रीभगवान् के नियम का भङ्ग नहीं कर सकीं । अथवा उनका अपना जो तपस्या का नाश करना रूप नियम था उसका लोप देखकर वे भगवान् के नियम को भङ्ग नहीं कर सकीं । यह कथा ग्यारहवें स्कन्ध में आयेगी ॥६॥

**कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम् ।**
**सोऽयं यदन्तरमलं निविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥७॥**

**अन्वयः**— कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या कामं प्रहन्ति ते उत दहन्तं असह्यम् रोषं न दहन्ति सोऽयं यत् अमलम् अन्तः निविशन् विभेति, तस्य मनः कथं नु कामः श्रयेत ।।७।।

**अनुवाद**— शङ्करजी आदि महापुरुष अपनी रोष भरी दृष्टि से काम को जला देते हैं, किन्तु अपने को जलाने वाले असह्य रोष को वे नहीं जला पाते । वही क्रोध भगवान् नर-नारायण के स्वच्छ हृदय में प्रवेश करने में भयभीत हो जाता है तो भला उन नरनारायण के हृदय में कैसे प्रवेश कर सकता है ?।।७।।

### भावार्थ दीपिका

यत्र कामविजयी क्रोधोऽपि विभेति तत्र कामो न प्रभवतीति किं वक्तव्यमित्याह काममिति । कृतिनः श्रीरुद्रप्रमुखा रोषयुक्ता दृष्टवा कामं दहन्ति । रोषं त्वात्मानं दहन्तमपि ते न दहन्ति । क्रोधेनाभिभूयन्त इत्यर्थः । नु अहो सोऽयं रोषो यदन्तरं यन्मध्यं प्रविशन्नलं विभेति । यद्वा यस्यान्तर्मनः । कथंभूतम् । अमलं निर्मलं प्रविशन्निति ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

जिन नर नारायण भगवान् से काम विजयी क्रोध भी भयभीत हो जाता है, उन भगवान्का काम कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है, यह अर्थ तो अपने आप ही सिद्ध हैं, इसको क्या कहना है । इसी अर्थ को **कामम् इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा कहा गया है । श्रीशङ्करजी प्रभृति महापुरुष अपनी क्रोध भरी दृष्टि से काम को जला देते हैं। किन्तु अपने को भी जलाने वाले इस असह्य रोष को वे नहीं जला पाते हैं । अर्थात् उनको क्रोध अभिभूत कर देता है । वही रोष भगवान् के मन में प्रवेश करने में अत्यन्त भयभीत होता है उन भगवान् के स्वच्छ अन्तःकरण में काम कैसे प्रवेश कर सकता है ।।७।।

**विद्धः सपत्न्युदिपतत्रिभिरन्ति राज्ञो बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ।**
**तस्मा अदादध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ।।८।।**

**अन्वयः**— सपत्न्युदितपत्त्रिभि विद्ध राज्ञः अन्ति बालोऽपि सन् तपसे बनानि गतः तस्मै गृणते प्रसन्नः ध्रुवगतिम् अदात् यदुपर्यधस्तात् दिव्याः मुनयः स्तुवन्ति ।।८।।

**अनुवाद**— अपनी माता की सौत सुरुचि के द्वारा उक्त वाक्य रूपी बाण से विद्ध तथा अपने पिता राजा उतानपद के सन्निकट में बैठा हुआ बालक ध्रुव तपस्या करने के लिए वन में चला गया उसकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उसको ध्रुवगति को प्रदान किया । उस स्थान के ऊपर रहने वाले भृग्वादि महर्षि तथा उसके नीचे रहने वाले सप्तर्षि महर्षि आदि ध्रुव की स्तुति करते हैं ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

चरित्रेणैव कमप्यवतारं सूचयति । मातुः सपत्न्याः उदितान्युक्तानि वाक्यान्येव पत्रिणो बाणास्तैर्विद्धो ध्रुवो राज्ञ उत्तानपदोऽन्ति समीपे तपसे तपस्तप्तुम् । ध्रुवगतिं ध्रुवपदम् यत् यामुपरि स्थितामधस्तात्स्थिता दिवि भवा दिव्याः सप्तर्षयः स्तुवन्ति । यद्वा उपरि भृग्वादयः अधस्तात्सप्तर्षय इति ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

चरित्र वर्णन के द्वारा ही श्रीभगवान् के किसी अवतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैंकि अपनी माता की सौत सुरुचि के द्वारा कहे गये वाक्य रूपी बाणों से विद्ध राजा उत्तानपाद के सन्निकट में बैठा हुआ उनका पाँच वर्ष का पुत्र तपस्या करने के लिए वन में चला गया । उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उस बालक को ध्रुवपद प्रदान कर दिया । उस स्थान के ऊपर और नीचे रहने वाले दिव्य ऋषिगण उस ध्रुव की स्तुति करते रहते हैं । अथवा ध्रुव पद के ऊपर रहने वाले भृगु आदि दिव्य ऋषिगण तथा नीचे रहने वाले सप्तर्षि गण उस ध्रुव की स्तुति किया करते हैं ।।८।।

**यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतन्तम् ।**
**त्रात्वाऽर्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ।।९।।**

**अन्वयः**— उत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्ट पौरुषभगं निरये पतन्तं वेनं त्रात्वा जगति अर्थितः पुत्रपदं च लेभे येन वसुधा च सकलानि वसूनि दुग्धा ।।९।।

**अनुवाद**— कुमार्गगामी ब्राह्मणों के वाक्य रूपी वज्र से जिनके पौरुष तथा ऐश्वर्य विनष्ट हो गये थे ऐसे वेन को नरक में जाने से जिन्होंने बचा लिया तथा मुनियों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जो राजा वेन के पुत्र बन गये तथा प्रजाओं द्वारा प्रार्थना किए जान पर जिन्होंने गोरूप धारण की हुयी पृथिवी से सम्पूर्ण द्रव्यों का दोहन किया ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

पृथ्ववतारमाह । यद्यदा ऋषिभिरर्थितस्तदा वेनं त्रात्वा अन्वर्थं तत् पुत्र इति पदं नाम लेभे । **'पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ।'** इति हि पुत्रपदव्युत्पत्तिः । कथंभूतम् । द्विजानां शापवाक्यमेव वज्रं तेन विप्लुष्टं दग्धं पौरुषं भगमैश्वर्य च यस्य तम् । चरित्रान्तरमाह । येन च जगति जगदर्थे वसून्यन्नादिद्रव्याणि दुग्धा ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् के पृथु अवतार का वर्णन किए हैं । राजा वेन कुमार्ग गामी थे । इसके कारण क्रोध करके ऋषियों ने हुङ्कार भरा और उन ऋषियों के शाप रूपी वाग्वज्र से राजा वेन का पौरुष और ऐश्वर्य दोनों विनष्ट हो गया । नि:सन्तान राजा के शरीर का मंथन करते समय मुनियों ने प्रार्थना की तो भगवान् उनके पुत्र बनकर उन्हे नरक में जाने स बचा लिए ।

**पुनाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः । तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।।**

अर्थात् पुं नामक नरक में जाने से पिता को पुत्र चूकी बचा लेता है अतएव स्वयम् ब्रह्माजी ने पुत्र को पुत्र कहा है । यही पुत्रपद की व्युत्पत्ति है । कैसे राजा को बचाये तो उत्तर है कि ब्राह्मणों के शाप के वाक्य रूपी वज्र से राजा के पौरुष और ऐश्वर्य दोनों भस्म हो गये थे ऐसे राजा को भगवान् पृथु ने नरक जाने से बचाया भगवान् पृथु के दूसरे चरित्र का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं । जिन भगवान् पृथु ने संसार के लिए गोरूप धारिणी गौ से अन्न इत्यादि द्रव्यों को दूहा ।।९।।

**नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम् ।**
**यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः।।१०।।**

**अन्वयः**— असौ नाभेः सुदेविसूनु ऋषभ आस । यो वै स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः समदृग् जडयोगचर्याम् चचार, ऋषयः यत् पारमहंस्यपदम् आमनन्ति ।।१०।।

**अनुवाद**— वे ही भगवान् राजा नाभि के पुत्र के रूप में उनकी पत्नी सुदेवी के गर्भ से ऋषभ नाम से उत्पन्न हुए । जो ऋषभ अपने स्वरूप में स्थित रहकर अपनी सभी इन्द्रियों को अपने वश में रखे तथा संसार में सभी प्रकार की आसक्तियों से दूर रहे । वे समदृष्टि थें और जड़ो की भाँति योगाचर्या का इन्होंने अनुष्ठान किया। इस स्थिति को महर्षियों ने पारमहंस्य पद अथवा अवधूतचर्या कहा है ।।१०।।

### भावार्थ दीपिका

ऋषभावतारमाह । असौ हरिर्नाभेराग्नीध्रपुत्रात्सुदेव्याः सूनुरास । नाभेर्भार्याया मेरुदेव्या एव सुदेवीत्यपि संज्ञा । जडवद्योगेन नित्यसमाधिना चर्याम् । यदिति याम् । तत्र हेतुः- समदृक् । तत्रापि हेतुः-स्वस्थः स्वस्वरूपे स्थितः । यतः प्रशान्तेन्द्रियः। तत्कुतः । यतः परितो मुक्तसङ्गः ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने भगवान् के ऋषभावतार का वर्णन किया है । वे कहते हैं कि वे श्रीहरि महाराज् आग्नीध्र के पुत्र राजा नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से उनके पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए । मेरुदेवी का ही नाम सुदेवी भी था । वे जडों के समान नित्य ही समाधि रूपी चर्या को अपनाये । यह उनकी जडयोगचर्या थी । उसका कारण था कि वे समदर्शी थे । वे सदा अपने स्वरूप मे स्थित रहते थे और उनकी इन्द्रियाँ नियन्त्रित थीं । क्योंकि वे सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित थे ।।१०।।

**सत्रे ममास भगवान्हयशीरषाऽथो साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ।**
**छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ।।११।।**

**अन्वयः**— अथ मम सत्रे स भगवान् साक्षात् यज्ञपुरुषः तपनीयवर्णः हयशिरसा छन्दोमयः मखमयः अखिल देवतात्मा आस । अस्य नस्तः उशतीः वाचो बभुवुः ।।११।।

**अनुवाद**— वे ही यज्ञ पुरुष भगवान् मेरे यज्ञ में साक्षात् सुवर्ण के समान कान्ति वाले हयग्रीव के रूप में अवतार ग्रहण किये । उनका वह शरीर वेदमय और यज्ञमय था । वे सर्वदेवमय हैं । उनके ही नाकों के छिद्र से कमनीय वेदवाणी आविर्भूत हुयी ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

हयग्रीवावतारमाह- सत्रे इति । अथो इत्यर्थान्तरे । स एव साक्षाद्भगवान्मम ब्रह्मणः सत्रे यज्ञे हयशीर्षा आस । तपनीयं सुवर्णं तद्वद्वर्णो यस्य छन्दोमयो वेदमयः तद्विधेया ये मखास्तन्मयः । **'अमृतमय'** इति वा पाठः । मखैर्यजनीया अखिला देवतास्तदात्मा च । अस्य श्वसतः श्वासं मुञ्चतो नस्तो नासापुटादुशतीरुशत्यः कमनीया वेदलक्षणा वाचो बभूवुः ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने हयग्रीवावतार का वर्णन किया है । इस श्लोक में अथ शब्द का प्रयोग अर्थान्तर के अर्थ में किया गया है । वे ही यज्ञमय भगवान् मेरे यज्ञ में हयग्रीव के रूप में आविर्भूत हुए । उनका देदीप्यमान सुवर्ण के समान वर्ण था । वे वेदमय तथा यज्ञमय हैं । कहीं-कहीं पर अमृतमय भी पाठ है । यज्ञों के द्वारा जितने भी देवताओं की पूजा की जाती हैं, उन सबों की वे आत्मा हैं । इन भगवान् के नाकों से जो श्वास निकलती थी उसी से कमनीय वेदवाणी भी प्रकट हुयी ।।११।।

**मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ।**
**विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ।।१२।।**

**अन्वयः**— युगान्त समये मनु आस क्षोणीमयः निखिलजीवनिकायकेतः मत्स्यो लब्धः । मे मुखात् सनिले विस्रंसितान् वेदमार्गान् आदाय उरुमये सलिले तत्र विजहार ।।१२।।

**अनुवाद**— चाक्षुष् मन्वन्तर के अन्त में भावी मनु सत्यव्रत ने पृथिवी रूपी नौका के आधार बने हुए वे भगवान् सभी जीवों के आश्रय बन गये । मेरे मुख से गिरे हुए वेद को लेकर उस भयङ्कर जल में ही विहार करते रहे ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

मत्स्यावतारमाह । मत्स्यो भाविना वैवस्वतेन मननुना दृष्टः । क्षोणीमयः पृथ्वीप्रधानः, तदाश्रय इत्यर्थः । अतएव निखिलजीवनिकायानामाश्रयः । मे मुखाद्विस्रंसितान्गलितान् वेदस्य मार्गान्वेदानादाय तत्र युगान्तसलिले विजहार । ह हर्षेण।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मत्स्यावतार का वर्णन किया गया है । भावी वैवस्वत मनु सत्यव्रत ने भगवान् को मत्स्य रूप से देखा । भगवान् के आश्रितों में प्रधान पृथिवी ही थी उसके आश्रय हैं । वे भगवान् । इसीलिए वे सम्पूर्ण जीव समूह के भी आश्रय हैं । मेरे (ब्रह्मा के) मुख से जल में गिरे हुए वेदों को लेकर वे भगवान् अत्यन्त भयङ्कर उस जल में प्रसन्नता पूर्वक विहार करते रहे ॥१२॥

**क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः ।**
**पृष्ठेन कच्छप वपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ॥१३॥**

**अन्वयः**— अमरदानवयूथपानाम् अमृत लब्धये क्षीरोदधौ उन्मथ्नतां आदिदेवः पृष्ठेन गोत्रं दधार अद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः निद्राक्षणः ॥१३॥

**अनुवाद**— जब बड़े-बड़े दैत्य एवं देवता अमृत की प्राप्ति के लिए क्षीरसागर का मन्थन कर रहे थे, तब श्रीभगवान् ने अपने पीठ पर मन्दराचल पर्वत को धारण किया और पर्वत के रगड़ से उनके पीठ की खुजली मिट्टी तो वे क्षणभर के लिए सो गये ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

कूर्मावतारमाह । क्षीरोदधौ कच्छपवपुः सन् गोत्रं मन्थनार्थं मन्दरगिरिं पृष्ठेन धृतवान् । कदा । अमृतलब्धये क्षीराब्धिमुन्मथ्नतां सताम् । निद्रायाः क्षणोऽवसर उत्सवो वा यस्य सः । निद्रावसरः कुतस्तत्राह । अद्रेः परिवर्तः परिभ्रम एव कषाणः कषणं घर्षणसुखप्रदो यस्यां सा कण्डूर्यस्य सः । यद्वा अद्रिपरिवर्त एव कषः कषणं तेन अणिति अपयातीति कषाणा कण्डूर्यस्य ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

**क्षीरोदधौ इत्यादि** श्लोक के द्वारा ब्रह्माजीने श्रीभगवान् के कच्छपावतार का वर्णन किया है । क्षीर सागर में कच्छप शरीर धारण किए हुए भगवान् ने मन्थन क्रिया के लिए अपने पीठ पर मन्दर पर्वत को धारण किया था। यह कार्य उन्होंने तब किया जब देव एवं दानव यूथप अमृत का मन्थन कर रहे थे । उस समय उनको नींद आ गयी। क्योंकि पर्वत के धूमने से जो रगड़ पैदा हुयी उसी से उनकी पीठ की खुजली मिट गयी । **यद्वा अद्रिपरिवर्त० इत्यादि** अथवा पर्वत का धूमना ही उनकी पीठ की रगड़ थी उसी से उनकी खुजली चली गयी ॥१३॥

**त्रैविष्टपोरुभयहासनृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ।**
**दैत्येन्द्रमाशु गदयाऽभिपतन्तमारादूरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— भ्रमद् भुकुटि दंष्ट्र करालवक्त्रम् त्रैविष्टिपोरुभयहास नृसिंहरूपं कृत्वा गदयाभिपतन्तं दैत्येन्द्रम् आशु आरात् ऊरौ निपात्य स्फुरन्तं तं नखैः विददार ॥१४॥

**अनुवाद**— फड़कती हुयी भौंहों और तीक्ष्ण दाँतों से जिनका मुख भयङ्कर था ऐसे श्रीभगवान् ने देवताओं के महान् भय को दूर करने के लिए नृसिंह रूप धारण करके गदा धारण करके आते हुए दैत्यों के राजा हिरण्यकशिपु को सन्निकट से ही शीघ्रता पूर्वक पकड़कर अपनी जङ्घों पर लिटा दिया और छटपटाते हुए हिरण्यकशिपु को उन्होंने अपने नखों से चीर दिया ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

श्रीनृसिंहावतारमाह । त्रैविष्टपा देवास्तेषामुरुभयं हन्तीति तथा स भगवान् । यद्वा त्रैविष्टपानां देवानामप्युरुभयं यस्मात्तादृशो हासो यस्य तन्नृसिंहरूपम् । अथवा हिरण्यकशिपो राज्यकाले त्रैविष्टपानां दैत्यानामुरु भयं यस्मात्तादृशो हासो यस्य तन्नृसिंहरूपम्। कथंभूतम् । भ्रमन्त्यौ भ्रुकुट्यौ दंष्ट्राश्च यस्मिंस्तत्करालं वक्त्रम् यस्मिंस्तत् । दैत्येन्द्रं स्फुरन्तमारात्समीप एव गदयोपलक्षितमभिपतन्तं नखैर्विददार ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने नृसिंहावतार का वर्णन किया है। **त्रैविष्टपोरुभयहासनृसिंह रूपम्** पद की व्याख्या श्रीधर स्वामी ने तीन प्रकार से किया है। श्रीभगवान् त्रैविष्टप शब्द से देवता कहे गये है, उनका जो महान् भय था उसको दूर करने वाला था भगवान् का नृसिंह रूप (त्रैविष्टपा देवा तेषामुरु भयं हन्तीति तथा स भगवान् नृसिंह रूपं कृत्वा) अथवा देवताओं को भी जिससे महान् भय हो गया था भगवान् की हंसी से उससे युक्त थे भगवान् नृसिंह। अथवा हिरण्यकशिपु के राज्य काल में देवताओं और दैत्यों को जिससे महान् भय हो गया था उस तरह की हँसी वाला था भगवान् नृसिंह का रूप। इन तीनों प्रकार के विग्रहों का अर्थ थोड़े भेद पूर्वक प्रायः एक ही है। उन भगवान् की भौहें और तीक्ष्ण दाँत चमक रहे थे। उससे उनका मुख भयङ्कर बन गया था। ऐसे सन्निकट में ही गदा धारण करके आते हुए हिरण्यकशिपु को शीघ्रता से पकड़कर भगवान् ने उसको अपनी जङ्घा पर लिटा दिया और उसको अपने तीक्ष्ण नखों से चीर दिया ॥१४॥

**अन्तःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त वार्तः ।**
**आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ॥१५॥**

**अन्वयः**— अन्तः सरस्युरुबलेन ग्राहेण पदे गृहीतः आर्तः यूथपतिः अम्बुजहस्तः इदम् आह हे आदिपुरुष, हे अखिललोकनाथ ! हे तीर्थश्रवः, हे श्रवणमङ्गलनामधेय ॥१५॥

**अनुवाद**— सरोवर के भीतर महाबलवान् ग्राह के द्वारा पैर पकड़ लिए जाने पर आर्त बने हुए यूथपति गजेन्द्र ने अपनी सूंड में कमल लेकर भगवान् को इस तरह पुकारा हे आदिपुरुष, हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् हे पवित्र यश वाले भगवन् ! तथा हे सुनने में मङ्गलमय नाम वाले भगवान् आप मेरी रक्षा करें ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

हरिसंज्ञकावतारमाह- अन्तरिति युगलेन। गजयूथस्य पतिः। तीर्थरूपं श्रवो यशो यस्य स तीर्थश्रवाः हे तीर्थश्रवः। श्रवणेनैव मङ्गलं नामधेयं यस्य सः ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

अन्तः सरसि इत्यादि दो श्लोकों द्वारा श्रीभगवान् के हरि संज्ञक अवतार का वर्णन ब्रह्माजी करते हैं। श्लोक में यूथपति शब्द से हाथियों के समूह के पति गजेन्द्र को कहा गया है। जिनके यश का श्रवण तीर्थ के समान पवित्र बना देने वाला है अतः श्रीभगवान् का नाम तीर्थश्रवा है। भगवान् के नामों के सुनने से ही मङ्गल होता है अतएव उनका नाम श्रवणमङ्गल है।

अर्थात् सरोवर के भीतर जब बलवान् ग्राह ने गजेन्द्र के पैर को पकड़ लिया और उसे अथाह जल में ले जाने लगा तो आर्त बने हुए गजेन्द्र अपनी सूंड में एक कमल का पुष्प लेकर भगवान् को अपनी रक्षा के लिए आदिपुरुष अखिलोकनाथ तीर्थश्रव तथा श्रवणमङ्गलनामधेय इन चार नामों से पुकारा ॥१५॥

**श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ।**
**चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ॥१६॥**

**अन्वयः**— अरणार्थिनम् तम् श्रुत्वा अप्रमेयः चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः हरिः चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य भगवान् हस्ते प्रगृह्य तस्मात् कृपया उज्जहार ॥१६॥

**अनुवाद**— शरणार्थी उस गजराज की वाणी को सुनकर अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् गरुड पर चढ़कर आये और चक्र से घड़ियाल के मुँह को चीरकर श्रीभगवान् गजराज की शुण्ड पकड़कर अपनी कृपा के परतन्त्र होकर उस गजराज को उस घड़ियाल के मुख से ऊपर खींच लिए ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

तद्वचनं श्रुत्वा शरणार्थिनं तं हस्ते शुण्डायां प्रगृह्य । किं कृत्वा । नक्रस्य ग्राहस्य वदनं विनिपाट्य विदार्य । तस्मात्तद्वदनात् ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

गजराज शरणार्थी था, वह चाहता था कि श्रीभगवान् उसकी रक्षा करें । उसकी वाणी को सुनकर भगवान् गरुड़ के पीठ पर सवार होकर आये और चक्र से ग्राह के मुख को चीर दिये तथा गजराज की शुण्ड पकड़कर उसको वे ग्राह के मुख से ऊपर खींच लिए ।।१६।।

**ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां लोकविन्चक्रम इमान्यदथाधियज्ञः ।**
**क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याच्ञामृते पथि चरन्प्रभुभिर्न चाल्यः ।।१७।।**

**अन्वयः**— अदितेः सुतानां अवरजोऽपि गुणैः ज्यायान् अधियज्ञः इमान् लोकान् विचक्रमे, त्रिपदच्छलेन वामनेन क्ष्माम् जगृहे । पथिचरन् याञ्चा ऋते प्रभुभिः न चाल्यः ।।१७।।

**अनुवाद**— भगवान् वामन अदिति के पुत्रों में सबसे छोटे थे किन्तु गुणों के विषय में वे सबसे बड़े थे। क्योंकि उन्होंने इन समस्त लोकों को अपने पादन्यासों द्वारा ही नाप लिया । बलि के प्रर्थना स्वीकार करते ही वामन रूप धारी भगवान् ने बलि की सारी पृथिवी ले ली याचना के द्वारा पृथिवी लेकर भगवान् ने लोगों को उपदेश दिया है कि सन्मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को याचना के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से ऐश्वर्यभ्रष्ट नहीं किया जा सकता है ।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**

वामनावतारमाह । अदितेः सुतानां द्वादशादित्यानां मध्य अधियज्ञो यज्ञाधिष्ठाता विष्णुः । अवरजः कनीयानपि गुणैर्ज्यायाञ्ज्येष्ठः। गुणानेवाह । यद्यत इमाँल्लोकान्विचक्रमे पादन्यासैः क्रान्तवान् । अथ प्रतिश्रुतनन्तरमेव । तत्र हेतुः । बलेः क्ष्मां वामनरूपेण जगृहे। नन्वीश्वरः स्वयं किमिति दुर्बलवत्तथा चक्रे तत्राह । याच्ञां बिना धर्ममार्गे वर्तमानो न चाल्यः ऐश्वर्यात्र भ्रंशनीय इति ।।१७।।

**भाव प्रकाशिका**

**ज्यायान् इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के वामनावतार का वर्णन किया गया है । अदिति माता के पुत्र जो द्वादशादित्य हैं उन सबों में छोटे हैं यज्ञों के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु; किन्तु सबों से छोटे होने पर भी वे गुणों के विषय में सबों से बड़े हैं । भगवान् के गुणों को बतलाते हुए कहते हैं कि बलि के सङ्कल्प करते ही उन्होंने बलि की पृथिवी को वामन रूप से ही नाप लिया । यदि कोई कहे कि वे तो ईश्वर (सम्पूर्ण जगत् के नियामक) थे फिर भी दीन के समान बलि से याचना करने क्यों गये ? तो इसका उत्तर है कि भगवान् वामन ने लोगों को उपदेश दिया है कि सन्मार्ग पर चलने वाले को याचना के बिना ऐश्वर्य से भ्रष्ट नहीं करना चाहिए।।१७।।

**नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखा धृतवतो विबुधाधिपत्यम् ।**
**यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्यदात्मानमङ्ग शिरसा हरयेऽभिमेने ।।१८।।**

**अन्वयः**— हे अङ्ग ! उरुक्रमपाद शौचम् आपः शिखा धृतवतो बलेः विबुधाधिपत्यम् अर्थो न । यः प्रतिश्रुतम् ऋते अन्यत् च चिकीर्षत् । आत्मानम् शिरसा हरये अभिमेने ।।१८।।

**अनुवाद**— हे नारद ! जिस बलि ने अपने शिर पर श्रीभगवान् के चरणों के जल को धारण कर लिया था । उसने आगे चलकर जो इन्द्रत्व प्राप्त किया था उसमें उसके अतिरिक्त उसका अपना कोई पुरुषार्थ नहीं था। उसने अपनी प्रतिज्ञात अर्थ के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी करना नहीं चाहा । उसने तीसरे डग की पूर्ति के लिए श्रीभगवान् के चरणों में अपना शिर रखकर अपने शरीर को भी श्रीहरि को समर्पित कर दिया ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि याच्ञयापि चालनमनुचितमवेत्याशङ्क्य, ततोऽधिकं स्वसालोक्यादि दास्यामीत्याशयेन हृतवानित्याह- नार्थ इति । यद्विबुधाधिपत्यमिदानीं बलात्प्राप्तमग्रे दीयमानं बलेः पुरुषार्थो न भवति । कुत इत्यत आह । आ अप इति च्छेदः । उरुक्रमस्य पादशौचं चं चरणक्षालनरूपा अपः आ सर्वतो धृतवतः । क्व । शिखा शिखायां मूर्ध्नीत्यर्थः । किंच शुक्रेण वारितः शप्तोऽप्यङ्ग हे नारद, यः प्रतिश्रुतं विनाऽन्यत्र चिकीर्षत्कर्तुं नैच्छत् । यश्च तृतीयपादपूरणार्थं हरये आत्मानं देहमप्यभिमेनेऽङ्गीकृतवान्। एवं सदेहं त्रैलोक्यं दत्तवतो विबुधाधिपत्यमर्थो न भवतीत्यर्थः ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि याचना के माध्यम से भी सन्मार्गगामी को ऐश्वर्य से भ्रष्ट करना ठीक नहीं है तो इस प्रकार की शङ्का करके भगवान् ने सोचा कि इसको मैं इसमें भी बड़ा अपना सालोक्य आदि प्रदान करूँगा इस अभिप्राय से उसकी पृथिवी को भगवान् ने हरण कर लिया । इस बात को बतलाते हुए ब्रह्माजी ने **नार्थो बले** इत्यादि श्लोक को कहा है ।

बलि ने आगे चलकर जो देवराजत्व प्राप्त किया उसमें इसके अतिरिक्त अपना दूसरा कोई भी पुरुषार्थ नहीं था । उसी समय भगवान् ने बलि को देवराज का पद देने को सोच लिया । इसका एकमात्र कारण था कि बलि ने भगवान् वामन के चरणों के प्रक्षालन का जल अपने शिर पर अच्छी तरह से धारण कर लिया था । शुक्राचार्य ने दान का सङ्कल्प करने से पहले रोका भी यहाँ तक कि उन्होने बलि को शाप भी दे दिया फिर भी बलि ने जो सङ्कल्प किया था उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं करना चाहा । श्रीभगवान् के तीसरे पद की पूर्ति के लिए राजा बलि ने श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपना शरीर भी समर्पित कर दिया । इस तरह से देह के साथ अपनी आत्मा को भी जिसने श्रीहरि को समर्पित कर दिया उस बलि को देवराजत्व प्राप्त करना कोई पुरुषार्थ नहीं था ।।१८।।

**तुभ्यं च नारद भृशं भगवान्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम् ।**
**ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं यद्वासुदवशरणं विदुरञ्जसैव ।।१९।।**

**अन्वयः**— नारद ! विवृद्धभावेन साधुपरितुष्टः भगवान् तुभ्यं च योगम् आत्मसतत्त्वदीपं भागवतं ज्ञानं च उवाच यद् वासुदेवशरणं एवं अञ्जसा विदुः ।।१९।।

**अनुवाद**— नारद ! तुम्हारे अत्यन्त प्रेम भाव से परम प्रसन्न होकर हंसावतार धारण करने वाले श्रीभगवान् ने तुमको योग तथा आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले ज्ञान का उपदेश दिया । उस ज्ञान को केवल भगवत् शरणागत भक्त ही आसानी से प्राप्त करते हैं ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

हंसावतारमाह-तुभ्यमिति । भृशं विवृद्धेन भावेनात्युद्रिक्तया भक्तया परितुष्टः सन् भक्तियोगं साधु यथा तथा उवाच । ज्ञानं चेति ज्ञानसाधनम् । किं तत् । भागवतं नाम । कथंभूतम् । तत्त्वमेव सतत्त्वम् । आत्मतत्त्वदीपकम् । विवृद्धभावेनेति विशेषणस्य फलमाह-यदिति ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

**तुभ्यम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी ने भगवान् के हंसावतार का वर्णन किया है । ब्रह्माजी ने कहा नारद तुम्हारी जो श्रीभगवान् में भक्ति अत्यधिक समृद्ध हो गयी थी उससे श्रीभगवान् परम प्रसन्न हो गये । उसके फलस्वरूप श्रीभगवान् ने तुमको योग का उपदेश दिया तथा आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले भागवत धर्म का

उपदेश दे दिया। उस आत्मज्ञान को वे ही लोग आसानी से प्राप्त कर पाते हैं जो लोग भगवान् वासुदेव के शरणागत होते हैं ॥१९॥

**चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो मन्वन्तरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ।**
**दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः॥२०॥**

**अन्वयः**— मन्वन्तरेषु मनुवंशधरः दशसु दिक्षु अविहतं स्वतेजः चक्रं विभर्ति। चरित्रैः त्रिपृष्ठे सत्ये उशतीं स्वकीर्तिं प्रथयन् दुष्टेष राजसु दमं व्यधात् ॥२०॥

**अनुवाद**— वे ही भगवान् स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरों में मनुओं के वंशधर के रूप में अवतारण ग्रहण करके दशो दिशाओं में अपने अप्रतिहत तेज रूपी चक्र के द्वारा मनुवंश की रक्षा करते हैं। और अपने चरित्रों के द्वारा त्रैलोक्य के ऊपर विद्यमान सत्यलोक पर्यन्त के लोकों में अपनी कमनीय कीर्ति का विस्तार करते हैं। समय-समय पर राजाओं के दुष्ट हो जाने पर उन सबों का दमन भी करते हैं ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

तत्तन्मन्वन्तरावतारमाह-चक्रमिति। स्वतेजो निजं प्रभावमेव चक्रं सुदर्शनं विभर्ति। चक्रवदप्रतिहतं प्रभावं विभर्तीत्यर्थः। तदेवाह। मनुवंशपालकः सन् त्रयाणां लोकानां पृष्ठे उपरि स्थिते सत्यलोकेऽपि कमनीयां स्वकीर्तिं विस्तारयन् राजसु दण्डं विधत्ते ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

**चक्रम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के विभिन्न मनुओं के रूप में अवतार ग्रहण का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि श्रीभगवान् के सुदर्शन नामक चक्र का जिस प्रकार से तेज अप्रतिहत है उसी तरह से मनुओं के रूप में अवतीर्ण भगवान् का भी दशो दिशाओं में फैला हुआ तेज अप्रतिहत होता है। उस तेज के द्वारा भगवान् मनुवंश की रक्षा करते हैं, अपने चरित्रों के द्वारा सत्यादि लोक पर्यन्त अपनी मनोहर कीर्ति का विस्तार करते हैं, और समय-समय पर जब राजागण दुष्ट प्रकृति के हो जाते हैं तो वे ही भगवान् उन दुष्ट राजाओं का दमन करके उनके दण्ड का विधान करते हैं ॥२०॥

**धन्वन्तरिश्च भगवान्स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति ।**
**यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥२१॥**

**अन्वयः**— स्वयमेव कीर्तिः भगवान् धन्वन्तरिः नाम्ना पुरुरुजां नृणां रुज आशु हन्ति। यज्ञे च अमृतायुः अवावरुन्ध लोक अवतीर्ण च आयुः वेदम् अनुशास्ति ॥२१॥

**अनुवाद**— स्वयमेव कीर्ति स्वरूप भगवान् धन्वन्तरि संसार में महान् रोगों से ग्रस्त मनुष्यों के रोगों को अपने नाम मात्र से ही दूर कर देते हैं। दैत्यों के द्वारा छिन लिए गये मरण रहित आयु को देने वाले यज्ञ के भाग को वे प्राप्त करते हैं और संसार में वे धन्वन्तरि रूप से अवतार ग्रहण करके आयुर्वेद का प्रचार करते हैं॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

धन्वन्तर्यवतारमाह। लाकेऽवतीर्य धन्वन्तरिः सन् पुरुरुजां महारोगिणां स्वनाम्नैव रुजो रोगान् हन्ति। स्वयमेव कीर्तिरिति कीर्त्यतिशयोक्तिः। अमृतं मरणशून्यमायुर्यस्मात्सः। अव अवसन्नं पूर्वं दैत्यैः प्रतिबद्धं यज्ञे भागमवरुन्धे लभते। **'अवाव रुन्द्धम'** इति पाठेऽप्ययमेवार्थः। आयुर्विषयं वेदं चानुशास्ति प्रवर्तयति ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी धन्वन्तरि अवतार का वर्णन करते हैं। भगवान् संसार में धन्वन्तरि रूप से अवतीर्ण होकर संसार के महारोगी पुरुषों के रोगों को अपने नाममात्र से ही विनष्ट कर देते हैं। स्वयमेव कीर्ति होकर भगवान् के कीर्त्यतिरेक को बतलाया गया है। दैत्यों के द्वारा हरण कर लिए गये मरणरहित आयु प्रदान करने वाले यज्ञ के भाग को वे भगवान् देवताओं को प्रदान करते हैं। जहाँ पर अवावरुद्धम पाठ है। वहाँ पर भी यही अर्थ होगा। वे धन्वन्तरि रूप से अवतार ग्रहण करके आयुविषयक शास्त्र आयुर्वेद का प्रवर्तन करते हैं ॥२१॥

**क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ।**
**उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्यस्त्रिःसप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥२२॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मध्रुग् उज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु, अवनि कण्टकम् दैवोपभृतं क्षत्रं क्षयाय, असौ उरुधारपरश्वधेन त्रिसप्तकृत्वः उद्धन्ति ॥२२॥

**अनुवाद**— ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले तथा कुमार्गगामी नारकीय कष्ट प्राप्त करना चाहने वाले तथा दैववशात् बढ़े हुए तथा पृथिवी के कण्टक स्वरूप क्षत्रिय राजाओं का विनाश करने के लिए श्रीभगवान् महापराक्रमी श्रीपरशुरामजी के रूप में अवतार ग्रहण करके अपने तीक्ष्ण धार वाले फरसे से इक्कीस बार उन राजाओं का संहार करते हैं ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

परशुरामावतारमाह। जगतः क्षयाय विधिना दैवेनोपभृतं संवर्धितं, मृत्यवे समर्पितमिति वा। ब्राह्मणेभ्यो द्रुह्यतीति तथा अत उज्झितः पन्था वेदमार्गो येन। अतएव नरकार्ति लिप्सतीव। एवंभूतमवनेः कण्टकतुल्यं क्षत्रमसौ महात्मा हरिरुद्धन्त्युत्पाटयति, दीर्घतीक्ष्णधारेण परशुना ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने परशुरामावतार का वर्णन किया है। संसार का नाश करने के लिए दैववशात् बढ़े हुए अथवा मृत्यु को समर्पित ब्राह्मणों से द्रोह करने के कारण सन्मार्ग का परित्याग किए हुए; उसके फलस्वरूप नारकीय कष्ट प्राप्त करने के इच्छुक के समान तथा पृथिवी के कण्टक तुल्य क्षत्रिय राजाओं का श्रीहरि ने विनाश अपने दीर्घ तथा तीक्ष्ण धार वाले फरसे से किया ॥२२॥

**अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ।**
**तिष्ठन्वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन्विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ॥२३॥**

**अन्वयः**— अस्मत् प्रसाद सुमुखः कलया कलेशः इक्ष्वकु वंश अवतीर्ण गुरोर्निदेशे तिष्ठन् सदयितानुजः वनम् आविवेश। यस्मिन् विरुध्य दशकन्धरःआर्तिम् आर्च्छत् ॥२३॥

**अनुवाद**— हमलोगों पर प्रसन्न होकर कृपा करने के लिए श्रीभगवान् अपनी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न रूपी कलाओं के साथ श्रीराम रूप से इक्ष्वाकु वंश में अवतार ग्रहण करके अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए अपनी पत्नी तथा छोटे भाई के साथ में वन में चले गये और उन श्रीभगवान् से विरोध करके रावण मारा गया ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

रामावतारमाह त्रिभिः-अस्मदिति। अस्माकं ब्रह्मादीनां प्रसादे सुमुखः, कलया भरतादिरूपया सह, कला माया तस्य ईशो गुरोर्दशरथस्याज्ञायां तिष्ठन् सीतालक्ष्मणाभ्यां सहितो वनमाविवेश। यस्मिन्विरोधं कृत्वा रावणो नाशं प्राप्तः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

तीन श्लोक से ब्रह्माजी श्रीरामावतमार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हम ब्रह्मा आदि देवताओं पर कृपा करने के लिए अपनी भरतजी इत्यादि कलाओं के साथ कलेश माया के स्वामी श्रीभगवान् अपने पिता दशरथजी की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी पत्नी सीताजी तथा लक्ष्मणजी के साथ वन में चले गये । उन भगवान् श्रीराम से विरोध करके रावण का नाश हो गया ॥२३॥

**यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः ।**
**दूरसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥२४॥**

**अन्वयः**— दिधक्षोः हरवत् दूरे सुहृन्मथितरोष सुशोणदृष्ट्या तातप्यमान मकरोरग नक्रचक्रः रूढभयाङ्गवेपः उदधिः यस्मै सपदि अरिपुरं मार्गं अदात् ॥२४॥

**अनुवाद**— त्रिपुर विमान को जलाने की इच्छा से क्रुद्ध शङ्करजी के समान अपने शत्रु रावण की नगरी को जला देने की इच्छा से समुद्र तट पर आये हुए श्रीरामचन्द्रजी की आँखें सीताजी के हरण जन्य वियोग के कारण क्रोध से लाल हो गयी थीं । उसके कारण समुद्र के मगर सर्प तथा घड़ियाल समूह अत्यन्त संतप्त हो गये और भय के कारण काँपते हुए समुद्र उनको लङ्का जाने का शीघ्र ही मार्ग प्रदान कर दिया ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

यस्मै रामायोदधिर्मार्गं ददौ । सपदि शीघ्रं हरो यथा त्रिपुरं दिधक्षुस्तद्वदरिपुरं लङ्कां दग्धुमिच्छोः । षष्ठी चतुर्थ्यर्थे । यद्वा पञ्चमीयम् । दिधक्षोः रामाद्यद्भयं प्राप्तं तेनाङ्गे कम्पो यस्येति । कथंभूत उदधिः । ऊढं प्राप्तं यद्भयं तेनाङ्गेषु वेषः कम्पो यस्य। अत्र हेतुः दूरे वर्तमाना सुहृत् सीता तथा निमित्तभूतया मथितः क्षुभितो रोषस्तेन सुशोणाऽत्यरुणा दृष्टिस्तयाऽत्यन्तं तप्यमानं मकराणामुरगाणां नक्राणां च चक्रं यस्मिन् ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

त्रिपुर विमान को जला देने की इच्छा वाले शङ्करजी के समान शत्रु रावण की नगरी को भस्म कर देने की इच्छा वाले यहाँ इच्छोः पद में चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी विभक्ति है अथवा इसमें पञ्चमी विभक्ति हैं । भय से काँपते हुए समुद्र ने शीघ्र ही मार्ग प्रदान कर दिया । उस भय का कारण बताते हुए कहते हैं **दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोण दृष्ट्या** अपनी प्रियतमा के विप्रयोग के कारण क्षुब्ध होने से रोष के कारण उनकी आँखें अत्यन्त लाल हो गयी थीं । उस दृष्टि से समुद्र के मगर सर्प तथा घड़ियाल आदि सन्तप्त हो गये थे, ऐसे समुद्र ने भगवान् श्रीराम को शीघ्र ही मार्ग प्रदान कर दिया ॥२४॥

**वक्षः स्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् ।**
**सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥२५॥**

**अन्वयः**— वक्षः स्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तैः विडम्बितजुषः ऊढहासम् । अधिसैन्ये उच्चरतः धनुषः विस्फूर्जितैः दारहर्तुः असुभिः सह सद्यः विनेष्यति ॥२५॥

**अनुवाद**— रावण के वक्षःस्थल से टकराकर इन्द्र के वाहन ऐरावत के दाँत चूर-चूर होकर विखर गये और उससे प्रकाशित होने वाली दिशाओं को देखकर जो रावण हँसने लगा उस श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी का अपहरण करने वाले रावण का गर्व सेना के बीच में घोष करने वाले धनुष के टंकार से ही उसके प्राणों के साथ शीघ्र ही विनष्ट हो गया ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

किंच युद्धे रावणस्य वक्षःस्थलस्पर्शेन रुग्णा भग्ना ये महेन्द्रवाहस्यैरावतस्य दन्तास्तैर्विडम्बिताः स्वधवलिम्ना धवलीकृताः। तत्तद्दिक्षु पतितैः प्रकाशिता इत्यर्थः । या एवंभूताः ककुभो दिशस्ता जुषते सेवते पालयतीति वा तथा तस्य दारहर्तू रावणस्य अहो मत्समः कोऽन्योऽस्तीति महागर्वेणोढं प्राप्तं हासमसुभिः प्राणैः सह सद्यः शीघ्रं विनेष्यत्यपनेष्यति । कैः धनुषो विस्फूर्जितैः टङ्कारघोषैरेव । कथंभूतस्य । अधिसैन्ये स्वपरसैन्यमध्ये उच्चरत उत्कर्षेण विचरतः । **ककुब्जयरूढहासम्'** इति पाठे दन्तैरुज्वलितानां ककुभां जयेन यो रूढहासः संजातो गर्वस्तमपनेष्यतीत्यर्थः ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

युद्ध में रावण के वक्षःस्थल से टकराकर इन्द्र के वाहन ऐरावत के दाँत टूटकर विखर गये और उन विखरे हुए दाँत के प्रकाश से दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं । इस प्रकार की दिशाओं का पालन करने वाले तथा श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी सीताजी का हरण करने वाले रावण का यह सोचकर गर्व करना कि मेरे समान दूसरा कौन हो सकता है । प्राणों के साथ ही उस गर्व को भी भगवान् श्रीराम की दोनों सेनाओं में होने वाली धनुष के टङ्कार की ध्वनि दूर कर देने वाली है ।

जहाँ **ककुब्जयरूढहासम्** पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि दाँतों से प्रकाशित दिशाओं को जीत लेने से उत्पन्न हँसी पूर्वक गर्व को विनष्ट कर देगी ।।२५।।

**भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ।**
**जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ।।२६।।**

**अन्वयः**— सुरेतरवरूथ विमार्दिता याः भूमेः क्लेशव्ययाय सितकृष्ण केशः कलया जातः जनानुपलक्ष्यमार्गः आत्ममहिमोपनिबन्धनानि कर्माणि च करिष्यति ।।२६।।

**अनुवाद**— जब दैत्यों के समूह ने इस पृथिवी को रौंद डाला तब पृथिवी के क्लेश को दूर करने के लिए भगवान् अपने उजले और काले केश रूपी कला से बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में कलावतार ग्रहण करेंगे । अपनी महिमा को अभिव्यक्त करने वाले ऐसे अद्भूत कर्मों को वे करेंगे कि मनुष्य उनकी लीलाओं का रहस्य नहीं समझ पायेगा ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णावतारमाह– भूमेरिति दशभिः । सुरेतरा असुरांशभूता राजानस्तेषां वरूथैः सैन्यैर्विमर्दिताया मारेण पीडितायाः। कलया रामेण सह जातः सन् । कोऽसौ जातः । सितकृष्णौ केशौ यस्य भगवतः स एव साक्षात् । सितकृष्णकेशत्वं शोभैव नतु वयःपरिणामकृतम्, अविकारित्वात् । यत्तूक्तं विष्णुपुराणे **'उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने'** इति । यच्च भारते **'स चापि केशौ हरिरुज्जजह्ने शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम्' तौ चापि केशवाविशतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च । तयोरेको बलभद्रो बभूव योऽसौ श्वेतस्य देवस्य केशः । कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः'** इति । तत्तु न केशमात्रावताभिप्रायं, किंतु भूभारावतरणरूपं कार्यं कियदेतन्मत्केशावेवैतत्कर्तुं शक्ताविति द्योतनार्थम् । रामकृष्णयोर्वर्णसूचनार्थं च केशोद्धरणमिति गम्यते । अन्यथा तत्रैव पूर्वापरविरोधापत्तेः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् इत्येतद्विरोधाच्च । कथंभूतः । परमेश्वरतया जनैरनुपलक्ष्यो मार्गो यस्य । तर्हीश्वरत्वे किं प्रमाणम्, अतिमानुषकर्मान्यथानुपपत्तिरेवेत्याह। आत्मनो महिमा उपनिबध्यतेऽभिव्यज्यते येषु तानि ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

**अब भूमेः सुरेतर इत्यादि** दश श्लोकों के द्वारा ब्रह्माजी श्रीकृष्णावतार का वर्णन करते हैं । जब असुरों के अंश स्वरूप राजाओं की सेना के भार से अत्यन्त बढ़े हुए पृथिवी का भार उतारने के लिए बलरामजी के साथ

भगवान् श्रीकृष्ण श्वेत और काले केश श्रीभगवान् के ही हैं । सित कृष्णकेशों वाला भगवान् को उनकी शोभा के लिए कहा गया हैं । बुढ़ापे को बोधित करने के लिए नहीं । क्योंकि भगवान् तो विकाररहित हैं ।

विष्णु पुराण में कहा गया है— हे महामुने ! श्रीभगवान् ने श्वेत तथा काले दो केशों को उखाड़ लिया। महाभारत में कहा गया हैं— **स चापिकेशो इत्यादि** अर्थात् वे भगवान् अपने एक श्वेत तथा एक काले केश को उखाड़ लिये । वे दोनों यादवों के वंश में उत्पन्न हुए तथा रोहिणी और देवकी दो स्त्रियाँ भी यदुवंश की हुयीं। श्रीभगवान् का जो श्वेत केश था वह बलराम हो गया और जो केश काले वर्ण का बतलाया गया है वही केशव के रूप में अवतीर्ण हुआ ।

**तत्तु न केशमात्र० इत्यादि** उसका अभिप्राय यह नहीं हैं कि ये केश ही बलराम तथा श्रीकृष्ण रूप में अवतीर्ण हैं, अपितु उसका अभिप्राय यह है कि यह पृथिवी के भार को उतारना रूपी जो कार्य है, वह बहुत छोटा कार्य है उसको तो मेरे केश ही दूर कर देंगे उसके लिए मुझे अवतार लेने की कोई आवश्यकता नहीं है । बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् के वर्णों को भी द्योतित करने के लिए दोनों प्रकार के केशों को उखाड़ा श्रीभगवान् ने ।

यदि ऐसा नहीं माना जाय तो फिर **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** इस उक्ति से विरोध होगा । उनके प्रकार को बतलाते हुए कहते हैं भगवान् श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं, अतएव संसार के लोग उनके मार्ग को नहीं जान सकते हैं । यह **जनानुपलक्ष्यमार्गः** इस पद से कहा गया है ।

प्रश्न होता है कि श्रीकृष्ण भगवान् ईश्वर हैं इसमें क्या प्रमाण है ? तो इसका उत्तर है कि यदि वे ईश्वर नहीं होते तो वे अतिमानुष कर्मों को कैसे कर सकते थे ? उनके जो कर्म है वे उनकी महिमा को अभिव्यक्त करने वाले हैं ॥२६॥

**तोकेन जीवहरणं युदलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः ।**
**यद्रिङ्गताऽन्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— इतरथा तोकेन उलूकिकायाः जीव हरणम् त्रैमासिकस्य च पदा शकटोपवृत्तः यत् रिङ्गता अन्तरगतेन दिवि स्पृशोः वा अर्जुनयोः उन्मूलनं न भाव्यम् ॥२७॥

**अनुवाद**— यदि भगवान् श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं होते तो अत्यन्त छोटे बालक श्रीकृष्ण के द्वारा पूतना का प्राणापहार, तीन मास के बच्चे द्वारा पैर से विशाल गाड़ी को उलट देना तथा घुटनों के बल रेंगते हुए दोनों अर्जुन वृक्षों के बीच में जाकर उन आकाशचुम्बी अर्जुन के वृक्षों को उखाड़ देना इन सभी कार्यों को वे नहीं कर सकते थें ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयति-तोकनेत्यादिना । बालेन पूतनाया जीवहरणम् । यद्रिङ्गता जानुभ्यां गच्छता अन्तरं गतेन मध्यं प्राप्तेन। दिविस्पृशोरत्युच्चयोः । इतरथाऽनीश्वरत्वे तन्न भवितव्यम् ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व का वर्णन करते हुए **तोकेन० इत्यादि** श्लोक को ब्रह्माजी कहते हैं । यदि भगवान् श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं होते तो अत्यन्त छोटे बच्चे के द्वारा पूतना का प्रणापहार करना, घुटनों के बल रेङ्गते हुए दोनों आकशचुम्बी अर्जुन के वृक्षों का उखाड़ देना इन सब कामों को वे नहीं कर सकते थे ॥२७॥

**यद्वैव्रजे व्रजपशून्विषतोयपीथान् पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ।**
**तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यिदुरगं विहरन्ह्रदिन्याम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— यद्वै व्रज विषतोयपीथान् व्रजपशून् पालांस्तु अनुग्रहदृष्टिवृष्टया अजीवयत् तच्छुद्धये अतिविषवीर्य विलोलजिह्वम् उरगम् हृदिन्याम् विहरन् उच्चाटयिष्यति ॥२८॥

**अनुवाद**— वे भगवान् व्रज मे विषैले पानी के पी लेने के कारण बछड़े तथा ग्वाल बाल भी मर जायेंगे तब वे अमृतमयी अनुग्रह दृष्टि की वर्षा से उन सबों को जीवित कर देंगे । उस यमुना के जल को शुद्ध कर देने के लिए यमुना में विहार करते हुए विषातिरेक के कारण चञ्चल जिह्वा वाले कालिय नाग को वहाँ से निकाल देंगे ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

विषतोयपीथान् विषमयतोयस्य पीथं पानं येषां तान् पालानोपांश्च कृपादृष्टिसुधावृष्ट्या जीवयिष्यतीति । यमुनायां क्रीडन्नुरगं कालियमुच्चाटयिष्यति । तच्छुद्धये तस्या ह्रदिन्या निर्विषत्वाय । अतिविषवीर्येण विलोलाऽतिचञ्चला जिह्वा यस्य ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

विषैले जल को पी लेने के कारण जब बछड़े और ग्वालबाल मर जायेंगे उस समय अपनी कृपा रूपी अमृतमयी दृष्टि से वे भगवान् उन सबों को जीवित कर देंगे और यमुना में विहार करते हुए वे सर्प को वहाँ से भगा देंगे । उनके यमुना में विहार करने का उद्देश्य यमुना के जल को विष रहित बना देना होगा और वे विष के आतिशय्य के कारण चञ्चल जिह्वा वाले सर्प कालीय को वहाँ से निकाल देंगे ॥२८॥

**तत्कर्म दिव्यमिव यन्निशि निःशयानं दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने ।**
**उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं नेत्रे पिधाय्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥२९॥**

**अन्वयः**— दवाग्निना शुचिवाने परिदह्यमाने निशि निःशयाननं अवसितान्त कालं व्रजम् सबलः नेत्रेपिधाय्य उन्नेष्यत्ति तत्कर्म दिव्यमिव ॥२९॥

**अनुवाद**— कालिय मर्दन के ही दिन सब लोग जब यमुना तट पर सो जायेंगे और ग्रीष्म ऋतु होने के कारण जब आस-पास का मुंजवन जलने लगेगा उस समय बलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण प्राण संकटापन्न सबों के नेत्रों को बन्द करवाकर सबों को उस अग्नि से बचा लेंगे । उनका यह कर्म दिव्य होगा ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

दिव्यमलौकिकमिवेति लोकोक्तिः । उन्नेष्यत्युद्धरिष्यति । शुचिर्ग्रीष्मस्तत्संबन्धिनि वने । शुष्क इत्यर्थः । अतो दावाग्रेर्हेतोरवसितो निश्चितोऽन्तकालो यस्य तम् । सबलः सरामः अनधिगम्यं दुर्ज्ञेयं वीर्यं यस्य । तत्र निशि निःशयानमिति कालियदमने रात्र्यां यमुनातीरे । नेत्रे पिधाय्य पिहिते कारयित्वेति मुञ्जाटव्यामिति ज्ञेयम् ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् का वह कर्म दिव्य ही होगा । उन्नेष्यति का अर्थ है, बचा लेंगे । **शुचिवने** पद का अर्थ है, ग्रीष्म ऋतु के वन में । अतएव सुखे हुए **अवसितान्तकालः** जब सबों का अन्तिम समय आ जायेगा । **सबलः** पद का अर्थ है बलरामजी के साथ । **अनधिगम्यवीर्यः** पद का अर्थ है कि श्रीभगवान् के पराक्रम का कोई पता नहीं लगा सकता है ।

जिस दिन भगवान् ने कालिय दमन किया था उस दिन रात्रि में वज्रवासियों के यमुनातट पर ही सो जाने

पर रात्रि में मुञ्जाटवी में आग लग जाने पर सबों के प्राण सङ्कटापन्न हो गये तो भगवान् सबों की आँखों को बन्द कराकर सबों को बचा लेंगे ॥२९॥

**गृह्णीत यद्यदुपबन्धममुष्य माता शुल्वं सुतस्य न तु तत्तदमुष्य माति ।**
**यज्जृम्भतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शङ्कितमनाः प्रतिबोधितासीत् ॥३०॥**

**अन्वयः**— अमुष्य माता यत् उपबन्धं शुल्वं गृह्ण तत् तु अमुष्यन माति जृम्भातः अस्य वदनं गोपी अस्य भुवनानि संवीक्ष्य शंकितमनाः प्रतिबोधितासीत् ॥३०॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण को बाँध देने के लिए उनकी माता जितनी भी रस्सी लेंगी वह उनके पेट में दो अङ्गुल छोटी हो जायेगी। तथा जम्भाई लेते हुए भगवान् के मुख में सम्पूर्ण विश्व को देखकर यशोदाजी आश्चर्यित हो जायेंगी और बाद में वे आश्वस्त होंगी ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

उपबध्यतेऽनेनेत्युपबन्धं तत्साधनं शुल्वं अमुष्य माता यशोदाऽग्रहीत्। अमुष्योदरे न माति बन्धनसंमितं न भवति। न पूर्यत इत्यर्थः। गोपी यशोदा संवीक्ष्य दृष्ट्वा प्रतिबोधिता निजैश्वर्यं ज्ञापिता आसीदिति यत्, तच्च कर्म दिव्यमिवेति सर्वत्र पूर्वेणान्वयः ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण को बान्ध देने के लिए माता यशोदा ने जितनी भी रस्सियों को लिया वे सब रस्सियाँ इनके कमर में छोटी ही पड़ गयी। तथा भगवान् के जम्भाई लेते समय उनके मुख में सम्पूर्ण विश्व को देखकर माता यशोदा पहले तो आश्चर्यित हो गयीं किन्तु वे बाद में आश्वस्त हो गयीं ये सारे भगवान् के कर्म दिव्य ही हैं ॥३०॥

**नन्दं च मोक्ष्यति भयाद्वरुणस्य पाशाद्गोपान्विलेषु पिहितान् मयसूनुना च ।**
**अह्न्यापृतं निशि शयनमतिश्रमेण लोके विकुण्ठ उपनेष्यति गोकुलं स्म ॥३१॥**

**अन्वयः**— नन्दं भयात् वरुणस्य पाशात् मोक्षयति मयसूनुना विलेषु पिहितान् गोपान् भयाद् मोक्ष्यति। अहन्यापृतं अतिश्रमेण निशिशयानं गोकुलं लोकं विकुण्ठम् उपनेष्यति ॥३१॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण नन्दजी के अजगर के मुख से बचायेंगे तथा वरुण के पाश से मुक्त करेंगे। मय दानव के पुत्र व्योमासुर के द्वारा ग्वाल बालों के गुफा में बन्द कर दिए जाने पर वे उन सबों को बचा लेंगे दिन भर कामों में लगे रहने के अत्यन्त श्रान्त तथा रात्रि में सोने के कारण मुक्ति प्राप्ति के साधन से रहित गोकुल के लोगों को भगवान् वैकुण्ठ ले जायेंगे, यह उनका दिव्य कर्म ही होग ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

वरुणस्य पाशाद्यद्भयं तस्मान्मोचयिष्यति मयसूनुना व्योमनाम्ना। अह्नि आपृतं व्यापारयुक्तं निशि शयानमिति च वैकुण्ठप्राप्तिसाधनानुष्ठानाभावो दर्शितः। उपनेष्यति प्रापयिष्यति गोकुलवासिनं जनम्। स्मेत्याश्चर्ये ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

नन्दजी के वरुण के पाशरूपी अजगर के मुख से बचाने वाले, व्योमासुर के द्वारा ग्वालों को गुफा में बन्द कर दिए जाने पर बचाने वाले तथा दिन भर कार्यों में लगे रहने के कारण अत्यन्त थककर रात्रि में सोने वाले गोकुल के लोगों को वैकुण्ठ प्रदान करने वाले श्रीभगवान् के ये सब कार्य आश्चर्यमय होंगे ॥३१॥

**गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून्कृपया रिरक्षुः ।
धर्त्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्तदिनानि सप्तवर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! गोपैः मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवे अभिवर्षति कृपया पशून् रिरक्षु सप्तवर्षः सप्तदिनानि उच्छिलीन्ध्रमिव एककरे महीध्रम् सलीलम् धर्ता ॥३२॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप नारद ! गोपों द्वारा इन्द्र यज्ञ नहीं किए जाने पर क्रुद्ध होकर जब इन्द्र वर्षा करने लगेंगे तो कृपा परतन्त्र होकर पशुओं की रक्षा करने के लिए सात वर्ष की अवस्था वाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने एक हाथ पर छत्रक पुष्प के समान आसानी से गोवर्धन पर्वत को सात दिनों तक धारण किए रहेंगे ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

देवे इन्द्रे ! पशून् रिरक्षुः । रिरक्षिषुरित्यर्थः । श्रमरहिते एकस्मिन्नेव करे सलीलं यथा तथा महीध्रं गोवर्धनं धर्ता धारयिष्यति । उच्छिलीन्ध्रमुद्गतं छत्राकमिव । सप्तवर्षाणि वयो यस्य सः ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भी ब्रह्माजी नारदजी को भगवान् श्रीकृष्ण की आश्चर्यमयी लीला को बतलाते हैं वे कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के कहने से गोप जब इन्द्र का यज्ञ करना बन्द कर देंगे उस समय व्रज को विनष्ट करने के लिए इन्द्र मुसलाधार वर्षा करेंगे । यह देखकर सात वर्ष की अवस्था वाले भगवान् श्रीकृष्ण पशुओं की रक्षा करने के लिए खेल-खेल में ही गोवर्धन पर्वत को अपने एक हाथ पर छत्रक पुष्प के समान विना किसी प्रयास के धारण किए रहेंगे ॥३२॥

**क्रीडन्वने निशि निशाकररश्मिगौर्यां रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन ।
उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥३३॥**

**अन्वयः**— निशाकररश्मिगौर्याम् निशि रासोन्मुखः कलपदायतमूर्छितेन वने क्रीडन् उद्दीपिपतस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुः धनदानुगस्य शिरः हरिष्यति ॥३३॥

**अनुवाद**— पूर्णिमा की रात्रि की चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित रात्रि में रासक्रीडा करने की इच्छा से मनोहर संगीत से युक्त वन में क्रीडा करते हुए उद्दीप्त काम की वासना से युक्त गोपियों का हरण करने वाले यक्ष का श्रीभगवान् शिर काट देंगे ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

निशि रात्रौ । निशाकररश्मिभिर्गौर्यां धवलायाम् । वने क्रीडन् कलानि मञ्जुलानि पदानि यस्मिंस्तच्च तदायतं दीर्घं मूर्च्छितमालापविशेषयुक्तं गीतं तेनोद्दीपितः स्मर एव रुक् यासां तासां गोपीनां हर्तुः शङ्खचूडस्य शिरो हरिष्यति ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी से प्रकाशित रात्रि में वन में क्रीडा करते हुए श्रीभगवान् के मनोहर पदों से युक्त होने के कारण दीर्घ आलाप युक्त गीत से जिन गोपियों का कामज्वर उद्दीप्त हो गया था उन सबों को चुराने वाले शंख चूड़ नामक यक्ष का श्रीभगवान् शिर काट देंगे ॥३३॥

**ये च प्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः ।
अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदन्तवक्रसप्तोक्षशम्बरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥३४॥
ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः ।
यास्यन्त्यदर्शनमलं बलभीमपार्थव्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥३५॥**

**अन्वयः**— ये च प्रलम्बरखर-दुर्दुर-केश्यरिष्ट-मल्लेभ-कंस-यवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः अन्ये च शाल्व-कपि-बल्वल दन्तवक्त्र-सप्तोक्ष-शम्बर-विदूरथ-रुक्मिमुख्याः, ये वा काम्बोज मत्स्यकुरु-कैकय-सृञ्जयाद्याः मृधे समितिशालिनः आत्तचापाः बल-पार्थ-भीमव्याजाह्वयेन अलम् अदर्शनम् तदीयम् निलयंयास्यन्ति ।।३४-३५।।

**अनुवाद**— जितने भी प्रलम्बासुर धेनुकासुर बकासुर, केशी, अरिष्टासुर आदि दैत्य, चाणूर आदि पहलवान, कुवलयापीड हाथी, कंस, काल यवन, भौमासुर, पौण्ड्रक, शाल्व, द्विविद नामक वानर, बल्वल, दन्तवक्त्र, राजा नग्नजित् के सात बैल, शम्बरासुर, विदूरथ तथा रुक्मी एवं काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय और सृञ्जय आदि देशों के राजा लोग तथा जो भी योधा धनुष धारण करके युद्ध के मैदान में युद्ध करने के लिए आयेंगे वे सबके सब बलराम, भीमसेन तथा अर्जुन आदि नामों के बहाने स्वयं श्रीभगवान् के द्वारा मारे जाकर उनके ही लोक में जायेंगे ।।३४-३५।।

### भावार्थ दीपिका

ये च प्रलम्बादयस्ते सर्वे हरिणा हेतुभूतेन तदीयं निलयमदर्शनं दर्शनायोग्यं वैकुण्ठमलं यास्यन्तीत्युत्तरेणान्वयः खरो धेनुकः, दर्दुरो इव दर्दुरो बकः, इभः कुवलयापीडः, कुजो नरकः, कपिर्द्विविदः । ये च मृधे आत्तचापाः, समितौ संग्रामे शालन्ते श्लाघन्ते ते समितिशालिनः । ननु प्रलम्बखरकपिबल्बलरुक्मिप्रमुखा बलभद्रेण निहताः, काम्बोजादयश्च भीमार्जुनादिभिः, शम्बर प्रद्युम्नेन, यवनो मुचुकुन्देन, न तु हरिणा तत्राह । बलो भीमः पार्थ इत्यादयो व्याजाह्वयाः कपटनामानि यस्य तेन । सप्तोक्षाणस्तु तेन दमिताः कालान्तरे यास्यन्तीति भावः । एतच्च सर्वमपि कर्म दिव्यमिव, तच्चान्यथा न भाव्यमिति पूर्वेणैव संबन्धः ।।३४-३५।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी बतला रहे हैं कि प्रलम्बासुर इत्यादि जो दैत्य होंगे वे सबके सब श्रीहरि के द्वारा मारे जाने के कारण श्रीभगवान् के वैकुण्ठ लोक जिसको देखा नहीं जा सकता है उसमें चले जायेंगे । धेनुकासुर, दर्दुर (बकासुर) कुबलयापीड हाथी, नरकासुर, द्विविद नामक वानर । वे सबके सब श्रीभगवान् के लोक में चले जायेंगे ।

जो लोग युद्ध में धनुष धारण करके प्रख्यात योद्धा हैं वे सब भी मारे जाकर श्रीभगवान् के लोक में चले जायेंगे । प्रश्न है कि प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, द्विविद, बल्वल तथा रुक्मी को तो बलरामजी ही मारने वाले हैं । काम्बोज इत्यादि का वध भीम, अर्जुन इत्यादि ने किया, शम्बरासुर को प्रद्युम्नजी ने मारा, कालयवन को मुचुकुन्द ने मारा । इन सबों को तो श्रीहरि ने मारा नहीं था तो इसके उत्तर में ब्रह्माजी ने कहा कि भीम, अर्जुन, बलराम ये सबके सब श्रीहरि के कपट नाम हैं । इन सबों के बहाने मारने का काम तो श्रीहरि ने ही किया ।

राजा नग्नजीत के जो सात बैल थे उन सबों का दमन भगवान् ने किया वे सब जब मरेंगे तब श्रीभगवान् के वैकुण्ठ लोक में जायेंगे ।।३४-३५।।

**कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ।**
**आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ।।३६।।**

**अन्वयः**— मीलित धियाम् स्तोकायुषां नृणाम् स्वनिगमः बत दूरपारः अवमृश्य अनुयुगम् सत्यवत्याम् अविहितः सन् सः हि वेदद्रुमं विटपशः विभजिष्यति स्म ।।३६।।

**अनुवाद**— समयानुसार लोगों की बुद्धि मन्द पड़ जाती है और उन लोगों की आयु भी कम हो जाती है। उस समय जब भगवान् देखते हैं कि मेरे आत्मतत्त्व को बतलाने वाले वेदों को समझने में लोग असमर्थ हैं; उस समय प्रत्येक युग में माता सत्यवती के गर्भ से व्यासजी के रूप में अवतीर्ण होकर श्रीभगवान् वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग करते हैं ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

व्यासावतारमाह । अनुयुगं मीलिता संकुचिता धीर्येषाम् । स्तोकमल्पमायुर्येषां तेषां स्वनिगमः स्वकृतो वेदराशिर्वताहो दूरे पारं यस्येति दुर्गम इत्यवमृश्य सत्यवत्यामाविर्भूतः सन्स एव हरिः । विटपशः शाखाभेदेन ॥३६॥

### भाव प्रकाशिका

प्रत्येक युगों में लोगों की बुद्धिमन्द होती जाती है, उन लोगो की आयु भी कम होती जाती है । ऐसे लोगों को देखकर भगवान् प्रत्येक कल्प में माता सत्यवती के गर्भ से व्यासजी के रूप में अवतीर्ण होकर वेदरूपी महान् वृक्ष की शाखाओं का विभाग करेंगे ॥३६॥

**देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः ।**
**लोकान्ध्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ॥३७॥**

**अन्वयः**— निगमवर्त्मनि निष्ठितानां देवद्विषाम् मयेन निर्मिताभिः अदृशतूर्भिः पूर्भिः लोकान्ध्नताम् अति प्रलोभं मतिविमोहम् वेषं विधाय बहु औपधर्म्यम् भाष्यते ॥३७॥

**अनुवाद**— देवताओं के शत्रु सभी वेदमार्ग का सहारा लेकर मयदानव के द्वारा निर्मित नगरियों के अदृश्य वेग वाली नगरियों में रहकर लोगों का विनाश करने लगेगें उस समय भगवान् लोगों की बुद्धि को मोह में डालने वाले तथा अत्यन्त लोभ उत्पन्न करने वाले वेष को धारण करके बहुत से पाखण्ड धर्म का उपदेश करेंगे ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

बुद्धावतारमाह । देवद्विषां निगमवर्त्मनि वेदमार्गे निष्ठितानां नितरां स्थितानाम् । तद्बलेन च पूर्भिः पुरीभिः । अदृश्यतूर्भिरलक्ष्यवेगाभिः । मतेर्विमोहो योग्यतात्यागो यस्मात्, मतेः प्रलोभश्चायुक्तस्वीकारो यस्मात्तं पाखण्डवेषं विधाय तेनौपधर्म्यं पाखण्डधर्मम् । स्वार्थेष्यञ् । बहु भाषिष्यत इत्यर्थः ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी बुद्धावतार का वर्णन करते हैं । जब देवताओं के शत्रु भी वेदमार्ग को अपना कर उसके सहारे मयदानव के द्वारा निर्मित अदृश्य गति वाली नगरीयों में रहकर दैत्य; लोगों का विनाश करने लगेंगे। उस समय मति को मोहित करने वाले तथा लोभ को उत्पन्न करने वाले वेष को धारण करके श्रीभगवान् बुद्ध रूप से बहुत अधिक पाखण्ड धर्मों का उपदेश करेंगे ॥३७॥

**यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ।**
**स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान्युगान्ते ॥३८॥**

**अन्वयः**— यर्हि सताम् अपि आलयेषुहरेः कथा न स्युः द्विजजनाः पाखण्डिनः स्युः, नृदेवाः वृषलाः स्युः, यत्र स्वाहा, स्वधा वषडिति गिरः न स्युः तदा युगान्ते भगवान् कलेः शास्ता भविष्यति ॥३८॥

**अनुवाद**— जिस समय सज्जनों के भी गृह में श्रीहरि की कथा नहीं होगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य भी पाखण्डी हो जायेंगे, राजा लोग शूद्र हो जायेंगे तथा जिस समय कहीं भी स्वाहा, स्वधा तथा वषट् शब्द सुनाई नहीं पड़ेगें उस समय युग के अन्त में कलियुग का शासन करने के लिए भगवान् कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

कल्क्यवतारमाह । यर्हि यदा सतामप्यालयेषु गृहेषु हरेः कथा न स्युः, त्रैवर्णिकाः पाखण्डिनः स्युः, शूद्रश्च राजानः स्युस्तदा कल्किरूपेण कलेः शास्ता भविष्यति । अत्र च ब्रह्मनारदसंवादात्प्राग्भाविनो वराहादयः, मन्वन्तरावतारास्तु भूता भाविनश्च, धन्वन्तरिपरशुरामौ तदा वर्तेते, श्रीरामादयस्तु भाविनः, तत्र तु क्वचिद्भूतादिनिर्देशश्छान्दस इति द्रष्टव्यम् ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी कल्कि अवतार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब सज्जनों के भी गृह में श्रीभगवान् की कथा नहीं होगी, त्रैवर्णिक भी पाखण्डी हो जायेंगे तथा शूद्र राजा हो जायेंगे। कहीं भी स्वाहा स्वधा तथा वषट् शब्द सुनाई नहीं पड़ेंगे उस समय भगवान् कलियुग का प्रशासन करने के लिए कल्की अवतार धारण कर लेंगे। ब्रह्मानारद संवाद से पहले वराहावतार इत्यादि अवतार हुए हैं, मन्वन्तरों का अवतार भूतकालिक और भविष्यत् कालिक होगा। धन्वन्तरि और परशुरामावतार उस समय रहेंगे। श्रीराम आदि अवतार भविष्यत् कालिक होंगे। इन सबों में जहाँ कहीं भी भूत कालिक निर्देश हैं वहाँ आर्ष प्रयोग समझना चाहिए ॥३८॥

**सर्गे तपोहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ।**
**अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥३९॥**

**अन्वयः**— पुरुशक्तिभाजः इमा माया विभूतयः सर्गे, तपः अहम् ऋषयः ये च नवप्रजेशजाः ते भवन्ति, स्थाने धर्ममखमन्वमरावावनीशाः भवन्ति, अन्ते तु अधर्महरमन्युवशासुराद्याः भवन्ति ॥३९॥

**अनुवाद**— अनेक परा शक्तियों से सम्पन्न परमात्मा की माया की ये विभूतियाँ अविर्भूत होती हैं वे सृष्टिकाल के समय तपस्या, रूप में ऋषिगण और नव प्रजापतियों के रूप में अविर्भूत होती हैं स्थिति काल में धर्म, यज्ञ, मनु, देवता और राजा के रूप में अविर्भूत होती हैं और संहार काल में तो अधर्म, शङ्करजी, क्रोधवशा नामक सर्प तथा दैत्यों के रूप में आविर्भूत होती हैं ॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

सृष्ट्यादिकार्यभेदेन मायागुणावतारविभूतीराह- सर्ग इति । स्थाने स्थितौ । मखो विष्णुः । धर्मश्च मखश्च मनवश्च अमराश्च अवनीशाश्च । अन्ते संहारे । हरो रुद्रः । मन्युवशाः सर्पाः । बहुशक्तिधारिणो भगवत इमा मायाविभूतयः ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

सृष्टि आदि कार्यों की भिन्नता के कारण माया के गुणों के अवतार रूपी विभूतियों को बतलाते हुए ब्रह्माजी कहते है। जिस समय स्थिति की बेला आती है उस समय वे विष्णु, धर्म, मख, मनु, देवता और राजाओं के रूप में अवतीर्ण होती है। संहार के समय वे ही रुद्र मन्युवशा सर्प होती हैं, सृष्टि के समय तपस्या, ब्रह्मा, ऋषिगण तथा नव प्रजापतियों के रूप में अविर्भूत होती हैं ॥३९॥

**विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ।**
**चस्कम्भ यः स्वरंहसाऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥४०॥**

**अन्वयः**— यः कविः पार्थिवानि रजांसि अपि विमाने तादृशः अपिः कतमः नु विष्णो वीर्यगणानाम् अर्हति । यः स्वरहंसा अस्खलता यस्मात् त्रिसाम्यसदनात् उरु कम्पयानम् त्रिपृष्ठम् चस्कम्भ ॥४०॥

**अनुवाद**— अपनी प्रतिभा के बल से पृथिवी के सारे धूलिकणों को भी गिन सकने में समर्थ कौन ऐसा पुरुष है जो भगवान् विष्णु के सम्पूर्ण लीलाओं को गिन सके ? त्रिविक्रमावतार में त्रैलोक्य को नापते समय उनके अदम्य वेग के कारण जब ब्रह्माण्ड अत्यधिक काँपने लगा उस समय भगवान् ने अपनी शक्ति से उसको स्थिर किया ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

इदं मया संक्षेपेणोक्तं विस्तरेण वक्तुं न कोऽपि समर्थ इत्याह । पृथिव्याः परमाणूनपि यो विममे गणितवांस्तादृशोऽपि को नु विशणोर्वीर्यगणनां कर्तुमर्हति । कथंभूतस्य । यो विष्णुस्त्रिपृष्ठं सत्यलोकं चस्कम्भ धृतवान् । किमिति चस्कम्भ ।

यस्मात्त्रैविक्रमेऽस्खलता प्रतिघातशून्येन स्वरंहसा स्वपादवेगेन त्रिसाम्यरूपं सदनमधिष्ठानं प्रधानं तस्मादारभ्योरु अधिकं कम्पयानं कम्पमानम्, कम्पेन यानं यस्येति वा । अतः कारणाच्चस्कम्भ । आ त्रिपृष्ठमिति वा च्छेदः, सत्यलोकमभिव्याप्य यः सर्वं धृतवानित्यर्थः । तथाच मन्त्रः विणोर्नुकम् इति । अस्यार्थ–विष्णोर्नु वीर्याणि कं प्रावोचम्, कः प्रावोचदित्यर्थः । यः पार्थिवानि रजांस्यपि विममे सोऽपि । यो विष्णुस्त्रेधा विचक्रमाणस्त्रिविक्रमं कुर्वन्नुत्तरं लोकमस्कभायदवष्टब्धावान् । कथंभूतम् । सधस्थम्। सहस्य सधादेशाः । तिष्ठन्तीति स्थाः, तत्रस्थैर्देवैः सह वर्तमानमित्यर्थः ।।४०।।

## भाव प्रकाशिका

यह तो मैंने संक्षेप में वर्णन किया है कोई भी परमात्मा की विभूतियों का विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता है । ऐसा पुरुष जो अपनी प्रतिभा के बल से पृथिवी के परमाणुओं को भी गिन सकता हैं, इस तरह का भी कौन ऐसा पुरुष है जो भगवान् विष्णु की शक्तियों की गणना कर सके ? यदि कोई कहे कि वे विष्णु कैसे हैं तो इस पर कहते हैं जो भगवान् विष्णु सत्यलोक पर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किए । प्रश्न है कि उन्होंने क्यों धारण किया ? तो इसका उत्तर है कि चूकि त्रिविक्रमावतार में प्रतिघात रहित अपने पैरों के वेग से त्रिगुण साम्य रूपी अधिष्ठान भूत प्रकृति से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जब अत्यधिक काँपने लगा था, उस सत्य लोक पर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किया । **उरुकम्पयानम्** पद का अर्थ है अत्यधिक काँपने वाले ब्रह्माण्ड को अथवा काँपने के कारण जो ब्रह्माण्ड डगमगाने लगा था ऐसे ब्रह्माण्ड को भगवान् ने अपनी शक्ति से स्थिर किया ।

इस अर्थ का प्रतिपादन **विष्णोर्नुकम् इत्यादि** मन्त्र करता है । मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है— भगवान् विष्णु की शक्तियों का वर्णन कौन कर सकता है ? यदि वह पृथिवी की सम्पूर्ण धूलिकण को गिनने में समर्थ है तो भी, जो भगवान् विष्णु अपनी शक्ति से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वासियों के साथ काँपने वाले ब्रह्माण्ड को अपनी शक्ति से स्थिर किए ।

**सधस्थम्** पद का विग्रह है, सह तिष्ठति यत् । यहाँ पर सह शब्द का सध आदेश होकर सधस्थम् पद व्युत्पन्न हुआ है । अर्थात् ब्रह्माण्ड में रहने वाले देवताओं के साथ काँपते हुए ब्रह्माण्ड को भगवान् ने स्थिर किया ।।४०।।

**नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ।**
**गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ।।४१।।**

**अन्वयः**— मायाबलस्य पुरुषस्य अन्तं अहम् नविदामि, अमी ते अग्रजाः मुनयोऽपि न, ये अपरे ते कुतः? दशशतानन आदिदेवः शेषःगायन् अपि अस्य गुणान् अधुनापि पारं न समवस्यति ।।४१।।

**अनुवाद**— माया रूपी शक्ति से सम्पन्न श्रीभगवान् के सम्पूर्ण गुणों का अन्त हम नहीं जानते हैं, ये तुम्हारे बड़े भाई सनकादिक महर्षि गण भी नहीं जानते हैं, तो फिर दूसरों की क्या बात है ? आदिदेव शेष भी उनके गुणों का गायन करते हुए श्रीभगवान् के गुणों का आज तक भी अन्त नहीं जान सके ।।४१।।

## भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति–नान्तमिति । पुरुषस्य यन्मायाबलं तस्यान्तं न विदामि न वेद्मि । दशशतान्याननानि यस्य स शेषोऽप्यस्य गुणान्गायन्पारं न समवस्यति न प्राप्नोति ।।४१।।

## भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के गुणों के अन्त्य का ही विस्तार से वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं माया नामक शक्ति से सम्पन्न श्रीभगवान् की सारी शक्तियों को मैं नहीं जानता हूँ । तुम्हारे बड़े भाई जो सनकादि महर्षि हैं वे भी नहीं जानते है । एक हजार मुखों वाले आदिदेव शेष जी भी भगवान् के गुणों का गायन करते हुए उन सबों के अन्त का पता आज तक भी नहीं लगा सके हैं ।।४१।।

**येषां स एव भगवान्दययेदनन्तः सर्वात्मनारितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।**
**ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥४२॥**

**अन्वयः**— येषां यदिं स एव भगवान् अनन्तः दययेत् त एव निर्व्यलीकम् सर्वात्मनाश्रितपदः ते दुस्तराम् देवमायाम् अतितरन्ति एषां श्वशृगालभक्ष्ये मम अहम् इति धीः न ॥४२॥

**अनुवाद**— जिन जीवों पर भगवान् दया करते हैं, वे ही जीव निष्कपट भाव से अपने को श्रीभगवान् के चरणों के आश्रित बना देते हैं । वे ही महापुरुष भगवान् की माया के पार जाते हैं, उन महापुरुषों को अपने तथा अपने पुत्रादि के शरीर में अहंन्त्व और ममत्व की भावना नहीं होती है । यह शरीर तो कुत्तों और स्यारों का भक्ष्य हैं ॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

यदि न केऽपि विदन्ति तर्हि कथं मुच्येरन् तत्कृपयैवेत्याह-येषामिति । दययेद्दयां कुर्यात् । ते च यदि निष्कपटमाश्रितचरणाः भवन्ति । ते दुस्तरां देवमायामतितरन्ति । चकारान्मायावैभवं विदन्ति च । अथेति वा पाठः प्रत्यक्षमेव तेषां मायातरणमित्याह-नैषामिति ।श्वशृगालानां भक्ष्ये देहे ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि कोई भी भगवान् की माया के बल को नहीं जानता है तो फिर जीवों की मुक्ति कैसे हो सकती है ? तो इसका उत्तर **येषां स० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । जिन जीवों पर अनन्तभगवान् कृपा करते हैं, वे जीव निष्कपट भाव से श्रीभगवान् के चरणों के आश्रित हो जाते हैं, वे ही श्रीभगवान् की माया का अन्त पा सकते हैं । उनकी अपने तथा अपने पुत्रादि के शरीर में अहन्त्व एवं ममत्व की भावना नहीं होती है, क्योंकि यह शरीर तो कुत्तों और स्यारों का भक्ष्य है ॥४२॥

**वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ।**
**पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिर्ऋभुरङ्ग उतध्रुवश्च ॥४३॥**

**अन्वयः**— अस्य परमस्य मायाम् अहम् वेद, यूयम्, भगवान् भवश्च, दैत्यवर्यः मनोः पत्नी स मनुश्च तदात्मजाः च प्राचीन बर्हिः ऋभुः उत ध्रुवश्च ॥४३॥

**अनुवाद**— हे वत्स उस परम पुरुष की माया को मैं जानता हूँ, तुमलोग, भगवान् शिव, दैत्य शिरोमणि प्रह्लाद, मनु की पत्नी शतरूपा, मनु, मनु के पुत्र प्रियव्रत आदि प्राचीन बर्हि, ऋभु और ध्रुव भी जानते हैं ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

अन्तर्ज्ञानाभावेऽपि मायेयमिति ज्ञानं तत्कृपया बहूनामस्तीत्याह-वेदाहमति त्रिभिः । यूयमिति सनकादीनन्तर्भाव्य बहुत्वम्। दैत्यवर्यः प्रह्लादः । मनुः स्वायम्भुवस्तस्य पत्नी शतरूपा च । तदात्मजाः प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ कन्याश्च । प्राचीनवर्हिषो विसर्गलोपश्छान्दसः । अङ्गो वेनपिता ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

यद्यपि मुझको आत्मज्ञान नहीं है फिर भी श्रीभगवान् की कृपा से श्रीभगवान् की यह माया है, इस तरह से मैं इसको जानता हूँ । तुमलोग भी जानते हो, यूयम् में बहुवचन के द्वारा यह सूचित किया गया है कि सनकादि महर्षि गण भी माया को जानते हैं । दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लाद, स्वायम्भुव मनु, तथा उनकी पत्नी शतरूपा भी माया को जानती हैं । मनु के पुत्र प्रियव्रत, उत्तानपाद और उनकी कन्यायें भी जानती हैं । प्राचीनबर्हि ऋभु, वेन के पिता राजा अङ्ग तथा ध्रुव भी जानते हैं प्राचीन वर्हि में विसर्ग का लोप आर्ष है ॥४३॥

**इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधिरघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ।**
**मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥४४॥**
**सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्लादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ।**
**येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥४५॥**

**अन्वयः**— इक्ष्वाकुः ऐलमुचकुन्दविदेहगाधिः रघु-अम्बरीष-सगराः गयनाहुषाद्याः मन्धात्रलर्कशतधन्वन रन्तिदेवाः देवव्रतः बलिः, अमूर्तरयः, दिलीपः, सौभार्युतशिविदेवल पिप्पलाद सारस्व-तोद्धवपराशरभूरिषेणाः । अन्ये ये विभीषण हनुमदुपेन्द्र दत्तपार्थार्ष्टिषेण विदुर श्रुतदेववर्याः ॥४४-४५॥

**अनुवाद**— इसके अतिरिक्त इक्ष्वाकु, पुरुरवा, मुचकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति आदि मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्म, बलि, अमूर्तरय, दिलीप, सौभरि, उतङ्क, शिवि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर और भूरिषेण । तथा दूसरे जो विभीषण हनुमान, शुकदेव, अर्जुन, अर्ष्टिषेण, विदुर तथा श्रुतदेव इत्यादि भी जानते हैं ॥४४-४५॥

### भावार्थ दीपिका

शतधनुः अनुश्च । सन्धिरार्षः । रन्तिदेवा इति पाठः सुगमः । ऐकपद्ये एतैः सहितो देवव्रत इत्यर्थः । उपेन्द्रदत्तः शुकः। विभीषणादयो वर्या मुख्या येषां ते ॥४४-४५॥

### भाव प्रकाशिका

शतधनु और अनु में आर्ष सन्धि । **रन्ति देवाः** यह पाठ सुगम है । यहाँ पर एक पद मानने पर **रन्तिदेवदेव व्रताः** यह पाठ होगा । उपेन्द्रदत्त शब्द से शुकदेवजी को कहा गया है । विभीषण हनुमान आदि जिन में श्रेष्ठ है ऐसे लोग भी माया को जानते हैं ।

इन दोनों श्लोको में ब्रह्माजी ने भगवान् की माया को जानने वाले भगवद् भक्तों के नाम को बतलाया है ॥४४-४५॥

**ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ।**
**यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥४६॥**

**अन्वयः**— अद्भुतक्रमपरायणशीलदीक्षाः स्त्रीशूद्रहूणशबराः पापजीवाः अपि तिर्यग्जना अपि यदि देवमायां विदन्ति अतितरन्ति च तदा ये श्रुतधारणाः किमु ॥४६॥

**अनुवाद**— यदि अद्भुत पद विन्यास करने वाले श्रीभगवान् के भक्तों के समान स्वभाव बनाने की शिक्षा प्राप्त, स्त्री, शूद्र, हूण और शबर जाति के जीव यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी श्रीभगवान् की माया को जानकर उसको पार कर जाते हैं तो फिर जो वेदज्ञ ब्राह्मण हैं उनके विषय में क्या कहना हैं ॥४६॥

### भावार्थ दीपिका

किं बहुना सत्सङ्गेन सर्वेऽपि विदन्तीत्याह-ते वा इति । अद्भुताः क्रमाः पादन्यासा यस्य हरेस्तत्परायणास्तद्भक्तास्तेषां शीले शिक्षा येषां ते तथा यदि भवन्ति तर्हि तेऽपि विदन्तीत्यर्थः । श्रुतधारणा ब्राह्मणास्ते देवमायां विदन्तीति किमु वक्तव्यम्। शुभेति पाठे शुभे भगवतो रूपे धारणा मनोनियमनं येषां ते विदन्तीति किमु वक्तव्यम् ॥४६॥

### भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक क्या कहना है ? सत्सङ्ग को प्राप्त करके सभी जीव श्रीभगवान् की माया को जान जाते हैं

इस बात को ब्रह्माजी ने **ते वै इत्यादि** श्लोक से कहा है । **अद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षाः** पद का विग्रहार्थ है कि अद्भूत पादविन्यास करने वाले श्रीहरि के जो भक्त हैं अथवा उनके समान स्वभाव बनाने की शिक्षा प्राप्त जो स्त्री, शूद्र, हूण और शबर जाति के पापी जीव हैं, यहाँ तक कि तिर्यक् जाति के जो पशु-पक्षी हैं, वे भी श्रीभगवान् की माया को जान जाते हैं, और उस माया को पार कर जाते हैं, तो जो वेदाध्ययन करने वाले जीव हैं, वे तो माया के स्वरूप को जानकर उसको पार कर ही जा सकते है । उनको केवल सत्सङ्ग प्राप्त करने मात्र की ही आवश्यकता है ।।४६।।

**शश्वत्प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ।**
**शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ।।४७।।**

**अन्वयः**— आत्मतत्त्वं, शश्वत् प्रशान्तम्, अभयम् शुद्धं, समं, सदसतः परम्, यत्र पुरुकारकवान् कियार्थः शब्दः न, अभिमुखे च विल्ज्ञमाना, माया परैति ।।४७।।

**अनुवाद**— परमात्मा का स्वरूप एक समान, शान्त एवं केवल ज्ञान स्वरूप है । वे माया के मल से रहित है, सम (माया कृत विषमताओं से रहित) हैं । वे सत् एवं असत् दोनों से रहित हैं । वे किसी भी शब्द का विषय नहीं बनते हैं अनेक प्रकार के साधनों से सम्पन्न होने वाली क्रियाओं का फल भी वहाँ नहीं होता है । उस परमात्मतत्व के सम्मुख जाने पर लज्जित होकर माया उस परमात्मा से दूर चली जाती है ।।४७।।

**भावार्थ दीपिका**

किं तद्भगवतः स्वरूपं यस्मिन्मनोधारणां विधाय मायां तरन्तीत्यपेक्षायामाह- शश्वदिति द्वाभ्याम् । यद्ब्रह्मेति विदुर्मुनयस्तद्वै भगवतः पदं स्वरूपम् । किं तद्ब्रह्म तदाह अजस्रं नित्यं च तत्सुखं च विशोकं चेति । अजस्रसुखत्वे हेतुः-शश्वत्सदा प्रशान्तम् । अतो नित्यसुखरूपम् । विशोकत्वे हेतुः-अभयम् । तत्कुतः । यतः समं भेदशून्यम् । अतोऽभयम् '**द्वितीयाद्वै भयं भवति**' इति श्रुतेः । तत्कुतः। यतः प्रतिबोधमात्रं ज्ञानैकरसम् । ननु ज्ञानस्यापि नीलपीताद्याकारेण चक्षुरादिकरणभेदेन च भेदो दृश्यते, न। शुद्धं निर्मलम् । ननु दर्शितो विषयकरणोपरागरूपो मल इत्यत आह । सदसतः परं विषयकरणसङ्गशून्यम् । वृत्तेरेवतदुपरागो न ज्ञानस्येति भावः । ननु तथापि ज्ञात्रा सह भेदः स्यात् । न, आत्मतत्त्वमात्मनो ज्ञातुः स्वरूपमेव, तन्न, ततो भिन्नम् । ननु **'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इति शब्दबोध्यत्वप्रतीतेः कुतो बोधरूपत्वं तत्राह**-शब्दो न यत्रेति । आरोपितनिवृत्तावेव शब्दस्य व्यापारो न तद्बोध इत्यर्थः । ननु च भवतु नाम निरस्तभेदज्ञानरूपत्वाद्विशोकत्वं, सुखस्य तु नानाकारकसाध्यक्रिया-फलत्वात्कथमजस्रसुखत्वं तस्येत्यत आह । यत्र बहुकारकसाध्यः क्रियार्थः उत्पाद्याप्यविकार्यसंस्कार्यरूपं चतुर्विधं क्रियाफलं च नास्ति । इन्द्रियैर्ज्ञानांशाभिव्यक्तिरिव क्रियाभिरानन्दांशाभिव्यक्तिमात्रं क्रियते नोत्पत्त्यादिकमिति भावः। ननु उत्पत्याद्यभावेऽपि माया मलापाकरणेन विकार्यत्वमेव स्याद्व्रीहीणामिव तुषापाकरणेनेत्याशङ्क्याह । मायाऽभिमुखे स्थातुं विलज्जमानेव यस्मात्परैति दूरतोऽपसरति ।।४७।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न है कि भगवान् का स्वरूप क्या है ? जिसमें मन की धारणा करके मनुष्य माया को पार करते हैं? तो इसका उत्तर **शाश्वत इत्यादि** दो श्लोकों से देते हैं । मुनिगण जिसको ब्रह्मरूप से जानते हैं, वही भगवान् का रूप है । अब प्रश्न होता है कि वे ब्रह्म कौन हैं ? तो उसको बतलाते है कि वह सदैव सुख स्वरूप और शोक रहित है । उसके सदैव सुख रूप बने रहने का कारण है कि वह सदा प्रशान्त बने रहता है अतएव नित्य ही सुख स्वरूप है । उसके विशोकत्व का कारण है ? वह अभय है, क्योंकि वह भेदरहित है । भेद रहित होने के कारण अभय है । श्रुति भी कहती है द्वितीयाद्वै भयं भवति । दूसरे के रहने पर ही भय होता है । वह भेद रहित इसलिए है कि ज्ञान स्वरूप ही है ।

**ननु ज्ञानस्यापि० इत्यादि** यदि कहें कि ज्ञान के भी नील पीत इत्यादि आकार के द्वारा तथा चक्षु आदि इन्द्रियों के भेद के कारण भेद देखे जाते हैं। तो ऐसा इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि वे शुद्ध हैं, अर्थात् मायाकृत मल से रहित हैं। यदि कहें कि विषयों के साथ होने वाले संबन्ध रूप भी मल देखे जाते हैं। इसीलिए कहा गया कि वह **सदसतः परम्।** अर्थात् वह विषयों तथा इन्द्रियों के संबन्ध से रहित हैं। वह जो उपाधि होती है वह वृत्ति की ही हाती है ज्ञान की नहीं।

**ननु तथा पि० इत्यादि** यदि कहें कि वैसा होने पर उस का ज्ञाता से तो भेद होगा ही तो ऐसा इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि आत्मा ज्ञाता आत्मा का स्वरूप ही है। अतएव वह उससे (ज्ञाता से) भिन्न नहीं है।

**ननु तं त्वौप० इत्यादि** अब प्रश्न होता है कि मैं उस उपनिषदों के प्रतिपाद्य पुरुष के विषय में पूछ रहा हूँ। इस श्रुति से ज्ञात होता है कि आत्मतत्त्व शब्द बोध्य है। अतएव उसे ज्ञान स्वरूप कैसे कहा जा सकता है ? तो उसके उत्तर में कहा गया है कि **शब्दो न यत्र** इत्यादि अर्थात् आरोपित की निवृत्ति होने पर ही शब्द का व्यापार होता है उसका बोध नहीं होता है।

**ननु भवतु नाम० इत्यादि** यदि कहें कि ठीक है भेदों से रहित और ज्ञान स्वरूप होने के कारण आत्म तत्त्व विशोक हो सकता है, किन्तु सुख तो अनेक कारकों के द्वारा की जाने वाली क्रियाओं के फलस्वरूप होता है आत्मा की सर्वदा सुख रूपता कैसे हो सकती है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है कि वह आत्मा अनेक कारकों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं के जो, उत्पाद्य, आप्य, विकार्य तथा संस्कार्य रूप चार प्रकार के विषय होते हैं उन क्रियाओं का फल होता ही नहीं है। जिस तरह से इन्द्रियों के द्वारा ज्ञानांश की अभिव्यक्ति मात्र होती है, उसी तरह क्रियाओं के द्वारा आनंदांश की केवल अभिव्यक्ति होती है। उसके द्वारा उत्पत्ति इत्यादि नहीं होते हैं।

**ननु उत्पत्त्याद्यभावे० इत्यादि** प्रश्न होता है कि उत्पत्ति इत्यादि के नही हाने पर भी माया के मल को अपाकृत करने के कारण उसमें विकार्यत्व तो है ही। यह उसी तरह से होता हैं जिस तरह ब्रीहि की भूसी को उससे दूर करने पर उसमें विकार्यत्व है तो इस शङ्का को दूर करते हुए कहते हैं माया तो उस आत्मतत्त्व के सामने स्थित रहने में लज्जित सी होकर दूर से ही भाग जाती हैं ।।४७।।

**तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम्।**
**सध्र्यङ् नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ।।४८।।**

**अन्वयः**— अस्य पुंसः तद्वै परमं पदम् यत् मुनयः अजस्रसुखं, विशोकम् ब्रह्मेति विदुः। यस्मिन् यतय सध्र्यङ् नियम्य यम अकर्तहेतिं निपान खनित्रम् स्वराड् इन्द्र इव जह्युः ।।४८।।

**अनुवाद**— इस परम पुरुष का वही परम पद है जिसे मुनिजन अजस्र सुख, विशोक तथा ब्रह्मरूप से जानते है। जिसमें यतिजन अपने सहचारी मन को नियन्त्रित करके भेद रहित होने के कारण ज्ञान के साधनों का उसी तरह परित्याग कर देते हैं जिस तरह से स्वयं मेघ रूप होने के कारण इन्द्र कूप खोदेने के लिए अपने साथ कुदाल नहीं रखते हैं ।।४८।।

### भावार्थ दीपिका

तस्मादेवं भूतं भगवति नियमितमनसां कृतार्थानां न किमपि कृत्यमस्तीत्याह। सहाञ्चतीति सध्र्यङ् सहचरं मनो यं प्रति नियम्य यस्मिन् स्थिरीकृत्य यतयो यत्नशीलाः कर्तो भेदस्तन्निरासोऽकर्तस्तत्र हेतिं साधनं जह्युस्त्यजेयुः। अनुपयोगात्तत्राद्रियन्त इत्यर्थः। उपयोगाभावेन साधनानादरे दृष्टान्तः-निपीयतेऽस्मिन्निति निपानं कूपस्तस्य खनित्रं खननसाधनं यथा स्वराट् स्वयमेव पर्जन्यरूपेण विराजमान इन्द्रो नादत्ते तद्वदिति। यद्वा स्वेनैव राजत इति स्वराट् दरिद्रः स यथा इन्द्रः समृद्धः सन् कर्मकारदशायां गृहीतं निपानखनित्रं जहाति तद्वदित्यर्थः ।।४८।।

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार के परमात्मा में जिन लोगों ने अपने मन को लगा दिया है और कृतार्थ हो गये हैं ऐसे लोगों के लिए कुछ भी कर्तव्य नहीं रह जाता हैं इसी बात को **तद्वै० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है जो मुनिगण आत्मा के सहचारी मन को परमात्मा में नियन्त्रित करके, भेद को मिटाने के साधनों का परित्याग कर देते हैं ।

**उपयोगाभावेन० इत्यादि** उपयोग न होने के कारण साधनों के परित्याग करने का उदाहरण देते हुए कहा गया है । जिस तरह स्वयम् मेघस्वरूप इन्द्र कूप खोदने के लिए अपने पास कुल्हाड़ी नहीं रखते हैं । उसी तरह स्वराट् शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति बतलाते हुए श्रीधर स्वामी कहते हैं- **स्वेनैवराजते इति स्वराट् दरिद्रः** जैसे इन्द्र कार्य करने की स्थिति में लिए हुए कुल्हाड़ी को त्याग देते हैं उसी तरह ॥४८॥

**स श्रेयसामपि विभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ।**
**देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥४९॥**

**अन्वयः**— यतः सः भगवान् अस्य भावस्वभाव विहितस्य सतः श्रेयसाम् अपि विभुः । इति प्रसिद्धिः स्वधातु विगमे अनु विशीर्यमाणे देहे तत्र व्योम इव अजः पुरुषः यथा न विशीर्यते तथा ।।४९।।

**अनुवाद**— अपने स्वभाव के अनुसार मनुष्यों द्वारा किए गये शुभ कर्मों का फल भी वे ही परमात्मा देते हैं यह प्रसिद्धि है । यह उसी तरह से होता है जैसे जिन धातुओं से शरीर का निर्माण होता है उन धातुओं के विनष्ट हो जाने पर उसके पश्चात् शरीर विनष्ट हो जाता है । किन्तु उस शरीर में विद्यमान आकाश नष्ट नहीं होता है । उसी तरह उस शरीर के भीतर विद्यमान अजन्मा आत्मा भी विनष्ट नहीं होती है ॥४९॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं तावदजस्रसुखं विशोकं ब्रह्मैव भगवतः स्वरूपं तत्प्राप्तानां च न प्राप्यं कृत्यं वा किंचिदस्तीत्युक्तम् । इदानीं तत् प्राक् स एव सर्वफलदाता सर्वकर्मप्रवर्तकश्चेत्याह । स एव श्रेयसां फलानां विभुर्दातापि । तत्र हेतुः-भावानां ब्राह्मणादीनां स्वभावैः शमदमादिभिर्विशेषणैर्विहितस्यास्य सतः शुभस्य कर्मणो यतः प्रवर्तकात्प्रसिद्धिः । यद्वा भावानां महदादीनां स्वभावेन परिणामेन विहितस्य सतः कार्यस्य प्रसिद्धिः । सा स्वर्गादीनां दातेत्यर्थः । ननु कर्मकर्तुर्मृतस्य कथं स्वर्गादिफलं स्यात्तत्राह। स्वारम्भकधातूनां भूतानां विगमे वियोगे सति अन्वनु विशीर्यमाणेऽपि देहे तत्रस्थं व्योमेव यस्तेन सह न विशीर्यते । यतोऽजस्तेन सह न जातः तस्य पुरुषस्य श्रेयसां प्रभुरित्यर्थः ।।४९।।

**भाव प्रकाशिका**

**एवं तावदस्रसुखम् इत्यादि** इस तरह यह प्रतिपादित किया जा चुका है कि आत्मा सदा सुख स्वरूप है तथा विशोक ब्रह्म ही भगवान् का स्वरूप है । उस ब्रह्म को जिन साधकों ने प्राप्त कर लिया है उनको कुछ भी प्राप्त करने के लिए अथवा करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता है ।

**इदानीम्० इत्यादि** अब यह बतलाया जा रहा है कि प्राप्ति से पहले परमात्मा ही सभी कर्मों के फल को प्रदान करते है । वे ही सभी कर्मों के प्रवर्तक हैं । वे ही शुभ कर्मों का फल भी प्रदान करते हैं । उसका कारण है कि ब्राह्मण आदि जो अपने स्वभाव के अनुसार शम दम आदि शुभ कर्मों के भी प्रवर्तक हैं । यह प्रसिद्धि है। अथवा महदादि जो पदार्थ हैं उनके स्वभाव के अनुसार होने वाले परिणाम से कार्य होते हैं, यह प्रसिद्धि है। वे परमात्मा ही स्वर्गादि लोकों को प्रदान करते हैं ।

**ननु कर्मकतुर्मृतस्य०** प्रश्न होता है कि जब कर्मों को करने वाला मनुष्य मर जाता है तब उसको स्वर्ग आदि की प्राप्ति कैसे हो सकती है तो इसके उत्तर में कहा गया है कि जिन धातुओं से शरीर का निर्माण होता

है, उन धातुओं के विनष्ट हो जाने पर जैसे उसके पश्चात् शरीर विनष्ट हो जाता है लेकिन उस शरीर में रहने वाला आकाश और उसके साथ नहीं विनष्ट होने वाला आत्मा तो बना ही रहता है उसी को मृत्यु को पश्चात् भी स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है ॥४९॥

**सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः । समासेन हरेर्नान्यदन्यस्मात्सदसच्च यत् ॥५०॥**

**अन्वयः**— हे तात ! सःअयम्, विश्वभावन भगवान् ते समासेन अभिहितः । सत् असच्च हरेः अन्यत न अन्यस्मात्॥५०॥

**अनुवाद**— हे नारद इस सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा भगवान् का वर्णन मैंने आपके समक्ष संक्षेप में किया है। यह कार्य कारण रूप जगत् श्रीहरि से भिन्न नहीं है । किन्तु इस जगत् का कारण होने के कारण श्रीहरि उससे भिन्न हैं ॥५०॥

### भावार्थ दीपिका

अध्यायत्रयस्यार्थमुपसंहरति । सोऽयं ते समासेन संक्षेपेणाभिहितः । तमेवाह । सदसत्कार्यं कारणं च हरेरन्यन्न भवति। ननु हरेस्तदव्यतिरेके तद्गतविकारप्रसङ्गः स्यात्, न । अन्यस्मात्कारणभूतो हरिः कार्याद्यतिरिक्त इत्यर्थः ॥५०॥

### भाव प्रकाशिका

**सोऽयं त इत्यादि** श्लोक के द्वारा तीन अध्याय के अर्थ का उपसंहार किया गया है । ब्रह्माजी ने कहा कि यह मैंने तुम्हें संक्षेप में बतलाया है सदसत् जितने भी कारण-कार्य हैं वे श्रीहरि से भिन्न नहीं हैं । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि जगत् को श्रीहरि से अभिन्न मानने पर तो, जगत् के सारे विकार कारणभूत श्रीहरि में आ जायेंगे। तो ऐसा इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि श्रीहरि कार्यभूत जगत् से भिन्न हैं क्योंकि वे कारण है । कार्य ही कारणत्मक होता है कारण कार्यात्मक नहीं होता है ॥५०॥

**इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् । संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु ॥५१॥**

**अन्वयः**— भगवता यन्मे उदितं तदिदं भागवतं नाम । अयं विभूतीनां संग्रह, एतत् त्वं विपुली कुरु ॥५१॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् ने मुझको जिसका उपदेश दिया वही भागवत है । यह श्रीभगवान् की विभूतियों का संक्षिप्त रूप है । तुम इसका प्रचार करो ॥५१॥

### भावार्थ दीपिका

अयं च विभूतीनां संग्रह उदितः ॥५१॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा कि विगत तीन अध्यायों में मैंने जो कहा है, वह श्रीभगवान् की विभूतियों का संक्षिप्त रूप है, इसके प्रचार-प्रसार का काम तुम करो ॥५१॥

**यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति । सर्वात्मन्यखिलाधारे इति संकल्प्य वर्णय ॥५२॥**

**अन्वयः**— यथा सर्वात्मनि अखिलाधारे हरौ नृणां भक्ति भविष्यति इति संकल्प्य वर्णय ॥५२॥

**अनुवाद**— जिस तरह से श्रीहरि में लोगों की भक्ति हो इस तरह से मन में विचार करके तुम इसका वर्णन करो ॥५२॥

### भावार्थ दीपिका

यथा वर्णितेन नृणां भक्तिर्भविष्यतीत्येवं संकल्प्य संचिन्त्य तथा हरिलीलाप्राधान्येन श्रीमद्भागवतं वर्णय । नतु भक्तिरसविघातेन केवलं तत्त्वमित्यर्थः ॥५२॥

**भाव प्रकाशिका**

तुम इस भागवत को श्रीहरि की लीलाओं का प्रधान रूप से ऐसा वर्णन करो कि लोगों की श्रीभगवान् में भक्ति हो। भक्ति रस को छोड़कर केवल तत्त्व का वर्णन न करो ॥५२॥

**मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः । शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययात्मा न मुह्यति ॥५३॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मनारदसंवादे सप्तमोऽध्याय:॥७॥

**अन्वयः**— अमुष्य मायां वर्णयतः, ईश्वरस्य अनुमोदयतः नित्यं श्रद्धया शृण्वतः आत्मा मायया न मुह्यति ॥५३॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की अचिन्त्य भक्ति माया का वर्णन करने वाले, उसका अनुमोदन करने वाले तथा दूसरे के द्वारा कहे जाने पर उसको नित्य ही श्रद्धा पूर्वक सुनने वाले का मन कभी भी माया से मोहित नहीं होता है ॥५२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥**

**भावार्थ दीपिका**

ननु लीला मायाश्रया किं तद्वर्णनेनेत्यत आह-मायामिति ॥५३॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥**

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न उठताा है कि श्रीभगवान् की लीला तो मायाश्रित है। उसका विस्तार पूर्वक वर्णन करने से क्या लाभ है ? तो उसके उत्तर में **मायाम्० इत्यादि** श्लोक कहा गया है अर्थात् श्रीभगवान् की माया शक्ति अचिन्त्य है उसका वर्णन करने तथा ईश्वर का अनुमोदन करने वाले तथा दूसरों के द्वारा वर्णन किए जाने पर उसका सदा श्रद्धा पूर्वक श्रवण किए जाने वाले का चित्त कभी भी माया से मोहित नहीं होता है ॥५३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥७॥**

# आठवाँ अध्याय

## राजा परीक्षित के अनेक प्रश्न

राजोवाच

**ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन् गुणाख्यानेऽगुणस्य च । यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥१॥**
**एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदांवर । हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमङ्गलाः ॥२॥**

**अन्वयः**— वेदविदांवर ब्रह्मन् ब्रह्मणा अगुणस्य गुणाख्याने चोदितः देवदर्शनः यस्मै यस्मै यथा प्राह, अद्भुत वीर्यस्य हरेः लोकसुमङ्गलाः कथाः वेदितुम् इच्छामि ॥१-२॥

**अनुवाद**— हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ शुकदेवजी ! ब्रह्माजी के द्वारा निर्गुण परब्रह्म के गुणों का वर्णन करने के लिए प्रेरित, देखने में देवता के समान लगने वाले नारदजी जिस-जिस को अद्भुत पराक्रम सम्पन्न श्रीहरि की मङ्गलमयी कथाओं को जैसे-जैसे बतलाये उसको मैं तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ ॥१-२॥

**भावार्थ दीपिका**

अष्टमे देहसंबन्धमाक्षिपन्नीशजीवयोः । बहून्परिक्षिदापृच्छत्पुराणार्थान्बुभुत्सितान् । त्वमेतद्विपुलीकुर्वित्युक्तं तदेव विपुलीकरणं पृच्छति-ब्रह्मणेति त्रिभिः । अगुणस्य गुणातीतस्यापि । देववद्दर्शनं यस्य सः ।।१-२।।

**भाव प्रकाशिका**

आठवें अध्याय में जीव और ईश्वर के शरीर संबन्ध को लेकर राजा परीक्षित् ने जानने के लिए अभिप्रेत पौराणिक विषयों को पूछा ।।१।।

ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा तुम इसका प्रचुर प्रचार करो । नारदजी द्वारा किए गये उस विपुली करण के विषय में राजा ने अनेक प्रश्नों को **ब्रह्मणा० इत्यादि** तीन श्लोकों में पूछा— अगुण कहकर परमात्मा को गुणातीत बतलाया गया है । देवदर्शन शब्द का अर्थ है जिनका दर्शन देवता के समान है ।।१-२।।

**कथयस्व महाभाग यथाहमखिलात्मनि । कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ।।३।।**

**अन्वयः**— हे महाभाग ! कथयस्व यथा अहम् अखिलात्मनि कृष्णे निःसङ्गं मनः निवेश्य कलेवरम् त्यक्ष्ये ।।३।।

**अनुवाद**— हे महाभाग ! आप उसका वर्णन करें जिससे कि मैं सम्पूर्ण जगत् की आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण में अपने अनासक्त मन को लगाकर अपने शरीर का त्याग कर सकूं ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

निःसङ्गं मनः श्रीकृष्णे निवेश्येति स्वप्रयत्नो दर्शितः ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

अनासक्त मन को भगवान् श्रीकृष्ण में लगाकर इस वाक्यांश के द्वारा राजा परीक्षित् ने अपने प्रयत्न को अभिव्यक्त किया है ।।३।।

**शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् । कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ।।४।।**

**अन्वयः**— स्वचेष्टितम् नित्यं श्रद्धया शृण्वतः गृणतश्च हृदि भगवान् नातिदीर्घेण कालेन विशते ।।४।।

**अनुवाद**— भगवान् की चेष्टाओं का नित्य ही श्रद्धा पूर्वक श्रवण करने वाले और उसका वर्णन करने वाले के हृदय में श्रीभगवान् शीघ्र ही प्रवेश कर जाते हैं ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

सोऽपि श्रद्धया शृण्वतो नावश्यक इत्याह-शृण्वत इति । स्वप्रयत्नं विनापि भगवान्स्वयमेव हृदि विशति ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

जो व्यक्ति नित्य ही श्रद्धा पूर्वक श्रीभगवान् की कथाओं का श्रवण करता है उसको प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है । अपने प्रयास के बिना भी श्रीहरि अपनी कथा का श्रवण करने वाले के हृदय में स्वयम् प्रवेश कर जाते हैं ।।४।।

**प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् । धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ।।५।।**

**अन्वयः**— कृष्णः स्वानां कर्णरन्ध्रेन भावसरोरुहम् प्रविष्टः तद्गतं शमलं सलिलस्य शरत् यथा धुनोति ।।५।।

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तों के कानों के छिद्र के माध्यम से हृदय कमल में प्रवेश करके उस हृदय में विद्यमान दोष को उसी तरह से विनष्ट कर देते हैं जिस तरह से शरद्ऋतु जल के गदलेपन को दूर कर देती है ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

भावसरोरुहं हृदयकमलं प्रविष्टश्च तद्गतं सर्वं मलं धुनोति । सलिलस्येति । द्रव्यान्तरमिश्रणादिना कुम्भस्थे जले शोधिते तदेव शुध्यति नतु नदीतडागादिगतम्, स च मलः कुम्भस्यान्तस्तिष्ठत्येव नतु सर्वाणि विलीयते । अतएव किंचिच्चलनेन पुनः क्षुभ्यति च । एवं तपोदानादि प्रायश्चित्तं च सर्वथा सर्वेषां सर्वं पापं धुनोति, किंतु सावशेषम्, तच्च कस्यचिदेव, किंचिदेव, हृदि प्रविष्टमात्रस्तु श्रीकृष्णः सर्वेषां सर्वं पापं निःशेषं हरतीत्यनेन दृष्टान्तेनोक्तं-सलिलस्य मलं यथा शरदिति ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् अपने भक्तों के हृदय कमल में प्रवेश करके उनके हृदय में विद्यमान दोष को उसी तरह दूर कर देते हैं जिस तरह **सलिलस्येति०** कतक (निर्मली) इत्यादि दूसरे द्रव्यों को घड़े के जल में मिलाने से केवल उसी घड़े का जल शुद्ध हो जाता है । उससे नदियों और सरोवरों का जल नहीं शुद्ध होता है । उस जल का दोष नीचे के भाग में बैठ जाता है, वह पूर्ण रूप से विनष्ट नहीं होता है । उस जल को थोड़ा सा भी हिलाने पर वह पुनः गंदला हो जाता है । **एवं तपोदानादि० इत्यादि** इसी तरह से तपरूप और दान रूपी प्रायश्चित सबों के सम्पूर्ण पापों को नहीं विनष्ट करते हैं । अपितु कुछ पाप बचा ही रहता है । उन प्रायश्चितों के द्वारा किसी का भी थोड़ा सा ही पाप दूर होता है । भगवान् श्रीकृष्ण तो केवल हृदय में प्रवेश करके सबों के सम्पूर्ण पापों को विनष्ट कर देते हैं । इसी बात को **सलिलस्य मलं यथा शरत्** इस दृष्टान्त के द्वारा बतलाया गया है । शरद् ऋतु के आते ही नदियों तथा सरोवरों में रहने वाला सारा जल जैसे शुद्ध हो जाता है ।।५।।

**धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति । मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ।।६।।**

**अन्वयः**— धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादम् तथैव न मुञ्चति यथा मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः यथा स्वशरणम् ।।६।।

**अनुवाद**— जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, वह पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का उसी तरह कभी भी परित्याग नहीं करना चाहता है जिस तरह मार्ग के समस्त क्लेशों से मुक्त होकर आया हुआ पुरुष अपने गृह का त्याग नहीं करना चाहता है ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

ततश्च कृतार्थो भवतीत्याह । धौतात्मा निष्पापः । मुक्ताः सर्वे रागद्वेषादयः परिक्लेशा येन । पान्थः प्रवासादागतः स्वस्य गृहं यथा न मुञ्चति तद्वत् ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

इसके पहले यह जो कहा गया है कि उसके पश्चात् वह कृतार्थ हो जाता है । उसी की **धौतात्मा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । धौतात्मा पद का अर्थ है निष्पाप । जिसने रागद्वेष इत्यादि समस्त क्लेशों का परित्याग कर दिया है । प्रवास से आया हुआ पुरुष जिस तरह अपने गृह का परित्याग नहीं करना चाहता है, उसी तरह रागद्वेष आदि सभी क्लेशों से रहित निष्पाप पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का परित्याग नहीं करता है ।।६।।

**यदधातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः । यदृच्छया हेतुना वा भवन्तो जानते यथा ।।७।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् अधातुमतःअस्य देहारम्भः धातुभिः यद्भवति यदृच्छया वा हेतुना वा यथा भवन्तः जानते ।।७।।

**अनुवाद**— हे भगवन् ! (शुकदेवजी) इस आत्मा का पञ्चभूतों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है, किन्तु इसके शरीर का निर्माण धातुओं से ही होता है । यह स्वभाव से ही होता है, अथवा किसी कारण से होता इस बात को आप मुझे अच्छी तरह से बतलाइये ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं श्रवणौत्सुक्यमाविष्कृत्य संदिग्धानर्थान्पृच्छति । अधातुमतः धातवो महाभूतानि तत्संबन्धशून्यस्यास्य लौकिकस्यात्मनो जीवस्य धातुभिर्देहारम्भ इति यत् । एतत्किम् । यदृच्छया निर्निमित्तं हेतुना वा कर्मादिना भवन्तो यथावज्जानते । अतः कथयन्त्विति शेषः ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से श्रवण की उत्सुकता को अभिव्यक्त करते हुए, जिन विषयों में सन्देह है, उन सबों के विषय में राजा पूछते हैं । जिस तरह संसारी जीव का महाभूतों से सम्बन्ध नहीं है, फिर भी उसके शरीर का निर्माण महाभूतों से ही होता है, ऐसा बिना किसी कारण के ही होता है या किसी कारणवशात् होता है । इस बात को आप अच्छी तरह से जानते हैं। अतएव उसको आप मुझे बतलाइये ।।७।।

**आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम्। यावानयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ॥**
**तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ।।८।।**

**अन्वयः**— यदुदरात् लोकसंस्थान लक्षणं पद्मं आसीत् अयं पुरुषो वै यावान् इयतावयवैः पृथक् तावान् असौ, संस्थावयववानिव प्रोक्तः ।।८।।

**अनुवाद**— आपने यह कहा है कि जिससे लोकों का निर्माण हुआ है वह कमल भी भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न हुआ है । यह जीव जिस तरह अपने सीमित अवयवों से युक्त होता है उसी तरह से ईश्वर भी अपने सीमित अवयवों से युक्त हैं । ऐसी स्थिति में जीव और ईश्वर में कौन सा भेद हैं ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

यश्चासावीश्वरः सोऽप्येतत्तुल्यदेहवान्प्रोक्तः, अतस्तस्य को विशेष ? इत्याशयेन पृच्छति–आसीदिति सार्धेन । लोकानां संस्थानं रचना तदेव लक्षणं स्वरूपं यस्य तत्त्रैलोक्यात्मकं पद्मं यस्योदरादासीत् । असावीश्वर इयत्तायुक्तैः स्वपरिमितैरवयवैरयं लौकिकः पुरुषो यावान् यत्संख्याकावयवयुक्तस्तावान् प्रोक्तः संस्थावानवयववानिव च प्रोक्तः । अतः को विशेषस्तस्येति ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

इससे पहले शुकदेवजी कह चुके हैं कि जीव के ही समान ईश्वर भी अङ्गों से युक्त शरीर वाले हैं । अतएव जीव और ईश्वर में कौन सा भेद है ? इसी अभिप्राय से राजा परीक्षित् **आसीत् इत्यादि** डेढ श्लोक से पूछते हैं कि जिससे लोकों की रचना हुयी है, वह त्रैलोक्यात्मक पद्म भगवान् के नाभि सरोवर से उत्पन्न हुआ है । जिस तरह यह संसारी जीव अपने सीमित अङ्गों से युक्त होता है, उसी तरह ईश्वर भी अपने सीमित अङ्गों से युक्त होते हैं । ईश्वर के अङ्ग भी मनुष्य के ही अङ्गों के समान हैं । अतएव ईश्वर की मनुष्यों से कौन सी भिन्नता है ।।८।।

**अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् । ददृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ।।९।।**

**अन्वयः**— यदनुग्रहात् नाभिपद्म समुद्भव भूतात्मा अजः भूतानि सृजति, येन तद्रूपं ददृशे ।।९।।

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान् की कृपा से श्रीभगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न तथा व्यष्टि जीवों के नियन्ता ब्रह्मा भूतों की सृष्टि करते हैं तथा जिन श्रीभगवान् की कृपा के कारण परमात्मा के रूप का साक्षात्कार उन्होंने किया। उसे आप मुझे बतलायें ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

अवश्यं च विशेषो वाच्य इत्याह । अजो ब्रह्मा भूतानां व्यष्ट्युपाधीनामात्मा नियन्ता, समष्ट्युपाधित्वात् । येन चानुगृहता तस्य रूपं ददृशे दृष्टवान् । एतच्च तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः । **सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः।** इत्यादिनोक्तमनूद्यते । अग्रे तु स्पष्टं भविष्यति ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

जीव और ईश्वर में जो भेद है उसको आप अवश्य मुझे बतलाइये । ब्रह्माजी व्यष्टि उपाधि से युक्त जीवों के नियामक हैं, क्योंकि वे समष्टि उपाधि से युक्त हैं । जिस परमात्मा के द्वारा अनुगृहीत होकर उन्होंने परमात्मा के रूप का साक्षात्कार किया ।

**एतच्च० इत्यादि** यह शुकदेवजी ने ब्रह्माजी के इस कथन का अनुवाद किया है **तस्यापि० इत्यादि** अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के द्रष्टा तथा जगत् नियामक, निर्विकार तथा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा के सृज्य जगत् की सृष्टि उनके ही द्वारा प्रेरित होकर करने का मैं काम करता हूँ । यह बात आगे चलकर स्पष्ट हो जायेगी ।।९।।

**स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः । मुक्त्वात्ममायां मायेशः शेते सर्वगुहाशयः ।।१०।।**

**अन्वयः**— विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः सर्वगुहाशयः मायेशः पुरुषः आत्मा मायां मुक्त्वा यत्र शेते तदब्रूहि ।।१०।।

**अनुवाद**— जिसमें सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय होता हैं सर्वान्तर्यामी माया के स्वामी परम पुरुष अपनी माया का त्याग करके जहाँ सोते हैं उसे आप बतलाइये ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रश्नान्तरमाह- स चापीति । यत्र शेते येन रूपेणावतिष्ठत । विश्वस्य स्थित्यादयो यस्मात् । एवमादिप्रश्नानां **'तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुम्'** इति सर्वान्ते क्रियया संबन्धः ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

राजा परीक्षित् दूसरा प्रश्न पूछते हैं प्रलय काल में परमात्मा जहाँ सोते हैं, जिससे विश्व की सृष्टि इत्यादि होती है, इस तरह सभी प्रश्नों के अन्त में क्रिया पद को जोड़ना चाहिए ।।१०।।

**पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः । लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ।।११।।**

**अन्वयः**— पुरुषावयवैः सपालाः पूर्वकल्पिताः, इति शुश्रुम सपालैः लोकैः अमुष्याः अवयवाः कल्पिताः इत्यपि शुश्रुम ।।११।।

**अनुवाद**— आपने यह कहा है कि उस पुरुष के अवयवों से लोकों की कल्पना की गयी है और लोकपालों सहित लोकों की उस विराट् पुरुष के अङ्गों से कल्पना की गयी है ।।११।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रश्नान्तरमाह । पुरुषस्यावयवैः पूर्वं कल्पिताः **यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति'** इत्यादौ । **'लोकैश्चामुष्यावयवा'** इति **पातालमेतस्य हि पादमूलम्'** इत्यादौ च त्वन्मुखाच्छ्रुतवन्तो वयम् ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

राजा अगला यह प्रश्न पूछते हैं कि अपने यह कहा है कि जिस पुरुष के अवयवों से मुनिगण लोकों की कल्पना करते हैं । आपने यह भी कहा है कि इस पुरुष के पैर का तलवा ही पाताल है । यह कहने का अभिप्राय क्या हैं ?।।११।।

**यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते । भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ।।१२।।**

**अन्वयः**— यावान् कल्पः विकल्प वा तद्वद, यथा भूतभव्यभवत् शब्दः कालः अनुमीयते तद् वद । यत् सतः आयुर्मानं तद् वद ।।१२।।

**अनुवाद**— जितने भी कल्प अथवा उसके अवान्तर भेद होते हैं, उसे बतलायें । जैसे भूत भविष्यत् और

वर्तमान शब्द का काल विषय बनता है, उसे बतलायें, तथा स्थूल शरीर के अभिमानी जो देवता, मनुष्य तथा पितृगणों की आयु का जितना प्रमाण है उसे आप बतलायें ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

एवं संदेहविपर्ययाभ्यां पृष्टम्, इदानीमज्ञातान्बहूनर्थान्पृच्छति । यावानित्यादिना । कल्पो महान् । विकल्पोऽवान्तरः । भूतादिः शब्दो यस्मात्, यस्य वाचक इति वा । सतः स्थूलदेहाभिमानिनो मनुष्यपितृदेवादेरायुषः प्रमाणम् ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने इस तरह संदेह तथा विपर्यय ज्ञान के द्वारा बहुत सी बातों को पूछा अब वे बहुत से अज्ञात विषयों को **यावान् कल्पो० इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं । महान् कल्प और विकल्प अर्थात् उसके अवान्तर भेदों को आप बतलायें तथा जिस तरह से काल भूत भविष्यत् इत्यादि शब्दों का वाच्य होता है, उसे आप मुझे बतलायें। तथा स्थूल देह के अभिमानी, देवता पितृगण और मनुष्यों की आयु का प्रमाण मुझे आप बतलायें ॥१२॥

**कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि । यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे द्विजसत्तम ! कालस्य या अण्वी वृहती अपि गतिः लक्ष्यते तां वद, यावत्यः यादृशीः कर्मगतयः ताः वद ॥१३॥

**अनुवाद**— हे द्विजश्रेष्ठ ! काल की जो सूक्ष्म आदि तथा स्थूल वर्ष आदि गति हैं, उसको आप मुझे बतलायें तथा कर्मों की जितनी तथा जिस प्रकार की गतियाँ होती हैं, उन सबों को आप मुझे बतलायें ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

अनुमानप्रकारः पृष्टो विशेषं पृच्छति-कालस्येति । अनुगतिः प्रवृत्तिः । कर्मगतयः कर्मप्राप्याणि स्थानानि । यादृशीः यादृश्यः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

इससे पहले काल के अनुमान के प्रकार के विषय में पूछा गया है, अब कालविशेष के विषय में राजा परीक्षित् प्रश्न करते हैं, काल की जो सूक्ष्म तथा स्थूल जो दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती है, उसे आप बतलायें तथा काल द्वारा प्राप्त किए जाने वाले स्थानों तथा कर्मों के प्रकार को आप मुझे बतलायें ॥१३॥

**यस्मिन्कर्मसमवायो यथा येनोपगृह्यते । गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— गुणानां परिणाम् अभीप्सतां गुणिनां, कर्मसमवायः यस्मिन् यथा येन उपगृह्यते तद् वद ॥१४॥

**अनुवाद**— सत्त्व आदि गुणों का जो देवादि शरीर की प्राप्ति रूपी परिणाम होता है, उसको प्राप्त करना चाहने वाले गुणिनां गुणी जीवों में पुण्य पाप रूप कर्मों का समूह जिस गुण का परिणाम होने पर जिस प्रकार से तथा जिसको प्राप्त होता है, उसके आप मुझे बतलायें ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

गुणानां सत्त्वादीनां परिणामं देवादिरूपमिच्छतां गुणिनां जीवानां मध्ये यस्मिन्परिणामे कर्मणां पुण्यपापानां समावायः समुदायः । केन कर्मसमुदायेन कथं कृतेन कोऽधिकारी देवादिभावं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

सत्त्वादि गुणों के परिणाम स्वरूप देवादि शरीर को प्राप्त करने के इच्छुक जीवों में जिस गुण का परिणाम होने पर पुण्य पाप रूप कर्मों का समूह, किसी कर्म समुदाय को जिस प्रकार से करने पर जीव देवादि शरीरों को प्राप्त करता है, इसको आप मुझे बतलाइये ॥१४॥

**भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् । सरित्समुद्रद्वीपानां संभवश्चैतदौकसाम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— भूपातालककुब् व्योम ग्रह नक्षत्र भूभृताम्, सरित् समुद्रद्वीपानां एतदौकसाम् संभवः कथं भवतीति शेषः ॥१५॥

**अनुवाद**— पृथिवी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप की तथा उनमें रहने वाले जीवों की उत्पत्ति जैसे होती है, उसे आप मुझे बतलाइये ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

भूपातालादीनां संभवः । एतान्योकांसि येषां प्राणिनां तेषां च संभवः । यथेति सर्वत्रानुषङ्गः ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

पृथिवी, पाताल आदि की तथा इन लोकों आदि में रहने वाले जीवों की उत्पत्ति को आप मुझे बतलायें ॥१५॥

**प्रमाणमण्डकोशस्य बाह्याभ्यन्तरभेदतः । महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥१६॥**

**अन्वयः**— वाह्यऽभ्यन्तरभेदतः अण्डकोशस्य प्रमाणम् महताम् अनुचरितम् वर्णाश्रम विनिश्चयः च वद ॥१६॥

**अनुवाद**— भीतर और बाहर दोनों प्रकार के भेद पूर्वक, ब्रह्माण्ड के प्रमाण को, महापुरुषों के चरित्र को तथा वर्णों एवं आश्रमों के भेदों तथा उनके धर्मों को आप मुझे बतलाएँ ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

वर्णानामाश्रमाणां च विनिश्चयस्तत्तत्स्वभावैर्निर्धारः ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में राजा परीक्षित् ने तीन बातों को पूछा है । १. ब्रह्माण्डों का परिमाण, २. महापुरुषों का चरित्र और ३. वर्णों एवं आश्रमों का निर्धारण ॥१६॥

**अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः । युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥१७॥**

**अन्वयः**— युगानि, युगमानं च, युगे युगे यश्च धर्मः, हरेः यत्, आश्चर्यतमं अवतारानुचरितम् ॥१७॥

**अनुवाद**— युगों के भेद, उनके परिमाण, प्रत्येक युगों के अलग-अलग धर्म तथा श्रीहरि के जो अत्यन्त आश्चर्यमय अवतार हुए हैं, उन सबों के चरितों को आप बतलाएँ ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

युगे युगे प्रतियुगं यो धर्मो यच्च हरेरवतारानुचरितम् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में युगों के भेद, उनके धर्म और श्रीहरि के अवतारों के आश्चर्यकारी चरित्रों को राजा परीक्षित् ने पूछा है ॥१७॥

**नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः । श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— नृणाम्, साधारणः धर्मः, यादृशः सविशेषश्च, श्रेणीनां धर्मः, राजर्षिणाम् कृच्छ्रेषु जीवताम् धर्मः कः ॥१८॥

**अनुवाद**— मनुष्यों के वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार साधारण और विशेष धर्म कौन हैं ? व्यावसायिक लोगों के धर्म, राजर्षियों के धर्म, तथा विपत्ति ग्रस्त मनुष्यों के धर्म को आप मुझे बतलाइये ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

सविशेषो वर्णाश्रमनिबन्धनः । श्रेणीनां तत्तद्व्यवसायोपजीविनां व्यवहारनियमलक्षणो धर्मः । राजर्षीणां प्रजापालनाधिकारिणाम् । कृच्छ्रेष्वापत्सु जीवतां सर्वेषाम् ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में राजा परीक्षित् ने मनुष्यों के साधारण धर्म, वर्णों एवं आश्रमों के धर्म, व्यवसायियों के धर्म, राजर्षियों के धर्म और आपद् धर्म के विषय में प्रश्न किया है ॥१८॥

**तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् । पुरुषाराधनविधिर्योगस्याध्यात्मिकस्य च ॥१९॥**

**अन्वयः**— तत्त्वानां परिसंख्यानं, लक्षणम्, हेतुलक्षणम्, पुरुषारानविधिः, आध्यात्मिकस्य योगस्य च विधिः कः ॥१९॥

**अनुवाद**— तत्त्वों की संख्या, उनके स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण, परम पुरुष परमात्मा की आराधन विधि और अध्यात्म योग विधि को आप मुझे बतलायें ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वेषां तत्त्वानां प्रकृत्यादीनां परिसंख्यानं संख्या । लक्षणं स्वरूपम् । हेतुतो लक्षणम् । तत्तत्कार्यहेतुत्वेन च लक्षणमित्यर्थः। पुरुषाराधनस्य विधिर्देवपूजाप्रकारः । अष्टाङ्गयोगस्य च विधिः ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रकृति आदि तत्त्वों की संख्या, उनके स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण, परमात्माराधन के प्रकार तथा अष्टाङ्ग योग की विधि के विषय में राजा ने इस श्लोक में पूछा है ॥१९॥

**योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिङ्गभङ्गस्तु योगिनाम् । वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥२०॥**

**अन्वयः**— योगेश्वरैश्वर्यगतिः योगिनां लिङ्गभङ्गः वेदोपवेद धर्माणाम्, इतिहास पुराणयोः ॥२०॥

**अनुवाद**— योगेश्वरों को प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य, उन लोगों को प्राप्त होने वाली गति तथा योगियों के लिङ्ग शरीर के भङ्ग होने के प्रकार, वेदों, उपवेदों, धर्मशास्त्रों इतिहासों और पुराणों के स्वरूप को आप बतलायें ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

योगेश्वराणामैश्वर्येणाणिमादिनाऽर्चिरादिगतिः । लिङ्गशरीरस्य भङ्गः प्रलयः । वेदा ऋग्वेदादयः, उपवेदा आयुर्वेदादयः, धर्माः धर्मशास्त्राणि तेषाम्, इतिहासपुराणयोश्च गतिः स्वरूपम् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

योगेश्वरों को प्राप्त होने वाले अणिमा आदि ऐश्वर्यों के स्वरूप क्या हैं ? उनसे प्राप्त होने वाली अर्चिरादि गतियों का स्वरूप क्या है ? योगियों के लिङ्ग शरीर के प्रलय का प्रकार क्या है ? ऋग्वेद इत्यादि वेदों, आयुर्वेद इत्यादि उपवेदों तथा धर्मशास्त्रों का स्वरूप तथा तात्पर्य क्या हैं ? इतिहासों और पुराणों के स्वरूप और तात्पर्य क्या हैं ? इसे आप मुझे बतलाइये ॥२०॥

**संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः । इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥२१॥**

**अन्वयः**— सर्वभूतानां संप्लवः, विक्रमः प्रति संक्रमः इष्टापूर्तस्य, काम्यानां, त्रिवर्गस्य च यो विधिः तंब्रूहि ॥२१॥

**अनुवाद**— आप मुझे सभी प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, इष्टापूर्तकर्म, काम्यकर्म तथा धर्म अर्थ और काम इन सबों के साधनों की विधि मुझे बतलायें ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

संप्लवोऽवान्तरप्रलयः । यद्वा सम्यक् प्लवनमुद्भवः, विक्रमः स्थितिः, प्रतिसंक्रमो महाप्रलयः, इष्टं वैदिकं कर्म, पूर्तस्मार्त वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते इति तत्र च काम्यानामग्निहोत्रादीनां विधिः। त्रिवर्गस्य धर्मार्थ कामस्य विधिरविरोधप्रकारः ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में राजा ने पूछा कि आप मुझे सभी प्राणियों को अवान्तर प्रलय को बतलायें अथवा सम्ल्लव अर्थात् उत्पत्ति विक्रम अर्थात् स्थिति तथा प्रतिसंक्रम अर्थात् महाप्रलय काल को बतलायें । ईष्ट अर्थात् वैदिक कर्म तथा पूर्त तालाब, बाबली आदि के निर्माण आदि स्मार्त कर्मो को बतलायें । कहा भी गया है **वापीकूपतडागादि इत्यादि** अर्थात् बावली, कूप, तलाब, देव मन्दिरों का निर्माण, अन्न दान कराना, बगीचा लगाना, इन सबों को पूर्त कर्म कहते हैं ।

काम्य अग्निहोत्र आदि की विधि, तथा त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम इन सबों का जिस प्रकार से विरोध न हो उस विधि को आप मुझे बतलायें ॥२१॥

**यश्चानुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च संभवः । आत्मनो बन्धमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥२२॥**

**अन्वयः**— यः च अनुशायिनां सर्ग, पाखण्डस्य च यथा संभवः आत्मनः बन्धमोक्षौ स्वरूपतः व्यवस्थानं च ब्रूहि ॥२२॥

**अनुवाद**— प्रलय काल में प्रकृति में लीन रहने वाले जीवों की उत्पत्ति कैसे होती हैं ? पाखण्ड की उत्पत्ति कैसे होती है, आत्मा के बन्ध और मोक्ष का स्वरूप क्या है ? तथा वह अपने स्वरूप में कैसे स्थित होता हैं ?॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुशायिनां लीनोपाधीनां जीवानाम् । आत्मनो जीवस्य । व्यवस्थानं बन्धमोक्षातिरिक्तस्वरूपेणावस्थानम् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रलय काल में प्रकृति में लीन रहने वाले जीवों को अनुशायी जीव कहते हैं, उन जीवों की उत्पत्ति कैसे होती है ? पाखण्डों की उत्पत्ति कैसे होती है ? जीवात्मा का बन्ध और मोक्ष कैसे होता है ? और जीव अपने स्वरूप में कैसे स्थित हो जाता है ?॥२२॥

**यथात्मतन्त्रो भगवान् विक्रीडत्यात्ममायया । विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥२३॥**

**अन्वयः**— आत्मतन्त्रः भगवान् आत्ममायया यथा विक्रीडति, यथा वा मायाम् विसृज्य साक्षिवद् उदास्ते तद् ब्रूहि ॥२३॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् परम स्वतन्त्र हैं वे जिस तरह अपनी माया से क्रीडा करते हैं तथा माया को छोड़कर जिस तरह साक्षी के समान उदासीन हो जाते हैं, उसे आप मुझे बतलायें ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

उदास्ते प्रलये ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में राजा परीक्षित् शुकदेवजी से पूछते हैं कि श्रीभगवान् परम स्वतन्त्र हैं । वे सृष्टिकाल में अपनी ही माया के साथ क्रीडा करते हैं, और प्रलयकाल में उसका परित्याग करके साक्षी के समान उदासीन हो जाते हैं, यह सब जिस प्रकार से होता है उसे आप मुझे बतलायें ॥२३॥

**सर्वमेतच्च भगवन् पृच्छते मेऽनुपूर्वशः । तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥२४॥**

**अन्वयः**— हे महामुने भगवन् ! एतत् पृच्छते प्रपन्नाय मे सर्वं अनुपूर्वशः तत्त्वतः उदाहर्तुम् अर्हसि ॥२४॥

**अनुवाद**— हे महामुने भगवन् ! मैं आपका शरणागत हूँ, इन सारी बातों को पूछने वाले मुझको आप तात्त्विक रूप से बतलायें ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

च शब्दादपृष्टमपि ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

**एतत् च** में जो चकार है उसका अभिप्राय है कि जिन बातों को मैं नहीं भी पूछ पाया हूँ उन सबों को भी आप मुझे तात्त्विक रूप से बतलाएँ ।।२४।।

**अत्र प्रमाणं हि भवान् परमेष्ठी यथात्मभूः । परे चेहानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ।।२५।।**

**अन्वयः**— अत्र हि भवान् आत्मभू परमेष्ठी यथा प्रमाणम् परे च पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् अनुतिष्ठन्ति ।।२५।।

**अनुवाद**— इस विषय में आप तो स्वयं ब्रह्माजी के ही समान परम प्रमाण हैं, दूसरे लोग तो अपने पूर्व पुरुषों की परम्परा से कही गयी ही बातों का अनुष्ठान करते हैं ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रमाणं सम्यक् ज्ञाता । यतस्तव ब्रह्मनारदव्यासक्रमेण संप्रदायोऽस्तीति सामान्यन्यायेनाह- परे चेति । यद्वा त्वदन्ये प्रायशो गतानुगतिका एव न तत्त्वविद इत्याह- परे चेति ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में राजा परीक्षित् कहते हैं कि जिन बातों को मैंने पूछा है, उन बातों को आप अच्छी तरह से जानते हैं, क्योंकि आप का सम्प्रदाय तो ब्रह्मा, नारद और व्यासजी की परम्परा का है । सामान्यतः दूसरे जितने भी ज्ञाता हैं, वे गतानुगतिक ही हैं वे तात्त्विक रूप से उसे नहीं जानते हैं ।।२५।।

**न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्ननशनादमी । पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद्द्विजात् ।।२६।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् अच्युतपीयूष पिबतः मे अमी असवः कुपितात् द्विजात् अन्यत्र अनशनाद न परायन्ति ।।२६।।

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन्, ! भगवान् अच्युत के लीलामृत का पान करने वाले ये मेरे प्राण क्रुद्ध ब्राह्मण के शाप के अतिरिक्त अनशन (उपवास) के कारण नहीं निकल सकते हैं ।।२६।।

**भावार्थ दीपिका**

ननु तवानशनद्विजकोपाभ्यां व्याकुलस्य कुतः श्रवणं तत्राह–नेति । न परायन्ति नापगच्छन्ति । न व्याकुलीभवन्तीत्यर्थः। अच्युतकीर्तिपीयूषम् ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि अनशन के कारण तथा ब्राह्मण के कोप के कारण तुम्हारे तो प्राण व्याकुल हैं, तुम इन सारी बातों का श्रवण कैसे कर सकते हों ? तो इसका उत्तर है कि मेरे प्राण व्याकुल नहीं हैं, क्योंकि मैं तो भगवान् अच्युत की लीला रूपी अमृत का पान कर रहा हूँ । उसी से मेरे प्राण तृप्त हैं ।।२६।।

सूत उवाच

**स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः । ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ।।२७।।**

**अन्वयः**— विष्णुरातेन राज्ञा सत्पतेः कथायाम् इति उपामन्त्रितः सः ब्रह्मरातः भृशं प्रीतः ।।२७।।

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजा परीक्षित् के द्वारा संतों की सभा में श्रीभगवान् की कथा कहने के लिए इस प्रकार से प्रार्थना किए जाने पर शुकदेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए ।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

उपामन्त्रितः पृष्टः । संश्चासौ पतिश्च तस्य ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने उपर्युक्त प्रकार से शुकदेवजी से प्रार्थना की कि वे सन्तों के स्वामी अथवा संसार के सर्वोत्तम स्वामी श्रीभगवान् की कथा इस सभा में सुनाएँ तो यह सुनकर शुकदेवजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी ॥२७॥

**प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् । ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥२८॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मकल्प उपागते ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तम् ब्रह्मसंमितम् भागवतं नाम पुराणं प्राह ।।२८।।

**अनुवाद**— ब्रह्म कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी को श्रीभगवान् ने जिस वेदतुल्य भागवत पुराण को सुनाया था उसी को उन्होंने सुनाया ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

ब्रह्मकल्पे सृष्ट्युपक्रमकल्पे । भागवताख्यानेनैव प्रश्नानामुत्तरं दातुमुपक्रान्तवानित्यर्थः ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

सृष्टि के प्रारम्भ में जो ब्रह्मकल्प था उसमें श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को जो भागवत पुराण सुनाया था, वह वेद के समान था, उसी को उन्होंने राजा परीक्षित् को भी सुनाया । अर्थात् भागवत श्रावण के माध्यम से ही राजा परीक्षित् के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥२८॥

**यद्यत्परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति । आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥२९॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे प्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ।।८।।

**अन्वयः**— पाण्डूनामृषभः परीक्षित् यद् यद् अनुपृच्छति तत् सर्वम् आनुपूर्व्येण आख्यातुम् उपचक्रमे ।।२९।।

**अनुवाद**— पाण्डु के वंश में अग्रगण्य राजा परीक्षित् ने जो कुछ भी पूछा था उन सारे प्रश्नों का उत्तर श्रीशुकदेवजी ने क्रमशः देना प्रारम्भ किया ॥२९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के प्रश्न विधि नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।**

### भावार्थ दीपिका

पाण्डूनामृषभः श्रेष्ठः । आनुपूर्व्येणेति प्रस्तावक्रमोऽत्र विवक्षितो न प्रश्नक्रमः ।।२९।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽयायः ।।८।।**

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् महाराज पाण्डु के वंश में श्रेष्ठ थे । उन्होंने जिन प्रश्नों को शुकदेवजी से पूछा था उन सबों का उन्होंने प्रस्ताव क्रम से उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥२९॥

**इस तरह श्रीमद्भागावत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।८।।**

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

# तृतीय स्कन्ध

## पहला अध्याय

### उद्धावजी से विदुरजी की भेंट

श्रीशुक उवाच

**एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल । क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ।।१।।**

**अन्वयः**— एवम् पुरा ऋद्धिमत् स्वगृहं त्यक्त्वा वनं प्रविष्टेन क्षत्त्रा किल भगवान् मैत्रेयः एवम् एतत् पृष्टः ।।१।।

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— पूर्वकाल में सुख समृद्धि से सम्पन्न अपने गृह को त्याग कर वन में गये हुए विदुराजी ने भी इस प्रकार का प्रश्न महर्षि मैत्रेयजी से किया था ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

श्रीगोपालकृष्णाय नमः । तृतीये तु त्रयस्त्रिंशदध्यायैः सर्गवर्णनम् । ईशेक्षया गुणक्षोभात्सर्गो ब्रह्माण्डसंभवः ।।१।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये बन्धून्हित्वा गतायुषः । निर्गतस्योद्धवेनादौ संवादः क्षत्तुरुच्यते ।।२।। भगवद्ब्रह्मसंप्रोक्तं संक्षिप्तं वर्णितं पुरा। प्राह भागवतं शेषप्रोक्तं विस्तरतः पुनः ।।३।। द्वेधा हि श्रीमद्भागवतसंप्रदायप्रवृत्तिः । एकतः संक्षेपतः श्रीनारायणब्रह्मनारदादिद्वारेण, अन्यतस्तु विस्तरतः शेषसनत्कुमारसांख्यायनादिद्वारेण । तत्र द्वितीये श्रीनारायणब्रह्मसंवादेन संक्षेपतोऽहमेवासमित्यादि चतुःश्लोक्या श्रीभागवतं निरूपितम् । तदेव ब्रह्मनारदसंवादेन दशलक्षणतया किंचिद्विस्तरेणोक्तम् । तदेव शेषोक्तमतिविस्तरतो वक्तुं तृतीयाद्यारम्भः। तत्र तृतीये प्रथमं क्षत्तुर्मैत्रयसंगमश्चतुर्भिरध्यायैस्ततोऽष्टभिः सविसर्गः सर्गप्रपञ्चस्ततो विसर्गप्रस्तावेन सप्तभिर्वराहावतारस्तत एकेन विसर्गसमाहारस्तत्प्रसङ्गेन चतुर्भिः कपिलावतारस्ततो नवभिः कपिलाख्यानमिति त्रयस्त्रिंशताऽध्यायतस्तृतीयस्कन्धप्रवृत्तिः। तत्र द्वितीयस्कन्धान्ते **परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् । यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ।।'** इति प्रतिज्ञातमर्थं विस्तरेण निरूपयितुमितिहासं प्रस्तौति भगवान् शुकः । एवमिति द्वाभ्याम् । ऋद्धिमत्सर्वसंपद्भिः संपूर्णम् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

तीसरे स्कन्ध में तैतिस अध्यायों में सृष्टि का वर्णन किया गया है । परमात्मा के संकल्प के द्वारा प्रकृति के गुणों में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उसी से सृष्टि रूपी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुयी ।।१।। **तत्र तु इत्यादि** तीसरे स्कन्ध के पहले अध्याय में जिन सबों की आयु समाप्त हो गयी थी उन अपने बान्धवों को त्यागकर जो घर से निकल गये उन विदुरजी का उद्धवजी के साथ संवाद वर्णित है ।।२।। **भगवद्ब्रह्म० इत्यादि** सर्वप्रथम श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को संक्षेप में श्रीमद्भागवत का उपदेश दिया है । शुकदेवजी ने शेषजी के द्वारा वर्णित भागवत का विस्तार से वर्णन किया है ।।३।।

**द्वेधा हि०** श्रीमद्भागवत का सम्प्रदाय दो प्रकार से प्रचलित हुआ । एकतो भगवान् नारायण और ब्रह्माजी के सम्प्रदाय के रूप में; इस सम्प्रदाय में अत्यन्त संक्षेप में श्रीमद्भागवत वर्णित हैं । दूसरे सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत

विस्तार से वर्णित है । यह सम्प्रदाय शेष सनत्कुमार तथा सांख्यायन इत्यादि के द्वारा प्रवृत है । इस सम्प्रदाय में भागवत विस्तार से वर्णित है ।

**तत्रद्वितीये० इत्यादि-** उसमें भी दूसरे सम्प्रदाय में श्रीनारायण और ब्रह्मा संवाद के प्रसङ्ग में **अहमेवासम् पूर्वम् इत्यादि** चतुः श्लोकी के माध्यम से भागवत का निरूपण संक्षेप में किया गया है । ब्रह्मनारद संवाद के प्रसङ्ग में कुछ विस्तार से दश श्लोक में वर्णित है । शेष के द्वारा उक्त उसी श्रीमद्भागवत को विस्तार से कहने के लिए तीसरे स्कन्ध का प्रारम्भ हुआ है ।

इस तीसरे स्कन्ध के प्रारम्भ में चार अध्यायों में विदुर और मैत्रेयजी की भेट का वर्णन है । उसके पश्चात् अध्यायों में अवान्तर कल्पों के साथ सृष्टि का वर्णन है । उसके पश्चात् विसर्ग के वर्णन के प्रसङ्ग में सात अध्यायों में वराहावतार का वर्णन है । तदनन्तर एक अध्याय में विसर्ग का संक्षेप किया गया है । उसी के प्रसङ्ग में चार अध्यायों में कपिलावतार का वर्णन है । तदनन्तर नव अध्यायों में कपिलोपाख्यान का वर्णन है । इस तरह तैतिस अध्यायों में सम्पूर्ण तृतीयस्कन्ध वर्णित है ।

**तत्र द्वितीयस्कन्धस्यान्ते० इत्यादि** उसमें भी द्वितीय स्कन्ध के अन्त में शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से यह जो कहा था कि काल के परिमाण तथा उसका कल्प स्वरूप जो विग्रह (शरीर) है उसका मैं तृतीय स्कन्ध में वर्णन करूँगा । आप सावधानी पूर्वक पाद्मकल्प का वर्णन सुनें यह जो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, उसीका विस्ताार से वर्णन करने के लिए शुकदेवजी इतिहास को एवम् इत्यादि दो श्लोकों से कहते हैं । ऋद्धिमत पद का अर्थ है सभी सम्पत्तियों से परिपूर्ण । ऐसे अपने घर का परित्याग करके विदुरजी वन में प्रवेश कर गये ।।१।।

**यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः । पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ।।२।।**

**अन्वयः**— वः मन्त्रकृत अयम् अखिलेश्वरः भगवान् पौरवेन्द्र गृहं हित्वा आत्मसात् कृतम् यत् प्रविवेश ।।२।।

**अनुवाद**— पाण्डवों के दौत्य कर्म करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधन के गृह को त्यागकर जिस गृह को अपना गृह मानकर उसमें प्रवेश कर गये, ऐसे गृह का परित्याग करके विदुर जी वन में चले गये ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

किंचातिश्लाघ्यं त्यागानर्हमित्याह । यद्वै प्रसिद्धं गृहं वः पाण्डवानां मन्त्रकृद्दौत्यकर्ता सन्नयं श्रीकृष्णः । बुद्धिसन्निधानादयमिति निर्देशः । पौरवेन्द्रो दुर्योधनस्तस्य गृहं हित्वाऽनाहूत एव प्रविवेश । तत्र हेतुः-आत्मसात्कृतमात्मीयत्वेन गृहीतम् ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

दूसरी बात यह की वह गृह अत्यन्त प्रशंसनीय था अतएव त्यागने योग्य नहीं था । विदुरजी का वह प्रसिद्ध गृह जिसमें पाण्डवों को सलाह देने वाले तथा दौत्यकर्म को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण-शुकदेवजी की बुद्धि में भगवान् श्रीकृष्ण का सन्निधान बन रहता था अतएव वे कहते ये श्रीकृष्ण दुर्योधन के राजमहल का परित्याग करके बिना बुलाये भी विदुरजी के घर में चले गये; क्योंकि विदुरजी के घर को भगवान् श्रीकृष्ण अपना घर मानते थे। उस घर का परित्याग कर दिया विदुरजी ने ।।२।।

राजोवाच

**कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणाऽऽस संगमः । कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ।।३।।**

**अन्वयः**— क्षत्तुः भगवता मैत्रेयेण सह सङ्गमः कुत्र कदा वा संवाद आस हे प्रभो नः एतद् वर्णय ।।३।।

**राजा परीक्षित ने कहा**

**अनुवाद**— विदुरजी की भगवान् मैत्रेय से भेंट कहाँ हुयी और उनका मैत्रेयजी के साथ संवाद कब हुआ? हे प्रभो ! इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

कुत्र संगम आस बभूव ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

राजा परीक्षित् ने पूछा— हे प्रभो ! विदुरजी की भगवान् मैत्रेय से कहाँ पर भेंट हुयी, उसे आप मुझे बतलायें ।।३।।

**न ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः । तस्मिन्वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ।।४।।**

**अन्वयः**— तस्य अमलात्मनः विदुरस्य तस्मिन् वरीयसि साधुवादोपबृंहितः प्रश्नः अल्पार्थोदयः न ।।४।।

**अनुवाद**— महात्मा विदुरजी अमलात्मा थे । उनका उन महापुरुष महर्षि मैत्रेयजी से छोटी वस्तु विषयक संवाद नहीं हुआ होगा, क्योंकि महर्षि मैत्रेयजी ने विदुरजी के उस प्रश्न को अभिनंदित करके महिमा मण्डित किया था ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

वरीयसि श्रेष्ठे । अल्पस्यार्थस्योदयो यस्मात्तथाभूतो न भवति । साधुवादेन सतामनुमोदनेनोपबृंहितः संबर्धितः । यद्वा साधोर्मैत्रेयस्य वादेनोत्तरेण श्लाघित इत्यर्थः ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि मैत्रेय श्रेष्ठ पुरुष थे । उनसे विदुरजी किसी छोटी मोटी वस्तु विषयक प्रश्न नहीं किए होंगे; क्योंकि विदुरजी के उस प्रश्न को सुनकर मैत्रेय महर्षि ने उनको साधुवाद प्रदान किया था अथवा मैत्रेयजी साधु पुरुष थे और उन्होंने उसका उत्तर प्रदान करके उनकी प्रशंसा की थी ।।४।।

सूत उवाच

**स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता । प्रत्याह तं सुबहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ।।५।।**

**अन्वयः**— स अयं ऋषिवर्यः राज्ञा परीक्षिता एवम् पृष्टः सुबहुवित् प्रीतात्मा तं प्रति आह श्रूयताम् इति ।।५।।

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— ऋषियों में श्रेष्ठ थे शुकदेवजी । राजा परीक्षित् ने ज़ब इस प्रकार का प्रश्न किया तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए, क्योंकि वे बहुज्ञ थे । अतएव उन्होंने राजा परीक्षित् से कहा सुनो ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूछा कि विदुरजी की मैत्रेय से कहाँ पर और कब भेंट हुयी ? उन्होंने मैत्रेय महर्षि से क्या प्रश्न किया था ? विदुरजी महात्मा थे । वे उतने महान् पुरुष से समान्य प्रश्न तो पूछे नहीं होंगे; क्योंकि विदुरजी के प्रश्न को सुनकर मैत्रेय महर्षि प्रसन्न हुए तथा उनके प्रश्न का समुचित उत्तर देकर उन्होंने विदुरजी को सम्मानित किया यह सुनकर शुकदेवजी भी प्रसन्न होकर राजा से कहे कि सुनो ।।५।।

श्रीशुक उवाच

**यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ।**
**भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥६॥**

**अन्वयः**— यदा तु विनष्ट दृष्टिः राजा आसाधून स्वसुतान् अधर्मेण पुष्णन् यविष्ठस्य भ्रातुः विबन्धून् सुतान् लाक्षा भवने प्रवेश्य ददाह तदा क्षता आयात् इति शेषः ॥६॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— जब अन्धे राजा धृतराष्ट्र अन्यायपूर्वक अपने दुष्टपुत्रों का पालन करते रहे और अपने छोटे भाई पाण्डु के पितृहीन पुत्रों को लाक्षागृह में भेजकर उसमें आग लगवा दिया उस समय विदुर ने अपने गृह का त्याग कर दिया ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

त्यागानर्हस्यापि गृहस्य त्यागे हेतुत्वेन कौरवापराधानाह-यदेत्येकादशभिः । एतेषां च तदा स क्षत्ता अयादित्येकादशे क्रियासंबन्धः । यविष्ठस्य कनिष्ठस्य पाण्डोः । विबन्धून्पितृहीनान् ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि विदुरजी का गृह त्यागने योग्य नहीं था फिर भी विदुरजी ने अपने उस गृह का त्याग कर दिया इसके कारण रूप से कौरवों के अपराधों को **यदा इत्यादि** ग्यारह श्लोकों में शुकदेवजी ने बतलाया है । छठे श्लोक से लेकर पन्द्रहवें श्लोक के बाद सोलहवें श्लोक के तदा स क्षत्ता आयात् इस क्रिया से सम्बन्ध है । शुकदेवजी ने कहा कि राजा धृतराष्ट्र केवल आँखों के ही अन्धे नहीं थे उनकी बुद्धि भी मारी गयी थी । वे अपने दुष्टपुत्रों का तो अन्याय पूर्वक पालन करते थे और अपने छोटे भाई पाण्डु के पितृहीन पुत्रों को लाक्षागृह में भेजकर उसमें आग लगवा दिए थे । उस समय विदुरजी ने अपने गृह का त्याग कर दिया ॥६॥

**यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ।**
**न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैर्हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥७॥**

**अन्वयः**— यदा राजा सभायां स्वास्रैः कुचकुङ्कुमानि हरन्त्याः कुरुदेवदेव्याः स्नुषायाः केशभिमर्शं गर्ह्यम् सुतकर्म न वारयामास तदा क्षत्ता आयात् इति शेषः ॥७॥

**अनुवाद**— जब भरी सभा में दुःशासन ने द्रौपदी के केशों को पकड़कर खींचा और रोती हुयी द्रौपदी की अश्रुधारा से उसके स्तनों में लगा केसर बहने लगा, किन्तु अपनी पुत्रवधू तथा महाराज युधिष्ठिर की पटरानी द्रौपदी के केशों को पकड़कर खींचने जैसे निन्दित कर्म को करने से राजा धृतराष्ट्र ने नहीं रोका, तब विदुरजी अपना घर छोड़कर वन में चले गये ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

कुरुदेवस्य युधिष्ठिरस्य देव्या द्रौपद्याः आत्मनः स्नुषायाः स्वीयैरस्रैरश्रुभिः स्वकुचकुङ्कुमानि रिपुस्त्रीणां वा तद्भर्तृवधेन हरन्त्याः ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

महराज युधिष्ठिर की पत्नी तथा अपनी पुत्र वधू देवी द्रौपदी के आँसुओं से उनके स्तनों का अथवा शत्रुओं की स्त्रियों के स्तन का केसर बहने लगा था तब विदुरजी अपने गृह को छोड़कर वन में चले गये ॥७॥

**द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलम्बस्य वनागतस्य ।**
**न याचतोऽदात्समयेन दायं तमोजुषाणो यदजातशत्रोः ॥८॥**

**अन्वयः**— द्युते अधर्मेण जितस्य सत्यावलम्बस्य साधोः अजातशत्रोः वनागतस्य समयेन दायं याचतः तमो जुषाणः यदा न अदात् तदा वनम् अयात् ॥८॥

**अनुवाद**— द्यूतक्रीडा में दुर्योधन ने अन्यायपूर्वक साधुस्वभाव वाले सत्यवादी अजातशत्रु युधिष्ठिर का राज्य जीत लिया था, और राजा युधिष्ठिर वन में चले गये, जब वे वन से लौटे तो प्रतिज्ञानुसार अपना हिस्सा माँगे तो अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ने उनका दायभाग (हिस्सा) नहीं दिया उसके कारण विदुरजी वन में चले गये ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

सत्यावलम्बस्य सत्याश्रयस्य वनात्प्रत्यागतस्य समयेन पूर्वकृतेन दायमंशं याचमानस्य यद्यदा नादान्न ददौ । तमो मोहं जुषाणः (पुत्रं सेवमानः, अविवेकं वा) ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा युधिष्ठिर सत्यवादी थे । वे जब तेरह वर्ष के वनवास के पश्चात् वन से लौटे तो पूर्वकृत प्रतिज्ञा के अनुसार अपना हिस्सा माँगे । उस समय अज्ञान का सेवन करने वाले राजा धृतराष्ट्र ने उनको उनका हिस्सा नहीं दिया तो दुःखी होकर विदुरजी वन में चले गयें ॥८॥

**यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ।**
**न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥९॥**

**अन्वयः**— यदा च प्रार्थप्रहितः जगद्गुरुः कृष्णः सभायां पुंसाम् अमृतायनानि जगाद तानि क्षतपुण्यलेशः राजा उरु न मेने तदा वनम् अयात् ॥९॥

**अनुवाद**— जब राजा युधिष्ठिर के द्वारा दूत के रूप में भेजे गये जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में पुरुषों के लिए अमृतस्रावी बातें को कहे किन्तु जिनके पुण्य का लेश भी समाप्त हो गया थे वे राजा धृतराष्ट्र उनकी बातों का सम्मान नहीं किए तो दुःखी होकर विदुरजी हस्तिनापुर छोड़कर वन में चले गये ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

यानि वचनानि पुंसां भीष्मादीनाममृतायनान्यमृतस्रावीणि राजा धृतराष्ट्रो दुर्योधनो वा उरु बहु न मेने । क्षतो नष्टः पुण्यलेशो यस्य सः । न सुखकीर्तिधर्मादिहेतुः किंतु राज्यप्राप्तिमात्रहेतुः पुण्यलेश एवासीत्तस्यापि नष्टत्वादनादृतवानित्यर्थः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा युधिष्ठिर के द्वारा दूत के रूप में भेजे गये भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में आकर भीष्म इत्यादि के लिए अमृतस्रावी जिन वचनों को कहे उन वचनों का राजा धृतराष्ट्र ने सम्मान नहीं किया, क्योंकि राजा धृतराष्ट्र का सारा पुण्य समाप्त हो गया था । उससे भी दुःखी होकर विदुरजी ने अपने गृह का परित्याग कर दिया ॥९॥

**यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ।**
**अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान्यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥**

**अन्वयः**— यदा पूर्वजेन मन्त्राय उपहूतः भवनं प्रविष्टःसन् पृष्टः किल तन्मन्त्रकृतां मन्त्रिणः वरीयान् विदुरः अथाह तत् वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥

**अनुवाद**— अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र के द्वारा सलाह के लिए बुलये गये विदुरजी सलाह करने वालों में श्रेष्ठ मन्त्री थे । उन्होंने जिन बातों को कहा उसे विदुर नीति के नाम से जाना जाता है ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं विदुरस्यैव कृतं पराभवं दर्शयति-यदेत्यादिषड्भिः । यदा पूर्वजेन धृतराष्ट्रेण मन्त्राय चोपहूतोऽन्तर्गृहं प्रविष्टो मन्त्रं पृष्टः सन्नथानन्तरं तदाह । किम् । मन्त्रिणोऽद्यापि यद्वैदुरिकं विदुरवाक्यमिति प्रसिद्धं वदन्ति ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

अब **यदोपहूतः इत्यादि** छह श्लोकों में धृतराष्ट्र ने विदुरजी का जो अपमान किया उसका वर्णन शुकदवेजी करते हैं । अपने बड़े भाई राजा धृतराष्ट्र के द्वारा सलाह करने के लिए जब विदुरजी बुलाये गये तो विदुरजी राज भवन में गये और सलाह पूछने पर विदुरजी ने जिन बातों को कहा उन सबों को मन्त्रीगण आज भी विदुरनीति के नाम से अभिहित करते हैं ॥१०॥

**अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः ।**
**सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन्रुषा यत्त्वमलं बिभेषि ॥११॥**

**अन्वयः**— तव दुर्विषहं आगः तितिक्षतः अजातशत्रोः दायं प्रतियच्छ, यत्र वृकोदराहिः सहानुजः रुषाश्वसन् यत्त्वम् अलं बिभेषि ॥११॥

**अनुवाद**— विदुरजी ने कहा अजातशत्रु युधिष्ठिर आप के नहीं सहने योग्य अपराध को सह रहे हैं, उनको उनका हिस्सा आप दे दें । उनके साथ भीम रूपी काले सर्प विद्यमान हैं । वे अपेन अनुजों के साथ क्रोध करके बदला लेने के लिए फुफकार रहे हैं । उनसे तो आप भी बहुत डरते हैं ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह अजातशत्रोरिति त्रिभिः । तव आगोऽपराधं सहमानस्य दायं प्रतियच्छ देहि । यत्रापराधेऽनुजैः सह वर्तमानो वृकोदररूपोऽहिः क्रोधेन श्वसन्वर्तते । यद्यस्मात्त्वमलमत्यर्थ विभेषि ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने जो सलाह दिया उसका तीन श्लोकों में वर्णन किया जा रहा है । युधिष्ठिर आपके नहीं सहने योग्य अपराधों के सह रहे हैं, अतएव आप उनको उनका हिस्सा प्रदान कर दें । उन अपराधों को सोचकर भीमरूपी भयङ्कर सर्प अपने छोटे भाईयों के साथ क्रोध करके फुफकार रहे हैं । भीम से तो आप भी बहुत अधिक डरते हैं ॥११॥

**पार्थास्तु देवो भगवान्मुकुन्दो गृहीतवान्सक्षितिदेवदेवः ।**
**आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥१२॥**

**अन्वयः**— क्षितिदेवदेवः यदुदेवदेवः विनिर्जिताशेष नृदेवदेवः देवो भगवान् मुकुदः पार्थान् गृहीतवान् सः स्वपुर्याम् आस्ते ॥१२॥

**अनुवाद**— सभी ब्राह्मणों के आराध्य तथा सभी यदुवंशियों के भी आराध्य दिव्य गुण सम्पन्न भगवान मुकुन्द ने सभी राजाओं को परास्त किया है, उन्होंने पाण्डवों को अपने आत्मीय रूप से स्वीकार किया है, इस समय वे अपनी राजधानी द्वारका में ही विद्यमान हैं, कही अन्यत्र नहीं गये हैं । अतएव आप युधिष्ठिर को उनका हिस्सा प्रदान कर दें ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

ननु मम तादृशाः पुत्रा बहवः सन्तीति गर्वं मा कृथा इत्याह । पार्थांस्तु मुकुन्द आत्मीयत्वेन गृहीतवान् । स च देवस्तत्रापि भगवान्न तु प्राकृतः । किंच सह क्षितिदेवैर्विप्रैर्देवैश्चेन्द्रादिभिर्वर्तमानः । यतोऽसौ तत्रैव विप्रा देवाश्चेत्यर्थः । स च

स्वपुर्यामेव सुखमास्ते, न त्वन्यत्र गतः । किंच यदुदेवानां देवः पूज्यः । यतोऽसौ तत्रैव यदुप्रवीरा इत्यर्थः । किंच नृदेवेषु मण्डलेश्वरेषु दीव्यन्ति प्रकाशन्त इति नृदेवदेवा राजानः, विनिर्जिता अशेषा नृदेवदेवा येन । यतोऽसौ तत्रैव सर्वे राजानः । अतः पार्थानां दायं देहीति ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

आपको इस प्रकार का गर्व नहीं करना चाहिए कि भीम के समान मेरे अनेक पुत्र हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को आत्मीय रूप से स्वीकार कर लिया है । वे प्राकृत पुरुष नहीं हैं, बल्कि वे भगवान् हैं । वे विप्रों तथा इन्द्र आदि देवताओं के साथ वर्तमान हैं । क्योंकि जिस पक्ष में श्रीभगवान् रहते हैं उसी पक्ष में सभी देवता और ब्राह्मण रहते हैं, वे अपनी नगरी द्वारका में ही सुख पूर्वक रह रहे हैं वे कहीं अन्यत्र नहीं गये हैं । वे सभी यदुवंशियों के पूज्य हैं । अतएव वे जिस पक्ष में हैं उसी पक्ष में सभी यदुवंशी वीर भी हैं । तथा श्रीभगवान् ने पृथिवी के समस्त बड़े-बड़े राजाओं को जीत लिया है । अतएव जिस पक्ष में भगवान् हैं, उसी पक्ष में सभी राजा भी हैं । इन सारी बातों का विचार करके आप पाण्डवों का हिस्सा प्रदान कर दें ॥१२॥

**स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान्प्रविष्टोऽयमपत्यमत्या ।**
**पुष्णासि कृष्णाद्विमुखे गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥१३॥**

**अन्वयः**— यम् अपत्यमत्या पुष्णासि स एष दोषः गृहान् प्रविष्टः पुरुषद्विड आस्ते कृष्णादिमुखः गतश्रीः त्वम् कुकौशलाय अशैवं तं आशु त्यज ॥१३॥

**अनुवाद**— जिस दुर्योधन को आप अपना पुत्र मानकर उसका पालन पोषण कर रहें हैं, वह मूर्तिमान दोष हैं और आपके घर में प्रवेश कर गया है । वह परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करता है, उसके ही चलते आप भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख होकर श्रीहीन हो गये हैं । अतएव इस अमङ्गल स्वरूप दुर्योधन का आप शीघ्र त्याग कर दें इसी में आपके वंश की भलाई हैं ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

दुर्योधनस्तत्र मन्यत इति चेदत आह । स एष मूर्तो दोष एव गृहान्प्रविष्ट आस्ते । दोषत्वे हेतुः-पुरुषद्विट् श्रीकृष्णद्वेष्टा। कोऽसौ । यं त्वमपत्यमत्या पुष्णासि न त्वपत्यमसौ । न पतत्यस्मादिति ह्यपत्यं प्राहुः । गता श्रीर्यस्मात्स त्वमित्याक्रोशति । अत एनमशैवममङ्गलमाशु त्यज । कथं पुत्रस्त्याज्यस्तत्राह । कुलस्य कौशलाय । **'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे'** इत हि न्यायः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि क्या करूँ दुर्योधन नहीं मानता है । तो इसका उत्तर है कि दुर्योधन तो मूर्तिमान दोष है और वह आपके गृह में प्रवेश कर गया है । उसके दोष स्वरूप होने का कारण यह है कि वह भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करता है । जिसको आप अपना अपत्य (सन्तान) मानते हैं वह आपका अपत्य नहीं है । क्योंकि अपत्य तो उसको कहते हैं जिसके कारण मनुष्य का पतन न हो । आप तो उसी के कारण भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख हो गये हैं और आपकी श्रीसमाप्त हो गयी है । अतएव यह दुर्योधन अमङ्गल स्वरूप है, इसका आप शीघ्र ही त्याग कर दें । यदि कहें कि पुत्र का त्याग कैसे किया जाय तो इसका उत्तर है कि **कुलकौशलाय** अपने वंश की रक्षा के लिए अपने पुत्र का भी त्याग किया जा सकता है । कहा भी गया है कि कुल को बचाने के लिए किसी एक को त्यागना पड़े तो त्याग देना चाहिए ॥१३॥

**इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ।**
**असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्णानुजसौबलेन ॥१४॥**

**क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ।
तस्मिन्प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसानः ॥१५॥**

**अन्वयः**— सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता इति ऊचिवान् । तत्र प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण सकर्णानुजसौबलेन सह दुर्योधनेन असत्कृतः । एनम् दास्याः सुतम् अत्र कः उपजुहाव ? यद् बलिना पुष्टः तस्मिन् प्रतीपः परकृत्ये आस्ते । अतः श्वशानः पुरात् निर्वास्यताम् ॥१४-१५॥

**अनुवाद**— जिनके शील को साधु पुरुष प्राप्त करना चाहते हैं ऐसे विदुरजी की इस तरह की बातों को सुनकर कर्ण, दुःशासन, शकुनि तथा दुर्योधन के ओठ फड़कने लगे और विदुरजी का अपमान करते हुए दुर्योधन ने कहा— इस दासी के पुत्र को यहाँ पर किसने बुलाया है ? यह जिसका अन्न खाता है, उसी के विरुद्ध काम करता है । यह शत्रु का काम बनाना चाहता है । इसको जीवित ही इस नगर से निकाल बाहर करो ॥१४-१५॥

### भावार्थ दीपिका

इत्यूचिवानेवमुक्तवान् । असौ क्षत्ता विदुरः सतां स्पृहणीयं शीलं यस्य कर्णदुःशासनशकुनिसहितेन दुर्योधनेनासत्कृतस्तिरस्कृतः। तिरस्कारमाह-क इति । दासीसुतो ह्यत्राह्वानानर्हः । जिध्यश्च कुटिलः । जिह्मतामाह । यस्य बलिनाऽन्नेन पुष्टस्तस्मिन्नेव प्रतीपः प्रतिकूलः परेषां कार्ये वर्तते । अतः पुरान्निर्वास्यताम् श्वसानः जीवमात्रशेष इत्यर्थः । पाठान्तरे श्मशानवदमङ्गलः ॥१४-१५॥

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने इस प्रकार से दुर्योधन के विषय में कहा— विदुरजी का शील सत् पुरुषों के भी लिए स्पृहणीय था, उनकी बातों को सुनकर कर्ण, दुःशासन, शकुनि और दुर्योधन क्रुद्ध हो गये । दुर्योधन ने विदुरजी को अपमानित करते हुए कहा— यह तो दासी पुत्र है, यह यहाँ बुलाने योग्य नहीं है । यह स्वभाव से जिह्म अर्थात् कुटिल है । यह जिसका अन्न खाकर जीता है, उसके ही विरुद्ध कार्य करता है और उसके शत्रुओं का कार्य करता है; अतएव इसको इस हस्तिनापुर से बाहर निकाल दो इसको मारो मत जीते ही जी निकाल दो । जहाँ पर **पुराच्छ्मशानः** पाठ है, वहाँ इसका अर्थ होगा, यह श्मशान के समान अमङ्गलमय है, अतएव इसको नगर से बाहर निकाल दो ॥१४-१५॥

**स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ।
स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ॥१६॥**

**अन्वयः**— इत्थम् भ्रातु पुरः उल्बाणकर्णबाणैः मर्मसु ताडितोऽपि, गतव्यथः मायां पुरो मानयानः द्वारि धनुः निधाय अयात् ॥१६॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से अपने बड़े भाई के सामने ही मर्मवेधी शब्द रूपी कानों से हृदय में प्रवेश करने वाले बाणों से वेधित होकर उनको कोई व्यथा इसलिए नहीं हुयी कि वे माया को ही इसमें अधिक महत्त्व देते थे । वे उन सबों के द्वारा निकाले जाने से पहले ही अपने धनुष को दरवाजे पर रख दिए और घर से बाहर निकल गये ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

अत्युल्बणैः कर्णयोर्बाणवत्प्रविशद्भिः परुषवाक्यैर्मर्मसु ताडितोऽपि गतव्यथः । तत्र हेतुः-मायामुरु बहु मानयन्नहो मायाया माहात्म्यमिति तामेव तत्र हेतुं मन्यमानस्तन्निःसारणात्पूर्वं स्वयमेव अयान्निर्जगाम । किं कृत्वा । एते नूनं मरिष्यन्ति किं धनुषेति तस्य द्वारि धनुःनिधाय । यद्वा भीमादिभिः संगत्यास्माभिर्योत्स्यतीति मा शङ्कीरिति धनुर्निधानम् ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

दुर्योधन के वे कठोर वचन कानों के मार्ग से हृदय में प्रवेश करके मर्मस्थल को आहत करने वाले थे, किन्तु उन शब्दों को सुनकर भी विदुरजी को इससे कष्ट नहीं हुआ; क्योंकि वे इसमें माया का ही महत्त्व देते थे। वे जानते थे कि माया ही प्रेरित करके दुर्योधन से इस तरह की बातें करवा रही है । अतएव वे सब विदुरजी को हस्तिनापुर से बाहर निकालें उससे पहले ही वे अपने आप उस नगर से निकल गये । वे नगर से निकलते समय धनुष को राजमहल के द्वारा पर ही रख दिए । क्योंकि वे यह जानते थे कि ये सब मरने वाले हैं, फिर धनुष का क्या उपयोग है ? अथवा यह सोचकर उन्होंने धनुष को रख दिया कि यदि मैं धनुष लेकर जाऊँगा तो ये सब सोचेंगें कि यह भीमादि के साथ मिलकर युद्ध करेगा, इसीलिए उन्होंने धनुष रख दिया ॥१६॥

**स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ।**
**अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥१७॥**

**अन्वयः**— कौरवपुण्यलब्धः सः गजाह्वयात् निर्गतः पुण्यचिकीर्षया उर्व्यां तीर्थपदः पदानि अन्वाक्रमत यानि सहस्रमूर्तिः स्वधिष्ठितः ॥१७॥

**अनुवाद**— कौरवों के पुण्य के फल रूप में उन सबों को प्राप्त विदुरजी हस्तिनापुर से निकल गये और पुण्य प्राप्त करने की इच्छा से वे तीर्थपाद श्रीहरि के क्षेत्रों में पृथिवी पर विचरण करने लगे । जिन तीर्थों में श्रीभगवान् ब्रह्मा, शिव आदि हजारों मूर्ति के रूप में विद्यमान हैं ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

ततो निर्गतस्य तीर्थाटनप्रकारमाह-स इत्यष्टभिः । स गजाह्वयान्निर्गतः । संस्तीर्थ पादौ यस्य तस्य हरेः पदानि क्षेत्राणि पुण्यचिकीर्षयाऽन्वाक्रमत्प्रत्यपद्यत । कौरवाणां पुण्येन लब्ध इति तेषां भाग्यमेव तेन रूपेण गतमिति सूचितम् । उर्व्यां सहस्रमूर्तिर्ब्रह्मरुद्राद्यनेकमूर्तिः संस्तीर्थपाद्यानि यान्यधिष्ठाय स्थितः तानि तानि जगामेत्यर्थः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

हस्तिनापुर से निकलकर विदुरजी ने जिस प्रकार से तीर्थों में भ्रमण किया उस प्रकार को **स निर्गतः इत्यादि** आठ श्लोकों से बतलाते हैं । हस्तिनापुर से निकले हुए वे तीर्थपाद श्रीहरि के क्षेत्रों में पुण्य करने की इच्छा से घूमने लगे । **कौरवपुण्य लब्धः** इस पद के द्वारा शुकदेवजी ने इस अर्थ को सूचित किया है कि वे कौरवों को उनके पुण्यों के फलरूप से ही प्राप्त थे । उनके नगर से निकलने का अर्थ है कि उनके रूप में कौरवों का पुण्य ही उस नगर से निकलकर चला गया । विदुरजी श्रीभगवान् के उन तीर्थों में गये जिन तीर्थों में ब्रह्मा रुद्र आदि अनेक मूर्तियों को धारण करने वाले श्रीभगवान् अधिष्ठाता के रूप में विद्यमान हैं । उन तीर्थ स्थलों में वे गये॥१७॥

**पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु ।**
**अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥१८॥**

**अन्वयः**— अनन्य सः अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेषु अपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु तीर्थायतनेषु चचार ॥१८॥

**अनुवाद**— विदुरजी अकेले ही जहाँ-जहाँ भगवान् की प्रतिमाओं से सुशोभित तीर्थ स्थान नगर, पवित्र वन, पर्वत, निकुञ्ज और स्वच्छ जल से भरे हुए नदी सरोवर थे उन सभी स्थानों में विचरण किए ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

पुण्यानि यान्युपवनादीनि तेषु कुञ्जं लतादिगूढस्थानम् । अपङ्कानि तोयानि येषां तेषु सरित्सरःसु च तीर्थेष्वायतनेषु क्षेत्रेषु च । कीदृशेषु । अनन्तस्य लिङ्गैर्मूर्तिभिः सम्यगलंकृतेषु । अनन्य एकाकी ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी जो पवित्र वन थे उनमें विद्यमान कुञ्ज तथा लता स्थान थे, स्वच्छ जल से भरे हुए सरोवर और नदियों, तीर्थों, मन्दिरों तथा क्षेत्रों में गये। प्रश्न है कि ये सभी किस प्रकार के थे ? तो इसका उत्तर है कि अनन्त मूर्तियों वाले श्रीभगवान् की मूर्तियाँ जिन स्थानों में थीं उन स्थानों में गये। वे इन सभी स्थानों में अकेले विचरण करते थे ॥१८॥

**गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ।**
**अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥१९॥**

**अन्वयः**— स्वैरवधूतवेषः अलक्षितः मेध्य विविक्तवृत्तिः गां पर्यटन सदाऽऽप्लुतः अधः शयानः हरितोषणानि व्रतानि चेरे ॥१९॥

**अनुवाद**— वे अवधूत वेष में अपनी इच्छानुसार विचरण करते थे, कोई भी आत्मीय व्यक्ति उनको पहचान नहीं पाता था। वे पवित्र वृत्ति से अपने जीवन का निर्वाह करते थे। प्रत्येक तीर्थों में स्नान करते थे और पृथिवी पर सोते थे एवं श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले व्रतों का पालन करते थे ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

किंच गां पर्यटन् व्रतानि चेरे आचरत्। मेध्या पवित्रा विविक्ताऽसंकीर्णा वृत्तिर्जीविका यस्य। सदाप्लुतः प्रतितीर्थं स्नातः। अधः शयनं यस्य। अवधूतोऽसंस्कृतदेहः, अवधूतवेषो वल्कलादिधारी। अतएव स्वैरलक्षितः ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

तीर्थों में सञ्चरण करते हुए विदुरजी ने व्रतों का पालन किया। उनकी वृत्ति पवित्र तथा दूसरों की वृत्ति से सङ्कीर्ण नहीं थी। वे प्रत्येक तीर्थों में जाकर स्नान करते थे पृथिवी पर सोते थे और अपने शरीर को सजाते नहीं थे। बल्कल आदि धारण किए हुए अवधूत वेष में रहते थे। इसीलिए उनको कोई भी आत्मीय व्यक्ति पहचान नहीं पाता था ॥१९॥

**इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ।**
**तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥**

**अन्वयः**— इत्थम् भारतमेव वर्षं व्रजन् यावत् कालेन प्रभासम् गतवान् तावत् अजितेन पार्थः एकचक्राम् एकातपत्राम् क्षितिं शशास ॥२०॥

**अनुवाद**— इस तरह भारत वर्ष में ही भ्रमण करते हुए विदुरजी जब तक प्रभास क्षेत्र में पहुँचे तब तक भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सम्पूर्ण पृथिवी के राजा युधिष्ठिर एक छत्र राज्य किये। सम्पूर्ण पृथिवी में उनकी ही सेना थी ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

एकस्यैव चक्रं सैन्यं यस्याम्। एकमेव राजचिह्नं श्वेतातपत्रं यस्यां ताम्। अजितेन श्रीकृष्णेन सहायेन ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

उतने समय तक भगवान् श्रीकृष्ण की सहायता से राजा युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण पृथिवी का एक छत्र राज्य किया। **एकचक्राम्** कहने का अभिप्राय है कि सम्पूर्ण पृथिवी पर एकमात्र राजा युधिष्ठिर की ही सेना थी तथा **एकातपत्राम्** पद का अर्थ है सम्पूर्ण पृथिवी राजा युधिष्ठिर के श्वेतच्छत्र के तले प्रशासित होती थी ॥२०॥

**तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनाष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ।**
**संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— अथ तत्र वेणुजवह्नि संश्रयम् संस्पर्धया दग्धं वनं यथा सुहृदविनष्टिं शुश्राव अथ अनुशोचन् तुष्णीम् प्रत्यक् सरस्वतीम् इयाय ॥२१॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् प्रभास क्षेत्र में ही जैसे अपनी ही रगड़ से उत्पन्न अग्नि के द्वारा बांसों का सम्पूर्ण वन जल जाता है, उसी तरह परस्पर के कलह के कारण विनष्ट हुए अपने कौरव बन्धुओं के विनाश का समाचार उन्होंने सुना । यह सुनकर शोक करते हुए विदुरजी चुपचाप सरस्वती नदी के तट पर आ गये ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र प्रभासे परस्परस्पर्धया निमित्तभूतया सुहृदां कौरवाणां विनष्टिं विनाशमशृणोत् । परस्परनाशे दृष्टान्तः-वेणुजं वह्निं संश्रयते यद्वनं तद्यथा दग्धं भवति तथा प्रत्यगुद्गमाभिमुखम् ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

उस प्रभास क्षेत्र में ही विदुरजी ने परस्पर के कलह के कारण अपने कौरव बान्धवों के विनाश को सुना। परस्पर विनाश का उदाहरण देते हुए कहा गया है कि जिस तरह बाँसों के परस्पर रगड़ के कारण उत्पन्न अग्नि से जैसे बांसों का वन विनष्ट हो जाता है उसी तरह कौरवों का विनाश हो गया । यह सुनकर विदुरजी शोक संतप्त हो गये और वहाँ से वे चुपचाप सरस्वती नदी के उद्गम स्थान के प्रवाहाभिमुख तट पर आ गये ॥२१॥

**तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ।**
**तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥**

**अन्वयः**— तस्यां त्रितस्य उशनसः मनोः च पृथोः, अथाग्नेः असितस्य वायोः, सुदासस्य, गवां, गुहस्य, श्राद्धदेवस्य च यत् तीर्थं स आसिषेवे ॥२२॥

**अनुवाद**— वहाँ पर त्रित, उशना, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ, गुह तथा श्राद्धदेव के नाम से विद्यमान ग्यारह तीर्थों का उन्होंने सेवन किया ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

त्रितादीनामेकादशतीर्थानि तत्तन्नाम्ना प्रसिद्धान्यासेवितवान् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

वहाँ पर विदुरजी ने त्रित आदि के नाम से विख्यात तथा वहाँ पर विद्यमान ग्यारह तीर्थों का उन्होंने सेवन किया ॥२२॥

**अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ।**
**प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥२३॥**

**अन्वयः**— इह अन्यानि च द्विजदेवदेवैः कृतानि विष्णोः नानायतनानि प्रत्यङ्गमुख्यांकित मन्दिराणि, यद् दर्शनात् कृष्णमनुस्मरन्ति, तानि सिषेवे ॥२३॥

**अनुवाद**— इस पृथिवी पर ब्राह्मणों तथा देवताओं द्वारा निर्मित भगवान् विष्णु के अनेक मन्दिरों का, जिन मन्दिरों के प्रत्येक अङ्ग पर भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य आयुध चक्र का चिह्न है, जिसको देखने से ही भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण हो जाता है, उन मन्दिरों का भी उन्होंने सेवन किया ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

द्विजदेवैर्ऋषिभिर्देवैश्च कृतानि अङ्गमङ्गं प्रति वर्तन्ते इति प्रत्यङ्गान्यायुधानि तेषु मुख्यं चक्रं तेनाङ्कितानि मूर्धन्यहेमकुम्भेषु चिह्नितानि मन्दिराणि येषु तानि नानाविधानि विष्णोरायतनानि क्षेत्राणि तीर्थानि चासिषेवे । येषां चक्राङ्कितमन्दिरवतां दर्शनाच्छ्रीकृष्णस्मरणं भवति ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

द्विजदेवों अर्थात् ऋषियों और देवताओं द्वारा निर्मित मन्दिरों जिन मन्दिरों के प्रत्येक अङ्गों में भगवान् के मुख्य आयुध चक्र जिनके शिखर पर विद्यमान सुवर्णकलशों पर चिह्नित हैं तथा अनेक प्रकार के भगवान् विष्णु के मन्दिरों का क्षेत्रों तथा तीर्थों का विदुरजी ने सेवन किया । जिन तीर्थों के चक्र चिह्नित मन्दिरों को देखने मात्र से भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण हो जाता है, उन मन्दिरों का विदुरजी ने सेवन किया ।।२३।।

**ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजाङ्गलांश्च ।**
**कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ।।२४।।**

**अन्वयः**— ततः तु ऋद्धं सुराष्ट्रम्, सौवीरम्, मत्स्यान् कुरुजाङ्गलान् च कालेन अतिव्रज्य यमुनाम् उपेत्य तत्र भागवतं उद्धवं ददर्श ।।२४।।

**अनुवाद**— वहाँ से समृद्ध सुराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य, कुरुजाङ्गल, प्रदेशों को पार करके जब यमुना के तट पर आये तो विदुरजी ने वहाँ पर महाभागवत उद्धवजी को देखा ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

अतिव्रज्यातिक्रम्य । यावदुद्धवः प्राप्तस्तावत्स्वयमपि यमुनामुपेत्य ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

मूल के अतिव्रज्य का अर्थ है पार करके । सुराष्ट्र आदि प्रदेशों को पार करके जब तक यमुना तट पर उद्धवजी आये तब तक विदुरजी भी वहाँ आ गये ।।२४।।

**स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतम् ।**
**आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ।।२५।।**

**अन्वयः**— वासुदेवानुचरम् प्रशान्तम् बृहस्पतिः पाक्तनयं प्रतीतम् उद्धवम् प्रणयेन आलिङ्ग्य स्वानाम् भगवत् प्रजानाम् भद्रम् अपृच्छत् ।।२५।।

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण के प्रख्यात अनुचर तथा शान्त स्वभाव वाले बृहस्पति के प्राचीन शिष्य रूप से प्रख्यात उद्धवजी का प्रेम पूर्वक गाढालिङ्गन करके विदुरजी ने अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण की प्रजाओंका समाचार पूछा ।।२५।।

### भावार्थ दीपिका

स विदुरः । प्राक्तनयं पूर्वशिष्यं नीति शास्त्रे । पाठान्तरे प्राप्तो नयो नीतिशास्त्रं येन तम् । प्रतीतं प्रख्यातम् । स्वानां ज्ञातीनां भद्रमपृच्छत् । प्रश्ने हेतुः-भगवतः प्रजानां पोष्याणाम् ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

उद्धवजी आचार्य बृहस्पति के प्राचीन शिष्य थे, वे भगवान् श्रीकृण के प्रख्यात अनुचर और शान्त स्वभाव वाले थे । जहाँ पर प्राप्तनयं पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा नीतिशास्त्र के ज्ञाता उद्धवजी का, विदुरजी ने प्रेम पूर्वक

गाढालिङ्गन किया, और उनसे अपने दायादों पाण्डवों का समाचार पूछा । उनका समाचार पूछने का कारण था कि वे भगवान् के पाल्य थे ।।२५।।

**कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ।**
**आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ।।२६।।**

**अन्वयः**— स्वनाभ्य पाद्मानुवृत्या इह किल अवतीर्णौ पुराणौ पुरुषौ ऊर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कच्चित शूरगेहे कुशलं आसाते ।।२६।।

**अनुवाद**— अपने नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्माजी की प्रार्थना से इस लोक में अवतीर्ण, पुराण पुरुष श्रीबलरामजी और श्रीकृष्णजी पृथिवी के भार को उतारकर पृथिवी को सुखमय बनाकर शूरसेन के गृह में कुशल पूर्वक तो हैं न ।।२६।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रथमं तावद्रामकृष्णयोः कुशलं पृच्छति । कच्चिदिति प्रश्ने । स्वनाभौ भवः स्वनाभ्यः पाद्मो ब्रह्मा तस्यानुवृत्त्या प्रार्थनयेहावतीर्णौ कुशलमासाते वर्तते । कृतक्षणौ दत्तावसरौ सर्वेषां कृतोत्सवाविति वा । तयोर्नित्यकुशलत्वेऽप्युक्तविशेषणविशिष्टौ शूरसेनस्य गृहे कच्चिदासाते इति प्रश्नः ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी सर्वप्रथम श्रीबलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् का कुशल इस श्लोक के द्वारा पूछते हैं । कच्चित् शब्द प्रश्न के अर्थ में प्रयुक्त है । भगवान् की अपनी नाभि से उत्पन्न होने के कारण स्वनाभ्य शब्द से कमल को कहा गया है, उस कमल से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्माजी पाद्म शब्द से कहे गये हैं । उनकी ही प्रर्थना से प्रसन्न होकर भगवान् इस लोक में श्रीबलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् के रूप में अवतीर्ण हुए है वे दोनों पुराण पुरुष परमात्मा ही हैं । वे दोनों कुशल पूर्वक हैं न । **कृतक्षणौ** का अर्थ है कि भगवान् ने पृथिवी के भार को उतार कर सबों को उत्सव मनाने का अवसर प्रदान किया है । यद्यपि उन दोनों का सदा कुशल रहता है फिर भी वे दोनों जो उपर्युक्त विशेषण से विशिष्ट हैं, वे शूरसेन के गृह में सुख पूर्वक हैं, न इस तरह से विदुरजी ने उद्धवजी से प्रश्न किया ?।।२६।।

**कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमङ्ग शौरिः ।**
**यो वै स्वसॄणां पितृवद्ददाति वरान्वदान्यो वरतर्पणेन ।।२७।।**

**अन्वयः**— हे अङ्ग नः ! कुरूणां परमः सुहृत् भामः शौरिः कच्चित् सुखम् आस्ते । यो वै वदान्यः स्वसृणां वरान् वरतर्पणेन पितृवद् ददाति ।।२७।।

**अनुवाद**— हे प्रियवर ! हम कुरुवंशियों के परम सुहृत् पूज्य वसुदेवजी जो अपने पिता के समान उदारता पूर्वक कुन्ती आदि अपनी बहिनों को और उनके स्वामियों का सन्तोष कराते हुए उनकी सभी मन चाही वस्तुओं को देते हैं वे तो आनन्द पूर्वक हैं न ।।२७।।

**भावार्थ दीपिका**

यदूनां कुशलं पृच्छति नवभिः । भामः पूज्यः । शौरिर्वसुदेवः । यद्वा भामो भगिनीभर्ता । कुन्ती वसुदेवस्य भगिनी अतो देवकी पाण्डोर्भगिनीति लोकव्यवहारः । वरानर्थान् । वदान्योऽत्युदारः । वराणां तत्पतीनां तर्पणेन संतर्पणेन सह ।।२७।।

**भाव प्रकाशिका**

अब विदुरजी नव श्लोकों से यदुवंशियों का कुशल पूछते हैं। भाम शब्द पूज्य का वाचक है अथवा भाम शब्द से बहनोई बहिन के पति को भी भाम कहते हैं। इस श्लोक में विदुरजी कहते हैं कि पूज्य वसुदेवजी कुशल पूर्वक हैं न। वसुदेवजी की बहन कुन्ती हैं। अतएव देवकी पाण्डु की बहन हैं। यह लोक में माना जाता है। विदुरजी कहते हैं कि वसुदेवजी अपने पिता के ही समान अपनी बहिनों के समान उनके पतियों को भी उदारता पूर्वक वस्तुओं को प्रदान करते हैं ॥२७॥

**कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग वीरः ।**
**यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रान्स्मरमादिसर्गे ॥२८॥**

**अन्वयः**— अङ्ग ! यदूनां बरूथधिपतिः वीरः प्रद्युम्नः कच्चित् सुखमास्ते यः आदि सर्गे कामः आसीत् विप्रान् आराध्य रुक्मिणी यं भगवतः अभिलेभे ॥२८॥

**अनुवाद**— प्रियवर उद्धवजी ! यादवों के सेनापति वीर प्रद्युम्न तो सुख पूर्वक हैं न जो पूर्वजन्म में कामदेव थे। ब्राह्मणों की आराधना करके जिनको देवी रुक्मिणी ने श्रीभगवान् से पुत्र रूप में प्राप्त किया ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

वरूथाधिपतिः सेनानीः। आदिसर्गे पूर्वजन्मनि स्मरं कामं संतमभिलेभे पुत्रं लब्धवती ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

बरूथाधिपति सेनापति को कहते हैं। प्रद्युम्नजी पूर्व जन्म में कामदेव थे। ब्राह्मणों की अराधना करके रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण भगवान् से पुत्र के रूप में उनको प्राप्त किया था ॥२८॥

**कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ।**
**यमभ्यषिञ्चच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥२९॥**

**अन्वयः**— सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणाम् अधिपतिः (उग्रसेनः) कच्चित् सुखमास्ते। सः नृपासनाशां दूरतः परिहृत्य (स्थित आसीत्) यम शतपत्रनेत्रः अभ्यषिञ्चत् ॥२९॥

**अनुवाद**— सात्वत वृष्णि, भोज तथा दाशार्हवंशी यादवों के स्वामी उग्रसेन जी तो सुख पूर्वक हैं न। वे प्राणभय के कारण सिंहासन की आशा का पूर्ण रूप से परित्याग कर दिये थे। उनको कमल के समान नेत्र वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने राजसिंहासन पर बैठाया ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

सात्वतादीनामधिप उग्रसेनः। शतपत्रनेत्रः श्रीकृष्णः। नृपासनाशां राज्याभिलाषं परिहृत्य प्राणभयेन दूरात्स्थितमित्यर्थः॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

सात्वतवंशी आदि यादवों के स्वमी उग्रसेन तो प्राणभय के कारण राजसिंहासन की आशा का विल्कुल त्याग कर दिए थे। किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको राजसिंहासन पर बैठाया ॥२९॥

**कच्चिद्धरे सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु साम्बः ।**
**असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या देवं गुहं योऽम्बिकया धृतोऽग्रे ॥३०॥**

**अन्वयः**— हे सौम्य हरेः सदृक्षः सुतः रथिनाम् अग्रणी साम्बः कच्चित् साधु आस्ते यः अग्रे अम्बिकया धृतः यं गुहं देवं ब्रताढ्या जाम्बवती यं असूत ॥३०॥

**अनुवाद**— हे सौम्य उद्धवजी ! श्रीहरि के ही समान उनके पुत्र तथा रथियों में अग्रगण्य साम्ब तो सुख पूर्वक हैं न । जिनको पूर्व जन्म में पार्वतीजी ने अपने गर्भ में धारण किया था, उन कार्तिकेय की आराधना करके अनेक व्रतों को करने वाली जाम्बवती देवी ने पुत्र के रूप में जन्म दिया ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

हे सौम्य ! हरेः सुतस्तेन सदृक्षः सदृशः साधु सुखमास्ते । गुहं स्वामिकार्तिकेयम् । अग्रे पूर्वजन्मनि यो भवान्या गर्भे धृतस्तम् ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

हे सौम्य ! उद्धव जी श्रीहरि के पुत्र और उनके समान साम्ब सुख पूर्वक तो हैं । पूर्वजन्म में ये कार्तिकेय थे । इनको पार्वतीजी ने अपने गर्भ में धारण किया था । उनकी ही आराधना करके जाम्बवती देवी ने उनको अपने पुत्र के रूप में जन्म दिया था ॥३०॥

**क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ।**
**लेभेऽञ्जसाऽधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— सः युयुधानः कच्चित् क्षेमं आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः यः अधोक्षज सेवयैव अञ्जसा यतिभिर्दुरापां तदीयां गतिं लेभे ॥३१॥

**अनुवाद**— वे युयुधान (सात्यकि) सुख पूर्वक तो हैं न जिन्होंने अर्जुन से धनुर्विद्या की शिक्षा को प्राप्त किया । जो भगवान् श्रीकृष्ण की ही आराधना करके अनायास ही उस महान स्थिति पर पहुंच गये जो योगियों के भी लिए दुर्लभ है ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

युयुधानः सात्यकिः । क्षेमं कुशलमास्ते । फाल्गुनादर्जुनाल्लब्धं धनुषो रहस्यं येन । तदीयामधोक्षजसंबन्धिनीम् ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

युयुधान का ही नाम सात्यकि है । वे अर्जुन से धनुर्विद्या के रहस्य को सीखे थे । वे भगवान् की सेवा करके योगियों के लिए भी दुष्प्राप्य महान् गति को प्राप्त किये थे वे सात्यकि सुख पूर्वक हैं न ॥३१॥

**कच्चिद्बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ।**
**यः कृष्णपादाङ्कितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥३२॥**

**अन्वयः**— भगवत्प्रपन्नः श्वफल्कपुत्रः बुधः अनमीव कच्चित् स्वस्ति आस्ते, यः कृष्ण पादाङ्कित मार्गपांसुषु प्रेमविभिन्न धैर्यः अचेष्टत ॥३२॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के शरणागत श्वफल्क के पुत्र विद्वान् अक्रूरजी निरोग तथा कुशली तो हैं न प्रेमातिरेक के कारण जिनका धैर्य टूट गया था और भगवान् के चरण चिह्नों से युक्त मार्ग की धूलि में जो लोटने लग गये थे ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

श्वफल्कपुत्रोऽक्रूरः । बुधो विद्वान् । अतो भगवन्तं प्रपन्नोऽनुसृतः । अत एवानमीवो निष्पापः । भक्तौ लिङ्गम् । योऽचेष्टत व्यलुण्त् । प्रेम्णा विभिन्न विभिन्नंधैर्यं यस्य सः । अस्ति क्षेममास्ते ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

अक्रूरजी के पिता का नाम श्वफल्क था । वे विद्वान और श्रीभगवान् के शरणागत होने के कारण अनमीवा अर्थात् निष्पाप थे । भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेमातिरेक होने के कारण उनका धैर्य टूट गया और वे भगवान् श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों से युक्त मार्ग की धूलि में लोटने लगे थे । वे कल्याण पूर्वक हैं न ॥३२॥

**कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ।**
**या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— देवमातुः इव विष्णुप्रजायाः देवकभोजपुत्र्याः कच्चित् शिवम् या वै यज्ञवितानमर्थम् त्रयी यथा देवं स्वगर्भेण दधार ॥३३॥

**अनुवाद**— देवताओं की माता अदिति देवी के समान देवकभोज की पुत्री जिनके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण ही बन गये वे देवकी जी सुख पूर्वक हैं न । जिस तरह त्रयी अपने मन्त्रों में यज्ञ विस्तार रूप अर्थ को धारण करती है, उसी तरह देवकीजी ने भी भगवान् श्रीकृष्ण को अपने गर्भ में धारण किया था ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

देवकनामा यो भोजस्तस्य पुत्र्या देवक्याः । विष्णुः प्रजा पुत्रो यस्यास्तस्याः देवमातुरदितेरिव । कच्चिच्छिवम् । यज्ञवितानरूपमर्थं त्रयी यथा प्रकाशकतया बिभर्ति तथा दधार ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

देवक नामक जो भोजवंशी थे उनकी पुत्री देवकीजी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण उसी तरह से हैं जिस तरह देवताओं की माता अदिति के पुत्र भगवान् विष्णु हैं । वे तो सुख पूर्वक हैं न ? जिस तरह यज्ञ विस्तार रूपी अर्थ के प्रकाशक मन्त्रों को त्रयी धारण करती है, उसी तरह देवकीजी ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने गर्भ में धारण किया ॥३३॥

**अपिस्विदास्ते भगवान्सुखं वो यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ।**
**यमामनन्ति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥३४॥**

**अन्वयः**— वः सात्वतां यः कामदुघः भगवान् अनिरुद्धः अपिस्वित् सुखं आस्ते यं शब्दयोनिम् मनोमयम् सत्त्वतुरीय तत्त्वम् आमनन्ति ॥३४॥

**अनुवाद**— आप भक्तजनों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् अनिरुद्ध तो सुख पूर्वक हैं ? जिनको शास्त्रों के कारण स्वरूप और अन्तःकरण के चतुर्थ अंश मन के अधिष्ठाता बतलाया गया है ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

सात्वतानामुपासकानां कामान् दोग्धि पूरयतीति कामदुघः । भगवत्त्वे हेतुः-यं शब्दस्य शास्त्रस्य योनिं कारणमामनन्ति वेदाः । कुतः । मनोमयं मनसः प्रवर्तकम् । तत्कुतः । सत्त्वस्यान्तःकरणस्य चतुर्विधस्य तुरीयं तत्त्वं चतुर्थमधिदैवम् । चित्ताहंकारबुद्धिमनसामन्तःकरणभेदानां क्रमेण वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धा ह्यधिष्ठातारः । मनसश्च शब्दयोनित्वं प्रसिद्धम् । **'मनः पूर्वरूपं । वागुत्तररूपम्'** इति । तथा **अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः'** इति प्रस्तुत्य **'तस्य यजुरेव शिरः । ऋग्दक्षिणः पक्षः । सामोत्तरः पक्षः'** इत्यादिश्रुतेः । तथाच शिक्षायाम् **'आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्'** इत्यादि ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने उपासकों की कामनाओं को पूर्ण करने के कारण अनिरुद्धजी कामदुघ हैं । वे भगवान् हैं । वेद उनको

शास्त्र का योनि अर्थात् कारण बतलाते हैं क्योंकि वे मन के प्रवर्तक है। वह भी इसलिए कि चित्त, अहङ्कार, बुद्धि और मन ये जो अन्तःकारण के चार अंश हैं, उनमें चतुर्थ अंश मन के वे अधिष्ठातृ देवता हैं। अन्तःकरण के चार भेद हैं- चित्त अहङ्कार बुद्धि और मन। इन चारों के अधिष्ठातृ देवता क्रमशः वासुदेव सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं। मन का शास्त्रयोनित्व प्रधान है। तैत्तिरीय श्रुति कहती है **मनः पूर्वरूपम् वागुत्तर रूपम्।** अर्थात् मन ही पूर्वरूप है, वाणी उत्तर रूप है। इसीतरह यह भी कहा गया है- अन्योन्तर आत्मा मनोमय है। अर्थात् उस प्राणमय से भिन्न उसके भीतर रहने वाली आत्मा मनोमय है। इस तरह से वर्णन करके यह भी कहा गया है। उस मनोमय ब्रह्म का यजुर्वेद ही शिर है, सामवेद ही उसका उत्तरपक्ष है। इन श्रुतियों से मन का शास्त्रयोनित्व सिद्ध होता है।

शिक्षाबल्ली में भी कहा गया है— आत्मा बुद्धि से विषयों को प्राप्त करके रोकने की इच्छा से मन से संयुक्त हो जाता है। मन शरीराग्नि को प्रेरित करता है और अग्नि वायु को प्रेरित करता है। वायु भी हृदय प्रदेश में सञ्चरण करते हुए गम्भीर ध्वनि को उत्पन्न करता है ॥३४॥

**अपिस्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ।**
**हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्णगदादयः स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥३५॥**

**अन्वयः**— हे सौम्य ! अन्ये च निजात्मदैवम् अनन्यवृत्या समनुव्रताः ये हृदीक सत्यात्मज चारुदोष्ण गदादयः अपि स्वस्ति चरन्ति ॥३५॥

**अनुवाद**— हे सौम्य ! स्वभाव वाले उद्धवजी जो अपने हृदयेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का अनन्यभाव से अनुसरण करते हैं वे सत्यभामाजी के पुत्र पुत्र हृदीक, चारुदेष्ण और गद आदि तो सुखपूर्वक रहते हैं न ?॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

अपिस्वित्किंस्वित् अन्ये च स्वस्ति चरन्ति। निजस्य देहादिव्यतिरिक्तस्यात्मनो दैवं श्रीकृष्णमनन्यवृत्त्यैकान्तभक्तिभावेन ये सम्यगनुव्रताः अनुसृताः। हृदीकश्च सत्यभामाया आत्मजश्च चारुदेष्णश्च गदश्चादिर्येषां तेऽपि ॥३५॥

### भाव प्रकाशिका

क्या दूसरे लोग जो हैं, वे तो कल्याण प्राप्त हैं न, जो अपने शरीर से भिन्न अपने हृदय के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का ऐकान्तिक भक्ति भावना पूर्वक अनुसरण करते हैं, वे हृदीक सत्यभामाजी के पुत्र चारुदेष्ण, तथा गद आदि हैं, वे तो सुख पूर्वक हैं न ॥३५॥

**अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्म परिपाति सेतुम् ।**
**दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥३६॥**

**अन्वयः**— अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मः धर्मेण सेतुम् परिपाति। यत्सभायां विनयानुवृत्या साम्राज्यलक्ष्म्या दुर्योधन अतप्यत ॥३६॥

**अनुवाद**— अपनी अर्जुन तथा श्रीकृष्ण रूपी दोनों भुजाओं के द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर न्यायपूर्वक धर्म की मर्यादा का पालन करते है न। मयदानवनिर्मित सभा में इनकी साम्राज्य लक्ष्मी और प्रभाव को देखकर दुर्योधन अत्यन्त संतप्त होता था ॥३६॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं कुरून् पृच्छति षड्भिः। अपि किम्। स्वदोर्भ्यां स्वबाहुवद्वर्तमानाभ्यां विजयाच्युताभ्यामर्जुनकृष्णाभ्यां धर्ममार्गेण धर्मो युधिष्ठिरः सेतुं धर्ममर्यादां परिपाति। यस्य सभायां विजयानुवृत्त्या जयपरम्परया, अर्जुनस्य सेवयेति वा। एवंभूतं यस्यैश्वर्यमित्यर्थः ॥३६॥

### भाव प्रकाशिका

अब विदुरजी छह श्लोकों के द्वारा कुरुवंशियों के विषय में पूछते हैं । क्या अपनी दोनों भुजाओं के समान रहने वाले अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर धर्म की मर्यादा का पालन करते हैं ? जिन युधिष्ठिर की मयनिर्मित सभा में युधिष्ठिर की विजय की परम्परा अथवा अर्जुन की सेवा को देखकर दुर्योधन अत्यन्त दुःखी हुआ था । इस प्रकार का युधिष्ठिर का ऐश्वर्य था ॥३६॥

**किं वा कृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुञ्चत् ।**
**यस्याङ्घ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥३७॥**

**अन्वयः**— किं वा कृताघेषु दीर्घतमं अहिवद् अत्यमर्षी भीमः व्यमुञ्चत् । यस्य विचित्रं गदायाः मार्गं चरतः रणभूः न सेहे ॥३७॥

**अनुवाद**— क्या अपराधियों के अपराध को बहुत दिनों तक चिन्तन करके सूर्य के समान उसको नहीं वर्दास्त करके भयङ्कर सर्प के समान क्रोध करने वाले भीम अपने क्रोध को छोड़ दिये हैं क्या, युद्ध के मैदान में गदायुद्ध के विचित्र प्रकार की पैंतरा चलने वाले, जिन भीम के पैरों की धमक से पृथिवी काँपने लगती थी ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

कृताघेषु कृतापराधेषु कुरुषु स्वकर्तृकमघं दीर्घतमं बहुकालानुचिन्तितमहिवदत्यमर्षी भीमः किं व्यमुञ्चन्नो वा । गदाया विचित्रं विविधं चरतः ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

पापी दुर्योधन आदि के द्वारा अपने विषय में किए गये अपराधों का दीर्घकाल तक चिन्तन करने के कारण क्रुद्ध सर्प के समान अपराधों को नहीं सहने वाले भीम ने क्रोध करना त्याग दिया है क्या ? जिस भीम के अद्भुत प्रकार के गदा युद्ध के पैंतरा चलते समय उनके पैरों की धमक को पृथिवी नहीं वर्दास्त कर पाती थी ?॥३७॥

**कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां गाण्डीधन्वोपरतारिरास्ते ।**
**अलक्षितो यच्छरकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥३८॥**

**अन्वयः**— रथयूथपानां यशोधा गाण्डीवधन्वा कच्चित् उपरतारिः आस्ते ? यच्छरकूटगूढः माया किरातः अलक्षितः गारिशः तुतोष ॥३८॥

**अनुवाद**— रथियों और यूथपतियों के यश को बढ़ाने वाले गाण्डीव नामक धनुष को धारण करने वाले जिन अर्जुन के शत्रु शान्त हो गये होंगे वे अर्जुन सुख पूर्वक हैं न ? जिन अर्जुन के बाण समूह से ढँककर माया पूर्वक किरात का रूप धारण करने वाले शङ्करजी प्रसन्न हो गये थे ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

रथयूथपानां मध्ये यशोधाः कीर्तिधारी । यद्वा स्वीयानां तेषां कीर्तिप्रदः । उपरता अरयो यस्मात् । यस्य शरकूटेन बाणसमूहेन गूढ आच्छन्नः ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

रथों के यूथपतियों में यश धारण करने वाले अथवा अपने लोगों को यश प्रदान करने वाले । अर्जुन । तथा जिनके शत्रुगण मर चुके हैं ऐसे अर्जुन माया के द्वारा किरात बने हुए भगवान् शङ्कर जिनके बाण समूह से ढँक गये और अर्जुन से संतुष्ट हो गये ऐसे अर्जुन तो सुख पूर्वक हैं न ?॥३८॥

**यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृता पक्ष्मभिरक्षिणीव ।**
**रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्रात् ॥३९॥**

**अन्वयः**— उतस्वित् पृथायाः यमौ तनयौ पक्ष्मभिरक्षिणीम् पार्थैः वृतौ, वज्रिवक्त्रात् सुपर्णाविव मृधे परात् स्वरिक्थं उद्दायं रेमाते ॥३९॥

**अनुवाद**— क्या माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव जिनकी रक्षा पृथा के पुत्र उसी तरह से करते हैं जिस तरह दोनों आँखों की रक्षा पपनियाँ (पलकें) करती हैं, वे युद्ध में अपने शत्रु से उसी तरह से अपने राज्य को छिन लिए होंगे जिस तरह से इन्द्र के मुख से अपने रिक्थ अमृत को गरुड़ छिन लिए थे । वे दोनों कुशली हैं न ?॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

उतस्वित्किंस्वित् । यमौ नकुलसहदेवौ । रेमाते क्रीडाते इत्यर्थः । माद्र्याः सुतावपि पृथायास्तनयौ पृथायाः पुत्रैर्वृतौ सुपर्णाविव रेमाते । किं कृत्वा । परात् दुर्योधनात्स्वरिक्थं स्वीय राज्यमुद्दायाच्छिद्य । वज्रिवक्त्रदिद्रस्य मुखात्स्वरिक्थममृतं गरुड इवेति । यद्वा सुपर्णाविवेति । यदि द्वौ गरुडावमृतमानयेतां तर्हि तद्वत् । अक्षिणीवेति मणीवादिगणत्वात्सन्धिः ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

क्या जुड़वे भाई नकुल सहदेव प्रसन्नता पूर्वक क्रीडा करते हैं न ? यद्यपि ये दोनों माद्री के पुत्र थे फिर भी पृथा के ही ये पुत्र हैं, क्योंकि कुन्ती ने ही इन दोनों का पालन पोषण किया था । वे कुन्ती के पुत्रों युधिष्ठिर आदि से रक्षित होकर दो गरुड़ों के समान आनन्दपूर्वक होंगे । वे अपने शत्रु दुर्योधन से अपना राज्य छिन लिए होंगे । ये उस तरह से अपने राज्य को ले लिए होंगे जिस तरह से इन्द्र के मुख से गरुड़ ने अमृत ले लिया था । जिस तरह से दो गरुड मिलकर अमृत को लायें उसी तरह अक्षिणीव में मणीवादि गण होने के कारण सन्धि हुयी है ॥३९॥

**अहो पृथापि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनापि तेन ।**
**यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्त्रः ॥४०॥**

**अन्वयः**— अहो तेन राजर्षिवर्येण विनाऽपि अर्भकार्थे पृथाऽपि ध्रियते यस्तु एकवीरः अधिरथः धनुर्द्वितीयः चतस्त्रः ककुभः विजिग्ये ॥४०॥

**अनुवाद**— आश्चर्य है कि प्रख्यात वीर राजर्षि पाण्डु के बिना भी पृथा अपने पुत्रों का पालन करने के लिए जीवित है । वे रथियों में श्रेष्ठ पाण्डु प्रख्यात वीर थे उन्होंने अपने धनुष के ही सहारे चारो दिशाओं को जित लिया था ॥४०॥

### भावार्थ दीपिका

पृथायाः किं नु कुशलं पृच्छेयम् । यतस्तस्याः पाण्डुना बिना प्राणधारणमेवाश्चर्यमित्याह- अहो इति । ध्रियते जीवति। न चात्याश्चर्यम् । यतोऽर्भकार्थे ध्रियते न भोगार्थम् । तथापि त्वाश्चर्यमेवेत्याह । तेन तथाभूतेन बिना । तदेवाह-यस्त्विति । धनुरेव द्वितीयं सहायो यस्य ॥४०॥

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मैं कुन्ती के विषय में क्या पूछूँ ? वह राजर्षि श्रेष्ठ पाण्डु के वियोग में मृतप्राय हो गयी थी । वह अपने प्राणों को धारण कर रही है, यही आश्चर्य है । वह अपने लिए नहीं अपितु अपने पुत्रों के लिए जी रही है, भोगों को भोगने के लिए नहीं । फिर भी तो आश्चर्य ही है । उस महावीर पाण्डु के बिना भी

उसका जीना आश्चर्य है पाण्डु केवल धनुष धारण करके धनुष के बल पर ही चारो दिशाओं को अपने वश में कर लिए थे ।।४०।।

**सौम्यानुशोचे तमधः पतन्तं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ।**
**निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान्समनुव्रतेन ।।४१।।**

**अन्वयः**— हे सौम्य अधः पतन्तं तम् अनुशोचे, यः परेताय विदुद्रुहे । स्वपुत्रान् समनुव्रतेन येन सुहृत् अहं स्वपुर्या निर्यापितः ।।४१।।

**अनुवाद**— हे सौम्य स्वभाव वाले उद्धवजी ! मुझे अधः पतन की ओर जाने वाले धृतराष्ट्र के विषय में चिन्ता होती है कि वे पाण्डवों के रूप में विद्यमान अपने मृतभाई पाण्डु से द्रोह करते है । साथ ही अपने पुत्रों से मिलकर अपने हितचिन्तक मुझको भी उन्होंने अपने नगर से निकलवा दिया ।।४१।।

**भावार्थ दीपिका**

पृथा अर्भकार्थे जीवतीति युक्तमेवेत्याह । हे सौम्य, तं धृतराष्ट्रं जीवन्तमनुशोचामि । तत्किम् । अधःपतन्तम् । तत्र हेतुः-परेताय मृताय भ्रात्रे पाण्डवे तत्पुत्रद्रोहेण या विदुद्रुहे द्रोहं कृतवान् । किंच जीवतोऽपि भ्रातुर्ममापकृतवानित्याह । येन सुहृद्भ्राताऽहं स्वपुर्याः सकाशान्निर्यापितो विवासितः ।।४१।।

**भाव प्रकाशिका**

कुन्ती अपने पुत्रों के लिए जी रही हैं, यह तो उचित ही है । मैं उन जीवित रहने वाले धृतराष्ट्र के विषय में सोचता हूँ क्योंकि उनका अधःपतन हो रहा है । क्योंकि उन्होंने अपने मरे हुए तथा पाण्डवों के रूप में विद्यमान अपने भाई पाण्डु से उन्होंने द्रोह किया । उन्होंने अपने जीवन में ही अपने सुहृद भाई मेरा भी अपमान किया । मैं उनका हितकारी भाई था । मुझको उन्होंने अपने नगर से निकलवा दिया ।।४१।।

**सोऽहं हरेर्मर्त्यविडम्बनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः ।**
**नान्यापलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र ।।४२।।**

**अन्वयः**— सोऽहं मर्त्यविडम्बनेन नृणां दृशः चालयतः विधातुः हरेः प्रसादात् पदवीं पश्यन् नान्योपलक्ष्यः गत विस्मयः अत्र चरामि ।।४२।।

**अनुवाद**— मैं तो जानता हूँ कि मानवी लीला करने वाले श्रीभगवान् ही मनुष्यों की बुद्धि को भ्रमित कर देते हैं । उन्हीं की कृपा से मैं सम्पूर्ण संसार में उनकी लीला का अनुभव करता हुआ बिना किसी खेद अथवा आश्चर्य के संचरण करता हूँ ।।४२।।

**भावार्थ दीपिका**

अहो खलु विस्मयो जानतोऽपि तस्यैवं दुश्चेष्टितं, यतस्त्वं साधुरपि दुःखं प्रापितोऽसीत्यत आह । सोऽहं हरेः प्रसादात्तस्य पदवीं माहात्म्यं पश्यन्गतविस्मयोऽत्र भूतले नान्योपलक्ष्यो गूढः सन्सुखं विचरामि । कथंभूतस्य । मर्त्यविडम्बनेनैश्वर्याच्छादकेन मानुष्यानुकरणेन नृणां दृशश्चित्तवृत्तीश्चालयतो भ्रामयतः ।।४२।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि दुर्योधन की दुष्टता को जानने वाले धृतराष्ट्र ने आपको भी इस प्रकार से दुःख दिया है । तो ऐसी कोई बात नहीं है । मानवीय लीला करने वाले श्रीभगवान् ही मनुष्यों की चित्तवृत्ति को भ्रमित कर देते हैं । किन्तु मैं उन्हीं की कृपा से सर्वत्र उनके ही माहात्म्य का अनुभव करता हुआ ऐसे सुख पूर्वक छिपकर विचरण कर रहा हूँ कि कोई भी मुझको पहचान भी नहीं पाता है ।।४२।।

**नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ।**
**वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशोऽप्युपैक्षताघं भगवान्कुरूणाम् ॥४३॥**

**अन्वयः**— नूनं चमूभिः मुहुः महीं चालयताम् त्रिमदोत्पथानां नृपाणा नृपाणां वधात् प्रपन्नार्तिजिहीर्षया ईशऽपि भगवान् कुरूणां अघं उपैक्षत ॥४३॥

**अनुवाद**— अपनी सेनाओं के द्वारा बार-बार पृथिवी को कँपा देने वाले भी धन, विद्या तथा अभिजन के मद से मदमत्त कुमार्गगामी राजाओं का वध करके अपने भक्तों के कष्ट को दूर करने की इच्छा वाले सम्पूर्ण जगत् के नियामक भी भगवान् कौरवों द्वारा किए जाने वाले अपराध को क्षमा करते रहे, यही हमको आश्चर्य है ॥४३॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु हरेः किमेवं लीलया, येन स्वभक्तानां वनवासादिक्लेशा भवन्ति, स्वस्य च दौत्ये बन्धनोद्यमादिपराभवः, तद्वरं तेषामपराधानन्तरमेव हननं नापराधोपेक्षेत्यत आह । नूनं निश्चितं त्रिभिर्मदैरुत्पथानामुद्धतानां बधाद्धेतोः प्रपन्नानामार्तिजिहीर्षयेशोऽघसमय एव हन्तुं समर्थोऽपि कुरूणामघमुपैक्षत । तदानीमेव तेषां बधे सर्वदुष्टराजवधो न स्यादित्याशयेनेत्यर्थः । विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमाः । इति त्रयो मदाः ॥४३॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई कहे कि श्रीभगवान् की इस तरह की लीलाओं से कौन सा लाभ है ? जिसके कारण उनके भक्तों को भी वनवास आदि का क्लेश सहना पड़ा । भगवान् ने जब पाण्डवों के दूत का काम किया उस समय दुर्योधन ने उनको बन्धनगत करने का प्रयास करके उनका अपमान किया । इससे अच्छा यही था कि उन सबों के अपराध के पश्चात् ही दुष्ट कौरवों का वध कर देते । अपराधों की उपेक्षा करना तो ठीक नहीं है । इसका कारण यह है कि तीनों प्रकार के मद से मदमत्त कुमार्गगामी तथा उद्घत बने कौरवों का वध करके अपने शरणागतों के कष्ट को दूर कर देते । किन्तु कौरवों द्वारा किए जनें वाले पापों के ही समय कौरवों का वध कर देने में समर्थ भी भगवान् कौरवों के अपराधों को इसलिए सहते रहे कि वैसा करने से कौरवों का तो वध हो जाता है किन्तु सभी दुष्ट राजाओं का वध नहीं हो पाता । इसीलिए वे कौरवों के अपराधों को सहते रहे । तीन प्रकार के मदों को बतलाते हुए कहा भी गया है—

**विद्यामदो धनमदास्तथैवाभिजनोमदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमः ।।**

विद्या का मद, धन का मद तथा परिवार का मद इन तीनों; मदो से अन्धे बने रहने वालों के लिए सदा मद का कारण बने रहते हैं । किन्तु वे ही सत्पुरुषों के लिए सदा दम का कारण बने रहते है । इस तरह से तीन प्रकार के मद बतलाये गये हैं ॥४३॥

**अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ।**
**नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥४४॥**

**अन्वयः**— अजस्य जन्म उत्पथनाशनाय, अकर्तुः कर्माणि पुसां ग्रहणाय । ननु अन्यथा परः गुणातीतः देहयोगम् कर्मतन्त्रम् वा कः अर्हति ॥४४॥

**अनुवाद**— हे उद्धवजी जन्म और कर्म से रहित होने पर भी श्रीभगवान् का जन्म दुष्टों का दमन करने के लिए होता है और वे जीवों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए कर्मो को करते हैं । यदि ऐसी बात नहीं होती तो कोई भी गुणातीत व्यक्ति कर्मो के अधीन होने वाले शरीर के सम्बन्ध को क्यों धारण करता ?॥४४॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वदुर्वृत्तवधाद्यर्थमेव भगवतो जन्मकर्माणि नान्यथेति कैमुत्यन्यायेनाह । अजस्यापि जन्म, अकर्तुरपि कर्माणि पुंसां ग्रहणाय कर्मसु प्रवृत्तये । अन्यथा न चेदेवं तर्हि भगवतो जन्मादिकथा तावदास्ताम् । को वान्योऽपि गुणानां परो गुणातीतो देहयोगं कर्मविस्तारं वाऽर्हतीति ॥४४॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विदुरजी इस अर्थ का प्रतिपादन कैमुत्यन्याय से करते हैं कि श्रीभगवान् के जन्म और कर्म दुष्टों का दमन आदि कार्य करने के लिए होते हैं उसका कोई दूसरा प्रयोजन नहीं होता है । अजन्मा भी श्रीभगवान् के जन्म और अकर्ता भी श्रीभगवान् के कर्म अपने भक्त जीवों को अपनी ओर अकर्षित करने के लिए होते हैं। यदि ऐसी बात नहीं होती तो श्रीभगवान् की जन्मादि की कथा से क्या लाभ था ? गुणों से स्वभावतः परे, दूसरा भी कोई जीव देह के सम्बन्ध अथवा कर्मों के विस्तार को क्यों स्वीकार करेगा ॥४४॥

**तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ।**
**अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥४५॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे विदुरोद्धव संवादे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

**अन्वयः—** हे सखे ! तस्य प्रपन्नाखिललोकपानाम् स्वेअनुशासने अवस्थितानाम् अर्थाय यदुषु जातस्य अजस्य तीर्थकीर्तेः वार्तां कीर्तय ॥४५॥

**अनुवाद—** हे मित्र ! अपने शरण में रहने वाले समस्त लोकपालों और समस्त भक्तों का प्रिय कार्य करने के लिए यदुवंश में जन्म लेने वाले अजन्मा श्रीभगवान् की ही पवित्रकारिणी कथा को आप मुझे सुनायें ॥४५॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के विदुरोद्धवसंवाद के अन्तर्गत प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥**

### भावार्थ दीपिका

तस्मादेवंभूताचिन्त्यमायाविनोदस्य कथां कथयेत्याह । तस्य प्रपन्ना येऽखिललोकपालास्तेषामन्येषां च स्वीयेऽनुशासने स्थितानामर्थाय प्रयोजनाय यदुपु जातस्य । तीर्थे संसारतारिणी कीर्तिर्यस्येति ॥४५॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥**

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मित्र उद्धव ! इस तरह की अचिन्त्य माया के द्वारा विनोद करने वाले श्रीभगवान् की कथा आप मुझे सुनायें । उन श्रीभगवान् के शरण में ही सभी लोकपाल रहते हैं । उन सभी लोगपालों का तथा अपने दूसरे भक्तों का कल्याण करने के ही लिए श्रीभगवान् यदुवंश में जन्म ग्रहण किए हैं, उनकी कीर्ति पवित्र बना देने वाली है । उनकी ही कथा मुझे आप सुनायें ॥४५॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका प्रथमाध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥१॥**

# द्वितीय अध्याय

## श्रीउद्धवजी द्वारा श्रीभगवान् की बाललीलाओं का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**इति भागवतः पृष्टः क्षत्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् । प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥१॥**

**अन्वयः**— इति क्षत्रा प्रियाश्रयाम् वार्तां पृष्टः भागवतः औत्कण्ठयात् स्मारितेश्वरः प्रतिवक्तुं च न उत्सेहे ॥१॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से विदुरजी द्वारा महाभागवत उद्धवजी से उनके परम प्रिय श्रीकृष्ण भगवान् के विषय में पूछे जाने पर उत्कण्ठावशात् श्रीभगवान् की याद आ जाने से उद्धवजी उत्तर नहीं दे सके ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

द्वितीये कृष्णविश्लेषादनुशोचन्नथोद्धवः । क्षत्त्रे बालचरित्राणि कृष्णस्यावर्णयच्छ्वसन् । तदेवं प्रियवार्तां पृष्टस्योद्धवस्य श्रीकृष्णविरहौत्कण्ठ्यावेशेन प्रतिवचनासामर्थ्यमाह षड्भिः इतीति । स्मारितः ईश्वरो यस्य ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण का विप्रयोग सोचते हुए उद्धवजी लम्बी श्वास लेते हुए विदुरजी को भगवान् श्रीकृष्ण के बाल चरित्रों को सुनाये ॥१॥

**तदेवम्० इत्यादि-** उस तरह से प्रियतम श्रीकृष्ण संबन्धी बातें पूछे जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण के विरह विषयक उत्कण्ठा के कारण उद्धवजी उनका उत्तर सहसा नहीं दे सके । इस बात को शुकदेवजी ने छह श्लोक में वर्णन किया है । **स्मारितेश्वरः** पद का विग्रह स्मारित ईश्वरो यस्य है ॥१॥

**यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः । तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥२॥**

**अन्वयः**— पञ्च हायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः बाललीलया यस्य सपर्यां रचयन् न ऐच्छत् ॥२॥

**अनुवाद**— पाँच वर्ष के बालक उद्धवजी को कलेवे के लिए जब उनकी माता बुलाती थीं तो बालक्रीडा में श्रीभगवान् की पूजा में मग्न होने के कारण वे कलेवा नहीं करना चाहते थे ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

एतदेव कैमुत्यन्यायेन प्रपञ्चयति-य इति द्वाभ्याम् । यः पञ्चवर्षोऽपि बाललीलयेति कृष्णं कंचित्परिकल्प्य कल्पितैरेव साधनैः परिचर्यां कुर्वन् प्रातर्भोजनार्थं मात्रा प्रार्थितोऽपि तद्भोजनं नैच्छत् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रथम श्लोक के ही अर्थों को कैमुत्य न्याय से विस्तार पूर्वक **यः पञ्चहायनः इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा वर्णन करते हैं । **यः इत्यादि** जो उद्धवजी पाँच वर्ष की अवस्था में किसी को कृष्ण बनाकर अपने मनः कल्पित साधनों से पूजा करते हुए माता के द्वारा प्रातः भोजन (जलपान) करने के लिए प्रार्थना करने पर भी भगवान् की पूजा छोड़कर जलपान करना नहीं चाहते थे ॥२॥

**स कथं सेवया तस्य काले न जरसं गतः । पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥३॥**

**अन्वयः**— तस्य सेवया कालेन जरसं गतः सः पृष्टः सन् भर्तुःपादावनुस्मरन् भर्तुः वार्तां पृष्टः कथं प्रति ब्रूयात् ॥३॥

**अनुवाद**— उन भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवा करते हुए उनकी जब वृद्धावस्था आ गयी थी वे पूछे जाने पर अपने स्वामी श्रीकृष्ण के चरणों की याद आ जाने के कारण अपने स्वामी विषयक उत्तर कैसे दे सकते थे ?॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

जरसं वृद्धत्वं गतः प्राप्तः ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवा करते हुए उनकी वृद्धावस्था आ गयी थी । विदुरजी के द्वारा पूछे जाने पर उन्हें अपने स्वामी की याद आ गयी और उसके कारण वे विदुरजी का उत्तर सहसा नहीं दे सकें ।।३।।

**स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णाङ्घ्रिसुधया भृशम् । तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधुनिर्वृतः ।।४।।**

**अन्वयः**— कृष्णांघ्रिसुधया साधुनिर्वृतः तीव्रेण भक्तियोगेन भृशम् निमग्नः सः मुहूर्तम् तुष्णीम् अभूत् ।।४।।

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल की सुधा से सराबोर वे तीव्र भक्तियोग के कारण उसमें डूब कर आनन्दमग्न हो गये और एक मुहूर्त तक कुछ भी नहीं बोल सके ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

श्रीकृष्णाङ्घ्रिसुधया साधु निर्वृतः । तस्यामेव तीव्रेण विवशत्वापादकेन भक्तियोगेन भृशं निमग्नश्च ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल की सुधा से पूर्ण रूप से सराबोर हो गये और तीव्र भक्तियोग के कारण वे उसी में मग्न भी हो कर डूब गये ।।४।।

**पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गो मुञ्चन्मीलद्दृशा शुचः । पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ।।५।।**

**अन्वयः**— पुलकोद्भिन्न सर्वाङ्गः मीलद् दृशा शुचः मुञ्चन् स्नेह प्रसरसम्प्लुतः पूर्णार्थः तेन लक्षितः ।।५।।

**अनुवाद**— उद्धवजी के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो आया था । उनकी मुंदी हुयी आँखों से शोकाश्रु प्रवाहित हो रहा था और प्रेम के प्रवाह में मग्न उद्धवजी को विदुरजी ने कृतकृत्य माना ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

पुलकैरुद्भिन्नान्युज्जृम्भितानि सर्वाण्यङ्गानि यस्य । मीलन्त्या दृशा शुचोऽश्रूणि मुञ्चन् । तेन विदुरेण पूर्णार्थः कृतार्थो लक्षितः । यतो भगवति यः स्नेहस्तस्य प्रसरः पूरस्तस्मिन्संप्लुतो निमग्नः ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

उद्धवजी के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया था । उनकी आँखों से शोकाश्रु प्रवाहित हो रहा था । और श्रीभगवान् के प्रेम के प्रवाह में उद्धवजी मग्न हो गये थे । यह दशा देखकर विदुरजी ने उद्धवजी को कृतार्थ माना ।।५।।

**शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः । विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ।।६।।**

**अन्वयः**— शनकैः भगवल्लोकात् नृलोकं पुनः आगतः नेत्रे विमृज्य उत्स्मयन् उद्धवः विदुरं प्रति आह ।।६।।

**अनुवाद**— धीरे-धीरे भगवान् के लोक से पुनः मनुष्य लोक में आये हुए उद्धवजी ने अपनी आँखों को पोंछकर यदुवंश के संहार आदि श्रीभगवान् के चातुर्य का स्मरण करके आश्चर्यित से होते हुए विदुरजी से कहा ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

भगवानेव लोकस्तस्मात् । नृलोकं देहानुसन्धानम् । उत्स्मयन् । यदुकुलसंहारादिभगवच्चातुर्यस्मरणेन विस्मयं प्राप्नुवन्।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् ही लोक है, उससे धीरे-धीरे उन्हें अपने शरीर का अनुसन्धान होने लगा तो उन्होंने अपने दोनों

आँखों को पोंछा और श्रीभगवान् के द्वारा किए गये यदुवंश के संहार रूपी चातुर्य का स्मरण करके वे आश्चर्यित हो गये और विदुरजी से कहे ॥६॥

उद्धव उवाच

**कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह । किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥७॥**

**अन्वयः**— कृष्णद्युमणि निम्लोचे ह अजगरेण गीर्णेषु गतश्रीषु गृहेषु अहम् किं नु नः कुशलं ब्रूयाम् ॥७॥

**उद्धवजी ने कहा**

**अनुवाद**— श्रीकृष्ण भगवान् रूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर हमारे गृहों को काल रूपी अजगर ने निगल लिया है । इस तरह से श्रीहीन अपने गृह का मैं क्या कुशल बतलाऊँ ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

श्रीकृष्णविरहेण संतप्यमानः प्रत्याह । श्रीकृष्ण एव द्युमणिः सूर्यस्तस्य निम्लोचेऽस्तमये सत्यजगरेण कालमहासर्पेण गीर्णेषु निगिलितेषु नो गृहेषु त्वत्पृष्टानां बन्धूनां किं नु कुशलं ब्रूयाम् ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से संतप्त होते हुए उद्धवजी ने कहा श्रीकृष्ण रूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर हमारे गृहों को काल रूपी महासर्प ने निगल लिया, इस प्रकार के अपने बान्धवों का मैं कौन सा कुशल बतलाऊँ ॥७॥

**दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि । यं संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥८॥**

**अन्वयः**— दुर्भगो बत अयं लोकः यदवः नितराम् अपि ये संवसन्तः हरिं मीना उडुपम् इवं न विदुः ॥८॥

**अनुवाद**— निश्चित रूप से यह लोक अभागा है, यदुवंशी तो उससे भी अधिक भाग्यहीन हैं, क्योंकि वे उनके साथ में निवास करते हुए भी श्रीहरि को उसी तरह से नहीं जान सके जिस तरह क्षीर समुद्र में सदा एक साथ रहने वाली मछलियाँ अमृतमय चन्द्रमा को नहीं जान सकीं ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुशोचन्नाह । दुर्भगो भाग्यहीनः । ये सह संवसन्तोऽपि श्रीहरिरयमिति न विदुः । यथा क्षीरसमुद्रे जातमुडुपं चन्द्रं तदा तत्रत्या मीनाः केवलं कमनीयः कश्चिज्जलचर इत्येवं विदुर्न त्वमृतमय इति तद्वत् । यद्वा जले प्रतिबिम्बितं चन्द्रं यथेति ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

पुनः संताप करते हुए वे कहते हैं कि निश्चित रूप से यह संसार भाग्यहीन है । और यदुवंशी तो सर्वाधिक भाग्यहीन थे जो सदा श्रीहरि के साथ रहते हुए भी श्रीहरि को नहीं जान सके । यह उसी तरह से है जिस तरह क्षीर सागर में उत्पन्न चन्द्रमा को उनके साथ रहने वाली मछलियों ने यही जाना कि यह कोई देखने में सुन्दर लगने वाला जलजन्तु हैं, उन सबों ने चन्द्रमा को अमृतमय नहीं जाना ॥८॥

**इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्वताः । सात्वतामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥९॥**

**अन्वयः**— इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा, एकारामाश्च सर्वे सात्वताः भूतावासम् तं सात्वताम् ऋषकभम् अमंसत ॥९॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के मानसिक भावों को पहचानने वाले, अत्यन्त ज्ञानवान तथा श्रीभगवान् के साथ में ही रहने वाले सभी यादव सम्पूर्ण जगत् के आश्रय भूत श्रीहरि को यदुवंशियों में श्रेष्ठ मात्र ही जाने ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

भाग्यहीनत्वादेव न विदुर्न तु ज्ञानसामग्र्यभावादित्याह । इङ्गितं चित्तस्थं जानन्तीति तथा । पुरु अतिशयेन प्रौढा निपुणाः। एकस्मिन्नेव स्थाने आरमन्तीति तथा । एवंभूता अपि भूतानामावासमीश्वरं सन्तं सात्वतामृषभं सात्वतश्रेष्ठममन्यन्त ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

वे यदुवंशी भाग्यहीन होने के ही कारण श्रीभगवान् को नहीं जान सके ऐसा नहीं था कि उन लोगों को ज्ञान नही था। भगवान् क्या चाहते हैं इस बात को वे जान जाते थे, वे प्रौढज्ञान सम्पन्न थे, तथा श्रीभगवान् के साथ ही रहते भी थे। इस प्रकार का होने पर भी सम्पूर्ण विश्व के आश्रयभूत श्रीभगवान् को उन लोगों ने केवल यदुवंशियों में श्रेष्ठ मात्र जाना ॥९॥

**देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः । भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥१०॥**

**अन्वयः**— देवस्य मायया स्पृष्टाः ये च अन्यद् असदाश्रिताः तद्वाक्यैः आत्मनि हरौ उप्तात्मन तेषां धीः न भ्राम्यते॥१०॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की माया से मोहितबुद्धि वाले यादवगण और श्रीभगवान् से वैर करने वाले शिशुपाल आदि के वाक्यों से भक्तों की बुद्धि इसलिए भ्रमित नहीं होती थी कि वे भगवान् को अपना प्राण मानते थे ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

ये यादवा देवस्य मायया स्पृष्टा व्याप्ता यादवोऽयमस्मद्बन्धुरिति वदन्ति, ये च शिशुपालादयोऽसदेवान्यद्वैरमाश्रिता निन्दन्ति तेषां वाक्यैरात्मनि हरावुप्तात्मनो निक्षिप्तचित्तस्य मादृशस्य बुद्धिर्न भ्राम्यते मोहं न प्राप्यते, अन्ये तु मूढा एवेत्यर्थः ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की माया से मोहित जो यादव थे वे यही जानते थे कि ये हमारे बन्धु हैं शिशुपाल इत्यादि जो थे वे तो दुष्ट थे ही भगवान् से बैर करते थे। ऐसे लोगों के वाक्यों को सुनकर भी जिन लोगों का चित्त सदा श्रीभगवान् में ही लगा रहता था उन मुझ जैसे भक्तों की बुद्धि भ्रमित नहीं होती थी और दूसरे लोग तो अज्ञानी थे ही ॥१०॥

**प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् । आदायान्तरधाद्यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम् ॥११॥**

**अन्वयः**— अतप्ततपसां अवितृप्तदृशां नृणां स्वबिम्बम् प्रदर्श्य, लोकलोचनम् आदाय यस्तु अन्तरधात् ॥११॥

**अनुवाद**— जिन लोगों ने तपस्या नहीं की थी ऐसे लोगों को भी इतने समय तक अपने शरीर का दर्शन कराकर उनकी दृष्टि दर्शन करने से यद्यपि तृप्त नहीं हुयी थीं फिर भी संसार के नेत्रों के लिए दर्शनीय अपने शरीर को भगवान् ने तिरोहित कर लिया ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

कोऽसौ हरिरित्यपेक्षायामाह-प्रदर्श्येति । न तप्तं तपो यैरतोऽवितृप्ता दृशो येषां तेषां स्वबिम्बं श्रीमूर्तिमेतावन्तं कालं दर्शयित्वा योऽन्तर्हितवान् । लोकस्य लोचनमादायाऽऽच्छिद्य । तादृशस्यान्यस्य विलोकनीयस्याभावात् ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न यह है कि श्रीहरि कौन थे ? इसका उत्तर **प्रदर्श्या० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है ( जिन लोगों ने तपस्या नहीं की थी अतएव उनकी दृष्टि भगवान् का दर्शन करने से तृप्त नहीं हो सकी। ऐसे लोगों को भी श्रीभगवान् ने इतने समय तक अपने श्रीविग्रह का दर्शन कराया और उसके पश्चात् संसार के लिए दर्शनीय अपने श्रीविग्रह को अन्तर्धान कर लिए। **लोकलोचनमादाय** का अभिप्राय है कि श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समान कोई भी दूसरी वस्तु दर्शनीय नहीं हैं ॥११॥

**यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।**
**विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— स्वयोगमाया बलं दर्शयता मर्त्यलीलौपयिकं सौभगर्द्धेः परं पदम् स्वस्य च विस्मापनं भूषण भूषणाङ्गम् गृहीतम् ॥१२॥

**अनुवाद**— अपनी योगमाया के बल को प्रदर्शित करने वाले, मानव लीलाओं के लिए योग्य जिस शरीर को श्रीभगवान् ने धारण किया वह अपने सौन्दर्य की पराकाष्ठा के कारण श्रीभगवान् को भी आश्चर्यित कर देता था । श्रीभगवान् के उस शरीर के अङ्ग भूषणों को भी अलंकृत कर देते थे ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेव बिम्बं वर्णयति त्रिभिः । यन्मर्त्यलीलास्वौपयिकं योग्यम् । स्वस्यापि विस्मयजनकम् । यतः सौभगर्द्धेः सौभाग्यातिशयस्य परं पदं पराकाष्ठा । भूषणानां भूषणान्यङ्गानि यस्मिन् ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के उसी शरीर का वर्णन उद्धवजी तीन श्लोकों में करते हैं । श्रीभगवान् का वह श्रीविग्रह मानव लीलाओं को प्रदर्शित करने के लिए उपयोगी था । वह सौन्दर्य की पराकाष्ठा स्वरूप होने के कारण श्रीभगवान् को भी मोहित कर देता था । उस श्रीविग्रह के अङ्ग भूषणों को भी भूषित कर देने का काम करते थे । ऐसे शरीर को श्रीभगवान् ने अपनी योगमाया के बल को प्रदर्शित करने के लिए धारण किया था ।।१२।।

**यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ।**
**कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ।।१३।।**

**अन्वयः**— धर्मसूनोः राजसूये दृक्स्वस्त्ययनं यत् निरीक्ष्य त्रिलोकः इत्यमन्यत यत् विधातुः अर्वाक् सृतौ कौशलम् इह कार्त्स्न्येन गतम् ।।१३।।

**अनुवाद**— महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जिनके नयनाभिराम दिव्यमङ्गल विग्रह को देखकर त्रैलोक्य के लोगों ने यही माना कि भगवान् के शरीर की रचना में ही ब्रह्माजी की मानव सृष्टि की सम्पूर्ण निपुणता समाप्त हो गयी है ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

दृशां स्वस्त्ययनं परमानन्दकरम् । त्रिभुवनस्थो लोकः प्राणिमात्रम् । अद्येदानीमिह बिम्बे । अर्वाक्सृतावर्वाचीनसंसारनिर्माणे मनुष्यनिर्माणे वा यत्कौशलं नैपुणं तत्कार्त्स्न्येन गतमुपक्षीणं नातः परं तस्य कौशलमस्तीत्येवं मेने । तन्मूर्तेर्विधातुः सृज्यत्वाभावेऽपि लोकदृष्टिरियमुक्ता ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् का वह दिव्यमङ्गल विग्रह परमानन्दप्रद था । उस शरीर को देखकर जितने भी मनुष्य थे वे सबके सब लोग यही माने कि इस शरीर की रचना में ही ब्रह्माजी की मानव सृष्टि विषयिणी सारी निपुणता समाप्त हो गयी है । अब ब्रह्माजी की कोई भी मानव शरीर रचना की निपुणता अवशिष्ट नहीं रह गयी है । यद्यपि श्रीभगवान् का वह दिव्य मङ्गल विग्रह ब्रह्माजी के द्वारा सृष्ट नहीं था फिर भी इस श्लोक में संसार की जो दृष्टि थी उसको कहा गया है ।।१३।।

**यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ।**
**व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ।।१४।।**

**अन्वयः**— यस्यानुरागप्लुतहासरास लीलावलोक प्रतिलनब्धमानाः, व्रजस्त्रियः दृग्भिरनुप्रवृत्तधियः किल कृत्यशेषाः अवतस्थुः ।।१४।।

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान् के हास्य विनोद और लीला पूर्वक अवलोकन के द्वारा सम्मान प्राप्त व्रजनारियों की आँखें तथा बुद्धि जाते हुए श्रीभगवान् में ही लग जाती थीं वे घर के सारे कार्यों को भूलकर श्रीभगवान् को ही देखती रह जाती थीं ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

अनुरागेण प्लुतो व्याप्तो हासो रासो विनोदश्च लीलावलोकश्च तैः स्वकृतहासाद्यनन्तरं प्रतिलब्धो मानो याभिस्ताः । दृग्भिः सह अनुप्रवृत्ता गच्छन्तं तमेवानुगता धियो यासां ताः । कृत्ये शेषो यासां ताः असमापितकृत्या एव तस्थुः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

अनुराग से परिपूर्ण हास विनोद और लीलापूर्वक अवलोकन के द्वारा सम्मानित व्रजबालाओं की आँखें तथा बुद्धि जाते हुए श्रीकृष्ण में लग जाती थीं तो वे उनको देखती ही रह जाती थीं और करने के लिए बचे हुए कार्य बिना किए हुए ही पड़े रह जाते थे ॥१४॥

**स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ।**
**परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्यथाऽग्निः ॥१५॥**

**अन्वयः**— स्वशान्तरूपेषु इतरैः पीड्यमानेषु अनुकम्पितात्मा अजोऽपि परावरेशः महदंशयुक्तः भगवान् अग्निः यथा जातः ॥१५॥

**अनुवाद**— अपने शान्तरूप महात्माओं के अपने ही घोर रूप असुरों द्वारा सताये जाने पर भगवान् करुणा से द्रवित होकर अजन्मा हाने पर भी अपने अंश से बलरामजी के साथ उसी तरह से प्रकट हो गये जिस तरह काष्ठ से अग्नि प्रकट होती है ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

एवंभूतबिम्बदर्शने कारणमाह । स्वीयान्येव शान्तान्यशान्तानि च रूपाणि । तत्र शान्तरूपेषु इतरैः । पीड्यमानेष्वनुकम्पितः कृतानुकम्प आत्मा यस्य । अजोऽपि जात अविर्भूतः । महाभूतरूपेण नित्यसिद्ध एवाग्निर्यथा काष्ठेष्वाविर्भवति तद्वत् । अजस्य जन्मनि हेतुः- महान्महत्त्वमंशः कार्यलेशो यस्याव्यक्तस्य तन्महदंशं तद्युक्त इति ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा अपने शरीर को प्रकट करने के कारण को बतलाते हुए उद्धवजी कहते हैं— श्रीभगवान् के दो रूप हैं शान्त और अशान्त । महात्मागण भगवान् के शान्त रूप हैं और असुर इत्यादि भगवान् के अशान्त रूप हैं । जब असुर महात्माओं को सताने लगते हैं तो उसे देखकर श्रीभगवान् दया से द्रवित हो जाते हैं । और अजन्मा भी होकर वे जन्म लेते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण भी इसीतरह बलरामजी के साथ प्रकट हुए । जिस तरह महाभूतों में अग्नि एक है और वह नित्यसिद्ध है किन्तु वह जैसे काष्ठ से उत्पन्न हो जाती है । उसी तरह श्रीभगवान् भी अपने महदंश से युक्त होकर बलराम जी के साथ प्रकट हुए वे परावरेश हैं ॥१५॥

**मां खेदयत्येतदजस्य जन्मविडम्बनं यद्वसुदेवगेहे ।**
**व्रजे स वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदनन्तवीर्यः ॥१६॥**

**अन्वयः**— वसुदेवगेहे अजस्य जन्मविडम्बनम्, अरिभयादिव व्रजे च वासः, स्वयम् अनन्तवीर्यः पुरात् यद् व्यवात्सीत् एतत् मां खेदयति ॥१६॥

**अनुवाद**— अजन्मा होकर भी वसुदेवजी के गृह में जन्म लेने की लीला करना, कंस नामक शत्रु के भय से व्रज में जाकर छिपे रहना, तथा स्वयम् अनन्त पराक्रम संपन्न होने पर भी कालयवन आदि के भय से अपनी नगरी मथुरा से भागकर उनका द्वारका में जाकर निवास करना, श्रीभगवान् की ये लीलायें जो हैं उनको सोचकर मैं भी बेचैन हो जाता हूँ ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

ननु कुतोऽसौ परावराणामीशः पारतन्त्रप्रतीतेस्तत्राह द्वाभ्याम् । मामप्येतदुर्वितर्क्यं दुर्घटं च खेदयति, तदेवाह । वसुदेवगेहे बन्धनागारे यज्जन्मनो विडम्बनमनुकरणं, नतु नृसिंहवदकस्मादाविर्भावः । कंसभयादिव निलीय व्रजे वासश्च । कालयवनादिरिपुभयादिव पुरान्मथुराया व्यवात्सीदपलायत ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि उनमें भी परतन्त्रता की प्रतीति होती है, वे सबों के स्वामी (पुरावरेश) कैसे हो सकते हैं ? तो उसका उत्तर उद्धवजी दो श्लोकों से देते हैं । वे कहते हैं कि मुझको भी ये सारी बातें दुर्घट तथा दुर्वितर्क्य प्रतीत होती हैं । उसे सोचकर मैं भी खिन्न हो जाता हूँ । भगवान् श्रीकृष्ण ने जो वसुदेवजी के यहाँ बन्धनागार में मानव जन्म की लीला किया, वे नृसिंह इत्यादि के समान अकस्मात् प्रकट नहीं हुए । वे मानों कंस के भय से छिपकर व्रज में निवास किए । कालयवन इत्यादि शत्रुओं के भय से मानो मथुरा से भागकर द्वारका में चले गये । उनकी ये सारी लीलायें याद आकर मुझे भी बेचैन बना देती हैं ।।१६।।

**दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः ।**
**ताताम्ब कंसादुरुशङ्कितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ।।१७।।**

**अन्वयः**— यत् पित्रोः पादावभिवन्द्यआह ताताम्ब कंसादुरुशंकितानां अकृत निष्कृतीनाम् प्रसीदतम् ।।१७।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् ने अपने माता-पिता देवकी और वसुदेवजी के दोनों चरणों की वन्दना करके यह जो कहा कि हे पिताजी ! हे मां ! कंस के अत्यधिक भय के कारण हमलोग आपकी कोई भी सेवा नहीं कर सके इसके लिए आप हमलोगों को क्षमा कर दें और प्रसन्न हो जायँ । इन सारी बातों को स्मरण करके मुझे भी अत्यन्त व्यथा होती हैं ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

एतच्च हरेश्चरितं स्मरतो मम चेतः कर्मभूतं दुनोति व्यथयति । तदेव दर्शयति-यदाहेति । हे तात, हे अम्ब, युवां प्रसीदतं प्रसादं कुरुतम् । न कृता निष्कृतिः शुश्रूषणं यैस्तेषाम् । नोऽस्माकमिति बहुवचनं तु रामाद्यभिप्रायम् ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के इस चरितको भी याद करके मेरे अन्तःकरण में व्यथा होती है । श्रीभगवान् के उस चरित को बतलाते हुए उद्धवजी ने कहा— भगवान् ने यह जो कहा— हे तात ! हे अम्ब ! आप दोनों हमलोगों पर प्रसन्न हो जायँ । क्योंकि हमलोगों ने कंस के भय से आप दोनों की कोई सेवा नहीं की है । **नः** यह बहुवचनान्त प्रयोग बलरामजी आदि के अभिप्राय से किया गया है ।।१७।।

**को वा अमुष्याङ्घ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान्विजिघ्रन् ।**
**यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ।।१८।।**

**अन्वयः**— यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन कृतान्तेन भूमेः भारं तिरश्चकार अमुष्याङ्घ्रि सरोजरेणुं विजिघ्रन् को वा पुमान् विस्मर्तुमीशीत ।।११।।

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान् ने अपने काल स्वरूप भ्रुकुटि बिलास के द्वारा पृथिवी के भार को विनष्ट कर दिया। उन श्रीभगवान् के चरण कमल के पराग का सेवन करने वाला कौन ऐसा पुरुष होगा जो उसको भूल जाय ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

ननु तर्ह्यनीश्वर एव किं न स्यात्, तव तु श्रद्धामात्रमेतत्तत्राह त्रिभिः । को वा अङ्घ्रिसरोजयोर्यो रेणुस्तमपि विजिघ्रन् सेवमानः पुमान्विस्मर्तुमीशीत शक्नुयात् । विस्फुरन् भ्रूविटपो भ्रूलता स एव कृतान्तस्तेन ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि ऐसी स्थिति है तो उनको अनीश्वर ही क्यों न मान लिया जाय, आप तो अपनी श्रद्धा के कारण उनको ईश्वर मानते हैं। तो इसका उत्तर उद्धवजी तीन श्लोको से देते हैं। जिन श्रीभगवान् ने अपने कालस्वरूप भ्रुकुटि के विलास मात्र से पृथिवी के भार को दूर कर दिया उन श्रीभगवान् के चरण कमल के पराग का सेवन करने वाला कौन ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो उसे भूल जाय ॥१८॥

**दृष्टा भवाद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ।**
**यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥१९॥**

**अन्वयः**— भवद्भिः ननु राजसूये कृष्णं द्विषतोऽपि चैद्यस्य सिद्धिः दृष्टा। यां योगिनः सम्यग्योगेन संस्पृहयन्ति तद् विरहं कः सहेत ॥१९॥

**अनुवाद**— आप लोगों ने भी राजसूय यज्ञ में देखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाले शिशुपाल को भी वह मुक्ति मिल गयी, जिस मुक्ति को योगिजन अपनी योगसाधना के द्वारा प्राप्त करने की कामना करते हैं ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के विरह को कौन सह सकता है ?॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

न च तस्येश्वरत्वं साधनीयं, भवद्भिरपि दृष्टत्वादित्याह-दृष्टेति। यां सिद्धिं सम्यग्योगेन प्राप्तुमिच्छन्ति ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण के भगवत्व की सिद्धि करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। आपलोगों ने भी उनके भगवत्व को राजसूय यज्ञ में देखा है। शिशुपाल को जो सिद्धि मिली उस सिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा योगिजन भी किया करते हैं ॥१९॥

**तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविन्दम् ।**
**नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥२०॥**

**अन्वयः**— तथैव अन्ये ये नरलोकवीरा आहवे नेत्रैः नयनाभिरामं कृष्णमुखारविन्दम् पिबन्तः पार्थास्त्रपूताः सन्तः अस्य पदमापुः ॥२०॥

**अनुवाद**— उसी तरह महाभारत युद्ध में जो दूसरे मानव वीर अपने नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द का दर्शन करते हुए अर्जुन के अस्त्रों से पवित्र होकर मारे गये वे भी श्रीकृष्ण के धाम में चले गये ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

आहवे युद्धे पार्थस्यास्त्रैः पूताः निष्पापाः सन्तः ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

महाभारत युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करते हुए जो प्रख्यात वीर अर्जुन के अस्त्रों के संप्रयोग के कारण पवित्र होकर मारे गये वे भी भगवान् के लोक में ही गये ॥२०॥

**स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ।**
**बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥२१॥**

**अन्वयः**— स्वयं तु असाम्यातिशयः त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः, चिरलोकपालैः बलिं हरद्भिः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥२१॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् स्वयम् ऐसे हैं कि उनके समान ही कोई नहीं है तो उनसे बढ़कर कहाँ से कोई होगा। वे त्रिलोकी के स्वामी हैं । वे अपने ऐश्वर्य लक्ष्मी से ही अवाप्तसमस्तकाम हैं । इन्द्र आदि असंख्य लोकपाल अनेक प्रकार के उपहारों को उनको प्रदान करके अपने मुकुटों के अग्रभाग से श्रीभगवान् की चरण चौकी को प्रणाम करते हैं ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं परमैश्वर्ये सत्यपि यदुग्रसेनानुवर्तित्वं तत्पुनरस्मानत्यन्तं व्यथयतीत्याह । स्वयं तु य एवंभूतस्तस्य तत्कैङ्कर्यं नोऽस्मान् विग्लापयतीत्युत्तरेणान्वयः । न साम्यातिशयौ यस्य । यमपेक्ष्यान्यस्य साम्यमतिशयश्च नास्तीत्यर्थः । तत्र हेतवः- त्र्यधीशस्त्रयाणां पुरुषाणां लोकानां गुणानां वा ईशः । स्वराज्यलक्ष्म्या परमानन्दस्वरूपसंपत्त्यैव प्राप्तसमस्तभोगः । बलिं करमर्हणं वा हरद्भिः समर्पयद्भिश्चिरकालीनैर्लोकपालैः किरीटाग्रेणेडितं स्तुतं पादपीठं यस्य । प्रणमतां किरीटसंघट्टनध्वनिरेव स्तुतित्वेनोत्प्रेक्ष्यते ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

उद्धवजी कहते है कि इस प्रकार के ऐश्वर्य से स्वयं सम्पन्न होने पर भी भगवान् उग्रसेन इत्यादि की आज्ञा का जो पालन करते थे उसको सोचकर हमलोगों को अत्यन्त कष्ट होता है । जो भगवान् इस प्रकार के ऐश्वर्य सम्पन्न थे उनका उग्रसेन आदि की आज्ञा का पालक होना हमलोगों को दुःखी बनाता है, इस तरह से बाइसवें श्लोक के साथ इसका अन्वय है । भगवान् से न तो किसी की समता हो सकती है और उनसे किसी की अधिकता हो सकती है इसके कारण इस प्रकार से हैं वे तीनों प्रकार के पुरुषों (बद्ध, मुक्त एवं नित्य) या तीनों लोकों (भूर्भुवः स्वः) तीनों गुणों (सत्त्व, रजस् एवं तमस्) के स्वामी हैं श्रीभगवान् । परमानन्द स्वरूप सम्पत्ति के द्वारा ही वे समस्त भोगों को प्राप्त कर लिए हैं तथा इन्द्रादि लोकपालों द्वारा कर प्रदान किए जाने तथा उनके मुकुटों के अग्रभाग से भगवान् की चरण चौकी को नमस्कार किए जाने से भगवान् परमैश्वर्य सम्पन्न हैं ॥२१॥

**तत्तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान्नो विग्लापयत्यङ्ग यदुग्रसेनम् ।**
**तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥२२॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग ! परमेष्ठिधिष्ण्य निष्ण्णम् उग्रसेनं तिष्ठन् देव निधारय यत् न्यवोधयत् तस्य अलं कैङ्कर्यम् तत् नः भृतान् विग्लापयति ॥२२॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी राजसिंहासन पर बैठे हुए उग्रसेन के समक्ष जाकर जो भगवान् उनसे प्रार्थना करते थे कि महाराज आप हमारी प्रार्थना सुनें उनके इस सेवाभाव की याद आने पर हम भगवद् भक्तों को कष्ट होता है ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

अङ्ग विदुर । भृतान् भृत्यान् । उग्रसेने यत्किंकरत्वं तदेवाह । परमेष्ठिधिष्ण्ये राजासने निषण्णमासीनं स्वयं तिष्ठन् हे देव, निधारयावधरयेति न्यबोधयद्विज्ञापितवान् ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी भगवान् की उग्रसेन के विषय में जो उनकी किंकरत्व की भावना थी वह हम भगवद् भक्तों को व्यथित करती है । उग्रसेन राजसिंहासन पर जब बैठे थे उस समय उनके सामने खड़े होकर भगवान् ने जो प्रार्थना किया उसको सोचकर कष्ट होता है ॥२२॥

**अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ।**
**लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ।।२३।।**

**अन्वयः**— अहो इयं असाध्वी बकी जिघांसया स्तनकालकूटम् अपाययत् । सा च धात्र्युचितां गतिं लेभे कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ।।२३।।

**अनुवाद**— दुष्टा पूतना श्रीभगवान् को मार डालने की इच्छा से अपने स्तन में कालकूट भरकर उनको पिलायी थी उसको भी श्रीभगवान् ने धाय के लिए उचित गति प्रदान की; ऐसे दयालु भगवान् श्रीकृष्ण के छोड़कर मैं किस दयालु की शरणागति करूँ ।।२३।।

**भावार्थ दीपिका**

एवमनुवृत्तिः कृपयैवेति सूचयन्नपकारिष्वपि तस्य कृपालुतां दर्शयन्नाह । अहो आश्चर्यं कृपालुतायाः । हन्तुमिच्छयापि स्तनयोः संभृतं कालकूटं विषं यमपाययत् । बकी पूतना असाध्वी दुष्टापि धात्र्या यशोदाया उचितां गतिं लेभे । भक्तवेषमात्रेण यः सद्गतिं दत्तवानित्यर्थः । ततोऽन्यं कं वा भजेम ।।२३।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की कृपा के ही कारण भगवान् की अनुवृत्ति को सूचित करते हुए अब यह बतलाते हैं कि भगवान् अपने अपकारी जीवों पर भी कृपा प्रदर्शिति करते हैं । अहो ! इस अव्यय के द्वारा श्रीभगवान् की कृपालुता पर आश्चर्य व्यक्त किया गया है । पूतना ने तो कालकूट विष से भरे हुए अपने स्तनों को भगवान् को मार देने की इच्छा से पिलायी थी उस दुष्टा पूतना को भगवान् ने वह गति प्रदान किया जो गति उनकी माता यशोदा को मिलना चाहिए । पूतना को भक्त का केवला वेष बनाने के कारण सद्गति प्रदान किया । ऐसे श्रीभगवान् को छोड़कर किस दूसरे की हमलोग सेवा करें ।।२३।।

**मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ।**
**ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसेसुनाभायुधमापतन्तम् ।।२४।।**

**अन्वयः**— अहं असुरान् भागवतान् मन्ये त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्ट चित्तान् ये संयुगे सुनाभायुधम् आपतन्तम् तार्क्ष्य पुत्रम् आचक्षत ।।२४।।

**अनुवाद**— मैं असुरों को भगवान् का भक्त मानता हूँ, क्योंकि वैरभाव के कारण उनका चित्त त्रैलोक्याधिपति श्रीभगवान् में लगा रहता था । उन सबों को सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण को अपने कन्धें पर चढ़ाकर आक्रमण करते हुए गरुड़ का दर्शन हुआ करता था ।।२४।।

**भावार्थ दीपिका**

ननु भागवतानेव भगवाननुगृह्णातीति प्रसिद्धम्, सत्यम्, असुरानप्यहं भागवतानेव मन्ये, यतो भागवता इव तेऽपि भगवद्ध्यानाभिनिवेशेन भवन्तमपरोक्षं पश्यन्तीत्याह । संरम्भः क्रोधावेशस्तेन मार्गेणाभिनिविष्टं चित्तं येषां तान् । अतएव ये संग्रामे तार्क्ष्यः कश्यपस्तस्य पुत्रं गरुडमंसे स्कन्धे सुनाभायुधश्चक्रायुधोऽरिर्यस्य तमचक्षतापश्यन् । तस्मात्तेष्वप्यनुग्रहो युक्त एवेत्यर्थः । वक्ष्यति च '**तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्**' इति ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई यह कहे कि यह प्रसिद्ध है कि श्रीभगवान् अपने भक्तों पर ही कृपा करते हैं तो यह कहना ठीक ही है । मैं तो असुरों को भी भगवद् भक्त ही मानता हूँ । क्योंकि उन सबों का भी भागवतों के ही समान श्रीभगवान् में अभिनिवेश वशात् ध्यान लगा रहता था । और वे भी भगवान् का साक्षात्कार करते थे । उन सबों का बैरभाव

के कारण क्रोधावेश वशात् भगवान् में मन लगा रहता था। अतएव वे भी युद्ध में तार्क्ष्य (महर्षि कश्यप) के पुत्र गरुड के कन्धे पर बैठे हुए सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करते थे। इसीलिए भगवान् का उन सबों पर कृपा करना उचित ही था। इसलिए कहेंगे भी- **तस्मात् केनाप्युपायेन** किसी भी साधन के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में मन को लगाना चाहिए ॥२४॥

**वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने । चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥२५॥**

**अन्वयः**— अजेन अभियाचितः अस्यश्शम् चिकीर्षुः भोजेन्द्रबन्धने वासुदेवस्य देवक्यां जातः ॥२५॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के प्रर्थना करने पर पृथिवी का भार उतारने की इच्छा से श्रीभगवान् कंस के कारागार में देवकी के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र के रूप में अवतार ग्रहण किए ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

इदानीं तस्यान्तर्धानप्रकारं वक्तुमादित आरभ्य तच्चरितं संक्षेपतः कथयति । वसुदेवस्य भार्यायां जातः । भोजेन्द्रः कंसस्तस्य बन्धनागारे । अस्याः पृथिव्याः शं सुखं स्वयं चिकीर्षुः । अजेन ब्रह्मणा च याचितः सन् ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के तिरोधन प्रकार को बतलाने के लिए प्रारम्भ से ही श्रीभगवान् के चरित का संक्षेप से वर्णन करते हुए उद्धवजी कहते हैं- श्रीभगवान् वसुदेवजी की पत्नी देवकीजी के गर्भ से जन्म लिए। वे कंस के कैदखाने में जन्म लिए। इस पृथ्वी का स्वयं कल्याण करने के लिए उत्पन्न हुए। किञ्च वे ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर जन्म लिए ॥२५॥

**ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्विबिभ्यता । एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥२६॥**

**अन्वयः**— ततः इतः कंसाद्विभ्यता पित्रा, नन्दव्रजम् गतः, तत्र गूढार्चिः एकादशसमाः सबलः अवसत् ॥२६॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् कंस से भयभीत पिता के द्वारा वे नन्दव्रज से चले गये। वहाँ पर छिपे हुए तेजः से सम्पन्न वे बलरामजी के साथ रहे ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

पित्रा हेतुभूतेन नन्दव्रजमितो गतः। समाः संवत्सरान्। गूढार्चिर्गुप्ततेजाः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी कंस से बहुत डरते थे। उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् को नन्द्रव्रज में पहुँचा दिया और वहाँ पर छिपे हुए तेज से युक्त वे बलरामजी के साथ ग्यारह वर्षों तक निवास किए ॥२६॥

**परीतो वत्सपैर्वत्सां श्चारयन्व्यहरद्विभुः । यमुनापवने कूजदि्द्वजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥२७॥**

**अन्वयः**— तत्र वत्सपैः परीतः विभुः वत्सान् चारयन् कूजदि्द्वजसंकुलिताङ्घ्रिपे यमुनोपवने व्यहरत् ॥२७॥

**अनुवाद**— वहाँ पर बछड़ों को चराने वाले ग्वाल बालों से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण बछड़ो को चराते हुए कलरव करने वाले पछियों से व्याप्त वृक्षों वाले यमुना के उपवन में बिहार किए ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यहरदक्रीडत्। कूजद्भिर्द्विजैः पक्षिभिः संकुलिता व्याप्ता अङ्घ्रिपा यस्मिन् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

नन्द्रव्रज में गौओं के बछड़ो को चराने वाले ग्वाल बालों के साथ श्रीभगवान् बछड़ों को चराते हुए कलरव करने वाले पक्षियों से व्याप्त वृक्षों से युक्त यमुना के उपवन में क्रीड़ा करते रहे ॥२७॥

**कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् । रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥२८॥**

**अन्वयः**— रुदन्निव, हसन्, मुग्धबालसिंहावलोकनः व्रजौकसाम् प्रेक्षणीयां कौमारीं चेष्टां दर्शयन् ॥२८॥

**अनुवाद**— रोते हुए, हंसते हुए तथा बाल सिंह के समान देखते हुए वे व्रजवासियों को आकर्षित करने वाली बाल सुलभ चेष्टाओं को करते हुए वहाँ ग्यारह वर्षों तक निवास किए ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

रुदन्निवेतीवशब्दस्य यथायोगं सर्वत्राप्यन्वयः । मुग्धो बालश्च यः सिंहस्तद्वदवलोकनं यस्य सः ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

रुदन्निव में जो इव शब्द है उसका अन्वय सर्वत्र करना चाहिए । अर्थात् रोते हुए के समान, हंसते हुए के समान तथा बाल सिंह के समान मनोहर ढंग से देखते हुए के समान वे नन्दव्रज में व्रजवासियों को आकृष्ट करने वाली बालसुलभ चेष्टाओं को दिखाते रहे ॥२८॥

**स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् । चारयन्ननुगान्गोपान्रणद्वेणुररीरमत् ॥२९॥**

**अन्वयः**— स एव लक्ष्म्या निकेतं गोधनं सितगोवृषं चारयन् रणद्वेणुः अनुगानगोपान् अरीरमत् ॥२९॥

**अनुवाद**— कुछ बड़े होने पर वे शोभारूपी सम्पत्ति से तथा श्वेत गोवृष (सांड़) से युक्त गौओं को चराते हुए अपनी बाँसुरीं बजाते हुए अपने साथ के गोपों को आनन्दित करते थे ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

स एवाधिकं वयः प्राप्तः सन् गोधनं चारयन् । कथंभूतं गोधनम् । लक्ष्म्याः शोभादिसंपदो निकेतनम् । सिता गोवृषायस्मिन्नानावर्णे गोसङ्घे । रणन् शब्दं कुवन्वेणुर्यस्य । अरीरमद्रमयामास ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

वे ही भगवान् जब कुछ, बड़े हुए तो अनेक रङ्गों की शोभा से सम्पन्न एवं श्वेत सांडों से युक्त गौओं को चराने लगे और वे अपनी बांसुरी बजाकर अपने साथ रहने वाली गौओं के चरवाहों को आनन्दित करने लगे ॥२९॥

**प्रयुक्तान्भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः । लीलया व्यनुदत्तांस्तान्बालः क्रीडनकानिव ॥३०॥**

**अन्वयः**— भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः प्रयुक्तान् राक्षसान् बालः क्रीडनकानि इव लीलया व्यनुदत् ॥३०॥

**अनुवाद**— राजा कंस के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को मार डालने के लिए भेजे गये मायावी तथा अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले राक्षसों को उन्होंने लीला पूर्वक उसी तरह से मार दिया जिस तरह से कोई बालक खिलौनों को तोड़ देता है ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

व्यनुदज्जघान । क्रीडनकांस्तृणादिनिर्मितान्सिंहादीन्यथा ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

व्यनुदत् पद का अर्थ है मार दिया । अर्थात् जिस तरह से कोई बालक तृण इत्यादि के द्वारा निर्मित सिंहादि को खेल-खेल में तोड़ देता है, उसी तरह से कंस के द्वारा भेजे गये मायावी तथा अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले राक्षसों को खेल-खेल में ही मार दिए ॥३०॥

**विपन्नान्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् । उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— भुजगाधिपम् निगृह्य विषपानेन विपन्नान् उत्थाप्य गावः प्रकृतिस्थितम् तोयं अपाययत् ॥३१॥

**अनुवाद**— सर्पों के स्वामी कालिय नाग का दमन करके श्रीभगवान् ने विषैले पानी के पीने से मरे हुए ग्वाल बालों तथा गौओं को शुद्ध पानी पिलाया ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

विपन्नान्मृतान्गोपान्गाव इति गाश्चोत्थाप्य तदेव तोयं । प्रकृतिस्थितं निर्विषम् ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

मरे हुए गोपों और गौओं को भगवान् ने जीवित कर दिया और उस कालियदह के शुद्ध जल को पिलाया ॥३१॥

**अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः । वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययं विभुः ॥३२॥**

**अन्वयः**— विभुः उरुभारस्य वित्तस्य सद्व्ययं चिकीर्षन् गोपराज द्विजोत्तमैः गोसवेन अयाजयत् ॥३२॥

**अनुवाद**— बहुत अधिक बढ़े हुए धन सम्पत्ति का सद् व्यय करने के इच्छुक श्रीभगवान् ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा गोपराज से गोसव नामक यज्ञ कराया ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

इन्द्रपूजाभङ्गेन कृता गवां पूजैव गोसवस्तेन । गोपराजं नन्दम् । वित्तस्य चेति चकारादिन्द्रस्य मानभङ्गं कुर्वन् उरुभारस्याऽतिसमृद्धस्य ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

इन्द्र की पूजा को रोकवाकर श्रीभगवान् ने जो गौओं की पूजा करवायी वह पूजा ही गोसव है । गोपराज शब्द से नन्दजी को कहा गया है । **वित्तस्य च** के च के द्वारा इन्द्र का मान भङ्ग सूचित है । अर्थात् उस धन के द्वारा यज्ञ कराकर श्रीभगवान् ने नन्दजी के धन का सदुपयोग कराया और उसके साथ इन्द्र के धमण्ड को चूर किया । **उरुभार** शब्द अत्यन्त समृद्धि का बोधक है ॥३२॥

**वर्षतीन्द्र व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः । गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥३३॥**

**अन्वयः**— हे भद्र ! भाग्नमाने इन्द्रे कोपाद् वर्षति अतिविह्वलः व्रजः गोत्रलीलातपत्रेण अनुगृह्णता त्रातः ॥३३॥

**अनुवाद**— हे भद्र !मान के भङ्ग हो जाने के कारण क्रुद्ध होकर इन्द्र जब मुसलाधार वर्षा व्रज में करने लगे तो सभी व्रजवासी घबरा गये उस समय उन सबों पर कृपा करके भगवान् ने गोवर्धन पर्वत रूपी छातें के द्वारा रक्षा की ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

कोपाद्वर्षति । गोत्रः पर्वत एव लीलातपत्रं तेन । हे भद्र ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

मानभंग हो जाने के कारण क्रुद्ध होकर जब इन्द्र घन-घोर वर्षा करने लगे उस समय गोवर्धन पर्वत रूपी लीलापत्र के द्वारा भगवान् ने सबों की रक्षा की । भद्र शब्द से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है ॥३३॥

**शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन्रजनीमुखम् । गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥३४।**

इति श्रीमद्भागवत् महापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

**अन्वयः**— शरच्छशिकरैः मृष्टं रजनीमुखम् मानयन् स्त्रीणां मण्डलमण्डनः कलपदं गायन् रेमे ।।३४।।

**अनुवाद**— शरत् कालीन चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित संध्या का सम्मान करते हुए स्त्रियों के समूह को अलंकृत करने वाले श्रीभगवान् मनोहर गीत गाते हुए उस चाँदनी रात में रास विहार किए ।।३४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।**

**भावार्थ दीपिका**

मृष्टमुज्ज्वलम् । स्त्रीणां मण्डलं मण्डयतीति तथा ।।३४।।

**इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।**

**भाव प्रकाशिका**

**मृष्ट** शब्द का अर्थ प्रकाशित है । श्रीभगवान् गोपियों के समूह को अलंकृत करने वाले थे । इस प्रकार के श्रीभगवान् ने शरत् की चन्द्रमा से प्रकाशित सन्ध्या को देखकर उसके सम्मान में स्त्रियों के समूह को अलंकृत करते हुए तथा मनोहर गीत गाते हुए रासलीला किए ।।३४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुआ ।।२।।**

## तृतीय अध्याय

### श्रीभगवान् के दूसरे चरित्रों का वर्णन

उद्धव उवाच

**ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ।**
**निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥१॥**

**अन्वयः**— ततः सः स्वपित्रोः शंचिकीर्षुः पुरं आगत्य रिपुयूथनाथं तुङ्गात् निपात्य व्यसुं हतं ओजसा उर्व्याम् व्यकर्षत्॥१॥

**उद्धवजी ने कहा**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् अपने माता-पिता देवकीजी तथा वसुदेवजी का कल्याण करने के लिए भगवान् मथुरापुरी में आये और उन्नत सिंहासन पर बैठे हुए शत्रुसमूह के स्वामी कंस को पटककर मरे हुए कंस की लाश को बड़े जोर से भगवान् घसीटे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

तृतीये मथुरामेत्य व्रजात्कंसवधादिकम् । यत्कृतं द्वारकायां च कृष्णेन तदवर्णयत् ॥१॥ शमित्यव्यम् । पित्रोः सुखस्य चिकीर्षयेत्यर्थः । तुङ्गाद्राजमञ्चात् । रिपुयूथानां नाथं कंसम् । व्यसोरपि विकर्षणं पित्रोः सुखार्थम् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

व्रज से मथुरा आकर भगवान् ने जो कंस के वध आदि का कार्य किया तथा उन्होंने द्वारका में जिन कार्यों को किया उन सबों का वर्णन तीसरे अध्याय में किया गया है ॥१॥ **शमित्यादि** शम् यह अव्यय पद है । अपने

माता-पिता को सुख प्रदान करने की इच्छा से भगवान् बलरामजी के साथ मथुरा आये तथा ऊँचे राजमञ्च से कंस को पटक कर मरे हुए भी कंस को अपने पिता को प्रसन्न करने के लिए घसीटे ॥१॥

**सांदीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् । तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥२॥**

**अन्वयः**— सांदीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्म सविस्तरमधीत्य तस्मै मृतं पुत्रं पञ्चजनोदरात् वरं प्रादात् ॥२॥

**अनुवाद**— सांदपनि मुनि के द्वारा एक बार उच्चारण किये गये साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन करके दक्षिणा के रूप में उनके मरे हुए पुत्र को पञ्चजन नामक राक्षस के पेट से (यमपुरी) से लाकर प्रदान किए ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

ब्रह्म वेदम् । सविस्तरं षडङ्गादिसहितम् । पञ्चजनोदरविदारणद्वारा पुत्रमानीयेत्यर्थः ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

**ब्रह्म** शब्द वेद का वाचक है । **सविस्तरम्** का अर्थ है अङ्गों और उपाङ्गों के साथ । श्रीभगवान् संदीपनि मुनि के द्वारा एक बार उच्चारण किए गये साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन किए और दक्षिणा के रूप में उनके मरे हुए पुत्र को पञ्चजन नामक राक्षस के पेट को फाड़कर उसको निकाल कर यमपुरी से लाये और अपने गुरु को प्रदान किए ॥२॥

**समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ।**
**गान्धर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ॥३॥**

**अन्वयः**— भीष्मकन्यया समहुताः श्रियः सवर्णेन गान्धर्ववृत्या बुभूषया एषां मिषतां मूर्ध्नि पदं दधत् सुपर्णः स्वभागं जह्रे ॥३॥

**अनुवाद**— भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी अथवा रुक्मी के द्वारा बुलाये गये गान्धर्व विधि से लक्ष्मीजी के समान रूप वाली रुक्मिणी का पति होने की इच्छा से आये हुए समस्त शिशुपाल आदि के सामने ही रुक्मिणीजी का उसी तरह से श्रीभगवान् हरण कर लिए जिस तरह गरुड़ अमृत कलश को ले आये थे ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

भीष्मककन्यया रुक्मिण्या ये राजानः समाहूताः । ह्रस्वमार्षम् । **समाह्नता** इति पाठे आकृष्टा इत्यर्थः । केन साधनेन। श्रियो लक्ष्म्याः सवर्णेन समानेन रूपेण । यद्यपि तया केवलं श्रीकृष्ण एवाहूतो न सर्वे, तथापि लावण्यं तेषामागमने हेतुरिति तयैवाहूता इत्युच्यते । एषां मिषतां पश्यतां मूर्ध्नि पदं दधत् । तया सह गान्धर्ववृत्त्या परस्परसमयरूपया बुभूषया भवितुमिच्छया जहार । कथंभूताम् । स्वभागं लक्ष्म्यंशत्वात् । तया स्वात्मनोऽर्पितत्वाच्च । सुपर्णः सुपतनः । यद्वा सुपर्ण इव स्वभागं सुधामित्यर्थः । यद्वा श्रियो रुक्मिण्याः समानं वर्णद्वयं वाचकं यस्य स श्रियः सवर्णो रुक्मी तेन समाहूताः शिशुपालादयः । किमर्थम् । भीष्मककन्यया सह तेषां बुभूषया भूतिर्भवत्वित्येतदर्थम् । तत्र शिशुपालस्याह्वानं वरत्वेन बुभूषया, जरासन्धादीनां तद्विवाहोत्सवेन । शेषं पूर्ववत् ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

भीष्मक की पुत्री रुक्मिणीजी के द्वारा आहूत जो राजा थे । समाहुत मे ह्रस्व आर्ष प्रयोग के कारण है । जहाँ पर समाह्नत पाठ है वहाँ आकृष्ट अर्थ होगा । सबों को बुलाने का साधन रुक्मिणीजी का लक्ष्मीजी के समान रूप था । यद्यपि रुक्मिणीजी ने तो केवल भगवान् श्रीकृष्ण को ही बुलाया था किन्तु सभी राजाओं के आगमन का कारण रुक्मिणीजी का आकर्षक रूप था । इसीलिए रुक्मिणीजी के द्वारा आहूत कहा गया है । उन सबों के सामने ही सबों के शिर पर पैर रखकर भगवान् ने गान्धर्व विधि को अपनाकर बना लेने की इच्छा से हरण कर

लिया । रुक्मिणीजी लक्ष्मीजी के अंश थी अतएव वे उनका ही भाग थीं । और रुक्मिणीजी ने अपने को भगवान् को समर्पित कर दिया था सुपर्ण शब्द का अर्थ है सुन्दर रूप से आक्रमण करने वाले । अथवा जिस तरह से गरुड़ ने अपने भाग अमृत कलश का अपहरण कर लिया था उसी तरह से भगवान् ने रुक्मिणीजी का अपहरण कर लिया । अथवा **श्रियः सवर्णेन समाहूताः** का अर्थ है लक्ष्मीजी के ही समान दो वर्णों के नाम वाले रुक्मी के द्वारा शिशुपाल इत्यादि इसलिए बुलाये गये थे कि उन सबों का रुक्मिणीजी के साथ विवाह हो । शिशुपाल को रुक्मी न वर बनाने के लिए बुलाया था और जरासन्ध इत्यादि को विवाहोत्सव में भाग लेने के लिए बुलाया था ।।३।।

**ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ।**
**तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञाञ्जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ।।४।।**

**अन्वयः**— अविद्धनसः ककुद्मतः दमित्वा स्वयम्बरे नग्नजितीम् उवाह । तद्भग्नमानान् अपि शस्त्रभृतः गृध्यतः अज्ञान् अक्षतः सन् स्वशस्त्रैः जघान ।।४।।

**अनुवाद**— बिना नथे हुए सांड़ों को नाथ पहनाकर भगवान् ने स्वयम्बर में नग्नजिती (सत्या) से विवाह किया । उसके कारण जिन मूर्ख राजाओं का मान भङ्ग हो गया था वे सब राजकुमारी को छिन लेना चाहते थे और उन सबों ने शस्त्र धारण कर लिया तो बिना किसी प्रकार से घायल हुए भगवान् उन सबों को अपने शस्त्रों से मार डाला ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

ककुद्मतो वृषभान् अविद्धनासिकान् । विद्धनासिकान्कृत्वेति वा । तैर्वृषभैस्तद्दमनेन च भग्नो मानो येषां तथापि तान् गृध्यतः कामयमानान्, अतएवाज्ञान् शस्त्रभृतो राज्ञस्तच्छस्त्रैरक्षत एव जघान ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

बिना नाथे गये बैलों को नाथकर भगवान् उन सबों का दमन कर दिये । उन सबों के दमन के साथ ही जिन सबों के मान का दमन हो गया था फिर भी स्वयम्बर में आये हुए राजागण राजकुमारी को प्राप्त कर लेना चाहते थे । उन अज्ञानी तथा शस्त्रधारण किए हुए राजाओं के शस्त्रों से बिना क्षतिग्रस्त हुए भगवान् उन सबो को अपने शस्त्रों से मार दिए ।।४।।

**प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुरार्च्छद्द्युतरुं यदर्थे ।**
**वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषाऽन्धः क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ।।५।।**

**अन्वयः**— प्रभुः प्रियायाः ग्राम्यः इव प्रियं विधित्सुः यदर्थे द्युतरुं आर्च्छत् रुषान्धः वज्री तं सगणः आद्रवत् । नूनम् अयं वधूनाम् क्रीडामृगः ।।५।।

**अनुवाद**— यद्यपि श्रीभगवान् स्वतन्त्र हैं फिर भी विषयी पुरुषों के समान अपनी प्रियतमा पत्नी सत्यभामाजी की प्रसन्नता के लिए स्वर्ग के कल्प वृक्ष को उखाड़कर लाये । उस समय क्रोधान्ध बने इन्द्र ने अपने सैनिकों के साथ उन पर आक्रमण किया क्योंकि निश्चित रूप से वह अपनी स्त्रियों का क्रीडा मृग बना हुआ है ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

यदाऽदित्याः कुण्डले दातुं स्वर्गं गतस्तदा प्रभुः स्वतन्त्रोऽपि ग्राम्यः स्त्रीपरतन्त्र इव प्रियायाः सत्यभामायाः प्रियं विधातुमिच्छुर्द्युतरुं पारिजातमानीतवान् । यदर्थे यन्निमित्तं तं कृष्णं वज्री स्त्रीप्रेरितो योद्धुमन्वधावत् । स्वकार्यसाधकेन तेन युद्धोद्यमस्तस्यायुक्त एवेत्याह-क्रीडामृग इति । अयं व्रजी ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण देवताओं की माता अदिति देवी को उनका कुण्डल उनको देने के लिए स्वर्ग गये उस समय वे अपनी प्रियतमा पत्नी सत्यभामाजी को प्रसन्न करने के लिए विषयी पुरुष के समान स्वर्ग से कल्पवृक्ष को उखाड़ लाये। इस बात को सुनकर अपनी अपनी पत्नी शची से प्रेरित होकर इन्द्र ने अपने सैनिकों के साथ श्रीभगवान् पर आक्रमण कर दिया। निश्चित रूप से यह इन्द्र अपनी पत्नियों का क्रीडा मृग हैं ॥५॥

**सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ।**
**आमन्त्रितस्तत्तनयाय शेषं दत्त्वा तदन्तःपुरमाविवेश ॥६॥**

**अन्वयः**— वपुषा खं ग्रसन्तं सुतं मृधे सुनाभोन्मथितं दृष्ट्वा धरित्र्या आमन्त्रितः तत् तनयाय शेषं दत्वा तदन्तः पुरम् आविवेश ॥६॥

**अनुवाद**— अपने विशाल शरीर से आकाश को भी ढंक देने वाले भौमासुर नामक अपने पुत्र को युद्ध में चक्र के द्वारा मारे गये देखकर भूदेवी ने श्रीभगवान् की प्रार्थना की। उस समय भगवान् ने बचे हुए राज्य को भौमासुर के पुत्र भगदत्त को प्रदान कर दिया और वे भौमासुर के अन्तःपुर में प्रवेश किए ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

सुनाभेन चक्रेणोन्मथितं सुतं भौमं दृष्ट्वा तस्य मात्रा धरित्र्या भूम्या आमन्त्रितः प्रार्थितः संस्तस्य तनयाय भगदत्ताय हतशेषं राज्यं दत्त्वा ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

चक्र के द्वारा मारे गये अपने पुत्र भौमासुर को देखकर उसकी माता पृथिवी देवी ने श्रीभगवान् की प्रार्थना की तो बचे हुए राज्य को भगवान् ने भौमासुर के पुत्र भगदत्त को प्रदान कर दिया और उसके पश्चात् वे भौमासुर के अन्तःपुर में प्रवेश किए ॥६॥

**तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबन्धुम् ।**
**उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहितावलोकैः ॥७॥**

**अन्वयः**— तत्र कुजेन आहृताः ताः नरदेव कन्याः आर्तबन्धुम् हरिम् दृष्ट्वा सद्यः उत्थाय प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहिताव-लोकैः जगृहुः ॥७॥

**अनुवाद**— वहाँ पर भौमासुर के द्वारा हरण करके लायी गयी राजकुमारियाँ दीनबन्धु, श्रीहरि को देखकर खड़ी हो गयीं और उन सबों ने तत्काल ही हर्ष, लज्जा तथा प्रेमपूर्वक श्रीभगवान् को देखकर भगवान् को पति के रूप में वरण किया ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

तत्रान्तःपुरे कुजेन भौमेन या आहृतास्ताः प्रहर्षश्च व्रीडा चानुरागश्च तैः प्रहिताः प्रेरिता येऽवलोकास्तैर्जगृहुः स्वीकृतवत्यः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

उस अन्तःपुर में भौमासुर के द्वारा हरण करके लायी गयी राजकुमारियों ने दीनबन्धु श्रीभगवान् को देखा और खड़ी होकर तत्काल ही हर्ष, लज्जा तथा प्रेमपूर्वक श्रीहरि को देखते हुए उनको पति के रूप में वरण कर लिया ॥७॥

**आसां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् । सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥८॥**

**अन्वयः**— भगवान् एकस्मिन् मुहूर्ते आसां योषिताम् पाणीन् सविधं स्वमायया अनुरूपः नानागारेषु जगृहे ॥८॥

**अनुवाद**— उस समय भगवान् ने अपनी माया के द्वारा अनेक गृहों में अनेक रूप को धारण करके एक ही मुहूर्त में उन सबों का पाणिग्रहण किया ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

आसां योषितां पाणींस्तत्तदनुरूपः सन्सविधं विवाहोचितप्रकारसहितं यथा भवति ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् ने अपनी माया के द्वारा अनेक रूपों को धारण करके अनेक गृहों में उन सबों का एक ही मुहूर्त में पाणिग्रहण किया ॥८॥

**तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः । एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥९॥**

**अन्वयः**— प्रकृतेः विबुभूषया तासु एकैकस्यां सर्वतः आत्मतुल्यानि दश-दश अपत्यानि अजनयत् ॥९॥

**अनुवाद**— अपनी प्रकृति का विस्तार करने की इच्छा से श्रीभगवान् ने अपनी प्रत्येक पत्नियों के गर्भ से अपने ही समान गुणों से सम्पन्न दश-दश पुत्रों को उत्पन्न किया ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वतः सर्वैर्गुणैः स्वतुल्यानि । प्रकृतेर्मायाया विविधं भवनं विस्तारस्तदिच्छया । यद्वा प्रकृतेर्हेतोर्विविधं भवितुमिच्छया॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् अपनी माया का विस्तार करने की इच्छा से अथवा प्रकृति रूपी साधन से अनेक होने की इच्छा से श्रीभगवान् ने उन प्रत्येक पत्नियों के गर्भ से अपने ही समान गुणों से सम्पन्न दश-दश पुत्रो को उत्पन्न किया ॥९॥

**कालमागधशाल्वादीननीकै रुन्धतः पुरम् । अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥१०॥**

**अन्वयः**— अनीकैः पुरम् रुन्धतः कालमागधशाल्वादीन् स्वपुंसां दिव्यं तेजः आदिशत् स्वयं अजीघनत् ॥१०॥

**अनुवाद**— जब कालयवन, जरासन्ध तथा शाल्व आदि ने अपनी सेना के द्वारा मथुरा पुरी को घेर लिया उस समय भगवान् ने अपने लोगों को अपना दिव्य तेज प्रदान करके स्वयं ही उन सबों को मार दिया ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

कालः कालयवनः । रुन्धत आवृण्वतः । मुचुकुन्दभीमादिभिर्निमित्तमात्रैः स्वयमेवाजीघनद्घातितवान् । तेन च स्वपुंसां तेजः प्रभावं कीर्तिं वा दत्तवान् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस समय कालयवन, जरासन्ध, तथा शाल्व इत्यादि ने अपनी सेना के द्वारा मथुरा को घेर लिया उस समय भगवान् ने मुचकुन्द तथा भीम आदि को निमित्त बनाकर उन सबों को स्वयं मार दिया किन्तु उसके द्वारा उन्होंने अपने इन भक्तों को दिव्य यश प्रदान किया ॥१०॥

**शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च । अन्यांश्च दन्तवक्त्रादीनवधीत्कांश्च घातयत् ॥११॥**

**अन्वयः**— शम्बरं, द्विविदं, बाणं, मुरं, बल्वलम् अन्या च दन्तवक्त्रदीन एतेषु कांश्चन अवधीत् कांश्चन च घातयत्॥११॥

**अनुवाद**— शम्बरासुर द्विविद, बाणासुर, मुर, बल्वल तथा दूसरे दन्तवक्त्र इत्यादि इनमें से कुछ को भगवान् ने स्वयम् मारा और कुछ को मरवा दिया ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

शम्बरद्विविदबल्वलानन्यानपि कांश्चित्प्रद्युम्नरामादिभिर्घातयदघातयत् । **घातयन्** इति वा पाठः । दन्तवक्रादीन्स्वय-मवधीत् ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

शम्बर, द्विविद, बल्वल तथा इनसे भिन्न भी असुरों में से कुछ को श्रीभगवान् ने प्रद्युम्न, बलराम आदि के द्वारा मरवा दिया । कहीं-कहीं पर घातयन् भी पाठ है । दन्तवक्त्र आदि को तो श्रीभगवान् ने स्वयम् मारा ।।११।।

**अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् । चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ।।१२।।**

**अन्वयः**— अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान् नृपान् येषाम् आपतताम् बलैः कुरुक्षेत्रं भूः चचाल ।।१२।।

**अनुवाद**— इसके अतिरिक्त आपके धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों भाइयों के पुत्रों के पक्ष में आये हुए राजाओं का भी वध भगवान् ने करवा दिया । उन राजाओं की सेना सहित कुरुक्षेत्र में जाते समय सारी पृथिवी काँपने लगी थी ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

नृपान्घातयदित्यनुषङ्गः । कथंभूतान् । कुरुक्षेत्रमापततां गच्छतां येषां बलैः सैन्यैर्भूः सर्वापि चचाल चकम्पे ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में भी घातयत् पद का अन्वय है । उद्धवजी ने कहा कि आपके जो धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों भाई थे उनके पुत्र क्रमशः कौरव और पाण्डव थे । उन दोनों के पक्ष में जो राजा युद्ध करने के लिए अपनी सेना के साथ कुरुक्षेत्र में आये थे उनके सेना के साथ आते समय सारी पृथिवी काँपने लगी थी । उन सभी राजा और उनके सैनिकों को भगवान् ने विभिन्न माध्यमों से मरवा दिया ।।१२।।

**स कर्णदुःशासनसौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषम् ।**
**सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमुर्व्यां न ननन्द पश्यन् ।।१३।।**

**अन्वयः**— कर्ण दुःशासन सौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषाम् । भग्नोरुम् सानुचरम् ऊर्व्यां शयानम् सुयोधनं पश्यन् सः न ननन्द ।।१३।।

**अनुवाद**— कर्ण, दुःशासन तथा शकुनि की निन्दित सलाह के कारण जिसकी श्री और आयु दोनो समाप्त हो चुकी थी तथा भीम की गदा के प्रहार से जिसकी जांघ टूट चुकी थी इस प्रकार के अपने अनुचरों के साथ पृथिवी पर पड़े हुए दुर्योधन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्नता नहीं हुयी ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

स कृष्णः । हता श्रीरायुश्च यस्य । भग्नावूरू यस्य तमुर्व्यां शयानं पश्यन्नपि न ननन्द संतोषं न प्राप ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

कर्ण, दुशासन और शकुनि ये तीनों दुर्योधन को सदा निन्दित ही सलाह देते रहते थे । उसके फलस्वरूप दुर्योधन की श्री और आयु दोनों समाप्त हो गयी । भीम ने अपनी गदा के प्रहार से दुर्योधन की जंघा को तोड़ दिया था और मरणासन्न दुर्योधन अपने अनुचरों के साथ पृथिवी पर पड़ा हुआ था । इस स्थिति में भी पापी दुर्योधन को देखकर भगवान् को सन्तोष नहीं हुआ ।।१३।।

**कियान्भुवोऽयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ।**
**अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— यद् द्रोणभीष्मार्जुन भीममूलैः अष्टादशाक्षौहिणिकिः भुवः भारः कियान् क्षपितः मदंशै यदूनाम् दुर्विर्षहं बलं आस्ते ॥१४॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् ने सोचा यदि द्रोण, भीष्म, अर्जुन तथा भीम के द्वारा यह अठारह अक्षौहिणी वाली सेना के संहार से पृथिवी के महान् भार का कितना अंश समाप्त हुआ ? अभी तो मेरे अंश रूप यादवों की दुःसह सेना बनी ही हुयी है ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

अनभिनन्दनप्रकारमेवाह-कियानिति। द्रोणादिभिर्मूलैः कारणभूतैः। यदिति यः अष्टादशाक्षौहिणीयुक्तः। ह्रस्वत्वमार्षम्। क्षपितो य उरुर्भारो भुवः अयं कियान्। अत्यल्प इत्यर्थः। यस्मान्मदंशैः प्रद्युम्नादिभिर्हेतुभूतैर्दुर्विषहं बलमास्ते ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की अप्रसन्नता का प्रकार कियान् इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं। द्रोण भीष्म अर्जुन तथा भीम आदि के द्वारा जो अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ उससे पृथिवी के महान् भार का कितना अंश दूर हुआ? यह नगण्य सा है। **अक्षौहिणिकः** में हि में ह्रस्व आर्ष है। क्योंकि मेरे अंश से युक्त प्रद्युम्न आदि वाली यादवों की दुःसह सेना तो अभी बनी ही हुयी है ॥१४॥

**मिथो यदैषां भविता विवादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ।**
**नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥**

**अन्वयः**— मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् एषां यदा विवादो भविता तदा इयानेव एषां वधोपायः अतः अन्यः न। मयि उद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥

**अनुवाद**— मधुपान के कारण मद से लाल-लाल आंखें किए हुए इन सबों का जब परस्पर में ही कलह होगा तो यही इन सबों के विनाश का साधन है, उसके अतिरिक्त कोई भी दूसरा साधन नहीं है। मेरे संकल्प करने पर इन सबों का स्वयं विनाश हो जायेगा ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

न चात्रान्य उपायः प्रभवति, किंतु मधुना य आमदः सर्वतो मदस्तेनाताम्रविलोचनानामेषां विवादो यदा भविष्यति तदेयानेवैषां वधोपायः अतोऽन्यो नास्ति। एकात्मानोऽपि मय्युद्यते सति स्वयमेव विवादेनान्तर्दधीरन्नित्यर्थः ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा कि श्रीभगवान् ने सोचा कि इन यदुवंशियायों का तो एक ही बार में विनाश सम्भव है, जब कि ये सब मदिरापान करके परस्पर में कलह करने लगेंगे। इसके अतिरिक्त इन सबों के विनाश का कोई दूसरा साधन नहीं है। मैं एकात्मा हूँ अतएव जब मैं सङ्कल्प करूँगा तब ये स्वयं विनष्ट हो जायेंगे ॥१५॥

**एवं संचिन्त्य भगवान् स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम्। नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥१६॥**

**अन्वयः**— एवं संचिन्त्य भगवान् धर्मराजं स्वराज्ये स्थाप्य साधूनां वर्त्म दर्शयन् सुहृदः नन्दयामास ॥१६॥

**अनुवाद**— इस तरह से विचार करके श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर को उनके पिता के सिंहासन पर बैठाकर अपने संबन्धियों को सत्पुरुषों का मार्ग बतलाकर उन सबों को आनंदित किया ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं श्लोकद्वयेनोक्तं क्रमेण संचिन्त्य स्वराज्ये स्थापयित्वा ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार से दो श्लोकों द्वारा विचार करके भगवान् ने युधिष्ठिर को उनके पिता के सिंहासन पर बैठाया और अपने सभी संबन्धियों को सत्पुरुषों के मार्ग को बतलाया ॥१५॥

**उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना । स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥१७॥**

**अन्वयः**— अभिमन्युना उत्तरायां पूरोः वंशः साधुधृतः स वै द्रौण्यस्त्र संछिन्नः पुनः भगवता धृतः ॥१७॥

**अनुवाद**— अभिमन्यु ने उत्तरा के गर्भ में महाराज पुरु के वंश का अच्छी तरह से आधान किया था किन्तु अश्वत्थामा के अस्त्र से वह नष्ट हो चुका था उसकी पुनः रक्षा श्रीभगवान् ने की ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

धृतो रक्षितः ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

अभिमन्यु ने अपनी पत्नी उत्तरा के गर्भ में महाराज पूरू के वंश का आधान किया था, किन्तु वह अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से प्रायः विनष्ट सा हो गया था, किन्तु उसकी रक्षा श्रीभगवान् ने कर दी ॥१७॥

**आयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः । सोऽपिक्ष्मामनुजै रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः ॥१८॥**

**अन्वयः**— विभुः धर्मसुतम् त्रिभिः अश्वमेधैः आयाजयत् सः कृष्णमनुव्रतः अनुजैः क्ष्मां रक्षन् रेमे ॥१८॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर से तीन अश्वमेध यज्ञों को कराया। युधिष्ठिर भी भगवान् श्रीकृष्ण का अनुगामी बनकर अपने छोटे भाइयों की सहायता से पृथिवी की रक्षा करते हुए आनन्द पूर्वक रहने लगे ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुजैः सह ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् से प्रेरित होकर महाराज युधिष्ठिर तीन अश्वमेध यज्ञों को किए वे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करते हुए अपने भाइयों की सहायता से पृथिवी की रक्षा करते हुए आनन्द पूर्वक रहने लगे ॥१८॥

**भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः । कामान्सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥१९॥**

**अन्वयः**— लोकवेदपथानुगः विश्वात्मा भगवान् अपि द्वार्वत्याम् सांख्यमतस्थितः सन् असक्तः कामान् सिषेवे ॥१९॥

**अनुवाद**— लोक तथा वेद की मर्यादा का पालन करने वाले सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप श्रीभगवान् भी प्रकृति पुरुष विवेक से युक्त होकर द्वारका में रहते हुए अनासक्त रूप से अनेक प्रकार के भोगों को भोगे ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

सांख्यं प्रकृतिपुरुषविवेकम् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

मूल में सांख्य शब्द से प्रकृत पुरुष विवेक को कहा गया है ॥१९॥

**स्निग्धसस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया । चरित्रेणानवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥२०॥**
**इमं लोकममुं चैव रमयन्सुतरां यदून् । रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥२१॥**

**अन्वयः**— स्निग्धस्मितावलोकेन, पीयूषकल्पया वाचा अनवद्येन चरित्रेण श्रीनिकेतेनात्मना क्षणदया, दत्तस्त्रीक्षणसौहृदः इमम् अमूं च लोकम् सुतरां यदून् चैव रमयन् रेमे ॥२०-२१॥

**अनुवाद**— मधुरमुसकान संवलित अवलोकन अमृत के समान मधुरवाणी, निर्दोष चरित्र, समस्त शोभा, के आश्रय भूत अपने श्रीविग्रह के द्वारा लोक, परलोक तथा समस्त यदुवंशियों को आनन्दित करते हुए तथा रात्रि में अपनी प्रियतमाओं को क्षणिक आनन्द प्रदान करते हुए श्रीभगवान् स्वयं विहार किये तथा अपनी पत्नियों को भी आनन्द प्रदान किए ॥२०-२१॥

### भावार्थ दीपिका

स्निग्धो यः स्मितसहितोऽवलोकस्तेन । पीयूषकल्पया सुधातुल्यया । पाठान्तरे सुधाप्रवाहरूपया । आत्मना देहेन । क्षणदया रात्र्या दत्तः क्षणोऽवसर उत्सवो वा यासां स्त्रीणां तासु क्षणं सौहृदं यस्य सः ॥२०-२१॥

### भाव प्रकाशिका

मधुर मुस्कान युक्त चितवन के द्वारा तथा अमृत के समान अत्यन्त मधुरवाणी के द्वारा जहाँ पर **पीयूषकुल्यया** पाठ है उसका अर्थ होगा अमृत के प्रवाह के समान वाणी के द्वारा । आत्मा शब्द से देह को कहा गया है । रात्रि में श्रीभगवान् जिन स्त्रियों को क्षणभर के लिए आनन्द प्रदान करते थे उन सबों के साथ श्रीभगवान् का क्षणिक सौहार्द था ॥२०-२१॥

**तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान्बहून् । गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥२२॥**

**अन्वयः**— तस्य एवं गृहमेधेषु योगेषु बहून् संवत्सरगणान् रममाणस्य विरागः समजायत ॥२२॥

**अनुवाद**— इस तरह से गार्हस्थ्य सम्बन्धी साधनों से बिहार करते हुए श्रीभगवान् के अनेक वर्ष बीत गये। उसके पश्चात् उनको गार्हस्थ्य से विराग उत्पन्न हो गया ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

गृहमेधेषु गृहधर्मेषु । योगेषु कामभोगोपायेषु । विराग औदासीन्यं जातमित्यर्थः ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

गृहमेध शब्द से गृहस्थ धर्म को कहा गया है तथा योग शब्द से कामोपभोग के साधनों को कहा गया है। अनेक वर्षों तक गार्हस्थ्य का पालन करते हुए श्रीभगवान् को विराग उत्पन्न हो गया ॥२२॥

**दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् । को विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥२३॥**

**अन्वयः**— दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् योगेन योगेश्वरमनुव्रतः को विस्रम्भेत ॥२३॥

**अनुवाद**— ये भोग सामग्रियाँ परमात्मा के अधीन हैं और जीव भी परमेश्वर के ही अधीन है । अतएव भक्तियोग के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने वाला कौन पुरुष उन भोग्य पदार्थो पर विश्वास कर सकता है । उन भोग सामग्रियों से जब भगवान् को भी विराग हो गया है तो मनुष्यों के विषय में क्या कहना है ?॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

यदा स्वाधीनेष्वपि भगवतो विरागस्तदा दैवाधीनो को विस्रम्भेत विश्वासं प्रीतिं वा कुर्यात् । योगेन चोद्योगेश्वरं श्रीकृष्णमनुव्रतः ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

भोग सामग्रियाँ तो श्रीभगवान् के अधीन हैं फिर भी उन सबों से श्रीभगवान् को विराग हो गया तो फिर परमात्माधीन रहने वाली सामग्रियों की प्राप्ति कब तक होगी इस विषय में तो वह व्यक्ति कभी भी विश्वास नहीं कर सकता है जो भक्तियोग के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करता है ॥२३॥

**पुर्यां कदाचित्क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः । कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥२४॥**

**अन्वयः**— कदाचित् पूर्यां क्रीडद्भिः यदुभोजकुमारकैः कोपिताः तदा भगवन्मत कोविदाः मुनयः शेपुः ॥२४॥

**अनुवाद**— एक बार द्वारकापुरी में ही क्रीडा करने वाले यदुवंशी तथा भोजवंशी बालकों ने खेल-खेल में मुनियों को क्रुद्ध बना दिया । उस समय यह जानकर कि श्रीभगवान् को विनाश ही अभिमत है उन मुनियों ने शाप दे दिया ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

शेपुः शापं ददुः । भगवतो मतेऽभिप्राये कोविदाः अभिज्ञाः ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन मुनियों को बालकों ने क्रुद्ध कर दिया वे मुनिगण जानते थे कि अब भगवान् को यदुवंश का विनाश ही अभिमत है इसीलिए उन मुनियों ने उन बालकों को विनाश का शाप दे दिया ॥२४॥

**ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः । ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्देवविमोहिताः ॥२५॥**

**अन्वयः**— ततः कतिपयैः मासैः वृष्णिभोजान्धकादयः देवैःविमोहिताः संहृष्टाः रथैः प्रभासं ययुः ॥२५॥

**अनुवाद**— उसके कुछ महीने बाद वृष्णि, भोज तथा अन्धक वंशी यादव भावीवश रथों पर बैठकर प्रसन्नता पूर्वक प्रभास क्षेत्र में गये ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

मुनियों के शाप दिए हुए कुछ महीने बीत जाने पर वृष्णिवंशी, भोजवंशी तथा अन्धक वंशी यादव माया के द्वारा मोहित होकर रथों पर बैठकर प्रसन्नता पूर्वक प्रभास क्षेत्र में गये ॥२५॥

**तत्र स्नात्वा पितृन्देवानृषींश्चैव तदम्भसा । तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥२६॥**

**अन्वयः**— तत्र स्नात्वा तदम्भसा पितृन् देवान् ऋषींश्चैव तर्पयित्त्वा अथ विप्रेभ्यः बहुगुणाः गावः ददुः ॥२६॥

**अनुवाद**— वहाँ पर स्नान करके वहाँ के जल से पितरों देवताओं और ऋषियों का तर्पण करके ब्राह्मणों को अत्यधिक गुण सम्पन्न गौओं का दान दिया ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

वयः शीलादिबहुगुणोपेता या गावस्ताः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

उन लोगों ने प्रभास क्षेत्र में जाकर वहाँ के जल में स्नान किया, तदनतर देवताओं ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करके ब्राह्मणों को उत्तम कोटि की गायों का दान दिया ॥२६॥

**हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकम्बलान्। यानं रथानिभान्कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥२७॥**
**अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम्। गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥२८॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

**अन्वयः**— हिरण्यं, रजतं, शय्यां, वासांसि, अजिनकम्बलान्, यानं, रथान् इभान् कन्याः वृत्तिकरीं धराम् अपि, भगवदर्पणम् ऊरूरसं अन्नं दत्वा गोविप्रार्थासवः शूराः भुवि मूर्धभिः प्रणेमुः ॥२७-२८॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उन लोगों ने ब्राह्मणों को सुवर्ण, चाँदी, शय्या, वस्त्र, मृगचर्म, कम्बल, सवारी, रथों हाथियों जिससे जीविका चल सके ऐसी भूमि तथा श्रीभगवान् को निवेदित अनेक प्रकार के सरस अन्नों का दान करके गौओं तथा ब्राह्मणों के लिए प्राणधारण करने वाले उन वीरों ने पृथिवी पर शिर टेक कर प्रणाम किया ॥२७-२८॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के विदुरोद्धव संवाद के अन्तर्गत तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥**

### भावार्थ दीपिका

कन्याश्च । वृत्तिकरीं जीविकापर्याप्ताम् । भगवदर्पणं यथा भवति । गोविप्रार्था असवो येषाम् ॥२७-२८॥

**इति श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥**

### भाव प्रकाशिका

स्नान तर्पण और गोदान करके उन वीरो नें ब्राह्मणों को निम्नांकित वस्तुओं का भी दान दिया । सुवर्ण, चाँदी, शय्या, वस्त्रों, मृगचर्मों, कम्बलों, सवारियों, रथों, हाथियों, कन्याओं तथा जीविका के लिए पर्याप्त भूमि तथा श्रीभगवान् को अर्पित अनेक प्रकार के रसों से युक्त अनेक प्रकार के अन्नों का दान करके गौओं तथा ब्राह्मणों के ही लिए प्राणों को धारण करने वाले उन वीरों ने पृथिवी पर माथा टेककर ब्राह्मणों को प्रणाम किया ॥२७-२८॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३॥**

# चतुर्थ अध्याय

## उद्धवजी से आज्ञा लेकर विदुरजी का मैत्रेय महर्षि के पास जाना

उद्धव उवाच

**अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् । तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥१॥**

**अन्वयः**— अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा वारुणीं च पीत्वा तया विभ्रंशित ज्ञाना दुरुक्तैः मर्म पस्पृशुः ॥१॥

**उद्धवजी ने कहा**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर इन सबों ने भोजन किया और वारुणी मदिरा पी । उसके कारण उन सबों का ज्ञान नष्ट हो गया और अपने दुर्वचनों के द्वारा वे एक दूसरे के हृदय को कष्ट देने लगे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

चतुर्थे बन्धुनिधनं श्रुत्वात्मज्ञानलब्धये । उद्धवस्योपदेशेन क्षत्ता मैत्रेयमागमत् ।।१।। तैर्ब्राह्मणैरनुज्ञाताः । वारुणीं पैष्टीं मदिराम् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने बान्धवों के विनाश का समाचार सुनकर विदुरजी उद्धवजी के उपदेशानुसार आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए मैत्रेय महर्षि के पास गये ।।१।।

उन ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्त करके उन यादव वीरों ने भोजन किया और उसके पश्चात् पैष्टी मदिरा को पिया। मदिरा पीने के कारण उन लोगों को ज्ञान नष्ट हो गया और वे अपने दुर्वचनों से एक दूसरे के हृदय को कष्ट पहुँचाने लगे ।।१।।

**तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् । निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ।।२।।**

**अन्वयः**— मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् तेषां निम्लोचति रवौ वेणूनामिव मर्दनम् आसीत् ।।२।।

**अनुवाद**— मदिरापानजन्य दोष के कारण उन सबों की बुद्धि विनष्ट हो गयी थी और सूर्यास्त होते-होते उनमें उसी प्रकार कलह होने लगा जैसे परस्पर की रगड़ से बाँसों में आग लग जाती हैं ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

वारुण्येव मैरेयं तस्य दोषेण । रवौ निम्लोचत्यस्तं गच्छति सति । मर्दनं कदनम् ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

वारुणी मदिरा को ही मैरेय कहते हैं । उससे उत्पन्न दोष के कारण सूर्यास्त के समय में एक दूसरे को मारने काटने लगे ।।२।।

**भगवान्स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः । सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ।।३।।**

**अन्वयः**— स भगवान् स्वात्ममायायाः तां गतिमवलोक्य सरस्वतीम् उपस्पृश्य वृक्षमूलम् उपाविशत् ।।३।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् अपनी माया की अद्भुत गति को देखकर सरस्वती नदी के जल से आचमन करके वृक्ष की जड़ में जाकर बैठ गये ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

उपस्पृश्य सस्वत्यामाचम्य ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने अपनी माया की विचित्र लीला को देखा और वे सरस्वती नदी के जल से आचमन करके जाकर वृक्ष के नीचे उसकी जड़ में जाकर बैठ गये ।।३।।

**अहं चोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह । बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ।।४।।**

**अन्वयः**— स्वकुलं संजिहीर्षुणा प्रपन्नार्तिहरेण भगवता अहं चोक्तः त्वं बदरीं प्रयाहि ।।४।।

**अनुवाद**— अपने वंश का विनाश करने के इच्छुक तथा शरणागत जीवों की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् ने मुझसे कहा कि तुम बदरिकाश्रम चले जाओ ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

अहं चोक्तः पूर्वमेव द्वारकायाम् ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

पहले द्वारका में ही भगवान् ने मुझसे कह दिया था कि तुम बदरिकाश्रम में चले जाओ ।।४।।

**अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्दम । पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ।।५।।**

**अन्वयः**— अथापि भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः अहम् हे अरीन्दम ! तदभिप्रेतं जानन् पृष्ठतः अन्वगमम् ।।५।।

**अनुवाद**— फिर भी अपने स्वामी के विप्रयोग को वर्दास्त करने में असमर्थ होने के कारण मैं उनके अभिप्राय को जानता हुआ भी उनके पीछे-पीछे गया ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

तदभिप्रेतं कुलसंहारादिकम् ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा कि मैं यह जानता था कि भगवान् अपने वंश का संहार करना चाहते हैं । फिर भी मैं उनके पीछे-पीछे प्रभासक्षेत्र गया ।।५।।

**अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् । श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ।।६।।**

**अन्वयः**— कृतकेतम् अकेतनम् श्रीनिकेतम् दयितं पतिम् विचिन्वन् सरस्वत्याम् एकम् आसीनम् अद्राक्षम् ।।६।।

**अनुवाद**— सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय तथा जिनका कोई भी आश्रय नहीं है, सम्पूर्ण शोभाओं के एकमात्र आश्रय अपने प्रिय प्रभु को खोजते हुए मैंने उनको सरस्वती नदी के किनारे अकेले बैठे हुए देखा ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

कृतकेतं कृतावासम् । अकेतनममनाश्रयम् ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् वृक्ष मूल को ही अपना आश्रय बनाये थे तथा उनका कोई भी आश्रय नहीं था । ऐसे अपने प्रियतम प्रभु को मैंने सरस्वती नदी के तट पर अकेले बैठे हुए देखा ।।६।।

**श्यामावदातं विरजं प्रशान्तारुणलोचनम् । दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ।।७।।**
**वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरूहम् । अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ।।८।।**

**अन्वयः**— श्यामावदातं, विरजं, प्रशान्तारुणलोचनम्, चतुर्भिः दोर्भिः विदितम्, पीतकौशाम्बरेण च वाम ऊरौ, दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम् अधिश्रित्य, अपाश्रितार्भकाश्वत्थं, अकृशम् व्यक्तपिप्पलम् ।।७-८।।

**अनुवाद**— दिव्य श्याम वर्ण से युक्त, जिसमें रजोगुण का लेश भी न हो ऐसे शुद्ध सत्वमय, चार भुजाओं से युक्त, पीला पीताम्बर धारण किए हुए, अपने दाहिने चरण कमल को बायीं जंघे पर रखकर, छोटे से पिप्पल के वृक्ष का सहारा लेकर बैठे हुए, आनन्दपूर्ण तथा विषय सुख का परित्याग किए हुए श्रीभगवान् को मैंने देखा ।।७-८।।

### भावार्थ दीपिका

विरजं विरजसं शुद्धसत्त्वमयम् । विदितं लक्षितम् । कौशं कौशेयम् । अधिश्रित्योपरि स्थापयित्वा । अपाश्रितः पृष्ठतोऽवष्टब्धोऽर्भको बालः कोमलोऽश्वत्थो येन तम् । त्यक्तं पिप्पलं विषयसुखं येन तम् । तथाप्यकृशमानन्दपूर्णम् ।।७-८।।

### भाव प्रकाशिका

विरजं पद का अर्थ रजोगुण रहित शुद्ध सत्वमय है । विदित का अर्थ है लक्षित अर्थात् दिव्य दिखायी देने

वाले पिताम्बरधारी, बायीं जंघा पर दाहिने चरण कमल को रखकर तथा छोटे से पिप्पल के वृक्ष का सहारा लिए हुए, **त्यक्तपिप्पलम्** पद का अर्थ हैं, विषय सुख से विरक्त और **अकृशम्** पद का अर्थ है आनन्दपूर्ण ॥७-८॥

**तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखा । लोकाननुचरन्सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥९॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् महाभागवतः द्वैपायनसुहृत् सखा, सिद्धः लोकान् अनुचरन् यदृच्छया आससाद ॥९॥

**अनुवाद**— उसी स्थान पर महाभागवत तथा महर्षि वादरायण के प्रिय मित्र तथा सिद्ध मैत्रेय महर्षि लोकों में स्वच्छन्द विचरण करते हुए आ गये ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

द्वैपायनः सुहृत्सखा च यस्य सः स्वगुरुपुत्रत्वात्, पराशरशिष्यो मैत्रेय इत्यर्थः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

उस समय लोकों में अपनी इच्छानुसार विचरण करने वाले पराशर महर्षि के शिष्य होने के कारण महर्षि बादरायण के प्रिय मित्र महर्षि मैत्रेय वहाँ आ गये ॥९॥

**तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः प्रमोदभावानतकन्धरस्य ।**
**आशृण्वतो मामनुरागहाससमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥१०॥**

**अन्वयः**— तस्यानुरक्तस्य मुनेः प्रमोदभावानतकन्धरस्य, आशृण्वतः अनुरागहासमीक्षया माम् विश्रमयन् उवाच ॥१०॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् में अनुराग से युक्त तथा अनन्द एवं भक्ति की भावना से झुकी हुयी कन्धा वाले महर्षि मैत्रेय के सामने ही प्रेम तथा मुस्कान युक्त चितवन से मुझको आनन्दित करते हुए श्रीभगवान् कहे ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

प्रमोदेन भावेन चानता कन्धरा यस्य । पाठान्तरे प्रमोदस्य भारेण । अनुरागेण सह हासो यस्यां तया समीक्षया विश्रमयन्विगतश्रमं कुर्वन् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

आनन्द तथा भक्ति की भावना से जिनकी गर्दन झुकी हुयी थी ऐसे मैत्रेय महर्षि के सामने; जहाँ प्रमोदभारेण पाठ है वहाँ अर्थ होगा आनन्द के भार से झुकी हुयी गर्दन वाले मैत्रेय महर्षि के सामने ही प्रेम तथा हँसी से युक्त होकर मुझको देखते हुए श्रीभगवान् ने मुझको आनन्दित करते हुए कहा ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच

**वेदाहमन्तर्मनसीप्सितं ते ददामि यत्तद्दुरवापमन्यैः ।**
**सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥११॥**

**अन्वयः**— हे वसो ! अहं ते मनसि यद् इप्सितं तत् ददामि । तत् अन्यैः दुखापम् हे वसो पुरा विश्वसृजां वसूनां सत्रे मत्सिद्धिकामेन त्वया इष्टः ॥११॥

### श्रीभगवान् ने कहा

**अनुवाद**— हे वसो ! तुम्हारे मन में क्या है, उसे मैं जानता हूँ । अतएव मैं तुमको वह साधन प्रदान करता हूँ जो दूसरों के लिए दुर्लभ है । विश्व की सृष्टि करने वाले प्रजापतियों और वसुओं के यज्ञ मे तुमने मुझको ही प्राप्त करने के लिए मेरी आराधना की थी ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

हे उद्धव, ते मनसीप्सितमहमन्तः स्थितो वेद वेद्मि । दाने हेतुः-विश्वसृजां वसूनां च मिलितानां सत्रे । हे वसो इति पुरा पूर्वजन्मनि त्वं वसुरभूस्तदा मत्प्राप्तिकामेन त्वयाऽहमिष्टः, अतस्तत्साधनं ददामि दास्यामि । अन्यैर्मत्पराङ्मुखैर्दुष्प्रापम्।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

हे उद्धव ! तुम्हारे मन में क्या है ? इसे मैं तुम्हारे भीतर रहकर जानता हूँ । उसे मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ । उसे प्रदान करने का कारण बतलाते हुए भगवान् ने कहा पूर्वजन्म में तुम वसु थे और विश्व की सृष्टि करने वाले सभी प्रजापतियों और वसुगण जो यज्ञ कर रहे थे उस यज्ञ में तुमने मेरी आराधना मुझे प्राप्त करने के ही लिए की थी । अतएव मैं तुम्हें उस साधन को दूँगा । जो लोग मुझसे विपरीत रहते हैं उन लोगों के लिए वह दुष्प्राप्य है ।।११।।

**स एष साधो चरमो भवानामासादितस्ते मदनुग्रहो यत् ।**
**यन्मां नृलोकान्रह उत्सृजन्तं दिष्ट्या ददृश्वान्विशदानुवृत्त्या ।।१२।।**

**अन्वयः**— हे साधो ! एष भवानाम् चरमः, यद् मदनुग्रहः आसादितः यत् रहः लोकान् उत्सृजन्तं माम् दिष्ट्या विशदानुवृत्त्या ददृश्वान् ।।१२।।

**अनुवाद**— हे साधु ! स्वभाव वाले उद्धव ! तुम्हारे जितने भी जन्म हुए हैं उन सबों में यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है । इसीलिए तुमने मेरा अनुग्रह प्राप्त किया है । मैं एकान्त में इस जीवलोक का परित्याग कर रहा हूँ, किन्तु ऐकान्तिक भक्ति के कारण तुमने यहाँ पर भी सौभग्यवशात् मेरा दर्शन प्राप्त कर लिया ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

तस्य भाग्यमभिनन्दति । स एष भवो जन्म ते भवानां मध्ये चरमः । यद्यस्मिन्मदनुग्रहः आसादितो लब्धः । यत्पुनर्मां रह एकान्ते विशदानुवृत्त्या एकान्तभक्त्या ददृश्वान् दृष्टवानसि एतद्दिष्ट्या । भद्रं जातमित्यर्थः । नृलोकान् नृशब्देन जीवास्तेषां लोकानुत्सृजन्तं वैकुण्ठं गच्छन्तमित्यर्थः ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

उद्धवजी के भाग्य की सराहना करते हुए भगवान् ने कहा— तुम्हारे जितने भी जन्म हुए हैं उन सबों में यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है । उसी के कारण तुमने मेरी कृपा प्राप्त की है । अपनी ऐकान्तिक भक्ति के द्वारा तुमने मेरा एकान्त में दर्शन प्राप्त किया है । यह तुम्हारे सौभाग्य की बात है । इस समय मैं मनुष्य लोक को छोड़कर वैकुण्ठ लोक जा रहा हूँ ।।१२।।

**पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ।**
**ज्ञानं परं मन्महिमावभासं यत्सूरयो भागवतं वदन्ति ।।१३।।**

**अन्वयः**— पुरा आदि सर्गे मम नाभ्ये पद्मे निषण्णाय अजाय मया मन्महिमावभासं परं ज्ञानम् प्रोक्तम् यत्सूरयः भागवतं वदन्ति ।।१४।।

**अनुवाद**— पहले के आदि सर्ग में (पाद्मकल्प) में मेरे नाभिकमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी को मेरी महिमा को प्रकाशित करने वाले जिस ज्ञान को मैंने ब्रह्माजी को दिया था और ज्ञानी पुरुष जिसे भागवत कहते हैं, उसे ही मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

ददामीति यदुक्तं तदेव निर्दिशति । पुरा पूर्वस्मिन्पाद्मे कल्पे । आदिसर्गे सर्गोपक्रमे । मम महिमा लीलाऽवभास्यते येन तत् ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् ने जिसे देने के लिए कहा था उसे ही उद्धवजी को बतलाते हैं पहले के पद्मकल्प को ही आदि सर्ग कहा गया है । उस कल्प में मैंने ब्रह्माजी को भागवत का उपदेश दिया था । उससे मेरी महिमा का प्रकाश होता है उसे ही मैं तुम्हें दे रहा हूँ ॥१३॥

**इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ।**
**स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरस्तं मुञ्चञ्छुचः प्राञ्जलिराबभाषे ॥१४॥**

**अन्वयः**— परमस्य पुंसः प्रतिक्षणानुग्रहभाजनः अहम् इत्यादृतोक्तः स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरः शुचः मुञ्चन् तम् प्राञ्जलिः आबभाषे ॥१४॥

**अनुवाद**— उन परम पुरुष श्रीभगवान् के प्रत्येक क्षण अनुग्रह का पात्र बना हुआ मैं श्रीभगवान् के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर मेरे शरीर में स्नेहातिरेक के कारण रोमाञ्च हो गया, आँखों से आँसू की धारा प्रवाहित होने लगी और मेरी वाणी गद्गद हो गयी मैंने हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहा ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

इत्येवमादृतश्चासावुक्तश्चाहम् । प्रतीक्षणं कृपावलोक एवानुग्रहस्तस्य भाजनः पात्रभूतः । पाठान्तरे प्रतिक्षणमनुग्रहस्य पात्रमिति । शुचोऽश्रूणि मुञ्चन्नाबभाषे उक्तवानस्मि ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

उद्धवजी ने विदुरजी को बतलाया कि इस प्रकार से श्रीभगवान् ने मेरा आदर करके मुझे कहा । मै तो प्रतिक्षण श्रीभगवान् की कृपा का पात्र बना हुआ था । श्रीभगवान् का देखना ही अनुग्रह है । भगवान् मुझे उस समय देख रहे थे । मेरी आँखों से आँसू निकलने लगी और मैंने भगवान् से हाथ जोड़कर कहा ॥१४॥

**कोन्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ।**
**तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन् भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे ईश पादजसरोजभाजां इह चतुर्षु अपि अर्थेषु को न दुर्लभः ? तथापि हे भूमन् ! भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः अहं न प्रवृणोमि ॥१५॥

**अनुवाद**— जगत् के स्वामिन् अपके चरण कमलों की सेवा करने वाले पुरुषों के लिए इस संसार में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों में से कोई भी पुरुषार्थ दुर्लभ नहीं है, फिर भी मैं उन सबों को नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ । मैं तो केवल आपके चरण कमलों की सेवा करना चाहता हूँ ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

नहि स्वाज्ञाननिवृत्तिमात्रकामोऽहं, किंतु त्वन्निषेवणोत्सुकस्त्वयि चाघटमानाचरणं दृष्ट्वा मे मोहो भवति, अतस्त्वं तत्त्वज्ञानं देहीति प्रार्थयितुमाह-कोन्विति । चतुर्षु धर्मादिषु तथापि हे भूमन्, भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकोऽहम् तान्न प्रवृणोमि ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

उद्धवजी ने कहा भगवन् मैं केवल अपने अज्ञान की ही निवृत्ति नहीं चाहता हूँ अपितु मैं आपके चरण कमलों की सेवा भी करना चाहता हूँ । आपके अद्भुत आचरण को देखकर मुझको मोह हो जाता है । अतएव आप मुझको तत्त्वज्ञान का उपदेश करें । इस तरह से प्रार्थना करने के लिए उन्होंने कहा आपके चरण कमलो की सेवा करने वाले पुरुषों के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में से कोई भी दुर्लभ नहीं होता है । हे

प्रभो ! मैं तो आपके चरण कमलों की सेवा करने के लिए उत्सुक हूँ अतएव उनमें से किसी भी पुरुषार्थ को मैं नहीं चाहता हूँ ।।१५।।

**कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ।**
**कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ।।१६।।**

**अन्वयः**— अनीहस्य ते कर्माणि, अभवस्य ते भवः, कालात्मनः अथ अरिभयात् पलायनम्, दुर्गाश्रयः स्वात्मन् रतेः यत् प्रमदायुताश्रयः इह विदाम् धीः खिद्यति ।।१६।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप निःस्पृह होकर भी कर्मों को करते हैं, अजन्मा होकर भी जन्म लेते हैं, स्वयं काल स्वरूप होकर भी शत्रु के भय से पलायन कर जाते हैं और जाकर अपने द्वारका के किले में छिप जाते हैं, आप स्वात्माराम हैं फिर गृहस्थाश्रम का निर्वाह करने के लिए हजारों स्त्रियों के साथ रमण करते है, इस तरह के आपके अद्भुत चरित्र को देखकर ज्ञानियों की भी बुद्धि भ्रमित हो जाती है ।।१६।।

**भावार्थ दीपिका**

अघटमानाचरणं दर्शयति । कर्माण्यनीहस्य निःस्पृहस्य निष्क्रियस्य वा । अभवस्याजन्मनः भवो जन्म । कालान्मनस्तवारिभयाद्दुर्गाश्रयः पलायनं च स्वात्मनि रतिर्यस्य तस्य बह्वीभिः स्त्रीभिर्गृहस्थाश्रम इति यदिहास्मिन्विषयो विदुषामपि धीः संशयेन खिद्यति ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के अद्भुत चरित्रों का ही वर्णन इस श्लोक में किया जा रहा है । उद्धवजी ने कहा भगवन् आप निःस्पृह अथवा निष्क्रिय हैं फिर भी आप कर्मों को करते रहते है, आप अजन्मा हैं फिर भी जन्म लेते हैं । आप स्वंय कालस्वरूप हैं फिर भी आप शत्रु के भय से युद्ध से पलायन कर जाते हैं । और दुर्ग में जाकर छिप जाते हैं । आप स्वात्माराम होकर भी गृहस्थाश्रम का पालन करने के लिए अनेक स्त्रियों के साथ रमण करते है । आपके इस तरह के आचरण को देखकर ज्ञानी पुरुषों की बुद्धि भ्रमित हो जाती हैं ।।१६।।

**मन्त्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः ।**
**पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव ।।१७।।**

**अन्वयः**— हे प्रभो ! अकुण्ठितखण्डसदात्मबोधः त्वम् यत् मन्त्रेषु मां वा उपहूय मुग्ध इव अप्रमत्तः पृच्छेः हे देव! तत् नः मनः मोहयतीव ।।१७।।

**अनुवाद**— हे देव आपका स्वरूपज्ञान अखण्ड निर्वाध और संशय इत्यादि से रहित है, फिर भी आप सलाह करने के लिए मुझको बुलाकर भोले मनुष्यों के समान बड़ी सावधानी से मुझसे पूछते थे । आपका वह आचरण मेरे मन को मोहित सा कर देता है ।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**

किंच मन्त्रेषु च प्रस्तुतेषु च सत्सु मामाहूय वै अहो पृच्छेरपृच्छः । अकुण्ठितः कालादिनाऽखण्डः संततः सदात्मा संशयादिरहितो बोधो विद्याशक्तिर्यस्य । मुग्धवदज्ञवत् । अप्रमत्तोऽवहितः सन् ।।१७।।

**भाव प्रकाशिका**

उद्धवजी ने कहा प्रभो आपका ज्ञान सदा निर्वाध, परिपूर्ण तथा संशय इत्यादि से रहित है । फिर भी आपको जब किसी विषय में मुझसे सलाह करनी होती थी तो आप मुझको बुलाकर सामान्य मनुष्यों के समान बड़ी सावधानी पूर्वक मुझसे पूछते थे । आपकी यह लीला मेरे मन को भ्रम में डाल देती है ।।१७।।

**ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान्समग्रम् ।**
**अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदाञ्जसा यद्वृजिनं तरेम ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे भर्तः ! स्वात्मरहः प्रकाशं समग्रं परं, ज्ञानं यत् भगवान् कस्मै प्रोवाच अपि क्षमं नो ग्रहणाय तर्हि अञ्जसा वद यद वयं वृजिनं तरेम ॥१८॥

**अनुवाद**— हे स्वामिन् आपने अपने स्वरूप तथा रहस्य के प्रकाशक जिस सम्पूर्ण ज्ञान को ब्रह्माजी को बतलाया है वह यदि हमारे भी समझने योग्य हो तो मुझे भी उसे बतलाइये जिससे मैं इस संसार सागर को आसानी से पार कर सकूँ ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वात्मनस्तव रहो रहस्यं तत्त्वं तस्य प्रकाशकम् । कस्मै ब्रह्मणे । सर्वनामत्वमार्षम् । नोऽस्माकं ग्रहणायापि क्षमं योग्यं तर्हि वद । भर्तः स्वामिन् यद्यतो वृजिनं संसारदुःखमञ्जसाऽनायासेन तरिष्यामः ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

उद्धवजी ने भगवान् से प्रार्थना किया कि आपने अपने स्वरूप तथा रहस्य के प्रकाशक जिस सम्पूर्ण ज्ञान को ब्रह्माजी को बतलाया उसको यदि मैं भी समझने योग्य होऊँ तो आप मुझे भी बतलायें जिससे कि मैं भी इस दुःखमय संसार सागर को आसानी से पार कर सकूँ ॥१८॥

**इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान्परः । आदिदेशारविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— इत्यावेदितहार्दाय, मह्यम् स परः भगवान् अरविन्दाक्षः आत्मनः परमां स्थिति आदिदेश ॥१९॥

**अनुवाद**— इस तरह से अपने हार्दिक अभिप्राय को निवेदित करने पर परम पुरुष भगवान् कमल नयन ने अपनी आत्मा की परम स्थिति का मुझे उपदेश दिया ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

आवेदितो हार्दो हृदिस्थितोऽभिप्रायो येन तस्मै ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने हार्दिक अभिप्राय को प्रकाशित करने वाले मुझको श्रीभगवान् ने अपने स्वरूप की परम स्थिति का उपदेश दिया ॥१९॥

**स एवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ।**
**प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥२०॥**

**अन्वयः**— स अहम् एवमाराधितपादतीर्थात् अधीत तत्त्वात्मविबोधमार्गः पादौ प्रणम्य देवं परिवृत्य विरहातुरात्मा, इह आगतः ॥२०॥

**अनुवाद**— जिनके चरणों की आराधना मैंने की है, ऐसे श्रीभगवान् ही तीर्थपाद अर्थात् मेरे गुरु हैं, उनसे उन आत्मतत्त्व के ज्ञान को प्राप्त करके, उनके चरणों की बन्दना करके तथा श्रीभगवान् की परिक्रमा करके विरह से व्याकुल होकर मैं यहाँ आया हूँ ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

आराधितपादो भगवान्स एव तीर्थं गुरुस्तस्मादधीतोऽधिगतस्तत्त्वात्मविबोधस्य परमार्थात्मज्ञानस्य मार्गो येन सोऽहम्। देवं परिवृत्य प्रदक्षिणीकृत्य ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन श्रीभगवान् के चरणों की मैंने आराधना की है, वे ही भगवान् मेरे गुरु हैं, उनसे परमार्थ आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके मैंने श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की । उसके पश्चात् विरह से व्याकुल होकर मैं यहाँ आया हूँ ॥२०॥

**सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभोः । गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— सोऽहं प्रभोः दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः तस्य दयितं वदर्याश्रममण्डलं गमिष्ये ॥२१॥

**अनुवाद**— वही मैं श्रीभगवान् के दर्शन से आनन्दित किन्तु इस समय इनके वियोग जन्य कष्ट से दुःखी श्रीभगवान् के प्रिय बदरिकाश्रम नामक स्थान में जाऊँगा ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्य दर्शनेनाह्लादो वियोगेनार्तिश्च ताभ्यां युतो बदर्याश्रमस्थानं गमिष्यामि ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

उद्धवजी ने विदुरजी को बतलाया कि श्रीभगवान् का दर्शन हो जाने के कारण परमानन्द सम्पन्न तथा उनके वियोग जन्य कष्ट से दुःखी मैं श्रीभगवान् के प्रिय बदरिकाश्रम में जाऊँगा ॥२१॥

**यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः । मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥२२॥**

**अन्वयः**— यत्र नारायणो देवः भगवान् नरश्च लोकभावनौ मृदुतीव्रं दीर्घं तपः तेपाते ॥२२॥

**अनुवाद**— जिस बदरिकाश्रम में भगवान् नर एवं नारायण लोगों पर अनुग्रह करने के लिए मृदु एवं तीव्र दीर्घकाल से तपस्या कर रहे हैं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

मृदु परोपद्रवशून्यम् । तीव्रं दुश्चरम् । दीर्घमाकल्पान्तम् । तेपाते तपश्चरत इत्यर्थः । लोकभावनौ लोकानुग्रहकारकौ ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

उद्धवजी ने बतलाया कि उस बदरिकाश्रम में भगवान् नारायण जिससे कि किसी को कष्ट न हो इस प्रकार का दुश्चर तथा कल्प पर्यन्त चलने वाली तपस्या लोगों पर अनुग्रह करने के लिए कर रहे हैं ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

**इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधम् । ज्ञानेनाशमयत्क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥२३॥**

**अन्वयः**— बुधः क्षत्ता इति उद्धवाद् सुहृदाम् दुःसहं वधम् उपाकर्ण्य उत्पतितं शोकम् ज्ञानेन अशमयत् ॥२३॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— ज्ञानी विदुरजी इस प्रकार से अपने सुहृदों के असाध्य वध का समाचार सुनकर उससे उत्पन्न शोक को उन्होंने ज्ञान के द्वारा शान्त कर दिया ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

ज्ञानेन विवेकेन ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

मूल के ज्ञान शब्द का अर्थ है विवेक । विदुरजी ने उद्धवजी से अपने प्रिय बान्धवों के वध का समाचार सुना उसको सुनकर उनको शोक तो उत्पन्न हुआ किन्तु उसको उन्होंने विवेक के द्वारा शान्त कर दिया ॥२३॥

**सतं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः । विश्रम्भादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥२४॥**

**अन्वयः**— सः कौरवर्षभः व्रजन्तं तं महाभागवतम् विश्रम्भात् इदं अभ्यधत्त ॥२४॥

**अनुवाद**— कौरवो में श्रेष्ठ विदुरजी ने जाते हुए भगवान् के मुख्य किंकर महाभागवत उद्धवजी को देखकर उनसे विश्वासपूर्वक पूछा ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

विश्रम्भाद्विश्वासात् ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

मूल के विश्रम्भात् पद का अर्थ विश्वास पूर्वक है । उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य किंकर तथा महाभागवत थे । उनसे विदुरजी ने पूछा ॥२४॥

विदुर उवाच

**ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ।**
**वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति ॥२५॥**

**अन्वयः**— योगेश्वरः ईश्वरः ते यत् स्वात्मरह; प्रकाशं यत् परं ज्ञानं आह भवान् नः वक्तुम् अर्हति यद्धि विष्णोः भृत्याः स्वभृत्यार्थ कृतश्चरन्ति ॥२५॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने आपको अपने स्वरूप तथा रहस्यों को प्रकाशित करने वाले जिस ज्ञान को बतलाया उसे आप मुझे भी बतलायें क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त तो अपने सेवकों के कार्य को सिद्ध करने के लिए ही पृथिवी पर संचरण करते हैं ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यस्माद्विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यप्रयोजनसाधकाः सन्तश्चरन्ति । न हि कृतार्थानामन्यत्कृत्यमस्तीत्यर्थः ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के भक्त तो अपने सेवकों के प्रयोजनों की ही सिद्धि के लिए इस लोक में संचरण करते हैं इसके अतिरिक्त उनका दूसरा कोई प्रयोजन नहीं होता हैं । अतएव आप मुझे उस ज्ञान को बतलाएँ जिस ज्ञान को भगवान् श्रीकृष्ण ने आपको बतलाया था ॥२५॥

उद्धव उवाच

**ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषारवोऽन्ति मे । साक्षाद्भगवतादिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥२६॥**

**अन्वयः**— ननु ते तत्त्वसंराध्यः कौषारवः ऋषिः । मर्त्यलोकं जिहासता भगवता मे अन्ति साक्षात् अदिष्टः ॥२६॥

**उद्धवजी ने कहा**

**अनुवाद**— आपको उस तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए महर्षि मैत्रेय की अराधना करनी चाहिए, क्योंकि इस मर्त्यलोक को त्यागने के इच्छुक श्रीभगवान् ने मेरे सामने ही उनको आपको उपदेश कर देने के लिए आदेश दिया था ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्त्वाय संराध्य इति । अयं भावः- भगवतैव स्मरणमात्रेण तवापि तत्त्वमुपदिष्टप्रायम् । अथ केवलमसंभावनादिनिवृत्तये ज्ञानी कश्चिदाराध्यः । स च तवाराध्यो मैत्रेयो न त्वहम् । ममान्तिक एव त्वदुपदेशे तस्यादिष्टत्वादिति ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

तत्त्वसंराध्य: का अर्थ है तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए सेवनीय । कहने का अभिप्राय है कि चूकि भगवान् ने भी आपका स्मरण किया इतने ही मात्र से आपको भी तत्त्वज्ञान का उपदेश उन्होंने कर ही दिया फिर भी उस ज्ञान में असंभावना इत्यादि दोषों को दूर करने के लिए किसी ज्ञानी की आराधना करनी चाहिए । उसके लिए आपको मैत्रेय महर्षि की ही सेवा करनी चाहिए मेरी नहीं, क्योंकि मेरे सामने ही भगवान् ने आपको उस ज्ञान को प्रदान कर देने के लिए उनको आदेश दिया था ॥२६॥

श्रीशुक उवाच

**इति सहविदुरेण विश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधया प्लावितोरुताप: ।**
**क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां समुषित औपगविर्निशां ततोऽगात् ॥२७॥**

**अन्वय:**— इति विदुरेण सह विश्वमूर्ते: गुणैककथया सुधया प्लावितोरुताप: औपगवि: यमस्वसु: पुलिने तां निशाम् क्षणमिव समुषित तत: अगात् ॥२७॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से विदुरजी के साथ विश्वमूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण की ही कथा रूपी सुधा के द्वारा उद्धवजी के हृदय का महान् संताप समाप्त हो । यमुनाजी के तट पर उनकी वह रात एकक्षण के समान बीत गयी और प्रात: काल वे वहाँ से चल दिए ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

प्लावितोऽपनीत उरुस्तापो यस्य । यमस्वसुर्यमुनाया: पुलिने तीरे तां निशां क्षणमिव समुषित: । औपगवि: उद्धव: ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

उपगवस्य अपत्यं पुमान् इस अर्थ में व्युत्पन: औपगवि: पद का अर्थ उद्धव है क्योंकि वे उपगव के पुत्र थे । विदुरजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण से संबन्धित चर्चा करते हुए उद्धवजी के हृदय का संताप समाप्त हो गया और वे उस रात्रि को यमुना के तट पर सोए हुए एक क्षण के समान बिता दिए । प्रात: काल होते ही उद्धवजी वहाँ से चल दिए ॥२७॥

राजोवाच

**निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्य: ।**
**स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्धरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीश: ॥२८॥**

**अन्वय:**— वृषिणभोजेषु निधनमुपगतेषु अधिरथयूथपयूथपेषु मुख्य: स तु उद्धव: कथमवशिष्ट: यत् त्र्यधीश: हरि अपि आकृतिं तत्यज ॥२८॥

**राजा परीक्षित के कहा**

**अनुवाद**— वृष्णिवंशियों और भोज वंशियों का निधन हो जाने पर तथा सभी रथियों तथा यूथिपतियों के नष्ट हो जाने पर भी उन सबों में मुख्य उद्धवजी कैसे बचे रहे ? जबकि ब्रह्मा आदि के भी स्वामी श्रीहरि को भी अपना मानव शरीर त्यागना पड़ा ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मशापेन निधनं प्राप्तेषु यद्यस्मात्रयाणां ब्रह्मादीनामीशो हरिरप्याकृतिं मनुष्याकारं त्यक्तवान् ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणों के शाप के कारण जब सभी वृष्णिवंशी और भोजवंशी रथी, यूथपति इत्यादि का निधन हो गया, यहाँ तक कि श्रीभगवान् भी अपने मानव शरीर का परित्याग कर दिए, उस समय यूथपतियों में श्रेष्ठ उद्धवजी कैसे बचे रहे ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

**ब्रह्मशापापदेशेन कालेनामोघवाञ्छितः । संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन्देहमचिन्तयत् ॥२९॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मशापापदेशेन कालेन अमोघवाञ्छितः स्वकुलं संहृत्य देहम् त्यक्ष्यन् नून अचिन्तयत् ॥२९॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— जिन श्रीहरि की इच्छा अमोघ है, वे ब्राह्मणों के शाप के बहाने अपने वंश का संहार करके अपने शरीर का त्याग करते समय सोचे ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मशापः अपदेशो मिषं यस्य तेन कालेन स्वशक्तिरूपेण अमोघं वाञ्छितं यस्य । न ह्यत्र शापः प्रभुः, किंतु भगवदिच्छैवेत्यर्थः ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणों का शाप तो एक बहाना था काल रूपी अपनी शक्ति के द्वारा जिन श्रीभगवान् की इच्छा अमोघ है, अर्थात् कभी भी व्यर्थ नहीं होती है । उसी के द्वारा यदुवंशियों का नाश हुआ । उनके नाश में शाप की प्रभुता नहीं थी अपितु वैसी श्रीहरि की इच्छा ही थी । उन श्रीभगवान् ने अपने शरीर का त्याग करते समय सोचा ॥२९॥

**अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम् । अर्हत्युद्धव एवाद्धा संप्रत्यात्मवतां वरः ॥३०॥**

**अन्वयः**— मयि अस्माल्लोकात् उपरते मदाश्रयं ज्ञानं सम्प्रति आत्मतां वरः उद्धव एव अर्हति ॥३०॥

**अनुवाद**— इस लोक से मेरे चले जाने पर मेरे ज्ञान को तो इस समय आत्मज्ञों में श्रेष्ठ उद्धवजी ही धारण करने योग्य हैं ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

मय्युपरते सति ज्ञानमर्हति ज्ञानयोग्यो भवति ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

इस लोक से परमधाम गमन कर जाने के पश्चात् केवल उद्धव ही ऐसे आत्मज्ञ हैं जो मेरे ज्ञान को धारण कर सकने के योग्य हैं ॥३०॥

**नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः । अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥३१॥**

**अन्वयः**— उद्धवः अणु अपि मन्न्यूनः न यत् प्रभुः गुणैः अर्दितः न अतएव मद्वयुनम् लोकं ग्राहयन् इह तिष्ठतु ॥३१॥

**अनुवाद**— उद्धव मुझसे अणुमात्र भी न्यून नहीं है । वे आत्मज्ञ भी है । वे विषयों से कभी भी विचलित नहीं हुए । अतएव वे मेरे ज्ञान को संसार को प्रदान करते हुए यहीं रहें ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

मत्तः सकाशादीषदपि न्यूनो न भवति । यद्यस्माद्गुणैर्विषयैर्न क्षोभितः । मद्वयुनं ज्ञानं लोकस्योपदिशन् ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने सोचा कि उद्धव मुझसे थोड़ा सा भी कम नहीं हैं । उन्होंने अपने मन को वश में कर रखा है विषय उनको विचलित नहीं कर पाये हैं । अतएव वे मेरे ज्ञान का लोगों को उपदेश करने के लिए यहीं रहें ॥३१॥

**एवं त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः शब्दयोनिना । बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥३२॥**

**अन्वयः**— एवं शब्दयोनिना त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः वदर्याश्रममासाद्य समाधिना हरिमीजे ॥३२॥

**अनुवाद**— इस तरह वेदों के मूल भूत त्रैलोक्याधिपति श्रीहरि के द्वारा उपदिष्ट होकर उद्धवजी बदरिकाश्रम में जाकर समाधि योग के द्वारा श्रीहरि की पूजा करने लगे ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

एवमनेनाभिप्रायेण शब्दयोनिना वेदकर्त्रा ईजे पूजयामास ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

इसी अभिप्राय से श्रीभगवान् ने उनको अपने ज्ञान का उपदेश दिया और उद्धवजी भी बदरिकाश्रम में जाकर समाधियोग के द्वारा श्रीहरि की आराधना करने लगे ॥३२॥

**विदुरोऽप्युद्धवाच्छुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः । क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥३३॥**
**देहन्यासं च तस्यैव धीराणां धैर्यवर्धनम् । अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥३४॥**
**आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् । ध्यायन्गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥३५॥**

**अन्वयः**— क्रीडयोपात्त देहस्य परमात्मनः कृष्णस्य श्लाघितानि कर्माणि उद्धवात् श्रुत्वा तस्य एव देहन्यासं धीराणां धैर्यवर्धनम् अन्येषां विक्लवात्मनाम् पशूनां दुष्करतरम् । हे कुरुश्रेष्ठ ! आत्मानं च कृष्णेन मनसेक्षितम् भगवते गते ध्यायन् प्रेमविह्वलः रुरोद ॥३३-३५॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण ने लीला पूर्वक ही अपने शरीर को धारण किया था । उनके प्रशंसनीय कर्मों को उद्धवजी के मुख से सुनकर तथा यह सुनकर कि भगवान् ने लीला पूर्वक ही अपने शरीर का त्याग किया। यह सुनकर जो धैर्य सम्पन्न पुरुष हैं । उनका धैर्य बढ़ता है, किन्तु जो लोग पशु के समान चञ्चल चित्त वाले हैं उनके लिए यह अत्यधिक कठिन है । विदुरजी ने यह जब सुना कि अन्तिम समय में श्रीभगवान् ने विदुरजी का स्मरण किया था तब उद्धवजी के चले जाने पर यह सोचकर विदुरजी प्रेम विह्वल होकर रोने लगे ॥३३-३५॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्येषां पशुतुल्यानाम् । विक्लवात्मनामधीरचित्तानाम् । मनसेक्षितं चिन्तितम् ॥३३-३५॥

**भाव प्रकाशिका**

मूल के अन्येषाम् शब्द के द्वारा पशुओं के समान चञ्चल चित्त वाले लोगों को कहा गया है । मनसेक्षितम् शब्द का अर्थ मन से चिन्तित है ॥३३-३५॥

**कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः । प्रापद्यत स्वः सरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥३६॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धें विदुरोद्धवसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

**अन्वयः**— कालिन्द्याः कतिभिः अहोभिः सिद्धः भरतर्षभः स्वः सरितं प्रापद्यत यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥३६॥

**अनुवाद**— यमुनातट से चलकर सिद्ध शिरोमणि विदुरजी कुछ दिनों में गङ्गातट पर पहुँचे जहाँ पर मैत्रेय महर्षि रहते थे ॥३६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरेस्कन्ध के विदुरोद्धवसंवाद के अन्तर्गत चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥**

**भावार्थ दीपिका**

कालिन्द्याः सकाशात्सिद्ध एव विदुरः कतिपयैर्दिनैः स्वःसरितं गङ्गां प्रापद्यत प्राप्तः ।।३६।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।**

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी सिद्ध थे वे यमुना तट से चलकर गङ्गा तट पर आये वहीं पर मैत्रेय महर्षि रहते थे ।।३६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरेस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।**

# पाँचवाँ अध्याय

## विदुरजी के प्रश्नों को सुनकर मैत्रेय महर्षि का सृष्टि का वर्णन करना

श्रीशुक उवाच

**द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ।**
**क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥१॥**

**अन्वयः**— द्युनद्याः द्वारि अगाधबोधम् आसीनं मैत्रेयम् अच्युतभावशुद्धकुरूणां ऋषभः क्षता उपसृत्य सौशील्य गुणाभितृप्तः पप्रच्छः ॥१॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— हरिद्वार में अगाध ज्ञान सम्पन्न बैठे हुए मैत्रेय महर्षि के पास जाकर श्रीभगवान् की भक्ति से शुद्ध अन्तःकरण वाले विदुरजी उनके सौशील्य आदि गुणों से तृप्त होकर पूछे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

पञ्चमे भगवल्लीलां क्षत्त्रा पृष्टो महामुनिः । प्रोवाच महदादीनां सर्गं तैश्च हरेः स्तुतिम् ॥१॥ उक्तश्चतुर्भिरध्यायैः क्षत्तुर्मैत्रेयसङ्गमः । संवादस्तु तयोः स्कन्धद्वयेनाथ निगद्यते ॥२॥ द्युनद्या गङ्गाया द्वारि हरिद्वारे आसीनं नतु कर्मव्यग्रम् । तत्र हेतुः-अगाधोऽपरिच्छिन्नो बोधो यस्येति । मैत्रेयस्य सौशील्यमार्जवादि, गुणाश्च करुणादयस्तैरभितृप्तः । पाठान्तरे क्षत्तुः सौशील्यादिभिरभितृप्तं संतुष्टं मैत्रेयम् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी द्वारा पूछे जाने पर महामुनि मैत्रेय महर्षि ने महदादि की सृष्टि वर्णन पूर्वक श्रीहरि की स्तुति का वर्णन पाँचवें अध्याय में किया है ॥१॥ चार अध्यायों में विदुर और मैत्रेय महर्षि का संगम वर्णित है । अब दो अध्यायों में उन दोनों का संवाद का वर्णन किया जा रहा है ॥२॥ हरिद्वार में अगाधज्ञानसम्पन्न मैत्रेय महर्षि बैठे थे, वे कार्यों के करने में व्यग्र नहीं थे । उन मैत्रेय महर्षि के सौशील्य, आर्जव, करुणा तथा दया आदि गुणों से तृप्त होकर विदुरजी ने उनसे प्रश्न किया । जहाँ पर गुणाभितृप्तं पाठ है वहाँ पर सौशील्य आदि से अत्यन्त तृप्त हुए मैत्रेय महर्षि से अर्थ होगा ॥१॥

विदुर उवाच

**सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वाऽन्यदुपारमं वा ।**
**विन्देत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्नः ॥२॥**

**अन्वयः**— लोकः सुखाय कर्माणि करोति किन्तु तैः न सुखं न वाऽन्यदुपारमं ततः भूयः दुखमेव विन्देत अत्र यद् युक्तं भगवान् नः विन्देत ॥२॥

### विदुरजी ने कहा

**अनुवाद**— मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिए कर्मों को करता है किन्तु उससे उसको सुख की प्राप्ति नहीं होती है और न तो उससे उसके दुःखों का विराम ही होता है । उससे तो उसका दुःख और बढ़ जाता है । अतएव इस विषय में उसे क्या करना चाहिए । हे भगवन् इसे आप मुझे बतलायें ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

प्रश्नानेवाह- सुखायेति पञ्चदशभिः । तैः कर्मभिः । सुखं वाऽन्यस्य दुःखस्योपशमं वेत्यर्थः । अथवाऽन्यद्वा न विन्देत। किं तदित्यपेक्षायां तस्यैव निर्देशः । उपरमं वेति । ततस्तैः कर्मभिर्भूयः पुनःपुनर्दुःखमेव विन्देत । अत्रैवंविधे संसारे नोऽस्माकं यद्युक्तं कर्तुं योग्यं तत्सर्वज्ञो भगवान्वदेन्निरूपयतु ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

**सुखाय० इत्यादि** पन्द्रह श्लोकों में विदुरजी के प्रश्नों का वर्णन किया जा रहा है । विदुरजी ने कहा कि मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिए ही कर्मों को करता है, किन्तु उन कर्मों के द्वारा उसको न तो सुख की प्राप्ति होती है और न तो उसके दुखों की शान्ति ही होती है; अपितु उन कर्मों को करने से उसके दुःख और बढ़ जाते हैं। वह बार-बार दुःख का अनुभव करता है । इस प्रकार के संसार में हमलोगों को क्या करना चाहिए ? इसे आप मुझे बतलायें । आप तो सर्वज्ञ हैं ॥२॥

**जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवादधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ।**
**अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥३॥**

**अन्वयः**— दैवात् कृष्णाद् विमुखस्य जनस्य, अधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य अनुग्रहाय नूनं जर्नादनस्य भव्यानि भूतानि चरन्ति ॥३॥

**अनुवाद**— दुर्भाग्य वशात् जो लोग भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख हो गये हैं अधार्मिक हैं अतएव दुःखी हैं, ऐसे ही जीवों पर कृपा करने के लिए मङ्गलमय आपके जैसे लोग इस संसार में विचरण किया करते हैं ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

दैवात्प्राचीनकर्मणो निमित्तभूतात्कृष्णाद्विमुखस्यातोऽधर्मशीलस्यातः सुदुःखितस्य जनस्यानुग्रहाय भव्यानि मङ्गलानि भूतानि चरन्ति । भवन्तः परोपकारस्वभावा एवेत्यर्थः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

जीव अपने पूर्वकृत कर्मों के ही फलस्वरूप परमात्मा से पराङ्मुख होकर अधार्मिक हो जाता है । उसके कारण वह सदा दुःखी रहता है । ऐसे ही जीवों पर कृपा करने के लिए आप जैसे मङ्गलमय भगवद्भक्त इस भूलोक में संचरण किया करते हैं । आपका तो स्वभाव ही है दूसरों का उपकार करना ॥३॥

**तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शं नः संराधितो भगवान्येन पुंसाम् ।**
**हृदिस्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥**

**अन्वयः**— तत् हे साधुवर्य ! नः शं वर्त्म आदिश येन संराधितो भगवान् पुंसाम् भक्तिपूते हृदिस्थितः सत्त्वाधिगमं पुराणं ज्ञानं यच्छति ॥४॥

**अनुवाद**— हे साधुवर्य ! आप उस शान्तिप्रद मार्ग का उपदेश करें जिसके द्वारा आराधना किए जाने पर श्रीभगवान् भक्तों की भक्तिभावना से पवित्र बने हुए हृदय में स्थित होकर ऐसे जन को ज्ञान प्रदान कर देते हैं जिससे कि उसे आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्तस्मात् हे साधुवर्य, शं सुखरूपं वर्त्म नः आदिश कथय । येन वर्त्मना संराधितो हृदि स्थितः सन् । सतत्त्वाधिगमं आत्मापारोक्ष्यं तत्सहितम् । पुराणमनादिवेदप्रमाणकम् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

अतएव हे साधु शिरोमणे ! आप हमें उस सुखमय मार्ग का उपदेश दें जिस मार्ग को अपना कर श्रीहरि की आराधना करने पर श्रीभगवान् प्रसन्न होकर भक्ति की भावना से पवित्र बने हुए उसके हृदय में स्थित हो जाते हैं और ऐसा वेददोदित ज्ञान प्रदान कर देते हैं, जिससे कि मनुष्यों को अपने स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है ॥४॥

**करोति कर्माणि कृतावतारो यान्यात्मतन्त्रो भगवांस्त्र्यधीशः ।**
**यथा ससर्जाग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगता विधत्ते ॥५॥**

**अन्वयः**— त्र्यधीशः आत्मतन्त्रः भगवान् कृतावतारः यानि कर्माणि करोति यथा च निरीहः अग्रे इदं ससर्ज, संस्थाप्य जगतो वृत्तिं विधते तद्व्रण्य ॥५॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् त्रैलोक्यधिपति हैं, तथा स्वतन्त्र हैं । वे भगवान् अवतार ग्रहण करके जिन कर्मों को करते हैं तथा निरीह (निःस्पृह) होकर भी सृष्टि के प्रारम्भ में उन्होंने जिस प्रकार से जगत् की सृष्टि की पुनः उन्होंने जगत् को संस्थापित करके जिस तरह से इसकी जीविका का विधान किया उसे आप मुझे बतलायें ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

करोति कर्माणीत्यादीनां वर्णयेति पञ्चमश्लोके क्रियासंबन्धः । यथा येन प्रकारेण पुरुषरूपेण कृतावतारः सन् त्र्यधीशः त्रिगुणमायानियन्ता अतः स्वतन्त्र एव यानि कर्माणि करोति । कर्माण्येव विशेषतः पृच्छति-यथेत्यादिना । निरीहो निष्क्रियो निःस्पृहो वा संस्थाप्य सुस्थितं कृत्वा । वृत्तिं जीविकाम् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

**करोति कर्माणि० इत्यादि** श्लोक का नवें श्लोक के वर्णय क्रिया के साथ सम्बन्ध है । श्रीभगवान् तो त्रिगुणात्मिका माया के स्वामी हैं । जिस प्रकार से उन्होंने पुरुष रूप से अवतार ग्रहण किया, और माया के नियन्ता होने के कारण वे स्वतन्त्र होकर भी जिन कर्मों को करते हैं उनको आप बतलाएँ । उन कर्मों के ही विषय में विशेष रूप से पूछते हैं । श्रीभगवान् तो निष्क्रिय और निस्पृह हैं । वे जगत् को सुस्थिर करके जिस प्रकार से उसकी जीविका का विधान करते हैं उसे आप बतलायें ॥५॥

**यथा पुनः स्वे स्व इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ।**
**योगेश्वराधीश्वर एक एतदनुप्रविष्टो बहुधा यथासीत् ॥६॥**

**अन्वयः**— यथा पुनः इदं पुनः स्वे स्वे निवेश्य निवृत्तवृत्तिः गुहायां शेते योगेश्वराधीश्वरः एतदनुप्रविष्टः एकः बहुधा यथासीत् तद्वर्णय ॥६॥

**अनुवाद**— पुनः वे जिस प्रकार इस जगत् को अपने हार्दाकाश में लीन करके वृत्तिशून्य हो जाते हैं और अपनी योगमाया का आश्रय लेकर योगमाया में ही शयन करते हैं । उसका आप वर्णन करें । श्रीभगवान् योगेश्वर हैं और एक है, फिर भी इस ब्रह्माण्ड में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अनेक प्रतीत होते हैं । इन समस्त रहस्यों को आप मुझे बतलायें ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

स्वे स्वीये स्वे हृदयाकाशे निवेश्य स्थापयित्वा । निवृत्ता वृत्तयो यस्य । गुहायां योगमायायाम् । बहुधा ब्रह्मादिरूपेण ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

प्रलय काल के आ जाने पर भगवान् अपने हृदयाकाश में सम्पूर्ण जगत् को लीन कर लेते है और वृत्ति शून्य होकर अपनी योगमाया में शयन करते हैं । योगेश्वर होने के कारण श्रीभगवान् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अनेक ब्रह्मादि रूप से प्रतीत होते हैं ॥६॥

**क्रीडन्विधत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ।**
**मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥७॥**

**अन्वयः**— द्विजगोसुराणां क्षेमाय अवतारभेदैः क्रीडन् कर्माणि विधत्ते सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि शृण्वतां अपि, नः मनः न तृप्यति ॥७॥

**अनुवाद**— ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं का कल्याण करने के लिए विभिन्न अवतारों के माध्यम से लीला पूर्वक श्रीभगवान् जिन कर्मों को करते हैं, उन सबों को आप हमें सुनायें । यशस्वियों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् के चरित रूपी अमृत का पान करते रहने पर भी हमलोगों का मन तृप्त नहीं होता है ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

मत्स्याद्यवतारभेदैः क्रीडन् यानि यथा कर्माणि विधत्ते । पुनर्विशेषं प्रष्टुमौत्सुक्यमाविष्करोति-मन इति । सुश्लोकाः पुण्यकीर्तयस्तेषां मौलिरिवाधिक्येनोपरि विराजमानस्तस्येत्यर्थः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

मत्स्य आदि विभिन्न अवतारों के द्वारा क्रीडा करते हुए श्रीभगवान् जिन कर्मों को करते हैं, उन विशेष कर्मों को पूछने की उत्सुकता को अविष्कृत करते हुए विदुरजी कहते हैं । श्रीभगवान् यशस्वियों में श्रेष्ठ हैं । उनके चरितामृत को सुनने से हमारा मन तृप्त नहीं होता है ॥७॥

**यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो लोकानलोकान् सहलोकपालान् ।**
**अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्वनिकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥८॥**

**अन्वयः**— अधिलोकनाथः लोकपालान् सह लोकान्, आलोकान् यैः तत्त्वभेदैः अचीक्लृपत्, यत्र हि सर्वसत्त्व निकाय भेदः प्रतीतः । इति वर्णय ॥८॥

**अनुवाद**— आप हमें यह भी बतलायें कि सम्पूर्ण लोकपतियों के स्वामी श्रीभगवान् ने, लोकों, लोकपालों

तथा लोकालोक पर्वत से बाहर के भागों की कल्पना किन तत्त्वों से की, जिनमें इन सम्पूर्ण जीव समूहों की अधिकारानुसार प्रतीति होती है ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

अधिलोकनाथो लोकनाथाधिपतिः । अलोकान् लोकालोकपर्वताद्बहिर्भागान् । अचीक्लृपत्कल्पयामास । यत्र येषु सर्वाणि यानि सत्त्वानि तेषां निकायास्तेषां भेदोऽधिकृतस्तत्तत्कर्माधिकारी आश्रित इति वा ।।८।।

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी ने कहा कि आप यह भी बतलायें कि सम्पूर्ण लोकपतियों के स्वामी श्रीभगवान् लोकों, लोकपालों तथा लोकलोक पर्वत के भागों की रचना किन तत्त्वों से की है जिसमें सम्पूर्ण जीव समूहों के भेद तथा अपने अधिकारानुसार कर्मों के अधिकारी प्रतीत होते हैं ।।८।।

**येन प्रजानामुत आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ।**
**नारायणो विश्वसृडात्मयोनिरेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ।।९।।**

**अन्वयः**— हे विप्रवर्य विश्वसृट् आत्मयोनिः, नारायणः उत प्रजानाम् आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां येन व्यधत्त एतत् च नः वर्णय ।।९।।

**अनुवाद**— हे विप्रश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले आत्मयोनि (स्वतःसिद्ध) भगवान् नारायण भी प्रजाओं के स्वभाव, कर्म, रूप तथा नामों का भेद जिसके द्वारा किए उसका भी वर्णन हमें आप सुनाइये ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

उताऽपि न येन प्रकारेण जीवानामात्मा स्वभावस्तत्कृतं कर्म तत्कृतं रूपं तत्कृता अभिधास्तासां भेदं कृतवान् । विश्वस्रष्टा स्वयमात्मयोनिः स्वतःसिद्धः ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी ने कहा कि हे विप्रश्रेष्ठ ! आप हमें यह भी बतलायें कि सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले तथा स्वतः सिद्ध भगवान् नारायण ने किस प्रकार से जीवों के स्वभाव, कर्म, रूप तथा नामों के भेदों का निर्माण किया ।।९।।

**परावरेषां भगवन्व्रतानि श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ।**
**अतृप्नुमक्षुल्लसुखावहानां तेषामृते कृष्णकथामृतौघात् ।।१०।।**

**अन्वयः**— हे भगवन् ! परावरेषां व्रतानि मया व्यासमुखाद् अभीक्ष्णम् श्रुतानि कृष्णकथामृतौधात् ऋते क्षुल्लसुखावहानां तेषाम् अतृप्नुम् ।।१०।।

**अनुवाद**— हे भगवन् ! मैंने महर्षि व्यास के मुख से त्रैवर्णिकों तथा शूद्रों के धर्मों को कई बार सुना है। किन्तु वे सब बहुत अल्प सुखप्रद है अतएव मैं उन धर्मों के सुनते-सुनते तृप्त हो चुका हूँ । भगवान् श्रीकृष्ण की कथामृत से रहित होने के कारण श्रीभगवान् की ही कथा को सुनना चाहता हूँ ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

ननु महाभारते त्वया सर्वं श्रुतमेव, किं पुनः प्रश्नैस्तत्राह । परे त्रैवर्णिका अवरे शूद्रादयस्तेषां व्रतानि धर्माः । मे मया। अभीक्ष्णं पुनः पुनः । तेषां श्रवणेनातृप्नुम तृप्ताः स्म । तेषां तुच्छसुखावहत्वात् । यस्तु तत्र कृष्णकथामृतौघः सूचितस्तस्मादृते। तत्र त्वलंबुद्धिर्नास्तीत्यर्थः ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि महाभारत में तो तुमने सब कुछ सुन लिया है अतएव तुम्हें प्रश्न करने का क्या औचित्य है ? तो इसका उत्तर है **परावरेषाम्० इत्यादि** श्लोक । मैंने त्रैवर्णिकों तथा शूद्रों आदि के धर्मों को महर्षि व्यास के मुख से बार-बार सुना है । अतएव उन सबों को सुनकर मैं तृप्त हो चुका हूँ । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की कथा रूपी अमृत को सुनने से मेरी तृप्ति नहीं हुयी है ॥१०॥

**कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ।**
**यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥**

**अन्वयः**— वः सूरिभिः सत्रेषु ईडयमानात् तीर्थपदः अभिधानात् कः तृप्नुयात् । यः पुरुषस्य कर्णनाडीं यातः भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥

**अनुवाद**— आप जैसे साधुओं के सत्रों में जिनका कीर्तन नारदादि देवर्षिगण भी करते हैं, ऐसे भगवान् की कथाओं से तृप्त कौन हो सकता है ? श्रीहरि की जो कथा मनुष्यों के कानों में प्रवेश करके संसारचक्र में डालने वाले गृहादि प्रेम को विनष्ट कर देने का काम करती है ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः-क इति । तीर्थपदः कृष्णस्य । अभिधानात् कथामृतौघात् । सत्रेषु समाजेषु । सूरिभिर्नारदादिभिः ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के कथामृत प्रवाह से तृप्त नहीं होने के कारण **कस्तृप्नुयात्० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । भगवान् श्रीकृष्ण के कथामृत प्रवाह से तृप्त नहीं होने का कारण है, कि साधुओं के समाज में नारदादि देवर्षिगण भी उसका गान करते हैं । दूसरा कारण यह है कि उस कथा के कान में पड़ते ही मनुष्य की गृहादि में होने वाला प्रेम विनष्ट हो जाता है । और गेहादि में होने वाला प्रेम तो संसार चक्र में डालने वाला है ॥११॥

**मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखापि ते भारतमाह कृष्णः ।**
**यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— ते सखा कृष्णः मुनिः अपि, भगवद गुणानां विवक्षुः भारतमाह यस्मिन् नु नृणां ग्राम्यसुखानुवादैः हरेः कथायाम् मतिः गृहीता ॥१२॥

**अनुवाद**— आपके मित्र कृष्णमुनिः (व्यासजी) भी श्रीभगवान् के गुणों का ही वर्णन करने के लिए महाभारत का वर्णन किए; किन्तु उसमें ग्राम्य सुखों का अनुवाद करके श्रीहरि की कथाओं में लोगों की बुद्धि को लगाने का प्रयास किया गया है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

महाभारतस्याप्यत्रैव तात्पर्यमित्याह । मुनिः कृष्णो वेदव्यासो भगवद्गुणान्मोक्षधर्मान्ते नारायणीयाख्याने वक्तुमिच्छुः सन् । अर्थकामादिवर्णनं तु हरिकथायां मतिप्रवेशार्थमेवेत्याह-यस्मिन्निति । नृणां मतिर्ग्राम्यसुखानुवादैर्द्वारभूतैर्नु निश्चितं हरेः कथायां गृहीता नीता । तदुक्तमितिहाससमुच्चये- '**कामिनो वर्णयन्कामाँल्लोभं लुब्धस्य वर्णयन् । नरः किं फलमाप्नोति कूपेऽन्धमिव पातयन् । लोकचित्तावतारार्थं वर्णयित्वाऽत्र तेन तौ । इतिहासैः पवित्रार्थैः पुनरत्रैव निन्दितौ । अन्यथा घोरसंसारबन्धहेतू जनस्य तौ । वर्णयेत्स कथं विद्वान्महाकारुणिको मुनिः** ।।' इति ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

महाभारत का भी इसी अर्थ के वर्णन में ताप्पर्य है, इसी अर्थ को बतलाते हुए कहा गया है कि— महर्षि

व्यास भी भगवान् के गुणों का वर्णन मोक्ष धर्म के अन्त में नाराणीयोपाख्यान में करने की इच्छा से ही अर्थ एवं काम आदि का वर्णन श्रीहरि की कथा में बुद्धि को लगाने के ही लिए किया है । उस महाभारत में मनुष्यों की बुद्धि को ग्राम्य सुखों का अनुवाद करके ही श्रीहरि की कथा में लगाया गया है । इसीलिए इतिहास समुच्चय में कहा भी गया है- कामियों के काम का वर्णन करते हुए तथा लोभियों के लोभ का वर्णन करने वाला कूएँ में अन्धे को गिरने वाले के समान उस मनुष्य को कौन सा फल मिल सकता है ? लोगों के चित्त को श्रीहरि की कथा में लगाने के ही लिए महर्षि व्यास ने अर्थ और काम का वर्णन करके पवित्र अर्थ वाले इतिहासों के द्वारा इस महाभारत में उन दोनों निन्दित पुरुषार्थों का वर्णन किया गया है । यदि श्रीभगवान् की कथा में लोगों की बुद्धि को लगाना रूप प्रयोजन न रहे तो फिर काम और लोभ का वर्णन तो मनुष्यों को संसार के बन्धन में ही डालने वाला होगा । महर्षि बादरायण तो महादयालु विद्वान हैं, वे केवल काम और लोभ का वर्णन कैसे कर सकते हैं ?॥१२॥

**सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ।**
**हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥१३॥**

**अन्वयः**— श्रद्दधानस्य विवर्धमाना सा पुंसः अन्यत्र विरक्तिं करोति । हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्त दुःखात्ययम् आशु धत्ते ॥१३॥

**अनुवाद**— श्रद्धालु व्यक्ति के हृदय में जब भगवत् कथा की रुचि बढने लग जाती है तब वह उस व्यक्ति को दूसरे विषयों से विरक्त बना देती है । उसके पश्चात् वह व्यक्ति श्रीहरि की कथा का निरन्तर चिन्तन करने के कारण आनन्दमग्न हो जाता है उसके फलस्वरूप शीघ्र हीं उसके समस्त दुःखों का नाश हो जाता है ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

श्रीहरिकथायां मतिप्रवेशस्य फलमाह । सा कथा मतिर्वा । अन्यत्र ग्राम्यसुखे । ततः किमत आह-हरेरिति ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीहरि की कथा में बुद्धि के लग जाने का फल बतलाते हुए कहा गया है कि वह कथा अथवा बुद्धि मनुष्य को ग्राम्यसुखों से विरक्त बना देती है । उस विरक्ति का फल **हरेः इत्यादि** उत्तरार्द्ध से बतलाया गया है ॥१३॥

**तान् शोच्यशोच्यानविदो नु शोचे हरेः कथायां विमुखानघेन ।**
**क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषामायुर्वृथा वादगतिस्मृतीनाम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— अहं तान् शोच्यशोचान् अविदः अघेन हरेः कथायां विमुखान् अनुशोचे येषां वृथा वादगतिस्मृतीनाम् आयुः अनिमिषो देवः क्षिणोति ॥१४॥

**अनुवाद**— मैं तो उन शोचनीयों में भी सर्वाधिक शोचनीय अज्ञानी जीवों के विषय में सोचता हूँ जो लोग पूर्वकृत पाप के कारण श्रीहरि की कथाओं से विमुख रहते हैं तथा व्यर्थ में ही व्यर्थ के बाद विवाद, चेष्टा और चिन्तन में लगे रहते हैं और काल स्वरूप भगवान् उनकी आयु को क्षीण करते रहते हैं ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं भूतायां कथायां ये न रमन्ते तान् शोचति । शोच्या ये तेषामपि शोच्यांश्च । तत्राऽविदो भारततात्पर्यानभिज्ञान् शोच्यान् । ये तु ज्ञात्वापि हरेः कथायां विमुखास्तांस्तेषामपि शोच्यानिति योज्यम् । अनिमिषः कालो येषामायुः क्षिपति । अत्रैव हेतुः-वृथैव वादगतिस्मृतयो वाग्देहमनोव्यापारा येषाम् ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार की भगवत कथा में जो पापी लोग अपने मन को नहीं लगाते हैं उनके विषय में शोक करते हुए विदुरजी कहते हैं **शोच्यशोच्यान्** का अर्थ है कि शोचनीयों में शोचनीय। अर्थात् पूर्व जन्म के पाप के कारण जिन लोगों का मन भगवत् कथा में नहीं लगता है वे लोग अत्यन्त शोचनीय हैं। उनमें जो लोग महाभारत के तात्पर्य को नहीं समझते हैं वे तो अत्यन्त शोचनीय हैं। महाभारत के तात्पर्य को जानकर भी भगवत् कथा से विमुख रहने वाले उन सबों से अधिक शोचनीय हैं। उन लोगों की आयु को काल व्यर्थ ही काटता रहता है। क्योंकि ऐसे लोगों के वाणी, देह और मन के द्वारा किए जाने वाले सारे व्यापार व्यर्थ ही होते हैं ॥१४॥

**तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम्।**
**उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबन्धो शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥१५॥**

**अन्वयः**— तत् हे दीनबन्धो कौषारव। पुष्पेभ्यः सारमिव कथासु सारम् उद्धृत्य अस्य शर्मदातुः तीर्थकीर्तेः कथामेव नः शिवाय कीर्तय ॥१५॥

**अनुवाद**— अतएव हे दीनबन्धो ! मैत्रेय महर्षे ! जिस तरह भ्रमर पुष्पों से उसके सारभूत पराग को ही निकाल लेता है, उसी तरह कथाओं में से उनके सारभूत इस विश्व का कल्याण करने वाले पवित्रकीर्ति वाले श्रीहरि की कथाओं को ही आप कहें जिससे कि हम लोगों का कल्याण हों ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

तत्तस्माद्धे कौषरव, अस्य विश्वस्य शिवाय कथासु सारभूतां हरेः कथामेवोद्धृत्य नः कीर्तय। यथा पुष्पेभ्यो मधु मधुप उद्धरति तद्वदुद्धृत्य ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

हे मैत्रेयजी इस विश्व का कल्याण करने के लिए सभी कथाओं के सारभूत श्रीहरि की कथाओं को उसी तरह से आप सुनायें जिस तरह से भौंरा पुष्पों के सारभूत उसके मधु को निकाल लेता है ॥१५॥

**स विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः।**
**चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे प्रगृहीत शक्तिः कृतावतारः स ईश्वरः यानि अतिपूरुषाणि कृत्यानि चकार तानि मह्यम् कीर्तय ॥१६॥

**अनुवाद**— सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार करने के लिए अपनी माया शक्ति को अपनाकर अवतार ग्रहण करने वाले परमात्मा ने जिन अतिलौकिक कर्मों को किया उन सबों को आप मुझे सुनायें ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

विशेषतः श्रीकृष्णकथा कथनीयेत्याशयेनाह-स इति। यो विश्वसर्गाद्यर्थं पूर्वं गृहीतशक्तिः स एव पुरुषेषु कृतावतारः सन् पुरुषानतिक्रम्य वर्तमानानि यानि चकार तानि विस्तराद् वद ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

आप विशेष रूप से भगवान् श्रीकृष्ण की कथाएँ कहें इसी आशय से उन्होंने कहा **स० इत्यादि** इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि को करने के लिए जिन्होंने पूर्वकाल में अपनी मायाशक्ति को अपनाया था वे ही पुरुष रूप से अवतार ग्रहण करने वाले हैं जिन कर्मों को कोई दूसरा पुरुष नहीं कर सकता है, ऐसे जिन कर्मों को श्रीभगवान् ने किया उन्हीं कर्मों का आप विस्तार से वर्णन करें ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

**स एवं भगवान्पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविर्मुनिः । पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहु मानयन् ॥१७॥**

**अन्वयः**— क्षत्त्रा एवं पृष्टः स भगवान् कौषरविः मुनिः पुंसां निःश्रेयसार्थाय तम् बहुमानयन् आह ॥१७॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— विदुरजी के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर वे मैत्रेय महर्षि जीवों का कल्याण करने के लिए विदुरजी का बहुत अधिक सम्मान करते हुए इस प्रकार से कहे ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

पुंसां निःश्रेयसमेवार्थः प्रयोजनं तेन हेतुना पृष्टः ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी के द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्न का एकमात्र प्रयोजन विश्व का कल्याण था इसीलिए मैत्रेयजी ने उनका बहुत अधिक सम्मान करते हुए कहा ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

**साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान्साध्वनुगृह्णता । कीर्तिं वितन्वता लोके आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे साधो लोकान् साध्वनुगृह्णतात्वया अधोक्षाजात्मनः आत्मनः लोके कीर्तिं वितन्वता त्वयासाधु पृष्टं॥१८॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे साधु स्वभाव वाले विदुरजी संसारी जीवों पर कृपा करके आपका मन चूकि हमेशा श्रीभगवान् में ही लगा रहता है, ऐसे आप अपनी कीर्ति का इस संसार में विस्तार करेंगे ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

बहुमानमेवाह-साध्विति पञ्चभिः । अधोक्षजे एवात्मा मनो यस्य तस्यात्मनः स्वस्य कीर्तिं च प्रसङ्गाद्वितन्वता ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

मैत्रेय महर्षि ने जो विदुरजी का बहुत सम्मान किया उसका ही वर्णन पाँच श्लोकों में किया गया है । अधोक्षजात्मनः आत्मनः का अर्थ है । सदा श्रीभगवान् में ही मन लगाये रहने वाले अपना भी प्रसङ्गवशात् इस लोक में कीर्ति का विस्तार करते हुए ॥१८॥

**नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे । गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वरः ॥१९॥**

**अन्वयः**— हे क्षत्तः ! बादरायणवीर्यजे त्वयि एतत् चित्रं न यत् त्वया अनन्य भावेन ईश्वरः हरिः गृहीतः ॥१९॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! आप महर्षि बादरायण के औरस पुत्र हैं अतएव आपके द्वारा इस तरह का प्रश्न किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । क्योंकि आपने सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीहरि को ही अनन्य भाव से अपना आश्रय रूप से स्वीकार किया है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

हरिर्यद्गृहीतः एतच्चित्रं न भवति । कुतः । बादरायणवीर्यजे । ननु बादरायणवीर्यजो धृतराष्ट्रोऽपि भवति, सत्यम्, परंतु त्वयि ततो विशेष-इत्याह गृहीत इति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

आपने चूकि श्रीभगवान् को ही अपने आश्रय रूप से स्वीकार किया है, अतएव यह आपके लिए कोई आश्चर्यकारी बात नहीं है । क्योंकि आप महर्षि बादरायण के वीर्य से उत्पन्न हैं । यदि कहें कि बादरायण महर्षि

के वीर्य से तो धृतराष्ट्र का भी जन्म हुआ था ? तो यह कहना ठीक है, किन्तु धृतराष्ट्र ने श्रीभगवान् को अपना आश्रय नहीं बनाया और आपने श्रीभगवान् को अपनाया यही आप दोनों में अन्तर हैं ॥१९॥

**माण्डव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः । भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात् ॥२०॥**

**अन्वयः**— प्रजासंयमनः यमः माण्डव्यशापाद् भ्रातुक्षेत्रे भुजिष्यायां सत्यवतीसुतात् जातः ॥२०॥

**अनुवाद**— पापी पुरुषों को दण्ड देने वाले आप साक्षात् यमराज है, महर्षि माण्डव्य के शाप के कारण आप अपने भाई विचित्रवीर्य की दासी के गर्भ से उत्पन्न है महर्षि व्यास ने आपको उत्पन्न किया ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु तर्हि कथं शूद्रत्वं, कथं च लोकानुग्राहकत्वं तत्राह-माण्डव्यशापादिति । भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे क्षेत्रत्वेन स्वीकृतायां भुजिष्यायां दास्यां यम एवं त्वं जातोऽसि ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न है कि यदि मैं बादरायण के वीर्य से उत्पन्न हूँ तो फिर मैं शूद्र कैसे हूँ और कैसे मैं जीवों पर कृपा करने वाला हूँ ? तो उसका उत्तर है कि महर्षि माण्डव्य के शाप के कारण अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य की भोगदासी के गर्भ से बादरायण महर्षि ने आपको उत्पन्न किया ऐसे तो आप साक्षात् यम ही हैं ॥२०॥

**भवान्भगवतो नित्यं संमतः सानुगस्य च । यस्य ज्ञानोपदेशाय मादिशद्भगवान्व्रजन् ॥२१॥**

**अन्वयः**— भवान् नित्यं सानुगस्य भगवतो सम्मतः यस्यज्ञानोपदेशाय व्रजन् भगवान् मादिशद् ॥२१॥

**अनुवाद**— आप सदा भगवान् और उनके भक्तों के प्रिय रहे हैं । इसीलिए इस संसार से जाते समय श्रीभगवान् ने आपको ज्ञानोपदेश कर देने के लिए मुझको आदेश भी दिया है ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच । भवानिति । कुतः । यस्य तव ज्ञानोपदेशाय मामादिष्टवान् चकारात्स्वयमपि स्मृत्यैवोपदिष्टवानिति ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरी बात यह है कि आप श्रीभगवान् और उनके भक्तों को अत्यन्त प्रिय हैं क्योंकि इस लोक से परमधाम गमन करते समय श्रीभगवान् ने आपको स्मरण करके ही ज्ञान प्रदान कर दिया और मुझको भी आपको ज्ञानोपदेश करने के लिए आदेश किया ॥२१॥

**अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः । विश्वस्थित्युद्भवान्तार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥२२॥**

**अन्वयः**— अथ विश्वस्थित्युद्भवान्तार्थाः योगमायोपबृंहिताः भगवतः लीला ते अनुपूर्वशः वर्णयामि ॥२२॥

**अनुवाद**— अब मैं सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार ही जिसका प्रयोजन है उसी योग माया के द्वारा विस्तारित भगवान् की लीलाओं का क्रमशः वर्णन करूँगा ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

विश्वस्थित्यादयोऽर्था विषया यासां ताः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार के लिए अपनी योगमाया को अपनाकर विभिन्न प्रकार की लीलाओं को किया करते हैं, उनका ही मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ ॥२२॥

**भगवानेक आसेद मग्रे आत्मात्मनां विभुः । आत्मेच्छानुगतावात्माऽनानामत्युपलक्षणः ॥२३॥**

**अन्वयः**— इदम् अग्रे आत्मनां आत्मा भगवान् एक एव आसीत् आत्मेच्छानुगतौ आत्मा नानामत्युपलक्षणः ॥२३॥

**अनुवाद**— सृष्टि से पहले यह जगत् सम्पूर्ण आत्माओं की आत्मा भगवद्रूप था श्रीभगवान् एक ही थे। और अनेक वृत्तियों के भेद के कारण उनमें जो अनेकता प्रतीत होती है वह भी वे ही थे, क्योंकि उनकी इच्छा अकेले रहने की थी ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र सृष्टिलीला वर्णयितुं ततः पूर्वावस्थामाह । इदं विश्वमग्रे सृष्टेः पूर्वं परमात्मा भगवानेक एव आस आसीत् । आत्मनां जीवानामात्मा स्वरूपं विभुः स्वामी च । नान्यद्द्रष्टृदृश्यात्मकं किंचिदासीत् । कारणात्मना सत्त्वेऽपि पृथक्प्रतीत्यभावादित्याह। अनानामत्युपलक्षणो नानाद्रष्टृदृश्यादिमतिभिर्नोपलक्ष्यत इति तथा । यद्वा अकारप्रश्लेषं विनैवायमर्थः । यः सृष्टौ नानामतिभिरुपलक्ष्यते स तदैक एवासीदिति । कुतः । आत्मेच्छा माया तस्या लये सति । यद्वा आत्मन एकाकित्वेनावस्थानेच्छायामनुवृत्तायामित्यर्थः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

सृष्टि लीला का वर्णन करने के लिए सृष्टि से पहले की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् सृष्टि से पहले केवल भगवान् का ही रूप था। वे भगवान् सम्पूर्ण जीवों की आत्मा तथा विभु अर्थात् स्वामी हैं, यह द्रष्टा दृश्य रूप जगत् कुछ भी नहीं था। यद्यपि यह जगत् कारण रूप से तो विद्यमान था ही किन्तु इसकी श्रीभगवान् से अलग प्रतीति नहीं होती थी। अनेक द्रष्टा दृश्य रूप ज्ञान के द्वारा वह उपलक्षित नहीं होता था।

**यद्वा० इत्यादि** अथवा अकार के प्रश्लेष के बिना ही यह अर्थ होगा कि जो परमात्मा अनेक प्रकार की बुद्धियों के द्वारा उपलक्षित होते हैं वे परमात्मा सृष्टिकाल में एक ही थे। क्योंकि उनकी माया का लय होनेमें इच्छा ही कारण है। अथवा उनके अकेले रहने में अपनी इच्छा का अनुवर्तन ही कारण होता है ॥२३॥

**स वा एष तदास द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् । मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥२४॥**

**अन्वयः**— तदा द्रष्टा एव आस वै दृश्यम् न अपश्यत् सुप्तशक्तिः असुप्तदृक् स आत्मानम् असन्तमिव मेने ॥२४॥

**अनुवाद**— वे ही परमात्मा द्रष्टा होकर देखने लगे तो किसी भी दृश्य पदार्थ को नहीं देखे। उस समय उनकी शक्ति ही सोयी थी उनके ज्ञान का लोप नहीं हुआ था ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र प्रथमं मायोद्भवप्रकारमाह द्वाभ्याम् । स वै एष द्रष्टा सन् दृश्यं नापश्यत् । यत एकराट् एक एव तदा प्रकाशते। आत्मानमसन्तमिव मेने । दृश्याभावे द्रष्टृत्वाभावात् । तदाह । सुप्ता मायाद्याः शक्तयो यस्य सः । न त्वसन्तमेव मेने । यतोऽसुप्ता दृक् चिच्छक्तिर्यस्येति ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि ने सर्वप्रथम माया के उत्पन्न होने के प्रकार को दो श्लोकों से बतलाया है। वे परमात्मा द्रष्टा बनकर जब देखे तो वे किसी भी दृश्य पदार्थ को नहीं देखे क्योंकि उस समय (सृष्टि से पूर्व) वे अकेले प्रकाशित होते थे। उस समय उन्होंने अपने को शून्य की तरह माना। क्योंकि द्रष्टा तो कोई तब हो सकता है जब कि दृश्य हो; बिना दृश्य के कोई द्रष्टा नहीं हो सकता है। इसके उत्तर में मैत्रेय महर्षि कहते हैं— सुप्तशक्तिरसुप्तदृक्। अर्थात् उस समय उनकी माया इत्यादि शक्तियाँ सुप्त थीं। उनकी चित् शक्ति का लोप नहीं हुआ था ॥२४॥

**सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका । माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥२५॥**

**अन्वयः**— हे महाभाग एतस्य संद्रष्टु सा शक्तिः वै सदसदात्मिका माया नाम यया विभुः इदं निर्ममे ॥२५॥

**अनुवाद**— हे महाभाग विदुर ! उन द्रष्टा पुरुष की वह शक्ति सदसदात्मिका है, अर्थात् कार्य-कारण स्वरूपिणी है । उसी को माया कहते हैं । उसी के कारण द्रष्टा और दृश्य की प्रतीति होती है । परमात्मा ने इस सदसदनिर्वचनीय माया के द्वारा इस जगत् का निर्माण किया ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

सा वै द्रष्टृदृश्यानुसंधानरूपा सदसदात्मिका कार्यकारणरूपा । यद्वा सत् दृश्यम्, असत् अदृश्यमात्मस्वरूपं च तयोरात्मा यस्याः । तदुभयानुसन्धानरूपत्वात् ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

वह माया शक्ति ही द्रष्टा दृश्य के अनुसंधान स्वरूपिणी होने के कारण सदसदात्मिका अर्थात् कार्यकारण स्वरूपिणी है । अर्थात् यहाँ सत् शब्द से दृश्य को और असत् शब्द से अदृश्य आत्मा को कहा गया है और उन दोनों का कारण माया ही है । क्योंकि उसकी सत् एवं असत् दोनों रूपों से प्रतीति हाती है ॥२५॥

**कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः । पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥२६॥**

**अन्वयः**— कालवृत्त्या गुणमय्याम् मायायाम् वीर्यवान् अधोक्षजः आत्मभूतेन पुरुषेण वीर्यमाधत्त ॥२६॥

**अनुवाद**— सृष्टि के प्रारम्भ में जब त्रिगुणात्मिका माया में कालशक्ति के द्वारा क्षोभ उत्पन्न हुआ, उस समय चिन्मय परमात्मा ने अपने अंश पुरुष शक्ति के द्वारा उसमें चिदाभास रूप वीर्य का आधान किया ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

कालवृत्त्या कालशक्त्या गुणमय्यां क्षुभितगुणायाम् । अधोक्षजः परमात्मा । आत्मांशभूतेन पुरुषेण प्रकृत्यधिष्ठातृरूपेण वीर्यं चिदाभासमाधत्त । वीर्यवांश्चिच्छक्तियुतः ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

जब काल शक्ति के द्वारा गुण स्वरूपिणी माया में क्षोभ उत्पन्न हुआ तो उस समय अपने अंशभूत प्रकृति के अधिष्ठातृ रूप से पुरुष के द्वारा चित् शक्ति रूप परमात्मा ने प्रकृति में चिदाभास रूप वीर्य को आहित (स्थापित) किया ॥२६॥

**ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् । विज्ञानात्मात्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ॥२७॥**

**अन्वयः**— ततः कालचोदितात् अव्यक्तात् महत् तत्त्वम् अभवत् तमोनुदः विज्ञानात्मा आत्मदेहस्थं विश्वं व्यंजयन्॥२७॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् काल शक्ति के द्वारा प्रेरित उस अव्यक्त माया से महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ । वह अज्ञान का नाशक विज्ञान स्वरूप था तथा अपने में सूक्ष्म रूप से विद्यमान प्रपञ्च को अभिव्यक्त करने वाला था॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

कालप्रेरितादव्यक्तान्मायातः । तत्त्वपदं परित्यज्य महतो लक्षणम्, अतः पुल्लिङ्गनिर्देशो विज्ञानात्मेति । सत्त्वप्रधानत्वात्स्वदेहस्थं विश्वमुच्छूनबीजगत्तमङ्कुरादि रूपं वृक्षमिव व्यञ्जयन् व्यञ्जयन्प्रकाशयन् । यतोऽसौ तमो नुदतीति तमोनुदः। तदुक्तं सात्त्वततन्त्रे । विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः । प्रथमं महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते इति ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

कालशक्ति के द्वारा प्रेरित होने पर अव्यक्त माया से महत्तत्त्व प्रकट हुआ। यहाँ पर तत्त्व पद का परित्याग करके विज्ञानत्मापद का प्रयोग किया गया है इसीलिए पुल्लिङ्ग निर्देश किया गया है। अर्थात् वह महान् अज्ञान का नाशक विज्ञान स्वरूप था। सत्त्वगुण की प्रधानता होने के कारण वह अपने भीतर विद्यमान सम्पूर्ण प्रपञ्च का प्रकाशक था। जिस तरह से फूले हुए बीज से वृक्ष रूप अङ्कुर प्रकट होता है। प्रकाशक होने के ही कारण महान् अज्ञान का विनाशक था। सात्वत तन्त्र में कहा भी गया है— **विष्णोऽस्तु त्रीणि रूपाणि** भगवान् विष्णु के पुरुष शब्द वाच्य तीन रूप बतलाये गये हैं। उनका पहला रूप महत् तत्त्व का स्रष्टा रूप है। दूसरा रूप ब्रह्माण्ड में स्थित है। और तीसरा सभी भूतों के भीतर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है। भगवान् विष्णु के इन तीनों रूपों को जानने वाला पुरुष संसारचक्र से मुक्त हो जाता है ॥२७॥

**सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः। आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥२८॥**

**अन्वयः**— भगवद्दृष्टिगोचरः अंशगुणकालात्मा सोऽपि अस्य विश्वस्य सिसृक्षया आत्मा आत्मानं व्याकरोत् ॥२८॥

**अनुवाद**— भगवान् की दृष्टि पड़ने पर चिदाभास गुण तथा काल के अधीन उस महत् तत्त्व ने विश्व की सृष्टि के लिए अपने को विकृत किया ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

अहङ्कारोत्पत्तिमाह सार्धाभ्याम् सोऽपीति। अंशश्चिदाभासो निमित्तं, गुणा उपादानं, कालः क्षोभकः, तदात्मा तदधीनः भगवान् सर्वाध्यक्षस्तद्दृष्टिगोचरः सन् स्वयमात्मानं व्याकरोत् रूपान्तरमनयत् ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

अब डेढ श्लोक में अहङ्कार की उत्पत्ति का वर्णन **सोऽपि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जा रहा है। भगवान् के द्वारा देखे जाने पर वह महान् चिदाभास रूपी निमित्तकारण, गुण रूपी उपादानकारण, काल रूपी क्षोभक उसके अधीन होने वाले सबों के अधिष्ठाता श्रीभगवान् के द्वारा देखे जाने पर महान् ने स्वयम् अपने को दूसरे रूप में परिणत कर दिया ॥२८॥

**महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत। कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥२९॥**

**अन्वयः**— विकुर्वाणात् महत्तत्त्वात् अहं तत्त्वं व्यजायत स च कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥२९॥

**अनुवाद**— महत् तत्त्व के विकृत होने पर अहङ्कार की उत्पत्ति हुयी वह अहङ्कार कार्य (अधिभूत) कारण (अध्यात्म) तथा कर्ता (अधिदैव) रूप होने से भूत, इन्द्रिय और मन का कारण है ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

अहङ्कारस्य लक्षणमाह। कार्यमधिभूतम्, कारणमध्यात्मम्, कर्तृ अधिदैवं, तेषामात्मा आश्रयः। अत्र हेतुः भूतेन्द्रियमनोमयस्तद्विकारवान्। मन इति देवानामप्युपलक्षणम् ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

अब अहंकार का लक्षण बतलाते हैं। महान् से अहंङ्कार की उत्पत्ति हुयी। वह अहङ्कार कार्य (अधिभूत) कारण (अध्यात्म) और कर्ता अधिदैव इन तीनों का आश्रय है। क्योंकि वह भूत, इन्द्रिय तथा मन इन तीनों का कारण है। मन शब्द मन आदि के अधिष्ठातृ देवताओं का उपलक्षण है।

**वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा । अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ।**
**वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ॥३०॥**

**अन्वयः**— अहं त्रिधा वैकारिकः, तैजसः, च तामसः च । वैकारिकात् अहङ्कारात् विकुर्वाणात् मनः अभूत् । यतः अर्थाभिव्यञ्जनं ये देवाः ते अभूवन् ॥३०॥

**अनुवाद**— वह अहङ्कार तीन प्रकार का हुआ वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस) और तामस् (भूतादि) अहं तत्त्व में विकार उत्पन्न होने पर वैकारिक अहङ्कार से मन आदि इन्द्रियों की अधिष्ठातृ देवता हुए। उन देवताओं के द्वारा ही विषयों का ज्ञान होता है ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

एतदेव विभागतः प्रपञ्चयति-वैकारिक इत्यादिना । वैकारिकः सात्त्विकः, तैजसो राजसः । देवाश्च वैकारिकाः, सात्त्विकाहंकारकार्यभूता इत्यर्थः । यतो येभ्य इन्द्रियाधिष्ठातृभ्यो देवेभ्यो हेतुभ्योऽर्थाभिव्यञ्जनं शब्दादिप्रकाशो भवति ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

इस अहङ्कार के ही विभागों को **वैकारिकः इत्यादि** श्लोक से बतलाया जा रहा है। अर्थात् अहङ्कार के तीन भेद हैं वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस) और भूतादि (तामस)। सात्त्विक अहङ्कार में विकार होने पर उससे मन, और शब्दादि विषयों को प्रकाशित करने वाले इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न हुए। इस तरह देवता भी सात्त्विकाहङ्कार के कार्य हैं ॥३०॥

**तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च । तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ॥३१॥**

**अन्वयः**— ज्ञानकर्ममयानि इन्द्रियाणि तैजसान्येव तामसः भूतसूक्ष्मादिः आत्मनः लिङ्गं खम् ॥३१॥

**अनुवाद**— ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तैजस अहङ्कार जन्य ही हैं। और तामस अहङ्कार से सूक्ष्म भूतों का कारण शब्दतन्मात्र हुआ वह आत्मा का बोध कराने वाला है ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

तैजसान्येवेत्यन्वयः । ज्ञानमयानां सात्त्विकत्वशङ्का मा भूदित्येवकारः । तामसो भूतसूक्ष्मस्य शब्दस्यादिः कारणम्। यतः शब्दात्खमाकाशो भवति । आत्मनो लिङ्गं स्वगुणशब्दरूपेण प्रकाशकं हृदयाकाशतया वा । यद्वा लिङ्गं शरीरम् 'आकाशशरीरं ब्रह्म' इति श्रुतेः ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ राजसाहङ्कार जन्य ही हैं। मूल के एव शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि उनके सात्त्विक होने की शङ्का नहीं करनी चाहिए। तामसाहङ्कार भूतसूक्ष्म शब्दतत्त्व का कारण है। क्योंकि शब्द तन्मात्र से आकाश की उत्पत्ति होती है। लिङ्गमात्मनः का अर्थ है कि वह आकाश अपने गुण शब्द के द्वारा आत्मा का बोध कराता है। अथवा लिङ्ग शब्द शरीर का वाचक है। श्रुति भी कहती है— **आकाशशरीरं ब्रह्म** अर्थात् ब्रह्म का आकश शरीर है ॥३१॥

**कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः । नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— भगवद्वीक्षितं नमः कालमायांश योगेन नभसः अनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन् अनिलम् निर्ममे ॥३२॥

**अनुवाद**— भगवान् की दृष्टि जब आकाश पर पड़ी तो उस आकाश से कालात्मा और चिदाभास के योग से स्पर्शतन्मात्र उत्पन्न हुआ तथा उसमें विकार होने पर वायु की उत्पत्ति हुयी ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

नभसः स्वस्मादनुसृतमुद्भूतं स्पर्शं विकुर्वद्रूपान्तरं नयदनिलं वायुम् । एवं सर्वत्र तन्मात्रद्वारा भूतोत्पत्तिरिति ज्ञातव्यम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आकाश से उद्भूत स्पर्शतन्मात्र से वायु की उत्पत्ति हुयी । इसी तरह सर्वत्र तन्मात्राओं से भूतों की उत्पत्ति को जानना चाहिए ।।३२।।

**अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः । ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ।।३३।।**

**अन्वयः**— उरुबलान्वितः अनिलः अपि नभसा विकुर्वाणः रूपतन्मात्रं ससर्ज तस्मात् लोकस्य लोचनम् ज्योतिः ।।३३।।

**अनुवाद**— अत्यधिक बलवान् वायु आकाश के साथ विकृत होकर रूप तन्मात्रा को उत्पन्न किया और उससे अहङ्कार को प्रकाशित करने वाला तेज उत्पन्न हुआ ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।३३।।

**अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् । आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ।।३४।।**

**अन्वयः**— परवीक्षितम् अनिलेनान्वितं ज्योतिः कालमायांशयोगतः रसमयम् अम्भः आधत्त ।।३४।।

**अनुवाद**— परमात्मा की दृष्टि पड़ने पर वायुयुक्त तेज ने काल, माया तथा चिदाभास के योग से विकृत होकर रस तन्मात्रा के कार्यभूत जल को उत्पन्न किया ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।३४।।

**ज्योतिसाम्भोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् । महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ।।३५।।**

**अन्वयः**— ब्रह्मवीक्षितम् ज्योतिषा अनुसृष्टम् अम्भः कालमायांशयोगतः विकुर्वत अम्भः गन्धगुणाम् महीम् आधत्त ।।३५।।

**अनुवाद**— ब्रह्म की दृष्टि पड़ने पर तेज से युक्त जलने काल माया और चिदाभास के योग से विकृत होकर गन्धतन्मात्र के कार्यभूत पृथिवी को उत्पन्न किया ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।३५।।

**भूतानां नभआदीनां यद्यद्भव्यावरावरम् । तेषां परानुसंसर्गाद्यथासंख्यं गुणान्विदुः ।।३६।।**

**अन्वयः**— नभ आदीनां भूतानां यद् यद् अवरावरं तेषां परानुसंसर्गात् यथासंख्यं गुणान् विदुः ।।३६।।

**अनुवाद**— आकाश आदि भूतों में पूर्व-पूर्व भूतों के गुण उत्तरोत्तर भूतों में संख्यानुसार अनुगत जानना चाहिए ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

हे भव्यविदुर ! पाठान्तरे भाव्यं कार्यम् । यद्यदवरमवरं कार्यं तेषां कार्याणां परैः कारणैरनुसंसर्गाद्यथासंख्यं यथाक्रममुत्तरोत्तरमधिकान्गुणान्विदुः । तथाहि नभसः शब्द एव गुणोऽन्यान्वयाभावात् । वायोस्तु स्पर्श आकाशान्व्याच्छदश्च। एवं तैजसस्तौ च रूपं च । अम्भसस्तानि रसश्च । मह्याः सर्वे ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

हे विदुर जी ! जहाँपर भाव्यं पाठ है वहां पर कार्य रूप अर्थ होगा । जो पीछे-पीछे के कार्य हैं उन सबों का अपने पूर्व-पूर्व के भूतों से सम्बन्ध होने के कारण उत्तरोत्तर भूतों में संख्या के अनुसार अधिक-अधिक गुणों को बतलाया गया है । जैसे आकाश का किसी दूसरे पूर्ववर्ती भूत से सम्बन्ध नहीं है अतएव आकाश का गुण

शब्द है। वायु के गुण स्पर्श और शब्द दोनों है, क्योंकि उसका आकाश से सम्बन्ध है। इसी तरह तेज के गुण शब्द, स्पर्श और रूप तीनों है। इसी तरह जल के चार गुण हैं शब्द, स्पर्श, रूप और रस। पृथिवी में पाँच गुण हैं- शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं शब्द ।।३६।।

**एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ।**
**नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ।।३७।।**

**अन्वयः**— काल, मायांश लिङ्गिनः एते देवाः विष्णोः कलाः, नानात्वात् क्रियानीशाः, ते माञ्जलयः विभुम् प्रोचुः ।।३७।।

**अनुवाद**— महत् तत्त्व आदि के अभिमानी विकार, विक्षेप और चेतनांश विशिष्ट देवगण भगवान् विष्णु के अंश हैं। फिर भी पृथक्-पृथक् रहने के कारण ब्रह्माण्ड की रचना करने में असमर्थ होने से हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहे ।।३७।।

**भावार्थ दीपिका**

देवा महदाद्यभिमानिनः। विष्णोः कला अंशाः, काललिङ्गं विकृतिः, मायालिङ्गं विक्षेपः, अंशालिङ्गं चेतना, तानि विद्यन्ते येषु। अतः समत्वेन नानात्वात्परस्परासंबन्धात्स्वक्रियायां ब्रह्माण्डरचनायामनीशा अशक्ताः सन्तो विभुं परमेश्वरं प्रोचुः ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

इन महत् तत्त्व आदि के अभिमानी काल, माया तथा चेतना से विशिष्ट देवगण, समान रूप से अलग-अलग रहने के कारण ब्रह्माण्ड की रचना में असमर्थ होने के कारण परमेश्वर से कहे ।।३७।।

देवा ऊचुः

**नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।**
**यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरुसंसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ।।३८।।**

**अन्वयः**— हे देव प्रपन्नतापोपशमआतपत्रम् ते पदारविन्दं नमाम, यत् मूलकेताःयतः उरु संसारदुःखं। बहिः उत्क्षिपन्ति ।।३८।।

**देवताओं ने कहा**

**अनुवाद**— हे देव ! शरणागत जीवों के सन्ताप को शान्त करने के लिए छत्र के समान आपके चरणों की हम शरणागति करते हैं। आपके जिन चरणों के तलवों को अपना आश्रय बनाने वाले यतिजन महान् संसार के दुःखो को आसानी से दूर फेंक देते हैं ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

मिथः स्पर्धिष्णवो देवा नमिलन्तः परस्परम्। विश्वकर्मण्यनीशाना निर्विण्णा हरिमीडिरे। नमामेति। प्रपन्नानां तापोपशमे आतपत्रं छत्रम्। तत्र हेतुः। यस्य पादारविन्दस्य मूलं तलं केत आश्रयो येषां ते। संसारदुःखं बहिर्दूरत उत्क्षिपन्ति परित्यजन्ति। पान्थाः स्वगृहं प्राप्य मार्गश्रममिव ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

परस्पर में मैं बड़ा हूँ इस प्रकार की भावना के कारण एक दूसरे से नहीं मिल पाने के कारण ब्रह्माण्ड की रचना में असमर्थ होने से वे उदास होकर श्रीहरि की स्तुति किए। देवताओं ने कहा कि आपके ये चारण शरणागतों के सन्ताप को दूर करने के लिए छत्र का काम करते हैं। अपने इस कथन में हेतु उपन्यस्त करते हुए देवों ने कहा कि आपके चरणों को ही अपना आश्रय बनाने वाले यतिजन महान् सांसारिक दुःखों को उसी तरह से त्याग देते हैं जिस तरह से अपने घर में आया हुआ पथिक मार्ग के श्रम को त्याग देता है ।।३८।।

**धातर्यदस्मिन्भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ।**
**आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥३९॥**

**अन्वयः**— हे धातः हे ईश यत् अस्मिन् भवे तापत्रयेण उपहताः जीवाः आत्मनि शर्म न लभन्ते । अत हे भगवन् सविद्याम् तवाङ्घ्रिच्छायां आश्रयेम ॥३९॥

**अनुवाद**— हे जगत् के कर्त्ता परमेश्वर इस संसार में तापत्रय से संतप्त जीवों को थोड़ी सी भी शान्ति नहीं मिलती है । अतएव हे भगवन् ! हम आपके चरणों की ज्ञानमयी छाया का आश्रय ग्रहण करते हैं ॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

श्रमं विनिवेदयन्त आहुः । हे धातः पितः, यत् यस्माद्भवे संसारे । आत्मन्नात्मनि । संबोधनं वा । शर्म सुखम् । ऋते यदिति पाठे यत्पादभजनं बिना शर्म न लभन्ते ननु ज्ञानादज्ञानकृतस्तापो निवर्तते, किं मदङ्घ्रिच्छायाश्रयणेन तत्राहुः । सविद्यां तदाश्रयणमेव विद्याप्रापकमित्यर्थः ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

संसार में होने वाले खेद को निवेदित करते हुए देवताओं ने कहा हे सम्पूर्ण जगत् के पिता संसारी जीव संसार में उपलब्ध होने वाले तीनों प्रकार के सन्तापों से सन्तप्त रहते हैं, उन लोगों को अपनी आत्माओं में विल्कुल शान्ति नहीं प्राप्त होती है । अथवा हे परमात्मन् ! यह सम्बोधन आत्मन् शब्द का मानना चाहिए । जहाँ पर ऋते पाठ है, वहाँपर अर्थ होगा जिन चरणों का भजन किए बिना जीवों को शान्ति नहीं प्राप्त होती आपके उन चरणों की ज्ञानमयी छाया का हम आश्रयण करते हैं ।

**ननुज्ञानाद्० इत्यादि-** यदि आप कहें कि ज्ञान से ही अज्ञानजन्य संतापों की निवृत्ति हो जाती है, फिर चरणों की शरणाति करने की क्या आवश्यकता है ? तो उसके उत्तर में देवताओं ने कहा **सविद्याम्** अर्थात् आपके चरणों को ही शरण रूप से अपनाने से ज्ञान की प्राप्ति होती है । अतएव हमलोग उनकी शरणागति करते हैं ॥३९॥

**मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छन्दःसुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।**
**यस्याघमर्षोदसरिद्वारायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्ना ॥४०॥**

**अन्वयः**— विविक्ते ऋषयः ते मुखपद्मनीडैः छन्दःसुपर्णै यत् मार्गन्ति अघमर्षोदसरिद्वरायाः यस्य यत्पदं मार्गन्ति तीर्थपदः ते पदं वयं प्रपन्नाः ॥४०॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! ऋषिगण एकान्त में रहकर आपके मुख कमल रूपी घोसले का आश्रय लेने वाले वेदमन्त्र रूपी पक्षियों के द्वारा जिनका सदा अनुसन्धान करते रहते हैं तथा सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाली नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा नदी के जो उद्गम स्थान हैं आपके उन चरणों की हम शरणागति करते हैं ॥४०॥

### भावार्थ दीपिका

अज्ञातस्याश्रयणायोगात्तज्ज्ञानसाधनमाहुः । मार्गन्त्यन्वेषयन्ति यत्ततीर्थपदस्तव पदं वयं प्रपन्नाः । कैर्मार्गन्ति, छन्दःसुपर्णैर्वेदपक्षिभिः । तवैव मुखपद्मं नीडं येषाम् । यथा पक्षिणो नीडादुद्गतास्ततस्ततः परिभ्रम्य पुनस्तत्रैव विशन्ति तथा वेदा त्वत्त उद्गतास्त्वय्येव पर्यवस्यन्ति । अतो वेदानाश्रित्य त्वत्पदं मृगयन्त इति । विविक्ते असङ्गे मनसि । किंचाघमर्षमघनाशकमुदमुदकं यासां सरितां तासु वराया गङ्गायाः पदमुद्गमस्थानम् । अतो गङ्गामनुसेवमाना अपि तदुद्गमस्थानं त्वत्पदं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥४०॥

### भाव प्रकाशिका

जो ज्ञात वस्तु होती है उसी का आश्रयण किया जा सकता है अज्ञात वस्तु का तो आश्रयण किया नहीं

जा सकता । अतएव उस परमात्मा के चरणो के ज्ञान का साधन बतलाते हुए देवगण बतलाते हैं । श्रीभगवान् के चरणों का अन्वेषण ऋषिगण एकान्त में उन वेद के मन्त्र रूप पक्षियों के द्वारा करते हैं जिन वेदमन्त्रों का आश्रय स्थान परमात्मा का मुखकमल है । जैसे पक्षिगण अपने घोसले से निकल कर इधर-उधर भ्रमण करके पुनः अपने घोसले में प्रवेश कर जाते हैं, उसी तरह हे भगवन् आपके ही मुख से निकले हुए वेद मन्त्रों का पर्यवसान आपके मुख में ही हो जाता है । उन वेदों के सहारे ही ऋषिगण आपके चरणों का अन्वेषण करते हैं ।

**किञ्चाघमर्षमघनाशकम्० इत्यादि** जिन नदियों का जल पापों का विनाश करने वाला है उनमें श्रेष्ठ नदी गङ्गा का उद्गम स्थान भी श्रीभगवान् का चरण कमल ही है । अतएव गङ्गा का सेवन करने वाले भी गङ्गा के उद्गम स्थान श्रीभगवान् के चरणों को ही प्राप्त करते हैं ॥४०॥

**यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय ।**
**ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥४१॥**

**अन्वयः**— ते तत् अङ्घ्रिसरोजपीठम् यत् श्रद्धया श्रुतवत्या भक्त्या च परिमृज्यमाने हृदये अवधाय वैराग्य बलेन ज्ञानेन धीराः भवन्ति ॥४१॥

**अनुवाद**— हम आपके चरण कमलों की चौकी की शरणागति करते हैं जिसे भक्तजन श्रद्धा तथा श्रवण रूप भक्ति के द्वारा परिमार्जित अपने अन्तःकरण में ध्यान द्वारा स्थापित करके वैराग्य के बल से परिपुष्ट ज्ञान के द्वारा धैर्य सम्पन्न हो जाते हैं ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

ननु विषयाकृष्टचित्तानां कुतस्तदन्वेषणं तत्राहुः । यद्धृदयेऽवधाय ध्यात्वा । वैराग्यं बलं यस्य तेन ज्ञानेन धीरा भवन्ति। सरागे चित्ते ध्यानमेव कुतस्तत्राहुः । श्रद्धया श्रवणपूर्विकया भक्त्या च संमृज्यमाने संशोध्यमाने ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जिन संसारी जीवों के चित्त को विषय अपनी ओर आकृष्ट किए रहते हैं वे जीव किसलिए भगवान् के चरण कमलों का अन्वेषण करेंगे ? तो इसका उत्तर है कि भगवान् के जिस चरणकमल का अपने अन्तःकरण में ध्यान करके भक्तजन वैराग्य के बल से परिपुष्ट ज्ञान के द्वारा धैर्य सम्पन्न हो जाते हैं, वे भक्त विषयाकृष्ट नहीं हो सकते हैं ।

**सरागेचित्ते० इत्यादि** जिसका अन्तःकरण राग से युक्त है वह ध्यान भी कैसे कर सकता है ? तो इसका उत्तर है कि श्रद्धा पूर्वक श्रवण तथा कीर्तन आदि रूप भक्ति से जिनका हृदय स्वच्छ हो गया है ऐसे भक्त पुरुष भगवान् का अपने हृदय में ध्यान कर ही सकते हैं ॥४१॥

**विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।**
**व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥४२॥**

**अन्वयः**— हे ईश विश्वस्य जन्मस्थिति संयमार्थे कृतावतारस्य ते पदाम्बुजं वयं शरणं व्रजेम यत् स्मृतं स्वपुंसाम् अभयं प्रयच्छति ॥४२॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय की प्राप्ति के लिए अवतार लेते हैं । हम आपके उन चरणों की शरणागति करते हैं आपके वे चरण स्मरण करनेवाले अपने भक्तों को अभयप्रदान कर देते हैं ॥४२॥

**भावार्थ दीपिका**

भक्तानुग्रहं स्मरन्त आहुः-विश्वस्येति ।।४१।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के चरणकमल अपने भक्तों पर जैसी कृपा करते हैं उसका स्मरण करते हुए देवताओं ने **विश्वस्य० इत्यादि** श्लोक को कहा है । श्रीभगवान् सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि आदि का कार्य करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं और श्रीभगवान् के चरण कमल तो स्मरण करने वाले अपने भक्तों को स्मरण करने मात्र से ही अभय प्रदान कर देते हैं ।।४२।।

**यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।**
**पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन्पदाब्जम् ।।४३।।**

**अन्वयः**— देह गेहे मम अहम् इति ऊढदुराग्रहाणाम् पुंसां सानुबन्धे असति पुर्याम् वसतः अपि यत् सुदूरं तत् ते पदाब्जं व्रजेम ।।४३।।

**अनुवाद**— जिन लोगों का तुच्छ देह तथा गृह आदि में एवं उपकरणों से युक्त शरीर में भी अहंत्व एवं ममत्व का दुराग्रह बना हुआ है ऐसे लोगों के शरीर में भी यद्यपि आप अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं फिर भी ऐसे लोगों से आपके चरण कमल अत्यन्त दूर बने रहते हैं । ऐसे आपके चरण कमलों की हम शरणागति करते हैं ।।४३।।

**भावार्थ दीपिका**

अन्तर्यामितया नित्यं संनिहितेऽनर्थकं व्रजनमित्याशङ्क्याहुः-यदिति । सानुबन्धे सोपकरणे । असति तुच्छे । पूर्यां स्वदेह एव वसतोऽपि यत्सुदूरं दुष्प्रापम् ।।४३।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं, किन्तु आपके चरण उन लोगों से अत्यन्त दूर यह सोचकर रहते हैं कि उन शरीरों में जाना व्यर्थ है । इसी अर्थ का प्रतिपादन देवताओं ने इस श्लोक में किया है । सानुबन्धे पद का अर्थ है उपकरणों से युक्त, असति का अर्थ है तुच्छ, पुरी शब्द शरीर का वाचक है । सुदूर शब्द का अर्थ है दुष्प्राप्य। अर्थात् अपने तुच्छ देह और गेह में ही अहंत्व और ममत्व के अभिमान से युक्त मनुष्य के भी शरीर में श्रीभगवान् का नित्य सन्निधान बना हुआ है किन्तु वे दुराग्रही पुरुष परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।।४३।।

**तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ।**
**अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ।।४४।।**

**अन्वयः**— हे परेश असद्वृत्तिभिः अक्षिभिः पराहृतान्तर्मनसः ते नूनं तान् वै न पश्यन्ति ये उरुगायपदन्यास विलासलक्ष्म्याः विशदाशयाः ।।४४।।

**अनुवाद**— हे परमात्मन् जिन लोगों का मन बहिर्मुख इन्द्रियों के कारण बाह्य विषयों में ही लगा रहता है ऐसे लोग उन भगवद् भक्तों का दर्शन भी नहीं कर पाते हैं; जो भगवद्भक्त आपके चरणविन्यास की शोभा के विशेषज्ञ हैं । इसी कारण आपके चरण उन लोगों से सदा दूर रहते हैं ।।४४।।

**भावार्थ दीपिका**

ननु यदि हृदिस्थस्यापि पदाब्जं केषांचित्सुदूरं तर्ह्यन्येषामपि तथैव स्यादविशेषादित्याशङ्क्याहुः । तानिति । असद्वृत्तिभिर्बहिर्मुखैरक्षिभिरिन्द्रियैः पराहृतं दूरमपहृतमन्तस्थं मनो येषां ते । अथो अतएव ते नूनं तान्न पश्यन्ति । वै प्रसिद्धम्।

कुतः पुनस्तेषां तत्सङ्गः स्यात् । कान् ते तव पदन्यासो गमनं तस्य विलासो विभ्रमस्तस्य लक्ष्मीः शोभा तस्य ये त्वल्लीलाकथाभिः शोभमानांस्त्वद्भक्तानित्यर्थः । पथ इति लक्ष्या इति च पाठे त्वत्पदन्यासविलासो लक्ष्यो येषां तान् । पथस्त्वन्मार्गभूतान्सन्मार्गान्वा श्रवणादीन्न पश्यन्तीत्यर्थः । यद्वा ये एवंभूता भागवतास्ते तानुन्मत्तान्नूनं नैव पश्यन्तीत्यन्वयः । सत्सङ्गाभावेन हरिकथाश्रवणाभावाद्धृदि स्थितमपि तेषां सुदूरमिति भावः ।।४४।।

## भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि हृदय में विद्यमान भी मेरे चरणकमल कुछ लोगों के लिए अत्यन्त दूर हैं तो उसी तरह से दूसरे लोगों के लिए भी वे अत्यन्त दूर रह सकते हैं, तो इस प्रकार की आशङ्का करके देवों ने **तान् वै० इत्यादि** श्लोक को कहा— अर्थात् बहिर्मुख इन्द्रियों के होने के कारण जिन लोगों का मन सदा बाह्य विषयों में ही लगा रहता है वे लोग तो आपके चरणों को निश्चित रूप से नहीं देखते हैं । अतएव उन लोगों का उन चरणों से सङ्ग कैसे हो सकता है ? जो लोग आपके चरणों के विन्यासजन्य शोभा के जानकार हैं, उन आपके भक्तों का वे दर्शन भी नहीं कर पाते हैं, तो फिर आपके भक्तों का उनके साथ सङ्ग ही कैसे हो सकता है ? जहाँ पर **अथ** के स्थान पर **पथ** का तथा **लक्ष्म्याः** के स्थान पर **लक्ष्या** पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा कि जिन भक्तों का आपके पदविन्यास ही लक्ष्य हैं,उन भक्तों का दर्शन नहीं पाते हैं । अथवा आपके मार्गभूत सन्मार्ग को जो अर्थात् श्रवणादि को नहीं देखते हैं । **यद्वा० इत्यादि** अथवा आपके जो भक्त है उन भगवद् भक्तों को नहीं देखते हैं । सत्सङ्ग का अभाव होने के कारण वैसे लोग श्रीहरि की कथा को नहीं सुनते हैं । ऐसे लोगों के हृदय में विद्यमान रहने पर भी उन लोगों के लिए श्रीहरि के चरण अत्यन्त दूर ही हैं ।।४४।।

**पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।**
**वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाऽञ्जसाऽन्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ।।४५।।**

**अन्वयः**— हे देव ते कथासुधायाः पानेन प्रवृद्धभक्त्या ये विशदाशयाः ते वैराग्यसारं बोधं प्रतिलभ्य यथाञ्जसा वैकुण्ठधिष्ण्यम् अन्वीयुः ।।४५।।

**अनुवाद**— हे देव ! आपके कथारूपी अमृत का पान करने के कारण जिनकी भक्ति समृद्ध हो गयी है, उसके फलस्वरूप निर्मल अन्तःकरण वाले भगवद् भक्त वैराग्य प्रधान आत्मज्ञान को प्राप्त करके अनायास आपके वैकुण्ठलोक में चले जाते हैं ।।४५ ।।

## भावार्थ दीपिका

एतदेव स्फुटयन्ति-पानेनेति द्वाभ्याम् । वैराग्यं सारो बलं यस्य बोधस्य तं लब्ध्वा । अन्वीयुः प्राप्नुयुः । अकुण्ठधिष्ण्यं वैकुण्ठलोकम् ।।४५।।

## भाव प्रकाशिका

चैवालिसवें श्लोक में ही कही गयी बातों को देवताओं ने स्पष्ट करते हुए कहा— यद्यपि श्रीभगवान् सबों के हृदय में समान रूप से विद्यमान रहते हैं फिर में भगवद्भक्त श्रीहरि की कथामृत का श्रवण करके सदा मग्न रहते हैं । उन लोगों को संसार से वैराग्य हो जाता है और वे आत्मज्ञान को प्राप्त करके बिना किसी प्रयास के वैकुण्ठलोक को प्राप्त कर लेते हैं ।।४५।।

**तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।**
**त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ।।४६।।**

**अन्वयः**— तथा अपरे च धीराः समाधियोगबलेन बलिष्ठां प्रकृतिं विजित्य त्वामेव पुरुषं विशन्ति तेषांश्रमः स्यात् सेवया तु न ।।४६।।

**अनुवाद**— दूसरे धीर पुरुष चित्त के निरोध रूप समाधि योग के सहारे बलवती प्रकृति को जित लेते हैं और परं पुरुष आप में ही प्रवेश कर जाते हैं। उन लोगों को भी श्रम करना पड़ता है किन्तु सत्सङ्ग रूपी सेवा के मार्ग से मुक्ति को प्राप्त करने वालों को कोई भी कष्ट नहीं होता है ॥४६॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मनि समाधिर्मनः स्थैर्यं स एव योग उपायस्तस्य बलेन। ज्ञानयोगतः श्रमेण मोक्षः सत्सङ्गतस्त्वत्कथाश्रवणादिना त्वनायासेनैव। अहंममताविष्टानां तु न कथंचिदिति भावः ॥४६॥

**भाव प्रकाशिका**

चित्त की वृत्ति को रोककर मन को आत्मा में ही लगाये रखने को योग कहते हैं। योग जन्य ज्ञान के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करने में परिश्रम तो होता ही है। किन्तु आपकी कथा का श्रवण आदि रूप सत्सङ्ग के द्वारा तो अनयास ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाती है। जो लोग अहंत्व ममत्व आदि की भावना से ग्रस्त हैं वे तो कभी भी वैकुण्ठ को नहीं प्राप्त कर सकते ॥४६॥

**तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म।**
**सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥४७॥**

**अन्वयः**— हे आद्य तत् ते वयं त्वया लोकसिसृक्षया अनुसृष्टाः त्रिभिः आत्मभिः सर्वे वियुक्ताः स्म अतएव स्वविहारतन्त्रं प्रतिहर्तवे न शक्नुमः ॥४७॥

**अनुवाद**— हे आदि पुरुष हमलोग आपके हैं। आपने विश्व की रचना करने के लिए हमलोगों की क्रमशः सृष्टि की है। किन्तु सत्त्व, रजस् एवं तमस् से युक्त होने के कारण हमलोग आपस में नहीं मिल पाते हैं। फलतः आपकी क्रीडा के साधनभूत ब्रह्माण्ड की रचना करके आपको समर्पित नहीं कर पा रहे हैं। अतएव आप अपना ज्ञान हमें प्रदान करें ॥४७॥

**भावार्थ दीपिका**

तदेवं स्तुत्वा प्रार्थयन्ते चतुर्भिः। तत्तस्मात् हे आद्य, ते त्वदीया वयं यस्माल्लोकानां सिसृक्षया त्वयाऽनुसृष्टा क्रमेणोत्पादिताः त्रिभिरात्मभिः सत्त्वादिस्वभावैः अतएव विरूद्धस्वभावत्वाद्वियुक्ताः सन्तो यदर्थं सृष्टास्तत्स्वविहारतन्त्रं त्वत्क्रीडोपकरणं ब्रह्माण्डं ते तुभ्यं प्रतिहर्तवे प्रतिहर्तुं समर्पयितुं न शक्नुमः, अतस्त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहीति त्रयाणां श्लोकानां चतुर्थेनान्वयः ॥४७॥

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति करके देवगण श्रीभगवान् की प्रार्थना चार श्लोकों से करते हैं। अतएव हे आदिपुरुष ! हमलोग आपके ही हैं, क्योंकि आपने ब्रह्माण्ड की रचना करने के लिए हमलोगों की क्रमशः सृष्टि की है। हमलोगों का सत्त्वादि गुण युक्तता ही स्वभाव है। फलतः परस्पर विरोधी स्वभाव वाले होने के कारण आपस में हम नहीं मिल पाते हैं। आपने जिसलिए हमलोगों की सृष्टि की है आपकी क्रीडा के साधन भूत ब्रह्माण्ड की रचना करके उसको आपको समर्पित करने में हमलोग असमर्थ हैं। अतएव आप हमलोगों को अपना ज्ञान प्रदान करें। इस तरह तीन श्लोकों का चौथे श्लोक से सम्बन्ध है ॥४७॥

**यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र।**
**यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥४८॥**

**अन्वयः**— हे अज ! काले यावत् ते बलिं हराम वयं च यथा यत्र अन्नम् अदाम ते इमे लोकाः यथा उभयेषां बलिं हरन्तः अनूहाः अन्नम् अदन्ति ॥४८॥

**अनुवाद**—हे अजन्मा ! भगवन् जिस तरह से हम ब्रह्माण्ड की रचना करके समयानुसार आपको भोग प्रदान कर सकें और हमलोग भी जहाँ पर रहकर अपने भोगों को प्राप्त कर सकें, तथा ये सभी जीव भी आपको तथा हमलोगों को भोग प्रदान करें स्वयम् भी बिना किसी विघ्न के अपने-अपने भोगों को प्राप्त कर सकें ऐसा ज्ञान आप हमें प्रदान करें ॥४८॥

### भावार्थ दीपिका

असामर्थ्यमेव प्रपञ्चयितुं कार्यस्यातिवैचित्र्यमाहुः । भो अज, काले तत्तदवसरे बलिं भोगं यावत्साकल्येन ते तुभ्यं हराम समर्पयाम । यथा येन प्रकारेणान्नमदाम भक्षयामेत्यनेनान्नमात्रं चास्माकम्, ऐश्वर्येण तु भोगस्तवैवेत्युक्तम् । उभयेषां तव चास्माकं च यत्र स्थित्वा इमे जीवा अनूहा अप्रत्यूहा निर्विघ्नाः । यद्वा अनूहा अवितर्काः, निःसंशया इत्यर्थः । तथाच श्रुतिः- **'ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदाम'** इति ॥४८॥

### भाव प्रकाशिका

सामर्थ्य के अभाव को ही विस्तार से बतलाने के लिए कार्य की अत्यन्त विचित्रता को बतलाते हैं । हे अजन्मा भगवन् ! जिस प्रकार से समयानुसार हम आपको पूर्ण रूप से बलि प्रदान कर सकें तथा जिस तरह से हमलोग अपने-अपने भोगों को प्राप्त कर सकें; अर्थात् हमलोग तो केवल अन्न प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु ऐश्वर्य रूपी भोग तो आपको ही प्राप्त होगा । और जहाँ रहकर ये सभी जीव आपको तथा हमलोगों को भी भोग प्रदान कर सकें और निर्विघ्न बने रहें अथवा संशय रहित बने रहें ऐसा ज्ञान हमें प्रदान करें । श्रुति भी कहती हैं- **ता एनम् इत्यादि** उन देवताओं ने प्रजापति से कहा आप हमें आश्रय प्रदान करें जिसमें स्थित रहकर हम अपने भोगों को प्राप्त कर सकें ॥४८॥

**त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।**
**त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥४९॥**

**अन्वयः**— नः सान्वयानां सुराणाम् कूटस्थः पुराण पुरुषः त्वम् आद्यः अजः त्वं गुणकर्मयोनौ अजायां शक्त्यां कवि रेतः आदधे ॥४९॥

**अनुवाद**— कार्यवर्ग सहित हम देवताओं के भी निर्विकार अन्जमा तथा पुराण पुरुष आप ही आदि कारण है । सृष्टि काल में अजन्मा आपने ही अपनी माया शक्ति में चिदाभास रूप वीर्य का आधान किया था ॥४९॥

### भावार्थ दीपिका

अवश्यं च त्वयाऽस्माकमेषां च कार्योपाधीनां जीवानां वृत्तिः परिकल्पनीया जनकत्वादित्याहुः । नोऽस्माकं सान्वयानां सकार्याणाम् । यद्वा । अन्वेतीत्यन्वयः कारणं तत्सहितानां त्वमेवाद्यः कारणम् । अत्र हेतवः । कूटस्थोऽविक्रियः । पुरुषोऽधिष्ठाता । पुराणः पुरातनः । एतदुपपादयन्ति -त्वमिति । हे देव, अज एव त्वं गुणानां सत्त्वादीनां कर्मणां जन्मादीनां च योनौ कारणभूतायां शक्त्यां मायायां प्रथमं रेत आदधे । निहितवानसीत्यर्थः । कीदृशम् । कविं सर्वज्ञं महत्तत्त्वरूपम् ॥४९॥

### भाव प्रकाशिका

आपको अवश्य ही हम कार्योपधि जीवों की वृत्ति की परिकल्पना करनी चाहिये क्योंकि आप ही कार्य वर्ग सहित हमलोगों को उत्पन्न करने वाले हैं । अथवा अन्वय शब्द क्रम का बोधक है । इस तरह अर्थ होगा कि हमलोगों के तथा हमारे जो कारण महदादि हैं उनके भी कारण आप ही हैं । क्योंकि आप निर्विकार अधिष्ठाता और सबसे पुरातन हैं ।

**एतदेवोपपादयति० इत्यादि-** इसी अर्थ का प्रतिपादन इस श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा किया गया है ।

हे देव आप अजन्मा हैं और सत्त्व आदि गुणों तथा जन्म आदि के कारणभूत माया में आपने महत् तत्त्व रूप सर्वज्ञ समष्टि जीव रूप वीर्य का आधान किया है ।।४९।।

**ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन् करवाम किं ते ।**
**त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ।।५०।।**

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

**अन्वयः**— हे आत्मन् देव ! ततः सत्प्रमुखा वयं यदर्थे बभूविम ते किं करवाम यदनुग्रहाणां नः क्रियार्थे शक्त्या स्वचक्षुः परिदेहि ।।५०।।

**अनुवाद**— हे परमात्मन् देव ! महत् तत्त्वादिरूप हम देवगण जिस कार्य के लिए उत्पन्न हुए है, उसके बारे में हम क्या करें । ब्रह्माण्ड रूप कार्य की रचना करने के लिए आप हमें अपनी शक्ति के साथ अपनी ज्ञान शक्ति को भी प्रदान करें जिससे कि हमलोग ब्रह्माण्ड की रचना कर सकें । हमलोग पर कृपा करने वाले आप ही हैं ।।५०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरेस्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।**

**भावार्थ दीपिका**

तथा हे आत्मन् देव, सत्प्रमुखा महदादयो वयं यदर्थं बभूविम, तत्किं ते कार्यं करवाम। सृष्टिमिति चेत्तत्राहुः । तर्हि नोऽस्माकं त्वं स्वचक्षुः स्वीयं ज्ञानं शक्त्या सह परिदेहि प्रयच्छ । यस्मात्त्वत्त एवानुग्रहो येषां ते यदनुग्रहास्तेषामस्माकम् । क्रियार्थे इयानेवैतावाननुग्रहो येषामित्येकं वा पदम् । त्वदीयज्ञानक्रियाशक्तिभ्यामेव वयं सृष्टौ क्षमा नान्यथेत्यर्थः ।।५०।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।**

**भाव प्रकाशिका**

तथा आत्म स्वरूप भगवन् महदादि प्रधान हम देवगण जिस कार्य के लिए उत्पन्न हुए हैं, आपके उस कार्य के विषय में हम क्या करें । यदि आप कहें कि तुमलोग ब्रह्माण्ड की सृष्टि करो तो इसके विषय में देवताओं ने कहा यदि ऐसी बात है ते आप हमलोगों को क्रियाशक्ति के साथ अपनी ज्ञान शक्ति प्रदान करें । क्योंकि आपके द्वारा अनुगृहीत होने पर ही हम ब्रह्माण्ड की रचना करने में समर्थ होंगे नही तो नहीं ।।५०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के पाँचवे अध्याय के भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।५।।**

# छठा अध्याय

## विराट् शरीर की उत्पत्ति का वर्णन

ऋषिरुवाच

**इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः । प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ।।१।।**
**कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः। त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ।।२।।**

**अन्वयः**— सः पुरुक्रमः ईश्वरः इति तासां स्वशक्तीनाम् असमेत्य सतीनाम् प्रसुप्तलोकन्तन्त्राणां गतिम् निशाम्य तदा कालसंज्ञा देवीं विभ्रत् त्रयोविंशत् तत्त्वानां गणं युगपत् आविशत् ।।१-२।।

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपनी शक्तिभूत महदादि तत्त्वों को पृथक्-पृथक् रहने के कारण विश्व की रचना में असमर्थ देखकर दिव्यकालशक्ति को स्वीकार करके एक ही समय में महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्च महाभूत पञ्चतन्मात्रायें तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ इन तेइसों के समूह में प्रवेश कर गये ।।१-२।।

### भावार्थ दीपिका

षष्ठे तैरीश्वराविष्टैः सृष्टिमाह विराट्तनोः । अधिदैवादिभेदं च तत्रैव भगवत्कृतम् । स्वशक्तीनां महदादीनामसमेत्यामिलित्वा सतीनां स्थितानाम् । प्रसुप्तं लोकतन्त्रं विश्वरचना यासाम् । यद्वा प्रसुप्तजीवोपकरणानां गतिं स्थितिं दृष्ट्वा आविशदित्युत्तरेणान्वयः। कालेन संज्ञा उद्बोधो यस्याः, कालयति क्षोभयति स्वकार्याणीति वा कालसंज्ञा प्रकृतिस्तां शक्तिम् । प्रकृत्या सह प्रवेशस्त्रयोविंशतितत्त्वानामित्युक्तम् । अन्तर्यामितया प्राविशत् ।।१-२।।

### भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में ईश्वर से अविष्ट उन महदादिकों के द्वारा विराट् शरीर की सृष्टि बतलायी गयी है और उसमें ही अधिदैव इत्यादि भेदों को परमात्मने कर दिया ।।१।।

अपनी शक्ति महदादिकों में जो पृथक् पृथक् विद्यमान थीं और उसके कारण विश्वरचना का कार्य प्रसुप्त था । अथवा जिनके जीवोपकरण प्रसुप्त थे । उनकी स्थिति को देखकर श्रीभगवान् कालशक्ति के द्वारा जिसका उद्बोध होता है, वह प्रकृति अथवा कालयति अर्थात् जो अपने कार्यों में क्षोभ पैदा कर देती है, उस प्रकृति के साथ प्रवेश करने के कारण तेइस तत्त्वों में भगवान् प्रवेश किए । अर्थात् उन सभी महदादि तत्त्वों में भगवान् प्रकृति के साथ अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये ।।१-२।।

**सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् । भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ।।३।।**

**अन्वयः**— तं गणम् चेष्टारूपेण अनुप्रविष्टः भगवान् सुप्तं कर्म प्रबोधयन् भिन्नं संयोजयामास ।।३।।

**अनुवाद**— उन तेइसों के भीतर चेष्टा रूप से प्रवेश करके श्रीभगवान् ने उनके सोये हुए अदृष्ट को जगाते हुए उन सबों को एक में मिला दिया ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

चेष्टारूपेण क्रियाशक्त्या । कर्म तेषां क्रियां जीवानामदृष्टं वा ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

उन सबों में चेष्टा रूप से अर्थात् क्रिया शक्ति के द्वारा उन सबों की क्रिया अथवा जीवों के अदृष्ट को भगवान् ने जागृत कर दिया और उसके पश्चात् वे सभी प्राकृत तत्त्व जो अलग-अलग थे उन सबों को एक में मिला दिया ।।३।।

**प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिकोगणः। प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥४॥**

**अन्वयः**— प्रबुद्धकर्मा त्रयेविंशतिकोगणः दैवेन प्रेरितः एवम् त्रिभिः अधिपूरुषम् अजनयत् ॥४॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के द्वारा जिनका अदृष्ट कार्योन्मुख बना दिया गया था इस प्रकार के महादादि तेइसों के समूह ने अपने अंश से विराट् को उत्पन्न किया ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रबुद्धं कर्म क्रियाशक्तिर्यस्य स त्रयोविंशतेर्गणः दैवेनेश्वरेण प्रेरितः। मात्राभिरंशैः। अधिपूरुषं विराड्देहम् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

जिनकी क्रिया शक्ति को श्रीभगवान् ने प्रबुद्ध कर दिया था इस प्रकार का तेइस तत्त्वों के गण ने अपने अंश से विराट् शरीर को उत्पन्न किया ॥४॥

**परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृड्गणः। चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोकाश्चराचराः ॥५॥**

**अन्वयः**— परेण मात्रया स्वस्मिन् विशता विश्वसृड्गणः अन्योन्यम् आसाद्य चुक्षोभ, यस्मिन् लोकाश्चराचराः ॥५॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् ने उस ब्रह्माण्ड नामक शरीर में अपने अंश से प्रवेश किया ब्रह्माण्ड की रचना करने वाला महदादि का गण एक दूसरे से मिलाकर परस्पर में परिणाम किया। यह तत्त्वों का परिणाम ही विराट् पुरुष है उसी में सभी चराचर जीव विद्यमान हैं ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

जननमेवाह। परेणेश्वरेण। विश्वसृजां सत्त्वानां गणः। मात्रया चुक्षोभ परिणतो न सर्वात्मना। यस्मिँल्लोकाः स्थिताः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को ही बतलाते हुए **परेण इत्यादि** श्लोक को कहा गया है। परमात्मा के उस विराट् शरीर में प्रवेश कर जाने पर विश्व की रचना करने वाले तेइस तत्त्वों के समूह आपस में मिलकर चराचरात्मक ब्रह्माण्ड में क्षोभ को उत्पन्न किया। किन्तु वह परिणाम पूर्णरूप से नहीं था ॥५॥

**हिरणमयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान्। आण्डकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥६॥**

**अन्वयः**— सर्वसत्त्वोपबृंहितः सः हिरण्मयः पुरुषः अप्सु सहस्रपरिवत्सरान् अण्डकोशे अप्सु उवास ॥६॥

**अनुवाद**— सभी चराचरात्मक जीवों के साथ वह हिरण्यमय पुरुष (विराट् पुरुष) उस ब्रह्माण्ड में एक हजार दिव्य वर्षों तक जल में निवास किया ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

स पुरुषोऽधिपुरुष इत्युक्तः आण्डकोशे ब्रह्माण्डकोशे ब्रह्माण्डमध्ये। सर्वैः सत्त्वैरनुशायिभिर्जीवैः सहितः ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

वह विराट् पुरुष जिसको अधिपुरुष कहा गया है, वह अपने साथ शयन करने वाले समस्त जीवों के साथ उस ब्रह्माण्ड रूपी अपने आश्रय में जल के भीतर एक हजार दिव्य वर्षों तक पड़ा रहा ॥६॥

**स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान्। विबभाजात्मनात्मानमेकधा दशधा त्रिधा ॥७॥**

**अन्वयः**— स वै विश्वसृजां गर्भः देवकर्मात्मशक्तिमान् अत्मना आत्मानं एकधा, दशधा त्रिधा च विबभाज ॥७॥

**अनुवाद**— विश्व की रचना करने वाले उन महदादिकों का गर्भ (कार्य) देवशक्ति, कर्मशक्ति और आत्मशक्ति

से अपने आपको एक दश और तीन भागों में विभक्त कर दिया । अर्थात् देवशक्ति यानी ज्ञानशक्ति के द्वारा एक हृदयावच्छिन्न चैतन्य के रूप में कर्मशक्ति यानी क्रियाशक्ति के द्वारा दश प्राणों के रूप में और आत्म शक्ति के द्वारा अध्यात्म, अधिदेव तथा अभिभूत के इन तीन रूपों में अपने आपको विभक्त कर दिया ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

गर्भः कार्यरूपो विराट् । देवशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्तयैकधा हृदयावच्छिन्नचैतन्यरूपेण । कर्मशक्तिः क्रियाशक्तिस्तया दशधा प्राणरूपेण प्राणादयः पञ्च **'नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनजयः'** इत्येते पञ्च । एवं वृत्तिभेदेन दशविधः प्राणः । आत्मशक्तिर्भोक्तृशक्तिस्तयाऽध्यात्मादिभेदेन त्रिधात्मानं विभक्तं कृतवान् ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

महदादि का कार्य भूत जो विराट् था वह देवशक्ति (ज्ञान शक्ति) कर्मशक्ति (क्रिया शक्ति) तथा आत्म शक्ति (भोक्तृशक्ति) से युक्त था, उसने अपने आप को ज्ञानशक्ति के द्वारा हृदयावच्छिन्न चैतन्य के रूप में; क्रिया शक्ति के द्वारा दशप्राणों के रूप में और आत्मशक्ति (भोक्तृशक्ति) के द्वारा अध्यात्म इत्यादि के रूप में विभक्त कर दिया। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनञ्जय ये दश प्राण हैं । अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये अध्यात्मादि हैं ॥७॥

**एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः । आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥८॥**

**अन्वयः**— एष हि अशेषसत्त्वानाम् आत्मा परमात्मनः अंशः, आद्य अवतारः यत्र असौ भूतग्रामः विभाव्यते ॥८॥

**अनुवाद**— यह विराट् पुरुष ही प्रथम जीव होने के कारण समस्त जीवों की आत्मा है, जीव होने के कारण परमात्म का अंश है, प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण भगवान् का आदि अवतार है, सम्पूर्ण जीव समूह इसी में प्रकाशित होता है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

एवं विभागसामर्थ्याय तस्योत्कर्षमाह– एष हीति । अशेषसत्त्वानां प्राणिनामात्मा । व्यष्टीनां तदंशत्वात् । अंशो जीवः। अवतारत्वोक्तिस्तस्मिन्नारायणाविर्भावाभिप्रायेण ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के विभाग रूपी सामर्थ्य के लिए **एष हि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा उसके उत्कर्ष का वर्णन करते हैं । यह विराट् पुरुष सभी प्राणियों की आत्मा है, जीव रूप होने के कारण उस परमात्मा का अंश है प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण भगवान् का आदि अवतार है । इसी में नारायण की अभिव्यक्ति होने के कारण इस विराट् पुरुष को अवतार कहा गया है ॥८॥

**साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा । विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥९॥**

**अन्वयः**— एष विराट् साध्यात्मः साधिदैवः साधिभूत इति त्रिधा, दशविधः प्राणः, हृदयेन च एकविधः ॥९॥

**अनुवाद**— यह विराट् अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत रूप से तीन प्रकार का प्राण रूप से दश प्रकार का और हृदय रूप से एक प्रकार का है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

पूर्वश्लोकार्थं विवृणोति । साध्यात्मः अध्यात्मानीन्द्रियाणि तत्सहितः । विराडिति सर्वत्र ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आठवें श्लोक की व्याख्या की गयी है। अध्यात्म शब्द से इन्द्रियों को कहा गया है। वह विराट् ही अध्यात्मादि भेद से तीन प्रकार का है। प्राण रूप से वह दश प्रकार का है और वह हृदय रूप से एक प्रकार का है ॥९॥

**स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः । विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥१०॥**

**अन्वयः**— विश्वसृजाम् ईशः भगवान् विज्ञापितं स्मरन् स्वेन तेजसा एषां विवृत्तये विराजम् अतपत् ॥१०॥

**अनुवाद**— महदादिकों के स्वामी श्रीभगवान् उन सबों की प्रार्थना को स्मरण करते हुए उन सबों की वृत्ति को जगाने के लिए अपने चेतना रूप तेज के द्वारा विराट् को जगाये ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

अध्यात्मादिभेदं प्रपञ्चयितुमाह-स्मरन्निति। विज्ञापितं **'यावद्बलिं तेऽज हराम'** इत्यादि। स्वेन तेजसा चिच्छक्त्या। अतपत् एवं करिष्यामीत्यालोचितवान् **'यस्य ज्ञानमयं तपः'** इति श्रुतेः। विवृत्तये विविधवृत्तिलाभाय ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

अध्यात्म इत्यादि भेदों को विस्तार से बतलाने के ही लिए स्मरन् विश्वसृजाम् इत्यादि श्लोक कहा गया है। देवताओं ने **यावदबलिं देव इत्यादि** श्लोक से प्रार्थना की थी उसका स्मरण करते हुए श्रीभगवान् ने उन सबों की वृत्ति को जगाने के लिए अपनी चित् शक्ति के द्वारा विचार किया कि मैं विराट् को इस प्रकार का कर दूँगा। श्रुति भी कहती है, यस्य ज्ञानमयं तपः। अर्थात् जिस परमात्मा का तप ज्ञान स्वरूप है। उन सबों को अनेक प्रकार की वृत्ति प्रदान करने के लिए परमात्मा ने उस विराट् को उद्बोधित किया ॥१०॥

**अथ तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह । निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥११॥**

**अन्वयः**— अथ अभितप्तस्य तस्य देवानां कति आयतनानि निरभिद्यन्त तानि गदतः मे शृणु ॥११॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् परमात्मा के सङ्कल्प के पश्चात् जगे हुए उस विराट् में देवताओं के कितने आश्रय प्रकट हुए उसे मैं बतला रहा हूँ इसे आप सुनें ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

मे मत्तः श्रृणु ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

परमात्मा ने सङ्कल्प के द्वारा उस विराट् को जगाया उसके परश्चात् विराट् पुरुष के कितने आयतन प्रकट हुए उसे मैं बतला रहा हूँ आप सुनें ॥११॥

**तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लाकपालोऽविशत्पदम् । वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥१२॥**

**अन्वयः**— तस्य आस्यं निर्भिन्न तत् पदं लोकपालः अग्निः स्वांशेन वाचा आविशत् यया असौ वक्तव्यं प्रतिपद्यते ॥१२॥

**अनुवाद**— सर्व प्रथम उस विराट् पुरुष का मुख प्रकट हुआ उसमें अग्नि नामक लोकपाल अपने अंशभूत वागिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये। उस वागिन्द्रिय के द्वारा ही जीव बोलने का काम करता है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

आयतनान्येवाह- तस्याग्निरित्यादि चतुर्दशभिः। आस्यं निर्भिन्नं पृथग्जातम्। पदं स्वस्थानम्। स्वांशेन स्वशक्त्या वाचा सहाविशत्। असौ जीवः वक्तव्यं प्रतिपद्यते, शब्दमुच्चारयतीत्यर्थः। सर्वत्र यन्निर्भिन्नं तदधिष्ठानम्। अग्न्यादिप्रथमान्तमधिदैवम्। वागादीन्द्रियम्। तृतीयान्तमध्यात्मम्। प्रतिपत्तव्यमधिभूतम् ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

अग्नि इत्यादि चौदह श्लोकों के द्वारा आयतनों का ही वर्णन मैत्रेय महर्षि करते हैं। सर्वप्रथम उस विराट् का मुख प्रकट हुआ। अपने अंश भूत वागिन्द्रिय के साथ अग्नि नामक लोकपाल अपने उस मुख नामक वागिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये। उस वागिन्द्रिय के द्वारा ही जीव बोलने का काम करता है। सब जगह जो प्रकट होता है, वही आश्रय है। प्रथमान्त से बतलाये गये अग्नि आदि अधिदैव हैं। वाणी आदि इन्द्रियाँ जो हैं उनको तृतीयान्त पद के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। तथा प्रतिपत्तव्य रूप से अधिभूत को कहा गया है ॥१२॥

**निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः। जिह्वयांऽशेन च रसं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥१३॥**

**अन्वयः**— हरेः तालु निर्भिन्नं स्वांशेन जिह्वया लोकपालः वरुणः पदम् आविशत् यया असौ रसं प्रतिपद्यते ॥१३॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष का तालु प्रकट हुआ अपने उस स्थान में वरुण नामक लोकपाल अपने अंश भूत रसनेन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये। उसी के द्वारा जीव रस का अनुभव करता हैं ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

हरेर्विराजः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

हरि शब्द से इस श्लोक में विराट् पुरुष को कहा गया है ॥१३॥

**निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां पदम्। घ्राणेनांशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१४॥**

**अन्वयः**— विष्णोः नासे निर्भिन्ने तत् पदं अश्विनौ घ्राणेनांशेन आविशताम्। यतः गन्धस्य प्रतिपत्तिः भवेत् ॥१४॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष की दोनों नासिकाएँ प्रकट हुयी उस स्थान में दोनों अश्विनी कुमार अपने अंशभूत घ्राणेन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये। उसी के द्वारा जीव गन्ध का ग्रहण करता है ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥१४॥

**निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लाकपालोऽविशद्विभोः। चक्षुषांशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यत भवेत् ॥१५॥**

**अन्वयः**— विभोः अक्षिणी निर्भिन्ने तत्र लोकपालः त्वष्टा चक्षुषा अंशेन अविशत् यतः रूपाणां प्रतिपत्ति र्भवेत् ॥१५॥

**अनुवाद**— उसके प्रश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों नेत्र प्रकट हुए। उसमें त्वष्टा (आदित्य) नामक लोकपाल अपने अंशभूत चक्षुरिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये। उस चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा ही मनुष्य रूपों का ग्रहण करता हैं ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

त्वष्टा आदित्यः ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

त्वष्टा शब्द से आदित्य को कहा गया है ॥१५॥

**निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत्। प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते ॥१६॥**

**अन्वयः**— अस्य चर्माणि निभिन्नानि येषु लोकपाल अनिलः अंशेन प्राणेन आविशत् येनासौ संस्पर्श प्रतिपद्यते॥१६॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष की त्वचा प्रकट हुयी उसमें लोकपाल वायु अपने अंशभूत त्वगिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये उसी के द्वारा जीव स्पर्श का अनुभव करता है ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

प्राणेनेति । प्राणवद्देहव्यापिना त्वगिन्द्रियेणेत्यर्थः ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

प्राण के समान सम्पूर्ण शरीर में व्यापक त्वगिन्द्रिय के साथ वायु त्वचा में प्रवेश कर गया ॥१६॥

**कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः । श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥१७॥**

**अन्वयः**— तदनन्तरं तस्य कर्णौ विनिर्भिन्नौ तत्र श्रोत्रेणांशेन स्वं धिष्ण्यं दिशः विविशुः येन सिद्धिं प्रपद्यते ॥१७॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों कान प्रकट हो गये और अपने उन आश्रय भूत स्थानों में अपने अंशभूत श्रोत्रेन्द्रिय के साथ दिशाएँ प्रवेश कर गयीं ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

शब्दस्य सिंद्धिं ज्ञानम् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

उस विराट् पुरुष के शरीर में जब दोनों कान प्रकट हो गये तो उनमें श्रोत्रेन्द्रिय नामक अपने अंश के साथ दिशाएँ अधिष्ठातृदेवता के रूप में प्रवेश कर गयीं । जीव उस श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा ही सुनने का काम करता है ॥१७॥

**त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः । अंशेन रोमभिः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥१८॥**

**अन्वयः**— अस्य विनिर्भिन्नां त्वचम् रोमभिः अंशेन ओषधीः स्वं धिष्ण्यं विविशुः यैः असौ कण्डूं प्रतिपद्यते ॥१८॥

**अनुवाद**— उस विराट् पुरुष की निकली हुयी त्वचा में अपने आश्रयभूत रोमों के साथ ओषधियाँ प्रवेश कर गयीं । रोमों के द्वारा ही जीव खुजली का अनुभव करता है ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वचं चर्म । ओषधीरोषधयः । त्वगिन्द्रियस्यैव स्थानभेदेन विषयद्वयं कण्डूः स्पर्शश्च । तत्र चायं नामभेदो देवताभेदश्चेति द्वितीयस्कन्ध एव व्याख्यातम् ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में त्वचा शब्द से चमड़े को कहा गया है । त्वगिन्द्रिय के ही स्थान के भेद से दो विषय हो गये खुजली और स्पर्श देवता की भिन्नता के ही कारण यहाँ पर दो नाम बतलाये गये हैं । इस अर्थ की व्याख्या दूसरे स्कन्ध में ही की जा चुकी है ॥१८॥

**मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् । रेतसांऽशेन येनासावानन्दं प्रतिपद्यते ॥१९॥**

**अन्वयः**— तस्य मेढ्रं विनिर्भिन्नं तत्र रेतसांशेन कः स्वधिष्ण्यं उपाविशत् । येन असौ आनन्दं प्रतिपद्यते ॥१९॥

**अनुवाद**— उस विराट् पुरुष के शरीर में लिङ्ग उत्पन्न हुआ उस अपने आश्रयभूत स्थान में अपने अंशभूत रेतस् के साथ प्रजापति ने प्रवेश किया । उस रेतस् के द्वारा ही जीव आनन्द विशेष का अनुभव करता है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

कः प्रजापतिः ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

यहाँ कः शब्द से प्रजापति को कहा गया है ॥१९॥

**गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् । पायुनांऽशेन येनासौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥२०॥**

**अन्वयः**— तदनन्तरं पुंसः गुदं विनिर्भिन्नं तत्र लोकेशः मित्रः स्वांशेन पायुना अविशत् येन असौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥२०॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष की गुदा प्रकट हुयी और उसमें मित्र नामक देवता अपने अंशभूत पायु इन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गयी । पायू इन्द्रिय के द्वारा ही मनुष्य मलत्याग करता है ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२०॥

**हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविन्द्रः स्वर्पतिराविशत् । वार्तयांऽशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥२१॥**

**अन्वयः**— अस्य हस्तौ विनिर्भिन्नौ तत्र वार्तया अंशेन स्वर्पतिः इन्द्रः आविशत् यया वृत्तिं प्रतिद्यते ॥२१॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों हाथ निकल आये उस अपने आश्रयभूत स्थान में स्वर्ग लोक के स्वामी इन्द्र अपने अंश भूत क्रय-विक्रयादि शक्ति के साथ प्रवेश कर गये उसी के द्वारा जीव अपनी वृत्ति को प्राप्त करता है ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

स्वर्पतिः स्वर्गस्य पतिः । वार्तया क्रयविक्रयादिशक्त्या वृत्तिं जीविकाम् ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् विराट् पुरुष के शरीर में दोनों हाथ निकल आये अपने आश्रयभूत उन दोनों हाथों में स्वर्ग लोक के स्वामी इन्द्र अपने अंश भूत क्रय-विक्रय की शक्ति के साथ अधिष्ठातृ देवता के रूप में प्रवेश कर गये। उस क्रय-विक्रय की शक्ति के द्वारा ही जीव जीविका को प्राप्त करता है ॥२१॥

**पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत् । गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥**

**अन्वयः**— तदनन्तरं अस्य पादौ विनिर्भिन्नौ तत्र स्वांशेन गत्या लोकेशः विष्णुराविशत् यया पुरुषः प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के शरीर में दोनों पैर निकल आये और अपने आश्रयभूत उन पैरों में अपने अंशभूत गति के साथ लोकस्वामी विष्णु प्रवेश कर गये । उस गति की शक्ति द्वारा ही जीव अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचता है ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२२॥

**बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत् । बोधेनांशेन बोद्धव्यं प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥२३॥**

**अन्वयः**— तदनन्तरं अस्य विनिर्भिन्नां बुद्धिं बोधेनांशेन धिष्ण्यं वागीशः आविशत् यतः बोद्धव्यं प्रतिपत्तिः भवेत्॥२३॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् इस विराट् पुरुष की बुद्धि उत्पन्न हुयी अपने इस स्थान में अपने अंशभूत बुद्धि शक्ति के साथ वाक्पति ब्रह्माजी प्रवेश कर गये । इस बुद्धिशक्ति के साथ ही जीव ज्ञातव्य विषयों को जान सकता है ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में वागीश शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है । ब्रह्माजी सभी व्यवहारों के साधन भूत अध्यवसाय (निश्चय) रूपी अंश के साथ बुद्धि में प्रवेश कर गये । उस बुद्धिशक्ति के ही द्वारा जीव को व्यवहार की सारी वस्तुओं का ज्ञान होता है ॥२३॥

**हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत् । मनसांऽशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥**

**अन्वयः**— ततः अस्य हृदयं निर्भिन्नं तत्र मनसा अंशेन चन्द्रमा धिष्ण्यम् अविशत् येन असौ विक्रियां प्रतिपद्यते ।।२४।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उसमें हृदय प्रकट हुआ अपने उस स्थान में चन्द्रमा अपने अंशभूत मन के साथ प्रवेश कर गये । मन के द्वारा ही जीव सङ्कल्प विकल्प रूप विकारों को प्राप्त करता है ।।२४।।

**भावार्थ दीपिका**

विक्रियां सङ्कल्पादिरूपाम् ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

अर्थात् जब विराट् पुरुष का हृदय प्रकट हुआ तो उसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा उसमें अपने अंशभूत मन रूपी इन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । मन रूपी आभ्यन्तरेन्द्रिय के द्वारा ही जीव सङ्कल्प विकल्प को करने का काम करता है ।।२४।।

**आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् । कर्मणांशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥**

**अन्वयः**— तदनंतरं अस्य आत्मानं निर्भिन्नम् पदम् कर्मणा अंशेन अभिमानः अविशत् येन असौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ।।२५।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् इस विराट पुरुष का अहङ्कार प्रकट हुआ अपने उस स्थान में अपने कर्म रूपी अहंवृत्ति के साथ अभिमान प्रवेश कर गया इस अहंवृत्ति के द्वारा ही जीव विभिन्न क्रियाओं को करने का काम करता है ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मानमहंकारम् । अभिमन्यतेऽनेनेत्यभिमानो रुद्रः । कर्मणाऽहंवृत्त्या । कर्तव्यमिति क्रियाम् ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में आत्मा शब्द से अहङ्कार को कहा गया है । कर्म शब्द से अहम् अहम् इस तरह से प्रतीत होने वाली वृत्ति को कहा गया है । कर्तव्य शब्द क्रिया का बोधक है । अर्थात् अहङ्कार का अधिष्ठातृ देवता अभिमान है । अहंवृत्ति उसका अंश है । क्रिया ही उसका विषय है ।।२५।।

**सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान् धिष्ण्यमुपाविशत् । चित्तेनांशेन येनासौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥**

**अन्वयः**— तदनंतरम् अस्य सत्त्वम् विनिर्भिन्नम् तत्र धिष्ण्यम् चित्तेन अंशेन महान् उपाविशत् येन असौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ।।२६।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष का चित्त प्रकट हुआ अपने उस स्थान में चित्तशक्ति के साथ महत्तत्त्व ब्रह्मा प्रवेश कर गये उस चित्त शक्ति से जीव विज्ञान को प्राप्त करता है ।।२६।।

**भावार्थ दीपिका**

सत्त्वमिति बुद्धिचित्तयोरभेदेन निर्देशः । महानिति ब्रह्मा । चित्तेन चेतनया ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

बुद्धि तथा चित्त दोनों के एक होने के कारण ही चित्त को यहाँ पर सत्त्व शब्द से कहा गया है । महान् शब्द से चित्त के अधिष्ठतृ देवता ब्रह्माजी को कहा गया है । चित्त शब्द से चेतना को कहा गया है ।।२६।।

**शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत । गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥२७॥**

**अन्वयः**— अस्य शीर्ष्णः द्यौः पद्भ्यांधरा, नाभेः खम् उदपाद्यत् येषु गुणानां वृत्तयः सुरादयः प्रतीयन्ते॥२७॥

**अनुवाद**— इस विराट पुरुष के शिरोभाग से स्वर्ग, पैरों से पृथिवी और नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुए। इन लोकों में सत्त्व, रजस् एवं तमस् तीनों गुणों के परिणामभूत क्रमशः देवता, मनुष्य और प्रेत आदि देखे जाते हैं ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

त्रिलोकोत्पत्तिमाह- शीर्ष्ण इति । वृत्तयः परिणामाः ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विराट् पुरुष से त्रैलोक्य की उत्पत्ति को बतलाया गया है । विराट् पुरुष के शिरोभाग से स्वर्गलोक की उत्पत्ति हुयी, पैरों से पृथिवी की उत्पत्ति हुयी और नाभि से अन्तरिक्ष (भुवः) लोक की उत्पत्ति हुयी। स्वर्ग लोक में सत्त्व गुण के परिणाम भूत देवता रहते हैं, पृथिवी पर रजोगुण प्रधान मनुष्यों का निवास होता है और भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) में तमोगुण प्रधान प्रेतों आदि का निवास होता है ॥२७॥

**आत्यन्तिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे । धरां रजः स्वभावेन पणयो ये च ताननु ॥२८॥**

**अन्वयः**—आत्यन्तिकेन सत्त्वेन देवाः दिवं प्रपेदिरे, रजः स्वाभावेनप णयः ये च तानन‌ु धरां प्रपेदिरे इति शेषः॥२८॥

**अनुवाद**— सत्त्वगुण की प्रधानता के कारण देवगण स्वर्गलोक में रहते हैं रजोगुण की प्रधानता होने के कारण मनुष्य और उनके साधन स्वरूप गौ आदि भूलोक में रहते हैं ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् । आत्यन्तिकेनोर्जितेन । **पण व्यवहारे** । पणन्ते यागादिना व्यवहरन्तीति पणयो मनुष्याः तानन‌ु एतदुपकरणभूता ये गवादयस्तेऽपि धरां प्रपेदिरे ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

सत्ताइसवें श्लोक में ही वर्णित अर्थ को **आत्यन्तिकेन इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा विस्तार से बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं कि देवताओं में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, इसीलिए देवता स्वर्गलोक में रहते हैं। पणयः शब्द से मनुष्यों को कहा गया है । पण व्यवहारे धातु से पणयः पद व्युत्पन्न है । पणन्ते यागादिना व्यवहरन्तीति अर्थात् यज्ञ इत्यादि कार्यों को करते रहने के कारण मनुष्यों को **पणयः** पद से कहा गया है । और यज्ञ इत्यादि कार्यों के लिए उपयोगी गौओं आदि को **तानन‌ु** शब्द से कहा गया है। इस तरह मनुष्य तथा उनके लिए उपयोगी गौएँ आदि भूलोक में रहती हैं ॥२८॥

**तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः । उभयोरन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥२९॥**

**अन्वयः**— तार्तीयेन स्वभावेन उभयोः अन्तरं भगवन्नाभिम् व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ते आश्रिताः ॥२९॥

**अनुवाद**— तमोगुण प्रधान स्वाभाव वाले जो रुद्र के पार्षद, प्रेत, पिशाच आदि हैं वे भूलोक और स्वर्गलोक दोनों के बीच में विद्यमान विराट् पुरुष के नाभि स्थानीय अन्तरिक्ष लोक में निवास करते हैं ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

तृतीयं तमस्तदीयेन तामसेन उभयोर्द्यावापृथिव्योरन्तरं मध्यं व्योमान्तरक्षिं तदेव भगवतो नाभिस्तामाश्रिता रुद्रपार्षदा रुद्रस्य पार्षदानां भूतादीनां गणाः ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

तीसरा गुण तमस् है उस तमोगुण प्रधान स्वभाव वाले होने के कारण भूतों प्रेतों आदि का गण अन्तरिक्ष लोक में रहता है। स्वर्गलोक और भूलोक दोनों के बीच में विद्यमान लोक का नाम भुवर्लोक या अन्तरिक्ष लोक है। वही भगवान् का नाभि स्थान है। उसी में प्रेतों आदि का निवास है। प्रेत इत्यादि ही रुद्र के पार्षद हैं ॥२९॥

**मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह। यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥३०॥**

**अन्वयः**— कुरुद्वह पुरुषस्य मुखतः ब्रह्म अवर्तत। यस्तु उन्मुखत्वात् वर्णानां मुख्यः सोऽपि अवर्तत। अतः ब्राह्मणः गुरुः ॥३०॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी, उस विराट् पुरुष के मुख से वेद प्रकट हुए और मुख से ही ब्राह्मण भी प्रकट हुए। मुख से प्रकट होने के कारण सभी वर्णों में प्रधान ब्रह्मण हुए। ब्राह्मण ही वेदों को पढ़ाते हैं अतएव सभी वर्णों के गुरु हैं ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

अवर्तत प्रवृत्तम्। ब्रह्म वेदः यस्तून्मुखत्वान्मुखोद्भवतद्वर्णानां मुख्यः मुखमिव प्रथमो गुरुश्च अभूत्सोऽपि मुखतोऽवर्ततेत्यनुषङ्गः अध्यापनादिना ब्राह्मणस्य वेदो वृत्तिः। तया वृत्त्या सह ब्राह्मणो मुखतो जात इत्यर्थः। एवमुत्तरत्र वर्णत्रयेऽपि ज्ञातव्यम् ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

अवर्तत पद का अर्थ है, प्रकट हुए। ब्रह्म शब्द वेद का बोधक है। विराट् पुरुष के मुख से ही उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण मुख के ही समान सभी वर्णों मे मुख्य हैं। वे सर्वप्रथम उत्पन्न हुए अतएव भी सबों के गुरु हैं। ब्राह्मण चूकि वेद के अध्यापन आदि का कार्य करते हैं, अतएव वेद ब्राह्मणों की वृत्ति हैं। वेद रूपी वृत्ति के साथ ब्राह्मण विराट् पुरुष के मुख से उत्पन्न हुए। इसी तरह से आगे के भी श्लोकों में जानना चाहिए॥३०॥

**बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः। यो जातस्त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टकक्षतात् ॥३१॥**

**अन्वयः**— बाहुभ्यः क्षत्रं तदनुव्रतः क्षत्रियः अवर्तत यः पौरुषः जातः कण्टकक्षतात् वर्णान् त्रायते ॥३१॥

**अनुवाद**— उस विराट् पुरुष की भुजाओं से क्षत्रिय वृत्ति और उसका अवलम्बन करने वाला क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ। जो विराट् पुरुष का अंश उत्पन्न कर सभी वर्णों की उपद्रवों से रक्षा करता है ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

क्षत्रं पालनरूपा वृत्तिस्तत्क्षत्रमनुव्रतोऽनुसृतः क्षत्रियोऽपि बाहुभ्योऽवर्तत इत्यर्थः। तदनुव्रतत्वमेवाह-य इति। पौरुषः पुरुषस्य विष्णोरंशः। कण्टकाश्चोरादयस्तेभ्यो यत्क्षतमुपद्रवस्तस्मात्त्रायते रक्षति ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

क्षत्र शब्द से पालन स्वरूपिणी वृत्ति को कहा गया है। विराट् पुरुष की भुजाओं से पालन स्वरूपिणी वृत्ति और पालन वृत्ति का अनुसरण करने वाला क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ। क्षत्रिय के पालन कर्तृत्व को बतलाते हुए कहते हैं। विराट् पुरुष का अंशभूत क्षत्रिय उत्पन्न होकर सभी वर्णों की उपद्रव से रक्षा करने का काम करता है ॥३१॥

**विशोऽवर्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः। वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥३२॥**

**अन्वयः**— तस्य विभोः उर्वोः लोकवृत्तिकरीः विश अवर्तन्त तदुद्भवः वैश्यः यः नृणां वार्तां समवर्तयत् ॥३२॥

**अनुवाद**— उन श्रीभगवान् की दोनों जंघाओं से कृषि आदि व्यवसाय रूप सबलोगों का निर्वाह करने वाली

वैश्य वृत्ति की उत्पत्ति हुयी और उसी से वैश्य वर्ण की उत्पत्ति हुयी। यह वर्ण अपनी वृत्ति के द्वारा सभी लोगों की जीविका का निर्वाह करता है ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

विशः कृष्यादिव्यवसायः। लोकस्य वृत्तिकरीर्जीविकाहेतवः। तस्य विभोरूर्वोः प्रवृत्ताः। तदुद्भव ऊरुजो वार्तां, जीविकां यः स्ववृत्त्या संपादितवान् ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

उन परमात्मा की दोनों जंघाओं से सभी लोगों का निर्वाह करने वाली कृषि आदि व्यवसाय स्वरूपिणी वृत्ति उत्पन्न हुयी। उन परमात्मा की जङ्घाओं से ही वैश्य वर्ण भी उत्पन्न हुआ और वह परमात्मा की जङ्घाओं से ही उत्पन्न अपनी वृत्ति से सबों की जीविका का सम्पादन किया ॥३२॥

**पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषाधर्मसिद्धये। तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥**

**अन्वयः**— भगवतः पदभ्यां धर्मसिद्धये शुश्रूषां जज्ञे तस्यां पुराशूद्रो जातः यद्वृत्त्या हरिः तुष्यते ॥३३॥

**अनुवाद**— सभी धर्मों की सिद्धि के लिए श्रीभगवान् के चरणों से शुश्रूषा (सेवावृत्ति) उत्पन्न हुयी और भगवान् के चरणों से उस सेवावृत्ति को अपनाने वाला शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ। उस सेवावृत्ति से श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्यां निमित्तभूतायाम्। यस्य वृत्त्या हरिः स्वयमेव तुष्यति ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के चरणों से सेवावृत्ति का प्राकट्य हुआ और उन चरणों से ही उस सेवावृत्ति का अधिकारी शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ उस सेवावृत्ति को अपनाने वाले पर श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥३३॥

**एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिम्। श्रद्धयात्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सहवृत्तिभिः ॥३४॥**

**अन्वयः**— एते वर्णाः आत्मविशुद्ध्यर्थं श्रद्धया स्वगुरुम् स्वधर्मेण यजन्ति यत् वृत्तिभिः सह जाताः ॥३४॥

**अनुवाद**— ये सभी वर्ण अपने अन्तःकरण की वृत्तियों की शुद्धि के लिए अपने-अपने धर्मों के द्वारा अपने गुरु श्रीहरि की पूजा करते है। चूकि ये सभी श्रीहरि से ही उत्पन्न हुए हैं अतएव उनका पूजन करना इन वर्णों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म है ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

यत् यस्माज्जाताः गुरुत्वाज्जनकत्वाद्वृत्तिप्रदत्वाच्च हरेराराधनं तेषां परो धर्म इत्यर्थः ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि ये सभी अपनी-अपनी वृत्तियों के साथ श्रीहरि से ही उत्पन्न हैं, अतएव इनका सबसे बड़ा धर्म है श्रीहरि की पूजा करना। श्रीहरि इन सबों के गुरु, पिता तथा वृत्ति प्रदान करने वाले हैं ॥३४॥

**एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः। कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥३५॥**

**अन्वयः**— क्षत्तः दैवकर्मात्मरूपिणः भगवतः एतत् योगमायाबलोदयम् उपाकर्तुं कः श्रद्दध्यात् ॥३५॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! यह विराट् पुरुष काल, कर्म तथा स्वभाव शक्ति से युक्त श्रीभगवान् की योगमाया के बल से विजृम्भित है। इसका पूर्ण रूप से वर्णन करने की इच्छा कौन कर सकता है। उसकी इच्छा भी जब नहीं की जा सकती है तो फिर निरूपण करना तो दूर की बात है ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

भो क्षत्तः, देवकर्मात्मरूपिणः कालकर्मस्वभावशक्तिमता भगवतो योगमायाबलेनोज्जृम्भितमेतद्विराड्रूपमुपाकर्तुं साकल्येन निरूपयितुं कः श्रद्दध्यादिच्छेत् । इच्छाऽप्यशक्या निरूपणं तु दूरत इत्यर्थः ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

हे विदुर जी ! श्रीभगवान् काल, कर्म तथा स्वभाव की शक्ति से सम्पन्न है । उनकी योगमाया के ही प्रभाव को प्रकट करने का काम यह विराट् करता है । इसका पूर्ण रूप से वर्णन करने की कोई इच्छा भी नहीं कर सकता है । ऐसी स्थिति में उसका पूर्ण रूपेण वर्णन करने की बात तो बहुत दूर की है ।।३५।।

**अथापि कीर्तयाम्यङ्ग यथामति यथाश्रुतम् । कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्याभिधाऽसतीम् ।।३६।।**

**अन्वयः**— अथापि हे अङ्ग अन्याभिधाऽसतीम् स्वाम् गिरम् सत्कर्तुम् यथामति यथाश्रुतम् हरेः कीर्तिं कीर्तयामि ।।३६।।

**अनुवाद**— फिर भी हे विदुरजी ! अन्य विषयों की चर्चा करने से अपवित्र बनी हुयी अपनी वाणी को पवित्र बनाने के लिए अपनी बुद्धि तथा अपने ज्ञान के अनुसार मैं श्रीहरि की कीर्ति का वर्णन कर रहा हूँ ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

अङ्ग विदुर, अथापि हरेः कीर्तिं कीर्तयामि । यथाश्रुतं गुरुमुखात् । तदपि न सर्वात्मना, किंतु यथामति स्वमत्यनुसारेण। अन्याभिधा हरिव्यतिरिक्तार्थाभिधानं तया असतीं मलिनां स्वीयां वाचं सत्कर्तुं पवित्रीकर्तुम् ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

हे विदुर ! यद्यपि श्रीहरि की कीर्ति का सामस्त्येन वर्णन नहीं किया जा सकता है फिर भी मैं गुरुमुख से सुने हुए ज्ञान और अपने बुद्धि के अनुसार श्रीहरि की कीर्ति का वर्णन कर रहा हूँ । इस वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि श्रीहरि व्यतिरिक्त विषयों की चर्चा करने के कारण मेरी बुद्धि मलिन हो गयी है । उसको पवित्र बनाने के लिए मैं यह कार्य कर रहा हूँ ।।३६।।

**एकान्तलाभं वचसो नु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ।**
**श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ।।३७।।**

**अन्वयः**— पुंसां वचसः एकान्तलाभं सुश्लोकमौलेः गुणवादम् विद्वद्भिरूपाकृतायां कथा सुधायाम् श्रुतश्च उपसम्प्रयोगम् आहुः ।।३७।।

**अनुवाद**— महापुरुषों ने कहा है कि मनुष्यों की वाणी का सबसे बड़ा लाभ परम यशस्वी श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन तथा मनुष्यों के कानों का सबसे बड़ा लाभ विज्ञ पुरुषों के द्वारा ही जानी जाने वाली श्रीभगवान् की कथा में उपयोग ही है ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

अज्ञात्वापि यथामति कीर्तने श्रवणे वा आवश्यकं कैवल्यमित्याह । एकान्ततो लाभं नु निश्चितमाहुः । श्रुतेः श्रोत्रस्य। उपाकृतायां निरूपितायाम् उपसंप्रयोगं सन्निधावर्पणम् ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीहरि की महिमा को पूर्णरूप से जाने बिना भी यदि उसका अपनी बुद्धि तथा गुरुमुख से श्रवण जन्य ज्ञान के अनुसार कीर्तन और श्रवण करने मात्र से निश्चित रूप से कैवल्य की प्राप्ति होती है यही इस श्लोक में कहा गया है । महापुरुषों ने यह कहा है कि मनुष्यों की वाणी का सबसे बड़ा लाभ यही है कि भगवान् की

कथाओं का कीर्तन किया जाय और कानों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि उनसे श्रीभगवान् की कथाओं का श्रवण किया जाय ।।३७।।

**आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना । संवत्सरसहस्रान्ते धिया योगविपक्वया ।।३८।।**

**अन्वयः**— हे वत्स ! आदिना कविना योगविपक्वयाधिया संवत्सर सहस्रान्ते आत्मनो महिमा अवसिता ।।३८।।

**अनुवाद**— हे वत्स ! आदि कवि ब्रह्माजी के द्वारा एक हजार वर्ष पर्यन्त अपनी योग परिपक्व बुद्धि द्वारा विचार किए जाने पर भी क्या वे भगवान् की महिमा का पार पा सके ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

न चातीव ज्ञाने निर्बन्धः कर्तव्यः, ब्रह्मणोऽपि दुर्ज्ञेयत्वादित्याह । आत्मनो हरेर्महिमा योगविपक्वयापि धिया संवत्सरसहस्रान्तेऽप्यादिकविना ब्रह्मणापि किमवसितः किं ज्ञात इति काकूक्त्या एतावानिति न ज्ञात एवेत्युक्तम् ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की महिमा को पूर्ण रूप से जानने का आग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि जब ब्रह्माजी उसे पूर्ण रूप से नहीं जान सकते हैं तो सामान्य मनुष्यों की क्या बात है । आदिकवि ब्रह्माजी के द्वारा भी अपनी योग परिपक्व बुद्धि के द्वारा एक हजार वर्ष पर्यन्त विचार किए जाने पर भी वे कितनी श्रीहरि की महिमा को जान सके ? इस काकूक्ति के द्वारा यह बतलाया गया है कि वे भी उसे पूर्णरूप से नहीं जान सके ।।३८।।

**अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी । यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ।।३९।।**

**अन्वयः**— अतः भगवतः माया मायिनाम् अपि मोहिनी यत् स्वयम् आत्मा आत्मवर्त्मा न वेद अपरे किमुत ।।३९।।

**अनुवाद**— अतएव श्रीभगवान् की माया बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित कर देने वाली है, क्योंकि स्वयं परमात्मा भी अपनी माया की गति को जब नहीं जान पाते हैं तो दूसरों की कौन सी बात है ?।।३९।।

**भावार्थ दीपिका**

यत् यस्मात्स्वयमप्यात्मा हरिरात्मवर्त्म स्वमायागतिमेतावदिति न वेद, अनन्तत्वात् ।।३९।।

**भाव प्रकाशिका**

क्योंकि श्रीभगवान् की माया अनन्त है अतएव वे भी अपनी माया की महिमा का अन्त नहीं जान पाते हैं । ऐसी स्थिति में दूसरा कोई उस माया को पूर्ण रूप से कैसे जान सकता है ?।।३९।।

**यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह । अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ।।४०।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

**अन्वयः**— यतः अप्राप्य मनसा सह वाचश्च अहं इमे देवाश्च न्यवर्तन्त तस्मै भगवते नमः ।।४०।।

**अनुवाद**— चूंकि श्रीभगवान् की महिमा का अन्त न पाकर मन के साथ-साथ वाणी अहङ्काराभिमानी रुद्र और ये सभी इन्द्रियाभिमानी देवगण भी लौट गये उन श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।४०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।**

**भावार्थ दीपिका**

अतो दुर्ज्ञेयत्वात्केवलं नमस्करोति-यत इति । यस्य ज्ञानाय प्रवृत्ता वाचोऽपि मनसा सह तमप्राप्यैव न्यवर्तन्त दुर्ज्ञेयत्वात् । न केवलं वाङ्मनसी, अहमहंकारस्याधिष्ठाता रुद्रोऽपि । इमे इन्द्रियाधिष्ठातारो देवा अन्ये च ।।४०।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।**

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की महिमा दुर्ज्ञेय है। इसीलिए महर्षि मैत्रेय उसको **यतोऽप्राप्य० इत्यादि** द्वारा नमस्कार करते हैं। श्रीभगवान् की महिमा के अन्त का पता लगाने में प्रवृत्त मन के साथ वाणी भी असमर्थ होकर लौट गयी यही नहीं अहङ्काराभिमानी रुद्र और इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवगण भी असमर्थ होकर लौट गये ।।४०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के छठे अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।६।।**

# सातवाँ अध्याय

## विदुरजी के प्रश्न

श्रीशुक उवाच

**एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः । प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ।।१।।**

**अन्वयः**— एवं बुवाणं मैत्रेयं बुधः द्वैपायनसुतः विदुरः भारत्या प्रीणयन् इव प्रत्यभाषत ।।१।।

**शुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस प्रकार से कहने वाले मैत्रेय महर्षि से बुद्धिमान विदुरजी ने उनको प्रसन्न करते हुए कहा ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

सप्तमे संशयच्छेदि प्रतिनन्द्य मुनेर्वचः । पुनः क्षत्त्रा कृता नाना प्रश्नाः सम्यगुदीरिताः । '**अथ ते भगवल्लीला-योगमायोपबृंहिताः**' इत्यादिना मायागुणैर्लीलया भगवान् सृष्ट्यादि करोतीत्येवं ब्रुवाणं मैत्रेयं भारत्या प्रार्थनारूपया प्रीणयन्निवेत्यभिप्रायाज्ञानेनाक्षेपात् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

सातवें अध्याय में मैत्रेय महर्षि की बातों का अभिनन्दन करके, विदुरजी के द्वारा किए गये अनेक प्रश्नों का वर्णन किया गया है ।।१।। पीछे के अध्यायों में **अथ ते भगवल्लीला इत्यादि** श्लोक के द्वारा मैत्रेय महर्षि ने यह जो कहा है कि श्रीभगवान् माया के गुणों के द्वारा सृष्टि आदि के कार्यो को करते हैं। उन मैत्रेय महर्षि के अभिप्राय को नहीं जानने के कारण उनको आक्षेप करके अपनी प्रार्थना रूपी वाणी के द्वारा प्रसन्न करते हुए विदुरजी कहे ।।१।।

विदुर उवाच

**ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रयाविकारिणः । लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ।।२।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् चिन्मात्रस्य, अविकारिणः निर्गुणस्य भगवतः लीलया चापि गुणाः क्रियाः कथं युज्येरन् ।।२।।

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ज्ञान मात्र, विकार रहित एवं निर्गुण भी भगवान् से लीला द्वारा भी गुणों एवं क्रियाओं का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

निर्विकारस्य क्रिया, निर्गुणस्य च गुणाः कथम् । लीलयेत्युक्तिः प्रयोजनाभावं परिहरति न वस्तुविरोधमिति भावः ।।२।।

# सातवाँ अध्याय

## विदुरजी के प्रश्न

श्रीशुक उवाच

**एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः । प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥**

**अन्वयः**— एवं बुवाणं मैत्रेयं बुधः द्वैपायनसुतः विदुरः भारत्या प्रीणयन् इव प्रत्यभाषत ॥१॥

**शुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस प्रकार से कहने वाले मैत्रेय महर्षि से बुद्धिमान विदुरजी ने उनको प्रसन्न करते हुए कहा ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

सप्तमे संशयच्छेदि प्रतिनन्द्य मुनेर्वचः । पुनः क्षत्त्रा कृता नाना प्रश्नाः सम्यगुदीरिताः । **'अथ ते भगवल्लीला-योगमायोपबृंहिताः'** इत्यादिना मायागुणैर्लीलया भगवान् सृष्ट्यादि करोतीत्येवं ब्रुवाणं मैत्रेयं भारत्या प्रार्थनारूपया प्रीणयन्निवेत्यभिप्रायाज्ञानेनाक्षेपात् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

सातवें अध्याय में मैत्रेय महर्षि की बातों का अभिनन्दन करके, विदुरजी के द्वारा किए गये अनेक प्रश्नों का वर्णन किया गया है ॥१॥ पीछे के अध्यायों में **अथ ते भगवल्लीला इत्यादि** श्लोक के द्वारा मैत्रेय महर्षि ने यह जो कहा है कि श्रीभगवान् माया के गुणों के द्वारा सृष्टि आदि के कार्यो को करते हैं । उन मैत्रेय महर्षि के अभिप्राय को नहीं जानने के कारण उनको आक्षेप करके अपनी प्रार्थना रूपी वाणी के द्वारा प्रसन्न करते हुए विदुरजी कहे ॥१॥

विदुर उवाच

**ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रयाविकारिणः । लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् चिन्मात्रस्य, अविकारिणः निर्गुणस्य भगवतः लीलया चापि गुणाः क्रियाः कथं युज्येरन् ॥२॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ज्ञान मात्र, विकार रहित एवं निर्गुण भी भगवान् से लीला द्वारा भी गुणों एवं क्रियाओं का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

निर्विकारस्य क्रिया, निर्गुणस्य च गुणाः कथम् । लीलयेत्युक्तिः प्रयोजनाभावं परिहरति न वस्तुविरोधमिति भावः ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने पूछा कि श्रीभगवान् तो निर्गुण हैं उनसे गुणों का सम्बन्ध कैसे होता है ? या यदि वे निर्विकार हैं तो वे सृष्टि आदि क्रियाओं को कैसे करते हैं ? लीलया इस पद के द्वारा यह बतलाया गया है कि इन सबों का एकमात्र प्रयोजन लीला ही है । भगवान् लीला करने के लिए ही गुणों और क्रियाओं से सम्पृक्त हो जाते हैं। अतएव इसमें किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है ॥२॥

**क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषाऽन्यतः । स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदाऽन्यतः ॥३॥**

**अन्वयः**— अर्भस्य क्रीडायाम् उद्यमः अन्यतः चिक्रीडिषा कामः स्वतः तृप्तस्य अन्यतः निवृत्तस्य च भगवतः कथम् ॥३॥

**अनुवाद**— बालक तो दूसरों के साथ खेलने की इच्छा से क्रीडा की कामना करता है किन्तु भगवान् तो स्वतः तृप्त हैं और दूसरों से असङ्ग हैं, उनमें क्रीडा के लिए भी इच्छा कैसे सम्भव हैं ?॥३॥

### भावार्थ दीपिका

अर्भकवल्लीलापि न युज्यते वैषम्यादित्याह । उद्यमयति प्रवर्तयतीत्युद्यमः । अर्भकस्य क्रीडायां प्रवृत्तिहेतुः कामोऽस्ति। अन्यतस्तु वस्त्वन्तरेण बालान्तरप्रवर्तनेन वा तस्य क्रीडेच्छा भवति । ईश्वरस्य तु स्वतस्तृप्तस्य कथं कामोऽन्यतः सदा निवृत्तस्य चासङ्गाद्वितीयस्य कथमन्यतश्चिक्रीडिषेत्यर्थः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि जिस तरह कोई बालक लीला करता है, उसी तरह श्रीभगवान् लीला के लिए ही सृष्ट्यादि कर्मों को करते हैं, तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् की बालक के समान लीला भी सम्भव नहीं है । बालक तो खेलने की इच्छा से क्रीडा में प्रवृत्त होता है कि वह दूसरे बालक के साथ क्रीडा करे । किन्तु भगवान् स्वतः तृप्त हैं अतएव उनमें कामना सम्भव नहीं है वे असङ्ग हैं अतएव उनमें दूसरे के साथ क्रीडा करने की इच्छा भी नहीं हो सकती है ॥३॥

**अस्राक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्यात्ममायया । तया संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यपिधास्यति ॥४॥**

**अन्वयः**— भगवान् गुणमय्या आत्ममायया विश्वम् अस्राक्षीत् तया एतत् संस्थापयति भूयः प्रत्यपिधास्यति ॥४॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् ने अपनी त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा विश्व की रचना की उसी के द्वारा वे इसकी रक्षा करते है और उसी के द्वारा वे पुनः इसका संहार भी करेंगे ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं **स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजे'** इत्यादिनाऽविद्योपाधेर्जीवस्य भोगार्थमीश्वरः सृष्ट्यादि करोतीति तदप्याक्षेप्तुमनुवदति-अस्राक्षीदिति । गुणमयी आत्मनो जीवस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वादिमोहोत्पादिका या माया तया सृष्टवान् । तदुक्तं प्रथमे— **यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ।'** इत्यादिना । अत्र च **अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी** इति । संस्थापयति पालयति । प्रत्यपिधास्यति प्रातिलोम्येन तिरोहितं करिष्यति। पाठान्तरे प्रातिलोम्येनात्मन्यभितो धारयिष्यति ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

पीछे के अध्यायों में **स्मरन् विश्वसृजामीशः इत्यादि** श्लोक के द्वारा यह जो कहा गया है कि विश्व की सृष्टि करने वाले महदादिकों की प्रार्थना का स्मरण करने वाले श्रीभगवान् अविद्योपहित जीव के भोगों के लिए सृष्टि आदि के कार्यों को करते है । उस कथन पर आक्षेप करते हुए विदुरजी **अस्राक्षीत् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं।

श्रीभगवान् ने जीव में कर्तृत्व,भोक्तृत्व आदि मोह को उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा इस जगत् की सृष्टि की। इस बात को प्रथम स्कन्ध में कहा जा चुका है कि माया से परे होने पर भी जीव माया से मोहित होकर अपने को त्रिगुणात्मक मानने लगता है और उसी के कारण वह सुख दुःख आदि अनर्थों को प्राप्त करता है। इस स्कन्ध में भी कहा गया है कि भगवान् की माया बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित कर देती है। उसी माया के द्वारा वे विश्व की रक्षा करते हैं और प्रलय काल के आने पर सृष्टि के विपरीत क्रम से इसका उपसंहार भी करेंगे। पाठान्तर के अनुसार तो अर्थ होगा कि विपरीत क्रम से अपने में अच्छी तरह से धारण करेंगे ॥४॥

**देशतः कालतो योऽसाववस्थातः स्वतोऽन्यतः । अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥५॥**

**अन्वयः**— यः असौ आत्मा देशतः कालतः अवस्थातः स्वतः अन्यतः वा अविलुप्तावबोध स अजया कथं युज्येत ॥५॥

**अनुवाद**— यह जीव ब्रह्म स्वरूप है। उसके ज्ञान का किसी देश, काल एवं अवस्था या अपने आप या किसी दूसरे कारण से लोप नहीं हो सकता ऐसी स्थिति में उसका अविद्या से कैसे सम्बन्ध हो सकता हैं ?॥५॥

### भावार्थ दीपिका

एतच्च जीवस्याविद्याश्रयत्वे घटेत, नतु तत्संभवतीत्याह-देशत इति। योऽसौ देशादिभिरविलुप्तावबोध आत्मा जीवः, ब्रह्मस्वरूपत्वात्। स कथमजयाऽविद्यया युज्येत। तत्र देशतो दीपप्रभाया इव लोपो नास्ति, सर्वगतत्वात्। न कालतः विद्युत इव नित्यत्वात्। नावस्थातः, स्मृतिवदविक्रियत्वात्। न स्वतः, स्वप्रवत्सत्यत्वात्। नान्यतः, घटादिवदद्वितीयत्वात्। एवमेतैर्यस्य बोधो न लुप्यते स कथमजया युज्येत। अजा चात्राविद्यैव न माया, तस्य अवबोधेन विरोधाभावात् ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

यह तो तब सम्भव था जब कि जीव अविद्या का आश्रय बने, किन्तु जीव अविद्या का आश्रय इसलिए नहीं हो सकता है कि जीव ब्रह्मस्वरूप है। फलतः उसके ज्ञान का लोप देश, काल आदि के कारण नहीं हो सकता है। अतएव उसका अविद्या से सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? जैसे देश की भिन्नता के कारण दीप की प्रभा का लोप हो जाता है। किन्तु आत्मा (जीव) तो सर्व देश व्यापक है। अतएव उसके ज्ञान का लोप देश विशेष के कारण नहीं हो सकता है। जिस तरह से विद्युत् का प्रकाश कालान्तर में लुप्त हो जाता है किन्तु आत्मा का प्रकाश कालभेद के कारण इसलिए नहीं लुप्त हो सकता है कि वह नित्य है। जिस तरह से अवस्था के भेद के कारण स्मृति का लोप हो जाता है उस तरह से आत्मा का प्रकाश इसलिए नहीं लुप्त हो सकता है कि वह अविक्रिय (निर्विकार) है। जिस तरह से स्वप्न की बातें असत्य होने के कारण लुप्त हो जाती हैं उस तरह भी आत्मा का ज्ञान इसलिए लुप्त नहीं हो सकता है कि वह सत्य है। भेद के कारण जिस तरह घटादि का लोप हो जाता है, उस तरह भी आत्मा का ज्ञान लुप्त नहीं हो सकता है क्योंकि वह अद्वितीय है। जिस आत्मा का ज्ञान इनमें से किसी भी साधन से लुप्त नहीं होता उस आत्मा का अविद्या (अज्ञान) से कैसे सम्बन्ध होता है ? इस श्लोक में अजा शब्द से अविद्या ही कही गयी हैं माया नहीं, क्योंकि माया का ज्ञान से विरोध नहीं हैं ॥५॥

**भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः । अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥६॥**

**अन्वयः**— एष एक एव भगवान् सर्वक्षेत्रेषु अवस्थितः अमुष्य दुर्भगत्वं कर्मभिः क्लेशो वा कुतः ॥६॥

**अनुवाद**— ब्रह्म स्वरूप एक ही आत्मा सभी शरीरों में साक्षी रूप से विद्यमान है, अतएव उसके ज्ञान का भ्रंश अथवा कर्मों के कारण क्लेश की प्राप्ति कैसे सम्भव है ?॥६॥

### भावार्थ दीपिका

किंच ब्रह्मरूपत्वादेव जीवस्य संसारोऽपि न विद्यत इत्याक्षिपति। सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितो भोक्तापि वस्तुतो भगवानेव,

चिद्रूपत्वेन तद्व्यतिरेकाभावात् । एवं च सत्यमुष्य जीवस्य दुर्भगत्वमानन्दादिभ्रंशःकर्मभिर्हेतुभूतैः क्लेशो वा कुतः, कर्मसंबन्धाभावात्। अन्यथेश्वरस्यापि तत्प्रसङ्गः स्यादिति भावः ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरी बात यह है कि जीव ब्रह्म स्वरूप है अतएव उसका संसार होना भी सम्भव नहीं है । इसी अभिप्राय से विदुरजी अक्षेप करते हुए कहते हैं । सभी शरीरों में विद्यमान भोक्ता भी वस्तुतः भगवान् ही हैं क्योंकि जीव भी तो ज्ञान स्वरूप है, अतएव वह ब्रह्म से भिन्न नहीं हो सकता है । जब उससे कर्मो का सम्बन्ध होता ही नहीं तो फिर उसके आनन्दादि का भ्रंश और कर्मो के कारण क्लेशों की प्राप्ति कैसे होती है ? यदि ब्रह्म होने पर भी उसको दुर्भगत्व आदि होगा तब तो ईश्वर को भी क्लेशादि की प्राप्ति और दुर्भगत्व की प्राप्ति का प्रसङ्ग होगा ॥६॥

**एतस्मिन्मे मनो विद्वन् खिद्यतेऽज्ञानसंकटे । तन्नः पराणुद विभोकश्मलं मानसं महत् ॥७॥**

**अन्वयः**— हे विद्वन् एतस्मिन् अज्ञानसंकटे मे मनः खिद्यते हे विभो तत् नः महत् मानसं कश्मलं पराणुद ॥७॥

**अनुवाद**— हे विद्वन् ! इस अज्ञानसंकट में पड़ा हुआ मेरे मन खिन्न हो रहा है । हे भगवन् आप मेरे मन के इस महान् मोह को दूर करें ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

अज्ञानमेव संकटं दुर्गं तस्मिन् । तन्मानसं कश्मलं मोहं पराणुद अपाकुरु ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी ने कहा कि अज्ञान रूपी संकट में पड़ा हुआ मेरा मन अत्यन्त खिन्न हो रहा है । उपर्युक्त प्रकार का मेरे मन का बहुत बड़ा मोह है, आप अपने समाधान के द्वारा मेरा मन के इस मोह को दूर कर दें ॥७॥

श्रीशुक उवाच

**स इत्थं चोदितः क्षत्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः । प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ॥८॥**

**अन्वयः**— तत्त्वजिज्ञासुना क्षत्रा इत्थं चोदितः भगचच्चितः गतस्मयः मुनिः स्मयन्निव प्रत्याह ॥८॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— तत्त्वज्ञान प्राप्ति के इच्छुक विदुरजी द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर अहङ्कार रहित महर्षि मैत्रेय मुस्कुराते हुए कहने लगे ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

चोदित आक्षिप्तः स्मयन्निव प्रौढिमाविष्कुर्वन्निव । वस्तुतस्तु गतस्मयः ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी के द्वारा इस प्रकार से प्रश्न किए जाने पर मानो अपनी प्रौढि आविष्कृत कर रहे हों, ऐसे मैत्रेयजी मुस्कुराते हुए उत्तर देने लगे । उनमें वास्तविक रूप से अहङ्कार था ही नहीं ॥८॥

मैत्रेय उवाच

**सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते । ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम् ॥९॥**

**अन्वयः**— भगवतः सेयं माया यत् नयेन विरुध्यते यत् विमुक्तस्य ईश्वरस्य कार्पण्यं बन्धनम् उत ॥९॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— अचिन्त्यशक्ति से युक्त श्रीभगवान् की यही माया है, जो युक्ति विरुद्ध है । उस माया के ही कारण पुरुष अविद्या के बन्धन में पड़ जाता है और दीन हो जाता है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

भगवतोऽचिन्त्यशक्तेरीश्वरस्य सेयं माया नयेन तर्केण विरुध्यत इति यत् । तर्कविरोधमेवानुवदति । विमुक्तस्यैव पुंसोऽविद्याबन्धनं कार्पण्यं चेति ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न श्रीभगवान् की माया युक्ति की कोई परवाह नहीं करती है । माया का युक्ति से होने वाले विरोध को बतलाते हुए महर्षि मैत्रेय कहते हैं, कि मुक्त भी जीव माया के बन्धन में पड़कर दीनता का अनुभव करता है ।।९।।

**यदर्थेन विनाऽमुष्य पुंस आत्मविपर्ययः । प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ।।१०।।**

**अन्वयः**— यत् अर्थेन विना उपद्रष्टुः पुंसः स्वशिरः छेदनादिकः प्रतीयते तद्वत् अमुष्य आत्मविपर्ययः ।।१०।।

**अनुवाद**— जिस तरह स्वप्न देखने वाले व्यक्ति को मिथ्या होने पर भी लगता है कि मेरा शिर इत्यादि कट गया उसी तरह बन्धन आदि के नहीं होने पर भी अज्ञानवशात् आविद्यिक बन्धनादि की प्रतीति होती है ।।१०।।

### भावार्थ दीपिका

अत्रोदाहरणमाह । यत् यथा अर्थेन शिरश्छेदादिना विनाप्युपद्रष्टुः स्वप्नसाक्षिणो ममेदं शिरश्छिन्नमित्यात्मविपर्ययः केवलं मृषैव प्रतीयते तद्वत् ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त कथन में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं— जिस तरह शिरः छेदादि क्रिया के नहीं होने पर भी स्वप्न देखने वाले पुरुष को लगता है कि मेरा शिर कट गया, उसी तरह से बन्धनादि के नहीं होने पर भी जीव को अज्ञान वशात् बन्धनादि की प्रतीति होती है ।।१०।।

**यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिस्तत्कृतो गुणः । दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनोऽनात्मनो गुणः ।।११।।**

**अन्वयः**— यथा जले कम्पादिः तत्कृतः गुणः चन्द्रमसः प्रतीयते तथा द्रष्टुः आत्मनः असन अपि अनात्मनः गुणः दृश्यते ।।११।।

**अनुवाद**— जिस तरह जल में होने वाले कम्पन आदि गुण, प्रतिबिम्बित होने वाले चन्द्रमा में प्रतीत होते हैं, यद्यपि कम्पादि चन्द्रमा में नहीं होते हैं, उसी तरह बन्धनादि शरीर के धर्म आत्मा में नहीं हैं, फिर भी वे जीव में अज्ञानवशात् प्रतीत होते हैं ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

तर्हीश्वरस्यापि किं न प्रतीयेत, तत्राह । यथा जले प्रतिबिम्बितस्यैव चन्द्रमसो जलोपाधिकृतः कम्पादिधर्मो दृश्यते, न त्वाकाशे स्थितस्य । तथाऽनात्मनो देहादेर्धर्मोऽसन्नपि तदभिमानिनो द्रष्टुरात्मनो जीवस्यैव नत्वीश्वरस्येत्यर्थः ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि तो फिर इन बन्धनादि की प्रतीति ईश्वर में भी क्यों नहीं होती है, तो इसके उत्तर में मैत्रेयजी कहते हैं कि जिस तरह जल में प्रतिबिम्बित होने वाले ही चन्द्रमा में जल रूपी उपाधि में होने वाले कम्पादि की प्रतीति होती है; किन्तु आकाश में रहने वाले चन्द्रमा में उन कम्पादि क्रियाओं की प्रतीति नहीं देखी जाती है । उसी तरह अनात्मा देह आदि के धर्म बन्धनादि हैं, वे आत्मा के धर्म नहीं है, फिर भी उन बन्धनादि धर्मों की प्रतीति देहादि उपाधियों में प्रतिम्बित जीव में ही होती है, ईश्वर में नहीं ।।११।।

**स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया । भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥१२॥**

**अन्वयः**— स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया भगवद् भक्तियोगेन शनैः तिरोधत्ते ॥१२॥

**अनुवाद**— उस अनात्मधर्म की निवृत्ति निष्काम भागवत धर्म के द्वारा प्रसन्न हुए भगवान् वासुदेव की कृपा से प्राप्त भगवान् की भक्ति के द्वारा धिरे-धिरे हो जाती है ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

तन्निवृत्त्युपायमाह । स वै अनात्मनो गुणो निवृत्तिधर्मेण वासुदेवस्यानुकम्पया च तस्मिन्भक्तियोगस्तेन तिरोधत्तेऽदृश्यो भवति । शनैरित्यनेन साधनानुसारेणेत्युक्तम् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

जब जीव निष्काम भाव से धर्मों का आचरण करता है तो उससे भगवान् वासुदेव की उस जीव पर कृपा होती है । भगवान् की कृपा से उस जीव में भगवान् की भक्ति उत्पन्न हो जाती है और उस भगवद्भक्ति को करने से धिरे-धिरे अनात्मा के जो बन्धनादि गुण जीव में प्रतीत होते हैं उनकी निवृत्ति हो जाती है ॥१२॥

**यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ । विलीयते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥१३॥**

**अन्वयः**— अथ यदा इन्द्रियोपरामः द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ तदा संसुप्तस्य इव कृत्स्नशः क्लेशाः विलीयन्ते ॥१३॥

**अनुवाद**— जब सभी इन्द्रियाँ विषयों से उपरत होकर साक्षी परमात्मा में निश्चल भाव से लग जाती हैं उसी समय समस्त क्लेशों का उसी तरह से नाश हो जाता है, जिस तरह सुषुप्त पुरुष के सभी राग द्वेष आदि सारे क्लेश विनष्ट हो जाते हैं ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

तर्हि सर्वानर्थनिवृत्तिः कदेत्यपेक्षायामाह । यदेन्द्रियाणामुपरामो नैश्चल्यम् । क्व । द्रष्टुरात्मन्यन्तर्यामिरूपे । अथानन्तरमेव। कृत्स्नक्लेशविलयमात्रे दृष्टान्तः संसुप्तस्येवेति । नतु पुनरुत्थाने ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

अब प्रश्न होता है कि जीवों के सम्पूर्ण क्लेशों की निवृत्ति कब होती है ? तो इसका उत्तर है कि जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से हटकर निश्चल रूप से परमात्मा में लग जाती हैं । उदाहरणार्थ जब तक मनुष्य जगता रहता है तब तक वह क्लेशों का अनुभव करता है और जब वह सुसुप्तावस्था में चला जाता है तब उसे किसी भी प्रकार के क्लेश की प्रतीति नहीं होती है । उसी तरह उस जीव के भी सारे क्लेश समाप्त हो जाते हैं ॥१३॥

**अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ।**
**कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥१४॥**

**अन्वयः**— मुरारेः गुणानुवादश्रवणं अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते, तच्चरणारविन्दपराग सेवारति आत्मलब्धा पुनः कुतः ॥१४॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के गुणों का कीर्तन तथा श्रवण ही सम्पूर्ण क्लेशों को शान्त कर देने वाले हैं जिसके हृदय में भगवान् के चरण कमल की सेवा का प्रेम जग गया हो तो फिर उसके विषय में क्या कहना है ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

भक्तियोगेन क्लेशनिवृत्तिं दर्शयति–अशेषेति । गुणानामनुवादश्च श्रवणं च । आत्मनि मनसि लब्धा श्रवणकीर्तनापेक्षया सप्रेमध्याने किं पुनर्न्यायोक्तिः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

भक्तियोग के द्वारा तो सम्पूर्ण क्लेशों का नाश हो जाता है इस बात को बतलाते हुए **अशेष संक्लेश० इत्यादि** श्लोक कहा गया है । श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करना तथा उनके गुणों का श्रवण करने से सारे क्लेशों का नाश हो जाता है । यदि मन में प्रेमपूर्वक श्रीभगवान् का ध्यान करने पर क्लेशों का नाश होता है तो फिर यह क्या कहना है कि उसके सारे क्लेश विनष्ट हो जाते हैं यह तो कैमुत्यन्याय से ही सिद्ध है ॥१४॥

विदुर उवाच

**संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो । उभयत्रापि भगवन् मनो मे संप्रधावति ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे विभो ! तव सूक्तासिना मह्यं संशयः सछिन्नः मे मनः उभयत्र अपि संप्रधावति ॥१५॥

### विदुरजी ने कहा

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आपकी युक्तियुक्त वाणी के द्वारा मेरा संन्देह छिन्न-भिन्न हो गया है, अब मेरा मन ईश्वर की स्वतंत्रता और जीव की परतन्त्रता इन दोनों विषयों में अच्छी तरह से प्रवेश कर रहा है ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

उत्तरमभिनन्दन्नात्मनः कृतार्थतामाविष्करोति-संछिन्न इति षड्भिः । चिद्रूपत्वाविशेषेऽपि कथमीश्वरस्य जगत्कर्तृत्वादि, कथं वा जीवस्य संसार इति यः संशयो ममासीत्स तव सूक्तं सोपपत्तिकं वाक्यमेवासिः खड्गस्तेन संछिन्नः । अत इदानीं मे मन उभयत्रापीश्वरस्वातन्त्र्ये जीवपरातन्त्र्ये च संप्रधावति सम्यक् प्रविशति । एवं वाऽविलुप्तावबोधरूपस्यात्मनः कथमविद्यया बन्धः, कुतो वा तन्निवृत्तिरिति संशयः । उभयत्रेति, बन्धे मोक्षे चेत्यर्थः ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि द्वारा दिये गये उत्तर का अभिनन्दन करके विदुरजी अपनी कृतार्थता को प्रकट करते हुए छह श्लोकों में कहते हैं— जब जीव और ईश्वर दोनों ज्ञान स्वरूप हैं तो फिर ईश्वर जगत् की सृष्टि आदि के कर्ता हैं और जीव इस संसार में कैसे संसरण करता है ? अर्थात् आविद्यिक बन्धन में पड़कर अज्ञान और कष्टादि का अनुभव करता है यह जो मेरा सन्देह था वह आपकी इस सुन्दर वाणी रूपी कृपाण के द्वारा विनष्ट हो गया । अतएव इस समय मेरा मन ईश्वर की स्वतंत्रता और जीव की परतंत्रता को अच्छी तरह से समझता है । अतएव मैंने यह जो प्रश्न किया था कि चूकि देश, काल आदि के कारण चिन्मात्र स्वरूप जीव के ज्ञान का लोप नहीं हो सकता है ऐसी स्थिति में जीव किस तरह अविद्या के बन्धन में बन्ध जाता है और फिर उसकी कैसे उससे मुक्ति होती है, इस बन्ध और मोक्ष दोनों ही विषयों को मेरा मन अच्छी तरह से समझता है ॥१५॥

**साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममायायनं हरेः । आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ॥१६॥**

**अन्वयः**— हे विद्वन् एतत् साधु व्याहृतं यत् एतत् हरेः मायायनम् अपार्थं निर्मूलं आभाति यद् बहि विश्वमूलं न ॥१६॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आपने बिल्कुल ठीक कहा है कि जीव की जो क्लेश तथा अज्ञान आदि की प्रतीति हो रही है उसका एकमात्र आधार भगवान् की माया है । वह क्लेश आदि भी मिथ्या और निर्मूल हैं । इस जगत् का कारण भी अविद्या से अतिरिक्त कुछ नहीं है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

यस्मात्त्वया साधु व्याहृतम् । किं तत् । हरेः शक्तिर्या आत्ममाया जीवविषया माया तदयनं तदाश्रयमेतद्दुर्भगत्वादिकं भातीति । यत् यस्मात्स्वशिरश्छेदादिवदपार्थमवस्तुभूतं निर्मूलं मूलशून्यं च । यस्मादस्य मूलं विश्वस्य मूलं स्वाज्ञानं बहिर्विना नास्ति ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

चूंकि आपने ठीक कहा है कि श्रीहरि की जो जीव को अपना विषय बनाने वाली माया है, उसी के द्वारा जीव के दुर्भगत्व (अज्ञता) आदि की प्रतीति होती है। वह स्वप्न में प्रतीत होने वाले अपने शिरः छेद आदि के समान ही मिथ्या है। उसका कोई भी मूल नहीं है। इस जीव के दुर्भगत्व तथा देह आदि प्रपञ्च का कारण भी अपने अज्ञान से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥१६॥

**यश्च मूढतमो लोको यश्च बुद्धेः परं गतः । तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥१७॥**

**अन्वयः**— लोके यश्च मूढतमः यः च बुद्धेः परं गतः तौ उभौ सुखम् एधेते, अन्तरितः जनः क्लिश्यति ॥१७॥

**अनुवाद**— संसार में रहने वाले दो प्रकार के लोग सुखी होते हैं जो अत्यन्त अज्ञानी हैं अथवा अत्यन्त ज्ञानी होने के कारण श्रीभगवान् को प्राप्त कर चुके हैं। बीच की श्रेणी में रहने वाले संशयग्रस्त लोग तो दुःखी ही हैं ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

अल्पज्ञत्वात्पूर्वं मम संशयो जात इत्याह-यश्चेति । मूढतमो देहाद्यासक्तो यश्च बुद्धेः प्रकृतेः परमीश्वरं प्राप्तः, तौ सुखं यथा भवति तथा एधेते जीवत इत्यर्थः । संशयक्लेशाभावात् । यस्तु दुःखानुसंधानेन प्रपञ्चं जिहासति स्वानन्दसंवेदनाभावाद्धातुं न शक्नोति स तु क्लिश्यतीत्यर्थः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विदुरजी कहते हैं कि अल्पज्ञ होने के कारण मुझे पहले संशय हुआ था। संसार में रहने वाले दो तरह के प्राणी सुख पूर्वक जीवित रहते हैं। वे लोग जो देह आदि में आसक्त होने के कारण अत्यन्त अज्ञानी हैं तथा वे लोग जो ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त करके ईश्वर को प्राप्त कर चुके हैं, क्योंकि इन दोनों प्रकार के लोगों को संशय रूपी क्लेश नहीं होता है। जो व्यक्ति दुःखानुभव करने के कारण इस प्रपञ्च का परित्याग करना चाहता है और आत्मानन्द का अनुभव नहीं कर सकने के कारण उसे त्याग भी नहीं पाता है, वह तो क्लेश का ही अनुभव करता है ॥१७॥

**अर्थाभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः । तां चापि युष्मच्चरणसेवयाऽहं पराणुदे ॥१८॥**

**अन्वयः**— अनात्मनः प्रतीतस्य अपि अर्थाभावं विनिश्चित्य युष्मत् चरणसेवया अहं तां चापि पराणुदे ॥१८॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आपके चरणों की सेवा के प्रभाव से मैंने यह निश्चय कर लिया है कि ये अनात्म पदार्थ हैं नहीं, इनकी प्रतीति मात्र होती है, अब मैं उस प्रतीति को भी आपके चरणों की सेवा से हटा दूँगा ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं तु कृतार्थोऽस्मि, यतस्त्वया संशयश्छिन्नः केवलं बाधितानुवृत्तिरेवावशिष्टा, सापि युष्मत्प्रसादान्निवर्तिष्यत इत्याह। नात्मनः अनात्मनः प्रपञ्चस्य प्रतीतस्याप्यर्थाभावमर्थोऽत्र नास्ति, किंतु प्रतीतिमात्रमिति युष्मच्चरणसेवया निश्चित्य तां प्रतीतिमप्यहं पराणुदे, अपनेष्यामीत्यर्थः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि आपने मेरे संशय को विनष्ट कर दिया है, अतएव मैं कृतार्थ हो गया हूँ। अब केवल बाधितानुवृत्ति ही बची हुयी है, वह भी आपकी कृपा से दूर हो जायेगी इसी बात को इस श्लोक के द्वारा कहा गया है। यह प्रपञ्च भी अनात्मा है, इसकी प्रतीति तो होती है किन्तु यह है नहीं इसकी केवल प्रतीति होती है। आपके चरणों की सेवा से इसके अभाव का निश्चय करके मैं इसको भी त्याग दूँगा ॥१८॥

**यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः । रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥१९॥**

**अन्वयः**— यत् पादयोः सेवया कूटस्थस्य मधुद्विषः भगवतः पादयोः व्यसनार्दनः तीव्रः रतिरासः भवेत् ॥१९॥

**अनुवाद**— आपके इन चरणों की सेवा से निर्विकार भगवान् मधुसूदन के चरणों में तीव्र एवं स्वाभाविक प्रेमोत्सव होता है, जिससे संसार चक्र विनष्ट हो जाता है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

मधुद्विषः पादयोः रतिरासः प्रेमोत्सवस्तीव्रो दुर्वारः स्वाभाविकः । व्यसनं संसारमर्दयति नाशयतीति तथा ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

आपके चरणों की सेवा करने से भगवान् मधुसूदन के चरणों में दुर्वार स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न होता है, उससे संसारचक्र ही विनष्ट हो जाता है ॥१९॥

**दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु । यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥२०॥**

**अन्वयः**— अल्पतपसः वैकुण्ठवर्त्मसु सेवा दुरापा, यत्र देवदेवः जनार्दनः नित्यम् उपगीयते ॥२०॥

**अनुवाद**— वैकुण्ठ प्राप्ति के मार्गभूत महापुरुषों की सेवा करने का अवसर अल्पपुण्य वाले पुरुषों को नहीं प्राप्त होता है । उन महात्माओं के यहाँ सदैव ही देवताओं के भी आराध्य भगवान् के गुणों का गायन होता रहता है ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

अहो दुर्लभं प्राप्तं मयेत्याह । दुरापा दुर्लभा । वैकुण्ठस्य विष्णोस्तल्लोकस्य वा वर्त्मसु मार्गभूतेषु महत्सु । यत्र येषु। महत्सेवया हरिकथाश्रवणं, ततो हरौ प्रेम, तेन च देहाद्यनुसंधानमपि निवर्तत इति तात्पर्यम् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी ने कहा कि मैंने तो दुर्लभ वस्तु को प्राप्त कर लिया है । भगवान् विष्णु के लोक की प्राप्ति के साधन भूत मार्ग स्वरूप महात्मागण की सेवा करने का अवसर अल्पपुण्य वाले पुरुषों के लिए दुर्लभ है । उन महापुरुषों की सेवा करने से श्रीहरि की कथा सुनने को मिलती है । उससे श्रीहरि में प्रेम होता है और उसके कारण अपने शरीर आदि की भी प्रतीति विनष्ट हो जाती है । यही इस श्लोक का तात्पर्य है ॥२०॥

**सृष्ट्वाऽग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् । तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनु प्राविशाद्विभुः ॥२१॥**

**अन्वयः**— अग्रे सविकाराणि महदादीनि सृष्ट्वा विभुः तेभ्यः विराजम् उद्धृत्य तम् अनुप्राविशत् ॥२१॥

**अनुवाद**— सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीभगवान् का महदादिकों तथा उनके विकारों (कार्यों) की सृष्टि करके उन सबों के अंश से विराट् को उत्पन्न किया और उसके पश्चात् वे उसमें स्वयं प्रवेश कर गये ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

अर्थान्तरं प्रष्टुं तदुक्तमनुवदति त्रिभिः-सृष्ट्वेति । विकारैरिन्द्रियादिभिः सहितानि । उद्धृत्य तदंशैर्विराजं सृष्ट्वा ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरी बात पूछने के लिए विदुरजी मैत्रेय महर्षि की बातों का तीन श्लोकों से अनुवाद करते हैं । सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीभगवान् महदादि के कार्यभूत इन्द्रियों आदि के साथ महदादि की सृष्टि किए और उन सबों से विराट् को उत्पन्न किए तथा उनमें प्रवेश कर गये ॥२१॥

**यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्राङ्घ्र्यूरुबाहुकम् । यत्र विश्व इमे लोकाः सविकाशं समासते ॥२२॥**

**अन्वयः**— यम् सहस्राङ्घ्र्युरुपादकम् वेदा आद्यं पुरुषं आहुः यत्र इमे विश्वे लोकाः सविकाशं समासते ॥२२॥

**अनुवाद**— उस हजारों पैरों, जङ्घाओं और भुजाओं वाले विराट् पुरुष को वेदों ने आदि पुरुष कहा है। उस विराट् पुरुष में ही यह सारा जगत् विस्तार पूर्वक स्थित है ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रविष्टस्य रूपमाह-यमिति । विराजं विशिनष्टि-यत्रेति । ते इमे विश्वे सर्वे लोकाः । सविकाशमसंकोचेन ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रविष्ट पुरुष के स्वरूप को बतलाते हुए कहा कि उस विराट् पुरुष के हजारो पैर इत्यादि हैं। वेद विराट् पुरुष को ही आदिपुरुष कहते हैं। उस विराट् पुरुष में ही यह सारा जगत् बिना किसी संकोच के निवास करता है ॥२२॥

**यस्मिन्दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् । त्वयेरितोयतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥२३॥**
**यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः । प्रजा विचित्राकृतय आसन्याभिरिदं ततम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— यस्मिन् दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियः त्रिवृत् यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च गोत्रजैनप्तृभिः सह विचित्रा कृतयः प्रजा आसन् याभिः इदं ततम् यतः त्वया इरिताः वाणी तद्विभूतीः नः वदस्व ॥२३-२४॥

**अनुवाद**— जिस विराट् पुरुष में इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषय, इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं के साथ इन्द्रिय वल, मनोवल और शरीरवलरूप से दश प्रकार के प्राण हैं। तथा आपने कहा है कि उस विराट् पुरुष से ही ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न हुए हैं। अब आप उनकी ब्रह्मा आदि विभूतियों को बतलायें जिनके पुत्र, पौत्र नाती और कुटुम्बियों के साथ विभिन्न प्रकार की प्रजाएँ उत्पन्न हुयी हैं। जिन सबों से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भर गया है ॥२३-२४॥

**भावार्थ दीपिका**

प्राणादयः पञ्च नागादयः पञ्चेत्येव दशविधः । इन्द्रियाणि च अर्थाश्च इन्द्रियाणि चेति पुनरुक्तिस्तद्देवतालक्षणार्था, तत्सहितः। सर्वोपबृंहकत्वात्प्राणस्य तत्साहित्यम् । एवं त्रिवृत्त्रिविधः प्राणस्त्वयेरित उक्तः । तस्य विभूतीर्ब्रह्माद्या विसर्गशब्दवाच्याः ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

उस विराट् पुरुष में पाँच प्रकार के और नाग कृकर आदि इस तरह से दश प्रकार के प्राण है इन्द्रियों का वल, मनोवल तथा शरीरबल से युक्त प्राण, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय रूप, रस आदि तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता स्थित हैं। आपने उस विराट् पुरुष से ही ब्राह्मण आदि वर्णों की उत्पत्ति को बतलाया है। उनकी ब्रह्मा आदि विभूतियाँ जिनको विसर्ग शब्द से कहा गया है उनका वर्णन आप करें जिनके पुत्रों, पौत्रों, नप्ताओं और कुटुम्बियों के साथ विविध प्रकार की प्रजाएँ उत्पन्न हुयीं, जिनसे यह सारा ब्रह्माण्ड भर गया ॥२३-२४॥

**प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् । सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वन्तराधिपान् ॥२५॥**

**अन्वयः**— सः प्रजातीनां पतिः कान् प्रजापतीन् सर्गान् चैव, अनुसर्गान् च मनून् मन्वन्तराधिपान् चक्लृपे ॥२५॥

**अनुवाद**— विराट् पुरुष प्रजापतियों के भी पति हैं। उन्होंने किन प्रजापतियों, सर्गों, अनुसर्गों, और मन्वन्तरों के स्वामी मनुओं की सृष्टि की ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल इति परीक्षित्प्रश्नोत्तरतया विदुरमैत्रेयसंवादः प्रस्तावितः, अतस्तानेव विदुरेण

तान्प्रश्नानाह यावत्समाप्तिम् । प्रजापतीनां पतिर्ब्रह्मेत्यादीनां वर्णयेति वक्ष्यमाणेनान्वयः चक्लृपेऽकल्पयत् । सर्गान् नवविधान्। अनुसर्गांस्तद्भेदान् ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के प्रश्नों को सुनकर श्रीशुकदेवजी कह चुके हैं कि इसी प्रकार से विदुर ने भी महर्षि मैत्रेय से पूछा था, इस प्रकार से उन्होने विदुर मैत्रेय संवाद को प्रस्तावित किया था । अतएव उन्हीं विदुरजी के प्रश्नों का इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त वर्णन किया गया हैं ।

**प्रजापतीनाम्० इत्यादि** प्रजापतियों के भी पति ब्रह्मा जी हैं, उन ब्रह्मा आदि का आप वर्णन करें । नव प्रकार की सृष्टियों, अनुसर्गों तथा उसके भेदों का जिनकी कल्पना विराट् पुरुष ने किया उसका आप वर्णन करें, इस तरह से विदुरजी ने मैत्रेयजी से कहा ॥२५॥

**एतेषामपि वंशांश्च वंश्यानुचरितानि च । उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजाऽऽसते ॥२६॥**
**तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय । तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्रिणाम् ॥**
**वद नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— हे मित्रात्मज ! एतेषाम् अपि वंशान्, य वंश्यानुचरितानि च, भूमेः उपरि अधश्च ये लोकाः आसते तेषां भूर्लोकस्य च संस्थां प्रमाणं च वर्णय, तिर्यङ्मानुष देवानां सरीसृपपतत्रिणाम् गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् सर्गसंव्यूहम् वर्णय ॥२६-२७॥

**अनुवाद**— हे मैत्रेयजी ! आप उन मनुओं के वंशों तथा उन वंशों के वंशधर राजाओं के चरित्र का, पृथिवी के ऊपर तथा नीचे के लोकों तथा भूलोक के विस्तार और स्थिति का भी वर्णन करें । आप यह भी बतलायें कि मनुष्य, तिर्यक् देवता और सरीसृप (सर्प आदि) पक्षी, जरायुज, स्वेदज अण्डज और उद्भिज ये चारो प्रकार के प्राणी किस तरह उत्पन्न हुए ॥२६-२७॥

### भावार्थ दीपिका

हे मित्राया आत्मज । संस्थां सन्निवेशम् । सर्गाणां संव्यूहं संविभागम् । गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् । गार्भा जरायुजाः, स्वेदाच्च द्वाभ्यां च जाताः स्वेदद्विजाः उद्भिदश्च तेषाम् ॥२६-२७॥

### भाव प्रकाशिका

मित्रा देवी की पुत्र होने के कारण मैत्रेयजी को मित्रात्मज कहा गया है । संस्था शब्द स्थिति का बोधक हैं। सर्गसंव्यूह शब्द से नव प्रकार की सृष्टियों को कहा गया है । गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् शब्द के द्वारा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिद् प्राणियों को कहा गया है ॥२६-२७॥

**गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् । सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ॥२८॥**
**वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः । ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥२९॥**

**अन्वयः**— विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् गुणावतारैः सृजतः श्रीनिवास्य उदार विक्रमम् व्याचक्ष्व रूपशीलस्वभावतः वर्णाश्रमविभागान् च, ऋषीणां जन्म, कर्मादि, वेदस्यविकर्षणम् च व्याचक्ष्व ॥२८-२९॥

**अनुवाद**— सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए अपने गुणवतारों से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से सृष्टि कराने वाले भगवान् श्रीनिवास की कल्याणकारी लीलाओं का आप वर्णन करें और रूप शील तथा स्वभाव के अनुसार ऋषियों के जन्म कर्म आदि तथा वेदों के भेद का भी आप वर्णन करें ॥२८-२९॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्गादीनामाश्रयं च सृजतः । रूपं लिङ्गम्, शीलमाचारः स्वभावः शमादिः, ततः विकर्षणं विभागम् ॥२८-२९॥

**भाव प्रकाशिका**

सृष्टि आदि तथा उनके करण की सृष्टि करने वाले भगवान् श्रीनिवास की कल्याणकारी लीलाओं को आप बतलायें ॥२८-२९॥

**यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो । नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥३०॥**
**पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम्। जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥३१॥**

**अन्वयः**— हे प्रभो यज्ञस्य च वितानानि, योगस्य नैष्कर्म्यस्य, सांख्यस्य च पथः वा भगवत्स्मृतं तन्त्रम्, पाखण्डपथ वैषम्यम् प्रतिमलोमनिवेशनम् गुणकर्मजाः जीवस्य यावतीः या च गतयः एतत् सर्वं वद ॥३०-३१॥

**अनुवाद**— हे प्रभो आप हमें, यज्ञों के विस्तार को, योग मार्ग, ज्ञान मार्ग और सांख्य मार्ग को, श्रीभगवान् के द्वारा कहे गये नारद पाञ्चरात्र आदि तन्त्रों को, पाखण्डमार्गों के प्रचार के कारण होने वाली विषमता को, नीच वर्ण के पुरुष से उच्चवर्ण की स्त्री से उत्पन्न होने वाली सन्तानों को तथा गुण, कर्म एवं स्वभाव जन्य जीवों की जितनी तथा जो गतियाँ होती हैं उन सबों को आप मुझे बतलाइये ॥३०-३१॥

**भावार्थ दीपिका**

वितानानि विस्तारान् । नैष्कर्म्यस्य च ज्ञानस्य तदुपायस्य च सांख्यस्य पथः मार्गान् तीव्रं चेत्यर्थः ॥३०॥ पाखण्डानां पन्थाः प्रवृत्तिस्तदेव वैषम्यम् ॥३०-३१॥

**भाव प्रकाशिका**

रूप शब्द लिङ्ग (वेष) का वाचक है । शील शब्द आकार का तथा शम दम आदि को स्वभाव शब्द से कहा गया है । वेदस्यविकर्षणम् अर्थात् वेदो का विभाग वितान विस्तार का बोधक है । नैष्कर्म्य ज्ञानयोग का और उसके उपायभूत सांख्य का बोधक है । पथः का अर्थ है मार्गों को । तन्त्र शब्द नारद पञ्चरात्र को कहा गया है। पाखण्ड पथ वैषम्यम् शब्द का अर्थ है पाखण्डों की पाखण्ड के प्रचार से होने वाली विषमता ॥३०-३१॥

**धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः। वार्ताया दण्डनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥३२॥**
**श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन् पितॄणां सर्गमेव च। ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! धर्मार्थकाममोक्षाणाम् अविरोधतः निमित्तानि, वार्तायाः दण्डनीतेः य श्रुतस्य विधिम् श्राद्धस्य विधिम्, पितॄणां सर्गम् एव च, ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम्, पृथक् वद ॥३२-३३॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! आप हमें धर्म, अर्थ और काम मोक्ष की प्राप्ति के परस्पर में अविरोधी साधनों को वाणिज्य, दण्डनीति और शास्त्र श्रवण की विधियों को, श्राद्ध की विधि को तथा पितरों की सृष्टि को अलग-अलग बतलाइये । आप कालचक्र में ग्रह, नक्षत्र और तारागण की स्थिति को भी अलग-अलग बतलाइये ॥३२-३३॥

**भावार्थ दीपिका**

निमित्तान्युपायान्परस्पराविरोधेन । ग्रहादीनां कालचक्रे संस्थितिम् ॥३२-३३॥

**भाव प्रकाशिका**

निमितान्यविरोधतः का अर्थ है परस्पर में विरोध रहित उपायों को । काल चक्र में ग्रहों, नक्षत्रों एवं तारा गणों की स्थिति को ॥३२-३३॥

**दानस्य तपसो वापि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम्। प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥३४॥
येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः। संप्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चानघ॥३५॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! दानस्य, तपसः, वापि, यत् च इष्टापूर्तयोः फलम्, प्रवासस्थस्य यः धर्म, उत आपदि पुंसः यः धर्मः येन वा धर्मयोनिः जनार्दनः तुष्येत् वा साम्प्रसीदति एतद् आख्याहि ॥३४-३५॥

**अनुवाद**— हे अनघ ! मैत्रेयजी आप मुझे दान, तपस्या, इष्टकर्म यज्ञादि तथा और पूर्तकर्म (कूप आदि का निर्माण) का फल बतलायें प्रवास के समय में मनुष्यों के धर्म को तथा आपद् धर्म को भी बतलायें। धर्म के मूल कारण भगवान् जनार्दन जिस आचरण से सन्तुष्ट होते हैं तथा जिन लोगों पर कृपा करते हैं, उसे आप मुझे बतलाइये ॥३४-३५॥

**भावार्थ दीपिका**

येन मार्गेण संतुष्येत् येषामिति यादृशानाम् ॥३४-३५॥

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी ने कहा कि धर्म के मूल कारण भगवान् जनार्दन ही हैं, वे जिस साधन से प्रसन्न होते हैं, उसे आप मुझे बतलायें तथा जिन लोगों पर वे प्रसन्न होकर जो करते हैं उसे आप मुझे बतलाइये ॥३४-३५॥

**अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम। अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥३६॥**

**अन्वयः**— हे द्विजोत्तम ! दीनवत्सलाः गुरवः अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणाम् अनापृष्टम् अपि हितम् ब्रूयुः ॥३६॥

**अनुवाद**— हे द्विजोत्तम ! दीनजनों पर कृपा करने वाले गुरुजन अपनी आज्ञा का पालन करने वाले शिष्यों तथा पुत्रों को पूछे बिना भी उनके कल्याण की बातों को बतला दिया करते हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

अनापृष्टमप्यपृष्टमपि मद्योग्यं वक्तव्यमिति भावः ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी ने कहा कि हे प्रभो ! गुरुजन तो दीन वत्सल होते हैं, वे अपने प्रिय तथा आज्ञा पालक शिष्यों और पुत्रों को पूछे बिना भी उनके कल्याण की बातों को बतला दिया करते है। अतएव मैं जो कुछ नही पूछे होऊँ मेरे कल्याण की उन बातों को भी आप बतला दें ॥३६॥

**तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः। तत्रेमं क उपासीरन् क उ स्विदनुशेरते ॥३७॥**

**अन्वयः**— हे भगवन् तेषां तत्त्वानां कतिधा प्रतिसंक्रमः। तत्र इमं के उपासीरन् क उ स्विद् अनुशेरते ॥३७॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! उन महदादि तत्त्वों के कितने प्रकार के प्रलय होते हैं। जब भगवान् योगनिद्रा में शयन करते हैं उस समय उनकी सेवा कौन करते हैं और कौन उनमें लीन हो जाते हैं ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रतिसंक्रमः प्रलयः। तत्र प्रलये इमं परमेश्वरं शयानं राजानमिव चामरग्राहिणः के वाऽनुशेरते शयानमनुस्वपन्ति ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

महदादि तत्त्वों का कितने प्रकार का प्रलय होता है ? जिस समय भगवान् योगनिद्रा में शयन करते हैं, उस समय जिस तरह सोए हुए राजा की चामरग्राही सेवा करते हैं, उसी तरह सोये हुए परमात्मा की सेवा कौन-कौन तत्त्व करते हैं ? और कौन तत्त्व उनके ही साथ सो जाते हैं ॥३७॥

**पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च । ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥३८॥**

**अन्वयः**— पुरुषस्य संस्थानं परस्य च स्वरूपम्, नैगमं ज्ञानं, गुरुशिष्य प्रयोजनम् च वद ॥३८॥

**अनुवाद**— जीव के स्वरूप को, परमात्मा के स्वरूप को, उपनिषत् प्रतिपादित ज्ञान को एवं गुरु तथा शिष्य के प्रयोजन को आप मुझे बतलायें ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

पुरुषस्य संस्थानं जीवस्य तत्त्वम् । परमेश्वरस्य स्वरूपम् । येनांशेन तयोरैक्यम् । तथा ज्ञानं च । नैगममौपनिषदम् ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि आप मुझे जीव के तत्त्व को, परमात्मा के स्वरूप को, जिस अंश में जीव और परमेश्वर की एकता है उसको, उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को एवं गुरु एवं शिष्य के प्रयोजन को आप मुझे बतलायें ॥३८॥

**निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः । स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥३९॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! इह सूरिभिः तस्य प्रोक्तानि, निमित्तानि पुंसां स्वतः ज्ञानं भक्तिवैराग्यं एव वा कुतः ॥३९॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप ! मैत्रेय जी विद्वानों ने उस ज्ञान की प्राप्ति के जिन-जिन साधनों को बतलाया है, उन सबों को आप मुझे बतलायें, क्योंकि मनुष्यों को अपने आप ज्ञान भक्ति एवं वैराग्य की प्राप्ति का होना कैसे सम्भव है ?॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

यानि सूरिभिः प्रोक्तानि तस्य ज्ञानस्य साधनानि तानि च ब्रूहि । गुरु विनैतन्न भवतीत्याह-स्वत इति ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

विद्वानों ने उस ज्ञान की प्राप्ति के जिन साधनों को बतलाया है, उन साधनों को आप मुझे बतलायें, क्योंकि मनुष्यों को ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की प्राप्ति तो गुरु के बिना अपने आप नहीं हो सकती है ॥३९॥

**एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान्हरेः कर्मविवित्सया । ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥४०॥**

**अन्वयः**— हरेः कर्मविवित्सया एतान् प्रश्नान् पृच्छतः अज्ञस्य अजया नष्टचक्षुषः मे मित्रत्वात् ब्रूहि ॥४०॥

**अनुवाद**— श्रीहरि की लीलाओं को जानने की इच्छा से इन प्रश्नों को मैं आपसे पूछ रहा हूँ । मैं तो अज्ञानी हूँ । माया ने मेरे ज्ञान को विनष्ट कर दिया है । आप मेरे परम मित्र हैं अतएव आप मुझे इन सारी बातों को बतलायें ॥४०॥

### भावार्थ दीपिका

मे प्रश्नान्मे मित्रत्वात्स्निधत्वादित्यन्वयभेदान्न मे पदस्य पौनरूक्त्यम् ॥४०॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में **मे** पद दो बार आया है उनमें से एक मे पद का प्रश्नान् के साथ अन्वय है और दूसरे मे पद का मित्रत्वात् पद के साथ अन्वय है अतएव इस श्लोक मे पुनरुक्त दोष के होने की सम्भावना नहीं की जा सकती है ॥४०॥

**सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन्कलामपि ॥४१॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! सर्वे वेदाश्च, यज्ञाश्च, दानानि च जीवाभयप्रदानस्य कलामपि न कुर्वीरन् ॥४१॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप ! मैत्रेय जी समस्त वेद, यज्ञ तथा दान जीव को अभय प्रदान के अंश भी नहीं उत्पन्न कर सकते है । जीव को अभय प्रदान तो तत्त्वोपदेश के द्वारा ही सम्भव है ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्त्वोपदेशेन जीवाभयप्रदानस्य ॥४१॥

**भाव प्रकाशिका**

आचार्य तत्त्वों का उपदेश करके जीव को जन्म तथा मरण से मुक्ति प्रदान करके जिस अभयको प्रदान कर देते हैं सभी वेद यज्ञ और दान मिलकर उस अभय प्रदान के एक अंश को भी नहीं प्रदान कर सकते हैं ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

**स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ।**
**प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां संचोदितस्तं प्रहसन्निवाह ॥४२॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

**अन्वयः**— कुरु प्रधानेन इत्थम् आ पृष्टः पुराणकल्पः मुनिप्रधानः सः प्रवृद्धहर्षः भगवत् कथायां संचोदितः प्रहसन्निव तं आह ॥४२॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— कुरुवंशियों में प्रधान विदुरजी के द्वारा इस तरह से पुराण विषयक प्रश्न पूछे जाने पर भगवत् चर्चा के लिए प्रेरित किए जाने के कारण मैत्रेय महर्षि बड़े प्रसन्न हुए और मुस्कुराकर उनसे कहने लगे ॥४२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के सातवें अध्याय का**
**शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥**

**भावार्थ दीपिका**

पुराणे कल्पते प्रकाशत इति पुराणाकल्पो बुभुत्सितोऽर्थः आपृष्टः पुराणकल्पोऽयं स मुनिप्रधानः ॥४२॥

**इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥**

**भाव प्रकाशिका**

जो पुराणों में ही प्रकाशित होता है उस जानने योग्य अर्थ के पूछे जाने पर मुनिगणों में प्रधान मैत्रेय महर्षि ने प्रसन्नता का अनुभव किया और वे मुस्कुराते हुए विदुरजी का उत्तर देने लगे ॥४२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सातवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की**
**शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥७॥**

# आठवाँ अध्याय

## ब्रह्माजी की उत्पत्ति

मैत्रेय उवाच

**सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ।**
**बभूविथेहाजितकीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्याभीक्ष्णम् ॥१॥**

**अन्वयः**— बत पूरुवंशः सत्सेवनीयः यत इह भगवत्प्रधानः लोकपालः बभूविथ । अभीक्ष्णम् पदे पदे अजित-कीर्तिमालां नूतनयसि ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— निश्चित रूप से पुरुवंश सत् पुरुषों के द्वारा सेवनीय है; क्योंकि इस वंश में आप यमराज नामक लोकपाल जन्म लिए हैं और निरन्तर पद-पद पर आप श्रीहरि की कीर्तिमाला को नवीन सी बना रहे हैं ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

अष्टमे समभूद्ब्रह्मा नाभेस्तु जलशायिनः । तमजानञ्जले बिभ्यत्तपसाऽतोषयद्विभुम् ॥१॥ श्रोतारमभिनन्दति । सतां सेवितुं योग्यः । बत अहो । यत् यस्मादिहास्मिन्वंशे लोकपालो धर्मराजस्त्वं बभूविथ जातोऽसि । कथंभूतः भगवानेव प्रधानभूतो यस्य सः । अत्र हेतुः-अजितेति । प्रतिक्षणं नूतनयसि नवीनां करोषि ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

इस आठवें अध्याय में जलशायी भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्माजी श्रीभगवान् को नहीं जानने के कारण जल में अकेले डरने लगे । उन्होंने तपस्या के द्वारा श्रीभगवान् को प्रसन्न किया; यही वर्णित है ॥१॥

इस श्लोक में श्रोता विदुरजी की प्रशंसा मैत्रेय महर्षि करते हैं । वे बतलाते हैं कि चूकि इस पुरु के वंश में आप जन्म लिए हैं । आप भगवद्भक्तों में प्रधान लोकपाल यमराज हैं । और आप निरन्तर श्रीभगवान् की कीर्ति को पद-पद पर नवीन बना रहे हैं । अतएव यह पुरुवंश सत्पुरुषों द्वारा सेवनीय है । **भगवत् प्रधानः** का विग्रह है **भगवानेव प्रधानभूतो यस्य सः ॥१॥**

**सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य ।**
**प्रवर्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥२॥**

**अन्वयः**— सोऽहं क्षुल्लसुखाय महददुखं गतानां नृणां विरमाय भागवतं पुराणं प्रवर्तये, यत् साक्षात् भगवान् ऋषिभ्यः आह ॥२॥

**अनुवाद**— मैं अल्पसुख प्राप्त करने के लिए महान् दुःख का अनुभव करने वाले जीवों के दुःखों का विराम करने के लिए, श्रीमद्भागवतपुराण को प्रारम्भ करता हूँ उसको साक्षात् भगवान् संकर्षण ने ऋषियों का सुनाया था ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

अल्पसुखाय महद्दुःखं प्राप्तानां तस्य दुःखस्य विरामाय प्रवर्तये प्रारभे ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

क्षुद्र विषय सुख की प्राप्ति के लिए महान् दुःख को भोगने वाले मनुष्यों के दुःख को दूर करने के लिए मैं इस श्रीमद्भागवत पुराण को प्रारम्भ करता हूँ । इस पुराण को भगवान् संकर्षण ने ऋषियों को सुनाया था ॥२॥

**आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ।**
**विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥३॥**

**अन्वयः**— अकुण्ठसत्त्वम् उर्व्यां आसीनम् आद्यं भगवन्तम् सङ्कर्षणं परस्य तत्त्वम् विवित्सवः कुमारमुख्याः मुनयः अन्वपृच्छन् ॥३॥

**अनुवाद**— अखण्ड ज्ञान सम्पन्न पृथिवी पर विराजमान आदि देव भगवान् सङ्कर्षण से परतत्त्व को जानने की इच्छा से सनत्कुमार आदि ऋषियों ने पूछा ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

कोऽसौ भगवान्, केभ्यश्चर्षिभ्य आह, कथं च त्वया प्राप्तमित्यपेक्षायामाह-आसीनमिति सप्तभिः । उर्व्यां पातालतले अकुण्ठसत्त्वमप्रतिहतज्ञानम् । अतः सङ्कर्षणात्परस्य श्रीवासुदेवस्य ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वे भगवान् कौन है ? वे भगवान् किन ऋषियों को भागवत का उपदेश दिए ? आपने उस श्रीमद्भागवत पुराण को कैसे प्राप्त किया ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर मैत्रेय महर्षि ने **आसीनम्० इत्यादि** सात श्लोकों से इन सारी बातों को बतलाया । आदि भगवान् सङ्कर्षण पाताल में पृथिवी पर बैठे थे । वे भगवान् अखण्ड ज्ञान सम्पन्न हैं । अतएव सङ्कर्षण से भी श्रेष्ठ श्रीवासुदेव भगवान् के तत्त्वों को जानने की इच्छा से सनत्कुमार आदि महर्षियों ने उनसे प्रश्न किया ॥३॥

**स्वमेवधिष्ण्यं बहु मानयन्तं यं वासुदेवाभिधमामनन्ति ।**
**प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीषदुन्मीलयन्तं विबुधोदयाय ॥४॥**

**अन्वयः**— स्वमेवधिष्ण्यं बहुमानयन्तं यं वासुदेवाभिधं आमनन्ति प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशम् विबुधोदयाय ईषदुन्मीलयन्तम् ॥४॥

**अनुवाद**— जिन भगवान् को वेद वासुदेव नाम से अभिहित करते हैं उन अपने आश्रयभूत श्रीभगवान् का अत्यन्त आदर पूर्वक मानसिक पूजन करने वाले, जिनके कमलकोश के समान सुन्दर नेत्र बन्द थे; ऐसे भगवान् सङ्कर्षण उन महर्षियों के प्रश्न को सुनकर उन ज्ञानी सनत्कुमार आदि को आनन्दित करने के लिए अपनी अधखुली आँखों से देखे ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

तमेव विशिनष्टि । स्वमेव धिष्ण्यं स्वीयमाश्रयं वासुदेवसंज्ञं परमानन्दरूपं ध्यानपथेऽनुभूय बहु मानयन्तं सर्वोत्कर्षेण पूजयन्तम् । प्रत्यग्धृतमन्तर्मुखीकृतं नेत्राम्बुजमुकुलं किंचिदुन्मीलयन्तम् । कृपावलोकेन सनत्कुमारादीनामभ्युदयार्थम् ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् सङ्कर्षण की ही विशेषता इस श्लोक में बतलायी जा रही है । अपने आश्रयभूत परमानन्द स्वरूप भगवान् वासुदेव का ध्यान में अनुभव करके अत्यन्त आदर पूर्वक सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के रूप में उनकी पूजा करते हुए, जिनकी नेत्र कलिका अन्तर्मुखी हो गयी थी उन दोनों नेत्रों को थोड़ा सा खोलकर सनत्कुमारादि ऋषियों को आनन्दित करते हुए वे देखे ॥४॥

**स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् ।**
**पद्मं यदर्चन्त्यहिराजकन्याः सप्रेम नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥५॥**

**अन्वयः**— स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैः चरणोपधानम् पद्म स्पृशन्तः यत् अहिराजकन्याः वरार्थाः नानाबलिभिः सप्रेम अर्चयन्ति ॥५॥

**अनुवाद**— गङ्गा के जल से भिङ्गे हुए अपने जटा समूह से भगवान् सङ्कर्षण के चरण चौकी के रूप में स्थित कमल का उन महर्षियों ने स्पर्श किया अर्थात् भागवत की कथा सुनने के लिए प्रणाम किया, जिस कमल की पूजा नाग राजकुमारियाँ अपने मनोनुकूल पति को प्राप्त करने की इच्छा से अनेक उपहारों से किया करती हैं।।५।।

### भावार्थ दीपिका

मुनीनां विशेषणं सार्धेन । स्वर्धुन्या उदकेनार्द्रैरिति । श्रीभागवतश्रवणार्थं सत्यलोकात्पातालं प्रत्यवतरन्तो निरन्तरं गङ्गामध्यत एवावतीर्णा इति भावः । चरणावुपाधीयेते । यस्मिन् पद्मे । तदुपस्पृशन्तो नमन्तः । कथंभूतं तदाह । यत्पद्मं प्रेमसहितं यथा भवत्येवं नानोपहारैः पूजयन्ति । वरार्थाः पतिकामाः ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

मुनियों की विशेषता डेढ श्लोकों में बतलायी गयी है । श्रीमद्भागवत का श्रवण करने के लिए सत्यलोक से पाताल लोक में आते हुए सनकादिक महर्षियों के सिर गङ्गाजी के जल से भिङ्गा था क्योंकि वे गङ्गा के बीच से ही आ रहे थे । सङ्कर्षण भगवान् जिस पर चरण रखते थे उस कमल को उन लोगों ने नमस्कार किया । उसकमल की विशेषता बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि ने कहा कि उस कमल की पूजा नागराज की कुमारियाँ अपने मनोनुकूल पति को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के उपहारों से प्रेम पूर्वक किया करती हैं ।।५।।

**मुहूर्गृणन्तो वचसानुरागस्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ।**
**किरीटसाहस्रमणिप्रवेकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ।।६।।**

**अन्वयः**— अस्य कृतानि तज्ज्ञाः अनुरागस्खलत्पदेन वचसा कृतानि मुहुर्गृणन्तः किरीट साहस्रमणिप्रवेक-प्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ।।६।।

**अनुवाद**— भगवान् सङ्कर्षण की लीलाओं के ज्ञाता वे सनत्कुमार आदि महर्षि प्रेमातिरेक के कारण गद्‌गद वाणी से उनकी लीलाओं का बार-बार गायन कर रहे थे । उस समय शेष भगवान् के उठे हुए हजारों फण उनके हजारों किरीटों में लगी उत्तम मणियों के प्रकाश से प्रकाशित हो रहे थे ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

कृतानि कर्माणि गृणन्तः । केन । अनुरागेण स्खलन्ति पदानि यस्मिंस्तेन वचसा । तानि जानन्तीति तज्ज्ञाः । सहस्रमेवसाहस्रं किरीटानां साहस्रे ये मणिप्रवेका रत्नोत्तमास्तैः प्रद्योतितमुद्दामफणानां सहस्रं यस्य तमपृच्छन्निति पूर्वेणान्वयः ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

वे सनत् कुमारादि ऋषि शेष भगवान् की लीलाओं के अभिज्ञ थे, अतएव वे प्रेम पूर्वक अपनी गद्गद वाणी से शेष भगवान् की लीलाओं का गायन कर रहे थे । शेष भगवान् की फणाओं के जो हजारो किरीट थे उनमें जटित उत्तम कोटि के रत्नों की किरणों से उनके उठे हुए हजारों फण जगमगा रहे थे । इस प्रकार के शेष भगवान् से सनत्कुमार आदि ऋषियों ने प्रश्न किया ।।६।।

**प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ।**
**सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ।।७।।**

**अन्वयः**— भगवतमेन तेन निवृत्तिधर्माभिरताय सनत्कुमाराय एतत् प्रोक्तं किल हे अङ्ग स च पृष्टः धृतव्रताय सांख्यायनाय आह ।।७।।

**अनुवाद**— भगवान् सङ्कर्षण ने निवृत्ति परायण सनत्कुमार को यह भागवत् सुनाया । यह प्रसिद्ध है । सनत्

कुमार महर्षि ने भागवत को सुनने के लिए ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन रूप परम व्रत धारण करने वाले सांख्यायन मुनि को उनके द्वारा पूछे जाने पर सुनाया ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

तेन सङ्कर्षणेन सनत्कुमाराय प्रोक्तम् ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

सर्वप्रथम सङ्कर्षण भगवान् ने श्रीभगवान् को सनत् कुमार महर्षि को भागवत सुनाया क्योंकि वे निवृत्ति मार्ग के अनुयायी थे । उन्होंने सांख्यायन मुनि को श्रीमद्भागवत सुनाया ॥७॥

**सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो विवक्षमाणो भगवाद्विभूतीः ।**
**जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥८॥**

**अन्वयः**— पारमहंस्यमुख्यः सांख्यायनः भगवद्विभूतीः विवक्षमाणः बृहस्पतेः अन्विताय अस्मद्गुरवे पराशराय जगाद॥८॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की विभूतियों का वर्णन करने के इच्छुक परमहंसों में मुख्य संख्यायन महर्षि ने आचार्य बृहस्पति के शिष्य मेरे गुरु महर्षि पराशर को उसे सुनाया ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

पारमहंस्ये धर्मे मुख्यः । विवक्षमाण इत्यात्मनेपदं, ब्रूञादेशस्य वचेरुभयपदित्वात् । अन्वितायानुगताय ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

पारमहंस्य धर्म का पालन करने वालों में मुख्य सांख्यायन मुनि को जब भगवान की विभूतियों का वर्णन करने की इच्छा हुयी तो उन्होंने आचार्य बृहस्पति के शिष्य और हमारे गुरु महर्षि पराशर को उसे सुनाया । **विवक्षमाणः** में आत्मने पद इसलिए है कि ब्रूधातु के आदेशभूत वच् धातु उभयपदि है ॥८॥

**प्रोवाच मह्यंस दयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ।**
**सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥९॥**

**अन्वयः**— पुलस्त्येन उक्तः सः दयालुः मुनिः आद्यं पुराणम् मह्यम् प्रोवाच । हे वत्स ! सोऽहं नित्यमनुव्रताय श्रद्धालवे तव एतत् कथयामि ॥९॥

**अनुवाद**— पुलस्त्य मुनि के कहने से वे दयालु मुनि उस आदिपुराण को मुझे सुनाये । हे वत्स ! वही पुराण अब मैं तुमको सुना रहा हूँ, क्योंकि तुम श्रद्धालु हो तथा सदा अनुगत रहने वाले हो ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

पुलस्त्येनोक्त इत्यत्रैवमाख्यायिका । पितरं राक्षसभक्षितं श्रुत्वा पराशरो राक्षससत्रे प्रवृत्तो वसिष्ठवचनान्निवृत्तस्ततः पुलस्त्येन स्वसंततिरक्षणात्तुष्टेन वरो दत्तः पुराणप्रवक्ता भविष्यसीति ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि पुलस्त्य के कहने से, कहने की, इस प्रकार की आख्यायिका है कि महर्षि पराशर ने जब यह जाना की उनके पिता शक्ति महर्षि को राक्षस ने खा लिया तो उसके पश्चात् वे राक्षस सत्र करने लगे । उस समय महर्षि वसिष्ठ ने आकर उनके उस सत्र को बन्द करवा दिया । उसके पश्चात् उनकी सन्तान की रक्षा हो जाने के कारण महर्षि पुलस्त्य ने कहा कि तुम पुराण के वक्ता होओगे ॥९॥

**उदाप्लुतं विश्वमिदं तदासीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृङ् न्यमीलयत् ।**
**अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥१०॥**

**अन्वयः**— यत् इदं विश्वम् उदाप्लुतं आसीत् तदा एकः अहीन्द्रतल्पे अधिशयानः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः निद्रया अमीलित दृङन्यमीलयत् ॥१०॥

**अनुवाद**— सृष्टि से पूर्व यह सम्पूर्ण जगत् जल में डूबा हुआ था। उस समय अकेले श्रीभगवान् शेष शय्या पर सोए थे। निद्रा के कारण नेत्रों के बन्द होने पर भी वे अपनी आँखें बन्द किए हुए थे। सृष्टि के कार्य को बन्द करके वे आत्मानन्द में मग्न थे। वे उस समय निष्क्रिय थे ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं संकर्षणात्संप्रदायप्रवृत्तिं प्रदर्श्य विभूतिकथनाय पद्मोद्भवं वक्तुमाह । उदाप्लुतमेकार्णवोदके निमग्नं यद्यदा आसीत्तदाऽमीलितदृगतिरोहितचिच्छक्तिरेव श्रीनारायणो नेत्रे निमीलितवानित्यर्थः । मायाविनोदं परित्यज्य स्वात्मरतौ स्वरूपानन्द एव कृतोत्सवः । अतएव निरीहो निष्क्रियः सन् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से भगवान् सङ्कर्षण से भागवत के सम्प्रदाय की प्रवृत्ति बतलाकर भगवान् की विभूतियों का वर्णन करने के लिए ब्रह्माजी की उत्पत्ति का वर्णन करने के लिए मैत्रेयजी ने कहा जिस समय विश्व जल में डूबा हुआ था, वह एकार्णव की बेला थी। उस समय चित्शक्ति तिरोहित नहीं थी किन्तु शेष शय्या पर सोये हुए भगवान् अपनी आँखों को बन्द कर लिए थे माया के विनोद का परित्याग करके वे अपने स्वरूपानन्द में मग्न थे। फलतः वे निष्क्रिय हो गये थे ॥१०॥

**सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ।**
**उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे यथाऽनलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥११॥**

**अन्वयः**— अन्तः शरीरेऽर्पित भूतसूक्ष्मः सः दारुणि रुद्धवीर्यः अनलो यथा तस्मिन् स्वे पदे सलिले कालात्मिकां शक्तिम् उदीरयाणः उवास ॥११॥

**अनुवाद**— अपने शरीर में भूतसूक्ष्मों को छिपाये हुए श्रीभगवान् काष्ठ में व्याप्त तथा अपनी दाहिका शक्ति को छिपाये रहने वाले अग्नि के समान, अपने अधिष्ठानभूत उस जल में शयन किये थे। उस समय उन्होंने केवल कालशक्ति को सृष्टि का समय आने पर जगाने के लिए जागृत रखा ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

कालशक्तेः प्रेरणं पुनः सृष्ट्यवसरे प्रबोधनार्थम् । स्वे पदेऽधिष्ठाने । बहिर्वृत्त्यभावे दृष्टान्तः-यथाऽनल इति ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

योगनिद्रा में शयन करते समय श्रीभगवान् ने काल शक्ति को इसलिए जागृत रखा था कि सृष्टि काल के आने पर वह उनको जगा दे। उस समय श्रीभगवान् की बहिर्वृत्ति का अभाव था। इसका उदाहरण है कि जिस तरह अरणि के काष्ठ में अग्नि व्यापक रहती है, किन्तु वह अपनी दाहिका शक्ति को छिपाये रहती है, उसी तरह श्रीभगवान् अपने अधिष्ठानभूत जल में अपने शरीर में भूतसूक्ष्मों को छिपाये हुए निवास किए थे ॥११॥

**चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ।**
**कालाख्ययासादितकर्मतन्त्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥१२॥**

**अन्वयः**— चतुर्युगानां सहस्रम् अप्सु स्वपन् स्वया उदीरितया कालाख्यया स्वशक्त्या आसादित कर्मतन्त्रः स्वदेहे अपीतान् लोकान् ददृशे ॥१२॥

**अनुवाद**— अपनी चित् शक्ति के साथ एक हजार चतुर्युग पर्यन्त जल में शयन करने के पश्चात् अपने ही द्वारा नियुक्त कालात्मिका शक्ति ने उनको जीवों की कर्मशक्ति की प्रवृत्ति के लिए प्रेरित किया। उसके पश्चात् उन्होंने अपने शरीर में लीन अनन्त लोकों को देखा ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

स्वया चिच्छक्त्या सह वर्तमान एव योगनिद्रया स्वपन् पूर्वमेव बोधनार्थं नियुक्ता स्वकालशक्त्या आसादितं प्रापितं कर्मतन्त्रं क्रियाकलापो यस्य सः। अपीतान् लीनान् ददर्श ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

अपनी चित्शक्ति के साथ ही योगनिद्रा में शयन करने वाले भगवान् सोने से पहले ही जगाने के लिए नियुक्त काल शक्ति के द्वारा जगाये जाने पर अपने कर्मतन्त्र को अपना कर उन्होंने अपने शरीर में लीन अनन्त लोकों को देखा ॥१२॥

**तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान्।**
**गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाऽभिद्यत नाभिदेशात् ॥१३॥**

**अन्वयः**— अर्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेः तस्य कालानुगतेन रजसा गुणेन विद्धः अन्तर्गतः तनीयान् अर्थान् सूष्यन् तदा नाभिदेशात् अभिद्यत ॥१३॥

**अनुवाद**— जिस समय श्रीभगवान् की दृष्टि अपने में निहित लिङ्गशरीर आदि सूक्ष्म तत्त्वों पर पड़ी तो कालाश्रित रजोगुण के द्वारा क्षुब्ध होकर वे सृष्टि की रचना के लिए उनके नाभिदेश से बाहर निकला ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

लोकसृष्ट्यर्थमर्थसूक्ष्मेऽभिनिविष्टा दृष्टिर्यस्य। कालानुसारिणा रजोगुणेन विद्धः संक्षोभितः सन् तनीयानतिसूक्ष्मोऽर्थः सूष्यन्प्रसोष्यन्नुद्भविष्यन्नाभिदेशादुद्भूत इत्यर्थः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

लोकों की सृष्टि करने के लिए लिङ्गशरीर आदि सूक्ष्म तत्त्वों पर जब उनकी दृष्टि पड़ी तो कालाश्रित रजोगुण के द्वारा क्षुब्ध होकर अत्यन्तसूक्ष्म तत्त्व उन सूक्ष्म विषयों को उत्पन्न करने के लिए श्रीभगवान् के नाभिप्रदेश से बाहर निकला ॥१३॥

**स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन।**
**स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥१४॥**

**अन्वयः**— कर्म प्रतिबोधनेन कालेन स आत्मयोनिः पद्मकोशः स्वरोचिषा तत् विशालं सलिलं स्वरोचिषा अर्क इव विद्योतयन् सहसा उदत्ष्ठित् ॥१४॥

**अनुवाद**— कर्मशक्ति को जागृत करने वाले भगवान् विष्णु की नाभि से प्रकट हुआ वह कमलकोश अपनी कान्ति से उस विशाल जल को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए सहसा ऊपर की ओर उठा ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

स तनीयानर्थः पद्मकोशः सन्नुदतिष्ठत्। कर्माणि जीवादृष्टानि प्रतिप्रबोधयति यः कालस्तेन। आत्मा श्रीविष्णुर्योनिर्यस्य॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

जीवों के आदृष्टों को जागृत करने वाले काल शक्ति के द्वारा प्रेरित वह सूक्ष्म तत्त्व ही भगवान् विष्णु की

नाभि से कमल कोश के रूप में ऊपर की ओर उठा वह अपनी कान्ति से उस विशाल जल समूह को प्रकाशित कर रहा था ॥१४॥

**तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ।**
**तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥१५॥**

**अन्वयः**— सर्वगुणावभासं तल्लोकपद्मं स विष्णुः एव प्रावीविशत् तस्मिन् सः स्वयं वेदमयो विधाता अभूत् यं स्वयम्भुवं वदन्तिस्म ॥१५॥

**अनुवाद**— सभी गुणों को प्रकाशित करने वाले उस लोककमल में भगवान् विष्णु ही अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये उसके पश्चात् उसमें से बिना पढ़ाये ही वेदों के ज्ञाता ब्रह्माजी प्रकट हुए जिनको लोग स्वयम्भू कहते हैं ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

तल्लोकात्मकं पद्मं सर्वान्गुणान् जीवभोग्यानर्थानवभासयतीति तथा । तद्यस्माज्जातं स एव विष्णुः । उ इति संबोधने। प्रावीविशत्प्रकर्षेणालुप्तशक्तिरेवान्तर्यामितया विवेश । तस्मिन्विष्णुनाऽधिष्ठिते पद्मे विधाता ब्रह्माऽभूत् । कथंभूतः स्वयमेव वेदमयो न त्वध्ययनेन प्राप्तवेदः । अदृष्टपितृत्वेन यं स्वयंभुवं वदन्ति सः । प्राक्कल्पान्ते नारायणेन सह निद्रयैकीभूत आसीत्तस्मिंश्च प्रबुद्धे तत एव पाद्मे कल्पे पद्मद्वारेणाभिव्यक्तिं प्राप्त इत्यर्थः॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

जीवों के समस्त भोग्य विषयों को प्रकाशित करने वाले उस लोकात्मक पद्म के भीतर जिनकी शक्ति बिल्कुल लुप्त नही हुयी थी ऐसे भगवान् विष्णु अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये । उस कमल के भगवान् विष्णु के द्वारा अधिष्ठित होने पर उससे ब्रह्माजी प्रकट हुए । वे वेदाध्ययन किए बिना ही वेद के ज्ञाता थे । अब प्रश्न है कि वे ब्रह्मा कौन हैं तो इसका उत्तर है, कि उनके पिता को नहीं देखने के कारण लोग उनको स्वयम्भू कहते हैं इस पाद्मकल्प से पहले जो कल्प था उसके अन्त में भगवान् नारायण के साथ ही उनमें मिलकर वे सो गये थे । पाद्मकल्प में जगने पर उस पद्म से ही वे प्रकट हुए ॥१५॥

**तस्यां च चाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः ।**
**परिक्रमन्व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥१६॥**

**अन्वयः**— तस्याम् अम्भोरुहकर्णिकायां अवस्थितः लोकमपश्यमानः व्योम्निपरिक्रमन् अनुदिशं चत्वारि मुखानि लेभे॥१६॥

**अनुवाद**— कमल की उस कर्णिका पर बैठे हुए ब्रह्माजी जब किसी भी लोक को नहीं देखा तो वे अपनी आँखों को अच्छी तरह से खोलकर चारो दिशाओं में देखने लगे, उस समय उनको चार दिशाओं में चार मुख प्राप्त हो गये ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

स च तस्मिन्कल्पे चतुर्मुखोऽभूदित्याह- तस्यामिति । परिक्रमंस्तत्रस्थ एव ग्रीवां चालयन् लोकनिरीक्षणार्थं विवृत्ते विचलिते नेत्रे यस्य ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

वे उस कल्प में चतुर्मुख हो गये इस अर्थ को **तस्यामित्यादि** श्लोक से कहा गया है । ब्रह्माजी जिस कमल पर प्रकट हुए थे उसी कमल की कर्णिका पर बैठकर वे देख लगे किन्तु उस समय उनको कोई लोक नहीं दिखायी पड़ा । इसके पश्चात् वे बैठे ही बैठे चारो दिशाओं में अपनी गर्दन घुमाकर तथा अच्छी तरह से आँखों को खोलकर देखने लगे । उसी समय उनके दिशाओं के अनुसार चार मुख हो गये ॥१६॥

**तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ।**
**उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥१७॥**

**अन्वयः**— तस्मात् युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचकात् सलिलात् विरुढ़म् लोकतत्त्वे कञ्जम् उपाश्रितः आदिदेवः अद्धा नात्मानम् अविदत् ॥१७॥

**अनुवाद**— उस समय प्रलय कालीन वायु के झंकोरों से उछलती जल की तरङ्गों से उस जल राशि से ऊपर उठे हुए कमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी को उस लोकतत्त्व स्वरूप कमल के तथा अपने रहस्य का कुछ भी पता नहीं चला ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्य च श्रीनारायणोपासनयैवाविर्भूतज्ञानक्रियाशक्तेर्लोककर्तृत्वं न स्वत इति वक्तुं प्रथमं तस्य विमोहमाह । तस्मात्सलिलाद्विरूढमुद्गतं कञ्जशमुपाश्रितोऽपि साकल्येन तत्कञ्जं लोकतत्त्वं चात्मानं च साक्षान्न ज्ञातवान् । उत इति विस्मये। कथंभूतात् । युगान्तश्वसनः प्रलयवायुस्तेनावघूर्णं तत्र तत्र प्रकम्पितं यस्मात्सर्वत ऊर्मिचक्रं यस्मिन् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् नारायण की उपासना से ही ब्रह्माजी को ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और लोककर्तृत्व की शक्ति प्राप्ति हुयी अपने आप नहीं; इस अर्थ को बतलाने के ही लिए ब्रह्माजी के मोह का वर्णन मैत्रेय महर्षि इस श्लोक में करते हैं । श्लोक का उ शब्द आश्चर्य का बोधक है । उस समय चलने वाली वायु के झंकोरों के कारण एकार्णव में ऊँची लहरें उठ रही थीं । उस जल से निकले हुए कमल पर ब्रह्माजी बैठे हुए थे किन्तु वे पूर्णरूप से उस कमल को जान नही सके, और न लोकतन्त्र को जान सके, साथ ही अपने भी विषय में वे कुछ भी नहीं जान सके ॥१७॥

**क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाऽब्जमनन्यदप्सु ।**
**अस्ति ह्यधस्तादिह किंचनैतदधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— स असौअब्जपृष्ठे अहम् एषः कः, अनन्यत् एतत् अब्जं वा अप्सु कुतः । यत्र एतत् अधिष्ठितं इह अधस्तात् किञ्चन सता भाव्यम् नु ॥१८॥

**अनुवाद**— ब्रह्मजी सोचने लगे कि इस कमल के ऊपर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? जल के भीतर केवल यही कमल कैसे पैदा हो गया ? जिस पर यह कमल टिका हुआ है, ऐसी किसी वस्तु को इसके नीचे होना चाहिए जिसके आधार पर यह कमल स्थित है ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

अविदुषस्तस्य वितर्कमाह । योऽसावहमब्जपृष्ठे एष कः । अनन्यदेकमेवैतदब्जं कुतो वा जातम् । यत्रैतदधिष्ठितं तेनाधस्तात्सता वर्तमानेन तु निश्चितं भाव्यम् । स इत्थमुद्वीक्ष्येत्युत्तरेणान्वयः । तथा च श्रुतिः-**सोऽपश्यत्पुष्करपर्णे तिष्ठन्सोऽमन्यत अस्मि चैतद्यस्मिन्निदमधितिष्ठति'** इति ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

उस कमल तथा अपने विषय में कुछ नहीं जान पाने वाले ब्रह्माजी के वितर्क को ही इस श्लोक में कहा गया है । ब्रह्माजी सोच रहे थे कि इस कमल की कर्णिका पर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? इस विशाल जल राशि में यह अकेला कमल कहाँ से उत्पन्न हो गया ? इसके नीचे किसी वस्तु को होना चाहिए जिसके ऊपर यह कमल स्थित है, श्रुति भी कहती है— **सोऽपश्यत् पुष्करपर्णे० इत्यादि** अर्थात् कमल दल के ऊपर बैठे हुए ब्रह्माजी ने सोचा कि कोई ऐसी वस्तु है जिसके ऊपर यह कमल स्थित है ॥१८॥

**स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ।**
**नार्वाग्गतस्तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताजः ॥१९॥**

**अन्वयः**— इत्थम् उद्वीक्ष्य सः तदब्जनालनाडीभिः जलम् अन्तः आविवेश, अर्वाक् गतः अजः तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वन् तत् न अविन्दत ॥१९॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से विचार करके ब्रह्माजी उस कमल के नाल के छिद्र से जल में प्रवेश कर गये उसके भीतर जाकर कमल नाल के आधार भूत नाभि का अन्वेषण करके भी उसे वे नहीं जान सके ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

तस्य च बहिर्मुखप्रवृत्त्या महतापि कालेन तदप्राप्तिमाह-स इति द्वाभ्याम् । तस्याब्जस्य यन्नालं तस्य नाडीभिरन्तश्छिद्रैः। तस्य खरनालस्य पद्मस्य यन्नालं तस्य नाभिमधिष्ठानं विचिन्वन्नर्वाग्गतोऽपि तत्तदा नाविन्दत ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की बहिर्मुखी प्रवृत्ति होने के कारण ब्रह्माजी बहुत अधिक प्रयास करके उस कमल के आधार को नहीं जान सके, इस बात को **स इत्थम् इत्यादि** दो श्लोकों से मैत्रेयजी ने कहा— उस कमल के नाल के छिद्रों के माध्यम से जल में प्रवेश करके भीतर जाने पर भी उस कमल के अधिष्ठान का पता ब्रह्माजी नहीं लगा सके॥१९॥

**तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ।**
**यो देहभाजां भयमीरयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥२०॥**

**अन्वयः**— हे विदुर ! अपारे तमसि आत्मसर्गं विचिन्वतः महान् त्रिणेमिः अभूत् यः अजस्य हेतिः भयम् ईरयाणः आयुः क्षिणोति ॥२०॥

**अनुवाद**— विदुरजी उस घोर अन्धकार में अपने उत्पत्तिस्थान को खोजते हुए बहुत समय बीत गया । वह काल भगवान् का चक्र है, जो शरीरधारियों को भयभीत करते हुए उनकी आयु को क्षीण करता रहता है ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

हे विदुर, आत्मसर्गं स्वकारणम् । त्रिणेमिः कालः । अजस्य विष्णोर्हेतिः सुदर्शनरूपं शस्त्रम् । देहभाजां नराणां भयमुत्पादयन्निति संवत्सरशतमतिक्रान्तमित्युक्तं भवति ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी ! उस घोर अन्धकार में अपनी उत्पत्ति का स्थान खोजते हुए ब्रह्माजी के सौ वर्ष से भी अधिक समय बीत गया । वह काल ही भगवान् का सुदर्शन चक्र है जो शरीरधारियों को भयभीत करते हुए उनकी आयु को क्षीण करने का काम करता है ॥२०॥

**ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ।**
**शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥२१॥**

**अन्वयः**— ततः अप्रतिलब्धकामः निवृत्तः पुनः स्वधिष्ण्यम् असाद्य स देवः शनैः जितश्वास निवृत्तचित्तः आरूढसमाधियोगः न्यषीदत् ॥२१॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् विफल मनोरथ बह्माजी लौट आये फिर अपने स्थान पर आकर धीरे-धीरे प्राणवायु को जीतकर चित्त को सङ्कल्प रहित बनकर समाधिस्थ हो गये ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

अन्तर्मुखतया तु भगवन्तं दृष्टवानित्याह द्वाभ्याम् । ततोऽन्वेषणान्निवृत्तः । न प्रतिलब्धः कामो मनोरथो येन । स्वधिष्ण्यं पद्मम् । जितेन श्वासेन निवृत्तं संयतं चित्तं यस्य, अत एवारूढ आश्रितः समाधियोगो येन तथाभूतः सन्न्यषीददुपविवेश॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

अब दो श्लोकों से यह बतलाया जा रहा है कि ब्रह्माजी अपनी बाह्य शक्तियों को निगृहीत करके केवल परमात्मध्यान परायण होकर श्रीभगवान् का साक्षात्कार किए । उसके पश्चात् अपने कारण तत्त्व के अन्वेषण से निवृत्त हुए ब्रह्माजी क्योंकि उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हो पाया था । पुनः आकर वे अपने स्थान पर बैठ गये । उन्होंने प्राणवायु को जीतकर अपने चित्त को सङ्कल्प विहीन बनाया और समाधि में वे स्थित हो गये ॥२१॥

**कालेन सोऽजः पुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ।**
**स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभातमपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— सोऽजः पुरुषायुषा कालेन अभिप्रवृत्तयोगेन विरुढबोधः सन् यत् पूर्वम् न अपश्यत तत् अन्तः हृदये स्वयम् अवभातम् अपश्यत् ॥२२॥

**अनुवाद**— किसी पुरुष के पूर्ण आयु का जितना काल होता है उतने काल तक अच्छी तरह से निष्पन्न योग के द्वारा ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्त हुआ । उसके पश्चात् अपने जिस अधिष्ठान का अन्वेष्ण करके भी ब्रह्माजी नहीं देख पाये थे उसका अपने आप ही अन्तःकरण में प्रकाशित रूप से साक्षात्कार किए ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

पुरुषायुषा संवत्सरशतेन कालेनाभिप्रवृत्तः सुनिष्पन्नो योगस्तेन विरूढ उत्पन्नो बोधो यस्य । यत्पूर्वं विचिन्वन्नपि नापश्यत्तत्स्वयमेवान्तर्हृदयेऽवभातमपश्यत् ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

सौ वर्षों तक लगातार योग साधना करने से ब्रह्माजी को ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसके पश्चात् वे जिस अपने कारण तत्त्व का अन्वेषण करके भी दर्शन नहीं कर पाये थे । वे श्रीभगवान् अपने आप उनके अन्तःकरण में प्रकाशित हो गये और ब्रह्माजी ने उनका दर्शन किया ॥२२॥

**मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ।**
**फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥२३॥**

**अन्वयः**— युगान्ततोये मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्के शयानम्, फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिः हतध्वान्तं एकं पुरुषम् अपश्यत् ॥२३॥

**अनुवाद**— उन्होंने देखा कि उस प्रलय कालीन जल में शेष नाग के कमल नाल के समान गौर एवं विशाल शरीर की शय्या पर पुरुषोत्तम भगवान् नारायण अकेले ही लेटे हुए हैं । शेषजी की हजार फणायें छत्र के समान फैली हुयी हैं । उनके सिर पर विद्यमान मुकुट की मणियों की कान्ति से सारा अन्धकार विनष्ट हो रहा है ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

यदपश्यत्तद्वर्णयति-मृणालेति नवभिः । नवस्वप्यपश्यदित्यस्यैवानुषङ्गः । मृणालवद्गौरश्चासावायतश्च यः शेषस्तस्य भोगो देहः स एव पर्यङ्कस्तस्मिन् । कुत्र स्थिते पर्यङ्के फणातपत्रैरायुताः सर्वतो युक्ता ये मूर्धानस्तेषां रत्नानि किरीटस्थानि तेषां द्युभिः प्रभाभिर्हतध्वान्ते युगान्ततोये ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने जिसे देखा उसका वर्णन नव श्लोकों से करते हैं । इन नव श्लोकों में अपश्यत् क्रिया का सम्बन्ध

है। शेषजी का शरीर कमल नाल के समान गौर वर्ण का तथा विस्तृत था। उसी पर श्रीभगवान् सोये थे, शेषजी के हजारों फण छत्र के समान फैले थे। शेषजी के शिर पर विद्यमान किरीट की मणियों के प्रकाश से सारा अन्धकार विनष्ट हो रहा था ॥२३॥

**प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ।**
**रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्रजो वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः ॥२४॥**

**अन्वयः**— हरितोपलाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेः, ऊरूरुक्ममूर्ध्नः रत्नोदधारौषधिसौमनस्य वनस्रजः वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः च प्रेक्षां क्षिपन्तम् अपश्यत् ॥२४॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् का श्याम वर्ण का श्रीविग्रह मरकत मणि की शोभा को तिरस्कृत रहा था, उनकी कमर का पीताम्बर पर्वत के प्रान्तभाग में स्थित सायंकालीन मेघों की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था, श्रीभगवान् के सिर पर विद्यमान सुवर्ण मुकुट सुवर्णमय पर्वत शिखर की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था, श्रीभगवान् की अनेक वर्णों वाली वनमाला पर्वत के रत्नों, जलप्रपात, ओषधियों और पुष्पों की शोभा को तिरस्कृत कर ही थी उनके भुजदण्ड वेणुदण्ड की शोभा को तथा चरण वृक्षों की शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

कथंभूतं पुरुषम्। हरितोपलाद्रेर्मरकतशिलामयपर्वतस्य प्रेक्षां शोभां क्षिपन्तं स्वलावण्यातिशयेन तिरस्कुर्वन्तम्। सन्ध्याभ्रं नीवी परिधानं यस्य तस्य शोभां पीताम्बरेण क्षिपन्तम्। उरुरुक्ममूर्ध्नोऽनेकस्वर्णशिखरस्य तस्य स्वकिरीटैः। रत्नानि च उदधाराश्च ओषधयश्च सौमनस्यानि च, पुष्पसमूहाः सुमनस एव वा तेषां वनस्रजो वनमाला यस्य, वेणव एव भुजा यस्य, अङ्घ्रिपा एवाङ्घ्रयो यस्य स चासौ स च तस्य। अयमर्थः-यदि तस्मिन्माला इव स्थिता रत्नादयो भवन्ति, वेणवश्च भुजा इव, वृक्षाश्च पादा इव तर्हि तस्य शोभां स्वीयरत्नमुक्तातुलसीपुष्पदामभिर्भुजैरङ्घ्रिभिश्च क्षिपन्तमिति ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में शेष शय्या पर सोये हुए श्रीभगवान् की अतुलनीय शोभा का वर्णन किया गया है। श्रीभगवान् का शरीर श्याम वर्ण का था। वह अपनी शोभा से नील वर्ण के मरकत मणि के पर्वत की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था। श्रीभगवान् अपने कमर में पीला पीताम्बर धारण किये थे। उसकी शोभा पर्वत के प्रान्तभाग में विद्यमान सायंकालीन पीतिमासे पीत बने मेघों की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था। श्रीभगवान् के सिर पर विद्यमान सुवर्ण का मुकुट अपनी शोभा से पर्वत के सुवर्णमय शिखरों की शोभा को फीका बना रहा था। अनेक वर्ण के पुष्पों से निर्मित श्रीभगवान् की वनमाला पर्वत के रत्नों, जलधाराओं, ओषधियों, तथा पुष्पों की शोभा को तिरस्कृत कर रही थी, उनके भुजदण्ड पर्वत के वेणुदण्ड की शोभा को तथा उनके चरण वृक्षों की शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे।

**अयमर्थः इत्यादि-** कहने का अभिप्राय है कि श्रीभगवान् की वनमाला में अनेक प्रकार के रत्न पुष्प एवं तुलसी पुष्प ग्रथित थे। अतएव उसकी शोभा पर्वत पर विद्यमान रत्नों, जलप्रपातों, औषधियों और पुष्पों की समुदित शोभा के समान प्रतीत हो रही थी। श्रीभगवान् की भुजाएँ वेणुदण्ड के समान सुदृढ थीं और उनके चरण वृक्षों के समान सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार के श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥२४॥

**आयामतो विस्तरतः स्वमानदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण ।**
**विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृतश्रियापाश्रितवेषदेहम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— आयामतः विस्तरतः लोकत्रयसंग्रहेण स्वदेहमानेन विचित्रदिव्याभरणांशुकानाम् कृतश्रियापाश्रित वेष देहम् अपश्यत् ॥२५॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् का श्रीविग्रह अपनी लम्बाई तथा चौड़ाई के द्वारा त्रैलोक्य के समान विस्तृत था। वह अपनी शोभा से विचित्र तथा दिव्य वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा को सुशोभित करने वाला होने पर भी पीताम्बर तथा आभूषणों आदि से अलंकृत था ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

किंच आयामतो दैर्ध्येण विस्तरतश्च स्वमानदेहेन मीयतेऽनेनेति मानमुपमा शोभनश्चासावमानो निरूपमो देहस्तेन। यद्वा सुष्ठु अमानोऽपरिच्छिन्नस्तेन। यद्वा ताभ्यां स्वानुरूपप्रमाणेन अतएव लोकत्रयं संगृह्यते यस्मिंस्तथा। विचित्राणि नानाविधानि दिव्यान्यपूर्वाणि चाभरणान्यंशुकानि च तेषां कृता आसमन्ताच्छ्रीः शोभा येन, तेन देहेन विशिष्टम्। एवं स्वत एवातिरम्यत्वेऽप्यपाश्रितवेषः स्वीकृतालंकारो देहो यस्य तमपश्यत्। यद्वा केन प्रेक्षां क्षिपन्तमित्यपेक्षायामेवंभूतेन देहेनेति सम्बन्धः ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की लम्बाई तथा चौड़ाई त्रैलोक्य के विस्तार के समान अत्यन्त विस्तृत थी। उनके शरीर की शोभा इतनी अच्छी थी कि उस शोभा से दिव्य एवं विचित्र वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा बढ़ जाती थी इतना सुन्दर होने पर भी भगवान् का श्रीविग्रह दिव्य पीताम्बर तथा आभूषणों आदि से समलंकृत था। इस प्रकार के श्रीभगवान् का दर्शन ब्रह्माजी ने किया।

**स्वमानदेहेन** का मान शब्द उपमा का बोधक है। अर्थात् उनका श्रीविग्रह निरूपम था। स्वमान शब्द का सुष्ठ अमान: अपरिच्छिन्न: यह भी विग्रह हो सकता है। यह भी अर्थ सम्भव है कि श्रीभगवान् का श्रीविग्रह अपने स्वरूपानुरूप लम्बाई तथा चौड़ाई के द्वारा सम्पूर्ण त्रैलोक्य के समान विस्तृत था।

अथवा किसके द्वारा शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे श्रीभगवान्? इस तरह की अपेक्षा होने का उत्तर है कि वे अपने इस प्रकार के निरूपम शरीर के द्वारा उपर्युक्त सबों की शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे ॥२५॥

**पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम्।**
**प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलिचारुपत्रम् ॥२६॥**

**अन्वयः**— नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलि चारुपत्रम् स्वकामाय विविक्तमार्गैः अभ्यर्चतां पुंसां कृपया कामदुघांङ्घ्रिपदमम् प्रदर्शयन्तं पुरुषम् अपश्यत् ॥२६॥

**अनुवाद**— जिनके नखचन्द्र की चन्द्रिका से सुशोभित अङ्गुलियाँ ही सुन्दर दल के समान प्रतीत हो रही थीं ऐसे अपनी मन: कामना की पूर्ति के लिए शुद्ध वैदिक पद्धतियों से पूजा करने वाले भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले, अपने चरण कमलों को कृपा पूर्वक प्रदर्शित करने वाले, श्रीभगवान् का दर्शन ब्रह्माजी ने किया ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

स्वाभिलषितफलाय विविक्तैः शुद्धैर्वेदोक्तैर्मार्गैरभ्यर्चतां पुंसां कामदुघमङ्घ्रिपद्मं प्रदर्शयन्तं किंचिदुन्नमय्य समर्पयन्तम् नखा एव इन्दवस्तेषां मयूखा रश्मयस्तैर्भिन्नाः संभिन्ना अङ्गुलय एव चारूणि पत्राणि यस्य तत् ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

अपने अभिलाषित फल की प्राप्ति के लिए शुद्धवेदोक्त पद्धति से पूजा करने वाले लोगों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, अपने चरण कमल को कृपा पूर्वक पदर्शित करने वाले, तथा जिन चरण कमलों की सुन्दर अङ्गुलियाँ नख चन्द्र की कान्ति से सुशोभित होने के कारण उस चरण कमल के दल के समान थीं ऐसे श्रीभगवान् का दर्शन ब्रह्माजी ने किया। इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि भगवान् के चरण कमल ही भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥२६॥

**मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ।
शोणायितेनाधरबिम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्र्वा ॥२७॥**

**अन्वयः**— लोकार्तिहरस्मितेन मुखेन, परिस्फुरत् कुण्डलमण्डितेन शोणायितेन अधरविम्बभासा सुनसेन सुभ्रूवा प्रत्यर्हयन्तं अपश्यत् ॥२७॥

**अनुवाद**— संसार के कष्ट को विनष्ट करने वाले मुसकान से युक्त मुखारविन्द के द्वारा, चमकते हुए कुण्डल की शोभा से युक्त कानों के द्वारा, विम्बफल के समान नाक और सुन्दर भौहें के द्वारा, अपने आराधक भक्तों का सम्मान करने वाले श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

लोकार्तिहरं स्मितं यस्मिंस्तत् । परिस्फुरद्भ्यां कुण्डलाभ्यां मण्डितेन । अधरबिम्बदीप्त्या शोणवदाचरितेन शोभननासायुक्तेन सुभ्र्वा च प्रत्यर्हयन्तं पूजकान्प्रति पूजयन्तं संमानयन्तम् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

मुसकान से मण्डित श्रीभगवान् का मुख मण्डल संसारी जीवों के कष्टों को विनष्ट कर देने वाला है, ऐसे मुख के द्वारा, उनके कानों में चमकते हुए कुण्डल विम्बफल के समान, लाल-लाल ओष्ठ की कान्ति से सुन्दर नासिका एवं मनोहर भौहों से अपने आराधकों का सम्मान करने वाले श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥२७॥

**कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा स्वलंकृते मेखलया नितम्बे ।
हारेणचानन्त धनेन वत्स श्रीवत्स वक्षःस्थल बल्लभेन ॥२८॥**

**अन्वयः**— हे वत्स कदम्बकिञ्जल्क पिशङ्गवाससा मेखलया च नितम्बे अनन्तधनेन हारेण श्रीवत्स वक्षःस्थल बल्लभेन स्वलङ्कृतं अपश्यत् ॥२८॥

**अनुवाद**— उनके नितम्ब वक्षःस्थल अनर्घ्यहार और सुनहरी रेखा वाले श्रीवत्सचिह्न की अपूर्व शोभा हो रही थी ऐसे श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने देखा ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

कदम्ब किञ्जल्कवत् पिशङ्गं यद्वासस्तेन मेखलया च नितम्बे स्वलङ्कृतम् । श्रीवत्सयुक्तं यद्वक्षःस्थलं तस्य बल्लभेन वक्षयमर्घ्येण हारेणस्वलङ्कृतमित्यर्थः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

वे अपने कमर मे कदम्बपुष्प के पराग के समान पीताम्बर तथा सुवर्ण निर्मित करधनी को धारण किए थे। श्रीवत्स चिह्न से युक्त जो वक्षःस्थल था उसको प्रिय लगने वाले बहुमूल्य हार से अलंकृत श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने देखा ॥२८॥

**परार्घ्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् ।
अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्रमहीन्द्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥२९॥**

**अन्वयः**— अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्रम् परार्घ्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्ड सहस्रशाखम् अहीन्द्र भोगैरधिवीत-वल्शम् अपश्यत् ॥२९॥

**अनुवाद**— वे श्रीभगवान् अव्यक्तमूल चन्दन वृक्ष के समान है, उत्तम मणियों से जटित महामूल्यवान् केयूर से सुशोभित उनके विशाल भुजदण्ड ही मानो उसकी सहस्रों शाखायें हैं जिस तरह के वृक्षों में सर्प लिपटे रहते हैं उसी तरह उनके कन्धों को शेषजी के फणों ने लपेट रखा है ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

महाचन्दनवृक्षरूपकेण निरूपयितुं तं विशिनष्टि। परार्घ्यानि श्रेष्ठानि केयूराण्यङ्गदानि मणिप्रवेकाश्च मण्युत्तमास्तैः पर्यस्ता व्याप्ता दोर्दण्डा एव सहस्रमनन्ताः शाखा यस्य। चन्दनवृक्षोऽपि केयूरादितुल्यैः फलपुष्पादिभिर्व्याप्तशाखो भवति। अव्यक्तं प्रधानं मूलमधोभागो यस्य। यद्वा अव्यक्तं ब्रह्म मूलं यस्य, ब्रह्माभिव्यक्तिरूपत्वात्। वृक्षस्यापि मूलं न व्यक्तम्। भुवनात्मकमङ्घ्रिपेन्द्रम्। अहीन्द्रस्यानन्तस्य भोगैः फणैर्देहावयवैर्वाऽधिवीताः संवेष्टिताः स्पृष्टा वल्शाः स्कन्धा यस्य। '**वनस्पते शतवल्शो विरोह**' इति श्रुतेः। सोऽपि सर्पैर्वेष्टितो भवति ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् को रूपकालंकार के माध्यम से महान् चन्दन वृक्ष के समान बतलाया गया है। जिसमें उत्तम मणियाँ जटित हैं ऐसे केयूर से मण्डित भगवान् की भुजाएँ ही उस महावृक्ष की अनन्त शाखायें हैं। चन्दन वृक्ष भी फल पुष्पादि को से व्याप्त होता है। श्रीभगवान् के नीचे अव्यक्त प्रकृति है। श्रीभगवान् ब्रह्म की अभिव्यक्ति हैं अतएव अव्यक्त ही उनका मूल है। वृक्ष का भी मूल व्यक्त नहीं होता है। ऐसे भगवान् भुवनात्मक महावृक्ष के समान हैं। सर्पो के स्वामी श्रीशेषनाग के देहों के अवयव उनसे लिपटे हुए हैं और चन्दन वृक्ष की भी शाखाओं में सर्प लिपटे रहते हैं। श्रुति भी कहती है **वनस्पते शतवल्शो विरोहः** अर्थात् हे वनस्पति स्वरूप भगवन् आप सैकड़ो शाखाओं से युक्त और आरोह रहित हैं ॥२९॥

**चराचरौको भगवामहीध्रमहीन्द्रबन्धुं सलिलोपगूढम्।**
**किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्गमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥३०॥**

**अन्वयः**— अहीन्द्रबन्धुम् सलिलोपगूढम् चराचरौको भगवान् महध्रम् किरीट साहस्र हिरण्यशृङ्गम् कौस्तुभरत्नगर्भम् भगवन्तम् अपश्यत् ॥३०॥

**अनुवाद**— नागराज शेष के बन्धु भगवान् नारायण जल से चारो तरफ से धिरे हुए पर्वत के समान थे। सम्पूर्ण चराचर के आश्रय स्वरूप भगवान् अनेक जीवों के आश्रय स्वरूप पर्वत के समान थे। जिस तरह भगवान् एकार्णव के जल से घिरे थे उसी तरह मैनाक आदि पर्वत भी जल से घिरे रहते हैं। उनके हजारों किरीट ही मेरु आदि पर्वतों के शिखर के समान थे, तथा रत्नों को उत्पन्न करने वाले पर्वत के समान श्रीभगवान् के वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि सुशोभित हो रही थी। इसप्रकार के श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

प्रेक्षां क्षिपन्तमित्यत्रैव पर्वतरूपकेण निरूपितमपि विशेषणान्तरैः पुनर्निरूपयति। भगवानेव महीध्रस्तम्। चराचराणामोकः स्थानम्। सोऽपि तथा। अहीन्द्रस्य बन्धुम्। सोऽप्यहीन्द्राणां बन्धुः। सलिलेनोपगूढमावृतम्। पर्वतोऽपि मैनाकादिस्तथा। किरीटसाहस्रमेव हिरण्यशृङ्गाणि यस्य। सोऽपि मेर्वादिस्तथा यथा पर्वतस्य गर्भे क्वचिद्रत्नमाविर्भवति तथा आविर्भवत्स्पष्टं दृश्यमानं कौस्तुभरत्नं गर्भे मूर्तिमध्ये यस्य तम् ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

इससे श्रीभगवान् को पर्वतरूपक के माध्यम से निरूपित किया जा चुका है, फिर भी दूसरे विशेषणों से श्रीभगवान् को पर्वत रूपक के माध्यम से निरूपित करते हैं। श्रीभगवान् ही पर्वत हैं सम्पूर्ण चराचरों के आश्रय स्थान हैं, पर्वत भी चराचरों का आश्रय है। श्रीभगवान् शेषनाग के बन्धु हैं और पर्वत भी सर्पो का बन्धु होता है। उस पर सर्पो का निवास होता है। भगवान् एकार्णव के जल से घिरे हैं। मैनाक आदि पर्वत भी जल से घिरा है। श्रीभगवान् सहस्रशीर्षा हैं। उनके हजारों किरीट ही शिखर हैं। सुमेरु पर्वत के शिखर भी सुवर्णमय हैं। जैसे पर्वत के भीतर कहीं पर रत्न मिलता है। श्रीभगवान् के भी वक्षःस्थल में कौस्तुभमणि दिखायी देती है ॥३०॥

**निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ।**
**सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासदम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— आम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया निवीतम् सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैः दुरासदम् हरिम् अपश्यत् ॥३१॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने वेद रूपी भौरों से गुंजित अपनी कीर्तिमयी बनमाला से मण्डित, सूर्य, चन्द्रमा, वायु तथा अग्नि के लिए भी अगम्य त्रैलोक्य में निबाध रूप से विचरण करने वाले सुदर्शन चक्र आदि आयुधों के लिए भी दुष्प्राप्य श्रीहरि को देखा ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

किंच वनमालया निवीतं कण्ठलम्बिन्या व्याप्तम् । आम्नाया वेदा एव मधुव्रतास्तैः श्रीर्यस्यास्तया हरिमिति पर्वतादिरूपमपश्यत्, हरिरसाविति ज्ञातवानित्यर्थः । सूर्यादिभिरगममगम्यम् । स्वव्यापारैराकलयितुमशक्यमित्यर्थः । किंच त्रिष्वपि लोकेषु धाम स्फूर्तिर्येषां तैः, रक्षणार्थं परिक्रमद्भिः परितो धावद्भिः प्राधनिकैः प्रधनं संग्रामस्तत्प्रयोजनैः सुदर्शनादिभिर्हेतुभूतैर्दुरासदं दुष्प्रापम् ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

कण्ठ में लटकने वाली वनमाला जो वेद रूपी भौरों से गुंजित है, उससे व्याप्त पर्वतादि रूप श्रीहरि को ब्रह्माजी ने देखा, अर्थात् वे जाने कि ये ही श्रीहरि हमारे अधिष्ठान (आश्रय) हैं । वे श्रीहरि सूर्य चन्द्रमा आदि देवताओं के भी लिए अगम्य हैं । अर्थात् सूर्य चन्द्रमा उन श्रीभगवान् को अपने व्यापार से संतप्त नहीं कर सकते हैं । जिन लोगों की तीनों लोकों में अबाध रूप से गति हैं, अर्थात् जो त्रैलोक्य की रक्षा करने के लिए चारो ओर आते-जाते रहते हैं, ऐसे सुदर्शन चक्र आदि जो युद्ध में काम आने वाले आयुध हैं उन लोगों के लिए भी दुष्प्राप्य हैं वे श्रीभगवान् ॥३१॥

**तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोजमात्मानमम्भः श्वसनं वियच्च ।**
**ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥३२॥**

**अन्वयः**— तर्हि एव लोकविसर्गदृष्टिः जगतः विधाता तन्नाभिसरः सरोजम्, आत्मानम्, अम्भः श्वसनं वियत् च ददर्श अतः परं न किञ्चिदिति शेषः ॥३२॥

**अनुवाद**— उस समय विश्व रचना की दृष्टि वाले ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की नाभिसरोवर में उत्पन्न कमल को, अपने को, जल, वायु को तथा आकाश को इन पाँच वस्तुओं की देखा इनसे अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु को उन्होंने नहीं देखा ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

यदैवं हरिमपश्यत्तर्ह्येव तदैव लोकविसर्गदृष्टिः संस्तस्य नाभिसरसि सरोजं श्वसनं प्रलयवायुं वियदाकाशं च ददर्श॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

जिस समय ब्रह्माजी ने इस प्रकार से श्रीहरि को देखा उसी समय उन्होंने जगत् की सृष्टि की इच्छा वाले ब्रहह्माजी ने श्रीभगवान् के नाभि रूपी सरोवर में विद्यमान कमल को, जल को, अपने को, प्रलयकालीन वायु को तथा आकाश को देखा ॥३२॥

**स कर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ।**
**अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥३३॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीय स्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

**अन्वयः**— रजसा उपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन् स इयदेव कर्मबीजं दृष्ट्वा विसर्गाभिमुखः सन् अव्यक्तवर्त्मनि अभिवेशितात्मा अस्तौद् ॥३३॥

**अनुवाद**— रजोगुण से युक्त तथा प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी सृष्टि के कारण भूत इन पाँच ही वस्तुओं को देखकर सृष्टि करने के लिए उत्सुक होने के कारण अज्ञात गति श्रीभगवान् में अपने चित्त को लगाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥३३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥**

**भावार्थ दीपिका**

कर्मबीजं लोकसृष्टेः कारणम् । रजसा उपरक्तो रजोगुणयुक्तः । अतः प्रजाः स्रष्टुमिच्छन्नियदेव नाभिसरोजादिपञ्चकमेव । विसर्गेऽप्यभिमुखो दत्तचित्तः अव्यक्तवर्त्मनि भगवति निवेशितचित्तः ॥३३॥

**इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीय स्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥**

**भाव प्रकाशिका**

रजोगुण से युक्त होने के कारण ब्रह्माजी सृष्टि करना चाहते थे और उन्होंने बत्तीसवें श्लोक में वर्णित कमल आदि पाञ्च वस्तुओं को ही सृष्टि के कारण रूप से देखा । उनका मन सृष्टि करने में लगा था अतएव उन्होंने अव्यक्त गति श्रीभगवान् की स्तुति की ॥३३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थदीपिकाटीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥८॥**

# नवाँ अध्याय

## ब्रह्माजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति

ब्रह्मोवाच

**ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।**
**नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥१॥**

**अन्वयः**— अद्य मे सुचिरात् ज्ञातोऽसि ननु देहभाजां भगवतः गतिः न ज्ञायत इति अवद्यम्, भगवन् त्वदन्यत् न अस्ति। अपि तन्न शुद्धम् मायागुण व्यतिकरात् उरुः विभासि ॥१॥

**अनुवाद**— आज आप दीर्घकाल की तपस्या के पश्चात् ज्ञात हुए हैं । शरीर धारियों का यह बहुत अधिक दुर्भाग्य है कि वे आपके स्वरूप को जान नहीं पाते हैं । आपके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है । जिस वस्तु की प्रतीति होती है वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है । माया के गुणों से मिश्रित होकर आप ही अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

नवमे तपसा तुष्टं दृष्ट्वा नारायणं त्वजः । अस्तौदेकार्णवे सीदँल्लोकसर्गचिकीर्षया ॥१॥ भगवज्ज्ञानेनात्मनः कृतार्थतामाविष्कुर्वन्नज्ञांश्च शोचन्नाह । ज्ञातोऽसीति । सुचिराद्बहुकालोपासनेनाद्य मे मया ज्ञातोऽसि नन्वहो देहभाजामेतदेव दोषः । किं तत् । यद्भगवतस्तव गतिसत्त्वं न ज्ञायत इति । यतस्त्वमेव ज्ञातुं योग्यः सत्यत्वान्नान्यदसत्यत्वादित्याह । त्वत् त्वत्तोऽनयन्नास्ति । यदप्यस्तीति प्रतिभाति तदपि शुद्धं सत्यं न भवति । कथमसतः प्रतीतिस्तत्राह । यद्यतो मायागुणक्षोभात्त्वमेवैकः र्बहुरूपो विभासि ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

विश्व की सृष्टि की इच्छा वाले ब्रह्माजी किंकर्तव्यविमूढ होने के कारण एकार्णव की बेला में कष्ट का अनुभव कर रहे थे । ब्रह्माजी की तपस्या से प्रसन्न हुए भगवान् नारायण की की गयी स्तुति का वर्णन इस नवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ भगवत् तत्त्व का ज्ञान हो जाने के कारण अपनी कृत-कृत्यता का अनुभव करते हुए तथा भगवत् तत्त्व से अनभिज्ञ जीवों के विषय में शोक करते हुए ब्रह्माजी ने **ज्ञातोऽसि० इत्यादि** श्लोक को कहा है । वे कहते हैं कि हे प्रभो ! बहुत समय तक उपासना के द्वारा आज मैं आपको जान सका हूँ । जीवों का यह बहुत बड़ा दोष है कि वे आपके तत्त्व को नहीं जान पाते हैं । इसका कारण यह है कि केवल आप ही जानने योग्य तत्त्व हैं, आप ही सत्य हैं । आप से भिन्न वस्तु असत्य होने के कारण जानने योग्य नहीं है । जिन वस्तुओं की सत्ता प्रतीत भी होती है वे भी सत्य नहीं हैं । यदि कहें कि असत् वस्तु की प्रतीति कैसे सम्भव हैं तो इसका उत्तर है कि आप ही माया के गुणों से युक्त होकर अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं ॥१॥

**रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ।**
**आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥२॥**

**अन्वयः**— अवबोध रसोदयेन शश्वत् निवृत्ततमसः स्वरूपं सदनुग्रहाय आदौ गृहीतम् अवतार शतैकबीजम्, यन्नाभिपद्म भवनात् अहम् आविरासम् ॥२॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आपकी चित्शक्ति के प्रकाशित रहने के कारण अज्ञान सदा आपसे दूर रहता है, आपका यह रूप, जिसके नाभिकमल से मैं प्रकट हुआ हूँ; यह सैकड़ों अवतारों का मूल है । सत्पुरुषों पर कृपा करने के ही लिए आपने इसे सर्वप्रथम प्रकट किया है ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

ननु त्वमपि सम्यङ् न जानासि । यत्त्वया दृष्टं रूपमेतदपि गुणात्मकमेव । निर्गुणं ब्रह्मैव तु सत्यं तत्राह-रूपमिति द्वाभ्याम् । अवबोधरसोदयेन चिच्छक्त्याविर्भावेन शश्वत्सदा निवृत्तं तमो यस्मात्तस्य तव यदेतद्रूपं त्वयैव स्वातन्त्र्येण सतामुपासकानामनुग्रहाय गृहीतमाविष्कृतमवतारशतस्य शुद्धसत्त्वात्मकस्य यदेकं बीजं मूलम् । तत्प्रदर्शनार्थं गुणावतारबीजत्वं दर्शयति-यन्नाभीति ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम भी अच्छी तरह से नहीं जानते हो तुमने जिस रूप को देखा है, यह भी गुणात्मक ही है । निर्गुण ब्रह्म ही सत्य है । तो इस पर ब्रह्माजी दो श्लोकों द्वारा कहते हैं— आपकी चित्शक्ति सदा अविर्भूत रहती है, उसके कारण आपसे अज्ञान सदा दूर ही रहता है । आपने इस अवतार को अपने उपासकों पर कृपा करने के लिए धारण किया है । यह आपके शुद्ध सत्त्वात्मक सैकड़ो अवतारों का मूल कारण है । आपके इसी रूप के नाभि कमल से मैं अविर्भूत हुआ हूँ । अतएव आपका यह अवतार गुणावतारों का मूल कारण है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **यन्नाभि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है ॥३॥

**नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।**
**पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥**

**अन्वयः**— अतः परम् भवतः यत् आनन्दमात्रम् अविकल्पम् अविद्धवर्चः स्वरूपम् तत् परं न, पश्यामि । हे आत्मन् ते अदः विश्वसृजम् अविश्वम् भूतेन्द्रियात्मकम् अदः रूपं उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! उससे भिन्न जो आपका आनन्दस्वरूप, भेद रहित अखण्डतेजोमय स्वरूप है । उसे मैं इससे भिन्न नहीं मानता हूँ, इसीलिए आपका यह, विश्व की सृष्टि करने वाला होने पर भी विश्वातीत भूतों तथा इन्द्रियों के कारण स्वरूप है इस रूप की मैंने शरण ली है ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

हे परम्, अविद्धवर्चोऽनावृतप्रकाशम् । अतोऽविकल्पं निर्भेदम् । अत एवानन्दमात्रम् । एवंभूतं यद्भवतः स्वरूपं तदतो रूपात्परं भिन्नं न पश्यामि किंत्विदमेव तत् । अतः कारणात्ते तव अदः इदं रूपमाश्रितोऽस्मि । योग्यत्वादपीत्याह । एकमुपास्येषु मुख्यम् । यतो विश्वसृजं विश्वं सृजतीति विश्वसृजमत एवाऽविश्वं विश्वस्मादन्यत् । किंच भूतेन्द्रियात्मकं भूतानामिन्द्रियाणां चात्मानं कारणमित्यर्थः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

हे आत्मस्वरूप परमात्मन् आपका जो अनावृत्त प्रकाशस्वरूप होने के कारण भेदरहित तथा आनन्दमात्र इससे भिन्न स्वरूप है, उसकी मैं इसलिए इससे भिन्न नहीं मानता हूँ कि आपका जो यह विश्व की सृष्टि करने वाला रूप है वह विश्वातीत है तथा भूतों एवं इन्द्रियों का कारण है ॥३॥

**तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ।**
**तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥४॥**

**अन्वयः**— हे भुवनमङ्गल तद् वा इदं नः उपासकानाम् मङ्गलाय ध्याने दर्शितम्, तस्मै भगवते तुभ्यम् नमः अनुविधेम यः नरकभाग्भिः असत् प्रसङ्गैः अनादृतः ॥४॥

**अनुवाद**— हे संसार के कल्याण स्वरूप भगवन् आपका वह रूप हम उपासकों के लिए मङ्गलकारी है । इसीलिए आपने ध्यान में अपने इस रूप को दिखाया । हम आपके इसी रूप को बार-बार नमस्कार करते हैं । जो पापी विषयी जीव हैं वे ही आपके इस रूप का अनादर करते हैं । वे नरक के भागी हैं ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

नन्वेवमपि सोपाधिकमेतदर्वाचीनमेवेत्याशङ्क्याह । तद्वै तदेवेदम् । हे भुवनमङ्गल । यतस्ते त्वया नोऽस्माकमुपासकानां मङ्गलाय ध्याने दर्शितम् । न ह्यव्यक्तवर्त्माभिनिवेशितचित्तानामस्माकं सोपाधिकदर्शनं युक्तमिति भावः । अतस्तुभ्यं नमोऽनुविधेमाऽनुवृत्त्या करवाम । तर्हि किमिति केचिन्मां नाद्रियन्ते तत्राह-योऽनादृत इति । असत्प्रङ्गैर्निरीश्वरकुतर्कनिष्ठैः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरा यह भी रूप सोपाधिक कहने के कारण अर्वाचीन है, तो इसका उत्तर है कि आपका यह वही रूप है । हे जगत् के लिए मङ्गल स्वरूप भगवन् ! आपने हम उपासकों का मङ्गल करने के लिए इस रूप का दर्शन ध्यान में कराया है । आप अविज्ञातगति हैं । आपमें अपने चित्त को लगाने वाले हमलोगों को सोपाधिक दर्शन कराना उचित नहीं है । अतएव मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ । यदि कहें कि इससे क्या हुआ? कुछ लोग मेरा अनादर करते हैं । तो इसका उत्तर है कि वे पापी जीव हैं और निरीश्वर कुतर्कों को उपन्यस्त करते हैं । अतएव वे नरकगामी जीव हैं ॥४॥

**ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ।**
**भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥५॥**

**अन्वयः**— हे नाथ ये तु श्रुतिवातनीतम् त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं कर्णविवरैः जिघ्रन्ति ह तेषां परया भक्त्या गृहीत चरणः तेषां स्वपुंसाम् हृदयाम्बुरुहात् नापैषि ॥५॥

**अनुवाद**— हे नाथ ! जो लोग वेदरूपी वायु के द्वारा लाये गये आपके चरण कमल रूपी कोश की सुगन्धि को अपने कर्णविवरों के द्वारा ग्रहण करते हैं वे अपनी परा भक्ति रूपी रस्सी से आपके चरणों को बाँध लेते हैं। फलतः उन अपने भक्तों के हृदय से आप नहीं निकल पाते हैं ।

### भावार्थ दीपिका

आदरेण तु त्वां भजन्तः कृतार्था इत्याह-ये त्विति । श्रुतिर्वेदः स एव वातस्तेन नीतं प्रापितम् । नापैषि नापयासि। ये त्वत्कथाश्रवणमत्यादरेण कुर्वन्ति तेषां हृदि नित्यं प्रकाशसे इत्यर्थः ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

जो जीव आपका भजन आदर पूर्वक करते हैं वे कृतार्थ हो जाते हैं इस अर्थ को **ये तु इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं। ब्रह्माजी कहते हैं कि हे प्रभो ! जो लोग वेदों में वर्णित आपके चरण कमलों की महिमा का श्रवण करते हैं, वे अपनी पराभक्ति रूपी रस्सी से आपके चरणों को बांध लेते हैं, और अपने उन भक्तों के हृदय से आप निकल नहीं पाते हैं। उन लोगों के हृदय में आप सदा प्रकाशित होते रहते हैं ॥५॥

**तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवा विपुलश्च लोभः ।**
**तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥**

**अन्वयः**— यावत् लोकःते अभयम् अङ्घ्रि न प्रवृणीत तावत् द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं भयं, शोकः, स्पृहा, परिभवः विपुलः लोभः च तावत् अर्तिमूलं मम इति असद्ग्रहः ॥६॥

**अनुवाद**— जब तक मनुष्य आपके अभयप्रद चरणों को शरण रूप से नहीं अपनाता है । तब तक उसे धन, गृह तथा बान्धवों के द्वारा होने वाला भय शोक, लालसा, दीनता और अत्यधिक लोभ सताते रहते हैं ओर उतने ही समय तक समस्त दुःखों के मूल अहंत्व एवं ममत्व इत्यादि उसे सताते रहते हैं ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-तावदिति । द्रविणादौ विद्यमाने भयं, गते शोकः, पुनश्च स्पृहा, ततः परिभव, तथापि विपुलो लोभस्तृष्णा पुनः कथंचित्प्राप्ते ममेत्यसदाग्रहः । आर्तिमूलं भयशोकादेः कारणम् । न प्रवृणीत नाश्रयेत् त्वत्पादाश्रयणमात्रेण भयादिनिवृत्तिः किं पुनस्त्वत्प्रकाशे सतीति भावः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

भक्तों के हृदय में विद्यमान रहने मात्र से क्या हुआ ? तो इसके उत्तर में **तावत्० इत्यादि** यह श्लोक कहा गया है। धन इत्यादि के रहने पर उनके विनष्ट होने का भय बना रहता है और विनष्ट हो जाने पर शोक होता हैं उसके पश्चात् धन प्राप्त करने की लालसा होती है, तदर्थ अनादर भी होता है, फिर भी बहुत अधिक लोभ होता है। किसी तरह धन के प्राप्त हो जाने पर भी भय एवं शोक इत्यादि का कारण भूत धनादि में अहंत्व ममत्व आदि का दुराग्रह हो जाता है। ये सभी उत्पात तब तक होते हैं जब तक मनुष्य आप श्रीभगवान् के चरणों को अपने रक्षक रूप से नहीं अपनाता है। आपके चरणों का आश्रय प्राप्त हो जाने पर सारे भय आदि दूर हो जाते हैं। यदि आपका प्रकाश हृदय में बना रहे तो फिर क्या कहना है ॥६॥

**दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।**
**कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥७॥**

**अन्वयः**— ते दैवेन हतधियः ये सर्वाशुभोपशमनात् भवतः प्रसङ्गात् विमुखेन्द्रियाः कामसुखलेशलवाय दीनाः लोभाभिभूतमनसः शाश्वत् अकुशलानि कुर्वन्ति ॥७॥

**अनुवाद**— वे लोग अभागे हैं जो लोग समस्त कष्टों को दूर करने वाली आपकी कथा का श्रवण तथा कीर्तन आदि से अपने मन को हटाकर काम सुख के लेशमात्र की प्राप्ति के लिए दीन और सदा लालायित मना होकर निरन्तर पापकर्मों को किया करते हैं ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

ये निष्कामा अपि सन्तस्त्वां नाद्रियन्ते ते नरकभाज इत्युक्तं ये तु त्वत्कथाश्रवणादिविमुखाः सन्तः काम्यकर्मपरास्तेऽतिमन्दा इत्याह । दैवेन ते हतधियो नष्टमतयः । प्रसङ्गाच्छ्रवणकीर्तनादिरूपात्सर्वदुःखनिवर्तकाद्विमुखानीन्द्रियाणि येषाम् । अकुशलान्यक्षेमकराणि ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि जो लोग निष्काम हैं फिर भी आपका समादर नहीं करते हैं वे नरक के पात्र हैं, जो लोग काम्य कर्मों को करते है किन्तु आपकी कथा इत्यादि के श्रवण से विमुख रहते हैं वे अत्यन्तमन्द भाग्य वाले हैं । इसी अर्थ का प्रतिपादन **दैवेन ते इत्यादि** श्लोक से किया जा रहा है । उनकी बुद्धि को दैव ने नष्ट कर दिया है । वे लोग समस्त दुःखों को विनष्ट करने वाले श्रीभगवान् की कथा के श्रवण तथा कीर्तन से अपने मन को हटा लेते हैं । तथा क्षणिक कामसुख की प्राप्ति के लिए दीन होकर मन ही मन सदा लालायित रहते हैं और उसके कारण निरन्तर पाप ही करते रहते हैं ॥७॥

**क्षुत्तृटत्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ।**
**कामाग्निनाऽच्युतरुषा च सुदुर्भरेण संपश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥**

**अन्वयः**— हे उरुक्रम हे अच्युत इमाः क्षुत् तृटत्रिधातुभिः शीतोष्णवात वर्षैःइतरेतराच्च, सुदुर्भरेण कामाग्निना रुषा च मुहुरर्द्यमानाः सम्पश्यतः मे मन सीदते ॥८॥

**अनुवाद**— हे भगवन् अच्युत इन प्रजाओं को भूख, प्यास, वात, पित्त, कफ, शीत, उष्ण, वायु, वर्षा तथा परस्पर में एक दूसरे को, जिसको पूरा करना अत्यन्त कठिन है उस कामाग्नि से तथा क्रोध से बार-बार कष्ट पाते हुए देखकर मेरा मन अत्यन्त कष्ट का अनुभव करता है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

अकुशलत्वमेव दर्शयति । क्षुच्च तृट् च त्रिधातवश्च वातपित्तश्लेष्माणस्तैः । इमाः प्रजाः सुदुर्भरेण दुःसहेन कामाग्निनाऽच्युतया रुषाऽविच्छिन्नक्रोधेन च पीड्यमानाः संपश्यतो मे मनः सीदति ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

जीवों की अकुशलता का ही वर्णन करते हैं । भूख, प्यास, कफ, वात और पित्त इन तीनों धातुओं से दुःसह कामाग्नि से तथा निरनतर क्रोध से पीड़ित होती हुयी इन समस्त प्रजाओं को देखकर मेरा मन अत्यन्त दुःखी होता है, सोचता हूँ कि इन जीवों को किस साधन से मैं मुक्त करूँ ?॥८॥

**यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थमायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ।**
**तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥९॥**

**अन्वयः**— हे ईश यावत् असौ इन्द्रियार्थमायाबलं इदम् आत्मनः पृथक्त्वं न पश्यति तावत् असौ व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती संसृतिः न प्रतिसंक्रमेत ॥९॥

**अनुवाद**— हे भगवन् जब तक मनुष्य माया के प्रभाव से प्रतीत होने वाले इन्द्रियों के विषय से तथा आपसे अपने आप के पृथक्त्व का अनुभव नहीं करता है तब तक उसके संसारचक्र की निवृत्ति नहीं हो सकती है। यद्यपि यह मिथ्या है फिर भी कर्मों के फल का क्षेत्र होने के कारण कष्टों को प्रदान करता ही है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

नन्वेवंभूतायाः संसृतेरपरमार्थत्वात्किमर्थं विषादः क्रियते तत्राह यावदिति । आत्मन इदं पृथक्त्वं देहादिभावम् । भगवतस्तवेन्द्रियार्थरूपा या माया तया बलमाधिक्यं यस्य तत् । न प्रतिसंक्रमेत नोपरमेत । दुःखसमूहं प्रापयन्ती । क्रियाणामर्थः फलं यस्याम् । पृथक्तामिदमिति पाठे इदं देहादि त्वदिति त्वत्तः पृथक् पश्येद्यावत्तावद्व्यर्थापि नोपरमेत ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि यह संसारचक्र तो मिथ्या है, इसके लिए इतना विषाद क्यों करते ही तो इस पर ब्रह्माजी ने **यावत् इत्यादि** श्लोक को कहा— यह आपकी माया इन्द्रियों के विषय स्वरूपिणी है, उसके कारण यह संसार चक्र अधिक बल सम्पन्न है । जब तक मनुष्य आपकी माया से अपने देहादि भाव को अलग नहीं मानता है तब तक उसका संसारचक्र नहीं निवृत्त हो सकता है । यह संसारचक्र मनुष्य को बहुत अधिक कष्ट प्रदान करता है। इसमें कर्मों का फल भोगना पड़ता है । जहाँ पर पृथक्तामिदम् पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा कि आपसे अलग देहादि भाव को वह नहीं देखता है तब तक व्यर्थ संसारचक्र से नहीं निवृत्त होता है ॥९॥

**अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।**
**दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे देव ! युष्मत् प्रसङ्गविमुख ऋषयः अपि अह्नि आपृतार्तकरणा, निशि निःशयानाः नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः दैवाहतार्थरचनाः इह संसरन्ति ॥१०॥

**अनुवाद**— हे देव ! आपके कथा प्रसङ्ग से विमुख रहने वाले मुनिजन भी दिन में अनेक प्रकार के व्यापारों के कारण विक्षिप्त चित्त वाले रहते हैं और रात्रि में अचेत होकर सोने वाले तथा सोते समय भी विभिन्न प्रकार के मनोरथों के कारण क्षण-क्षण में उनकी नीद खुल जाती है । तथा दैववशात् उनके सारे मनोरथ भग्न भी होते रहते हैं । इस तरह से उन ऋषियों को भी संसार चक्र में पड़ना पड़ता है तो औरों की क्या बात हैं ?॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

भवत्वेवमविवेकिनां, विवेकिनस्तु मुक्ता एवेति किं तेषां भक्त्या कृत्यमत आह । अह्नि आपृतानि व्यापृतानि च तान्यार्तानि क्लिष्टानि करणानीन्द्रियाणि येषां रात्रौ विषयसुखलवोऽपि नास्ति, यतो निशि निःशयानाः स्वप्नदर्शनेन च क्षणे क्षणे भग्ननिद्रा दैवेनाहताः सर्वतः प्रतिहता अर्थरचना अर्थोद्यमा येषाम् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अज्ञानी जीव तो संसार चक्र में पड़कर कष्ट भोगते हैं किन्तु जो विवेकी जीव हैं वे तो मुक्त हैं ही । उन लोगों को भक्ति करने की कौन सी आवश्यकता है ? इस पर ब्रह्माजी कहते हैं कि जो ऋषिजन भी आपकी कथा के श्रवण तथा कीर्तन आदि से पराङ्मुख रहते है वे भी संसारचक्र में फँसते हैं । दिन में अनेक

प्रकार के व्यापारों को करते रहने के कारण वे विक्षिप्तचित्त रहते हैं। उन लोगों को रात्रि में विषयों का सुख बिल्कुल नहीं प्राप्त होता है। वे रात्रि में अचेत सोये रहते हैं और स्वप्न देखने के कारण उनकी नींद बार-बार खुलती रहती है। दैववशात् उनके सारे प्रयास विहत भी होते रहते हैं ।।१०।।

**त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ।**
**यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ।।११।।**

**अन्वयः**— हे नाथ त्वं ननु श्रुतेक्षितपथः पुंसां भावयोगपरिभावितहृतसरोजे आस्से। हे उरुगाय धिया यद् यद् विभावयन्ति तत् तत् वपुः सदनुग्रहाय प्रणयसे ।।११।।

**अनुवाद**— हे नाथ ! आपके मार्ग को केवल आपके गुणों के श्रवण के मार्ग से ही जाना जा सकता है। हे प्रभो ! भक्ति की भावना से परिशुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदय में आप निवास करते हैं। आपके जन जिस-जिस भाव से आपका चिन्तन करते हैं अपने उन भक्तों पर कृपा करने के लिए उन-उन रूपों को आप धारण कर लेते हैं ।।११

### भावार्थ दीपिका

तदेवमभक्तानां संसारानिवृत्तिमुक्त्वा भक्तानां तन्निवृत्तिमाह-त्वमिति। भक्तियोगेन शोधिते हृत्सरोजे आस्से तिष्ठसि। श्रुतेन श्रवणेनेक्षितः पन्था यस्य। किंच श्रवणं विनापि त्वद्भक्ता मनसा यद्यत्तव वपू रूपं स्वेच्छया ध्यायन्ति तत्तत्प्रणयसे प्रकटयसि। सतां भक्तानामनुग्रहाय ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

जो लोग भगवद् भक्त नहीं हैं उनकी मुक्ति नहीं होती है, इस बात को बतलाकर **त्वमित्यादि** इस श्लोक के द्वारा बतलाया जाता है कि भक्तों के संसार की निवृत्ति हो जाती है। ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् ! जिस भक्ति की भावना से जिस पुरुष का अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। उसी व्यक्ति के हृदय में आप निवास करते हैं। आपके गुणों के श्रवण के द्वारा ही आपके मार्ग को जाना जा सकता है। यही नहीं आपके जो भक्त आपके गुणों का श्रवण नहीं कर सके हैं, वे भी जिस-जिस रूप से आपकी भावना करते हैं अपने भक्तों पर कृपा करके आप उन-उन रूपों को ही धारण कर लेते हैं ।।११।।

**नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः ।**
**यत्सर्वभूतदयया सदलभ्ययैको नाना जनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ।।१२।।**

**अन्वयः**— एकः नानाजनेषु अवहितः सुहृदन्तरात्मा, भगवान् हृदि बद्धकामैः उपचितोपचारैः सुरगणैः आराधितः नातिप्रसीदति यत् असदलभ्यया सर्वभूतदयया ।।१२।।

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप एक हैं और सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहने वाले आप उनके परम कल्याणकारी हैं। अन्तरात्मा हैं आप; अनेक प्रकार की हृदय में कामनायें रखकर बहुत अधिक पूजन सामग्रियों से देवताओं द्वारा पूजित होकर उतना प्रसन्न नहीं होते जितना कि सभी जीवों पर दया करने से आप प्रसन्न होते हैं। किन्तु वह सभी जीवों पर दया करना असत् पुरुषों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

भक्तानां च निष्कामानां त्वमतिसुलभो नेतरेषामित्याह-नेति। उपचितैरूर्जितैरुपचारैः पुष्पोपहारादिभिः। यद्यथा असतामभक्तानामलभ्यया सर्वभूतदयया। प्रसादे हेतु एक इत्यादि ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कह रहे है कि हे प्रभो ! आप कामनारहित भक्तों के लिए अत्यन्त सुलभ हैं; किन्तु उनसे भिन्न लोगो के लिए नहीं; यही इस श्लोक से कहा गया है । पुष्पोपहार आदि अत्यधिक उपहारों से अनेक प्रकार की कामना करने वाले देवताओं के द्वारा भी आराधित आप उतना प्रसन्न नहीं होते हैं, जितना सभी जीवों पर दया करने से आप प्रसन्न होते हैं । सभी भूतों पर दया करने का गुण असत् पुरुषों के लिए दुर्लभ है । आपकी प्रसन्नता का कारण यह है कि आप एक हैं और सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहकर उन सभी जीवों का परम कल्याण करने वाले तथा उनकी अन्तरात्मा हैं ॥१२॥

**पुसांमतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।**
**आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ॥१३॥**

**अन्वयः**— अतः पुंसाम् अध्वराद्यैः विविध कर्मभिः दानेन, उग्रतपसा व्रतचर्यया च तव भगवतः आराधनं सत्क्रियार्थः यत्र अर्पितः धर्मः कर्हिचित् न ध्रियते ॥१३॥

**अनुवाद**— अतएव पुरुषों द्वारा किये जाने वाले यज्ञ आदि अनेक कर्म, दान, कठोर तपस्या तथा व्रतों का पालन के द्वारा आप श्रीभगवान् को प्रसन्न करना ही कर्मों का सबसे बड़ा फल है, जो कर्म आपको अर्पित कर दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है । वह कभी भी क्षीण नहीं होता ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

यतः सकामानां भवान्नातिप्रसीदत्यतः कामप्राप्तिः क्रियाणामुत्तमं फलं न भवति, किंतु त्वत्प्रीणनमेव। कामसंयोगस्त्ववान्तरफलेन प्रोचनार्थमित्याह-पुंसामिति । भगवतस्तवाराधनमेव संश्चासौ क्रियार्थश्च श्रेष्ठं क्रियाफलम्। श्रेष्ठत्वे हेतुः-यत्रत्वय्यर्पितो धर्मो न कदाचिद्ध्रियते न नश्यति, कामार्थस्तु धर्मः कामं दत्त्वा नश्यतीत्यर्थः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् ! आप चूकि कामना पूर्वक आराधना करने वालों से अत्यधिक प्रसन्न नहीं होते हैं अतएव कामनाओं की पूर्ति, के लिए की जानने वाली क्रियाओं का उत्तम फल नहीं होता है, कर्मों का उत्तम फल तो आपकी प्रसन्नता ही है । कामना की पूर्ति तो परमात्मा की प्रसन्नताका अवान्तर फल है, वह केवल प्रलोभन के लिए है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **पुंसामतः इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । इसका अर्थ है कि मनुष्यों के द्वारा किए जाने वाले यज्ञादि अनेक प्रकार के कर्म, दान, कठोर तपस्या एवं व्रतानुष्ठान का उत्तम फल आप श्रीभगवान् की प्रसन्नता ही है । जो कर्म आपको समर्पित कर दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है वह कभी नष्ट नहीं होता कामना विशेष की पूर्ति के लिए किया गया कर्म तो कामना की पूर्ति करके विनष्ट हो जाता है ॥१३॥

**शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ।**
**विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥१४॥**

**अन्वयः**— शश्वतस्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय परस्मै नमः, विश्वोदभवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय, ईश्वराय ते इदं नमः चकृम ॥१४॥

**अनुवाद**— आप अपने शश्वत स्वरूप तेज के ही द्वारा प्राणियों के भेदभ्रम को दूर किया करते हैं । आप ज्ञान के अधिष्ठान भूत परम पुरुष हैं, ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ । जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के लिए आपकी माया की जो लीला होती है वह आपकी ही क्रीडा है । अतएव हे परमेश्वर आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

अतस्त्वामेव वयं नता इत्याह । शश्वत्सर्वदा स्वरूपचैतन्येनैव निरस्तभेदभ्रमाय । पुनश्च बोध एवधिषणा विद्याशक्तिर्यस्य। यद्वा धिषणमाश्रयः । अतएव परस्मै । अत्र हेतुः-विश्वोद्भवादिनिमित्तं या माया तस्या लीला विलासस्तया रासः क्रीडा यस्य। ते तुभ्यमिदं नमः नमनं चकृम कृतवन्तो वयम् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

अतएव आपको ही हम नमस्कार करते हैं । इस बात को ब्रह्माजी ने इस श्लोक में कहा है । आप अपने शाश्वत रूप ज्ञान के द्वारा प्राणियों को जो भेद भ्रम हो रहा है उसका नाश कर रहे हैं । ज्ञान ही आपकी विद्याशक्ति हैं, अथवा धिषणा शब्द आश्रय का बोधक है । अर्थात् आप ज्ञान के अधिष्ठान (आश्रय) हैं । ऐसे परम पुरुष आपको हम नमस्कार करते हैं । उसका कारण है कि जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के लिए आपकी माया, का जो विलास है, वही आपकी रास (क्रीडा) है । आप परमेश्वर हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं ।।१४।।

**यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।**
**ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ।।१५।।**

**अन्वयः**— असुविगमे विवशा अपि यस्य अवतारगुणकर्मविडम्बानि नामानि गृणन्ति ते नैकजन्म शमलं सहसैव हित्वा अपावृतम् अमृतं यान्ति तम् अजं प्रपद्ये ।।१५।।

**अनुवाद**— शरीर परित्याग के समय जो लोग विवश होकर आपके अवतार गुण, तथा कर्मों से सम्बन्ध रखने वाले आपके नामों का उच्चारण कर लेते हैं, वे तत्काल अनेक जन्म के पापों से मुक्त होकर मायादि आवरणों से रहित ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेते हैं । आप अजन्मा हैं मैं आपकी शरणागति करता हूँ ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

नामग्रहणमात्रतः कैवल्यप्रदत्वेनैश्वर्यं व्यञ्जयन्नमस्करोति-यस्येति । अवतारादीनां विडम्बनमनुकरणमस्ति येषु । तत्रावतारविडम्बनानि देवकीनन्दन इत्यादीनि । गुणविडम्बनानि सर्वज्ञो भक्तवत्सल इत्यादीनि । कर्मविडम्बनानि गोवर्धनोद्धरणः कंसारातिरित्यादीनि । असुविगमेऽपि विवशा अपि गृणन्त्युच्चारयन्ति केवलम् । शमलं पापम् । अपावृतं निरस्तावरणम् । ऋतं ब्रह्म प्राप्नुवन्ति ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

केवल नामोच्चारण मात्र से भगवान कैवल्य प्रदान कर देते हैं, इस प्रकार के भगवान् के ऐश्वर्य को अभिव्यक्त करते हुए ब्रह्माजी श्रीभगवान् को **यस्यावतारः इत्यादि** श्लोक के द्वारा नमस्कार करते हैं । श्रीभगवान् के जो नाम हैं, उनमें से कुछ उनके अवतार के सूचक है जैसे देवी नन्दन इत्यादि । कुछ नाम गुणसूचक है जैसे भक्तवत्सल, सर्वज्ञ इत्यादि तथा कुछ नाम उनके कर्मों के व्यञ्जक हैं, जैसे गोवर्धनोद्धरण कंसाराति इत्यादि । इन नामों का यदि कोई भी व्यक्ति मृत्यु के समय में विवश भी होकर उच्चारण कर लेता है तो वह मृत्यु के पश्चात् माया के आवरण से रहित ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् आप सदा अजन्मा है, आपकी मैं शरणागति करता हूँ ।।१५।।

**यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम्।**
**भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ।।१६।।**

**अन्वयः**— यः एकः आत्ममूलं भित्वा अहं वा गिरिशः च स्वयं विभुः च स्थित्युद्भव प्रलय हेतवः उक्तप्ररोह त्रिपाद् ववृधे तस्मै भुवनदुमाय भगवते नमः ।।१६।।

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप इस विश्ववृक्ष के रूप में स्थित हैं । आप ही अपनी मूल प्रकृति को स्वीकार करके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिए मेरे, अपने और शङ्करजी के रूप में प्रधान तीन शाखाओं

मे विभक्त है। फिर प्रजापति, मनु आदि शाखा प्रशाखाओं के रूप में फैलकर बहुत विस्तृत हो गये हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र गुणावतारकर्माणि दर्शयन्प्रणमति। या वै एकस्त्रिपात् त्रयो ब्रह्मादयः पादाः स्कन्धा यस्य। प्रत्येकं च उरवः प्रजेशः शाखोपशाखा मरीच्यादिमन्वादिरूपा यस्य तथाभूतः सन्ववृधे तस्मै भुवनाकाराय द्रुमाय नमः। किं कृत्वा ववृधे। आत्म स्वयमेव मूलमधिष्ठानं यस्य तत्प्रधानं भित्त्वा गुणत्रयरूपेण विभज्य। त्रिपात्त्वमेवाह। अहं ब्रह्मा, गिरिशश्च, स्वयं विभुर्विष्णुरिति स्थित्युद्भवप्रलयहेतवो ये वयम्। त्रिपाद्भूत्वा यो ववृधे इत्यर्थः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के गुणों अवतारों तथा कर्मों को बोधित करते हुए उनको नमस्कार करते हैं। विश्वाकारकारित वृक्षस्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार हैं। वे भुवनाकाराकारित वृक्ष स्वरूप श्रीभगवान् एक ही हैं किन्तु ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नामक तीन मुख्य शाखाओं के रूप में फैले हैं। इन तीनों शाखाओं का मरीचि आदि प्रजापतियों तथा मन्वादि के रूप में बहुत अधिक विस्तार हो गया हैं। इस प्रकार के श्रीभगवान् भुवनाकार रूपी वृक्ष के रूप में स्थित है। ऐसे आपको नमसकार है। वे भगवान् कैसे बढ़े इसको बतलाते हुए कहते हैं कि स्वयम् ही जिनके आश्रय है उस प्रकृति को तीन गुणों के रूप में विभक्त करके बढ़े। श्रीभगवान् रूपी वृक्ष की तीन शाखाओं को बतलाते हुए कहते है मैं, शिवजी तथा स्वयं भगवान् विष्णु ये तीनों क्रमशः जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा संहार को करते है। वे ही त्रिपाद् होकर बढ़े ॥१६॥

**लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमतः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे।**
**यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१७॥**

**अन्वयः**— विकर्मनिरतः अयं लोकः त्वदुदिते भवदर्चने स्वकर्मणि कुशले प्रमत्तः यः बलवान्विद्अस्य जीविताशां सद्यः छिनत्ति तस्मै अनिमिषाय तुभ्यं नमः अस्तु ॥१७॥

**अनुवाद**— हे भगवन् आपने अपनी आराधना को ही लोकों के लिए कल्याणकारी स्वधर्म बतलाया है। किन्तु वे इस ओर से उदासीन रहकर सदा निषिद्ध कर्मों को ही करते हैं। इस तरह से प्रमाद की अवस्था में पड़े हुए इन जीवों की जीवन की आशा को जो सदा सावधान रहकर काटता है, वह बलवान काल भी आपका स्वरूप है ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

एवं गुणावतारकर्मविडम्बनमुक्त्वा तस्यैव तत्कालाख्यं रूपं तत्कर्म च दर्शयन्प्रणमति–लोक इति द्वाभ्याम्। विकर्मनिरतो विरुद्धकर्मनिष्ठः कुशले हिते स्वे आत्मीये त्वदुदिते त्वयैव साक्षादुक्ते भवदर्चनरूपे कर्मणि। उक्तं हि गीतासु-'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥' इति। तस्मिन्प्रमत्तोऽदतश्चितो यावद्वर्तते तावदस्य लोकस्य। अनिमिषाय कालाय ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से गुणावतार तथा कर्मों। का अनुष्ठान बतलाकर ब्रह्माजी बतलाते हैं कि श्रीभगवान् का ही एक रूप काल है तथा वह उनका कर्म भी है। इस बात को बतलाकर वे श्रीभगवान् को दो श्लोकों से प्रणाम करते है। वे कहते है कि संसारी लोग शास्त्र विरुद्ध कर्म में सदा लगे रहते है। भगवान् ने स्वयम् अपनी अर्चना को प्राणियों का हितकारी बतलाया है, उस अपने हित के विषय में वे असावधान रहते है। ऐसे लोगों के जीवन को काल शरीरक परमात्मा शीघ्र ही क्षीण कर देते हैं। ऐसे आप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। श्रीभगवान्

ने गीता में कहा भी है **यत्करोषि० इत्यादि** अर्थात् हे अर्जुन तुम जो भी करते हो, जो भोजन करते हो, जो होम करते हो तथा जो दान करते हो एवं जो तपस्या करते हो उन सबों को मुझे समर्पित कर दो । इस तरह से साक्षात् परमात्मा के द्वारा उक्त भगवदर्चन रूपी अपने कल्याण के विषय में मनुष्यजब तक अनवधान रहता है तब तक परमात्मा उसकी आयु को काल रूप से क्षीण करते हैं । ऐसे काल स्वरूप आपको मैं प्रमाण करता हूँ ॥१७॥

**यस्माद्विभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ।**
**तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— द्विपरार्द्धधिष्ण्यम् अध्यासितः यत् सकललोकनमस्कृतम्, अहमपि यस्माद् विभोमि, अवरुरुत्समानः बहुसवः तपः तेपे तस्मै अधिमखाय भगवते नमः ॥१८॥

**अनुवाद**— मैं दो परार्द्ध पर्यन्त रहने वाले सत्यलोक का अधिष्ठाता हूँ, मेरा वह लोक सर्वलोक वन्दनीय है; फिर भी मैं आपके उस काल रूप से भयभीत रहता हूँ । आपको ही प्राप्त करने की इच्छा से मैंने अनेक यागों को करता हुआ बहुत काल तक तपस्या की आप ही मेरी इस तपस्या के अधियज्ञ रूप से साक्षी है, ऐसे अधियज्ञ स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

आस्तां तावल्लोकस्य कथा, यस्मात्कालाख्यात् त्वत्तो यद्द्विपरार्धावस्थायि धिष्ण्यं स्थानं तदारूढोऽपि विभेमि, भीतश्च संस्त्वामेवावरुरुत्समानः प्राप्तुमिच्छस्तपस्तप्तवान् । कथंभूतः । बहुसवः बहवः सवा यागाः संवत्सरा वा यस्य । बहून्यागान्कृत्वापि बहून्संवत्सरान्वा तपस्तप्तवानित्यर्थः । अधिमखाय मखाधिष्ठात्रे ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि लोगों की बात तो छोड़िये । दो परार्द्धकाल पर्यन्त रहने वाला जो मेरा सत्यलोक है, उसका अधिष्ठाता मैं हूँ । मेरा वह लोक सभी लोकों के द्वारा स्तुत है । फिर भी मैं आपके इस काल नामक रूप से भयभीत रहता हूँ । आपको ही प्राप्त करने के लिए मैंने दीर्घ काल तक तपस्या भी की । अर्थात् बहुत से यागों को करके बहुत वर्षों तक तपस्या भी किया । आप अधियज्ञ रूप से मेरी उस तपस्या के साक्षी भी हैं । ऐसे अधियज्ञ शरीरक मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

**तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।**
**रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥**

**अन्वयः**— आत्मसेतु परीप्सया यः आत्मेच्छया निरस्तरतिः अपितिर्यङ्मनुष्य विवुधादिषु जीवयोनिषु अवरुद्ध देहः रेमे तस्मै पुरुषोत्तमाय भगवते नमः ॥१९॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप तो पूर्णकाम हैं फिर भी आपके द्वारा निर्मित धर्म की मर्यादा पालन करने के लिए, आपको किसी भी विषय सुख की इच्छा नहीं है फिर भी अपनी इच्छा मात्र से आप देव, तिर्यक् तथा मनुष्य योनियों में शरीर धारण करके अनेक प्रकार की लीलाओं को करते हैं । ऐसे पुरुषोत्तम आपको मेरा नमस्कार है ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं तत्तत्कालभाविलीलावतारकर्माणि दर्शयन्नाह । तिर्यगादिषु जीवयोनिषु स्वेच्छया स्वीकृतमूर्तिः सन् स्वकृतधर्ममर्यादापालनेच्छया रेमे । वस्तुतः स्वानन्दानुभवेनैव निरस्तविषयसुखोऽपि योऽत एव पुरुषोत्तमः तत्तदुपाधिधर्मासंस्पर्शात्। तदुक्तं गीतासु-'**यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः** ।।' इति ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् के लीलावतारों के कर्मों का वर्णन करते है। श्रीभगवान् अपने ही द्वारा निर्धारित धर्म की मर्यादा का पालन करने की इच्छा से तिर्यक् आदि जीवों की योनियों में अपनी इच्छा मात्र से शरीर धारण करके लीलाओं को किए। वे भगवान् अपने आत्मानन्द के अनुभव से ही समस्त विषय सुखों की इच्छा से रहित हैं। अतएव वे पुरुषोत्तम है। इसीलिए उन्होंने गीता में कहा भी हैं— **''यस्मात् क्षरादतीतोऽमक्षरादपि चोत्तमः। अतोस्मि लोक वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।** अर्थात् मैं क्षर एवं अक्षर दोनों प्रकार के जीवों से उत्तम हूँ, इसीलिए मैं लोक तथा वेद दोनों में पुरुषोत्तम रूप से प्रख्यात हूँ ॥१९॥

**योऽविद्ययाऽनुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः।**
**अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥२०॥**

**अन्वयः**— दशार्धवृत्त्या अविद्यया अनुपहत अपियः जठरीकृत सर्वलोकयात्रः भीमोऽर्मिमालिनि अन्तर्जले जनस्य सुखं विवृण्वन् अहिकशिपुस्पर्शानुकूलां निद्रामुवाह ॥२०॥

**अनुवाद**— जो श्रीभगवान् अविद्या: अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँचों प्रकार की अविद्याओं में से किसी से भी उपहत (आच्छन्न) नहीं है, सम्पूर्ण जगत् को अपने उदरस्थ करके, प्रलयकालीन भयङ्कर तरङ्ग मालाओं से तरङ्गायित जल के भीतर कोमल शेष शय्या पर पूर्वकल्प की कर्म परम्परा से श्रान्त हुए जीवों को विश्राम देने के ही लिए शयन कर रहे हैं ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं दृश्यमानामेवमूर्तिं प्रणमति-योऽविद्ययेति द्वाभ्याम्। दशार्धाः पञ्च वृत्तयो यस्यास्तयाऽविद्यया निद्राहेतुभूतयाऽनभिभूतोऽपि योगनिद्रामुवाह तस्मै ते नम इत्युत्तरेणान्वयः। जठरीकृता उदरे प्रविलापिता लोकयात्रा लोकस्थितिर्येन। अहिरेव कशिपुः शय्या तस्याः स्पर्शोऽनुकूलो यस्यास्तां निद्राम्। भीमानामूर्मीणां माला विद्यन्ते यस्मिन्नन्तर्जले निद्राणस्याविवेकिनो जनस्य निद्रासुखमीदृगिति विवृण्वन्प्रदर्शयन्, उपहसन्नित्यर्थः। अत एवान्तर्जलादिविशेषणानि। यद्वा पूर्वकल्पे श्रान्तस्य जनस्य विश्रामसुखं विवृण्वन्स्फारयन्। तदा तु परोपकाराय स्वयं दुःसहमपि दुःखं सोढव्यमिति द्योतनार्थं विशेषणानि ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

अब **योऽविद्यया इत्यादि** दो श्लोकों से दिखायी देने वाली श्रीभगवान् की मूर्ति को ही ब्रह्माजी प्रणाम करते हैं। श्रीभगवान् अविद्या के जो अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश या तम मोह, महामोह तामिस्र और अन्धतामिस्र जो पाँच प्रकार के भेद बतलाये गये हैं इनमें से कोई भी निद्रा के कारणों से अभिभूत नहीं हैं, फिर भी भयङ्कर तरङ्गमालाओं से युक्त प्रलयकालीन जल के भीतर अत्यन्त कोमल शेषशय्या पर शयन कर रहे हैं ऐसे भगवान् को नमसकार है। इस समय श्रीभगवान् ने सम्पूर्ण जगत् को अपने उदर में लीन कर लिया है। शेष नामक सर्प के शरीर की शय्या अत्यन्त सुखस्पर्श होती है, उस पर वे शयन कर रहे है। वे भगवान् ऐसे जल में शयन कर रहे हैं जिसके भीतर भयङ्कर जलतरङ्गे विद्यमान हैं। निद्रा के कारण अविवेकी पुरुष की निद्रा भी इसी प्रकार की नहीं होती है, इस बात का उपहास करते हुए श्रीभगवान् सो रहे हैं। इसलिए भगवान् की योग निद्रा के **अन्तर्जलादि** विशेषण दिए गये हैं। अथवा पूर्व कल्प में श्रान्त हुए जीवों को विश्रामसुख प्रदान करने के लिए श्रीभगवान् योगनिद्रा में शयन करते है। ऐसा अर्थ करने पर विशेषणों के द्वारा इस अर्थ को सूचित किया गया है कि परोपकार के लिए दुःसह भी दुःख को सहना चाहिए ॥२०॥

**यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।**
**तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥२१॥**

**अन्वयः**— हे इड्य यन्नभिपद्मभवनात् अहम् आसम् यदनुग्रहेण अहम् लोकत्रयोपकरणः, तस्मै उदरस्थ भवाय योगनिद्रावसाने विकसन्नलिनेक्षणाय ते नमः ॥२१॥

**अनुवाद**—हे वन्दनीय भगवन् आपके जिस नाभिकमल रूपी भवन से मेरा जन्म हुआ है, आपकी ही कृपा से मैं त्रैलोक्य की रचना रूपी उपकार में प्रवृत्त हूँ । जिस आपके उदर में यह सम्पूर्ण जगत् लीन हैं और योगनिद्रा की समाप्ति होने पर आपके नेत्र कमल विकसित हो रहे हैं; ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच यस्य नाभिपद्ममेव भवनं तस्मात् । लोकत्रयमुपकरणं यस्य । यद्वा लोकत्रयस्य सृष्ट्यादिद्वारेणोपकरोतीति तथा तादृशोऽहं यदनुग्रहेणाऽऽसम् । उदरे स्थितो भवः संसारप्रपञ्चो यस्य । योगनिद्रावसाने किंचिद्विकसन्नलिनवदीक्षणं यस्य ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में ब्रह्माजी कह रहे हैं कि आपके नाभिकमल रूपी भवन से मेरा जन्म हुआ है । आपकी ही कृपा से मैं त्रैलोक्य की रचना में प्रवृत्त हुआ हूँ । अथवा त्रैलोक्य की सृष्टि आदि कार्यों को करके आपका उपकार करता हूँ । आपके उदर में सम्पूर्ण प्रपञ्च स्थित है । उसको आपने अपने उदर में लीन कर लिया है । योगनिन्द्रा की समाप्ति के समय आपके ये नेत्रकमल कुछ विकसित हो रहे हैं, ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥२१॥

**सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान्भगेन ।**
**तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं स्त्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥२२॥**

**अन्वयः**— सोऽयं समस्तजगताम् एकः सुहृत आत्मा, प्रणतप्रियः असौ भगवान् सत्त्वेन भगेन यत् मृडयते तेनैव मे दृशम् अनुस्पृशतात् यथा अहं पूर्ववद् इदं स्त्रक्ष्यामि ॥२२॥

**अनुवाद**— वे ही आप सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र सुहृत् और आत्मा हैं तथा शरणागत जीवों पर कृपा करने वाले हैं । आप अपने जिस ज्ञान तथा ऐश्वर्य से जगत् को आनन्दित करते हैं उसी ज्ञान से आप मुझे भी युक्त कर दें जिससे कि मैं पूर्वकल्प के ही समान इस जगत् की सृष्टि कर सकूँ ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं स्तुत्वा प्रार्थयते-सोऽयमिति चतुर्भिः । यद्येन सत्त्वेन ज्ञानेन भगेनैश्वर्येण च मृडयते सुखयति विश्वम् । दृशं प्रज्ञामनुस्पृशताद्योजयतु, यथाऽहं स्त्रष्टुं क्षमो भविष्यामि । यतः प्रणतप्रियोऽसावहं च प्रणतो न चान्यः प्रार्थनीयोऽस्ति । यतो भगवान् । स एव समस्तजगतां सुहृद्यतोऽसावेकोऽनुस्यूत आत्माऽन्तर्यामी ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति करके उनसे सोऽयम् इत्यादि चार श्लोकों से प्रार्थना करते हैं । ब्रह्माजी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आप अपने जिस ज्ञान एवं ऐश्वर्य के द्वारा जगत् को आनन्दित करते हैं उसी ज्ञान से मेरी भी दृष्टि को युक्त कर दें जिससे कि मैं पूर्वकल्प के ही समान जगत् की सृष्टि करने का कार्य कर सकूं। क्योंकि आप शरणागत जीवों पर कृपा करने वाले हैं । मैं भी आपका शरणागत हूँ कोई दूसरा नहीं है जिससे कि प्रार्थना की जा सके । आप तो भगवान् हैं । आप ही एकमात्र सम्पूर्ण जगत् के सुहृत् हैं और सबों के भीतर अनतर्यामी रूप से स्थित हैं ॥२२॥

**एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।**
**तस्मिन्स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— एषः प्रपन्नवरदः आत्मशक्त्या रमया सह गृहीतगुणावतारः यत् यत् करिष्यति तस्मिन् स्वविक्रमम् इदं सृजतः मे चेतः युञ्जीत यथा च कर्मशमलं विजह्याम् ॥२३॥

**अनुवाद**— हे भगवान् ! आप तो शरणगत जीवों को वरदान प्रदान करने वाले हैं। आप अपनी शक्ति लक्ष्मीजी के साथ गुणावतारों को धारण करके जिन-जिन कर्मों को करेंगे मेरा यह जगत् की रचना करने का प्रयास भी उन्हीं कर्मों में से एक है। अतएव इस जगत् की रचना करते समय मेरे चित्त को ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे कि मैं सृष्टि रचना विषयक अभिमान का परित्याग कर सकूँ। यह कर्तृत्वाभिमान भी तो एक प्रकार का मल (दोष) ही है ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मशक्त्या रमया सह यद्यत्कर्म करिष्यति। स्वविक्रमं स्वस्य विष्णोरेव विक्रमः प्रभावो यस्मिंस्तदिदं विश्वं सृजतोऽपि मे चेतः स एव युञ्जीत प्रवर्तयतु। कर्मासक्तिं तत्कृतं शमलं च वैषम्यादिपापं यथा विजह्यां त्यक्ष्यामि ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

हे भगवन् आपकी अपनी शक्ति हैं लक्ष्मीजी, उनके साथ गुणावतारों को धारण करके आप जिन-जिन कर्मों को करेंगे आपके उन्हीं कर्मों में से मेरा विश्व रचना का प्रयास भी एक है। क्योंकि मैं तो आपकी आज्ञा से ही विश्व की रचना का कार्य करूँगा। अतएव आप ही मेरे चित्त को प्रेरित करें जिससे की मुझमें विश्व रचना के कर्तृत्वाभिमान रूप दोष न आ सके उससे मैं दूर रहूँ ॥२३॥

**नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।**
**रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मारीरिषीष्ट निगमस्य गिरांविसर्गः ॥२४॥**

**अन्वयः**— अम्भसि सतः अनन्तशक्तेः यस्य पुंसः अहं विज्ञानशक्तिः आसम् अस्य विचित्रं रूपं विवृण्वतः मे निगमस्य गिरां विसर्गः मा रीरिष्ट ॥२४॥

**अनुवाद**— इस प्रलय कालीन जल के भीतर शयन करने वाले अनन्त शक्तिसम्पन्न आपके नाभिकमल से मेरा जन्म हुआ है। मैं आपकी विज्ञान शक्ति हूँ। इस जगत् के विचित्र रूप का विस्तार करते समय आपकी कृपा से मेरी वेद रूपी वाणी का उच्चारण लुप्त न हो ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

अम्भसि सतो यस्य नाभिह्रदादिहासम्। विज्ञाने शक्तिर्यस्य महत्तत्त्वात्मकस्य चित्तस्य तदभिमानी अस्य रूपमिदं विस्तारयतो मे निगमस्यावयवभूतानां गिरां विसर्ग उच्चारणं मारीरिषीष्ट। हलान्तं ब्रह्मवर्चसमिति न्यायेन मालुप्यतामित्यर्थः॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कह रहे हैं कि जल के भीतर रहने वाले जिन अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् के नाभिह्रद से उत्पन्न कमल से मेरा जन्म हुआ है। जिस महत् तत्त्व की विज्ञान में शक्ति है मैं उसका अभिमानी देवता हूँ, इस महत् तत्त्व को विश्वात्मक रूप का विस्तार करने वाले मेरी वेदों के अवयवभूत वेदवाणी का कभी **हलान्तं ब्रह्मवर्चसम्** न्याय से लोप न हो ॥२४॥

**सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान्विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् ।**
**उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिराऽपनयतात्पुरुषः पुराणः ॥२५॥**

**अन्वयः**— सः असौ अदभ्रकरुणः भगवान् विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् विश्वविजयाय उत्थाय च नः विषादं माध्व्या गिरा अपनयतात् ॥२५॥

**अनुवाद**— वे आप श्रीभगवान् अपार करुणा सम्पन्न तथा पुराण पुरुष हैं । आप प्रेम पूर्ण मुसकान पूर्वक अपनी आँखें खोलें तथा विश्व की उत्पत्ति के लिए तथा हम लोगों पर कृपा करने के लिए अपनी मधुर वाणी से हमारे विषाद को दूर करें ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

विवृद्धप्रेम्णा स्मितेन विजृम्भयन् । विश्वस्य विजयायोद्भवाय । चकारादस्मदनुग्रहाय चोत्थाय ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आप तो अपार करुणासम्पन्न हैं तथा पुराणपुरुष हैं। आप समृद्ध प्रेम के कारण मुसकान पूर्वक अपने नेत्रों को खोलें तथा उठकर विश्व की उत्पत्ति के लिए हमलोगों पर कृपा करने के लिए ही अपनी मधुरवाणी के द्वारा हमारे विषाद को दूर करें ॥२५॥

मैत्रेय उवाच

**स्वसंभवं निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः । यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम सखिन्नावत् ॥२६॥**

**अन्वयः**— एवं तपोविद्यासमाधिभिः स्वसंभवं निशाम्य यावन्मनोवचः स्तुत्वा सः खिन्नवत् विरराम ॥२६॥

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! इस प्रकार से तपस्या, ज्ञान और समाधि के द्वारा अपने उत्पत्तिस्थान को देखकर अपने मन एवं वाणी की शक्ति के अनुसार श्रीभगवान् की स्तुति करके ब्रह्माजी थके हुए के समान मौन हो गये॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

स्वस्य संभवो यस्मात्तम्। तपः शारीरम्, विद्या उपासना, समाधिरैकाग्र्यम्, तैर्निशाम्य दृष्ट्वा यथाशक्ति स्तुत्वा श्रान्तवद्विरराम॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में तपः शब्द आत्मा का, विद्या शब्द उपासना का और समाधि शब्द एकाग्रता का बोधक है। इन तीनों के द्वारा अपने उत्पत्तिस्थान श्रीभगवान् का दर्शन करके ब्रह्मा जी ने अपनी वाणी और मन की शक्ति के अनुसार उनकी स्तुति की और उसके पश्चात् वे थके हुए के समान मौन हो गये ॥२६॥

**अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य ब्रह्मणो मधुसूदनः । विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकराम्भसा ॥२७॥**
**लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः । तमाहागाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव ॥२८॥**

**अन्वयः**— तेन कल्पव्यतिकराम्भसा विषण्णचेतसं लोकसंस्थानविज्ञाने आत्मनः परिखिद्यतः ब्रह्मणः अभिप्रेतम् अन्वीक्ष्य मधुसूदनः अगाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव तम् आह ॥२७-२८॥

**अनुवाद**— प्रलयकालीन जलराशि से घबराये हुए तथा लोकरचना के विषय में कोई निरश्चित विचार नहीं होने के कारण अत्यन्त खिन्न ब्रह्माजी के अभिप्राय को जानकर श्रीभगवान् मधुसूदन उनके विषाद को शान्त सा करते हुए कहने लगे ॥२७-२८॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मनो लोकसंस्थानविज्ञान परिखिद्यतो ब्रह्मणोऽभिप्रेतमालक्ष्य तमाहेति द्वयोरन्वयः तेन प्रलयोदकेन विषण्णचेतसम्। कश्मलं मोहम् । इवेति समस्तमोहशमनं दर्शयति ॥२७-२८॥

### भाव प्रकाशिका

अपने लोक रचना विज्ञान के विषय में घबराये हुए ब्रह्माजी के अभिप्राय को जानकर श्रीभगवान् ने कहा।

क्योंकि ब्रह्माजी उस प्रलय कालीन जलराशि को देखकर घबराये हुए थे। उनके मोह को शान्त से करते हुए भगवान् ने कहा। इव पद के प्रयोग से यह बतलाया गया है कि वे ब्रह्मजी के मोह के पूर्ण रूप से शान्त नहीं कर रह थे ॥२७-२८॥

श्रीभगवानुवाच

**मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्ग उद्यममावह। तन्मयापादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥२९॥**

**अन्वयः**— वेदगर्भ तन्द्रीं मा गाः सर्गे उद्यमम् आवह भवान् यत् मां प्रार्थयते तत् मयाहि अग्रे आपादितम् ॥२९॥

**श्रीभगवान् ने कहा**

**अनुवाद**— हे वेदगर्भ विषाद के कारण तुम आलस्य मत करो, सृष्टि रचना का प्रयास करो, तुम जो कुछ भी मुझसे चाहते हो वह मैं पहले ही तुम्हें दे चुका हूँ ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

हे वेदगर्भ, तन्द्रीं विषादकृतमालस्यं मा गाः। तेनैव मे दृशमनुस्पृशतादित्यादि यत्प्रार्थयते तदग्रे पूर्वमेव संपादितम्॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

वेदगर्भ ब्रह्मन् तुम विषाद के कारण अलस्य न करो तुमने जो यह प्रार्थना की है कि जिस ज्ञान के द्वारा आप जगत् को आनन्दित करते हैं उसी ज्ञान से मेरी भी बुद्धि को सम्पन्न कर दें, वह मैं पहले से ही तुमको दे चुका हूँ ॥२९॥

**भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम्। ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मँल्लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥३०॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मन् त्वं भूयः तप मदाश्रयां विद्यां च आतिष्ठ ताभ्यां अन्तर्हृदि अपावृतान् लोकान द्रक्ष्यसि ॥३०॥

**अनुवाद**— ऐ ब्रह्मन्! तुम फिर एक बार तपस्या करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करो उन दोनों के द्वारा तुम अपने हृदय में सम्पूर्ण लोकों को देखोगे ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

तर्हि कथमहं न जानामीत्यत आह-भूय इति ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप मुझे पहले से ही प्रदान कर रखे हैं तो फिर मैं उसे क्यों नहीं देख रहा हूँ; इसके उत्तर में भगवान् ने कहा कि तुम फिर एकबार तपस्या करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करो तब अपने हृदय में सम्पूर्ण लोकों को स्पष्ट रूप से देखोगे ॥३०॥

**तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः। द्रष्टाऽसि मां ततं ब्रह्मन् मयि लोकांस्त्वमात्मनः ॥३१॥**

**अन्वयः**— ततः हे ब्रह्मन् भक्तियुक्तः समाहितः आत्मनि लोके च ततं मां द्रष्टा असि मयि च आत्मनः लोकान च द्रष्टा असि ॥३१॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन्! उसके पश्चात् भक्ति और एकाग्रचित होकर तुम अपने में तथा सम्पूर्ण लोकों में मुझको व्याप्त देखोगे तथा मुझमें सभी जीवों तथा लोकों को देखोगें ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

भक्तियुक्तः समाहितश्च सन्नात्मनि स्वस्मिन् लोके च मां ततं व्याप्य स्थितं द्रष्टासि द्रक्ष्यसि। आत्मनो जीवांश्च ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

भक्ति पूर्वक समाहित होकर तुम अपने हृदय में तथा सम्पूर्ण जगत् में व्यापक रूप से मुझको देखोगे तथा मुझमें भी लोकों और जीवों को देखोगे ॥३१॥

**यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् । प्रतिचक्षीत मां लोके जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— यदा तु लोकः सर्वभूतेषु दारुषु अग्निमिव स्थितम् माम् प्रतिचक्षीत तर्ह्येव कश्मलं जह्यात् ॥३२॥

**अनुवाद**— जब मनुष्य काष्ठ में स्थित अग्नि के समान सभी भूतों में स्थित मुझको ही देखने लगता है, उसी समय वह अपने अज्ञान रूप मल से मुक्त हो जाता है ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वत्र मद्दर्शने मोहो निवर्तत इत्याह-यदा त्विति । प्रतिचक्षीत पश्येत् ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

**यदा तु** इस श्लोक में श्रीभगवान् ने कहा है कि जो व्यक्ति सभी वस्तुओं के भीतर मुझको ही अन्तर्यामी रूप से देखता है तो उसका अज्ञान दूर हो जाता है । श्लोक के प्रतिचक्षीत् पद का अर्थ है देखने लगे तो ॥३२॥

**यदा रहितमात्मानं भूतेन्द्रियगुणाशयैः । स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन्स्वाराज्यमृच्छति ॥३३॥**

**अन्वयः**— यदा भूतेन्द्रियगुणाशयैः रहितम् स्वरूपेण मया उपेतम् पश्यन् स्वाराज्यम् ऋच्छति ॥३३॥

**अनुवाद**— जब मनुष्य अपने को भूत, इन्द्रिय, गुण एवं कर्म से रहित और स्वरूपतः मुझसे अभिन्न देखता है तो वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

तदा च मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ मुच्यत इत्याह-यदेति । भूतादिभिर्विरहितमात्मानं जीवं शुद्धं त्वंपदार्थं स्वरूपेण स्वस्यात्मभूतेन मया तत्पदार्थेनोपेतमेकीभूतं पश्यन्भवति तदा स्वाराज्यं मोक्षं प्राप्नोति ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

उस समय उसके मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति हो जाती है और वह मुक्त हो जाता है; इस बात को **यदारहितमात्मानम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । भूत इन्द्रिय आदि से रहित **जो तत्त्वमसि** वाक्य का जो त्वं पदार्थ है उस शुद्ध जीव को स्वरूपतः अपनी आत्माभूत तत् पदार्थ के साथ अभिन्न देखने वाला जीव स्वराज्य (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है ॥३३॥

**नानाकर्मवितानेन प्रजा बह्वीः सिसृक्षतः । नात्मावसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥३४॥**

**अन्वयः**— नानाकर्मवितानेन बह्वीः प्रजाः सिसृक्षतः ते आत्मा नावसीदति मत् वर्षीयान् अनुग्रहः ॥३४॥

**अनुवाद**— अनेक प्रकार के कर्मों के संस्कार के कारण अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा होने पर तुम्हारा चित्त मोहित नहीं होता है यह मेरी महती कृपा है ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

यतो वर्षीयान् वृद्धतरः । अत्यधिकोऽस्तीत्यर्थः ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

भिन्न-भिन्न जीवों में भिन्न प्रकार के कर्मों के संस्कार पड़े हुए हैं उसी के अनुसार तुम अनेक प्रकार के जीवों की सृष्टि करना, चाहते हो; किन्तु इस कार्य में तुम्हारी बुद्धि मोहित इसलिए नहीं होती है कि तुम पर मेरी बहुत अधिक कृपा है ॥३४॥

**ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः । यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥३५॥**

**अन्वयः**— आद्यं ऋषिं त्वां पापीयान् रजोगुणः न बध्नाति यत् प्रजाः संसृजतः अपि ते मनः निर्बद्धः ॥३५॥

**अनुवाद**— तुम सर्वप्रथम ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) हो, प्रजाओं की सृष्टि करते समय भी चूकि तुम्हारा मन मुझमें ही लगा रहता है इसीलिए रजोगुण तुमका बाँध नहीं पाता है ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

अनुग्रहमेवाह-ऋषिमिति चतुर्भिः । यत् यतस्ते मनो मयि निर्बद्धम् ॥३५॥

### भाव प्रकाशिका

**ऋषिमाद्यम् इत्यादि** चार श्लोकों से श्रीभगवान् अपने अनुग्रह का ही वर्णन करते हैं । प्रजाओं की सृष्टि करते समय भी तुम्हारा मन चूकि मुझमें ही लगा रहता है इसीलिए रजोगुण तुमको बाँध नहीं पाता है ॥३५॥

**ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् । यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥३६॥**

**अन्वयः**— यत् त्वं मां भूतेन्द्रियम् गुणात्मभिः अयुक्तं मन्यसे अतःदेहिनाम् दुर्विज्ञेयः अपि भवता अद्यः ज्ञातः ॥३६॥

**अनुवाद**— चूकि तुम भूत, इन्द्रियगण तथा अन्तःकरण से रहित मुझको मानते हो इसीलिए देहधारी जीवों के लिए कठिनाई से जानने योग्य होने पर भी तुमने मुझे आज जान लिया है ॥३६॥

### भावार्थ दीपिका

यद्यस्माद्भूतैरिन्द्रियैर्गुणैः सत्त्वादिभिरात्मनाऽहंकारेण चायुक्तं मन्यसे ॥३६॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम मुझको भूतेन्द्रियों तथा सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन गुणों तथा अहङ्कार से रहित मानते हो इसीलिए तुम मुझे जान पाये हो, क्योंकि मैं तो शरीरधारी जीवों के लिए दुर्विज्ञेय हूँ॥३६॥

**तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः । नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥३७॥**

**अन्वयः**— मद्विचिकित्सायां पुष्करस्य नालेन सलिलस्य मूलं विचिन्वतः तुभ्य मे अबहिः आत्मा दर्शितः ॥३७॥

**अनुवाद**— तुमको अपने मूल के विषय में संदेह हुआ कि मेरा कोई मूल है कि नहीं ? उसके पश्चात् तुम कमल नाल के द्वारा जल में अपने मूल का अन्वेषण करने लगे इसीलिए मैंने तुम्हारे हृदय में ही अपने को प्रदर्शित कर दिया ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव नालेन मार्गेण पुष्करस्य मूलमधिष्ठानं सलिले विचिन्वतो मयि विचिकित्सायां भवितव्यमस्याश्रयेण, नच दृश्यते ततोऽस्ति नास्तीति संदेहे सत्यात्मा स्वरूपं मे मया अबहिरन्तर्हृदि दर्शितः ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

तुम कमल नाल के मार्ग से जल के भीतर अपने मूल का अन्वेषण कर रहे थे । तुमको मेरे विषय में संदेह हुआ ही होगा । यदि है तो क्यों नहीं दिखायी दे रहा है, अतएव है कि नहीं हैं, मेरा मूल ? इस तरह से तुम्हें संदेह होने पर मैंने अपने को तुम्हारे हृदय में ही प्रदर्शित कर दिया ॥३७॥

**यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् । यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥३८॥**

**अन्वयः**— अङ्ग मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् यत् मत्स्तोत्रं चकर्थ यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥३८॥

**अनुवाद**— हे वत्स ! मेरी कथाओं के वैभव से युक्त जो तुमने मेरी स्तुति की है तथा तुम्हारी जो तपस्या में निष्ठा है वह मेरी कृपा का ही फल है ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे ब्रह्मन् चकर्थ कृतवानसि । मत्कथैवाभ्युदयस्तेनाङ्कितम् । स एष बन्धाभावो मयि मनोनिर्बन्धा मज्ज्ञानं मद्रूपस्य हृदि दर्शनं मत्स्तुतिस्तपोनिष्ठा चेति यद्येष सर्वोऽपि मदनुग्रहः ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

हे ब्रह्मन् ! मेरी कथा रूपी ऐश्वर्य से युक्त जो तुमने मेरी स्तुति की है, यह संसार के बन्धन का अभाव है, मुझ में जो तुम्हारा मन लगा रहता है, मेरा ज्ञान, तथा अपने अन्तःकरण में मेरे रूप का दर्शन तथा मेरी स्तुति में तथा तपस्या में निष्ठा का होना यह सब कुछ मेरी कृपा का ही फल है ।।३८।।

**प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया । यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं माऽनुवर्णयन् ।।३९।।**

**अन्वयः**— लोकानां विजयेच्छया गुणमयं मा निर्गुणं अनुवर्णयन् यत् अस्तौषीः तेन अहं प्रीतः ते भद्रम् अस्तु ।।३९।।

**अनुवाद**— लोकों की रचना करने की इच्छा से गुण युक्त रूप से प्रतीत होने वाले भी मेरी स्तुति तुमने जो निगुर्ण रूप से की है उससे मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

गुणमयत्वेन प्रतीयमानमपि निर्गुणमेवानुवर्णयन् ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

यद्यपि मेरी प्रतीति सगुण रूप से होती है फिर भी तुमने मेरी स्तुति निगुर्ण रूप से की है, अतएव मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हारा कल्याण हो ।।३९।।

**य ऐतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् । तस्याशु संप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ।।४०।।**

**अन्वयः**— यः पुमान् एतेन स्तोत्रेण मां स्तुत्वा नित्यं मां भजते तस्य सर्वकामवरेश्वरः अहं आशु संप्रसीदेयम् ।।४०।।

**अनुवाद**— जो मनुष्य इस स्तोत्र के द्वारा मेरी स्तुति करके मेरा भजन करता है उस पर सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ मैं शीघ्र ही प्रसन्न हो जाऊँगा ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

तव प्रीत इति किं वक्तव्यमित्याह-य इति ।।४०।।

### भाव प्रकाशिका

मुझे यह क्या कहना है कि मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । जो काई दूसरा भी जीव इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करके नित्य ही मेरा भजन करेगा उस पर मैं प्रसन्न हो जाऊँगा ।।४०।।

**पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना । राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ।।४१।।**

**अन्वयः**— पूर्तेन, तपसा यज्ञैः दानैः योगसमाधिना राद्धं निःश्रेयसा पुंसां मत्प्रीतिः तत्त्ववित् मतम् ।।४१।।

**अनुवाद**— तत्त्वज्ञ पुरुषों का मानना है कि मनुष्य पूर्व कर्म, तपस्या, यज्ञ, दान योग तथा समाधि के द्वारा जिस परम कल्याण को प्राप्त करता है वह मेरी प्रसन्नता का ही फल है ।।४१।।

### भावार्थ दीपिका

नच मत्प्रीतेरप्यधिकं किंचिदस्तीत्याह । पूर्तादिभिः राद्धं सिद्धं यन्निःश्रेयसं फलं तन्मत्प्रीतिरेवेति तत्त्वविदां मतम्।।४१।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् बतला रहे है कि मेरी प्रसन्नता से बढ़कर कुछ भी नहीं है। तत्त्वज्ञ पुरुषों का कहना है कि मनुष्य पूर्तकर्म कूप, सरोवर आदि जलाशयों को बनवाना तपस्या, यज्ञ, दान, योग तथा समाधि आदि साधनों के द्वारा जिन परम कल्याणमय फल को प्राप्त करता है, वह मेरी कृपा का ही फल है ॥४१॥

**अहमात्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन्प्रेयसामपि । अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः ॥४२॥**

**अन्वयः**— धातः अहम् आत्मनाम् आत्मा प्रेयसाम् अपि प्रेष्ठः यत् कृते देहादिः प्रियः अतः मयि रतिं कुर्यात् ॥४२॥

**अनुवाद**— ब्रह्मन् मैं आत्माओं की भी आत्मा हूँ प्रियों का भी प्रिय हूँ, देह आदि भी मेरे लिए ही प्रिय हैं, अतएव मुझसे ही प्रेम करना चाहिए ॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुमाह-अहमिति । आत्मनाहंकारोपधीनां जीवानामात्मा । अतः प्रेयसामतिप्रियाणामपि मध्ये प्रेष्ठः प्रियतमः सन् निरवद्यः । यत्कृते यदर्थम् ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

इसका कारण इस श्लोक में बतलाया गया है। भगवान् ने कहा है— मैं अहंकरोपाधि जीवों की भी आत्मा हूँ तथा अत्यन्त प्रिय पत्नी पुत्रादिकों में भी मैं सबसे अधिक प्रिय हूँ मैं निर्दोष हूँ। मेरे लिए ही देह इत्यादि प्रिय हैं॥४२॥

**सर्ववेदमयेनेदमात्मनात्मात्मयोनिना । प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥४३॥**

**अन्वयः**— इदम् याश्च प्रजाः मयि अनुशेरते ताः आत्मयोनिना सर्ववेदमयेन आत्मना यथापूर्वं सृज ॥४३॥

**अनुवाद**— ब्रह्मन् तुम इस त्रैलोक्य को तथा जो लीन हुयी प्रजा मुझमें सो रही उसको, मुझसे उत्पन्न सर्ववेदमय स्वरूप से पहले के ही समान स्वयम् रचो ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

अतस्त्वं कृतार्थ एव तथापि मत्प्रियार्थं सृष्टिं कुर्वित्याह-सर्वेति । आत्मा त्वमिदं त्रैलोक्यं या मय्यनुशेरते ताः प्रजाश्च सृज । केन आत्मनैवान्यनिरपेक्षेण । तत्र ज्ञापकापेक्षाभावमाह-सर्ववेदमयेनेति । आत्मा अहं योनिः कारणं यस्येति ज्ञानक्रियाशक्त्यतिशयं सूचयति । यथापूर्वमिति । तवात्राभ्यासोऽप्यस्तीत्युक्तम् । मय्यनुशेरत इति स्थितानामभिव्यक्तिमात्रमेव कर्तव्यमित्यनायासत्वमुक्तम् ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त कारणों से तुम तो कृतार्थ ही हो। फिर भी मेरी प्रसन्नता के लिए सृष्टि करो। इस बात को इस श्लोक से कहा गया है। श्लोक का अर्थ है कि तुम इस त्रैलोक्य की तथा जो प्रजा मुझमें लीन होकर सो रही हैं उसकी सृष्टि निरपेक्ष होकर करो। उस सृष्टि के कार्य में ज्ञापक की कोई आवश्यकता नहीं है इस बात को बतलाते हुए भगवान् ने कहा कि तुम मुझसे सर्ववेदज्ञ रूप से उत्पन्न हो अतएव तुम ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति से सम्पन्न हो। इसमें तुमको कोई नया प्रयास भी नहीं करना है, पूर्व कल्प के ही समान सृष्टि करो ॥४३॥

मैत्रेय उवाच

**तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः । व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥४४॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पद्मोद्भवे विदुरमैत्रेयसंवादे नवमोऽध्यायः ॥९॥

**अन्वयः**— कञ्जनाभिः प्रधानपुरुषेश्वरः तस्मै जगत् स्रष्ट्रे एवं स्वेन रूपेण इदं अभिव्यज्य तिरोदधे ॥५५॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से प्रकृति एवं पुरुष (जीव) दोनों के स्वामी जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ ऐसे भगवान् पद्मनाभ अपने स्वरूप से ही इस जगत् को ब्रह्माजी को प्रदर्शित करके तिरोहित हो गये ।।४४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के ब्रह्माजी की उत्पत्ति के अन्तर्गत विदुरमैत्रेयसंवाद के अन्तर्गत नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।**

**भावार्थ दीपिका**

इदं सृज्यं व्यज्य प्रकाश्य पद्मनाभः श्रीनारायणरूपेण तिरोदधेऽदृश्योऽभवत् ।।४४।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भावार्थदीपिकाटीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।**

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से पद्मनाभ रूप से भगवान् नारायण इस जगत् को अभिव्यक्त करके अदृश्य हो गये ।।४४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या समपूर्ण हुयी ।।९।।**

# दसवाँ अध्याय

## दस प्रकार की सृष्टियों का वर्णन

### विदुर उवाच

**अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ।।१।।**

**अन्वयः**— भगवति अन्तर्हिते विभुः लोकपितामहः ब्रह्मा दैहिकीः मानसिकीः कतिधा प्रजाः ससर्ज ? ।।१।।

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे मैत्रेयजी ! श्रीभगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी लोक पितामह ब्रह्माजी ने कितने प्रकार की दैहिकी तथा मानसिकी सृष्टियों को किया ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

दशमे कालसंप्रश्नप्राप्तिं वक्तुं तदुद्भवः । प्राकृतादिविभागेन सर्गस्तु दशधोच्यते ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

दशवें अध्याय में कालविषयक प्रश्न का उत्तर बतलाने के लिए प्राकृत आदि विभागो वाली दश प्रकार की सृष्टियों का वर्णन किया गया है ।।१।।

**ये च मे भगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम । तान्वदस्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ।।२।।**

**अन्वयः**— हे बहुवित्तम भगवन् ये अर्था मया त्वयि पृष्टाःतान् आनुपूर्व्येण वदस्व, नः संशयान् छिन्धि ।।२।।

**अनुवाद**— हे बहुज्ञों में श्रेष्ठ भगवन् ! आपसे मैंने जिन विषयों में प्रश्न किया है, आप इन सबों को क्रमशः बतलाकर मेरे सन्देह को दूर कीजिये ।।२।।

# दसवाँ अध्याय

## दस प्रकार की सृष्टियों का वर्णन

### विदुर उवाच

**अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥१॥**

**अन्वयः**— भगवति अन्तर्हिते विभुः लोकपितामहः ब्रह्मा दैहिकीः मानसिकीः कतिधा प्रजाः ससर्ज ? ॥१॥

### विदुरजी ने कहा

**अनुवाद**— हे मैत्रेयजी ! श्रीभगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी लोक पितामह ब्रह्माजी ने कितने प्रकार की दैहिकी तथा मानसिकी सृष्टियों को किया ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

दशमे कालसंप्रश्नप्राप्तिं वक्तुं तदुद्धवः । प्राकृतादिविभागेन सर्गस्तु दशधोच्यते ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में कालविषयक प्रश्न का उत्तर बतलाने के लिए प्राकृत आदि विभागो वाली दश प्रकार की सृष्टियों का वर्णन किया गया है ॥१॥

**ये च मे भगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम । तान्वदस्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ॥२॥**

**अन्वयः**— हे बहुवित्तम भगवन् ये अर्था मया त्वयि पृष्टाःतान् आनुपूर्व्येण वदस्व, नः संशयान् छिन्धि ॥२॥

**अनुवाद**— हे बहुज्ञों में श्रेष्ठ भगवन् ! आपसे मैंने जिन विषयों में प्रश्न किया है, आप इन सबों को क्रमशः बतलाकर मेरे सन्देह को दूर कीजिये ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

मे मया। बदस्व वद। भासयस्वेति वा ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मैंने जिन-जिन प्रश्नों को आपसे पूछा है, आप उन सबों का उत्तर मुझे बतलायें। वदस्व पद की व्याख्या करते हुए श्रीधर स्वामी दो अर्थ लिखते है, वद अर्थात् कहें किन्तु वदस्व यह आत्मने पद में प्रयोग है अतएव दूसरा पर्यायवाची शब्द भासयस्व लिखा है। वादनोपसंभाषा इत्यादि के द्वारा वद धातु का भास आदेश होने पर लोट्लकार में भासयस्व रूप होगा ॥२॥

सूत उवाच

**एवं संचोदितस्तेन क्षत्रा कौषारवो मुनिः। प्रीतः प्रत्याह तान्प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव ॥३॥**

**अन्वयः**— हे भार्गव : एवं तेन क्षत्रा संचोदितः अथ कौषारवो मुनिः प्रीतः सन् तान् हृदिस्थान् प्रश्नान् प्रत्याह॥३॥

**अनुवाद**— हे भृगुवंशीय शौनक महर्षे ! विदुरजी के द्वारा इस तरह से प्रार्थना किए जाने पर उसके पश्चात् मैत्रेय महर्षि प्रसन्न होकर अपने हृदय में विद्यमान प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किए ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

संचोदितः प्रार्थितः। हृदिस्थानेवाह नतु ते प्रश्नास्तेन विस्मृता इत्यर्थः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से विदुरजी द्वारा की गयी प्रार्थना को सुनकर मैत्रेय महर्षि को बड़ी प्रसन्नता हुयी। पहले विदुरजी ने जिन प्रश्नों को किया था। वे सभी प्रश्न मैत्रेय महर्षि को याद थे वे भूले नहीं थे और उन्होंने विदुरजी के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥३॥

मैत्रय उवाच

**विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः। आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ॥४॥**

**अन्वयः**— यद् भगवान् अजः आह विरिञ्चः अपि आत्मनि आत्मानम् आवेश्य दिव्यं वर्षशतंतपः चक्रे ॥४॥

**अनुवाद**— जैसा कि श्रीभगवान् ने आदेश दिया था उसी के अनुसार ब्रह्माजी भी अपनी आत्मा भगवान् नारायण में अपने मन को लगाकर दिव्य सौ वर्षों तक तपस्या किए ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मनि श्रीनारायणे आत्मानं मन आवेश्य ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि ने कहा कि भगवान् नारायण ब्रह्माजी को तपस्या करने का आदेश देकर अदृश्य हो गये थे। उनके ही आदेशानुसार ब्रह्माजी भी भगवान् नारायण में ही लगाकर अपने मन को सौ दिव्यवर्षों तक तपस्या किये ॥४॥

**तद्विलोक्याब्जसंभूतो वायुना यदधिष्ठितः। पद्मम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥५॥**

**अन्वयः**— अब्जसंभूतः यदधिष्ठितः तत् पद्मम् अम्भश्च कालकृतवीर्येण वायुना कम्पितम् विलोक्य ॥५॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने देखा कि वे जिस कमल पर बैठे हैं प्रलयकालीन वायु के द्वारा वह कमल तथा जल दोनों काँप रहे हैं ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

अब्जसंभूतो ब्रह्मा यदधिष्ठाय स्थितः, कर्तरि क्तः । तत्पद्ममम्भश्च विलोक्य । कथंभूतं पद्ममम्भश्च । तेन प्रलयकालेन कृतं वीर्यं यस्य तेन वायुना कम्पितं, न्यापादित्युत्तरेणान्वयः ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

कमल से उत्पन्न हेने वाले ब्रह्माजी ने देखा कि वे जिस कमल पर बैठे हुए हैं, वह कमल और जल प्रलय कालीन वायु के झंकोरों से काँप रहे हैं ।।५।।

**तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया । विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुं सहाम्भसा ।।६।।**

**अन्वयः**— एधमानेन तपसा हि आत्मसंस्थया विद्यया विवृद्धविज्ञानबलः अम्भसा सह वायुं न्यपात् ।।६।।

**अनुवाद**— बढी हुयी तपस्या एवं अपने हृदय में विद्यमान आत्मज्ञान के द्वारा उनका विज्ञानबल बढ गया था और उन्होंने जल के साथ वायु को पी लिया ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

विवृद्धं विज्ञानबलं च यस्य । न्यपात्सर्वं पीतवान् ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के आदेशानुसार ब्रह्माजी की तपस्या और हृदय में विद्यमान आत्मज्ञान ये दोनों समृद्ध हो गये थे। उसके कारण उनके विज्ञान और बल दोनों बढ गये थे । उसी के सहारे उन्होंने सम्पूर्ण जल और वायु दोनों को पी लिया ।।६।।

**तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् । अनेन लोकान्प्राग्लीनान् कल्पितास्मीत्यचिन्तयत् ।।७।।**

**अन्वयः**— यद् अधिष्ठितम् पुष्करं तद् वियद व्यापि विलोक्य अनेन प्राक् लीनान् लोकान् कल्पितास्मि इति अचिन्तयत्।।७।।

**अनुवाद**— जिस कमल पर ब्रह्माजी बैठे थे उसको आकाश में व्याप्त देखकर ब्रह्माजी ने सोचा कि पूर्व कल्प में जो लोक लीन हो गये थे उन सबों की रचना मैं इसी कमल से ही करूँगा ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

पुष्करं पद्मम् । प्राग्लीनान् त्रींल्लोकान् कल्पितास्मि स्रक्ष्यामि ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने द्वारा अधिष्ठित कमल को आकाश व्यापी देखकर ब्रह्माजी ने विचार किया कि इस कल्प से पहले के कल्प में जो त्रैलोक्य लीन हो गया था उसकी सृष्टि मैं इस कमल के द्वारा ही करूँगा ।।७।।

**पद्मकोशं तदाविश्य भगवत्कर्मचोदितः । एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ।।८।।**

**अन्वयः**— तदा भगवत् कर्मचोदितः पद्मकोशं प्रावेश्य द्विसप्तधा, उरुधाभाव्यं एकं त्रिधाव्यभांक्षीत् ।।८।।

**अनुवाद**— भगवान् के द्वारा सृष्टि के कार्य में नियुक्त किए गये ब्रह्माजी उस कमल के कोश में प्रवेश कर गये और उस एक ही कमल कोश को, जो चौदह भुवनो या उससे भी अधिक भागों में विभक्त होने के योग्य था उसको त्रिलोकी के रूप में विभक्त कर दिए ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

भगवता स्वयं करणीये कर्मणि चोदितो नियुक्तः संस्तदा पद्मकोशं प्रविश्य तमेकमेव त्रिधा लोकरूपेण व्यभाङ्क्षीद्विभाज। एकेन कमलमुकुलेन कथं लोकत्रयसृष्टिरित्यसंभावनां वारयितुं तस्य विशालतामाह । द्विसप्तधा चतुर्दशलोकरूपेण । उरुधा ततोऽपि बहुप्रकारेण । भाव्यं भावयितुं योग्यम् । अतो न तेन त्रिलोकीकरणं चित्रमित्यर्थः ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

सृष्टि कार्य किया जाना था और उस कार्य में श्रीभगवान् ने स्वयं ब्रह्माजी को नियुक्त किया था। वे ब्रह्माजी उस एक ही कमल के कोश में प्रवेश कर गये और उसी को वे त्रैलोक्य के रूप में तीन भागों में विभक्त कर दिये। एक ही कमल की कली से त्रैलोक्य की सृष्टि कैसे की जा सकती है, यह तो असंभव है। इस असंभावना को दूर करने के लिए मैत्रेय महर्षि ने कहा कि उसका इतना अधिक विस्तार था कि उसको चौदहों भुवनों के रूप में अथवा उससे भी अधिक रूपों में विभक्त किया जा सकता था ॥८॥

**एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः । धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥९॥**

**अन्वयः**— जीवलोकस्य संस्थाभेदः एतावान् समाहृतः असौ परमेष्ठी अनिमित्तस्य हि धर्मस्य विपाकः ॥९॥

**अनुवाद**— जीवों के भोगस्थान के रूप में इन्हीं तीनों लोकों का विभाग शास्त्रों में वर्णित है। ब्रह्माजी आदि के जो महः, जनः तपः एवं सत्यम् लोक हैं वे निष्काम कर्म करने वालों के लोक के रूप में विभक्त हैं ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

त्रिलोकीरूपेणैव विभागे हेतुमाह। एतावांस्त्रिलोकीरूपो जीवलोकस्य जीवानां भोगस्थानस्य प्रत्यहं सृज्यस्य संस्थाभेदो रचनाविशेष उक्तः। ननु परमेष्ठिनोऽपि जीवत्वाविशेषाद् ब्रह्मलोकस्यापि किमिति प्रत्यहं सृष्टिर्न भवति तत्राह। हि यस्मादनिमित्तस्य निष्कामस्य धर्मस्य विपाकः फलरूपोऽसौ। उपलक्षणमेतत्सल्यलोकस्य महःप्रभृतिलोकानां तद्वासिनां च। त्रैलोक्यस्य काम्यकर्मफलत्वात्प्रतिकल्पमुत्पत्तिविनाशौ भवतः। महःप्रभृतीनामुपासनासमुचितनिष्कामधर्मफलत्वाद्द्विपरार्धपर्यन्तं न नाशः। तत्रस्थानां च ततःपरं प्रायेण मुक्तिरिति भावः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने त्रिलोकी के रूप में ही जो कमल कोशका विभाग किया उसका कारण इस श्लोक में बतलाया गया है। ब्रह्माजी अपने प्रत्येक दिन में त्रिलोकी रूप ही जीवलोकों की रचना करते हैं यह शास्त्रों में वर्णित है। यदि कोई कहे कि ब्रह्माजी भी तो जीव ही हैं, अतएव ब्रह्मलोक की भी प्रत्येक कल्प रूपी दिन में सृष्टि क्यों नहीं होती है। तो इसके उत्तर में कहा गया है कि त्रिलोकी के ऊपर जो चार लोक हैं वे लोक निष्काम कर्मों के फलस्वरूप हैं। ब्रह्माजी का लोक महर्लोक से लेकर सत्य लोक पर्यन्त के लोकों तथा उन लोकों में रहने वाले जीवों का उपलक्षण है। त्रैलोक्य की प्राप्ति काम्यकर्मों का फलस्वरूप है। अतएव त्रैलोक्य की उत्पत्ति और विनाश प्रत्येक कल्प में होते रहते हैं। महः इत्यादि लोकों की प्राप्ति तो उपसना स्वरूप निष्काम कर्मों का फलरूप है। अतएव उन लोकों का द्विपरार्द्धपर्यन्त नाश नहीं होता है। उन लोकों में रहने वाले जीव द्विपरार्द्ध के पश्चात् प्रायः मुक्त हो जाते हैं ॥९॥

विदुर उवाच

**यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः । कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन् यथा वर्णय नः प्रभो ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् अद्भुतकर्मणः बहुरूपस्य हरेः यत् कालाख्यं लक्षणमाह हे प्रभो नः यथा वर्णय ॥१०॥

### विदुरजी ने कहा

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन्! अद्भुत कर्मों को करने तथा विश्वरूप श्रीहरि की जिस काल नामक शक्ति का आपने वर्णन किया था हे प्रभो! कृपया आप उसका विस्तार से वर्णन करें ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

कालभेदेन लोकसृष्टिभेदं श्रुत्वा तमेव कालं जिज्ञासुः पृच्छति । यत्कालाख्यं लक्षणं स्वयमात्थ अब्रवीः । कथं कालः कल्पते, किं वा तस्य सूक्ष्मं च रूपमिति यथावद्वर्णयेत्यर्थः ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

काल के भेद से लोकों की सृष्टि को सुनकर विदुरजी काल के विषय में जानने की इच्छा से पूछे कि प्रभों! आपने पहले श्रीभगवान् की काल नामक शक्ति का वर्णन किया था, मैं उसके विषय में जानना चाहता हूँ। उस काल का किस लक्षण के द्वारा अनुमान किया जाता है उसके सूक्ष्म तथा स्थूल भेद क्या हैं ? इन सारी बातों का आप वर्णन करें ।।१०।।

मैत्रेय उवाच

**गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः । पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत् ।।११।।**

**अन्वयः**— गुणव्यतिकराकारः निर्विशेषः अप्रतिष्ठितः पुरुषः तदुपादानम् लीलया आत्मानं असृजत् ।।११।।

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— गुणों का जिसके द्वारा महदादि के रूप में परिणाम होता है उसे ही काल कहते हैं। वह निर्विशेष तथा अनादि एवं अनन्त है। उसी को निमित्त बनाकर भगवान् लीलापूर्वक ही सृष्टि कर देते हैं ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र सामान्यतः कालस्य स्वरूपमत्रोच्यते, उत्तराध्याये तु विशेषतः । गुणानां व्यतिकरो महदादिपरिणामस्तेनैवाक्रियते यः स काल इति शेषः । वक्ष्यते चैकादशे **गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च** इति । स्वतस्तु निर्विशेषः । अप्रतिष्ठितः क्वाप्यपर्यवसितः । आद्यन्तशून्य इत्यर्थः । एतदेव दर्शयितुमीश्वरः । सृष्ट्यादि तेन निमित्तभूतेन करोतीत्याह-पुरुष इति । उपादीयते निमित्ततया स्वीक्रियते इत्युपादानम् । स काल उपादानं निमित्तं यस्मिंस्तमात्मानमेव विश्वरूपेणासृजत् । स्वव्यतिरेकेण सृज्यस्याभावात् । एतच्च वस्तुकथनमात्रम् । कालेन निमित्तेन चासृजदित्येतावदेव विवक्षितम् ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

यहाँ पर कल का सामान्य लक्षण कहा गया है। इसके बाद वाले अध्याय में उसका विशेष लक्षण कहा जायेगा। गुणों का महदादि के रूप में जिसके द्वारा परिणाम होता है, उसे काल कहते हैं। ग्यारहवें स्कन्ध में कहा भी जायेगा कि गुणों का महदादि के रूप में परिणाम जिसके द्वारा होता है उसे काल कहते है। वही स्वभाव तथा सूत्र है। कालस्वभावतः निर्विशेष है। वह किसी भी रूप में परिणत नहीं होता है अतएव वह आदि और अन्त से रहित है। इस काल को ही बतलाने के लिए ईश्वर उस निमित्तभूत काल के द्वारा सृष्टि आदि कार्य बिना किसी प्रयास के ही कर देते हैं। वे परमात्मा काल को ही निमित्त बनाकर अपने को ही विश्व के रूप में परिणत कर दिए। क्योंकि अपने से भिन्न कोई दूसरी वस्तु सृज्य है ही नहीं। यह केवल सिद्धान्त कथन मात्र है। सम्पूर्ण जगत् परमात्मा का कार्य होने के कारण उनसे अभिन्न है। यहाँ पर केवल इतना ही विवक्षित है कि श्रीभगवान् ने काल रूपी निमित्त द्वारा जगत् की सृष्टि की ।।११।।

**विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया । ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ।।१२।।**

**अन्वयः**— विष्णुमायया संस्थितं ब्रह्मतन्मात्रं वै विश्वं ईश्वरेण अव्यक्तमूर्तिना कालेन परिच्छिन्नम् ।।१२।।

**अनुवाद**— सृष्टि से पूर्व यह सारा विश्व भगवान् की माया में लीन होकर ब्रह्मरूप से स्थित था, उसी को अव्यक्तमूर्ति काल के द्वारा परमेश्वर ने पृथक् रूप से प्रकट किया ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

स्वव्यतिरिक्तसृज्याभावं दर्शयन् कालस्य सृष्टिनिमित्ततां दर्शयति- विश्वमिति । विष्णुमायया संस्थितं संहृतं ब्रह्मतन्मात्रं सद्विश्वम् । ईश्वरेण कर्त्रा कालेन निमित्तेन परिच्छिन्नं पृथक् प्रकाशितम् । अव्यक्ता मूर्तिः स्वरूपं यस्येति स्वतो निर्विशेषता दर्शिता ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

परमात्मव्यतिरिक्त सृज्य के अभाव को बतलाते हुए यह बतलाया जा रहा है कि काल ही सृष्टि का निमित्त है । भगवान् की माया के द्वारा संहृत विश्व ब्रह्ममात्र ही था । अर्थात् ब्रह्मरूप में स्थित था । परमात्मा ने कालरूपी निमित्त के द्वारा ब्रह्म से पृथक् विश्व प्रकाशित कर दिया । काल अव्यक्त स्वरूप होने के कारण निर्विशेष है ।।१२।।

**यथेदानीं तथाऽग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् । सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ।।१३।।**

**अन्वयः**— एतद् यथा इदानीम् तथा अग्रे पश्चात् अपि एतत् इदृशम् तस्य नवविधः सर्गः तथा प्राकृतः वैकृतः तु यः।।१३।।

**अनुवाद**— यह जगत् इस समय जैसा है वैसा ही पहले भी था और भविष्य में भी यह वैसा ही होगा इसकी ही प्राकृत नव प्रकार की सृष्टि होती है और दशवीं वैकृत सृष्टि हुयी ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

अप्रतिष्ठितत्वं दर्शयितुं तत्कार्यविश्वप्रवाहस्याप्रतिष्ठामाह । यथेदानीमस्ति तथाऽग्रे पूर्वमप्यासीत्पश्चादपि भविष्यति । एवं सामान्यतः कालं निरूप्य विशेषतो निरूपयिष्यंस्तन्निमित्तस्य सर्गस्य पूर्वोक्तानेव भेदाननुवदति-सर्ग इति । यस्तु प्राकृतो वैकृतश्च स दशमः ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

काल के आदि और अन्त राहित्य को दिखाने के लिए उसके कार्यभूत विश्व के प्रवाह की अनादिता और अनन्तता को इस **यथेदानीम् श्लोक** से कहा गया है । यह जगत् इस समय जैसा है, पहले भी वैसा ही था और भविष्य में भी यह वैसा ही रहेगा । इस तरह से काल का सामान्य रूप से निरूपण करके उसका विशेष रूप से निरूपण करने के लिए उसके कारणभूत सृष्टि के पूर्वोक्त भेदों का अनुवाद श्लोक के उत्तरार्द्ध से किया गया है । जो प्राकृत और वैकृत सृष्टि है वह दशवें प्रकार की है । इसी को कौमार सर्ग भी कहते हैं ।।१३।।

**कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः । आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ।।१४।।**

**अन्वयः**— काल, द्रव्य गुणैः अस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः आद्यः महतः सर्गः आत्मनः गुणवैषम्यम् ।।१४।।

**अनुवाद**— इस जगत् का प्रलय काल द्रव्य एवं गुणों के भेद से तीन प्रकार का होता है । पहले मैं दस प्रकार की सृष्टियों का वर्णन करता हूँ । पहली सृष्टि महत् तत्त्व की है । भगवान् की प्रेरणा से गुणों में वैषम्य का हो जाना ही उसका स्वरूप है ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

तन्निमित्तमेव त्रिविधं प्रलयमाह । कालेनैव केवलेन नित्यः प्रलयः । द्रव्येण संकर्षणाग्न्यादिना नैमित्तिकः । गुणैः स्वस्वकार्यं ग्रसद्भिः प्राकृतिकः । तानेव सर्गान्प्रपञ्चयति-आद्य इत्यादिना यावदध्यायसमाप्तिम् । महतो लक्षणमात्मनो हरेः सकाशाद्गुणानां वैषम्यमिति ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

काल के कारण होने वाले तीन प्रकार के प्रलयों को बतलाया गया । केवल काल के कारण नित्यप्रलय होता है । सङ्कर्षण के मुख से निकली हुयी अग्नि के कारण जो प्रलय होता है वह नैमित्तिक प्रलय कहलाता है।

जब गुण अपने-अपने कार्यों को अपने में लीन करने लग जाते हैं तो उसको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। उन सृष्टियों का विस्तार से वर्णन इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं। महान् का यही लक्षण है कि श्रीहरि की इच्छा से गुणों में विषमता का उत्पन्न हो जाना ॥१४॥

**द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः। भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥१५॥**

**अन्वयः**— द्वितीयस्तु अहमः यत्र द्रव्यज्ञानक्रियादयः। तृतीयः तु द्रव्यशक्तिमान् तन्मात्रः भूतसर्गः ॥१५॥

**अनुवाद**— दूसरी अहङ्कार की सृष्टि है, जिससे महाभूतों ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। तीसरी सृष्टि का नाम भूतसर्ग है। जिससे पञ्चमहाभूतों को उत्पन्न करने वाला तन्मात्र समूह रहता है ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

अहमोऽहंकारस्य। तस्य लक्षणम् यत्रेति। द्रव्यादयो वक्ष्यमाणास्त्रयः सर्गाः तन्मात्रो भूतसर्गः, भूतसूक्ष्मसर्ग इत्यर्थः। द्रव्यशक्तिमान् महाभूतोत्पादकः ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

अहम् शब्द अहङ्कार का वाचक है। **यत्र इत्यादि** के द्वारा अहङ्कार का लक्षण कहा गया है। **द्रव्यादयः** शब्द से आगे कहे जाने वाली तीन सृष्टियाँ कही गयी हैं। महाभूतों की सूक्ष्मावस्था तन्मात्र शब्द से कही जाती है। तन्मात्रों से ही महाभूतों की सृष्टि होती है। **द्रव्य शक्तिमान** का अर्थ है महाभूतों को उत्पन्न करने वाला ॥१५॥

**चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः। वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥१६॥**

**अन्वयः**— चतुर्थः ऐन्द्रियः सर्गः यस्तु ज्ञानक्रियामयः। वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥१६॥

**अनुवाद**— चौथी सृष्टि इन्द्रियों की है। यह ज्ञान और क्रियामय है। पाञ्चवीं सृष्टि सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न होने वाले इन्द्रियों के अधिष्ठिाता देवताओं की है, मन भी उसी के अन्तर्गत है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

ज्ञानकर्मेन्द्रियात्मकश्चतुर्थः। पञ्चमो वैकारिकः इन्द्रियाधिष्ठातारो देवा मनश्च ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

चौथी सृष्टि ज्ञानेन्द्रियात्मक और कर्मेन्द्रियात्मक हैं। सात्त्विक अहङ्कार जन्य इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं और मन की सृष्टि है। मन की सृष्टि भी पाञ्चवीं सृष्टि के अन्तर्गत ही है ॥१६॥

**षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो। षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥१७॥**

**अन्वयः**— प्रभो षष्ठः तु तामसः सर्गः यस्तु अबुद्धिकृत इमे षट प्राकृताः सर्गाः वैकृतान् अपि मे शृणु ॥१७॥

**अनुवाद**— छठी सृष्टि तामस अहङ्कार जन्य अविद्या की है। इसमें पाँच पर्व हैं, तम, मोह, महाहोह, तामिस्त्र और अन्धतामिस्त्र। ये छह प्राकृत सृष्टियाँ हैं अब आप वैकृत सृष्टियों को सुनें ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

षष्ठस्तु तमसः पञ्चपर्वाऽविद्यायाः। अबुद्धिर्जीवानामावरणं विक्षेपश्च तां करोतीत्यबुद्धिकृत्तस्य। मत्तः शृणु ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

छठी सृष्टि तामस अहङ्कार जन्य अविद्या की है। इसमें पाँच पर्व है, तम, मोह, महामोह तामिस्त्र और अन्धतामिस्त्र। यह जीवों का आवरण और विक्षेप करती है अतएव यह अबुद्धिकृत है। अबुद्धिकृतः षष्ठी का रूप है। अब आप अविकृत की सृष्टि मुझसे सुनें ॥१७॥

**रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः । सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥१८॥**

**अन्वयः**— रजोभाजः भगवतः हरिमेधसः इयं लीला सप्तमः मुख्यसर्गः तु तस्थुषां यः षड्विधः ॥१८॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् अपना चिन्तन करने वालों के दुःखों को हर लेते हैं अतएव वे हरिमेधस शब्द वाच्य हैं। यह सारी लीला उन श्रीहरि की ही है। वे ही रजोगुण को अपनाकर जगत् की रचना करते हैं। सातवीं प्रधान वैकृत सृष्टि छह प्रकार के स्थावर वृक्षों की है ॥१८॥

## भावार्थ दीपिका

अनुद्वेगेन श्रोतव्यतामाह । यद्विषया मेधा संसारं हरति तस्य हरेर्लीला । यद्वा इयमिति । तमआदिसर्गरूपा । रजोभाज इति ब्रह्मरूपस्येत्यर्थः । अस्मिन्पक्षे अबुद्धिकृत इति प्रथमान्तम् । अनवधानकृत इत्यर्थः । मुखमिव प्रथमं कृतो मुख्यसर्गः। तस्थुषां स्थावराणाम् ॥१८॥

## भाव प्रकाशिका

सावधान मन से इसको सुनना चाहिये । इस बात को बतलाते हुए कहते हैं । जिन श्रीभगवान् का चिन्तन संसार के बन्धन को विनष्ट कर देता है । उन्हीं श्रीहरि की यह लीला है । अथवा **इयम्** पद से तम आदि की सृष्टि कही गयी है । रजोगुण को स्वीकार करके भगवान् ब्रह्माजी का रूप धारण कर लेते हैं । इस तरह का अर्थ करने पर अबुद्धिकृतः पद को प्रथमान्त मानना होगा । अर्थात् अनवधान जन्य है । सातवीं मुख्यसृष्टि छह प्रकार के स्थावरों की है ॥१८॥

**वनस्पत्यौषाधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः । उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः ॥१९॥**

**अन्वयः**— वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः । उत्स्रोतसः तमः प्रायाः अन्तः स्पर्शा विशेषिणाः ॥१९॥

**अनुवाद**— वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम ये छह प्रकार के स्थावर है। इनका संचार नीचे से ऊपर की ओर होता है। इनमें ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं रहती है, ये भीतर ही भीतर केवल स्पर्श का अनुभव करते हैं। इनमें से किसी में भी कोई विशेष गुण नहीं होता है ॥१९॥

## भावार्थ दीपिका

षड्विधत्वमेवाह । ये पुष्पं बिना फलन्ति ते वनस्पतयः । ओषधयः फलपक्वान्ताः । लता आरोहणापेक्षाः । त्वक्सारा वेण्वादयः । लता एव काठिन्येनारोहणानपेक्षा वीरुधः । ये पुष्पैः फलन्ति ते द्रुमाः । तेषां साधारणं लक्षणमाह ऊर्ध्वं स्रोतः आहारसंचारे येषाम् । तमःप्राया अव्यक्तचैतन्याः । अन्तःस्पर्शाः स्पर्शमेव जानन्ति नान्यत् । तदप्यन्तरेव न बहिः । विशेषिणोऽव्यवस्थितपरिणामाद्यनेकभेदवन्तः ॥१९॥

## भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में स्थावरों के छह भेदों को बतलाया गया है। जो पुष्प दिए बिना ही फल जाते हैं वे स्थावर वनस्पति कहलाते हैं। जो फल के पकने पर विनष्ट हो जाते हैं ऐसे स्थावर ओषधि कहलाते हैं। जो किसी के सहारे से ऊपर की ओर चढते हैं उनको लता कहते हैं। जिनके छिलके में ही बल होता है ऐसे बांस आदि त्वक्सार हैं। जो लताएँ कठिन पदार्थ के बिना ही ऊपर चढ जाती हैं वे वीरुध हैं और जो स्थावर पुष्प देकर फल देते हैं वे द्रुम कहलाते हैं। स्थावरों का साधारण लक्षण है कि उनके आहार का संचार ऊपर की ओर होता है। उनका ज्ञान अनुद्भूत होता है। वे केवल स्पर्श का ही अनुभव करते हैं और किसी दूसरी बात को नहीं जानते। वह भी भीतर ही अनुभव करते हैं बाहर नहीं। उनके परिणाम तथा पुष्प आदि अनेक प्रकार के होते हैं ॥१९॥

**तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशद्विधो मतः । अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥२०॥**

**अन्वयः**— तिरश्चामष्टमः सर्गः सः अष्टाविंशविधः मतः अविदः भूरितमसः घ्राणज्ञाः हृद्यवेदिनः ॥२०॥

**अनुवाद**— आठवीं सृष्टि पशु-पक्षियों की है, उसके अठाइस भेद कहे गये हैं। इन्हें काल का ज्ञान नहीं होता है। तमोगुण की अधिकता के कारण वे खाना-पीना सोना आदि ही जानते हैं। सूघंने मात्र से ही उनको वस्तुओं का ज्ञान होता है। उनके हृदय में विचार शक्ति नहीं होती हैं ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

तिर्यक्स्रोतसां सर्गमाह-तिरश्चामिति। स चाष्टाविंशतिभेदः। तिरश्चां लक्षणम्। अविदः श्वस्तनादिज्ञानशून्याः। भूरितमसः आहारादिज्ञानमात्रनिष्ठाः। घ्राणेनैवेष्टमर्थं जानन्ति। हृदि अवेदिनो दीर्घानुसंधानशून्याः। तथा च श्रुतिः '**अथेतरेषां पशूनामशनापिपासे एवाभिविज्ञानं न विज्ञातं वदन्ति न विज्ञातं पश्यन्ति न विदुः श्वस्तनं न लोकालोकौ** इति ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में पशुपक्षियों की सृष्टि का वर्णन करते हैं। इस सृष्टि के अठाइस भेद हैं। पशु-पक्षियों का यही लक्षण है कि उनको आज और काल का ज्ञान नहीं होता है। तमोगुण की अधिकता होने के कारण वे केवल अपने आहार को जानते हैं। वे सूंघकर ही जान लेते हैं कि यह प्रियवस्तु है यह अप्रिय वस्तु है। उनको दीर्घ अनुसन्धान नहीं होता है। श्रुति भी कहती है— **अथेतरेषाम्० इत्यादि** मनुष्यों से भिन्न जो पशु हैं उनको अपने भूख प्यास का ही ज्ञान होता है। वे किसी को जानकर उससे बातें नहीं करते हैं और न तो किसी परिचित को देखते हैं। उनको न तो आज और कल का ज्ञान होता है और न तो उन्हें प्रकाश और अन्धकार का ज्ञान होता है ॥२०॥

**गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो रुरुः । द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥२१॥**

**अन्वयः**— हे सत्तम ! गौः, अजः, महिषः, कृष्णः, सूकरः, गवयः, रुरुः, अविः, उष्ट्रः च इमे पशवः द्विशफाः ॥२१॥

**अनुवाद**— हे साधु श्रेष्ठ ! गौ, बकरा, भैंसा, कालामृग, सूकर, नीलगाय, रुरुमृग, भेंड़ तथा ऊँट ये सभी पशु दो खुरों वाले हैं ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

अष्टाविंशतिभेदानेवाह। गवादय उष्ट्रान्ता द्विशफा द्विखुरा नव ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

पशुओं के अट्ठाइस भेदों को बतलाते हैं। गौ से लेकर ऊँट पर्यन्त पशु दो खुरों वाले हैं इनकी संख्या नव है ॥२१॥

**खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा । एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान्पशून् ॥२२॥**

**अन्वयः**— खरः अश्वः अश्वतरः, गौरः शरभः तथा चमरी हे क्षतः एते एकशफाः पञ्चनखान् पशून् शृणु ॥२२॥

**अनुवाद**— गधा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग शरभ तथा चमरी ये सभी पशु एक खुर वाले हैं। अब आप पाँच नख वाले पशुओं को सुनें ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

खरादय एकशफाः षट् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

गधे आदि छह पशु एक खुर वाले हैं। अब पाँच नख वाले पशुओं को बतलाया जा रहा है ॥२२॥

**श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ । सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥२३॥**

**अन्वयः**— श्वा, शृगालः, वृकः व्यघ्रः, मार्जारः, शशशल्लकौ, सिंहः, कपिः गजः कूर्मः गोधा मकरादयः च ॥२३॥

**अनुवाद**— कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, विडाल, खरगोश, साहिल, सिंह, बन्दर, हाथी, कछुआ, गोह और मगर आदि ये सभी पाँच नखों वाले पशु हैं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

श्वादयो गोधान्ताः पञ्चनखा द्वादश । एवमेते भूचराः सप्तविंशतिः । मकरादयो जलचराः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में वर्णित कुत्ते से लेकर गोह पर्यन्त बारह पशु पाँच नख वाले हैं । इसतरह पृथिवी पर चलने वाले सत्ताइस पशु गिनाये गये हैं । मगर इत्यादि जल में रहने वाले हैं ॥२३॥

**कङ्कगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः । हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥२४॥**

**अन्वयः**— कङ्क-गृध-वट-श्येन-भास-भल्लूक-वर्हिणः हंस-सारस-चक्राह्व-काकोलूकादयः खगाः ॥२४॥

**अनुवाद**— कङ्क (बगुला) गृध्र, बटेर, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ और उल्लू ये आकाश में उड़ने वाले जीव पक्षी हैं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

कङ्कादयश्च खगा अभूचरत्वेनैकीकृत्या गृहीताः तदेवमष्टाविंशतिभेदा भवन्ति । तेषु कृष्णरुरुगौरा मृगविशेषाः । अन्येषामपि तिर्यक्प्राणिनां यथायथमेतेष्वेवान्तर्भावः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

कङ्क (बगुला) आदि पक्षी है । ये पृथिवी पर रहने वाले नहीं है । अतएव इन सबों को एक ही में गिना गया है । इस तरह से पशु-पक्षियों के अठाइस भेद हो गये । दूसरे भी तिर्यक् प्राणियों का यथायोग्य इनमें ही अन्तर्भाव हो जाता है ॥२४॥

**अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् । रजोधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥**

**अन्वयः**— क्षत्तः नृणाम् अर्वाक्सोतः तु नवमः एकविधः रजोधिकाः कर्मपराः दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! जिनके आहार का प्रचार ऊपर से नीचे की ओर होता है, उन मनुष्यों की सृष्टि एक प्रकार की होती है । उनमें रजोगुण की अधिकता होती है, वे कर्मपरायण होते हैं । तथा दुख में ही सुख मानने वाले होते हैं ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

अध आहारसंचारो यस्य सोऽर्वाक्स्रोताः । ह्रस्वत्वमार्षम् । नृणां सर्गो नृणां लक्षणम् । रजोऽधिकं येषु ते ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

जिनके आहार का संचार ऊपर से नीचे की ओर होता है, वे अर्वाक्स्रोत मनुष्य हैं । अर्वाक्स्रोत यह आर्ष प्रयोग हैं अन्यथा अर्वाक् स्रोता रूप होना चाहिए । यह मनुष्यों की सृष्टि नवीं सृष्टि है । मनुष्यों का लक्षण यह है कि उनमें रजोगुण की अधिकता होती है । वे कर्मपरायण और दुःख में ही सुख मानने वाले होते हैं ॥२५॥

**वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम । वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥२६॥**

**अन्वयः**— हे सत्तम ! एते त्रय एव वैकृताः, देवसर्ग च, यः वैकारिकः प्रोक्तः कौमारस्तु उभयात्मकः ॥२६॥

**अनुवाद**— हे साधुवर्य विदुरजी स्थावर, पशुपक्षी और मनुष्य और देवसर्ग ये वैकृत सर्ग है । महतत्त्व आदि को प्राकृत सर्ग कहा जा चुका है । कौमारसर्ग यह प्राकृत एवं वैकृत दोनों प्रकार का है ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

एते त्रयो वैकृता एव न कौमारवदुभयात्मकाः । देवसर्गश्च वैकृत इत्यनुषङ्गः । वैकारिकस्तु देवसर्गः प्राकृतेषु पूर्वमेव प्रोक्तः । अयं तु ततो न्यूनत्वाद्वैकृतो देवसर्गत्वात्तदन्तर्भूतश्च । सनत्कुमारादीनां सर्गस्तु प्राकृतो वैकृतश्च देवत्वेन मनुष्यत्वेन च सृज्य इत्यर्थः ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

स्थावर, तिर्यक् तथा मनुष्यों की सृष्टि ये तीनों सृष्टियाँ, वैकृत सृष्टि हैं देवों की सृष्टि भी वैकृत ही है । सात्विक अहङ्कार जन्य देवों की सृष्टि को पहले ही प्राकृत सृष्टियों में कहा गया है । यह मनुष्यों की सृष्टि देव सृष्टि से न्यून होने के कारण वैकृत कही गयी है । देवसर्ग होने के कारण उसके अन्तर्गत है । सनत्कुमार आदि की सृष्टि को प्राकृत एवं वैकृत दोनों इसलिए कहा गया है कि उनकी सृष्टि देव और मनुष्य रूप में होती हैं ॥२६॥

**देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः । गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥२७॥**
**भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः । दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥२८॥**

**अन्वयः**— हे विदुर ! देवसर्गः च अष्टविधः, विवुधा, पितरः, असुराः गन्धर्वाप्सरसः, सिद्धाः यक्षरक्षांसि चारणाः। भूतप्रेत पिशाचाः च विद्याध्राः किन्नरादयः, एतेदश सर्गाः विश्वसृक् कृता ते आख्याताः ॥२७-२८॥

**अनुवाद**— देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, चारण, विद्याधर, भूत प्रेत, पिशाच और किन्नर इत्यादि के भेद से देवताओं की सृष्टि आठ प्रकार की है । हे विदुरजी ! इस तरह से ब्रह्माजी द्वारा की गयी दस प्रकार की सृष्टियाँ हैं । यह मैंने आपको बतला दिया ॥२७-२८॥

### भावार्थ दीपिका

वैकृतश्च देवसर्गोऽष्टविधः । तत्र विवुधादयस्त्रयो भेदाः । गन्धर्वाप्सरस एकः । यक्षरक्षांस्येकः । भूतप्रेतपिशाचा एकः। सिद्धचारणविद्याधरा एकः । किन्नरादय एकः । आदिशब्दत्किंपुरुषाश्वमुखादयः । एतद्विंशेऽध्याये स्पष्टं भविष्यति ॥२७-२८॥

### भाव प्रकाशिका

वैकृत देवसर्ग आठ प्रकार का है विबुध, पितर और असुर ये तीन उनके विभाग हुए । गन्धर्वाप्सरों का चौथा विभाग है । यक्षों एवं राक्षसों का पाँचवाँ विभाग है, भूतप्रेत तथा पिशाचों का छठा भेद है, सिद्धों चारणों एवं विद्याधरों को सातवाँ भेद हैं और किन्नरों आदि का आठावाँ भेद है । किन्नरादि के आदि शब्द से किंपुरुष अश्वमुख आदि सूचित हैं । बीसवें अध्याय में ये सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी ॥२७-२८॥

**अतःपरं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च । एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥**
**सृजत्यमोधसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥२९॥**

**अन्वयः**— अतः परं वंशान् मन्वतराणि च प्रवक्ष्यामि । रजः प्लुतः स्रष्टा अमोध सङ्कल्पः हरिः कल्पदिषु आत्मभूः आत्मन आत्मैव सृजति ॥२९॥

**अनुवाद**— इसके पश्चात् मैं वंशों तथा मन्वन्तरों का वर्णन करूँगा इस तरह रजोगुण प्रधान सत्य सङ्कल्प श्रीहरि ही कल्पों के प्रारम्भ में ब्रह्मा बनकर जगत् के रूप में अपनी ही रचना करते हैं ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**— नही है ॥२९॥

गुणव्यत्यय एतस्मिन्मायावित्वादधीशितुः। न पौर्वापर्यमिच्छन्ति नद्यां भ्राम्यद्भ्रमेरिव ॥३०॥
देवासुरादयः क्षत्तः कल्पेऽस्मिन्ये च कीर्तिताः। त एव नामरूपाभ्यामासन्मन्वन्तरान्तरे ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

**अन्वयः**— हे क्षत्तः एवम् अधीशितुः मायावित्वात् एतस्मिन् गुणव्यत्यये, नद्यां भ्रमेः, इव पौर्वापर्यं न इच्छन्ति। अस्मिन् कल्पे ये च देवासुरादयः कीर्तिताः ते एव मन्वन्तरान्तरे नामरूपाभ्याम् आसन् ॥३०-३१॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! इस तरह से परमात्मा के माया का स्वामी होने के कारण गुणों के परिणाम में कोई भी पौर्वापर्य भाव उसी तरह से नहीं होता है जिस तरह नदी में प्रकट होने वाले चकोह में कोई भी पौर्वापर्य भाव नहीं होता है । इस कल्प में जो देवता तथा असुर इत्यादि कहे गये हैं वे ही दूसरे भी मन्वन्वतरों में उन्हीं नामों और रूपों से युक्त थे ॥३०-३१॥

## भावार्थ दीपिका

ननु कथं तर्हि प्रथमं सृष्टिः प्रलयो वा, तत्राह-गुणेति । गुणव्यत्यये सर्गे भ्राम्यन्भ्रमणशीलो भ्रमिरविशेषाद्भ्राम्यद्भ्रमिस्तस्य नद्यां भ्रमतो यथा नादिर्नान्तस्तथा सृष्टिसंहारयोरित्यर्थः । संसारस्यानादित्वमेकरूपत्वं चाह-देवासुरादय इति । त एवेति। तन्नामानस्तद्रूपाश्चेत्यर्थः ॥३०-३१॥

**इति श्रीमद्भगवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥**

## भाव प्रकाशिका

प्रश्न हाता है कि तो फिर प्रथम सृष्टि अथवा प्रथम प्रलय कैसे कहा जाता है ? तो उसके उत्तर में मैत्रेय महर्षि **गुणव्य० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । गुणो के परिणाम स्वरूप सृष्टि के होने में कोई भी आदि और अन्त उसी प्रकार नहीं होता है जिस तरह नदियों में होने वाले चकोहों में कोई भी प्रथम अथवा अन्तिम नहीं होता हैं संसार अनादि एवं एकरूप ही रहता है । इस बात को बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि ने **देवासुरादयः इत्यादि** श्लोक को कहा है । प्रत्येक कल्पों में देवताओं और असुरों के वे ही नाम और वे ही रूप रहते हैं । वे सदा एक समान ही होते हैं ॥३०-३१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भार्वार्थदीपिकाटीका के दशवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१०॥**

# ग्यारहवाँ अध्याय

## मन्वन्तर आदि कालों का विभाग

मैत्रेय उवाच

**चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा । परमाणु स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥१॥**

**अन्वयः**— सद्‌विशेषाणाम् चरमः, सदा अनेकः असंयुतः सः परमाणुः विज्ञेयः यतः नृणाम् ऐक्यभ्रमः भवति ॥१॥

**अनुवाद**— विदुरजी ! पृथिवी आदि का जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश है जिसका कोई भी विभाग नहीं हो सकता है तथा जो कार्यरूप को नहीं प्राप्त हुआ है तथा जिसका दूसरे परमाणुओं से संयोग भी नहीं हुआ है उसे परमाणु जानना चाहिए । अनेक परमाणुओं के मिलने से ही मनुष्यों को भ्रम के कारण उनमें एकत्व का भ्रम होता है ॥१॥

## भावार्थ दीपिका

तत एकादशे कालः परमाण्वादिलक्षणैः । युगमन्वन्तरादिभ्यः कल्पमानादि वर्ण्यते ।।१।। तदेवं सामान्यतः कालस्योपलक्षणभूतं गुणव्यतिकरं दशविधं निरूप्येदानीं तस्यैव विशेषं निरूपयितुं तत्परिच्छेद्यं वस्तु लक्ष्यति द्वाभ्याम् सतः कार्यस्य विशेषाणामंशानां यश्चरमोऽन्त्यो यस्यांशो नास्ति । अनेकः कार्यावस्थामप्राप्तः । असंयुतः समुदायावस्थां चाप्राप्तः। अतएव सदा कार्यसमुदायावथयोरपगमेऽप्यस्ति स परमाणुर्विज्ञेयः । किं तत्र प्रमाणमत आह । यतो येभ्यः समुदितेभ्यो नृणां व्यवहर्तृणामैक्यभ्रमोऽवयविबुद्धिः । तथा च पञ्चमेऽवयविनिराकरणे वक्ष्यति, येषां समूहेन कृतो विशेष इति । कार्यानुपपत्त्या कल्प्यत इति भावः ।।१।।

## भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् ग्यारहवें अध्याय में परमाणु आदि लक्षणों से युक्त काल के युग, मन्वन्तर आदि तथा कल्प आदि के परिमाणों का वर्णन किया जा रहा है ।।१।। इस तरह काल के उपलक्षण स्वरूप दस प्रकार की सृष्टियों का निरूपण करके उसके भेदों का निरूपण करने के लिए दो श्लोकों से उसके परिचछेद्य वस्तु का लक्षण बतलाते हैं । **सतः कार्यस्य० इत्यादि** कार्य के अंशों का जो सबसे अन्तिम भाग, जिसका कोई भी विभाग नहीं किया जा सकता है, उसको परमाणु कहते हैं । वह कार्यावस्था और समुदायावस्था को अप्राप्त होता है । यही कारण है कि कार्यावस्था और समुदायावस्था के विनष्ट हो जाने पर भी जो बना रहता है वही परमाणु है। यदि कोई कहे कि इसमें क्या प्रमाण है ? तो उसके उत्तर में कहते हैं, क्योंकि उन परमाणुओं के समुदित हो जाने पर मनुष्यों को उनमें अवयवी का भ्रम होता है । पाञ्चवें स्कन्ध में अवयवी के निराकरण के समय **येषां समूहेन कृतो विशेषः** अर्थात् जिन परमाणुओं के समूह के कारण ही अवयवी की प्रतीति होती है । अर्थात् कार्य के नहीं होने के कारण उनमें अवयवित्व की कल्पना की जाती है ।।१।।

**सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् । कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ।।२।।**

**अन्वयः**— स्वरूपावस्थितस्य सत एव पदार्थस्य यत् कैवल्यं निरन्तरः विशेषः परममहान् ।।२।।

**अनुवाद**— परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश है अपने सामान्य स्वरूप में स्थित उस पृथिवी आदि कार्यो की एकता का नाम परम महान् है । इस समय उसमें न तो प्रलयादि अवस्था भेदों की स्फूर्ति होती है और न तो काल भेद की प्रतीति होती है । उसमें घट पट आदि वस्तुओं की भी कल्पना नहीं होती है ।।२।।

## भावार्थ दीपिका

सूक्ष्ममुक्त्वा स्थूलमाह-सत एवेति । यस्य चरमोंऽशः परमाणुस्तस्यैव सतः कार्यमात्रस्य स्वरूपावस्थितस्य परिणामान्तरमप्राप्तस्य यत्कैवल्यमैक्यं स परममहान् । पुंस्त्वं तु परमाणुप्रतियोगित्वात् । ननु नानाविशेषवान् परस्परं भिन्नश्च सर्वः पदार्थः, कथमैक्यं तस्य तत्राह। अविशेषो विशेषविवक्षारहितो निरन्तरो भेदविवक्षारहितश्च सर्वोऽपि प्रपञ्चः परममहानित्यर्थः।।२।।

## भाव प्रकाशिका

सूक्ष्म काल का वर्णन करके काल के स्थूल रूप को **सत एव इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । जिसका अन्तिम (सूक्ष्मतम) अंश परमाणु है इसी कार्यमात्र की जो स्वरूपतः स्थिति है, जिसका कोई भी दूसरा परिणाम नहीं हुआ है । उसका एकत्व ही परम महान् कहलाता है । परमाणु का प्रतियोगी होने के कारण परम महान् यह पुलिङ्ग प्रयोग हुआ है । **ननुनानाविशेषणवान इत्यादि** प्रश्न है कि जो परस्पर में एक दूसरे से भिन्न सभी पदार्थ अनेक भेदों से युक्त हैं । अतएव उनकी कैसे एकता हो सकती है ? तो उसका उत्तर है कि वह विशेष (भेद की विवक्षा रहित है) इस तरह से सम्पूर्ण प्रपञ्च (जगत्) परम महान् है ।।२।।

**एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम । संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥३॥**

**अन्वयः**— हे सत्तम एवं सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च कालोऽप्यनुमितः अव्यक्तो विभुः भगवान्संस्थान भुक्त्या व्यक्तभुक्॥३॥

**अनुवाद**— हे साधुवर्य ! जैसे सूक्ष्म और स्थूल पदार्थ होते हैं उसी तरह सूक्ष्मावस्था और स्थूलावस्था से युक्त काल का भी अनुमान किया जाता है । यह काल श्रीहरि की शक्ति स्वरूप है और परमाणु आदि सबों में व्यापक है । वह स्वयं अव्यक्त है किन्तु समस्त व्यक्त पदार्थों में व्यापक होकर उन सबों को एक दूसरे से अलग करता है । यह उत्पत्ति इत्यादि में निपुण होने के कारण विभु हैं ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

यथा सूक्ष्मस्थूलश्चायं पदार्थः। एवं कालोऽप्यनुमितः । चकारान्मध्यमावस्था गृह्यते । संस्थानं परमाण्वाद्यवस्थानस्य भुक्तिर्व्याप्तिस्तया भगवानिति हरेः शक्तिः स्वतोऽव्यक्तो व्यक्तं भुङ्क्ते व्याप्नोति परिच्छिनत्तीति तथा । विभुरुत्पत्त्यादिषु दक्षः॥३॥

### भाव प्रकाशिका

जिस तरह पदार्थों के सूक्ष्म और स्थूल भेद होते हैं उसी तरह से काल का भी सूक्ष्म और स्थूल रूप से अनुमान होता है । चकार के द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म इन दोनों के बीच की मध्यम अवस्था को सूचित किया गया है । यह काल श्रीभगवान् की शक्ति है तथा परमाणु आदि सभी पदार्थों में यह व्याप्त है । काल स्वयं तो अव्यक्त है किन्तु यह समस्त व्यक्त पदार्थों में व्यापक रूप से विद्यमान है ॥३॥

**स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् । ततोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥४॥**

**अन्वयः**— यः परमाणुताम् भुंक्ते स वै कालः परमाणुः । यः तु ततोऽविशेषभुक् स कालः परमो महान् ॥४॥

**अनुवाद**— जो काल जगत् की परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्था में व्यापक रहता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म है तथा जो काल सृष्टि से लेकर उसके प्रलयकाल पर्यन्त उसकी सभी अवस्थाओं का भोग करता है वह परम महान् है॥४॥

### भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयति-स इत्यादिना । सतः प्रपञ्चस्य परमाणुतां परमाण्ववस्थां यो भुङ्क्ते स कालः परमाणुः । तस्यैवाविशेषं साकल्यं यो भुङ्क्ते स परम महान् । अयमर्थः-ग्रहर्क्षताराचक्रस्थ इत्यादिना यत्सूर्यपर्यटनं वक्ष्यते, तत्र सूर्यो यावता परमाणुदेशमतिक्रामति तावान्कालः परमाणुः, यावता च द्वादशराश्यात्मकं सर्वं भुवनकोशमतिक्रामति स परममहान् संवत्सरात्मकः कालः, तस्यैवावृत्त्या युगमन्वन्तरादिक्रमेण द्विपरार्धान्तत्वमिति । तथा च पञ्चमे सूर्यगत्यैव कालादिविभागं वक्ष्यति ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

**सः कालः इत्यादि** श्लोक के द्वारा काल की सूक्ष्मावस्था और स्थूलावस्था का विस्तार से वर्णन किया गया है । जगत् की अत्यन्त सूक्ष्म परमण्वावस्था का भोग करने वाला काल परमाणु कहलाता है और जो सम्पूर्ण प्रपञ्च में व्यापक रहता है । उसका सृष्टिकाल से लेकर प्रलय काल पर्यन्त भोग करने वाला काल परम महान् है । **अयमर्थः इत्यादि-** आगे चलकर ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः इत्यादि श्लोक के द्वारा सूर्य का पर्यटन बतलाया जायेगा। जितने समय में सूर्य परमाणु देश को पार करते हैं वह काल परमाणु काल कहलाता है और जितने समय में द्वदशराशि स्वरूप सम्पूर्ण भुवन को पार कर जाते हैं वह संवत्सर स्वरूप काल है । उसी की आवृत्ति करने से युग, मन्वन्तर आदि के क्रम से द्विपरार्ध प्रर्यन्त का काल होता है । पाञ्चवें स्कन्ध में सूर्य की गति से काल आदि विभाग का निरूपण करेंगे ॥४॥

**अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः । जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥५॥**

**अन्वयः**— द्वौ परमाणू अणुः स्यात् । त्रयः त्रसरेणु स्मृतः । जलाकिरश्म्यवगतः खमेव अनुपतन अगात् ॥५॥

**अनुवाद**— दो परमाणुओं का एक अणु होता है । तीन अणुओं के मिलने से एक त्रसरेणु होता है । जो खिड़की के जलरंध्र से आती हुयी सूर्य की रोशनी में आकाश में उड़ते हुए दिखायी देता है ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं द्व्यणुकादिलक्षणपूर्वकं मध्यमकालावस्थां कथयति । द्वौ परमाणू अणुः स्यात् । त्रयोऽणवस्त्रसरेणुः । स तु प्रत्यक्ष इत्याह-जालार्केति। गवाक्षप्रविष्टेष्वर्करश्मिष्ववगतः । कोऽसौ योऽतिलघुत्वेन खमेवानुपतन्नगाद्गतः । पाठान्तरे खमेवानुपतन्नवगतो नतु गां पृथ्वीम् ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

अब द्वयणुक आदि के लक्षण पूर्वक काल की मध्यमावस्था का वर्णन करते हैं । दो परमाणुओं के मिलने से अणु (द्वयणुक) होता है । तीन अणुओं के मिलने से त्रसरेणु होता है । त्रसरेणु का प्रत्यक्ष होता है । इस बात को श्लोक के उत्तरार्द्ध द्वारा कहा गया है । गवाक्ष मार्ग से आयी हुयी सूर्य की किरणों के प्रकाश में त्रसरेणुओं का पता चलता है । वह अत्यन्त लघु होने के कारण आकाश में ही उड़ता हुआ प्रतीत होता है । अनुपतन इस पाठ के अनुसार अर्थ होगा कि त्रसरेणु आकाश में ही उड़ता हुआ ज्ञात होता है, पृथिवी पर नहीं ॥५॥

**त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः । शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥६॥**

**अन्वयः**— यः कालः त्रसरेणु त्रिकं भुंक्ते सः त्रुटिः स्मृतः । शतभाग तु वेधः स्यात् तैः त्रिभिः तु लवः स्मृतः ॥६॥

**अनुवाद**— सूर्य के तीन त्रसरेणुओं को पार करने में जितना समय लगता है उसे त्रुटि कहते हैं । उसके सौ गुना काल को वेध कहते हैं और तीन वेध को लव कहते हैं ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

शतं भागाः त्रुटिरूपा यस्मिन्स वेधः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

सूर्य के तीन त्रसरेणुओं को पार करने में जो समय लगता है, उस काल को त्रुटि कहते हैं । त्रुटि के सौ गुना काल को वेध कहते है । और वेध के तीन गुना काल को लव कहते है ॥६॥

**निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः । क्षणान्पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥७॥**

**अन्वयः**— त्रिलवः निमेषः ज्ञेयः ते त्रयः क्षण आम्नातः, पञ्च क्षणान् काष्ठां विदुः ताः दशपञ्च च लघु ॥७॥

**अनुवाद**— तीन लवों के काल को निमेष जानना चाहिए । तीन निमेषों का एक क्षण जानना चाहिए । पाच क्षणों के काल को काष्ठा कहा गया है । पन्द्रह काष्ठाओं के काल को लघु कहते हैं ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

ते निमेषास्त्रयः क्षण इत्याम्नाताः । काष्ठाः पञ्चदश एकं लघु ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

तीन लवों का एक निमेष जानना चाहिए, तीन निमेषों का एक क्षण होता है, पाँच क्षणों की एक काष्ठा होती है और पन्द्रह काष्ठाओं का एक लघु होता है ॥७॥

**लघूनि वै समाम्रात दश पञ्च च नाडिका । ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्याम सप्त वा नृणाम् ॥८॥**

**अन्वयः**— दश पञ्च लघूनि नाडिका समाम्नाता, ते द्वे मुहूर्तः नृणाम् षट् सप्तवा नाडिकाः प्रहरः याम वा ॥८॥

**अनुवाद**— पन्द्रह लघुओं की एक नाड़िका (दण्ड) कही गयी है । दो नाड़िकाओं का एक मुहूर्त होता है । छह या सात मुहूर्तों का एक प्रहर या याम होता है । मनुष्यों के दिन या रात्रि के चौथाई भाग को प्रहर कहते हैं॥८॥

### भावार्थ दीपिका

नाडिकाः षट् सप्त वा प्रहरः । स एव यामो दिनस्य रात्रेश्च चतुर्थो भागः । ह्रासे षट् वृद्धौ सप्त । सन्ध्यांशमुहूर्तद्वयं विनेति ज्ञातव्यम् । तत्राप्यनियमार्थो वा शब्दः । प्रत्यहं तद्भेदानां गणयितुमशक्यत्वात् ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

छह या सात नाडिकाओं का एक याम या प्रहर होता है । दिन या रात्रि के घटने पर छह नाडिकाओं का प्रहर होता है, तथा बढ़ने पर सात नाडिकाओं का प्रहर होता है । यह दिन या रात्रि का चतुर्थ भाग होता है । यह गणना दिन एवं रात्रि की दोनों संधियों के दो मुहूर्तों को छोड़कर होती है । प्रहर छह नाडिकाओं का हो या सात नाडिकाओं का हो यह कोई नियम नहीं है, इस अर्थ को वा शब्द सूचित करता है । प्रतिदिन पल विपल इत्यादि के भेदों को गिनना अशक्य है ॥८॥

**द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः । स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥९॥**

**अन्वयः**— द्वादशार्धपलोन्मानं यावत्प्रस्थजलाप्लुतम् चतुरङ्गुलैः चतुर्भिः स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रम् ॥९॥

**अनुवाद**— छह पल ताम्बे का एक ऐसा बर्तन बनाये जिसमें एकप्रस्थ जल अँट सके और चार माशे सोने की चार अङ्गुल लम्बी सलाई बनवाकर उसके द्वारा उस वर्तन के पेंदे में छेद करके उसे जल में छोड़ दिया जाय जितने समय में एकप्रस्थ जल उसमें भर जाय और वह वर्तन पानी में डूब जाय उतने समय को एक नाडिका कहते हैं॥९॥

### भावार्थ दीपिका

नाडिकाया उन्मानमाह । उन्मीयतेऽनेनेत्युन्मानं पात्रं षटपलताम्रविरचितम् । पञ्चगुञ्जो माषस्तैश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलायामशलाकारूपेण रचितैः कृतमूलच्छिद्रं तेन छिद्रेण यावत्प्रस्थपरिमितं जलं प्रविशति तेन च प्लुतं निमग्नं भवति तावान्कालो नाडिका अत्र पलच्छिद्रयोराधिक्ये शीघ्रं निमज्जेदल्पत्वे च विलम्बेनेति पलशलाकयोर्नियमः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

उन्मान पात्र को कहते हैं । छह पल ताम्बे से निर्मित हो वह पात्र । पाञ्च गुञ्जों का एक माष होता है । चार माशे सुवर्ण की चार अङ्गुल लम्बी शलाका से उस पात्र के पेंदी में छिद्र करे । उस छिद्र से जितने समय में उस पात्र में एक प्रस्थ जल प्रवेश कर जाय और उस जल से भरा हुआ पात्र जल में डूब जाय उस समय को नाडिका कहते हैं । यदि पल और शलाका का नियम नहीं किया जाय तो छिद्र के बड़ा हो जाने पर पात्र शीघ्र भर जायेगा । और छिद्र के छोटा होने पर पात्र देर से भरेगा । इसीलिए पल और शलाका का नियम किया गया है कि पात्र छह पल ही ताम्बे का हो और शलाका चार माशे सुवर्ण की चार अङ्गुल लम्बी ही होनी चाहिए॥९॥

**यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे । पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे मानद ! चत्वारः चत्वारः यामाः मर्त्यानाम् उभे अहनी पञ्चदशाहानि पक्षः शुक्लः कृष्णः च ॥१०॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! चार-चार प्रहरों के मनुष्यों के दिन और रात होते हैं । पन्द्रह दिनों का पक्ष होता है । पक्ष दो होते हैं शुक्ल और कृष्ण ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

अहनी अहोरात्रम् ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

दिन और रात दोनों ही चार-चार प्रहरों के होते हैं, पन्द्रह दिन और रात का एक पक्ष होता है ।।१०।।

**तयोः समुच्चयो मासः पितॄणां तदहर्निशम् । द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ।।११।।**

**अन्वयः**— तयोः समुच्चयो मासः तत् पितॄणाम् अहर्निशम् द्वौ तौ ऋतुः, षड्अयनं दिवि दक्षिणम् उत्तरं च ।।११।।

**अनुवाद**— दो पक्षों का एक मास होता है । मनुष्यों के एक मास का पितरों का एक दिन रात होता है। दो मासों का एक ऋतु होता है। छह मासों का एक अयन होता है और अयन दो होते है उत्तरायण और दक्षिणायन।।११।।

### भावार्थ दीपिका

षण्मासा अयनम् । दिवीत्यस्योत्तरेणान्वयः ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

छह मासों का एक अयन होता है। दिवि पद का अगले श्लोक के साथ अन्वय है ।।११।।

**अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः । संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ।।१२।।**

**अन्वयः**— अयने च दिवि अहनी, वत्सरो द्वादशः स्मृतः । संवत्सरशतं नृणां परमायुः निरूपितम् ।।१२।।

**अनुवाद**— दो अयनों का देवताओं का एक दिन और एक रात होता है । मनुष्य लोक में इसे बारह मास अथवा संवत्सर कहा जाता है । सौ संवत्सरों की मनुष्यों की परमायु बतलायी गयी है ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

दिवीति देवानामहोरात्रे प्राहुः । द्वादश मासाः ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

दोनों अयनों का देवताओं के दिन और रात होते है । देवताओं के एक दिन रात में मनुष्यों के बारह महीने होते हैं ।।१२।।

**ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् । संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ।।१३।।**

**अन्वयः**— ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः अनिमिषः विभुः परमाण्वादिना संवत्सरावसानेन पर्येति ।।१३।।

**अनुवाद**— ग्रहों, नक्षत्रों और तारा समूह में ही विद्यमान कालस्वरूप भगवान् सूर्य परमाणु से लेकर संवत्सर पर्यन्त काल में द्वादशराशि रूप सम्पूर्ण भुवन कोश की परिक्रमा किया करते हैं ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

अनेन क्रमेणासौ सूर्यो नित्यमायुः क्षपयतीत्याह । ग्रहाश्चन्द्रादयः, ऋक्षाण्यश्विन्यादीनि, तारा अन्यानि नक्षत्राणि, तदुपलक्षितं यत्कालचक्रं तत्र स्थितोऽनिमिषः कालात्मा विभुरीश्वरः सूर्यो जगद्द्वादशराश्यात्मकं भुवनकोशं पर्येति पर्यटति ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

इस क्रम से यह बतलाया गया कि सूर्य नित्य ही मनुष्यों की आयु के क्षीण करते हैं । चन्द्रमा आदि ग्रह अश्विनी आदि नक्षत्र, तथा दूसरे नक्षत्र इन सबों से उपलक्षित कालचक्र के भीतर रहने वाले कालस्वरूप सूर्य ही ग्रहादि के अधिष्ठाता हैं, और वे द्वादशात्मक भुवन कोश में पर्यटन करते रहते हैं ।।१३।।

**संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च । अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥१४॥**

**अन्वयः**— विदुर ! संवत्सरः परिवत्सरः इडावत्सरः, अनुवत्सरः वत्सरः च एवं प्रभाष्यते ॥१४॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! सूर्य, बृहस्पति, सवन, चन्द्रमा और नक्षत्र सम्बन्धी महीनों के भेद से यह वर्ष ही संवत्सर परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर के नाम से अभिहित किया जाता है ॥१४॥

## भावार्थ दीपिका

संवत्सरादिभेदश्च सौरबार्हस्पत्यसावनचान्द्रनाक्षत्रमासभेदेन द्रष्टव्यः । केचित्पुनरेवमाहुः । यद शुक्लपक्षप्रतिपदि संक्रान्तिर्भवति सौरचान्द्रमासयोर्युगपदुपक्रमो भवति च संवत्सरः । ततः सौरमानेन वर्षे षट् दिनानि वर्धन्ते चान्द्रमानेन वर्षे षट् दिनानि ह्रसन्तीति द्वादशदिनव्यवधानादुभयोरग्रपश्चाद्भावो भवति । एवं व्यवधानतारतम्येन पञ्चवर्षाणि गच्छन्ति । तन्मध्ये द्वौ मलमासौ भवतः । पुनः षष्ठः संवत्सरो भवति ॥१४॥

## भाव प्रकाशिका

संवत्सर आदि के भेद सूर्य, बृहस्पति, सावन, चन्द्र और नक्षत्र सम्बन्धी मासों के भेद से वर्ष को ही कहा जाता है । **केचित् पुनराहुः इत्यादि** कुछ लोगों का कहना है कि जब शुक्लपक्ष की प्रतिपत् तिथि को सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों की एक समय संक्रान्ति होती है । उस समय से प्रारम्भ होने वाला वर्ष संवत्सर कहलाता है । उसके कारण सूर्य के मान से वर्ष भर में छह दिन बढ जाते हैं और चन्द्रमा सम्बन्धी मान से छह दिन घट जाते हैं। इस तरह से बारह दिन का व्यवधान होने के कारण पाञ्च वर्ष के बाद छठे वर्ष में पुनः संवत्सर होता है । इन छह वर्षों में दो पुरुषोत्तम मास होते हैं । व्यवधान की दृष्टि से जिसका व्यवहार होता है वह तीस दिनों का सावन मास होता है । बारह सावन मासों का एक इडावत्सर होता है । आमावस्या पर्यन्त होने वाला मास चान्द्र मास कहलाता है । बारह चान्द्र मासों का एक अनुवत्सर होता है ॥१४॥

**यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशत्तया पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः।**
**कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मै हरत वत्सरपञ्चकाय ॥१५॥**

**अन्वयः**— यः भूतभेदः स्वशक्त्या कालख्यया सृज्यशक्तिम् उरुधा उच्छवसयन् पुंसः अभ्रमाय क्रतुभिः गुणमयं वितन्वन् दिवि धावति तस्मै वत्सरपञ्चकाय बलिं हरत ॥१५॥

**अनुवाद**— ये सूर्यदेव पञ्च भूतों में तेजः स्वरूप हैं अपनी काल नामक शक्ति के द्वारा सृज्य कार्य पदार्थों की अङ्कुर उत्पन्न करने की शक्ति को अनेक प्रकार से कार्योन्मुख करते हैं । पुरुषों की मोह निवृत्ति के लिए उनकी आयु का क्षय करते हुए आकाश में विचरण करते हैं । ये ही सकाम पुरुषों को यज्ञादि कर्मो से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि फलों का विस्तार करते हैं, ऐसा पाँच प्रकार के वर्षों को प्रवृत्त करने वाले भगवान् सूर्य की तुम अनेक प्रकार के पूजोपहारों द्वारा पूजा करो ॥१५॥

## भावार्थ दीपिका

एवंभूतः कालात्मा नित्यमप्रमत्तैः पूजनीय इत्याह-य इति । सृज्यं कार्यमङ्कुरादि तद्विषयां बीजादीनां शक्तिं कालरूपया स्वशक्त्या बहुधोच्छ्वसयन्कार्याभिमुखीकुर्वन् दिव्यन्तरिक्षे धावति । कोऽसौ । भूतभेदो महाभूतविशेषस्तेजोमण्डलरूपी सूर्यः। किमर्थं धावति । पुरुषस्याभ्रमाय भ्रमो मोहस्तन्निवृत्तये । आयुरादिव्ययेन विषयासक्तिं निवर्तयन्नित्यर्थः । सकामानां तु गुणमयं स्वर्गादिफलं क्रतुभिर्विस्तारयन् । तस्मै संवत्सरपञ्चकप्रवर्तकाय पूजां कुरुत ॥१५॥

## भाव प्रकाशिका

इस तरह कालस्वरूप भगवान् सूर्य की पूजा सदा सावधानी पूर्वक करनी चाहिए इस बात को **यः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । इस तरह के भगवान् सूर्य सृज्य जो अङ्कुर आदि हैं उनके बीज आदि की शक्ति

को अपनी काल नामक शक्ति के द्वारा अनेक प्रकार से कार्योन्मुख बनाते हुए आकाश में विचरण करते हैं। अब प्रश्न है कि ये कौन हैं ? तो इसका उत्तर है कि वे महाभूतों के तेजः स्वरूप भगवान सूर्य हैं। वे क्यों आकाश में विचरण करते हैं तो इसका उत्तर है कि पुरुषों के मोह को दूर करने के लिए। आयु आदि को क्षीण करके मनुष्यों की विषयो में होने वाली आसक्ति को दूर करने के लिए। वे सकाम पुरुषों को गुणमय स्वर्गादि की प्राप्ति रूपी फल का विस्तार करते हुए विचरण करते हैं। इस तरह से पाञ्च प्रकार के संवत्सर को प्रवृत्त करने वाले भगवान् सूर्य की आप लोग पूजा करें ॥१५॥

विदुर उवाच

**पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम्। परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥१६॥**

**अन्वयः**— इदम् पितृदेवमनुष्याणाम् परम आयुः स्मृतम्। परेषां कल्पाद् बहिः विदः ये स्युः तेषां गतिम् आचक्ष्व॥१६॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— यह तो आपने पितरों, देवताओं और मनुष्यों की परम् आयु का निरूपण किया है, अब आप उन लोगों की आयु को बतलाएँ जो त्रिलोकी से बाहर है तथा कल्पों से भी बाहर ज्ञानी पुरुष हैं ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

इदं स्वस्वमानेन वर्षशतं गणितमायुर्मानम्। प्रत्यहं कल्प्यते सृज्यते इति कल्पस्त्रैलोक्यं तस्माद्बाह्यतः। विदो ज्ञानिनः॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

आपने यह जो बतलाया है कि अपने अपने प्रमाणानुसार सौ वर्षों की आयु पितरों, देवताओं और मनुष्यों की परमायु होती है। जिसकी प्रतिदिन रचना ब्रह्माजी करते हैं यह तो उन त्रिलोकी के जीवों की बात हुयी। त्रिलोकी से बाहर तथा कल्प से भी बाहर रहने वाले जो ज्ञानी सनकादि महर्षि हैं उनकी आयु का आप निरूपण करें ॥१६॥

**भगवान्वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु। विश्वं विचक्षते धीरा योगाराद्धेन चक्षुषा ॥१७॥**

**अन्वयः**— भगवान् ननु भगवतः कालस्य गतिं वेद। धीराः योगाराद्धेन चक्षुषा विश्वं विचक्षते ॥१७॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप भगवान् काल की गति को भलीभांति जानते हैं। ज्ञानी पुरुष अपनी योग सिद्ध दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को देख लेते हैं ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

योगराद्धेन योगसिद्धेन ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

योगराद्धेन पद का अर्थ योगसिद्ध अपनी दिव्य दृष्टि से ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

**कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्। दिव्यैर्द्वादशाभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः च इति चतुर्युगम् दिव्यैः द्वादशभिः वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१८॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये चारो युग अपनी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश के साथ देवताओं के बारह हाजर वर्षों के होते हैं, यह कहा गया है ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

द्वादशभिर्वर्षसहस्रैरित्युत्तरश्लोकसमार्थ्याज्ज्ञातव्यम्। अवधीयत इत्यवधानं सन्ध्या चांशश्च तत्सहितम् ॥१८॥

## भाव प्रकाशिका

ये चारो युग देवताओं के बारह हजार वर्ष पर्यन्त अपनी संध्या एवं संन्ध्यांश के साथ रहते हैं इस बात का अगले श्लोक के सामर्थ्य से ज्ञान होता है। **सावधानं** का विग्रह बतलाते हुए श्रीधर स्वामी कहते हैं— **अवधीयते इति अवधानम्** अर्थात् सन्ध्या और सन्ध्यांश तत्सहितम् अर्थात् संन्ध्या और सन्ध्यांश के साथ यह **सावधानम्** पद का अर्थ है ॥१८॥

**चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् । संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥**

**अन्वयः**— कृतादिषु यथाक्रमम् चत्वारि, त्रीणि, द्वे, एकंच सहस्राणि संख्यातानि द्विगुणानि शतानि च ॥१९॥

**अनुवाद**— सत्ययुग आदि चारो युगों में क्रमशः चार हजार, तीन हजार, दो हजार औरएक हजार दिव्य वर्ष होते हैं। और इन युगों की सन्ध्या और संध्यांश कृतयुग आठ सौ वर्ष, त्रेतायुग की सन्ध्या एवं संध्यांश छह सौ वर्ष, द्वापर युग की सुन्ध्या एवं संध्यांश चार सौ वर्षों की और कलियुग की संध्या एवं संध्यांश में दो सौ वर्षों की होते हैं। इस तरह चार युग अपनी संध्या संध्यांश के साथ बारह हजार दिव्य वर्षों पर्यन्त में होते हैं ॥१९॥

## भावार्थ दीपिका

कृतयुगे चत्वारि सहस्राणि सन्ध्यासन्ध्यांशयोश्चत्वारिचत्वारीत्यष्टौ शतानि च । एवं त्रेतादिष्वपि योज्यम् ॥१९॥

## भाव प्रकाशिका

सत्ययुग में चार हाजर दिव्य वर्ष होते हैं और उसकी संध्या चार सौ वर्ष की और संध्यांश चार सौ वर्ष का होता है। इसी तरह से त्रेता आदि युगों में उन युगों की संध्या और संध्यांश आदि को भी जोड़ना चाहिए॥१९॥

**सन्ध्यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः । तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥२०॥**

**अन्वयः**— संध्यांशयोः शतसंख्ययोः अन्तरेण यः कालः तमेव तज्ज्ञाः युगं आहुः यत्र धर्मोविधीयते ॥२०॥

**अनुवाद**— चूकि आदि में सन्ध्या होती है और अन्त में सन्ध्यांश होता है, इन दोनों की गणना सैकड़ों में बतलायी गयी है। इन दोनों के बीच का जो काल होता है उसी को कालवेत्ताओं ने युग कहा है। प्रत्येक युग मे एक-एक धर्म का विधान होता है ॥२०॥

## भावार्थ दीपिका

युगस्यादौ सन्ध्या अन्तेंऽशः सन्ध्यांशः । उक्तानि शतानि संख्या ययोस्तयोरन्तरेण मध्ये युगम् । तस्य विशेषमाह-यत्रेति । गवालम्भादिधर्मविशेषो यत्र विधीयत इत्यर्थः । साधारणधर्मस्तु सन्ध्यांशयोरप्यस्त्येव ॥२०॥

## भाव प्रकाशिका

युग के आदि में संध्या होती और अन्त में संध्याशं अंश होता है। दोनों मिलकर संध्यांश होते हैं। जिन संध्या और अंशों की संख्या सैकड़ों में बतलायी गयी है उन दोनों के बीच के काल को युग कहते हैं। उन युगों में ही गावालम्भन आदि कर्म किए जाते हैं। साधारण धर्म तो सन्ध्या और संध्याशं का भी होता ही है ॥२०॥

**धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृते समनुवर्तते । स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥२१॥**

**अन्वयः**— कृते मनुजान् धर्मः चतुष्पात् अनुवर्तते स एव अन्येषु वर्धता अधर्मेण पादेन व्येति ॥२१॥

**अनुवाद**— सत्ययुग के मनुष्यों में धर्म चार पैरों वाला होकर रहता है। दूसरे युगों में अधर्म के बढने के कारण उस धर्म के क्रमशः एक-एक चरण क्षीण होते जाते हैं ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

चतुष्पात् संपूर्णः । त्रेतादिषु पादेन पादेन व्येति ह्रसति । पादेन पादेन वर्धमानेनाधर्मेण हेतुना । एतश्च स्वरूपकथनमात्रं वैराग्यार्थं न तु धर्मसंकोचनार्थम् ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

कृतयुग में धर्म सम्पूर्ण रहता है । त्रेता आदि युगों में धर्म का एक-एक चरण क्षीण होता जाता है । उसका कारण अधर्म की वृद्धि होती है । यह युगों का स्वरूप बतलाने के लिए कहा गया है जिससे कि मनुष्यों में संसार से वैराग्य उत्पन्न हो जाय । इस वर्णन का उद्देश्य धर्म का संकोच करना नहीं है ।।२१।।

**त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् । तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ।।२२।।**

**अन्वयः**— हे तात ! त्रिलोक्याः बहिः युगसाहस्रं ब्रह्मणो दिनम् । तावती एव निशा यत् विश्वसृक् निमीलति ।।२२।।

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से लेकर सत्यलोक पर्यन्त त्रिलोकी के एक हजार चतुर्युग का ब्रह्माजी का एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात भी होती है । इस रात में ब्रह्मा जी शयन करते हैं।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

त्रिलोक्या बहिर्महर्लोकप्रभृति ब्रह्मलोकमभिव्याप्य चतुर्युगसहस्रमेकं दिनम् । यत् यस्यां विश्वसृक् ब्रह्मा निमीलति स्वपिति ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से लेकर ब्रह्माजी के लोक पर्यन्त चार लोक है । इन लोकों में एक हजार चतुर्युग का एक दिन होता है । यही ब्रह्माजी का दिन होता है और ब्रह्माजी की इतनी बड़ी रात भी होती है । रात में ब्रह्माजी शयन करते हैं ।।२२।।

**निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते । यावद्दिनं भगवतो मनून्भुञ्जंश्चतुर्दश ।।२३।।**

**अन्वयः**— निशावसाने आरब्धः लोककल्पः अनुवर्तते । भगवतः यावद् दिनम् चतुर्दश मनून् भुञ्जन् ।।२३।।

**अनुवाद**— ब्रह्माजी की रात्रि के बीत जाने पर इस लोक का कल्प प्रारम्भ होता है । जब तक ब्रह्माजी का दिन रहता है तब तक उसका क्रम चलता रहता है । उस एक कल्प में चौदह मनु हो जाते हैं ।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र दिनस्थितिमाह-निशावसान इत्यादिसार्धैश्चतुर्भिः । चतुर्दशमनून्भुञ्जन्पालयन् । व्याप्नुवन्नित्यर्थः ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

उसमें भी दिन की स्थिति को मैत्रेय जी साढे चार श्लोकों में बतलाते हैं । ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु भोग करते हैं । भुञ्जन् को अर्थ पालन करते हैं भी होगा । अर्थात् चौदह मनुओं के भोग काल पर्यन्त ब्रह्माजी का एक दिन होता है ।।२३।।

**स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् । मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ।।**
**भवन्ति चैव युगपत् सुरेशाश्चानु ये च तान् ।।२४।।**

**अन्वयः**— मनुःहि स्वं एवं कालं एक सप्ततिम् साधिकां भुङ्क्ते । मन्वन्तरेषु मनवः तद्वंश्याः, ऋषयः सुराः युगपत् भवन्ति ये च सुरेशाशाश्च अनु तान् ।।२४।।

**अनुवाद**— प्रत्येक मनु इकहतर चतुर्युगों से कुछ अधिक चतुर्युगों का भोग करते हैं । प्रत्येक मन्वन्तर में

भिन्न-भिन्न मनुवंशी राजा लोग सप्तिर्षिगण देवगण, इन्द्र और उनके अनुयायी गन्धर्व आदि भी साथ ही साथ अपना अधिकार भोगते हैं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

किंचिदधिकां युगानामेकसप्ततिम् । मनुवंश्याः पृथ्वीपालकाः क्रमेण भवन्ति । सप्तर्षिप्रभृतयस्तु युगपत्समकालमेव भवन्ति । सुरेशा इन्द्राः ।ताननुवर्तन्ते ये गन्धर्वादयस्तेऽपि ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

प्रत्येक मनु एकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक काल तक अपने अधिकार का भोग करते हैं । इन मनुओं के काल में मनुवंशीय राजा लोग होते हैं । वे सब क्रमशः होते हैं । किन्तु सप्तर्षि आदि तो एक ही समय में होते हैं । सुरेशा शब्द से इन्द्रों को कहा गया है । और इन्द्र आदि के अनुयायी जो गन्धर्व आदि होते हैं वे भी समकाल में ही उत्पन्न होते हैं ॥२४॥

**एष दैनंदिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः । तिर्यङ्नृपितृदेवानां संभवो यत्र कर्मभिः ॥२५॥**

**अन्वयः**— एषः त्रैलोक्यवर्तनः ब्राह्मः दैनन्दिनः सर्गः यत्र तिर्यङ्नृपितृदेवानां कमर्भिः संभवः ॥२५॥

**अनुवाद**— यह ब्रह्माजी की प्रतिदिन की सृष्टि है । इसमें त्रैलोक्य की रचना होती है । इसमें ही अपने-अपने कर्मानुसार पशु, पक्षी, मनुष्य, पितृगण और देवताओं की उत्पत्ति होती है ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

त्रैलोक्यं वर्तयतीति तथा ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की इस दैनन्दिनी सृष्टि में ही त्रैलोक्य की रचना होती है । इसी में अपने-अपने कर्मों के अनुसार पशु पक्षी, मनुष्य, पितृगण और देवताओं की उत्पत्ति होती है ॥२५॥

**मन्वन्तरेषु भगवान्बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः । मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥२६॥**

**अन्वयः**— मन्वन्तरेषु भगवान् सत्त्वं विभ्रत् मन्वादिभिः स्वमूर्तिभिः उदितपौरुषः सन् विश्वमवति ॥२६॥

**अनुवाद**— इन मन्वन्तरों में भगवान् सत्त्वगुण का आश्रय लेकर अपनी मनु आदि मूर्तियों द्वारा अपने पौरुष को प्रकट करते हुए सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करते हैं ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

स्वमूर्तिभिर्मन्वन्तरावतारैर्मन्वादिभिर्द्वारभूतैराविष्कृतपुरुषाकारः सन्विश्वं रक्षति ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

मन्वन्तरों में अवतीर्ण होने वाले मनु आदि मूर्तियों के माध्यम से अपना पुरुषाकार प्रकट करके श्रीभगवान जगत् की रक्षा करते हैं ॥२६॥

**तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः । कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥२७॥**

**अन्वयः**— कालेनानुगताशेष दिनात्यये तमोमात्राम् उपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः तुष्णीं अस्ते ॥२७॥

**अनुवाद**— कालक्रम से जब ब्रह्माजी का पूरा दिन बीत जाता है उस समय वे तमोगुण की मात्रा को स्वीका करके सृष्टि रचना रूप अपने पौरुष को स्थगित करके निश्चेष्ट रूप से स्थित हो जाते हैं ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

रात्रिगतां स्थितिमाह पञ्चभिः। तमसो मात्रां लेशम्। प्रतिसंरुद्धः प्रत्याहृतो विक्रमो येन। अनुगतमनुप्रविष्टमशेषं यस्मिन्॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की रात्रि में होने वाली स्थिति को मैत्रेयजी ने पाँच श्लोकों में वर्णित किया है। रात्रि के आ जाने और दिन के बीत जाने पर ब्रह्माजी तमोगुण की मात्रा को स्वीकार कर लेते हैं। और अपनी सृष्टि की रचना रूप प्रयास को स्थगित कर देते हैं। उस समय सम्पूर्ण जीव समुदाय काल में लीन हो जाता है॥२७॥

**तमेवान्वपिधीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः। निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम्॥२८॥**

**अन्वयः**— निशायामनुवृत्तायाम् भूरादयः त्रयः लोकाः निर्मुक्तशशिभास्करम् तमेवानु अपिधीयन्ते॥२८॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी की रात्रि के आ जाने पर भूलोक आदि तीनों लोक सूर्य तथा चन्द्रमा से रहित होकर ब्रह्माजी में ही लीन हो जाते हैं॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

तदेव स्पष्टयति-तमेवेति। अन्वपिधीयन्त इति कर्मकर्तरिप्रयोगः। तिरोहिता भवन्तीत्यर्थः। कथम् निर्मुक्तो रहितः शशी भास्करश्च यथा भवति तथा॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

**तमेव इत्यादि** श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी की रात्रिकाल की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। **अन्वपिधीयन्ते** यह कर्मकर्ता में प्रयोग है। अन्वपिधीयन्ते का अर्थ है कि लीन हो जाते हैं। अर्थात् उस समय त्रैलोक्य में सूर्य एवं चन्द्रमा नहीं रहते हैं और सम्पूर्ण त्रैलोक्य ब्रह्माजी में ही लीन हो जाता है॥२८॥

**त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या संकर्षणाग्निना। यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः॥२९॥**

**अन्वयः**— सङ्कर्षणाग्निना शक्त्या त्रिलोक्यां दह्यमानायां उष्मणा अर्दिताभृग्वादयः महर्लोकाज्जनलोकं यान्ति॥२९॥

**अनुवाद**— उस समय शेषनाग के मुख से निकली हुयी अग्नि रूपी शक्ति से त्रैलोक्य जलने लगता है उस समय उसकी गर्मी से व्याकुल होकर भृगु आदि महर्षिगण महर्लोक से जनलोक में चले जाते हैं॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

भगवच्छक्तिरूपो यः संङ्कर्षणमुखाग्निस्तेनोष्मणाऽर्दिताः सन्तो जनलोकं यान्ति॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् की शक्ति रूपी जो सङ्कर्षण के मुख से निकली हुयी अग्नि उसकी गर्मी से सन्तप्त होकर भृगु आदि महर्षिगण महर्लोक से जनलोक में चले जाते हैं॥२९॥

**तावत्त्रिभुवनं सद्यःकल्पान्तैधितसिन्धवः। प्लावयन्त्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः॥३०॥**

**अन्वयः**— तावत् उत्कटाटोपचण्डऽवातेरितोर्मयः कल्पान्तैधितसिन्धवः सद्यः त्रिभुवनं प्लावयन्ति॥३०॥

**अनुवाद**— उसी समय सातो समुद्र प्रलय कालीन प्रचण्ड वायु से उमड़कर अपनी विशाल तरङ्गों से शीघ्र ही त्रिभुवन को डुबा देते हैं॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

कल्पान्तेनैधिताः सिन्धवः समुद्राः। उत्कट आटोपः क्षेभो येषां ते च ते चण्डवातैरीरितोर्मयश्च॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् सङ्कर्षण के मुख की अग्नि से त्रिलोकी के जल जाने पर उसी समय प्रलय कालीन प्रचण्ड वायु चलने लगती है और उसके कारण सातों समुद्रों में अत्यन्त बड़ी-बड़ी लहरियाँ उठने लगती हैं और सारा त्रैलोक्य उन बढ़े समुद्र की लहरियों में डूब जाता है ।।३०।।

**अन्तःस तस्मिन्सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः । योगनिद्रानिमीलिताक्षः स्तूयमानो जनालयैः ।।३१।।**

**अन्वयः**— तस्मिन् सलिले अन्तःसः अनन्तासनः हरिः योगनिद्रानिमीलिताक्षः जनालयैः स्तूयमानः आस्ते ।।३१।।

**अनुवाद**— उस जल के भीतर शेषशायी भगवान् योगनिद्रा के कारण अपनी आँखें बन्द करके शयन करते हैं और जनलोक निवासी मुनिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**

जनलोक आलयो येषां महर्लोकगतानामन्येषां च तैः ।।३१।।

**भाव प्रकाशिका**

जिस समय एकार्णव के भीतर शेषशायी भगवान् योगनिद्रा के कारण अपनी आँखें बन्द करके शयन करते हैं, उस समय महर्लोक से जनलोक में गये हुए भृगु आदि महर्षिगण तथा दूसरे जनलोक में रहने वाले ऋषिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ।।३१।।

**एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः । अपक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयः शतम् ।।३२।।**

**अन्वयः**— कालगत्योपलक्षितैः एवं विधैरहोरात्रैः अस्यापि परमायुः वयः शतम् अपक्षितमिव ।।३२।।

**अनुवाद**— इस प्रकार की काल की गति से एक एक हजार चतुर्युग के रूप में प्रतीत होने वाले बदलते रहने वाले दिनों और रातों के द्वारा ब्रह्माजी सौ वर्षों की आयु भी बिती हुयी सी प्रतीत होती है ।।३२।।

**भावार्थ दीपिका**

वैराग्यार्थमाह । एवंविधैरहोरात्रैर्वर्षशतं सर्वेषां प्राणिनामायुषः परमधिकमस्य ब्रह्मणो यदायुस्तदप्यपक्षितमिव क्षीणमिवेति लोकोक्तिः । गतप्रायमित्यर्थः ।।३२।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में बतलाया जा रहा है कि ब्रह्माजी की ही आयु सबसे बड़ी मानी जाती है एक-एक हजार चतुर्युगों की उनका दिन और रात होती है । उस गणना के अनुसार जब ब्रह्माजी की भी आयु बीत जाती है तो फिर मनुष्यादि की आयु की कौन सी बात है ? अतएव इस क्षणभङ्गुर संसार से सभी जीवों को विरक्त हो जाना चाहिए इस तरह से मनुष्यों के मन में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए मैत्रेय महर्षिने इस श्लोक को कहा है । **एवं विधैरहोरात्रैः इत्यादि** इस प्रकार के दिनों एवं रात्रियों वाली ब्रह्माजी की सौ वर्ष की आयु भी जब बीत जाती है तो फिर मनुष्यों की आयु के विषय में क्या कहना है ।।३२।।

**यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते । पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ।।३३।।**

**अन्वयः**— तस्य आयुषः यद् अर्ध तत् परार्धम् अभिधीयते पूर्वः परार्धः अपक्रान्तः अद्य अपरः प्रवर्तते ।।३३।।

**अनुवाद**— ब्रह्माजी की आयु का जो आधा भाग होता है उसको परार्ध कहते हैं । ब्रह्माजी की आयु का प्रथम परार्ध बीत चुका है, उसका द्वितीय परार्ध इस समय चल रहा है ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेवाह-यदिति ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की आयु बीत सी चुकी है इसी बात को **यदधर्म इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा कहा जा रहा है। ब्रह्माजी की आयु के आधे भाग को परार्ध शब्द से कहा जाता है । ब्रह्माजी की आयु का प्रथम परार्ध बीत चुका है और इस समय उनकी आयु का दूसरा परार्ध चल रहा है ॥३३॥

**पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् । कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥३४॥**

**अन्वयः**— पूर्वस्य परार्धस्य आदौ ब्राह्मः नाम महान् कल्पः अभूत् यत्र ब्रह्मा अभवत् यं शब्दब्रह्म इति विदुः ॥३४॥

**अनुवाद**— प्रथम परार्ध के अन्त में ब्राह्म नामक महान् कल्प हुआ था, उसी कल्प में ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी थी उसी को पण्डितजनों ने शब्दब्रह्म कहा है ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

पूर्वस्य परार्धस्यादविति त्रिभिर्वस्तु कथनम् ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

**पूर्वस्यादौ० इत्यादि** तीन श्लोकों के द्वारा वस्तु का वर्णन किया गया है ॥३४॥

**तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते । यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥३५॥**

**अन्वयः**— तस्यैव च अन्ते यः कल्पः अभूत् यं पाद्मम् अभिचक्षते । यत् हरेः नाभिसरसः लोकसरोरुहम् आसीत्॥३५॥

**अनुवाद**— उस परार्द्ध के अन्त में जो कल्प हुआ था उसको पाद्मकल्प कहते हैं । इसी में श्रीहरि के नाभिसरोवर से सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ था ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

पाद्मत्वे हेतुः यदिति ॥३५॥

### भाव प्रकाशिका

पाद्मकल्प नाम का कारण **यद्हरेः इत्यादि** इस श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा बतलाया गया है । चूकि इसी कल्प में श्रीहरि के नाभि सरोवर से सर्वलोकमय कमल पैदा हुआ था इसी से इस कल्प को पाद्मकल्प कहते हैं॥३५॥

**अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत । वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः ॥३६॥**

**अन्वयः**— हे भारत ! द्वितीयस्यापि आदौ अयं तु कल्पः वाराह इति ख्यातः यत्र हरिः सूकर आसीत् ॥३६॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! द्वितीय परार्ध के आदि में जो यह कल्प हुआ, उसको वाराह कल्प कहते हैं, इस कल्प में श्रीहरि ने सूकर का रूप धारण कर लिया था ॥३६॥

### भावार्थ दीपिका

अयं तु द्वितीयस्यादौ कथितः ॥३६॥

### भाव प्रकाशिका

यह जो कल्प है वह द्वितीय परार्ध का प्रथम कल्प है । इसे वाराह कल्प कहते हैं क्योंकि इस कल्प मे श्रीभगवान् वाराह का रूप धारण कर लिए थे ॥३६॥

**कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते । अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥३७॥**

**अन्वयः**— अयं द्विपरार्धाख्यः कालः अव्याकृतस्य अनन्तस्य अनादेः जगदात्मनः निमेष उपचर्यते ॥३७॥

**अनुवाद**— यह जो दो परार्धों का काल है, वह अव्यक्त, अनन्त तथा अनादि सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् का निमेष माना जाता है ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं कालेन निमित्तेन सृज्यानामायुःपरिमाणमुक्त्वा कालपरिच्छेदरहितं तत्त्वमाह-कालोऽयमिति पञ्चभिः । उपचर्यते केवलं न त्वनेनापि क्रमेणायुर्गणनं तस्येत्याह। अव्याकृतस्य कार्योपाधिशून्यस्य अत एवानन्तस्यानादेश्च जगदात्मनो जगत्कारणस्य॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह कालरूपी साधन के द्वारा सृज्य जीवों की आयु के परिमाण को बतलाकर काल की सीमा से रहित परमात्मतत्त्व का वर्णन मैत्रेय महर्षि पाँच श्लोकों से करते हैं । द्विपरार्द्ध रूपी काल को निमेष के द्वारा उपचारित किया जाता है न कि उसके द्वारा परमात्मा की आयु की गणना की जाती है । परमात्मा तो कार्योपाधि से रहित हैं अतएव वे अनन्त और अनादि हैं । वे ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं ॥३७॥

**कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः । नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ॥३८॥**

**अन्वयः**— परमाण्वादिः द्विपरार्धान्तः अयं कालः ईश्वरः भूम्नः ईशितुं नैव प्रभुः अयं तु धाममानिनाम् प्रभुः ॥३८॥

**अनुवाद**— परमाणु से लेकर द्विपरार्ध पर्यन्त फैला हुआ यह काल सर्वसमर्थ है किन्तु वह सर्वात्मा श्रीहरि पर किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं रखता है। वह तो देह गेह आदि में अभिमान रखने वाले जीवों का नियामक है॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

तत्परिच्छेदे कालस्यासामर्थ्यादित्याह । कालोऽयमीश्वरः समर्थोऽपि भूम्नः परिपूर्णस्येशितुं नैव प्रभुः समर्थः । यतो धाममानिनां देहगेहाभिमानिनामेवेश्वरः ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

परमात्मा के परिसीमन में काल के असामर्थ्य को बतलाते हुए कहते हैं । यह काल नियामक है तथा सामर्थ्य सम्पन्न भी है, किन्तु श्रीभवान् तो परिपूर्ण हैं, वह उनके नियमन में समर्थ नहीं है । क्योंकि काल तो देह और गेह में अभिमान रखने वाले जीवों का ही नियामक है ॥३८॥

**विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः । आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ॥३९॥**

**अन्वयः**— विकारैः युक्तैः सहितः विशेषादिभिः आवृतः अयं अण्डकोशः पञ्चाशत् कोटिविस्तृतः ॥३९॥

**अनुवाद**—प्रकृति, महान् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र इन आठ प्रकृतियों के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों पञ्च कमेन्द्रियों मन तथा पञ्च महाभूतों के साथ सोलह विकार इन सबों के सम्मिश्रण से बना हुआ ब्रह्माण्ड भीतर से पच्चास करोड़ योजन विस्तृत है और बाहर से सात आवरणों से आवृत है ॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

भूम्न इत्युक्त तत्प्रपञ्चयन्नाह । विकारैः षोडशभिर्युक्तैरष्टप्रकृतिसंयुतैः सहितस्तदारब्ध इत्यर्थः । अयमाण्डकोशो यत्र प्रविष्टः परमाणुवल्लक्ष्यते इत्युत्तरेणान्वयः । कीदृशः । अन्तः पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तृतः, बहिश्च विशेषादिभिः पृथिव्यादिभिः सप्तभिरावृतः ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

भूम्नः कहकर जिस परमात्मा का वर्णन किया जा चुका है उन्हीं का विस्तार से वर्णन करते है । सोलह विकारों तथा आठ प्रकृतियों के मिलने से बने ब्रह्माण्ड भीतर से पचास करोड़ विस्तृत है और बाहर पृथिवी आदि के सात आवरणों से आवृत है, यह ब्रह्माण्ड परमात्मा में परमाणु के समान प्रतीत होता है ॥३९॥

**दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् । लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥४०॥**

**अन्वयः**— दशोत्तराधिकैः यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् लक्ष्यते । अन्ये च यत्रान्तर्गताः कोटिशः अण्डराशयः हि परमाणुवत् लक्ष्यन्ते ॥४०॥

**अनुवाद**— उत्तरोत्तर दसगुने परिमाण वाले सात आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड परमाणु के समान प्रतीत होता है और उनमें विद्यमान करोड़ों ब्रह्माण्ड परमाणुओं के समान प्रतीत होते हैं ॥४०॥

### भावार्थ दीपिका

कीदृशैः । अण्डकोशप्रमाणाद्दशगुणमुत्तरोत्तरोऽधिको येषु तैः । न केवलमयमेक एव अपित्वन्येऽपि लक्ष्यन्ते ॥४०॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माण्ड के परिमाण से दस गुना उत्तरोत्तर विस्तार वाले सात आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड जिस परमात्मा में परमाणु के समान प्रतीत होता है और दूसरे भी उनमें विद्यमान कराड़ों ब्रह्माण्ड परमाणुओं के ही समान प्रतीत होते हैं ॥४०॥

**तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् । विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥४१॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

**अन्वयः**— तत् सर्वकारणकारणम् अक्षरं ब्रह्म आहुः, तत् साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः विष्णोर्धाम ॥४१॥

**अनुवाद**— वे इन समस्त कारणों के कारण अक्षर ब्रह्म हैं । यही पुराण पुरुष परमात्मा भगवान् विष्णु का परंधाम (सर्वश्रेष्ठ स्वरूप) है ॥४१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥**

### भावार्थ दीपिका

सर्वेषां कारणानां कारणम् । धाम स्वरूपम् ॥४१॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥**

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही प्रधान आदि सभी कारणों के कारण अक्षर ब्रह्म तथा पुराणपुरुष परमात्मा भगवान् विष्णु का श्रेष्ठ स्वरूप है ॥४१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥११॥**

# बारहवाँ अध्याय

## सृष्टि का विस्तार

मैत्रेय उवाच

**इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः । महिमा वेदगर्भोऽथ यथाऽस्राक्षीन्निबोध मे ॥१॥**

**अन्वयः**— हे क्षत्तः इति परमात्मनः कालाख्यः महिमा ते कथितः अथ वेदगर्भः यथा अस्राक्षीत् तत् मे निबोध ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— विदुरजी यहाँ तक मैंने आपको श्रीभगवान् की काल नामक महिमा को सुनाया अब मैं यह आपको बतला रहा हूँ कि ब्रह्माजी ने जगत् की रचना कैसे की उसे आप सुनें ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

द्वादशे तु कुमारादिमनःसर्गाऽसमेधनात् । कायद्वैधेन यौनस्तु मनुसर्गोऽनुवर्ण्यते ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

बारहवें अध्याय में कुमार आदि की मानसिक सृष्टि की समृद्धि होने के कारण दो शरीरों के सम्बन्ध से योनिज मानव सृष्टि का वर्णन किया गया है ॥१॥

**ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् । महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥२॥**

**अन्वयः**— अग्रे आदिकृत् अन्धतामिस्रम् तामिस्रम् महामोमहम् मोहम् तमः च अज्ञानवृत्तयः ससर्ज ॥२॥

**अनुवाद**— सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने अन्धतामिस्र तामिस्र, महामोह, मोह एवं तमस् नामक अज्ञान की पाँच वृत्तियों की सृष्टि की ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

अग्र इति । ब्रह्मा स्वसृष्टौ प्रथममविद्यावृत्तीः ससर्ज । तत्र तमो नाम स्वरूपाप्रकाशः । मोहो देहाद्यहंबुद्धिः । महामोहो भोगेच्छा । तामिस्रं तत्प्रतिघाते क्रोधः । अन्धतामिस्रं तन्नाशेऽहमेव मृतोऽस्मीति बुद्धिः । तदेवोक्तं वैष्णवे-'**तमोविवेको मोहः स्यादन्तःकरणाविभ्रमः । महामोहस्तु विज्ञेयो ग्राम्यभोगसुखैषणा । मरणं ह्यन्धतामिस्रं तामिस्रः क्रोध उच्यते । अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः** । इति पातञ्जलेऽप्येत एवोक्ताः । **अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः** इति, श्रीविष्णुस्वामीप्रोक्ता वा अज्ञानविपर्यासभेदभयशोकाः । तदुक्तम् स्वादृगुत्थविपर्यास इत्यादि ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने अविद्या (अज्ञान) की पाँच वृत्तियों की सृष्टि की । स्वरूप का प्रकाश न होना ही तम कहलाता है । देह आदि में होने वाली आत्मत्व की बुद्धि को ही मोह कहते हैं । भोगों की इच्छा को महामोह कहते हैं । भोग की प्राप्ति में किसी के द्वारा बाधा डाले जाने पर जो क्रोध उत्पन्न होता है उसको तामिस्र कहते हैं । भोग का नाश हो जाने पर यह सोचना कि अरे मैं ही नष्ट हो गया इसी को अन्धतामिस्र कहते हैं । **तदेवोक्तम्० इत्यादि** इस बात को श्रीविष्णुपुराण में कहा गया है । विवेक के अभाव को ही तमस् कहते हैं । अन्तःकरण में होने वाले भ्रम को मोह कहते हैं । ग्राम्य सुखों तथा ग्राम्य भोगों को प्राप्त करने की इच्छा को महामोह कहते हैं । भोग के साधन के नष्ट हो जाने पर यह सोचना कि मैं ही मर गया इस तरह की बुद्धि को अन्धतामिस्र कहते हैं । भोग की प्राप्ति में बाधा उपस्थित होने पर होने वाले क्रोध को तामिस्र कहते हैं । इस तरह से ब्रह्माजी ने ही पाँच पर्वों वाली अविद्या की सृष्टि की है । पातञ्जलयोगदर्शन में भी कहा गया है— अविद्या, अस्मिता, राग,

द्वेष तथा अभिनिवेष ये पाँच प्रकार के क्लेश हैं । श्रीविष्णु स्वामी ने कहा है कि अज्ञान के विपर्यास, भय तथा शोक ये अज्ञान के भेद हैं । स्वरूपाज्ञान जन्य विपर्यास भ्रम को ही अज्ञान कहते है ॥२॥

**दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत । भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यां ततोऽसृजत् ॥३॥**

**अन्वयः**— पापीपसीं सृष्टिं दृष्ट्वा आत्मनं बहु न अमन्यत । ततः भावद्ध्यानपूतेन मनसा अन्यां असृजत् ॥३॥

**अनुवाद**— इस पापमयी सृष्टि को देखकर उनको प्रसन्नता नहीं हुयी । उसके पश्चात् श्रीभगवन् के ध्यान से पवित्र बने हुए मन से उन्होंने दूसरी सृष्टि की ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

न बह्वमन्यत नाभ्यनन्दत् ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

पाञ्च वृत्तियों वाली अविद्या की सृष्टि पापमयी थी । उसको देखकर ब्रह्माजी को प्रसन्नता नहीं हुयी । उसके पश्चात् उन्होंने श्रीभगवान् का ध्यान किया और दूसरी सृष्टि की ॥३॥

**सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः । सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूधर्वरेतसः ॥४॥**

**अन्वयः**— अथ आत्मभूः सनकं, सनन्दनं, सनातनं सनत्कुमारं च निष्क्रियान्, ऊर्ध्वरेतसः मुनीन् असृजत् ॥४॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन निवृत्त परायण ऊर्ध्व रेता मुनियों की सृष्टि की ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

यद्यपि प्रतिकल्पं सनकादिसृष्टिर्नास्ति तथापि ब्राह्मसर्गत्वादिहोच्यते । वस्तुतस्तु मुख्यसर्गादय एव प्रतिकल्पं भवन्ति सनकादयस्तु ब्राह्मकल्पसृष्टा एवानुवर्तन्ते ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

यद्यपि प्रत्येक कल्पों में सनकादि की सृष्टि नहीं होती है फिर भी ब्राह्मसृष्टि का वर्णन होने के कारण उन लोगों की सृष्टि यहाँ बतलायी गयी है । वास्तविकता यह है कि प्रत्येक कल्प में मुख्य सृष्टि ही होती है । इन सनकादिकों की ब्राह्मकल्प में सृष्टि होती है, वे ही अन्य कल्पों में बने रहते हैं ॥४॥

**तान्बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः । तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥५॥**

**अन्वयः**— स्वभूःतान् पुत्रान् बभाषे पुत्रकाः प्रजाः सृज तत् मोक्षधर्माणः वासुदेव परायणाः न ऐच्छन् ॥५॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने अपने उन पुत्रों से कहा कि पुत्रों प्रजाओं की सृष्टि करो; किन्तु मोक्षमार्ग परायण तथा भगवान् वासुदेव का भक्त होने के कारण उन लोगों ने सृष्टि करना नहीं चाहा ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

स्वभूर्ब्रह्मा ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी को आत्मभू इसलिए कहा गया है कि वे श्रीभगवान् से उत्पन्न हुए हैं ॥५॥

**सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः । क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥६॥**

**अन्वयः**— प्रत्याख्यातानुशासनैः एतैः एवं अवध्यातः सः जातं दुर्विषहं क्रोधम् नियन्तुम् उपचक्रमे ॥६॥

**अनुवाद**— आज्ञा का उल्लंघन करने वाले अपने पुत्रों से इस प्रकार से अपमानित ब्रह्माजी को असह्य क्रोध उत्पन्न हुआ, ब्रह्माजी ने उस क्रोध को रोकने का प्रयास किया ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

अवध्यातोऽवज्ञातः । प्रत्याख्यातमनङ्गीकृतमनुशासनं यैः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के अवध्यातः पद का अर्थ है अपमानित और प्रत्याख्यातानुशासनैः का अर्थ है आज्ञा का पालन नहीं करने वालों से ॥६॥

**धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः । सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥७॥**

**अन्वयः**— धिया निगृह्यमाणः अपि तन्मन्युः प्रजापते भ्रुवोः मध्यात् सद्यः नीललोहितः कुमारः अजायत ॥७॥

**अनुवाद**— बुद्धि के द्वारा रोके जाने पर भी वह क्रोध शीघ्र ही ब्रह्माजी की भौहों के बीच से नीललोहित (नीले और लाल रङ्ग के) बालक के रूप में उत्पन्न हो गया ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

स चासौ मन्युश्च तन्मन्युः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

पहले जो क्रोध उत्पन्न हुआ था वह क्रोध ही नीललोहित कुमार के रूप में उत्पन्न हो गया ॥७॥

**स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान्भवः । नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥८॥**

**अन्वयः**— स वै देवानां पूर्वजः भगवान् भवः रुरोद, हे जगद्गुरो धातः मे नामानि स्थानानि च कुरु ॥८॥

**अनुवाद**— देवताओं के पूर्वज भगवान् शिव रोकर कहने लगे हे जगत् रचयिता ब्रह्माजी आप मेरा नाम और मेरे रहने के स्थान को बतलाइये ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

नीललोहित बालक भगवान् शिव ही थे । उन्होंने ब्रह्माजी से रोकर पूछा कि मेरा नाम क्या है ? और मेरे रहने का स्थान कौन सा है ?॥८॥

**इति तस्य वचः पाद्मो भगवान्परिपालयन् । अभ्यधाद्भद्रया वाचा मारोदीस्तत्करोमि ते ॥९॥**

**अन्वयः**— इति तस्य वचः परिपालयन् भगवान् पाद्मः भद्रया वाचा अभ्यधात् मा रोदीः ते तत् करोमि ॥९॥

**अनुवाद**— इस तरह की उस बालक की वाणी को सुनकर कमलयोनि भगवान् ब्रह्माजी ने कल्याणमयी मधुरवाणी से कहा; रोओ मत मैं तुम्हारे नाम और स्थान को बतलाता हूँ ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

उस रोते हुए बालक की प्रार्थना को सुनकर ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्माजी ने कहा कि रोओ मत मैं तुम्हारे नाम और स्थान का निरूपण करता हूँ ॥९॥

**यदरोदीः सुरश्रेष्ठः सोद्वेग इव बालकः । ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे सुरश्रेष्ठ ! यत् त्वम् बालक इव सोद्वेग अरोदीः ततः त्वाम् प्रजाः रुद्र इति नम्ना अभिधास्यन्ति ॥१०॥

**अनुवाद**— हे सुरश्रेष्ठ ! चूकि तुम जन्म लेते ही बालक के समान रोने लगे इसलिए तुमको सारी प्रजायें रुद्र इस नाम से अभिहित करेंगी ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

बालक इव ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

**बालक इव** कहकर ब्रह्माजी ने यह कहा कि तुम तो देवताओं में श्रेष्ठ हो ? फिर भी तुम बालक के समान जन्म लेते ही रोने लगे । तुम्हारे रोने के कारण तुम्हारा नाम रुद्र होगा ॥१०॥

**हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निजलं मही । सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥११॥**

**अन्वयः**— हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुः अग्निः जलम् मही, सूर्यः चन्द्रः तपश्चैव मे अग्रे स्थानानि कृतानि ॥११॥

**अनुवाद**— हृदय, इन्द्रियाँ, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा और तपस्या इन ग्यारह स्थानों को तुम्हारे रहने के लिए मैंने बना रखा है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

अग्रे पूर्वमेव मे मया कृतानि ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

तुम्हारे जन्म से पहले ही तुम्हारे रहने के लिए मैंने इन ग्यारह स्थानों को बना रखा हैं ॥११॥

**मन्युर्मनुर्महेशानो महान् शिव ऋतुध्वजः । उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥१२॥**

**अन्वयः**— मन्युः मनुः, महेशानः, महान्, शिवः, ऋतध्वजः, उग्ररेता, भवः, कालेः वामदेवो, धृतव्रतः ॥१२॥

**अनुवाद**— मन्यु, मनु, महेशान महान् शिव, ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, कालः, वामदेव, और धृतव्रत ये तुम्हारे ग्यारह नाम हैं ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने शिवजी के ग्यारह नामों को बतलाया है ॥१२॥

**धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका । इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे रुद्रः ! धीः, वृत्तिः, उशना, उमा, नियुत् सर्पिः इला, इरावती, सुधा, दीक्षा, इति ते रुद्राण्यः स्त्रियः॥१३॥

**अनुवाद**— हे रुद्र, धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत् सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती सुधा और दीक्षा ये ग्यारह रुद्राणियाँ तुम्हारी पत्नियाँ होंगी ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने रुद्र की ग्यारह पत्नियों के नाम को बतलाया है ॥१३॥

**गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः । एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥१४॥**

**अन्वयः**— सयोषणः एतानि नामानि, स्थानानि च गृहाण, एभिः बह्वीः प्रजाः सृज, यत् प्रजानाम् पतिः असि ॥१४॥

**अनुवाद**— अपनी इन पत्नियों के साथ उपर्युक्त नामों और स्थानों को स्वीकार करो और इन सबों के द्वारा बहुत सी प्रजाओं को उत्पन्न करो क्योंकि तुम प्रजापति हो ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

सयोषणः सस्त्रीकः । एभिः स्थानैर्नामभिश्च युक्तः प्रजाः सृज ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा कि इन अपनी पत्नियों के साथ उपर्युक्त नामों और स्थानों को स्वीकार करो और बहुत सी प्रजाओं की सृष्टि करो; क्योंकि तुम प्रजापति हो ।।१४।।

**इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः । सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ।।१५।।**

**अन्वयः**— इति गुरुणा आदिष्टः सः भगवान् नीललोहितः सत्त्वाकृतिः स्वभावेन आत्मसमाः प्रजाः ससर्ज ।।१५।।

**अनुवाद**— इस तरह लोकपितामह ब्रह्माजी के द्वारा आदेशित होकर भगवान् नीललोहित ने अपने बल, आकार तथा आकार के समान ही बल, आकार और स्वभाव वाली प्रजाओं की सृष्टि की ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

सत्त्वं बलम् । आकृतिर्नीललोहितता । स्वभावस्तीब्रता तेन ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके भगवान् नीललोहित ने अपने ही समान बलवान, नीललोहित आकार वाली और तीव्र स्वभाव वाली प्रजाओं की सृष्टि की ।।१५।।

**रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद्ग्रसतां जगत् । निशाम्यासंख्यशो यूथान् प्रजापतिरशङ्कत ।।१६।।**

**अन्वयः**— रुद्रसृष्टानाम्, रुद्राणां समन्तात् जगत् ग्रसतां असंख्यशः यूथान् निशाम्य प्रजापतिः अशङ्कत ।।१६।।

**अनुवाद**— रुद्र के द्वारा सृष्ट उन रुद्रों को जो असंख्य यूथ बनाकर सम्पूर्ण संसार का भक्षण कर रहे थे, उसे देखकर ब्रह्माजी को बड़ी शङ्का हुयी ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

रुद्राणां यूथानि दृष्ट्वा ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

रुद्रों के समूहों को देखकर ब्रह्माजी को लगा कि ये सब तो संसार को ही खा जायेंगे ।।१६।।

**अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम । मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्वणैः ।।१७।।**

**अन्वयः**— हे सुरोत्तम ! ईदृशीभिः, सृष्टाभिः, उल्बणैः, चक्षुभिः मया सह दिशः दहन्तीभिः प्रजाभिः अलम् ।।१७।।

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा सुरोत्तम ! तुम्हारे द्वारा रची गयी जो प्रजा है वह अपनी तीव्र दृष्टि से मेरे साथ ही सम्पूर्ण दिशाओं को जलाये जा रही हैं, अतएव इस प्रकार की सृष्टि बन्द करो ।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा सुरश्रेष्ठ ! तुमने जिन प्रजाओं की सृष्टि की है वे तो अपनी भयङ्कर दृष्टि से मुझको तथा सारी दिशाओं को जलाये जा रही हैं अतएव अब तुम अपनी सृष्टि बन्द करो ।।१७।।

**तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् । तपसैव यथापूर्वं स्त्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥१८॥**

**अन्वयः**— ते भद्रम् ! सर्वभूतसुखवहम् तप अतिष्ठ तपसैव भवान् यथापूर्वम् इदं विश्वं स्त्रष्टा ॥१८॥

**अनुवाद**— तुम्हारा कल्याण हो, तुम सम्पूर्ण जगत् को सुख देने वाली तपस्या करो । तपस्या के द्वारा ही तुम पहले के समान इस विश्व की सृष्टि कर सकोगे ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

स्त्रष्टा स्त्रक्ष्यति ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा कि तुम तपस्या करो तपस्या के प्रभाव से ही तुम पूर्व कल्प के समान संसार की सृष्टि करोगे ॥१८॥

**तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् । सर्वभूतगुहावासमञ्जसा विन्दते पुमान् ॥१९॥**

**अन्वयः**— पुमान् तपसा एव परं ज्योतिः सर्वभूतगुहावासम् भगवन्तम् अधोक्षजम् अञ्जसा विन्दते ॥१९॥

**अनुवाद**— पुरुष तपस्या के ही द्वारा परम प्रकाश स्वरूप सभी जीवों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले इन्द्रियातीत श्रीभगवान् को अनायास ही प्राप्त कर लेता है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

तपस्या के प्रभाव से पुरुष परंप्रकाश स्वस्वरूप सर्वान्तिर्यामी श्रीभगवान् को भी प्राप्त कर लेता है ॥१९॥

मैत्रेय उवाच

**एवमात्मभुवादिष्टः परिक्रम्य गिरांपतिम् । बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥२०॥**

**अन्वयः**— आत्मभुवा एवम् आदिष्टः अमुम् बाढम् इति आमन्त्र्य गिरां पतिम् परिक्रम्य तपसे वनं विवेश ॥२०॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— ब्रह्माजी का इस प्रकार का आदेश प्राप्त करके रुद्र ने कहा बहुत अच्छा; उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजी की परिक्रमा की और तपस्या करने के लिए वे वन में चले गये ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

तपस्या करने के लिए ब्रह्मजी का आदेश प्राप्त करके रुद्र ने ब्रह्माजी की परिक्रमा की और तपस्या करने के लिए वन में चले गये ॥२०॥

**अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे । भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥२१॥**

**अन्वयः**— अथ लोकसन्तानहेतवे सर्गम् अभिध्यायतः भगवच्छक्तियुक्तस्य दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥२१॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् संसार की सृष्टि के लिए श्रीभगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने सृष्टि का सङ्कल्प किया तो उनके दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

रुद्र के तपस्या करने के लिए वन में चले जाने के पश्चात् श्रीभगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने सृष्टि करने का सङ्कल्प किया तो उससे उनके दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥२१॥

**मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥२२॥**

**अन्वयः**— मरीचिः अत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहःक्रतुः भृगुःवसिष्ठः दक्षश्च दशमः तत्र नारदः ॥२२॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के उन पुत्रों के नाम है मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और दशवें नारदजी ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने अपने सङ्कल्प के द्वारा जिन दस पुत्रों को उत्पन्न किया उन सबों का नाम इस श्लोक में क्रमशः गिनाया गया है ॥२२॥

**उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः । प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥२३॥**
**पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः । अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥२४॥**

**अन्वयः**— स्वयम्भुवः उत्सङ्गात् नारदः जज्ञे, दक्षः अङ्गुष्ठात् वसिष्ठः प्राणात् सञ्जातः भृगु त्वचि, क्रतुः करात्, पुलहः नाभितः जज्ञे, ऋषिः पुलस्त्यः कर्णयोः, अङ्गिरा मुखतः, अत्रिः अक्षणोः, मरीचिः मनसः अभवत् ॥२३-२४॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी की गोद से नारदजी उत्पन्न हुए, दक्ष ब्रह्माजी के अङ्गूठे से पैदा हुए, वसिष्ठ महर्षि उनके प्राण से पैदा हुए, महर्षि भृगु ब्रह्माजी की त्वचा से उत्पन्न हुए, क्रतु महर्षि ब्रह्माजी के हाथ से पैदा हुए, पुलस्त्य महर्षि ब्रह्माजी के कानों से पैदा हुए, अङ्गिरा महर्षि ब्रह्माजी के मुख से पैदा हुए, अत्रि महर्षि उनके नेत्रों से पैदा हुए और मरीचि महर्षि ब्रह्माजी के मन से पैदा हुए ॥२३-२४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥२३-२४॥

**धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् । अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥२५॥**

**अन्वयः**— दक्षिणतः स्तनात् धर्मः यत्र नारायणः स्वयम् जज्ञे । अधर्मः पृष्ठतः यस्मात् मृत्युः लोकभयङ्करः जज्ञे॥२५॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के दाहिने स्तन से धर्म उत्पन्न हुए जिनके पुत्र साक्षात् भगवान् नारायण हुए और ब्रह्माजी के पृष्ठ से अधर्म उत्पन्न हआ और उससे संसार को भयभीत करने वाला मृत्यु उत्पन्न हुआ ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२५॥

**हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् । आस्याद्वाक् सिन्धवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः॥२६॥**

**अन्वयः**— हृदि कामः भ्रुवोः क्रोधः अधरदच्छदात् लोभश्च, आस्याद् वाक्, सिन्धवो मेढ्रात पायोः अघाश्रयः निर्ऋतिः ॥२६॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के हृदय से काम, भौहों से क्रोध, अधरोष्ठ से लोभ, मुख से वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, लिङ्ग से समुद्र और गुदा से पाप के निवास स्थान (राक्षसों के स्वामी) निर्ऋति पैदा हुए ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

अधरदच्छदादधरोष्ठात् ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

अधरदच्छदात् शब्द का अर्थ है नीचे के ओठ से ॥२६॥

**छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्या पतिः प्रभुः । मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥२७॥**

**अन्वयः**— छायायाः देवहुत्याः पतिः प्रभुः कर्दमः जज्ञे विश्वकृतः मनसः देहतः च इदं जगत् जज्ञे ॥२७॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी की छाया से देवहुती के पति महर्षि कर्दम उत्पन्न हुए, इस तरह ब्रह्माजी के मन और शरीर से यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२७॥

**वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः । अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— हे क्षत्तः अकामां मनः हरतीं तन्वीं दुहितरं वाचं सकामः चकमे इति नः श्रुतम् ॥२८॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी, ब्रह्माजी एक बार अपनी निष्काम, मनोहर, तथा सुकुमारी पुत्री वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को देखकर कामार्त हो गये और उसको प्राप्त करना चाहे ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

देहान्तरेण कृतं सर्गं वक्तुं तद्देहत्यागे कारणमाह-वाचमित्यादिना ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी ने जिस शरीर से सृष्टि किया था उस शरीर का परित्याग करने का कारण बतलाने के लिए **वाचम् इत्यादि** श्लोक को कहा गया है ॥२८॥

**तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः । मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥२९॥**

**अन्वयः**— अधर्मे कृतमतिं तम् प्रितरं विलोक्य मरीचिमुख्याः मुनयः विश्रम्भात् प्रत्यबोधयन् ॥२९॥

**अनुवाद**—ब्रह्माजी की अधर्ममयी बुद्धि को देखकर मरीचि इत्यादि महर्षियों ने अपने उस पिता को विश्वास पूर्वक समझाया ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२९॥

**नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्ये न करिष्यन्ति चापरे । यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥३०॥**

**अन्वयः**— यत् प्रभुः त्वम् अङ्गजम् अनिगृह्य दुहितरं गच्छेः एतत् त्वत् पूर्वैः न कृतम् ये त्वत् अपरे तेऽपि न करिष्यन्ति ॥३०॥

**अनुवाद**— आप समर्थ होकर भी इस मन से उत्पन्न होने वाले काम को अपने वश में न करके पुत्री गमन का जो सङ्कल्प करते हैं, यह आपसे पहले जो ब्रह्मा थे वे ऐसा नहीं किए और न तो आपके बाद होने वाले भी ब्रह्मा ऐसा काम करेंगे ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वत् त्वत्तो ये पूर्वे ब्रह्मादयोऽन्ये वा तैरेतन्न कृतम् । अपरे त्वत्तोऽर्वाचीनास्तेऽपि न करिष्यन्ति । अङ्गजं कामम् ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

मन में उत्पन्न होने वाले काम को जीतकर अपने वश में न करके आप जो पुत्री गमन रूपी कार्य कर रहे हैं ऐसा कार्य आपसे पहले जो ब्रह्मा आदि थे उन लोगों ने नहीं किया और न तो आपके बाद जो ब्रह्मा होंगे वे ऐसा कार्य करेंगे ॥३०॥

**तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो । यदृत्तमनुतिठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥**

**अन्वयः**— जगद्गुरो तेजीयसामपि हि एतत् सुश्लोक्यं न यद् वृत्तम अनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

**अनुवाद**— हे जगद्गुरो ! तेजस्वी पुरुषों का भी ऐसा कर्म करना सराहनीय नहीं होता है, क्योंकि आप जैसे तेजस्वी पुरुषों के ही आचरण का अनुसरण करने से जगत् का कल्याण होता है ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

तेजीयसामपितेजस्विनामपि सुश्लोक्यं सत्कीर्तिदं न भवति । येषां तेजीयसाम् वृत्तम् ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

अत्यन्त तेजस्वी भी आप जैसे महापुरुषों के द्वारा ऐसा पापमय कार्य का किया जाना सराहनीय नहीं होता है; क्योंकि जो तेजस्वी पुरुष होते हैं उन्हीं के आचरण का अनुसरण करने से जगत् का कल्याण होता है ॥३१॥

**तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा । आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥**

**अन्वयः**— तस्मै भगवते नमः यः आत्मस्थं इदं स्वेन रोचिषा व्यञ्जयामास सः धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥

**अनुवाद**— उन श्रीभगवान् को नमस्कार है जिन्होंने अपने स्वरूप में स्थित इस जगत् को अपने प्रकाश के द्वारा प्रकाशित किया, वे ही धर्म की रक्षा कर सकते हैं ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

सृष्टि से पूर्व यह जगत् श्रीभगवान् के स्वरूप में स्थित होने के कारण अव्यक्त था । सृष्टि काल के आ जाने पर श्रीभगवान् ने अपने तेज के द्वारा इस जगत् को प्रकाशित किया । वे ही श्रीभगवान् धर्म की रक्षा करने में समर्थ हैं, अतएव उन्हीं श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥३२॥

**स इत्थं गृणतः पुत्रान्पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् । प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥**
**तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥३३॥**

**अन्वयः**— स इत्थं गृणतः प्रजापतीन् पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापति पतिः तदा व्रीडितः तन्वं तत्याज । तां घोरां दिशः जगृहुः यत् निहारं तमः विदुः ॥३३॥

**अनुवाद**— अपने पुत्र मरीचि आदि महर्षियों को अपने सामने इस प्रकार की बातों को कहते हुए देखकर प्रजापतियों के भी पति ब्रह्माजी लज्जित हो गये और अपने उस शरीर का उन्होंने त्याग कर दिया । उस घोर शरीर को दिशाओं ने ले लिया । वही कुहरा हो गया । उसे ही अन्धकार कहते हैं ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

तन्वं तनुम् ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

तन्व शब्द शरीर का वाचक है ॥३३॥

**कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् । कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान्समवेतान्यथापुरा ॥३४॥**

**अन्वयः**— कदाचित् समवेतान् लोकान् यथापुरा कथम् अहं स्रक्ष्यामि इति ध्यायतः स्रष्टुः चतुर्मुखात् वेदाः आसन् ॥३४॥

**अनुवाद**— एक बार जब ब्रह्माजी इस बात का विचार कर रहे थे कि मैं किस प्रकार पूर्वकल्प के ही समान सुव्यवस्थित रूप से लोकों की सृष्टि करूँ तो उनके चारो मुख से चारो वेद प्रकट हो गये ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

कथं स्त्रक्ष्यामीत्यभिध्यायतः स्त्रष्टुर्ब्रह्मणश्चतुःसंख्यायुक्तान्मुखात् । समवेतान्सुसङ्गतान् । यथापुरा प्राक्कल्पे ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी जब इस बात का चिन्तन कर रहे थे कि पूर्वकल्प के ही समान सुव्यवस्थित रूप से लोकों की रचना मैं कैसे करूँ ? उसी समय उनके मुख से चारो वेद प्रकट हो गये ।।३४।।

**चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह । धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ।।३५।।**

**अन्वयः**— चातुर्होत्रं कर्मतंत्रं उपवेदनयैः सह धर्मस्य चत्वारः पादाः तथैव आश्रम वृत्तयः चतुर्मुखात् आसन्नित्यन्वयः।।३५।।

**अनुवाद**— साथ ही उपवेद तथा न्याय शास्त्र के साथ होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा इन चारो ऋत्विजों के कर्म, यज्ञों का विस्तार, धर्म के चार चरण और चारों आश्रम एवं उनकी वृत्तियाँ ये सब भी ब्रह्माजी के मुखों से ही प्रकट हुए ।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

चातुर्होत्रं होत्रादीनां चतुर्णां कर्म । कर्मतन्त्रं यज्ञविस्तारः । उपवेदैर्न्यायैश्च सह । आश्रमाद्वृत्तयश्चासन् ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

**चातुर्होत्र** शब्द से होता, उद्गाता, अध्वर्यु एवं ब्रह्मा इन चारो ऋत्विजों के कर्म कहे गये है । कर्म तनत्रम् पद से यज्ञों के विस्तार को कहा गया है । **उपवेदनयैः सह** का अर्थ है आयुर्वेद इत्यादि उपवेद तथा न्याय शास्त्र इन सबों के साथ धर्म के चारो पैर, चारो आश्रम और उनकी वृत्तियों की भी उत्पत्ति ब्रह्माजी के मुखों से ही हुयी है ।।३५।।

विदुर उवाच

**स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत् । यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ।।३६।।**

**अन्वयः**— हे तपोधन ! सवै विश्वसृजामीशः देवः येन मुखतः यद् वेदादीन् असृजत् तन्मे ब्रूहि ।।३६।।

**अनुवाद**— हे तपोधन ! वे प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी ने अपने जिस मुख से जिन वेदादि की सृष्टि की उसे आप मुझे बतलाइये ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

मुखतो मुखेभ्यः ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने मैत्रेय जी से प्रार्थना की कि आप मुझे यह बतलाइये कि ब्रह्माजी ने अपने किन मुखों से किन वेदादिकों को उत्पन्न किया ।।३६।।

मैत्रेय उवाच

**ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः । शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ।।३७।।**

**अन्वयः**— पूर्वादिभिमुखैः ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् शस्त्रम् इज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं क्रमात् व्यधात् ।।३७।।

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने अपने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर मुख से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की रचना की और इसी क्रम से उन्होंने शस्त्र (होता के कर्म) इज्या (अध्वर्यु के कर्म) स्तुतिस्तोम (उद्गाता के कर्म) और प्रायश्चित्त (ब्रह्मा के कर्म) की भी रचना की ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

चातुर्होत्रसृष्टिक्रममाह । शस्त्रमप्रगीतमन्त्रस्तोत्रं होतुः कर्म । इज्यामध्वर्योः कर्म । स्तुतिस्तोमं स्तुतिः संगीतं, स्तोमं तदर्थमृक्समुदायं '**त्रिवृत्स्तोमो भवति**' इत्यादिविहितमुद्गातृप्रयोज्यम् । प्रायश्चित्तं ब्राह्मम् ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में चातुर्होत्रसृष्टिक्रम का वर्णन मैत्रेय महर्षि ने किया है । शस्त्र अर्थात् अप्रगीतमन्त्रस्तोत्र होता के कर्म । स्वर तथा आनुपूर्वीरहित मन्त्रों के द्वारा जो स्तुति की जाती है उसे अप्रगीतमन्त्र स्तोत्र कहते हैं । इज्या अर्थात् देवता के लिए किए जाने वाले द्रव्य के त्याग रूप अध्वर्यु के कर्म को इज्या कहते हैं । स्तुति स्तोम, स्तुति संगीत को कहते है और संगीतोपयोगी ऋचाओं के समूह को स्तोम कहते है । त्रिवृत्स्तोमोभवति इत्यादि श्रुतियाँ उसका विधान करती हैं । यह उद्गाता नामक ऋत्विज का कर्म है । ब्राह्मकर्म को प्रायश्चित्त कहते हैं । इन सबों की सृष्टि ब्रह्माजी के पूर्वादि मुखों से हुयी हैं ।।३७।।

**आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः । स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ।।३८।।**

**अन्वयः**— आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेद स्थापत्यं च वेदम् च क्रमात् पूर्वादिभिः मुखैः असृजत् ।।३८।।

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने अपने पूर्वादि मुखों से क्रमशः आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र) धनुर्वेद (शस्त्र विद्या) गान्धर्ववेद (सङ्गीत शास्त्र) और स्थापत्य वेद (शिल्प विद्या) इन उपवेदों की सृष्टि की ।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

उपवेदक्रममाह -आयुर्वेदमिति । आत्मनो मुखैः । स्थापत्यं विश्वकर्मशास्त्रम् ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आयुर्वेद इत्यादि चार उपवेदों की सृष्टि का क्रम बतलाया गया है । **आत्मनोमुखैः** का अर्थ है अपने पूर्वादि मुखों से ही ब्रह्माजी ने आयुर्वेदादि उपवेदों की क्रमशः सृष्टि की स्थापत्य विश्वकर्मा की शिल्प विद्या को कहते हैं ।।३८।।

**इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः । सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ।।३९।।**

**अन्वयः**— सर्वदर्शनः ईश्वरः सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदम् ससृजे ।।३९।।

**अनुवाद**— सर्वज्ञ भगवान् ब्रह्मजी ने अपने सभी मुखों से इतिहास एवं पुराण नामक पाञ्चवें वेद की रचना की ।।३९।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

इतिहासों और पुराणों को पाञ्चवाँ वेद कहा गया है । इन सबों की रचना ब्रह्माजी ने अपने सभी मुखों से की है । पुराणों की संख्या अठारह है और रामायण और महाभारत ये दो इतिहास प्रख्यात हैं ।।३९।।

**षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ । आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ।।४०।।**

**अन्वयः**— पूर्ववक्त्रात् षोडश्युक्थौ, अथ पुरीष्याग्निष्टुतौ, आप्तोर्यामातिरात्रौ च, वाजपेयं सगोसवम् ।।४०।।

**अनुवाद**— इसी तरह ब्रह्माजी के पूर्वमुख से षोडशी तथा उक्थ, दक्षिणमुख से पुरीषी (चयन) और (अग्निष्टोम) पश्चिम मुख से आप्तोर्याम और अतिरात्र तथा वाजपेय और गोसव ये दो याग उत्तर मुख से उत्पन्न हुए ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

कर्मतन्त्रक्रममाह-षोडश्युक्थाविति । पुरीषी चयनम् । अग्निष्टुदग्निष्टोमः ॥४०॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में कर्म तन्त्र अर्थात् यज्ञ विस्तार की उत्पत्ति के क्रम को बतलाया गया है। षोडशी तथा उक्थ ये दो याग ब्रह्माजी के पूर्व मुख से उत्पन्न हुए। पुरीषी चयन याग को कहते हैं। अग्निष्टुत् अग्निष्टोम याग को कहते हैं ॥४०॥

**विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्येति पदानि च । आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह वृत्तिभिः ॥४१॥**

**अन्वयः**— विद्या, दानम् तपः सत्यं इति धर्मस्य पदानि, यथा संख्यम् आश्रमान् च वृत्तिभिः सह असृजत् ॥४१॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने अपने चार मुखों से क्रमशः विद्या, दान, तप और सत्य इन धर्म के चार चरणों की और वृत्तियों के साथ चार आश्रमों की भी रचना अपने पूर्वादि मुखों से की ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

विद्येति शौचम् । '**क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमा मता**' इति स्मृतेः । दानमिति दया । '**भूताभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्**' इति वचनात् । एवं च '**तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः कृते कृताः**' इति प्रथमस्कन्धोक्तेरविरोधः ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

**क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानद्विशुद्धिः परमा मता** अर्थात् जीव की ईश्वर के ज्ञान से सर्वश्रेष्ठ विशुद्धि मानी गयी है, इस स्मृति वाक्य में अनुसार शौच को ही यहाँ विद्या शब्द से अभिहित किया गया है। दान शब्द से यहाँ पर दया कही गयी है। स्मृति भी कहती है **भूताभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोद्वशीम्** जीवों को अभय प्रदान के सोहलवें भाग के भी बराबर सभी दान मिलकर भी नहीं हो सकते हैं। इस तरह से प्रथम स्कन्ध के **तपः शौचम् दया सत्यम् इत्यादि** जो श्लोक है उससे इस श्लोक का किसी प्रकार से विरोध नहीं है ॥४१॥

**सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा। वार्ता संचयशालीनशिलोञ्छ इति वै गृहे ॥४२॥**
**वैखानसा बालखिल्यौदुम्बराः फेनपावने। न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥४३॥**

**अन्वयः**— अथ सावित्रं, प्राजापत्यं, ब्राह्मं तथा वृहत्, वार्ता, संचयशालीन, शिलोञ्छ इति वै गृहे । वैखानसा, बालखिल्योदुम्बराः फेनपा वने, पूर्वं कुटीचकः बहवोदः, हंसनिष्क्रियौ न्यासे ॥४२-४३॥

**अनुवाद**— ब्रह्मचारियों के चार भेद हैं। सावित्र, प्राजापत्य, ब्राह्म तथा बृहत्; गृहस्थों की भी चार वृत्तियाँ हैं— वार्ता, संचय, शालीन और शिलोञ्छ, वानप्रस्थियों की चार वृत्तियाँ हैं- वैखानस, बालखिल्य, औदुम्बर और फेनप तथा संन्यासियों की भी चार वृत्तियाँ हैं कुटीचक, बहवोद, हंस और निष्क्रिय (परमहंस) ॥४२-४३॥

### भावार्थ दीपिका

ब्रह्मचर्याद्याश्रमेष्वेकैकस्य चातुर्विध्यमाह । सावित्रं ब्रह्मचर्यं, उपनयनादारभ्य गायत्रीमधीयानस्य त्रिरात्रम् । प्राजापत्यं व्रतान्याचरतः संवत्सरम् । ब्राह्मं वेदग्रहणान्तम् । बृहन्नैष्ठिकम् । वार्ता अनिषिद्धकृष्यादिवृत्तिः । संचयो याजनादिवृत्तिः । शालीनमयाचितवृत्तिः । शिलोञ्छः पतितकणिशकणवृत्तिः । एकवचनमार्षम् । इत्येता गृहे वृत्तय इति । यद्वा शिलोञ्छ इति द्वन्द्वैक्ये सप्तमी । एवं वृत्तिभेदे सति गृहे स्थिता भवन्तीत्यर्थः । वने थिताश्चत्वारः । तत्र वैखानसा अकृष्टपच्यवृत्तयः । बालखिल्या नवेऽन्ने लब्धे पूर्वसंचितान्नत्यागिनः । औदुम्बराः प्रातरुत्थाय यां दिशं प्रथमं पश्यन्ति तत आहृतैः फलादिभिर्जीवन्तः। फेनपाः स्वयं पतितैः फलादिर्भिजीवन्तः । कुटीचकः स्वाश्रमकर्मप्रधानः । बह्वोदः कर्मोपसर्जनीकृत्य ज्ञानप्रधानः । हंसो ज्ञानाभ्यासनिष्ठः, निष्क्रियः प्राप्ततत्त्वः । एते च सर्वे यथोत्तरं श्रेष्ठाः ॥४२-४३॥

## भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचारी आदि चारो आश्रमों के प्रत्येक आश्रमों के चार-चार भेद इन दोनों श्लोकों में बतलाये गये हैं। १. सावित्र ब्रह्मचर्य— उपनयन के पश्चात् गायत्री का अध्ययन करने के लिए धारण किया जाने वाला तीन दिन का ब्रह्मचर्य व्रत। २. प्राजापत्य ब्रह्मचर्य— एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, ३. ब्राह्मब्रह्मचर्य— वेदाध्ययन की समाप्ति काल पर्यन्त धारण किया जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत और ४. बृहत् ब्रह्मचर्य— आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का धारण ये ब्रह्मचर्य के चार भेद है।

गार्हस्थ्य के चार वृत्ति भेद इसप्रकार हैं **१. वार्तावृत्ति**— शास्त्र विहित कृषि आदि वृत्तियों को अपनाना, **२. संचयवृत्ति**— यज्ञादि कराना। **३. शालीनवृत्ति**— अयाचित वृत्ति (बिना माँगे जो कुछ भी मिल जाय उसी से निर्वाह करना) और **४. शिलोञ्छवृत्ति**— खेत कट जान पर पृथिवी पर पड़े हुए तथा अनाज की मण्डी में गिरे हुए अन्न के दानों को बीन कर निर्वाह करना। संचयशालीन शिलोञ्छ में एक वचनान्त प्रयोग आर्ष है। ये चारो गृहस्थों की वृत्तियाँ है। अथवा संचयशाली शिलोञ्छ में द्वन्द समास में सप्तमी एक वचनान्त है। इस तरह से भिन्न-भिन्न वृत्तियों वाले गृहस्थ होते हैं ॥४२॥

**वनेस्थिताः इत्यादि-** वन में रहने वाले वानप्रस्थों के भी चार भेद हैं— **१. वैखानसवृत्ति**— बिना जोती बोयी भूमि से उत्पन्न पदार्थों से निर्वाह करना। **२. बालखिल्यवृत्ति**— नवीन अन्न मिलने लगने पर संचित प्राचीन अन्न का दान कर देना। **औदुम्बुरवृत्ति**— प्रात:काल उठने पर जिस दिशा की ओर मुख हो उसी दिशा से फलादि लाकर जीवन निर्वाह करना और **४. फेनपवृत्ति**— अपने आप पककर गिरे हुए फल आदि खाकर जीवन निर्वाह करना।

**संन्यासियों की वृत्तियाँ**— **१.कुटीचकवृत्ति**— कुटी बनाकर एक जगह रहना और अपने आश्रम के धर्म का पूर्ण रूप से पालन करना। **२. बह्वोदवृत्ति**— कर्म को गौण मानकर ज्ञान को ही प्रधान मानना। **३. हंसवृत्ति**— ज्ञान के ही अभ्यास में निरन्तर लगे रहना और **४. निष्क्रियपरमहंसवृत्ति**— ज्ञानी जीवनमुक्त। ये सभी जो गृहस्थ आदि हैं इनमें उत्तरोत्तर वृत्ति वाले श्रेष्ठ माने गये हैं ॥४३॥

**आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च। एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो ह्यस्य दह्रतः ॥४४॥**

**अन्वयः**— आन्विक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति तथैव च एवं व्याहृतयः च आसन् अस्य हि दह्रतः प्रभावः ॥४४॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के पूर्वादिमुखों से ही अन्विक्षिकी त्रयी, वार्ता दण्डनीति ये चार विद्यायें और चार व्याहृतियाँ उत्पन्न हुयीं और ब्रह्माजी के हार्दाकाश से प्रणव की उत्पत्ति हुयी ॥४४॥

## भावार्थ दीपिका

न्यायादीनां पूर्वादिक्रमेणोत्पत्तिमाह-आन्वीक्षिकीति। आन्वीक्षिक्याद्या मोक्षधर्मकामार्थविद्याः। भूर्भुवःस्वरिति व्यस्तास्तिस्रः। समस्ता चतुर्थी। यथाहआश्वलायनः-**एवं व्याहृतयः प्रोक्ता व्यस्ताः समस्ताः**' इति। यद्वा मह इति चतुर्थी। तथा च श्रुतिः- **भूर्भुवःसुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः। तासामु ह स्मैतां चतुर्थीं माहाचमस्यः प्रवेदयते मह इति**' इति। दह्रतो हृदयाकाशात् ॥४४॥

## भाव प्रकाशिका

न्याय आदि की भी ब्रह्माजी के पूर्वादि मुखों के क्रम से उत्पत्ति बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं- आन्विक्षिकी आदि मोक्ष धर्म काम तथा अर्थ विषयिणी विद्यायें हैं। भूः भुवः स्वः ये अलग-अलग तीन व्याहृतियाँ हैं और भूर्भुवःस्वः यह समस्त रूप से चौथी व्याहृति है। महर्षि आश्वालयन ने कहा भी है **एवं० इत्यादि** अर्थात् इस तरह से व्यस्त एवं समस्त व्याहृतियाँ बतलायी गयी हैं। अथवा महः चतुर्थी व्याहृति है। श्रुति भी कहती है—

**भूर्भुवःसुवरिति वा इत्यादि** अर्थात् भूः भुवः स्वः ये तीन व्याहृतियाँ हैं। उनमें चौथी व्याहृति माहाचमस्य महर्षि महः इस व्याहृति को मानते हैं। श्लोक का दह्र शब्द हृदयाकाश का बोधक है ॥४४॥

**तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः। त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः॥४५॥**

**अन्वयः**— तस्य प्रजापतेः लोमभ्यः उष्णिक् त्वचःगायत्री, मांसात् त्रिष्टुप् स्नुतः अनुष्टुप् प्रजापतेः अस्थ्नः जगती आसीत् ॥४५॥

**अनुवाद**— प्रजापति ब्रह्माजी के रोमों से उष्णिक् छन्द, त्वचा से गायत्री छन्द, मासं से त्रिष्टुप् छन्द, स्नायु से अनुष्टुप् छन्द तथा अस्थियों से जगती छन्द की उत्पत्ति हुयी ॥४५॥

### भावार्थ दीपिका

स्नुतः स्नायुतः। अनुष्टुप् स्नावान् इति श्रुतेः ॥४५॥

### भाव प्रकाशिका

स्नुतः पद का अर्थ स्नायुएँ से है। श्रुति भी कहती है अनुष्टुप् स्नावान् अर्थात् अनुष्टुप छन्द स्नायुओं वाला है ॥४५॥

**मज्जायाः पङ्क्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत्। स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ॥४६॥**

**अन्वयः**— मज्जयाः पंक्ति उत्पन्ना प्राणतः बृहती अभवत्। तस्य जीवः स्पर्शः अभवत् देहः स्वर उदाहृतः ॥४६॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी की मज्जा से पंक्ति छन्द और प्राणों से बृहती छन्द उत्पन्न हुआ। उनका जीव ही स्पर्श वर्ण हुआ और देह स्वर वर्ण कहलाया ॥४६॥

### भावार्थ दीपिका

महाकल्पे ब्रह्मा शब्दब्रह्मरूपोऽभवदित्युक्तं तदेव दर्शयन्वर्णानामुत्पत्तिमाह-स्पर्श इति सार्धेन। स्पर्शः कादिवर्गपञ्चकम् स्वरोऽकारादिः ॥४६॥

### भाव प्रकाशिका

पहले कहा जा चुका है कि महाकल्प में ब्रह्माजी शब्दब्रह्म स्वरूप थे। उसी को बतलाते हुए वर्णों की उत्पत्ति स्पर्श इत्यादि डेढ श्लोकों से कहते हैं। 'क' से लेकर 'म' तक पांचो (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग) वर्गों के वर्णों को स्पर्श वर्ण कहते हैं। अकार आदि को स्वरवर्ण कहते हैं ॥४६॥

**ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तस्था बलमात्मनः। स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥४७॥**

**अन्वयः**— इन्द्रियाणि उष्माणम् आहुः आत्मनः बलम् अन्तस्थाः। प्रजापतेः विहारेण सप्त स्वराः भवन्ति स्म ॥४७॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी की इन्द्रियों को ही उष्मा वर्ण (श, ष, स, ह) कहा गया है। बल को अन्तस्थ (य र ल और व ) वर्ण कहा गया है। उनकी क्रीडा से सात स्वर (निषाद, ऋषभ, गान्धार, षडज, मध्यम, धैवत और पञ्चम) उत्पन्न हुए हैं ॥४७॥

### भावार्थ दीपिका

ऊष्माणं शषसह चतुष्कम्। अन्तस्था यरलवाः। सप्त स्वराः षड्जादयः। विहारेण क्रीडया ॥४७॥

### भाव प्रकाशिका

श, ष, स और ह ये चार वर्ण उष्मा वर्ण हैं। य, र, ल और व ये चार वर्ण अन्तस्थ वर्ण हैं। षड्ज आदि सात स्वर ब्रह्माजी की क्रीडा से उत्पन्न हैं ॥४७॥

**शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः । ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥४८॥**

**अन्वयः**— शब्द ब्रह्मात्मनः व्यक्ताव्यक्तात्मनः परं ब्रह्म विततः अवभाति नाना शक्त्युपबृंहितः अवभाति ॥४८॥

**अनुवाद**— शब्द ब्रह्म स्वरूप ब्रह्माजी हैं। वे वैखरी रूप से व्यक्त हैं और ओङ्कार रूप से अव्यक्त है। उनसे परे जो परिपूर्ण ब्रह्म हैं वे अनेक प्रकार की शक्तियों से विकसित होकर इन्द्रादि रूप से प्रतीत होते हैं ॥४८॥

### भावार्थ दीपिका

अतएव शब्दतनुत्वाद्ब्रह्मणः परमेश्वरो नित्यं प्रकाशत इत्याह। व्यक्ता वैखरी अव्यक्तः प्रणवस्तदात्मनस्तस्य ब्रह्मणः परः परमेश्वरोऽवभाति। कीदृशः। ब्रह्म परिपूर्णः तत्राव्यक्तात्मनो ब्रह्मरूपो विततोऽवभाति व्यक्तात्मनो नानाभक्त्युपबृंहित इन्द्रादिरूपोऽवभाति ॥४८॥

### भाव प्रकाशिका

वर्णों को उत्पन्न करने वाला होने के कारण ही ब्रह्माजी शब्दशरीरक है। उनको नित्य ही परमेश्वर प्रकाशित होते हैं। वैखरी रूप से वे व्यक्त हैं और तथा प्रणाव रूप से वे अव्यक्त हैं। उनसे परे जो परमेश्वर हैं, वे उनको नित्य ही प्रकाशित होते हैं। वे ब्रह्म परिपूर्ण हैं। अव्यक्त रूप से जो ब्रह्माजी का रूप है वह विस्तृत प्रतीत होता है व्यक्त रूप से ब्रह्म अनेक प्रकार की शक्तियों से समृद्ध होकर इन्द्र आदि के रूप में प्रतीत होते हैं ॥४८॥

**ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे । ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥४९॥**

**अन्वयः**— ततः अपरम् उपादाय सः सर्गाय मनोदधे भूरिवीर्याणाम् अपि ऋषीणाम् सर्गम् अविस्तृतम् ॥४९॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने पहला कामशक्त शरीर जो कुहरा बन चुका था उस को त्याग कर दूसरा शरीर धारण करके विश्व की सृष्टि की विचार किये, क्योंकि अत्यधिक शक्ति सम्पन्न मरीचि आदि ऋषियों से भी सृष्टि का विस्तार नहीं हुआ था ॥४९॥

### भावार्थ दीपिका

यां पूर्वं विसृष्टा सती नीहारं तमोऽभवत्। ततोऽपरामनिषिद्धकामासक्तां तनुम्। शब्दब्रह्मतनुस्तु सदाऽस्त्येव। तन्वन्तरग्रहणे कारणमाह-ऋषीणामित्यादिना ॥४९॥

### भाव प्रकाशिका

जो पहला शरीर था उसको ब्रह्माजी ने त्याग दिया वही कुहरा हो गया। उसके पश्चात् जो निषिद्ध कामासक्त शरीर नहीं था उसको उन्होंने ग्रहण कर लिया उनका शब्द ह्य स्वरूप शरीर तो सदा रहता ही है। दूसरे शरीर को धारण करने का कारण यह था कि अत्यन्त पराक्रम सम्पन्न भी मरीचि आदि महर्षियों से सृष्टि का विस्तार नहीं हो सका था ॥४९॥

**ज्ञात्वा तद्धृदये भूयश्चिन्तयामास कौरव । अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥५०॥**
**न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् । एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥५१॥**

**अन्वयः**— हे कौरव ! तद् ज्ञात्वा हृदये चिन्तयामास, व्यापृतस्य अपि मे एतद् अद्भुतम् नित्यदा प्रजाः न एधन्ते अत्र नूनं दैवं विघातकम्, तदा एवं युक्तकृतः तस्य दैवं च अवेक्षतः ॥५०-५१॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! उसको जानकर ब्रह्माजी अपने हृदय में चिन्तन करने लगे कि यद्यपि मैं निरन्तर प्रयास कर रहा हूँ फिर भी प्रजाओं की वृद्धि नहीं हो रही है, लग रहा है कि इस कार्य में दैव ही बाधा कर रहा है। ब्रह्माजी इस प्रकार से दैव के विषय में विचार कर रहे थे ॥५०-५१॥

भावार्थ दीपिका

चिन्तामेवाह-अहो इति । व्यापृतस्य व्यापारं कुर्वाणस्य । युक्तकृतो यथोचितं कुर्वतः ।।५०-५१।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी विचार कर रहे थे कि मैं सृष्टि का विस्तार करने का प्रयास भी कर रहा हूँ और उसके लिए उचित कार्य भी कर रहा हूँ फिर भी सृष्टि का विस्तार नहीं हो रहा है, इसका क्या कारण हो सकता है ? लग रहा है कि मेरे इस कार्य में दैव ही बाधा डाल रहा है ।।५०-५१।।

**कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते । ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ।।५२।।**

**अन्वयः**— कस्य रूपम् द्वेधा अभूत् यत् कायम् अभिचक्षते ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनम् समपद्यत ।।५२।।

**अनुवाद**— जिस समय ब्रह्माजी इस प्रकार से विचार कर रहे थे उसी समय उनका शरीर दो भागों में विभक्त हो गया । क ब्रह्माजी का नाम है । उनके शरीर का दो भाग होने के कारण उसे काय कहते हैं । शरीर के उन दोनों विभागों से स्त्री-पुरुष का जोड़ा हो गया ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

अतएव कस्य ब्रह्मणो रूपं द्विधा भूतमित्याश्चर्यात्कायमद्याप्यभिचक्षते ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

क ब्रह्माजी का ही नाम है उनका शरीर दो भागों में बँट गया इस आश्चर्य के कारण ही शरीर को आज भी काय शब्द से अभिहित किया जाता है ।।५२।।

**यस्तु तत्र पुमान्योऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् । स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्यामहिष्यस्य महात्मनः ।।५३।।**

**अन्वयः**— तत्र यस्तु पुमान् सः स्वराट् स्वायंभुवमनुः अभूत् या स्त्री सा महात्मनः शतरूपाख्या महिषी आसीत्।।५३।।

**अनुवाद**— उसमें जो पुरुष था वह सार्वभौम राजा स्वायम्भुवमनु हुए और जो स्त्री थी वह उनकी महारानी शतरूपा हुयी ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

या स्त्री सा अस्य महष्यासीत् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी के शरीर का दोनों भाग स्त्री और पुरुष हो गया था उसमें जो पुरुष था वह महाराज स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी वह शतरूपा नाम की उनकी महारानी हो गयी ।।५३।।

**तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे । स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ।।५४।।**

**अन्वयः**— तदा मिथुन धर्मेण प्रजा हि एधाम्बृभूविरे स च अपि शतरूपायां पञ्च अपत्यानि, अजीजनत् ।।५४।।

**अनुवाद**— उसी समय स्त्री पुरुष सम्भोग रूप मिथुन धर्म से प्रजाओं की वृद्धि हुयी । महाराज मनु ने भी शतरूपा के गर्भ से पाँच सन्तानों को उत्पन्न किया ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

एधांबभूविरे वृद्धिं प्राप्ताः । तदेवाह-स चापीति ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

एवधाम्बभूविरे पद का अर्थ है बढी हुई प्रजाओं की समृद्धि को ही **स चापि इत्यादि** उत्तरार्द्ध के द्वारा कहा गया है । उन महाराज स्वयम्भुव मनु की पाञ्च सन्तानें हुयीं ।।५४।।

# तेरहवाँ अध्याय

## वाराहवतार की कथा

श्रीशुक उवाच

**निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप । भूयः प्रपच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ।।१।।**

**अन्वयः**— नृप ! वदतः मुनेः पुण्यतमां वाचं विशम्य वासुदेवकथाहृतः कौरव्यः भूयः पृपच्छ ।।१।।

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् मैत्रेय महर्षि की पवित्रतम वाणी को सुनकर भगवान् वासुदेव की कथा में आदर रखने वाले कुरूवंशी विदुरजी ने पुनः उनसे पूछा ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

त्रयोदशे सिसृक्षायां मनोराकस्मिकाप्लुताम् । धरामुद्धर्तुमुद्भूतात्क्रोडाद्दैत्यानुसूदनम् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

तेरहवें अध्याय में स्वायम्भुव मनु की अचानक सृष्टि करने की इच्छा होने पर जल में डूबी हुयी पृथिवी का उद्धार करने के लिए उत्पन्न वराह भगवान् के द्वारा हिरण्याक्ष नामक दैत्य के वध का वर्णन है ।।१।।

विदुर उवाच

**स वै स्वयंभुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयंभुवः । प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ।।२।।**

**अन्वयः**— हे मुनेः ततः स वे स्वयम्भुवः प्रियः पुत्रः सम्राट् स्वायम्भुवः प्रियां पत्नीं प्रतिलभ्य किं चकार ।।२।।

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे मुने ! उसके पश्चात् ब्रह्माजी के प्रिय पुत्र सम्राट् स्वायम्भुव मनु ने अपनी प्रिय पत्नी को प्राप्त करके क्या किया ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

स्वयंभुवः पुत्रस्तद्देहांशत्वात् ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी के देह के अंश ये स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए इसी लिए उनको ब्रह्माजी का पुत्र कहा गया है ।।२।।

**चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम । ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ।।३।।**

**अन्वयः**— हे सत्तम तस्य आदिराजस्य राजर्षेः चरितं श्रद्दधानस्य मे ब्रूहि असौ हि विष्वक्सनाश्रयः ।।३।।

**अनुवाद**— हे साधु शिरोमणे । आप उन आदि राज का चरित मुझे सुनाइये वे भगवान् विष्णु के शरणागत हैं, अतएव मेरी उनमें श्रद्धा है ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

विष्वक्सेनो हरिरेवाश्रयो यस्य सः ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

विष्वक्सेन भगवान् विष्णु का नाम है । उनके शरणापन्न हैं । आदिराज **स्वयम्भुवमनु** । इसीलिए मेरी उनमें श्रद्धा है । अतएव आप मुझे उनका चरित सुनाइये ।।३।।

**श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ।**
**यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्दपादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ।।४।।**

**अन्वयः**— येषां हृदयेषु मुकन्दपादारविन्दम् यत् तदगुणानुश्रवणं पुंसां श्रुतस्य सुचिरश्रमस्य ननु अञ्जसा सूरिभिः ईडितोऽर्थः ।।४।।

**अनुवाद**— जिन लोगों के हृदय में भगवान् मुकुन्द के चरणारविन्द विद्यमान हैं उन भक्तजनों के गुणों का श्रवण करना ही मनुष्यों को बहुत दिनों तक किए हुए शास्त्राभ्यास का मुख्य फल है, यह विज्ञपुरुषों का कहना है ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

अतस्तस्य चरितं श्रोतव्यमित्याह । सुचिरं श्रमो यस्मिंस्तस्य पुंसां श्रुतस्याञ्जसा मुख्यत्वेनायमेवार्थ ईडितः स्तुतो ननु। मुकुन्दपादारविन्दं येषां हृदयेष्वस्ति तेषां भागवतानां गुणानुश्रवणमिति यत् ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

वे आदिराज चूंकि भगवद्भक्त हैं अतएव उनके चरित का श्रवण करना चाहिए; इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । मनुष्यों द्वारा दीर्घकाल पर्यन्त शास्त्रश्रवणजन्य श्रम का यही मुख्य फल है कि जिन भक्तों के हृदय में श्रीभगवान् के चरण कमल विराजमान है उन भक्तों के गुणों का श्रवण किया जाय ॥४॥

श्रीशुक उवाच

**इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ।**
**प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ॥५॥**

**अन्वयः**— सहस्रशीर्ष्णः चरणोपधानम् विनीतं विदुरं इति ब्रुवाणम् प्रणीयमानः प्रहृष्टरोमा मुनि अभ्यचष्ट ॥५॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— सहस्रशीर्षा श्रीहरि के भक्त तथा नम्र विदुरजी के द्वारा इस तरह से प्रेरित किए जाने पर जिनके शरीर में रोमाञ्च हो आया था वे मैत्रेय मुनि कहना प्रारम्भ किए ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

सहस्रशीर्षा श्रीकृष्णस्तच्चरणावुपधीयेते यस्मिन्, श्रीकृष्णः प्रीत्या यस्योत्सङ्गे चरणौ प्रसारयतीत्यर्थः । तमभ्यचष्ट अभ्यभाषत । मुनिर्मैत्रेयः । प्रणीयमानस्तेन प्रवर्त्यमानः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् श्रीकृष्ण ही सहस्रशीर्षा हैं । भगवान् श्रीकृष्ण जिनकी गोद में अपने चरणों को फैलाते थे ऐसे विदुरजी ने विनम्रता पूर्वक महर्षि मैत्रेय को प्रेरित किया । उनके द्वारा प्रेरित होकर मैत्रेय महर्षि के शरीर में रोमाञ्च हो आया और उन्होंने कहना प्रारम्भ किया ॥५॥

मैत्रेय उवाच

**यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायंभुवो मनुः । प्राञ्जलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ॥६॥**

**अन्वयः**— यदा स्वभार्यया साकं स्वायम्भुवः मनुः जातः तदा प्राञ्जलिः प्रणतः च वेदगर्भम् इदम् अभाषत ॥६॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— जब स्वयम्भुव मनु का अपनी पत्नी शतरूपा के साथ जन्म हुआ उस समय उन्होंने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक ब्रह्माजी से यह कहा ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

वेदगर्भं ब्रह्माणम् ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में वेदगर्भ शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है ॥६॥

**त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद्वृत्तिदः पिता । अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥७॥**

**अन्वयः**— एकः त्वम् सर्वभूतानां जन्मकृत् वृत्तिदः पिता अथापि नः प्रजानां केन वा ते शुश्रूषा भवेत् ॥७॥

**अनुवाद**— यद्यपि आप ही केवल सभी जीवों को जन्म देने वाले और जीविका प्रदान करने वाले पिता हैं । हम आप की सन्तान हैं फिर भी हम ऐसा कौन सा कार्य करें जिससे आपकी सेवा हो ?॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वमेवैकः पिता सर्वेषाम् । यतो जन्मकृद्वृत्तिदः पोषकश्च त्वमेव । अतस्तव यद्यप्यन्यापेक्षा नास्त्यथाप्यस्माकं ते शुश्रूषा केन कर्मणा भवेत्तद्विधेहीत्युत्तरेणान्वयः ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

आप ही सभी जीवों के पिता हैं; क्योंकि आप सबों को जन्म और जीविका प्रदान करते हैं तथा सबों को पोषते पालते हैं। अतएव आपको यद्यपि किसी की अपेक्षा नहीं है, फिर भी हमलोगों के किन कर्मों के द्वारा आपकी सेवा होगी उसे आप बतलायें ? इस तरह से अगले श्लोक से अन्वय है ।।७।।

**तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु । यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः ।।८।।**

**अन्वयः**— हे ईड्य तुभ्यं नमः आत्मशक्तिषु कर्मसु यत् कृत्वा इह विष्वक् यशः अमुत्र गतिः च भवेत् तद् विधेहि।।८।।

**अनुवाद**— हे पूज्यपाद आपको नमस्कार है। हमलोगों द्वारा किया जाने योग्य कौन सा ऐसा कार्य है जिसके करने से सम्पूर्ण संसार में यश फैले और परलोक में सद्गति हो ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

हे ईड्य, आत्मशक्तिष्वस्मच्छक्येषु कर्मसु मध्ये केन कर्मणा भवेत्तद्विधेहि इदं कर्तव्यमिति कथय। यत्कृत्वा यस्मिन्कृते सति । विष्वक् सर्वतः । अमुत्र परलोके ।।८।।

**भाव प्रकाशिका**

हे पूज्यपाद हमलोगों द्वारा किए जाने योग्य कार्यों मे से कौन सा ऐसा काम हो सकता है जिससे कि आपकी सेवा बन सके, उसे आप बतलाइये ।।८।।

ब्रह्मोवाच

**प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर । यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनाऽर्पितम् ।।९।।**

**अन्वयः**— हे क्षितीश्वर ! वां स्वस्ति स्तात् तात ! तुभ्यम् अहं प्रीतः यत् निर्व्यलीकेन हृदा मे शाधि इत्यात्मनाऽर्पितम्।।९।।

**ब्रह्माजी ने कहा**

**अनुवाद**— पृथिवीपते ! आप दोनों का कल्याण हो । मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि तुमने निष्कपटभाव से मुझे आज्ञा प्रदान करें इस तरह से अपने आपको समर्पित कर दिया है ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

वां युवाभ्यां स्वस्ति भद्रं स्तात् भूयात्। यद्यतो मा मां शाध्यनुशिक्षयेत्यात्मना स्वयमेवर्पितं निवेदितमतः प्रीतोऽस्मि।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

मैं तुम दोनों पर इसलिए प्रसन्न हूँ कि तुमने निष्कपट भाव से कहा है कि आप मेरा प्रशासन करें ।।९।।

**एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ । शक्त्याऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ।।१०।।**

**अन्वयः**— हे वीर ! आत्मजैः गुरौ एतावती अपचिती कार्या । गतमत्सरैः अप्रमत्तैः शक्त्या सादरं गृह्येत ।।१०।।

**अनुवाद**— वीर पुत्रों को अपने पिता की इसी प्रकार से पूजा करनी चाहिए कि दूसरों के प्रति ईर्ष्या का भाव रखे बिना अपने पिता की आज्ञा का अपनी शक्ति के अनुसार पालन करें ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

अपचितिः पूजा। गृह्येत आज्ञेति शेषः । सनकादयो न कुर्वन्ति वयं किमिति करिष्याम इत्येवंभूतो गतो मत्सरो येभ्यः।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

अपचिति पूजा को कहते हैं । ब्रह्माजी ने कहा कि पुत्रों को अपने पिता की इतनी ही सेवा करनी चाहिए कि वे किसी द्वेष से इर्ष्या किए बिना ही अपनी शक्ति के अनुसार पिता की आज्ञा का पालन करें । तुम लोगों को इस प्रकार की ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए कि सनकादि तो आपकी सेवा नहीं करते हैं, हमलोग क्यों करें ?॥१०॥

**स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः । उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥**

**अन्वयः**— स त्वम् अस्याम् गुणैः आत्मनः सदृशानि अपत्यानि उत्पाद्य धर्मेण गां शास, यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥

**अनुवाद**— तुम अपनी इस पत्नी से अपने ही समान गुणवान् सन्तानों को उत्पन्न करके धर्मपूर्वक पृथिवी का प्रशासन करो और यज्ञों के द्वारा परम पुरुष परमात्मा की आराधना करो ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

गां शास शाधि । पालयेत्यर्थः । पुरुषं हरिम् ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने महाराज मनु को तीन आदेश दिया है । १. अपनी इस शतरूपा से अपने ही समान गुणवान् सन्तानों को उत्पन्न करो । २. धर्म पूर्वक पृथिवी का प्रशासन करो और ३. यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना करो ॥११॥

**परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप । भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशो नु तुष्यति ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे नृप प्रजारक्षया मह्यं परं शुश्रूषणं स्यात् ते प्रजाभर्तुः भगवान् हृषीकेशः नु तुष्यति ॥१२॥

**अनुवाद**— हे राजन् ! प्रजाओं की रक्षा करने से मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी और तुमको प्रजाओं का पालन करते देखेकर भगवान् हृषीकेश को भी प्रसन्नता होगी ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

प्रजापालकस्य ते तुष्टो भविष्यति ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

प्रजापालक तुमसे श्रीहरि भी प्रसन्न होंगे और प्रजाओं का पालन करने से मेरी सबसे बड़ी सेवा तो होगी ही ॥१२॥

**येषां न तुष्टो भगवान्यज्ञलिङ्गो जनार्दनः । तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— येषां यज्ञलिङ्गो भगवान् जनार्दनः न तुष्टः तेषां श्रमो हि अपार्थाय यत् स्वयम् आत्मा नादृतः ॥१३॥

**अनुवाद**— जिन लोगों पर यज्ञपुरुष भगवान् जनार्दन नहीं प्रसन्न होते हैं उन लोगों का सारा श्रम व्यर्थ ही होता है, क्योंकि ऐसे लोगों ने अपनी आत्मा का ही अनादर किया है ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

उदासीनस्य भगवतोऽतोषे मे को दोषस्तत्राह येषामिति । यज्ञलिङ्गो यज्ञमूर्तिः । अपगतोऽर्थो यस्मात्। केवलं श्रमायैवेत्यर्थः। यद्यस्मादात्मैव स्वयं नादृतः । तस्मिन्नतुष्टे स्वार्थस्यैवासिद्धेः सर्वात्मत्वाच्च तस्य ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि भगवान् तो उदासीन है । वे यदि मुझ पर नहीं प्रसन्न होते हैं तो इसमें मेरा क्या दोष है। तो इसके उत्तर में **येषाम् इत्यादि** श्लोक कहा गया है । अर्थात् जिस व्यक्ति पर श्रीभगवान् प्रसन्न नहीं होते हैं तो फिर उसके द्वारा किया जाने वाला सारा परिश्रम व्यर्थ है; क्योंकि उनके अप्रसन्न रहने पर उसके किसी भी अर्थ की सिद्धि नहीं हो सकती है । सबों की आत्मा श्रीभगवान हैं ॥१३॥

मनुरुवाच

**आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन । स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥१४॥**

**अन्वयः**— हे अमीवसूदन ! अहं भगवतः आदेशे अनुवर्तेय प्रभो मम, प्रजानां च इह तु स्थानम् अनुजानीहि ॥१४॥

**मनु ने कहा**

**अनुवाद**— हे पाप विनाशक ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत हूँ; किन्तु पहले आप मेरे तथा मेरी प्रजा के रहने का स्थान बतलायें ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

वर्तेय वर्तिष्ये । अमीवसूदन पापनाशन । अनुजानीह्यत्र स्थातव्यमित्यनुज्ञां देहि ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज मनु ने कहा भगवन् मैं आपकी आज्ञा का पालन करना चाहता हूँ । हे पापों के विनाशक पहले आप उस स्थान को बतलायें जहाँ मैं और मेरी प्रजाएँ रहेंगी ॥१४॥

**यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महाम्भसि । अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— देव ! यत् सर्वसत्त्वानाम् ओकः सा मही महाम्भसि मग्ना देव ! अस्या देव्याः उद्धरणे यत्नः विधीयताम्॥१५॥

**अनुवाद**— हे देव जो पृथिवी सभी जीवों का निवास स्थान है, वह पृथिवी महार्णव के जल में डूबी हुयी है । पहले आप इस भूदेवी के उद्धार का प्रयास कीजिये ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

महीति चेदत आह । यदोकः स्थानं सा मही । हे देव, अस्या देव्याः ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि तुम और तुम्हारी प्रजायें पृथिवी पर रहें, तो ऐसा नहीं कह सकते हैं, क्योंकि पृथिवी तो महार्णव के जल में डूबी हुयी हैं; अतएव सर्वप्रथम आप भूदेवी को इस महार्णव के जल से निकालने का प्रयास करें ॥१५॥

मैत्रेय उवाच

**परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथा सन्नामवेक्ष्य गाम् । कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— परमेष्ठी तु अपां मध्ये तथा सन्नां गाम् अवेक्ष्य एनां कथम् समुन्नेष्ये इति धिया चिरं दध्यौ ॥१६॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— ब्रह्माजी जल के भीतर उस तरह से डूबी हुयी पृथ्वी को देखकर बहुत देर तक इस बात का विचार करते रहे कि मैं इस पृथिवी को ऊपर कैसे लाऊँ ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

पूर्वं पाने कृतेऽपि पुनरकाण्ड एवोद्भूतानामपां मध्ये सन्नामवसन्नां निमग्नाम् । समुन्नेष्ये उद्धरिष्यामि ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

पहले पान कर लिए जान पर भी बिना अवासर के ही उत्पन्न इस जल समूह में डूबी हुयी इस पृथिवी को मैं कैसे ऊपर लाऊँगा । इस बात का ब्रह्माजी ने देर तक चिन्तन किया ॥१६॥

**सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता । अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ॥**
**यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥१७॥**

**अन्वयः**— मे सृजतः क्षितिः वार्भिः प्लाव्यमना रसागता अथ अत्र सर्गयोजितैः अस्माभिः किम् अनुष्ठेयम् अहं यस्य हृदयादासम् स ईशः मे विदधातु ॥१७॥

**अनुवाद**— जिस समय मैं सृष्टि के कार्य में लगा था उस समय पृथिवी जल में डूबने जाने के कारण रसातल में चली गयी, इस समय हमलोग सृष्टि के कार्य में नियुक्त हैं । अतएव इसके लिए हमें क्या करना चाहिए ? मेरे इस कार्य को वे ही श्रीभगवान् करें जिनके सङ्कल्प मात्र से मैं उत्पन्न हुआ था ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

चिन्तामेवाह । सृजतः सतः । वार्भिरद्भिः । रसां रसातलम् । ईश्वरेण सर्गे नियुक्तैः मेऽनुष्ठेयं स एव विदधातु संपादयतु॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी की चिन्ता का ही वर्णन किया गया है । ब्रह्माजी सोच रहे थे कि जब मैं सृष्टि के कार्य में लगा हुआ था उसी समय पृथिवी पानी में डूबकर रसातल में चली गयी । इस समय मैं परमात्मा के द्वारा सृष्टि के कार्य में लगाया जा चुका हूँ । अतएव इसके लिए जो मेरे द्वारा किया जाना हो उस कार्य को श्रीभगवान् ही पूरा कर दें ॥१७॥

**इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ । वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! इति अभिध्यायतः नासाविवरात् सहसा अङ्गुष्ठपरिमाणकः वाराहतोकः निरगात् ॥१८॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप ! विदुरजी इस तरह से ब्रह्माजी जब विचार कर रहे थे उसी समय उनकी नाक के छिद्र से अङ्गुष्ठ परिमाण वाला एक छोटा सा वाराह निकला ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

वाराहतोकः सूक्ष्मो वराहः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

वराहतोक शब्द का अर्थ है छोटा सा वराह ॥१८॥

**तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत । गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥१९॥**

**अन्वयः**— हे भारत ! तस्य अभिपश्यतः किल खस्थः क्षणेन गजमात्रः प्रववृधे तत् महत् अद्भुतम् अभूत् ॥१९॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! ब्रह्माजी के देखते ही देखते आकाश में स्थित वह वराह क्षणभर में हाथी के बराबर हो गया यह बड़े ही आश्चर्य की बात हुयी ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

खस्थ आकाशे स्थितः सन् ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

वह छोटा सा वराह आकाश में ही स्थित था और ब्रह्माजी की आँखों के सामने ही क्षणभर में बढ़कर हाथी के समान बड़े आकार का हो गया ॥१९॥

**मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह । दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥**

**अन्वयः**— मरीचि प्रमुखैः विप्रैः कुमारैः मनुनना च सह तत् सौकरं रूपं दृष्ट्वा चित्रधा तर्कयामास ॥२०॥

**अनुवाद**— मरीचि आदि ऋषियों, सनकादिकों तथा मनु के साथ ही वराह के उस रूप को देखकर ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार से विचार किया ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

चित्रधा अनेकधा ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के उस सूकर रूप को देखकर ब्रह्माजी अनेक प्रकार के विचार प्रकट करने लगे ॥२०॥

**किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् । अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— सौकरव्याजं एतत् किं दिव्यं सत्त्वम् अवस्थितम् ? अहो बत आश्चर्यम् इदं मे नासायाः विनिःसृतम्॥२१॥

**अनुवाद**— हरे यह सूकर के रूप में यहाँ कौन सा दिव्यप्राणी प्रकट हो गया है । यह वड़े ही आश्चर्य की बात है कि यह अभी-अभी मेरी नाक से निकला है ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी को आश्चर्य हो रहा था कि अभी-अभी यह मेरी नाक से छोटा सा वराह निकला था और क्षणभर में यह हाथी के बराबर हो गया ॥२१॥

**दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः । अपिस्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥२२॥**

**अन्वयः**— अङ्गुष्ठशिरोमात्रः दृष्टः क्षणाद् गण्डशिलासमः, अपिस्वित् एष यज्ञो भगवान् मे मनः खेदयन् वर्तते॥२२॥

**अनुवाद**— इसको तो हमलोग अभी-अभी अङ्गूठे के ऊपरी भाग के समान परिमाण वाले के रूप में देखे थे और क्षण भर में यह बढ़कर विशाल शिला के समान आकार वाला हो गया है । कहीं ये यज्ञपुरुष भगवान् ही हमलोगों के मन को इस तरह से मोहित तो नहीं कर रहे हैं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

पूर्वमङ्गुष्ठाग्रप्रमाणो दृष्टः । गण्डशिला स्थूलपाषाणस्तत्समः । यज्ञो विष्णुः । निजरूपतिरोधानेन मे मनः खेदयन्॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी आदि सोच रहे थे कि पहले तो अङ्गूठे के अग्रभाग के समान परिमाण वाले दिखे और क्षणभर में बहुत बड़ी पाषाण की शिला के आकार के समान आकार वाले दिख रहे हैं । कहीं भगवान् विष्णु ही अपने रूप को तिरोहित करके हमलोगों के मन को मोहित तो नहीं कर रहे हैं ॥२२॥

**इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः । भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥२३॥**

**अन्वयः**— सूनूभिः सह इति मीमांसतः तस्य ब्रह्मणः अगेन्द्रसन्निभः यज्ञपुरुषो भगवान् जगर्ज ॥२३॥

**अनुवाद**— जब ब्रह्माजी अपने पुत्रों के साथ इस प्रकार से विचार कर ही रहे थे कि पर्वतराज के समान आकार वाले भगवान् यज्ञपुरुष गर्जना किए ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

इति मीमांसमानस्य सतः । जगर्जागर्जत् । गिरीन्द्रतुल्यः ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

जब ब्रह्माजी अपने पुत्रों के साथ उपर्युक्त प्रकार से विचार कर रहे थे उसी समय पर्वतराज के समान आकार वाले भगवान् गर्जना किए ॥२३॥

**ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् । स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥२४॥**

**अन्वयः**— स्व गर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुःहरिः ब्रह्माणं तान् द्विजोत्तमान् च हर्षयामास ॥२४॥

**अनुवाद**— दिशाओं को प्रतिध्वनित करने वाली गर्जना के द्वारा व्यापक श्रीहरि ने ब्रह्माजी तथा उन सभी विप्रों को प्रहर्षित कर दिया ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

गर्जनप्रयोजनमाह- ब्रह्माणमिति ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की गर्जना का प्रयोजन **ब्रह्माणम् इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा बतलाया गया है । उस गर्जना का प्रयोजन ब्रह्माजी और उनके पुत्रों को प्रहर्षित करना था ॥२४॥

**निशम्य ते घर्घरितं स्वखेदक्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ।**
**जनस्तपः सत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन्स्म ॥२५॥**

**अन्वयः**— मायामयसूकरस्य स्वखेदक्षयिष्णु ते घर्घरितं निशम्य जनस्त सत्यनिवासिनः ते मुनयः त्रिभिः पवित्रैः अगृणन्स्म ॥२५॥

**अनुवाद**— मायामय वराह भगवान् की अपने खेद को दूर करने वाली घुर्घराहट को सुनकर जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक निवासी मुनियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के पवित्र मन्त्रों से श्रीभगवान् की स्तुति की ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

घर्घरितं तज्जात्यनुकरणध्वनिम् । अनिश्चयेन यः स्वखेदस्तस्य क्षयिष्णु क्षपयिष्णु नाशकम् । ते इति पुनरुक्तिः प्रसिद्धिख्यापनार्था । त्रिभिः पवित्रैर्ऋग्यजुःसाममन्त्रैरगृणन्नस्तुवन् ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

सूकर जाति का अनुकरण करने वाली ध्वनि निश्चय नहीं कर पाने के कारण जो खेद था उसको विनष्ट करने वाली उस ध्वनि को सुनकर जनलोक, तपोलोक एव सत्यलोक में रहने वाले जो मुनिजन थे वे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पवित्र मन्त्रों से श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥२५॥

**तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्मावधार्यात्मगुणानुवादम् ।**
**विनद्य भूयो विवुधोदयाय गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ॥२६॥**

**अन्वयः**— तेषां सतां वेदवितानमूर्तिः आत्मगुणानुवादम् ब्रह्म अवधार्य विवुधोदयाय भूयः विनद्य गजेन्द्रलीलः जलम् अविवेश ॥२६॥

**अनुवाद**— उन मुनीश्वरों द्वारा की जाने वाली स्तुति को अपना गुणानुवाद रूप वेद मानकर वेदों में वर्णित देवताओं का कल्याण करने के लिए श्रीभगवान् एक बार फिर गरजकर गजेन्द्र के समान लीला करते हुए जल के भीतर प्रवेश कर गये ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

वेदैर्वितन्यते स्तूयत मूर्तिर्यस्य सः । अत एवात्मनो गुणाननुवदति तथा तत्तेषां ब्रह्म उच्चारितं वेदमवधार्य ज्ञात्वा ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

वेद श्रीभगवान् के दिव्य मङ्गल विग्रह की स्तुति करते हैं । वे वेद जिस तरह से श्रीभगवान् के गुणों का जैसा वर्णन करते हैं वैसा ही उन मुनियों के द्वारा उच्चरित वेद का निश्चय करके भगवान् ने देवताओं का कल्याण करने के लिए पुनः एक बार गर्जना किया ओर गजेन्द्र के समान लीला करते हुए वे जल में प्रवेश कर गये ।।२६।।

**उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन्खररोमशत्वक् ।**
**खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ।।२७।।**

**अन्वयः**— उत्क्षिप्तबालः, खचरः कठोरः सटा विधून्वन् खररोमशत्वक्, खराहताभ्रः सितदंष्ट्रः ईक्षा ज्योतिः महीध्र भगवान् बभासे ।।२७।।

**अनुवाद**— सूकर रूपधारी भगवान् अपनी पूंछ उठाकर आकाश में उछले, उनका शरीर कठोर था, वे अपने कन्धे के आयालों को फड़फड़ा रहे थे, त्वचा पर कड़े-कड़े बाल थे तथा जो अपने खुरों से मेघों को तितर-वितर कर रहे थे, उनके दाँत सफेद थे तथा उनकी आँखे चमक रही थीं इस तरह से पृथिवी का उद्धार करने वाले भगवान् सुशोभित हुए ।।२७।।

**भावार्थ दीपिका**

कथंभूतः सन्नाविवेशेत्यपेक्षायामाह द्वाभ्याम् । उच्चैः क्षिप्तो बालः पुच्छं येन । खचर आकाशचारी । कठोरः कठिनः। सटाः स्कन्धबालान् । खराणि तीक्ष्णानि रोमाणि यस्याः सा त्वग्यस्य । खुरैराहतान्यभ्राणि येन । सितदंष्ट्रोऽतिशुक्लदंष्ट्रः । ईक्षा निरीक्षणमेव ज्योतिरालोको यस्य । तदा प्रकाशान्तराभावात् । बभासेऽशोभत । महीध्रः पृथिव्या उद्धर्ता ।।२७।।

**भाव प्रकाशिका**

किस प्रकार का अपना रूप बनाकर भगवान् जल में प्रवेश किए इस प्रकार की आकांक्षा होने पर उसका वर्णन महर्षि मैत्रेय ने दो श्लोकों में किया है । सर्वप्रथम वे अपनी पूंछ उठाकर आकाश में उछले वे अपनी गर्दन के बालों को फड़-फड़ाकर अपने खुरों के आघात से बादलों को तितर वितर करने लगे । उनका शरीर कठोर था । उनकी त्वचा पर कड़े-कड़े बाल थे, उनके दाँत श्वेत थे और आँखों से तेज निकल रहा था वही प्रकाश का काम करता था, क्योंकि उस समय दूसरा कोई प्रकाश था ही नहीं, इस तरह से वराह भगवान् सुशोभित हो रहे थें ।।२७।।

**घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ।**
**करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् ।।२८।।**

**अन्वयः**— एवम् अध्वराङ्गः क्रोडापदेशः घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् कराल दंष्ट्र अपि अकारालदृग्भ्यां गृणत विप्रान् उद्वीक्ष्य कम् आविवेश ।।२८।।

**अनुवाद**— भगवान् स्वयम् यज्ञ पुरुष होने पर भी सूकर का रूप बनाये रहने के कारण वे अपनी नाक से सूंधकर पृथिवी का पता लगा रहे थे । उनकी दाढें कठोर थीं अतएव देखने में भयङ्कर लगते थे फिर भी वे अपनी सौम्य दृष्टि से स्तुति करने वाले मुनियों को देखकर जल में प्रवेश किए ।।२८।।

**भावार्थ दीपिका**

क्रोडापदेशो वराहच्छद्मा । अतः स्वयमध्वराङ्गोऽपि पशुरिव घ्राणेन विजिघ्रन् । गृणतः स्तोतृन्विप्रानुद्वीक्ष्योर्ध्वं वीक्ष्य कं जलमाविशत् ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

वराह का रूप बनाये रखने के कारण भगवान् यज्ञपुरुष होने पर भी पशु के समान नाक से सूंघकर वे पृथिवी का पता लगा रहे थे। कठोर दाढों के कारण देखने में भयङ्कर लगने पर भी वे स्तुति करने वाले मुनियों को अत्यन्त सौम्य दृष्टि से देखकर जल में प्रवेश किए ॥२८॥

**स वज्रकूटाङ्गनिपातवेगविशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ।**
**उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥२९॥**

**अन्वयः**— वज्रकूटाङ्गनिपातवेगःसः उदन्वान् विशीर्णकुक्षिः स्तनयन् उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैः इव आर्तः सन् चुक्रोश यज्ञेश्वर ! मा पाहि इति ॥२९॥

**अनुवाद**— वज्र समूह के समान कठोर अङ्ग वाले श्रीभगवान् के गिरने के वेग के कारण समुद्र का पेट मानो फट गया गरजता हुआ वह अपनी ऊँची-ऊँची तरङ्ग रूपी भुजाओं को उठाकर चिल्ला पड़ा हे यज्ञेश्वर आप मेरी रक्षा करें ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

तदानींतनसमुद्रध्वनिमुत्प्रेक्षते। सह उदन्वान्समुद्र आर्त इव स्तनयन् शब्दं कुर्वन् भो यज्ञेश्वर, मा मां पाहि माम् अव इत्येवं चुक्रोश। आर्तसादृश्यमाह।। उत्सृष्टाः प्रसारिता दीर्घा ऊर्मय एव भुजास्तैर्विशिष्टः। आर्तत्वे हेतुः-वज्रकूटो वज्रमयः पर्वतस्तद्वदङ्गं यद्भगवततस्तस्य निपातवेगेन विशीर्णा कुक्षिर्यस्य ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

समुद्र के जल में प्रवेश करते समय समुद्र में जो ध्वनि हुई उसकी उत्प्रेक्षा करते हुए महर्षि मैत्रेय कहते हैं जिस समय वज्रसमूह के समान कठोर अङ्गों वाले श्रीभगवान् उस महार्णव के जल में कूदे उस समय समुद्र का पेट मानो फट गया। उस समय बड़ी-बड़ी लहरें समुद्र में उठने लगीं। वे ही जैसे समुद्र की भुजाएँ हों। उन तरङ्ग रूपी हाथों को ऊपर उठाकर जैसे समुद्र चिल्ला रहा हो कि हे यज्ञेश्वर आप मेरी रक्षा करें ॥२९॥

**खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाप उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ।**
**ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥३०॥**

**अन्वयः**— क्षुरप्रैः खुरैः तदा आपः दारयन् त्रिपरू उत्पारपारं रसायां गां ददर्श तत्र सुषुप्सुः अग्रे यां जीवधानीम् स्वयमभ्यधत्त ॥३०॥

**अनुवाद**— उस समय बाण के समान तीक्ष्ण खुरों से जल को चिरते हुए यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् उस अपार जल राशि के उस पार पहुँच गये और रसातल में विद्यमान जीवों के आश्रयभूत पृथिवी को देखे, जिसको कल्प के अन्त में शयन करने के इच्छुक श्रीभगवान् अपने भीतर लीन कर लिए थे ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

तदा रसायां रसातले गां पृथ्वी ददर्श। कः। त्रिपरुः त्रीणि परूंषि सवनात्मकानि पर्वाणि यस्य। यज्ञमूर्तिरित्यर्थः। किं कुर्वन्। क्षुरप्रा आयताग्रगाः शरास्तत्सदृशैः खुरैरपो दरयन्। कथम्। उत्पारपारं उत्पाराणां पारशून्यानामप्यपां पारमवसानं यथा भवति तथा विदारयन्। कथंभूतः। अग्रे प्रलयसमये तत्र तास्वप्सु सुषुप्सुः शिशयिषुः सन् जीवा धीयन्ते यस्यां सर्वजीवाधारभूतां यां स्वयमभ्यधत्त आभिमुख्येन दधार। जठरे धृतवानित्यर्थः। अनेन तदुद्धरणेऽनायासं द्योतयति ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

उस समय यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् जिनके अग्रभाग विस्तृत हों ऐसे क्षुरप्र बाणों के समान खुरों के द्वारा उस अपार जल राशि को चीरते हुए उसके पार पहुँच गये और वहाँ उन्होंने रसातल में विद्यमान पृथिवी को देखा। प्रलय काल की बेला में सोने के लिए उद्यत श्रीभगवान् सभी जीवों के आश्रय भूत पृथिवी को उदरस्थ कर लिए थे। भगवान् को **त्रिपरू** कहा गया है। उसका विग्रह है त्रीणि परूंषि अस्मिन्। अर्थात् जिसमें तीन परु अर्थात् सवन होते हों उसको त्रिपरू कहेंगे। यज्ञ में तीन सवन होते हैं। श्रीभगवान् यज्ञपुरुष हैं, अतएव उनको त्रिपरू कहा गया है। **उत्पारपारम्** का विग्रह है **उत्पाराणां पारशून्यानां पारम् उत्पारपारम्** अर्थात् अपार। इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि पृथिवी का उद्धार करने में श्रीभगवान् को कोई प्रयास नहीं करना है। क्योंकि उस पृथिवी को भगवान् प्रलयकाल में जठरस्थ कर लिए थे ॥३०॥

**स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः।**
**तत्रापि दैत्यं गदयाऽऽपतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥३१॥**
**जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं सलीलयेभं मृगराडिवाम्भसि।**
**तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥३२॥**

**अन्वयः**— निमग्नां महीं स्वदंष्ट्रया उदधृत्य स उत्थितः रसाया संरुरुचे तत्रापि गदया आपतन्तं दैत्यं सुनाभसंदीपिततीव्र मन्युः असह्यविक्रमं रुन्धानं स लीलया इभं मृगराडिव अम्भसि जघान। तद्रक्त पंङ्कांकितगण्डतुण्डः जगतीं विभिन्दन् गजेन्द्रः यथा संकरूचे ॥३१-३२॥

**अनुवाद**— जल में डूबी हुयी पृथिवी को अपने दाँतो पर उठाकर वे रसातल से ऊपर आये। उस समय भी अपनी गदा लेकर पीछा करने वाले तथा असह्य पराक्रमी हिरण्याक्ष जो प्रहार कर रहा था उसके कारण उनका क्रोध चक्र के समान तीव्र हो गया और उसको वे जल में ही लीला पूर्वक वैसे ही मार डाले जैसे कोई सिंह किसी हाथी को लीला पूर्वक मार डालता है। उस समय उसके रक्त से सने हुए उनकी कनपटी और थुथुन उसी तरह से सुशोभित हो रहे थे जैसे कोई हाथी लाल मिट्टी वाली भूमि को खोदकर आया हो ॥३१-३२॥

**भावार्थ दीपिका**

रसायाः सकाशादुत्थितः संरुरुचे सम्यगशोभत। तत्राप्यम्भसि गदामुद्यम्यागच्छन्तं रुन्धानं प्रतिघ्नन्तं न सह्यः सहनानर्हो विक्रमो यस्य तं दैत्यं सुनाभं चक्रं तद्वत्संदीपितस्तीव्रो मन्युर्यस्य। यद्वा मयि विद्यमाने किमिति परिभवं सहस इति सुनाभेन संदीपितस्तीव्रमन्युः स भगवान्सिंहो जगर्जमिव लीलया जघानेत्युत्तरेणान्वयः। गजेन्द्रो जगतीं क्रीडया विदारयन् गैरिकया यथा अरुणगण्डतुण्डो भवति तथा तस्य रक्तमेव पङ्कस्तेनाङ्कितौ गण्डौ तुण्डं च यस्य सः ॥३१-३२॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने जल में डूबी हुयी पृथिवी को अपने दाँतों पर उठा लिया और उसको लेकर वे रसातल से ऊपर निकले। उस समय पृथिवी को अपने दाँतों पर उठाये रखने के कारण श्रीभगवान् की अत्यधिक शोभा हो रही थी। वहाँ भी हिरण्याक्ष अपनी गदा लेकर उनका पीछा किया उसका पराक्रम असह्य था और वह श्रीभगवान् पर गदा से प्रहार कर रहा था। उसके कारण श्रीभगवान् का क्रोध चक्र के समान तीक्ष्ण हो गया। **सुनाभसंदीपित तीव्रमन्युः** यह भी अर्थ हो सकता है कि चक्र श्रीभगवान् के क्रोध को यह कहकर अत्यधिक बढ़ा दिया कि मेरे रहते हुए आप इतना परिभव क्यों सह रहे हैं ? भगवान् बड़ी आसानी से उसको उसी तरह मार डाले जैसे कोई सिंह हाथी को मार डालता है। हिरण्याक्ष के खून से वराह भगवान् की कनपटी और थुथुन उसी तरह लाल हो गया था जिस तरह कोई हाथी गैरिक मिट्टी को लीलापूर्वक खोदकर आया हो ॥३१-३२॥

**तमालनीलं सितदन्तकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गजलीलयाऽङ्ग ।**
**प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकैर्विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— अङ्ग तमालनीलम् सितदन्तकोट्या गजलीलयाक्ष्माम् उत्क्षिपन्तम् प्रज्ञाय बद्धञ्जलयः विरिञ्चिमुख्याः अनुवाकैः ईशम् उपतस्थुः ॥३३॥

**अनुवाद**— तमाल पत्र के समान श्याम वर्ण वाले, जिस तरह कोई हाथी अपने दाँतों पर तमाल पुष्प को धारण किए हो उस तरह से अपने श्वेत दाँतों पर पृथिवी को धारण किए हुए जल से बाहर निकले वराह भगवान् को जानकर ब्रह्मा आदि जितने भी ऋषिगण थे वे हाथ जोड़कर वैदिक अनुवाकों के समान वाक्यों के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रज्ञाय आलक्ष्य । अनुवाको वैदिकं सूक्तं तत्सदृशैर्वाक्यैस्तुष्टुवुः ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् पृथिवी का उद्धार कर रहे हैं इस बात को जानकर ब्रह्मा आदि जितने भी ऋषिगण वहाँपर विद्यमान थे वे हाथ जोड़कर श्रीभगवान् की स्तुति वैदिक सूक्तों के समान वाक्यों से करने लगे ॥३३॥

ऋषय ऊचुः

**जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।**
**यद्रोमगर्तेषु निलील्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥३४॥**

**अन्वयः**— हे यज्ञभावन, अजित ! जितं जितम्, स्वां त्रयी तनुं परिधुन्वते नमः, यद्रोमगर्तेषु अध्वराः निलिल्युः तस्मै कारण सूकराय ते नमः ॥३४॥

**ऋषियों ने कहा**

**अनुवाद**— हे यज्ञपते अजित भगवन् आपकी जय हो , जय हो, अपने त्रयीरूपी शरीर को फड़फड़ाने वाले आपको नमस्कार है । आपके रोमकूपों में सभी यज्ञ लीन हो गये ऐसे सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप सूकर रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार हैं ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

भो अजित, ते त्वया जितं जितमिति संभ्रमे वीप्सा । यज्ञैर्भाव्यते आक्रियत इति तथा । त्रयीं वेदमयीम् । निलिल्युर्लीनप्रायाः। कारणं पृथिव्युद्धरणं तेन सूकराय ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

हे अजित आपकी जय हो ! जय हो ! यहाँ पर संभ्रम के अर्थ में वीप्सा है । हे यज्ञों के द्वारा अभिव्यक्त होने वाले भगवन् आप अपने वेदमय शरीर को फड़फड़ा रहे हैं । आपके रोमकूपों में ही सभी यज्ञ लीन हो गये। आप पृथिवी का उद्धार करने के ही लिए सूकर शरीर धारण किए हैं ऐसे आपको नमस्कार हैं ॥३४॥

**रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।**
**छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥**

**अन्वयः**— हे देव ! तव एतत् यत् अध्वरात्मकम् रूपं तत् दुष्कृतात्मनां ननु दुर्दर्शनं, यस्य ते त्वचि छन्दांसि रोमसु बर्हिः दृशि आज्यं त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥

**अनुवाद**— हे देव ! आपका यह जो यज्ञात्मक रूप है, इसका दर्शन प्राणियों को होना कठिन है । आपके त्वचा में छन्दों का, रोमों पंक्तियों में कुश, नत्रों में घृत तथा चरणों में होता, उध्वर्यु, उद्‌गता और ब्रह्मा इन चारो ऋत्विजों के कर्म विद्यमान हैं ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

यज्ञात्मतां प्रपञ्चयन्तः स्तुवन्ति-रूपमित्यादिचतुर्भिः । छन्दांसि गायत्र्यादीनि । यज्ञाङ्गभृतच्छन्दआद्युनवादेन भगवदवयवता विधीयते । बर्हिःशब्दे दीर्घाभाव आर्षः । दृशि चक्षुषि । चातुर्होत्रं होत्रादिकर्मचतुष्टयम् ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

ऋषिगण भगवान के यज्ञात्मक रूप का विस्तार करते हुए चार श्लोकों से उनकी स्तुति करते हैं वे कहते हैं कि आपकी त्वचा में गायत्री आदि छन्दों का निवास है । यज्ञ के अङ्गभूत छन्द आदि का अनुवाद करके उनको श्रीभगवान् की अङ्गता का विधान किया गया है । बर्हिशब्द में आर्ष प्रयोग होने के कारण दीर्घ नहीं किया गया है । आपके नेत्रों में ज्योति का निवास और चरणों में चातुर्होत्र का निवास बतलाया गया है । होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता और ब्रह्मा इन चारो प्रकार के ऋत्विजों के कर्म को चातुर्होत्र कहते हैं ।।३५।।

**स्रुक् तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।**
**प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ।।३६।।**

**अन्वयः**— हे ईश ! तुण्डे स्रुक् आसीत् नासयोः स्रुवः उदरे इडा, कर्णरन्ध्रे, चमसाः, आस्ये प्राशित्रम्, ते ग्रसने ग्रहाः, हे भगवन् यत् ते चर्वणभूतम् अग्निहोत्रम् ।।३६।।

**अनुवाद**— हे परमात्मन् आपके तुण्ड (थुथुन) में स्रुक् है, नाकों में स्रुवा है, उदर (पेट) में इडा (यज्ञीय भक्षण पात्र, कानों के छिद्र में चमस है) मुख में प्राशित्र (ब्रह्मभाग पात्र) है, कण्ठ के छिद्र में ग्रह (सोमपात्र) हैं। हे भगवन् आपका जो चबाना है वही अग्निहोत्र है ।।३६।।

**भावार्थ दीपिका**

स्रुक् जुहूस्तुण्डे मुखाग्रे । स्रुवो नासिकयोः । इडा भक्षणपात्री । चमसा ग्रहाश्च सोमपात्राणि । प्राशित्रं ब्रह्मभागपात्रम्। ग्रस्यतेऽनेनेति ग्रसनं मुखान्तर्वर्तिच्छिद्रम् । चर्वणं भक्षणम् ।।३६।।

**भाव प्रकाशिका**

ऋषियों ने कहा हे भगवन् आपके मुख के अग्रभाग में स्रुक है, नाकों में स्रुवा है, उदर में इडा (भक्षणपात्री) है, कानों के छिद्रों में चमसों का निवास है, मुख में प्राशित्र ब्रह्मभाग पात्र है । **ग्रसन** शब्द से **ग्रस्यते अनेन** इस व्युत्पत्ति के अनुसार कण्ठछिद्र को कहा गया है । चर्वण शब्द खाने का बोधक है ।।३६।।

**दीक्षाऽनुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।**
**जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ।।३७।।**

**अन्वयः**— अनुजन्म दीक्षा, शिरोधरम् उपसदः, प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः, जिह्वा प्रवर्ग्यः, तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं ते असवः चितयः ।।३७।।

**अनुवाद**— हे यज्ञ स्वरूप भगवन् बार-बार आपका अवतार ग्रहण करना ही आपकी दीक्षणीय इष्टि है, आपकी गरदन ही उपसद (तीन इष्टियाँ हैं), आपके दोनों दाढें प्रायणीय (दीक्षा के बाद की इष्टि) है और उदयनीय (यज्ञ की समाप्ति की इष्टि) हैं, जिह्वा ही प्रवर्ग्य प्रत्येक उपसद के पहले किया जाने वाला महावीर नामक कर्म है । आपका शिर सभ्य (होम रहित अग्नि) और अवसथ्य (औपासनाग्नि) हैं आपके प्राण ही चिति (इष्टिका चयन) है ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

दीक्षा दीक्षणीयेष्टिः । अनुजन्म बारंबारमभिव्यक्तिः । उपसदस्तिस्रइष्टयः । शिरोधरं ग्रीवा । प्रायणीया दीक्षाऽनन्तरेष्टिः, उदयनीया समाप्तीष्टिः, ते एव दंष्ट्रे यस्य । प्रवर्ग्यो महावीरः प्रत्युपसदं पूर्वं क्रियते । सभ्यो होमरहितोऽग्निः आवसथ्यमौपासनाग्निः तयोर्द्वन्द्वैक्यम् । तत्तव क्रतुरूपस्य शीर्ष के शिरः । चितय इष्टिकाचयनानि पञ्चासवः प्राणाः ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

दीक्षणीय इष्टि को ही दीक्षा कहते हैं । आपका बार-बार अवतार ग्रहण करना ही दीक्षा है । उपसद शब्द से तीन इष्टियाँ कहीं जाती हैं । गरदन को शिरोधर कहा गया है । आपके दोनों दाँत ही प्रायणीय (दीक्षा के बाद की इष्टि) और उदयनीय (यज्ञ की समाप्ति की इष्टि) हैं । आपकी जिह्वा ही प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसद से पूर्व किया जाने वाला महावीर कर्म) हैं । आपका शिर ही सभ्य (होम रहित अग्नि) है और अवसथ्य (औपासनाग्नि) है । आप स्वयं यज्ञस्वरूप हैं आपके पाँचो प्राण ही (इष्टिकाचयन) हैं ।।३७।।

**सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।**
**सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ।।३८।।**

**अन्वयः**— रेतः तु सोमः,अवस्थितिः सवनानि, हे देव तव धातवः संस्थाविभेदाः, शरीरसन्धिः सर्वाणि सत्राणि, त्वं सर्वयज्ञः क्रतुः, बन्धनः इष्टिः ।।३८।।

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आपका वीर्य ही सोम है, आपका बैठना ही प्रातः सवन इत्यादि तीनों सवन हैं, आपकी सातो धातुएँ ही अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम ये सात संस्थाएँ हैं । आपके शरीर की संन्धियाँ ही सम्पूर्ण सत्र हैं । इस तरह आप सम्पूर्ण यज्ञ (सोम रहित याग और क्रतु) (सोम सहित याग) स्वरूप हैं आपके शरीर अंगों को मिलाये रखने वाली मांसपेशियाँ ही इष्टियाँ हैं ।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

प्रातःसवनादीन्यवस्थितिरासनं बाल्याद्यवस्था वा । अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्र आप्तोर्याम इति सप्तसंस्थादिभेदास्त्वङ्मासादि सप्तधातवः । सत्राणि द्वादशाहादीनि बहुयागसङ्घातरूपाणि । असोमा यज्ञाः, ससोमाः क्रतवः, तद्रूपस्त्वम् । इष्टिर्यजनमनुष्ठानं तदेव बन्धनं यस्य सः ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने कहा भगवन् आपका बैठना अथवा आपकी बल्यावस्था इत्यादि अवस्थाएँ ही प्रातः सवन इत्यादि तीन सवन हैं । आपके त्वक् मांस, आदि सात धातुएँ ही अग्निवेश, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आतोर्याम ये सात संस्थाएँ हैं । आपके शरीर की सन्धियाँ ही द्वादशाह आदि अनेक यज्ञ समूह हैं। सोम रहित याग यज्ञ कहलाता है और सोम सहित याग क्रतु कहलाता है । ये सब आपके रूप हैं । और आपके अङ्गों को बाँधे रखने वाली मांसपेशियाँ इष्टि हैं । जो अनुष्ठान स्वरूप होती हैं ।।३८।।

**नामो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।**
**वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ।।३९।।**

**अन्वयः**— अखिल मन्त्र देवता द्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ते नमो नमः । वैराग्य भक्त्यात्मजयानु भावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ।।३९।।

**अनुवाद**— सम्पूर्ण मन्त्र देवता, द्रव्य, यज्ञ और कर्म आपके स्वरूप हैं । ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है । वैराग्य, भक्ति तथा मन की एकाग्रता से जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है वह ज्ञान आपका स्वरूप है । आप सबों के विद्यागुरु हैं आपको बारम्बार नमस्कार हैं ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तमेव सपरिकरं कीर्तयन्तः प्रणमन्ति नमो नम इति । अखिलमन्त्रादिरूपाय । क्रियात्मने सामान्यव्यापाररूपाय। किंच वैराग्ययुक्तकर्मसाध्या सत्त्व शुद्धिस्ततो भक्तिस्तत आत्मजयश्चित्तस्थैर्यं तेनानुभावितं साक्षात्कृतं यज्ज्ञानं तस्मै । एवं भूतज्ञानप्रदाय गुरवे च ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त अर्थ का ही परिकर के साथ वर्णन करते हुए ऋषिगण श्रीभगवान् को प्रणाम करते हैं । श्रीभगवान् सम्पूर्ण मन्त्रादि रूप हैं तथा वे ही सम्पूर्ण व्यापार स्वरूप हैं । साथ ही वैराग्य पूर्वक किए जाने वाले कर्मों के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होती है उसके कारण भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति के द्वारा उपासक का चित्त स्थिर हो जाता है । उसके द्वारा जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह ज्ञान स्वरूप हैं श्रीभगवान् ऐसे आपको बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार के ज्ञान को प्रदान करने वाले सबों के विद्यागुरु आप ही हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ॥३९॥

**दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ।**
**यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥४०॥**

**अन्वयः**— हे भूधर भगवन् त्वया दंष्ट्राग्रकोटया धृता सभूधरा भूः वनात् निःसरतः मत्त गजेन्द्रस्य दता सपत्रापद्मिनी धृता यथा विराजते ॥४०॥

**अनुवाद**— हे पृथिवी को धारण करने वाले भगवन् आपके द्वारा अपने दाँत के अग्रभाग में धारण की गयी पर्वतों से युक्त पृथिवी उसी तरह (सुशोभित) हो रही है जैसे जल से बाहर निकलने वाला कोई मदमत्त गजेन्द्र अपने दाँतों पर पत्तों से युक्त किसी कमलिनी को धारण कर रखा हो ॥४०॥

### भावार्थ दीपिका

हे भूधर ! सभूधरा सपर्वता । वनादुदकान्निर्गच्छतो गजेन्द्रस्य । दत्ता दन्तेन ॥४०॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने श्रीभगवान् को भूधर पद से संबोधित करते हुए कहा है कि आपके अपने दाँतों के ऊपर पर्वतों से युक्त धारण की गयी पृथिवी उसी तरह से सुशोभित हो रही है जिस तरह से जल से निकलने वाला मदमत्त गजेन्द्र अपने दाँतों के ऊपर पत्तों से युक्त कमलिनी को धारण कर रखा हो ॥४०॥

**त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ।**
**चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥४१॥**

**अन्वयः**— अथ दत्ता घृतेन भूमण्डलेन ते इदं त्रयीमयं सौकरं रूपं भूयसा शृङ्गोढघनेन कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः चकास्ति ॥४१॥

**अनुवाद**— आपके दाँतों के ऊपर रखे हुए भूण्डल के साथ आपका यह वेदमय सूकर रूप इस तरह से सुशोभित हो रहा है जिस तरह शिखरों पर बहुत अधिक मेघसमूह से कुलाचल पर्वत की शोभा होती है ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

त्वया धृता भूर्विराजत इत्युक्तम्, इदानीं भूमण्डलेन त्वद्रूपं विराजत इत्याहुः-त्रयीति । अथेत्यर्थान्तरे । ते इदं रूपं दन्तेन धृतं यद्भूमण्डलं तेन चकास्ति शोभते । शृङ्गेणोढो घृतो यो घनस्तेन । भूयसाऽतिमहता विभ्रमो विलासः ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि आपके द्वारा धारण की गयी पृथिवी सुशोभित हो रही है । इस श्लोक में यह कहा जा रहा है कि भूमण्डल के द्वारा आपका श्रीविग्रह सुशोभित हो रहा है । इस श्लोक में श्रीभगवान् के दिव्य मङ्गल विग्रह के सुशोभित होने के अर्थ में अथ शब्द का प्रयोग किया गया है । आप अपने दाँतों के ऊपर भूमण्डल धारण कर रखे हैं, उससे आपका यह यज्ञवाराह रूप अत्यधिक सुशोभित हो रहा है । मेघमाला से युक्त शिखर वाले कुलाचल पर्वत की शोभा को बहुत अधिक धारण करता है आपका यह रूप ।।४१।।

**संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।**
**विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ।।४२।।**

**अन्वयः**— लोकाय ते पत्नीम् सतस्थुषां जगतां मातरम् संस्थापय यतः पिता असि । त्वया सह अस्यै नमसा विधेम यस्यां अरणौ अग्निम् इव स्वतेजः अधाः ।।४२।।

**अनुवाद**— हे नाथ ! चराचर जीवों के सुख पूर्वक रहने के लिए आप अपनी पत्नी तथा जगत् की माता पृथ्वी को आप जल पर स्थापित करें । आप जगत् के पिता हैं । अरणि में विद्यमान अग्नि के समान इसमें आपने धारण शक्ति रूपी तेज का आधान कर दिया है । हमलोग आपके साथ इस पृथिवी माता को नमस्कार करते हैं।।४२।।

### भावार्थ दीपिका

लोकाय वासस्थानार्थम् । ते पत्नीम् । जगतां मातरम् । यतस्त्वं पितासि । एवं सति तत्र स्थिताः सन्तस्त्वया पित्रा सहास्यै मात्रे मनसा विधेम नमनं करिष्यामः, नमस्कारेण परिचरेमेति वा । स्वतेजोधारणशक्तिं याज्ञिका मन्त्रतोऽग्निमरणाविवाधाः निहितवानसि ।।४२।।

### भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण जीवों के निवास स्थान के लिए आप अपनी पत्नी तथा चराचर जगत् की माता भूदेवी को जल के ऊपर स्थापित कर दें । आप जगत् के पिता हैं । यहाँ पर विद्यमान हमलोग आपके साथ इस पृथिवी माता को नमस्कार करते हैं । अथवा नमस्कार के द्वारा इनकी सेवा करते हैं । जिस तरह याज्ञिकगण मन्त्र के द्वारा अरणि में अग्नि का आधान कर देते हैं उसी तरह आपने पृथिवी में धारण शक्ति रूपी अपने तेज का आधान कर दिया हैं ।।४२।।

**कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।**
**न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ।।४३।।**

**अन्वयः**— प्रभो ! तव अन्यतमः रसां गतायाः भुवः उदविबर्हणम् कः श्रद्दधीत ? विश्व विस्मये त्वयि असौ विस्मयो न यः मायया अतिविस्मयं इदं ससृजे ।।४३।।

**अनुवाद**— प्रभो, रसातल में गयी हुयी इस पृथिवी का आपसे भिन्न कोई दूसरा उद्धार करना कौन चाहेगा? आप तो सम्पूर्ण आश्चर्यों के एकमात्र आश्रय हैं, अतएव आपके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आपने तो अपनी माया के द्वारा अत्यन्त आश्चर्यमय इस विश्व की रचना की है ।।४३।।

### भावार्थ दीपिका

इदं च त्वयाऽतिदुष्करं कृतमित्याहुः-क इति । प्रभो, तव त्वया कृतं भुव उद्विबर्हणमुद्धरणं त्वदन्यः कः श्रद्दधीत स्पृहयेत् । अध्यवस्येदित्यर्थः । त्वयि पुनरसौ विस्मयो न भवति यतो विश्वे सर्वे विस्मया यस्मिन् । कुतः । यो भवान् । अतिविस्मयमत्यद्भुतमिदं विश्वम् । क्रियाविशेषणं वा । ससृजे सृष्टवान् ।।४३।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में ऋषियों ने कहा है कि आपने यह अत्यन्त कठिन कार्य किया है । हे प्रभो ! आपने जो पृथिवी का उद्धार किया है उसे आपसे भिन्न दूसरा कौन करने का साहस कर सकता है । किन्तु आप तो सम्पूर्ण आश्चर्यों के एक मात्र आश्रय हैं अतएव आपके लिए यह कोई आश्चर्य नहीं हैं । क्योंकि आपने अपनी माया के द्वारा अत्यन्त आश्चयर्मय विश्व की रचना की हैं ।।४३।।

**विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपः सत्यनिवासिनो वयम् ।**
**सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ।।४४।।**

**अन्वयः**— हे ईश ! वेदमयं निजं वपुः विधुन्वता सटाशिखोद्धूत शिवाम्बुविन्दुभिः जनस्तपः सत्यनिवासिनः वयम् विमृज्यमाना भृशं पाविताः ।।४४।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! जब आप अपने वेदमय शरीर को फड़फड़ाते हैं तो आपके गर्दन के बालों से निकली हुयी पवित्र जल की बुन्दों से जनलोक, तपोलाक तथा सत्यलोक निवासी हमलोग भींगकर अत्यन्त पवित्र हो जाते हैं।।४४।।

**भावार्थ दीपिका**

विस्मयं दर्शयन्तः प्रार्थयन्ते- विधुन्वतेति द्वाभ्याम् । सटानां शिखाभिरग्रैरुद्धूता उच्छलिता ये शिवा अम्बुबिन्दवस्तैः सिच्यमाना वयं पवित्रीकृताः ।।४४।।

**भाव प्रकाशिका**

आश्चर्य को प्रदर्शित करते हुए ऋषिगण दो श्लोकां से प्रार्थना करते हैं । आपके कन्धे के बालों के अग्रभाग से निकले हुए पवित्र जल की बूंदों से सींचित होकर हमलोग पवित्र हो जाते हैं । इस प्रकार से इस श्लोक में ऋषिगण श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं ।।४४।।

**स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।**
**यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ।।४५।।**

**अन्वयः**— यः अपारकर्मणः ते एष तव पारम् अवलोकयति स वै बत भ्रष्टमतिः । यत् योगमाया गुणयोगमोहितं समस्तं विश्वं भगवन् शं विधेहि ।।४५।।

**अनुवाद**— आपके कर्मों का कोई पार (अन्त) है ही नहीं ऐसे आपके कर्मों का जो पार जानना चाहता है वह अवश्य भ्रष्टबुद्धि वाला पुरुष है । आपकी योगमाया के सत्त्वादि गुणों से सम्पूर्ण विश्व मोहित है, अतएव आप इस विश्व का कल्याण करें ।।४५।।

**भावार्थ दीपिका**

तव कर्मणां पारं य एष तेऽवलोकयति ज्ञातुमिच्छतीत्यर्थः । यस्य तव योगमायया यो गुणैः सह योगस्तेन मोहितम्। अतो विश्वस्य शं मङ्गलं विधेहि । यथा त्वामचिन्त्यानन्तशक्तिं ज्ञात्वा भजे तथाऽनुगृहाणेत्यर्थः ।।४५।।

**भाव प्रकाशिका**

ऋषिगण प्रार्थना करते हैं कि आपके कर्मों का कोई अन्त नहीं है, फिर भी जो व्यक्ति आपके कर्मों का अन्त जानना चाहता है, वह निश्चित रूप से भष्टबुद्धि वाला पुरुष है । यह सारा विश्व आपकी योगमाया के सत्त्वादि गुणों से मोहित है अतएव आप इस विश्व का कल्याण करें । अर्थात् आप ऐसी कृपा करें कि हमलोग अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न आपको जानकर आपका भजन करें ।।४५।।

मैत्रेय उवाच

**इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः । सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्तावितावनिम् ॥४६॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मवादिभिः तै मुनिभिः इति उपस्थीयमानः अविता स्वखुराक्रान्ते सलिले अवनिम् उपाधत्त ॥४६॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! उन ब्रह्मवादी मुनियों द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाते हुए सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् ने अपने खुरों से जल को स्तम्भित करके उसके ऊपर पृथिवी को रख दिया ॥४६॥

**भावार्थ दीपिका**

उपस्थीयमानः स्तूयमानः । स्वखुराक्रान्त इति जलेऽपि धारणशक्तयाधानं दर्शयति । अविता रक्षकः ॥४६॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् के रक्षक हैं । वे उन ब्रह्मवादी महर्षियों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर अपने खुरों से जल को स्तम्भित कर दिये और उसके ऊपर पृथिवी को स्थापित कर दिए । **स्वखुराक्रान्ते** इस पद के द्वारा इस अर्थ को सूचित किया गया है कि श्रीभगवान् ने जल में भी धारण शक्ति का आधान कर दिया ॥४६॥

**स इत्थं भगवानुर्वी विष्वक्सेनः प्रजापतिः । रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४७॥**

**अन्वयः**— इत्थं रसायाः लीलया उन्नीताम् उर्वी सः विष्वक्सेनः प्रजापतिः भगवान् अप्सुन्यस्य ययौ ॥४७॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से लीला पूर्वक रसातल से लायी गयी पृथ्वी को प्रजाओं के स्वामी भगवान् श्रीहरि जल पर स्थापित करके अन्तर्धान हो गये ॥४७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥४७॥

**य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ।**
**शृण्वीत भक्तया श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥४८॥**

**अन्वयः**— यः हरिमेधसः एवम् एताम् कथनीय मयिनः सुभद्रां उशतीं कथां शृण्वीत श्रवयेत वा अस्य हृदि जनार्दनः आशु प्रसीदति ॥४८॥

**अनुवाद**— जो भगवद्भक्त इस प्रकार से मायापति श्रीहरि की कहने योग्य कमनीय मङ्गलमयी कथा को भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, उसके हृदय में भगवान् जनार्दन शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं ॥४८॥

**भावार्थ दीपिका**

कथनीयानि मायीनि मायावन्ति चरित्राणि यस्य । श्रवयेत श्रावयेत । ह्रस्वत्वमार्षम् । उशतीं कमनीयाम् । हृदि प्रसीदति स्वमनसि संतुष्यतीत्यर्थः ॥४८॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की ये मायामयी कथाएँ कहने योग्य हैं । इन कथाओं को जो भक्ति पूर्वक सुनता है अथवा सुनाता है । श्रवयेत में ह्रस्व आर्ष प्रयोग होने के कारण है । श्रीभगवान् की ये कथाायें कमनीय और मङ्गलमयी है । इनके सुनने और सुनाने वाले पर श्रीभगवान् अपने अन्तःकरण से प्रसन्न होते हैं ॥४८॥

**तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ।**
**अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥४९॥**

**अन्वयः**— सकलाशिषाम् प्रभौ तस्मिन् प्रसन्ने किं दुर्लभम् लवात्मभिः ताभिः अलम् । अनन्यदृष्ट्या भजताम् गुहाशयः परः पराम् स्वगतिं स्वयं विधत्ते ॥४९॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं । उनके प्रसन्न हो जाने पर कुछ भी दुर्लभ

नहीं रह जाता है। तुच्छ कामनाओं को करने से कोई भी लाभ नहीं हैं। जो पुरुष श्रीभगवान् का अनन्या भक्ति से भजन करते हैं उनको तो अन्तर्यामी भगवान अपने आप अपना परम पद प्रदान कर देते हैं ।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

आशिषो यद्यपि सुलभास्तथापि न प्रार्थनीय इत्याह। ताभिराशीर्भिरलम्। लवात्मभिस्तुच्छाभिः। न च तदा भजनस्य वैफल्यं शङ्कनीयमित्याह। भगवद्भजनव्यतिरेकेण फलान्तरदृष्टिं विना भजतां स्वपदप्राप्तिं स्वयमेव विधत्ते। गुहाशयत्वादहैतुकीं भक्तिं जानन् ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

यद्यपि श्रीभगवान् से मनोारथों की पूर्ति के लिए प्रार्थना करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वे तो कामनाएँ तुच्छ हैं। यदि कहें के तब तो भगवान् की भक्ति व्यर्थ है तो ऐसी बात नहीं है। श्रीभगवान् के भजन से भिन्न किसी दूसरे फल की प्राप्ति की कामना से रहित भक्तों को श्रीभगवान् अपने आप अपना पद प्रदान कर देते हैं। क्योंकि वे सबों के हृदय में निवास करते हैं ओर अपने भक्तों की अहैतुकी भक्ति को जानते हैं ।।४९।।

**को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्।**
**आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम् ।।५०।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे वराहप्रादुर्भावानुवर्णने त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

**अन्वयः**— नरेतरम् बिना पुरुषार्थसारवित् को नाम लोक भवापहाम् पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् कर्णाञ्जलिभिः आपीय अहो विरज्येत ।।५०।।

**अनुवाद**— पशुओं को छोड़कर अपने पुरुषार्थ के सार को जानने वाला संसार का कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो संसार के बन्धन से मुक्त कर देने वाली श्रीभगवान् की प्राचीन कथा सुधा को अपने कानों से सुनकर पुनः उससे विरक्त हो जाय ।।५०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के वराह प्रादुर्भावानुभाव वर्णन नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।**

### भावार्थ दीपिका

अतः को नाम पुराकथानां पूर्ववृत्तानां मध्य कथंचिदापीय विरज्येत विरमेत्। नरेतरं पशुं बिना ।।५०।।

**इति श्रीमद्भागवत महापुराणे भावार्थदीपिकाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।**

### भाव प्रकाशिका

अतएव इस संसार में कौन ऐसा पुरुष होगा जो पुरुषार्थ के सार को जानता हो और श्रीभगवान् की प्राचीन कथाओं में से किसी कथा को एक बार भी किसी प्रकार से सुनकर पुनः उन सबों से विरक्त हो जाय। ऐसा तो कोई पशु ही हो सकता है मनुष्य नहीं है ।।५०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१३।।**

# चौदहवाँ अध्याय

## दिति का गर्भ धारण

श्रीशुक उवाच

**निशम्य कौषारविणोपवर्णितां हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ।**
**पुनः स पप्रच्छ तमुद्यताञ्जलिर्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥१॥**

**अन्वयः**— कौषारविणा उपवर्णिता कारणसूकरात्मनः हरेः कथां निशम्य सः उद्यताञ्जलिः धृतव्रतः विदुरः न च अतितृप्तः पुनःपप्रच्छ ॥१॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— मैत्रेयजी के द्वारा वर्णित प्रयोजनवशात् सूकर बने हुए श्रीहरि की कथा को सुनकर हाथ जोड़े हुए तथा श्रीहरि की कथा सुनने का व्रत लिए हुए विदुरजी पूर्णरूप से तृप्त नहीं होने के कारण उनसे पुनः पूछे॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

चतुर्दशे निदानं तु तद्वधे वक्तुमुच्यते । संध्यायां कश्यपाद्गर्भसंभवः कामतो दितेः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

हिरण्याक्ष के वध का कारणभूत सनकादिकों के शाप को बतलाने के लिए, संध्या की बेला में कामार्त दिति में कश्यप महर्षि के द्वारा गर्भाधान का वर्णन इस चौदहवें अध्याय में किया जा रहा है ॥१॥

विदुर उवाच

**तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिण यज्ञमूर्तिना । आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥२॥**

**अन्वयः**— हे मुनिश्रेष्ठ ! तेनैव यज्ञमूर्तिना हरिणा आदिदैत्यः हिरण्याक्षः हतः इत्यनुशुश्रुम ॥२॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे मुनियों में श्रेष्ठ उन्हीं यज्ञमूर्ति श्रीहरि ने आदिदैत्य हिरण्याक्ष को मारा ऐसा हमने सुना है॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

तेनैव येन भूमिरुद्धृता ।अनुशुश्रुम त्वन्मुखात् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

विदूरजी ने कहा कि जिन श्रीभगवान् ने पृथिवी का उद्धार किया उन्हीं श्रीभगवान् ने हिरण्याक्ष का वध किया यह आपने अभी-अभी बतलाया है ॥२॥

**तस्य चोद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया । दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥३॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया क्षोणी च उद्धरतः तस्य दैत्यराजस्य च कस्माद् हेतोः मृधः अभूत् ॥३॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! जिस समय श्रीभगवान् पृथिवी को अपने दाँतों पर रखकर उसका उद्धार कर रहे थे उस समय उस दैत्यराज और श्रीहरि का किस कारण से युद्ध हुआ ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

मृधो युद्धम् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

मृध शब्द युद्ध का बोधक है ॥३॥

मैत्रेय उवाच

**साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः । यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ।।४।।**

**अन्वयः**— हे वीर त्वया साधु पृष्टम् यत् त्वम् मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् हरेः अवतार कथां पृच्छसि ।।४।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुरजी आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । क्योंकि आपने मनुष्यों के मृत्यु के पाश को विनष्ट करने वाली श्रीहरि के अवतार विषयिणी कथा को पूछा है ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

साधुत्वे हेतुः-यद्यस्मात्त्वं हरेरवतारकथां पृच्छसीति । मृत्योः पाशं विशातयति मोचयतीति तथा ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है क्योंकि आप मनुष्यों को मृत्यु के पाश से मुक्त करने वाली श्रीहरि के अवतार विषयिणी कथा को आप पूछ रहे हैं ।।४।।

**ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयाऽर्भकः । मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ।।५।।**

**अन्वयः**— यया मुनिना गीतया उत्तानपदः अर्भक एव पुत्र मृत्योः मूर्ध्नि अङ्घ्रिम् कृत्वा हरेः पदम् आरुरोह ।।५।।

**अनुवाद**— श्रीनारदजी के द्वारा सुनायी गयी श्रीहरि की कथा के द्वारा उत्तानपाद का छोटा सा पुत्र ध्रुव मृत्यु के शिर पर पैर रखकर श्रीहरि के लोक में चला गया ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेव दर्शयति । यया कथया उत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः । मुनिना नारदेन । अर्भक एव । यदा ध्रुवाय सुनन्दादिभिर्विमानमानीतं तदाऽस्य देहत्यागोऽपेक्षितः स्यादिति मत्वा मृत्यावासन्नेऽपि देहं न तत्याज किंतु सोपान इव तस्य मूर्ध्नि पदं दत्त्वा विमानमारुह्य विष्णुपदमारूढः । वक्ष्यति हि '**परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः। इत्येष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्ययम् ।**' इति ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की कथा के मृत्युपाशमोचकत्व का वर्णन इस श्लोक के द्वारा किया जा रहा है । नारद मुनि के द्वारा वर्णित श्रीहरि की कथा के प्रभाव से ही बाल्यावस्थावस्थित उत्तानपाद का पुत्र मृत्यु के शिर पर अपना पैर रखकर श्रीहरि के पद को प्राप्त कर लिया । जब सुनन्द आदि ध्रुव के लिए विमान लेकर आये उस समय मृत्यु ने समझा कि ध्रुव को शरीर त्याग आवश्य करना होगा, किन्तु सन्निकट में मृत्यु के विद्यमान रहने पर ध्रुव ने अपने शरीर का परित्याग नहीं किया; अपितु सोपान के समान वह मृत्यु के शिर पर पैर रखकर विमान पर बैठ गया और श्रीभगवान् के लोक में चला गया । आगे चलकर ध्रुव की कथा के प्रसङ्ग में कहेंगे भी **परीत्य० इत्यादि** ध्रुव ने उस श्रेष्ठ विमान की परिक्रमा की, ब्राह्मणों ने उनका स्वस्तिवाचन पहले ही कर दिया था, अपने सुवर्णमय शरीर को धारण किए हुए ध्रुव ने उस विमान पर बैठने की इच्छा की ।।५।।

**अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा । ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ।।६।।**

**अन्वयः**— अथ देवानाम् अनुपृच्छताम् अत्र देवदेवेन ब्रह्मणा पुरा वर्णितः अयम् इतिहासः मे श्रुतः ।।६।।

**अनुवाद**— एक बार भगवान् वाराह और हिरण्याक्ष के युद्ध के विषय में देवताओं द्वारा पूछे जाने पर देवताओं के आराध्य ब्रह्माजी के द्वारा प्राचीन काल में वर्णित इस इतिहास को मैंने सुना है ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

तयोः संग्रामे हेतुं वक्तुमितिहासं प्रस्तौति-अथेति । अनुपृच्छतां देवानां ब्रह्मणा वर्णित इतिहासो मया श्रुतः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

वाराह भगवान् और हिरण्याक्ष में हुए युद्ध का कारण बतलाने के लिए मैत्रेय जी इतिहास का वर्णन करते हैं । देवताओं द्वारा इस विषय में कारण पूछे जाने पर प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने जिस इतिहास को बतलाया उसे मैंने सुना है ॥६॥

**दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् । अपत्यकामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छयार्दिता ॥७॥**

**अन्वयः**— हे क्षतः दाक्षायणी दितिः मारीचं कश्यपं पतिम् हृच्छयार्दिता अपत्यकामा संध्यायां चकमे ॥७॥

**अनुवाद**— हे विदुर दक्ष की पुत्री दिति मरीचि महर्षि के पुत्र अपने पति कश्यप महर्षि को कामार्त होकर पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से सन्ध्या की बेला में सङ्गम करने की कामना की ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

देवप्रश्नप्रस्तावाय प्रथमं हिरण्याक्षहिरण्यकशिपूत्पत्तिप्रसङ्गमाह- दितिरित्यादिना यावदध्यायपरिसमाप्ति । मरीचेः पुत्रं कश्यपम् । हृच्छयः कामस्तेनार्दिता । अतः सन्ध्यायामेव कामितवती ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

देवताओं के प्रश्न को प्रस्तुत करने के लिए पहले हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की उत्पत्ति का प्रसङ्ग **दितिःइत्यादि** श्लोक के द्वारा इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त बतलाते है । महर्षि मरीचि के पुत्र महर्षि कश्यप थे । वे दिति के पति थे । एक बार सायंकाल की बेला में दिति कामार्त हो गयी और महर्षि कश्यप से पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से उनसे सङ्गम करने की इच्छा की ॥७॥

**इष्ट्वाग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् । निम्लोचत्यर्क आसीनामग्न्यगारे समाहितम् ॥८॥**

**अन्वयः**— पयसा अग्निजिह्वं यजुषां पतिं पुरुषं इष्ट्वा निम्लोचति अर्के अग्न्यागारे समाहितम् आसीनम् ॥८॥

**अनुवाद**— महर्षि कश्यप भी हविष्य से अग्निजिह्व यज्ञपति भगवान् विष्णु की आराधना करके सूर्यास्त की बेला में अपनी यज्ञशाला में समाधिस्थ होकर बैठे थे ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

तदप्याग्निहोत्रशालायाम् । तत्रापि समाहितम् । अग्निर्जिह्वा यस्य । यजुषां यज्ञानां पतिं पुरुषं श्रीविष्णुम् ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

सूर्यास्त की बेला थी । महर्षि कश्यप भी हविष्य के द्वारा यज्ञपति भगवान् की आराधना करके अपनी यज्ञशाला में समाधिस्थ होकर बैठे थे । अग्निजिह्व यज्ञ का नाम है ॥८॥

दितिरुवाच

**एष मां त्वत्कृते विद्वन् काम आत्तशारासनः । दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥९॥**

**अन्वयः**— हे विद्वन् त्वत्कृते एषः कामः आत्तशरासनः विक्रम्य, दीनां मां रम्भाम् मतङ्गज इव दुनोति ॥९॥

### दिति ने कहा

**अनुवाद**— हे विद्वन् ! आपके लिए यह कामदेव अपने हाथ में धनुष धारण करके अपना पराक्रम प्रकट करके मुझे उसी तरह बेचैन कर रहा है जैसे कोई मतवाला हाथी कदली स्तम्भ को मसल डालता है ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

कृपणां बहुभाषिणीम् इति वक्ष्यति, तत्र एष मामिति द्वाभ्यां कार्पण्यं, भर्तरीति चतुर्भिश्च बहुभाषणं वर्ण्यते । दुनोति पीडयति । विक्रम्य शौर्यमाविर्भाव्य रम्भांकदलीम् ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

आगे चलकर दिति का वर्णन करते हुए कहेंगे भी कि कामार्त और बहुत बोलने वाली दिति को । **एष काम** इन दो श्लोकों के द्वारा उसके कार्पण्य को तथा **भर्तरि** इत्यादि चार श्लोकों द्वारा बहु भाषित्व का वर्णन करेंगे ।।९।। दुनेति का अर्थ पीड़ित करता है । **विक्रम्य** पद का अर्थ अपना पराक्रम प्रकट करके है । **रम्भा** शब्द से यहाँ केले का स्तम्भ कहा गया है ।।९।।

**तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः । प्रजावतीनां भद्रं ते मय्यायुङ्क्तामनुग्रहम् ।।१०।।**

**अन्वयः**— तद भवान् प्रजावतीनां सपत्नीनाम् समृद्धिभिः दह्यमानायां मयि अनुग्रहम् आयुंक्ताम् ते भद्रं स्यात् ।।१०।।

**अनुवाद**— अपनी पुत्रवती सौतो की समृद्धि को देखकर मैं ईर्ष्या की आग में जली जा रही हँ; अतएव आप मुझ पर कृपा कीजिए, आपका कल्याण हो ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

आयुङ्क्तां सर्वतो युनुक्तु सम्यक्करोतु ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

आप मुझ पर अच्छी तरह पूर्ण रूप से कृपा करें ।।१०।।

**भर्तयाप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः । पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ।।११।।**

**अन्वयः**— यासां ननु भवद्विधः पतिः प्रजया जायते तासां भर्तरि आप्तोरुमानानां यशः लोकान् आविशते ।।११।।

**अनुवाद**— जिन स्त्रियों के गर्भ से आप जैसे पति पुत्र रूप में उत्पन्न होते हैं वे ही स्त्रियाँ अपने पति से सम्मानित मानी जाती हैं और उन सबों का यश सम्पूर्ण लोकों में फैल जाता है ।।११।।

**भावार्थ दीपिका**

भर्तरि प्राप्तबहुमानानां स्त्रीणां यशो लोकानाविशते व्याप्नोति । प्रजया पुत्ररूपेण । **'तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः'** इति श्रुतेः ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

जिन स्त्रियों को अपने पति से बहुत अधिक सम्मान प्राप्त होता है, उन स्त्रियों का यश लोकों में फैल जाता है । पति ही पत्नी के गर्भ से पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है । श्रुति भी कहती है- **तज्जाया जाया भवति इत्यादि** वही पत्नी वास्तविक रूप से पत्नी होती है जिसके गर्भ से उसका पति पुत्र रूप में उत्पन्न होता है ।।११।।

**पुरा पिता नो भगवान् दक्षो दुहितृवत्सलः । कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ।।१२।।**

**अन्वयः**— पुरा नः दुहितृवत्सलः पिता भगवान् दक्षः पृथक्-पृथक् वत्सा कम् वरं वृणीत इति अपृच्छत् ।।१२।।

**अनुवाद**— पूर्वकाल में अपने पुत्रियों पर स्नेह युक्त हमारे पिता दक्ष प्रजापति हम सबों से अलग-अलग पूछे कि पुत्रि तुम किसे अपना पति बनाना चाहती हो ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

नोऽस्माकं पिता नोऽस्मान्पृथगपृच्छत्। अयं भावः-त्रयोदशानामप्यस्माकं त्वयि भावसाम्ये वैषम्याचरणं तवानुचितमिति।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

हमलोगों के पिता दक्ष प्रजापति ने हमलोगों से अलग-अलग बुलाकर पूछा कि तुम किसे अपना पति बनाना चाहती हो । हम तेरह पुत्रियों ने आपका वरण किया । हम सभी आपकी पत्नियाँ है । हम सबों का आपमें एक समान प्रेम है । ऐसी स्थिति में आपका वैषम्याचरण ठीक नहीं हैं ॥१२॥

**स विदित्वात्मजानां नो भावं सन्तानभावनः । त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥१३॥**

**अन्वयः**— सन्तानभावनः सः न आत्मजानां भावं विदित्वा तासां त्रयोदश अददात् याः ते शीलम् अनुव्रताः ॥१३॥

**अनुवाद**— अपनी सन्तानों से प्रेम करने वाले हमलोगों की भावना को जानकर पिता अपनी उन पुत्रियों में से तेरह पुत्रियों का विवाह आपसे कर दिया, क्योंकि हम तेरहों आपके शील और स्वभाव के अनुकूल थीं ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

हम तेरहों पुत्रियों का शील और स्वभाव आपके अनुकूल था अतएव उन्होंने हम तेरहों का विवाह आप से कर दिया ॥१३॥

**अथ मे कुरु कल्याण कामं कञ्जविलोचन । आर्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि ॥१४॥**

**अन्वयः**— हे कल्याण ! कञ्जविलोचन मे कामं कुरु हे भूमन्, महीयसि आर्तोपसर्पणं मोघं न ॥१४॥

**अनुवाद**— हे मङ्गलकर्तः कमलनयन ! आप मेरी इच्छा पूर्ण करें । हे महापुरुष ! आप जैसे महान् पुरुषों के पास दीनजनों का आना विफल नहीं होता है ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

मोघं न भवति हि । महीयसि त्वादृशे महत्तमे ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

आप जैसे पुरुष के पास दीनजनों का आना विफल नहीं ही होता है, अतएव आप मेरी इच्छा पूरी करें॥१४॥

**इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् । प्रत्याहानुनयन्वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे वीर अथ मारीचः तां कृपाणां बहुभाषिणीम् प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् वाचा अनुनयन् प्रत्याह ॥१५॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी इसके पश्चात् महर्षि कश्यप ने दीन तथा बहुत अधिक बोलने वाली एवं काम के बढ जाने से अत्यधिक मोहित दिति को अपनी मधुर वाणी से समझाते हुए कहा ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रवृद्धानङ्गेन कश्मलं मोहो यस्यास्ताम् ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

काम के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण मोहित उस दिति को मधुर वाणी से समझते हुए महर्षि कश्यप ने कहा ॥१५॥

**एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि । तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥१६॥**

**अन्वयः**— हे भीरु! यत् इच्छसि एष अहं ते प्रियं विधस्यामि । यत् त्रैवर्गिकी सिद्धिः तस्याः कामं कः न कुर्यात्॥१६॥

**अनुवाद**— प्रिये ! तुम जो चाहती हो तुम्हारी उस इच्छा की पूर्ति मैं अभी-अभी करता हूँ । जिससे धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है, भला उसकी इच्छा की पूर्ति कौन नहीं करेगा ?॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

सन्ध्याकालवञ्चनाय भार्याप्रशंसा एष इति पञ्चभिः । यतो यस्याः सकाशात् ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि कश्यप चाहते थे कि यह भयङ्कर संध्याकाल बीत जाय इसीलिए वे पाँच श्लोकों में अपनी पत्नी की प्रशंसा करते हैं । उन्हांने दिति से कहा कि मनुष्यों के धर्म अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति पत्नी से ही होती है । अतएव कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपनी पत्नी की इच्छा की पूर्ति न करे ।।१६।।

**सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् । व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ।।१७।।**

**अन्वयः**— कलत्रवान् सर्वाश्रमान् उपादाय स्वाश्रमेण जलयानै अर्णवम् इव व्यसनार्णवम् अत्येति ।।१७।।

**अनुवाद**— गृहस्थाश्रमी सभी आश्रमों को आश्रय प्रदान करके अपने आश्रम के द्वारा इस दुःखपूर्ण संसार सागर को उसी तरह पार कर लेता है । जिस तरह जहाज पर सवार होकर मनुष्य समुद्र को पार कर लेता है।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**

सर्वाश्रमानुपादायेति । तानप्यन्नादिदानेन कृच्छ्रतस्तारयन् स्वयं तरतीत्यर्थः ।।१७।।

**भाव प्रकाशिका**

गृहस्थ सभी आश्रमों को अन्न आदि प्रदान करके उनके भूखजन्य पीडा को दूर करके स्वयम् भी इस दुःखमय संसार से उसी तरह पार हो जाता है; जैसे कोई जलयान के द्वारा सागर को पार कर लेता है इसी अर्थ को उन्होंने इस श्लोक में कहा है ।।१७।।

**यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि । यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ।।१८।।**

**अन्वयः**— मानिनि याम् श्रेयस्कामस्य आत्मनः हि अर्धं आहुः यस्यां धुरम् अध्यस्य पुमान् विज्वरः चरति ।।१८।।

**अनुवाद**— मानिनि ! पत्नी को तो कल्याणकामी पुरुष के शरीर का आधा भाग कहा गया है । पत्नी पर ही गृहस्थी का सारा भार सौंप कर मनुष्य निश्चिन्त होकर विचरण करता है ।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मनो देहस्यार्धम् । कर्मसु द्वयोः सहाधिकारात् । यच्छब्दानां तां त्वामिति तृतीयश्लोकेन सम्बन्धः । स्वधुरं दृष्टादृष्टकर्मभारम् । विज्वरो निश्चिन्तः ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

शास्त्रों में बतलाया गया है कि पत्नी कल्याणकामी पुरुष के शरीर का आधा भाग होती है, क्योंकि कर्मों को करने में दोनों का साथ-साथ अधिकार है । इस श्लोक के यत् शब्दों का तीसरे श्लोक के साथ अन्वय है। गृहस्थ पत्नी पर ही दृष्ट तथा अदृष्ट कर्मों का भार सौंप कर निश्चिन्त होकर विचरण किया करता है ।।१८।।

**यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः । वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ।।१९।।**

**अन्वयः**— याम् आश्रित्य इतराश्रमैः दुर्जयान् इन्द्रियारातीन् वयम् दस्यून् दुर्गपतिः यथा हेलाभिः जयेम ।।१९।।

**अनुवाद**— इन्द्रिय रूपी शत्रु दूसरे आश्रम वालों के लिए अत्यन्त दुर्जय हैं । किन्तु जिस तरह किले का स्वामी लूटने वाले शत्रुओं को आसानी से अपने वश में कर लेता है, उसी तरह हमलोग अपनी पत्नी का आश्रय लेकर बड़ी आसानी से इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को जित लेते हैं ।।१९।।

**भावार्थ दीपिका**

हेलाभिर्लीलाभिः । जयेमेति । सभार्यस्येन्द्रियाणि प्रायेणेतस्ततो न सर्पन्तीति भावः ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

हेलाभि का अर्थ है बड़ी आसानी से । जो गृहस्थ व्यक्ति होता है, उसकी इन्द्रियाँ प्रायः इधर-उधर नहीं जाती हैं ।।१९।।

**न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि । अप्यायुषा वा कार्त्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ।।२०।।**

**अन्वयः**— हे गृहेश्वरि ! वयं ये च अन्ये गुणगृघ्नवः ते आयुषा अपि वा कार्त्स्न्येन तां त्वाम् अनुकर्तुं न प्रभवः ।।२०।।

**अनुवाद**— हे गृहस्वामिनि ! तुम जैसी पत्नी के उपकारों का बदला मैं अथवा दूसरे जो गुणग्राही पुरुष हैं वे भी अपनी पूरी आयु भर में अथवा जन्मान्तर में भी पूर्णरूप से नहीं चुका सकते हैं ।।२०।।

**भावार्थ दीपिका**

तामनेकोपकारकर्त्रीं त्वां कार्त्स्न्येनानुकर्तुं प्रत्युपकारैस्त्वत्सदृशा भवितुं न प्रभवो न समर्थाः । ये चान्ये गुणगृध्नवो गुणप्रियास्तेऽपि न समर्थाः । संपूर्णेनाप्यायुषा । वाशब्दाज्जन्मान्तरैरपि न प्रभव इत्युक्तम् ।।२०।।

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह अनेक प्रकार का उपकार करने वाली तुम पत्नी का प्रत्युपकारों के द्वारा मैं अथवा दूसरे भी गुणग्राही पुरुष पूर्णरूप से जीवन भर में अथवा जन्मान्तरों में भी तुम्हारे जैसा होने में समर्थ नहीं है ।।२०।।

**अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् । यथा मां नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ।।२१।।**

**अन्वयः**— अथापि ते प्रजात्यै एतत् अलम् करवाणि, यथा मां नातीवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ।।२१।।

**अनुवाद**— फिर भी मैं तुम्हारी इस सन्तान प्राप्ति की इच्छा को यथाशक्ति पूर्ण करूँगा । किन्तु अभी एक मुहूर्त रुक जाओ जिससे कि लोग मेरी निन्दा न करें ।।२१।।

**भावार्थ दीपिका**

यद्यपि त्वदनुकरणमशक्यम् । प्रजात्यै पुत्रोत्पत्त्यै नातिवोचन्ति न निन्दति । प्रतिपालय प्रतीक्षस्व ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि तुम्हारा अनुसरण करना तो असम्भव है फिर भी तुम्हारी सन्तानप्राप्ति की इच्छा को मैं अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण करूँगा, किन्तु इस समय तुम एक मुहुर्त तक प्रतीक्षा करो, जिससे कि लोग मेरी निन्दा न करें।।२१।।

**एषा घोरतमा बेला घोराणां घोरदर्शना । चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ।।२२।।**

**अन्वयः**— एष घोराणां घोरतमा बेला घोरदर्शना यस्यां भूतेशानुचराणि भूतानि चरन्ति ह ।।२२।।

**अनुवाद**— यह अत्यन्त घोर बेला राक्षस आदि घोर जीवों की है और यह देखने में भी अत्यन्त भयानक है । इसमें भूतों के स्वामी शङ्करजी के अनुचर भूतप्रेत घूमा करते हैं ।।२२।।

**भावार्थ दीपिका**

स्वनिन्दामगणयन्तीं भीषयन् श्रीरुद्रमनुवर्णयति-एषेति सप्तभिः । घोराणामेषा बेला । स्वयं च घोरदर्शना ।।२२।।

**भाव प्रकाशिका**

अपनी निन्दा की परवाह नहीं करने वाली दिति को डराने के लिए कश्यप महर्षि श्रीरुद्र का वर्णन **एष इत्यादि** सात श्लोकों से करते हैं । यह भयङ्कर जीवों राक्षसों आदि की बेला है और स्वयम् भी देखने में भयङ्कर है । इस बेला में भगवान् शिव के गण भूत प्रेत आदि विचरण किया करते हैं ।।२२।।

**एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान्भूतभावनः । परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे साध्वि ! एतस्यां सन्ध्यायां भूतराट् भगवान् भूतभावनः भूतपर्षद्भिः परीतः वृषेण अटति ॥२३॥

**अनुवाद**— हे साध्वि ! इस सन्ध्या की बेला में भूतभावन भूतों के स्वामी भगवान् शङ्कर भूत प्रेत आदि को साथ लेकर बैल पर सवार होकर विचरण किया करते हैं ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

भूतपर्षद्भिर्भूतगणैः ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि कश्यप ने बतलाया कि सायंकाल की बेला में भगवान् शङ्कर अपने भूत-प्रेत आदि पार्षदों को साथ लेकर विचरण किया करते हैं ॥२३॥

**श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतजटाकलापः ।**
**भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥२४॥**

**अन्वयः**— श्मशानचक्रा निलधूलि धूम्र विक्रीर्णविद्योतजटाकलापः । भस्मावगुण्ठामल रुक्मदेहः देवः ते देवरः त्रिभि पश्यति ॥२४॥

**अनुवाद**— श्मशान भूमि में उठे बवण्डर की धूलि से धूसरित होकर जिनका जटाजूट देदीप्यमान है तथा जिनके सुवर्णकान्तिमय शरीर में भस्म लगा हुआ है वे तुम्हारे देवर शङ्करजी अपने सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि रूप तीन नेत्रों से सबको देखते रहते हैं ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

तर्हि तत्संमुखत्वमात्रं वर्जनीयमिति चेत्तत्राह । श्मशाने यश्चक्रानिलो वातमण्डली तस्मिन् या धूलिस्तया धूम्रो विकीर्णो विद्योतो द्युतिमाञ्जटाकलापो यस्य । भस्मनाऽवगुण्ठः प्रावृतोऽमलो रुक्मवद्देहो यस्य स देवस्त्रिभिः सोमार्काग्निनेत्रैः पश्यतीत्यस्योत्तमश्लोकत्रयेऽप्यनुषङ्गः । एकस्य जामातरः परस्परं भ्रातरो व्यवह्रियन्ते । अतो मम भ्राता असौ तव देवर इति लज्जार्थमुक्तम् ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

इस पर यदि दिति कहें कि ठीक है इस काम को उनके सामने नहीं करना चाहिए परोक्ष में कोई आपत्ति है नहीं । तो इस पर वे घूसरित जिनका जटा कलाप देदीप्यमान है । और इधर-उधर विखरा हुआ है तथा जिनके गौरवर्ण के शरीर में भस्म लगा है ऐसे भूतभावन भगवान् शङ्कर अपने सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि रूपी तीन नेत्रों से इस समय सबको देखते हैं वे तुम्हारे देवर हैं अतएव तुमको लज्जित होना चाहिए । किसी एक व्यक्ति के सभी दामाद परस्पर में भाई होते हैं । अतएव मेरे भाई शङ्करजी तुम्हारे देवर हैं ॥२४॥

**न यस्य लोके स्वजनः परो वा नात्यादृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ।**
**वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— लोके यस्य न स्वजनः न वा परः नात्यादृतः न उत कश्चित् विगर्ह्यः वयं व्रते यच्चरणापविद्धाम् भुक्ताभोगाम् अजां बत आशास्महे ॥२५॥

**अनुवाद**— संसार में उनका न तो कोई अपना है न पराया है । न तो उनका कोई अधिक आदरणीय है और न निन्दनीय है, हमलोग तो अनेक प्रकार के व्रतों का पालन करके उनकी माया को ही प्राप्त करना चाहते हैं जिस माया का उन्होंने भोगकर अपने से दूर कर दिया है ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

ननु तथापि महत्त्वेनादरणीयस्य स्वजनस्य च तव स सर्वं क्षमेतैव तत्राह । यस्य स्वजनादिर्नास्ति समत्वादीश्वरस्य । ऐश्वर्यमेवाह । येन चरणेनापविद्धां निर्माल्यवद्दूरतस्त्यक्तां तेन भुक्तभोगामजां मायां तन्मयीं विभूतिं महाप्रसाद इत्याशास्महे । व्रतैस्तमाराध्य ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

यदि दिति कहें कि आप तो उनसे बड़े हैं अतएव उनके लिए आदरणीय हैं फलतः आपके सारे अपराधों को वे क्षमा ही कर देंगे । इस पर महर्षि कश्यप कहते हैं कि उनका न तो कोई अपना है न पराया है । वे ईश्वर हैं और वे सबों के प्रति एक समान दृष्टि रखते हैं । भगवान् शिव के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए वे कहते हैं । शङ्करजी ने जिस माया को भोगकर उसका परित्याग कर दिया है हमलोग अनेक प्रकार के व्रतों के द्वारा उनका महाप्रसाद समझकर उसी माया को प्राप्त करना चाहते हैं ।।२५।।

**यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ।**
**निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ।।२६।।**

**अन्वयः**— अविद्यापटलं विभित्सवः मनीषिणः यस्य अनवद्याचरितं गृणन्ति निरस्तसाम्यतिशयोऽपि यत् स्वयम् गतिः पिशाचचर्याम् अचरत् ।।२६।।

**अनुवाद**— विवेकी पुरुष अपनी अविद्या के आवरण को दूर करने के लिए जिनके निर्मल चरित्र का गान किया करते हैं । जब कोई भी उनके सदृश ही नहीं है तो उनसे बढ़कर होने की कोई बात ही नहीं है । ऐसा होने पर भी वे सत्पुरुषों के आश्रय हैं ऐसे भगवान् शङ्कर स्वयं पिशाच जैसा आचरण करते हैं ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

अनिषिद्धसुखत्यागादसौ पिशाच इत्युपहासो न कार्य इत्याह द्वाभ्याम् । यस्यानवद्यं विषयासक्तिशून्यमाचरितम् । विभित्सवो भेत्तुमिच्छवः ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

अनिषिद्ध सुख का परित्याग कर देने के कारण के इनको पिशाच कहकर इनका उपहास नहीं करना चाहिए इस अर्थ का प्रतिपादन महर्षि कश्यप दो श्लोकों से करते हैं । अपने अज्ञान के आवरण को दूर करने के लिए मनीषीगण उनके निर्दोष तथा विषयासक्ति से रहित चरित का गायन किया करते हैं ।।२६।।

**हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः स्वात्मन्रतस्याविदुषः समीहितम् ।**
**यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ।।२७।।**

**अन्वयः**— स्वात्मन् रतस्य समीहितम् आचरितं त एव हसन्ति यैः श्वभोजनम वस्त्रमाल्याभरणानुलपनैःस्वात्मतया उपलालितम् ।।२७।।

**अनुवाद**— आत्माराम भगवान् शङ्कर के लोक शिक्षा रूप आचरण का वे ही लोग उपहास करते हैं जो अज्ञानी लोग कुत्तों के भोजन स्वरूप इस शरीर को वस्त्र माला तथा आभरण तथा चन्दनादि से सजाकर आत्मा के समान उसका पालन पोषण करते हैं । ऐसे लोग निश्चित रूप से अभागे हैं ।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

समीहितमभिप्रेतं लोकशिक्षारूपम् । अविदुषोऽविद्वांसः । यद्वा न विद्वानन्यो यस्मादिति तस्य । सर्वज्ञस्येत्यर्थः । दुर्भगानेवाह–यैरिति । श्वभोजनं शुनां भोज्यं शरीरम् । स्वात्मतयाऽयमेवात्मेति बुद्ध्या ।।२७।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् शिव के चरित लोक शिक्षा रूप होने के कारण अभिप्रेत हैं । लेकिन अज्ञानी पुरुष उनके चरित का उपहास करते हैं । अथवा अविदुषः पद का अर्थ जिससे अधिकज्ञानी कोई है ही नहीं अर्थात् भगवान् शिव के आचरण का अभागे लोग ही उपहास करते हैं । उन अभागों का वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं- शरीर तो कुत्तों का भोजन हैं किन्तु उन अज्ञानियों की इस शरीर में ही आत्मबुद्धि हो जाती है । उसी को वे आत्मा के समान वस्त्र, माला, आभरण और चन्दन आदि से सजाते रहते हैं ॥२७॥

**ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया ।**
**आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मादयः यत्कृतसेतुपालाः यत् कारणं विश्वमिदम् माया च तस्याज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नः चरितं विडम्बनम् ॥२८॥

**अनुवाद**— जिन भगवान् शङ्कर के द्वारा की गयी धर्म की मर्यादा का पालन ब्रह्मा आदि देवगण किया करते हैं । इस सम्पूर्ण जगत् के जो कारण हैं । जिनकी आज्ञा का पालन यह माया किया करती है उनके द्वारा की जाने वाली यह पिशाच जैसा आचरण अत्यन्त आश्चर्य की बात है । उन जगद् व्यापक प्रभु की लीला कुछ समझ में नहीं आती है ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

अहो अतर्क्यं। तस्याचरणमित्याह । ब्रह्मादयो येन कृतान्सेतूंस्वस्वाधिकारान्पालयन्ति यः कारणं यस्य । येन कृतमिदं विश्वम् । माया च यस्याज्ञाकरी । विभूम्नः परमेश्वरस्य विडम्बनमतर्क्यमित्यर्थः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि कश्यप कहते हैं कि उनका आचरण कुछ समझ में नहीं आता है । ब्रह्मा आदि देवता उनके द्वारा निर्धारित मर्यादा का अपने-अपने अधिकार के अनुसार पालन करते हैं । जो इस जगत् के कारण हैं और यह विश्व जिनका कार्य है । माया जिनकी आज्ञा का पालन करती है । ऐसे परमेश्वर की लीला तर्क से परे हैं ॥२८॥

मैत्रेय उवाच

**सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेन्द्रिया । जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥२९॥**

**अन्वयः**— भर्त्रा एवं संविदिते मन्मथोन्मथितेन्द्रिया सा गतत्रपा वृषलीव ब्रह्मर्षेः वासो जग्राह ॥२९॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— अपने पति महर्षि कश्यप के द्वारा इस प्रकार से समझाये जाने पर भी काम के द्वारा व्याकुल इन्द्रियों वाली दिति ने निर्लज्ज वेश्या के सामने महर्षि कश्यप के वस्त्र को पकड़ लिया ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

भर्त्रा निरूपकेणैवं संविदिते ज्ञापितेऽपि सति । वृषलीव वेश्येव ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

समझाने वाले अपने पति के द्वारा इस प्रकार से समझायी जाने पर भी कामार्त होने के कारण दिति ने निर्लज्ज वेश्या के समान ब्रह्मर्षि कश्यप के वस्त्रों को पकड़ लिया ॥२९॥

**स विदित्वाऽथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि । नत्वा दिष्टाय रहसि तयाऽथोपविवेश ह ॥३०॥**

**अन्वयः**— अथ सः भार्यायाः विकर्मणि निर्बन्धं विदित्वा दिष्टाय नत्वा तया सह रहसि उपविवेश ह ॥३०॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् महर्षि कश्यप उन निन्दित कर्म में अपनी पत्नी का बहुत अधिक आग्रह जानकर दैव को नमस्कार करके उसके साथ एकान्त स्थान में चले गये और उसके साथ समागम किए ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

विकर्मणि निषिद्धे कर्मणि । दिष्टाय दैवरूपायेश्वराय । उपविवेशेति मैथुनं लक्ष्यते ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके पश्चात् महर्षि कश्यप ने उस निन्दित कर्म में अपनी पत्नी का बहुत अधिक आग्रह समझ लिया। उन्होंने दैवरूप ईश्वर को नमस्कार किया और एकान्त स्थान में जाकर उन्होंने उसके साथ समागम किया । **उपविवेश** इस पद के द्वारा मैथुन को लक्षित किया गया है ॥३०॥

**अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः । ध्यायन् जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— अथ सलिलम् उपस्पृश्य प्राणानायम्य, वाग्यतः सनातनं ज्योतिः ध्यायन् विरजं ब्रह्म जजाप ॥३१॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् महर्षि कश्यप जल में स्नान करके अपने प्राण एवं वाणी का संयम किए तदनन्तर विशुद्ध ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म का ध्यान करते हुए उसी का जप करने लगे ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

उपस्पृश्य स्नात्वा भर्गशब्दवाच्यं विरजं ज्योतिर्ध्यानम् सनातनं ब्रह्म गायत्रीं प्रणवं वा जजाप ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि कश्यप ने स्नान किया उसके पश्चात् प्राणायाम करके वे मौन हो गये तदनन्तर भर्ग शब्द वाच्य निर्मल ज्योति स्वरूप परंब्रह्म का ध्यान करते हुए वे सनातन ब्रह्म गायत्री अथवा प्रणव का जप किए ॥३१॥

**दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत । उपसंगम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥३२॥**

**अन्वयः**— हे भारत ! तेन कर्मावद्येन व्रीडिता दितिःतु विप्रर्षिम् उपसंगम्य अधोमुखी अभ्यभाषत ॥३२॥

**अनुवाद**— विदुरजी दिति को भी उस निन्दित कर्म को करने के कारण अत्यधिक लज्जा आयी वह ब्रह्मर्षि के पास जाकर नीचे मुख करके कहने लगी ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

कर्मावद्येन कर्मदोषेण ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

सायंकाल कि बेला में पति के साथ किया जाने वाला समागम निन्दित कर्म है, इसको सोचकर दिति अत्यधिक लज्जित थी । वह महर्षि कश्यप के पास गयी और अपना मुख नीचे करके उनसे कहने लगी ॥३२॥

दितिरुवाच

**मा मे गर्भमिमं ब्रह्मन् भूतानामृषभोऽवधीत् । रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! मे इमं गर्भम् भूतानामृषभः भूतानां पतिः । हि ऋषभः रुद्रः मा अवधीत् यस्य अहम् अंहसम् अकरवम् ॥३३॥

**दिति ने कहा**

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! मैंने रुद्र का अपराध किया है किन्तु भूतों के स्वामी रुद्र मेरे इस गर्भ को विनष्ट न करें ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**

माऽवधीन्मा हन्त्वित्यर्थः । वधशङ्काबीजमाह-रुद्र इति । अंहसमंहोऽपराधमकरवं कृतवत्यस्मि ।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

माऽवधीत् का अर्थ है न मारें । उस गर्भ के मारे जाने की शङ्का का कारण बतलाती हुयी दिति ने कहा मैंने भूतों के स्वामी रुद्र का अपराध किया है, फिर भी वे मेरे इस गर्भ का वध न करें ।।३३।।

**नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे । शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ।।३४।।**

**अन्वयः**— महते, रुद्राय, उग्राय, देवाय, मीढुषे, शिवाय, न्यस्तदण्डाय, धृतदण्डाय, मन्यवे, नमः ।।३४।।

**अनुवाद**— मैं भक्तों के दुःख को दूर करने वाले महान् रुद्र को नमस्कार करती हूँ । जिनका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है । सकाम भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले कल्याणकारी दण्ड देने की भावना से रहित दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं और प्रलय के बेला में क्रोध करने वाले रुद्र को मैं नमस्कार करती हूँ ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

रुत दुःखं तद्द्रावयतीति रुद्रस्तस्मै । उग्रायानतिलङ्घ्याय मीढुषे सकामेषु फलसेचनकर्त्रे । निष्कामेषु शिवाय । वस्तुतो न्यस्तदण्डाय । दुष्टेषु धृतदण्डाय संहारे मन्यवे ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

रुद्र अपने भक्तों के दुःखों को दूर करते हैं, इसलिए रुद्र कहलाते हैं, उनका कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता है अतएव वे उग्र कहलाते हैं, कामना युक्त भक्तों की कामना को पूर्ण करते हैं अतएव वे मीढुष हैं, वे निष्काम भक्तों का कल्याण करते हैं; अतएव शिव हैं । स्वाभाविक रूप से वे दण्ड देने की भावना से रहित है। अतएव न्यस्त दण्ड हैं और वे दुष्टों को दण्ड देते हैं अतएव वे धृतदण्ड है । प्रलय की बेला में वे क्रोध करके जगत् का संहार करते हैं अतएव मन्यु शब्द वाच्य हैं । ऐसे शङ्करजी को मैं नमस्कार करती हूँ ।।३४।।

**स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः । व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ।।३५।।**

**अन्वयः**— स नः उर्वनुग्रहः भगवान् भामः व्याधस्य अपि अनुकम्प्यानां स्त्रीणाम् सतीपतिः देवः नः प्रसीदताम्।।३५।।

**अनुवाद**— भगवान् रुद्र अत्यधिक कृपा करने वाले हैं मेरी बहिन सती के पति हैं अतएव मेरे बहनाई हैं, ऐसे रुद्र व्याध जैसे क्रूर प्राणियों के भी कृपा का पात्र बनने वाली हम स्त्रियों पर प्रसन्न हो जायँ ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

भामो भगिनीभर्ता । उरुरनुग्रहो यस्य । व्याधस्य निर्दयस्यापि । सतीपतिरित्यनेन स्त्रीणां स्वभावं स्वयमपि वेत्तीति सूचयति ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

रुद्र हमारी छोटी बहिन सती के पति हैं अतएव वे मेरे भाम बहनोई है । वे अत्यधिक कृपा करने वाले हैं, हम स्त्रियाँ तो व्याध जैसे क्रूर प्राणी के भी कृपा का पात्र हैं अतएव वे मुझ पर प्रसन्न हो जायँ । सती पति कहकर दिति ने सूचित किया कि वे भी स्त्रियों के स्वभाव को जानते है अतएव वे मुझपर अवश्य कृपा करेंगे।।३५।।

मैत्रेय उवाच

**स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् । निवृत्तसन्ध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥३६॥**

**अन्वयः**— निवृत्तसन्ध्यानियमः प्रजापतिः स्वसर्गस्य लोक्यामाशिषं अशासानां प्रवेपतीम् भार्यामाह ॥३६॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— सन्ध्या के नियमों से निवृत्त होकर प्रजापति कश्यप महर्षि ने देखा की दिति अपने संतान के लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय का आशीर्वाद माँगती हुयी काँप रही है तो उन्होंने अपनी पत्नी से कहा ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वसर्गस्य स्वसन्तानस्स्याशिषं शुभम् । लोक्यां लोकद्वयार्हाम् । सन्ध्यायां यो नियमः स निवृत्तो यस्य ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

सन्ध्या का नियम समाप्त हो जाने के पश्चात् प्रजापति कश्यप महर्षि ने देखा कि उनकी पत्नी दिति काँप रही है और वह अपने संतान के लौकिक और पारलौकिक कल्याण का आशीर्वाद माँग रही है ॥३६॥

कश्यप उवाच

**अप्रत्ययादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत । मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥३७॥**
**भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ । लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥३८॥**

**अन्वयः**— ते आत्मनः अप्रत्ययात् मौहूर्तिकात् दोषात् उत मन्निदेशातिचारेण देवानां च अतिहेलनात् हे अभद्रे चण्डि तव अभद्रौ जाठराधमौ भविष्यतः सपालान् लोकान् मुहुः आक्रन्दयिष्यतः च ॥३७-३८॥

**महर्षि कश्यप ने कहा**

**अनुवाद**— तुम्हारे चित्त के अशुद्ध होने के कारण और सन्ध्या रूपी मुहूर्त के दोष के कारण, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण तथा रुद्रानुचरों की अवहेलना करने के कारण ऐ अमङ्गलमयी चण्डि तुम्हारे गर्भ से दो अधम पुत्र होंगे और वे लोकों तथा लोकपालों को बार-बार रुलायेंगे ॥३७-३८॥

**भावार्थ दीपिका**

ते आत्मनश्चित्तस्याप्रत्ययादशुचित्वात् । मौहूर्तिकात्सन्ध्यारूपात् । उत अपि मम निदेशस्याज्ञाया अतिचारेणातिक्रमेण। देवानां रुद्रानुचराणाम् । एतैश्चतुर्भिर्हेतुभिर्जाठराधमौ पुत्रापसदौ । हे चण्डि कोपने ॥३७-३८॥'

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में महर्षि कश्यप ने कहा है कि तुम्हारे गर्भ से दो अधम पुत्र उत्पन्न होंगे वे सम्पूर्ण लोकों और लोकपालों को रुलाने का काम करेंगें । तुम्हारे पुत्रों के ऐसा होने के चार कारण हैं— १. तुम्हारा चित्त शुद्ध नहीं हैं । २. तुमने जिस काल में संगम किया वह सन्ध्याकाल की भयङ्कर बेला थी और वह अनेक दोषों से युक्त थी । ३. तुमने मेरी भी आज्ञा का उल्लंघन किया है और ४. तुमने भगवान् रुद्र के अनुचरों का अपमान किया है ॥३७-३८॥

**प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् । स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥३९॥**
**तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाँल्लोकभावनः। हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाद्रीन् शतपर्वधृक् ॥४०॥**

**अन्वयः**— दीनानाम् अकृतागसां प्राणिनां हन्यमानानाम्, स्त्रीणां निगृह्यमाणानां, महात्मसु कोपितेषु तदा विश्वेश्वरः लोकभावनः भगवान् क्रुद्धः अवतीर्य असौ अद्रीन् शतपर्वधृक् यथा हनिष्यति ॥३९-४०॥

**अनुवाद**— जब उन दोनों के द्वारा बहुत से दीन और निरपराध प्राणी मारे जाने लगेंगे, वे जब स्त्रियों पर अत्याचार करने लगेंगे, तथा अपने अत्याचारों से जब वे महात्माओं को क्रुद्ध बना देंगे उस समय सम्पूर्ण संसार के स्वामी तथा सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् क्रुद्ध होकर अवतार ग्रहण करेंगे और उन दोनों का उसी तरह से वध कर देंगे जैसे वज्र धारण करने वाले इन्द्र पर्वतों का दमन कर दिये थे ।।३९-४०।।

**भावार्थ दीपिका**

हन्यमानानां सताम् । शतपर्वधृक् वज्रधर इन्द्रः ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि कश्यप ने कहा जब वे तुम्हारे दोनों पुत्र साधु सन्तों को मारने लग जायेंगे, उस समय श्रीभगवान् का क्रोध उदीर्ण हो जायेगा और वे अवतार ग्रहण करेगें तथा उन दोनों का वे उसी तरह से वध कर देंगे जैसे वज्रधारी इन्द्र पर्वतों का दमन कर दिए थे । शतपर्व वज्र का नाम हैं ।।३९-४०।।

दितिरुवाच

**वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना । आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ।।४१।।**

**अन्वयः**— हे विभेकथं भगवता साक्षात् सुनाभोदारबाहुना मह्यं पुत्रयोः आशासे क्रुद्धात् ब्राह्मणात् मा ।।४१।।

**दिति ने कहा**

**अनुवाद**— हे विभो मैं भी यह चाहती हूँ कि मेरे पुत्रों का वध चक्रधारी भगवान् विष्णु ही करें । उनका वध क्रुद्ध हुए ब्राह्मणों के शाप से न हो ।।४१।।

**भावार्थ दीपिका**

सुनाभेनोदारो बाहुर्यस्य । मह्यं मम कोपितेष्वित्युक्तत्वाच्छङ्कितचित्ता सती प्रार्थयते-ब्राह्मणान्मा भूदिति ।।४१।।

**भाव प्रकाशिका**

सुनाभ चक्र का नाम है । चक्रधारी भगवान् ही मेरे पुत्रों का वध करे । महर्षि कश्यप पहले कह चुके हैं कि तुम्हारे पुत्र ब्राह्मणों को क्रुद्ध बना देंगे । इस भय से व्याकुल चित वाली दिति प्रार्थना करती हैं कि ब्राह्मणों के शाप से मेरे पुत्रों का वध न हो ।।४१।।

**न ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च । नारकाश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ।।४२।।**

**अन्वयः**— ब्रह्मदण्डदग्धस्य, भूतभयदस्य च असौ यां यां योनिं गतः नारकाः च न अनुगृह्णन्ति ।।४२।।

**अनुवाद**— ब्राह्मण के शाप से दग्ध हुआ तथा जीवों को जो भय प्रदान करता है, ऐसा जीव जिस-जिस योनि में जाता है वहाँ-वहाँ उस पर नारकीय जीव भी कृपा नहीं करते हैं ।।४२।।

**भावार्थ दीपिका**

नारका अपि तथा यां यां योनिमसौ गतो भवति तत्रस्थाश्च नानुगृह्णन्ति कृपां न कुर्वन्ति ।।४२।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मण के शाप से दग्ध और प्राणियों को भय प्रदान करने वाला जो होता है, इन दोनों प्रकार का जीव चाहे जिस योनि में जाय उस पर नारकीय जीव भी कृपा नहीं करते हैं दूसरों कि बात कौन करें ।।४२।।

कश्यप उवाच

**कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् । भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥४३॥**
**पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः । गास्यन्ति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥४४॥**

**अन्वयः**— कृत शोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् भगवति उरु मानाच्च, भवे मयि अपि च आदरात् पुत्रस्यैव पुत्राणां एकः सतां मतः भविता, यत् शुद्धं यशः भगवद् यशसा समं गास्यन्ति ॥४३-४४॥

**कश्यप महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— देवि ! तुने जो अपराध किया है उस अपने अपराध पर तुमने शोक और पश्चात्ताप किया है शीघ्र ही तुमने उचित और अनुचित का विचार भी किया है, भगवान् विष्णु, शिव और मेरे प्रति बहुत अधिक तुम्हारी समादर की भावना होने के कारण, इन, पाँच कारणों से तुम्हारे पुत्रों के पुत्रों में से एक ऐसा भी पुत्र होगा, जिसका सत्पुरुष भी सम्मान करेंगे उसके शुद्धयश का भक्तजन भगवान् के यश के समान लोग गायन करेंगे ॥४३-४४॥

**भावार्थ दीपिका**

कृतो योऽपराधस्तेन शोकस्ततोऽनुतापस्तेन । प्रत्यवमर्शनाद्युक्तायुक्तविचारात् । भगवति हरौ । भवे श्रीरुद्रे । एतैः पञ्चभिः कारणैः । पुत्रस्य हिरण्यकशिपोः पुत्राणां मध्ये एकः सतां मतो भविष्यति । तमेव वर्णयति-गास्यन्तीति सार्धैः पञ्चभिः । समं सह सदृक्षं वा ॥४३-४४॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने किये अपराधों के कारण तुमने शोक किया और पश्चाताप भी किया है और शीघ्र ही तुमने उचित अनुचित का विचार किया है साथ ही तुम्हारा श्रीहरि, भगवान् शिव तथा मुझमें समादर भी है इन पाञ्च कारणों के कारण तुम्हारे पुत्र के पुत्रों में से एक पुत्र ऐसा भी होगा जिसका भक्तजन भी समादर करेंगे तथा उसके यश का श्रीभगवान् के यश के ही समान गायन करेंगे ॥४३-४४॥

**योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति साधवः । निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥४५॥**

**अन्वयः**— दुर्वर्णं हेमेव साधवः योगैः यत्शीलम् निर्वैरादिभिः अनुवर्तितुम् आत्मानं भावयिष्यन्ति ॥४५॥

**अनुवाद**— जिस तरह अशुद्ध सुवर्ण को शुद्ध बनाने के लिए उसको कई बार तपाया जाता है उसी तरह तुम्हारे पौत्र के शील का अनुवर्तन करने के लिए उसके निर्वैर आदि योगों के द्वारा साधु पुरुष अपने हृदय को शुद्ध बनायेंगे ॥४५॥

**भावार्थ दीपिका**

हीनवर्णं हेम यथा योगैर्दाहादिभिरुपायैः शोध्यते तथा यस्य शीलं स्वभावमनुवर्तितुमनुगन्तुं प्राप्तुं निर्वैरादिभिर्योगैरात्मानं भावयिष्यन्ति शोधयिष्यन्ति ॥४५॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस तरह से हीन वर्ण (अशुद्ध) सोने को शुद्ध बनाने के लिए उसको बार-बार अग्नि में तपाया जाता है, उसी तरह से तुम्हारे पौत्र के शील और निर्वैर आदि स्वभाव को प्राप्त करने के लिए साधुपुरुष तुम्हारे पौत्र के निर्वैर आदि योगों के द्वारा अपने को शुद्ध बनाने का काम करेंगे ॥४५॥

**यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् । स स्वदृग्भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥४६॥**

**अन्वयः**— यत प्रसादात् इदं विश्वं प्रसीदति, यदात्मकं च स स्वदृग् भगवान् यस्य अनन्यया दृशा तोष्यते ॥४६॥

**अनुवाद**— जिनकी कृपा प्राप्त करके यह सम्पूर्ण जगत् प्रसन्नता का अनुभव करता है, तथा जो भगवान् इस सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं वे स्वयं प्रकाश भगवान् उसकी अनन्या भक्ति से सन्तुष्ट हो जायेंगे ॥४६॥

**भावार्थ दीपिका**

विश्वप्रसादे हेतुर्यदात्मकम् । स्वदृगात्मसाक्षी । यस्यानन्यया भगवानेव सत्य इत्येवंभूतया दृशा तोष्यते तोषं प्राप्स्यते।।४६।।

**भाव प्रकाशिका**

विश्व की प्रसन्नता का कारण यह है कि यह विश्व परमात्मात्मक है । श्रीभगवान् ही सबकी आत्मा के साक्षी हैं उस तुम्हारे पौत्र की अनन्या भक्ति से श्रीभगवान उस पर प्रसन्न हो जायेंगे ।।४६।।

**स वै महाभागवतो महात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः ।**
**प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति ।।४७।।**

**अन्वयः**— स वै महाभागवतः महात्मा महानुभावः महतां महिष्ठः प्रवृद्धभक्त्या हि अनुभाविताशये वैकुण्ठं निवेश्य, इमम् विहास्यति ।।४७।।

**अनुवाद**— दिति ! वह बालक महान् भगवद्भक्त होगा, वह उदारहृदय अत्यन्तप्रभावशाली महानों का भी पूज्य होगा । अपनी समृद्धभक्ति के द्वारा अपने विशुद्धअन्तःकरण में श्रीभगवान् को स्थापित करके देहाभिमान का परित्याग कर देगा ।।४७।।

**भावार्थ दीपिका**

तत्र हेतुः- स वा इति । महात्माऽपरिच्छिन्नदृष्टिः महानुभावो महाप्रभावः । महतामपि मध्ये महिष्ठोऽतिशयेन महान्। प्रवृद्धया भक्त्याऽनुभाविते शोधिते चित्ते वैकुण्ठं हरिं निवेश्य देहाद्यभिमानं त्यक्ष्यति ।।४७।।

**भाव प्रकाशिका**

**स वै इत्यादि** श्लोक में श्रीभगवान् के संतोष का कारण बतलाया गया है । महात्मा कहकर उसको उदार हृदय बतलाया गया । वह महाप्रभावशाली होगा, वह महानों में भी अत्यन्त महान् होगा । समृद्ध भक्ति के द्वारा शुद्ध बने अपने अन्तःकरण में श्रीभगवान् को स्थापित करके वह देहादि के अभिमान का परित्याग कर देगा ।।४७।।

**अलम्पटः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्यथितो दुःखितेषु ।**
**अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता नैदाधिकं तापमिवोडुराजः ।।४८।।**

**अन्वयः**— अलम्पटः शीलधरः गुणाकरः परर्द्धया हृष्टः, दुःखितेषु व्यथितः, अभूतशत्रुः, नैदाधिकं ताप उडुराज इव जग्रतः शोकहर्ता ।।४८।।

**अनुवाद**— वह विषयों की आसक्ति से रहित, शीलगुण सम्पन्न, गुणों का आकर, दूसरों की समृद्धि से प्रसन्न होने वाला और दूसरों के दुःखी रहने पर दुःखी होने वाला होगा । उसका कोई भी शत्रु नहीं होगा । जिस तरह चन्द्रमा ग्रीष्म के संताप को दूर कर देते हैं उसी तरह संसार के शोक को वह विनष्ट करने वाला होगा ।।४८।।

**भावार्थ दीपिका**

महाभागवत्वमाह-अलम्पट इति । शीलधरः सुस्वभावः । गुणानां धैर्यादीनामाकरो जन्मभूमिः । परेषां समृदध्या हृष्टः। परेषु दुःखितेषु सत्सु । न भूतो जातः शत्रुर्यस्य । निदाघे भवं तापं चन्द्रो यथा हरत्येवं जगतः शोकहर्ता भविष्यति ।।४८।।

**भाव प्रकाशिका**

दिति के पौत्र के महाभागवत्व का वर्णन करते हुए महर्षि कश्यप ने कहा कि वह विषयों से अनासक्त सुखस्वभाव वाला, धैर्य आदि गुणों का आश्रय, दूसरों की समृद्धि में प्रसन्न रहने वाला और दूसरों के दुःख में दुःखी रहने वाला होगा । वह अजातशत्रु होगा । जिस तरह गर्मी के दिनों के सन्ताप को चन्द्रमा दूर कर देते हैं उसी तरह तुम्हारा पौत्र संसार के कष्ट को दूर करेगा ।।४८।।

**अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ।**
**पौत्रस्तव श्रीललनाललामं द्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥४९॥**

**अन्वयः**— अन्तर्बहिश्चामलमब्ज नेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीत रूपम् श्रीललनाललामं, स्फुरत् कुण्डलमण्डिताननम् तव पौत्रः द्रष्टा ॥४९॥

**अनुवाद**— इस संसार के भीतर बाहर जो व्याप्त हैं, जिनके स्वच्छ नेत्र कमल के समान मनोहर हैं, वे अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार शरीर धारण करते हैं, शोभा स्वरूपिणी लक्ष्मीजी की भी शोभा को जो बढ़ाते हैं, तथा जिनका मुख मण्डल चमकते हुए कुण्डलों से अलंकृत है, ऐसे श्रीभगवान् का तुम्हारा पौत्र साक्षात् दर्शन करेगा ॥४९॥

### भावार्थ दीपिका

अपरिच्छिन्नदृष्टित्वमाह-अन्तरिति । स्वपुरुषाणान्मिच्छया पुनः पुनर्गृहीतानि रूपाणि येन । श्रीरेव ललना सुन्दरी तस्या ललामं मण्डनम् । द्रष्टा द्रक्ष्यति ॥४९॥

### भाव प्रकाशिका

**अन्तर्बहि० इत्यादि** श्लोक से दिति के पौत्र की अव्याहत दृष्टि बतलायी गयी है । श्रीभगवान् अपने भक्तों की इच्छा से ही बार-बार विभिन्न रूपों को धारण करते हैं । श्रीदेवी साक्षात् सौन्दर्य मूर्ति हैं श्रीभगवान् उनको भी सुशोभित करते हैं । द्रष्टा पद का अर्थ है, दर्शन करेगा ॥४९॥

मैत्रय उवाच

**श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् । पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वासीन्महामनाः ॥५०॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे दितिकश्यप संवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

**अन्वयः**— भागवतं पौत्रं श्रुत्वादितिः भृशम् अमोदत पुत्रयो च कृष्णात् वधं विदित्वा महामनाः आसीत् ॥५०॥

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— विदुरजी दिति को यह सुनकर प्रसन्नता हुयी कि उनका पुत्र भागवत (भगवद् भक्त) होगा । उन्हें यह सुनकर और अधिक उत्साह हुआ कि उनके पुत्र भगवान् के हाथों मारे जायेंगे ॥५०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥**

### भावार्थ दीपिका

महामनाः सोत्साहचित्ता । हरिणा सह युद्धेन मरणे पुत्रयोः कीर्तिः सद्गतिश्च भवेदिति ॥५०॥

**इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥**

### भाव प्रकाशिका

महामना कहकर (दिति) को उत्साह युक्त चित्तवाली कहा गया है । वह जानती थी कि श्रीहरि के साथ युद्ध में मरने पर उन दोनों की कीर्ति तथा सद्गति भी होगी ॥५०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के चौदहवें अध्याय की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥१४॥**

# पन्द्रहवाँ अध्याय

## जय विजय को सनकादिकों का शाप

मैत्रेय उवाच

**प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः । दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुरार्दनात् ॥१॥**

**अन्वयः**— सुरार्दनात् शङ्कमाना दितिः तु परतेजोहनं प्राजापत्यं तत् तेजः शतं वर्षाणि दधार ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— देवताओं द्वारा पीड़ित होने की शङ्का से दिति ने दूसरे के तेज को विनष्ट करने वाले प्रजापति कश्यप के तेज को सौ वर्षों तक धारण किए रही ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

हतप्रभैः सुरैः पृष्टः प्राह पञ्चदशे विधिः । तद्बीजं विप्रशापादि वैकुण्ठे विष्णुभृत्ययोः । तदेवं देवानां ब्रह्मणश्च संवादप्रस्तावमुक्त्वेदानीं तं संवादं वक्तुमाह । प्राजापत्यं काश्यपं तेजो वीर्यं परेषां तेजो हन्तीति तथा । आर्षः । स्वपुत्राभ्यां करिष्यते यत्सुराणामर्दनं पीडनं तस्माच्छङ्कमाना ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

निस्तेज बने हुए देवताओं द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने उस युद्ध का कारण बतलाया कि वैकुण्ठलोक में सनकादि ब्राह्मणों ने भगवान् विष्णु के भृत्यों को शाप दे दिया था । यही कथा इस पन्द्रहवें अध्याय में वर्णित है ॥१॥

**तदेवंमित्यादि**— इस तरह से देवताओं और ब्रह्माजी के संवाद की प्रस्तावना को बतलाकर इस अध्याय में उस संवाद को बतलाने के लिए मैत्रेयजी ने कहा कि प्रजापति कश्यप का वीर्य दूसरों के तेज को विनष्ट कर देने वाला है । देवतागण कहीं उसके पुत्रों को पीड़ित न करें इस शङ्का से दिति उस तेज को सौ वर्षों तक अपने गर्भ में धारण किए रही । **परतेजोहनम्** यह आर्ष प्रयोग है, अन्यथा यहाँ परतेजोघ्नं पाठ होना चाहिए ॥१॥

**लोके तेन हतालोके लोकपाला हतौजसः । न्यवेदयन्विश्वसृजे ध्वान्तव्यतिकरं दिशाम् ॥२॥**

**अन्वयः**— तेन हतालोके लोके हतौजसः लोकपालाः दिशाम् ध्वान्तव्यतिकरं विश्वसृजे न्यवेदयन् ॥२॥

**अनुवाद**— उस गर्भ के तेज के द्वारा संसार का प्रकाश जब क्षीण हो गया तब तेजोहीन होकर लोकपालों ने अन्धकार के कारण दिशाओं में होने वाली अव्यवस्था को ब्रह्माजी को बतलाया ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

तेन गर्भतेजसा हतालोके निरस्तसूर्यादिप्रकाशे हतौजसो हतप्रभावाः । ध्वान्तेन व्यतिकरं संकरम् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

उस गर्भ के तेज से संसार में सूर्य आदि का प्रकाश क्षीण हो गया, सभी लोकपालों का तेज क्षीण हो गया, दिशाओं में अन्धकार के फैल जाने से अव्यवस्थाएँ फैल गयीं । इस बात को लोकपालों ने जाकर ब्रह्माजी को बतलाया ॥२॥

देवा ऊचुः

**तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् । न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥३॥**

**अन्वयः**— विभो एतत् तमो वेत्थ, कालेन अस्पृष्टवर्त्मनः भगवतः किञ्चित् अव्यक्तं नहि यत् वयं भृशम् संविग्नाः ॥३॥

**देवताओं ने कहा**

**अनुवाद**— आप इस अन्धकार को तो जानते ही हैं, क्योंकि काल आपकी ज्ञान शक्ति को कुण्ठित नहीं कर सकता है। हमलोग तो इससे बहुत अधिक भयभीत हैं ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

वेत्थ जानासि किं विचारयसि। यद्यतो वयं संविग्ना भीताः। अव्यक्तमज्ञातम्। न स्पृष्टं वर्त्म ज्ञानप्रचारो यस्य ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

वेत्थ पद का अर्थ है आप जानते ही हैं। देवताओं ने कहा कि आप इस फैले हुए अन्धकार को जानते ही हैं। इसके विषय में आप क्या सोच रहे हैं ? इसके कारण हमलोग तो अत्यन्त भयभीत हैं। काल आपकी ज्ञान शक्ति को कुण्ठित नहीं कर सकता है, अतएव आपको कुछ भी अज्ञात नहीं है ॥३॥

**देवदेव जगद्धातर्लोकनाथशिखामणे। परेषामपरेषां त्वं भूतानामसि भाववित् ॥४॥**

**अन्वयः**— हे देवदेव ! हेजगद्धातः ! हे लेकनाथ शिखामणे ! त्वम् परेषाम् अपरेषां च भूतानाम् भाववित् असि॥४॥

**अनुवाद**— हे देवाधिदेव ! हे जगत् की रचना करने वाले, हे सभी लोकपालों के मुकुट मणि (श्रेष्ठ) ! आप छोटे बड़े सभी जीवों के भाव को जानते हैं ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्माणं परमेश्वरत्वेन स्तुवन्तः प्रार्थयन्ते–देवदेवेति सप्तभिः लोकनाथानां शिखामणे। भावविदभिप्रायज्ञोऽसि। केनाभिप्रायेण दितेर्गर्भो वर्धत इति जानासीत्यर्थः ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

देवगण ब्रह्माजी की परमेश्वर रूप से स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना सात श्लोकों में करते हैं- देवताओं ने कहा कि आप सभी लोकपालों में श्रेष्ठ हैं, आप सभी जीवों के अभिप्राय को जानते हैं। आप यह भी जानते हैं कि किस अभिप्राय से दिति का गर्भ बढ रहा है ॥४॥

**नमो विज्ञानवीर्याय माययेदमुपेयुषे। गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ॥५॥**

**अन्वयः**— विज्ञानवीर्याय, मायया इदम् उपेयुषे गृहीतगुणभेदाय नमः अव्यक्तयोनये ते नमस्ते ॥५॥

**अनुवाद**— हे विज्ञान के बल से सम्पन्न ! माया के द्वारा इस चतुर्मुख रूप को धारण करने वाले तथा अपनी इच्छा से ही इस रजोगुण को धारण किए हैं अतएव आपको नमस्कार है। हे अव्यक्तयोनि आपको नमस्कार है ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

विज्ञानं वीर्यं बलं यस्य। इदं ब्रह्मदेहमुपेयुषे प्राप्तवते। गृहीतो गुणभेदो रजोगुणो येन। व्यक्तस्य प्रपञ्चस्य योनये कारणाय। न व्यक्ता केनापि प्रमाणेन विज्ञाता योनिर्यस्येति वा ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

देवताओं ने कहा कि विज्ञान ही आपका बल है आपने अपनी माया से ही इस ब्रह्मा के शरीर को धारण किया है। आपने अपनी इच्छा से ही रजोगुण को धारण किया है। आप इस जगत् के कारण हैं। अथवा कोई भी आपके कारण को किसी प्रमाण के द्वारा नहीं जान सकता है। व्यक्तयोनये पाठ मानने पर जगत् के कारण अर्थ होगा और अव्यक्तयोनये पाठ मानने पर निष्कारण अर्थ होगा ॥५॥

**ये त्वाऽनन्येन भावेन भावयन्त्यात्मभावनम्। आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्मकम् ॥६॥**
**तेषां सुपक्वयोगानां जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् । लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुतश्चित्पराभवः ॥७॥**

**अन्वयः**— ये त्वा अनन्यभावेन, आत्मभावनम् आत्मनि प्रोक्तभुवनं सदसदात्मकम् परं, भावयन्ति सुपक्वयोगानाम् जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् लब्धयुष्मत् प्रसादानां तेषां कुतश्चित् परा भवो न ॥६-७॥

**अनुवाद**— जो लोग अनन्य भाव से समस्त जीवों के उत्पत्ति स्थान जिनमें सम्पूर्ण जगत् ओतप्रोत (स्थित) है । कार्य कारण रूप सारा प्रपञ्च जिनका शरीर है, और वस्तुतः उन सबों से परे रूप से आपका ध्यान करते हैं उनका योग परिपक्व हो जाता है, वे अपने श्वास इन्द्रिय और मन को अपने वश में कर लेते हैं और वे आपकी कृपा को प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे लोगों का कहीं भी पराभव नहीं होता है ॥६-७॥

### भावार्थ दीपिका

सकामतया प्रतिक्षणं दुःखमनुभवन्तो निष्कामभक्तान् स्तुवन्त आहुर्द्वाभ्याम् । ये त्वा त्वामनन्येन निष्कामेन भावेन भक्त्या ध्यायन्ति । आत्मनो जीवान्भावयतीति तथा । स्वस्मिन्प्रोतानि ग्रथितानि भुवनानि येन । चेतनाचेतनप्रपञ्चकारणमित्यर्थः। तत्र हेतुः-सदसदात्मकं कार्यकारणरूपं वस्तुतस्ताभ्यां परम् । जितः श्वास इन्द्रियाण्यात्मा मनश्च यैः । अतः सुपक्वयोगाः । अतएव प्राप्तो युष्मत्प्रसादो यैस्तेषाम् ॥६-७॥

### भाव प्रकाशिका

कामनायुक्त होने के कारण दुःख का अनुभव नही करने वाले तथा निष्काम भक्तों का वर्णन दो श्लोकों से करते हैं । **ये त्वा० इत्यादि** जो लोग निष्काम भाव से भक्ति पूर्वक आपका ध्यान जीवों को उत्पत्ति स्थान रूप से, तथा जिस आप में ही यह सारा भुवन ग्रथित (स्थित) है । चेतनाचेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप, आपका ध्यान करते हैं, क्योंकि कार्यकारण रूप जगत् से आप वस्तुतः परे हैं । वे लोग अपने श्वास, इन्द्रिय और मन को अपने वश में कर लिए रहते हैं । अतएव उनका योग सुपक्व हो जाता है; फलतः वे आपकी कृपा को प्राप्त कर लिए रहते हैं ॥६-७॥

**यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावस्तन्त्येव यन्त्रिताः । हरन्ति बलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः ॥८॥**

**अन्वयः**— यस्य वाचा गावः तन्त्या इव सर्वा प्रजाः आयत्ताः बलिम् हरन्ति तस्मै ते मुख्याय नमः ॥८॥

**अनुवाद**— आपकी वेदवाणी से सारी प्रजा उसी तरह से जकड़ी हुयी है, जिस तरह बैल रस्सी से बँधे रहते हें । आपके अधीन रहने वाली सारी प्रजायें कर्मानुष्ठान के द्वारा आपको बलि प्रदान करती हैं । ऐसे आप सबों के मुख्य प्राण हैं आपको नमस्कार है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

अन्ये तु नित्यं कर्मक्लेशिन इत्याहुः-यस्येति । तन्त्या दामन्या आयत्ता अधीनाः । मुख्याय नियन्त्रे प्राणरूपायेति वा। तथाच श्रुतिः— **'तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि'** इत्यादिः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

जो सकाम भक्त हैं वे तो कर्मों के चक्र में फँसे हुए सदैव कष्ट का अनुभव करते हैं, इसी अर्थ को इस श्लोक में कहा गया है । श्लोक का तन्ती शब्द रस्सी का वाचक है । आयत्त शब्द का अर्थ अधीन है । अर्थात् सारी प्रजा आपके अधीन है । सकाम कर्म करने वाली प्रजा सदा आपके अधीन रहकर कर्मानुष्ठानों के द्वारा आप की पूजा करती है । जिस तरह प्राण सभी प्राणों में मुख्य है, उसी तरह आप भी सबों के नियामक होने के कारण सबों के प्राण हैं । ऐसे आपको नमस्कार है । श्रुति भी कहती है- **तस्य वाक्तन्ति र्नामानि दामानि** अर्थात् परमात्मा की वेद रूपी वाणी ही रस्सी है और नाम ही पगहा है ॥८॥

**स त्वं विधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम् । अदभ्रदयया दृष्टा आपन्नानर्हसभीक्षितुम् ॥९॥**

**अन्वयः**— तमसा लुप्तकर्मणाम् हे भूमन् सत्वं शं विधत्स्व अदभ्रदयया दृष्ट्या आपन्नान् ईक्षितुम् अर्हसि ॥९॥

**अनुवाद**— इस अन्धकार के कारण दिन और रात का विभाग नहीं हो पाने के कारण कर्मों का लोप होता जा रहा है, इसके कारण वे सारी प्रजाएँ दुःखी हो रही हैं । आप उन सबों का कल्याण कीजिये और अपनी अपार दयादृष्टि से इन शरणागतों को देखिए ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

तमसा अहोरात्रविभागाभावेन लुप्तानि कर्माणि येषाम् । आपन्नानापद्गतानस्मान् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

देवताओं ने ब्रह्माजी से निवेदित किया कि अन्धकार के कारण यह पता ही नहीं चलता है कि कब दिन हुआ और कब रात हुयी । उसके कारण उन प्रजाओं के सारे कर्मों का लोप होता जा रहा है । उसके कारण हम सभी प्रजायें आपत्तिग्रस्त हो गयी हैं । आप हमलोगों का कल्याण कीजिये ॥९॥

**एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम् । दिशस्तिमिरयन्सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे देव ! काश्यपम् अर्पितम् ओजः एषः दितेः गर्भः सर्वाः दिशः तिमिरयन् एधसि अग्निरिव वर्धते॥१०॥

**अनुवाद**— महर्षि कश्यप के द्वारा निक्षिप्त वीर्य ही यह दिति का गर्भ है वही सम्पूर्ण दिशाओं को अन्धकारमय बनाते हुए उसी तरह बढ रहा है जिस तरह इन्धन में पड़ी हुयी अग्नि बढ़ती रहती हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

आपत्कारणमाहुः । एष गर्भः तस्य विशेषणम् । अर्पितं निक्षिप्तं काश्यपमोजो वीर्यम् । दिशस्तिमिरयन् तमोव्याप्ताः कुर्वन् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

विपत्ति के कारण को बतलाते हुए देवताओं ने कहा— महर्षि कश्यप ने जो दिति के गर्भ में अपने वीर्य का आधान किया वह दिति का गर्भ बन गया है । वही सभी दिशाओं को अन्धकार व्याप्त सा बनाते हुए उसी तरह बढ़ रहा है जैसे इन्धन में पड़ी हुयी अग्नि बढ़ती रहती हैं ॥१०॥

मैत्रेय उवाच

**स प्रहस्य महाबाहो भगवान् शब्दगोचरः । प्रत्याचष्टात्मभूर्देवान् प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥११॥**

**अन्वयः**— महाबाहो शब्दगोचरः स भगवान् आत्मभूः प्रहस्य देवान् रुचिरया गिरा प्रीणन् प्रत्याचष्ट ॥११॥

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— हे महाबाहो ! विदुरजी देवताओं की प्रार्थना को सुनकर आत्मभू ब्रह्माजी ने जोर से हंसकर अपनी मधुरवाणी से प्रसन्न करते हुए कहे ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

दितेः कुचेष्टितं ज्ञात्वा प्रहस्य देवानां ये शब्दा विज्ञप्तिवाक्यानि तेषां गोचरो विषयभूतः प्रत्यभाषत ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

दिति की निन्दित चेष्टाओं को जानकर ब्रह्माजी जोर से हँसे और देवताओं की प्रार्थना के विषयभूत ब्रह्माजी ने उनकी प्रार्थना को सुनकर कहा ॥११॥

ब्रह्मोवाच

**मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः । चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः ॥१२॥**

**अन्वयः**— मे मानसाः सुताः सनकादयः युष्मत् पूर्वजाः लोकेषु विगतस्पृहाः विहायसा लोकान् चेरुः ॥१२॥

**ब्रह्माजी ने कहा**

**अनुवाद**— मेरे मानस पुत्र सनकादि (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) हैं। वे तुमलोगों से पहले ही उत्पन्न हुए थे। उन लोगों की लोक में किसी भी प्रकार की स्पृहा नहीं है। वे एक बार आकाश मार्ग से लोकों में विचरण कर रहे थे ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

युष्मत्सकाशात्पूर्वं जाताः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

सनकादि महर्षिगण सभी देवताओं से पहले उत्पन्न हुए हैं। वे सदा निःस्पृह रहने वाले हैं किसी भी लोक को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते है। निवृत्तिमार्गी हैं। वे सभी एक बार आकाश मार्ग से तत्-तत् लोकों में अपनी इच्छानुसार विचरण कर रहे थे ॥१२॥

**त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः । ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— वे एकदा अमलात्मनः भगवतः वैकुण्ठस्य सर्वलोकनमस्कृतम् वैकुण्ठनिलयं ययुः ॥१३॥

**अनुवाद**— वे एक बार भगवान् विष्णु के शुद्ध सत्त्वगुण मय समस्त लोकों द्वारा नमस्कृत वैकुण्ठ धाम में गये ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

वैकुण्ठाख्यं लोकं ययुः ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त चारो सनकादि महर्षिगण भगवान् विष्णु के वैकुण्ठ नामक नगर में गये ॥१३॥

**वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः । येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— यत्र सर्वे पुरुषाः वैकुण्ठमूर्तयः वसन्ति, ये अनिमित्त निमित्तेन धर्मेण हरिम् अराधयन् वर्तन्ते ॥१४॥

**अनुवाद**— वहाँ पर भगवान् विष्णु के ही समान शरीर वाले होकर सभी जीव रहते हैं तथा जो निष्काम धर्म के द्वारा श्रीहरि की आराधना करते हैं ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

तं वर्णयति-वसन्तीत्यादिद्वादशभिः । वैकुण्ठस्य हरेरिव मूर्तिर्येषां ते । निमित्तं फलं न निमित्तं प्रवर्तकं यस्मिन् । निष्कामेन धर्मेणेत्यर्थः । आराधयन् आराधितवन्तः ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

वसन्ति इत्यादि बारह श्लोकों के द्वारा श्रीवैकुण्ठ लोक का वर्णन किया गया है। वैकुण्ठ लोक में रहने वाले सभी जीवों का शरीर श्रीहरि के ही आकार का होता है। वे सभी जीव निष्काम धर्म के द्वारा श्रीहरि की आराधना करते रहते हैं अनिमित्तनिमित्त का विग्रह है। **न निमित्तं फलं निमित्तं प्रवर्तकं यस्मिन् तेन,** अर्थात् जिस धर्म को किसी फल की प्राप्ति की इच्छा से नहीं किया जाता है। अर्थात् निष्काम धर्म ॥१४॥

**यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवान् शब्दगोचरः । सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन्वृषः ॥१५॥**

**अन्वयः**— यत्र शब्दगोचरः आद्यः पुमान् भगवान् विष्णु सत्त्वंविष्टभ्य स्वानां वृषः मृडयन् आस्ते ॥१५॥

**अनुवाद**— वहाँ पर वेदान्त प्रतिपाद्य आद्य पुरुष धर्ममूर्ति भगवान् नारायण रजोगुण रहित शुद्धसत्त्वमय शरीर धारण करके अपने भक्तों को सुख देने के लिए सदा विराजमान रहते हैं ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

यत्रेति । शब्दगोचरो वेदान्तैकवेद्यः । विरजं सत्त्वमूर्तिं विष्टभ्य धृत्वा । वृषो धर्ममूर्तिः । स्वानां स्वान् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

उस लोक में आदि पुरुष भगवान् अपने भक्तों को सुख देने के लिए सदा विराजमान रहते हैं । वे भगवान् वेदान्तैकवेद्य हैं शुद्धसात्त्विक शरीर को धारण करके रहते हैं । वृष शब्द से श्रीभगवान् को धर्ममूर्ति बतलाया गया है ॥१५॥

**यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः । सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥१६॥**

**अन्वयः**— यत्र कैवल्यम् इव मूर्तिम, सर्वकामदुघैः द्रुमैः सर्वर्तु श्रीभिः विभ्राजत् नैः श्रयेसं नाम वनम् ॥१६॥

**अनुवाद**— उस वैकुण्ठ लोक में मूर्तिमान कैवल्य के समान, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले वृक्षों से युक्त तथा सभी ऋतुओं की शोभा से सुशोभित नैःश्रेयस् नामक वन है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

तत्रत्यं वनं विशिनष्ट-यत्रेति चतुर्भिः । सर्वेष्वप्यृतुषु श्रीः पुष्पादिसंपद्येषां तैः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

**यत्र इत्यादि** चार श्लोकों के द्वारा वैकुण्ठ लोक में विद्यमान वन का वर्णन किया गया है । उस वन का नाम निःश्रेयस् है । उस वन में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले वृक्ष विद्यमान है । वहाँ पर सभी ऋतुओं के पुष्पादि की शोभा सदा बनी रहती है । वह मूर्तिमान कैवल्य के समान है ॥१६॥

**वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ।**
**अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः ॥१७॥**

**अन्वयः**— अन्तर्जले अनुविकसन् मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियः अपि अनिलं क्षिपन्तः सललनाः वैमानिकाः लोकशमलक्षपणानि भर्तुः चरितानि गायन्ति ॥१७॥

**अनुवाद**— उस वन में सरोवरों में खिली हुयी मकरन्दपूर्ण वासन्तिक माधवीलता की सुमुधर गन्ध जब चित्त को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती है तो उस वायुका तिरस्कार करके अपनी पत्नियों के साथ गन्धर्वगण लोगों के सम्पूर्ण पापों को प्रणष्ट करने वाले श्रीभगवान् के चरित का ही गायन करते हैं ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

चरितानि चरित्राणि । भर्तुः प्रभोः । अनुविकसन्त्यो मधु मकरन्दस्तद्युक्ता माधव्यो वासन्त्यो लताः । यद्वा अनुविकसन्मधवः प्रसरन्मकरन्दा माधव्यो मधुकालीनाः सुमनसस्तासां गन्धेन खण्डिता विघ्निता धीर्येषां तेऽपि तद्गन्धप्रापकमनिलं क्षिपन्तस्तिरस्कुर्वन्तो गायन्ति । अनेन भगवत्पार्षदानां निरतिशयविषयसुखेऽपि भगवद्भजनानन्दासक्तिर्दर्शिता ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

चरित शब्द चरित्र का बोधक है । भर्तुः शब्द से श्रीभगवान् को कहा गया है । **अनुविकसन् इत्यादि** पद्यांश

का अर्थ है कि विकसित होने वाले मधु पराग से युक्त जो वासन्तिक लताएँ, अथवा फैलने वाले वसन्त कालीन पुष्पों के परागों की सुगन्धि से युक्त वायु के द्वारा उनके चित्त के विचलित किए जाने पर वायु की ओर ध्यान न देकर गन्धर्वगण अपनी पत्नियों के साथ लोकपापप्रणाशक चरितों का गान करते रहते हैं। इसके द्वारा यह बतलाया गया है कि निस्सीम विषय सुख के रहने पर भी भगवान के पार्षदों की श्रीभगवान् के भजन में आसक्ति बनी रहती है।।१७।।

**पारावतान्यभृतसारसचक्रवाकदात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः ।**
**कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने ।।१८।।**

**अन्वयः**— भृङ्गाधिपे उच्चैः हरिकथामिव गायमाने पारावत-अन्यभृत-सारस-चक्रवाक-दात्यूह-हंस-शुक-तित्तिर-बर्हिणाम् यः कोलाहलः अचिरमात्रम् विरमते ।।१८।।

**अनुवाद**— जिस समय भ्रमरराज जोर से गुञ्जार करते हुए मानों श्रीहरि की कथा का गान करते हैं, उस समय थोड़ी देर के लिए कबूत्तर कोयल, सारस चकवा, पपीहा, हंस, शुकपक्षी, तित्तिर तथा मयूर आदि पक्षियों की ध्वनि रुक सी जाती है मानों वे भी उस कीर्तनानन्द में बेसुध हो जाते हैं ।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**

अन्यभृताः कोकिलाः । दात्यूहचातकः । अचिरमात्रं क्षणमात्रं विरमति । अनेन तत्रत्यपक्षिणामपि हरिकथाश्रवणादिपरमानन्दो दर्शितः ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

अन्यभृत कोयल को कहते हैं । दात्यूह का अर्थ चातक है । अचिरमात्रम् का अर्थ है क्षणभर के लिए । इसके द्वारा यह बतलाया गया है कि वहाँ के पक्षीगण को भी श्रीहरि की कथा सुनने में परमानन्द की प्राप्ति होती है ।।१८।।

**मन्दारकुन्दकुरबोत्पलचम्पकार्णपुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः ।**
**गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या यस्मिंस्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ।।१९।।**

**अन्वयः**— तुलसिकागन्धेन गन्धे अर्चिते सति यस्मिन् वने मन्दार-कुन्द-कुरब-उत्पल-चम्पक-अर्ण-पुन्नाग-बकुल अम्बुज-पारिजाता सुमनसः तस्याः तपः बहु मानयन्ति ।।१९।।

**अनुवाद**— जब श्रीभगवान् अपने को तुलसी के अलङ्कार से सजाते हैं और तुलसी की सुगन्धि का समादर करते हैं तो उस वन में विद्यमान मन्दार, कुन्द, कुरबक (तिलकवृक्ष) उत्पल (रात्रि में खिलने वाला कमल) कमल, चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नाग केसर बकुल, अम्बुज (दिन में खिलने वाला कमल) और पारिजात आदि पुष्प तुलसी के ही तप का अधिक महत्त्व मानते हैं ।।१९।।

**भावार्थ दीपिका**

मन्दारपारिजातौ सुरतरुविशेषौ, कुरवस्तिलकवृक्षः, उत्पलं रात्रिविकासि, अम्बुजं दिनविकासि, नागो नागकेसरः, एताः सुमनसः पुष्पजातयः सुगन्धा अपि तुलसिकाभरणेन श्रीहरिणा तुलस्या गन्धेऽर्चिते सति यस्मिन्वने तस्यास्तपो बहु मानयन्ति। अनेन तत्रस्था गुणग्राहिण एव न मत्सरिण इत्युक्तम् । एवंभूतं वनं यत्र तद्वैकुण्ठं ययुरिति पूर्वेणान्वयः ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

मन्दार और पारिजात ये दोनों वृक्ष विशेष हैं । तिलक वृक्ष को कुरव कहते हैं । रात्रि में विकसित होने वाले कमल को उत्पल कहते हैं । दिन में विकसित होने वाले कमल को अम्बुज कहते हैं । नाग केसर का ही

नाम नाग है । इन सभी पुष्पों की जातियाँ सुगन्धित हैं । फिर भी श्रीहरि तुलसी के आभरण से अपने को सजाते हैं और तुलसी के द्वारा ही उनकी अर्चना की जाती है । यह देखकर उस वन के पुष्प तुलसी की ही तपस्या को बहुत मानते हैं । इस कथन से उस वन के स्थावरों को भी गुणग्राही बतलाया गया है ईर्ष्यालु नहीं बतलाया गया है । इस प्रकार का जहाँ पर वन है उस वैकुण्ठ में सनकादि महर्षिगण गये यह पहले श्लोक से अन्वय है ।।१९।।

**यत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टैर्वैदूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः ।**
**येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः कृष्णात्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ।।२०।।**

**अन्वयः**— हरिपदानतिमात्रदृष्टैः वैदूर्यमारकतहेममयैः विमानैः यत् संकुलम् । येषां कृष्णात्मनां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः उत्स्मयाद्यैः रजः न आदधुः ।।२०।।

**अनुवाद**— श्रीहरि के चरण कमलों में भक्ति पूर्वक नमस्कार करने मात्र से प्राप्त होने वाले, वैदूर्य, मरकतमणि तथा सुवर्णमय विमानों से जो वैकुण्ठ भरा हुआ है । श्रीभगवान् में ही जिनका मन सदा लगा रहता है, उन भगवद् भक्तों के मन में, बड़े-बड़े नितम्बों वाली तथा मुसकान से मानोहर मुखवाली सुन्दरियाँ अपने हास-परिहास के द्वारा काम के विकार को नहीं उत्पन्न कर पाती हैं ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

पुनर्वैकुण्ठमेव विशिनष्टि । यत्संकुलं व्याप्तं भवति । कैः । हरिपदयोरानतिः प्रणामस्तावन्मात्रेण दृष्टैर्भक्तानां विमानैर्न कर्मादिप्राप्यैर्वैदूर्यमारकतैर्हेममयैश्च विमानैः । बृहन्ति कटितटानि यासाम् । स्मितशोभीनि मुखानि यासां ता अपि । कृष्णे आत्मा येषाम् रजःकाममुत्स्मयाद्यैः परिहासादिभिर्न आदधुर्न जनयामासुः ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी पुनः वैकुण्ठ की ही विशेषता बतलाते हैं । श्रीभगवान् के चरण कमलों में प्रणाम करने मात्र से ही प्राप्त होने वाले कर्मादिकों से नहीं, वैदूर्य, मरकतमणि तथा सुवर्णमय भक्तों के विमानों से जो वैकुण्ठ लोक भरा हुआ है । उन विमानों में रहने वाले भगवत्प्राण भक्तों के मन में विशाल नितम्बों वाली तथा मुस्कान से मनोहर मुख वाली सुन्दरियाँ अपने हास-परिहास के द्वारा काम के विकार को नहीं उत्पन्न कर पाती हैं ऐसे वैकुण्ठ लोक में वे सनकादि महर्षिगण गयें ।।२०।।

**श्रीरूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ।**
**सँल्लक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ।।२१।।**

**अन्वयः**— यदनुग्रहणे अन्य यत्नः तादृशी श्री रूपिणी हरिसद्मानि मुक्तदोषा चरणारविन्दं क्वणयन्ती, लीलाम्बुजेन, स्फटिक कुडये उपेतहेम्नि सम्मार्जतीव ।।२१।।

**अनुवाद**— जिनकी कृपा प्राप्त करने के लिए देवगण प्रयत्नशील रहा करते हैं वे परम सौन्दर्य शालिनी श्रीलक्ष्मीजी श्रीहरि के गृह में अपनी चञ्चलता रूपी दोष को त्यागकर निवास करती हैं । वे अपने चरणों के नूपुर का झनकार करती हुए अपने लीला कमल को जब घुमाती हैं, उस समय सुवर्ण से युक्त स्फटिक मणि की दिवारों में प्रतिबिम्बित होती हुयी लगता है कि जैसे वे श्रीहरि के गृह को झाड़ रही हों ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

श्रीर्लक्ष्मीः रूपिणी मनोहरमूर्तिधारिणी सती श्रीहरेः सद्मनि संमार्जनं कुर्वतीव यस्मिन् लोके सँल्लक्ष्यते । चरणारविन्दं क्वणयती नूपुरेण शब्दयन्ती । मुक्तो दोषश्चाञ्चल्यं यया । यद्वा मुक्तेन दोषा प्रसारितेन बाहुना । कीदृशे सद्मनि । स्फटिकमयानि कुड्यानि यस्मिन् । मध्ये मध्ये च शोभार्थमुपेतं संयुक्तं हेम यस्मिन् । यस्या अनुग्रहेण श्रीरनुग्रहं करोत्वित्येतदर्थमन्येषां

ब्रह्मादीनां यत्नः सा । अयं भावः-यद्यपि तत्र रजो नास्त्येव तथापि स्वर्णपट्टिकावच्छिन्नभित्तिभागेषु बहुधा प्रतिबिम्बिता सती लीलाम्बुजं भ्रामयन्ती विनयभक्तिभ्यां तथा लक्ष्यते इति ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

जिस वैकुण्ठ लोक में मनोहर शरीर धारण की हुयी लक्ष्मीजी श्रीहरि के गृह में झाड़ू लगाती हुयी सी प्रतीत होती हैं । वे अपने पैरों के नूपुर की झनकार करती हुयी, तथा अपने चाञ्चल्य नामक दोष का परित्याग करके, अथवा मुक्तदोषा पद का यह अर्थ है कि वे अपनी फैलायी हुयी भुजाओं से जब अपने लीला कमल को घुमाती हैं । तब जिनके बीच-बीच में शोभा के लिए सुवर्ण जटित है, ऐसे स्फटिक मणि से निर्मित दिवालों में प्रतिबिम्बित होती हैं तो लगता है कि वे भक्तिपूर्वक श्रीहरि के गृह को झाड़ रही हैं । ये वे ही लक्ष्मीजी हैं जिनकी कृपा प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा आदि देवगण प्रयत्नशील रहा करते हैं । **अयंभावः-** कहने का अभिप्राय है कि यद्यपि वैकुण्ठ लोक में धूलि नामक वस्तु है ही नहीं फिर भी स्वर्ण पट्टिका से जटित दिवार के भागों में अनेक बार वे प्रतिबिम्बित जब होती हैं और लीला कमल को घुमाती हैं तो लगता है कि वे विनय और भक्ति से भरकर श्रीहरि के गृह को जैसे झाड़ रही हों ।।२१।।

**वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम् ।**
**अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्रमुच्छेषितं भगवतेत्यमताङ्ग यच्छ्रीः ।।२२।।**

**अन्वयः**— हे अङ्ग यत् श्री निजवने प्रेष्यान्विता तुलसीभिः ईशम् अभ्यर्चती विद्रुमतटासु अमलामृताप्सु स्वलकम् उन्नसम् वक्त्रम् ईक्ष्य भगवता ऊच्छेषितम् इति अमत ।।२२।।

**अनुवाद**— हे देवताओं, जिस लोक में, लक्ष्मीजी अपनी दासियों के साथ तुलसी दल से श्रीभगवान् की अर्चना करती हैं, जिनके घाट मूंगों से बने हैं तथा जिनमें अमृत के समान स्वच्छ जल भरा है । ऐसी वावलियों में प्रतिविम्बित सुन्दर केशों और ऊँची नाक से युक्त अपने मुख को जब वे देखती हैं तो इसका श्रीभगवान् ने चुम्बन किया है यह सोचकर उसका बहुत अधिक समादर करती हैं ।।२२।।

**भावार्थ दीपिका**

अङ्ग हे देवाः, यद्यस्मिँल्लोके श्रीरेवं अमत अमंस्त मेने । किं कुर्वती । विद्रुममयानि तटानि यासाम् । अमला अमृततुल्या आपो यासां तासु वापीषु निजवने लक्ष्मीवने परिचारिकाभिरन्विता तुलसीभिः श्रीविष्णुं पूजयन्ती । तदोदके प्रतिबिम्बितं शोभनालकयुक्तमुत्कृष्टनासिकायुक्तं च स्ववक्त्रं वीक्ष्य भगवता उच्छेषितं चुम्बितमित्यमन्यत । अनेन लक्ष्म्या अपि सौभाग्यसुखं भगवदनुग्रहेणैवेति द्योतितम् ।।२२।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे देवताओं जिस वैकुण्ठ लोक में दासियों के साथ अपने वन में लक्ष्मीजी तुलसीदल से श्रीभगवान् की अर्चना करती हुयी जिसके तट विद्रुमों से बने हैं तथा जिनमें अमृत के समान स्वच्छ जल भरा है ऐसी बावलियों में सुन्दरकेश कलाप तथा उन्नत नासिका से युक्त अपने मुख को प्रतिम्बित देखकर उसका इसलिए बहुत अधिक समादर करती हैं कि मेरे इस मुख का श्रीभगवान् ने चुम्बन किया है । इस कथन के द्वारा यह सूचित किया गया है कि श्रीलक्ष्मीजी का सौभाग्य सुख भी श्रीभगवान् की कृपा के ही कारण है ।।२२।।

**यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादाच्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ।**
**यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारास्तांस्तान्क्षिप्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ।।२३।।**

**अन्वयः**— ये अघभिद रचनानुवादात् न व्रजन्ति, ये अन्यविषया मतिघ्नीः कुकथाः शृण्वन्ति, या तु श्रुता हतभगैः नृभिः आत्तसाराः तान् अशरणेषु तमस्सु क्षिपन्ति ।।२३।।

**अनुवाद**— जो लोग श्रीभगवान् की पापविनाशिका सृष्ट्यादिविषयिणी कथाओं को नहीं सुनकर उनसे भिन्न अर्थ और काम विषयिणी कथाओं को, जो बुद्धि को विनष्ट करने वाली हैं उनको सुनते है वे वैकुण्ठ लोक में नहीं जाते हैं। वे कथायें; सुनने वालों के पुण्य को विनष्ट कर देती हैं और उन सबों को आश्रयहीन नरकों में डाल देती हैं यह शोक का विषय हैं ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

पुनः कथंभूतं तत्। यद्वैकुण्ठं न व्रजन्ति। के ये कुकथाः शृण्वन्ति। कास्ताः। अघं भिनत्तीत्यघभित् तस्य हरेः रचना सृष्ट्यादिलीला तस्या अनुवादादन्यविषया अर्थकामादिवार्ता मतिभ्रंशिकाः। तेषामव्रजने हेतुः–यास्तु हतभाग्यैर्नरैः श्रुताः सत्यस्तांस्तान् श्रोतॄनशरणेषु निराश्रयेषु तमःसु नरकेषु क्षिपन्ति। हन्त खेदे। कथंभूताः। आत्तः सारः श्रोतॄणां पुण्यं याभिस्ताः ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न है कि वह वैकुण्ठ लोक कैसा है ? जिसमें लोग नहीं जा सकते हैं। जो लोग पापविनाशिका श्रीभगवान् की सृष्ट्यादि की लीलाओं से सम्बन्धित कथाओं को नहीं सुनकर उनसे भिन्न बुद्धि को विनष्ट करने वाली अर्थ और काम विषयिणी कथाओं को सुनते हैं। उन लोगों के वैकुण्ठलोक में नहीं जाने का कारण है कि वे अर्थ और काम सम्बन्धी कथाएँ वे उनको सुनने वाले लोगों के पुण्यों को ले लेती है और उन जीवों को आश्रय रहित घोर नरकों में डाल देती है ॥२३॥

**येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र।**
**नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य संमोहिता विततया बत मायया ते ॥२४॥**

**अन्वयः**— या नः अभ्यर्थिताम् अपि नृगतिं प्रपन्नाः यत्र च धर्म सह तत्त्वविषयं ज्ञानं ये तत्र अमुष्य भगवतः आराधनं न वितरन्ति ते बत विततया मायया मोहिताः ॥२४॥

**अनुवाद**— जिस मनुष्य योनि को हम देवलोग भी प्राप्त करना चाहते हैं, उस मनुष्य योनि को प्राप्त करके जो लोग श्रीभगवान् की आराधना नहीं करते हैं, क्योंकि मनुष्य योनि में ही धर्म के साथ-साथ तत्त्व की प्राप्ति होती है, वे लोग श्रीभगवान् की फैली हुयी माया के द्वारा मोहित हैं ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रसङ्गात्तान् शोचन्ति। नोऽस्माभिर्ब्रह्मादिभिरप्यभ्यर्थितां नृगतिं मनुष्यजातिं प्रपन्नाः प्राप्ताः सन्तोऽपि हरेराराधनं न कुर्वन्ति। कीदृशीं नृगतिम्। यत्र यस्यां धर्मसहितं तत्त्वज्ञानं भवति। तदुभयसाधकत्वात्तस्याः। तेऽमुष्य भगवतो विस्तृतया मायया ननु संमोहिताः। वतेति खेदे। यदि वैवं संबन्धः। केवलं त एव न व्रजन्ति, किंतु ये भगवदाराधनं न कुर्वन्ति तेऽपि तेषां मायामोहितत्वादिति ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रसङ्गवशात् देवगण उन हतभाग मनुष्यों के विषय में खेद प्रकट करते हुए कहते हैं। जिस मनुष्य योनि को हम ब्रह्मा आदि देवगण भी प्राप्त करना चाहते हैं उस मनुष्य योनि को प्राप्त करके भी जो लोग श्रीहरि की आराधना नहीं करते हैं, क्योंकि उस मनुष्य योनि में ही धर्म के साथ-साथ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो सकती है, इन दोनों धर्म और तत्त्वज्ञान को प्रदान करने वाली है मनुष्य योनि। उस योनि को भी प्राप्त करके भगवदाराधन नहीं करने वाले लोग श्रीभगवान् की विस्तृत माया से मोहित हैं। इस श्लोक में बत अव्यय का प्रयोग खेद के अर्थ में हुआ है। पूर्वोक्त श्लोक में वर्णित लोग ही भगवान् के लोक में नहीं जाते हैं ऐसी बात नहीं है अपितु जो लोग भगवदाराधन नहीं करते हैं वे भी उस वैकुण्ठ लोक में नहीं जाते हैं, क्योंकि वे लोग श्रीभगवान् की माया से मोहित होते हैं ॥२४॥

**यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरे मया ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः ।**
**भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥२५॥**

**अन्वयः**— यच्च नः उपरि हि अनिमिषाम् ऋषभानुवृत्त्या यमाः दूरे व्रजन्ति स्पृहणीयशीलाः मिथः भर्तुः सुयशः कथनानुरागवैक्लव्य वाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ते तत्र व्रजन्ति ॥१५॥

**अनुवाद**— हमलोगों से ऊपर वैकुण्ठ लोक में रहने वाले देवाग्रगण्य श्रीभगवान् का निरन्तर अनुसरण करने के कारण जिनसे यमराज दूर रहते हैं । ऐसे स्पृहणीय शील स्वभाव वाले महात्मगणों के आपस में चर्चा चलने पर अनुराग वशात् जिनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती हैं और उनके शरीर में रोमाञ्च हो जाता है, ऐसे परम भागवत ही श्रीभगवान् के उस वैकुण्ठ लोक में जाते हैं ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

पुनः कथंभूतम् । यच्च नः उपरि स्थितं व्रजन्ति । के । अनिमिषां देवानामृषभः श्रेष्ठो हरिस्तस्यानुवृत्त्या दूरे यमो येषाम्। यद्वा दूरीकृतयमनियमाः । पाठान्तरे दूरीकृताहंकारा इत्यर्थः । स्पृहणीयं करुणादि शीलं येषाम् । किंच भर्तुहरेर्यत्सुयशस्तस्य मिथः कथने योऽनुरागस्तेन वैक्लव्यं वैवश्यं तेन वाष्पकला तया सह पुलकीकृतमङ्गं येषाम् । यद्वा नः उपरीति व्रजतां विशेषणम् । निरहंकारत्वादस्मत्तेऽपि येऽधिकास्ते यद्व्रजन्तीत्यर्थः ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

पुनः वह वैकुण्ठ लोक कैसा है ? जो हमलोगों से ऊपर स्थित है तथा जिसमें कौन लोग जाते हैं ? प्रश्न है कि कौन लोग जाते हैं ? तो इसका उत्तर है कि सभी देवताओं में श्रेष्ठ श्रीहरि का निरन्तर चिन्तन करने के कारण जिनसे यमराज सदा दूर रहा करते हैं । अथवा जिन लोगों ने यम नियम आदि योग के साधनों का त्याग कर दिया हो । जहाँ **दूरेयमा उपरि** पाठ है वहाँ पर अर्थ होगा कि जिन लोगों ने अहङ्कार का परित्याग कर दिया। तथा जिन लोगों का शील स्वभाव अत्यन्त स्पृहणीय है, तथा परस्पर में श्रीहरि की सुन्दर कथाओं का वर्णन करते समय अनुरागातिरेक के कारण जिनकी आँखों से आँसू की धारा प्रवाहित होने लगती है, और साथ ही साथ जिनके शरीर में रोमाञ्च हो जाता है । वे महाभागवत अहङ्कार रहित होने के कारण हमलोगों से भी श्रेष्ठ है, वे उस वैकुण्ठ लोक में जाते हैं । यह अर्थ उपरिअव्ययव्रजता का विशेषण मानने पर होगा ॥२५॥

**तद्विश्वगुवधिकृतं भुवनैकवन्द्यं दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानशोचिः ।**
**आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योगमायाबलेन मुनयस्तदथो विकुण्ठम् ॥२६॥**

**अन्वयः**— अथो मुनयः योगमायाबलेन विश्वगुर्वधिकृतम् भुवनैकवन्द्यम् दिव्यं विचित्र विबुधाग्र्य विमानशोचिः तद् अपूर्वं विकुण्ठम् उपेत्य परां मुदम् आपुः ॥२६॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् वे सनाकादि मुनिगण अपने योग के बल से जगद्गुरु श्रीभगवान् के द्वारा अधिष्ठित सम्पूर्ण लोकों के वन्दनीय दिव्य तथा विचित्र श्रेष्ठ देवताओं के विमानों से विभूषित उस अपूर्व वैकुण्ठ धाम में जब पहुँचे तो उन्हें परमानन्द की प्राप्ति हुयी ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्तदा तदपूर्वं विकुण्ठं अथो अनन्तरमुपेत्य मुनयः परामुत्कृष्टां मुदमापुः । अपूर्वत्वे हेतवः-विश्वगुरुणा हरिणाऽधिकृतमधिष्ठितम् । भुवनानामेकमेव वन्द्यम् । दिव्यमलौकिकम् । विचित्राणि विबुधाग्र्याणां विमानानि तेषां शोचिर्दीप्तिर्यस्मिन्। योगमायाबलेनेति अष्टाङ्गयोगप्रभावेणोपेत्य परमेश्वरे तु योगमायेति चिच्छक्तिविलास इति द्रष्टव्यम् ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

उस समय उस अपूर्व वैकुण्ठ लोक में जाकर उन सनकादि महर्षियों को अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के आनन्द की प्राप्ति हुयी । इस श्लोक में वैकुण्ठ के अपूर्वत्व के प्रतिपादन में ये सब हेतु उपन्यस्त किए गये है । वह वैकुण्ठ श्रीहरि के द्वारा अधिष्ठित था, वह सभी लोकों के लिए परम वन्दनीय था, उसमें श्रेष्ठ देवताओं के विमानों की कान्ति फैल रही थी । उस लोक में सनकादि महर्षि अपने योगबल से पहुँच गये । परमेश्वर की योगमाया का अर्थ है उनकी चित् शक्ति का विलास ॥२६॥

**तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ।**
**देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्घ्यकेयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥२७॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् असज्जमानाः मुनयः षट्कक्षा अतीत्य अथ सप्तमायाम् समानवयसौ गृहीतगदौ परार्घ्य केयूर कुण्डल किरीट विटङ्कवेषौ देवौ अचक्षत ॥२७॥

**अनुवाद**— उस वैकुण्ठ की किसी भी वस्तु की दर्शन में आसक्ति नहीं होने के कारण वे मुनिगण छह कक्षाओं को पार करके सातवीं कक्षा में एक समान अवस्था वाले हाथ में गदा लिए हुए, महामूल्यवान् बाजूबन्द कुण्डल, किरीट से अलंकृत सुन्दर वेष वाले दो देवों को देखे ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्मिन्वैकुण्ठे षट् कक्षाः प्राकारद्वाराणि । असज्जमानाः भगवद्दर्शनोत्कण्ठया तत्तदद्भुतदर्शन आसक्तिमकुर्वाणाः । द्वारपालौ देवावपश्यन् । समानं वयो ययोः । गृहीते गदे याभ्याम् । परार्घ्यैः केयूरादिभिर्विटङ्कः सुन्दरो वेषो ययोः ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

उन मुनियों को श्रीभगवान् के दर्शन की उत्कण्ठा बनी हुयी थी किसी भी अद्भुत वस्तु को देखने की उनमें आसक्ति नहीं थी; अतएव वे छह कक्षाओं के द्वारों को पार करके सातवीं कक्षा में पहुँचकर वहाँ पर उन लोगों ने दो द्वारपालों को देखा । उन दोनों की अवस्था एक समान थी वे अपने हाथ में गदा लिए थे तथा वे अत्यन्त मूल्यवान बाजूबन्द कुण्डल तथा किरीट धारण किए हुए सुन्दर वेष में थे ॥२७॥

**मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ विन्यस्तयाऽसितचतुष्टयबाहुमध्ये ।**
**वक्त्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग्रभसं दधानौ ॥२८॥**

**अन्वयः**— असित चतुष्टय बाहुमध्ये विन्यस्तया मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ कुटिलया भ्रुवा स्फुटिनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग् रभसं वक्त्रं दधानौ अचक्षत ॥२८॥

**अनुवाद**— श्यामवर्ण की चार भुजाओं के बीच में धारण की गयी, मतवाले भ्रमरों से गुंजरित वनमाला से सुशोभित, टेढी भौंहे तथा फड़कती नासिका छिद्र में अरूण वर्ण के नेत्रों के द्वारा थोड़ी सी क्षोभ के चिह्न से युक्त मुख को धारण किए हुए उन दोनों द्वारपालों को मुनियों ने देखा ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

तावेव वर्णयति । मत्ता द्विरेफा यस्यां तया वनमालया निवीतौ कण्ठलम्बिन्या अलंकृतौ । असिता नीलाश्चतुष्टये चतुःसंख्याका बाहवस्तेषां मध्ये विन्यस्तया । वक्त्रं च मनाग्रभसं किंचित्क्षुब्धं दधानौ स्फुटावुल्फुल्लौ निर्गमौ श्वासमार्गौ नासापुटे ताभ्याम् ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में उन्हीं दोनों द्वारपालों का वर्णन किया जा रहा है। वे दोनों गले में लटकने वाली वनमाला से अलंकृत थे । और उन वनमालाओं पर मतवाले भौंरे गुनगुना रहे थे । वह वनमाला उन दोनों द्वारपालों की

चारो भुजाओं के बीच में विन्यस्त थी । उनका मुख कुछ क्षुब्ध सा था । उनकी नाकों के छिद्र फड़क रहे थे । ऐसे उन दोनों द्वारपालों को मुनियों ने देखा ।।२८।।

**द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिकायाः ।**
**सर्वत्र तेऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या ये संचरन्त्यविहता विगताभिशङ्काः ।।२९।।**

**अन्वयः**— तयोः मिषतोः द्वारि पुरटवज्रकपाटिकायाः पूर्वाः यथा अपृष्ट्वा निविविषुः ते मुनयः अविषमया स्वदृष्ट्या विगताभिशङ्काः अविहता ये सर्वत्र संचरन्ति ।।२९।।

**अनुवाद**— उन दोनों की आँखों के सामने ही उस द्वार में उसी तरह प्रवेश किए जिस तरह इससे पहले के सुवर्ण और व्रजमय किवाड़ों से युक्त छह कक्षाओं को लाँघकर वे आये थे । उनकी दृष्टि सर्वत्र एक समान थी और वे निःशङ्क होकर सर्वत्र विचरते थे ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

एतयोर्मिषतोः पश्यतोस्तावनादृत्यापृष्ट्वैव याः पूर्वाः षट्-द्वारः । पुरटालंकृतवज्रमय्यः कवाटिका यासु ता यथा विविशुस्तथा सप्तमायामपि द्वारि ते निविविशुः । अप्रश्ने हेतुः-सर्वत्र ये अविहता अनिवारिताः संचरन्ति । निःशङ्कत्वे हेतुः- अविषमया स्वदृष्ट्येति ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

वे सभी सनकादि महर्षिगण उन दोनों को देखते ही रहने पर दोनों से पूछे बिना ही जिस तरह से सुवर्णालकृंत वज्रमय किवाड़ों से युक्त छह कक्षाओं को पार करके आये थे उसी प्रकार इस सातवीं कक्षा में प्रवेश कर गये । क्योंकि वे मुनिगण तो समदृष्टि थे अतएव बिना शङ्का के वे सर्वत्र विचरते थे । उन लोगों को कोई भी रोकता नहीं था ।।२९।।

**तान्वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मत्त्वान् ।**
**वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ।।३०।।**

**अन्वयः**— वातरशनान् वृद्धान् दशार्धवयसः विदितात्म तत्त्वान् तान् चतुरः कुमारान् वीक्ष्य अतदर्हणान् तेजोविहस्य भगवतः प्रतिकूलशीलौ तो वेत्रेण च आस्खलयताम् ।।३०।।

**अनुवाद**— दिगम्बर ब्रह्माजी की सृष्टि में सबसे वृद्ध किन्तु देखने में पाँच वर्ष की अवस्था वाले के समान लगने वाले, तथा तत्त्वज्ञ उन चारो कुमारों को देखकर उन मुनियों के तेज का उपहास करके श्रीभगवान् के प्रतिकूल स्वभाव वाले उन दोनों ने बेंत से रोक दिया यद्यपि वे उस व्यवहार के योग्य नहीं थे ।।३०।।

### भावार्थ दीपिका

वातरशनान्नग्नान्वृद्धानपि पञ्चवर्षबालकवत्प्रतीयमानान् । चकारादाज्ञया च । अस्खलयतां निवारितवन्तौ । न तत् स्खलनमर्हन्तीति तथा तान् । अहो अत्रापि धार्ष्ट्यमित्येवं तेषां तेजो विहस्य । भगवतो ब्रह्मण्यदेवस्य प्रतिकूलं शीलं ययोः ।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

वे चारो महर्षि नङ्गधडङ्ग थे । वे आयु में सबसे वृद्ध होने पर देखने में पाँच वर्ष के प्रतीत होते थे । उन चारो महर्षियों को उन दोनों द्वारपालों ने बेंत लगाकर रोक दिया और चकारात् उन लोगों को नहीं प्रवेश करने की आज्ञा भी दी । यद्यपि वे महर्षिगण द्वारपालों द्वारा किए जाने वाले इस तरह के व्यवहार के योग्य नहीं थे। उन महर्षियों के तेज का उपहास करते हुए उन दोनों ने कहा कि अरे यहाँ आकर भी इस तरह धृष्टताा करते हो । श्रीभगवान तो ब्रह्मण्यदेव हैं और उन दोनों का शील श्रीभगवान् के प्रतिकूल था ।।३०।।

**ताभ्यां मिषत्स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा ह्यपि हरेः प्रतिहारपाध्याम् ।**
**ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभङ्ग ईषत्कामानुजेन सहसा त उपप्लुताक्षाः ॥३१॥**

**अन्वयः**— ताभ्यां हरेः प्रतिहाराभ्याम् मिषत्सु अनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा हि अपि सुहृत्तम दिदृक्षितभङ्गईषत् कामानुजेन सहसा उपप्लुताक्षाः ते ऊचुः ॥३१॥

**अनुवाद**— श्रीहरि के दोनों द्वारपालों द्वारा वहाँ के देवताओं के सामने ही पूजा के सर्वश्रेष्ठ पात्र उन मुनियों को रोके जाने पर अपने सुहृत्तम श्रीहरि के दर्शन में भङ्ग होने पर उन मुनियों को थोड़ा सा क्रोध आ गया और उनकी आँखें लाल हो गयीं । मुनियों ने कहा ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

हरेर्द्वारपालपतिभ्यां देवेषु पश्यत्सु वार्यमाणास्ते मुनयः **'को वाम्'** इत्यादिश्लोकत्रयीमूचुः । सुहृत्तमः श्रीहरिस्तस्य दिदृक्षितं दर्शनेच्छा तस्य भङ्गे सति कामस्यानुजः क्रोधस्तेन सहसाऽकस्मादेवोपप्लुतानि क्षुभितान्यक्षीणि येषां ते । सुष्ठु पूज्यतमा अपीति निषेधानर्हत्वे क्रोधानर्हत्वे वा हेतुः ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के द्वारपालों के स्वामियों द्वारा सभी देवताओं के सामने ही रोके जाते हुए उन दोनों को मुनियों ने **को वाम** तुम दोनों कौन हो इत्यादि तीन श्लोकों को कहा । उन मुनियों के सुहृत् श्रीहरि हैं, उनको देखने की इच्छा के भङ्ग हो जाने पर मुनियां को थोड़ा क्रोध हो आया, उनकी आँखें लाल हो गयीं और उन मुनियों ने कहा ॥३१॥

मुनय ऊचुः

**को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः स्वभावः ।**
**तस्मिन्प्रशान्तपुरुषे गतविग्रहे वां को वात्मवत्कुहकयोः परिशङ्कनीयः ॥३२॥**

**अन्वयः**— उच्चैः भगवत् परिचर्यया इह एत्य निवसतां तद्धर्मिणां वाम् इह विषमः स्वभावः कः तस्मिन् प्रशान्त पुरुषे गतविग्रहे वां आत्मवत् कुहकयोः वां कः परिशङ्कनीयः ॥३२॥

### मुनियों ने कहा

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की अत्यधिक सेवा के द्वारा यहाँ इस वैकुण्ठ लोक में आकर निवास करने वाले भगवद् भक्तों में तुम दोनों का यह विषम स्वभाव कैसे है ? तुम भी यहाँ निवास करने वालो में ही हो, फिर तुम दोनों का इस तरह से विपरीत स्वभाव कैसे हो गया ? इस लोक के स्वामी तो अत्यन्त शान्त स्वभाव वाले हैं उनका किसी के भी साथ विग्रह नहीं है । फिर भी जिस तरह तुमलोग कपटी हो उस तरह से यहाँ दूसरा कौन है ?॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

उच्चैर्महत्या भगवत्परिचर्यया एत्य प्राप्य वैकुण्ठे निवसतां तद्धर्मिणां भगवद्धर्मिणा समदर्शिनां मध्ये वां युवयोरेव कोऽयं विषमः स्वभावः । कैश्चित्प्रवेष्टव्यं कैश्चिन्नेत्येवंभूतः । ननु स्वामिनो रक्षार्थं द्वारपालयोरेष स्वभावो गुण एवेति चेदत आहुः-तस्मिन्निति । कुहकयोः कपटयोः । आत्मवत्स्वदृष्टान्तेन । यथा आवां कपटौ तथाऽन्योऽपि कश्चित्कपटः प्रवेक्ष्यतीति। अयं भावः-न ह्यत्र भगवद्भक्तं बिना कश्चिदागच्छति । न चेश्वरे प्रशान्तत्वादविद्यमानविरोधे भयशङ्का । अतो युवां केवलं धूर्तावेवेति ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की बहुत अधिक सेवा करके ही कोई जीव इस वैकुण्ठ में आकर निवास करता है । यहाँ रहने

वाले सभी लोग समदर्शी हैं। उन समदर्शियों के बीच में तुम दोनों की यह विषम दृष्टि कैसे हो गयी ? कि तुमलोग यह समझते हो कि यहाँ कुछ लोगों को ही प्रवेश करने देना चाहिए कुछ लोगों को नहीं। **ननु० इत्यादि** यदि यह कहो कि अपने स्वामी की रक्षा करने के लिए इस तरह का स्वभाव होना रक्षकों का गुण ही है। तो इसका उत्तर इस श्लोक के उत्तरार्द्ध से दिया गया है। श्रीभगवान् तो प्रशान्त पुरुष हैं, अतएव उनका किसी से भी विरोध नहीं है। तुम दोनों ही कपटी हो अतएव यह समझते हो कि तुम दोनों के ही समान कोई कपटी यहाँ प्रवेश कर जा सकता है। कहने का अभिप्राय है कि भगवद्भक्त से भिन्न कोई दूसरा यहाँ आता ही नहीं है। जब श्रीभगवान् अत्यन्त शान्त स्वभाव वाले हैं तो उनका किसी से विरोध भी नहीं है। अतएव भय की यहाँ कोई शङ्का है ही नहीं। केवल तुम ही दोनों यहाँ धूर्त हो ॥३२॥

**न ह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षावात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः।**
**पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं यतोऽस्य ॥३३॥**

**अन्वयः**— कुक्षौ धीराःनभसि नभ इव धीरा भगवति आत्मनि आत्मानं पश्यन्ति अन्तरं नहि पश्यन्ति युवयोः सुरलिङ्गिनोः उदरभेदिभयं किं व्युत्पादितं यतः अस्यभयम् ॥३३॥

**अनुवाद**— इस परमात्मा की कुक्षि में सारा विश्व है। उसमें ज्ञानीजन भेद नहीं देखते हैं वे परमात्मा में ही अपने को महाकाश में विद्यमान घटाकाश के समान देखते हैं। तुम दोनों देवरूपधारी हो तुम ऐसा क्या देखते हो ? जिससे तुमने भगवान् के साथ भेदभाव के कारण भय की कल्पना कर ली ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

भयशङ्काबीजं च भेदः स च कस्याप्यस्मिन्नास्तीत्याहुः-न हीति। समस्तं विश्वं कुक्षौ यस्य यत्र यदेह भगवति धीरा विद्वांस आत्मनोऽन्तरं भेदं न पश्यन्ति किंत्वस्मिन्परमात्मन्यात्मानमन्तर्भूतं पश्यन्ति महाकाशे घटाकाशमिव तदा यथान्यस्य राजादेरुदरभेद्युदरभेदयुक्तं भयं भवति तथास्य श्रीहरेस्तादृग्भयं यतो येन कारणेन सुरवेषधारिणोर्युवयोर्विशेषेणोत्पादितं तत्किम्, न किंचिदित्यर्थः ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

मुनियों ने कहा भय की शङ्का का कारण भेद होता है। इस परमात्मा से किसी का भी भेद नहीं है। सारा विश्व श्रीभगवान् के उदर में है। उसमें थोड़ा सा भी भेद होने पर भय होता है। ज्ञानी पुरुष परमात्मा से आत्मा का अन्तर उसी तरह से नहीं देखते हैं जिस तरह महाकाश में घटाकाश होता है। जैसे किसी दूसरे राजा का दूसरे राजा आदि से थोड़ा सा भेद होता है, उस तरह से परमात्मा का कोई भेद नहीं है फिर भी देवरूप धारी तुम लोगों ने यह विशेष भेद कैसे उत्पन्न कर दिया ? जबकि वह भेद है ही नहीं ॥३३॥

**तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम्।**
**लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥३४॥**

**अन्वयः**— अमुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः प्रकृष्टं कर्तुम् वाम् मन्दधीभ्याम् धीमहि। अन्तरभावदृष्ट्या इतो लोकान् व्रजतम् यत्र अस्य इमे त्रयः पापीयसः रिपवः ॥३४॥

**अनुवाद**— अतएव वैकुण्ठनाथ के पार्षद होने पर भी मन्दबुद्धि वाले तुम दोनों का कल्याण करने के लिए हम उचित दण्ड का विचार करते है। तुम दोनों अपने मन्द भेद बुद्धि के कारण इस लोक से निकलकर उन पापमय योनियों में जाओं जहाँ पापियों के काम, क्रोध और लोभ ये तीनों प्रबल शत्रु रहते हैं ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

तत्तस्मादमुष्य वैकुण्ठनाथस्य भृत्याभ्यां युवाभ्यां प्रकृष्टं भद्रमेव कर्तुमिहास्मिन्नपराधे यद्युक्तं तद्धीमहि चिन्तयेम।

तदेवाहुः । अन्तरस्य भेदस्य भावः सत्ता तद्दर्शनेन इतो वैकुण्ठलोकाद्व्रजतम् । यत्र येषु लोकेष्वस्य पापीयसोऽन्तरभावद्रष्टुरिमे **'कामः क्रोधस्तथा लोभः'** इति गीतोक्तास्त्रयो रिपवो भवन्ति । इतो वैकुण्ठात्पापीयसो लोकानिति वा ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

यद्यपि तुम दोनों इन वैकुण्ठनाथ के अनुचर हो फिर भी तुम दोनों का कल्याण करने के लिए इस अपराध के लिए उचित दण्ड देने के लिए हम उचित दण्ड का विचार कर रहे हैं । उस दण्ड को बतलाते हुए मुनियों ने कहा भेद की सत्ता देखने के ही कारण तुम यहाँ से उन लोकों में जाओ जहाँ पर पापमय भेद की सत्ता देखने वाले गीतोक्त काम, क्रोध तथा लोभ ये तीन शत्रु हुआ करते हैं । वे लोक वैकुण्ठ लोक से अत्यधिक पापमय लोक हैं ।।३४।।

**तेषामितीरितमुभाववधार्य घोरं तं ब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः ।**
**सद्यो हरेरनुचरावुरुबिभ्यतस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ।।३५।।**

**अन्वयः**— तेषाम् इतीरितम् उभौ घोरम् अवधार्य, तं ब्रह्मदण्डम् अस्त्रपूगैः अनिवारणम् अवधार्य उरुविभ्यतः हरे अनुचरौ सद्यः अतिकातरेण पादग्रहौ अपतताम् ।।३५।।

**अनुवाद**— उन सनकादिकों के इस कठोर वचन को सुनकर और यह जानकर कि इस भयङ्कर ब्रह्मदण्ड को किसी दूसरे अस्त्र से नहीं रोका जा सकता है, श्रीहरि के वे दोनों अनुचर अत्यन्त भयभीत होकर अत्यन्त दीनता पूर्वक उनके चरण को पकड़कर लोट गये ।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

इति तेषामीरितं भाषणं घोरमवधार्य, तं च ब्रह्मदण्डं ब्रह्मशापमवधार्य, तं चास्त्रसमूहैरप्यनिवार्यमवधार्य । हरेरनुचरावतिकातर्येण भयेन तत्पादग्रहणं कुर्वन्तौ सन्तौ दण्डवदपतताम् । कथंभूतस्य हरेः । एवंभूतेभ्यो मुनिभ्यस्ताभ्यामप्युरु अधिकं विभ्यतो भयं भावयतः ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

उन मुनियों के इस वचन को अत्यन्त भयङ्कर निश्चय करके और उसको ब्रह्मशाप जानकर और यह भी जानकर कि इस ब्रह्मशाप को किसी दूसरे अस्त्र समूह से नहीं रोका जा सकता है इस तरह से निश्चय करके श्रीहरि के वे दोनों अनुचर अत्यन्त अधीर होकर भय के कारण उन ब्राह्मणों के चरण को पकड़कर पृथिवी पर गिर पड़े श्रीहरि की विशेषता को बतलाते हुए कहते हैं कि ऐसे मुनियों से तो वे दोनों जैसे डरे हुए थे उनसे भी अधिक भय का अनुभव श्रीहरि ब्राह्मणों से करते हैं ।।३५।।

**भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ।**
**मावोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोधः ।।३६।।**

**अन्वयः**— अघोनि भूयात् भगवद्भिः दण्डः अकारि यो नौ अशेषम् सुरहेलनम् हरेत, वः अनुतापकलया तु अधोऽधः व्रजतोः नौ भगवत स्मृतिघ्नः मोहः मा भवेत् ।।३६।।

**अनुवाद**— हम दोनों ने अपराध किया है और उसके लिए आपलोगों ने उचित ही दण्ड दिया है, इससे हमदोनों का सम्पूर्ण आपलोगों का अपमानजन्य पाप धुल जायेगा । यदि आपको थोड़ा सा भी अनुताप हो तो आप लोग इतनी ही कृपा करें कि मैं चाहे जिस योनि में जाऊँ, मुझे श्रीभगवान् की स्मृति बनी रहे, उसे हम न भूलें।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

अहो अपराद्धमस्माभिरित्यनुतप्यमानान्प्रत्यूचतुः । अघोन्यघवति य उचितो दण्डः सएव भगवद्भिरकारि । नात्र भवतामपराधः

कश्चित् । अतोऽसौ नौ आवयोर्भूयात् । योऽशेषमपि सुरहेलनमीश्वराज्ञातिक्रमरूपं पापं हरेत्, किंतु युष्माकं यः कृपानिमित्तोऽनुतपस्तस्य लेशेन नौ अधोऽधो मूढयोनीर्व्रजतोरपि भगवत्स्मृतिप्रतिघातको मोहो मा भवेत्, किंतु मोहोऽपि स्मृतिमेव प्रवहतादिति प्रार्थना।।३६।।

**भाव प्रकाशिका**

उन दोनों द्वारपालों को शाप देने के पश्चात् मुनिगण पश्चात्ताप कर रहे थे कि हमलोगों ने अपराध कर दिया है । ऐसा पश्चात्ताप करते हुए मुनियों से उन दोनों ने प्रार्थना किया कि हमलोगों ने जो अपराध किया है, उसके कारण आप लोगों ने जो शाप दिया है वह उचित ही है। उससे हमदोनों का अपराधजन्यपाप पूर्ण रूप से समाप्त हो जायेगा । इसमें आप लोगों का थोड़ा सा भी अपराध नहीं है । किन्तु आपलोगों को कृपा करने के कारण थोड़ा भी अनुताप हो तो इतना ही करें कि नीच से नीच योनियों में जाते हुए हमलोगों को कभी भी श्रीभगवान् की विस्मृतिकारक मोह न हो किन्तु मोह श्रीभगवान् स्मृति में ही प्रवाहित हो जाय ।।३६।।

**एवं तदैव भगवानरविन्दनाभः स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ।**
**तस्मिन्ययौ परमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन्सहश्रीः ।।३७।।**

**अन्वयः**— एवं तदैव आर्यहृदयः भगवान् अरविन्दनाभः स्वानां सदतिक्रमम् विबुध्य सह श्रीः परमहंसमहामुनीनाम् अन्वेषणीयचरणौ चलयन् तस्मिन् ययौ ।।३७।।

**अनुवाद**— साधु पुरुषों के परम प्रिय भगवान् पद्मनाभ अपने अनुचरों द्वारा सनकादि साधुपुरुषों का अनादर सुनकर श्रीलक्ष्मीजी के साथ अपने उन्हीं चरणों से चलकर उस स्थान पर आ गये जिन चरणों का ध्यान मुनिजन अपने हृदय में ही किया करते हैं और फिर भी श्रीभगवान् के चरणों का दर्शन नहीं कर पाते हैं ।।३७।।

**भावार्थ दीपिका**

एवं स्वानां महत्स्वतिक्रममपराधं तत्क्षणमेव विबुध्य तस्मिन्यत्र ते रुद्धास्तं देशं ययौ । आर्याणां हृद्यो मनोज्ञः । चरणौ चलयन्निति । अयं भावः-मच्चरणदर्शनप्रतिघातजं क्रोधं तौ दर्शयन् शमयिष्यामीति त्वराव्याजेन पद्भ्यामेव ययौ । श्रीसाहित्यं च निष्कामानपि विभूतिभिः पूरयित्वा क्षमापयितुम् ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् को उसी समय पता चल गया कि मेरे अनुचरों ने सनकादिक सत्पुरुषों का अपमान किया है वे स्वयं उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ पर मुनिजन रुके हुए थे । वे श्रीभगवान् सत्पुरुषों के लिए मनोज्ञ हैं । वे अपने पैरों से चलकर वहाँ चले आये । श्रीभगवान् का ऐसा करने में अभिप्राय था कि मेरे चरणों के दर्शनमें जो बाधा हुयी है उसी के कारण मुनियों को क्रोध हुआ है । अतएव इन चरणों का दर्शन कराकर मैं उनके क्रोध को शान्त कर दूँगा । इस तरह से शीघ्रता करने के बहाने भगवान् अपने पैरों से चलकर आये । किञ्च ये मुनिजन तो यद्यपि निष्काम हैं फिर भी उन लोगों को विभूतियों से परिपूर्ण बनाकर मैं अपराध क्षमा कराऊँगा, इसी अभिप्राय से श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के साथ वहाँ आये ।।३७।।

**तं त्वागतं प्रतिहृतौपयिकं स्वपुंभिस्तेऽचक्षताक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यम् ।**
**हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरसीकराम्बुम् ।।३८।।**

**अन्वयः**— स्वपुंभिः प्रतिहृतौपयिकं स्वसमाधिभाग्यम् हंसश्रियोः व्यजनयोः शिववायु लोलत् शुभ्रातपत्र शशि केसर शीकराम्बुम् तंतु आगतम् अक्षविषयं ते अचक्षत ।।३८।।

**अनुवाद**— जिनके अनुचर गमनोपयोगी छत्र पादुका आदि शीघ्र ला दिए थे, तथा उन मुनिजनों की समाधि में भजन करने योग्य तथा हंसों के समान श्वेत वर्ण के दो चामरों की कल्याणमयी वायु से हिलते हुए श्वेत छत्र के केसर रूपी जल बूंदों से युक्त आये हुए श्रीभगवान् को जो उनके नेत्रों के सामने थे उनको उन मुनियों ने देखा।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

तत्र तैर्दृष्टं देवमनुवर्णयति पञ्चभिः । तं त्वागतं तेऽचक्षत अपश्यन् । आपञ्चमादिदमेव क्रियापदम् । स्वपुंभिः शीघ्रं प्रतिहृतमानीतमौपयिकं गमनोचितं छत्रपादुकादि यस्य । कथंभूतम् । स्वसमाधिना भाग्यं भजनीयं फलं यद्ब्रह्म तदेवाक्षविषयम्। हंसवच्छ्रीर्ययोस्तयोरुभयतश्चलयोर्व्यजनयोर्यः शिवोऽनुकूलो वायुस्तेन लोलन्तश्चलन्तः शुभ्रातपत्रशशिकेसराः शुभ्रं यदातपत्रं तदेव शशिसादृश्याच्छशीतस्य केसरा मुक्ताहारविलम्बास्तेभ्यो गलन्ति सीकाराम्बूनि यस्मिंस्तम् । सीकरोऽम्बुकणः ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

उन मुनियों द्वारा देखे जाते हुए तथा उस स्थान पर पधारे हुए श्रीहरि का वर्णन पाँच श्लोकों में किया जा रहा है । आये हुए श्रीभगवान् को उन मुनियों ने देखा इस श्लोक से पाँचवें श्लोक तक अचक्षत यह क्रिया अन्वित होगी । श्रीभगवान् के अनुचर शीघ्र ही गमनोपयोगी उनके छत्र पादुका आदि को ला दिये थे । ऐसे श्रीभगवान् को जो उन सनकादिकों की समाधि के फल स्वरूप थे उनका दर्शन वे अपनी आखों से कर रहे थे । हंसों के समान श्वेत शोभा सम्पन्न दो चामर उनके दोनों बगल में चलाये जा रहे थे उनकी शीतल वायु से जिनके श्वेत चमर में लगी हुयी मोतियों के झालर हिल रही थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे चन्द्रमा की किरणों से अमृत की बूंदें झर रही हों ।।३८।।

**कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम् ।**
**श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिं सुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ।।३९।।**

**अन्वयः**— स्पृहणीयधाम, कृत्स्नप्रसादसुमुखम् स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम्, श्यामे पृथौ उरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिमिव स्वधिष्ण्यम् सुभगयन्तमिव अचक्षत ।।३९।।

**अनुवाद**— सबों पर कृपा करने के कारण प्रसन्नता पूर्ण सुन्दर मुख वाले सम्पूर्ण स्पृहणीय गुणों के एक मात्र आश्रय, अपनी स्नेहमयी दृष्टि से मानो सबों के हृदय का स्पर्श कर रहे हों, श्याम वर्ण के विस्तृत वक्षः स्थल में सुशोभित होने वाली लक्ष्मीजी के द्वारा स्वर्गादि लोकों के चूड़ामणि अपने वैकुण्ठ धाम को सुशोभित करते हुए से श्रीभगवान् को उन मुनियों ने देखा ।।३९।।

**भावार्थ दीपिका**

कृत्स्नस्य द्वारपालमुनिवृन्दस्य प्रसादे सुमुखम् । स्पृहणीयानां गुणानां धाम स्थानम् । स्नेहावलोककलया सप्रेमकटाक्षेण हृदि संस्पृशन्तं सुखयन्तम् । त्रैलोक्यविवक्षापक्षे सत्यलोकपर्यन्तः स्वर्गस्तस्य चूडामणिवत्स्थितं स्वधिष्ण्यं वैकुण्ठं सुभगयन्तं शोभयन्तम् ।।३९।।

**भाव प्रकाशिका**

सभी द्वारपालों तथा मुनिजनों पर कृपा की वर्षा करने के कारण सुन्दर प्रसन्न मुख वाले समस्त स्पृहणीय गुणों के आश्रय स्वरूप, प्रेम पूर्वक सबों को देखने के कारण जैसे वे सबों के हृदय का स्पर्श कर रहे हों, और सबों को सुख प्रदान कर रहे हों त्रैलोक्य की विवक्षा मानने पर सत्यलोक पर्यन्त स्वर्ग के चूड़ामणि के समान स्थित अपने स्थान वैकुण्ठ धाम को वे जैसे सुशोभित कर रहे थे ।।३९।।

**पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या काञ्च्याऽलिभिर्विरुतया वनमालया च ।**
**वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ।।४०।।**

**अन्वयः**— पीतांशुके पृथुनिताम्बिनी विस्फुरन्त्या, काञ्चया, विरूतया अलिभिः वनमालया च, वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तम् इतरेण अब्जम् धुनानम् अचक्षत ।।४०।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के पीताम्बर मण्डित विस्तृत नितम्बों पर चमकती हुयी करधनी और गले में लटकती हुयी भ्रमरों से गुंजायमान वनमाला सुशोभित हो रही थी। वे अपनी कलाइयों में सुन्दर कङ्गन धारण किए थे। वे अपना एक हाथ गरुड़ के कंधे पर रखकर दूसरे हाथ से कमल को घुमा रहे थे ऐसे भगवान् को मुनियों ने देखा॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

पृथुर्नितम्ब आश्रयत्वेन विद्यते यस्य तस्मिन्पीतांशुके। अलिभिर्नादितया वनमालया च युक्तम्। सुभगयन्तमिति पूर्वेणैव वा सम्बन्धः। वल्गुषु प्रकोष्ठेषु वलयानि यस्य। गरुडस्य स्कन्धे विन्यस्त एको हस्तो येन। इतरेणान्येनाब्जं लीलाकमलं धुनानं भ्रामयन्तम्। विन्यस्येति पाठे च वल्गिवत्यादि हस्तस्य विशेषणम् ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

अर्थात् विस्तृत नितम्ब जिसका आश्रय है उस पीताम्बर पर चमकती हुई करधनी से तथा गुनगुनाते भौरों के गुञ्जन से युक्त, वनमाला से सुशोभित श्रीहरि अपनी कलाई में सुन्दर कङ्गन धारण किए थे, एक हाथ को वे गरुड के कन्धे पर रखे थे और दूसरे हाथ से वे कमल को घुमा रहे थे। जहाँ पर विन्यस्य पाठ होगा वहाँ बल्गु इत्यादि हाथ के विशेषण होंगे ॥४०॥

**विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्हगण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम्।**
**दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्ध्यहारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन ॥४१॥**

**अन्वयः**— विद्युत्क्षिपन् मकरकुण्डलमण्डनार्हगण्डस्थलोन्नसमुखं, मणिमत् किरीटम् दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्ध्येण हारेण कौस्तुभेन च सुशोभितं भगवन्तम् अचक्षत ॥४१॥

**अनुवाद**— विद्युत् की कान्ति को भी तिरस्कृत करने वाले मकराकृति कुण्डल को भी अलंकृत करने वाले कपोलों; उठी हुयी नाक से युक्त मुख वाले, मणि जटित किरीट को धारण किए हुए भुज समूह के बीच में विराजमान बहुमूल्य हार तथा कन्धे पर लटकने वाली कौस्तुभमणि से सुशोभित श्रीभगवान् को मुनियों ने देखा ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वकान्त्या विद्युतः क्षिपती ये मकराकारे कुण्डले तयोर्मण्डनस्यार्हे गण्डस्थले यस्मिंस्तच्च तदुन्नसं च मुखं यस्य। मणियुक्तं किरीटं यस्य। दोर्दण्डानां षण्डं समूहस्तस्य विवरे मध्ये स्थितेन हरता मनोहरेण विहरतेति वा परार्ध्यं उत्कृष्टस्तेन हारेण। कंधरायां स्थितेन ॥४१॥

**भाव प्रकाशिका**

अपनी कान्ति से विद्युत् की कान्ति को तिरस्कृत करने वाले दोनो मकराकृतिकुण्डलों को अलंकृत करने योग्य दो कपोलों से तथा उठी हुई नासिकाओं से युक्त मुख वाले, मणिमय किरीट को धारण किए हुए, भुज समूह के बीच विद्यमान अत्यन्त मूल्यवान हार तथा कन्धे से लटकने वाले कौस्तुभमणि को धारण किए हुए श्रीहरि को मुनियों ने देखा ॥४१॥

**अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिन्दिरायाः स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम्।**
**मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तमङ्गं नेमुर्निरीक्ष्य नवितृप्तदृशा मुदा कैः ॥४२॥**

**अन्वयः**— इन्दिरायाः उत्स्मितम् अत्र उपसृष्टम् इति स्वानां धिया बहुसौष्ठवाढ्यं विरचितं मह्यम्, भवस्य भवतां च अङ्गम् भजन्तम् निरीक्ष्य मुदा कैः नेमुः न वितृप्तदृशः ॥४२॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के सौन्दर्य के समक्ष मैं ही सर्वाधिक सुन्दर हूँ इस प्रकार लक्ष्मीजी का सौन्दर्याभिमान मानो विनष्ट हो गया, उनके अपने भक्तों द्वारा इस प्रकार से अपने मन में वितर्कित अत्यधिक सौन्दर्य सम्पन्न, मेरे

शिवजी के तथा आप सभी देवताओं के लिए शरीर धारण किए हुए, श्रीभगवान् को देखकर ब्रह्माजी के पुत्रों ने नमस्कार किया किन्तु श्रीभगवान् को देखने से उन मुनियों के नेत्र तृप्त नहीं हुए ।।४२।।

### भावार्थ दीपिका

किंबहुना । इन्दिराया उत्स्मितमहमेव सर्वसौन्दर्यनिधिरित्यहंकरणमत्र भगवत्सौन्दर्ये उपसृष्टमस्तंगतमिति स्वानां भक्तानां धिया विरचितम् । भृत्यैः स्वमनस्येवं वितर्कितमित्यर्थः । कुतः । बहुसौष्ठवेन सौन्दर्येणाढ्यं युक्तम् । किंच मह्यं मम भवस्येश्वरस्य भवतां च कृतेऽङ्गं भजन्तं मूर्तिं प्रकटयन्तमचक्षत । निरीक्ष्य च कैः शिरोभिर्मुदा नेमुर्नमश्चक्रुः । न विशेषेण तृप्ता दृशो नेत्राणि येषां ते ।।४२।।

### भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक क्या कहा जाय, लक्ष्मीजी का यह जो अहङ्कार था कि मै ही सम्पूर्ण सौन्दर्यों का आकर हूँ; वह श्रीभगवान् के सौन्दर्य के सामने गलित हो गया । इस प्रकार के भगवद् भक्तों के मन में वितर्कित विचार था। क्योंकि भगवान् का वह रूप सौन्दर्य से समृद्ध था । ब्रह्माजी कहते हैं कि मेरे लिए, शिवजी के लिए तथा तुमलोगों के लिए ऐसा शरीर धारण किए श्रीभगवान् के रूप को देखकर सनकादिकों ने नमस्कार किया; किन्तु श्रीभगवान् को देखने से उनके नेत्र तृप्त नहीं हुए ।।४२।।

**तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्दकिञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ।**
**अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ।।४३।।**

**अन्वयः**— अरविन्दनयनस्य तस्य पदारविन्द किञ्जल्कमिश्रतुलसी मकरन्दवायुः स्वविवरेण अन्तर्गतः तेषां अक्ष रजुषां चित्ततन्वो संक्षोभं चकार ।।४३।।

**अनुवाद**— कमल नयन भगवान् के चरणारविन्द के पराग मिश्रित तुलसी की सुगन्धि युक्त वायु ने उन सनकादियों की नासिका के छिद्र के माध्यम से भीतर प्रवेश करके अक्षर ब्रह्म में मग्न रहने वाले सनकादियों के मन में क्षोभ उत्पन्न कर दिया ।।४३।।

### भावार्थ दीपिका

स्वरूपानन्दादपि तेषां भजनानन्दाधिक्यमाह । तस्य पदारविन्दयोः किञ्जल्कैः केसरैर्मिश्रा या तुलसी तस्या मकरन्देन युक्तो वायुः स्वविवरेण नासाछिद्रेण । अक्षरजुषां ब्रह्मानन्दसेविनामपि । संक्षोभं चित्तेऽतिहर्षं तनौ रोमाञ्चम् ।।४३।।

### भाव प्रकाशिका

उन सनकादिक महर्षियों में स्वरूपानन्द की अपेक्षा भजनानद अधिक था इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । श्रीभगवान् के चरण कमलों के पराग से युक्त तुलसी की सुगन्धि से युक्त वायु ने उनकी नाक के छिद्र से प्रवेश करके उनके चित्त और शरीर में क्षोभ उत्पन्न कर दिया ।।४३।।

**ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोशमुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम् ।**
**लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रिद्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ।।४४।।**

**अन्वयः**— ते वै अमुष्य असितपद्मकोशम् सुन्दरतराधर कुन्दहासम् उद्वीक्ष्य लब्धाशिषः पुनः तदीयमङ्घ्रि द्वन्द्वम् नखारूणमणिश्रयणं अवेक्ष्य निदध्युः ।।४४।।

**अनुवाद**— वे मुनिगण कुन्दकली के समान मनोहर हँसी से युक्त नील कमल के कोश के समान मुख को देखकर अपने मनोरथ को प्राप्त कर लिए, पुनः पद्मरागमणि के समान लाल-लाल नखों से युक्त श्रीभगवान् के चरण युगल को देखकर वे उसका ध्यान करने लगे ।।४४।।

### भावार्थ दीपिका

हर्षकारितं संभ्रममाह द्वाभ्याम् । ते वै किलामुष्य वदनमेवासितपद्मस्य कोशोऽन्तर्भागस्तम् । असितपद्मकोशमित्यभूतोपमा। सुन्दरतरे अरुणे अधरोष्ठे कुन्दवद्धासो यस्मिंस्तम् । उत् ऊर्ध्वं वीक्ष्य लब्धमनोरथाः सन्तो नखा एवारुणमणयस्तेषां श्रयणमाश्रयभूतमङ्घ्रिद्वन्द्वं पुनरवेक्ष्याऽधोदृष्ट्या वीक्ष्य पुनःपुनरेवं निरीक्ष्य युगपत्सर्वाङ्गलावण्यग्रहणाशक्तेः पश्चान्निदध्युर्ध्यातवन्तः ।।४४।।

### भाव प्रकाशिका

अब दो श्लोकों से हर्ष जनित शीघ्रता का वर्णन करते हैं । श्रीभगवान् का मुख ही नील कमल के कोश के समान था । अर्थात् नील कमल का भीतरी भाग था, असितपद्म कोश में अभूतोपमा नामक अलङ्कार है । क्योंकि नील कमल का कोष पीला होता है नील नहीं, यदि नील कमल कोश भी नीला हो जाय तब जाकर उसके समान श्रीभगवान् का मुख हो, इसतरह इस पद में उपमित समास है । श्रीभगवान् के अत्यन्त सुन्दर लाल-लाल ओष्ठ थे । तथा उसमें कुन्द के समान श्वेत वर्ण की हंसी थी इस तरह के श्रीभगवान् के मुखमण्डल को देखकर उन मुनिजनों का मनोरथ पूर्ण हो गया । उसके पश्चात् वे पुनः पद्मरागमणि के समान लाल-लाल नखों से युक्त उनके दोनों चरणों को देखकर उसका ध्यान करने लगे ।।४४।।

**पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गैर्ध्यानास्पदं बहुमतं नयनाभिरामम् ।**
**पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः समगृणन्युतमष्टभोगैः ।।४५।।**

**अन्वयः**— योगमार्गैः गतिं मृगयताम् पुंसां ध्यानास्पदं बहुमतम् पौंस्नं वपुः दर्शयानम् अनन्यसिद्धै औत्पत्तिकैः अष्टभोगैः युतम् समगृणन् ।।४५।।

**अनुवाद**— योग मार्ग के द्वारा मोक्षमार्ग का अन्वेषण करने वाले पुरुषों के ध्यान के विषयभूत अत्यन्त समादरणीय नयनानन्द को बढ़ाने वाले अपने पौरुष (पुरुष सम्बन्धी) रूप का दर्शन देने वाले स्वाभाविक अष्टसिद्धियों से युक्त श्रीहरि की वे स्तुति करने लगे ।।४५।।

### भावार्थ दीपिका

योगमार्गैर्गतिं मृगयतां पुंसां ध्यानस्य विषयभूतम् । बहुमतमत्यादरास्पदम्, बहूनां तत्त्वदृशां संमतमिति वा । पौंस्नं पौरुषं वपुर्दर्शयन्तम् । अन्येष्वसिद्धैरसाधारणैरौत्पत्तिकैर्नित्यैरणिमाद्यष्टैश्वर्यैर्युतम् । समगृणन् सम्यगस्तुवन् ।।४५।।

### भाव प्रकाशिका

जो लोग योगमार्ग के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं, उनके ध्यान का विषय बनने वाले, देखने वालों के नेत्रानन्द को प्रदान करने वाले अत्यन्त आदरणीय, अपने सुन्दर पौरुष रूप का दर्शन देने वाले तथा स्वाभाविक रूप से नित्य अष्ट सिद्धियों से सम्पन्न श्रीहरि का वे मुनिगण स्तुति करने लगे ।।४५।।

कुमारा ऊचुः

**योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः ।**
**यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्रानुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ।।४६।।**

**अन्वयः**— हे अनन्त यः त्वम् दुरात्मनां हृदि गतोऽपि अन्तर्हितः सः त्वम् अद्यैव नः नयनमूलराद्धः । भवदुद्भवेन पित्रा यर्ह्येव अनुवर्णितरहा कर्णविवरेण नः गुहां गतः ।।४६।।

### कुमार ने कहा

**अनुवाद**— हे अनन्त आप सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहकर भी दुष्ट हृदय वालों की दृष्टि से दूर ही रहते हैं । वही आप आज हमारी आँखों के सामने साक्षात् विराजमान हैं । जिस समय आपसे

उत्पन्न हमारे पिता ब्रह्माजी ने आपके रहस्य का हमें उपदेश दिया उसी समय आप मेरे कर्ण विवरों के माध्यम से हृदय में तो आ गये थे किन्तु आपका दर्शन आज ही हमें मिला है ।।४६।।

### भावार्थ दीपिका

नित्यं ब्रह्मरूपेण प्रकाशसे, न तच्चित्रम् । इदानीं तु परममङ्गलविशुद्धसत्त्वश्रीमूर्त्या प्रत्यक्षोऽसि । अहो भाग्यमस्माकमित्याहुः हे अनन्त, यस्त्वं हृद्गतोऽपि दुरात्मनामन्तर्हितो न स्फुरसि स नोऽस्माकमन्तर्हितो न भवसि । नयनमूलं त्वद्यैव राद्धः प्राप्तोऽसि। अन्तर्धानाभावे हेतुः-भवतः सकाशादुद्भवो यस्य तेनास्मत्पित्रा यर्हि यदैवानुवर्णितरहा उपदिष्टरहस्यस्तदैव नः कर्णमार्गेण गुहां बुद्धिं गतः प्राप्तोऽसीति ।।४६।।

### भाव प्रकाशिका

आप ही नित्य ही ब्रह्मरूप से प्रकाशित होते है, किन्तु यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इस समय परममङ्गल विशुद्धसत्त्व विग्रह के द्वारा आप हमारे नेत्रों के समक्ष हैं । अर्थात् आज आपके परम मङ्गलमय शुद्ध सत्त्वमय श्रीविग्रह का हमलोगों को दर्शन मिला है । यह हमलोगों का परम सौभाग्य है । इसी बात को इस श्लोक में कहा गया है । हे अनन्त यद्यपि आप सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं फिर भी आप दुष्टों को नहीं प्रकाशित होते हैं । किन्तु वही आप आज हमलोगों को प्रकाशित हो रहे हैं । श्रीभगवान् के प्रकाशित होने का कारण बतलाते हुए मुनियों ने कहा— आपसे ही उत्पन्न हमलोगों के पिता ब्रह्माजी ने जब हमलोगों को आपके रहस्य का उपदेश दिया उसी समय से आप हमलोगों के हृदय में आ गये थे; किन्तु आपका साक्षात् दर्शन तो आज ही मिला है ।।४६।।

**तं त्वां विदाम भगवन्परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन संप्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ।**
**यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ।।४७।।**

**अन्वयः**— हे भगवन् तं त्वाम् परमात्मतत्त्वं सम्प्रति सत्त्वेन एषाम् रतिं रचयन्तम्, यत् ते अनुतापविदितैः दृढभक्तियोगैः उद् ग्रन्थयः विरागाः मुनयः हृदि विदुः ।।४७।।

**अनुवाद**— हे भगवन् ! हम आपको साक्षात् परमात्म तत्त्व मानते हैं इस समय आप अपने विशुद्ध सत्त्वमय दिव्य विग्रह के द्वारा अपने भक्तों को आनन्दित कर रहे हैं । आपके इस सगुण और साकार मूर्ति को राग तथा अहङ्कार से रहित संसार से विरक्त मुनिजन आपकी ही कृपा से प्राप्त सुदृढ़ भक्तियोग के द्वारा अपने हृदय में प्राप्त करते हैं ।।४७।।

### भावार्थ दीपिका

ननु पित्रोपदिष्टं भवतामन्यादृशमदृश्यमात्मतत्त्वमहं त्वन्य एव स्यां दृश्यत्वात् । नैवम् । अस्मत्प्रत्यभिज्ञया भेदनिरासादित्याहुः-तमिति । हे भगवन्, आत्मतत्त्वमेव परं त्वां विदाम विद्मः प्रत्यभिजानीमः । ननु निरुपाधेरात्मतत्त्वस्य कथमीदृशमैश्वर्यं स्यादत आहुः । सत्त्वेन विशुद्धसत्त्वमूर्त्या । एषां भक्तानाम् । सम्यक् प्रतिक्षणं संप्रति रतिः प्रीतिस्तां रचयन्तम् । आत्मतत्त्वमेवाहुः। तेऽनुतापः कृपा तेन विदितैर्ज्ञातैर्दृढैर्भक्तियोगैः श्रवणादिभिर्मुनयो हृदि यद्विदुः । कीदृशाः । उद्ग्रन्थयः निरहंमाना अतएव विगतरागाः ।।४७।।

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आपके पिता के द्वारा उपदिष्ट अदृश्य आत्मतत्त्व दूसरे प्रकार का है और मैं तो उससे भिन्न ही हूँ । क्योंकि मैं तो दृश्य हूँ आपके पिता के द्वारा उपदिष्ट आत्मतत्त्व अदृश्य हैं । तो ऐसी बात नहीं है। क्यांकि हमलोगों की प्रत्यभिज्ञा के द्वारा दोनों रूपों में कोई भेद नहीं प्रतीत होता है । इसी अर्थ का प्रतिपादन मुनियों ने **तंत्वा० इत्यादि** इस श्लोक में किया है । मुनियों ने कहा हे भगवन् हमलोग आपको परमात्म तत्त्व

ही जानते हैं । यदि कहें कि आत्मतत्त्व निरुपाधिक निर्विशेष है उसका ऐसा ऐश्वर्य कैसे हो सकता है ? इस पर मुनियों ने कहा आप अपने विशुद्ध सत्त्व के द्वारा अपने भक्तों के हृदय में प्रेम उत्पन्न कर रहे हैं । अतएव आप आत्म तत्त्व ही हैं । आपकी ही कृपा से जिन अहङ्कार और मान रहित तथा संसार से विरक्त भक्तों को सुदृढ भक्तियोग प्राप्त हो जाता है, वे अपने भक्तियोग के द्वारा अपने हृदय में आपके इस रूप का साक्षात्कार करते हैं ।।४७।।

**नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किंत्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ।**
**येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ।।४८।।**

**अन्वयः**— अङ्ग ये भवदंघ्रिशरणाः कीर्तन्यतीर्थयशसः भवतः कथायाः कुशलाः रसज्ञाः ते आत्यन्तिकं प्रसादं आत्यन्तिकम् न विगणयन्ति किन्तु अन्यत् ते भ्रुवः उन्नयैः अर्पितभयम् ।।४८।।

**अनुवाद**— हे प्रभो जो भक्त एकमात्र आपके चरणों को ही अपना रक्षक मानते हैं तथा आपके मनोहर तथा पवित्र कथाओं के कुशल रसज्ञ हैं वे आपके द्वारा प्रदत्त मोक्ष नामक भी प्रसाद का बहुत अधिक महत्त्व नहीं देते हैं तो फिर दूसरे इन्द्र आदि के पद की कामना वे कैसे कर सकते हैं । जिस इन्द्र पद को आपकी थोड़ी से टेढी भौहों से ही भय उत्पन्न हो जाता है ।।४८।।

### भावार्थ दीपिका

स्वयमपि भक्तिं प्रार्थयितुं भक्तानां सुखातिशयमाहुः । आत्यन्तिकं मोक्षाख्यमपि तव प्रसादं ते न गणयन्ति नाद्रियन्ते। किंतु किमुतान्यदिन्द्रादिपदम् । ते भ्रुव उन्नयैरुज्जृम्भैरर्पितं निहितं भयं यस्मिंस्तत् । ते के । अङ्ग हे भगवन्, ये भवतः कथाया रसज्ञाः । कथंभूतस्य । रमणीयत्वेन पावनत्वेन च कीर्तन्यं कीर्तनार्हं तीर्थं पवित्रं च यशो यस्य ।।४८।।

### भाव प्रकाशिका

सनकादि मुनिजन स्वयं भी भक्ति प्राप्ति की प्रार्थना करने के लिए भक्तों के सुखातिशय का वर्णन करते हैं । वे कहते हैं कि हे प्रभो ! जो भक्तजन आपके चरणों को ही अपना एकमात्र रक्षक मानते हैं तथा आपकी मनोहर तथा पवित्र कथाओं के कुशल रसज्ञ है । वे आपके द्वारा दी जाने वाली मुक्ति को भी अधिक महत्त्व नहीं देते हैं । अतएव जिस इन्द्र इत्यादि के पद को केवल आपकी थोड़ी सी भौहों के टेढी कर देने मात्र से भय उत्पन्न हो जाता है, उस इन्द्र आदि के पद को वे क्यों प्राप्त करना चाहेंगे ?।।४८।।

**कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ।**
**वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ।।४९।।**

**अन्वयः**— नः चेतः अलिवत् यदि ते पदयोः रमेत नः वाचः च तुलसिवत् यदि ते अङ्घ्रिशोभाः यदि कर्णरन्ध्रः ते गुणगणैः पूर्येत तर्हि स्ववृजिनैः नः भवः निरयेषु कामं स्तात् ।।४९।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! यदि भौरे के समान हमारा मन आपके चरणों में ही रमण करता रहे, हमारी वाणी यदि तुलसी के समान आपके चरणों को ही सुशोभित करती रहे और हमारे कर्णरन्ध्र यदि आपके गुणगणों से ही परिपूर्ण होते रहें तो फिर अपने पापों के कारण हमारा जन्म यदि नारकीय योनियों में ही होता रहे तो भी कोई बात नहीं है।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

इदानीं स्वीयापराधं द्योतयन्तो भक्तिं प्रार्थयन्ते-काममिति । हे भगवन्नितः पूर्वमस्माकं वृजिनं नाभवत् । इदानीं सर्वाण्यपि जातानि । यतस्त्वद्भक्तौ शप्तौ । अतस्तैः स्ववृजिनैर्निरयेषु कामं नोऽस्माकं भवो जन्म स्तात्स्यात् । नु वितर्के । यदि तु नश्चेतस्ते पदयो रमेत अलिर्यथा कण्टकैराविध्यमानोऽपि पुष्पेषु रमते तद्वद्विघ्नानविगणय्य यदि रमेत । अङ्घ्रिभ्यां शोभा यासाम् । यथा च तुलसी गुणैरपेक्ष्येण त्वदङ्घ्रिसंबन्धेनैव शोभते तथा यदि नो वाचः शोभेरन् । यदि च ते गुणगणैरापूर्येत । कर्णरन्ध्र

इत्यल्पस्य पूरणमेव याचकरीत्या प्रार्थयन्ते । अयं तु गूढोऽभिप्रायः । कर्णरन्ध्रस्याकाशत्वाद्गुणगणानां चामूर्तत्वान्न कदाचित्पूरणम्। अतो नित्यमेव श्रवणं फलिष्यतीति ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

**कामम् इत्यादि** इस श्लोक में अपने अपराध को सूचित करते हुए सनकादि महर्षि श्रीभगवान् से भक्ति की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो ! इससे पहले हमलोगों ने कोई पाप नहीं किया है; किन्तु इस समय तो हमलोग सभी प्रकार के पापों को कर लिए हैं । क्योंकि हमलोगों ने आपके दोनों भक्तों को शाप दे दिया है। अतएव उन पापों के कारण हमलोगों का जन्म नरकों में हो जाय तो भी कोई बात नहीं है । किन्तु जिस तरह कांटों से विद्ध होकर भी भौंरा पुष्पों में ही रमण करता रहता है, उसी तरह से विघ्नों से बाधित होकर भी हमलोगों का मन आपके चरणों में रमण करता रहे, जिस तरह तुलसी श्रीभगवान के चरणों को ही सुशोभित करती हैं उसी तरह हमारी वाणी भी यदि आपके चरणों का ही गुणगान करती रहे और हमारे कानों के छिद्र यदि आपके कल्याणमय गुणगणों के श्रवण से परिपूर्ण होते रहें । कानों के छिद्र तो बहुत छोटे हैं; किन्तु उनकी पूर्ति वे उसी तरह से चाहते हैं जिस तरह छोटी सी भिक्षा से ही अपने अञ्जली की पूर्ति प्राप्त करना चाहता है । **अयं तु इत्यादि-** इस कथन का गूढ अभिप्राय है कि आकाश विशेष को ही कर्ण (श्रोत्रेन्द्रिय) कहते हैं और गुण समूह भी अमूर्त हैं । उनसे कभी भी उनकी पूर्ति नहीं हो सकती अत:एव हमलोग आपके गुण समूह का नित्य ही श्रवण करते रहें ।।४९।।

**प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ।**
**तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान्प्रतीतः ।।५०।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

**अन्वयः**— हे ईश ! हे पुरुहूत ! यदिदं रूपं प्रादुश्चकर्थ तेन न दृशः अलं निर्वृतिं अवापुः यो भगवान् अनात्मनां दुरुदयः प्रतीतः तस्मै भगवते इत् नमः विधेम ।।५०।।

**अनुवाद**— हे परम यशस्वी प्रभो आपने हमारे सामने यह जो रूप प्रकट किया है उससे हमारे नेत्रों को बहुत सुख मिला है । अजितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए आपका दर्शन मिलना कठिन है । आप साक्षात् भगवान् है हम आपको नमस्कार करते हैं ।।५०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।**

### भावार्थ दीपिका

अद्य वयं कृतार्थाः स्मेत्याहुः । हे पुरुहूत विपुलकीर्ते, यदिदं प्रादुश्चकर्थ प्रकटितवानसि । दृशो नेत्राणि अनात्मनामजितेन्द्रियाणां दुरुदयोऽप्रकटोऽपि इत् इत्थं यः प्रतीतोऽसि । तस्मै तुभ्यमिदं नमो विधेम ।।५०।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।**

### भाव प्रकाशिका

सनकादि मुनियों ने कहा कि हमलोग कृतार्थ हो गये हैं । हे परम यशस्वी प्रभो आपने यह जो रूप प्रकट किया है, इससे हमारे नेत्र अत्यन्त आनन्दित हुए हैं । आपके इस रूप का दर्शन अजितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए असम्भव है । ऐसे आपको हमलोग नमस्कार करते हैं ।।५०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के पन्द्रहवे अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१५।।**

# सोलहवाँ अध्याय

## जय विजय का वैकुण्ठ से पतन

ब्रह्मोवाच

**इति तद्गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् । प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥१॥**

**अन्वयः**— इति तद् गृणतां तेषां योगधर्मिणां मुनीनां प्रतिनन्द्य विकुण्ठनिलयो विभुः इदं जगाद ॥१॥

**ब्रह्माजी ने कहा**

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने कहा— हे देवगण ! जब योगनिष्ठ मुनियों ने इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति की उस समय वैकुण्ठ में निवास करने वाले श्रीहरि ने उनकी प्रशंसा की और यह कहा ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

**हरिणा सन्त्वितैर्विप्रैरनुतप्तैस्तु षोडशे । तयोरसुरभावेऽपि कृतोऽनुग्रह ईर्यते ॥१॥** इति गृणतां तेषां तद्वाक्यं प्रतिनन्द्येदं जगाद एतावित्येकादशभिः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीहरि से सान्त्वना प्राप्त प्रभाव सम्पन्न उन मुनियों द्वारा उन दोनों द्वारपालों पर किये गये अनुग्रह का वर्णन सोलहवें अध्याय में वर्णित है ॥१॥

इस तरह से स्तुति करने वाले उन सनकादि महर्षियों की प्रशंसा करके श्रीभगवान् ने जो कहा उसको **एतौ० इत्यादि** ग्यारह श्लोकों में कहा गया है ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

**एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च । कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रातामतिक्रमम् ॥२॥**

**अन्वयः**— एतौ जयविजयौ एव मह्यं पार्षदौ तौ माम् कदर्थीकृत्य बहु अतिक्रमम् अक्राताम् ॥२॥

**श्रीभगवान् ने कहा**

**अनुवाद**— ये जय वियज मेरे पार्षद हैं इन दोनों ने मेरी परवाह किए बिना ही आपलोगों का बहुत अधिक अपमान किया है ।

**भावार्थ दीपिका**

यद्यस्मान्मां कदर्थीकृत्य तुच्छीकृत्य बहु यथा भवति तथा अतिक्रमं वः कृतवन्तौ ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने मुनियों से कहा कि ये मेरे दोनों पार्षद मेरी परवाह किए बिना ही आपलोगों का बहुत अधिक अपमान किए हैं ॥२॥

**यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः । स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥३॥**

**अन्वयः**— हे मुनयः मामनुव्रतैः भवद्भि यस्तु एतयोः दण्डो धृतः स एव अस्माभिः अनुमतः देवहेलनात् ॥३॥

**अनुवाद**— हे मुनिगण ! आपलोग हमारे अनुगत भक्त है । इस तरह से मेरी अवज्ञा करने के कारण आपलोगों ने इन दोनों को जो दण्ड दिया है; वह हमको भी अभिमत है ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्मात्स एव दण्डोऽङ्गीकृतः ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

इन दोनों ने आपलोगों की अवमानना करके मेरी ही अवमानना की है, अतएव इन दोनों को जो दण्ड मैं देना चाहता था उसी दण्ड को आपलोगों ने दिया है ॥३॥

**तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे । तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुंभिरसत्कृताः ॥४॥**

**अन्वयः**— ब्रह्म ही मे परं दैवं यत् स्वपुम्भिः असत्कृताः तत् हि आत्मकृतं मन्ये तद्वः अद्य प्रसादयामि ॥४॥

**अनुवाद**— ब्राह्मण ही मेरे परम आराध्य हैं, मेरे अनुचरों ने जो आपलोगों का अपराध किया है, उसे मैं अपना ही अपराध मानता हूँ । इसीलिए मैं आपलोगों से क्षमा माँगता हूँ ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

हि यस्माद्ब्रह्म ब्राह्मणा एव मे परमं दैवं दैवतं तत्तस्मादद्य वः प्रसादयामि । तव कोऽपराध इति चेत्तत्राह- तद्धीति। मदीयैः पुंभिरसत्कृतास्तिरस्कृता इति यत्तदात्मकृतमेव मन्ये ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि ब्राह्मण ही मेरे परमाराध्य है । अतएव आज मैं आपलोगों से क्षमा माँगता हूँ । यदि आपलोग कहें कि आपका कौन सा अपराध है ? तो इसका उत्तर है कि मेरे अनुचरों ने जो आपलोगों का तिरस्कार किया है, उसे मैं अपना ही अपराध मानता हूँ ॥४॥

**यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि । सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हन्ति त्वचमिवामयः ॥५॥**

**अन्वयः**— भृत्ये आगसि कृते लोकः यत् नामानि गृह्णति, सः असाधुवादः तत्कीर्तिम् आमयः त्वचम् इव हन्ति॥५॥

**अनुवाद**— भृत्यों के अपराध करने पर संसार उनके स्वामी का ही नाम लेता है । वह अपयश उसकी कीर्ति को उसी तरह दूषित कर देता है जिस तरह श्वेतकुष्ठ त्वचा को दूषित कर देता है ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच ममैवेताभ्यामनिष्टं कृतमित्याह । यस्य स्वामिनो नामानि तस्य कीर्तिम् । आमयोऽत्र श्वेतकुण्ठम् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने कहा कि इन दोनों ने मेरा ही अनिष्ट किया है, क्योंकि जिसके अपराध करने पर अपराध करने वाले के जिस स्वामी का नाम होता है, उसकी कीर्ति दूषित होती है । यहाँ पर आमय शब्द से श्वेतकुष्ठ को कहा गया है ॥५॥

**यस्यामृतामलयशः श्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ।**
**सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥६॥**

**अन्वयः**— यस्य मे अमृतामलयशः श्रवणावगाहः आश्वपचात् जगत् सद्यः पुनाति सोऽहम् विकुण्ठः भवद्भ्यः उपलब्ध सुतीर्थकीर्तिः वः प्रतिकूलवृत्तिम् स्वबहुमपि छिन्द्याम् ॥६॥

**अनुवाद**— मेरे अमृत के समान निर्मल सुयश रूपी सरोवर में श्रवण के माध्यम से अवगहन (गोता) लगाने वाला चाण्डाल पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् शीघ्र ही पवित्र हो जाता है, इसीलिए मैं **विकुण्ठ** कहा जाता हूँ । वही मैं आपलोगों से प्राप्त कीर्ति वाला आपलोगों के विपरीत आचरण करने वाली यदि मेरी भुजा भी होगी तो उसे मैं काट डालूँगा ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

यस्य मेऽमृतरूपेऽमले यशसि श्रवणेनावगाहः प्रवेशः श्वपचमभिव्याप्य जगत्सद्यस्तत्क्षणमेव पुनाति सोऽहं विकुण्ठो भवद्भ्यो हेतुभूतेभ्य उपलब्धा प्राप्ता सु शोभना तीर्थभूता कीर्तिर्येन सः । स्वबाहुस्थानीयं लोकेश्वरमपि हन्यां, काऽन्यस्य कथेत्यर्थः । स्वगुणानुवर्णनं तु ब्राह्मणोत्कर्षार्थमेव ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

मेरे अमृत रूपी निर्मल यश में श्रवण के द्वारा अवगाहन करने वाला चाण्डाल पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् शीघ्र ही पवित्र हो जाता है । इसीलिए मैं विकुण्ठ कहलाता हूँ । यह कीर्ति मुझे आप जैसे मुनियों से ही प्राप्त हुयी है । मेरी यह कीर्ति सुन्दर तथा पवित्रकारिणी है । अतएव आपलोगों के विपरीत आचरण करने वाली यदि कोई मेरे बाहुस्थनीय लोकेश्वर ही क्यों न हो उसे मैं शीघ्र ही मार डालूँगा । अतएव दूसरों की कौन सी बात है? मेरे गुणों का वर्णन तो ब्राह्मणों के उत्कर्ष के ही लिए है ।।६।।

**यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ।**
**न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान्वहन्ति ।।७।।**

**अन्वयः**— यत् सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलम् प्रतिलब्ध शीलम् माम् विरक्तम् अपि श्रीः न विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थे इतरे नियमान् वहन्ति ।।७।।

**अनुवाद**— आपलोगों की ही सेवा करने के कारण मेरे चरण कमलों की पवित्र धूलि को ऐसी पवित्र कीर्ति प्राप्त हुई है कि वह शीघ्र ही सम्पूर्ण पापों को विनष्ट कर देती है । और मुझे इस तरह का स्वभाव मिला है कि मेरे उदासीन रहने पर श्रीलक्ष्मीजी मेरा परित्याग नहीं करती हैं । उन्हीं लक्ष्मीजी के कृपा कटाक्ष को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा आदि देवगण नियमों का पालन करते हैं ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

चरणपद्मयोः स्थितः पवित्रो रेणुर्यस्य । अतएव क्षतो निरस्तोऽखिलस्य लोकस्य मलो येन । यद्वा चरणपद्माल्लग्नः पवित्रो रणुर्यस्मिन्निति, क्षतोऽखिलो मलो यस्येति च विग्रहः । प्रतिलब्धं प्राप्तं शीलं येन । येषां सेवया एते गुणा मम, अतएव श्रीर्मा न विजहाति प्रेक्षालवार्थेऽवलोकनलेशार्थम् । इतरे ब्रह्मादयः । तेषां वः प्रतिकूलवृत्तिं छिन्द्यामिति पूर्वेणैव संबन्धः ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि यह आपलोगों की सेवा करने का ही फल है कि मेरे चरण कमलों में लगी हुयी पवित्र धूलि सम्पूर्ण लोकों के पापों को तत्काल विनष्ट कर देती है । अथवा आपलोगों के चरण कमलों में लगी हुयी पवित्र धूलि से मेरे सारे पाप विनष्ट हो गये हैं । और मुझे उसी के कारण ऐसा स्वभाव प्राप्त हो गया है। ऐसे आपलोगों की सेवा के द्वारा मुझको ये सारे गुण प्राप्त हुए है । इसीलिए श्रीदेवी मेरा कभी भी परित्याग नहीं करती हैं । उन्हीं श्रीदेवी की कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा इत्यादि देवता विभिन्न नियमों का पालन करते हैं । इस प्रकार के आपलोगों के प्रातिकूल आचरण करने वाली अपनी भुजाओं को भी मैं काट दे सकता हूँ दूसरों की क्या बात है ।।७।।

**नाहं तथाऽद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन ।**
**यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ।।८।।**

**अन्वयः**— मयि अवहितैः कर्मपाकैः तुष्टस्य यजमानस्य विताने श्चोतद्घृतप्लुतम् हुतभुङ्मुखेन अदन् अहं यजमान हविः तथा न अद्‌भि यद् ब्राह्मणस्य मुखतः अनुघासं चरतः अद्मि इति शेषः ।।८।।

**अनुवाद**— अपने सम्पूर्ण कर्मों के फल को समर्पित करके सन्तुष्ट रहने वाले निष्काम यजमान के यज्ञ में जिससे घी टपक रहा हो ऐसे पुरोडाश हविष्य इत्यादि को मैं अपने अग्नि रूपी मुख के द्वारा उस तरह से नही सन्तुष्ट होता हूँ जिस तरह धृतप्लुति से युक्त तरह-तरह के पकवानों का भोजन करने वाले ब्राह्मणों के प्रत्येक ग्रास से मैं सन्तुष्ट होता हूँ ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

किंच ब्राह्मणो ममैव श्रेष्ठं मुखम्, अतो युष्मदवज्ञया मन्मुखतिरस्कार एव कृत इत्याह–नाहमिति । विताने यज्ञे यजमानस्य हविश्चरुपुरोडाशादि हुतभुगग्निस्तेन मुखेन अदन्नश्नन्नपि तथा नाद्मि नाश्नामि । यद्यथा श्च्योतता क्षरता घृतेन प्लुतं विलोडितं पायसादि प्रतिग्रासं रसास्वादपूर्वकं चरतो भुञ्जानस्य ज्ञानिनो ब्राह्मणस्य मुखतोऽश्नामि । मयि समर्पितैः कर्मफलैस्तुष्टस्य निष्कामस्येत्यर्थः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

किञ्च ब्राह्मण मेरे श्रेष्ठ मुख हैं । अतएव आप सबों की अवमानना मेरे मुख का ही तिरस्कार है । इस बात को **नाहम्० इत्यादि** इस श्लोक में कहा गया है । यज्ञ में यजमानों के हविष्य पुरोडाश आदि को अपने अग्निमुख के द्वारा ग्रहण करके मैं उतना तृप्त नहीं होता हूँ जितना कि जिससे घी चू रहा हों, ऐसे घृतप्लुत पायस आदि को प्रत्येक ग्रास में रस आदि का अनुभव पूर्वक भोजन करने वाले ज्ञानी ब्राह्मण रूपी मुख से ग्रहण करके मैं तृप्त होता हूँ । ऐसे ब्राह्मण जो अपने सम्पूर्ण कर्मों के फल को मुझे समर्पित करके सन्तुष्ट हो जाते हैं । अर्थात् निष्काम ब्राह्मणों के ॥८॥

**येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोगमायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः ।**
**विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणाम्भः सद्यः पुनाति सहचन्द्रललामलोकान् ॥९॥**

**अन्वयः**— अखण्ड विकुण्ठयोगमाया विभूतिः अहं विभर्मि, येषां विमलाङ्घ्रिरजः अहंकिरीटैः विभर्मि, यदर्हणाम्भः सहचन्द्रललामलोकाम् सद्यः पुनाति तान् विप्रान् को न विषहेत ॥९॥

**अनुवाद**— सम्पूर्ण योगमाया का अखण्ड और असीम ऐश्वर्य मेरे अधीन है, वह मैं जिन ब्राह्मणों के चरण रज को अपने मुकुट पर धारण करता हूँ तथा मेरे चरणोदक का गङ्गा रूपी जल को और चन्द्रमा को अपने शिर पर धारण करने वाले शिवजी सहित सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करता है ऐसे ब्राह्मणों के कर्म को कौन नहीं सहन करेगा ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

किंच येषाममलमङ्घ्रिरजोऽहं किरीटैर्बिभर्मि तान्विप्रानपकुर्वतोऽपि कोऽन्यो न विषहेत । कथंभूतोऽहम् । अखण्डाऽनवच्छिन्ना विकुण्ठाऽप्रतिहता च योगमायाविलासभूता विभूतिर्यस्य सः । तथा यस्य ममार्हणाम्भः पादोदकं चन्द्रललामेनेश्वरेण सहितान्लोकान् सद्यः पुनाति । एवं परमेश्वरः परमपावनोऽपि सन्नहं विभर्मीति ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् कहते हैं कि जिन ब्राह्मणों के निर्मल चरणों की धूलि को मैं अपने मुकुट के ऊपर धारण करता हूँ, उन अपकार करने वाले भी ब्राह्मणों के कर्मो को कौन नहीं बर्दास्त करेगा ? भगवान् अपनी विशेषता बतलाते हुए कहते हैं कि अखण्ड अर्थात् देश की सीमा से रहित, विकुण्ठ अर्थात् काल की सीमा से रहित योग माया मेरी विलास अर्थात् विभूति है तथा मेरा चरणोदक (स्वरूप गङ्गा) चन्द्रमा की कला से सुशोभित श्रीशङ्करजी के साथ सभी लोकों को पवित्र बना देता है इस तरह का परमेश्वर अर्थात् अत्यन्त पवित्र होकर भी मैं ब्राह्मणों की चरण धूलि को अपने शिर पर धारण करता हूँ ॥९॥

**ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ।**
**द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥१०॥**

**अन्वयः**— द्विजवरान् दुहतीः अलब्धशरणानि, भूतानि मे तनूः अघक्षतदृशः मदीया भेदबुद्ध्या द्रक्ष्यन्ति तान् अधिदण्डनेतुःममरुषा अधिदण्डनेतुः अहिमन्यवः गृध्राः कुषन्ति ॥१०॥

**अनुवाद**— ब्राह्मण; दूध देने वाली गायें तथा अनाथ जीव ये तीनों मेरे शरीर हैं, पापों के कारण जिनकी विवेकदृष्टि विनष्ट हो गयी है, वे लोग इन सबों को मुझसे भिन्न समझते हैं उनको मेरे द्वारा नियुक्त यमराज के सर्प के समान क्रोधी गृध्र के समान दूत क्रोध करके नोचते हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

किंच मे तनूरधिष्ठानानि । कास्ताः । द्विजवरान्दुहतीर्दोग्ध्रीः गा इत्यर्थः । दुहितुरिति पाठेऽपि गा एव । विष्णुरूपात्सूर्या-दुत्पन्नत्वात् । **'सूर्यसुताश्च गावः'** इति वचनात् । अलब्धशरणानि रक्षकहीनानि भेदबुद्ध्या मदधिष्ठानं न भवन्तीति पृथग्दृष्ट्या ये द्रक्ष्यन्ति । अघेन क्षता नष्टा दृष्टिर्येषां तान् । मदीयोऽधिकृतो दण्डनेता यो यमस्तस्य गृध्राकारा ये दूताः । अहिवन्मन्युर्येषाम्। रुषा क्रोधेन कुषन्ति चञ्चुभिश्छिन्दन्ति ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् कहते हैं कि श्रेष्ठ ब्राह्मण, दूध देने वाली गायें और अनाथ प्राणी ये तीनों मेरे शरीर हैं गौएँ विष्णु स्वरूप सूर्य से उत्पन्न हैं कहा भी गया है **सूर्यसुताश्च गावः** अर्थात् गौए सूर्य की पुत्रियाँ है । इन तीनों को जिनकी अज्ञान के कारण बुद्धि मारी गयी है, वे लोग मुझसे भिन्न मानते हैं, इनको मेरा शरीर नहीं मानते हैं । उनकी आँखों को मेरे द्वारा नियुक्त यमराज के गृध्र के समान आकार वाले तथा सर्पों के समान क्रोधी दूत अपनी चोंचों से नोचते हैं ॥१०॥

**ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्तस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।**
**वाण्यानुरागकलयात्मजवद्गृणन्तः संबोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥११॥**

**अन्वयः**— क्षिपतो ब्राह्मणान् ये मयि धिया अर्चयन्तः, स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः तुष्यद्धृदः आत्मजवत् अनुरागकलया गृणन्तः अहमिव सम्बोधयन्ति तैः अहम् उपाहृतः ॥११॥

**अनुवाद**— ब्राह्मणों के कठोर वाणी बोलने पर भी जो लोग ब्राह्मणों में मेरी बुद्धि करके उनकी पूजा करते हैं एवं मुस्कान रूपी अमृत से मनोहर मुख कमल से प्रसन्नता पूर्वक उनकी उसी तरह से स्तुति करते हैं जिस तरह कोई पुत्र अपने नाराज पिता को उसी तरह से मनाता है जिस तरह से मैं आप लोगों को प्रसन्न कर रहा हूँ । वे लोग मुझको अपने वश में कर लेते हैं ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

एवंभूतास्तु मां वशीकुर्वन्तीत्याह । ये क्षिपतः परुषं भाषमाणानपि ब्राह्मणान्संबोधयन्ति । मयि या धीस्तया वासुदेवदृष्ट्याऽर्चयन्तः सन्तः तुष्यद्धृदः प्रीयमाणचित्ताः स्मितमेव सुधा तयोक्षितं सिक्तं पद्मतुल्यं वक्त्रं येषाम् । अनुरागकलया प्रेमशोभया वाचा गृणन्तः स्तुवन्तः । यथा कुपितमात्मजं स्निग्धः पिता सत्पुत्रो वा पितरम् । अहमिव भृगुं युष्मान्वा । तैरहमुपाहृतो वशीकृतः ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

निम्नांकित प्रकार के मनुष्य मुझको अपने वश में कर लेते हैं । जो लोग कठोर वाणी बोलने वाले भी ब्राह्मणों को मुझ वासुदेव के ही समान मानकर उनकी प्रसन्नता को अच्छी तरह से सम्बोधित करते हैं । और उन ब्राह्मणों को

पूर्वक पूजा करते हैं एवं मुसुकान रूपी अमृत से मनोहर बने अपने मुख कमल के द्वारा प्रेमभरी वाणी से उसी तरह उनकी स्तुति करते हैं जिस तरह कोई सत्पुत्र अपने क्रुद्ध पिता की स्तुति करता है । जैसे मैं महर्षि भृगु की तथा आपलोगों की स्तुति करता हूँ ऐसे लोग मुझको अपने वश में कर लेते हैं ॥११॥

**तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ।**
**भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥१२॥**

**अन्वयः**— तत् स्वभर्तुः मे अवसाय अलक्ष्मणो युष्मद् व्यतिक्रमगतिं प्रपद्य सद्यः मे भृतयोः विवासः अचिरतः भूयः मम अन्तिकम् इताम् तद् मे अनुग्रहः ॥१२॥

**अनुवाद**— अतएव इनके स्वामी मेरे अभिप्राय को नहीं समझने वाले इन दोनों ने आपलोगों का जो अपमान किया है उसके फल को प्राप्त करके इन दोनों का यहाँ से निर्वासन काल जल्दी ही समाप्त हो जाय और ये दोनों मेरे पास पुनः आ जायँ, यही आपलोगों का मुझपर अनुग्रह होगा ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

तत्तस्मान्मेऽवसायमभिप्रायमलक्षमाणावजानन्तौ युष्मदपराधोचितां गतिं सद्यः प्राप्य मत्समीपं इतां प्राप्नुताम् । तदिति स मेऽनुग्रहः । तमेवाह । यत् भृतयोर्विवासोऽचिरतः शीघ्रं कल्पतां संपद्यतां समाप्यतामिति ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

चूकि इन लोगों ने मेरे अभिप्राय का अपमान किया है, और आप लोगों का अपराध किया है । उसके फलस्वरूप अपराधानुरूप गति को शीघ्र प्राप्त करके ये दोनों मेरे पास पुनः आ जायँ यही आपलोगों की कृपा होगी । अतएव मेरे इन दोनों अनुचरों का निर्वासन काल शीघ्र ही समाप्त हो जाय ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

**अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम् । नास्वाद्य मन्युदष्टानां तेषामात्माप्यतृप्यत ॥१३॥**

**अन्वयः**— मन्यु दष्टानां तेषां अथ तस्य उशतीं ऋषिकुल्यां सरस्वतीम् देवी आस्वाद्य आत्मा अपि न अतृप्यत ॥१३॥

### ब्रह्माजी ने कहा

**अनुवाद**— यद्यपि सनकादिक मुनिगण क्रोध रूपी सर्प के द्वारा दंश लिए गये थे फिर भी श्रीभगवान् की मनोहर मन्त्र स्वरूपिणी वाणी को सुनने से उन लोगों का अन्तःकरण तृप्त नहीं हुआ ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

उशतीं कमनीयां प्रियां देवीं द्योतमानामृषिकुल्यां ऋषयो मन्त्रास्तत्प्रवाहरूपाम्, ऋषिकुलयोग्यामिति वा । सरस्वतीं वाचमास्वाद्य तन्माधुर्यमनुभूय सर्पप्रायेण मन्युना दष्टानामपि । क्रोधाविषयव्याप्तानां हि मनो रसानुभवाभावात्प्रियभाषणमपि न सहते, तेषां त्वात्मा मनो नातृप्यत अलमिति नामन्यत ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की मनोहर वाणी अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाली थी । वह मन्त्रों के प्रवाह स्वरूपिणी थी । अथवा ऋषियों के वंश के योग्य थी श्रीभगवान् की उस वाणी के माधुर्य का अनुभव करके सर्प के समान क्रोध के द्वारा दंश लिए गये लोगों का मन रस का अनुभव नहीं कर पाने के कारण उसको भी नहीं सह पाता है, किन्तु उन सनकादिक महर्षियों का मन उन बातों को सुनने से पूर्ण रूप से नहीं तृप्त हुआ । वे यह नहीं सोचे कि अब मन भर गया वे और श्रीभगवान् की बातों को सुनना चाहते थे ॥१३॥

**सतीं व्यादाय श्रृण्वन्तो लघ्वीं गुर्वर्थगह्वराम् । विगाह्यागाधगम्भीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ।।१४।।**

**अन्वयः**— सतीम् लघ्वीं, गुर्वर्थगह्वराम् विगाह्यगाध गम्भीराम् वाचम् व्यादाय श्रृण्वन्तः तच्चिकीर्षितम् न विदुः।।१४।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की वाणी अत्यन्त मनोहर थी, कम अक्षरों वाली अत्यधिक अर्थों से युक्त होने के कारण अत्यन्त गम्भीर थी । अर्थ गाम्भीर्य से परिपूर्ण उन बातों को अत्यन्त ध्यान पूर्वक सुनकर भी वे महर्षिगण इस बात को नहीं जान सके कि श्रीभगवान् क्या करना चाहते हैं ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

सतीं श्रेष्ठाम् । व्यादाय प्रसार्य । कर्णं दत्त्वेत्यर्थः । लघ्वीं मिताक्षराम् । गुरुभिरर्थैर्गह्वरां दुष्प्रवेशाम् । अगाधामभिप्रायतः। गम्भीरामर्थतः । विगाह्य विचार्यापि किमस्मानभिनन्दति निन्दति वाऽस्मत्कृतं दण्डं वा संकोचयतीति न विदुः ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् की वाणी की चार विशेषताएँ बतलायी गयीं है । सतीं, लघ्वीम्, गुर्वर्थगह्वराम् और अगाधगम्भीराम् । सती शब्द के द्वारा उसकी श्रेष्ठता को बतलाया गया है, लघ्वीम् कहकर उसको कम अक्षरों वाली बतलाया गया, अर्थ गह्वराम् कहकर उस वाणी को महान अर्थो से युक्त होने के कारण उसके अभिप्राय को समझपाना कठिन बतलाया गया है । अगाधगम्भीराम् कहकर यह बतलाया गया है कि श्रीभगवान् की उस वाणी के वाच्यार्थ को भी समझना कठिन था । इसीलिए सनकादि मुनिजन ध्यान पूर्वक श्रीभगवान् की उस वाणी को सुनकर भी यह नहीं समझ पाये कि श्रीभगवान् अपनी इस वाणी से हमलोगों का अभिनन्दन कर रहे हैं अथवा हमलोगों ने इस जय और विजय को दण्ड दिया है, उसको कम कर रहे हैं ।।१४।।

**ते योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम् । प्रोचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः ।।१५।।**

**अन्वयः**— योगमायया आरब्ध पारमेष्ठ्यमहोदयम् ज्ञात्वा ते विप्राः प्रकृष्टाः क्षुभितत्वचः प्राञ्जलयः प्रोचुः ।।१५।।

**अनुवाद**— योगमाया के प्रभाव से अपने परम ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले श्रीभगवान् की इस अद्भुत उदारता को जानकर उन सनकादि महर्षियों का सारा अङ्ग पुलकित हो गया, वे अत्यन्त प्रसन्न थे और हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहने लगे ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

ततश्चाभिनन्दतीति ज्ञात्वा ते प्रहृष्टाः सन्तः प्रोचुः । क्षुभितया रोमाञ्चिता त्वक् येषाम् । कूषितेति पाठे संजातरोमकूपोक्त्या रोमाञ्चितत्वमेकोक्तम् । आरब्ध आविष्कृतः पारमेष्ठ्यस्य परमैश्वर्यस्य महोदयः परमोत्कर्षो येन तम् । अधिराजत्वमाविष्कृत्य राजशिक्षार्थं ब्राह्मणान्मानयतीति ज्ञात्वेत्यर्थः ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् जब सनकादि महर्षियों ने यह जान लिया कि श्रीभगवान् हमलोगों का अभिनन्दन कर रहे हैं तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये, उन लोगों का शरीर रोमाञ्चित हो गया । **कुषितत्वचः** जहाँ पाठ है वहाँ भी रोमाञ्चित ही अर्थ होगा । और वे हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहने लगे । **योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम्** का अर्थ है कि योगमाया के द्वारा अपने परम ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले, अर्थात् राजाओं को शिक्षा देने के लिए श्रीभगवान् ब्राह्मणों को राजाओं का भी राजा बतलाकर ब्राह्मणों का सम्मान कर रहे हैं इस बात को जानकर वे मुनिजन अत्यन्त प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहे ।।१५।।

ऋषय ऊचुः

**न वयं भगवन्विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् । कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥१६॥**

**अन्वयः**— हे भगवन् अध्यक्षः कृतोमेऽनुग्रहश्चेति, यत् प्रभाषसे हे देव ! तव चिकीर्षितम् वयं न विद्मः ॥१६॥

**ऋषियों ने कहा**

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप तो सम्पूर्ण जगत् के स्वामी है, फिर भी आप यह कह रहे हैं कि आप लोगों ने मुझ पर कृपा की है, यह कहकर आप क्या कहना चाहते हैं, इस बात को हमलोग नहीं समझ पाते हैं ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

अध्यक्षः सर्वेश्वरः सन् **'तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये'** इत्युक्त्या मयाऽपराधः कृत इति, **'तथा तदनुग्रहो मे'** इत्यादिवचनेन ममानुग्रहश्चेति यत्प्रभाषसे तेन तव यच्चिकीर्षितं तन्न विद्मः ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

सनकादि महर्षियों ने कहा प्रभो आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, फिर भी आप यह जो कह रहे हैं कि तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये, अर्थात् इन दोनों के द्वारा किए गये अपराध को मैं अपना अपराध मानता हूँ । **तथा तदनुग्रहोमे'** अर्थात् आपलोगों ने हमारे ऊपर कृपा की है, इस तरह की जो बातें आप कह रहे हैं इन बातों का क्या अभिप्राय है इस बात को हमलोग नहीं जान पा रहे हैं ॥१६॥

**ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो । विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥**

**अन्वयः**— हे प्रभो ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते, विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप ब्राह्मणों के परम हितकारी हैं और ब्राह्मण आपके परमाराध्य हैं। वास्तविकता यही है कि ब्राह्मणों और देवताओं के आराध्य ब्रह्मादि देवताओं के लिए आप ही देवता भी हैं और आत्मा भी हैं ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

किलेति लोकशिक्षार्थं सूचितं परमार्थमाहुः-विप्राणामिति । देवदेवानां देवपूज्यानामपि भगवांस्त्वमात्मा च दैवतं च॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

किल इस अव्यय पद के द्वारा संसार के जीवों को शिक्षा देने के लिए सूचित परमार्थका निरूपण सनकादिक महर्षियों ने **विप्राणाम् इत्यादि** इस श्लोक के उत्तरार्द्ध से कहा है । वास्तविकता यही है कि आप (श्रीभगवान्) ही ब्राह्मणों के परं दैवत परमाध्य हैं । यह दूसरी बात है कि संसार को शिक्षा देने के लिए आप यह मानते हैं कि ब्राह्मण मेरे आराध्य है । ब्राह्मण तथा ब्रह्मा आदि देवताओं की आत्मा भी आप हैं और परमाराध्य भी हैं ॥१७॥

**त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव । धर्मस्य परमो गुह्यो निर्विकारो भवान्मतः ॥१८॥**

**अन्वयः**— सनतनः धर्मः त्वत्तः (समुत्पन्नः) तव तनुभिः रक्ष्यते च निर्विकारो भवान् धर्मस्य परमः गुह्यः मतः॥१८॥

**अनुवाद**— सनातन धर्म आप से ही उत्पन्न है और समय-समय पर अवतारों को धारण करके आप धर्म की रक्षा करते हैं । निर्विकार स्वरूप आप ही धर्म के परम रहस्य हैं यही शास्त्रों का मत हैं ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

लोकशिक्षार्थताप्रपञ्चः-त्वत्त इत्यष्टभिः । धर्मस्त्वत्त एव भवति रक्ष्यते च त्वदवतारैः । परमः फलरूपोऽत एव गुह्यो गोप्यः । नच स्वर्गादिफलवद्विकारी भवान् किंतु निर्विकारो मतः । अत एवंभूतस्य तवेदं लोकशिक्षामात्रमिति भावः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

**त्वत्तः इत्यादि** आठ श्लोकों द्वारा सनकादि महर्षि लोक शिक्षार्थ ही श्रीभगवान् की उपर्युक्त बातें ये है इस बात का विस्तार से वर्णन करते हैं। सनातन धर्म आप से ही उत्पन्न होता है और उसकी रक्षा भी आप ही अवतारों को ग्रहण करके करते हैं। धर्म के फलस्वरूप होने के कारण आप ही अत्यन्त गोपनीय हैं। जिस तरह धर्म के फलस्वरूप स्वर्ग आदि विकृत होते रहते हैं, किन्तु आप तो निर्विकार हैं। अतएव आप उन सबों से भिन्न ही हैं। इस प्रकार से आप जो हैं आपकी उपर्युक्त सारी बाते लोक शिक्षार्थ ही हैं ॥१८॥

**तरन्ति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात्। योगिनः स भवान्किंस्विदनुगृह्येत यत्परैः ॥१९॥**

**अन्वयः**— यदनुगहात् निवृत्ता योगिनः अञ्जसा मृत्युं तरन्ति, स भवान् परैः किंस्वित् अनुगृह्यते ॥१९॥

**अनुवाद**— आपकी ही कृपा को प्राप्त करके योगिजन संसार से विरक्त होकर असार एवं मृत्युरूप संसार सागर को पार कर जाते हैं। ऐसे आप हैं। दूसरा कौन है जो आप पर कृपा करे ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

विपरीतं चेदमित्याहुः-तरन्तीति। यस्यानुग्रहादेव निवृत्ता विरक्ता योगिनश्च सन्तो मृत्युं तरन्ति स भवान्परैरनुगृह्येतेति किंस्वित्। न किंचिदित्यर्थः ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि आपलोगों ने मुझ पर कृपा की है यह वास्तविकता के विपरीत है। यह तो आप संसारी जीवों को शिक्षा देने के लिए कहें हैं। आपकी ही कृपा प्राप्त करके संसार से उदासीन रहने वाले योगिजन बड़ी आसानी से मृत्यु रूप संसार सागर को पार करते हैं। इस तरह के आप है। ऐसे आप पर दूसरा कौन है जो कृपा करें। ऐसा दूसरा कोई भी नहीं प्रतीत होता है ॥१९॥

**यं वै विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः।**
**धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसीनवदामधाम्नो लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥२०॥**

**अन्वयः**— अन्यैः अर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसी नवदाम धाम्नः मधुपतेः लोकं कामयाना इव विभूतिः अनुबेलम् उपयाति ॥२०॥

**अनुवाद**— हे भगवन् दूसरे अर्थार्थी जन श्रीलक्ष्मीजी के चरणों की धूलि को अपने शिर पर धारण करते हैं। वे लक्ष्मीजी आपके चरणों की सेवा करती रहती हैं। लगता है कि आपके भाग्यवान भक्तजन आपके चरणों पर जो नवीन तुलसी की मालाओं को चढ़ाते हैं, उसको हीअपना धाम मानने वाले भ्रमर राज के समान वे भी आपके तुलसीमण्डित चरणों को ही अपना स्थान बनाना चाहती हैं ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं **'यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम्'** इत्यादि, तदत्यन्तमसंभावित-मित्याहुर्द्वाभ्याम्। यं वै विभूतिर्लक्ष्मीरनुवेलमवसरेऽवसरे उपयाति सेवते। धृतः पादरेणुर्यस्याः। धन्यैः सुकृतिभिरर्पितमङ्घ्रौ यत्तुलस्या नवं दाम माला तद्धाम स्थानं यस्य तस्य। मधुव्रतपतेर्भ्रमरमुख्यस्य लोकं स्थानमङ्घ्रिं कामयमानेव ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने पीछे के सातवें श्लोक में यह जो कहा कि **यत्सेवया चरणपद्मपवि० इत्यादि** अर्थात् जिन ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करने के ही कारण मेरे चरणरज को ऐसी पवित्रता प्राप्त हुयी है कि वह शीघ्र ही पापों को शान्त कर देता है और उसी के ही कारण मुझे ऐसा स्वभाव प्राप्त हुआ। वह अत्यन्त असंभव है इस बात

को सनकादि महर्षियों ने दो श्लोकों से कहा है। तथाहि जिन लक्ष्मीजी के चरणरज को अर्थार्थी पुरुष आपने शिर पर धारण करते हैं, वे लक्ष्मीजी आप श्रीभगवान् के चरणों की सेवा सदैव करती रहती हैं। लगता है कि आप के भाग्यवान् भक्तजन आपके चरणों पर जो नवीन तुलसी की माला चढ़ाते हैं उन पर गुञ्जार करने वाले भ्रमर राज के समान वे लक्ष्मीजी भी आपके चरणों को ही अपना आश्रय स्थान बनाना चाहती हैं ॥२०॥

**यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसङ्गः ।**
**स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजः पुनीतः श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— यः परमभागवतप्रसङ्ग त्वं विविक्तचरितैरनुवर्तमानां तां न अत्यद्रियत्। भगभाजनः त्वम् द्विजानुपथ पुण्यरजः श्रीवत्सलक्ष्म पुनीतः किमगाः ॥२१॥

**अनुवाद**— अपने पवित्र चरित्रों से आपकी सेवा करने वाली उन लक्ष्मीजी का भी आप अत्यधिक अनादर नहीं करते हैं, क्योंकि आप तो अपने भक्तों से ही अधिक प्रेम करते हैं। आप स्वयम् ही सम्पूर्ण भजनीय गुणों के आश्रय हैं। जहाँ-तहाँ विचरण करने वाले ब्राह्मणों के चरणों की धूलि अथवा श्रीवत्सचिह्न आपको पवित्र बना सकते हैं क्या ? उपर्युक्त सारी बातों को तो आपने लोकसंग्रह के ही लिए कहा है ॥२१॥

## भावार्थ दीपिका

विविक्तचरितैर्विशुद्धैः परिचरणैरनुवर्तमानां सेवमानामपि यो नात्याद्रियत् नातीवादृतवान्, स एवंभूतस्त्वम्। अयं भावः- इत्थं नामातिलम्पटतया लक्ष्मीस्त्वां सेवते। कथम्। एवं हि सा मेने। अयं हि सारग्राही मधुव्रतश्चञ्चलश्च स चाङ्घ्रिगतायां तुलस्यां सपरिवारो निश्चलः सन् रमते अतोऽङ्घ्रिलावण्यमत्यधिकं स्यात्ततोऽहं वक्षसि स्थितापि योगिजनादिबहुसेवक-संघर्षमङ्गीकृत्यापि तुलस्या सह सापत्न्येनापि चरणौ सेविष्यामीति तदेवमत्यौत्सुक्येनानुवर्तमानामपि तां त्वं नातीवाद्रियसे। यतः परमभागवतेष्वेव प्रकृष्टसङ्गवान्। स एवं परमसौभाग्यनिधिस्त्वम्। अतो ब्राह्मणप्रसादान्मां श्रीर्नविजहातीत्यलभ्यलाभत्वेन निर्देशो न समञ्जस इति। किंच स्वत एव त्वं भगभाजनो भजनीयानां गुणानामाश्रयः परमशुद्धश्च तं त्वां द्विजानामनुपथं पथि पथि लग्नं यत्पुण्यं रजस्तथा श्रीवत्सलक्ष्म्या च किं पुनीतः पवित्रीकुरुतः। किं किमर्थं च ते उभे अगाः प्राप्तो भूषणत्वेन स्वीकृतवानसि। अतो '**यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुम्**' इत्यादिवचनं लोकसंग्रहमात्रमित्यर्थः॥२१॥

## भाव प्रकाशिका

अपने पवित्र चरित्रों के द्वारा जो लक्ष्मी आपकी सेवा किया करती हैं उनका भी आप बहुत अधिक आदर नहीं करते हैं। कहने का अभिप्राय है कि लक्ष्मीजी तो आपकी सेवा अत्यन्त प्रेमपूर्वक करती हैं। क्योंकि वे मानती हैं कि यह भ्रमर सारग्राही है अर्थात् पुष्पों के पराग का ही ग्रहण करता है तथा चञ्चल भी है, किन्तु वह अपने परिवार के साथ श्रीभगवान् के चरणों पर चढी हुयी तुलसी में रमता है। इसका अर्थ है कि श्रीभगवान् के चरणों का सौन्दर्य अधिक हो सकता है। अतएव श्रीभगवान् के वक्षः स्थल में रहकर तथा योगिजन इत्यादि अनेक सेवक समूह को स्वीकार करके भी तुलसी के साथ ही यद्यपि तुलसी तो मेरी सौत है फिर भी उसके ही साथ मैं श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करूँगी। इस तरह से अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक आपकी सेवा करने वाली लक्ष्मीजी का आप अत्यधिक समादर नहीं करते हैं। इसका कारण है कि आप तो अपने भक्तों से ही अधिक प्रेम करते हैं। अतएव आप परम सौभाग्य सागर हैं। अतएव आपने यह जो कहा है कि ब्राह्मणों की कृपा से ही लक्ष्मी मेरा कभी परित्याग नहीं करती हैं, इस तरह से ब्राह्मणों की कृपा को अलभ्य लाभ रूप से आपका बतलाना समन्वित नहीं हो सकता है। किंच स्वभावतः ही आप भजनीय गुणों के आश्रय हैं तथा परम शुद्ध हैं। ऐसे आपको विभिन्न मार्गों पर सञ्चरण करने वाले ब्राह्मणों के चरणों की पवित्र धूलि तथा श्रीवत्सचिह्न क्या पवित्र करेंगे ? फिर भी आप इन दोनों ब्राह्मणों की चरण धूलि और श्रीवत्सचिह्न को भूषणरूप से क्यों धारण किए है फलतः आपका यह कथन कि **यत्सेवया चरणपद्म पवित्ररेणुम्** केवल संसारी जीवों को शिक्षा देने के लिए है ॥२१॥

**धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुग त्रिभिः स्वैः पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ।**
**नूनं भृतं तदभिधाति रजस्तमश्च सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥२२॥**

**अन्वयः**— हे त्रियुग धर्मस्य ते भगवतः त्रिभिः पद्भिः द्विजदेवतार्थम् नूनमिदं चराचरं भृतं वरदया सत्त्वेन तनुवा तदभिधात्ति रजस्तमश्च निरस्य ॥२२॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, आप सत्यादि तीनों युगों में प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहते हैं एवं ब्राह्मणों एवं देवताओं के लिए तप, शौच और दया अपने इन तीन चरणों से चराचर जगत् की रक्षा करते हैं । अब आप शुद्ध सत्त्व गुण सम्पन्न वरदान देने वाले शरीर से धर्म विरोधी हमारे रजोगुण एवं तमोगुण को विनष्ट कर दें ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

धर्ममूर्तेश्च तवेदमुचितमेवेत्याहुः-धर्मस्येति त्रिभिः । त्रिष्वेव युगेष्वाविर्भवतीति त्रियुगः । यद्वा त्रीणि युगानि युगलानि त्रियुगाः षड्गुणा भगशब्दवाच्याः सन्त्यस्येति त्रियुगः । हे त्रियुग, धर्मरूपस्य तव त्रिभिः पद्भिः स्वैरसाधारणैस्तपःशौचदयाभिः। सत्यस्य धर्मविप्लवेऽपि कलावनुवर्तमानत्वात्त्रिभिरित्युक्तम् । भृतं पालितम् । किं कृत्वा । नोऽस्माकं वरदया सत्त्वेन तनुवा तन्वा सत्त्वमूर्त्या तदभिघाति तेषां पादानामभिघातकं रजश्च तमश्च निरस्य निराकृत्य । द्विजानां देवतानां च प्रयोजनाय नूनं भृतम्। यद्वा हिलोपे रूपं निरस्येति । अस्माकं तन्निवर्तयेत्यर्थः ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

**धर्मस्य इत्यादि** तीन श्लोकों के द्वारा सनकादि महर्षि कहते हैं कि आप तो धर्ममूर्ति हैं अतएव आप को इस तरह से कहना उचित ही है । श्रीभगवान् त्रियुग हैं क्योंकि वे तीनों युगों में आविभूर्त रहते हैं अथवा श्रीभगवान् को त्रियुग इसलिए कहा जाता है कि उनमें तीन युगल अर्थात् भग शब्द से अभिहित किए जाने वाले ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, शक्ति, ज्ञान और बल विद्यमान हैं । सनकादि महर्षि कहते हैं हे त्रियुग ! आपके तीन तप, शौच और दया नामक असाधारण पैर हैं धर्म के कलियुग में उपद्रुत होने पर भी सत्य नामक चौथा धर्म का पैर बना रहता है, इसीलिए यहाँ धर्म के तीन ही पैर गिनाये गये हैं । आप अपने शुद्ध सत्त्व सम्पन्न वरदान देने वाले शरीर के द्वारा धर्म विरोधी हमारे रजोगुण एवं तमोगुण को दूर करके हमलोगों का पालन करें । आप अपने तीन चरणों से ही जगत् की रक्षा करते हैं । आप देवताओं और ब्राह्मणों का कल्याण करने के ही लिए उन चरणों को धारण किये है । अथवा हि का लोप करके निरस्य यह लोट् लकार के मध्यम पुरुष का रूप है । और उसका अर्थ है दूर करें ॥२२॥

**न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदि हात्मगोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ।**
**तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तव देव पन्था लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत्प्रमाणम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— द्विजोत्तमकुलम् आत्मगोपं यदि वृषः त्वं स्वर्हणेन ससूनृतेन न गोप्ता हे देव । तर्हि एव तव शिवः । पन्था नङ्क्ष्यति । लोको हि ऋषभस्य हि तत् प्रमाणम् अग्रहिष्यत् ॥२३॥

**अनुवाद**— हे देव ! यह ब्राह्मणों का उत्तम वंश आपके ही द्वारा रक्षा किए जाने योग्य है । यदि धर्मस्वरूप होकर भी आप इसकी रक्षा अपनी मधुरवाणी और पूजा इत्यादि के द्वारा न करें तो फिर आपके द्वारा निश्चित किया गया कल्याणमार्ग ही नष्ट हो जायेगा । क्योंकि लोक तो श्रेष्ठ पुरुषों के ही आचरण को प्रमाण रूप से मानता है ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मगोपं त्वयैव रक्षणीयं द्विजोत्तमानां कुलम् । यदि ह स्फुटं त्वं न गोप्ता न रक्षिता । तृन्प्रत्ययान्तत्वान्न षष्ठीप्रयोगः।

वृष: श्रेष्ठ: । हे देव, पन्था वेदमार्गो नङ्क्ष्यति नाशं यास्यति । ऋषभस्य श्रेष्ठस्य । हि यस्मात्तदनर्हणमसूनृतं चाग्रहीष्यत् । तदुक्तं गीतासु '**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन: । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।**' इति ।।२३।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणों के वंश की रक्षा आपको ही करनी चाहिए । यदि आप ब्राह्मणों के वंश की रक्षा नहीं करें तो हे धर्मस्वरूप भगवन् ! श्रेष्ठ वैदिक मार्ग नष्ट हो जायेगा । गोप्ता शब्द तृन् प्रत्ययान्त है इसीलिए यहां पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग नहीं हुआ है । आप यदि ब्राह्मण वंश की मधुरवाणी और पूजा के बिना ही अनुगृहीत न करें तो उससे कल्याणकारी वैदिक मार्ग, विनष्ट होगा ही । गीता में कहा भी गया है **यद्यद आचरति श्रेष्ठ: इत्यादि** श्रेष्ठ पुरुष जैसा भी आचरण करता है, दूसरे लोग भी उसी तरह का कार्य करते हैं । वह जिसको प्रमाणित करता है, उसी का लोग भी अनुसरण करते हैं । श्लोक का ऋषभ शब्द श्रेष्ठ का वाचक हैं ।।२३।।

**तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सो: क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धृतारे: ।**
**नैतावता त्र्यधिपतेर्बत विश्वभर्तुस्तेज: क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोद: ।।२४।।**

**अन्वय:**— निजशक्तिभि: उद्धतारे: सत्त्वनिधे: जनाय क्षेमं विधित्सो: तत् ते अनभिष्टमिव । वत त्र्यधिपते: विश्वभर्तु: अवनतस्य तव एतावता तेज: क्षतं न यत: स ते विनोद: ।।२४।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप सत्त्वगुण के आकर हैं, और सदा सभी जीवों का कल्याण करने में लगे रहते हैं । इसीलिए आप राजा इत्यादि के द्वारा धर्म के शत्रुओं का विनाश किया करते हैं । क्योंकि धर्म का नाश होना आपको अभिप्रेत नहीं है । यद्यपि आप त्रैलोक्य के स्वामी है तथा सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं । फिर भी आप ब्राह्मणों के प्रति इस तरह से नम्र बने रहते हैं यही कारण है कि आपका तेज कभी भी क्षीण नहीं होता है । यह आपकी लीलामात्र है ।।२४।।

**भावार्थ दीपिका**

नश्यत्विति चेत्तत्राहु: । तद्वेदमार्गनाशनम् । इति लोकोक्ति: । सत्त्वनिधित्वाज्जनाय क्षेमं शं विधातुमिच्छोरत एव निजशक्तिभी राजादिभिरुत्पाटितधर्मप्रतिपक्षस्य । अतस्तव ब्रह्मकुलेऽवनतिर्युक्तैव । ननु महतोऽन्येष्ववनतिस्तेजोहानिकरी तत्राहु:। एतावता तु धर्मत्राणप्रयोजनेनावनतस्य नमनं कृतवतस्तव तेज: प्रभावो न क्षतं न क्षीणम् । यत: स नमनादिस्ते विनोद: ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि वेदमार्ग विनष्ट हो जाय इससे क्या होगा ? तो इस पर मुनियों ने कहा कि आपको वेदमार्ग का नष्ट होना अभिप्रेत नहीं है । इव शब्द के द्वारा सूचित किया गया है कि यह सारा संसार जानता है। आप चूंकि सत्त्वगुण की खान हैं अतएव आप सम्पूर्ण जीवों का कल्याण करने के लिए उत्सुक बने रहते हैं इसीलिए आप राजा इत्यादि अपनी शक्तियों के द्वारा धर्म के शत्रुओं का नाश किया करते हैं । अतएव आपका ब्राह्मणवंश के प्रति नम्रतायुक्त रहना उचित ही है । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि महान् पुरुष का दूसरे लोगों के प्रति झुककर रहना उनके तेज को नष्ट कर देता है तो इस पर महर्षियों ने कहा धर्म की रक्षा करने के लिए आप ब्राह्मणों के प्रति नम्र बने रहते हैं इसीलिए आपका तेज कभी क्षीण नहीं होता है । क्योंकि वह ब्राह्मणों के प्रति नम्रता आपकी लीलामात्र है ।।२४।।

**यं वाऽनयोर्दममधीश भवान्विधत्ते वृत्तिं नु वा तदनु मन्महि निर्व्यलीकम् ।**
**अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्विषेण ।।२५।।**

**अन्वय:**— हे अधीश ! भवान् अनयो: यं वा दमम् विधत्ते वृत्तं नु वा तत् निर्व्यलीकम् अनुमन्महि, वा अस्मासु य: उचितो दण्ड: स ध्रियताम् ये वयम् अनागसौ किल्विषेण अयुंक्ष्महि ।।२५।।

**अनुवाद**— हे स्वामिन् ! आप इन दोनों को जैसा चाहें वैसा दण्ड दें अथवा इन दोनों की वृत्ति को बढ़ा

दें हमलोग दोनों में निष्कपट भाव से सहमत हैं । अथवा आप के इन दोनों निरपराध अनुचरों को हमलोगों ने जो शाप दे दिया है उसके कारण आप हमलोगों को ही यदि दण्ड तो उसे भी हम निष्कपट भाव से स्वीकार करते हैं ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**

शापाग्रहं परित्यज्य विज्ञापयन्ति । यं वाऽन्यं दण्डं विधास्यति भवान्, वृत्तिं नु अधिकजीविकां वा तत्सर्वमनुमन्यामहे। ये वयं निरपराधावेतौ किल्विषेण शापेनायुङ्क्ष्महि योजितवन्तः ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

सनकादि महर्षियों ने शाप के आग्रह का परित्याग करके श्रीभगवान् से प्रार्थना किया कि आप चाहें तो इन दोनों को और अधिक दण्ड दें अथवा इन दोनों को और अधिक जीविका बढ़ा दें हमलोग दोनों में शुद्ध हृदय से सहमत हैं । हमलोगों ने चूकि आपके इन दोनों निरपराध अनुचरों को शाप दिया है । अतएव आप चाहें तो उसके लिए हमें दण्डित करें, उसमें भी हमलोग सहमत हैं ।।२५।।

श्रीभगवानुवाच

**एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः संरम्भसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ।**
**भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ।।२६।।**

**अन्वयः**— एतौ सद्यः सुरतेरगतिं प्रतिद्य, संरम्भ समाध्यनुबद्धयोगौ भूयः आशु सकाशम् उपयास्यतः वः यः शापः स मयैव निमितः, तदवैत ।।२६।।

**श्रीभगवान ने कहा**

**अनुवाद**— अब ये दोनों शीघ्र ही दैत्य योनि को प्राप्त करेंगे, वहाँ भी क्रोधावेश के कारण बढ़ी हुयी एकाग्रता के कारण सुदृढ योग सम्पन्न ये दोनों शीघ्र ही मेरे पास आ जायेगें । आपलोगों ने जो शाप दिया है, वह मेरे द्वारा ही निर्मित है, इस बात को आप लोग जानें ।।२६।।

**भावार्थ दीपिका**

मत्कारितत्वाच्छापस्य युष्माकं नापराध इत्याश्वासयन्नाह । एतौ सद्य एवासुरयोनिं प्राप्य भूयोऽप्याशु मत्समीपमागमिष्यतः । संरम्भेण क्रोधावेशेन संभृतः संवृद्धो यः समाधिरेकाग्रता तेनानुबद्धो दृढीकृतो योगो ययोः । हे विप्राः, यो वः शापो युष्मत्कृतः शापस्तदिति स मयैव निमितो निर्मित इत्यवैत जानीत ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने कहा ऋषियों आपलोगों के द्वारा शाप मैंने दिलवाया है, उसमें आप लोगों का कोई भी अपराध नहीं है । इस तरह से आश्वासन प्रदान करते हुए श्रीभगवान् ने कहा ये दोनों शीघ्र ही आसुरयोनि को प्राप्त करके पुनः शीघ्र ही मेरे पास लौट आयेगें । उस योनि में क्रोधावेश के कारण समृद्ध एकाग्रता के कारण सुदृढयोग सम्पन्न ये दोनों मेरे पास आयेंगे । इस बात को आपलोग जान लें ।।२६।।

ब्रह्मोवाच

**अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् । वैकुण्ठं तदधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयंप्रभम्।।२७।।**
**भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च । प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तो वैष्णवीं श्रियम् ।।२८।।**

**अन्वयः**— अथ ते मुनयः नयनान्दभाजनम् वैकुण्ठं तदधिष्ठानं स्वयम्प्रभम् विकुण्ठं च दृष्ट्वा भगवन्तं परिक्रम्य, प्रणिपत्य, अनुमान्य च प्रमुदिताः वैष्णवीं श्रियम् शंसन्तः प्रतिजग्मुः ।।२७-२८।।

**ब्रह्माजी ने कहा**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उन मुनियोंने नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीभगवान् का और उनके निवास स्थान स्वयम्प्रकाश वैकुण्ठ धाम का दर्शन करके श्रीभगवान् की परिक्रमा करके उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और श्रीभगवान् की आज्ञा प्राप्त करके वे श्रीभगवान् के ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हुए वहाँ से लौट आये ॥२७-२८॥

**भावार्थ दीपिका**

नेत्रोत्सवजनकं विकुण्ठं हरिं तन्निवासं च वैकुण्ठं लोकम् । स्वयंप्रकाशं प्रकाशान्तरानपेक्षम् । सत्त्वपरिणामत्वात् । अनुमान्यानुज्ञाप्य । परिक्रम्य प्रदक्षिणीकृत्य । वैष्णवीं श्रियं वैकुण्ठे वर्णितम् ॥२७-२८॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के द्वारा आश्वस्त होने के पश्चात् मुनियों ने नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीहरि तथा उनके निवास स्थान स्वयंप्रकाश वैकुण्ठ का दर्शन किया तदनन्तर उन लोगों ने श्रीभगवान् की परिक्रमा करके उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उसके पश्चात् वे वैकुण्ठ वर्णन के प्रसङ्ग में जिसका वर्णन किया जा चुका है उस ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हुए वे लोग वैकुण्ठ से लौट गये ॥२७-२८॥

**भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् । ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥२९॥**

**अन्वयः**— भगवाननुगावाह, यातम् मा भैष्ट, शम् अस्तु ब्रह्मतेजः हन्तुं समर्थः अपि हन्तुं नेच्छे तु मे मतम् ॥२९॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् भगवान ने अपने अनुचरों से कहा तुम दोनों डरो मत तुम दोनों का कल्याण होगा । ब्राह्मणों के शाप को विनष्ट करने में मैं समर्थ हूँ फिर भी उसका विनाश इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि ऐसा मुझको अभिमत है ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

ममैव तु मतं संमतम् । इदमत्र तत्त्वम्-यद्यपि सनकादीनां क्रोधो न संभवति, न च भगवत्पार्षदयोर्ब्राह्मणप्रातिकूल्यम्, नच भगवतः स्वभक्तोपेक्षा, नच वैकुण्ठगतानां पुनर्जन्म, तथापि भगवतः सिसृक्षादिवत्कदाचिद्युयुत्सा समजनि तदाऽन्येषामल्पबलत्वात्स्वपार्षदानां तुलयबलत्वेऽपि प्रातिपक्ष्यानुपपत्तेरेतावेव ब्राह्मणनिवारणे प्रवर्त्य तेषु च क्रोधमुद्दीप्य तच्छापव्याजेन प्रतिपक्षौ विधाय युद्धकौतुकं संपादनीयमिति भगवतैव व्यवसितं, अतः सर्वं संगच्छते । तदिदमुक्तं शापो मयैव निमित इति, मा भैष्टमिति, अस्तु शमिति, हन्तुं नेच्छे मतं तु मे इत्यादि च ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने अपने अनुचरों से कहा कि यह शाप मुझे अभिमत है । उसका अभिप्राय है कि यद्यपि सनाकदियों को क्रोध नहीं होता है, और न तो श्रीभगवान के पार्षदों के वे ब्राह्मण कभी प्रतिकूल आचरण कर सकते हैं, भगवान् भी अपने भक्तों की कभी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं । वैकुण्ठ पहुँचे जीव का कभी जन्म भी नहीं होता है, फिर भी जिस तरह श्रीभगवान् की सृष्टि करने की इच्छा होती है, उसी तरह उनकी कभी युद्ध करने की भी इच्छा हो जाती है । **तदान्येषाम्० इत्यादि-** ऐसी स्थिति में दूसरे जीव तो अत्यन्त अल्प बल वाले हैं । उनके जो पार्षद हैं, उनका श्रीभगवान् के समान ही बल है । किन्तु वे भगवान् के प्रतिपक्षी नहीं हो सकते हैं । इसीलिए उन ब्राह्मणों को उन दोनों के द्वारा रोकवाकर तथा ब्राह्मणों में क्रोध को उत्पन्न करके ब्राह्मणों के शाप के व्याज से, उन दोनों को अपना प्रतिपक्षी बनाकर मुझे युद्ध के कुहूल को पूरा करना चाहिए, इसीलिए भगवान् ने ऐसा कराया । अतएव सबकुछ समन्वित हो गया । **तदिदमित्यादि-** इसीलिए श्रीभगवान् ने कहा कि मेरे द्वारा ही प्रेरित होकर आपलोगों ने शाप दिया है । अनुचरों को भगवान् ने कहा कि तुम दोनों डरो मत । तुम दोनों का कल्याण हो । मैं इस शाप को विनष्ट करना नहीं चाहता हूँ । यह ब्राह्मणों का शाप मुझे अभिमत है इत्यादि ॥२९॥

**एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा । पुराऽपवारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते ॥३०॥**

**अन्वयः**— पुरा मयि उपारते द्वारि विशन्ती यदा अपवारिता क्रुद्धया रमया एतत निर्दिष्टम् ॥३०॥

**अनुवाद**— एक बार जब मैं योगनिद्रा में स्थित हो गया था उस समय द्वार में प्रवेश करती हुयी लक्ष्मीजी को तुम दोनों ने रोक दिया था उसके कारण क्रुद्ध होकर उन्होंने इस शाप को पहले ही दे दिया था ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

यदा मयि उपारते योगनिद्रां गतवति सति द्वारि । विशन्ती युवाभ्यां पुराऽपवारिता तदा क्रुद्धया रमया एतद्यद्ब्राह्मणैरिदानीमुक्तं तत्पुरैव निर्दिष्टम् ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

जब मैं योगनिद्रा में चला गया था उस समय मेरे द्वार में प्रवेश करती हुयी लक्ष्मीजी को तुम दोनों ने रोक दिया था उसके कारण वे क्रुद्ध हो गयीं और उन्होंने इस शाप को उसी समय दे दिया था जिस शाप का आज ब्राह्मणों ने उच्चारण किया है ॥३०॥

**मयि संरम्भयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् । प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥३१॥**

**अन्वयः**— मयि संरम्भयोगेन ब्रह्महेलनम् निस्तीर्य अल्पीयसा कालेन पुनः मे निकाशं एष्यतम् ॥३१॥

**अनुवाद**— इस दैत्य योनि में मेरे प्रति क्रोध स्वरूपिणी वृत्ति होने के कारण तुमलोगों की जो एकाग्रता प्राप्त होगी, उसके कारण तुमलोग ब्राह्मण के तिरस्कारजन्य पाप से मुक्त हो जाओगे और उसके पश्चात् थोड़े ही दिन में मेरे पास लौट आओगे ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रत्येष्यतं प्रत्येष्यथः । निकाशं समीपम् ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रत्येषतम् पद का अर्थ है तुम दोनों आओगे । निकाशम् अर्थात् समीप । भगवान् ने कहा कि तुम दोनों शीघ्र ही मेरे समीप आ जाओगे ॥३१॥

**द्वास्थावादिश्य भगवान्विमानश्रेणिभूषणम् । सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥३२॥**

**अन्वयः**— द्वास्थौ आदिश्य भगवान् विमानश्रेणिभूषणम् सर्वातिशया लक्ष्म्या जुष्टम् स्वधिष्ण्यम् आविशत् ॥३२॥

**अनुवाद**— अपने दोनों द्वारपालों को इस प्रकार की आज्ञा देकर श्रीभगवान् विमान समूह से विभूषित तथा सर्वाधिक शोभा सम्पन्न अपने धाम में प्रवेश कर गये ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥३२॥

**तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः । हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥३३॥**

**अन्वयः**— तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद् हरिलोकतः ब्रह्मशापात् हतश्रियौ विगतविस्मयौ अभूताम् ॥३३॥

**अनुवाद**— वे देवश्रेष्ठ, जय विजय ब्रह्मशाप के कारण उस अलंघनीय श्रीभगवान् के लोक में ही श्रीहीन हो गये और उनका गर्व गलित हो गया ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

दुस्तराद्ब्रह्मशापात् हरिलोकतः पतन्ताविति शेषः। हरिलोकत एव हतश्रियावभूतामिति वा। विगतस्मयौ नष्टगर्वौ च॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

सनकादि ब्राह्मणों का उपर्युक्त शाप अनुलघनीय था। इसलिए दोनों जय और विजय का उस लोक से पतन हो गया अथवा वे दोनों श्रीहरि के लोक में ही निःश्रीक हो गये और उनका गर्व नष्ट हो गया ॥३३॥

**तदा विकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः । हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥३४॥**

**अन्वयः**— हे पुत्रकाः तदा तयोः विकुण्ठधिषणात् निपतमानयोः विमानाग्र्येषु महान् हाहाकारः आसीत् ॥३४॥

**अनुवाद**— हे देवताओं ! जिस समय वैकुण्ठ लोक से उन दोनों का पतन हो रहा था उस समय श्रेष्ठ विमान पर बैठे हुए वैकुण्ठ वासियों में महान् हाहाकार मच गया ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

विकुण्ठस्य धिषणात्स्थानात् । पुत्रका हे देवाः ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने यहाँ देवताओं को पुत्रक शब्द से सम्बोधित किया। उन्होंने कहा कि जब वे दोनों श्रीभगवान् के स्थान वैकुण्ठ लोक से पतित हो रहे थे, उस समय जो वैकुण्ठवासी श्रेष्ठ विमानों पर बैठकर देख रहे थे, उन लोगों में घोर हाहाकार मच गया ॥३४॥

**तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः । दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥३५॥**

**अन्वयः**— तौ एव हरेः पार्षदप्रवरौ अधुना उल्बणम् काश्यपं तेज दितेः जठर निर्विष्टौ ॥३५॥

**अनुवाद**— श्रीहरि के वे ही दोनों श्रेष्ठ पार्षद इस समय उग्र कश्यप महर्षि के तेज के माध्यम से दिति के गर्भ में प्रवेश कर गये हैं ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

काश्यपं तेजो वीर्यं प्राप्तौ ॥३५॥

### भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप के वीर्य में प्रवेश करके दिति के गर्भ में प्रवेश कर गये हैं ॥३५॥

**तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः । आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥३६॥**

**अन्वयः**— तयो यमयोः असुरयोः तेजसा अद्य वः तेजः आक्षिप्तं एतर्हि भगवान् तद् विधित्सति ॥३६॥

**अनुवाद**— उन दोनों जुड़वे असुरों के ही तेज से आप देवताओं का तेज फीका पड़ गया है। इस समय भगवान् ऐसा ही करना चाहते हैं ॥३६॥

### भावार्थ दीपिका

सहैव गर्भे प्रविष्टौ यमौ तयोस्तेजसा वस्तेज आक्षिप्तं तिरस्कृतम् । नचात्र प्रतिविधिः शक्यः । यत एतर्हीदानीं भगवानेव तदेवं विधातुमिच्छति ॥३६॥

### भाव प्रकाशिका

वे दोनों एक साथ चूकि दिति के गर्भ में प्रवेश किए हैं अतएव यम अर्थात् जुड़वे हैं। उन दोनों के तेज के कारण आपलोगों का तेज तिरस्कृत है। इसका कोई प्रतिकार भी नहीं है। क्योंकि इस समय भगवान् ही ऐसा करना चाहते हैं ॥३६॥

**विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्ययययोगमायः ।**
**क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥३७॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

**अन्वयः**— यः विश्वस्य आद्यः स्थितिलयोद्भवहेतुः, यः योगमायः योगेश्वरैरपि दुरत्ययः सः त्र्यधीशः भगवान् नः क्षेमं विधास्यति । इह अस्मदीयविमर्शेन कियान् अर्थः ॥३७॥

**अनुवाद**— जो श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय के प्रधान कारण है, जिनकी योगमाया को बड़े-बड़े योगीश्वर बड़ी कठिनाई से पार कर पाते है जो श्रीभगवान् सत्त्वादि तीनों गुणों के नियामक हैं, वे ही भगवान् हम सबों का कल्याण करेंगे । इस विषय में विचार करने से कोई भी लाभ नहीं होने वाला है ॥३७॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।**

**भावार्थ दीपिका**

तथापि कोऽप्युपायो विचार्यतामिति चेत्तत्राह-विश्वस्येति त्रयाणां गुणानामीशः स एव सत्त्वोत्कर्षकाले नः क्षेमं विधास्यति। विमृशेन विमर्शनेन ॥३७॥

**इति श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायांटीकायां षोडशोऽध्यायः ।।१६।।**

**भाव प्रकाशिका**

यदि देवता कहें कि फिर भी आप कोई उपाय सोचिए । इस पर ब्रह्माजी ने कहा श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, रक्षा और लय का कार्य करते हैं । वे तीनों गुणों के नियामक है जब सत्त्वगुण का उत्कर्ष (उद्रेक) होगा उस समय श्रीभगवान् ही हमलोगों का कल्याण करेंगे । इस विषय में विचार करना व्यर्थ हैं ॥३७॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१६।।**

# सत्रहवाँ अध्याय

## हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष का जन्म और हिरण्याक्ष की दिग्विजय यात्रा

मैत्रेय उवाच

**निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः । ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥१॥**

**अन्वयः**— ततः आत्मभुवागीतं कारणं निशम्य शङ्कयोज्झिताः सर्वे दिवौकसः त्रिदिवाय न्यवर्तन्त ॥१॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! उसके पश्चात् ब्रह्माजी द्वारा वर्णित अन्धकार के कारण को सुनकर शङ्का रहित सभी देवता स्वर्गलोक में लौट आये ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

ततः सप्तदशे जन्म तयोर्लोकभयंकरम् । हिरण्याक्षप्रभावश्च वर्ण्यते दिग्जयेऽद्भुतः । क्षेमं विधास्यतीति ब्रह्मवचनानन्तरं शङ्कया त्यक्ताः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उन दोनों का लोकों में भय उत्पन्न कर देने वाले जन्म का वर्णन तथा दिग्विजय के प्रसङ्ग में हिरण्याक्ष के प्रभाव का वर्णन इस सत्रहवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ जब देवताओं ने ब्रह्माजी के मुख से अन्धकार के कारण को सुन लिया तो उनकी शङ्का समाप्त हो गयी और वे स्वर्गलोक में लौट गये ॥१॥

**दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशाङ्किनी । पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥२॥**

**अन्वयः**— अपत्य परिशङ्किनी साध्वी दिति तु वर्षशते पूर्णे भर्तुः आदेशात् यमौ पुत्रौ प्रसुषुवे ॥२॥

**अनुवाद**— अपने पुत्रों के विषय में देवताओं द्वारा भय की शङ्का करने वाली दिति ने सौ वर्ष पूरा हो जाने पर अपने पति के आदेश को पाकर जुड़वे दो पुत्रों को जन्म दिया ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

भर्तुरादेशात् '**लोकान्सपालांस्त्रीश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः**' इति वाक्यात् । अपत्याभ्यां परिशङ्किनी देवोपद्रवं शङ्कमाना ॥२॥'

### भाव प्रकाशिका

पहले ही महर्षि कश्यपने कहा था कि हे चाण्डि वे दोनों सभी लोकों और लोकपालों को बार-बार रुलायेंगे। अपने पति के उसी आदेश के अनुसार सौ वर्ष पूर्ण हो जाने पर दिति ने अपने दोनों जुड़वे पुत्रों को उत्पन्न किया, क्योंकि दिति को भय था कि कहीं देवता हमारे दोनों पुत्रों को मार न दें ॥२॥

**उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः । दिविभुव्यन्तरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥३॥**

**अन्वयः**— तत्र जायमानयोः दिवि, भुवि, अन्तरिक्षे च लोकस्य उरु भयावहाः बहवः उत्पाताः निपेतुः ॥३॥

**अनुवाद**— उन दोनों के जन्म के समय स्वर्ग में, भूलोक में तथा अन्तरिक्ष लोक में अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाले बहुत से उत्पात हुए ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र तदा निपेतुरुद्बभूवुः । उरु भयमासमन्ताद्वहन्तीति ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

उन दोनों दैत्यों के जन्म के समय लोकों में अत्यधिक भय उत्पन्न कर देने वाले उत्पात हुए ॥३॥

**सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः । सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥४॥**

**अन्वयः**— सहाचलाः भुवः चेलुः सर्वाः दिशः प्रजज्वलुः, सोल्काः अशनयः च पेतुः आर्तिहेतवः केतः च पेतुः ॥४॥

**अनुवाद**— पर्वतों के साथ पृथिवी काँपने लगी, सभी दिशाओं में दाह होने लगा, स्थान-स्थान पर उल्कापात होने लगा, विजलियाँ गिरने लगीं और आकाश में धूमकेतु (पुच्छल तारे) दिखने लगे ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

अचलैः सहिता भुवः प्रदेशाः । केतवश्चोदयं चक्रुरिति शेषः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

उस समय पर्वतों के साथ पृथिवी के प्रदेश काँपने लगे, आकाश में पुच्छल तारे उदित हो गये ॥४॥

**ववौ वायुः सदुःस्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः । उन्मूलयन्नगपतीन्वात्यानीको रजोध्वजः ॥५॥**

**अन्वयः**— फूत्कारान् ईरयन् इव नगपतीन् उन्मूलयन् सुदुःस्पर्शः वात्यानीकः रजोध्वजः वायुः ववौ ॥५॥

**अनुवाद**— उस समय सांय-सांय करती हुयी, महावृक्षों का उखाड़ती हुयी, विकट और असह्य वायु चलने लगी । उस समय आँधी ही उसकी सेना थी और उड़ती हुयी धूल उसकी ध्वजा प्रतीत होती थी ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

फूत्कारानिति तीव्रवायुशब्दानुकरणम् । नगपतीन् महावृक्षान् । वात्या एवानीकं यस्य । रज एव ध्वजो यस्य ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

तेज चलने वाली वायु के शब्द का अनुकरण ही **फूत्कारान् ईरयन् इव** के द्वारा बतलाया गया है । अर्थात् उस समय साँय-साँय करती हुयी हवा चल रही थी । वह अपने वेग के द्वारा बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़ दे रही थी । उस हवा की वात्या (चक्रवात) ही सेना थी और उड़ती हुयी धूल ही उसकी ध्वजा थी ॥५॥

**उद्धसत्तडिदम्भोदघटया नष्टभागणे । व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥६॥**

**अन्वयः**— उद्धसत्तडि दम्भोदधटया नष्टभागणे, व्योम्नि प्रविष्टतमसा पदम् न व्यादृश्यते स्म ॥६॥

**अनुवाद**— जोर-जोर से चमकती हुयी बिजलीयों से युक्त मेघ की घटा के द्वारा सभी सूर्य चन्द्रमा तथा तारे आदि ग्रहों के लुप्त हो जाने पर आकाश में घोर अन्धकार छा गया तथा कहीं कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता था ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

उच्चैर्हसन्त्य इव तडितो येषु तेषामम्बुदानां घटया समूहेन नष्टो भागणः सूर्यादिप्रभासमूहो यस्मिन् । पदं स्थानं न व्यादृश्यते स्म ईषदपि नादृश्यत ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

जिनमें बिजलियाँ मानो जोर-जोर से चमककर, हँस रही थीं ऐसे मेघों के समूह से सभी प्रकाशक सूर्य चन्द्रमा तथा तारों आदि ग्रहों के लुप्त हो जाने पर आकाश में ऐसा अन्ध्कार छा गया कि कहीं कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा था ॥६॥

**चुक्रोश विमना वार्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः । सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपङ्कजाः ॥७॥**

**अन्वयः**— क्षुभितोदरः उदूर्मिः विमना वार्धिः चुकोश, शुष्कपङ्कजाः सोदपानश्च सरितः चुक्षुभुः ॥७॥

**अनुवाद**— जिसके भीतर विद्यमान जलचर व्याकुल हो गये थे ऊँची-ऊँची लहरियाँ उठ रही थीं और दुःखी मनुष्य के समान समुद्र चिल्ला रहा था, दूसरे जलाशय और नदियाँ क्षुब्ध हो गये और उनमें विद्यमान कमल सूख गये ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

वार्धिः समुद्रो विमना इव । उद्गता ऊर्मयो यस्मात् । क्षुभिता उदरस्था मकरादयो यस्मिन् । उदपानैर्वापीकूपादिभिः सहिताः । शुष्काणि पङ्कजानि यासु ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

वार्धि समुद्र को कहते हैं, उस समय समुद्र दुःखी मनुष्य के समान चिल्ला रहा था । उसमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं, उस समुद्र के भीतर रहने वाले घड़ियाल इत्यादि जीव भी क्षुब्ध हो गये थे, बावलियों तथा कूपों आदि के साथ नदियों में भी खलबली मची हुयी थी और उनमें विद्यमान कमल भी सूख गये ॥७॥

**मुहुः परिधयोऽभूवन् सराह्वोः शशिसूर्ययोः । निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥८॥**

**अन्वयः**— सराह्वो शशिसूर्ययोः मुहुः परिधयः अभूवन् निर्घाताः विवरेभ्यः रथनिर्ह्रादा प्रजज्ञिरे ॥८॥

**अनुवाद**— सूर्य और चन्द्रमा बार-बार ग्रस्त होने लगे और उनके चारों ओर बार-बार अमङ्गल सूचक मण्डल बैठने लगे, बिना मेघ के ही गरजने की ध्वनि होने लगी और गुफाओं में रथ की घरघराहट की ध्वनि होने लगी ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

परिधयः परिवेषाः । सराह्वो राहुग्रस्तयोः । निर्घाता निरभ्रगर्जितानि । रथनिर्ह्रादतुल्या ध्वनयः । विवरेभ्यो गिरिगुहाभ्यः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

अमङ्गल सूचक मण्डल को परिधि अर्थात् परिवेष कहते हैं । बार-बार सूर्य और चन्द्रमा में ग्रहण लगना और उनके चारो ओर मण्डल का बैठना ये दोनों अमङ्गल सूचक हैं । बिना मेघ के ही गरजने की ध्वनि के होने को निर्घात कहते हैं । गुफाओं से रथ की घरघराहट की ध्वनि का होना ये सबके सब उत्पात सूचक हैं ॥८॥

**अन्तर्ग्रामेषु मुखतो वमन्त्यो वह्निमुल्बणम् । सृगालोलूकटङ्कारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥९॥**

**अन्वयः**— अन्तर्ग्रामेषु मृगालोलूकटङ्कारै मुखतः उल्बणम् वह्निम् वमन्त्यः शिवाः अशिवं प्रणेदुः ॥९॥

**अनुवाद**— गावों के भीतर गीदड़ और उल्लुओं के भयानक ध्वनि के साथ ही अपने मुख से दहकती हुयी आग उगलती हुयी स्यारियाँ अमङ्गलमय शब्द करने लगीं ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

सृगालानामुलूकानां च टङ्कारैर्ध्वनिभिः सह । शिवाः सृगाल्यः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

उस समय गावों के भीतर ही गीदड़ों ओर उल्लुओं के शब्द के साथ अपने मुख से आग उगलती हुयी स्यारियाँ अत्यन्त अमङ्गलमय शब्द करने लगीं ॥९॥

**सङ्गीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् । व्यमुञ्चन्विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥१०॥**

**अन्वयः**— ततः ततः ग्रामसिंहाः शिरोधराम् उन्नमय्य संगीतवत् रोदनवत् विविधा वाचः व्यमुञ्चन् ॥१०॥

**अनुवाद**— स्थान-स्थान पर कुत्ते अपनी गरदन ऊपर की ओर उठाकर कभी गाने के समान और कभी रोने के समान अनेक प्रकार के शब्द करने लगे ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

ग्रामसिंहाः श्वानः ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

ग्रामसिंह कुत्तों को कहते हैं । उन दोनों के जन्म के समय जहाँ-तहाँ अपनी गरदन ऊपर की ओर उठाकर कभी गीत के समान तथा कभी रोने के समान अनेक प्रकार की ध्वनि करने लगे । कुत्तों का ऊपर की ओर मुख उठाकर इस तरह की ध्वनि करना भी अमङ्गलकारक होता है ॥१०॥

**खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नन्तो धरातलम् । खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन्वरूथशः ॥११॥**

**अन्वयः**— हे क्षत्तः वरुथशः खरश्च कर्कशैः खुरैः धरातलम् ध्नन्तः खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन् ॥११॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! झूंड के झूंड गधे भी अपने खुरों से पृथिवी को खोदते हुए तथा रेंकने का शब्द करते हुए मदमत्त होकर दौड़ने लगे ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

कर्कशैस्तीक्ष्णैः । हे क्षत्तः खार्कारो गर्दभजातिशब्दस्तस्मिन् रभसः संभ्रमा येषाम् । वरूथशः सङ्घशः ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

कर्कश अर्थात् तीक्ष्ण ध्वनि । जोर-जोर से गधों को रेकने की ध्वनि को खार्काररभस कहते हैं उस समय झूण्ड के झूण्ड अपने तीक्ष्ण और कठोर खुरों से पृथिवी को खनते हुए तथा जोर-जोर से रेंकते हुए गधे मदमत्त से होकर चारो ओर दौड़ने लगे ॥११॥

**रुदन्तो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन्खगाः । घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥१२॥**

**अन्वयः**— रासभत्रस्ताः खगाः रुदन्तः नीडाद् उदपतन् पशवः घोषे अरण्ये च शकृन्मूत्रम् अकुर्वत ॥१२॥

**अनुवाद**— गधों क रेंकने की ध्वनि से डरकर पक्षीगण डरकर रोते चिल्लाते हुए अपनी घोसलों से उड़ गये तथा गोशालाओं में बँधे हुए और वनों में चरते हुए गौ आदि पशुगण डरकर मलमूत्र त्याग करने लगे ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

रासभशब्दत्रस्ताः सर्वतः क्रोशन्तः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

गधों की लगातर जोर-जोर से रेंकने की ध्वनि को सुनकर पक्षीगण डर गये और आवाज करते हुए अपने घोसलों में से निकलकर उड़ने लगे । गौ बैल आदि पशु भी जो गोशालाओं में बंध थे और वनों में चर रहे थे वे सब भी डर गये और डर के कारण वे मलमूत्र का त्याग करने लगे ॥१२॥

**गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः । व्यरुदन्देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुर्विनाऽनिलम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— गावः अत्रसन् असृग्दोहाः तोयदास्पूयवर्षिणः, देवलिङ्गानि व्यरुदन् द्रुमाः अनिलम् विना पेतुः ॥१३॥

**अनुवाद**— गायें इतना डर गयीं कि दूहने पर उनके स्तनों से खून निकलने लगा, मेघों से पीब की वर्षा होने लगी । देवताओं की मूर्तियों की आँखों से आँसू बहने लगा, विना हवा के ही वृक्ष गिर पड़े ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

गावोऽत्रसन् त्रस्ताः । असृग्दोहाश्च बभूवुः । देवलिङ्गानि व्यरुदन्, प्रतिमानामश्रुस्राव आसीदित्यर्थः ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

गधों के उन भयङ्कर रेंकने की ध्वनि को सुनकर गायें इतना डर गयीं कि उनके स्तनों से दूध के बदले खून निकलने लगा । मेधों से पीब की वर्षा होने लगी । देवमूर्तियों की आँखों से आंसू प्रवाहित होने लगा और बिना हवा के ही पेड़ गिरने लगे ॥१३॥

**ग्रहान् पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः । अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— पुण्यतमान् ग्रहान् भगणान् अपि च अन्ये दीपिताः वक्रगत्या अतिचेरुः परस्परम् युयुधुश्च ॥१४॥

**अनुवाद**— चन्द्रमा, बृहस्पति आदि सौम्य ग्रहों तथा दूसरे नक्षत्रों को शनि, राहु आदि क्रूर ग्रह वक्रगति से लाँघकर परस्पर में युद्ध करने लगे ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

पुण्यतमान् गुरुबुधादीन्भगणान् । बहूनि नक्षत्राणि चान्ये क्रूरग्रहा मङ्गलादयोऽतिचेरुरतिक्रम्य जग्मुर्वक्रगत्या प्रत्यावृत्य ययुधुश्च ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

अत्यन्त सौम्य बुध, बृहस्पति आदि ग्रहों तथा दूसरे नक्षत्रों को मङ्गल आदि अत्यन्त क्रूर ग्रह लाँधकर आगे निकल गये और पुनः लौटकर युद्ध करने लगे ॥१४॥

**दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पातानतत्तत्त्वविदः प्रजाः । ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसंप्लवम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— अन्यांश्च महोत्पातान् दृष्ट्वा अतत् तत्त्वविदः प्रजाः ब्रह्मपुत्रान् विना भीता विश्वसंप्लवम् मेनिरे ॥१५॥

**अनुवाद**— दूसरे भी महान् उत्पातों को देखकर सनकादिक महर्षियों को छोड़कर सारी प्रजायें भयभीत होकर सोचने लगीं कि अब संसार का प्रलय होने वाला है, क्योंकि उन उत्पातों का कारण उन सबों को ज्ञात नहीं था ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

ब्रह्मपुत्रानृते बिना, तेषां स्वशापादिज्ञानात् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

सनकादिक महर्षियों को भय इसलिए नहीं हुआ कि वे लोग तो जानते ही थे कि उनलोगों के शाप के ही कारण जय और विजय के दैत्ययोनि में उत्पन्न होने के कारण ये सारे उत्पात हो रहे हैं ॥१५॥

**तावादिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ । ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥१६॥**

**अन्वयः**— तौ आदिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ अश्मसारेण कायेन ववृधाते ॥१५॥

**अनुवाद**— वे दोनों आदिदैत्य जन्म के पश्चात् शीघ्र ही अपने पौरुष को अभिव्यक्त करते हुए पत्थर के समान कठोर शरीर के द्वारा बढ़कर बड़े हो गये ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

व्यज्यमानात्मपौरुषं पूर्वसिद्धं स्वपौरुषं ययोः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

उन दोनों का पूर्व पराक्रम भी अभिव्यक्त हो गया । उन दोनों का शरीर पत्थर के समान कठोर था और वे दोनों शीघ्र ही बढ़कर बड़े हो गये ॥१६॥

**दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ ।**
**गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे कट्या सुकाञ्च्याऽर्कमतीत्य तस्थतुः ॥१७॥**

**अन्वयः**— हेमकिरीट कोटिभिः दिविस्पृशौ, निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गभुजौ पदे-पदे चरणै गांकम्पयन्तौ कट्याः सुकाञ्च्यार्कमतीत्य तस्थतुः ॥१७॥

**अनुवाद**— वे दोनों इतने लम्बे थे कि उनके किरीट का अग्रभाग स्वर्ग को छू लेता था, उनके विशाल शरीर से दिशायें ढँक जाती थीं, उन दोनों की भुजाओं में बाजूबन्द चमकता था, वे जब चलते थे तो उनके पग-पग पर पृथिवी काँपने लगती थी, उनके कमर में लगी हुयी सुन्दर चमकती हुयी करधनी के समक्ष सूर्य का तेज फीका पड़ जाता था ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

निरुद्धा व्याप्ताः काष्ठा दिशो याभ्याम् । स्फुरन्त्यङ्गदानि येषु ते भुजा ययोः । अङ्गदेति टाबन्तत्वमार्षम् । शोभना काञ्ची यस्यां तया कट्या ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

उन दोनों के विशाल शरीर से सारी दिशाएँ भर जाती थीं उन दोनों की भुजाओं में बाजूबन्द चमकते रहते थे । अङ्गदा में टाप प्रत्यष आर्ष है । उन दोनों के कमर में सुन्दर करधनी चमकती थी उसके समक्ष सूर्य का भी प्रकाश फीका पड़ जाता था ।।१७।।

**प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक्स्वदेहाद्यमयोरजायत ।**
**तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ।।१८।।**

अन्वयः— प्रजापतिः तयोः यमयोः नाम अकर्षीत् यः स्वदेहात् प्राक् अजायत तं वै प्रजाः हिरण्यकशिपुं विदुः यं सा अग्रतः असूत तं प्रजाः हिरण्याक्षम् विदुः ।।१८।।

**अनुवाद**— वे दोनों जुड़वे थे । उन दोनों का प्रजापति कश्यप ने नामकरण किया । जो उनके वीर्य से दिति के गर्भ में पहले स्थापित हुआ उसको प्रजाएँ हिरण्यकशिपु के नाम से जानती थीं और जिसको दिति ने पहले जन्म दिया उसको प्रजा हिरण्याक्ष के नाम जानी ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

यमयोर्मध्ये यः स्वदेहात्प्रथममजायत तं प्रजाः हिरण्यकशिपुं विदुः । सा दितिः प्रथमं यमसूत तं हिरण्याक्षं यथा विदुस्तथा नाम कृतवानित्यर्थः । अयं भावः- यदा हि गर्भाधानसमये योनिपुष्पं विशद्वीर्यं द्विधा विभक्तं आदिपश्चाद्भावेन प्रविशति तदा यमौ भवतस्तयोश्च पितृतः प्रवेशक्रमविपर्ययेण मातृतः प्रसूतिः । '**यदा विशेदिद्विधा भूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत्। द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेशविपर्ययात् ।**' इति पिण्डसिद्धिस्मरणात् । अतः स्वदेहात्पूर्वं यो जातस्तस्य हिरण्यकशिपुरिति दितिः प्रथमं यमसूत तस्य हिरण्याक्ष इति नाम कृतवानिति ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

उन दोनों जुड़वों में से महर्षि कश्यप के शरीर से जो पहले उत्पन्न हुआ उसको प्रजाओं ने हिरण्यकशिपु के नाम से जाना और दिति ने जिसको पहले जन्म दिया उसका नाम उन्होंने हिरण्याक्ष रखा और प्रजाओं ने उसको इसी नाम से जाना । **अयं भावः** कहने का अभिप्राय है कि जब गर्भाधान के समय योनि रूपी पुष्प में वीर्य दो भागों में विभक्त होकर प्रवेश करता है तब जुड़वे बच्चे होते हैं । पिता से निकलकर प्रवेश करने का जो क्रम होता है उसके उलटा माता के जन्म देने का क्रम होता है । पिण्डसिद्धि नामक ग्रन्थ में कहा गया है- **यदाविशेत इत्यादि** जब निकलने वाला वीर्य दो भागों में विभक्त होकर योनि रूपी पुष्प में प्रवेश करता है, उस समय प्रसूति के प्रकार के विपरीत दो गर्भ हो जाते हैं । **अतः स्वदेहात्० इत्यादि-** इसीलिए कहा गया है कि जो अपने शरीर से पहले उत्पन्न हुआ उसका नाम प्रजापति ने हिरण्यकशिपु रखा और जिसका दिति ने पहले पैदा किया उसका नाम हिरण्याक्ष रखा ।।१८।।

**चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च । वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ।।१९।।**

**अन्वयः**— हिरण्यकशिपुः ब्रह्मवरेण अकुतोमृत्युः उद्धतः दोर्भ्यां सपालान् त्रीन् लोकान् वशे चक्रे ।।१९।।

**अनुवाद**— हिरण्यकशिपु ब्रह्माजी के वरदान के कारण मृत्यु के भय से मुक्त होकर अत्यन्त उद्धत हो गया था, उसने अपनी भुजाओं के बल पर लोकपालों सहित तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया था ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

दोर्भ्यामुद्धतो ब्रह्मवरेणाकुतोमृत्युः ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

हिरण्यकशिपु अपनी भुजाओं के बल पर उद्धत हो गया और ब्रह्माजी के वरदान के कारण मृत्यु के भय से मुक्त हो गया था ॥१९॥

**हिरण्याक्षाऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् । गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन्रणम् ॥२०॥**

**अन्वयः**— तस्यप्रियः अनुजः हिरण्याक्षः अन्वहम् प्रियकृत् रणम् मृगयन् युयुत्सुः गदापाणिः दिवं यातः ॥२०॥

**अनुवाद**— उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष, सदैव अपने बड़े भाई को प्रिय लगने वाला काम करता था। एक बार वह गदा हाथ में लेकर युद्ध करने की इच्छा से स्वर्गलोक में गया ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

रणं युद्धम् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

हिरण्याक्ष युद्ध करना चाहता है अतएव युद्ध करने के लिए वह स्वर्ग में गया ॥२०॥

**तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्काञ्चननूपुरम् । वैजयन्त्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— दुःसहजवं, रणत्काञ्चननूपुरम्, वैजयन्त्या स्रजा जुष्टं अंसन्यस्तमहागदम् तं वीक्ष्य ॥२१॥

**अनुवाद**— असह्य वेग सम्पन्न, तथा जिसके पैरों में सुवर्ण का नूपुर बज रहा था, और गले में विजय सूचक माला पड़ी थी तथा कन्धे पर विशाल गदा धारण किये हुए उस हिरण्याक्ष को देखकर ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

दुःसहो जवो वेगो यस्य । रणन्तौ काञ्चनमयौ नुपूरौ यस्य । अंसेन्यस्ता महती गदा येन ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

हिरण्याक्ष का वेग असह्य था, उसके पैरों में सुवर्ण के नूपुर झनकार कर रहे थे तथा वह अपने कन्धे पर विशाल गदा को धारण किए हुए था, इस प्रकार के हिरण्याक्ष को देवताओं ने देखा ॥२१॥

**मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् । भीता निलिल्यिरे देवास्ताक्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥२२॥**

**अन्वयः**— मनोवीर्य वरोत्सिक्तम् असृणि, अकुतोभयम् (वीक्ष्य) भीताः देवाः तार्क्ष्यत्रस्ता अहय इव निलिल्यिरे॥२२॥

**अनुवाद**— मनोबल, शारीरिक बल और ब्रह्माजी के वरदान से मदमत्त बने हुए निरङ्कुश तथा निर्भय हिरण्याक्ष को देखकर देवतागण भयभीत हो गये और डर के मारे जहाँ-तहाँ उसी तरह छिप गये जिस तरह गरुड़ को देखकर सर्प छिप जाते हैं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

मनसा शौर्येण वीर्येण बलेन वरेण चोत्सिक्तं गर्वितम् । असृण्यं निरङ्कुशम् । निलिल्यिरे लीना बभूवुः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

शौर्य, वीर्य और ब्रह्माजी के वरदान के बल से हिरण्याक्ष मदमत्त और निरङ्कुश हो गया था। वह बिल्कुल निर्भय था। उसको देखकर सभी देवता भयभीत हो गये, और डर कर जहाँ तहाँ छिप गये ॥२२॥

**स वै तिरोहितान्दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् । सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद्भृशम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— सः दैत्याराट् स्वेन महसा सेन्द्रान् देवगणान् क्षीवान् अपश्यन् भृशम् व्यनदत् ॥२३॥

**अनुवाद**— वह दैत्यराज हिरण्याक्ष अपने तेज के द्वारा इन्द्र इत्यादि बड़े गर्वीले देवताओं को अपने सामने नहीं देखकर भयङ्कर गर्जना किया ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वेन महसा तेजसा तिरोहितान्स दृष्ट्वा ज्ञात्वा क्षीबान्मत्तानपश्यन्सन् । 'क्लीबान्' इति पाठे पौरुषहीनान् ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

हिरण्याक्ष ने देखा कि उसके तेज के कारण भयभीत होकर बड़े-बड़े गर्वीले देवता कहीं छिप गये हैं उन सबों को हिरण्याक्ष ने अपने सामने नहीं देखा तो उसने घोर गर्जना की । जहाँ क्लीबान् पाठ है वहाँ पौरुषहीन अर्थ होगा ॥२३॥

**ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन् गम्भीरभीमनिःस्वनम् । विजगाहे महासत्त्वो वार्धि मत्त इव द्विपः ॥२४॥**

**अन्वयः**— ततः निवृत्त क्रीडिष्यन् गम्भीरं भीमनिःस्वनम् वार्धि महासत्त्वः मत्तः द्विप इव विजगाहे ॥२४॥

**अनुवाद**— वहाँ से लौटकर वह क्रीडा करने की इच्छा से गहरे और बड़ी लहरों के कारण गरजने वाले समुद्र में मदमत्त हाथी के समान प्रवेश कर गया ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥२४॥

**तस्मिन्प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ।**
**अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥२५॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका, यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिताः दूरतरं प्रदुद्रुवः ॥२५॥

**अनुवाद**— उसके समुद्र में प्रवेश करते ही वरुण के सैनिक और जलचर जीव किं कर्तव्य विमूढ और भी भयभीत हो गये । उसके द्वारा नहीं भी मारे जाने पर वे उसके तेज से अभिभूत होकर उससे दूर चले गयें॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

सन्ना अवसन्ना धीर्येषाम् । वर्चसा तेजसा प्रधर्षिता अभिभूता सन्तः ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

समुद्र में प्रवेश किए हुए हिरण्याक्ष को देखकर वरुण के सैनिक तथा सभी जलचर किं कर्तव्य विमूढ हो गये । यद्यपि हिरण्याक्ष ने किसी के साथ छेड़-छाड़ भी नहीं किया किन्तु वे सब उसके तेज से अभिभूत हो गये और उससे दूर चले गये ॥२५॥

**स वर्षपूगानुदधौ महाबलश्चरन्महोर्मीन् श्वसनेरितान्मुहुः ।**
**मौर्व्याऽभिजघ्ने गदया विभावरीमासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥२६॥**

**अन्वयः**— हे तात ! सः महाबलः वर्षपूगान् उदधौ चरन् श्वसनेरितान् महोर्मीन मुहुः मौर्व्या गदया अभिजघ्ने प्रचेतसः पुरीं विभावरीम् आसेदिवान् ॥२६॥

**अनुवाद**— महाबलवान् वह हिरण्याक्ष अनेक वर्षो तक उस समुद्र में सञ्चरण करता हुआ, अपने किसी प्रतिपक्षी को न पाकर वायु के द्वारा प्रेरित समुद्र की लहरियो पर बार-बार अपनी लौहमयी गदा से प्रहार करता रहा, उसके पश्चात् वह घूमता हुआ वरुण की राजधानी विभावरी पुरी में पहुँच गया ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

महोर्मीनभिजघ्ने। मौर्व्या मारयतीति मौर्वं कार्ष्णायसं तन्मय्या। यद्वा मूर्वा नाम तृणविशेषः, तन्मयरज्ज्वा दृढनिबद्धयेत्यर्थः। विभावरीसंज्ञां आसेदिवान् प्राप्तः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

समुद्र में जब उसका कोई प्रतिपक्षी नहीं मिला तो वह वायु से प्रेरित समुद्र की ऊँची-ऊँची लहरियों पर ही अपनी गदा से प्रहार करता रहा। काले लोहे को मर्वि कहते हैं। उससे निर्मित होने के कारण उसकी मौर्वी गदा थी। अथवा एक तृण का नाम मूर्वा है, उससे निर्मित रस्सी से अच्छी तरह बँधी होने के कारण उसकी गदा मौर्वी थी। उसके पश्चात् घूमता हुआ वह वरुण की विभावरी नामक नगरी में पहुँच गया ॥२६॥

**तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ।**
**स्मयन्प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— तत्र असुरलोकपालकम् यादोगणानाम् ऋषभं प्रचेतसम् उपलभ्य स्मयन् प्रलब्धुं नीचवत् प्रणिपत्य जगाद अधिराज मे संयुगं प्रदेहि ॥२७॥

**अनुवाद**— वहाँ पताल लोक के स्वामी और जलचरों के अधिपति वरुण देव को देखकर उनका उपहास करते हुए नीच मनुष्य के समान प्रणाम किया और कहा महराज मुझे युद्ध की भिक्षा दीजिये ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

असुराणां लोकः पातालं तत्पालकम्। प्रलब्धुमुपहसितुं प्रणिपत्य ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

असुरों का लोक पाताल है। उसके स्वामी वरुण देव हैं, उनका उपहास करने के लिए उसने प्रणाम करके कहा मुझे युद्ध की भिक्षा दीजिये ॥२७॥

**त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ।**
**विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुराऽयजत्प्रभो ॥२८॥**

**अन्वयः**— प्रभो ! त्वं लोकपालः अधिपतिः बृहच्छ्रवा दुर्मदवीरमानिनाम् वीर्यावहः लोके अखिलान् दानवान् विजित्य यत् पुरा राजसूयेन अयजत् ॥२८॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप लोक का पालन करने वाले राजा और अयन्त यशस्वी हैं। जो लोग अपने को श्रेष्ठ वीर मानने वाले थे उनके पराक्रम के मद को आप विनष्ट कर चुके हैं। पहले आपने संसार के सभी दानवों को जीतकर राजसूय यज्ञ भी किया है ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यस्माद्राजसूये भवानयजत् ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

हिरण्याक्ष ने कहा आप लोकपाल है, राजा हैं और महायशवी है। बड़े-बड़े वीरों के वीर्यमद को आप चूर कर चुके हैं। संसार के सभी दानवों को जीतकर आपने राजसूय यज्ञ भी किया है ॥२८॥

**स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपांपतिः ।**
**रोषं समुत्थं शमयन्स्वया धिया व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम् ॥२९॥**

**अन्वयः**— एवम् उत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धः भगवान् अपां पतिः समुत्थं रोषं स्वया धिया शमयन् व्यवोचत् अङ्ग वयम् उपशमं गताः ॥२९॥

**अनुवाद**— इस प्रकार उस मदोन्मत्त शत्रु के द्वारा बहुत अधिक उपहास किये जाने पर वरुण देव को क्रोध तो उत्पन्न हुआ किन्तु उसको वे अपनी बुद्धि के बल से शान्त कर दिए और कहे हे भाई मैं तो युद्ध इत्यादि के कौतुक से रहित हो गया हूँ ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

उपशमं युद्धादिकौतुकादुपरमम् ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

वरुण देव ने कहा कि मैं युद्धादि की उत्कण्ठा से रहित हो गया हूँ ॥२९॥

**पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ।**
**आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहितं मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥३०॥**

**अन्वयः**— असुरर्षभ पुरातनात् पुरुषात् नान्यं पश्यामि यः त्वां रणमार्गकेविदम् उदितं आराधयिष्यति यं भवादृशाः मनस्विनः गृणते ॥३०॥

**अनुवाद**— हे असुरश्रेष्ठ ! पुराणपुरुष श्रीभगवान् को छोड़कर हमें कोई भी ऐसा नही दिखाई देता है जो तुम जैसे युद्ध कुशल वीर की कामना पूरी कर सके । वे ही तुम्हारी कामना पुरी करेंगे । उन्हीं के पास जाओ। तुम्हारे जैसे मनस्वी वीर उनकी ही स्तुति करते हैं ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

युद्धमार्गनिपुणं त्वां यस्तोषयिष्यति तमिहि गच्छ । गृणते स्तुवन्ति ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

तुम युद्धविद्या में निपुण हो अतएव ऐसे पुरुष के पास जाओ जो तुमको युद्ध की कला से सन्तुष्ट कर सके । तुम्हारे जैसे मनस्वी वीर पुराणपुरुष परमात्मा की ही स्तुति करते है, अतएव तुम उन्हीं के पास जाओ ॥३०॥

**तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः ।**
**यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥३१॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे हिरण्याक्ष दिग्विजये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

**अन्वयः**— तं वीरम् आरात् अभिपद्य विस्मयः वीरशये श्वभिर्वृतः शयिष्यसे । यः सदनुग्रहेच्छया त्वद्विधानाम् असतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते ॥३१॥

**अनुवाद**— उन परम पुरुष नामक वीर के पास जाकर शीघ्र ही तुम्हारा गर्व विनष्ट हो जायेगा । और कुत्तों से घिरे हुए वीर शय्या पर सो जाओगे । वे श्रीभगवान् सतपुरुषों पर कृपा करने की इच्छा से तथा तुम जैसे दुष्टों का वध करने के लिए अनेक रूपों को धारण करते हैं ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

आराच्छीघ्रम् । विस्मयो नष्टगर्वः । वीरशये रणाङ्गणे । रूपाणि वराहाद्यवतारान् ।।३१।।

**इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।**

### भाव प्रकाशिका

वरुणदेव ने हिरण्याक्ष से कहा कि तुम उन आद्यपुरुष के पास जाओगे तो तुम्हारा गर्व शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा । और रणाङ्गण में उनके द्वारा मारे जाकर वीरशय्या पर सो जाओगे । वे सत्पुरुषों पर कृपा करने के लिए तथा तुम्हारे जैसे दुष्टों का नाश करने के लिए वाराह इत्यादि अनेक रूपों को धारण करते हैं ।।३१।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के हिरण्याक्षदिग्विजय के अन्तर्गत सत्रहवें अध्याय की भावर्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी।।१७।।**

# अठारहवाँ अध्याय

## हिरण्याक्ष और वाराह भगवान का युद्ध

मैत्रेय उवाच

**तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ।**
**हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥१॥**

**अन्वयः**— तदेवम् जलेशभाषितम् आकर्ण्य, दुर्मदः महामनाः तद्विगमणय्य, नारदात् हरेः गतिं विदित्वा त्वरान्वितः रसातलं निर्विविशे ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुर जी ! वरुण देव की उस तरह की वाणी को सुनकर मदोन्मत्त वह दैत्य उसकी परवाह किए बिना ही नारदजी से श्रीहरि की गति को जानकर शीघ्रतापूर्वक रसातल में प्रवेश कर गया ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

अष्टादशे हिरण्याक्षधरोद्धर्तृवराहयोः । निर्विशेषं महायुद्धं देवक्षोभि निरूप्यते । प्रतियोद्धारं श्रुत्वा महामनाः शयिष्यस इति युदक्तं तद्विगणय्यागणयित्वा । यतो दुर्मदः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

अठारहवें अध्याय में पृथिवी का उद्धार करने वाले श्रीहरि और हिरण्याक्ष का देवताओं को क्षुब्ध कर देने वाला सामान्य महायुद्ध वर्णित है ॥१॥ **प्रतियोद्धारं श्रुत्वा** वरुणदेव के मुख से अपने प्रतियोद्धा के विषय में सुनकर वरुणदेव ने जो यह कहा था कि तुम वीर शय्या पर सो जाओगें, उसकी परवाह किए बिना ही हिरण्याक्ष नारदजी से श्रीभगवान् का पता लगाकर शीघ्र ही रसातल में चला गया क्योंकि वह तो मदमत्त था ॥१॥

**ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ।**
**मुष्णान्तमक्ष्णा स्वरूचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥२॥**

**अन्वयः**— तत्र धराधरं अग्रदंष्ट्रया प्रोन्नीयमानावनिम् अरुणश्रिया अक्ष्णा स्वरुचो भुष्णन्तम् जहास च अहो वन गोचरो मृगः॥२॥

**अनुवाद**—वहाँ पर अपने दाँतों के अग्रभाग पर पृथिवी को धारण किए हुए और उसको ऊपर की ओर लाते हुए विश्वविजयी श्रीवराह भगवान् को उसने देखा । वे भगवान् अपनी लालरङ्ग की आखों से उसके तेज को हर ले रहे थे । ऐसे भगवान् को देखकर हिरण्याक्ष जोर से हँसकर कहा अरे यह तो बनैला पशु है ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

अभितो जयतीत्यभिजित्तं श्रीहरिम् । प्रकर्षेणोर्ध्वं नीयमानाऽवनिर्येन । अग्रदंष्ट्रया दंष्ट्राग्रेण स्वरूचो हिरण्याक्षतेजांस्यरूणश्रिया युक्तं यत्तेनाक्ष्णा नेत्रेण मुष्णन्तं तिरस्कुर्वन्तम् । अहो चित्रं वनगोचरो मृगो वारिचरो वराहः ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विश्वविजयी हैं अतएव वे अभिजित् कहे जाते हैं ऐसे श्रीहरि को उसने देखा कि वे पृथिवी को लिए अपने दाँतों के अग्रभाग में रखकर ऊपर की ओर उठाये ले जा रहे हैं और अपने लाल-लाल आँखों की कान्ति से हिरण्याक्ष के तेज को तिरस्कृत कर रहे हैं । उनको देखकर हिरण्याक्ष ने कहा यह तो अद्भुत जल में सञ्चरण करने वाला वराह है ॥२॥

**आहैनमेह्यज्ञ मही विमुञ्च नो रसौकसां विश्व सृजेयमर्पिता ।**
**न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥३॥**

**अन्वयः**—एनम् आह-अज्ञ एहि मही विमुञ्च, इयम् विश्वसृजा नः रसौकसाम् अर्पिता, हे सुराधम ! आसादितसूकराकृते, मम इक्षतः अनया स्वस्ति न यास्यसि ॥३॥

**अनुवाद**—उसने वराह भगवान् से कहा मूर्ख इधर आओ पृथिवी को छोड़ दो इसको ब्रह्माजी ने हम रसातल वासियों को प्रदान कर दिया है । हे सूकर का रूप धारण किए हुए सुराधम ! मेरे देखते-देखते इसको लेकर तुम कुशल पूर्वक नहीं जा सकते हो ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

एह्यागच्छ । रसौकसां पातालवासिनां नोऽस्माकं समर्पिता । अन्यथा पातालावतरणमस्या न घटत इति भावः । हिरण्याक्षेणाधिक्षेपार्थं प्रयुक्तापि भारती वस्तुतो भगवन्तं स्तौति । तथाहि वनगोचरो जले शयानः श्रीनारायणः स एव योगिभिर्मृग्यते, दुष्टान्वा हन्तुं मृगयत इति मृगः । अज्ञ नास्ति ज्ञो यस्मात् सर्वज्ञेत्यर्थः । सुरा अधमा यस्मात् हे सुरोत्तम ! ममेक्षमाणस्यापि सतो मामनादृत्यापि त्वमनया सह वर्तमानो नोऽस्मदीयं स्वस्ति समस्तं मङ्गलं राज्यं यास्यसि प्राप्स्यसि नात्र संदेहः । तथाप्यस्मत्कृपया विमुञ्चेत्यर्थः । आसादिता लीलया स्वीकृता सूकराकृतिर्येन ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष ने कहा अरे मूर्ख इधर आओ । इसको ब्रह्माजी ने हम पातालवासियों को ही प्रदान कर दिया है, अन्यथा यह पाताल में कैसे आती ? **हिरण्याक्षेण० इत्यादि** हिरण्याक्ष ने श्रीभगवान् पर अधिक्षेप के लिए इस वाणी का प्रयोग किया है । परन्तु इस श्लोक का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है- **वनगोचरो मृगः** का अर्थ है जल में शयन करने वाले भगवान् नारायण हैं उनका ही योगिजन अन्वेषण किया करते हैं । भगवान् इसलिए भी मृग है कि वे दुष्टों को मारने के लिए उन सबों को खोजते हैं । **नास्तिज्ञो यस्मात्** जिससे बढ़कर कोई ज्ञानवान् नहीं है अर्थात् सर्वज्ञ । हे सुराधम का अर्थ है जिनकी अपेक्षा सभी देवता अधम है, अर्थात् देवताओं में श्रेष्ठ। **ममेक्षतः इत्यादि** वाक्य का अर्थ है कि मेरे देखते रहने पर भी मेरी अवहेलना करके भी तुम इसके साथ रहकर हमलोगों के समस्त मङ्गल और राज्य को भी प्राप्त कर लोगे इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । फिर भी हमलोगों पर कृपा करके इसको छोड़ दो । तुमने लीला पूर्वक सूकर का आकार बना रखा है ॥३॥

**त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो यो मायया हन्त्यसुरान्परोक्षजित् ।**
**त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं संस्थाप्य मूढप्रमृजे सुहृच्छुचः ॥४॥**

**अन्वयः**— यः परोक्षजित् असुरान् मायया हन्ति त्वं सपत्नैः नः अभवाय भृतः किम् । मूढ योगमाया बलम् अल्प पौरुषं त्वां संस्थाप्य सुहृच्छुचः प्रमृजे ॥४॥

**अनुवाद**— तुम माया से छिप कर ही दैत्यों को मार देते है । हमारे शत्रुओं देवताओं द्वारा तुम हमलोगों के नाश के लिए ही पाले गये हो क्या ? मूढ ! तुम में तो योगमाया का ही बल है पुरुषार्थ तो बहुत कम है। तुमको मारकर मैं अपने बान्धवों का शोक दूर करता है ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

अभवाय नाशाय भृतः पुष्टः । वस्तुतस्तु मोक्षाय भृतो धृत आश्रित इत्यर्थः । यो भवान्परोक्षेण चौर्येण जयतीति तथा। वस्तुतस्तु दूरत एव स्थित्वा जयतीति । संस्थाप्य हत्वा । वस्तुतस्तु योगमायारूपमचिन्त्यं बलं यस्य । अल्पं पौरुषं यस्मात्। तं त्वां सम्यक् स्थापयित्वा । भक्त्या हृदि स्थिरीकृत्येत्यर्थः । हे मूढप्र, मूढान्प्रति आप्यायतीति तथा । प्रा पूर्ताविति धातुः। सुहृदां शुचः संसारदुःखानि मृजे नाशयामि । यतस्त्वं स्मर्तुर्बान्धवानपि मोचयसीति भावः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

यह भी श्लोक द्वयर्थक है । तुम हमलोगों के नाश के लिए पाले गये हो । इस श्लोक का वास्तविक अर्थ है कि अभवाय अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए अपनाये गये हो । आप परोक्ष अर्थात् चोरी से जित लेते हैं । यह सामान्य अर्थ है। विशेष अर्थ है कि आप दूर से ही हमलोगों का जित लेते हैं । संस्थाप्य पद का अर्थ है मारकर। वास्तविकता यह है कि आपका योगमाया रूपी बल अचिन्त्य बल है । आपके समक्ष जीवों का बल अल्प है । ऐसे आपको अच्छी तरह से अपने हृदय में सुस्थिर करके । हे मूढप्र ! अर्थात् आप भक्ति विवश जीवों को मुक्ति प्रदान कर देते हैं । प्राधातु पूर्त्यर्थक है । ऐसे आपको अपने हृदय में रखकर अपने बान्धवों के शोक को मैं दूर कर देता हूँ । क्योंकि जो आपका स्मरण करता है उसके बान्धवों को भी आप मुक्ति प्रदान कर देते हैं ॥४॥

**त्वयि संस्थिते गदयाऽशीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ।**
**बलिं हरन्त्यृषयो ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥५॥**

**अन्वयः**— अस्मद् भुजया च्युतया गदया शीर्णशीर्षणि संस्थिते त्वयि ये च ऋषयः देवाः तुभ्यं बलिं हरन्ति, अमूलाः सर्वे स्वयं न भविष्यन्ति ॥५॥

**अनुवाद**— हमारे हाथ से छुटी हुयी गदा के द्वारा शिर फूट जाने के कारण जब तुम मर जाओगे तो तुम्हारी आराधना करने वाले ऋषिगण और देवगण, कटे हुए मूल वाले वृक्ष के समान अपने आप विनष्ट हो जायेंगे ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

अस्मद्भुजच्युतयापि गदया अशीर्णं शीर्षं यस्य तथाभूते त्वयि सुखं स्थिते सति ये तुभ्यमधुना बलिं हरन्ति नवीना भक्ताः ये च पूर्वे भक्ता देवाश्च ते सर्वे स्वयमेवोद्यमं विनैवामूला न भविष्यन्ति किंतु दृढमूला एव भविष्यन्तीत्यर्थः ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

हमारे भुजा से छुटी हुयी गदा के द्वारा जब आपका शिर नहीं फूटेगा और आप सुख पूर्वक बने रहेंगे तो, जो आपकी इस समय आराधना करने वाले नवीन भक्त हैं और तथा जो आपके पुराने भक्त ऋषिगण और देवगण है वे सबके सब बिना प्रयास के ही मूलहीन न होकर सुदृढ मूल वाले हो जायेगें । उनकी जड़ मजबूत हो जायेगी॥५॥

**स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरैर्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ।**
**तोदं मृषान्निरगादम्बुमध्याद्ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥६॥**

**अन्वयः**— अरिदुरुक्त तोमरैः तुद्यमानः सः दंष्ट्रग्रगां भीताम् गाम् उपलक्ष्य तोदं मृषन अम्बुमध्यात् ग्राहाहतः सकरेणुः इभः यथा निरगात् ॥६॥

**अनुवाद**— हिरण्याक्ष दुर्वचन रूपी बाणों से छेदे जा रहा था किन्तु श्रीभगवान् अपने दाँत के नोक पर स्थित पृथिवी को भयभीत देखकर उस चोट को बर्दास्त कर लिए और पृथिवी के साथ जल से ऊपर उसी तरह निकले जैसे ग्राह से आहत होकर हाथी हथिनी के साथ बाहर आ जाता है ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

स हरिररेर्दुरुक्तान्येव तोमराः शस्त्रविशेषास्तैस्तुद्यमानो व्यथ्यमानो दंष्ट्राग्रगतां पृथिवीं भीतामालक्ष्य तोदं दुरुक्तव्यथां मृषन्सहमान एव निर्गतः । करेणुर्हस्तिनी । वस्तुतस्त्वरिदुरुक्ततोमरैर्निमित्तभूतैस्तुद्यमानः । यथाश्रुतार्थग्राहिणां ब्रह्मादीनां व्यथां दृष्ट्वानुकम्पया पीड्यमान इत्यर्थः । तोदं मृषन्नित्यस्याप्ययमेवार्थः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

वे श्रीहरि शत्रु की दुरुक्ति रूपी तोमर अर्थात् शस्त्रविशेष के द्वारा दुःखी बनाये जा रहे थे, किन्तु अपने दाँतों के अग्रभाग में स्थित पृथिवी देवी को भयभीत देखकर उस दुरुक्तिजन्य व्यथा को वराह भगवान् सह लिए और जल से बाहर निकल आये । करेणु शब्द हस्तिनी का बोधक है । **वस्तुतस्तु० इत्यादि** इस श्लोक का वास्तविक अर्थ है कि वस्तुतः लज्जित होने पर भी जिनके कारण सन्त पुरुष दुःखी न रहें उन कृपालुओं के लिए कुछ भी निन्दित नहीं है । अतएव दयालु होने के कारण अपने दाँत पर स्थित भूदेवी की रक्षा के लिए कुछ पलायन करना भी निन्दत नहीं है । **यद्वा० इत्यादि-** अथवा संसार का उपकार करने के लिए पृथ्वी का उद्धार करने वाले श्रीभगवान् का पीछा करना अनुचित है यह मानने वाला वह दैत्य अपनी ही निन्दा करता है । हमलोग केवल स्वार्थ परायण होने के कारण निर्लज्ज पुरुष हैं । ऐसे हमलोगों द्वारा किए जाने वाले निन्दित कर्मों की कोई भी गणना नहीं है। अतएव हमलोगों को धिक्कार है ॥७॥

**स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ।**
**अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥८॥**

**अन्वयः**— स सलिलस्य उदस्तात् गाम् गोचरे विन्यस्य तस्याम् एव सत्त्वम् अदधात् अरेः पश्यतः विवुधै प्रसूनैः आपूर्यमाणः विश्वसृजा अभिष्टुतः ॥८॥

**अनुवाद**— वे भगवान् जल के ऊपर पृथिवी को स्थापित करके उसमे अपनी धारण शक्ति रूपी तेज का आधान कर दिये । उससमय हिरण्याक्ष की आँखों के सामने ही देवताओं ने श्रीभगवान् पर फूलों की वर्षा की और ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

स भगवान्विश्वसृजाभिष्टुतो विबुधैश्च प्रसूनैरापूर्यमाणः । पाठान्तरे विश्वसृजां प्रसूनैर्विबुधैरभिष्टुत इति । सलिलस्योदस्तादुपरि व्यवहारगोचरे देशे गां पृथ्वीं विन्यस्य तस्यां स्वसत्त्वमाधारशक्तिं निहितवान् । अरेस्तस्य पश्यत एव ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

जब श्रीभगवान् ने जल के ऊपर व्यवहार योग्य स्थान में पृथिवी को स्थापित करके उसमें अपनी धारणा शक्ति रूपी तेज का आधान कर दिया उस समय हिरण्याक्ष की परवाह किए बिना ही ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की स्तुति की और देवताओं ने उन पर फूलों की वर्षा की । पाठान्तर होने पर तो विश्व की सृष्टि करने वाले प्रजापतियों की पुष्पों से पूजित श्रीभगवान् की स्तुति देवताओं ने की ॥८॥

**परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम् ।**
**मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥९॥**

**अन्वयः**— परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम् दुरुक्तैः अभीक्ष्णं मर्माणि तुदन्तं पञ्चण्डमन्युः प्रहसन् तं बभाषे ॥९॥

**अनुवाद**— अपने पीछे आते हुए सुवर्ण के आभूषणों से भूषित विशाल गदा को धारण किए हुए तथा सुवर्ण निर्मित अद्भुत कवच पहने हुए एवं अपनी दुरुक्तियों द्वारा निरन्तर व्यथित करने वाले उस हिरण्याक्ष को भयङ्कर क्रोध करने वाले श्रीभगवान् ने जोर से हँसते हुए कहा ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

परा पराक् पृष्ठतोऽनुषक्तं लग्नम् । तपनीयोपकल्पं सुवर्णाभरणम् । काञ्चनमयश्चित्रो दंशः कवचं यस्य तं दैत्यम्। प्रचण्डमन्युत्वमधिक्षेपादिकं चानुकरणमात्रं दैत्यवाक्यभीतानां देवानां भयनिवृत्तये । वस्तुतस्तेन तथाऽनुक्तत्वेन कोपादिहेत्व-भावात् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष श्रीभगवान् का पीछा कर रहा था, वह सुवर्णालङ्कारों से भूषित था, विशाल गदा लिए हुए तथा सुवर्णनिर्मित अद्भुत कवच को धारण किए था । उस पर भयङ्कर क्रोध करके भगवान् ने जोर से हँसते हुए कहा ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

**सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ।**
**न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे अभद्र ! सत्यं वयं वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान् ग्रामसिंहान् मृगये मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य तव विकत्थनं न गृह्णन्ति ॥१०॥

**श्रीभगवान् ने कहा**

**अनुवाद**— तुम सत्य कहते हो; हम जङ्गली जीव हैं और तुम जैसे कुत्तों को खोजते रहते हैं । दुष्ट वीरपुरुष तुम जैसे मृत्यु के पाश में बँधे अभागे जीवों की आत्मश्लाघा पर हम ध्यान नहीं देते हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

ग्रामसिंहान् शुनः । प्रतिमुक्तस्य बद्धस्य । विकत्थनं श्लाघाम् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

ग्रामसिंह कुत्तों को कहते हैं प्रतिमुक्त अर्थात् बद्ध विकत्थन अर्थात् आत्मश्लाघा । श्रीभगवान् ने कहा कि तुम ठीक ही कहते हो कि मैं जङ्गली जीव हूँ और तुम जैसे कुत्तों को मैं खोजता रहता हूँ । तुम तो मृत्यु के पाश में बन्ध चुके हो; अतएव आत्मश्लाघा कर रहे हो । किन्तु वीरों का स्वभाव होता है कि वे मृत्यु के पाश में बंधे जीवों की आत्मश्लाघा पर ध्यान नहीं देते हैं ॥१०॥

**एते वयं न्यासहरा रसौकसां गतह्रियो गदया द्रावितास्ते ।**
**तिष्ठामहेऽथापि कथंचिदाजौ स्थेयं क्व यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥११॥**

**अन्वयः**— एते वयं रसौकसांन्यासहराः गतह्रियः ते गदया द्राविताः अथापि कथंचिदाजौ तिष्ठमहे स्थेयम् बलिना वैरम् उत्पाद्य क्व यामः ॥११॥

**अनुवाद**— हाँ हम रसातल वासियों की घरोहर को चुराने वाले निर्लज्ज हैं। तुम्हारी गदा के भय से भागकर हम यहाँ आ गये हैं। मुझमें तुम्हारे साथ युद्ध करने का सामर्थ्य ही नहीं है। सामर्थ्य के नहीं होने पर भी किसी तरह युद्धभूमि में रुके हुए हैं। हम को तो युद्ध करना ही पड़ेगा तुम जैसे बलवान वीर से बैर करके हम जा भी कहाँ सकते हैं ?॥११॥

### भावार्थ दीपिका

न्यासहारा निक्षेपहराः। द्राविताः पलायनं कारिताः। अथाप्यसमर्था अपि तिष्ठामः। तत्किम्। यतः स्थेयं स्थातव्यमेवास्माभिः। तत्किमित्यत आह। क्व यामः। गन्तव्यदेशाभावात् ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा— हाँ हमलोग रसातल के धरोहर को चुराने वाले तथा निर्लज्ज हैं। तुम्हारी गदा के भय से भागकर हम यहाँ आ गये हैं। यद्यपि हम तुम्हारे साथ युद्ध करने में असमर्थ हैं फिर भी युद्ध करने के लिए यहाँ रुके भी हैं। यदि पूछो कि क्यों रुके हो तो उसका उत्तर है कि मुझको यहाँ रुकना ही होगा। तुम्हारे जैसे बलवान से वैर करके हम कहाँ जा सकते हैं ? कोई ऐसा स्थान भी तो नहीं है जहाँ कि हम जाकर रहें। जहाँ जायेंगे वही तुम आ जाओगे ॥११॥

**त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः।**
**संस्थाप्य चास्मान्प्रमृजाश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञा नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥१२॥**

**अन्वयः**— त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपः अनूहः आशु नः अस्वस्तये घटस्व अस्मान् संस्थाप्य च स्वकानां अश्रु प्रमृज, यः स्वप्रतिज्ञां नातिपिपर्ति स असभ्यः ॥१२॥

**अनुवाद**— पैदल वीरों के जो यूथप (सेनापति) होते हैं उनका भी तुम स्वामी हो, अतएव बिना किसी सोच विचार किए शीघ्र ही हमारा अनिष्ट करने में लग जाओ। मुझको मारकर तुम अपने बान्धवों की आँसू को पोंछ डालो। इसमें अब देर न करो। जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है वह असभ्य कहलाता है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

पद्रथानां पदातीनां ये यूथपास्तेषामधिपः मुख्य इत्यर्थः। अस्वस्तये पराभवार्थमाशु घटस्व यतस्व। अनूहो निर्वितर्कः। यो नातिपिपर्ति न पूरयति पालयति वा असावसभ्यः सभायामनर्हः ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि तुम पैदल सेनाओं के जो स्वामी हैं, उन सबों के तुम स्वामी हो अतएव तुम मुझको पराजित करने का प्रयास बिना सोचे विचारे करो। जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता है, वह असभ्य होता है ॥१२॥

मैत्रेय उवाच

**सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम्। आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव ॥१३॥**

**अन्वयः**— सः भगवता रुषा भृशम् अधिक्षिप्तः प्रलब्धः च क्रीडमानः अहिराडिव उल्बणं क्रोधम् आजहार ॥१३॥

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! जब भगवान् ने क्रोध करके इस तरह उसका खूब उपहास किया और तिरस्कार किया तो वह भी पकड़कर खेलाये जाते हुए सर्प के समान अत्यधिक क्रोध किया ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

सोऽधिक्षिप्तः सत्यं वयमिति श्लोकेन । रुषा प्रलब्ध उपहसितश्च एते वयमिति द्वाभ्याम् । क्रीडां कार्यमाणोऽहिराट् महासर्प इव ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने **सत्यंवयम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा हिरण्याक्ष का अत्यधिक उपहास किया तथा क्रोध पूर्वक **एतेवयम्० इत्यादि** दो श्लोकों से उसका खूब तिरस्कार भी किया, अतएव हिरण्याक्ष ने उसी तरह से अत्यधिक क्रोध किया जिस तरह पकड़कर खेलाया जाता हुआ महासर्प भयङ्कर क्रोध करता है ॥१३॥

**सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेन्द्रियः । आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाऽभ्यनद्धरिम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— अमर्षितः दैत्यः श्वसन् सृजन् मन्युप्रचलितेन्द्रियः । तरसा आसाद्य गदया हरिम् अहनत् ॥१४॥

**अनुवाद**— असहिष्णु वह दैत्य क्रोध से लम्बी श्वास लेने लगा, क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ विकल हो गयीं । वह वेगपूर्वक गदा उठाकर श्रीहरि पर गदा से प्रहार किया ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

मन्युना प्रचलितानि क्षुभितानीन्द्रियाणि यस्य ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के द्वारा उपहसित और तिरस्कृत होकर क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रयाँ क्षुब्ध (व्याकुल) हो गयी थीं ॥१४॥

**भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि । अवञ्चयत्तिरश्चीना योगारुढ इवान्तकम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— भगवान् तु रिपुणा उरसि विसृष्टं गदावेगं तिरश्चिनः योगारूढः अन्तकम् इव अवञ्चयत् ॥१५॥

**अनुवाद**— किन्तु श्रीभगवान् ने कुछ टेढा होकर शत्रु के द्वारा उनकी छाती पर चलायी गयी गदा से प्रहार को उसी तरह बचा लिया जिस तरह योगारूढ योगी मृत्यु के आक्रमण से अपने को बचा लेता है ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

अन्तकम् मृत्युम् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

अन्तकम् पद मृत्यु का बोधक है ॥१५॥

**पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः । अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भाद्दष्टदच्छदम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— पुनः दष्टदच्छदम् स्वां गदाम् आदाय अभीक्ष्णशाः भ्रामयन्तम् क्रुद्ध हरिः संरम्भात् अभ्यधावत् ॥१६॥

**अनुवाद**— फिर अपने ओष्ठ को चबाता हुआ अपनी गदा को लेकर बार-बार घुमते हुए हिरण्याक्ष पर क्रोध करके श्रीहरि बड़े वेग से दौड़े ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१६॥

**ततश्च गदयाऽरातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः । आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥१७॥**

**अन्वयः**— हे सौम्य ! ततः प्रभुः गदया अरातिम् दक्षिणस्यां भ्रुवि, आजध्ने स तु कोविदः तां गदया अहनत् ॥१७॥

**अनुवाद**— हे सौम्य ! स्वभाव वाले विदुरजी उसके पश्चात् श्रीभगवान् ने गदा के द्वारा अपने शत्रु की दाहिनी भौहें पर प्रहार किया किन्तु गदा युद्ध में निपुण हिरण्याक्ष ने उसे अपनी गदा से रोक लिया ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

सौम्य विदुर, तां गदामप्राप्तामेवाहनत् ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

हे विदुर जी ! किन्तु उस हिरण्याक्ष ने अपने तक पहुँचने से पहले ही उस गदा के प्रहार को रोक लिया ।।१७।।

**एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च । जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।।१८।।**

**अन्वयः**— एवं गुर्वीभ्यां गदाभ्यां हर्यक्षः हरिः एव च जिगीषया सुसंरब्धौ अन्योन्यम् अभिजघ्नतुः ।।१८।।

**अनुवाद**— इस प्रकार अपनी भारी गदाओं से हिरण्याक्ष और श्रीहरि एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से अत्यधिक क्रोध करके एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

हर्यक्षो हिरण्याक्षः ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष को ही हर्यक्ष कहा गया है ।।१८।।

**तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहताङ्गयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्य्वोः ।**
**विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ।।१९।।**

**अन्वयः**— तिग्मगदाहतांङ्गयोः तयोः स्पृधोः क्षतस्रवघ्राण विवृद्धमन्यवोः जिगीषया विचित्रमार्गान् चरतोः, इलयाम् शुष्मिणोः मृध इव व्यभात् ।।१९।।

**अनुवाद**— तीक्ष्ण गदा के प्रहार से उन दोनों के अङ्ग घायल हो गये थे, घावों से बहने वाले रक्त की गन्ध दोनों का क्रोध बढ़ रहा था । एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से वे तरह-तरह के पैंतरे चल रहे थे । उन दोनों की शोभा उसी तरह से हो रही थी जिस तरह एक ही गौ को प्राप्त करने के लिए दो सांड लड़ रहे हों ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

स्पृधोः स्पर्धमानयोः । तिग्माभ्यां गदाभ्यां आहतान्यङ्गानि ययोः । क्षतादास्रवतीति क्षतास्रवं रुधिरं तस्य घ्राणमवघ्राणं तेन विवृद्धो मन्युर्ययोः । विचित्रान्मार्गान् गदायुद्धभ्रमणभेदान् । इला गौस्तस्यां निमित्तभूतायां शुष्मिणोः मत्तयोर्वृषभयोः । प्रस्तुतेऽपि इला पृथ्वी तदर्थम् । वृषभौ हि खलु बहूनि दिनानि संग्रथितोतुङ्गशृङ्गसंघर्षविदीर्णाङ्गगलद्रुधिरौ परस्परोपमर्दव्यग्रोग्रसंरम्भौ चमत्कारितगजयूथपौ युध्यमानौ तिष्ठत इति प्रसिद्धम् ।।१९।।'

### भाव प्रकाशिका

स्पृधोः का अर्थ है एक दूसरे से स्पर्धा करने वाले उन दोनों के अङ्ग तीक्ष्ण गदा के प्रहार से घायल हो गये थे । उन दोनों के घावों से रुधिर बहा जा रहा था और उस रक्त की गन्ध से उन दोनों का क्रोध बढ गया था। वे दोनों एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से गदायुद्ध के अनेक और अद्भुत पैंतरे चल रहे थे । लग रहा था की दो मदमत्त सांड एक ही गौ को प्राप्त करने के लिए युद्ध कर रहे हों । यहां पर इला पृथिवी है वही प्रस्तुत है, उसी के लिए वे दोनो युद्ध कर रहे थे । इला शब्द का अर्थ गौ भी होता है । **वृषभौ हि० इत्यादि-** यह प्रसिद्ध है कि अपने सिंगों को एक दूसरे के सिंग से सटाकर दो सांड बहुत दिनों तक युद्ध करते हैं, यद्यपि उन दोनों के अङ्ग विदीर्ण हो जाते हैं, और उससे रक्त बहता रहता है । किन्तु वे अपनी अभिप्रेत गौ को प्राप्त करने के लिए युद्ध करते रहते हैं । इसी तरह दो गज यूथाधिपति भी अपने अभिप्रेत हस्तिनी को प्राप्त करने के लिए युद्ध करते रहते हैं, यह भी प्रसिद्ध है ।।१९।।

**दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायागृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ।**
**कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥२०॥**

**अन्वयः**— कौरव्य ! दैत्यस्य मायागृहीत वाराहतनोः यज्ञावयवस्य महात्मनः मह्यां द्विषतोः विमर्दनं दिदृक्षुः ऋषिभिः वृतः स्वराट् अगात् ॥२०॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! दैत्य हिरण्याक्ष और अपनी माया से वाराह शरीर को धारण करने वाले यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् दोनों एक ही पृथिवी को प्राप्त करने के लिए एक दूसरे से स्पर्धा कर रहे थे । उन दोनों के द्वारा किए जाने वाले युद्ध को देखने के लिए वहाँ पर ऋषियों के साथ ब्रह्माजी आ गये ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

यज्ञा एवावयवा यस्य च । मह्यां महीनिमित्तं द्विषतोः । एवंविधं विमर्दनं युद्धं दिदृक्षुः स्वराट् ब्रह्मा तत्रागात् ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् यज्ञ शरीरक हैं वे तथा हिरण्याक्ष दोनों एक ही पृथिवी को प्राप्त करने के लिए युद्ध कर रहे थे । इस प्रकार के युद्ध को देखने के लिए ऋषियों के साथ वहाँ ब्रह्माजी आये ॥२०॥

**आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसं कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ।**
**विलक्ष्य दैत्यं भगवान्सहस्रणीर्जगाद नारायणमादि सूकरम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— आसन्न शौण्डीरम् अपेतसाध्वसम्, कृतप्रतिकारम्, अहार्य विक्रमम्, दैत्यं विलक्ष्य आदि सूकरम् नारायणम् जगाद ॥२१॥

**अनुवाद**— हजारों ऋषियों से घिरे हुए ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्माजी ने शौर्य प्राप्त एवं मदमत्त, निर्भय श्रीभगवान् का प्रतिकार करने में समर्थ तथा जिसके पराक्रम को चूर्ण नहीं किया जा सकता है ऐसे उस दैत्य को देखकर आदि सूकर भगवान् नारायण से कहा ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

आगत्य च नारायणमाह । किं कृत्वा । दैत्यं विलक्ष्य । कथंभूतम् आसन्नं प्राप्तं शौण्डीर्यं शौर्यं मदो वा येन । अपेतं साध्वसं यस्मात् । कृतः प्रतीकारो येन । अहार्योऽप्रतिकार्यो विक्रमो यस्य । सहस्रणीः सहस्राणामृषिसहस्राणां नेता ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी हजारों ऋषियों के नेता थे । उन्होंने जब देखा कि यह दैत्य शौर्य सम्पन्न और मदमत्त है, इसमें भय का लेश भी नही हैं, और यह श्रीभगवान् का प्रतिकार करने में समर्थ है इसके पराक्रम को विनष्ट करना कठिन है । यह देखकर वे आदि सूकर भगवान् नारायण से कहे ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

**एष ते देव देवानामङ्घ्रिमलमुपेयुषाम् । विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥२२॥**
**आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः । अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे देव अस्मद्राद्धवरः एषः ते अङ्घ्रिमूलम् उपेयुषाम् देवनाम् विप्राणाम् सौरभेयीणां अनागसाम् भूतानाम् अपि आगस्कृत् भयकृत्, दुष्कृत् अप्रतिरथः कण्टकः अन्वेषन् लोकान् अटति ॥२२-२३॥

### ब्रह्माजी ने कहा

**अनुवाद**— हे देव ! मुझसे वरदान प्राप्त करके यह अत्यन्त प्रबल हो गया है । यह आपके चरणों की शरणागति करने वाले देवताओं, ब्राह्मणों गौओं तथा दूसरे निरपराध जीवों को बहुत हानि करने वाला दुःख देने

वाला और भयभीत करने वाला है । इसके समान कोई भी दूसरा योद्धा नहीं है । अतएव सम्पूर्ण जगत् का शत्रु अपने सदृश योद्धा की खोज करते हुए लोकों में घूम रहा है ॥२२-२३॥

**भावार्थ दीपिका**

हे देव, तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्तानां देवादीनाम् । एषोऽसुरः । आगस्कृद्वृथैवापराधारोपकः । तत्परिहाराय प्रवृत्तौ भयकृत् । भीतं ज्ञात्वा दुष्कृदर्थप्राणादिहर्ता अस्मत्तो राद्धो लब्धो वरो येन । अन्वेषन् प्रतिरथमवलोकयन् । अप्रतिरथः प्रतिपक्षशून्यः ॥२२-२३॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी ने कहा— हे भगवन् यह असुर मुझसे वरदान प्राप्त करके अत्यन्त प्रबल हो गया है । यह आपके चरणों की शरणागति करने वाले जीवों का व्यर्थ ही अपराध करता है । उसका प्रतिकार करने वालों में यह भय उत्पन्न कर देता है । उन सबों को जब यह भयभीत जान जाता है तों उन सबों को मार कर उनकी सम्पत्ति को ले लेता है । चूकि इसके सदृश कोई दूसरा वीर है नहीं इसलिए यह अपने समान प्रबल विरोधी की खोज करते हुए लोकों में धूम रहा है ॥२२-२३॥

**मैनं मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशमसत्तमम् । आक्रीड बालवद्देव यदाशीविषमुत्थितम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— हे देव ! मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशम् असत्तमम् एनं बालवत् मा क्रीड यत् उत्थितम् आशीविषम् ॥२४॥

**अनुवाद**— हे देव ! यह मायवी, घमण्डी, निरङ्कुश और अत्यन्त दुष्ट है । इसके साथ आप सर्प के साथ खेलने वाले बालक के समान खेल न करें क्योंकि यह जगे हुए विषैले सर्प के समान भयङ्कर है ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यस्मादेवंभूतोऽयं तस्मादेनं मा क्रीड मा क्रीडय । हे देव, यथोत्थितं क्षुभितमाशीविषं सर्पं बालः पुच्छाकर्षणादिना क्रीडयति तद्वत् ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि यह मायावी घमण्डी और निरङ्कुश है अतएव इसके साथ आप उस तरह से खेल न करें जैसे कोई बालक क्रुद्ध विषैले सर्प की पूंछ पकड़कर उसको घसीटता है ॥२४॥

**न यावदेष वर्धेत स्वां बेलां प्राप्य दारुणः । स्वां देव मायामास्थाय तावज्जह्यघमच्युत ॥२५॥**

**अन्वयः**— हे अच्युत ! यावत् एषः दारुणः स्वां बेलां प्राप्य न वर्धेत तावत् स्वां देवमायाम् आस्थाय अघम् जहि ॥२५॥

**अनुवाद**— हे अच्युत ! जब तक यह भयङ्कर दैत्य आपनी बेला को प्राप्त न कर सके उससे पहले ही आप अपनी देवमाया को अपना कर इस पापी को मार डालिये ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वामासुरीम् । हे देव, स्वां मायाम् । अघं पापरूपम् ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी ने कहा कि जब तक यह अपनी आसुरी बेला को प्राप्त करके प्रबल न हो जाय उससे पहले ही आप अपनी माया को अपनाकर इसका वध कर दें ॥२५॥

**एषा घोरतमा संध्या लोकच्छम्बट्करी प्रभो । उपसर्पति सर्वात्मन् सुराणां जयमावह ॥२६॥**

**अन्वयः**— प्रभो एषा संध्या घोरतमा लोकच्छम्बट्करी हे सर्वात्मन् उपसर्पति सुराणां जयम् आवह ॥२६॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! यह संध्या अत्यन्त भयङ्कर है । यह जगत् का विनाश करने वाली है । यह संध्या धीरे-धीरे आ रही है । आप देवताओं को विजय प्रदान करें ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

बेलामेवाह-एषेति । लोकानां छम्बट्करी विनाशकरी । छम्बडित्यव्ययं विनाशे वर्तते ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी आसुरी बेला को ही बतलाते हैं । उन्होंने कहा कि यह संध्या की बेला अत्यन्त भयङ्कर है । यह लोकों का विनाश करने वाली है और यह धीरे-धीरे आ भी रही है । अतएव आप देवताओं को विजय प्रदान करें । छम्बट् यह अव्यय विनाश के अर्थ का बोधक है ।।२६।।

**अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् । शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ।।२७।।**

**अन्वयः**— अधुना एषः अभिजित् नाम मौहूर्तिकः योगः ह्यगात् नः सुहृदां शिवाय त्वम् आशु दुस्तरम् निस्तर ।।२७।।

**अनुवाद**— इस समय यह अभिजित् नामक शुभ मुहूर्त का योग आ गया है । अतएव आप हमलोगों के कल्याण के लिए शीघ्र ही इस दुर्जय दैत्य को मार दें ।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

अभिजिन्मध्याह्नः । स एव मौहूर्तिको योगः सन् । मुहूर्तः शुभदः कालः अगाद्गतप्राय । अतो यावन्मुहूर्तशेषोऽस्ति तावदेव सुदुस्तरमेनं निस्तर जहि ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा कि इस समय मध्याह्न की बेला में आने वाला अभिजित् नामक शुभ मुहूर्त का योग आ गया है अतएव इस मुहूर्त के बितने से पहले ही इस दुर्जय दैत्य का आप वध कर दीजिये, जिससे कि आपके सुहृद् हम देवताओं का कल्याण हो ।।२७।।

**दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् । विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ।।२८।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्षवधेऽष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

**अन्वयः**— दिष्ट्या विहितं मृत्युं त्वां अयं स्वयम् आसादितः । एनं विक्रम्य मृधे हत्वा लोकान् शर्मणि आधेहि ।।२८।।

**अनुवाद**— सौभाग्यवशात् इसकी मृत्यु आपसे ही होने वाली है । अतएव यह स्वयम् ही आपके पास आ गया है । अतएव इसको युद्ध में बलपूर्वक मारकर लोकों को आप सुखी बना दें ।।२८।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुरण के तीसरे स्कन्ध के हिरण्याक्षवध नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।**

### भावार्थ दीपिका

त्वां मृत्युं त्वयैव शापानुग्रहकाले विहितं निर्मितम् । आसादितः प्राप्तः । शर्मणि सुखे आधेहि स्थापय ।।२८।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।**

### भाव प्रकाशिका

इसके शापानुग्रह के समय में आपने ही अपने को ही इसकी मृत्यु का कारण बना लिया था और सौभाग्यवशात् यह आपके पास आ भी गया है, अतएव इस दुर्जय दैत्य को मारकर आप संसार को सुखी बना दें ।।२८।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१८।।**

# उन्नीसवाँ अध्याय

## हिरण्याक्ष का वध

मैत्रेय उवाच

**अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः । प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत् ॥१॥**

**अन्वयः**— विरिञ्चस्य निर्व्यलिकामृतं वचः अवधार्य प्रेमगर्भेण प्रहस्य तदपाङ्गेन सः अग्रहीत् ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— विदुरजी ! ब्रह्माजी के उपर्युक्त वचन कपट रहित और अमृतमय थे, उनको सुनकर श्रीभगवान् प्रेमपूर्वक मुस्कुराये और कटाक्षपात के द्वारा उसे स्वीकार किए ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

ऊनविंशे विरिञ्च्यादिप्रार्थितेन महामृधे । वराहेण हिरण्याक्षवधः श्लाघ्योऽनुवर्ण्यते । निर्व्यलीकं च तदमृतं च । पाठान्तरे निष्कपटाभिप्रायं च तदृत च । कालात्मनोऽपि मम मुहूर्तबलमुपदिशतीति प्रहस्यापाङ्गालोकनेन स्वीकृतवान् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

उन्नीसवें अध्याय में ब्रह्मा आदि के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर वराह भगवान् के द्वारा प्रशंसनीय हिरण्याक्ष के वध का वर्णन किया गया है । **निर्व्यलीकम्० इत्यादि-** ब्रह्माजी की उपर्युक्त **विक्रम्यैनं मृधे हत्वा'** वाणी कपट रहित तथा अमृतमय थी जहाँ **निर्व्यलीक ऋतेवचः** पाठान्तर है वहाँ अर्थ होगा निष्कपट और सत्य । उसको सुनकर भगवान् इसलिए मुसकुराये कि मैं तो स्वयं कालस्वरूप हूँ और ये ब्रह्मा मुझको शुभ मुहूर्त का उपदेश दे रहे हैं। इसलिए वे हँसकर कटाक्षपात के द्वारा उसे स्वीकार किए ॥१॥

**ततः सपत्नं मुखतश्चरन्तमकुतोभयम् । जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥२॥**

**अन्वयः**— ततः मुखतः चरन्तम् अकुतोभयम् सपत्नं असुरम् अक्षजः उत्पत्य गदया हनौ जघान ॥२॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् सामने विचरण करते हुए निर्भय अपने शत्रु हिरण्याक्ष की ठुड्ढी पर श्रीभगवान् ने गदा मारी ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

मुखतः अभिमुखे । हनौ कपोलस्याधोभागे । अक्षजो ब्रह्मणो घ्राणेन्द्रियादाविर्भूतः ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

वराह भगवान् ब्रह्माजी की घ्राणेन्द्रिय से उत्पन्न हुए थे अतएव उनको अक्षज कहा गया है । उन्होंने देख कि उनका शत्रु असुर उनके सामने ही निर्भय विचरण कर रहा है अतएव उन्होने उछलकर उसकी ठूढी पर गदा से प्रहार किया ॥२॥

**सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात् । विघूर्णिताऽपतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत् ॥३॥**

**अन्वयः**— तेन हतया गदया हता सा भगवत् करात् विहता विघूर्णिता अपतत् रेजे । तत् अद्भुतमिव अभवत् ॥३॥

**अनुवाद**— किन्तु हिरण्याक्ष के द्वारा प्रहार की गयी गदा से टकराकर भगवान की गदा उनके हाथ से छूटकर चक्कर काटती हुयी जमीन पर गिरकर सुशोभित हुयी । किन्तु यह अत्यनत अद्भुत सी घटना हुयी ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

सा स्वगदया तेन हता ततो विहता विच्युता सती विघूर्णिता भूत्वाऽपतद्रेजे च । तद्भगवत्करात्पतनम् । यद्वा तत्पदस्यावृत्त्या रेजे इत्यनेनापि संबन्धः तद्दैत्यपौरुषं रेजे इति ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

वह उस दैत्य के द्वारा किए गये प्रहार के कारण टकराकर श्रीभगवान् के हाथ से भगवान् की गदा छूट गयी और नाचकर पृथिवी पर गिर गयी । वह श्रीभगवान् के हाथ से गदा का गिरना अद्भुत सी घटना थी । अथवा तत् पद की दो बार आवृत्ति करने के कारण उसका रेजे पद से सम्बन्ध है । अर्थात् उससे उस दैत्य का पौरुष सुशोभित हुआ ॥३॥

**स तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम् । मानयनस्य मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥४॥**

**अन्वयः**— सः तदा लब्धतीर्थः अपि विष्वक्सेनं प्रकोपयन् मृधे धर्मं मानयनृ निरायुधम् न बबाधे ॥४॥

**अनुवाद**— उस समय अवसर प्राप्त करके भी वह दैत्य श्रीभगवान् के क्रोध को बढाते हुए तथा युद्ध के धर्म का पालन करते हुए निरायुध श्रीभगवान् पर प्रहार नहीं किया ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

लब्धतीर्थो लब्धावसरः स च न बबाधे न प्राहरत् । स मानयन्बभूवेति वाक्यभेदात्स इत्यस्यपौनरुक्त्यम् ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

अवसर प्राप्त करके भी निरायुध श्रीभगवान् पर उसने प्रहार नहीं किया । उसने युद्ध धर्म का पालन किया। इस तरह से वाक्य की भिन्नता होने के कारण सः पद की पुनरुक्ति नहीं है ॥४॥

**गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते । मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चाऽस्मरद्विभुः ॥५॥**

**अन्वयः**— गदायाम् अपविद्धायाम् हाहाकारे विनिर्गते, तद्धर्मं मानयामास सुनाभं च अस्मरत् ॥५॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान के हाथ से गदा के गिर जाने पर हाहाकार मच गया । श्रीभगवान् ने हिरण्याक्ष की धर्म बुद्धि की प्रशंसा की और उन्होंने चक्र का स्मरण किया ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५॥

**तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ।**
**चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां तत्रास्मासन्स्वस्ति तेऽमुं जहीति ॥६॥**

**अन्वयः**— दितिपुत्रधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानं व्यग्रचक्रं तं अतद्विदाम् खेचराणां तत्र ते स्वस्ति, अमुं जहि इति चित्रा वाचः आसन् ॥६॥

**अनुवाद**— दिति के अधम पुत्र तथा अपने मुख्य पार्षद के साथ क्रीडा करते हुए तथा चञ्चल चक्र को धारण किए हुए श्रीभगवान् से उनके प्रभाव को नहीं जानने वाले देवताओं की इस तरह की विचित्र बातें सुनायी पड़ी कि भगवन् आपका कल्याण हो; आप इसका शीघ्र वध कर दें । इसे अधिक न खेलाइये ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

व्यग्रं ससंभ्रमं चक्रं यस्य । विषज्जमानं विशेषेण सङ्गं प्राप्नुवन्तं प्रति । अतद्विदां तत्प्रभावमजानताम् । आसमन्तादासन् स्म ॥६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अपने पार्षद मुख्य हिरण्याक्ष के साथ क्रीडा कर रहे थे और उनके हाथ में व्यग्र चक्र विद्यमान था। श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानने वाले देवताओं ने श्रीभगवान् से निवेदन किया कि आप इसका वध कर दें देर न करें ॥६॥

**स तं निशाम्यात्तरथाङ्गमग्रतो व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम् ।**
**विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो रुषा स्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥७॥**

**अन्वयः**— अग्रतः आत्तरथाङ्गम् पद्मपलाशलोचनं तं व्यवस्थितं निशाम्यं विलोक्य च सः आमर्षपरिप्लुतेन्द्रियः रुषा श्वसन् स्वदन्तच्छदम् आदशत् ॥७॥

**अनुवाद**— अपने सामने चक्र धारण किए हुए कमलनयन श्रीभगवान् को तैयार देखकर हिरण्याक्ष ने उनको देखा और क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ तिलमिला उठीं वह लम्बी श्वास लेकर अपने ओष्ठों को चबा लिया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

स दैत्यस्तमात्तचक्रं निशाम्य दृष्ट्वाऽग्रतो व्यवस्थितं च विलोक्यामर्षेण क्रोधेन परिप्लुतानि क्षुभितानीन्द्रियाणि यस्य सः । आदशत् दष्टवान् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वह दैत्य हाथ में चक्र धारण किए हुए श्रीभगवान् को देखकर और युद्ध के लिए तैयार देखा और क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ तिलमिला गयीं और लम्बी श्वास लेकर उसने अपने ओष्ठों को काट लिया ॥७॥

**करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां संचक्षाणो दहन्निव । अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥८॥**

**अन्वयः**— करालदंष्ट्रः चक्षुर्भ्यां दहन्निव संचक्षाणः अभिप्लुत्य स्वगदया हत असि इति हरिम् अहनत् ॥८॥

**अनुवाद**— भयङ्कर दाँतों वाला तथा अपने नेत्रों को जलते हुए के समान देखकर वह दैत्य उछलकर अब मरे कहकर अपनी गदा से श्रीहरि पर प्रहार किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

चक्षुर्भ्यां दहन्निव संचक्षाणः पश्यन् । इवेति । वस्तुतः क्रोधभावमाह । हतोऽसि ज्ञातोऽसीति वास्तवोऽर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अपने नेत्रों से भस्म करते हुए के समान यहाँ इव शब्द के द्वारा वस्तुतः क्रोधाभाव को कहा गया है । हतोऽसि का वास्तविक अर्थ है ज्ञात हो गये ॥८॥

**पदा सव्येन तां साधो भगवान्यज्ञसूकरः । लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥९॥**

**अन्वयः**— साधो यज्ञसूकरः भगवान् शत्रोः मिषतः लीलया सव्येन पदा वातरंहसम् तम् प्राहरत्॥९॥

**अनुवाद**— हे साधु स्वभाव वाले विदुरजी यज्ञवराह भगवान् शत्रु की आँखों के सामने ही लीलापूर्वक अपने बायें पैर से उसकी वायु के समान वेग वाली गदा पर प्रहार करके गिरा दिए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

वातरंहसं वायुवेगाम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

वायु के समान वेग वाली गदा पर प्रहार किये ॥९॥

**आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि । इत्युक्तः स तदा भूयस्ताडयन्व्यनदद्भृशम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— आह च आयुधम् आधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि । इत्युक्तः सः तदा भूयः ताडयन् भृशम् व्यनदत् ॥१०॥

**अनुवाद**— भगवान् ने कहा अपना आयुध उठाओ और प्रयास करो क्योंकि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो । इस तरह से भगवान् के द्वारा कहे जाने पर उसने पुनः प्रहार किया और बहुत अधिक गर्जना किया ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

घटस्वोद्यमं कुरु । यतस्त्वं जेतुमिच्छसि ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् ने कहा पुनः प्रहार करो क्योंकि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो ॥१०॥

**तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान्समवस्थितः । जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥११॥**

**अन्वयः**— आपततीं तां वीक्ष्य स भगवान् समवस्थितः पन्नगीम् गरुत्मानिव लीलया जग्राह ॥११॥

**अनुवाद**— अपनी ओर आती हुयी उस गदा को देखकर अपनी जगह पर खड़े रहकर ही श्रीभगवान् उस गदा को बिना किसी प्रयास के उसी तरह पकड़ लिए जैसे गरुड़ किसी सर्पिणी को पकड़ लेते हैं ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥११॥

**स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः । नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥१२॥**

**अन्वयः**— स्व पौरुषे प्रतिहते हतमानो विगतप्रभः महासुरः हरिणा दीयमानां गदां नैच्छत् ॥१२॥

**अनुवाद**— अपने पौरुष को विफल हुए देखकर उस महान् असुर का गर्व विनष्ट हो गया उसकी कान्ति क्षीण हो गयी श्रीहरि के द्वारा दिए जाने पर भी वह उस गदा को नहीं लेना चाहा ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

हतोमानो गर्वो यस्य ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

उस असुर का गर्व विनष्ट हो गया ॥१२॥

**जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् । यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥१३॥**

**अन्वयः**— विप्राय अभिचरन् यथा धृतरूपाय यज्ञाय ज्वलज्ज्वलन् लोलुपम् त्रिशिखं शूलं जग्राह ॥१३॥

**अनुवाद**— जैसे कोई ब्राह्मण पर निष्फल मारण आदि अभिचार कर्म करे उसी तरह से सूकर का रूप धारण किए हुए श्रीभगवान् के लिए उसने अग्नि के समान लपलपाते हुए त्रिशूल उठाया ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

ज्वलन्यो ज्वलनस्तद्वल्लोलुपं ग्रसनव्यग्रम् । यज्ञाय विष्णुमालक्ष्य । आकर्यकरत्वे दृष्टान्तः-विप्रमुद्दिश्याभिचारं कुर्वन्यथा ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

जलती हुयी अग्नि के समान दहकता हुआ वह त्रिशूल था वह मानो श्रीभगवान् को भस्म करने के लिए व्यग्र हो; किन्तु वह श्रीभगवान् के लिए उसी तरह से व्यर्थ था जैसे किसी तत्त्वज्ञ ब्राह्मण पर मारणादि अभिचार कर्म करता है तो वह व्यर्थ हो जाता है ॥१३॥

**तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं चकासदन्तः ख उदीर्णदीधिति ।**
**चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना हरिर्यथा तार्क्ष्यपतत्रमुज्झितम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं उदीर्णदीधितिः अन्त; खे चकासत तत् हरिः निशातनेमिना चक्रेण तार्क्ष्य पतत्रम् उज्झितं हरिः यथा चिच्छेद ॥१४॥

**अनुवाद**— महाबलवान् हिरण्याक्ष के द्वारा छोड़ा गया वह ओजस्वी त्रिशूल आकाश में जाकर चमकने लगा उसको श्रीहरि ने अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्र के द्वारा उसी तरह से काट डाला जिस तरह गरुड़ के द्वारा परित्यक्त एक पङ्ख को इन्द्र ने अपने अमोध वज्र से काट डाला था ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

अन्तः खे आकाशमध्ये चकासत्प्रकाशमानम् । उदीर्णोत्कटा दीधितिर्दीप्तिर्यस्य । निशातनेमिना शितधारेण । हरिरिन्द्रो यथा तार्क्ष्यस्य पतत्रमुज्झितं चिच्छेद । देवान्विनिर्जित्य अमृतकलशं नयता गरुडेनेन्द्रप्रयुक्तवज्रस्यामोधस्य मानं दातुं पिच्छमेकं त्यक्तं तद्यथेन्द्रश्चिच्छेद छिन्नं च तद्यथा खे प्रचकाशे तद्वत्प्रकाशमानमित्यभिसन्धिः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

महाबलवान् हिरण्याक्ष के द्वारा छोड़ा हुआ वह त्रिशूल आकाश में जाकर चमकने लगा । उस त्रिशूल को श्रीभगवान् ने अपने तीव्र धार वाले चक्र से उसी तरह से काट डाला जिस तरह गरुड़ के द्वारा छोड़े गये उनके पङ्ख को इन्द्र ने अपने वज्र से काटा डाला था । एक बार अपनी माता विनता को सर्पों की माता कद्रु के दासित्व से मुक्त करने के लिए अमृत कलश लाने के लिए गरुड स्वर्ग लोक में गये और वहाँ के देवताओं को परास्त करके जब वे अमृत कलश को ला रहे थे उस समय इन्द्र ने गरुड़जी पर अपने वज्र का प्रयोग किया । चूकि वज्र अमोघ है, वह कभी विफल नहीं होता है, इसलिए गरुडजी ने अपना एक पङ्ख छोड़ दिया और इन्द ने अपने वज्र से उसे काट डाला, उसी तरह श्रीभगवान् ने उस त्रिशूल को काट डाला ॥१४॥

**वृक्णे स्वशूले बहुधाऽरिणा हरेः प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ।**
**प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना नदन्प्रहृत्यान्तरधीयतासुरः ॥१५॥**

**अन्वयः**— अरिणा स्वशूले बहुधा वृक्णे प्रवृद्धरोषः सः प्रत्येत्य हरेः विभूतिमत् उरः कठोरमुष्टिना नदन् प्रहृत्य असुरः अन्तर्धीयत् ॥१५॥

**अनुवाद**— श्रीहरि के चक्र के द्वारा अनेक टुकड़े हुए अपने त्रिशूल को देखकर हिरण्याक्ष का क्रोध बढ गया वह भगवान् के सन्निकट आकर उनके विशाल वक्षस्थल जो श्रीवत्सचिह्न से विभूषित था उस पर अपनी कठोर मुट्ठी से प्रहार करके जोर से गर्जना करके अन्तर्धान हो गया ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

अराः सन्त्यस्येत्यरि चक्रं तेन बहुधा वृक्णे छिन्ने सति प्रत्येत्याभिमुखमागत्य हरेरुरो वक्षः प्रहृत्य ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

**अराः सन्त्यस्य** इस विग्रह के अनुसार अरि शब्द चक्र का वाचक है । अपने चक्र से श्रीभगवान् ने उस त्रिशूल को काटकर अनेक टुकड़ों में कर दिया । यह देखकर क्रुद्ध हुए हिरण्याक्ष श्रीहरि के समक्ष आकर उनके श्रीवत्सचिह्न से भूषित वक्षःस्थल पर अपनी कठोर मुट्ठी से प्रहार करके गर्जना किया और अन्तर्धान हो गया ॥१५॥

**तेनेत्थमाहतः क्षत्तर्भगवानादिसूकरः । नाकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥१६॥**

**अन्वयः**— हे क्षत्तः तेन इत्थम् आहतः आदिसूकरः भगवान् स्रजा हतः द्विप इव क्वापि मनाक् न अकम्पत ॥१६॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी हिरण्याक्ष के द्वारा इस तरह से प्रहार किए जाने पर आदि वराह भगवान् अपने स्थान से टस से मस उसी तरह नहीं हुए जिस तरह फूलों की माला से हाथी पर किए गये प्रहार का कोई असर नहीं होता है ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

मनागीषदपि । क्वाप्यंशे ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

हिरण्याक्ष के उस मुष्टिप्रहार से भगवान् आदि वराह बिल्कुल टस से मस नहीं हुए ॥१६॥

**अथोरुधासृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ । यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥१७॥**

**अन्वयः**— अथ योगमायेश्वरे हरौ उरुधा मायां असृजत् यां विलोक्य त्रस्ता प्रजाः अस्य उपसंयमम् मेनिरे ॥१७॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् वह दैत्य मायापति श्रीभगवान् पर माया का प्रयोग करने लगा, उसको देखकर भयभीत प्रजाओं को लगा कि अब जगत् का प्रलय होने वाला है ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

अस्य जगतः । उपसंयमम् प्रलयम् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

**अस्य** पद के द्वारा इस जगत् का परामर्श किया गया है, और **उपसंयमम्** पद से प्रलय का । अर्थात् हिरण्याक्ष की माया को देखकर सारी प्रजायें भयभीत हो गयीं और सोचने लगीं की प्रलय हाने वाला है क्या ?॥१७॥

**प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमः पांसवमैरयन् । दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥**

**अन्वयः**— चण्डाः वायवः प्रववुः पांसवम् तमः ऐरयन् क्षेपणैः प्रहिता इव दिग्भ्यः ग्रावाणः निपेतुः ॥१८॥

**अनुवाद**— जोर से आँधी चलने लगी धूल के उड़ने से अन्धकार छा गया । क्षेपणी यन्त्र से फेंके गये के समान दिशाओं से पत्थर गिरने लगे ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

पांसुकृतं तमश्च प्रेरितवन्तः क्षेपणैर्यन्त्रैः ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

तेज आंधी के कारण धूलि के भर जाने से अन्धकार छा गया और लग रहा था जैसे क्षेपणी यन्त्र के द्वारा दिशाओं से पत्थर फेंके जा रहे हों ॥१८॥

**द्यौर्नष्टभगणाभ्रौघैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः । वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥१९॥**

**अन्वयः**— सविद्युत् स्तनयित्नुभिः पूयकेश-असृग्-विट-मूत्र-अस्थीनि-असकृत् वर्षद्भिः नष्टभगणा द्यौः जाता ॥१९॥

**अनुवाद**— बिजली की चमचमाहट और गर्जना से युक्त, बार-बार पीब, केश, रक्त, विष्टा, मूत्र तथा हड्डियों की वर्षा करने वाले मेघों से आकाश के सारे सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे छिप गये ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

नष्टो भगणो नक्षत्रसमूहो यस्याम् । अनेन दैत्यबलातिरेकाद्ब्रह्मदत्तमुहूर्तातिक्रमो गम्यते । अह्नि नक्षत्राणामसंभवात् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

आकाश के तारे आदि छिप गये। इससे दैत्य के बल के अतिरेक के कारण ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त मुहूर्त का अतिक्रमण प्रतीत होता है, क्योंकि दिन में तो तारे नहीं हो सकते हैं ॥१९॥

**गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नानायुधमुचोऽनघ । दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥२०॥**

**अन्वयः**— हे अनध ! नानायुधमुचः गिरयः प्रत्यदृश्यन्त दिग्वाससः मुक्तमूर्धजाः शूलिन्यः यातुधान्यः च प्रत्यदृश्यन्त ॥२०॥

**अनुवाद**— विदुरजी अनेक प्रकार के अस्त्रों की वर्षा करने वाले पर्वत दिखायी देने लगे तथा हाथ में त्रिशूल लिए खुले केशों वाली नङ्गी राक्षसियाँ दिखने लगीं ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

नानायुधानि मुञ्चन्तीति तथा यातुधान्यश्च प्रत्यदृश्यन्त ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

अनेक प्रकार के आयुधों की वर्षा करने वाले पर्वत तथा नङ्गी त्रिशूल लिए राक्षसियाँ दिखने लगीं ॥२०॥

**बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः । आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः ॥२१॥**

**अन्वयः**— बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः आततायिभिः, अतिवैशसाः हिंस्रा वाचः उत्सृष्टाः ॥२१॥

**अनुवाद**— पैदल घुड़सवार, रथी तथा हाथियों पर चढ़े हुए सैनिकों के साथ आततायी यक्षों एवं राक्षसों का काटो, मारो, इस प्रकार की क्रूर तथा हिंसामय शब्द सुनायी देने लगा ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

हिंसाश्छिन्धिभिन्धीत्येवंभूता अतिवैशसा अत्युग्रा वाच उत्सृष्ट इत्यत्रैव वाक्यसमाप्तिः ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

काटो, मारो इस तरह की हिंसा बहुल शब्द सुनायी देने लगा ॥२१॥

**प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयत् । सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥२२॥**

**अन्वयः**— प्रादुष्कृतानां आसुराणां मायानाम् विनाशयत् भगवान् त्रिपात् दयितम् सुदर्शनास्त्रं प्रायुंक्त ॥२३॥

**अनुवाद**— प्रकट हुयी उन आसुरी मायाओ को विनष्ट करने के लिए यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् ने अपने प्रिय सुदर्शनास्त्र का प्रयोग किया ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रादुष्कृतानामिति प्रकटिता माया विनाशयत्। **'विनाशनम्'** इति पाठे यथाश्रुतैव षष्ठी। त्रीणि सवनानि पादा यस्य। यज्ञमूर्तिरित्यर्थः। **'त्रयो अस्य पादाः'** इति श्रुतेः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

हिरण्याक्ष ने जिन मायाओं को प्रकट किया था उन सबों को विनष्ट करने के लिए। जहाँ पर विनाशनम् यह पाठभेद है वहाँ पर भी षष्ठी विभक्ति का अर्थ सम्बन्ध सामान्य ही है। त्रीणि सवनानि पादा यस्य अर्थात् प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों सवन ही जिनका चरण है। यज्ञों में ये तीनों सवन होते हैं। अतएव यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् को त्रिपात् कहते हैं। श्रुति भी कहती है त्रयः अस्य पादाः ॥२३॥

**विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाव्रज्य केशवम् । रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥२४॥**

**अन्वयः**— स्वमायासु विनष्टासु केशवम् आव्रज्य रुषा उपगूहमानः अमूं बहि अवस्थितं ददृशे ॥२४॥

**अनुवाद**— अपनी मायाओं के विनष्ट हो जाने पर हिरण्याक्ष पुनः भगवान् केशव के पास आकर क्रोध पूर्वक अपनी दोनों भुजाओं के बीच दबाकर रगड़ते हुए श्रीभगवान् को उसने देखा कि भगवान् उसकी दोनों भुजाओं से बाहर खड़े हैं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

उपगूहमानो वाह्वोरन्तर्निधाय सङ्घट्टयन् ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

उपगूहमानः पद का अर्थ है कि अपनी दोनों भुजाओं के बीच में रखकर उनको रगड़ते हुए । उसने देखा कि भगवान् जो उसकी दोनों भुजाओं से बाहर खड़े हैं ॥२४॥

**तं मुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं व्रजसारैरधोक्षजः । करेण कर्णमूलेऽहन्यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥२५॥**

**अन्वयः**— वज्रसारैः मुष्टिभिः विनिघ्नन्तं तं अधोक्षजः त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः यथा करेण कर्णमूले अहन् ॥२५॥

**अनुवाद**— जब वह हिरण्याक्ष वज्र के समान मुक्कों से मार रहा था तो भगवान् ने उसकी कनपटी पर उस तरह से अपने थप्पड़ से प्रहार किया जिस तरह देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर पर प्रहार किया था ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

अहन् जघान । त्वाष्ट्रं वृत्रम् । मरुत्पतिरिन्द्रः ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

अहन् का अर्थ है मारा । त्वाष्ट्र वृत्रासुर का नाम है । मरुत्पति इन्द्र का नाम है । हिरण्याक्ष तो श्रीभगवान् को अपने व्रज के समान मुक्कों से मार रहा था और भगवान् ने उसकी कनपटी पर थप्पड़ से मारा ॥२५॥

**स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः ।**
**विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहोऽपतद्यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्वता ॥२६॥**

**अन्वयः**— विश्वजिता अवज्ञया आहतः परिभ्रमद् गात्रः उदस्तलोचनः विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहः नभस्वता लुलितः नगेन्द्रो यथा अपतत् ॥२६॥

**अनुवाद**— यद्यपि श्रीभगवान् उसको उपेक्षा पूर्वक ही थप्पड़ से मारे किन्तु उसकी चोट से उसका शरीर घूमने लगा, उसके दोनों नेत्र बाहर निकल आये, उसके हाथ, पैर तथा केश विखर गये और वह निष्प्राण होकर पृथिवी पर उसी तरह गर पड़ा जिस तरह आँधी के द्वारा उखाड़ा गया महान् वृक्ष पृथिवी पर गिर पड़ता है ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

परितो भ्रमद्गात्रं शरीरं यस्य । उदस्ते बहिर्निर्गते लोचने यस्य । विशीर्णा बाह्वादयो यस्य । नगेन्द्रो महाद्रुमः । लुलित उन्मूलितः । नभस्वता वायुना ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विश्वविजयी है । उन्होंने उपेक्षा पूर्वक ही हिरण्याक्ष को थप्पड़ से मारा किन्तु उसके चोट से हिरण्याक्ष का शरीर घूमने लगा, उसके दोनों नेत्र बाहर निकल आये । उसकी भुजा इत्यादि विशीर्ण हो गये और वह वायु के द्वारा उखाड़े गये महावृक्ष के समान निष्प्राण होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । नभस्वत् वायु को कहते

हैं । लुलित का अर्थ है उखाड़ा गया । नगेन्द्र महावृक्ष का नाम है । उदस्तलोचनः का विग्रह है । उदस्ते बहिर्गते लोचने यस्य ॥२६॥

**क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ।**
**अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो इमां कोऽनुलभेत संस्थितिम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— क्षितौ शयानम् अकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्र परिदष्टदच्छदम् तम् वीक्ष्य आगता अजादयः शशंसुः अहो इमां संस्थितिम् को नु लभेत ॥२७॥

**अनुवाद**— पृथिवी पर पड़े हुए हिरण्याक्ष का तेज अब भी बना हुआ था । वह अपने भयङ्कर दाँतों से अपने ओष्ठों को चबाये हुए था । इस प्रकार के हिरण्याक्ष को देखकर आये हुए ब्रह्मा आदि ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा— इस तरह की मृत्यु किसे प्राप्त हो सकती हैं ?॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

संस्थितिं मृत्युम् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

संस्थिति का अर्थ मृत्यु है ॥२७॥

**यं योगिनो योगसमाधिना रहो ध्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया ।**
**तस्यैष दैत्यऋषभः पदा हतो मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥२८॥**

**अन्वयः**— योगिनः रहः असतः लिङ्गात् मुमुक्षया यं योगसमाधिना ध्यायन्ति, तस्य पदाहतः एष दैत्यऋषभः मुखं प्रपश्यन् तनुम् उत्ससर्ज ह ॥२८॥

**अनुवाद**— अपनी मिथ्या उपाधि से मुक्ति प्राप्त करने के लिए योगिजन जिनका समाधियोग के द्वारा ध्यान करते हैं, उन्हीं के चरण प्रहार से मारा गया यह दैत्य उन्हीं श्रीभगवान् के मुख को देखते हुए अपने शरीर का परित्याग किया ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

असत आरोपिताल्लिङ्गाल्लिङ्गशरीरान्मोक्तुमिच्छया । वराहस्य पूर्वपादयोरेव करत्वात्करेणाहन्निति पदा हत इति चाविरुद्धम् ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

लिङ्ग शरीर चूकि आरोपित है अतएव मिथ्या है, उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए योगिजन श्रीभगवान् का ध्यान करते हैं । उन्हीं भगवान के चरणों के प्रहार से मरा था हिरण्याक्ष । यदि कोई कहे कि भगवान् ने तो अपने हाथ से हिरण्याक्ष को मारा था चरण से नहीं तो ऐसी बात नहीं है । श्रीभगवान् वाराहावतार में थे उनका पूर्वपद ही हाथ का काम करता था इसीलिए पीछे के पैरों से मारे गये हिरण्याक्ष को कराहत कहा गया है ॥२८॥

**एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् । पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येतेह जन्मभिः ॥२९॥**

**अन्वयः**— एतौ तौ अस्य पार्षदौ शापात् सद्गति यातौ पुनः कतिपयैः जन्मभिः स्थानं प्रपत्स्येते ॥२९॥

**अनुवाद**— ये दोनों श्रीभगवान् के पार्षद हैं शाप के कारण इन दोनों को अधोगति की प्राप्ति हुयी । अब कुछ जन्मों में ये पुनः अपने स्थान को प्राप्त कर लेंगे ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२९॥

देवा ऊचु:

**नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ।**
**दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुंतुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥३०॥**

**अन्वयः**— अखिलयज्ञतन्तवे ते नमो नमः स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये । अयं जगताम् अरुन्तुदः दिष्ट्या हतः हे ईश त्वत्पादभक्त्या वयम् निर्वृताः ॥३०॥

**देवताओं ने कहा**

**अनुवाद**— हे प्रभो सम्पूर्ण यज्ञों का विस्तार करने वाले आपको बारम्बार नमस्कार है । संसार की रक्षा करने के लिए आप शुद्ध सत्त्वमय मङ्गल विग्रह धारण करते है । भाग्यवशात् संसार को कष्ट देने वाला यह हिरण्याक्ष मारा गया । आपके चरणों की भक्ति करने के कारण ही हमलोगों को सुख शान्ति की प्राप्ति हुई है ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

अखिलयज्ञानां तन्तवे विस्ताराय कारणायेति वा । अरुंतुदो मर्मभेत्ता ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

आप सम्पूर्ण यज्ञों का विस्तार करने वाले होने से उनके कारण स्वरूप है । अरुन्तुद का अर्थ मर्मस्थल का भेदन करने वाला ॥३०॥

मैत्रेय उवाच

**एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं स सादयित्वा हरिरादिसूकरः ।**
**जगाम लोकं स्वमखण्डितोत्सवं समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥३१॥**

**अन्वयः**— एवम् असह्यविक्रमं हिरण्याक्षं सादयित्वा आदिसूकरः हरिः पुष्करविष्टरादिभिः समीडितः अखण्डितोत्सवं लोकं जगाम ॥३१॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— विदुरजी महापराक्रमी हिरण्याक्ष का इस प्रकार से वध करके आदि वाराह श्रीहरि ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए अपने उस लोक में चले गये जहाँ पर निरन्तर अखण्ड रूप से महोत्सव हुआ करता है॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

सादयित्वा हत्वेत्यर्थः । पुष्करविष्टरादिभिर्ब्रह्मादिभिः संस्तुतः ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

मूल के सादयित्वा पद का अर्थ है मारकर पुष्करविष्टर ब्रह्माजी का नाम है । ब्रह्माजी के साथ जो देवता और देवगण थे वे श्रीभगवान् के अपने लोक में जाते समय उनकी स्तुति कर रहे थे ॥३१॥

**मया यथाऽनूक्तमवादि ते हरेः कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ।**
**यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः ॥३२॥**

**अन्वयः**— हे सुमित्र ! मया कृतावतारस्य हरेः चेष्टितम् यथा च उदार विक्रमः हिरयाक्ष महामृधे यथा क्रीडनवत् निराकृतः यथा अनूक्तम् त अवादि ॥३२॥

**अनुवाद**— हे मित्र विदुर ! वराहावतार धारण करके श्रीभगवान् ने जिन लीलाओं को किया तथा महापराक्रमी

हिरण्याक्ष को उन्होंने जैसे महासंग्राम में खिलौने के समान मार दिया उसे मैंने अपने गुरुजनों से जैसा सुना था उसी तरह से आपको सुना दिया ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

यथाऽनूक्तं गुरूक्तिमनतिक्रम्य मयाऽवादि तव कथितम् । हे सुमित्र । यथा येन प्रकारेण ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मैत्रेयजी ने विदुरजी को सुमित्र शब्द से सम्बोधित किया है । उन्होंने कहा कि जैसा मैंने अपने गुरुजनों से सुना है वैसा आपको वराह भगवान् की चेष्टाओं को तथा हिरण्याक्ष वध को सुना दिया ।।३२।।

सूत उवाच

**इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगवत्कथाम् । क्षत्तानन्दं परं लेभे महाभागवतो द्विज ।।३३।।**

**अन्वयः**— हे द्विज ! इति कौषारवाख्यातां भगवत् कथां आश्रुत्य महाभागवतः क्षत्ता परं आनन्दं लेभे ।।३३।।

### सूतजी ने कहा

**अनुवाद**— हे शौनकजी इस तरह से मैत्रेयजी द्वारा कही गयी वराह भगवान् की कथा को सुनकर महाभागवत विदुरजी को परम् आनन्द की प्राप्ति हुयी ।।३३।।

### भावार्थ दीपिका

हे द्विज शौनक ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में द्विज शब्द से महर्षि शौनक को सूतजी ने सम्बोधित किया है ।।३३।।

**अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् । उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ।।३४।।**

**अन्वयः**— अन्येषां पुण्यश्लोकानाम् उद्‌दामयशसां सताम् उपश्रुत्य मोदो भवेत् किं पुनः श्रीवत्साङ्कस्य ।।३४।।

**अनुवाद**— जब दूसरे भी पवित्र कीर्ति वाले महापुरुषों की कथाओं को सुनकर आनन्द की प्राप्ति होती है। तो फिर श्रीवत्स चिह्न से मण्डित श्रीभगवान् की कथा को सुनकर होने वाले आनन्द के विषय में क्या कहना हैं ।।३४।।

### भावार्थ दीपिका

कथामुपश्रुत्य ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि जब दूसरे भी पवित्र कीर्ति महापुरुषों की कथा को सुनकर आनन्द की प्राप्ति होती है तो फिर श्रीभगवान् की कथा को सुनकर होने वाले आनन्द की प्राप्ति के विषय में क्या कहना हैं ।।३४।।

**यो गजेन्द्रं झषग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजम् । क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद्द्रुतम् ।।३५।।**

**अन्वयः**— यः झषग्रस्त— चरणाम्बुजम् ध्यायन्तं गजेन्द्रं क्रोशन्तीनां केरणूनाम् द्रुतम् कृच्छ्रतः अमोचयत् ।।३५।।

**अनुवाद**— घड़ियाल के द्वारा पकड़ लिए जाने पर गजेन्द्र श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान कर रहा था और हस्तिनियाँ दुःख से व्याकुल होकर चिग्घाड़ रही थी उस समय जो भगवान् शीघ्र ही गजेन्द्र के कष्ट से मुक्त कर दिए ।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

भक्तिमात्रेण पशूनामपि सुलभोऽन्यथा देवानामपि दुर्लभ इति तत्कथाश्रवणे कस्यानन्दो न स्यादित्याह-य इति द्वाभ्याम्। झषो ग्राहः । क्रोशन्तीनां सतीनामिति कृपालुत्वमुक्तम् । सङ्कटादमोचयत् ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् केवल भक्तिमात्र से पशुओं के लिए भी सुलभ हो जाते हैं अन्यथा देवताओं के भी लिए वे दुर्लभ है । ऐसे श्रीभगवान् की कथा सुनने से किसको आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी ? इस बात को **यो गजेन्द इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं । झष घड़ियाल को कहते हैं । गजेन्द्र को ग्राहग्रस्त देखमकर उसकी हस्तिनयाँ दुःखी होकर चिग्घाड़ रही थीं । उस गजेन्द्र पर श्रीभगवान् कृपा किए और उसको सङ्कट से मुक्त किए ।।३५।।

**तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः । कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ।।३६।।**

**अन्वयः**— ऋजुभिः अनन्यशरणैः नृभिः सुखाराध्यम् असाधुभिः दुराराध्यम् कः कृतज्ञः न सेवेत ।।३६।।

**अनुवाद**— जो संसार के लोगों से निराश होकर एकमात्र श्रीभगवान् को ही अपना रक्षक मानकर उनकी शरणागति करते हैं ऐसे ऋजु बुद्धि वाले मनुष्यों से भगवान् आसानी से प्रसन्न हो जाते हैं और दुष्ट पुरुषों के लिए जो परमात्मा दुराराध्य हैं, ऐसे श्रीभगवान् की आराधना कौन कृतज्ञ पुरुष नहीं करेगा ?।।३६।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।३६।।

**यो वै हिरण्याक्षवधं महाद्भुतं विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ।**
**श्रृणोति गायत्यनुमोदतेऽञ्जसा विमुच्यते ब्रह्मवधादपि द्विजाः ।।३७।।**

**अन्वयः**— हे द्विजाः ! यो वै कारणसूकरात्मनः हिरण्याक्षवधं महद्भुतं विक्रीडितम् शृणोति, गायति, अनुमोदते अञ्जसा ब्रह्मवधादपि विमुच्यते ।।३७।।

**अनुवाद**— हे महर्षियों ! जो मनुष्य आदिवाराह भगवान् के अत्यन्त अद्भुत हिरण्याक्षवध नामक क्रीडा को सुनता है, गायन करता है और उसका अनुमोदन करता है वह आसानी से ब्रह्महत्याजन्य दोष से भी मुक्त हो जाता है ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

कारणेन पृथिव्युद्धरणादिना सूकररूपस्य हरेः ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

पृथिवी आदि का उद्धार करने के लिए वराहरूप धारण करने वाले श्रीभगवान् की यह हिरण्याक्ष वध एक अद्भुत क्रीडा थी । इसको सुनने वाला, कहने वाला तथा इसका समर्थन करने वाला मनुष्य ब्रह्महत्याजन्य दोष से भी मुक्त हो जाता है ।।३७।।

**एतन्महापुण्यमलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ।**
**प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग श्रृण्वताम् ।।३८।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे हिरण्याक्षवधो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

**अन्वयः**— हे अङ्ग एतत् महापुण्यम् अलं पवित्रम् धन्यं यशस्यम् आयुराशिषाम् पदम् युद्धिप्राणेन्द्रियाणां शौर्यवर्धनं श्रृण्वताम् अन्ते नारायणो गतिः ।।३८।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् का यह चरित्र अत्यन्त पुण्यमय पवित्र धन्य, यश तथा आयु को प्रदान करने वाला

युद्ध में प्राणों और इन्द्रियों के शौर्य को बढ़ाने वाला है। इसको सुनने वाले लोगों को अन्त में भगवान् नारायण की प्राप्ति होती है ॥३८॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के हिरण्याक्षवध नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।**

**भावार्थ दीपिका**

एतद्धरेर्विक्रीडितं शृण्वतामन्ते श्रीनारायणो गतिर्भवति। महापुण्यं स्वर्गादिप्रदम्। अलं पवित्रमतिशयेन शोधकम्। धन्यं धनावहम्। यशस्यं कीर्तिकरम्। आयुषश्चाशिषां च पदं स्थानं परित्राणं वा प्राणानामिन्द्रियाणां च पदम्। अङ्ग हे विदुर।।३८।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।**

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की यह हिरण्याक्ष वध की जो लीला है, इसको सुनने वाले लोगों को अन्त में भगवान् नारायण की प्राप्ति होती है। यह आख्यान स्वर्गादि लोकों को प्रदान करने वाला है। यह अत्यन्त स्वच्छ बना देने वाला है। धन्य है अर्थात् धन प्रदान करने वाला है, यश प्रदान करने वाला है आयु को बढ़ाने वाला और आशिषाम् (कामनाओं) को पूर्ण करने वाला है। यह प्राणों तथा इन्द्रियों का पद स्थान है। इस श्लोक मे अङ्गशब्द से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है ॥३८॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१९।।**

# बीसवाँ अध्याय

## ब्रह्माजी द्वारा की गयी अनेक प्रकार की सृष्टियों का वर्णन

शौनक उवाच

**महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायंभुवो मनुः । कान्यन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥१॥**

अन्वयः— हे सौते ! महीं प्रतिष्ठाम् अध्यस्य स्वायम्भुवमनुः अवरजन्मनाम् मार्गाय कानि द्वाराणि अन्वतिष्ठत् ॥१॥

### शौनक महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— हे सूतजी ! पृथिवी रूपी आधार को प्राप्त करके स्वायम्भुव मनु ने अपने पश्चात् उत्पन्न होने वाली सन्तान को उत्पन्न करने के लिए किन उपायों को किया ?॥१॥

### भावार्थ दीपिका

विंशे बराहजन्मदिव्यवधानादथादितः । सर्गोऽनुस्मार्यते वक्तुमन्वयं प्रस्तुतं मनोः ॥१॥ प्रतिष्ठां स्थानम् । अध्यस्य प्राप्य। सौते सूतस्य रोमहर्षणस्य पुत्र । अवरमर्वाचीनं जन्म येषां तेषां ईश्वरे लीनानां मार्गाय निर्गमाय कानि द्वाराणि कृतवान्। अर्वाचीनान्प्राणिनः कैरुपायैः सृष्टवानित्यर्थः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

बीच में वराह जन्म आदि की कथा का व्यवधान आ जाने के कारण बीसवें अध्याय में प्रस्तुत मनु की सन्तान का वर्णन करने के लिए सृष्टि का स्मरण कराये हैं ॥१॥ **प्रतिष्ठा** का अर्थ आधार है, **अध्यस्य** अर्थात्

प्राप्त करके । **सौते** पद के द्वारा रोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा को सम्बोधित किया गया है । शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा कि पृथिवी रूपी आधार को प्राप्त करके, स्वायम्भुव मनु के पश्चात् जन्म लेने वाले जो प्रलय काल में परमात्मा में लीन हो गये थे, उन जीवों को उत्पन्न करने के लिए स्वायम्भुव मनु ने किन उपायों को किया॥१॥

**क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकान्तिकः सुहृत् । यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥२॥**

**अन्वयः**— क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्य ऐकान्तिकः सुहृत् यः कृष्णे अघवान् इति सापत्यम् अग्रजं तत्याज ॥२॥

**अनुवाद**— विदुरजी महान् भगवद्भक्त और उनके सुहृद् थे इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाले अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को उनके पुत्रों के साथ वे त्याग दिए ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

विदुरमैत्रेयसंवादेनैवैतज्ज्ञास्यत इति तमेव संवादं प्रष्टुमाह- क्षत्तेति पञ्चभिः । श्रीकृष्णसुहृत्त्वे हेतुः- य इति । दुर्योधनादिभिरपत्यैः सहितमग्रजं धृराष्ट्रमधवान्कृतापराध इति हेतोः श्रीकृष्णोक्तमन्नानादरात् यः तत्याज ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि इस बात को विदुर मैत्रेय संवाद के द्वारा ही जाना जा सकता है, अतएव उस संवाद को ही पूछने के लिए **क्षत्ता० इत्यादि** पाञ्च श्लोकों से कहते हैं । **श्रीकृष्णसुहृत्त्वे० इत्यादि-** विदुरजी भगवान् श्रीकृष्ण के सुहृद् थे उसका कारण बतलाते हुए वे कहते हैं कि धृतराष्ट्र भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करते थे अतएव विदुरजी ने धृतराष्ट्र को और उनके पुत्रों को भी त्याग दिया । क्योंकि धृतराष्ट्र ने भगवान् श्रीकृष्ण की बातों का अनादर कर दिया था ॥२॥

**द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः । सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥३॥**

**अन्वयः**— द्वैपायनात् अनवरः महित्वे तस्य देहजः सर्वात्मना कृष्णं श्रितः तत्परान् च अनुव्रतः ॥३॥

**अनुवाद**— वे कृष्ण द्वैपायन के पुत्र थे और महिमा में वे किसी भी प्रकार से कम नही थे । वे हर प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रित थे और भगवान् कृष्ण के भक्तों के अनुगामी थे ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

अनवरोऽन्यूनः । महित्वे महिम्नि ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

अनवर अर्थात् समान, महित्वे अर्थात् महिमा के विषय में । विदुरजी महर्षि द्वैपायन के ही पुत्र थे और उनकी महिमा भी उनके ही समान थी ॥३॥

**किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया । उपगम्य कुशावर्त आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥**

**अन्वयः**— तीर्थ सेवया विरजाः कुशावर्ते आसीनम् तत्त्ववित्तमम् मैत्रेयम् उपगम्य किम् अन्वपृच्छत् ॥४॥

**अनुवाद**— तीर्थों का सेवन करने के कारण उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था, कुशावर्त (हरिद्वार) में बैठे हुए तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ मैत्रेयजी के पास जाकर उन्होंने क्या पूछा ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

कुशावर्ते गङ्गाद्वारे ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

हरिद्वार का ही नाम कुशावर्त और गङ्गाद्वार है ॥४॥

**तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः । आपो गाङ्गा इवाघघ्नीर्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ॥५॥**

**अन्वयः**— हे सूत ! तयोः संवदतोः गाङ्गाः आपः इव अघघ्नीः हरेः पादाम्बुजाश्रयाः अमलाः हि कथाः प्रवृत्ताः ॥५॥

**अनुवाद**— हे सूतजी उन दोनों के संवाद में पापों को विनष्ट करने वाली गङ्गाजी के जल के ही समान श्रीभगवान् के चरणों से सम्बन्ध रखने वाली निर्मल कथाएँ अवश्य हुयी होंगी ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

यत्किमपि पृच्छतु किं तवेति चेत्तत्राह-तयोरिति । अघघ्नीरघघ्न्यः नूनं कथाः प्रवृत्ताः ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि वे चाहे जो कुछ भी पूछे हों उससे आपको क्या लेना-देना है, तो इसका उत्तर है कि उन दोनों के संवाद के समय श्रीगवान् के चरणों से सम्बन्ध रखने वाली पापों को विनष्ट करने वाली कथायें अवश्य हुयी होंगी जिस तरह भगवान् के चरणों से सम्वनध रखने वाली गङ्गाजी का जल पापों का विनाश करने वाला है, उसी तरह श्रीभगवान् के चरणों से सम्बन्ध रखने वाली कथाएँ भी पापों का विनाश करने वाली हैं ॥५॥

**ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः । रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिबन् ॥६॥**

**अन्वयः**— ते भद्रं कीर्तन्योदारकर्मणः ताः कथाः नः वर्णय कः न रसज्ञः हरिलीलामृतं पिबन् तृप्येत् ॥६॥

**अनुवाद**— सूतजी आपका मङ्गल हो, उदार चरित्र वाले श्रीहरि के कर्मों से सम्बन्ध रखने वाली उन कथाओं को आप हमलोगों को सुनाइये । कौन ऐसा रसज्ञ होगा जो श्रीहरि के लीलामृत का पान करने से तृप्त हो जायेगा ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

कीर्तन्यानि कीर्तनार्हाण्युदाराणि कर्माणि यस्य हरेः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के जितने भी चरित हैं वे सबके सब कीर्तन करने योग्य और औदार्यगुण सम्पन्न हैं ॥६॥

**एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः । भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥७॥**

**अन्वयः**— एवम् नैमिषायनैः ऋषिभिः पृष्टः उग्रश्रवाः भगवति अर्पिताध्यात्मः श्रूयतामिति तान् आह ॥७॥

**अनुवाद**— इस तरह से नैमिषारण्य में रहने वाले ऋषियों के द्वारा पूछे जाने पर उग्रश्रवा सूत श्रीभगवान् ने अपने चित्त को लगाकर कहा कि आप लोग सुनें ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

एवमिति व्यासवाक्यम् । उग्रश्रवा रोमहर्षणपुत्र । नैमिषमयनमाश्रयो येषाम् अर्पितमध्यात्मं मनो येन ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

**एवम् इत्यादि** यह श्लोक व्यासजी का वाक्य है । रोमहर्षण सूत के पुत्र थे उग्रश्रवा सूत । नैमिषायनैः पद का अर्थ है नैमिषारण्य में रहने वाले, भगवत्यर्पिताध्यात्म श्रीभगवान् में अपने चित्त को लगाने वाले । अर्थात् व्यासजी ने बतलाया कि नैमिषारण्य में रहने वाले ऋषियों के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर उग्रश्रवा सूत ने श्रीभगवान् में अपने मन को लगाकर कहा कि आपलोग सुनिये ॥७॥

सूत उवाच

**हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ।**
**लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं संजातहर्षो मुनिमाह भारतः ॥८॥**

**अन्वयः**— स्वमायया धृतक्रोडतनोः हरे रसातलात् गोरुद्धरणं अवज्ञया हिरण्याक्षहतं लीलां निशम्य संजातहर्षः भारतः मुनिमाह ॥८॥

### सूतजी ने कहा

**अनुवाद**— अपनी माया के द्वारा सूकर शरीर धारण करने वाले श्रीहरि की रसातल से भूमि के उद्धार की तथा तिरस्कार पूर्वक हिरण्याक्ष के वध की लीला को सुनकर विदुरजी को बहुत अधिक प्रसन्नता हुयी और उन्होंने मैत्रेयजी से कहा ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

गोरुद्धरणं लीलां हिरण्याक्षं चावज्ञया हतं निशम्य । भारतो विदुरः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

वे जब मैत्रेय महर्षि के मुख से सुने कि श्रीगवान् ने अपनी माया से अपना सूकर का शरीर बना लिया और उन्होंने लीला करते हुए पृथिवी का रसातल से उद्धार किया और तिरस्कार पूर्वक हिरण्याक्ष का वध किया। यह सुनकर उनको बड़ी ही प्रसन्नता हुयी और उन्होंने पुनः महर्षि मैत्रेय से पूछा ॥८॥

विदुर उवाच

**प्रजापतिपतिः सृष्टवा प्रजासर्गे प्रजापतीन् । किमारभत मे ब्रह्मन् प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥९॥**

**अन्वयः**— हे अव्यक्त मार्गवित् ब्रह्मन् प्रजासर्गे प्रजापतिपतिः प्रजापतीन् सृष्ट्वा किमारभत मे प्रब्रूहि ॥९॥

**अनुवाद**— हे परोक्ष विषयों को भी जानने वाले ब्रह्मन् प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी ने मरीचि आदि प्रजापतियों की सृष्टि करके प्रजासर्ग में सृष्टि को बढ़ाने के लिए क्या किया ? यह मुझे आप बतलायें ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

यस्मात्त्वमव्यक्तमार्गवित् । ब्रह्मणो वा विशेषणम् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने मैत्रेयजी को अव्यक्त मार्गवित् कहा है । अर्थात् आप श्रीभगवान् की प्राप्ति के मार्ग को जानते हैं । और हमलोगों को अज्ञात वस्तु को भी आप जानते हैं । यह अव्यक्त मार्गवित् ब्रह्माजी का विशेषण होगा तो अर्थ होगा कि ब्रह्मप्राप्ति के मार्ग को जानने वाले ॥९॥

**ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायंभुवो मनुः । ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥१०॥**

**अन्वयः**— ये मरीच्यादयः विप्राः यः तु स्वायम्भुवः मनुः ते वै ब्रह्मणः आदेशात् कथम् एतद् अभावयन् ॥१०॥

**अनुवाद**— मरीचि आदि मुनीश्वरों ने तथा स्वायम्भुव मनु ने ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके किस प्रकार से सृष्टि को बढ़ाने का काम किए ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

एतज्जगत् । अभावयन्नुत्पादयामासुः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

एतदभवायन् का अर्थ कि इस जगत् को उन लोगों ने कैसे उत्पन्न किया ?॥१०॥

**सद्वितीयाः किमसृजन् स्वतन्त्रा उत कर्मसु । आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥११॥**

**अन्वयः**— सद्वितीयाः किम् असृजन् ? उत कर्मसुस्वतंत्राः ? आहोस्वित् सर्वे संहताः इदं समकल्पयन् स्म ॥११॥

**अनुवाद**— क्या वे लोग पत्नियों का सहारा लेकर इस जगत् की सृष्टि किये अथवा अपने-अपने कर्म में स्वतंत्र रहकर अथवा सबों ने एक साथ मिलकर इस जगत् की सृष्टि की ?॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

सद्वितीयाः सभार्याः । स्वतन्त्रा भार्यानपेक्षाः कर्मसु प्रजासर्गादिषु । संहताः परस्परापेक्षाः । इदं जगत् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

अपनी पत्नियों के साथ मिलकर इस जगत् की सृष्टि किये ? या पत्नी निरपेक्ष रहकर अपने-अपने कर्म में स्वतंत्र रहकर ? या सबों ने एक साथ मिलकर इस जगत् की सृष्टि की ?॥११॥

मैत्रेय उवाच

**दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च । जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद्गुणत्रयात् ॥१२॥**

**अन्वयः**— दुर्वितर्क्येण दैवेन परेण अनिमिषेण च जातक्षोभात् भगवतः गुणत्रयात् महान् आसीत् ॥१२॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— विदुरजी जिसकी गति को जानना अत्यन्त कठिन है उस दैव (जीवादृष्ट) प्रकृति के नियन्ता पुरुष तथा काल इन तीन हेतुओं से तथा श्रीभगवान् के सन्निधान से त्रिगुणात्मिका प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उससे महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुयी ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मा किमारभतेति प्रश्नस्य यक्षादीन् सृष्टवानित्युत्तरं वक्तुं पूर्वोक्तां सृष्टिमनुस्तारयति-दैवेनेति सप्तभिः । मन्वादिप्रश्नानां तूत्तराध्यायमारभ्योत्तरं भविष्यति । दुर्वितर्क्येण दैवेन जीवादृष्टेन, परेण प्रकृत्यधिष्ठात्रा महापुरुषेणानिमिषेण कालेन च हेतुना भगवतो निर्विकाराज्जातक्षोभं यद्गुणत्रयं प्रधानं तस्मान्महानासीत् । तदुक्तं तन्त्रे **विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः । प्रथमं महतः स्त्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते ।'** इति ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

विदुरजी ने यह जो पूछा है कि सृष्टि को बढाने के लिए ब्रह्माजी ने क्या किया ? इस प्रश्न का उत्तर है कि उन्होंने यक्ष इत्यादि की सृष्टि की, इस उत्तर को बतलाने के लिए वे पूर्ववर्णित सृष्टि को पुनः **दैवेन इत्यादि** सात श्लोकों से याद दिलाते हैं । मनु आदि के विषय में जो उन्होंने प्रश्न किया है उसका उत्तर तो इस अध्याय के पश्चात् वाले अध्याय से दिया जायेगा । जीवों का अदृष्ट दुर्वितर्क्य है, उसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, प्रकृति के नियामक महापुरुष और काल इन तीन कारणों से निर्विकार श्रीभगवान् के सान्निधान से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उससे त्रिगुणात्मिका प्रकृति से महान् की उत्पत्ति हुयी । इसी बात को विष्णुतन्त्र में कहा भी गया है **विष्णोस्तुत्रीणि० इत्यादि** अर्थात् भगवान् विष्णु के तीन रूप हैं । उन तीनों को पुरुष कहा गया है। पहला महत्तत्त्व की सृष्टि करने वाला है, दूसरा रूप ब्रह्माण्ड में स्थित है और तीसरा रूप सभी जीवों में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है । उन तीनों रूपों को जानने वाला संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥१२॥

**रजःप्रधानान्महतस्त्रिलिङ्गो दैवचोदितात् । जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पञ्चशः ॥१३॥**

**अन्वयः**— दैवचोदितात् रजः प्रधानात् महतः त्रिलिङ्गः, जातः भूतादिः वियदादीनि पञ्चशः ससर्ज ॥१३॥

**अनुवाद**— दैव की प्रेरणा से प्रेरित रज:प्रधान महत्तत्त्व से सात्त्विक, राजस एवं तामस ये तीन प्रकार के अहङ्कार उत्पन्न हुए और उसने पाँच तत्त्वों के पाँच वर्गों को उत्पन्न किया ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

महतो जातो भूतादिरहंकारस्त्रिलिङ्गस्त्रिगुणः । रजःप्रधानादिति स्वतः सत्त्वप्रधानस्यापि महतोऽहंकारोत्पत्तिकाले कार्यानुरूपं रजःप्रधानत्वं भवतीति भावः । पञ्चशः तन्मात्राणि महाभूतानि ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि तत्तद्देवताश्चेति पञ्च पञ्च ससर्जेत्यर्थः ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

उस महान् से उत्पन्न अहङ्कार त्रिगुणात्मक हुआ । सात्त्विक, राजस एवं तामस । यद्यपि महत्तत्त्व स्वाभाविक रूप से सत्त्व प्रधान है फिर भी अहङ्कार की उत्पत्ति के समय वह रजः प्रधान हो जाता है । उस अहङ्कार ने पाँच-पाँच के वर्गों की सृष्टि की । वे हैं पञ्चतन्मात्र, पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ पञ्च कर्मेन्द्रियाँ और उनके पाँच अधिष्ठातृ देवता ॥१३॥

**तानि चैकैकशः स्त्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् । संहत्य दैवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥१४॥**

**अन्वयः**— तानि च एकैकशः भौतिकम् स्रष्टुम् असमर्थानि दैव योगेन संहत्य हैमम् अण्डम् अवासृजन् ॥१४॥

**अनुवाद**— वे प्रत्येक अलग-अलग रहकर ब्रह्माण्ड की रचना करने में असमर्थ थे दैवयोग से परमात्मा की शक्ति से एक साथ मिलकर वे सुवर्ण के समान वर्ण वाले ब्रह्माण्ड की रचना किए ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

भौतिकं हैममण्डमेकैकशः प्रत्येकं स्त्रष्टुमसमर्थानि सन्ति संहत्य ससृजुः ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

वे प्रत्येक अलग-अलग रहकर बह्माण्ड की रचना करने में असमर्थ थे अतएव परमात्मा की शक्ति से प्रेरित होकर परस्पर में एक दूसरे से मिल गये और ब्रह्माण्ड की सृष्टि किए ॥१४॥

**सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः । साग्रं वै वर्षसाहस्त्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥१५॥**

**अन्वयः**— सः निरात्मकः आण्डकोशः अब्धिसलिले साग्रं वर्षसाहस्त्रम् अशयिष्टतम् ईश्वरः अवात्सीत् ॥१५॥

**अनुवाद**— वह चैतन्य रहित ब्रह्माण्ड एकार्णव के जल में हजार वर्ष से भी अधिक समय तक पड़ा रहा उसके पश्चात् उसमें श्रीभगवान् प्रवेश किए ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्ववात्सीदधिष्ठितवान् ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रवेश किए ॥१५॥

**तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्त्रार्कोरुदीधिति । सर्वजीवनिकायैको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥१६॥**

**अन्वयः**— तस्य नाभेः सहस्त्रार्कोरुदीधिति सर्वजीव निकायौकः पदम् अभूत् यत्र स्वयम् स्वराट् अभूत् ॥१६॥

**अनुवाद**— उन श्रीभगवान् की नाभि से हजारों सूर्यों के समान देदीप्यमान तथा सभी जीव समूह के आश्रय भूत एक कमल पैदा हुआ । उसी से स्वयं ब्रह्माजी का भी अविर्भाव हुआ ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

सहस्त्रार्कार्णामिवोरुर्दीधितिर्यस्य तत् । सर्वजीवनिकायानामोकः स्थानं पद्मम् । स्वराट् ब्रह्मा ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

उस कमल की कान्ति हजारों सूर्य के समान अत्यधिक थी वह सभी जीवों के समूह का एकमात्र आश्रय था । उसी कमल से ब्रह्माजी का अविर्भाव हुआ । ब्रह्माजी का ही नाम स्वराट् है ।।१६।।

**सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये । लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ।।१७।।**

**अन्वयः**— यः सलिलाशये शेते तेन भगवता अनुविष्टः सः स्वया संस्थया यथापूर्वं लोकसंस्थां निर्ममे ।।१७।।

**अनुवाद**— जो भगवान् जल के भीतर साते हैं वे भगवान् जब ब्रह्माजी के भीतर अन्तर्यामी रूप से प्रवेश किये तो वे पूर्वकल्प में अपने ही द्वारा निश्चित किए गये नाम रूप व्यवस्था के अनुसार लोकों की रचना करने लगे ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

यः सलिलाशये गर्भोदकस्यान्तः शेते तेन भगवताऽनुविष्टोऽधिष्ठितः सन् । स स्वराट् । स्वया संस्थया नामरूपादिक्रमेण ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

जो भगवान् गर्भोदक के भीतर शयन करते हैं उनके द्वारा अधिष्ठित होने पर ब्रह्माजी नाम रूप आदि के क्रम से अपने ही द्वरा निश्चित की गयी व्यवस्था के क्रम से सृष्टि करने लगे ।।१७।।

**ससर्ज छाययाऽविद्यं पञ्चपर्वाणमग्रतः । तामिस्त्रमन्धतामिस्त्रं तमो मोहो महातमः ।।१८।।**

**अन्वयः**— अग्रतः छायया पञ्चपर्वाणम् ससर्ज । तामिस्त्रम्, अन्धतामिस्त्रं तमो मोहो महातमः ।।१८।।

**अनुवाद**— सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने अपनी छाया से तामिस्त्र अन्धतामिस्त्र, तम, महातम और मोह की सृष्टि की।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

छाया प्रभाप्रतियोगिनी तथा । अबुध्येत्यर्थः । 'यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभोः' इत्युक्तत्वात् । महातम इति महामोहः । स्वरूप निर्देशमात्रविवक्षया मोह इति प्रथमाप्रयोगः ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

प्रकाश के अभाव को छाया कहते हैं । अर्थात् अज्ञान के द्वारा । कहा भी जा चुका है **यस्त्वबद्धि कृतः प्रभोः** । अर्थात् जो ब्रह्माजी के जो अज्ञान से उत्पन्न है । महातम शब्द से महामोह को कहा गया है । अब प्रश्न होता है कि यह सृष्टि का प्रकरण है अतएव मोह इत्यादि में द्वितीया विभक्ति होनी चाहिए किन्तु सर्वत्र प्रथमा विभक्ति क्यों है ? तो इसके उत्तर में श्रीधर स्वामी कहते है कि केवल स्वरूप का ही निर्देश करना विवक्षित होने के कारण प्रथमान्त निर्देश किया गया है ।।१८।।

**विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् । जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ।।१९।।**

**अन्वयः**— तमोमयम् आत्मनः कायम् न अभिनन्दन् विससर्ज, क्षुत्त्विटसमुदभवाम् रात्रिं यक्षरक्षांसि जगृहुः ।।१९।।

**अनुवाद**— अन्धकार स्वरूप वह शरीर ब्रह्माजी को अच्छा नहीं लगा अतएव उन्होंने उस शरीर का परित्याग कर दिया । उसके बाद परित्यक्त रात्रि रूप शरीर जिससे भूख और प्यास की उत्पत्ति हुयी उसको यक्षों ओर राक्षसों ने स्वीकार कर लिया ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रथमोक्तां साधारणां सृष्टिमनूद्य केनचिद्विशेषेणासाधारणां सृष्टिमाह- विससर्जेत्यादिना यावत्समाप्ति । तद्विसृष्टं कायं रात्रिरूपं तत एव जातानि यक्षरक्षांसि जगृहुः । क्षुतृषोः समुद्भवो यस्यां ताम् । अत्र च **'याऽस्य सा तनूरासीत् तामपाहत सा तमिस्राभवत'** इत्यादिश्रुतिरनुसन्धेया ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से जिसका पहले वर्णन किया जा चुका है उस साधारण सृष्टि का अनुवाद करके कुछ विशेषताओं से विशिष्ट आसाधारण सृष्टि का वर्णन **विससर्ज इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त किया गया है । जिस शरीर का ब्रह्माजी ने परित्याग कर दिया वह रात्रि रूप शरीर था । उसी से उत्पन्न यक्ष और राक्षस उस शरीर को ग्रहण कर लिए । क्षुत्तृट्समुद्भवाम् का विग्रह है । जिसमें भूख और प्यास की उत्पत्ति होती है ऐसी रात्रि रूपी शरीर को । इस विषय में **यास्य तानूरासीत्** अर्थात् ब्रह्माजी का जो शरीर था उसको उन्होंने त्याग दिया वही रात्रि हो गयी। इस श्रुति का अनुसन्धान करना चाहिए ।।१९।।

**क्षुत्तृडभ्यामुपसृष्टस्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः । मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ।।२०।।**

**अन्वयः**— क्षुततृड्भ्याम् उपसृष्टाः ते तं जाग्धुम् अभिदुद्रुवुः क्षातृडर्दिता ते एनं मा रक्षत जक्षध्वम् इत्युचुः ।।२०।।

**अनुवाद**— भूख तथा प्यास से युक्त वे ब्रह्माजी को खा जाने के लिए दौड़े । भूख तथा प्यास से व्याकुल उन सबों को राक्षसों ने कहा इसे बचाओ मत खाओ ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

उपसृष्टा अभिभूताः । जग्धुमत्तुं भक्षयितुम् । यतो वयं क्षुत्तृड्भ्यामर्दिता अत एनं पितेति कृपया मा रक्षतेत्येके । अन्ये तु जक्षध्वं भक्षयतेति ब्रुवन्तः । जक्ष भक्षहसनयोरिति धातुः ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

**उपसृष्टः** पद का अर्थ है, अभिभूत, **जग्धुम्** का अर्थ है खा जाने के लिए । उन सबों ने कहा हमलोग चूंकि भूख और प्यास से व्याकुल हैं अतएव ये हमारे पिता हैं यह सोचकर कृपा पूर्वक इनकी रक्षा मत करो इस तरह के एक प्रकार के राक्षसों जीवों ने कहा दूसरे तरह के जीवों ने कह खा जाओ जक्ष और भक्ष धातु खाने के अर्थ में होते हैं ।।२०।।

**देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत । अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ।।२१।।**

**अन्वयः**— संविग्नो देवः तान् आह मां मा जक्षत रक्षत । अहो यक्षरक्षांसि यूयं मे प्रजा बभूविथ ।।२१।।

**अनुवाद**— उन सबों से भयभीत होकर ब्रह्माजी ने कहा तुमलोग मुझको खाओ मत मेरी रक्षा करो । हे यक्ष राक्षसों तुम लेग मेरी सन्तान हो ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

देवो ब्रह्मा संविग्नो भीतः सन्मां मा जक्षत मा भक्षयत, किंतु रक्षत । अहो हे यक्षरक्षांसि, यूयं मे प्रजाः सुता बभूविथ जाताः स्थ एवमुग्रस्वभावा यक्षराक्षसा जाता इत्यर्थः । तत्र ये जक्षध्वमित्यूचुस्ते यक्षाः ये तु मा रक्षतेति ते राक्षसा इति ज्ञेयम्। एतच्च तिर्यगादितामससर्गस्याप्युपलक्षणम् ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

उन सबों को देखकर ब्रह्माजी डर गये और उन्होंने कहा तुमलोग मुझको खाओ मत मेरी रक्षा करो । हे यक्षों और राक्षसों तुमलोग मेरी सन्तान हो । इस तरह से उग्र स्वभाव वाले यक्ष और राक्षस हो गये । जिन सबों

ने खा जाओ यह कहा वे यक्ष हो गये और जिन सबों ने कहा बचाओ मत खाओ वे राक्षस हो गये। यह तिर्यक् इत्यादि तामस सृष्टि का भी उपलक्षण है ॥२१॥

**देवताः प्रभया या या दीव्यन्प्रमुखतोऽसृजत् । ते अहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥२२॥**

**अन्वयः**— प्रभया दीव्यन् या या देवताः ताः प्रमुखतः असृजत् देवयन्तः ते विसृष्टां तां प्रभम् अहः अहार्षुः ॥२२॥

**अनुवाद**— पुनः ब्रह्माजी प्रभा से देदीप्यमान होकर जो मुख्य देवता थे उनकी सृष्टि किए। क्रीडा करते हुए उन सबों ने ब्रह्माजी के त्यागने पर दिन रूप प्रकाशमय उस शरीर को ग्रहण कर लिया ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

प्रभया दीव्यन् द्योतमानो या या देवता द्युतिमत्यः सात्त्विक्यस्तास्ताः प्रमुखतः प्राधान्येनासृजत्। ते देवाः। देवता इति स्त्रीत्वेन निर्दिष्टानामप्यर्थमात्रविवक्षया त इति पुंस्त्वेन प्रतिनिर्देश। एवं यक्षरक्षांसीत्यत्रापि ज्ञेयम्। तेन विसृष्टां त्यक्तां प्रभामहः दिव्यरूपां सतीं देवयन्तः क्रीडयन्तोऽहार्षुर्जगृहुः ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

सात्त्विक प्रभा से देदीप्यमान ब्रह्माजी ने जो-जो सात्त्विक देवता थे उन सबों की मुख्य रूप से सृष्टि की। देवों का यद्यपि देवता इस स्त्रीलिङ्ग शब्द से निर्देश किया जाता है फिर भी केवल अर्थ की विवक्षा से पुल्लिङ्ग पद से निर्देश किया गया है। इसी तरह से यक्षरक्षांसि में भी अर्थ मात्र की ही विवक्षा से प्रति निर्देश समझना चाहिए। ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त दिन रूपी प्रभामय शरीर को देवताओं ने क्रीडा करते हुए ग्रहण कर लिया ॥२२॥

**देवोऽदेवान् जघनतः सृजति स्मातिलोलुपान् । त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥२३॥**

**अन्वयः**— देवः जघनतः अदेवान् अतिलोलुपान् सृजतिस्म ते लोलुपतया एनं मैथुनाय अभिपेदिरे ॥२३॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने अपने जघन प्रदेश से कामासक्त असुरों को उत्पन्न किया। अत्यन्त कामलोलुप होने के कारण उत्पन्न होते ही वे सब मैथुन करने के लिए ब्रह्माजी के पास आये ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

अदेवानितिच्छेदः। '**स जघनादसुरानसृजत**' इत श्रुतेः। अतिलोलुपान् स्त्रीलम्पटान्। अभिपेदिरे प्राप्ताः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

देवोऽदेवान् में अदेवान् यह पद विभाग करना चाहिए। ब्रह्माजी ने अपने जघनप्रदेश से असुरों की सृष्टि की। श्रुति भी कहती है **सजघनादसुरान् असृजत**। अर्थात् ब्रह्माजी ने अपने जघनप्रदेश से असुरों की सृष्टि की। वे स्त्री लम्पट थे और वे मैथुन के लिए ब्रह्माजी की ओर दौड़े ॥२३॥

**ततो हसन्स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः । अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥२४॥**

**अन्वयः**— ततः स भगवान् हसन् निरपत्रपैः असुरैः अन्वीयमानः भीतः परापतत् ॥२४॥

**अनुवाद**— यह देखकर ब्रह्माजी हँस पड़े और उसके पश्चात् वे निर्लज्ज असुरों के द्वारा पीछा किए जाते हुए डर कर भागे ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

परापतदपलायत ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

परापतत् पद का अर्थ है भाग चले ॥२४॥

**स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् । अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— भक्तानाम् अनुग्रहाय अनुरूपारत्मदर्शनम् वरदं प्रपन्नार्तिहरं वरदं हरिम् उपव्रज्य प्राह ॥२५॥

**अनुवाद**— भक्तों पर कृपा करने के लिए उनकी भावना के अनुसार दर्शन देने वाले वरदान देने वाले तथा शरणागत जीवों के कष्ट को विनष्ट करने वाले श्रीहरि के पास जाकर कहें ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

भक्तेच्छानुरूपमात्मानं दर्शयतीति तथा तमुपव्रज्य ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

जो भगवान् भक्तों की इच्छा के अनुसार अपना दर्शन देते हैं, ऐसे भगवान् के पास जाकर ब्रह्माजी ने कहा ॥२५॥

**पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः । ता इमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥**

**अन्वयः**— हे भगवन् मां पाहि ते प्रेषणेन प्रजाः असृजं हे प्रभो इमाः पापाः मां जभितुम् उपक्रामन्ति ॥२६॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा करें आपकी ही आज्ञा से मैंने प्रजाओं की सृष्टि की । वे सब पाप में प्रवृत्त होकर मैथुन के द्वारा मेरा उपभोग करना चाहते हैं ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

पाहीति द्वाभ्यां प्रार्थितवान् । यभितुं मैथुनेन धर्षयितुम् ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

**पाहि० इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की स्तुति की । **जभितुम्** का अर्थ है मैथुन के द्वारा अभिभूत करने के लिए ॥२६॥

**त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः । त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥२७॥**

**अन्वयः**— त्वम् एकः किल क्लिष्टानां लोकानां क्लेश नाशानः अनासन्नपदां तव त्वमेकः क्लेशदः ॥२७॥

**अनुवाद**— एक मात्र आपही दुःखी जीवों के दुःख को दूर करने वाले हैं और जो लोग आपके चरणों के शरण में नहीं आते हैं ऐसे लोगो को केवल आप ही दुःख देने वाले हैं ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

लोकानां जनानाम् । तव अनासन्नावनाश्रितौ पादौ यैस्तेषाम् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से कहा कि एक मात्र आप ही दुःखी जीवों के कष्ट को दूर करते हैं और जो आपके चरणों को अपने रक्षक रूप से नहीं मानते हैं उन जीवों को आप ही कष्ट भी देते हैं ॥२७॥

**सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः । विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥२८॥**

**अन्वयः**— विविक्ताध्यात्मदर्शनः सः अस्य कार्पण्यमवधार्य धोराम् आत्मतनुं विमुञ्च, इत्युक्तः विमुमोच ह ॥२८॥

**अनुवाद**— श्रीहरि दूसरे के मन की बातों को ठीक-ठीक जानते हैं ब्रह्माजी की आतुरता को देखकर उन्होंने कहा इस कलुषित शरीर का परित्याग कर दो । इस तरह से कहने पर ब्रह्माजी ने अपने उस शरीर का परित्याग कर दिया ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

विविक्तमसन्दिग्धमध्यात्मदर्शनं परचित्तज्ञानं यस्य हरेः । घोरां कामकश्मलां स्वतनुं विमुञ्चेति उक्तवानिति शेषः । इत्युक्तश्च ब्रह्मा तां तनुं विमुमोच । सर्वत्र तनुत्यागो नाम तत्तन्मनोभावत्यागो विवक्षितः । ग्रहणं च तत्तद्भावापत्तिरिति द्रष्टव्यम् ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् दूसरे के मन की बात को असंदिग्ध रूप से जानते हैं । उन्होंने कहा कि तुम अपने इस कामकलुषित शरीर का त्याग कर दो । यह कहने पर ब्रह्माजी ने अपने उस शरीर का परित्याग कर दिया ।

**सर्वत्रतनुत्यागोनाम० इत्यादि** सर्वत्र जो शरीर त्यागने की बात कही गयी है उसका अभिप्राय है विभिन्न मनोभावों का परित्याग करना और शरीरों के ग्रहण का अर्थ है विभिन्न मनोभावों को स्वीकार करना ।।२८।।

**तां क्वणच्चरणाम्भोजां मदविह्वललोचनाम् । काञ्चीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसाम् ।।२९।।**

**अन्वयः**— क्वणच्चरणाम्भोजां, मदविह्वललोचनाम् काञ्चीकलापविलसदुकूलच्छन्नदरोधसाम् ।।२९।।

**अनुवाद**— (ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त वह शरीर सायं संध्या सुन्दरी के रूप में परिणत हो गया । उसी का वर्णन करते हैं ) उसके चरणों के नूपुर बज रहे थे मद के कारण उसके नेत्र अलसाये से थे, करधनी से सुशोभित वस्त्र से उसकी कमर ढँकी हुयी थी ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

**'साऽहोरात्रयोः सन्धिरभवत्'** इति श्रुतेः । सा तेन विसृष्टा तनुः सायन्तनी सन्ध्या बभूव । सा च कामोद्रेकवेला । असुराश्च राजसत्वात्स्त्रीलम्पटाः । अतस्तां सन्ध्यामेव स्त्रियं कल्पयित्वा ते संमोहं प्राप्ता इत्याह- तामिति त्रिभिः । नूपुराभ्यां क्वणती चरणाम्भोजे यस्याः । मदेन विह्वले लोचने यस्याः । काञ्चीकलापेन विलसद्दुकूलं तेन छन्नं रोधः कटितटं यस्यास्ताम् ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

वह शरीर दिन तथा रात्रि की सन्धि संध्या हो गयी । इस श्रुति के अनुसार ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त वह शरीर सायं सन्ध्या बन गया । सन्ध्या की बेला कामोद्रेक की बेला होती है । असुर भी राजस स्वभाव वाले होने के कारण स्त्रीलम्पट होते हैं । अतएव उस संध्या को ही स्त्री मानकर वे मोहित हो गये इसी अर्थ का प्रतिपादन **ताम्० इत्यादि** तीन श्लोकों में किया गया है । उसके दोनों चरण कमलों में नूपुर का झनकार हो रहा था, मद के कारण उसके नेत्र विह्वल थे । करधनी से सुशोभित साड़ी से उस सन्ध्या सुन्दरी के कमर ढँके थे ।।२९।।

**अन्योन्यश्लेषयोत्तुङ्गीनिरन्तरपयोधराम् । सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ।।३०।।**

**अन्वयः**— अन्योन्यश्लेषयोत्तुङ्ग निरन्तरपयोधराम् सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ।।३०।।

**अनुवाद**— उसके उन्नत स्तन एक दूसरे से ऐसे सटे थे कि दोनों के बीच में कोई अन्तराल ही नही था। उसकी नाक और दन्तपंक्ति सुन्दर थी । वह मधुर-मधुर मुस्कुराती हुयी असुरों को देख रही थी ।।३०।।

### भावार्थ दीपिका

अन्योन्यं श्लेषयोपमर्देन हेतुनोत्तुङ्गौ निरन्तरौ पयोधरौ यस्याः । सुद्विजां सुदतीम् । स्निग्धो हासो लीलावलोकनं च यस्याः ।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

उसके उन्नत स्तन परस्पर में ऐसे सट गये थे कि उन दोनों के बीच में कोई अन्तराल ही नही था । उसकी दंतपंक्ति सुन्दर थी वह मधुर मुस्कान पूर्वक हावभाव से देखती थी ।।३०।।

**गूहन्तीं व्रीडयात्मानं नीलालकवरूथिनीम् । उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे संमुमुहुः स्त्रियम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— व्रीडया आत्मानं गूहन्तीम् नीलालकवरूथिनीम् स्त्रियम् उपलभ्य धर्म असुरा संमुमुहुः ॥३१॥

**अनुवाद**— कालेकेशों से सुशोभित वह लज्जा के कारण अपने आँचल में ही सीमटी सी जा रही थीं हे विदुरजी ! ऐसी स्त्री को प्राप्त करके वे सभी असुर अत्यन्त मोहित हो गये ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

गूहन्तीं वस्त्राञ्चलेनावृण्वानाम् । नीलानामलकानां वरूथः स्तोमो विद्यते यस्याः । हे धर्म विदुर, तां स्त्रियमुपलभ्य मत्वा॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

गूहन्ती अर्थात् वह अपने वस्त्र के आँचल से मानों अपने को ढँक लेना चाहती थी । उसके केश समूह काले-काले थे । उस सुन्दरी को ही असुरों ने स्त्री मान लिया और मोहित हो गये । धर्म शब्द से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है । धर्म ही विदुर के रूप में जन्म लिए थे ॥३१॥

**अहो रूपमहो धैर्यमहो अस्या नवं वयः । मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥३२॥**

**अन्वयः**— अहो अस्याः रूपम्, अहो धैर्यम्, अहो अस्या नवं वयः कामयमानानाम् मध्ये अकामा इव विसर्पति ॥३२॥

**अनुवाद**— वे सब मन ही मन सोच रहे थे कि इसका कितना सुन्दर रूप है, इसका कितना अधिक धैर्य है और इसकी कैसी अच्छी जवानी है ? यह कामपीडित हमलोगों के बीच में काम रहित के समान विचर रही है ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

संमूढानां विभावनाक्रममाह-अहो इति ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

संध्या सुन्दरी को देखकर मोहित हुए उन असुरों की कल्पना के प्रकार को **अहोरूपम्० इत्यादि** वाक्य के द्वारा बतलाया गया है ॥३२॥

**वितर्कयन्तो बहुधा तां सन्ध्यां प्रमदाकृतिम् । अभिसंभाव्यविश्रम्भात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः ॥३३॥**

**अन्वयः**— तां प्रमदाकृतिम् संध्यां बहुधा वितर्कयन्तः अभिसंभाव्य कुमेधसः विश्रम्भात् पर्यपृच्छन् ॥३३॥

**अनुवाद**— स्त्री रूपिणी संध्या के विषय में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करके उसका अत्यधिक समादर करते हुए उन कुबुद्धि असुरों ने उसके पास जाकर प्रेमपूर्वक पूछा ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

अभिसंभाव्य सत्कृत्य । विश्रम्भात्प्रणयात् । कुबुद्धयस्ते तां पप्रच्छुः ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

असुरों ने उस संध्या सुन्दरी का सत्कार करके प्रेमपूर्वक उससे पूछा ॥३३॥

**कासि कस्यासि रम्भोरु को वार्थस्तेऽत्र भामिनि । रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥३४॥**

**अन्वयः**— हे रम्भोरु कासि, कस्यासि, हेभामिनि अत्रते कः अर्थः ? रुपद्रविणपण्येन नः दुर्भगान् विबाधसे ॥३४॥

**अनुवाद**— हे सुन्दरी ! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो ? हे भामिनि ! तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? तुम अपने इस अनर्घ्य रूप सम्पत्ति को दिखाकर और उसे नहीं देकर हम अभागों को तरसा रही हो ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

कासीति त्रिभिः । कासि जात्या । कस्य वा कन्या । हे भामिनि कोपने, रूपमेव द्रविणमनर्घ्यं वस्तु तदेव पण्यं क्रयार्हं तेन तदसमर्पणेन नो विबाधसे ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

कासि इत्यादि तीन श्लोकों द्वारा असुरों ने संध्या सुन्दरी से पूछा । तुम कौन हो ? अर्थात् तुम्हारी कौन सी जाति है ? किसकी पुत्री हो ? हे भामिनि ! तुम्हारा रूप ही अनमोल सम्पत्ति है । वह खरीदने योग्य हैं, किन्तु तुम उसे समर्पित न करके हमलोगों को तरसा रही हो ।।३४।।

**या वा काचित्त्वमबले दिष्ट्या संदर्शनं तव । उत्सुनोषीक्षमाणानां कन्दुकक्रीडया मनः ।।३५।।**

**अन्वयः**— हे अबले ! या वा काचित् त्वम् तव दर्शनं दिष्ट्या कन्दुकक्रीडया इक्षमाणानां मनः उत्सुनोषि ।।३५।।

**अनुवाद**— हे अबले तुम चाहे जो भी हो, हमलोगों को तुम्हारा दर्शन सौभाग्य की बात है । कन्दुक क्रीडा करती हुयी तुम हम देखने वालों के मन को मथ डाल रही हो ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

किं जातिकुलादिप्रश्नेन या वा काचिद्भव । दिष्ट्येदं तावद्भद्रं जातं यत्तव दर्शनम् । किंतु केवलं नो मन उत्सुनोषि विमथ्नासि ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

तुम्हारी जाति और कुल चाहे जो हो हमारे सौभाग्य से यह तुम्हारा कल्याणमय दर्शन हुआ है । किन्तु तुम केवल हमलोगों के मन को मथे जा रही हो ।।३५।।

**नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम् ।**
**मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः ।।३६।।**

**अन्वयः**— हे शालिनि ! करतलेन पतत् प्रतङ्गं मुहुः घ्नन्त्या ते पादपद्मं नैकत्र जयति । बृहत् स्तनभारभीतं मध्यं विषीदति । ते अमला दृष्टिः शान्तेव सुशिखा समूहः ।।३६।।

**अनुवाद**— हे सुन्दरि ! जब तुम उच्छलते हुए गन्दे पर थपकी मारती हो उस समय तुम्हारे चरण कमल एक स्थान पर न ही ठहरते हैं । बड़े स्तनों के भार से तुम्हारा कटिप्रदेश थक सा जाता है । तुम्हारी निर्मलदृष्टि शान्त सी हो जाती है । तुम्हारे ये केशपाश अत्यन्त मनोहर हैं ।।३६।।

**भावार्थ दीपिका**

क्षुभितचित्तानां वाक्यं नैकत्रेति । हे शालिनि श्लाध्ये । एकत्र न जयति न स्थिरीभवति । यद्वा नैकत्रानेकगतिविलासेषु जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । पतत्पतङ्गमुच्छलन्तं कन्दुकम् । बृहतोः स्तनयोर्भाराद्भीतं तव कृशं मध्यं विषीदति श्राम्यति । शान्ता मन्थरेव प्रसरति । सुशिखासमूहः शोभनः केशकलापस्ते । पाठान्तरे सुशिखाः शोभनान्केशानवकीर्यमाणान्समूहः बधानेति । अत्र चास्तं गच्छन्सूर्य एव पतत्पतङ्गः, मेघविच्छेदो मध्यविषादः तारकारूपा दृष्टिः, तम एव केशा इत्याद्यूह्यम् ।।३६।।

**भाव प्रकाशिका**

यह श्लोक क्षुभितमन वाले असुरों का है । **हे शलिनि** अर्थात् हे प्रशंसनीय सन्ध्ये, जिस समय तुम उछलते गेंद पर थपकी मारती हो उस समय तुम्हारे पैर एक स्थान पर नहीं रहते हैं । अथवा **नैकत्रजयति** का अर्थ है उस समय तुम्हारे पैरों में सर्वोत्कृष्ट गतिविलास होता है । पतत्पतङ्ग का अर्थ है उछलता हुआ गेन्द । विशाल

स्तनों के भार से तुम्हारी पतली कमर थक सी जाती है। तुम्हारी दृष्टि भी मन्दगति से प्रसृत होती है। तुम्हारे केशकलाप अत्यन्त सुन्दर हैं। जहाँ पर सुशिखसमूह यह पाठ है वहाँ पर अर्थ होगा। अपने सुन्दर तथा बिखरे हुए केशों को तुम समेट लो। यहाँ डूबते हुए सूर्य ही पतत्पतङ्ग हैं। मेघों का विच्छेद ही मध्य का विषाद है। दृष्टि ही तारा रूप है। और अन्धकार ही संध्या सुन्दरी के केश है। इसी तरह से कल्पना करनी चाहिए ॥३६॥

**इति सायन्तनीं सन्ध्यामसुराः प्रमदायतीम् । प्रलोभयन्तीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥३७॥**

**अन्वयः**— इति प्रमदायतीम् प्रलोभयन्तीं सायन्तनीं संध्याम् स्त्रियम् मूढधियः असुराः जगृहुः ॥३७॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से स्त्री रूप से प्रकट हुयी तथा अत्यधिक अपनी ओर आकृष्ट करती हुयी सायं कालीन सन्ध्या को स्त्री मानकर असुरों ने उसको स्वीकार कर लिया ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

प्रमदेवाचरन्तीं स्त्रियं मत्वा जगृहुः ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

स्त्री रत्न के समान आचरण करती हुयी सायं सन्ध्या को ही स्त्री जानकर असुरों ने ग्रहण कर लिया ॥३७॥

**प्रहस्य भावगम्भीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना । कान्त्या ससर्ज भगवानान्धर्वाप्सरसां गणान् ॥३८॥**

**अन्वयः**— भगवान् भावगम्भीरं प्रहस्य आत्मानम् आत्मना जिघ्रन्त्या कान्त्या गन्धर्वाप्सरसां गणान् ससर्ज ॥३८॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी गम्भीर भाव से हँसकर अपनी कान्तिमयी मूर्ति जो अपने से ही अपने सौन्दर्य का आस्वादन करती थी उससे गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूह की सृष्टि किए ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

प्रहस्यात्मानमात्मना जिघ्रन्त्या । कान्त्या सौन्दर्येण । प्रहसनमात्मावघ्राणं च सौन्दर्यानुभावचातुर्यविकारः ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

हँसकर अपने सौन्दर्य का स्वयम् अनुभव करने वाली सौन्दर्य के द्वारा प्रहसन और अपने सौन्दर्य का स्वयम् अनुभव करना सौन्दर्यानुभव की चातुरी नामक विकार है ॥३८॥

**विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियाम् । त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ॥३९॥**

**अन्वयः**— ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियां तां वै तनुं विससर्ज । ते एव च विश्वावसु पुरोगमाः प्रीत्या आददुः ॥३९॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने ज्योत्स्ना रूपी कान्तिमयी तथा प्रिय शरीर का परित्याग कर दिया और उसको विश्वावसु आदि गन्धर्वों ने ग्रहण कर लिया ॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

ज्योत्स्नां चन्द्रिकारूपाम् । त एव गन्धर्वादिगणाः । विश्वावसुः पुरोगमो मुख्यो येषु ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी का वह शरीर चन्द्रिका (चाँदनी) रूप था उसको उन्हीं गन्धर्वों ने ग्रहण किया जिनमें विश्वावसु प्रमुख थे ॥३९॥

**सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतन्द्रिणा । दिग्वाससो मुक्तकेशान्वीक्ष्य चामीलयद्दृशौ ॥४०॥**

**अन्वयः**— आत्मतान्द्रिणा भगवान् भूतपिशाचान् च सृष्ट्वा दिग्वाससः मुक्तकेशान् वीक्ष्य दृशौ आमीलयत् च ।।४०।।

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने अपने आलस्य से भूतों और पिशाचों की सृष्टि करके उन सबों को नग्न तथा खुले केश वाला देखकर अपने दोनों आँखों को मूंद लिए ।।४०।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मनस्तन्द्रिणा आलस्येन । तांश्च मुक्तकेशान्वीक्ष्य नेत्रे निमीलितवान् ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

तन्द्रि आलस्य को कहते है । ब्रह्माजी ने अपने आलस्य से भूतों और पिशाचों की सृष्टि की । वे भूत पिशाच नङ्गे थे और उनके केश खुले हुए थे । उनको देखकर ब्रह्माजी ने अपनी दोनों आँखों को बन्द कर लिया ।।४०।।

**जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृम्भणाख्यां तनुं प्रभोः। निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्यते ॥**
**येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥४१॥**

**अन्वयः**— प्रभोः विसृष्टां जृम्भणाख्यां तां तनुं तद् जगृहुः । निद्राम् यया भूतेषु इन्द्रियविक्लेदः दृश्यते । येनउच्छिष्टान् धर्षयन्ति तम् उन्मादं प्रचक्षते ।।४१।।

**अनुवाद**— ब्रह्माजी द्वारा परित्यक्त जम्भाई नामक उस शरीर को भूतों पिशाचों ने ले लिया । उसी को निद्रा कहा जाता है । जिसके द्वारा इन्द्रियों में शिथिलता आ जाती है । उसे निद्रा कहते हैं । यदि कोई जूठे मुँह सो जाता है तो उस पर भूत पिशाच आदि आक्रमण करते हैं, उसे ही उन्माद कहा जाता है ।।४१।।

**भावार्थ दीपिका**

इन्द्रियाणां विक्लेदः स्रावो यया तां निद्रां प्रचक्षते । येनेन्द्रियविक्लेदेन हेतुनोच्छिष्टांश्च सतो धर्षयन्ति भ्रान्तान्कुर्वन्ति तं भूतादिगणमुन्मादं प्रचक्षते । तन्द्राजृम्भिकानिद्रोन्मादहेतुत्वेन भूतादीनां तनूनां च चातुर्विध्यमुक्तम् ।।४१।।

**भाव प्रकाशिका**

जिसके द्वारा इन्द्रियों में शैथिल्य आ जाता है उसे निद्रा कहते हैं । उस इन्द्रिय शैथिल्य के ही कारण जूठे मुँह सोने वाले लोगों को भूतगण भ्रान्त बना देते हैं । उन भूतों आदि के गणों को उन्माद कहते हैं । तन्द्रा (अलास्य) जम्भाई, नींद, तथा उन्माद के कारण होने से भूतों के चार भेद बतलाये गये हैं ।।४१।।

**ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानजः । साध्यान्गणान्पितृगणान्परोक्षेणासृजत्प्रभुः ॥४२॥**

**अन्वयः**— भगवान् अजः आत्मानं ऊर्जस्वन्तं मन्यमानः प्रभुः साध्यान्गणान् पितृगणान् परोक्षेण असृजत् ।।४२।।

**अनुवाद**— अपने को बलवान मानने वाले ब्रह्माजी ने परोक्ष रूप से साध्यगणों और पितृगणों की सृष्टि की।।४२।।

**भावार्थ दीपिका**

ऊर्जस्वन्तं बलवन्तम् । परोक्षेणादृश्यरूपेण ।।४२।।

**भाव प्रकाशिका**

ऊर्जस्वान् बलवान को कहते है । अपने को बलवान् मानते हुए ब्रह्माजी ने अदृश्य रूप से साध्यगणों और पितृगणों की सृष्टि की ।।४२।।

**त आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे । साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ॥४३॥**

**अन्वयः**— ते आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे । यत् कवयः साध्येभ्यः पितृभ्यः वितन्वते ॥४३॥

**अनुवाद**— अपनी उत्पत्ति स्थान उस शरीर को पितरों ने ग्रहण कर लिया, उसी को लक्ष्य करके पण्डित जन, साध्यगणों और पितृगणों को हव्य तथा कव्य प्रदान करते हैं ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मनः सर्गो यस्मात्तम् । यद्येन कार्येण संप्रदानत्वनिमित्तेन । कवयः कर्मकोविदाः । साध्येभ्यः पितृभ्यश्च स्वपितृरूपेभ्यः। वितन्वते श्राद्धादिना हव्यं कव्यं च ददति ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

अपनी उत्पत्ति स्थान स्वरूप उस शरीर को पितरों ने ग्रहण कर लिया । जिनको प्रसन्न करने के लिए कर्मों के ज्ञाता पण्डितजन श्राद्ध इत्यादि के द्वारा अपने पितरों को कव्य तथा साध्यगणों को हव्य प्रदान करते हैं ॥४३॥

**सिद्धान्विद्याधरांश्चैच तिरोधानेन सोऽसृजत् । तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ॥४४॥**

**अन्वयः**— सः सिद्धान् विद्याधरान् चैव तिरोधानेन असृजत् । तेभ्यः तम् अन्तर्धानाख्यम् अद्भुतम् आत्मानम् अददात् ॥४४॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी ने सिद्धों और विद्याधरों की सृष्टि तिरोधान शक्ति से की और उन सबों को उन्होंने अद्भुत अन्तर्धान नामक शरीर प्रदान किया ॥४४॥

### भावार्थ दीपिका

तिरोधानेन दृश्यत्वे सत्यप्यन्तर्धानशक्त्या ॥४४॥

### भाव प्रकाशिका

तिरोधानेन पद का अर्थ है कि दृश्य होने पर भी अन्तर्धान होने की शक्ति के द्वारा ॥४४॥

**सकिन्नरान्किम्पुरुषान् प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः । मानयन्नात्मनात्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥४५॥**

**अन्वयः**— आत्माभासं विलोकयन् प्रभुः आत्मना आत्मानं मानयन् सकिन्नरान् किंपुरुषान् प्रत्यात्म्येन असृजत् ॥४५॥

**अनुवाद**— अपने प्रतिविम्ब को देखकर ब्रह्माजी ने अपने को बहुत सुन्दर माना । अपने उस प्रतिबिम्ब से उन्होंने किन्नरों और किम्पुरुषों की सृष्टि की ॥४५॥

### भावार्थ दीपिका

प्रत्यात्म्येन प्रतिबिम्बेन । आत्माभासं प्रतिबिम्बमात्मनात्मनो मानः प्रतिबिम्बदर्शिनः सुन्दरस्य शिरः कम्पादिचेष्टा । अतएव तत्सृष्टानां मिथः संमाननेन नित्यं मिथुनीभावः ॥४५॥

### भाव प्रकाशिका

**प्रत्यात्म्य** का अर्थ प्रतिबिम्ब है । आत्माभास भी प्रतिबिम्ब को कहते है । उन्होंने अपने विम्ब को देखकर अपने को बहुत सुन्दर माना । इसीलिए प्रतिबिम्ब के द्वारा जिनकी सृष्टि हुयी उनका सदैव मिथुनीभाव बना रहता है॥४५॥

**ते तु तज्जगृहु रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना । मिथुनीभूय गायन्तस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥४६॥**

**अन्वयः**— यत् परमेष्ठिना व्यक्तं तत् रूपं ते जगृहुः । उषसि मिथुनीभूय गायन्त तमेव कर्मभिः ॥४६॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त प्रतिबिम्ब शरीर को उन सबों ने ग्रहण कर लिए । इसीलिए उषःकाल में वे अपनी पत्नी के साथ ब्रह्माजी के कर्मों का गायन करते हैं ॥४६॥

### भावार्थ दीपिका

तत् प्रतिबिम्बरूपम् । कर्मभिस्तत्पराक्रमानुवर्णनैः ।।४६।।

### भाव प्रकाशिका

किन्नरों और किम्पुरुषों ने ब्रह्माजी के प्रतिबिम्ब शरीर को ग्रहण कर लिया । वे प्रातः काल में ब्रह्माजी के पराक्रम आदि का वर्णन करते हैं ।।४६।।

**देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिन्तया । सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ।।४७।।**

**अन्वयः**— सर्गे अनुपचिते बहुचिन्तया भोगवता देहेन शयानः क्रोधात् तद वपुः उत्ससर्ज ह ।।४७।।

**अनुवाद**— सृष्टि की वृद्धि नहीं होने के कारण बहुत चिन्तित ब्रह्माजी अपने शरीर के हाथ पैर आदि को फैलाकर सो गये और उसके पश्चात् क्रोध करके उस शरीर को वे त्याग दिए ।।४७।।

### भावार्थ दीपिका

भोग आभोगो विस्तारः पादादिप्रसरणं तद्वता देहेन । अनुपचिते वृद्धिमप्राप्ते । तत् भोगक्रोधादियुक्तम् ।।४७।।

### भाव प्रकाशिका

शरीर के विस्तृत करने को भोग कहते है । **भोगेन** का अर्थ है अपने हाथ पैर आदि को फैलाये हुए शरीर से सृष्टि की वृद्धि नहीं होने पर भोग अर्थात् क्रोध से युक्त होकर उस शरीर को ब्रह्माजी ने त्याग दिया ।।४७।।

**येऽहीयन्तामुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे । सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ।।४८।।**

**अन्वयः**— हे अङ्ग अमुतः ये केशा अहीयन्त ते अहयः जज्ञिरे । प्रसर्पतः क्रूराः सर्पाः भोगोरुकन्धराः नागाः ।।४८।।

**अनुवाद**— उससे जो बाल झड़कर गिरे थे वे अहि हुए । पैर आदि सिकोड़ कर चलने से क्रूर स्वभाव वाले नाग हुए । जिनका शरीर फणरूप से कन्धे के पास बहुत फैला होता हैं वे नाग हुए ।।४८।।

### भावार्थ दीपिका

अमुतोऽमुष्मादेहाद्ये केशा अहीयन्त प्रच्युतास्तेऽहयो जाताः । प्रसर्पतः पादाद्याकुञ्चनैः प्रचलतोऽमुष्मात्सर्पाः । अतएव अगा न भवन्तीति नागाः । अतिवेगवन्त इत्यर्थः । भोगवतो जातत्वाद्भोगेन फणेनोरुर्विस्तीर्णा कन्धरा येषाम् । सर्वे चैते तत्क्रोधयोगात्क्रूराः । तेषामवान्तरजातिभेदः सर्पसिद्धान्ते प्रसिद्ध ।।४८।।

### भाव प्रकाशिका

उस शरीर से जो केश गिरे वे अहि हो गये । हाथ पैर सिकोड़कर चलने से सर्प हो गये । अतएव स्थिर नहीं होने के कारण वे नाग कहलाये । वे अत्यन्त वेग सम्पन्न हुए । कन्धे के पास फणरूप से जिनका शरीर बहुत फैला होता है वे नाग हैं । ब्रह्माजी के क्रोध का सम्बन्ध होने के कारण ये सभी क्रूर स्वभाव के होते हैं। सर्पो की अवान्तर जातियाँ सर्पसिद्धान्त नामक ग्रन्थ में प्रसिद्ध हैं ।।४८।।

**स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः । तदा मनून्ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ।।४९।।**

**अन्वयः**— स आत्मभूः आत्मानं कृतकृत्यम् इव मन्यमानः तदा मनसा लोकभावनान् मनून् ससर्ज ।।४९।।

**अनुवाद**— वे ब्रह्माजी अपने को कृतकृत्य अनुभव किये और अन्त में उन्होंने मन से मनुओं की सृष्टि की । वे सब प्रजाओं की वृद्धि करने वाले हुए ।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

यदा मन्यमानोऽभूत्तदा मनून्ससर्ज ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

जब उन्होंने अपने को कृतकृत्य माना तो उन्होंने मनुओं की सृष्टि की ।।४९।।

**तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान् । तान्दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥५०॥**

**अन्वयः**— आत्मवान् सः तेभ्यः स्वीयं पुरुषं पुरं अत्यसृजत् तान् दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः ते प्रजापतिम् प्रशशंसुः ॥५०॥

**अनुवाद**— मनस्वी ब्रह्माजी ने उन मनुओं को अपना पुरुषाकार शरीर प्रदान किया । मनुओं को देखकर जिन गनधवों आदि की सृष्टि हुयी थी उन सबों ने ब्रह्माजी की प्रशंसा की ॥५०॥

### भावार्थ दीपिका

तेभ्यः स्वीयं पुरुषं पुरुषाकारं पुरं देहमत्यसृजद्ददौ । तान्मनून् ॥५०॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने मनुओं को अपना पुरुषाकार शरीर प्रदान किया । मनुओं को देखकर गन्धर्वादिकों ने ब्रह्माजी की स्तुति की ॥५०॥

**अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतम् । प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्साकमन्नमदामहे ॥५१॥**

**अन्वयः**— अहो जगत्स्रष्टः एतत् बत ते सुकृतम् कृतम् । यस्मिन् क्रियाः प्रतिष्ठिताः साकम् अन्नम् अदामहे ॥५१॥

**अनुवाद**— हे जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी ! यह अपने बड़ी अच्छी सृष्टि की है । इसमें सभी अग्निहोत्र आदि कर्म प्रतिष्ठित हैं । इससे ही हमलोग भी अपना भोग्य पदार्थ प्राप्त करेंगे ॥५१॥

### भावार्थ दीपिका

ते त्वया यत्कृतं तत्सुकृतम् । सुकृतत्वमाहुः । यस्मिन्मनुसर्गे । क्रिया अग्निहोत्राद्याः अतोऽस्मिन्सर्वे वयं साकं सहान्नं हविर्भागाद्यदाम भक्षयाम । हे ब्रह्मन् ॥५१॥

### भाव प्रकाशिका

हे ब्रह्माजी ! आपने यह जो मनुष्यों की सृष्टि की है वह बहुत अच्छी है । इसके अच्छेपन को बतलाते हुए देवों ने कहा— क्योंकि इस सृष्टि में अग्निहोत्र आदि सभी क्रियाएँ प्रतिष्ठित हैं । अतएव इसमें हम सभी एक साथ अपने हविर्भाग को प्राप्त करेंगे ॥५१॥

**तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना । ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥५२॥**

**अन्वयः**— तपसा, विद्यया, योगेन, सुसमाधिना हृषीकेशः ऋषिः ऋषीन् प्रजाः ससर्ज ॥५२॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् तप, विद्या (उपासना, योग तथा समाधि) के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में किए हुए आदिऋषि ब्रह्मजी ने ऋषियों की सृष्टि की ॥५२॥

### भावार्थ दीपिका

कायसृष्टिमुक्त्वा सृष्टिमाह-तपसेति। विद्या उपासना । योगोऽत्रासनादिः । सुसमाधिर्वैराग्यैश्वर्यादियुक्तः समाधिः तेन च युक्तः । हृषीकेशः स्ववशेन्द्रियः सन् । ऋषिर्ब्रह्मा ऋषीन्प्रजाः ससर्ज ॥५२॥

### भाव प्रकाशिका

कायसृष्टि का वर्णन करने के बाद ऋषियों की सृष्टि का वर्णन करते हैं । तपस्या, उपासना (विद्या) योग किसी को भी भयभीत नहीं करना तथा वैराग्य ऐश्वर्य इत्यादि से युक्त समाधि के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में करके ब्रह्माजी ने ऋषि नामक प्रजाओं की सृष्टि की ॥५२॥

**तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः । यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥५३॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

**अन्वयः**— तेभ्यः अजः एकैकशः समाधियोगद्धि तपोविद्याविरक्तिमत् स्वस्य देहस्य अंशम् अददात् ॥५३॥

**अनुवाद**— उन ऋषियों को ब्रह्माजी ने प्रत्येक को समाधि योग, ऋद्धि, तप, विद्या तथा विरक्ति से युक्त अपने शरीर के अंश को प्रदान कर दिए ॥५३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥**

### भावार्थ दीपिका

किं तद्देहं यस्यांशमदादित्यत आह-यदिति । समाधिश्च योगश्च ऋद्धिश्च ऐश्वर्यं च तपश्च विद्या च विरक्तिश्च विद्यन्ते यस्मिंस्तत् ॥५३॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥**

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न है कि ब्रह्माजी का वह कौन सा देह था जिसके अंशों को उन्होंने ऋषियों को प्रदान किया । तो इसका उत्तर है कि उसमें समाधि, योग, ऋद्धि, तप, विद्य और विरक्त विद्यमान थे ॥५३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिकानामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्यख्या सम्पूर्ण हुयी ॥२०॥**

# इक्कीसवाँ अध्याय

## महर्षि कर्दम की तपस्या और भगवान् का वरदान

विदुर उवाच

**स्वायंभुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः । कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥१॥**

**अन्वयः**— हे भगवन् स्वायम्भुवस्य मनोः परमसम्मतः वंशः कथ्यताम् यत्र प्रजाः मैथुनेनैधिरे ॥१॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— भगवन् स्वायम्भुव मनु के अत्यन्त समादरणीय वंश का आप वर्णन करे । उसमें मैथुन धर्म के द्वारा प्रजा की वृद्धि हुयी ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

एकविंशे तपोविद्यातोषितेन तु विष्णुना । कर्दमस्य मनोः पुत्र्या विवाहघटनोच्यते ॥१॥ एधिरे एधांचक्रिरे ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

इक्कीसवें अध्याय में कदर्म महर्षि के तप और विद्या से प्रसन्न भगवान् विष्णु ने उनका विवाह मनु की पुत्री देवहूति से करवाया । एधिरे पद का अर्थ है समृद्ध हुयी ॥१॥

**प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायंभुवस्य वै । यथा धर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥२॥**

**अन्वयः**— स्वायम्भुवस्यवै प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ सप्तद्वीपवतीं महीं यथा धर्मं जुगुपतुः ॥२॥

**अनुवाद**— स्वयम्भुव मनु के दो पुत्र थे प्रियव्रत और उत्तानपाद वे दोने धर्मानुसार सप्तद्वीपा पृथ्वी का प्रशासन करते थे ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

धर्मं महीं च यथा जुगुपतुः ररक्षतुस्तन्मे वदेति तृतीयेनान्वयः ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

वे धर्म तथा पृथिवी दोनों की जिस तरह से रक्षा करते थे उसे आप मुझे बतलायें, इस तरह से तीसरे श्लोक से इसका अव्वय है ॥३॥

**तस्य वै दुहिता ब्रह्मन् देवहूतीति विश्रुता । पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयानघ ॥३॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! ब्रह्मन् तस्य देवहूति इति विश्रुता दुहिता कर्दमस्य प्रजापतेः पत्नी त्वया उक्ता ॥३॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप ! ब्रह्मन् उन मनु की प्रख्यात पुत्री का नाम देवहूति था और वह कर्दम प्रजापति की पत्नी हुयी यह आपने कहा है ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

तस्य मनोः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

उन स्वायम्भुव मनु की ॥३॥

**तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः । ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥४॥**

**अन्वयः**— तस्यां योगलक्षणैः युक्तायां महयोगी कतिधा वीर्यं ससर्ज तत् शुश्रूषवे मे वद ॥४॥

**अनुवाद**— योग के लक्षणों से युक्त उस देवहूति से महायोगी कर्दम महर्षि ने कितनी सन्तानों को उत्पन्न किया यह मुझे आप बतलायें, क्योंकि मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

योगलक्षणैर्यमादिभिर्युक्तायाम् । कतिधा वीर्यं ससर्ज । कति पुत्रानुत्पादयामासेत्यर्थः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

यम नियम आदि योग के लक्षणां से युक्त थीं देवहूति । उनसे महर्षि कर्दम ने कितने पुत्रों को उत्पन्न किया ॥४॥

**रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन् दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः । यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥५॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! भगवान् रुचिः ब्रह्मणः सुतः दक्षोवा मानवीम् भार्यां लब्ध्वा यथा प्रजाः ससर्ज तन्मे वद ॥५॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! भगवान् रुचि ओर ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति मनु की पुत्रियों को पत्नी के रूप में प्राप्त करके जैसे प्रजाओं की सृष्टि की उसे भी आप मुझे बतलायें ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

मानवीं मनोः कन्यकाकूतिं च प्रसूतिं च भार्यां लब्ध्वा यथा भूतानि ससर्ज तच्च वदेति चकारस्यार्थः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

मनु की पुत्री आकूति को रुचि प्रजापति और प्रसूति को दक्ष प्रजापति ने प्राप्त करके जिस तरह से प्रजाओं की सृष्टि की उसे आप मुझे बतलायें ।।५।।

मैत्रेय उवाच

**प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः । सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ।।६।।**

**अन्वयः**— प्रजाः सृज इति ब्रह्मणा उदितः भगवान् कर्दमः सरस्वत्यां सहस्राणां दश समाः तपः तेपे ।।६।।

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**—ब्रह्माजी के यह कहने पर कि तुम प्रजाओं की सृष्टि करो तो महर्षि कर्दम ने सरस्वती नदी के तट पर दश हजार वर्षों तक तपस्या की ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

सहस्राणां समा दश । दशसहस्राणि संवत्सरानित्यर्थः ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् कर्दम महर्षिने सरस्वती नदी के तट पर दश हजार वर्षों तक तपस्या की ।।६।।

**ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः । संप्रपेदे हरिं भक्तया प्रपन्नवरदाशुषम् ।।७।।**

**अन्वयः**— ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः प्रपन्नवरदाशुषम् हरिं प्रपेदे ।।७।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् एकाग्रचित्त से पूजा रूपी प्रकार के द्वारा महर्षि कदम शरणागत भक्तों को वरदान देने वाले श्रीहरि की शरणागति किए ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

ततस्तस्मिंस्तपसि । क्रियायोगेन पूजाप्रकारेण संप्रपेदे सिषेवे । प्रपन्नेभ्यो भक्तेभ्यो वरदातारम् ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

उस तपस्याकाल में श्रीभगवान् की विविधोपचार से पूजा के द्वारा महर्षि कर्दम श्रीभगवान् की शरणागति किए।।७।।

**तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षः कृते युगे । दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ।।८।।**

**अन्वयः**— क्षत्तः तावत् प्रसन्नो भगवान् पुष्कराक्षः कृते युगे तं शाब्दं ब्रह्मदधद् वपुः दर्शयामास ।।८।।

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! उससे सत्ययुग में प्रसन्न होकर भगवान् कमलनयन ने शब्दब्रह्ममय रूप से मूर्तिमान होकर उनको दर्शन दिए ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

शब्दैकवेद्यं यद्ब्रह्म तन्मयं वपुर्दधत्तं प्रत्यात्मानं दर्शयामास ।।८।।

**भाव प्रकाशिका**

जिस ब्रह्म को केवल शब्द के ही द्वारा जाना जा सकता है ऐसे शरीर को धारण किए हुए श्रीभगवान् उनको दर्शन दिए ।।८।।

**स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्त्रजम् । स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोऽम्बरम् ॥९॥**
**किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम् । श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्शस्मितेक्षणम् ॥१०॥**
**विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः । दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षःश्रियं कौस्तुभकन्धरम् ॥११॥**
**जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः । गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः ॥१२॥**

**अन्वयः**— विरजमर्काभम्, सितपद्मोत्पलस्त्रजम्, स्निग्धनीलालक व्रातवक्त्राब्जं विरजोम्बरम्, किरीटिनं, कुण्डलिनं शङ्खचकगदाधरम्, श्वेतोत्पलक्रीडनकम्, मनःस्पर्शस्मितेक्षणम्, गरुत्मतः अंसदेशे, विन्यस्तचरणाम्भोजम्, वक्षःश्रियम्, कौस्तुभकन्धरम् खेऽवस्थितं दृष्ट्वा, लब्धमनोरथः सः जातहर्षः क्षितौ मूर्ध्ना अपतत् प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः गीर्भिः त्वभ्यगृणात् ॥९-१२॥

**अनुवाद**— देदीप्यमान सूर्य के समान कान्तिसम्पन्न, श्वेत कमल की माला धारण किए हुए, कोमल काले घुंघराले केशों से सुशोभित मुखकमल वाले, मुकुट और कुण्डल धारण किए हुए, तथा शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए, लीलाकमल के रूप में श्वेत कमल को धारण किए हुए, मधुरमुस्कानयुक्त चितवन से मन को आकृष्ट करने वाले, गरुड़जी के कन्धे पर चरणकमल को रखे हुए, श्रीदेवी से सुशोभित वक्षःस्थल वाले, गले में कौस्तुभमणि को धारण किए हुए, श्रीभगवान् को आकाश में स्थित देखकर महर्षि कर्दम को बड़ी ही प्रसन्नता हुयी मानो उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये । उन्होंने पृथिवी पर शिर टेककर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और प्रेम पूर्ण चित्त से उन्होंने श्रीभगवान् की स्तुति की ॥९-१२॥

### भावार्थ दीपिका

स कर्दमस्तं खेऽवस्थितं दृष्ट्वा मूर्ध्ना क्षितावपतत् । गीर्भिश्चाभ्यगृणादिति चतुर्णामन्वयः । पद्मोत्पले दिनरात्रिविकासे। सितानां पद्मानामुत्पलानां च स्त्रक् यस्य तम् । स्निग्धानीलाश्च येऽलकास्तेषां व्रातो वक्त्राब्जे यस्य । श्वेतोत्पलं क्रीडनकं यस्य। मनः स्पर्शं मनस्यानन्दजनकं स्मितमीक्षणं च यस्य तम् । वक्षसि श्रीर्यस्य । कौस्तुभः कन्धारायां यस्य । प्रीतिरेव स्वभावः स्वतःसिद्धो धर्मो यस्य तथाविध आत्मा मनो यस्य ॥९-१२॥

### भाव प्रकाशिका

वे महर्षि कर्दम आकाश में स्थित श्रीभगवान् को देखकर पृथिवी पर शिर सटा करके साष्टाङ्ग प्रणाम किए। उन्होंने अपनी मधुर वाणी से उनकी स्तुति भी की इस तरह से चौथे श्लोक के साथ इसका अन्वय है । पद्म दिन में विकसित होता है और उत्पल रात्रि में विकसित होता है । श्रीभगवान् की माला श्वेत कमलों की थी । उनके मुखकमल पर काले चिकने केश लहरा रहे थे । वे श्वेत कमल को लीला कमल के रूप में धारण किए हुए थे। मुस्कानमण्डित उनका चितवन भक्तों के मन में आनन्द को उत्पन्न कर देने वाला था । श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में श्रीलक्ष्मीजी विराजमान थीं उनके गले में कौस्तुभ मणि लटक रही थी । महर्षि कर्दम ने स्वभाविक प्रेमपूर्ण मन से श्रीभगवान् की स्तुति करते समय हाथ जोड़े हुए थे ॥९-१२॥

ऋषिरुवाच

**जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ।**
**यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे इड्य अखिलसत्वराशेः तव दर्शनात् नः अद्य अक्ष्णोः सांसिध्यं जुष्टम् यद् दर्शनं सद्भिः जन्मभिः रूढयोगाः योगिनः आशासते ॥१३॥

**अनुवाद**— हे स्तुति करने योग्य प्रभो ! समस्त गुण के आधार गुण के आधार आपका दर्शन हो जाने

से आज मेरे नेत्रों ने साफल्य को प्राप्त कर लिया है। आपका यह दर्शन परंसिद्ध योगिजन भी अनेक योनियों में भी जन्म लेकर प्राप्त करना चाहते हैं ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

त्वामृते परमानन्द धिगन्यवरकामुकम् । अथापि कृपणं मानुगृहाण वरदानतः । वतेति हर्षे । हे ईड्य, नोऽस्माभिः समग्रसत्त्वनिधेस्तव दर्शनादद्याक्ष्णोः सांसिध्यं साफल्यं जुष्टं सेवितम् । त्वर्द्दर्शनमेव महाफलमित्युपपादयति । यस्य तव दर्शनं सद्भिरुत्तरोत्तरमापादितप्रकर्षैर्जन्मभी रूढा विरूढो योगो यैस्तेऽपि ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

परमानन्द स्वरूप आपको छोड़कर दूसरे वरदान को चाहने वाले मुझको धिक्कार है फिर भी मुझ कृपण को आप वरदान प्रदान करके अनुगृहीत करें। **बत** यह अव्यय हर्ष के अर्थ में प्रयुक्त है। कर्दम महर्षि ने कहा कि हे प्रभो ! आप हमलोगों के द्वारा स्तुति करने के योग्य है। आपका दर्शन प्राप्त करके हमारे नेत्र सफल हो गये हैं। इसके द्वारा उन्होंने कहा कि आपका दर्शन महान् फल है। आपका दर्शन उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जन्मों के द्वारा जिनका योग परिपक्व हो गया है ऐसे योगिजन भी प्राप्त करना चाहते हैं ॥१३॥

**ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् ।**
**उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥१४॥**

**अन्वयः**— ते मायया हतमेधसः ये भवसिन्धुपोतम् त्वत्पदारविन्दम् कामलवाय उपासते ये निरयेऽपि स्युः, हे ईश तेषां कामान् रासि ॥१४॥

**अनुवाद**— आप की माया से जिनकी बुद्धि मारी गयी है ऐसे जो लोग संसार सागर को पार करने के लिए जहाज के समान आपके चरणारविन्दों की उपासना नहीं करके नरक में भी प्राप्त होने वाले किसी कामना विशेष की सिद्धि के लिए करते हैं, तो आप उनकी उस कामना की भी पूर्ति कर देते हैं ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

सकामभक्तान्विगर्हयन्नाह–य इति । हे ईश, ये निरयेऽपि स्युस्तेषां कामानां लवाय ये त्वन्मायया नष्टबुद्धयस्तवोपासते। त्वं तु तेषां तान्कामानपि रासि ददासि ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में सकाम भगवद्भक्ति करने वालों की निन्दा करते हुए महर्षि कर्दम कहते हैं। जिनकी प्राप्ति नरकों में भी सम्भव है ऐसे तुच्छ कामनाओं के लिए जो आपके चरणों की उपासना करने वाले लोगों की बुद्धि आपकी माया के द्वारा मारी जा चुकी है। किन्तु उन जीवों की उन कामनाओं को भी आप पूर्ण कर दिया करते हैं॥१४॥

**तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ।**
**उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥१५॥**

**अन्वयः**— स च अहं तथा दुराशयः समानशीलां गृहमेधधेनुम् परिबोढुकामः अशेषमूलम् कामदुघाङ्घ्रिपस्य मूलम् उपेयिवान् ॥१५॥

**अनुवाद**— मैं भी उन सकामभक्ति करने वालों में से ही हूँ। मेरा अन्तःकरण कामकलुषित है। मैंने अपने ही समान रहने वाली तथा गृहस्थ धर्म के पालन में सहायक किसी कन्या से विवाह करने की इच्छा से ही आपके चरणों की शरणागति की है। क्योंकि आपके चरण ही सम्पूर्ण पुरुषार्थों के मूल हैं ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

यः सकामान्निन्दामि सोऽहमपि तादृश एवेत्याह-तथेति । गृहमेधो गृहाश्रमस्तत्र धेनुं त्रिवर्गदोग्ध्री भार्यां परिवोढुकामः परिणेतुमिच्छन्कामदुघाङ्घ्रिपस्य कल्पद्रुमस्य तव मूलमङ्घ्रिमुपेयिवानुपगतोऽस्मि । ननु कामाद्यर्थमन्यत्किमप्युपास्यताम् न। यतोऽशेषस्य पुरुषार्थस्य मूलमेतदेव ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

जो मैं सकाम भक्ति करने वालों की निन्दा कर रहा हूँ मैं भी सकामभक्तिवाला ही हूँ। इसी अर्थ का **तथा० इत्यादि** श्लोक से प्रतिपादन किया गया है। कर्दम महर्षि कहते है कि मैं गृहस्थाश्रम के त्रिवर्ग को प्रदान करने वाली पत्नी से विवाह करना चाहता हूँ। आप तो कल्प वृक्ष हैं, इसीलिए मैंने आपके चरणों की उपासना की है। यदि कहें कि काम इत्यादि की पूर्ति के लिए किसी दूसरी देवता की उपासना करें तो इसका उत्तर है कि आपके चरण ही सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले हैं ।।१५।।

**प्रजापतेस्ते वचसाधीश तन्त्या लोकः किलायं कामहतोऽनुबद्धः ।**
**अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्लाऽनिमिषाय तुभ्यम् ।।१६।।**

**अन्वयः**— हे अधीश ! हे शुक्ल प्रजापतेः ते वचसा तन्त्याबद्धः अयं लोकः किल कामहतः अनुबद्ध, अहं च अनिमिषाय तुभ्यं बलिं वहामि ।।१६।।

**अनुवाद**— हे सर्वेश्वर ! हे शुद्ध आप सम्पूर्ण प्रजाओं के स्वामी है, आपकी वेदवाणी रूपी डोरी में बँधा हुआ यह सम्पूर्ण जगत् अनेक प्रकार की कामनाओं में फँसा है। हे धर्ममूर्ते उसी का अनुगमन करता हुआ मैं कालस्वरूप आपकी आज्ञा पालन रूप पूजोपहार आदि आपको समर्पित करता हूँ ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि मुक्त्यर्थमेव किं न भजसि, अनधिकारादित्याह । हे अधीश, यस्त्वं प्रजापतिस्तस्य तव वचसा तन्त्याऽहं कामहतो लोकः पशुवद्बद्धः हे शुक्ल शुद्धधर्ममूर्ते, अहं च किल लोकानुगतः । अतस्तुभ्यं बलिं वहामि कर्ममयीं त्वदाज्ञामनुवर्ते। अनिमिषाय कालात्मने । तदर्थं भार्यां चेच्छामीति चकारस्यार्थः । न केवलं लोकानुगतो बलिं बहामि किंतु ऋणत्रयापाकरणार्थमिति किलेत्युक्तम् ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तो तुम मुक्ति के ही लिए मेरा भजन क्यों नहीं करते हो ? तो इसका उत्तर है कि मैं मुक्ति का अधिकारी नहीं हूँ। क्योंकि आप तो सम्पूर्ण प्रजाओं के स्वामी हैं। ऐसे आपकी वेदवाणी रूपी आज्ञा से बँधा हुआ इस संसार पशु के समान बँधा हुआ हूँ। हे धर्ममूर्ते ! मैं भी लोक का अनुगमन करने वाला हूँ अतएव तीनों ऋणों को अपाकृत करने के लिए आपको पूजोपहारादिरूप बलि समर्पित कर रहा हूँ ।।१६।।

**लोकांश्च लोकानुगतान्पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ।**
**परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ।।१७।।**

**अन्वयः**— लोकान् च लोकानुगतान् पशून् च हित्वा ये ते चरणातपत्रम् आश्रिताः ते परस्परम् त्वद्गुणानुवाद सीधुपीयूष निर्यापित देह धर्माः भवन्तीति शेषः ।।१७।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! विषयासक्त जीवों तथा उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करने वाले मुझ जैसे कर्मजड पशुओं की परवाह न करके आपके चरण रूपी तापत्रय विनाशक छत्र की छाया को ही अपना आश्रय बनाते हैं वे परस्पर में आपके गुणाों का वर्णन रूपी मादक अमृत का पान करके उसी से अपने भूख-प्यास रूपी देह के धर्मों को शान्त करते हैं ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

अनिमिषायेत्यनेन कालात्मकात्त्वत्तो भीतः कर्म करोमीत्युक्तम् । एतत्तु भयं त्वद्भक्तानां नास्तीत्याह द्वाभ्याम् । लोकान्कामाभिभूतांस्तानुनुसृतान्पशूंश्च । विवेके सत्यपि पुनः कर्मजडान्मादृशान्हित्वाऽनादृत्य ये तव चरणरूपमातपत्रं श्रिताः। तानेवाह । त्वद्गुणानां वादः कथा तदेव सीधु मदिरा संसारविस्मारकत्वात् । पीयूषं रुचिकरत्वात् । तेन निर्यापिता विलापिता देहधर्माः क्षुत्पिपासादयो यैः एषामित्युत्तरेणान्वयः ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

ऊपर के श्लोक में महर्षि ने श्रीभगवान् को अनिमिषाय कहकर उनको काल स्वरूप बतलाया है । अतः वे कहते हैं कि मैं आप से भयभीत हूँ । अतएव कर्मपरायण रहकर कर्मों को करता रहता हूँ । किन्तु यह भय आपके भक्तों को नहीं है । इस बात को उन्होंने दो श्लोकों से कहा है । कर्म परायण तथा कामनाओं से सदा अभिभूत बने रहने वाले लोगों और उन्हीं का अनुसरण करने वाले विवेक के रहने पर भी कर्म परायण मुझ जैसे पशुओं की परवाह किए बिना जो आपके भक्त आपके चरणों रूपी तापत्रय विनाशक छत्र को ही अपना आश्रय बनाते हैं वे परस्पर में आपके गुणों का वर्णन रूपी मादक अमृत जो संसार को विस्मृत कर देने वाला है, उसी का पान करके उसी से वे अपने भूख, प्यास रूपी देह के धर्मों को दूर कर देते हैं । इसका आगे के श्लोक के एषाम् पद से अन्वय है ।।१७।।

**न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ।**
**षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्त्रिणाभि करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ।।१८।।**

**अन्वयः**— हे अजराक्षभ्रमिः, त्रयोदशारं, त्रिशतं षष्टिपर्व, षण्नेभि, अनन्तछदि, यत् त्रिणाभि, करालस्रोतः ते यत् जगदाच्छिद्यधावत् एषाम् आयुः आच्छिद्यन भवति ।।१८।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आपका यह काल चक्र जो है वह उसका ब्रह्म ही अक्ष (घूमने की धूरी) है, अधिकमास सहित तेरह मास ही उसके अर हैं, तीन सौ साठ दिन ही उस कालचक्र के पर्व (जोड़) हैं, छह ऋतुएँ उसकी नेमियाँ (हाल) हैं, अनन्त क्षण आदि उसके पत्राकार धारायें हैं, तीन चातुर्मास्य ही उसकी तीन आधारभूत बलयाकृति नाभियाँ हैं, तथा उसका अत्यन्त तीव्र वेग है । इस प्रकार का जो आपका कालचक्र है चराचरात्मक जगत् की आयु का छेदन करता हुआ घूमता रहता है, किन्तु वह भी आपके भक्तों की आयु का छेदन नहीं कर पाता है क्योंकि प्रत्येक पल आपका भजन करने के कारण उनका सारा समय सफल रहता है ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

तव यत्त्रिणाभि कालचक्रं तज्जगदाच्छिद्याकृष्य धावदपि एषां त्वद्भक्तानामायुराच्छिद्य धावन्न भवति । कथंभूतम् । अजरं ब्रह्म तस्मिन्नक्षरूपे भ्रमिर्भ्रमणम् । भ्रमदिति वक्तव्येऽतिभ्रमणशीलत्वादुपचारेण भ्रमिरित्यभेदनिर्देशः । अधिकमासेन सह त्रयोदश मासा अरा यस्य । त्रिशतं षष्टिश्चाहोरात्राः पर्वाणि यस्य । शतशब्दे विभक्तेरलुगार्षः । षड् ऋतवो नेमयो यस्य । अनन्ताः क्षणालवादयश्छदाः पत्राणि पत्राकारा धाराः सन्ति यस्य । त्रीणि चातुर्मास्यानि नाभय आधारभूतानि बलयानि यस्य। करालस्रोतस्तीव्रवेगम् । एतैर्विशेषणैरेव संवत्सरात्मकं चक्रमुक्तमिति द्रष्टव्यम् ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

महर्षि कहते हैं कि हे प्रभो ! आपका यह जो वलयाकृति तीन नाभियों वाला कालचक्र है, यह निरन्तर जगत् की आयु को काटते हुए वेग से चलता रहता है । वह भी आपके इन भक्तों की आयु को नहीं काट पाता है, क्योंकि उन भक्तों का तो सारा समय आपके भजन में ही व्यतीत होने के कारण सफल है । **कथं भूतम्** अब

प्रश्न है कि वह कालचक्र कैसा है ? तो इस पर कहते हैं वह अजर ब्रह्मरूपी अक्ष की (धूरी) पर घूमता रहता है। यद्यपि भ्रमत् कहना चाहिए था फिर भी अत्यन्त भ्रमणशील होने के कारण उपचार वशात् भ्रामि पद से उसका निर्देश किया गया है। अधिक मास को मिलाकर तेरह महीने ही उसके अर हैं। तीन सौ साठ दिन ही उसके पर्व (जोड़) हैं। **त्रिशतम्** मे शत् शब्द की विभक्ति के लुक् का अभाव आर्ष (वैदिक) है। छह ऋतुएँ ही उसकी नेमियाँ है। अनन्त क्षण, लव आदि ही उसकी पत्राकार धारायें हैं, तीन चातुर्मास्य ही उसकी आधारभूत वलयाकृति नाभियाँ हैं। उस कालचक्र का वेग अत्यन्त तीव्र है। इन विशेषणों से विशिष्ट ही कालचक्र को कहा गया है॥१८॥

**एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीययात्मन्नधियोगमायया ।**
**सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवन्स्वशक्तिभिः ॥१९॥**

**अन्वयः**— त्वम् एकः सन् जगत् अद्वितीयया सिसृक्षया आत्मन् अधियोगमायया उर्णनाभिः यथा स्वशक्तिभिः अदः सृजसि पासि पुनः ग्रसिष्यसे च ॥१९॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप अकेले ही जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से अपनी अद्वितीय योगमाया और उससे उत्पन्न अपनी सत्वादि शक्तियों के द्वारा मकड़ी के समान इस जगत् की सृष्टि करते है, रक्षा करते हैं और अन्त में उसका संहार कर देते हैं। मकड़ी भी अपने से ही जाल को बुनती हैं, उसकी रक्षा करती है और अन्त में उसे निगल जाती है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु निरुपाधिमुदासीनं मां किं याचसे तथापि मायया विश्वसृष्ट्यादिकर्तृत्वात्त्वमेव याच्य इत्याह । स्वयमेक एव सन्नप्यात्मन्यधिकृतया योगमायया हेतुभूतया याः स्वीकृताः शक्तयः सत्त्वाद्यास्ताभिः । अदो विश्वम् । स्वव्यतिरिक्तसाधनानपेक्षत्वे दृष्टान्तः यथेति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि मैं तो सभी उपाधियों से रहित ज्ञानस्वरूप हूँ मुझसे क्यों प्रार्थना करते हो ? तो इस पर महर्षि ने कहा— फिर भी आप ही माया के द्वारा जगत् की सृष्टि पालन और संहार करते है; अतएव आप ही प्रार्थनीय हैं। आप अकेले रहकर अपने में अधिकृत माया के द्वारा जो सभी सत्त्वादि शक्तियों का कारण है। उसे स्वीकृत करके सत्त्वगुण आदि शक्तियों के द्वारा इस विश्व की सृष्टि करते हैं। इस कार्य में आपको किसी दूसरे साधन की उसी तरह अपेक्षा नहीं होती है जिस तरह मकड़ी साधनान्तर निरपेक्ष रहकर जाल को बनाती है, उसकी रक्षा करती है और अन्त में उसको निगल जाती है ॥१९॥

**नैतद्वताधीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ।**
**अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या भगवान्विलक्षितः ॥२०॥**

**अन्वयः**— हे अधीश नः भूतसूक्ष्मम् पदं मायया तनुषे, एतत् तवेप्सितं न तथापि अनुग्रहाय अपि अस्तु यर्हि यतः भगवान् लसत्तुलस्या मायया विलक्षितः ॥२०॥

**अनुवाद**— आप हम भक्तों को जो शब्दादि सुख प्रदान करते हैं उसके मायाजन्य होने के कारण वह आपको भी पसन्द नहीं है; फिर भी परिणामतः हमारा शुभ करने के लिए वे मुझे प्राप्त हो जायँ। क्योंकि इस समय आपने हमें तुलसी की माला से मण्डित माया से परिच्छिन्नसी दिखने वाली सगुणमूर्ति रूप दर्शन दिए हैं ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यपि मायिकत्वाद्भक्तेभ्यो विषयसुखं दातुं नेच्छसि तथाप्यस्मदभिप्रायानुसारेण तत्संपादयेत्याह-नैतदिति । हे अधीश, नोऽस्माकं भजतां भूतसूक्ष्मरूपं पदं शब्दादिविषयसुखं मायया तनुषे विस्तारयसीति यदेतत्तव यद्यपीप्सितं न भवति तथाप्यस्मदनुग्रहायास्तु । ऋणत्रयापाकरणानन्तरमेवापवर्गाय भवत्वित्यर्थः । यर्हि यतो मायया परिच्छिन्न इव लसन्त्या तुलस्या युक्तस्त्वं विलक्षितोऽसि । एवंभूतस्य तव दर्शनं यतो भुक्तिमुक्तिप्रदमित्यर्थः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

माया जन्य होने के कारण आप अपने भक्तों को शब्दादि विषयों का सुख नहीं प्रदान करना चाहते है फिर भी हमलोगों के अभिप्राय के अनुसार आप उसे हमें प्रदान करें इस बात को कर्दम महर्षि ने **नैतत्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । श्लोक का अर्थ है कि हे जगत् के स्वामिन् आपका भजन करने वाले हमलोगों को भूतसूक्ष्म रूप जिन शब्दादि विषयों का सुख आप प्रदान करते हैं, यद्यपि आपको भी अभिप्रेत नहीं है । फिर भी हमलोगों पर कृपा करने के लिए आप हमें प्रदान करें । तीनों (देव, पितृ और ऋषि) ऋगों को अपाकृत करने के पश्चात् ही हमें मुक्ति मिले । क्योंकि माया से परिच्छिन्न तुलसी की माला से मण्डित रूप से ही आपने हमें दर्शन दिया है । इस प्रकार का आपका दर्शन भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करने वाला है ॥२०॥

**तं त्वाऽनुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमाययावर्तितलोकतन्त्रम् ।**
**नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— तं अनुभूतोपरतक्रियार्थं, स्वमाययावर्तित लोकतन्त्रम् नमनीयपादसरोजम् अल्पीयसि कामवर्षं त्वाम् अभीक्ष्णं नमामि ॥२१॥

**अनुवाद**— ऐसे आप स्वरूपतः निष्क्रिय होने पर भी अपनी माया के द्वारा संसार के व्यवहार को चलाते रहते हैं । थोड़ी सी भी भक्ति करने पर आप अपने भक्तों की कामनाओं को पूर्ण कर दिया करते हैं । आपके चरण कमल वन्दनीय हैं, ऐसे आपको मैं निरन्तर बारम्बार प्रणाम करता हूँ ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

तं त्वा त्वां भुक्तिमुक्तिप्रदं नमामि । मुक्तिदत्वे हेतुः-अनुभूत्या ज्ञानेनोपरतः क्रियार्थः कर्मफलभोगो यस्मिन् । भोगदत्वे हेतुः-स्वमायया आवर्तितं लोकतन्त्रं विश्वोपकरणं येन । अतः सकामैर्निष्कामैश्च नमनीयं पादसरोजं यस्य तम् । तत्राल्पीयसि सकामे पुंसि भजने वा कामान्वर्षतीति तथा तम् ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

आप चूकि भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान कर देते हैं ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ । श्रीभगवान् मुक्ति प्रदान करते हैं, इसके लिए महर्षि हेतु को उपन्यस्त करते हुए कहते हैं आपका ज्ञानमात्र हो जाने से समस्त कर्मों का फल समाप्त हो जाता है, अर्थात् जीव कर्मसम्बन्ध से रहित हो जाता है । भोगों के प्रदातृत्व में हेतु को उपन्यस्त करते हुए उन्होंने कहा अपनी माया के द्वारा सम्पूर्ण लोक व्यवहार को आप चलाते रहते हैं । अतएव आप के चरण कमल सकाम एवं निष्काम दोनों प्रकार के भक्तों द्वारा प्रणम्य है । सकाम मनुष्य के द्वारा थोड़ी सी भी आराधना किए जाने पर आप आराधकों की कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं ॥२१॥

ऋषिरुवाच

**इत्यव्यलीकं प्रणुतोऽब्जनाभस्तमाबभाषे वचसाऽमृतेन ।**
**सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥२२॥**

**अन्वयः**—इत्यव्यलीकं प्रणुतः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रू सुपर्ण पक्षोपरि रोचमानः अब्जनाभः अमृतेन वचसा तम् आबभाषे॥२२॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से महर्षि कर्दम के द्वारा निष्कपट भाव से स्तुति किए गये भगवान् की प्रेमभरी मुस्कान से युक्त चितवन वाली भौहें चञ्चल हो गयी थीं। श्रीभगवान गरुड़ के कंधे पर विराजमान थे ऐसे भगवान् उनसे अमृतमयी वाणी से कहने लगे ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

अमृतेन सुखकरेण। प्रेमस्मिताभ्यामीक्षणेन विभ्रमन्ती भ्रूर्यस्य ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

अमृतेन अर्थात् सुखप्रद प्रेम तथा मुस्कान पूर्ण चितवन से जिनकी भौहें चञ्चल हो गयी थीं ॥२२॥

श्रीभगवानुवाच

**विदित्वा तव चैत्त्यं मे पुरैव समयोजि तत्। यदर्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥२३॥**

**अन्वयः**— त्वया यदर्थं आत्मनियमै अहं समर्चितः, तव चैत्यं विदित्वः मे पुरा एव तत् समयोजि ॥२३॥

**अनुवाद**— तुमने जिसके लिए आत्मसंयम आदि के द्वारा मेरी आराधना की है तुम्हारे उस चित्त के अभिप्राय को जानकर मैंने उसकी पहले ही व्यवस्था कर दी है ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

चैत्त्यं हार्दं भावम्। मे मया समयोजि संघटितम्। यदर्थमेवाहं समर्चितस्तत् ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

हार्दिक भाव को चैत्य कहा गया है। तुम्हारे द्वारा जिसके लिए आराधित हुआ हूँ उसकी व्यवस्था मैंने पहले ही कर दी है ॥२३॥

**न वै जातु मृषैव सत्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम्। भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— हे प्रजाध्यक्ष मयि संगृभितात्मनाम् भवद्विधेषु अतितराम् मदर्हणम् न जातु मृषैव न स्यात् ॥२४॥

**अनुवाद**— हे प्रजापते ! जिन लोगों ने अपना मन मुझमे एकाग्र कर लिया है ऐसे लोगों के द्वारा की गयी मेरी आराधना व्यर्थ नहीं हो सकती है। विशेष रूप से आप जैसे लोगों की उपासना करने पर तो और अधिक फल होता है ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

मयि संगृभितः संगृहीत एकाग्रीकृत आत्मा चित्तं यैस्तेषां यन्मदर्हणम्। त्वादृशेष्वतितरां सर्वथा मृषा निष्फलं न स्यात् ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन लोगों ने अपना चित्त मुझमें एकाग्र कर लिया है उन लोगों के द्वारा की गयी मेरी आराधना कभी निष्फल नहीं होती हैं, आप जैसे लोगों के द्वारा की गयी आराधना तो कभी भी निष्फल नहीं होती है ॥२४॥

**प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमङ्गलः। ब्रह्मावर्तं योऽधिवसञ्शास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— विख्यातमङ्गलः प्रजापति सुतः यः ब्रह्मावर्तम् अधिवसन् सप्तार्णवां महीम् अधिशास्ति सम्राट् मनुः ॥२५॥

**अनुवाद**— प्रसिद्ध यशस्वी ब्रह्माजी के पुत्र जो ब्रह्मावर्त में रहकर सातो समुद्रों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी का प्रशासन करते हैं ऐसे सम्राट् स्वायम्भुव मनु हैं ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

विख्यात मङ्गलमभ्युदयः सदाचारादिलक्षणं यस्य ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

उन स्वम्भुव मनु का सादाचारादि स्वरूप यश प्रख्यात है ।।२५।।

**स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया । आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ।।२६।।**

**अन्वयः**— हे विप्र ! स च राजर्षिः शतरूपया महिष्या सह धर्मकोविद त्वाम् दिदृक्षुः इह परश्वः आयास्यति ।।२६।।

**अनुवाद**— हे विप्र ! वे धर्मज्ञ राजर्षि, अपनी रानी शतरूपा के साथ आपको देखने के लिए परसो यहाँ आयेंगे ।।२६।।

**भावार्थ दीपिका**

हे विप्र ! महिष्या सह ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

हे विप्र अपनी महारानी के साथ यहाँ आयेंगे ।।२६।।

**आत्मजामसितापाङ्गीं वयःशीलगुणान्विताम् । मृगयन्तीं पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ।।२७।।**

**अन्वयः**— हे प्रभो ! असितापाङ्गीम्, वयः शीलगुणान्विताम् पतिं मृगयन्ती अनुरूपाय ते दास्यति ।।२७।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! वे अपनी श्यामलोचना अवस्था तथा शील आदि गुणों से सम्पन्न अपनी पुत्री को उसके लिए सर्वथा अनुरूप पति आपको समर्पित करेंगे ।।२७।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२७।।

**समाहितं ते हृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् । सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ।।२८।।**

**अन्वयः**— इमान् परिवत्सरान् यत्रते हृदयं समाहितम् हे ब्रह्मन् ! सा नृपवधूः त्वां आशु कामम् भजिष्यति ।।२८।।

**अनुवाद**— इतने वर्षों (दश हजार वर्षों) तक आपका मन जैसी पत्नी में लगा था हे ब्रह्मन् ! वह राजकुमारी अब शीघ्र ही वैसी ही पत्नी बनकर तुम्हारी यथेष्ट सेवा करेगी ।।२८।।

**भावार्थ दीपिका**

यत्र यस्यां भार्यायाम् । समाहितमभिसन्धानेन स्थितम् । नृपवधू राजकन्या ।।२८।।

**भाव प्रकाशिका**

इतने वर्षों से तुम्हारा मन जैसी पत्नी में लगा था, वह राजकुमारी वैसी ही पत्नी बनकर तुम्हारी सेवा करेगी।।२८।।

**या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति । वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यन्त्यञ्जसात्मनः ।।२९।।**

**अन्वयः**— या ते आत्मभृतं ते वीर्यं नवधा प्रसविष्यति । त्वदीये वीर्ये ऋषयः आत्मनः अञ्जसा आधास्यन्ति ।।२९।।

**अनुवाद**— वह तुम्हारे वीर्य को अपने गर्भ में धारण करके नव कन्याओं को उत्पन्न करेगी और तुम्हारी उन कन्याओं से ऋषिगण पुत्रों को उत्पन्न करेंगे ।।२९।।

**भावार्थ दीपिका**

ते वीर्यमात्मनि भृतं धृतं या प्रसविष्यति सा भजिष्यति । वीर्ये वीर्यप्रसूतासु कन्यासु । अञ्जसा आत्मने पुत्रानाधास्यन्ति ।।२९।।

**भाव प्रकाशिका**

वह आपकी पत्नी आपके वीर्य को धारण करके नव पुत्रियों को उत्पन्न करेगी और आपके वीर्य से उत्पन्न उन कन्याओं के गर्भ में मरीच्यादि ऋषिगण अपने पुत्रों का आधान करेंगे ॥२९॥

**त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः । मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥**

**अन्वयः**— त्वं च मे निदेशं सम्यगनुष्ठाय उशत्तमः मयि तीर्थीकृताशेष कृतार्थः मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥

**अनुवाद**— तुम भी मेरी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करके शुद्ध चित्तवाले हो जाओगे और अपने सभी कर्मों का फल मुझको समर्पित करके मुझको प्राप्त कर लोगे ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

निदेशमाज्ञाम् । उशत्तमः शुद्धसत्त्वः । तीर्थं पात्रं, तेन दानं लक्ष्यते । मयि समर्पितसर्वकर्मफल इत्यर्थः ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

निदेश का अर्थ आज्ञा है उशत्तमः= शुद्ध अन्तःकरण वाला । तीर्थ अर्थात् योग्य पात्र । इस तरह तीर्थी कृत शब्द से दान की प्रतीति होती है । भगवान् ने कहा कि मेरी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन के कारण तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध सत्त्वमय हो जायेगा । उसके फल स्वरूप अपने सभी कर्मों को तुम मुझको समर्पित कर दोगे और तुम मुझको प्राप्त कर लोगे ॥३०॥

**कृत्वा दया च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् । मय्यात्मानं सह जगद्द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— जीवेषु दयां कृत्वा अभयं च दत्वा आत्मवान् त्वम् मयि आत्मानं सह जगत् आत्मनि च अपि मां द्रक्ष्यसि ॥३१॥

**अनुवाद**— जीवों पर दया करके तुम जब संन्यास ग्रहण कर लोगे तो सभी जीवों को अभय प्रदान दोगे। उसके कारण तुम सम्पूर्ण जगत् के साथ अपने को भी मुझमें देखोगे ओर अपनी आत्मा में मुझको देखोगे ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

गार्हस्थ्येन दयां कृत्वा संन्यासेनाभयं दत्त्वा मय्यात्मानं जगच्च सहैकीभूतं द्रक्ष्यसि ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए जीवों पर दया करके और संन्यास आश्रम ग्रहण करके सभी जीवों को अभय प्रदान करके तुम, मुझमें अपने को तथा सम्पूर्ण जगत् को मुझमें देखोगे ॥३१॥

**सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने । तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— हे महामुने अहं च स्वांशकलया सह त्वद् वीर्येण तव क्षेत्रे देवहुत्यां तत्त्वसंहिताम् प्रणेष्ये ॥३२॥

**अनुवाद**— हे महामुने ! मैं भी अपने अंश कला के साथ आपके वीर्य से आपकी पत्नी देवहूति के गर्भ से अवतीर्ण होकर सांख्याशास्त्र का प्रणयन करूँगा ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वद्वीर्येण सह देवहूत्यामवतीर्येति शेषः ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने कहा कि मैं भी आपके वीर्य से आपकी पत्नी देवहूती के गर्भ से अवतीर्ण होकर सांख्य शास्त्र का प्रणयन करूँगा ॥३२॥

मैत्रेय उवाच

**एवं तमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः । जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥३३॥**

**अन्वयः**— एवं प्रत्यक् अक्षजः भगवान् तम् एवम् अनुभाष्य अथ सरस्वत्या परिश्रितात् विन्दुसरसः जगाम ॥३३॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— अन्तर्मुखी इन्द्रियों के विषय बनने वाले श्रीभगवान् इस प्रकार से कर्दम महर्षि को कहकर सरस्वती नदी से घिरे हुए विन्दुसरोवर से अपने लोक में चले गये ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रत्यग्भूतष्वक्षेषु जायते आविर्भवतीति प्रत्यगक्षजः । सरस्वत्या नद्या परिश्रितात्परिवेष्टितात् ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

जब योगी अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों की ओर से निरुद्ध करके उन सबों को अन्तर्मुखी बना लेता है तो उसी को श्रीभगवान् दर्शन देते हैं । वे भगवान् कर्दम महर्षि को इस तरह से आदेश देकर सरस्वती नदी से घिरा हुआ जो उनका आश्रम विन्दुसरोवर था उससे वे अपने लोक में चले गये ॥३३॥

**निरीक्षतस्तस्य ययावशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ।**
**आकर्णयन्पत्ररथेन्द्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम् ॥३४॥**

**अन्वयः**— तस्य निरीक्षतः अशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः, पत्ररथेन्द्रपक्षैः उदीर्णम् साम आकर्णयन् उच्चरितं स्तोमं च शृण्वन् ययौ ॥३४॥

**अनुवाद**— महर्षि कर्दम के देखते ही देखते सभी सिद्धेश्वरों से प्रशंसित वैकुण्ठ मार्ग श्रीभगवान् गरुडजी के पङ्खों से अभिव्यक्त होने वाले साम तथा उच्चारण किए जाने वाले साम की आधारभूत ऋचाओं (स्तोम) को सुनते हुए अपने लोक में चले गये ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

अशेषैस्तपोमन्त्रादिसिद्धेश्वरैरभिष्टुतः सिद्धमार्गो वैकुण्ठमार्गो यस्य । यद्वा अशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतश्चासो सिद्धैर्मृग्यत इति सिद्धमार्गश्च स ययौ । पत्ररथेन्द्रो गरुडस्तस्य पक्षैरुदीर्णमभिव्यक्तं साम आकर्णयन्, 'बृहद्रथन्तरे पक्षौ' इति श्रुतेः । उच्चारितं स्तोमं च सामाधारभूतानामृचां समुदायं शृण्वन् । **स्तोम आत्मा**' इति श्रुतेः । समासपाठे स्तोमः स्तोत्रीयसमुदायो यस्य साम्न इति ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

सभी तपस्याओं और मन्त्रों से तथा सिद्धेश्वरों से प्रशंसित है श्रीभगवान् का वैकुण्ठ मार्ग अथवा **अशेष सिद्धेश्वराभिष्टुत सिद्धमार्गः** पद का अर्थ है सभी सिद्धेश्वरों से प्रशंसित तथा जिनका सिद्धजन अन्वेषण किया करते है ऐसे श्रीभगवान् अपने लोक में चले गये । उनके जाने के प्रकार को बतलाते हुए कहते हैं— गरुडजी के पङ्खों से अभिव्यक्त होने वाले सामों का श्रवण करते हुए गये श्रुति भी कहती हैं- **बृहद्रथन्तरे पक्षौ ।** गरुड़ के बृहत्साम और स्थन्तर साम ये दोनों पङ्ख हैं । सामों के आधार भूत ऋचाओं का समुदाय ही उच्चरितस्तोम है । उसको सुनते हुए श्रीभगवान् अपने लोक में चले गये । श्रुति भी कहती है **स्तोम आत्मा** स्तोम ही सामों की आत्मा है । **उच्चरितस्तोम** यह पाठ होने पर अर्थ होगा स्तोत्रीय समुदाय जिस साम का उच्चरित है ॥३४॥

**अथ संप्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः । आस्ते स्म बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥३५॥**

**अन्वयः**— अथ शुक्ले संप्रस्थिते भगवान् कर्दमः ऋषि तं कालं प्रतिपालयन् विन्दुसरसि आस्ते स्म ॥३५॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के चले जाने पर भगवान् कर्दम ऋषि श्रीभगवान् के द्वारा निर्दिष्ट समय की प्रतीक्षा करते हुए विन्दु सरोवर पर ठहरे रहे ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

तं कालं परश्व इत्युक्तं प्रतीक्षमाणः ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने जो कहा था कि परसों दिन वे अपनी पुत्री को लेकर आयेंगे उस काल की प्रतीक्षा कर्दम महर्षि करते रहे ॥३५॥

**मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् । आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम् ॥३६॥**
**तस्मिन्सुधन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् । उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥३७॥**

**अन्वयः**— हे सुधन्वन् मनुः शातकौम्भपरिच्छदम् स्यन्दनम् सभार्यः आस्थाय स्वां दुहितरं आरोप्य महीम् पर्यटन् भगवान् यत् समादिशत् तस्मिन् अहनि, शान्तव्रतस्य मुनेः तत् आश्रमपदम् उपायात् ॥३६-३७॥

**अनुवाद**— हे सुन्दरधनुष धारण करने वाले विदुरजी ! स्वायम्भुव मनु सुवर्णजटित रथ पर अपनी पत्नी के साथ बैठकर और उस पर अपनी पुत्री को बैठाकर वरका अन्वेषण करने के लिए पृथिवी पर भ्रमण करते हुए जो दिन भगवान् बतलाये थे उसीदिन शान्ति परायण महर्षि कर्दम के उस आश्रम में आये ॥३६-३७॥

**भावार्थ दीपिका**

शातकौम्भाः सौवर्णाः परिकरा यस्मिंस्तं रथमास्थाय दुहितरं चारोप्य वरान्वेषणार्थं पर्यटन् । हे सुधन्वन्विदुर । यदहः ॥३६-३७॥

**भाव प्रकाशिका**

हे विदुरजी सुवर्ण जटित रथ पर अपनी पत्नी के साथ अपनी पुत्री को बैठाकर वर का अन्वेषण करने के लिए पृथिवी पर पर्यटन करते हुए महाराज मनु जिस दिन को भगवान् बतलाये थे उसी दिन उन शान्ति परायण कर्दम महर्षि के आश्रम में प्रवेश किए ॥३६-३७॥

**यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः । कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥३८॥**
**तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् । पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥३९॥**

**अन्वयः**— यस्मिन् प्रपन्ने कृपया भृशम् सम्परीतस्य भगवतः नेत्रात् अश्रुबिन्दः न्यपतन् तद्वै सरस्वत्याः जलप्लुतम् पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् विन्दुसरो नाम ॥३८-३९॥

**अनुवाद**— जहाँ पर अपने शरणागत भक्त कर्दम महर्षि के प्रति उत्पन्न हुयी अत्यन्त करुणा के कारण श्रीभगवान् के नेत्रों से आँसुओं की बूँदें गिर पड़ी वह सरस्वती नदी के जल से भरा हुआ अत्यन्त पवित्र तथा कल्याणकारी जल वाला तथा महर्षियों के समूह से सेवित है वही विन्दु सरोवर है ॥३८-३९॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्प्रवेशमात्रेण परमानन्दं प्राप्त इति दर्शयितुमाश्रमं वर्णयति-यस्मिन्नित्यादिभिः सप्तभिः श्लोकैः । प्रपन्ने कर्दमे । शिवमारोग्यममृतवत्स्वादु जलं यस्मिन् ॥३८-३९॥

भाव प्रकाशिका

उस आश्रम में प्रवेश करने मात्र से महाराज मनु को परमानन्द की प्राप्ति हुयी इस बात को बतलाने के लिए **यस्मिन् इत्यादि** सात श्लोकों के द्वारा पहले आश्रम का वर्णन करते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं— प्रपन्न शब्द से शरणागत कर्दम महर्षि को कहा गया है । उस विन्दुसरोवर का जल आरोग्य प्रदान करने वाला तथा अमृत के समान स्वादिष्ट था ॥३८-३९॥

**पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः । सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियान्वितम् ॥४०॥**

**अन्वयः**— कूजत्पुण्यमृगद्विजैः पुण्यद्रुमलताजालैःसर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियान्वितम् ॥४०॥

**अनुवाद**— पवित्र मृगों और पक्षियों की ध्वनि से ध्वनित पवित्र वृक्षों और लताओं के समूह से युक्त सभी ऋतुओं के पुष्पों और फलों से सम्पन्न वह आश्रम वनपंक्ति की शोभा से समन्वित था ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

कूजन्तः पुण्या मृगा द्विजाश्च येषु तैः पुण्यद्रुमलतानां जालैः समूहैर्युक्तम् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

उस आश्रम में पवित्र पशु पक्षियों की ध्वनि सुनायी पड़ती थी । तथा वह आश्रम पवित्र वृक्षों और लताओं के समूह से युक्त था ॥४०॥

**मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् । मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ॥४१॥**

**अन्वयः**— मत्तद्विजगणैः धुष्टम् मत्तभ्रमरविभ्रमम्, मत्तबर्हिनटाटोपम् मत्तकोकिलम् आह्वयन् ॥४१॥

**अनुवाद**— उस आश्रम में मत्त पक्षियों का समूह बोल रहा था, मतवाले भँवरे मँडरा रहे थे, मदमत्त मयूर अपने पङ्खों को फैलाकर नट की भाँति नाच रहे थे और मतवाली कोयलें अपनी कुहू-कुहू की ध्वनि से एक दूसरे को बुला रही थीं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

धुष्टं नादितम् । मत्तभ्रमराणां विभ्रमो विनोदो यस्मिन् । मत्ता बर्हिण एव नटास्तेषामाटोपो नृत्यसंभ्रमो यस्मिन् । आह्वयन्तो मिथो मत्ताः कोकिला यस्मिन् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

वह आश्रम मतवाले पक्षियों की ध्वनि से निनादित था, उसमें मतवाले भौरें मंडरा रहे थे, मदमत्त मयूर नट के समान नृत्य कर रहे थे, कोयलें अपनी मधुर ध्वनि से एक दूसरे को मानों बुला रही थीं ॥४१॥

**कदम्बचम्पकाशोककरञ्जबकुलासनैः । कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलंकृतम् ॥४२॥**

**अन्वयः**— कदम्बचम्पकाशोकः करञ्ज बकुल असनैः कुन्दमन्दारकुटजैः चूतपोतैः अलंकृतम् ॥४२॥

**अनुवाद**— वह आश्रम कदम्ब, चम्पा, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुन्द, मन्दार तथा कूट आदि फूलों के वृक्षों से तथा छोटे-छोटे आमों के पैधों से अलंकृत था ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

कदम्बादिभिर्वृक्षैरलंकृतम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

वह आश्रम कदम्ब आदि पुष्पों के वृक्षों से सुशोभित था ॥४२॥

**कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः । सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गुकूजितम् ॥४३॥**

**अन्वयः**— कारण्डवैः प्लवैः हंसैः कुररैः जलकुक्कुटैः, सारसैः चक्रवाकैः च चकोरैः वल्गुकूजितम् ॥४३॥

**अनुवाद**— वह आश्रम जलकाग, बत्तख, आदि जल पर तैरने वाले पक्षी, हंस, कुरर, जलमूर्ग सारस, चकवा, और चकोर नामक पक्षियों की मधुर ध्वनि से कूजित था ॥४३॥

**भावार्थ दीपिका**

काराण्डवादिभिः पक्षिभिर्वल्गु यथा तथा कूजितम् ॥४३॥

**भाव प्रकाशिका**

वह कारण्डव आदि पक्षियों की मधुर ध्वनि से कूजित था ॥४३॥

**तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवयकुञ्जरैः । गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥४४॥**

**अन्वयः**— तथैव हरिणैः, क्रोडैः, श्वाविद्, गवयकुञ्जरैः, गोपुच्छैः, हरिभिः मर्कैः, नकुलैः नाभिभिः वृतम् ॥४४॥

**अनुवाद**— वह आश्रम, हरिण, सूकर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लङ्गूर, सिंह, वानर, नेवले और कस्तूरी मृग आदि पशुओं से घिरा था ॥४४॥

**भावार्थ दीपिका**

हरिणादिभिर्वृतम् । तत्र क्रोडः सूकरः । श्वाविच्छल्लकः । मर्को मर्कटः । तद्विशेषो गोपुच्छः । हरिर्वानरः सिंहो वा। नाभिः कस्तूरीमृगः ॥४४॥

**भाव प्रकाशिका**

वह आश्रम हरिण इत्यादि से घिरा था । क्रोड अर्थात् सूकर, श्वाविद् अर्थात् स्याही, मर्क यानी वन्दर । गोपुछ, लङ्गूर यह बन्दरों की एक जाति है, उसकी पूंछ लम्बी होती है । हरि शब्द वानर और सिंह दोनों का वाचक है । नाभि अर्थात् कस्तूरी मृग ॥४४॥

**प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः । ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन्हुतहुताशनम् ॥४५॥**

**अन्वयः**— आदिराजः सहात्मजः तत्तीर्थ वरम् प्रविश्य तस्मिन् हुतहुताशनम् आसीनम् मुनिम् ददर्श ॥४५॥

**अनुवाद**— आदिराज महाराज मनु उस श्रेष्ठ तीर्थ में अपनी पुत्री के साथ प्रवेश करके, अग्नि में होम करके बैठे हुए कर्दम मुनि को देखे ॥४५॥

**भावार्थ दीपिका**

हुतो हुताशनो ब्रह्मचारियोग्यो येन ॥४५॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्मचारी के लिए जिस प्रकार का अग्निहोत्र विहित है उस प्रकार का अग्निहोत्र करके महर्षि कर्दम बैठे थे ॥४५॥

**विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् । नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापाङ्गवलोकनात् ॥**
**तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥४६॥**

**अन्वयः**— चिरम् तपसि उग्रजा वपुषा विद्योतमानम्, भगवतः स्निग्धापांगावलोकनात् तद्व्याहृतामृत कलापीयूष श्रवणेन च नातिक्षामं (मुनिददर्श) ॥४६॥

**अनुवाद**— दीर्घकाल तक उग्र तपस्या करने के कारण वे अपने शरीर से तेजस्वी दिखायी पड़ते थे,

श्रीभगवान् के स्नेह पूर्ण अवलोकन के दर्शन तथा उनके द्वारा उच्चारण किए गये कर्णामृत रूप सुमधुर वचनों के सुनने से दीर्घकाल तक तपस्या करने पर भी उनका शरीर अधिक दुर्बल नहीं प्रतीत होता था ।।४६।।

**भावार्थ दीपिका**

उग्रा युक् योगो यस्य तेन वपुषा विद्योतमानम् । तस्य भगवतो व्याहृतं भाषणमेवामृतकला अमृतमयस्य चन्द्रस्य कला तन्मयं पीयूषं तस्य श्रवणेन च नातिक्षामं तपसा कृशं सन्तमप्यकृशम् ।।४६।।

**भाव प्रकाशिका**

बहुत दिनों तक उग्र तपस्या करने के कारण उनका शरीर देदीप्यमान (चमक रहा) था । श्रीभगवान् की वाणी ही अमृतकला अर्थात अमृतमय चन्द्रमा की कला हैं । उस अमृतमय श्रीभगवान की वाणी का श्रवण करने के कारण महर्षि का शरीर यद्यपि कृश हो गया था फिर भी वह कृश नहीं प्रतीत हो रहा था । ऐसे महर्षि कर्दम को स्वयम्भुव मनु ने देखा ।।४६।।

**प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् । उपसंसृत्य मलिनं यथार्हणमसंस्कृतम् ।।४७।।**

**अन्वयः**— प्रांशुं पद्मपलशाक्षम् जटिलं, चीरवाससम्, मलिनं यथार्हणम् असंस्कृतम् उपसंसृत्य ।।४७।।

**अनुवाद**— लम्बे शरीर वाले, कमल दल के समान मनोज्ञ नेत्रों वाले, जटा धारण किए हुए, चीर वस्त्र धारण किए हए तथा निकट में जाकर देखने से विना शाण पर चढी हुयी मणि के समान वे मलिन दिख रहे थे ।।४७।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रांशुमुन्नतम् । उपसंसृत्य समीपं गत्वा मलिनं ददर्शेति पूर्वैव क्रिया । अर्ह्यतेऽनेनेत्यर्हणं महारत्नं तदसंस्कृतमनिर्णिक्तं यथा मलिनं दृश्यते तद्वत् ।।४७।।

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि का शरीर लम्बा था, उन महर्षि के सन्निकट में जाकर स्वायम्भुव मनु ने उनको मलिन देखा । जो संस्कार करने के योग्य हो ऐसे महारत्न संस्कार रहित तथा बिना शाण पर चढायी गयी मणि जिस तरह मलिन दिखती है, उसी तरह महर्षि कर्दम को महाराज मनु ने देखा ।।४७।।

**अथोटजमुपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः । सपर्यया पर्यगृह्णात्प्रतिनन्द्यानुरूपया ।।४८।।**

**अन्वयः**— अथ उटजम् उपायातम् पुरः प्रणतं नृदेवं प्रतिनन्द्य, अनुरूपया सपर्यया पर्यगृह्णात् ।।४८।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् झोपड़ी में आकर सामने प्रणाम करते हुए राजा स्वायम्भुव मनु को महर्षि कर्दम ने आशीर्वाद से प्रसन्न करके उनका आतिथ्य विधि से यथोचित सत्कार किया ।।४८।।

**भावार्थ दीपिका**

उटजं पर्णशालां प्राप्तं पुरः पादसमीपे प्रणतमाशीर्भिरभिनन्द्य सपर्यया पूजया प्रत्यगृह्णात्सत्कृतवान् ।।४८।।

**भाव प्रकाशिका**

पर्णशाला में आकर पैरों के सामने प्रणाम करने वाले राजा स्वायम्भुव मनु को आशीर्वाद के द्वारा प्रसन्न करके महर्षि कर्दम ने उनकी अतिथि विधि से पूजा करके उनका सत्कार किया ।।४८।।

**गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः । स्मरन्भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥४९॥**

**अन्वयः**— गृहीतार्हणम् आसीनं भगवदादेशं स्मरन् मुनिः । संयतं तं श्लक्षणया गिरा प्रीणयन् इत्याह ॥४९॥

**अनुवाद**— पूजा ग्रहण करने के पश्चात् राजा के आसन पर बैठ जाने पर भी भगवान् के आदेश का स्मरण करते हुए मुनि राजा को प्रसन्न करते हुए इस तरह से कहे ॥४९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥४९॥

**नूनं चंक्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते । वधाय चासतां यस्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥५०॥**

**अन्वयः**— हे देव त्वं हरेः हि पालिनी शक्तिः । ते चंकमणम् सतां संरक्षणाय असतां बधाय च ॥५०॥

**अनुवाद**— हे महाराज ! आप श्रीहरि की पालन करने वाली शक्ति हैं । अतएव आपका पर्यटन सत्पुरुषों की संरक्षा के लिए और दुष्टों का वध करने के लिए होता है ॥५०॥

**भावार्थ दीपिका**

ते चंक्रमणं पर्यटनम् । हि यस्मात् ॥५०॥

**भाव प्रकाशिका**

आप पृथिवी पर पर्यटन दो कारणों से करते हैं- १. सत्पुरुषों की संरक्षा और दुष्टों का विनाश करने के लिए, क्योंकि आप भगवान् विष्णु की पालन करने वाली शक्ति स्वरूप हैं ॥५०॥

**योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् । रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥**

**अन्वयः**— अर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् रूपाणि यः स्थाने आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥

**अनुवाद**— जो आप भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम, धर्म तथा वरुण आदि का रूप धारण करते हैं ऐसे साक्षात् विष्णु स्वरूप आप को नमस्कार है ॥५१॥

**भावार्थ दीपिका**

मनुस्त विष्णुं प्रणमति-य इति । स्थाने तत्तत्कार्यावसरे शुक्लाय विष्णवे ॥५१॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज मनु में विद्यमान भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हुए महर्षि कर्दम कहते हैं । स्थाने कहने का अभिप्राय है कि विभिन्न कार्यों को करने के समय में आप ही सूर्य चन्द्रमा, अग्नि तथा इन्द्र आदि का रूप धारण करते हैं, शुक्ल शब्द का अर्थ भगवान् विष्णु है अर्थात् विष्णु स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥५१॥

**न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितम् । विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डो रथेन त्रासयन्नघान् ॥५२॥**
**स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मण्डलं भुवः । विकर्षन्बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥५३॥**

**अन्वयः**— यदा मणिगणर्पितं जैत्रं रथम् आस्थाय विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डः रथेन अधान् त्रासयन् स्वसैन्य चरण क्षुण्णं भुवः मण्डलं वेपयन् बृहतीं सेनां विकर्षयन् अंशुमान् इव न पर्यटसि ॥५२-५३॥

**अनुवाद**— हे राजन् यदि आप मणिगण जटित जैत्र (विजयप्रद) रथ पर बैठकर अपने प्रचण्ड धनुष का टङ्कार करते हुए तथा रथ की घर्घरध्वनि से पापियों को भयभीत करते हुए और अपनी सेना के पैरों से रौंदे हुए भूण्डल को कँपाते हुए, अपनी विशाल सेना के साथ सूर्य के समान नहीं विचरण करें तो यह लोक विनष्ट हो जायेगा ॥५२-५३॥

### भावार्थ दीपिका

न यदेति पञ्चानामयमर्थः- यद्यपि धर्मरक्षार्थं सर्वतः पर्यटतस्तव प्रसङ्गादप्यागमनं संभवति तथापि विशेषकार्यं चेदस्ति तत्कथ्यतामिति । जैत्रं जयप्रदं मणिगणा अर्पिता यस्मिंस्तं रथमारुह्य त्वं यदा भुवो मण्डलं न पर्यटसि तदा सेतवो भिद्येरन्निति त्रयाणामन्वयः । विस्फूर्जन्नादं कुर्वच्चण्डं कोदण्डं धनुर्यस्य । स्वसैन्यस्य चरणैः क्षुण्णं सङ्घट्टितम् ।।५२-५३।।

### भाव प्रकाशिका

**न यदा इत्यादि** पाँच श्लोकों का यह अर्थ है कि यद्यपि धर्म की रक्षा के प्रसङ्ग में सर्वत्र भ्रमण करने वाले आपका उसी प्रसङ्ग में आगमन सम्भव है, फिर भी यदि आपका कोई विशेष कार्य हो तो उसे आप बतलायें। श्लोकार्थ इस प्रकार है मणिसमूहजटित विजय प्रद रथ पर सवार होकर यदि आप भूमण्डल पर भ्रमण नहीं करें तो फिर अनेक प्रकार की मर्यादायें विनष्ट हो जायेंगी । इस तरह से तीनों श्लोकों का अन्वय है । टङ्कार करने वाला आपका धनुष प्रचण्ड है । अपनी सेना के चरणों से मर्दित पृथिवी को कँपाते हुए विशाल सेना के साथ आप यदि भ्रमण न करें तो अनेक मर्यादाएँ विनष्ट हो जायेंगी ।।५२-५३।।

**तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः । भगवद्रचिता राजन् भिद्येरन्बत दस्युभिः ।।५४।।**
**अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः । शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो विनंक्ष्यति ।।५५।।**

**अन्वयः**— तदैव वर्णाश्रम निबन्धनाः सर्वे भगवद् रचिताः सेतवः बत दस्युभिः भिद्येरन् । लोलुपैः व्यङ्कुशैः नृभिः अधर्मश्च समेधेत । त्वयि शयाने दस्युग्रस्तः अयं लोकः विनंक्ष्यति ।।५४-५५।।

**अनुवाद**— यदि आप पृथिवी पर न भ्रमण करें तो उसी समय श्रीभगवान् के द्वारा निर्मित वर्णों एवं आश्रमों की मार्यादओं को चोर डाकू विनष्ट कर देंगे । लोलुप तथा निरङ्कश मनुष्यों द्वारा अधर्म बढने लग जायेगा । यदि आप संसार की ओर से निश्चिन्त हो जायँ तो यह लोक विनष्ट हो जायेगा ।।५४-५५।।

### भावार्थ दीपिका

वर्णाश्रमाणां निबन्धनं यैः । बत अहो । निरङ्कुशैर्नृभिर्निमित्तभूतैः । शयाने निश्चिन्ते ।।५४-५५।।

### भाव प्रकाशिका

आपके पृथिवी पर नहीं भ्रमण करने पर सभी वर्णों एवं आश्रमों के जो नियम बने हैं वे भगवद्रचित मर्यादायें ही विनष्ट हो जायेंगी । जगत् की ओर से आपके निश्चिन्त हो जाने पर निरङ्कुश और लोलुप मनुष्यों के द्वारा अधर्म समृद्ध हो जायेगा ।।५४-५५।।

**अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः । तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ।।५६।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ।।२१।।

**अन्वयः**— अथापि हे वीर त्वां पृच्छे यदर्थं त्वमिहागतः तद्वयं निर्व्यलीकेन हृदा प्रतिपद्यामहे ।।५६।।

**अनुवाद**— फिर भी हे वीर मैं आपसे यह पूछता हूँ कि इस समय आपका आगमन किस प्रयोजन से हुआ है । आपकी आज्ञा का पालन मैं निष्कपट भाव से करूँगा ।।५६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचर्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।**

### भावार्थ दीपिका

निर्व्यलीकेन सहर्षेण । प्रतिपद्यामहे स्वीकुर्महे ।।५६।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकविंशतितमोऽध्यायः ।।२१।।**

### भाव प्रकाशिका

निर्व्यलीकेन पद का अर्थ है हर्षपूर्वक प्रतिपद्यमहे अर्थात् हम स्वीकार करते हैं ।।५६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के इक्कीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२१।।**

## बाइसवाँ अध्याय

### देवहूति के साथ कर्दम प्रजापति का विवाह

मैत्रेय उवाच

**एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् । सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥१॥**

**अन्वयः**— एवम् आविष्कृताशेष गुणकर्मोदयः सम्राट् सव्रीड इव उपारतं तं मुनिम् उवाच ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— विदुरजी ! इस प्रकार से जब कर्दम महर्षि ने मनुजी के समस्त गुणों और कर्मों की प्रशंसा की तो सम्राट् कुछ लज्जित सा होते हुए निवृत्तिपरायण मुनि कर्दम से कहे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

द्वाविंशे कर्दमायादाद्यथादिष्टं हि विष्णुना । मनुर्दुहितरं देवहूतिमित्युपवर्ण्यते ॥१॥ एवमाविष्कृतोऽभिष्टुताऽशेषाणां गुणानां कर्मणां चोदय उत्कर्षो यस्य स सम्राण्मनुः । सव्रीड इव स्वकीर्तिश्रवणात्, प्रत्याख्यानशङ्कया वा तं मुनिमुवाच । उपारतं निवृत्तिनिरतम् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

बाइसवें अध्याय में महर्षि कर्दम को भगवान् विष्णु के आदेशानुसार मनुजी ने अपनी पुत्री को प्रदान किया उसी का वर्णन किया गया है ॥१॥ **एवमविष्कृता० इत्यादि-** इस तरह जिन सम्राट के समस्त गुणों तथा कर्मों के उत्कर्ष का वर्णन किया जा चुका था वे सम्राट् मनु अपनी कीर्ति को सुनने के कारण कुछ लज्जित से होते हुए निवृत्तिपरायण मुनि कर्दम से कहे । लज्जित से इसलिए हुए कि निवृत्ति परायण मुनि कर्दम से कह रहे हैं। लज्जित से वे इसलिए हो रहे थे कि मुनि उनके आग्रह का कहीं प्रत्याख्यान न कर दें ॥१॥

मनुरुवाच

**ब्रह्मासृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया । छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलम्पटान् ॥२॥**

**अन्वयः**— आत्मपरीप्सया, छन्दोमयः ब्रह्मा स्वमुखतः तपोविद्यायोगयुक्तान् अलम्पटान् युष्मान् असृजत् ॥२॥

**मुनियों ने कहा**

**अनुवाद**— हे मुने ! वेदमूर्ति ब्रह्माजी ने अपने वेदमय विग्रह की रक्षा के लिए तपस्या, क्रिया और योग से युक्त तथा विषयों से अनासक्त रहने वाले आप ब्राह्मणों की अपने मुख से सृष्टि की ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

मदीया कन्या त्वयापरिणेयेति विज्ञापयिष्यन् युष्मदस्मत्संबन्धस्तावदीश्वरेण पूर्वमेव घटित इत्याह-ब्रह्मेति सार्धाभ्याम्। आत्मनः परीप्सया पर्याप्तुमिच्छया । छन्दोमयस्यात्मनः पर्याप्तिः पालनं वेदप्रवर्तन तस्येच्छया । युष्मान् ब्राह्मणान् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

आप मेरी पुत्री के साथ विवाह करें इस बात को कहने की इच्छा से आपलोगों तथा हमलोगों के सम्बन्ध को परमात्मा ने पहले से ही बना रखा हैं इस बात को **ब्रह्मा० इत्यादि** डेढ श्लोकों से मनु ने कहा । **आत्म परीप्सया** का अर्थ है अपने शरीर की रक्षा की इच्छा से । छन्दोमय शरीर की रक्षा वेदों का प्रवर्तन है । उसकी इच्छा से ब्रह्माजी ने आप ब्राह्मणों को अपने मुख से प्रकट किया है ॥२॥

**तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात्सहस्रपात् । हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमङ्गं प्रचक्षते ॥३॥**

**अन्वयः**— तत् त्राणाय च अस्मान् सहस्रपात् दोः सहस्रात् असृजत् । तस्य हि हृदयम् ब्रह्म, क्षत्रम् अङ्गं प्रचक्षते ॥३॥

**अनुवाद**— उस हजारों चरणों वाले विराट् पुरुष ने आपलोगों की ही रक्षा के लिए हम क्षत्रियों को अपनी हजारों भुजाओं से उत्पन्न किया । इसलिए ब्राह्मण को उनका हृदय और क्षत्रिय को विराट पुरुष का शरीर कहा जाता है ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्त्राणाय ब्राह्मणपालनाय । ब्रह्म ब्राह्मणजातिः । क्षत्रं क्षत्रियजातिः ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिए विराट् पुरुष ने हम क्षत्रियों की सृष्टि की है । इसीलिए ब्राह्मण को विराट् पुरुष का हृदय और क्षत्रिय को उनका शरीर कहा जाता है । ब्रह्म शब्द ब्राह्मणजाति का और क्षत्त्र शब्द क्षत्रिय जति का वाचक है ॥३॥

**अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः । रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥४॥**

**अन्वयः**— अतो हि ब्रह्म क्षत्रंच अन्योयं आत्मानं अव्ययो देवः रक्षतिस्म यः सदसदात्मकः ॥४॥

**अनुवाद**— एक ही शरीर से सम्बद्ध होने के कारण ब्राह्मण और क्षत्रिय और परस्पर में एक दूसरे की रक्षा करते हैं और उन दोनों की रक्षा निर्विकार ब्रह्म करते हैं जो सदसदात्मक अर्थात् कार्यकारण रूप हैं ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं स देव एव रक्षति स्म । कोऽसौ । यः सदसदात्मकः सर्वात्मकः । तथाप्यव्ययो निर्विकारः ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह वे श्रीभगवान् ही रक्षा करते हैं जो कार्यकारण रूप तथा निर्विकार हैं ॥४॥

**तव संदर्शनादेव च्छिन्ना मे सर्वसंशयाः । यत्स्वयं भगवान्प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥५॥**

**अन्वयः**— तव दर्शनात् मे सर्वसंशयाः छिन्नाः यत् स्वयं भगवान् प्रीत्या रिरक्षिषोःधर्मम् आह ॥५॥

**अनुवाद**— आपके दर्शन से ही मेरे सारे संशय नष्ट हो गये क्योंकि आपने स्वयं रक्षा करने की इच्छा वाले मेरी प्रशंसा के माध्यम से धर्म का वर्णन किया है ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

तं विज्ञापयितुमेव तद्दर्शनादिकमभिनन्दति-तवेति त्रिभिः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

उसी को विज्ञापित करने के लिए महाराजमनु महर्षि कर्दम के दर्शन की प्रशंसा तीन श्लोकों से करते हैं ॥५॥

**दिष्ट्या मे भगवान्दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् । दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥६॥**

**अन्वयः**— अकृतात्मनाम् यो दुर्दर्शः भगवान् मे दिष्ट्या दृष्टः । दिष्ट्या मे भवतः शिवम् पादरजः शीर्ष्णा स्पृष्टम् ॥६॥

**अनुवाद**— जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है ऐसे लोगों को आपका दर्शन नहीं होता है, मेरे सौभाग्यवशात् आपका दर्शन मुझे मिला है और भाग्य से ही मैं आपके चरणों की धूलि को अपने शिर पर चढा पाया हूँ ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

अकृतात्मनामवशीकृतचित्तानाम् ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, यह अकृतात्मनाम् पद का अर्थ है ॥६॥

**दिष्ट्या त्वयानुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् । अपावृतैः कर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥७॥**

**अन्वयः**— दिष्ट्या त्वया अहम् अनुशिष्टः महान् अनुग्रहः च कृतः दिष्ट्या अपावृतैः कर्णरन्ध्रैः उशतीः गिरः जुष्टाः ॥७॥

**अनुवाद**— मेरे सौभाग्य से ही आपने मुझे राजधर्म का उपदेश दिया है, यह आपकी मुझ पर बहुत बड़ी कृपा है । अपने भाग्य के ही कारण मैंने आपकी कमनीय वाणी को अपना कान खोलकर सुना है ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुग्रहोऽनुशासनादिरूप एव । उशतीरुशत्यः ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

आपका यह अनुशासन (उपदेश स्वरूप) कृपा है । और मैंने भी आपके उपदेशों को कान खोलकर सुना है ॥७॥

**स भवान्दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम । श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥८॥**

**अन्वयः**— हे मुने ! कृपया भवान् दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनः मम दीनस्य श्रावितं श्रोतुमर्हसि ॥८॥

**अनुवाद**— हे मुने ! कृपा करके अपनी पुत्री के स्नेह के कारण चिन्ताग्रस्त मुझ दीन की बातों को आप सुनें ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

विज्ञापयति-स भवानिति सप्तभिः । दुहितुः स्नेहेन परिक्लिष्ट आत्मा यस्य । श्रावितं विज्ञापनम् ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज मनु **सभवान् इत्यादि** सात श्लोकों से अपनी बातों को बतलाते है । उन्होंने कहा कि पुत्री के प्रति स्नेह होने के कारण मेरा मन चिन्तित है । अतएव आप मेरी बातों को सुनें । श्रावितशब्द का अर्थ है विज्ञापन ॥८॥

**प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम । अन्विच्छति पतिं युक्तं वयःशीलगुणादिभिः ॥९॥**

**अन्वयः**— इयं मम दुहिता प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसा वयः शीलगुणादिभिः युक्तं पतिं अन्विच्छति ॥९॥

**अनुवाद**— यह मेरी कन्या प्रियव्रत और उत्तानपद की बहिन है, यह अवस्था गुण तथा शील आदि से युक्त पति को प्राप्त करना चाहती है ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेति पुत्रिकाकरणशङ्का निरस्ता । मम सुतेति क्षत्रकन्या तव योग्येति दर्शितम् ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहिन है यह कहकर मनुजी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इसको किसी से लेकर मैंने अपनी पुत्री नहीं बनाया है । मम सुता कहकर उन्होंने कहा कि यह क्षत्रिय जाति की मेरी पुत्री है अतएव यह आपके योग्य है ।।९।।

**यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् । अशृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ।।१०।।**

**अन्वयः**— यदा तु एषा नारदात् भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् अशृणोत् त्वयि कृत निश्चया आसीत् ।।१०।।

**अनुवाद**— जबसे इसने नारदजी के मुख से आपके शील, विद्या, रूप अवस्था आदि गुणों को सुना है तबसे इसने आपको ही अपना पति बनाने का निश्चय कर लिया है ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

एषा देवहूतिः ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

मूल के एषा पद के द्वारा दवहूति का निर्देश किया गया है ।।१०।।

**तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतां मया । सर्वात्मनाऽनुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ।।११।।**

**अन्वयः**— हे द्विजाग्र्य मया श्रद्धया उपाहृताम् इमां ते गृहमेधिषु कर्मसु सर्वात्मनानुरूपां प्रतीच्छ ।।११।।

**अनुवाद**— हे ब्राह्मणवर्य ! मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक आपको समर्पित जो आपके सभी गृहस्थोचित कार्यों के लिए सर्वथा अनुकूल है, इसको आप स्वीकार करें ।।११।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रतीच्छ स्वीकुरु ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

आप स्वीकार करें ।।११।।

**उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते । अपि निर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ।।१२।।**

**अन्वयः**— उद्यतस्य हि कामस्य निर्मुक्तसङ्गस्य अपि प्रतिवादः न शस्यते कामरक्तस्य पुनः किम् ?।।१२।।

**अनुवाद**— स्वतः प्राप्त भोग्य पदार्थ का परित्याग करना विरक्त पुरुष के लिए भी अच्छा नहीं माना जाता और जो विषयासक्त हो तो उसकी बात ही क्या है ?।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

उद्यतस्य स्वतःप्राप्तस्य विषयस्य । प्रतिवादः प्रत्याख्यानम् ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

स्वतः प्राप्त विषय का परित्याग करना विरक्त पुरुष के लिए भी अच्छा नहीं माना जाता है ।।१२।।

**य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते । क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ।।१३।।**

**अन्वयः**— यः उद्यतम् अनादृत्य कीनाशम् अभिचायते तत् स्फीतं यश क्षीयते अवज्ञया मानश्च हतः ।।१३।।

**अनुवाद**— जो मनुष्य स्वतःप्राप्त भोग का निरादर करके किसी कृपण से उसकी याचना करता है, उसका फैला हुआ यश क्षीण हो जाता है और दूसरे के द्वारा किए गये अपमान के कारण उसका मान भङ्ग भी हो जाता है ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

कीनाशं कृपणम् । अवज्ञया परापमानेन ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

कीनाश शब्द कृपण का बोधक है और अवज्ञया पद का अर्थ हे दूसरे के द्वारा किए गये अपमान के द्वारा ॥१३॥

**अहंत्वाऽश्रृणवं विद्वन्विवाहार्थं समुद्यतम् । अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रति गृहाण मे ॥१४॥**

**अन्वयः**— हे विद्वन् ! अहंत्वा विवाहार्थं समुद्यतं अश्रृण्वम् अतः त्वम् उपकुर्वाणः प्रतां मे प्रतिगृहाण ॥१४॥

**अनुवाद**— हे विद्वन् ! मैंने सुना है कि आप विवाह करने के लिए तैयार हैं अतएव उपकृत होने वाले आप मेरे द्वारा समर्पित की गयी इस कन्या को स्वीकार करें ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

यस्य सावधि ब्रह्मचर्य स उपकुर्वाणः । मे प्रत्तां मया दत्ताम् ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसका ब्रह्मचर्य एक निश्चित समय तक के ही लिए होता है, वह उपकुर्वाण कहलाता है । मे प्रत्ताम् का अर्थ है मेरे द्वारा प्रदत्त । महाराज मनु ने कहा कि आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी नहीं है । एक समय सीमा तक ही आपको ब्रह्मचर्य का पालन करना है, अतएव आप उपकुर्वाण हैं । क्योंकि आप विवाह करने के लिए तैयार हैं, अतएव आप मेरे द्वारा समर्पित इस कन्या को स्वीकार करें ॥१४॥

ऋषिरुवाच

**बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा । आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥१५॥**

**अन्वयः**— बाढम् अहम् उद्वोढुकामः तवात्मजा अप्रत्ता, असौ अनुरूपयोः आवयोः आद्यः वैवाहिकः विधिः ॥१५॥

**कर्दम ऋषि ने कहा**

**अनुवाद**— ठीक है, मैं विवाह करना चाहता हूँ और आपकी यह कन्या भी किसी को प्रदत्त नहीं है । अतएव यह हम एक दूसरे के अनुरूप हैं । हमदोनों का यह प्रथम वैवाहिक विधि हैं ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

अप्रत्ता चेति मय्येव कृतनिश्चयत्वात्कस्मैचित्प्रति श्रुता च न भवतीत्यर्थः । आद्यः प्रथमः, ततः पूर्वं विवाहाभावात्। मुख्य इति वा ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि इसने पहले से ही मुझको अपना पति बना लिया था अतएव इसको अपने किसी दूसरे को प्रदान करने का वचन नहीं दिया है । अतएव यह हम दोनों का प्रथम वैवाहिक विधि है । क्योंकि इससे पहले विवाह होता ही नहीं था । अथवा यह हम दोनों का मुख्य विवाह है ॥१५॥

**कामः स भूयान्नरदेव तेऽस्याः पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः ।**
**क एव ते तनयां नाद्रियेत स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— हे नरदेव सः समाम्नायविधौ प्रतीतः कामः अस्याःपुत्र्याः भूयात् स्वयैव कान्त्या श्रियम् क्षिपतीव ते तनयां क एव न आद्रियेत ॥१६॥

**अनुवाद**— हे राजन् ! वेदोक्त विवाह विधि में वर्णित जो काम है, वह सन्तनोत्पादन मनोरथ स्वरूप है। वह आपकी इस कन्या के साथ हमारा सम्बन्ध होने से सफल होगा । जो अपनी शरीर की कान्ति से भूषणों आदि की शोभा को तिरस्कृत करती है आपकी उस पुत्री का समादर कौन नहीं करेगा ?॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

भूयाद्भवेत् । प्रतीतः **'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या'** इत्यादिमन्त्रप्रसिद्धः । स्वयाङ्गकान्त्यैव । श्रियं भूषणादिशोभाम् ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

भूयात् का भवेत् के अर्थ में प्रयोग हुआ है । अर्थात् होना चाहिए । वेद के गृभ्णामि ते इत्यादि मन्त्र में जिस काम की प्रतीति होती है वह सन्तानोत्पादन मनोरथ स्वरूप है । आपकी पुत्री के साथ सम्बन्ध होने पर वह सफल होगा । आपकी पुत्री तो अपने अङ्गों की शोभा से भूषणों की भी कान्ति को तिरस्कृत करती है । इसका समादर कौन नहीं करेगा ?॥१६॥

**या हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम् ।**
**विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमानाद्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥१७॥**

**अन्वयः**— हर्म्यपृष्ठे विक्रीडतीम् कन्दुकम् विह्वलाक्षीम्, क्वणदङ्घ्रिशोभां यां विलोक्य संमोहविमूढचेताः विश्वावसु स्वविमानात् न्यपतत् ॥१७॥

**अनुवाद**— अपने छत के ऊपर कन्दुक क्रीडा में संलग्न होने के कारण जिसके नेत्र चञ्चल हो गये थे और जिसके पैरों की पायल झनकार कर रहे थे, उसकी शोभा को देखकर मोहग्रस्त होकर विश्वावसु नामक गन्धर्व अपने विमान से गिर पड़ा था ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

यां विलोक्य न्यपतत् । संमोहेन विमूढं व्याकुलं चेतो यस्य । क्वणद्भ्यामङ्घ्रिभ्यां शोभा यस्याः ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

आपकी पुत्री के पैरों में बजती हुयी पायल से भूषित पैरों की शोभा को देखकर विश्वावसु नामक गन्धर्व मोहग्रस्त होकर अपने विमान से गिर पड़ा । इसके शरीर की कान्ति भूषण की भी कान्ति को तिरस्कृत करने वाली है ॥१७॥

**तां प्रार्थयन्तीं ललनाललाममसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ।**
**वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— तां प्रार्थयन्तीम् ललनाललामम् असेवितश्रीचरणैः अदृष्टाम् मनोः वत्सां उच्चपदः स्वसारम् अभियाताम् कः बुधः नानु मन्येत ॥१८॥

**अनुवाद**— उस चाहने वाली रमणिरत्न, जिसने श्रीदेवी के चरणों की सेवा नहीं की है, उनके लिए अदर्शनीय, आप महाराज मनु की पुत्री और उत्तानपाद की बहिन जो स्वयं यहाँ आयी हुयी है, उसका कौन विज्ञ पुरुष समादर नहीं करेगा ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

तां ललनानां ललामं भूषणभूताम् । असेवितौ श्रियश्चरणौ यैस्तैरदृष्टां द्रष्टुमप्ययोग्याम् । उच्चपद उत्तानपादस्य । अभियातां स्वयं प्राप्ताम् ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

जो रमणियों को भी अलंकृत करने वाली है जिन लोगों ने श्रीदेवी के चरणों की सेवा नहीं की है वे लोग तो इसका दर्शन भी नहीं कर सकते है। जो आप की पुत्री है और उत्तानपाद की बहन है, साथ ही यहाँ स्वयम् आयी हुयी है, भला कौन ऐसा विज्ञ होगा जो उसका समादर न करे ॥१८॥

**अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ।**
**अतो धर्मान्पारमहंस्यमुख्यान् शुक्लप्रोक्तान्बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥१९॥**

**अन्वयः**— अतः समयेन साध्वीं भजिष्ये। यावद् मे आत्मनो तेजः विभृयात्। अतः शुक्ल प्रोक्तान् अविहिंस्रान् पारमंहस्यमुख्यान् धर्मान् बहुमन्ये ॥१९॥

**अनुवाद**— मैं आपकी इस साध्वी पुत्री को अवश्य स्वीकार करूँगा, किन्तु एक शर्त के साथ। जब तक यह गर्भ धारण करेगी तब तक मैं इसके साथ गृहस्थधर्म के अनुसार रहूँगा। उसके पश्चात् स्वयं श्रीभगवान् से ही कहे गये हिंसारहित संन्यास प्रधान धर्मों का अधिक महत्व दूँगा ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

भजिष्ये स्वीकरिष्ये। यावदपत्योत्पत्तिस्तावद्गार्हस्थ्यं ततः परं संन्यासः इति भाषाबन्धः समयः। तमेवाह। यावदत्मनो मम तेजो गर्भं विभृयात्। यद्वा ममात्मनो देहाच्चयुतं तेजो वीर्यं बिभृयादिति। अतः परं पारमहंस्यं ज्ञानं तस्मिन्मुख्यान् शुक्लेन विष्णुना साक्षात्प्रकर्षेणोक्तानविहिंस्रान्हिंसारहितान् शमादीन्बहु यथाभवत्येवमनुष्ठेयान्मन्ये ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

कर्दम महर्षि ने महाराज मनु से कहा कि मैं आपकी पुत्री को स्वीकार करूँगा किन्तु एक शर्त के साथ। जब तक सन्तानोत्पत्ति होगी तब तक मैं गार्हस्थ्य का पालन करूँगा और उसके पश्चात् मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा। यही भाषाबन्ध शर्त है। उसी को महर्षि कर्दम ने कहा जब तक यह मेरे तेज को धारण करेगी। अथवा मेरे शरीर से निकले हुए वीर्य को गर्भ रूप में धारण करेगी तब तक मैं इसके साथ गार्हस्थ्य धर्म के अनुसार रहूँगा, उसके पश्चात् संन्यास प्रधान अर्थात् ज्ञान प्रधान तथा श्रीभगवान् के द्वारा उपदिष्ट हिंसा रहित शम दमादि आदि बहुत धर्म जिसमें अनुष्ठेय होते हैं उस संन्यास धर्म को मैं ग्रहण कर लूँगा ॥१९॥

**यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वाव तिष्ठते ।**
**प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं परं प्रमाणं भगवाननन्तः ॥२०॥**

**अन्वयः**— यतः इदं विचित्रं विश्वम् अभवत् यत्र च संस्थास्यते यत्र च वाव तिष्ठते एष प्रजापतीनां पतिरेव च भगवान् अनन्त एव मह्यं परं प्रमाणम् ॥१९॥

**अनुवाद**— जिनसे यह विचित्र जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें जाकर यह लीन हो जायेगा और जिनके आधार पर यह जगत् टिका है वे प्रजापतियों के भी पति श्रीभगवान् ही परम प्रमाण हैं ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

ननु तव पितुः प्रजापतेराज्ञा सृष्टावेव न संन्यासे तत्राह-यत इति। संस्थास्यते च लयं यास्यति। वावेति एवार्थे ऋणत्रयापाकरणानन्तरं संन्यास एव मादृशानां भगवतोक्त इत्यर्थः ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि आपके पिता प्रजापति की आज्ञा तो सृष्टि ही करने के लिए है संन्यास के लिए नहीं तो उसका उत्तर **यतोभवद्० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है। यह विचित्र जगत् जिनके द्वारा सृष्ट है और

प्रलयकाल में यह जगत् जिनमें लीन हो जायेगा। वाव यह अव्यय निश्चयार्थक है। श्रीभगवान् ने हम जैसे जीवों को तीनों ऋणों का चुका लेने के पश्चात् संन्यास ही ग्रहण करने के लिए कहा है ॥२०॥

मैत्रेय उवाच

**स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाष आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ।**
**धियोपगृह्णन्स्मितशोभितेन मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥२१॥**

**अन्वयः**— हे उग्रधन्वन् ! सः इयदेव आवभाषे धिया अरविन्दनाभम् उपगृह्णन् तुष्णीं च आसीत्। स्मितशोभितेन मुखेन देवहुत्याः चेतो लुलुभे ॥२१॥

**अनुवाद**— हे प्रचण्ड धनुष धारण करने वाले विदुरजी ! महर्षि कर्दम केवल इतना ही कहे, फिर वे अपने हृदय में भगवान् पद्मनाभ का ध्यान करते हुए मौन हो गये। उनके मन्दमुस्कान युक्त मुख को देखकर देवहूति का मन लुभा गया ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

हे उग्रधन्वन्विदुर। लुलुभे मुनेर्मुखेन प्रलोभ्यते स्म। यद्वा मुखेन प्रलोभितवान् ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

हे उग्रधनुषधारण करने वाले विदुरजी ! महर्षि कर्दम के मुख को देखकर देवहूति लुभा गयी। अथवा महर्षि ने अपने मुख से देवहूति को प्रलोभित किया ॥२१॥

**सोऽनु ज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् । तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥२२॥**

**अन्वयः**— सः अनु महिष्याः दुहितुः च स्फुटम् व्यवसितं ज्ञात्वा, प्रहर्षितः तस्मै गुणगणाढ्याय तुल्यां प्रददौ ॥२२॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् वे महारानी और पुत्री दोनों की स्पष्ट अनुमति को जानकर अनेक गुण समूह से सम्पन्न महर्षि कर्दम को उन्होंन कर्दमजी के समान गुणों वाली प्रसन्नता पूर्वक कन्या का दान दे दिया ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

स मनुः। अन्वनन्तरम्। महिष्याश्च व्यवसितं निश्चयं ज्ञात्वा ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

वे मनु उसके पश्चात् महारानी के निश्चय को जानकर महर्षि को अपनी पुत्री का दान कर दिये ॥२२॥

**शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् । दम्पत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान् ॥२३॥**

**अन्वयः**— महाराज्ञी शतरूपा महाधनान् पारिवर्हान् भूषावासः परिच्छदान् दम्पत्योः प्रीत्या पर्यदात् ॥२३॥

**अनुवाद**— महारानी शतरूपा ने भी बहुमूल्य वस्त्र आभूषण तथा गृहस्थोचित गृह के उपकरणों को अपनी पुत्री तथा दामाद को प्रेमपूर्वक दहेज में दे दिया ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

परिबर्हान्विववाहकाले प्रदेयान्। भूषाः भूषणानि वासांसि परिच्छदान्गृहोपकरणानि च ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

महारानी शतरूपा ने विवाह के समय दिए जाने वाले वस्त्र, आभूषण तथा गृह के उपकरणों को अपनी पुत्री तथा दामाद को बड़े प्रेम से प्रदान किया ॥२३॥

**प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः । उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥२४॥**
**अशक्नुवंस्तद्विरहं मुञ्चनबाष्पकलां मुहुः । आसिञ्चदम्ब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥२५॥**

**अन्वयः**— सदृक्षाय प्रत्तां दुहितरं सम्राट् गतव्यथः औत्कण्ठयोन्मथिताशयः बाहुभ्याम् उपगुह्य तद् विरहम् अशक्नुवन् मुहुः वाष्पकलां मुंचन् अम्बवत्से इति नेत्रोदैः दुहितुः शिखाः असिंचत् ॥२४-२५॥

**अनुवाद**— योग्य वर को अपनी पुत्री को प्रदान करके महाराज मनु निश्चिन्त हो गये । चलते समय वियोग नहीं सह सकने के कारण उन्होंने पुत्री को अपनी छाती से लगा लिया, और हे अम्ब, हे वत्से इस तरह से कहकर बार-बार अपने आंसुओं को बहाते हुए आंसुओं से देवहूति के केशों का सींच दिये ॥२४-२५॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रत्तां दत्ताम् । सदृक्षाय सदृशाय । गता व्यथा चिन्ता यस्य । औत्कण्ठ्येनोन्मथितः क्षुभित आशयो यस्य । तस्या विरहं सोढुं हे अम्ब हे वत्से इति ब्रुवन् । सन्धिरार्षः । शिखाः केशानासिञ्चत् ॥२४-२५॥

**भाव प्रकाशिका**

योग्य वर को पुत्री को प्रदान करके महाराज मनु निश्चिन्त हो गये । वियोग के नही सकने के कारण व्याकुल चित्त वाले महाराज ने अपनी पुत्री को हृदय से लगा लिया और परस्पर में हे माँ, हे पुत्रि ! कहते हुए देवहूति के केशों को सींच दिये । वत्सेति में सन्धि आर्ष है ॥२४-२५॥

**आमन्त्र्य तं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः । प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥२६॥**
**उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः । ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥२७॥**

**अन्वयः**— तं मुनिवरम् आमन्य अनुज्ञातः सहानुगः समार्यः रथम् आरुह्य ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः उभयोः सुरोधसोः उपशान्तानां ऋषीणाम् आश्रमसम्पदः पश्यन् नृपः स्वपुरं प्रतस्थे ॥२६-२७॥

**अनुवाद**— मुनिश्रेष्ठ कर्दम महर्षि से पूछकर तथा उनसे आज्ञा प्राप्त करके अपने अनुचरों के साथ सपत्निक रथ पर बैठकर ऋषि कुल सेवित सरस्वती नदी के दोनों तटों पर विद्यमान शान्तिप्रधान ऋषियों के आश्रमों की शोभा को देखते हुए राजा अपने नगर के लिए प्रसथान किए ॥२६-२७॥

**भावार्थ दीपिका**

ऋषिकुलहितायाः उभयोः सुरोधसोः शोभनतटयो ॥२६-२७॥

**भाव प्रकाशिका**

ऋषिकुलों का कल्याण करने वाली सरस्वती नदी के सुन्दर तटों पर विद्यमान ऋषियों के आश्रमों की शोभा को देखते हुए अपने नगर के लिए प्रस्थान किए ॥२६-२७॥

**तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजाः पतिम् । गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥**

**अन्वयः**— तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात् प्रहर्षिताः प्रजाः पतिम् गीत संस्तुति वादित्रैः प्रत्युदीयुः ॥२८॥

**अनुवाद**— उनको आते हुए जानकर ब्रह्मावर्त की अत्यन्त प्रहर्षितप्रजा गीत स्तुति एवं वाद्यों के साथ आगे आकर उनकी अगवानी की ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ब्रह्मावर्ताद्देशात्प्रजाः पतिं प्रत्युज्जग्मुः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने आते हुए स्वामी को जानकर ब्रह्मावर्त की प्रजाओं ने उनकी अगवानी की ॥२८॥

**बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसम्पत्समन्विता । न्यपतन्यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुन्वतः ॥२९॥**

**अन्वयः**— सर्वसम्पत् समन्विता बर्हिष्मती नाम पुरी अङ्गं विधून्वतः यज्ञस्य रोमाणि यत्र न्यपतन् ॥२९॥

**अनुवाद**— सभी प्रकार की सम्पदाओं से युक्त बहिर्ष्मती नाम की नगरी थी, जहाँ पर पृथिवी को रसातल से ले आने के पश्चात् वराह भगवान् जब अपने अङ्गों को फड़फडाए तो वहाँ पर उनके रोएँ गिर पड़े थे ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

कोऽसौ ब्रह्मावर्त इत्यपेक्षायामाह–यत्र बर्हिष्मती नाम पुरीति । साऽपि कुत्र । यत्र यज्ञस्य यज्ञवराहस्य रोमाणि न्यपतन्निति यत्रेति सर्वत्र संबध्यते ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

अब प्रश्न होता है कि वह ब्रह्मवर्त कौन है ? इस प्रकार की शङ्का होने पर कहा गया है **यत्र बर्हिष्मती इत्यादि** जहाँ पर बर्हिष्मती नाम की नगरी है । वह नगरी कहाँ पर है, तो इसका उत्तर है कि जहाँ पर यज्ञवराह के रोम गिर पड़े थे । सब जगह यत्र पद को जोड़ना चाहिए ॥२९॥

**कुशाः काशास्त एवासन् शश्वद्धरितवर्चसः । ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे ॥३०॥**

**अन्वयः**— शश्वत् हरित वर्चसः त एव कुशाः काशा आसन् ऋषयः यैः यज्ञध्नान् पराभाव्य यज्ञम् ईजिरे ॥३०॥

**अनुवाद**— सदा हरे बने रहने वाले वे ही (रोम ही) कुश और काश हो गये, जिन सबों से ऋषियों ने यज्ञों को विनष्ट करने वाले दैत्यों का तिरस्कार यज्ञों के द्वारा करके श्रीभगवान् की आराधना की ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

बर्हिष्मतीनामनिरुक्तिं ब्रुवन्प्रसङ्गाद्देशस्य श्रैष्ठ्यमाह द्वाभ्याम् । कुशाः काशाश्चासन् । शश्वन्नित्यं हरितं वर्चो वर्णो येषाम्। यज्ञघ्नान् राक्षसादीन् । पराभावं नीत्वा यज्ञं विष्णुम् ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

बर्हिष्मती नाम की व्युत्पत्ति बतलाते हुए दो श्लोकों से प्रसङ्गवशात् देश की श्रेष्ठता को बतलाते हैं । वे वाराह भगवान् के रोम ही कुश और काश हो गये । जिन सबों का रूप सदा हरा ही बना रहता है वे ही कुश और काश कहलाते हैं । ऋषियों ने कुशों तथा काशों के द्वारा ही यज्ञों को विनष्ट करने वाले दैत्यों को परास्त करके भगवान् विष्णु की आराधना की ॥३०॥

**कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगावान्मनुः । अयजद्यज्ञपुरुषं लब्धा स्थानं यतो भुवम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— यतः भुवं स्थानं लब्धा भगवान् मनुः कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य यज्ञपुरुषम् अयजत् ॥३१॥

**अनुवाद**— महाराज मनु भी वराह भगवान् से भूमि रूप निवास स्थान को प्राप्त करके कुश काश की चटाई बिछाकर यज्ञों से भगवान् विष्णु की आराधना किए ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

यज्ञपुरुषं विष्णुं यत इति यत्रायजत् । भुवं स्थानम् । लब्धेति तृन्प्रत्ययान्तम् । लब्धवान्सन्नित्यर्थः । यतो लब्धवांस्तं यज्ञपुरुषमिति वा । एतेन स्वर्गादपि भूमिः श्रेष्ठा, तत्रापि तत्स्थानं श्रेष्ठमित्युक्तं भवति ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

जहाँ पर भगवान् मनु ने यज्ञों द्वारा यज्ञ स्वरूप भगवान् विष्णु की आराधना की । वराह भगवान् से भूमि रूपी निवास स्थान को प्राप्त करके । तृन् प्रत्यान्त लब्धृ शब्द का रूप है लब्धा । अर्थात् प्राप्त किया । अथवा

मनुजी ने यज्ञ पुरुष भगवान् को प्राप्त किया । इससे यह सिद्ध हो गया कि पृथिवी स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है और उसमें भी वराह भगवान् के रोएँ जहाँ गिरे वह स्थान श्रेष्ठ है ॥३१॥

**बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निर्विश्य समावसत् । तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— विभुः यां बर्हिष्मतीं नाम निर्विश्य समावसत् तस्यां तापत्रयविनाशनं भवनं प्राविशत् ॥३२॥

**अनुवाद**— महाराज मनु जिस बर्हिष्मती नाम की नगरी को बसाकर उसमें निवास करते थे उस नगरी में तीनों तापों को विनष्ट करने वाले अपने भवन में प्रवेश किए ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह । यां बर्हिष्मतीं नाम पुरीं समावसत् । पूर्वं यस्यामुषितस्तस्यां निर्विश्य भवनं प्रविष्टः सन् भोगान्बुभुज इत्यन्वयः ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

बीच में अनेक प्रकार के वर्णन आ जाने से प्रस्तुत प्रसङ्ग को बतलाते हुए कहते हैं कि जिस बर्हिष्मती नगरी में महाराज मनु रहते थे । अर्थात् पहले जिसमें निवास कर चुके थे उसी नगरी के तापत्रय विनाशक भवन में वे प्रवेश किए और भोगों को भोगे ॥३२॥

**सभार्यः सप्रजः कामान्बुभुजेऽन्याविरोधतः । संगीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ॥**
**प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन्हरेः कथाः ॥३३॥**

**अन्वयः**— सभार्यः सप्रजः अन्याविरोधतः कामान् बुभुजे प्रत्यूषेषु सस्त्रीभिः सुरगायकैः संगीयमानसत्कीर्ति अनुबद्धेन हृदा हरेः कथाः शृण्वन् ॥३३॥

**अनुवाद**— अपनी पत्नी और सन्तान के साथ वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अविरोधी भोगों को भोगने लगे । प्रातःकाल की बेला में अपनी पत्नियों के साथ गन्धर्वगण उनकी सत्कीर्ति का गान करते थे । किन्तु वे श्रीहरि की कथाओं को ही प्रेमपूर्वक सुनते थे ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

अन्येषां धर्मादीनामविरोधेन । प्रत्यूषेषु उषःसु संगीयमाना सत्कीर्तिर्यस्य, तथापि स्वयं हरेरेव कथाः शृण्वन्भोगान्बुभुजे ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

वे धर्म, अर्थ एवं मोक्ष के अनुकूल ही भोगों को भोगते थे । प्रातःकाल में गन्धर्वगण उनकी सत्कीर्ति का गान करते थे; किन्तु वे उसमें आसक्त नहीं होकर श्रीहरि की कथाओं को ही प्रेम पूर्वक सुनते थे ॥३३॥

**निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायंभुवं मनुम् । यदाभ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् ॥३४॥**

**अन्वयः**— योगमायासु निष्णातम् भगवत् परम् यत् भोगाः मुनिम् स्वयाम्भुवम् मनुम् आभ्रंशयितुम् न शेकुः ॥३४॥

**अनुवाद**— अपनी इच्छा के अनुसार भोगों की रचना करने में समर्थ भगवत् परायण और मननशील स्वायम्भुव मनु को भोग विचलित नहीं कर सके ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

योगमायासु ऐच्छिकभोगरचनासु । यद्यतः आभ्रंशयितुं आ ईषदपि भ्रंशयितुमभिभवितुम् ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

स्वायम्भुव मनु अपने मनोनुकूल भोगों की रचना में निष्णात थे भगवत्परायण थे और मननशील थे, इसीलिए भोग उनको थोड़ा सा भी विचलित करने में असमर्थ थे ॥३४॥

**अयातयामास्तस्यासन्यामाः स्वान्तरयापनाः । श्रृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥३५॥**

**अन्वयः**— विष्णोः कथाः ब्रुवतः श्रृण्वतः ध्यायतः कुर्वतः तस्य स्वान्तरयापनाः यामाः अयातयामाः आसन् ॥३५॥

**अनुवाद**— भगवान् विष्णु की कथा को कहते हुए सुनते हुए ध्यान करते हुए तथा उसकी रचना करते हुए उनके मन्वन्तर को व्यतीत करने वाले याम (प्रहर) कभी व्यर्थ नहीं वितते थे ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

अतो यातो यामो यस्य पक्वस्यान्नस्य तद्गतसारं भवति, अतोऽन्यदपि गतसारं यातयाममुच्यते । अयातयामा अगतसारा आसन् । स्वान्तरं तदीयं मन्वन्तरं यापयन्ति गमयन्ति ते यामाः कालावयवाः । कुर्वतः स्ववाक्यैरुपनिबध्नतः ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस पके हुए अन्न के एक प्रहर बीत जाते हैं वह पका हुआ अन्न निस्सार हो जाता है । इसी तरह से दूसरी भी वस्तुएँ जो सारहीन हो जाती है वे गतयाम कहलाती हैं । जिन सबों के द्वारा उनका मन्वन्तर बीत जाता है, वह इनके मन्वन्तर रूपी काल का भाग कभी इसलिए व्यर्थ नही बितता था कि वे सदा श्रीभगवान् की कथाओं का श्रवण करते थे, ध्यान करते थे, स्वयम् उसकी रचना करते थे और दूसरों को सुनाते थे ॥३५॥

**स एवं स्वान्तरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् । वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः ॥३६॥**

**अन्वयः**— एवं वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः स्वान्तरं युगानामेकसप्ततिम् निन्ये ॥३६॥

**अनुवाद**— इस तरह अपनी जाग्रत् आदि तीन अवस्थाओं अथवा सत्त्वादि तीन गुणों को अभिभूत करके मनु महाराज भगवान् वासुदेव की कथा के प्रसङ्ग में ही अपने मन्वन्तर के इकहत्तर हजार चतुर्युग बिता दिए ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

परिभूतं गतित्रयं जाग्रदादि सात्त्विकादि वा येन ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

निरन्तर भगवत कथा के प्रसङ्ग में लगे रहने के कारण मनुजी ने अपने सात्त्विकादि तीनों गुणों अथवा जाग्रदादि तीनों अवस्थाओं को अभिभूत कर दिया था ॥३६॥

**शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः । भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥३७॥**

**अन्वयः**— हे वैयासे हरिसंश्रयम्, शारीराः मानसाः दिव्याः मानुषाः भौतिकाश्च क्लेशाः कथं बाधन्ते ॥३७॥

**अनुवाद**— हे व्यासनन्दन ! श्रीहरि के ही आश्रय में रहने वाले पुरुष को शारीरिक, मानसिक, आकाश से होने वाले वज्रपात आदि, शत्रुओं से उत्पन्न होने वाले तथा हिंस्रादि जीवों से उत्पन्न होने वाले क्लेश कैसे बाधित कर सकते हैं ?॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

दिव्यास्त्वान्तरिक्षाः । मानुषाः शत्रुप्रभवाः । भौतिकाः शीतोष्णादिप्रभवाः । वैयासे हे विदुर ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

वैयासे पद से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है । मैत्रेयजी कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीभगवान् को ही अपना आश्रय मानता है, उसको शारीरक मानसिक, अन्तरिक्ष जन्य शत्रुजन्य, भूतजन्य, शीतउष्ण इत्यादि क्लेश नहीं बाधित कर सकते हैं । अन्तरिक्ष से होने वाले वज्रपात आदि मानुष अर्थात् शत्रुओं से कष्ट तथा शीतोष्णादिजन्य क्लेश भगवद् भक्त को नहीं होते हैं ॥३७॥

**यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधान् शुभान् । नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥३८॥**

**अन्वयः**— यः मुनिभिः पृष्टः सर्वभूहितः सदा नृणां वर्णाश्रमाणां च नानाविधान् शुभान् धर्मान् प्राह ॥३८॥

**अनुवाद**— सभी जीवों के कल्याण में सदा लगे रहने वाले जो मनुजी मुनियों द्वारा पूछे जाने पर मनुष्यों तथा आश्रमों के लिए कल्याणकारी अनेक प्रकार के मङ्गलमय धर्मों का उपदेश दिए ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

तस्य ज्ञानातिशयमाह-य इति । नृणां साधारणधर्मान् ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मनुजी के ज्ञानातिरेक को बतलाया गया है, मुनियों के द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने मनुष्यों के साधारण धर्मों तथा भिन्न-भिन्न वर्णों एवं आश्रमों के विशेषधर्मों का वर्णन किया था। वही आज भी मनुस्मृति के रूप में संगृहीत है ॥३८॥

**एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् । वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥३९॥**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥२२॥

**अन्वयः**— एतत् वर्णनीयस्य आदिराजस्य मनोः अद्भुतं चरितम् ते वर्णितं तत् अपत्योदयं शृणु ॥३९॥

**अनुवाद**— यह मैंने वर्णन करने योग्य आदिराजा मनु जी के अद्भुत चरित को आपको सुनाया अब आप उनकी सन्तान देवहूति का प्रभाव सुनें ॥३९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥**

### भावार्थ दीपिका

तस्य यदपत्यं देवहूतिस्तस्योदयं प्रभावम् ॥३९॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥**

### भाव प्रकाशिका

मनुजी के चरित को सुनने के पश्चात् अब उनकी पुत्री देवहूति के प्रभाव को आप सुनें ॥३९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के बाइसवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२२॥**

# तेइसवाँ अध्याय

## कर्दम और देवहूति का विहार

मैत्रेय उवाच

**पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा । नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥१॥**

**अन्वयः**— पितृभ्यां प्रस्थिते इंगितकोविदा साध्वी नित्यं भवं प्रभुम् भवानीव पतिं प्रीत्या पर्यचरत् ॥१॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी माता-पिता के चले जाने पर अपने पति के अभिप्राय को जानने वाली देवहूति उसी तरह कर्दम महर्षि की सेवा करने लगी जिस तरह पार्वतीजी भगवान् शिव की सेवा करती हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे ततो योगनिर्मिते सर्वसंपदि । विमाने कामगे चित्रा तयो रतिरुदीर्यते ।।१।। प्रस्थिते गमने कृते सति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तेइसवें अध्याय में योग के द्वारा निर्मित सभी सम्पत्तियों से सम्पन्न कामग विमान में कर्दम और देवहूति की अद्भुत रति का वर्णन किया गया है ।।१।। अपने माता-पिता के चले जाने पर देवहूति प्रेम पूर्वक अपने पति कर्दम महर्षि की सेवा उसी तरह करने लगीं जिस तरह पार्वतीजी भगवान् शिव की सेवा करती हैं ।।१।।

**विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च । शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भो ।।२।।**

**अन्वयः**— भोः विश्रम्भेण, आत्मशौचेन, गौरवेण, दमेन, शुश्रूषया सौहृदेन मधुरया वाचा च ।।२।।

**अनुवाद**— हे विदुरजी वे महर्षि कर्दम के वाक्यों पर विश्वास पवित्रता, गौरव, संयम, शुश्रूषा, प्रेम तथा मधुरवाणी पूर्वक सेवा करती थीं ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२।।

**विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् । अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ।।३।।**

**अन्वयः**— कामं, दम्भं, द्वेषं, लोभम्, अघम्, मदम् च विसृज्य नित्यं अप्रमत्ता उद्यता च तेजीयांसम् अतोषयत् ।।३।।

**अनुवाद**— देवहूति ने काम, दम्भ (कपट) द्वेष, लोभ, पाप और मद को त्यागकर सावधानी और सदा लगन के द्वारा अपने परम तेजस्वी पति महर्षि कर्दम् को प्रसन्न कर दिया ।।३।।

भावार्थ दीपिका

दम्भं कपटम् । अघं निषिद्धाचरणम् । तेजीयांसमतितेजस्विनम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

दम्भ कपट को कहते हैं और अघ, पाप को शास्त्र निषिद्ध कार्यों को करने को पाप कहते हैं । इस तरह की सेवा के द्वारा देवहूति ने परमतेजस्वी महर्षि कर्दम को प्रसन्न कर दिया ।।३।।

**स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् । दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ।।४।।**

**अन्वयः**— दैवात् गरीयसः पत्युः महाशिषः आशसानाम् ताम् समनुव्रताम् मानवीम् स वै देवर्षिवर्यः अब्रवीत् इतिशेषः ।।४।।

**अनुवाद**— देवताओं से भी महान् अर्थात् देवताओं का भी तिरस्कार करने में समर्थ अपने पति महर्षि कर्दम से बहुत अधिक आशाओं वाली उनका अनुवर्तन (सेवा) करने वाली उस महाराज मनु की पुत्री देवहूति को वे श्रेष्ठ देवर्षि कहे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

दैवाद्गरीयसो दैवादपि गुरुतरात् । दैवमप्यन्यथा कर्तुं समर्थादित्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

देवहूति यह जानती थी कि उनके पति देवताओं से भी महान् हैं वे देवताओं का भी तिरस्कार करने में समर्थ है, अतएव वे उनसे बहुत अधिक आशाएँ रखकर उनकी सच्ची निष्ठा के साथ सेवा करती थीं । इस प्रकार की देवहूति से महर्षि प्रसन्न होकर कहे ।।४।।

**कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया । प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाऽब्रवीत् ॥५॥**

**अन्वयः**— भूयसा कालेन व्रतचर्यया कर्शितां क्षामां कृपया पीडितः प्रेमगद्गदया वाचा अब्रवीत् ॥५॥

**अनुवाद**— बहुत दिनों से व्रत करने के कारण कृश तथा दुर्बल हुयी देवहूति को देखकर दया पीडित महर्षि कृपा करके कहें ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

व्रतचर्यया कर्शितां तत्रापि भूयसा कालेनातिक्षामामित्यर्थः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

बहुत समय से व्रत का पालन करने के कारण दुबली-पतली तथा कमजोर हुयी देवहूति से महर्षि कर्दम ने कृपा परतन्त्र होकर कहा ॥५॥

कर्दम उवाच

**तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ।**
**यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥६॥**

**अन्वयः**— हे मानवि ! अद्य अहम् मानदायाः तव परमया शुश्रूषया, परया भक्त्या च तुष्टः यद् अयं स्वदेहः देहिनाम् अतीव सुहृत् तम्, मदर्थे समुचितः क्षपितुं न अवेक्षितः ॥६॥

**कर्दम महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे मनुपुत्रि आज मैं तुम्हारी पराभक्ति तथा श्रेष्ठ सेवा के कारण प्रसन्न हो गया हूँ । सभी देहधारियों को यह अपना शरीर अत्यन्त प्रिय और आदर की वस्तु होता है । किन्तु तुमने मेरी अच्छी तरह से सेवा करने के लिए उसके भी क्षीण होने की कोई परवाह नहीं की ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

सुहृत्प्रियः । मदर्थे क्षपयितुं नावेक्षितो न गणितः । समुचितः श्लाध्योऽपि मत्सेवासक्तयोपेक्षित इत्यर्थः ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि कर्दम ने देवहूति से कहा कि तुमने उत्तम भक्ति पूर्वक मेरी सेवा की है, अतएव आज मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । शरीर धारियों का यह अपना शरीर अत्यन्त प्रिय होता है किन्तु मेरी सेवा में लगी हुयी तुमने उसकी भी परवाह नहीं की ॥६॥

**ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपः समाधिविद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ।**
**तानेव ते मदनुसेवनयाऽवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥७॥**

**अन्वयः**— स्वधर्मनिरतस्य मे तपः समाधि विद्यात्मयोगविजिताः भगवत्प्रसादाः मदनुसेवनया अवरुद्धान् तान्एव अभयान् अशोकान् ते वितरामि ते दृष्टिं वितरामि प्रपश्य ॥७॥

**अनुवाद**— अपने धर्म का पालन करने वाले मेरी तपस्या समाधि उपासना और योग के द्वारा भय एवं शोक से रहित श्रीभगवान् की कृपा के फलस्वरूप जिन विभूतियों को मैंने प्राप्त किया है, उन सबों को तुमने भी मेरी सेवा के द्वारा प्राप्त कर लिया है, मैं तुमको दिव्यदृष्टि प्रदान करता हूँ उन सबों को तुम देखो ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

तपश्च समाधिश्च विद्या च उपासना च तासु य आत्मयोगश्चित्तैकाग्र्यं तेन विजिताः प्राप्ता भगवत्प्रसादा दिव्यभोगास्तानेव तेऽवरुद्धास्त्वयाऽपि वशीकृतान्प्रपश्य । ते दिव्यां दृष्टिं वितरामि । यया दृष्टासि द्रक्ष्यसि ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने कहा कि तपस्या, समाधि उपासना, तथा चित्त की एकाग्रता रूप योग के द्वारा प्रसन्न हुए श्रीभगवान् ने मुझे जिन विभूतियों को प्रदान किया है, उन सबों को मेरी सेवा करके तुमने अपने वश में कर लिया है । मैं तुमको दृष्टि प्रदान करता हूँ उसके द्वारा तुम उन सबों को देख लोगी ।।७।।

**अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ।**
**सिद्धासि भुंक्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ।।८।।**

**अन्वयः**— पुनः अन्ये उरुविक्रमस्य भगवतः भ्रुव उद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचनाः किम्, सिद्धासि नृप विक्रियाभिः दुरधिगमान् निज धर्मदोहान् विभवान् भुंक्ष्व ।।८।।

**अनुवाद**— दूसरे भोग तो अपरिमित शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् के भौहों के थोड़ी सी टेढ़ी हो जाने से विनष्ट हो जाने वाले हैं, अतएव उन भोगों का कुछ भी महत्त्व नहीं है । तुम तो पातिव्रत्य धर्म का पालन रूप मेरी सेवा से ही सिद्ध हो गयी हो । मैं राजा हूँ इस तरह से अभिमान करने वालों के लिए ये भोगदुष्प्राप्य हैं । अतएव अपने धर्म पालन से प्राप्त ऐश्वर्यों का तुम भोग करो ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

अन्ये पुनर्भोगाः किं । न किमपि । अतितुच्छा इत्यर्थः । तत्र हेतुः- भगवत उरुक्रमस्य या भ्रूस्तस्या उद्विजृम्भो वक्रीभावस्तेन विभ्रंशिता अर्थरचना मनोरथा येषु । निजधर्मेण पातिव्रत्येन दुह्यन्त इति तथा तान् । दुरधिगान् दुष्प्रापान् । नृपा वयमिति या विक्रियास्तत्तद्भोगविकृतयस्ताभिः ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

इन भोगों से जो भिन्न भोग हैं वे कुछ नहीं है । वे अत्यन्त तुच्छ है । क्योंकि अमित पराक्रम सम्पन्न श्रीभगवान् की भौहों के थोड़ी सी ढेढ़ी होने से वे सबके सब विनष्ट हो जाने वाले हैं । तुम्हारे पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव प्राप्त होने वाले इन ऐश्वर्यों का तुम उपभोग करो । मैं राजा हूँ इस प्रकार का जो अभिमान है, ऐसे अभिमान करने वाले राजाओं को ये भोगदुष्प्राप्य हैं ।।८।।

**एवं ब्रुवाणमबलाखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ।**
**संप्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाह ।।९।।**

**अन्वयः**— एवं ब्रुवाणम् अखिलयोगमायाविद्याविचक्षणम् अवेक्ष्य अबला गताधिः आसीत् । संप्रश्रयप्रणय विह्वलया गिरा ईषद् ब्रीडावलोकविलसद् हसितानना आह ।।९।।

**अनुवाद**— इस प्रकार से कहने वाले अपने पति कर्दम महर्षि को सम्पूर्ण योगमाया और विद्यओं में कुशल देखकर उस देवहूति की सारी मनोव्यथा दूर हो गयी । और वे नम्रता और प्रेम से गद्गद वाणी से, किंचित् सङ्कोच पूर्ण चितवन और मुसकान युक्त मुख से कहने लगी ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

अखिला योगमायाश्च विद्याश्च तत्तदुपासनास्तासु विचक्षणं निपुणमेवं ब्रुवाणं पतिमवेक्ष्य गताधिर्निश्चिन्ता जाता । संप्रश्रयो विनयः प्रणयः प्रेम ताभ्यां विह्वला गद्गदा तया गिरा ईषद्व्रीडासहितो योऽवलोकस्तेन विलसद्विकसितं हसितं जातहासं चाननं यस्याः सा । आह जगाद ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

देवहूति ने जान लिया कि हमारे पतिदेव सभी योगमायाओं तथा उपासनाओं में निपुण हैं, यह देखकर उनकी सारी मानसिक चिन्ता समाप्त हो गयी । और नम्रता तथा प्रेम से गद्गद बनी हुयी वाणी से तथा किञ्चित् लज्जा युक्त अवलोकन से युक्त मनोहर बने मधुर मुस्कान युक्त मुख से वे कहने लगीं ॥९॥

देवहूतिरुवाच

**राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ।**
**यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसङ्गो भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे द्विजवृषभ भर्तः विभो अमोघयोगमायाधिपे बत एतद राद्धम् तत् अवैमि । यः ते समयः अभ्यधायि सकृत् अङ्ग सङ्गो भूयात् । गरीयसि सतीनाम् प्रसवः गुणः ॥१०॥

**देवहूति ने कहा**

**अनुवाद**— हे द्विज श्रेष्ठ ! स्वामिन् हे विभो ! मैं यह जानती हूँ कि आप कभी भी विफल नहीं होने वाली योगमाया के स्वामी हैं और आपको यह सारा ऐश्वर्य प्राप्त है । आपने विवाह के समय में जो प्रतिज्ञा की थी कि गर्भ धारण करने तक मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ सुख का उपभोग करूँगा उसकी भी पूर्ति अब होनी चाहिए, क्योंकि श्रेष्ठ पति के द्वारा संन्तान प्राप्त होना पतिव्रता स्त्रियों का सर्वश्रेष्ठ लाभ है ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

बतेति हर्षे । द्विजवृष द्विजश्रेष्ठ हे भर्तः, त्वय्येतत्सर्वं राद्धं सिद्धमेव । तदहमवैमि जानामि । किंन्तु यस्ते त्वया समयोऽभिहितः स तावद्भूयात् । सकृदिति गर्भसंभवमात्रपर्यन्त इत्यर्थः । यस्माद्गरीयसि श्रेष्ठे भर्तरि हेतुभूते स्त्रीणां प्रसवो गुणो महान् लाभः । समासपाठे गरीयसि पत्यौ सति सतीनां यतो गुणप्रसवो गुणविस्तारो भवति । अतः पुत्रोत्पत्त्या मम गुणविस्तारे जाते पश्चात्त्वदुक्तं सर्वं भवत्विति भावः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

बत इस अव्यय का प्रयोग हर्ष के अर्थ में है । देवहूति ने कहा हे द्विजश्रेष्ठ ! यह जानती हूँ कि आपको ये सभी भोग प्राप्त है । किन्तु आपने जो प्रतिज्ञा की थी उसकी भी पूर्ति होनी चाहिए । आपने यह कहाा था कि जब तक मेरे तेज को धारण करेगी तब तक मैं इसके साथ रहूँगा क्योंकि श्रेष्ठ पति के द्वारा सन्तान की प्राप्ति होना पतिव्रताओं का सबसे बड़ा लाभ है । समास युक्त पाठ होने पर अर्थ होगा कि श्रेष्ठ पति के होने पर प्रसव का होना सती नारियों का गुण विस्तार है । अतएव पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर जब मेरे गुण का विस्तार हो जाय तो उसके पश्चात् आपने जो कुछ कहा है वह होए ॥१०॥

**तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथापदेशं येनैष मे कर्शितोऽतिरिरंसयात्मा ।**
**सिध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥११॥**

**अन्वयः**— हे ईश तत्र यथोपदेशम् इति कृत्यम् उपशिक्षा, येन मे एषः अतिरिरंसया ते मनोभवधर्षितायाः दीनः आत्मा सिद्धयेत तत् सदृशं भवनं विचक्ष्व ॥११॥

**अनुवाद**— हम दोनों के समागम के लिए शास्त्र के उपदेशानुसार जो कर्तव्य हो उसका आप उपदेश दें। और उसके लिए उपयोगी वस्तुओं को एकत्रित कर दें, अतएव मिलन की इच्छा से अत्यन्त दीन बना हुआ मेरा यह शरीर आपके अङ्गसङ्ग के योग्य बन जाय । क्योंकि आपके ही द्वारा बढायी हुयी काम वेदना से मैं पीड़ित हूँ इसलिए एक उपयुक्त भवन की भी आप व्यवस्था करें ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

अङ्गसङ्गार्थं च प्रथममितिकर्तव्यतां संपादयेत्याह । हे ईश, तत्राङ्गसङ्गे इतिकृत्यं साधनं यथोपदेशं कामशास्त्रानुसारेणोपशिक्ष संजानीहि । उपकल्पयेत्यर्थः। येन साधनेनाभ्यङ्गभोजनपानादिनातीव रन्तुमिच्छया कर्शितो दीनश्च ममैष आत्मा देहः सिध्येत रतिसमर्थो भवेत् कथंभूतायाः ते त्वयैव कृतः क्षोभितो यो मनोभवस्तेन धर्षितायाः । तत्ततोऽनुरूपं भवनं विचक्ष्व वितर्कय। विचारयेति यावत् ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

उस अङ्ग सङ्ग के लिए जो पहले करना चाहिए आप उसको करें । उस समय क्रिया करने के लिए आप मुझे कामशास्त्र के अनुसार उपदेश दें । उसके पश्चात् साधनभूत शरीर मर्दन, भोजन पेय पदार्थ इत्यादि के द्वारा आपके साथ अत्यधिक रमण करने की इच्छा से दीन बना हुआ मेरा यह शरीर रतिक्रिया के योग्य हो जाय । से मैं तो आपके द्वारा क्षुब्ध हुए काम स अभिभूत हो गयी हूँ । उसके अनुकूल भवन का भी आप विचार करें।।११।।

मैत्रेय उवच

**प्रियायाः प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगामस्थितः । विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ।।१२।।**

**अन्वयः**— प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमः योगम् आस्थितः कामगम् तर्हि एव कागमं विमानम् अविरचीकरत् ।।१२।।

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! अपनी प्रियतमा का प्रिय कार्य करने की इच्छा वाले महर्षि कर्दम उसी समय योग में स्थित होकर एक अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले विमान की रचना किए ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

तर्हि तत्क्षणमेव आविरचीकरदाविर्भावयांबभूव ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

महर्षि ने उसी क्षण एक कामग विमान को उत्पन्न कर दिया ।।१२।।

**सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् । सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ।।१३।।**

**अन्वयः**— सर्वकामदुघं दिव्यं, सर्वरत्नसमन्वितम् सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कम् मणिस्तम्भैः उपस्कृतम् ।।१३।।

**अनुवाद**— वह विमान सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला था, सुन्दर था, उसमें सभी प्रकार के रत्न भरे थे, वह सभी सम्पत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि से युक्त तथा वह मणिमय स्तम्भों से युक्त था ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

तदेव विशिनष्ट- सर्वकमदुघमिति नवभिः । सर्वैश्च रत्नादिभिः समन्वितम् । सर्वर्द्धीनां सर्वसंपदां य उपचयस्तस्योदर्क उत्तरोत्तराभिवृद्धिर्यस्मिन् । उपस्कृत शोभितम् ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

उस विमान की ही विशेषता **सर्वकामदुघं० इत्यादि** नव श्लोकों से बतलायी जा रही है । वह विमान सभी रत्नों से युक्त था । सभी सम्पत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि से समन्वित था ऐसा वह विमान उपस्कृत अर्थात् सुशोभित था।।१३।।

**दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् । पट्टिकाभिः पतकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ।।१४।।**

**अन्वयः**— दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् विचित्राभिः पट्टिकाभिः पताकाभिः अलंकृतम् तत् आसीत् ।।१४।।

**अनुवाद**— वह विमान दिव्य सामग्रियों से युक्त था । वह सभी ऋतुओं में सुखपद था । वह अनेक प्रकार की पट्टिकाओं (झंडियों) और पताकाओं से सुसज्जित था ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**

उपकरणं परिकरः । पट्टिका अल्पविस्तारपट्टवस्त्रविशेषाः, पताका विस्तृतास्ताभिः ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

उपकरण सामग्रियों को कहते हैं । छोटी-छोटी वस्त्र की बनी हुयी झंडियों को पट्टिका कहते है और वस्त्र निर्मित बड़ी-बड़ी पताकाओं को पताका कहा जाता है । इन सबों से सुसज्जित था वह विमान ॥१४॥

**स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुसिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः । दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— शिंजत्षडङ्घ्रिभिः विचित्रमाल्याभिः स्रग्भिः दुकूलक्षौमकोशेयैः नाना वस्त्रैर्विराजितम् तत् आसीत् ॥१५॥

**अनुवाद**— जिन पर भौंरे मधुर गुञ्जार कर रहे थे ऐसे रङ्ग-विरङ्गे पुष्पों की मालाओं तथा अनेक प्रकार के सूती और रेशमी वस्त्रों से वह विमान सुसज्जित था ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

विचित्राणि माल्यानि पुष्पाणि यासु । मञ्जु यथा भवत्येवं सिञ्जन्तः कूजन्तः षडङ्घ्रयो यासु ताभिः स्रग्भिः ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

जिनमें अनेक प्रकार के पुष्प लगे थे ऐसी मालाओं से वह अलंकृत था । उन मालाओं पर भौंरे मधुर गुंजार कर रहे थे । वह विमान अनेक प्रकार के रेशमी तथा सूती वस्त्रों से अलंकृत था ॥१५॥

**उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक् पृथक् । क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥१६॥**

**अन्वयः**— उपर्युपरि विन्यस्त निलयेषु पृथक्-पृथक् क्षिप्तैः कशिपुभिः पर्यङ्कव्यजनासनैः कान्तं तत् विमानमासीत् ॥१६॥

**अनुवाद**— एक के ऊपर दूसरे बनाये गये कमरों में अलग-अलग रखे गये सुवर्णशय्या, चमर तथा आसनों से वह विमान बहुत ही सुन्दर दिखता था ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

उपर्युपरि विरचितगृहेषु । कशिपुभिः शय्याभिः कान्तं कमनीयम् । पर्यङ्कादिभिश्च कान्तम् ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

एक के ऊपर दूसरे बनाये गये गृहों में विद्यमान शय्याओं से मनोहर तथा पलङ्ग आदि से मनोहर था वह विमान ॥१६॥

**तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् । महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥१७॥**

**अन्वयः**— तत्र-तत्र विनिक्षिप्त नानाशिल्पोपशोभितम् महामरकतस्थल्या विद्रुमवेदिभिः जुष्टम् ॥१७॥

**अनुवाद**— दिवारों में स्थान-स्थान पर की गयी शिल्प रचना से उस विमान की अत्यन्त शोभा हो रही थी, उसमें पन्ने का फर्श था और बैठने के लिए मूङ्गे की वेदी बनायी गयी थी ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१७॥

**द्वास्सु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् । शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भरधिश्रितम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— द्वास्सु विद्रुमदेहल्या व्रजकपाटवत् जुष्टम्, शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैः अधिश्रितम् तदासीत् ॥१८॥

**अनुवाद**— उस विमान के कमरों के द्वार पर मूंगे की देहली बनी थी, द्वारों के किवाड़ हीरों के थे तथा इन्द्र नीलमणि के शिखरों पर सुवर्ण के कलश रखे हुए थे ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

द्वास्सु द्वारेषु विद्रुमनिर्मिता देहली उदुम्बरस्तया भातं शोभितम् । वज्रखचितकपाटयुक्तम् । इन्द्रनीलमयेषु शिखरेषु प्रासादाग्रभागेषु ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

उस विमान के कमरों के दरवाजों पर मूंगे की देहली (चौखट) लगे थे । चौखट को संस्कृत में उदुम्बर कहते हैं । ऐसी देहली से सुशोभित था वह विमान । उस विमान के कमरों की किवाड़ों में हीरे जड़े थे । उस महल के अग्रभाग में इन्द्र नीलमणि से बने शिखरों पर सुवर्ण कलश लगे थे ।।१८।।

**चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः । जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ।।१९।।**

**अन्वयः**— वज्रभीतिषु, पद्मरागाग्र्यैः निर्मितैः चक्षुष्मत् विचित्रैः वैतानैः महार्हैः हेमतोरणैः जुष्टं तद् विमानमासीत् ।।१९।।

**अनुवाद**— हीरों से निर्मित दिवारों में लगी श्रेष्ठ पद्मराग मणियाँ उस विमान की आँखों जैसी लगती थीं और वह विमान अत्यन्त मूल्यवान् वन्दनवारों से अलंकृत था ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

चक्षुष्मन्त इव ये पद्मरागाग्र्यास्तैः । यद्वा चक्षुष्मदिव । कैः पद्मरागाग्र्यैः विचित्रैर्वैतानैर्वितानसमूहैः ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

जड़ी हुयी श्रेष्ठ पद्मरागमणियों से वह विमान आँखों से युक्त के समान प्रतीत होता था । अथवा श्रेष्ठ पद्मराग मणियों से वह नेत्र युक्त के समान प्रतीत होता था । तथा वह विमान विचित्र वितानों के समूह से सुशोभित था ।।१९।।

**हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् । कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ।।२०।।**

**अन्वयः**— कृत्रिमान् हंसपारावतान् स्वान् मन्यमानैः हंसपारावतैः तत्र तत्र अधिरुह्याधिरुह्य कूजितम् ।।२०।।

**अनुवाद**— स्थान-स्थान पर बनाये गये कृत्रिम हंसों तथा कबूतरों को अपना सजातीय मानने वाले हंस और कबूत्तर उन सबों के सन्निकट बैठकर उनसे अपनी बोली में बातें करते थे ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

कृत्रिमानपि हंसादीन्स्वान्सजातीयान्मन्यमानैस्तत्र तत्राधिरुह्याधिरुह्य निकूजितम् ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

स्थान-स्थान पर बनाये गये कृत्रिम हंसों तथा कबूतरों को अपना सजातीय मानकर हंस और कबूतर उनके सन्निकट में बैठकर उनके साथ अपनी बोली में बातें करते थे ।।२०।।

**विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः । यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ।।२१।।**

**अन्वयः**— यथोपजोषं रचितैः विहारस्थानविश्रामसंवेश प्राङ्गणाजिरैः आत्मनः विस्मापनम् इव ।।२१।।

**अनुवाद**— सुविधानुसार बनाये गये क्रीडास्थली, शयनगृह, बैठक आंगन और चौक के द्वारा वह स्वयम् उसको बनाने वाले महर्षि कर्दम को भी विस्मित सा कर रहा था ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

विहारस्थानं क्रीडाप्रदेशः, विश्रामः शयनगृहम्, संवेश उपभोगस्थानम्, प्राङ्गणं गृहाद्बहिः, अजिरं प्रकाराद्बहिः, यथोपजोषं यथासुखमात्मनः स्वस्य मायाविनोऽपि विस्मयजनकमिव ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

विहारस्थान अर्थात् क्रीडास्थल, विश्राम अर्थात् शयनगृह, संवेशः अर्थात् बैठक, प्राङ्गण अर्थात् आँगन और अजिर अर्थात् चाहारदिवारी के बाहर बनाये गये चौक, इन सबों को उस विमान में अपनी सुविधा के अनुसार बनाया गया था। इन सबों को देखकर मायावी स्वयं महर्षि कर्दम भी आश्चर्यित से हो जाते थे ॥२१॥

**ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा । सर्वभूताशयाऽभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— इदृग्तत् गृहं नातिप्रीतेन चेतसा पश्यन्तीम् सर्वभूताशयाभिज्ञः कर्दमः स्वयं प्रावोचत् ॥२२॥

**अनुवाद**— इस प्रकार के सुन्दर गृह को देवहूति ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक देखा तो सभी जीवों के अभिप्राय को जानने वाले महर्षि कर्दम ने स्वयम् कहा ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

नातिप्रीतेन मलिनदेहत्वात्परिचारिकाभावाच्च ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

इतने सुन्दर गृह को भी देवहूति बहुत प्रसन्नतापूर्वक इसलिए नहीं देख रही थीं कि उनका शरीर मालिन था और उनकी कोई परिचारिका नहीं थी। महर्षि कर्दम तो सभी जीवों के अभिप्राय को जानते थे अतएव उन्होंने देवहूति से कहा ॥२२॥

**निमज्यास्मिन्ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह । इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे भीरु अस्मिन् ह्रदे निमज्य इदं विमानम् आरुह। इदं नृणां आशिषां यापकं तीर्थं शुक्लकृतम् ॥२३॥

**अनुवाद**— हे भीरु ! सुन्दरि ! इस सरोवर में स्नान करके तुम इस विमान पर चढो। मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले इस तीर्थ को भगवान् विष्णु ने बनाया है ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

अस्मिन्ह्रदे विन्दुसरसि। आरुहाधिरोह। शुक्लेन विष्णुना कृतमानन्दविन्दुनिपातनेन यापकं प्रापकम् ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि कर्दम ने कहा कि तुम पहले इस विन्दुसरोवर में स्नान करो और उसके पश्चात् इस विमान पर चढो। इस सरोवर में भगवान् विष्णु ने आनन्द स्वरूप अपने आँसू को गिराया था। उसके कारण यह मनुष्यों की सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला तीर्थ बन गया है ॥२३॥

**सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा । सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥२४॥**
**अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबलस्तनम् । आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— भर्तुः तद् वचः समादाय सरजः वासः वेणीभूतान् च मूर्धजान् मलपङ्केन संछन्नं अङ्गम् शबलस्तनम् च विभ्रती सा कुवलयेक्षणा सरस्वत्याः शिवजलाशयम् सरः प्रविवेश ॥२४-२५।

**अनुवाद**— अपने पति के उस वचन को मानकर, मैले कुचैले वस्त्र, जटा स्वरूप बने हुए केशों, मैल से भरे हुए शरीर और कान्तिहीन स्तनों वाली वह कमलनयनी सरस्वती नदी के पवित्र जल से भरे हुए सरोवर में प्रवेश कर गयी ॥२४-२५॥

**भावार्थ दीपिका**

समादायाहत्य। सरजं मलिनम्। वेणीभूतान् जटिलान्। शबलौ विवर्णौ स्तनौ यस्मिंस्तत्। सरस्वत्याः शिवानि जलान्याशेरते यस्मिन्, शिवा जलाशया जलचरा यस्मिन्निति वा ॥२४-२५॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने पति की उपर्युक्त वाणी को मानकर कमल के समान नेत्रों वाली देवहूति ने सरस्वती नदी के जल से भरे हुए कल्याणमय जल वाले सरोवर में प्रवेश किया। उस समय उसके वस्त्र मलीन थे, केश परस्पर में सट जाने के कारण जटा स्वरूप हो गये थे। सम्पूर्ण शरीर में मैल जम गयी थी तथा उनके दोनों स्तन कान्तिहीन हो गये थे। **सरस्वत्याः शिवजलाशयम्** का यह भी अर्थ है कि सरस्वती नदी के मङ्गलमय जलचर जीव जिसमें विद्यमान थे उस सरोवर में देवहूति ने प्रवेश किया ॥२४-२५॥

**सान्तः सरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः। सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः ॥२६॥**

**अन्वयः**— सा अन्तः सरसि वेश्मस्था दशशतानि कन्यकाः ददर्श सर्वास्ताः किशोरवयस उत्पलगन्धयः आसनिति शेषः॥२६॥

**अनुवाद**— देवहूति ने सरोवर के भीतर गृह में विद्यमान एक हजार कन्यकाओं को देखा। वे सबके सब किशोरावस्था की थीं और सबों के शरीर से कमल की सुगन्धि निकलती थी ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

सा तत्र निमग्ना सती विस्मयं ददर्श। तमाह–सान्तःसरसीति दशभिः। उत्पलगन्धयः कमलागन्धीः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

उस जल में डुबकी लगाते ही देवहूति ने आश्चर्यकारी वस्तु को देखा। उस आश्चर्य को बतलाते हुए दस श्लोकों से कहते हैं। देवहूति ने जल के भीतर गृह में विद्यमान एक हजार कन्यकाओं को देखा। उन सबों की अवस्था किशोरावस्था थी और उन सबों के शरीर से कमल की सुगन्धि आती थी ॥२६॥

**तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः। वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— तां दृष्ट्वा स्त्रियः सहसा उत्थाय प्राञ्जलयः प्रोचुः वयं तुभ्यं कर्मकरीः नः शधि किम् करवाम ॥२७॥

**अनुवाद**— देवहूति को देखकर सभी स्त्रियाँ उठकर खड़ी हो गयीं उन सबों ने हाथ जोड़कर कहा, हम आपकी दासियाँ हैं आप आज्ञा करें हमलोग आपकी कौन सी सेवा करें ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

तुभ्यं तव कर्मकरीः परिचारिका वयमस्मानाज्ञापयेति स्त्रियः प्रोचुः ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

देवहूति को देखकर वे सारी कन्यााएँ अचानक उठकर खड़ी हो गयीं और उन सबों ने हाथ जोड़कर कहा हम सभी आपकी दासियाँ हैं, आप आज्ञा करें कि हमलोग आपकी कौन सी सेवा करें ॥२७॥

**स्नाानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम्। दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ॥२८॥**

**अन्वयः**— तां मनस्विनीम् महार्हेण स्नाने न स्नापयित्वा मानदाः ता नूत्ने निर्मले दुकूले अस्यैः ददुः च ॥२८॥

**अनुवाद**— उस मनस्विनी देवहूति को उन सबों ने बहुमूल्य पदार्थों से स्नान कराके अपनी स्वामिनी का सत्कार करने वाली उन सबों ने देवहूति को पहनने के लिए दो नवीन वस्त्रों को प्रदान किया ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम्। दूकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके पश्चात् उन सबों ने बहुमूल्य स्नानीय पदार्थों तैल आदि के द्वारा देवहूति को स्नान कराया और देवहूतिको पहनने के लिए दो नवीन तथा स्वच्छ वस्त्रों को प्रदन किया ॥२८॥

**भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च । अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥२९॥**

**अन्वयः**— वरीयांसि, द्युमन्ति च परार्ध्यानिभूषणानि ददुः सर्वगुणापेतं अन्नं अमृतासवम् पानं च ददुः ॥२९॥

**अनुवाद**— उन सबों ने देवहूति को श्रेष्ठ तथा देदीप्यमान आभूषणों को सभी गुणों से सम्पन्न भोजन और पीने के लिए अमृत के समान आसव प्रदान किया ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

परार्ध्यान्युत्कृष्टानि । वरीयांसि तत्प्रियाणि द्युमन्ति दीप्तिमन्ति च । पानं पेयम् । अमृतं स्वादु । आसवं मादकम् ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

उन सबों ने अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के भूषणों, देवहूति को प्रिय तथा दीप्तिमान आभूषणों को प्रदान किया, सभी गुणों से युक्त भोजन प्रदान किया और पीने के लिए अमृत के समान स्वादिष्ट आसव (मादकद्रव्य) प्रदान किया ॥२९॥

**अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजाम्बरम् । विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥३०॥**

**अन्वयः**— अथ स्रग्विणं विरजाम्बरम्, विरजं कृतस्वस्त्ययनं, कन्याभिः, बहुमानितम् आत्मानं आदर्शे ददर्श ॥३०॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् देवहूति ने पुष्पों की माला से अलंकृत स्वच्छ वस्त्र धारण की हुयी, निर्मल तथा कान्तिमान शरीर वाली तथा कन्याओं द्वारा आदर पूर्वक माङ्गलिक शृङ्गार किए हुए अपने शरीर को दर्पण में देखा ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

आदर्शे स्वमात्मानं ददर्शेति शेषः । आत्मानं विशिनष्टि चतुर्भिः । कृतं स्वस्त्ययनं मङ्गलं यस्य । पुंस्त्वमात्म-शब्दसामानाधिकरण्यात् ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

देवहूति ने दर्पण में जब अपने प्रतिबिम्ब को देखा यहाँ **ददर्श** पद का अध्याहार करना चाहिए । उस शरीर के अनुकूल वर्णन चार श्लोकों में किया गया है । जिसका कन्याओं ने माङ्गलिक शृङ्गार किया था उस अपने शरीर को देवहूति ने दर्पण में देखा । शरीर के विशेषणीभूत सभी शब्दों का पुल्लिङ्ग में प्रयोग आत्मा शब्द के साथ सामानाधिकरण्य होने के कारण किया गया है ॥३०॥

**स्नातं कृतशिरः स्नानं सर्वाभरणभूषितम् । निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— कृतशिरः स्नानं स्नातं सर्वाभरणभूषितम् निष्कग्रीवं, बलयितं कूजत् काञ्चन नूपरम् आत्मानं ददर्श ॥३१॥

**अनुवाद**— शिर से स्नान कराये गये सभी आभूषणों से भूषित गले में निष्कहार धारण किए हुए हाथों में कङ्गन और पैरों में झनकार करने वाले सुवर्ण नूपुर से अलंकृत अपने शरीर के प्रतिबिम्ब को देवहूति ने देखा ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

विरजमित्यस्य प्रपञ्चः। स्नातमुद्वर्त्य क्षालितम्। कृतं शिरः स्नानमभ्यङ्गो येन। भूषितत्वमेवाह। निष्कं पदकं ग्रीवायां यस्य॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

**विरजम्** पद का विस्तार से वर्णन इस श्लोक में किय गया है । देवहूति को उबटन लगाकर स्नान कराया गया था । देवहूति को शिरः स्नान कराया गया था अर्थात् शिर में सुगन्धित तेल इत्यादि लगाकर संस्कार युक्त किया गया था । देवहूति के अलङ्कारों से अलंकृत होने का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे गले में निष्कधारण की हुयी थीं, हाथों में कङ्गन और पैरों में झनकार करते हुए सुवर्ण रचित पायल धारण की थीं । ऐसे अपने प्रतिबिम्ब को उन्होंने दर्पण में देखा ॥३१॥

**श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या काञ्चयन्या बहुरत्न्या । हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— श्रोण्योरध्यस्तया बहुरत्न्या काञ्चन्या, महार्हेण हरेण, रुचकेन च भूषितम् आत्मानं ददर्श ॥३२॥

**अनुवाद**— कमर में धारण की गयी अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त सुवर्ण की करधनी से, बहुमूल्य हार से तथा रुचक प्रत्येक अङ्ग में लगे हुए माङ्गलिक द्रव्य से सुशोभित अपने प्रतिबिम्ब को देवहूति ने देखा ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

बहूनि रत्नानि यस्यां तया । रुचकेन मङ्गलद्रव्येण कुङ्कुमादिना । तदुक्तं विश्वप्रकाशे 'रुचकं मङ्गलद्रव्ये ग्रीवाभरणदन्तयोः' इति ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस सुवर्ण की करधनी को देवहूति धारण की थीं उसमें अनेक रत्न लगे थे । उन्होंने अत्यन्त मूल्यवान् हार धारण कर रखा था तथा रुचक धारण किया था । रुचक शब्द के तीन अर्थ विश्वप्रकाश कोश में बतलाये गये है । मङ्गलद्रव्य, गले का आभूषण तथा दाँत । इन सबों से सुशोभित थी देवहूति । इसी प्रकार के अपने प्रतिबिम्ब को दर्पण में उन्होंने देखा ॥३२॥

**सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापाङ्गेन चक्षुषा । पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— सुदता, सुभ्रुवा, श्लक्ष्णं स्निग्धापाङ्गेन पद्मकोशस्पृधा चक्षुषा लसन् मुखम् आत्मानं ददर्श ॥३३॥

**अनुवाद**— सुन्दर दाँतों, सुन्दर भौहों, तथा प्रेम पूर्वक कटाक्षमय कमल कली से स्पर्धा करने वाले नेत्रों से सुशोभित मुख वाले अपने प्रतिबिम्ब को देवहुति ने दर्पण में देखा ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

सुदता सुभ्रुवा चक्षुषेति च जातावेकवचनानि । एतैर्लसच्छोभमानं मुखं यस्य । कथंभूतेन चक्षुषा । श्लक्ष्णो मनोहरः स्निग्धोऽपाङ्गो नेत्रप्रान्तो यस्य । पद्मकोशेन स्पर्धत इति पद्मकोशस्पृधेन ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

सुन्दर दाँतों, सुन्दर भौहों, तथा नेत्रों से सुशोभित उनका मुख था । सुदता इत्यादि जाति के अर्थ में एकवचनान्त प्रयोग है । नेत्र की विशेषता बतलाते हैं उनके नेत्रों का प्रान्तभाग मनोहर तथा कोमल कटाक्षों से युक्त था । वह मानो कमल की कलियों से स्पर्धा करता था । इन सबों से सुशोभित मुख वाले अपने प्रतिबिम्ब को देवहूति ने देखा ॥३३॥

**यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् । तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥३४॥**

**अन्वयः**— यदा ऋषीणां ऋषभं दयितं पतिं सस्मार तदा स्त्रीभिः सह तत्र चास्ते यत्र स प्रजापतिः आस्ते ॥३४॥

**अनुवाद**— जब देवहूति ने ऋषियों में श्रेष्ठ अपने पति का स्मरण किया उसी समय वे स्त्रियों के साथ अपने को वहीं पाया जहाँ पर प्रजापति कर्दम महर्षि थे ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

दृष्ट्वा च यदा पतिं सस्मार तदा यत्रासौ तत्रैव स्वयमप्यास्ते ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

जब उन्होंने अपने पतिदेव का स्मरण किया तो उन्होंने देखा कि वे वहीं हैं जहाँ प्रजापति कर्दम महर्षि थे॥३४॥

**भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा । निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ।।३५।।**

**अन्वयः**— तदा भर्तुः पुरस्तात् आत्मानं स्त्रीसहस्रावृतं निशाम्य तद्योगगतिं च निशाम्य संशयं प्रत्यपद्यत ।।३५।।

**अनुवाद**— उस समय अपने को पतिदेव के सामने हजारो स्त्रियों से घिरा देखकर देवहूति ने उनके योग गति के प्रभाव को समझा और उनको बड़ा आश्चर्य हुआ ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मानं निशाम्य दृष्ट्वा । तां च तस्य योगगतिं योगप्रभावं दृष्ट्वा । संशयं किमिदमिति विस्मयम् ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने को अपने पतिदेव के समक्ष हजारों स्त्रियों से घिरा देखकर और महर्षि कर्दम के योगगति के प्रभाव को देखकर देवहूति को आश्चर्य हुआ कि यह सब क्या हो रहा है ।।३५।।

**स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत्। आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ।।३६।।**
**विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् । जातभावा विमानं तदारोहयदमित्रहन् ।।३७।।**

**अन्वयः**— हे अमित्रहन् कृतमलस्नानां अपूर्ववत् विभ्राजन्तीम्, संवीतरवचिरस्तनीम्, आत्मनो रूपं विभ्रतीम्, विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां, सुवाससम्, तां तदा जताभावः विमानम् आरोहयत् ।।३६-३७।।

**अनुवाद**— हे अपने शत्रुओं को मारने वाले विदुर ! जब कर्दम महर्षि ने देखा कि देवहूति का शरीर स्नान करने से स्वच्छ हो गया है, वे अपूर्व रूप से सुशोभित हो रही हैं, उनके मनोहर स्तन चोली से ढँके हैं, विवाह के पहले उनका जैसा रूप था वैसे ही रूप से वे सम्पन्न हैं, हजारों विद्याधारियाँ उनकी सेवा कर रही हैं वे सुन्दर वस्त्रों को धारण की हुयी हैं तब उन्होंने देवहूति को उस विमान पर चढ़ाया ।।३६-३७।।

**भावार्थ दीपिका**

स मुनिर्विवाहात्प्राग्यदात्मनो रूपं तदेव पुनर्विभ्रतीम् । संवीतौ प्रावृतौ रुचिरौ स्तनौ यस्याः । पाठान्तरे तु रूपविशेषम्। शोभने वाससी यस्याः जातो भावः प्रेम यस्य, हे अमित्रहन् जितकाम ।।३६-३७।।

**भाव प्रकाशिका**

मुनि ने देख कि देवहूति का विवाह से पहले जो रूप था उसी रूप को उन्होंने प्राप्त कर लिया है । उनके दोनों मनोहर स्तन ढँके हुए हैं, संवीत स्थिरस्तनम् यह जहाँ पाठ है वहाँ अर्थ रूप विशेष अर्थ होगा । वे सुन्दर वस्त्रों को धारण की हैं तो उस देवहूति को देखकर उनके मन में देवहूति के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया अमित्रहन् यह विदुर का सम्बोधन है और इसका अर्थ है, काम को जीत लेने वाले । महर्षि कर्दम ने प्रेम पूर्वक देवहूति के उस विमान पर चढ़ाया ।।३६-३७।।

**तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययानुरक्तो विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ।**
**बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृतइवोडुपतिर्नभःस्थः ।।३८।।**

**अन्वयः**— तस्मिन् विमाने प्रिययानुरक्तः अलुप्तमहिमा विद्याधरीभिः उपचीर्णवपुः उत्कचकुमुदगणवान् अपीच्यः ताराभिः आवृतः नभस्थः उडुपतिः इव ब्रभाज ।।३८।।

**अनुवाद**— उस विमान में अपनी प्रियतमा में अनुरक्त रहने पर भी महर्षि कर्दम की महिमा लुप्त नहीं हुयी थी । अर्थात् मन और इन्द्रियों पर उनका प्रभुत्व बना हुआ था । विद्याधारियाँ उनके शरीर की सेवा कर रही थीं विकसित कुमुद के पुष्पों से शृङ्गार करके वे अत्यन्त सुन्दर बने हुए थे । वे विमान पर इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे ताराओं के बीच में आकाशस्थ चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

तस्मिन्विमाने मुनिर्वभ्राजे । न लुप्तो महिमा स्वातन्त्र्यं यस्य । उपचीर्णं शुश्रूषितं वपुर्यस्य । विकसितकुमुद्गणवान-पीच्योऽतिसुन्दरः । पूर्णचन्द्र इव मुनिः, नभ इव विमानम्, तारा इव ताः स्त्रियः, कुमुदानीव तासां नेत्राणीति ज्ञेयम् ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

उस विमान में वे मर्मज्ञ सुशोभित हो रहे थे । अपनी प्रियतमा में अनुरक्त होने पर भी उनकी महिमा कम नहीं हुयी थी । यहाँ महिमा शब्द स्वतन्त्र्य का बोधक है । महर्षि कर्दम के शरीर की सेवा विद्याधारियाँ करती थीं विकसित कुमुद पुष्पों के द्वारा अलंकृत वे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे थे । वे ताराओं से घिरे हुए आकाशस्थ चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे । पूर्ण चन्द्रमा के समान महर्षि कर्दम थे, आकाश के समान वह विस्तृत विमान था । ताराओं के समान वे स्त्रियाँ थीं और कुमुदों के समान उनके स्वच्छ नेत्र थे ।।३८।।

**तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्रद्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ।**
**सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ।।३९।।**

**अन्वयः**— तेन अष्टलोकपविहार कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु अनङ्ग सख मारुतसौभगासु द्युधुनिपात शिवस्वनासु सिद्धैर्नुतः ललनावरूथी सः धनदवत् चिरं रेमे ।।३९।।

**अनुवाद**— उस विमान के द्वारा आठो लोकपालों की विहार भूमि कुलाचल सुमेरु पर्वत की घाटियों में कुबेर के समान दीर्घकाल तक स्त्रियों के समूह के साथ कर्दम प्रजापति ने विहार किया । उन घाटियों में कामदेव के वेग को बढ़ाने वाली शीतल मन्दसुगन्ध वायु चला करती है । और वहाँ पर आकाश से गिरने वाली गङ्गाजी की मङ्गलमयी ध्वनि सुनायी पड़ती रहती है । विद्याधिरयाँ उनकी सेवा में संलग्न रहती थीं और सिद्धगण उनकी स्तुति किया करते थे ।।३९।।

**भावार्थ दीपिका**

तेन विमानेन । अष्टलोकपालानां विहारो यस्मिन्कुलाचलेन्द्रे मेरौ तस्य द्रोणीषु दरीषु । अनङ्गस्य सखा यो मारुतः शीतसुगन्धमन्दानिलस्तेन सौभगं सौन्दर्यं यासु । सिद्धैर्नृतः स्तुतः सन् । द्युधुनिर्गङ्गा तस्याः पातेन शिवः स्वनो यासु तासु रेमे ललनावरूथी स्त्रीरत्नसमूहवान् ।।३९।।

**भाव प्रकाशिका**

उस विमान के द्वारा आठो लोगपालों की विहार भूमि कुलाचलेन्द्र सुमेरु पर्वत की गुफाओं में वे दीर्घकाल तक विहार किए । उन घाटियों में कामदेव के वेग को बढ़ाने वाली शीतल, मन्द सुगन्ध वायु सदा चला करती है ऐसे सौभाग्य सम्पन्न घटियों में वे विहार किए । वहाँ उनकी स्तुति सिद्धगण किया करते थे और वहाँ सदैव आकाश से गिरने वाली स्वर्गङ्गा की मङ्गलमयी ध्वनि सुनायी पड़ती रहती थी । उस समय भी उनके साथ स्त्रीरत्न का समूह विद्यमान था ।।३९।।

**वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके । मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ।।४०।।**

**अन्वयः**— रामयारतः सः वैश्रम्भके सुरसने, नन्दने पुष्पभद्रके, मानसे, चैत्ररथे च रेमे ।।४०।।

**अनुवाद**— अपनी पत्नी में अनुरक्त बने हुए वे वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन पुष्पभद्रक तथा चैत्ररथ आदि देवोद्यानों में एवं मानसरोवर में अपनी पत्नी के साथ विहार किये ।।४०।।

**भावार्थ दीपिका**

वैश्रम्भकादिषु देवोद्यानेषु । मानसे च सरसि । रतः प्रीतः सन् ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

अपनी पत्नी में अनुरक्त रहने वाले कर्दम प्रजापति वैश्रम्भक आदि देवद्यानों तथा मान सरोवर में विहार किए।।४०।।

**भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा । वैमानिकानत्यशेत चरन् लोकान्यथाऽनिलः ॥४१॥**

**अन्वयः**— भ्राजिष्णुना कामगेन महीयसा विमानेन लोकान् चरन् अनिलः यथा वैमानिकान् अतिशेत ॥४१॥

**अनुवाद**— देदीप्यमान, तथा अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले विमान के द्वारा विभिन्न लोकों में वायु के समन सञ्चरण करते हुए वे विमान सञ्चारी देवताओं से भी बढ गये ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

अत्यशेतातिक्रम्य स्थितः ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

देवताओं से भी अधिक बढ गये प्रजापति कर्दम ॥४१॥

**किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् । यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥४२॥**

**अन्वयः**— यैः तीर्थपदः व्यसनात्यः चरणः आश्रितः तेषाम् उद्दामचेतसाम् किं दुरापादनम् ?॥४२॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी जिन लोगों ने श्रीगवान् के व्यसन विनाशक चरणों को अपने आश्रय रूप से अपना लिया है उन धीरपुरुषों के लिए कौन सी वस्तु दुर्लभ है ?॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

उद्दामचेतसां धीराणाम् । व्यसनं संसारस्तस्यात्ययो यस्मात् ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

जो लोग श्रीभगवान् के चरणों को ही आश्रय रूप से अपनाते हैं उन धीर पुरुषों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है । श्रीभगवान् के चरण तो व्यसनात्यय है । व्यसन संसार को कहते हैं । उसके भय को विनष्ट करने के कारण भगवान् के चरण व्यसनात्यय हैं । भगवान् के चरण को आश्रय रूप से अपनाने वाले उद्दामचेता हैं । अर्थान्तर विषयान्तर की अपेक्षा नहीं होने के कारण उत्कृष्ट श्रीभगवान् में ही उनका चित्त लगा रहता है ॥४२॥

**प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान्स्वसंस्थया । बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥**

**अन्वयः**— महायोगी बहवाश्चर्यं भुवो गोलं स्वसंस्थया यावान् पत्न्यै प्रेक्षयित्वा स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥

**अनुवाद**— इस प्रकार महायोगी महर्षि कर्दम अनेक आश्चर्यों से युक्त भूमण्डल को उसके सम्पूर्ण संस्थानों के साथ अपनी पत्नी को दिखाकर अपने आश्रम पर लौट आये ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

प्रेक्षयित्वा दर्शयित्वा । गोलं मण्डलम् । स्वसंस्थया द्वीपवर्षादिरचनया यावांस्तावन्तम् । बहून्याश्चर्याणि यस्मिंस्तम् ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम अपनी पत्नी को सम्पूर्ण भूमण्डल और उसके द्वीप वर्ष आदि जितनी भी रचनाएँ जो अनेक प्रकार के आश्चर्यों से युक्त है उन सबों को दिखाकर पुनः अपने आश्रम में लौट आये ॥४३॥

**विभज्य नवधात्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् । रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान्मुहूर्तवत् ॥४४॥**

**अन्वयः**— नवधा आत्मानं विभज्य रतोत्सुकाम् मानवीं रामां वर्षपूगान् मुहूर्तवत् निरमयन् रेमे ॥४४॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् अपने को नव भागों में विभक्त कर रतिजन्य सुख के लिए सदा उत्सुक बनी रहने वाली अपनी पत्नी मनुपुत्री देवहुति के साथ उन्होंने बहुत वर्षो तक एक मुहूर्त के समान रमण किया ॥४४॥

**भावार्थ दीपिका**

नवधा विभज्य नवप्रभेदमात्मानं कृत्वा ।।४४।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने को नवभागों में विभक्त करके कर्दम महर्षि ने देवहूति के साथ अनेक वर्षों तक रमण किया और उनका वह समय एक मुहूर्त के समान बीत गया ।।४४।।

**तस्मिन्विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता । न चाबुध्यत तं कालं पत्याऽपीच्येन सङ्गता ।।४५।।**

**अन्वयः**— तस्मिन् विमाने उत्कृष्टां रतिकरीं शय्यां श्रिता अपीच्येन पत्या संगता च तं कालं न अबुध्यत ।।४५।।

**अनुवाद**— उस विमान में उत्कृष्ट तथा रतिजन्य सुख को बढाने वाली शय्या का आश्रय लेकर अपने सुन्दर पति के साथ रहने वाली देवहूति को उतने समय का पता ही नहीं चला कि कब वह समय बीत गया ।।४५।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।४५।।

**एवं योगानुभावेन दम्पत्यो रममाणयोः । शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ।।४६।।**

**अन्वयः**— एवं योगानुभावेन कामलालसयोः रममाणयोः दम्पत्योः मनाक् शतं शरदः व्यतीयुः ।।४६।।

**अनुवाद**— इस तरह से योग के प्रभाव के कारण, काम की लालसा से युक्त रमण करते हुए उन दोनों पति-पत्नी को सौ वर्षों का समय एक छोटे से समय के समान बीत गया ।।४६।।

**भावार्थ दीपिका**

शरदः संवत्सराः । मानागीषदिव व्यतीयुः ।।४६।।

**भाव प्रकाशिका**

शरद् शब्द संवत्सर का बोधक है और मनाक् यह अव्यय बहुत थोड़े का बोधक है । इस तरह रमण करते हुए देवहूति तथा कर्दम महर्षि के सौ वर्ष बीत गये; किन्तु वह उनको बहुत छोटे समय के समान प्रतीत हुआ ।।४६।।

**तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनात्मवित् । नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विभुः ।।४७।।**

**अन्वयः**— आत्मवित् सर्वसङ्कल्पवित् विभुः स्वरूपं नोधा विधाय आत्मना तां भगवान तस्यां रेतः आधत ।।४७।।

**अनुवाद**— आत्मज्ञ महर्षि कर्दम सबों के सङ्कल्प को जानने वाले थे, अतएव वे देवहूति को सन्तान प्राप्ति के लिए उत्सुक जानकर तथा श्रीभगवान् के आदेश को स्मरण करके महर्षि ने अपने स्वरूप को नव भागों में विभक्त करके एकाग्र मन से अपनी पत्नी के गर्भ में अपने वीर्य का आधान कर दिए ।।४७।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मना स्वदेहार्धरूपेणातिप्रीत्या भावयन् । तथा सति सदपत्यं भवेदिति । नोधा नवधा । सर्वसङ्कल्पविदिति । तस्या बह्वपत्यसङ्कल्पं जानन्नित्यर्थः । विभुस्तथा कर्तुं समर्थश्च । आत्मविदिति च तामानासक्तत्वात्स्त्रियो जाता इति भावः । पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः इति स्मृते ।।४७।।

**भाव प्रकाशिका**

उन्होंने स्वयं ही अपनी पत्नी की अर्धाङ्गरूप में अत्यन्त प्रेम पूर्वक भावना की इससे मेरी अच्छी सन्तान होए और देवहूति के गर्भ में अपने वीर्य का उन्होंने आधान कर दिया । नोधा पद का अर्थ नव प्रकार से है । सर्वसङ्कल्पवित् पद का अर्थ है कि वे जानते थे कि देवहूति चाहती हैं कि हमारी बहुत सी सन्तानें होएँ । चूकि उस तरह का कर्म करने में वे समर्थ थे अतएव उनको विभु कहा गया है । **आत्मवित्** कहने का अभिप्राय है

कि महर्षि देवहूति में आसक्त नहीं थे अतएव उनकी स्त्री सन्ताने हुयी। स्मृति भी कहती है जब पुरुष का शुक्र (वीर्य) अधिक होता है तो पुरुष सन्तान होती है और स्त्री का रज अधिक होता है तो स्त्री सन्तान होती है ।।४७।।

**अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः । सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ।।४८।।**

**अन्वयः**— अतः सा देवहूतिः सद्यः स्त्रियः प्रजाः सुषुवे । ताः सर्वाः चारुसर्वाङ्ग्यः लोहितोत्पलगन्धयः आसन् ।।४८।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् दवहूति ने शीघ्र ही स्त्री सन्तानों को जन्म दिया, वे सबके सब सर्वाङ्ग सुन्दरियाँ थीं और उन सबों के शरीर से लाल कमल की सुगन्धि निकलती थी ।।४८।।

**भावार्थ दीपिका**

अतोऽनन्तरमेव । सद्य एकस्मिन्नेवाहनि । चारूणि सर्वाण्यङ्गानि यासाम् ।।४८।।

**भाव प्रकाशिका**

उसके पश्चात् देवहूति ने एक ही दिन में स्त्री सन्तानों को जन्म दिया । सबके सब सर्वाङ्ग सुन्दरी थीं और उन सबों के शरीर से लाल कमल की सुगन्धि निकलती थी ।।४८।।

**पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदालक्ष्योशती सती। स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ।।४९।।**
**लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया। उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ।।५०।।**

**अन्वयः**— तदा उशती सती प्रव्रजिष्यन्तं पतिं आलक्ष्य विदूयता विक्लवेन हृदयेन अश्रुकलां निरूध्य अधोमुखी नखमणिश्रिया यदा भूमिं लिखन्ती स्मयमाना ललितां वाचम् उवाच ।।४९-५०।।

**अनुवाद**— उस समय शुद्ध स्वभाव वाली देवहूति ने देखा कि उनके पतिदेव संन्यास ग्रहण करके वन में जाना चाहते हैं तो उनका दु:खी हृदय व्याकुल हो गया, उन्होंने किसी तरह अपने आँसुओं को रोका और मुख नीचे करके नखरूपी मणि की शोभा से सम्पन्न भूमि को कुरेदती हुयी और मुस्कुराती हुयी सी मधुर वाणी में उन्होंने कहा ।।४९-५०।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रव्रजिष्यन्तमालक्ष्य वितर्क्य स्मयमाना बहिः, अन्तस्तु विक्लवेन व्याकुलेन विदूयता संतप्यमानेन हृदा उवाचेत्युत्तरेणान्वयः। नखा एव मणयस्तैः श्रीः शोभा यस्य तेन पदा भुवं लिखन्तीमीति दुरन्तचिन्तालक्षणम् ।।४९-५०।।

**भाव प्रकाशिका**

देवहूति ने जान लिया कि पतिदेव संन्यास ग्रहण करके वन जाना चाहते है किन्तु ऊपर से मुस्कुराती हुयी और भीतर से उनका हृदय सन्तप्त ही हो रहा था । उन्होंने कहा यह आगे के श्लोक से अन्वय है । नखरूपी मणि से सुशाभित चरणों से भूमि को कुरेदती हुयी उन्होंने कहा । यह अत्यधिक चिन्ता का लक्षण है ।।४९-५०।।

देवहूतिरुवाच

**सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् । अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ।।५१।।**

**अन्वयः**— भगवन् सर्वं प्रतिश्रुतम् मह्यम् उपोवाह अथापि प्रपन्नायाः मे अभयं दातुम् अर्हसि ।।५१।।

**देवहूति ने कहा**

**अनुवाद**— आपने जो विवाह के समय प्रतिज्ञा की थी उसका पूर्णरूप से निर्वाह किया है, फिर भी मैं आपकी शरणागता हूँ, आप मुझे अभय प्रदान करें ।।५१।।

### भावार्थ दीपिका

उपोवाह संपादितवान् । अभयमिति भाविनो दैन्यात्संसाराच्च यद्भयं तन्निवर्तयेत्यर्थः ॥५१॥

### भाव प्रकाशिका

आपने अपनी प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से निर्वाह किया है; किन्तु भविष्यत् काल में होने वाली अपने पुत्रियों के पतियों का अन्वेषण करने में सम्भावित दीनता से मुझे अभय प्रदान करें ॥५१॥

**ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः । कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥५२॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् तुभ्यं दुहितृभिः समाः पतयः विमृग्याः त्वयि वनम् प्रव्रजिते मे विशोकाय कश्चित स्यात् ॥५२॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! आपको अपनी पुत्रियों के लिए उन सबों के ही समान पतियों का अन्वेषण करना चाहिये और आपके वन में चले जाने पर मेरे लिए किसी को ऐसा होना चाहिए जो मुझे शोकरहित बना दे ॥५२॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र दैन्यं निवेदयति । तुभ्यं तव दुहितृभिः स्वयमेवात्मनः समा योग्याः पतयो विमृग्या इति दैन्यं प्राप्तम् । संसारभयमुररीकृत्याह-कश्चिदिति । विशोकाय ज्ञानोपदेशाय । स्त्रीभिर्ऋणानपाकरणात्कंचित्कालं त्वदवस्थानेन ब्रह्मवित्पुत्रः कश्चित्किं स्यादित्यर्थः ॥५२॥

### भाव प्रकाशिका

अपनी दीनता का निवेदन करती हुयी देवहूति ने कहा आपको अपनी पुत्रियों के लिए योग्य वर का अन्वेषण करना चाहिए । यह मुझको दैन्य प्राप्त है । संसार के भय को हृदय में रखकर उन्होंने कहा **कश्चित् इत्यादि** अर्थात् आपके वन में चले जाने पर मुझको भी ज्ञानोपदेश करके शोकरहित बना देने वाला कोई पुत्र चाहिए । क्योंकि स्त्रियाँ तो ऋणत्रय का अपाकरण कर नहीं सकती हैं । अतएव कुछ समय तक यहाँ रहकर आप मुझे ब्रह्म ज्ञानी पुत्र प्रदान करें ॥५२॥

**एतावताऽलं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो । इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परित्यक्तपरात्मनः ॥५३॥**
**इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः। अजानन्त्या परं भावं तथाऽप्यस्त्वभयाय मे ॥५४॥**

**अन्वयः**— हे प्रभो ! परित्यक्तपरात्मनः, इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन व्यतिक्रान्तेन एतावता कालेन मे अलम् । इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या परं भावं अजानन्त्या त्वयि मे प्रसङ्गः कृतः तथापि मे अभयाय अस्तु ॥५३-५४॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! अब तक परमात्म पराङ्मुख रहकर मेरा जो इतना महान् काल इन्द्रिय सुख में ही बीत गया वह व्यर्थ ही चला गया । आपके प्रभाव को नहीं जानने के कारण ही मैने इन्द्रिय के विषयों में आसक्त रहकर आप से प्रेम किया फिर भी किसी को मेरे संसार के भय को दूर करने वाला होना चाहिए ॥५३-५४॥

### भावार्थ दीपिका

विषयान्भुक्ष्व किं ब्रह्मविद्ययेति चेत्तत्राह । एतावताऽलं पूर्यताम् । परित्यक्तः पर आत्मा यया तस्या मम । स्वकृतमनुशोचन्त्याह इन्द्रियार्थेष्विति चतुर्भिः । मे मया । परं भावं त्वं ब्रह्मविदिति ॥५३-५४॥

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि विषयों का उपभोग करो ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने से कौन सा लाभ होने वाला है ? तो इसका उत्तर है कि इतने समय तक विषयों का भोग भोगा है । वह पूरा हो गया अभी तक तो मैं परमात्म पराङ्मुख ही रही । अब तो मुझको कोई ज्ञानोपदेश करने वाला मिलना चाहिए ॥५३-५४॥

**सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया । स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥५५॥**

**अन्वयः**— अधिया असत्सु कृतः सङ्गो यः संसृतेः हेतुः स एव साधुषु कृतः निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥५५॥

**अनुवाद**— अज्ञान के कारण सत्पुरुषों के साथ किया हुआ जो सङ्ग है वह संसारभय को प्रदान करने वाला होता है, वही सङ्ग यदि साधुपुरुष के साथ किया जाय तो वह अनासक्ति का कारण बन जाता है ॥५५॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रसङ्गः कथमभयायास्तु तत्राह-सङ्ग इति । अधियाऽज्ञनेन ॥५५॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि सङ्ग किस प्रकार से अभय प्रदान का साधन हो सकता है तो इसका उत्तर इस श्लोक से दिया गया है । अज्ञान के कारण जो असत् पुरुषों के साथ सङ्ग किया जाता है वह तो संसार बन्ध का ही कारण होता है; किन्तु वही सङ्ग यदि सत्पुरुषों के साथ किया जाय तो वह संसार से अनासक्ति का साधन बन जाता है ॥५५॥

**नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते । न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥५६॥**

**अन्वयः**— इह यत् कर्म न तु धर्माय, न विरागाय न तीर्थपद सेवायै सः जीवन् अपि मृतः हि ॥५६॥

**अनुवाद**— जिस पुरुष के द्वारा किया गया कर्म न तो धर्मकारक होता है, न तो वैराग्य उत्पन्न करने वाला होता और न तो श्रीभगवान् की सेवा का ही सम्पादक होता है, वह मनुष्य इस लोक में जीवित भी रहकर मरा हुआ ही है ॥५६॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वभावतः प्रवृत्तं यस्य कर्म धर्मार्थं न कल्पते धर्माभिमुखं न भवेत् तत्रापि निष्कामधर्मद्वारा विरागाय न कल्पते । तद्द्वारा च तीर्थपदस्य हरेः सेवार्थं न पर्यवस्येदित्यर्थः ॥५६॥

**भाव प्रकाशिका**

स्वाभाविक रूप से किया जाने वाला जिस पुरुष का कर्म न तो धार्मिक होता है, और न तो वह निष्काम होने के कारण संसार से वैराग्य उत्पन्न करने वाला हो और न तो उसका पर्यवसान श्रीभगवान् की सेवा में ही होता हो ऐसा व्यक्ति इस संसार में जीवित भी रहकर मरा हुआ ही है ॥५६॥

**साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् । यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥५७॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कपिलेयोपाख्याने त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥

**अन्वयः**— सा अहं यत् त्वां विमुक्तिदं प्राप्य बन्धनात् न मुमुक्षेय नूनम् भगवतः मायया अहं दृढं वञ्चिता ॥५७॥

**अनुवाद**— आप जैसे पतिदेव को प्राप्त करके भी मैंने जो संसार के बन्धन से मुक्त होने की इच्छा नहीं की वह निश्चित रूप से मैं भगवान् की माया से अत्यधिक ठगी गयी ॥५७॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कापिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।**

## भावार्थ दीपिका

न मुमुक्षेय मोक्तुमिच्छां न कृतवत्यस्मि ।।५७।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।।२३।।**

## भाव प्रकाशिका

मैंने मोक्ष प्राप्ति की इच्छा नहीं की, अतएव भगवान् की माया ने मुझको ठग लिया ।।५७।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की तेइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२३।।**

# चौबीसवाँ अध्याय

## श्रीकपिलदेवजी का जन्म

मैत्रेय उवाच

**निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः । दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥१॥**

**अन्वयः—** शालिनीम्, एवं निर्वेदवादिनीम् मनोर्दुहितरं दयालुः मुनिः शुक्लाभि व्याहृतं स्मरन् आह ॥१॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद—** सद्गुणों से सुशोभित इस प्रकार से वैराग्य जनक बातों को कहने वाली महाराज मनु की पुत्री देवहूति को कृपा करने वाले दयालु मुनि ने श्रीभगवान् की बातों का स्मरण करते हुए कहा ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

चतुर्विंशे ततो जन्म कपिलस्याह तत्पितुः । प्रव्रज्यां तमनुज्ञाप्य ऋणत्रयविमोक्षतः ॥१॥ शालिनीं श्लाघ्याम् । शुक्लेनाभिव्याहृतं **'सहाहं स्वांशकलया'** इत्यादि ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

चौबीसवें अध्याय में कपिल महर्षि के जन्म का वर्णन, उनके पिता के संन्यास को जानकर ऋणत्रय से मुक्ति के लिए किया गया है ॥१॥ **शालिनीं श्लाघ्याम् इत्यादि-** सद्गुणों से सम्पन्न होने के कारण देवहूति प्रशंसनीय थी । उनकी दीनता भरी बात को सुनकर दयालु मुनि ने श्रीभगवान् के **सहाहं स्वांशकलया इत्यादि** वाक्य का स्मरण करते हुए कहा ॥१॥

ऋषिरुवाच

**मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते । भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्संप्रपत्स्यते ॥२॥**

**अन्वयः—** हे अनिन्दिते राजपुत्रि इत्थम् आत्मानं प्रति मा खिदः, ते गर्भम् अक्षरो भगवान् अदूरात् सम्प्रपत्स्यते ॥२॥

**कर्दम महर्षि ने कहा**

**अनुवाद—** हे दोषरहित राजकुमारी ! तुम अपने विषय में खेद न करो, तुम्हारे गर्भ में अविनाशी पुरुष परमात्मा शीघ्र ही आयेंगे ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

इत्थं मा खिदः खेदं मा कार्षीः आत्मानं प्रति अहं भाग्यहीनेति । अदूराच्छीघ्रम् ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

कर्दम महर्षि ने कहा कि तुमको इस तरह अपने को भाग्यहीन समझकर खेद नहीं करना चाहिए; तुम्हारे गर्भ में शीघ्र ही अक्षर पुरुष परमात्मा आने वाले हैं ।।२।।

**धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च । तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ।।३।।**

**अन्वयः**— धृतव्रतासि ते भद्रम् दमेन, नियमेन तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया च ईश्वरं भज ।।३।।

**अनुवाद**— तुमने व्रत का पालन किया है, तुम्हारा कल्याण होगा । अब तुम दम (इन्द्रियों को वश में रखना) नियम (अपने धर्म का पालन और पावित्र्य का पालन) तपस्या, धन का दान और श्रद्धा के द्वारा ईश्वर की आराधना करो ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

दमेनेन्द्रियसंयमेन । नियमेन स्वधर्मेण । तपांसि द्रविणदानानि च तैः ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

अब तुमको इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए, स्वधर्म का पालन तथा पावित्र्य पालन रूप नियम, तपस्या धन का दान तथा श्रद्धा के द्वारा परमात्मा की आराधना करनी चाहिए ।।३।।

**स त्वयाराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः । छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ।।४।।**

**अन्वयः**— त्वया आराधितः सः शुक्लः मामकं यशः वितन्वन् ब्रह्मभावनः औदर्यः सः ते हृदय ग्रन्थिम् छेत्ता ।।४।।

**अनुवाद**— तुम्हारे द्वारा आराधित होकर वे भगवान् मेरे यश का विस्तार करते हुए तुम्हारे औदर्य पुत्र बनकर ब्रह्मोपदेश द्वारा तुम्हारे हृदय की अहङ्कार ग्रन्थि को विनष्ट कर देंगे ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

हृदयग्रन्थिं चिज्जडात्मकमहंकारलक्षणं बन्धं छेत्ता छेत्स्यति । औदर्यः पुत्रः सन् । ब्रह्म भावयत्युपदिशतीति तथा ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

जड़ और चेतन की ग्रन्थि रूप जो अहङ्कार रूपी संसार का बन्धन है, उसको वे ब्रह्मोपदेश के द्वारा विनष्ट कर देंगे । वे तुम्हारे पुत्र रूप से अवतीर्ण होंगें ।।४।।

मैत्रेय उवाच

**देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः । सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ।।५।।**

**अन्वयः**— देवहूत्यपि प्रजापतेः संदेशं गौरवेण सम्यक् श्रद्धाय कूटस्थम्, गुरुम्, पुरुषं अभजत् ।।५।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुरजी! प्रजापति कर्दम महर्षि आदेश एवं उनमें गौरव बुद्धि होने के कारण देवहूति ने भी उस पर पूर्ण रूप से विश्वास किया और वह कूटस्थ निर्विकार जगद्गुरु भगवान् पुरुषोत्तम की आराधना करने लगी ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

श्रद्धाय विश्वस्य ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रद्धाय पद का अर्थ है विश्वास करके ।।५।।

**तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः । कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥६॥**

**अन्वयः**— बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः कार्दमवीर्यम् आपन्नो तस्यां दारुणि अग्निरिव जज्ञे ॥६॥

**अनुवाद**— इस तरह बहुत दिन बीत जाने पर भगवान् मधुसूदन, महर्षि कर्दम के वीर्य का आश्रय लेकर देवहूति के गर्भ से उसी तरह प्रकट हुए जिस तरह अरणी से अग्नि प्रकट होती है ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

बहुतिथे बहुतरे कालेऽतिक्रान्ते सति । कार्दमं कर्दमसंबन्धि ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

बहुत दिन बीत जाने के पश्चात् महर्षि कर्दम के वीर्य का सहारा लेकर श्रीभगवान् देवहूति के पुत्र के रूप से जन्म लिए ॥६॥

**अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः । गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥७॥**

**अन्वयः**— तदा व्योम्नि घनाघनाः वादित्राणि अवादयन् । गन्धर्वां तं गायन्ति स्म, अप्सरसः मुदा नृत्यन्ति स्म ॥७॥

**अनुवाद**— उस समय आकाशा में मेघ समूह गरज कर बाजों को बजाने लगे । गन्धर्व गण भगवत् सम्बन्धी गीत गाने लगे और अप्सराएँ प्रसन्नता पूर्वक नृत्य करने लगीं ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

घनाघना इत्येकं पदम् । वर्षन्तो मेघाः । गायन्ति स्म नृत्यन्ति स्म ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

घनाघनाः यह एक ही पद है और इसका अर्थ है कि धन सघन मेघ वर्षा करते हुए गरज-गरज कर वाद्य बजाने लगे, गन्धर्वगण गीत गाने लगे और आनन्दित होकर अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥७॥

**पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः । प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मानंसि च ॥८॥**

**अन्वयः**— खेचरैः अपवर्जिता दिव्या सुमनसः पेतुः, सर्वाः दिशः अम्भांसि, मनांसि च प्रसेदुः ॥८॥

**अनुवाद**— देवताओं के द्वारा वर्षाये गये दिव्य पुष्पों की वर्षा हुयी । उस समय सभी दिशाएँ, सरोवरों आदि के जल और सभी जीवों के मन प्रसन्न हो गये ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

अपवर्जिता मुक्ताः ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

अपवर्जिताः पद का अर्थ बरसाये गये हैं ॥८॥

**तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम् । स्वयंभूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥९॥**

**अन्वयः**— सरस्वत्या परिश्रितम् तत् कर्दमाश्रमपदम् मरीच्यादिभिः ऋषिभिः साकम् स्वयम्भूः अभ्ययात् ॥९॥

**अनुवाद**— सरस्वती नदी के जल से घिरे हुए उस कर्दम महर्षि के आश्रम में मरीचि आदि ऋषियों के साथ ब्रह्माजी आये ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

परिश्रितं परिवेष्टितम् ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

परिश्रितम् पद का अर्थ है घिरे हुए ॥९॥

**भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् । तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥१०॥**
**सभाजयन्विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् । प्रहृष्यमाणैरसुभि कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥११॥**

**अन्वयः**— हे शत्रुहन् ! विद्वान् अजः स्वराट् परंब्रह्म भगवन्तं सत्त्वेनांशेन तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् सभाजयन् प्रहृष्यमाणैः असुभिः कर्दमं च इदमभ्यधात् ॥१०-११॥

**अनुवाद**— हे शत्रुओं को मारने वाले विदुरजी ! स्वतः सिद्धज्ञान से सम्पन्न अजन्मा ब्रह्माजी यह जानते थे कि परंब्रह्म भगवान् विष्णु ही अपने अंश से सांख्य शास्त्र का उपदेश करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं, अतएव भगवान् जिस कार्य को करना चाहते थे । उसका विशुद्ध हृदय से अनुमोदन और आदर करके वे महर्षि कर्दम और देवहूति से कहे ॥१०-११॥

### भावार्थ दीपिका

आगत्य किं कृतवांस्तदाह-भगवन्तमिति द्वाभ्याम् । तत्त्वानां संख्यानं यस्मिंस्तस्य सांख्यस्य विज्ञप्त्यै विशेषेण ज्ञापनाय भगवन्तं जातं विद्वानजो ब्रह्मा स्वराट् स्वतःसिद्धज्ञानस्तस्य चिकीर्षितं सभाजयन् पूजयन् प्रहृष्यमाणैरसुभिरिन्द्रियैरुपलक्षितः कर्दमं चेदमभ्यधादिति द्वयोरन्वयः । चकाराद्देवहूतिं च ॥१०-११॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कर्दम महर्षि के आश्रम में आकर क्या किए ? इसको **भगवन्तमित्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं। ब्रह्माजी स्वतः सिद्धज्ञान हैं इसलिए स्वराट् शब्द वाच्य हैं । वे जानते थे कि परंब्रह्म भगवान् विष्णु ही सांख्य शास्त्र का उपदेश करने के लिए कपिल के रूप में अवतीर्ण हुए है । श्रीभगवान् जिस कार्य को करना चाहते हैं उसका अपने शुद्ध अन्तःकरण से समर्थन करके वे उनका आदर किये । इस बात का पता उनके प्रसन्न प्राणों और इन्द्रियों को देखने से ही चल गया । उसके पश्चात् वे महर्षि कर्दम और देवहूति दोनों से कहें ॥१०-११॥

ब्रह्मोवाच

**त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः । यन्मे संजगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे मानद ! भवान मां मानयन् यत् मे वाक्यं संजगृहे तत् त्वया मे निर्व्यलीकतः अपचितिः कल्पिता।॥१२॥

### ब्रह्माजी ने कहा

**अनुवाद**— हे दूसरों का सम्मान करने वाले कर्दम तुमने जो मेरा सम्मान करते हुए मेरे वाक्य को स्वीकार किया है, उसके द्वारा तुमने बिना किसी कपट के मेरी पूजा की है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र-त्वयेति पञ्चभिः कर्दमं प्रत्याह । अपचितिः पूजा कृता । यत् यस्मात् । निर्व्यलीकतो निष्कपटं सम्यग्गृहीतवान् ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

**त्वया इत्यादि** पाँच श्लोकों से उन्होंने महर्षि कर्दम से कहा तुमने मेरी पूर्ण रूप से पूजा की है, क्योंकि तुमने बिना किसी कपट के ही मेरे वाक्यों को स्वीकार किया है ॥१२॥

**एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः । बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥१३॥**

**अन्वयः**— पुत्रकैः पितरि एतावत्येव शूश्रूषा कार्या यतः गौरवेण गुरोः वचः बाढम् इति अनुमन्यते ॥१३॥

**अनुवाद**— पुत्रों को पिता की सबसे बड़ी सेवा यही करनी चाहिए, कि वह **जो आज्ञा** यह कहकर अपने पिता के आदेश को आदर पूर्वक स्वीकार करें ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

अनुमन्येतेति यदेतावत्येव ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

अर्थात् पिता की आज्ञा का अनुमोदन करके उसको स्वीकार करना ही पुत्रों की अपने पिता की सबसे बड़ी सेवा हैं ।।१३।।

**इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः । सर्वमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ।।१४।।**

**अन्वयः**— हे वत्स ! हे सभ्य इमा तव सुमध्यमाः दुहितरः स्वैः प्रभावैः एतं सर्गम् अनेकधा बृहयिष्यन्ति ।।१४।।

**अनुवाद**— हे वत्स ! तुम सभ्य हो ये तुम्हारी सुन्दर पुत्रियाँ अपने वंशों के द्वारा इस सृष्टि को अनेक प्रकार से बढाने का कार्य करेंगी ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

अनेकधा प्रभाावैर्वंशैर्बृंहयिष्यन्ति वर्धयिष्यन्ति ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने महर्षि कर्दम से कहा कि तुम्हारी ये सभी कन्याये सुन्दर हैं । ये अपने वंशों के द्वारा इस सृष्टि को अनेक प्रकार से बढाने का काम करेंगी ।।१४।।

**अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशील यथारुचि । आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ।।१५।।**

**अन्वयः**— अतः त्वम् अद्य ऋषिमुख्येभ्यः यथाशीलम् यथारुचि आत्मजाः परिदेहि, भुवि यशः विस्तृणीहि ।।१५।।

**अनुवाद**— अतएव आज तुम इन मरीचि आदि ऋषियों को उनके शील और रुचि के अनुसरर अपनी पुत्रियों को समर्पित करके भूलोक में अपने यश का विस्तार करो ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

ऋषिमुख्येभ्यो मरीच्यादिभ्यः ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

ऋषिमुख्य शब्द से ब्रह्माजी ने मरीचि आदि ऋषियों को कहा है ।।१५।।

**वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया । भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ।।१६।।**

**अन्वयः**— हे मुने ! भूतानां शेवधिं स्वमायया अवतीर्णं आद्यं पुरुषं देहं विभागं कपिलम् अहं वेद ।।१६।।

**अनुवाद**— हे मुने ! मैं जानता हूँ कि सभी जीवों के निधि स्वरूप उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले आदि पुरुष परमात्मा ही अपनी माया से शरीर को धारण करके कपिल के रूप में अवतीर्ण हुए हैं ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

पुत्रस्तु साक्षादीश्वर इत्याह-वेदाहमिति । शेवधिं निधिं सर्वाभीष्टदम् ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

**वेदाहम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा उन्होंने महर्षि कर्दम को बतलाया कि तुम्हारे पुत्र ये कपिल तो साक्षात् परमात्मा के अवतार हैं । ये मनुष्यों की निधि है, क्योंकि ये सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं । ये साक्षात् आदि पुरुष परमात्मा हैं ये तो अपनी माया से मनुष्य का शरीर धारण किए हुए हैं ।।१६।।

**ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरञ्जटाः । हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥१७॥**
**एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः । अविद्यासंशयग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे मानवि हिरण्यकेशः, पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः एष ते गर्भं कैटभार्दनः प्रविष्टः, अविद्यासंशय ग्रन्थिं छित्वा गां विचरिष्यति ॥१७-१८॥

**अनुवाद**— हे मनुपुत्रि ये सुवर्ण के समान केश वाले, कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले, कमल के चिह्न से अंकित चरण कमल वाले ये कैटभ नामक राक्षस को मारने वाले श्रीभगवान् ही तुम्हारे गर्भ में प्रवेश किए थे। ये अज्ञान जन्य मोह की ग्रन्थियों को काटकर पृथिवी पर विचरण करेंगे ॥१७-१८॥

### भावार्थ दीपिका

देवहूतिं प्रत्याह त्रिभिः । ज्ञानशास्त्रोक्तं विज्ञानमपरोक्षं च ते एव योग उपायस्तेन कर्मणां जटा मूलानि वासना उद्धरन्नुत्पाटयिष्यन्। पद्ममुद्रायुक्तं पदाम्बुजं यस्य । हे मानवि, अविद्या स्वरूपज्ञानं संशया मिथ्याज्ञानानि तन्मयं तव हृदयग्रन्थिम् ॥१७-१८॥

### भाव प्रकाशिका

वे तीन श्लोकों से देवहूति को कहे शास्त्रजन्य ज्ञान को ज्ञान शब्द से अभिहित किया गया है, अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान शब्द से कहा गया है, इन दोनों उपायों से कर्मों की मूलभूत वासना को विनष्ट करके पृथिवी पर विचरण करेंगे । इनके पैर में पद्म का चिह्न । हे मानवि अविद्या अर्थात् स्वरूप विषयक अज्ञान तथा संशय अर्थात् मिथ्याज्ञान स्वरूप तुम्हारे हृदय की ग्रंथि को काटकर ये पृथिवी पर विचरण करेंगे ॥१७-१८॥

**अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः । लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥**

**अन्वयः**— अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः लोके कपिल इति आख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥

**अनुवाद**— ये सिद्धजनों के स्वामी और सांख्याचार्यों के सम्माननीय होंगे । लोक में ये कपिल के नाम से प्रख्यात होंगे और तुम्हारी कीर्ति को बढायेंगे ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

सुसंमतः सुपूजितः सन् । गन्ता प्राप्स्यति ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

ये सांख्याचार्यों द्वारा सुपूजित होंगे ओर लोक में इनकी कपिल के नाम से प्रसिद्धि होगी ॥१९॥

मैत्रेय उवाच

**तावाश्वास्य जगत्स्त्रष्टा कुमारैः सह नारदः । हंसो हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥२०॥**

**अन्वयः**— जगत् स्त्रष्टा तौ आश्वास्य कुमारैः सह नारदः हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥२०॥

**अनुवाद**— जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी महर्षि कर्दम और देवहूति को आश्वासन देकर सनकादिक कुमारों तथा नारदजी के साथ हंसरूपी विमान पर चढकर सत्यलोक में चले गये ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

कुमारैः सहेति शेषः । सहनारदो नारदसहितश्च । मीरच्यादीन्विवाहार्थमवस्थाप्य नैष्ठिकैरेतैः पञ्चभिः सहितो हंसो ब्रह्मा ययौ । त्रिधाम तृतीयं धाम स्वर्गस्तस्य परां काष्ठां सत्यलोकम् ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी नारदजी तथा चारो सनकादिकों ये पाँचों जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे उन सबों के साथ सत्यलोक में

चले गये। त्रिधाम शब्द से स्वर्ग लोक को कहा गया है, उनमें सबसे श्रेष्ठ स्वर्गलोक को चले गये। वे मरीचि आदि ऋषियों को विवाह के लिए वहीं पर छोड़ दिये ॥२०॥

**गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः । यथोदितं स्वदुहितृः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥२१॥**

**अन्वयः**— हे क्षत्तः शतधृतौ गते तेन चोदितः प्रेरितः ततः यथोदितं स्वदुहितृः विश्वसृजां प्रादात् ॥२१॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! ब्रह्माजी के चले जाने पर उन्हीं की प्रेरणा के अनुसार प्रेरित महर्षि कर्दम ने अपनी पुत्रियों को प्रजापतियों को प्रदान किया ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

शतधृतौ ब्रह्मणि ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

शतधृति ब्रह्माजी का नाम है। उनके चले जाने पर ॥२१॥

**मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये । श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— मरीचये कलां प्रादत् अथ अत्रये अनसूयाम् अङ्गिरसे श्रद्धाम् अयच्छत् पुलस्त्याय हविर्भुवम् प्रादात् ॥२२॥

**अनुवाद**— उन्होंने मरीचि महर्षि को कला नामक पुत्री को प्रदान कर दिया, अत्रि महर्षि का विवाह अनसूया से किया, अङ्गिरा महर्षि का श्रद्धा नामक पुत्री से विवाह कर दिया तथा पुलस्त्य महर्षि का विवाह हविर्भू नामक पुत्री से कर दिया ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२२॥

**पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् । ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— पुलहाय युक्तां गतिं, क्रतवे च क्रियां सतीम् ख्यातिं च भृगवे अयच्छत् वसिष्ठाय अपि अरुन्धतीम् ॥२३॥

**अनुवाद**— पुलह महर्षि का विवाह उनके अनुसार गति से, क्रतु महर्षि का साध्वी क्रिया से, भृगु महर्षि का ख्याति नामक पुत्री से और वसिष्ठ महर्षि का विवाह भी अरुन्धती से उन्होंने कर दिया ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

युक्तां योग्याम् । अयच्छत् अदात् ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

युक्त शब्द का अर्थ योग्य है और अयच्छत् अर्थात् प्रदान किया ॥२३॥

**अथर्वणेऽददाच्छान्तिं यया यज्ञो वितन्यते । विप्रर्षभान्कृतोद्वाहान् सदारान्समलालयत् ॥२४॥**

**अन्वयः**— अथर्वणे शान्तिं प्रादात यया यज्ञः वितन्यते । कृतोद्वाहान् विप्रर्षभान् सदारान् समलालयत् ॥२४॥

**अनुवाद**— उन्होंने अथर्वा महर्षि को शान्ति नाम की कन्या प्रदान किया जिससे यज्ञ का विस्तार होता है। उन्होंने विवाह करके ऋषिवर्यों का उनकी पत्नियों के साथ सत्कार किया ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

वितन्यते समृद्धः क्रियते । शान्त्यधिष्ठात्रीं देवतामित्यर्थः । समलालयत्संतोषितवान् ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

**वितन्यते** अर्थात् समृद्ध किया जाता है शान्ति देवी शान्ति की अधिष्ठातृ देवता हैं। समलालयत् अर्थात् संतुष्ट किया ॥२४॥

**ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् । प्रातिष्ठन्नन्दितमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— क्षत्तः ततः ते ऋषय कृतदारा तम् निमन्त्र्य, आनन्दितम् आपन्ना, स्वं स्वम् आश्रममण्डलम् प्रातिष्ठन् ॥२५॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! उसके पश्चात् विवाह हो जाने पर वे ऋषिगण कर्दम महर्षि से आज्ञा लेकर आनन्दित हो गये और अपने-अपने आश्रम मण्डल के लिए प्रस्थान किये ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

निमन्त्र्य पृष्ट्वा । नन्दिं हर्षं प्राप्ताः सन्तः ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

निमन्त्र्य अर्थात् पूछकर और नदिम् आनन्द पूर्वक ॥२५॥

**स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् । विविक्त उपसंगम्य प्रणम्य समभाषत ॥२६॥**

**अन्वयः**— स अवतीर्णं विवुधर्षम् त्रियुगम् आज्ञाय, विविक्ते उपसंगम्य, प्रणम्य समभाषत ॥२६॥

**अनुवाद**— महर्षि कर्दम भी देवताओं में श्रेष्ठ श्रीविष्णु भगवान् को अवतीर्ण हुए जानकर एकान्त में उनके पास जाकर प्रणाम किए और कहे ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

स च मुनिः । त्रियुगं विष्णुम् । विविक्ते रहसि ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

वे कर्दम महर्षि भी, त्रियुग अर्थात् भगवान् विष्णु को अवतीर्ण हुए जानकर एकान्त में उनके पास गये औरउनको प्रणाम करके कहे ॥२६॥

**अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः । कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥२७॥**

**अन्वयः**— अहो स्वैः अमङ्गलैः निरये पापच्यमानानां देवताः नूनं इह भूयसा कालेन प्रसीदन्ति ॥२७॥

**अनुवाद**— अहो अपने पाप कर्मों के कारण इस दुःखमय संसार में अत्यधिक कष्टों को भोगेने वाले जीवों पर देवता बहुत दिनों के बाद प्रसन्न होते हैं ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

पापच्यमानानां भृशं दह्यमानानाम् । निरये संसारे । स्वीयैरमङ्गलैः पापैः ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

इस संसार में अपने पाप कर्मों के कारण अत्यधिक संतप्त होने वाले मनुष्यों पर देवता बहुत समय के पश्चात् प्रसन्न हो जाते हैं ॥२७॥

**बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना । द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— बहुजन्म विपाकेन, सम्यक् योग समाधिना, यतयः शून्यागारेषु यत् पदं द्रष्टुम् यतन्ते ॥२८॥

**अनुवाद**— अनेक जन्मों की साधना से परिपक्व हुयी समाधि के द्वारा योगिजन जिनके स्वरूप को एकान्त में देखने का प्रयास करते हैं ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

कुतः । सर्वा देवताः प्रसन्ना इति ज्ञातम्, अलभ्यलाभादित्याह द्वाभ्याम् । बहुषु जन्मसु विपक्वेन सुसिद्धेन । सम्यग्योगो भक्तियोगस्तस्मिन्समाधिरैकाग्र्यं तेन । शून्यागारेषु विविक्तस्थानेषु । यस्य तव पदम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

आप कैसे जानते हैं कि सभी देवता प्रसन्न हो गये हैं । तो इसका उत्तर है कि अलभ्यलाभ होने के कारण मैं जानता हूँ । इस बात को महर्षि दो श्लोकों से कहते हैं । अनेक जन्मों में सिद्ध हुयी समाधि में श्रेष्ठ भक्तियोग के द्वारा चित्त की एकाग्रता के द्वारा एकान्तस्थान में आपके चरणों का दर्शन प्राप्त करने का प्रयास करते हैं ॥२८॥

**स एव भगवानद्य हेलनं न गणय्य नः । गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥२९॥**

**अन्वयः**— स एव स्वानां पक्षपोषणः भगवान् नः ग्राम्याणां हेलनं नगणय्य अद्य नः गृहेषु जातः ॥२९॥

**अनुवाद**— वे ही अपने भक्तों की रक्षा करने वाले भगवान् आज हम विषय लोलुप जीवों के द्वारा की जाने वाली अवमानना की परवाह किए बिना ही हमारे घर में अवतीर्ण हो गये हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

हेलनमवज्ञां लाघवं नगणय्यागणयित्वा । उचितमेव तवैतदित्याह । यस्त्वं स्वानां भक्तानां पक्षं पुष्णासीति तथा सः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

हेलन अवमानना को कहते हैं । महर्षि कहते हैं कि हम कामी जीवों के द्वारा की जाने वाली अवमानना की परवाह किए बिना ही आप हमारे यहाँ अवतीर्ण हो गये हैं । आपका ऐसा करना उचित भी है, क्योंकि आप अपने भक्तों की रक्षा किया करते हैं ॥२९॥

**स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे । चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥३०॥**

**अन्वयः**— भक्तानां मानवर्धनः भवान् स्वीयं वाक्यम् ऋतं कृर्तुम् ज्ञानं चिकीर्षुः भगवान् मे गृहे अवतीर्णः असि ॥३०॥

**अनुवाद**— आप अपने भक्तों का मान बढ़ाने का काम करते हैं । अपनी वाणी को सत्य करने के लिए तथा सांख्य योग का उपदेश देने के लिए आप मेरे गृह में अवतार ग्रहण किए हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् । स्वयमेवावतीर्णोऽसि स्ववाक्यं तव पुत्रो भविष्यामीति यत्तत्सत्यं कर्तुम् । ज्ञानं ज्ञानसाधनं सांख्यं च चिकीर्षुः सन् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इसी अर्थ का विस्तार से दो श्लोकों द्वारा वर्णन करते हैं । आपने जो पहले कहा था कि मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा अपने इसी वाक्य को सत्य करने के लिए आप मेरे घर में अवतीर्ण हुए हैं । आपके इस अवतार का प्रयोजन ज्ञान के साधनभूत सांख्ययोग को प्रवर्तित करना है ॥३०॥

**तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव । यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥३१॥**

**अन्वयः**— हे भगवन् तान्येव एव ते रूपाणि अभिरूपाणि सन्ति, यानि-यानि स्वजनानाम् रोचन्ति तानि अपि अरूपिणः तव अभिरूपाणि ॥३१॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आपके वे चतुर्भुज इत्यादि रूप ही आपके स्वरूपानुरूप हैं, और आपके भक्तों को जो रूप प्रिय लगते हैं वे भी आपके अनुरूप है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यानि तवालौकिकानि चतुर्भुजादिरूपाणि तान्येव तेऽभिरूपाणि योग्यानि । यानि च स्वजनानां रोचन्ते मनुष्यसरूपाणि तान्यपि ते रोचन्त इत्यर्थः । अरूपिणः प्राकृतरूपहितस्य ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

प्रभो ! आप प्राकृत रूप से रहित हैं । आपके जो चतुर्भुज आदि दिव्य रूप हैं वे ही आपके योग्य हैं और आपके भक्तों को जो अच्छे लगते हैं वे भी रूप आपके योग्य ही हैं ॥३१॥

**त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाऽद्धा सदाऽभिवादार्हणपादपीठम् ।**
**ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियां पूर्तमहं प्रपद्ये ॥३२॥**

**अन्वयः**— अद्धा सूरिभिः तत्त्व बुभुत्सया सदाऽभिवादार्हणपादपीठम्, ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियां पूर्तं त्वाम् अहं प्रपद्ये ॥३२॥

**अनुवाद**— आपकी चरणचौकी तत्त्वज्ञान की इच्छा से विद्वानों द्वारा सदा वन्दनीय है । ऐश्वर्य वैराग्य, यश, ज्ञान पराक्रम और श्री इन सबों से परिपूर्ण आपकी मैं शरणागति करता हूँ ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

अभिवादार्हं पादपीठं यस्य । ऐश्वर्यादिभिः पूर्तं पूर्णम् ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने कहा कि तत्त्वज्ञान की इच्छा से आप की चरण चौकी विद्वानों द्वारा वन्दनीय हैं और ऐश्वर्यादि छहों ऐश्वर्यों से आप परिपूर्ण हैं, अतएव मैं आपकी शरणागति करता हूँ ॥३२॥

**परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ।**
**आत्मानुभूत्याऽनुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥**

**अन्वयः**— परं, प्रधानं, पुरुषं, महान्तं कालं, कविं, त्रिवृतं, लोकपालं, आत्मानुभूत्यानुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप परमेश्वर हैं, सारी शक्तियाँ आपके अधीन हैं, प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, काल, अहङ्कार, समस्तलोक, और लोकपाल इन सबों के रूप में आप ही प्रकट होते हैं । आप सर्वज्ञ हैं और इस सम्पूर्ण प्रपञ्च को अपनी चेतना शक्ति के द्वारा अपने में लीन कर लेते हैं । ऐसे भगवान् कपिल की मैं शरणागति करता हूँ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

ऐश्वर्यादिकं विवृण्वन्नाह । परं परमेश्वरमृ । तत्र हेतुः-स्वच्छन्दाः स्वाधीनाः शक्तयो यस्य । ता एवाह । प्रधानं प्रकृतिरूपं पुरुषं तदधिष्ठातारं महान्तं महत्तत्त्वरूपं कालं तेषां क्षोभकं त्रिवृतमहंकाररूपं लोकात्मकं तत्पालात्मकं च । तदेवं मायया प्रधानादिरूपतामुक्त्वा चिच्छक्त्या निष्प्रपञ्चतामाह । आत्मानुभूत्या चिच्छक्त्याऽनुगतः स्वस्मिन् लीनः प्रपञ्चो यस्य तम् । कविं सर्वज्ञम् । प्रधानाद्याविर्भावलयसाक्षिणमित्यर्थः ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के ऐश्वर्य आदि का विस्तार करते हुए महर्षि ने कहा— आप ही परमेश्वर हैं, क्योंकि आपके ही अधीन सारी शक्तियाँ हैं । उन शक्तियों को बतलाते हुए वे कहते हैं- प्रकृतिस्वरूप, प्रधान, प्रकृति के अधिष्ठाता पुरुष, महान् इन सबों में क्षोभ उत्पन्न करने वाला काल, सात्त्विक राजस एवं तामस तीनों प्रकार का अहङ्कार, लोक एवं लोकपाल, इन सबों के रूप में आप ही प्रकट होते हैं । इस तरह से माया के द्वारा प्रधानादिरूपता को बतलाकर चित् शक्ति के द्वारा श्रीभगवान् की निष्प्रपञ्चता को बतलाते हुए उन्होंने कहा **अत्मानुभूत्या० इत्यादि** अर्थात् आप अपनी चित्शक्ति के द्वारा अनुगत होकर सम्पूर्ण प्रपञ्च को अपने में लीन कर लेते हैं । आप सर्वज्ञ हैं और प्रधान आदि के अविर्भाव और लय इत्यादि के आप साक्षी हैं । ऐसे आप कपिल भगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ॥३३॥

**आस्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयाऽवतीर्णार्ण उताप्तकामः ।**
**परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन्विशोकः ॥३४॥**

**अन्वयः**— त्वया अवतीर्णाणे उत आप्तकामः परिव्रजत्पदवीम् आस्थितः अहम् त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः चरिष्ये, प्रजानां पतिं अद्य अभिपृच्छेस्म ।।३४।।

**अनुवाद**— आपके द्वारा मैं अब सभी ऋणों को उतार चुका हूँ, मेरी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं, अब मैं संन्यास मार्ग पर स्थित होकर आपका अपने हृदय में स्मरण करते हुए शोक रहित होकर पृथिवी पर विचरण करूँगा, इसके लिए मैं आपसे आज्ञा माँगता हूँ ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

संन्यासानुज्ञां प्रार्थयते । आस्माभिपृच्छे यत्किंचिदभिपृच्छामीत्यर्थः । त्वया पुत्ररूपेणावतीर्णानि निवृत्तानि ऋणानि दैवादिरूपाणि यस्य स आप्तकामश्चाहं परिव्रजतां संन्यासिनां पदवीं मार्गमाश्रितः संस्त्वां युञ्जन् स्मरन्विचरिष्यामि ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में कर्दम महर्षि भगवान् कपिल से संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा के लिए प्रार्थना करते हैं । **आस्माभिपृच्छे** पद का अर्थ है कि मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ । आपके पुत्र रूप से उत्पन्न हो जाने के कारण मेरे देवऋण आदि तीनों ऋण समाप्त हो गये हैं । मेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं । अब मैं सन्यास मार्ग को अपनाकर अपने हृदय में आपका स्मरण करते हुए सभी शोकों से रहित होकर विचरण करना चाहता हूँ ।।३४।।

श्रीभगवानुवाच

**माया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके । अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥३५॥**

**अन्वयः**— मुने सत्यलौकिके लोकस्य मया प्रोक्तं प्रमाणं तुभ्यं यद् ऋतं अवोचम् अथ अजनि ।।३५।।

**श्रीभगवान् ने कहा**

**अनुवाद**— हे मुने संसार के लौकिक एवं वैदिक कर्मों में मेरा वचन ही प्रमाण है । मैंने जो आप से सत्य कहा था कि मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगा वह मैंने अवतार ग्रहण कर लिया ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

अहं तावज्ज्ञानोपदेशायैव त्वद्गृहेऽवतीर्णः अतस्तव गृहे वसतोऽपि मुक्तिः सुलभैव । यद्यवश्यं गन्तमव्यमेवाग्रहस्तथापि मामेवानुस्मरन् गच्छेत्याशयेनाह-मयेति षड्भिः । सत्यलौकिके वैदिके लौकिके च कृत्ये । स्वोक्तस्य प्रमाण्यमभिदर्शयति । यद्यस्मात्तुभ्यं तव पुत्रो भविष्यामीत्यवोचम् अथ अत एव तदृतं सत्यं यथा भवति तथा मयाऽजनि जन्म स्वीकृतम् ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

मैं तो ज्ञानोपदेश करने के लिए आपके गृह में अवतीर्ण हुआ हूँ अतएव यदि आप अपने घर में ही निवास करते हैं तो भी आपको मुक्ति सुलभ ही है । यदि आपका यह आग्रह हो कि मुझे संन्यास अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिए तो भी मेरा स्मरण करते हुए आप जायँ इसी अभिप्राय से भगवान् कपिल ने **मया इत्यादि** छह श्लोकों को कहा- लोक के लौकिक एवं वैदिक कर्मों में मेरा कथन ही प्रमाण है । अपने कथन की प्रमाणिकता को बताते हुए कपिल भगवान् ने कहा— चूंकि मैंने आपसे कहा था कि मैं आपका पुत्र बनकर अवतार ग्रहण करूँगा इसलिए मैंने आपके यहाँ जन्म ले लिया और मेरी वह वाणी सत्य हो गयी ।।३५।।

**एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् । प्रसंख्यानाय तत्त्वानां संमतायात्मदर्शने ॥३६॥**

**अन्वयः**— अस्मिन् लोके मे एतत् जन्म मुमुक्षूणाम् दुराशयात् प्रसंख्यानाय आत्मदर्शने तत्त्वानां सम्मताय ।।३६।।

**अनुवाद**— इस लोक में यह मेरा जन्म मुमुक्षु जीवों के लिङ्गशरीर से मुक्त होने की इच्छा वाले जीवों के लिए आत्मदर्शन में उपयोगी और प्रकृति आदि का विवेक करने के लिए ही हुआ है ।।३६।।

**भावार्थ दीपिका**

दुराशयाल्लिङ्गान्मुमुक्षूणां मुनीनामात्मदर्शने संमताय तत्त्वानां प्रसंख्यानाय विद्धीत्युत्तरस्यानुषङ्गः ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

संसार में मेरा यह जन्म लिङ्ग शरीर से मुक्त होने की इच्छा वाले मुमुक्षु जीवों के आत्म दर्शन में उपयोगी होगा । तत्त्वों का उपदेश करने के लिए ही मेरा अवतार है यह जानो ॥३६॥

**एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा । तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ॥३७॥**

**अन्वयः**— एष आत्मपथः भूयसा कालेन नष्टः अव्यक्तः । तं प्रवर्तयितुम् मया इमं देहं भृतम् विद्धि ॥३७॥

**अनुवाद**— आत्मज्ञान का यह मार्ग बहुत समयसे लुप्त हो गया है । इसको पुनः प्रवर्तित करने के लिए ही मैंने इस शरीर को धारण किया है । यह तुम जानो ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

नन्वयमात्मज्ञानमार्गः पूर्वसिद्ध एव नेदानीमपूर्ववत्प्रवर्तनीयस्तत्राह-एष इति । अव्यक्तः सूक्ष्मः ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि यह ज्ञान मार्ग तो पहले से ही हैं, अतएव इसको अपूर्व के समान प्रवर्तित नहीं करना है, इस पर भगवान् ने कहा यह ज्ञान मार्ग अत्यन्त सूक्ष्म है, अतएव इसको प्रवर्तित करने के लिए मैंने इस शरीर को धारण किया है ॥३७॥

**गच्छ कामं मया पृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा । जित्वा सुदुर्जयं मृत्युमतृतत्वाय मां भज ॥३८॥**

**अन्वयः**— मया आपृष्टः कामं गच्छ मयि सन्यस्त कर्मणा दुर्जयं मृत्युं जित्वा अमृतत्वाय मां भज ॥३८॥

**अनुवाद**— आपने मेरी आज्ञा माँगी है आप अपनी इच्छानुसार जायँ, अपने समस्त कर्मों को मुझको ही समर्पित करके जिसको जीतना बड़ा कठिन है उस मृत्यु को जीतकर मुक्ति की प्राप्ति करने के लिए मेरा भजन करें ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

कामं यथेच्छम् । आपृष्टोऽनुज्ञातः । यद्वा यथा त्वं गन्तुं मां पृष्टवांस्तथात्रावस्थातुं मयापि त्वमापृष्ट इत्यर्थः । मयि संन्यस्तेन समर्पितेन कर्मणा अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते' इति श्रुतेः ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

कामं पद का अर्थ अपनी इच्छा के अनुसार है । मया आपृष्टः अर्थात् मेरी आज्ञा है । आपृष्टः का अर्थ यह भी है कि जिस तरह से आपने जाने के लिए मुझसे आज्ञा माँगी है उसी तरह मैं भी यहाँ पर रहने के लिए आपसे आज्ञा माँगता हूँ । आप मुझे ही अपने कर्मों को समर्पित करके मृत्यु को जीतकर मुक्ति को प्राप्त कर लें। श्रुति भी कहती हैं **अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते** अर्थात् अविद्या के द्वारा मृत्यु को जीतकर जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । यहाँ श्रुति में अविद्या शब्द से कर्मों को कहा गया है ॥३८॥

**मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् । आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥३९॥**

**अन्वयः**— स्वयंज्योतिः आत्मानं सर्वभूतगुहाशयम् माम् आत्मना आत्मन्येव वीक्ष्य विशोकः अभयम् ऋच्छसि ॥३९॥

**अनुवाद**— मैं स्वयं प्रकाश और सभी जीवों की आत्मा हूँ, सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हूँ । आत्म विशुद्धि के द्वारा जब तुम मेरा अपने अन्तःकरण में साक्षात्कार कर लोगे तो तुम मुक्ति को प्राप्त कर लोगे ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

ततश्च मां परमं परमात्मानमात्मनि स्वस्मिन्नात्मना अन्वीक्षमाणोऽभयं मोक्षं प्राप्स्यसि ।।३९।।

**भाव प्रकाशिका**

जब तुम अपनी शुद्ध बुद्धि से अपने अन्तःकरण में मेरा साक्षात्कार कर लोगे तो तुम मुक्ति को प्राप्त कर लोगें।।३९।।

**मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् । वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति ।।४०।।**

**अन्वयः**— मात्रे सर्वकर्मशमनीम् आध्यात्मिकीं विद्यां वितरिष्ये यया च असौ भयं च अतितरिष्यति ।।४०।।

**अनुवाद**— अपनी माता देवहूति को सभी कर्मों को विनष्ट करने वाले आत्मज्ञान को प्रदान करूँगा । उसके द्वारा ये भी संसार रूपी भय से मुक्त हो जायेंगी ।।४०।।

**भावार्थ दीपिका**

मात्रे देवहूत्यै । शमनीमुन्मूलनीम् । भयमतिशयेन तरिष्यति । परमानन्दं प्राप्स्यतीति चकारार्थः ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

माता देवहूति को मैं आत्मज्ञान प्रदान करूँगा । वह कर्मों का विनाश करने वाला है । उससे ये संसार को पूर्णरूप से पार कर जायेंगी और परमानन्द को प्राप्त कर लेंगी यह चकार का अर्थ है ।।४०।।

मैत्रेय उवाच

**एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः । दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ।।४१।।**

**अन्वयः**— तेन कपिलेन एवं समुदितः प्रजापतिः प्रीतः तं दक्षिणीकृत्य वनमेव जगाम ह ।।४१।।

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— भगवान् कपिल के द्वारा इस तरह कहने पर महर्षि कर्दम उनकी प्रदक्षिणा करके प्रसन्नता पूर्वक वन में चले गये ।।४१।।

**भावार्थ दीपिका**

समुदितः सम्यगुक्तः सन् । तं प्रदक्षिणीकृत्य ।।४१।।

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से भगवान् कपिल द्वारा अच्छी तरह से कहे जाने पर महर्षि कर्दम भगवान् कपिल की प्रदक्षिणा किए और वन में चले गये ।।४१।।

**व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः । निःसङ्गो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ।।४२।।**

**अन्वयः**— आत्मैकशरणः मौनव्रतम् आस्थितः स भगवान् मुनिः निःसङ्गः अनग्निः अनिकेतनः क्षोणीम् व्यचरत् ।।४२।।

**अनुवाद**— मुनियों के अहिंसा व्रत को अपनाकर केवल परमात्मा कोअपना शरण मानने वाले वे कर्दम महर्षि सबसे अनासक्त होकर अग्नि तथा आश्रय का परित्याग करके पृथिवी पर सञ्चरण करने लगे ।।४२।।

**भावार्थ दीपिका**

मुनीनामिदं मौनम् व्रतमहिंसालक्षणम् ।।४२।।

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि अहिंसा प्रधान मौन व्रत को अपना लिए थे । मुनीनामिदम् यह मौन की व्युत्पत्ति है । उन्होंने अग्नि और निवास स्थान दोनों का परित्याग कर दिया ओर वे सबों से अनासक्त होकर पृथिवी पर विचरण करने लगे।।४२।।

**मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसतः परम् । गुणावभासे विगुण एकभक्त्यानुभाविते ॥४३॥**

**अन्वयः**— यत् तत् सदसत परम् गुणावभासे विगुणो एकभक्त्यनुभाविते ब्रह्मणि मनोयुजानः ॥४३॥

**अनुवाद**— जो कार्य एवं कारण से परे हैं, सत्त्वादि गुणों का प्रकाशक एवं निर्गुण हैं तथा जिनका अनन्याभक्ति से प्रत्यक्ष होता है । ऐसे ब्रह्म में उन्होंने अपने मन को लगा दिया ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

सदसतः परं यत्तस्मिन् ब्रह्मणि । गुणावभासके निर्गुणे । एकभक्त्याव्यभिचारिण्या भक्त्यानुभावितेऽपरोक्षीकृते ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

जो कार्य एवं कारण से परे हैं ऐसे ब्रह्म में उन्होंने अपने मन को लगा दिया । वे परब्रह्म सत्त्वादि गुणों के प्रकाशक हैं तथा निर्गुण हैं ऐसे परब्रह्म में महर्षि कर्दम ने अपने मन को लगा दिया ॥४३॥

**निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् । प्रत्यक् प्रशान्तधीर्धीरः प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥४४॥**

**अन्वयः**— निरहंकृतिः निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् प्रत्यक् प्रशान्तधीः धीरः प्रशान्तोर्भिः उदधिः इव ॥४४॥

**अनुवाद**— वे अहङ्कार ममकार तथा सुख दुःखादि द्वन्दों से रहित होकर भेददृष्टि से रहित हो गये, सबमें अपनी आत्मा को ही देखने लगे उनकी बुद्धि अन्तर्मुखी और शान्त हो गयी । उस समय महर्षि कर्दम शान्त लहरों वाले समुद्र के समान प्रतीत होते थे ॥४४॥

### भावार्थ दीपिका

अतो देहादिष्वहंकारादिरहितः । अतएव निर्द्वन्द्वः शीतोष्णाद्यनाकुलः । समदृग्भेदाग्राहकः किंतु स्वदृक् स्वमेव पश्यन्। प्रत्यक् प्रवणा शान्ता विक्षेपरहिता धीर्यस्य ॥४४॥

### भाव प्रकाशिका

उस समय उनकी देह आदि में अहङ्कार ममकार आदि की भावना नहीं रह गयी थी । वे शीत या उष्ण आदि द्वन्द्वों के कारण व्याकुल नहीं होते थे । वे भेदबुद्धि से रहित होने के कारण समदृक् हो गये थे । वे सबों में अपनी आत्मा को ही देखते थे । प्रत्यक् अर्थात् उनकी बुद्धि अन्तर्मुखी हो गयी थी, उनकी बुद्धि शान्त हो गयी थी अर्थात् विक्षेपरहित हो गयी थी । उस समय वे शान्त लहरियों वाले समुद्र के समान प्रतीत होते थे ॥४४॥

**वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि । परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥**

**अन्वयः**— परेण भक्तिभावेन वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥

**अनुवाद**— परम भक्ति के द्वारा सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ भगवान् वासुदेव में चित्त के स्थिर हो जाने के कारण सभी बन्धनों से मुक्त हो गये थे ॥४५॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवंविधकल्पितोपाधिनिवृत्तिमुक्त्वा परमेश्वरपदप्राप्तिमाह–वासुदेव इति त्रिभिः । प्रतीचो जीवस्यात्मनि लब्ध आत्मा चित्तं येन, यतो मुक्तं बन्धनमज्ञानं यस्य ॥४५॥

### भाव प्रकाशिका

कल्पितोपाधि की निवृत्ति को बतलाकर परमेश्वर के पद की प्राप्ति को **वासुदेवे इत्यादि** तीन श्लोकों से

बतलाते हैं । वे अपने चित्त को जीव की आत्मा में ही लगा दिए थे, अतएव अज्ञान के बन्धन से वे महर्षि मुक्त हो गये थे ।।४५।।

**आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् । अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ।।४६।।**

**अन्वयः**— सर्वभूतेषु आत्मानं भगवन्तम् अवस्थितम्, भगवत्यपि आत्मनि च सर्वभूतानि अपश्यत ।।४६।।

**अनुवाद**— वे सभी भूतों में अपनी आत्मा परमात्मा की स्थिति तथा अपनी आत्मा और परमात्मा में सभी भूतों को अवस्थित रूप से देखने लगे ।।४६।।

**भावार्थ दीपिका**

लब्धात्मानमेवाह-आत्मानमिति ।।४६।।

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि कर्दम ने परमात्मा को प्राप्त कर लिया इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । वे सभी भूतों में अपनी आत्मा परमात्मा को देखने लगे और सभी भूतों को अपनी आत्मा परमात्मा में देखने लगे ।।४६।।

**इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा । भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ।।४७।।**

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीय स्कन्धे कापिलेयोख्याने चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।।२४।।

**अन्वयः**— इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा, भगवद्भक्ति युक्ते न भागवती गतिः प्राप्ता ।।४७।।

**अनुवाद**— इस तरह इच्छा और द्वेष से रहित होकर सर्वत्र समबुद्धि और भगवद्भक्ति से परिपूर्ण कर्दम महर्षि ने श्रीभगवान् के परमपद को प्राप्त कर लिया ।।४७।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कपिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।**

**भावार्थ दीपिका**

तदेवं तेन भागवती गतिः प्राप्ता । पाठान्तरे स एव तां गतिं प्राप्त इति ।।४७।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।**

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह महर्षि कर्दम ने श्रीभगवान् के परम पद को प्राप्त कर लिया । जहाँ पर **प्राप्तो भागवतीं गतिम्** यह पाठ भेद है । वहाँ पर भी वही अर्थ होगा । उन्होंने उस गति को प्राप्त किया ।।४७।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अन्तर्गत अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२४।।**

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

# चतुर्थ स्कन्ध

## प्रथम अध्याय

### स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन

मैत्रेय उवाच

**मनोस्तु शतरूपायां तिस्त्रः कन्याश्च जज्ञिरे । आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ।।१।।**

**अन्वयः**— मनोस्तु शतरूपायां विश्रुताः तिस्राः कन्याः च जज्ञिरे आकूतिः देवहूतिः प्रसूतिः इति ।।१।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुर ! महाराज स्वायम्भुव मनु की महारानी शतरूपा के गर्भ से तीन कन्यायें भी उत्पन्न हुयी । आकूति, देवहूति और प्रसूति ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

श्री गणेशाय नमः । नमः श्रीपरमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय । अथैकत्रिंशताऽध्यायैर्विसर्गस्तुर्यईर्यते । विसर्गस्त्वीश्वराधीनैर्ब्रह्मन्वदिभिः कृतः ।।१।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये मनुकन्यान्वयाः पृथक् । वर्ण्यन्ते यत्र यज्ञादिमूर्तिभिः प्रभवो हरेः ।।२।। मनुकन्यान्वयं विस्तरेण वक्तुमाह- मनोस्त्विति । चकाराद्वौ पुत्रौ च ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीगणेशजी को नमस्कार है, जिनके चरण कमलों का ज्ञान रूपी पराग का पान परमहंस रूपी हंसों ने किया है ऐसे भक्तजनों के मन रूपी मानसरोवर में निवास करने वाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है । अब इकतीस अध्यायों के द्वारा विसर्ग का वर्णन किया जाता है । चराचर की सृष्टि को विसर्ग कहते हैं । परमात्मा के अधीन रहने वाले ब्रह्माजी तथा मनु आदि ने विसर्ग (चराचर की सृष्टि) की ।।१।। उसमें पहले अध्याय में मनु की कन्याओं के वंशों का वर्णन पृथक्-पृथक् किया जाता है । जिसमें यज्ञादि मूर्ति के रूप में श्रीहरि की उत्पत्ति का वर्णन है ।।२।।

मनु की कन्याओं के वंश का विस्तार से वर्णन करने के लिए **मनोस्तु** इत्यादि श्लोक को कहा गया है। **कन्याश्च** के चकार के द्वारा दो पुत्रों का भी ग्रहण होता है ।।१।।

**आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः । पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ।।२।।**

**अन्वयः**— शतरूपानुमोदितः पुत्रिका धर्मम् आश्रित्य नृपः भातृमतीं रूचये प्रादात् ।।२।।

**अनुवाद**— महाराज मनु ने महारानी शतरूपा की अनुमति से पुत्रिका धर्म को अपनाकर आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से किया । यद्यपि रुचि प्रजापति आकूति के भाई लगते थे ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

तुशब्दादन्यतोऽपि पुत्रलाभः सूचितस्तद्दर्शयितुमाह-पुत्रिकाधर्ममाश्रित्येति । 'अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्। अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति' भाषाबन्धेन कन्यादानं पुत्रिकाधर्मः । स चाभ्रातृकायां कन्यायां पुत्रार्थिन एव प्रसिद्धस्तथापि पुत्रबाहुल्यकामस्तथा कृतवानित्याह-भ्रातृमतीमपीति ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

मनोस्तु के तु शब्द के द्वारा दूसरे से भी पुत्र लाभ को सूचित किया गया है । उसी को बतलाने के लिए पुत्रिका धर्ममाश्रित्य कहा गया है । **अभ्रातृकम्० इत्यादि** पुत्रिका धर्म के अनुसार कन्या का पिता यह शर्त करता है कि भाई से रहित अलङ्कारों से अलंकृत इस कन्या का विवाह तुम्हारे साथ इसलिए कर रहा हूँ कि इसका जो पहला पुत्र होगा उसको मैं ले लूँगा । इस शर्त के अनुसार किए जाने वाले कन्यादान को पुत्रिका धर्म कहते हैं। यह पुत्रिका धर्म भाई से रहित कन्या के विषय में प्रसिद्ध है फिर भी महाराज मनु ने बहुत अधिक पुत्रों की प्राप्ति की कामना से पुत्रिका धर्म के अनुसार आकूति का विवाह किया इसीलिए **भ्रातृमतीमपि** कहा गया है । अर्थात् यद्यपि आकूति के प्रियव्रत और उत्तानपाद दो भाई थे ही फिर भी उसका विवाह मनु ने पुत्रिका धर्म के अनुसार किया ।।२।।

**प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् । मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ।।३।।**
**यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् । या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी ।।४।।**

**अन्वयः**— सः ब्रह्मवर्चस्वी भगवान् रुचिः प्रजापतिः परमेण समधिना तस्याम् मिथुनम् अजीजनत् तयोः यः पुरुषः सः यज्ञस्वरूपधृक् साक्षात् विष्णुः आसीत् या स्त्री सा भूतेः अंशभूता अनपायिनी दक्षिणा आसीत् ।।३-४।।

**अनुवाद**— ब्रह्मतेजः सम्पन्न वे भगवान् रुचि प्रजापति परमात्मा के निरन्तर चिन्तन करने वाले आकूति के गर्भ से मिथुन पुत्रो के जोड़े को पैदा किया उन दोनों में जो पुत्र था वह यज्ञ रूपधारी साक्षात् भगवान् विष्णु ही थे । जो स्त्री थी वह लक्ष्मीजी के अंश भूत तथा यज्ञ से कभी अलग नहीं रहने वाली दक्षिणा थी ।।३-४।।

### भावार्थ दीपिका

मिथुनं पुरुषं स्त्रियं च । समाधिना ईश्वरध्यानेन । भूतेर्लक्ष्म्या अंशभूता, अतस्तयोर्विवाहो न विरुद्ध इति भावः।।३-४।।

### भाव प्रकाशिका

मिथुन शब्द से पुरुष तथा स्त्री के जोड़े को कहा गया है । परमेण समाधिना का अर्थ है निरन्तर परमात्मा का ध्यान करने के कारण । भूतेः अर्थात् लक्ष्मी का, अंशभूत थी दक्षिणा । अर्थात् रुचि प्रजापति के वे दोनों जुड़वे सन्तान साक्षात् विष्णु और लक्ष्मी स्वरूप थे अतएव उन दोनों का परस्पर में विवाह होना शास्त्र विरुद्ध नहीं था ।।३-४।।

**आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम् । स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ।।५।।**

**अन्वयः**— मुदायुक्तः स्वायम्भुवः पुत्र्याः विततरोचिषम् पुत्रम् स्वगृहम् आनिन्ये । रुचिः दक्षिणाम् जग्राह ।।५।।

**अनुवाद**— स्वायम्भुव मनु प्रसन्नता पूर्वक अपनी पुत्री आकूति के पुत्र जो अत्यन्त तेजः सम्पन्न था उसको अपने घर लाये और रुचि प्रजापति ने दक्षिणा नामक पुत्री को ले लिया ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

पुत्र्या आकूतेः पुत्रं यज्ञम् ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

पुत्री के पुत्र अर्थात् आकूति के पुत्र यज्ञ को स्वाायम्भुव मनु अपने घर लाये तथा रुचि प्रजापति दक्षिणा को अपने यहाँ रखे ।।५।।

**तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः । तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥६॥**

**अन्वयः**— कामयानां ता यजुषां पतिः भगवान् उवाह । तुष्टायां तोषमापन्नः द्वादश आत्मजान् अजनयत् ॥६॥

**अनुवाद**— बड़ी होकर दक्षिणा ने भगवान् यज्ञ से ही विवाह करना चाही तो यज्ञ भगवान् ने दक्षिणा से विवाह किया उससे दक्षिणा अत्यधिक सन्तुष्ट हुयी और यज्ञ ने दक्षिणा के गर्भ से बारह पुत्रों को उत्पन्न किया॥६॥

### भावार्थ दीपिका

यजुषां यज्ञानां मन्त्राणां वा पतिर्विष्णुः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

यजुषांपतिः पद का अर्थ है यज्ञों अथवा मन्त्रों के स्वामी ॥६॥

**तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः । इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥७॥**

**अन्वयः**— तोष, प्रतोषः सन्तोषः, भद्रः, शान्तिः इडस्पतिः इध्मः कविः विभुः स्वह्नः, सुदेव; द्विषट् रोचनः ॥७॥

**अनुवाद**— उनके नाम हैं तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्मः, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव और बारहवाँ रोचन ।

### भावार्थ दीपिका

द्विषट् द्वादश ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

द्विषट् का अर्थ बारह है ॥७॥

**तुषिता नाम ते देवा आसन्स्वायंभुवान्तरे । मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥८॥**
**प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ । तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥९॥**

**अन्वयः**— ते स्वायम्भुवान्तरे तुषिता नाम देवा आसन् । मरीचिमिश्राः ऋषयः, यज्ञः सुरगणेश्वरः, महौजसौ, प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ, तदन्तरम् तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणाम् अनुवृत्तम् ॥८-९॥

**अनुवाद**— स्वायम्भुव मन्वन्तर में वे ही बारह तुषित नामक देवता थे, मरीचि प्रमुख सप्तर्षि थे, देवताओं के राजा इन्द्र स्वयं भगवान् यज्ञ थे, महाप्रभावशाली प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दोनों मनु के पुत्र थे, वह मन्वन्तर उन दोनों के ही पुत्रों, पौत्रों, नातियों से व्याप्त था ॥८-९॥

### भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्स्वायंभुवमन्वन्तरगतं षट्कमाह– तुषिता इति द्वाभ्याम् । 'मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः । ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ।' इति वक्ष्यति । तत्र स्वायंभुवो मनुः । तुषिता देवाः । मरीचिप्रमुखाः सप्तर्षयः । यज्ञो हरेरवतारः । स एव सुरगणेश्वर इन्द्रः । प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ पृथ्वीपालकौ । तदेवं यज्ञस्य द्वैरूप्येण षड्विधत्वम् । तयोः पुत्रपौत्रनप्तॄणां वंशैरनुवृत्तं व्याप्तं पालितं तन्मन्वन्तरम् ॥८-९॥

### भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् स्वयम्भुव मन्वन्तर के छह तत्त्वों को **तुषिता० इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाते हैं । मन्वन्तर, मनु, देवगण, मनुपुत्र, इन्द्र, ऋषिगण श्रीहरि के अंशावतार इन छह प्रकार के बातों को मन्वन्तर कहते हैं । यह आगे चलकर कहेंगे भी । उस मन्वन्तर के मनु स्वायं मनु थे, तुषित नामक देवता थे, मरीचि इत्यादि सप्तर्षि थे, यज्ञ ही श्रीहरि के अवतार थे। यज्ञ ही उस मन्वन्तर के इन्द्र थे ॥८॥

उस मन्वन्तर में प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दोनों पृथिवी का पालन करने वाले मनु के पुत्र थे । इस तरह यज्ञ के दो रूप से षड्विधत्व का वर्णन किया गया है । यज्ञ एक रूप से श्रीहरि के अवतार थे और दूसरे रूप से वे देवताओं के राजा इन्द्र थे । यही उनका द्वैरूप्य है । उन प्रियव्रत और उत्तानपाद के ही, पुत्रों, पौत्रों और नातियों से वह मन्वन्तर व्याप्त था ॥९॥

**देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः । तत्संबन्धि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे तात ! मनुः कर्दमाय देवहूति आत्मजाम् अदात् तत्संबन्धि मम गदतः भवताश्रुतप्रायम् तत्संबन्धि॥१०॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! मनु ने देवहूति नामक अपनी पुत्री का विवाह कर्दम प्रजापति से किया । उनके विषय में सारी बातें मैनें तुमको प्रायः सुना ही दी है ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

श्रुतप्रायं बाहुल्येन श्रुतम् । तत्कन्यावंशानामश्रुतत्वात्प्रायग्रहणम् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

मैत्रेयजी ने विदुरजी से कहा कि आप देवहूति सम्बन्धी बहुत से बातें मुझसे सुन ही चुके हैं । चूकि देवहूति की कन्याओं के वंश के नहीं सुने हुए होने के कारण प्रायः शब्द का प्रयोग किया गया है ॥१०॥

**दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः । प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥११॥**

**अन्वयः**— भगवान् मनुः ब्रह्मपुत्राय दक्षाय प्रसूतिं प्रायच्छत् । यत् कृतः महान् सर्गः त्रिलोक्यां विततः ॥११॥

**अनुवाद**— भगवान् मनु ने प्रसूति का विवाह ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति से किया । प्रसूति की ही विशाल वंश परम्परा सम्पूर्ण त्रिलोकी में फैली हुयी हैं ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।

**याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः । तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥१२॥**

**अन्वयः**— याः कर्दम सुता नव ब्रह्मर्षि पत्न्यः प्रोक्ताः तासां प्रसूति प्रसवं प्रोच्यमानं मे निबोध ॥१२॥

**अनुवाद**— महर्षि कर्दम प्रजापति की जो नव ब्रह्मर्षियों की पत्नियाँ कही गयी हैं उन सबों की वंश परम्परा को मैं बतलाता हूँ उसे आप सुनें ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रसूतिप्रसवं पुत्रपौत्रादिभिर्विस्तारम् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रसूतिप्रसवम् का अर्थ उनके पुत्र पौत्र की वंश परम्परा का विस्तार ॥१२॥

**पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा । कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥१३॥**

**अन्वयः**— मरीचेः पत्नी कर्दमात्मजा कला कश्यपं पूर्णिमानं च सुषुवे ययोः जगत् पूरितम् ॥१३॥

**अनुवाद**— महर्षि मरीचि की पत्नी और कर्दम प्रजापति की पुत्री कला ने कश्यप और पूर्णिमा नामक दो पुत्रों को जन्म दिया जिनकी वंश परम्परा से सम्पूर्ण जगत् भर गया ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

ययोर्वंशेनापूरितम् ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन दोनों के वंश परम्परा से यह सम्पूर्ण जगत् भरा हुआ है ॥१३॥

**पूर्णिमाऽसूत विरजं विश्वगं च परंतप । देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥१४॥**

**अन्वयः**— हे परंतप ! पूर्णिमा विरजं विश्वगंच देवकुल्या च असूत या हरेः पादशौचात् दिवःसरित् अभूत् ॥१४॥

**अनुवाद**— हे शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले विदुर पूर्णिमा ने विरज तथा विश्वग नामक दो पुत्रों और एक देवकुल्या नामक पुत्री को उत्पन्न किया वही दूसरे जन्म में श्रीहरि के चरणोदक से देवलोक की नदी गङ्गा बन गयी॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

कश्यपस्य वंशं षष्ठे वक्ष्यति । द्वितीयस्य वंशमाह-पूर्णिमेति । देवकुल्यां नाम कन्यां च । हरेः पादक्षालनाज्जन्मान्तरे या दिवः सरिद्गङ्गाऽभूत् ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

कश्यप के वंश का वर्णन छठे अध्याय में करेंगे अतएव महर्षि मरीचि के दूसरे पुत्र पूर्णिमा के ही वंश का वर्णन करते हैं, पूर्णिमा की देवकुल्या नाम की कन्या भी थी । वही दूसरे जन्म में श्रीहरि के चरणों के धोवन के जल से देवलोक की नदी गङ्गा हुयी ॥१४॥

**अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् । दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥१५॥**

**अन्वयः**— अत्रेः पत्नी अनसूया त्रीन् सुयशसः सूतान् जज्ञे दत्तं, दुर्वाससं सोमम् आत्मेश ब्रह्म संभवान् ॥१५॥

**अनुवाद**— अत्रि महर्षि की पत्नी अनसूया ने तीन पुत्रों को जन्म दिया दत्त (दत्तात्रेय), दुर्वासा, और सोम (चन्द्रमा) ये तीनों क्रमशः विष्णु, शङ्कर और ब्रह्माजी के अंश से उत्पन्न थे ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मेशब्रह्मसंभवान्विष्णुरुद्रब्रह्मणामंशैः संभूतान् ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

आत्मा शब्द से भगवान् विष्णु कहे गये हैं उनके अंश से दत्तात्रेय उत्पन्न हुए थे । ईश शव्द से रुद्र कहे गये हैं । रुद्र के अंश से दुर्वासा उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी के अंश से सोम उत्पन्न हुए ॥१५॥

विदुर उवाच

**अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः । किंचिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥१६॥**

**अन्वयः**— हे गुरो ! अत्रे गृहे स्थित्युत्पत्ति हेतवः सुरश्रेष्ठाः किंचित् चिकीर्षवः जाताः एतद् मे आख्याहि ॥१६॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे गुरो ! आप मुझे यह बतलाइये कि, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाले ये तीनों श्रेष्ठ देवता अत्रि मुनि के यहाँ क्या करने की इच्छा से अवतार ग्रहण किए ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

किंचित्किंस्वित् । किं कर्तुमिच्छव इत्यर्थः ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

क्या करने की इच्छा से अवतार लिए ?॥१६॥

मैत्रेय उवाच

**ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदां वरः । सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥१७॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मणा सृष्टौ नोदितः ब्रह्मविदांवरः अत्रिः तपसि स्थितः ऋक्षं कुलाद्रिं ययौ ॥१७॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के द्वारा सृष्टि करने के लिए प्रेरित होने पर ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ अत्रि महर्षि तपस्या करने के लिए अपनी पत्नी के साथ ऋक्षनाम कुलाद्रि पर्वत पर गये ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

ऋक्षं नाम कुलाद्रिम् । तपसि स्थितः सन् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

तपस्या में संलग्न महर्षि अत्रि ऋक्ष नामक कुलाद्रि पर चले गये ॥१७॥

**तस्मिन्प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने । वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥१८॥**
**प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः । अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥१९॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् प्रसूनस्तवक पलाशाशोककानने, वार्भिः स्रवद्भिः उद्घुष्टे निविन्ध्यायाः समन्ततः प्राणायामेन वर्षशतं मनः संयम्य मुनिः निर्द्वन्द्वः अनिलभोजनः एक पादेन अतिष्ठत् ॥१८-१९॥

**अनुवाद**— उस पलाश और अशोक के वृक्षों के वन में जिसमें वृक्ष पुष्पों के गुच्छों से सुशोभित थे, तथा उसमें निविन्ध्या नदी के जल की सब ओर से कलकल ध्वनि होती रहती थी, उस वन में वे मुनिश्रेष्ठ प्राणायाम के द्वारा चित्त को वश में करके सौ वर्षों तक केवल वायु पीकर द्वन्द्वों की परवाह किए बिना ही एक पैर पर खड़े रहे ॥१८-१९॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्मिन्कुलाद्रौ । प्रसूनानां स्तबका येषु पलाशाशोकेषु तेषां कानने । निर्विन्ध्या नाम नदी तस्याः स्रवद्भिर्वार्भिरुद्घुष्टे नादिते ॥१८-१९॥

**भाव प्रकाशिका**

उस कुलाद्रि पर्वत पर पुष्पों के गुच्छों से सुशोभित पलाश एवं अशोक के वन में, जहाँ सब ओर से निर्विन्ध्या नदी की कलकल ध्वनि होती थी उस पर वे तपस्या किए ॥१८-१९॥

**शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः । प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥२०॥**

**अन्वयः**— य एव जगदीश्वरः तम् अहं शरणं प्रपद्ये । अत्मसभां मह्यम् प्रजां प्रयच्छतु इति चिन्तयन् ॥२०॥

**अनुवाद**— जो जगदीश्वर हैं मैं उनकी शरणागति करता हूँ, वे मुझे अपने ही समान सन्तान करें इस तरह से विचार करते हुए वे तपस्या करते थे ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥२०॥

**तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाग्निना । निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥२१॥**
**अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः । वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥२२॥**

**अन्वयः**— प्राणायामैधसाग्निना मुनेः मूर्ध्नः निर्गतेन त्रिभुवनं सिद्ध विद्याधरोरगैः वितायमान यशसः तदा आश्रमपदं ययुः ॥२१-२२॥

**अनुवाद**— प्राणायाम रूपी इन्धन से प्रज्ज्वलित हुआ अत्रिमुनि का तेज उनके मस्तक से निकलकर त्रैलोक्य को संतप्त कर रहा है, यह देखकर अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, सिद्ध विद्याधर और नाग जिनके यश का गान कर रहे थे ऐसे उनके आश्रम में तीनों जगत् पति गये ॥२१-२२॥

### भावार्थ दीपिका

प्राणायाम एव एधः संदीपको यस्य तेन मुनेर्मूर्ध्नो निर्गतेनाग्निना तप्यमानं समीक्ष्य तदाश्रमपदं ययुरित्युत्तरेणान्वयः। अप्सरःप्रमुखैर्वितायमानं विस्तार्यमाणं यशो येषां ते ॥२१-२२॥

### भाव प्रकाशिका

अत्रिमुनि के जिस तेज से त्रैलोक्य संतप्त हो रहा था वह प्राणायाम रूपी इन्धन से प्रज्जवलित हुआ था तथा मुनि के शिरोभाग से निकल रहा था, उसे देखकर तीनों जगत् पति ब्रह्मा, विष्णु, और शङ्कर अत्रिमुनि के आश्रम में गये उस समय उन लोगों के यश का गायन कर रहे थे ॥२१-२२॥

**तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः । उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥२३॥**

**अन्वयः**— तत् प्रादुर्भावसंयोग विद्योतितमनाः मुनि एकपादेन उत्तिष्ठन् विवधुर्षभान् ददर्श ॥२३॥

**अनुवाद**— उन तीनों देवताओं का एक साथ प्राकट्य के संयोग से अत्रि मुनि का मनः प्रकाशित हो गया और एक ही पैर पर खड़े हुए उन्होंने तीनों देवताओं को देखकर कहा ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

तेषां प्रादुर्भावः प्राकट्यं तस्य संयोगः सन्निधिस्तेन विद्योतितं मनो यस्य उत्तिष्ठन्नुत्कर्षेण तिष्ठन् ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

उन तीनों देवताओं के प्राकट्य के संयोग से अत्रि मुनि का मन प्रकाशित हो गया और एक ही पैर पर खड़े मुनि ने उन तीनों देव श्रेष्ठों को देखा ॥२३॥

**प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः । वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैः स्वैश्चिह्नैश्चचिह्नितान् ॥२४॥**

**अन्वयः**— दण्डवद् भूमौ प्रणम्य अर्हणाञ्जलिः वृषहंससुपर्णस्थान् स्वैः स्वै चिह्नैश्च च चिह्नितान् उपतस्थे ॥२४॥

**अनुवाद**— वे भूमि पर दण्ड के समान लोटकर उन लोगों को प्रणाम किए और हाथ में पुष्प आदि लेकर क्रमशः बैल, हंस तथा गरुड पर बैठे हुए तथा अपने-अपने चिह्न कमण्डलु त्रिशूल तथा चक्र हाथ में धारण किए हुए उन तीनों देवताओं का पूजन किए ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

अर्हणं पुष्पादिकमञ्जलौ यस्य। उपतस्थे पूजयामास। वृषाद्यारूढान्। स्वैः स्वैश्चिह्नैस्त्रिशूलकमण्डलुचक्रादिभिः॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

अत्रि मुनि पहले उन तीनों देवताओं को साष्टाङ्ग प्रणाम किए, फिर हाथ में पुष्प आदि पूजन की सामग्री लेकर उन तीनों देवताओं की पूजा किए। उस समय वे तीनों देवता बैल, हंस और गरुड नामक वाहनों पर बैठे थे और अपने हाथों में अपने-अपने चिह्न कमण्डलु, त्रिशूल और चक्र आदि धारण किए हुए थे ॥२४॥

**कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलम्भितान् । तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥२५॥**

**अन्वयः**— कृपावलोकेन हसद्वदनेन उपलम्भितान् तद्रोचिषा प्रतिहते अक्षिणी मुनिः निमील्य ॥२५॥

**अनुवाद**— तीनों मुनि महर्षि को कृपा पूर्वक देख रहे थे और उनके मुख पर मन्द मुस्कान की रेखा थी। उन देवताओं के तेज से मुनि की आँखे चौंधिया गयी और उन्होंने अपनी आँखें मूंद ली ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

कृपयाऽवलोको यस्मिन्। हसच्च तद्वदनं च तेनोपलम्भितान्प्रसन्नत्वेन ज्ञापितान्। तेषां रोचिषा दीप्त्या ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

हास्य की रेखा से युक्त मुख वाले वे देवता मुनि को कृपा पूर्वक देख रहे थे, उसके कारण उन तीनों देवताओं की प्रसन्नता प्रतीत हो रही थी । उन तीनों देवताओं के तेज से मुनि की आँखें चौंधिया गयी और उन्होंने अपनी आँखों को मूंद लिया ॥२५॥

**चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः । श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥२६॥**

**अन्वयः**— चेतः तत्प्रवणं युञ्जान् संहताञ्जलिः सर्वलोकगरीयसः श्लक्षणया वाचा अस्तावीत् ॥२६॥

**अनुवाद**— अपने मन को उन तीनों देवताओं में लगाकर, तथा हाथ जोड़कर महर्षि ने हाथ जोड़कर सभी लोकों में श्रेष्ठ उन तीन देवताओं की मधुर एवं सुन्दर वाणी से स्तुति की ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

श्लक्षणया मधुरया । सूक्तया गम्भीरार्थया ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

मुनि ने मधुर तथा अर्थ गाम्भीर्य से युक्त वाणी से उन तीनों देवताओं की स्तुति की ॥२६॥

अत्रिरुवाच

**विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ।**
**ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वस्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥२७॥**

**अन्वयः**— अनुयुगं विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैः मायागुणैः विगृहीतदेहाः ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः, वः अहं प्रणतः अस्मिन्, तेभ्यः भवतां मया उपहूतः कः ॥२७॥

**अत्रि ऋषी ने कहा**

**अनुवाद**— प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में जगत् की उत्पत्ति स्थिति, और संहार करने के लिए माया के सत्त्वगुण आदि का विभाग करके जो भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश आप लोग हैं । मैं आप सबलोगों को प्रणाम करता हूँ, मैंने जिसको बुलाया था वे आप तीनों में से कौन देवता हैं ?॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुयुगं कल्पे कल्पे विभज्य गृहीतो देहो यैस्ते प्रसिद्धा ब्रह्मविष्णुगिरिशा यूयम् । वो युष्मान्प्रणतोऽस्मि । तेभ्यः सकाशादेक एव मे मयोपहूतः । 'शरणं तं प्रपद्ये' इत्येकस्यैव निर्दिष्टत्वात् । स च युष्मासु क इति युष्माभिरेव कथ्यतामित्यर्थः॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में माया के तीनों गुणों का विभाग करके आप सभी ब्रह्मा विष्णु और महेश शरीर धारण करते हैं । मैं आप सबों को प्रणाम करता हूँ । इन तीनों में से मैने एक को आहूत किया था । क्योंकि शरणं तं प्रपद्ये इस वाक्य से एक का ही निर्देश किया था । वे देवता आप तीनों में से कौन हैं ? यह आप लोग ही बतलायें ॥२७॥

**एको मयेह भगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ।**
**अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूरा ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥२८॥**

**अन्वयः**— मया इह प्रजननाय एकः विबुधप्रधानः भगवान् चित्तीकृतः कथं नु यूयम् तनुभृतां मनसः अपि दूरा अत्र आगताः इह मे महान् विस्मयः प्रसीदत ब्रूत ॥२८॥

**अनुवाद**— मैंने तो सन्तान प्राप्ति की इच्छा से केवल प्रधान देवता भगवान् का ही चिन्तन किया था, फिर आप तीनों यहाँ पधारने की कृपा कैसे किए ? आप लोगों तक तो शरीरधारियों के मन की भी गति नहीं हो पाती है अतएव मुझको बड़ा ही आश्चर्य होता है अतएव आपलोग प्रसन्न होकर मुझे इसका कारण बतलायें ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

अस्य प्रपञ्चः- एक इति । विविधैः प्रधानैरुपचारैः । विबुधप्रधान इति वा पाठः । प्रजननाय पुत्रोत्पत्त्यै । चित्तीकृतिश्चत्तेनैक्यं नीतः । मनसोऽपि दूरा अगोचराः सन्तः कथं तु त्रयोऽप्यत्रागताः ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में पूर्वोक्त अर्थ का ही विस्तार किया गया है महर्षि अत्रि ने कहा— मैंने सन्तान की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के प्रधान उपचारों से एक ही भगवान् का चिन्तन किया था जहाँ **विबुध प्रधानः** यह पाठ हे वहाँ अर्थ होगा कि देवताओं में प्रधान भगवान् का मैंने चिन्तन किया था । आपलोग तो देहधारियों के मन के भी विषय नहीं बनने वाले हैं फिर आपलोग तीन प्रधान देवता यहाँ कैसे पधारे ? ॥२८॥

मैत्रेय उवाच

**इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः । प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥२९॥**

**अन्वयः**— प्रभो ! तस्य इति वचः श्रुत्वा ते त्रयः विवुधर्षभाः प्रहस्य श्लक्षणया वाचा तम् ऋषिं प्रति आहुः ॥२९॥

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— हे समर्थ विदुरजी ! अत्रि महर्षि की इस वाणी को सुनकर वे तीनों देवश्रेष्ठ जोर से हँसकर मधुर वाणी से उन ऋषि से कहे ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२८॥

देवा ऊचुः

**यथा कृतस्ते संकल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा । सत्सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥३०॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! सत्सङ्कल्पस्य ते यथा सङ्कल्पः कृतः तेनैव भाव्यं अनयथा न यदवैध्यायाति ते वयम् ॥३०॥

### देवताओं ने कहा

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! आप सत्यसङ्कल्प हैं अतएव आपका जैसा सङ्कल्प है, वैसा ही होना चाहिए, उसके विपरीत नहीं हो सकता है । आप जिस जगदीश्वर का ध्यान करते थे वही हम तीनों हैं ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

ते त्वया यथा कृतः सङ्कल्पस्तेन तथैव भाव्यं नान्यथा । यतः सत्सङ्कल्पस्य ते सङ्कल्पः । तर्हि कथमेकस्मिन् ध्यायमाने त्रयः प्रतीताः स्थ तत्राहुः। यदेकं जगदीश्वराख्यं तत्त्वं भवान् ध्यायति ते एते वयम्। त्रयोपि तदेवैकं तत्त्वं नास्माकं भेदोऽस्तीत्यर्थः॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

आपने जैसा सङ्कल्प किया उसको वैसा ही होना चाहिए उसके विपरीत नहीं हो सकता है, क्योंकि आप सत्यसङ्कल्प का सङ्कल्प है । तो फिर एक ही ध्यान करने पर आप तीन लोगों की प्रतीति कैसे हुयी । इस पर देवताओं ने कहा— आप जिस एक जगदीश्वर तत्त्व का ध्यान किए थे वह हमलोग तीनों है । हम तीनों एक ही तत्त्व है, हमलोगों में भेद नहीं है ॥३०॥

**अथास्मदंशभूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुताः । भवितारेऽङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यंति च ते यशः ॥३१॥**

**अन्वयः**— अथ अस्मदंश भूताः ते लोकविश्रुताः आत्मजाः भावितारः हे अङ्ग ते भद्रम् ते यशः विस्रप्स्यन्ति च ॥३१॥

**अनुवाद**— अतएव हम तीनों के अंशभूत आपके तीन लोक प्रख्यात पुत्र होंगे और वे आपके यश का विस्तार करेंगे । आप का मङ्गल हो ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

विस्रप्स्यन्ति विस्तारयष्यिन्ति । अन्तर्भूतणिजर्थस्य सृष्ट गतावित्स्य रूपम् ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

विस्रप्स्यन्ति अर्थात् विस्तार करेंगे । सृष्टगतौ धातु का यह लृट् लकार में अन्तर्भूत णिजर्थ रूप है॥३१॥

**एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः । सभाजितास्तयो : सम्यग्दम्पत्योर्मिषतोस्ततः ॥३२॥**

**अन्वयः**— एवं कामवरं दत्वा समाजिताः सुरेश्वराः दम्पत्योः मिषतेः ततः प्रतिजग्मुः ॥३२॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से अभीष्ट वरादान देकर तथा पति-पत्नी से पूजित होकर उनके देखते ही देखते वे तीनो देवेश्वर वहाँ से अपने-अपने लोक में चले गये ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

ताभ्यां सम्यक् सभाजिताः पूजिताः सन्तः ततः स्थानात्प्रतिजग्मुः ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

उन दोनों पति-पत्नी के द्वारा पूजित होकर उस स्थान से वे तीनों देवेश्वर चले गये ॥३२॥

**सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् । दुर्वासाः शङ्करस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मणः सोमः अभूत् ब्रह्मणोऽस्तु योगवित् दत्तः शङ्करस्यांशः दुर्वासाः अङ्गिरसः प्रजाः निबोध ॥३३॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के अंश से सोम (चन्द्रमा) उत्पन्न हुए, भगवान् विष्णु के अंश से दत्त (दत्तात्रेय) उत्पन्न हुए, शङ्करजी के अंश से दुर्वासा महर्षि हुए अब आप अङ्गिरा महर्षि की सन्तानों को सुनें ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

अङ्गिरसो ब्रह्मणस्तृतीयपुत्रस्य । निबोध बुध्यस्व ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

अङ्गिरसः पद का अर्थ है ब्रह्माजी के तृतीय पुत्र अङ्गिरा महर्षि की प्रजाओं को आप सुनें ॥३३॥

**श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः । सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥३४॥**

**अन्वयः**— अङ्गिरसः पत्नी श्रद्धा तु चतस्रः कन्यका असूत सिनीवाली, कुहू, राका तथा चतुर्थी अनुमतिः ॥३४॥

**अनुवाद**—अङ्गिरा महर्षि की पत्नी श्रद्धा ने चार कन्याओं को जन्म दिया सिनीवाली, कुहू, राका और चौथी अनुमति॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

ताः कन्या निर्दिशति- सिनीवालीति ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

**सिनीवाली इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्द्ध से उन कन्यकाओं का नाम बतलाया गया है ॥३४॥

**तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे । उतथ्यो भगवान्साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥३५॥**

**अन्वयः**— तत् अपरौ पुत्रौ आस्तां साक्षात् भगवान् उतथ्यः ब्रह्मिष्ठः बृहस्पतिः च स्वारोचिषेन्तरे ख्यातौ ॥३५॥

**अनुवाद**— उनके दो और पुत्र थे साक्षात् भगवान् उतथ्य और ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पति जी । ये दोनों स्वारोचिष मन्वन्तर में विख्यात हुए ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥३५॥

**पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि । सोऽन्यजन्मनि दह्राग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥३६॥**

**अन्वयः**— पुलस्त्यः हविर्भुवि पत्न्यां अगस्त्यं अजनयत् सः अन्यजन्मनि दह्राग्निः महातपा; विश्रवाः च ॥३६॥

**अनुवाद**— पुलस्त्य महर्षि अपनी हविर्भूः नामक पत्नी के गर्भ से दो पुत्रों को उत्पन्न किए अगस्त्य को और महातपा विश्रवा को । पुलस्त्य महर्षि दूसरे जन्म में जाठराग्नि हुए ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

पुलस्त्यो हविर्भुवि पत्न्यामित्यन्वयः । सोऽगस्त्यः । दह्राग्निर्जाठराग्निः । विश्रवाश्च पुलस्त्यस्य सुत इति शेषः ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

पुलस्त्य मुनि ने अपनी पत्नी हविर्भूः के गर्भ से अगस्त्य तथा महातपस्वी विश्रवा को उत्पन्न किया । वे अगस्त्य ही दूसरे जन्म में जाठराग्नि हुए ॥३६॥

**तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः । रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यां विभीषणः ॥३७॥**

**अन्वयः**— तस्य इडविडासुतः यक्षपतिः देवः कुबेरः, तथा अन्यस्यां रावणः, कुम्भकर्णः विभीषणश्च ॥३७॥

**अनुवाद**— विश्रवा के इडविडा नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र यक्षों के स्वामी कुबेर नामक देवता थे और उनकी दूसरी पत्नी केशिनी के गर्भ से उत्पन्न रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण नामक पुत्र थे ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्य विश्रवस इडविडायां जातः सुतः कुबेरः । अन्यस्यां भार्यायां केशिन्यां रावणादयस्त्रयः सुताः ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

विश्रवा की इडविडा नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र कुबेर थे और विश्रवा की दूसरी कशिनी नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न तीन पुत्र थे रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण ॥३७॥

**पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् । कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥३८॥**

**अन्वयः**— पुलहस्य भार्या सती गतिः त्रीन् सुतान् असूत, कर्मश्रेष्ठं, वरीयांसं, सहिष्णुं च ॥३८॥

**अनुवाद**— हे महाबुद्धिमान् विदुर ! पुलह, महर्षि की साध्वी पत्नी का नाम गति था उन्होंने तीन पुत्रों को जन्म दिया कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् और सहिष्णु ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥३८॥

**क्रतोरपि क्रिया भार्या बालखिल्यानसूयत । ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३९॥**

**अन्वयः**— क्रतोः आपि भार्या क्रिया ब्रह्मतेजसा ज्वलतः षष्ठिसहस्राणि बालखिल्यान् ऋषीन् असूयता ॥३९॥

**अनुवाद**— महर्षि क्रतु की भी पत्नी क्रिया ने ब्रह्मतेज से देदीप्यमान साठ हजार बाल खिल्य ऋषियों को जन्म दिया ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

ज्वलतः प्रकाशमानान् ।।३९।।

**भाव प्रकाशिका**

ज्वलतः पद का अर्थ हैं प्रकाशमान ।।३९।।

**ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप । चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।।४०।।**

**अन्वयः**— परंतप वसिष्ठस्य ऊजार्यां चित्रकेतु प्रधानाः पुत्राः जाज्ञिरे ते सप्त अमलाः ब्रह्मर्षयः अभवन् ।।४०।।

**अनुवाद**— हे परन्तप विदुर ! वसिष्ठ की पत्नी उर्जा (अरुन्धती) के गर्भ से चित्रकेतु आदि सात विशुद्ध चित्त वाले ब्रह्मर्षिगण पुत्र उत्पन्न हुए ।।४०।।

**भावार्थ दीपिका**

चित्रकेतुप्रमुखा जज्ञिरे । ते च सप्तर्षयो जाताः ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

चित्रकेतु आदि सात पुत्र हुए वे ही सप्तर्षि हो गये ।।४०।।

**चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च । उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोऽपरे ।।४१।।**

**अन्वयः**— चित्रकेतुः सुरोचिः, विरजाः, मित्र एवच, उल्बणः वसुभृद्यानः, द्युमान् शक्त्यादयः अपरे ।।४१।।

**अनुवाद**— महर्षि वसिष्ठ के पुत्रों के नाम हैं चित्रकेतु, सुरोचिः, विरजाः, मित्र, उल्बण, वसुभृद् यान और द्युमान् शक्ति इत्यादि उनकी दूसरी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र थे ।।४१।।

**भावार्थ दीपिका**

तानेवाह— चित्रकेतुरिति । वसुभृद्यानो नामैकः । शत्तयादयोऽपरेऽन्यस्याः पुत्राः ।।४१।।

**भाव प्रकाशिका**

चित्रकेतु इत्यादि श्लोक से महर्षि वसिष्ठ के सात पुत्रों के नाम बतलाये गये हैं । शक्ति इत्यादि वसिष्ठ महर्षि की दूसरी पत्नी में उत्पन्न पुत्र थे ।।४१।।

**चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् । दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ।।४२।।**

**अन्वयः**— अथर्वणः पत्नी चितिः तु धृतव्रतम् दध्यञ्चम् अश्वशिरसं पुत्रं लेभे मे भृगोर्वशं निबोध ।।४२।।

**अनुवाद**— महर्षि अथर्वा की पत्नी का नाम चिति था उन्होंने एक दध्यङ (दधीचि) नामक पुत्र को उत्पन्न किया उनका दूसरा नाम अश्वशिरा था अब आप मुझसे महर्षि भृग के वंश को सुनें ।।४२।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं

**भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् । धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ।।४३।।**

**अन्वयः**— महाभागः भृगुः ख्यात्यां पत्न्यां धातारं विधातारं पुत्रान् भगवत्पराम् श्रियं च अजीजनत् ।।४३।।

**अनुवाद**— महाभाग भृगु अपनी पत्नी ख्याति देवकी के गर्भ से धाता एवं विधाता नामक दो पुत्रों और भगवत परायण श्री नामक पुत्री को उत्पन्न किया ।।४३।।

**भावार्थ दीपिका**

ख्यात्यां पत्न्याम् । पुत्रान्पुत्रौ पुत्रीं च । तानेवाह-धातारमिति ।।४३।।

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि भृगु ने ख्याति नामक पत्नी के गर्भ से धाता और विधाता नामक दो पुत्रों और श्रीभगवत् परायण श्री नामक पुत्री को उत्पन्न किया ॥४३॥

**आयतिं नियतिं चैव सुते मरुस्तयोरदात् । ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥४४॥**

**अन्वयः**— मेरुः आयतिं नियतिं चैव सुते तयोः अदात् ताभ्यां तयोः मृकण्डः प्राण एव च अभवताम् ॥४४॥

**अनुवाद**— मेरु नामक ऋषि ने अपनी आयति एवं नियति नामक पुत्रियों का विवाह धाता और विधाता से कर दिया और धाता और विधाता के उन दोनों के गर्भ से मृकण्ड और प्राण नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥४४॥

**भावार्थ दीपिका**

तयोर्धातृविधात्रोः ॥४४॥

**भाव प्रकाशिका**

तयोः शब्द से धाता और विधाता को कहा गया है ॥४४॥

**मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः । कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥४५॥**

**अन्वयः**— मृकण्डस्य मार्कण्डेयः प्राणात् वेदशिरा मुनिः, भार्गवः कविश्च यस्य सुतः भगवान् उशना ॥४५॥

**अनुवाद**— मृकण्ड महर्षि के पुत्र मार्कण्डेय हुए और प्राण महर्षि के पुत्र वेदशिरा हुए । भृगु महर्षि के एक पुत्र का नाम कवि था उनके पुत्र उशाना शुक्राचार्य हुए ॥४५॥

**भावार्थ दीपिका**

कविश्च भार्गवो भृगोः पुत्रः । यस्य कविः सुत उशना ॥४५॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि भृगु के एक पुत्र का नाम कवि था उनके पुत्र उशना शुक्राचार्य हुए ॥४५॥

**त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान्सर्गैरभावयन् । एष कर्दमदौहित्रसन्तानः कथितस्तव ॥४६॥**

**अन्वयः**— हे क्षत्तः । त एते मुनयः सर्गैः लोकान् अभावयन् एष कर्दमदौहित्र सन्तानः कथितः तव ॥४६॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! उन सभी मुनियों ने अपनी सृष्टिओं के द्वारा सृष्टि का विस्तार किया । इस तरह से मैंने आपको महर्षि कर्दम की पुत्रियों के पुत्रों के सन्तान को सुनाया ॥४६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥४६॥

**शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः । प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥४७॥**

**अन्वयः**— शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः परः पापहरः । मानवीं प्रसूतिं हि अजात्मजः दक्षः उपयेमे ॥४७॥

**अनुवाद**— श्रद्धापूर्वक सुनने वालों के पापों के यह सद्यः विनष्ट कर देने वाला है । मनु की पुत्री प्रसूती के साथ ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष ने विवाह किया ॥४७॥

**भावार्थ दीपिका**

अजात्मजो ब्रह्मपुत्रः नतु प्राचेतसः ॥४७॥

**भाव प्रकाशिका**

दक्ष ब्रह्माजी के पुत्र थे प्रचेता के नहीं ॥४७॥

**तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः । त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥४८॥**

**अन्वयः**— तस्यां अमललोचना षोडशदुहितॄः ससर्ज । त्रयोदश धर्माय अदात् तथा विभुः एकाम् अग्नये ॥४८॥

**अनुवाद**— दक्ष ने प्रसूति के गर्भ से सोलह सुन्दरी पुत्रियों को उत्पन्न किया । उनमें से तेरह पुत्रियों का विवाह उन्होंने धर्म से कर दिया और एक पुत्री का विवाह अग्नि से किया ॥४८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥४८॥

**पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे । श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः॥**
**बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥४९॥**

**अन्वयः**— एकां युक्तेभ्यः पितृभ्यः एकांभवच्छिदे भवाय च अदात् श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्तिः, तुष्टिः, पुष्टिः क्रिया, उन्नतिः बुद्धिः, मेधा, तितिक्षा, ह्रीः मूर्तिः धर्मस्य पत्नयः ॥४९॥

**अनुवाद**— दक्ष ने एक पुत्री का विवाह समस्त पितरों से किया और एक पुत्री का विवाह संसार के बन्धन काटने वाले शङ्करजी से किया । श्रद्धा मैत्री दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा तितिक्षा ह्री, और मूति ये तेरह धर्म की पत्नियाँ हैं ॥४९॥

**भावार्थ दीपिका**

युक्तेभ्यः संयतेभ्यो मिलितेभ्यो वा ॥४९॥

**भाव प्रकाशिका**

युक्तेभ्यः पद का अर्थ संयत अथवा सम्मिलितों के लिए है ॥४९॥

**श्रद्धाऽसूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया । शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥५०॥**

**अन्वयः**— श्रद्धा शुभम्, मैत्री प्रसादम्, दया अभयम्, शन्तिः सुखम्, तुष्टिः मुदम्, पुष्टिः स्मयम् असूयत ॥५०॥

**अनुवाद**— धर्म की इन पत्नियों में से श्रद्धा ने शुभ को जन्म दिया, मैत्री ने प्रसाद को जन्म दिया, दया ने अभय को जन्म दिया, शान्ति ने सुख को जन्म दिया, तुष्टि ने मुद को जन्म दिया और पुष्टि ने स्मय को जन्म दिया ॥५०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥५०॥

**योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत । मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥५१॥**

**अन्वयः**—क्रिया योगम्, उन्नतिः दर्पम्, बुद्धिः अर्थम्, मेधा स्मृतिम्, तितिक्षा तु क्षेमम्, ह्रीः प्रश्रयं सुतम् असूयत्॥५१॥

**अनुवाद**— क्रिया ने योग को, उन्नति ने दर्प को, बुद्धि ने अर्थ को, मेधा ने स्मृति को, तितिक्षा ने क्षेम को और ह्री ने प्रश्रय नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥५१॥

**मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥५२॥**

**अन्वयः**— सर्वगुणोत्पत्तिः मूर्ति नरनारायणौ ऋषी असूयता ॥५२॥

**अनुवाद**—सभी गुणों के उत्पत्ति स्थान मूर्ति देवी ने नर और नारायण इन दोनों ऋषियों को जन्म दिया॥५२॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वेषां गुणानामुत्पत्तिर्यस्यां सा ॥५२॥

### भाव प्रकाशिका

सर्वगुणोत्पत्ति का अर्थ: जिसमें सभी गुणों की उत्पत्ति होती है, ऐसी मूर्ति देवी ने नर और नारायण नामक दोनों ऋषियों को जन्म दिया ॥५२॥

**ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् । मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः॥५३॥**
**दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः । मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥५४॥**
**नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममङ्गलम् । देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः॥५५॥**

**अन्वयः**— ययोः जन्मनि अदः विश्वम् सुनिर्वृतम् अभ्यनन्दत मनांसि, ककुभः, वाताः, सरितः अद्रयः प्रसेदुः, दिवि, तुर्याणि अवाद्यन्त, कुसुमवृष्टयः येतुः, तुष्टाः मुनयः तुष्टुवुः, गन्धर्व किन्नरा; जगुः, देव्यः स्त्रियः नृत्यन्तिस्म, परम मङ्गलम् आसीत्, ब्रह्मादयः सर्वे देवा; अभिष्टवैः उपतस्थुः ॥५३-५५॥

**अनुवाद**— उन दोनों ऋषियों के जन्म के समय सम्पूर्ण विश्व अत्यन्त सुख का अनुभव करते हुए प्रसन्न हो गया, भक्तों के मन, दिशाएँ, वायु, नदियाँ और पर्वत सबों में प्रसन्नता छा गयी । आकाश में मङ्गलमय वाद्य बजने लगे, आकाश से पुष्पों की वृष्टि भी इस समय हुयी, सन्तुष्ट हुए मुनिजन स्तुति करने लगे, गन्धर्व और किन्नरगण गीत गाने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगी, उस समय अत्यन्त मङ्गल हुआ तथा ब्रह्मा आदि सभी देवताओं ने भगवान् की स्तुति की ॥५३-५५॥

### भावार्थ दीपिका

उपतस्थुर्भेजुः ॥५३-५५॥

### भाव प्रकाशिका

उपतस्थु का अर्थ है स्तुति की ॥५३-५५॥

देवा ऊचुः

**यो मायया विरचितं निजयात्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ।**
**एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाऽद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥५६॥**

**अन्वयः**— खे रूपभेदम् इव यः निजया मायया आत्मनि इदं विरचितं तत्प्रतिचक्षणाय धर्मसदने एतेन ऋषि मूर्तिना अद्य प्रादुश्चकार परस्मै पुरुषाय नमः ॥५६॥

### देवताओं ने कहा

**अनुवाद**— जिस तरह नीरूप आकाश में गन्धर्व नगर आदि रूपों की कल्पना कर ली जाती है, उसी तरह जिन्होंने अपने स्वरूप के अन्दर ही इस जगत् की रचना अपनी माया के द्वारा कर ली है और अपने स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए इस समय धर्म के गृह में ऋषि विग्रह के साथ अपने आपको प्रकट किया है, उन परम पुरुष को हमारा नमस्कार है ॥५६॥

### भावार्थ दीपिका

निजया मायया यस्मिन्नात्मनि । खे गगने रूपभेदं गन्धर्वनगरमिवेदं विश्वं विरचितम् । तस्यात्मनः प्रतिचक्षणाय प्रकाशनायात्मानं योऽद्य प्रादुश्चकार प्रकटितवान् तस्मै पुरुषाय नमः । केन रूपेण प्रादुश्चकार । ऋषेर्मूर्तिराकारो यस्मिंस्तेन रूपेण ॥५६॥

### भाव प्रकाशिका

जिन्होंने अपनी माया के ही द्वारा अपने जिस स्वरूप में, आकाश में कल्पित किए जाने वाले गन्धर्व नगर

आदि के समान इस सम्पूर्ण विश्व की रचना कर ली है। अपने उस स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए जिन श्रीभगवान् ने अपने ऋषि आकार के साथ आज धर्म के गृह में प्रकट हुए हैं। उन परम पुरुष श्रीभगवान् को हमारा नमस्कार है ॥५६॥

**सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ।**
**दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपताऽरविन्दम् ॥५७॥**

**अन्वयः**— स्थितिव्यतिकरोपशमाय सत्त्वेन सृष्टान् नः सुरगणान् अनुमेय तत्त्वः सः यत् श्रीनिकेतम् अरविन्दम् अलं क्षिपता अदभ्रकरुणेन विलोकनेन नः दृश्यात् ॥५७॥

**अनुवाद**— वे ही श्रीभगवान् जगत् की मर्यादा में किसी प्रकार की गड़बड़ी न हो इसलिए सत्त्वगुणों के द्वारा जिनकी सृष्टि की गयी है, ऐसे हम देवताओं के लिए शास्त्र के आधार पर केवल अनुमान किए जाते हैं। उनका प्रत्यक्ष हमलोग नहीं कर पाते हैं, ऐसे भगवान् सौन्दर्यातिरेक के कारण लक्ष्मीजी के निवास स्थान कमल को भी तिरस्कृत करने वाले तथा अत्यधिक दया से युक्त नेत्रों द्वारा हमलोगों को देखें ॥५७॥

### भावार्थ दीपिका

सोऽयं नोऽस्मान्सुरगणाननल्पकरुणायुक्तेन विलोकनेन विशिष्टनेत्रेण दृश्यात् पश्यतु। कथंभूतेन। यच्छ्रीनिकेतममलमरविन्दं तत्क्षिपता तिरस्कुर्वता। कथंभूतः। अनुमेयं शास्त्रतो विचार्यं, नत्वस्माकमपरोक्षं तत्त्वं यस्य। कथंभूतानस्मान्। स्थितेर्जगन्मर्यादाया व्यतिकरोऽन्यथात्वं तस्योपशमाय सत्त्वेन गुणेन सृष्टान् ॥५७॥

### भाव प्रकाशिका

वे ही भगवान् हम देव समूह को अत्यधिक करुणा से युक्त अपने नेत्रों से देखें। वे नेत्र कैसे हैं तो इसे बतलाते हैं— श्रीभगवान् के जो नेत्र लक्ष्मीजी के निवास स्थान कमल को भी अपने सौन्दर्यातिशय के द्वारा तिरस्कृत करते हैं। वे भगवान् कैसे हैं ? तो इसका उत्तर है कि हमलोगों के जिस शास्त्र के द्वारा विचार करने योग्य हैं उनके तत्त्व का हमलोगों ने प्रत्यक्ष नहीं किया है। हम देवगण कैसे हैं ? तो इसका उत्तर है कि जगत् की मर्यादा में सभाव्य गड़बड़ी को दूर करने के लिए सत्त्वगुण से सृष्ट हैं ॥५७॥

**एवं सुरगणैस्तात भगवन्तावभिष्टुतौ । लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गन्धमादनम् ॥५८॥**

**अन्वयः**— हे तात ! एवं लब्धावलोकैः सुरगणैः अभिष्टुतौ भगवन्तौ अर्चितौ गन्धमादनम् ययतुः ॥५८॥

**अनुवाद**— हे तात विदुर ! इस प्रकार से श्रीभगवान् की कृपा पूर्ण अवलोकन को प्राप्त किए हुए देवताओं के द्वारा स्तुति किए जाने के पश्चात् देवताओं द्वारा पूजित होकर गन्धमादन पर्वत पर चले गये ॥५८॥

### भावार्थ दीपिका

लब्धोऽवलोको यैः सुरगणैस्तैरभिष्टुतावर्चितौ सन्तौ ययतुः ॥५८॥

### भाव प्रकाशिका

जिन देवताओं ने श्रीभगवान् की कृपा दृष्टि को प्राप्त कर लिया था उन देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने के पश्चात् पूजित होकर वे दोनों नर और नारायण गन्धमादन पर्वत पर चले गये ॥५८॥

**ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ । भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥५९॥**

**अन्वयः**— तौ इमौ वो भगवतः हरेः अंशौ इह भुवः भाख्ययाय यदुकुरूद्वहौ कृष्णौ ॥५९॥

**अनुवाद**— नर-नारायण ये दोनों ही भगवान् श्रीहरि के अंश हैं और इस समय पृथिवी का भार दूर करने के लिए यदुकुल में श्रीकृष्ण के रूप में और कुरुवंश में अर्जुन के रूप में अवतीर्ण हुए हैं ॥५९॥

### भावार्थ दीपिका

भुवो भारस्य व्ययाय नाशाय । चकार एकवाक्यत्वार्थः । तौ च सांप्रतमिहागतावित्यर्थः । तदुक्तं तन्त्रे 'अर्जुने तु नरावेशः कृष्णो नारायणः स्वयम्' इति । यदूद्वहः श्रीकृष्णः । कुरूद्वहोऽर्जुनः । उभावपि कृष्णनामानौ ।।५९।।

### भाव प्रकाशिका

**भुवः भारव्ययाय** का अर्थ है, पृथिवी के भार का नाश करने के लिए । चकार का प्रयोग एक वाक्यता के लिए किया गया है । अर्थात् नर और नारायण ये दोनों भगवान् श्रीहरि के अंश हैं । ये नर और नारायण दोनों ही पृथिवी पर बढ़े हुए पापियों के भार को विनष्ट करने के लिए भगवान् कृष्ण और अर्जुन के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । इन दोनों का ही नाम कृष्ण है । श्रीकृष्ण यदुवंश में अवतीर्ण हुए और अर्जुन कुरुवंश में अवतीर्ण हुए हैं । तन्त्र ग्रन्थ में कहा गया है— **अर्जुनेतुनरावेशः कृष्णो नारायणः स्नयम्** अर्थात् अर्जुन में तो नर का आवेश हैं स्वयम् भगवान् श्रीकृष्ण ही नारायण के वेश में विद्यमान हैं ।।५९।।

**स्वाहाऽभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् । पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ।।६०।।**

**अन्वयः**— स्वाहा अग्नेः अभिमानिनः त्रीन् आत्मजान् अजीजनत् पावकं, पवमानं शुचिं च हुत भोजनम् ।।६०।।

**अनुवाद**— अग्नि देव की पत्नी स्वाहा ने अग्नि के ही अभिमानी तीन पुत्रों को उत्पन्न किया पावक, पवमान और शुचि को ये तीनों होम किए गये पदार्थों का भोजन करते हैं ।।६०।।

### भावार्थ दीपिका

अग्न्यभिमानिनो देवान् । स्वाहा नाम तस्य भार्या । हुतभोजनमिति त्रयाणां विशेषणम् ।।६०।।

### भाव प्रकाशिका

अग्नि देव की पत्नी का नाम स्वाहा है । उन्होंने तीन पुत्रों को जन्म दिया । वे तीनों ही अग्नि के अभिमानी हैं । हुतभोजनम् उन तीनों का विशेषण है । अर्थात् वे तीन होम किए गये पदार्थों का भोजन करते हैं ।।६०।।

**तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वारिंशच्च पञ्च च । त एवैकोनपञ्चाशत्साकं पितृपितामहैः ।।६१।।**

**अन्वयः**— तेभ्यः चत्वरिंशत् च पञ्च च अग्नयः समभवन्, ते एव पितृपितामहैः साकं एकोनपञ्चाशत् ६१।।

**अनुवाद**— उन तीनों से ही पैंतालिस अग्नियों की उत्पत्ति हुयी और वे अपने तीन पिता और एक पितामह के साथ मिलकर उनचास हो जाते हैं ।।६१।।

### भावार्थ दीपिका

पितरस्त्रयः पितामह एकस्तैः साकं सह ।।६१।।

### भाव प्रकाशिका

वे पैंतालिस जो अग्नि हुए वे अपने तीन पिता और एक पितामह के साथ मिलकर उनचास अग्नि हो गये ।।६१।।

**वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः । आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ।।६२।।**

**अन्वयः**— वैतानिके कर्मणि ब्रह्मवादिभिः यन्नाभिः यज्ञे आग्नेय्यः इष्टयः निरूप्यन्ते ते तु अग्नयः ।।६२।।

**अनुवाद**— वैदिक यज्ञ कर्म में वेदज्ञ ब्राह्मण जिन उनचास अग्नियों के नाम से आग्नेय इष्टियाँ करते हैं वे अग्नि ये ही हैं ।।६२।।

### भावार्थ दीपिका

वैतानिके वैदिके कर्मणि यज्ञे येषां नामभिरग्निदेवताका इष्टयो निरूप्यन्ते क्रियन्ते त एतेऽग्नयो न लौकिकाः । अतो बहूनां न वैयर्थ्यमिति भावः ।।६२।।

### भाव प्रकाशिका

वैदिक यागों में वेदज्ञ ब्राह्मण इन्हीं उनचास अग्नियों के नाम से अग्नि देवताक इष्टियों को करते हैं वे ये ही अग्नियाँ हैं । ये लौकिक अग्नि नहीं है । अतएव बहुतों का होना व्यर्थ नहीं है ॥६२॥

**अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोम्याः पितर आज्यपाः । साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥६३॥**

**अन्वयः**— अग्निष्वात्ताः, बर्हिषदः सोम्याः आज्यपाः पितरः साग्नयः अनग्नयः, तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥६३॥

**अनुवाद**— अग्निष्वाता, बर्हिषद्, सोमप (सोमरसपायी) आज्यप (घृतपायी) ये सभी पितृगण हैं । ये साग्निक भी हैं और निरग्निक भी है । इन सबों की पत्नी दक्षपुत्री स्वधा हैं ॥६३॥

### भावार्थ दीपिका

सोम्याः सोमपाः येषामग्नौकरणमस्ति ते साग्नयः । तद्रहितास्त्वनग्नयः ॥६३॥

### भाव प्रकाशिका

सोम्याः अर्थात् सोमपान करने वाले । जिन पितरों का अग्नौकरण होता है वे साग्नि पितृगण हैं और जिनका अग्नौकरण नहीं होता है वे निरग्निक पितृगण हैं ॥६३॥

**तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा । उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥६४॥**

**अन्वयः**— स्वधा तेभ्यः द्वे कन्ये दधार वयुनां धारिणीं च । तेउभे ब्रह्मवादिन्य ज्ञान विज्ञान पारगे ॥६४॥

**अनुवाद**— स्वधाने पितरों से दो वयुना और धारिणी नामक दो पुत्रियों को जन्म दिया । वे दोनों ज्ञान विज्ञान में पारङ्गत तथा ब्रह्मविद्या का उपदेश करने वाली थीं ॥६४॥

### भावार्थ दीपिका

तयोस्तु संततिर्नाभवज्जीवन्मुक्तत्वादित्याह— उभे त इति ॥६४॥

### भाव प्रकाशिका

उभे ते इत्यादि उत्तरार्द्ध से बतलाया गया है कि वे दोनों जीवन मुक्त थीं अतएव उन दोनों की कोई सन्तान नहीं हुयीं ॥६४॥

**भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता । आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥६५॥**

**अन्वयः**— भवस्य पत्नी तु सती भवं देवम् अनुव्रता । गुणशीलतः आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभी ॥६५॥

**अनुवाद**— महादेवजी की पत्नी सती थी वह हर प्रकार से शिवजी की सेवा में संलग्न रहती थी उनको अपने गुण और शील के अनुरूप कोई पुत्र नहीं हुआ ॥६५॥

### भावार्थ दीपिका

गुणशीलत आत्मनः सदृशं देवमनुव्रतापि सती पुत्रं न लेभे ॥६५॥

### भाव प्रकाशिका

शङ्करजी की पत्नी सती शङ्करजी की सेवा में संलग्न रहती थी फिर भी वह अपने गुण तथा शील के समान पुत्र को नहीं प्राप्त कर सकीं ॥६५॥

**पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा । अप्रौढैवात्मनात्मानमजहाद्योगसंयुता ॥६६॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

**अन्वयः**— अनागसे भवाय स्वे पितरि अप्रतिरूपे रुषा अप्रौढैव योगसंयुता आत्मनात्मानम् अजहत् ॥६६॥

**अनुवाद**— निर्दोष शङ्करजी के विरुद्ध अपने पिता दक्ष के प्रतिकूल आचरण करने के कारण उन पर क्रोध करके युवावस्था में ही उन्होंने योग के द्वारा अपने शरीर का स्वयं त्याग कर दिया ॥६६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के विदुरमैत्रेय संवाद के अन्तर्गत प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।**

**भावार्थ दीपिका**

तत्र हेतुः— स्वे पितरि दक्षेऽप्रतिरूपेऽसदृशे प्रतिकूले सतीत्यर्थः । आत्मना स्वयमेवात्मानं देहमजहात्त्यक्तवती । योगसंयुता योगामाश्रित्येति ॥६६॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।**

**भाव प्रकाशिका**

पुत्र नहीं प्राप्त करने का कारण यह था कि उनके पिता दक्ष ने निरपराध शङ्करजी के प्रतिकूल आचरण किया था । उसके कारण युवावस्था में ही अपने पिता पर क्रोध करके उन्होंने योग को अपनाकर अपने से ही अपने शरीर को त्याग दिया ॥६६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के भावार्थदीपिका नामक टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।**

# द्वितीय अध्याय

## शङ्करजी तथा दक्ष प्रजापति का परस्पर में मनोमालिन्य

विदुर उवाच

**भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः । विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥१॥**

**अन्वयः**— दुहितृवत्सलः दक्षः आत्मजां सतीम् अनादृत्य, शीलवतां श्रेष्ठे भवे कस्मात् विद्वेषम् अकरोत् ॥१॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— दक्ष प्रजापति अपने पुत्रियों से बहुत प्रेम करते थे वे अपनी पुत्री सती का अनादर करके शील गुण वानों में श्रेष्ठ श्रीशङ्करजी के प्रति क्यों विद्वेष किए ?॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

द्वितीये प्रथमाध्यायोपक्षिप्ते भवदक्षयोः । विद्वेषे वर्ण्यते हेतुर्विश्वसृड्यज्ञसंभवः ॥१॥ सतीं सतीनाम्नीम् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरे अध्याय में प्रथम अध्याय में चर्चित अपनी सती नाम की पुत्री का अनादर करके शङ्करजी तथा दक्ष में होने वाले विद्वेष का कारण वर्णित है ॥१॥

**कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् । आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥२॥**

**अन्वयः**— चराचरगुरुं निर्वैरं, शान्तविग्रहं, आत्मारामं जगतः महत् दैवतम् तं कथं कः द्वेष्टि ॥२॥

**अनुवाद**— शङ्करजी चराचरात्मक जगत् के गुरु हैं, उनका किसी से भी वैर नहीं है, वे शान्त मूर्ति है, आत्माराम और सम्पूर्ण जगत् के महान् देव हैं, भला उनसे कोई क्यों द्वेष करेगा ?॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

न चासौ कस्यचिद्द्वेषार्ह इत्याह-क इति। चराचरगुरुं जगतो दैवतं च तं को द्वेष्टि, कथं च निर्वैरं द्वेष्टि । निर्वैरत्वे हेतुः- शान्तं, भावे क्तः । शान्तिरेव विग्रहो यस्य । कुतः आत्मन्येवारामो रतिर्यस्य तम् । यद्वा कः प्रजापतिर्दक्षः कथं द्वेष्टि । एवंभूते तस्मिन्द्वेषोऽयुक्तोऽशक्यश्चेत्यर्थः ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

शङ्करजी किसी के द्वारा द्वेष करने योग्य हैं ही नहीं इस बात को **कस्तम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। शङ्करजी चराचरात्मक जगत् के गुरु हैं तथा जगत् के महान् देवता हैं । उनसे कौन द्वेष कर सकता है । कोई निर्वैर शङ्करजी से क्यों द्वेष कर सकता है । उनके निर्वैर होने का कारण बतलाते हुए कहा गया है कि वे शान्तमूर्ति शान्तम् पद में भाव में क्त प्रत्यय हुआ है । अर्थात् शान्ति ही उनका शरीर है । क्योंकि वे आत्मा में ही रमण करते हैं । अथवा कः अर्थात् प्रजापति दक्ष ने उनसे कैसे द्वेष किया ? इस प्रकार के शङ्करजी से द्वेष करना बिल्कुल अनुचित और अशक्य है ॥२॥

**एतदाख्याहि मे ब्रह्मञ्जामातुः श्वशुरस्य च । विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥३॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! एतत् जामातुः श्वशुरस्य विद्वेषः मे आख्याहि यतः सती दुस्त्यजान् प्राणान तत्यजे ॥३॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! उन श्वशुर दामाद में इतना विद्वेष कैसे हो गया ? जिसके कारण सती ने अपने दुस्त्यज प्राणों का भी परित्याग कर दिया ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

यतो हेतोर्विद्वेषः, यतो विद्वेषात्प्राणांस्तत्याज, एतदाख्याहि ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसके कारण दोनों में परस्पर में विद्वेष हुआ । जिस विद्वेष के कारण सती ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया । इसे आप मुझे सुनाइये ॥३॥

मैत्रेय उवाच

**पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः । तथाऽमरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥४॥**

**अन्वयः**— पुरा विश्वसृजां सत्रे परमर्षयः तथा अमरगणाः सर्वे मुनयः अग्नयः सानुगः समेताः ॥४॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— एक बार प्रजापतियों के यज्ञ में बड़े-बड़े महर्षिगण, देवगण, सभी मुनिगण और अग्निगण अपने-अपने अनुचरों के साथ एकत्रित हुए ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

तदेवाख्यातुमितिहासं प्रस्तौति-पुरेति । समेता आसन् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

शङ्करजी और दक्ष प्रजापति में होने वाले विद्वेष को ही बतलाने के लिए यहाँ पर मैत्रेय जी इतिहास को **पुरा० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । समेताः अर्थात् एकत्रित हुए थे ॥४॥

**तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वाऽर्कमिव रोचिषा । भ्राजमानं वितिमिरं कुर्बन्तं तन्महत्सदः ॥५॥**
**उदतिष्ठन्सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः । ऋते विरिञ्चं शर्वं च तद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥६॥**

**अन्वयः**— रोचिषा अर्कमिव भ्राजमानं वितिमिरंतन्महतसरः कुर्बन्तं तदा प्रविष्टं दक्षं दृष्ट्वा, तद्भासा आक्षित्त चेतसः विरिञ्चं शर्वं च बिना ते सदस्याः सहाग्नयः स्वधिष्णेभ्यः उदतिष्ठन् ॥५-६॥

**अनुवाद**— सूर्य के समान देदीप्यमान कान्ति से सुशोभित, उस विशाल सभा को प्रकाशित करते हुए उसी समय उस सभा में आये हुए दक्ष प्रजापति को देखकर उनकी कान्ति से आकृष्ट बुद्धिवाले ब्रह्माजी और शङ्करजी को छोड़कर सभी सदस्य तथा ऋषिगण अपने आसन से उठकर खड़े हो गये ॥५-६॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रविष्टं दक्षिमिति शेषः । महत्सदो महतीं सभाम् । स्वधिष्ण्येभ्यः स्वीयासनेभ्यः ॥५-६॥

**भाव प्रकाशिका**

दक्ष प्रजापति जब उस सभा में प्रवेश किए उस समय उनकी कान्ति से वह सभा मानो प्रकाशित हो गयी और ब्रह्माजी तथा शङ्करजी को छोड़कर उस सभा के सभी सदस्य तथा अग्निगण भी अपने आसन से उठकर खड़े हो गये ॥५-६॥

**सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान्साधुसत्कृतः । अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥७॥**

**अन्वयः**— सदसस्पतिभिः साधुसत्कृतः भगवान् दक्षः लोकगुरुं अजं नत्वा तदाज्ञया निषसाद ॥७॥

**अनुवाद**— सभी सदस्यों के द्वारा अच्छी तरह से समादृत होकर तेजस्वी दक्ष प्रजापति लोकगुरु ब्रह्माजी को नमस्कार करके उनकी आज्ञा से अपने आसन पर बैठ गये ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥७॥

**प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः । उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥८॥**

**अन्वयः**— प्राक् निषण्णं मृडं दृष्ट्वा तदनादृतः न अमृष्यत् वाम चक्षुभ्याम् अभिवीक्ष्य दहन् इव उवाच ॥८॥

**अनुवाद**— अपने बैठने से पहले बैठे हुए शिवजी को देखकर तथा उनसे आदर नहीं प्राप्त करने के कारण दक्ष प्रजापति उसे बर्दास्त नहीं कर पाये और वे अपनी आँखें टेढ़ी करके देखकर जालाते हुए के समान कहने लगे॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

प्राक् स्वोपवेशनात्पूर्वमेव निषण्णमुपविष्टं मृडं शिवम् । तदनादृतस्तेनाभ्युत्थानादिभिरकृतादरः । नामृष्यत् नासहत । वामं वक्रं यथा भवति तथाऽभिवीक्ष्य ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने बैठने से पहले बैठे हुए शिवजी को बैठे हुए देखकर दक्ष प्रजापति उसे बर्दास्त नहीं कर पाये कयोंकि वे शिवजी द्वारा समादृत नहीं हुए थे । उन्होंने अपनी आँखे टेढ़ी करके कहा ॥८॥

**श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः । साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥९॥**

**अन्वयः**— अज्ञानात् न न मत्सरात् च साधूनां वृत्तं ब्रवतो मे सहदेवा सहाग्नयः ब्रह्मर्षयः मे श्रूयताम् ॥९॥

**अनुवाद**— मैं न तो अज्ञान वशात् और न द्वेष वशात् अपितु मैं साधु पुरुषों के वृत्तान्त को कह रहा हूँ। अतएव सभी देवता और अग्नियों के साथ ब्रह्मर्षिगण मेरी बात सुनें ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

मे वचनं श्रूयताम् । अज्ञानान्मत्सराच्च न ब्रुवतः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

दक्ष प्रजापति ने कहा आपलोग मेरी बात सुनें मैं अज्ञान के कारण अथवा द्वेष के कारण यह नहीं कह रहा हूँ ॥९॥

**अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः । सद्भिराचरितः पन्था येन स्तब्धेन दूषितः ॥१०॥**

**अन्वयः**— अयं तु लोकपालानां यशोघ्नः निरपत्रपः । स्तब्धेन येन सद्भिः आचरितः पन्थाः दूषितः ॥१०॥

**अनुवाद**— यह तो निर्लज्ज शङ्कर लोकपालों की पवित्र कीर्ति को विनष्ट किया है, क्योंकि इस घमण्डी ने सज्जनों के सन्मार्ग को दूषित किया है ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

स्तब्धेनोचितक्रियाशून्येन । ध्वस्तेनेति पाठे भ्रष्टेन ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

स्तब्धेन का अर्थ है उचित कार्य ज्ञान से रहित । जहाँ पर ध्वस्तेन पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा भ्रष्ट ॥१०॥

**एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् । पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत्॥११॥**
**गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः। प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाप्यकृत नोचितम्॥१२॥**

**अन्वयः**— एष मर्कटलोचनः यत विप्राग्नि मुखतः मे मृगशावाक्ष्याः सावित्र्याः इव मे दुहितुः पाणिं साधुवत् अग्रहीत् अतः एष मे शिष्यतां प्राप्तः । प्रत्युत्थानाभिवादार्हे मयि वाचा अपि नोचितम् अकृत ॥११-१२॥

**अनुवाद**— बन्दर जैसे नेत्र वाला यह शङ्कर चूकि ब्राह्मणों और अग्नि के समक्ष बालमृगनयनी मेरी पुत्री का सज्जन के समान पाणिग्रहण किया, अतएव यह एक तरह से मेरे पुत्र के समान है । इसके लिए तो यही उचित था यह उठकर मेरा सम्मान करके मुझे प्रणाम करता किन्तु इसने वाणी से भी मेरा उचित सम्मान नहीं किया॥११-१२॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह-एष इति। यद्यस्माद्विप्राग्निसमक्षं सावित्रीतुल्याया मे दुहितुः पाणिमग्रहीत् । मृगशावस्य हरिणबालस्याक्षिणीवाक्षिणी यस्याः । प्रत्युत्थानाभिवादार्हे मय्युचितं सन्मानं वाचापि नाकरोत् ॥११-१२॥

### भाव प्रकाशिका

शङ्करजी के उचित क्रिया शून्यत्व का वर्णन करते हुए दक्ष प्रजापति ने कहा चूकि इसने गायत्री भी के समान पवित्र मेरी पुत्री का ब्राह्मणों एवं अग्नियों के समक्ष पाणिग्रहण किया । वह मेरी पुत्री बालमृग के समान नेत्रों वाली थी । मैं तो इसके लिए खड़ा होकर सत्कार करने और प्रणाम करने के योग्य था किन्तु इसने वाणी से भी मेरा उचित सम्मान नहीं किया है ॥११-१२॥

**लुप्तक्रियायाशुचयेऽमानिनेऽभिन्नसेतवे । अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— शूद्राय उशतीं गिरम् इव अनिच्छन्नपि लुप्त क्रियाय, अशुचये मानिने भिन्नसेतवे बालाम् अदाम् ॥१३॥

**अनुवाद**— शूद्र को वेदविद्या देने के समान इच्छा को नहीं रहने पर भी भावी वशात् इस सत्कर्म का परित्याग कर देने वाले, सदा अपवित्र रहने वाले, घमण्डी तथा मर्यादा का उल्लंघन करने वाले इसको मैंने अपनी पुत्री प्रदान कर दी ।१३॥

### भावार्थ दीपिका

अनर्हाय कन्या दत्तेत्यनुतप्यमान आह-लुप्तक्रियायेति सार्धैश्चतुर्भिः । उशतीं बेदलक्षणां गिरम् ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

मैंने अयोग्य शङ्कर को अपनी पुत्री प्रदान कर दी इस तरह से सन्ताप करते हुए दक्ष प्रजापति ने साढ़े चार

श्लोकों के द्वारा कहा जैसे शूद्र को वेद विद्या प्रदान करके सन्ताप होता है उसी तरह से इसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करने के कारण मुझको सन्ताप हो रहा है ॥१३॥

**प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः । अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥१४॥**

**अन्वयः**— अयं घोरेषु प्रेतावासेषु प्रेतैर्भूतगणैः वृतः नग्नः व्युप्तकेशः हसन् रुदन् उन्मत्त वत् अटति ॥१४॥

**अनुवाद**— यह भयङ्कर प्रेतों के निवास स्थान, श्मशानों में, प्रेतों और भूतगणों के साथ नङ्गे, विखरे हुए केशों वाला कभी हँसते हुए तथा कभी रोते हुए पागल के समान घूमता रहता है ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

प्रेतावासेषु श्मशानेषु । व्युप्ता विकीर्णाः केशा यस्य ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

**प्रेतावास** का अर्थ श्मशान है । **व्युप्तकेशः** का अर्थ है विखरे हुए केशों वाला ॥१४॥

**चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ् न्रस्थिभूषणः। शिवापदेशो ह्यशिवोऽमत्तोमत्तजनप्रियः॥**
**पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रक् नरस्थिभूषणः शिवापदेशः अशिवः मत्तः मत्तजनप्रियः, तमोमात्रात्मकानाम् प्रथमभूतानां पतिः ॥१५॥

**अनुवाद**— यह चिता के भस्म से स्नान करता है । नरमुण्डों की माला धारण करता है और अपने अङ्गों में मनुष्यों की हड्डियों का आभूषण धारण करता है । यह कहने के लिए अर्थात् मङ्गलमय है, किन्तु वस्तुतः अमङ्गलमय है, यह मदमत्त है और मत्त लोगों को ही प्रिय भी है । यह तमोगुणी स्वभाव वाले प्रमथों और भूतों का स्वामी है ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

चिताभस्मना कृतं स्नानं येन । प्रेतानां स्रजो माल्यानि यस्य प्रेतस्रक् । नृणामस्थीनि भूषणानि यस्य । शिव इत्यपदेशो नाममात्रं यस्य । तमोमात्रात्मकः केवलतमोरूप आत्मा स्वभावो येषाम् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

यह चिता के भस्म से स्नान करता है । मरे हुओं की ही माला धारण करता है । मनुष्यों के हड्डी के आभूषणों को धारण करता है । इसका केवल नाम शिव है । जिन जीवों का तमोगुणी स्वभाव है, उन प्रमथों और भूतों का यह स्वामी हैं ॥१५॥

**तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे । दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥१६॥**

**अन्वयः**— परमेष्ठिनाचोदिते बत मया तस्मै उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे साध्वी दत्ता बत ॥१६॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के ही कहने से मैने इस भूतों के स्वामी, सदा अपवित्र रहने वाले आचार हीन तथा दुष्ट स्वभाव वाले के साथ अपनी साध्वी पुत्री का विवाह कर दिया यह खेद की बात हैं ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

उन्मादा भूतविशेषास्तेषां नाथाय । दुर्हृदे दुष्टचित्ताय । बतेति खेदे । वास्तवस्त्वयमर्थः-लुप्ताः क्रिया यस्मिन्, परब्रह्मरूपत्वात् । अतएव नास्ति शुचिर्यस्मात् । अमानिने अभिन्नसेतवे इति च छेदः । तस्य परमेश्वरस्य मदीया मानुषी कन्या कथं योग्या स्यादिति लज्जादिना दातुमनिच्छन्नपि तत्संबन्धलोभेन दत्तवान् । शूद्रायेत्यनर्हत्वमात्रे दृष्टान्तो न हीनत्वे ।

पूर्वापरस्ववचनविरोधापत्तेः । एतदुक्तं भवति-यथा कश्चिच्छूद्राय वेदमर्थलोभेन ददाति तद्वदिति । प्रेतावासेष्वित्यादि सर्वं विडम्बनमात्रमिति स्वयमेवाह- उन्मत्तवदिति । अन्यथोन्मत्त इत्येवावक्ष्यत् । अशिवो नास्ति शिवो यस्मात् । अमत्तोऽमत्तजनप्रिय इति छेदः । पतिः प्रमथभूतानामिति भक्तवात्सल्यमाह । तामसानपि दोषमपनीय पातीति नष्टानामपि शौचं शुद्धिर्यस्मात् । दुष्टेष्वप्येते मयानुकम्प्या इति हृन्मनो यस्य स दुर्हृत्तस्मै । बतेति हर्षे । ब्रह्मणो वाक्याल्लज्जाभयादिकं परित्यज्य दत्तेत्यर्थः ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

उन्माद शब्द से भूत विशेषों को कहा गया है । उनके ही स्वामी ये शिव हैं । तथा दुष्ट हृदय वाला यह है, इस तरह के शिव को मैंने अपनी बालमृगनयनी तथा गायत्री के समान पवित्र पुत्री का विवाह कर दिया यह महान् खेद का विषय है वास्तविक अर्थ यह है वस्तुतः इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार से है । परंब्रह्म स्वरूप होने के कारण जिसकी क्रिया लुप्त हो गयी हैं, अतएव उनसे बढ़कर कोई भी पवित्र नहीं है अतएव ये शिव अशुचि हैं । अमानिने अभिन्न सेतवे इस तरह से पदच्छेद है । उन परमेश्वर को मैं अपनी मानुषी कन्या कैसे प्रदान करू ? इस तरह से लज्जा आदि के कारण नहीं देना चाहकर भी इन शङ्करजी से मेरा सम्बन्ध हो जाय इस लोभ से मैंने अपनी कन्या उनको प्रदान कर दी । शूद्राय इस पद के द्वारा अयोग्य मात्र रूप अर्थ में दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है हीन के अर्थ में नहीं क्योंकि हीनत्व के अर्थ में दृष्टान्त को मानने पर पूर्वापर वाक्य का विरोध होगा । **एतदुक्तं भवति** कहने का अभिप्राय है कि जैसे कोई धन इत्यादि के लोभ के कारण किसी शूद्र को वेदार्थ प्रदान कर देता है उसी तरह 'शूद्रायेवोशतीं गिरम्' का अर्थ समझना चाहिए । श्मशान इत्यादि में निवास करना आदि सारी बातें दिखावा मात्र है इस बात को दक्ष प्रजापति ने **उन्मत्तवत** इस पद के द्वारा कह दिया । यदि ऐसा अभिप्राय नहीं होता तो वे केवल उन्मत्त ही कहते । अशिवः पद का अर्थ है कि इन शिवजी से बढ़कर कोई भी दूसरा मङ्गलमय नहीं है । **अमत्तजनप्रियः** यह श्लोकांश का पदच्छेद है । पतिः प्रमथभूतानाम् के द्वारा शङ्करजी के वात्सल्य को बतलाया गया है । भगवान् शङ्कर तामस प्रकृति के जीवों के भी दोषों को दूर कर देते हैं । भगवान् शिव के द्वारा तो नष्टों की भी शुद्धि हो जाती है । यह **नष्टशौचाय** पद का अर्थ है । जो शङ्करजी दुष्टों के भी विषय में यह सोचते हैं कि इन सबों पर मुझे कृपा करनी चाहिए अतएव वे दुर्हृत् हैं । इस प्रकार के शङ्करजी को मैंने पुत्री प्रदान की है । **बत** यह अव्यय खेद के अर्थ में नहीं अपितु हर्ष के अर्थ में प्रयुक्त है । **चोदिते परमेष्ठिना** का अर्थ है कि ब्रह्माजी के कहने से लज्जा तथा भय का परित्याग करके, अपनी पुत्री का विवाह शङ्करजी से कर दिया ।।१६।।

मैत्रेय उवाच

**विनिन्द्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् । दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ।।१७।।**

**अन्वयः**— एवं अप्रतीपम् अवस्थितम् गिरिशम् विनिन्द्य, सः अथ क्रुद्धः दक्षः अपः उपस्पृश्य शप्तुं प्रचक्रमे ।।१७।।

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— इतना होने पर भी उसका प्रतिकार नहीं करने वाले तथा चुपचाप बैठे हुए शिवजी की उपर्युक्त प्रकार से निन्दा करने के पश्चात् क्रुद्ध दक्ष ने हाथ में जल लेकर शङ्करजी को शाप देना प्रारम्भ किया ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

अप्रतीपमप्रतिकूलं यथा भवत्येवमवस्थितमपि विनिन्द्य ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से दक्ष के द्वारा कहे जाने पर भी प्रतिकूल नहीं होने पर तथा चुपचाप बैठे रहने पर दक्ष ने शङ्करजी की निन्दा करके हाथ में जल लेकर उनको शाप देना प्रारम्भ कर दिया ।।१७।।

**अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः । सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥१८॥**

**अन्वयः**— अयं तु भवः देवगणाधमः अतएव इन्द्रोपेन्द्रादिभिः देवैः सह देवयजने भागं न लभताम् ॥१८॥

**अनुवाद**— यह शङ्कर देव समूह में अधम देवता है । यह इन्द्र तथा उपेन्द्र (भगवान् विष्णु) आदि देवताओं के साथ यज्ञों में भाग न प्राप्त करें ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

देवानां यजनसमये देवैः सह भागं न लभतां किंतु तेभ्यः पूर्वमेव लभताम् । अग्रभोजित्वात् । यद्वा । तेषु भुक्तवत्सुलभताम्, सर्वपोषकत्वात् । तत्र हेतुः- देवगणोऽधमो यस्मात्सः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

देवताओं के देव पूजन काल में देवताओं के साथ अपना भाग नहीं प्राप्त करे अपितु उन देवताओं से पहले ही अपना भाग प्राप्त करें । क्योंकि शङ्करजी सबसे पहले भोजन करने वाले हैं । अतएव ये सबों के भोजन कर लेने के पश्चात् ही प्राप्त करे क्योंकि ये सभी देवताओं का पोषण करने वाले हैं । क्योंकि ये देवगणाधम हैं, अर्थात् सभी देवता इनकी अपेक्षा अद्यम कोटि के हैं ॥१८॥

**निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापम् ।**
**तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— हे कौरव्य सदस्य मुख्यैः निषिध्यमानः स दक्षः गिरित्राय शापं विसृज्य विवृद्धमन्युः तस्मात् विनिष्क्रम्य निजं निकेतनम् जगाम ॥१९॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! मुख्य सदस्यों के द्वारा निषेध किए जाने पर भी क्रुद्ध दक्ष प्रजापति ने शङ्करजी को शाप दे ही दिया और उसके बाद वे उस सत्र से निकल कर अपने घर में चले गये ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

स दक्षस्तस्मात्स्थानाद्विनिष्क्रम्य जगाम । हे कौरव्य ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी ! वे दक्ष उस स्थान से निकल कर चले गये ॥१९॥

**विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ।**
**दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥२०॥**

**अन्वयः**— शापं विज्ञाय गिरिशानुगाग्रणीः नन्दीश्वरः रोषकषायदूषितः दक्षाय, ये च द्विजाः तदवाच्यताम् अन्वमोदन् तेभ्यः दारुणं शापं विससर्जः ॥२०॥

**अनुवाद**— जब शङ्करजी के अनुचरों में अग्रगण्य नन्दीश्वर ने उस शाप को जाना तो क्रोध के मारे उनकी आखें लाल हो गयीं और उन्होंने दक्ष को तथा जिन ब्राह्मणों ने शङ्करजी के प्रति उस शाप को अनुमोदन किया था उन ब्राह्मणों को भयङ्कर शाप दिया ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

गिरिशस्यानुगानामग्रणीर्मुख्यः । रोष एव कषायस्तेन दूषितः, आरक्तनेत्र इत्यर्थः । तस्य गिरिशस्यावाच्यतां वचनानर्हताम् । निन्द्यतामित्यर्थः । तेभ्योऽपि शापं विससर्ज ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

शङ्करजी के अनुचरों में मुख्य नन्दीश्वर को उस शाप को जानकर उनकी आखें क्रोध के कारण लाल हो गयीं उन्होंने दक्ष को तथा शङ्करजी की निन्दा का समर्थन करने वाले ब्राह्मणों को भयङ्कर शाप प्रदान किया ।।२०।।

**य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि । द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ।।२१।।**

**अन्वयः**— यः एतत् मर्त्यम् उद्दिश्य अप्रतिद्रुहि भगवति द्रुह्यति, सः पृथक् दृष्टिः तत्त्वतः विमुखो भवेत् ।।२१।।

**अनुवाद**— इस मरण धर्माशरीर में ही श्रेष्ठता का अभिमान रखने वाला मूर्ख किसी से भी द्वेष नहीं करने वाले भगवान् शङ्कर से द्वेष करता है, उस भेद दृष्टि वाले को जीवन में कभी भी तत्त्वज्ञान न हो । वह जीवन भर अज्ञानी ही बना रहे ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

दक्षं शपति सार्धैस्त्रिभिः । एतन्मर्त्यं दक्षशरीरमुद्दिश्य श्रेष्ठं मत्वा । अप्रतिद्रुहि प्रतिद्रोहमकुर्वति पृथग्दृष्टिर्भेददर्शी तत्त्वतः परमार्थात् ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

वे दक्ष को साढ़े तीन श्लोकों से शाप देते हैं । वे कहते हैं कि जो मूर्ख इस दक्ष शरीर को ही श्रेष्ठ मानकर किसी से भी द्रोह नहीं करने वाले भगवान् शङ्कर से द्रोह करता है, वह भेददृष्टि वाले को परमार्थ ज्ञान नहीं होए।।२१।।

**गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया । कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ।।२२।।**

**अन्वयः**— वेदवादविपन्नाधी यहः कर्म तन्त्रं वितनु ते ग्राम्यसुखेच्छया कूटधर्मेषु गृहेषु सक्तो भवेत् ।।२२।।

**अनुवाद**— चातुर्मास्य यज्ञ को करने वाले को अक्षय सुख की प्राप्ति होती है, इत्यादि वेदों के अर्थवाद वाक्यों के कारण जिसकी बुद्धि विनष्ट हो गयी है, वह केवल काम्ययज्ञों को करता है, इस तरह विवेक भ्रष्ट होकर विषय सुख को प्राप्त करने की इच्छा से कपटमय गृहस्थ धर्म में ही वह सदा आसक्त बना रहे ।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

अज्ञत्वमेवाह— गृहेष्विति । कर्मतन्त्रं कर्मपरिकरम् । वेदे ये वादा अर्थवादाः 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति' इत्यादयस्तैर्विपन्ना विनष्टा धीर्यस्य ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

अज्ञत्व का ही प्रतिपादन **गृहेषु इत्यादि** श्लोक से करते हैं । कर्मतंत्र का अर्थ है, कर्म काण्ड रूपी साधन से । वेद में अर्थवाद वाक्य हैं **'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्य याजिनः सुकृतं भवति ।'** अर्थात् चातुर्मास्य याग करने वालों को अक्षय फल की प्राप्ति होती है । उन अर्थवाद वाक्यों से जिनकी बुद्धि विनष्ट हो गयी है वे सदा गृहस्थ धर्म में ही आसक्त बने रहते हैं ।।२२।।

**बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ।**
**स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ।।२३।।**

**अन्वयः**— पराभिध्यायिन्या बुद्ध्या विस्मृतात्मगतिः पशुः, अतितरां स्त्रीकामः सः दक्षः अचिरात् वस्तमुखः भवेत्।।२३।।

**अनुवाद**— जो देह आदि में ही आत्मत्व बुद्धि करता है, अपनी उस बुद्धि के द्वारा जिसने आत्मा के स्वरूप को भुला दिया है, अतएव पशु के समान बहुत अधिक स्त्री को प्राप्त करने की इच्छा वाला वह दक्ष शीघ्र ही बकरे के मुख वाला हो जाय ।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

परो देहादिस्तमेवात्मत्वेनाभितो ध्यातुं शीलं यस्यास्तया बुद्ध्या विस्मृतात्मनो गतिस्तत्त्वं येन । अतः पशुतुल्यः । अतितरां स्त्रीकामोऽस्त्विति द्वितीयः शापः । बस्तस्य मुखमेव मुखं यस्येति तृतीयः शापः ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

आत्मा से भिन्न देह आदि को आत्मा रूप से जिस बुद्धि के द्वारा आत्मा जानता है, उस बुद्धि से आत्मा के स्वरूप को भूल जाने के कारण पशु के समान दक्ष पशु के समान है, यह पहला शाप है, वह स्त्री को अत्यधिक चाहने वाला हो जाय, यह दूसरा शाप है तथा वह दक्ष शीघ्र ही बकरे के मुख वाला हो जाय यह तीसरा शाप हैं ।।२३।।

**विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः । संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ।।२४।।**

**अन्वयः**— कर्ममय्याम् अविद्यायां विद्याबुद्धिः असौ जडः, ये च शर्वावमनिनम् अमुम् अनु इह संसरन्तु ।।२४।।

**अनुवाद**— कर्ममयी अविद्या को ही विद्या समझने वाला मूर्ख यह दक्ष और शङ्करजी के अपमान का समर्थम करने वाले उसके अनुयायी हैं, वे सदा संसार चक्र में ही पड़े रहें ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

अयं च शापोऽस्यानुरूप एवेत्याह । विद्याबुद्धिः इयमेव तत्त्वविवधेति बुद्धिर्यस्य । अतोऽसौ जड एव । द्विजान् शपति— संसरन्त्विति सार्धद्वाभ्याम् । शर्वमवमन्यत इति तथा तममुं दक्षं ये चानुवर्तन्ते संसरन्तु जन्ममरणाद्यनुभवन्त्वित्येकः शापः ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

यह जो मैंने शाप दिया है, वह इस दक्ष के अनुकूल ही है । वह कर्ममयी अविद्या को ही तत्त्वमयी विद्या समझता है; अतएव वह जड़ ही है । ब्राह्मणों को शाप देते हुए नन्दीश्वर ने ढाई श्लोकों में कहा । शङ्करजी का अपमान करने वाले इस दक्ष का जो लोग अनुवर्तन करते हैं, वे लोग इस संसार चक्र में ही पड़े रहकर सदा जन्ममरण आदि का अनुभव करते रहें इस तरह से एक शाप दिया ।।२४।।

**गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा । मथ्ना चोन्मथितात्मानः संमुह्यन्तु हरद्विषः ।।२५।।**

**अन्वयः**— श्रुतायाः पुष्पिण्या गिरः भूरिणा मधुगन्धेण मथ्ना च उन्मथितात्मानः हरद्विषः मुह्यन्तु ।।२५।।

**अनुवाद**— वेदवाणी रूपी लता फलश्रुति रूपी पुष्पों से सुशोभित है, उसके कर्मफल रूपी मनमोहक गन्ध से जिनका चित्त क्षुब्ध हो गया वे शङ्करजी से द्वेष करने वाले कर्मों के ही जाल में फँसे रहें ।।२५।।

### भावार्थ दीपिका

श्रुताया वेदरूपायाः पुष्पिण्याः पुष्पाणीवार्थवादा मनःक्षोभकत्वात् । अर्थवादबहुलाया इत्यर्थः । मधुगन्धतुल्येन प्ररोचनेन मथ्ना मनः क्षोभकेणोन्मथित आत्मा येषां ते संमुह्यन्तु कर्मस्वासक्ता भवन्त्विति द्वितीयः शापः ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

वेद स्वरूपिणी लता की फलश्रुति रूप पुष्प के समान अर्थवाद वाक्यों के मन को क्षुब्ध बना देने वाले मनमोहक गन्ध के समान प्ररोचना रूप रूपी मथानी से जिनका मन क्षुब्ध हो गया हैं वे सदा कर्मों में ही आसक्त बने रहें यह दूसरा शाप हैं ।।२५।।

**सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः । वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्विह ।।२६।।**

**अन्वयः**— सर्वभक्षाः द्विजा, वृत्यै धृतविद्यातपोव्रताः इन्द्रियारामाः याचका इह विचरन्तु ।।२६।।

**अनुवाद**— ब्राह्मण सर्वभक्षी हो जायँ, वे पेट पालने के ही लिए विद्या, तप और व्रत का पालन करें, वित्त, देह और इन्द्रियों के सुख के लिए याचना करते हुए इस लोक में विचरण करें ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

सर्वभक्षा भक्ष्याभक्ष्यविचारशून्याः । वृत्त्यै देहादिपोषणाय धृतानि विद्यातपोव्रतानि यैः । वित्तादिष्वेवारामो रतिर्येषां ते । याचकाः सन्तो विचरन्त्विति च शापचतुष्टयम् ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण गण भक्ष्याभक्ष्य के विचार से रहित हो जायँ अपने शरीर का पालन करने के लिए ही वे विद्या, तपस्या और व्रत को धारण करें । उन लोगों का धन, देह और इन्द्रियों में ही प्रेम बना रहे और वे भीख माँगते हुए पृथिवी पर विचरण करें । इस तरह से नन्दीश्वर ने ब्राह्मणों को चार शाप दिया ॥२६॥

**तस्यैवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै । भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— एवं द्विजकुलाय शापं ददतः तस्य श्रुत्वा भृगुः वै दुरत्ययम् ब्रह्मदण्डं शापं अत्यसृजत् ॥२७॥

**अनुवाद**— इस तरह से ब्राह्मण वंश के लिए शाप देने वाले नन्दीश्वर के शाप को सुनकर भृगु महर्षि ने ब्रह्मदण्ड के समान भयङ्कर शाप दिये ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

प्रत्यसृजत् प्रत्यदात् । शापरूपं ब्रह्मदण्डम् ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

जब महर्षि भृगु ब्राह्मण वंश के लिए नन्दीश्वर के द्वारा दिए जाने वाले शाप को सुने तो वे भी उसके बदले में ब्रह्मदण्ड के समान भयङ्कर शाप दिये ॥२७॥

**भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः । पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥२८॥**

**अन्वयः**— ये च भवव्रतधराः ये च तान् समनुव्रताः ते सत्शास्त्र परिपन्थिनः पाखण्डिनः भवन्तु ॥२८॥

**अनुवाद**— जो लोग शिवजी के भक्त हैं, तथा जो लोग शिव भक्तों के भक्त हैं वे सत् शास्त्र विरोधी तथा पाखण्डी हो जायँ ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

सच्छास्त्रस्य परिपन्थिनः प्रतिकूलाः ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

सत् शास्त्र के विरोधी हो जायँ ॥२८॥

**नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः । विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥२९॥**

**अन्वयः**— शिव दीक्षायां नष्टशौचाः मूढधियः जटाभस्मास्थिधारिणः विशन्तु यत्र सुरासवं दैवम् ॥२९॥

**अनुवाद**— शैव सम्प्रदाय की दीक्षा मे अपवित्र रहने वाले अज्ञानी, जटा, भस्म तथा हड्डी धारण करने वाले, ही प्रवेश करें । जिस सम्प्रदाय में सुरा और आसव है ही देवता के समान समादरणीय हैं ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

सुरा गौडी पैष्टी माध्वी च। आसवस्तालादिसंभवं मद्यम्। द्वन्द्वैक्यात्षण्ढत्वम्। तद्यत्र दैवं पूज्यं देवतावदादरणीयमिति वा॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

सुरा तीन प्रकार की होती है गौडी, पौष्टी और माध्वी । ताड़ आदि से रस के रूप में उत्पन्न होने वाला आसव कहलाता है । **सुरासवम्** में समाहार द्वन्द्व के कारण नपुंसक लिङ्ग है । सुरा तथा आसव ही देवता के समान पूज्य अथवा आदरणीय है शैव दीक्षा में ॥२९॥

**ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ । सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः ॥३०॥**

**अन्वयः**— यद् यूयं ब्रह्म च ब्राह्मणांश्च पुंसां । सेतुं विधारणम् परिनिन्दथ अतः पाखण्डमाश्रिताः ॥३०॥

**अनुवाद**— तुम लोग धर्ममर्यादा के संस्थापक और वर्णाश्रमियों के रक्षक वेद और ब्राह्मणों की निन्दा करते हो इसीसे स्पष्ट है कि तुमलोग पाखण्ड को अपना लिए हो ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

ब्रह्म वेदम् । कथंभूतम् । सेतुं मर्यादारूपम् । तदेवाह । पुंसां वर्णाश्रमाचारवतां विधारणं धारकम् ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्म शब्द यहाँ वेद का बोधक है । प्रश्न उठता है कैसा वेद तो इसका उत्तर है जो मर्यादा स्वरूप है । विधारण का अर्थ धारक है ॥३०॥

**एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः । यं पूर्वे चानुसंतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥**

**अन्वयः**— एष एव लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः यं च पूर्वे अनुसंतस्थुः यत् प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥

**अनुवाद**— यह वेद ही लोगों के लिए कल्याणकारी मार्ग है और यह सनातन मार्ग है । पूर्व पूर्व ऋषियों ने इसी को अपनाया और इसके मूल भगवान् जनार्दन हैं ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

सेतुत्वं प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् । एष वेदलक्षण एव शिवः पन्थाः । यं पूर्वे ऋषयोऽनुसंतस्थुराश्रितवन्तः । यद्यस्मिन् जनार्दनः प्रमाणं मूलम् ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

वेद के सेतुत्व का विस्तार करते हुए कहते हैं— यह वेद ही लोगों के लिए कल्याणकारी मार्ग है । उसी को प्राचीन ऋषियों ने अपनाया क्योंकि वेदों के मूल भगवान् नारायण हैं ॥३१॥

**तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् । विगर्ह्य यात पाषण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥३२॥**

**अन्वयः**— ब्रह्म परमं शुद्धं सतां सनातनं वर्त्म तद् विगर्ह्य पाषण्डं यात यत्र वे दैवं भूतराट् ॥३२॥

**अनुवाद**— वेद परम पवित्र हैं, वे सज्जनों के सनातन मार्ग हैं, उसकी निन्दा करने वाले तुम लोग पाखण्डी हो जाओ जिसमें भूतों के स्वामी तुम्हारे आराध्यदेव का निवास है ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

भूतराट् भूतानां तामसानां पतिः ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

भूतराट् शब्द का अर्थ है तामसी भूतों के स्वामी ॥३२॥

मैत्रेय उवाच

**तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान् भवः । निश्चक्राम ततः किंचिद्विमना इव सानुगः ॥३३॥**

**अन्वयः**— तस्य एवं शापं वदतः भृगोः स भगवान् भवः किञ्चिद् विमना इव सानुगः ततः निश्चक्राम ॥३३॥

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— जब महर्षि इस प्रकार से शाप दे रहे थे उस समय भगवान् शिव कुछ उदास से होकर अपने अनुचरों के साथ वहाँ से निकल गये ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

अन्योन्यशापेनोभयोर्नाशाद्विमना इवेति । तथापि भगवदनुगृहीतानां नाशो न स्यादिति भावः ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

परस्पर में एक दूसरे को शाप दिये जाने के कारण दोनों का नाश होने से कुछ उदास से होकर शिवजी वहाँ से निकल गये । किन्तु जिनपर श्रीभगवान् की कृपा है उनका नाश नहीं होता है ।।३३।।

**तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् । संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषमो हरिः ।।३४।।**
**आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयान्विता । विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ।।३५।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

**अन्वयः**— हे महेष्वास ! तेऽपि विश्वसृजः सहस्रपरिवत्सरान् सत्रं यत्र इज्यः ऋषभः हरिः संविधाय यत्र गङ्गा यमुनया अन्विता तत्र अवभृथं अवप्लुत्य विरजेन आत्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ततः ययुः ।।३४-३५।।

**अनुवाद**— हे विशाल धनुष धारण करने वाले विदुर ! वे प्रजापतिगण भी जिसमें श्रीहरि ही पूज्य थे उस एक हजार वर्षों के सत्र को विधिपूर्वक सम्पन्न करके जहाँ गङ्गाजी यमुनाजी से मिलती हैं उस प्रयागतीर्थ में अवभृथ स्नान करके प्रसन्न मन से अपने-अपने स्थानों पर चले गये ।३४-३५।।

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के दक्षशाप वर्णन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।**

### भावार्थ दीपिका

ऋषभः सर्वश्रेष्ठो हरिर्यत्र इज्यः पूज्यस्तत्सत्रं सम्यग्विधाय । हे महेष्वास विदुर । यत्र प्रयागेऽन्विता तत्रावभृथस्नानं कृत्वा ततः स्थानाद्ययुः ।।३४-३५।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थे स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।**

### भाव प्रकाशिका

ऋषभ शब्द श्रेष्ठ का वाचक है । उस सत्र में भी श्रेष्ठ श्रीहरि ही पूज्य थे । उस सत्य को अच्छी तरह से पूरा करके हे विदुर जहाँ प्रयाग में गङ्गाजी यमुनाजी से मिली हैं वहीं पर अवभृथ स्नान करके सभी लोग उस स्थान से चले गये ।।३४-३५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२।।**

# तीसरा अध्याय

## सती का दक्ष के यज्ञ में जाने के लिए आग्रह

मैत्रेय उवाच

**सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः । जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥१॥**

**अन्वयः**— एवं जामातुः श्वशुरस्यापि ध्रियमाणयोः एवं विद्विषतोः सुमहान् काल अतिचक्रमे ॥१॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से श्वशुर और दामाद में परस्पर में वैर को धारण किए हुए और एक दूसरे से विद्वेष करते हुए बहुत अधिक समय बीत गया ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

तृतीये तु सती तातयज्ञोत्सवदिदृक्षया । गमिष्यन्ती महेशेन वारिता नीतिहेतुभिः ॥१॥ ध्रियमाणयोरवतिष्ठमानयोः । 'धृङ् अवस्थाने' इत्यस्मात् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

तीसरे अध्याय में अपने पिता के यज्ञोत्सव को देखने की इच्छा से सती देवी जाना चाही किन्तु शङ्करजी ने नीतिपूर्ण हेतुओं के द्वारा उनको रोका ॥१॥ **ध्रियमाणयोः** पद का अर्थ है वेद को धारण किए रहने वाले है। धृङ् अवस्थाने धातु से यह रूप व्युत्पन्न है ॥१॥

**यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना । प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥२॥**

**अन्वयः**— यदा तु परमेष्ठिना ब्रह्मणा दक्षः सर्वेषां प्रजापतीनां आधिपत्ये अभिषिक्तः तदा स्मयः अभवत् ॥२॥

**अनुवाद**— जब परमेष्ठी ब्रह्माजी ने दक्षप्रजापति को सभी प्रजापतियों के आध्यक्ष्य पद पर अभिषिक्त किया उस समय दक्ष प्रजापति को गर्व हो गया ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यपि रुद्रविहीनो यज्ञो नास्त्येव, तथापि दक्षस्य रुद्रपरित्यागो द्वेषाद्गर्वाच्च । तत्र द्वेषे हेतुरुक्तः । गर्वे हेतुमाह । यदा तु प्रजापतीनामाधिपत्येऽभिषिक्तस्तदा तस्य स्मयो गर्वोऽभवत् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि रुद्र के बिना कोई भी यज्ञ नहीं होता है फिर भी दक्ष ने रुद्र का परित्याग दो कारणों से किया द्वेष के कारण और गर्व के कारण । द्वेष का तो कारण पहले बतलाया जा चुका है । इस श्लोक में गर्व के हेतु को बतलाते हुए कहा गया है कि जब दक्ष प्रजापतियों के अधिपति के पद पर अभिषिक्त हुए तो उनको गर्व हो गया॥२॥

**इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च । बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥**

**अन्वयः**— सः वाजपेयेन इष्ट्वा ब्रह्मिष्ठान् अभिभूय च बृहस्पतिसवं नाम क्रतूत्तमम् समारेभे ॥३॥

**अनुवाद**— दक्ष ने वाजपेय नाम का यज्ञ करके तथा शङ्करजी आदि ब्रह्मनिष्ठों को यज्ञ भाग न देकर उनका तिरस्कार भी किया, उसके पश्चात् बृहस्पति सव नामक सर्वोत्तम महायज्ञ प्रारम्भ किया ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

गर्वादेव ब्रह्मिष्ठान्सेश्वरानभिभूय तिरस्कृत्य । 'वाजपेयेनेष्ट्वा बृहस्पतिसवेन यजेत' इति श्रुतेर्वाजपेयेनेष्ट्वा समारेभे॥३॥

### भाव प्रकाशिका

वाजपेय याग में गर्व के कारण ही शङ्करजी इत्यादि ब्रह्मनिष्ठों का तिरस्कार करके **'वाजपेयेनेष्ट्वा बृहस्पति सवेन यजेत'** इस श्रुति के अनुसार वाजपेय याग करने के पश्चात् बृहस्पतिसव के द्वारा यजन करना चाहिए। इस श्रुति के अनुसार दक्ष प्रजापति ने बृहस्पतिसवयाग करना प्रारम्भ किया ॥३॥

**तस्मिन्ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः । आसन्कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥४॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् सर्वे ब्रह्मर्षयः, देवर्षिपितृदेवताः सभर्तृकाः तत्पत्न्यः च कृतस्वस्त्ययनाः आसन् ॥४॥

**अनुवाद**— उस यज्ञोत्सव में सभी ब्रह्मर्षि देवता, देवर्षि और पितर, आदि अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आये, सबों ने वहाँ पर मिलकर माङ्गलिक कार्य किया और दक्ष ने उन सबों का सम्मान किया ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

कृतस्वस्त्ययनाः कृतमङ्गलाः । सभर्तृका इति दक्षिणादिभिः प्रथममर्हितानामपि पत्न्यर्हणे पुनरर्हणमुक्तम् ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

कृतस्वस्त्ययनाः कहने का अर्थ है कि उन सबों ने वहाँ पर मङ्गलकार्य किया। सभर्तृकाः कहने का अभिप्राय है कि पहले दक्षिणा आदि के द्वारा जिनकी पूजा कर दी गयी थी फिर भी पत्नी की पूजा के समय वे पुनः पूजा के योग्य हो गये ॥४॥

**तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् । सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ॥५॥**
**व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः । विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ॥६॥**
**दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः । पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥७॥**

**अन्वयः**— नभसि प्रजल्पतां खेचराणा प्रजल्पतां दाक्षयणी सती देवी पितुः यज्ञ महोत्सवम् उपश्रुत्य सर्वतो दिग्भ्यः विमानयानाः सप्रेष्ठाः निष्ककण्ठीः सुवाससः स्वनिलयाभ्याशे, लोलाक्षीः मृगलोचनाः उपदेववरस्त्रिः दृष्ट्वा, औत्सुक्याद्, भूतपतिं पतिंदेवं अभ्यभाषत ॥५-७॥

**अनुवाद**— उस समय आकाश में आकाशचारियों की अपने पिता के यज्ञमहोत्सव सम्बन्धी बातों को सुनकर तथा अपने गृह के सन्निकट से सभी दिशाओं से अपने पतियों के साथ विमान पर बैठकर गले में निष्क धारण की हुयी एवं सुन्दर वस्त्र धारण की हुयी श्रेष्ठ उपदेवों की स्त्रियों जिनके नेत्र चञ्चल थे और उनके कानों के कुण्डल चमक रहे थे उन सबों को देखकर दक्षपुत्री सती देवी ने समस्त भूतों के स्वामी अपने पतिदेव शङ्करजी से उत्सुकता पूर्वक कहा ॥५-७॥

### भावार्थ दीपिका

तत्तदा खेचराणां प्रजल्पतां सतां पितृयज्ञमहोत्सवं श्रुत्वा तत्र व्रजन्तीरुपदेवानां गन्धर्वादीनां वरस्त्रियश्च स्वस्य निलयस्याभ्याशे समीपे दृष्ट्वौत्सुक्यात्पतिमभ्यभाषतेति त्रयाणामन्वयः । कथंभूताः स्त्रियो दृष्ट्वा । विमानानि यानानि यासां ताः । प्रेष्ठैः सहिताः। निष्काणि पदकानि कण्ठेषु यासाम् । शोभमानानि वासांसि यासाम् । लोलानि चञ्चलान्यक्षीणि यासाम् । मृष्टान्युज्ज्वलानि कुण्डलानि यासां ताः ॥५-७॥

### भाव प्रकाशिका

उस समय आकाश में चलने वाले तथा परस्पर में बातें करने वाले देवताओं से अपने पिता दक्ष के यज्ञमहोत्सव को सुनकर और अपने निवास स्थान के सन्निकट से गन्धर्वो आदि की श्रेष्ठ स्त्रियों को देखकर, सती देवी ने अपने पति से कहा इस तरह से तीनों श्लोकों का एक साथ अन्वय है। प्रश्न है, कि वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ कैसी थीं तो इस पर कहते

हैं सब विमान की सवारी से जा रही थीं तथा अपने पतियों के साथ थीं । वे अपने गले में निष्क धारण की थीं तथा उनके वस्त्र सुन्दर थे एवं कानों के कुण्डल चमक रहे थे तथा नेत्र चञ्चल थे।।५-७।।

सत्युवाच

**प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य सांप्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ।**
**वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थिताऽमी विबुधा व्रजन्ति हि ।।८।।**

**अन्वयः**— हे वाम ! ते प्रजापतेः श्वशुरस्य किल यज्ञमहोत्सवः निर्यापितः अमी हि विवुधाः व्रजन्ति । यदि ते अर्थिता वयं च तत्र अभिसराम ।।८।।

**सतीदेवी ने कहा**

**अनुवाद**— हे वामदेव शिवजी ! आपके प्रजापति श्वशुर के यहाँ यज्ञ महोत्सव हो रहा है, ये सभी देवता वहीं जा रहे हैं । यदि आपकी इच्छा हो तो हमलोग भी वहाँ चलें ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

निर्यापितः प्रवर्तितः । हे वाम शिव, ते यद्यर्थिता इच्छा तर्हि वयं च तत्राभिसराम गच्छामः । न चाद्यापि यागो निवृत्तः। यतोऽमी विबुधा व्रजन्ति ।।८।।

**भाव प्रकाशिका**

हे वामदेव शिवजी ! आपके श्वशुर प्रजापति दक्ष के यहाँ ऋषियों ने यज्ञ महोत्सव प्रारम्भ कर दिया है । यदि आपकी इच्छा हो तो हमलोग भी वहाँ चलें । अभी वह यज्ञ समाप्त नहीं हुआ हैं, क्योंकि ये सभी देवता उस यज्ञ में ही जा रहे हैं ।।८।।

**तस्मिन्भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः ।**
**अहं च तस्मिन्भवताभिकामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ।।९।।**

**अन्वयः**— तस्मिन् मम सुहृद्दिदृक्षवः ध्रुवं स्वकैः भर्तृभिः गमिष्यन्ति अहं च तस्मिन् सह उपनीतं परिवर्हं अर्हितुम् कामये ।।९।।

**अनुवाद**— उस यज्ञ में अपने सुहृदों को देखने की इच्छा वाली मेरी बहनें भी अपने पतियों के साथ अवश्य आयेंगी । मैं भी चाहती हूँ कि आपके साथ वहाँ जाकर अपने माता-पिता से प्रदत्त उपहार को प्राप्त करूँ ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

औत्सुक्यं प्रकटयन्त्याह-तस्मिन्निति षड्भिः । पितृभ्यामुपनीतं दत्तं परिबर्हमलंकारादिद्रव्यं भवता सहार्हितुं स्वीकर्तुमभिकामये। अर्हितमिति पाठे तत्कृतं परिबर्हमिच्छामीति ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

अपनी उत्सुकता को ही प्रकट करती हुयी सती देवी ने **तस्मिन्० इत्यादि** छह श्लोकों से कहा— मैं भी अपने माता-पिता से प्रदत्त अलङ्कार आदि द्रव्यों को आपके साथ प्राप्त करना चाहती हूँ । जहाँ पर **अर्हितम्** पाठ हैं वहाँ पर उनके द्वारा प्रदत्त दहेज को प्राप्त करना चाहती हूँ । यह अर्थ होगा ।।९।।

**तत्र स्वसॄर्मे ननु भर्तृसंमिता मातृष्वसॄः क्लिन्नधियं च मातरम् ।**
**द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमना महर्षिभिरुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ।।१०।।**

**अन्वयः**— हे मृड तत्र ननु मे भर्तृसंमिता स्वसृः, मातृस्वसृः, क्लिनधियं मातरम् च चिरोत्कण्ठमना द्रक्ष्ये महर्षिभिः उन्नीयमानं अध्वरध्वजं च द्रक्ष्ये ।।१०।।

**अनुवाद**— हे शिव ! वहाँ अपने पतियों के अनुकूल मेरी बहनें, मेरी मौसी, स्नेह से आर्द्र चित्त वाली अपनी माता को भी मैं दीर्घकाल से उत्कण्ठित मन वाली देखूंगी और उस श्रेष्ठ यज्ञ को भी देखूंगी ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

स्वसॄर्भगिनीः । भर्तृभिः संमिताः सदृशीः । क्लिन्नधियं स्नेहार्द्रचित्ताम् । चिरमुत्कण्ठमुत्सुकं मनो यस्याः द्रक्ष्यामि । हे मृड, उन्नीयमानं प्रवर्त्यमानमध्वरेषु ध्वजमिव दृश्यं श्रेष्ठमध्वरम् । यद्वा । उत्क्षिप्यमाणं यज्ञे केतुं यूपं वा ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में सती देवी कह रही हैं कि वहाँ मुझे सदृश पतियों के साथ अपनी बहनों को देखने को मिलेगा। जो मेरी मौसियाँ आयेंगी उन सबों को मैं देखूंगी । दीर्घकाल से मेरा मन उत्कण्ठित है, ऐसी मैं स्नेह के कारण आर्द्रचित्त वाली अपनी माँ को देखूंगी इसके साथ ही यह जो यज्ञों में सबसे श्रेष्ठ यज्ञ है जिसको महर्षि गण कर रहे हैं उसको मैं देखूंगी अथवा यज्ञ की पताका या स्तम्भ को मैं देखूंगी ॥१०॥

**त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ।**
**तथाप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥११॥**

**अन्वयः**— हे अज ! एतद् आश्चर्यमयं गुणत्रयात्मकं विश्वम् आत्ममायया विनिर्मितम् त्वयिभाति । तथापि हे भव अहं योषित ते अतत्त्ववित् दीना च मे भवक्षितिं दिदृक्षे ॥११॥

**अनुवाद**— हे अजन्मा प्रभो ! यह आश्चर्यमय त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण जगत् आपकी माया से विनिर्मित होने के कारण आप में ही प्रतीत हो रहा है । अतएव आपको यह आश्चर्यमय नहीं प्रतीत होता है । किन्तु मैं तो स्त्री हूँ आपके तत्त्व को नहीं जानती हूँ । अतएव मैं अपनी जन्मभूमि को देखना चाहती हूँ ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

अहो किं तत्राश्चर्यं येन तवैतदौत्सुक्यमिति चेदत आह-त्वयीति । हे अज, एतद्विश्वमाश्चर्यरूपं त्वय्येव त्वन्मायया रचितं विभाति । अतो यद्यपि तव नाश्चर्यबुद्धिः, तथाप्यहं योषिदुत्सुकस्वभावा तव तत्त्वं न जानामि । अतो दीना कृपणा सती हे भव, मे भवक्षितिं जन्मभूमिं दिदृक्षे द्रष्टुमिच्छामि ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि वहाँ पर कौन सा आश्चर्य है जिससे कि तुम्हारी इतनी उत्सुकता है ? तो इस पर सती देवी कहती हैं— हे अजन्मा शिवजी ! यह सम्पूर्ण विश्व आश्चर्यमय है । यह आपकी ही माया के द्वारा रचित होने के कारण आप में ही प्रतीत हो रहा है । इसीलिए यह आपको आश्चर्य रूप से नहीं प्रतीत होता है । फिर भी मैं तो स्त्री हूँ । उत्सुक होना मेरा स्वभाव है । मैं आपके तत्त्व को नहीं जानती हूँ । अतएव मैं दीन हूँ । हे शिव! मैं अपनी जन्मभूमि का दर्शन करना चाहती हूँ ॥११॥

**पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितोऽप्यलंकृताः कान्तसखा वरूथशः ।**
**यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं नभो विमानैः कलहंसपाण्डुभिः ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे अभव ! कान्तसखा, वरूथशः अन्ययेषितः अपि अलंकृताः प्रयान्तीः पश्य । हे शितिकण्ठ यासां व्रजद्भिः कलहंस पाण्डुभिः विमानैः नभ मण्डितम् ॥१२॥

**अनुवाद**— हे अजन्मा नीलकण्ठ जिनका दक्ष से कोई भी सम्बन्ध नहीं हैं । ऐसी इन बहुत सी स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ अलंकृत होकर जा रही हैं । उन सबों के राजहंस के समान श्वेत विमानों से आकाश अलंकृत सा दिखायी दे रहा है । इसे आप देखें ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

दिदृक्षामेव कैमुत्यन्यायेन व्यनक्ति-पश्येति द्वाभ्याम् । हे अभवेति । सुहृद्वियोगदुःखं त्वया नास्वादितमिति भावः । अन्या योषितः संबन्धरहिता अपि प्रयान्तीः पश्य । कान्तसखा भर्तृसहिताः । वरूथशः सङ्घशः । कथंभूताः । यासां विमानैर्नभो मण्डितं ताः । हे शितिकण्ठ नीलकण्ठेति परानुग्रहाय त्वया विषमपि भक्षितमिति सूचयति ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

प्रक्रान्त यज्ञ को देखने की अपनी इच्छा को ही सूचित करती हुयी सती देवी **पश्य० इत्यादि** दो श्लोकों से कहती हैं । हे अभव ! आप अपने सुहृदों के वियोग जन्य दुःख नहीं सहे हैं अतएव आप अभव हैं । देखिये जिन स्त्रियों का दक्ष से कोई भी सम्बन्ध नहीं है वे भी स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ उस यज्ञ को देखने के लिए झूण्ड के झूण्ड जा रही हैं । उन सबों के विमानों से आकाश भी अलंकृत हो गया है । आप नील कण्ठ हैं, अर्थात् दूसरों पर कृपा करने के लिए आपने विष को भी खा गये ।।१२।।

**कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ।**
**अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ।।१३।।**

**अन्वयः**— हे सुखर्य ! पितृगृह कौतुकं निशम्य सुतायाः देहः कथं न इङ्गते सौहृदं भर्तुः गुरो; देहकृतश्च केतनम् अनाहुआ अपि अभियन्ति ।।१३।।

**अनुवाद**— अतएव हे देव श्रेष्ठः पिता के घर में होने वाले उत्सव को सुनकर पुत्री का शरीर उसको देखने के लिए क्यों नहीं छटपटायेगा । सुहृदों, पति, गुरु तथा पिता के घर तो बिना बुलाये भी लोग जाते हैं ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

तदा हे सुरश्रेष्ठ, पितृगेहोत्सवं निशम्य सुताया देहः कथं नेङ्गते द्रष्टुं न प्रचलति । तथाप्यनाहुताः सन्तः कथं गच्छामस्तत्राह। सौहृदं सुहृत्संबन्धि केतनं गृहं तथा भर्त्रादीनां च गृहमनाहूतां अप्यभियन्ति सन्तः । ह्रस्वत्वमार्षम् ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

हे देवताओं में श्रेष्ठ ! पिता के घर में होने वाले उत्सव को सुनकर उसको देखने के लिए पुत्री का शरीर क्यों नही छटपटायेगा । यदि आप यह कहें कि हमलोगों को तो किसी ने बुलाया ही नहीं है अतएव हम वहाँ कैसे चलें । तो इसके उत्तर में सती देवी ने कहा अपने मित्रों के घर में पति, गुरु तथा पिता के घर में तो सज्जन पुरुष बिना बुलाये भी जाते हैं । अभियन्ति के यन्ति में आर्ष प्रयोग के कारण ह्रस्व हैं ।।१३।।

**तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वाञ्छित कर्तुं भवान्कारुणिके बतार्हति ।**
**त्वयात्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपिता माऽनुगृहाण याचितः ।।१४।।**

**अन्वयः**— हे अमर्त्य प्रसीद तन्मे वाञ्छितं कर्तुं अर्हति । भवान् बत कारुणिकः अदभ्रचक्षुषा त्वया आत्मनः अर्धे अहं निरूपिता अतः याचितः मा अनुगृहाण ।।१४।।

**अनुवाद**— हे देव ! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये, आप मेरी इस इच्छा को अवश्य पूरा करें । निश्चित रूप से आप करुणा करने वाले हैं, इसीलिए परमज्ञानी होने पर भी आपने मुझे अपने आधे शरीर में स्थान दिया है। आप मेरी इस याचना को स्वीकार करके मुझे अनुगृहीत करें ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

हे अमर्त्य, तत्तस्मात्प्रसीद । इदं मे वाञ्छितं कर्तुं भवानर्हति । कारुणिकत्वमेवाह । अदभ्रचक्षुषाऽनल्पज्ञानेनापि त्वयात्मनो देहस्यार्धेऽहं निरूपिता धृता । यतोऽर्धनारीश्वर इति ख्यातोऽसि, अतो मामनुग्रहाण । याचितः सन् ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

हे देव ! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये । आप मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण करें । आप कारुणिक हैं । शङ्करजी की कारुणिकता को ही बतलाती हुयी सती देवी कहती हैं आप महाज्ञानी हैं फिर भी आपने मुझे अपने आधे शरीर में स्थान प्रदान किया है । इसीलिए तो आप अर्धनारीश्वर कहलाते हैं । अतएव आप मुझे अनुगृहीत करें । यह मेरी आपसे प्रार्थना है ।।१४।।

ऋषिरुवाच

**एवं गिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन्सुहृत्प्रियः ।**
**संस्मारितो मर्मभिदः कुवागिषून्यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ।।१५।।**

**अन्वयः**— एवं प्रियया अभिभाषितः सुहृत्प्रियः गिरित्रः मर्मभिदः कुवागिषून् संस्मारितः यान् विश्व सृजांसमक्षतः कः आह प्रहसन् अभ्यधत्त ।।१५।।

**ऋषि ने कहा**

**अनुवाद**— अपनी प्रियतमा सती के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर अपने सुहृदों के प्रिय शङ्करजी को उन मर्मभेदी वाणी रूपी बाणों की याद आ गयी जिन बातों को दक्ष प्रजापति ने सभी प्रजापतियों के सामने कहा था, और वे हँसते हुए कहने लगे ।।१५।।

**भावार्थ दीपिका**

अभिभाषितो याचितः । को दक्षो यानाह । मर्म भिन्दन्ति ये तान्कुवागिषून्दुरुक्तिबाणान्संस्मारितः ।।१५।।

**भाव प्रकाशिका**

अभिभावित: पद का अर्थ याचना किए हुए । सती देवी ने जो शङ्करजी से उपर्युक्त प्रार्थना की थी उसको सुनकर शङ्करजी को उन मर्मभेदी बाणों के समान तीखी बातों की याद आ गयी जिन बातों को ब्रह्म सभा में दक्ष ने सभी प्रजापतियों के सामने कहा था । उसके पश्चात् वे सती देवी से हँसकर कहने लगे ।।१५।।

श्रीभगवानुवाच

**त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ।**
**ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ।।१६।।**

**अन्वयः**— हे शोभने त्वया शोभनमेव उदितं यत् बन्धुष अनाहुता अपि अभियन्ति ते यदि बलीयसा अनात्म्यमदेन मन्युना अनुत्पादितदोषदृष्टयः ।।१५।।

**श्रीभगवान् शङ्कर ने कहा**

**अनुवाद**— हे सुन्दरि ! तुमने यह जो कहा है कि अपने बान्धवों के घर तो लोग बिना बुलाये भी जाते हैं यह तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है, किन्तु ऐसा तब ही किया जा सकता है जब कि वे बान्धव अपने प्रबल देहाभिमान के कारण उत्पन्न मद और क्रोध के कारण द्वेष रूपी दोष वाली दृष्टि से युक्त न हों ।।१६।।

**भावार्थ दीपिका**

नाहुता अपीति त्वया यदुदितमुक्तं तच्छोभनमेव किंत्वनात्म्यं देहादावहंकारस्तत्कृतेन मदेन मन्युना च ते बन्धवो यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो भवन्ति तर्हि । न उत्पादिते आरोपिते दोषे दृष्टिर्येषां ते ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

तुमने यह जो कहा है कि बिना बुलाये भी बान्धवों के घर जाना चाहिए, यह बहुत सुन्दर बात है, लेकिन यह तब ही उचित होता है, जबकि देहादि में आत्मा की बुद्धि होने से उत्पन्न अहङ्कार के कारण बान्धवों में दोष दृष्टि न हो तब ही । उनुत्पादित दोष दृष्टि का विग्रह है **न उत्पादिते दोषे दृष्टिर्येष ते** ।।१६।।

**विद्यातपोवित्तवपुर्वयः कुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।**
**स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ।।१७।।**

**अन्वयः**— विद्यातपोवित्तवपुर्वयः कुलैः सतां षड्भिः गुणैः असत्तमेतरैः स्मृतौ हतायां भृतमान दुर्दशः स्तब्धाः भूयसाम् हि धाम न पश्यन्ति ।।१७।।

**अनुवाद**— विद्या, तपस्या, धन, सुदृढ़ शरीर, युवावस्था और उच्चकुल सत् पुरुषों के ये छहो गुण हैं, किन्तु नीच पुरुषों में सभी दोष बन जाते हैं क्योंकि इन सबों के कारण उनकी बुद्धि मारी जाती है, अभिमान से युक्त उन पुरुषों की दृष्टि दोषमयी हो जाती है । इन सबों के कारण उनका अभिमान इतना बढ़ जाता है कि वे महापुरुषों के प्रभाव को देख ही नहीं पाते हैं ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

ननु विद्यादिगुणयुक्तो दक्षस्त्वादृशेषु महत्सु कथं दोषदृष्टिर्भवेत्तत्राह । विद्यादिभिरेव स्मृतौ हतायां विवेकज्ञाने नष्टे सति भूयसां महत्तमानां धाम तेजो न पश्यन्ति हि । ननु गुणैः कथं विवेकनाशस्तत्राह । सतां गुणैर्विवेकहेतुभिरप्यसत्तमानामितरैर्दोषभूतैः। अतएव तैर्भृतो धृतः पुष्टो वाहं विद्वांस्तापस इत्यादिर्मानो गर्वस्तेन दुष्टा दृष्टिर्येषां ते ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि दक्ष तो विद्या इत्यादि गुणों से युक्त है, आप जैसे महापुरुषों के प्रति उनकी दोष दृष्टि कैसे हो सकती है ? तो इसका उत्तर है कि विद्या इत्यादि के ही कारण जब नीच पुरुषों की बुद्धि मारी जाती है तो महापुरुषों के प्रभाव को नहीं देख पाते हैं । यदि कहें कि गुणों के द्वारा विवेक का नाश कैसे हो सकता है, तो इसका उत्तर है कि जिन गुणों के कारण सत्पुरुषों का विवेक बढ़ता है, वे ही गुण नीच पुरुषों के लिए दोष बन जाते हैं । अतएव उन विद्या इत्यादि गुणों के द्वारा उनका अहङ्कार पुष्ट हो जाता है । वे सोचते हैं मैं विद्वान् हूँ, तपस्वी हूँ । इस प्रकार का उनको गर्व हो जाता है उसी के कारण उनकी दृष्टि भी दूषित हो जाती हैं ।।१७।।

**नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान्प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ।**
**येऽभ्यागतान्वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ।।१८।।**

**अन्वयः**— एतादृशानाम् अनवस्थितात्मनाम् स्वजनव्यपेक्षया गृहान् प्रति न इयात् । ये आरोपित भ्रूभिः अमर्षणा क्षिभिः अभ्यागतान् वक्रधिया अभिचक्षते ।।१८।।

**अनुवाद**— इस प्रकार के अव्यवस्थित चित्त वाले लोगों के घर ये हमारे बान्धव हैं, यह सोचकर नहीं जाना चाहिए, क्योंकि ऐसे लोग आये हुए पुरुषों को भौहें चढ़ाकर रोषभरी दृष्टि से देखते हैं ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

स्वजनव्यपेक्षया बन्धुदृष्ट्या । गृहान्न प्रतीयान्नावलोकयेत् । अनवस्थितचित्तत्वमेवाह । ये वक्रधिया कुटिलया बुद्ध्या पश्यन्ति । आरोपिता उत्तम्भिता भ्रूर्येषु तान्यारोपितभ्रूणि तैः । आरोपिताभिर्भ्रूरिति वा । अमर्षणैः सक्रोधैरक्षिभिः ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

ऐसे अव्यवस्थित चित्त वाले लोगों के घर कभी भी बन्धु की दृष्टि से नहीं जाना चाहिए । क्योंकि ऐसे लोग आये हुए अपने बान्धवों को भी कुटिल बुद्धि से देखते हैं । वे अपनी भौहें चढ़ाकर क्रोधभरी दृष्टि से देखते हैं ।।१८।।

**तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ।**
**स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥१९॥**

**अन्वयः**— अरिभिः शिलीमुखैः तथा न व्यथते यथा वक्रधियां स्वानां दुरुक्तिभिः अर्दिता दूयता हृदये शेते मर्मताडितः दिवानिशं तप्यति ॥१९॥

**अनुवाद**— देवि ! शत्रुओं के बाणों से उतनी पीड़ा नहीं होती है जितना कुटिल बुद्धि वाले स्वजनों की दुरुक्तियों से होती है । कटे-पिटे अङ्गों वाले व्यक्ति को तो किसी तरह नींद आ भी जाती हैं किन्तु दुरुक्तियों से विधेमर्मस्थल वाला पुरुष रात दिन संतप्त ही होता रहता हैं ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु स्वजनानां गृहं सुहृद्भिर्गन्तव्यं तेषां दुश्चेष्टितं च सोढव्यम्, न, तस्य दुःसहत्वादित्याह-तथेति । अरिभिः शिलीमुखैर्बाणैरर्दिताङ्गः खण्डितगात्रोऽपि तथा न व्यथते । यतः शेते स्वपिति । स्वानां दुरुक्तिभिर्मर्मसु ताडितो यथा दूयता व्यथमानेन हृदा दिवानिशं तप्यति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न है कि अपने बान्धवों के घर जाना चाहिये किन्तु उनकी दुश्चेष्टाओं को नहीं सहना चाहिए क्योंकि उसको वर्दास्त करना कठिन होता है इस बात को शङ्करजी **तथारिभिः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं शत्रुओं के बाणों से जिसके अङ्ग कट जाते हैं उस व्यक्ति को भी उतनी पीड़ा नहीं होती है, क्योंकि वह भी किसी प्रकार सो ही जाता है । किन्तु अपने लोगों की दुरुक्तियों से जिनका मर्मस्थल विद्ध हो जाता है, उसके कारण व्यथित हृदय वाला व्यक्ति तो रात-दिन संतप्त ही होता रहता है ॥१९॥

**व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानामसि सुभ्रु संमता ।**
**अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥२०॥**

**अन्वयः**— हे सुभ्रु त्वं उत्कृष्ट गतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानां सम्मता असि इति व्यक्तं अथापि मदाश्रयात् पितुः मानं न प्रपत्स्यसे यतः कः परितप्यते ॥२०॥

**अनुवाद**— हे सुन्दरि ! तुम उत्कृष्टता प्राप्त दक्ष प्रजापति की पुत्रियों में उनको सबसे प्रिय हो यह निश्चित है, किन्तु तुम्हारा मुझसे सम्बन्ध है, अतएव तुम अपने पिता से सम्मान नहीं प्राप्त कर पाओगीं, क्योंकि दक्ष मुझसे जलते हैं ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

मयि तत्र गतायां नेयं शङ्केति चेत्तत्राह । व्यक्तं निश्चितमुत्कृष्टा गतिः स्थितिर्यस्य तस्यात्मजानां कन्यानां मध्ये त्वं प्रियेति मे संमतासि, अथापि पितुः सकाशान्मानं न लप्स्यसे । मदाश्रयान्मत्संबन्धात् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि यह कहो कि मेरे जाने पर तो इस प्रकार की कोई भी शङ्का नहीं हो सकती है, तो इस पर शङ्करजी ने कहा निश्चित रूप से तुम उत्कृष्टता प्राप्त दक्ष प्रजापति की कन्याओं में उनको सबसे प्रिय हो, यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ, फिर भी तुम अपने पिता से सम्मान नहीं प्राप्त कर पाओगी, क्योंकि तुम्हारा मुझसे सम्बन्ध हैं ॥२०॥

**पापच्यमानेन हृदातुरेन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ।**
**अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा पदं परं द्वेष्टि यथाऽसुरा हरिम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— पुरुषबुद्धिसाक्षिणाम् समृद्धिभिः पापच्यमानेन हृदा आतुरेन्द्रियः अञ्जसा एषां पदमधिरोढुम् अकल्पः परम्, असुरा हरिम् यथा द्वेष्टि ॥२१॥

**अनुवाद**— जीव की चित्त वृत्ति के साक्षी अहङ्कार शून्य महापुरुषों की समृद्धि को देखकर जिसके हृदय में सन्ताप और इन्द्रियों में व्यथा होती है, वह पुरुष उनके पद को तो आसानी से नहीं प्राप्त कर सकता है, किन्तु वह उनसे उसी तरह से द्वेष किया करता है, जिस तरह से असुरगण श्रीहरि से द्वेष किया करते हैं ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु भगवंस्त्वया किमिति दक्षस्तिरस्कृतो यतोऽसौ त्वां द्वेष्टयत आह । पापच्यमानेनालं दह्यमानेन हृदा मनसा दुःखितेन्द्रियः काभिः, पूरुषो जीवस्तस्य बुद्धिश्चित्तं तत्साक्षिणां निरहंकाराणामित्यर्थः । समृद्धिभिः पुण्यकीर्त्यादिभिः । एषां पदं स्थानमैश्वर्यं प्राप्तुमकल्पोऽशक्तः सन्परं द्वेष्टि । असुरा यथा हरिं केवलं द्विषन्ति ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

हे भगवन् ! आपने कभी दक्ष का तिरस्कार किया है क्योंकि उसके कारण वे आप से द्वेष करते हैं, इस पर शङ्करजी ने कहा जीव की बुद्धि और चित्तवृत्ति के साक्षी अहङ्कार रहित महापुरुषों की पुण्य कीर्ति आदि से संतप्त रहने वाले जिस पुरुष की इन्द्रियों में व्यथा होती है, वह उन महापुरुषों के ऐश्वर्य को प्राप्त करने में तो असमर्थ ही होता है, किन्तु वह उन महापुरुषों से उसी तरह से द्वेष करता है जिस तरह असुरगण केवल श्रीहरि से द्वेष करते हैं ॥२१॥

**प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ।**
**प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने ॥२२॥**

**अन्वयः**— सुमध्यमे प्रयुद्गम प्रश्रयणाभिवादनं मिथः साधु विधीयते, प्राज्ञै गुहाशयायैव परस्मै पुरुषाय एव चेतसा विधीयते देहमानिने न ॥२२॥

**अनुवाद**— हे सुमध्यमें सम्मुख जाना, नम्रता दिखाना और प्रणाम करना ये सब लोक व्यवहार में जो परस्पर में किए जाते हैं उन सबों को प्राज्ञ पुरुष बहुत अच्छी तरह से करते हैं, किन्तु वे इन सब व्यवहारों को हृदय गुफा में निवास करने वाले परम पुरुष परमात्मा को ही हृदय से किया करते हैं किसी देहाभिमानी के नहीं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु त्वया प्रत्युत्थानविनयाद्यकरणादवज्ञात एवासौ तत्राह । हे सुमध्यमे, प्रत्युद्गमादिकं मिथो जनैर्यद्विधीयते तत्प्राज्ञैः साधु विधीयते । साधुत्वमेवाह । परस्मै श्रीवासुदेवाय । गुहाशयायान्तर्यामिण एवं । तच्च चेतसैव । परिपूर्णे तस्मिन्कायिकव्यापारायोगात् । अतोऽन्तर्यामिदृष्ट्या मनसा सर्वं कृतमिति भावः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि तुम कहो कि आप उनको देखकर न तो खड़े हुए और न नम्रता प्रदर्शित किए इसीलिए उनका अपमान हुआ, उसी के कारण वे आपसे द्वेष करते हैं । इस पर शङ्करजी ने कहा सुमध्यमें लोक में लोग जो परस्पर में सामने जाना और नम्रता दिखाना आदि करते है, उसको प्राज्ञ पुरुष अच्छी तरह से करते हैं किन्तु वे यह सबकुछ अन्तर्यामी परंपुरुष परमात्मा के ही लिए यह सबकुछ करते हैं किसी देहाभिमानी को नहीं करते हैं ॥२२॥

**सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।**
**सत्त्वे च तस्मिन्भगवान्वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ॥२३॥**

**अन्वयः**— विशुद्धं सत्त्वं वसुदेवशब्दितं यत् तत्र अपावृतः पुमान ईयते । तस्मिन् सत्त्वेच भगवान् वासुदेवः मे मनसा विधीयते ॥२३॥

**अनुवाद**— विशुद्ध अन्तःकरण का ही नाम वसुदेव है, क्योंकि उस अन्तःकरण में निरावृत परम पुरुष भगवान् का निवास होता है । उस शुद्ध अन्तःकरण में ही मैं अधोक्षज भगवान् वासुदेव को नमस्कार करता हूँ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

किंच न केवलमभ्यागतेष्वेव वासुदेवदृष्ट्या नमनं क्रियते किंतु नित्यमेव मनसि वासुदेवश्चिन्त्यत इत्याह । विशुद्धं सत्त्वमन्तःकरणं सत्त्वगुणो वा वसुदेवशब्दितं वसुदेवशब्देनोक्तम् । कुतः यद्यस्मात्तत्र सत्त्वे पुमान्वासुदेव ईयते प्रकाशते । अपगतमावृतमावरणं यस्मात्सः । अयमर्थः-वसुदेवे भवति प्रतीयत इति हि वासुदेवः परमेश्वरः प्रसिद्धः, स च विशुद्धे सत्त्वे प्रतीयते । अतः प्रत्ययार्थेन प्रसिद्धेन प्रकृत्यर्थो निर्धार्यते । ततश्च वासयति देवमिति व्युत्पत्त्या वसत्यस्मिन्निति वा वसुः । देवो दीव्यति द्योतत इति वा । वसुभिः पुण्यैर्दीव्यति प्रकाशत इति वा वसुदेवशब्दवाच्यं शुद्धं सत्त्वम् । ततः किमत आह । सत्त्वे च तस्मिन्मे मया नमसा नमस्कारेणानुविधीयते सेव्यत इत्यर्थः । मनसेति पाठे मनसा विशेषेण धीयते धार्यते चिन्त्यत इत्यर्थः। यतोऽधो भूतेषु प्रत्याहृतेष्वक्षेषु जायते प्रकाशते । इन्द्रियागोचर इत्यर्थः ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

केवल अभ्यागतों को ही मैं वासुदेव की दृष्टि से नमस्कार करता होऊँ ऐसी बात नहीं है, अपितु मैं नित्य ही अपने मन में भगवान् वासुदेव का चिन्तन करता हूँ । विशुद्ध अन्तःकरण अथवा विशुद्ध सत्त्वगुण का ही नाम वसुदेव है क्योंकि विशुद्ध अन्तःकरण में ही भगवान् वासुदेव प्रकाशित होते हैं । उस समय वे माया के आवरण से रहित होते हैं । कहने का अभिप्राय है कि जो वसुदेव में प्रतीत होता है, उसे ही वासुदेव कहते हैं। वे ही भवान् वासुदेव परमेश्वर रूप से प्रतीत होते हैं । वे भगवान् विशुद्ध सत्त्व अन्तःकरण में ही प्रतीत होते हैं । अतएव प्रसिद्ध प्रत्ययार्थ के द्वारा प्रकृत्यर्थ का निर्धारण होता है । अतएव जो अपने में देवता को वसाये अथवा जिसमें देव का निवास हो उसे वसुदेव कहते हैं । जो प्रकाशित हो उसको देव कहते हैं । अथवा जो पुण्यों के द्वारा प्रकाशित होता है वह वसुदेव शब्द वाच्य शुद्ध सत्त्व है । उससे क्या हुआ ? तो इस पर कहते हैं । उस शुद्ध अन्तःकरण में ही मैं नमस्कार के द्वारा भगवान् वासुदेव की सेवा करता हूँ । मनसा पाठ होने पर अर्थ होगा कि जिनका मन से चिन्तन किया जाता हैं । क्योंकि प्रत्याहत इन्द्रियों से वे प्रकाशित होते हैं । अर्थात् वे भगवान् इन्द्रियों के विषय नहीं है ।।२३।।

**तत्ते निरीक्ष्यो न पितापि देहकृद्दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च ये ।**
**यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ।।२४।।**

**अन्वयः**— हे वरोरु । यः विश्वसृग्यज्ञगतं अनागसं मां दुर्वचसातिरः अकरोत् तत् ते देहकृत् पिताअपिदक्षः ये चतदनुव्रताः ते निरीक्ष्यो न ।।२४।।

**अनुवाद**— हे सुन्दरि ! जिसने प्रजापतियों के यज्ञ में गये हुए निरपराध मेरा अपनी दुरुक्तियों से तिरस्कृत किया वह यद्यपि तुम्हें जन्म देने वाले पिता दक्ष है, उनको तथा उनके अनुयायियों को तुम्हें देखना भी नहीं चाहिए ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात्त्वया न निरीक्ष्यः । देहकृदपीति पोषकत्वादिभिरौपचारिकपितृत्वव्यावृत्त्यर्थम् । द्विट् शत्रुः । तदेवाह । हे वरोरु, यो दक्षो विश्वसृजां यज्ञगतं मां निरपराधं तिरोऽकरोत्तिरस्कृतवान् ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

शङ्करजी ने कहा कि हे सुन्दरि ! जिस दक्ष ने प्रजापतियों के यज्ञ में गये हुए निरपराध मेरा तिरस्कार किया, वे यद्यपि तुम्हारे पिता हैं फिर भी उनको देखने का विचार छोड़ देना चाहिए ।।२४।।

**यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ।**
**संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ।।२५।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

**अन्वयः**— यदि मद्वचः अतिहाय व्रजिष्यसि ततः भवत्याः भद्रं न भविष्यति संभावितस्य यदा स्वजनात् पराभव स सद्यः मरणाय कल्पते ।।२५।।

**अनुवाद**— यदि तुम मेरी बात नहीं मानकर वहाँ जाओगी तो वह तुम्हारे लिए अच्छा नहीं होगा क्योंकि जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का अपने लोगों से अपमान होता है वह उनके तत्काल मृत्यु का कारण बन जाता है ।।२५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के उमारुद्रसंवाद के अन्तर्गत तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।**

### भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषमाह-यदीति । मद्वचोऽतिहायातिक्रम्य । यतः संभावितस्य सुप्रतिष्ठितस्य यदा पराभवो भवति तदा स पराभवस्तस्य मरणाय कल्पते ।।२५।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।**

### भाव प्रकाशिका

यदि तुम मेरी बात न मानो तो होने वाले दोष को शङ्करजी ने यदि इत्यादि श्लोक से कहा । यदि मेरी बातों को नहीं मानकर तुम जाती हो तो यह तुम्हारे लिए कल्याणकारी नहीं होगा, क्योंकि किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का जब अपने आत्मीय जनों से ही अपमान होता है तो वह उसके सद्यः मृत्यु का कारण बन जाता है ।।२५।।

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के तृतीय अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।३।।**

## चौथा अध्याय

### सती देवी का योगाग्नि में प्रवेश

मैत्रेय उवाच

**एतावदुक्त्वा विरराम शङ्करः पत्न्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन् ।**
**सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥१॥**

**अन्वयः**— एतावदुक्त्वा शङ्करः उभयत्र पत्न्यङ्गनाशं चिन्तयन् विरराम । सुहृद् दिदृक्षुः निष्क्रामती भवात् परिशाङ्किता निर्विशती च सा द्विधा आस ॥१॥

**अनुवाद**— इतना ही कहकर भगवान् शङ्कर जाने से रोकने तथा जाने देने दोनों ही स्थितियों में अपनी पत्नी की मृत्यु का विचार करते हुए चुप हो गये और सतीजी भी अपने सुहृदों को देखने की इच्छा से कभी घर से बाहर निकलती थीं और फिर शङ्करजी कही रुष्ट न हो जायँ इस भय से पुनः घर में प्रवेश कर जाती थीं । इस तरह से द्विविधा की स्थिति में पड़ गयीं ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

चतुर्थे तु पतिं हित्वा गता पित्रावमानिता । रुषा निर्भर्त्स्य तं यज्ञे जहौ देहमितीर्यते ।।१।। उभयत्रानुज्ञाने बलान्निवारणे च । सुहृदिदक्षुर्निष्क्रामन्ती भवात्परिशङ्किता पुनर्निर्विशन्ती च तदा सा सती द्विधा आस बभूव । न गता न च स्थिता आन्दोलावद्गतिरभवत्।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

चौथे अध्याय में तो अपने पति शिवजी की परित्याग करके गयी हुयी सती अपने पिता के द्वारा अपमानित होकर क्रोध पूर्वक अपने पिता की निन्दा की और यज्ञ में ही अपने शरीर का परित्याग कर दी, इसी घटना का वर्णन किया गया है ।

उभयत्र का अर्थ है कि सती को अपने पिता के घर जाने की आज्ञा देने और बल पूर्वक उनको नहीं जाने देने दोनों ही स्थिति में सती की भावित मृत्यु को सोचकर शङ्करजी चुप हो गये । सती भी अपने बान्धवों को देखने की इच्छा से कभी घर से निकलती और फिर शङ्करजी के रुष्ट हो जाने के भय से गृह में प्रवेश कर जाती थीं । इस तरह उनकी गति दोनों प्रकार की हो गयी । वे न तो जा सकीं और न रुक ही सकी । उनकी स्थिति आगे पीछे जाने वाले झूले के समान हो गयी ।।१।।

**सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहादुदत्यश्रुकलाऽतिविह्वला ।**
**भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ।।२।।**

**अन्वयः**— सुहृद्दिदृक्षा प्रतिधात दुर्मनाः स्नेहाद्रुदत्यत्यश्रुकलातिविह्वला, जातवेपथुः भवानी अप्रतिपूरुषं भवं रुषा प्रधक्ष्यतीव ऐक्षत ।।२।।

**अनुवाद**— अपने बान्धवों को देखने की इच्छा में बाधा होने से सती अत्यन्त उदास हो गयीं, स्वजनों के प्रति स्नेह होने के कारण वे रोने लगीं, उनकी आँखों में आँसू भर गया और वे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं । उनका शरीर काँपने लगा, इस प्रकार की सती देवी ने अप्रतिम पुरुष शङ्करजी को क्रोध पूर्वक ऐसे देखने लगीं जैसे वे उनको जला देना चाहती हों ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

सुहृदां दिदृक्षायाः प्रतिघातेन दुर्मनाः । अश्रूणां कलाभिर्लेशैरतिविह्वला व्याकुला । अप्रतिपूरुषं स्वसमानपुरुषान्तररहितम्। प्रधक्ष्यतीव भस्मीकरिष्यतीव रुषा जातो वेपथुः कम्पो यस्याः ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने बान्धवों को देखने की इच्छा में बाधा पड़ने के कारण वे दुःखी हो गयीं । आँखों में आँसू भर जाने के कारण अत्यन्त व्याकुल हो गयीं । उनका शरीर काँप रहा था । क्रोध के कारण अप्रतिम पुरुष भगवान् शिव को ऐसे देख रही थीं जैसे वे उनको जला देना चाहती हों ।।२।।

**ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ।**
**पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्प्रेम्णात्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ।।३।।**

**अन्वयः**— शोकेन रोषेण च दूयता हृदा स्त्रैणविमूढ धी, यः सतांप्रियः प्रेम्णा आत्मनोऽर्धमदात् तं विहाय सती विनिःश्वस्य पित्रोरगात् ।।३।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् शोक तथा क्रोध ने जिनके चित्त को व्याकुल बना दिया था अतएव वे दुःखी थी, स्त्री का स्वभाव होने के कारण उनकी बुद्धि मारी गयी थी, जो सज्जनों के प्रिय भगवान् शिव प्रेमातिशय्य

के कारण उनको अपना आधा शरीर प्रदान कर दिये थे, उन शङ्करजी को छोड़कर लम्बी श्वास लेती हुयी सती देवी अपने मातापिता के घर चल दीं ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

ततस्तं विहाय पित्रोर्गृहानगात् । कथंभूतम् । यः प्रीत्या तस्यै आत्मनो देहस्यार्धमदात् । त्यागे हेतुः-स्त्रैणं स्त्रीस्वभावस्तेन विमूढा धीर्यस्याः ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

जिन भगवान् शङ्कर ने प्रेमातिरेक के कारण उनको अपना आधा शरीर प्रदान कर दिया था उन शङ्करजी को छोड़कर सती देवी अपने माता-पिता के घर चल दीं । शङ्करजी को त्यागने का कारण यह था कि स्त्री का स्वभाव होने के कारण उनकी बुद्धि मारी गयी थीं ।।३।।

**तामन्वगच्छन्द्रुतविक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ।**
**सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः पुरो वृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ।।४।।**

**अन्वयः**— द्रुत विक्रमाम् ताम् एकां सतीं सहस्रशः त्रिनेत्रानुचरा; मणिमन् मदादयः सपार्षदयक्षाः तरसा पुरोवृषेन्द्राः गतव्यथाः ताम् अन्वगच्छन् ।।४।।

**अनुवाद**— बड़ी तेजी से अकेली जाती हुई सती देवी को देखकर शङ्करजी के मणिमान मद इत्यादि हजारो अनुचर शिवजी के वाहन वृषभराज को आगे करके अनेक पार्षदों और यक्षों को लेकर बड़ी तेजी से उनके पीछे निर्भयता पूर्वक हो लिए ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

द्रुतविक्रमां शीघ्रं गच्छतीम् । सह पार्षदैर्यक्षैश्च वर्तमानाः । मणिमान्मदश्चादिर्येषां ते । पुरः पुरतो वृषेन्द्रो येषां ते गतव्यथा निर्भयाः । रुद्रातिक्रमेण तस्यागमनादागतव्यथा इति वा ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

बड़ी तेजी से अकेली जाती हुयी सती को देखकर शङ्करजी के मणिमान् मद इत्यादि हजारो अनुचर शङ्करजी के बाहन वृषभराज को आगे करके हजारों पार्षदों और यक्षों को साथ लेकर निर्भयता पूर्वक उनके पीछे हो लिए। अथवा शङ्करजी की आज्ञा को मानकर उनको छोड़कर सती देवी के जाने के कारण जो दु:खी हो गये थे वे शङ्करजी के अनुचर उनके साथ हो लिए ।।४।।

**तां सारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ।**
**गीतायनैर्दुन्दुभिशङ्खवेणुभिर्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किता ययुः ।।५।।**

**अन्वयः**— तां वृषेन्द्रमारोप्य सारिका कन्दुक दर्पणाम्बुज श्वेतातपत्र व्यजनस्रगादिभिः गीतायनैः दुन्दुभिशङ्खवेणुभिः विटङ्किताः ययुः ।।५।।

**अनुवाद**— सतीजी को उस वृषभ राज पर बैठाकर मैना पक्षी गेंद, दर्पण और कमल आदि क्रीडा की सामग्री श्वेत छत्र-चमर तथा माला आदि राजचिह्न दुन्दुभि शङ्ख तथा वांसुरी आदि गाने बजाने के समानों से सुशोभित होकर वे उनके साथ चल दिए ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

तां वृषेन्द्रमारोप्य सारिकादिभिः क्रीडोपकरणैः श्वेतातपत्रादिभिश्च महाराजविभूतिभिः सह विटङ्किताः शोभिताः ययुः । सारिका पठननिरूपिता पक्षिणी । गीतायनैर्गीताश्रयैः ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

सतीजी को उस वृषराज पर बैठाकर सारिका क्रीडा के साधनों श्वेत छत्र आदि महाराज की विभूतियों के साथ सुशोभित होकर गये । पढ़ने वाली पक्षी को सारिका कहते हैं । गीतायनैः गीत के साधन ।।५।।

**आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ।**
**मृद्दार्वयःकाञ्चनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ।।६।।**

**अन्वयः**— आब्रह्मघोषोर्जित यज्ञ वैशसं सर्वशः विप्रर्षिजुष्टं विबुधैः च मृद्दार्वयः काञ्चन दर्भचर्मभिः निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ।।६।।

**अनुवाद**— चारो तरफ होने वाले वेद ध्वनि के कारण यज्ञ में होने वाली हिंसा सुशोभित थी अथवा वेद घोष के कारण ब्राह्मणों में वेद मन्त्रों को बोलने की होड़ लगी थी । जिसमें सब जगह ब्रह्मर्षि और देवता विद्यमान थे । इधर-उधर मिट्टी, काष्ठ, लोहा तथा सुवर्ण के पात्र कुश मृगचर्म तथा पात्र पड़े थे ऐसी दक्ष की यज्ञशाला में गयीं ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

आसमन्ताद्यो वेदघोषस्तेनोर्जितं शोभमानं यज्ञसंबन्धि पशुविशसनं यस्मिन् । यद्वा तेनोर्जितमतिशयितं यज्ञवैशसं परस्परं स्पर्धा यस्मिन् । तद्यजनं यज्ञस्थानं समाविशद्देवी । विबुधैश्च जुष्टम् । मृदादिभिर्निसृष्टानि निर्मितानि भाण्डानि पात्राणि यस्मिन्।।६।।

### भाव प्रकाशिका

सतीजी दक्ष की उस यज्ञशाला में गयीं जिसमें वेद ध्वनि के साथ होने वाली यज्ञीय पशुओं की हिंसा सुशोभित हो रही थी अथवा वेद ध्वनि करने वाले ब्राह्मणों की परस्पर में होड़ लगी थी कि कौन उच्च स्वर से वेद पाठ करता है । उस यज्ञशाला में सर्वत्र ब्रह्मर्षि और देवता विद्यमान थे । और उसमे मिट्टी इत्यादि से बने पात्र पड़े थे । ऐसी दक्ष की यज्ञशाला में सती देवी गयीं ।।६।।

**तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ।**
**ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ।।७।।**

**अन्वयः**— यज्ञकृतो भयात् तत्र आगातां तां ऋते स्वसृः जननीं च विमानितां कश्चन जनः नाद्रियत् स्वसृः जननीं च सादरा प्रेमाश्रुकण्ठ्यः मुदा परिषस्वजुः ।।७।।

**अनुवाद**— यज्ञकर्ता दक्ष के भय से आयी हुयी सती देवी का किसी भी व्यक्ति ने समादर नहीं किया केवल उनकी माता और बहनें उनको देखकर प्रसन्न हुयीं उनको गद्गद होकर गले लगाया ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

कश्चन नाद्रियत् नादृतवान् यज्ञकृतो दक्षाद्यद्भयं तस्मात् । तत्र हेतुः- तेन विमानिताम् । स्वसॄर्जननीं च ऋते बिना । तास्तु सादराः परिषस्वजुरालिङ्गितवत्यः । प्रेमाश्रुभिर्निरुद्धः कण्ठो यासाम् ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

आयी हुयी सती देवी का किसी ने भी आदर नहीं किया क्योंकि सबों को दक्ष का भय था । अतएव वे दक्ष के द्वारा अपमानित हुयीं । केवल बहनों और माता ने आदर पूर्वक उनको गद्गद कण्ठ से गले लगाया ।।७।।

**सौदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ।**
**दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनन्दिता सती ॥८॥**

**अन्वयः**— सौदर्य सम्प्रश्न समर्थवार्तया मात्रा मातृस्वसृभिश्च सादरम् दतां सपर्यां वरम् आसनं सपर्यां च सा नादत्त॥८॥

**अनुवाद**— पिता के द्वारा अपमानित होने के कारण सतीजी ने, बहिनों के कुशल प्रश्नपूर्वक प्रेमपूर्ण वार्तालाप तथा माता एवं मौसियों के द्वारा सम्मानपूर्वक दिए हुए उपहार और सुन्दर आसन आदि को नहीं स्वीकार किया॥८॥

### भावार्थ दीपिका

अप्रतिनन्दिताऽनादृता सती नादत्त गृहीतवती । कथम् । सौदर्येण सोदरत्वेन भगिनीनां यः संप्रश्नस्तत्र समर्था योग्या या वार्ता तया सह । तां च नादत्त नाश्रृणोदित्यर्थः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

पिता के द्वारा अनादृत होने के कारण सतीजी ने अपनी माता और मौसियों के द्वारा दिए गये उपहार श्रेष्ठ आसन को नहीं स्वीकार किया । अपनी सहोदर बहनों के द्वारा किये गये कुशल प्रश्न तथा की गयी उचित वार्ता को भी उन्होंने नहीं सुना ॥८॥

**अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ।**
**अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यतीरुषा ॥९॥**

**अन्वयः**— यज्ञसदसि अनादृता अधीश्वरी तं अध्वरं अरुद्रभागम् पित्रा च विभौ देवे कृत हेलनं अवेक्ष्य रुषा लोकान् धक्ष्यती इव चुकोप ॥९॥

**अनुवाद**— यज्ञ मण्डप में पिता के द्वारा अनादृत लोकेश्वरी सतीजी ने देखा कि इस यज्ञ में रुद्र को भाग नहीं दिया गया और उसके पिता भगवान् शङ्कर का अत्यधिक अपमान कर रहे हैं, इतना क्रुद्ध हो गयी कि मानों वे सम्पूर्ण लोकों को जला देना चाहती हों ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

न विद्यते रुद्रस्य भागो यस्मिंस्तभ् । देवे रुद्रे कृतं हेलनमवज्ञामाह्वानाद्यकरणात् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

जिस यज्ञ में रुद्र को भाग नहीं दिया गया था, उस यज्ञ को देखकर तथा भगवान् शिव के प्रति किये गये अपमान को तथा उसमें उनको नहीं बुलाया गया था उसको भी देखकर सतीजी कुपित हो गयीं ॥९॥

**जगर्हसाऽमर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथ श्रमस्मयम् ।**
**स्वतेजसा भूतगणान्समुत्थितान्निगृह्य देवी जगतोऽभिश्रृण्वतः ॥१०॥**

**अन्वयः**— धूमपथ श्रमस्मयम् शिव द्विषं समुत्थितान् भूतगणान् स्वतेजसा निगृह्य देवी जगतः अभिश्रृण्वतः सामर्षविपन्नया गिरा जगर्ह ॥१०॥

**अनुवाद**— कर्मभाग में परिश्रम करने के कारण जिसका घमण्ड बढ़ गया था तथा शिवजी से द्वेष करने वाले दक्ष को जब सतीजी के साथ आये हुए भूतगण तैयार हो गये तो सतीजी ने उन सबों को अपने तेज से रोक दिया और क्रोध भरी अपनी लड़खड़ाती वाणी से उन्होंने दक्ष की निन्दा की ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

जगर्ह निन्दितवती । अमर्षेण कोपेन विपन्नाऽव्यक्ता तया । शिवं द्वेष्टीति शिवद्विट् तम् । धूमपथः कर्ममार्गस्तत्र श्रमोऽभ्यासस्तेन स्मयो गर्वो यस्य । दक्षवधाय समुत्थितान्स्वाज्ञया निगृह्य निवार्य ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

शिवजी की निन्दा करने वाले दक्ष को जानकर सती के साथ आये हुए भूत समूह जब दक्ष का वध कर देने के लिए उद्यत हो गये तो सतीजी ने उन सबों को अपनी आज्ञा से रोक दिया और क्रोध के कारण लड़खड़ाती हुयी वाणी से उन्होंने दक्ष की निन्दा की ॥१०॥

श्रीदेव्युवाच

**न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ।**
**तस्मिन्समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥**

**अन्वयः**— यस्य लोके अतिशायनः न अस्ति, देहभृतां प्रियात्मनः तथा प्रियः अप्रियः न तस्मिन् समस्तात्मनि मुक्तवैरके भवन्तं ऋते कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥

### श्रीदेवी ने कहा

**अनुवाद**— जिन भगवान् शङ्कर से संसार में कोई भी बड़ा नहीं है, वे सभी देहधारियों की प्रिय आत्मा हैं, उनका कोई भी प्रिय अथवा अप्रिय नहीं है, उनका किसी भी प्राणी से वैर नहीं है। वे सबों के कारण हैं, ऐसे भगवान् शिव से आपको छोड़कर दूसरा कौन वैर करेगा ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

निन्दामेवाह-न यस्येति त्रयोदशभिः। मुक्तवैरके त्वक्तविरोधे तस्मिन् शिवे भवन्तमृते बिना कतमः प्रतीपयेत्प्रतिकूलमाचरेत्। वैराभावे हेतवः-यस्य लोके अतिशायनोऽतिशयितो नास्ति। तथा प्रियश्चाप्रियश्च नास्ति। समासपाठेऽतिशयेन प्रियो नास्ति। देहभृतां प्रियोऽयमात्मा तस्य। समस्तस्यात्मनि कारणभूते समस्तरूप इति वा ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

सतीजी के द्वारा की जाने वाली निन्दा का ही वर्णन न यस्य इत्यादि तेरह श्लोकों में करते हैं। जिन्होंने विरोध करना ही त्याग दिया उन भगवान् शिव से आपको छोड़कर दूसरा कौन विरोध कर सकता है ? भगवान् शिव में वैर के अभाव का कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा क्योंकि संसार में शिवजी से बड़ा कोई नहीं है तथा उनका कोई न तो प्रिय है और न अप्रिय है। वे देहधारियों की आत्मा हैं तथा सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं, या सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं ॥११॥

**दोषान्परेषां हि गुणेषु साधवो गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशाद्विज ।**
**गुणांश्च फल्गून्बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे द्विज ! भवादृशा परेषा गुणेषु दोषान् एव गृह्णन्ति केचित् च परेषां फल्गून गुणान् बहुली करिष्णवः दोषान् न गृहणन्ति। ते महत्तमाः, भवान् तेषु अधमः अविदत् ॥१२॥

**अनुवाद**— हे द्विज ! आपके जैसे लोग दूसरों के गुणों में दोष का ही ग्रहण करते हैं, गुणों को नहीं, कुछ लोग तो दूसरों के छोटे से गुणों का बड़ा करने की इच्छा रखते हैं। ऐसे साधु पुरुष महान् हैं। आप तो ऐसे महापुरुषों पर दोषारोपण ही करते हैं ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

तस्य च प्रतिकूलकरणं द्वेधा। महत्तमद्रोहेण साक्षात्तद्द्रोहेण च। तत्र पुरुषाणां चातुर्विध्यं वदन्ती महत्तमद्रोहमाह-दोषानिति द्वाभ्याम्। हे द्विजेत्यधिक्षेपः। भवादृशास्त्वद्विधा असूयकाः परेषां गुणेषु दोषानेव गृह्णन्ति न तु गुणान्। केचिन्मध्यस्था

गुणेषु दोषान्न गृह्णन्ति किंतु यथास्थितान्गुणदोषान्विवेकेन गृह्णन्ति ते तु महान्त उच्यन्ते । साधवस्तु केवलं गुणानेव गृह्णन्ति न दोषांस्ते तु महत्तरा उच्यन्ते । महत्तमास्तु दोषान्न गृह्णन्त्येव ते च प्रत्युत फल्गूंस्तुच्छानपि गुणान्बहुलीकुर्वन्तीति करिष्णवो भवन्ति, तेषु भवानघमविदत् विदितवान्, कल्पितवानित्यर्थः । तच्च ब्रह्मिष्ठानभिभूयेत्यनेन सूचितम् ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

दक्ष ने शिवजी का दो प्रकार से द्रोह किया है, महापुरुष का द्रोह करके प्रतिकूल आचरण किया है और साक्षात् द्रोह करके प्रतिकूलाचरण किया है । पुरुषों के चार भेदों को बतलाती हुयी सती देवी ने महापुरुष के द्रोह को **दोषान् इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाया । हे द्विज ! कहकर सतीजी ने दक्ष पर आक्षेप किया आप जैसे असूया करने वाले लोग दूसरों के दोषों का ही ग्रहण करते हैं गुणों को नहीं । कुछ मध्यस्थ पुरुष दूसरों के गुणों में दोष नहीं देखते हैं । अपितु वे विवेक के द्वारा गुणों और दोषों को ठीक-ठीक देखते हैं, ऐसे लोग महान् होते हैं । साधु पुरुष तो केवल दूसरों के गुणों को ही देखते हैं । दोषों को नहीं देखते । ऐसे लोग महत्तम है । जो महत्तम पुरुष होते हैं, वे दोषों को नहीं देखते हैं, अपितु दूसरों के छोटे से भी गुणों को महान बना देने की इच्छा रखते हैं आप तो उन महापुरुषों में केवल दोष ही देखते हैं और वह भी अपने ब्रह्मिष्ठों का अपमान करके देखा इस बात को सती देवी ने सूचित किया है ।।१२।।

**नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिन्दाकुणपात्मवादिषु ।**
**सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम् ।।१३।।**

**अन्वयः**— कुणपात्मवादिषु असत्सु यत् सर्वदा महद्विनिन्दा एतदाश्चर्यं न, महत्पादपांसुभिसेर्ष्यं निरस्तेजःसु असत्सु तदेव शोभनम् ।।१३।।

**अनुवाद**— जो दुष्ट पुरुष शवरूपी इस जड़ शरीर को ही आत्मा मानते हैं, उनके द्वारा जो महापुरुषों की निन्दा की जाती है, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । महापुरुष तो उन दुष्टों की चेष्टाओं पर ध्यान नहीं देते हैं, किन्तु महापुरुषों के चरणों की धूलि उनके इस अपराध को नहीं सहकर उन दुष्टों के तेज को विनष्ट कर देती है, अतएव महापुरुषों की निन्दा जैसा कार्य दुष्टों को ही शोभा देता है ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

एतच्च दुर्जनेषु युक्तमेवेत्याह-नेति । कुणप जडं शरीरं तदेवात्मेति वदन्ति ये तेषु । ईर्ष्या अक्षान्तिः । सेर्ष्यं यथा भवत्येवं महतां विनिन्देति यदेतदाश्चर्यं न भवति सेर्ष्यं निरस्तं तेजः प्रभावो येषामिति वा । यद्यपि महापुरुषाः स्वनिन्दां सहन्ते तथापि तत्पादरेणवस्तदसहमानास्तेषां तेजो निरस्यन्ति । अतोऽशक्तेषु महन्निन्दनमेवोचितमित्यर्थः ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

महापुरुषों की निन्दा करना दुष्टों के लिए उचित ही है । इस बात को सतीजी ने **नाश्चर्यमे० इत्यादि** श्लोक से कहा है । जो लोग जड़ शरीर को ही आत्मा मानते हैं उन लोगों में क्षमा का अभाव होता है तथा ईष्या पूर्वक महापुरुषों की निन्दा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । यद्यपि महापुरुष अपनी निन्दा को सह लेते हैं किन्तु उनके चरणों की धूलि दुष्टों द्वारा की जाने वाले उनकी निन्दा को नहीं सह पाते हैं और उन दुष्टों के तेज को विनष्ट कर देती हैं । अतएव असमर्थ लोग होते हैं । उनके द्वारा की जाने वाली महापुरुषों की निन्दा ही उचित हैं ।।१३।।

**यद्द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ।**
**पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ।।१४।।**

**अन्वयः**— यद् द्वयक्षरं शिवं नाम प्रसङ्गात् सकृत् गिरा ईरितं अथ आशु हन्ति तत् पवित्र कीर्तिं, अलङ्घ्यशासनं शिवेतरः भवान् अहो द्वेष्टि ।।१४।।

**अनुवाद**— जिनका दो अक्षरों वाला शिव नाम प्रसङ्गवशात् एक बार भी उच्चारण कर लेने पर वह मनुष्यों के समस्त पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देता है। उनकी आज्ञा का कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता है, उन पवित्र कीर्ति तथा मङ्गलमय शिवजी से अमङ्गलमय आप द्वेष करते हैं ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं महत्तमद्रोहमुक्त्वा तस्मिन्नेव कृतं द्रोहमाह-यदिति द्वाभ्याम्। यद्यस्य द्व्यक्षरमात्रं शिव इति तत्प्रसिद्धं नाम नृणां सर्वेषामाश्वघं सर्वं हन्ति। केवलं गिरैवेरितमुच्चारितं नतु मनः पूर्वकम्। तत्तु सकृदपि प्रसङ्गादपि। तं शिवं द्वेष्टि। न लङ्घ्यं शासनमाज्ञा यस्य। अहो शिवेतरोऽमङ्गलरूपः ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से महापुरुषों की निन्दा का वर्णन करके सतीजी महापुरुष शिवजी की निन्दा जो दक्ष द्वारा की गयी थी उसका **यदद्वय इत्यादि** दो श्लोकों से कहती हैं- जिन शिवजी के दो अक्षरों वाला शिव यह प्रसिद्ध नाम केवल वाणी के द्वारा ही उच्चारण कर लेने पर मन द्वारा नहीं वह भी किसी प्रसङ्ग वशात् ही, उच्चारण कर लेने पर पापों को विनष्ट कर देता है। उनकी आज्ञा का कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता हैं; उन शिवजी से आप द्वेष करते हैं, निश्चित रूप से आप अमङ्गलमय हैं ।।१४।।

**यत्पादपद्मं महतां मनोलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ।**
**लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान्द्रुह्यति विश्वबन्धवे ।।१५।।**

**अन्वयः**— महतां मनोऽलिभिः ब्रह्मरसासवार्थिभिः यत्पादपद्मं निषेवितं अर्थिनः लोकस्य च यद् आशिषः वर्षति विश्वबन्धवे तस्मै भवान् द्रुह्यति ।।१५।।

**अनुवाद**— महापुरुषों के मन रूपी भौंरे ब्रह्मानन्दमय रस का पान करने की इच्छा से जिनके चरण कमलों की सेवा किया करते हैं तथा सकाम पुरुषों को जिनके चरण कमल उनके अभिलषित भोगों को प्रदान किया करते हैं उन विश्वबन्धु शिवजी से आप द्रोह करते हैं ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

पापहरत्वमुक्त्वा भुक्तिमुक्तिप्रदत्वेन शिवं वर्णयन्त्याह। यस्य पादपद्मं मनांस्येवालयस्तैः। ब्रह्मरसो ब्रह्मानन्दः स एवासवो मकरन्दस्तदर्थिभिः। यच्चार्थिनः सकामस्य लोकस्य तास्ता आशिषो वर्षति ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

शिवजी के पाप विनाशकत्व को कहने के पश्चात् उनके भोग तथा मोक्ष प्रदत्व का प्रतिपादन करती हुयी सतीजी ने कहा— ब्रह्मानन्द रस रूपी मकरन्द को चाहने वाले महापुरुषों सत्पुरुषों के मन रूपी भौंरे जिनके चरण कमलों की सेवा किया करते हैं तथा जिनके चरण कमल सकाम जगत् की अभिलाषों को पूर्ण किया करते हैं ऐसे शङ्करजी से आप द्वेष करते हैं ।।१५।।

**किं वा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटाः श्मशाने ।**
**तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत्पिशाचैर्ये मूर्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ।।१६।।**

**अन्वयः**— तम् शिवाख्यम् अशिवं त्वदन्ये नविदुः किंवा ? श्मशाने जटा अवकीर्य तन्माल्य भस्मं नृकपालवसत् पिशाचैः तच्चरणावसृष्टम् ब्रह्मादयः ये ब्रह्मादयः मूर्धभिः दधति ।।१६।।

**अनुवाद**— वे केवल नाम मात्र के शिव हैं उनका वेष अमङ्गलमय है, यह सम्भवतः आपसे भिन्न कोई दूसरा नहीं जानता है। जो शिव जी श्मशान भूमि में पड़े हुए मनुष्यों के मुण्डों की माला पहनते हैं चित्ता के

भस्म तथा हड्डियों को पहने हुए एवं जटा बिखेरे हुए पिशचों के साथ निवास करते हैं उनके ही चरणों पर से गिरे निर्माल्य को ब्रह्मा आदि अपने शिर पर चढ़ाते हैं ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

यदुक्तं शिवापदेशो ह्यशिव इति, यच्चोक्तं प्रेतावासेष्वित्यादि तदाक्षिपन्त्याह–किं वेति । यो जटा अवकीर्य श्मशानेऽवसद्वसति स्म । तस्य श्मशानस्य माल्यानि भस्मानि नृकपालानि च भूषणत्वेन सन्ति यस्य । तं त्वत्तोऽन्ये न विदुः किम्, विदन्त्येवेति चेन्न, तथा सति तेषां तद्दास्यानुपपत्तेरित्याह । तच्चरणादवसृष्टं गलितं निर्माल्यं मूर्धभिर्धारयन्ति ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

दक्ष ने जो प्रजापतियों की सभा में शिवजी को नाममात्र के शिव वस्तुतः अमङ्गल रूप, तथा यह जो कहा था कि श्मशान भूमि में रहते हैं उसका आक्षेप करती हुयी सतीजी कहती हैं जो शिवजी अपनी जटा को विखेर कर श्मशान में रहते हैं, उस श्मशान की मालाओं, भस्म तथा नरमुण्डों को आभूषण के रूप में धारण करते हैं उसको आप जैसे भिन्न लोग नहीं जानते हैं क्या ? जानते ही हैं यह भी नहीं कह सकते क्योंकि ऐसा जानने पर वे उनकी दासता को कैसे स्वीकार करते हैं ? ब्रह्माजी इत्यादि देवता भी उनके चरणों पर से गिरे निर्माल्य को अपने शिर पर धारण करते हैं ॥१६॥

**कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ।**
**छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥१७॥**

**अन्वयः**— असृणिभिः नृभिः धर्मावितरि ईशे अस्यमाने, अकल्पः कर्णौ पिधाय निरयात्, प्रभुः चेत् उशतीम् असतीं जिह्वाम् प्रसह्य छिन्द्यात् ततः असूनपि विसृजेत स धर्मः ॥१७॥

**अनुवाद**— यदि निरङ्कुश लोग धर्म की मर्यादा की रक्षा करने वाले भगवान् शिव की निन्दा करें तो उनको दण्ड देने की शक्ति यदि न हो तो अपने कानों को बन्द करके वहाँ से चला जाना चाहिए । यदि सामर्थ्य हो तो बल पूर्वक पकड़कर उस अकल्याणोच्चारण करने वाले की जीभ को काट देना चाहिए । उस पाप को दूर करने के लिए स्वयम् अपने प्राणों को भी दे दे ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं देहं त्यक्तुकामा धर्मतत्त्वमाह । कर्णावाच्छाद्य निर्गच्छेत् । यद्यदि मर्तुं मारयितुं वा कल्पो न भवति । कदा। धर्मावितरि धर्मरक्षके ईशे स्वामिन्यसृणिभिर्निरङ्कुशैर्नृभिरस्यमानेऽक्षिप्यमाणे । प्रभुः शक्तश्चेत् । रुशतीमकल्याणवादिनीम् । प्रसह्य बलाच्छिन्द्यात् । ततोऽपि स्वयं प्राणान्विसृजेदिति यत्स धर्मः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

अब अपने शरीर का त्याग करने की इच्छा से सतीजी धर्म के तत्त्व का निरूपण करती हैं । जब निरङ्कुश लोग अपने स्वामी की निन्दा करें उस समय यदि मरने तथा मारने में असमर्थ हो तो अपने कानों को बन्द करके वहाँ से हट जाय । यदि समर्थ हो तो उस अकल्याणोच्चारण करने वाली जीभ को बलपूर्वक पकड़कर काट दे। जीभ काटने की अपेक्षा स्वयम् अपने प्राणों का परित्याग कर दे ॥१७॥

**अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ।**
**जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥**

**अन्वयः**— अतः शितिकण्ठगर्हिणः तव उत्पन्नम् इदं कलेवरं न धारयिष्ये । मोहाद्धि जगुप्सितस्य अन्धसः जग्धस्य विशुद्धिं उद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥

**अनुवाद**— अतएव शङ्करजी की निन्दा करने वाले तुम से उत्पन्न इस शरीर को मैं धारण नहीं कर सकती हूँ । अज्ञानवशात् खाये हुए निन्दित अन्न का वमन कर देना ही उसकी विशुद्धि कही गयी हैं ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

तव त्वत्त उत्पन्नम् । शितिकण्ठो नीलकण्ठस्तन्निन्दकात् । प्रमादादापन्नस्यापवित्रस्य त्यागं विना न शुद्धिरिति दृष्टान्तेनाह। जग्धस्य भक्षितस्यान्नस्योद्धरणं वमनमेव पुंसो विशुद्धिं प्रचक्षते ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव शङ्करजी की निन्दा करने वाले तुम से उत्पन्न इस शरीर को मैं धारण नहीं कर सकती हूँ प्रमादवशात् गृहीत अपवित्र वस्तु का त्याग कर देना चाहिए इस अर्थ को सतीजी दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहती हैं प्रमादवशात् खाये हुए निन्दित अन्न का वमन कर देना ही उसकी विशुद्धि बतलायी गयी हैं ॥१८॥

**न वेदवादाननुवर्तते मतिः स्व एव लोके रमतो महामुनेः ।**
**यथा गतिर्दैवमनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ॥१९॥**

**अन्वयः**— स्वे एवलोके रमतः महामुनेः मतिः वेदवादान् न अनुवर्तते। यथा देवमनुष्ययोःगतिः पृथक् स्वे एव धर्मे स्थितिः परं नक्षिपेत् ॥१९॥

**अनुवाद**— अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले महामुनि की बुद्धि विधि निषेधमय वेदवाक्यों का अनुसरण नहीं करती है । जिस तरह देवताओं और मनुष्यों की गति अलग-अलग है अतएव मनुष्य को अपने धर्म में स्थित रहकर दूसरे के धर्म की निन्दा नहीं करनी चाहिए ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

यदुक्तं लुप्तक्रियायाशुचय इति तत्प्रत्याह–नेति । वेदवादान्विधिनिषेधरूपान्स्व एव लोके स्वात्मन्येव रममणस्य महतो मुनेः सम्यग्विरक्तस्य मतिर्नानुवर्तते, निवृत्ताधिकारत्वात् । अधिकारभेदे दृष्टान्तः- यथा देवानां गतिराकाश एव मनुष्याणां पृथिव्यामेव । अतः स्व एव धर्मे प्रवृत्तिलक्षणे निवृत्तिलक्षणे वा स्थितः सन् परमन्यं धर्मे पुरुषं वा न क्षिपेन्न निन्देत्, व्यवस्थिताधिकारत्वेनोभयोः सत्यत्वात् । न क्षिपेदेवेति वान्वयः ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

दक्ष ने यह जो कहा था कि ये शङ्कर अपनी क्रियाओं का लोप कर चुके हैं अतएव अपवित्र हैं । उसका उत्तर देती हुयी सतीजी कहती हैं— जो महामुक्त अपनी आत्मा में ही रमण करते हैं । जो पूर्ण रूप से संसार से विरक्त हैं ऐसे महापुरुषों की बुद्धि विधिनिषेधामयं वेदवाक्यों का अनुवर्तन नहीं करती है । क्योंकि उनका कर्मों में अधिकार समाप्त हो चुका रहता है । अधिकारों की भिन्नता का उदाहरण वे दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कर देती हैं। यह उसी तरह होता है जैसे देवताओं की गति आकाश में ही होती हैं और मनुष्यों की गति पृथिवी पर ही होती है । अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह चाहे प्रवृत्ति धर्म में स्थित हो या निवृत्ति धर्म में स्थित हो वह दूसरे के धर्म की निन्दा न करे । क्योंकि अधिकार के व्यवस्थित होने के कारण दोनों धर्म सत्य हैं । अथवा उसकी निन्दा न करें ॥१९॥

**कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं वेदे विविच्योभयालिङ्गमाश्रितम् ।**
**विरोधि तद्यौगपदैककर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ॥२०॥**

**अन्वयः**— प्रवृत्तं निवृत्तं च कर्म ऋतं वेदे विविच्य उभयालिङ्गम् आश्रितम् यौगपदैककर्तरि तत् द्वयं विरोधि तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ॥२०॥

**अनुवाद**— प्रवृत्ति (यज्ञ आदि) तथा निवृत्ति (शम दमादि) दोनों प्रकार के कर्म सत्य हैं । वेद में इन दोनों प्रकार के कर्मों के अलग-अलग अधिकारी बतलाये गये हैं । इन दोनों प्रकार के कर्मों के परस्पर में विरोधी होने

के कारण उक्त दोनों प्रकार के कर्मों का एक साथ अनुष्ठान नहीं किया जा सकता है । भगवान् शङ्कर तो परमात्मा हैं इन दोनों में से किसी भी प्रकार के कर्म को करने की उनको आवश्यकता नहीं है ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

एतदेवोपपादयन्त्याह । प्रवृत्तमग्निहोत्रादि, निवृत्तं शमदमादि, ऋतं सत्यमेव यतो वेदे आश्रितं विहितम् । तच्च विविच्य व्यवस्थयाश्रितं न त्वविशेषेण । व्यवस्थामेवाह । उभयं रागवैराग्यलक्षणं लिङ्गं चिह्नमधिकारिविशेषणं यस्मिंस्तत्। ननु 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति', 'शान्तो दान्तः' इत्यादिषु नैवं व्यवस्था प्रतीयते । सत्यम्, तथाप्युभयोरेकाधिकारविरोधात्तथा पर्यवस्यतीत्याह । युगपद्भावो यौगपदं यौगपदेनैकस्मिन्कर्तरि तत्कर्मद्वयं विरोधि । ननु तर्हि निवृत्तं कर्म शिवेनापि कर्तव्यमेव नेत्याह । ब्रह्मणि सदाशिवे किंचिदपि कर्म न ऋच्छति न प्राप्नोति । अतो यथा प्रवृत्तनिवृत्तयोः परस्परधर्माकरणेन दोषस्तथेश्वरे एतदुभयधर्मकरणेऽपीति भावः ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

इसी अर्थ का प्रतिपादन करती हुयी सती देवी कहती हैं । अग्निहोत्र आदि प्रवृत्त कर्म हैं, शम दमादि निवृत्तकर्म हैं । ये दोनों सत्य ही हैं । क्योंकि इन दोनों प्रकार के कर्मों का विधान किया गया है । वे दोनों प्रकार के कर्म भेदपूर्वक अलग-अलग व्यवस्थापित किए गये हैं । समान रूप से दोनों की व्यवस्था नहीं की गयी है । उस व्यवस्था को ही बतलाते हुए कहते हैं । उन दोनों प्रकार के कर्मों के अधिकारी के चिह्न राग एवं वैराग्य रूप हैं । **ननु० इत्यादि** अब प्रश्न होता है कि यावज्जीवमग्नि होत्रं जुहोति अर्थात् आजीवन अग्निहोत्र करे । **शान्तोदान्त इत्यादि** वाक्यों में इस प्रकार की कोई भी व्यवस्था नहीं दिखती है, तो ठीक है, फिर भी दोनों का एक ही अधिकारी होने पर विरोध होता है । एक ही समय में होने को यौगपद्य कहते है । एक ही कर्ता के उन दोनों का अनुष्ठान विरोधी है । यदि कहें कि तब तो शिवजी को भी निवृत्त कर्मों को करना चाहिए तो एसी बात नहीं है । शिवजी तो ब्रह्म हैं अतएव उनको दोनों में कोई भी कर्म करने की अपेक्षा नहीं है । जिस तरह परस्पर विरोधी धर्मों को नहीं करने से दोष है उसी तरह ईश्वर शिवजी को उन दोनों प्रकार के कर्मों को करने से दोष हैं ॥२०॥

**मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ।**
**तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिङ्गा अवधूतसेविताः ॥२१॥**

**अन्वयः**— पितः अस्मदास्थिताः पदव्यः वः मा, वः यज्ञशालासु धूमवर्त्मभिः तदन्नतृप्तैः असुभृद्भिः ईडिता अव्यक्तलिङ्गा, अवधूत सेविताः ॥२१॥

**अनुवाद**— पिताजी हमारा अणिमादि से समृद्ध जो ऐश्वर्य है, वह ऐश्वर्य आपके पास नहीं है । आपका ऐश्वर्य तो यज्ञशालाओं में ही है । वह ऐश्वर्य यज्ञ के अन्न से तृप्त धूमादिमार्ग वाले लोगों के द्वारा प्रशंसित है। हमलोगों का ऐश्वर्य ऐसा नहीं हैं । हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है । वह हमारी इच्छा मात्र से उत्पन्न हो जाने वाला है। उसका सेवन तो ब्रह्म ज्ञानी ही करते हैं अतएव आपको इस प्रकार का अभिमान नहीं होना चाहिए कि मैं धनवान् हूँ और रुद्रद्ररिद्र हैं ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

चिताभस्मकृतस्नानस्तथा नग्न इत्यादिना यो भोगाद्यभाव उक्तस्तत्राह । हे पितः, अस्माभिरास्थिता आश्रिताः पदव्योऽणिमादिसमृद्धयो वो युष्माकं मा । न सन्तीत्यर्थः । यतो वः पदव्यो यज्ञशालास्वेव भवन्ति । ताश्च तदन्नेन यज्ञगतेनान्नेन तृप्तैः केवलमीडिता धूमवत्र्मभिश्च भुज्यते । या अस्मत्पदव्यस्तास्तु नैवं भूताः किंत्वव्यक्तलिङ्गाः न व्यक्तं लिङ्गं हेतुर्यासाम्, इच्छामात्रप्रभवत्वात् । अवधूतैर्ब्रह्मविद्भिः सेविताः । अतोऽहमाढ्यः, रुद्रो दरिद्र इति गर्वं मा कृथा इति भावः ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

दक्ष ने यह जो कहा था कि ये शङ्करजी चिता के भस्म से स्नान किए रहते है तथा रङ्गे रहते हैं । अतएव इनके पास भोग आदि का अभाव है इसका उत्तर देते हुए सतीजी ने कहा पिताजी हमलोगों ने जिस ऐश्वर्य को अपनाया है, वह अणिमा आदि सिद्धियों से समृद्ध है । वह ऐश्वर्य आपके पास नहीं है । आप का ऐश्वर्य तो यज्ञशालाओं में उन सबों की प्रशंसा यज्ञ के अन्न को खाकर अपने प्राणों को धारण करने वाले धूमादि मार्गानुयायी ही करते हैं । हमारा ऐश्वर्य ऐसा नहीं है । अपितु हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त लिङ्ग हैं । इसका कारणव्यक्त नहीं है । वे ऐश्वर्य हमारी इच्छा करने मात्र से ही उत्पन्न हो जाता है । उस ऐश्वर्य का सेवन तो ब्रह्मज्ञानी ही करते हैं अतएव मैं धनवान हूँ और रुद्र दरिद्र हैं, आपको इस प्रकार का अभिमान नहीं करना चाहिए ॥२१॥

**नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ।**
**व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसङ्गतस्तज्जन्म धिग्यो महतामवद्यकृत् ॥२२॥**

**अन्वयः**— हरे कृतागसः देहोद्भवेन एतेन देहेन अलम् अलम् । कुजन प्रसंगतः कुजन्मना मम ब्रीडा अभूत् । तत् जन्मधिक् यः महतामवद्यकृत् ॥२२॥

**अनुवाद**— आपने महापुरुष शङ्कर का अपराध किया है । अतएव आपके शरीर से उत्पन्न इस शरीर से मेरा कोई मतलब नहीं है । आप जैसे दुर्जन से सम्बन्ध रखने वाले मुझे अपने इस निन्दित जन्म पर लज्जा होती है, उस जन्म को धिक्कार है, जिस जन्म से महापुरुषों का अपराध हुआ हो ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

किं बहुनोक्तेनेमं देहं त्यक्ष्याम्येवेत्याह द्वाभ्याम् । एतेन नालं न पूर्यते किम् । अपि त्वलमेव । कथंभूतेन । कुजन्मना। तदेवाह । हरे, कृतापराधस्य तव देहादुद्भूतेनोत्पन्नेन । ननु श्लाघ्योऽयं देहः कथं त्याज्यस्तत्राह । कुजनस्य तव प्रसङ्गतः संबन्धान्मम लज्जाऽभूत् । अतो यो महतामप्रियकर्ता तस्माद्यज्जन्म तद्धिक् । त्वत्संबन्धादश्लाघ्यमित्यर्थः ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक कहने से कोई लाभ नहीं है, मैं इस देह को त्याग दूँगी इस बात को सतीजी ने दो श्लोकों से कहा है । इतने से ही पूरा नहीं हो गया है क्या अपितु पूरा ही हो गया है प्रश्न है किस प्रकार के कुजन्म से ? तो उसको बतलाती हुयी सती देवी ने कहा शङ्करजी का अपराध करने वाले तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हुए इस जन्म से । यदि कहें कि आपका यह शरीर प्रशंसनीय है अतएव इसको क्यों त्यागना चाहती हैं तो इस पर सतीदेवी ने कहा तुम जैसे दुर्जन से सम्बन्ध होने के कारण मुझे इस जन्म से लज्जा हो रही है । अतएव जो महापुरुषों की अप्रिय कर्म करने वाला है, उससे होने वाले जन्म को धिक्कार है । अतएव तुम जैसे दुर्जन से सम्बन्ध होने के कारण मेरा यह जन्म प्रशंसनीय नहीं अपितु निन्दित हैं ॥२२॥

**गोत्रं त्वदीयं भगवान्वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ।**
**व्यपेतनर्म स्मितमाशु तद्ध्यहं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदङ्गजम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— यदा भगवान् वृषध्वजः त्वदीयं गोत्रं दाक्षायणीत्याहतदा व्यपेत नर्मस्मितम् आशु सुदुर्मना तत् अहं एतत् त्वदङ्गजं कुपणं उत्स्रक्ष्ये ॥२३॥

**अनुवाद**— जिस समय परिहास में भी भगवान् शङ्कर तुम्हारा नाम लेकर मुझे दाक्षायणी इस नाम से पुकारेगें उस समय मुझे हंसी को भूलकर बड़ी लज्जा और खेद होगी, अतएव उससे पहले मैं तुम्हारे शरीर से उत्पन्न इस कुणप प्राय शरीर को त्याग देती हूँ ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

किंच परिहासादिषु विनोदेनापि दाक्षायणीति संबोधयंस्त्वदीयं त्वत्संबन्धवाचकं गोत्रं नाम यदा वृषध्वज आह गृह्णाति तदाहं व्यपेतनर्म स्मितं यथा भवत्येवं सुदुर्मना अतिदुःखितचित्ता भवामि । तत्तस्माद्धि निश्चितमेतत्कुणपप्रायं व्युत्स्रक्ष्ये त्यक्ष्यामि।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

जब कभी भी परिहास आदि में विनोद पूर्वक भी भगवान् शिव, तुम्हारे सम्बन्ध से मेरे दाक्षापणी इस नाम को लेकर मुझे भी पुकारेंगे तो मुझे हंसी तो भूल ही जायेगी, किन्तु बहुत अधिक लज्जा होगी और मैं बहुत अधिक दुःखी हो जाऊँगी । अतएव यह कुणप के समान मेरा जो शरीर है, इसको उससे पहले ही त्याग दूँगी ।।२३।।

मैत्रेय उवाच

**इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन् क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक् ।**
**स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ।।२४।।**

**अन्वयः**— हे शत्रुह्न ! अध्वरे इति दक्षम् अनुद्य जलं स्पृष्ट्वा पीतदुकूल संवृता दृक्निमील्य शान्तवाक् उदीचीं क्षितौ निषसाद योगपथं समाविशत् ।।२३।।

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— हे कामादि शत्रुओं को जीतने वाले विदुरजी ! उस यज्ञ मण्डप में इस प्रकार से दक्ष से कहकर सती देवी उत्तर दिशा में मौन होकर भूमि पर बैठ गयीं । उन्होंने आचमन करके पीला वस्त्र ओढ लिया और अपनी आँखें मूंद कर शरीर त्याग करने के लिए योगमार्ग में स्थित हो गयीं ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

दक्षं प्रत्यनुवादं कृत्वा शत्रुहन् । क्रोधादिरिपुघातिन् । उदीचीमुदीच्यां दिशि । पाठान्तरे उदङ्मुखी । शान्तवाक् गृहीतमौना। जलं स्पृष्ट्वाचम्य । दृक् दृशम् ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

हे शत्रुहन् विदुरजी ! इस तरह से दक्ष से कहकर सती देवी उत्तर दिशा में मौन धारण करके तथा आचमन करके एवं नेत्रों को बन्द करके भूमि पर बैठ गयीं और अपना शरीर परित्याग करने के लिए वे योगमार्ग में प्रवेश कर गयीं ।।२४।।

**कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदनमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ।**
**शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं कण्ठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत् ।।२५।।**

**अन्वयः**— जितासना सा समानौ अनिलौ कृत्वा नाभिचक्रतः उदानमुत्थाप्य धियाशनैः हृदि स्थाप्य सा अनिन्दिताहृदिस्थितं कण्ठाद् भुर्व्रोर्मध्यम् अनयत् ।।२५।।

**अनुवाद**— अपने आसन को स्थिर करके उन्होंने प्राणायाम के द्वारा प्राण एवं अपान दोनों वायुओं को एक में मिला दिया । उसके पश्चात् नाभिचक्र से उदान वायु को उठाकर उन्होंने हृदय में स्थापित किया । तदनन्तर हृदय में स्थित वायु को अनिन्दिता सती देवी कण्ठ के मार्ग से भृकुटियों के बीच में ले गयीं ।।२५।।

### भावार्थ दीपिका

योगमार्गमेवाह-कृत्वेति । अनिलौ प्राणापानावूर्ध्वाधोवृत्तिकरौ निरोधेन समानावेकरूपौ नाँभिचक्रे कृत्वा तत उदानमुत्थाप्य धिया सह हृदि स्थापयित्वा कण्ठमार्गेण भ्रुवोर्मध्यमनयत् ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

सती देवि जिस योगमार्ग में प्रवेश कर गयी थीं उस योगमार्ग का ही वर्णन इस श्लोक में किया गया है अनिलौ शब्द के द्वारा प्राणवायु और अपान वायु को कहा गया है । प्राणवायु ऊपर की ओर जाती है जब कि अपान वायु नीचे की ओर जाती है । इन दोनों वायुओं को सती देवी ने प्राणायाम के द्वारा मिलाकर नाभिचक्र में स्थापित कर दिया । उसके पश्चात् वे उदान वायु को बुद्धि पूर्वक ऊपर की ओर उठाकर हृदय में स्थापित की। तदन्तर उन्होंने उस वायु को कण्ठ मार्ग से दोनों भौहों के बीच में स्थापित कर दिया ।।२५।।

**एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितमङ्कमादरात् ।**
**जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम् ।।२६।।**

**अन्वयः**— एवम् महताम् महीयसा आदरात् मुहुअङ्कम् समारोपितं स्वदेहं दक्षरूषा जिहासती मनस्विनी गत्रेषु अनिलाग्नि धारणाम् दधार ।।२६।।

**अनुवाद**— पूजनीयों में श्रेष्ठ भगवान् शिव ने आदर पूर्वक जिसको बार-बार अपनी गोद में बैठाया था उस अपने शरीर को दक्ष पर क्रोध करने के कारण त्याग देने की इच्छा से मनस्विनी सतीदेवी ने अपने सम्पूर्ण अङ्गों में वायु अग्नि की धारणा की ।।२६।।

**भावार्थ दीपिका**

महतां पूज्यतमेन श्रीरुद्रेण ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् शिव महापुरुषों में पूज्यतम हैं । उन्होंने सती देवी के शरीर को प्रेम पूर्वक बार-बार अपनी गोद में स्थापित किया था । दक्ष पर क्रोध करने के कारण सती देवी ने उसी शरीर को त्याग देने की इच्छा से अपने अङ्गों में वायु अग्नि की धारणा की ।।२६।।

**ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ।**
**ददर्श देहो हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिनाग्निना ।।२७।।**

**अन्वयः**— ततः स्वभर्तुः जगद्गुरोः चरणाम्बुजासवं चिन्तयन्ती अपरं न ददर्श हतकल्मषः देहः सती समाधिजाग्निना सद्यः प्रजज्वाल ।।२७।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् अपने पति जगद्गुरु भगवान् शङ्कर के चरणों का चिन्तन करते-करते उनको अपने पति के चरणों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखायी दिया । उनका शरीर निष्पाप हो गया । इस तरह की सती देवी का शरीर समाधि जन्य अग्नि से जल उठा ।।२७।।

**भावार्थ दीपिका**

चरणाम्बुजे आसवं भजनानन्दम् । भर्तुरपरं न ददर्श । देहश्च सद्यः प्रज्वलितोऽभूत् । समाधिना योऽग्निस्तेन ।।२७।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् शिव के चरण रूप कमल मकरन्द का चिन्तन जन्य आनन्द के कारण वे अपने पति से भिन्न किसी भी वस्तु को नहीं देखी । उस समय उनका शरीर समाधिजन्य अग्नि से जल उठा ।।२७।।

**तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्धाहेति वादः सुमहानजायत ।**
**हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता ।।२८।।**

**अन्वयः**— तत् महत् अद्भुतं पश्यतां हाहा इति सुमहान् वादः रवे भुवि च अजायत । हन्त ! दैवतमस्य प्रिया देवी सती केन प्रकोपिता असून् जहौ ।।२८।।

**अनुवाद**— उस महान् आश्चर्य को देखने वाले लोगों का हाय ! हाय इस प्रकार का कोलाहल पृथिवी से आकाश तक फैल गया । सभी यही कह रहे थे दक्ष के दुरव्यावहार से कुपित होकर भगवान् शङ्कर की प्रियतमा सती देवी ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

खे भुवि च हाहेत्यादिवादः । तमेवाह । हन्तेति विषादे । दैवतमस्य प्रिया केन दक्षेण प्रकोपिता सती ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

हन्त यह अव्यय विषाद के अर्थ में प्रयुक्त है । भूलोक से आकाश तक लोगों का हाय ! हाय का केलाहल फैल गया । सब लोग यही कह रहे थे कि दक्ष के दुर्व्यवहार के कारण कुपित होकर शङ्करजी की पत्नी सती ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥२८॥

**अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ।**
**जहावसून्यद्विमतात्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥२९॥**

**अन्वयः**— अहो यस्य प्रजापतेः चराचरं प्रजाः अस्य महत् अनात्म्यं पश्यत, अभीक्ष्णम् मानम् अर्हती मनस्विनी सती, यद्विमता आत्मज असून जहौ ॥२९॥

**अनुवाद**— अरे ! जिस दक्ष प्रजापति की सन्तान ही चराचर जगत् है उसकी दुष्टता तो देखो । इनकी मनस्विनी पुत्री सती जो सम्मान का पात्र थीं वह इनके द्वारा अपमानित होकर अपने प्राणों का परित्याग कर दीं॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

महदनात्म्यं दौर्जन्यम् । अस्य सर्वत्र स्नेह एव न्याय्य इत्याहुः-यस्येति । येन विमताऽवज्ञाता ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

अनात्म्यम् दुर्जनता का बोधक है । सब लोग यही कहते थे कि यह दक्ष की बहुत बड़ी दुर्जनता है । इन्होंने सती का अपमान किया है । क्योंकि सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् इनकी सन्तान है । और इनके द्वारा अपमानित होकर देवी सती ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥२९॥

**सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ।**
**यदङ्गजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥३०॥**

**अन्वयः**— सोऽयं दुर्मर्षहृदयः ब्रह्मध्रुक् च लोके महतीम् । अपकीर्तिम् अवाप्स्यति पुरुषद्विट् अपराधतः मृतये उद्यतां स्वांगजाम् न प्रत्यषेधत् ॥३०॥

**अनुवाद**— वस्तुतः यह अत्यन्त असहिष्णु और ब्राह्मण द्रोही है, अब यह संसार में बहुत बड़े अपयश को प्राप्त करेगा । इस शिवद्रोही के अपराध से मरने के लिए उद्यत हुयी अपनी पुत्री को इसने रोका भी नहीं ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

दुर्मर्षमत्यसहनं हृदयं यस्य । लोके जनमध्ये । चशब्दान्नरकं च । यद्यतः स्वीयामङ्गजां सुतामपराधतः स्वावज्ञया मृतये मरणायोद्यतां न निवारितवान् । पुरुषद्विट् शिवद्वेषी ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

दुर्मर्षम् अर्थात् अत्यन्त असहिष्णु । लोगों ने कहा कि यह अत्यन्त असहिष्णु हृदय वाला है । यह संसार में महान् अपयश को तथा नरक को प्राप्त करेगा क्योंकि इसी के अपराध के कारण मरने के लिए उद्यत हुयी सती को इसने रोका भी नहीं । यह शिव द्वेषी है ॥३०॥

**वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् । दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥३१॥**

**अन्वयः**— एवं जने वदति, सत्याः अद्भुतम् असुत्यागं दृष्ट्वा दक्षं हन्तुम् तत् पार्षदाः उदायुधाः उदतिष्ठन् ॥३१॥

**अनुवाद**— जिस समय लोग इस प्रकार से कह रहे थे उस समय सती देवी के अद्भुत प्राण त्याग को देखकर शङ्करजी के पार्षद अपना आयुध लेकर दक्ष को मार देने के लिए तैयार हो गये ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

अद्भुतं दृष्ट्वा च ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

सती देवी के अद्भुत प्राणत्याग को देखकर ॥३१॥

**तेषामापततां वेगं निशाम्य भगवान्भृगुः । यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥३२॥**

**अन्वयः**— तेषाम् आपततां वेगं निशाम्य भगवान् भृगु यज्ञघ्ननेन यजुषा दक्षिणाग्नौ ह जुहाव ॥३२॥

**अनुवाद**— उन आक्रमणकारियों के आक्रमण के वेग को देखकर ऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि भृगु ने यज्ञों को विनष्ट करने वालों को विनष्ट करने वाले यजुर्वेद के मन्त्र से दक्षिणाग्नि में होम किया ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

यज्ञघ्नान्हन्तीति यज्ञघ्नघ्नं तेनापहतं रक्ष इत्यादिना ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

यज्ञों को विनष्ट करने वालों को विनष्ट करने वाले अपहतं रक्ष, इत्यादि मन्त्र से होम किया ॥३२॥

**अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा । ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥३३॥**

**अन्वयः**— अध्वर्युणा हूयमाने तपसा सोमं प्राप्ताः ऋभवो नाम सहस्रशः देवाः ओजसा उत्पेतुः ॥३३॥

**अनुवाद**— यज्ञ के अध्वर्यु महर्षि भृगु ने ज्यों ही आहुति दी त्यों ही यज्ञ कुण्ड से ऋभु नामक हजारो देवता प्रकट हो गये । उन सबों ने अपनी तपस्या से चन्द्रलोक को प्राप्त किया था ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

अध्वर्युणा भृगुणा । ये तपसा सोमं प्राप्तास्ते ऋभवो नाम देवा उत्थिताः ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

अध्वर्यु भृगु महर्षि के द्वारा । जो लोग तपस्या से सोम को प्राप्त कर लिए थे वे सभी ऋभु नामक देवता उत्पन्न हो गये ॥३३॥

**तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथा सह गुह्यकाः । हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥३४॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सतीदेहोत्सर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

**अन्वयः**— ब्रह्मतेजसा उशद्भि तैः आलातायुधैः गुह्यकाः सह हन्यमानाः सर्वेप्रमथाः दिशो भेजुः ॥३४॥

**अनुवाद**— ब्रह्मतेज से युक्त उन देवताओं द्वारा अलातरूपी आयुध से मारे जाते हुए सभी गुह्यक तथा प्रमथगण जिधरितिधर भाग गये ॥३४॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के सतीदेह त्याग वर्णन नामक चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥**

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मतेजसोशद्भिर्देदीप्यमानैः ।।३४।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।**

**भाव प्रकाशिका**

वे ऋभु नामक देवता ब्रह्मतेज से देदीप्यमान थे ।।३४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के चौथे अध्याय के शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।**

# पाँचवाँ अध्याय

## वीरभद्र कृत दक्षयज्ञविध्वंस तथा दक्षवध

### मैत्रेय उवाच

**भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात् ।**
**स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभिर्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥१॥**

**अन्वयः**— नारदात् प्रजापतेः असत्कृतायाः भवान्याः निधनं तदध्वरर्भुभिः द्रावितं स्वपार्षद सैन्यं च अवगम्य भवः अपारं क्रोधम् आदधे ॥१॥

**अनुवाद**— नारदजी के मुख से प्रजापति दक्ष से अनादृत सती देवी की मृत्यु तथा उस यज्ञ के कुण्ड से उत्पन्न ऋभु नामक देवताओं के प्रहार से अपने पार्षदों की सेना का पलायन सुनकर शङ्करजी को अपार क्रोध हुआ ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

पञ्चमे तु सतीदेहत्यागमाकर्ण्य शङ्करः । वीरभद्रं रुषोत्पाद्य तेन दक्षमघातयत् ॥१॥ प्रजापतेर्हेतोर्निधनम् । कुतः तेनासत्कृतायाः । तस्याध्वरे ऋभवो देवास्तैः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

सती के देह त्याग को सुनकर शङ्करजी ने क्रोध करके वीरभद्र को उत्पन्न करके उनके द्वारा दक्ष को मरवा दिया, इसी अर्थ का वर्णन पाँचवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ प्रजापति के द्वारा अपमानित होने के कारण सती देवी द्वारा अपने शरीर का त्याग तथा ऋभु नामक देवताओं द्वारा अपने पार्षदों की सेना को भगाया जाना सुनकर शङ्करजी को अपार क्रोध उत्पन्न हुआ ॥१॥

**क्रुद्धः सुदष्टोष्ठपुटः स धूर्जटिर्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ।**
**उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्गम्भीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥२॥**

**अन्वयः**— क्रुद्धः स धूर्जटि रुद्रः तडिद् बह्निसटोग्ररोचिषम् जटां उत्कृत्य सहसा हसन् उत्थितः गम्भीरनादः तां भुवि विससर्ज ॥२॥

**अनुवाद**— उग्ररूप धारण किए शङ्करजी ने क्रोध करके अपने ओठ को काट लिया और उन्होंने विद्युत् तथा अग्नि की ज्वाला के समान उग्र कान्ति वाली अपनी एक जटा को उखाड़ कर एक बार हँसते हुए खड़े हो गये तथा अट्टहास करते हुए वे उस जटा को पृथिवी पर पटक दिए ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

स धूर्जटिः रुद्रो घोरः सन् जटामुत्कृत्योत्पाट्योत्थितः संस्तां भुवि विससर्ज । सुदष्ट ओष्ठपुटो येन । तडितां वह्नीनां च सटा ज्वालास्तद्वदुग्रं रोचिर्यस्यास्ताम् ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

वे शङ्कर अपना उग्ररूप धारण कर लिए और अपनी एक जटा को उखाड़कर अचानक खड़े हो गये और उस जटा को पृथिवी पर पटक दिए । क्रोध के कारण उन्होंने अपने ओष्ट को काट लिया था । उनकी उस जटा की ज्वाला विद्युत् और अग्नि की कान्ति के समान उग्र थी ॥२॥

**ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ।**
**करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥३॥**

**अन्वयः**— ततः अतिकायः जातः तनुवा दिवं स्पृशन्, सहस्रबाहुः धनरुक् त्रिसूर्यदृक्, कराल दंष्ट्रः ज्वलदग्निमूर्धजः, कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥३॥

**अनुवाद**— उस जटा से विशालकाय वीरभद्र उत्पन्न हो गये, वे अपने शरीर की ऊँचाई से स्वर्ग का स्पर्श कर रहे थे, उनकी हजार भुजाएँ थीं, मेघ के समान उनका श्याम वर्ण का शरीर था, उनके तीन सूर्यों के समान चमकते हुए तीन नेत्र थे, उनके लम्बे और भयङ्कर दाँत थे, उनके केश जलती हुयी अग्नि के समान लाल-लाल थे वे नरमुण्डों की माला धारण किए थे तथा वे अपने हाथों में अनेक प्रकार के आयुधों को धारण किए थे ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

ततो जटायाः सकाशादतिकायो वीरभद्रो जात इति शेषः । तनुवा तन्वा देहेन दिवं स्पृशन् । अत्युच्च इत्यर्थः । घनरुक् कृष्णवर्णः । त्रयः सूर्या इव दृशो यस्य । करालास्तुङ्गा दंष्ट्रा यस्य । ज्वलदग्निरिव मूर्धजा यस्य । कपालमालायुक्तः । विविधान्युद्यतान्यायुधानि यस्य ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

उस जटा से विशालकाय वीरभद्र उत्पन्न हो गये । उनका शरीर इतना ऊँचा था कि वे स्वर्ग स्पर्श कर रहे थे । उनका शरीर मेघ के समान काला था । उनके नेत्र तीन सूर्यों के समान चमक रहे थे । उनके दाँत भयङ्कर और ऊँचे थे । उनके केश जलती हुयी अग्नि के समान लाल थे । वे नरमुण्डों की माला धाराण किए थे । वे अनेक प्रकार के आयुधों को धारण किए हुए थे ॥३॥

**तं किं करोमीति गृणन्तमाह बद्धाञ्जलिं भगवान्भूतनाथः ।**
**दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां त्वमग्रणी रुद्रभटांशको मे ॥४॥**

**अन्वयः**— किं करोमि इति गृणन्तं बद्धाञ्जलिम् तम् भगवान् भूतनाथः आह रुद्र भट मे त्वम् अंशकः मदभटानाम् अग्रणी सयज्ञं दक्षं जहि ॥४॥

**अनुवाद**— भगवन् मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ, इस तरह से हाथ जोड़कर उसके कहने पर भगवान् भूतनाथ शङ्करजी ने कहा । हे वीर रुद्र ! तुम मेरे अंश हो, मेरे वीरों के तुम अधिनायक हो जाओ तथा दक्ष एवं दक्ष के यज्ञ को विनष्ट कर दो ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

हे रुद्र, हे भट युद्धकुशल, मद्भटानां त्वमग्रणीः सन्सयज्ञं दक्षं जहि। ब्रह्मतेजो दुर्जयमिति मामंस्थाः। यतस्त्वं मेंऽशकः॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

शङ्करजी ने कहा— हे रुद्र ! तुम युद्ध करने में कुशल हो, तुम मेरे बीरों के अधिनायक हो । जाओ दक्ष और उसके यज्ञ को विनष्ट कर दो । यह तुम मत समझना कि ब्रह्मतेज को जीतना कठिन है, क्योंकि तुम मेरा अंश हो ।।४।।

**आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ।**
**मेने तदात्मानमसङ्गरंहसा महीयसां तात सहःसहिष्णुम् ।।५।।**

**अन्वयः**— हे तात् ! कुपितेन मन्युना एवं आज्ञप्तः सः देवदेव विभुम् परिचक्रमे, तदा आत्मानम् असङ्गरंहसा महीयसां सहः सहिष्णुम् मेने ।।५।।

**अनुवाद**— कुपित हुए भगवान् शङ्कर के द्वारा क्रोध पूर्वक इस तरह से आदेश दिए जाने पर वीरभद्र ने देवाधिदेव व्यापक भगवान् शिव की परिक्रमा की, उसने अपने में अनुभव किया कि मेरे वेग को कोई भी बर्दास्त नहीं कर सकता है और मैं बड़े-से-बड़े वीर के भी वेग को वर्दास्त कर सकता हूँ ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

मन्युना रुद्रेण । परिचक्रमे प्रदक्षिणीचकार । असङ्गमप्रतिघातं यद्रंहो वेगस्तेन । भो तात, महीयसां बलीयसामपि सहः सहिष्णुं बलं सोढुं क्षमं मेने ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

क्रुद्ध हुए शङ्करजी के द्वारा आदेश दिए जाने के पश्चात् उसने शङ्करजी की परिक्रमा की । इस समय उसने अनुभव किया कि मेरे वेग को कोई रोक नहीं सकता है और बलवानों के भी वेग को सह सकने में अपने को समर्थ माना ।।५।।

**अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ।**
**उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकं स प्राद्रवद्धोषणभूषणाङ्घ्रिः ।।६।।**

**अन्वयः**— स तु भृशं नदद्भिः रुद्रपार्षदैः अन्वीय मानः सुभैरवम् व्यनदत् जगदन्तकान्तकं शूलं उद्यम्य सः घोषणभूषणाङ्घ्रिः प्राद्रवत् ।।६।।

**अनुवाद**— वह वीरभद्र बहुत अधिक गर्जना करने वाले रुद्र के पार्षदों द्वारा उनका अनुगमन किए जाने पर वीरभद्र ने भयङ्कर गर्जना की । उसने संसार का अन्त करने वाले मृत्यु का भी विनाश कर देने वाले त्रिशूल को उठाकर दक्ष के यज्ञ मण्डप की ओर दौड़ पड़ा । उस समय वीरभद्र के पैरों का नूपूर ध्वनि कर रहा था ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

जगदन्तको मृत्युस्तस्याप्यन्तकं शूलम् । घोषयन्ति शब्दं कुर्वन्तीति घोषणानि नूपुरादीनि भूषणानि ययोस्तावङ्घ्री यस्य सः ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

जगदन्तक मृत्यु को कहते हैं उस मृत्यु का भी विनाश कर देने वाले त्रिशूल को उठाकर वह दौड़ा । उस समय उसके दोनों पैरों के भूषण आवाज कर रहे थे ।।६।।

**अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ।**
**तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ।।७।।**

**अन्वयः**— अथ ऋत्विजः, यजमानः, सदस्याः, द्विजाः, द्विजपत्न्यः च उदीच्यां ककुभि रेणुम् प्रसमीक्ष्य एतत् तमः किम्, एतद्रजः कुतः अभूत् इति दध्युः ।।७।।

**अनुवाद**— इसके पश्चात् यज्ञशाला में बैठे हुए ऋत्विज, यजमान, सदस्यगण दूसरे ब्राह्मणगण और ब्राह्मणों की पत्नियाँ उत्तर दिशा में उठी हुयी धूल को देखकर सोचने लगे कि यह अन्धेरा सा कैसे छा रहा है, यह धूल कहाँ से उड़ रही हैं ?॥७॥

### भावार्थ दीपिका

कुकुभि दिशि । तमो न भवति किंतु रज इति ज्ञात्वाहुः । रज एतत्कुतोऽभूत् । दध्युश्चिन्तयामासुः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

कुकुभि अर्थात् दिशा में उड़ती हुयी धूल को देखकर यह सोचने लगे कि यह अन्धकार तो नहीं है, किन्तु यह धूल कहाँ से आ रही हैं ॥७॥

**वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः ।**
**गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥८॥**

**अन्वयः**— वाता न वान्ति, दस्यवः न हि सन्ति, ह उग्रदण्डः प्राचीनबर्हि जीवति, गावो न काल्यन्ते इदं रजः कुतः अधुना लोकः प्रलयाय कल्पते किम् ॥८॥

**अनुवाद**— इस समय आंधी नहीं चल रही है, इस समय लुटेरे भी नहीं हैं, क्योंकि दुष्टों को कठोर दण्ड देने वाले राजा प्राचीनबर्हि जीवित हैं । तो फिर यह धूलि कहाँ से आ रही है, क्या इसी संसार का प्रलय होने वाला है ?॥८॥

### भावार्थ दीपिका

हेत्वन्तरासंभवेनौत्पातिकं कल्पयन्ति-वाता इति । दस्यूनामभावे हेतुः- प्राचीनवर्हिस्तदा नीन्तनो राजा जीवतीति । न काल्यन्ते न शीघ्रं नीयन्ते ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

किसी दूसरे हेतु के न होने के कारण सबों ने माना कि लगता है कि यह कोई उत्पात होने वाला है । लुटेरों के अभाव का कारण यह है कि उस समय के राजा प्राचीनबर्हि जीवित हैं । यह गायों के लाने की बेला भी नहीं है कि गायें शीघ्रता से घर लायी जा रही हों ॥८॥

**प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ।**
**यत्पश्यन्तीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥९॥**

**अन्वयः**— उद्विग्नचित्ता प्रसूति मिश्राः स्त्रियः ऊचुः एष तस्य वृजिनस्य विपाकः यत् पश्यन्तीनां दुहितॄणां अनागाम् सुताम् सतीम् अवदध्यौ ॥९॥

**अनुवाद**— तब दक्षपत्नी प्रसूति तथा अन्य स्त्रियों ने व्याकुल होकर कहा यह उस पाप का परिणाम है कि अपनी सारी कन्याओं के सामने ही निरपराध पुत्री सती का तिरस्कार किया है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

प्रसूतिर्दक्षपत्नी सा मिश्रा मुख्या यासाम् । विपाकः फलम् । पश्यन्तीनामिति तस्याः दुःखाधिक्ये हेतुः- अवदध्याववज्ञातवान्। अनागामनागसाम् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

जिनमें दक्ष की पत्नी प्रसूति प्रधान थी, उन स्त्रियों ने कहा कि यह उस पाप का परिणाम है, दक्ष ने दूसरी

सारी पुत्रियों के सामने ही निर्दोष सती का अपमान किया । सभी पुत्रियों के सामने ही अपमान करना सती के दु:खाधिक्य का कारण था ।।९।।

**यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः ।**
**वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ।।१०।।**

**अन्वयः**— यस्त्वन्त काले व्युप्तजटकलापः स्वशूल सूच्यर्पितदिगजेन्द्रः वितत्यनृत्यतास्त्रदोर्ध्वजान् उच्चादृहासः स्तनयित्नुभिन्नदिक् ।।१०।।

**अनुवाद**— प्रलय काल के उपस्थित होने पर जब वे अपने जटा-जूट को फैलाकर शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित अपनी भुजाओं को ध्वजाओं के समान फैलाकर ताण्डव नृत्य करते हैं उस समय उनके त्रिशूल के अग्रभाग से दिग्गज विंध जाते हैं और उनके मेघ के समान भयङ्कर अट्टहास से दिशाएँ विदीर्ण हो जाती हैं ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

न चेदं सुतावज्ञामात्रं किंतु रुद्रावज्ञानं च, अतो नास्य भद्रं भविष्यतीत्याहुः- यस्त्विति द्वाभ्याम् । व्युप्तो विकीर्णो जटाकलापो यस्य । स्वशूलस्य सूच्यामग्रेऽर्पिताः प्रोता दिग्गजेन्द्रा येन । उदितान्युन्नमितान्यस्त्राणि यैस्ते । दोषो बाहव एव ध्वजास्तान्वितत्य हर्षेण नृत्यति । उच्चोऽट्टहासः कठोरो हास एव स्तनयित्नुर्गर्जितं तेन भिन्ना विदीर्णा दिशो येन सः ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

यह केवल पुत्री का ही अपमान नहीं है, अपितु यह रुद्र का भी अपमान है । अतएव इन दक्ष का कल्याण नहीं हो सकता है । इस बात को **यस्तु० इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । प्रलय काल के उपस्थित होने पर वे अपनी जटाओं को फैला देते हैं और ताण्डव नृत्य करते हैं तो उनके त्रिशूल के अग्रभाग से दिग्गज विंध जाते हैं । उस समय अपने हाथों में अस्त्रों को उठाकर भुजाओं को ध्वजा के समान फैलाकर हर्ष से नृत्य करते हैं । उस समय वे मेघ की गर्जना के समान जोर से अट्टहास करते हैं उसके कारण दिशाएँ भी विदीर्ण हो जाती हैं ।।१०।।

**अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या ।**
**करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ।।११।।**

**अन्वयः**— असह्यतेजसं दुर्विषहं भ्रुकुट्या करालदंष्ट्राग्र रुदस्तभागणं तम् अमर्षयित्वा मन्युप्लुतं कोपयतः विधातुः स्वस्ति स्यात् किम् ।।११।।

**अनुवाद**— उस समय उनका तेज असह्य हो जाता है, भौहों के टेढ़ी होने के कारण दुर्धर्ष बने हुए जिनके भयङ्कर दाँतों के कारण तारागण अस्तव्यस्त हो जाते हैं, उन क्रोध में भरे हुए शिवजी को बार-बार क्रुद्ध करने वाले चाहे विधाता ही क्यों न हो वे कल्याण पूर्वक रह सकते हैं क्या ।।११।।

**भावार्थ दीपिका**

अमर्षयित्वाऽसहनयुक्तं कृत्वा । मन्युप्लुतं क्रोधव्याप्तम् । उदस्तो विक्षिप्तो भगणो नक्षत्रसङ्घो येन । पुनश्च तं कोपयतो विधातुरपि किं स्वस्ति स्यान्न स्यादेव, काऽन्यस्य कथा ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

उनके नाराज हो जाने के कारण क्रोधाविष्ट हो जाने पर उनके भयङ्कर दाँतों से तारागण भी अस्त-व्यस्त हो जाते हैं । उसके पश्चात् उनको कुपित बनाने वाले विधाता का भी कल्याण हो सकता है क्या ? नहीं हो सकता है । तो फिर दूसरों की कौन सी बात हैं ।।११।।

**बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मुहूर्महात्मनः ।**
**उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥१२॥**

**अन्वयः**— महात्मनः दक्षस्य जनेन एवम् बहु उद्विग्नदृशा उच्यमाने, दिवि भूमौ च सहस्रशः पर्यक् भयाबहाः उत्पाततमाः उत्पेतुः ॥१२॥

**अनुवाद**— महात्मा दक्ष के लोगों द्वारा अत्यन्त उद्विग्न नेत्रों से देखकर बार-बार कहे जाते रहने पर ही पृथिवी और आकाश में चारो ओर हजारो प्रकार के भयङ्कर उत्पात होने लगे ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

उद्विग्ना प्रचलिता दृग्यस्य तेन जनेन बहु यथा भवत्येवमुच्यमाने सत्युत्पाततमा महोत्पाता उत्थिताः । पर्यक् सर्वतश्च। कथंभूताः । महात्मनोऽपि दक्षस्य भयावहाः ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

जिन लोगों के नेत्र उद्विग्न हो गये थे ऐसे दक्ष के लोग जब कह रहे थे उसी समय महात्मा दक्ष के लिए भयप्रद चारो ओर उत्पात होने लगे ॥१२॥

**तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ।**
**पिङ्गैः पिशङ्गैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे विदुर ! तावत् पर्याद्रवद्भिः नानायुधैः वामनकैः उदायुधैः पिङ्गैः पिशङ्गैः मकरोदराननैः रुद्रानुचरैः महान मखः अन्वरुध्यत ॥१३॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! उसी समय दौड़कर आये हुए अनेक प्रकार के आयुधों को धारण किए हुए वामन, भूरे, पीले तथा मगर के समान पेट तथा मुख वाले रुद्र के अनुचरों ने चारो ओर से उस महान यज्ञशाला को चारो ओर से घेर लिया ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

नानायुधानि येषाम् । वामनकैर्ह्रस्वैः । उद्यतायुधैः । पिङ्गैः कपिलैः पीतैः । मकरस्येवोदरमाननं च येषां तैः । परितो धावद्भिरवरुद्धः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

अनेक आयुधों वाले, छोटे आकार वाले, आयुधों को उठाये हुए जो पीले, भूरे मगर के समान मुख और पेट वाले थे ऐसे रुद्र के अनुचरों ने चारो ओर से यज्ञशाला को घेर लिया ॥१३॥

**केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथा परे । सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— केचित् प्राग्वंशं बभज्जुः तथा अपरे पत्नीशालाम्, केचित् सदः आग्नीध्रशालां केचित् तद्विहारम् महानसंच ॥१४॥

**अनुवाद**— किसी ने प्राग्वंश को तोड़ दिया, दूसरे पार्षदों ने पत्नीशाला को विनष्ट कर दिया, कुछ पार्षदों ने सभामण्डप और आग्नीध्रशाला को विनष्ट कर दिया तो कुछ पार्षदों ने दक्ष के निवास स्थान और महानस (पाकशाला) को ही विनष्ट कर दिया ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

यज्ञशालायाः पूर्वपश्चिमस्तम्भयोरर्पितं पूर्वपश्चिमायतं काष्ठं प्राग्वंशस्तम् । यज्ञशालायाः पश्चिमतः पत्नीशाला ताम् ।

यज्ञशालायाः पुरतः स्थितं सदोमण्डपम् । सदसः पुरो हविर्धानं तस्योत्तरत अग्नीध्रशालाम् । तद्विहारं यजमानगृहम् । महानसं पाकभोजनशालाम् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

यज्ञशाला के पूर्व और पश्चिम स्तम्भों पर आड़े लगाये गये डण्डे (प्राग्वंश) को तोड़ दिया, दूसरे पार्षदों ने यज्ञशाला के पश्चिम दिशा में विद्यमान पत्नीशाला को तोड़ डाला, कुछ पार्षदों ने यज्ञमण्डप के सामने विद्यमान सभामण्डप और उस सभामण्डप के आगे विद्यमान हविर्धान और उसकी उत्तर दिशा में स्थित आग्नीध्रशाला को विनष्ट कर दिया । कुछ पार्षदों ने दक्ष के निवास स्थान को ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया और कुछ पार्षदों ने पाकशाला भोजनालय को ही तोड़-फोड़ दिया ।।१४।।

**रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् । कुण्डेष्वमूत्रयन्केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ।।१५।।**

**अन्वयः**— यज्ञपात्राणि रुरुजुः तथा एके अग्नीन् अनाशयन्, केचित् कुण्डेषु अमूत्रयन् वेदिमेखलाः विभिदुः ।।१५।।

**अनुवाद**— कुछ लोगों ने यज्ञ पात्रों को तोड़ डाला, कुछ लोगों ने अग्नियों को बुझा दिया, कुछ पार्षदों ने कुण्डों में मूत्र त्याग कर दिया और कुछ लोगों ने यज्ञवेदी की मेखलाओं को ही तोड़ डाला ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

रुरुजुर्बभञ्जुः । उत्तरेवेद्या मेखलाः सीमासूत्राणि। 'आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया' इति हेतोर्न ते दोषभाजिन इति भावः।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

कुछ लोगों ने यज्ञ पात्रों को तोड़ दिया । रुरुजुः का अर्थ है तोड़ दिया । कुछ लोगों ने उत्तर वेदी की मेखलाओं के सीमा सूत्रों को ही तोड़ दिया । अब प्रश्न होता है कि तब तो वे दोष के भागी हो गये होंगे । तो इसका उत्तर है कि गुरुजनों की आज्ञा पर विचार नहीं करना चाहिए । शङ्करजी ने ही आज्ञा दी थी यज्ञ को विनष्ट कर देने की अतएव वे दोष के पात्र नहीं हुए ।।१५।।

**अबाधन्त मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् । अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्पलायितान् ।।१६।।**

**अन्वयः**— अन्ये मुनीन् अबाधन्त एके पत्नीः अतर्जयन्, अपरे प्रत्यासन्नान् पलायितान् देवान् जगृहुः ।।१६।।

**अनुवाद**— कुछ लोग मुनियों को तङ्ग करने लगे, कुछ लोग स्त्रियों को डराने, धमकाने लगे कुछ लोगों ने अपने सन्निकट भागते हुए देवताओं को पकड़ लिया ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

प्रत्यासन्नान्पलायितान्समीपस्थान्पलायितानपि जगृहुः ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

कुछ पार्षदों ने सन्निकट से भागते हुए देवताओं को तथा कुछ सन्निकट में विद्यमान और भागते हुए देवताओं को पकड़ लिया ।।१६।।

**भृगुं बबन्ध मणिमान्वीरभद्रः प्रजापतिम् । चण्डीशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ।।१७।।**

**अन्वयः**— मणिमान् भृगुं बबन्ध, वीरभद्रः प्रजापतिं बन्ध चण्डीशः पूषणं बबन्ध नन्दीश्वरः भगं देवं अग्रहीत् ।।१७।।

**अनुवाद**— मणिमान् ने महर्षि भृगु को बाँध दिया, वीरभद्र ने दक्ष प्रजापति को बाँध दिया, चण्डीश ने पूषा देवता को बाँध दिया और नन्दीश्वर ने भगदेवता को पकड़ लिया ।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।।१७।।

**सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः । तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥१८॥**

**अन्वयः**— सर्वे एव ऋग्विजः सदिवौकसः सदस्या, दृष्ट्वा तैः ग्रावभिः सुभृशं अर्द्यमानाः नैकधा अद्रवन् ॥१८॥

**अनुवाद**— सभी ऋत्विज देवता और सदस्य सबके सब यह सब कुछ देखकर तथा शङ्करजी के पार्षदों द्वारा पत्थरों से बहुत अधिक मारे जाते हुए वहाँ से जिधर-तिधर भागने लगे ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

ग्रावभिरर्द्यमानाः नैकधा अनेकधा दुद्रुवुः ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

पत्थरों से मारे जाते हुए उस यज्ञ के ऋत्विज, देवता और सदस्य सबके सब जिधर-तिधर भाग गये ॥१८॥

**जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः । भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन् ॥१९॥**

**अन्वयः**— जुहुवतः स्रुवहस्तस्य भृगोः श्मश्रूणि भगवान् भवः ललुञ्चे यः यः सदासि श्मश्रुदर्शयन अहसत् ॥१९॥

**अनुवाद**— हाथ में स्रुवा लेकर होम करने वाले महर्षि भृगु की दाढी मूंछ को वीर भ्रद ने नोच लिया, क्योंकि इन्होंने ब्रह्मसभा में अपनी दाढ़ी को दिखाते हुए शङ्करजी का उपहास किया था ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

स्रुवो हस्ते यस्य । भवो वीरभद्रः । लुलुञ्चे उत्पाटितवान् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

स्रुव हाथ में लिए हुए भृगु की दाढी वीरभद्र ने नोच ली ॥१९॥

**भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य रुषा भुवि । उज्जहार सदस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥२०॥**

**अन्वयः**— रुषा भुवि पातितस्य भगस्य नेत्रे भगवान् उज्जहार सदस्थो यः शपन्तम् अक्ष्णा असूसुचत् ॥२०॥

**अनुवाद**— क्रोध करके भूमि पर पटके गये भग देवता के नेत्रों को वीरभद्र ने निकाल लिया, क्योंकि ब्रह्म सभा में बैठे हुए ये शङ्करजी को शाप देने वाले दक्ष को इन्होंने अपनी आँखों के इशारे से प्रेरित किया था ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

उज्जहारोद्धृतवान् । यः सदस्थः सभायां स्थितः सन् शपन्तं शिवनिन्दां कुर्वन्तं दक्षमक्ष्णाक्षिनिकोचेनासूसुचत्प्रेरितवान्॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

उज्जहार पद का अर्थ निकाल ली है । जो भृगु देवता सभा में बैठे हुए शिवजी की निन्दा करने वाले दक्ष को अपनी आँखों के ईशारे से दक्ष को निन्दा करने के लिए प्रेरित किए थे ॥२०॥

**पूष्णश्चापातयद्दन्तान्कालिङ्गस्य यथा बलः । शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥२१॥**

**अन्वयः**— कलिङ्गस्य बलो यथा पूष्णः च दन्तान् पातयत् यः शप्यमाने गरिमणि दतः दर्शयन् अहसत् ॥२१॥

**अनुवाद**— अनिरुद्ध के विवाह में जिस तरह से बलरामजी ने कलिङ्गराज के दाँतों को तोड़ दिया था उसी तरह से वीरभद्र ने पूषा देवता के दाँतों को तोड़ दिया था । क्योंकि जब शङ्करजी को दक्ष शाप दे रहे थे उस समय पूषा देव अपने दाँतों को दिखाते हुए हँस रहे थे ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

कलिङ्गदेशराजस्यानिरुद्धोद्वाहे बलभद्रो यथा द्यूते दन्तान्पातितवान् । गरिमणि गुरुतरे रुद्रे निन्द्यमाने दतो दन्तान्दर्शयन्यो

जहास । पूष्णोरिति पाठे द्विवचनं 'ऐन्द्रापौष्णश्चरुर्भवति' इत्यत्रान्यसहितस्यापि पूष्णो दन्तपातप्राप्तयर्थं सूचितवान् । तथाहि 'पूषा प्रपिष्टभागोऽदन्तको हि तं देवा अब्रुवन्' इति विहितस्य पेषणस्य द्विदैवत्याभावात्तत्र, तस्य दन्ताः सन्तीति वक्तव्यं स्यात् नचैतत्सङ्गच्छत इत्याशङ्क्य तत्रापि तस्य दन्तपातोऽवस्थाभेदे प्रवृत्तेन द्विवचनेन प्राप्यते, अतएव पूष्णोऽनुग्रहं द्वेधा वक्ष्यति । 'पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक्' इति । केवलश्चेत्प्रपिष्टभुग्भविष्यति । अन्यसहितश्चेद्यजमानस्य दद्भिर्भक्षयिष्यतीत्यर्थः।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

अनिरुद्ध के विवाह के अवसर पर द्यूतक्रीडा के अवसर पर बलभद्रजी ने कलिङ्गराज के दाँतों को तोड़ दिया था । उसी तरह जब शङ्करजी को ब्रह्मसभा में दक्ष शाप दे रहे थे उस समय पूषा अपने दाँतों को दिखाकर हँसे थे, उनके दाँतों को वीरभद्र ने तोड़ दिया था । जहाँ पर पूष्णोः पाठ है वहाँ पर द्विवचनान्त पाठ **'ऐन्द्रापौष्णश्चरुर्भवति'** इस श्रुति के अनुसार पूषा के साथ रहने वाले इन्द्र देवता के भी दन्त पात को सूचित किया गया है । उसी तरह से **पूषा प्रविष्ट भागोऽदन्तको हि तं देव अब्रुवन्** अर्थात् **पूषा देवता** दाँत से रहित होने के कारण अच्छी तरह से पीसे गये भाग को ग्रहण करने वाले हैं, उनको देवताओं ने कहा इस वाक्य में विहित पेषण का द्विवचन प्रयोग नहीं है, अतएव वहाँ पर इन्द्र के दाँत थे यह कहना चाहिए । **न चैतत्० इत्यादि** किन्तु इसका यहाँ पर समन्वय नहीं होता है । इस प्रकार की आशङ्का करके वहाँ पर भी उनकी अवस्था के भेद में द्विवचन की प्रवृत्ति हो जाती है । इसीलिए शङ्करजी ने पूषा देवता पर दो प्रकार से अनुग्रह किया है । **पूषा यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक्** अर्थात् पिसे हुए अन्न को खाने वाले पूषा देवता यजमान के दाँतों से अपने भाग का भोग करें । अर्थात् यदि वे अकेले रहें तो वे पिष्ट पदार्थ का ही भोग करे । यदि वे इन्द्र के साथ रहें तब यजमान के दाँतों से भोग करें।।२१।।

**आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना । छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत्र्यम्बकस्तदा ।।२२।।**

**अन्वयः**— दक्षस्य उरसि आक्रम्य शित धारेण हेतिना छिन्दन्नपि त्र्यम्बकः तदुद्धर्तुं नाशक्नोत् तदा ।।२२।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् जब दक्ष की छाती पर चढ़कर तीक्ष्ण धार वाले तलवार से उसका शिर काटने लगे किन्तु बहुत प्रयास करने पर भी धड़ से अलग नहीं कर सकें ।।२२।।

**भावार्थ दीपिका**

छिन्दन्नपीत्यत्र शिर इत्युपरि व्यक्तीभविष्यति । त्र्यम्बको वीरभद्रः ।।२२।।

**भाव प्रकाशिका**

धिन्दन्नपि यहाँ पर यद्यपि शिर शब्द का प्रयोग नहीं है फिर भी आगे शिर को काटते हुए यह स्पष्ट हो जायेगा ।।२२।।

**शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः । विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ।।२३।।**

**अन्वयः**— अस्त्रान्वितैः शस्त्रैः एवमनिर्भिन्नत्वचं दृष्ट्वा परम विस्मयम् आपन्नौ हरः पशुपति चिरम् दध्यौ ।।२३।।

**अनुवाद**— शस्त्रों के द्वारा किसी भी प्रकार से उसकी त्वचा को नहीं काटते हुए देखकर वीरभद्र को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वे दीर्घकाल तक विचार किए ।।२३।।

**भावार्थ दीपिका**

अस्त्रान्वितैर्मन्त्रसहितैः । अनिर्भिन्ना त्वग्यस्य तथाभूतं द्दष्ट्वेति शेषः ।।२३।।

**भाव प्रकाशिका**

मन्त्रों से अभिमन्त्रित शस्त्रों से दक्ष की त्वचा नही कटते हुए देखकर वीरभद्र को बड़ा आश्चर्य हुआ ।।२३।।

**दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे । यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥२४॥**

**अन्वयः**— सः पशूनां पतिः मखे संज्ञपनं योगं दृष्ट्वा यजमानपशोः कस्य कायात् शिरः अहरत् ॥२४॥

**अनुवाद**— वीरभद्र तब यज्ञीय पशुओं के संज्ञपन प्रकार को देखकर उसी प्रकार से उस यजमान पशु के शिर को उसके धड़ से अलग कर दिए ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

स पशूनां पतिर्मखे संज्ञपनं योगं कण्ठनिष्पीडनादिरूपं मारणोपायं दृष्ट्वा तेनोपायेनाहरत् ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

वीरभद्र यज्ञ में पशुओं के कण्ठ निष्पीडन इत्यादि उपायों को देखकर उसी उपाय से उस यजमान पशु के शिर को उसके धड़ से अलग कर दिए ॥२४॥

**साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् । भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥२५॥**

**अन्वयः**— तदा तस्य तत् कर्म शंसताम् भूतप्रेत पिशाचानाम् साधुवादः अन्येषां तद्विपर्ययः ॥२५॥

**अनुवाद**— वीरभद्र के उस काम को देखकर भूत प्रेत पिशाच आदि तो वीरभद्र को साधुवाद देने लगे किन्तु दक्ष के पक्ष वालों में हाहाकार मच गया ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्येषां ब्राह्मणादीनां तद्विपर्ययोऽसाधुवादः अभूदिति शेषः ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरे जो ब्राह्मण इत्यादि थे वे वीरभद्र के कर्म की निन्दा करने लगे ॥२५॥

**जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः । तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥२६॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

**अन्वयः**— अमर्षितः एतच्छिरः तस्मिन् दक्षिणाग्नौजुहाव, तद् देवयजनं दग्ध्वा गुह्यकालयम् प्रातिष्ठत् ॥२६॥

**अनुवाद**— अत्यन्त कुपित वीरभद्र ने दक्ष के शिर को उस यज्ञ की दक्षिणाग्नि में होम कर दिया और उस यज्ञशाला में आग लगाकर कैलास के लिए प्रस्थान किए ॥२६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥**

**भावार्थ दीपिका**

गुह्यकालयं कैलासम् ॥२६॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥**

**भाव प्रकाशिका**

गुह्यकालय कैलास को कहते हैं । वहीं वीरभद्र चले गये ॥२६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥५॥**

# छठा अध्याय

## ब्रह्मादि देवताओं का कैलास जाकर शङ्करजी को प्रसन्न करना

मैत्रेय उवाच

**अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः। शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥१॥**
**संछिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः। स्वयंभुवे नमस्कृत्य कार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥२॥**

**अन्वयः**— अथ रुद्रानीकैः पराजिताः शूल पट्टिशनिस्त्रिंश गदापरिघमुद्गरैः संछिन्न–भिन्न सर्वाङ्गा सर्त्विक्सभ्याः भयाकुलाः सर्वे देवगणाः स्वयम्भुवे नमस्कृत्य एतत् कार्त्स्न्येन न्यवेदयन् ॥१–२॥

**मैत्रेयजी महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! रुद्र के सेवकों के द्वारा पराजित, तथा रुद्रानुचरों के त्रिशूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, परिघ और मुद्गर आदि आयुधों के प्रहार से जिनके सम्पूर्ण अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये थे, इस प्रकार के उस यज्ञ के ऋत्विज, सभासद सदस्य, तथा सभी देवता गण अत्यन्त भयभीत हो गये थे । वे ब्रह्माजी के पास गये और उनको नमस्कार करके, उस यज्ञ में हुयी सारी घटना को पूर्ण रूप से सुनायें ॥१-२॥

**भावार्थ दीपिका**

षष्ठे तु देवसङ्घेन सह गत्वा भवं विधिः । सान्त्वयामास दक्षादि जीविताद्यर्थमादरात्॥१॥ अथ देवगणाः स्वयंभुवे न्यवेदयन्निति द्वितीयेनान्वयः ॥१॥ शूलादिभिः संछिन्नानि त्रुटितानि भिन्नानि विदीर्णान्यङ्गानि येषाम् । सह ऋत्विग्भिः सभ्यैश्च वर्तमानाः ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

छठे अध्याय में देव समूह के साथ ब्रह्माजी शिवजी के पास जाकर दक्ष आदि के जीवन इत्यादि का वरदान देकर सबों का सान्त्वना प्रदान किए ॥१॥ उसके पश्चात् सभी देवताओं ने ब्रह्माजी से सारी बातें बतायी । इस पहले श्लोक का दूसरे श्लोक के न्यवेदयन् पद के साथ अन्वय है ॥१॥ त्रिशूल आदि के प्रहार से जिन सबों के अङ्ग कट गये थे । जो उस यज्ञ में ऋत्विक् और सभ्य (सदस्य) वर्तमान थे वे सब के सब घायल हो गये थें ॥१-२॥

**उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसंभवः । नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥३॥**

**अन्वयः**— एतत् पुरैव उपलभ्य भगवान् अब्जसंभवः विश्वात्मा नारायणश्च कस्य अध्वरम्न ईयतुः ॥३॥

**अनुवाद**— इस होने वाले उत्पात् को पहले ही जान जाने के कारण दक्ष प्रजापति के यज्ञ में ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण जगत की आत्मा भगवान् नारायण ये दोनों नहीं आये थे ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

कस्य दक्षस्य यज्ञे ब्रह्मा विष्णुश्च नेयतुर्न जग्मतुः । यत्रारुद्रको यज्ञस्तत्र नारायणविरिञ्चावपि नागतौ ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में ब्रह्माजी तथा भगवान् विष्णु भी नहीं गये थे । जिस यज्ञ में रुद्र का भाग नहीं होता है । उस यज्ञ में ब्रह्माजी और भगवान् नारायण भी नहीं जाते हैं ॥३॥

**तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि । क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥४॥**

**अन्वयः**— तत् आकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि,प्रायेण बुभुषताम् तत्र क्षेमाय न भूयात् ॥४॥

**अनुवाद**— देवताओं से सारी बातों को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा कि यदि किसी परम तेजस्वी पुरुष से कोई अपराध भी हो जाय तो उसके बदले में अपराध करने वालों का कल्याण नहीं होता हैं ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

विभुर्ब्रह्मा । तेजीयस्यतितेजस्विनि पुरुषे कृतागसि सत्यपि स्वयं तत्र कृतागसा वुभूषतामपराधं कर्तुमिच्छतां सा तथा बुभूषा तेषां क्षेमाय न भूयात् । प्रायेणेति लोकोक्तिः । भवेदेवेत्यर्थः ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा कि यदि किसी परम तेजस्वी पुरुष से कोई अपराध हो भी जाय तो उसके बदले में यदि दूसरा व्यक्ति भी अपराध करना चाहे तो उसके द्वारा वह किया गया अपराध कल्याणकारी नहीं होता है, यह लोकोक्ति है ।।४।।

**अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ।**
**प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ।।५।।**

**अन्वयः**— अथापि यूयं भवं कृतक्ल्विषा ये बर्हिषदः भागभाजं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् प्रसादयघ्वम्।।५।।

**अनुवाद**— तुम लोगों ने शिव का अपराध किया है, क्योंकि यज्ञ में उनके भाग को नहीं प्रदान किया है। फिर भी शुद्ध अन्तःकरण से शीघ्र प्रसन्न होने वाले शङ्करजी के पैरों को पकड़कर उनको तुम लोग प्रसन्न करो।।५।।

### भावार्थ दीपिका

अथापि प्रसादयध्वं क्षमापयत । ये भवन्तो बर्हिषो यज्ञस्य भागभाजं परादुर्दूरादेव खण्डितवन्तः । प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मं पादौ प्रगृह्येत्यर्थः ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

आपलोगों ने यज्ञ के भाग को उन्हें नही प्रदान किया है फिर भी उनके चरण कमलों को पकड़कर उनको प्रसन्न करो ।।५।।

**आशासाना जीवितमध्वरस्य लोकः सपालः कुपितेन यस्मिन् ।**
**तमाशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ।।६।।**

**अन्वयः**— दुरुक्तै हृदिविद्धं, प्रियया विहीनं अध्वरस्य जीवितम् आशासान् तं देवम् आशुक्षमापयध्वं यस्मिन् कुपिते सपालः लोकः न ।।६।।

**अनुवाद**— दक्ष के दुर्वचनों के कारण उनका हृदय विद्ध हो गया है, साथ ही उनकी प्रियतमा पत्नी का वियोग भी हो गया है, यदि तुम लोग चाहते हो कि पुनः यज्ञ प्रारम्भ होकर पूरा हो जाय तो उन महादेव को जाकर शीघ्र प्रसन्न करो । अन्यथा उनके कुपित होने पर लोकपालों के साथ संसार नहीं बचेगा ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

अध्वरस्य जीवितं पुनः संधानं प्रार्थयमानाः सन्तः । यस्मिन्कुपिते सति सपालो लोको न भवेन्नश्येदित्यर्थः ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

यदि आप लोग यज्ञ को पुनः प्रारम्भ होकर उसकी पूर्णता चाहते हैं तो तुम लोग उनको प्रसन्न करो । उनके क्रुद्ध हो जाने पर लोकपालों सहित सम्पूर्ण लोक का नाश हो जायेगा ।।६।।

**नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ।**
**विदुः प्रमाणं बलवीर्य्ययोर्वा यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ।।७।।**

**अन्वयः**— यस्यात्मतन्त्रस्य बलवीर्ययोः प्रमाणं अहं न, यज्ञो न, यूयम् अन्ये च ये देहभाजः मुनयश्च तत्त्वं न विदुः कः उपायं विधित्सेत् ।।७।।

**अनुवाद**— जिस परम स्वतन्त्र भगवान् शङ्कर के बल एवं पराक्रम के प्रमाण को ठीक-ठीक न तो मै, न तो उस समय के इन्द्र यज्ञ, तुमलोग तथा दूसरा कोई शरीरधारी नहीं जानता है, तो फिर दूसरों की बात ही क्या है, उनको शान्त करने का दूसरा कौन सा उपाय किया जा सकता है ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

वयं तु तत्र गन्तुं विभीमस्त्वमेव कंचिदुपायं विधत्स्वेति चेदत आह-नेति । यज्ञस्तदानींतन इन्द्रः । यस्य तत्त्वं बलवीर्ययोः प्रमाणमियत्तां च न विदुः । वीर्यं पराक्रमः । पापमिति पाठेऽपराधम् ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि देवता कहें कि हमलोग तो उनके पास जाने से डरते हैं, अतएव आप कोई उपाय करें तो इसके उत्तर में ब्रह्माजी ने कहा जिन शङ्करजी के बल और पराक्रम की सीमा को कोई नहीं जानता है, उनके क्रोध को शान्त करने का कौन सा उपाय हो सकता है । यज्ञ शब्द से तात्कालिक इन्द्र को कहा गया है । जहाँ पाप पाठ है, वहाँ अपराध अर्थ होगा ।।७।।

**स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ।**
**ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ।।८।।**

**अन्वयः**— स अजः इत्थम् सुरान् आदिश्य तैः सप्रजेशैः पितृभिः समन्वितः स्वधिष्ण्यात् पुरद्विषः निलयं प्रभोः प्रियं अद्रि प्रवरं कैलासं ययौ ।।८।।

**अनुवाद**— वे ब्रह्माजी इस प्रकार से देवताओं को आदेश देकर उन देवताओं, प्रजापतियों तथा पितरों को साथ लेकर अपने लोक से भगवान् शङ्कर के प्रियधाम तथा पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर गये ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।८।।

**जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः । जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ।।९।।**

**अन्वयः**— जन्मौषधितपो मन्त्रयोगसिद्धैः नरेतरैः किन्नर गन्धर्वैः अप्सरोभिः वृतं, सदा जुष्टं कैलासं ययौ ।।९।।

**अनुवाद**— जन्म से ही औषधितप, मन्त्र, योग आदि साधनों से ही सिद्ध देवताओं, किन्नर, गन्धर्व तथा अप्सराओं से घिरे हुए और उन सबों से सेवित पर्वत श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर गये ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

कैलासं वर्णयति— जन्मौषधीत्यादिचतुर्दशभिः । नरेतरैः देवैर्जुष्टम् ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

जन्मौषधि इत्यादि चौदह श्लोकों से कैलास पर्वत का वर्णन करते हैं । वह कैलास पर्वत देवताओं से सेवित हैं।।९।।

**नानामणिमयैः शृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः । नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ।।१०।।**
**नानाऽमलप्रस्रवणैर्नानाकंदरसानुभिः । रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ।।११।।**

**अन्वयः**—नानाधातुविचित्रितैः नानामणिमयैः शृङ्गैः नानादुमलतागुल्मैः नानामृगगणावृतैः नानाऽमलप्रस्रवणैः नानाकन्दर सानुभिः रमणैः विहरन्तीनां सिद्धयोषिताम् रमणम् कैलासं ययौ ।।१०-११।।

**अनुवाद**— अनेक प्रकार के धातुओं से रङ्ग विरङ्ग प्रतीत होने वाले अनेक मणिमय शिखरों से, अनेक प्रकार के वृक्ष, लता एवं गुल्मों से तथा अनेक प्रकार के पशु समूहों से घिरे हुए, जल के अनेक निर्मल झरनों तथा अनेक कन्दराओं की शिखरों से तथा अपने प्रियतमों के साथ विहार करने वाली सिद्धों की पत्नियों से मनोहर बने कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ।।१०-११।।

### भावार्थ दीपिका

शृङ्गै रमणं रतिप्रदमित्युत्तरेणान्वयः । कथंभूतैः । नानाधातुभिर्विचित्रितैः नानाद्रुमलतागुल्माश्च येषु । नाना अमलानि प्रस्रवणानि येषु । नाना कन्दराः सानवश्च येषु । रमणैः सह क्रीडन्तीनाम् ।।१०-११।।

### भाव प्रकाशिका

इस दशवें श्लोक का अगले श्लोक के रमणं पद से अनवय है । अनेक प्रकार के धातुओं से रङ्ग-विरङ्ग प्रतीत होने वाले, शिखरों जिन पर अनेक प्रकार के वृक्ष, लता और गुल्म विद्यमान हैं । तथा अनेक स्वच्छ झरनों से युक्त, जिनमें अनेक कन्दराएँ और शिखर हैं तथा अपने पतियों को साथ क्रीड़ा करने वाली सिद्धों की पत्नियों से मनोहर लगने वाले कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ।।१०-११।।

**मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् । प्लाविते रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ।।१२।।**

**अन्वयः**— मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् रक्तकण्ठानां पतत्रिणाम् प्लवितैः कूजितैश्च रमणं कैलासंययौ।।१२।।

**अनुवाद**— मोरों की ध्वनि से ध्वनित तथा भ्रमरों के गुंजार से गुंजित कोयलों तथा दूसरे पक्षियों की ध्वनि से गुंजित उस कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

मयूराणां केकाभिः स्वनैर्नादितम् । मदान्धैरलिभिर्विमूर्च्छितं मूर्च्छना रागगतिविशेषस्तवाप्तं कृतम् । रक्तकण्ठानां कोकिलानां प्लुवितैः प्लुतत्वं नीतैः स्वरैः अन्येषां च पतत्रिणां कूजितैः ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

जहाँ मयूरों की ध्वनि होती रहती है, मदमत्त भौंरे गुंजार करते रहते हैं, कोयलों तथा दूसरे पक्षियों की ध्वनि जहाँ सुनायी देती है, ऐसे कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ।।१२।।

**आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्द्रुमैः । व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ।।१३।।**

**अन्वयः**— उद्धस्तैः कामदुघैः द्रुमैः द्विजान् आह्वयन्तमिव, मातङ्गैः व्रजन्तमिव, निर्झरैः गृणन्तमिव कैलासं ययौ।।१३।।

**अनुवाद**— कल्प वृक्षों की उन्नत शाखाओं रूपी उठाये हुए हाथों से वह मानो पक्षियों को बुला रहा हो, चलते हुए हाथियों के द्वारा जैसे वह चल रहा हो, तथा झर-झर की ध्वनि करने वाले झरनों के द्वारा मानों वह बोल रहा हो ऐसे कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

उद्धस्तैरुन्नतशाखैर्द्रुमैर्द्विजान्पक्षिण आह्वयन्तमिव । लोके हि हस्तमुत्क्षिप्योच्चैःस्वरेणाऽऽह्वानमर्थिनां कुर्वन्ति । अद्रिश्चोत्क्षिप्तहस्ताकारैर्द्रुमैस्तत्रत्यपक्षिस्वनैश्च तथा लक्ष्यत इत्यर्थः । व्रजद्भिर्मातङ्गैर्व्रजन्तमिव निर्झरध्वनिभिर्गृणन्तं भाषमाणमिव।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

उस पर्वत के वृक्ष अपनी उन्नत शाखाओं रूपी हाथों को उठाकर जैसे पक्षियों को बुला रहे हों, लोक में भी देखा जाता है कि लोग अपने हाथों को उठाकर याचकों को बुलाते हैं । यह पर्वत भी अपने उठाये हुए हाथों के समान वृक्षों से तथा वहाँ के पक्षियों की ध्वनि से मालुम पड़ता है कि वह भी पक्षियों को बुलाता है । चलने वाले हाथियों के द्वारा लगता है कि वह पर्वत ही चल रहा है, उसके झरनों की ध्वनियों से मालुम पड़ता है कि वह बोल रहा है । इस प्रकार के कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ।।१३।।

**मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् । तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥१४॥**
**चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकैः । पाटलाशोकबकुलैः कुन्दैः कुरबकैरपि ॥१५॥**

**अन्वयः**— मन्दारै, पारिजातैः च, सरलैः, तमालै; शालतालैः कोविदारासनार्जुनैः चूतैः, कदम्बैः नीपैः च नाग, पुन्नाग, चम्पकैः, पाटलशोक बकुलैः कुन्दैः कुरबकैः अपि शोभितम् कैलासं पयौ ॥१४-१५॥

**अनुवाद**— मन्दार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताड़, कचनार, असन तथा अर्जुन के वृक्षों से आम, कदम्ब, नीप नाग, पुन्नाग, चम्पा, गुलाब, अशोक, मौलसिरी तथा कुन्द एवं कुरबक के वृक्षों से सुशोभित कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ॥१४-१५॥

### भावार्थ दीपिका

चूताम्रयोर्नीपकम्बयोरवान्तरजातिभेदः । वेणुकीचकयोश्च नीरन्ध्रसरन्ध्रत्वेन भेदः ॥१४-१५॥

### भाव प्रकाशिका

चूत तथा आम इन दोनों की जातियाँ अलग-अगल हैं इसी तरह नीप और कदम्ब की जातियाँ अलग-अलग है । वेणु छिद्र रहित होता है और कीचक बाँसों में छिद्र होते हैं, इस तरह इन दोनों में भेद हैं ॥१४-१५॥

**स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वररेणुकजातिभिः । कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— स्वर्णशतपत्रैः च वररेणुक जातिभिः, कुब्जकैः, मल्लिकाभिश्च, माधवीभिश्च शोभितम् ययौ ॥१६॥

**अनुवाद**— सुनहरे शतपत्र कमल, इलायची, तथा मालती की मनोहर लताओं, कुब्जक, मोगरा तथा माधवी लता से भी सुशोभित कैलास पर ब्रह्माजी गये ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

स्वर्णार्णैः स्वर्णवर्णैः शतपत्रैर्मण्डितम् । रेणुकजातिभिरित्यत्र रेणुका एला । जातिर्मालती ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

स्वर्णिम कमलों से समलंकृत इलायची तथा मालती से सुशोभित कैलास पर ब्रह्माजी गये ॥१६॥

**पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिङ्गुभिः । भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः ॥१७॥**
**खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः । द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥१८॥**

**अन्वयः**— पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोध हिंगुभिः, भूर्जैः, ओषधिभि पूगैः राजपूगैः जम्बुभिः, खर्जूराम्रतका म्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः, अन्यैः द्रुमजातिभिः, वेणुकीचकैः राजितम् ययौ ॥१७-१८॥

**अनुवाद**— कटहल, गूलर, पीपल, पाकड़, बड़, गूगल, भोजपत्र, ओषधि, जाति के पेड़, सुपारी, राजपूग, जामुन, खजूर, आमड़ा, आम, पिप्पल, महुआ, लिसोड़ा, आदि विभिन्न प्रकार के वृक्षों, वेणु तथा कीचक जाति के बाँसों से सुशोभित कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गयें ॥१७-१८॥

### भावार्थ दीपिका

द्रुमजातिभिरित्यत्र जातिरवान्तरभेदसामान्यम् ॥१७-१८॥

### भाव प्रकाशिका

दुमजातिभिः पद में जाति शब्द अवान्तरभेदसामान्य का बोधक है ॥१७-१८॥

**कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रवनर्द्धिभिः । नलिनीषु कलं कूजत्खगवृन्दोपशोभितम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— कुमुदोत्पल कह्लार शतपत्रवर्द्धिभिः नलिनीषु कलंकूजत् खगवृन्दोप शोभितम् ॥१९॥

**अनुवाद**— वहाँ के सरोवरों में कुमुद, उत्पल, कह्लार तथा शपतत्र आदि अनेक प्रकार के कमल विकसित थे तथा कमलिनियों पर मनोहर कूजन करने वाले पक्षी वृन्द से वह पर्वत सुशोभित था ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

कुमुदादिसमृद्धिभिर्हेतुभिर्नलिनीषु सरस्सु कलं मधुरं यथा भवत्येवं कूजन्ति यानि पक्षिवृन्दानि तैरुपशोभितम् ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

कुमुद आदि पुष्पों की समृद्धि के कारण सरोवर में विद्यमान कमलिनियों पर मनोहर कलरव करने वाले पक्षियों से वह पर्वत सुशोभित था । ऐसे कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ॥१९॥

**मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः । गवयैः शरभैर्व्याघ्रै रुरुभिर्महिषादिभिः ॥२०॥**
**कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्टं वृकनाभिभिः । कदलीषण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥२१॥**
**पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया । विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः॥२२॥**

**अन्वयः**— मृगैः शाखामृगैः क्रोडैः मृगेन्द्रैः ऋक्षशल्यकैः गवयैः शरभैः, व्याघ्रैः रुरुभिः महिषादिभिः कर्णान्त्रैक पदाश्वास्यैः वृकनभिभिः, जुष्टं कदलीखण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम्, सत्याः स्नानपुण्यदपतरोदया नन्द या पर्यस्तुं भूतेशगिरिं विलोक्य विवुधाः विस्मयं ययुः ॥२०-२२॥

**अनुवाद**— जहाँ-तहाँ हरिण, मृग, वानर, सूअर, सिंह, रीछ, साही, नीलगाय, शरभ, बाघ, कृष्णमृग भैंसे, कर्णान्त्र, एकपाद, अश्वमुख, भेंड़िये, और कस्तूरी मृगों से सुशोभित, कैलास पर्वत के सरोवरों के तट केलों की पंक्तियों से सुशोभित थे । उसके चारो ओर से सती देवी के स्नान करने से पवित्र जलवाली नन्दा नाम की नदी प्रवाहित होती थी । भूतनाथ के इस प्रकार के पर्वत को देखकर देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥२०-२२॥

### भावार्थ दीपिका

मृगादिभिर्निर्जुष्टं निषेवितम् । पूर्वं मृगगणाः शृङ्गविशेषणत्वेनोक्ता इदानीं स्वातअेणेत्यपौनरुत्तयम् । नाभिभिः कस्तूरीमृगैः कदलीषण्डैः संरुद्धान्यावृतानि नलिनीनां पुलिनानि तैः श्रीः शोभा यस्मिन् । नन्दया गङ्गया पर्यस्तं परिवेष्टितम् । सत्या भवान्याः स्नानेन पुण्यतरमतसुगन्धमुदकं यस्याम् ॥२०-२२॥

### भाव प्रकाशिका

वह कैलास पर्वत मृग आदि से सुशोभित था । पहले मृगगणों का वर्णन शृंग विशेषण रूप से कहे गये हैं, और यहाँ पर उन सबों को स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया गया है अतएव इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं है । नाभि शब्द से कस्तूरी मृगों को कहा गया है केलों की पंक्तियों से जिनकी शोभा आवृत है इस तरह के सरोवरों के तटों से उस पर्वत की शोभा हो रही थी । वह पर्वत नन्दा नाम की गङ्गा से घिरा हुआ था । सती देवी के स्नान करने से नन्दा गङ्गा का जल अत्यन्त सुगन्धित हो गया था । भूतनाथ शङ्करजी के इस प्रकार के पर्वत को देखकर देवताओं को अत्यधिक आश्चर्य हुआ ॥२०-२२॥

**ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् । वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पङ्कजम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— ते तत्र अलका नाम रम्यां पुरीम् यत्र तन्नाम पङ्कजंतत् सौगन्धिकं वनं ददृशुः ॥२३॥

**अनुवाद**— उन देवताओं ने वहाँ पर अलका नाम की नगरी तथा सौगन्धिक कमलों वाले सौगन्धिक नाम के वन को देखा ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र गिरौ वनं च ददृशुः । यत्र वने तन्नाम सौगन्धिकं पङ्कजं भवति । जातावेकवचनम् ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

देवताओं ने उस पर्वत पर सौगन्धिक नामक वन को देखा । उस वन में सौगन्धिक नामक कमल होता है पद्म यह एकवचनान्त प्रयोग जाति के अर्थ में किया गया है ॥२३॥

**नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः । तीर्थपादपदाम्भोजरजसाऽतीव पावने ॥२४॥**

**अन्वयः**— तीर्थपादपदाम्भोजरससतीव शोभने पुरः वाह्यतः नन्दा च अलकनन्दा च सरितौ प्रबहतः ॥२४॥

**अनुवाद**— तीर्थपाद श्रीहरि के चरणों की धूलि से अत्यन्त पवित्र बनी हुयी नन्दा और अलकनन्दा पुरी के बाहर प्रवाहित होती हैं ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरीं वर्णयति-नन्दा चेति चतुर्भिः । सरितौ पुरः पुराद्बाह्यतो भवतः । तीर्थपादस्य हरेः पादाम्भोजरजसा ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

**नन्दाच० इत्यादि** चार श्लोकों के द्वारा पुरी का वर्णन किया गया है । पुरी से बाहर दो नदियाँ प्रवाहित होती हैं, नन्दा और अलकनन्दा वे दोनों तीर्थपाद श्रीहरि के चरणों के रज के कारण अत्यन्त पवित्र हैं ॥२४॥

**ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः । क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ॥२५॥**

**अन्वयः**— हे क्षत्तः रतिकर्शिताः सुरस्त्रियः स्वधिष्ण्यतः अवरुध्य, ययोः विगाह्य पुंसः सिञ्चन्त्यः क्रीडन्ति ॥२५॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! रतिक्रीडा से श्रान्त देवताओं की स्त्रियाँ अपने निवास स्थान से आकर उन नदियों में प्रवेश कर अपने पतियों पर जल उलीचती हुयी क्रीडा करती हैं ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

ययोर्विगाह्य प्रविश्य क्रीडन्ति ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

उन नदियों में प्रवेश करके क्रीड़ा करती हैं ॥२५॥

**ययोस्तत्स्नानबिभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जरम् । वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भः पाययन्तो गजा गजीः ॥२६॥**

**अन्वयः**— तत् स्नानविभ्रष्टनवकुंकुमपिञ्जरम् ययोः अम्भः वितृषोऽपि गजाः गजीः पाययन्तः पिबन्ति ॥२६॥

**अनुवाद**— देव स्त्रियों के स्तनों पर नवीन लगाये गये कुङ्कुम के उन नदियों में स्नान करने के कारण छूट जाने से पिले बने हुए जल को प्यास लगे बिना भी सुगन्धि के लोभ से हाथी अपनी हथिनियों को जल पिलाते हुए पीते हैं॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

ययोरम्भो विगततृषोऽपि गजाः पिबन्ति । तत्र हेतुः तासां सुरस्त्रीणां स्नानेन विभ्रष्टं गलितं यन्नवं कुङ्कुमं तेन पिञ्जरं पीतवर्णम् । गजीः करिणीः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

उन दोनों नदियों के जल को प्यास नहीं रहने पर भी हाथी अपने हथिनियों को पिलाते हुए पीते हैं । उसका कारण है कि देवस्त्रियों के स्नान करने से छूटे हुए नवीन कुङ्कुम के कारण वह जल पीला बन गया हैं ॥२६॥

**तारहेममहारत्नविमानशतसङ्कुलम् । जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्धनम् ॥२७॥**
**हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् । द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥२८॥**

**अन्वयः**— तारहेममहारत्नविमानशत सङ्कुलम् सतडिद्धनम् एवं यथा पुण्यजनस्त्रीभिःजुष्टां यक्षेश्वरपुरीं, हित्वा कामदुधैः द्रुमैः चित्रमाल्यफलच्छदैः हृद्यं तत् सौगन्धिकं वनं आययुरिति शेषः ॥२७-२८॥

**अनुवाद**— चाँदी, सुवर्ण तथा बहुमूल्य मणियों से निर्मित सैकड़ों विमान अलकापुरी के ऊपर विद्यमान थे जिनमें अनेक यक्ष पत्नियों का निवास था। उसके कारण वह नगरी बिजली से युक्त मेघों से आच्छन्न के समान प्रतीत होती थी। इस तरह से कुबेर की उस नगरी को त्यागकर वे देवगण उस सौगन्धिक वन मे गये। वह वन अनेक प्रकार के फलों, फूलों और पत्तों वाले कल्प वृक्षों से सुशोभित था ॥२७-२८॥

### भावार्थ दीपिका

तारं रूप्यम्। तारादिमयविमानानां शतैः सङ्कुलाम्। तडिद्भिः स्त्रीणां, घनैर्विमानानां, खेन पुर्याः सादृश्यम्। यक्षेश्वरपुरीं हित्वाऽतिक्रम्य तद्वनं च दृष्ट्वा ते देवा आराद्दूराद्वटं ददृशुरिति चतुर्थेनान्वयः। कथंभूतं वनम्। चित्राणि माल्यानि फलानि छदाश्च पत्राणि येषु तैर्द्रुमैर्हृद्यं सुखकरम् ॥२७-२८॥

### भाव प्रकाशिका

तार चाँदी को कहते हैं। चाँदी, सुवर्ण और रत्नों आदि से निर्मित सैकड़ों विमानों से भरी हुयी वह अलकापुरी विद्युत् से युक्त मेघों से छायी हुयी के समान प्रतीत होती है। यहाँ विद्युत् से स्त्रियों की, मेधों से विमानों की और आकाश से नगरी की समता बतायी गयी है। यक्षों के राजा कुबेर की नगरी को त्यागकर उस बन को देखकर देवगण सन्निकट में विद्यमान उस बट को देखे इस चौथे श्लोक के साथ अन्वयः है। इस वन की विशेषता यह थी कि रङ्गविरङ्गे मालाओं, फलों, छदों, तथा पत्तों के कारण अत्यन्त सुखद प्रतीत होता था ॥२७-२८॥

**रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् । कलहंसकुलप्रेष्ठं खरदण्डजलाशयम् ॥२९॥**
**वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना । अधिपुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥३०॥**
**वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः । प्राप्तं किंपुरुषैर्दृष्ट्वा त आराद्ददृशुर्वटम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— रक्तकण्ठखगानीक स्वरमण्डित षटपदम् कलहंस कुलप्रेष्ठं, खरदण्डजलाशयं वनकुञ्जरसंघृष्ट हरिचन्दनवायुना, अधिपुण्यजनस्त्रीणाम् मनः मुहुरुन्मथयन्, वैदूर्यकृतसोपानाः, उत्पलमालिनीः, वाप्यः किम्पुरुषैः दृष्ट्वा आरात् प्राप्तं वटम् ददृशुः ॥२९-३१॥

**अनुवाद**— वह वन कोकिल आदि अनेक पक्षियों के कलरवो से और भ्रमरों के गुञ्जन के स्वर से अलंकृत था। उसमें राजहंसों के परम प्रिय कमल पुष्पों से सुशोभित अनेक सरोवर थे। वनैले हाथियों के रगड़ से धिसे हुए हरिचन्दन की सुगन्धि से युक्त वायु यक्षों की पत्नियों के मन को अत्यधिक मथ रहा था, उस वन की वावलियों की सीढ़ियाँ वैदूर्य मणि की बनी थीं, तथा उन वाबलियों में कमल विकसित थे किम्पुरुषों (किन्नरों) से युक्त उन बावलियों को देखकर वे देवगण सन्निकट में ही विद्यमान एक बटवृक्ष को देखे ॥२९-३१॥

### भावार्थ दीपिका

रक्तकण्ठखगानामनीकस्य स्वरैर्मण्डिताः षट्पदाः षट्पदस्वरा यस्मिन्। कलहंसानां कुलस्य प्रेष्ठम्। खरदण्डानि पद्मानि तैर्युक्ता जलाशया यस्मिन्। वनकुञ्जरैः संघृष्टा ये हरिचन्दनद्रुमास्तत्संबन्धिना वायुना पुण्यजनस्त्रीणां मनः अधि अधिकमुन्मथयन्। यत्र चोत्पलमालिन्यो वाप्यस्तत्किंपुरुषैः प्राप्तं वनं दृष्ट्वा। पाठान्तरे किंपुरुषैः प्राप्ता वापीश्च दृष्ट्वेत्यर्थः ॥२९-३१॥

**भाव प्रकाशिका**

उस वन में कोकिलों की ध्वनि से अलंकृत भौरे गूंजन करते थे । राजहंसों को अत्यन्त प्रिय कमलों से युक्त जलाशय उस वन में थे । वनैले हाथियों के रगड़ने से जिनका छिलका छिल गया था ऐसे हरिचन्दनों की सुगन्धि से युक्त वायु यक्षों की पत्नियों के मन को अत्यधिक मथ रहा था, कमलों से अलंकृत बावलियों तथा उसमे आये हुए किन्नरों से युक्त वन को देखकर उन देवताओं ने सन्निकट में विद्यमान वटवृक्ष को देखा ।।२९-३१।।

**स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः । पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ।।३२।।**

**अन्वयः**— सः योजनशत उत्सेधः पादोनविटपायतः पर्यक् कृता चलच्छायः निर्नीडः तापवर्जितः ।।३२।।

**अनुवाद**— वह वटवृक्ष सौ योजन ऊँचा था, पचहत्तर योजन में उसकी शाखाएँ फैली थी, उसके चारो ओर सदा छाया बनी रहती थी, उसमें कोई घोसला भी नहीं था और वह धूप के संताप से रहित था ।।३२।।

**भावार्थ दीपिका**

योजनशतमुत्सेध उच्छ्रायो यस्य । पादोनैः सर्वतः पञ्चसप्ततियोजनप्रमाणैर्विटपैः शाखाभिरायतो विस्तृतः । पर्यक् सर्वतः कृता अचला छाया येन । निर्गतं नीडं यस्मात् ।।३२।।

**भाव प्रकाशिका**

उस वट वृक्ष की ऊँचाई सौ योजन थी वह अपनी शाखाओं से पचहत्तर योजन में चारो ओर फैला था। उसमें सर्वदा सब ओर से छाया बनी रहती थी तथा उस पर कोई भी घोंसला नहीं था ।।३२।।

**तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणे सुराः । ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ।।३३।।**

**अन्वयः**— महायोगमये, मुमुक्षु शरणे तस्मिन् देवाः व्यक्तामर्षम् अन्तकम् इव आसीनं शिवं ददृशुः ।।३३।।

**अनुवाद**— भगवदुपासनारूपीमहायोगमय, मुमुक्षु जीवों के आश्रयभूत उस वट वृक्ष की छाया में क्रोध रहित काल के समान बैठे हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**

मुमुक्षूणां शरणे आश्रये । त्यक्तामर्षो योऽन्तकस्तत्तुल्यम् ।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

वह वट वृक्ष मुमुक्षु जीवों के लिए आश्रय स्वरूप था, उस बट वृक्ष की छाया में बैठे हुए शिव जी क्रोध रहित काल के समान प्रतीत हो रहे थे ।।३३।।

**सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् । उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ।।३४।।**

**अन्वयः**— शान्तैः सन्दनाद्यै महासिद्धैः गुह्यकरक्षसाम् भर्त्रा सख्या च संशान्तविग्रहम्उपास्यमानं शिवं ददृशुः रितिशेषः।।३४।।

**अनुवाद**— शान्त स्वभाव वाले सनन्दन आदि महासिद्धों, तथा यक्षों एवं राक्षसों के स्वामी तथा मित्र कुबेर के द्वारा जिनकी सेवा की जा रही थी ऐसे शिवजी को देवताओं ने देखा ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

तं विशिनष्टि- सनन्दनाद्यैरिति पञ्चभिः । सख्या कुबेरेणोपास्यमानम् ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

सनन्दनाद्यैः इत्यादि पाँच श्लोकों से मैत्रेयजी शिवजी की विशेषता बतलाते हैं शङ्करजी के मित्र कुबेर उनकी सेवा में तत्पर थे ऐसे शिवजी को देवताओं ने देखा ।।३४।।

**विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् । चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥३५॥**

**अन्वयः**— अधीश्वरम्, विश्वसुहृदं, वात्सल्याल्लोकमङ्गलम्, चरन्तम् विद्यातपो योगपथम् आस्थितं शिवं ददृशुः॥३५॥

**अनुवाद**— सम्पूर्ण जगत् के स्वामी शिवजी विश्व के बन्धु हैं, वे वात्सल्य के कारण संसार का मङ्गल करते रहते हैं । उपासना, तपस्या तथा मन की एकाग्रता रूपी योगमार्ग में स्थित शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

विद्या उपासना, तपश्चित्तैकाग्र्यं योगः समाधिस्तेषां पन्थानं प्रवर्तनद्वारा। लोकस्य मङ्गलं हितं तपोवात्सल्यात्स्नेहादाचरन्तम्॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

उपासना, तपस्या तथा चित्त की एकाग्रता रूपी योग का संसार का मङ्गल करने के लिए अनुष्ठान करने वाले शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३५॥

**लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् । अङ्गेन सन्ध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥३६॥**

**अन्वयः**— सन्ध्यभ्ररुचा अङ्गेन तापसाभीष्टं लिङ्गं भस्म दण्डजटाजिनम् चन्द्रलेखां च विभ्रतम् शिवं ददृशुः ॥३६॥

**अनुवाद**— सन्ध्याकालीन मेघ के समान कान्ति वाले अपने शरीर पर तपस्वियों के लिए अभीष्ट चिह्न भस्म, दण्ड, जटा और मृगचर्म तथा चन्द्रमा की कला को धारण किए हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

सन्ध्याभ्ररुचा रक्तवर्णेनाङ्गेन भस्मादिलिङ्गं चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

सन्ध्याकालीन रक्तवर्ण के शरीर पर भस्म आदि चिह्नों को तथा चन्द्रमा की कला को धारण किए हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३६॥

**उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनम् । नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३७॥**

**अन्वयः**— दर्भमय्यां बृस्यां उपविष्टं शृण्वताम् सताम् पृच्छते नारदाय सनातनं ब्रह्म प्रवोचन्तम शिवं ददृशुः ॥३७॥

**अनुवाद**— कुश निर्मित आसन पर बैठे हुए तथा सुनने वाले सन्तों के बीच में पूछने वाले नारदजी को सनातन ब्रह्म (भगवत् तत्त्व) का उपदेश करते हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

व्रतिनामासनं वृसी तस्याम् । ब्रह्म प्रवोचन्तम् ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

व्रतियों का असनवृसी होता है, उस पर बैठकर सनातन ब्रह्म भगवत् तत्त्व का नारदजी को उपदेश करते हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३७॥

**कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि । बाहुं प्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥३८॥**

**अन्वयः**— दक्षिणे उरौ सव्यं पादपद्मं कृत्वा बाहुंच जानुनि प्रकोष्ठे अक्षमालां कृत्वा तर्कमुद्रया आसीनं शिवं ददृशुः॥३८॥

**अनुवाद**— दाहिनी जङ्घा पर बायाँ चरण कमल रखकर बायाँ हाथ बायीं घुटना पर रखकर, कलायी में रुद्राक्ष माला पहने हुए तथा तर्क मुद्रा से बैठे हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

सव्यं पादपद्मं दक्षिणे ऊरौ कृत्वा विन्यस्य जानुनि च सव्ये बाहु कृत्वा दक्षिणबाहुप्रकोष्ठे मणिबन्धस्थाने अक्षमालां च कृत्वा दक्षिणहस्तकृतया तर्कमुद्रयोपलक्षितमासीनमित्यर्थः । तदुक्तं योगशास्त्रे 'एकापादमथैकस्मिन्विन्यसेदूरुसंस्थितम् । इतरस्मिंस्तथा बाहुं वीरासनमिदं स्मृतम् । तर्कमुद्रा चोक्ता 'तर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रे मिथः संयोज्य चाङ्गुलीः । प्रसार्य बन्धनं प्राहुस्तर्कमुद्रेति मात्रिकाः ।' इति ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

बायां चरण कमल दाहिनी जङ्घा पर रखकर और घुटने पर बायाँ हाथ रखकर दाहिनी कलाई में रुद्राक्ष की माला डाले हुए तर्कमुद्रा से बैठे हुए शङ्करजी को देवताओं ने देखा । योगशास्त्र में कहा भी गया है— बायें पैर को दायें पैर की जङ्घा पर रखकर और दूसरे पर हाथ को रखकर बैठने को वीरासन कहते हैं । तर्कमुद्रा को बतलाते हुए कहा गया है— तर्जनी और अङ्गूठे के आगे की अङ्गुलियों को परस्पर में सटाकर फैलाये और तर्जनी और अङ्गूठे को एक में सटा दे तो उसीको मान्त्रिकों ने तर्क मुद्रा कहा है ।।३८।।

**तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ।**
**सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ।।३९।।**

**अन्वयः**— योगकक्षां व्युपाश्रितं ब्रह्मनिर्वाण समाधिमाश्रितं तं गिरिशं मनूनाम् आद्यं मनुं तं गिरिशं प्राञ्जलयः सलोकपाला मुनयः प्रणेमुः ।।३९।।

**अनुवाद**— योगपट्ट का सहारा लिए एकाग्रचित्त से ब्रह्मानन्द का अनुभव करने वाले, मननशीलों में सर्वश्रेष्ठ मुनि शङ्करजी को हाथ जोड़े हुए लोकपालों सहित मुनियों ने प्रणाम किया ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मानन्दस्तत्र समाधिरैकाग्र्यं तमाश्रितम् । योगकक्षां योगपट्टं च वामजानुदृढीकरणार्थं विशेषेणोपाश्रितवन्तम्। मननशीला मनवस्तेषामाद्यं मुख्यम् ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्मानन्द को ही ब्रह्म निर्वाण कहते हैं, उसी में चित्त को एकाग्र करके स्थित बायें घुटने को सुदृढ करने के लिए योग पट्ट का सहारा लिए हुए तथा मनन शीलों में प्रधान शङ्करजी को मुनियों ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया है ।।३९।।

**स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ।**
**उत्थाय चक्रे शिरसाभिवन्दनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ।।४०।।**

**अन्वयः**— सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः स तु आगतम् आत्मयोनिम् उपलभ्य यथा अर्हत्तमः विष्णुः कस्य तथैव उथाय शिरसा अभिवन्दनँ चक्रे ।।४०।।

**अनुवाद**— देवताओं और असुरों के स्वामी भी जिनके चरण कमलों की वन्दना करते हैं वे शङ्करजी आये हुए ब्रह्माजी को देखकर खड़ा होकर उसी तरह शिर झुकाकर प्रणाम किए जिस तरह परम पूज्य भगवान् वामन महर्षि कश्यप को प्रणाम किए ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

अर्हत्तमो विष्णुर्वामनमूर्तिर्यथा । कस्य कश्यपस्य ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

जिस तरह पूज्यों में श्रेष्ठ वामन मूर्ति भगवान् विष्णु महर्षि कश्यप को प्रणाम किए उसी तरह शङ्करजी ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया ॥४०॥

**तथा परे सिद्धगणा महर्षिभिर्ये वै समन्तादनु नीललोहितम् ।**
**नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥४१॥**

**अन्वयः**— तथा परे सिद्धगणाः महर्षिभिः ये वै समन्तादनुनीललोहितम्, नमस्कृतः आत्मभूः कृतप्रणामं शशाङ्कशेखरं प्रहसन्निव आह ॥४१॥

**अनुवाद**— तथा दूसरे सिद्धगण और महर्षियों के साथ जो शङ्करजी के अनुयायी थे उन सबों के द्वारा प्रणाम कर लिए जाने पर प्रणाम किए हुए चन्द्रशेखर शङ्करजी से ब्रह्माजी ने हँसते हुए से कहा ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**

महर्षिभिः सहिता ये नीललोहितमनुवर्तन्ते तेऽपि तस्मै वन्दनं चक्रुः । एवं सर्वैर्नमस्कृतः प्राह । कृतः प्रणामो देवैर्यस्मै तम् ॥४१॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षियों के साथ जो शङ्करजी के अनुवर्ति थे उन लोगों ने भी ब्रह्माजी को नमस्कार किया । और देवताओं ने जिनको प्रणाम कर लिया था ऐसे शङ्करजी से हँसते हुए के समान ब्रह्माजी ने कहा ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

**जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः । शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥४२॥**

**अन्वयः**— त्वां विश्वस्य ईशं जाने जगतो योनिः शक्तिः बीजं च शिवः तयोः परं यत् तत् निरंन्तरम् ब्रह्म ॥४२॥

**ब्रह्माजी ने कहा**

**अनुवाद**— मैं आपको जानता हूँ कि आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, क्योंकि विश्व की योनि शक्ति (प्रकृति) और बीज शिव (पुरुष) इन दोनों से परे जो एक रस ब्रह्म है, वह आप ही हैं ॥४२॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यपि त्वं नीचवन्मां नमस्करोषि तथापि तवैश्वर्यमहं वेद्मीत्याह-जान इति । त्वां विश्वस्येशं जाने । तत्र हेतुः-जगतो योनिर्या शक्तिः प्रकृतिर्बीजं च शिवः पुरुषस्तयोः कारणम् । तथापि निरन्तरं निर्भेदं यद्ब्रह्म निर्विकारं तदेव त्वमिति जाने॥४२॥

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि आप छोटे के समान मुझको नमस्कार करते हैं फिर भी मैं आपके ऐश्वर्य को जानता हूँ । आप विश्व के स्वामी हैं । उसका कारण यह है कि जगत् की योनि जो शक्ति (प्रकृति) है और वीज जो शिव पुरुष उन दोनों से परेभेद रहित जो निर्विकार ब्रह्म हैं वही आप हैं ॥४२॥

**त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः सरूपयोः । विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥४३॥**

**अन्वयः**—हे भगवन् त्वमेव शिव शक्त्योः सरूपयो क्रीडन् एतत् विश्वं सृजसि यासि अत्सि क्रीडन् ऊर्णपटोयथा॥४३॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप ही मकड़ी के समान अपने स्वरूप भूत शिवशक्ति के रूप में क्रीड़ा करते हुए इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, इसकी रक्षा करते हैं और अन्त में इसका संहार करते हैं ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

ननु विरुद्धमेतत्तत्राह । त्वमेव सरूपयोरविभक्तयोः शिवशक्तयोः क्रीडन्विश्वसृष्ट्यादि करोषि । ऊर्णनाभिरिव । स्वरूपयोरिति पाठे स्वांशयोः । अतो न विरोधः ।।४३।।

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यह तो विरुद्ध है तो ऐसी बात नहीं है आप ही अपने स्वरूपभूत शिव तथा शक्ति से क्रीड़ा करते हुए इस जगत् की सृष्टि आदि को करने का काम करते हैं । यह उसी तरह से होता है जिस तरह से मकड़ी अपने से जाल को प्रकट करती है, और अन्त में उसको निगल जाती है ।।४३।।

**त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ।**
**त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो यान्ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ।।४४।।**

**अन्वयः**— त्वमेव धर्माथदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण अध्वरन् ससर्जिथाः त्वयैव च लोकेसेतवः अवसिताः यान् धृतव्रताः ब्राह्मणाः श्रद्दधते ।।४४।।

**अनुवाद**— आपने ही धर्म और अर्थ की प्राप्ति कराने वाले वेद की रक्षा के लिए दक्ष को निमित्त बनाकर यज्ञ को प्रकट किया है । आपने ही धर्म की मर्यादाओं को निश्चित किया है, जिनका नियम निष्ठ ब्राह्मण श्रद्धा पूर्वक पालन करते हैं ।।४४।।

### भावार्थ दीपिका

धर्ममर्थं च दोग्धि या त्रयी तस्या अभिपत्तये रक्षणायाध्वरं सृष्टवानसि । यद्वा हे धर्मार्थदुघ, धर्माद्यभिपत्तये तत्प्राप्तये। दक्षेण सूत्रेण निमित्तेन । सेतवो वर्णाश्च मर्यादाश्च अवसिता निबद्धा निर्णीता इति वा श्रद्दधते श्रद्धयाऽनुतिष्ठन्ति ।।४४।।

### भाव प्रकाशिका

जो त्रयी (ऋक्, यजुः और साम वे) धर्म और अर्थ प्रदान करती है उसकी रक्षा करने के लिए आपने यज्ञ की सृष्टि की है । अथवा धर्म और अर्थ प्रदान करने वाले धर्म और अर्थ आदि की प्राप्ति के लिए दक्ष रूपी निसित्त के द्वारा आपने यज्ञ की सृष्टि की है । आपने धर्म की मर्यादाओं को निश्चित किया है इस बात को जानकर धर्मनिष्ठ ब्राह्मण उसका अनुष्ठान श्रद्धा पूर्वक करते हैं ।।४४।।

**त्वं कर्मणां मङ्गल मङ्गलानां कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा ।**
**अमङ्गलानां च तमिस्रमुल्बणं विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ।।४५।।**

**अन्वयः**— हे मङ्गलमङ्गलानां कर्मणां कर्तुः त्वं स्वः परं वा लोकं तनुषे अमङ्गलानां च उल्बणं तमिस्रं तनुये, तदेव कस्यचित् केन विपर्ययः ।।४५।।

**अनुवाद**— हे मङ्गल स्वरूप शङ्करजी ! आप ही मङ्गलमय कर्मों को करने वालों के लिए स्वर्ग लोक अथवा मोक्ष प्रदान करने का काम करते हैं और पाप कर्म करने वालों को आप घोर नरक में डालते रहते हैं । फिर भी किसी के लिए उसका उल्टा फल कैसे हो जाता है ।।४५।।

### भावार्थ दीपिका

सर्वकर्मफलदातापि त्वमेवेत्याह । हे मङ्गल, मङ्गलानां शुभानां कर्मणां कर्तुः स्वः स्वर्गं परं मोक्षं वा तनुषे । अमङ्गलानामशुभानां कर्मणां कर्तुश्च तमिस्रं नरकं तनुषे । तत्र केन हेतुना तदेव तस्मिन्नेव कस्यचिद्विपर्ययो भवति ।।४५।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने कहा कि आप सभी कर्मों के फल को प्रदान करते हैं। हे मङ्गल स्वरूप शङ्करजी! आप ही मङ्गलमय शुभ कर्मों को करने वालों को स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले हैं और अशुभ कर्मों को करने वालों को आप ही नरक प्रदान करते हैं। फिर भी किस कारण से उसी व्यक्ति के लिए कर्मों का फल उलटा हो जाता है ॥४५॥

**न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ।**
**भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥४६॥**

**अन्वयः**— त्वच्चरणर्पितात्मनां सर्वेषु भूतेषु त्वाम् अभिपश्यतां भूतानि अपृथग्दिदृक्षतां च आत्मनि पश्यतां प्रयेण पशुं यथा रोषो वेन अभिभवेत् ॥४६॥

**अनुवाद**— जिन महापुरुषों ने अपने को आपके चरणों में अर्पित कर दिया है, जो समस्त प्राणियों में आपको ही देखते हैं, तथा अभेद दृष्टि होने के कारण जो आत्मा में ही समस्त जीवों को देखते हैं, उन महापुरुषों को प्रायः पशु के समान क्रोध अभिभूत नहीं कर पाता है ॥४६॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वत्कोपोऽत्र हेतुरित्यसंभावितमिति कैमुत्यन्यायेनाह। न वै सतां सतः रोषोऽभिभवेत्। तव त्वाम्। द्वितीयार्थे षष्ठ्यौ। पशुमज्ञं यथाऽभिभवति तद्वत् ॥४६॥

**भाव प्रकाशिका**

इस विषय में आपका कोप कारण हो यह सम्भव नहीं है इस बात को प्रकारान्तर से ब्रह्माजी ने कहा— जिस तरह अज्ञानियों को क्रोध अभिभूत कर देता है, उस तरह से वह सत् पुरुषों को नहीं अभिभूत कर पाता है। **तव** में द्वितीया के अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुयी हैं ॥४६॥

**पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ।**
**परान्दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदास्तान्मावधीद्दैववधान्भवद्विधः ॥४७॥**

**अन्वयः**— पृथग्धियः, कर्मदृशः दुराशयाः अनिशम् परोदयेनार्पिताद्रुजः ते अरुन्तुदाः दुरुक्तैः परान् वितुदन्ति तान् दैववधान् भवद्विधाः मा वधीत् ॥४७॥

**अनुवाद**— जो लोग भेद बुद्धि से युक्त हैं, जो लोग कर्मों को ही करने में आसक्त रहा करते हैं, जिनका अन्तःकरण दूषित है वे मर्म का भेदन करने वाले अपनी दुरुक्तियों के द्वारा दूसरों को दुःखी बनाने वाले तथा जो दूसरों का उत्कर्ष देखकर रातदिन जलते रहते हैं, उन भाग्य के मारे गये विचारों को आप जैसे महापुरुषों को मारना उचित नहीं है ॥४७॥

**भावार्थ दीपिका**

अतो ये पृथग्धियो भेददृशोऽतः कर्मण्येव दृष्टिर्येषाम्। दुष्ट आशयो येषाम्। परेशामुदयेन सम्पदा अर्पिता हृदि रुग्येषाम्। अरुन्तुदा मर्मभेत्तारः। दैवेनैव बधो येषां तान्भवद्विधो निरूपमः साधुर्मावधीन्न हन्यात् ॥४७॥

**भाव प्रकाशिका**

अतएव जो भेदबुद्धि वाले हैं उनकी बुद्धि सदा कर्मों में ही लगी रहती है, जिनका अन्तःकरण दोषों से दूषित है, जो दूसरों की सम्पत्ति को देखकर सदा जलते हैं ऐसे मर्म का भेदन करने वाले लोग अपनी दुरुक्तियों

से ही दूसरों को असह्य कष्ट देते हैं। ऐसे लोगों को तो भाग्य ने ही मार दिया है, उन लोगों को आप जैसे महापुरुषों को मारना उचित नहीं है ॥४७॥

**यस्मिन्यदा पुष्करनाभमायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ।**
**कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥४८॥**

**अन्वयः**— यस्मिन् यदा दुरन्तया पुष्कराभमायया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः तत्र साधवः अनुकम्पया कृपा मेव कुर्वन्ति दैवबलात् कृते क्रमम् न ॥४८॥

**अनुवाद**— जिस देश और जिस काल में जिसका अतिक्रमण करना अत्यन्त कठिन है उन भगवान् विष्णु की माया से मोहित होने के कारण जो लोग भेद बुद्धि वाले हो जाते हैं उन लोगों पर साधुजन, अपनी परदुःखाऽसहिष्णु बुद्धि के कारण कृपा ही करते हैं, उन भाग्य के मारे लोगों को वे मारने का काम नहीं करते हैं ॥४८॥

### भावार्थ दीपिका

प्रत्युत साधूनां वृत्तमालोक्यानुग्रहमेव कर्तुमर्हसीत्याह द्वाभ्याम्। यस्मिन्देशे। यदा काले। स्पृष्टधियो मोहितचित्ताः पृथग्दृशो भवन्ति। तत्रापराधे साधवो ह्यनुकम्पयाऽनन्तरमेव परदुःखासहिष्णुतया चित्तप्रकम्पेन कृपां कुर्वन्ति, नतु क्रमं पराक्रमम्। कुतः दैवबलात्कृतेऽर्थे ममैव दैवमेवंभूतं कोऽत्रापराधस्तेषामिति मत्वा तद्धननं न कुर्वत इत्यर्थः ॥४८॥

### भाव प्रकाशिका

बल्कि साधु पुरुषों द्वारा किए जाने वाले व्यवहार को देखकर आप इन पर कृपा ही करें। इस बात को दो श्लोकों से कहा गया है। जिस देश में तथा जिस काल में भगवान् विष्णु की अनतिक्रमणीय माया के द्वारा जिनकी बुद्धि मोहित हो गयी है और वे भेद बुद्धि वाले हैं ही। उनके द्वारा अपराध किए जाने पर ही साधु पुरुष उन पर कृपा ही करते हैं। भाग्य से आक्रान्त उन लोगों पर वे अपना पराक्रम नहीं प्रदर्शित करते हैं ॥४८॥

**भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरन्तयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ।**
**तया हतात्मस्वनुकर्मचेतःस्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसिप्रभो ॥४९॥**

**अन्वयः**— प्रभो भवान् तु समस्तदृक् परमस्य पुंसः दुरत्यया मायया आस्पृष्टमतिः तया हतात्मसु अनुकर्मचेतस्सु अनुग्रहं इहकर्तुम् अर्हसि ॥४९॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ हैं, सबकुछ जानते है, परम पुरुष परमात्मा की अनतिक्रमणीया माया आपकी बुद्धि को स्पर्श भी नहीं कर पायी है। अतएव उसके अधीन हो जाने के कारण जिनकी बुद्धि सदा कर्म मार्ग में ही लगी रहती है, ऐसे जीवों से कोई अपराध भी हो जाय तो आपको उन जीवों पर कृपा ही करनी चाहिए॥४९॥

### भावार्थ दीपिका

भवांस्त्वस्पृष्टमतिः। अतएव समस्तदृक् सर्वज्ञः। तया मायया हत आत्मा येषां तेष्वत एव कर्मानुगतचित्तेष्विहापराधेऽनुग्रहं कर्तुमर्हसि ॥४९॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा आपकी बुद्धि को तो माया छू भी नहीं पायी है, अतएव आप सर्वज्ञ हैं, जिन जीवों की आत्मा माया के द्वारा मारी गयी है, अर्थात् जो जीव माया के अधीन हैं, वे सदा कर्मों के ही करने में लगे रहते हैं। ऐसे लोगों के द्वारा अपराध हो जाने पर आपको उन जीवों पर कृपा ही करनी चाहिए ॥४९॥

**कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्य मनो प्रजापतेः ।**
**न यत्र भागं तव भागिनो ददुः कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥५०॥**

**अन्वयः**— भो मनो ! त्वया हतस्य आसमाप्तस्य प्रजापतेः अध्वस्य उद्धरणं कुरु । यत्र कुयज्विनः येन मखो निनीयते भागिनः तव भागं न ददुः ॥५०॥

**अनुवाद**— हे मननशील भगवन् शङ्कर ! आपके द्वारा विनष्ट कर दिए जाने के कारण इस दक्ष प्रजापति के असमाप्त यज्ञ का आप उद्धार करें । उस यज्ञ में यज्ञ कराने वाले निन्दित याज्ञिकों ने जो आपको यज्ञ के फल को देने वाले हैं ऐसे भाग प्राप्ति के अधिकारी आपको भाग नहीं दिया ॥५०॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं सामान्येनोक्त्वा प्रस्तुतमाह-कुर्विति त्रिभिः । त्वया हतस्य, अत एवासमाप्तस्य प्रजापतेरध्वरस्य । हे मनो, यत्राध्वरे कुयाज्ञिका भागिनोऽपि तव भागं न ददुः । भागार्हत्वमाह । येन त्वया मखो निनीयते फलं प्राप्यते ॥५०॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से ब्रह्माजी सामान्य रूप से सारी बातों को कहकर **कुरु० इत्यादि** तीन श्लोकों के द्वारा प्रस्तुत प्रसङ्ग को कहते हैं हे मनो शङ्कर ! जिस यज्ञ में निन्दित याज्ञिकों ने भाग प्राप्ति के अधिकारी आपको यज्ञ का भाग नहीं प्रदान किया जब कि आप ही यज्ञों के फल को प्रदान करते हैं । अतएव उस प्रजापति के असमाप्त यज्ञ का आप उद्धार कीजिये ॥५०॥

**जीवताद्यजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः । भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥५१॥**

**अन्वयः**— अयं यजमानः जीवतात्, भगः अक्षिणी प्रपद्येत, भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु, पूष्णोः दन्ताश्च पूर्ववत् ॥५१॥

**अनुवाद**— इस यज्ञ का यजमान दक्ष जीवित हो जाय, भग देवता को आँखें मिल जायँ, भृगु महर्षि की दाढ़ी फिर जम जाय और पूषा देवता के दाँत पहले के ही समान हो जायँ ॥५१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥५१॥

**देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः । भवतानुगृहीतानामाशु मन्योऽस्त्वनातुरम् ॥५२॥**

**अन्वयः**— हे मन्यो आयुधाश्मभि भग्नगात्राणां, भवतानुगृहीतानाम् देवानाम् ऋत्विजाम् आशु अनातुरम् अस्तु॥५२॥

**अनुवाद**— हे शङ्कर ! आयुधों और पत्थरों के प्रहार से जिनके अङ्ग टूट फूट गये हैं, और इस समय जो आपकी कृपा के पात्र बने हुए हैं इन देवताओं तथा ऋत्विजों को शीघ्र ही नैरुज्य प्राप्त हो जाय ॥५२॥

**भावार्थ दीपिका**

हे मन्यो, अनातुरमारोग्यमस्तु ॥५२॥

**भाव प्रकाशिका**

मन्यु शङ्करजी का नाम है । उसी के सम्बोधन का रूप है मन्यो अर्थात् हे शङ्करजी ! इन सभी लोगों को आरोग्य प्राप्त हो जाय ॥५२॥

**एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै । यज्ञस्ते रुद्र भागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥५३॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे रुद्रसान्त्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

**अन्वयः**— हे यज्ञहन् रुद्र यद् वै अध्वरस्य उच्छिष्टम् ते भग अस्तु रुद्र अद्यते भागेन यज्ञः कल्पताम् ॥५३॥

**अनुवाद**—हे यज्ञ का विध्वंश करने वाले रुद्र ! यज्ञ का अवशिष्ट जो कुछ हो वह आपका वंश होए। आज आपके ही अंश से यज्ञ की पूर्ति हो ॥५३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।**

### भावार्थ दीपिका

भागश्च तवास्त्वित्याह-एष इति । हे रुद्र । यावदित्यर्थे यदित्यव्ययम् । यज्ञे कृते यावानुच्छिष्टोऽवशिष्टोऽर्थस्तावानेष तव भागोऽस्तु । हे रुद्र, ते भागेनाद्य यज्ञः कल्पतां संपद्यताम् ॥५३॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।**

### भाव प्रकाशिका

एष इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी शङ्करजी से कहते हैं कि हे रुद्र ! यज्ञ के करने पर जो कुछ भी बचा रहे वह सब आपका भाग हो । हे रुद्र ! आज आपके भाग से यज्ञ पूरा होय ॥५३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।**

# सातवाँ अध्याय

## दक्ष प्रजापति के यज्ञ की पूर्ति

मैत्रेय उवाच

**इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता । अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥१॥**

**अन्वयः**— महाहाहो इति अनेन अनुनीतेन परितुष्येता भवेन प्रहस्य यद अभ्यधायि तत् श्रूयताम् इति ॥१॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— महाबाहो विदुरजी ! इस प्रकार से ब्रह्माजी से प्रार्थना किए जाने पर प्रसन्न हुए शङ्करजी ने हँसते हुए जो कहा उसे आप सुनें ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

सप्तमे विष्णुरुद्भूतः स्तुतो दक्षभवादिभिः । यज्ञं प्रवर्तयामास दक्षेणेति निरूप्यते ॥१॥ अजेन योऽनुनीतः प्रार्थितो भावस्तेनाभिहितम् । हे महाबाहो विदुर ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

सातवें अध्याय में दक्ष तथा शङ्करजी आदि के द्वारा स्तुति किए जाने पर प्रकट होकर भगवान् विष्णु ने दक्ष प्रजापति के द्वारा यज्ञ को पुनः प्रारम्भ कराया ॥१॥

श्रीमहादेव उवाच

**नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये । देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥२॥**

**अन्वयः**— हे प्रजेश ! देवमायाभिभूतानां बालानां अद्यम् न तु वर्णयन् अनुचिन्तये तत्रमया दण्डः धृतः ॥२॥

**श्रीमहादेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे ब्रह्माजी ! मैं दक्ष जैसे अज्ञानी जीव जो भगवान् की माया से मोहित हैं उनके द्वारा किए गये अपराधों की न तो मैं चर्चा करता हूँ और न उसको याद ही रखता हूँ, उनको तो मैंने थोड़ा सा दण्डित कर दिया है ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

अघमपराधम् ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

अघशब्द का अर्थ अपराध हैं ।।२।।

**प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः । मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ।।३।।**

**अन्वयः**— दग्ध शीर्ष्णः प्रजापतेः शिरः अजमुखं भवतु । भगः बर्हिषः मित्रस्य चक्षुषा ईक्षेत् ।।३।।

**अनुवाद**— जिनका शिर जल गया है, ऐसे दक्ष प्रजापति का शिर बकरे के मुख वाला हो जाय, और भग देवता मित्र देवता के नेत्रों से देखें ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

स्वापराधमपहत्यानुगृह्णाति । दग्धं शीर्षं यस्य तस्य प्रजापतेरजस्य मुखं यस्मिंस्तत्तथाभूतं शिरोऽस्तु । वर्हिषः संबन्धिनं भागम् । मित्रनाम्नो देवस्य ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने प्रति किए गये अपराधों को दूर करके शङ्करजी दक्ष को अनुगृहीत करते हुए कहते हैं- दक्ष प्रजापति का शिर जल गया है अतएव उनका शिर बकरे का हो जाय, भग देवता यज्ञ के भाग को मित्र देवता के नेत्रों से देखें ।।३।।

**पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् । देवाः प्रकृतसर्वाङ्गा ये म उच्छेषणं ददुः ।।४।।**

**अन्वयः**— पूषां तु यजमानस्य दद्भिः पिष्टं जक्षतु ये मे उच्छेषणं ददुः ते देवाः प्रकृत सर्वाङ्गाः भवन्तु इति शेषः।।४।।

**अनुवाद**— पूषा देवता पिसा हुआ पदार्थ खाते हैं, वे यजमान के दाँतों से खायँ और जिन देवताओं ने यज्ञ के शेष भाग को मुझे प्रदान किया हैं उनके भी अङ्गस्वस्थ हो जायँ ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रकर्षेण कृतानि लग्नान्यङ्गानि येषां ते भवन्तु । उच्छेषणं यज्ञावशिष्टम् ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

यज्ञ का अवशिष्ट भाग मुझको प्रदान करने वाले देव ग्रहों के अङ्ग पूर्णरूप से स्वस्थ हो जायँ ।।४।।

**बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः । भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ।।५।।**

**अन्वयः**— अध्वर्यवः अन्ये च अश्विनोः पुष्णः बाहुभ्यां कृत बाहवः भवन्तु भृगुः वस्तश्मश्रुः भवेत् ।।५।।

**अनुवाद**— जिनके हाथ टूट गये हैं वे अध्वर्यु और दूसरे देवतागण अश्विनी कुमारों और पूषा देवता के हाथों से हाथ वाले बन जायँ और भृगु महर्षि की दाढ़ी बकरे की दाढ़ी बन जाय ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

येषां त्वङ्गानि नष्टानि ते त्वश्विनोर्बाहुभ्यां कृतबाहवः पूष्णोहस्ताभ्यां कृतहस्ताश्च भवन्तु । अध्वर्यवः अन्ये च ऋत्विजः। बस्तस्य श्मश्रूण्येव श्मश्रूणि यस्य ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

अध्वर्यु तथा दूसरे ऋत्विज जिनके अङ्ग नष्ट हो गये हैं वे अश्विनी कुमारों की भुजाओं से भुजाओं वाले और पूषा देवता के हाथों में हाथों वाले जो जायँ । बकरे की दाढ़ी ही भृगु भी दाढ़ी बन जाय ।।५।।

मैत्रेय उवाच

**तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् । परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ।।६।।**

**अन्वयः**— हे तात तदा मीढुष्टम् उदितम् श्रुत्वा सर्वाणि भूतानि परितुष्टात्मभिः साधु-साधु इति अब्रुवन् ।।६।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुर ! उस समय शङ्करजी की बातों को सुनकर सब लोग प्रसन्न चित्त से बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहने लगे ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

मीढुष्टमः शिवस्तेनोक्तम् । परितुष्टैश्चित्तैः ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

मीढुष्ट शङ्करजी का नाम है । उनके द्वारा कही गयी बातों को सुनकर सबों का मन प्रसन्न हो गया । उन लोगों ने प्रसन्न मन से साधु-साधु कहा ।।६।।

**ततो मीढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः । भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ।।७।।**

**अन्वयः**— तदा ऋषिभिः सह शुनसीराः मीढ्वांसमामन्त्रय समीढ्वद्वेधसः तद देवयजनं ययुः ।।७।।

**अनुवाद**— उस समय ऋषिगण के साथ देवता शङ्करजी को आमन्त्रित करके शङ्करजी और ब्रह्माजी के साथ उस यज्ञशाला में गये ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

मीढ्वांसं शिवं त्वयागत्य सर्वं कार्यमित्यामत्र्य संप्रार्थ्य । शुनासीरा देवाः सहमीढुषा वेधसा च वर्तमानाः समीढ्वद्वेधसः।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

उस समय ऋषियों के साथ देवताओं ने शिवजी को आहूत किया और शिवजी तथा ब्रह्माजी के साथ सभी उस यज्ञशाला में आये ।।७।।

**विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान्भवः । संदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ।।८।।**

**अन्वयः**— यद् भगवान् भव आह तत् कार्त्स्न्येन विधाय कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः संदधुः ।।८।।

**अनुवाद**— भगवान् शिव ने जो जो कहा था उन सभी कार्यों को वैसे ही करके उन सबों ने दक्ष के शरीर से यज्ञ पशु के शिर को जोड़ दिया ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

कार्त्स्न्येन वक्रहस्तबाह्वा दिसाधारण्यं विधाय ।।८।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् शङ्कर ने सबों के हाथ तथा भुजा इत्यादि साधारण बना दिया उसके बाद दक्ष के शरीर से यज्ञीय पशु का शिर जोड़ा गया ।।८।।

**संधीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः । सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥९॥**

**अन्वयः**— संधीयमाने शिरसि रुद्राभिवीक्षितः दक्षः सद्यः सुप्तइव उत्तस्थौ अग्रतः मृडम् च ददृशे ॥९॥

**अनुवाद**— शिर के जोड़ दिए जाने पर शङ्करजी की दृष्टि पड़ते ही दक्ष शीघ्र ही सोये से जगते हुए के समान उठ गये और उन्होंने अपने सामने शङ्करजी को देखा ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥९॥

**तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः । शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥१०॥**

**अन्वयः**— तदा वृषध्वज द्वेष कलिलात्मा प्रजापतिः शिवावलोकाद् शरद् ह्रद इव अमलः अभवत् ॥१०॥

**अनुवाद**— उस समय शङ्करजी से द्वेष करने के कारण दूषित दक्ष प्रजापति का हृदय उनका दर्शन करने से शरत् कालीन सरोवर के समान निर्मल हो गया ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

पूर्वं वृषध्वजद्वेषेण कलिलः कलुषीकृत आत्मा यस्य सः । तदा शरत्कालीनो ह्रद इवामलोऽभवत् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

पहले शङ्करजी से द्वेष करने के कारण दक्ष का हृदय दूषित हो गया था उस समय शङ्करजी का दर्शन करने के कारण उनका हृदय शरत् कालीन सरोवर के समान स्वच्छ हो गया ॥१०॥

**भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः । औत्कण्ठ्याद्बाष्पकलया संपरेतां सुतां स्मरन् ॥११॥**

**अन्वयः**— भवस्तवाय कृतधीः सम्परेतां सुतां स्मरन् अनुरागतः औत्कण्ठ्यात् वाष्पकलया न अशक्नोत् ॥११॥

**अनुवाद**— दक्ष प्रजापति शङ्करजी की स्तुति करना चाहते थे किन्तु मरी हुयी अपनी पुत्री सती की याद आ जाने के कारण उनकी आँखो में आँसू भर गया और स्नेह तथा उत्कण्ठा के कारण वे बोल नहीं सकें ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥११॥

**कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितः सुधीः । शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥१२॥**

**अन्वयः**— प्रेमविह्वालितः सुधी प्रजापति कृछ्रत् मनः संस्तभ्य, निर्व्यलीकेन भावेन ईशं शशंस ॥१२॥

**अनुवाद**— प्रेम से विह्वल बने हुए बुद्धिमान दक्ष प्रजापति ने बड़ी कठिनाई से अपने मन को स्थिर किया और निष्कपट भाव से उन्होंने शङ्करजी की स्तुति की ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥१२॥

दक्ष उवाच

**भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ।**
**न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे भगवन् यदपि प्रलब्धः तथापि त्वया दण्डः भृतः अहोभवता मयि भूयान् अनुग्रहः कृतः ब्रह्मबन्धुसु तुभ्यं हरेश्च वां अवज्ञा धृतव्रतेषु कुतः ॥१३॥

**दक्षजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे भगवन् ! यद्यपि मैंने आपका अपमान किया था किन्तु उसके बदले मुझे शिक्षा देने के लिए आपने मुझ पर दण्ड का विधान किया । इस तरह से आपने मुझ पर बहुत बड़ी कृपा की । आप तथा श्रीहरि दोनों ही आचार हीन भी ब्राह्मणों की उपेक्षा नहीं करते हैं तो फिर यज्ञादि कर्म करने वाले हमलोगों को कैसे भूलेंगे ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

यद्यपि प्रलब्धः पराभूतो मया भवांस्तथापि त्वया दण्डो भृतः शिक्षा कृता, नतूपेक्षितोऽस्मि । युक्तमेवैतदित्याह। ब्रह्मबन्धुषु च ब्राह्मणाभासेष्वपि तुभ्यं तव हरेश्चेति वां युवयोरवज्ञोपक्षा नास्ति ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

दक्ष प्रजापति ने कहा यद्यपि मैंने आपका अपमान किया था, किन्तु आप उसके बदले में मुझे शिक्षा देने के लिए दण्ड का ही विधान किया आपने मेरी उपेक्षा नहीं की, यह आपके लिए उचित ही है । आप और श्रीहरि दोनों ब्रह्म बन्धुओं (अचार हीन ब्राह्मणों) की भी उपेक्षा नहीं करते हैं तो मुझ जैसे यागादि कर्म करने वालों को आप कैसे भूल सकते हैं ।।१३।।

**विद्यातपोव्रतधरान्मुखतः स्म विप्रान्ब्रह्मात्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक् ।**
**तद्ब्राह्मणान्परम सर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ।।१४।।**

**अन्वयः**— विभो ब्रह्मात्म तत्त्वमवितुम् मुखतः त्वम् विद्यातपयोव्रत धरान्विप्रान् अस्राक् प्रगृहीत दण्डः पाल पशूनिव तत् परम् ब्राह्मणान् सर्वविपत्सु पासि ।।१४।।

**अनुवाद**— हे विभो ! पहले ब्रह्मा होकर सर्वप्रथम आत्म तत्त्व की रक्षा करने के लिए आपने अपने मुख से विद्या (उपासना) तपस्या और व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मणों की सृष्टि की उसके पश्चात् हाथ में दण्ड धारण करने वाला पशु पालक जिस तरह से पशुओं की रक्षा करता है उसी प्रकार दण्ड धारण करने वाले आप ब्राह्मणों की सभी विपत्तियों में रक्षा करते हैं ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुमाह-विद्येति । ब्रह्मा भूत्वा त्वमस्रागस्राक्षीः । किमर्थम् । आत्मतत्त्वमवितुम् । यद्वा ब्रह्म वेदमात्मतत्त्वं चावितुं संप्रदायप्रवर्तनेन ज्ञापयितुमित्यर्थः । तत्तस्मात् । हे परम् उत्कृष्ट ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

उसका कारण यह है कि आप पहले आप ब्रह्मा होकर आत्मतत्त्व की रक्षा करने के लिए अपने मुख से ही उपासना तपस्या एवं व्रत करने वाले ब्राह्मणों की सृष्टि की । इस तरह अथवा वेद तथा आत्म तत्त्व की रक्षा करने के लिए आपने सम्प्रदाय का प्रवर्तन करके ब्राह्मणों की सृष्टि की । अतएव हे उत्कृष्ट ! आप ब्राह्मणों की विपत्तियों से रक्षा करते हैं ।।१४।।

**योऽसौ मयाऽविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम् ।**
**अर्वाक्पतन्तमर्हत्तमनिन्दयाऽपाद्दृष्ट्यार्द्रया स भगवान्स्वकृतेन तुष्येत् ।।१५।।**

**अन्वयः**— अविदित तत्त्व दृशा मया सभायां दुरुक्ति विशिखैः क्षिप्तः तन्माम अगणय्य अर्हत्तम निन्दया अर्वाक् पतन्तम् माम् योऽसौ भगवान् आर्द्रया दृष्टया आपात् सभगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ।।१५।।

**अनुवाद**— मैं अज्ञानी होने के कारण आपके तत्त्व को नहीं जानता था । इसीलिए मैंने भरी सभा में आपको वाग्बाणों से बेधा था । किन्तु आपने मेरे उस अपराध पर विचार नहीं किया । आप जैसे पूज्यतम पुरुष की निन्दा करने के कारण नरकों में गिरने वाला था, किन्तु आपने अपनी कृपा दृष्टि से मुझको बचा लिया । आपको प्रसन्न करने योग्य मुझमें कोई गुण नहीं है अतएव आप अपने ही औदार्य पूर्ण वर्ताव से मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

अत्र च प्रत्युपकारो नास्तीत्याह योऽसाविति । अविदिततत्त्वदृशा अप्राप्ततत्त्वज्ञानेन । तदगणय्य विस्मृत्य । अर्हत्तमनिन्दयाऽर्वागधः पतन्तम् मामपाद्रक्षितवान् । स्वकृतेनैव परानुग्रहेणैव तुष्येत् । न मया तत्प्रतिकर्तुं शक्यमित्यर्थः ।।१५।।

**भाव प्रकाशिका**

आपने जो किया है, उसका मैं किसी भी हालत में प्रत्युपकार नहीं कर सकता। इस बात को दक्ष प्रजापति ने योऽसौ इत्यादि श्लोक से कहा है। मुझे तत्त्वज्ञान नहीं था, इसीलिए मैंने आपको भरी सभा में वाग्बाणों से बेधने का काम किया है। लेकिन आप मेरे उस अपराध को भूलकर मेरे ऊपर कृपा दृष्टि की है। आप जैसे पूज्यतम पुरुष की निन्दा के कारण मैं तो नरक में गिरने वाला था किन्तु आपने मेरी रक्षा कर ली। आपके द्वारा किए गये इस उपकार का मैं प्रत्युपकार नहीं कर सकता अतएव आप अपने औदार्य पूर्ण व्यवहार के द्वारा ही मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥१५॥

मैत्रेय उवाच

**क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः। कर्म संतानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥१६॥**

**अन्वयः**— एवं मीढ्वांसं क्षमाप्य सः ब्रह्मणा अनुमन्त्रितः सोपाध्यायर्त्विर्गग्निभिः कर्म सन्तान यामास ॥१६॥

**अनुवाद**— इस तरह से शङ्करजी से क्षमा प्रार्थना करके दक्ष प्रजापति ब्रह्माजी के कहने पर उपाध्याय, ऋत्विक् तथा अग्नि आदि के द्वारा यज्ञकार्य करना प्रारम्भ किये ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुमन्त्रितोऽनुज्ञातः। उपाध्यायसहितैर्ऋत्विगादिभिः अनुवर्तयामास ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करके दक्ष प्रजापति ने उपाध्याय के साथ ऋत्विक् आदि के द्वारा पुनः यज्ञ कार्य आरम्भ किया ॥१६॥

**वैष्णवं यज्ञसंतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः। पुरोडाशं निरवपन्वीरसंसर्गशुद्धये ॥१७॥**

**अन्वयः**— वीरसंसर्ग शुद्धये यज्ञसंतत्यै द्विजोत्तमाः वैष्णवं त्रिकपालं पुरोडाशं निरवपन् ॥१७॥

**अनुवाद**— भूत पिशाचों के संसर्ग से शुद्धि के लिए तथा यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने विष्णु देवताक तीन पात्रों में रखे गये पुरोडाश नामक चरु का होम किया ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

वीराणां प्रमथादीनां संसर्गकृतदोषस्य शुद्धये निवृत्त्यर्थम् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रमथगणों के संसर्ग जन्य दोष की निवृत्ति के लिए ब्राह्मणों ने विष्णु देवताक तीन कपाल में रखे हुए पुरोडाश नामक चरु का होम किया ॥१७॥

**अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशांपते। धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे विशाम्पते आत्तहविषा अध्वर्युणा यजमानः विशुद्धया धियादध्यौ तथा हरिः प्रादुरभूत् ॥१८॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी! उस हविष्य को हाथ में लेकर खड़े हुए अध्वर्यु के साथ यजमान ने अपनी विशुद्ध बुद्धि के द्वारा ध्यान किया तो श्रीहरि प्रकट हो गये ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

उपात्तहविषाऽध्वर्युणा सह विशुद्धया बुद्ध्या दध्यौ। हे विशांपते विदुर ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

हाथ में उस हविष्य को हाथ में लेकर खड़े हुए अध्वर्यु के साथ यजमान अपनी विशुद्ध बुद्धि से ध्यान किये तो श्रीहरि प्रकट हो गये ॥१८॥

**तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश । मुष्णंस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥१९॥**

**अन्वयः**— तदा स्तोत्रवाजिना तार्क्ष्येण उपानीतः दिशो दश द्योतयन्त्या स्वप्रभयातेषां तेजः मुष्णन् ॥१९॥

**अनुवाद**— उस समय बृहद् एवं रथन्तर साम जिनके पङ्ख हैं, ऐसे गरुडजी के द्वारा लाये गये श्रीभगवान् दशो दिशाओं को प्रकाशित करने वाली अपनी कान्ति से यहाँ पर विद्यमान देवताओं की कान्ति फिकी पड़ गयी ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

स्वया प्रभया तेषां तेजो मुष्णंस्तिरस्कुर्वन् । उपानीतः समीपं प्रापितः । स्तोत्रे बृहद्रथन्तरे वाजौ पक्षौ । तद्वता । 'बृहद्रथन्तरे पक्षौ' इति श्रुतेः ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

**बृहद्रथरे पक्षौ** अर्थात् बृहद साम और रथन्तर साम गरुड़जी के दोनों पङ्ख हैं, इस श्रुति के अनुसार बृहद एवं रथन्तर साम रूपी दोनों पङ्खों वाले गरुड़जी के द्वारा लाये गये भगवान् विष्णु ने अपने तेज से वहाँ पर विद्यमान लोगों की कान्ति को चुरा लिया अर्थात् उन लोगों की कान्ति भगवान् की कान्ति के समक्ष फिकी पड़ गयी ॥१९॥

**श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः ।**
**कम्ब्वब्जचक्रशरचापगदासिचर्मव्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥२०॥**

**अन्वयः**— श्यामः हिरण्यरशनः अर्ककिरीट जुष्टः नीलालकभ्रमर मण्डित कुण्डलास्यः । कम्ब्वब्ज चक्रशर चापगदासिचर्म व्यगैः हिरण्मय भुजैः कर्णिकारः इव ॥२०॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् का वर्ण श्याम था, उनके कमर में सुवर्ण की करधनी थी, पीताम्बर धारण किए थें, एवं सूर्य के समान चमकते हुए किरीट को वे अपने शिर पर धारण किए थे । उनका मुख कमल काले घुंघराले केश रूपी भ्रमर से मण्डित था और कुण्डलों से सुशोभित था । वे अपनी आठ भुजाओं में शंख, पद्म, चक्र, बाण धनुष गदा, कृपाण और ढाल धारण किए हुए थे । इन सभी आयुधों से वे विकसित कनेर के वृक्ष के समान सुशोभित हो रहे थे ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

तमेवानुवर्णयति-श्याम इति द्वाभ्याम् । हिरण्यवद्रशना यस्येति वस्त्रं लक्ष्यते । अर्कतुल्येन किरीटेन जुष्टः । नीललका एव भ्रमरास्तैर्मण्डितं कुण्डलयुक्तमास्यं यस्य । कम्ब्वादिभिरायुधैर्भृत्यरक्षार्थं व्यग्रैर्हिरण्मयैर्भुजैः पुष्पितः कर्णिकार इव शोभमानः। भुजानां हिरण्मयत्वं केयूरकङ्कणमुद्रिकाद्यलङ्कारैः ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् विष्णु का ही वर्णन श्याम इत्यादि दो श्लोकों से करते हैं । श्रीभगवान् की करधनी और वस्त्र दोनों सुवर्ण के समान चमक रहे थे । वे सूर्य के समान चमकते हुए किरीट से मण्डित थे । काले घुंघराले केश रूपी भ्रमरों से उनका मुख कमल सुशोभित था । चमकतें कुण्डलों से भी उनका मुख सुशोभित था । शङ्ख आदि आयुधों से अपने भक्तों की रक्षा के लिए व्यग्र रहने वाले हाथों से वे विकसित कर्णिकार वृक्ष के समान सुशोभित होते थे । केयूर कङ्कण मुद्रिका आदि अलङ्कारों से अलंकृत उनकी भुजाए सुवर्णमय थीं ॥२०॥

**वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासावलोककलया रमयंश्च विश्वम् ।**
**पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः ॥२१॥**

**अन्वयः**— वक्षस्याधिश्रितवधूः वनमाली, उदार हासावलोक कलया च विश्वं रमयन् पार्श्वभ्रमद्व्यजन चामरराज हंसः श्वेतापत्रशशिनापरि रज्यमानः ॥२१॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के वक्ष स्थल में लक्ष्मी का श्रीवत्स चिह्न विद्यमान था । वे वनमाला धारण किए हुए थे वे अपने उदार हास और लीलामय अवलोकन के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को आनन्द मग्न कर रहे थे, उनके दोनों बगल में पार्षदगण राजहंस के समान श्वेतवर्ण के व्यजन और दो चमर डुला रहे थे । शिर के ऊपर विद्यमान श्वेत छत्र से वे सुशोभित थे ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

वक्षस्यधिश्रिता बधूर्लक्ष्मीर्यस्य सः । उदारो हासोऽवलोकश्च तयोः कलया लेशेन । पार्श्वे उभयतो भ्रमती व्यजनचामरे एव राजहंसौ यस्मिन्सः । रज्यमानः शोभातिशयं नीयमानः ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के वक्षस्थल में लक्ष्मीजी का निवास था, वे वनमाला धारण किए हुए थे । वे अपने मनोहर हँसी और लीलामय विलोकन की कला से सम्पूर्ण विश्व को आनन्द मग्न कर रहे थे । उनके दोनों बगल डुलाये जा रहे श्वेत वर्ण के दो चामर रजहंस के समान थे, और उनके शिर के ऊपर लगा हुआ श्वेत वर्ण का छत्र अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥२१॥

**तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः । प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः ॥२२॥**

**अन्वयः**— उपागतम् तम् अलक्ष्य ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः सर्वे सुरगणादयः सहसा उत्थाय प्रणेमुः ॥२२॥

**अनुवाद**— आये हुए श्रीभगवान् को देखकर जिनमें, ब्रह्मा, इन्द्र तथा शङ्करजी प्रधान थे ऐसे सभी देवगण अचानक उठकर खड़े हो गये और श्रीभगवान् को प्रणाम किए ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षा नायका मुख्या येषां ते ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को प्रणाम करने वाले देवताओं में ब्रह्माजी, इन्द्र और शङ्करजी प्रधान थे ॥२२॥

**तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः । मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— तत् तेजसा हत रुचः, सन्न जिह्वाः, ससाध्वसः मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटाः अधेक्षजम् उपतस्थुः ॥२३॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के तेज से सबों की कान्ति फीकी पड़ गयी, उनकी जीभ लड़खड़ाने लगी, उनका चित्त क्षुब्ध हो गया । वे सभी हाथ जोड़कर इसे अपने शिर से लगाकर श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

हतरुचस्तिरस्कृतप्रभाः । सन्नजिह्वा गद्गदवाचः । ससाध्वसास्तन्महिम्ना क्षुभितचित्ताः । उपतस्थुस्तुष्टुवुः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

सबों की कान्ति फिकी पड़ गयी । उनकी वाणी गद्गद हो गयी, तथा श्रीभगवान् की महिमा से क्षुब्ध चित्त वाले वे हो गये । हाथ जोड़कर और उसे अपने शिर से लगाकर श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥२३॥

**अप्यर्वाग्वृत्तयो यस्य महि त्वात्मभुवादयः । यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— यस्य महितु आत्मभुवादय अपि अर्वाग् वृत्तयः कृतानुग्रहविग्रहम् तं यथा मति गृणन्तिस्म ॥२४॥

**अनुवाद**— जिस परमात्मा की महिमा पर्यन्त ब्रह्माजी इत्यादि की बुद्धि पहुँच भी नहीं पाती है, उन भक्तों पर कृपा करने के लिए प्रकट हुए श्रीभगवान् की वे लोग अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करने लगे ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

यस्य महिमानं प्रति तु अर्वागेव वृत्तिर्येषां तेऽपि यथामति गृणन्ति स्म अस्तुवन् । कृतः प्रकटीकृतोऽनुग्रहार्थं विग्रहो येन तम् । यद्वा तेषामर्वाग्वृत्तित्वे हेतुः— ते तु यस्य महि महिमा । विभूतिमात्ररूपा इत्यर्थः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् की महिमा के प्रति ब्रह्मा इत्यादि की बुद्धि दूर ही रह जाती है वे लोग श्रीभगवान् की अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करने लगे । क्योंकि श्रीभगवान् ने उन लोगों पर कृपा करने के लिए अपने दिव्य विग्रह को प्रकट किये थे । **यद्वा० इत्यादि अथवा** उन ब्रह्मादि की बुद्धि को दूर रह जाने का कारण है कि वे ब्रह्मादि तो श्रीभगवान् की महिमा मात्र हैं ॥२४॥

**दक्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुम् ।**
**सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृतं मुदा गृणन्प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः ॥२५॥**

**अन्वयः**— गृहीतार्हणसादनोत्तमं दक्षः सुनन्दनन्दाद्यनुगैः वृतम् विश्वसृजां परंगुरुं यज्ञेश्वरं प्रयतः कृताञ्जलिः गृणन् प्रपेदे॥२५॥

**अनुवाद**— उत्तम पात्र में पूजन की सारी सामग्रियों को सजाकर दक्ष सनन्द नन्द आदि पार्षदों से घिरे हुए प्रजापतियों के परम गुरु यज्ञेश्वर की अत्यन्त विनीत भाव से स्तुति करते हुए शरणागति किए ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र तावद्दक्षस्तुतिप्रकारमाह- दक्ष इति । गृहीतमर्हणसादनोत्तमं येन तम् । उत्तमे पात्रे आसाद्यार्हणेषु समर्पितेषु प्रीत्या सार्हणपात्रं स्वयमेव येन गृहीतमित्यर्थः । यद्वा कथं प्रपेदे । गृहीतमर्हणसादनोत्तमं यथा भवति तद्गृहीत्वा प्रपेदे इत्यर्थः । गृहीत्वेति पाठस्तु सुगमः । गृणन्स्तुवन् प्रपेदे शरणं जगाम । 'दक्षऋत्विक्सदस्येशभृगुब्रह्मेन्द्रयोषितः । ऋषयश्च तथा सिद्धा यजमानी च लोकपाः । योगिब्रह्माग्निदेवाश्च स्तुवन्ति जगदीश्वरम् । तथा गन्धर्व विद्याध्राब्राह्मणाश्च पृथङ्मतैः ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम दक्ष द्वारा की गयी श्रीभगवान् की स्तुति के प्रकार को दक्षः इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है। दक्ष ने पूजन सामग्री को रखने के लिए उत्तम पात्र को ले लिया था । उत्तम पात्र में प्रेम पूर्वक पूजन की सामग्री सजायी गयी थी उसको दक्ष ने स्वयम् ले लिया । अथवा दक्ष ने कैसे शरणागति की ? तो इसका उत्तर है कि जिसने उत्तम पात्र में पूजन सामग्री को ले ली थी । उसको लेकर श्रीभगवान् की शरणागति किए । गृहीत्वा पाठ सुगम हैं । और श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए शरणागति किए । दक्ष ऋत्विक् सदस्य शङ्करजी, भृगु, ब्रह्मा, इन्द्र, पत्नियों, ऋषिगण, सिद्धगण, यजमान पत्नी तथा लोकपाल योगीगण, ब्रह्माजी तथा अग्नि देव तथा गन्धर्व विद्याधर एवं ब्राह्मणों ने जगदीश्वर श्रीभगवान् की स्तुति अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार की ॥२५॥

दक्ष उवाच

**शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम् ।**
**तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्यामास्ते भवानपरिशुद्ध इवात्मतन्त्रः ॥२६॥**

**अन्वयः**— एस्वधाम्नि, उपरताखिलबुद्ध्यवस्थं भवान् चिन्मात्रम् एकम् अभयम् मायाम् प्रतिषिध्य तिष्ठन् तयैव पुरुषत्वम् उपेत्य आत्मतन्त्रः तस्याम् अपरिशुद्ध इव आस्ते ॥२६॥

### दक्ष जी ने कहा

**अनुवाद**— हे भगवन् अपने स्वरूप में स्थित आप बुद्धि की जाग्रत इत्यादि सभी अवस्थाओं से रहित ज्ञान मात्र स्वरूप भेद रहित अतएव निर्भय हैं । आप माया को तिरस्कृत करके स्वतन्त्र रूप से स्थित हैं । फिर भी उस माया से ही जीवभाव को स्वीकार करके जब आप उस माया में ही अवस्थित हो जाते हैं तो अज्ञानी के समान प्रतीत होते हैं ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

ननु साक्षात्परमेश्वर एव रुद्रस्तस्य ब्रह्मपुत्रत्वेन जीवत्वमनुकारमात्रम् । हन्त किमिति त्वया भेददृष्ट्याऽसाववज्ञात इति मां भगवानाक्षेप्स्यतीत्याशङ्क्य, अप्रच्युतस्वरूपस्य जीवधर्मनाट्यं तवैव सङ्गच्छते नान्यस्येत्याह– शुद्धमिति । स्वधाम्नि स्वरूपे तिष्ठन्भवान् शुद्धं चिन्मात्रं चैतन्यघनः । शुद्धत्वे हेतुः— उपरता नित्य निवृत्ताऽखिला बुद्ध्यवस्था यस्मात् । अतः एकं भेदशून्यम् । अत एवाभयम् । 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' इति श्रुतेः । जीवस्यापि वस्तुत एवंभूतत्वात्तद्वैलक्षण्यार्थमुक्तम् । मायां प्रतिषिध्याभिभूय स्वतन्त्र एव संस्तया मायया पुरुषत्वं मनुष्यनाट्यमुपेत्य तस्यां मायायां तिष्ठन्नपरिशुद्ध इव रागादिमानिवास्ते । रामकृष्णाद्यवतारे तथा प्रतीयते भवानित्यर्थः । अन्ये त्वविद्योपाधयो मायाभिभूताः संसरन्ति । अतस्त्वमेवेश्वरो न रुद्रादय इति भावः । अतएवेमां दृष्टिं भगवान्वारयिष्यति । 'अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्' इत्यादिना ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि रुद्र तो साक्षात् परमेश्वर ही हैं । ब्रह्माजी के पुत्र के रूप में जीवत्व तो उनका अनुकरण मात्र है । तो फिर तुम भेद दृष्टि से उनका अपमान क्यों किए, इस तरह से भगवान् मुझसे पूछ सकते हैं, इस तरह से आशङ्का करके दक्ष ने कहा कि आपके ही स्वभाव में कभी परिवर्तन नहीं आता है, अतएव जीव धर्म का नाटक आपमें ही सङ्गत होता है, किसी दूसरे में नहीं । इसी बात को दक्ष ने इस श्लोक में कहा है । अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए आप शुद्ध, ज्ञानमात्र, तथा चैतन्मय हैं । आपकी शुद्धता का कारण है कि आपसे बुद्धि की सारी अवस्थाएँ निवृत्त हैं । अतएव आप एक अर्थात् भेदशून्य हैं । उसी के कारण आप अभय भी हैं। श्रुति भी कहती है— **द्वितीयाद्वै भयं भवति** दूसरे से ही भय होता है चूकि आप इस प्रकार के हैं अतएव आप जीव से भी भिन्न हैं । आप माया को तिरस्कृत करके स्वतंत्र रूप से स्थित रहते हैं । उसी माया के द्वारा आप मनुष्यत्व को स्वीकार करके मनुष्यत्व का नाटक करते हैं । उस माया में रहते हुए अपरिशुद्ध के समान हो जाते हैं । क्योंकि उस समय राग द्वेष इत्यादि से युक्त हो जाते हैं । श्रीराम कृष्ण आदि अवतारों मे आप इसी तरह के प्रतीत हाते हैं । आप से भिन्न जो जीव हैं वे अविद्या के द्वारा उपहित होकर संसार में संसरण करते हैं । अतएव आप ही ईश्वर हैं । रुद्र इत्यादि नहीं यह दक्ष का भाव । अतएव दक्ष की इस प्रकार की दृष्टि का श्रीभगवान् **अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्** । अर्थात् मैं ब्रह्माजी और शङ्करजी ये तीनो जगत् के सर्वश्रेष्ठ देवता है, इस वाक्य के द्वारा निरास करेंगे ।।२६।।

ऋत्विज ऊचुः

**तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात्कर्मण्यवग्रहधियो भगवन्विदामः ।**
**धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदोव्यवस्थाः ।।२७।।**

**अन्वयः**— हे अनञ्जन रुद्रशापात् वयम् कर्मण्यवग्रहधियः ते तत्त्वं न विदामः यदर्थम् धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं अधिदैवं अदो व्यवस्था ज्ञातम् ।।२७।।

### ऋषियों ने कहा

**अनुवाद**— हे उपाधि रहित रुद्र के प्रधान अनुचर नन्दिकेश्वर के शाप के कारण हमारी बुद्धि केवल कर्मकाण्ड

में ही फँसी हुयी है अतएव हम आपके तत्त्व को नहीं जानते हैं । जिसके लिए इस कर्म की यही देवता है इस प्रकार की व्यवस्था की गयी है, उस धर्म प्रवृत्ति के प्रयोजक वेदत्रयी से प्रतिपादित यज्ञ को ही हम आपका स्वरूप समझते हैं ॥२७॥

## भावार्थ दीपिका

ऋत्विजोऽपि स्वस्यापराधं परिहरन्तः स्तुवन्ति । भो अनञ्जन उपाधिमलशून्य, यद्यपि त्वमेव रुद्रादिदेवतारूपस्तथापि नन्दीश्वरशापात्कर्मण्येव दुराग्रहधियः सन्तस्तव तत्त्वं न विद्मः किंतु धर्मस्यापूर्वस्योपलक्षणभूतं त्रिवृत् त्रयीप्रतिपाद्यमध्वराख्यं तव रूपमस्माभिर्ज्ञातम् । कीदृशम् । यदर्थं यस्य सिद्धयेऽधिदैवं देवताऽधिकारेणादोव्यवस्थाः अमूर्व्यवस्थाः । अत्रेयमेव देवता नान्येत्येवंभूता नियमा इत्यर्थः । यद्वा व्यवस्था इत्याख्यातं । अडागमाद्यभाव आर्षः । यदर्थमद इदमिन्द्राद्यधिदैवं रूां विशेषेणास्थितवानसीत्यर्थः ॥२७॥

## भाव प्रकाशिका

ऋत्विजों ने भी अपने अपराध का परिहार करते हुए श्रीभगवान् की स्तुति की । हे उपाधि रूपी मल से रहित प्रभो ! यद्यपि आप ही रुद्रादि देवता स्वरूप है फिर भी नन्दीश्वर के शाप के कारण हमारी बुद्धि कर्मों में ही फँसी रही अतएव हमलोग आपके तत्त्व को नहीं जानते हैं । हम धर्म के उपलक्षण स्वरूप त्रयीप्रति प्रतिपादित यज्ञ को ही हमलोग आपका रूप मानते हैं । जिसके लिए इस कर्म का देवता यही है, इस प्रकार की व्यवस्था की गयी है । अथवा व्यवस्था यह आख्यात (तिङन्त) है । यहाँ पर वैदिक प्रयोग होने के कारण अट् इत्यादि के आगम का अभाव है । जिसके लिए यह इन्द्रादि अधिदैव रूप है । आपने धारण किया हैं ॥२७॥

सदस्या ऊचुः

**उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्रव्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ।**
**द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥२८॥**

**अन्वयः**— हे शरणद ! उरुक्लेश दुर्गे, अन्तकोग्रव्यालविष्टे, द्वन्द्वश्वभ्रे, खलमृगभये, शोकदावे, उत्पत्त्यध्वनि अशरणे, अज्ञसार्थः कामोपसृष्टः विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ते पादौकः कदायाति ॥२८॥

## सदस्यों ने कहा

**अनुवाद**— हे जीवों को शरण देने वाले प्रभो, जो अनेक प्रकार के क्लेशों के कारण अत्यन्त दुर्गम है, जिसमें कालरूपी भयङ्कर सर्प घात लगाये बैठा है, और जिसमें द्वन्द्वरूपी अनेक गढ़े हैं एवं दुष्ट रूपी जङ्गली जीवों का भय बना रहता है तथा जिसमें शोक रूपी दवाग्नि जल रही हैं, ऐसे विश्रीमस्थल से रहित संसार मार्ग में जो अज्ञानी जीव कामनाओं से पीड़ित होकर विषय रूपी मृगतृष्णा के जल के लिए देहगेह का भारी बोझ अपने शिर पर लिए हुए जा रहे हैं वे आपके चरणों की शरण में कब आयेंगे ॥२८॥

## भावार्थ दीपिका

सदस्यास्तु निरीश्वरेऽपि दक्षाध्वरे धनलोभेन स्वप्रवृत्तिमनुचिन्त्यानुतप्ता विरक्तिमाशासानाः स्तुवन्ति । हे शरणद आश्रयप्रद, उत्पत्त्यध्वनि संसारमार्गे वर्तमानोऽज्ञानां सार्थः समूहस्ते पादौकः त्वत्पादरूपं निवासं कदा यास्यति । कथंभूते संसारमार्गे । अशरणे विश्रामस्थानशून्ये । उरुक्लेशा एव दुर्गमस्थानानि यस्मिन् । अन्तक एवोग्रो व्यालस्तेनान्विष्टे लक्षीकृते विषयरूपा मृगतृण्मृगतृष्णिका यस्मिन् । आत्माहंकारास्पदं शरीरं ममत्वास्पदं गेहं च स एवोरुर्भारो यस्य सः । द्वन्द्वानि सुखदुःखादीन्येव श्वभ्राणि गर्ता यस्मिन् । खला एव मृगा व्याघ्रादयस्तेभ्यो भयं यस्मिन् । शोक एव दावाग्निर्यस्मिन् । कामेनोपसृष्टः पीडितः॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

सदस्यों ने रुद्र से रहित भी दक्ष के यज्ञ में धन के लोभ से होने वाली अपनी प्रवृत्ति को सोचकर संतप्त होते हुए विरक्ति की प्राप्ति की कामना से श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । वे कहते हैं ये अभय प्रदान करने वाले प्रभो ! संसार मार्ग में विद्यमान अज्ञानी जीवों का समूह आपके चरणों की शरण में कब आयेगा ? यह संसार मार्ग कैसा है कि इस में विश्राम स्थल है ही नहीं इसमें अनेक दुर्गम स्थान हैं । इसमें कालरूपी भयङ्कर सर्प बैठा है । विषयरूपी मृगतृष्णा का जल है । जिसमें आत्माभिमान होता है ऐसे देह और गृह का भयङ्कर भार है, इस मार्ग के सुख दुःख इत्यादि द्वन्द्व ही गढे हैं तथा दुष्ट रूपी व्याघ्रादि जङ्गली जीव का भय बना रहता है । इस मार्ग की शोक ही दवाग्नि है । तथा उस मार्ग में चलने वाला जीव अनेक प्रकार की कामनाओं से पीड़ित है ॥२८॥

रुद्र उवाच

**तव वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ।**
**यदि रचितधियं माविद्यलोकोपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥२९॥**

**अन्वयः**— हे वरद ! तव वराङ्घ्रौ इहाखिलार्थे आशिषा, असक्तैः मुनिभिः अपि आदरेणार्हणीये, रचितधियं मा अविद्यलोकः अपविद्धं जपति तत् त्वत् परानुग्रहेण न गणये ॥२९॥

**अनुवाद**— हे वरद प्रभो ! आपके उत्तम चरण इस संसार से सकाम पुरुषों के सम्पूर्ण पुरुषार्थों की प्राप्ति कराने वाले हैं, सभी वस्तुओं से अनासक्त रहने वाले मुनिजन भी आपके इन चरणों की आराधना करते हैं । आपके उन्हीं चरणों में बुद्धि के लगे रहने के कारण अज्ञानी लोग यदि मुझे आचार भ्रष्ट कहते हैं तो आपकी कृपा के कारण मैं उसकी परवाह नहीं करता हूँ ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

श्रीरुद्रस्तु पूर्वं मम निन्दा दुःसहा आसीत्, इदानीं तु तां न गणयामीत्याह-तवेति । आशिषा कामेनासक्तैर्निष्कामै रचितधियमभिनिवेशितचित्तम् । मा कामविद्यो विद्याहीनो लोको यद्यपविद्धं जपत्याचारभ्रष्टं जल्पति तज्जल्पनमहं न गणये । तत्र हेतुः-तव यः परोऽनुग्रहस्तेन । त्वत्पराणां वा योऽनुग्रहस्तेन ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

शङ्करजी ने कहा कि पहले तो निन्दा मुझको दुःख ही प्रतीत होती थी किन्तु इस समय मैं उसकी परवाह नहीं करता हूँ । इस बात को उन्होंने **तव वरद इत्यादि** श्लोक से कहा— कामना से रहित होकर आप में निविष्ट बुद्धि वाले मुझको यदि संसार के लोग विद्याहीन और आचरण भ्रष्ट कहते हैं, तो संसार की उस निन्दा की मैं परवाह नहीं करता हूँ । उसका कारण है कि आपका मुझ पर अत्यधिक अनुग्रह है । अथवा आप अपने भक्तों पर अत्यधिक अनुग्रह करते हैं ॥२९॥

भृगुरुवाच

**यन्मायया गहनयापहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपन्तः ।**
**नात्मन् श्रितं तव विदन्त्यधुनापि तत्त्वं सोऽयं प्रसीदतु भवान्प्रणतात्मबन्धुः ॥३०॥**

**अन्वयः**— यत् गहनया मायया अपहृत आत्मबोधाः ब्रह्मादयः तनुभृतः तमसि स्वपन्तः हे आत्मन् अधुनापि तव तत्त्वं न विदन्ति सोऽयम् प्रणतात्मबन्धुः भवान् प्रसीदतु ॥३०॥

### भृगुजी ने कहा

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आपकी गहन माया के कारण जिनका आत्मज्ञान लुप्त हो गया था, ऐसे ब्रह्मा आदि शरीरधारी अज्ञान निद्रा में सोए हुए हैं । आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उपयोगी वे आज तक भी आपके

तत्त्व को नहीं जान सके हैं। ऐसे आप शरणागत भक्तों की आत्मा और बन्धु हैं। अतएव आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

भृगुस्तु स्वभावतस्तत्त्वज्ञानहीना जीवा अतोऽज्ञानकृतं मम दुश्चेष्टितं क्षमस्वेत्याह-यन्माययेति। आत्मन्नात्मनि श्रितमनुगतं तव तत्त्वं न विदन्ति। प्रणतानामात्मा बन्धुश्च ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

भृगु महर्षि ने कहा कि हे भगवन्! जीव स्वभाव से ही तत्त्वज्ञान से रहित हैं अतएव अज्ञान वशात् मैंने जो दुश्चेष्टायें की उसको आप क्षमा कर दें वे कहते हैं कि आत्मा में आप विद्यमान है तथा आप सबों में अनुगत हैं इस बात को वे नहीं जानते हैं आप अपने शरणागत भक्तों को आत्मा और बन्धु हैं ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

**नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थभेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत्।**
**ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयाद्व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— पदार्थभेदग्रहैः असौ पुरुषः यावदिच्छेत् एतत् भवतः स्वरूपं न, ज्ञानस्य च अर्थस्य, गुणस्य च आश्रयः यतः त्वम् मायामयात् व्यतिरिक्तः ॥३१॥

**ब्रह्माजी ने कहा**

**अनुवाद**— प्रभो पृथक् पृथक् इन्द्रियों के द्वारा पुरुष जो पदार्थों को देखता है, वह आपका स्वरूप नहीं है आप तो ज्ञान तथा शब्दादि विषय तथा श्रोत्र आदि इन्द्रियों के अधिष्ठान हैं, ये सबके सब आप में अध्यस्त है, अतएव आप इस मायामय प्रपञ्च से भिन्न ही हैं ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मादयो न विदन्तीति भृगुणोक्ते तदसहमानो ब्रह्मा तत्त्वज्ञानमाविष्कुर्वन्निवाह-नैतदिति। पदार्थभेदग्राहकैरिन्द्रियैः गुणस्येन्द्रियस्य। यद्वा ज्ञानार्थयो; कारणस्य सत्त्वादेः। अत एवासतो मायामयाद्व्यतिरिक्तः भवान् ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि भृगु ने जो कहा था कि ब्रह्मा आदि आपके तत्त्व को नहीं जानते हैं उसे नहीं सह सकने के कारण ब्रह्माजी ने तत्त्व को अविष्कृत करते हुए कहा **नैतदित्यादि** अलग-अलग पदार्थों का ग्रहण करने वाली इन्द्रियों के द्वारा जिनको पुरुष देखता है वह आपका स्वरूप नहीं है। आप तो गुणों तथा इन्द्रियों के अथवा ज्ञान तथा ज्ञेय पदार्थों के कारणभूत जो सत्त्व आदि गुण हैं इन सबों के अधिष्ठान हैं। अतएव आप इस मिथ्यामायामय प्रपञ्च से पृथक् ही हैं ॥३१॥

इन्द्र उवाच

**इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानन्दकरं मनोदृशाम्। सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः॥३२॥**

**अन्वयः**— हे अच्युत! इदम् अपि विश्वभावनम् सुरविद्विट् क्षपणैः उदायुधैः अष्टभिः भुजदण्डैः उपपन्नम् मनोदृशाम् आनन्दकरम् ॥३२॥

**इन्द्र ने कहा**

**अनुवाद**— हे अच्युत प्रभो! आपका यह भी रूप जो जगत् को प्रकाशित करने वाला है, देव द्रोहियों का विनाश करने वाला, अनेक प्रकार के आयुधों से युक्त आठ भुजाओं वाला है, तथा मन तथा नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाला है ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

इन्द्रस्त्विन्द्रियविषयः सर्वोऽपि मिथ्येति ब्रह्मणोक्तमसहमान आह । इदं तव वपुरप्युपपन्नमेव नतु प्रपञ्चवद-निर्वचनीयतयानुपपन्नम् । सुराणां विद्विषः क्षपयन्तीति तथा तैर्भुजदण्डैरुपलक्षितम् ।।३२।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी ने यह जो कहा था कि जिन विषयों का इन्द्रियों से ग्रहण होता है, वह सब मिथ्या है, उसको नहीं सह सकने के कारण कहते हैं। आपका यह शरीर भी उपपन्न ही है, यह अनिर्वचनीय प्रपञ्च के समान अनुपपन्न नहीं है। आप अपने इन आठो भुजाओं में अनेक प्रकार के आयुधों को धारण करके देवताओं के शत्रुओं का विनाश किया करते हैं। इस प्रकार के भुजदण्डों से उपलक्षित है आपका यह रूप ।।३२।।

पत्न्य ऊचुः

**यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाऽद्य दक्षकोपात् ।**
**तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ।।३३।।**

**अन्वयः**— केन तव यजनाय अयं यज्ञः सृष्टः दक्षकोपात् पशुपतिना अद्यनष्टः । हे यज्ञात्मन् शवशयनाभ शान्तमेधंनलिन रुचा दृशा त्वम् पुनीहि ।।३३।।

**याज्ञिकों की पत्नियों ने कहा**

**अनुवाद**— हे प्रभो ! ब्रह्माजी ने इस यज्ञ की रचना आपकी आराधना के लिए की थी, किन्तु दक्ष पर क्रोध करने के कारण इस समय इस यज्ञ को ध्वस्त कर दिया है। हे यज्ञात्मन् ! श्मशान भूमि के समान उत्सव विहीन हमारे इस यज्ञ को आप नील कमल की कान्ति के समान कान्ति से सम्पन्न अपने इन नेत्रों से देखकर आप पवित्र बना दें ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**

ऋत्विजां पत्न्यः स्तुवन्ति । यज्ञोऽयं तव यजनाय त्वां यष्टुं केन ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टः । हे यज्ञात्मन्, तं नो यज्ञं नलिनकान्त्या दृशा नेत्रेण पुनीहि पवित्रं कुरु । कथंभूतं यज्ञम् । शवाः शेरते यस्मिन्निति शवशयनं श्मशानं तद्वदाभा प्रतीतिर्यस्य स चासौ शान्तमेधश्चोपरतोत्सवः । मेधशब्देन पशुहिंसाद्युत्सवो लक्ष्यते शवमुदकं तत्र शेते इति तथा पद्मं तन्नाभेति संबोधनं वा ।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

ऋत्विजों की पत्नियों ने स्तुति करते हुए कहा— प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने आपकी आराधना के लिए यज्ञों की सृष्टि की। हे यज्ञात्मन् प्रभो हमारे इस यज्ञ को आप नीलकमल की कान्ति से युक्त अपने नेत्रों से देखकर पवित्र बना दें। प्रश्न है कि किस प्रकार के यज्ञ को तो इस पर वे कहती हैं। जहाँ पर मुर्दे सुलाये जाते हैं उस श्मशान भूमि के समान उत्सव रहित होने के कारण प्रतीत होने वाले। यहाँ पर मेध शब्द के द्वारा पशु हिंसा आदि उत्सवों को कहा गया है। अथवा शव शब्द जल का वाचक है। उस जल में शयन करने वाले हे पद्मनाभ भगवन्। यह शव शयनाभपद संबोध भी हो सकता है ।।३३।।

ऋषय ऊचुः

**अनन्वितं ते भगवन्विचेष्टितं यदात्मनाऽऽचरसि हि कर्म नाज्यसे ।**
**विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ।।३४।।**

**अन्वयः**— हे भगवन् ! ते चेष्टितम् अनन्वितम् यद् हि आत्मना कर्म आचरसि नाज्यसे । यतः विभूतये, उपसेदुः, तां स्वयमनुवर्ततीम् ईश्वरीं भवान् न मन्यसे ।।३४।।

### ऋषियों ने कहा

**अनुवाद**— हे भगवन् आपकी लीलायें विचित्र हैं, क्योकि स्वयम् आप कर्मों को तो करते हैं किन्तु उन सबों से आप निर्लेप बने रहते हैं। दूसरे लोग वैभव को प्राप्त करने के लिए जिस लक्ष्मीजी की शरणागति करते हैं, वे लक्ष्मीजी स्वयम् आपकी सेवा में लगी रहती हैं फिर भी आप उनका बहुत अधिक सम्मान नहीं करते है, अपितु उनसे नि:स्पृह ही बने रहते हैं ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

ऋषयस्तु कर्माण्यनुतिष्ठन्तस्तत्पुण्येन तत्फलेन च युज्यन्ते भगवति तु तदभावमालक्ष्य विस्मिताः स्तुवन्ति। अनन्वितमघटमानं यद्यस्मादात्मना स्वयं कर्माचरस्यनुतिष्ठसि न त्वज्यसे लिप्यसे। यतश्चान्ये विभूतये संपदे ईश्वरीं लक्ष्मीमुपसेदुर्भेजुः। यद्वा यत इति सार्वविभक्तिकस्तसिः। यामित्यर्थः। भवांस्तु स्वयमेवानुवर्तमानां तां न मन्यते नाद्रियते ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

ऋषिगण कर्मों को करते हैं और उन कर्मों से उत्पन्न होने वाले पुण्य और उनके फल को भी प्राप्त करते हैं। किन्तु श्रीभगवान् में उसका अभाव है, वे कर्मों से सम्पृक्त नहीं होते हैं, यह देखकर वे विस्मित होकर श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं। हे भगवन् ! यह तो पूर्ण रूप से असंभव है कि आप स्वयं कर्मों को करते हैं किन्तु उन सबों से निर्लिप्त ही रहते हैं। किञ्च दूसरे लोग ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए जिन लक्ष्मीजी की उपासना करते हैं अथवा यतः में सार्वविभक्तिक तसिल प्रल्यय हैं और यतः का अर्थ है याल अर्थात् जिस लक्ष्मीजी की जो आपकी सेवा में सदा लगी रहने वाली लक्ष्मीजी का बहुत अधिक आप समादर नहीं करते हैं ॥३४॥

सिद्धा ऊचुः

**अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः।**
**तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसंपन्नवन्नः ॥३५॥**

**अन्वयः**— अयं न मनोवारणः क्लेश दावाग्निदग्धः तृषार्तः त्वत्कथामृष्ट पीयूषनद्यां अवगाढः ब्रह्मसम्पन्न वत् न दावं सस्मार न निष्क्रमति ॥३५॥

### सिद्धों ने कहा

**अनुवाद**— यह हमारा मन रूपी हाथी अनेक प्रकार के क्लेश रूपी दावाग्नि से दग्ध और अत्यन्त तृषित होकर आपकी कथा रूपी विशुद्ध सारिता में गोता लगाये हुए बैठा हुआ है। ब्रह्मानन्द में लीन हो जाने के कारण उसको संसार रूपी दावानल की न तो याद आती है और न तो वहाँ से वह बाहर ही निकलना चाहता है ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

सिद्धास्तु तत्कथासुखमभिनन्दन्तः स्तुवन्ति। अयं नो मनोगजस्त्वत्कथैव मृष्टं शुद्धं पीयूषं तन्मयी या नदी तस्यामवगाढः प्रविष्टो दावाग्नितुल्यं संसारतापं न संस्मरति स्म। नच ततो निर्गच्छति। ब्रह्मसंपन्नवद्ब्रह्मैक्यं प्राप्त इव ॥३५॥

### भाव प्रकाशिका

सिद्ध पुरुष श्रीभगवान् की कथा के श्रवण जन्य आनन्द की प्रशंसा करते हुए उनकी स्तुति करते हैं। हे भगवन् ! यह हमारा मन रूपी हाथी आपकी कथा रूपी शुद्ध अमृतमयी नदी में प्रवेश कर गया है। इसके कारण यह इस समय दावाग्नि के समान संसार में प्राप्त होने वाले संताप का स्मरण नहीं करता है। वह आपकी इस अमृतमयी कथा नदी से बाहर निकलना भी नहीं चाहता हैं। मानो उसने ब्रह्म से अभेद को प्राप्त कर लिया हैं॥३५॥

यजमान्युवाच

**स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ।**
**तवामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥३६॥**

अन्वयः— हे ईश ! तेस्वागतम्, तुभ्यं नमः । हे श्रीनिवास श्रिया कान्तया नः त्राहि । हे अधीश त्वामृते अङ्गैः मखः पुरुषः शीर्ष हीनः कबन्धो यथा न शोभते ॥३६॥

**यजमान की पत्नि ने कहा**

**अनुवाद**— हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! आपका स्वागत है । आपको मैं नमस्कार करती हूँ । आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ । हे लक्ष्मीपते ! आप अपनी प्रियतमा पत्नी लक्ष्मीजी के साथ हमारी रक्षा करें । हे यज्ञों के स्वामिन्! आपके बिना अङ्गों से युक्त भी यह यज्ञ पुरुष उसी तरह सुशोभित नहीं होता है जिस तरह शिर से रहित केवल धड़ सुशोभित नहीं होता है ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

यजमानी दक्षपत्नी स्तौति । ते स्वागतं भद्रमागमनं जातम् । हे अधीश, यथा शिरसा हीनः कबन्धमात्रः पुरुषोऽङ्गैः करचरणाद्यवयवैः शोभमानैरपि न शोभते तथा त्वां विना केवलं प्रयाजाद्यङ्गैर्मखो न शोभते । अतो नः श्रिया सह त्रायस्व त्वद्भक्तान्कुर्वित्यर्थः ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

यजमानी दक्ष की पत्नी स्तुति करती हुई कहती है, हे प्रभो ! आपका मङ्गलमय आगमन हुआ है, आपका स्वागत है । हे यज्ञाधीश प्रभो ! आपके बिना यज्ञ उसी तरह सुशोभित नहीं होता है जिस तरह शिर के बिना हाथ पैर आदि अङ्गों से युक्त भी केवल धड़ मात्र नहीं सुशोभित होता है । अर्थात् आपके बिना केवल प्रयाज आदि अङ्गों से युक्त भी यज्ञ सुशोभित नहीं होता है । अतएव आप अपनी पत्नी लक्ष्मीजी के साथ अपने भक्त हमलोगों की रक्षा करें ॥३६॥

लोकपाला ऊचुः

**दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ।**
**माया ह्येषा भवदीया हि भूमन्यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥३७॥**

अन्वयः— हे भूमन् त्वं नः अससद्ग्रहैः दृष्टः किम् ? प्रत्यक् द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् । यस्त्वं षष्टः पञ्चभिः भूतैः षष्ठः भासि एषा भवदीया माया ॥३७॥

**लोकपालों ने कहा**

**अनुवाद**— हे अनन्त परमात्मन् ! आप समस्त अन्तःकरणों के साक्षी हैं । यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् आपके ही द्वारा देखा जाता है । आप हमारी इन मायिक पदार्थों का साक्षात्कार करने वाली इन्द्रियों के द्वारा कभी देखे जा सकते हैं क्या ? आप इन पाँच भूतों के साथ छठे के रूप में प्रतीत होते हैं, यह तो आप की माया है । आप इन सबों से पृथक् हैं ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

लोकपालास्त्वीश्वरवाभिमानारूढा भगवतस्तत्त्वमपश्यन्त ऊचुः । दृष्टः किं, न दृष्ट इत्यर्थः । कुतः । असद्ग्रहैः । पुंस्त्वमाविष्टलिङ्गत्वात् । असत्प्रकाशरूपाभिर्दृग्भिरिन्द्रियैः । अयं भावः-शुद्धचित्तानां त्वं शुद्धसत्त्वमूर्तिर्भासि । अस्माकं तु बहिर्मुखेन्द्रियाणां पञ्चभूतोपलक्षितो जीवविशेष इवावभासि । अतस्त्वमस्मदिन्द्रियगोचरो न भवसि । धिगस्मज्जीवितमिति॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

लोकपाल ईश्वरत्वाभिमान से युक्त हैं । उनको परमात्म तत्त्व का ज्ञान नहीं है । इस प्रकार के लोकपालों ने कहा— आपको हमलोगों ने अपनी इन्द्रियों से कभी भी नहीं देखा है क्योंकि हमारी वे इन्द्रियाँ असत् (मिथ्या) पदार्थों का ग्रहण करने वाली हैं । यहाँ पर पुल्लिङ्ग प्रयोग अविष्टलिङ्ग (विशेष्य निघ्न) होने के कारण है । इन्द्रियों का स्वभाव है कि वे असत् पदार्थ का ही प्रकाश करती हैं । उन इन्द्रियों से आपका साक्षात्कार कैसे हो सकता है ? । **अयं भावः इत्यादि** कहने का अभिप्राय है कि जिन पुरुषों का मन शुद्ध होता है उन लोगों को आप शुद्ध सत्त्व रूप से प्रकाशित होते हैं । हमलोगों की इन्द्रियाँ तो बहिर्मुख हैं । अतएव उन सबों के द्वारा आप पञ्चभूतोंपलक्षित जीव विशेष के समान प्रतीत होते हैं । इसीलिए आप हमलोगों की इन्द्रियों के विषय नहीं बनाते हैं । हमलोगों के जीवन को धिक्कार है ॥३७॥

योगेश्वरा ऊचुः

**प्रेयान्न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ।**
**अथापि भक्त्येश तयोपधावतामनन्यवृत्त्याऽनुगृहाण वत्सल ॥३८॥**

**अन्वयः**— हे विश्वात्मन् प्रभो ! यः आत्मनः य त्वयि पृथक् न ईक्षेत् अमुतः ते अन्यः प्रेयान् न अस्ति अथापि ईश तया अनन्यभक्त्या उपधवताम् हे वत्सल अनुगृहाण ॥३८॥

**योगेश्वरों ने कहा**

**अनुवाद**— हे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप प्रभो ! जो उपासक आपको अपनी आत्मा से अभिन्न मानता है उससे अधिक आपको कोई भी प्रिय नहीं है । फिर भी हे भक्तवत्सल प्रभो जो लोग आपमें स्वामिभाव को रखकर अपनी अनन्या भक्ति के द्वारा आपकी सेवा करते हैं उन लोगों को भी आप अनुगृहीत करें ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

योगेश्वरास्तदभेदेन भजतामनुग्रहभाक्त्वं मन्यमानाः स्वामिभृत्यभावेन भजतामप्यनुग्रहं प्रार्थयमानाः स्तुवन्ति द्वाभ्याम् प्रेयानिति । विश्वात्मनि परब्रह्मणि त्वयि य आत्मनः पृथक्त्वं नेक्षेत अमुतोऽमुष्मादन्यस्ते प्रेष्ठो नास्ति आत्मनो जीवात्पृथङ्क्षेतेति वा । हे वत्सल भक्तजनप्रिय, अनन्यवृत्त्याऽव्यभिचारिण्या भक्त्या भजतोऽनुगृहाणेत्यर्थः ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

योगेश्वरों का यह मानना है कि जो लोग भगवान् की उपासना अपने से अभिन्न मानकर करते हैं वे ही श्रीभगवान् के अनुग्रह के पात्र हैं । वे श्रीभगवान् की प्रार्थना इसलिए करते हैं कि जो लोग श्रीभगवान् को अपना स्वामी मानकर स्वामिभृत्य भाव से उनकी उपासना करते हैं उन लोगों को वे अनुगृहीत करें । **प्रेयान् इत्यादि** सम्पूर्ण जगत् की आत्मा आपमें अपने से भिन्न नहीं मानता है, उन उपासकों से भिन्न कोई दूसरा आपको अधिक प्रिय नहीं है । अथवा जो लोग आत्मा से भिन्न जीवों को नहीं देखते हैं यह भी अर्थ हो सकता है । हे भक्तों के प्रिय भगवन् ! जो लोग स्वस्वामिभाव रूप सम्बन्ध मानकर आपकी सेवा अव्यभिचारिणी भक्ति आपकी करते हैं, उन लोगों को भी आप अनुगृहीत करें ॥३८॥

**जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयात्ममायया ।**
**रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥३९॥**

**अन्वयः**— दैवतः बहुभिद्यमानमानगुणया आत्ममायया जगदुद्भवस्थितिलयेषु रचितात्मभेदर्मतये स्वसंस्थया विनिवर्तित भ्रमगुणात्मने नमः ॥३९॥

**अनुवाद**— जीवों के अदृष्ट के कारण जिसके सत्त्वादि गुणों में बहुत अधिक भेद आ जाता है उसे अपनी माया के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के लिए आप ब्रह्मा आदि विभिन्न रूपों को धारण करके भेद बुद्धि को उत्पन्न करने का काम करते हैं, किन्तु आप स्वरूपत: उस भेद ज्ञान और उसके कारण से बहुत दूर हैं । ऐसे आपको मेरा नमस्कार हैं ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

अव्यभिचारिणी भक्तिः कथं स्याद्भजनीयानां बहुत्वादित्याशङ्क्याहुः । जगत उद्भवादिषु निमित्तेषु दैवतो जीवादृष्टाद्बहुधा भिद्यमाना गुणा यस्यास्तया स्वमाययात्मनि स्वरूपे रचिता ब्रह्मादिभेदमतिर्येन तस्मै । स्वसंस्थया केवलस्वरूपावस्थानेन च विनिवर्तितो भेदभ्रमो गुणाश्च तद्धेतव आत्मनि येन तस्मै ॥३९॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि भजनीय तो अनेक हैं ऐसे स्थिति में अव्यभिचारिणी भक्ति कैसे हो सकती है ? इस प्रकार की आशंका करके योगेश्वरों ने कहा— जगत् की उत्पत्ति आदि कार्यों के लिए दैव वशात् जीवों के अदृष्ट के कारण जिसके सत्त्वादि गुणों में अनेक प्रकार के भेद हैं उस माया के ही कारण आप भी अपने में ब्रह्मादि भेदों को ब्रह्मा आदि के भेद से भेद उत्पन्न कर देते हैं और अपने स्वरूप से तो आप में भेद का भ्रम है ही नहीं । आप इन भेदों और माया के भेदों और गुणों से रहित ही हैं । ऐसे आपको नमस्कार हैं ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

**नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये । निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपि च ॥४०॥**

**अन्वयः**— धर्मादीनां च सूतये श्रित सत्त्वाय, निर्गुणाय ते नमः । यत् काष्ठां अहं वेद अपरे अपि च न ॥४०॥

**शब्द ब्रह्म ने कहा**

**अनुवाद**— धर्म आदि की उत्पत्ति के लिए शुद्ध सत्त्वगुण को धारण करने वाले तथा निर्गुण स्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आपके तत्त्व को न तो मैं जानता हूँ और न कोई दूसरा जानता है ॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

शब्दब्रह्म स्तौति । नमस्त इति । श्रितं स्वीकृतं सत्त्वं येनातो धर्मादिफलप्रसवित्रे । ननु सत्त्वगुणत्वं निर्गुणत्वं चैकस्य कथमित्याशङ्क्याह । यस्य काष्ठां तत्त्वं नाहं वेद्मि, अपरे ब्रह्मादयश्च न विदुस्तस्मै ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए शब्द ब्रह्म कहता है **नमस्तेः इति** जो आप धर्म आदि की उत्पत्ति के लिए शुद्ध सत्त्वगुण को धारण करते हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है किञ्च निर्गुण आपको मेरा नमस्कार है । अब प्रश्न है कि एक परमात्मा में सत्त्वगुणत्व और निर्गुणत्व दोनों कैसे रह सकते हैं ? इस प्रकार की आशङ्का करके वेद कहते हैं । जिस आपकी काष्ठा सीमा को न तो मैं जानता हूँ और न तो ये ब्रह्मा आदि देवता ही जानते हैं ॥४०॥

अग्निरुवाच

**यत्तेजासाऽहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ।**
**तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥४१॥**

**अन्वयः**— यत् तेजसा सुसमिद्ध तेजा अहं स्वध्वरे आज्यसिक्तम् हव्यं वहे पञ्चविधं यज्ञियं, पञ्चभिः यजुर्भिः स्विष्टं यज्ञम् अहम् प्रणतो अस्मि ॥४१॥

### अग्नि ने कहा

**अनुवाद**—जिन श्रीभगवान् के तेज से प्रज्वलित होकर मैं श्रेष्ठ यज्ञों में देवताओं तक घृत मिश्रित हविष्य को पहुँचाने का कार्य करता हूँ ऐसे आप स्वयम् यज्ञ स्वरूप हैं और यज्ञों की रक्षा करने वाले हैं। अग्निहोत्र दर्श, पौर्णमस चातुर्मास्य और पशुसोम ये पाँचो प्रकार के यज्ञ आपके स्वरूप है और 'आश्रावय' 'अस्तु' 'श्रोपट्' 'यजे' और 'यजामहे' इन पाँच प्रकार के यजुः मन्त्रों से आपकी ही आराधना होती है । ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ ।।४१।।

### भावार्थ दीपिका

अग्निस्तु यज्ञमूर्तिं प्रणमति । यस्य तेजसा सुष्ठु समिद्धं प्रदीप्तं तेजो यस्य सोऽहं प्रशस्तेऽध्वरे हविर्वहामि । तं यज्ञियं यज्ञाय हितं पालकम् । यज्ञं यज्ञमूर्तिम् । पञ्चविधत्वमैतरेयके उक्तम् । 'स एष यज्ञः पञ्चविधोऽग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुः सोमः' इति । पञ्चभिर्यजुर्भिर्यज्ञमन्त्रैः स्विष्टं सुपूजितम् । तथा च श्रुतिः । 'आश्रावयेति चतुरक्षरं, अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरं, यजेति द्व्यक्षरं ये यजामह इति पञ्चाक्षरं, द्व्यक्षरो वषट्कारः । स्मृतिश्च 'चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च । हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ।।' इति ।।४१।।

### भाव प्रकाशिका

अग्नि तो यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । वे कहते हैं जिस आपके तेज से मैं अच्छी तरह प्रज्वलित होता हूँ ऐसा मैं श्रेष्ठ यज्ञ में देवताओं तक हविष्य पहुँचाने का काम करता हूँ । उन यज्ञों के पालक तथा यज्ञ शरीरक आपको प्रणाम करता हूँ । यज्ञ के पञ्च विधत्व का प्रतिपादन करते हुए तैत्तिरेयारण्यक में कहा गया है **''एष यज्ञः पञ्चविधोऽग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुःसोमः ।'' इति ।** अर्थात् यह यज्ञ पाञ्च प्रकार का है। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य और पशुसोम । इन यज्ञों में यज्ञ के पाँच यजुर्मन्त्रों से भगवान् सुपूजित होते हैं । श्रुति भी कहती है **आश्रवयेति चतुरक्षरम् अस्तु श्रोषडिति चतुरक्षरम् यजेति द्वयक्षरं, ये यजामह इति पञ्चाक्षरं, द्वयक्षरो वषट्कारः** अर्थात् **आश्रावय** यह चार अक्षरों वाला मन्त्र है । **अस्तु श्रौषट्** यह चार अक्षरों वाला मन्त्र है, **यज** यह दो अक्षरों वाला मन्त्र है **ये यजामहे** यह पाञ्च अक्षरों वाला मन्त्र तथा **वषट्** यह दो अक्षरों वाला मन्त्र है । स्मृति भी कहती है । **चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ।** अर्थात् जिन भगवान् विष्णु की आश्रावय इस चार अक्षरों वाले मन्त्र से और अस्तुश्रौषट् इस चार अक्षरों वाले मन्त्र से उसके पश्चात् **यज** इस दो अक्षरों वाले मन्त्र से **ये यजामहे** इस पाँच अक्षरों वाले मन्त्र से तथा **वषट्** इस दो अक्षरों वाले मन्त्र से आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, वे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जायँ ।।४१।।

देवा ऊचुः

**पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन्सलिल उरगेन्द्राधिशयने ।**
**पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविःस एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ।।४२।।**

**अन्वयः**— त्वमेवाद्यः पुमान्, पुरा कल्पापाये स्वकृतम्, विकृतम् उदरीकृत्य त्वमेव तस्मिन् सलिले उरगेन्द्राधिशयने शेषे, अहयात्मपदविः सिद्धे हृदि विमृशित यः स एव अद्य अक्ष्णोः पथि चरसि नः भृत्यान् अवसि ।।४२।।

### देवताओं ने कहा

**अनुवाद**—हे भगवन् ! आप ही आदि पुरुष हैं । पूर्व कल्प के समाप्त हो जाने पर अपने कार्यभूत इस सम्पूर्ण प्रपञ्च को आप अपने उदर में लीन करके आप ही उस प्रलय कालीन जल के भीतर शेष नाग की शय्या पर शयन करते हैं, आपके आध्यात्मिक स्वरूप का चिन्तन जन लोक निवासी सिद्धगण अपने हृदय में चिन्तन करते हैं । वही आप आज हमलोगों को दर्शन देकर अपने भृत्य हम देवताओं की रक्षा कर रहे हैं ।।४२।।

### भावार्थ दीपिका

देवास्तु सत्यं वयमपि देवास्तथापि जगदाद्यन्तयोस्त्वमेव नान्यः कश्चिदित्याहुः-पुरेति कल्पापाये प्रलये विकृतं

कार्यजातमुदरीकृत्य संहृत्य त्वमेवाद्यः पुमानुरगेन्द्र एवाधिकं शयनं शय्या तस्मिन् शेषे शयनं करोषि । सिद्धैर्जनलोकादिवासिभिर्विमृशिता विचिन्तिताऽध्यात्मपदवी ज्ञानमार्गो यस्य स एव त्वं य इदानीमक्ष्णोः पथि चरसि प्रत्यक्षोसि । अवसि रक्षसि ।।४२।।

**भाव प्रकाशिका**

देवताओं ने कहा कि यह सत्य है कि हमलोग भी देव जाति के हैं, किन्तु जगत् के आदि में और अन्त में केवल आप ही रहते हैं, कोई भी दूसरा देव नहीं रहता है । इस अर्थ का प्रतिपादन **पुराकल्पापये इत्यादि** श्लोक से करते हैं । पूर्व कल्प के समाप्त हो जाने पर प्रलय काल की बेला मे अपने सम्पूर्ण कार्य समूह रूपी जगत् को अपने उदर में लीन करके आप शेष नाग की शय्या पर शयन करते हैं । अतएव आप ही आदि पुरुष हैं । जन लोक आदि लोकों में रहने वाले सिद्धगण आपके आध्यात्मिक ज्ञान मार्ग का अपने हृदय मे चिन्तन करते हैं । वही आप आज हमलोगों को दर्शन देकर आपके अनुचर हम देवताओं की रक्षा कर रहे हैं ।।४२।।

गन्धर्वा ऊचुः

**अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणां रुद्रपुरोगाः ।**
**क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य विभूमंस्तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ।।४३।।**

**अन्वयः**— हे देव ! एते मरीच्पादयः एते रुद्रपुरोगाः ब्रह्मेन्द्राद्याः देवगणाः ते अंशांशाः हे विभूमन् इदं विश्वं यस्य क्रीडाभाण्डम् हे नाथ तस्मै ते नित्यं नमः करवामः ।।४३।।

**गन्धर्वों ने कहा**

**अनुवाद**— हे देव ! ये मरीचि आदि ऋषिगण और रुद्र प्रमुख ब्रह्मा इन्द्र आदि सभी देवगण आपके अंश के भी अंश हैं । हे जगद् व्यापक प्रभो ! यह सम्पूर्ण जगत् आपकी क्रीडा की सामग्री है । हे नाथ ! ऐसे आपको हम सदैव नमस्कार करते हैं ।।४३।।

**भावार्थ दीपिका**

गन्धर्वाप्सरसस्तु वयं भिया केवलं सर्वानपि परमेश्वरत्वेनोपश्लोकयामस्त्वमेव तु परमेश्वरोऽन्ये तु त्वदंशा एवेत्याहुः- अंशांशा इति । हे विभूमन्महत्तम, क्रीडाभाण्डं क्रीडोपकरणं विश्वं ब्रह्माण्डं यस्य तस्मै ते नमनं कुर्मः ।।४३।।

**भाव प्रकाशिका**

गन्धर्वों और अप्सराओं ने कहा— हमलोग तो केवल भय के कारण सबों को परमेश्वर कहकर उन सबों की स्तुति किया करते हैं । किन्तु वास्तविकता यही है कि केवल आप ही परमेश्वर हैं, दूसरे देवता तो आपके अंश के भी अंश हैं । हे जगद्व्यापक ! महत्तम प्रभो ! यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपकी क्रीड़ा का उपकरण है । ऐसे आपको हम सभी नमस्कार करते हैं ।।४३।।

विद्याधरा ऊचुः

**त्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ।**
**क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उद्व्युदस्येत् ।।४४।।**

**अन्वयः**— अर्थम् अस्मिन् कलेवरे अभिपद्य त्वन्मायया मम अहमिति कृत्वा दुर्मतिः स्वैः उत्पथैः क्षिप्तोऽपि असद्विषयलालसः युष्मत् कथा निषेवक आत्ममोहं उद्व्युदस्येत् ।।४४।।

**विद्याधरों ने कहा**

**अनुवाद**— परम पुरुषार्थ के साधन भूत इस मानव शरीर को प्राप्त करके जीव आपकी माया से मोहित होकर इस शरीर में ही अहन्त्व तथा ममत्व का अभिमान करता है । उसके पश्चात् वह दुर्बुद्धि अपने आत्मीयों

से तिरस्कृत होकर भी असत् विषयों को प्राप्त करने की लालसा करता है, किन्तु जो लोग आपकी कथा रूपी अमृत का सेवन करते हैं वे इस आत्मविषयक अज्ञान को पूर्ण रूप से त्याग देते हैं ॥४४॥

**भावार्थ दीपिका**

विद्याधरास्तु केवलं विद्याभिः संपदः प्राप्यन्ते अहंकारादिव्यामोहनिवृत्तिस्तु त्वत्कथाश्रवणं बिना नास्तीत्याहुः । अर्थं पुरुषार्थसाधनं कलेवरमभिपद्य प्राप्य त्वन्माययास्मिन्ममेत्यहमिति चाभिमानं कृत्वेममात्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उदुच्चैर्व्युदस्येत् परित्यजेन्नान्यः । ननु स्वैः पुत्रादिभिरधिक्षिप्तो दुःखितः सन्परित्यजेदेव, नेत्याहुः । क्षिप्तोऽपि दुर्मतिः । असत्सु विषयेष्वेव लालसा तृष्णा यस्य सः ॥४४॥

**भाव प्रकाशिका**

विद्याधर तो विद्याओं के ही द्वारा संपत्तियों को प्राप्त करते हैं । उन लोगों ने कहा कि हे भगवन् । आपके कथाओं का श्रवण किए बिना अहङ्कार की निवृत्ति नहीं होती है । श्लोक के अर्थ शब्द का अर्थ है पुरुषार्थ का साधन । यह मानव शरीर परम पुरुषार्थ का साधन है, इस शरीर को प्राप्त करके भी मनुष्य आपकी माया से मोहित होकर इस शरीर में ही अहन्त्व और ममत्व का अभिमान करता है । इस आत्म विषयक अज्ञान को तो आपकी कथा रूपी अमृत का सेवन करके ही मनुष्य पूर्ण रूप से त्याग सकता है । **ननु० इत्यादि** यदि कोई यह कहे कि मनुष्य जब अपने पुत्रों आदि से अपमानित होता है उसी से उसको अहंत्व ममत्व का परित्याग कर देना चाहिए। तो ऐसी बात नहीं है । उन सबों से अपमानित भी होकर वह अज्ञानी मनुष्य असत् पदार्थों को ही प्राप्त करने की इच्छा करता है ॥४४॥

ब्राह्मणा ऊचुः

**त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ।**
**त्वं सदस्यर्त्विजो दंपती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥४५॥**

**अन्वयः**— त्वम् क्रतुः, त्वं हविः, त्वं हुताशः, स्वयं त्वं हि मन्त्रः, समिद्दर्भ पात्राणि च त्वं सदस्यर्त्विजः दम्पती, देवता, अग्निहोत्रं, स्वधा, सोमः आज्यं पशुः ॥४५॥

**ब्राह्मण ने कहा**

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप ही यज्ञ हैं, आप ही हविष्य हैं, आप ही अग्नि हैं, स्वयम् आप ही मन्त्र हैं । आप ही समिधा, कुश, और यज्ञपात्र हैं । आप ही सदस्य, आप ही ऋत्विज्, आप ही यजमान और यजमान पत्नी हैं, आप ही देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, घृत तथा पशु आप ही हैं ॥४५॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्राह्मणाः स्तुवन्ति- त्वमिति त्रिभिः । सदस्याश्च ऋत्विजश्च ॥४५॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणों ने श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहा कि हे भगवन् ! यज्ञ तथा यज्ञ के सारी सामग्री आप ही हैं। यज्ञ के सदस्य तथा ऋत्विज भी आप ही हैं । इस तरह से ब्राह्मणों ने तीन श्लोकों से भगवान् की स्तुति की ॥४५॥

**त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ।**
**स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ॥४६॥**

**अन्वयः**— हे त्रयीगात्र यज्ञ क्रतुः पुरात्वं गां रसायाः महासूकरः वारणेन्द्रो द्रंष्ट्रया पद्मिमनीं यथा लीलया नदन् योगिभिः स्तूयमानः व्युज्जहर्थ ॥४६॥

**अनुवाद**— हे वेदमूर्ते भगवन् ! आप ही यज्ञ और यज्ञ के सङ्कल्प भी आप ही हैं । पूर्वकाल में रसातल में गयी पृथिवी का उद्धार करने वाले महावराह आप ही हैं । जिस तरह से कोई गजेन्द्र किसी कमलिनी को अपने दाँतों पर रख लेता है । उसी तरह से आप अपने दाँतों पर रखकर पृथिवी का उद्धार किए । उस समय आप धीरे-धीरे गर्जना कर रहे थे और योगिजन आपकी स्तुति कर रहे थे ।।४६।।

**भावार्थ दीपिका**

गां पृथ्वीं रसाया सातलाद्दंष्ट्रया व्युज्जहर्थ विशेषेणोद्धृतवानसि योगिभिः स्तूयमानः । हे त्रयीगात्र वेदमूर्ते, यज्ञो यागः सयूपस्तद्विशेषः, क्रतुस्तद्रूपी यज्ञसंकल्परूप इति वा । यज्ञः क्रतुः कर्म यस्येति वा ।।४६।।

**भाव प्रकाशिका**

रसातल में गयी हुयी पृथ्वी को आप रसातल में अपने दाँतों से उद्धार किए । अर्थात् आपने विशेष रूप से उद्धार किया यह **व्युज्जहर्थ** पद का अर्थ है । उस समय योगिजन आपकी स्तुति कर रहे थे । हे त्रयीगात्र अर्थात् वेदमूर्ते भगवन् ! यूप से युक्त यज्ञयाग कहलाता है । उस प्रकार के यज्ञ के सङ्कल्प विशेष भी आप हैं । अथवा यज्ञ क्रतुः शब्द का अर्थ है, यज्ञ ही जिस का काम है ।।४६।।

**स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ।**
**कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ।।४७।।**

**अन्वयः**— हे यज्ञेश नृभिः ते नाम्नि कीर्त्यमाने यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति । परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ते दर्शनमाकाङ्क्षतां स त्वं प्रसीद तस्मैनमः ।।४७।।

**अनुवाद**— हे यज्ञेश्वर ! लोग जब आपके नाम का उच्चारण करते हैं तो यज्ञों के विघ्न विनष्ट हो जाते हैं । हमलोगों का यह सत्कर्मरूपी यज्ञ नष्ट हो गया था, अतएव हमलोग आपका दर्शन प्राप्त करना चाहते थे। अब आप हम पर प्रसन्न हो जाइये आपको नमस्कार हैं ।।४७।।

**भावार्थ दीपिका**

स त्वमस्माकं त्वद्दर्शनमाकाङ्क्षतां प्रसीद अस्मद्यज्ञमप्युद्धरेत्यर्थः । न चाशक्यं तवैतत् । यतस्तव नाम्नि कीर्त्यमान एव यज्ञविघ्ना; क्षयं यान्ति । एवंप्रभावो यस्तस्मै नमः ।।४७।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में ब्राह्मण श्रीभगवान् से कह रहे हैं । कि हमलोग आपका दर्शन प्राप्त करना चाहते थे, अतएव आप हमलोगों पर प्रसन्न हो जाइये और हमारे यज्ञ का भी उद्धार कीजिये । आपके लिए यह अशक्य इसलिए नहीं है कि आपका नामोच्चारण करने मात्र से यज्ञों के विघ्न दूर हो जाते हैं । इस प्रकार के प्रभाव सम्पन्न आपको नमस्कार हैं ।।४७।।

मैत्रेय उवाच

**इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्र रुद्रावमर्शितम् । कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञभावने ।।४८।।**

**अन्वयः**— हे भद्र ! इति यज्ञभावने हृषीकेशे कीर्त्यमाने कविः दक्षः रुद्रावमर्शितम् यज्ञं सं निन्ये ।।४८।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुर ! इस प्रकार से सब लोगों द्वारा यज्ञों के रक्षक श्रीभगवान् की स्तुति किए जाने पर चतुर दक्ष ने वीरभद्र के द्वारा ध्वंस किए हुए यज्ञ को पुनः प्रारम्भ कर दिया ।।४८।।

**भावार्थ दीपिका**

इत्यनेन प्रकारेण सर्वैः कीर्त्यमाने । हे भद्र विदुर । संनिन्ये प्रवर्तयामास ।।४८।।

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार से सब लोगों द्वारा स्तुति किए जाते हुए देखकर चतुर दक्ष ने वीरभद्र के द्वारा ध्वस्त किए गये यज्ञ को फिर से करना प्रारम्भ कर दिया ।।४८।।

**भगवान्स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् । दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ।।४९।।**

**अन्वयः**— हे अनघ ! सर्वात्मा सर्वभागभुक् भगवान् स्वेन भागेन प्रियमाण इव दक्षं आभाष्य बभाषे ।।४९।।

**अनुवाद**— हे अनघ ! सर्वान्तर्यामी भगवान् सभी के भोगों के भोक्ता हैं । उन्होंने त्रिकपाल पुरोडाश रूप अपने भाग से और भी प्रसन्न होकर दक्ष को सम्बोधित करके कहा ।।४९।।

**भावार्थ दीपिका**

सर्वात्मतया सर्वभागभोक्तापि भगवान्निजानन्दतृप्तोऽपि स्वेन भागेन त्रिकपालपुरोडाशेन प्रीयमाण इव दक्षमाभाष्य संबोध्य बभाषे ।।४९।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् अन्तर्यामी रूप से सबों की आत्मा है । अतएव वे सबों के भागों के भोक्ता हैं । वे भगवान् अपने आनन्द मात्र से ही तृप्त हैं फिर भी अपने त्रिकपाल रूप पुरोडश से प्रसन्न होते हुए दक्ष को सम्बोधित करके कहे ।।४९।।

श्रीभगवानुवाच

**अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् । आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ।।५०।।**

**अन्वयः**— जगतः परमं कारणम् अहं, ब्रह्मा च शर्वश्च आत्मा ईश्वरः उपद्रष्टा स्वयंदृक् अविशेषणः ।।५०।।

**श्रीभगवान् ने कहा**

**अनुवाद**— जगत् का परम कारण मैं हूँ । मैं ही ब्रह्मा और शिव हूँ । मैं सबों की आत्मा, ईश्वर और साक्षी हूँ मैं स्वयं प्रकाश और उपाधि शून्य हूँ ।।५०।।

**भावार्थ दीपिका**

योऽहं जगतः कारणं आत्मा चेश्वरश्च उपद्रष्टा साक्षी च स्वयंप्रकाशश्च निरूपाधिश्च स एव ब्रह्मा शर्वश्चेत्यन्वयः ।।५०।।

**भाव प्रकाशिका**

जो मैं सम्पूर्ण जगत् का कारण आत्मा, ईश्वर (नियामक) साक्षी और स्वयं प्रकाश उपाधि रहित हूँ । वहीं मैं ब्रह्मा और शिव भी हूँ ।।५०।।

**आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज । सृजन्रक्षन्हरन्विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ।।५१।।**

**अन्वयः**— हे द्विज गुणमयी आत्ममायां समाविश्य सोऽहम् विश्वं सृजन् रक्षन् हरन क्रियेचितां संज्ञां दध्रे ।।५१।।

**अनुवाद**— हे द्विज ! अपनी त्रिगुणात्मिका माया को स्वीकार करके मैं ही जगत् की सृष्टि करता हूँ रक्षा करता हूँ और संहार करता हूँ । और मैं ही इन कर्मों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन संज्ञाओं को धारण करता हूँ ।।५१।।

**भावार्थ दीपिका**

कुत इत्यत आह । अहमेवात्ममायामधिष्ठाय जगत्सृष्ट्यादि कुर्वन्स च स च सन्सर्वशक्तिः क्रियोचितां संज्ञां धारयामि।।५१।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि यह कैसे ? तो इस पर श्रीभगवान् कहते हैं । मैं ही अपनी त्रिगुणात्मिका माया को स्वीकार करके जगत् की सृष्टि आदि करने का काम करता हूँ । इस तरह से सर्वशक्ति सम्पन्न मैं अपने कर्मों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन नामों को धारण करता हूँ ॥५१॥

**तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि । ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनु पश्यति ॥५२॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् अद्वितीये केवले परमात्मनि ब्रह्मणि अज्ञः ब्रह्म रुद्रौ च भूतानि च भेदेन अनुपश्यति ॥५२॥

**अनुवाद**— उस अद्वितीय (भेद रहित) विशुद्ध, परमात्मा मुझ ब्रह्म में अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र, और दूसरे जीवों रूपी भेदों को देखता है ॥५२॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्मिन्केवलेऽद्वितीये समानासमानजातीयभेदरहिते ब्रह्मणि मयि ब्रह्मरुद्रौ भूतानि च भेदेनाज्ञः पश्यतीत्यर्थः ॥५२॥

**भाव प्रकाशिका**

उस भेद रहित आदित्य सजातीय और विसजातीय भेद रहित मुझ ब्रह्म में ही ब्रह्मा, रुद्र और दूसरे जीवों का भेद अज्ञानी पुरुष देखता है ॥५२॥

**यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् । पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ॥५३॥**

**अन्वयः**— यथा पुमान् शिरः पाणि आदि स्वाङ्गेषु क्वचित् पारक्यबुद्धिं न कुरुते एवं मत्परः भूतेषु ॥५३॥

**अनुवाद**— जिस तरह से विज्ञ पुरुष शिर हाथ आदि अपने अङ्गो में ये मुझसे भिन्न हैं ऐसी बुद्धि नहीं करता है उसी तरह से मेरा भक्त सभी प्राणियों को मुझसे भिन्न नहीं देखता है ॥५३॥

**भावार्थ दीपिका**

विद्वांस्तु भेदं न पश्यतीति सदृष्टान्तमह-यथेति ॥५३॥

**भाव प्रकाशिका**

**यथा इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा भगवान् यह बतलाते हैं कि विद्वान् पुरुष जिस तरह से अपने अङ्गों को अपने से भिन्न नहीं जानता है उसी तरह से मेरा भक्त भी सभी प्राणियों को मुझसे भिन्न नहीं देखता है ॥५३॥

**त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् । सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन्स शान्तिमधिगच्छति ॥५४॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! यो वै एकभावानां त्रयाणां सर्वभूतात्मनाम् भिदाम् पश्यति सःशान्तिम् अधिगच्छति ॥५४॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! जो मेरा भक्त एक स्वरूप वाले, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जो सबों की आत्मा स्वरूप हैं । हमलोगों में भेद नहीं देखता हैं वह शान्ति को प्राप्त करता है ॥५४॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्मादेवमैक्यं पश्यन्कृतार्थो भवतीत्याह । त्रयाणामेको भावः स्वरूपं येषाम् ॥५४॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने दक्ष प्रजापति को बतलाया कि हम तीनों स्वरूपतः एक हैं । अतएव हम लोगों में अभेद को देखने वाला पुरुष कृतार्थ हो जाता है ॥५४॥

मैत्रेय उवाच

**एवं भगवतादिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिम् । अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥५५॥**

**अन्वयः**— एवं भगवता आदिष्टः प्रजापतिपतिः हरिम् अर्चित्वा स्वेन क्रतुना उभयतः अयजत् ॥५५॥

**मैत्रेय जी ने कहा**

**अनुवाद**— इस प्रकार से श्रीभगवान् के आदेश को पाकर प्रजापतियों के पति दक्ष प्रजापति त्रिकपाल यज्ञ के द्वारा श्रीभगवान् की पूजा करके ब्रह्मा और रुद्र की भी पूजा प्रयाज आदि अङ्गों और दर्शपौर्णमास आदि प्रधानों से भी की ॥५५॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वेन क्रतुना त्रिकपालेष्ट्या । उभयतोऽङ्गैः प्रधानेन च ॥५५॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने त्रिकपाल नाम इष्टि के द्वारा दक्ष प्रजापति ने भगवान् श्रीहरि की पूजा करके प्रयाज आदि अङ्गों और दर्श पूर्णमास आदि अङ्गप्रधानों से ब्रह्मा रुद्र तथा दूसरे देवताओं की पूजा की ॥५५॥

**रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत्समाहितः । कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ॥**
**उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥५६॥**

**अन्वयः**— समाहितः स्वेन भागेन हिरुद्रं च उपाधावात् उदवसानेन कर्मणा इतरान् सोमपान् ऋत्विग्भिः सह उदवस्य ततः अवमृथं सस्नौ ॥५६॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उन्हाने एकाग्रचित्त होकर भगवान् शिव के यज्ञशेष रूप भाग से उन्होंने पूजा की, यज्ञ की समाप्ति में किए जाने वाले उदवसान नामक कर्म के द्वारा उन्होंने दूसरे सोमपान करने वालों की पूजा की उसके पश्चात् यज्ञ को समाप्त करके उन्होंने अवभृथ स्नान किया ॥५६॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वेन भागेन यज्ञावशिष्टेन । उदवस्यते समाप्यतेऽनेनेत्युदवसानं तेन कर्मणा । सोमपानितरानप्युपाधावदित्यनुषङ्गः । ततश्चोदवस्य कर्म समाप्यावभृथरूपं यथा भवति तथा स्नातवान् ॥५६॥

**भाव प्रकाशिका**

यज्ञ शेष नामक भाग से दक्ष प्रजापति ने शङ्करजी की पूजा की उदवसान नामक कर्म से यज्ञ को समाप्त करके दूसरे सोमपान करने वालों की पूजा की उदवस्यते समाप्यतेऽनेनेत्युदवसानम्, यह उदवसान शब्द की व्युत्पत्ति है । यज्ञ की समाप्ति हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने अवभृथ स्नान किया ॥५६॥

**तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे । धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥५७॥**

**अन्वयः**— स्वेनैव अनुभावेन प्राप्तराधसे अपि तस्मै ते त्रिदशाः धर्म एव मतिं दत्वा दिवं ययुः ॥५७॥

**अनुवाद**— अपने ही पुरुषार्थ से जिनको सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थी उन दक्ष प्रजापति तुम्हारी सदा धर्म में बुद्धि बनी रहे इसका आशीर्वाद देकर वे सभी देवता स्वर्गलोक चले गये ॥५७॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वेनैवानुभावेनाप्तराधसे प्राप्तसिद्धये तस्मा अपि ॥५७॥

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि दक्ष प्रजापति को अपने पुरुषार्थ से ही सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थीं फिर भी उनको देवताओं ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी धर्म में बुद्धि बनी रहे और उसके पश्चात् वे सब स्वर्ग लोक चले गये ॥५७॥

**एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् । जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥५८॥**

**अन्वयः**— एवं दाक्षायणी सती पूर्वकलेवरम् हित्वा हिमवतः क्षेत्रे मेनायाम् जज्ञे इति शुश्रुम ॥५८॥

**अनुवाद**— इस तरह से दक्ष प्रजापति की पुत्री सती ने अपने पहले के शरीर को त्यागकर हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ से जन्म लिया इस तरह से हमने सुना है ॥५८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५८॥

**तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका । अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥५९॥**

**अन्वयः**— सुप्ता शक्तिः अनन्यभावैकगतिम् पूरुषभ इव अम्बिका भूयः अनन्य भावैकगतिं दयितं तमेव पतिम्। आवृङ्क्ते ॥५९॥

**अनुवाद**— प्रलयकाल में लीन हुई प्रकृति जिस तरह अपने एक मात्र आश्रय परमात्मा का ही पुनः आश्रय लेती है, उसी तरह श्रीअम्बिकाजी ने भी इस जन्म में अपने एक मात्र प्राप्य प्रिय पति भगवान् शिव का ही वरण किया ॥५९॥

**भावार्थ दीपिका**

आवृङ्क्ते भजते स्म । अनन्यभावानामेकैव गतिर्यस्तम् । प्रलयकाले सुप्ता शक्तिरीश्वरमिव ॥५९॥

**भाव प्रकाशिका**

आवृङ्क्ते पद का अर्थ है वरण किया । जिस तरह प्रलय काल में लीन हुई प्रकृति अपने आश्रय रूप से ईश्वर को ही अपनाती है, उसी तरह अनन्यभाव से भजन करने वालों को एकमात्र प्राप्य तथा अपने प्रियपति शङ्करजी का ही अम्बिकाजी ने भी वरण किया ॥५९॥

**एतद्भगवतः शंभोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः । श्रुतं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥६०॥**

**अन्वयः**— एततः दक्षाध्वरद्रुहः भगवतः शम्भोः कर्म मे भागवतात् बृहस्पतेः शिष्यात् उद्धवात् श्रुतम् ॥६०॥

**अनुवाद**— दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने वाले भगवान् शिव का यह कर्म मैंने भगवद् भक्त तथा बृहस्पति के शिष्य उद्धवजी के मुख से सुना है ॥६०॥

**भावार्थ दीपिका**

बृहस्पतेः शिष्यान्मया श्रुतम् ॥६०॥

**भाव प्रकाशिका**

मैत्रेयजी ने कहा कि हे विदुर ! दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने वाले भगवान् शिव के इस चरित्र को मैंने भगवद् भक्त तथा आचार्य बृहस्पति के शिष्य उद्धवजी से सुना है ॥६०॥

**इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ।**
**यो नित्यदाकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥६१॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञसंधानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

**अन्वयः**— हे कौरव ! इदं ईश चेष्टितं परमं पवित्रं यशस्यम् आयुष्यम् अघौघमर्षणम् यः नरः एतत् भक्तिभावतः नित्यदा आकर्ण्य अनुकीर्तयेत् अघं धुनोति ॥६१॥

**अनुवाद**—हे कुरुवंशीय विदुरजी ! भगवान् शिवजी का यह चरित अत्यन्त पवित्र, यश और आयु को प्रदान करने वाला तथा पापों का विनाश करने वाला है । जो नित्य ही भक्तिभाव से इसका श्रवण करके इसका कीर्तन करता है वह अपनी पापराशि का विनाश कर देता है ।।६१।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध के दक्ष यज्ञ का पुनः प्रवर्तन नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।**

भावार्थ दीपिका

परं पवित्रं य आकर्ण्य तथानुकीर्तयेत्स आत्मनः परस्याप्यघं संसारव्यसनं सर्वदा धुनोति ।।६१।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।**

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् शङ्कर का यह चरित परं पवित्र यश और आयु को बढ़ाने वाला तथा पापों का विनाश करने वाला है । जो इसका भक्ति पूर्वक श्रवण करके इसका कीर्तन करता है, वह अपने पाप समूह को विनष्ट कर देता है।।६१।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के भावार्थदीपिका नामक टीका के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका की व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७।।**

# आठवाँ अध्याय

## ध्रुव का वनगमन

मैत्रेय उवाच

**सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः । नैते गृहान्ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥१॥**

अन्वयः— सनकाद्याः नारदश्च, ऋभुः, हंसः, अरुणिः यतिश्च, एते ब्रह्मसुताः ऊर्ध्वरेतसः, गृहान् नहिअवसन् ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— सनकादि महर्षि नारद, ऋभु, हंस, अरुणि और यति ये सभी ब्रह्माजी के पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, इन लोगों ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

दक्षकन्यान्वये प्राप्ता दक्षयज्ञकथोदिता । मनुपुत्रान्वये प्राप्ता ध्रुवचर्याथ पञ्चभिः ॥१॥ अष्टमे गुरुदारोक्तिरोषमत्सरतः पुरात् । निर्गतेन ध्रुवेणाह तपसा तोषणं हरेः ॥२॥ एवं तावन्मनुकन्यान्वयोक्तयैव मरीच्यादीनां ब्रह्मपुत्राणां वंशा वर्णितास्तत्रावशिष्टं किंचिदाह-सनकाद्या इति । नावसन्नाश्रिताः ऊर्ध्वरेतसो नैष्ठिकाः । अतस्तेषां वंशो नास्ति ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

दक्ष की कन्या के वंश से संबद्ध दक्ष के यज्ञ की कथा कही गयी । इसके पश्चात् मनु के वंश में उत्पन्न ध्रुव का चरित पाँच अध्यायों में वर्णित है । आठवें अध्याय में अपनी सौतेली माँ की बातों को सुनकर सेवा तथा मत्सर के कारण अपने नगर से निकले हुए ध्रुव के द्वारा की गयी तपस्या के द्वारा श्रीहरि की प्रसन्नता का वर्णन है । इस तरह से मनु की कन्या के वंश कथन से ही मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्रों का वंश का वर्णन कर दिया गया । उसमें कुछ बची हुई बातों को **सनकाद्याः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । **नावसन्** अर्थात् उन लोगों ने नहीं स्वीकार किया । **ऊर्ध्वरेतसः** अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी अतएव उन सनकादिकों का वंश नहीं हैं ॥१॥

**मृषाऽधर्मस्य भार्यासीद्दम्भं मायां च शत्रुहन् । असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥२॥**

**अन्वयः**— अधर्मस्य भार्या मृषा आसीत् हे शत्रुहन् सा दम्भं मायां च मिथुनं असूत, तत्तु अप्रजः निऋतिः जगृहे॥२॥

**अनुवाद**— अधर्म की पत्नी मृषा थी उसने दम्भ और माया नामक दो जुड़वे बच्चों को जन्म दिया । उन दोनों को नि:सन्तान निऋति ने ले लिया ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

अधर्मोऽपि ब्रह्मपुत्रस्तस्य वंशमाह-मृषेति चतुर्भिः । दम्भः परप्रतारणम् । माया तदुचिता चेष्टा । तयोः सोदरयोरपि दाम्पत्यमधर्मांशतया । एवमुपर्यपि । अप्रजोऽपुत्रः ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

अधर्म भी ब्रह्माजी का पुत्र था उसका वर्णन चार श्लोकों में किया गया है । दूसरे को धोखा देने को दम्भ कहते है । दम्भ के अनुकूल चेष्टा को माया कहते हैं । अधर्म का अंश होने के कारण वे दोनों दम्भ और माया परस्पर में पति-पत्नी थे । इसी तरह आगे भी समझना चाहिए । अप्रजः का अर्थ है पुत्रहीन ॥२॥

**तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते । ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥३॥**

**अन्वयः**— हे महामते तयोः लोभः निकृतश्च ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च ताभ्यां कलिः स्वसा दुरुक्तिः ॥३॥

**अनुवाद**— हे महाबुद्धिमान् विदुर ! उन दोनों (दम्भ और माया) से लोभ तथा निकृति (शठता) का जन्म हुआ । उन दोनों से क्रोध और हिंसा का जन्म हुआ और उन दोनों से कलि और उसकी बहिन दुरुक्ति (गाली) का जन्म हुआ ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

निकृतिः शठता । यत् याभ्यां कलिश्च तस्य स्वसा दुरुक्तिश्चेत्यर्थः ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

निकृति शठता को कहते हैं । लोभ और निकृति से कलि और उसकी बहिन दुरुक्ति की उत्पत्ति हुई ॥३॥

**दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम । तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥४॥**

**अन्वयः**— हे सत्तम ! कलिः दुरुक्तौ भयं मृत्युं च आधत्त तयोश्च यातना तथा निरयः मिथुनं जज्ञे ॥४॥

**अनुवाद**— हे श्रेष्ठ विदुर ! कलि ने दुरुक्ति के गर्भ में भय तथा मृत्यु का आधान किया और भय तथा मृत्यु से यातना तथा निरय (नरक) नामक जुड़वे बच्चे पैदा हुए ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

यातना तीव्रवेदना ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

तीव्र वेदना का नाम यातना हैं ॥४॥

**संग्रहेण मयाख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ । त्रिः श्रुत्वैतत्पुमान्पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥५॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! मया संग्रहेण तव प्रतिसर्गः ख्यातः एतत् पुण्यं त्रिः श्रुत्वा पुमान् आत्मनो मलम् विधुनोति॥५॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप विदुर ! मैंने तुम्हे संक्षेप में प्रलय के कारण रूप अधर्म के वंश का वर्णन सुनाया। इस पवित्र आख्यान को तीन बार सुनकर मनुष्य अपने पापों का विनाश कर देता है ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रतिसर्गोऽनुसर्ग एव । यद्वा प्रतिसर्गः प्रलयः । अधर्मस्य प्रलयहेतुत्वात्प्रतिसर्गत्वम् । एतदेतमधर्मवंशम् । पुण्यमिति वर्जनद्वारा पुण्यहेतुत्वात् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

अनुसर्ग को ही यहाँ प्रतिसर्ग कहा गया है । अथवा प्रतिसर्ग का अर्थ प्रलय है । अधर्म प्रलय का कारण है, इसीलिए वह प्रतिसर्ग वाच्य है । **एतत्** शब्द का अर्थ है यह अधर्म का वंश । यह परित्याग के द्वारा पुण्य का कारण है ॥५॥

**अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह । स्वायंभुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥६॥**

**अन्वयः**— हे कुरुद्वह अथातः हरेरंशांश जन्मनः पुण्यकीर्तेः स्वायम्भुवस्यापि मनोः वंशं कीर्तये ॥६॥

**अनुवाद**— हे कुरुनन्दन ! अब मैं श्रीहरि के अंश ब्रह्माजी के अंश से उत्पन्न पवित्र यश वाले स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन करता हूँ ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

मनोः पुत्रवंशम् । हरेरंशो ब्रह्मा तस्यांशाद्देहार्धाज्जन्म यस्य ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीहरि के अंश ब्रह्माजी के देहार्ध से उत्पन्न पुण्य कीर्ति स्वायम्भुव मनु के पुत्र के वंश का वर्णन करता हूँ ॥६॥

**प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ । वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥७॥**

**अन्वयः**— शतरूपापतेः सुतौ प्रियव्रतोत्तनपादौ, वासुदेवस्य कलया जगतः रक्षायां स्थितौ ॥७॥

**अनुवाद**— शतरूपा के पति स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दोनों पुत्र भगवान वासुदेव की कला से उत्पन्न होने के कारण जगत् की रक्षा में लगे रहते थे ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

जगतो रक्षायां स्थितौ ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

जगत् की रक्षा करने में लगे रहते थे ॥७॥

**जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः । सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ॥८॥**

**अन्वयः**— उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिः जाये । तयोः सुरुचिः पत्युः प्रेयसी इतरा यत् सुतः ध्रुवः न ॥८॥

**अनुवाद**— उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थी सुनीति और सुरुचि । उन दोनों में से सुरुचि अपने पति की प्रियतमा थी और दूसरी जिसका पुत्र ध्रुव था वह प्रिय नहीं थीं ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

सुनीतिः सुरुचिश्च जाये । तयोर्मध्ये इतरा सुनीतिः ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा उत्तानपाद की सुनीति और सुरुचि दोनों पत्नियाँ थी । उन दोनों में से सुरुचि राजा को प्रिय थी और दूसरी सुनीति प्रिय नहीं थी ॥८॥

**एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् । उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाऽभ्यनन्दत ॥९॥**

**अन्वयः**— एकदा राजा सुरुचेः पुत्रम् उत्तमम् अङ्कम् आरोप्य लालयन् अरुरुक्षन्तम् ध्रुवम् न अभ्यनन्दत ॥९॥

**अनुवाद**— एक बार राजा उत्तानपाद सुरुचि के पुत्र उत्तम को अपनी गोद में बैठाकर प्यार कर रहे थे । उसी समय ध्रुव भी गोद में बैठना चाहा; किन्तु राजा ने उसका स्वागत नहीं किया ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

तयोः प्रियाप्रियत्वे प्रपञ्चयन् ध्रुवचरित्रमाह पञ्चभिरध्यायैः । सुरुचेः पुत्रमुत्तमसंज्ञं लालयन् ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

उन दोनों पत्नियों के प्रियत्व और अप्रियत्व का वर्णन करते हुए पाँच अध्यायों में ध्रुव का चरित्र वर्णित है । राजा सुरुचि के पुत्र उत्तम को गोद में बैठाकर प्यार कर रहे थे ॥९॥

**तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् । सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥१०॥**

**अन्वयः**— तथा चिकीर्षमाणम् तम् सपत्न्याः तनयं ध्रुवम् राज्ञः शृण्वतः अतिगर्वितासुरुचिः सेर्ष्यम् आह ॥१०॥

**अनुवाद**— अपने पिता की गोद में बैठने का प्रयास करने वाले अपनी सौत के पुत्र धुव्र को देखकर राजा के सामने ही अत्यधिक गर्वीली सुरुचि ने ईर्ष्या पूर्वक ध्रुव से कहा ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

तथा अङ्कारोहणं चिकीर्षमाणम् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

तथा शब्द से अपने पिता की गोद में बैठने के प्रयास को कहा गया है ॥१०॥

**न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भगवानारोढुमर्हति । न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥११॥**

**अन्वयः**— वत्स ! भवान् नृपतेः धिष्ण्यम् आरोढं नार्हति, यत् त्वं नृपात्मजः अपि मया कुक्षौ न धृतः ॥११॥

**अनुवाद**— वत्स ! तुम अपने पिता की गोद में बैठने के अधिकारी नहीं हो । यद्यपि तुम भी राजा के पुत्र हो, फिर भी तुमको मैंने अपने गर्भ में धारण नहीं किया है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

गर्वोक्तिमेवाह त्रिभिः-नेति । नृपतेर्धिष्ण्यमासनं नृपात्मजोऽपि भवान्नारोढुमर्हति ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

सुरुचि की गर्वोक्ति को ही **नेति इत्यादि** तीन श्लोकों में कहा गया है । यद्यपि तुम भी राजा के पुत्र हो फिर भी राजा के आसन पर बैठने के अधिकारी नहीं हो ॥११॥

**बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् । नूनं वेद भवान्यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥१२॥**

**अन्वयः**— बत बालोऽसि, नूनं भवान् अन्य स्त्री गर्भ संभृतम् आत्मानं न वेद । यस्य दुर्लभे अर्थे मनोरथः ॥१२॥

**अनुवाद**— अभी तुम बालक हो इसीलिए तुम यह नहीं जानते हो कि मैं दूसरी स्त्री के गर्भ से पैदा हुआ हूँ इसीलिए तुम इस प्रकार का दुर्लभ मनोरथ करते हो ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥१२॥

**तपसाराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे । गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— यदि नृपासनम् इच्छसि तदा तपसा पुरुषं आराध्य तस्यैव अनुग्रहेण मे गर्भे आत्मानं साधय ॥१३॥

**अनुवाद**— यदि तुम राजा का सिंहासन प्राप्त करना चाहते हो तो तपस्या के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करके मेरे गर्भ में आओ तब राजसिंहासन प्राप्त कर सकोगे ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

पुरुषमीश्वरम् ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

पुरुष शब्द से ईश्वर को कहा गया है ॥१३॥

मैत्रेय उवाच

**मातुः सपत्न्याः सुदुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाऽहिः ।**
**मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन्सकाशम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— मातुः सपत्न्याः दुरुक्तिविद्ध दण्डहतः अहिः यथा रुषाश्वसनमिषन्तं सन्नवाचम् पितरं हित्वा प्ररुदन् मातुः सकाशम् जगाम ॥१४॥

### मैत्रेयजी ने कहा

**अनुवाद**— अपनी माता की सौत (सौतेली माँ) के कठोर वचन को सुनकर जिस प्रकार डण्डे की चोट खाकर साँप फुफकारने लगता है, उसी तरह क्रोध के मारे ध्रुव लम्बी श्वास लेने लगा । यह सब कुछ देखने वाले तथा कुछ भी नहीं बोलने वाले अपने पिता को छोड़कर रोता हुआ अपनी माँ के पास आया ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

मिषन्तं पश्यन्तम् । सन्नवाचं कुण्ठितवाचम् ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

यह सबकुछ देखकर भी कुछ भी नहीं बोलने वाले पिता को छोड़कर ध्रुव रोता हुआ अपनी माँ के पास आया ॥१४॥

**तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं सुनीतिरुत्सङ्ग उदुह्य बालम् ।**
**निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्याः ॥१५॥**

**अन्वयः**— सुनीतिः निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठम् तं बालम् उत्सङ्गे उदुह्य, सपत्न्याः यद्गदितं तत् पौर मुखात् निशम्य सा नितान्तं विव्यथे ॥१५॥

**अनुवाद**— सुनीति लम्बी श्वासें लेने वाले तथा जिसके ओष्ठ फड़फड़ा रहे थे ऐसे उस बालक को अपनी गोद में बैठाकर तथा अपनी सौत की बातों को उस महल के लोगों से सुनकर अत्यन्त दुःखी हो गयी ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

उदुह्यारोप्य । अन्तःपुरजनमुखाच्छ्रुत्वा ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

उदुह्य पद का अर्थ है बैठाकर और अन्तःपुर के दूसरे लोगों के मुख से सुरुचि की कही हुई बातों को सुनकर सुनीति अत्यन्त दुःखी हो गयी ॥१५॥

**सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोकदावाग्निना दावलतेव बाला ।**
**वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोजश्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ।।१६।।**

**अन्वयः**— सा बाला धैर्यम् उत्सृज्य दावाग्निना दावलतेव सपत्न्याः वाक्यं स्मरती सरोजश्रिया दृशा वाष्पकलाम् उवाह विललाप ।।१६।।

**अनुवाद**— उस सुन्दरी सुनीति का धैर्य टूट गया, जिस तरह वनाग्नि से वन की लता मुरझा जाती है, उसी तरह वह शोकाग्नि के कारण मुरझा गयी अपनी सौत की बातों को स्मरण करके उसके कमल के समान सुन्दर नेत्रों में आँसू भर गये और वह विलाप करने लगी ।।१६।।

**भावार्थ दीपिका**

शोक एव दावाग्निस्तेन । दावाग्निगता लतेव स्थिता सा बाला विलापं चकार ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

शोक ही दावाग्नि के समान था । जिस तरह दावाग्नि में विद्यमान लता मुरझा जाती है, उसी तरह से सुनीति शोकाग्नि से मुरझा गयी और वह विलाप करने लगी ।।१६।।

**दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला ।**
**माऽमङ्गलं तात परेष्वमंस्था भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ।।१७।।**

**अन्वयः**— दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारम् अपश्यन्ती बाला बालकमाह तात परेषु अमङ्गलं मा मंस्थाः यत् पर दुःखदः तत् जनः भुंक्ते ।।१७।।

**अनुवाद**— उस समय सुनीति लम्बी श्वांस ले रही थी उसे उस समय दुखसागर का अन्त नहीं दिखायी देता था, इस प्रकार की वह अपने पुत्र ध्रुव से कही वत्स ! दूसरों के अमङ्गल की कामना मत करो । जो मनुष्य दूसरों को दुःख देता है उसका फल उसे स्वयं भोगना पड़ता है ।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**

वृजिनस्य दुःखस्य । अमङ्गलमपराधं परेषु मामंस्थाः । यद्यतः परेभ्यो दुःखं ददाति यः स स्वदत्तमेव दुःखं भुङ्क्ते।।१७।।

**भाव प्रकाशिका**

वृजिन शब्द दुःख का वाचक है । सुनीति ने ध्रुव से कहा— वत्स दूसरे के अमङ्गल की कामना मत करना। जो दूसरों को दुःख देता है, उसका फल उसको स्वयं भोगना पड़ता है ।।१७।।

**सत्यं सुरुच्याऽभिहितं भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृहीतः ।**
**स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ।।१८।।**

**अन्वयः**— सुरुच्या सत्यमभिहितं यद् भवान् मे दुर्भगाया उदरे गृहीतः, स्तन्येन वृद्धश्च, यां माम् इडस्पति भार्या इति वा वोढुम् विलज्जते ।।१८।।

**अनुवाद**— सुरुचि ने जो कुछ कहा है, वह ठीक ही कहा है क्योंकि तुमको अभागिनी मैंने अपने उदर में धारण किया था, और मेरे ही दूध से तुम बढ़े भी हो, जिस मुझको पत्नी क्या दासी भी स्वीकार करने में महाराज के लज्जा आती है ।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**

दुर्भगया मया उदरे गृहीतस्तस्या एव स्तन्येन वृद्धश्च । दुर्भगत्वमेवाह । यां मामिडस्पतिर्भूपतिर्भार्येति वोढुं स्वीकर्तुं विलज्जते । वाशब्दाद्दासीत्यपि ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

तुमको अभागिनी मैंने अपने उदर में धारण किया और मेरे ही दूध से तुम पले भी हो । अपने अभगिनित्व का वर्णन करती हुयी सुनीति कहती है कि मुझको तो महाराज अपनी पत्नी क्या अपनी दासी भी स्वीकार करने में लज्जा का अनुभव करते हैं । मूल के **वा** शब्द के द्वारा दासी भी अर्थ गृहीत होता है ।।१८।।

**आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्वमुक्तं समात्रापि यदव्यलीकम् ।**
**आराधयाधोक्षजपादपद्मं यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ।।१९।।**

**अन्वयः**— हे तात् विमत्सरः त्वं यत् समात्राऽपि अव्यलीकम् यथा उक्तम् तत् आतिष्ठ, यदि उत्तमः यथा अध्यासनम् इच्छसे, तदा अधोक्षजपादपद्म आराधय ।।१९।।

**अनुवाद**— हे वत्स ! तुम द्वेष भाव को छोड़कर जो तुम्हारी सौतेली माँ ने कहा है कि ईश्वर की आराधना करो तो वह ठीक कही है । तुम उसका पालन करो । यदि तुम उत्तम के समान राजसिंहासन पर बैठना चाहते हो तो, श्रीभगवान् के चरण कमलों की आराधना में लग जाओ ।।१९।।

**भावार्थ दीपिका**

पितृभार्यात्वेन मात्रा समा मातुः सपत्नी तयापि यदुक्तं 'तपसाराध्य पुरुषम्' इत्यादि तदातिष्ठ कुरु । अध्यासनं यदीच्छसि।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

तुमको अभागिनी मैंने अपने उदर में धारण किया और मेरे ही दूध से तुम पले भी हो । अपने अभागिनित्व का वर्णन करती हुई सुनीति कहती है कि मुझको तो महाराज अपनी पत्नी क्या अपनी दासी भी स्वीकार करने में लज्जा का अनुभव करते हैं । मूल के **वा** शब्द के द्वारा दासी भी अर्थ गृहीत होता है ।।१९।।

**यस्याङ्घ्रिपद्मं परिचर्य विश्वविभावनायात्तगुणाभिपत्तेः ।**
**अजोऽध्यतिष्ठत्खलु पारमेष्ठ्यं पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ।।२०।।**

**अन्वयः**— विश्वविभावनाय आत्तगुणभिपत्तेः यस्य अङ्घ्रिपद्मं परिचर्य जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् पारमेष्ठ्यं पदम् अजः खलु अध्यतिष्ठत् ।।२०।।

**अनुवाद**— संसार का पालन करने के लिए सत्त्वगुण को स्वीकार करने वाले उन श्रीहरि के चरणों की उपासना करने से ही श्रीब्रह्माजी को सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त हुआ है । जो मन और प्राण को जीतने वाले मुनियों के लिए वन्दनीय है ।।२०।।

**भावार्थ दीपिका**

परिचर्य निषेव्य । विश्वस्य विभावनाय पालनायात्ता स्वीकृता गुणाभिपत्तिः सत्त्वगुणाधिष्ठानं येन तस्य । जित आत्मा मनः श्वसनःप्राणश्च यैस्तैरभिवन्द्यम् ।।२०।।

**भाव प्रकाशिका**

परिचर्यपद का अर्थ है सेवन करके । सम्पूर्ण जगत् का पालन करने के लिए सत्त्वगुण को स्वीकार करके ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करके ही प्राण और मन को जीतने वाले मुनियों के भी लिए वन्दनीय सर्वश्रेष्ठ पद को ब्रह्माजी ने प्राप्त किया है ।।२०।।

**तथा मनुर्वो भगवान्पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ।**
**इष्ट्वाऽभिपेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ।।२१।।**

**अन्वयः**— तथा वः पितामहः भगवान् मनुः यम् एकमत्या पुरुदक्षिणैः मखैः इष्ट्वा अन्यतः दुखापम् भौमं दिव्यं सुखं अथ अपवर्ग्यम् अभिपेदे ।।२१।।

**अनुवाद**— इसीतरह तुम्हारे पितामह भगवान् स्वायम्भुव मनु भी जिन श्रीभगवान् की अनन्य भाव से बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले यज्ञों के द्वारा आराधना करके दूसरों के लिए दुर्लभ लौकिक तथा अलौकिक सुख को तथा मोक्ष को प्राप्त कर लिए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एकमत्या सर्वान्तर्यामिदृष्ट्या ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् मनु ने श्रीभगवान् की अन्तर्यामी दृष्टि से आराधना की थी ॥२१॥

**तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् ।**
**अनन्यभावे निजधमभाविते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— हे वत्स ! तमेव पूरुषम् मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् भृत्यवत्सलम् आश्रय निजधर्मभाविते अनन्यभाव मनसि अवस्थाप्य भजस्व ॥२२॥

**अनुवाद**— हे वत्स ! उन्हीं परम पुरुष को संसार चक्र से मुक्ति चाहने वाले मुमुक्षु जीव जिनके चरण कमलों के मार्ग को खोजा करते है, उन भक्त वत्सल भगवान् को ही तुम अपना आश्रय बनाओ । अपने धर्म का पालन के कारण पवित्र हुए अपने चित्त में तुम भी भगवान् को बैठा लो और अन्य सारी बातों की चिन्ता का परित्याग करके केवल उनका ही भजन करो ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

मृग्या पदाब्जयोः पद्धतिर्मार्गो यस्य तमेवाश्रय शरणं व्रज । ततो भजस्व । नान्यस्मिन्भावो यस्य तस्मिन् । निजधर्मैर्भाविते शोधिते ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरण कमलों का मार्ग मुमुक्षु पुरुषों के लिए अन्वेषणीय है अतएव उन्हीं की तुम शरणागति करो और अनन्यभाव से उन्हीं श्रीभगवान् का भजन करो । अपने धर्म का पालन करने के कारण शुद्ध बने अपने हृदय में उन श्रीभगवान् को ही स्थापित कर लो ॥२२॥

**नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन ।**
**यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग ततः पद्मपलाश लोचनात् अन्यं ते दुःखच्छिदं कंचन मृगयामि यः इतरैः मृग्यमाणया हस्तगृहीत पद्मया श्रिया मृग्यते ॥२३॥

**अनुवाद**— हे वत्स ! उन कमल दल के समान सुन्दर नेत्रो वाले श्रीभगवान् से भिन्न किसी भी दूसरे को मैं तुम्हारे दुख को दूर करने वाला नहीं समझती हूँ । जिनको प्रसन्न करने के लिए सभी देवता उनका अन्वेषण किया करते हैं वे श्रीलक्ष्मीजी भी अपने हाथ में कमल लेकर उनका ही अन्वेषण करती हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तमेवेत्यनेन सूचितं सर्वोत्तमत्वं प्रपञ्चयति-नान्यमिति । हस्तेन गृहीतं दीपवत्पद्म यया । इतरैर्ब्रह्मादिभिः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में तमेव पद के द्वारा जिनकी सर्वोत्तमता सूचित की गयी है, उसी का विस्तार इस श्लोक में किया गया है । सुनीति कहती है कि जिन लक्ष्मीजी को प्रसन्न करने के लिए सभी देवता उनका अन्वेषण

करते रहते हैं वे लक्ष्मीजी भी अपने हाथ में दीपक के समान कमल को लेकर जिन श्रीभगवान् का अन्वेषण करती हैं, वे ही श्रीभगवान् तुम्हारे दुःख को दूर करने वाले हैं, उनको छोड़कर कोई दूसरा तुम्हारे कष्ट को दूर नहीं कर सकता है ॥२३॥

मैत्रेय उवाच

**एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः । संनियम्यात्मनात्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥२४॥**

**अन्वयः**— एवं मातुः संजल्पितं अर्थागमं वचः आकर्ण्य आत्मना आत्मानं संनियम्य पितुः पुरात् निश्चक्राम ॥२४॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस प्रकार से माता के विलाप और सार्थक बातों को सुनकर ध्रुव ने अपनी बुद्धि के द्वारा चित्त को संयमित करके अपने पिता के नगर से निकल गया ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

संजल्पितं विलापम् । ततोऽर्थस्यागमो यस्मात्तथाभूतं वच आकर्ण्य ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

अपनी माता के विलाप और सार्थक बातों को सुनकर अपने पिता के नगर से निकल गया ॥२४॥

**नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् । स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ॥२५॥**

**अन्वयः**— तदुपाकर्ण्य नारदः तस्य चिकीर्षितम् ज्ञात्वा अघघ्नेन पाणिना मूर्धनिस्पृष्ट्वा विस्मितः प्राह ॥२५॥

**अनुवाद**— इन सारी बातों को सुनकर तथा ध्रुव क्या करना चाहता है ? यह जानकर वहाँ नारदजी आये। ध्रुव के शिर पर अपना पाप विनाशक हाथ फेरकर वे विस्मित होकर कहे ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥२५॥

**अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम् । बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ॥२६॥**

**अन्वयः**— अहो तेजः क्षत्रियाणाम् मान भङ्गममृष्यताम् यत् बालोऽपि अयं मातुः असद् वचः हृदा धत्ते ॥२६॥

**अनुवाद**— अहो क्षत्रियों का तेज कितना अद्भुत है वे अपने मान भङ्ग को नहीं सह सकते हैं । क्योंकि बालक होकर भी अपनी सौतेली माता की कटु वाणी इसके हृदय में घर कर गयी है ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

विस्मित इत्युक्तं तदेवाह । अहो तेजः प्रभावः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

विस्मितः जो कहा गया उसी को इस श्लोक में कहा गया है । क्षत्रियों का तेज अर्थात् प्रभाव अद्भुत है । वे अपना मान भङ्ग नहीं बर्दास्त कर सकते हैं । इसकी सौतेली माँ की कटु वाणी इसके हृदय में घर कर गयी है ॥२६॥

नारद उवाच

**नाधुनाप्यवमानं ते संमानं वापि पुत्रक । लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥२७॥**

**अन्वयः**— पुत्रक क्रीडनादिषु सक्तस्य कुमारस्य ते अधुना नापि अवमानं संमानं वापि लक्षयामः ॥२७॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— पुत्र ! क्रीडा इत्यादि में ही लगे रहने वाले तुम्हारे मैं इस समय न तो कोई अपमान देखता हूँ और न तो संमान ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२७॥

**विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः । पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥२८॥**

**अन्वयः**— विकल्पे विद्यमानेऽपि मोहम् ऋते पुंसः असंतोषहेतवः नहि लोके निजकर्मभिः भिन्नाः ॥२८॥

**अनुवाद**— यद्यपि मान और अपमान परस्पर में भिन्न नहीं है, मनुष्यों में होने वाले असन्तोष का कारण अज्ञान ही है, और कुछ नहीं । संसार में मनुष्य अपने कर्मों के ही अनुसार सुख और दुःख को भोगता है ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

विकल्पे मानापमानविवेके सत्यपि भिन्न न सन्ति किंतु मोहकल्पिता एवेत्यर्थः । कुतः । यत्सुखं दुःखं वा तन्निजकर्मभिरेव भवति यतः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

विचार करने पर मान तथा अपमान ये अलग नहीं हैं । सभी असन्तोषों का कारण अज्ञान जन्य ही है । क्योंकि संसार में जो भी सुख अथवा दुःख मिलता है, वह अपने कर्मों के कारण ही मिलता है ॥२८॥

**परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः । दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥२९॥**

**अन्वयः**— तात ! दैवोपसादितं यावद् ईश्वर गति वीक्ष्य बुधः पुरुषः ततः तावन्मात्रेण परितुष्येत् ॥२९॥

**अनुवाद**— वत्स ! परमात्मा की गति विचित्र है अतएव उस पर विचार करके बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि दैववश उसको जैसी परिस्थिति का सामना करना पड़े उसी से सन्तुष्ट रहे ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

उपशमोपदेशेन निवर्तयति-परितुष्येदिति षड्भिः । ईश्वरगतिं वीक्ष्येश्वरानुकूल्यं बिना नोद्यमाः फलहेतव इति ज्ञात्वा परितुष्येत् सन्तोषमेव कुर्यात् ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

शान्ति का उपदेश देकर नारदजी उसे छह श्लोकों से रोकते हैं । ईश्वर की गति का विचार करके इस बात को जान लेना चाहिए कि जब तक ईश्वर प्रसन्न न हों तब तक किया जाने वाला प्रयास सफल नहीं होता है । अतएव सन्तोष ही करना चाहिए ॥२९॥

**अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि । यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥३०॥**

**अन्वयः**— अथ मात्रा उपदिष्टेन योगेन यत् प्रसादं अवरुरुत्ससि सवै पुंसाम् दुराराध्य इति मम मतः ॥३०॥

**अनुवाद**— यदि अपनी माता के द्वारा उपदिष्ट योग के द्वारा जिस परमात्मा की कृपा को तुम प्राप्त करना चाहते हो वे परमात्मा मेरे विचारानुसार दुराराध्य हैं ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

दुष्करश्च तावायमुद्यम इत्याह- अथेति द्वाभ्याम् । यस्य प्रसादमवरोद्धुं प्राप्तुमिच्छसि ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

नारदजी कहते हैं कि तुम्हारा यह प्रयास अत्यन्त कठिन है । इस बात को वे दो श्लोकों से कहते हैं । जिस परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हो उनको प्रसन्न करना बड़ा ही कठिन है ॥३०॥

**मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेनोरुजन्मभिः । न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥३१॥**

**अन्वयः**— मुनयः निःसङ्गेन तीव्र योग समाधिना उरुजन्मभिः यस्य पदवीं मृगयन्तः अपि न विदुः ॥३१॥

**अनुवाद**— मुनिगण अनासक्त रहकर अपने तीव्रयोग तथा समाधि के द्वारा अनेक जन्मों तक कठोर साधनायें करके भी उन परमात्मा के मार्ग का पता नहीं लगा सके ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

निःसङ्गेन तीव्रयोगेन युक्तेन समाधिना मृगयन्तोऽपि यस्य पदवीं मार्गं न विदुः स देवो दुराराध्यः ।।३१।।

**भाव प्रकाशिका**

मुनिजन, आसक्ति का परित्याग करके अपने तीव्र योग से युक्त समाधि के द्वारा अनेक जन्मों तक कठोर साधना करके जिस परमात्मा के मार्ग का पता नहीं लगा सके वे परमात्मा दुराराध्य हैं ।।३१।।

**अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः । यतिष्यति भवान्काले श्रेयसां समुपस्थिते ।।३२।।**

**अन्वयः**— अतः निवर्तताम् एष तव निर्बन्ध निष्फलः श्रेयसां काले समुपस्थिते भवान् यतिष्यति ।।३२।।

**अनुवाद**— अतएव तुम अपने घर लौट जाओ, तुम्हारा यह हठ निष्फल है । बड़ा होने पर जब परमार्थ साधन का समय आये तो प्रयास करना ।।३२।।

**भावार्थ दीपिका**

श्रेयसां काले बृद्धत्वे ।।३२।।

**भाव प्रकाशिका**

बार्द्धक्य आने पर तुम प्रयास करना ।।३२।।

**यस्य यद्दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः । आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ।।३३।।**

**अन्वयः**— यस्य यद् दैव विहितं स देही तेन सुख दुःखयोः आत्मानं तोषयन्तमसः पारमृच्छति ।।३३।।

**अनुवाद**— विधाता के अनुसार जिस मनुष्य के जो भी सुख दुःख प्राप्त हो उसी से अपने मन को सन्तुष्ट रखे । ऐसा करने वाला शरीरधारी इस संसार सागर को पार का जाता है ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**

सुखदुःखयोर्मध्ये । सुखे सति पुण्यं क्षीयत इति दुःखे सति पापं क्षीयत इत्यात्मानं तोषयंस्तमसः पारं मोक्षं प्राप्नोति।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

सुख और दुःख दोनों में पड़ा हुआ मनुष्य यह सोचकर कि सुख होने पर पुण्य का क्षय होता है और दुःख होने पर पाप का क्षय होता है इस तरह से अपनी आत्मा को सन्तुष्ट करने वाला मनुष्य संसार को पार कर जाता है ।।३३।।

**गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् । मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ।।३४।।**

**अन्वयः**— गुणाधिकात् मुदं लिप्सेत् गुणाधमात् अनुक्रोशं समानात् मैत्रीम् अन्विच्छन् तापैः नाभिभूयते ।।३४।।

**अनुवाद**— मनुष्य को चाहिए कि वह अपने से अधिक गुण वाले को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करे कम गुण वाले को देखकर उस पर दया करे और अपने समान गुण वाले से मित्रता का भाव रखे ऐसा करने वाले मनुष्य को दुःख कभी भी अभिभूत नहीं कर पाते हैं ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

किंच गुणैरधिकात्पुंस इति ल्यब्लोपे पञ्चमी । तं दृष्ट्वा प्रीतिं कुर्यात्, न त्वसूयामित्यर्थः । अनुक्रोशं कृपां लिप्सेत्, नतु तिरस्कारम् । समानान्मैत्रीं नतु स्पर्धाम् ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने से अधिक गुण वाले को देखकर प्रेम करे असूया न करे । गुणाधिकात्

में ल्यप् का लोप होने के कारण पञ्चमी विभक्ति हुई है। कम गुण वाले को देखकर उस पर दया करे और समान गुण वाले से मित्रता का भाव रखे उससे स्पर्धा न करे। ऐसा करने वाला कभी दुःखी नहीं होता है ॥३४॥

ध्रुव उवाच

**सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम्। दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥३५॥**

**अन्वयः**— भगवता सोऽयं शमः सुखदुःखहतात्मनाम् पुंसां कृपया प्रदर्शितः यः अस्मद्विधैः तु दुर्दर्शः ॥३५॥

**ध्रुवजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे भगवन्! जिन लोगों का चित्त सुख और दुःख में चञ्चल हो जाता है, उन लोगों के लिए आपने यह शान्ति का अच्छा उपाय बतलाया है किन्तु हम जैसे अज्ञानियो की दृष्टि वहाँ तक नहीं पहुँच पाती हैं ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥३५॥

**अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्रं घोरमुपेयुषः। सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥३६॥**

**अन्वयः**— अथापि घोरं क्षात्रं उपेयुषः अविनीतस्य मे सुरुच्या दुर्वचो बाणैः भिन्ने हृदि न श्रायते ॥३६॥

**अनुवाद**— फिर भी मुझको भयंकर क्षत्रिय का स्वभाव प्राप्त हुआ है, अतएवं मैं अविनीत हूँ सुरुचि की वाणी रूपी बाण से विदीर्ण मेरे हृदय में आपका यह उपदेश नहीं ठहर पा रहा है ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

क्षात्रं स्वभावं प्राप्तवतोऽत एवाविनीतस्य दुर्वाक्यबाणैर्भिन्ने हृदि न श्रयते न तिष्ठति ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

मुझे भयङ्कर क्षत्रिय का स्वभाव प्राप्त है, अतएव मैं अविनीत हूँ। सुरुचि के दुर्वाक्य रूपी बाण से विदीर्ण मेरे हृदय में आपका उपदेश मेरे हृदय में नहीं टिक पाता है ॥३६॥

**पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषोः साधु वर्त्म मे। ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥३७॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन्! त्रिभुवनोत्कृष्टं अस्मत् अनन्यैः पितृभिः अप्यनधिष्ठितम् पदं जिगीषोः मे साधु वर्त्म ब्रूहि॥३७॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन्! त्रैलोक्य में सर्वोत्कृष्ट जो हमारे पितृ पितामहों को भी नहीं प्राप्त हुआ हो ऐसे पद को मैं प्राप्त करना चाहता हूँ, उसके ही लिए आप कोई अच्छा मार्ग आप बतलायें ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्यैरनधिष्ठितं त्रिभुवने उत्कृष्टं पदं जेतुमिच्छोर्मे साधु वर्त्म मार्गं ब्रूहि ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसको किसी भी दूसरे व्यक्ति ने नहीं प्राप्त किया हो और जो त्रैलोक्य में सबसे श्रेष्ठ हो उस पद को मैं प्राप्त करना चाहता हूँ, उसी के लिए कोई अच्छा मार्ग आप बतलाएँ ॥३७॥

**नूनं भवान्भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः। वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥३८॥**

**अन्वयः**— यो भवान् भगवतः परमेष्ठिनः अङ्गजः नूनं जगतः हितार्थं वीणां वितुदन् अर्कवत् अटते ॥३८॥

**अनुवाद**— आप तो भगवान् ब्रह्माजी के पुत्र हैं निश्चित रूप से आप जगत् का कल्याण करने के लिए अपनी वीणा को बजाते हुए सूर्य के समान भ्रमण करते रहते हैं ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

अङ्कज इति पाठे उत्सङ्गाज्जातो यो नारदः स भवान् । तत्र लिङ्गम् वीणां वितुदन्वादयन् हितायाटति ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

जहाँ अङ्गज के स्थान पर अङ्कजः पाठ है वहाँ भी ब्रह्माजी की गोद से उत्पन्न आप नारद है यही अर्थ होगा। उसमें प्रमाण यही है कि आप वीणा को बजाते हुए जगत् का कल्याण करने के लिए भ्रमण किया करते हैं ॥३८॥

मैत्रेय उवाच

**इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तदा । प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकम्पया ॥३९॥**

**अन्वयः**— इति उदाहृतम् आकर्ण्य भगवान् नारदः प्रीतः तं बालं प्रति अनुकम्पया सद्वाक्यमाह ॥३९॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— ध्रुव की इस बात को सुनकर भगवान् नारदजी प्रसन्न हो गये और उस बालक पर कृपा करके उसे सदुपदेश दिए ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥३९॥

नारद उवाच

**जनन्याऽभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते । भगवान्वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥४०॥**

**अन्वयः**— जनन्या अभिहितः वै ते निःश्रेयसस्य पन्थाः, सः भगवान् वासुदेवः तं तत्प्रवणात्मना भज ॥४०॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— तुम्हारी माँ ने जो कहा है वही तुम्हारे परम कल्याण का मार्ग है । भगवान् वासुदेव ही वह उपाय हैं अतएव तुम अपना मन लगाकर उनका भजन करो ॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

निःश्रेयसस्याभिप्रेतार्थस्य पन्थाः । कोऽसावित्यत आह । भगवान्वासुदेवोऽत एव तं भज ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

तुम्हारी माँ ने जो कुछ कहा है, वही तुम्हारा अभिप्रेत मार्ग है । वह कौन है ? तो इसका उत्तर है कि वे भगवान् वासुदेव हैं । अतएव तुम उनका ही भजन करो ॥४०॥

**धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः । एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥४१॥**

**अन्वयः**— यः धर्मार्थकाममोक्षाख्यं आत्मनः श्रेयः इच्छेत् तत्र एकम् हरेः पादसेवनम् एव कारणम् ॥४१॥

**अनुवाद**— जो धर्म, अर्थ काम और मोक्ष नामक आत्मकल्याण प्राप्त करना चाहे तो उसका एक मात्र साधन श्रीहरि के चरणों की सेवा ही है ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥४१॥

**तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि । पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥४२॥**

**अन्वयः**— हे तात ! ते भद्रं, यमुनायाः शुचितटं गच्छ यत्र हरेः नित्यदाः सानिध्यम् ॥४२॥

**अनुवाद**— हे वत्स ! तुम्हारा कल्याण होगा । यमुना नदी के उस पवित्र तट पर तुम मधुवन में चले जाओ, वहाँ श्रीहरि का नित्य ही निवास होता है ॥४२॥

**भावार्थ दीपिका**

मधुवनाख्यं यमुनायास्तटं गच्छ । यत्र मधुवने ।।४२।।

**भाव प्रकाशिका**

नारदजी ने कहा कि तुम मधुवन नामक यमुना के तट पर चले जाओ जहाँ श्रीहरि का नित्य ही निवास होता है ।।४२।।

**स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्कालिन्द्याः सलिले शिवे ।**
**कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ।।४३।।**

**प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलम् । शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुम् ।।४४।।**

**अन्वयः**— कालिन्द्याः तस्मिन् शिवे सलिले अनुसवनं स्नात्वा उचितानि कृत्वा निवसन् आत्मनः कल्पितासनः त्रिवृता प्राणायामेन प्राणेन्द्रियमनोमलम् शनैः व्युदस्य मनसा गुरूणां गुरुम् अभिध्यायेत् ।।४३-४४।।

**अनुवाद**— श्रीयमुनाजी के उस पवित्र जल में तीनों कालों (प्रातः मध्याह्न और सायं) में स्नान करके, नित्य कर्मों को करके अपना आसन बिछाकर बैठे, फिर पूरक, कुम्भक और रेचक तीन प्रकार के प्राणायाम के द्वारा धीरे-धीरे प्राण, मन और इन्द्रियों के दोषों को दूर करके धैर्य पूर्वक मन से परमगुरु श्रीभगवान् का ध्यान करे ।।४३-४४।।

**भावार्थ दीपिका**

अध्ययनाद्यभावेऽप्यात्मन उचितानि योग्यानि देवतानमस्कारादीनि कृत्वेति यमनियमा उक्ताः । आसनकल्पनं च कुशादिभिः स्वस्तिकादिभिश्च । प्राणेन्द्रियमनसां मलं चाञ्चल्यं व्युदस्येति प्राणायामप्रत्याहारौ । धारणामाह अभिध्यायेदित्यादिषड्भिः । गुरुणा धीरेण मनसा । गुरुं श्रीहरिम् ।।४३-४४।।

**भाव प्रकाशिका**

अध्ययन इत्यादि नहीं करने पर भी अपने लिए उचित देवता को नमस्कार आदि कर्मों को करके यम तथा नियमों को बतलाया जा चुका है । उसके पश्चात् कुश आदि का आसन बिछाकर उस पर स्वस्ति आदि आसनों से बैठना चाहिए । उसके पश्चात प्राण, इन्द्रिय और मन के मलों को दूर करके प्राणायाम और प्रत्याहार को कहा गया है । धारणा को **अभिध्यायेत् इत्यादि** छह श्लोकों से कहा गया है । धैर्य सम्पन्न मन से परम गुरु श्रीहरि का ध्यान करो ।।४३-४४।।

**प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् । सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ।।४५।।**
**तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम् । प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ।।४६।।**
**श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् । शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ।।४७।।**
**किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् । कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ।।४८।।**
**काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् । दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ।।४९।।**
**पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम्। हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ।।५०।।**

**अन्वयः**— प्रसादाभिमुखं, शश्वत् प्रसन्न वदनेक्षणम् सुनासं, सुभ्रुवं, चारुकपोलम् सुन्दरम्, तरुणं रमणीयाङ्गम्, अरुणोष्ठेक्षणाधरम् प्रणताश्रयणं नृम्णं, शरण्यं करुणार्णवम्, श्रीवत्साङ्कम्, धनश्यामं पुरुषं, वनमालिनम्, शङ्खचक्रगदापद्मैः अभिव्यक्तचतुर्भुजम् किरीटिनं कुण्डलिनं, केयूर वलयान्वितम्, कौस्तुभाभरणग्रीवम् पीतकौशेय वाससम्, काञ्चीकलापपर्यस्तम्, लसत्काञ्चननूपुरम्, दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम्, नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां पद्भ्यां हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यम् आक्रम्य आत्मनि अवस्थितम् समर्चताम् ।।४५-५०।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के नेत्र और मुख सदा प्रसन्न रहते हैं, लगता है कि वे अपने भक्तों को वरदान देने के लिए उद्यत हैं। उनकी नासिका, भौहें और कपल अत्यन्त सुन्दर है, वे सभी देवताओं में सुन्दर हैं, उनकी तरुणावस्था है, उनके सभी अङ्ग अत्यन्त मनोहर हैं, उनके ओष्ठ और अरुण वर्ण के हैं। अपने शरणागत जीवों को आश्रय प्रदान करने वाले हैं, अपार सुखप्रद, सबों के रक्षक, शरणागत वत्सल, और दया के सागर है। उनके वक्ष: स्थल में श्रीवत्सचिह्न विद्यमान है, उनका श्रीविग्रह जलभरे मेघ के समान श्याम वर्ण का है। वे परम पुरुष वनमाला धारण किए हुए हैं। उनकी चारो भुजाओं में शङ्ख,चक्र, गदा, और पद्म सुशोभित होते हैं, वे किरीट, कुण्डल, केयूर (अङ्गद) और कङ्गन धारण किए हुए है। उनके गले में कौस्तुभमणि लटक रही है। वे पीला रेशमी वस्त्र (पीताम्बर) धारण किए हैं। उनके कमर में सुवर्ण की करधनी और पैरों में सुवर्णमय नूपुर सुशोभित हो रहे हैं। उनका स्वरूप देखने में अत्यन्त मनोहर है। वह शान्त, मन तथा नेत्रों को आनन्दित करने वाला है। ऐसे श्रीभगवान् की जो मानसिक पूजा करते हैं उनके हृदय कमल की कर्णिका पर वे अपने नखमणि से मण्डित मनोहर चरणाविन्द को स्थापित करके विराजते हैं ।।४५-५०।।

### भावार्थ दीपिका

सुरेषु सुन्दरम्। रमणीयान्यङ्गानि यस्य। ओष्ठश्च ईक्षणा ईक्षणं च ओष्ठेक्षणे अरुणे ओष्ठेक्षणे धारयतीति तथा तम्। अरुणमोष्ठमीक्षणं च धारयतीति वा। नृम्णं सुखकरम्। यद्वा नृम्णं धनम्, सर्वपुरुषार्थनिधिमित्यर्थः। पुरुषं पुरुषलक्षणयुक्तम्। कौस्तुभस्याभरणं ग्रीवा यस्य। काञ्चीकलापेन पर्यस्तं परिवेष्टितम्। मनोनयनयोर्वर्धनं हर्षकरम्। हृत्पद्मकर्णिकाया धिष्ण्यं मध्यस्थानं तदाक्रम्य समर्चतामात्मनि मनसि स्थितम् ।।४५-५०।।

### भाव प्रकाशिका

**सुरसुन्दरम्** पद का अर्थ है सभी देवताओं में सुन्दर। रमणीयाङ्गम् का विग्रह है। **रमणीयानि अङ्गानि यस्य** अर्थात् सर्वाङ्ग सुन्दर **अरुणोष्ठेक्षणाधरम्** अर्थात् उनके ओष्ठ, और नेत्र लाल वर्ण के हैं। ओण्ठेक्षणाधरम् का विग्रह है— **ओण्ठश्च, ईक्षणं च ओष्ठेक्षणे अरूणे। ओष्ठे क्षणे धारयतीति आरुणैष्ठेक्षणधरः तम्। नृम्णम् सुखप्रदा**। अथवा सभी पुरुषार्थों के आकर। **पुरुषम्** परम पुरुष के लक्षण से युक्त। उनके गले में कौस्तुभमणि लटक रही है। उनका कमर सुवर्ण निर्मित करधनी से वेष्टित है।मनोनयन वर्धनम् अर्थात् हर्षपद। मानसिक पूजा करने वालों के हृदय कमल की कर्णिका के बीच में विराजमान रहते हैं श्रीभगवान् ।।४५-५०।।

**स्मयमानमभिध्यायेत्सानुरागावलोकनम्। नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ।।५१।।**

**अन्वयः**— नियतेन एकभूतेन मनसा वरदर्षभम् स्यममानम् सानुरागावलोकनम् अभिध्यायेत् ।।५१।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् एकाग्र हुए मन से वरदान देने वालों में अग्रगण्य श्रीभगवान् का ध्यान करे कि वे हमारी ओर मुस्कुराते हुए प्रेम पूर्वक देख रहे हैं ।।५१।।

### भावार्थ दीपिका

ध्यानमाह स्मयमानमिति। नियतेन प्रागुक्तया धारणया सुस्थिरेणात एवैकभूतेनैकाग्रेण। धारणोक्तानि। विशेषणानि ध्यानेऽपि द्रष्टव्यानि। यद्वा यथोक्त मात्रमेव। तदुक्तमेकादशस्कन्धे नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्' इति ।।५१।।

### भाव प्रकाशिका

**स्मयमानम्० इत्यादि** श्लोक से नारदजी ध्यान का वर्णन करते हैं। पूर्वक्त धारण के द्वारा मन के अच्छी तरह से स्थिर हो जाने पर एकाग्रमन से ध्यान करे कि वरदान देने वालों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् मुस्कुराते हुए प्रेम पूर्वक हमारी ओर देख रहे हैं। धारणा में बतलाई गयी सभी विशेषताओं का ध्यान में भी चिन्तन करना चाहिए। अथवा श्लोक में जैसा बतलाया गया है उसी प्रकार का ध्यान करें। ग्यारहवें स्कन्ध में कहा भी गया है।

**नान्यानि० इत्यादि** ध्यान में सुन्दर मुस्कान से युक्त श्रीभगवान् के मुख का ध्यान करें। उसके अतिरिक्त दूसरी बातों का ध्यान न करे ॥५१॥

**एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः । निवृत्त्या परया तूर्णं संपन्नं न निवर्तते ॥५२॥**

**अन्वयः**— एवं भगवतः सुभद्रं रूपं ध्यायतः परया निवृत्या तूर्णं सम्पन्नं मनः न निवर्तते ॥५२॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् का इस प्रकार से मङ्गलमय रूप का ध्यान करने से आनन्दमग्न मन उसी से तल्लीन हो जाता है और फिर उससे नहीं लौटता है ॥५२॥

**भावार्थ दीपिका**

समाधिमाह-एवमिति । तूर्णं शीघ्रं संपन्नं सत् ॥५२॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में समाधि का वर्णन किया गया है। नारदजी ने बतलाया कि इसप्रकार से भगवान् के मङ्गलमय रूप का ध्यान करने से मन शीघ्र ही आनन्द मग्न होकर लीन हो जाता है और फिर वह नहीं लौटता है ॥५२॥

**जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज । यं सप्तरात्रं प्रपठन्पुमान्पश्यति खेचरान् ॥५३॥**

**अन्वयः**— हे नृपात्मज ! परमो गुह्यः जप्यश्च मे श्रूयताम् । यं सप्तरात्रं प्रपठन् पुमान् खेचरान् पश्यति ॥५३॥

**अनुवाद**— हे राजकुमार ! अत्यन्त रहस्य मय मन्त्र मैं तुमको बतलाता हूँ। उसका सात रात तक जप करने वाला मनुष्य आकाश में विचरण करने वाले सिद्धों को देखने लगता है ॥५३॥

**भावार्थ दीपिका**

जप्यः मन्त्रः ॥५३॥

**भाव प्रकाशिका**

जप्य शब्द से मन्त्र को कहा गया है ॥५३॥

**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।**

**मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद्द्रव्यमयीं बुधः । सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥५४॥**

**अन्वयः**— अनेन मन्त्रेण देश काल विभागवित् बुधः विविधै द्रव्यैः देवस्य द्रव्यभयीं सपर्यां कुर्यात् ॥५४॥

**अनुवाद**— वह मन्त्र हैं— **ओम् नमो भगवते वासुदेवाय** । देश और काल के विभाग को जानने वाले विद्वान् को इस मन्त्र के द्वारा अनेक प्रकार के द्रव्यों से श्रीभगवान् की द्रव्यमयी आराधना करनी चाहिए ॥५४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५४॥

**सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः । शस्ताङ्कुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुम् ॥५५॥**

**अन्वयः**— शुचिभिः सलिलैः माल्यैः, वन्यैः मूल फलदिभिः शस्ताङ्कुरांशुकैः प्रियया तुलस्या च प्रभुम् अर्चयेत्॥५५॥

**अनुवाद**— शुद्ध जल पुष्प माला वन में उत्पन्न होने वाले मूल फल तथापूजा मे विहित दुर्वाङ्कुर आदि वन में प्राप्त होने वाले वल्कल वस्त्र उनकी प्रेयसी तुलसी से श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥५५॥

**भावार्थ दीपिका**

द्रव्याण्येवाह-सलिलैरिति । शस्तैर्दूर्वाङ्कुरैर्वन्यैरेवांशुकैर्भूर्जत्वगादिभिः ॥५५॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रेष्ठ दुर्वाङ्करों वन के भोजपत्रों से श्रीभगवान् की पूजा करे ॥५५॥

**लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषु वाऽर्चयेत् ।**
**आभृतात्मा मुनिः शान्तो यतवाङ्मितवन्यभुक् ॥५६॥**

**अन्वयः**— द्रव्यमयीम् अर्चां वा क्षित्यम्ब्वादि अर्चयेत् आभृतात्मा, मुनि शान्तः यत् वाक् मितवन्यभुक् ॥५६॥

**अनुवाद**— यदि शिला आदि की मूर्ति मिल जाय तो उसमें अथवा पृथिवी या जल आदि में परमात्मा की पूजा करे । उसको सदा संयतचित, मननशील, शान्त और मौन रहना चाहिए और जङ्गली फल मूल का परिमित आहार करना चाहिए ॥५६॥

### भावार्थ दीपिका

पूजाया अधिष्ठानमाह । लब्ध्वा संपाद्य । द्रव्यमयीं शिलादिनिर्मिताम् । अर्चां गतिंमाम् । पूजासाद्गुण्यहेतूनाह सार्धाभ्याम्। आभृतात्मा धृतचित्तः । मितं वन्यं भुङ्क्तं इति तथा ॥५६॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में पूजा के अधिष्ठान को बतलाया गया है । शिला आदि से निर्मित प्रतिमा प्राप्त हो जाय तो उसमें पूजा करे या पृथिवी अथवा जल में परमात्मा की पूजा करे । पूजा के साद्गुण्य के कारणों को डेढ श्लोक में बतलाया गया है । उस उपासक को संयतचित्त, मननशील, शान्त और मौन रहना चाहिए । वह वनैले मूल फलों का सीमित मात्रा में अहार करे ॥५६॥

**स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया । करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयंगमम् ॥५७॥**

**अन्वयः**— अचिन्त्य निजमायया स्वेच्छावतार चरितैः उत्तमश्लोकः करिष्यति तत् हृदयंगमम् ध्यायेत् ॥५७॥

**अनुवाद**— परमात्मा अपनी अनिर्वचनीय माया के द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार अवतार ग्रहण करके जिन चरित्रों को करने वाले हैं उन सबों का अपने हृदय में ध्यान करना चाहिए ॥५७॥

### भावार्थ दीपिका

यत्करिष्यतीति तदानीमवतारप्राचुर्याभावात् ॥५७॥

### भाव प्रकाशिका

यत् करिष्यति यह जो भविष्यत्निर्देश है वह उस समय अवतार की प्रचुरता के अभाव के कारण किया गया हैं ॥५७॥

**परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः । ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुञ्ज्यान्मन्त्रमूर्तये ॥५८॥**

**अन्वयः**— भगवतः पूर्व सेविताः यावत्यः परिचर्या ता मन्त्रहृदये नैव मन्त्रमूर्तये प्रयुञ्ज्यात् ॥५८॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की पूजा के लिए जितने उपचारों का विधान किया गया है उन सबों को मन्त्रमूर्ति श्रीहरि को द्वादशाक्षर मन्त्र से ही अर्पित करें ॥५८॥

### भावार्थ दीपिका

पूर्वसेविताः सेवनं कारिताः कार्यत्वेन विहिता इत्यर्थः । मन्त्रहृदयेन द्वादशाक्षरेण ॥५८॥

### भाव प्रकाशिका

जिनका पहले सेवन किया जा चुका है । उन उपचारों को मन्त्रमूर्ति श्रीभगवान् को द्वादशाक्षर मन्त्र से ही समर्पित करें ॥५८॥

**एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतम् । परिचर्यमाणो भगवान्भक्तिमत्परिचर्यया ॥५९॥**
**पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः । श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम् ॥६०॥**

**अन्वयः**— एवं मनोगतम् कायेन, मनसा वचसा च परिचर्यमाणः भगवान् भक्तिमत् परिचर्यया सम्यग् भजताम् अमायिनाम् देहिनाम् धर्मादिषु भाववर्धनः अमिमतं श्रेयः दिशति ॥५९-६०॥

**अनुवाद**— इस प्रकार जब हृदय में स्थित श्रीहरि का मन, वाणी और शरीर से भक्ति पूर्वक पूजन किया जाता है तब वे निश्चल भाव से अच्छी तरह पूजन करने वाले अपने भक्तों के भाव को धर्म आदि में बढ़ा देते हैं, और उन सबों को उनकी इच्छा के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ को प्रदान करते हैं ॥५९-६०॥

**भावार्थ दीपिका**

एवमुक्तरीत्या मनोगतं यथा भवति तथा कायादिभिर्भक्तिमत्या परिचर्यया परिचर्यमाणो धर्मार्थकामेषु यदभिमतं तच्छ्रेयो दिशतीति द्वयोरन्वयः ॥५९-६०॥

**भाव प्रकाशिका**

हृदय स्थित परमात्मा का उपासक द्वारा शरीर आदि से भक्ति पूर्वक उपासना किए जाने पर धर्म अर्थ काम एवं मोक्ष उनमें से जो अभिप्रेत होता है उसे भगवान् प्रदान कर देते हैं ॥५९-६०॥

**विरक्तश्चेन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा । तं निरन्तरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥६१॥**

**अन्वयः**— इन्द्रियरतौ विरक्तश्च भूयसा भक्ति योगेन तं विमुक्तये निरन्तर भावेन भजेत अद्धा ॥६१॥

**अनुवाद**— यदि उपासक को ऐन्द्रियिक भोगों से वैराग्य हो गया हो तो वह निरन्तर निरन्तराय मुक्ति की प्राप्ति के लिए भगवान् का भक्ति पूर्वक भजन करें ॥६१॥

**भावार्थ दीपिका**

विरक्तः सम्भजेत् । किमर्थम् । मुक्तये ॥६१॥

**भाव प्रकाशिका**

विरक्त पुरुष को मुक्ति प्राप्ति के लिए भगवान् का भजन करना चाहिए ॥६१॥

**इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः । ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥६२॥**

**अन्वयः**— इत्युक्तः नृपार्भकः तं परिक्रम्य प्रणम्य च हरेश्चरर्णचर्चितम् पुण्यं मधुवनं ययौ ॥६२॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से नारदजी के द्वारा कहे जाने के पश्चात् राजकुमार ध्रुव ने उनकी परिक्रमा करके उनको प्रणाम किया और श्रीहरि के चरण चिह्नों से अङ्कित पवित्र मधुवन के लिए चल दिये ॥६२॥

**भावार्थ दीपिका**

हरेश्चरणाभ्यां चर्चितं मण्डितम् ॥६२॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीहरि के चरण चिह्नों से अलंकृत मधुवन में ध्रुव चले गये ॥६२॥

**तपोवनं गते तस्मिन्प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः । अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥६३॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् तपोवनं गते मुनिः अन्तःपुरं प्रविष्टः राज्ञा अर्हितार्हणकः सुखासीनः तम् उवाच ॥६३॥

**अनुवाद**— ध्रुव के तपोवन में चले जाने पर नारदजी राजा के महल में गये और राजा के द्वारा पूजित होने के पश्चात् सुख पूर्वक बैठे हुए राजा से कहे ॥६३॥

**भावार्थ दीपिका**

अर्हितं सत्कृत्य समर्पितमर्हणमर्घ्यादिकं यस्मै ।।६३।।

**भाव प्रकाशिका**

**अर्हितार्हणकः** का अर्थ है कि जिन नारदजी का सत्कार करके उनको अर्घ आदि राजा ने समर्पित कर दिया था ऐसे नारदजी ।।६३।।

नारद उवाच

**राजन्किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता । किंवा न रिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः ।।६४।।**

**अन्वयः**— राजन् परिशुष्यता मुखेन दीर्घं किं ध्यायसे ? धर्मः कामः अर्थेन वा संयुतः रिष्यते ।।६४।।

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् आपका मुख सुखा हुआ है देर से आप क्या सोच रहे हैं ? आपके धर्म, अर्थ और काम में से किसी में कोई कमी तो नहीं आ गयी है ?।।६४।।

**भावार्थ दीपिका**

किं वा न रिष्यते न नश्यतीति सवितर्कः प्रश्नः ।।६४।।

**भाव प्रकाशिका**

धर्म, अर्थ और काम से आपके किसी में कोई विनष्ट तो नहीं हो गया हैं ?।।६४।।

राजोवाच

**सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेनाकरुणात्मना । निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान्कविः ।।६५।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! स्त्रैणेन अकरुणात्मना में महान् कविः पञ्चवर्ष बालकः मे सुतः मात्रा सह निर्वसितः ।।६५।।

**राजा ने कहा**

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! मैं स्त्री परायण और निर्दय हूँ । मैने अपने पाँच वर्ष के अत्यन्त बुद्धिमान बालक पुत्र को उसकी माता के साथ निकाल दिया है ।।६५।।

**भावार्थ दीपिका**

मात्रा सह निर्वासित इति तस्या अप्यनादृतत्वात् ।।६५।।

**भाव प्रकाशिका**

राजा के मात्रा सहनिर्वासितः कहने का अर्थ है कि मैंने उसका भी अनादर किया है ।।६५।।

**अप्यनाथं वने ब्रह्मन् मास्मादन्त्यर्भकं वृकाः । श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लानमुखाम्बुजम् ।।६६।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! क्षुधितं परिम्लानमुखम्बुजं, श्रान्तं शयानं अनाथं अर्भकं वृकाः मास्म अदन्ति ।।६६।।

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! भूखे, जिसका मुख कुम्हला गया होगा ऐसे थककर सोये हुए तथा अनाथ उस बालक को वन में भेंड़िये कही खा न जायँ ।।६६।।

**भावार्थ दीपिका**

मा स्मादन्ति किंस्विन्न खादन्तीत्यर्थः ।।६६।।

**भाव प्रकाशिका**

कहीं खा न जायँ ।।६६।।

**अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय । योऽङ्कं प्रेम्णारुरुक्षन्तं नाभ्यनन्दमसत्तमः ॥६७॥**

**अन्वयः**— अहो स्त्रीजितस्य मे दौरात्म्यं उपधारय यः प्रेम्णा अङ्कम् आरुरुक्षन्तं असत्तमः नाभ्यनन्दम् ॥६७॥

**अनुवाद**— अहो ! मैं स्त्री के वश में रहने वाला हूँ । मेरी दुष्टता तो देखो । जो मैंने प्रेमवश मेरी गोद में चढ़ने की इच्छा वाले उसका मैंने स्वागत नहीं किया ॥६७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥६७॥

नारद उवाच

**मा माशुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशांपते । तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यद्यशो जगत् ॥६८॥**

**अन्वयः**— विशाम्पते ! देवगुप्तं स्वतनयं तत् प्रभावम् अविज्ञाय मा मा शुचः तद्यशः जगत् प्रावृङ्क्ते ॥६८॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन, परमात्मा के द्वारा रक्षित उस बालक की चिन्ता न करें, क्योंकि आप उसके प्रभाव को नहीं जानते हैं । उसका यश सम्पूर्ण जगत् में फैल रहा है ॥६८॥

**भावार्थ दीपिका**

देवेन श्रीहरिणा गुप्तमात्मसात्कृत्वा रक्षितम् । यस्य यशो जगत्प्रावृङ्क्ते व्याप्नोति ॥६८॥

**भाव प्रकाशिका**

उसको श्रीहरि ने आत्मसात् करके रक्षा की है, उसका यश जगत् में व्याप्त हो रहा है ॥६८॥

**सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः । एष्यत्य चिरतो राजन्यशो विपुलयंस्तव ॥६९॥**

**अन्वयः**— राजन् प्रभुः लोकपालैः अपि सुदुष्करं कर्म कृत्वा अचिरतः तव यशः विपुलयन् अचिरतः एष्यति ॥६९॥

**अनुवाद**— राजन् वह बालक अत्यन्त समर्थ है । जिस कार्य को लोकपाल गण नहीं कर सके ऐसे कार्य को करके वह आपके यश को बढ़ाते हुए शीघ्र ही आयेगा ॥६९॥

**भावार्थ दीपिका**

विपुलयन्विस्तारयन् ॥६९॥

**भाव प्रकाशिका**

विपुलयन् का अर्थ बढ़ाते हुए है । अर्थात् वह बालक आपके यश को बढायेगा ॥६९॥

मैत्रेय उवाच

**इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः । राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ॥७०॥**

**अन्वयः**— जगती पतिः एवं देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य राजलक्ष्मीम् अनादृत्य पुत्रम् एव अन्वचिन्तयत् ॥७०॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— राजा देवर्षि नारदजी के द्वारा कही गयी इस बात को सुनकर अपनी राज्य लक्ष्मी की ओर से उदासीन हो गये और सदैव अपने पुत्र के ही विषय मे सोचने लगे ॥७०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥७०॥

**तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् । समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥७१॥**

**अन्वयः**— तत्र अभिषिक्तः प्रयतः ताम् विभावरीम् उपोष्य समाहितः पूरुषम् ऋष्यादेशेन पर्यचरत् ॥७१॥

**अनुवाद**— ध्रुवजी मधुवन में जाकर यमुनाजी में स्नान किए और उस रात को पवित्रता पूर्वक उपवास करके श्रीनारदजी के उपदेश के अनुसार एकाग्रचित्त होकर परम पुरुष भगवान् नारायण की पूजा प्रारम्भ कर दिए ॥७१॥

**भावार्थ दीपिका**

ध्रुवो मधुवने किमकरोदित्यपेक्षायामाह तत्रेत्यादिना । अभिषिक्तः स्नातः । यस्यां प्राप्तस्ताम् ॥७१॥

**भाव प्रकाशिका**

ध्रुवजी मधुवन में पहुँचकर क्या किए इस प्रकार की अपेक्षा होने पर मैत्रेयजी ने कहा— वहाँ जाकर ध्रुवजी यमुना में स्नान किये और उस रात को पवित्रता पूर्वक उपवास किए । इसके बाद वे एकाग्रमना होकर श्रीनारदजी के द्वारा उपदिष्ट प्रकार से वे भगवान् नारायण की पूजा करना प्रारम्भ कर दिए ॥७१॥

**त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः । आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ॥७२॥**

**अन्वयः**— त्रिरात्रान्ते त्रिरत्रान्ते, आत्मवृत्यनुसारेण कपित्थबदराशनः हरिम् अर्चयन् मासं निन्ये ॥७२॥

**अनुवाद**— वे तीन-तीन रात्रि के अनन्तर शरीर निर्वाह के लिए कैंथ और बैर के फल को खाकर श्रीहरि की अर्चना करते हुए एक महीना व्यतीत किये ॥७२॥

**भावार्थ दीपिका**

कपित्थानि बदराणि चाशनं यस्य । आत्मवृत्तिर्देहस्थितिस्तदनुसारेण ॥७२॥

**भाव प्रकाशिका**

पहले महीने में शरीर का निर्वाह करने के लिए वे तीन-तीन रात के अन्तराल पर कैंथ और बैर के फल को खा लेते थे ॥७२॥

**द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने । तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥७३॥**

**अन्वयः**— तथा द्वितीयं मासं षष्ठे-षष्ठे दिने अर्भकः शीणैः तृण पर्णदिभिः कृतान्नः विभुम् अभ्यर्चयत् ॥७३॥

**अनुवाद**— उसी तरह दूसरे महीने में छह-छह दिन के अन्तराल पर सूखे तृण और पत्तों को खाकर श्रीहरि की अर्चना करते थे ॥७३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥७३॥

**तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि । अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ॥७४॥**

**अन्वयः**— तृतीयं च मासम् नवमे नवमे चा हनि अब्भक्षः समाधिना उत्तमश्लोकम् समाधिना उपाधावत् ॥७४॥

**अनुवाद**— तीसरा महीना नवें नवें दिन के अन्तराल पर केवल जल पीकर समाधि के द्वारा श्रीहरि की आराधना करते हुए उन्होंने बिताया ॥७४॥

**भावार्थ दीपिका**

तृतीयं च आनयन् ईषदिव नयन्नुपाधावदित्यन्वयः। प्रतिमासमाहार सङ्कोचं तपोऽतिरेकं च कृतवानिरत्यर्थः ॥७४॥

**भाव प्रकाशिका**

तीसरा महीना उन्होंने थोड़ा सा जल लेकर श्रीहरि की आराधना करते हुए बिताया । प्रत्येक महीने में वे आहार का सङ्कोच करते थे और तपस्या को बढ़ाते थे ॥७४॥

**चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि । वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥७५॥**

**अन्वयः**— चतुर्थम् अपि मासं जितश्वासः द्वादशे द्वादशेऽहनि, वायुभक्षः देवम् ध्यायन् अधारयत् ॥७५॥

**अनुवाद**— चौथे महीने में उनहोंने श्वास को जीत लिया था वे बारहवें बारहवें दिन के अन्तराल पर वायु पी लेते थे और श्रीभगवान् का ध्यान करते हुए बिताया ॥७५॥

**भावार्थ दीपिका** नहीं हैं ॥७५॥

**पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः । ध्यायन्ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥७६॥**

**अन्वयः**— पञ्चमे मासि अनुप्राप्ते नृपात्मजः नितश्वासः ब्रह्म ध्यायन् एकेनपदा स्थाणुरिव अचलः तस्थौ न ॥७६॥

**अनुवाद**— पाँचवाँ महीना आने पर राजकुमार ध्रुव अपने श्वास को जीत कर ब्रह्म का ध्यान करते हुए एक पैर पर खड़ा होकर स्तम्भ के समान अविचल बने रहे ॥७६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥७६॥

**सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् । ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥७७॥**

**अन्वयः**— सर्वतः भूतेन्द्रियाश्यम् मनः सर्वतः आकृष्य हृदि भगवतो रूपं ध्यायन् किंचन अपरं न अद्राक्षीत् ॥७७॥

**अनुवाद**— उस समय वे विषयों की ओर से अपने मन को पूर्णतः खींचकर हृदय में श्रीभगवान् के रूप का ध्यान करते हुए दूसरी कोई भी वस्तु नहीं देखते थे ॥७७॥

**भावार्थ दीपिका**

भूतानि शब्दादीनि इन्द्रियाणि च आशेरते यस्मिंस्तन्मन आकृष्य ब्रह्म ध्यायन् ॥७७॥

**भाव प्रकाशिका**

विषयों और इन्द्रियों के आश्रय मन को सब ओर से हटाकर केवल ब्रह्म का ही ध्यान करते थे ॥७७॥

**आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् । ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥७८॥**

**अन्वयः**— महदादीनाम् आधारम् प्रधानपुरुषेश्वरम् ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकः चकम्पिरे ॥७८॥

**अनुवाद**— महदादिकों के आधार तथा प्रधान एवं पुरुष के नियामक ब्रह्म की धारणा उनके द्वारा कर लिए जाने पर त्रैलोक्य काँपने लगा ॥७८॥

**भावार्थ दीपिका**

धारयमाणस्य सतस्तस्य तेजः सोढुमशक्नुवन्तः कम्पिताः ॥७८॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्म की धारणा करने वाले ध्रुव के तेज को नहीं सह सकने के कारण तीनों लोक काँपने लगे ॥७८॥

**यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही ।**
**ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे ॥७९॥**

**अन्वयः**— सः पार्थिवार्भकः यदा एकपादेन तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही, तत्रार्धम् इभेन्द्राधिष्ठितां तरीव पदे पदे सव्येत तरतः ननाम ॥७९॥

**अनुवाद**— जब वे राजकुमार एक पैर से जब खड़ा हुए उस समय उनके अङ्गूठे से दबी हुई पृथिवी इस प्रकार झुक गयी जैसे किसी गजराज के चढ जाने पर नौका बायें-दायें पद-पद पर डगमगाने लग जाती हैं ॥७९॥

### भावार्थ दीपिका

तस्याङ्गुष्ठेन निपीडिता आक्रान्ता सती मही तत्र तदा अर्धं ननाम् । समेंऽशके अर्धशब्दस्य नपुंसकत्वा दंशांशिनोरभेदाच्चैवं सामानाधिकरण्यम् । इभेन्द्रेणाधिष्ठिता तरी नौर्यथा पदे पदे सव्यतो दक्षिणतश्च नमति तद्वत् ।।७९।।

### भाव प्रकाशिका

ध्रुव के अङ्गूठे से दबी हुई पृथिवी का आधा भाग झुक गया । यहाँ पर अर्ध शब्द समांश का बोधक है। वह नपुंसक लिङ्ग वाला होने के कारण तथा अंश और अंशी में अभेद होने के भी कारण यहाँ समानाधिकरण्य है । गजराज के चढ जाने पर जैसे पद-पद पर नौका डगमगाने लगती है उसी तरह पृथिवी डगमगाने लगी ।।७९।।

**तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया ।**
**लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम् ।।८०।।**

**अन्वयः**— तस्मिन् असुं द्वारं निरुध्य अनन्यया धिया विश्वमात्मनः अभिध्यायति निरुच्छवासा भृशं निपीडितः सलोकपाला लोकाः हरिंशरणं ययुः ।।८०।।

**अनुवाद**— जब ध्रुव अपने प्राणों तथा इन्द्रियद्वारों को रोककर विश्वात्मा श्रीहरि का अनन्य बुद्धि से ध्यान करने लगेगे उनकी समष्टि प्राण से अभिन्नता हो जाने के कारण सभी जीवों का श्वास आना जाना बन्द हो गया । उससे सभी लोकों और लोकपालों को अत्यन्त कष्ट हुआ और वे सब घबराकर श्रीहरि के शरण में गये ।।८०।।

### भावार्थ दीपिका

अन्यदप्याश्चर्यमाह । तस्मिन् ध्रुवे विश्वं विश्वात्मकं विष्णुमात्मनः सकाशादन्यया धियात्माभेददृष्ट्याऽभिध्यायति सति। किं कृत्वा । अंसु प्राणं तद्द्वारं च निरुध्य । विश्वमात्मन्येकीकृत्य स्वप्राणनिरोधे कृते विश्वस्य प्राणनिरोधो जात इति भावः।।८०।।

### भाव प्रकाशिका

दूसरे भी आश्चर्य का वर्णन करते हैं जब ध्रुव विश्वात्मक भगवान् विष्णु की अनन्य बुद्धि से ध्यान करते थे । क्या करके करते थे ? इसका उत्तर हैं कि प्राण और इन्द्रियों के द्वार को रोककर विश्व को आत्मा से एकीकृत करके अपने प्राणों का निरोध करने पर सम्पूर्ण जगत् के प्राण का निरोध हो गया ।।८०।।

देवा ऊचुः

**नैवं विदामो भगवन्प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।**
**विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ।।८१।।**

**अन्वयः**— भगवन् चराचरस्य अखिल सत्त्वधाम्नः एवं प्राणनिरोधः न विदामः । शरण्यं त्वम् शरणं वयं प्राप्तः तत् नोवृजिनाद् मोक्षं विधेहि ।।८१।।

### देवताओं ने कहा

**अनुवाद**— हे भगवन् ! सम्पूर्ण चराचर जीवों का इस प्रकार का प्राण निरोध हमलोगों ने देखा ही नहीं है । इसीलिए हमलोग सम्पूर्ण जगत् के रक्षक आपके शरण में आये हैं । अतएव आप हमलोगों को इस कष्ट से आप मुक्ति प्रदान करें ।।८१।।

### भावार्थ दीपिका

एवं प्राणनिरोधं कदाचिदपि न विद्मः । अखिलसत्त्वधाम्नः सर्वप्राणिशरीरस्य तस्माद्वृजिनात् क्लेशात् ।।८१।।

### भाव प्रकाशिका

देवताओं ने श्रीभगवान् से कहा कि भगवान् इस प्रकार का प्राणों का निरोध हमलोगों ने कभी देखा ही नहीं है, कि इससे सभी शरीरधारियों का प्राण निरोध हो गया है । हम शरणागतों को इस कष्ट से आप मुक्ति दिलायें ।।८१।।

श्रीभगवानुवाच

**मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ।**
**यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि सङ्गतात्मा ॥८२॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरिते अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

**अन्वयः**— मा भैष्ट, बालं दुरत्ययात् तपसो निवर्तयिष्ये, स्वधाम प्रतियात मयि सङ्गतात्मा औतानपादिः यतोवः प्राण निरोधः ॥८२॥

**श्रीभगवान् ने कहा**

**अनुवाद**— तुमलोग डरो मत ध्रुव को इस कठोर तपस्या से मैं निवृत्त कर दूँगा । अपने स्थान पर तुमलोग लौट जाओ । उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने अपने चित्त को मुझमें लीन कर दिया है । इस समय उसकी अभेद धारणा हो गयी है, उसी के कारण तुम सबों का प्राण निरोध हो गया है ॥८२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के ध्रुवचरित के अन्तर्गत आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥**

**भावार्थ दीपिका**

यतो बालात् । कोऽसौ बालः कथं च तस्मात्प्राणनिरोध इत्यत आह । उत्तानपादस्य पुत्रो मयि विश्वरूपे सङ्गतात्मा ऐक्यं प्राप्तो वर्तत इति ॥८२॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥**

**भाव प्रकाशिका**

जिसके चलते यह प्राण निरोध हुआ है वह कौन बालक है और उससे सबों का प्राण निरोध कैसे हो गया है । इस पर श्रीभगवान् ने कहा कि उत्तानपाद का पुत्र विश्वात्मा मुझसे अभेद को प्राप्त कर लिया है ॥८२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथेस्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८॥**

# नवाँ अध्याय

## ध्रुव का वरदान प्राप्त करके घर लौटना

मैत्रेय उवाच

**त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ।**
**सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥१॥**

अन्वयः— एवम् उत्सन्नभयाः ते उरुक्रमे कृतावनामाः त्रिविष्टपम् प्रययुः । ततः सहस्रशीर्षाऽपि गरुत्मता भृत्यदिदृक्षया मधोर्वनं ययौ ॥१॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस प्रकार से श्रीभगवान् के आश्वासन देने से देवताओं का भय समाप्त हो गया, वे श्रीभगवान् को प्रणाम करके स्वर्गलोक चले गये । उसके पश्चात् श्रीभगवान् भी गरुड़ पर चढ़कर अपने भक्त ध्रुव को देखने के लिए गये॥१॥

### भावार्थ दीपिका

नवमे तु हरिं स्तुत्वा लब्ध्वा तस्माद्वरान्ध्रुवः । प्रत्यागत्याकरोद्राज्यं पित्रा दत्तमितीर्यते ।।१।। एवं भगवद्वाक्येन गतभयाः।।१।।

### भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में श्रीहरि की स्तुति करके और श्रीभगवान् से वरदान प्राप्त करके ध्रुव अपने घर आकर पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य को प्राप्त करके राज्य करने लगे इस बात का वर्णन हैं ।।१।। श्रीभगवान् के आश्वासन से देवताओं का भय दूर हो गया हैं ।।१।।

**स वै धिया योगविपाकतीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ।**
**तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिः स्थितं तदवस्थं ददर्श ।।२।।**

**अन्वयः**— स वै योगविपाकतीव्रया धिया हृत्पद्मकोशे तडित्प्रभम् स्फुरितम् सहसैव तिरोहितम् उपलक्ष्य तदवस्थं बहिः स्थितं ददर्श ।।२।।

**अनुवाद**— उस समय ध्रुवजी तीव्र योगाभ्यास के कारण एकाग्र बुद्धि द्वारा श्रीभगवान् की बिजली के समान देदीप्यमान जिस मूर्ति का अपने हृदय में ध्यान कर रहे थे, वह अचानक विलीन हो गयी । उससे घबराकर जब वे अपनी आँख खोले तो उन्होंने भगवान् को उसी रूप में अपने सामने खड़े देखा ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

स वै ध्रुवो योगस्य विपाकेन दाढर्येन तीव्रया निश्चलया । गरुडाधिरूढं पुरतः स्थितमपि यदान्तर्दृष्टित्वादसौ नापश्यत्तदा भगवतैवान्तःस्थं रूपमाकृष्टमतस्तिरोहितमुपलक्ष्य व्युत्थितः सन् तदवस्थं यादृगन्तः स्फुरितस्तादृशम् ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

योग के परिपक्व हो जाने के कारण अपनी सुदृढ बुद्धि के द्वारा, गरुड पर बैठे हुए सामने विद्यमान भी भगवान् को अन्तर्दृष्टि होने के कारण नहीं देखे तब श्रीभगवान् ही अपने रूप को खींच लिए श्रीभगवान् के तिरोहित हुए देखकर ध्रुवजी का ध्यान टूट गया और उन्होंने देखा कि जिस प्रकार से भगवान् हृदय में प्रकाशित हो रहे थे उसी तरह वे बाहर भी स्थित हैं ।।२।।

**तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिताववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत् ।**
**दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकश्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ।।३।।**

**अन्वयः**— तद् दर्शनेन आगत साध्वसः अङ्गं क्षितौ दण्डवत् विनमय्य अवन्दत । प्रपश्यन् अर्भकदृग्भ्यां पिवन्निव आस्येन चुम्बन्निव भुजै आश्लिषन् इव स्थितः ।।३।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् को देखकर ध्रुवजी के मन में कुतूहल पैदा हो गया, पृथिवी पर लोटकर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किये और उसके पश्चात् श्रीभगवान् को देखने लगे जैसे वे अपने नेत्रों से उन्हें पी लेना चाहते हों, मुख से चूम लेना चाहते हों और अपनी भुजाओं से उनका आलिङ्गन कर लेना चाहते हों ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

आगतसाध्वसो जातसंभ्रमः । विनमय्य आनतं कृत्वा । संभ्रममेवाह । दृग्भ्यां प्रपिबन्निव पश्यन्नवन्दत । आस्येन चुम्बन्निवावन्दत । भुजाभ्यामाश्लिषन्निवावन्दतेत्यर्थः ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को देखकर ध्रुवजी के मन में कुतूहल पैदा हो गया और वे पृथिवी पर गिरकर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किए । ध्रुवजी के कूतुहल की वर्णन मैत्रेयजी करते हैं अपने नेत्रों से मानो पीते हुए उनकी वन्दना

किए, मुख से चुम्बन करते हुए के समान वन्दना किए और भुजाओं से आलिङ्गन करते हुए के समान श्रीभगवान् की वन्दना किए ॥३॥

**स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वास्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ।**
**कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥४॥**

**अन्वयः**— कृताञ्जलिमा विवक्षन्तम् अतद्विदं ज्ञात्वा अस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः स हरिः कृताञ्जलिं बालं ब्रह्ममयेन कम्बुना कृपया कपाले पस्पर्श ॥४॥

**अनुवाद**— हाथ जोड़कर खड़े हुए तथा श्रीभगवान् की स्तुति करना चाहकर भी स्तुति करना नहीं जानने वाले ध्रुव को जानकर ध्रुव के तथा सबों के हृदय में निवास करने वाले श्रीहरि उस बालक के कपोल में वेदमय शंख का स्पर्श करा दिए ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

विवक्षन्तं तद्गुणान्वक्तुमिच्छन्तम् । अतद्विदं स्तुत्यादिकर्तुमजानन्तम् । अस्य ध्रुवस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितत्वात् ज्ञात्वा। ब्रह्ममयेन वेदात्मकेन शङ्खेन ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् सबों के हृदय में निवास करने वाले हैं अतएव वे जान लिए कि ध्रुव स्तुति करना चाहते हैं किन्तु स्तुति कैसे की जाती है, इस बात को नहीं जानते हैं । इसीलिए उन्होंने अपने वेदमय शङ्ख का ध्रुवजी के कपोल से स्पर्श करा दिए ॥४॥

**स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः ।**
**तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥५॥**

**अन्वयः**— वै तदैव प्रतिपादितां दैवीं गिरं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः ध्रुवक्षितिः सः असत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं भक्तिभावाभ्यगृणात् ॥५॥

**अनुवाद**— ध्रुवजी को उस शंख का स्पर्श होते ही वेदमयी दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी । उनको आत्मतत्त्व एवं परमात्मतत्त्व का ज्ञान हो गया । इस प्राकर के अविचल स्थान प्राप्त करने वाले ध्रुवजी विख्यात कीर्ति सम्पन्न श्रीभगवान् की भक्तिभाव से परिपूर्ण होकर धैर्यपूर्वक स्तुति किए ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

भगवता प्रतिपादितां गिरं प्रतिपद्येति शेषः । प्रतिपद्यतामिति पाठे तां वेदात्मिकाम् । परिज्ञातः परात्मनोरीश्वरजीवयोर्निणयो येन सः । अतएव भक्त्या भावः प्रेम यस्य । असत्वरं स्थैर्येण । परितः श्रुतं विख्यातमुरुश्रवः कीर्तिर्यस्य तम् । ध्रुवा क्षितिः स्थानं यस्येति भाविनिर्देशः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

ध्रुवजी की श्रीभगवान् के द्वारा प्रतिपादित दिव्य वेदमयी वाणी को उसी समय प्राप्त कर लिए जिस समय श्रीभगवान् ने अपने शङ्ख का उनके कपोल से स्पर्श करा दिया । जहाँ प्रतिपद्यताम् पाठ है वहाँ पर वेदात्मिका वाणी को प्राप्त कर लिया यह अर्थ होगा । उनको जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का निर्णय हो गया । इसीलिए वे धैर्य पूर्वक भक्ति से भरकर प्रेम पूर्वक प्रख्यात कीति वाले श्रीभगवान् की उन्होंने स्तुति की । ध्रुवक्षितिः कहकर यह बतलाया गया है कि ध्रुवजी को भविष्यत् काल में निश्चल स्थान प्राप्त होने वाला है ॥५॥

ध्रुव उवाच

**योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।**
**अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥६॥**

अन्वयः— अखिल शक्तिधरः यः मम अन्तः प्रविश्य स्वधाम्ना इमां प्रसुप्तां वाचं संजीवयति अन्यान् हस्तचरण श्रवणत्वगादीन् प्राणान् च संजीवयति तुभ्यं पुरुषाय भगवते नमः ॥६॥

**ध्रुवजी ने कहा**

**अनुवाद**— सर्वशक्तिमान जो परमात्मा मेरे अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अपने तेज से मेरी इस सोची वाणी को सजीव बना देते हैं तथा दूसरे हाथ पैर श्रोत्र तथा त्वक् आदि इन्द्रियों एवं प्राणों को संजीवित करने का काम करते हैं, ऐसे अन्तर्यामी परमात्मा आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

ईशानुग्रहसंप्राप्तवागाद्यद्भुतवृत्तिभिः । द्वादशादित्यसंकाशैः श्लोकैरस्तौद्धरिं ध्रुवः ॥१॥ यो मे प्रसुप्तां लीनां वाचमन्यांश्च प्राणानिन्द्रियाणि स्वधाम्ना चिच्छक्तया संजीवयति । यतः, अखिलाश्चक्षुरादिज्ञानक्रियाशक्तीर्धारयतीति तथा । पुरुषायान्तर्यामिणे॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की कृपा से वाणी आदि की अद्भुत वृत्तियों को प्राप्त करने वाले ध्रुवजी ने द्वादशादित्य के समान बारह श्लोकों द्वारा श्रीहरि की स्तुति की ॥१॥ जो परमात्मा लीन हुई मेरी वाणी को तथा दूसरे प्राणों एवं इन्द्रियों को अपनी चित् शक्ति रूपी तेज के द्वारा अच्छी तरह से जीवित कर देते हैं । क्योंकि वे सम्पूर्ण चक्षुरादि को ज्ञान और क्रिया से सम्पन्न बना देते हैं ऐसे अन्तर्यामी पुरुष आप श्रीभगवान् को मेरा नमस्कार है ॥६॥

**एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ।**
**सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥७॥**

अन्वयः— भगवन् त्वम् एक एव मायाख्यया उरुगुणया आत्मशक्त्या इदम् महदाद्यशेषम् सृष्ट्वा अनुविश्य एकः त्वमेव पुरुषः तदसदगुणेषु दारुषु विभावसुवत् नानेव विभासि ॥७॥

**अनुवाद**— आप एक ही हैं, अपनी माया नामक अनन्तगुणमयी शक्ति से इस महदादि सम्पूर्ण प्रपञ्च की सृष्टि करके उसमें अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर जाते हैं फिर इसके इन्द्रिय आदि असत् गुणों में अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में अनेक रूप से उसी तरह प्रतीत होते हैं, जैसे एक ही अग्नि विभिन्न लकड़ियों में प्रकट होकर अपनी उपाधियों के कारण भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतीत होती है ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु वागादीन्द्रियशक्तिधरा वह्न्यादयः प्रसिद्धा नाहमित्यतआह- एक इति । अनुविश्य पुरुषोऽन्तर्यामी त्वमेक एव । तस्या मायाया असत्सु गुणेष्विन्द्रियादिषु स्थितः संस्तत्तद्देवतारूपो नानेव भासि नतु त्वद्व्यतिरेकेण ज्ञानक्रियाशक्तिधरः कश्चिदस्तीत्यर्थः॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि वागादि इन्द्रियों की शक्ति को धारण करने वाले अग्नि आदि देवता हैं । वे देवता ही वागादि इन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं मैं नहीं हूँ इसके उत्तर में ध्रुवजी कहते हैं— **एकः इत्यादि** अर्थात् उन सबों के भीतर आप ही अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हैं । उस माया के मिथ्या गुणों व इन्द्रियों आदि में स्थित रहकर आप ही अग्नि आदि देवताओं के रूप में प्रतीत होते हैं । आपसे भिन्न कोई दूसरा ज्ञान शक्ति तथा क्रिया को धारण करने वाला नहीं है॥७॥

**त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।**
**तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो ॥८॥**

**अन्वयः**— हे नाथ त्वद्दत्तया वयुनया भवत् प्रपन्नः सुप्तप्रबुद्ध इव इदम् विश्वम् अचष्ट, तस्या अपवर्ग्य शरणं तव इदंमूलम् हे आर्तबन्धो कृतविदा कथम् विस्मर्यते ॥८॥

**अनुवाद**— हे नाथ ! आपके ही द्वारा प्रदत्त ज्ञान से आपके शरणागत ब्रह्माजी भी इस जगत् को सोकर उठे हुए के ही समान देखे । वे मुक्त जीव भी आपके ही चरणों के तलवे का आश्रय लेते हैं । हे आर्तबन्धो ! आपके उन चरणों को कोई भी कृतज्ञ पुरुष कैसे भूल सकता है ?॥८॥

### भावार्थ दीपिका

अपि च किं वक्तव्यं वह्न्यादयो ज्ञानादिशक्तिधरा न भवन्तीति, यस्माद्ब्रह्मणोऽपि ज्ञानं त्वदधीनमेवेत्याह । त्वद्दत्तया वयुनया ज्ञानेन भवन्तं शरणं प्रपन्नो ब्रह्मा इदं विश्वमचष्टापश्यत् । कथम् । सुप्तः पुरुषः प्रबुद्धः सन्यथा पश्यति तद्वत् । अतआपवर्ग्या मुक्तास्तेषामपि शरणम् । कृतविदा सर्वेन्द्रियजीवनेन त्वत्कृतमुपकारं जानता कथं विस्मर्यते । एवंभूतं त्वामभजन्तः कृतघ्ना इत्यर्थः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

किञ्च यह क्या कहना है कि अग्नि इत्यादि ज्ञानादि शक्ति को धारण करने वाले नहीं है, क्योंकि ब्रह्माजी का भी ज्ञान आपके अधीन ही है । आपके ही द्वारा प्रदत्त ज्ञान से ही आपके शरणागत ब्रह्माजी भी इस विश्व को सोकर जगे हुए पुरुष के समान देखे । अतएव अपवर्ग्यों (मुक्तों) के भी आश्रय आप ही हैं । आपने जो जीवों को सर्वेन्द्रिय जीवन प्रदान करके उन सबों का उपकार किया है, उसको कोई भी कृतज्ञ पुरुष कैसे भूल सकता है । इस प्रकार के आपका जो लोग भजन नहीं करते हैं वे कृतघ्न हैं ॥८॥

**नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ।**
**अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यमिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥९॥**

**अन्वयः**— नूनं ते तवमायया विमुष्टमतः ये भवाप्यय विमोक्षणम् कल्पकरुम् त्वाम् अन्य हेतीः अर्चन्ति कुणपोपभोग्यम् इच्छन्ति । यत् स्पर्शजं नृणाम् निरयेऽपि ॥९॥

**अनुवाद**— निश्चित रूप से उन लोगों की बुद्धि को माया ने हर लिया है जो जन्म मरण से मुक्ति दिलाने वाले तथा कल्पतरु के समान सारे मनोरथों को पूर्ण करने वाले आपका भजन विषय जन्य सुख की प्राप्ति के लिए किया करते हैं । वह स्पर्श जन्य तो सुख नरक में भी मनुष्यों को प्राप्त हो सकता है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

ये च मादृशाः कामाद्यर्थं भजन्ति तेऽतिमूढा इत्याह-नूनमिति । भवाप्ययौ जन्मरणे तद्विमोक्षे हेतुं त्वामन्यहेतोः कामाद्यर्थं ये भजन्ति ते नूनं विमुष्टमतयो वञ्चितचित्ताः । यतस्ते कल्पतरुं त्वामर्चन्ति । ततः कुणपतुल्येन देहेनोपभोग्यं सुखमिच्छन्ति। नचेच्छायोग्यं तदित्याह । यत्स्पर्शजं विषयसंबन्ध जन्यं सुखं तन्नरकेऽपि भवति ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

जो मुझ जैसे लोग कामादि की प्राप्ति के लिए आपका भजन करते हैं वे अत्यन्त अज्ञानी हैं । जन्म और मरण से मुक्ति प्रदान करने वाले आपका जो लोग दूसरे कामादि की प्राप्ति के लिए आपका भजन करते हैं निश्चित रूप से उन लोगों की बुद्धि मारी गयी है । क्योंकि वे भजन तो कल्पतरु के समान सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले आपका करते हैं, और उसके बदले में शव के समान शरीर के द्वारा भोगे जाने वाले सुख को चाहते हैं । वह सुख तो चाहने योग्य भी नहीं है । वह विषयों का स्पर्श जन्य सुख तो नरक में भी प्राप्त होता है ॥९॥

**या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।**
**सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्किंत्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे नाथ तव पादपद्म ध्यानात्, भवज्जन कथा श्रवणेन वा तनुभृतां या निर्वृतिः स्यात् सा स्वमहिमनि अपि मा भूत्, अन्तकासि लुलितात् विमानात् किन्तु ॥१०॥

**अनुवाद**— हे नाथ ! आपके चरण कमलों का ध्यान करने से अथवा आपके भक्तों के पवित्र चरित्र को सुनने से जिस सुख की प्राप्ति होती है वह सुख निजानन्द स्वरूप ब्रह्म में भी नहीं मिल सकता है । और जिन लोगों को काल का कृपाण काटता रहता है, उन स्वर्भीय विमानों से गिरने वाले पुरुषों को कैसे प्राप्त हो सकता है ?॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु स्वर्गादिसुखं सकामैः प्राप्यते निष्कामभजने तन्न स्यादित्यत आह-येति । स्वमहिमनि निजानन्दरूपेऽपि मा भूत्। न भवतीत्यर्थः । अन्तकस्यासिना कालेन लुलितात् खण्डिताद्विमानात् पततां सा नास्तीति किमु वक्तव्यम् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि स्वर्ग में प्राप्त होने वाले सुख की प्राप्ति तो सकाम भजन करने से ही प्राप्त होते हैं निष्काम भजन करने वाले को तो वह सुख नहीं प्राप्त हो सकता हैं ? इस पर ध्रुवजी कहते हैं **या निवृति० इत्यादि** जो सुख आपके चरण कमलों का ध्यान करने से प्राप्त होता है अथवा आपके भक्तों का चरित्र सुनने से प्राप्त हो उस सुख की प्राप्ति उन स्वर्ग में गये जीवों को जिनको काल की तलवार काटते जा रही है और अन्त से विमान से जो गिर जाते हैं उन जीवों को कैसे प्राप्त हो सकती है ? वह सुख तो निजानन्द स्वरूप ब्रह्म में भी नहीं मिलता है ॥१०॥

**भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।**
**येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥११॥**

**अन्वयः**— हे अनन्त त्वयि भक्तिं प्रवहताम् महताम् अमलाशयानाम् मे प्रसङ्गः मुहुः भूयात् येन अञ्जसा उल्बणम् उरुव्यसनम् भवाब्धिम् भवद्गुणकथामृतपानमत्तः नेष्ये ॥११॥

**अनुवाद**— हे अनन्त भगवन् ! मुझे आप उन विशुद्ध हृदय वाले महापुरुषों की सङ्गति बार-बार आप प्रदान करें जो आपकी निरन्तर भक्ति किया करते हैं । जिससे कि मैं अनेक प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण इस भयङ्कर भवसागर को आपकी कथा रूपी अमृत का पान करने से मत्त बना हुआ आसानी से पार कर जाऊँगा ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

अतस्ते कथाश्रवणाय सत्सङ्गतिं देहीत्याह । भक्तिं त्वयि प्रवहतां सातत्येन कुर्वताम् । ननु मोक्षं किं न याचसेऽत आह। येन महत्प्रसङ्गेनाञ्जसा अयत्नत एवोरूणि व्यसनानि यस्मिंस्तम् नेष्ये पारं गमिष्यामि । भवद्गुणकथैवामृतं तस्य पानेन मत्तः सन् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

अतएव आप मुझे अपने भक्तों की सङ्गति प्रदान करें जिससें मैं आपकी कथाओं का श्रवण कर सकूं । ऐसे भक्त जो आपकी निरनतर भक्ति किया करते हैं । यदि आप कहें कि तुम मुझसे मोक्ष की याचना नहीं करते हो? तो इस पर ध्रुवजी कहते हैं कि— जिन महापुरुषों की सङ्गति से बहुत अधिक दुःखों से भरे हुए इस संसार रूपी सागर को आपकी कथा रूपी अमृत का पान करने से मत्त बना हुआ मैं बड़ी आसानी से पार कर जाऊँगा ॥११॥

**ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ।**
**ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्दसौगन्ध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे अब्जनाभ ! ये तु भवदीयपदारविन्दसौगन्ध्यलुब्ध हृदयेषु कतप्रसङ्गाः ते हे ईश अतितरां मर्त्यम् ये च अन्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः न स्मरन्ति ॥१२॥

**अनुवाद**— हे कमलनाभ भगवान् ! जो लोग आपके चरणारविन्द की सुगन्धि में लुभाये हृदय वाले आपके भक्तों की सत्सङ्गति करते हैं वे अपने इस इस अत्यन्त प्रिय शरीर को तथा इसके सम्बन्धी पुत्र मित्र, गृह, धन तथा पत्नी का भी स्मरण नहीं करते हैं ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

कथामृतपानस्य मादकत्वमाह । तेऽतितरां प्रियमपि मर्त्यं देहं न स्मरन्ति नानुसंदधते । ये च सुतादयः अदः मर्त्यमनुसंबद्धास्तानपि । के ते न स्मरन्ति । ये कृतप्रसङ्गाः । केषु । भवदीयपदारविन्दसौग्न्ध्ये लुब्धं हृदयं येषां तेषु । तुशब्देनान्येषां केवलयोगादिनिष्ठानां देहाद्यभिमानानिवृत्तिं दर्शयति ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भी ध्रुवजी कथामृत की मादकता का वर्णन करते हैं जो लोग कथामृत का पान करते हैं वे अपने अत्यन्त प्रिय शरीर की भी परवाह नहीं करते है । यही नहीं वे इस मर्त्यशरीर से संबन्ध रखने वाले पुत्र, मित्र, कलत्र आदि को भी नहीं याद करते हैं । यदि कोई कहे कि ऐसे लोग कौन हैं ? तो इसका उत्तर है कि जिन लोगों का हृदय आपके चरण कमल की सुगन्धि का लोभी है, उन भगवद् भक्तों की सत्सङ्गति करने वाले । **ये तु० का** तु शब्द यह बतलाता है कि जो लोग केवल योग आदि में निष्ठा रखने वाले हैं उनकी देहाभिमान की निवृत्ति नहीं होती है ॥१२॥

**तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ।**
**रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे अज ! तिर्यङ्नगाद्विज सरीसृप देवदैत्य मर्त्यादिभिः महदाद्यनेकं सदसद् विशेषं ते स्थविष्ठ रूपं परिचितम् । अतः परं न वेद्मि यत्र वादो न ॥१३॥

**अनुवाद**— हे अजन्मा प्रभो मैं तो पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी, सरीसृप देवता दैत्य तथा मनुष्यों आदि परिपूर्ण तथा महदादि अनेक कारणों से सम्पन्न आपके अत्यन्त स्थूल रूप से ही परिचित हूँ । इससे परे जो आपका परम स्वरूप है, जिसके विषय में वाणी की भी गति नहीं होती है उसे मैं नहीं जानता हूँ ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

नन्वेवं विद्वानपित्वं किमित्यभिमानं वहस्यत आह-तिर्यगिति । तिर्यङ्गादिभिः परिचितं व्याप्तम् । सन्तोऽसन्तश्च विशेषा यस्य । महदादीन्यनेकानि कारणानि यस्य । हे परम अज, ते इदं स्थविष्ठं विराड्रूपं केवलं वेद्मि । अतः परमीश्वरस्वरूपं न वेद्मि । यत्रः वादः शब्दव्यापारो नास्ति तब्रह्मरूपं च न वेह्मि अतोऽभिमानो न निवर्तत इति भावः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इस तरह ज्ञानी होकर भी तुम देहाभिमान क्यों करते हों ? इस पर ध्रुवजी ने कहा— आपका जो यह अत्यन्त स्थूल रूप जो पशु, पर्वत आदि से व्याप्त है । इसमें सत् एवं असत् पदार्थ विशेष रूप से विद्यमान हैं । जिसके महत् तत्त्व इत्यादि अनेक कारण हैं । हे अजन्मा परमेश्वर ! आप का जो यह स्थूलतम विराट् रूप है मैं केवल इसी को जानता हूँ । इससे श्रेष्ठ जो आपका ईश्वर रूप है, जिसके विषय में शब्द की भी गति नहीं होती है आपके उस रूप को मैं नहीं जानता हूँ अतएव मेरे अभिमान की निवृत्ति नहीं होती है ॥१३॥

**कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान्स्वदृगनन्तसखस्तदङ्के ।**
**यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्मगर्भे द्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥१४॥**

**अन्वयः**— कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन् यः पुमान् स्वदृगनन्तसखः तदङ्के शेते, यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चन लोकपद्मगर्भे द्युमान् तस्मै भगवते प्रणतोऽस्मि ।।१४।।

**अनुवाद**— हे भगवन् कल्प का अन्त होने पर योगनिद्रा में स्थित जो परमपुरुष इस सम्पूर्ण विश्व को अपने उदर में लीन करके शेषजी के साथ उनकी ही गोद में शयन करते हैं तथा जिनके नाभिसमुद्र में उत्पन्न सर्वलोकमय स्वर्णिम कमल से परम तेजस्वी ब्रह्माजी उत्पन्न हुए वे भगवान् आप ही हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेवं भगवदनुकम्पया तद्रूपद्वयं ज्ञात्वेश्वररूपमनुवर्णयन्नमस्करोति-कल्पान्त एतदिति । एतत्त्रैलोक्यं यः पुमान् शेते । स्वस्मिन्नेव दृक् न बहिर्यस्य योगनिद्रारूढत्वात् । अनन्तसखः शेषसहायः । तदङ्के शेषोत्सङ्गे । यस्य नाभिरेव सिन्धुः समुद्रस्तस्मिन् रोहतीति तथ तस्मिन्काञ्चनलोकपद्मस्य गर्भे कर्णिकायां द्युमांस्तेजस्वी ब्रह्मा भवति । तं प्रणतोऽस्मीत्यर्थः ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह श्रीभगवान् की कृपा से उनके दो रूप को जानकर उनके ईश्वर रूप को नमस्कार करते हुए ध्रुवजी **कल्पान्त एतदित्यादि** श्लोक को कहते हैं । जो परमात्मा कल्प के अन्त में इस त्रैलोक्य को उदरस्थ करके योगनिन्द्रा में साते हैं । उस समय उनकी दृष्टि अपने में रहती है बाहर नहीं रहती है । अनन्त ही उनके साथ रहते हैं और वे परमपुरुष शेषजी की गोद में ही सोते हैं । श्रीभगवान् की नाभि ही समुद्र हैं । उसमें उत्पन्न होने वाले स्वर्णिम कमल की कर्णिका पर द्युमान् अर्थात् महातेजस्वी ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं ऐसे श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१४।।

**त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ।**
**यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥१५॥**

**अन्वयः**— त्वम् यद् बुद्ध्यवसिीतिमखण्डितया स्वदृष्टया, द्रष्टा, नित्यमुक्तपरिशुद्ध विबुद्धः आत्मा, कूटस्थ आदिपुरुषः भगवान् त्र्यधीशः व्यतिरिक्तः स्थितौ अधिमखः आस्से ।।१५।।

**अनुवाद**— हे भगवन् आप अपनी अखण्ड चिन्मयी दृष्टि से बुद्धि की सभी अवस्थाओं के साक्षी हैं । आप नित्यमुक्त शुद्ध सत्त्वमय सर्वज्ञ परमात्मा स्वरूप निर्विकार आदि पुरुष, षडैश्वर्य सम्पन्न एवं तीनों गुणों के स्वामी हैं। इस संसार की स्थिति के लिए यज्ञधिष्ठाता विष्णु रूप स विराजमान रहते हैं ।।१५।।

**भावार्थ दीपिका**

ननु ममापि स्वापाद्यवस्थावत्त्वे को जीवाद्विशेष इत्यत आह त्वं तु व्यतिरिक्तो जीवविलक्षण आस्से तिष्ठसि । वैलक्षण्यमेवाह त्वं तु नित्यमुक्तो जीवस्तु त्वत्प्रसादान्मुच्यते । त्वं परिशुद्धः स तु मलिनः । त्वं तु विबुद्धः स त्वज्ञः । त्वमात्मा स तु जडः। त्वं कूटस्थः स तु विकारी । त्वमादिपुरुषः स त्वादिमान् । त्वं तु भगवान्स तु भगहीनः । त्वं त्रयाणां गुणानामधीशः स तु परतन्त्रः । कुत एतद्वैलक्षण्यम् । यद्यतो बुद्ध्यवस्थितिं बुद्धेस्तां तामवस्थामखण्डितया स्वदृष्ट्या चिच्छत्तया द्रष्टा पश्यसि । द्रष्टेति तृन्प्रत्ययान्तः । अतो बुद्ध्यवस्थितिमित्यत्र षष्ठ्यभावः तथाभूत एव त्वं स्थितौ पालनेऽधिमखो यज्ञाधिष्ठाता श्रीविष्णुः ।।१५।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि मेरी भी स्वप्नादि अवस्थाएँ होती हैं अतएव मुझमें जीव की अपेक्षा कौन सी विशेषता है? इस पर ध्रुवजी कहते हैं कि आप तो जीव से भिन्न रूप से ही स्थित है । उस विलक्षणता (भिन्नता) को बतलाते हुए वे कहते हैं— आप ता नित्यमुक्त हैं और जीव तो आप की कृपा से मुक्त होता है, आप परिशुद्ध हैं, आप में कोई

दोष नहीं और जीव मलिन है । आप विबुद्ध (सर्वज्ञ) हैं और जीव अज्ञ है । आप आत्मा हैं और जीव जड़ है, आप कूटस्थ हैं और जीव विकारवान है, आप आदि पुरुष हैं और जीव आदिमान् है । आप भगवान् अर्थात् षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्न हैं और जीव भगहीन अर्थात् ऐश्वर्य रहित हैं । आप तीनों गुणों के स्वामी हैं और जीव गुण परतन्त्र है। यदि कहें कि यह विलक्षणता कैसे हो गयी ? तो इसका उत्तर है कि बुद्धि की जितनी भी अवस्थाएँ हैं, उस अवस्था को आप अपनी अखण्ड बुद्धि से द्रष्टा हैं । द्रष्टा पदतृन् प्रत्ययान्त है, इसीलिए **बुद्ध्यवस्थितिम्** में षष्ठी विभक्ति का अभाव है । इस प्रकार के आप संसार की स्थिति के लिए यज्ञाधिष्ठाता विष्णु हैं ॥१५॥

**यस्मिन्निरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ।**
**तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्यमानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ॥१६॥**

**अन्वयः**— यस्मिन् विरुद्धगतयः विद्यादयः विविध शक्तयः आनुपूर्व्यात् अनिशं पतन्ति, विश्वभवम्, एकम्, अनन्तम् आद्यम्, आनन्दमात्रम्, अविकारम् तद् ब्रह्म अहं प्रपद्ये ॥१६॥

**अनुवाद**— आपसे ही विद्या अविद्या आदि विरुद्ध गति वाली अनेक शक्तियाँ निरन्तर धारावाहिक रूप से प्रकट होती रहती हैं । आप जगत् के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्दमय निर्विकार ब्रह्म स्वरूप है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

तमेव ब्रह्मरूपेण ज्ञातं नमस्करोति-यस्मिन्निति । पतन्त्यकस्मादुद्भवन्ति । विश्वस्य भवो यस्मात् । एकमखण्डम् । आद्यमनादितम् ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्म रूप से ज्ञात उन्हीं श्रीभगवान् को नमस्कार ध्रुवजी इस श्लोक के द्वारा कहते हैं । आपसे ही विरुद्ध मतिवाली विद्या अविद्या आदि अनेक शक्तियाँ, अकस्मात्, उत्पन्न होती रहती हैं । आप सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं, अखण्ड हैं तथा अनादि हैं ॥१६॥

**सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्ममाशी स्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।**
**अप्येवमार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥१७॥**

**अन्वयः**— हे भगवन् ! पुरुषार्थमूर्ते तव आशिषः पाद पद्मम् सत्या आशीः तथानुभजतः । अप्येवमार्यदीनान् अस्मान् अनुग्रहकातरो भगवान् वाश्रा वत्सकमिव परिपाति ॥१७॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! जो लोग आपको परमानन्द मूर्ति समझकर आपका भजन करते हैं उनके लिए राज्य आदि की प्राप्ति की अपेक्षा आपके चरण कमलों की प्राप्ति ही सच्चा फल है । हे भगवन् यद्यपि ऐसी स्थिति है, फिर भी जिस तरह गौ अपने तुंरत के जन्मे बछड़े की दूध पिलाती है और उसकी वृक आदिसे रक्षा भी करती है उसी तरह अपने भक्तों पर कृपा करने के लिए सदा व्याकुल रहने वाले आप मुझ जैसे सकाम जीवों की भी कामना पूर्ण करने के लिए आप उनकी संसार भय से रक्षा करते हैं ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

सकामभजनादपि मोक्षमाशासान आह । हे भगवन्, पुरुषार्थः परमानन्दः स एव मूर्तिर्यस्य तस्य तव पादपद्माशिषो राज्यादेः सकाशात्सत्या आशीः परमार्थफलं हि निश्चितम् । कस्य । तथा तेन प्रकारेण त्वमेव पुरुषार्थ इत्येवं निष्कामतया अन्वनुभजतः । यद्यप्येवं तथापि हे आर्य स्वामिन्, दीनान्सकामानप्यस्मान्भगवान्भवान्परिपाति संसारभयाद्रक्षत्येव । यतः, अनुग्रहे हिताचरणे कातरः परवशः । यथा नवप्रसूता वाश्रा धेनुर्वत्सं क्षीरं पाययति वृकादिभ्यो रक्षति च तद्वत् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

सकाम भजन से मोक्ष की प्राप्ति होती है इस बात को कहते हुए ध्रुव जी कहते हैं— हे भगवन् आप परमानन्द मूर्ति हैं ऐसे आप से प्राप्त होने वाले राज्यादि की अपेक्षा अपके चरण कमलों की प्राप्ति ही सत्य आशीर्वाद है। अर्थात् वही परमार्थ फल है । यह उन लोगों के लिए है जो आपको परमानन्द स्वरूप मानकर निष्काम रूप से आपका भजन करते हैं । यद्यपि ऐसी ही बात है फिर भी हे स्वामिन् ! कामना पूर्वक आपका भजन करने वाले हमलोगों की भी आप संसार भय से रक्षा करते हैं, अर्थात् मुक्ति प्रदान करते हैं । क्योंकि आप अपने भक्तों का कल्याण करने के लिए सदा व्याकुल रहते हैं । यह उसी तरह से होता है जिस तरह शीघ्र जिसने बच्चा दिया है, ऐसी गौ आपने उस बछड़े को दूध भी पिलाती है और उसकी वृक आदि से रक्षा भी करती है ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

**अथाभिष्टुत एवं वै सत्संकल्पेन धीमता । भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥१८॥**

**अन्वयः**— अथ एवम्, सत्सङ्कल्पेन, धीमता अभिष्टुतः भृत्यानुरक्तो भगवान् प्रतिनन्द्य इदमब्रवीत् ॥१८॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! जब शुभ सङ्कल्प वाले बुद्धिमान ध्रुवजी ने श्रीभगवान् को इस प्रकार से स्तुति की तब भक्त वत्सल भगवान् उनकी प्रशंसा करके उनसे कहें ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

**वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक । तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥१९॥**

**अन्वयः**— हे सुव्रत राजन्य बालक ते हृदि व्यवसितम् अहं वेद । ते भद्रम् । दुरापमपि तत् प्रच्छामि ॥१९॥

**श्रीभगवान् ने कहा**

**अनुवाद**— हे सुन्दर व्रत का पालन करने वाले राजकुमार ! मैं तुम्हारे हृदय के सङ्कल्प को जानता हूँ, यद्यपि उस पद का प्राप्त होना बहुत कठिन है फिर भी मैं तुम्हें वह प्रदान करता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यवसितं सङ्कल्पितम् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

व्यवसितम् पद का अर्थ है सङ्कल्पित ॥१९॥

**नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति। यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥२०॥**
**मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम्। धर्मोऽग्निः कश्यपः शुक्रो मुनयो ये वनौकसः ॥२१॥**

**अन्वयः**— भद्र ! यद् भ्राजिष्णु ध्रुवक्षितिः अन्यैः न अधिष्ठितं यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् मेढ्यां गोचक्रवत् स्थास्नु परस्तात् कल्पवासिनाम् धर्मः अग्निः कश्यपः शुक्रः ये वनौकसः मुनयः सतारकाः यत् दक्षिणी कृत्य भ्रमन्तः चरन्ति ॥२०-२१॥

**अनुवाद**— हे भद्र ! जिस तेजोमय अविनाशी लोक को आज तक कोई भी नहीं प्राप्त कर सका, जिसके चारो ओर ग्रह नक्षत्र और तारागण रूपी ज्योतिश्चक्र उसी तरह घूमता रहता है, जिस तरह मेढी के चारो ओर दँवरी के बैल घूमते रहते हैं । दूसरे कल्प पर्यन्त रहने वाले अन्य लोकों का नाश हो जाने पर भी जो स्थिर बना रहता

है और तारागण के साथ धर्म, अग्नि, कश्यप और शुक्र आदि नक्षत्र तथा वन में रहने वाले सप्तर्षिगण जिसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, उस ध्रुव लोक को मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ ॥२०-२१॥

### भावार्थ दीपिका

तत्प्रयच्छामीत्युक्तं किं तदित्यपेक्षायामाह- नान्यैरिति सार्धद्वाभ्याम् । हे भद्र, ध्रुवा क्षितिर्निवासो यस्मिन् । यत्र यस्मिन्। आहितमर्पितम् । धान्याक्रमणाय भ्राम्यमाणानां पशूनां बन्धनस्तम्भो मेढी तस्यां बलीवर्दसमूहवत् । अवान्तरकल्पवासिनां परस्तादपि स्थास्नु लोकत्रयनाशेऽप्यनश्वरम् । धर्माग्न्यादयो नक्षत्ररूपाः । वनौकसः सप्तर्षयो यत्प्रदक्षिणीकृत्य भ्रमन्तश्चरन्ति ॥२०-२१॥

### भाव प्रकाशिका

हे ध्रुव ! मैं उसे प्रदान कर रहा हूँ अब प्रश्न होता है कि क्या प्रदान कर रहे हैं ? उसका **नान्यैः इत्यादि** ढाई श्लोकों से बतलाते हैं । जिस पृथिवी पर निवास करना जिस पर रखा गया । उस धान के पैरा पर धूमने वाले दँवरी के बैलों के समान दूसरे कल्प में भी रहने वाले उसके बाद भी जीवित रहने वाले, त्रैलोक्य का नाश हो जाने पर भी जीवित रहने वाले उस स्थान की सप्तर्षिगण परिक्रमा करते है, उस स्थान को तुम्हें प्रदान करता हूँ ॥२०-२१॥

**प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः । षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिताऽव्याहतेन्द्रियः ॥२२॥**

**अन्वयः**— गां दत्त्वा पित्रा तु वनं प्रस्थिते षट्त्रिंशद् वर्ष साहस्रं धर्मसंश्रयः अव्याहतेन्द्रियः गां रक्षिता ॥२२॥

**अनुवाद**— तुम्हे राजसिंहासन प्रदान करके जब तुम्हारे पिता वन में चले जायेंगे तब तुम छत्तीस हजार वर्षों तक पृथिवी का पालन धर्म पूर्वक करोगे ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

एतच्च राज्यानन्तरं भविष्यतीत्याह-प्रस्थित इति । तुभ्यं पृथ्वीं दत्त्वा वनं प्रस्थिते । भावे क्तः । वनं प्रति दीर्घगमने कृते सति । रक्षिता रक्षिष्यसि ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

तुमको ध्रुवलोक की प्राप्ति राज्य भोगने के पश्चात् होगी इस बात को श्रीभगवान् ने **प्रस्थिते तु० इत्यादि** श्लोक से कहा है तुमको पृथिवी का राज्य प्रदान करके पिता के वन में चले जाने पर प्रस्थिते में भाव के अर्थ में **क्त** प्रत्यय हुआ है । अर्थात् वन में दीर्घकाल के लिए चले जाने पर तुम पृथिवी की धर्म पूर्वक रक्षा करोगे॥२२॥

**त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः । अन्वेषन्ती वनं माता दवाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥२३॥**

**अन्वयः**— त्वद्भ्रातरि उत्तमे मृगयायां नष्टे तन्मनाः माता अन्वेषन्ती दावाग्नि प्रवेक्ष्यति ॥२३॥

**अनुवाद**— तुम्हारा भाई उत्तम आखेट करता हुआ मारा जायेगा । तब उसकी माता उसकी याद में पागल बनी हुई उसे वन में खोजती हुई दावानल में प्रवेश कर जायेगी ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

त्वया असंकल्पितमपि मद्भक्तस्य तव द्रोहादेवं भविष्यतीत्याह-त्वद्भ्रातरीति । सा सुरुचिर्दावाग्निं प्रवेक्ष्यति ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

यद्यपि तुमने ऐसा सङ्कल्प नहीं किया है फिर भी मेरे भक्त से द्रोह करने के कारण ऐसी घटना होगी । तुम्हारे भाई के मृगया में मारे जाने के कारण उसकी ही याद में पागल होकर उसे वन में खोजती हुई उसकी माँ दावाग्नि में प्रवेश कर जायेगी ॥२३॥

**इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः । भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अन्ते मा संस्मरिष्यसि ॥२४॥**

**अन्वयः**— पुष्कलदक्षिणैः यज्ञैः यज्ञहृदयं माम् इष्ट्वा इह च सत्या आशिषः भुक्त्वा अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥२४॥

**अनुवाद**— तुम अनेक बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले यज्ञों द्वारा यज्ञ हृदय मेरी आराधना करके तथा इस लोक में उत्तम भोगों को भोगकर तुम मेरा स्मरण करोगे ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच इष्ट्वा माम् । यज्ञो हृदयं प्रिया मूर्तिर्यस्य तम् ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

किञ्च यज्ञ ही जिनकी प्रिय मूर्ति है ऐसे मेरी तुम अनेक यज्ञों के द्वारा आराधना करके ॥२४॥

**ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् । उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥२५॥**

**अन्वयः**— तत त्वम् ऋषिभ्यः उपरिष्टात् सर्वलोक नमस्कृतम् मत्स्थानं गन्तासि यतो गतः नावर्तते ॥२५॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् तुम सप्तर्षियों से ऊपर विद्यमान, सम्पूर्ण लोकों का वन्दनीय मेरे धाम में आओगे जहाँ गया हुआ जीव पुनः संसार में नहीं आता है ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

यतः स्थानात् ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस स्थान से ॥२५॥

मैत्रेय उवाच

**इयर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् । बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥२६॥**

**अन्वयः**— इत्यर्चितः स भगवान्, आत्मनः पदम् अतिदिश्य बालस्य पश्यतः गरुडध्वजः स्वं धाम अगात् ॥२६॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— बालक ध्रुव से पूजित होकर श्रीभगवान् और उसे अपना लोक प्रदान करके उनके देखते ही देखते अपने लोक में चले गये ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

अतिदिश्य दत्त्वा ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

अतिदिश्य पद का अर्थ है देकर ॥२६॥

**सोऽपि सङ्कल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् । प्राप्य सङ्कल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— विष्णोः पादसेवोपसादितम् सङ्कल्पजं सङ्कल्प निर्वाणं प्राप्त नातिप्रीतः पुरमभ्यगात् ॥२७॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के चरणों की सेवा से सङ्कल्पित वस्तु के प्राप्त हो जाने के कारण यद्यपि ध्रुवजी का सङ्कल्प तो पूरा हो गया किन्तु उनका मन विशेष प्रसन्न नहीं हुआ । उसके पश्चात् वे अपने नगर को लौट गये ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

सङ्कल्पजं मनोरथम् । पादसेवया प्रापितम् । संकल्पस्य निर्वाणं समाप्तिर्यस्मात् ।।२७।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् की सेवा से ध्रुवजी का मनोरथ प्राप्त हो गया । उससे उनके सङ्कल्प की पूर्ति भी हो गयी ।।२७।।

विदुर उवाच

**सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्जितम् ।**
**लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ।।२८।।**

**अन्वयः**— मायाविनः हरेः यत् सुदुर्लभं परमं पदम् तच्चरणार्चनार्जितम् एक जन्मना लब्ध्वा, अर्थवित् कथम् असिद्धार्थमिव आत्मानम् अमन्यत ?।।२८।।

**अनुवाद**— मायापति श्रीभगवान् का अत्यन्त दुर्लभ परम पद है, जो श्रीभगवान् के चरणों की अर्चना से ही प्राप्त हुआ था उसको एक ही जन्म में प्राप्त करके सारा सार विवेक सम्पन्न ध्रुवजी अपने को अकृतार्थ क्यो समझें।।२८।।

**भावार्थ दीपिका**

मायाविनः सकामस्य यत्सुदुर्लभं हरेः पदं तदेकेनैव जन्मना लब्ध्वापि स्वमात्मानं मनोऽसिद्धार्थमप्राप्तमनोरथमिव कथममन्यत । पुरुषार्थविदपि ।।२८।।

**भाव प्रकाशिका**

कामना युक्त तथा मायावी को श्रीहरि कापद जो सुदुर्लभ है उसे एक ही जन्म में प्राप्त करके भी अपने मनोरथ के समान पुरुषार्थ के ज्ञाता ध्रुव क्यों मानें ?।।२८।।

मैत्रेय उवाच

**मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान्स्मरन् । नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ।।२९।।**

**अन्वयः**— मातुः सपत्या वाग्बाणैः हृदि विद्धस्तुः तान् स्मरन् मुक्तिपतेः मुक्तिम ऐच्छत् तस्मात् तापम् उपेयिवान्।।२९।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— अपने सौतेली माँ के दुरुक्ति रूपी वाग्बाणों से विद्ध हृदय वाले ध्रुवजी उन बातों का स्मरण करते रहने के कारण श्रीभगवान् से मुक्ति नहीं माँगे जब भगवान् के दर्शन से उनका मनो मालिन्य दूर हो गया तो उन्हें इस भूल के लिए पश्चाताप हुआ ।।२९।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।।२९।।

ध्रुव उवाच

**समाधिना नैकभवेन यत्पदं विदुः सुनन्दादय ऊर्ध्वरेतसः ।**
**मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ।।३०।।**

**अन्वयः**— सनन्दादयः ऊर्ध्वरेतसः अनेक भवेन समाधिना यत् पदं विदुः, तत् षड्भिः मासैः अहं अमुष्यपादयोः छायाम् उपेत्य पृथङ्मतिः अपगतः ।

**ध्रुवजी ने कहा**

**अनुवाद**— सनन्द आदि ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक, ब्रह्मचारी) सिद्ध भी अनेक जन्मों की समाधि के द्वारा जिसको प्राप्त कर सके मैंने श्रीभगवान् के चरणों की छत्रछाया को छह मासों में ही प्राप्त कर लिया फिर भी चित्त की दूसरी वासना के कारण मैं उनसे दूर हो गया ।।३०।।

### भावार्थ दीपिका

तापमेवाह–समाधिनेति सार्धैः षड्भिः । नैके अनेके भवा यस्मिन् । बहुजन्माभ्यस्तेनेत्यर्थः । प्रणामस्तुत्यादिसमये गरुडाधिरूढस्य हरेः । पादच्छायायां स्थित मात्मानं ह्यरन्नाह–छायामुपेत्येति । पृथङ्भतिर्भेददृष्टिः सन् । हा कष्टमिति भावः ।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

अपने मन के संताप का ही साढे छह श्लोकों में वर्णन करते हैं । अनेक जन्मों तक समाधि का अभ्यास करके सनन्दन आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण जिसे प्राप्त किए उस श्रीभगवान् के चरणों की छाया को मैंने छह मासों में ही प्राप्त कर लिया । प्रणाम करते समय तथा स्तुति करते समय गरुड़ पर बैठे हुए श्रीभगवान् के चरणों की छाया ध्रुव जी पर पड़ती थी । फिर भी भेद दृष्टि के कारण मैं उनसे अलग हो गया यह बड़े ही कष्ट की बात है ।।३०।।

**अहो बत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत । भवच्छिदः पादमूलं नत्वाऽयाचे यदन्तवत् ।।३१।।**

**अन्वयः**— अहोमम मन्दभाग्यस्य अनात्म्यं पश्यत यत् भवच्छिदः पादमूलं नत्वा अन्तवत् ययाचे ।।३१।।

**अनुवाद**— मन्दभाग्य मेरी मूर्खता को तो देखो कि मुक्ति को प्रदान करने वाले श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम करके भी मैंने विनाश शील पदार्थ को माँगा ।।३१।।

### भावार्थ दीपिका

अनात्म्यमात्मशून्यत्वमज्ञत्वम् । भवच्छेत्तुर्यदन्तवत्तत् अयाचे याचितवानस्मि ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

अनात्म्य अज्ञता को कहते हैं संसार के बन्धन को कटाने वाले श्रीभगवान् से मैंने विनाशशील पदार्थ को माँगा ।।३१।।

**मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः । यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ।।३२।।**

**अन्वयः**— पतद्भिः असहिष्णुभिः देवैः मतिः विदूषिता यः असत्तमः नारदवचः तथ्यं न अग्राहिषम् ।।३२।।

**अनुवाद**— देवताओं का पुण्य जब समाप्त हो जाता है तो उनका भी स्वर्ग से पतन हो जाता है, अतएव वे अहिष्णु हैं मेरी भगवत्प्राप्ति रूपी उच्च स्थिति को वे नहीं प्राप्त कर सके, इसीलिए उन देवताओं ने मेरी बुद्धि को दूषित कर दिया और उसके फलस्वरूप श्रीनारदजी की यथार्थ बात को दुष्ट मैं समझ नहीं सका ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

अज्ञत्वे कारणं संभावयति–मतिरिति । पतद्भिर्मदपेक्षयाधः प्राप्नुवद्भिरत एवासहनशीलैः । 'नाधुनाप्यवमानं ते' इत्यादि सत्यमपि नारदस्य वचो यो न गृहीतवानस्मि तस्य मे मतिर्विदूषिता ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

अपने अज्ञत्व में कारण की कल्पना **मतिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं ये देवता मेरी अपेक्षा नीचे ही रहते है, अतएव वे असहिष्णु हैं । श्रीनारदजी ने कहा था कि **नाधुनाप्यवमानं ते** अर्थात् इस बाल्यावस्था में तुम्हारा कोई भी अपमान नहीं है । यह उनकी बात सत्य थी फिर मैंने नारदजी की बात को नही ग्रहण किया क्योंकि देवताओं ने मेरी बुद्धि को दूषित कर दिया ।।३२।।

**दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् । तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ।।३३।।**

**अन्वयः**— द्वितीये असति अपि प्रसुप्त इव भिन्नदृक् दैवीं मायाम् उपाश्रित्य भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा अहं तप्ये ।।३३।।

**अनुवाद**— इस संसार में आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं है, फिर भी जिस तरह सोया हुआ मनुष्य अपने

से ही कल्पित सिंह आदि से डरता है, उसी तरह श्रीभगवान् की माया से मोहित होने के कारण अपने भाई उत्तम को ही अपना शत्रु समझकर उससे जलने लगा ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच-देवीमिति । प्रसुप्तः स्वप्नानिव पश्यन् द्वितीयेऽसत्यपि भ्रातैव भ्रातृव्यः शत्रुरिति दृष्ट्या हृद्रुजा हृदयशोकेन तप्ये तापमनुभवामि ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस तरह स्वप्न देखने वाला व्यक्ति अपनी ही अविद्या से कल्पित स्वाप्न सिंहदिकों से डरता है उसी तरह परमात्मा की माया से मोहित होकर अपने भाई उत्तम को ही अपना शत्रु समझकर उससे जलने लगा ॥३३॥

**मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि । प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥**
**भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥३४॥**

**अन्वयः**— दुष्प्र सादनम् जगदात्मानं तपसा प्रसाद्य गतायुषि चिकित्सेव व्यर्थं एते माया प्रार्थितम् । भायविवर्जितः अहं भवच्छिदः भवं याचे ॥३४॥

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान् को प्रसन्न करना बड़ा ही कठिन है । वे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं, उनको भी मैंने तपस्या के द्वारा प्रसन्न किया किन्तु जिस तरह जिसकी आयु समाप्त हो जाने पर चिकित्सा करना व्यर्थ हो जाता है, उसी तरह मैंने श्रीभगवान् से जो कुछ भी मांगा वह व्यर्थ है । मैं भाग्यहीन हूँ, इसीलिए मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीभगवान् से मैंने संसार ही माँगा ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच मया प्रसाद्य यत्प्रार्थितं व्यर्थमित्याह-भवच्छिदमिति ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

भवच्छिदम् इत्यादि वाक्य से ध्रुवजी यह कह रहे हैं कि श्रीभगवान् से मैंने जो कुछ भी माँगा वह व्यर्थ ही है॥३४॥

**स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत । ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥३५॥**

**अन्वयः**— स्वाराज्यं प्रयच्छत क्षीणपुण्येन बत ईश्वरात् फलीकारान् अधनः इव मानो भिक्षितः ॥३५॥

**अनुवाद**— निजानन्द प्रदान करने वाले परमात्मा से मैंने उसी तरह से मान की याचना की जिस तरह कोई निर्धन प्रसन्न हुए किसी चक्रवर्ती से भूसी सहित चावल के कणों की मांग करे ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

एतदेव सदृष्टान्तमाह । स्वाराज्यं निजानन्दं प्रयच्छतः सकाशादभिमानः क्षीणपुण्येन मया भिक्षितो याचितः । क्षीणेन पुण्येनेति वा दृष्टान्त एव संबन्धः । यथाऽधन ईश्वराच्चक्रवर्तिनः फलीकारान् सतुषतण्डुलकणान् याचते तद्वत् ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त बात को ही दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं निजानन्द प्रदान करने वाले परमात्मा से मैं मान की भिक्षा उसी तरह से माँगी जिस तरह कोई दरिद्र व्यक्ति किसी प्रसन्न हुए चक्रवर्ती राजा से भूसी रहित अन्न की मांग करें ॥३५॥

मैत्रेय उवाच

**न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ।**
**वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनः समृद्धयः ॥३६॥**

**अन्वयः**— हे तात भवादृशाजनाः मुकुन्दस्य पादारविन्दयोः रजोजुषः यदृच्छया लब्धमनः समृद्धयः तद् दास्यम् ऋते आत्मनोऽर्थम् न वाञ्छन्ति ॥३६॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे तात ! आप जैसे लोग जो श्रीभगवान् के चरण कमल के पराग के ही मधुकर हैं, अर्थात् श्रीभगवान् के चरण रज का ही सेवन करते हैं । उनका मन, अपने आप प्राप्त सभी परिस्थितियों में सन्तुष्ट रहता है और व भगवान् की दासता के अतिरिक्त अपने लिए कुछ भी नहीं प्राप्त करना चाहते हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं निस्पृहत्वं तस्य युक्तमित्याह । तस्य दास्यं विनाऽन्यमर्थमात्मनो नैव वाञ्छन्ति । यदृच्छयैव लब्धेन मनसः समृद्धिर्येषां ते ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार की निस्पृहता का होना ध्रुवजी के लिए उचित ही है, इस बात को बतलाते हुए मैत्रेयजी ने कहा भगवद् भक्त उनकी दासता के अतिरिक्त अपने लिए श्रीभगवान् से कुछ भी नहीं चाहते हैं । अपने आप प्राप्त वस्तुओं से ही उनका मन सदा प्रसन्न बना रहता है ॥३६॥

**आकर्ण्यात्मजमायान्तं संपरेत्य यथागतम् । राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥३७॥**

**अन्वयः**— आयान्तम् आत्मजम् आकर्ण्य राजा सम्परेत्य आगतम् यथा न श्रद्दधे, अभद्रस्य मम भद्रम् कुतः ॥३७॥

**अनुवाद**— राजा उत्तानपद ने जब यह सुना कि उनका पुत्र ध्रुव आ रहा है तो उनको इस बात पर उसी तरह विश्वास नहीं हुआ जैसे कोई किसी के यमलोक से लौटने की बात कहे । उन्होंने सोचा मुझ जैसे अभागे का इस प्रकार का भोग्य कहाँ से होगा ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रस्तुतमाह-आकर्ण्येति । संपरेत्य मृत्वा आगतमाकर्ण्य यथा तथा न श्रद्दधे विश्वासं न चकार । अभद्रस्य मम भद्रं कुत इति मत्वा ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में प्रस्तुत प्रसङ्ग को बतलाते हुए मैत्रेयजी ने कहा राजा ने जब यह सुना कि उनका पुत्र लौट कर आ रहा है तो उनको उस बात पर उसी तरह विश्वास नहीं हुआ जिस तरह कोई किसी के यमलोक से लौटकर आने की बात पर विश्वास नहीं करता है । वे सोच रहे थे कि मुझ अभागे का ऐसा भाग्य कैसे हो सकता है ?॥३७॥

**श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः । वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥३८॥**

**अन्वयः**— देवर्षेः वाक्यं श्रद्धाय हर्षवेगेन न धर्षित वार्ता हर्तुः महाप्रीतः महाधनम् हारम् ददौ ॥३८॥

**अनुवाद**— नारदजी की बातों पर विश्वास करके वे आनन्द के वेग से अधीर हो गये और इस समाचार को सुनाने वाले पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उसको अत्यन्त मूल्यवान हार प्रदान कर दिया ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

एष्यत्यचिरत इति देवर्षेर्वाक्यं श्रद्धाय ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

किन्तु देवर्षि ने कहा था कि ध्रुव शीघ्र ही लौटकर आ जायेंगे, इस बात को याद करके उनको उक्त समाचार पर विश्वास हो गया ॥३८॥

**सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् । ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥३९॥**
**शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः । निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥४०॥**

**अन्वयः**— कार्तस्वर परिष्कृतम् सदश्वं रथम् आरुह्य ब्राह्मणैः कुलवृद्धै च आमात्य बन्धुभिः सह शङ्खदुन्दुभिनादेन, ब्रह्मघोषेण, वेणुभिः आत्मना भीक्षणोत्सुकः तूर्णम् पुरात् निश्चक्राम ॥३९-४०॥

**अनुवाद**— राजा उत्तानपाद सुवर्ण जटित और अच्छे घोड़े से युक्त रथ पर बैठकर, ब्राह्मणै, कुल के वृद्ध पुरुषों, अपने मन्त्रियों, बान्धवों के साथ शङ्ख और दुन्दुभी का घोष वेद घोष तथा वीणा के घोष के साथ अपने पुत्र को देखने के लिए उत्सुक होकर शीघ्र ही अपने नगर से बाहर आ गये ॥३९-४०॥

### भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणादिभिः पर्यस्तः परिवृतः ॥३९-४०॥

### भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों आदि से घिरे हुए राजानगर से बाहर आये ॥३९-४०॥

**सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते । आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥४१॥**

**अन्वयः**— अस्य सुनीतिः सुरुचिः च महिष्यौ रुक्भूषिते शिविकाम् आरुह्य उत्तमेन सार्धम् अभिजग्मतुः ॥४१॥

**अनुवाद**— राजा की सुनीति और सुरुचि दोनों रानियाँ बीच में उत्तम को बैठाकर उसके साथ एक ही पालकी पर बैठकर गयीं ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

अस्य राज्ञो महिष्यौ मध्ये उत्तमं निधाय । एकामेव शिबिकां नरविमानमारुह्य ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

राजा उत्तानपाद की दोनों रानियाँ बीच में उत्तम को बैठाकर एक ही पालकी पर बैठकर गयीं ॥४१॥

**तं दृष्टोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात् । अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥४२॥**
**परिरेभेऽङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् । विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् ॥४३॥**

**अन्वयः**— उपवनाभ्याशे आयान्ततं दृष्ट्वा नृपः तरसा रथात् अवरुह्य प्रेमविह्वलः तूर्णम् आसाद्य, दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् अङ्गजम् दोर्भ्याम् परिरेभे ॥४२-४३॥

**अनुवाद**— उपवन के सन्निकट में ध्रुवजी को आते हुए देखकर राजा शीघ्रतस से अपने रथ से उत्तर कर प्रेम से विह्वल बने हुए शीघ्र ही आगे बढ़कर दीर्घ काल से उत्कण्ठित मन वाले राजा लम्बी श्वास लेते हुए श्रीभगवान् के चरणों के संस्पर्श से जिनके सारे पाप रूपी बन्धन विनष्ट हो गये थे ऐसे अपने पुत्र ध्रुवजी को उन्होने अपनी दोनों भुजाओं में भरकर अपने हृदय से लगा लिया ॥४२-४३॥

**भावार्थ दीपिका**

उप वनस्याभ्याशे समीपे । विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शेन हतमशेषमघं बन्धनं च यस्य ।।४२-४३।।

**भाव प्रकाशिका**

**उपवनाभ्याशे** का अर्थ है उपवन के सन्निकट में **हताशेषाघबन्धनम्** का अर्थ है जिनके सारे पाप और बन्धन विनष्ट हो गये थे ।।४२-४३।।

**अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः । स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ।।४४।।**

**अन्वयः**— अथ जातोद्दाममनोरथः मुहुःमूर्ध्नि आजिघ्रन् शीतैः नयन वारिभिः, तनयं स्नापयामास ।।४४।।

**अनुवाद**— राजा उत्तानपाद का बहुत बड़ा मनोरथ पूरा हो गया था, उन्होंने अपने पुत्र का शिर सूंघा और प्रेम जन्य शीतल आसुओं के जल से उन्होंने ध्रुव को नहला दिया ।।४४।।

**भावार्थ दीपिका**

जात उद्दामो महान्मनोरथो यस्य ।।४४।।

**भाव प्रकाशिका**

राजा उत्तानपाद का बहुत बड़ा मनोरथ पूर्ण हो गया ।।४४।।

**अभिवन्द्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः । ननाम मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ।।४५।।**

**अन्वयः**— सज्जनाग्रणीः पितुः पादौ अभिवद्य आशीर्भिश्चाभि मन्त्रितः सत्कृतः शीर्ष्णा मातरौ ननाम ।।४५।।

**अनुवाद**— सज्जनों में अग्रगण्य ध्रुवजी ने अपने पिता के चरणों में नमस्कार किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर कुशल प्रश्न से समादृत उन्होंने अपनी दोनों माताओं को प्रणाम किया ।।४५।।

**भावार्थ दीपिका**

अभिमत्रितः पितुराशीर्भिः सह तेन कृतसंभाषणः ।।४५।।

**भाव प्रकाशिका**

अभिमन्त्रितः का अर्थ है, पिता के आशीर्वाद के साथ-साथ उनके साथ वर्तालाप करके ।।४५।।

**सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् । परिष्वज्याह जीवेति वाष्पगद्गदयागिरा ।।४६।।**

**अन्वयः**— सुरुचिः पादावनतमर्भकम् तम् समुत्थाप्य परिष्वज्य वाष्पगद्गदया गिरा जीवेति आह ।।४६।।

**अनुवाद**— अपने चरणों पर झुके हुए उस बालक ध्रुवजी को उठाकर सुरुचि ने उनका आलिङ्गन किया और गद्गद वाणी से कहा चिरंजीवी होओ ।।४६।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।४६।।

**यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः । तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ।।४७।।**

**अन्वयः**— यस्य मैत्र्यादिभिः गुणैः भगवान् हरिः प्रसन्नः तस्मै, निम्नम् आप इव भूतानि स्वयं नमन्ति ।।४७।।

**अनुवाद**— जिसके मैत्री आदि गुणों के कारण ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं, उसके समक्ष सभी जीव उसी तरह से झुक जाते हैं जैसे— जल स्वयं नीचे की ओर प्रवाहित होने लगता है ।।४७।।

**भावार्थ दीपिका**

सुरुच्याः प्रीतिनीसंभावितेत्याह-यस्येति । नमन्त्यनुसरन्ति । आपो यथा स्वयमेव निम्नं देशमवतरन्ति ।।४७।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि सुरुचि का ध्रुवजी पर प्रेम आसंभावित नहीं है। नमन्ति पद का का अर्थ है अनुसरण करते हैं जैसे जल स्वाभाविक रूप से नीचे की ओर प्रवाहित होता हैं ॥४७॥

**उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योन्यं प्रेमविह्वलौ । अङ्गसङ्गादुत्पुलकावस्त्रौघं मुहुरूहतुः ॥४८॥**

**अन्वयः**— प्रेम विह्वलौ उत्तमः च ध्रुवश्च उभौ अङ्गसङ्गात् उत्पुलकौ मुहुः अस्त्रौघं ऊहतुः ॥४८॥

**अनुवाद**— प्रेम में विह्वल हुए उत्तम और ध्रुव दोनों एक दूसरे से मिले। उसके कारण उन दोनों के शरीर में रोमाञ्च हो आया और दोनों ने बार-बार प्रेमाश्रु बहाया ॥४८॥

**भावार्थ दीपिका**

ऊहतुर्दधतुः ॥४८॥

**भाव प्रकाशिका**

ऊहतुः का अर्थ है धारण किया ॥४८॥

**सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् । उपगुह्य जहावाधिं तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥४९॥**

**अन्वयः**— अस्य जननी सुनीतिः प्राणेभ्य अपिप्रियं सुतम् उपगुह्य, तदङ्गस्पर्शनिवृता आधिं जहौ ॥४९॥

**अनुवाद**— ध्रुव की माता सुनीति प्राणों से भी प्रिय अपने पुत्र को अपने गले से लगाकर अपनी सारी मनोव्यथा को भूल गयीं और ध्रुवजी के अङ्गों के संस्पर्श से उन्हें बहुत आनन्द की प्राप्ति हुई ॥४९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥४९॥

**पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः । तदाभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ॥५०॥**

**अन्वयः**— हे वीर ! वीरसुवः नैत्रजैः सलिलैः शिवः अभिषिच्यमानाभ्यां स्तनाभ्यां पयः सुस्राव ॥५०॥

**अनुवाद**— हे वीर विदुरजी वीर माता सुनीति के नेत्रों से बहने वाले मङ्गलमय जल से भिंगे हुए स्तनों से दूध प्रवाहित होने लगा ॥५०॥

**भावार्थ दीपिका**

हे वीर, वीरसुवो ध्रुवमातुः । अभिषिच्यमानाभ्यां पयस्तदा सुस्राव ॥५०॥

**भाव प्रकाशिका**

हे वीर विदुर ! वीर माता सुनीति के आँसुओं से भिंगे हुए स्तनों से उस समय दुग्ध प्रवाहित होने लगा॥५०॥

**तां शशंसुर्जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा । प्रतिलब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं भुवः ॥५१॥**

**अन्वयः**— जनाः तां राज्ञीं शशंसुः दिष्ट्याते चिरं नष्टः ते पुत्रः प्रतिलब्धः आर्तिहा भुवः मण्डलं रक्षिता ॥५१॥

**अनुवाद**— सुनीति की प्रशंसा करते हुए लोगों ने कहा महारानीजी आपका यह पुत्र बहुत दिनों से खोया हुआ था। भाग्यवशात् लौट आया है। यह सबों का कष्ट दूर करने वाला यह भूमण्डल की रक्षा करेगा ॥५१॥

**भावार्थ दीपिका**

चिरं नष्टो दर्शनमप्राप्तः । रक्षिता रक्षिष्यति ॥५२॥

**भाव प्रकाशिका**

चिरंनष्टः अर्थात् बहुत दिनों से गायब हो गया था। यह पृथिवी की रक्षा करेगा ॥५१॥

**अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्तिहा । यदनुध्यायिनो वीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥५२॥**

**अन्वयः**— नूनं त्वया प्रणतार्तिहा भगवान् अभ्यर्चितः यदनुध्यायिन धीराः सुदुर्जयम् मृत्युं जिग्युः ॥५२॥

**अनुवाद**— आपने निश्चित रूप से शरणागत जीवों के कष्ट विनाशक श्रीभगवान् की पूजा की है । उनका ही निरन्तर ध्यान करने वाले वीर पुरुष दुर्जय मृत्यु को भी जीत लेते हैं ॥५२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥५२॥

**लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः । आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥५३॥**

**अन्वयः**— एवं जनै लाल्यमानं ध्रुवं सभ्रातरं करिणीम् आरोप्य स्तूयमानः हृष्टःनृपः पुरम् आविशत् ॥५३॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से जब लोग ध्रुव के प्रति स्नेह प्रकट कर रहे थे उसी समय राजा उनके भाई उत्तम के साथ ध्रुवजी को हथिनी पर बैठाकर प्रसन्नता पूर्वक अपने नगर में प्रवेश किए ॥५३॥

**भावार्थ दीपिका**

एवमिति व्यवहितं पित्राद्युपलालनं परामृश्यते ॥५३॥

**भाव प्रकाशिका**

एवम्इस पद के द्वारा यह सूचित किया गया है कि ध्रुवजी दूर थे और उनके पिता इत्यादि उनके प्रति प्रेमाभिव्यक्ति कर रहे थे ॥५३॥

**तत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः । सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥५४॥**
**चूतपल्लववासःस्रङ्भुक्तादामविलम्बिभिः । उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥**

**अन्वयः**— तत्र तत्र उपसंक्लप्तैः लसन् मकर तोरणै सवृन्दैः कदली स्तम्भैः पूगोपेतैश्च तद्विधै चूतपल्ल्ववासः स्रङ्मुक्तादाम विलम्बिभिः प्रतिद्वारम् सदीपकैः अपरं कुम्भैः उपस्कृतम् पुरम् अविशत् ॥५४-५५॥

**अनुवाद**— उसनगर में स्थान-स्थान पर मगर के आकार के दरवाजे बनाये गये थे फल-फूल के गुच्छो के साथ केले के स्तम्भ लगाये गये थे और सुपारी के पौधे लगाये गये थे । प्रत्येक द्वार पर जल भरे कलश दीपक के साथ रखे गये थे, जो आम के पत्तो, वस्त्रों पुष्प मालाओं तथा मोती की लड़ियों से सजाये गये थे, ऐसे नगर में राजा प्रवेश किए ॥५४-५५॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरं वर्णयति-तत्र तत्रेति चतुर्भिः । सवृन्दैः फलमञ्जरीयुक्तैः । पूगानां पोतैर्बालवृक्षैस्तद्विधैः । सवृन्दैरूपस्कृतं प्रतिद्वारमित्युत्तरेणान्वयः । चूतपल्लवाश्च वासांसिच स्रजश्च मुक्तादामानि च तेषां विशिष्टं लम्बनमस्ति येषु कुम्भेषु ॥५४-५५॥

**भाव प्रकाशिका**

तत्र तत्र इत्यादि चार श्लोकों से नगर का वर्णन किया गया है । सवृन्दैः अर्थात् फल एवं मञ्जरी के साथ उसी के समान सुपारी के पौधों से फलमञ्जरी से अलंकृत प्रत्येक द्वार वाले नगर में । इसका आगे के श्लोक से अन्वय है । आम के पत्ते, वस्त्र, मालाएँ मोती की लड़ियाँ ये उन कुम्भों पर विशेष रूप से लटके थे॥५४-५५॥

**प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः । सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥५६॥**

**अन्वयः**— शातकुम्भ परिच्छदै प्राकारैः गोपुरागारैः श्रीमद्विमानद्युभिः सर्वतोऽलङ्कृतम् पुरम् आविशत् ।

**अनुवाद**— जिन परकोटों, फाटकों और महलों से नगर सुशोभित था उन सबों को सुवर्ण की सामग्रियों से सजाया गया था । उनके कंगूरे विमानों के समान चमक रहे थे ॥५६॥

**भावार्थ दीपिका**

गोपुरैरगारैश्च । शातकुम्भाः परिच्छन्दाः परिकरा येषु । विमानानामिव शिखरैर्द्युतिर्येषाम् ।।५६।।

**भाव प्रकाशिका**

गोपुरों और महलों से सुसजित था वह नगर और वे सुवर्ण की सामग्रियों से सजाये गये थे । उन सबों के कंगूरे विमानों के समान चगकते थे ।।५६।।

**मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् । लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ।।५७।।**

**अन्वयः**— मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् लाजाक्षतैः पुष्पफलैः, तण्डुलैः बलिभि युतम् पुरमाविशत् ।।५७।।

**अनुवाद**— साफ किए गये चौक, गलियों, अटारियों और मार्गों पर चन्दन का छिड़काव किया गया था और स्थान-स्थान पर लावा चावल पुष्प, फल यव एवं दूसरी माङ्गलिक उपहार सामग्रियाँ रखी गयी थीं ।।५७।।

**भावार्थ दीपिका**

चत्वरमङ्गनम् । रथ्या महामार्गः । अट्ट उच्चस्योपरि निर्मिता भूमिका । मार्गोऽवान्तरः । मृष्टाः संमार्जिताश्चत्वरादयो यस्मिन् ।।५७।।

**भाव प्रकाशिका**

चत्वर अर्थात् चौक, रथ्या अर्थात् सड़क, अट्ट-परकोटे पर बनी हुई भूमिका, मार्ग-गलियाँ, मृष्ट अर्थात् साफ किये गये ।।५७।।

**ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः । सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ।।५८।।**
**उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः । शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ।।५९।।**

**अन्वयः**— ध्रुवाय दृष्टायपथि तत्र-तत्र पुरस्त्रियः सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च उपजह्रुः वात्सल्यात् अशिषः प्रयुञ्जानाः सतीः तद्वल्गुगीतानि श्रृण्वन् पितुः भवनं प्राविशत् ।।५८-५९।।

**अनुवाद**— राज मार्ग से जाते हुए ध्रुवजी को देखने के लिए जहाँ-तहाँ नगर की नारियाँ एकत्रित होकर वत्सल्य भाव से उनको आशीर्वाद देती थीं ओर उन पर सफेद सरसो, अक्षत, दही, जल, दूर्वा, पुष्प और फलों की वर्षा कर रही थीं, उन सबों के मनोहरगीत को सुनते हुए ध्रुवजी अपने पिता के भवन में प्रवेश किए ।।५८-५९।।

**भावार्थ दीपिका**

सिद्धार्थः श्वेतसर्षपः । अक्षता यवाः । उपजह्रुर्व्यकिरन् सतीः सत्यः ।।५८-५९।।

**भाव प्रकाशिका**

सिद्धार्थ शब्द श्वेत सरसो का नाम हैं । अक्षत शब्द से यव को कहा गया है । उपजह्रुः का अर्थ है गिरायी सतीः पद का अर्थ शीलवती ।।५८-५९।।

**महामणिव्रातमये स तस्मिनन्भवनोत्तमे । लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ।।६०।।**

**अन्वयः**— महामणि व्रातमये तस्मिन् उत्तमे भवने पित्रा नितराम् लालितः दिवि देववत न्यवसत् ।।६०।।

**अनुवाद**— महामूल्यवान मणियों से सुसज्जित उत्तम भवन में ध्रुव अपने पिता के स्नेह का अनुभव करते हुए उसी तरह रहने लगे जिस तरह स्वर्ग में देवता रहते हैं ।।६०।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।६०।।

**पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः । आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥६१॥**

**अन्वयः**— यत्र पयः फेननिभाः शय्याः दान्ताः रुक्मपरिच्छदाः महार्हाणि आसनानि रौक्माः उपस्कराः ॥६१॥

**अनुवाद**— उस भवन में दूध के फेन के समान श्वेत शय्यायें, हाथी दाँत के बने पलङ्ग, सुनहरे परदा, अत्यन्त मूल्यवान् आसन और सुवर्ण की समग्री थी ॥६१॥

**भावार्थ दीपिका**

यत्र भवनोत्तमे ॥६१॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस उत्तम भवन में ॥६१॥

**यत्र स्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च । मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥६२॥**

**अन्वयः**— यत्र स्फटिककूडयेषु महाभारकतेषु च ललनारत्न संयुताः मणिप्रदीपाः आभान्ति ॥६२॥

**अनुवाद**— जिस उत्तम भवन में स्फुटिक मणि तथा महामरकत मणि की दिवारों में रत्नों की बनी हुई नारियों की मूर्ति पर दीपक जल रहे थे ॥६२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥६२॥

**उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः । कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥६३॥**

**अन्वयः**— विचित्रैः अमरद्रुमै; कूजद् विहंग मिथुनैः गायन् मधुव्रतैः रम्याणि उद्यानानि आसनानितिशेषः ॥६३॥

**अनुवाद**— उस उत्तम भवन में अद्भुत देववृक्षों, नर एवं मादा पक्षियों के कलरव और भ्रमरों के गुञ्जन से सुशोभित मनोहर अनेक उद्यान थे ॥६३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥६३॥

**वाप्यो वैडूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः । हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥६४॥**

**अन्वयः**— पद्मोत्पल कुमुद्वतीः हंसकारण्डवकुलैः चक्राह्वसारसैः वैडूर्यसोपानाः वाप्यः आसन् ॥६४॥

**अनुवाद**— कमल, नीलकमल और कुमुदनी से युक्त, जिसमें वावलियाँ थीं । उनके घाट वैदूर्यमणि के बने थे । उनमें हंसों कारण्डवों, चक्रवाकों तथा सारसों का समूह क्रीड़ा करता था ॥६४॥

**भावार्थ दीपिका**

कुमुत् कुमुदम् । पद्मादिमत्यो वाप्यः ॥६४॥

**भाव प्रकाशिका**

कुमुद कुमुद् पुष्प का नाम है । कमल आदि से सुशोभित वावलियाँ उस भवन में थीं ॥६४॥

**उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् । श्रुत्वा दृष्ट्वाऽद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥६५॥**

**अन्वयः**— राजर्षिः उत्तानपादः तनयस्य तम् अद्भुततमं प्रभावं दृष्ट्वा श्रुत्वा परमं विस्मयं प्रपेदे ॥६५॥

**अनुवाद**— राजर्षि उत्तानपाद अपने पुत्र के अद्भुत प्रभाव को देखकर तथा सुनकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए।॥६५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥६५॥

**वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च संमतम् । अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ।।६६।।**

**अन्वयः**— तं ऊढवयसं प्रकृतीनां संमतम्, अनुरक्तप्रजम्, वीक्ष्य राजा ध्रुवम् भुवः पतिम् चक्रे ।।६६।।

**अनुवाद**— ध्रुव को युवावस्था प्राप्त, आमात्य वर्ग को सम्मत तथा प्रजाओं के अनुराग के पात्र देखकर राजा ने ध्रुव को सम्पूर्ण भूण्डल के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया ।।६६।।

**भावार्थ दीपिका**

ऊढवयसं प्राप्तयौवनम् । अनुरक्ताः प्रजा यस्मिन् ।।६६।।

**भाव प्रकाशिका**

ऊढवयस शब्द का अर्थ युवावस्था प्राप्त है। अनुरक्त प्रजम् का अर्थ है, जिन पर प्रजाओं का अनुराग था।।६६।।

**आत्मनं च प्रवयसमाकलय्य विशांपतिः । वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ।।६७।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे नवमोऽध्यायः ।।९।।

**अन्वयः**— विशाम्पतिः आत्मानं प्रवयसं आकलय्य आत्मनः गतिम् विमृशन् विरक्तः वनं प्रातिष्ठत् ।।६७।।

**अनुवाद**— राजा अपनी वृद्धावस्था आयी हुई जानकर आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए संसार से विरक्त होकर वन में चले गये ।।६७।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के नवें अध्याय की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।**

**भावार्थ दीपिका**

प्रवयसं वृद्धम् ।।६७।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।**

**भाव प्रकाशिका**

प्रवयस शब्द का अर्थ वृद्ध है ।।६७।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के नवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९।।**

# दसवाँ अध्याय

## उत्तम का मारा जाना और ध्रुव का यक्षों के साथ युद्ध

मैत्रेय उवाच

**प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः । उपयेमेभ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥१॥**

**अन्वयः**— ध्रुवो वैशिशुमारस्य प्रजापतेः भ्रमिं नाम दुहितरं उपयेमे, तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥१॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— ध्रुवजी ने शिशुमार प्रजापति की भ्रमि नामक पुत्री के साथ विवाह किया और उसके दो पुत्र हुए कल्प और वत्सर ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

दशमे भ्रातृहन्तॄणां यक्षाणामकरोद्वधम् । एक एवालकां गत्वेत्यस्य विक्रम उच्यते ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

दशवें अध्याय में अपने भाई उत्तम को मारने वाले यक्षों का वध ध्रुवजी ने अकेले अलकापुरी में जाकर किया इस तरह से ध्रुवजी के पराक्रम का वर्णन है ॥१॥

**इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः । पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥२॥**

**अन्वयः**— महाबलः वायोः पुत्र्याम् इलायाम् अपि उत्कलनामानंपुत्रम् योषिद्रत्नम् अजीजनत् ॥२॥

**अनुवाद**— महाबलवान् ध्रुवजी की दूसरी पत्नी वायु की पुत्री इला थी उसके गर्भ से उन्होंने उल्कल नामक पुत्र और एक पुत्री रत्न को उत्पन्न किया ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

योषितां रत्नमिवातिमनोहरम् । कन्यारत्नं चेति वा ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

योषिद्रत्नम् पदका अर्थ स्त्रियों में रत्न के समान सुन्दर अथवा कन्या रत्न को उत्पन्न किया ॥२॥

**उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा । हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्य गतिं गता ॥३॥**

**अन्वयः**— अकृतोदवाहः उत्तमः मृगयायां वलीयसा पुण्यजनेन अद्रौ हतः तन्माता अस्यगतिं गता ॥३॥

**अनुवाद**— उत्तम विना व्याह किए ही आखेट के प्रसङ्ग में बलवान् यक्ष के द्वारा पर्वत पर मारा गया उसके साथ ही उत्तम की माता भी स्वर्ग चली गयी ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

यक्षेणाद्रौ हिमवति हतः । आजाविति पाठे युद्धे । अस्य गतिं गता मृतेत्यर्थः ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

उत्तम को मृगया के प्रसङ्ग में किसी बलवान यक्ष ने हिमालय पर्वत पर मार दिया और उसकी माता भी मर गयी । जहाँ आजौ पाठ है वहाँ पर अर्थ युद्ध में होगा ॥३॥

**ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचार्पितः । जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥४॥**

**अन्वयः**— भ्रातृवधं श्रुत्वाध्रुवः कोपामर्ष शुचार्पितः जैत्रं स्यन्दनम् आस्थाय पुण्य जनालयम् गतः ॥४॥

**अनुवाद**— ध्रुवजी ने जब अपने भाई के मारे जाने का समाचार सुना तो वे क्रोध शोक और उद्वेग से भरकर अपने विजय रथ पर बैठकर वे यक्षों के नगर में पहुँच गये ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

कोपामर्षशुचां द्वन्द्वैक्यम् । तेनार्पितो व्याप्तः । जैत्रं जयहेतुम् । पुण्यजनालयमलकाम् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

कोप, आमर्ष और शोक इनमें द्वन्द समास होने के कारण एकवद्भाव हुआ है । वे इन तीनो से व्याप्त हो गये । जैत्र शब्द का अर्थ है विजयप्राप्ति के साधन भूत । पुण्यजनालयम् अर्थात् अलकापुरी ॥४॥

**गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रा रुद्रानुचरसेविताम् । ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥५॥**

**अन्वयः**— उदीचीं दिशं गत्वा राजा हिमवद् द्रोण्यां रुद्रानुचर सेविताम् गुह्यक संकुलाम् पुरीं ददर्श ॥५॥

**अनुवाद**— उत्तर दिशा में जाकर राजा ध्रुव ने हिमालय पर्वत की घाटी में यक्षों से भरी हुई तथा रुद्र के अनुचरों से सेवित नगरी को देखा ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

रुद्रानुचरा भूतादयः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

रुद्रानुचर शब्द से भूतों प्रेतों पिशाचों आदि को कहा गया है ॥५॥

**दध्मौ शङ्खं बृहद्बाहुः खं दिशश्चानुनादयन् । येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥६॥**

**अन्वयः**— बृहदबाहुः खं दिशः च अनुनादयन् शङ्खं दध्मौ । हे क्षत; येन उद्विग्नदृशः देव्यः भृशम् अत्रसन् ॥६॥

**अनुवाद**— महाबाहु ध्रुव ने आकाश तथा दिशाओं को ध्वनित करते हुए अपने शङ्ख को बजाया । उसके कारण हे विदुर ! यक्षों की पत्नियाँ अत्यन्त भयभीत हो गयीं ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

दध्मौ वादितवान् । येन शङ्खवादनेन । हे क्षत्तः । उपदेव्यो यक्षस्त्रियः ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

दध्मौ पद का अर्थ है बजाया । हे विदुर उस शङ्खध्वनि से यक्षों की पत्नियाँ अत्यधिक डर गयीं ॥६॥

**ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः । असहन्तस्तन्निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥७॥**

**अन्वयः**— ततः बलिनः महाभटाः उपदेवाः निष्क्रम्य तन्निनादम् असहन्तः उदायुधः अभिपेतुः ॥७॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् महाबलवान् यक्ष वीर का वह शङ्ख ध्वनि सहन नहीं हुई और आयुध धारण किए हुए वे सब नगर से बाहर आये और ध्रुवजी पर टूट पड़े ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥७॥

**स तानापततो वीर उग्रधन्वा महारथः । एकैकं युगपत्सर्वानहन्बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥८॥**

**अन्वयः**— सः उग्रधन्वा महारथः वीरः तान् आपततो युगपत् एकैकं सर्वान् त्रिभिः त्रिभिः बाणैः अहन् ॥८॥

**अनुवाद**— महारथी वीर ध्रुवजी प्रचण्ड धनुर्धर थे, उन्होंने एक ही साथ सबों में से प्रत्येक को तीन-तीन बाण मारे ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

एकैकं त्रिभिस्त्रिभिरित्येवं सर्वास्त्रयोदशायुतानि यक्षान्युगपदहन् जघान ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रत्येक को तीन-तीन बाण मारे । सभी तेरह अयुत (१३,००००) यक्षवीरों को एक ही समय में मारे ॥८॥

**ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि । मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥९॥**

**अन्वयः**— ते सर्वएव हि ललाटलग्नैस्तै इषुभिः आत्मानं निरस्तं मत्त्वा तस्य तत् कर्म आशंसन् ॥९॥

**अनुवाद**— उन सबों ने जब अपने-अपने मस्तक में लगे हुए तीन-तीन बाणों को देखा तो उन सबों ने जान लिया कि हमलोगों की पराजय निश्चित है । वे ध्रुवजी के इस अद्भुत कर्म की प्रशंसा करने लगे ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

निरस्तं पराजितम् । तस्य ध्रुवस्य तत्कर्माशंसन् तुष्टुवुः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

निरस्त अर्थात् पराजित उन सबों ने ध्रुव के इस अद्भुत कर्म की प्रशंसा की ॥९॥

**तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः । शरैरविध्यन्युगपद्द्विगुणं प्रचिकीर्षवः ॥१०॥**

**अन्वयः**— पादस्पर्श उरगाः इव तेऽपि अमुम् अमृष्यन्तः प्रचिकीर्षवः द्विगुणं शरैः अविध्यन् ॥१०॥

**अनुवाद**— जिस तरह कोई सर्प पैरों के आघात नहीं वर्दास्त करता है, उसी तरह उन सबों ने भी एक ही समय में ध्रुवजी को छह-छह बाणों से मारा ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

तेऽपि तत्कर्मासहमाना अमुमविध्यन् । द्विगुणं यथा भवत्येवं षड्भिः षड्भिः । प्रतिकर्तुमिच्छन्तः ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

वे भी ध्रुवजी के उस कर्म को नही वर्दास्त करके उनका प्रतिकार करने के लिए एक ही समय में ध्रुवजी को छह-छह बाणों से मारा ॥१०॥

**ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः । शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥११॥**
**अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् । इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश ॥१२॥**

**अन्वयः**— ततः प्रकुपिता परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः शक्तयृष्टिभिः भुशुण्डिभिः चित्रवाजैः शरैरपि तत्प्रतिकर्तुम् इच्छन्तः अयुतानि त्रयोदश, सरथं सहसारथिम् अभ्यवर्षन् ॥११-१२॥

**अनुवाद**— यक्षों की संख्या तेरह अपुत थी (१३,००००) ध्रुवजी का बदला लेने के लिए अत्यन्त कुपित होकर रथ और सरथि के साथ उन पर परिघ खड्ग, प्रास, त्रिशूल, फरसा शक्ति ऋष्टि, भुशुण्डि तथा चित्रविचित्र पङ्खो से युक्त बाणों की वर्णा की ॥११-१२॥

### भावार्थ दीपिका

चित्रवाजैर्विचित्रपक्षैः ॥११-१२॥

### भाव प्रकाशिका

चित्रवाजैः का अर्थ है चित्र विचित्र पङ्खो वाले बाणों से ॥११-१२॥

**औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा । न उपादृश्यत च्छन्नआसारेण यथा गिरिः ॥१३॥**

**अन्वयः**— तदा भूरिणा शस्त्रवर्षेण औतानपादिः आसारेण छन्नः गिरिः यथा न उपादृश्यत ॥१३॥

**अनुवाद**— उस समय बहुत अधिक शस्त्रों की वर्षा के कारण ढँके हुए ध्रुवजी उसी तरह नहीं दिखाई देते थे जैसे— वर्षा के कारण पर्वत नहीं दिखता है ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

धारासंपातेन छन्नो गिरिरिव नैवादृश्यत ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

वर्षा की धारा के गिरने स ढँका हुआ जिस तरह पर्वत नहीं दिखाई देता है ॥१३॥

**हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् । हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥१४॥**

**अन्वयः**— तदैव दिवि पश्यताम् सिद्धानां हाहाकारः आसीत् पुण्यजनार्णवे मग्नः हतोऽयं मानवः सूर्यः ॥१४॥

**अनुवाद**— उस समय आकाश में स्थित होकर जो सिद्धगण इस दृश्य को देख रहे थे आज इस यक्ष सेना रूप सागर में डूबकर यह मानव सूर्य अस्त हो गया ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

सूर्यतुल्यः ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

यह मानव सूर्य के समान है ॥१४॥

**नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे । उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥१५॥**

**अन्वयः**— अथ मृधे जयकाशिषु यातुधनेषु नदत्सु नीहारात् भास्कर इव तस्य रथः उदतिष्ठत् ॥१५॥

**अनुवाद**— जिस समय यक्षवीर युद्ध में विजय का उत्सव मना रहे थे उसी समय ध्रुवजी का रथ उसी तरह प्रकट हो गया जिस तरह कुहरे से सूर्य प्रकट होते हैं ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

यातुधानेषु राक्षसेषु जयकाशिषु जितं जितमिति जयप्रकाशकेषु सत्सु ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस समय सभी यक्ष यह कह रहे थे कि हमलोग जित गये, जित गये उसी समय ध्रुवजी का रथ प्रकट हो गया ॥१५॥

**धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् । अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥१६॥**

**अन्वयः**— दिव्यं धनुःविस्फूर्जयन् द्विषतां खेदम् उद्वहन्, अनिलः घनानीकम् इव अस्त्रौधं बाणैः व्यधमत् ॥१६॥

**अनुवाद**— अपने दिव्य धनुष का टङ्कार करते हुए तथा शत्रुओं को खिन्न बनाते हुए ध्रुवजी ने अपने बाणों से उसी तरह से शस्त्र समूह को काट दिया जिस तरह आँधी मेघ समूह को तितर-वितर कर देती हैं ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यधमत्संचूर्णयामास ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

शत्रुओं के अस्त्रों को चूर-चूर कर दिया ॥१६॥

**तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् । कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥१७॥**

**अन्वयः**— तस्य चापनिर्मुक्ताः तिग्माः ते रक्षसाम् वर्माणि भित्त्वा शरीर अशन योयथाकायान् विविशुः ॥१७॥

**अनुवाद**— ध्रुवजी के धनुष से छूटे हुए वे तीक्ष्ण बाण राक्षसों के कवच को भेदकर उनके शरीर में उसीतरह से प्रवेश कर रहे थे जिसतरह वज्र पर्वतों में प्रवेश कर जाते हैं ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

वर्माणि कवचानि ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

वर्माणि अर्थात् कवचों को ॥१७॥

**भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः। ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥१८॥**
**हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः। आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥१९॥**

अन्वयः— भल्लैः संछिद्यमानानां चारुकुण्डलै शिरोभिः, हेमतालाभैऊरुभिः वलयवल्गुभिः दोर्भिः महाधनैः हारकेयूर मुकुटैष्णीशै वीरमनोहराः आस्तृताः ताः रणभुवः रेजुः ॥१८-१९॥

**अनुवाद**— भल्ल बाणों से कटे हुए मनोहर कुण्डल मण्डित शिरों से, तालवृक्ष के समान वीरों की जङ्घाओं से, कङ्कण मण्डित भुजाओं से, अत्यन्तमूल्यवान् हार, केयूर, मुकुट तथा पगड़ी से पटी हुई वीरों के मन को आकृष्ट करने वाली रणभूमि सुशोभित हो रही थी ॥१८-१९॥

### भावार्थ दीपिका

शिरःप्रमुखैरास्तृताः प्रकीर्णा रेजुरिति द्वयोरन्वयः ॥१८-१९॥

### भाव प्रकाशिका

शिरों आदि से पटी हुई रणभूमि सुशोभित हो रही थी, इसका इन दोनों श्लोकों से अन्वय है ॥१८-१९॥

**हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः।**
**प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव ॥२०॥**

अन्वयः— हताव शिष्टाः इतरे रक्षोगणाः क्षत्रियवर्य सायकैः प्रायो विवृक्णावयवाः रणाजिरात् मृगेन्द्रविक्रीडित यूथपा इव विदुद्रुवुः ॥२०॥

**अनुवाद**— जो यक्ष किसी प्रकार जीवित बचे थे वे क्षत्रिय प्रवर ध्रुवजी के बाणों से प्रायः छिन्न भिन्न अङ्गो वाले होने के कारण युद्ध कीडा में सिंह से परास्त हुए गजराज के समान परास्त हुए के समान रणभूमि को छोड़कर भाग गये ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

प्रायो बाहुल्येन विवृक्णाः संछिन्ना अवयवा येषाम् ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

**प्रायो विवृक्णावयव** का अर्थ है जिनके बहुत अङ्ग छिन्न भिन्न हो गये थे ॥२०॥

**अपश्यमानः स तदाऽऽततायिनं महामृधे कंचन मानवोत्तमः।**
**पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥२१॥**

अन्वयः— तदामहामृधे कंचन आततायिनमअपश्यमानः स मानवोत्तमः पुरीम् दिदृक्षन्नपि ना विशत् मायिनां चिकीर्षितं जनः न वेद ॥२१॥

**अनुवाद**— नरश्रेष्ठ ध्रुवजी ने देखा कि उस विस्तृत रणभूमि में अब कोई भी शत्रु उनके सामने नही विद्यमान है, इसके पश्चात् उनकी इच्छा अलकापुरी देखने की हुई, किन्तु वे नगरी में इसलिए नहीं प्रवेश कि वे मायावी राक्षस क्या करना चाहते हैं इस बात को मनुष्य नहीं जानता है ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

आततायिनं शस्त्रपाणिम् ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

आततायी शब्द से हाथ में शस्त्र लिए हुए को कहा गया है ॥२१॥

**इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यत्तः परेषां प्रतियोगशङ्कितः ।**
**शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥२२॥**

**अन्वयः**— इति स्वसारथिं ब्रुवन् चित्ररथः परेषां प्रतियोग शङ्कितः जलधेः ईरितं इव नभस्वतः शब्दं शुश्राव दिक्षु रजः अन्वदृश्यत ॥२२॥

**अनुवाद**— इस तरह से विचित्र रथ में बैठे हुए ध्रुवजी अपने सारथि से कह ही रहे थे और शत्रुओं द्वारा नवीन आक्रमण की शङ्का से सावधान थे उसी समय उनको समुद्र की गर्जना के समान आंधी का शब्द सुनाई दिया और उन्होंने दिशाओं में उठी हुई धूलि को देखा ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

इति ब्रुवन्नित्यत्रापि न मायिनामित्यादेरनुषङ्गः । चित्ररथो ध्रुवः । यत्तो यत्रवान् । प्रतियोगः पुनरुद्योगस्तस्माच्छङ्कितः। नभस्वतो वायोर्हेतोः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

मायावी क्या करना चाहते हैं इसतरह से जब ध्रुवजी अपने सारथि से कहकर सावधान थे । प्रतियोग शंकितः का अर्थ है पुनः प्रयास की आशङ्का से युक्त थे । नभस्वतः अर्थात् वायु का ॥२२॥

**क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः । विस्फुरत्तडिता दिक्षुत्रासयत्स्तनयित्नुना ॥२३॥**

**अन्वयः**— क्षणेन घनानीकेन व्योम सर्वतः आच्छादितं दिक्षु विस्फुरत् तडिता स्तनयित्नुना त्रासयत् ॥२३॥

**अनुवाद**— क्षणभर में ही मेघ समूह सम्पूर्ण आकाश में छा गया और हर दिशाओं में गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमकने लगी ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

विस्फुरन्त्यस्तडितो यस्मिंस्तेन त्रासयन्तः स्तनयित्नवोऽशनयो यस्मिन् ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

उन मेघों में बिजलियाँ चमक रही थी और भयङ्कर गड़गड़ाहट की ध्वनि हो रही थी ॥२३॥

**ववृषू रुधिरौघासृकपूयविण्मूत्रमेदसः । निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ ॥२४॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! रघिरौघासृक्यूयविण्मूत्र मेदसः ववृषु, अस्य अग्रतः गगनात् कबन्धानि निपेतुः ॥२४॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप विदुरजी ! मेघों से रक्त, कफ, पीब, विष्ठा, मूत्र, चर्बी आदि की वर्षा होने लगी और ध्रुवजी के सामने ही आकाश से बहुत से धड़ गिरने लगे ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

ववृषुर्निपेतुरित्यर्थः । न सृजति शरीरमित्यसृगिह श्लेष्मादि । मेदसः पुंस्त्वमार्षम् । मेदांसि अस्याग्रतो निपेतुः ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

ववृषुः का अर्थ है मेघों ने वर्षा की जिससे शरीर की सृष्टि नहीं होती है, इस व्युत्पत्ति के अनुसार असृक शब्द कफ का वाचक है । मेदसः यह पुल्लिङ्ग प्रयोग आर्ष है । अन्यथा मेदांसि रूप होना चाहिए । ध्रुवजी के सामने ही धड़ गिरे ॥२४॥

**ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतोदिशम् । गदापरिघनिर्स्त्रिशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥२५॥**

**अन्वयः**— ततः खे गिरिः अदृश्यत सर्वतो दिशम् साश्मवर्षिणः गदा परिनिस्त्रिंशमुसलाः ।।२५।।

**अनुवाद**— फिर आकाश में एक पर्वत दिखायी दिया और सभी दिशाओं में पत्थर की वर्षा के साथ गदा, पारिध, तलवार और मूसल गिरने लगे ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

साश्मवर्षिणः अश्म सहितं तद्वन्तः ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

साश्मवर्षिणः पद का अर्थ है पत्थर की वर्षा से युक्त ॥२५॥

**अहयोऽशनिनिःश्वासा वमन्तोऽग्निं रुषाऽक्षिभिः । अभ्यधावन्गजा मत्ताः सिंहव्याघ्राश्च यूथश; ॥२६॥**

**अन्वयः**— अशनि निःश्वासा रुषा अक्षिभिः अग्निं वमन्तः, मत्ताः गजाः यूथशः सिंहव्याघ्राश्च अभ्यधावन् ।।२६।।

**अनुवाद**— ध्रुवजी ने देखा कि बहुत से सर्प वज्र की तरह फुफकार मारते हुए और नेत्रों से आग उगलते हुए आ रहे हैं, झुण्ड के झुण्ड मतवाले सिंह और बाघ दौड़ रहे हैं ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

अशनिवन्निःश्वासो येषाम् ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

जिन सबों का वज्र के समान निःश्वास था यह अशनिबन्निःश्वासः पद का अर्थ है ॥२६॥

**समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवम् । आससाद महाह्लादः कल्पान्त इव भीषणः ॥२७॥**

**अन्वयः**— ऊमिर्भिः भीमः समुद्रः सर्वतो भुवम् प्लावयन् कल्पान्ते महाह्लाद इव भीषण आससाद ।।२७।।

**अनुवाद**— प्रलय काल के समान भयङ्कर समुद्र अपनी लहरियों से सब ओर से पथिवी को डुबता हुआ और गरजता हुआ आते दिखा ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२७।।

**एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् । ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययाऽसुराः ॥२८॥**

**अन्वयः**— तिग्मगतयः असुराः एवं विधानि अनेकनिअन्यमनस्विनां त्रासनानि आसुर्या मायया ससृजुः ।।२८।।

**अनुवाद**— क्रूर असुरों ने इस प्रकारी की बहुत सी अपनी आसुरी माया से बहुत सी कौतुकों को दिखाया जिससे कायरों का मन काँप सकता है ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

त्रासनानि भयङ्कराणि । तिग्मा क्रूरा गतिः प्रवृत्तिर्येषाम् । असुरराक्षसा दिशब्दैरदूरान्तरत्वेन यक्षा एवोच्यन्ते ।।२८।।

**भाव प्रकाशिका**

भासनानि अर्थात् भयङ्कर तिग्मगतयः अर्थात् क्रूरगति वाले, असुर एवं राक्षस आदि शब्दों के पर्याय होने के कारण उन शब्दों से यहाँ यक्ष ही कहे गये हैं ॥२८॥

**ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् । निशाम्य तस्य मुनयः शमाशंसन्समागताः ॥२९॥**

**अन्वयः**— असुरैः ध्रुवेप्रयुक्ताम् ताम् आतिदुस्तराम् मायां निशाम्य तस्य शमाशंसन् मुनयः समागताः ॥२९॥

**अनुवाद**— यक्षों द्वारा ध्रुव पर प्रयोग की गयी अत्यन्त भयङ्कर माया को देखकर ध्रुवजी के कल्याण की कामना करते हुए मुनिगण आये ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्य शं कल्याणमाशंसन्प्रार्थितवन्तः ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

मुनियों ने ध्रुवजी के कल्याण की प्रार्थना की ॥२९॥

मुनय ऊचुः

**औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ।**
**यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥३०॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

**अन्वयः**— हे अङ्ग औतानपदे ! अवनतार्तिहरः देवः शार्ङ्गधन्वा भगवान् तव विपक्षान् क्षिणोतु यन्नामधेयम् अद्धा अभिधाय निशम्य च लोकः अञ्जसा मृत्युं तरति ॥३०॥

**मुनियों ने कहा**

**अनुवाद**— उत्तानपाद नन्दन ध्रुव ! शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाले शाङ्ग धनुर्धारी श्रीभगवान् नारायण तुम्हारे शत्रुओं का संहार करें । उनके नाम का उच्चारण करने अथवा सुनने मात्र से ही संसार अत्यन्त भयङ्कर मृत्यु को भी पार कर जाता है ॥३०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥**

**भावार्थ दीपिका**

तव विपक्षान् शत्रून्नाशयतु । अद्धा साक्षात् । अञ्जसा सुखेनैव मृत्युं तरति ॥३०॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥**

**भाव प्रकाशिका**

मुनियों ने कहा वत्स ध्रुव भगवान् नारायण तुम्हारे शत्रुओं का नाश करें । अद्धा का अर्थ है साक्षात् । अञ्जसा अर्थात् अनायास । मृत्यु को पार कर जाता है ॥३०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के दशवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१०॥**

# ग्यारहवाँ अध्याय

## स्वायम्भुव मनु का ध्रुव को युद्ध बन्द करने के लिए समझाना

मैत्रेय उवाच

**निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः । संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥१॥**

**अन्वयः**— एव गदताम् ऋषीणाम् निशम्य ध्रुवः उपस्पृश्य यत् नारायण निर्मितम् अस्त्रम् धनुषि संदधे ॥१॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— विदुरजी ऋषियों की इस वाणी को सुनकर ध्रुवजी ने आचमन करके भगवान् नारायण के द्वारा निर्मित अस्त्र का अपने धनुष पर संधान किया ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

एकादशे तु यक्षाणां क्षयं दृष्ट्वा मनुः स्वयम् । आगत्य वारयामास ध्रुवं तत्त्वोपदेशतः ॥१॥ एवं गदतां वचनमुपदेशमिव निशम्य । उपस्पृश्याचम्य यन्नारायणनिर्मितं नारायणास्त्रं तत्संदधे ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

यक्षों का नाश देखकर मनु स्वयं आकर तत्त्वोपदेश करके ध्रुव को युद्ध करने से रोका इस अर्थ का वर्णन ग्यारहवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ इस तरह से कहने वाले ऋषियों के उपदेश को सुनकर आचमन करके, भगवान् नारायण द्वारा निर्मित अस्त्र का संधान किया ॥१॥

**संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः । क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥२॥**

**अन्वयः**— विदुर एतस्मिन् संधीयमाने गुह्यकनिर्मितः मायाः ज्ञानोदये क्लेशाः यथा क्षिप्रं विनेशुः ॥२॥

**अनुवाद**— इस नारायणास्त्र का अनुसंधान करते ही यक्षों द्वारा रचित माया शीघ्र ही उसी तरह विनष्ट हो गयी जिस तरह ज्ञान के उत्पन्न होते ही सारे क्लेश विनष्ट हो जाते हैं ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

क्लेशा रागादयो यथा ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

यक्षों की माया उसी तरह से नष्ट हो गयी जैसे ज्ञान के उत्पन्न होते ही अविद्या, अस्मिता, क्लेश तथा राग आदि विनष्ट हो जाते हैं ॥२॥

**तस्यार्षास्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुखः कलहंसवाससः ।**
**विनिःसृता आविविशुर्द्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥**

**अन्वयः**— आर्षस्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः तस्य सुवर्ण पुङ्खः । कलहंस वाससः विनिसृताः द्विषद्बलं आविविशुः वनं यथा भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥

**अनुवाद**— जब ध्रुवजी ने अपने धनुष पर ऋषि प्रवर नारायण के द्वारा निर्मित नारायणास्त्र का संधान किया तो उससे राजहंस के समान पक्ष वाले और सुवर्ण के समान फल वाला बाण निकले और वे शत्रुओं की सेना में उसी तरह प्रवेश कर गये जैसे केकारव करते हुए मयूर वन में प्रवेश कर जाते हैं ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच तस्यार्षास्त्रमृषेर्नारायणादुद्धृतमस्त्रं प्रयुञ्जतः संदधतः सतः । सुवर्णमयाः पुङ्खा मूलप्रान्ता येषाम् । कलहंसानां वासांसि पक्षा येषाम् । शरा विनिःसृता इति द्रष्टव्यम् । उपरिष्टच्छिलीमुखग्रहणात् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

ध्रुव के द्वारा नारायण ऋषि से उद्धृत अद्भुत उस नारायणास्त्र का संधान करते ही ऐसे बाण निकले जिनके मूलभाग सुवर्ण मय थे तथा राजहंसों के समान जिनके पक्ष थे । ऊपर से तो वे बाण थे ही ॥३॥

**तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैरितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः ।**
**तमभ्यधावन्कुपिता उदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः ॥४॥**

**अन्वयः**— प्रधने तैः तिग्मधारैः शिलीमुखैः उपद्रुताः पुण्यजनाः कुपिताः इतस्ततः उदायुधाः तम् सुपर्णम् उन्नद्धफणा अहयः इव ॥४॥

**अनुवाद**— ध्रुवजी के उन तीखी धारवाले बाणों ने शत्रुओं को वेचैन बना दिया । उस समय युद्ध में कुछ यक्ष वीरों ने आयुध धारण करके ध्रुवजी पर उसी तरह टूट पड़े जिस तरह गरुड़ के द्वारा छेड़े जाने पर बड़े-बड़े सर्प उनकी और फण उठाकर दौड़ पड़ते हैं ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रधने युद्धे उन्नद्धा उच्छ्रिताः फणा येषां ते सर्पाः ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रधन शब्द युद्ध का वाचक है । **उन्नद्धफणाः अहयः इव** फन उठाये हुए सर्पों के समना ॥४॥

**स तान्पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान् ।**
**निनाय लोकं परमर्कमण्डलं व्रजन्ति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः ॥५॥**

**अन्वयः**— मृधे अभिधावतः पृषत्कैः । निकृत वाहूरु शिरोधरोदरान् तान् परम् लोकम् निनाय यम् ऊर्ध्वरेतः अर्कमण्डलं भित्वा व्रजन्ति ॥५॥

**अनुवाद**— युद्ध में सामने दौड़कर आने वाले उन यक्षों के अपने बाणों से हाथ, जङ्घा, गर्दन तथा उदर को छिन्न-भिन्न करके ध्रुवजी ने उनको श्रेष्ठ सत्यलोक में भेज दिया जिस लोक में नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण सूर्य मण्डल का भेदन करके जाते हैं ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

पृषत्कैर्बाणैर्निकृत्ता वाह्वादयो येषां तान् । परं लोकं निनाय । कथंभूतम् । ऊर्ध्वरेतसः संन्यासिनोऽर्कमण्डलं निर्भिद्य यं व्रजन्ति तम् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

बाणों से जिनके हाथ इत्यादि कट गये थे उन यक्षों को ध्रुवजी ने उस सर्वश्रेष्ठ सत्यलोक में भेज दिया जिससें सूर्यमण्डल का भेदन करके ऊर्ध्वरेतस् गण जाते हैं ॥५॥

**तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसश्चित्ररथेन भूरिशः ।**
**औत्तनपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥६॥**

**अन्वयः**— चित्ररथेन अनगसः गुह्यकान् भूरिशः हन्यमानान् अभिवीक्ष्य पितामहः मनुः ऋषिभिः सह उपगतः कृपया औत्तनपादिं जगाद ॥६॥

**अनुवाद**— ध्रुवजी के द्वारा निरपराध यक्षों को बहुत मारे जाते हुए देखकर उनके पितामह मनु ऋषियों के साथ करुणाक्रान्त होकर ध्रुवजी से कहे ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

ताननागसो निरपराधान् ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

उन निरपराध बहुत से मारे जाते हुए यक्षों को देखकर ध्रुवजी के पितामह मनुजी करुणाक्रान्त हो गये। वे ऋषियों के साथ आकर ध्रुवजी से कहें ।।६।।

मनुरुवाच

**अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना । येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ।।७।।**

**अन्वयः**— हे वत्स ! तमोद्वारेण, पाप्मना अतिरोषेण अलम्, येन त्वम् अनागसः एतान् पुण्य जनान् अवधीः ।।७।।

**मुनियों ने कहा**

**अनुवाद**— हे वत्स ! बहुत अधिक क्रोध करना ठीक नहीं, यह पाप नरक का द्वार है । इसके ही कारण तुमने इन निरपराध यक्षों को मारा है ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

तमसो नरकस्य द्वारेण । येन रोषेण ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

नरक के द्वार भूत इस क्रोध के ही कारण तुमने निरपराध यक्षों को मारा हैं ।।७।।

**नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् । वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ।।८।।**

**अन्वयः**— तात ते यदुपदेवानामारब्धः अकृतैनसाम्, एतत्कर्म सद्विगर्हितम् अस्मत् कुलोचितम् न ।।८।।

**अनुवाद**— हे तात ! जो तुमने निरपराध यक्षों को मारने का काम किया है इस कर्म की सज्जन पुरुष निन्दा करते हैं । यह हमारे वंश के लिए उचित नहीं है ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।।८।।

**नन्वेकस्यापराधेन प्रसङ्गाद्बहवो हताः । भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयाङ्ग भ्रातृवत्सल ।।९।।**

**अन्वयः**— ननु एकस्य अपराधेन हे भ्रातृवत्सल भातृवधाभितप्तेन त्वया प्रसङ्गात् बहवः हताः ।।९।।

**अनुवाद**— निश्चित रूप से तुमने एक यक्ष के द्वारा किए गये अपराध के कारण, अपने भाई के प्रति अत्यधिक अनुराग के कारण तुमने प्रसङ्गवशात् अनेक यक्षों की हत्या कर दी है ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

ननु मद्भ्रातृहन्तारः कथमकृतैनसोऽत आह-नन्विति ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहो कि ये सब मेरे भाई को मारने वाले हैं निरपराध कैसे है ? तो इस पर मनुजी ने कहा तुम्हारा अपने भाई में अत्यधिक अनुराग था । किन्तु उसको मारने वाला तो एक ही यक्ष था और क्रोधाविष्ट होकर तुमने इतने यक्षों की हत्या कर दी ।।९।।

**नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् । यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— पराक् आत्मानं गृह्य यत् पशुवद् भूत वैशसम् अयं हृषीकेशानुवर्तिनाम् साधूनाम् मार्गो न ॥१०॥

**अनुवाद**— जड़ शरीर को ही आत्मा मानकर इसके लिए पशु के समान प्राणियों का बध करना यह भगवान् हृषीकेश के भक्त साधुजनों का मार्ग नहीं है ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

सत्यप्यपराधे तवैतदुचितं न भवतीत्याह-नायमिति । पराग्गृह्य पराग्भूतं देहमात्मानं गृहीत्वा पशवो यथा देहाभिमानादन्योन्यं घ्नन्ति तथा भूतानां वैशसं हिंसेति यत् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

इन सबों का यदि अपराध हो तो भी तुम्हारे लिए यह कर्म उचित नहीं है । इस बात को **नायमित्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । बाह्य इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य देह को ही आत्मा मानकर पशुओं के ही समान देहाभिमान के कारण जैसे पशु परस्पर में एक दूसरे को मार डालते हैं उसी तरह जीवों की हिंसा साधुजनों का मार्ग नहीं हैं ॥१०॥

**सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् । आराध्याप दुराराध्यं विष्णो स्तत्परमं पदम् ॥११॥**

**अन्वयः**— भवान् सर्वभात्मभावेन भूतवास दुराराध्यं हरिं आराध्य विष्णोःतत् परमं पदम् आप ॥११॥

**अनुवाद**— आपने सभी भूतों की आत्मा रूप से सभी भूतों में निवास करने वाले दुराराध्य श्रीहरि की आराधना करके भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त किया है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वं च बाल्ये साधुः सन्निदानीं कथमन्यथा कृतवानित्याह-सर्वभूतात्मभावेनेति द्वाभ्याम् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

तुम तो बाल्यावस्था में साधु प्रकृति के थे, इस समय तुम उसके विपरीतकार्य कैसे किए ? इस बात को मनुजी ने सर्वभूतात्मभावेन इत्यादि दो श्लोकों से कहा है ॥११॥

**स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः । कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— स त्वं हरेः अनुध्यातः तत्पुंसामपि संमतः, सतां व्रतम् अनुशिक्षन् कथं तु अवद्यं कृतवान् ॥१२॥

**अनुवाद**— तुमको तो श्रीभगवान् भी अपना प्रिय भक्त मानते हैं । और भगवद्भक्त भी तुम्हारा आदर करते है, तुम साधुजनों के पथ-पदर्शक हो फिर भी तुमने यह निन्दनीय कर्म कैसे किया ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुध्यातो हरेर्हृदि स्थितो वा तत्पुंसां हरिदासानामपि साधुत्वेन मतः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

तुम भगवान् श्रीहरि के हृदय में स्थित रहते हो और भगवद् भक्तों को भी तुम सम्मत हो फिर भी तुमने यह निन्दित कर्म न जाने कैसे किया ॥१२॥

**तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु । समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥१३॥**

**अन्वयः**— अखिल जन्तुषु च तितिक्षया, करुणया, मैत्र्या समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति ॥१३॥

**अनुवाद**— सर्वात्मा श्रीहरि अपने से बड़े पुरुषों के प्रति सहनशीलता, अपने से छोटे पुरुषों के प्रति दया, अपने समान पुरुषों के प्रति मित्रता तथा समस्त जीवों के प्रति समता के भाव से प्रसन्न होते हैं ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

सतां व्रतमेवाह । महत्सु तितिक्षया, नीचेषु करुणया, समेषु मैत्र्या, अखिलेषु जन्तुषु समत्वेन च ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मनुजी ने सत् पुरुषों के व्रत को बतलाया है । अपने से बड़े पुरुषों के प्रति सहनशीलता, छोटों के प्रति करुणा, समानों के प्रति मित्रता और सभी जीवों के प्रति समता के व्यवहार से प्रसन्न होते हैं ।।१३।।

**संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः । विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ।।१४।।**

**अन्वयः**— संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैः गुणैः विमुक्तः जीव निर्मुक्तः ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति ।।१४।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के प्रसन्न हो जाने पर जीव प्रकृति के गुणों उसके कार्यभूतलिङ्ग शरीर से छूटकर ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

ततः कृतार्थो भवतीत्याह । संप्रसन्ने सति गुणैर्विमुक्तोऽत एव तत्कार्येण जीवने लिङ्गशरीरेण निर्मुक्त सन्निर्वाणं सुखात्मकं ब्रह्म प्राप्नोति ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

सत् पुरुषों के व्रत का पालन करने से जब श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं तो जीव प्राकृत गुणों से मुक्त हो जाता है और उसके कार्यभूत जीव (लिङ्ग) शरीर से छूट जाता है ओर सुख स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।।१४।।

**भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि । तयोर्व्यवायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ।।१५।।**

**अन्वयः**— पञ्चभिः भूतैः आरब्धे योषित् पुरुष एवहि, इह तयोः व्यवायात् योषित् पुरुषयोः संभूतिः ।।१५।।

**अनुवाद**— देह के रूप में परिणत हुए पञ्च महाभूतों से ही स्त्री और पुरुष का आविर्भाव होता है और इस लोक में में स्त्री पुरुष के समागम से ही दूसरे स्त्री पुरुष उत्पन्न होते हैं ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

भ्रातृहन्तृत्वमङ्गीकृत्योक्तम्, इदानीं तु नात्मनो भ्रातृपुत्रादिसंबन्धो न चान्योन्यं हन्तृत्वादिकमपीत्याह–भूतैरिति दशभिः। भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्देहाद्याकारेण परिणतैर्योषित्पुरुषश्चेति प्रसिद्धिः तयोर्व्यवायान्मैथुनात् संभूतिरन्ययोर्योषित्पुरुषयोरिह संसारे भवति ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

यदि तुम कहो कि इसने मेरे भाई को मारा है तो उसके विषय में मनु जी कहते हैं । इस समय आत्मा का भाई और पुत्र आदि से सम्बन्ध नहीं है । और न उनमें परस्पर में हन्तृत्व इत्यादि है । इस बात को भूतैः इत्यादि दश श्लोकों से बतलाते हैं । पञ्चभूत ही देह आदि के रूप में परिणत हो जाते हैं । उस देह की ही स्त्री और पुरुष रूप से प्रसिद्धि है । स्त्री और पुरुष के ही व्यवाय (मैथुन) से इस संसार में दूसरे स्त्रियों और पुरुषों की उत्पत्ति होती है ।।१५।।

**एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च । गुणव्यतिकराद्राजन्मायया परमात्मनः ।।१६।।**

**अन्वयः**— राजन् एवं परमात्मनः मायया गुणव्यतिकरात् सर्गः स्थितिः संयम एव च प्रवर्तते ।।१६।।

**अनुवाद**— राजन् इसी प्रकार से श्रीभगवान् की माया के द्वारा जब सत्त्वादि गुणों में न्यूनाधिक भाव होता है तो जगत् की सृष्टि होती है, स्थिति होती है और संहार होता है ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

एवं तावत्सर्गः प्रवर्तते । एवं पालकाकारेण परिणतैर्भूतैरेव स्थितिः । हन्तृदेहाकारपरिणतैः संयमः संहारः, स च परमात्मनो मायया गुणानां व्यतिकरात्, नतु स्वतः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

इसी प्रकार से सृष्टि होती है, इसी तरह पालरूप से परिणत भूतों के द्वारा स्थिति होती है और मारने वाले देह के आकार से परिणत भूतों के द्वारा ही संहार होता है । यह सबकुछ श्रीभगवान् की माया के गुणों में होने वाले व्यतिकर न्यूनाधिक भाव के कारण होता है, स्वतः नहीं होता है ॥१६॥

**निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः । व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥१७॥**

**अन्वयः**— तत्रपुरुषर्षभः निर्गुण निमित्तमात्रम्, यत्र इदं व्यक्ता व्यक्तं विश्वं लोहवत् भ्रमति ॥१७॥

**अनुवाद**— इन सबों में पुरुषों में श्रेष्ठ निर्गुण परमात्मा तो निमित्त मात्र है जिस परमात्मा में यह कार्य कारणरूप जगता उसी तरह घूमता रहता है जिस तरह चुम्बक के आश्रय से लोहा घूमता है ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

ननु जडानां देहानां गुणानां वा कथं सर्गादिहेतुत्वं तत्राह । निमित्तमात्रं पुरुषर्षभ ईश्वरः । यत्र यस्मिन्निमित्ते सति कार्यकारणात्मकं विश्वं भ्रमति परिवर्तते । यथाऽयस्कान्ते निमित्ते सत्ति लोहं प्रवर्तते तद्वत् ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि शरीर और गुण दोनों जड़ है वे कैसे सृष्टि आदि के कारण हो सकते हैं ? तो इस पर कहते हैं— ईश्वर तो निमित्त मात्र हैं, जिस निमित्त भूत ईश्वर के ही अधीन यह कार्यकारणात्मक जगत् घूम रहा है । जिस तरह अयस्कान्त मणि रूपी निमित्त के कारण लोहा घूमा करता है उसीतरह ॥१७॥

**स खल्विदं भगवान्कालशत्तया गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।**
**करोत्यकर्तैव निहन्त्यहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥१८॥**

**अन्वयः**— कालशक्त्या क्रमेण गुणानां प्रवाहेण स भगवान् खलु विभक्तवीर्य; अकतैव करोति अहन्ता निहन्ति विभूम्नः चेष्टा खलु दुर्विभाव्या ॥१८॥

**अनुवाद**— कालशक्ति के द्वारा क्रमश; सत्त्वादि गुणों में क्षोभ होने के कारण श्रीभगवान् की लीलामय शक्ति भी सृष्टि आदि के रूप में विभक्त हो जाती है । अतएव भगवान् अकर्ता होकर भी जगत् की रचना करते हैं और संहारक नहीं होकर भी संहार करते है । श्रीभगवान् की लीलाशक्ति अचिन्त्य है ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

ननु स चेन्निमित्तं तर्हि तस्याविशेषाद्युगपदेव सर्गादित्रयं भवेदत आह-स खल्विति । कालशत्तया क्रमेण गुणानां प्रवाहः क्षोभस्तेन विभक्तं सृष्ट्या दिविषयं वीर्यं शक्तिर्यस्य । ननु कालोऽपि गुणान्युगपदेव क्षोभयतु तत्राह । चेष्टा कालशक्ति- र्दुर्विभाव्या अचिन्त्या ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि यदि परमात्मा ही निमित्तकारण हैं तो फिर परमात्मा के एक ही होने के कारण सृष्टि आदि को भी एक ही समय में हो जाना चाहिए, तो इस पर खलु इत्यादि श्लोक कहते हैं । काल शक्ति के द्वारा क्रमशः सत्त्वादि गुणों में क्षोभ उत्पन्न होने के कारण परमात्मा का सृष्टि आदि विषयक वीर्य भी विभक्त हो जाता है । यदि कहें कि काल भी सत्त्वादि गुणों में एक ही समय में क्षोभ उत्पन्न करे; तो इसके उत्तर में कहते हैं परमात्मा की कालशक्ति अचिन्त्य है ॥१८॥

**सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः । जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— सः कालः अव्ययः अनन्तः अन्तकृत् अनादिः आदिकृत् । जनेन जनं जनयन् मृत्युना अन्तकम् मारयन्॥१९॥

**अनुवाद**— वे परमात्मा काल स्वरूप और निर्विकार है । स्वयं वे अनन्त होकर भी जगत् का अन्त करते हैं । तथा स्वयम् अनादि भी होकर जगत् की सृष्टि करते हैं । वे एक जीव से दूसरे जीव को उत्पन्न करते हैं और मारने वाले को भी मृत्यु के द्वारा मरवाकर उसका संहार कर देते हैं ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु पित्रादिः सृजति पालयति राजादिर्निहन्ति च चोरादिः, न त्वीश्वरस्तत्राह-स इति । जनेन पित्रादिना जनं पुत्रादिं जनयन्नादिकृत् । अन्तकं चोरादिकं तन्मृत्युहेतुना मारयन्नन्तकरः । स्वयं त्वनन्तोऽनादिश्च । अब्ययोऽक्षीणशक्तिश्च । अयं भावः-पित्रादयोऽन्यत उत्पत्त्यादिमन्तो न स्वातत्र्येण कारणं, किंत्वीश्वर एव तन्नियन्ता स सर्वकारणमिति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई यह कहे सृष्टि करने का तथा पालन करने का काम तो माता-पिता करते हैं और मारने का काम राजा आदि तथा चोर आदि करते हैं न कि यह सब ईश्वर करते हैं । इस पर मनु जी कहते हैं **सोऽनन्तः इत्यादि** अर्थात् परमात्मा ही पिता इत्यादि के द्वारा पुत्र आदि के उत्पन्न कराकर सृष्टि करने का काम करते हैं और मारने वाले चोर आदि को मृत्यु के द्वारा मरवाकर परमात्मा उनका संहार आदि करते हैं । परमात्मा स्वयम् अनन्त और अनादि हैं । उनकी शक्ति कभी क्षीण नहीं होती है अतएव वे अव्यय हैं । **अयं भावः इत्यादि** पिता इत्यादि स्वयं दूसरे से उत्पन्न है अतएव वे पुत्रादि की उत्पत्ति में स्वतंत्र कारण नहीं है अपितु पिता इत्यादि का भी नियमन ईश्वर ही करते हैं वे सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं ॥१९॥

**न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वापरस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ।**
**तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा यथा रजांस्यनिलं भूतसङ्घाः ॥२०॥**

**अन्वयः**— परस्य मृत्यो प्रजाः समं विशतः अस्य नवै स्वपक्षः विपक्ष एव वा, तं धावमानं अनीशाः भूतसङ्घाः धावन्ति यथा रजांसि अनिलम् ॥२०॥

**अनुवाद**— काल स्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि में समान रूप से प्रविष्ट हैं । उनका न तो कोई अपना पक्ष है और न कोई विपक्ष है । सभी जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार काल की गति का अनुसरण करते हैं और अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख दुःख आदि कर्म के फलों को भोगते हैं ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

नचैवं कुर्वतोऽपि वैषम्यप्रसक्तिः, पक्षपाताभावादित्याह द्वाभ्याम्- न वा इति । मृत्युरूपस्य समं यथा भवति तथा प्रजाः कर्मभूता विशतः तस्य साम्येऽपि भूतेषु फलवैषम्यं, तत्कर्मवशादिति सदृष्टान्तमाह । तं धावन्तमन्वनीशाः कर्माधीना भूतसङ्घा धावन्ति। अनिलं धावन्तमनु रजांसीव तत्र यथा रजसां तमःप्रकाशजलाग्न्यादिप्रवेशेऽपि नानिलस्य वैषम्यम्, एवमीश्वरस्यापीति भावः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह करने वाले परमात्मा में विषमभाव की भी सम्भावना नहीं की जा सकती है क्योंकि उनमें पक्षपात का अभाव है । इस बात को नवा० इत्यादि दो श्लोकों में मनुजी ने कहा है । परमात्मा स्वयं काल स्वरूप है, और सम्पूर्ण सृष्टि में समान रूप से प्रविष्ट हैं । काल भगवान् में समता रहने पर भी उसकी विषमता जीवों द्वारा पूर्वकृत कर्मवशात् होती है । इस बात को मनुजी दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं । कर्मो के परतन्त्र रहने वाले सभी जीव काल की गति का अनुसरण करते हैं । यह उसी तरह से होता है जिस प्रकार आँधी के चलने पर धूल वायु

की गति का अनुसरण करती है । उसमें जैसे धूल के अन्धकार प्रकाश, जल, अग्नि आदि में प्रवेश करने में वायु में कोई विषमता नहीं होती हैं इसी प्रकार के सुख दुःखोपभोग में विषमता के होने पर भी परमात्मा में किसी भी प्रकार की विषमता नहीं होती है ।।२०।।

**आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः । उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ।।२१।।**

**अन्वयः**— तथैव असौ विभुः दुःस्थस्य जन्तोः आयुषः उपचयं अपचयं च विदधाति स्वस्थः उभाभ्यां रहितः ।।२१।।

**अनुवाद**— उसी तरह वे परमात्मा कर्माधीन जीव की आयु का उपचय और अपचय (वृद्धि और क्षय) का विधान स्वयं करते हैं, और अपने स्वरूप में स्थित रहने वाले परमात्मा स्वयं वृद्धि और क्षय से रहित हैं ।।२१।।

**भावार्थ दीपिका**

अपचयमकालमृत्युम् । उपचयं कालमृत्योरपि रक्षाम् । यद्वा अपचयं मशकादावुपचयं देवादौ । स्वस्थत्वादुपचयापचयाभ्यां रहितोऽसौ विभुर्दुःस्थस्य कर्माधीनस्य विदधाति ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

जीव कर्म के अधीन है, अतएव उसकी आयु में अपचय अर्थात् अकाल मृत्यु को तथा उपचय अर्थात् कालमृत्यु से भी रक्षा करने का काम परमात्मा ही करते है । अथवा मच्छर आदि के शरीर में सङ्कोच और देवता आदि के शरीर में विस्तार करने का काम करते हैं । परमात्मा अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं अतएव स्वयम वे वृद्धि और ह्रास से रहित है ।।२१।।

**केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप । एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ।।२२।।**

**अन्वयः**— हे नृप ! केचित् एनं कर्म वदन्ति, अपरे स्वभावम्, एके कालम्, परे दैवं अपरे पुंसः कामम् ।।२२।।

**अनुवाद**— हे राजन् ! इस परमात्मा को ही मीमांसक कर्म कहते हैं, चार्वाक स्वभाव कहते हैं, वैशेषिक काल कहते हैं, ज्योतिषी दैव कहते हैं और कामशास्त्री काम कहते हैं ।।२२।।

**भावार्थ दीपिका**

एवं भूतेश्वरः सर्ववादिसंमतः, विवादस्तु नाममात्र इत्याह-केचिदिति । पुंसः कामं वात्स्यायनादयः । श्रुतिश्च 'कामोऽकार्षीत्कामः करोति कामः कर्ता कामः कारयिता' इत्यादि ।।२२।।

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार के ईश्वर को सभी विचारक स्वीकार करते हैं विवाद तो केवल नाम के विषय में है । वात्स्यायन इत्यादि ईश्वर को पुरुष का काम कहते हैं ।।२२।। श्रुति भी कहती हैं— **कामोऽकार्षीत्० इत्यादि** काम ने ही किया, काम ही करता है, काम ही कर्ता हैं तथा काम ही करवाने वाला है ।।२२।।

**अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च । न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसंभवम् ।।२३।।**

**अन्वयः**— हे तात् ! अव्यक्तस्य अप्रेमयस्य नाना शक्त्युदयस्य च अथ स्वसंभवम् चिकीर्षितम् नवै को वेद ।।२३।।

**अनुवाद**— हे तात ! वे ईश्वर इन्द्रियों के अथवा प्रमाण के विषय नहीं है । उनसे ही महदादि अनेक शक्तियों की उत्पत्ति भी होती है । उन अपनी उत्पत्ति स्थान स्वरूप ईश्वर को कोई भी नहीं जानता है ।।२३।।

**भावार्थ दीपिका**

ननु कर्मादीनां जडत्वादिना स्वरूपतोऽपि भिन्नत्वात्कथमैकमत्यं तत्राह । अव्यक्तस्यातएवाप्रमेयस्य । तथापि सत्त्वे हेतुः— नानाशक्तीनां महदादीनामुदयो यस्मात् । चिकीर्षितमेव तावत्कोऽपि न वेद । अथ स्वस्य संभवो यस्मात्तमीश्वरं को

वेद, न कोऽपि । अद्धेति पाठे साक्षात् अतस्तत्त्वज्ञानाभावाद्विशेषांशे विवाद इत्यर्थः । तथा च श्रुतिः-'को अद्धा वेद क इह प्रावोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः । अर्वाग्देवा अस्य विएर्जनेनाथा को वेद यत आवभूव' इत्यादिः।।२३।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई कहे कि कर्म इत्यादि तो स्वरूपतः जड है अतएव उनमें तो स्वरूपतः भी भिन्नता है अतएव यह कैसे कहा जा सकता है कि परमात्मा को सबलोग स्वीकार करते हैं इस पर मनुजी कहते हैं परमात्मा अव्यक्त और अप्रमेय हैं । अर्थात् वे न तो किसी इन्द्रिय के विषय बनते हैं, इसीलिए वै अप्रमेय भी हैं अर्थात् किसी प्रमाण के भी विषय नहीं हैं । फिर भी उनकी सत्ता है, क्योंकि उनसे ही महदादि अनेक शक्तियों का उदय होता है । वे परमात्मा सभी जीवों के उत्पत्ति स्थान स्वरूप हैं, उन परमात्मा की चिकीर्षा को कोई भी नहीं जानता है। अद्धा यह पाठ मानने पर अर्थ होगा साक्षात् कोई नहीं जानता है । अतएव तत्त्व का ज्ञान नहीं होने के कारण ईश्वर के विशेषणांश के विषय में विवाद है । श्रुति भी कहती है— **का अद्धावेद० इत्यादि** अर्थात् उस परमात्मा को कौन साक्षात् जानता है, किसने उस परमात्मा का उपदेश दिया, किससे यह सृष्टि होती है, प्राचीन देवता इसका परित्याग करने में असमर्थ हैं और कौन जानता है कि ये परमात्मा किससे उत्पन्न हुए ।।२३।।

**न चैते पुत्रक भ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः । विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ।।२४।।**

**अन्वयः**— हे पुत्रक एते धनदानुगाः ते भ्रातुः हन्तारः न हे तात पुंसः विसर्गादानयोः दैवंहि कारणम् ।।२४।।

**अनुवाद**— हे वत्स ! ये कुबेर के अनुचर तुम्हारे भाई को मारने वाले नहीं हैं मनुष्य के जन्म और मरण के कारण तो ईश्वर हैं ।।२४।।

**भावार्थ दीपिका**

ईश्वरवादस्य प्रकृतोपयोगमाह न चैते भ्रातुर्हन्तारः । उक्तमेव हेतुमनुवदति । विसर्गादानयोर्मृत्युजन्मनोः । यद्वा विसर्गः सृष्टिः । आदानं संहारः । दैवमीश्वर एव हि कारणम् ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

ईश्वर पद का प्रस्तुत प्रसङ्ग में उपयोग बतलाते हैं तुम्हारे भाई को मारने वाले ये नहीं हैं । उपर्युक्त कारण को ही बतलाते हैं मृत्यु और जन्म के कारण तो ईश्वर है । यहाँ पर विसर्ग शब्द मृत्यु का और आदान शब्द जन्म का वाचक है । अथवा विसर्ग शब्द सृष्टि का और आदान शब्द संहार का वाचक है । दैव शब्द ईश्वर का वाचक हैं ।।२४।।

**स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च । अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ।।२५।।**

**अन्वयः**— स एव विश्वं सृजति स एव अवति हन्ति च अथापि हि अनहंकारात् गुण कर्मभिः न अज्यते ।।२५।।

**अनुवाद**— परमात्मा ही जगत् की सृष्टि करते हैं, उसकी रक्षा करते हैं और उसका संहार करते हैं फिर भी अहङ्कार युक्त नहीं होने के कारण वे उसके गुणों और कर्मों से लिप्त नहीं होते हैं ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**

तथापि निर्लेपतामाह-स एवेति ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

फिर भी परमात्मा की निर्लेपता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि परमात्मा ही जगत् की सृष्टि आदि कर्मो को करने पर भी अहङ्कार से रहित होने के कारण जगत् के गुणों और कर्मों में लिप्त नहीं होते हैं ।।२५।।

**एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः । स्वशत्तया मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥२६॥**

**अन्वयः**— भूतात्मा भूतेश; भूतभावनः एष स्वशक्त्या मायया युक्त; भूतानि सृजति, अत्ति च पाति च ॥२६॥

**अनुवाद**— परमात्मा ही सम्पूर्ण जगत् की अन्तरात्मा, नियन्ता और जगत् की रक्षा करने वाले हैं ये ही अपनी माया शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि संहार और रक्षा करते हैं ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

अनहङ्कारत्वे हेतुमाह-एष इति ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

परमात्मा के अहङ्कार रहित होने का कारण बतलाते हुए कहते हैं कि परमात्मा ही सबों की अन्तरात्मा, नियामक और जगत् की रक्षा करने वाले हैं और अपनी माया शक्ति के द्वारा जगत् की सृष्टि आदि करते हैं ॥२६॥

**तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ।**
**यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥२७॥**

**अन्वयः**— हे तात तमेव, मृत्युम् अमृतं, दैवं जगत् परायणम्, सर्वात्मना उपेहि, यस्मै नासि दाम यन्त्रितः गावो यथा विश्वसृजः बलिं हरन्ति ॥२७॥

**अनुवाद**— हे तात तुम उन्हीं परमात्मा के शरण में जाओ वे मृत्यु स्वरूप, अमृत स्वरूप तथा जगत् के एक मात्र आश्रय हैं । नकेल की रस्सी से बँधे हुए बैल के समान उन परमात्मा की आज्ञा कापालन ब्रह्मादि देवता किया करते हैं ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

सत्यमीश्वर एव कर्ता तथाप्यहंकारादि मया न त्यक्तुं शक्यमिति चेतद आह- तमेवेति चतुर्भिः । मृत्युमभक्तानां, भक्तानां त्वमृतम् । उपेहि शरणं गच्छ । तमेवेत्यवधारणे हेतुः-यस्मै नसि नासिकायां दामभिर्वद्धा गाव इव विश्वसृजोऽपि दामभिर्यन्त्रिता वद्धाः सन्तो बलिं हरन्ति । तत्कारितं कर्म कुर्वन्तीत्यर्थः ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहो कि ठीक है, परमात्मा ही कर्ता हैं फिर भी मैं अहङ्कार आदि का त्याग नहीं कर सकता तो इस पर मनुजी चार श्लोकों में कहते हैं परमात्मा अभक्तों के लिए मृत्यु स्वरूप हैं भक्तों के लिए अमृत स्वरूप हैं। तुम उन परमात्मा की शरणागति करो । तमेव में एवकार निर्धारणार्थक है । नकेल में बंधे हुए बैल के समान विश्वस्रष्टा ब्रह्मादि देवता भी परमात्मा की आज्ञा रूपी यन्त्र में बद्ध हैं और वे उन्हीं की आराधना करते हैं । परमात्मा जो करवाना चाहते हैं उसी कर्म को वे सब भी करते रहते हैं ॥२७॥

**यः पञ्चवर्षो जननीं त्वं विहाय मातु; सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ।**
**वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥२८॥**
**तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् ।**
**आत्मानमन्विच्छ विमुक्तमात्मदृग्यस्मिन्निदं भेदमसत्प्रतीतये ॥२९॥**

**अन्वयः**— मातुः सपत्न्याः वचसा भिन्न मर्मा यः पञ्चवर्ष त्वम् जननीं विहाय वनं गतः तपसा प्रत्यगक्षम् आराध्य त्रिलोक्याः मूर्ध्नि पदं लेभे, मुक्तविग्रहे आत्मनि व्यपाश्रितं हे अङ्ग ! एनं निर्गुणम्, एकम् अक्षरम् तम् विमुक्तम् आत्मदृक् आत्मानम् अन्विच्छ यस्मिन् इदम् असत् भेदम् प्रतीयते ॥२८-२९॥

**अनुवाद**— अपनी सौतेली माँ के वाग्बाणों से विद्ध हृदय वाला होकर तुम पाँच वर्ष की ही अवस्था में अपनी माँ को छोड़कर वन में चले गये थे और वहाँ पर तपस्या के द्वारा जिन हृषीकेश परमात्मा की आराधना करके त्रिलोकी में सबसे ऊपर ध्रुवप्रद को प्राप्त किए जो तुम्हारे वैर भाव से रहित हृदय में वात्सल्यवश विशेष रूप से निवास किए उन निर्गुण, अद्वित्य अविनाशी और नित्यमुक्त परमात्मा का अध्यात्म दृष्टि से अन्वेषण करो। उनमें ही यह भेदमय प्रपञ्च नहीं होने पर भी प्रतीत होता है ॥२८-२९॥

### भावार्थ दीपिका

तदाराधनं च तव सुशकमेवेत्याह । यः पञ्चवर्षः स त्वं यमाराध्य त्रिलोक्या मूर्ध्नि पदं स्थानं लेभे लबधवानसि । इदानीं तमेवान्विच्छावलोकयेत्युत्तरेणान्वयः । प्रत्यञ्चि अक्षाणि यस्मिन् । क्रियाविशेषणं वा । हरिं ध्यायन्तं प्रत्याह । हे अङ्ग ध्रुव । मुक्तविरोधे आत्मनि मनसि व्यपाश्रितमवस्थितमात्मदृक् प्रत्यग्दृष्टिः सन् । अयं भेदो यस्मिंस्तदिदंभेदमसदेव विश्वं यस्मिन्प्रतीयते ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

उन परमात्मा की आराधना भी तुम्हारे लिए आसान है । पाँच वर्ष की ही अवस्था में जिस परमात्मा की आराधना करके तुमने त्रिलोकी में सबसे ऊपर ध्रुव पद को प्राप्त किए, इस समय उन्ही परमात्मा का अपने में अवलोकन करो इसका उनतीसवें श्लोक से अन्वय है । जिस परमात्मा के विषय में इन्द्रियाँ प्रत्यक् हैं । अर्थात् विषयों से विमुख होकर परमात्मा को अपना विषय बनाती हैं । अथवा यह क्रिया विशेषण है । श्रीहरि का ध्यान करने वाले ध्रुव से मनुजी ने कहा— हे ध्रुव ! वैर रहित आत्मा (हृदय) में अवस्थित परमात्मा का तुम अन्वेषण करो। उस परमात्मा में ही असत् भेद प्रतीत होता है ॥२८-२९॥

**त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ।**
**भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥३०॥**

**अन्वयः**— त्वं तदा उपपन्न समस्त शक्तौ प्रत्यगात्मनि आनन्दमात्रे प्रत्यगात्मनि भगवति अनन्ते परमां भक्तिं विधाय शनकैः ममाहमिति प्ररूढम् अविद्या गन्थिं विभेत्स्यसि ॥३०॥

**अनुवाद**— उस अन्वेषण काल में ही सर्वशक्तिमान अन्तर्यामी, परमानन्दस्वरूप भगवान् अनन्त में तुम्हारी सुदृढ भक्ति हो जायेगी और उसके कारण ही अहन्त्व ममत्व रूपी दृढ अविद्या की गन्थि की गांठ को काट डालोगे॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

तदन्वेषणफलमाह । त्वं तदाऽन्वेषणकाल एव ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

अपने हृदय में परमात्मा के अन्वेषण का फल बतलाते हुए मनुजी ने कहा कि अन्वेषण काल में ही तुम्हारी सर्वशक्तिमान परमात्मा में सुदृढ भक्ति हो जायेगी । और तुम अहन्त्व एवं ममत्व रूपी अविद्या की ग्रन्थि को काट दोगे ॥३०॥

**संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् । श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथामयम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— राजन् अगदेन आभयं यथा भूयसा श्रुतेन शेषं संयच्छ श्रेयसां परं प्रतीपं ते भद्रम् ॥३१॥

**अनुवाद**— राजन् जिस प्रकार औषधि के सेवन से रोग को शान्त किया जाता है उसी तरह मेरे विस्तृत उपदेश रूपी औषधि से अपने इस क्रोध रूपी रोग को समाप्त करो । यह कल्याण का अत्यन्त विरोधी है । भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

उपदेशसारमाह-संयच्छेति द्वाभ्याम् । प्रतीपं प्रतिकूलम् । अगदेनौषधेन यथा रोगं नियच्छति ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

अपने उपदेश का सार बतलाते हुए मनुजी ने **संयच्छ इत्यादि** दो श्लोकों में कहा है प्रतीप अर्थात् विरोधी। जिस तरह से औषधि के सेवन से रोग को दूर किया जाता है उसी तरह से मेरे उपदेश का विचार करके क्रोध का परित्याग कर दो ।।३१।।

**येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् । न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ।।३२।।**

**अन्वयः**— येनोप सृष्टात् पुरुषात् लोकः भृशम् उद्विजते आत्मनः अभयम् इच्छन् बुधः तद्वशं नगच्छेत् ।।३२।।

**अनुवाद**— जिस क्रोध से युक्त पुरुष से लोग अत्यधिक उद्विग्न होते हैं आत्म कल्याण चाहने वाले विज्ञ पुरुष को उस क्रोध का वशवर्ती नहीं होना चाहिए ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

येन रोषेणोपसृष्टाद्व्याप्तात् ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

जिस रोष से व्याप्त पुरुष से लोग अत्यन्त उद्विग्न होते हैं विज्ञ पुरुष को उस क्रोध का वशवर्ती नहीं होना चाहिए।।३२।।

**हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् । यज्जघ्निवान्पुण्यजनान्भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ।।३३।।**

**अन्वयः**— भ्रातृघ्नान् इति अमर्षित यत्पुण्यजनान जघ्निवान् त्वया गिरिशभ्रातुः धनदस्य हेलनं कृतम् ।।३३।।

**अनुवाद**— ये मेरे भाई को मारने वाले हैं, यह सोचकर क्रोध करके तुमने जो यक्षों को मारा यह भगवान् शङ्कर के सखा कुबेर का तुम्हारे द्वारा अपराध हुआ है ।।३३।।

### भावार्थ दीपिका

अन्यच्च त्वया कार्यमित्याह-हेलनमिति द्वाभ्याम् । यद्यतः । जघ्निवान्घातितवान् ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

दूसरी बात यह कि तुमने यह निषिद्ध कार्य किया है कि तुमने यक्षों को मारकर शङ्करजी के सखा कुबेर का अपराध किया है ।।३३।।

**तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः । न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ।।३४।।**

**अन्वयः**— हे वत्स ! आशु तं सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः प्रसादय, यावत् महतांतेजः नः कुलं नो अभिभविष्यति ।।३४।।

**अनुवाद**— हे वत्स ! जब तक महापुरुषों का तेज हमारे वंश को आक्रान्त नहीं करता है, उससे पहले ही तुम विनम्र भाषण और विनय के द्वारा उनको प्रसन्न कर लो ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।।३४।।

**एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् । तेनाभिवन्दितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ।।३५।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ।।११।।

**अन्वयः**— एवं स्वयम्भुवः मनुः पौत्रम् ध्रुवम् अनुशास्य तेनाभिवन्दितः ऋषिभिः साकं स्वपुरं ययौ ।।३५।।

**अनुवाद**— इस तरह स्वायम्भुव मनु अपने पौत्र ध्रुव को उपदेश देकर ऋषियों के साथ अपने लोक में चले गये ।।३५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।**

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावप्रकाशिका टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।११।।**

# बारहवाँ अध्याय

## ध्रुवजी को कुबेर का वरदान और विष्णु लोक की प्राप्ति

मैत्रेय उवाच

**ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुध्य वैशसादपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः ।**
**तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृताञ्जलिम् ॥१॥**

**अन्वयः**— अपेतमन्युं ध्रुवं वैशसात् निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य भगवान् धनेश्वरः तत्रागतः चारणयक्ष किन्नरैः संस्तूयमानः कृताञ्जलिम् अभ्यवदत् ॥१॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— ध्रुव का क्रोध शान्त हो गया है और वे यक्षों का वध करना छोड़ दिए हैं इस बात को जानकर भगवान् कुबेर वहाँ आये । उस समय चारण, यक्ष तथा किन्नर उनकी स्तुति कर रहे थे । ऐसे कुबेरजी हाथ जोड़े हुए ध्रुवजी से कहे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

द्वादशे धनदेनाभिनन्दितः पुरमागतः यज्ञैरिष्ट्वा हरेः स्थानमारुरोहेति कीर्त्यते ॥१॥ वैशसाद्वधान्निवृत्तं ज्ञात्वा ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

बारहवें अध्याय में कुबेरजी के द्वारा प्रशंसित ध्रुवजी अपनी नगरी में आये । यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की अराधना करके वे श्रीहरि के लोक में चले गये इस बात का वर्णन इस बारहवें अध्याय में किया गया हैं ॥१॥ यक्षों के वध से निवृत्त हुए ध्रुवजी को जानकर ध्रुवजी के पास कुबेर भगवान् आये और हाथ जोड़े हुए ध्रुवजी से कहें॥१॥

धनद उवाच

**भो भो क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ । यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥२॥**

**अन्वयः**— भो-भो क्षत्रिय दायाद हे अनध ते तुष्टोऽस्मि यः त्वम् पितामहादेशात् सुदुस्त्यजं वैरमत्यजः ॥२॥

**कुबेरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे निष्पाप क्षत्रिय कुमार मैं तुमसे संतुष्ट हूँ। क्योंकि तुमने अपने पितामह के आदेश से दुस्त्यज वैर को त्याग दिया है ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

हे क्षत्रियदायाद क्षत्रियपुत्र। अत्यजः। त्यक्तवानसि ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

हे क्षत्रिय राजकुमार मैं तुम पर प्रसन्न हूँ क्योंकि तुमने अपने पितामह के कहने से दुस्त्यज वैर का परित्याग कर दिया हैं ॥२॥

**न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव। काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥३॥**

**अन्वयः**— भवान् यक्षान् न अवधीत् न यक्षाः तव भ्रातरम् भूतानां अप्यय भावयोः प्रभुः कालएव ॥३॥

**अनुवाद**— न तो आपने यक्षों को मारा है और न यक्षों ने आपके भाई को मारा है। जीवों के जन्म और मरण का स्वामी तो काल ही है ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

नच वैरस्य कारणमस्तीत्याह-न भवानिति। अप्ययभावयोर्मृत्युजन्मनोः ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

वैर का कोई भी कारण नहीं है इस बात को कुबेरजी ने नभवान् इस श्लोक से कहा है। जीवो के जन्म और मरण का नियामक तो काल है ॥३॥

**अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि। स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥४॥**

**अन्वयः**— पुरुषस्य हि अहंत्वमिति धीः अपार्था अज्ञानात् स्वाप्नीना आभाति अतद्ध्यानात् यया बन्धविपर्ययौ ॥४॥

**अनुवाद**— मनुष्य की मैं, तुम इस प्रकार की बुद्धि तो मिथ्या है, वह अज्ञानवशात् देहात्मानुसंधान के कारण स्वप्न में होने वाले ज्ञान के समान है। इसी के कारण जीव को बन्ध और विपरीत दुःख इत्यादि अवस्थाओं की प्राप्ति होती है ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

कथं तर्ह्यहं हन्तेत्यादिबुद्धिस्तत्राह-अहमिति। आभाति प्रकाशते। जायत इत्यर्थः। अतस्तद्ध्यानाद्देहानुसंधानात् यया धिया बन्धः। विपर्ययो दुःखादिः ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहो कि तब मैं मारने वाला हूँ इस प्रकार की बुद्धि कैसे होती है तो इसके उत्तर में कुबेरजी **अहम्** यह श्लोक कहते हैं। मैं और तू इस प्रकार की मिथ्या बुद्धि तो देहात्मानुसंधान के कारण होती है। यह अज्ञान जन्य है इसी के कारण संसार का बन्ध और दुःख आदि की प्राप्ति होती हैं ॥४॥

**तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम्। सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥५॥**
**भजस्व भजनीयाङ्घ्रिमभवाय भवच्छिदम्। युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्यात्ममायया॥६॥**

**अन्वयः**— तत् हे ध्रुव गच्छ, ते भद्रम्, सर्वभूतात्मविग्रहम् भजनीयाङ्घ्रिम् भवच्छिदम्, अधोक्षजम् गुणमय्या आत्ममायया शक्त्या युक्तम् विरहितं भगवन्तम् अभवाय भजस्व ॥५-६॥

**अनुवाद**— अतएव हे ध्रुव तुम जाओ, तुम्हारा मङ्गल हो, सम्पूर्ण जीवो में आत्मा रूप से विद्यमान रहने वाले, जिनके चरण कमल सेवनीय हैं, तथा जो संसार रूपी बन्धन को काटने वाले हैं । ऐसे कमल नयन भगवान, इस जगत की सृष्टि आदि के लिए त्रिगुणात्मिका माया से युक्त होकर भी उससे रहित रहते हैं मुक्ति प्राप्त करने के लिए उन्हीं श्रीभगवान् की आराधना करो ।।५-६।।

**भावार्थ दीपिका**

तत्तस्माद्गच्छ गत्वा च भगवन्तं भजस्वेत्युत्तरेणान्वयः । सर्वभूतात्मको विग्रहो यस्य । भजनीयावङ्घ्री यस्य तम् । गुणमय्या शक्तया युक्तम् । किं तत्त्वतः । न आत्ममायया । अतस्तत्त्वतस्तया विरहितम् । यद्वा शक्तया त्ममायया युक्तं विरहितं च सगुणनिर्गुणभेदेन ।।५-६।।

**भाव प्रकाशिका**

अतएव तुम जाओ और जाकर श्रीभगवान का भजन करो इस तरह से अगले छठे श्लोक से अन्वय है। उन श्रीभगवान् का दिव्य विग्रह सर्वभूतात्मक है । उनके दोनो चरण सेवनीय हैं । वे त्रिगुणात्मिका शक्ति से युक्त है । वह भी तत्त्वतः नहीं अपितु माया के द्वारा ही, क्योंकि वस्तुतः तो वे माया से रहित है । अथवा शक्ति के द्वारा अपनी माया से युक्त और रहित दोनों है । सगुण और निगुर्ण के भेद से हैं ।।५-६।।

**वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशङ्कितः ।**
**वरं वरार्होऽम्बुजनाभपादयोरनन्तरं त्वां वयमङ्गशुश्रुम् ।।७।।**

**अन्वयः**— अङ्ग वयं अम्बुजनाभ पादयोः अनन्तरं त्वां वयं शुश्रुम् । अतएव वरार्हः हे औत्तानपादे नृप यन् मनोगतं कामं मत्ताः अविशङ्कितः । वरं वृणीहि ।।७।।

**अनुवाद**— हे ध्रुव ! हमने सुना है कि भगवान् पद्मनाभ के चरणों के सन्निकट तुम रहते हो अतएव तुम वरदान प्राप्त करने के योग्य हो । तुम्हारे मन में जो कामना हो वह निःशङ्क होकर मुझसे वरदान के रूप में माँगो।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

काममसंकोचेन । अविशङ्कितो निर्भयः । अनन्तरमतिनिकटम् ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

कामम् पद का अर्थ है बिना किसी सङ्कोच के । अविशङ्कितः अर्थात् निर्भय होकर, अनन्तरम् अर्थात् अत्यन्त सन्निकट ।।७।।

मैत्रेय उवाच

**स राजराजेन वराय चोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ।**
**हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ।।८।।**

**अन्वयः**— राजराजेन वराय चोदितः । महाभागवतः महामतिः ध्रुवः हरौ अचलितां स्मृतिं वव्रे यया अयत्नेन दुरत्यं तमः तरिति ।।८।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— राजाओं के भी राजा कुबेर के द्वारा वरदान माँगने के लिए आग्रह किए जाने पर महाभागवत महाबुद्धिमान ध्रुवजी ने श्रीभगवान् की निश्चल स्मृति का वरदान माँगा, जिस स्मृति के द्वारा मनुष्य बिना किसी प्रयास के दुस्तर संसार सागर को पार कर जाता है ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

स वराय चोदित इत्यनुवादरूपं पृथग्वाक्यम् । अतः स वव्र इति तच्छब्दस्यापौनरुक्त्यम् ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

वरदान माँगने के लिए प्रेरित यह अनुवाद रूप से अलग वाक्य है, अतएव तत् में पुनरुक्ति नहीं है ॥८॥

**तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः । पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥९॥**

**अन्वयः**— ऐडविडः प्रीतेन मनसा तस्मतां दत्त्व ततः पश्यतः अन्तर्दधे, सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥९॥

**अनुवाद**— इडविडा के पुत्र कुबेरजी ने प्रसन्न मन से ध्रुव को भगवत स्मृति का वरदान दिया और उनकी आँखों के सामने से वे अन्तर्धान हो गये और ध्रुवजी अपने नगर में आ गये ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥९॥

**अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः । द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— अथ भूरिदक्षिणौः क्रतुभिः यज्ञ क्रिया देवतानाम् कर्म कर्म फलप्रदम् यज्ञेशं अयजत ॥१०॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् ध्रुवजी ने बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले यज्ञों के द्वारा द्रव्य किया, देवता सम्बन्धी कर्म, फल और फल प्रदाता यज्ञ के स्वामी श्रीभगवान् की आराधना की ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

द्रव्यक्रियादेवतानां कर्मसाध्यं फलरूपं कर्मफलप्रदं चेत्यर्थः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ही द्रव्य, क्रिया औरदेवता के कर्म कर्मों के फल तथा फल प्रदाता भी है ॥१०॥

**सर्वात्मन्यच्युतेऽसर्वेतीवैघां भक्तिमुद्वहन् । ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥११॥**

**अन्वयः**— असर्वे सर्वात्मनि अच्युते तीवौघां भक्तिम् उद्वहन् तमेव विभुम् आत्मनि भूतेषु च अवस्थितं ददर्श ॥११॥

**अनुवाद**— सर्वोपधि शून्य सर्वात्मा भगवान् अच्युत में प्रवल वेग सम्पन्न भक्ति से युक्त होने के कारण उन्हीं व्यापक् श्रीभगवान् को वे अपनी आत्मा में और सबों के भीतर अन्तर्यामी रूप से देखने लगे ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वस्यात्मनि । असर्वे सर्वोपाधिविवर्जिते ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

**सर्वास्यात्मनि** सबों की आत्मा स्वरूप, **असर्वे सर्वोपधि** रहित परमात्मा में ॥११॥

**तमेवं शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् । गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥१२॥**

**अन्वयः**— एवं शील सम्पन्नं ब्रह्मण्यम् दीन वत्सलम् धर्मसेतूनां गोप्तातारम् प्रजाः पितरं मेनिरे ॥१२॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से शील गुण सम्पन्न, ब्राह्मण भक्त, दीनवत्सल धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करने वाले उन ध्रुवजी को प्रजा अपने पिता के समान मानती थी ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१२॥

**षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् । भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— भोगै पुण्यक्षय अभोगैः अशुभ क्षयम् कुर्वन्, षट्त्रिंशद् वर्षसाहस्रं क्षितिमण्डलं शशास ॥१३॥

**अनुवाद**— ऐश्वर्यों के भोग के द्वारा पुण्यों का और भोगों के त्याग पूर्वक यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान के द्वारा पाप का विनाश करते हुए ध्रुवजी छत्तीस हजार वर्षों तक भूण्डल का प्रशासन किए ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

भोगैरैश्वर्यादिभिः । अभोगैर्यज्ञाद्यनुष्ठानैः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

भोगैं अर्थात् इस तरह के ऐश्वर्यों के भोग आदि के द्वारा और अभोगैः यज्ञों के अनुष्ठान आदि के द्वारा॥१३॥

**एवं बहुसवं कालं महात्माऽविचलेन्द्रियः । त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— एवं महात्मा अविचलेन्द्रियः त्रिवर्गौपयिकं बहुसवं नीत्वा पुत्राय नृपासनं अदात् ॥१४॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से महात्मा जितेन्द्रिय ध्रुवजी अर्थ, धर्म और काम के सम्पादन में बहुत से वर्षों को बिताकर अपने पुत्र उत्कल को राजसिंहासन सौप दिये ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

बहवः सवा यागाः संवत्सरा वा यस्मिंस्तं कालं त्रिवर्गसाधकं नीत्वा । अविचलानि संयतानीन्द्रियाणि यस्य ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

जिसमें बहुत से सव अर्थात् याग अथवा संवत्सर विद्यमान हो ऐसे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) के साधक समय को बिताकर जितेन्द्रिय ध्रुवजी ने राजसिंहासन अपने पुत्र उत्कल को समर्पित कर दिया ॥१४॥

**मन्यमान इद विश्वं मायारचितमात्मनि । अविद्यारचितस्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— इदं विश्वम् आत्मनि रचितम् माया रचितम् अविद्यारचित स्वप्न गन्धर्वनग रोपमम् मन्यमानः ॥१५॥

**अनुवाद**— इस सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च को अविद्यारचित स्वप्न तथा गन्धर्व नगर के समान माया से अपने में रचित मानने लगे ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

इदं देहादि भगवन्माययात्मनि स्वस्मिन् रचितं मन्यमानः । अत्राविद्यासृष्टिं दृष्टान्तयति । अविद्यारचितेति ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

इस देह आदि श्रीभगवान् को श्रीभगवान् की माया के द्वारा अपने में ही मानने लगे, अविद्या सृष्टि का दृष्टान्ता **अविद्या रचित इत्यादि** श्लोकांश से दिया गया है ॥१५॥

**आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ।**
**भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— आत्मस्त्र्यपत्य सुहृदः बलम् ऋद्धकोशम् अन्तःपुरम् परिविहारभुवः च रम्याः जलधि मेखलम् भूण्डलम् कालोपसृष्टम् इति आकलय्य विशालाम् प्रययौ ॥१६॥

**अनुवाद**— शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, सेना, समृद्ध, खजाना, अन्तःपुर, सुन्दर विहार भूमि, समुद्र पर्यन्त भूण्डल का राज्य, ये सभी विनाशशील हैं, यह जानकर वे बदरिकाश्रम चले गये ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मा देहः । आत्मादि मायिकमपि पुनः कालेनोपसृष्टमनित्यमाकलय्य विचिन्त्य विशालां बदरिकाश्रमम् ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

यहाँ आत्मा शब्द शरीर का वाचक है । शरीर आदि सबके सब माया जन्य होकर भी विनाश शील हैं, इस बात का मन में विचार करके ध्रुवजी बदरिकाश्रम चले गये ।।१६।।

**तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्धासनं जितमरुन्मनसाहृताक्षः ।**
**स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ।।१७।।**

**अन्वयः**— तस्यां शिवावार्विगाह्य, विशुद्ध करण; बद्धवासनम् जितमरुत् मनसा हृताक्षः स्थूले भगवत्मप्रतिरूपे दधार, एतत् ध्यायन् तदव्य व्यहितः समाधौ व्यसृजत् ।।१७।।

**अनुवाद**— उस विशाला में पवित्र जल में स्नान करके शुद्ध इन्द्रियों वाले हो गये । तदनन्तर स्थिर आसन पर बैठकर, प्राणायाम के द्वारा वायु को वश में कर के मन के द्वारा इन्द्रियों को विषय पराङ्मुख उन्होंने बनाया। पत्पश्चात् उन्होंनेमन को श्रीभगवान् के विराट् रूप में लगा दिया । श्रीभगवान् की इसी रूप का ध्यान करते करते वे ध्याता धेय आदि भेद से रहित होकर वे निर्विकल्प समाधि में लीन होकर उस विराट रूप का भी परित्याग कर दिए ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र तत्कृतमष्टाङ्गयोगमाह । तस्यां शिवं वाः उदकं विगाह्य प्रविश्येति स्नानादिनियमा उक्ताः । विशुद्धकरण इति शमादयो यमाः । आसनादीनि स्फुटमेवोक्तानि । जितो मरुत्प्राणो येन । आहृतान्यक्षाणि येन । भगवतः प्रतिनिधिभूते स्थूले विराड्रूपे एतन्मनो दधार । ध्यायन्नव्यवहितो ध्यातृध्येयभेदशून्य; सन्समाधौ स्थितस्तत्स्थूलं व्यसृजत् ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

बदरिकाश्रम में उनके द्वारा किए गये अष्टाङ्ग योग का वर्णन करते हैं । वहाँ पवित्र जल में स्नान करके ध्रुवजी विशुद्ध अन्तःकरण वाले हो गये इस तरह शम दम इत्यादि का वर्णन किया गया है । आसनों आदि का तो इस श्लोक में स्पष्ट रूप से वर्णन है । उसके पश्चात् उन्होंने प्राणायाम के द्वारा प्राण वायु को वश में किया । तदनन्तर उन्होंने इन्द्रियों को विषय पराङ्मुख बनाया । उसके पश्चात् उन्होंने श्रीभगवान् के स्थूल विराट् रूप में अपने मन को लगा दिया । श्रीभगवान् के उस रूप का ध्यान करते हुए वे ध्याता ध्येय आदि भेद से रहित निर्विकल्प समाधि में उस विराट् रूप को भी त्याग दिये ।।१७।।

**भक्ति हरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानन्दबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ।**
**विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचिताङ्गो नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ।।१८।।**

**अन्वयः**— हरौ भगवति भक्तिं अजस्रं भक्तिं प्रवह्न मुहुः आनन्दवाष्प कलया मुहुरर्द्यमानः विक्लिद्यमान हृदयः पुलकाचिताङ्गः असौ आत्मनं न अस्मरत इति मुक्तलिङ्गः ।।१८।।

**अनुवाद**— श्रीहरि के प्रति निरन्तर भक्ति का प्रवाह होते रहने के कारण उनके नेत्रों में बार-बार आनन्दाश्रु भर जाते थे । उसके कारण उनका हृदय द्रवित हो जाता था । शरीर में रोमाञ्च हो जाता था । तदनन्तर देहाभिमान के भी विनष्ट हो जाने के कारण उनको इस बात का भी पता नहीं चलता था कि मैं ध्रुव हूँ ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

एवमजस्रं नित्यं हरौ भक्तिं प्रकर्षेण बहन्नसौ ध्रुवोऽहमित्यात्मानं न सस्मार । यतो मुक्तलिङ्गस्त्यक्तशरीराभिमानः । तत्र हेतवः-आनन्दवाष्पस्य कलया विन्दुप्रवाहेणाभिभूयमानः । विक्लिद्यमानं द्रवद्धृदयं यस्य । पुलकैर्व्याप्ताङ्गः ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार से सदैव ही श्रीहरि की भक्ति करने वाले ध्रुव को इस बात की भी यादगारी नहीं रहती थी कि मैं यह ध्रुव हूँ, क्योंकि वे शरीरात्माभिमान से रहित हो गये थे। उसके कारण ये थे कि वह आनन्दाश्रु की बून्दों के प्रवाह होते रहने के कारण वे अभिभूत हो जाते थे। वे उसी आनन्दाश्रु में ही भींग जाते थे। उनका हृदय द्रवित हो जाता था। और उनका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो जाता था ॥१८॥

**स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद्ध्रुवः। विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— स ध्रुवः नभस अवतरद् विमानाग्र्यं अवतरत् उदितं राकापतिमिव दश दिशः विभ्राजयत् ददर्श ॥१९॥

**अनुवाद**— वे ध्रुव आकाश से उत्तरते हुए एक श्रेष्ठ विमान को देखे जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान दशो दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥१९॥

**तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ।**
**स्थितावववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ ॥२०॥**

**अन्वयः**— तत्रानु चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरौ अरुणाम्बुजेक्षणौ गदाम् अवष्टभ्य स्थितौ सुवाससो किरीटहाराङ्गद चारुकुण्लौ ददर्श ॥२०॥

**अनुवाद**— उन्होंने उसमें चार भुजाओं वाले, श्याम वर्ण के किशोरावस्था वाले जिनके नेत्र लाल कमल के समान लाल थे तथा गदा धारण किए हुए उसमें स्थित थे, उनके वस्त्र सुन्दर थे तथा वे सुन्दर किरीट हार, अङ्गद और कुण्डल धारण किए हुए थे ऐसे दो श्रेष्ठ देवताओं को देखा ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्वनन्तरं देवप्रवरौ ददर्शेत्यनुषङ्गः। गदामवष्टभ्य स्थितौ। किरीटादिभिः सहिते चारुणी कुण्डले ययोः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके पश्चात् ध्रुवजी ने उस विमान में विद्यमान दो श्रेष्ठ देवताओं को देखा जो गदा धारण किए हुए थे तथा किरीट आदि के साथ जिनके दोनों कुण्डल सुन्दर थें ॥२०॥

**विज्ञाय तावुत्तमगायकिंकरावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः।**
**ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥२१॥**

**अन्वयः**— तौ उत्तमगायकिङ्करौ पार्षद प्रवरौ विज्ञाय साध्वस विस्मृतक्रमः अभ्युत्थितः मधुद्विषः नामानि गृणन् संहताजलिः ननाम ॥२१॥

**अनुवाद**— वे दोनों श्रीभगवान् के किङ्कर और प्रधान पार्षद हैं यह जानकर शीघ्रता करने में पूजा के क्रम को भूल गये और खड़े हे गये, ध्रुवजी भगवान् मधुसूदन के नामों का उच्चारण करते हुए हाथ जोड़कर उन दोनों को प्रणाम किए ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

उत्तमगायः पुण्यश्लोकस्तस्य किंकरौ तौ विज्ञाय मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति हेतोः। साध्वसेन संभ्रमेण विस्मृतपूजाक्रमः केवलं तस्य नामानि गृणन्ननाम ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

उत्तमगाय श्रीभगवान् का नाम है उन दोनों को श्रीभगवान् का किङ्कर जानकर चूंकि वे दोनों भगवान् मधुसूदन का नामोच्चारण करते हुए ध्रुवजी शीघ्रता में भगवान् के पूजा का क्रम भूल गये और केवल भगवान् के ही नाम का उच्चारण करते हुए उन दोनों देव श्रेष्ठों को प्रणाम किए ॥२१॥

**तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ।**
**सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसंमतौ ॥२२॥**

**अन्वयः**— कृष्णपादाभिनिष्टचेतसं, बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरं तं पुष्करनाभसंमतौ सुनन्दनन्दौतं उपसृत्य सस्मितं प्रत्युचतुः ॥२२॥

**अनुवाद**— जिनका मन श्रीभगवान् के चरणों में तली शा ऐसे ध्रुवजी हाथ जोड़े खड़े थे तथा नम्रता के कारण शिर नीचे किए थे, उनके पास श्रीहरि के प्रिय पार्षद जाकर मुस्कुराते हुए कहे ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥२२॥

सुनन्दनन्दावूचतुः

**भो भो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु । यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥२३॥**

**अन्वयः**— भो भो राजन् ते सुभद्रं नः अवहितं वाचं शृणु यः पञ्चवर्षः भवान् तपसा देवमतीतृपत् ॥२३॥

**सुनन्द और नन्द ने कहा**

**अनुवाद**— हे राजन् ! आपका मङ्गल हो । आप सावधानी पूर्वक हमारी बातों को सुनें आपने पाँच वर्ष की अवस्था में तपस्या के द्वारा श्रीभगवान् को संतुष्ट कर दिया था ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

सुभद्रमिति सशरीरस्यैव विष्णुपदारोहाभिप्रायम् । अतीतृपत्तर्पितवान् ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

सभद्रम् कहने का अभिप्राय है कि आपको सशरीर भगवान् के लोक में चलना है, आपने पाँच वर्ष की अवस्था में ही भगवान् को अपनी तपस्या के द्वारा तृप्त कर दिया था ॥२३॥

**तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः । पार्षदाविह संप्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— तस्य अखिलजगद्धातुः शार्ङ्गिणः देवस्य आवाम् पार्षदौ त्वाम् भगवत् पदम् नेतुम् इह सम्प्राप्तौ ॥२४॥

**अनुवाद**— उन सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीभगवान् के हम दोनों पार्षद है आपको श्रीभगवान् के लोक में ले जाने के लिए आये हैं ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

आवां तस्य पार्षदौ ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

हम दोनों श्रीभगवान् के पार्षद हैं ॥२४॥

**सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ।**
**आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो ग्रहर्क्षताराः परियन्ति दक्षिणाम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— त्वया सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं सूरयः अप्राप्य परम् विचक्षते । चन्द्रदिवाकरादयः ग्रहर्क्षताराः यत् दक्षिणाम् परियन्ति तत् आतिष्ठ ॥२५॥

**अनुवाद**— जिसको प्राप्त करना अत्यन्त कठिन उस विष्णुपद को आपने अपनी भक्ति के प्रभाव से प्राप्त किया है। परमज्ञानी सप्तर्षिगण भी उसे नहीं प्राप्त कर सके वे भी उसे नीचे ही देखते हैं। चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण उसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं आप चलकर उसी धाम में निवास करें ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

सुदुर्जयत्वे हेतुः-सूरयः सप्तर्षयोऽपि यदप्राप्य केवलमधः स्थिताः पश्यन्ति, यच्चन्द्रादयः प्रदक्षिणं यथा भवत्येवं परिक्रामन्ति तदातिष्ठाधितिष्ठ ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

विष्णु पद के दुर्जयत्व के कारण ये सप्तर्षिगण मे भी उस पद को नीचे से ही रहकर उसे देखते हैं। और सूर्य चन्द्रमा आदि भी उसकी प्रदक्षिणा करते हैं। उस पद को आप प्राप्त करें ॥२५॥

**अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित्। आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णो परम पदम् ॥२६॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग ते पितृभिः अन्यैः अपि कर्हिचित् अनास्थितं जगतां वन्द्यम् विष्णोः तत् परमं पदम् आतिष्ठ ॥२६॥

**अनुवाद**— हे वत्स तुम्हारे पितृगणों तथा दूसरों के द्वारा वह पद कभी भी अधिष्ठित नहीं हुआ उस जगत् वन्द्य भगवान् विष्णु के सर्वश्रेष्ठ पद को आप अधिष्ठित करें ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२६॥

**एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना । उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥२७॥**

**अन्वयः**— आयुष्मन् एतत् विमानप्रवरम् उत्तमश्लोकमौलिना उपस्थापितम् आरोढुं त्वम् अर्हसि ॥२७॥

**अनुवाद**— हे आयुष्मन् इस श्रेष्ठ विमान को पुण्यश्लोक शिरोमणि भगवान् विष्णु ने भेजा है आप इस पर चढ़ें ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

आयुष्मन्नित्यपि सशरीरयानाभिप्रायमेव ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

आयुष्मन् ! यह संबोधन भी सशरीर विमान पर बैठने के अभिप्राय से प्रयुक्त है ॥२७॥

मैत्रेय उवाच

**निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतं वाचमुरुक्रमाप्रियः ।**
**कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलो मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥२८॥**

**अन्वयः**— वैकुण्ठनि योज्यमुख्ययोः मधुच्युतं वाचं निशम्य उरुक्रमाप्रियः कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलः मुनीम् प्रणम्य आशिषम् अभ्यवादयत् ॥२८॥

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के पार्षद मुख्यों की अमृत स्राविणी वाणी को सुनकर श्रीभगवान् के प्रिय ध्रुवजी ने स्नान करके नित्य कर्मों से निवृत्त हुए फिर मङ्गल अलङ्कार को धारण करके मुनियों को प्रणाम किए और उन लोगों से आशीर्वाद के रूप में स्वस्ति वाचन कराये ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

मधु च्यवते स्रवतीति मधुच्युत् ताम्। पाठान्तरे मधु च्युतं यस्यां ताम्। अमृतस्राविणीमित्यर्थः कृतं नित्यं कर्म मङ्गलं चालंकरणं येन। अभ्यवादयद्वादयामास ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

जिससे मधु (अमृत) चूता है इस अर्थ में मधुच्युतम् पदव्युत्पन्न है । मधुच्युताम् पाठ होने पर अर्थ होगा जिसमें मधु गिरा है ऐसा अर्थ होगा । अर्थात् अमृतस्राविणी कृतं नित्यं कर्म मङ्गालं चालङ्कारणं येन यह कृत नित्यमङ्गलः पद का विग्रहः अर्थात् नित्यकर्म और मङ्गलालङ्कार को धारण किए हुए । अभ्यवादयत् अर्थात् स्वस्ति वाचन कराये ।।२८।।

**परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च । इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम् ।।२९।।**

**अन्वयः**— धिष्ण्याग्रं परित्य अभ्यर्च्य पार्षदौ च अभिवन्द्य निरामयं रूपं विभ्रत् तदधिष्ठातुम् इयेष ।।२९।।

**अनुवाद**— उस श्रेष्ठ विमान की परिक्रमा करके और उसकी पूजा करके उन्होंने उन दोनों पार्षदों को प्रणाम किया उसके पश्चात् अपने सुवर्णमय शरीर को धारण किए हुए विमान पर चढना चाहे ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

तदेव रूपं हिरण्मयं प्रकाशबहुलं विभ्रत्सन्नियेष ऐच्छत् ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

ध्रुवजी का शरीर वही था किन्तु वह शुद्ध सत्त्व के तेजोविशेष से युक्त था ऐसे शरीर को धारण किए हुए वे विमान पर चढना चाहे ।।२९।।

**तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् । मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ।।३०।।**

**अन्वयः**— तदा उत्तानपदः पुत्र आगतम् अन्तकम् ददर्श मृत्योः मूर्ध्नि पदं दत्त्वा अद्भुतं गृहम् आरुरोह ।।३०।।

**अनुवाद**— उस समय ध्रुवजी ने देखा कि काल मूर्तिमान रूप से खड़े है । वे काल के शिर पर पैर रखकर उस अद्भुत विमान में बैठ गये ।।३०।।

### भावार्थ दीपिका

गृहं विमानम् । अयं भावः-यदा ध्रुवो विमानमारोढुमैच्छत्तदा मृत्युरागत्य प्रणम्योवाच । हे महाराज, मामङ्गीकुरु । उवाच ध्रुवः, स्वागतं ते, क्षणं तावदुपविश । एवमुक्त्वा ध्रुवो विष्णोः स्मरणं कृत्वा मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा विमानाग्र्यमारुरोह।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

विमान को ही गृह शब्द से कहा गया है । श्लोक का अभिप्राय है कि जब ध्रुव विमान पर चढना चाहे उस समय मृत्यु आकर उनको प्रणाम करके कहा— हे महाराज मुझको स्वीकार कीजिये । ध्रुवजी ने कहा क्षणभर के लिए बैठ जाओ । इस तरह से कहकर ध्रुवजी भगवान् विष्णु का स्मरण करके मृत्यु के शिर पर पैर रखकर उस श्रेष्ठ विमान पर बैठ गये ।।३०।।

**तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवादयः । गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ।।३१।।**

**अन्वयः**— तदा दुन्दुभयः मृदङ्गपणवादयः नेदुः, गन्धर्व मुख्याः प्रजगुः कुसुमवृष्टयः पेतुः ।।३१।।

**अनुवाद**— उस समय आकाश में दुन्दुभि, मृदङ्ग तथा पणव आदि बजने लगे, मुख्य गन्धर्वों ने गीत गाया और फूलों की वर्षा हुई ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।३१।।

**स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन्सुनीतिं जननीं ध्रुवः । अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— स्वलोकम् आरोक्ष्यन् सः ध्रुवः जननी सुनीतिं दीनां हित्वा कथम् अङ्ग त्रिविष्टपम् यस्यिामि ॥३२॥

**अनुवाद**— विमान पर चढकर श्रीभगवान् के लोक में जाने के लिए उत्सुक ध्रुवजी को अपनी माता सुनीति की याद आयी वे सोचे उस बेचारी को छोड़कर मैं अकेले दुर्लभ वैकुण्ठ लोक में कैसे जाऊँ? ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

दीनां हित्वा कथमगं दुर्गमं त्रिविष्टपं यास्यामीत्यन्वस्मरत् ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

अपनी माता बेचारी सुनीति को छोड़कर मैं कैसे दुर्लभ वैकुण्ठ में जाऊँ ॥३२॥

**इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ । दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— इति तस्य व्यवस्थितं व्यवसाय सुरोत्तमौ पुरो यानेन गच्छतीम् देवीं दर्शयामासतुः ॥३३॥

**अनुवाद**— ध्रुव के इस प्रकार के अभिप्राय को जानकर वे दोनों देवश्रेष्ठ नन्द और सुनन्द उनके विमान से आगे जाती हुई सुनीति को दिखाये ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यवसितमभिप्रायम् । व्यवसाय ज्ञात्वा ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

व्यवस्थितम् अर्थात् अभिप्राय । व्यवसाय अर्थात् जानकर ॥३३॥

**तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः । अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥३४॥**

**अन्वयः**— तत्र-तत्र पथि प्रशंसद्भिः वैमानिकैः सुरैः कुसुमैः अवकीर्यमाणः क्रमशो ग्रहान् ददृशे ॥३४॥

**अनुवाद**— मार्ग में स्थान-स्थान पर प्रशंसा करने वाले देवों के द्वारा पुष्पों की वृष्टि किए जाते हुए वे क्रमशः ग्रहों को देखे ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३४॥

**त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि । परस्ताद्यद्ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥३५॥**

**अन्वयः**— स; देवयानेन त्रिलोकीम् अतिव्रज्य मुनीन् अपि परस्तात् अथ ध्रुवगतिः विष्णोः पदम अभ्यगात् ॥३५॥

**अनुवाद**— वे ध्रुवजी विमान के द्वारा देवमार्ग से त्रिलोकी को पार करके सप्तर्षियो को भी पार करके ऊपर की ओर भगवान् विष्णके लोक में ध्रुवगति प्राप्त कर लिए ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

देवयानेन देवमार्गेण विमानेनेति वा। मुनीन्सप्तर्षीनपि । ततः परस्ताद्यद्विष्णोः पदं तदभ्यगात् । ध्रुवा गतिर्यस्य सः॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

**देवयाने** का अर्थ देवमार्ग से है या विमान से है । ये दोनों अर्थ देवयानेन के हो सकते हैं । मुनियों अर्थात् सप्तर्षियों को भी पार करके वे उसके ऊपर भगवान् विष्णु के लोक में गये इस प्रकार उन्होंने ध्रुवगति को प्राप्त कर लिया ॥३५॥

**यद्भ्राजमानं स्वरूचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनुविभ्राजन्त एते ।**
**यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम् ॥३६॥**

**अन्वयः**— यत् स्वरूचैव सर्वत भ्राजमानम् एतेहि त्रयो लोका अनु विभ्राजन्ते ये जन्तुषु अननुग्रहा ते नाव्रजन् ये अनिशम् भद्राणि चरन्ति ते व्रजन्ति ॥३६॥

**अनुवाद**— यह लोक अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होता रहता है । इसके प्रकाश से सभी लोक प्रकाशित होते रहते है । जो लोग दूसरे जीवों पर दया नही करते हैं, वे इस लोक में नहीं जाते हैं और जो लोग सदा दूसरों का कल्याण करते है वे ही इस लोक में जाते हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्भ्राजमानमनु यस्य रुचा लोका विभ्राजन्ते । येऽननुग्रहा निष्कृपास्ते यन्नाव्रजन्न गतवन्तः ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसके प्रकाश से ही सभी लोक प्रकाशित होते हैं । जो लोग दूसरे जीवों पर कृपा नहीं करते हैं, वे इस लोक में नहीं आते हैं ॥३६॥

**शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः । यान्त्यञ्जसाऽच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥३७॥**

**अन्वयः**— शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः अच्युतप्रिय बान्धवाः अञ्जसा अच्युतम् अच्युत पदम् यान्ति॥३७॥

**अनुवाद**— जो शान्त, समदर्शी शुद्ध और सब प्राणियों को प्रसन्न रखने वाले तथा भगवान् और भक्तों को ही अपना बान्धव मानते हैं वे ही लोग सुगमता से श्रीभगवान् के कभी भी विनष्ट नहीं होने वाले इस लोक में जाते हैं॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

अच्युतः प्रियो बान्धवो येषाम् ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

अच्युत प्रिय बान्धवाः का विग्रह है अच्युत ही जिनके प्रिय बन्धु हैं ॥३७॥

**इम्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः । अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥३८॥**

**अन्वयः**— इति कृष्णपरायणः, उत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः त्रयाणां लोकानाम् अमलः चूडामणिः इव अभूत् ॥३८॥

**अनुवाद**— इस तरह से श्रीभगवान् के भक्त महाराज उत्तानपद के पुत्र ध्रुव तीनों लोकों के ऊपर निर्मल चूड़ामणि के समान विराजमान हुए ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३८॥

**गम्भीरवेगो निमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् । यस्मिन्भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥३९॥**

**अन्वयः**— हे कौरव्य मेढ्यां गवां गण इव यस्मिन् गम्भीर वेगः ज्योतिषं चक्रम् आहितं भ्रमति ॥३९॥

**अनुवाद**— हे कुरुनन्दन ! जिस तरह दँवरी के सभी बैल मेढी के खम्भे के चारो ओर घूमते हैं, उसी तरह गम्भीर वेग वाला यह ज्योतिष चक्र उस अविनाशी लोक के आधार पर ही निरन्तर घूमता रहता है ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

अनिमिषमनलसं ज्योतिषां चक्रं यस्मिन्नाहितमर्पितं सद्भ्रमति । मेढ्यामाहितो गम्भीरवेगो गवां गण इव ॥३९॥

**भाव प्रकाशिका**

आलस्य रहित ज्योतिष चक्र जिसमें ही स्थित रहकर सदा उसी तरह घूमता रहता है जिस तरह खम्भे से बन्धे हुए दँवरी के बैल उसके चारो ओर घूमते हैं ॥३९॥

**महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः । आतोद्यं वितुदन् श्लोकान् सत्रेऽगायत्मचेतसाम् ॥४०॥**

**अन्वयः**— अस्य महिमानं विलोक्य भगवान् ऋषिः नारदः आतोद्यं वितुदन् प्रचेतसाम् सत्रे श्लोकान् अगायत्॥४०॥

**अनुवाद**— ध्रुवजी की महिमा को ही देखकर देवर्षि नारदजी ने प्राचेतसों के सत्र में अपनी वीणा बजाकर इन तीन श्लोकों को गाया था ॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

आतोद्यं वीणां वितुदन्वादयन्प्रचेतसां ब्रह्मसत्रे भगवन्माहात्म्यप्रसङ्गेन ध्रुवमहिमप्रतिपादनपरांस्त्रीन् श्लोकानगायत् ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

अतोद्य शब्द से यहाँ वीणा को कहा गया है । प्राचेतसों के ब्रह्मसत्र में नारदजी वीणा बजाकर श्रीभगवान् की महिमा के प्रसङ्ग में ध्रुवजी की महिमा के प्रतिपादन में तीन श्लोकों को गाये थे ॥४०॥

नारद उवाच

**नूनं सुनीतेः पतिदेवतायास्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ।**
**दृष्ट्वाऽभ्युपायानपि वेदवादिनो नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥४१॥**

**अन्वयः**— नूनं पतिदेवतायाः सुनीतेः सुतस्य तपः प्रभावस्य तां गतिम् । अभ्युपायान् दृष्ट्वा अपि वेदवादिनः अधिगन्तुं न प्रभवन्ति किं नृपाः ॥४१॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— निश्चित रूप से पति परायण सुनीति के पुत्र ध्रुवजी की तपस्या के प्रभाव से प्राप्त हुई उस गति को ब्रह्मर्षिगण भी प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते तो राजाओं की कौन सी बात है ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**

नूनमिति । पतिरेव देवता यस्यास्तस्याः सुतस्य यस्तपः प्रभावस्तस्य तां गतिं फलमधिगन्तुं वेदवादशीला ब्रह्मर्षयोऽपि नैव प्रभवन्ति । अभ्युपायान्भगवद्धर्मान दृष्ट्वापि । किं पुनर्नृपाः ॥४१॥

**भाव प्रकाशिका**

निश्चित रूप से पति को ही देवता रूप से आराधना करने वाली सुनीति के पुत्र की तपस्या के प्रभाव से प्राप्त होने वाले गति रूपी फल को ब्रह्मर्षिगण भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं तो फिर राजाओं की कौन सी बात हैं ॥४१॥

**यः पञ्चवर्षो गुरुदारवाक्शरैर्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ।**
**वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥४२॥**

**अन्वयः**— यः पञ्चवर्षः गुरुदारवाक्शरैः भिन्नेन हृदयेन दूयता वनं यातः मदादेशकरः तद्भक्तगुणैः पराजितम् अजितं प्रभुं जिगाय ॥४२॥

**अनुवाद**— जो ध्रुव पाञ्च वर्ष की ही अवस्था में अपनी सौतेली माता के बाग्बाणों से मर्माहत होकर दुःखी हृदय से वन में चले गये और मेरे उपदेश के अनुसार ही आचरण करके अपने भक्तों के गुणों से ही पराजित होने वाले अर्थात् भक्तों के वश में हो जाने वाले और कभी भी पराजित नहीं होने वाले श्रीहरि को जीत लिए॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

तपःप्रभावं गतिं च विशिनष्टि द्वाभ्याम् । गुरुदाराः पितृपत्नी सुरुचिस्तस्या वाक्शरैर्भिन्नेनात एव दूयता हृदयेन वनं यातः सन्नजितमपि यो जिगाय वशीकृतवान् ।।४२।।

### भाव प्रकाशिका

तपस्या के प्रभाव और उससे प्राप होने वाली गति का वर्णन दो श्लोकों से करते हैं अपनी सौतेली माता के वाग्वाणों से मर्माहत एवं दुःखी हृदय से ध्रुव वन में चले गये और अपनी तपस्या के प्रभाव से कभी भी परास्त नहीं होने वाले श्रीभगवान् को जीत लिए अर्थात् अपने वश में कर लिए ।।४२।।

**यः क्षत्रबन्धुर्भुवि तस्याधिरूढमन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ।**
**षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ।।४३।।**

**अन्वयः**— यः षट्पञ्चवर्षः यदहोभि अल्पैः वैकुण्ठं प्रसाद्य तत्पदम् अवाप तस्याधिरूढम् क्षत्रबन्धु तमनु भवेत् भुवि यः वर्षपूगैः आरुरुक्षेदपि ।।४३।।

**अनुवाद**— पाँच या छह वर्ष के ध्रुव ने बहुत कम दिनों में श्रीभगवान् को प्रसन्न करके उनके पद को प्राप्त कर लिया, पृथिवी पर ऐसा कोई दूसरा क्षत्रिय है जो अनेक वर्षों तक तपस्या करके उस पद को प्राप्त कर सके।।४३।।

### भावार्थ दीपिका

तस्याधिरूढं तेन प्राप्तं पदं यो भुवि क्षत्रबन्धुः क्षत्रियो भवेत्स तमनु वर्षसमूहैरप्यारोढुमिच्छेदपि किम् । तत्सङ्कल्पोऽप्यशक्यो दूरत आरोहणमित्यर्थः । कथंभूतं पदम् । षड्वा पञ्च वा वर्षाणि यस्य सः । अल्पैरेवाहोभिर्वैकुण्ठं प्रसाद्य यत्तस्य पदमवाप तत् ।।४३।।

### भाव प्रकाशिका

ध्रुव के द्वारा प्राप्त पद को पृथिवी पर कोई दूसरा क्षत्रिय हो सकता है क्या जो अनेक वर्षों में भी उस पद को प्राप्त करने की इच्छा कर सके ? उसका कोई सङ्कल्प भी नहीं कर सकता है उस पद को प्राप्त करना तो बहुत दूर है यदि कोई कहे कैसा है वह पद ? तो इसका उत्तर है कि पाँच या छह वर्षों की अवस्था वाले उसने कुछ ही दिनों में श्रीभगवान् को प्रसन्न करके उनके पद को प्राप्त कर लिया । वैकुण्ठ भगवान् का एक नाम है ।।४३।।

मैत्रेय उवाच

**एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं संमतं सताम् ।।४४।।**

**अन्वयः**— त्वया इह यत् उद्दामयशसः ध्रुवस्य सतां सम्मतं चरितं पृष्टं एतत् ते सर्वम् अभिहितम् ।।४४।।

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— विदुरजी आपने जो उदार कीर्ति वाले ध्रुव के सन्तजनों के सम्मत चरित्र के पूछा था वह मैंने आपको पूर्ण रूप से सुना दिया ।।४४।।

### भावार्थ दीपिका

उद्दाममुत्कृष्टं यशो यस्य ।।४४।।

### भाव प्रकाशिका

उत्कृष्ट यश वाले ध्रुवजी के चरित को मैंने सुनाया है ।।४४।।

**धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् । स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥४५॥**
**श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् । भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥४६॥**

**अन्वयः**— एतत् धन्यं, यशस्यम्, आयुष्यम्, पुण्यं महत् स्वस्त्ययनम् स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं, प्रशस्यम् , अधमर्षणम्, श्रद्धया अच्युतप्रिय चेष्टितं अभीक्ष्णं श्रुत्वा भगवति भक्ति र्भवेत् यया क्लेशसंक्षयः स्यात् ॥४५-४६॥

**अनुवाद**— यह धन, यश और आयु की वृद्धि करने वाले परम पवित्र और अत्यन्त मङ्गलमय स्वर्ग तथा अविनाशी पद को प्रदान करने वाले देवत्व को प्रदान करने वाले, प्रशंसनीय तथा पापविनाशक भगवद्भक्त ध्रुव के चरित को श्रद्धा पूर्वक बार-बार सुनने से मनुष्य की श्रीभगवान् में भक्ति होती है और उससे सम्पूर्ण क्लेशों का नाश हो जाता है ॥४५-४६॥

### भावार्थ दीपिका

धनादेर्निमित्तम् । ध्रौव्यं ध्रुवस्थानप्रापकम् । प्रशस्यं प्रशंसार्हम् अधमर्षणं पापनाशनम् । अच्युतप्रियस्य ध्रुवस्य चेष्टितं श्रुत्वा यो वर्तते तस्य भक्तिर्भवेत् ॥४५-४६॥

### भाव प्रकाशिका

धन्यम् अर्थात् धन आदि के प्रदान करने वाले, ध्रौव्यम अर्थात् ध्रुव स्थान को प्रदान करने वाले, प्रशस्यम् अर्थात् प्रशंसनीय अधमर्षणम् यानी पाप विनाशक श्रीभगवान् के प्रिय ध्रुव के चरित को सुनने से मनुष्य की श्रीभगवान् में भक्ति होती है और उससे क्लेशों का नाश होता है ॥४५-४६॥

**महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः । यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥४७॥**

**अन्वयः**— महत्त्वमिच्छतां तीर्थम् श्रोतुः शील गुणादयः यत्र तेजस्तदिच्छूनाम् मनस्विनाम् यत्र मानम् ॥४७॥

**अनुवाद**— महत्त्व चाहने वालों को यह महत्त्व प्रदान करने वाला है, श्रवण करने वाले को यह शील आदि गुणों को प्रदान करता है । तेज चाहने वाले को यह ऐसा स्थान प्रदान करता है जहाँ उसका तेज बढता है, और मनस्वी पुरुषों को ऐसा स्थान प्राप्त होता है, जिससे उनको सम्मान प्राप्त होता है ॥४७॥

### भावार्थ दीपिका

तीर्थं महत्त्वावाप्तिस्थानम् । गुणा यत्र भवन्ति ॥४७॥

### भाव प्रकाशिका

तीर्थ शब्द से उस स्थान को बतलाया गया है जहाँ महत्त्व चाहने वाले को महत्त्व की प्राप्ति होती है । **शीलादयो गुणाः** के द्वारा बतलाया गया है कि ध्रुव चरित को सुनने वाले को ऐसा स्थान मिलता है जिससे उसके शील आदि गुण प्राप्त होते हैं ॥४७॥

**प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् । सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥४८॥**

**अन्वयः**— पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य महत् चरितं सायं प्रातः प्रयतः द्विजन्मनां समवाये कीर्तयेत् ॥४८॥

**अनुवाद**— पुण्यकीर्ति ध्रुवजी के इस चरित का सायंकाल और प्रातःकाल ब्रह्मण आदि द्विजातियों के समूह में एकाग्र चित्त से कीर्तन करे ॥४८॥

### भावार्थ दीपिका

समवाये सभायाम् ॥४८॥

### भाव प्रकाशिका

समवाये पद का अर्थ है सभा में ॥४८॥

**पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथ वा । दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेऽर्कदिनेऽपि वा ॥४९॥**
**श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः । नेच्छंस्तत्रात्मनात्मानं संतुष्ट इति सिध्यति॥५०॥**

**अन्वयः**— तीर्थपादपदाश्रयः न इच्छन् पौणमास्यां सिनीवाल्यां, द्वादश्यां अथवा श्रवणे, दिनक्षये व्यतीपाते सङ्क्मे अर्कदिने अपिवा श्रावयेत् श्रद्धानानां तत्र आत्मना आत्मानं संतुष्टः इति सिध्यति ॥४९-५०॥

**अनुवाद**— परम पवित्र चरण वाले श्रीभगवान् के चरणों की शरण में रहने वाला पुरुष निष्काम भाव से इस ध्रुव जी के चरित को पूर्णिमा के दिन या आमावस्या के दिन या द्वादशी के दिन या श्रवण नक्षत्र में या तिथि का क्षय होने पर या व्यतीपात योग में या संक्रान्ति के दिन या रविवार के दिन श्रद्धालु पुरुषां को सुनता है वह अपने आपमें स्वयं सन्तुष्ट रहने लगता है ॥४९-५०॥

### भावार्थ दीपिका

नेच्छन्निष्कामतत्र श्रवणे आत्मनैवात्मानं प्रति संतुष्टो भवतीति हेतोः सिद्धिं प्राप्नोति ॥४९-५०॥

### भाव प्रकाशिका

नेच्छन् का अर्थ है निष्काम भाव से सुनाने के कारण अपने आप में संतुष्ट हो जाता है, यह सिद्धि की प्राप्ति का कारण है ॥४९-५०॥

**ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् । कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥५१॥**

**अन्वयः**— अज्ञाततत्त्वाय सत्पथेऽमृतम् ज्ञानम् यो दद्यात् तस्य कृपालोः दीननाथस्य देवा अनुगृह्णते ॥५१॥

**अनुवाद**— जो लोग तत्त्वज्ञान से रहित हैं, उनके लिए यह साक्षात् भगवद् विषयक अमृत मयज्ञान है, उन लोगों को जो इसका ज्ञान प्रदान करता है उस कृपाल दीननाथ पुरुष पर देवगण कृपा करते हैं ॥५१॥

### भावार्थ दीपिका

किंच सत्पथे भगवन्मार्गेऽमृतरूपं ज्ञानं यो दद्यात् ॥५१॥

### भाव प्रकाशिका

जो व्यक्ति भगवद् विषयक इस अमृतमय ज्ञान को तत्त्वानभिज्ञ लोगों को प्रदान करता हैं उन लोगों पर देवगण कृपा करते हैं ॥५१॥

**इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ।**
**हित्वार्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥५२॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरित नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

**अन्वयः**— हे कुरुद्वह यः अर्मकः क्रीडनकानि मातुः गृहंच त्यक्त्वा विष्णुं शरणं जगाम विख्यात विशुद्ध कर्मणः ध्रुवस्य इदं मया ते अभिहितम् ॥५२॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! जो बाल्यावस्था में खिलौनों और अपनी माता के गृह को त्यागकर भगवान् विष्णु के शरण में चले गये वे ध्रुवजी विख्यात और विशुद्ध चरित वाले हैं । यह मैंने आपको उनका चरित सुना दिया ॥५२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध के ध्रुवचरित नामक बारहवें अध्याय का शिवाप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥**

**भावार्थ दीपिका**

ध्रुवस्य चरितं मया तेऽभिहितम् । मातुर्गृहं च हित्वा ।।५२।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।**

**भाव प्रकाशिका**

मैत्रेयजी ने कहा कि विदुरजी मैंने यह आपको ध्रुव के चरित को सुना दिया । जो ध्रुवष्वाल्यावस्था में ही खिलौनों और अपनी माता के गृह को त्यागकर भगवान् विष्णु के शरण में चले गये थे ।।५२।।

**इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के बारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२।।**

# तेरहवाँ अध्याय

## प्रचेतोपाख्यान

सूत उवाच

**निशम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ।**
**प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥१॥**

**अन्वयः—** कौषारविणा उपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणं निशम्य भगवति अधोक्षजे प्ररूढभावः विदुरः तं पुनः प्रष्टुम् प्रचक्रमे ॥१॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद—** शौनकजी श्रीमैत्रेय महर्षि के द्वारा ध्रुवजी के विष्णुपद पर आरूढ होने के वृत्तान्त को सुनकर विदुरजी के हृदय में भगवान् विष्णु के प्रति भक्ति का उद्रेक हो गया और उन्होंने पुनः मैत्रेयजी से पूछना प्रारम्भ किया॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं पञ्चभिरध्यायैर्ध्रुवचर्याऽनुवर्णिता । अथैकादशभिश्चित्रं पृथुचारित्रमुच्यते ॥१॥ तत्र त्रयोदशे वक्तुं पृथोर्जन्म ध्रुवान्वये। अङ्गो वेनपिता पुत्रक्रौर्याद्गत इतीर्यते ॥२॥ प्ररूढो भावो भक्तिर्यस्य ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से पाँच अध्यायों में ध्रुव के चरित का वर्णन किया गया, ग्यारह अध्याय में महाराज पृथु के अद्भुत चरित का वर्णन किया जा रहा है ॥१॥ उसमें भी ध्रुव के वंश में पृथु के जन्म का वर्णन करने के लिए वेन के पिता अङ्ग अपने पुत्र की क्रूरता के कारण वन में चले गयेइस बात का वर्णन तेरहवें अध्याय में किया जा रहा है ॥२॥ ध्रुव के चरित को सुनने के लिए विदुरजी के हृदय में भक्ति का उद्रेक हो गया था ॥१॥

विदुर उवाच

**के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत । कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासते ॥२॥**

**अन्वयः—** हे सुव्रत ! ते प्रचेतसः नाम के ? कस्यापत्यानि ? कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्रा वा सत्रमासत ॥२॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद—** हे सुन्दर व्रत वाले मैत्रेयजी ! प्रचेतस कौन थे ? वे किसके पुत्र थे ? किसके वंश में प्रख्यात थे ? और वे कहाँ पर यज्ञ किए ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्ववाये वंशे ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

अन्ववाये पद का अर्थ वंश में है ॥२॥

**मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् । येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ॥३॥**

**अन्वयः**— देवदर्शनं नारदं महाभागवतं मन्ये येन हरेः परिचर्याविधि क्रियायोगः प्रोक्तः ॥३॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के दर्शन से कृतकृत्य बने नारदजी को मैं महाभागवत मानता हूँ । उन्होंने पाञ्चरात्र का निर्माण करके श्रीहरि की पूजा विधि रूप क्रिया योग का उपदेश दिया ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

नारदेन प्रचेतसां सत्रे वर्णिताः कथाः प्रष्टुं तन्महिमानमाह-मन्य इति । देवस्य दर्शनं यस्य । हरेः परिचर्याप्रकारः क्रियायोगः पञ्चरात्रे येन प्रोक्तः ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

नारदजी के द्वारा प्रचेतसों के सत्र में वर्णित कथा को पूछने के लिए विदुरजी नारदजी की महिमा का वर्णन करते हैं । श्रीभगवान् का दर्शन करने के कारण कृतकृत्य बने नारदजी पञ्चरात्रागम का निर्माण करके श्रीभगवान् की पूजा विधि रूप क्रियायोग का उपदेश दिये ॥३॥

**स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्भगवान्यज्ञपूरूषः । इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥४॥**

**अन्वयः**— स्वधर्मशीलैः पुरुषैः इज्यमानो यज्ञ पुरुषो भगवान् भक्तिमता नारदेन किल ईरितः ॥४॥

**अनुवाद**— जिस समय अपने धर्म का पालन करने वाले प्रचेतसों के द्वारा यज्ञ पुरुष भगवान् पूजित किए जा रहे थे उसी समय भक्ति सम्पन्न नारदजी ने ध्रुव का गुणगान किया था ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वधर्मशीलैः पुरुषैः प्रचेतोभिः ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

स्वधर्मशीलैः पुरुषैः शब्द के द्वारा प्रचेताओं को कहा गया है । वे प्रचेतागण भगवान् की जब आराधना कर रहे थे उसी समय नारदजी ने उन लोगों को ध्रुवजी का चरित सुनाया था ॥४॥

**यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः । मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कार्त्स्न्येनाचष्टुमर्हसि ॥५॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! तत्र याः भगवत् कथाः देवर्षिणा वर्णिताः ताः शुश्रुषवे मह्यं कार्त्स्न्येन आचष्टुम् अर्हसि ॥५॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! उस सत्र में देवर्षि ने भगवत सम्बन्धी जिन कथाओं कावर्णन किया था उन सबों को आप मुझे पूर्ण रूप से सुनायें मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५॥

मैत्रेय उवाच

**ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् । सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं पितुः ॥६॥**

**अन्वयः**— पितरि वनेप्रस्थिते ध्रुवस्य पुत्रः उत्कलः सार्वभौमश्रियं पितुः अधिराजासनं न ऐच्छत् ॥६॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— अपने पिता ध्रुव के वन में चले जाने पर ध्रुवजी के पुत्र उत्कल अपने पिता के सार्वभौम श्री से सम्पन्न राजसिंहासन को नहीं प्राप्त करना चाहे ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

ध्रुवस्य वंशे ते जाता इति वक्तुं ध्रुवस्य वंशमनुक्रामति-ध्रुवस्येत्यादिना। पितुः सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं च।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

वे प्रचेतस ध्रुव के वंश में उत्पन्न हुए थे इस बात को बतलाने के लिए ध्रुव के वंश के क्रम का वर्णन मैत्रेयजी इस श्लोक से करते हैं ध्रुव के पुत्र उत्कल थे । वे अपने पिता के वन में चले जाने पर पिता के सार्वभौम श्रीसम्पन्न राजसिंहासन को नहीं प्राप्त करना चाहे ।।६।।

**स जन्मनोपशान्तात्मा निःसङ्ग समदर्शनः । ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ।।७।।**

**अन्वयः**— जन्मना उपशान्तात्मा निःसङ्गः समदर्शनःसः लोके विततम् आत्मानं आत्मनि च लोकं ददर्श ।।७।।

**अनुवाद**— जन्म से वह शान्तचित, आसक्ति रहित, समदर्शी वह पूरे संसार में व्यापक अपनी आत्मा को तथा आत्मा में पूरे संसार को देखता था ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

अनिच्छायां हेतुमाह-स इति चतुर्भिः ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

राजसिंहासन नहीं चाहने के कारण को स इत्यादि चार श्लोकों से मैत्रेयजी बतलाते हैं ।।७।।

**आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् । अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनुसंततम् ।।८।।**
**अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः । स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ।।९।।**

**अन्वयः**— अव्यवच्छिन्न योगाग्नि दग्धकर्ममलाशयः अवबोधरसैकात्म्यम् आनन्दम् अनुसन्ततम् प्रत्यस्तमित विग्रहम्, ब्रह्मनिर्वाणम् आत्मानं स्वरूपमरुन्धानो आत्मनोऽन्यं न तदैक्षत ।।८-९।।

**अनुवाद**— उसके अन्तःकरण का वासना रूप मल अखण्डयोगाग्नि से भस्म हो चुका था अतएव वह अपनी आत्मा को विशुद्ध बोध रस के साथ अभिन्न और सर्वत्र व्यापक देखता था । सभी प्रकार के भेदों से रहित प्रशान्त ब्रह्म को ही अपना स्वरूप मानता था । वह अपनी आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं देखता था ।।८-९।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मानं स्वरूपभूतं ब्रह्मावरुन्धान आप्नुवन् जानन्नात्मनो नान्यं तदैक्षत । स्वयं तु सर्वस्मादन्यः सन् । कथंभूतं ब्रह्म। निर्वाणं शान्तम् । प्रत्यस्तमितः शान्तो विग्रहो भेदो यस्मिन् । अवबोधरसेनैकात्म्यं यस्य । कथंभूतः अव्यवच्छिन्नो यो योगः स एवाग्निस्तेन दग्धः कर्ममल आशयो वासना च यस्य ।।८-९।।

**भाव प्रकाशिका**

वह स्वरूप भूत आत्मा को ब्रह्म स्वरूप जानता था । अपनी आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं देखता था और स्वयं वह सबों से भिन्न था । प्रश्न है कि वह किस प्रकार के ब्रह्म का आत्मा समझता था ? तो इसका उत्तर है कि शान्त सभी भेदों से रहित ब्रह्म को । उसका ज्ञान स्वरूप ब्रह्म से अभेद हो गया था । वह कैसा था ? तो इसका उत्तर है कि अखण्डयोगाग्नि से उसके अन्तःकरण की वासना रूपी मल भस्म हो गया था ।।८-९।।

**जडान्धबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः । लक्षितः पथि बालानां प्रशान्तार्चिरिवानलः ॥१०॥**

**अन्वयः**— बालानां पथि प्रशान्तार्चिः अनल इव जडान्धवधिरोन्मत्तकृतिः लक्षितः अतन्मतिः ॥१०॥

**अनुवाद**— जिसकी ज्वालाशान्त हो गयी हो ऐसी अग्नि के समान वह अज्ञानियों को जड़, अन्धा, बहरा, पागल तथा गूङ्गे के समान दिखाई पड़ता था, वस्तुतः वह वैसा था नहीं ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

जडादीनामिवाकृतिर्यस्य तथाभूतो लक्षितः । अतन्मतिः न तेषामिव मतिर्यस्य सर्वज्ञत्वात् । प्रशान्तान्यर्चीषि ज्वाला यस्यानलस्य तद्वत् स्थितः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

उसकी आकृति जड़ इत्यादि के समान थी अतएव अज्ञानी जीव उसे वैसा देखकर समझते थे वस्तुतः उसकी बुद्धि वैसी नहीं थी अपितु वह सर्वज्ञ था। जिसकी ज्वाला समाप्त हो गयी हो ऐसी अग्नि के समान वह रहता था॥१०॥

**मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः । वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥११॥**

**अन्वयः**— समन्त्रिणः कुलवृद्धा तं जडम् उन्मतं मत्वा भ्रमेः यवीयांसम् सुतम् वत्सरं भूपतिं चक्रुः ॥११॥

**अनुवाद**— मन्त्रियों तथा कुल के वृद्ध पुरुषों ने उसे जड तथा उन्मत्त (पागल) मानकर भ्रामि के छोटे पुत्र वत्सर को राजा बनाया ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

यवीयांसमुत्कलात्कनिष्ठम् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

उत्कल से छोटे वत्सर को राजा बनाया ॥११॥

**स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान् । पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— स्वर्वीर्थिः वत्सरस्य इष्टा भार्या, पुष्पार्णं, तिग्मकेतुं, इषम, ऊर्जं, वसुं जयम् च पट् आत्मजान् असूत॥१२॥

**अनुवाद**— स्वर्वीथि वत्सर की प्रियतमा पत्नी थी उसने छह पुत्रों को जन्म दिया पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, उर्ज, वसु और जय को ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

इष्टा प्रिया भार्या ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

स्वर्वीथि वत्सर की प्रिया पत्नी थी ॥१२॥

**पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः । प्रातर्मध्यन्दिनं सायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥१३॥**

**अन्वयः**— पुष्पार्णस्य भार्याप्रभा दोषा च द्वे बभूवतुः प्रातः, मध्यंन्दिनं सायम् इति प्रभासुताः आसन् ॥१३॥

**अनुवाद**— पुष्पार्ण की दो पत्नियाँ थीं प्रभा और दोषा। प्रभा के तीन पुत्र थे प्रातः, मध्यन्दिन और सायम्॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१३॥

**प्रदोषो निशिथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः । व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥१४॥**

**अन्वयः**— प्रदेषो, निशिथः व्युष्ट इति त्रयः दोषा सुताः । व्युष्टः पुष्करिण्यां सर्वतेजसं सुतमादधे ॥१४॥

**अनुवाद**— दोषा के तीन पुत्र थे प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट व्युष्ट ने अपनी पत्नी पुष्करिणी से सर्वतेज नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

निशिथो निशीथः ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

निशीथ का ही नाम निशिथ है ।।१४।।

**स चक्षुः सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह । मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ।।१५।।**
**पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तमृतं व्रतम् । अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ।।१६।।**

**अन्वयः**— स ह आकूत्यां पत्न्यां चक्षु मनुम् सुतम् अवाप । मनोः महिषी, नड्वला विरजान् सुतान, पुरुं, कुत्सं, त्रितं द्युम्नम् सत्यवन्तम् ऋतम्, व्रतम्, अग्निष्टोमम् अतिरात्रं, प्रद्युम्नं शिविम्, उल्मुकम् इति द्वादश सुतान् असूत् ।।१५-१६।।

**अनुवाद**— सर्वतेजा ने अपनी आकूति नामक पत्नी के गर्भ से चक्षुःमनु नामक पुत्र को उत्पन्न किया । चक्षुः मनु की पत्नी का नाम नड्वला था उसने बारह पुत्रों को जन्म दिया । वे थे पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान्, ऋत, व्रत, अग्निष्टोम अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिवि और उल्मुक ।।१५-१६।।

**भावार्थ दीपिका**

स सर्वतेजाः चक्षुः संज्ञः मनु सुतं पुत्रमवाप। मनोर्महिषी नड्वला विरजान् शुद्धान्पुरुषप्रमुखान्द्वादश सुतानसूत।।१५-१६।।

**भाव प्रकाशिका**

सभी प्रकार के तेजों से सम्पन्न चक्षु मनु नामक पुत्र को प्राप्त किए । मनु की रानी नड्वला निष्पाप शुद्ध स्वभाव वाले पुरु आदि बारह पुत्रों को जन्म दी ।।१५-१६।।

**उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् । अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ।।१७।।**

**अन्वयः**— उल्मुकः पुष्करिण्यां षट् उत्तमान् पुत्रान् अजनयत् अङ्गं, सुमनसं, ख्यातिं, क्रतुम्, अङ्गिरसं गयम् ।।१७।।

**अनुवाद**— उल्मुक ने अपनी पुष्करिणी नामक पत्नी के गर्भ से छह उत्तम पुत्रों को उत्पन्न किया अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङिरा, और गय को ।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।१७।।

**सुनीथाऽङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् । यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ।।१८।।**

**अन्वयः**— अङ्गस्य या पत्नी सुनीथा सा उल्बणम् वेनम् सुषुवे यद्दौः शील्यात् स राजर्षिः निर्विष्णः पुरात् निरगात्।।१८।।

**अनुवाद**— अङ्ग की पत्नी सुनीथा थी, उसने, क्रूरकर्मा वेन को जन्म दिया, उसकी दुष्टता से उद्विग्न होकर राजर्षि नगर छोड़कर चले गये ।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।१८।।

**यमङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल । गतासोस्तस्य भूयस्ते ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।।१९।।**

**अन्वयः**— हे अङ्ग यम् कुपिताः वाग्वज्राः मुनय; किल शेपुः भूयः गतासोः तस्य ते दक्षिणं करं ममन्थुः ।।१९।।

**अनुवाद**— हे अङ्ग विदुर, उस वेन को वाणी ही जिनकी वज्र के समान हैं ऐसे मुनिगण कुपित होकर शाप दे दिए । पुनः मृत वेन के दाहिने हाथ का मुनियों ने मन्थन किया ।।१९।।

**भावार्थ दीपिका**

अङ्ग हे विदुर । वागेव वज्रं येषाम् ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

हे विदुर। जिनकी वाणी ही वज्र का काम करती है उन मुनियों ने वेन को शाप दे दिया और मरे हुए वेन के दाहिने हाथ का मन्थन मुनियों ने किया ॥१९॥

**अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः। जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥२०॥**

**अन्वयः**— तदा अराजके लोके दस्युभिः प्रजाः परिपीडिताः तदा नारायणंशेन आद्यः क्षितीश्वरः पृथु जातः ॥२०॥

**अनुवाद**— उस समय संसार के राजा से रहित हो जाने के कारण लुटेरों ने प्रजाओं को पीड़ित किया तो भगवान् नारायण के अंश से सर्वप्रथम पृथिवी पति महाराज पृथु हुए ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

मथने हेतुः— अराजक इति। आद्यः पुरग्रामादीनां तेन रचितत्वात् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

वेन के शरीर के मंथन का कारण था कि लोग राजाविहीन हो गये। लुटेरों का प्रभाव बढ गया, प्रजा पीडित हो गयी तथा मुनियों ने पृथु के शरीर का मंथन किया वे ही नगरों और ग्रामों की रचना किए। अतएव वे आद्य राजा थे ॥२०॥

विदुर उवाच

**तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः। राज्ञः कथमभूदुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥२१॥**

**अन्वयः**— तस्य शीलब्निधे साधोः ब्रह्मण्यस्य महात्मनः राज्ञः प्रजा दुष्टा कथमभूत् यद्विमना ययौ ॥२१॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— महाराज अङ्ग तो शील गुण के खजाना थे, वे साधु स्वभाव, ब्राह्मण भक्त और महात्मा थे। उनका वेन जैसा दुष्ट पुत्र कैसे हो गया? कि उसके कारण दुःखी होकर महराज अङ्ग अपने नगर से निकल गये॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यस्याः प्रजाया हेतोर्विमनाः सन्ययौ ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस प्रजा के कारण उदास होकर के महाराज अङ्ग नगर से निकल गये ॥२१॥

**किंवांऽहो वेन उद्दिश्य ब्रह्मदण्डमयूयुजन्। दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥२२॥**

**अन्वयः**— वेने कि वा अहं उद्दिश्य धर्मकोविदाः मुनयः दण्डव्रतधरे धर्म कोविदा मुनयः राज्ञि ब्रह्मदण्डम यूयुञ्जन्॥२२॥

**अनुवाद**— अथवा वेन के किस दोष के कारण धर्म के जानकार मुनियों ने राजा के ऊपर शाप रूप ब्रह्मदण्ड का प्रयोग किया ? क्योंकि दण्डव्रत तो राजा धारण करता है ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

किंवा अंहः अपराधं वेने उद्दिश्य आलक्ष्य ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

अथवा वेन में कौन सा अपराध को देखकर ॥२२॥

**नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि । यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥२३॥**

**अन्वयः**— प्रजभिः अधवान् अपि प्रजापालः न अवध्येयः यद् असौ स्वतेजसा लोकपालानां ओजो विभर्ति ॥२३॥

**अनुवाद**— प्रजाओं को चाहिए कि राजा से कोई पाप हो जाय तो वे सब उसका तिरस्कार न करें क्योंकि राजा अपने तेज से लोकपालों के तेज को धारण करता है ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

यतोऽयमधर्म इत्याह । नावध्येयोऽवज्ञेयोऽपि न भवति ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा का अपमान अधर्म अतएव उसका अपमान नहीं करना चाहिए ॥२३॥

**एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् । श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥२४॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् सुनीथात्मज चेष्टितम् श्रद्दधानाय भक्ताय मे एतद् आख्याहि, त्वं परावर वित्तमः ॥२४॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! आप परावर तत्त्व के सर्व श्रेष्ठ ज्ञाता हैं आप इस सुनीथा के पुत्र वेन के चरिथ को श्रद्धा सम्पन्न तथा सुनने की इच्छा वाले मुझको सुनायें । मैं आपका भक्त हूँ ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

परावरविदां मध्येऽतिश्रेष्ठः ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

तत्त्वज्ञों में श्रेष्ठ ॥२४॥

मैत्रेय उवाच

**अङ्गोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् । नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥२५॥**

**अन्वयः**— राजर्षिः अङ्गः महाक्रतुम् आजहार ? तस्मिन् ब्रह्मवादिभिः आहूतः देवताः न आजग्मुः ॥२५॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— राजर्षि अङ्ग एक बार अश्वमेध नामक महायग किए किन्तु ब्रह्मवादियों के द्वारा आवाहन किए जाने पर भी देवता नहीं आये ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

अभावी पुत्रः काम्यकर्मणा बलादापादितो न सुखाय भवेदिति द्योतयन्नङ्गस्य पुत्रोत्पत्तिक्रममाह अङ्ग इत्यादिना ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

अङ्ग इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि नहीं होने वाला पुत्र यदि काम्य कर्म के प्रभाव से हो भी जाय तो वह सुखप्रद नहीं होता है । इस अर्थ को सूचित करते हुए अङ्ग के पुत्र की उत्पत्ति का क्रम बतलाया गया है ॥२५॥

**तमूचुर्विस्मतास्तत्र यजमानमथर्त्विजः । हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥२६॥**

**अन्वयः**— तत्र विस्मिताः ऋत्विजः यजमानम् ऊचुः । ते हूयमानानि हवींषि देवताः नहिगृह्णन्ति ॥२६॥

**अनुवाद**— यह देखकर आश्चर्यचकित ऋत्विजों ने यजमान से कहा आपके हविष्य से किए जाने वाले होम को देवतागण नहीं स्वीकार कर रहे हैं ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२६॥

**राजन्हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयासादितानि ते । छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥२७॥**
**न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि । यन्न गृह्णन्ति भागास्वान्ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥२८॥**

**अन्वयः**— राजन् ते हवींषि अदुष्टानि, श्रद्धया आसादितानि, छन्दांसि धृतव्रतैः अयातयामानि योजितानि— वयं देवानां अण्वपि हेलनं न विदामहे यत् ये कर्मसाक्षिणः देवाः स्वान् भागान् न गृहणन्ति ॥२७-२८॥

**अनुवाद**— राजन् आपके हविष्य दूषित नहीं हैं, वे श्रद्धापूर्वक निर्माण किए गये हैं, वेदमन्त्र भी किसी प्रकार बलहीन नहीं है । उनका प्रयोग करने वाले याजक पूर्ण रूप से नियमों का पालन करने वाले हैं । हमें यहाँ कोई भी ऐसी बात नहीं दिखती है जिससे कि इस यज्ञ में थोड़ा सा भी देवताओं का तिरस्कार हुआ हो, फिर भी कर्माध्यक्ष देवता न जाने किस कारण से अपने भाग को नहीं ग्रहण करते है ॥२७-२८॥

**भावार्थ दीपिका**

अयातयामान्यगतवीर्याणि ॥२७-२८॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रबल ॥२७-२८॥

मैत्रेय उवाच

**अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः । तत्प्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥२९॥**

**अन्वयः**— द्विजवचः श्रुत्वा सुदुर्मना यजमान अङ्गः तदनुज्ञया सदस्यान् तत् प्रष्टुं वाचं व्यसृजत् ॥२९॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— ब्राह्मणों की वाणी को सुनकर अत्यन्त दु:खी यजमान अङ्ग उनसबों की अनुमति प्राप्त करके सदस्यों से पूछने के लिए मौन तोड़ दिए ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

यज्ञे गृहीतमौनोऽपि वाचं व्यसृजत् प्रायुंक्त ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

यज्ञ में मौन धारण किए हुए राजा ने मौन तोड़ दिया ॥२९॥

**नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह । सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम् ॥३०॥**

**अन्वयः**— हे सदसस्पतयः आहूता देवा न आगच्छन्ति इह ग्रहान् नगृह्णन्ति, ब्रूत मया किम् अवद्यम् कृतम् ॥३०॥

**अनुवाद**— सदस्यों, आवाहन करने पर भी देवता नहीं आ रहे हैं और सोम पात्र को ग्रहण भी नहीं कर रहे हैं बतलाइये मैंने कौन सा अपराध किया है ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

आहुता आहूताः । ग्रहान्सोमपात्राणि । इह यज्ञे न गृह्णन्ति ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

**आहुताः** अर्थात् बुलाये गये । ग्रहान् अर्थात् सोम पात्रों को यज्ञ में ग्रहण नहीं करते हैं ॥३०॥

सदसस्पतय ऊचुः

**नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक् स्थितम् । अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक् त्वमप्रजः ॥३१॥**

**अन्वयः**— नरदेव इह भवतः तावत् मनाक् अघो न एकं प्राक्तनम् अघम् अस्ति येन त्वम् इह इदृक् अप्रजः ॥३१॥

### सदस्यों ने कहा

**अनुवाद**— राजन इस विषय में आपका थोड़ा सा भी अपराध नहीं है एक प्राचीन पाप है जिसके कारण आप इस तरह से नि:सन्तान हैं ।।३१।।

### भावार्थ दीपिका

इह जन्मनि न तावन्मनागीषदप्यघं स्थितम् । कथंचिज्जातस्य अघस्य सद्य एव प्रायश्चित्तैः क्षालनात् । किंतु प्राक्तनमेकमघमस्ति । यद्यस्मादीदृक् गुणाधिकोऽपि त्वं प्रजारहितः ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

इस जन्म में आपका कोई भी पाप नहीं है क्योंकि यदि कोई पाप हो जाने पर उसका प्रायश्चित कर लेने से वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है । किन्तू पूर्वजन्म का एक पाप है जिसके कारण इस तरह अत्यधिक गुणों से युक्त भी आप प्रजाहीन हैं ।।३१।।

**तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप । इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ।।३२।।**

**अन्वयः**— नृप ते भद्रं, तथा आत्मानं साधय पुत्रकामस्य ते इष्टः यज्ञभुक् ते पुत्रं दास्यति ।।३२।।

**अनुवाद**— राजन् आपका कल्याण हो । पहले आप सुपुत्र प्राप्त करने का कोई उपाय कीजिए । यदि आप पुत्र की कामना से यज्ञ करेंगे तो भगवान् यज्ञेश्वर आपको पुत्र प्रदान करेंगे ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

अतो यथा देवा हविर्गृह्णन्ति तथात्मानं सुप्रजं साधय । कथं साधनीयं तदाहुः-इष्ट इति ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

अतएव देवता जैसे हविष्य ग्रहण करें वैसा आप उपाय करें । यदि कहें कि वह कैसे करना चाहिए तो सदस्यों ने **इष्टः इत्यादि** श्लोक कहा ।।३२।।

**तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः । यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ।।३३।।**

**अन्वयः**— यदि अपत्याय साक्षात् यज्ञ पुरुष; हरिः वृतः तथा दिवौकसः स्वभागधेयानि ग्रहिष्यन्ति ।।३३।।

**अनुवाद**— यदि सन्तान की प्राप्ति के लिए साक्षात् यज्ञ पुरुष श्रीहरि का आवाहन किया जायेगा तो देवतागण अपने आप अपने भाग को ग्रहण करेंगे ।।३३।।

### भावार्थ दीपिका

तथा सति स्वभागान् ग्रहीष्यन्ति । यद्यतो हरिः साक्षादाहूतः स्यात् । अतस्तेन सह सर्वे देवा आगमिष्यन्तीत्यर्थः ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

वैसा करने पर देवता अपने भाग का ग्रहण करेगें क्योंकि साक्षात् श्रीहरि आहूत होंगे तो उनके साथ वे सभी देवता आयेंगे ही ।।३३।।

**तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः । आराधितो यथैवैष तथा पुंसां फलोदयः ।।३४।।**

**अन्वयः**— जनः यान् यान् कामयते तान् तान् कामान् हरिः दद्यात् । एष यथैव आराधितः तथा पुंसां फलोदयः ।।३४।।

**अनुवाद**— भक्त जिन-जिन वस्तुओं की कामना करता है श्रीहरि उन सभी काम्यपदार्थों को उसे प्रदान करते हैं, श्रीहरि की जैसी आराधना की जाती है, वे उसी के अनुसार उसे फल प्रदान करते हैं ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

नन्वतितुच्छान्कामान्हरिः कथं दद्यात्तत्राह— तांस्तानिति ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि अत्यन्त तुच्छ कामनाओं को श्रीहरि कैसे पूर्ण कर सकते हैं तो इस पर तांस्तान् यह श्लोक कहते हैं ।।३४।।

**इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये । पुरोडाशं निरवपन् शिपिविष्टाय विष्णवे ।।३५।।**

**अन्वयः**— इति व्यवसिता विप्राः तस्य राज्ञः प्रजापते शिपिविष्टाय विष्ण्वे पुराडाशं निरवपन् ।।३५।।

**अनुवाद**— इस प्रकार से राजा को पुत्र प्राप्त करने का निश्चय करने के पश्चात् ऋत्विजों ने पशुमय यज्ञ रूप से रहने वाले श्रीविष्णु भगवान् की पूजन के लिए पुरोडश नामक चरु को समर्पित किया ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रजातये पुत्रोत्पत्तये । शिपिविष्टाय शिपिषु पशुषु यज्ञरूपेण प्रविष्टाय । तथा च श्रुतिः 'यज्ञे वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एव पशुषु प्रतितिष्ठति' इति ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

**प्रजात्ये** अर्थात् पुत्रोत्पत्ति के लिए **शिपिविष्टाय** शिपि अर्थाति् पशुओं में प्रविष्टाय अर्थात् यज्ञ रूप से प्रविष्ट भगवान् विष्णु के लिए पुरोडाश नामक चरु का निर्वाप किया । श्रुति भी कहती है- यज्ञो वै विष्णुः शिपि यज्ञ स्य पशुषु प्रतितिष्ठति ।' अर्थात् यज्ञ ही विष्णु है । पशुओं में यज्ञ ही प्रतिष्ठित हैं ।।३५।।

**तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः । हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ।।३६।।**

**अन्वयः**— तस्मात् हेममाल्यमलाम्बरः पुरुष; हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धम् पायसम् आदाय उत्तस्थौ ।।३६।।

**अनुवाद**— उस अग्नि कुण्ड से सुवर्ण की माला और स्वच्छ वस्त्र धारण किए एक पुरुष सुवर्ण के पात्र में सिद्ध पायस को लेकर प्रकट हुआ ।।३६।।

**भावार्थ दीपिका**

तस्मादिति योग्यतयाऽग्रेः ।।३६।।

**भाव प्रकाशिका**

योग्य अग्नि से एक पुरुष अपने हाथ में सुवर्ण के पात्र में सिद्ध पापस को लेकर प्रकट हुआ ।।३६।।

**स विप्रानुमतो राज्ञा गृहीत्वाऽञ्जलिनौदनम् । अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ।।३७।।**

**अन्वयः**— विप्रानुमतः स उदारधीः राजा अञ्जलिना ओदनम् गृहित्वा अवघ्रायमुदा युक्तः पत्न्यै प्रादात् ।।३७।।

**अनुवाद**—ब्राह्मणों की अनुमति प्राप्त राजा अपनी अञ्जलि में उस पायस को लेकर तथा उसे सूंघकर प्रसन्नता पूर्वक अपनी पत्नी को दे दिए ।।३७।।

**भावार्थ दीपिका**

पत्न्यै प्रादात् ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

अपनी पत्नी को उस पायस को दे दिए ।।३७।।

**सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युरादधे । गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥३८॥**

**अन्वयः**— सा अप्रजा राज्ञी तत्पुंसवनं प्राश्य वै प्रत्युरादधे, गर्भ काले उपावृत्ते कुमारं सुषुवे ॥३८॥

**अनुवाद**— वह पुत्र हीन रानी उस पुत्र प्रदान करने वाले खीर को खाकर पति के सहवास से गर्भ धारण की और उससे समयानुसार पुत्र को उसने जन्म दिया ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

पुमांसं सूतेऽनेनेति तथा तत्प्राश्य पत्युः सकाशाद्गर्भमादधे । अप्रजा सती ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

पुत्र प्रदान करने वाले उस खीर को खाकर सुनीथा ने अपने पति के सहावास से गर्भ धारण की । अभी तक वह पुत्रहीन थी ॥३८॥

**स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः । अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥३९॥**

**अन्वयः**— स बालः एव पुरुषः अधर्मांशोद्भवं मातामहम् मृत्युम् अनुव्रतः तेन अधार्मिकः अभवद् ॥३९॥

**अनुवाद**— वह बालक बाल्यावस्था से ही अधर्म के वंश में उत्पन्न अपने नाना मृत्यु का अनुगामी था । इसलिए वह भी अधार्मिक ही हुआ ॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

मातामहं मृत्युम् । मृत्योर्हि पुत्री सुनीथा ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

उस बाल के नाना मृत्यु थे । मृत्यु की ही पुत्री सुनीथा थी ॥३९॥

**स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः । हन्त्यसाधुर्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥४०॥**

**अन्वयः**— असाधुः शरासनमुद्यम्य मृगयुः वनगोचरः दीनान् मृगान् हन्ति, जनः असौ वेन इति अरौत् ॥४०॥

**अनुवाद**— वह दुष्ट धनुष बाण लेकर वन में जाता था और दीन मृगों को मारने का काम करता था । लोग उसको देखते ही कहने लगते थे, वेन आया वेन आया ॥४०॥

### भावार्थ दीपिका

मृगयुर्लब्धकः सन् तं दृष्ट्वा वेनोऽसावागच्छतीति जनः सर्वोऽप्यरौत् चुक्रोश ॥४०॥

### भाव प्रकाशिका

व्याधे के समान वह मृगों को मारता था । उसको देखकर लोग कहने लगते थे कि वेन आया वेन आया॥४०॥

**आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः । प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥४१॥**

**अन्वयः**— अति दारुणः निरनुक्रोशः सः आक्रीडे क्रीडतः वयस्यान् बालान् प्रसह्य सः पशुमारम् अमारयत् ॥४१॥

**अनुवाद**— वह क्रूर और निर्दयी था वह क्रीड़ा के मैदान में खेलने वाले मित्र बालकों को पशुओं के समान पीटने के काम करता था ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

आक्रीडे क्रीडास्थाने बालान्पशूनिवामारयत् ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

क्रीडा स्थान में खेलने वाले अपने मित्र बालकों को वह पशु की तरह पीटता था ॥४१॥

**तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः । यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥४२॥**

**अन्वयः**— तं खलं पुत्रं विचक्ष्य नृपः यदा विविधैः शासनैः शासितुं कल्पः न भृशम् दुर्मना आसीत् ॥४२॥

**अनुवाद**— उस वेन को दुष्ट प्रकति का देखकर महाराज अङ्ग उसे तरह-तरह से शासनों द्वारा सुधारने की कोशिश किए, किन्तु उसको सन्मार्ग पर लाने में वे समर्थ नहीं हो सके तो उनको बड़ा दुःख हुआ ॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

विचक्ष्य दृष्ट्वा ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

विचक्ष्य पद का अर्थ देखकर है ॥४२॥

**प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः । कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥४३॥**

**अन्वयः**— ये अप्रजाः गृहमेधिनः तैः प्रायेण देवः अभ्यर्चितः ये कदपत्यभृतं दुर्भरं दुःखम् न विन्दन्ति ॥४३॥

**अनुवाद**— (महाराज अङ्ग मन ही मन सोच रहे थे) जिन गृहस्थों के पुत्र नहीं हैं वे लोग अवश्य ही पूर्वजन्म में श्रीहरि की आराधना किए होंगे, इसीलिए उनको कुपुत्र के द्वारा होने वाले असह्य क्लेशों को नहीं भोगना पड़ता है ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

दुर्मनसास्स्य कुपुत्रनिन्दावाक्यान्याह–प्रायेणेति त्रिभिः । अप्रजा ये तैरभ्यर्चितः । तत्र हेतुः–कुत्सितैरपत्यैः संभृतं दुर्भरं धारयितुमशक्यं दुःखं ये न विन्दन्ति ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

प्रायेण इत्यादि तीन श्लोकों से दुःखी राजा के कुपुत्र की निन्दा वाक्यों का वर्णन किया गया है । जो पुत्रहीन गृहस्थ हैं उन सबों के द्वारा श्रीभगवान् की पूजा की गयी होगी । उसका कारण बतलाते हैं कुपुत्रों के द्वारा होने वाले क्लेश को उन लोगों को नहीं सहना पड़ता है ॥४३॥

**यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् । यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ॥४४॥**
**कस्तं प्रजापदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः । पण्डितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥४५॥**

**अन्वयः**— यतः नृणाम् पापीयसी कीर्तिः, महान् अधर्मश्च, यतः सर्वेषां विरोधः यतः अनन्तकः आधिः यदर्थाः क्लेशदाः गृहा कः पण्डितः तं प्रजापदेशम् बहुमन्येत आत्मनः मोहबन्धनम् ॥४४-४५॥

**अनुवाद**— जिसके द्वारा अपयश ही फैले, महान् अधर्म हो, जिससे सबों का विरोध भी होए, और जिससे कभी भी समाप्त नहीं होने वाली चिन्ता होए, जिसके चलते गृह भी दुखदायी हो जाय ऐसी नाम मात्र के सन्तान का कौन विज्ञ पुरुष बहुत अधिक महत्त्व देगा, वह तो मोह का बन्धन ही है ॥४४-४५॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वेषां सर्वैः सह । आधिर्मानसीव्यथा । तं प्रजापदेशं पुत्रनाममात्रमप्यात्मनो मोहेन बन्धनम् । यदर्था यन्निमित्ताः क्लेशदा गृहा भवन्ति ॥४४-४५॥

### भाव प्रकाशिका

सर्वेषां का अर्थ है, सबों के साथ, मानसिक व्यथा को अधि कहते हैं । उस नाम मात्र का पुत्र तो आत्मा के लिए मोह का बन्धन है । जिस कुपुत्र के कारण गृह भी दुखद हो जाता है ॥४४-४५॥

**कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् । निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥४६॥**

**अन्वयः**— शुचां पदात् सदपत्यात् कदपत्यं वरं मन्ये, मर्त्यः, यत् क्लेश निवहाः गृहाः अतः मर्त्यः गृहात् निर्विद्येत्॥४६॥

**अनुवाद**— शोक प्रदान करने वाले सत्पुत्र की अपेक्षा कुपुत्र को ही अच्छा समझता हूँ, क्योंकि कुपुत्र के द्वारा गृह क्लेप्रद हो जाता है और मनुष्य उस गृह का आसानी से परित्याग कर देता है ॥४६॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं निर्वेदहेतुत्वेन कुत्सितमेवापत्यमभिनन्दति–कदपत्यमिति । शुचां पदाच्छोकानां स्थानात् । वरत्वे हेतुः–निर्विद्येतेति। तत्कुतः । यद्यतः कदपत्यात् । गृहाः क्लेशनिवहा भवन्ति ॥४६॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में महाराज अङ्ग कुपुत्र की प्रशंसा इसलिए करते हैं कि वह गृह से विरक्ति का कारण होता है । वे कहते हैं कि सत्पुत्र को छोड़ने में तो दुःख होता है उससे अच्छा कुपुत्र ही है जिसके कारण घर क्लेश मय हो जाता है और मनुष्य उस घर से विरक्त होकर उसका परित्याग कर देता है ॥४६॥

**एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ।**
**अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥४७॥**

**अन्वयः**— एवं निर्विणमना सः नृपः अलब्धनिद्रः महोदयात् गृहात् निशीथे उत्थाय नृभिः अनुपलक्षितः प्रसुप्तां वेन सुवं हित्वा गतः ॥४७॥

**अनुवाद**— इस तरह से उद्विग्नमन वाले राजा को रात में नींद नहीं आयी वे ऐश्वर्यों से भरे हुए अपने गृह से आधी रात की बेला में उठे, उससमय उनको कोई भी नहीं देख पाया और वेन की माता सुनीथा निद्रा में वे सुध सोई थी उसकों भी त्यागकर वन में चले गये ॥४७॥

### भावार्थ दीपिका

महतामुदयानां विभूतीनामुदयो यस्मिंस्तस्माद्गृहाद्गतः । या वेनं सूते स्म ताम् ॥४७॥

### भाव प्रकाशिका

जो गृह महान् विभूतियों से भरा हुआ था उस गृह से राज निकलकर वन में चले गये । वे सुध सोई वेन की माता को भी छोड़कर वे चले गये ॥४७॥

**विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ।**
**विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥४८॥**

**अन्वयः**— निर्विद्य गतं पतिं विज्ञाय प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद गणादयः, अतिशोककातराः उर्व्याम् विचिक्युः यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥४८॥

**अनुवाद**— महाराज विरक्त होकर घर से निकल गये हैं, यह जानकर शोकाकुल प्रजाएँ, पुरोहित, आमात्य तथा मित्रगण आदि उनकी खोज पृथिवी पर किए किन्तु वे उनको उसी तरह नहीं देख पाए जैसे अपरिपक्व योग वाला योगी अपने हृदय में विद्यमान परमात्मा को बाहर खोजता है ॥४८॥

### भावार्थ दीपिका

प्रजाः पुरोहितादयश्च विचिक्युरन्वेषितवन्तः । तं तत्रैव सन्तमपि नापश्यन्निति दृष्टान्तेनाह–यथेति ॥४८॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रजाओं और पुरोहितों आदि ने राजा को खोजा किन्तु उन लोगों को उनका पता नहीं चला । राजा यद्यपि वहीं थे फिर भी वे नहीं देख पाये । दृष्टान्त के रूप में कहा गया है कि जैसे कुयोगी अपने हृदय में विद्यमान परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाता है ॥४८॥

**अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ।**
**ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरव भर्तृविप्लवम् ॥४९॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्याय; ॥१३॥

**अन्वयः**— प्रजापतेः पदवीम् अलक्षयन्तः हतोद्यमः ते पुरीम् मृत्युपसृप्य, हे पौरव ! समेतान् ऋषीन् अभिवन्द्य साश्रवः भर्तृ विप्लवम् न्यवेदयन् ॥४९॥

**अनुवाद**— प्रजाओं के स्वामी का पता न लगा सकने के कारण उन लोगों का प्रयास व्यर्थ हो गया, वे नगर में आकर एकत्रित हुए ऋषियों को प्रणाम करके आँखों से आँसू बहाते हुए महाराज के नहीं मिलने का समाचार सुनाये ॥४९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥**

**भावार्थ दीपिका**

साश्रवो रुदन्तः । भर्तुर्विप्लवं नाशमदर्शनमित्यर्थः ॥४९॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥**

**भाव प्रकाशिका**

रोते हुए अपने स्वामी के नही मिलने का समाचार सुनाया ॥४९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१३॥**

# चौदहवाँ अध्याय

## राजा वेन की कथा

मैत्रेय उवाच

**भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः। गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥१॥**
**वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः। प्रकृत्यसंमतं वेनमभ्यषिञ्चन्पतिं भुवः ॥२॥**

**अन्वयः**— लोकानां क्षेम दर्शिनः ते भृग्वादय ब्रह्मवादिनः मुनयः असति गोप्तरि नृणां पशु साम्यताम् पश्यन्तः मातरं सुनीथाम् आहूय प्रकृति असम्मतम् वेनं भुवः पतिम् अभ्यषिञ्चन् ।।१-२।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे वीर ! विदुर लोक का कल्याण चाहने वाले प्रख्यात भृगु आदि मुनियो ने देखा कि राजा के नहीं रहने पर तो सभी लोग पशुओं के समान उच्छंखल होते जा रहे हैं । उन लोगों ने वेन की माता सुनीथा को बुलाकर प्रजाओं के सम्मत नहीं होने पर भी वेन को पृथिवी पति के पद पद अभिषिक्त कर दिया ।।१-२।।

### भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे तु दुष्पुत्रभयादङ्गे गते द्विजैः । अभिषिक्तस्य वेनस्य रोषातैर्वध उच्यते ॥१॥ क्षेमदर्शिनः क्षेमचिन्तकाः । पशुसमानरूपतां पश्यन्तः । अमात्यादीनां प्रकृतीनामसंमतम् । पाठान्तरे प्रकृत्या स्वभावेनासंमतम् ॥१-२॥

### भाव प्रकाशिका

दुष्ट पुत्र वेन के भय से जब राजर्षि अङ्ग वन में चले गये उस समय पृथिवी पति के रूप में अभिषिक्त वेन का क्रुद्ध मुनियों के द्वारा वध इस चौदहवें अध्याय में किया गया है । **क्षेमदर्शिनः** का अर्थ है कल्याण की चिन्ता करने वाले पशु साम्यताम् का अर्थ पशु के समान उच्छृखल रूप वाले लोगों को देखते हुए **प्रकृत्यसम्मतम्** का अर्थ है, प्रजाओं तथा मन्त्रियों को अनभिप्रेत **प्रकृत्याऽसंमतम्** पाठ होने पर अर्थ होगा स्वभाव से अनभिप्रेत ॥१-२॥

**श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् । निलिल्युर्दस्यवः सद्य सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥३॥**

**अन्वयः**— अत्युग्रशासनं वेनं नृपासन गतं श्रुत्वा दस्यवः सर्पत्रस्ता आखवः इव निलिल्युः ॥३॥

**अनुवाद**— कठोर शासन करने वाले वेन को राजा बने हुए सुनकर सभी लुटेरे उसी तरह छिप गये जिस तरह सर्प के भय से चूहे छिप जाते हैं ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

चोराः सर्वे लीना बभूवुः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

सभी चोर छिप गये ॥३॥

**स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः । अवमेने महाभागांस्तब्ध संभावितः स्वतः ॥४॥**

**अन्वयः**— आरूढनृपस्थाने सः अष्टविभूतिभिः उन्नद्धः स्तव्धः सम् स्वतः आत्म संभावितः महाभागान् अवमेने॥४॥

**अनुवाद**— राज सिंहासन पर बैठने के पश्चात् आठो लोक पालों की ऐश्वर्य, कला के कारण वह अभिमानवशात् अपने को ही सबसे बड़ा मानकर महापुरुषों का अपमान करने लगा ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

आरूढं नृपस्थानं राजासनं येन । अष्टविभूतिभिर्लोकपालैश्वर्यैः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

राजसिंहासन पर बैठने के पश्चात् लोकपालों के ऐश्वर्य कला के कारण वह महापुरुषों का अपमान करने लगा॥४॥

**एवं मदान्ध उत्सिक्तो निरङ्कुश इव द्विपः । पर्यटन् रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥५॥**

**अन्वयः**— एवं मदान्धः उत्सिक्तः द्विप; इवनिरङ्कुशः रथमास्थाय रोदसी कम्पयन्निव पर्यटन् ॥५॥

**अनुवाद**— ऐश्वये के मद से अन्धा बना हुआ वह रथ पर चढ़कर पृथिवी और आकाश को कँपाता हुआ घूमने लगा ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५॥

**न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् । इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥६॥**

**अन्वयः**— द्विजाः क्वचित् न यष्टव्यं नदातव्यं इति भेरीघोषेण धर्मं सर्वशः न्यवारयत् ॥६॥

**अनुवाद**— उसने अपने-अपने राज्य यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी और कहीं भी ब्राह्मण न यज्ञ करे, न दान दें, न होम करे, इस तरह से उसने पूर्ण रूप से धर्म कर्म को रोकवा दिया ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥६॥

**वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् । विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥७॥**

**अन्वयः**— दुवृत्तस्य वेनस्य विचेष्टितम् अवेक्ष्य सत्रिणः मुनयः लोकव्यसनं विमृश्य कृपया ऊचुः ॥७॥

**अनुवाद**— दुष्ट वेन के इस प्रकार के अत्याचार को देखकर सभी मुनि एकत्रित होकर विचार किए संसार पर सङ्कट आया है । अतएव आपस में कहने लगे ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

सत्रिणो मिलिताः सन्तः ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

एकत्रित होकर ॥७॥

**अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् । दारुण्युभयतो दीप्त इव तस्करपालयोः ॥८॥**

**अन्वयः**— अहो लोकस्य उभयतः व्यसनं प्राप्तः दारुणि उभयतः दीप्त इव तस्कर पालयः ॥८॥

**अनुवाद**— अरे यह संसार के ऊपर दोनों ओर से बहुत बड़ी विपत्ति आई है । दोनों ओर से जलने वाली लकड़ी आदि के बीच में पड़े चींटी आदि के समान प्रजाएँ एक ओर राजा के अत्याचार और दूसरी ओर चोर डाकुओं के अत्याचार से विपत्ति ग्रस्त हो गयी हैं ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

मूलतश्चाग्रतश्च दीप्ते ज्वलिते काष्ठे तन्मध्यवर्तिनां पिपीलिकादीनां यथोभयतो व्यसनम्, एवं तस्करेभ्यः पालकाच्च दुःखं प्राप्तमित्यर्थः ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस तरह नीचे और ऊपर दोनों ओर से जलने वाली लकड़ी के बीच में पडे हुए चींटी इत्यादि जीव जिस तरह आपदग्रस्त हो जाते है उसी तरह एक ओर राजा के अत्याचार से तथा दूसरी ओर चोरों के अत्याचार से प्रजा पर सङ्कट उत्पन्न है ॥८॥

**अराजकभयादेष कृतो राजाऽतदर्हणः । ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥९॥**

**अन्वयः**— अराजकभयात् एष अतदर्हणः राजाकृतः अद्यतु ततः अपि भयं आसीत् देहिनाम् स्वस्ति कथं स्यात् ॥९॥

**अनुवाद**— अराजकता फैलने के भय से हमलोगों ने इस अयोग्य वेन के राजा बना दिया फिर भी आज उससे भी अधिक भय उत्पन्न हो गया शरीरधारियों का कल्याण कैसे होगा ?॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

तदेवाहुः-अराजकभयादिति । अतदर्हणो राज्यानर्हः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

उसी बात को ऋषियों ने इस श्लोक में कहा है । **अतदर्हणः** पद का अर्थ है । राज्य के लिए अयोग्य॥९॥

**अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् । वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसंभवः ॥१०॥**

**अन्वयः**— पोषकस्याप्यनर्थभृत् अहेः पयः पोष इव सुनीथागर्भ संभवः वेनः प्रकृत्या एवखलः ॥१०॥

**अनुवाद**— पोषने वाले के लिए भी अनर्थकारी सर्प को दूध पिलाकर पोषने के समान यह सुनीथा के गर्भ से उत्पन्न वेन स्वभाव से ही दुष्ट है ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

अस्माकमप्यनिष्टं जातमित्याहुः । अहेर्यथापयःपोषः क्षीरेण पोषणं पोषकस्याप्यनर्थं विभर्ति पुष्णाति । तदेवाहुः-वेन इति ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने कहा इससे तो हमलोगों का भी अनिष्ट हो गया । जिस तरह से सर्प को दूध पिलाकर पोषना पोषने वाले के भी लिए अनर्थकारी होता है उसी तरह से यह सुनीथा के गर्भ से उत्पन्न होने वाल यह वेन स्वभाव से ही दुष्ट है ।।१०।।

**निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः । तथापि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ।।११।।**

**अन्वयः**— एषः प्रजापालो निरूपितः स वै प्रजाजिघांसन्ति तथापि सान्त्वयेम् अनुम् नास्मान् तत् पातकं स्पृशेत्।।११।।

**अनुवाद**— इसको हमलोगों ने प्रजा का पालन करने वाला बनाया था और यह प्रजाओं को ही मार डालना चाहता है, फिर भी हमलोग इसको समझाएँ जिससे इसका पाप हमलोगों को न लगे ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

निरूपितो नियुक्तोऽस्माभिः । सान्त्वयेमोपपत्तिभिः प्रार्थयिष्यामः । तस्य पातकम् ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

**निरूपितः** का अर्थ है हमलोगों ने नियुक्त किया है अतएव हमलोग इसको समझायें उसी युक्तियुक्त रूपसे प्रार्थना करेंगे ऐसा करने से हमलोगों को पाप नहीं लगेगा ।।११।।

**तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः । सान्त्विता यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ।।१२।।**

**अन्वयः**— तत् असद्वृत्तः वेनः विद्वद्भिः अस्माभिः नृपः कृतः सान्त्वितो यदि नो वाचं न ग्रहिष्यति अधर्मकृत्।।१२।।

**अनुवाद**— हमलोगों ने जानकर भी इस दुराचारी वेन को राजा बनाया है । समझाने पर भी यदि यह पापी बात नही मानेगा तो ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

स्वस्य तत्पातकस्पर्शे हेतुः— तत्पातकित्वं विद्वद्भिः ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

अपने को उसका पाप लगने का कारण यह कि हमलोग उसके पापी होने को जानते थे । अतएव यदि हमलोगों की बात नहीं सुनेगा तो ।।१२।।

**लोकधिक्कारसंदगधं हरिष्यामः स्वतेजसा । एवमध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः ॥**
**उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ।।१३।।**

**अन्वयः**— लोकधिक्कार संदग्धं स्वतेजसा दहिष्यामः एवम् अध्यवसाय गूढमन्यवः मुनयः एनं उपव्रज्य, समाभिः वेनं सान्त्वयित्वा अब्रुवन् ।।१३।।

**अनुवाद**— लोक के धिक्कार से ही दग्ध हुए वेन को हमलोग अपने तेज से दग्ध कर देंगे, ऐसा विचार कर मुनिगण अपने क्रोध को छिपाकर वेन के पास गये और उसको प्रिय वचनों से समझते हुए इस प्रकार से कहने लगे ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

गूढो मन्युर्येषाम् । सामभिः प्रियोक्तिभिः ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

जिन मुनियों का क्रोध छिपा था, वे प्रिय वाणियों से उसे समझाने लगे ।।१३।।

मुनय ऊचुः

**नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः । आयुः श्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ।।१४।।**

**अन्वयः**— भो नृपवर्य यत्ते आयु, श्रीः, बल, कीर्ति वर्धनम् विज्ञापयाम एतत् निबोध ।।१४।।

**मुनियों ने कहा**

**अनुवाद**— हे राजश्रेष्ठ हमलोग आपकी आयु, श्री, बल तथा यश को बढाने वाली जिन बातों को कह रहे हैं उस पर आप ध्यान दें ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।१४।।

**धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनः कायबुद्धिभिः । लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ।।१५।।**

**अन्वयः**— पुंसां वाङ्मनः कायकर्मभिः आचरितः धर्मः विशोकान् लोकान् वितरति, अथ असङ्गिनाम् आनन्त्यम्।।१५।।

**अनुवाद**— मनुष्यों की वाणी, मन तथा शरीर द्वारा किए गया धर्म कर्म उसके स्वर्गादि शोक रहित लोको को प्रदान करता है और यदि उसका आचरण निष्काम भाव से किया गया तो वह मुक्ति को प्रदान करता है ।।१५।।

**भावार्थ दीपिका**

निष्कामानामानन्त्यम् मोक्षमपि ।।१५।।

**भाव प्रकाशिका**

जो निष्काम भाव से धर्म को करता है उसको वह धर्ममुक्ति प्रदान करता है ।।१५।।

**स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः । यस्मिन्विनष्टे नृपतिश्च र्यादवरोहति ।।१६।।**

**अन्वयः**— हे वीरसः ते प्रजानां क्षेमलक्षणः मा विनशेत् यस्मिन् विनष्टे नृपतिः ऐश्वर्याद् अवरोहति ।।१६।।

**अनुवाद**— हे वीर वह आपका प्रजाओं का कल्याण करना रूप धर्म विनष्ट न हों, क्योंकि धर्म के नष्ट हो जाने पर राजा भी ऐश्वर्य से च्युत हो जाता है ।।१६।।

**भावार्थ दीपिका**

मा विनशेन्मा विनश्यतु ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

वह आपका प्रजाओं का कल्याण करना रूप धर्म विनष्ट न हो ।।१६।।

**राजन्नसाध्वमात्येभ्यचोरादिभ्यः प्रजा नृपः । रक्षन्यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ।।१७।।**

**अन्वयः**— राजन् असाध्वमात्येभ्यः चोरादिभ्य प्रजाः रक्षन् नृपः यथा बलिं गृह्णन् इह प्रेत्य च मोदते ।।१७।।

**अनुवाद**— हे राजन् ! जो राजा अपने दुष्ट मन्त्रियों से तथा चोरों आदि से प्रजा की रक्षा करते हुए उनसे न्यायानुकूल कर प्राप्त करता है, वह इस लोक में और परलोक में सुख प्राप्त करता है ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

असाधवो ये अमात्यास्तेभ्य: । यथा यथाशास्त्रम् ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

दुष्ट मन्त्रियों से प्रजा की रक्षा करने वाला और शास्त्र विहित मात्रा में प्रजाओं से कर लेने वाला राजा लोक और परलोक में सुख प्राप्त करता है ।।१७।।

**यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः। इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ।।१८।।**
**तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः। परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ।।१९।।**

**अन्वयः**— यस्य राष्ट्रे पुरे चैव यज्ञपूरुषः भगवान् स्वेन धर्मेण वर्णाश्रमान्वितैः जनैः इज्यते हे महाभाग तस्य निजशासने तिष्ठतः राज: भूतभावनः भगवान् प्रसीदति ।।१८-१९।।

**अनुवाद**— जिस राजा के राज्य अथवा नगर में यज्ञ पुरुष भगवान् अपने वर्णाश्रम धर्म कापालन करने वाले लोगों को अपने धर्म के द्वारा पूजित होते हैं उस अपनी आज्ञा का पालन करने वाले राजा पर भगवान श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ।।१८-१९।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।१८-१९।।

**तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे । लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ।।२०।।**

**अन्वयः**— तस्मिन् जगतामीश्वरेश्वरे तुष्टे किम् अप्राप्यम् तस्मै हि सपालाः लोकाः बलिम् आदृताः हरन्ति ।।२०।।

**अनुवाद**— उन संसार के स्वामियों के स्वामी श्रीभगवान् के प्रसन्न हो जाने पर कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता है । इसीलिए उन श्रीभगवान् को इन्द्रिादि दिक्पाल आदर पूर्वक पूजोपहार समर्पित किया करते है ।।२०।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२०।।

**तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ।**
**यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन्स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ।।२१।।**

**अन्वयः**— राजन् सर्वलोकाम् यज्ञ संग्रहं, त्रयीमय, द्रव्यमयं, तपोमयम् तं ते भवाय विचित्रैः यज्ञैः यजतः स्वदेशान् अनुरोद्धुमर्हसि ।।२१।।

**अनुवाद**— जो भगवान् समस्त लोकों लोकपालों देवताओं और यज्ञों के भोक्ता हैं, वेद त्रयी रूप, द्रवरूप और तपोरूप हैं उनकी आराधना आपके जो देशवासी आपके कल्याण के लिए करते हैं, आपको उन लोगो के अनुकूल ही रहना चाहिए ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

सर्वान् लोकांश्च तत्पालानमरांश्च तत्प्रापकान्यज्ञांश्च संगृह्णाति नियच्छतीति तथा तम् । विचित्रैर्द्रव्ययज्ञादिभि: । भवाय समृद्धये । स्वदेशास्तद्वासिनो जनान् अनुरोद्धुमनुवर्तितुम् ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

जो श्रीभगवान् सभी लोकों, उन लोके के पालक देवता तथा स्वर्गादि प्राप्ति के साधन भूत यज्ञों के नियन्ता है, उनकी विविध द्रव्यादि यज्ञों से आपकी समृद्धि के लिए आपके जो देशवासी आराधना करते हैं, आपको इन देशवासियों के अनुकूल ही रहना चाहिए ।।२१।।

**यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभिर्वितायमानेन सुराः कला हरेः ।**
**स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥२२॥**

**अन्वयः**— हे वीर ! युष्मद् विषये द्विजातिभिः वितायमाने यज्ञेन हरेः कलाः सुराः स्विष्टाः सुतुष्टाः वाञ्छितं प्रदिशन्ति तद् हेलनं चेष्टितुम् नर्हसि ॥२२॥

**अनुवाद**— हे वीर आपके राज्य में जब ब्राह्मण लोग यज्ञों का अनुष्ठान करेंगे उनकी आराधना से प्रसन्न होकर श्रीहरि के अंशभूत देवगण प्रसन्न होकर आपको अभिप्रेत फल प्रदान करेंगे अतएव आप यज्ञादि धर्मानुकुल को बन्द करके आप देवताओं का तिरस्कार न करें ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

युष्मद्विषये त्वद्देशे । हरेः कला अंशाः सुराः । तेषां सुराणां हेलनमवज्ञाम् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

युष्मद् विषये का अर्थ है आपके देश में देवता श्रीहरि के अंश है। उन देवताओं का आप तिरस्कार न करें॥२२॥

वेन उवाच

**बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः । ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ॥२३॥**

**अन्वयः**— यूयं बत बालिशाः वा अधर्मे धर्ममानिनः, ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारम् पतिम् उपासते ॥२३॥

**वेन ने कहा**

**अनुवाद**— निश्चित रूप से तुमलोग मूर्ख हो, अधर्म को धर्म मान बैठे हो, इसीलिए वृत्ति प्रदान करने वाले पति मुझको छोड़कर जार पति की उपासना करते हो ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

बालिशा अज्ञाः । वृत्तिदमन्नादिप्रदं मां हित्वा ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

बालिश शब्द मूर्ख का वाचक है । वेन ने कहा कि तुमलोग मूर्ख हो इसीलिए अन्नादि प्रदान करने वाले मुझको छोड़कर परमात्मा की आराधना करते हो ॥२३॥

**अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम् । नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥२४॥**

**अन्वयः**— अमी मूढा नृपरूपिणम् ईश्वरम् अवजानन्ति ते इह लोके परत्र च भद्रम न अनुविन्दन्ति ॥२४॥

**अनुवाद**— जो अज्ञानी राजा रूपी ईश्वर का अपमान करते हैं वे इस लोक और परलोक में कल्याण नहीं प्राप्त करते हैं ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२४॥

**को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी । भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— यत्र वो इदृशी भक्तिः को यज्ञपुरुषो नाम भर्तृस्नेहविदूराणां कुपोषिताम् यथा जारे ॥२५॥

**अनुवाद**— जिसमें तुमलोगों की इतनी भक्ति है वह यज्ञ पुरुष कौन है ? यह तो वैसी बात जैसे कुलटा स्त्रियाँ अपने पति को छोड़कर किसी जार पुरुष में आसक्त हो जाती हैं ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

भर्तृस्नेहो विदूरो येषाम् ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

पति भक्ति जिनमें होती ही नहीं है ॥२५॥

**विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः । पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपांपतिः ॥२६॥**
**एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः । देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥२७॥**

**अन्वयः**— विष्णुः विरिञ्चोः गिरिशः इन्द्रो वायु र्यमः । रविः पर्जन्यः धनदः सोमः क्षितिः अग्निः अपांपतिः, एते च अन्ये च वरशापयोः प्रभवः विवुधाः नृपतेः देहे भवन्तिः नृपः सर्वदेवमयः ॥२६-२७॥

**अनुवाद**— विष्णु, ब्रह्म, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, पर्जन्य, कुबेर, सोम, पृथिवी, अग्नि और वरुण ये सभी देवता और दूसरे भी देवता जो वरदान देने में अथवा शाप देने में समर्थ है, वे राजा के शरीर में निवास करते हैं अतएव राजा सर्वदेवमय होत है ॥२६-२७॥

### भावार्थ दीपिका

देहे भवन्ति नृपतेरतो नृपतिरेवेश्वर इतरे तदंशा इति भावः ॥२६-२७॥

### भाव प्रकाशिका

ये सभी देवता चूकि राजा के शरीर में निवास करते हैं, अतएव राजा ही ईश्वर है दूसरे देवता उसके अंश हैं ॥२६-२७॥

**तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः । बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान्॥२८॥**

**अन्वयः**— हे विप्राः ! तस्मान्मां कर्मभिः गतमत्सराः यजध्वं मह्यम् च बलिं हरत अग्रभुक् पुमान् कः ॥२८॥

**अनुवाद**— हे ब्राह्मणों तुम लोग द्वेष रहित होकर अपने कर्मों के द्वारा मेरी ही आराधना करो और मुझको ही बलि समर्पित करो; मुझसे भिन्न कौन अग्र पूजा का अधिकारी है ?॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

बलिं च करादिकम् । अग्रभुगाराध्यः ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

बलि शब्द से कर आदि को कहा गया, अग्रभुक् अर्थात् आराध्य ॥२८॥

मैत्रेय उवाच

**इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः । अनुनीयमानस्तद्याच्ञां न चक्रे भ्रष्टमङ्गलः ॥२९॥**

**अन्वयः**— इत्थं विपर्यमतिः, पापीयान् उत्पथं गतः भ्रष्टमङ्गलः अनुनीयमानः तद्याच्ञां न चक्रे ॥२९॥

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— इस प्रकार से विपरीत बुद्धि वाला, महापापी, कुमार्गगामी जिसका पुण्य नष्ट हो गया था ऐसा वेन, मुनियों के बहुत प्रार्थना करने पर भी उनकी बातों को नहीं माना ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२९॥

**इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना । भग्नायां भव्ययाच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥३०॥**

**अन्वयः**— हे विदुर ! इति तेन पण्डितमानिना असत्कृताः द्विजाः भव्य याच्ञायां भग्नायां तस्मै चुक्रुधुः ॥३०॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! इस तरह से अपने को पण्डित मानने वाले उस वेन के द्वारा अनादृत ब्राह्मण अपनी याचना के भग्न हो जाने पर वेन के प्रति क्रोध किए ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

तेनासत्कृताः । भग्नायां याच्ञायां चुक्रुधुः क्रोधं चक्रुः ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

वेन के द्वारा अनादृत मुनिगण अपनी याचना के भङ्ग हो जाने पर वेन पर क्रोध किए ॥३०॥

**हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः । जीवञ्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद्ध्रुवम् ॥३१॥**

**अन्वयः**— हन्यताम् हन्यताम् एषः पापः प्रकृति दारुणः जीवन् असौ आशु जगद् ध्रुवम् भस्मसात् कुरुते ॥३१॥

**अनुवाद**— इसको मार डालो मार डालो यह स्वभाव से ही भयङ्कर पापी है । यह जीवित रहेगा तो शीघ्र ही जगत् को भस्म कर देगा ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥३१॥

**नायमर्हत्यसस्हत्तो नरदेववरासनम् । योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ॥३२॥**

**अन्वयः**— अयम् नरदेव वरासनम् न अर्हति यः अनपत्रपः अधियज्ञ पतिं विष्णुं विनिन्दति ॥३२॥

**अनुवाद**— यह राजा के श्रेष्ठ आसन के योग्य नहीं है । यह निर्लज्ज यज्ञों के अधिपति भगवान् विष्णु की निन्दा करता है ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥३२॥

**को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् । प्राप्तईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥३३॥**

**अन्वयः**— यदनुग्रहभाजनः इदृशम् ऐश्वर्य प्राप्तःएकम् अशुभम् वेनम् ऋते को वा एवं परिचक्षीत् ॥३३।

**अनुवाद**— जिन श्रीभगवान् की कृपा का पात्र बन करके इस प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त किया उन श्रीभगवान् की निन्दा इस अमङ्गलमय वेन को छोड़कर कौन कर सकता है ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

परिचक्षीत निन्देत । अशुभं वेनं बिना । कृतघ्नतामाहुः । यदनुग्रहविषयः सन्नीदृशमैश्वर्यं यः प्राप्तः ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

अमङ्गलमय इस वेन को छोड़कर भगवान् विष्णु की निन्दा कौन कर सकता है ? वेन की कृतघ्नता को बतलाते हुए कहते हैं उन्हीं भगवान् की कृपा से इसने इस प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त किया है, उनकी ही यह निन्दा करता है ॥३३॥

**इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः । निजघ्नुर्हुंकृतैर्वेनं हतमच्युतनिन्दया ॥३४॥**

**अन्वयः**— रूढमन्यवः ऋषयः इत्थं हन्तुम् व्यवसिताः अच्युतनिन्दयाहतम् वेनम् हुङ्कृतै निजघ्नुः ॥३४॥

**अनुवाद**— जिन सबों का छिपा हुआ क्रोध अत्यन्त प्रबल हो गया था ऐसे ऋषिगण उसको मारने का निश्चय कर लिए और श्रीभगवान् की निन्दा करने के ही कारण मरे हुए वेन को उन लोगों ने हुङ्कार मात्र से ही मार दिया ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

पूर्वं गूढमन्यव इदानीं रूढमन्यवः प्रकटकोपाः । हुंकृतैर्हुंकारैः ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

पहले ऋषियों का क्रोध छिपा था किन्तु उस समय उनका क्रोध प्रबल हो गया उन ऋषियों ने हुङ्कार मात्र से वेन को मार दिया ।।३४।।

**ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् । सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ।।३५।।**

**अन्वयः**— ऋषिभिस्वाश्रमपदं गते शोचती सुनीथा विद्यायोगेन पुत्र कलेवरम् पालयामास ।।३५।।

**अनुवाद**— ऋषियों के अपने आश्रमों में चले जाने पर शोक करती हुई सुनीथा अपने पुत्र के शरीर को मन्त्रविद्या तथा युक्तियों के द्वारा रक्षा करने लगी ।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

स्वाश्रमपदं प्रति ऋषिभिर्गते गमने कृते सति विद्यायोगेन मन्त्रसहितया युक्त्या पालयामास ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

जब ऋषिगण अपने आश्रमों में लौट गये तो सुनीथ वेन के शरीर को मन्त्र तथा औषधि युक्त तेल आदि के लेप आदि से रक्षा करने लगी ।।३५।।

**एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः । हुत्वाग्नीन्सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ।।३६।।**

**अन्वयः**— एकदा ते मुनयः तु सरस्वत्सलिलप्लुताः अग्नीन् हुत्वा सरित् तटे उपविष्टाः सत्कथा चक्रुः ।।३६।।

**अनुवाद**— एक दिन वे मुनिगण सरस्वती नदी के जल में स्नान करके तथा अग्निहोत्र करके नदी के तट पर बैठे हुए हरिचर्चा कर रहे थे ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

पुंवद्भाव आर्षः । सरस्वत्याः सलिले आप्लुताः कृतस्नानाः । विष्णुकथाश्चक्रुः ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

सरस्वत में पुंवद्भाव आर्ष प्रयोग होने के कारण है । सरस्वती नदी के जल में स्नान करके तथा अग्निहोत्र करके नदी के तट पर बैठकर श्रीभगवान् विष्णु की कथा कर रहे थे ।।३६।।

**वीक्ष्योत्थितान्महोत्पातानाहुर्लोकभयङ्करान् । अप्यभद्रमनाथाय दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ।।३७।।**

**अन्वयः**— लोक भयङ्करान् उत्थितान् महोत्पातान् वीक्ष्य आहुः, अनाथायाः भुवः अभद्रम् अपि न भवेत् ।।३७।।

**अनुवाद**— संसार में भय उत्पन्न करने वाले उठे हुए महान् उत्पातों को देखकर कहने लगे कि राजा से रहित इस पृथिवी की चोरों आदि से कहीं अमङ्गल न होए ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

तदा तूत्पातान्वीक्ष्य भुवोऽभद्रं न भवेत्किमित्याहुश्च ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

उस समय होने वाले उत्पातों को देखकर ऋषियों ने कहा इस समय पृथिवी अनाथ है, इसका चोर आदि कहीं अमङ्गल न करें ।।३७।।

**एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतोदिशम् । पांसुः समुत्थितो भूरिश्चोराणामभिलुम्पताम् ॥३८॥**

**अन्वयः**— एवं मृशन्त ऋषयः सर्वतोदिशम् धावताम् अभिलुम्पताम् चोराणाम् भूरिपांसुः समुत्थितः ॥३८॥

**अनुवाद**— ऋषिगण इस प्रकार से विचार ही कर रहे थे कि उसी समय धावा बोलने वाले चोरों और लुटेरों से उड़ी हुई धूल अत्यधिक मात्रा में दिखाई पड़ी ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

एवं मृशन्तस्तर्कयन्त ऋषयः स्थिताः । तदा धावतां चोराणां भूरिः पांसुःसमुत्थितः ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से विचार करते हुए ऋषिगण बैठे ही हुए थे कि उसी समय सब ओर धावा बोलने वाले चोरों और डाकुओं से बहुत अधिक धूल उड़ी ॥३८॥

**तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पताम् । भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम्॥३९॥**
**चोरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् । लोकान्नावारयन् शक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥४०॥**

**अन्वयः**— लोकस्य वसुलुम्पताम् तदुपद्रवमाज्ञाय, तस्मिन् भर्तरि उपरते अन्योन्यं च जिघांसताम् चोरप्रायं जनपदं हीन सत्त्वं अराजकम् शक्ता अपि तददोषदर्शिनः लोकान् न अवारयन् ॥३९-४०॥

**अनुवाद**— देखकर वे ऋषिगण जान गये यह उपद्रव लोगों की सम्पत्ति लूटने वाले चोरों और डकैतों का है । राजा वेन के मर जाने के कारण जो लोग एक दूसरे को मार डालना चाहते हैं उन लोगों का यह उपद्रव है । इस समय राज्य के कमजोर हो जाने के कारण देश में चोरों की भरमार हो गयी है । देश राजा से हीन हो गया है । इन सारी बातों को जानकर वे लोग इसे रोकने में समर्थ थे फिर भी इसलिए नहीं रोके कि उसमें अनेक प्रकार के हिंसा आदि दोष होते ॥३९-४०॥

### भावार्थ दीपिका

तत् तदा तेषां लोकस्य धनं लुम्पतां जिघांसतां चोपद्रवमाज्ञाय । तथा चोरप्रायमराजकं हीनसत्त्वं च जनपदमाज्ञाय । शक्ता अप्यवारणे दोषदर्शिनोऽपि जना लुम्पतो लोकान्नावारयन्नित्यन्वयः ॥३९-४०॥

### भाव प्रकाशिका

वे जाने गये कि लोगों की धन सम्पत्ति लूटने वाले और एक दूसरे को मार डालने वाले चोरों और डकैतों का यह उपद्रव हैं । वे यह जान गये कि राज्य चोर प्राय और कमजोर हो गये हैं । वे यद्यपि इस उपद्रव को रोकने में समर्थ थे फिर भी यह देखकर कि इस कार्य में हिंसा आदि दोष हैं उसे नहीं रोके ॥३९-४०॥

**ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः । स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥४१॥**

**अन्वयः**— दीनानां समुपेक्षक समदृक् शान्तः ब्राह्मणः भिन्न भण्डात् पयः यथा तस्यापि ब्रह्म स्रवते ॥४१॥

**अनुवाद**— उन ऋषियों ने सोचा दीन जनों की उपेक्षा करने वाले समदर्शी तथा शान्त स्वभाव ब्राह्मण की भी तपस्या उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जिस तरह फूटे घड़े से जल बह जाता है ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

शक्तानां क्षत्रियाणामवारणे दोष इति किं वक्तव्यम् । समदृगपि शान्तोऽपि ब्राह्मणोऽपि यदि दीनानां समुपेक्षको भवेत्तर्हि तस्यापि ब्रह्म तपः स्रवति ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

समर्थ होकर भी क्षत्रियों को नहीं रोकने से कौन सा दोष होता है इसे बतलाना चाहिए, समदर्शी भी, शान्त स्वभाव भी ब्राह्मण भी यदि दीनों की उपेक्षा करता है तो उसकी तपस्या उसी तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह से फूटे घड़े से पानी बह जाता है ।।४१।।

**नाङ्गस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति । अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ।।४२।।**

**अन्वयः**— राजर्षे अङ्गस्य एष वंशः संस्थातु नार्हति । अस्मिन वंशे अमोधवीर्याःकेशवाश्रयाः नृपाः हि जाताः ।।४२।।

**अनुवाद**— राजर्षि अङ्ग का वंश भी विनष्ट नहीं होना चाहिए क्योंकि इस वंश में अनेक अमोध शक्ति समपन्न और भगवान् परायण हो चुके हैं ।।४२।।

### भावार्थ दीपिका

अत उपेक्षादोषपरिहाराय नाङ्गस्येत्यादि विनिश्चित्य महीपतेरूरूं तरसा ममन्थुरित्यन्वयः । संस्थातुं नाशं गन्तुम् । यद्वा ऋषय एव लुम्पतो लोकान्नावारयन् । कथंभूताः । हुंकारेणैव वेनं निवारयितुं शक्ता अपि । तत्किम् । तस्मिन्निवारणे तन्मरणादिदोषदर्शिनः। न चोदासत । चोरोपद्रुते दीनोपेक्षायां तपोहानिप्रसङ्गात् । न चान्यं तन्निवारकं राजानमकुर्वन् । अङ्गवंशोच्छेदस्यानर्हत्वात् ।।४२।।

### भाव प्रकाशिका

अतएव उपेक्षा जन्य दोष को दूर करने के लिए कहते है नाङ्गस्य इत्यादि श्लोक । अर्थात् राजर्षि अङ्ग का वंश नष्ट होने योग्य नहीं है । यह निश्चय करके ऋषियों ने वेन की जङ्घे को वेग से मथे । संस्थातुम् का अर्थ है नष्ट होने योग्य नहीं है । अथवा ऋषियों ने ही लोगों को लुटने वालों को नहीं रोका । प्रश्न है कि वे ऋषिगण कैसे थे तो इसका उत्तर है कि, वे हुङ्कार मात्र से वेन को मारने में समर्थ भी थे । ऋषियों ने ऐसा क्यों किया तो इसका उत्तर है कि उन सबों को मारने में वे लोग हिसादि दोष का अनुभव करते थे । वे यह देखकर भी उदासीन नहीं हुए क्योंकि चोरों से उपद्रुत दीनों की उपेक्षा करने से तपस्या की हानि का प्रसङ्ग था । वे ऋषिगण की दूसरे निवारक को राजा भी नहीं बनाये । चूकि अङ्ग का वंश विनष्ट होने के योग्य नहीं था । इसीलिए उन लोगों ने वेन के शरीर का मन्थन किया इस तरह से योजना करनी चाहिए ।।४२।।

**विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः । ममन्थुरूरूं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ।।४३।।**

**अन्वयः**— एवम् विनिश्चित्य ऋषयः विपन्नस्य महीपतेः ऊरूं तरसा ममन्थुः तत्र बाहुकः नरः आसीत् ।।४३।।

**अनुवाद**— इस तरह से विचार करके ऋषियों ने मरे हुए राजा की जेघे को वेग से मथा तो उससे एक वामन पुरुष निकला ।।४३।।

### भावार्थ दीपिका

बाहुको वामनः ।।४३।।

### भाव प्रकाशिका

**बाहुकः** शब्द का अर्थ है बौना ।।४३।।

**काककृष्णोऽतिह्रस्वाङ्गो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः । ह्रस्वपन्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः ।।४४।।**

**अन्वयः**— काक कृष्णः, अति ह्रस्वाङ्गः ह्रस्वबाहुः महाहनुः ह्रस्वपात् निम्ननासाग्रः रक्ताक्षः ताम्मूर्धजः ।।४४।।

**अनुवाद**— वह कौए के समान काला था, उसके सभी अङ्ग छोटे थे और उसकी भुजा भी छोटी थी । उसकी ठूढी बड़ी थी । उसके पैर भी छोटे थे, उसकी नाक चिपटी थी आँखे लाल थी और केश भी लाल थे।।४४।।

**भावार्थ दीपिका**

तमेवाह । काक इव कृष्णः । महत्यौ हनू कपोलप्रान्तौ यस्य । ह्रस्वौ पादौ यस्य ।।४४।।

**भाव प्रकाशिका**

उस वामन पुरुष का ही वर्णन करते हैं । वह कौए के समान काला था उसकी दोनों गालों का प्रान्त भाग बड़ें थें तथा उसके पैर छोटे थे ।।४४।।

**तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् । निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ।।४५।।**

**अन्वयः**— तं अवनतं दीनं कि करोमिति वादिनम ते निषीद इति अब्रुवन्, हे तात स निषादः तत अभवत् ।।४५।।

**अनुवाद**— नम्रता और दीनता पूर्वक उसके मैं क्या करूँ इस तरह से पूछने पर उसको ऋषियों ने कहा तुम बैठो उसी से निषाद उत्पन्न हुआ ।।४५।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।४५।।

**तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः । येनाहरञ्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ।।४६।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

**अन्वयः**— तस्य वंशाः तु नैषादाः गिरिकाननगोचरः येन जायमानः उल्बणम् वेन कश्मलम् अहरत ।।४६।।

**अनुवाद**— उसके वंश वाले नैषाद कहलाये ये पर्वतों और वनों में रहने वाले हैं । वह निषाद वेन के शरीर से जन्म लेते ही वेन के सारे पाप को अपने ऊपर ले लिया ।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध पृथुत्पत्ति के अन्तर्गत निषाद की उत्पत्ति वर्णन नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।**

**भावार्थ दीपिका**

गिरिः काननं च गोचर आश्रयो नतु परादिप्रवेशो येषाम् । तत्र हेतुः- येन कारणेन असावहरत्ततस्तस्य वंश्यास्तथाभूताः।।४६।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।**

**भाव प्रकाशिका**

चूकि उसने वेन के शरीर से जन्म लेते समय उनके समस्त पापों का हरण कर लिया इसीलिए उसके वश वाले चोरी, लूट पाट करने वाले हो गये ।।४६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१४।।**

# पन्द्रहवाँ अध्याय

## महाराज पृथु का अविर्भाव ओर उनका राज्याभिषेक

मैत्रेय उवाच

**अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः । बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ।।१।।**

**अन्वयः**— अथ तस्य अपुत्रस्य महीपते पुनः विप्रैः मथ्यमानाभ्यां भुजाभ्यां मिथुनं समपद्यत ।।१।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— इसके पश्चात् उस पुत्रहीन राजा के पुनः मथे जाने वाली दोनों भुजाओं से स्त्री और पुरुष का जन्म हुआ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

ततः पञ्चदशे विप्रैर्मथनाद्वेनबाहुतः । जातस्य तु पृथोरुक्तमभिषेकार्हणादिकम् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

उसके पश्चात् पन्द्रहवें अध्याय में ब्राह्मणों द्वारा मथे जाने वाले वेन की भुजाओं से उत्पन्न हुए पृथु के अभिषेक और पूजन आदि का वर्णन किया गया है ।।१।।

**तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः । ऊचुः परमसंतुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ।।२।।**

**अन्वयः**— तत् मिथुनं जातं दृष्ट्वा ब्रह्मवादिनः ऋषयः भगवत्कलाम् विदित्वा परमसंतुष्टा ऊचुः ।।२।।

**अनुवाद**— उस उत्पन्न हुए स्त्री पुरुष के जोड़े को देखकर ब्रह्मवादी ऋषिगण उसे श्रीभगवान् का अंश जानकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२।।

ऋषयः ऊचुः

**एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालनी । इयं च लक्ष्म्याः संभूतिः पुरुषस्यानपायिनी ।।३।।**

**अन्वयः**— एषः भगवतः विष्णोः भुवन पालिनी कला इयं च पुरुषस्य अनपायिनी लक्ष्म्याः सम्भूतिः ।।३।।

**ऋषियों ने कहा**

**अनुवाद**— यह पुरुष भगवान् विष्णु की विश्व पालिनी कला है और यह स्त्री परम पुरुष की अनपायिनी उनसे कभी अलग नहीं होने वाली के लक्ष्मी का अवतार है ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

किमूचुरित्यत आह- एष इति चतुर्भिः । लक्ष्म्याः संभूतिः कला ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

लोग आपस में क्या कह रहे थे ? इसे **एष इत्यादि** चार श्लोकों से बतलाते हैं । **लक्ष्म्याः सम्भूतिः** अर्थात् लक्ष्मी की कला ।।३।।

**अत्र तु प्रथमो राज्ञां पुमान् प्रथयिता यशः । पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ।।४।।**

**अन्वयः**— अत्र तु राज्ञां प्रथमः पुमान् यशः प्रथयिता पृथुश्रवाः पृथुः नाम महाराजो भविष्यति ।।४।।

**अनुवाद**— इसमें से जो पुरुष है वह अपने सुयश का विस्तार करने के कारण परम यशस्वी पृथु नामक सम्राट होगा । यही राजाओं में सबसे प्रथम राजा होगा ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

अत्र यः पुमान्स तु महाराजो भविष्यति ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

इसमें से जो पुरुष है वह महाराज होगा ।।४।।

**इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा । अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ।।५।।**

**अन्वयः**— इयं च सुदती देवी गुणभूषण भूषणा अर्चिःनाम वरारोहा पृथुमेवावरून्धती ।।५।।

**अनुवाद**— यह जो सुन्दर दाँतों वाली गुणों तथा आभूषणों को भी भूषित करने वाली पृथु को ही अपना पति बनायेगी और इनका अर्चि होगा ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

सुदती शोभनदन्तवती । गुणानां भूषणानां च भूषणरूपा । अवरुन्धती भर्तृत्वेन भजन्ती भविष्यति ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

यह सुन्दर दाँतों वाली देवी गुणों और भूषणों को भी भूषित करने वाली पृथु को ही पति रूप से वरण करेगी।।५।।

**एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया । इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ।।६।।**

**अन्वयः**— एषः साक्षात् हरेः अंशः लोकरिरक्षयिषया जातः इयं च तत्परा अनपायिनीश्रीः अनुजज्ञे ।।६।।

**अनुवाद**— यह पृथु के रूप में साक्षात् श्रीहरि का अंश ही अवतीर्ण हुआ है और यह अर्चि के रूप में निरन्तर भगवान् की सेवा में तत्पर रहने वाली उनकी नित्य सहचरी श्रीदेवी ही प्रकट हुई हैं ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

अत्र हेतुः- एष इति । लोकस्य रिरक्षया रिरक्षयिषया ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

इसका कारण है कि यह पुरुष संसार की रक्षा करने के लिए अवतीर्ण हुआ है ।।६।।

मैत्रेय उवाच

**प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगुः । मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ।।७।।**

**अन्वयः**— तं विप्राः प्रशंसन्तिस्म गन्धर्व प्रवराः जगुः सिद्धाः सुमनोधाराः मुमुचु स्वः स्त्रियः चनृत्यन्ति स्म ।।७।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— उस समय ब्राह्मणों ने पृथु की प्रशंसा की, श्रेष्ठ गन्धर्वों ने उनका गुणगान किया और अप्सराओं ने नृत्य किया ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

स्वःस्त्रियः अप्सरसो नृत्यन्ति सम ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

अप्सराओं का ही नाम स्वस्त्रो है । उन सबों ने पृथु महाराज के अवतार काल में नृत्य किया ।।७।।

**शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि । तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितृणां गणाः ॥८॥**

**अन्वयः**— दिवि शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्याः दुन्दुभयो नेदुः तत्र सर्वे देवर्षि पितृणां गणाः उपाजग्मुः ॥८॥

**अनुवाद**— आकाश में शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग आदि तथा दुन्दुभियाँ बजने लगी उस समय वहाँ पर सभी देवता और पितृगण आये ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥८॥

**ब्रह्माजगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः । वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥९॥**
**पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेः कलाम् । यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥१०॥**

**अन्वयः**— जगद्गुरुब्रह्मा सुरेश्वरै सहउपसृत्य वैन्यस्य दक्षिण हस्ते गदाभृतः चिह्नं दृष्ट्वा पादयोः अरविन्दं च दृष्ट्वा तं वै हरेः कलाम् मेने, यस्य अप्रतिहतं अंशः चक्रम् सः परमेष्ठिनः ॥९-१०॥

**अनुवाद**— जगद्गुरु ब्रह्माजी देवों और देवेश्वरों के साथ पधारे; उन्होंने वेन पुत्र पृथु के दाहिने हाथ में भगवान् विष्णु के चिह्न और पैर में कमल के चिह्न को देखकर उन्हें श्रीहरि का ही अंश माना क्योंकि जिसके हाथ में दूसरी रेखाओं से बिना कटा हुआ चक्र का चिह्न होता है वह श्रीभगवान् का ही अंश होता है ॥९-१०॥

**भावार्थ दीपिका**

देवैः सहासृत्यागत्य । वैन्यस्य पृथोः । चिह्नं रेखात्मकं चक्रम् । अप्रतिहतं रेखान्तरैभिन्नं चक्रं यस्य चिह्नं स परमेश्वरस्यांशः ॥९-१०॥

**भाव प्रकाशिका**

जगद्गुरु ब्रह्माजी देवेश्वरों के साथ आकर उनके हाथ में रेखात्मक चक्र को देखे । जिसके हाथ में दूसरे चिह्नों बिना कटे हुए चक्र का चिह्न होता है, वह परमेश्वर का अंश होता है ॥९-१०॥

**तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः । आभिषेचनिकान्यस्मा आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥११॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मवादिभिः ब्राह्मणैः तस्य अभिषेक आरब्धः सर्वतो जनाः अस्मै आभिषेचनिकानि आजह्रुः ॥११॥

**अनुवाद**— वेदवादी ब्राह्मणों ने महाराज पृथु के अभिषेक का आयोजन किया तथा सबलोग उसकी सामग्री जुटाने लगे ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

आभिषेचनिकान्यभिषेकसाधनानि ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

आभिषेचनिकानि का अर्थ है अभिषेक की सामग्री ॥११॥

**सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः । द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— सरित् समुद्राः, गिरयो, नागा, गावः खगा, मृगाः द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजहुः उपायनम् ॥१२॥

**अनुवाद**— नदियाँ, समुद्र, पर्वत, नाग, गौए, पक्षी, मृग, स्वर्ग पृथिवी, सभी जीव ये सब के सब उस समय उनको उपहार प्रदान किए ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१२॥

**सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः । पत्न्याऽर्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥१३॥**

**अन्वयः**— सुवासाः साध्वलंकृतः सः अभिषिक्तः अर्चिषा पत्न्या अलंकृतया अपर अग्निः इव विरेजे ॥१३॥

**अनुवाद**— सुन्दर वस्त्र एवं अलङ्कारों स अलंकृत महाराज पृथु का विधि पूर्वक अषिभेक हुआ अपनी समलंकृत पत्नी अर्चि के साथ वे दूसरे अग्निदेव के समान सुशोभित होते थे ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१३॥

**तस्मै जहार धनदो हैमं वीर वरासनम् । वरुणः सलिलस्त्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— वीर ! तस्मै धनदः हैमं वरासनं जहार, वरुणः सलिलस्त्रावम् शशिप्रभम् आतपत्रं जहार ॥१४॥

**अनुवाद**— हे वीर विदुरजी ! उनको कुबेर न सुवर्ण रचित राजसिंहासन प्रदान किया और वरुण ने उनको चन्द्रमा के समान कान्ति मान तथा सलिल भावी छत्र प्रदान किया ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

हे वीर ! वरासनमुत्तमासनम् । सलिलस्य स्त्रावो यस्मात् ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

हे विदुर ! कुबेर ने महाराज पृथु को सुवर्ण निमित उत्तम राजसिंहासन प्रदान किया और वरुण ने उनको ऐसा छत्र प्रदान किया जिससे सदैव जल चूता था ॥१४॥

**वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्त्रजम् । इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥१५॥**
**ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् । हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥१६॥**
**दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तथाम्बिका । सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥१७॥**
**अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् । भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥१८॥**
**नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः । ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥१९॥**
**सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः । सूतोऽथ मागधो बन्दी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥२०॥**

**अन्वयः**— वायुश्च, बालव्यजने, धर्मः कीर्तिमयीं स्त्रजम्, इन्द्रः उत्कृष्टं किरीटम् यमः संयमनं दण्डम्, ब्रह्मा ब्राह्ममयं वर्म, भारती उत्तमम् हारम्, हरिः सुदर्शनं चक्रम्, तत्पत्न्यव्याहताम् श्रियम्, रुद्रः दशचन्द्रम् असिम्, तथा अम्बिका शतचन्द्रम् असिम्, सोमः अमृतमयानश्वान्, त्वष्टा रूपाश्रयम् रथम्, अग्नि आजगवमृ चापम्, सूर्यः रश्मिमयान् इषून् भूः पादुके योगमययौ, द्यौः पुष्पावलिम् अन्वहम्, खेचराः नाट्यं सुगीतम्, वादित्रम्, अन्तर्धानं च, ऋषयः सत्याः आशिषः, समुद्रः आत्मजं शंखम्, सिन्धवः, पर्वताः नद्यः महात्मनः रथवीथीः अथसूतो मागधः वन्दी च तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥१५-२०॥

**अनुवाद**— वायु ने चँवर, धर्म ने कीर्ति माला, इन्द्र ने सर्वोत्कृष्ट किरीट, यम ने संयमन दण्ड, ब्रह्माजी ने ब्रह्मतेजोमय कवच, सरस्वती देवी ने उत्तम हार, श्रीहरि ने सुदर्शन चक्र, उनकी पत्नी श्रीदेवी ने अविचल सम्पत्ति, रुद्र ने दश चन्द्रमा के आकार वाले चिह्नों से युक्त तथा कोश से युक्त तलवार, अम्बिका देवी ने सौ चन्द्रमा के आकारों चिह्नों से युक्त खड्ग को, चन्द्रमा ने अमृतमय अश्वोंको, त्वष्टा ने सुन्दर रथ, अग्नि ने बकरे और गौ के सींग से बने धनुष को, सूर्य ने किरणमय बाणों को, पृथिवी ने चरण स्पर्श मात्र से अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देने वाली दो पादुकाएँ, आकाश के अभिमानी द्यौ देवता ने, नित्य नूतन पुष्पों की माला को, आकाश मे संचरण करने वाले सिद्धों तथा गन्धर्वों आदि ने नाचने, गाने बजाने और अन्तर्धान हे जाने की शक्ति को, ऋषियों ने अमोघ आशीर्वाद को समुद्र ने अपने में उत्पन्न हुए शङ्ख को तथा सभी समुद्रों पर्वतों एवं नदियों ने उनके रथ के लिए अव्याहत मार्ग को प्रदान किया । तदनन्र सूत, मागध और वन्दी जन उनकी स्तुति करने के लिए उपस्थित हुए ॥१५-२०॥

### भावार्थ दीपिका

द्वे बालव्यजने । ब्रह्ममयं वेदमयं वर्म कवचम् । तत्पत्नी श्रीः । श्रियं संपदम् । दशचन्द्राकाराणि बिम्बानि कोशे यस्य तम् । असिं खड्गम् । शतचन्द्रं चर्म रूपाश्रयमतिसुन्दरम् । अजस्य गोश्च शृङ्गाभ्यां निर्मित्तं चापम् । योगमय्यौ पादस्पर्शमात्रेणाभीष्टदेशप्रापिके । नाट्यादिकौशलं खेचराः । आत्मजं स्वप्रभवम् । तं स्तोतुमुपस्थिताः ।।१५-२०।।

### भाव प्रकाशिका

द्वेबालव्यजने अर्थात् दोचँवर, ब्रह्ममयं वर्म अर्थात् वेदमय कवच, तत्पत्नी अर्थात् भगवान् विष्णु की पत्नी, अविचल सम्पत्ति को, दश चन्द्रमसिम् अर्थात् जिसके कोश पर दश चन्द्रमा के आकार के मण्डल बने थे ऐसे खड्ग को, शतचन्द्रं यानी सौ चन्द्रमा के चिह्न वाले ढाल को रूपाश्रयम् अर्थात् अत्यन्त सुन्दर, **अजगवं धनुः** अर्थात् बकरे और गौ के सींग से बने अत्यन्त सुदृढ धनुष को योगमय्यौ अर्थात् चरण के स्पर्श मात्र से अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देने वले दो खडाऊँ, नाट्यादि की कुशलता को आकाशचारी सिद्धों आदि ने प्रदान किया, आत्मजम् अर्थात् अपने में उत्पन्न, मागध सूत आदि उनकी स्तुति करने के लिए उपस्थित हुए ।।१५-२०।।

**स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् । मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ।।२१।।**

**अन्वयः**— तान् स्तावकान् अभिप्रेत्य प्रतापवान् वैन्यः पृथुः मेघनिर्ह्रादया वाचा प्रहसन् इदम् अब्रवीत् ।।२१।।

**अनुवाद**— उन सबों को स्तुति कर्ता के रूप में जानकर प्रतापी वेन कुमार पृथु मेघ की गर्जना के समान जोर से हँसते हुए कहे ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

स्तावकान् स्तोतुमुद्यतान् । अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

स्तावकान् अर्थात् स्तुति करने के लिए तैयार, अभिप्रेत्य अर्थात् जानकर ।।२१।।

### पृथुरुवाच

**भो सूत हे मागध सौम्य बन्दिँल्लोकेऽधुना स्पष्टगुणस्य मे स्यात् ।**
**किमाश्रयोऽमे स्तव एष योज्यतां मा मय्यभूवन्वितथा गिरो वः ।।२२।।**

**अन्वयः**— हे सौम्य सूत ! हे मागध हे वन्दिन् लोके अधुनाअस्पष्ट गुणस्य मे एषः स्तवः किमाश्रयः योज्यताम्? मयि वो गिरः वितथा मा भुवन् ।।२२।।

### पृथु महाराज ने कहा

**अनुवाद**— हे सौम्य सूत ! हे मागध हे बन्दिजन अभी लोक में मेरे गुण प्रकट नहीं है ऐसी स्थिति में मेरे किन गुणों को लेकर स्तुति करोगे ? मेरे विषय में तुमलोगों की वाणी मिथ्या नहीं होनी चाहिए ।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

लोके स्पष्टगुणस्य सतो मे स्तुतिः स्यात् । अधुना तु किमाश्रयो मे स्तवो योज्यताम् । अतो वो गिरोऽधुना मयि वितथा माभूवन् । यद्वा लोकेऽधुना स्पष्टगुणस्य मे किमाश्रयः स्तवः स्यात् । अतएव क्रियमाणः स्तवोऽमे मदन्यस्य योज्यतां, नतु मे वितथाभिधानापत्तेरित्यर्थः ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

लोक में यदि मेरे गुण स्पष्ट होते तब तो मेरी स्तुति होती इस समय मेरे किन गुणों को लेकर स्तुति हो

सकती है ? अतएव मेरे विषय में आपलोगों की वाणी मिथ्या नहीं होनी चाहिए अथवा लोक में अस्पष्ट गुण वा मेरे किन गुणों को लेकर स्तुति हो सकती है ? अतएव यह किया जाने वाले मुझसे किसी भिन्न की होनी चाहिए। मेरी इसलिए नहीं कि वह स्तुति मिथ्या होगी ॥२२॥

**तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ।**
**सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे अपीच्यवाचः तस्मात् परोक्षे अस्मदुपश्रुतानि अलं स्तोत्रं करिष्यथ उत्तम श्लोकगुणनुवादे सति सभ्याः जुगुप्सितं न स्तवयन्ति ॥२३॥

**अनुवाद**— हे मधुरभाषियों इसीलिए कालान्तर में जब मेरे गुण प्रकट हो जायँ तो तुमलोग खूब मेरी स्तति कर लेना पवित्र कीर्ति श्रीहरि के गुणानुवाद के रहते हुए सभ्य पुरुष तुच्छ मनुष्यों की स्तुति नहीं करते हैं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

तस्मात् परोक्षे कालान्तरे स्पष्टेषु गुणेषु सत्स्वस्माकमुपश्रुतानि यशांसि प्रतिस्तोत्रमलमत्यर्थं करिष्यथ । हे अपीच्यवाचो मधुरगिरः। सभ्यैः प्रेरिता वयं त्वामेव स्तुम इति चेत्तत्राह । उत्तमश्लोकस्य गुणानुवादे कार्ये सति जुगुप्सितमर्वाचीनं न स्तावयन्ति।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

अतएव हे मधुरभाषियों कालान्तर में जब मेरे यश प्रकाशित हो जायँ तो फिर तुम लोग अपनी इच्छा के अनुसार मेरी स्तुति कर लेना । यदि कहो कि सम्य पुरुषों के द्वारा ही प्रेरित होकर हमलोग आपकी स्तुति करते हैं तो इस पर पृथु महाराज ने कहा— पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् के गुणानुवाद के रहने पर सम्य पुरुष तुच्छ मनुष्यों की स्तुति नहीं करते हैं ॥२३॥

**महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः क स्तावकैः स्तावयतेऽसतोपि ।**
**तेऽस्या भविष्यन्निति विप्रलब्धो जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥२४॥**

**अन्वयः**— महद् गुणान् आत्मनि कर्तुमीशः कः असतः अपि स्तावकैः स्तावयेत् ते अस्य अभविष्यन् इति विप्रलब्धः जनावहासं कुमतिः न वेद ॥२४॥

**अनुवाद**— महान् गुणों को धारण करने में समर्थ कौन बुद्धिमान मनुष्य होगा जो अपने में अविद्यमान गुणों की स्तुति करायेगा ? यह यदि शास्त्राभ्यास किए रहता तो इसमें ये गुण होते ? इस तरह की स्तुति से तो मनुष्य की वंचना ही की जाती है, किन्तु मन्दमति पुरुष यह नहीं समझता है कि इस प्रकार से लोग उसका उपहास ही करते हैं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

ननु संभावितैरेव गुणैरात्मानं जनः स्तावयतीति चेत्तत्राह । महतां गुणानात्मनि संपादयितुं शक्तोऽप्यसतो गुणान्संभावनामात्रेण कः स्तावयते । यद्वा आदावेव सतोऽपि कः स्तावयते स्वत एव प्रख्यातिसिद्धेः । अन्यस्तु मिथ्यागुणस्तुतिश्लाघी मन्द इत्याह- त इति । यद्ययं शास्त्राभ्यासादिकमकरिष्यत्तर्ह्यस्य ते विद्यादयो गुणा अभविष्यन्निति क्रियातिपत्त्या विप्रलब्धो जानानामवहासं न वेद ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि जो गुण संभावित होते हैं उन्हीं गुणों के द्वारा लोग अपनी स्तुति करवाते हैं, तो इस पर महाराज पृथु ने कहा— जो व्यक्ति महापुरुषों के गुणों को धारण में समर्थ होता है, वह कौन ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो अपने में विद्यमान न होने पर भी उनकी संभावना मात्र से अपनी स्तुति करायेगा । **यद्वा इत्यादि** अथवा

प्रारम्भ में ही उन गुणों के रहने पर भी उनकी स्तुति कौन करवायेगा क्योंकि उन गुणों की प्रख्याति के कारण उनकी अपने आप प्रसिद्धि हो जाती है । और जो मिथ्यागुणों की प्रशंसा करने वाला तो मन्द बुद्धि होता है । इस बात को श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा कहा गया है । जैसे कोई यह कहे कि यदि यह शास्त्र इत्यादि का अभ्यास किए होता तो यह भी विद्वान् होता । तो इस तरह का कहना तो क्रियातिपत्ति के कारण (स्तुति के समय विविध विद्या के अभ्यास आदि क्रिया की निष्पत्ति के न होने के कारण) पुरुष की प्रवंचना मात्र है । किन्तु इस तरह से अपनी स्तुति कराने वाला लोगों के द्वारा किए जाने उपहास को नहीं समझता है ।।२४।।

**प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः । ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ।।२५।।**

**अन्वयः**— ह्रीमन्तः परमोदाराः विगर्हित वा पौरुषं जुगुप्सन्ति विश्रुताः प्रभवो हि आत्मनः स्तोत्रं अपि जुगुप्सन्ति।।२५।।

**अनुवाद**— जिस तरह लज्जाशील परमोदार पुरुष अपने निन्दित पौरुष की चर्चा को अच्छा नहीं समझते है, उसी तरह लोक विख्यात समर्थ पुरुष भी अपनी स्तुति को अच्छा नहीं समझते ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**

किंच प्रभवोऽपि विश्रुता अपि ह्रीमन्तोऽपि जुगुप्सन्ति । वेति दृष्टान्ते । यथाऽतिस्तुतौ क्रियमाणायां विगर्हितं ब्राह्मणवधादिपौरुषं निन्दति तथोचितामपि स्तुतिं न सहन्त इत्यर्थः ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

जिस तरह समर्थ, प्रख्यात तथा लज्जाशील भी पुरुष जिस तरह स्तुति किए जाने पर निन्दित ब्राह्मण का वध आदि की निन्दा करते है, उसी तरह वे अपनी उचित भी स्तुति को अच्छा नहीं मानते ।।२५।।

**वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः । कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ।।२६।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

**अन्वयः**— सुत वयं तु अद्यापि वरीमभिः, कर्मभिः लोके अविदिता कथम् बालवत् आत्मानं गापयिष्यामि ।।२६।।

**अनुवाद**— सूत मैं तो अभी अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा लोक में विख्यात भी नही हूँ अतएव बच्चों की तरह कैसे अपनी प्रशंसा तुम लोगों से कराऊँ ।।२६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पृथु चरित के अन्तर्गत पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी ( श्रीधराचार्य ) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।**

**भावार्थ दीपिका**

वरीमभिरिति दीर्घत्वमार्षम् । भवितृप्रधानोऽयं निर्देशः । वरिष्ठैः कर्मभिरविदिता इत्यर्थः ।।२६।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।**

**भाव प्रकाशिका**

वरीमभिः में दीर्घ आर्ष प्रयोग होने के कारण हे अन्यथा वरिभिः होना चाहिए यह भविष्यत् कालिक प्रधान यह निर्देश है । पृथु महाराज ने कहा कि मैं अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा प्रख्यात नहीं हुआ हूँ ।।२६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।**

# सोलहवाँ अध्याय

## बन्दीजनों द्वारा महाराज पृथु की स्तुति

मैत्रेय उवाच

**इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः । तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ।।१।।**

**अन्वयः**— इति ब्रुवाणं नृपतिं मुनिचोदिताः । गायकाः तद्वागमृतसेवया तुष्टमनसः तुष्टुःवुः ।।१।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— इस प्रकार से महाराज पृथु के कहने पर मुनियों के द्वारा प्रेरित होकर गायक सूत आदि महाराज की वाणी रूपी अमृत का सेवन करने के कारण सन्तुष्ट मना होकर उनकी स्तुति करने लगे ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

**षोडशे सर्वलोकेशैः सत्कृतं भार्यया युतम् । मुनिप्रयुक्ताः सूताद्याः स्तुवन्ति स्मेति वर्ण्यते ।।१।। गायकाः सूतादयः।।१।।**

**भाव प्रकाशिका**

सोलहवें अध्याय में सभी लोकपालों के द्वारा अपनी पत्नी की साथ समादृत महाराज पृथु की मुनियों के द्वारा प्रेरित सूतों ने स्तुति की ।।१।। **गायका** अर्थात् सूत मागध इत्यादि ।।१।।

**नालं वयं ते महिमानुवर्णने यो देववर्योऽवततार मायया ।**
**वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ।।२।।**

**अन्वयः**— यो देववर्यः मायया अवततार, वयं ते महिमावर्णने अलं न, वेनाङ्गजातस्यते पौरुषाणि वाचस्पतीनाम् अपि धियः बभ्रमुः ।।२।।

**अनुवाद**— आप साक्षात् देवताओं में श्रेष्ठ नारायण ही है ओर अपनी माया से अवतीर्ण हुए हैं । आप वेन के मृत शरीर से अवतीर्ण हुए है । आपके पौरुष का वर्णन करने में ब्रह्मा आदि देवताओं की भी बुद्धि भ्रमित हो जाती हैं ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

नालं न समर्थाः । यो भवान् । अवतारेष्वप्यस्याधिक्यमाहुः । वेनस्याङ्गाज्जातस्य ते पौरुषाणि प्रत्यवितर्क्यतया ब्रह्मादीनामपि धियो बभ्रमुः । कुतः पुनर्वयं तद्वर्णने समर्था भवेम ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

सूतादिकों ने कहा हमलोग अपकी महिमा का वर्णन करने में समर्थ नही है । जो आप अपनी माया के द्वारा अवतीर्ण हुए हैं । यह कहकर उन सबों ने महाराज पृथु की अन्य अवतारों की अपेक्षा श्रेष्ठ बलताया है । वेन के शरीर से उत्पन्न होने के कारण तर्क का विषय नहीं होने से आपकी महिमा का वर्णन करने में ब्रह्माजी आदि की भी बुद्धि भ्रमित हो जाती है ।।२।।

**अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कलावतारस्य कथामृतादृताः ।**
**यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ।।३।।**

**अन्वयः**— अथापि, उदारश्रवसः हरेः कलावतारस्य पृथोः कथामृतादृताः मुनिभिः प्रचोदिताः यथोपदेशं श्लाघ्यानि कर्माणि वितन्महि ।।३।।

**अनुवाद**— फिर भी उदार कीर्ति वाले श्रीहरि के कलावतार आप महाराज पृथु की कथा रूपी अमृत के आस्वाद में आदर होने के कारण, मुनियों के द्वारा प्रेरित होकर उन्हीं के उपदेशें के अनुसार आपके प्रशंसनीय गुणों का हम विस्तार कर रहे हैं ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

अथापि यथावद्वर्णयितुमशक्ता अपि कथामृते सादराः । मुनिभिः कृत उपदेशो योगबलेन हृदि प्रकाशनं तदनतिक्रम्य। वितन्महि विस्तारयामः ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

फिर भी आपकी महिमा का यथायथ वर्णन करने में असमर्थ होकर भी आपकी कथा के आस्वादन में आदर होने के कारण मुनियों के द्वारा किए गये उपदेश के योग के बल से प्रकाशित हो जाने के कारण उसी के अनुसार हमलोग आपकी महिमा का विस्तार करते हैं ।।३।।

**एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् । गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम् ।।४।।**
**एष वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः। काले काले यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम् ।।५।।**

**अन्वयः**— एष धर्मभृतां श्रेष्ठ लोकं धर्मेऽनुवर्तयन्, धर्मसेतूनाम् गोप्ता तत्परिपन्थिनाम् शास्ता एष एकः काले काले यथाभागं स्वतनौ लोकपालानां उभयोर्लोकयोः हितम् तनूः विभर्ति ।।४-५।।

**अनुवाद**— धर्म धारियों में श्रेष्ठ ये महाराज पृथु, जगत् को धर्म में प्रवृत्त करके, धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करेंगे और धर्म के विरोधियों का प्रशासन करेंगे, ये अकेले ही समय-समय पर प्रजाओं के पालन, पोषण ओर अनुरंजन रूपी कार्य के अनुसार अपने शरीर में ही लोकपालों की मूर्ति को धारण करेंगे । लोक और परलोक का हित साधन करेंगे ।।४-५।।

### भावार्थ दीपिका

तनौ स्वदेहे लोकपालानां तनूर्मूर्तीः काले काले विभर्ति । यथाभागं पालनपोषणानुरञ्जनादिकार्यानुसारेण यज्ञादिप्रवर्तनेन स्वर्गस्य हितं वृष्ट्यादिना च भूर्लोकस्य हितं यथा भवति तथा ।।४-५।।

### भाव प्रकाशिका

ये प्रजाओं के पालन, पोषण तथा अनुरञ्जन रूपी कार्य के अनुसार अपने शरीर में लोकपालों की मूर्ति को धारण करेंगे ये यज्ञादि का प्रचार के द्वारा स्वर्ग का और वृष्टि आदि के द्वारा भूलोक का कल्याण करेंगे ।।४-५।।

**वसु काल उपादत्ते काले चायं विमुञ्चति । समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ।।६।।**

**अन्वयः**— सूर्यवत् प्रतपन् अयं विभुः सर्वेषु भूतेषु समः काले वसु आदत्त काले च विमुञ्चति ।।६।।

**अनुवाद**— सूर्य के समान प्रताप सम्पन्न ये सभी जीवों के प्रति समदर्शी होंगे । जिस प्रकार सूर्य आठ महीने तपते हुए जल को खींचते है और वर्षा के दिन में उसे वृष्टि के रूप में बरसा देते हैं, उसी तरह ये कर आदि के रूप में धन संचय करेंगे और दुर्भिक्ष आदि के समय उसका व्यय कर देंगे ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

सूर्यादितनुधारणमेवाहाष्टभिः । वसु धनं करादानकाले आदत्ते, दुर्भिक्षादिकाले विमुञ्चति च । अष्टौ मासान्सूर्यो यथा वसु जलमादत्ते वर्षासु विमुञ्चति तद्वत् ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

अब आठ श्लोकों में इनके सूर्य आदि के शरीर धारकत्व का वर्णन करते हैं । ये कर लेने के समय धन का ग्रहण करेंगे और दुर्भिक्ष आदि के समय उसका व्यय कर देंगे । यह उसी तरह से करेंगे जिस तरह आठ महीने तक तपते हुए सूर्य जल को खींचते हैं और बरसात के समय उसको पृथिवी पर उड़ेल देते है ॥६॥

**तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रमतामपि । भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥७॥**

**अन्वयः**— आर्तानां भूतानां उपरि आक्रमताम् अपि अक्रमताम् शाश्वत करुणः वैन्यः क्षितिवृत्तिमान् तितिक्षति ॥७॥

**अनुवाद**— यदि कोई आर्त जीव इनके शिर पर पैर भी रख देगा तो सदा दयालु बने रहने वाले महाराज पृथु उसको पृथिवी के समान बर्दास्त कर लेंगे ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

मस्तके पादेनाक्रमतामप्यार्तानां भूतानामतिक्रमं सहिष्यते, क्षितेर्वृत्तिः सर्वसहनं सा वृत्तिर्यस्यास्ति स तथा ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई दीन जीव इनके शिर पर अपना पैर भी रख देगा तो ये उसको पृथिवी के समान वृत्ति को अपनाने वाले होने के कारण तथा सदा करुण बने रहने के कारण ये उसको वर्दास्त कर लेंगे ॥७॥

**देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः । कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यत्यञ्जसेन्द्रवत् ॥८॥**

**अन्वयः**— देवे अवर्षतिअसौ देवः नरदेव वपुः हरिः एष हि कृच्छ्रप्राणाः प्रजाः इन्द्रवत् अञ्जसा रक्षिष्यति ॥८॥

**अनुवाद**— वर्षा के नहीं होने पर राजा का शरीर धारण करने वाले श्रीहरि रूपी महाराज पृथु प्राण सङ्कटापन्न प्रजाओं की रक्षा स्वयं जल बरसाकर इन्द्र के ही समान उन सबों की रक्षा करेंगे ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

देवेऽवर्षति एष कृच्छ्रं गताः प्राणा यासां ताः प्रजाः स्वयं वृष्टिं कृत्वा रक्षिष्यति । अत्र हेतुः- असौ नरदेववपुर्हरिरिति॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

वर्षा के नहीं होने पर जिन सबों के प्राण सङ्कटापन्न हो जायेंगे उन प्रजाओं की रक्षा स्वयं वृष्टि करके कर लेंगे। इसका कारण यह है कि राजा का शरीर धारण किए हुए ये श्रीहरि ही हैं ॥८॥

**आप्यायत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना । सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥९॥**

**अन्वयः**— वदनामृमूर्तिना विशदस्मित चारुणा सानुरागावलोकेन असौ लोक आप्यायति ॥९॥

**अनुवाद**— ये अपने मुख चन्द्र की मनोहर मुस्कान और प्रेम भरी चितवन के द्वारा सम्पूर्ण लोकों को आनन्द मग्न कर देंगे ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

वदनमेवामृतमूर्तिश्चन्द्रस्तेन । सानुरागोऽवलोको यस्मिन् । विशदं यत्स्मितं तेन चारुणा । अत्र च क्वचिद्वर्तमाननिर्देशो 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भूतनिर्देशश्च 'आशंसायां भूतवच्च' इति द्रष्टव्यः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

इनका मुख ही स्वयं चन्द्रमा के समान आह्लादक है उसके द्वारा तथा प्रेम पूर्ण चितवन के द्वारा, तथा मनोहर मुस्कान के द्वारा ये लोकों को आप्यायित आह्लादित करके परिपुष्ट बनाने का काम करेंगे । इस श्लोक में कहीं पर वर्तमान निर्देश किया गया है । **'वर्तमान सामीप्ये भूतवद्वा'** इस सूत्र से भूत निर्देश भी किया गया है । आशंसा के भी अर्थ में भूतवत् निर्देश होता है ॥९॥

**अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो गम्भीरवेधा उपगुप्तवित्तः ।**
**अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा ॥१०॥**

**अन्वयः**— एष पृथुः अव्यक्तवर्त्मा, निगूढकार्यः, गम्भीरवेधा, उपगुप्तवित्तः, अनन्त माहात्म्य गुणैक धामा प्रचेता इव संवृतात्मा ॥१०॥

**अनुवाद**— महाराज पृथु की गति को कोई जान नहीं पायेगा, इनके सारे कार्य गुप्त होंगे, उन कार्यों को करने का प्रकार भी गम्भीर होगा इनका धन सुरक्षित रहेगा, ये अनन्त माहात्म्य और गुणों के एक मात्र आश्रय होंगे, इस तरह मनस्वी पृथु वरुण के समान होंगे ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

न व्यक्तं वर्त्म प्रवेशनिर्गममार्गो यस्य । निगूढं निष्पत्तेः पूर्वमविज्ञातं कार्यं यस्य । तञ्च कार्यं गम्भीरं किमर्थमेतत्कृतमित्यन्यैरज्ञाताभिप्रायं विधत्त इति तथा । उपगुप्तं सुरक्षितं वित्तं यस्य । अनन्तमाहात्म्यश्चासौ गुणानामेकं धाम विष्णुर्यस्मिन् । अनन्तमाहात्म्योपेता गुणा एवैकं धाम स्थानं यस्येति वा । संवृतात्मा संयतमूर्तिः । समुद्रचरत्वेन वरुणस्याप्येते गुणा द्रष्टव्याः॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

इनके प्रवेश करने और निकलने का मार्ग व्यक्त नहीं रहेगा । पूरा होने से पहले इनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों को कोई जान नहीं सकेगा, उस कार्य को ये किसलिए कर रहे है, इस तरह से इनके अभिप्राय को कोई नहीं जान पायेगा, इनका धन भी सुरक्षित रहेगा । अनन्तमाहात्म्य तथा गुणों के एकमात्र आश्रय भगवान् विष्णु का इनमें निवास होगा । ये संयत मूर्ति होंगे । समुद्र में रहने वाले वरुण में भी ये सभी गुण विद्यमान रहते हैं॥१०॥

**दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् । नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥११॥**

**अन्वयः**— वेनारण्युत्थितोऽनलः दुरासदः दुर्विषहः आसन्नोऽपि विदूरवत् अभिभवितुं नैवशक्यः ॥११॥

**अनुवाद**— महाराज पृथु वेन रूपी अरणि से प्रकट हुए अग्नि के समान हैं ये शत्रुओं के लिए दुर्घर्ष और असह्य होंगे, इनको कोई भी शत्रु अभिभूत नहीं कर पायेगा ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

दुरासदः शत्रोर्मनसापि प्राप्तुमशक्यः । दुर्विषहः शत्रुभिः सोढुमशक्यः । विदूरवत्पौरुषेणाभिभवितुमशक्यः । वेन एवारणिस्तस्मादुत्थितः ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

शत्रु इनको अपने मन से भी नहीं प्राप्त कर सकता है अतएव ये दुरासद अर्थात् दुर्धर्ष हैं । शत्रु इनके पराक्रम को वर्दास्त नहीं कर पायेंगे कोई इनको अपने पौरुष से भी अभिभूत नहीं कर सकता है । ये वेन रूपी अरणि से प्रकट हुए अग्नि के समान हैं ॥११॥

**अन्तर्बहिश्च भूतानां पश्यन्कर्माणि चारणैः । उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— देहिनाम् अध्यक्षो वायुः रात्मेव चारणैः भूतानां अन्तर्बाहिश्च कर्माणि पश्यन् उदासीन इव ॥१२॥

**अनुवाद**— जिस तरह शरीरधारियों के भीतर रहने वाला प्राण रूप सूत्रात्मा भीतर बाहर के समस्त व्यापारों को देखकर भी उसके प्रति उदासीन रहता है उसी तरह ये भी गुप्तचरों के द्वारा प्राणियों के गुप्त तथा प्रकट समस्त व्यापारों को देखते हुए भी अपनी निन्दा तथा स्तुति के प्रति उदासीन के समान बने रहेंगे ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

चारणैर्गुप्तभृत्यैः पश्यन्नपि स्वस्तुतिनिन्दादावुदासीन इव वर्तिष्यते यथा देहिनामध्यक्षोऽविकृत आत्मभूतो वायुः सूत्रात्मा तद्वत् ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

ये चारणों (गुप्तचरों द्वारा) प्रजाओं द्वारा की जाने वाली निन्दा तथा स्तुति के प्रति उसी प्रकार उदासीन रहेंगे जैसे शरीर धारियों के अध्यक्ष अर्थात् अविकृत आत्मभूत वायु सूत्रात्मा शरीर के समस्त व्यापारों के प्रति उदासीन रहता है ।।१२।।

**नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि । दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ।।१३।।**

**अन्वयः**— धर्मपथे स्थितः एष अदण्ड्यं सुतम् आत्मद्विषाम् अपि न दण्डयति दण्ड्य आत्मजम् अपि दण्डयति।।१३।।

**अनुवाद**— धर्म के मार्ग पर स्थित रहकर अदण्ड्य अपने पुत्र अथवा शत्रु को भी दण्डित नहीं करेंगे और दण्डनीय अपने पुत्र को भी दण्ड देंगे ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मद्विषां सुतमिति सुतग्रहणं स्वात्मजसाम्यार्थम् । धर्मपथे यमस्य वृत्ते स्थितः ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

धर्म के मार्ग में रहकर ये अदण्डनीय अपने शत्रुओं के पुत्र को भी नहीं दण्डित करेंगे । अपने पुत्र की समता व्यक्त करने के लिए सुत का ग्रहण किया गया है । धर्मपथे स्थितः का अर्थ है कि यमराज के वृत्तान्त को अपनाने वाले ।।१३।।

**अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् । वर्तते भगवानर्कों यावत्तपति गोगणैः ।।१४।।**

**अन्वयः**— भगवानर्कों यावत् गोगणैः आमानसाचलात पति अस्य पृथोः अप्रतिहतं रथचक्रम् ।।१४।।

**अनुवाद**— भगवान् सूर्य मानसरोवर पर्वत तक जितने प्रदेश को अपनी किरणों से प्रकाशित करते हैं, वहाँ तक इनका राज्य रहेगा ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**

चक्रमाज्ञा सेना वा रथस्य वा चक्रं मानसाचलमभिव्याप्य प्रवर्तते । किंपर्यन्तमित्यत आह । अर्को रश्मिगणैर्यावत्तपति तावत् ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

चक्र शब्द के द्वारा आज्ञा या सेना या रथ के बतलाया गया है । मानसाचल पर्वत पर्यन्त इनका राज्य होगा, कहाँ तक वह राज्य होगा ? इसकी आकांक्षा होने पर कहते है कि भगवान् सूर्य जितने प्रदेश तक अपने किरणों से प्रकाशित करते है, उतने प्रदेश तक इनका राज्य होगा ।।१४।।

**रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः । अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ।।१५।।**

**अन्वयः**— यदयम् आत्मविचेष्टितैः लोकम् राञ्जयिष्यति अथ मनोरञ्जनकैः अमुम् प्रजाः राजानं आहुः ।।१५।।

**अनुवाद**— ये अपने कर्मों से सभी लोगों को सुखी बनायेंगे । उनका रंजन करेंगे उन रञ्जनात्मक व्यापारों के कारण प्रजा इनको राजा कहेगी ।।१५।।

**भावार्थ दीपिका**

यद्यस्माद्रञ्जयिष्यत्यथ तस्मान्मनोरञ्जनैर्हेतुभिरमुं राजानमाहुः । मनोरञ्जनकैरिति चेष्टितविशेषणं वा ।।१५।।

**भाव प्रकाशिका**

चूकि ये अपनी प्रजा को रंजित करेगे, इसीलिए इनकी रञ्जनात्मक क्रियों के कारण प्रजा इनको राजा कहेगी। मनोरञ्जनकैः यह इनके कर्मों का विशेषण है ॥१५॥

**दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः । शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥१६॥**

**अन्वयः**— दृढव्रतः सत्य सन्धः ब्रह्मण्यः वृद्धसेवकः, सर्वभूतानां शरण्यः मानदः दीनवत्सलः ॥१६॥

**अनुवाद**— ये दृढसङ्कल्प वाले, सत्यप्रतिज्ञ, ब्राह्मणों के भक्त, वृद्ध पुरुषों की सेवा करने वाले, सभी जीवों के रक्षक, सभी प्राणियों का सम्मान करने वाले और दीनों पर दया करने वाले होंगे ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।

**मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः । प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किङ्करो ब्रह्मवादिनाम् ॥१७॥**

**अन्वयः**— परस्त्रीषु मातृभक्तिः पत्न्याम् आत्मनः अर्ध इव, प्रजासु पितृवत् स्निग्धः ब्रह्मवादिनाम् किङ्करः ॥१७॥

**अनुवाद**— दूसरे की स्त्री में माता के समान भक्ति रखने वाले, पत्नी से अपने आधे अङ्ग के समान प्रेम करने वाले, प्रजाओं पर पिता के समान प्रेम रखने वाले और ब्रह्मवादियों के सेवक होंगे ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

मातरीव भक्तिर्भजनं यस्य । आत्मनो देहस्यार्ध इव पत्न्यां प्रीतिमान् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

पर स्त्री में ये माता के समान भक्ति रखेंगे अपनी पत्नी से ये अपने आधे शरीर के समान प्रेम करेंगे ॥१७॥

**देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः । मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥१८॥**

**अन्वयः**— देहिनाम् आत्मवत् प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः, अयं मुक्तसङ्ग प्रसङ्गः असाधुषु दण्डपाणिः ॥१८॥

**अनुवाद**— ये दूसरे प्राणियों को उतना ही प्रिय होंगे जितना अपना शरीर प्रिय होता है । ये अपने सुहृदों के आनन्द को बढ़ायेंगे, वैराग्य सम्पन्न पुरुषों से ये अधिक प्रेम करेंगे और दुष्टों को ये राजा के समान सदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहेंगे ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

नन्दि सुखं वर्धयतीति तथा । मुक्तसङ्गेषु प्रकृष्टः सङ्गो यस्य । दण्डपाणिरिवेत्यपराधानुपेक्षणमुच्यते । नादण्ड्यमित्यत्र पक्षपाताभावः उक्तः ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

नन्दि सुख को कहते हैं । नन्दिवर्धन का अर्थ है सुख देने वाले वैराग्यवान् पुरुषों से प्रेम करने वाले महाराज पृथु को दण्डपाणिरिव कहकर यह बतलाया गया है कि वे अपराधियों के अपराध की उपेक्षा नहीं करेंगे । नादण्ड्यम् इत्यादि श्लोक में उनमें पक्षपात का अभाव बतलाया जा चुका है ॥१८॥

**अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयावतीर्णः ।**
**यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— अयं तु साक्षात् नयधीशोभगवान् कूटस्थ, आत्मा कलया अवतीर्णः यस्मिन् अविद्या रचितं प्रतीतम् अपि नानात्वम् निरर्थकं पश्यन्ति ॥१९॥

**अनुवाद**— ये तो साक्षात् त्रिलोकाधिपति कूटस्थ, सर्वात्मा भगवान् नारायण हैं और इस रूप में अपने अंश से अवतीर्ण हैं। इनमें पण्डित जन अविद्या रचित तथा प्रतीत होने वाले इस नानात्व को मिथ्या ही मानते हैं ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

अयं त्विति तुशब्देन निरुपमत्वं दर्शयति। कोऽसावात्मा तमाह। यस्मिन्प्रतीतमपि नानात्वमर्थशून्यं पश्यन्ति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

अयं तु के तु शब्द के द्वारा महाराज पृथु को निरूपम बतलाया गया है। ऐसा कौन है इस प्रकार की आकांक्षा होने पर कहते हैं— कि जिनमें पण्डित जन प्रतीत होने वाले नानात्व को मिथ्या जानते हैं ॥१९॥

**अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः।**
**आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्कः ॥२०॥**

**अन्वयः**— अयं आ उदयाद्रेः भुवो मण्डलम् गोप्ता, एकबीरः नरदेवनाथः, जैत्रं रथम् आस्थाय आत्तचापः अर्कः यथा दक्षिणतः पर्यस्यते ॥२०॥

**अनुवाद**— ये उदयाचल पर्यन्त भूमण्डल के रक्षक अद्वितीय वीर राजाधिराज, अपने जैत्र रथ पर बैठकर हाथ में धनुष धारण किए हुए सूर्य के समान सर्वत्र प्रदक्षिणा करेंगे ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

आ उदयाद्रेस्तत्पर्यन्तं गोप्ता गोपायिष्यति तदर्थं पर्यस्यत पर्यटिष्यति। प्रदक्षिणीकरिष्यतीत्यर्थः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

ये उदयाचल पर्यन्त पृथिवी की रक्षा करेंगे और उसके लिए पर्यटन करेंगे। अर्थात् प्रदक्षिणा करेंगे ॥२०॥

**अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः।**
**मंस्यंत एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तद्यश उद्धरन्त्यः ॥२१॥**

**अन्वयः**— अस्मै तत्र तत्र नृपालाः सलोकपालाः बलिं हरिष्यन्ति एषां स्त्रिय तद्यशाः उद्धरन्त्यः चक्रायुधं मंस्यन्ते॥२१॥

**अनुवाद**— इनको स्थान स्थान पर राजागण तथा लोकपालगण उपहार प्रदान करेंगे। उन सबों की स्त्रियाँ इनके यश का गायन करेंगी और इनको आदिराज भगवान् विष्णु मानेंगी ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

अस्मै तथा प्रदक्षिणं कुर्वते। मंस्यन्ते ज्ञास्यन्ति। तस्य यश उद्धरन्त्य उदाहरन्त्यः कीर्तयन्त्यः ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह प्रदक्षिणा करने वाले राजाओं और लोकपालों की पत्नियाँ इनके यश का गायन करेंगी ॥२१॥

**अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम्।**
**यो लीलयाऽद्रीन्स्वशरासकोट्या भिन्दन्समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥२२॥**

**अन्वयः**— अयं अधिराजः गां महीम् दुदुहे, प्रजानाम् वृत्तकरः प्रजापतिः, यः लीलया शरास कोट्या अद्रीन् निभन्दन् इन्द्रो यथा गाम् समां अकरोत् ॥२२॥

**अनुवाद**— ये राजाधिराज गोरूपधारिणी पृथिवी का दोहन करेंगे, प्रजाओं को वृत्ति प्रदान करके उन सबों का पालन करेंगे, ये बिना किसी प्रयास के ही अपने धनुष के कोने से पर्वतों को इन्द्र के समान तोड़कर समतल बना देंगे ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

इन्द्र इवाद्रीन्विभिन्दन् ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

इन्द्र के समान पर्वतों के तोड़फोड़ कर पृथिवी को समतल कर देंगे ।।२२।।

**विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदाऽचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ।**
**तदा निलिल्युर्दिशि दिश्यसन्तो लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ।।२३।।**

**अन्वयः**— आजौ अविषह्यम् यदा लाङ्गूलम् उद्यम्य मृगेन्द्रो यदा आजगवं धनुः विस्फूर्जयन् स्वयम् क्ष्माम् अचरत् तदा असन्तः दिशि दिशि निलिल्युः ।।२३।।

**अनुवाद**— युद्ध में कोई भी इनके वेग को नहीं सह सकेगा जिस समय ये अपनी पूंछ को उठाकर विचरण करने वाले मृगेन्द्र के समान अपने धनुष का टङ्कार करते हुए स्वयं पृथिवी पर सञ्चरण करेंगे उस समय सभी दुष्ट इधर-उधर छिप जायेंगे ।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

लाङ्गूलमुन्नमय्य यथा मृगेन्द्रश्चरति तथा धनुर्विस्फूर्जयन्यदा क्ष्मामचरत् ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

जिस तरह अपनी पूंछ उठाकर सिंह विचरता है उसी तरह जब ये धनुष का टङ्कार करते हुए पृथिवी पर विचरण करेंगे उस समय सभी दुष्ट जिधर-तिधर छिप जायेंगे ।।२३।।

**एषोऽश्वमेधान् शतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ।**
**अहारषीद्यस्य हयं पुरन्दरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ।।२४।।**

**अन्वयः**— एष शतम् अश्वमेधान् आजहार यत्र सरस्वती प्रादुरभवि, चरमे वर्तमाने शतक्रतुः पुरन्दरः यस्य अश्वम् अहार्षीत् ।।२४।।

**अनुवाद**— ये सरस्वती नदी के उद्गम स्थान पर सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे उस समय अन्तिम यज्ञ के अवसर पर इनके अश्व को इन्द्र चुरा लेंगे ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

सरस्वती यत्र प्रादुरभावि प्रादुरभूत् । कर्मकर्तरि चिण् । तत्राहार्षीत् । हरणं करिष्यतीत्यर्थः ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

जहाँ से सरस्वती नदी उद्भूत हुई है । प्रादुरभावि में कर्म कर्ता के अर्थ में चिण् प्रत्यय हुआ है । इनके अन्तिम अश्वमेध के अश्व को इन्द्र चुरा लेंगे ।।२४।।

**एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ।**
**आराध्य भक्त्यालभतामलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ।।२५।।**

**अन्वयः**— एष स्वसद्मो पवने भगवन्तंसनत्कुमारम् समेत्य एकम् भक्त्या आराध्य तत् अमलं ज्ञानम् अलमताम् यतो परं ब्रह्म विदन्ति ।।२५।।

**अनुवाद**— ये अपने महल के उपवन में भगवान् सनत्कुमार को प्राप्त करके भक्ति पूर्वक उनकी सेवा करके उस निर्मल ज्ञान को प्राप्त करेंगे जिससे कि परंब्रह्म की प्राप्ति होती है ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२५।।

**तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः । श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥२६॥**

**अन्वयः**— इति विश्रुत विक्रमः पृथु पराक्रमः पृथुः तत्र तत्र ताः ताः गिरः आत्मश्रिताः गाथाः श्रोष्यति ॥२६॥

**अनुवाद**— इस तरह पराक्रम जब विख्यात हो जायेगा तो महापराक्रमी पृथु महाराज सर्वत्र अपने ही चरित्र की चर्चा सुनेंगे ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

विश्रुता विक्रमा यस्य । गाथाः प्रबन्धान् । आत्माश्रिता विष्ण्वाश्रिताः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

जिनका पराक्रम विख्यात है इस प्रकार के महाराज पृथु सर्वत्र भगवान् विष्णु की ही चर्चा सुनेंगे ॥२६॥

**दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ।**
**सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमानमहानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥२७॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

**अन्वयः**— अप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटित लोकशल्यः सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमान महानुभावः दिशो विजित्य भुवः पतिर्भविता ॥२७॥

**अनुवाद**— इनकी आज्ञा का विरोध कोई भी नहीं कर सकेगा, अपने तेज के द्वारा प्रजाओं के कष्ट को दूर करके तथा देवताओं एवं असुरों के स्वामियों द्वारा प्रशंसा किए जाने वाले ये सारी दिशाओं को जीतकर पृथिवी के स्वामी होएँगे ॥२७॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥**

**भावार्थ दीपिका**

उपगीयमानो महानुभावो यस्य ॥२७॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥**

**भाव प्रकाशिका**

जिनका महान् प्रभाव का वर्णन देवताओं और असुरों के स्वामी करेंगे ॥२७॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के सोलहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१६॥**

# सत्रहवाँ अध्याय

## महाराज पृथु का पृथिवी पर कोप और पृथिवी द्वारा उनकी स्तुति

मैत्रेय उवाच

**एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः । छन्दयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥१॥**

**अन्वयः**— एवं सः भगवान् वैन्यः गुण कर्मभिः ख्यापितः तान् प्रतिपूज्य अभिनन्द्य च कामैः छन्दयामास ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— इस प्रकार से बन्दीजनों के द्वारा महाराज पृथु के गुणों और कर्मों का वर्णन किए जाने पर उन्होंने उन सबों की प्रशंसा की और उनकी अभिलषित वस्तुओं को प्रदान करके सन्तुष्ट किया ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

ततः सप्तदशे लोकक्षुधाः प्रशमयन्पृथुः ग्रस्तबीजां महीं हन्तुं यत्तो भीत्या तथा स्तुतः ॥१॥ छन्दयामास तोषितवान्॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके पश्चात् लोगों की भूख को मिटाने के लिए बीजों को निगल लेने वाली पृथिवी को मारने के लिए उद्यत महाराज पृथु के भय से इस सत्रहवें अध्याय में पृथिवी ने स्तुति की। **छन्दयामास** का अर्थ है सन्तुष्ट किया॥१॥

**ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान्भृत्यामात्यपुरोधसः । पौराञ्जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥२॥**

**अन्वयः**— ब्राह्मण प्रमुखान् वर्णान् भृत्यामात्यपुरोधसः, पौरान् जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥२॥

**अनुवाद**— उन्होंने ब्राह्मण आदि चारो वर्णों, भृत्यों, मन्त्रियों, पुरोहितों, नागरिकों, देशवासियों भिन्न-भिन्न व्यवसायियों, तथा प्रजाओं का सत्कार किया ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

भृत्यानमात्यान् पुरोधसः पुरोहितांश्च । श्रेणीस्तैलिकताम्बूलिकादीन्पौरविशेषान् । प्रकृतीर्नियोगिनः ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

भृत्यों, मन्त्रियों, पुरोहितो, तेली, तमोली आदि नागरिकों तथा प्रजाओं का सत्कार किया ॥२॥

विदुर उवाच

**कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी । यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥३॥**

**अन्वयः**— बहुरूपिणी धरित्री कस्माद्गोरूपं दधार ? यां पृथु दुदोह, तत्र को वत्सः दोहनं च किम् ? ॥३॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— अनेक रूपों को धारण करने वाली पृथिवी ने किसलिए गौ का रूप धारण किया। जब पृथु पृथिवी का दोहन किया तो उस समय बछड़ा कौन बना और दोहन पात्र क्या हुआ ?॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

दोहनं पात्रम् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

दोहन अर्थात् दूध दुहने का पात्र ॥३॥

**प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् । तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥४॥**

**अन्वयः**— प्रकृत्या विषमा देवी तेन समा कथम् कृता ? तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥४॥

**अनुवाद**— पृथिवी देवी स्वभाव से ही ऊँची नीची थी उनको महाराज पृथु ने समतल किसलिए बनाया। और महाराज पृथु के अवश्वमेध के घोड़े का इन्द्र ने क्यों हरण किया ?॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

मेध्यं यज्ञार्हम् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

मेध्य का अर्थ है यज्ञ के योग्य ॥४॥

**सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् । लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! सनत्कुमारात् भगवतः सविज्ञानं ज्ञानं लब्ध्वा राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! भगवान् सनत्कुमार से ज्ञान तथा विज्ञान को प्राप्त करके राजर्षि महाराज पृथु किस गति को प्राप्त किए ?॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

सविज्ञानमपरोक्षज्ञानसहितम् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

स विज्ञान का अर्थ है अपरोक्ष ज्ञान के साथ ज्ञान को प्राप्त करके ॥५॥

**यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवतः प्रभोः। श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥६॥**
**भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च। वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥७॥**

**अन्वयः**— प्रभोः भगवतः कृष्णस्य पूर्वदेहकथाश्रयम् पुण्यम् यच्चान्यत् सुश्रवसः श्रवः तव यः वैन्यरूपेण गां अदुह्यत् अधोक्षजस्य अनुरक्ताय भक्ताय मे वक्तुमर्हसि ॥६-७॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीकृष्ण ही पृथु रूप से अवतीर्ण हुए थे अतएव पुण्य कीर्ति श्रीभगवान् के उस पृथु अवतार से संबद्ध जो दूसरे भी पवित्र चरित्र हों, उन सबों को आप मुझे सुनायें, मैं आपका तथा भगवान् का अनुरक्त भक्त हूँ ॥६-७॥

**भावार्थ दीपिका**

पूर्वदेहः पृथ्ववतारस्तत्कथाश्रयम् । श्रवो यशः । सुष्ठु श्रवो यस्य । अदुह्यद्दुग्धवान् ॥६-७॥

**भाव प्रकाशिका**

आधुह्यत् का अर्थ है दूहा ॥६-७॥

सूत उवाच

**चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति । प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥८॥**

**अन्वयः**— वासुदेव कथां प्रति विदुरेण एवं चोदितः प्रीतमना मैत्रेयः तं प्रशस्य प्रत्यभाषत ॥८॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— भगवान् वासुदेव की कथा कहने के लिए विदुरजी के द्वारा इस प्रकार से प्रेरित होकर प्रसन्नमना मैत्रेयजी ने उनकी प्रशंसा करके कहना प्रारम्भ किया ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥८॥

मैत्रेय उवाच

**यदाऽभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रैरामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ।**
**प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥९॥**

**अन्वयः**— यदा विप्रैः अभिषिक्तः पृथुः जनतायाः च पालः आमन्त्रितः निरन्ने क्षितिपृष्ठे क्षुत्क्षामदेहाप्रजाः एत्य पतिम् अभ्यवोचन् ॥९॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुर ! जब ब्राह्मणों ने महाराज पृथु का अभिषेक किया और उनको प्रजाओं का पालक उद्घोषित किया उस समय अन्न रहित पृथिवी पर भूख से व्याकुल प्रजा आकर प्रजा ने अपने स्वामी से कहा ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

जनतायास्त्वं पाल इत्यामिन्त्रितो नियुक्तः । तदा निरन्ने क्षितितले सति । क्षुधाक्षामाः क्षीणा देहा यासां ताः प्रजा एत्य पतिं पृथुमब्रुवन् ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणों ने पृथु को कहा कि आप प्रजा के रक्षक रूप से नियुक्त हैं, उस समय पृथिवी अन्न से रहित हो गयी थी अतएव भूख के कारण दुर्बल प्रजाओं ने आकर महाराज पृथु से कहा ॥९॥

**वयं राजन् जाठरेणाभितप्ता यथाऽग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ।**
**त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥१०॥**

**अन्वयः**— कोटर स्थेन अग्निना वृक्षाः यथा वयं जाठरेण अभितप्ताः स्मः, त्वाम् शरण्यं शरणम् अद्ययाताः यः न वृत्तिकरः पतिः साधितः ॥१०॥

**अनुवाद**— महाराज जैसे वृक्ष के कोटर में स्थित अग्नि से वृक्ष जल जाता है, उसी तरह से हमलोग भूख की अग्नि से जले जा रहे है । आप शरणागतों के रक्षक हैं और हमलोगों को वृत्ति प्रदानकरके रक्षा करने वाले पति के रूप में नियुक्त किए गये है । आज हमलोग आपकी शरण में आये हैं ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

जाठरेणाग्निनाभितप्ताः । यः साधितो विप्रैर्मन्थनेन संपादितस्तं त्वां शरणं याताः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

हमलोग भूख से संतप्त हैं । आपको इन विप्रों ने मंथन के द्वारा प्रकट है । हमलोग आपके शरणागत हैं॥१०॥

**तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं क्षुधार्दितानां नरदेवदेव ।**
**यावन्न नङ्क्ष्यामह उज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वत् किल लोकपालः ॥११॥**

**अन्वयः**— हे नरदेव देव त्वं किल लोकपालः वार्तापतिः तत् भवान् यावत् उज्झितोजा न नङ्क्ष्यामहेतत् भवान् नः अन्नं रातवे ईहतु ॥११॥

**अनुवाद**— हे राजाधिराज ! आप ही जगत् की रक्षा करने वाले तथा हमलोगों की जीविका के भी स्वामी हैं । जब तक हमलोग अन्न का परित्याग करने के कारण मर नहीं जाते हैं उससे पहले ही आप हमलोगों को अन्न प्रदान करने का प्रबन्ध कीजिये ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्तस्मान्नोऽस्माकमन्नं रातवे रातुं दातुमीहतु ईहतां यत्नं करोतु । उज्झितोर्जास्त्यक्तान्नाः सत्यः । वार्ताया जीविकायाः पतिः ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

इसलिए आप हमलोगों को अन्न प्रदान करने का प्रबन्ध करें। **उज्झितोर्जाः** का अर्थ है कि अन्न का परित्याग किए हुए **वार्तायाः पतिः** जीविका के स्वामी ॥११॥

मैत्रेय उवाच

**पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवितम् । दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे कुरुश्रेष्ठ ! प्रजानां करुणं परिदेवितं निशम्य पृथुः दीर्घं दध्यौ सः निमित्तं अन्वपद्यत ॥१२॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे कुरुश्रेष्ठ विदुर ! प्रजाओं के करुण क्रन्दन को सुनकर महाराज पृथु देर तक विचार करते रहे और अन्त में उन्हें अन्नाभाव का कारण ज्ञात हो गया ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

परिदेवितं विलापम्। निमित्तं हेतुमन्वपद्यत ज्ञातवान् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

परिदेवित अर्थात् रुदन निमित्त यानीकारण, अन्वपद्यत अर्थात् जान गये ॥१२॥

**इति व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः । संदधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥१३॥**

**अन्वयः**— इति बुद्ध्या व्यवसितः प्रगृहीत शरासनः क्रुद्धः त्रिपुरहा यथा भूमेः विशिखं संदधे ॥१३॥

**अनुवाद**— इस तरह से अपनी बुद्धि से निश्चय करके क्रुद्ध होकर वे धनुष उठा लिए और त्रिपुर विनाशक भगवान् शङ्कर के समान पृथिवी को लक्ष्य बनाकर धनुष पर बाण चढाये ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

पृथिव्या ओषधिवीजानि ग्रस्तानीति व्यवसितो निश्चितवान्सन् ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

पृथिवी ने अन्न के बीजों को निगल लिया है इस तरह से उन्होंने अपनी बुद्धि से निश्चय किया ॥१३॥

**प्रवेपमाना धरणी निशाम्योदायुधं च तम् । गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥१४॥**

**अन्वयः**— उदायुधं च तं निशाम्य प्रवेपमानां धरणी भीता मृगयुद्रुता मृगीव गौः सति अपाद्रवत् ॥१४॥

**अनुवाद**— धनुष धारण किए हुए महाराज पृथु को देखकर पृथिवी काँप गयी और गौ का रूप धारण करके जिस तरह व्याधे के द्वारा पीछा किए जाने पर मृगी भागती है उसी तरह भागने लगी ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

मृगयुना द्रुताऽनुगता मृगीव ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

व्याधे के द्वारा पीछा की जाती हुई मृगी के समान ॥१४॥

**तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः । शरं धनुषि सन्धाय यत्र यत्र पलायते ॥१५॥**

**अन्वयः**— कुपितः अत्यरूणेक्षणः वैन्यः शरं धनुषि सन्धाय यत्र-यत्र पलायते ताम् अन्वधावत् ॥१५॥

**अनुवाद**— क्रोध के कारण आँखें लाल किए हुए महाराज पृथु धनुष पर बाण चढाये हुए पृथिवी जहाँ-जहाँ भागी उसका वे पीछा करते रहे ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१५॥

**सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चान्तरं तयोः । धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— दिशः विदिशः सा देवी रोदसीतयोः अन्तरं धावन्ती तत्र तत्र एवं अनुउदायुधम् एवं ददर्श ॥१६॥

**अनुवाद**— दिशाओं, विदिशाओं, स्वर्गलोक और पृथिवी पर वह भूदेवी जहाँ-जहाँ भागकर जाती थी वहीं अपने पीछे धनुष चढाये हुए महाराज पृथु को देखती थी ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

रोदसी द्यावापृथिव्यौ तयोरन्तरमन्तरिक्षं च । अनु पृष्ठतः उद्यतमायुधं येन ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

रोदसी अन्तरम् अर्थात् द्युलोक भूलोक और उन दोनों के बीच में विद्यमान अन्तरिक्ष लोक में भी वह अपने पीछे धनुष धारण किए महाराज पृथु को देखी ॥१६॥

**लोके नाविन्दत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः । त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥१७॥**

**अन्वयः**— मृत्योः प्रजा इव लोके वैन्यात् त्राणं न अविन्दत तदा त्रस्ता विदूयता हृदयेन निववृते ॥१७॥

**अनुवाद**— जिस तरह मनुष्य को कोई नहीं बचा सकता उसी तरह त्रिलोकी में वेन पुत्र पृथिवी को बचाने वाला कोई नहीं मिला तब वह भयभीत होकर दुःखी हृदय से लौट आयी ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१७॥

**उवाच च महाभागं धर्मज्ञापन्नवत्सल । त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥१८॥**

**अन्वयः**— महाभागं च उवाच— हे धर्मज्ञ! हे आपन्न वत्सल! भूतानां पालने अवस्थितो भवान् माम् अयि त्राहि॥१८॥

**अनुवाद**— उसने महाभाग पृथु से कहा— हे धर्मज्ञ ! हे शरणागत वत्सल ! जीवों की रक्षा में आप तत्पर मेरी भी रक्षा कीजिये ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१८॥

**स त्वं जिघांससे कस्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् । अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ॥१९॥**

**अन्वयः**— यः धर्मज्ञ इति मतः स त्वं दीनाम् अकृत किल्विषाम् योषां मां कथं अहनिष्यत् कथं मां जिघांससे ॥१९॥

**अनुवाद**— आप धर्मज्ञ रूप से प्रख्यात है ऐसे आप दीन और निरपराध मुझ स्त्री को कैसे मारेगें, और आप मुझको क्यों मारना चाहते हैं ?॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

यो धर्मज्ञ इति मतः स भवान् योषां मां कथमहनिष्यद्धनिष्यति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

जो आप धर्मज्ञ रूप से प्रख्यात हैं वे आप मुझ को कैसे मारेंगे ॥१९॥

**प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागस्स्वपि जन्तवः । किमुत त्वद्विधा राजन्करुणा दीनवत्सलाः ॥२०॥**

**अन्वयः**— राजन् ! जन्तवः कृतागस्स्वपि स्त्रीषु वै न प्रहरन्ति त्वद् विधाः करुणा दीनवत्सलाः किमुत ॥२०॥

**अनुवाद**— राजन् ! स्त्रियों के अपराध करने पर भी साधारण जीव उन पर हाथ नहीं उठाते हैं, फिर आप जैसे दयालु और दीन वत्सल के विषय में क्या कहना है ?॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२०॥

**मां विपाट्याजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् । आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमम्भसि धास्यसि ॥२१॥**

**अन्वयः**— अजरां नावं मां विपाट्य यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् आत्मानं इमां प्रजाश्च अम्भसि कथं धास्यसि ॥२१॥

**अनुवाद**— जिसके ऊपर सम्पूर्ण विश्व स्थित है, उस सुदृढ नौका के समान मुझको विनष्ट करके आप अपने को तथा इन सारी प्रजाओं को जल के ऊपर कैसे रखेंगें ?॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

अजरां दृढाम् । धास्यसि धारयिष्यसि ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

अजराम् अर्थात् सुदृढ, धास्यसि अर्थात् धारण करेंगे ॥२१॥

पृथुरुवाच

**वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ।भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नो वसु ॥२२॥**

**अन्वयः**— वसुधे मत् शासन पराङ्मुखीं त्वाम् वधिष्यामि या बर्हिषि भागं वृङ्क्ते नो वसुं न तनोति ॥२२॥

**महाराज पृथु ने कहा**

**अनुवाद**— पृथिवी ! तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वाली हो अतएव मैं तुम्हारा वध करूँगा । तुम यज्ञों में भाग तो ग्रहण करती हो किन्तु उसके बदले में अन्न नहीं देती हो ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

बर्हिषि यज्ञे या भवती देवतारूपेण भागं वृङ्क्ते भजते । वसु धान्यादिकम् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

तुम यज्ञ में देवता रूप से भाग तो ग्रहण करती हो किन्तु उसके बदले में अन्न नहीं प्रदान करती हो ॥२२॥

**यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः । तस्यामेवं हि दुष्टायां दण्डो नात्र न शस्यते ॥२३॥**

**अन्वयः**— अनुदिनं यवसं जग्धि औधसं पयः नैव दोग्धि, तस्यां एवं दुष्टायां दण्डं न शस्यते न ॥२३॥

**अनुवाद**— जो प्रतिदिन हरी-हरी घास खाती है किन्तु थन का दूध नहीं देती है, ऐसी दुष्टता करने वाली गौ को दण्ड देना अनुचित नहीं होता है ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

गोरूपेण तु यवसं तृणं जग्धि अत्तीत्यर्थः । पयस्तु नैव दोग्धि दुग्धं न स्रवति । अत्रास्मिन्नपराधे ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

गौ का रूप धारण करके धास खाती हो किन्तु दूध नहीं देती हो इस अपराध में तुमको दण्ड देना उचित हैं ॥२३॥

**त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक्सृष्टानि स्वयंभुवा । न मुञ्चस्यात्मनिरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥२४॥**

**अन्वयः**— मन्दधीः त्वं माम् अवज्ञाय स्वयम्भुवा प्राक्सृष्टानि बीजानि, आत्मरुद्धानि न मुञ्चसि ॥२४॥

**अनुवाद**— तुम मूर्ख हो मेरी अवहेलना करनके ब्रह्माजी के द्वारा रचित बीजों को अपने मे छिपाकर उसे उगने नहीं देती हो ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मनि देहे रुद्धानि ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने में छिपाये हुए ॥२४॥

**अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् । शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥२५॥**

**अन्वयः**— मद्बाणैः भिन्नायाः तव मेदसा क्षुत्परीतानां आर्तानां अमूषां परिदेवितम् शमयिष्यामि ॥२५॥

**अनुवाद**— मेरे बाणों से छिन्न भिन्न हुई तुम्हारे मेदे से मैं इन आर्त एवं भूखे लोगों की रुदन को शान्त करूँगा ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

मद्वधे सर्वथा अन्नं न स्यादिति चेदत आह । अमूषां प्रजानाम् । मेदसा मांसेन ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहो कि मेरा वध करने पर तो अन्न बिल्कुल नहीं होगा तो इस पर महाराज पृथु ने कहा तुम्हारे मांस से इन सबों की भूख मिटाऊँगा ॥२५॥

**पुमान्योषिदुत क्लीब आत्मसंभावनोऽधमः । भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥२६॥**

**अन्वयः**— आत्म सम्भावनः भूतेषु निरनुक्रोशः अधमः पुमान् योषित् उत क्लीबः नृपाणां तद्वधः अवधः ॥२६॥

**अनुवाद**— जो अधम अपना ही पोषण करता है और दूसरों के प्रतिक्रूर हो वह चाहे पुरुष हो, स्त्री हो, नपुंसक हो राजा के द्वारा उसका किया जाने वाला वध; वध नहीं कहलाता है ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

यदुक्तं योषां कथं हनिष्यतीति तत्राह- पुमानिति । तस्य वधोऽवध एव ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

पृथिवी ने यह जो कहा था कि आप स्त्री का वध कैसे करेंगे । उसके उत्तर में महाराज पृथु ने कहा कि तुम्हारा वध; वध है ही नहीं ॥२६॥

**त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः । आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥२७॥**

**अन्वयः**— त्वां स्तब्धां, दुर्मदां मायागां शरैः तिलश नीत्वा आत्मयोग बलेन, इमां प्रजां धारयिष्यामि ॥२७॥

**अनुवाद**— गर्वीली, मदोन्दत्त और माया से ही गौ का रूप बनाये हुई तुमको मैं अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े करके अपने योग बल से प्रजाओं को धारण करूँगा ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

यच्चोक्तं कथमम्भसि धास्यसीति तत्राह- त्वामिति । तिलशस्तिलप्रमाणानि खण्डानि इत्येवंभूतामवस्थां नीत्वा ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने यह जो कहा था कि जल के ऊपर प्रजाओं को कैसे धारण करेंगे उसके उत्तर में महाराज पृथु ने कहा— कि मैं तुमको तिल जैसे टुकड़े-टुकड़े करके प्रजाओं को अपने योग के बल पर धारण करूँगा ॥२७॥

**एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तमिव बिभ्रतम् । प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही संजातवेपथुः ॥२८॥**

**अन्वयः**— एवं मन्युमयी कृतान्तम् इव विभ्रतम् प्रणता प्राञ्जलिः मही संजात वेपथुः प्राह ॥२८॥

**अनुवाद**— इस तरह से यमराज के समान क्रोध मय शरीर को धारण करने वाले महाराज पृथु से पृथिवी ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनीत भाव से काँपती हुई कहा ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

मन्युमयीं मूर्तिं बिभ्रतः कृतान्ततुल्यत्वमुच्यते, नतु कृतान्तस्य मन्युमयी मूर्तिरिति ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

क्रोधमयी शरीर को धारण करने वाले राजा की यमराज की सदृशता बतलायी गयी है यमराज के क्रोध मयी मूर्ति को नहीं ॥२८॥

पृथिव्युवाच

**नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ।**
**नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुतद्रव्य क्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥२९॥**

**अन्वयः**— परस्मै पुरुषाय नमः, मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने नमः, स्वरूपानुभवेन । निर्धूत द्रव्य क्रियाकारक विभ्रमोर्मये ॥२९॥

### पृथिवी ने कहा

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप साक्षात् परम पुरुष हैं तथा अपनी माया से अनेक प्रकार के शरीरों को धारण करके गुणमय प्रतीत होते हैं, आत्मानुभव के द्वारा आप अधिभूत, अध्यात्म तथा अधिदैव सबन्धी अभिमान और उससे उत्पन्न रागद्वेष आदि से सर्वथा रहित हैं ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

शुद्धसत्त्वतनुं देवमकस्मादतिदारुणम् । वीक्षमाणां पृथुं पृथ्वी तुष्टाव करुणोक्तिभिः ॥१॥ मायया विन्यस्ता रचिता नाना घोरादितनवो येन । गुणात्मने गुणमयत्वेन प्रतीयमानाय । वस्तुतस्तु निर्धूता निरस्ता द्रव्यक्रियाकारकेष्वधिभूताध्यात्माधिदैवेषु विभ्रमोऽहङ्कारस्तन्निमित्ता ऊर्मयो रागद्वेषादयश्च यस्मिंस्तस्मै ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

शुद्ध सत्त्व शरीरक श्रीभगवान् को आकस्मात् अत्यन्त भयङ्कर देखती हुई पृथिवी कारुण्ययुक्त वचनों से स्तुति की । जो भगवान् माया के द्वारा अनेक भयङ्कर शरीर को धारण कर लेते हैं । तथा त्रिगुणात्मक रूप से प्रतीत होने वाले वस्तुत अधिभूत अध्यात्म तथा अधिदौव में होने वाले अहङ्कार जन्य राग द्वेष आदि से पूर्णतः रहित आप भगवान् को मैं नमस्कार करती हूँ ॥२९॥

**येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता धात्रा यतोऽयं गुणसर्गग्रहः ।**
**स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वराडुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥३०॥**

**अन्वयः**— येन धात्रा अहं आत्मायतनं विनिर्मिता, यतोऽयं गुणसर्गसंग्रहः स एव स्वाराट् मां हन्तुम् उदायुधः अन्यं कं शरणं आश्रये ॥३०॥

**अनुवाद**— जिस परमात्मा ने मुझे सभी जीवों का आश्रय बनाया हैं, जिन्होंने इस त्रिगुणात्मक जगत् की सृष्टि की है, स्वतन्त्र वे ही परमात्मा यदि आयुध लेकर मुझे मारने के लिए तैयार हैं तो अब मैं किस दूसरे पुरूष के शरण में जाऊँ ।।३०।।

**भावार्थ दीपिका**

अहो सर्वजीवाश्रयत्वेन सृष्टां मां कथं हन्तुं प्रवर्तत इत्याह । येन विधात्रात्मनां जीवानामायतनमहं निर्मिता । यतो यस्यां मयि गुणसर्गस्य चतुर्विधभूतग्रामस्य संग्रहो धारणम् । स्वराट् स्वतन्त्रः ।।३०।।

**भाव प्रकाशिका**

आश्चर्य है कि सभी जीवों के आश्रय रूप से निर्मित मुझको मारने के लिए आप कैसे उद्यत हैं ? इस बात को कहती हुई पृथिवी कहती हैं— जिन परमात्मा ने मुझे जीवों के आश्रय रूप से बनाया, तथा जिन परमात्मा ने मेरे ऊपर देव, मनुष्य, तिर्यक् और स्थावर इन चार प्रकार के जीवों की रचना की, वे स्वतंत्र हैं ।।३०।।

**य एतदादावसृजच्चराचरं स्वमाययात्माश्रययाऽवितर्क्यया ।**
**तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ।।३१।।**

**अन्वयः**— स्व आत्माश्रयया अवितर्कया मायया आदौ एतत् चराचरं असृजत्, तयैव किल गोप्तुम् उद्यतः सोऽयं धर्मपर मां कथं न जिघांसति ।।३१।।

**अनुवाद**— जो आप सृष्टि के प्रारम्भ में अपने आश्रित रहने वाली अचिन्त्य माया के द्वारा इस चराचर जगत् की सृष्टि किए और उसी मायां के द्वारा इस जगत् की रक्षा करने के लिए उद्यत है, वे ही धर्म परायण परमात्मा आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**

सृष्टिसंहारकारकोऽहमेवेति चेत्तथापि प्रजापालने प्रवृत्तस्य मद्वधोऽनुचित एवेत्याह-य एतदिति । आत्माश्रयया जीवविषयिण्या।।३१।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि जगत् सृष्टि और संहार करने वाला मैं ही हूँ, तो फिर प्रजाओं का पालन करने में आपका मुझे मारना उचित नहीं है, इस बात को पृथिवी ने **य एतद् इत्यादि** श्लोक से कहा है । आत्माश्रयया का अर्थ है जीव को अपना विषय बनाने वाली माया के द्वारा ।।३१।।

**नूनं बतेशस्य समीहितं जनैस्तन्मायया दुर्जययाऽकृतात्मभिः ।**
**न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ।।३२।।**

**अन्वयः**— नूनं बत तत् दुर्जयया मायया अकृतात्मभिः जनैः ईशस्य समीहितं न लक्ष्यते, यस्तु अकरोत् अकारयत्, परतः ईश्वर च यः एक अनेकः ।।३२।।

**अनुवाद**— यह निश्चित है कि परमात्मा की जो दुर्जयमाया है, उसके कारण विक्षिप्त बने रहने वाले जीव परमात्म के अभीप्सित को नहीं जान सकते हैं । वे ही परमात्मा ब्रह्माजी की रचना किए और ब्रह्माजी के द्वारा जगत् की सृष्टि कराये । वे अपने आप साक्षात् परमेश्वर हैं और एक होकर भी अनेक प्रतीत होते हैं ।।३२।।

**भावार्थ दीपिका**

अतो दुर्ज्ञेयमीश्वरचेष्टितमित्याह-नूनमिति । अकृतात्मभिर्विक्षिप्तचित्तैः । य ईश्वरः स्वतन्त्रः । अकरोद्ब्रह्माणम् । परत इति तेन ब्रह्मणा चराचरमकारयत् । यश्च स्वत एकः परतो माययाऽनेकः ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने **नूनम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा— परमात्मा की लीलाएँ दुर्ज्ञेय हैं । जीव तो परमात्मा की माया से मोहित होने के कारण विक्षिप्त चित्त वाले हैं । ईश्वर स्वतंत्र हैं । उन्होंने ब्रह्माजी की रचना की उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजी से चराचर जगत् की रचना करवाई । वे स्वयं तो एक हैं किन्तु माया के कारण अनेक प्रतीत होते हैं ।।३२।।

**सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ।**
**तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ।।३३।।**

**अन्वयः**— यः द्रव्य क्रिया कारक चेतनात्मभिः शक्तिभिः अस्य सर्गादि अनुरुणद्धि, तस्मै समुनद्धशक्तये वेधसे परस्मै पुरुषाय नमः ।।३३।।

**अनुवाद**— जो परमात्मा द्रव्य (पञ्चमहाभूत) क्रिया (इन्द्रियाँ) कारक (देवता) चेतना (बुद्धि) आत्मा (अहङ्कार) इन शक्तियों के द्वारा इस जगत् की सृष्टि आदि कर्मों को करते हैं, उन सबों के द्वारा आपकी यदि विषयिणी शक्तियाँ स्वाधीन होती हैं । ऐसे परम पुरुष जगद्विधाता को मेरा नमस्कार हैं ।।३३।।

### भावार्थ दीपिका

तस्मादचिन्त्यशक्तये केवलं नम इत्याह । सर्गादिजन्मस्थितिभङ्गमस्य जगतोऽनुरुणद्ध्यनुवर्तते करोति । द्रव्याणि महाभूतानि। क्रिया इन्द्रियाणि । कारका देवाः । चेतना बुद्धिः । आत्माऽहंकारः । तैः स्वशक्तिरूपैः समुन्नद्धाः समुत्कटा निरुद्धाः शक्तयो यस्य ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

अतएव अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न परमात्मा को केवल नमस्कार है । इस बात को पृथिवी ने इस श्लोक में कहा है । इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार करने का काम परमात्मा आप ही करते हैं । महाभूत, इन्द्रियाँ, प्रकृति प्रवर्तक देवता, बुद्धि, अहङ्कार इन सबों के द्वारा परमात्मा की सृष्टि यदि विषयिणी शक्तियाँ उत्कट होती हैं । और परमात्मा के अधीन रहती है । ऐसे परम पुरुष जगत् के विधाता अपको नमस्कार है ।।३३।।

**स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ।**
**संस्थापयिष्यन्नज मां रसातलादभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ।।३४।।**

**अन्वयः**— हे अज ! सवै भवान् आत्मविनिर्मितं, भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं जगत् संस्थापयिष्यन् आदि सूकरः सन् रसातलात् मां अम्भसः उज्जहार ।।३४।।

**अनुवाद**— हे अजन्मा प्रभो ! वे ही आप अपने द्वारा निर्मित भूत, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण रूपी जगत् को स्थापित करने के लिए आदि वराह रूप धारण करके रसातल से मुझको जल से बाहर लाए ।।३४।।

### भावार्थ दीपिका

प्राणिनां धारणार्थं मां रसातलादुद्धृत्येदानीं प्रजारक्षणे प्रवृत्तस्य मद्वधो न युक्त इति सकरुणमाह द्वाभ्याम् । हे अज, यः सृष्टवान्स एव भवान्स्वनिर्मितं चराचरं जगत्सम्यक् स्थापयितुमादिसूकरः सन् मामभ्युज्जहार ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

प्राणियों को जीवित रखने के लिए मुझको रसातल से यहाँ लाकर इस समय मेरा वध करना उचित नहीं है आप तो प्रजाओं की रक्षा करने में प्रवृत्त है, इस बात को पृथिवी ने करुणा पूर्वक दो श्लोकों में कहा हैं—

हे अजन्मा प्रभो ! आपने ही जगत् की सृष्टि की वे ही आप चराचर जगत् की अच्छी तरह से स्थापित करने के लिए आदिवराह का रूप धारण करके मेरा उद्धार किए ।।३४।।

**अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ।**
**स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ।।३५।।**

**अन्वयः**— यः माम् धराधरः समभूत् सवीरमूर्ति अपामुपस्थे मयि नावि अवस्थिताः प्रजाः रक्षितुं मां पयसि उग्रशरः जिघांससि ।।३५।।

**अनुवाद**— जो आप मेरा उद्धार करके धराधर कहलाये वही आप आज जल के उपर नौका के समान मुझ पर विद्यमान प्रजाओं की रक्षा करने के लिए वीरमूर्ति पृथु बने हुए आप दूध नहीं देने के अपराध में मुझे मारना चाहते हैं ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

स एव धराधरो वराहोऽद्य अपामुपस्थे उपरि मयि नावि आधारभूतायामवस्थिताः प्रजा रक्षितुमिच्छुवीरमूर्तिः पृथुरूपः समभूत् । एवंभूतो यः स त्वं पयसि निमित्ते मां जिघांससीति चित्रमित्यर्थः ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

वे ही धराधर नामक वराह रूपधारी आप जल के ऊपर स्थित नौका के सामन मेरे ऊपर स्थित प्रजाओं की रक्षा करने की इच्छा से पृथु रूप वाले हो गये हैं । इस प्रकार के जो आप है मुझे दूध नहीं देने के अपराध में मारना चाहते हैं । यह बड़े ही आश्चर्य की बात है ।।३५।।

**नूनं जनैरीहितमीश्वराणामास्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ।**
**न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभिस्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ।।३६।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुविजये धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

**अन्वयः**— नूनंतद्गुण सर्गमायया अस्मद् विधैः मोंहितचित्त वर्त्मभिः ईश्वराणां जनैः ईहितं न ज्ञायते तेभ्यः वीर यशस्कारेभ्यो नमः ।।३६।।

**अनुवाद**— निश्चित रूप से परमात्मा की त्रिगुणात्मिका सृष्टि करने वाली माया के द्वारा हमलोगों की चित्त वृत्ति मोहित है अतएव हमलोग तो परमात्मा के भक्त है । उन लोगों की ही सभीहित को हम नहीं जानते है, ऐसी स्थिति में यदि हम आपकी किसी क्रिया विशेष का उद्देश्य न समझें तो इसमें कौन सा आश्चर्य है । अतएव जो इन्द्रियों के संयम द्वारा वीरोचित यज्ञ का विस्तार करते हैं ऐसे आपको नमस्कार है ।।३६।।

**इस तरह श्रीमद्भागतव महापुराण के चौथे स्कन्ध के पृथु विजय के प्रसङ्ग में पृथिवी का निग्रह नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।**

**भावार्थ दीपिका**

तस्मादीश्वरचेष्टितं दुर्ज्ञेयमिति कैमुत्यन्यायेनोपसंहरति–नूनमिति । तस्येश्वरस्य गुणसर्गरूपया मायया मोहितं चित्तमेव वर्त्म येषाम् । मोहितानि चित्तवर्त्मानि येषामिति वा तैर्जनैरीश्वराणां हरिभक्तानामेव तावदीहितं न ज्ञायते, किं पुनस्तस्य परमेश्वरस्य। अतएव परमेश्वरवत्तेम्योऽपि नम एव केवलम् । वीराणां जितेन्द्रियाणां यशः कुर्वन्ति ये तेभ्यः यशावीराणां यशो वर्धेत तथा चेष्टतां न तु यथेष्टमिति भावः ।।३६।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।'**

**भाव प्रकाशिका**

अतएव ईश्वर की लीला दुर्ज्ञेय है इस बात को पृथिवी कैमुत्य न्याय से उपसंहार करती हुई नूनम् इत्यादि श्लोक को कहती है। उस ईश्वर की त्रिगुणात्मिका सृष्टि रूपी माया के द्वारा जिनका चित्त मोहित है, वे जीव ईश्वर के भक्तों के ही सभीहित को नहीं जान पाते हैं तो फिर वे परमेश्वर के सभीहित को कैसे जान पायेंगे। अतएव परमेश्वर के ही समान भगवद् भक्तोंको केवल नमस्कार ही करती हूँ। जो लोग जितेन्द्रियों के यश को बढाते है उन सबों को भी केवल नमस्कार है। जैसे वीरों का यश बढ़े उस तरह की चेष्टा को ही नहीं जान पाते हैं उनके समीहित की कौन सी बात हैं ?॥३६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के भावार्थ दीपिका टीका के सत्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१७॥**

# अठारहवाँ अध्याय

## पृथ्वी का दोहन

मैत्रेय उवाच

**इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् । पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥१॥**

**अन्वयः**— इत्थं रुषा प्रस्फुरिताधरम् पृथुम् अभिष्टूय अवनिः भीताः पुनः आत्मना आत्मानं संस्तभ्य पुनराह ॥१॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह क्रोध के कारण जिनके ओष्ठ फड़फड़ा रहे थे ऐसे महाराज पृथु की स्तुति करके पृथिवी अपने हृदय को विचार पूर्वक समाहित करके पुनः उनसे कहीं ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

अष्टादशे महीवाक्याद्वत्सपात्रादिभेदतः । पृथ्वादिभिस्तु सा दुग्धा स्वं स्वं दुग्धमितीर्यते ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

अठारहवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि पृथ्वी के कहने पर वत्स और पात्र की भिन्नता से पृथु आदि ने अपने-अपने अभिप्रेत दूध को पृथिवी से दूहा ॥१॥

**संनियच्छाभिभो मन्युं निबोध श्रावितं च मे । सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः ॥२॥**

**अन्वयः**— भो मन्युं अभिसंनियच्छ मे श्रावितं च निबोध बुधः मधुकरो यथा सर्वतः सारम् आदत्ते ॥२॥

**अनुवाद**— प्रभो अपने क्रोध को आप नियन्त्रित करे और मेरी प्रार्थना को सुनिए । विद्वान् पुरुष भ्रमर के समान हर ओर से सार का ग्रहण करते हैं ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

हे अभिभो प्रभो, यद्वा भो देव, अभि अभयं यथा भवत्येवं मन्युं संनियच्छ । श्रावितं विज्ञापितम् । न मद्वाक्येऽनादरः कर्तव्य इत्याह । बुधो हि सर्वतः सारमादत्ते ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

हे प्रभो ! जैसे मुझको अभय प्राप्त हो उस तरह से आप अपने क्रोध को नियन्त्रित करे । मैं जो प्रार्थना करती हूँ उसे आप सुनें । मेरे वाक्य का अनादर न करें । विद्वान् पुरुष हर ओर से सार का ही ग्रहण करते हैं।।२।।

**अस्मिँल्लोकेऽथवामुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयः प्रसिद्धये ।।३।।**

**अन्वयः**— तत्त्वदर्शिभिः मुनिभिः अस्मिन् अथवा अमुष्मिन् पुंसां श्रेय प्रसिद्धये योगाः दृष्टाः प्रयुक्ताश्च ।।३।।

**अनुवाद**— तत्त्वज्ञ मुनियों ने इस लोक और परलोक में मनुष्यों के कल्याण के लिए अनेक योगों (उपायों) का साक्षात्कार भी किया है और उनका प्रयोग भी किया है ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

मयि जीर्णाश्चौषधीरुपायेन गृहाणेति वक्तुमुपायेन सर्वं सिध्यति नान्यथेत्याह–अस्मिन्निति त्रिभिः । पुंसां श्रेयसः पुरुषार्थस्य प्रसिद्धयेऽस्मिन् लोके कृष्यादयोऽमुष्मिंश्च लोकेऽग्निहोत्रादयो योगा उपाया दृष्टाः प्रयुक्ता अनुष्ठितश्च ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

मुझमें जो ओषधियों के बीज जीर्ण हो गये हैं उन सबों को योग के द्वारा आप ग्रहण कर लें उपाय के बिना कुछ भी नहीं होता है, उपाय से ही सबकुछ सिद्ध होता है इस बात को पृथिवी ने तीन श्लोकों में कहा है । मनुष्यों का इस लोक में और लोक में कल्याण की प्राप्ति के लिए मुनियों ने इस लोक में कृषि आदि और परलोक में अग्निहोत्र आदि उपायों का साक्षात्कार करके उनका उपयोग भी किया है ।।३।।

**तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान्पूर्वदर्शितान् । अवरः श्रद्धयोपेत उपेयान्विन्दतेऽञ्जसा ।।४।।**

**अन्वयः**— तान् पूर्वदर्शितान् उपायान् यः अवरः श्रद्धयोपेतः यः अतिष्ठति अञ्जसा उपेयान् विन्दते ।।४।।

**अनुवाद**— उन प्राचीन ऋषियों द्वारा दृष्ट उपायों का जो अर्वाचीन पुरुष श्रद्धा पूर्वक अच्छी तरह से अनुष्ठान करता है, वह अपने उपेय (प्राप्य) अर्थ को आसानी से प्राप्त कर लेता है ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

पूर्वैर्दर्शितान् । अवरोऽर्वाचीनः ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

**पूर्वदर्शितान्** का अर्थ है प्राचीनों द्वारा बतलाये गयें । **अवरः अवरः** वर्तमान कालिक पुरुष ।।४।।

**ताननादृत्य योऽविद्वानर्थानारभते स्वयम् । तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ।।५।।**

**अन्वयः**— तान् अनादृत्य य अविद्वान् स्वयम् अर्थान् अरभते तस्य अर्थाः पुनः पुनः व्यभिचरन्ति ।।५।।

**अनुवाद**— उन सबों का अनादर करके जो अज्ञानी अपने मनः कल्पित उपायों को अपनाता है, उसके सभी उपाय और प्रयत्न बार-बार विफल होते हैं ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

अविद्वान्विद्वानपीति वा । व्यभिचरन्ति न सिध्यन्ति ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने मनः कल्पित उपायों का प्रयोग करने वाला चाहे अज्ञानी हो या ज्ञानी उसके उपाय और प्रयत्न दोनों बार-बार विफल होते हैं ।।५।।

**पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशांपते । भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥६॥**

**अन्वयः**— हे विशाम्पते पुरा ब्रह्मणा सृष्टा या ओषधयो मया असद्भिः अधृतव्रतैः भुज्यमाना दृष्टाः ॥६॥

**अनुवाद**— हे राजन् ! प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने जिन ओषधियों की सृष्टि की थी, मैंने देखा कि यम नियम आदि का पालन नहीं करने वाले, दुराचारी लोग ही उसे खाये जा रहे हैं ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

सहेतुकमुपायमाह-पुरेति षड्भिः ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

पुरा इत्यादि छह श्लोकों में हेतु प्रदर्शन पूर्वक उपाय को पृथिवी ने बतलाया है ॥६॥

**अपालिताऽनादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः । चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः ॥७॥**

**अन्वयः**— लोक पालकैः भवद्भिः अपालिता अनादृता अथ चोरी भूते लोके अहं यज्ञार्थे ओषधीः अग्रसम् ॥७॥

**अनुवाद**— लोक की रक्षा करने वाले आप राजा लोगों के द्वारा पालन नहीं किए जाने तथा अनादर किए जाने के कारण जब सारा संसार चोरों के समान हो गया तो मैंने भी यज्ञ के लिए उन ओषधियों को छिपा लिया॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

भवद्भिरिति राजसामान्याभिप्रायेण, वेनादिभिरिति वा । अपालिता चोराद्यनिवारणात् । अनादृता च यज्ञादिप्रवर्तनाभावात्। यज्ञार्थे अग्रसं गिलितवती । अन्यथाऽधृतव्रतैर्भुक्ता न प्रसोष्यन्ते ततश्च यज्ञादयो न सिध्येरन्निति भावः ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

भवद्भिः पद का प्रयोग सामान्यतः सभी राजाओं के अभिप्राय से अथवा वेन आदि राजाओं के अभिप्राय से किया गया है । इन राजाओं ने चोरों आदि को दण्डित नहीं करके मेरा पालन नहीं किया । यज्ञ इत्यादि का प्रवर्तन नहीं करने के कारण मेरा अनादर भी किया मैंने यज्ञ के लिए ओषधियों को निगल लिया । यदि शमादि नियमों का पालन नहीं करने वाले उन सबों के खा लेने पर वे पुनः उत्पन्न नहीं होते और इसके कारण यज्ञ इत्यादि भी नहीं हो पाते । यही पृथिवी का भाव है ॥७॥

**नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा । तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥८॥**

**अन्वयः**— नूनं ता विरुधः मयि भूयसा कालेन क्षीणाः तत्र दृष्टेन योगेन भवान् आदातुमर्हति ॥८॥

**अनुवाद**— अधिक समय बीत जाने के कारण वे धान्य मेरे उदर में जीर्ण हो गये होंगे । आप उन सबों को पूर्वाचार्यों द्वारा बतलाये गये उपायों से निकाल ले सकते हैं ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

क्षीणा जीर्णाः ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

क्षीण का अर्थ है पच गये होंगे ॥८॥

**वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव । धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम् ॥९॥**

**अन्वयः**— वीर मे अनुरूपं वत्सं दोहनं च कल्पय येन वत्सला अहं क्षीरमयान् तव कामान् धोक्ष्ये ॥९॥

**अनुवाद**— हे लोकपालक ! आप मेरे अनुरूप वत्स और दोहन पात्र की व्यवस्था कीजिए जिससे अपने वत्स के प्रति वत्सला मैं अपकी इक्षित सभी वस्तुओं को दुग्ध के रूप में क्षरण कर दूँगी ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

दोहनं दोहपात्रम् । दोग्धारं चोपकल्पय । धोक्ष्ये प्रपूरयिष्यामि ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

पृथिवी ने कहा कि आप मेरे अनुरूप वत्स, दोहन पात्र तथा दोहन करने वाले की व्यवस्था करें तो मैं आपके सभी काम्य पदार्थों को दुग्ध के रूप में क्षरण कर दूँगी ॥९॥

**दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन । अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वाञ्छते यदि ॥१०॥**

**अन्वयः**— हे भूतभावन महाबाहो यदि भगवान् भूतानाम् ईप्सितम् ऊर्जस्वद् अन्नम् वाञ्छते दोग्धारं च कल्पय॥१०॥

**अनुवाद**— हे लोकों के रक्षक महाबाहो, यदि आप जीवों को अभिप्रेत तथा बल को बढ़ाने वाले अन्न को चाहते हैं तो आप योग्य दोहन कर्ता की भी कल्पना करें ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

भूतानामभीप्सितमन्नम् । ऊर्जस्वद्बलप्रदम् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

जीवों को अभिप्रेत अन्न तथा बलप्रद अन्न चाहते हों तो योग्य दोग्धा की भी व्यवस्था करें ॥१०॥

**समां च कुरु मां राजन् देववृष्टं यथा पयः । अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे बिभो ॥११॥**

**अन्वयः**— हे राजन् ! मां समां कुरु यथा देववृष्टं पयः अपर्तावपि मे उपावर्तेत विभोते भद्रम् ॥११॥

**अनुवाद**— राजन्, मुझको आप समतल बना दें जिससे इन्द्र के द्वारा वरसाया हुआ जल वर्षा ऋतु के बीत जाने पर भी मुझ पर रहे इससे अपका मङ्गल होगा ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

अपगतेऽपि वर्षर्तौ देववृष्टमुदकं यथा मे मयि सर्वतो वर्तेत ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

वर्षा ऋतु के बीत जाने पर भी इन्द्र के द्वारा बरसाया हुआ जल मुझ पर सर्वत्र बना रहे ॥११॥

**इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः । वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥१२॥**

**अन्वयः**— इति भुवः प्रियं हितं वाक्यं आदाय भूपतिः मनुं वत्सं कृत्वा पाणौ सकलौषधीः अदुहत् ॥१२॥

**अनुवाद**— इस तरह से पृथिवी प्रिय और कल्याणकारी बातों को सुनकर महाराज पृथु ने मनु को वत्स बनाकर अपने हाथ पर ही सम्पूर्ण अन्नों का दोहन किया ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

मनुं स्वायंभुवम् । ओषधीर्व्रीह्यादीः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

मनु शब्द से स्वयम्भुव मनु को और ओषधि शब्द से धान इत्यादि अन्नों को कहा गया है ॥१२॥

**तथापरे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः । ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— तथा परे च बुधा सर्वत्र सारम् आददते । ततः अन्ये च पृथुभविताम् यथा कामं दुदुहु ॥१३॥

**अनुवाद**— उसी तरह दूसरे भी विज्ञजन सर्वत्र सार वस्तु का ग्रहण करते । पृथु महाराज के पश्चात् पृथु महाराज के द्वारा वश में की गयी पृथिवी से अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार दूसरे लोगों ने भी पृथिवी से अभीष्ट वस्तुओं का दोहन किया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गादर्थान्तरमाह-तथेति । यथा पृथुरेवं सर्वत्र वाक्ये परेऽपि सारमाददते । प्रस्तुतमनुवर्तयति । ततोऽन्ये च ऋष्यादयः पञ्चदश दुदुहुः । पृथुना भावितां वशीकृताम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् तथा इत्यादि श्लोक से दूसरी भी बातों को बतलाते हैं । पृथु महाराज के ही समान सभी वाक्यों में दूसरे विज्ञों ने भी अपने अभिप्रेत सार वस्तु का ग्रहण करते हैं । प्रस्तुत बात को बतलाने के पश्चात् ऋषियों आदि पन्द्रह लोगों ने भी पृथु के द्वारा वशीकृत पृथ्वी से अपनी अभिप्रेत वस्तुओं को दूहा ।।१३।।

**ऋषयो दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम । वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि ।।१४।।**

**अन्वयः**— सत्तम अथ ऋषयः बृहस्पतिं वत्सं कृत्वा इन्द्रियेषु छन्दोमयं शुचि पयः देवीं दुदुहुः ।।१४।।

**अनुवाद**— हे साधुवर्य ! विदुर ! ऋषियों ने बृहस्पति को बछड़ा बनाकर इन्द्रिय रूपी दोहन पात्र में वेद मन्त्र रूपी पवित्र दूध को पृथिवी से दूहा ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

देवीं पृथ्वीम् । वाङ्मनःश्रवणैर्वेदग्रहणादिन्द्रियाणां पात्रत्वम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

देवी अर्थात् ! पृथिवी को वाणी, मन तथा श्रोत्र आदि के द्वारा वेद के ग्रहण किए जाने के कारण इन्द्रियों का पात्रत्व है ।।१४।।

**कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन् । हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ।।१५।।**

**अन्वयः**— सुरगणाः इन्द्रं वत्सं कृत्वा हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यम् ओजो बलं सोमं पयः अदूदुहन् ।।१५।।

**अनुवाद**— देवताओं ने इन्द्र को बछड़ा बनाकर सुवर्णमय पात्र में अमृत, वीर्य मनोबल ओज (इन्द्रिय बल) और शरीरिक बल रूप दूध को दूहा ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

सोमममृतम् । वीर्यं मनःशक्तिम्, ओज इन्द्रियशक्तिम्, बलं देहशक्तिं च तदेव पयः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

सोम अर्थात् अमृत, वीर्य मनोबल, ओज (इन्द्रिय बल) और शारीरिक बल रूपी दूध को दूहा ।।१५।।

**दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् । विधायादूदुहन्क्षीरमयः पात्रे सुरासवम् ।।१६।।**

**अन्वयः**— दैतेयाः दानवाः असुरर्षभम् प्रहूलादम् वत्सं विधाय अयः पात्रे सुरासवम् अदूदुहन् ।।१६।।

**अनुवाद**— दैत्यों और दानवों ने असुरों में अग्रगण्य प्रह्लादजी को बछड़ा बनाकर लौहपात्र में मदिरा और आसव रूप दूध को दूहा ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

सुरामासवं च तालादिमद्यम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

मदिरा और ताड़ी आदि को दूहा ।।१६।।

**गन्धर्वाप्सरसोऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पयः । वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥१७॥**

**अन्वयः**— गन्धर्वाप्सरसा विश्वावसुवत्सं कृत्वा पद्ममये पात्रे गान्धर्वं सौभगं मधु अधुक्षन् ॥१७॥

**अनुवाद**— गन्धर्वों और अप्सराओं ने विश्वावसु को बछड़ा बनाकर कमलमय पात्र में संगीत माधुर्य और सौन्दर्य रूप दूध को दूहा ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

मधु वाङ्माधुर्यं सौभगं सौन्दर्यं तत्सहितम् ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

मधु अर्थात् वाणी के माधुर्य को तथा सौभगम् सौन्दयमाधुर्य को ॥१७॥

**वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत । आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥१८॥**

**अन्वयः**— श्राद्ध देवताः पितरः महाभागाः अर्यम्णा वत्सेन श्रद्धया आमपात्रे कव्यं क्षीरम् अधुक्षत ॥१८॥

**अनुवाद**— श्राद्ध के देवता महाभाग पितृगण पितरों के स्वामी अर्यमा को बछड़ा बनाकर मिट्टी के कच्चे पात्र में श्रद्धा पूर्वक कव्य रूप दूध का दोहन किया ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

कव्यं पितॄणामन्नम् । आमपात्रे अपक्वे मृण्मये । अधुक्षत दुदुहुः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

कव्य अर्थात् पितरों को समर्पित किया जाने वाला अन्न, आमपात्रे कच्चे मिट्टी के पात्र में, अधुक्षत दूहा॥१८॥

**प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः संकल्पनामयीम् ।**
**सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥१९॥**

**अन्वयः**— सिद्धाः कपिलं वत्सं प्रकल्प्य, सङ्कल्पनामयीं सिद्धिम् ये च विद्याधरादयः नभसि विद्यां च दुदुहुः ॥१९॥

**अनुवाद**— सिद्धों ने कपिल महर्षि को बछड़ा बनाकर सङ्कल्पमयी अणिमा आदि सिद्धियों को तथा विद्याधर आदि वे वे आकाश में चलाने की विद्या रूपी सिद्धि को दूहा ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

सङ्कल्पनामयीमणिमादिसिद्धिम् । ये विद्याधरादयस्ते च तमेव वत्सं प्रकल्प्य नभस्येव पात्रे खेचरत्वादिरूपां विद्यां दुदुहुः ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

सिद्धों ने कपिल महर्षि को वत्स बनाकर सङ्कल्प स्वरूपा अणिमा आदि सिद्धियों को तथा विद्याधरों ने कपिल महर्षि के ही वत्स बनाकर आकाश में चलने की विद्या का दोहन किया ॥१९॥

**अन्ये च मायिनो मायामन्तर्धानाद्भुतात्मनाम् । मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम् ॥२०॥**

**अन्वयः**— अन्ये च मयिनः अन्तर्धानादभुतात्मनाम् मयं वत्सं प्रकल्प्य धारणामयीं मायां दुदुहः ॥२०॥

**अनुवाद**— जो किम्पुरुष आदि मायावी थे वे मय दानव को बछड़ा बनाकर अन्तर्धान होना विचित्र रूप धारण करना आदि सङ्कल्पमयी मायाओं को दुग्ध रूप से दूहा ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

अन्ये च किंपुरुषादयोऽन्तर्धानेनाद्भुतात्मनां संबन्धिनीं मायाम् । धारणामयीं सङ्कल्पमात्रप्रभवाम् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरे जो किम्पुरुष आदि मायावी थे वे अन्तर्धान होना तथा विचित्र रूप बनाने वाली सङ्कल्प करने मात्र से उत्पन्न हो जाने वाली माया रूपी दूध को दूहा ॥२०॥

**यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः । भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— पिशिताशना यक्ष, रक्षांसि भूतानि भूतेशवत्साः कपाले क्षतजासवं दुदुहुः ॥२१॥

**अनुवाद**— मांसभक्षी यक्ष, राक्षस, भूत तथा पिशाचों ने शङ्करजी को ही वत्स बनाकर कपाल रूपी पात्र में रक्तरूप आसव को दूहा ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

भूतेशो रुद्रः स एव वत्सो येषाम् । क्षतजं रुधिरं तदेवासवम् ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

भूतेश शब्द से शङ्करजी को कहा गया है । उनको ही बछड़ा बनाकर भूत आदि ने कपाल पात्र में रक्त रूपी मदिरा को दूहा ॥२१॥

**तथाऽहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् । विधाय वत्सं दुदुहूर्बिलपात्रे विषं पयः ॥२२॥**

**अन्वयः**— तथा अहयः दन्दशूकाः, सर्पाः नागाः तक्षकं वत्सं विधाय बिलपात्रे विषंपयः दुदुहुः ॥२२॥

**अनुवाद**— उसी तरह अहि, सर्प तथा नागों ने तक्षक को बछड़ा बनाकर बिल रूपी पात्र में विष रूप दूध को दूहा ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

अहयो निष्फणाः । दन्दशूका वृश्चिकादयः । सर्पाः सफणास्त एव कद्रुसन्ततिजा नागाः । बिलपात्रे मुखे ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन सर्पों का फन नहीं होता है वे अहि कहलाते । बिच्छी इत्यादि को दन्दशूक कहते है । जिनका फण होता है वे सर्प हैं । फण वाले ही जो सर्प कद्रू के पुत्र हैं वे नाग कहे जाते हैं । बिलपात्र शब्द से मुख को कहा गया है ॥२२॥

**पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् । अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥२३॥**
**क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे । सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाचरमेव च ॥२४॥**

**अन्वयः**— गोवृष वत्सं कृत्वा अरण्यपात्रे यवसं क्षीरम् अधुक्षन् दंष्ट्रिणः क्रव्यादाः प्राणिनः मृगेन्द्रण स्वेकलेवरे क्रव्यं दुदुहुः विहगाः सुपर्णवत्सांचरं अचरं एव च ॥२३-२४॥

**अनुवाद**— शङ्करजी के वाहन बैल को वत्स बनाकर पशुओं ने बन रूपी पात्र में घास रूप दुग्ध को दूहा। बड़े-बड़े दाँत वाले प्राणियों ने सिंह को ही वत्स बनाकर अपने शरीर रूपी पात्र में कच्चा मांस रूप दूध दूहा, पक्षियों ने गरुड़ को वत्स बनाकर कीट पतङ्ग आदि चर और फल आदि अचर पदार्थ रूपी दूध को दूहा ॥२३-२४॥

**भावार्थ दीपिका**

यवसं तृणम्। गोवृषं रुद्रवाहं वृषभम्। मृगेन्द्रेणेत्युत्तरेण अन्वयः। क्रव्यं मांसम्। चरं कीटादि अचरं फलादि ॥२३-२४॥

**भाव प्रकाशिका**

यवस अर्थात् घास, गोवृष अर्थात् शङ्करजी के वाहन बैल, मृगेन्द्र पद का आगे के श्लोक से अन्वय है। क्रव्य अर्थात् कच्चा मांस, चर अर्थात् कीड़े मकोड़े, अचर अर्थात् फल आदि ॥२३-२४॥

**वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः । गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून्स्वसानुषु ॥२५॥**

**अन्वयः**— बटवत्साः वनस्पतयः पृथक् रसमयं पयः हिमवद्वत्साः गिरयः स्वसानुषु नानाधातून् ॥२५॥

**अनुवाद**— वनस्पतियों ने बट वृक्ष को ही बछड़ा बनाकर अलग-अलग रस रूप दूध को दूहा और पर्वतों ने हिमालय को बछड़ा बनाकर अपने शिखरों पर अनेक धातु रूप दूध को दूहा ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२५॥

**सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः । सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥२६॥**

**अन्वयः**— सर्वे पृथुभाविताम् सर्वकामदुघां पृथ्वीं स्वमुख्य वत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पभः दुदुहुः ॥२६॥

**अनुवाद**— पृथु महाराज के द्वारावशवर्तिनी बनायी गयी सभी अभीष्ट वस्तुओं को पदान करने वाली पृथिवी को सबों ने अपनी-अपनी जाति के मुख्य व्यक्ति को वत्स बनाकर अपने-अपने पात्र से अलग-अलग दूध को दूहा ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुक्तसर्वसंग्रहार्थमाह-सर्वे इति । सर्वे स्वजातौ यो मुख्यस्तेन वत्सेन ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन सबों का अभी वर्णन नहीं किया गया है उन सबों का संग्रह करने के लिए सर्वे इत्यादि श्लोक को कहा गया है । शेष जितने थे वे सबके सब अपनी जाति के मुख्य व्यक्ति को बछड़ा बनाकर अपने अभिलाषित पदार्थ रूप दूध को दूहा ॥२६॥

**एवं पृथ्वादयः पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः । दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥२७॥**

**अन्वयः**— हे कुरुद्वह ! एवं पृथ्वादयः सर्वे अन्नादाः दोहवत्सादिभेदेन आत्मनः स्वन्नम् क्षीरभेदं दुदुहुरितिशेषः॥२७॥

**अनुवाद**— हे कुरुश्रेष्ठ विदुरजी इस तरह से पृथु आदि सभी अन्य भोगी अपने अभिप्रेत अन्न का दोहन पात्र और बछड़े के भेद से भिन्न-भिन्न दूधों को दूहा ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

उपसंहरति-एवमिति । स्वन्नमभीष्टमन्नम् । तमेव क्षीरभेदं दुदुहुः । दोहः पात्रम् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

एवमित्यादि श्लोक से दोहन का वर्णन का उपसंहार किया गया है । स्वन्न शब्द से अभीष्ट अन्न को कहा गया है । उसी को भिन्न-भिन्न प्रकार के दूधों को दूहा कहा गया है । दोह शब्द से पात्र को कहा गया है ॥२७॥

**ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः । दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥२८॥**

**अन्वयः**— ततः दुहितृवत्सलः महीपतिः पृथुः सर्वकाम दुघां इमाम् प्रेम्णा दुहितृत्वे चकार ॥२८॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् पुत्री के प्रति वात्सल्य गुण सम्पन्न महाराज पृथु सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली इस पृथ्वी को अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी पुत्री बना लिए ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

इमां पृथ्वीम् ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

इमाम् शब्द से पृथिवी को कहा गया है ॥२८॥

**चूर्णयन्स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट्। भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥२९॥**

**अन्वयः**— राजराट् विभुः वैन्यः स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि चूर्णयन् इदं भूमण्डलं प्रायः समं चक्रे ॥२९॥

**अनुवाद**— राजाधिराज महाराज पृथु ने अपने धनुष के अग्रभाग से पर्वत शिखर को चूर-चूर करके इस भूमण्डल को उन्होंने प्रायः समतल बना दिया ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

धनुषोऽग्रेण गिरिशृङ्गाणि चूर्णयन्। राजराट् राज्ञां राजा। सर्वेषामाजीविकादानात् ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

अपने धनुष के अग्रभाग से पर्वत के शिखरों को चूर-चूर कर दिया सभी राजाओं को भी जीविका प्रदान करने के कारण वे राजराट् थे ॥२९॥

**अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता। निवासान्कल्पयांचक्रे तत्र तत्र यथार्हतः ॥३०॥**

**अन्वयः**— अथा प्रजानां वृत्तिदः पिता भगवान् वैन्यः अस्मिन् तत्र तत्र यथार्हतः निवासान् कल्पयाञ्चक्रे ॥३०॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् प्रजाओं को वृत्ति प्रदान करने वाले सबों के रक्षक भगवान् पृथु इस पृथिवी पर स्थान-स्थान पर सबों के लिए यथायोग्य का निवास स्थान बनाये ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३०॥

**ग्रामान्पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च। घोषान्व्रजान्सशिबिरानाकरान् खेटखर्वटान् ॥३१॥**

**अन्वयः**— ग्रामान् पुरः पत्तनानि विविधानि दुर्गाणि च, घोषान् व्रजाने सशिविरान् आकरान् खेट खर्वटान् ॥३१॥

**अनुवाद**— अनेक गाँव, कस्बे, नगर, दुर्ग, छावनियाँ, खान, किसानों के गांव और पहाड़ों की तलहटी के गाँव इन सबों को महाराज पृथु ने बसाया ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

ग्रामा हट्टादिशून्याः। पुरो हट्टादिमत्यः। ता एव महत्यः पत्तनानि। दुर्गाणि विविधानि। यथाह बृहस्पतिः— 'औदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं धान्वनं तथा' इति। घोषान् आभीराणां निवासान्। व्रजान् गवां निवासान्। शिबिरं सेनानिवासस्थानं तत्सहिताناकरान्स्वर्णादिस्थानानि। खेटाः कर्षकग्रामाः खर्वटाः पर्वतप्रान्तग्रामास्तांश्च ॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

जहाँ बाजार नहीं होता है वह गाँव है। जहाँ बाजार आदि हों वह पुर शब्द वाच्य है। बड़े बाजारों को पत्तन कहते हैं। अनेक प्रकार के किले। बृहस्पति ने कहा है **औदकम्० इत्यादि** जल में पर्वत के ऊपर, वृक्षों से युक्त, ऐरी, तथा मरु स्थल में किला बनाये अभीरों के निवास स्थान को घोष कहते हैं, गौओं के निवास स्थान व्रज कहते हैं। सेना के निवास स्थान को शिविर कहते है, किसानों के गाँव को खेट कहते हैं और पर्वत की तलहटी में बसे गाँवों को खर्वट कहते हैं ॥३१॥

**प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना। यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः ॥३२॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे पृथुविजयेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

**अन्वयः**— पृथोः प्राक् एषा पुरग्रामादि कल्पना नैव, तत्र तत्र अकुतोभयाः जना यथासुखं निवसन्ति स्म ॥३२॥

**अनुवाद**— महाराज पृथु से पहले गाँवों नगरों आदि की कल्पना नहीं थी लोग जहाँ कहीं भी सुख पूर्वक निवास करते थे ।।३२।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पृथु विजय नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।**

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

**इति श्रीमद्भागवते चतुर्थ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां अष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।**

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी ( श्रीधराचार्य ) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१८।।**

# उन्नीसवाँ अध्याय

## महाराज पृथु के सौ अश्वमेघ यज्ञ

मैत्रेय उवाच

**अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः । ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥१॥**

**अन्वयः**— अथ ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती स तु राजा हयमेधशतेन अदीक्षत ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् ब्रह्मावर्त नामक महाराज मनु के क्षेत्र में जहाँ सरस्वती नदी पूर्वाभिमुख बहती है वहाँ पर सौ अश्वमेघ यज्ञ करने के लिए महाराज पृथु ने दीक्षा ग्रहण की ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

ऊनविंशेऽश्वमेधाङ्गहयापहरणात्पृथोः । इन्द्रं हन्तुं प्रवृत्तस्य धात्रा बारणमुच्यते ॥१॥ हयमेधशतेन निमित्तेनादीक्षत दीक्षितोऽभूत् शताश्वमेधसङ्कल्पमकरोदित्यर्थः । ब्रह्मावर्ते 'सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते' ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

उन्नीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि महाराज पृथु के अश्वमेघ यज्ञ के अङ्गभूत अश्व का अपहरण कर लेने के कारण क्रुद्ध महाराज पृथु इन्द्र को मारने के लिए तैयार हो गये तो ब्रह्माजी ने उनको ऐसा करने से रोक दिया ॥१॥ महाराज पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का सङ्कल्प किया ब्रह्मवर्त का निर्देश करते हुए कहा गया है कि सरस्वती तथा दृषद्वती इन दोनों देव नदियो के बीच का जो स्थान है उसे ब्रह्मावर्त कहा जाता है ॥१॥

**तदभिप्रेत्य भगवान्कर्मातिशयमात्मनः । शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥२॥**

**अन्वयः**— भगवान् शतक्रतु आत्मनः कर्मातिशयम् अभिप्रेत्य पृथोः यज्ञमहोत्सवं न ममृषे ॥२॥

**अनुवाद**— भगवान् इन्द्र उसको अपने कर्मों से भी अधिक मानकर महाराज पृथु के उस यज्ञ महोत्सव को नहीं वर्दास्त कर सके ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मनः स्वस्य कर्मातिशेत इत्यतिशयमभिप्रेत्य ज्ञात्वा । तदिति तं पृथोर्यज्ञमहोत्सवं न ममृषे न सेहे ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

ये तो हमसे भी अधिक कर्म करने वाले हो जायेंगे इस तरह से विचार करके इन्द्र महाराज पृथु के उस यज्ञ महोत्सव को वर्दास्त नहीं कर सके ।।२।।

**यत्र यज्ञपतिः साक्षाद्भगवान्हरिरीश्वरः । अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः ।।३।।**

**अन्वयः**— यत्र यज्ञपतिः सर्वलोकगुरु, प्रभुः भगवान् हरिः ईश्वर साक्षात् अन्वभूयत ।।३।।

**अनुवाद**— उस यज्ञ में यज्ञों के स्वामी सर्वात्मा, सभी लोकों के गुरु तथा नियामक भगवान् श्रीहरि साक्षात् दर्शन दिए थे ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

अतिशयमेव दर्शयति–यत्रेति सप्तभिः । साक्षादन्वभूयत प्रत्यक्षेणादृश्यत ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

इन्द्र के कर्म से अतिशय को **यत्र० इत्यादि** सात श्लोकों से बतलाते हैं । भगवान् इस यज्ञ में साक्षात् दर्शन दिए थे ।।३।।

**अन्वितो ब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः । उपगीयमानो गन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ।।४।।**

**अन्वयः**— सहानुगैः लोकपालै ब्रह्मशर्वाभ्यां अन्वितः गन्धर्वैः मुनिभिः अप्सरोगणैः उपगीयमानः अन्वभूयत ।।४।।

**अनुवाद**— अनुचरों से युक्त लोकपालों तथा ब्रह्माजी एवं शङ्करजी के साथ श्रीभगवान् दर्शन दिए थे । उस समय गन्धर्व, मुनिजन तथा अप्सराएँ उनकी स्तुति कर रही थीं ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।४।।

**सिद्धविद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः । सुनन्दनन्दप्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ।।५।।**
**कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः । तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ।।६।।**

**अन्वयः**— सिद्ध विद्याधराः दैत्याः दानवाः गुह्यकादयः सुनन्दनन्द प्रमुखा हरेः पार्षदप्रवराः कपिल नारद दत्तः सनकादयः योगेश्वरः ये च तत्सेवनोत्सुकाः भागवताः तमन्वीयुः ।।५-६।।

**अनुवाद**— सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, यक्ष नन्द सुनन्द आदि श्रीभगवान् के प्रमुख पार्षदगण तथा जो सदा श्रीभगवान् की सेवा के लिए उत्सुक रहते हैं वे कपिल, नारद, दत्तात्रेय सनकादि योगेश्वर भी उनके साथ आये थे ।।५-६।।

### भावार्थ दीपिका

सिद्धादयश्च तं हरिमन्वीयुरित्युत्तरेणान्वयः ।।५-६।।

### भाव प्रकाशिका

सिद्ध इत्यादि उनके अनुगमन किए थे अर्थात् उनके साथ आये थे इसका छठे श्लोक के साथ अन्वय है ।।५-६।।

**यत्र धर्मदुधा भूमिः सर्वकामदुघा सती । दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ॥७॥**

**अन्वयः**— हे भारत ! यत्र धर्मदुघाभूमि सर्वकामदुघासती यजमानस्य अभीप्सितान् अर्थान् दोग्धिस्म ॥७॥

**अनुवाद**— हे भरतवंशीय विदुर उस यज्ञ में यज्ञ की सामग्रियों को प्रदान करने वाली भूमि, कामधेनु रूप होकर यजमान की सभी कामनाओं को पूर्ण करती थी ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

धर्मदुघा हविर्दोग्ध्री । धेनुः सती ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

यज्ञ की सामग्री प्रदान करने वाली ॥७॥

**ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् । तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥८॥**

**अन्वयः**— नद्यः सर्वरसान् ऊहुःभूरिवर्ष्माणः मधुच्युतः तरवः क्षीरदध्यन्नगोरसान् प्रासूयन्त ॥८॥

**अनुवाद**— उस यज्ञ में नदियाँ ईख तथा राख इत्यादि सभी रसों को तथा दूध, दही, घी तथा तक्र आदि प्रवाहित करती थीं तथा विशालकाय वृक्ष जिनसे मधु चूता रहता था वे फल प्रदान करते थे ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

ऊहुर्वहन्ति स्म । सर्वरसानिक्षुद्राक्षादिरसान् । क्षीरं च दधि च अन्नं च पानकादि गोरसो घृतं तक्रं च तांश्च । भूरीणि विस्तृतानि वर्ष्माणि शरीराणि येषां ते, फलादि प्रासूयन्त । मधुच्युतो मधुस्राविणः सन्तः ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

नदियाँ ईख इत्यादि के रसो तथा दूध, दही अन्न पानक आदि गोरस घृत तथा तत्र आदि को प्रवाहित करती थीं और विशालकाय मधुस्रावी वृक्ष फलों को उत्पन्न करते थे ॥८॥

**सिन्धवो रत्ननिकरान्गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् । उपायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥९॥**

**अन्वयः**— सिन्धव रत्ननिकरान् गिरयःचतुर्विधमन्नम्, सपालकाः सर्वे लोकाः उपायनम् आजह्रुः ॥९॥

**अनुवाद**— समुद्र रत्नों के समूहों का पर्वत भक्ष्य भोज, लेह्य और चोष्य चारो प्रकार के अन्नों को तथा लोकपालों के साथ सभी लोक उनको उपहार प्रदान करते थे ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

चतुर्विधं भक्ष्यं भोज्यं चोष्यं लेह्यं च ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

चार प्रकार के अन्न ये हैं भक्ष्य, भोज्य, चोष्य एवं लेह्य ॥९॥

**इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् । असूयन्भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत् ॥१०॥**

**अन्वयः**— अधोक्षजेशस्य पृथोस्तु इति परमोदयम् भगवान् इन्द्र असूयत, प्रतिघातम् अचीकरत् ॥१०॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् को ही अपना स्वामी मानने वाले पृथु के इस अत्यन्त उत्कर्ष के भगवान् इन्द्र नहीं सह सके और उन्होंने उसमें विघ्न किया ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

अधोक्षज ईशो नाथो यस्य । परम उदयोऽभिवृद्धिर्यस्मिंस्तत् कर्म असूयन्नसहमानः प्रतिघातं विघ्नं चकारेत्यर्थः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ही जिनके स्वामी हैं ऐसे पृथु के अत्यन्त उत्कर्ष को नहीं सहने के कारण इन्द्र ने विघ्न किया॥१०॥

**चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् । वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥११॥**

**अन्वयः**— चरमेण अश्वमेधेन वैन्ये यजुष्पतिम यजमाने स्पर्धन् यज्ञपशुम् तिरोहितः अपोवाह ॥११॥

**अनुवाद**— जब महाराज पृथु अपने अन्तिम अश्वमेध के द्वारा यज्ञपति भगवान् विष्णु की आराधना कर रहे थे उसी समय इर्ष्यावश इन्द्र तिरोहित होकर यज्ञ के अश्व का अपहरण कर लिए ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

वैन्ये यजुष्पतिं विष्णुं यजमाने सति स्पर्धमान इन्द्रस्तिरोहितः सन्नश्वमपहृतवान् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

जब महाराज पृथु यज्ञ के स्वामी भगवान् विष्णु की आराधना कर रहे थे उस समय पृथु से ईर्ष्या करने वाले इन्द्र तिरोहित होकर यज्ञ के अश्व का अपहरण कर लिए ॥११॥

**तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा । आमुक्तमिव पाखण्डं योऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥१२॥**

**अन्वयः**— विहायसा त्वरमाणं पाखण्डे याः अधर्मे धर्म विभ्रमः आमुक्तमिव तं भगवान् अत्रिः ऐक्षत् ॥१२॥

**अनुवाद**— आकाश मार्ग से बड़ी तेजी से जाते हुए तथा पाखण्ड को ही जिसके कारण अधर्म में ही धर्म की बुद्धि हो जाती है, अपने कवच के रूप में अपनाए हुए इन्द्र को महर्षि अत्रि ने देख लिया ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वरमाणं धानन्तम् । 'आमुक्तः प्रतिमुक्तश्च पिनद्धश्चापिनद्धवत् । सन्नद्धो वर्मितः सज्जः' इत्यमरसिंहः । पाखण्डं वेषं कवचमिव गृहीतवन्तमित्यर्थः । अधर्मे धर्मविभ्रमो धर्मोऽयमिति भ्रान्तिकरो यस्तम् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

आकाश मार्ग पर तेजी से जाते हुए अत्रि महर्षि ने देख लिया । उससमय इन्द्र पाखण्ड को ही अपने कवच रूप से धारण किए थे । आमुक्तः शब्द कवच का वाचक है । **अमरकोशकार** कहते हैं— **आमुक्तः प्रतिमुक्तश्च पिनद्ध्यापिनद्धवत् । सन्नद्धः वर्मितः सज्जः** अर्थात्, अमुक्त, प्रतिमुक्त, पिनद्ध, अपिन्द्धवत्, सन्नद्ध, वर्मितः सज्जः ये सभी कवच के नाम है । उस अधर्म रूप पाखण्ड में धर्म का भ्रम हो जाता है ॥१२॥

**अत्रिणा चोदितो हन्तुं पृथु पुत्रो महारथः । अन्वधावत संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥१३॥**

**अन्वयः**— अत्रिणा हन्तुं चोदितः महारथः पृथु पुत्रः संक्रुद्धः अनवधावत् तिष्ठ तिष्ठेति च अब्रवीत् ॥१३॥

**अनुवाद**— महर्षि अत्रि के द्वारा मारने के लिए प्रेरित महाराज पृथु का महारथी पुत्र इन्द्र के पीछे क्रोध करके दौड़ा और कहा ठहरो ! ठहरो !!॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥१३॥

**तं तादृशाकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मशरीरिणम् । जटिलं भस्मनाच्छन्नं तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥१४॥**

**अन्वयः**— तं तादृशाकृतिं जटिलं भस्मना छन्नं धर्मशरीरिणं मेने, तस्मै बाणं न मुञ्चचति ॥१४॥

**अनुवाद**— इन्द्र को जटा धारण किए हुए तथा शरीर में भस्म धारण किए हुए देखकर वह उसे धार्मिक मानकर इन्द्र पर बाण नहीं चलाया ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

न मुञ्चति स्म ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

बाण नहीं चलाया ॥१४॥

**वधान्निवृत्तं तं भूयो हन्तवेऽत्रिरचोदयत् । जहि यज्ञहनं तात महेन्द्र विबुधाधमम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— वधात् निवृत्तं तं भूयः अत्रिः हन्तवे अचोदयत् । तात यज्ञहनं विवुधाधमम् महेन्द्रं जहि ॥१५॥

**अनुवाद**— जब वह इन्द्र पर वार किए बिना लौट आया तो अत्रि महर्षि उसको पुनः इन्द्र को मारने के लिए प्रेरित करते हुए कहा वत्स यह यज्ञों को विनष्ट करने वाला देवाधम इन्द्र है इसे मार डालो ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

हन्तवे हन्तुम् । यज्ञहनं यज्ञं हतवन्तम् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

हन्तवे का अर्थ मारने के लिए । यज्ञ हनम् का अर्थ है यज्ञ को विनष्ट करने वाला ॥१५॥

**एवं वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा । अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥१६॥**

**अन्वयः**— एवं प्रोक्तः वैन्यसुतः क्रुद्धः त्वरमाणं रावणं गृध्रराडिव अन्वद्रवत् ॥१६॥

**अनुवाद**— इस तरह से महर्षि अत्रि के द्वारा कहे जाने पर महाराज पृथु का पुत्र शीघ्रता से जाते हुए इन्द्र के पीछे क्रुद्ध होकर उसी तरह दौड़े जिस तरह रावण के ऊपर गृध्रराज जटायु टूट पड़े थे ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

गृध्रराट् जटायुः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

गृध्रराट् शब्द से यहाँ जटायु को कहा गया है ॥१६॥

**सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट् । वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥१७॥**

**अन्वयः**— सः स्वराट, तत् रूपं अश्वं च हित्वा तस्मै अन्त अन्तर्हितः वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञम् उपेयिवान्॥१७॥

**अनुवाद**— स्वर्ग पति इन्द्र उसे पीछे आते देखकर उस रूप तथा अश्व को छोड़कर अन्तर्धान हो गये और महाराज पृथु के पुत्र अपने अश्व को लेकर अपने पिता के यज्ञ में आ गये ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

तस्मै हित्वा तदर्थमुत्सृज्य ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

पृथु पुत्र के लिए त्यागकर ॥१७॥

**तस्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः । नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे प्रभो ! तस्य तत् अद्भुतं कर्मवीक्ष्य परमर्षयः । तस्मै विजिताश्व इति नाम धेयं ददुः ॥१८॥

**अनुवाद**— पृथु पुत्र के उस अद्भुत कर्म को देखकर महर्षियों ने उसका नाम विजिताश्व रखा ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

विचक्ष्य दृष्ट्वा ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

विचक्ष्य का अर्थ देखकर हैं ॥१८॥

**उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः । चषालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥१९॥**

**अन्वयः**— हरिः तीव्रं तमः उपसृज्य पुनः विभुः चषाल यूपतः हिरण्यरशनम् अश्वं जहार ॥१९॥

**अनुवाद**— इन्द्र फिर घोर अन्धकार उत्पन्न करके अन्धकार में छिपे हुए चषाल स्तम्भ से सुवर्ण के जंजीर सहित अश्व का हरण कर लिए ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

उपसृज्य सृष्ट्वा तेन च्छन्नः सन् । चषालो यूपाग्रे निक्षिप्तः काष्ठकटकस्तद्युक्ताद्यूपात् । हिरण्यनिर्मिता रशना यस्य तम्। रशनाया दृढत्वेन च्छेदाशक्त्या रशनासहितमेवोद्धृत्य यूपाग्रान्नीतवानित्यर्थः । विभुः समर्थः ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

उपसृज्य अर्थात् उत्पन्न करके । उस अन्धकार में छिपकर स्तम्भ के आगे वाले भाग में रखे हुए बलयाकार काष्ठ को चषाल कहते है । उसमें सुवर्ण की जंजीर में बँधे हुए अश्व को समर्थ इन्द्र जंजीर के साथ अपहरण कर लिए । जंजीर मजबूत था इसलिए वे उसको काट नहीं सके ॥१९॥

**अत्रिः संदर्शयामास त्वरमाणं विहायसा । कपालखट्वाङ्गधरं वीरो नैनमबाधत ॥२०॥**

**अन्वयः**— विहायसा त्वरमाणं कपाल इन्द्रं दर्शयामास वीरः कपाल खट्वाङ्गधरं एनम् न अबाधत ॥२०॥

**अनुवाद**— महर्षि अत्रि आकाश मार्ग से शीघ्रता पूर्वक जाते हुए इन्द्र को दिखा दिए किन्तु कपाल और खट्वाङ्ग धारण किए हुए इन्द्र पर पृथु पुत्र बाण नहीं चलाये ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२०॥

**अत्रिणा चोदितस्तस्मै संदधे विशिखं रुषा । सोऽश्वं रूपवं च तद्धित्वा तस्थावन्तर्हितः स्वराट्॥२१॥**

**अन्वयः**— अत्रिणा चोदितः एष तस्मै विशिखं संदधे स च स्वराट् तदरूपं अश्वं चहित्वा अन्तर्हितः तस्थौ ॥२१॥

**अनुवाद**— महर्षि अत्रि के द्वारा प्रेरित होकर वीर ने क्रोध करके तीव्र बाण का संधान किया किन्तु स्वर्गपति इन्द्र अश्व और रूप को त्यागकर अन्तर्धान हो गये ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२१॥

**वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् । तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥२२॥**

**अन्वयः**— अथ वीरः अश्वम् उपादाय पितुर्यज्ञम् उपाव्रजत् । हरेः तत् अवद्यं रूपं ज्ञानदुर्बलाः जगृहुः ॥२२॥

**अनुवाद**— वीर उस अश्व के लेकर अपने पिता के यज्ञ में आ गये । इन्द्र के उस निन्दित वेष को अज्ञानियों ने धारण कर लिया ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

अवद्यं निन्दितं रूपं मन्दप्रज्ञा जगृहुः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

इन्द्र के उस निन्दित रूप को अज्ञानियों ने ग्रहण कर लिया ॥२२॥

**यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया । तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते ॥२३॥**

**अन्वयः**— हय जिहीर्षया इन्द्रः यानि रूपाणिजगृहे तानि पापस्य खण्डानि खण्डं लिङ्ग मिहोच्यते ॥२३॥

**अनुवाद**— अश्व का अपहरण करने के लिए इन्द्र ने जिन रूपों को धारण किया था वे पाप के खण्ड हैं । खण्ड शब्द से चिह्न को कहा गया है ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

तदेव पाखण्डानामनिरुक्त्या दर्शयति-यानीति । बहुवचनेन चान्यान्यपि गृहीतानीत्युक्तम् ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

पाखण्ड नाम की निरुक्ति के द्वारा बतलाते हैं **खण्डानि** इस बहुवचनात प्रयोग से अन्य रूपों को जिनको इन्द्र ने ग्रहण किया था उसको सूचित किया गया है ।।२३।।

**एवमिन्द्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया । तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिर्नृणाम् ।।२४।।**

**अन्वयः**— वैन्ययज्ञजिघांसया इन्द्रे अश्वं हरति तद्गृहीत विसृष्टेषु पाखण्डेषु नृणां धर्म मति भवति ।।२४।।

**अनुवाद**— महाराज पृथु के यज्ञ को विनष्ट करने की इच्छा से अश्व को चुराते समय इन्द्र ने जिन रूपों को धारण किया वे पाखण्ड हैं किन्तु उन सबों को धर्म समझकर लोगों की बुद्धि मोहित हो जाती है, और वे उसे ही धर्म समझने लगते हैं ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

तत्प्रभृति पाखण्डमार्गाः प्रवृत्ता इत्याह-एवमिति तेन गृहीतेषु पुनर्विसृष्टेषु नग्ना जैनाः । रक्तपटा बौद्धाः । आदिशब्देन कापालिकादयस्तेषूपधर्मेषु धर्मोपमेषु धर्म एवायमिति मतिः सज्जत इति द्वयोरन्वयः । पेशलेषु आपाततो रम्येषु । वाग्मिषु हेतूक्तिचतुरेषु ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

एवम् इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाया गया है कि उसी समय से पाप मार्ग प्रारम्भ हुए हैं । इन्द्र के द्वारा धारण करके छोड़ दिए धर्म हैं नग्नजैन, लाल वस्त्रधारी बौद्ध इत्यादि । आदि शब्द से कापालिक आदि के धर्म के समान प्रतीत होने वाले उपधर्मों में लोगों की धर्म बुद्धि हो जाती है । इन दोनों श्लोकों का एक साथ अन्वय है । ये देखने में सुन्दर हैं । बोलने में चतुर लोगों ने इन सबों का प्रचार किया है ।।२४।।

**धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु । प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ।।२५।।**

**अन्वयः**— नग्न रक्त पटादिषु पेशलेषु वाग्मिषु उपधर्मेषु प्रायेण धर्म इति बुद्धि उपसृजते ।।२५।।

**अनुवाद**— जैन, बौद्ध इत्यादि जो देखने में सुन्दर और बोलने में चतुर लोगों के द्वारा गृहीत उपधर्म हैं, इनमें ही लोग की भ्रम वशात् धर्म बुद्ध हो जाती है ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२५।।

**तदभिज्ञाय भगवान्पृथुः पृथुपराक्रमः । इन्द्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ।।२६।।**

**अन्वयः**— तदभिज्ञाय पृथुपराक्रमः भगवान् पृथुः इन्द्राय कुपितः उद्यत कार्मुकः बाणम् आदत्त।।२६।।

**अनुवाद**— इन्द्र की उस दुष्टता को जानकर प्रबल पराक्रमी भगवान् पृथु अपना धनुष उठाकर उस पर बाण चढाये ।।२६।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२६।।

**तमृत्विजः शक्रवधाभिसंधितं विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ।**
**निवारयामासुरहो महामते न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ।।२७।।**

**अन्वयः**— शक्रवधाभिसंधितम् असह्य रंहसम् दुष्प्रेक्ष्यम् तम् विचक्ष्य ऋत्विजः अहोमहामते ! अत्र प्रचोदितात् अन्यवधः न युज्यते इति निवारयामासुः ।।२७।।

**अनुवाद**— इन्द्र का वध करने के लिए उद्यत, जिनके वेग को कोई वर्दास्त नहीं कर सकता है, और क्रोध के कारण तमतमाये होने के कारण दुष्प्रेक्ष्य उन महाराज पृथु को देखकर ऋत्विजों ने हे महामते ! इस समय आप यज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं अतएव शास्त्र विहित वध के अतिरिक्त दूसरे का वध करना उचित नहीं है, यह कहकर उन्हे रोका ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

शक्रवधेऽभिसंधितं कृताभिप्रायम् । प्रचोदितात्पशोर्वधादन्यस्य वधस्तव न युज्यते ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

इन्द्र के वध का उनका अभिप्राय देखकर ऋत्विजों ने कहा कि इस समय शास्त्र विहित पशु के वध से भिन्न किसी दूसरे किसी का वध करना आपके लिए उचित नहीं है ॥२७॥

**वयं मरुत्वन्तमिहार्थनाशनं ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ।**
**अयातयामोपहवैरनन्तरं प्रसह्य राजन् जुहवाम तेऽहितम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— इहार्थनाशनम्त्वछ्रबसाहतत्विषम् आयातयामोपहवैः अनन्तरं ते अहितम् मरुत्वन्तम् वयं जुहवाम्॥२८॥

**अनुवाद**— इस यज्ञ कार्य में विघ्न डालने वाले, आपके यश के द्वारा ही जिसका तेज विनष्ट हो गया है, उस आपके शत्रु इन्द्र को अमोघ मन्त्रों द्वारा आवाहित करके हमलोग उसकी आहुति दे देते हैं ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

तद्वधं तु वयं करिष्याम इत्याहुः । वयमिह यज्ञनाशकं त्वत्कीर्त्यैव हतप्रभमिन्द्रमाह्वयामहे । कैः । अयातयामैरगतवीर्यैराह्वानमन्त्रैः । अनन्तरं च ते तवाहितं जुहवाम होष्यामः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

ऋत्विजों ने कहा उस इन्द्र का वध तो हमलोग करेंगे । आपके यज्ञ को विनष्ट करने वाले आपकी कीर्ति के द्वारा ही उसका तेज विनष्ट हो गया है । उस इन्द्र को अपने प्रबल मन्त्रों द्वारा आवाहित करके उसके पश्चात् हमलोग उसकी आहुति दे देंगे ॥२८॥

**इत्यामन्त्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा । स्रग्घस्तान् जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयंभूः प्रत्यषेधत ॥२९॥**

**अन्वयः**— विदुर ! इति अस्य ऋत्विजः रुषा क्रतुपतिम् आमन्त्र्य स्रुग्धस्तान जुह्वतः स्वयम्भुः अभ्येत्य न्यवारयत्॥२९॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! इस तरह से महाराज पृथु के ऋत्विजों ने क्रोध पूर्वक इन्द्र को आवाहित करके स्रुक हाथ में लिए हुए होम करने वाले ऋत्विजों को ब्रह्माजी आकर रोके ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

अस्य पृथोः । स्रुक् हस्ते येषां तान् ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

हाथ में स्रुक लिए हुए महाराज पृथु के ऋत्विजों को ब्रह्माजी ने आकर रोका ॥२९॥

**न वध्यो भवतामिन्द्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः । यं जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ॥३०॥**

**अन्वयः**— इन्द्रः भवताम् वध्योन यद् यज्ञो भगवत् तनुः । यं यज्ञेन जिघांसथ यस्य इष्टतनवः सुराः ॥३०॥

**अनुवाद**— याग को तुमलोगों को इन्द्र का वध नहीं करना चाहिए । यह इन्द्र संज्ञक यज्ञ श्रीभगवान् का शरीर है । यज्ञ द्वारा जिन देवताओं की आराधना आप लोग कर रहे हैं, वे इन्द्र के प्रिय शरीर हैं ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

यमिन्द्रं यज्ञेन जिघांसथ । यज्ञेनेष्टाः सर्वे सुरा यस्य तनवः स इन्द्रो भवतां वधार्हो न भवति । यद्यस्माद्यज्ञो नामाऽयमिन्द्रो भगवतस्तनुरवतारः । 'ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत । स यमाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरं' इत्युक्तत्वात् ।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

जिस इन्द्र को यज्ञ के द्वारा तुमलोग मारना चाहते हो आपलोग यज्ञ के द्वारा जिन देवताओं की आराधना करते है वे देवता इन्द्र के शरीर हैं । अतएव वे इन्द्र आपलोग द्वारा वध के योग्य नहीं है । क्योंकि यज्ञ नामक इन्द्र श्रीभगवान् का शरीरावतार है । कहा जा चुका है कि सातवें अवतार में भगवान रुचि देवी के गर्भ से यज्ञ रूप से अवतीर्ण हुए । उन्होंने याम संज्ञक देवों से स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की ।।३०।।

**तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः । इन्द्रेणानुष्ठितं राज्ञः कर्मैतद्विजिघांसता ।।३१।।**

**अन्वयः**— हे द्विजाः ! तदिदं महद्धर्म व्यतिकरं पश्यत राज्ञः कर्मैत द्विजिघांसता इन्द्रेण अनुष्ठितः ।।३१।।

**अनुवाद**— हे ब्राह्मण ! यह धर्म के महती पंक्ति को आपलोग देखें, महाराज पृथु के यज्ञ को विनष्ट करने के लिए इन्द्र ने ही इन सबों का प्रचार किया है ।।३१।।

### भावार्थ दीपिका

अतो बलीयसाऽनेन सख्यमेव कर्तव्यम्, अन्यथा भूयः पाखण्डं स्रक्ष्यतीत्याशयेनाह । तदिदमिन्द्रेणानुष्ठितं महदन्याय्यं पश्यत। किमित्यपेक्षायामाह । धर्मस्य व्यतिकरं विपर्ययं पाखण्डपथम् ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

अतएव इस बलवान् इन्द्र से मित्रता ही कर लेनी चाहिए । नहीं तो यह और अधिक पाखण्ड की सृष्टि करेगा । इन्द्र के द्वारा धारण किए गये महान अन्याय को तुम लोग देखों इसके चलते धर्म का पाखण्ड मार्ग ।।३१।।

**पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः । अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ।।३२।।**

**अन्वयः**— तर्हि पृथुकीर्तेः पृथोः एकोन शतक्रतुः भूयात् । ते स्विष्टै क्रतुभिः अलम् यद् भवान् मोक्ष धर्मवित् ।।३२।।

**अनुवाद**— अतएव महान् यशस्वी पृथु के निन्यानबे ही यज्ञ रहें । राजन् आप तो मोक्ष धर्म के ज्ञाता है आपको इन यज्ञों के अनुष्ठान से क्या लाभ है ?।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

तर्हि किमत्र युक्तमित्यत-आह पृथुकीर्तेरिति । एकेनोनं शतं यस्मिंस्तादृशः क्रतुः क्रतुप्रयोगः पृथोर्भूयात् । पृथुरिति पाठे एकोनशतं क्रतवो यस्य तादृशोऽपि महेन्द्रात्पृथुकीर्तिः भूयादित्यर्थः । तदेवमृत्विजः प्रत्युक्त्वा पृथुं प्रत्येवाह-अलमिति ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

तो फिर इस विषय में क्या करना उचित है तो इस पर ब्रह्माजी ने कहा पृथु महायशस्वी हैं, अतएव इनके निन्नानबे ही याग रहें । इनका इन्द्र से अधिक यश हो । इस तरह से ऋत्विजों से कहकर ब्रह्माजी पृथु से कहा अब आप यज्ञ करना बन्द करें । आप तो मोक्ष धर्म के ज्ञाता हैं ।।३२।।

**नैवात्मने महेन्द्राय रोषमाहर्तुमर्हसि । उभावपि हि भद्रं त उत्तमश्लोकविग्रहौ ।।३३।।**

**अन्वयः**— उभौ अपि हि उत्तमश्लोकविग्रहौ ते हि भद्रम् आत्मने महेन्द्राय शेषमनैव आहर्तुम् अर्हसि ।।३३।।

**अनुवाद**— इन्द्र और आप दोनों पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् के शरीर हैं । आपका मङ्गल हो आप अपने स्वरूप इन्द्र पर क्रोध न करें ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनैवात्मने महेन्द्राय रोषं कर्तुं नार्हसि । तत्र हेतुः-उभावपीति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

आप अपने स्वरूप भूत इन्द्र पर क्रोध नहीं करें । आप दोनों ही पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् के शरीर हैं ॥३३॥

**मास्मिन्महाराज कृथाः स्म चिन्तां निशामयास्मद्वच आदृतात्मा ।**
**यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥३४॥**

**अन्वयः**— महाराज ! अस्मिन् चिन्ता मास्म कृथाः अस्मद्वच आदृतात्मा निशामय यद् दैवहतं कर्तुं नु ध्यायतः अतिरुष्टं मनः तमोन्धम् विशते ॥३४॥

**अनुवाद**— हे महाराज ! मेरा यह यज्ञ विघ्नित हो गया यह सोचकर आप चिन्ता न करें, मेरी बात आप आदर पूर्वक स्वीकार करें । जो मनुष्य विधाता के बिगाड़े हुए काम को बनाने का प्रयत्न करता है, उसका मन अत्यन्त क्रोध में भरकर भयङ्कर मोह में फँस जाता है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तथापि क्रतुसमाप्तिमेव ध्यायन्तं प्रत्याह । अस्मिन्यज्ञविघ्ने चिन्तां मा स्म कृथाः । यद्यस्माद्दैवहतं कार्यं कर्तुं ध्यायतो मनो तु निश्चितमतिरुष्टं सदन्धं तमो मोहं विशति नतु शान्तिं लभते ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

फिर भी क्रतु की समाप्ति के विषय में चिन्ता करने वाले राजा के प्रति ब्रह्माजी ने कहा— आप इस यज्ञ के विघ्न के विषय में चिन्ता न करें, क्योंकि विधाता के विगाड़े हुए कार्य को करने के लिए विचार करने वाले का मन अत्यन्त रुष्ट होकर मोह में फँस जाता है ॥३४॥

**क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः । धर्मव्यतिकरो यत्र पाखण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥३५॥**

**अन्वयः**— एष क्रतुः विरमताम् देवेषु दुखग्रहः । यत्र इन्द्रनिर्मितैः पाखण्डैः धर्म व्यतिकरः ॥३५॥

**अनुवाद**— अतएव आप इस यज्ञ को बन्द कर दीजिये । यदि कहें कि आप इन्द्र को क्यों नहीं रोकते हैं तो इसका उत्तर है कि देवताओं में बड़ा ही दुराग्रह होता है । इस यज्ञ के ही कारण इन्द्र के द्वारा निर्मित पाखण्ड से धर्म का नाश होता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अतएव तव क्रतुर्विरमतु । नन्विन्द्रः किं न निवार्यतेऽत आह । यतो देवेषु दुराग्रहो भवतीति । यत्र क्रतौ ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

आप इस यज्ञ को बन्द कर दें । यदि कहें कि आप इन्द्र को क्यों नहीं रोकते हैं, तो इसका उत्तर है कि देवता दुराग्रही होते हैं । इस यज्ञ के ही कारण इन्द्र के द्वारा निर्मित पाखण्ड से धर्म का नाश हो रहा है ॥३५॥

**एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाखण्डैर्हारिभिर्जनम् । ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥३६॥**

**अन्वयः**— यस्ते यज्ञध्रुक् अश्वमुट् इन्द्रोपसंसृष्टै एभिः हरिभिः पाखण्डैः एनं ह्रियमाणं जनम् विचक्ष्व ॥३६॥

**अनुवाद**— जो आपके यज्ञ से द्रोह करने वाला अश्व को चुराने वाला है, उसके द्वारा रचित मनोहर पाखण्डों के द्वारा सारी जनता उसी ओर खिचीं जा रही हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

इन्द्रदुराग्रहकृतमनर्थं पश्येत्याह । एभिरिन्द्रेणोपसंसृष्टैरधिष्ठितैर्हारिभिश्चित्ताकर्षकैः । य इन्द्रस्तेऽश्वं मुष्णातीति तथा यज्ञाय दुह्यति तथा । तेन सृष्टैः ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

इन्द्र के दुराग्रह के कारण हुए अनर्थ को आप देखें । इन्द्र के द्वारा रचित इन चित्ता का पाखण्डों के द्वारा जनता इस पाखण्ड की ही और आकृष्ट हो रही है । यह इन्द्र जो आपके यज्ञश्व को चुराने वाला है और आपके यज्ञ से द्रोह करता है । उसी ने इन मायाओं की सृष्टि की हैं ॥३६॥

**भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपम् ।**
**वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलासि वैन्य ॥३७॥**

**अन्वयः**— हे वैन्य ! विष्णुकला असि वेनापचाराप्त अवलुप्तम् समयानुरूपम् जनानां धर्मं परित्रातुम् भवान् इह अद्य तद् देहतः अवतीर्णः ॥३७॥

**अनुवाद**— आप साक्षात् भगवान् विष्णु के अंश है, वेन के द्वारा किए गये अपचार के कारण जब धर्म लुप्त हो रहा था उस समय समयोचित धर्म की रक्षा करने के लिए वेन के ही शरीर से अवतीर्ण हुए हैं ।

**भावार्थ दीपिका**

ततो मम किमिति चेत्तत्राह- भवानिति द्वाभ्याम् । सांख्ययोगादिनानासिद्धान्तानुरूपं धर्मं वेनस्यान्यायालुप्तं परित्रातुं तद्देहाद्विष्णोः कलैव त्वमवतीर्णोऽसि ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि इससे मेरा क्या अपराध है तो इस पर ब्रह्माजी ने **भवान् इत्यादि** दो श्लोकों से कहा सांख्ययोग इत्यादि अनेक सिद्धान्तों के अनुरूप धर्म वेन के दुराचार के कारण लुप्त हो रहा था, उस धर्म की रक्षा करने के लिए आप वेन के ही शरीर से अवतीर्ण हुए हैं । आप भगवान् विष्णु के अंश हैं ॥३७॥

**सत्त्वं विमृश्यास्य भवं प्रजापते संकल्पनं विश्वसृजां पिपीपृही ।**
**ऐन्द्रीं च मायामुपधर्ममातरं प्रचण्डपाखण्डपथं प्रभो जहि ॥३८॥**

**अन्वयः**— प्रजापते सत्त्वं अस्य भवं विमृश्य विश्व सृजां सङ्कल्पनं पिपीपृहि हे प्रभो ! प्रचण्ड पाखण्ड पथं उपधर्म मातरं ऐन्द्री मायां जहि ॥३८॥

**अनुवाद**— हे प्रजाओं का पालन करने वाले राजन् आप इस विश्व की उत्पत्ति का विचार करके, भृगु आदि प्रजापतियों के सङ्कल्प को पूरा कीजिए । हे प्रभो ! यह प्रचण्ड पाखण्ड का मार्ग उप धर्म की जननी इस इन्द्र की माया को आप विनष्ट कर दें ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

हे प्रजापते, अस्य विश्वस्योद्भवं विचार्य यैरुत्पादितोऽसि तेषां विश्वसृजां संकल्पं पिपीपृहि, आर्षः प्रयोगः, पूरयेत्यर्थः। प्रचण्डो यः पाखण्डमार्गः सैवैन्द्री मायोपधर्मजननी तां जहि ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

हे प्रजाओं का पालन करने वाले, इस विश्व की उत्पत्ति का विचार करके जिन प्रजापतियों के द्वारा आप उत्पन्न किए गये हैं, उन भृगु आदि के सङ्कल्प को ही आप पूरा करें । पिपीपृहि यह आर्ष प्रयोग है । प्रचण्ड जो

पाखण्ड मार्ग है, वही इन्द्र की माया जैन, बौद्ध आदि उपधर्मों को उत्पन्न करने वाली है। हे प्रभो आप उसको विनष्ट कर दें ॥३८॥

मैत्रेय उवाच

**इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशांपतिः। तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनापि च संदधे ॥३९॥**

**अन्वयः**— लोकगुरुणां इत्थं समादिष्टः स विशाम्पतिः तथा च कृत्वा वात्सल्यं कृत्वा मघोना अपि संदधे ॥३९॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— लोक गुरु ब्रह्माजी के द्वारा इस प्रकार से समझाये जाने पर महाराज पृथु यज्ञ के दुराग्रह को त्यागकर और वात्सल्य को अपनाकर इन्द्र के साथ भी सन्धि कर लिए ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

तथा च कृत्वा यज्ञाग्रहं हित्वा वात्सल्यं स्नेहं कृत्वेन्द्रेण सह संधानं च कृतवान् ॥३९॥

**भाव प्रकाशिका**

यज्ञ के प्रति दुराग्रह को त्यागकर और स्नेह को अपनाकर राजा ने इन्द्र के साथ सन्धि भी कर ली ॥३९॥

**कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे। वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥४०॥**

**अन्वयः**— भूरि कर्मणे कृतावभृथस्नानाय पृथवे ये वरदाः तद् वर्हिषि तर्पिता ते वरान् ददुः ॥४०॥

**अनुवाद**— बहुत अधिक कर्मों को करने वाले महाराज पृथु के अवभृथ स्नान कर लेने पर वरदान देने वाले जो देवता उस यज्ञ में पूजित हुए थे वे महाराज पृथु को वरदान दिए ॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

कृतमवभृथसंबन्धि स्नानं येन स तस्मै ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

अवभृथ स्नान करने वाले राजा को ॥४०॥

**विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः। आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥४१॥**

**अन्वयः**— हे क्षतः श्रद्धया लब्धदक्षिणा सत्कृता तुष्टाः सत्याशिषः, विप्राः, आदिराजाय आशिषः युयुजुः ॥४१॥

**अनुवाद**— हे विदुर, महाराज पृथु द्वारा श्रद्धा पूर्वक दक्षिणा दिए जाने के कारण समादृत तथा सन्तुष्ट जिनके आशीर्वाद सत्य ही होते हैं उन ब्राह्मणों ने महाराज पृथु को आशीर्वाद प्रदान किया ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥४१॥

**त्वयाहूता महाबाहो सर्व एव समागताः। पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥४२॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुविजये एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

**अन्वयः**— हे महाबाहो ! त्वयाहूताः सर्वएव समागताः पितुदेवर्षि मानवाः दानमानाभ्यां पूजिताः ॥४२॥

**अनुवाद**— सन्तुष्ट ब्राह्मणों ने कहा हे महाबाहो आपके द्वारा आहूत जो पितर देवता, ऋषि, और मनुष्य यहाँ आये थे वे ही सबके सब आपके द्वारा दान और सम्मान पूर्वक पूजित हुए हैं ॥४२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥**

**भावार्थ दीपिका**

तुष्टानां वाक्यं त्वयेति ।।४२।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोन विंशोऽध्यायः ।।१९।।**

**भाव प्रकाशिका**

सन्तुष्ट ब्राह्मणों का यह **त्वया इत्यादि** श्लोक वाक्य हैं ।।४२।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।**

# बीसवाँ अध्याय

## महाराज विष्णु की यज्ञशाला में भगवान् विष्णु का प्राकट्य

मैत्रेय उवाच

**भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः । यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥१॥**

**अन्वयः**— यज्ञैः तुष्टा यज्ञभुक् यज्ञपतिः भगवान् वैकुण्ठ अपि मघवता साकं तमभाषत् ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— महाराज पृथु के उन यज्ञों के द्वारा सन्तुष्ट हुए यज्ञों के भोक्ता तथा यज्ञ के स्वामी भगवान् विष्णु इन्द्र के साथ आकर महाराज पृथु से कहे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

विंशे तु विष्णुना साक्षात्पृथोर्यज्ञेऽनुशासनम् । वरदानप्रसङ्गेन प्रीतिश्चान्योन्यमीर्यते ॥१॥ मघवता साकमिन्द्रेण सह वर्तमानः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

पृथु के यज्ञ में साक्षात् भगवान् विष्णु के द्वारा वरदान के प्रसङ्ग में उपदेश तथा इन्द्र और पृथु में परस्पर में प्रेम का वर्णन बीसवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ मधवता साकम् का अर्थ है इन्द्र के साथ रहकर ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

**एष तेऽकारषीद्भङ्गं हयमेधशतस्य ह । क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि ॥२॥**

**अन्वयः**— एष ते हयमेधशतस्य भङ्गम् अकार्षीत् अमुष्य आत्मानं क्षमापयते क्षन्तुम् अर्हसि ॥२॥

**श्रीभगवान् ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् इस इन्द्र ने तुम्हारे सौ अश्वमेध यज्ञ के सङ्कल्प को भङ्ग किया है, यह आपसे क्षमा माँगता है इसे आप क्षमा कर दें ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मानं त्वां क्षमां कारयतोऽमुष्य त्वमपि क्षन्तुमर्हसि ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने को क्षमा करवाना चाहने वाले इसको आप क्षमा कर दें ॥२॥

**सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः । नाभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ।।३।।**

**अन्वयः**— हे नरदेव ! लोके सुधियः साधवः नरोत्तमा भूतेभ्यः न अभिद्रुह्यन्ति, यर्हि आत्मा कलेवरम् न ।।३।।

**अनुवाद**— हे राजन् ! सद्बुद्धि सम्पन्न सज्जन तथा श्रेष्ठ पुरुष दूसरों के प्रति द्रोह नहीं करते हैं क्योंकि देह आत्मा नहीं है ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

यर्हि यस्मात्कलेवरमात्मा न भवत्यतस्तदभिमानेन भूतानि नाभिद्रुह्यन्ति ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

चूकि शरीर आत्मा नहीं है, अतएव श्रेष्ठ पुरुष शरीराभिमान के कारण दूसरे जीवों से द्रोह नहीं करते हैं।।३।।

**पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया । श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ।।४।।**

**अन्वयः**— यदि त्वादृशाः पुरुषादेवमायया मुह्यन्ति तदा तु दीर्घया वृद्धसेवया परं श्रम एव ही जातः ।।४।।

**अनुवाद**— यदि देवताओं की माया से आप जैसे जीव मोहित हो जाते है तब तो दीर्घकाल तक की गयी वृद्धों की सेवा से केवल श्रम ही मिला ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।४।।

**अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः । आरब्ध इति नैवास्मिन्प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ।।५।।**

**अन्वयः**— अविद्याकामकर्मभिः आरब्ध अतः विद्वान् इमं कायम् इति अस्मिन् प्रतिबुद्धः न अनुषज्जते ।।५।।

**अनुवाद**— यह शरीर अविद्या (अज्ञान) काम (वासना) और कर्मभिः कर्मों के द्वारा निर्मित यह शरीर है, इस तरह से इस शरीर को मानकर इसमें आसक्त नहीं होते हैं ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

अविद्यास्वरूपाज्ञानं ततःकामस्ततः कर्म तैरारब्ध इति विद्वानत एव प्रतिबुद्ध आत्मज्ञोऽस्मिन्नैवानुषज्जते ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

अविद्या अर्थात् स्वरूपाज्ञाना काम अर्थात् वासना तथा उसके कारण उत्पन्न होने वाले कर्मों के द्वारा उत्पन्न यह शरीर है अतएव ज्ञानी व्यक्ति इस शरीर में आसक्त नहीं होते हैं ।।५।।

**असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते गृहे । अपत्ये द्रविणे वापि कः कुर्यान्ममतां बुधः ।।६।।**

**अन्वयः**— अस्मिन् शरीरे असंसक्तः कः बुध, अमुना उत्पादिते गृहे, अपत्ये, द्रविणे वापि ममतां कुर्यात् ।।६।।

**अनुवाद**— जो इस शरीर में आसक्त नहीं होता है वह कौन विज्ञपुरुष होगा ? जो इस शरीर से उत्पन्न होने वाले गृह, सन्तान अथवा धन में ममता करेगा ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

तथापि पुत्रादिममत्वेन भूतद्रोहेण च सङ्गो भवेत्तत्राह- असंसक्त इति ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

शरीर में आसक्ति नहीं होने पर भी पुत्रों आदि की ममता के कारण और जीवों से द्रोह के कारण आसक्ति तो हो ही सकती है, इस पर भगवान् ने **असंसक्तः इत्यादि** श्लोक को कहा है ।।६।।

**एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः । सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्मात्मात्मनः परः ॥७॥**

**अन्वयः**— असौ एकः, शुद्धः, स्वयंज्योतिः निर्गुणः गुणाश्रयः सर्वज्ञः, अनावृत्तः साक्षी निरात्मा आत्मनः परः ।।७।।

**अनुवाद**— आत्मा एक शुद्ध, स्वयम्प्रकाश, निगुर्ण, गुणाश्रय, सर्वत्र व्यापक, आवरण शून्य, सबका साक्षी और शरीर से भिन्न हैं ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रतिबोधक्रमं विवृण्वन् देहेऽनुषङ्गाभावमाह-एक इति द्वाभ्याम् । असावात्मा आत्मनो देहात्परो भिन्नः । तत्र नवधा वैलक्षण्येन भेदं साधयति-एक इति नवभिः पदैः । देहो हि बालयुवादिभेदादनेको मलिनश्च जडश्च सगुणश्च स्वकारणभूतगुणाश्रितश्च परिच्छिन्नश्च गृहादिभिरावृतश्च दृश्यश्च सात्मा च । आत्मा तु नैवमतो भिन्नः ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

ज्ञान की उत्पत्ति के क्रम की व्याख्या करते हुए भगवान् देह में होने वाली आसक्ति के अभाव को एकः इत्यादि दो श्लोकों से बतलाते हैं । यह आत्मा देह से पर अर्थात् भिन्न है देह में होने वाले आत्मा से नव प्रकार की भिन्नता को बतलाते हुए कहते हैं देह बाल युवत्व इत्यादि के भेद से अनेक है । वह मलिन जड, सगुण, अपने कारण भूत गुणों के अधीन, सीमित, गृह इत्यादि से आवृत, दृश्य और आत्मा से युक्त होता है । किन्तु आत्मा ऐसा नहीं है, अतएव शरीर आत्मा से भिन्न है ।।७।।

**य एवं सन्तमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः । नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥८॥**

**अन्वयः**— यः पुरुषः एवं सन्तमात्मानम् आत्मस्थं वेद स मयि स्थितः, प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः नाज्यते ।।८।।

**अनुवाद**— जो पुरुष इस देह स्थित आत्मा को इस प्रकार से जानता है, उसकी स्थिति मुझमें होती है, अतएव प्रकृति में रहकर भी वह प्रकृति के गुणों से लिप्त नहीं होता है ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मस्थं स्वस्मिन् स्थितम् । प्रकृतिस्थोऽपि देहस्थोऽपि तद्विकारैर्न लिप्यते । यतः स मयि ब्रह्मणि स्थितः ।।८।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने शरीर में विद्यमान आत्मा को इस प्रकार से जानने वाला पुरुष परमात्मा में स्थित रहने के कारण प्रकृति के गुणों से लिप्त नहीं होता है ।।८।।

**यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयान्वितः । भजते शनकैस्तस्य मनो राजन्प्रसीदति ॥९॥**

**अन्वयः**— राजन् यः स्वधर्मेण निराशीः मां नित्यं श्रद्धया भजते तस्य मनः शनकैः प्रसीदति ।।९।।

**अनुवाद**— हे राजन् ! जो अपने धर्म के द्वारा निष्काम भाव से श्रद्धा पूर्वक मेरी आराधना करता है, उसका मन धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है ।।९।।

**भावार्थ दीपिका**

इयमवस्था कस्योत्पद्यत इत्यपेक्षायामाह- यः स्वधर्मेणेति चतुर्भिः ।।९।।

**भाव प्रकाशिका**

यह अवस्था किसकी उत्पन्न होती है ? इसका उत्तर भगवान् ने **यः इत्यादि** चार श्लोकों से दिया है ।।९।।

**परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः । शान्तिं मे समवस्थानं ब्रह्म कैवल्यमश्नुते ॥१०॥**

**अन्वयः**— विशदाशयः परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनः शान्तिम् अश्नुते मे समवस्थानम् ब्रह्मकैवल्यमश्नुते ॥१०॥

**अनुवाद**— अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने पर मनुष्य का गुणों से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है । ऐसा होने पर उसको सम्यग्दर्शन रूप तत्त्वज्ञान हो जाता है, उसके पश्चात् वह शान्ति को प्राप्त कर लेता है । मुझमें और औदासीन्य पूर्वक अवस्था ही कैवल्य है, उसे वह प्राप्त कर लेता है ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

भवतु मनः प्रसन्नं, ततः किं तत्राह । यर्हि विशदाशयः प्रसन्नमनास्तदा परित्यक्तगुणः सन् सम्यग्दर्शनो भूत्वा शान्तिमश्नुते। शान्तिमेवाह । मम सम्यगौदासीन्येनावस्थानमेव ब्रह्म तदेव कैवल्यमश्नुते ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि मन के प्रसन्न हो जाने से कौन सा लाभ है ? तो इस पर भगवान् कहते हैं- जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब उसका गुणों से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है । ऐसा होकर मनुष्य तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेता है । वह तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् शान्ति प्राप्त कर लेता है । अच्छी तरह से मुझमें उदासीन भाव से स्थित रहने को ही ब्रह्म कैवल्य कहते हैं ॥१०॥

**उदासीनमिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् । कूटस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥११॥**

**अन्वयः**— उदासीनमेव अध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् कूटस्थम् इमम् आत्मानं वेद सः शोभनम् आप्नोति ॥११॥

**अनुवाद**— देह, ज्ञानं, कर्मेन्द्रियों तथा मन का अध्यक्ष इस आत्मा को जो कूटस्थ जानता है वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

सम्यग्दर्शनमेवाह । उदासीनमेवात्मानं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनां देहज्ञानकर्मेन्द्रियमनसामध्यक्षमिव स्थितमात्मानं यो वेद॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में सम्यग्दर्शन का ही वर्णन करते हैं । उदासीन ही आत्मा को द्रव्य (देह) ज्ञान क्रिया (इन्द्रियाँ) और आत्मा (मन) अध्यक्ष के स्थान स्थित इस कूटस्थ आत्मा को जो जानता है, वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥११॥

**भिन्नस्य लिङ्गस्य गुणप्रवाहो द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ।**
**दृष्टासु सम्पत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रियन्ते मयि बद्धसौहृदाः ॥१२॥**

**अन्वयः**— गुणप्रवाहः भिन्नस्य लिङ्गस्य द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः मयि बद्धसौहृदाः सूरयः दृष्टासु विपत्सु न विक्रियन्ते ॥१२॥

**अनुवाद**— गुण प्रवाहरूप आवागमन तो आत्मा से भिन्न लिङ्ग शरीर का होता है, वह भूत, इन्द्रिय, इन्द्रियाभिमानी देवता और चिदाभास की समष्टि रूप और परिच्छिन्न इसका आत्मा से कोई भी सबन्ध नहीं होता हैं । जिस ज्ञानी पुरुष का मुझमें सुदृढ अनुराग होता है वह सम्पत्ति अथवा विपत्ति को प्राप्त करके विकृत नहीं होता है ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

संसारिणः कथं कूटस्थत्वमत आह । भिन्नस्य लिङ्गस्य देहस्य गुणप्रवाहः संसारः । भिन्नत्वे हेतुः- द्रव्याद्यात्मकस्य। तत्र चेतना चिदाभासः । अतो दृष्टासु प्राप्तासु । हर्षशोकादिभिर्न विक्रियन्ते ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि संसारी जीव कूटस्थ कैसे हो सकता है ? तो इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं— गुण प्रवाह रूप संसार तो आत्मा से भिन्न लिङ्ग शरीर का होता है । वह द्रव्य (भूत), क्रिया (इन्द्रियाँ), ज्ञान तथा आत्मा (मन) और चिदाभास की समष्टि रूप है । जिन ज्ञानी पुरुषों का मुझमें सुदृढ अनुराग होता है, वे सम्पत्ति अथवा विपत्ति को प्राप्त करके हर्ष एवं शोक रूप विकारों से विकृत नहीं होते हैं ॥१२॥

**समः समानोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखे च जितेन्द्रियाशयः ।**
**मयोपक्लृप्ताखिललोकसंयुतो विधत्स्व वीराखिललोकरक्षणम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— वीर ! समः समान्नोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखेच जितेन्द्रियाशयः मयोपक्लृप्ताखिल लोक संयुतः अखिललोकरक्षणं विधत्स्व ॥१३॥

**अनुवाद**— हे वीर ! तुम उत्तम, मध्यम तथा अधम सबों में एक समान दृष्टि रखकर सुख तथा दुःख में भी एक समान रहें मन एवं इन्द्रियों को अपने वश में करके मुझे ईश्वर के ही द्वारा सम्पादित सभी लोकों और मन्त्रियों आदि से युक्त रहकर तुम सम्पूर्ण लोगों की रक्षा करो ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वं च सूरिरतः सुखे दुःखे च समः सन् समाना उत्तममध्यमाधमा यस्य । जितानीन्द्रियाण्याशयश्च येन । स त्वमखिललोकरक्षणं विधत्स्व । कथमेकेन मया रक्षणं कर्तुं शक्यं तत्राह । मयेश्वरेणोपक्लृप्ताः संपादिता येऽखिला लोका अमात्यादयस्तैः संयुतः॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

तुम तो ज्ञानी हो अतएव सुख तथा दुःख दोनों में एक समान रहते हुए उत्तम मध्यम तथा अधम सबों को एक समान समझो । ऐसे तुम सभी लोकों की रक्षा करो । यदि कहो कि मैं अकेले कैसे रक्षा कर सकता हूँ तो इसका उत्तर है कि मेरे ही द्वारा सम्पादित सभी लोकों तथा मन्त्रियों को साथ लेकर रक्षा करने का काम करो॥१३॥

**श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्सांपराये सुकृतात्षष्ठमंशम् ।**
**हर्ताऽन्यथा हृतपुण्यः प्रजानामरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥१४॥**

**अन्वयः**— राज्ञः श्रेयः प्रजापालनम् एव, यत् सुकृतात् साम्पराये षष्ठमंशम् हर्ता, अन्यथा प्रजानामरक्षिता करहार हृतपुण्यः अघमत्तिः ॥१४॥

**अनुवाद**— राजा का प्रजाओं का पालन करने में ही कल्याण हैं, इससे परलोक में वह प्रजाओं के पुण्य का छठा भाग प्राप्त करता है । जो प्राजाओं का पालन किए बिना ही प्रजाओं से कर वसूलता रहता है, तो उस राजा के सम्पूर्ण पुण्य का प्रजा हरण कर लेती है और वह राजा प्रजाओं के पाप को ही खाता है ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु रक्षणं दण्डादिसापेक्षम्, अतस्तपोऽन्यद्वा पुण्यं करिष्यामीति चेदत आह-श्रेय इति । यद्यस्मात् सांपराये परलोके प्रजाभिः कृतात्सुकृतात्षष्ठमंशं हर्ता हरति । अरक्षणे दोषमाह । अन्यथा प्रजाभिर्हृतं पुण्यं यस्य स प्रजानामघमत्ति पापं भुङ्क्ते। अन्यथेत्यस्य विवरणम् करहारः सन्नरक्षिता चेत् ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि प्रजा की रक्षा करने में दण्ड आदि देना पड़ता है । अतएव मैं तपस्या अथवा दूसरा पुण्य कार्य करूँगा तो इस पर श्रीभगवान् कहते हैं **श्रेयः इत्यादि** प्रजाओं की रक्षा करने वाले राजा को प्रजाओं के द्वारा

किए गये पुण्यों का छठा भाग स्वर्ग लोक में प्राप्त होता है। प्रजाओं की रक्षा नहीं करने पर होने वाले पाप को बतलाते हैं प्रजा की रक्षा नहीं करने वाले राजा के सारे पुण्यों को उसकी प्रजा ले लेती हैं और वह राजा प्रजाओं के पापों को ही खाता है ॥१४॥

**एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानोऽन्यतमोऽविताऽस्याः ।**
**ह्रस्वेन कालेन गृहोपयातान् द्रष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥१५॥**

**अन्वयः**— एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानः, अस्याः अन्यतमः अविता, अनुरक्तलोकः त्वम् ह्रस्वेन कालेन गृरोपयातान् सिद्धान् द्रष्टाऽसि ॥१५॥

**अनुवाद**— इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अनुमति प्राप्त करके परम्परा प्राप्त इस धर्म का मुख्य रूप से पालन करो और इस पृथिवी के पालक बन जाओ। ऐसा करने से सारी प्रजा तुमसे प्रेम करेगी और थोड़े ही समय बाद तुम अपने घर पर आये हुए सनकादि सिद्धों का दर्शन प्राप्त करोगे ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं च मोक्षोऽप्यनायासेन भविष्यतीत्याह। द्विजाग्र्याणामनुमतश्चासावनुवृत्तश्च परम्पराप्राप्तो यो धर्मः स एव प्रधानमर्थकामौ तु प्रासङ्गिकौ यस्य। अन्यतमोऽतिशयेनान्यः। धर्मादिष्वनासक्त इत्यर्थः। ऐकपद्यपाठे धर्मप्रधानावन्यतमावर्थकामौ यस्येत्यर्थः अस्याः पृथिव्या अविता सन् अल्पेन कालेन गृहागतान्सनकादीन् द्रक्ष्यसि। अनुरक्तो लोको यस्मिन् सः ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से प्रजा पालन करने से तुम्हें अनायास ही मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगीं। श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अनुमत्ति प्राप्त करके परम्परातः प्राप्त यह प्रजा पालन का काम ही तुम्हारा प्रधान धर्म है। अर्थ और काम तो प्रसङ्गत प्राप्त होंगे ही। तुम आदि में अनासक्त रहकर इस पृथिवी का सर्वश्रेष्ठ रक्षक बन जाओ। **धर्म प्रधानाविता** इस तरह एक पद के रहने पर अर्थ होगा जिसके अर्थ और काम धर्म प्रधान हैं ऐसे इस पृथिवी के रक्षक तुम, थोड़े ही दिनों में अपने घर आये हुए सनकादि सिद्धों का दर्शन प्राप्त करोंगे ॥१५॥

**वरं च मत्कंचन मानवेन्द्र वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ।**
**नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥१६॥**

**अन्वयः**— हे मानवेन्द्र अहं ते गुणशीलयन्त्रितः, मत्तः कंचन वरं वृणीष्व। अहं वै मखैः, तपोभिः योगेन वान सुलभः यः समवर्ती ॥१६॥

**अनुवाद**— हे राजवर्य ! मैं आपके शम दमादिगुणो तथा मात्सर्य रहितता रूप शील गुणों से तुम्हारा वशवर्ती हो गया हूँ। तुम मुझसे कोई वरदान माँगो। मैं यज्ञों, तपस्याओं अथवा योग के द्वारा सुलभ नहीं हूँ, क्योंकि मैं तो समदर्शी पुरुषों के चित्त में निवास करता हूँ ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

मत् मत्तः सकाशात्किंचिद्वरं वृणीष्व। गुणाः शमादयः, शीलं निर्मत्सरत्वादिस्वभावः, तैरहं यन्त्रितो वशीकृत। तद्रहितैस्तु मखादिभिर्नाहं सुलभः। यतः समं चित्तं येषां तेष्वेव वर्तितुं शीलं यस्य सोऽहम् ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

तुम मुझसे कोई वरदान माँग लो। मैं तुम्हारे शमादि गुणों तथा मात्सर्यादि रहित रहने के स्वाभाव रूप शील गुण के अधीन हूँ। इन गुणों से रहित व्यक्ति के द्वारा अनुष्ठित यज्ञ, तपस्या और योग के द्वारा सुलभ नहीं हूँ। मैं तो समदर्शी जीवों के चित्त में निवास करता हूँ ॥१६॥

मैत्रेय उवाच

**स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् । अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥१७॥**

**अन्वयः**— लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन इत्थम् अनुशासितः सः विश्वजित् हरेः आदेशं शिरसा जगृहे ॥१७॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— सर्वलोक गुरु श्रीभगवान् के द्वारा इस प्रकार से उपदिष्ट विश्व विजयी महाराज पृथु ने भगवान् श्रीहरि के आदेश को शिरोधार्य किया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

**स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा । शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥१८॥**

**अन्वयः**— प्रेम्णा पादयोः स्पृशन्तं स्वकर्मणा व्रीडितं शतक्रतु परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ॥१८॥

**अनुवाद**— देवराज इन्द्र महाराज पृथु के चरणों को प्रेम पूर्वक स्पर्श कर रहे थे और वे अपने कर्म पर लजित थे उस समय महाराज पृथु ने इन्द्र को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उनके प्रति विद्वेष की भावना को त्याग दिया॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

क्षमापयितुं पादयोः स्पृशन्तम् । स्वेन कर्मणाऽश्वापहरणेन व्रीडितम् । प्रेम्णा परिष्वज्य ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

देवराज अपने अश्वापहार रूप अपराध को क्षमा करने के लिए महाराज पृथु के चरणों का स्पर्श कर रहे थे, वे अपने पर लज्जित भी थे ऐसे इन्द्र को महाराज पृथु ने उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और विद्वेष की भावना को त्याग दिया ॥१८॥

**भगवानथ विश्वात्मा पृथुनोपहृतार्हणः । समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणाम्बुजः ॥१९॥**
**प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलम्बितः । पश्यन्पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम् ॥२०॥**

**अन्वयः**— अथ विश्वात्मा भगवान् पृथुना उपहृतार्हणः समुज्जिहानया भक्त्या गृहीत चरणाम्बुजः प्रस्थानाभिमुखोऽपि अनुग्रहविलम्बितः सताम् सुहृत् पद्मपलाशाक्षः एनम् पश्यन् न प्रतस्थे ॥१९-२०॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् की पूजा महाराज पृथु ने की और अपनी उमड़ती हुई भक्ति के कारण उन्होंने श्रीभगवान् के पैरों को पकड़ लिया । यद्यपि भगवान् जाना चाहते थे फिर भी महाराज पृथु पर अनुग्रह बुद्धि के कारण वे विलम्ब करते रहे और महाराज पृथु को अपने कमल दल के समान सुन्दर नेत्रों से देखते हुए प्रस्थान नहीं किए ॥१९-२०॥

**भावार्थ दीपिका**

भगवान् प्रस्थानाभिमुखोऽप्यनुग्रहेण विलम्बितः सन्न प्रतस्थे प्रयाणं न कृतवानिति द्वयोरन्वयः । कथंभूतः । उपहृतमर्पितमर्हणं यस्मै । समुज्जिहानया समुद्गच्छन्त्या वर्धमानया भक्तया गृहीते चरणाम्बुजे यस्य । पद्मपलाशवदक्षिणी यस्य तथाभूतः सन् । एनं पृथुं पश्यन् ॥१९-२०॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् यद्यपि प्रस्थान करने के ही लिए तैयार थे फिर भी अपनी कृपा के परतन्त्र होने के कारण विलम्ब कर दिए और प्रस्थान नहीं किए । प्रश्न है कि कैसे भगवान् तो इस पर कहते हैं- महाराज पृथु ने उनकी पूजा कर ली थी और अपनी बढ़ती हुई भक्ति के कारण उन्होंने भगवान् के पैरों को पकड़ लिया था । वे अपने कमल दल के समान मनोज्ञ नेत्रों से पृथु को देखते रहे ॥१९-२०॥

**स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ।**
**न किंचनोवाच स वाष्पविक्लवो हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥२१॥**

**अन्वयः**— आदिराजः अश्रुलोचनः हरिं विलोकिंतुंन अशकत, वाष्पविक्लवः स किञ्चन न उवाच रचितञ्जलिः सः अमुम् हृदा उपगुह्य आधाद अवस्थितः ॥२१॥

**अनुवाद**— आदि राज पृथु आखों में आसू भर जाने के कारण श्रीभगवान् को नहीं देख पा रहे थे, वाणी के गद्‌गद हो जाने के कारण वे कुछ बोल भी नहीं पा रहे थे । वे हाथ जोड़े हुए श्रीभगवान् को अपने हृदय में स्थापित करके खड़े रहे ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

भगवतस्तत्कृपातिरेकमुक्त्वा तस्य भत्तयुद्रेकमाह-स इति द्वाभ्याम् । वाष्पविक्लवत्वेन तूष्णीमवस्थितः सन्नमुं हरिं हृदोपगुह्य अधाद्धृतवान् ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कृपा का अतिरेक वर्णन करने के पश्चात् महाराज पृथु के भक्ति के उद्रेक का वर्णन इस **स आदिराज० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । वाणी के गद्गद हो जाने के कारण महाराज मौन खड़े रहे ओर वे श्रीहरि को अपने हृदय में स्थापित कर लिया ॥२१॥

**अथावमृज्याश्रुकला विलोकयन्नतृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम् ।**
**पदा स्पृशन्तं क्षितिमंस उन्नते विन्यस्तहस्ताग्रमुरङ्गविद्विषः ॥२२॥**

**अन्वयः**— अथ अश्रुकला अवमृज्य अतृप्तदृग्गोचरं पदा क्षितिम् स्पृशन्तम् उरङ्ग विद्विषः उन्नते अंसे विन्यस्तहस्ताग्रम् पूरुषम् आह ॥२२॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् आंसुओं को पोंछकर अतृप्त नेत्रों के विषयभूत पैरों से पृथिवी का स्पर्श करने वाले और गरुड़ के ऊँचे कन्धे पर हाथ रखे हुए परम पुरुष भगवान् श्रीविष्णु से उन्होंने कहा ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

अतृप्तयोर्दृशोर्गोचरं विषयभूतम् । पदा क्षितिं स्पृशन्तमिति । अयं भावः-न खलु देवाः पदा भुवं स्पृशन्ति, अतः कृपापरवशो नूनं हरिरात्मानं विस्मृतवानिवेति । अतएव स्खलनपरिहारायैव गरुडस्योन्नते स्कन्धे विन्यस्तं हस्ताग्रं येन तम्॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

अपने अतृप्त नेत्र से पृथु ने देखा कि भगवान् अपने पैरों से पृथिवी का स्पर्श किए हुए हैं, **अयं भावः** कहने का भाव है कि देवता अपने पैरों से पृथिवी का स्पर्श नहीं करते हैं । लगता है कि कृपा परतन्त्र श्रीभगवान् अपने को भूल गये । अतएव इस गल्ती को दूर करने के लिए गरुड़ के उन्नत कन्धे पर हाथ रखे हुए श्रीभगवान् से महाराज पृथु ने कहा ॥२२॥

पृथुरुवाच

**वरान्विभो त्वद्वरदेवश्वराद्बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ।**
**ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे कैवल्यपते ! त्वद् वरदेश्वरात् बुधः येगुणविक्रियात्मनाम् नारकाणामपि देहिनां सन्ति हे ईश ! तान् वरान् कथं वृणृते । न च वृणे ॥२३॥

### महाराज पृथु ने कहा

**अनुवाद**— हे मोक्षपते प्रभो ! आप वरदान देने वाले ब्रह्मादि को भी वर देने में समर्थ हैं । कोई भी बुद्धिमान पुरुष आप से देहाभिमानि यो नारकीय जीवों को भोगने योग्य विषयों को कैसे माँग सकता है ? वे नारकीय जीवों को भी मिलते है अतएव मैं उन विषयों को नहीं माँगता हूँ ।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

वरं वृणीष्वेति यदुक्तं तदसहमान आह । हे विभो, वरदानां ब्रह्मादीनामीश्वराद्वरप्रदात्त्वत्त्वत्तः सकाशाद्बुधः कथं वरान्वृणीते। कीदृशान् । गुणैर्विक्रियत इति गुणविक्रियोऽहंकारः स एवात्मा येषां तेषां ब्रह्मादीनां संबन्धिनः । देहाभिमानिनां भोग्यानिति वा। तथा चेद्बुध एव न भवतीत्यर्थः । जुगुप्सितत्वादपीत्याह-ये इति । बुध एवाहमपि न वृणे इति समुच्चयाय चकारः ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् ने यह जो कहा है कि तुम वरदान माँगो उसको नहीं सह सकने के कारण पृथु महाराज ने कहा हे विभो ! ब्रह्मा आदि देवताओं को भी वरदान देने में समर्थ आप से कोई बुद्धिमान वरदान कैसे मागेगा ? कैसे वरदान ? तो इस पर कहते हैं अहङ्कार प्रधान ब्रह्मा आदि देहाभिमानियों के भोग्य भूत है । यदि कोई ऐसे वरदान को माँगता है वह बुद्धिमान है ही नहीं । श्लोक के चकार का अभिप्राय है कि मैं बुद्धिमान हूँ अतएव आपसे मैं वरदान नहीं माँगता हूँ । चकार समुच्चयार्थक है ।।२३।।

**न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।**
**महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ।।२४।।**

**अन्वयः**— हे नाथ ! अहम् क्वचित् तदपि न कामये यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः न महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतः कर्णायुतं विधत्स्व म एष वरः ।।२४।।

**अनुवाद**— हे नाथ ! मैं तो कहीं भी कभी भी उस मोक्षप्रद को भी नहीं चाहता हूँ । जहाँ पर महापुरुषों के हृदय से उनके मुख द्वारा निकला हुआ अपके चरण कमलों के मकरन्द नहीं है । अतएव मैं आपसे यहीं वरदान माँगता हूँ कि आप मुझे दश हजार कान प्रदान कर दें, जिनसे मैं आपके लीलामृत का श्रवण करता रहूँ ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

कैवल्यपत इति संबोधनात्कैवल्यं वरिष्यतीति माशङ्कीरित्याह-नेति । महत्तमानामन्तर्हृदयान्मुखद्वारेण निर्गतो भवत्पदाम्भोजमकरन्दो यशः श्रवणादिसुखं यत्र नास्ति तादृशं चेत्कैवल्यं तर्हि तत्क्वचित्कदाचिदपि न कामये । तर्हि किं कामयसे तदाह । यशः श्रवणाय कर्णानामयुतं विधत्स्व । ननु कोऽप्येवं न वृतवान् । किमन्यचिन्तयेत्याह । मम तु एष एव वरः ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

कैवल्यपत्ते इस सम्बोधन के द्वारा यह नहीं समझें कि कैवल्य माँगेगा । महापुरुषों के हृदय से उनके मुख द्वारा निकले हुए आपके चरण कमलों का मकरन्द अर्थात् यश जहाँ सुनने के लिए नहीं मिलता है ऐसे कैवल्य को मैं नहीं चाहता हूँ । यदि आप पूछें कि क्या चाहते हो ? तो इस पर महाराज पृथु कहते हैं कि आपके यश को सुनने के लिए आप मुझे दश हजार कान दे दें, यही वरदान मैं माँगता हूँ ।।२४।।

**स उत्तमश्लोकमहन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।**
**स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ।।२५।।**

**अन्वयः**— हे उत्तम श्लोक महन्मुखच्युतः भवत्पदाम्भोज सुधाकणानिलः विस्मृततत्त्ववर्त्मनां नः कुयोगिनां स्मृति अलं वरैः वितरति ।।२५।।

**अनुवाद**— हे पुण्य कीर्ते प्रभो ! आपके चरण कमल मकरन्द रूपी कणों को महापुरुषों के मुख से लेकर निकली हुई वायु में इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्व को भूले हुए हम कुयोगियों को पुनः तत्त्वज्ञान को याद दिला देती है, अतएव मुझे दूसरे वरों की कोई भी आवश्यकता नहीं है ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु तर्हि कैवल्याभावे रागद्वेषाद्याकुलानां भक्तिसुखमपि न स्यादित्याशङ्क्याह-स इति । भवत्पदाम्भोजसुधायाः कणो लेशस्तत्संबन्धी योऽनिलः स एव । दूरादपि किंचिद्यशः श्रवणमात्रमित्यर्थः । विस्मृतं तत्त्ववर्त्म यैः कुयोगिभिस्तेषामपि पुनः स्मृतिमात्मज्ञानं वितरति । अतो न खलु भक्तानां रागादिसंभवः, अतो नोऽस्माकं सारग्राहिणामन्यैर्वरैरलम् । भक्तावेव मोक्षादिसर्वसुखान्तर्भावादिति भावः ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि मोक्ष के अभाव में राग तथा द्वेष इत्यादि के कारण व्याकुल जीवों को भक्तिजन्य सुख की भी प्राप्ति नहीं हो सकती है इस प्रकार की शङ्का करके **स उत्तमश्लोक० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । अर्थात् आपके चरण कमल में मकरन्द रूपी अमृत के फण से युक्त जो वायु ही अर्थात् दूर से भी आपके कुछ यश का केवल श्रवण ही हम जैसे कुयोगी जो तत्त्वों के मार्ग को भूल चुके हैं, उनके भी वह तत्त्वज्ञान प्रदान करती है । अर्थात् उन सबों को पुनः आत्मज्ञान करता है । क्योंकि जो भक्त होते हैं उनका किसी से भी राग या द्वेष होता ही नहीं है। अतएव सार वस्तु का ही ग्रहण करने वाले हमलोगों को किसी दूसरे ज्ञान से कौन सा लाभ है ? भक्ति में ही मोक्ष आदि सभी सुखों का अन्तर्भाव हो जाता है ॥२५॥

**यशः शिवं सुश्रव आर्यसंगमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ।**
**कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥२६॥**

**अन्वयः**— आर्य संगमे ते सुश्रवः शिवं यशः यदृच्छया सकृत् च उप शृणोति पशुं विना गुणज्ञः कथं विरमेत यत् गुण संग्रहेच्छया श्रीः प्रवव्रे ॥२६॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! सत्सङ्ग में भाग्यवशात् यदि आपका मङ्गलमय सुन्दर यश कोई एक बार भी सुन लेता है तो पशु के समान बुद्धि वाले को छोड़कर दूसरा कोई भी गुणज्ञ पुरुष उसे कैसे छोड़ सकता है । सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करने की इच्छा वाली श्रीलक्ष्मीजी भी उसे सुनना चाहती हैं ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु भक्तिर्मुक्तिफलैव, अतः फलं विहाय साधने भवतः कोऽयमाग्रह इत्याशङ्क्याह । हे सुश्रवः मङ्गलकीर्ते, ते शिवं यशः सतां सङ्गमे यः सकृदपि यदृच्छयाप्युपशृणोति गुणज्ञश्चस पशुं विनाऽन्यः कथं विरमेत् । गुणातिशयं सूचयति । श्रीर्यद्यश एव प्रकर्षेण वृतवती । गुणानां सर्वपुरुषार्थानां संग्रहः स्वस्मिन्समाहारस्तदिच्छया ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि भक्ति तो साधन है और मुक्ति उसका फल है अतएव फल को छोड़कर इस भक्ति रूपी साधन में आपका आग्रह क्यों है ? इस प्रकार की आशङ्का करके कहते हैं हे सुश्रवः ! अर्थात् हे मङ्गलमय कीर्ति वाले प्रभो ! आपके मङ्गलमय यश को सत्सङ्ग में दैववशात् एक बार भी यदि सुनने को मिल जाता है तो उसे सुनकर गुणज्ञ व्यक्ति यदि वह पशुबुद्धि नहीं है तो कैसे उसे त्याग सकता है ? भक्ति के गुणातिशय को बतलाते हैं । श्रीदेवी अपने में सभी गुणों का संग्रह करने के लिए आपके यश को ही सुनना चाहती है ॥२६॥

**अथाभजे त्वाऽखिलपूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः ।**
**अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलिर्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥२७॥**

**अन्वयः**— अथ पद्मकरेव लालसः अखिलगुणालयं पुरुषोत्तमं त्वा आभजे । एकपतिस्पृधोः कृतत्वच्चरणैकतानयों आवयोः कलिः अपि न स्यात् ॥२७॥

**अनुवाद**— अब लक्ष्मीजी के ही समान ही मैं भी अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक सम्पूर्ण गुणों के एकमात्र आश्रय पुरुषोत्तम आपकी सेवा करना चाहता हूँ । एक ही पति की सेवा करने की स्पर्धा में तथा आपके चरणों में ही जिन का मन लगा हुआ है, ऐसे हम दोनों का ही कलह न हो जाय ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

अतो लक्ष्मीरिवान्यवरत्यागेन त्वामेवाहं भज इत्याह-अथेति । लालस उत्सुकः सन् । कर्मणि क्रियमाणे यथेन्द्रेण सह कलिरेवं भक्तावपि किं लक्ष्म्या सह कलिः स्यादिति वितर्कयति । एकस्मिन्पत्यौ स्पर्धमानयोरावयोरपि किं कलिर्न स्यादिति काका वितर्कः । ननु पर्यायेण सेवायां न स्यात्, नैवम् । कृतस्त्वच्चरणयोरेवैकस्तानो मनोविस्तारो याभ्यां तयोः ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

अतएव लक्ष्मीजी के ही समान दूसरे वरदान का त्याग करके आपकी ही सेवा मैं भी करना चाहता हूँ इस बात को **अथाभजे० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । उत्सुकता पूर्वक कर्म को करने पर जैसे इन्द्र और मुझमें कलह होने लगा उसी तरह क्या लक्ष्मीजी तथा हममें कलह हो सकता है क्या ? इस प्रकार से महाराज पृथु तर्क करते हैं । एक ही पति की सेवा करने की स्पर्धा से युक्त हमदोनों में कहीं कलह न हो जाय इस तरह से काकु के द्वारा तर्क करते है ।

**ननु० इत्यादि-** यदि आपके कहें कि बारी-बारी से सेवा करने पर कलह नहीं हो सकता है तो ऐसा इसलिए नहीं सम्भव है कि आपके चरणों में ही हम दोनों का समान रूप से लगाव हुआ है ॥२७॥

**जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम् ।**
**करोति फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥२८॥**

**अन्वयः**— हे जगदीश जगज्जनन्यां वैशसं स्यादेव यत् कर्मणि नः समीहितम् । दीनवत्सल फल्गु अपि उरु स्वे एवधिष्ण्ये अभिरतस्य तया किं प्रयोजनम् ॥२८॥

**अनुवाद**— हे जगदीश ! लोकमाता श्रीलक्ष्मीजी से विरोध तो होगा ही क्योंकि जिस कर्म को वे करना चहती हैं उसी कर्म का मैं भी करना चाहता हूँ किन्तु आप दीन वत्सल है उनके थोड़े से भी कर्म को आप बहुत अधिक महत्त्व देते है । अपने स्वरूप में ही स्थित रहने वाले आपको उनसे क्या प्रयोजन है ?॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

भवतु वा कलिस्तथापि भजेयमेवेत्याह । जगज्जनन्यां वैशसं विरोधः स्यादेव । तत्र हेतुः-यस्याः कर्मणि नः समीहितमिच्छा भवति । तथापीन्द्रविरोधे मत्पक्षपातवदत्रापितव पक्षपात एव स्यादित्याह । फल्गु तुच्छमप्युरु बहु करोषि । यतो दीनेषु वत्सलो दयावान् । स्वे स्वरूप एव रतस्य तया किं प्रयोजनम् । तां नाद्रियसे इत्यर्थः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

अथवा कलह होने पर भी मैं आपकी सेवा करूँगा ही इसी बात को वे इस श्लोक में कहते हैं । जगन्माता से विरोध तो होगा ही उसका कारण यह है कि वे जिस कर्म को करती हैं, उसी को मैं भी करना चाहता हूँ । फिर भी जैसे इन्द्र और मुझमें विरोध होने पर आपने मेरा ही पक्ष लिया उसी तरह आप इस विषय में भी मेरा

पक्ष लेंगे । क्योंकि आपका दीनजनों पर वात्सल्य बना रहता है और दीनजनों द्वारा की जाने वाली छोटी सी सेवा का भी आप बहुत अधिक महत्त्व देते हैं । अथवा अपने स्वरूप में ही स्थित रहने वाले आपको लक्ष्मी से क्या प्रयोजन है ? ॥२८॥

**भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ।**
**भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥२९॥**

**अन्वयः**— अतएव साधवः अथ व्युदस्तमायागुण विभ्रमोदयम् त्वां भजन्ति । भवत् पदानुस्मरणादृते सताम् अन्यत् निमित्तं न विद्महे ॥२९॥

**अनुवाद**— चूकि आप दीन वत्सल हैं, इसलिए निष्काम महात्मा जन ज्ञान हो जाने के पश्चात् भी आपका भजन करते हैं क्योंकि आपमें माया के गुणों के कार्य अहङ्कार आदि का अभाव है मुझे तो लगता है कि आपके चरण कमलों का निरन्तर चिन्तन को छोड़कर उन साधु पुरुषों का कोई भी दूसरा प्रयोजन नहीं हैं ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

यतस्त्वं दीनवत्सलोऽत एव साधवो निष्कामा अथ ज्ञानानन्तरमपि त्वां भजन्ति । कथंभूतम् । मायागुणानां विभ्रमो विलासस्तस्योदयः कार्यं स निरस्तो यस्मिंस्तम् । ते किमर्थं भजन्ति तत्राह । भवत्पदानुस्मरणाद्विनाऽन्यत्तेषां निमित्तं फलं न विद्मः ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि आप दीन वत्सल हैं अतएव ही निष्काम भक्त जन ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर भी आपका भजन करते हैं आप कैसे है ? तो इसका उत्तर है कि आप में माया के गुणों के काम अहङ्कार आदिका अभाव है । अब प्रश्न होता है कि साधुजन किसलिए भजन करते हैं । तो इसका उत्तर है कि क्योंकि आपके चरणों के निरन्तर चिन्तन को छोड़कर उनका दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है ॥२९॥

**मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत् ।**
**वाचा तु तन्त्या यदि ते जनोऽसितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥३०॥**

**अन्वयः**— वरं वृणीष्व इति यत् भजन्तम् आत्थ ते गिरं जगतां विमोहिनीं मन्ये । यदि ते वाचा तन्त्या जनः असितः पुनः कथं मोहितः कर्म करोति ॥३०॥

**अनुवाद**— आपने जो यह जो कहा कि तुम वरदान माँगो, इस तरह की आपकी वाणी आपका भजन करने वाले मुझको मोहित ही करने वाली प्रतीत होती है । आश्चर्य हैं कि आपकी वेद रूपी वाणी से यह जगत् यदि बँधा नहीं होता तो यह बार-बार सकाम कर्मों को क्यों करता ? वेदवाणी में बँधकर ही संसार, फल की प्राप्ति की इच्छा से सकाम कर्मों को करता हैं ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

वरैः प्रलोभनं च कृपालोस्तवानुचितमित्याशयेनाह-मन्य इति । नु अहो ते वाचातन्त्या यदि जनोऽयमसितोऽबद्धः स्यात्तर्हि पुनः पुनः फलैर्मोहितः सन्कथं कर्म करोति ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रभो आप परम दयालु हैं, अतएव वरों के द्वारा लुभाना आपका अनुचित है । इसी अभिप्राय से उन्होंने **मन्ये० इत्यादि** श्लोक को कहा है । यह जगत् यदि आपकी वेद वाणी रूपी रस्सी से बँधा नहीं होता तो फिर

फल की प्राप्ति की इच्छा से बार-बार सकाम कर्मों को क्यों करता है ? वेदवाणी से बँधे होने के ही कारण ही बार-बार मनुष्य फलों को प्राप्त करने के लिए सकाम कर्मों को करता है ।।३०।।

**त्वन्मायया‌ऽद्धा जन ईश खण्डितो यदन्यदाशास्त ऋतात्मनो बुधः ।**
**यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ।।३१।।**

**अन्वयः**— हे ईश ! त्वन्मायया अद्धाखण्डितः अबुधः ऋतात्मनः अन्यदाशास्ते । यथापिता स्वयम् बालहितं चरेत् तथा त्वमेव न समीहितुम् ।।३१।।

**अनुवाद**— हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो ! निश्चत रूप से आपकी माया ने मनुष्यों को मोहित कर रखा है उसी के कारण अज्ञानीवह अपने वास्तविक स्वरूप आपसे पराङ्मुख होकर आपसे भिन्न स्त्री पुत्र इत्यादि को प्राप्त करना चाहता है फिर भी जिस तरह पिता अपने पुत्र की प्रार्थना की अपेक्षा किए बिना उसका कल्याण करता है उसी तरह आप भी हम सभी जीवों का कल्याण करें ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**

त्वन्मायया खण्डितस्य त्वया पुनः खण्डनं न कर्तव्यं, किंतु हितं चेष्टितव्यमित्याह । त्वन्मायया ऋतादात्मनस्त्वत्तः खण्डितः पृथक्कृतो यद्यतोऽन्यत्पुत्रादिकमाशास्ते । अतः स्वयमविज्ञापित एवं हितं चेष्टितुमर्हसि ।।३१।।

**भाव प्रकाशिका**

हे प्रभो ! आपकी माया ने ही जीवों को मोहित करके आपसे पृथक् कर दिया है । अतएव उन पृथक् कृत जीवों को आप पुनः पृथक नहीं करें । आपको तो उन जीवों का कल्याण ही करना चाहिए इस बात को बतलाते हुए महाराज पृथु ने कहा— आपकी माया ने जीव को आत्म स्वरूप आप से पृथक् कर दिया है । उसी के कारण जीव आपको नहीं चाहकर आप से भिन्न स्त्री पुत्रादि को ही प्राप्त करना चाहता है । जिस तरह लोक में पिता अपने पुत्र की प्रार्थना की अपेक्षा न करके अपने आप उसका कल्याण करते हैं, उसी तरह आप भी स्वयं जीवों का कल्याण करें ।।३१।।

मैत्रेय उवाच

**इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक् तमाह राजन्मयि भक्तिरस्तु ते ।**
**दिष्टोदृशी धीर्मयि ते कृता यया मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ।।३२।।**

**अन्वयः**— आदिराजेन इति नुतः स विश्वदृक् तमाह राजन् ते मयि भक्तिरस्तु दिष्टया ते मयि इदृशी घी कृता यया मदीयां दुस्त्यजाम् मायां तरतिस्म ।।३२।।

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— आदि राज महाराज पृथु के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर सर्वसाक्षी श्रीहरि ने उनसे कहा राजन् तुम्हारी भक्ति मुझमें बनी रहे उस भक्ति के ही द्वारा जीव मेरी दुस्त्यजा माया को आसानी से पार कर जाता है ।।३२।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।३२।।

**तत्त्वं कुरु मयादिष्टमप्रमत्तः प्रजापते । मदादेशकरो लोकः सर्वत्राप्नोति शोभनम् ।।३३।।**

**अन्वयः**— हे प्रजापते अप्रमत्तः मया यत् आदिष्टम् तत् कुरु मदादेशकरो लोकं सर्वत्र शोभनम् आप्नोति ।।३३।।

**अनुवाद**— हे प्रजाओं का पालन करने वाले राजन्, मैने जो आपको आदेश दिया है, उसे सावधानी पूर्वक आप करें, मेरी आज्ञा का पालन करने वाला मनुष्य सर्वत्र कल्याण प्राप्त करता है ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।३३।।

मैत्रेय उवाच

**इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्यार्थवद्वचः । पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥३४॥**

**अन्वयः**— इति राजर्षेः वैन्यस्य अर्थवद्वचः प्रतिनन्द्य पूजितः एनं अनुगृहीत्वा अच्युतः गन्तुम् मतिं चक्रे ॥३४॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से राजर्षि महाराज पृथु की सार्थक वाणी का समर्थन करके तथा पूजित होकर भगवान् अच्युत महाराज पृथु को अनुगृहीत करके वहाँ से जाने की बुद्धि बनायें ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

**देवर्षिपितृगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगाः । किन्नराप्सरसो मर्त्याः खगा भूतान्यनेकशः॥३५॥**
**यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्ताञ्जलिभक्तितः । सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठानुगतास्ततः ॥३६॥**

**अन्वयः**— राज्ञा देवर्षिपितृगन्धर्व सिद्धचारणपन्नगाः किन्नराप्सरसः मर्त्याः खगा अनेकशः भूतानि यज्ञेश्वरधिया वाग्विताञ्जलि भक्तितः समाजिताः, सर्वे वैकुण्ठानु ततः गताः ॥३५-३६॥

**अनुवाद**— महाराज पृथु ने वहाँ पर आये हुए देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व, सिद्ध चारण, नाग, किन्नर, अप्सरायें, मनुष्य और पक्षी आदि अनेक प्राणी तथा श्रीभगवान् के पार्षदों की भगवद् बुद्धि से भक्ति पूर्वक वाणी और धन से हाथ जोड़कर पूजन किया उसके पश्चात् वे सब अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३५-३६॥

**भावार्थ दीपिका**

वाग्वित्ताञ्जलिभिर्भक्तितः पूजिताः सन्तः । वैकुण्ठानुगताः पार्षदाश्च ॥३५-३६॥

**भाव प्रकाशिका**

वाणी, धन और प्राणामाञ्जलि के द्वारा पूजित होकर भगवान् के पार्षद भी चले गये ॥३५-३६॥

**भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः । हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥३७॥**

**अन्वयः**— भगवान् अच्युतः अपि सोपाध्यायस्य अमुष्य राजर्षेः मनः हरन्निव स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥३७॥

**अनुवाद**— भगवान् अच्युत भी पुरोहितों सहित इन राजर्षि के मन का हरण करके अपने धाम में चले गये॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

अमुष्य राज्ञः । हरन्निवेति लोकोक्तिः । वस्तुतस्तस्य मनः सर्वदैव तदधीनमस्त्येव । स्वधाम राज्ञो हृदयम् ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा के मन का हरण करते हुए के समान। यह लोकोक्ति है। वास्तविकता है कि राजा का मन तो सर्वदा परमात्मा के ही अधीन है। स्वधाम का अर्थ है कि राजा का हृदय ही भगवान् का धाम है। उसी में भगवान् प्रवेश कर गये ॥३७॥

**अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः संदर्शितात्मने । अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥३८॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

**अन्वयः**— संदर्शितात्मने अदृष्टाय, अव्यक्ताय देवानां देवाय नमस्कृत्य नृपः स्वपुरं ययौ ॥३८॥

**अनुवाद**— अपना स्वरूप दिखाकर अन्तर्धान हुए अव्यक्त स्वरूप देवताओं के भी आराध्य श्रीभगवान् को नमस्कार करके राजा पृथु भी अपनी राजधानी में चले गये ॥३८॥

**इस तरह श्रीमद्भागवतम महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रकसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३६**

**भावार्थ दीपिका**

अदृष्टाय लोचनपथमतिक्रान्ताय । संदर्शित आत्मा येन तस्मै । वस्तुतोऽव्यक्ताय ।।३८।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशोऽध्यायः ।।२०।।**

**भाव प्रकाशिका**

जिन्होंने अपने स्वरूप का दर्शन करा दिया था ऐसे अन्र्धान हुए वास्तविक रूप से अव्यक्त रूप श्रीभगवान् को नमकार करके राजा भी अपनी राजधनी में चले गये ।।३८।।

**इसतरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के बीसवें अध्यायय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२०।।**

# इक्कीसवा अध्याय

## महाराज पृथु का अपनी प्रजा को उपदेश

मैत्रेय उवाच

**मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः। महासुरभिभिर्धूपैर्मण्डितं तत्र तत्र वै ॥१॥**
**चन्दनागुरुतोयार्द्ररथ्याचत्वरमार्गवत् । पुष्पाक्षतफलैस्तोक्मैर्लाजैरर्चिर्भिरर्चितम् ॥२॥**
**सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतम् । तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥३॥**
**प्रजास्तं दीपबलिभिः संभृताशेषमङ्गलैः। अभीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमण्डिताः॥४॥**

**अन्वयः**— मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिः दुकूलैः स्वर्णतोरणैः महासुरभिभिः धूपैः तत्र-तत्र मण्डितम्, चन्दना गुरुतोयार्द्ररथ्या-चत्वरमार्गवत् पुष्पाक्षतफलैःस्तोक्मैः लाजैः अर्चिभिः अर्चितम्, सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूग पोतैः परिष्कृतम्, तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलङ्कृतम् दीपबलिभिः सम्भृताशेषमङ्गलैः प्रजाः मृष्टकुण्डलमण्डिताः मृष्टकन्याश्च तं अभीयुः ॥१-४॥

**अनुवाद**— मोतियों की लड़ियों, पुष्पों की माला, रङ्ग विरङ्गे वस्त्रों सोने के दरवाजे तथा स्थान-स्थान पर अत्यन्त सुगन्धित धूपों से अलंकृत, चन्दन और अगुरु के जल से सींची गयी गलियों चौक, सड़कों से युक्त, पुष्प, अक्षत, फल यवांकुर लावा तथा दीपक आदि माङ्गलिक द्रव्यों से वह नगर सजाया गया था । वह नगर स्थान-स्थान पर फल-फूल के गुच्छों तथा केले के छोटें पौधों से सुसज्जित था । सर्वत्र वह वृक्षों के पल्लव तथा मालाओं से समलंकृत था, दीपक, उपहार और अनेक प्रकार के माङ्गलिक सामग्री लिए हुए प्रजाओं तथा मनोहर कुण्डलों से मण्डित कयाओं ने राजा पृथु की अगवानी की ॥१-४॥

### भावार्थ दीपिका

एकविंशे तु पृथुना प्रजानामनुशासनम् । महासत्रे सुरादीनां महासदसि वर्ण्यते । पुरं ययावित्युक्तं तत्पुरमनुवर्णयति-मौक्तिकैरिति त्रिभिः । चन्दनागुरुयुक्तैस्तोयैरार्द्रा रथ्यादयस्तद्युक्तम् । तोक्मैर्हरितयवैरङ्कुरैरिति वा । अर्चिर्भिर्दीपैः । सवृन्दैः पुष्पफलयुक्तैः कदलीस्तम्भैः पूगैर्वृक्षैस्तथाविधैः सर्वतः समलंकृतं शोभितम् । संभृतान्यशेषाणि मङ्गलानि दध्यादीनि तैः सहाभिजग्मुः । मृष्टाः उज्ज्वलाः कन्याश्च ॥१-४॥

### भाव प्रकाशिका

इक्कीसवें अध्याय में महासत्र के अवसर पर देवताओं आदि की महासभा में महाराज पृथु द्वारा प्रजाओं

को उपेदश का वर्णन है। इससे पहले के अध्याय में कहा गया है कि राजा अपने नगर में चले गये। उस नगर का **भौक्तिकैः इत्यादि** तीन श्लोकों में वर्णन किया गया है। जहाँ की गलियाँ आदि चन्दन तथा अगुरु के जल से सीचं दी गयी थीं ऐसे नगर में महाराज ने प्रवेश किया। तोयम शब्द से हरे यव के अङ्कुरों को कहा गया है। अचिः शब्द से दीपों को कहा गया है। पुष्पों तथा फलों से युक्त केले के स्तम्भों तथा सुपारी के वृक्षों से व नगर पूर्ण रूप से समलंकृत था। समस्त मङ्गल द्रव्य को ली हुई प्रजाओं तथा सुन्दर कन्याओं ने महाराज पृथु की आगवानी की ॥१-४॥

**शङ्खदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम् । विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः ॥५॥**

**अन्वयः**— शङ्ख दुन्दुभिघोषेण, ऋत्विजाम् ब्रह्मघोषेण स्तूयमानः गतस्मयः वीरः भवनं विवेश ॥५॥

**अनुवाद**— महाराज शङ्ख दुन्दुभि इत्यादि की ध्वनि तथा ऋत्विजों द्वारा की जा रही वेदध्वनि पूर्वक अपने भवन में प्रवेश किए ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

गतस्मयो निरहंकारः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

इन सबों को देखकर महाराज को किसी प्रकार का अहङ्कार नहीं हुआ ॥५॥

**पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः । पौरान् जानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥६॥**

**अन्वयः**— तत्र-तत्र पूजितः महायशाः पौरान् जानपदान् तान् तान् प्रीतः पियवरप्रदः पूजयामास ॥६॥

**अनुवाद**— महायशस्वी महाराज पृथु नागरिकों तथा देशवासियों से स्थान-स्थान पर पूजित होकर उन सबों को प्रसन्नता पूर्वक अभीष्ट वर प्रदान कर सन्तुष्ट किए ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रियान्वरान्प्रददातीति तथा ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज प्रिय वरदान प्रदान करने वाले थे ॥६॥

**स एवमादीन्यनवद्यचेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः ।**
**कुर्वन् शशासावनिमण्डलं यशः स्फीतं निधायारुरुहे परं पदम् ॥७॥**

**अन्वयः**— महान् महत्तमः अनवद्यचेष्टितः सः एवमादीनिभूयांसि कर्माणि कुर्वन् अवनिमण्डलं शशास स्फीतं यशः निधाय परं पदम् आरुरुहे ॥७॥

**अनुवाद**— महाराज पृथु महापुरुष तथा सबों के पूजनीय थे, उन्होंने इसी प्रकार के अनेक उदार कर्मों को करते हुए पृथिवी का प्रशासन किया और अन्त में अपने विपुल यश का विस्तार करके श्रीभगवान् के परमपद को उन्होंनें प्राप्त किया ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

गुणैर्महानत एव महत्तमः पूज्यतमः ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज पथु के गुण महान् थे अतएव वे पूज्यतम थे ॥७॥

सूत उवाच

**तदादिराजस्य यशो विजृम्भितं गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् ।**
**क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गृणन्तमर्चयन् ॥८॥**

**अन्वयः**— आदिराजस्य अशेषैः गुणैः विजृम्भितं गुणवत्सभाजितम् यशः गृणन्तम् कौषारविम् अर्चयन् हे सदस्पते महाभागवतः क्षत्ता प्राह ॥८॥

**सूतजी ने कहा**

**अनुवाद**— आदिराज महाराज पृथु के सभी गुणों से सम्पन्न तथा गुणवानों द्वारा समादृत यश को मैत्रेय महर्षि के मुख से सुनकर उनकी अर्चना करते हुए हे शौनक महाभावत विदुरजी ने कहा ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

गुणैर्विजृम्भितमूर्जितं गुणवद्भिः सभाजितं सत्कृतं यशो गृणन्तमर्चयन्प्राह । सदसस्पते शौनक ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

सूतजी ने कहा है शौनकजी ! गुणों से सम्पन्न तथा गुणवानों के द्वारा समादृत यश को कहने वाले मैत्रेय महर्षि का अभिनन्दन करते हुए महाभागवत विदुरजी ने कहा ॥८॥

विदुर उवाच

**सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धाशेषसुरार्हणः । बिभ्रत्स वैष्णवं तेजो बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥९॥**

**अन्वयः**— विप्रैः अभिषिक्तः सः पृथुः लब्धाशेषसुरार्हणः सः बाहवोः वैष्णवं तेजः बिभ्रत् याभ्यां गाम् दुदोह ॥९॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— ब्राह्मणों के द्वारा अभिषिक्त हुए वे पृथु सभी देवताओं से उपहार प्राप्त किये । उन्होंने अपनी भुजाओं में वैष्णव तेज को धारण किया जिन भुजाओं से उन्होंने गोरूप धारिणी पृथ्वी का दोहन किया था ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

लब्धान्यशेषसुराणामर्हणानि येन सः । किमकरोदिति शेषः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

सभी देवताओं से उपहार प्राप्त करने वाले महाराज पृथु ने क्या किया ?॥९॥

**को न्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ।**
**लोकाः सपाला उपजीवन्ति काममद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— यद्विक्रमोच्छिष्टमशेष भूपाः सपालाः लोकाः अद्यापि कामम् अपजीवन्ति कोनु अभिज्ञः अस्य कीर्तिं न शृणोति तन्मे शुद्धम् कर्म वद ॥१०॥

**अनुवाद**— जिनके पराक्रम से उच्छिष्ट रूप विषय भोगो से आज भी राजागण और लोकपालों सहित सभी लोग अपनी इच्छानुसार जीवन निर्वाह करते हैं कौन ऐसा विज्ञ पुरुष होगा जो उनकी कीर्ति को नहीं सुनना चाहेगा अतएव आप मुझे उनके पवित्र चरित्र को सुनाइये ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

श्रवणौत्सुक्यमाविष्कुर्वन्प्रार्थयते- कोन्विति । यस्य विक्रमः पृथ्वीदोहनं तस्योच्छिष्टतुल्यं कामम् । तत्तस्य कर्म वद॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

सुनने की उत्सुकता को ही आविष्कृत करते हुए विदुरजी प्रार्थना करते हैं पृथिवी का दोहन जिनका विक्रम है, उन महाराज पृथु के उच्छिष्ट के ही समान काम है, उनके कर्मों का आप वर्णन करें ॥१०॥

मैत्रये उवाच

**गङ्गायमुनयोर्नद्योरन्तरा क्षेत्रमावसन् । आरब्धानेव बुभुजे भोगान्पुण्यजिहासया ॥११॥**

**अन्वयः**— गङ्गा यमुनयोः नद्योः अन्तराक्षेत्रम् आवसन् पुण्य जिहासया आरब्धानेव भोपान् बुभुजे ॥११॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— गङ्गा और यमुना इन दो नदियों के बीच में निवास करते हुए पृथु जी अपने पुण्य कर्मों के क्षय की इच्छा से प्रारब्धवश प्राप्त भोगों को भोगते थे ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

प्राचीनकर्मभिः प्रारब्धानेव बुभुजे, नतु भोगान्तरार्थं कर्माणि करोति, तदपि भोगेन पुण्यक्षपणेच्छया, नतु सुखासक्त्येत्यर्थः॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने प्राचीन कर्मों के द्वारा प्रारब्ध कर्मों के द्वारा प्राप्त भोगों को ही भोगते, वे भोगान्तर की प्राप्ति के लिए कर्मों को नहीं करते थे। भोगों को भोगकर वे अपने पुण्यों का नाश कर देना चाहते थे। उनमें सुख में आसक्ति नहीं थी ॥११॥

**सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् । अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥१२॥**

**अन्वयः**— अन्यत्र ब्राह्मणकुलात् अन्यत्राच्युतगोत्रत्तः सर्वत्रस्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्ड धृक् ॥१२॥

**अनुवाद**—ब्राह्मण वंश और भगवद् भक्तों को छोड़कर उनका सातो द्वीपों के सभी पुरुषों पर अबाध प्रशासन चलता था ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

अस्खलितोऽप्रतिहत आदेश आज्ञा यस्य । सप्तसु दीपेष्वेक एव दण्डं धारयतीति तथा । किं सर्वत्र, नेत्याह । ब्राह्मणकुलव्यतिरेकेण । अच्युतो गोत्रप्रवर्तकतुल्यो येषां वैष्णवानां तद्व्यतिरेकेण च ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

उनकी आज्ञा का पालन सबलोग करते थे कोई भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता था। सातो द्वीपों का वे अकेले ही प्रशासन करते थे। प्रश्न होता है कि वे सबका प्रशासन करते थे तो ऐसी बात नहीं है। ब्राह्मणों और भगवद् भक्तों को छोड़कर **अच्युतः गोत्रप्रवर्तक तुल्योयेषाम् ते अच्युत्तगोत्र** । अर्थात् जिनके गोत्र के प्रवर्तक भगवान् अच्युत ही हैं ॥१२॥

**एकदासीन्महासत्रदीक्षा तत्र दिवौकसाम् । समाजो ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे सत्तम ! एकदा महासत्र दीक्षा असीत्, तत्रदिवौकसाम् ब्रह्मर्षीणां राजर्षीणां च समाज आसीत् ॥१३॥

**अनुवाद**— एक बार उन्होंने महासत्र की दीक्षा ली, उस समय वहाँ देवताओं, देवर्षियों और राजर्षियों का समाज उपस्थित था ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

एकदा तस्य महासत्रदीक्षा आसीत्तत्र सत्रे देवादीनां समाज आसीदित्यर्थः ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

एक बार महाराज पृथु ने महासत्र की दीक्षा ली उस समय वहाँ देवताओं आदि का समाज था ॥१३॥

**तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथार्हतः । उत्थितः सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥१४॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् अर्हत्सु सर्वेषु यथार्हतः अर्चितेषु सदसः मध्ये ताराणाम् उडुराडिव उत्थितः ॥१४॥

**अनुवाद**— उस सत्र में पूजनयी सभी अतिथियों की यथायोग्य पूजा कर लेने के पश्चात् वे उसी तरह खड़ा हुए जैसे ताराओं के बीच में चन्द्रमा हों ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्मिन्पूज्येष्वर्चितेषु सत्सु सदसो मध्ये उत्थितः सन् समन्ततः समैक्षतेति षष्ठेनान्वयः ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

उस सत्र में पूज्य अतिथियों की पूजा हो जाने पर सभा के बीच में खड़ा होकर उन्होंने चारो ओर देखा यह आगे के छठे श्लोक से अन्वय है ॥१४॥

**प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः कञ्जारुणेक्षणः । सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥१५॥**

**अन्वयः**— प्रांशु पीनायत भुजः गौरः कञ्जारुणेक्षणः सुनाशः सुमुखः सौम्य पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥१५॥

**अनुवाद**— उनका शरीर ऊँचा था, भुजाएँ मोटी तथा लम्बी थी, शरीर गोरा था उनके नेत्र कमल दल के समान लाल थे, नाक सुन्दर थी, मुख भी सुन्दर था, शरीर सुन्दर था कन्धे ऊँठे हुए थे, और मुस्कान से मनोहर उनकी दाँत पंक्ति थी ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रांशुरुन्नतः । पीनावायतौ भुजौ यस्य, कञ्जवदरूणे ईक्षणे यस्य, शोभना द्विजाः स्मितं च यस्य ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

उनका शरीर ऊँचा था, भुजाएँ मोटी और लम्बी थी, कमल दल के समान उनके नेत्र लाल थे, उनकी दन्तपंक्ति और मुस्कान मनोहर थे ॥१५॥

**व्यूढवक्षा बृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः । आवर्तनाभिरोजस्वी काञ्चनोरुरुदग्रपात् ॥१६॥**

**अन्वयः**— व्यूढवक्षाः बृहच्छ्रोणिः वलिवल्गुददलोदरः आवर्तनाभिः ओजस्वी, काञ्चनोरुः उदग्रपात् ॥१६॥

**अनुवाद**— उनकी छात्री चौड़ी थी, कमर का पिछला भाग सुडौल था, उनका पेट त्रिवलि से सुशोभित था, नाभि भँवर के समान गहरी थी, शरीर ओजस्वी था, जंघाएँ सुवर्ण के समान देदीप्यमान थीं, और पैरों के पंजे ऊपर की ओर उठे थे ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यूढं विस्तीर्णं वक्षो यस्य, बलिभिस्तिसृभिर्वल्गु सुन्दरं दलवदधोग्रमश्वत्थपत्रमिव उपरि विस्तृतमधस्तात्संकुचितमुदरं यस्य, आवर्तवन्निम्ना नाभिर्यस्य, काञ्चनवदुज्जवलावूरू यस्य, उदग्रावुन्नताग्रौ पादौ यस्य ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

उनकी छाती विस्तीर्ण थी त्रिबली के द्वारा उनका पेट मनोहर था । पिप्पल के पत्ते के समान ऊपर की ओर विस्तृत था और नीचे की ओर सङ्कुचित था, भँवर के समान उनकी नाभि गहरी थी, सुवर्ण रचित के समान उनकी जंघाएं देदीप्यमान थीं, उनके पैरों के पंजे ऊपर की ओर उठे थे ॥१६॥

**सूक्ष्मवक्रासितस्निगधमूर्धजः कम्बुकन्धरः । महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥१७॥**

**अन्वयः**— सूक्ष्मवक्रासितस्निधमूर्धजः कम्बुकन्धरः, महाधने दुकूलग्रथे परिधाय उपवीय च ॥१७॥

**अनुवाद**— वारीक धुंधराले काले केश उनकी गर्दन शङ्ख के समान मनोहर थे, उत्तम बहुमूल्य धोती पहने थे और वैसी ही चादर ओढे थे ॥१७॥

**भावार्थ_दीपिका**

सूक्ष्माश्च ते वक्राश्चासिताश्च स्निग्धाश्च मूर्धजा यस्य, कम्बुवत्त्रिरेखाङ्किता कन्धरा यस्य । परिधाय वसित्वा । उपवीयोत्तरीयं कृत्वा ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

उनके घुघराले सूक्ष्म और काले केश थे, शङ्ख के समान तीन रेखाओं से युक्त उनकी गर्दन थी । परिधाय का अर्थ धारण करके, उपवीय का अर्थ है, चादर ओढ़कर ॥१७॥

**व्यञ्जिताशेषगात्रश्रीर्नियमेन्यस्तभूषणः । कृष्णाजिनधरः श्रीमान्कुशपाणिः कृतोचितः ॥१८॥**

**अन्वयः**— नियमेन्यस्त भूषणे व्यञ्जिताशेषगात्रश्रीः कृष्णाजिनधरः, श्रीमान् कुशपाणिः कृतोचितः ॥१८॥

**अनुवाद**— नियम ग्रहण करने के कारण उन्होंने सारे आभूषणों को उतार दिया था, अतएव उनके शरीर की शोभा स्पष्ट प्रतीत हो रही थी, वे कालामृगचर्म धारण किए थे, एश्वर्य सम्पन्न, हाथ में कुश धारण किए हुए वे अपना सारा नित्यकृत्य सम्पन्न कर चुके थे ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

नियमे निमित्ते न्यस्तानि त्यक्तानि भूषणानि येन सः । अतएव तैरनावृतत्वाद्व्यञ्जिताशेषगात्रेषु श्रीः स्वाभाविकी शोभा येन । कृतान्युचितानि कर्माणि येन ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

नियम के कारण उन्होंने सारे आभूषणों को उतार दिया था, आभूषणों से ढँके नहीं होने के कारण उनके सम्पूर्ण शरीर की शोभा अभिव्यक्त हो रही थी उन्होंने समस्त नित्य कृत्यों को सम्पन्न कर लिया था ॥१८॥

**शिशिरस्निग्धताराक्षः समैक्षत समन्ततः । ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥१९॥**

**अन्वयः**— शिशिरस्निग्ध ताशक्षः, समन्ततः समैक्षत उवीर्शः सदः संदर्शयनिव इदम् उचिवान् ॥१९॥

**अनुवाद**— शीतल एवं स्नेहपूर्ण नेत्रों से चारो ओर देखा उसके पश्चात् पृथिवी पति ने संम्पूर्ण सभा को प्रहर्षित करते हुए कहा ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

शिशिरे संतापहरे स्निग्धे च तारे ययोस्ते अक्षिणी यस्य, इदं वक्ष्यमाणं वाक्यमुक्तवांश्च ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

उनके नेत्र संताप विनाशक प्रेममय थे उन्होंने चारो ओर देखकर कहना प्रारम्भ किया ॥१९॥

**चारु चित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविक्लवम् । सर्वेषामुपकारार्थं तदा अनुवदन्निव ॥२०॥**

**अन्वयः**— चारु, चित्रपदं, श्लक्ष्णं मृष्टं, गूढम् अविक्लवम् सर्वेषाम् उपकारार्थं तदा अनुवदन् इव ऊचिवान्॥२०॥

**अनुवाद**— मनोहर, विचित्र पदों से युक्त, स्पष्ट, मधुर, गम्भीर एवं निःशङ्क उनका भाषण था । जैसे सबों का उपकार करने के लिए अपने अनुभवों का अनुवाद कर रहे हों ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

चारु श्रोत्रप्रियम्, चित्राणि पदानि यस्मिन्, श्लक्ष्णं प्रशस्तम्, मृष्टं शुद्धम्, गूढं गम्भीरार्थम्, अविक्लवमव्याकुलम् । उत्प्रेक्षते स्वयमनुभूतमनुवदन्निव ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

उनका प्रवचन सुनने में मनोहर, विचित्र पदों से युक्त, श्रेष्ठ, शुद्ध, गम्भीर अर्थों से युक्त और नि:शङ्क था मानो वे अपने अनुभवों का अनुवाद कर रहे थे ।।२०।।

राजोवाच

**सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः । सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ।।२१।।**

**अन्वयः**— हे सभ्याः व भद्रम्, ये साधवः इहागताः श्रुणुत, जिज्ञासुभिः सत्सु स्वमनीषितं धर्मम् आवेद्यं ।।२१।।

### राजा ने कहा

**अनुवाद**— हे सज्जनों, आपलोगों का कल्याण हो । जो सज्जन यहाँ आये हैं, वे मेरी प्रार्थना को सुनें। जिज्ञासुओं को चाहिए कि वे सन्तों की सभा में अपने निश्चय को निवेदित करें ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

भाषणे हेतुः- धर्म जिज्ञासुभिः पुम्भिः सत्सु स्वमनीषितमावेद्यं वक्तव्यम् । अतः प्रजानुशासनमिषेण जिज्ञासैव क्रियते न युष्मान्प्रति धर्मप्रवचनमिति भावः ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

महाराज पृथु किए जाने वाले प्रवचन के कारण को बतलाते हुए कहते हैं जो जिज्ञासु पुरुष धर्म को जानना चाहते हों । उनको चाहिए कि वे सत्पुरुषों के समाज में अपने निश्चय को बतलायें । अतएव मैं प्रजाओं का अनुशासन के बहाने मैं जिज्ञासा ही कर रहा हूँ आपलोगों के समक्ष मैं धर्म का प्रवचन नहीं कर रहा हूँ ।।२१।।

**अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः । रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ।।२२।।**

**अन्वयः**— अहं प्रजानां दण्डधरः रक्षिता, वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु पृथक् स्थापिता राजायोजितः ।।२२।।

**अनुवाद**— मैं इस लोक में प्रजाओं का प्रशासक, रक्षा करने वाला, उनकी जीविका का प्रबन्ध करने वाला, उनको अपने धर्म की मर्यादा में अलग-अलग रखने के लिए राजा बनाया गया हूँ ।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

इदानीं प्रजाः शिक्षयिष्यन्प्रजाशिक्षणादिकं, ममावश्यकमित्याह–अहमिति त्रिभिः । पृथक् सेतुषु स्थापिता स्थापयिता।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

अपनी प्रजाओं को शिक्षा देना मेरे लिए आवश्यक है । इस बात को महाराज पृथु **अहम्० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहते हैं । प्रजाओं को अलग-अलग उनके धर्म की मर्यादा में स्थापित करने वाला नियुक्त किया गया हूँ ।।२२।।

**तस्य मे तदनुष्ठानाद्यानाहुर्ब्रह्मवादिनः । लोकाः स्युः कामसंदोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ।।२३।।**

**अन्वयः**— दिष्टदृक् यस्य तुष्यति तस्य यान् लोकान् ब्रह्मवादिनः आहुः तदनुष्ठानात् मे कामसन्दोहाः लोकाः स्युः।।२३।।

**अनुवाद**— पूर्व जन्म के कर्मों को जानने वाले ईश्वर जिस पर प्रसन्न होते हैं उस व्यक्ति को प्राप्त होने वाले जिन लोकों को ब्रह्मवादियों ने बतलाया है प्रजाओं की रक्षा आदि के कारण मुझे भी मनोरथों को पूर्ण करने वाले उन लोकों की प्राप्ति होनी चाहिए ।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

दिष्टदृक् प्राक्कर्मसाक्षीश्वरो यस्य तुष्यति तस्य वेदवादिनो यान् लोकानाहुः प्रजारक्षणाद्यनुष्ठानात्ते लोका मे स्युः । कथंभूताः । कामानां सम्यक् दोहः प्रपूरणं येषु ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

दिष्टदृक् अर्थात् पूर्वजन्म के कृत्यों को जानने वाले ईश्वर जिस पर प्रसन्न होते हैं, उस पुरुष को जिस लोक की प्राप्ति को ब्रह्मवादियों ने बतलाया है, इस प्रजा रक्षण आदि कार्यों को करने से कामनाओं को पूर्ण करने वाले उन्हीं लोकों की प्राप्ति मुझे होनी चाहिए ।।२३।।

**य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् । प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ।।२४।।**

**अन्वयः**— य राजा प्रजाः धर्मेष्वशिक्षयन् करं उद्धरेत् प्रजानां शमलं भुङ्क्ते स्वम् भगं च जहाति ।।२४।।

**अनुवाद**— जो राजा प्रजाओं को धर्म की शिक्षा दिए बिना प्रजाओं से केवल कर वसूलता है, वह प्रजाओं के पाप का ही भागी होता है और उसका ऐश्वर्य भी विनष्ट हो जाता है ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

अन्यथा त्वनिष्टं स्यादित्याह-य इति । शमलं पापम् । भगमैश्वर्यम् ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

प्रजाओं को धर्म की शिक्षा नहीं देने वाले राजा का अनिष्ट होता है, इस बात को वे इस श्लोक में बतलातें है अर्थात् पाप भग शब्द ऐश्वर्य का वाचक हीं है ।।२५।।

**यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयाऽमलाः । कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्यतत्फलम् ।।२६।।**

**अन्वयः**— हे अमलाः पितृदेवर्षयः यूयं तदनुमोदध्वं, यत् कर्तुः शास्तु, अनुज्ञातुः तुल्यं फलं भवति ।।२६।।

**अनुवाद**— हे विशुद्ध चित्त वाले ! पितरों, देवताओं और ऋषियों आप लोग भी मेरी इस प्रार्थना का अनुमोदन करें, क्योंकि परलोक में कर्ता, उपदेष्टा, और अनुज्ञाता इन तीनों को एक समान फल की प्राप्ति होती हैं ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

शास्तुः शिक्षयितुरनुज्ञातुरनुमोदितुश्च प्रेत्य परलोके यत्फलं तत्तुल्यम् ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

मृत्यु के पश्चात् परलोक में प्राप्त होने वाला जो फल होता है, वह उपदेष्टा अनुष्ठाता और अनुमोदिता इन तीनो को एक समान होता है ।।२६।।

**अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषांचिदर्हसत्तमाः । इहामुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्भुवः ।।२७।।**

**अन्वयः**— हे अर्हसत्तमाः केषांचित् मते यज्ञपतिः नाम अस्ति, इहामुत्रचक्वचित् ज्योत्स्नावत्यः भुवः लक्ष्यन्ते।।२७।।

**अनुवाद**— हे समादरणीय सज्जनों ! कुछ श्रेष्ठ महापुरुषों के मतानुसार यज्ञों के स्वामी परमात्मा है, क्योंकि लोक में तथा परलोक में भी कई भोग भूमियाँ तथा शरीर तेजः सम्पन्न पायी जाती हैं ।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

कर्म कर्तव्यमित्यनुमोदामहे, न तु वासुदेवेऽर्पणीयमिति वेनादिभिस्तदनङ्गीकारादित्येवंवादिनः शनैः संबोधयन्नाह । हे अर्हसत्तमाः, यज्ञपतिर्नाम परमेश्वरः केषांचिन्मते तावदस्ति, तथापि विप्रतिपत्तेर्नतत्सिद्धिरित्याशङ्क्य जगद्वैचित्र्यान्यथानुपपत्ति प्रमाणयति । इहामुत्र च ज्योत्स्नावत्यः कान्तिमत्यो भुवो भोगभूमयः शरीराणि च ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

कर्म करना चाहिए इस बात का तो हमलोग समर्थ न करते हैं किन्तु उन कर्मों को भगवान् वासुदेव को समर्पण करना चाहिए इस बात का हम समर्थन नहीं करते हैं, क्योंकि वेन इत्यादि इस बात को नहीं स्वीकारते हैं, इस तरह से धीरे से कहने वालों के प्रति कहते हैं। हे विशुद्धचित्त वाले पितृ देवों आदि कुछ श्रेष्ठ महापुरुषों के अनुसार यज्ञपति परमात्मा हैं, फिर भी इस विषय में लोगों का मत वैभिन्य है अतएव उसकी सिद्धि नहीं होती इस प्रकार की आशङ्का करके उन्होंने परमात्मा की सिद्धि का समर्थन अन्यथा अनुपपत्ति के द्वारा करते हुए कहा है इस लोक में तथा परलोक में कहीं-कहीं पर अत्यन्त तेजस्वी भोगभूमियाँ और शरीर पाये जाते हैं ॥२७॥

**मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः । प्रियव्रतस्य राजर्षेरङ्गस्यास्मत्पितुः पितुः ॥२८॥**
**ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च । प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥२९॥**
**दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान्धर्मविमोहितान् । वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥३०॥**

**अन्वयः**— मनोः उत्तानपादस्य महीपतेः ध्रुवस्य, राजर्षेः प्रियव्रतस्य, अस्मत्पितुः पितु अङ्गस्य अजस्य, भवस्य, प्रहलादस्य, बलेः चापि, इदृशानाम् अथ अन्येषामपि गदाभृता कृत्यमस्ति, मृत्योः दौहित्रादीन् धर्मविमोहितान् शोच्यान् ऋते, वर्ग स्वर्गाप वग्र्गाणाम् प्रायेण ऐकात्म्य हेतुना गदाभृता कृत्यमस्ति ॥२८-३०॥

**अनुवाद**— मनु, उत्तानपाद, पृथिवीपति ध्रुव, राजर्षि प्रियव्रत हमारे पितामह अङ्ग ब्रह्माजी, शिवजी, प्रह्लाद, बलि और इसी तरह के दूसरे महानुभावों के मतानुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इस चतुवर्ग एवं मोक्ष के स्वाधीन नियामक तथा कर्मो के फल प्रदाता गदाधर भगवान् की आवश्यकता है ही। इस विषय में मृत्यु के दौहित्र वेन आदि कुछ धर्मविमूढ शोचनीय लोगों का मतभेद है किन्तु उन लोगों के मतभेद का कोई विशेष महत्त्व नहीं है ॥२८-३०॥

### भावार्थ दीपिका

नन्विदं कर्मवैचित्र्यादेव सेत्स्यति तथापि विद्वदनुभवेनेश्वरसिद्धिरित्याह-मनोरिति त्रिभिः । अस्मत्पितामहस्याङ्गस्य । कृत्यमस्ति । अवश्यं कर्म फलदात्रा भाव्यमिति तेषां मतमित्यर्थः । मृत्योर्दौहित्रान्वेनादीन्विना । धर्मे विमोहितान् । अतः शोच्यान् । ननु कर्मैव फलं दास्यति विध्युद्देशगता वा देवताः किं परमेश्वरेण तत्राह- वर्गेति । वर्गोऽत्र त्रिवर्गः स्वर्गो धर्मस्य फलमपवर्गो मोक्षस्तेषामैकात्म्येनैकरूप्येण सर्वानुगतेन हेतुना तत्रापि प्रायेण हेतुना । अयं भावः- न तावज्जडस्य कर्मणः फलदातृत्वं घटते, नचार्वाग्देवतानां स्वातन्त्र्यम्, अन्तर्यामिश्रुतेः । नच तदा कर्मसाम्ये फलतारतम्यं क्वचित्तदसिद्धिश्च संभवति, अतः स्वातन्त्र्येण कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थेन परमेश्वरेण भाव्यमिति ॥२८-३०॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तेजस्वी शरीरों की सिद्धि तो कर्मों की विचित्रता के कारण भी हो सकती है फिर भी विद्वानों के मतानुसार ईश्वर की सिद्धि होती है इस अर्थ का प्रतिपादन करते हुए तीन श्लोकों से कहते हैं पितुः पितः शब्द से महाराज अङ्ग को कहा गया है। कृत्यमस्ति का अर्थ है कि कर्म अवश्य फलप्रद है यह उन लोगों का मत है। धर्म के विषय में अज्ञानी एवं शोचनीय, वेन आदि को छोड़कर अन्य लोगों के मतानुसार ईश्वर को स्वीकार करना आवश्यक है ही। **ननु कर्मैव० इत्यादि-** यदि कहे कि कर्म ही फल प्रदान करने वाला है अथवा विधि वाक्यों में उद्दिष्ट देवता ही फलप्रद हैं ईश्वर को स्वीकारने की क्या आवश्यकता हैं ? इसके उत्तर में **वर्गापवर्ग० इत्यादि** श्लोक कहा गया है। वर्ग शब्द से त्रिवर्ग, धर्म, अर्थ और काम को धर्म का फल है स्वर्ग। अपवर्ग मोक्ष को कहते हैं प्रायः इन सबों के एकमात्र हेतु भगवान् गदाधर ही हैं। **अयंभावः** कहने का अभिप्राय है कि जड कर्म फल प्रदाता नहीं हो सकता है इस बात का प्रतिपादन अन्तर्यामी श्रुतियाँ करती हैं। यहाँ पर यह नहीं कहा जा सकता है कि तब तो फिर एक कर्म की समानता होने पर भी फल में भिन्नता की सिद्धि नहीं हो सकती है। अतएव सबकुछ करने में समर्थ स्वतन्त्र परमात्मा को ही स्वीकार करना चाहिए ॥२८-३०॥

**यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेजन्षमोपचितं मलं धियः ।**
**सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिः सृता सरित् ॥३१॥**

**अन्वयः**— अन्वहम् एधती सती यत्पाद सेवाभिरुचिः तपस्विानाम् अशेष जन्मोपचितं धियः मालम् पदाङ्गुष्ठ विनिः सृतासरित् यथा सद्यः क्षिणोति ।।३१।।

**अनुवाद**— प्रतिदिन बदलने वाली श्रीभगवान् के चरणों की सेवा की रुचि तपस्वियों के अनेक जन्मों के मल को श्रीभगवान् के चरणाङ्गुष्ठ से निकली हुई गङ्गा नदी के समान शीघ्र ही विनष्ट कर देती है ।।३१।।

### भावार्थ दीपिका

किंच जीवानां मोक्षदः परमेश्वर एव नार्वाग्देवतास्तासामपि जीवत्वाविशेषादित्याशयेनाह त्रिभिः । यस्य पादयोः सेवायामभिरुचिस्तपस्विनां संसारतप्तानामशेशैर्जन्मभिः समृद्धं धियो मलं सद्यः क्षपयति तमेव भजतेति तृतीयेनान्वयः । कथंभूता, अहन्यहनि वर्धमाना सती सात्त्विकी तत्पादसंबन्धस्यैवैष महिमेति दृष्टान्तेनाह-यथेति ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाले परमेश्वर ही हैं अर्वाचीन देवता नहीं, क्योंकि देवता भी तो जीव ही हैं। इस बात को महाराज पृथु तीन श्लोकों द्वारा कहते हैं । जिन श्रीभगवान् के चरणों की सेवा में बढ़ने वाली तपस्वियों के अनेक जन्मों के मनोमल को शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट कर देती है उन्हीं श्रीभगवान् के चरणों की सेवा आपलोग करें यह आगे के तीसरे श्लोक से अन्वय है । अब प्रश्न होता है कि कैसी अभिरुचि तो इसे बतलाते हैं प्रतिदिन बढ़ने वाली सात्त्विकी अभिरुचि । यह श्रीभगवान् के चरणों के सबन्ध की महिमा है । इस बात को उन्होंने गङ्गाजी के दृष्टान्त के माध्यम से कहा गया है ।।३१।।

**विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमानसङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् ।**
**यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनर्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥३२॥**

**अन्वयः**— यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः विनिर्धुताशेषमनोमलः, असङ्ग विज्ञानविशेष वीर्यवान् पुनः क्लेशवहां संसृतिं न प्रपद्यते ।।३२।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के चरण कमल को ही अपना आश्रय बनाने वाला मनुष्य अन्तःकरण के सारे मलों (दोषों) के विनष्ट हो जाने के कारण अनासक्ति के कारण अपरोक्ष ज्ञान रूपी विशेष विज्ञान के बल से पुनः इस दुखप्रद संसार चक्र में नहीं पड़ता है ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

विनिर्धुता अशेषा मनोमला यस्य । असङ्गो वैराग्यं तेन विज्ञानस्य विशेषः साक्षात्कारस्तदेव वीर्यं यस्य । यस्याङ्घ्रिमूले कृताश्रयः सन् ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

जिनके सम्पूर्ण मन के मैल विनष्ट हो गये हैं और अनासक्ति रूप वैराग्य जन्य विज्ञान विशेष (अपरोक्ष ज्ञान) रूप बल से युक्त मनुष्य श्रीभगवान् के चरणों को ही अपना आश्रय बना लेता है ।।३२।।

**तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ।**
**अमायिनः कामदुघाङ्घ्रिपङ्कजं यथाधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥३३॥**

**अन्वयः**— यूयम् आत्म वृत्तिभिः मनो वचः कायगुणैः स्वकर्मभि अमायिनः यथाधिकारावसितार्थसिद्धय तमेव कामदुघाङ्घ्रि पङ्कजं भजत ।।३३।।

**अनुवाद**— आपलोग अपनी-अपनी आजीवका के लिए उपयोगी वर्णाश्रमोचित मन, वाणी और शरीर के द्वारा किए जाने वाले कर्मों के द्वारा निष्कपट भाव से यह सोचकर कि हमें अपने अधिकार के अनुसार इसका फल अवश्य मिलेगा, सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाले उन्हीं श्रीभगवान् के चरण कमलों की सेवा करें ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मवृत्तिभिरध्यापनादिभिः । मनोवचःकायानां गुणैर्ध्यानस्तुतिसपर्याभिः । अमायिनो निष्कपटाः सन्तः । ननु ब्रह्मादिभिः सेव्ये किमस्मद्भक्तया भविष्यति तत्राह । यथाधिकारमेवावसिता निश्चिता समाप्ता वाऽथसिद्धिर्येषाम् ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

अध्यापनादि कर्मो से मन वाणी शरीर के कर्मों का ध्यान स्तुति एवं पूजादि के द्वारा निष्कपट भाव से उन का भजन करें । यदि कहें कि ब्रह्मा आदि के द्वारा सेवित श्रीभगवान् को हमलोगों की सेवा से क्या होगा तो इस पर कहते है— कि अधिकार के अनुसार सबों को फल की प्राप्ति होती है ॥३३॥

**असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ।**
**संपद्यतेऽर्थाशयलिङ्गनामभिर्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥३४॥**

**अन्वयः**— स्वरूपतः विशुद्धविज्ञानघनः अगुणः असौ इह अनेकगुणः पृथग्द्रव्यगुण क्रियोक्तिभिः अर्थाश्रय लिङ्गनामभिः अध्वरः सम्पद्यते ।

**अनुवाद**— वे श्रीभगवान् स्वरूपत, विशुद्ध विज्ञानधन और सभी विशेषणों से रहित हैं, किन्तु इस कर्म मार्ग में यव, चावल आदि अनेक द्रव्यों, शुक्लादि गुण, अवधात आदि क्रियाओं एवं मन्त्रों द्वारा अर्थ, आशय (सङ्कल्प) लिङ्ग (पदार्थ शक्ति) तथा ज्योतिष्टोम आदि नामों से होने वाले अनेक विशेषणों से युक्त यज्ञ के रूप में प्रकाशित होते हैं ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

स्वकर्मभिर्यागादिभिर्भजतेत्युक्तं तत्र 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः' इति न्यायेन सर्वेषु यागतदङ्गतत्फलेषु भगवदृष्ट्या कर्म कर्तव्यं न भिन्नदृष्ट्येति वक्तुं तेषां भगवद्रूपतामाह द्वाभ्याम् । असौ भगवानेव स्वरूपतो विशुद्धविज्ञानघनोऽप्यगुणो निर्विशेषणोऽपि सन्निह कर्ममार्गेऽनेकगुणो नानाविशेषणवान् अध्वरो यज्ञः संपद्यते । 'यज्ञो वै विष्णुः' इति श्रुतेः । अनेकगुणत्वमेवाह । पृथग्विधानि यानि द्रव्यादीनि तैः । तत्र द्रव्याणि ब्रीह्यादीनि, गुणाः शुक्लादयः, क्रिया अवघातादयः, उक्तयो मन्त्राः । अर्थोऽङ्गसाध्य उपकारः, आशयः सङ्कल्पः, लिङ्गं पदार्थानां शक्तिः, नाम ज्योतिष्टोमादि, तैश्चाध्वरः संपद्यते ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

इससे पहले महाराज पृथु कह चुके है कि अपने यागादि रूप कर्मों से आपलोग श्रीभगवान् की आराधना करें । गीतोक्त **ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः** न्याय से याग, यागाङ्ग और यज्ञ के फल में भगवद् दृष्टि से ही कर्म करना चाहिए इस बात को बतलाने के लिए उन सबों की भगवतस्वरूपता को दो श्लोकों से बतलाते हैं । वे भगवान् ही स्वरूपतः विशुद्ध, ज्ञान रूप तथा सभी विशेषणों से रहित होकर भी कर्म मार्ग में अनेक विशेषणों से युक्त यज्ञ के रूप में प्रकट होते हैं । श्रुति भी कहती है— **'यज्ञो वै विष्णुः'** अर्थात् भगवान् विष्णु ही यज्ञ हैं । उनके अनेक गुणत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं— अनेक प्रकार के द्रव्य इत्यादि के द्वारा वे विशेषण विशिष्ट प्रतीत होते हैं । धान इत्यादि द्रव्यों, शुक्ल इत्यादि गुणों, अवघात आदि क्रियाओं मन्त्र रूप उक्तियों, अङ्ग साध्य उपकारों, आशय सङ्कल्प, पदार्थों की शक्ति रूप लिङ्ग ज्योतिष्टोम आदि नामों से यज्ञ के रूप में प्रकट होते हैं ॥३४॥

**प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ।**
**क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते यथाऽनलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥३५॥**

**अन्वयः**— यथा अनलः तदगुणात्मकेषु दारुषु विभाव्यते तथा विभु प्रधानकालाशय धर्मसंग्रहे शरीरे चेतनाम् प्रतिपद्य क्रिया फलत्वेन विभाव्यते ॥३५॥

**अनुवाद**— जिस प्रकार एक ही अग्नि अनेक आकार वाली लकड़ियों में अनेक अकार वाली प्रतीत होती है उसी तरह सर्व व्यापक परमात्मा परमानन्द स्वरूप होकर भी प्रकृति उसमें क्षोभ उत्पन्न करने वाले काल, वासना और धर्म (अदृष्ट) से उत्पन्न होने वाले शरीर में विषयाकार बुद्धि में स्थित होकर उन यज्ञ आदि क्रियाओं के फल रूप से अनेक प्रकार के प्रतीत होते हैं ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

यागतदङ्गानां भगवद्रूपत्वमुक्त्वा यागफलस्यापि भगवद्रूपतामाह-प्रधानेति । एष विभुः परमानन्दोऽपि शरीरे चेतनां विषयाकारां बुद्धिं प्रतिपद्य तदभिव्यङ्ग्यानन्दरूपः सन् क्रियाफलत्वेन प्रतीयते । 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेः । यथाऽनलो दारुषु स्थितस्तद्गुणात्मको दारुधर्मदैर्घ्यवक्रत्वादिमांस्तद्वत् । कथंभूते शरीरे । प्रधानमव्यक्तम्, कालस्तत्क्षोभकः, आशयो वासना, धर्मोऽदृष्टं, तैः संगृह्यते जन्यत इति तथा तस्मिन् ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

यागों तथा यागाङ्गों को भगवद्रूपता का प्रतिपादन इसके पहले वाले श्लोक में किया जा चुका है । अब इस श्लोक में याग के फल की भी भगवद्रूपता का प्रतिपादन करते हुए प्रधान इत्यादि कहते हैं । परमात्मा सर्वव्यापक तथा परमानन्द स्वरूप हैं फिर भी वे शरीर में विषय रूप से प्रतीत होने वाली बुद्धि में प्रवेश करके उसके द्वारा अभिव्यक्त होने वाले आनन्द स्वरूप रहते हुए यागादि क्रिया के फल रूप से प्रतीत होते है । श्रुति भी कहती है एतस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति अर्थात् इस आनन्द स्वरूप परमात्मा के ही सूक्ष्मतम अंश को प्राप्त करके दूसरे जीव आनन्दोपभोग का अनुभव करते है । जिस तरह अग्नि लकड़ों में स्थित रहकर लकड़ियों में रहने वाले लम्बापन टेढापन इत्यादि से युक्त प्रतीत होती हैं प्रकृति, उसके क्षोभक काल, आशय (वासना) तथा अदृष्ट से उत्पन्न शरीर में स्थित बुद्धि में स्थित होकर उसके द्वारा अभिव्यङ्ग्य आनन्द स्वरूप रहते हुए यागादि क्रियाओं के फलरूप से प्रतीत होते हैं ॥३५॥

**अहो ममामी वितरन्त्यनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञ भुजामधीश्वरम् ।**
**स्वधर्मयोगेन यजन्ति मामका निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥३६॥**

**अन्वयः**— अहो अमी मामकाः ये दृढव्रता स्वधर्मयोगेन यज्ञभुजाम् अधीश्वरम् हरिं गुरुम् क्षोणितले निरन्तरं 'यजन्ति ते मयि अनुग्रहं वितरन्ति ।'

**अनुवाद**— अरे ये मेरे जो दृढव्रत प्रजाजन अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुकूल धर्म के द्वारा यज्ञभोक्ताओं के स्वामी श्रीहरि की आराधन इस पृथिवी पर निरन्तर किया करते है, वे हम पर बहुत कृपा करते हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

तदेवमप्रवृत्तान्भगवद्भजने प्रवर्त्य स्वतः प्रवृत्तानां प्रवृत्तिमभिनन्दनेन द्रढयति अहो इति । वितरन्ति कुर्वन्ति ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार जो लोग भगवद् भजन में नहीं प्रवृत्त होते हैं उन लोगों को प्रवृत्त करके जो लोग अपने आप भगवद् भजन में प्रवृत्त हैं, उन लोगों की प्रवृत्ति की सराहना करके महाराज उनकी प्रवृत्ति को सुदृढ बनाते हुए **अहो अभी० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । वितरन्ति पद का अर्थ है करते हैं ॥३६॥

**मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभिस्तितिक्षया तपसा विद्यया च ।**
**देदीप्यमानेऽजितदेवतानां कुले स्वयं राजकुलाद्द्विजानाम् ॥३७॥**

**अन्वयः**— तितिक्षिया, तपसा विद्यया च द्विजानाम् अजितदेवतानां च स्वयं देदीप्यमाने कुले महर्द्धिभिः राजकुलात् तेजः जातु मा प्रभवेत् ॥३७॥

**अनुवाद**— सहनशीलता, तपस्या और विद्यया के कारण स्वभावतः तेजः सम्पन्न ब्राह्मणों एवं भगवद् भक्तों (वैष्णवों) के वंश पर राजकुल का तेज धन एवं ऐश्वर्य आदि समृद्धियों के कारण अपना प्रभाव कभी भी न डाले॥३७॥

## भावार्थ दीपिका

इदानीं हरिभक्तिदार्ढ्याय ब्राह्मणभक्तिं विधत्ते— मा जात्वित्यष्टभिः । महत्यश्च ता ऋद्धयश्च ताभिर्यद्राजकुलस्य तेजस्तत्तस्मात्सकाशाद्विजानां कुलेऽजितो देवता येषां वैष्णवानां तेषां च कुले मा जातु प्रभवेत्कदाचिदपि प्रभावं न करोतु । कथंभूते समृद्धिभिर्विनापि स्वयमेव तितिक्षादिभिर्देदीप्यमाने ॥३७॥

## भाव प्रकाशिका

अब **माजातु० इत्यादि** आठ श्लोकों से महाराज पृथु श्रीहरि की भक्ति को सुदृढ बनाने के लिए ब्राह्मणों की भक्ति का विधान करते हुए कहते हैं— धन-धान्य की समृद्धि के कारण राजकुलों (क्षत्रियों) का तेज कभी भी ब्राह्मणों एवं श्रीवैष्णवों के वंश पर कभी भी अपना प्रभाव न डाले । प्रश्न है कि किस प्रकार के ब्राह्मणों के वंश पर तो इसका उत्तर है कि समृद्धि के नहीं रहने पर भी तितिक्षा (सहिष्णुता) तपस्या और विद्या के कारण स्वभावतः तेजः सम्पन्न ब्राह्मणों एवं वैष्णवों के वंश पर प्रभाव न डाले ॥३७॥

**ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवन्दनात् ।**
**अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥३८॥**

**अन्वयः**— महत्तमाग्रणीः ब्रह्मण्य देवः पुरातनः पुरुषः हरिः नित्यं यच्चरणाभिबन्दनात् अनपायिनीं लक्ष्मीम् जगत् पवित्रं च यशः अवाप ॥३८॥

**अनुवाद**— ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुषों में अग्रगण्य, ब्राह्मणों के भक्त तथा पुराण पुरुष श्रीहरि भी उन ब्राह्मणों के ही चरणों की नित्य वन्दना करने के कारण अविचल लक्ष्मी और संसार को पवित्र बना देने वाली कीर्ति को प्राप्त किए हैं ॥३८॥

## भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणांस्तुवन्नाह । यच्चरणाभिवन्दनाद्धरिर्लक्ष्मीं यशश्चावाप । यत्सेवया चेश्वरस्तुष्यति तदेव ब्रह्मकुलं निषेव्यतामिति द्वयोरन्वयः ॥३८॥

## भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हुए महाराज पृथु कहते हैं जिन ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करने के कारण श्रीहरि ने लक्ष्मीजी को तथा यश को प्राप्त किया जिन ब्राह्मणों की सेवा करने से श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं । उन ब्राह्मणों के वंश की सेवा करनी चाहिए । इस तरह दोनों श्लोकों का अन्वय हैं ॥३८॥

**यत्सेवयाशेषगुहाशयः स्वराड्विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ।**
**तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥३९॥**

**अन्वयः**— यत्सेवया अशेषगुहाशयः स्वराड् विप्रप्रियः ईश्वरः कामम् तुष्यति तदेव ब्रह्म कुलम् तद् धर्म परैः विनीतैः सर्वात्मना निषेव्यताम् ॥३९॥

**अनुवाद**— जिन ब्राह्मण कुलों की सेवा करने से, सम्पूर्ण जीवों के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने वाले, स्वतंत्र ब्राह्मणों के भक्त सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीहरि अत्यन्त प्रसन्न होते हैं उसी ब्राह्मण वंश की श्रीभगवान् के लोक संग्रह रूप धर्म का पालन करने वाले आप लोग सेवा करें ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्य हरेर्लोकसंग्रहरूपो यो धर्मस्तत्परैः ॥३९॥

**भाव प्रकाशिका**

उन श्रीहरि के लोक संग्रह रूपी धर्म का पालन करने वाले आपलोग ब्राह्मण वंश की सेवा करें ॥३९॥

**पुमाँल्लभेतानतिवेलमात्मनः प्रसीदतोऽत्यन्तशमं स्वतः स्वयम् ।**
**यं नित्यसंबन्धनिषेवया ततः परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥४०॥**

**अन्वयः**— यन्नित्यसंबन्धनिषेवया स्वतः स्वयम् प्रसीदतः पुमान् अतिवेलम् आत्मनः शमं लभेत ततः परम अत्र हविर्भुजाम् मुखम् किमस्ति ॥४०॥

**अनुवाद**— जिनकी नित्य सेवा करने से चित्त के शीघ्र ही अपने आप शुद्ध हो जाने के कारण मनुष्य स्वयं हि परम शान्ति रूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, उन ब्राह्मणों से बढ़कर इस संसार में दूसरा कौन हविष्य भोजी देवताओं का मुख है ?॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु ब्रह्मकुल एव नित्यं सेव्यमाने सर्वदेवतामुखभूतेऽग्नौ यज्ञाद्यनुष्ठानं न स्यात्, नच तेन बिना चित्तशुद्धिः, नच तया बिना मोक्षः स्यादित्याशङ्क्याह- पुमानिति द्वाभ्याम् । यस्य ब्रह्मकुलस्य नित्यं संबन्धेन निषेवया पुमान्स्वयमेव ज्ञानाभ्यासादिकं विनाप्यत्युत्तमं शमं मोक्षं लभेत । कुतः यत्सेवया स्वत एवानतिवेलं शीघ्रं प्रसीदतः शुध्यत आत्मनश्चित्तात् । ततः परं श्रेष्ठं देवानां किं मुखमस्ति । ब्राह्मणसेवयैव यज्ञादिफलं ज्ञानफलं तत्सर्वं भवतीत्यर्थः ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई कहे कि सदैव ब्राह्मण वंश की सेवा करते रहने पर सभी देवताओं के मुख स्वरूप अग्नि में यज्ञ आदि का अनुष्ठान नहीं होंगे, और यज्ञादि के बिना चित्त की शुद्धि नहीं होगी और चित्त की शुद्धि के बिना मोक्ष भी नहीं हो सकता है इस तरह की आशङ्का करके **पुमान्० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं— जिस ब्राह्मण कुल का नित्य संबन्ध रूप सेवा के द्वारा मनुष्य स्वयम् हि ज्ञान तथा अभ्यास आदि के बिना भी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । यदि कोई पूछे कि यह कैसे तो इसका उत्तर है कि जिन ब्राह्मणों की सेवा से अन्तःकरण शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है, उन ब्राह्मणों से श्रेष्ठ हविष्य भोजी देवताओं का मुख रूप कौन सी अग्नि हैं ?॥४०॥

**अश्नात्यनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः ।**
**न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्यपर्यगुः ॥४१॥**

**अन्वयः**— पारमहंस्य पर्यगुः अनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः इज्यनामभिः यन्मुखे श्रद्धाहुतं यथा अश्नाति तथा चेतनपा बहिष्कृते हुताशने वै न ॥४१॥

**अनुवाद**— उपनिषदों के ज्ञान परक वाक्य जिनमें ही केवल गतार्थ होते हैं, वे भगवान् अनन्त तत्त्वज्ञ पुरुषों के द्वारा जिन ब्राह्मणों के मुख में हवन किए गए पदार्थों का जितने चाव से ग्रहण करते हैं उतने चाव से वे चेतना से रहित अग्नि में हवन किये गये द्रव्यों को नहीं ग्रहण करते हैं ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

हरेरपि तदेव परं मुखमित्याह-अश्नातीति । इज्यानां पूज्यानामिन्द्रादीनां नामभिर्यस्य मुखे श्रद्धया हुतं हविरनन्तो यथाश्नाति तथा चेतनया रहिते हुताशने हुतं नाश्नाति । कैर्हुतमश्नाति । तत्त्वकोविदैः सर्वदेवमयश्चैतन्यमूर्तिरनन्त इति तत्त्वं विद्वद्भिः । कुतः एवंभूतोऽसौ तत्राह । पारमहंस्यं ज्ञानं तत्परानर्हन्त्यधिकुर्वन्तीति पारमहंस्यपर्यास्ता गावो वाचो यस्मिन् । उपनिषद्भिर्ज्ञानघनत्वेनोक्त इत्यर्थः । यद्वा परमहंसानां ज्ञाननिष्ठानां गम्यः पारमहंस्यः । परितो न गच्छन्ति गावो वाचो यस्मात्स पयगुरिन्द्रियनियन्ता स चासौ स च पारमहंस्यपर्यगुर्ज्ञानरूपः सर्वान्तर्यामीत्यर्थः ।।४१।।

### भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों का ही मुख श्रीहरि का भी श्रेष्ठ मुख है इस बात को **अश्नाति० इत्यादि** श्लोक से महाराज पृथु कहते हैं । पूज्य इन्द्रादि देवताओं के नाम से जिन ब्राह्मणों के मुख में श्रद्धा पूर्वक किए गये होम के हविष्य को श्रीभगवान् जितने प्रेम से ग्रहण करते हैं चेतना से रहित अग्नि में होम किए गये हविष्य को वे उतने प्रेम से नहीं ग्रहण करते हैं । प्रश्न होता है कि किन लोगों के द्वारा होम किए गये को ग्रहण करते हैं तो इसका उत्तर है, कि ज्ञान स्वरूप परमात्मा सर्वदेवमय है, इस तरह तत्त्व के ज्ञाताओं द्वारा होम किए गये को । प्रश्न है कि परमात्मा इस प्रकार के कैसे है ? तो इसका उत्तर है कि वे **पारमहंस्यपर्यगुः** है । पारमहंस्यज्ञान परायणों को ही जो अपना विषय बनाती है वे उपनिषदों की वाणियाँ जिनमें समन्वित हो जाती हैं । अर्थात् उपनिषद् वाणी जिनको ज्ञान घन रूप से बतलाती हैं, वे अनन्त परमात्मा है । अथवा ज्ञाननिष्ठ परमहंस जन ही जिनको जान पाते हैं, वे भगवान् पारमहंस्य है । उनको छोड़कर उपनिषदों के वाक्य दूसरे का प्रतिपादन नहीं करते हैं, वे इन्द्रियों के नियन्ता ज्ञान स्वरूप सर्वान्तर्यामी परमात्मा है ।।४१।।

**यद्ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धातपोमङ्गलमौनसंयमैः ।**
**समाधिना बिभ्रति हार्थदृष्टये यत्रेदमादर्श इवावभासते ।।४२।।**
**तेषामहं पादसरोजरेणुमार्या वहेयाधिकिरीटमायुः ।**
**यं नित्यदा विभ्रत आशु पापं नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजन्ति ।।४३।।**

**अन्वयः**— यत् नित्यं विरजं सनातनं ब्रह्म श्रद्धातपोमङ्गल मौन संयमैः समाधिना हि अर्थ दृष्टये विभ्रति यत्र इदम् उपदर्शे इवाव भासते, हे आर्याः तेषां पादसरोज रेणुम् अहं आ आयुः अधिकिरीटम् वहेय यं नित्यदा विभ्रतः पापं आशु नश्यति, अमुं सर्वगुणाः भजन्ति ।।४२-४३।।

**अनुवाद**— जो ब्राह्मण सदैव निर्दोष तथा सनातन वेद को श्रद्धा तप और नित्य ही सदाचार का पालन करते हुए पापादि का परित्याग रूप तत्त्वदर्शी ऋषियों से प्रोक्त मङ्गल अध्ययन विरोधी वार्तालाप के परित्याग रूप मौन, तथा चित्त की स्थिरता रूप समाधि के द्वारा वेदार्थ के विचार रूप ज्ञान की प्राप्ति के लिए धारण करते हैं, जिन दर्पण के समान वेदों में यह सम्पूर्ण विश्व प्रतिविम्बित होता है, हे पूज्य पुरुषों ! उन ब्राह्मणों के चरण कमलों की धूल को अपने जीवन पर्यन्त अपने किरीट के ऊपर धारण करना चाहता हूँ क्योंकि उन धूलों को सदैव धारण करने वाले के पाप शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं और उनमें सभी सद्गुणों का निवास हो जाता हैं ।।४२-४३।।

### भावार्थ दीपिका

न केवलं चेतनत्वेन हुताशनाद्विशेषः किंतु वेदज्ञानादपीत्याह । यदित्यव्ययम् । ये ब्रह्म वेदं नित्यं बिभ्रति तेषामित्युत्तरेणान्वयः। मङ्गलं नाम 'प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तस्य वर्जनम् । एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।' मौनमध्ययनविरोधिवार्तात्यागः। समाधिना चित्तस्थैर्येण। अर्थदृष्टये वेदार्थमपि विचारयन्तीत्यर्थः । यत्र वेदे इदं विश्वमवभासते यथा आदर्शे मुखम् । हे आर्याः, आ आयुर्यावज्जीवमधिकिरीटं मुकुटस्योपरि वहेयेति प्रार्थनायां लिङ् । यं रेणुम् ।।४२-४३।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मण केवल इसीलिए अग्नि से श्रेष्ठ नहीं हैं कि वे चेतन हैं अपितु वेदज्ञ होने के कारण भी वे अग्नि से श्रेष्ठ हैं। **यद् ब्रह्म** का यत् शब्द अव्यय है। जो ब्राह्मण वेद को नित्य ही धारण करते हैं उन सबों के चरणों की धूल को मैं अपने किरीट पर धारण करूँ। यह अगले श्लोक के साथ अन्वय है। निन्दित कर्मों के परित्याग पूर्वक प्रशस्त कर्मों का अनुष्ठान करना यही मङ्गल है तत्त्वज्ञ ऋषियों ने कहा है। अध्ययन के विरोधी वार्तालाप के त्याग को मौन कहते हैं। चित्त की एकाग्रता को ही समाधि कहते हैं। तथा जो ब्राह्मण वेद के अर्थ का विचार भी करते हैं। उस वेद में यह सम्पूर्ण विश्व उसी तरह प्रतिबिम्बित होता है जिस तरह दर्पण में मुख प्रतिबिम्बित होता है। हे आर्याः ! अर्थात् हे पूज्य पुरुषों ऐसे ब्राह्मणों के चरणों की धूलि को मैं आजीवन अपने किरीट पर धारण करना चाहता हूँ। यहाँ **वहेयम्** में प्रार्थना के अर्थ में लिङ् लकार हैं ॥४२-४३॥

**गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनु संपदः।**
**प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्यम् ॥४४॥**

**अन्वयः**— गुणायनं शीलधनं, कृतज्ञं वृद्धाश्रयं सम्पदः अनु संवृणते, मह्यम् ब्रह्मकुलं, गवां च सानुचरः जनार्दनः च प्रसीदताम् ॥४४॥

**अनुवाद**— गुण सम्पन्न शील गुणवान् कृतज्ञ तथा वृद्धों की सेवा करने वाले मनुष्य को सम्पत्तियाँ अपने आप प्राप्त हो जाती हैं। अतएव मेरी यही अभिलाषा है कि मुझ पर ब्राह्मण वंश, गोवंश, तथा अपने अनुचरों के साथ भगवान् जनार्दन प्रसन्न हो जायँ ॥४४॥

**भावार्थ दीपिका**

गुणभजनस्य फलमाह। गुणायनमन्वनु संपदः संवृणते सम्यग्भजन्ति। तस्मात्प्रसीदतां प्रसीदतु। गवां च कुलम्॥४४॥

**भाव प्रकाशिका**

गुणों की प्राप्ति का फल इस श्लोक में महाराज पृथु ने कहा गुणों की प्राप्ति के पश्चाचात् सम्पत्तियाँ अपने आप प्राप्त हो जाती हैं। अतएव ब्राह्मण वंश और गोवंश मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥४४॥

मैत्रेय उवाच

**इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः। तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः ॥४५॥**

**अन्वयः**— इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातय साधवः हृष्टमनसः साधुवादेन तुष्टुवुः ॥४५॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से कहने वाले महाराज पृथु की बातों को सुनकर पितृगण, देवगण और ब्राह्मणगण प्रसन्न मन से साधुवाद करते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ॥४५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥४५॥

**पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः। ब्रह्मदण्डहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥४६॥**

**अन्वयः**— पुत्रेण लोकान् जयते इति सत्यवती श्रुतिः यत ब्राह्मणदण्डहतः पापो वेनः तमः अतरत् ॥४६॥

**अनुवाद**— पिता पुत्र के द्वारा ही पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त कर लेता यह श्रुति सत्य है। इसीलिए ब्राह्मण के शाप से मरा हुआ पापी वेन इनके पुण्य से नरक को पार कर गया ॥४६॥

### भावार्थ दीपिका

साधुवादमाह- पुत्रेणेति षड्भिः । यद्यतो वेनोऽपि तमो नरकमत्यतरत् अतितितार ।।४६।।

### भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त साधुवाद का वर्णन मैत्रेयजी छह श्लोकों में करते हैं । इनके पुण्य के ही कारण पापी वेन नरक को पार कर गया ।।४६।।

**हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निन्दया तमः । विविक्षुरत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ।।४७।।**

**अन्वयः**— भगवन्निन्दया तमः विविक्षु हिरण्यकशिपुः चापि सुनोः प्रह्लादस्य अनुभावतः तमः अत्यगात् ।।४७।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् की निन्दा करने के कारण हिरण्यकशिपु भी नरक में ही जाने वाला था, किन्तु अपने पुत्र प्रह्लाद के प्रभाव से उसने नरकों को पार कर लिया ।।४७।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।४७।।

**वीरवर्य पितः पृथ्व्याः समाः संजीव शाश्वतीः । यस्येदृश्यच्युते भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ।।४८।।**

**अन्वयः**— हे वीरवर्य, पृथ्व्याः पितः शाश्वतीः समाः संजीव, यस्यते सर्वलोकैकभर्तरि अच्युते इदृशी भक्तिः ।।४८।।

**अनुवाद**— हे वीरवर्य, हे पृथिवी देवी के पितः आप शाश्वत काल पर्यन्त जीवित रहें । क्योंकि आपकी सम्पूर्ण लोकों के एकमात्र स्वामी भगवान् अच्युत में इस प्रकार की भक्ति हैं ।।४८।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।४८।।

**अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः ।**
**य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णोर्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ।।४९।।**

**अन्वयः**—हे पवित्र कीर्ते यः उत्तमश्लोकतमस्य ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति। अद्यहि वयं त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः।।४९।।

**अनुवाद**— हे महाराज आपका यशपवित्र है क्योंकि आप उदारकीर्ति वालों में सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों के भक्त श्रीहरि की कथा का प्रचार करते हैं । हमारा यही परम सौभाग्य है कि आपको अपने स्वामी के रूप में प्राप्त करके हमलोग अपने को श्रीभगवान् के राज्य में मानते हैं ।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

मुकुन्दनाथाः स्म । त्वन्नाथत्वमेव मुकुन्दनाथत्वे पर्यवसितमित्यर्थः । तत्र हेतुः-य इति ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

हमलोगों के स्वामी श्रीभगवान् ही हो गये है । आपका ही स्वामित्व भगवत् स्वामित्व के रूप में पर्यवसन्न हो गया है । उसका कारण **य उत्तमश्लोकतमस्य० इत्यादि** उत्तरार्द्ध के द्वारा बतलाया गया है ।।४९।।

**नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनम् । प्रजानुरागो महतां प्रकृतिः करुणात्मनाम् ।।५०।।**

**अन्वयः**— हे नाथ ! तव इदं आजीव्यानुशासनम् अत्यद्भुतं न महताम् करुणात्मनाम् प्रजानुरागः प्रकृतिः ।।५०।।

**अनुवाद**— हे नाथ ! आपका अपने आश्रितों को इस प्रकार का श्रेष्ठ उपदेश देना कोई अत्यन्त आश्चर्य की बात नहीं हैं, करुणा सम्पन्न महापुरुषों का अपनी प्रजा के प्रति अनुराग तो स्वभाव ही होता है ।।५०।।

### भावार्थ दीपिका

आजीविनां सेवकानां आ सम्यगनुशासनम् । प्रजास्वनुरागः । प्रकृतिः स्वभावः ।।५०।।

**भाव प्रकाशिका**

आजीविनाम् आनुशासनम् यह आजीव्यानुशासनम् का विग्रह है । अर्थात् अपने सेवकों को इस तरह का श्रेष्ठ उपदेश देना । प्रजानुरागः अर्थात् प्रजाओं के प्रति प्रेम । प्रकृतिः अर्थात् स्वभाव ॥५०॥

**अद्य नस्तमसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो । भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ॥५१॥**

**अन्वयः**— हे प्रभो ! दैव संज्ञितैः कर्मभिः नष्ट दृष्टीनां भ्राम्यतांनः अद्य तमसः पारः त्वया उपासादितः ॥५१॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! दैव संज्ञक कर्मों के द्वारा, विवेक हीन हुए तथा संसार में भटकने वाले हमलोगों को आज आपने अज्ञानान्धकार के पार पहुँचा दिया है ॥५१॥

**भावार्थ दीपिका**

उपासादितः प्रापितः । कर्मभिर्भ्राम्यताम् ॥५१॥

**भाव प्रकाशिका**

**उपासादितः** पद का अर्थ है प्राप्त करा दिया है । **कर्मभिः भ्राम्यताम्** अर्थात् कर्माधीन होकर संसार में भटकने वालों को ॥५१॥

**नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे । यो ब्रह्म क्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ॥५२॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

**अन्वयः**— विवृद्धसत्त्वाय महीयसे पुरुषाय नमः । यः ब्रह्मक्षत्रम् आविश्य इदं स्वतेजासा विभर्ति ॥५२॥

**अनुवाद**— आपमें सत्त्वगुण विशेष रूप से समृद्ध हो गया है, ऐसे महान् पुरुष आपको नमस्कार है । जो आप ब्राह्मण जाति में आविष्ट होकर क्षत्रियों की और क्षत्रिय जाति में प्रविष्ट होकर ब्राह्मणों की तथा दोनों में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करते हैं ॥५२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत इक्कीसवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२१॥**

**भावार्थ दीपिका**

ईश्वरदृष्ट्या विप्रादयोऽपि प्रणमन्ति-नम इति । ब्रह्माविश्य ब्राह्मणजातिमधिष्ठाय क्षत्रं क्षत्रियं विभर्ति । क्षत्रं चाविश्य ब्रह्म विभर्ति । तदुभवं चाविश्येदं विश्वं विभर्ति ॥५२॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥२१॥**

**भाव प्रकाशिका**

महाराज पृथु में परमात्म दृष्टि होने के कारण ब्रह्म आदि भी उनको प्रणाम करते हुए **नमः इत्यादि** श्लोक कहते हैं । ब्राह्मण जाति में प्रवेश करके क्षत्रियों की और क्षत्रिय जाति में प्रवेश करके ब्राह्मणों की और दोनों में प्रवेश करके सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करते हैं ॥५२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका के इक्कीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२१॥**

# बाइसवाँ अध्याय

## महाराज पृथु को सनकादि का उपदेश

मैत्रेय उवाच

**जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथु पृथुलविक्रमम् । तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ।।१।।**

**अन्वयः**— पृथुलविक्रमम् पृथुम् एवं गृणत्सुजनेषु तत्र सूर्यवर्चसः चत्वारः मुनयः उपजग्मुः ।।१।।

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— जिस समय परम पराक्रमी महाराज पृथु की प्रार्थना प्रजायें कर रही थी उसी समय वहाँ पर सूर्य के समान तेजस्वी चार मुनिगण आये ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

द्वाविंशे तु परं ज्ञानं पृथवे हरिशासनात् । सनत्कुमारो भगवानुपादिशदितीर्यते ।।१।। मुनयः सनकादयः ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रीहरि की आज्ञा से भगवान् सनत्कुमार ने महाराज पृथु को सवोत्तम ज्ञान का उपदेश दिया इस बात का वर्णन बाइसवें अध्याय में किया गया है । मुनयः पद से सनकादिकों को कहा गया है ।।१।।

**तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा । लोकानपापान्कुर्वत्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ।।२।।**

**अन्वयः**— सानुगो राजा लक्षितान् तान् सिद्धेश्वरान् तु लोकान् अपापान् कुर्वन्त्या अर्चिषा व्योम्नः अवतरतः अचष्ट।।२।।

**अनुवाद**— अपने अनुचरों के साथ राजा ने दिखाई पड़ने वाले उन सिद्धेश्वरों को जगत् के निष्पाप बनाने वाली अपनी कान्ति से युक्त आकाश से उतरते हुए देखा ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

अर्चिषा लक्षितान् सनकादय इति ज्ञापितान् । अचष्टापश्यत् ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

कान्ति के द्वारा ही ये सनकादिक है इस तरह से ज्ञात, उन सबों को देखा ।।२।।

**तद्दर्शनोद्गतान्प्राणान्प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः । ससदस्यानुगो वैन्य इन्द्रियेशो गुणानिव ।।३।।**

**अन्वयः**— इन्द्रियेशः गुणान् इव तददर्शनोद्गतान् प्राणान् प्रतयादित्सुः इव ससदस्यानुगो वैन्यः उत्थितः ।।३।।

**अनुवाद**— जिस तरह इन्द्रियों का स्वामी जीव जैसे विषयों की ओर दौड़ता है उसी तरह उन सिद्धेश्वरों को देखकर उत्कण्ठा वशात् ऊपर की ओर उठतेहुए प्राणों को मानो लौटाने के महाराज पृथु अपने सदस्यों और अनुचरों के साथ उठकर खड़े हो गये ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

तेषां दर्शनेनोद्गतान्प्राणान्प्राप्तुमिच्छुरिव । अयं भावः– 'ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति । प्रतयुत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते– इति स्मृते । प्राणास्तावत्तत्तेजसाक्षिप्तास्तान्प्रत्युद्गच्छन्ति, अतः स्वयमनुद्गच्छतः प्राणहानिः स्यादिति भयादिव ससंभ्रमं प्रत्युद्गभं चकारेति । सह सदस्यैरनुगैश्च वर्तमानः । इन्द्रियेशो जीवो गुणान्गन्धादीन्प्रति यथोद्गच्छतीत्यौत्सुक्ये दृष्टान्तः।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

उन सिद्धेश्वरों के देखने से ऊपर की ओर उठते हुए प्राणों को प्राप्त करने के इच्छुक के समान् । यह **तददर्शनोद्गतान्प्राणान् प्रतयादित्सुखि** का अर्थ है । **अयंभावः** कहने का अभिप्राय है कि मनुस्मृतिकार ने कहा

है कि अपने से वृद्ध पुरुष के आने पर युवक पुरुष के प्राण ऊपर की ओर उठने लगते हैं। जब वह युवक उठकर उस वृद्ध को नमस्कार कर लेता है तो उसके प्राण पहले के ही समान स्थिर हो जाते हैं। महाराज ने सोचा कि उन सिद्धेश्वरों के तेज से प्राण उन लोगों के पास जा रहे हैं, यदि स्वयम् मैं उन लोगां के पास न जाऊँ तो प्राणों की हानि हो सकती है, मानो इसी भय से राजा उठकर खड़े हो गयें। उस सयम राजा सदस्यों और अनुचरों के साथ विद्यमान थे। इन्द्रिय शब्द से जीव को कहा गया है। जिस तरह से जीव गन्ध आदि विषयों के पास जाता है उसी तरह से उत्कण्ठावशात् प्राणों के उद्गमन का दृष्टान्त हैं ॥३॥

**गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकन्धरः। विधिवत्पूजयांचक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥४॥**

**अन्वयः**— गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानत कन्धरः गृहीताध्यर्हणासनान् विधिवत् पूजयां चक्रे ॥४॥

**अनुवाद**— उन मुनियों के गौरव से वशीकृत शिष्टाग्रगण्य राजा नम्रता के कारण अपनी गर्दन को झुकाये हुए अर्ध्य आदि पूजा को स्वीकार करके बैठे हुए उन लोगों की विधिपूर्वक पूजा की ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

यन्त्रितो वशीकृतः। गृहीतमध्यर्हणमर्ध्यमासनं च यैस्तान् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

मुनियों के गौरव से प्रभावित राजा ने अर्ध्य आदि से पूजन के बाद आसन पर बैठे हुए उन लोगों की सविधि पूजा की ॥४॥

**तत्पादशौचसलिलैर्मार्जितालकबन्धनः। तत्र शीलवतां वृत्तमाचरन्मानयन्निव ॥५॥**

**अन्वयः**— तत्पादशौचसलिलैः मार्जितालकबन्धनः तत्र शीलवतां वृत्तम् आचरन् मानयन्निव ॥५॥

**अनुवाद**— उन महर्षियों के चरणोंदक को अपने सिर पर छिड़ककर शिष्टजनों के आचरण का पालन तथा समादर करके मानों उन्होंने यह शिक्ष दी कि सभी सत्पुरुषों को ऐसा ही आचरण करना चाहिए ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

मार्जितं क्षालितमलकबन्धनं यस्य। मानयन्निव स्वयं चचार ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज पृथु ने उन मुनियों के चरणोदक से अपने केशों को पोंछते हुए के समान शिष्ट पुरुषों के आचरण का मानो स्वयं पालन किया ॥५॥

**हाटकासन आसीनान्स्वधिष्ण्येष्विव पावकान्। श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥६॥**

**अन्वयः**— स्वाधिष्ण्येषुपावकान् इव हाटकासने आसीनान् भवाग्रजान् श्रद्धा संयम संयुक्त प्रीतः सन् प्राह ॥६॥

**अनुवाद**— सुवर्ण के आसन पर बैठे हुए अपने आसनों पर विद्यमान अग्नि के समान अपने बड़े भाइयों से शङ्करजी ने श्रद्धा एवं संयम् पूर्वक कहा ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

भवस्याप्यग्रजत्वेन मान्यान् ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने-अपने स्थान पर अग्नियों के समान सुवर्ण के आसन पर बैठे हुए शङ्करजी के बड़े भाई उन ऋषियों से श्रद्धा एवं संयम पूर्वक राजा ने प्रेम पूर्वक कहा ॥६॥

पृथुरुवाच

**अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गलायनाः । यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥७॥**

**अन्वयः**— अहो मङ्गलायनाः किं मे मङ्गलमचरितम् यस्य मे योगिभिः च दुर्दशानां वः दर्शनम् आसीत् ॥७॥

**पृथुजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरों मैंने ऐसा कौन सा पुण्य किया है जिसके कारण योगियों के लिए भी जिनका दर्शन कठिन है ऐसे आपलोगों का दर्शन मुझे मिला है ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रीतः प्राहेत्युक्तं तदेव प्रीतिपूर्वकं वचनमाह-अहो इति दशभिः । हे मङ्गलायनाः मङ्गलमयनं येषाम् । मया किं मङ्गलमाचरितम् । यस्य मे योगिभिरपि दुर्दर्शानां वो दर्शनमासीत् ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

इससे पहले के श्लोक में कहा गया है कि महाराज मनु ने प्रसन्नता पूर्वक कहा उस प्रीति पूर्वक वचन का वर्णन इसमें दश श्लोकों से किया गया है। हे मङ्गलाश्रय मुनीश्वरों मैंने कौन सा पुण्य किया है कि मुझे आपलोगों का दर्शन प्राप्त हुआ ? आप लोगों का दर्शन तो योगियों के भी लिए दुर्लभ है ॥७॥

**किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च । यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥८॥**

**अन्वयः**— यस्य विप्राः सानुगः शिवः विष्णुः च प्रसीदन्ति तस्य इहलोके परत्र च किं दुर्लभतरम् ॥८॥

**अनुवाद**— जिस पर ब्राह्मण, अनुचरों सहित शिवजी या भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं उसके लिए इस लोक में अथवा परलोक में क्या दुर्लभ हैं ?॥८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥८॥

**नैव लक्षयते लोको लोकान्पर्यटतोऽपि यान् । यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः ॥९॥**

**अन्वयः**— सर्व लोकान् पर्यटतः अपि यान् लोकः नैव लक्षयते यथा अस्य ये हेतवः सर्वदृशं आत्मानम् ॥९॥

**अनुवाद**— आपलोग सभी लोकों में पर्यटन करते रहते हैं फिर भी अनधिकारी मनुष्य आपलोगों का दर्शन नहीं कर पाते हैं। यह उसी तरह से है जैसे इस दृश्य प्रञ्च के कारणभूत महत् तत्व आदि सर्वसाक्षी आत्मा को नहीं देख पाते हैं ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

दुर्दर्शत्वमेवाह-नैवेति । सर्वदृशमात्मान यथा सर्वे दृश्या न लक्षयन्ते । येऽस्य विश्वस्य हेतवो महदादयो मन्वादयो वा। यद्वा कथंभूतान् । येऽस्य सर्वदृगात्मदर्शनस्य हेतवस्तान् ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

उन मुनीश्वरों के दुर्दशत्व का वर्णन करते हुए पृथु महाराज कहते हैं जिस तरह सर्वसाक्षी आत्मा को ये सभी दृश्य पदार्थ नहीं देख पाते हैं। जो इस विश्व के कारणभूत महदादि अथवा मनु आदि हैं वे भी अथवा कैसे आपलोगों का दर्शन मनुष्य नहीं कर पाते हैं। तो इसका उत्तर है कि जो आपलोग आत्मज्ञान के कारण हैं अर्थात् आत्मज्ञान प्रदान करने वाले हैं ॥९॥

**अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः । यद्गृहा ह्यर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरावरा; ॥१०॥**

**अन्वयः**— यद्गृहा हि साधवः अर्हवर्याम्बुतृण भूमीश्वरावराः ते अधना अपि गृहमेधिनःधन्याः ॥१०॥

**अनुवाद**— जिनके घरों में आप लोगों जैसे पुण्य पुरुष उनके जल, तृण, भूमि, गृहस्वामी अथवा सेवक आदि किसी भी पदार्थ को स्वीकार कर लेते हैं वे निर्धन भी गृहस्थ धन्य हैं ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

येषां साधूनां गृहा अर्हाणां पूज्यानां वर्या वरणीयाः स्वीकारार्हा अम्ब्वादयो येषु तादृशाः । अम्बु च तृणं च भूमिश्च ईश्वरो गृहस्वामी चावरा भृत्यादयश्च ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन साधु पुरुषों के गृह में पूज्य पुरुषों के लिए स्वीकार करने योग्य जल आदि हैं । अम्बुतृण भूमीश्वरावराः का विग्रह है अम्बु च तृणं च, भमिश्च, ईश्वरः च अवरश्च ते अर्थात् जल, तृण, भूमि, गृहस्वामी अथवा भृत्यआदि कोई भी पदार्थ पूज्य पुरुषों के द्वारा स्वीकार करने योग्य हैं ॥१०॥

**व्यालालयद्रुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसंपदः । यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥११॥**

**अन्वयः**— यद्गृहाः तीर्थपादीय पादतीर्थविवर्जिताः ते अरिक्ताखिलसंपदः अपिगृहाः व्यालालयद्रुमा वै ॥११॥

**अनुवाद**— जिन लोगों के घर में भगवद् भक्तों के चरणोदक के छीटे नहीं पड़ते हों वे सभी प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण भी गृह ऐसे वृक्षों के समान हैं जिसमें सर्पों का निवास होता है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यालानामालया द्रुमा एव ते । अरिक्ताः पूर्णा अखिलाः सम्पदो येषु तादृशा अपि यद्गृहा ये गृहास्तीर्थपादीया वैष्णवास्तेषां पादतीर्थेन विवर्जिताः ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

वे गृह सर्पों के निवास स्थान भूत वृक्ष के ही समान है जो सभी प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण हैं किन्तु वे गृह भगवद् भक्त वैष्णवों के चरणोदक से रहित हैं ॥११॥

**स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद्व्रतानि मुमुक्षवः । चरन्ति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहन्ति च ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे द्विजश्रेष्ठाः वः स्वागतम् यद्बाला एव मुमुक्षवः, धीराः बृहन्ति व्रतानि श्रद्धया चरन्ति ॥१२॥

**अनुवाद**— हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! आपलोगों का स्वागत है क्योंकि आपलोग तो बाल्यावस्था से मुमुक्षु पुरुषों के महान् व्रतों ब्रह्मचर्य आदि का धैर्य पूर्वक पालन करते हैं ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वागतं भद्रमागमनं जातम् । यद्यस्माद्बाला एव भवन्तो बृहन्ति व्रतानि चरन्ति । यद्वा येषां वो व्रतान्यन्ये बालाश्चरन्ति॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

आपलोगों के मङ्गलमय आगमन का स्वागत है । क्योंकि आपलोग तो बाल्यावस्था से ही मुमुक्षु पुरुषों के द्वारा महान् व्रतों का पालन करते हैं । अथवा आपलोगों के व्रत को दूसरे बालक पालन करते हैं ॥१२॥

**कच्चिन्नः कुशलं नाथा इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् । व्यसनावाप एतस्मिन्पतितानां स्वकर्मभिः ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे नाथाः स्वकर्मभिः एतस्मिन् व्यसनावाप पतितानाम् इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् कच्चित् नः कुशलम् ॥१३॥

**अनुवाद**— हे स्वामियों, अपने कर्मों के परतन्त्र होकर इस दुःखमय संसार में पड़े हुए तथा इन्द्रियों के विषयों को ही पुरुषार्थ मानने वाले हमलोगों के भी इस संसार से उद्धार का कोई साधन है क्या ?॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

इन्द्रियार्था विषयास्तानेवार्थं पुरुषार्थं ये विदन्ति तेषां नः व्यसनान्युप्यन्ते यस्मिंस्तस्मिन्संसारे ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

इन्द्रियों के विषयभूत रूप, रस, गन्ध और स्पर्श को ही पुरुषार्थ मानने वाले तथा जहाँ केवल कष्ट ही बोए जाते हैं, ऐसे कष्टों के क्षेत्र स्वरूप इस संसार में पड़े हुए हमलोगों के भी उद्धार का कोई साधन है क्या ?॥१३॥

**भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते । कुशलाकुशला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥१४॥**

**अन्वयः**— आत्मारामेषु भवत्सुकुशल प्रश्नः न ईष्यते यत्र कुशलाकुशलाः मतिवृत्तयः न सन्ति ॥१४॥

**अनुवाद**— आपलोग तो अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले हैं अतएव आपलोगों से कुशल पूछना उचित नहीं प्रतीत होता है । आपलोगों में कुशल तथा अकुशल विषयिणी बुद्धि की वृत्ति है ही नहीं ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

नन्वभ्यागतानां कुशलं पृच्छ्यते लोके, नत्वात्मनस्तत्राह-भवत्स्विति ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न होता है कि आये हुए व्यक्ति का ही कुशल पूछना चाहिए न कि अपने कुशल के विषय में पूछना चाहिए । इसके उत्तर में महाराज पृथु भवत्सु इस श्लोक को कहते हैं ॥१४॥

**तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम् । सपृच्छे भव एतस्मिन्क्षेमः केनाञ्जसा भवेत् ॥१५॥**

**अन्वयः**— तत् कृतविषम्भः अहं तपस्विनाम् सुहृदः वः पृच्छे एतस्मिन् भवे केन अञ्जसा क्षेमः भवेत् ॥१५॥

**अनुवाद**— अतएव आपलोगों में विश्वास करने वाला मैं, संसार जल से संतप्त जीवों के सुहृद आपलोगों से मैं पूछता हूँ कि इस संसार में किस साधन के द्वारा जीवों का कल्याण हो सकता हैं ?॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्तस्मात्कृतविश्वासः संस्तपस्विनां संतप्तानां सुहृदो वः युष्मान्पृच्छामि ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

अतएव आपलोगों में विश्वास करने वाला मैं तपस्विनाम् अर्थात् संसाराग्नि से संतप्त जीवों के सुहृद आपलोगों से मैं पूछता हूँ संसार से पार होने का सुगम उपाय क्या हैं ?॥१५॥

**व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः । स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥१६॥**

**अन्वयः**— व्यक्तम् आत्मवतां आत्मा आत्म भावनः अजः सिद्धरूपीभगवान् इमां चरति ॥१६॥

**अनुवाद**— निश्चित रूप से धैर्य सम्पन्न पुरुषों में आत्मा रूप से प्रकाशित होने वाले और उपासकों के हृदय में अपने स्वरूप को प्रकट करने वाले अजन्मा भगवान् आप सिद्धों के रूप में इस पृथिवी पर संञ्चरण किया करते हैं ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

न खल्वन्यगोगितुल्या यूयं किंतु साक्षाद्भगवानेवेत्याह । व्यक्तं निश्चितमात्मवतां धीराणामात्मा तेष्वात्मत्वेन प्रकाशमानः। आत्मानं भावयति प्रकाशयतीति तथा । अजः श्रीनारायणः इमां पृथ्वीं चरति ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

आपलोग दूसरे योगियों के समान नहीं है अपितु आपलोग साक्षात् भगवान है, इस बात को महाराज पृथु इस श्लोक में कहते हैं । निश्चित रूप से धीर पुरुषों की जो आत्मा इसमें आत्मा रूप से प्रकाशित होने वाले तथा उपासकों के हृदय में आत्मा रूप से अपने स्वरूप को प्रकट करने वाले तथा अजन्मा भगवान् नारायण ही आप सिद्धों का रूप धारण करके इस पृथिवी पर सञ्चरण किया करते हैं ॥१६॥

मैत्रेय उवाच

**पृथोस्तत्सूक्तामाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु । स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह ॥१७॥**

**अन्वयः**— पृथोः तत्सूक्तम् आकर्ण्यं सार षुष्ठु मित मधुकुमारः स्मयमान इव प्रत्युवाच ॥१७॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— निश्चित रूप से महाराज पृथु के सारगर्भित, गम्भीर, परिमित और मधुर वचन सुनकर श्रीसनत् कुमार महर्षि प्रसन्नता पूर्वक मुस्कुराते हुए के समान उनसे कहने लगे ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

सूक्तं शोभनवचनम् । सारं न्याय्यम् । सुप्ठु गम्भीरार्थम् । मितमल्पाक्षरम् । मधु श्रोत्रप्रियम् । मुखप्रसत्त्या स्मयमान इव प्रतीयमानः ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

सूक्तम् अर्थात् सुन्दर वचन, सारम् अर्थात् युक्ति युक्त, सुष्ठु अर्थात् अर्थ गाम्भीर्य से युक्त, मितम् अर्थात् कम अक्षरों वाले मधु अर्थात् सुनने में प्रिय लगने वाले मुख की प्रसन्नता के कारण मुस्कुराते हुए के समान प्रतीत होते हुए ॥१७॥

सनत्कुमार उवाच

**साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना । भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥१८॥**

**अन्वयः**— हे महाराज ! सर्वभूताहितात्मना विदुषा भवता साधु पृष्टम्, साधूनां चापि ईदृशी मति ॥१८॥

**सनत्कुमार महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— हे महाराज ! सभी जीवों का कल्याण करने वाले विज्ञ पुरुष आपने ठीक ही कहा है कि साधु पुरुषों की बुद्धि इसी प्रकार की होती है ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

विदुषा जानतापि । ईदृशी परार्थैकपरा ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

विदुषा अर्थात् सबकुछ जानने वाले भी आपने ठीक ही कहा है कि सज्जनों बुद्धि ईदृशी दूसरों का कल्याण करने में ही लगी रहने वाली होती हैं ॥१८॥

**सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषां च संमतः । यत्संभाषणसंप्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— साधूनाम् सङ्गमः खलु उभयेषाम् च सम्मतः । यत् सम्भाषण संप्रश्नः सर्वेषां शं वितनोति ॥१९॥

**अनुवाद**— सत्पुरुषों का सङ्गम् श्रोता और वक्ता दोनों को ही अभिमत होता है क्योंकि उनका सम्भाषण और प्रश्न सबों का कल्याणकारी होता है ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

स्वयमपि पृथोः सङ्गममभिनन्दति–सङ्गम इति । उभयेषां वक्तृणां श्रोतृणां च । येषां संभाषणसहितः संप्रश्नः सर्वेषां शं सुखं विस्तारयति ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

**सङ्गमः खलु इत्यादि** श्लोक के द्वारा महर्षि सनत्कुमार पृथु के सङ्गम की प्रशंसा करते हैं। **उभयेषाम्** अर्थात् श्रोत्राओं और वक्ताओं दोनों को सत्पुरुष का सम्भाषण और प्रश्न सबों के कल्याण का विस्तार करते हैं ।।१९।।

**अस्त्येव राजन्भवतो मधुद्विषः पादारविन्दस्य गुणानुवादने ।**
**रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमन्तरात्मनः ।।२०।।**

**अन्वयः**— राजन् भवतः मधुद्विषः पादारविन्दस्य गुणानुवादने दुरापा नौष्ठिकी रति अस्ति । या अन्तरात्मनः कषायं मलं कामं विधुनोति ।।२०।।

**अनुवाद**— राजन् ! आपकी भगवान् मधुसूदन के चरण कमल के गुणों का श्रवण करने में स्वाभाविक प्रेम हैं वह प्रेम दूसरों को बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है । वह अन्तरात्मा की वासना रूपी मल को पूर्ण रूप से विनष्ट कर देता हैं ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं सङ्गमं प्रश्नं चाभिनन्द्यानुवादमुखेनैव मोक्षसाधनमुपदिशति–अस्त्येवेति । गुणानामनुवादने प्रश्नद्वारेणानुवादप्रवर्तने श्रवण इत्यर्थ; । आत्मनो मनसोऽन्तरन्तस्थं कामात्मकं मलं विधुनोति । कषायं धातुरागवदनिवर्त्यम् ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सत्सङ्ग तथा प्रश्न की प्रशंसा करके उसका अनुवाद करते हुए उसको सङ्गम और प्रश्न को मोक्ष का साधन बतलाते हुए महर्षि सनत्कुमार **अस्त्येव० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । गुणानुवादने अर्थात् प्रश्न के द्वारा श्रीभगवान् के गुणों का प्रवर्तन करने अर्थात् श्रवण करने में आपकी नैष्ठिकी रति है । वह मन के भीतर विद्यमान वासना रूपी मल को उसी तरह से विनष्ट कर देती है जिस तरह खटाई धातु के मल को विनष्ट कर देती हैं ।।२०।।

**शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सधयग्विमृशेषु हेतुः ।**
**असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ।।२१।।**

**अन्वयः**— सधयग्विमृशेषु शास्त्रेषु नृणां क्षेमस्य इयानेव सुनिश्चितः हेतुः आत्मव्यतिरिक्ते असङ्गः, आत्मनि निर्गुणे ब्रह्मणि दृढा च या रतिः ।।२१।।

**अनुवाद**— जीवों के कल्याण का अच्छी तरह से विचार करने वाले शास्त्रों में जीवों के कल्याण के दो साधनों को ही निश्चित किया गया है । आत्मा से भिन्न देह आदि के विषय में वैराग्य और आत्म स्वरूप निर्गुण ब्रह्म में सुदृढ प्रेम ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

चित्तशुद्धैव बहिर्वैराग्यमात्मरतिश्च भवति, नच ततोऽधिकं साधनमस्ति, शास्त्रेषु तयोरेव मोक्षहेतुत्वनिश्चयादित्याह–शास्त्रेष्विति । सध्र्यग्विमृशेषु सम्यग्विचारवत्सु शास्त्रेषु क्षेमस्य हतुरेतावानेव सुनिश्चितः कोऽसौ । आत्मव्यतिरिक्ते देहादावसङ्गो वैराग्यमात्मनि च दृढा रतिः प्रीतिः । आत्मनो विशेषणं निर्गुणे ब्रह्मणीति ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

अन्त:करण की शुद्धि हो जाने पर ही आत्म व्यतिरिक्त विषयों में वैरागय और आत्म विषयक प्रेम होता है। उससे बढ़कर दूसरा कोई भी मुक्ति का साधन नहीं है, क्योंकि शास्त्रों में इन दोनों को ही मोक्ष के साधन रूपसे निश्चित किया गया है। इस बात को **शास्त्रेषु० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है। सध्र्यग्विमृशेषु अच्छी तरह से विचार करने वाले शास्त्रों में कल्याण के साधन से इन्हीं दोनों को निश्चित किया गया है। वे दोनों साधन कौन है ? तो इसका उत्तर है कि आत्मा से भिन्न देह आदि में वैराग्य और आत्मा के विषय में सुदृढ प्रेम निगुण ब्रह्म यह आत्मा का विशेषण है ॥२१॥

**सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाध्यात्मिकयोगनिष्ठया ।**
**योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रव: कथया पुण्य या च ॥२२॥**
**अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठ्यातृष्णया तत्संमतानामपरिग्रहेण च ।**
**विविक्तरुच्या परितोष आत्मन्विना हरेर्गुणपीयूषपानात् ॥२३॥**
**अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना ।**
**यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥२४॥**
**हरेर्मुहूस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन विजृम्भमाणया ।**
**भक्तया ह्यसङ्गः सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रतिः ॥२५॥**

**अन्वय:**— सा रतिः श्रद्धया, भगवद्धर्मचर्यया, जिज्ञासया, आध्यात्मिकयोगनिष्ठया, योगेश्वरोपासनया नित्यं पुण्यश्रव पुण्यया कथयाच, अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया, तत्संमतानामपरिग्रहेण, विविक्तरूच्या, आत्मन्विना परितोषः, हरेगुणपीयूषपानात्, अहिंसया, पारमहंस्य चर्यया, स्मृत्या, मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना, अकामैः यमैः नियमैः च, अनिन्दया अपि, निरीहया, द्वन्द्वतितिक्षया, हरेमुहुस्तत्पर कर्णपूरणागुणाभिधानेन, विजृम्भमाण्या भक्त्या सदसति अनात्मनि असङ्ग निर्गुणे ब्रह्मणि च अञ्जसा रतिः स्यात् ॥२२-२५॥

**अनुवाद**— शास्त्र यह भी बतलाते हैं कि गुरु और शास्त्रों के वचनों में विश्वास करना रूप श्रद्धा के द्वारा, भागवत धर्म का अनुष्ठान (पालन) करने से, तत्त्वों के विषय में जिज्ञासा करने से, ज्ञानयोग में निष्ठा रखने से, योगेश्वर श्रीहरि की उपासना करने से, प्रतिदिन पुण्य कीर्ति श्रीभगवान् की कथा का श्रवण करने से,धन तथा इन्द्रियों भोगों में ही आसक्त रहने वाले लोगों की गोष्ठी में प्रेम नहीं रखने से, उन लोगों को प्रिय लगने वाले पदार्थों का आसक्ति पूर्वक संग्रह नहीं करने से, भगवद् गुणामृत का पान करने के अतिरिक्त समय में आत्मा में ही सन्तुष्ट रहते हुए एकान्त सेवन की रुचि के द्वारा किसी भी जीव को कष्ट नहीं देना रूप अहिंसा के द्वारा पारमहंस्य धर्म का पालन करने से, आत्मकल्याण के साधनों का चिन्तन करने से, श्रीभगवान् के पवित्र चरित्र रूप श्रेष्ठ अमृत का पान करने से, निष्काम भाव से यम नियमों का पालन करने से, किसी दूसरे मार्ग की निन्दा नहीं करने से, योग क्षेम के लिए प्रयास नहीं करने से, शीत-उष्ण द्वन्द्वों को सहन करने से, भक्तजनों के कानों को सुख देने वाले श्रीभगवान् के गुणों का बार-बार कीर्तन करने से, क्षण-क्षण बढ़ती हुई भक्ति की भावना से मनुष्य का कार्य कारण रूप सम्पूर्ण जड़ प्रपञ्च से वैराग्य हो जाता है और निर्गुण परंब्रह्म में उसकी अनायास ही प्रीति हो जाती है ॥२२-२५॥

**भावार्थ दीपिका**

नन्वेतदेवातिदुर्लभमित्याशङ्क्योत्तमाधिकारिणः श्रवणमात्रेण भवति, अन्यस्य तु चित्तशुद्ध्यनुसारेण साधनतारतम्यतो वर्धमानया भक्त्येत्यभिप्रेत्याह-सेति चतुर्भिः । सा ब्रह्मणि रतिरसङ्गश्च श्रद्धादिभिः स्यादिति चतुर्थेनान्वय; । जिज्ञासया

तत्तद्विशेषबुभुत्सया पुण्यं श्रवो यशो यस्य तस्य हरेः पुण्यया कथया च । अर्थारामा अर्थनिष्ठास्तामसाः, इन्द्रियारामा; कामनिष्ठा राजसास्तैः सह या गोष्ठी तस्यामतृष्णया । तेषां च ये संमता अर्थाः कामाश्च तेषामपरिग्रहेणानासत्तया । विविक्ते विजने या रुचिस्तया । सा चात्मन्येव परितोषे सति स्यात्किंतु हरेगुणपीयूषपानाद्विना । तस्मिन्सति विविक्ते रूचिर्न कार्या, न चात्मनि परितोषः कार्य इत्यर्थः । पारमहंस्यचर्यया उपशमादिप्रधानया वृत्त्या । स्मृत्यात्महितानुसंधानेन मुकुन्दाचरितमेवाग्र्यं सीधु श्रेष्ठममृतं तच्चरितस्मृतिसुखेनेत्यर्थः । मार्गान्तरस्यानिन्दया । निरीहया योगक्षेमार्थक्रियाराहित्येन । शीतोष्णादिद्वन्द्वसहनेन कथयेत्यत्रोक्तमपि कथनं भक्तावन्तरङ्गत्वेन पुनरुच्यते । तत्परा हरिभक्तास्तेषां कर्णपूराः कर्णालङ्कारभूता ये हरेर्गुणास्तेषामभिधानेन। सदसति कार्यकारणरूपे ॥२२-२५॥

## भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता हैकि इतना ही होना अत्यन्त दुर्लभ है इस प्रकार की आशङ्का करके कहते हैं कि उत्तमधिकारियों को तो केवल सुनने मात्र से ही मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है । और दूसरे प्रकार के जो अधिकारी हैं उन लोगों को चित्त की शुद्धि के अनुसार साधनों के तारतम्य से बढ़ने वाली भक्ति के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है इस अर्थ का प्रतिपादन महर्षि **सा श्रद्धया० इत्यादि** चार श्लोकों से कहते है । यहाँ सा शब्द के द्वारा परंब्रह्म में प्रेम और आत्म व्यतिरिक्त में अनासक्ति श्रद्धा आदि के द्वारा ही होता है । इस तरह से श्रद्धा आदि का चौथे श्लोक से अन्वय है । **जिज्ञासया** अर्थात् भिन्न-भिन्न तत्त्वों के विषय में ज्ञान की इच्छा से **पुण्यश्रवः पुण्यया कथया** अर्थात् पवित्र कीति श्रीहरि की पुण्यमयी कथा के श्रवण से, **अर्थारामेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णाया अर्थाराम** अर्थात् धन में ही निष्ठा रखने वाले तामसी लोगों तथा इन्द्रियाराम अर्थात् इन्द्रियों के भोगों में ही आसक्त रहने वाले राजसी प्रवृत्ति के लोगों की जो गोष्ठी उसमें किसी भी प्रकार की तृष्णा नहीं रखने से, **तत्संमतानामपरिग्रहेण च** उन दोनों प्रकार के लोगों के अभिप्रेत जो अर्थ और काम उनमें आसक्ति के नहीं रखने से **विविक्तरुच्या** एकान्त सेवन करने की अभिरुचि के द्वारा वह रूचि श्रीहरि के गुण रूपी अमृत का पान करने से बचे समय में और अपने आप में संतुष्ट रहने से ही होती है । श्रीहरि की कथा सुनने के समय में एकान्त सेवन में रुचि नहीं होनी चाहिए और न तो उस आत्म परितोष ही करना चाहिए । **पारमहंस्य चर्यया** अर्थात् निवृत्ति निष्ठा के द्वारा, **स्मृत्या** अर्थात् आत्म कल्याण के साधनों का अनुसंधान करने से, **मुकुन्दाचरितग्र्यसीधुना** श्रीभगवान् के आचरण रूपी श्रेष्ठ अमृत के स्मरण जन्य सुख के द्वारा **अनिन्दया** दूसरे मार्ग की निन्दा नहीं करने से, **निरीहया** अपने योग क्षेम के लिए प्रयासरत नहीं रहने से, **द्वन्द्वतितिक्षया** शीत उष्ण आदि द्वन्द्वों को सहने से, पहले कथा को साधन बतलाया जा चुका है, उसका पुनः कथन इसलिए किया गया है कि वह भक्ति का अन्तरङ्ग साधन है । **हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन** श्रीहरि के भक्तों के कानों के अलङ्कार भूत जो श्रीहरि के गुण हैं, उन सबों का वर्णन करने से और कार्यकारण रूप आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं में अनासक्त रहने से आत्म स्वरूप निर्गुण ब्रह्म में अनयास ही प्रेम हो जाता है ।

**यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ।**
**दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥२६॥**

**अन्वयः**— यदा ब्रह्मणि नैष्ठिकीरतिः पुमान् आचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा अवीर्यं पञ्चात्मकं जीवकोश हृदयं च उत्थितोग्निः योनि रिव दहति ॥२६॥

**अनुवाद**— जब निर्गुण ब्रह्म में नैष्ठिक प्रेम हो जाता है तो मनुष्य आचार्य के शरण में जाता है उसके पश्चात् ज्ञान तथा वैराग्य के प्रबल वेग के द्वारा वासना शून्य अविद्या आदि पाञ्च प्रकार के क्लेशों से युक्त अहङ्कार स्वरूप अपने लिङ्ग शरीर को उसी तरह भस्म कर देता है जिस तरह काष्ठ से उत्पन्न अग्नि अपने कारणभूत काष्ठ का जलाकर भस्म कर देती हैं ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

भवत्वन्यत्रासङ्ग आत्मरतिश्च ततः किमत आह । यदा निष्ठां प्राप्ता रतिर्भवति तदाचार्यवान्सन् ज्ञानवैराग्ययोर्वेगेनावीर्यं निर्वासनं सज्जीवस्य कोशमावरकं हृदयं पुमान् दहति । कथंभूतम् । पञ्चमहाभूतप्रधानम् । यद्वा अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च तदात्मकम् । उत्थितः प्रज्वलितोऽग्निर्योनिमरणिमिव । यद्वा यदा रतिराचार्यानुग्रहश्च तदा ज्ञानविरागयोर्वेगेनोत्थितः साक्षात्कारोऽवीर्यं पुनः प्ररोहक्षमं यथा न भवत्येवं हृदयं दहति । शेषं समानम् ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं अनासक्ति और आत्मा में प्रेम हो जाने से क्या होगा ? तो इस पर महर्षि कहते हैं जब निष्ठा प्राप्त प्रेम आत्म स्वरूप ब्रह्म में होता है तब मनुष्य आचार्य की शरण लेता हैं । और आचार्योपदेश प्राप्त ज्ञान और वैराग्य के प्रबल वेग से वह निवीर्य (वासना रहित) जीव कोश को तथा उसके आवरक हृदय को मनुष्य भस्म कर देता है । यदि कहें कि कैसे कोश को तो उसका उत्तर है पञ्च महाभूत प्रधान जीव को अथवा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश रूप पञ्च क्लेशों से युक्त जीव कोश लिङ्ग शरीर को भस्म कर देता है । यह उसी तरह होता है जैसे अरणि से निकली हुई अग्नि अपने कारण भूत अरणि को जलाकर भस्म कर देती है । **यद्वा इत्यादि** अथवा आत्मरति और आचार्यानुग्रह प्राप्त होता है तब ज्ञान और वैराग्य इन दोनों के वेग से उत्पन्न साक्षात्कार अवीर्यं वासना रहित हृदय पुनः उत्पन्न होने के योग्य न रहे इस प्रकार से हृदय को जला देता है ।।२६।।

**दग्धाशयो मुक्तासमस्ततद्गुणो नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे ।**
**परात्मनोर्यद्व्यवधानं पुरस्तात्स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ।।२७।।**

**अन्वयः**— दग्धाशयः मुक्तसमस्त तद्गुणः यथा स्वप्ने तद् विनाशे पुरुषः नैवात्मनं बहिरन्तः विचष्टे यत् पुरस्तात् परात्मनोः व्यवधानम् ।।२७।।

**अनुवाद**— लिङ्ग शरीर का नाश हो जाने पर वह उसके (लिङ्ग शरीर के) कर्तृत्व आदि समस्त गुणों से मुक्त हो जाता है । उसके पश्चात् जिस तरह स्वप्नावस्था में दिखाई देने वाले तरह-तरह के पदार्थ जग जाने पर उनमें से कोई भी नहीं दिखता है उसी तरह वह पुरुष शरीर के बाहर दिखाई देने वाले घट-पट आदि और शरीर के भीतर अनुभूत होने वाले सुख-दुःख आदि को नहीं देखता है । इस स्थिति के प्राप्त होने से पहले के पदार्थ ही जीवात्मा और परमात्मा के बीच में रहकर उनका भेद कर रहे थे ।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह । दग्ध आशयो हृदयमुपाधिर्यस्य । अतएव मुक्ताः समस्तास्तद्गुणाः कर्तृत्वादयो येन आत्मनः सकाशाद्बहिर्घटाद्यन्तः सुखदुःखादिनैव विचष्टे न पश्यत्येव । कुत इत्यपेक्षायां द्रष्टृदृश्यप्रतीतेरन्तःकरणहेतुत्वादित्याह । परो दृश्यः आत्मा द्रष्टा तयोर्यद्व्यवधानं भेदकं पूर्वमासीत्तस्य विनाशे सति । यथा स्वप्ने राजाऽहमित्यारोपितं सैन्यादिद्रष्टारं दृश्यं सैन्यं च स्वप्नावस्थानाशे न पश्यति तद्वत् ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि उससे क्या हुआ तो इस पर महर्षि ने कहा जिसका हृदय रूपी उपाधि दग्ध हो जाता है, वह शरीर के सभी कर्तृत्व आदि गुणों से मुक्त हो जाता है । उसके फलस्वरूप वह पुरुष बाहर के घटादि पदार्थों और शरीर के भीतर होने वाले सुखादि को नहीं देखता है । क्योंकि द्रष्टा और दृश्य की प्रतीति का कारण अन्तःकरण ही है । इस स्थिति में पहले दृश्य और द्रष्टा आत्मा दोनों के बीच में रहकर भेद की प्रतीति कराता है । उसका

विनाश हो जाने पर जिस तरह कोई स्वप्न में अपने को राजा रूप से द्रष्टा बनकर दृश्य अपने सेना आदि को देखता है किन्तु जगने पर वह उन सबों को नहीं देखता है उसी तरह वह दृश्य प्रपञ्च को नहीं देखता है ॥२७॥

**आत्मानमिन्द्रियार्थं च परं यदुभयोरपि । सत्याशय उपाधौ वै पुमान्पश्यति नान्यदा ॥२८॥**

**अन्वयः**— अशये उपाधौ सति पुमान् आत्मानम् इन्द्रियार्थं च उभयो अपि यत् परं पश्यति नान्यदा ॥२८॥

**अनुवाद**— जब तक अन्त:करण रूपी उपाधि रहती हैं तब तक ही पुरुष को जीवात्मा इन्द्रियों के विषय और इन दोनों का सम्बन्ध कराने वाले अहङ्कार का अनुभव होता है उसके पश्चात् नहीं ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

द्रष्टृदश्यभेदप्रतीतेरन्तः करणहेतुत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यामुपपादयति- आत्मानमिति । आत्मानं द्रष्टारमिन्द्रियार्थं दृश्यमुभयोस्तयोः परं संबन्धहेतुमहंकारं चाशयेऽन्तःकरणे सत्येव जाग्रत्स्वप्नयोः पश्यत्यन्यदा सुषुप्तौ न, तदुक्तम् 'दृश्यानुरञ्जितं द्रष्टृ दृश्यं द्रष्ट्रनुरञ्जितम् । अहंकृत्योभयं रक्तं तन्नाशेऽद्वैततात्मनः ।' इति ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

द्रष्टृ और दृश्य के भेद की प्रतीति का कारण अन्त:करण ही है, इस अर्थ का प्रतिपादन अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा **आत्मानम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । द्रष्टा आत्मा दृश्य इन्द्रियों के विषय, उन दोनों के सम्बन्ध का कारण भूत अहङ्कार की प्रतीति अन्त:करण के रहने पर जाग्रदावस्था और स्वप्नावस्था में होती है, उससे भिन्न सुषुप्तावस्था में नही होती है । कहा भी गया है दृश्यानुरञ्जितम्० इत्यादि दृश्य के अनुसारञ्जित द्रष्टा है और द्रष्टा से अनुरञ्जित दृश्य अहङ्कार उन दोनों से संबद्ध होता है । उसका नाश हो जाने पर आत्मा का अभेद हो जाता है ॥२८॥

**निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः । आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥२९॥**

**अन्वयः**— पुरुष निमित्ते सति सर्वत्र जलादौ अपि आत्मनः च परस्यापि भिदां पश्यति अन्यदान ॥२९॥

**अनुवाद**— पुरुष जल, दर्पण आदि निमित्त के रहने पर ही बिम्बरूप आत्मा और प्रतिबिम्ब रूप दृश्य पदार्थों के भेद को देखता है अन्य समय में नहीं ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

एकस्मिन्नात्मनि दृश्यादिभेदप्रतीतिरौपाधिकीति दृष्टान्तेन स्पष्टयति-निमित्त इति । लोकेऽपि च सर्वत्र जलदर्पणादौ भेदनिमित्ते सत्येवात्मनो बिम्बभूतस्य परस्य प्रतिबिम्बस्य च भेदं पश्यति, नतु जलाद्यभावे ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

आत्मा एक है उसमें होने वाली दृश्य पदार्थों की प्रतीति उपाधि के कारण होती है इस अर्थ को दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट **निमित्ते० इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । लोक में भी देखा जाता है कि जल दर्पण आदि कारणों के रहने पर बिम्बभूत आत्मा और प्रतिबिम्भभूत दृश्य पदार्थों की प्रतीति होती है । जल आदि के अभाव में बिम्ब और प्रतिबिम्ब की प्रतीति नहीं होती है ॥२९॥

**इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः । चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥३०॥**

**अन्वयः**— ध्यायतां विषयाकृष्टैः इन्द्रियैः आक्षिप्तं मनः बुद्धेः चेतनां स्तम्बतोयाम् ह्रादात् इव ॥३०॥

**अनुवाद**— विषयों के ही चिन्तन में लगे रहने वाले लोगों की इन्द्रियाँ विषयों में ही फँस जाती हैं और वे मन को भी अपनी ओर उसी तरह खींच लेती है जिस तरह जलाशय में जमें हुए तृण अपनी जड़ से जलाशय के जल को खीचते हैं उसी तरह इन्द्रियासक्त मन बुद्धि की विचार शक्ति को हर लेता है ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

तदेवं चतुर्भिरसङ्गात्मरत्योर्मोक्षहेतुत्वमुक्तं, इदानीमनात्मरतेः संसारहेतुत्वमाह–इन्द्रियैरिति चतुर्भिः। ध्यायतां गुणारोपेण स्मरतां पुंसामिन्द्रियाणि स्मृतैर्विषयैराकृष्यन्ते। तैश्च मन आकृष्यते विषयासक्तिं प्राप्यते। तच्च बुद्धेः सकाशात्तद्धर्मं चेतनां विचारसामर्थ्यं हरति। एतच्चाविवेकिना न लक्ष्यत इति दृष्टान्तेनाह। तीरजः कुशादिस्तम्बो यथा मूलैस्तोयं ह्रदादपहरति तद्वत्॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से चार श्लोकों द्वारा यह बतलाया गया है कि अनासक्ति तथा आत्मरति के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है अब **इन्द्रियैः इत्यादि** चार श्लोकों द्वारा यह बतलाते हैं कि आत्म व्यतिरिक्त विषयों में आसक्ति होने पर संसार की प्राप्ति होती है। विषयों में गुणों का आरोप करके विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुषों की इन्द्रियों को स्मरण किए जाने वाले विषय अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। विषयाकृष्ट इन्द्रियाँ मन को अपनी ओर आकृष्ट करके उसको विषयासक्त बना देती हैं। वह विषयासक्त मन बुद्धि की विचार शक्ति का हरण कर लेता है। इस बात का पता अविवेकी मनुष्यों को नहीं लगता है। इस बात को दृष्टान्तोपन्यास के द्वारा बतलाते हैं। जिस तरह से जलाशय के तट पर उत्पन्न कुश आदि घास अपनी जड़ों से जलाशय के जलको खींचते रहते हैं उसी तरह॥३०॥

**भ्रश्यत्यनुस्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये। तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥३१॥**

**अन्वयः**— चित्तम् अनुस्मृतिः स्मृतिः भ्रश्यति, स्मृतिक्षये ज्ञानभ्रंशः कवयः तद्रोधं आत्मनः आत्मापह्नवं प्राहुः ॥३१॥

**अनुवाद**— विचारशक्ति के नष्ट हो जाने पर उसके पश्चात् पूर्वापर की स्मृति नष्ट हो जाती हैं, स्मृति का नाश होने पर ज्ञान का नाश हो जाता है, इस ज्ञान के नाश को ही पण्डितजन अपने ही अपना नाश करना कहते हैं ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

चित्तं चेतनामनु तस्यामपहृतायां स्मृतिः पूर्वापरानुसन्धानं भ्रश्यति। एवं तद्रोधं ज्ञानभ्रंशमात्मन एव हेतोरात्मनोऽपह्नवं नाशं प्राहुः ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

विचार शक्ति के नष्ट हो जाने पर उसके पश्चात् पूर्वापर की स्मृति नष्ट हो जाती है। स्मृति का नाश हो जाने पर ज्ञान का नाश हो जाता है। ज्ञान के नाश को ही पण्डित जनों ने आत्मनाश कहा है ॥३१॥

**नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः। यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥३२॥**

**अन्वयः**— यदधि आत्मनः प्रेमस्त्वम् आत्मनः स्वार्थव्यतिक्रमः पुंसः लोके अतः परतरः स्वार्थव्यतिक्रमः न ॥३२॥

**अनुवाद**— जिस आत्मा के ही उद्देश्य से अन्य वस्तुएँ प्रिय प्रतीत होती हैं उस आत्मा का अपने ही द्वारा जो नाश होता है, उसे बढकर संसारी जीव की कोई दूसरी हानि नहीं हैं ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

एवंभूतो नाशो भवतु, ततश्च किमित्यत आह। यदधि यमधिकृत्यान्यस्य विषयस्य प्रियतमत्वम्। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' इति श्रुतेः। तस्यात्मनः स्वेनैव यो व्यतिक्रमोऽपह्नवस्तस्माद्यः स्वार्थनाशोऽतः परतरः स्वार्थनाशो नास्ति॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि इस प्रकार का नाश हो जाने से क्या हुआ ? तो इस पर महर्षि सनत्कुमार ने कहा जिस आत्मा को ही लेकर दूसरी वस्तुएँ प्रिय प्रतीत होती है श्रुति भी कहती है आत्मा के ही लिए सभी वस्तुएँ प्रिय होती हैं। उस आत्मा का अपने से ही नाश का होना इससे बढ़कर जीव का इस लोक में कोई भी दूसरी हानि नहीं हैं ॥३२॥

**अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् । भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥३३॥**

**अन्वयः**— अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं नृणाम् सर्वार्थपह्नवः येन ज्ञानविज्ञानात् भ्रंशितः मुख्यताम् विशति ॥३३॥

**अनुवाद**— धन तथा विषयों का चिन्तन करना मनुष्यों के सभी पुरुषार्थों का नाश करने वाला है । उनकी चिन्ता करने वाला मनुष्य ज्ञान और विज्ञान से भ्रष्ट होकर स्थावर योनियों में प्रवेश कर जाता है ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

कुत इत्यत आह । अर्थस्याभिध्यानमिन्द्रियस्यार्थः कामस्तस्याभिध्यानं सर्वार्थनाशः । ज्ञानं विज्ञानं च परोक्षापरोक्षम्। येन ध्यानेन मुख्यतां स्थावरताम् ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि कैसे इससे बढ़कर दूसरी हानि नहीं है ? इसका उत्तर है कि धन और इन्द्रियों के विषय काम का चिन्तन करना सभी पुरुषार्थों का नाश ही है । इन सबों के ही चिन्तन से जीव स्थावर योनियों में चला जाता है ॥३३॥

**न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः । धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम् ॥३४॥**

**अन्वयः**— तीव्रं तमः तितीरिषुः कर्हिचित् सङ्गं न कुर्यात् यत् धर्मार्थकाममोक्षणाम् अत्यन्तविधातकम् ॥३४॥

**अनुवाद**— घोर अन्धकार स्वरूप संसार से पार होना चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि वह इन धन और विषयों में आसक्त न हो, क्योंकि यह धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों का सबसे बड़ा बाधक है ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

अनात्मरतेरनर्थहेतुत्वमुक्तं सङ्गस्याप्याह-नेति । यद्वस्तु धर्मादीनां विघातकं तस्मिन्सङ्गम् । तमः संसारम् ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं में होने वाले सारे प्रेम को अनर्थ का कारण कहा जा चुका है, उसमें होने वाली आसक्ति को भी धर्मादि का विघातक इस श्लोक में कहा गया है ॥३४॥

**तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यन्तिकतयेष्यते । त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतान्तभयसंयुतः ॥३५॥**

**अन्वयः**— तत्रापि मोक्ष एवं आत्यन्तिकतया अर्थ ईष्यते । यतः त्रैवर्ग्योऽर्थ नित्यं कृतान्तभय संयुतः ॥३५॥

**अनुवाद**— उन चारो पुरुषार्थों में मोक्ष ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ माना जाता है । क्योंकि त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) तो सदा यमराज के भय से युक्त होता है ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

तुल्यवन्निर्देशात्पुरुषार्थसाम्यभ्रान्तिं वारयति-तत्रापीति । कृतान्तः कालः ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

पिछले श्लोक में **धर्मार्थ काम मोक्षाणाम्** इस पद के द्वारा चारो पुरुषार्थों का समान रूप से निर्देश किए जाने के कारण सभी पुरुषार्थों के एक समान होने का भ्रम हो सकती है । उस भ्रम को दूर **तत्रापि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । कृतान्त शब्द काल का वाचक है ॥३५॥

**परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु । न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥३६॥**

**अन्वयः**— गुणव्यतिकरादनु परे अवरे च ये भावाः ईश विध्वंसितासिषाम् तेषाम् क्षेमम् न विद्यते ॥३६॥

**अनुवाद**— प्रकृति में गुण क्षोभ होने के बाद छोटे बड़े जितने भी भाव पदार्थ हैं, उनमें रहने वाला कोई भी ऐसा नहीं है जो कुशल पूर्वक रह सके क्योंकि उन सबों को काल ने विध्वस्त कर दिया ॥३६॥

### भावार्थ दीपिका

भयसंयुतत्वमेवाह । परे ब्रह्मादयोऽवरेऽस्मदादयो गुणक्षोभादनु पश्चाद्भवन्ति । ईश: कालस्तेन विध्वंसिता आशिषो येषाम् ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भय युक्तत्व का ही प्रतिपादन करते हुए कहते हैं— बड़े जो ब्रह्मा आदि हैं और छोटे जो हमलोग संसारी जीव हैं प्रकृति में होने वाले क्षोभ के पश्चात् होने वाला कोई भी ऐसा नहीं है जो कुशल पूर्वक रहे। क्योंकि काल ने उन सबों की कुशलता को विध्वस्त कर दिया है ।।३६।।

**तत्त्वं नरेन्द्र जगतामथ तस्थुषां च देहेन्द्रियासुधिषणात्मभिरावृतानाम् ।**
**य: क्षेत्रवित्तपतया हृदि विष्वगावि: प्रत्यक्चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ।।३७।।**

**अन्वय:**— नरेन्द्र य: भगवान् देहेन्द्रियासुधिषणात्मभिरावृतानाम् जगताम् अथ तस्थुषां च हृदि क्षेत्रवित्तपतया विष्वक् आवि: प्रत्यक् चकास्ति तमेव सोऽस्मि अवेहि ।।३७।।

**अनुवाद**— हे राजन् ! जो भगवान् देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि और अहङ्कार से आवृत समस्त जङ्गम और स्थावर प्राणियों के हृदय में सर्वत्र साक्षात् जीव के नियामक अन्तर्यामी रूप से प्रकाशित हो रहे हैं उन्हें तुम **'वह मैं ही'** हूँ इस से जानो ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

यस्मादनात्मरतिरनर्थहेतुस्तत्तस्माज्जगतां जङ्गमानां तस्थुषां स्थावराणां च देहादिभिरात्मनाहंकारेण चावृतानां हृदि यश्चकास्ति प्रकाशते तमेवहि । कथम् । सोऽस्मीति । सोऽस्तीति पाठे स एवैकोऽस्ति ततोऽन्यदसदित्यर्थ: । ननु जीवो हृदि चकास्ति नान्यस्तत्राह। क्षेत्रविदं जीवं तपति नियमयतीति क्षेत्रवित्तपस्तस्य भावस्तत्ता तयान्तर्यामिरूपेण । यद्वा क्षेत्रवित्ते अहंममतास्पदे पातीति क्षेत्रवित्तपस्ते न रूपेण। जीवस्तु पारतन्त्र्यात्र पाति । ननु कर्म जीवं नियच्छति, न, आवि: प्रत्यक्ष: तर्हि बुद्धि:, न प्रत्यक्प्रतिलोंम चकास्ति । बुद्धिस्तु पराग्विषयाकारेण । तर्ह्यहंकार:, न विष्वग्व्याप्तत्वेन । स तु परिच्छिन्न:, एवंभूतो यो भगवांस्तमवेहीति ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

चूकि आत्मव्यतिरिक्त पदार्थों में होने वाला प्रेम अनर्थ का कारण है इसीलिए जगताम् (जङ्गम्) और तस्थुषाम् (स्थवर) प्राणियों के जो देह आदि और आत्मा (अहङ्कार) से आवृत (आच्छन्न) हैं उनके हृदय में जो परमात्मा प्रकाशित होते हैं उनको तुम जानो । कैसे जानो तो इस पर कहते हैं, **सोऽस्मि** अर्थात् मैं वही हूँ इस रूप से जानो। जहाँ **सोऽस्ति** यह पाठ है वहाँ अर्थ होगा केवल वे ही है उनसे भिन्न सब मिथ्या है । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि हृदय में जीव प्रकाशित होता है दूसरा कोई नहीं तो इस पर कहते हैं— क्षेत्रवित्तस्तस्य जीव के नियामक अन्तर्यामी रूप से जो प्रकाशित होता है । 'क्षेत्रविदं जीवं तपति नियमयतीति क्षेत्रवित्तप: तस्य भावस्तत्ता क्षेत्रवित्तपता तया क्षेत्र वित्तपतया' यह क्षेत्र वित्तपतया की व्युत्पत्ति है । अथवा क्षेत्र वित्ते अहंममतास्पदे पातीति क्षेत्रवित्तप: तेन रूपेण क्षेत्रवित्तपतया अर्थात अहङ्कार और ममकार के विषय भूत शरीर और सम्पत्ति के नियामक रूप से यह क्षेत्रवित्तपतया की व्युत्पत्ति है । जीव तो परतन्त्र है अतएव वह शरीर और सम्पत्ति का नियामक नहीं हो सकता है । यदि कहें कि कर्म ही जीव का नियामक है तो ऐसी बात नहीं है, आवि: अर्थात् जो प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र प्रकाशित होता है । यदि कहें कि वह बुद्धि हो सकती है, तो वह भी नहीं हो सकती है क्योंकि बुद्धि तो पराक् (जड़) होने के कारण विषय रूप से प्रकाशित होती है । यदि कहें कि वह अहङ्कार हो सकता है तो वह भी नहीं हो सकता है, क्योंकि अहङ्कार तो सीमित है और हृदय में प्रकाशित होने वाले परमात्मा सर्वत्र व्यापक रूप से प्रकाशित होते हैं । इस प्रकार के जो परमात्मात्मा हैं उनको ही तुम **'मैं हू वही हूँ'** इस रूप से जाने ।।३७।।

**यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विभाति माया विवेकविधुति स्रजि वाऽहिबुद्धिः ।**
**तं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्त्वं प्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ।।३८।।**

**अन्वयः**— यस्मिन् इदं सदसदात्मतया विवेक विधुतिः माया विभति वा स्रजि विवेक विधुति अहिबुद्धिः विभाति नित्य मुक्तपरिशुद्ध विबुद्ध तत्त्वं प्रत्यूढकर्मकलिलं तं प्रपद्ये ।।३८।।

**अनुवाद**— जिन परब्रह्म में यह सम्पूर्ण मायामय जगत् कार्य कारण रूप से प्रतीत होता है और विवेक हो जाने पर यह उसी तरह विनष्ट हो जाता है जिस तरह माला में होने वाली सर्प बुद्धि माला का ज्ञान हो जाने पर विनष्ट हो जाती है उन नित्य मुक्त निर्मल तथा ज्ञानस्वरूप परमात्मा जो स्वयं कर्मफल से कलुषित प्रकृति से परे हैं, उनकी मैं शरणागति करता हूँ ।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

स्थावरजङ्गमादीनां हृदि चकास्तीत्युक्ते तेषां सत्त्वं तत्संबन्धादीश्वरस्य मालिन्यं च प्रसक्तं निराकुर्वन्नुद्रिक्तमत्तया तं प्राणमति । यस्मिन्निदं विश्वं सदसदात्मतयोत्कृष्टनिकृष्टभावेन कार्यकारणभावेन वा मायैव विभाति तं प्रपद्ये । मायात्वे हेतुः विवेकेन विधुतिर्निराकृतिर्यस्य तत् । स्रजि वेति वाशब्दो दृष्टान्ते । नित्यमुक्तम् । यतः परिशुद्धम् । तत्कुतः । विबुद्धं तत्त्वं सत्यमत एव प्रत्यूढाऽभिभूता कर्मभिः कलिला मलिना प्रकृतिर्येन तम् ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

परमात्मा के स्थवरों एवं जङ्गमों के हृदय में प्रकाशित होने वाला कहने पर उन सबों की सत्ता और उन सबों के सम्बन्ध से परमात्मा में मालिन्य के प्रसङ्ग को निराकृत करते हुए भक्ति के उद्रिक्त हो जाने के कारण परमात्मा को इस श्लोक में प्रणाम करते हैं । जिस परमात्मा में यह सम्पूर्ण जगत् सदसदात्मक रूप से अर्थात् उत्कृष्ट निकृष्ट रूप से अथवा कार्य कारण रूप से माया ही प्रतीत होती है उन परमात्मा की मै शरणागति करता हूँ । जगत् के मायात्व का कारंण यह है कि यह विवेक के द्वारा विनष्ट हो जाता है । **स्रनि वेति** में वा शब्द दृष्टान्त के रूप में प्रयुक्त है । वे परमात्मा नित्य मुक्त होने के कारण निर्मल है, यदि कहें कि वह कैसे तो इसका उत्तर है कि वे ज्ञान स्वरूप हैं । इसीलिए उन्होंने कर्म कलुषित प्रकृति को अभिभूत कर दिया है ।।३८।।

**यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ।**
**तद्वन्नरिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्धस्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ।।३९।।**

**अन्वयः**— सन्तः यत्पादपङ्कज पलाशविलास भक्त्या ग्रथितं कर्माशयं, उद् ग्रथयन्ति, तद्वत् रुद्धस्रोतोगणाः रिक्तमतयः यतयोऽपिन तम अरणं वासुदेवं भज ।।३९।।

**अनुवाद**— सन्त महात्मागण जिन श्रीभगवान् के चरण कमल के अङ्गुलि रूप दल की फैलने वाली प्रभा में होने वाली भक्ति के द्वारा कर्मों से ग्रथित अहङ्कार रूपी ग्रन्थि को इस प्रकार से विदीर्ण कर डालते हैं कि उनके समान समस्त इन्द्रियों का प्रत्याहरण करके अपने अन्तःकरण को निर्विषय बनाने वाले संन्यासी गण भी वैसा नहीं कर पाते हैं । सबों के आश्रय उन्हीं परमात्मा का तुम भजन करो ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

तमवेहीति ज्ञानमुपदिष्टं तस्य दुष्करत्वेन भक्तिमुपदिशति द्वाभ्याम् । यस्य पादपङ्कजयोः पलाशान्यङ्गुलयस्तेषां विलासः कान्तिस्तस्य भत्तया स्मृत्या कर्माशयमहङ्काररूपं हृदयग्रन्थिम् । कर्मभिरेव ग्रथितम् । रिक्ता निर्विषया मतिर्येषाम् । रुद्धः प्रत्याहृतः स्रोतोगण इन्द्रियवर्गो यैः । अरणं शरणम् ।।३९।।

**भाव प्रकाशिका**

महर्षि यह उपदेश दे चुके हैं कि उन्हीं परमात्मा को तुम जानो किन्तु उस ज्ञान का होना कठिन है अतएव दो श्लोकों से वे भक्ति का उपदेश देते हैं । जिनके चरण कमल के पलाश रूपी अङ्गुलियों के विलास अर्थात् कान्ति की स्मृति रूप भक्ति के द्वारा कर्मों के द्वारा ग्रथित अहङ्कार रूप ग्रन्थि को छिन्न भिन्न ऐसा कर देते हैं कि उस प्रकार से अपने इन्द्रियों के प्रत्याहार के द्वारा अपनी बुद्धि को निर्विषय बनाने वाले यतिगण भी उस प्रकार से उसको नहीं विदीर्ण कर पाते हैं, उन सम्पूर्ण जगत् के शरण भगवान् वासुदेव का तुम भजन करो ।।३९।।

**कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमपल्वेशां षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति ।**
**तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ।।४०।।**

**अन्वयः**— षडवर्गनक्रम भवार्णवम् असुखेन तितीरषन्ति अप्लवेशां इह महान् कृच्छ्रः तत् त्वं हरेः भगवतः भजनीयम् अङ्घ्रिं उडुपं कृत्वा दुस्तरार्णम् व्यसनं उत्तर ।।४०।।

**अनुवाद**— मन और इन्द्रियँ रूपी मगर से भरे हुए इस संसार सागर के कष्टमय योगादि दुष्कर साधनों से पार करना चाहते हैं उनको उसे पार करना अत्यन्त कठिन है अतएव तुम भगवान् श्रीहरि के सेवनीय चरणों को ही नौका बनाकर इस दुस्तर सागर को पार कर लो ।।४०।।

**भावार्थ दीपिका**

'ननु ब्रह्मविदाप्राति परं' इति श्रुतेः । कथं यतयो नोद्ग्रथयन्तीत्युच्यते तत्राह- कृच्छ्र इति । अप्लवेशां न प्लवस्तरणहेतुरीट् ईशो येषां तेषां महानिह तरणे कृच्छ्र क्लेशः । ते ह्यसुखेन योगादिनेन्द्रियषड्वर्गग्राहं भवार्णवं तितीर्षन्ति । तत्तस्मात् । उडुपं प्लवम् । दुस्तरार्णवमित्यर्थः । अर्णशब्दे वकाराभाव आर्षः यद्वा दुस्तरोदकरूपं व्यसनमित्यर्थः ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि ब्रह्मविदाप्नोति परम् यह श्रुति कहती है कि ब्रह्मवेत्ता पुरुष मुक्ति को प्राप्त कर लेता है अतएव यह कैसे कहा जा सकता है कि यतिजन भी अहङ्कार रूपी ग्रन्थि के नहीं उद्ग्रथित कर पाते हैं तो इस पर कृछ्र इत्यादि श्लोक को कहते हैं । जिन सबों को पार करने में नौकाएँ समर्थ नहीं हैं, उन योगादि साधनों को पार करने में महान् कष्ट होता है । वे योगिजन दुःखद योगादि साधनों के द्वारा मन तथा इन्द्रिय रूपी मगरों से भरे संसार-सागर को पार करना चाहते हैं, उनको इसे पार करना बहुत कठिन है । अतएव तुम भगवान् श्रीहरि के भजनीय चरण कमल रूपी नौका के द्वारा इस दुस्तर जल रूपी संसार सागर को पार कर लो । अर्ण शब्द में वकार का लोप छान्दस है ।।४०।।

मैत्रेय उवाच

**स एव ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा । दर्शितात्मगतिः सम्यक्प्रशस्योवाच तं नृपः ।।४१।।**

**अन्वयः**— एवं आत्ममेधसा ब्रह्मपुत्रेण कुमारेण दर्शितात्मगति : सः नृपः तं सम्यक्प्रशस्य उवाच ।।४१।।

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस प्रकार से आत्मज्ञानी, ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि सनत्कुमार के द्वारा आत्मतत्त्व के ज्ञान को प्राप्त करके महाराज पृथु उनकी प्रशंसा करके कहे ।।४१।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्ममेधसा ब्रह्मविदा दर्शिता आत्मनो गतिस्तत्त्वं यस्मै सः ।।४१।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्मज्ञानी सनत् कुमार ने जिनको आत्म तत्त्व का उपदेश कर दिया था वे राजा पृथु थे ।।४१।।

राजोवाच

**कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणार्तानुकम्पिना । तमापादयितुं ब्रह्मन्भगवन् यूयमागताः ॥४२॥**

**अन्वयः**— आर्तानुकम्पिना हरिणा मे पूर्वं अनुग्रहः कृतः हे ब्रह्मन् भगवान् तमेवापादयितुम्, यूयम् आगताः ॥४२॥

**राजा ने कहा**

**अनुवाद**— आर्त जीवों पर कृपा करने वाले श्रीहरि ने मुझ पर की थी । उसी को पूर्ण करने के लिए आपलोग यहाँ पधारे हैं ॥४२॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मन्निति संबोधनं प्राधान्यादेकस्य । यूयमित्युक्तिः सर्वान्प्रति ॥४२॥

**भाव प्रकाशिका**

केवल सनत्कुमार की प्रधानता के कारण ब्रह्मन् यह एक वचनान्त संबोधन है सबों के लिए यूयम् पद का प्रयोग किया गया है ॥४२॥

**निष्पादितश्च कात्स्न्येन भगवद्भिर्घृणालुभिः । साधूच्छिष्टं हि मे सर्वमात्मना सह किं ददे ॥४३॥**

**अन्वयः**— घृणालुभिः भगवद्भिः कात्स्न्येन निष्पादितः मे आत्मना सहसर्वं साधूच्छिष्टं किं ददे ॥४३॥

**अनुवाद**— आपलोग दयालु हैं आपलोग जिस कार्य के लिए आये उसे अच्छी तरह से सम्पन्न किए, अव इसके बदले में मैं आपलोगों को क्या दूँ । मेरे पास तो शरीर और इसके साथ जो कुछ भी है वह सबकुछ महापुरुषों का प्रसाद हैं ॥४३॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मना देहेन सह सर्वं राज्यादिकं मदीयं साधूच्छिष्टं साधुभिः स्वीयं सन्मह्यं प्रसादरूपेण दत्तम्, अतस्तत्र मम स्वत्वाभावाद्गुरुदक्षिणार्थं किं ददे । नहि पित्रा दत्तं मोदकादि तस्मै दानरूपेण प्रत्यर्प्यते ॥४३॥

**भाव प्रकाशिका**

शरीर के साथ मेरा जो कुछ भी राज्यादिक है उन सबों को सत्पुरुषों ने मुझे प्रसाद रूप से प्रदान किया है । मेरे पास गुरु दक्षिणा देने के लिए अपना कुछ भी नहीं है । मेरे पिता ने तो मुझे मिठाई भी नहीं दी थी कि उसे मैं समर्पण कर देता ॥४३॥

**प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः । राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥४४॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् प्राणाः, दाराः सुताः, सपरिच्छदाः गृहाश्च राज्यं, बलं, मही, कोशः इति सर्वं निवेदितम् ॥४४॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् प्राण, पत्नी, पुत्र सभी प्रकार की सामग्रियों से भरा हुआ भवन राज्य, सेना, पृथिवी और कोश ये सबके सब आपके चरणों में निवेदित हैं ॥४४॥

**भावार्थ दीपिका**

निवेदनं तु तदीयस्यैव समर्पणं यथा भृत्यो राज्ञे सेवादिरूपेण ताम्बूलादिकमर्पयति तथा मयापि सर्वं निवेदितं स्वीकुरुतेत्याह-प्राणा इति ॥४४॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसकी वस्तु हो उसी को उसे समर्पण करना ही निवेदन कहलाता है जैसे भृत्य सेवा रूप राजा को पान समर्पित करता है । उसी तरह से मैंने भी सबकुछ आपको निवेदित कर दिया आपलोग उसे स्वीकार करें, इस बात को उन्होंने प्राणा इत्यादि श्लोक से कहा है ॥४४॥

**सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च । सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥४५॥**

**अन्वयः**— सैनापत्यं च, राज्यं च दण्डनेतृत्वम् एव च, सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रवित् अर्हति ।।४५।।

**अनुवाद**— सेनापतित्व, राज्य, दण्ड विधान और सम्पूर्ण लोकों के प्रशासन का अधिकार तो वेद शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण को ही है ।।४५।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मनः स्वत्वाभावं प्रपञ्चयति-सैनापत्यं चेति द्वाभ्याम् ।।४५।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने स्वत्व के अभाव का विस्तार **सैनापत्यम्० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं ।।४५।।

**स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च । तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥४६॥**

**अन्वयः**— ब्राह्मण स्वम् एवं भुक्ते, स्वमेव वस्ते, स्वम् एव ददाति । तस्यैवानुग्रहेण क्षत्रियादयः अन्नं भुञ्जते ।।४६।।

**अनुवाद**— ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है और अपना ही दान देता है क्षत्रिय आदि तो उसी की कृपा से अन्न आदि खाने के लिए पाते हैं ।।४६।।

**भावार्थ दीपिका**

वस्ते परिधत्ते । अन्नमात्रं केवलं भुञ्जते नतु दाने स्वतन्त्राः ।।४६।।

**भाव प्रकाशिका**

वस्ते पद का अर्थ है पहनता है । क्षत्रिय तो ब्राह्मण की कृपा से केवल अन्न खाते हैं, वे दान करने में स्वतंत्र नहीं हैं ।।४६।।

**यैरीदृशी भगवतो गतिरात्मवाद एकान्ततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ।**
**तुष्यन्त्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं को नाम तत्प्रतिकरोति विनोदपात्रम् ॥४७॥**

**अन्वयः**— यै एकान्ततः निगमिभिः भगवतः ईदृशीगतिः आत्मवादः नः प्रतिपादिताः अदभ्रकरुणाः ते स्वकृतेन नित्यं तुष्यन्तु को नाम विनोद पात्रम् तत्प्रतिकरोति न ।।४७।।

**अनुवाद**— वेदों में पारङ्गत आपलोगों ने अध्यात्म तत्त्व का विचार करके हमें समझा दिया है परमात्मा के प्रति इस प्रकार अभेद भक्ति से ही उनकी प्राप्ति का साधन है । आपलोग परम कृपालु है । अतएव आपलोग अपने इस दीन जनोद्धार रूप कर्म से ही सर्वदा सन्तुष्ट रहें कौन ऐसा हँसी का पात्र मनुष्य होगा जो आपलोगों द्वारा किए गये उपकार का प्रत्युपकार करने का प्रयास करेगा ।।४७।।

**भावार्थ दीपिका**

सत्यपि स्वत्वे सर्वस्वेनापि न गुरोः प्रत्युपकर्तुं शक्यमित्याह-यैरिति । आत्मवादेऽध्यात्मविचारे । एकान्ततो निश्चयेन। निगमिभिर्वेदविद्भिः । ते नित्यमनल्पकरुणाः स्वकृतेनैव दीनोंद्धरणकर्मणा तुष्यन्तु । को नाम तत्कृतमुपकारं प्रति स्वयमुपकरोति उदपात्रमञ्जलिं विना । मयाञ्जलिरेव तेभ्यो बद्ध इत्यर्थः । यद्वा विनोदपात्रमुपहासास्पदम् । प्रत्युपकारे प्रवृत्तौ जनानामुपहासास्पदं भवेदित्यर्थः ।।४७।।

**भाव प्रकाशिका**

स्वत्व के रहने पर भी अपना सबकुछ देकर भी गुरु का प्रत्युपकार नहीं किया जा सकता है । इस बात को **यैरिदृशी इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहते हैं । आत्मवादे अर्थात् आत्म विचार के विषय में, **एकान्ततः** अर्थात्

निश्चय के द्वारा **निगमिभिः** वेदज्ञों के द्वारा **अदभ्रकरुणाः** अर्थात् परम कृपालु, स्वकृतेन तुष्यन्तु अपनी दीन जनोद्धार रूप कर्म से ही सन्तुष्ट हो जायँ। कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो गुरुओं के द्वारा किए गये उपकार का, हाथ जोड़ने के अतिरिक्त दूसरे साधन से प्रत्युपकार कर पायेगा। विनोदपात्रम् प्रतिकरोति का अर्थ है। अथवा विनोदपत्रम् का अर्थ उपहास्तस्पद है। अर्थात् गुरुओं का प्रत्युपकार करने में प्रवृत्त मनुष्य उपहासास्पद ही होगा ॥४७॥

मैत्रेय उवाच

**त आत्मयोगपतय आदिराजेन पूजिताः। शीलं तदीयं शंसन्तः खेऽभूवन्मिषतां नृणाम् ॥४८॥**

**अन्वयः**— आदिराजेन पूजिताः ते आत्मयोगपतयः तदीयं शीलं शंसन्तः नृणां मिषतां खे अभूवन् ॥४८॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— आदिराज महाराज पृथु के द्वारा पूजित होकर आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ वे सनकादिक महाराज पृथु के शील गुण की प्रशंसा करते हुए सबलोगों के सामने ही आकाश मार्ग से चले गये ॥४८॥

**भावार्थ दीपिका**

खेऽभूवन् आकाशमार्गेणोद्गताः ॥४८॥

**भाव प्रकाशिका**

खेअभूवन् अर्थात् आकाश मार्ग से चले गये ॥४८॥

**वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याध्यात्मशिक्षया। आप्तकाममिवात्मानं मेन आत्मन्यवस्थितः ॥४९॥**

**अन्वयः**— महतां धुर्यो वैन्यः अध्यात्मशिक्षया संस्थित्या आत्मन्यवस्थितः आप्तकामम् इव आत्मानं मेने ॥४९॥

**अनुवाद**— महापुरुषों में अग्रग्रण्य महाराज पृथु उनसे आत्मोपदेश पाकर चित्त की एकाग्रता से आत्मा में ही स्थित रहने के कारण अपने को कृतकृत्य सा मानने लगे ॥४९॥

**भावार्थ दीपिका**

धुर्यो मुख्यः। अध्यात्मशिक्षया संस्थितिरेकाग्रता तयात्मन्यवस्थितः सन्मेने ॥४९॥

**भाव प्रकाशिका**

धुर्य अर्थात् मुख्य। चित्त की एकाग्रता के कारण अपनी आत्मा में ही अवस्थित रहकर अपने को कृतकृत्य मानने लगे ॥४९॥

**कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलम्। यथोचितं यथावित्तमकरोद्ब्रह्मसात्कृतम् ॥५०॥**

**अन्वयः**— कर्माणि च यथा कालं, यथादेशं, यथा बलम्, यथोचितम् यथा वित्तम् ब्रह्मसात्कृतम् अकरोत् ॥५०॥

**अनुवाद**— महाराज पृथु, कर्मों को काल, देश, बल, औचित्य तथा धन के अनुसार ब्रह्म समर्पण बुद्धि से किया करते थे ॥५०॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मसात्कृतं ब्रह्मण्यर्पितं यथा भवति तथा ॥५०॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्मसात्कृतम् का अर्थ है ब्रह्म को समर्पण की बुद्धि से ॥५०॥

**फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः । कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥५१॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मणि फलं विन्यस्य, निर्विषङ्ग समाहितः आत्मनं कर्माध्यक्षं प्रकृतेः परम् च मन्वान्ः ॥५१॥

**अनुवाद**— महाराज पृथु कर्मों का फल परं ब्रह्म को समर्पित करके अनासक्त, एकाग्रचित्त से अपनी आत्मा को कर्मों का साक्षी और प्रकृति से परे मानकर सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं ॥५१॥

### भावार्थ दीपिका

निर्विषङ्गः कर्मस्वनासक्तः कर्माध्यक्षं कर्मसाक्षिणमुदासीनं मन्वानोऽकरोदिति पूर्वेणैवान्वयः । नासज्जतेत्युत्तरेण वा॥५१॥

### भाव प्रकाशिका

निर्विर्षङ्ग अर्थात् कर्मों में अनासक्त, वे अपनी आत्मा को कर्मों का साक्षी अर्थात् उदासीन रहते हुए कर्मों को करते थे, यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है, अथवा आगे के नासज्जत पद से अन्वय है ॥५१॥

**गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियान्वितः । नासज्जतेन्द्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥५२॥**

**अन्वयः**— साम्राज्यश्रियान्वितः सः गृहेषु वर्तमानोऽपि निरहंमतिः सः अर्कवत् इन्द्रियार्थेषु न असज्जत ॥५२॥

**अनुवाद**— साम्राज्य लक्ष्मी से सम्पन्न भी वे गृहस्थाश्रम में रहकर भी अहङ्कार रहित होने के कारण वे इन्द्रियों के विषयों में उसी तरह आसक्त नहीं हुए जिस तरह सूर्य सर्वत्र प्रकाश करते हुए भी वस्तुओं के गुण दोष से निर्लिप्त रहा करते हैं ॥५२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५२॥

**एवमध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन् । पुत्रानुत्पादयामास पञ्चार्चिष्यात्मसंमतान् ॥५३॥**

**अन्वयः**— एवम् अध्यात्मयोगेन कर्माणि अनुसंचरन् अर्चिषि आत्म संम्मतान् पञ्चपुत्रान् उत्पादयामास ॥५३॥

**अनुवाद**— इस तरह आत्मनिष्ठा में स्थित रहकर सभी कर्मों का यथोचित रीति से अनुष्ठान करते हुए अपनी पत्नी अर्चिदेवी के गर्भ से उन्होंने अपने ही समान पाञ्च पुत्रों को उत्पन्न किया ॥५३॥

### भावार्थ दीपिका

अर्चिषि भार्यायाम् ॥५३॥

### भाव प्रकाशिका

अपनी पत्नी अर्चि देवी के गर्भ से ॥५३॥

**विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् । सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥५४॥**

**अन्वयः**— विजिताश्वं धूम्रकेशं, हर्यक्षं, द्रविण वृकम् । एकः पृथु सर्वेषां लोकपालानां गुणान् दधार ॥५४॥

**अनुवाद**— विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, दविणा और वृक नामक पुत्रों को उत्पन्न किया । अकेले महाराज पृथु सभी लोकपालों के गुणों को धारण किये थे ॥५४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५४॥

**गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः। मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरञ्जयन्प्रजाः ॥५५॥**
**राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः । सूर्यवद्विसृजन्गृह्णन्प्रतपंश्च भुवो वसु ॥५६॥**

**अन्वयः**— अच्युतात्मकः जगत् सृष्टेः गोपीथाय स्वे-स्वे काले मनोवागवृत्तिभिः सौम्यैः गुणैः प्रजाः संरञ्जयन् सोमराज इव राजा इत्यपरं नामधेथं दधार, भुवः वसु विसृजन् गृह्णन् प्रतपंश्च सूर्यवत् ॥५५-५६॥

**अनुवाद**— भगवान् अच्युत के अंश से उत्पन्न महाराज पृथु जगत् की रक्षा करने के लिए अपने-अपने समय पर, उदार मन, प्रिय वाणी तथा मनोहर शरीर रूप गुणों से प्रजाओं का अनुरञ्जन करते हुए वे चन्द्रमा के समान राजा इस नाम को सार्थक किए जिस तरह सूर्य गर्मी के दिनों में पृथिवी के जल को खींचते हैं और बरसात के दिन में उसको वर्षा के रूप में पृथिवी पर उड़ेल देते हैं, उसी तरह महाराज पृथु भी करके रूप में प्रजाओं का धन लेकर दुष्काल के दिनों में उसको प्रजाओं के हित में लगा देने का काम करते थे ॥५५-५६॥

**भावार्थ दीपिका**

सोमश्चासौ राजा च स इव । भुवो वसु धनं गृह्णन्विसृजंश्चासौ सूर्यवत् । राज्ञः प्रतपनमाज्ञाकरणम् ॥५५-५६॥

**भाव प्रकाशिका**

**सोमश्चाऽसौ राजा च स इव** यह सोम राज इव का विग्रह है । पृथिवी के धन को करके रूप में लेकर और दुष्काल के समय उसे प्रजाओं को देकर सूर्य के समान वे महाराज पृथु । सूर्य भी गर्मी के दिनों में पृथिवी के जल को खींचते और बरसात में उसे पृथिवी पर उड़ेल देते हैं । प्रजाओं को आज्ञा देकर महाराज पृथु सूर्य के समान चमकते थे ॥५५-५६॥

**दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः । तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम् ॥५७॥**

**अन्वयः**— तेजसा अग्निः इव दुर्धर्षः महेन्द्र इव दुर्जयः । तितिक्षया धरित्रीव, द्यौः इव नृणाम् अभीष्टदः ॥५७॥

**अनुवाद**— वे अपने तेज के द्वारा अग्नि के समान दुर्धर्ष इन्द्र के समान अजेय, पृथिवी के समान क्षमाशील और स्वर्ग के समान मनुष्यों की सारी कामनाएँ पूर्ण करने वाले थे ॥५७॥

**भावार्थ दीपिका**

अग्निरिव दुर्धर्षः । द्यौः स्वर्ग इव ॥५७॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज पृथु अग्नि के समान दुर्धर्ष अनभिभवनीय थे और स्वर्ग के समान सभी मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले थे ॥५७॥

**वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् । समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥५८॥**

**अन्वयः**— पर्जन्य इवतर्पयन् यथाकामं वर्षतिस्म, समुद्र इव दुर्बोधः, सत्त्वेन अचलराट् इव ॥५८॥

**अनुवाद**— वे मेध के समान प्रजाओं को अभीष्ट पदार्थों को देकर उन्हें तृप्त करते थे, वे समुद्र के समान गम्भीर थे और पर्वराज सुमेरु के समान धैर्य सम्पन्न थे ॥५८॥

**भावार्थ दीपिका**

समुद्रो यथा गाम्भीर्येणैतावानिति न बुद्यते तथासावभिप्रायतो दुर्बोधः । अचलराट् मेरुरिव ॥५८॥

**भाव प्रकाशिका**

गाम्भीर्य के कारण यह पता नहीं चलता है कि समुद्र में इतना ही जल है, उसी तरह महाराज गम्भीर थे और पर्वतराज सुमेरु के समान धैर्य सम्पन्न थे ॥५८॥

**धर्मराडिव शिक्षायामाश्चर्ये हिमवानिव । कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा ॥५९॥**

**अन्वयः**— शिक्षायाम् धमराट् इव आश्चर्ये हिमवान् इव, कुबेर इव कोशाढ्यः गुप्तार्थे वरुणः इव ॥५९॥

**अनुवाद**— वे यमराज के समान दुष्टों का दमन करते थे आश्चर्यमय पदार्थों के संग्रह में हिमालय के समान थे कोश की समृद्धि करने में वे कुबेर के समान थे और धन को छिपाये रखने में वरुण के समान थे ॥५९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५९॥

**मतारिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा । अविषह्यतया देवो भगवान्भूतराडिव ॥६०॥**

**अन्वयः**— बलेन सहसा ओजसा मातरिश्वा इव सर्वात्मा, अविषह्यतया देवो भगवान् भूतराट् इव ॥६०॥

**अनुवाद**— वे शारीरिक बल, इन्द्रियों की पटुता और पराक्रम में सर्वत्र संञ्चरण करने वाले वायु के समान थे और तेज की सत्यता के कारण वे भगवान् शङ्कर के समान थे ॥६०॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वात्मा सर्वत्र संचारशक्तिः । बलादिभिर्मातरिश्वेव । भूतराट् श्रीरुद्रः ॥६०॥

**भाव प्रकाशिका**

सर्वात्मा अर्थात् सर्वत्र संचरण करने की शक्ति से सम्पन्न वे बल आदि के द्वारा वायु देव के समान थे । वे असह्य तेज के कारण भगवान् रुद्र के समान थे ॥६०॥

**कन्दर्प इव सौन्दर्ये मनस्वी मृगराडिव । वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः ॥६१॥**

**अन्वयः**— सौन्दर्ये कन्दर्प इव मृगराट् इव मनस्वी, वात्सल्ये मनुवत् नृणां प्रभुत्वे भगवान् अज इव ॥६१॥

**अनुवाद**— सौन्दर्य में कामदेव के समान, साहस में सिंह के समान, वात्सल्य में मनु के समान और मनुष्यों के अधिपत्य में ब्रह्माजी के समान थे ॥६१॥

**भावार्थ दीपिका**

अजो ब्रह्मेव ॥६१॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी के समान ॥६१॥

**बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः । भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ॥**
**ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे ॥६२॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मवादे बृहस्पतिः आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः, गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनाऽनुवर्तिषु भक्त्या, ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्याम् परोद्यमें आत्मतुल्यः ॥६२॥

**अनुवाद**— वे ब्रह्म विचार में बृहस्पति, जितेन्द्रियत्व में साक्षात् श्रीहरि के समान थे । गौ, गुरु ब्राह्मण और भगवद भक्तों के विषय में भक्ति के द्वारा और लज्जा, विनय और शील के द्वारा परोपकार आदि गुणों में अपने ही समान अनुपमेय थे ॥६२॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मवत्त्वे जितेन्द्रियत्वे । भक्त्यादिभिः परार्थोद्यमे चात्मनैव तुल्यो निरूपमः ॥६२॥

**भाव प्रकाशिका**

आत्मत्वे अर्थात् जितेन्द्रियत्व के विषय में भक्ति आदि के द्वारा परोपकार के विषय में वे अपने ही समान अर्थात् अनुपम थे ॥६२॥

**कीर्त्योर्ध्वगीतया पुम्भिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह । प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥६३॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते द्वाविंशतितमोऽध्याय; ॥२२॥

**अन्वयः**— पुम्भिः त्रैलोक्ये तत्र उर्ध्वगीतया कीर्त्या स्त्रीणाम् अपि कर्णरन्ध्रेषु रामः सतामिव प्रविष्टः ॥६३॥

**अनुवाद**— लोग त्रिलोकी में सर्वत्र उनकी कीर्ति का जोर-जोर से गान करते इसके कारण वे स्त्रियों के भी कानों में उसी तरह प्रविष्ट कर गये थे जिस तरह सत्पुरुषों के हृदय में श्रीराम ॥६३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पृथुचरित के अन्तर्गत बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥**

**भावार्थ दीपिका**

पुम्भिः सत्पुरुषैः । रामः सीतापतिर्यथा सतां कर्णरन्ध्रेषु प्रविष्टः ॥६३॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥२२॥**

**भाव प्रकाशिका**

सत्पुरुष महाराज पृथु के यश का त्रिलोकी में सर्वत्र जोर-जोर से गान करते थे इससे वे स्त्रियों के भी कान में उसी तरह प्रवेश कर गये थे जिस तरह सीतापति श्रीराम सत्पुरुषों के कानों में प्रवेश कर गये थे ॥६३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के बाइसवें अध्यय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२२॥**

# तेइसवाँ अध्याय

## महराज पृथु की तपस्या और परलोक गमन

मैत्रेय उवाच

**दृष्ट्वात्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान्। आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥१॥**
**जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत्सताम्। निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान् ॥२॥**
**आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद्रुदतीमिव। प्रजासु विमनस्स्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥३॥**

**अन्वयः**— एकदा आत्मवान् आत्मना वर्धिताशेष स्वानुसर्गः जगतः तस्थुषः चापि वृत्तिदः सताम् धर्मभृत् निष्पादितेश्वरादेशः यदर्थम् इह जज्ञिवान् विरहाद् रुदतीमिव, आत्मजां आत्मजेषु न्यस्य प्रजासु विमानासु एकः आत्मवान् प्रजापतिः वैन्यः आत्मानं प्रवयसं दृष्ट्वा सदारः तपोवनम् अगात् ॥१-३॥

**अनुवाद**— एक बार स्वयमेव अन्न आदि तथा नगर ग्राम आदि की व्यवस्था करके जिन्होंने स्थावरों एवं जङ्गमों की आजीवका की सुविधा कर दी थी तथा साधुजनोंचित धर्मों का पालन करने वाले मैं जिस कार्य के लिए संसार में जन्म लिया था ईश्वर के उन सभी आदेशों का मैंने पालन कर दिया है यह सोचकर विरह के कारण रोती हुई अपनी पुत्री पृथिवी को अपने पुत्रों को सौंपकर जब सारी प्रजा उदास थी उसी समय महामनस्वी प्रजापति महाराज पृथु अपनी वृद्धावस्था को देखकर पत्नी के साथ अकेले तपोवन में चले गये ॥१-३॥

### भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे सभार्यस्य वने नित्यसमधितः। विमानमधिरुह्याथ वैकुण्ङ्गतिरीर्यते ॥१॥ प्रवयसं वृद्धं दृष्ट्वा तपोवनमगादिति तृतीयेनान्वयः। स्वकृतोऽनुसर्गोऽन्नादिसर्गः पुरग्रामादिसर्गश्च। वर्धितोऽशेषः स्वानुसर्गो येन। निष्पादित ईश्वरादेशः प्रजापालनादिर्येन जज्ञिवान् जातः। आत्मजां पृथ्वीम्। विमनस्सु चिन्तातुरासु। सदारः सभार्यः ॥१-३॥

### भाव प्रकाशिका

तेइसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अपनी पत्नी के साथ वन में सदैव समाधिस्थ रहने वाले महाराज पृथु विमान पर बैठकर वैकुण्ठ में चले गये। अपने को प्रवयस (वृद्ध) देखकर वन में चले गये इस तरह से तीसरे श्लोक के साथ अन्वय है। अपने द्वारा अन्न आदि की सृष्टि और नगर ग्रामादि की सृष्टि को तथा अपनी सृष्टि को उन्होंने अच्छी तरह से बढ़ाया था। जिस कार्य के लिए वे जन्म लिए उस प्रजापालन आदि रूप ईश्वर के आदेश का जिन्होंने पालन किया था वे महाराज पृथु पृथिवी को अपने पुत्रों को सौंपकर जबकि प्रजाएँ चन्तितातुरथीं अपनी पत्नी के साथ तपोवन में अकेले चले गये ॥१-३॥

**तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानससुसंमते। आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥४॥**

**अन्वयः**— तत्रापि यथा पुरा स्वविजये वैखानससुसंमते, उग्रतपसि आरब्धे अदाभ्य नियमः ॥४॥

**अनुवाद**— वहाँ भी जैसे पहले अखण्ड व्रत पूर्वक पृथ्वी पर विजय प्राप्त किए उसी तरह वैखानस (वानप्रस्थ) आश्रम के अनुसार वे उग्र तपस्या आरम्भ कर दिये। विघ्नों के द्वारा उनके नियम नष्ट नही हो सकते थे ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

अदाभ्या विघ्नैर्नाशयितुमशक्या नियमा यस्य। वानप्रस्थानां सुसंमते उग्रे तपस्यारब्धः प्रवृत्तः। कर्तरि क्तः। यथा स्वस्य धरामण्डलस्य विजये पूर्वं महता यत्नेन प्रवृत्तस्तथेति ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

अदाभ्यनियमः का अर्थ है कि उनके नियमों को विघ्न विनष्ट नहीं कर सकते थे। वे वन में वानप्रस्थ आश्रम के नियमानुसार कठोर तपस्या उसी तरह करने लगे जिस तरह भूमण्डल विजय के कार्य में वे अत्यधिक प्रयास पूर्वक लगे थे। **आरब्धे** में कर्ता के अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ है ॥४॥

**कन्दमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित्। अब्भक्षः कतिचित्पक्षान्वायुभक्षस्ततः परम् ॥५॥**

**अन्वयः**— कन्दमूल फलाहार शुष्कपर्णाशन क्वचित्, अत्मभक्षः कचित् पक्षान् ततः परम् वायुभक्षः ॥५॥

**अनुवाद**— पहले कुछ दिन वे कन्द, मूल और फल का आहार किए, उसके बाद कुछ समय तक सूखे पत्ते चबा कर रहे। तदनन्तर कुछ पक्षों तक जल पीकर ही रहते थे और उसके पश्चात् वे वायु पीकर रहने लगे॥५॥

### भावार्थ दीपिका

उग्रं तपो दर्शयति-कन्दमूलेति त्रिभिः। क्वचित्कदाचित् ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

महाराज पृथु के उग्रतप का वर्णन तीन श्लोकों से करते हैं क्वचित् पद का अर्थ कदाचित् है ॥५॥

**ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः। आकण्ठमग्नः शिशिर उदके स्थण्डिलेशयः ॥६॥**

**अन्वयः**— वीरः मुनिः ग्रीष्मे पञ्चतपा, वर्षासु आसारषाट् शिशिरे आकण्ठमग्नः उदके, स्थण्डिलेशयः ॥६॥

**अनुवाद**— वीरवर्य महाराज पृथु मुनि वृत्ति से रहते थे। वे ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि तापते थे, वर्षा ऋतु में वर्षा की धारा को अपने शरीर पर सहते थे। शिशिर ऋतु में आकण्ठ जल में खड़े रहते थे। वे सदा मिट्टी की वेदी पर ही सोते थे ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

चतुर्दिक्षु चत्वारोऽग्नय उपरि सूर्य इति पञ्चानां तपः संतापो यस्य स पञ्चतपाः। आसारं सहत इत्यासारषाट्। शिशिरर्तौ स्थण्डिलेशयो भूमिशयनः सर्वदा ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

चारो दिशाओं में चार अग्नियाँ और ऊपर से सूर्य इन पाञ्चों के संताप को सहने वाले को पंचतपा कहते हैं। वर्षा की धारा को सहने वाले को आसारषाट् कहते हैं । शिशिर ऋतु में आकण्ठ जल में खड़े रहते थे और सर्वदा वे भूमि पर सोते थे ॥६॥

**तितिक्षुर्यतवाग्दान्त ऊर्ध्वरेता जितानिलः । आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उत्तमम् ॥७॥**

**अन्वयः**— तितिक्षुः, यतवाक्, दान्तः ऊर्ध्वरेता, जितानिलः कृष्णम् आरिराधयिषुः उत्तमम् तप अचरत् ॥७॥

**अनुवाद**— वे शीत उष्ण आदि सभी प्रकार के द्वन्दों को सहे, वे वाणी और मन को संयमित रखते थे ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वे अपने प्राणों को अधीनकर लिए । भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने की इच्छा से उन्होंने उत्तम तप किया ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥७॥

**तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्मामलाशयः । प्राणायामैः संनिरुद्धषड्वर्गश्छिन्नबन्धनः ॥८॥**

**अन्वयः**— तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्ममलाशयः प्राणायामैः संनिरुद्धषड्वर्गः छिन्नबन्धनः ॥८॥

**अनुवाद**— उसी क्रम से उनकी तपस्या जब परिपुष्ट हो गयी तो उसके प्रभाव से उनका कर्म मल नष्ट हो गया फलतः उनका चित्त शुद्ध हो गया । प्राणायामों के द्वारा उन्होंने षड्वर्ग (मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) को अपने वश में कर लिया । फलतः उनका वासना जन्य बन्धन कट गया ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

तेन तपसा । क्रमानुसिद्धेन शनैः प्राप्तेन । ध्वस्तानि कर्माणि यस्यातोऽमल आशयो यस्य । छिन्नानि बन्धनानि वासना यस्य ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त प्रकार की तपस्या के द्वारा धीरे-धीरे सिद्धि प्राप्त हो जाने के कारण उनके कर्म और मल नष्ट हो गये उनके वासना जन्य बन्धन भी कट गये ॥८॥

**सनत्कुमारो भगवान्यदाहाध्यात्मिकं परम् । योगं तेनैव पुरुषमभजत्पुरुषर्षभः ॥९॥**

**अन्वयः**— भगवान् सनत्कुमार यद् आध्यात्मिकं परमं योगम् आह तेनैव पुरुषर्षभः पुरुषम् अभजत् ॥९॥

**अनुवाद**— भगवान् सनत्कुमार ने जिस श्रेष्ठ आध्यात्मिक योग का उपदेश दिया था उसी के द्वारा पुरुषों में श्रेष्ठ महाराज पृथु श्रीभगवान् की आराधना करते थे ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥९॥

**भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा । भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाऽभवत् ॥१०॥**

**अन्वयः**— भगवद् धर्मिणः साधो सदा श्रद्धया यततः भगवति ब्रह्मणि अनन्याभक्तिः अभवत् ॥१०॥

**अनुवाद**— भगवत् परायण होकर साधुवर्य महाराज पृथु के निरन्तर श्रद्धा पूर्वक प्रयास करते रहने के कारण परंब्रह्म परमात्मा में उनकी अनन्याभक्ति हो गयी ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१०॥

**तस्यानया भगवतः परिकर्मशुद्धसत्त्वात्मनस्तदनु संस्मरणानुपूर्त्या ।**
**ज्ञानं विरक्तिमदभून्निशितेन येन चिच्छेद संशयपदं निजजीवकोशम् ॥११॥**

**अन्वयः**— अनया भगवतः परिकर्मशुद्धसत्वात्मनः तदनु संस्मरणनुपूर्त्या तस्य विरक्तिमद्ज्ञानम् अभूत येन निशितेन संशयास्पदम् निज जीवकोशम् चिच्छेद ॥११॥

**अनुवाद**— भगवत उपासना से शुद्ध सत्त्वमय अन्तःकरण के हो जाने पर निरन्तर भगवच्चिन्तन से प्राप्त हुई इस अनन्या भक्ति से उनको वैराग्य युक्त ज्ञान की प्राप्ति हुई। उस तीव्र ज्ञान के द्वारा उन्होंने जीव के उपाधिभूत अहङ्कार को नष्ट कर दिया जो सभी प्रकार के संशय और विपर्यय का आश्रय है ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

परिकर्मणा परिचर्यया शुद्धत्त्व आत्मामनो यस्य तस्य ज्ञानमभूत्। कीदृशम्। येन निजमुपाधिं जीवकोशं हृदयग्रन्थिं संशयानामसंभावनादीनां पदमाश्रयं चिच्छेद। कीदृशेन। अनन्या भक्त्या निशितेन तीक्ष्णेन। कथंभूतया। तस्य भगवतोऽनुसंस्मरणेनानुपूर्तिः संपूर्तियस्यास्तया निशितेन ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

उस उपासना के द्वारा जिनका अन्तःकरण शुद्ध सत्त्वमय हो गया था, इस प्रकार के महाराज पृथु को ज्ञान उत्पन्न हो गया। यदि कहें कि वह कैसा ज्ञान था ? तो इसका उत्तर है कि जिस ज्ञान के द्वारा उन्होंने अपनी उपाधि रूपी जीवकोश अहङ्कार रूपी हृदयग्रन्थि जो संशय और विपर्यय का आश्रय है उसको काट दिया। वह कैसा ज्ञान था ? तो इसका उत्तर है कि इस भक्ति के द्वारा वह तीक्ष्ण बन गया था। कैसी भक्ति के द्वारा वह तीक्ष्ण हुआ था ? तो इसका उत्तर है कि परमात्मा का निरन्तर चिन्तन करने से जिसकी पूर्ति हो गयी थी। उसी से तीक्ष्ण बने ज्ञान के द्वारा उन्होंने अहङ्कार रूपी जीव कोश को काट दिया ॥११॥

**छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीहस्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ।**
**तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥**

**अन्वयः**— छिन्नान्यधीः अधिगतात्मगतिः निरीहः येन वयुनेन इदं अच्छिनत् तत् तत्यजे, यावद् योगगतिभिः गदाग्रज कथासु रतिं न कुर्यात् तावत् यतिः अप्रमत्तोन ॥१२॥

**अनुवाद**— तदनन्तर देहात्म बुद्धि की निवृत्ति और परमात्म स्वरूप की अनुभूति हो जाने पर अन्य हर प्रकार की सिद्धियों से भी उदासीन हो जाने से उन्होंने उस तत्त्व ज्ञान के भी लिए प्रयत्न करना छोड़ दिया, जिस ज्ञान के द्वारा उन्होंने अहङ्कार को विनष्ट कर दिया था। क्योंकि जब तक साधक को योगमार्ग के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के कथामृत में प्रेम न उत्पन्न हो जाय तब तक केवल योग की साधना के द्वारा साधक का मोह जन्य प्रामाद दूर नहीं होता है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

किंच छिन्ना अन्यधीर्देहात्मबुद्धिर्यस्य। यतोऽधिगतात्मगतिरत एव निरीहः प्राप्तासु सिद्धिषु निस्पृहः। येन वयुनेन ज्ञानेनेदं संशयपदं चिच्छेद तत्तत्यजे त्यक्तवान्। तत्प्रयत्नादप्युपररामेत्यर्थः। तस्य योगसिद्धिष्वपि निस्पृहत्वं युक्तमेवेत्याह। तावन्नाप्रमतः किंतु प्रमत्तो भवति। तस्य श्रीकृष्णकथारतत्वान्न तासु लोभो जात इत्यर्थः ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

जिनकी देहात्म बुद्धि विनष्ट हो गयी थी तथा परमात्म स्वरूप की अनुभूति प्राप्त हो गयी थी, अतए वे प्राप्त हुई सिद्धियों से निःस्पृह हो गये थे। फलतः उन्होंने उस तत्त्वज्ञान के लिए प्रयास भी त्याग दिये जिस ज्ञान

के द्वारा उन्होंने अहङ्कार की ग्रन्थि को काट दिया था। जो अहङ्कार सभी संशयो का आश्रय है। महाराज पृथु का योग जन्य सिद्धियों से निस्पृह हो जाना भी उचित ही था इस बात को मैत्रेयजी बतलाते हुए कहते हैं कि साधक तब तक अप्रमत्त नहीं अपितु प्रमत्त ही बना रहता है जब तक कि भगवान् श्रीकृष्ण की कथा रूपी अमृत में प्रेम न हो जाय ॥१२॥

**एवं स वीरप्रवरः संयोज्यात्मानमात्मनि। ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कालेवरम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— एवं स वीर प्रवरः काले दृढं आत्मानम् आत्मनि संयोज्य बह्मभूतः स्वं कलेवरं तत्याज ॥१३॥

**अनुवाद**— इस तरह वे वीर प्रवर अन्तकाल के उपस्थित होने पर अपने चित्त को दृढता पूर्वक परमात्मा में स्थिर करके अपने शरीर का परित्याग कर दिए ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१३॥

**संपीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयन् शनैः। नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरः कण्ठशीर्षणि ॥१४॥**

**अन्वयः**— पार्ष्णिभ्यां पायुं सम्पीड्य शनैः वायुम् उत्सारयन् नाभ्यां कोष्ठेषु हृद्‌उरः कण्ठशीर्षणि अवस्थाप्य ॥१४॥

**अनुवाद**— दोनों एंडियों से पायुमार्ग को रोककर प्राण वायु को धीरे-धीरे मूलाधार चक्र से ऊपर की ओर उठाते हुए उसे क्रमशः नाभि, हृदय, वक्षःस्थल, कण्ठ और मस्तक में स्थापित किया ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

देहत्यागप्रकारमाह-संपीड्येति पञ्चभिः। पायुं गुदं संपीड्येति मुक्तासनं सूचितम्। 'संपीड्य सीवनीं सूक्ष्मां गुल्फेनैव तु मध्यतः सव्ये दक्षिणगुल्फेन मुक्तासनमितीरितम्।' मूलाधाराद्वायुमुत्सारयन्नूर्ध्वं नयन्नाभ्यामवस्थाप्य ततः कोष्ठेष्ववस्थाप्य अयूयुजदित्युत्तरेणान्वयः। हृदादीनां द्वन्द्वैक्यम्। शीर्षं भ्रूमध्यं तस्मिन् ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

सम्पीड्य इत्यादि पाञ्च श्लोकों से देहत्याग के प्रकार को बतलाते हैं पायु गुदा द्वार को कहते है उसको सम्पीड्य कहकर उन्होंन मुक्तासन को सूचित किया है। कहा भी गया है— **सम्पीड्य सीवनीं० इत्यादि** गुल्फ के द्वारा बीच में सूक्ष्म सीवनी को बीच में दबाकर दाहिने गुल्फ से बायें भाग को दबाने मुक्तासन कहा गया है। मूलाधार चक्र से वायु को ऊपर की ओर उठाकर उसे नाभि में स्थापित करके, उसके पश्चात् कोष्ठों में स्थापित करके पन्द्रहवें श्लोक से आयूयुजत् पद से इसका अन्वय है। हृदुरःकण्ठशीर्षणि में द्वन्द्व समास होने के कारण एकवद्भाव हो गया है। शीर्ष शब्द से भौहों के मध्य भाग को कहा गया है। उसमें ही उन्होंने प्राणों को स्थापित किया ॥१४॥

**उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निस्पृहः। वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥१५॥**

**अन्वयः**— निःस्पृहः उत्सर्पयन् मूर्ध्निं क्रमेण आवेश्य वायुं वायौ, कायं क्षितौ, तेजः तेजसि अयुयुजत् ॥१५॥

**अनुवाद**— निःस्पृह होकर राजा ने प्राण वायु को शिरोभाग में प्रवेश कराकर वायु को वायु में, शरीर को पृथिवी में और तेज को तेज में मिला दिया ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

तं वायुम्। पाठान्तरे एवमसून्प्राणानुत्सर्पयन् क्रमेण मूर्ध्नि ब्रह्मरन्ध्रे आवेश्य ततो देहारम्भकपञ्चभूतानि समष्टिभूतेषु विलापितवांस्तदाह। वायुं वायावयूयुजदेकीकृतवान्। कायं देहगतं कठिनांशं क्षितौ ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

तम् पद से प्राण वायु को कहा गया है । जहाँ पर **समष्टिवायौ०** यह पाठ भेद है, वहाँ अर्थ होगा इस प्रकार से प्राणों को ऊपर की ओर ले जाते हुए क्रमशः-क्रमशः ब्रह्मरन्ध में प्रवेश कराकर उसके पश्चात् जिन पञ्चमहाभूतों से शरीर बना उन पञ्चभूतों को उनकी समष्टिभूत महाभूतों में उन्होंने मिला दिया । उसी को कहा गया है । वायु को वायु में एकीकृत कर दिया और शरीरस्थ कठिन अंश को पृथिवी में उन्होंने मिला दिया ॥१५॥

**खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः । क्षितिमम्भसि तत्तेजस्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥१६॥**

**अन्वयः**— खानि आकाशे, द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः क्षितिम् अम्भसि तत् तेजसि, अदो वायौ, अमुम् नभसि॥१६॥

**अनुवाद**— शरीरस्थ हृदयाकाश आदि को आकाश में और रुधिर आदि को जल में उसके पश्चात् इसी तरह पृथिवी को जल में, जल को तेज में, तेज को वायु में और उसको आकाश में विभागानुसार उन्होंने लीन कर दिया ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

खानीन्द्रियच्छिद्राणि । द्रवांशं तोये । तदेवं देहं प्रविलाप्याद्वितीयात्मप्रतिपत्त्यर्थं महाभूतानामपि लयमाह । क्षितिमम्भस्येकीकृतवान् । तदम्भस्तेजसि । अदस्तेजो वायौ । अमुं वायुं नभसि ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

इन्द्रियों के छिद्र रूप आकाश को आकाश में, द्रवांश को जल में इस तरह से देह को विलीन करके अद्वितीय आत्मज्ञान के लिए महाभूतों का भी लय बतलाते हुए कहा— पृथिवी को जल में, उन्होंन एकीकृत किया, जल को तेज में तेज को वायु में, और वायु को आकाश में एकीकृत किया ॥१६॥

**इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् । भूतादिनाऽमून्युत्क्षिप्य महत्यात्मनि संदधे ॥१७॥**

**अन्वयः**— इन्द्रियेषु मनः, तानि यथोद्भवम् तन्मात्रेषु, भूतादिना अमूनि उत्क्षिप्य महति आत्मनि संदधे ॥१७॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् मन का इन्द्रियों में (सविकल्पज्ञान में मन जिन इन्द्रियां के अधीन रहता है उनमें) इन्द्रियों को उनके कारणभूत तन्मात्राओं में सूक्ष्मभूतों के कारणभूत अहङ्कार के द्वारा आकाश, इन्द्रिय और तन्मात्राओं को अहङ्कार में लीन करके अहङ्कार को महत् तत्त्व में उन्होंने लीन कर दिया ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं तामसाहंकारकार्यस्याकाशपर्यन्तस्य लयमुक्त्वा सात्त्विकराजसाहंकारकार्याणां लयमाह- इन्द्रियेष्विति । इन्द्रियेषु मन इति देवानामप्युपलक्षणम् । सविकल्पकज्ञाने मनस इन्द्रियैराकर्षणात्तेषु लयाभिधानं न तु कार्यत्वात् । यदुक्तं गतासु 'इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते' इति । अत्र च 'इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः' इति । इन्द्रियेषु नभ इति पाठेऽप्ययमर्थः । भट्टादीनां मते नभश्चाक्षुष केषांचिन्मानसम् । आनुमानिकत्वमतेऽपीन्द्रियव्यापारोऽस्त्येव । नभोगुणश्च शब्दः श्रोत्रग्राह्योऽत इन्द्रियग्राह्यत्वादिन्द्रियेषु नभो विलापितमिति । तानीन्द्रियाणि यथोद्भवम् । उद्भवोऽत्र वृत्तिलाभः, स च विषयाधीन इति श्रोत्रादीनां विषयेषु शब्दादिषु लयः । यद्वा तन्मात्रकार्याण्येवेन्द्रियाणि मनोऽप्यपञ्चीकृततन्मात्रकार्यम् । आहंकारिकत्वाभिधानंतदधीनत्वविवक्षयेत्यविरोधः । भूतादिनाहंकारेण प्रागवशिष्टनभः सहितानीन्द्रियाण्युत्कृष्य परतो नीत्वा भूत्तादौ क्षिप्त्वा तेन सह महत्तत्त्वे संदध इत्यर्थः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार तामसाहङ्कार के कार्य आकाश पर्यन्त के लय का वर्णन करके सात्त्विक एवं राजस अहङ्कार के लय का वर्णन **इन्द्रियेषु इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । इन्द्रियेषु मनः इत्यादि देवताओं का भी उपलक्षण है।

अर्थात् मन आदि के जो अधिष्ठातृ देवता हैं उनके भी लय का वर्णन किया गया है । सविकल्प ज्ञान में इन्द्रियाँ चूकि मन को आकृष्ट करती हैं इसीलिए मन का इन्द्रियों में लय बतलाया गया है, इन्द्रियों का कार्य होने के कारण नहीं क्योंकि मन इन्द्रियों का कार्य नहीं है । गीता में यह जो कहा गया है कि **इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते** यहाँ पर विषयों द्वारा आकृष्ट इन्द्रियों के द्वारा चिन्तन करने वाले मनुष्यों का मन आकृष्ट कर लिया जाता है, यह अभिप्राय है । **इन्द्रियेषु नभः** यह जो पाठभेद है उसका भी यही अर्थ है । भाट्टमीमांसक आदि आकाश को चाक्षुष (चक्षुरिन्द्रिय ग्राह्य) मानते हैं । कुछ विचारक आकाश को मनो ग्राह्य मानते हैं । जो लोग आकाश को अनुमेय मानते हैं, उनके भी मत में इन्द्रियों का व्यापार होता ही है । **नभोगुणश्च० इत्यादि** आकाश का गुण शब्द है वह श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्य है । अतएव आकाश के इन्द्रिय ग्राह्य होने के कारण इन्द्रियों में आकाश का लय पृथु महराज ने किया । उन इन्द्रियों का लय उनके कारणभूत तन्मात्राओं में होता है । उद्भव शब्द यहाँपर वृत्ति के लाभ का बोधक है । और इन्द्रियों को वृत्ति का लाभ विषयों (रूप रसादि) के अधीन होता है । इसलिए इन्द्रियों का लय शब्दादि विषयों में उन्होंने किया । **यद्वा० इत्यादि** अथवा इन्द्रियाँ तन्मात्राओं के ही कार्य है । अपञ्चीकृत मन भी तन्मात्र का कार्य है । मन को अहङ्काराधीनत्व की विवक्षा से ही मन को आहङ्कारिक कहा गया है । भूतादि अहङ्कार के द्वारा पहले से अवशिष्ट आकाश के साथ इन्द्रियों और तन्मात्राओं को भी आकृष्ट करके दूसरी ओर करके भूतादि अहङ्कार में लीन करके उसी के साथ उन्होंने महत् तत्त्व में लीन किया ॥१७॥

**तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् । तं चानुशयमात्मस्थमसावनुशयी पुमान् ॥**
**ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात्प्रभुः ॥१८॥**

**अन्वयः**— सर्वगुण विन्यासं तं मायामये जीवे न्यधात्, तंच असावनुशायी पुमान् आत्मस्थमनुशयं स्वरूपस्थः ज्ञानवैराग्यवीर्येण अजहात् ।

**अनुवाद**— सभी कार्यों की स्थिति जिसमें होती है उस महान् को महाराज पृथु ने मायोपाधिक जीव में लीन किया, उसके पश्चात् जीव में विद्यमान मायारूप उपाधि को, मायोपहित जीव पृथु ने ज्ञान और वैराग्य के द्वारा शुद्ध ब्रह्म में स्थित होकर त्याग दिया ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वेषां गुणानां कार्याणां विन्यासः स्थितिर्यस्मिंस्तं महान्तं मायामये मायोपाधिप्रधाने जीवे । तं चानुशयमुपाधिं यः पूर्वमनुशयी पुमान् जीवोऽसौ पृथुर्ब्रह्मणि स्थितः सन्नजहादित्यर्थः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

सभी कार्यों की जिसमें स्थिति होती है उस महत् तत्त्व को उन्होंने मायारूपी उपाधि प्रधान जीव में लीन किया उस माया रूपी उपाधि को जो पहले मायिक जीव थे वे महाराज पृथु शुद्ध ब्रह्म में स्थित होकर ज्ञान और वैराग्य के प्रभाव से त्याग दिए ॥१८॥

**अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम् । सुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥१९॥**

**अन्वयः**— तत्पत्नी अर्चिनाम महाराज्ञी वनम् अनुगता । सुकुमारी च पद्भ्यां यत् भुवः स्पर्शनं अतदर्हा ॥१९॥

**अनुवाद**— महाराज पृथु की पत्नी महारानी अर्चि भी अपने पति के साथ वन में चली गयी थीं । वे इतनी सुकुमारी थीं कि अपने पैरों से पृथिवी का स्पर्श करने के भी योग्य नहीं थीं ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

वनप्रवेशमारभ्य राज्ञीकथामाह-अर्चिर्नामेति चतुर्भिः । अनुगतानुजगाम । अतदर्हा तदपि नार्हति या । किं पद्भ्यां भुवः स्पर्श नमिति यत् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

वन में जाने से प्रारम्भ करके रानी की कथा **अर्चिनाम इत्यादि** चार श्लोकां में कहते हैं । **अनुगता** अर्थात् महाराज पृथु के साथ गयी **अतदर्हा** उसके भी योग्य नहीं थीं । प्रश्न होता है कि किसके तो इसका उत्तर है **यद्भयां भुवः स्पर्शने** पैरों से पृथिवी को स्पर्श करने में ॥१९॥

**अतीव भर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया शुश्रूषया चारषदेहयात्रया ।**
**नाविन्दतार्तिं परिकर्शितापि सा प्रेयस्करस्पर्शनमाननिर्वृतिः ॥२०॥**

**अन्वयः**— भर्तुव्रत धर्मनिष्ठया अतीव शुश्रूषया आरषदेहयात्रया च परिकर्शितापिसा प्रेयस्करस्पर्शनमानमिर्वृतिः सा अर्तिं न अविन्दत ॥२०॥

**अनुवाद**— अपने पति के वृत और धर्म में निष्ठा होने के कारण ऋषियों के समान कन्दमूल आदि से देह यात्रा के चलाने के कारण तथा अपने पति की अत्यन्त सेवा करने के कारण दुर्बल भी हुई अर्चि देवी प्रियतम के कर स्पर्श से सम्मानित होकर, उसी में आनन्द का अनुभव करने के कारण किसी भी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं कीं ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

भर्तुर्व्रतं यद्भूमिशयनादि तस्मिन् धर्मे या निष्ठा तया । ऋषीणामियमार्षी देहयात्रा कन्दमूलादिवृत्तिस्तया चार्तिं दुःखं न प्राप । तत्र हेतुः । प्रेयसः करेण स्पर्शन मानश्च ताभ्यां निर्वृतिर्यस्याः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने पति के भूमिशयन आदिव्रत रूपी धर्म में निष्ठा होने के कारण, कन्दमूल इत्यादि से शरीर यात्रा चलाना यह ऋषियों की वृत्ति है । उसके कारण उनको कष्ट का अनुभव नहीं हुआ । उसका कारण यह था कि पति के कर का स्पर्श और उसके द्वारा सम्मान, इन दोनों में ही वे आनन्द का अनुभव करती थीं ॥२०॥

**देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः ।**
**आलक्ष्य किंचिच्च विलप्य सासती चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥२१॥**

**अन्वयः**— अथ पृथिव्याः पत्युः आत्मनः दयितस्य च विपन्नाखिलचेतनादिकं देहं आलक्ष्य सा सती किञ्चि द्विलप्य सानुनि चिताम् आरोपयत् ॥२१॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् पृथिवी के पति और अपने प्रियतम के देह को जीवन के चेतना आदि सभी धर्मो से रहित देखकर उस सती ने कुछ देर तक विलाप किया और पर्वत के शिखर पर चिता बनाकर उस पर महाराज पृथु के शरीर को रख दिया ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

पृथिव्याः पत्युः । दुहितृत्वं तु तस्या देवतारूपेण । विपन्नं नष्टमखिलं चेतनादिकं यस्मिंस्तथाभूतं देहमालक्ष्य तं देहं चितामारोपयत् ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

पृथिवी के स्वामी महाराज पृथु के शरीर को जीव के चेतना आदि सभी धर्मों से रहित देखकर पृथिवी देवता रूप से महाराज पृथु की पुत्री थी । उस देह को उन्होंने चिता पर रख दिया ॥२१॥

**विधाय कृत्यं ह्रदिनीजलाप्लुता दत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः ।**
**नत्वा दिविस्थांस्त्रिदशांस्त्रिः परीत्य विवेशवह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥२२॥**

**अन्वयः**— कृत्यं विधाय ह्रदिनी जलाप्लुता उदार कर्मणः उदकं दत्त्वा दिविस्थान् त्रिदशान् नत्वा, त्रिःपरीत्य भर्तृपादौ ध्यायन्तीं बह्निं विवेश ॥२२॥

**अनुवाद**— उस समय के सारे कृत्यों को करके उन्होंने नदी में स्नान किया, परं पराक्रमी महाराज पृथु को जलाञ्जलि देकर उन्होंने आकाश स्थित देवताओं को नमस्कार किया फिर तीन परिक्रमा करके वे अपने पति के चरणों का ध्यान करती हुई उस अग्नि में प्रवेश किया ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

कृत्यं तत्कालोचितं विधाय ह्रदिन्या जले आप्लुता स्नाता सती भर्तुरुदकं दत्त्वा दिव्यन्तरिक्षे स्थितान्देवान्नत्वा वह्निं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

उस समय के सारे कृत्यों को करके नदी के जल में स्नान करके अपने पति को जलदान करके वे आकाश स्थित देवताओं को नमस्कार की और अग्नि की तीन बार परिक्रमा करके वे अग्नि में प्रवेश कर गयीं ॥२२॥

**विलोक्यानुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् । तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥२३॥**

**अन्वयः**— वीरवरं पतिं पृथुम् अनुगतां साध्वीं विलोक्य सहस्रशः वरदाः देवपत्न्यः देवैः सहतुष्टुवुः ॥२३॥

**अनुवाद**— अपने वीरों में श्रेष्ठ पति पृथु का अनुगमन करने वाली उस सतीं को देखकर हजारो वरदान देने वाली देव पत्नियों ने देवताओं के साथ उनकी स्तुति की ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

देवैः सहिताः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

देवताओं के साथ देवपत्नियों ने उनकी स्तुति की ॥२३॥

**कुर्वत्यः कुसुमासारं तस्मिन्मन्दरसानुनि । नदत्स्वमरतूर्येषु गृणन्ति स्म परस्परम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— तस्मिन् मन्दरसानुनि अमर तूर्येषु नदत्सु कुसुमासारं कुर्वत्यः, परस्परम् गृणन्तिस्म ॥२४॥

**अनुवाद**— उस मन्दराचल के शिखर पर देवगण अपने वाद्यों को बजा रहे थे उस समय पुष्पों की वर्षा करती हुई वे देव पत्नियाँ आपस में कहने लगीं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

गृणन्ति स्म अभाषन्त ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

**गृणन्तिस्म** पद का अर्थ है कहने लगीं ॥२४॥

देव्य ऊचुः

**अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजां पतिम् । सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥२५॥**

**अन्वयः**— अहो इयं वधूः धन्या या च एवं सर्वात्मना भूभुजां पतिं पतिं यज्ञेशं श्रीः बधूः इव भेजे ॥२५॥

### देवों ने कहा

**अनुवाद**— अरे यह नारी धन्य है जिसने अपने राजराजेश्वर पति पृथु की वैसे ही सेवा की है जैसे लक्ष्मीजी यज्ञेश्वर भगवान् विष्णु की सेवा करती हैं ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२५॥

**सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती । पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥२६॥**

**अन्वयः**— नूनं सैषा सती अर्चिः दुर्विभाव्येन कर्मणा वैन्यं पतिम् अनु अस्मान् अतीत्य ऊर्ध्वे व्रजति पश्यत ॥२६॥

**अनुवाद**— देखो निश्चित रूप से वह सती अर्चि देवी अपने अचिन्त्य कर्मों के प्रभाव से अपने पति महाराज पृथु के साथ हमलोगों को लांघकर ऊपर के लोक में जा रही है ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

असतीनां दुर्विभाव्येन कर्तुमशक्येन कर्मणा ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

जिसको असती स्त्रियाँ नहीं कर सकती हैं यह **दुर्विभाव्येन कर्मणा** का अर्थ हैं ॥२६॥

**तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम् । भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत ॥२७॥**

**अन्वयः**— ये वै लोलायुषः नैष्कर्म्यं भगवत्पदं साधयन्ति, तेषाम् उत भुवि किम् अन्यत् दुरापम् ॥२७॥

**अनुवाद**— इस लोक में कुछ ही दिनों का जीवन होने पर भी जो लोग भगवान् के परमपद को प्राप्त करने वाले आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं, उनके लिए संसार में कौन सा पदार्थ दुर्लभ हैं ?॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

भगवान् पद्यते गम्यतेऽनेनेति तथा तन्नैष्कर्म्यं ज्ञानं ये चञ्चलायुषोऽपि साधयन्ति तेषामन्यद्देवादिपदं किमु दुर्लभम् । न किंचिदित्यर्थः ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

जिसके द्वारा श्रीभगवान् की प्राप्ति होती है उस तत्त्व ज्ञान का चञ्चल आयु वाले भी जो लोग प्राप्त कर लेते है उन लोगों के लिए दूसरे देवता आदि का पद दुर्लभ है क्या ? कुछ भी नहीं दुर्लभ हैं ॥२७॥

**स वञ्चितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि । लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥२८॥**

**अन्वयः**— महता कृच्छ्रेण भुवि आपवर्ग्यं मानुष्यं लब्ध्वा विषयेषु विषज्जते स आत्मध्रुक् वञ्चितः ॥२८॥

**अनुवाद**— जो पुरुष अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होने वाले मोक्षप्रद संसार में मनुष्यत्व को प्राप्त करके भी विषयों में आसक्त रहता है वह आत्मद्रोही है और निश्चित रूप से वह ठगा गया है ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

अभक्तं शोचन्ति-स वञ्चित इति । यत आत्मने द्रुह्यति योऽपवर्गसाधनं मानुष्यं लब्ध्वापि विषयेष्वासक्तिं याति ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

जो भक्त नहीं है उन सबों के प्रति शोक करती हुई वे सब वञ्चितः इत्यादि श्लोक कहती हैं । चूकि वह मुक्ति के साधन भूत मनुष्यत्व को प्राप्त करके भी, विषयों में आसक्त रहता है अतएव वह आत्म द्रोही है ॥२८॥

मैत्रेय उवाच

**स्तुवतीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः । यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥२९॥**

**अन्वयः**— स्तुवतीषु अमरस्त्रीषु आत्मविदां धुर्यः अच्युताशयः वैन्यः यं वा प्राप सा वधू पतिलोकं गता ॥२९॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— जिस समय देवताओं की स्त्रियाँ स्तुति कर रही थीं उसी समय महारानी अर्चि भी अपने पति के उसी लोक में गयीं जिस लोक को आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा भगवद्भक्त महराज पृथु गये थे ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२९॥

**इत्थंभूतानुभावोऽसौ पृथुः स भगवत्तमः । कीर्तितं तस्य चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥३०॥**

**अन्वयः**— भगवत्तमः इत्थं भूताऽनुभावोऽसौ सः पृथुः तस्य उद्दाम चरितस्य चरितं ते कीर्तितम् ॥३०॥

**अनुवाद**— भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ महाराज पृथु इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न थे । उन उदार चरित पृथुजी के चरित को मैंने तुम्हें सुनाया ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३०॥

**य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयाऽवहितः पठेत् । श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात् ॥३१॥**

**अन्वयः**— यः इदं सुमहत् पुण्यं श्रद्धया अवहितं पठेत्, श्रावयेत् शृणुयाद् वा स अपि पृथोः पदवीमियात् ॥३१॥

**अनुवाद**— जो मनुष्य इस पवित्र चरित्र को श्रद्धा एवं सावधानी पूर्वक पढ़ता है, सुनता है या सुनाता है वही पृथु के पद अर्थात् परमात्मा के लोक में जाता है ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३१॥

**ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः । वैश्यः पठन्विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥३२॥**

**अन्वयः**— पठन् ब्राह्मणः ब्रह्मवर्चस्वी, राजन्यः जगती पतिः, वैश्यः विट्पतिः स्यात् शूद्रः सत्तमता मियात् ॥३२॥

**अनुवाद**— इसको पढ़ने वाला ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी हो जाता है, क्षत्रिय पृथिवी पति हो जाता है, वैश्य पशुओं अथवा वैश्यों का स्वामी हो जाता है और पठनाधिकार से रहित होने के कारण सुनने मात्र से साधुता सम्पन्न हो जाता है ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

विशां पश्वादीनां वैश्यादीनां वा पतिः स्यात् । शूद्रः शृण्वन्निति शेषः । तस्य पाठानधिकारात् ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

वैश्य पशुओं आदि का अथवा वैश्यों आदि का स्वामी हो जाता है चूकि शूद्र को पढ़ने का अधिकार नहीं है अतएव सुनने मात्र से वह साधु पुरुष हो जाता है ॥३२॥

**त्रिःकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवादृता । अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥३३॥**

**अन्वयः**— नरः अथवा नारी इदम् आदृता त्रिकृत्वः आकर्ण्य अप्रजः सुप्रजतमः, निर्धनः धनवत्तमः अस्पष्ट कीर्तिः सुयशा मूर्खः पण्डितो भवति ॥३३॥

**अनुवाद**— कोई भी पुरुष अथवा स्त्री आदर पूर्वक इसको तीन बार सुनकर सन्तान हीन सुन्दर सन्तान वाला निर्धन धनवान्, कीर्ति हीन यशस्वी और मूर्ख पण्डित हो जाता है ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३३॥

**इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममङ्गल्यनिवारणम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ॥३४॥**

**अन्वयः**— इदं पुंसां स्वस्त्ययनं अमङ्गल्यं निवारणम्, धन्यं, यशस्यम् आयुष्यं, स्वर्ग्यं, कलिमलापहम् ॥३४॥

**अनुवाद**— यह मनुष्यों का कल्याण करने वाला अमङ्गल को दूर करने वाला यह धन, यश और आयु को प्रदान करने वाला स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला और कलियुग के दोषों को दूर करने वाला है ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३४॥

**धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक्सिद्धिमभीप्सुभिः । श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परम् ॥३५॥**

**अन्वयः**— धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक् सिद्धिम् अभीप्सुभिः चतुर्णां परम् कारणं एतत् श्रद्धया अनुश्राव्यं ॥३५॥

**अनुवाद**— जो लोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को अच्छी तरह सिद्धि प्राप्त करना चाहते हों इन चारों के सर्वश्रेष्ठ कारण उनको इसे श्रद्धा पूर्वक सुनना चाहिए ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**— नही है ॥३५॥

**विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदभियाति यान् । बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥३६॥**

**अन्वयः**— विजयाभिमुखः राजा एतत् श्रुत्वा यान् अभियाति तस्मै राजानः पृथवे यथा अग्रे बलिं हरन्ति ॥३६॥

**अनुवाद**— जो राजा विजय के प्रस्थान करते समय इस पृथु चरित का श्रवण करके प्रस्थान करता है उसके आगे आकर राजागण उसी प्रकार उसे उपहार प्रदन करते हैं जिस तरह महाराज पृथु को राजागण भूमण्डल विजय के समय उपहार प्रदान करते थे ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३६॥

**मुक्तान्यसङ्गो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् । वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥३७॥**

**अन्वयः**— मुक्तान्यसङ्गः भगवति अमलां भक्तिमुद्वहन् वैन्यस्य पुण्यं चरितं शृणुयात् श्रावयेत् पठेत् ॥३७॥

**अनुवाद**— अन्य सभी प्रकार की आसक्तियों को त्यागकर तथा श्रीभगवान् में निर्मल भक्ति भाव से युक्त हो महाराज पृथु के इस पवित्र चरित्र को सुने, सुनाये और पढ़े ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यपि बहूनि फलानि भवन्ति तथापि मुक्तान्यसङ्ग एव श्रवणादि कुर्यात् ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि इस पृथु चरित के अनेक प्रकार के फल हैं फिर भी अन्य सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके ही इसका श्रवण आदि करना चाहिए ॥३७॥

**वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकम् । अस्मिन्कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥३८॥**

**अन्वयः**— महन्माहात्म्य सूचकम् विचित्रवीर्याभिहितम् अस्मिन् कृतमतिः मर्त्यः पार्थवीं गतिम् आप्नुयात् ॥३८॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के माहात्म्य के सूचक अद्भुत पराक्रम सम्पन्न इस पृथु चरित को मैंने आपको (विदुरजी को) सुना दिया, इसमें श्रद्धा रखने वाला मनुष्य उसी गति को प्राप्त करता है जिस गति को महाराज पृथु ने प्राप्त किया ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

महतो भगवतो माहात्म्यस्य सूचकम् । पार्थवीं पृथुसंबन्धिनीम् । पार्थिवीमिति वा पाठः ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

महन्माहात्म्य सूचकम् इस पद का महत् शब्द श्रीभगवान् का परामर्शक है । अर्थात् श्रीभगवान् के माहात्म्य का सूचक है यह पृथुचरित । पार्थवी महाराज पृथु की । पार्थिवीम् भी पाठभेद है ।।३८।।

**अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्पृथुचरितं प्रथयन्विमुक्तसङ्गः ।**
**भगवति भवसिन्धुपोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ।।३९।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

**अन्वयः**— विमुक्तसङ्गः मनुष्यः इदं पृथु चरितम् आदरेण अनुदिनम शृण्वन प्रथयन् सच भवसिन्धुपोतपादे भगवति निपुणां भक्तिं लभते ।।३९।।

**अनुवाद**— सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित जो मनुष्य इस पृथु चरित को आदर पूर्वक सुनता है और इसका प्रचार प्रसार करता है वह संसार रूपी सागर में नौका के समान चरणों वाले श्रीभगवान् में सुदृढ भक्ति को प्राप्त करता है ।।३९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।**

**भावार्थ दीपिका**

प्रथयन्कीर्तयन् । भवसिन्धौ पोतः पादो यस्य ।।३९।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।**

**भाव प्रकाशिका**

प्रथयन् का अर्थ है कीर्तन करने वाला, **भवसिन्धुपोतपादे** संसार सागर को पार करने के लिए जिनके चरण नौका के समान हैं, ऐसे श्रीभगवान् में ।।३९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तेइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।**

# चौबीसवाँ अध्याय

## पृथु की वंश परम्परा और प्रचेताओं को रुद्र का उपदेश

मैत्रेय उवाच

**विजिताश्वोऽधिराजासीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः । यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥१॥**

**अन्वयः**— पृथु पुत्रः पृथुश्रवाः विजिताश्वः अधिराजः आसीत् । भ्रार्तृवत्सलः यवीयेभ्यः भ्रातृभ्यः काष्ठाः अददात्॥१॥

**अनुवाद**— महाराज पृथु के पश्चात् उनके परम यशस्वी पुत्र विजिताश्व राजा हुए । भाइयों पर प्रेम होने के कारण उन्होंने अपने छोटे भाइयों को एक-एक दिशा का अधिकर दे दिया ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

एकादशभिरध्यायैः पृथोश्चरितमीरितम् । प्रचेतसामथाष्टाभिस्तन्मध्ये पञ्चभिः पितुः ।।१।। चतुर्विंशे प्रपौत्रात्तु पृथोः प्राचीनबर्हिषः । प्रचेतसां जनिस्तेभ्यो रुद्रगीतं च वर्ण्यते।।२।। अधिराज आसीदित्यर्थः। यवीयोभ्यः कनिष्ठेभ्यः। काष्ठा दिशः।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

ग्यारह अध्यायों में महराज पृथु के चरित का वर्णन किया गया । अब आठ अध्यायों में प्रचेताओं का चरित वर्णन किया गया है । उसके बीच में पाँच अध्यायों में प्रचेताओं के पिता प्राचीन बर्हि का चरित वर्णित है । इस चौबीसवें अध्याय में महाराज पृथु के प्रपौत्र प्राचीन बर्हि के पुत्र प्रचेताओं का जन्म वर्णित है और रुद्रगीत का वर्णन है । विश्वजित अधिराज हुए और उन्होंने अपने छोटे भाइयों को दिशओं का अधिकार दे दिया ।।१।।

**हर्यक्षायादिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् । प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ।।२।।**

**अन्वयः**— विभुः हर्यक्षाय प्राचीम् आदिशत् धूम्रकेशाय दक्षिणाम्, वृक संज्ञाय प्रतीचीम् द्रविण से तुर्यां आदिशत्।।२।।

**अनुवाद**— राजा विजिताश्व ने हर्यक्ष को पूर्व दिशा दे दिया, धूम्रकेश को दक्षिण दिशा का अधिकार दे दिया, वृक को पश्चिम दिशा का और द्रविड को उत्तर दिशा का अधिकार दे दिया ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

तुर्या चतुर्थीमुत्तरां दिशम् ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

चौथी उत्तर दिशा को द्रविड़ को दे दिया ।।२।।

**अन्तर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वान्तर्धानसंज्ञितः । अपत्यत्रयमाधत्त शिखण्डिन्यां सुसंमतम् ।।३।।**

**अन्वयः**— शक्रात् अन्तर्धान गतिं लब्ध्वा अन्तर्धान संज्ञितः शिखण्डिन्यां सुसम्मतम् अपत्यत्रयम् आधत्त ।।३।।

**अनुवाद**— उन्होंने इन्द्र से अन्तर्धान होने की शक्ति प्राप्त की थी अतएव उनका नाम अन्तर्धान भी था। उन्होंने अपनी शिखण्डिनी नाम की पत्नी के गर्भ से अपने अभिमत तीन पुत्रों को उत्पन्न किया ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

शक्राल्लब्ध्वा पृथोरश्वमेधेऽश्वविजयावसरे ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

महाराज पृथु के अश्वमेध यज्ञ के समय यज्ञाश्व को जीतने के समय इन्द्र से अन्तर्धान होने की शक्ति प्राप्त की थी।।३।।

**पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा । वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ।।४।।**

**अन्वयः**— पावकः पवमानः शचिः य इत्यग्नः पुरा वसिष्ठशापात् उत्पन्नः पुनः योगगतिंगताः ।।४।।

**अनुवाद**— पावक, पवमान और शुचि वसिष्ठ महर्षि के शाप के कारण ये तीनों अग्नियाँ उनके पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए थे और फिर वे योगमार्ग से अग्नि हो गये ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

अपत्यत्रयमेवाह-पावक इति । पुरा यः शापस्तस्मान्मनुष्येषूत्पन्नाः सन्तो योगगतिमग्नित्वं प्राप्ताः ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

पावक इत्यादि श्लोक से विजिताश्व के तीनों पुत्रों को कहा गया है । पूर्वकाल में हुए महर्षि वसिष्ठ के शाप के कारण वे मनुष्य रूप से उत्पन्न हुए थे फिर वे योगगति के द्वारा अग्नि हो गये ।।४।।

**अन्तर्धानो नभास्वत्यां हविर्धानमविन्दत । य इन्द्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥५॥**

**अन्वयः**— अन्तर्धानः नभस्वत्यां हविर्धानमविन्दत यः अश्वहर्तारं इन्द्रं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥५॥

**अनुवाद**— अन्तर्धाने न नभस्वती नामकी पत्नी के गर्भ से हविर्धान नामक पुत्र को उत्पन्न किया उसने अश्व का हरण करने वाले इन्द्र को जानकर भी इन्द्र को नहीं मारा ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

नभस्वत्यामन्यस्यां भार्यायाम् । अन्तर्धानस्य विशेषणं य इति । एतेन शक्रादन्तर्धानगतिलाभे कारणमुक्तम् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

नभस्वती अन्तर्धान की दूसरी पत्नी का नाम था । उसके गर्भ से हविर्धान का जन्म हुआ था । य इत्यादि अन्तर्धान का विशेषण है । इस उत्तरार्द्ध के द्वारा इन्द्र से अन्तर्धान होने की शक्ति के लाभ का कारण बतलाया गया है ॥५॥

**राज्ञां वृत्तिं करादानदण्डशुल्कादिदारुणाम् । मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥६॥**

**अन्वयः**— कारादान, दण्डशुल्कादि राज्ञां वृत्ति दारुणम् मन्यमानः दीघसत्र व्याजेन विससर्ज ॥६॥

**अनुवाद**— कर लेना, दण्ड देना, जुर्माना वसूलना राजाओं की इस वृत्ति को कठोर मानने वाले राजा अन्तर्धान ने एक दीर्घ सत्र के बहाने राजा का काम त्याग दिया ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

स चान्तर्धानो राज्ञा वृत्तिं करादानादिभिर्दारुणां परपीडात्मिकां मन्यमानो विससर्ज ह ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

यह आश्चर्य की बात है कि राजा अन्तर्धान कर वसूलना आदि कर्मों को पर पीडात्मक मानते हुए राज कार्य को त्याग दिए ॥६॥

**तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् । यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥७॥**

**अन्वयः**— तत्रापि आत्मदृक् हंसं पुरुषं परमात्मानम् यजनम् कुशलेन समधिना तल्लोकतामाप ॥७॥

**अनुवाद**— यज्ञ कार्य में लगे रहने पर भी आत्मज्ञानी अन्तर्धान राजा ने भक्तजन क्लेश नाशक श्रीभगवान् की आराधना करते हुए श्रीभगवान् के लोक को प्राप्त किए ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

हन्ति स्वानां क्लेशमिति हंसस्तं पुरुषं पूर्णम् । कुशलं पुण्यं तद्रूपेण समाधिना ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

भक्तों के क्लेश को विनष्ट करने वाले पूर्ण पुरुष परमात्मा की सुदृढ समाधि के द्वारा प्रजापति का पद प्राप्त किया ॥७॥

**हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट् सुतान् । बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतम् ॥८॥**

**अन्वयः**— हे विदुर ! हविर्धानात् हविर्धानी बर्हिषदं, गयं, शुक्लं, कृष्णं सत्यं जितव्रतमिति षट् सुतान् असूत ॥८॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! हविर्धान की पत्नी हविर्धानी ने बर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण सत्य और जितव्रत इन छह पुत्रों को जन्म दिया ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**— नही है ॥८॥

**बर्हिषत्सुमहाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः । क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरूद्वह ॥९॥**

**अन्वयः**— हे कुरुद्वह । हविर्धानिः महाभागः प्रजापतिः बर्हिषत् क्रियाकाण्डेषु योगेषु च निष्णात आसीत् ॥९॥

**अनुवाद**— हे विदुर । हविर्धान के पुत्र महाभाग, बर्हिषत् कर्म काण्ड और योगभ्यास में कुशल थे और उन्होंने प्रजापति का पद प्राप्त किया ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

हाविर्धानिर्हविर्धानस्य पुत्रः । योगेषु च प्राणायामादिषु ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

हविर्धान के पुत्र यह हविर्धानिः का अर्थ है वे प्राणायाम् आदि योग में निपुण थे ॥९॥

**यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः । प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— यस्य देव यजनम् यज्ञं वितन्वतः इदं वासुधातलम् प्राचीनाग्रैः कुशैः आसादितम् आसीत् ॥१०॥

**अनुवाद**— उनके एक के बाद दूसरा यज्ञ करते रहने से यह सारी पृथिवी पूर्व की ओर आगे के भाग को करके बिछाये गये कुशों से पट गयी थी ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

क्रियाकाण्डनिष्णातत्वमाह-यस्येति । इदं वसुधातलं देवयजनं यज्ञवाटं वितन्वतः । यत्रैको यज्ञः कृतस्तत्समीप एव यज्ञान्तरं कुर्वतः सतः । अतएव प्राचीनवर्हिरित्युच्यते ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

उनके कर्मकाण्ड में निपुणात्मक वर्णन इस श्लोक में किया गया है । उनके एक स्थान से सटे हुए दूसरे स्थान पर यज्ञ करने से यह सारी पृथिवी यज्ञशाला बन गयी थी । अतएव वे आगे चलकर प्राचीन बर्हि के नाम से विख्यात हुए ॥१०॥

**सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिम् । यां वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं किशोरीं सुष्ठ्वलंकृताम् ॥**
**परिक्रमन्तीमुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव ॥११॥**

**अन्वयः**— देव देवात्ताम् सामुद्री शतद्रुतिम् उपयेमे उदवाहे, सुष्ठु अलंकृताम् चारुसर्वाङ्गीम् परिक्रामन्तीं किशोरीम् अग्निः शुकीमिव चकमे ॥११॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी के कहने से प्राचीन बर्हिने सुमुद्र की पुत्री शतद्रुती से विवाह किया । विवाह के अवसर पर अच्छी तरह से अलंकृत, सर्वाङ्ग सुन्दरी किशोरी शतद्रुति जब अग्नि की परिक्रमा कर रही थी उस समय अग्नि उसे उसी तरह से चाहे जैसे उन्होंने शुकी को चाहा था ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

समुद्रस्य कन्यां देवदेवेन ब्रह्मणोपदिष्टां शतद्रुतिं नाम किशोरीं बालां परिक्रमन्ती प्रदक्षिणं गच्छन्तीम् । शुकीमिवेति । एवं ह्याख्याते । सप्तर्षीणां सत्रे तद्भार्यादर्शनेनाग्निः कामसंतप्तोऽभूत् । तं च तद्भार्या स्वाहा नाम सप्तर्षिभार्यारूपधारिणी सती रमयामास । रमयित्वा च तद्रेतः शुकीरूपेण शरस्तम्बे निधायागच्छत् । तां यथा सप्तर्षिभार्याभ्रान्त्या अग्निः कामितवांस्तद्वदिति। स्तुकीमिवेति पाठे स्तोकघृतधारामिवेत्यर्थः ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

प्राचीन बर्हि ने ब्रह्माजी के कहने से समुद्र की पुत्री शतद्रुति नाम की किशोरी बाला के साथ विवाह किया।

किशोरी शतद्रुति को प्रदक्षिणा के समय देख अग्नि उसे शुकी के समान चाहे। इसके विषय में इस तरह से कहा जाता है— सप्तर्षियों के यज्ञ में उनक ीपत्नी को देखकर अग्निदेव कामार्त हो गये। यह देखकर अग्नि की पत्नी स्वाहा ने सप्तर्षि की पत्नी का रूप धरकर अग्नि के साथ रमण किया। रमण करने के पश्चात् अग्नि के रेतस् (वीर्य) को शरपत पर छोड़कर चली गयी। जहाँ स्तुकीमिव पाठ है वहाँ पर घृत की धारा के समान यह अर्थ होगा ॥११॥

**विबुधासुरगन्धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः। विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयन्त्यैव नूपुरैः ॥१२॥**

**अन्वयः**— सूर्यया दिक्षु नूपुरैः क्वणयन्त्या एवं विवुधासुरगन्धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः विजिताः ॥१२॥

**अनुवाद**— नबोढा शतद्रुति ने अपने नूपुरों के झनकार मात्र से ही दिशाओं में विद्यमान देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और सर्पों को अपने वश में कर लिया था ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

सूर्यया नवोढयैव विबुधादयो विजिता अभिभूतास्तच्च नूपुरैः पादौ कणयन्त्यैव। तद्ध्वनिमात्रेणेत्यर्थः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

नवोढा शतद्रुति के द्वारा देवता आदि उसके नूपुरों की ध्वनी मात्र से ही वशीकृत हो गये थे ॥१२॥

**प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन्। तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥१३॥**

**अन्वयः**— शतद्रुत्यां प्राचीन बर्हिषः दशपुत्राः अभवन्। सर्वे प्रचेतसः तुल्यनाम व्रताः धर्मस्नाताः ॥१३॥

**अनुवाद**— प्राचीन बर्हि के शतद्रुति में दश पुत्र प्रचेता नाम से हुए उन सबों के नाम और व्रत एक समान था और सबके सब धार्मिक थे ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

तुल्यं नाम व्रतमाचारश्च येषाम्। धर्मस्नाता धर्मपारगाः ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

उन सबों के नाम और आचरण एक समान था। वे सबके सब धर्मपारङ्गत थे ॥१३॥

**पित्रादिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन्। दशवर्षसहस्राणि तपसाऽर्चंस्तपस्पतिम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— पित्रा प्रजासर्गे आदिष्टाः तपसे अर्णवम् आविशन् तपसा दशवर्ष सहस्राणि तपसा अर्चन् ॥१४॥

**अनुवाद**— पिता प्राचीन बर्हि से सन्तानों को उत्पन्न करने के लिए आदेश पाकर वे तपस्या करने के लिए समुद्र में प्रवेश कर गये अर दश हजार वर्षों तक श्रीभगवान् की अर्चना करते रहे ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

तपसा पतिं हरिमर्चन्नर्चयामासुः ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

तपस्या के द्वारा तपस्या के स्वामी श्रीहरि की अर्चना करते रहे ॥१४॥

**यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता। तद्ध्यायन्तो जपन्तश्च पूजयन्तश्च संयताः ॥१५॥**

**अन्वयः**— पथि दृष्टेन प्रसीदता गिरिशेन यदुक्तं तद्ध्यायन्तः जपन्तश्च पूजयन्तश्च संयताः ॥१५॥

**अनुवाद**— तपस्या करने के लिए जाते समय मार्ग में दर्शन देकर प्रसन्न हुए शङ्करजी ने उन प्रचेताओं को जिस तत्त्व का उपदेश दिया उसी को ध्यान, जप और पूजन करते रहे ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१५॥

विदुर उवाच

**प्रचेतसां गिरित्रेण यथासीत्पथि सङ्गमः । यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन्वदार्थवत् ॥१६॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! प्रचेतसां गिरित्रेण पथि यथा सङ्गम आसीत् यद् उत प्रीतः हरः आह तत् अर्थवत् न वद ॥१६॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! मार्ग प्रचेताओं का शङ्करजी के साथ समागम कैसे हुआ ? उन पर प्रसन्न होकर शङ्करजी ने क्या कहा ? उसके सारांश को आप मुझे बतलाये ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१६॥

**सङ्गमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम् । दुर्लभो मुनयो दध्युरसङ्गाद्यमभीप्सितम् ॥१७॥**

**अन्वयः**— हे विप्रर्षे इह शरीरिणाम् शिवेन सह सङ्गमः दुर्लभः अभीप्सितम् यम् मुनयः असङ्गात् दध्युः ॥१७॥

**अनुवाद**— हे विप्रर्षे इस संसार में शिवजी के साथ समागम होना अत्यन्त कठिन है, मुनिजन भी सभी प्रकार की आसक्तियों को त्याग करके उनका प्रेमपूर्वक ध्यान करते हैं, फिर भी वे नहीं मिल पाते हैं ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

मुनयोऽपि सङ्गत्यागेनामुमिष्टं यं दध्युरेव केवलं, नतु प्रापुः । तेन शिवेन ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

मुनिजन भी जिनका अनासक्ति पूर्वक जिनका ध्यान नहीं करते है । वे उनको प्राप्त नहीं कर पाते उन्हीं शिवजी का मिलना अत्यन्त कठिन हैं ॥१७॥

**आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे । शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान्भवः ॥१८॥**

**अन्वयः**— आत्मारामोऽपि भगवान् भवः लोककल्पस्य राधसे घोरयाशक्त्या राधसे ॥१८॥

**अनुवाद**— भगवान् शिव आत्माराम है फिर भी वे लोक की रचना करने के लिए अपनी घोर शक्ति शिवा के साथ वे विचरण किया करते हैं ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु मुनीनां किं तद्ध्यानेन घोरत्वादित्याशङ्क्याह । आत्मारामोऽपि लोकरचनायाः पालनाय ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि शिवजी तो भयङ्कर रूप धारण किए रहते हैं मुनियों का उनका ध्यान करने से क्या लाभ है ? तो इसका उत्तर है कि वे आत्माराम हैं फिर भी संसार का पालन करने के लिए वे अपनी घोर शक्ति शिवा के साथ इस संसार में विचरण किया करते हैं ॥१८॥

मैत्रेय उवाच

**प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसादाय साधवः । दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्यादृतचेतसः ॥१९॥**

**अन्वयः**— साधवः प्रचेतसः पितुर्वाक्यम् शिरसा आदाय तपसि आदृतचेतसः प्रतीचीं दिशं प्रययुः ॥१९॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— विदुर ! साधु स्वभाव वाले प्रचेतागण अपने पिता के वाक्य को शिरोधार्य करके तपस्या करने में चित्त लगाकर पश्चिम दिशा में चल दिए ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

गुर्वाज्ञाकारिणां शिवदर्शनं स्वत एव भवतीत्याशयेनाह-प्रचेतस इति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने गुरुजनों की आज्ञा का पालन करने वालों का शिवजी का दर्शन अपने आप हो जाता है, इसी अभिप्राय से मैत्रेयजी ने इस श्लोक को कहा है ।।१९।।

**समुद्रमुप विस्तीर्णमपश्यन्सुमहत्सरः । महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ।।२०।।**

**अन्वयः**— समुद्रमुप विस्तीर्णम् महन् मन इव स्वच्छम् प्रसन्न सलिलाशयम् सुमहत्सरः अपश्यन् ।।२०।।

**अनुवाद**— समुद्र के समान विस्तृत महापुरुषों के मन के समान स्वच्छ जिनके जल में रहने वाले जीव प्रसन्न थे ऐसे एक विस्तृत सरोवर को उन लोगों ने देखा ।।२०।।

**भावार्थ दीपिका**

समुद्रमुप समुद्रात्किंचिन्न्यूनम् 'उपोधिके च' इति कर्मप्रवचनीयः प्रसन्नाः सलिलाशया मत्स्यादयो यस्मिन् ।।२०।।

**भाव प्रकाशिका**

समुद्र से कुछ छोटा यह समुद्र मुप का अर्थ है । **'उपोधिकेच'** सूत्र के समुद्रम् की कर्म प्रवचनीय संज्ञा हुई है । उस सरोवर में रहने वाले मत्स्य आदि प्रसन्न थे ।।२०।।

**नीलरक्तोत्पलाम्भोजकह्लारेन्दीवराकरम् । हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजितम् ।।२१।।**

**अन्वयः**— नीलरक्तोत्पलाम्भोज कह्लारेन्दीवराकरम्, हंससारसचक्राह्व कारण्डव निकूजितम् ।।२१।।

**अनुवाद**— उसमें नील कमल, लाल कमल दिन में, रात में और सायंकाल में विकसित होने वाले कमल तथा इन्ही वर आदि कई प्रकार के कमल विद्यमान थे । उसमें हंस, सारस चकवा, कारण्डव आदि पक्षी चहक रहे थे ।।२१।।

**भावार्थ दीपिका**

नीलोत्पलादीनामाकरं जन्मस्थानम् । उत्पलाम्भोजकह्लाराणि रात्रिदिनसन्ध्याविकासीनि । इन्दीवरं नीलोत्पलम् । तस्य पुनरूक्तिः प्राचुर्यज्ञापनार्थम् । हंसादिभिर्निकूजितम् ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

उस सरोवर में नील कमल आदि उत्पन्न होते थे । नील कमल लाल कमल और अम्भोज कमल जो क्रमशः रात, दिन और सायंकाल विकसित होते थे इन्दीवर नील कमल को कहते है । नील कमल की प्रचुरता ज्ञापित करने के लिए उसको दो बार कहा गया है । हंस आदि जल के पक्षी उसमें बोलते रहते थे ।।२१।।

**मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलताङ्घ्रिपम् । पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ।।२२।।**

**अन्वयः**— मत्तभ्रमरसौस्वर्य दृष्टरोमलताङ्घ्रिपम्, पद्म कोश रजः दिक्षु विक्षिपत् पवनोत्सवम् ।।२२।।

**अनुवाद**— उसके तट पर विद्यमान वृक्षों और लताओं पर मतवाले भौंरे गूंज रहे थे । उनकी ध्वनि को सुनकर रोमाञ्च हो रहा था, वायु के झोंके से कमल के पराग चारो दिशाओं में ऐसे उड़ रहा था मानो वहाँ उत्सव हो रहा हो ।।२२।।

**भावार्थ दीपिका**

मत्तानां भ्रमराणां सौस्वर्येण हृष्टरोमाणो लताङ्घ्रिपा यस्मिन्, पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपता पवनेनोत्सवो यस्मिन् ।।२२।।

**भाव प्रकाशिका**

मदत्तमत्त भ्रमरों के सुन्दर गुञ्जन स्वर से उस सरोवर की लताएँ और वृक्ष मानो रोमाञ्चित हो रहे थे और वायु कमलों के पराग को दिशाओं और विदिशाओं में विखेर कर मानो उत्सव मना रहा था ।।२२।।

**तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् । विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदङ्गपणवाद्यनु ॥२३॥**

**अन्वयः**— तत्र मृदङ्गपणवाद्यनु दिव्यमार्गमनोहरम् गान्धर्वम् आकर्ण्य ते राजपुत्राः विसिस्म्युः ॥२३॥

**अनुवाद**— वहाँ मृदङ्ग तथा पणव की ध्वनि से युक्त दिव्य रागादिकों से मनोहर सङ्गीत की ध्वनि को सुनकर उन राजकुमारों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र मृदङ्गपणवादिवाद्यमनु पश्चाद्दिव्यैर्मार्गभेदैर्मनोहरं गान्धर्वं गानमाकर्ण्य विस्मयं प्राप्ताः । पाठान्तरे मृदङ्गपणवादि अवत् रक्षत् । तेषां ध्वनिमतिरस्कुर्वदित्यर्थः ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

वहाँ मृदङ्ग और पणव की ध्वनि से युक्त दिव्य रागादि से युक्त मनोहर सङ्गीत को सुनकर वे सभी राजकुमार आश्चर्यित हो गये । जहाँ पर पणवाद्यवत् यह पाठान्तर है वहाँ अर्थ होगा उन सबों की ध्वनि का तिरस्कार किए बिना ही आश्चर्यित हुए ॥२३॥

**तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रामन्तं सहानुगम् । उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥२४॥**
**तप्तहेमनिकायाभं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् । प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥२५॥**

**अन्वयः**— तर्ह्येव तस्मात् सरसः निष्क्रामन्तम् हेमतप्तनिकायाभं अमरप्रवरं विवुधानुगै उपगीयमानम् सहानुगम् प्रसादसुमुखं एवं त्रिलोचनं शितिकण्ठं विलोक्य वीक्ष्य जातकोतुकाः प्रणेमुः ॥२४-२५॥

**अनुवाद**— उसी समय वे सभी उस सरोवर से निकलते हुए, सुवर्ण राशि के समान शरीर वाले देवताओं में श्रेष्ठ प्रसन्न मुख वाले शङ्करजी को देखा उनके तीन नेत्र थे और कण्ठ नील वर्ण का था, और अनेक गन्धर्व उनके यश का गान कर रहे थे । इस प्रकार के शङ्करजी को देखकर प्रचेताओं को बड़ी ही उत्कण्ठा हुई और उन सबों ने उनको प्रणाम किया ॥२४-२५॥

**भावार्थ दीपिका**

ते च त्रिलोचनं वीक्ष्य जाताश्चर्याः प्राणेमुरित्युत्तरेणान्वयः । तप्तहेमराशिसदृशकान्तिम् । शितिर्नीलः कण्ठो यस्य तम् ॥२४-२५॥

**भाव प्रकाशिका**

वे सब शङ्करजी को देखकर बड़े ही आश्चर्यित हुए और उनको प्रणाम किए । उनका शरीर तप्त सुवर्ण राशि के समान कान्तिमान था और उनका कण्ठ नील वर्ण का था ॥२४-२५॥

**स तान्प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः । धर्मज्ञाञ्शीलसंपन्नान्प्रीतः प्रीतानुवाच ह ॥२६॥**

**अन्वयः**— प्रपन्नार्तिहरः धर्मवत्सलः स भगवान् प्रीतः सन् प्रीतान् धर्मज्ञान् शीलसम्पन्नान् उवाच ॥२६॥

**अनुवाद**— शरणागत जीवों के कष्ट को दूर करने वाले धर्म वत्सल भगवान् शङ्कर ने अपने दर्शन से प्रसन्न हुए प्रचेताओं को जो धर्म को जानने वाले और शीलगुण सम्पन्न थे उनसे कहे ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२६॥

श्रीरुद्र उवाच

**यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् । अनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— यूयं वेदिषदः पुत्राः, वः भद्रं वः चिकीर्षितं विदितं वः अनुग्रहाय मे दर्शनं कृतम् ॥२७॥

**श्रीरुद्र ने कहा**

**अनुवाद**— तुम सभी महाराज वर्हिषद के पुत्र हो तुम लोगों का कल्याण हो, तुम जो करना चाहते हो वह मुझे ज्ञात है, तुमलोगों पर कृपा करने के ही लिए मैंने तुमलोगों को दर्शन दिया है ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

वेदिषदो बर्हिषदः । चिकीर्षितं भगवदाराधनं विदितम् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

तुमलोग बर्हिषद के पुत्र हो मैं जानता हूँ कि तुमलोग भगवदाराधन करने के लिए जा रहे हो ॥२७॥

**यः परं रंहसः साक्षात्त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात् । भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ॥२८॥**

**अन्वयः**— यः रंहसः त्रिगुणात् जीव सज्ञितात् परं साक्षात् भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः सहि मे प्रियः ॥२८॥

**अनुवाद**— जो सूक्ष्म प्रकृति तथा जीव से भी श्रेष्ठ तत्त्व साक्षात् भगवान् वासुदेव की शरणागति करता है वह मेरा प्रिय है ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुग्रहकारणमाह । यः साक्षाद्वासुदेवं प्रपन्नः स हि मे प्रियः । कथंभूतम् । रंहसः सूक्ष्मात्त्रिगुणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात्पुरुषाच्च परम् । प्रकृतिपुरुषयोर्नियन्तारमित्यर्थः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

अनुग्रह करने के कारण बतलाते हुए शङ्करजी ने कहा जो साक्षात् भगवान् वासुदेव का भक्त होता है, वह मेरा प्रिय है कैसे वासुदेव का ? तो इसका उत्तर कहते हैं- जो सूक्ष्म प्रकृति और जीव दोनों से श्रेष्ठ हैं अर्थात् प्रकृति और पुरुष दोनों के नियामक हैं ॥२८॥

**स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम् ।**
**अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं पदं यथाहं विबुधाः कलात्यये ॥२९॥**

**अन्वयः**— स्वधर्मनिष्ठः पुमान् शतजन्मभिः विरिञ्चतामेति, ततः परं हि माम् एति, अथ भागवतः अव्याकृतं वैष्णवं पदं यथा अहं विवुधाः कलात्यये ॥२९॥

**अनुवाद**— अपने वर्णाश्रम धर्म का अच्छी तरह से पालन करने वाला मनुष्य ब्रह्माजी के पद को प्राप्त करता है । उससे अधिक पुण्य होने पर वह मुझको प्राप्त करता है । किन्तु जो भगवद् भक्त होता है वह मृत्यु के पश्चात् प्रपञ्च से परे श्रीभगवान् के लोक को प्राप्त करता है जिस मैं तथा दूसरे अधिकारिक देवता अपने अधिकार की समाप्ति के पश्चात् प्राप्त करते हैं ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्किं तस्य महत्तमत्वादित्याह । स्वधर्मनिष्ठः पुमान्बहुभिर्जन्मभिर्विरिञ्चतां प्राप्नोति । ततोऽपि पुण्यातिशयेन मामेति । भागवतस्त्वथ देहान्तेऽव्याकृतं प्रपञ्चातीतं वैष्णवं पदमेति । यथाहं रुद्रो भूत्वाधिकारिकवद्वर्तमानो विबुधा देवाश्चाधिकारिकाः कलात्ययेऽधिकारान्ते लिङ्गभङ्गे सत्येष्यन्ति ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि उन भगवान् वासुदेव की क्या महिमा है ? तो इस पर कहते हैं अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला मनुष्य अनेक जन्मों के पश्चात् ब्रह्माजी के पद को प्राप्त करता हैं । उससे भी जब अधिक पुण्य होता

है तो वह मुझको प्राप्त करता है, किन्तु जो भगवान् का भक्त होता है वह शरीर त्याग के पश्चात् ही प्रपञ्चातीत वैष्णव पद को प्राप्त करता है जिस तरह मै रुद्र होकर अधिकारिक पद पर वर्तमान हूँ उसी तरह दूसरे देवता भी जो अधिकारिक पद पर वर्तमान् है, ये सब के सब अधिकार काल के समाप्त हो जाने पर जब लिङ्ग शरीर का नाश हो जाता है तब वैष्णव पद को प्राप्त करते हैं ॥२९॥

**अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान्यथा । न मद्भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥३०॥**

**अन्वयः**— अथ भागवतां यूयं प्रियाः स्था भगवान् यथा भागवतानां च मत्तः अन्यः प्रेयान् कर्हिचत् नास्ति ॥३०॥

**अनुवाद**— तुमलोग भगवद् भक्त हो इसलिए मेरे प्रिय हो, भागवतों को भी मुझसे अधिक प्रिय कोई दूसरा नहीं होता है ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

अथ भागवतत्वाद्यूयं मे प्रियाः स्थ । भवद्भिरपि मयि प्रीतिः कार्येत्याशयेनाह । मदन्यो भागवतानां च प्रेयान्नास्ति॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

आपलोग भगवद् भक्त हैं, अतएव आपलोग मेरे प्रिय हैं । आपलोगों को भी मुझसे प्रेम करना चाहिए इसी अभिप्रय से शङ्करजी ने कहा भागवतों को भी मुझसे बढ़कर कोई अधिक प्रिय नहीं होता है ॥३०॥

**इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परम् । निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः ॥३१॥**

**अन्वयः**— निःश्रेयस्करं चापि श्रूयताम् तत् वः वदामि । इदं परं पवित्रम् मङ्गलं विविक्तं जप्तव्यम् ॥३१॥

**अनुवाद**— अब तुम लोगों को मैं कल्याणकारी स्तोत्र बतलाता हूँ उसे तुमलोग सुनो; यह अत्यन्त पवित्र और मङ्गलमय है, इसे तुमलोग शुद्धभाव से जपना ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

अत इदं जप्तव्यं श्रूयतामिति । विविक्तमसंकीर्णं यथा भवति ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

अतएव जपने योग्य स्तोत्र को तुमलोग सुनो । इसे शुद्ध भाव से जपना ॥३१॥

मैत्रेय उवाच

**इत्यनुक्रोशहृदयो भगवानाह तान् शिवः । बद्धाञ्जलीन् राजपुत्रान्नारायणपरो वचः ॥३२॥**

**अन्वयः**— इत्यनुक्रोश हृदयः नारायणपरः भगवान् शिव बद्धाञ्जलीन् तान् राजपुत्रान् वचः आह ॥३२॥

**मैत्रेयजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह करुणार्द्रहृदय वाले भगवान् नारायण के भक्त भगवान् शिव हाथ जोड़े हुए उन राजकुमारों से कहे ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

सृष्ट्यादौ ब्रह्मणा सृष्ट्वा पुत्रेभ्यः प्रोक्तमिष्टदम् । स्तोत्रं प्राह प्रचेतोभ्यः कृपया भगवान् शिवः ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी इस स्तोत्र की रचना करके इस अभीष्ट पद स्तोत्र को अपने पुत्रों को सुनाया उसी स्तोत्र को कृपाक्रान्त भगवान् शिव ने प्रचेताओं को सुनाया ॥३२॥

श्रीरुद्र उवाच

**जितं त आत्मविद्धुर्य स्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे । भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥३३॥**

**अन्वयः**— हे आत्मविद्धूर्य स्वस्वतये ते जितं मे स्वस्ति रस्तु भवताराधसा राद्धं सर्वस्मै आत्मने नमः ॥३३॥

**रुद्र ने कहा**

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आपका उत्कर्ष आत्मज्ञानियों के कल्याण के लिए है उससे मेरा भी कल्याण हो, आप सदैव अपने निरतिशय परमानन्द स्वरूप में स्थित रहते हैं ऐसे सर्वस्वरूप आत्म स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

ते जितं तवोत्कर्षः । आत्मविद्धुर्याणां स्वस्तये शोभनसत्तायै स्वानन्दलाभायेत्यर्थः । अतो मे स्वस्तिः स्वानन्दसत्ताऽस्तु। ननु ममोत्कर्षो मदर्थ एव किं न स्यात्तत्राह । भवता राधसा स्वानन्दरूपेण राद्धं सिद्धम् । त्वं परमानन्दस्वरूपेणैव नित्यं स्थित इत्यर्थः । अत एवंभूतायात्मने तुभ्यं नमः । सर्वस्मै सर्वरूपाय च ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

हे भगवन् ! आपका उत्कर्ष श्रेष्ठ आत्मज्ञानियों के सुन्दर, सत्ता स्वरूप आत्मलाभ के लिए है, अतएव उससे मेरा सुन्दर सत्ता रूप स्वानन्द सत्ता हो जाय । **ननु० इत्यादि** यदि आप कहें कि मेरा उत्कर्ष मेरे लिए ही क्यों न हो ? तो इस पर कहते हैं कि आपका आत्मानन्दतो अपने आप सिद्ध है । आप तो परमानन्द रूप से सदैव बने रहते हैं, इस प्रकार के आत्म स्वरूप आपको नमस्कार है, सर्वस्वरूप आपको नमस्कार हैं ॥३३॥

**नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने । वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥३४॥**

**अन्वयः**— पङ्कज नाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने वासुदेवाय, शान्ताय, कूटस्थाय, स्वरोचिषे नमः ॥३४॥

**अनुवाद**— आप पङ्कजनाभ (अर्थात् सम्पूर्ण लोकात्मक कमल जिनकी नाभि में है ऐसे जगत् के आदि कारण स्वरूप) भूत सूक्ष्म (तन्मात्र) तथा इन्द्रियों के नियामक वासुदेव (सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय) शान्त स्वरूप निर्विकार और स्वयम्प्रकाश आप को नमस्कार है ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वरूपत्वं प्रपञ्चयन् प्रणमति सार्धैर्दशभिः । पङ्कजं लोकात्मकं नाभौ यस्य तस्मै कारणात्मने नमः । कारणत्वादेव सृज्यानां प्राणिनां ये उपाधयो भूतानि सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च तेषामात्मने नियन्त्रे । अन्तःकरणचतुष्टयाधिष्ठातृत्वेन प्रणमति चतुर्भिः श्लोकार्धैः । वासुदेवाय चित्ताधिष्ठात्रे । कूटस्थाय निर्विकाराय, चित्तस्यैकरूपत्वात् ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् स्वरूप रूपता का विस्तार से वर्णन साढे दश श्लोकों में करते हैं, लोकात्मक कमल जिनकी नाभि में हैं ऐसे आदि कारण स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है । सम्पूर्ण जगत् का कारण ही होने के कारण सृज्य सभी प्राणियों की जो उपाधियाँ तन्मात्रगण और इन्द्रियाँ उन सबों के नियामक आपको नमस्कार है । चार जो अन्तःकरण हैं उनके अधिष्ठाता रूप से विद्यमान श्रीभगवान् की स्तुति चार श्लोकार्धो के द्वारा करते हैं । चित्त के अधिष्ठाता भगवान् वासुदेव जो चित्त के सदा एक रूप रहने से निर्विकार बने रहते हैं, उनको नमस्कार है ॥३४॥

**सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च । नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥३५॥**

**अन्वयः**— सूक्ष्माय, दुरन्ताय अन्तकाम सङ्कर्षणाय च नमः । विश्वप्रबोधाय अन्तरात्मने प्रद्युम्नाय नमः ॥३५॥

**अनुवाद**— आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त) अनन्त तथा अपनी मुखाग्नि के द्वारा सम्पूर्ण जगत् का संहार करने वाले, सङ्कर्षण है, एवं विश्व के प्रकृष्ट ज्ञान के उद्गम स्थान बुद्धि के अधिष्ठाता प्रद्युम्न को नमस्कार है ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

सङ्कर्षणायाहंकाराधिष्ठात्रे । सूक्ष्मायाव्यक्ताय । दुरन्तायानन्ताय । अन्तकाय मुखाग्निना लोकदाहकाय । विश्वस्य प्रकृष्टो बोधो यस्मात् । अन्तरात्मने बुद्धयधिष्ठात्रे ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त), अनन्त स्वरूप तथा प्रलय काल में अपनी मुखाग्नि से सम्पूर्ण लोकों को भस्म कर देने वाले सङ्कर्षण स्वरूप आपको नमस्कार है तथा सम्पूर्ण विश्व का प्रकृष्ट ज्ञान जहाँ से उत्पन्न होता है, सबों की अन्तरात्मा एवं बुद्धि के अधिष्ठाता प्रद्युम्न स्वरूप आपको नमस्कार है ।।३५।।

**नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने । नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ।।३६।।**

**अन्वयः**— हृषीकेशेन्द्रियात्मने अनिरुद्धाय नमो नमः । पूर्णाय निभृतात्मने परम हंसाय नमः ।।३६।।

**अनुवाद**— आप ही इन्द्रियों के स्वामी एवं मनस्तत्व के अधिष्ठाता भगवान् अनिरुद्ध स्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार है, पूर्ण होने के कारण वृद्धि और क्षय से रहित आप ही सूर्य स्वरूप हैं ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

हृषीकाणामीशा यदिन्द्रियं मनस्तदात्मने । सूर्यरूपेण प्रणमति । परमहंसाय सूर्याय । पूर्णाय तेजसा विश्वव्यापिने । निभृतात्मने क्षयवृद्धिशून्याय ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

इन्द्रियों के नियामक इन्द्रिय जो मन उसके अधिष्ठान अनिरुद्ध स्वरूप आप ही हैं । सूर्य रूप से श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं— अपने तेज से सम्पूर्ण विश्व में व्यापक अतएव क्षय एवं वृद्धि से रहित सूर्य स्वरूप आपको नमस्कार है ।।३६।।

**स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः । नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ।।३७।।**

**अन्वयः**— स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं सुचिषदे नमः हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे नमः ।।३७।।

**अनुवाद**— स्वर्ग एवं अपवर्ग के द्वारा स्वरूप तथा सदा पवित्र हृदय में निवास करने वाले आपको नमस्कार है । आप ही सुवर्ण रूप वीर्य से युक्त, चातुर्होत्र कर्म के साधन और विस्तार करने वाले अग्नि देव हैं । ऐसे आपको नमस्कार है ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

स्वर्गापवर्गयोर्द्वाराय । शुचिन्यन्तःकरणे निषीदतीति शुचिषत्तस्मै । 'हंसः शुचिषत्' इति श्रुतेः हिरण्यं वीर्यं यस्य तस्मै अग्नि रूपाय । चातुर्होत्र कर्म तस्मै तत्साधनायेत्यर्थः । कुतस्तन्तवे तद्विस्तारकाय ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! आप ही स्वर्ग एवं मोक्ष के द्वार स्वरूप हैं । आप शुद्ध अन्तःकरण में निवास करते हैं । श्रुति भी कहती हैं हंसः शुचिषत् । अर्थात् परमात्मा शुद्ध अन्तःकरण में निवास करते हैं, आप सुवर्ण रूप वीर्य से युक्त चातुर्होत्र कर्म के साधन स्वरूप, तथा उसका विस्तार करने वाले अग्निदेव स्वरूप हैं ।।३७।।

**नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे । तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ।।३८।।**

**अन्वयः**— ऊर्जे, इषे, यज्ञरेतसे त्रय्याः पतये, नमः जीवानां तृप्तिदाय सर्वरसात्मने च नमः ।।३८।।

**अनुवाद**— पितरों एवं देवताओं के पोष आप सोम स्वरूप हैं आप तीनों वेदों के अधिष्ठाता हैं, सभी प्राणियों को तृप्त करने वाले जल स्वरूप भी आप हैं ।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

सोमत्वमाह । उर्जे पितॄणामन्नाय । इषे देवानामन्नाय । यज्ञरेतसे सोमाय । स हि पितॄणां देवानां चान्नम् । एवंरूपाय त्रय्याः पतये हरये नमः । सूर्याग्निसोमत्वेनैव तेजस्त्वमुक्तम् । जलत्वमाह । सर्वरसात्मने जलरूपाय ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

**ऊर्जे** पितरों के पोषक **ईषे** देवताओं के भोग्य रूप से पोषक, **यज्ञरेतसे** अर्थात् सोम स्वरूप, सोम ही देवता और पितरों का अन्न है । इस प्रकार के आप ऋग्यजुः साम इन तीनों वेदों के स्वामी श्रीहरि आपको नमस्कार है । सूर्य, अग्नि वं सोम रूप से श्रीभगवान् के तेजस्त्व को बतलाया गया है । वे भगवान् ही जल रूप से सबों को तृप्ति प्रदान करते हैं ।।३८।।

**सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे । नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलायच ।।३९।।**

**अन्वयः**— सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे त्रैलोक्य पालाय सहओजोपालाय चनमः ।।३९।।

**अनुवाद**— सभी जीवों की आत्माएँ ही आपका शरीर हैं, पृथिवी स्वरूप, विराट शरीरक, त्रैलोक्य का पालन करने वाले वायु शरीरक सह (आदित्य स्वरूप) मानसिक, ऐन्द्रियक और शारीरिक शक्ति रूप से त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले वायु आप ही हैं । आपको नमस्कार है ।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

विशेषाय पृथ्वीरूपाय । सर्वेषां सत्त्वानां प्राणिनां ये आत्मानस्तेषां देहाय स्थवीयसे विराट्देहाय च । त्रैलोक्यपालाय वायवे । सहआदिरूपाय । स हि प्राणरूपेण त्रैलोक्यं पालयति सहआदिधर्मा च ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

पृथिवी स्वरूप आपको नमस्कार है । सभी जीवों की आत्माएँ ही आपके शरीर हैं, ऐसे आपको नमस्कार है । स्थवीयसे अर्थात् विराट् रूप आपको नमस्कार है । त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले वायु स्वरूप आपको नमस्कार है । मनः शक्ति, इन्द्रिय शक्ति और शारीरिक शक्ति से विशिष्ट आप वायु रूप से त्रैलोक्य की रक्षा करते हैं और मनः शक्ति आदि आपके धर्म हैं ।।३९।।

**अर्थलिङ्गाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने । नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ।।४०।।**

**अन्वयः**— अर्थलिङ्गाय अन्तबर्हिरात्मने नभसेनमः, पुण्याय, आमुष्मै भूरिवर्चसे लोकाय नमः ।।४०।।

**अनुवाद**— आप ही अपने शब्द नामक गुण के द्वारा समस्त पदार्थो का ज्ञान करने वाले और बाहर भीतर का भेद करने वाले आकाश हैं, आप हीं पुण्यों के द्वारा प्राप्त होने वाले परमतेजोमय स्वर्गादि लोक और वैकुण्ठ लोक स्वरूप हैं ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

नभसे आकाशायार्थानां लिङ्गाय ज्ञापकाय, शब्दगुणत्वात् । अन्तर्बहिरात्मनेऽन्तर्बहिर्व्यवहारालम्बनाय । एवं महाभूतरूपत्वमुक्तम् । अमुष्मै स्वर्गाय भूरिवर्चसे । 'एष वै ज्योतिष्मन्तं पुण्यं लोकं याति' इति श्रुतेः ।।४०।।

### भाव प्रकाशिका

शब्द नामक गुण के द्वारा सभी पदार्थों का बोध कराने वाले आकाश स्वरूप आपको नमस्कार है । भीतर तथा बाहर रूपी व्यवहारों के आधार भी आप ही हैं । इस प्रकार से परमात्मा को महाभूत स्वरूप कहा गया । स्र्वग आदि महतेजः सम्पन्न स्वर्ग स्वरूप आपको नमस्कार है । श्रुति भी कहती है **एष वै ज्योतिष्यन्तं पुण्यं लोकं याति ।'** अर्थात् परमात्मा ही प्रकाश स्वरूप पुण्य लोक में निवास करते हैं ।।४०।।

**प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे । नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥४१॥**

**अन्वयः**— प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवयाय कर्मणे अधर्मविपाकाय दुःखदाय मृत्यवे च नमः ॥४१॥

**अनुवाद**— पितृलोक को प्राप्ति कराने वाले कर्म स्वरूप और देवलोक की प्राप्ति कराने वाले कर्म स्वरूप आपको नमस्कार है । अधर्म के परिणाम स्वरूप दुःखद मृत्यु रूप आपको नमस्कार है ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

प्रवृत्ताय च निवृत्ताय कर्मणे । पितृदेवाय यथाक्रमं पितृदेवप्राप्तिफलाय । अधर्मफलरूपाय च मृत्यवे ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

पितृलोक की प्राप्ति कराने वाले प्रवृत्ति कर्म स्वरूप और देवलोक की प्राप्ति कराने वाले निवृत्ति कर्म स्वरूप आपको नमस्कार है । अधर्म के फलस्वरूप दुःखद मृत्यु रूप आपको नमस्कार हैं ॥४१॥

**नमस्त आशिषामीश मनवे कारणात्मने । नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥**
**पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥४२॥**

**अन्वयः**— पुराणाय पुरुषाय सांख्ययोगेश्वराय अकुण्ठमेधसे कृष्णाय, हे ईश आशिषां कारणात्मने मनवेकारणात्मने बृहते धर्माय चनमेः ॥४२॥

**अनुवाद**— पुराण पुरुष स्वरूप आपको नमस्कार है, सांख्य एवं योग के अधीश्वर सर्वज्ञ श्रीकृष्ण रूप श्रीभगवान को नमस्कार है । सभी प्रकार की कामनाओं की पूर्ति के कारण रूप आपको नमस्कार है मन्त्र मूर्ति महान् धर्म स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

हे ईश, आशिषां कारणात्मने सर्वकर्मफलदात्रे । मनवे सर्वज्ञाय मन्त्रात्मकायेति वा । विष्णुत्वेन प्रणमति । बृहते धर्माय परमधर्मात्मने कृष्णाय ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

हे जगन्नियामक प्रभो, सभी कामनाओं की पूर्ति के कारण रूप आपको नमस्कार है । अर्थात् सभी कर्मों का फल देने वाले आपको नमस्कार है । मन अर्थात् सर्वज्ञ अथवा मन्त्र स्वरूप आपको नमस्कार है । विष्णु रूप से प्रणाम करते हुए कहते हैं परम धर्मात्मा श्रीकृष्ण स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४२॥

**शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने । चेतआकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥४३॥**

**अन्वयः**— शक्तित्रयसमेताय अहंकृतात्मने मीढुषे चेत आकूति रूपाय वाचो विभूतये नमः ॥४३॥

**अनुवाद**— कर्ता, करण तथा कर्म इन तीनों शक्तियों से सम्पन्न आपको नमस्कार है, अहङ्कार के अधिष्ठाता रुद्र स्वरूप आपको नमस्कार है ज्ञान तथा क्रिया स्वरूप आपको नमस्कार है और परा, पश्यन्ती मध्यमा, और वैखरी इन चारो प्रकार की वाणी रूपी ऐश्वर्य से सम्पन्न आपको नमस्कार है ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

रुद्ररूपेण प्रणमति । मीढुषे रुद्राय । अहंकृतमहंकारस्वदात्मने । स च कर्तृकरणकर्मशक्तित्रयसमेतस्तस्मै । ब्रह्मत्वेन प्रणमति । चेतो ज्ञानमाकूतिः क्रिया तद्रूपाय । वाचो विविधा भूतिः सृष्टिर्यस्मात्तस्मै ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

स्वरूप से श्रीभगवान् को प्रणाम करते हुए कहते हैं— अहङ्कार के अधिष्ठाता रुद्र को नमस्कार है । वे

कर्त्ता कर्म और करण इन तीनों शक्तियों से सम्पन्न है । वे ज्ञान स्वरूप और क्रिया स्वरूप हैं, तथा वाणी की जो परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी रूप वाणी की सृष्टि करते हैं ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।४३।।

**दर्शन नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् । रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ।।४४।।**

**अन्वयः**— हे प्रभो ! भागत्वतार्पितम् स्वानां प्रियतमं सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् रूपं दिदृक्षूणां नः दर्शनं देहि ।।४४।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप अपने उस रूप का दर्शन हमे दें, आपके जिस रूप का पूजन भगवद् भक्त किया करते हैं, तथा जो अपने जनों को अत्यन्त प्रिय है साथ ही आपका जो रूप इन्द्रियों को तृप्त करने वाला हो हमलोग आपके उस रूप का दर्शन करना चाहते हैं ।।४४।।

### भावार्थ दीपिका

नमस्कृत्य दर्शनं प्रार्थयते-दर्शनमिति नवभिः । भागवतैः सत्कृतं दर्शनं देहीत्यस्य विवरणं रूपमित्यादि प्रदर्शयेत्यतम् । स्वानां भक्तानां प्रियतमं रूपं प्रदर्शय नवमेनान्वयः । सर्वेषामिन्द्रियाणां ये गुणा विषयास्तेषामञ्जनं व्यञ्जकम् । सर्वेन्द्रियविषयविषयिरूपमित्यर्थः । सर्वेन्द्रियाणि स्वगुणैरनक्ति रञ्जयतीति वा ।।४४।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को नमस्कार करने के पश्चात् उनसे दर्शन देने के लिए नव श्लोकों में प्रार्थना करते हैं । आप अपने उस रूप का दर्शन दें जो भगवद् भक्तों के द्वारा समादृत हो । इसी का विवरण इस श्लोक के रूपम् पद से लेकर बावनवें श्लोक के प्रदर्शय पर्यन्त हैं । अपने भक्तों का जो प्रियतम रूप है उसे आप दिखायें इस नवें श्लोक के अंश के साथ इसका अन्वय है । सभी इन्द्रियों के विषय भूत जो गुण हैं उन सबों को अभिव्यक्त करने वाले रूप को आप दिखायें । अर्थात् सभी इन्द्रियों के विषय को विषय बनाने वाले रूप को आप दिखायें । सर्वेन्द्रियाणि स्वगुणैः अनक्ति रञ्जयतीति वा । अर्थात् सभी इन्द्रियों को तृप्त करने वाला, यही **सर्वेन्द्रिय गुणाञ्जनम्** का विग्रह हैं ।।४४।।

**स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम् । चार्वायतचतुर्बाहुं सुजातरुचिराननम् ।।४५।।**

**अन्वयः**— स्निग्धप्रावृड्घनश्यामम् सर्वसौन्दर्यसंग्रहम्, चार्वायय चतुर्बाहुम् सुजातरुचिराननम् ।।४५।।

**अनुवाद**— वर्षा कालीन मेघ के समान स्निग्ध श्याम्, सम्पूर्ण सौन्दर्य के सार सार्वस्व स्वरूप सुन्दर चार विशाल भुजाएँ तथा मनोहर मुखारविन्द से युक्त रूप का दर्शन दें ।।४५।।

### भावार्थ दीपिका

स्निग्धः प्रावृषि यो घनस्तद्वच्छ्यामम् । सर्वेषां सौन्दर्याणां संग्रहो यस्मिन् । चारव आयताश्चत्वारो बाहवो यस्मिन् । सुजातं यथोचितं सर्वावयवरुचिरमाननं यस्मिन् ।।४५।।

### भाव प्रकाशिका

वर्षाकाल का जो स्निग्ध मेध उसके समान श्याम वर्ण वाले, सभी सौन्दयों का जिसमें संग्रह हो ऐसे रूप का, मनोहर लम्बी चार भुजाओं से युक्त तथा अत्यन्त मनोहर समस्त अवयबों से युक्त होने के कारण रुचिकर मुखमण्डल वाले रूप का दर्शन आप दें ।।४५।।

**पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम् । सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ।।४६।।**

**अन्वयः**— पद्मकोशपलाशाक्षं, सुन्दरभ्रु, सुनासिकम्, सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्ण विभूषणम् ।।४६।।

**अनुवाद**— कमल दल के समान सुन्दर नेत्रों, सुन्दर भौहों, सुन्दर नासिका, मानो दन्त पंक्ति से मनोहर कपोलों से युक्त मुखमण्डल तथा सुन्दर कर्ण रूपी भूषण से युक्त रूप का दर्शन दें ।।४६।।

### भावार्थ दीपिका

पद्मस्य कोशे मध्ये यानि पलाशानि तद्वदक्षिणी यस्मिन् । सुकपोलमास्यं यस्मिन् । समौ कर्णौ विभूषणं यस्य । कुण्डलयोरग्रे वक्ष्यमाणत्वात् ।।४६।।

### भाव प्रकाशिका

कमल के मध्य में विद्यमान जो दल उन सबों के समान मनोहर नेत्रों वाले, सुन्दर कपोल एवं मुख मण्डल से युक्त तथा सुन्दर कान रूपी भूषणों से युक्त रूप का दर्शन दें । कर्ण विभूषणम् का अर्थ कुण्डल इसलिए नहीं किया गया है कि आगे कुण्डलों का वर्णन है ।।४६।।

**प्रीतिप्रहसितापाङ्गमलकैरूपशोभितम् । लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ।।४७।।**
**स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् । शङ्खचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ।।४८।।**

**अन्वयः**— प्रीतिप्रहसितापाङ्गम् अलकैरुपशोभितम्, लसत्त्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलम् मृष्टकुण्डलम्, स्फुरत्किरीट बलयहार नूपुरमेहखलम्, शङ्खचक्रगदा पद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ।।४७-४८।।

**अनुवाद**— प्रीतिपूर्ण उन्मुक्त हँसी तिरछी चितवन, काले घुंघराले केश, पद्म पुण्य पराग के समान पीताम्बर झिलमिलाते कुण्डल चमचमाते हुए किरीट, कङ्कण, हार, नूपुर और करधनी आदि आभूषणों से युक्त, शङ्ख, चक्र, गदा, वनमाला और कौस्तुभ मणि से समृद्धि सम्पन्न रूप का दर्शन हमें आप दें ।।४७-४८।।

### भावार्थ दीपिका

प्रीत्या प्रहसिताविवापाङ्गौ यस्मिन् । स्फुरन्ति किरीटादीनि यस्मिन् । शङ्खादिमत् । उत्तमर्द्धिः लक्ष्मीः । यद्वा एतैरुत्तमा ऋद्धिरुत्कर्षो यस्यास्ति तत् ।।४७-४८।।

### भाव प्रकाशिका

जिस रूप में प्रेम के कारण दोनों नेत्र जैसे हंस रहे हों । किरीट आदि जिसमें चमचमाते हों, शङ्ख आदि से युक्त, लक्ष्मीजी से विशिष्ट अथवा उक्त अलङ्कारों से अत्युत्तम समृद्धि से सम्पन्न रूप का दर्शन हमें दें ।।४७-४८।।

**सिंहस्कन्धत्विषो विभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् । श्रियानपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ।।४९।।**

**अन्वयः**— सिंह स्कन्धत्विष विभ्रत् सौभगग्रीव कौस्तुभम् श्रियानपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ।।४९।।

**अनुवाद**— सिंह के समान कन्धों पर फैलने वाले आयाल रूपी कान्ति के समान कान्ति से सुशोभित गरदन में लटकने वाली कौस्तुभ मणि से युक्त श्याम वर्ण के वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न के रूप में सदा विराजमान रहने वाली लक्ष्मी की शोभा से कसौटी की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले रूप का दर्शन दीजिए ।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

सौभगयुक्ता ग्रीवा येन । सिंहस्य स्कन्धे परितः प्रसरन्तः केसरा एव त्विषस्तादृशीः सर्वतस्त्विषो विभ्रच्चासौ सौभगग्रीवः कौस्तुभो यस्मिन् । यद्वा । सिंहस्येव स्कन्धौ तयोस्त्विषः कुण्डलहारादिदीप्तीर्बिभ्रदिति पृथग्विशेषणम् । सौभगयुक्ता ग्रीवा येन स कौस्तुभो यस्मिन् । श्रिया हेतुभूतया क्षिप्तस्तिरस्कृतो निकषाश्मा स्वर्णरेखाङ्कितो निकषणपाषाणो येन तादृशेनोरसा उल्लसच्छोभमानम् ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

सुन्दर ग्रीवा के द्वारा सिंह के कन्धे के चारो ओर फैलने वाले आयाल रूपी कान्ति के समान कान्ति से सम्पन्न गरदन में लटकने वाली कौस्तुभ मणि से युक्त रूप का दर्शन दें । अथवा सिंह के समान जिनके दोनों कन्धें कुण्डल तथा हार आदि की कान्ति से सुशोभित हैं । यह अलग विशेषण है रूप का । तथा कौस्तुभमणि

से युक्त सुन्दर गरदन वाले रूप का दर्शन दें। लक्ष्मी से युक्त वक्षःस्थल के द्वारा सुवर्ण की रेखा से युक्त निकषोपल की शोभा को तिरस्कृत करने वाले वक्षः स्थल से युक्त रूप का हमें दर्शन दें ॥४९॥

**पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् । प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्यावर्तगभीरया ॥५०॥**

**अन्वयः**— पूर रेचक-संविग्न-वलि-वल्गुदलोदरम्, आवर्त गभीरया, नाभ्या विश्वं संक्रामयदिव ॥५०॥

**अनुवाद**— त्रिवली से सुशोभित पिप्पल के पत्ते के समान सुन्दर श्वास प्रश्वास के आने जाने से मनोहर प्रतीत होनें वाले चकोह के समान गहरी नाभि में मानो सम्पूर्णविश्व को प्रविष्ट करा रहा हो ऐसे रूप का दर्शन आप हमें दें ॥५०॥

### भावार्थ दीपिका

श्वासोच्छ्वासाभ्यां संविग्नाश्चञ्चला बलयस्ताभिर्वल्गु सुन्दरं दलवदश्वत्थपत्रसदृशमुदरं यस्मिन्। प्रतिसंक्रामयद्यतो निर्गतं तेनैव द्वारेण पुनः प्रवेशयदिव ॥५०॥

### भाव प्रकाशिका

श्वास प्रश्वास के द्वारा चञ्चल जो त्रिबली उसके कारण मनोहर अश्वत्थ पत्र के समान उदर से युक्त तथा अपनी गहरी नाभि के जिस द्वार से यह विश्व निकला है, उसी द्वार से प्रवेश कराते हुए के समान सुन्दर रूप का दर्शन आप हमें दें ॥५०॥

**श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् । समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरुनिम्नजानुसुदर्शनम् ॥५१॥**

**अन्वयः**— श्याम श्रोण्यधिरोचिष्णुः दुकूल स्वर्ण मेखलम्, समचार्वङ्घ्रिनिम्नजानुसुदर्शनम् ॥५१॥

**अनुवाद**— श्याम वर्ण के कटिभाग में चमकदार पीताम्बर और सुवर्ण की करधनी से सुशोभित रूप का दर्शन कराये, एक समान सुन्दर चरण, पिण्डली, जाङ्घों और घुटनों के कारण देखने में मनोहर अपने रूप का दर्शन आप करायें ॥५१॥

### भावार्थ दीपिका

श्यामश्रोण्याधिकं रोचिष्णु यत्पीतं दुकूलं तत्र स्वर्णमयी मेखला यस्मिन्। अङ्घ्री च जङ्घे च ऊरू च निम्ने अनुन्नते जानुनी च। समैश्चारुभिरेतैः शोभनं दर्शनं यस्य। समाश्चारवोऽङ्घ्र्यादयो यस्मिन्। निम्ने जानुनी यस्मिन्। शोभनं दर्शनं यस्येति पदत्रयं वा ॥५१॥

### भाव प्रकाशिका

श्याम वर्ण के कटि भाग में अधिक चमकने वाले पीताम्बर और उसके ऊपर विद्यमान सुवर्ण रचित करधनी से सुशोभित तथा एक समान सुन्दर दोनों पैर दोनों जङ्घे पिण्डली और घुटनों से मनोहर लगने वाले अपने रूप का आप दर्शन करायें। अथवा श्लोक के उत्तरार्द्ध में तीन पद है समचार्वजङ्घोरु, अर्थात् एक समान सुन्दर चरणों एवं जङ्घों से युक्त, निम्नजानु अर्थात उन उठे घुटनों से युक्त तथा सुदर्शनम् अर्थात् सुन्दर दर्शन से युक्त रूप का आप दर्शन कराएँ ॥५१॥

**पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ।**
**प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥५२॥**

**अन्वयः**— शरत् पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिः तमोजुषाम् नोन्तरघं विधुन्वता पदा, स्वीयमपास्तसाध्वसंपदं दर्शय, यतः हे गुरो त्वमेषेव मार्ग गुरुः ॥५२॥

**अनुवाद**— शरत कालीन कमलदल की कान्ति से सम्पन्न तथा नखों की कान्ति से हम अज्ञानी जीवों के अज्ञानन्धकार को दूर करने वाले अपने चरणों से सुशोभित अपने उस रूप का दर्शन कराइये आपका जो रूप भक्तों के भय को दूर करने वाला है क्योंकि आप ही हमारे मार्ग दर्शक गुरु हैं ॥५२॥

**भावार्थ दीपिका**

पदा दीपस्थानीयेन। यद्वा एवंभूतेन पदोपलक्षितं रूपं पदं शरणं प्रदर्शयेत्यर्थः। शरदि यत्पद्मं तस्य पलाशं तद्वद्रोचिर्यस्य तेन। नख दीप्तिभिरन्तर्भवमघमज्ञानं विधुन्वता स्वीयं रूपं पदं शरणं प्रदर्शय अपास्तं प्रह्लादादीनां साध्वसं येन तत्। हे गुरो, यतस्त्वमेव तमोजुषामज्ञानामस्माकं मार्गप्रदर्शको गुरुः ॥५२॥

**भाव प्रकाशिका**

दीप स्थानीय अपने चरण के द्वारा, अथवा इस प्रकार के चरण के द्वारा उपलक्षित अपने रूप का शरण रूप से दर्शन करायें। शरत् कालीन कमल दल की कान्ति के समान कान्ति से सम्पन्न चरण के द्वारा और अपने नखों की कान्तियों से अन्तःकरण के अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले चरणों से युक्त अपने रूप का आप दर्शन करायें। किञ्च प्रह्लाद आदि भक्तों के भय को दूर करने वाले रूप का दर्शन करायें। क्योंकि हे जगद्गुरो आप ही अज्ञानान्धकार से युक्त हम अज्ञानियों को मार्ग दिखाने वाले गुरु हैं ॥५२॥

**एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सताम्। यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥५३॥**

**अन्वयः**— आत्मशुद्धिमभीप्सिताम् एतद् रूपम् अनुध्येयम् यद्भक्तियोगः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् अभयदः ॥५३॥

**अनुवाद**— अपने अन्तःकरण की शुद्धि चाहने वाले पुरुषों को आपका यही रूप ध्यान करने योग्य है। इसकी भक्ति अपने धर्म का पालन करने वाले लोगों को अभय प्रदान करने वाली हैं ॥५३॥

**भावार्थ दीपिका**

अतिदुर्लभमिदं मया प्रार्थितमिति स्तोतैवाह। एतद्रूपमनुध्येयं ध्यानार्हमेव। नतु प्रत्यक्षतः प्राप्यमित्यर्थः ॥५३॥

**भाव प्रकाशिका**

स्तुति करने वाला ही कहता है कि मैंने यह अत्यन्त दुर्लभ वस्तु माँगा है आपका यह रूप केवल ध्यान करने योग्य ही है, इसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है ॥५३॥

**भवान्भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम्। स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥५४॥**

**अन्वयः**— स्वाराज्यस्याभिमतः एकान्तेनात्मविद्गतिः भवान् भक्तिमता लभ्यः सर्वदेहिनाम् दुर्लभः ॥५४॥

**अनुवाद**— स्वर्ग के स्वामी इन्द्र आपको ही प्राप्त करना चाहते है एकान्तिक आत्मज्ञानियों की भी गति (प्राप्य) आप ही हैं। आप भक्ति युक्तों के ही द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं सभी शरीरधारियों के लिए आप दुर्लभ हैं ॥५४॥

**भावार्थ दीपिका**

तर्हि किं केनापि न प्राप्यते तत्राह-भवानिति। दुर्लभत्वमेवाह। स्वर्गे राज्यं यस्य तस्याप्यभिमतः स्पृहणीयः। किंच एकान्तेन य आत्मवित्तस्यापि गतिर्गम्यः ॥५४॥

**भाव प्रकाशिका**

यहाँ प्रश्न होता है कि क्या श्रीभगवान् किसी को भी नहीं प्राप्त होते हैं क्या ? तो इस पर कहते है। भवान् इत्यादि श्लोक के द्वारा परमात्मा को दुर्लभ ही बतलाया गया है। जिन इन्द्र का स्वर्ग में राज्य है उन इन्द्र को भी आप ही स्पृहणीय हैं। तथा जो एकान्तिक आत्मज्ञ पुरुष हैं उनके भी प्राप्य आप ही हैं ॥५४॥

**तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया । एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥५५॥**

**अन्वयः**— सतामपि दुरापया एकान्तभक्त्या दुराराध्यं तम आराध्य पादमूलं बिना वहिः को वाञ्छेत् ॥५५॥

**अनुवाद**— सत्पुरुषों को भी दुर्लभ ऐकान्तिक (अनन्या) भक्ति के द्वारा दुराराध्य परमात्मा की आराधना करके कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो आपके चरणों को छोड़कर किसी दूसरी वस्तु को प्राप्त करना चाहेगा ॥५५॥

### भावार्थ दीपिका

अतस्त्वद्व्यतिरेकेण न किंचिद्वाञ्छामीत्याह । तं त्वामेकान्तभक्त्याराध्य । वहिः स्वर्गादिसुखम् ॥५५॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव मैं आपसे भिन्न किसी दूसरी वस्तु को नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ । उपर्युक्त प्रकार के आपकी ऐकान्तिक (अनन्या) भक्ति के द्वारा आराधना करके मैं स्वर्गादि को नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ ॥५५॥

**यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते । विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥५६॥**

**अन्वयः**— शौर्यवीर्यविस्फूर्जितभ्रुवा विश्वं विध्वंसयन् कृतान्तः यत्र करणं निर्विष्टं नाभि मन्यते ॥५६॥

**अनुवाद**— जो काल अपने अदम्य उत्साह और पराक्रम से फड़कती हुई भौंहों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को विनष्ट कर देता है, वह भी आपके चरणों के शरण में प्रविष्ट प्राणिपर अपना प्रभाव नहीं दिखा पाता है ॥५६॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः यत्र पादमूले शरणं प्रविष्टं कृतान्तः कालो ममायं वश्य इति नाभिमानं करोति । किं कुर्वन् । वीर्यं प्रभावः, शौर्यं उत्साहः, ताभ्यां विस्फूर्जितया क्षुभितया भ्रुवा विश्वं विध्वंसयन्नपि ॥५६॥

### भाव प्रकाशिका

भगवद् व्यतिरिक्त वस्तु से भिन्न वस्तु को नहीं चाहने का कारण बतलाते हुए बतलाते है । जिस चरण के शरण में गये हुए प्राणी पर काल यह मेरा वश्य है, इस प्रकार से अभिमान नहीं करता है । कैसा काल तो उसे बतलाते हैं **वीर्य** अर्थात् प्रभाव **शौर्य** तथा उत्साह इन दोनों के द्वारा क्षुब्ध भौहों के इशारे पर सम्पूर्ण विश्व का विध्वंश करने वाला काल ॥५६॥

**क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥५७॥**

**अन्वयः**— भगवतसाङ्गिसङ्गस्य क्षणार्धेन अपि न स्वर्गं तुलये न अपुनर्भवं तुलये किमुत मर्त्यानाम् आशिषः ॥५७॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के भक्तों के होने वाले आधेक्षण की सङ्गति के समान न तो मैं स्वर्ग को मानता हूँ और न तो मोक्ष को मानता हूँ, तो फिर मनुष्यों को भोग के रूप में प्राप्त होने वाले राज्यादि की कौन सी बात है ॥५७॥

### भावार्थ दीपिका

त्वत्पादमूले प्रविष्टस्य कृतान्तभयाभावः कियानयं लाभो यतस्त्वद्भक्तसङ्ग एव सकलपुरुषार्थश्रेणिशिरसि नरीनर्तीत्याह। भगवतस्तव सङ्गिनां सङ्गस्य क्षणार्धेनापि स्वर्गं न तुलये समं न गणयामि । न चापुनर्भवं मोक्षम् । मर्त्यानामाशिषो राज्याद्याः किमुत ॥५७॥

### भाव प्रकाशिका

हे प्रभो ! आपके चरणों में प्रविष्ट मनुष्य को मृत्यु के भय का अभाव हो जाता है, यह कितना बड़ा लाभ है क्योंकि आपके भक्तों की सङ्गति सभी पुरुषार्थों से श्रेष्ठ है इसी अर्थ का प्रतिपादन करते हुए इस श्लोक में कहा

गया है कि हे प्रभो भक्तों की आधे क्षण की भी सङ्गति के समान न तो मैं स्वर्ग को मानता हूँ और न तो मोक्ष को मानता हूँ। तो फिर मनुष्यों को भोग्य के रूप में प्राप्त होने वाले राज्य आदि की कौन सी बात है ॥५७॥

**अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिः स्नानविधूतपाप्मनाम् ।**
**भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्त्व ॥५८॥**

**अन्वयः**— अथ अनघाङ्घे तव कीर्तितीर्थयोः अन्तर्बहिः स्नान विधूत पाप्मनाम् भूतेष्वनुकोशसुसत्त्वशीलिनम्सङ्गमः स्यात् एष नः तवानुग्रहः ॥५८॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आपके चरण सम्पूर्ण पाप राशि को हर लेने वाले हैं। हम चाहते हैं कि जिन लोगों ने आपकी कीर्ति रूपी गङ्गा और तीर्थ (गङ्गा) में आन्तरिक और बाह्य स्नान करके आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के पापों को धो डाला है और उसके कारण जीवों पर कृपा रागादि से रहित चित्त शील एवं ऋजुता आदि गुणों से सम्पन्न हैं, ऐसा लोगों की सङ्गति मुझे मिलती रहे। यह आपका हमलोगों पर अनुग्रह होगा ॥५८॥

### भावार्थ दीपिका

अथ अतो हेतोरनघावघहरावङ्घ्री यस्य तस्य तव कीर्तिर्यशस्तीर्थं गङ्गा तयोः क्रमेणान्तर्बहिः स्नानाभ्यां विधूतः पाप्मा येषाम्। अतएव भूतेष्वनुक्रोशः कृपा सुसत्त्वं च रागादिरहितं चित्तं शीलं चार्जवादि विद्यते येषां तेषां सङ्गमोऽस्माकं स्यात्। एष एव नस्तवानुग्रहः ॥५८॥

### भाव प्रकाशिका

आपके भक्तों की सङ्गति के सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ होने के कारण आपके चरण सम्पूर्ण पाप राशि को विनष्ट कर देने वाले हैं। इस प्रकार की आपकी कीर्ति गङ्गा और श्रीगङ्गाजी में स्नान करने के कारण जिन लोगों ने अपने आभ्यन्तर और बाह्य पापों को विनष्ट कर दिया तथा जिनके चित्त में जीवों पर कृपा राग द्वेष आदि से रहित अन्तःकरण शील तथा आर्जव आदि का निवास हो गया है ऐसे सत्पुरुषों की सङ्गति मिलती रहे, यही आपका हमलोगों पर महान् अनुग्रह होगा ॥५८॥

**न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ।**
**यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥५९॥**

**अन्वयः**— यस्य चित्तं भक्तियोगानु गृहीतम् विशुद्धम् बहिरर्थ विभ्रमं, तमो गुहायां च न आविशत् स मुनिः ननु तत्र ते गतिम् विचष्टे ॥५९॥

**अनुवाद**— जिस साधक का चित्त भक्तियोग के द्वारा अनुगृहीत होने के कारण शुद्ध हो गया है और न तो वह बाह्य विषयों में भटकता है और न तो प्रकृति रूपी गुफा में लीन होता है, वह साधक अनायास ही आपके स्वरूप का दर्शन कर लेता है ॥५९॥

### भावार्थ दीपिका

तत्त्वज्ञानं च त्वद्भक्तसङ्गादेव भवतीत्याह-न यस्येति। येषां सतां भक्तियोगेनानुगृहीतं शुद्धं सद्यस्य चित्तं बाह्यार्थविक्षिप्तं न भवति तमोरूपायां गुहायां च नाविशल्लयं न प्राप। तत्र तदा मुनिस्तव गतिं तत्त्वं पश्यति ॥५९॥

### भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! तत्त्व का ज्ञान भी आपके भक्तों की सङ्गति से ही होता है इसी अर्थ का प्रतिपादन इस श्लोक में किया गया है। जिन सत्पुरुषों का भक्तियोग से अनुगृहीत होने के कारण चित्त शुद्ध हो गया है और वह न तो बाह्य विषयों में भटकता है औन न तो अज्ञान स्वरूपिणी प्रकृति गुफा में लीन होता है। उस स्थिति को प्राप्त मुनि बिना किसी प्रयास के ही आपके तत्त्व का साक्षात्कार कर लेता है ॥५९॥

**यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् । तत्त्वं ब्रह्म परंज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥६०॥**

**अन्वयः**— यत्र इदं विश्वं व्यज्यते यच्च विश्वस्मिन् अवभाति, तत् आकाशमिव विस्तृतम् परं ज्योति तत्त्वं ब्रह्म॥६०॥

**अनुवाद**— जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है तथा जो इस सम्पूर्ण जगत् में भास रहा है, वह आकाश के समान व्यापक और परम प्रकाशमय ब्रह्म तत्त्व आप ही है ॥६०॥

**भावार्थ दीपिका**

कीदृशं तत्त्वं तदाह- यत्रेति ॥६०॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस तत्त्व के साधक सत्पुरुष प्राप्त कैसा है तो इसी का उत्तर यत्र० इत्यादि इस श्लोक के द्वारा दिया गया है ॥६०॥

**यो माययेदं पुरुरूपयासृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ।**
**यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुःस्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि ॥६१॥**

**अन्वयः**— यः इदं सदिव पुरुरूपया मायया आसृजत् विभर्ति, क्षिपति अथापि अविक्रियः, यद् भेद बुद्धि आत्मदुःस्था हे भगवन् तम् आत्मतन्त्रं प्रतीमहि ॥६१॥

**अनुवाद**— जो आप अपनी अनेक रूपों वाली माया के द्वारा स्वयम् अविकृत रहते हुए इस सम्पूर्ण जगत् की सत्पदार्थ के समान रचना करते है, पालन करते हैं और अन्त में इसका संहार कर देते हैं । यह दूसरों में भेद बुद्धि को उत्पन्न करती है किन्तु यह आप पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ है, ऐसे आपको हम परम स्वतन्त्र मानते हैं ॥६१॥

**भावार्थ दीपिका**

जगत उपादानत्वेन तत्त्वं लक्षितं निमित्तत्वेनापि तदेव लक्षयन्नाह । य इदं विश्वं सदिव परमार्थमिव माययासृजत् । कथं भूतया । यया भेदबुद्धिरन्येषां भवति तथा । आत्मनि त्वयि दुःस्थया स्वकार्यं कर्तुमसमर्थया । तं त्वां निरस्तभेदं प्रतीमहि जानीमः ॥६१॥

**भाव प्रकाशिका**

जगत् के उपादान कारण रूप से जिसको बतलाया जा चुका है उसी परमात्म तत्त्व को निमित्त कारण रूप से लक्षित करते हुए कहते हैं । जिस आपने अपनी माया के द्वारा इस जगत् की परमार्थ के ही समान रचना की। जो माया दूसरों में भेद बुद्धि उत्पन्न करती है किन्तु आपमें यह अपना कार्य करने में असमर्थ है । ऐसे भेद रहित आपको हम परम स्वतंत्र मानते हैं ॥६१॥

**क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ।**
**भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥६२॥**

**अन्वयः**— भूतेन्द्रियान्तकरणोपलक्षितं श्रद्धान्विताः योगिनः सिद्धये इदमेव क्रियाकलापैः साधु यजन्ति त एव वेदे तन्त्रे च कोविदाः ॥६२॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आपका स्वरूप पञ्च महाभूत, इन्द्रियाँ और अन्तःकरण के प्रेरक रूप से उपलक्षित होता है । श्रद्धा सम्पन्न योगिजन आपके इसी रूप का पूजन अच्छी तरह से सिद्धि प्राप्त करने के लिए करते हैं। ऐसा करने वाले ही उपासक वेद और शास्त्रों के ज्ञाता हैं ॥६२॥

### भावार्थ दीपिका

यद्यपि त्वमेव निर्भेदं ब्रह्म तथापि प्रागुक्तं साकारमिदं तव रूपं ये यजन्ति त एव वेदागमतत्त्वज्ञा इत्याह । क्रियाकलापैर्ये कर्मयोगिनः पूजयन्ति त एव कोविदा न त्वेतदनादृत्य केवलज्ञाने प्रवृत्ताः । तन्त्रे आगमे । कथंभूतमिदम् । भूतेन्द्रियान्तःकरणैरस्वतन्त्रैर्यदुपलक्ष्यते नियन्तृरूपं तत् ।।६२।।

### भाव प्रकाशिका

यद्यपि आप ही भेद रहित ब्रह्म हैं, फिर भी पूर्व वर्णित आपके इस सकार रूप का जो लोग अपने क्रिया कलाप के द्वारा पूजन करते हैं वे ही मर्मज्ञ पुरुष हैं । वे आगम और वेद दोनो में निपुण हैं । यदि कोई कहे कैसे रूप का तो इसका उत्तर है कि आपका जो रूप पञ्चमहाभूत इन्द्रियां और इन्द्रियों के प्रेरक रूप से उपलक्षित होता है । आपके इसी नियामक रूप का ।।६२।।

**त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ।**
**महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ।।६३।।**

**अन्वयः**— त्वम् एकः आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिः तया रजः सत्वतमो विभिद्यते । यतः महान् अहं, खं, मरुत्, अग्नि, जल पृथिवी, देवता, ऋषि, भूतगणा इदं च ।।६३।।

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप ही अद्वितीय आदि पुरुष हैं । सृष्टि से पूर्व आपकी माया शक्ति सोयी रहती है । फिर उससे, रजोगुण, सत्त्वगुण एवं तमोगुण का भेद होता है । फिर उन्हीं गुणों से महान् अहङ्कार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, देवता ऋषि और समस्त प्राणियों से युक्त इस जगत् की उत्पत्ति होती है ।।६३।।

### भावार्थ दीपिका

नन्वभिन्ने मयि भेदं कुर्वन्तः सन्तः कथं ते कोविदाः, नहि तैर्भेदः क्रियते, त्वयैव क्रीडार्थं चेतनाचेतनात्मको भेदः कृत इत्याह-त्वमिति । आद्यस्त्वमेक एव सुप्ता मायाख्या शक्तिर्यस्य । पश्चात्तया शत्तया । रजःसत्त्वतमसां द्वन्द्वैक्यम् । यतो रजआदेः महानहंकारः खं च मरुदग्निर्वार्धराश्च । वाः उदकम् । सुराश्चर्षयश्च भूतगणाश्चैवमिदं जगद्यतो भवति तद्विभिद्यते इत्यन्वयः ।।६३।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि मैं निर्भेद हूँ और मुझमें भेद करने वाले कैसे सन्त हो सकते हैं ? कैसे वे मर्मज्ञ हो सकते हैं ? तो इसका उत्तर है कि वे आपमें भेद नहीं करते हैं अपितु आप ही क्रीडा करने के लिए चेतना चेतनात्मक भेद को करने वाले है । इसी अर्थ को **त्वमेव० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । सृष्टि से पूर्व आप एक ही थे । आपकी माया शक्ति सोयी हुई थी । उसके पश्चात् उस शक्ति से रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण इन तीनों गुणों का भेद होता है । उसके पश्चात् उन गुणों से ही महान्, अहङ्कार, आकाश, वायु, तेज जल और पृथिवी देवता ऋषि इत्यादि सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं । इस तरह यह जगत् उत्पन्न होता है ।।६३।।

**सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ।**
**अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ।।६४।।**

**अन्वयः**— स्वशक्त्या इदं चतुर्विधं सृष्टं पुरम् आत्मांशकेन अनुप्रविष्टः यः सारघं हृषीकैः अन्तः मधुभुक्तं तं सन्तम् पुरुषं विदुः ।

**अनुवाद**—अपनी माया शक्ति से ही सृष्टि जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज इन चार प्रकार के शरीरों के भीतर अपनी आत्मा के एक अंश से प्रवेश करके जिस तरह मधुमखियाँ अपने से ही सृष्टि मधु का पान करती

उसी तरह आप भी अपनी इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करते हैं । आपके उसी अंश को विज्ञ पुरुष जीव शब्द से अभिहित करते हैं ।।६४।।

**भावार्थ दीपिका**

एतदुपपादयति सृष्टमिति । जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जरूपेण चतुर्विधं स्वांशेन प्रविष्टः । अथो इति हेतोः परस्यान्तः सन्तमंशं चिदाभासं पुरि शयनात्पुरुषं विदुः । तर्हि किमीश्वरमेव संसारिणं विदुर्नेत्याह । सरघा मधुमक्षिकास्ताभिः सृष्टं मध्विव क्षुल्लकं विषयसुखमविद्यावृतः सन् यो भुङ्क्ते तं जीवं विदुः । तथाच श्रुतिः 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति'। निर्णीतं च 'गुहाप्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्' इत्यत्र ।।६४।।

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त अर्थ का ही उपपादन **सृष्टम्० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । आपने ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज, इन चार प्रकार के शरीरों की सृष्टि की है और आप उसमें अपने एक अंश से प्रविष्ट हैं इसीलिए उन शरीरों के भीतर विद्यमान अंश चूंकि शरीर में निवास करते हैं । फलतः उस अंश को पुरुष शब्द से अभिहित किया जाता है । तो फिर ईश्वर को ही संसारी कहा जाता है क्या ? तो ऐसी बात नहीं हैं ? जिस तरह मधुमखियाँ अपने से ही सृष्ट मधु का भोग करती हैं उसी तरह क्षुद्र विषयों का भोग करने वाला अविद्या से आवृत होकर जो भोग करता है उसको जीव कहते हैं श्रुति भी कहती है **तयोरूयः पिप्पलं स्वदवत्ति अनशनन्नयो अभिचाकशीति** अर्थात् उन दोनों जीवात्मा और परमात्मा से एक जीव विषयों का भोग करता है और दूसरा ईश्वर उससे असंपृक्त रहकर प्रकाशित होता है । इसी अर्थ का निर्णय **गुहां प्रविष्टावात्मानौ तद् दर्शनात्** सूत्र के शाङ्कर भाष्य में निर्णय किया गया है ।।६४।।

**स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ।**
**भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ।।६५।।**

**अन्वयः**— अनुमेय तत्त्वः स एष त्वं अविषह्यवेगः वायुः धनावलिः इव भूतानि भूतैः कालयानः अतिचण्डवेगः सन् विकर्षसिः ।।६५।।

**अनुवाद**— आपका ज्ञान अनुमान से ही होता है प्रत्यक्ष से नहीं । इस प्रकार के आप जिस प्रकार प्रचण्ड वेग सम्पन्न वायु मेघ समूह को तितर वितर करके विनष्ट कर देती है उसी तरह प्रचण्ड वेग सम्पन्न आप एक भूत से दूसरे भूत को विलग करके इस संसार का संहार कर देते हैं ।।६५।।

**भावार्थ दीपिका**

तव तु सर्वनियन्तुः कुतः संसार इत्याह । यः स्वशक्त्येदं सृष्टवान्स एष त्वं खलु भूतैरेव भूतानि मेघपङ्क्तीर्वायुरिव कालयन्विचालयन् । लोकान्विकर्षसि संहरति । अनुमेयतत्त्वोऽलक्ष्यस्वरूपः ।।६५।।

**भाव प्रकाशिका**

आप तो सम्पूर्ण जगत् का नियमन करने वाले हैं आप संसार में कैसे संसरण कर सकते हैं ? इस बात को कहते हैं । आपने ही अपनी शक्ति से इस जगत् की सृष्टि की है । जिस तरह असह्य वेग सम्पन्न वायु मेघ समूह को तितर वितर कर देती है उसी तरह से आप भी एक भूत से दूसरे भूत को अलग करके उसका संहार कर देते हैं । आप तो अनुमेय तत्त्व हैं आपका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है ।।६५।।

**प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।**
**त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानाऽहिरिवाखुमन्तकः ॥६६॥**

**अन्वयः**— प्रमत्तम् उच्चै इति कृत्य चिन्तया प्रवृद्धलोभम् विषयेषुलालसम् अप्रमतः अन्तकः अप्रमतः त्वम् आखुम् क्षुल्लेलिहनः अहिरिव सहसा अभिपद्यसे ॥६६॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! यह मोहग्रस्त जीव प्रमादवशात् हर समय इसी चिन्ता में पड़ा रहता है कि मुझे अमुक कार्य करना है । उसका लोभ बढ़ गया है और विषयों की ही लालसा उसमें बनी रहती है । किन्तु आप सदैव सावधान रहते हैं, भूख से जीभ लपलपाने वाला सर्प जैसे चूहे का निगल जाता है उसी तरह से आप उसे अपने कालस्वरूप से निगल जाते हैं ॥६६॥

### भावार्थ दीपिका

विकर्षणप्रकारमाह-प्रमत्तमिति । इतिकृत्यमेवमेवमिदं कर्तव्यमिति चिन्तयोच्चैः प्रमत्तम् । तत्र हेतुः- विषयेषु लालसमतिकामुकम् । प्राप्तेऽपि विषये प्रवृद्धलोभम् । अन्तकस्त्वमभिपद्यसे आक्रमसि क्षुधा लेलिहानौ जिह्वयौष्ठप्रान्तौ स्पृशन्सर्पो मूषकमिव ॥६६॥

### भाव प्रकाशिका

जगत् के संहार प्रकार को बतलाते हुए **प्रमत्तम् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं इस प्रकार से इस कार्य को करना है इस प्रकार की चिन्ता के कारण अत्यधिक असावधान जीव, की विषयों की प्राप्ति की कामना बनी रहती हैं, और विषयों की प्राप्ति हो जाने पर भी और अधिक विषयों की प्राप्ति का उसको लोभ होता है । और काल स्वरूप आप उसको, भूख से अपने ओष्ठों को चाटने वाला सर्प जैसे चूहे को निगल जाता है उसी तरह उसको निगल जाते हैं ॥६६॥

**कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ।**
**विशङ्कयास्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥६७॥**

**अन्वयः**— यः ते अवमान व्ययमानकेतनः कः पण्डितः त्वत्पादाब्जं विजहाति । यदस्माकं गुरुः यत् अर्चति स्म, विशङ्कया विनोपपत्तिं चतुर्दशमनवः ॥६७॥

**अनुवाद**— जो अपका अनादर के कारण आयु को व्यर्थ मानता हो ऐसा कौन सा पण्डित होगा जो आपके चरणों को भूल जायेगा ? इसकी पूजा काल की ही आशङ्का से हमारे पिता ब्रह्माजी और स्वायम्भुव मनु भी बिना किसी प्रकार का विचार किए ही करते रहे ॥६७॥

### भावार्थ दीपिका

अतः कस्तव पदाब्जं त्यजेत्पण्डितश्चेत् । कथंभूतः । यस्तवावमानोऽनादरस्तेन व्ययमानं केतनं शरीरं यस्य सः । यदस्माकं गुरुर्ब्रह्मर्चति स्मेति सर्वेषां स्तोतॄणां वाक्यम् । विशङ्कया नाशशङ्कया । विनोपपत्तिमिति दृढविश्वासेन । मनवश्चतुर्दशार्चन्ति स्म ॥६७॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव कोई भी पण्डित आपके चरण कमलों को कैसे भूल सकता है ? यदि कहें कि कैसा पण्डित ? तो इस पर कहते हैं जे आपके अनादर के कारण अपने शरीर को व्यर्थ ही मानता है । हमारे पिता ब्रह्माजी और चौदह मनु भी नाश की ही आशङ्का से बिना किसी प्रकार का विचार किए ही आपके जिन चरणों की पूजा करते रहते हैं ॥६७॥

**अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्परमात्मन्विपश्चिताम् । विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः ॥६८॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् विश्वं रुद्रभयध्वस्तम् अथ विपश्चिताम् नः हे परमात्मन् त्वम् अकुतश्चिदभयागतिः असि॥६८॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! यह सारा जगत् रुद्र रूप काल के भय से व्याकुल है अतएव हे परमात्मन् ! इस तत्त्व को जानने वाले हमलोगों के लिए तो आप ही भय रहित आश्रय हैं ॥६८॥

**भावार्थ दीपिका**

उपसंहरति-अथेति । रुद्रभयेन ध्वस्तम् । अतो न कुतश्चिद्भयं यस्यां तादृशी गतिरसि ॥६८॥

**भाव प्रकाशिका**

स्तोत्र का उपसंहार **अथ० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । रुद्रभयेन ध्वस्तम् का अर्थ है काल स्वरूप रुद्र के भय से व्याकुल जिसमे कहीं से भी कोई भय नहीं है ऐसा आश्रय आप हैं ॥६८॥

**इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः । स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥६९॥**

**अन्वयः**— भो नृपनन्दनाः विशुद्धा स्वधर्मम् अनुतिष्ठन्तः भगवति अर्पिताशयाः इदं जपत, वः भद्रम् ॥६९॥

**अनुवाद**— हे राजकुमारों तुम लोग विशुद्ध मन से अपने धर्म का पालन करते हुए, श्रीभगवान् में ही अपने मन को लगाये रहकर इस स्तोत्र का जप करो, तुमलोगों का मङ्गल होगा ॥६९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥६९॥

**तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् । पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥७०॥**

**अन्वयः**— तमेव आत्मस्थम् सर्वभूतेषु अवस्थितम् गृणन्तश्च असकृद्ध्यायन्तश्च आत्मानम् हरिम् पूजयध्वम् ॥७०॥

**अनुवाद**— उन्हीं, अपने अन्तःकरण में अवस्थित तथा सभी भूतों में अन्तर्यामी रूप से अवस्थित सबों की आत्मा श्रीहरि की स्तुति करते हुए तथा बार-बार ध्यान करते हुए पूजा करो ॥७०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥७०॥

**योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः । समाहितधियः सर्व एतदभ्यसतादृताः ॥७१॥**

**अन्वयः**— योगादेशम् उपासाद्य धारयन्तः मुनिव्रताः समाहितधियः सर्वे एतद् आदृताः अभ्यसत ॥७१॥

**अनुवाद**— इस योगादेश नामक स्तोत्र को प्राप्त करके उसको मन से धारण किए हुए मुनिव्रत को अपनाकर सावधानी पूर्वक तुम सब लोग आदर पूर्वक इसका पाठ करो ॥७१॥

**भावार्थ दीपिका**

योगादेशं नामैतत्स्तोत्रमुपासाद्य पाठतः प्राप्य मनसा धारयन्तोऽभ्यासेन जपत ॥७१॥

**भाव प्रकाशिका**

योगादेश नामक इस स्तोत्र को प्राप्त पाठ के द्वारा प्राप्त करके अपने मन में इसको धारण किए हुए बार-बार इसका जप करो ॥७१॥

**इदमाह पुरास्माकं भगवान्विश्वसृक्पतिः । भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥७२॥**

**अन्वयः**— पुरा इदम् सिसृक्षः भगवान् विश्वसृक्पतिः संसृक्षताम् अस्माकं भृग्वादीनाम् आत्मजानां आह ॥७२॥

**अनुवाद**— इस स्तोत्र को प्राचीन काल में सृष्टि करने के इच्छुक विश्व की सृष्टि करने वाले भगवान् प्रजापति ने सृष्टि का कार्य करने वाले हम भृगु आदि अपने पुत्रों को सुनया था ॥७२॥

**भावार्थ दीपिका**

विश्वसृजां पतिर्ब्रह्मा ।।७२।।

**भाव प्रकाशिका**

विश्वसृक् पतिः पद का अर्थ ब्रह्माजी है ।।७२।।

**ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः । अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ।।७३।।**

**अन्वयः**— ते वयं सर्वे प्रजेश्वराः प्रजासर्गे नोदिताः अनेन ध्वस्ततमसः विविधाः प्रजाः सिसृक्ष्मः ।।७३।।

**अनुवाद**— प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए ब्रह्माजी के द्वारा आदिष्ट हम सबों ने इस स्तोत्र के ही द्वारा अपने अज्ञान को नष्ट करके अनेक प्रकार की सृष्टि की ।।७३।।

**भावार्थ दीपिका**

सिसृक्ष्मः सृष्टवन्तः ।।७३।।

**भाव प्रकाशिका**

सिसृक्ष्मः पद का अर्थ है सृष्टि किए ।।७३।।

**अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान् । अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ।।७४।।**

**अन्वयः**— अथ नित्यदा इदं युक्तः अवहितः जपन् पुमान् अचिरात् वासुदेव परायणः अचिरात् श्रेयः आप्नोति।।७४।।

**अनुवाद**— अब भी प्रतिदिन इस स्तोत्र को एकाग्रचित्त होकर जो पुरुष सावधानी पूर्वक जपेगा वह भी भगवान् वासुदेव की भक्ति करता हुआ शीघ्र ही कल्याण प्राप्त करेगा ।।७४।।

**भावार्थ दीपिका**

युक्त एकाग्रचित्तः ।।७४।।

**भाव प्रकाशिका**

युक्तः पद का अर्थ है एकाग्रचित्त होकर ।।७४।।

**श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् । सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ।।७५।।**

**अन्वयः**— इह सर्वेषां श्रेयसां ज्ञानं परम निःश्रेयसम् ज्ञाननौः दुष्पारं व्यसनार्णवं सुखं तरति ।।७५।।

**अनुवाद**— इस संसार में समस्त कल्याण के साधनों में ज्ञान सबसे श्रेष्ठ कल्याण का साधन है ज्ञान रूपी नौका को अपनाने वाला बड़ी आसानी से इस दुस्तर संसार सागर को पार कर जाता है ।।७५।।

**भावार्थ दीपिका**

ज्ञानमेव नौर्यस्य ।।७५।।

**भाव प्रकाशिका**

ज्ञान को ही नौका बनाने वाला यह ज्ञाननौः पद का अर्थ है ।।७५।।

**य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् । अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ ।।७६।।**

**अन्वयः**— य इमं, मद्गीतं भगवत्स्तवम् श्रद्धया युक्तः अधीयानो भवति असौ दुराराध्यं हरिम् आराधयति ।।७६।।

**अनुवाद**— जो मेरे द्वारा कहे गये इस श्रीभगवान् को स्तोत्र का श्रद्धा पूर्वक पाठ करेगा वह दुराराध्य भी श्रीहरि को प्रसन्न करेगा ।।७६।।

**भावार्थ दीपिका**

योऽधीयानो भवत्यसौ हरिमाराधयति ।।७६।।

**भाव प्रकाशिका**

जो इसका पाठ करेगा वह श्रीहरि को प्रसन्न कर लेगा ।।७६।।

**विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरन् । मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ।।७७।।**

**अन्वयः**— यः पुरुषः मद्गीतगीतान् सुप्रीतात् श्रेयसाम् एकबल्लभात् अमुष्मात् असत्वरन् यद् यदिच्छति विन्दते।।७७।।

**अनुवाद**— जो पुरुष मेरे द्वारा गाये गये इस स्तोत्र से प्रसन्न हुए समस्त कल्याणों के एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् से स्थिर चित्त से जो-जो प्राप्त करना चाहेगा वह उसे प्राप्त कर लेगा ।।७७।।

**भावार्थ दीपिका**

अमुष्माद्धरेः । असत्वरन् स्थिरः सन् । मद्गीतं स्तोत्र तेन गीतात्स्तुतात् यद्यदिच्छति तत्तद्विन्दते । एक एव वल्लभः प्रिय आश्रयस्तस्मात् ।।७७।।

**भाव प्रकाशिका**

**अमुष्मात्** का अर्थ है श्रीहरि से, **असत्वरन्** का अर्थ है स्थिर चित्त से, मेरे द्वारा गाये गये स्तोत्र से प्रसन्न हुए श्रीहरि से मनुष्य जो-जो चाहता है वह-वह प्राप्त करता है । **एकबल्लभात्** का अर्थ है एक मात्र प्रिय आश्रय।।७७।।

**इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः । शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ।।७८।।**

**अन्वयः**— कल्ये उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः इदम् यः मर्त्यः शृणुयात् श्रावयेत् सः कर्मबन्धनैः मुच्यते ।।७८।।

**अनुवाद**— प्रातःकाल उठकर हाथ जोड़े हुए श्रद्धा पूर्वक जो मनुष्य इसको सुनेगा अथवा सुनायेगा वह कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जायेगा ।।७८।।

**भावार्थ दीपिका**

कल्ये उषसि ।।७८।।

**भाव प्रकाशिका**

कल्ये अर्थात् उषः काल में ।।७८।।

**गीतं मयेदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम् ।**
**जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम् ।।७९।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

**अन्वयः**— हे नरदेवनन्दनाः मया इदं परस्य पुंसः स्तवम् गीतम् एकाग्रधियः जपन्तः महत् तपः चरध्वम् अथ ततः अन्ते इप्सितम् आप्स्यथ ।।७९।।

**अनुवाद**— हे राजकुमारों मैंने यह परम पुरुष परमात्मा के स्तोत्र का गान किया है । इसका एकाग्रबुद्धि से जप करते हुए तुमलोग महान् तप करो उसके अन्त में तुमलोग अपने अभिप्रेत अर्थ को प्राप्त कर लोगे ।।७९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के रुद्रगीत नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।**

**भावार्थ दीपिका**

तपश्चरत तपसोऽन्ते ईप्सितं प्राप्स्यथ ।।७९।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।**

**भाव प्रकाशिका**

तुम लोग तप करो तप के अन्त में अभिप्रेत अर्थ को प्राप्त करोगे ।।७९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौबीसबें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२४।।**

# पच्चीसवाँ अध्याय

## पुरञ्जनोपाख्यान का प्रारम्भ

मैत्रेय उवाच

**इति संदिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः । पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥१॥**

**अन्वयः**— भगवान् हरः इति सन्दिश्य बार्हिषदैरभिपूजितः सन् राजपुत्राणां पश्यतां तत्रैव अन्तर्दधे ॥१॥

**मैत्रेय जी ने कहा**

**अनुवाद**— हे विदुर भगवान् शिव इस प्रकार से प्रचेताओं को उपदेश देकर तथा प्रचेताओं के द्वारा पूजित होकर उन सबों के देखते ही देखत अन्तर्धान हो गये ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रचेतस्सु तपस्यत्सु तत्पित्रे नारदो घृणी । प्राचीनबर्हिषेऽध्यात्मं पारोक्ष्येणाह पञ्चभिः । पुरंजनकथाव्याजात्पञ्चविंशे तु नारदः । आत्मनो बुद्धिसङ्गेन विविधामाह संसृतिम् । प्रचेतस्सु तपस्तीव्रं तप्यमानेषु नारदः । पुरंजनकथाकूटं प्राह प्राचीनबर्हिषे॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

जब प्रचेतागण तपस्या कर रहे थे उस समय दयालु नारदजी ने उन सबों के पिता प्राचीन बर्हि को परोक्ष ही रहकर आत्मज्ञान का उपदेश दिया । इस पचीसवें अध्याय में नारदजी ने पुरञ्जन कथा के व्याज से यह बतलाया कि आत्मा का जब बुद्धि के साथ सम्बन्ध होता है तो अनेक प्रकार की सृष्टियाँ होती हैं । जब प्रचेता गण तीव्र तपस्या कर रहे थे उस समय नारदजी ने प्राचीन बर्हि को पुरञ्जन कथाकूट को सुनाया ॥१॥

**रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः । जपन्तास्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥२॥**

**अन्वयः**— ते सर्वे प्रचेतसः जले रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं जपन्तः वर्षाणामयुतं तपस्तेपुः ॥२॥

**अनुवाद**— वे सभी प्रचेतागण जल के भीतर रुद्र गीत नामक श्रीभगवान् के स्तोत्र का पाठ करते हुए दश हजार वर्षों तक तपस्या करते रहे ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२॥

**प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् । नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयन् ॥३॥**

**अन्वयः**— क्षत्तः कर्मसु आसक्तमानसम् प्राचीनबर्हिष अध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः नारदः प्रत्यबोधयन् ॥३॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! कर्मों में ही जिनका मन लगा था उन महाराज प्राचीन बर्हि को अध्यात्म तत्त्ववेत्ता दयालु नारदजी ने बतलाया ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रचेतस्सु तपश्चरत्सु नारदः प्राचीनबर्हिषं बोधितवान् । अतः प्रचेतसां कथामसमाप्यैव तत्पितुर्वृत्तमाह–प्राचीनबर्हिषमिति।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रचेतागण जब तपस्या कर रहे थे उस समय ही नारदजी महाराज प्राचीन बर्हि को उपदेश दिया इसीलिए प्रचेताओं की कथा समाप्त किए बिना ही मैत्रेयजी ने उन सबों के पिता प्राचीन बर्हि के वृत्तान्त को **प्राचीन वर्हिषम्० इत्यादि** श्लोक से कहा ।।३।।

**श्रेयस्त्वं कतमद्राजन्कर्मणात्मन ईहसे । दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ।।४।।**

**अन्वयः**— हे राजन् ! कर्मणा आत्मनः कतमत् श्रेयः ईहसे । दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयः तत् इह च न ईष्यते।।४।।

**अनुवाद**— राजन् ! आप इस कर्म के द्वारा आत्मा का कौन सा कल्याण करना चाहते हैं ? दुःख का आत्यन्तिक नाश और सुख की प्राप्ति को ही कल्याण कहते है, कर्म के द्वारा इन दोनों में से कोई भी सम्भव नहीं है ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

श्रेयः फलमीहसे इच्छसि । इह कर्मणि तदुभयं नेष्यते विचारकैः ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

श्रेय ईहसे का अर्थ है कि फल प्राप्त करना चाहते हो । कर्म के द्वारा न तो दुःख का आत्यन्तिक विनाश सम्भव है और न शाश्वत सुख की प्राप्ति ही सम्भव है । यह विचारकों का मानना हैं ।।४।।

राजोवाच

**न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः । ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ।।५।।**

**अन्वयः**— हे महाभाग ! कर्मापविद्धधीः परं न जानामि मे विमलं ज्ञानं ब्रूहि येन कर्मभिः मुच्येय ।।५।।

**राजा ने कहा**

**अनुवाद**— महाभाग नारदजी मेरी बुद्धि कर्मों में फँसी हुई है अतएव मुझे परम कल्याण का पता नही हैं। आप मुझे विशुद्ध ज्ञान का उपदेश दें जिससे कि मैं कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाऊँ ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

परंश्रेयो मोक्षम् । कर्मभिरपविद्धाविक्षिप्ता ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

परंश्रेयमोक्ष को कहते है । कर्मापविद्धधीः अर्थात् कर्मों में लगी हुई बुद्धि ।।५।।

**गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदाराधनार्थधीः । न परं विन्दते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ।।६।।**

**अन्वयः**— कूटधर्मेषु गृहेषु पुत्रदाराधनार्थ घीः मूढः संसारवर्त्मसु भाम्यन् परं न विन्दते ।।६।।

**अनुवाद**— कपट धर्ममय गृहस्थाश्रम में ही लगा रहने वाला मूर्ख मनुष्य पुत्र, पत्नी और धन को ही परम पुरुषार्थ मानने के कारण संसार मार्ग में ही भटकता हुआ परम कल्याण को नहीं प्राप्त कर सकता है ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

किञ्च गृहेषु स्थितः । पुत्रादिष्वेव पुरुषार्थधीर्यस्य ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

और जो गृहस्थाश्रम में रहकर पुत्र आदि को ही पुरुषार्थ मानता है ।।६।।

नारद उवाच

**भो भो प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाऽध्वरे । संज्ञापितान् जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥७॥**

**अन्वयः**— भो भो प्रजापते ! निर्घृणेन त्वया अध्वरे संज्ञपितान् सहस्रशः जीव संघान पश्य ॥७॥

**श्रीनारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे राजन् ! तुमने निर्दयता पूर्वक यज्ञों में जिन हजारों पशुओं का वध किया है उन हजारों जीव समूहों को आकाश में देखो ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

कर्मफलेषु वैराग्यमुत्पाद्य ब्रह्मविद्यामुपदेष्टुं योगानुभावेन यज्ञपशून्प्रत्यक्षं प्रदर्श्याह-भो भो इति । संज्ञापितान्मारितान्॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

कर्म फलों में वैराग्य को उत्पन्न करके ब्रह्मविद्या का उपदेश देने के लिए अपने योग के प्रभाव से यज्ञ में मारे गये पशुओं को प्रत्यक्ष दिखाकर नारदजी ने भो भो इत्यादि श्लोक को कहा । संज्ञापितान् अर्थात् मारे गये॥७॥

**एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरतो वैशसं तव । संपरेतमयःकूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥८॥**

**अन्वयः**— एते तव वैशसं स्मरन्तः त्वां संप्रतीक्षन्ते, उत्थित मन्यवः एते संपरेतम् अयः कूटैः छिन्दन्ति ॥८॥

**अनुवाद**— ये सब तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुई पीडाओं को याद करते हुए तुमसे बदला लेने के लिए तुम्हारी राह देख रहे है । जब तुम मरकर जाओगे तो ये सब अपने लोहे के सींगों से तुमको छेदेंगे ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

एते त्वां संपरेतं मृतं संप्रतीक्षन्ते । वैशसं त्वत्कृतां पीडां स्मरन्तः ततश्चायः कूटैर्लोहयन्त्रमयैः शृङ्गैश्छिन्दन्ति छेत्स्यन्ति॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

ये सब मरकर स्वर्ग में आने की तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । ये तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुई पीडा का स्मरण करते हुए वहाँ अपने लोहे से निर्मित सींग के द्वारा तुमको छेदेंगे ॥८॥

**अत्र ते कथयिष्येऽमुमितिहासं पुरातनम् । पुरंजनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥९॥**

**अन्वयः**— अत्र ते अमुम् पुरातनम् इतिहासं कथयिष्ये गदतो मम पुरञ्जनस्य चरितं निबोध ॥९॥

**अनुवाद**— इस विषय में मैं आपको एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ । वह राजा पुरञ्जन का इतिहास उसे तुम मुझसे सुनो ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

अत्रास्मिन्संकटे निस्तारकममुमितिहासं कथयिष्यामि ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

इस सङ्कट से पार करने वाला मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ ॥९॥

**आसीत्पुरंजनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः । तस्याविज्ञातनामासीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥१०॥**

**अन्वयः**— राजन् बृहच्छ्रवा पुरञ्जनो नाम राजा आसीत्, तस्य अविज्ञात नामा अविज्ञातचेष्टितः सखा आसीत् ॥१०॥

**अनुवाद**— राजन् प्राचीन काल में एक अत्यन्त यशस्वी पुरञ्जन नामक राजा थाउसका अविज्ञात नामक एक मित्र था उसकी चेष्टाओं को कोई भी नहीं जान पाता था ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र जीवस्य विषयासक्त्या संसारः स चेश्वरानुग्रहेण निवर्तत इति वक्तुं विपर्ययगृहीतस्य साक्षाद्बोधयितुमशक्ते राजवृत्तान्तमिवाह-आसीदिति । पुरंजनादीन्स्वयमेवेतः पञ्चमेऽध्याये व्याख्यास्यति, तथापि सुखग्रहणाय यथोपयोगं किंचित्किंचिद्याख्यास्यामः । तत्र स्वकर्मभिः पुरं शरीरं जनयतीति पुरंजनो जीवः न विज्ञातं नाम यस्य । न च विज्ञातं चेष्टितं यस्य स ईश्वरस्तस्य सखा । यद्वा विज्ञातं चेष्टितं जीवप्रेरणादिलक्षणं यस्य । जीवपारतंत्र्यस्यानुभवसिद्धत्वात् ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

विषयों में ही लगे रहने वाले जीव को संसार में भटकते रहना पड़ता है । जब उस पर ईश्वर की कृपा होती है तब वह कर्मों में होने वाली आसक्ति को त्याग देता है । इस अर्थ को बतलाने के लिए ठीक इसके विपरीत कर्मों में लगे राजा को साक्षात् समझना कठिन होने के कारण यहाँ पर राजा के वृत्तान्त के समान इस उपाख्यान को कहा गया है । इस अध्याय के बाद में आने वाले पाँचवें अध्याय मे पुरञ्जन आदि की व्याख्या नारदजी स्वयम् करेंगे । फिर भी आसानी से बोध कराने के लिए मैं (श्रीधरस्वामी) उपयोगानुसार थोड़ी-थोड़ी व्याख्या करूँगा । अपने कर्मों के द्वारा शरीर को उत्पन्न करने वाले जीव को पुरञ्जन कहा गया है । जिनका नाम और कर्म विज्ञात नहीं है, वे ईश्वर ही अविज्ञात शब्द से कहे गये हैं । अथवा जीव को प्रेरित करना आदि जिनकी चेष्टायें अज्ञात हैं वे ईश्वर हैं । जीवात्मा परमात्म परतन्त्र है यह अनुभव सिद्ध है ।।१०।।

**सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः । नानुरूपं यदाऽविन्ददभूत्स विमना इव ।।११।।**

**अन्वयः**— सः प्रभुः शरणम् अन्वेषमाणः पृथिवीं बभ्राम । यदा सः अनुरूपं न अन्वविन्दत स विमना इव बभूव।।११।।

**अनुवाद**— वह राजा पुरञ्जन अपने रहने योग्य स्थान को खोजता हुआ सम्पूर्ण पृथिवी पर घूमता रहा किन्तु जब उसको अपने रहने योग्य स्थान नहीं मिला तो वह उदास सा हो गया ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

शरणं भोगाायतनं देहम् । पृथिवीं तदुपलक्षितं ब्रह्माण्डम् ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

शरण शब्द से जहाँ पर रहकर भोगों को जीव भोग भोग सके उस देह को कहा गया है । पृथिवी शब्द से पृथिवी के द्वारा उपलक्षित ब्रह्माण्ड को कहा गया है ।।११।।

**न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः । कामान्कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ।।१२।।**

**अन्वयः**— कामान् कामयमानोऽसौ तस्य तस्य उपपतये भूतले यावत्यः पुरः ताः सर्वाः साधु न मेने ।।१२।।

**अनुवाद**— अनेक प्रकार के भोगों को भोगों को भोगने की इच्छा वाले पुरञ्जन ने इस पर विद्यमान जितनी नगरियों को देखा उनमें से उसने किसी भी नगरी को अच्छा नहीं समझा ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

यावत्यः पुरस्तास्तस्य तस्य कामस्योपपत्तये प्राप्त्यै असौ साधु न मेने । गवादिदेहानामैहिकपारलौकिकभोगभोग्यत्वाभावात् तथा च श्रुतिः 'ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्नवैनोऽयमलमिति ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्नवै नोऽयमलमिति' इति ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

जितनी भी नगररियाँ इस भूमण्डल पर थी उन सबों में से किसी को भी उसने विभिन्न भोगों की प्राप्ति के योग्य उचित नहीं समझा । गौ इत्यादि का शरीर ऐसा नहीं है कि उसके द्वारा लौकिक तथा पारलौकि सभी भोगों को भोगा जा सके । श्रुति भी कहती है ब्रह्माजी उन सबों को गौलाये तो उन सब इन्द्रियों ने कहा यह हमलोगों

के लिए पर्याप्त नहीं है, उसके पश्चात् वे उन सबो के लिए अश्व का शरीर लाए तो उन सबों न कहा यह हमारे समस्त भोगों को भोगने के लिए पर्याप्त नहीं है ॥१२॥

**स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु । ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरं लक्षितलक्षणाम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— अथः सः एकदा हिमवतः दक्षिणेषु सानुषु नवभिर्द्वार्भिः लक्षित लक्षणम् पुरं ददर्श ॥१३॥

**अनुवाद**— उसने एक दिन हिमालय के दक्षिण शिखरों पर एक नगर को देखा वह नव द्वारों वाला था, वह नगर के सभी लक्षणों से युक्त था ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

हिमवतो दक्षिणेषु सानुषु । कर्मक्षेत्रे भारतवर्षे । पुरं मनुष्यशरीरम् । लक्षितानि दृष्टानि सर्वाणि लक्षणानि यस्याम् । अन्धपङ्गुत्वादिदोषरहितामित्यर्थः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

हिमालय के दक्षिण शिखरो पर कर्म क्षेत्र भारत वर्ष में पुरम् अर्थात् मनुष्य शरीर को देखा वह सभी लक्षणों से युक्त था । अर्थात् अन्ध पङ्गु आदि दोषों से रहित था ॥१३॥

**प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः । स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः संकुलां सर्वतो गृहैः ॥१४॥**

**अन्वयः**— सर्वतः प्राकारोप वनाट्टालपरिरवैः अक्षतोरणैः स्वर्णप्यायसैः शृङ्गैः गृहैः सङ्कुलाम् ॥१४॥

**अनुवाद**— सब ओर से परकोटों, बगीचों, अटारियों, खाइयों, झरोखों और राजद्वारों से वह नगर सुशोभित था । वह सोने, चाँदी और लोहों के शिखरों वाले गृहों से भरा था ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

तामनुवर्णयति त्रिभिः । अत्र किंचित्किंचित्सादृश्यमवलम्ब्य कथासौन्दर्याय प्राकारादीनि वर्ण्यन्ते । परिखैरिति पुंस्त्वमार्षम्। अक्षाणीन्द्रियाणि गवाक्षाः । त्वगादयः शरीरावयवाः प्राकारादिपुरावयवत्वेन निरूप्यन्ते । स्वर्णादिशृङ्गैः शिखरैर्युक्ता ये गृहास्तैः सङ्कुलामिति । आधारादिचक्राणि गृहाः शृङ्गाणि च राजसादिस्वभावा विवक्षिताः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

उस नगरी का वर्णन तीन श्लोकों से थोड़ी समता को लेकर वर्णन करते हैं जिससे कि कथा का सौन्दर्य बढ जाय । परिखैः यह पुल्लिङ्ग प्रयोग आर्ष है, अन्यथा परिखाभिः होना चाहिए । अक्ष शब्द इन्द्रियों और गवाक्षों का बोधक शरीर रूपी नगरी के गवाक्ष का काम इन्द्रियाँ ही करती हैं । त्वक् इत्यादि शरीर के अवयवों का वर्णन प्रकार आदि नगरी के अवयवों के रूप में किया गया है । सुवर्ण आदि के शिखरों से युक्त गृहों से वह नगरी भरी हुई थी । यहाँ आधार चक्र आदि को गृह कहा गया है और राजस आदि स्वभाव शृङ्गों के द्वारा विवक्षित हैं ॥१४॥

**नीलस्फटिकवैदूर्यमुक्तामरकतारुणैः । क्लृप्तहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥१५॥**

**अन्वयः**— नीलस्फटिकवैदूर्य मुक्तामरकतारुणैः क्लृप्रहर्म्यस्थलीं भोगवतीमिव श्रियादीप्ताम् ॥१५॥

**अनुवाद**— इसके महलों की फर्शे नीलम, स्फटिक, वैदूर्य, मोती, पन्ना और लाल के बनी थीं । अपनी कान्ति के कारण वह नागों की नगरी भोगवती के समान प्रतीत होती थी ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

नीलादिभिः क्लृप्ता हर्म्यस्थली यस्याम् । अरुणं माणिक्यम् । स्थलं हृदयम् । नाडयो नीलादिभावेन निरूप्यन्ते तत्तद्विषयवासना वा । भोगवतीं नागानां पुरीमिव ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

उस नगरी की फर्शें नीलम आदि से बनी थी । हृदय को फर्श कहा गया है । नाड़ियों को नीलम इत्यादि रूप से निरूपित किया गया है । अथवा विभिन्न विषयों की वासनाओं को नीलम इत्यादि रूप से निरूपित किया गया है । नागों की नगरी भोगवती के समान थी वह नगरी ॥१५॥

**सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः । चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥१६॥**

**अन्वयः**— सभाचत्वररथ्याभिः आक्रीडायतनापणै चैत्यध्वज पताकाभिः विद्रुमवेदिभिः च युक्ताम् ॥१६॥

**अनुवाद**— उसमें जहाँ-तहाँ अनेक सभाभवन चौराहे, सड़क क्रीडा भवन, बाजार, विश्रामस्थान ध्वजा पताकाएँ और मूङ्गे क चबूतरे बने थे ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

सभा समाजस्थानम्, चत्वरं चतुष्पथः, रथ्या राजमार्गः, आक्रीडायतनं द्यूतादिस्थानम्, आपणो हट्टः, तैः । चैत्यं जनानां विश्रामस्थानम्, ध्वजेषु पताकाः ताभिश्च युक्ताम् ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

सभा जहाँ पर समाज के लोग एकत्रित होते हों, चौराहे, राजमार्ग, जूआ आदि खेलने के स्थान, बाजार इन सबों से युक्त थी वह नगरी । लोगों के विश्राम स्थान को चैत्य कहा जाता है तथा ध्वजा पताका आदि से युक्त थी वह नगरी ॥१६॥

**पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले । नदद्विहङ्गालिकुलकोलाहलजलाशये ॥१७॥**

**अन्वयः**— पुर्याबाह्योपवने तु दिव्यद्रुमलताकुले, नदद्विहंगा कुलकोलाहल जलाशये ॥१७॥

**अनुवाद**— उस नगरी के बाहर का उपवन दिव्य वृक्षों और लताओं से भरा था । उस उपवन के जलाशय में अनेक प्रकार के पक्षियों के बोलने की ध्वनि होती रहती थी ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

अत्र च विषयनिष्ठबुद्धियोगेन जीवस्य देहसंबन्ध इति विवक्षया विषयवर्गं बाह्योपवनत्वेन निरूपयति । तद्विशेषान् स्रक्चन्दनादीन् दिव्यद्रुमलतादिभावेन । शेषः कथालङ्कारः । बाह्योपवने प्रमदां ददर्शेति चतुर्थेनान्वयः । नदतां विहङ्गालिकुलानां कोलाहलो येषु ते जलाशया यस्मिन् ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

विषयनिष्ठ बुद्धि के योग के कारण ही जीव का शरीर से सम्बन्ध होता हैं इसी अभिप्राय से विषयों का निरूपण नगर के बाहरी उपवन के रूप में किया गया है । विषयों के विशेष भूत स्रक् (माला) चन्दन आदि को दिव्य वृक्ष तथा लता आदि के रूप में निरूपित किया गया है । शेषसारी बातें कथा के अलङ्कार मात्र हैं । उस उपवन में राजा पुरञ्जन एक युवती को देखा यह इस श्लोक के चौथे श्लोक से अन्वय हैं ॥१७॥

**हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना । चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसंपदि ॥१८॥**

**अन्वयः**— हिमनिर्झर विप्रुष्मत् कुसुमाकारवायुना चलत् प्रवाल विटपनलिनी तट संपदि ॥१८॥

**अनुवाद**— सरोवर के तट पर विद्यमान वृक्षों के पत्ते शीतल झरनों के जल कणों से युक्त वासन्ती वायु के झोकों से हिलते हुए तट भूमि को सुशोभित कर रहे थे ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

हिमनिर्झराणां विप्रुषो विन्दवस्तद्वता कुसुमाकरसंबन्धिना वायुना चलन्तः प्रवाला विटपाः शाखाश्च येषां तैर्वृक्षैर्नलिनीनां सरसीनां तटेषु सम्पत्समृद्धिर्यस्मिन् ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

शीतल झरनों के जल कण से युक्त वासन्ती वायु के हिलते हुए वृक्षों की शाखाएँ और पत्ते उस सरोवर की तट भूमि की शोभा को बढा रहे थे ।।१८।।

**नानारण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः । आहूतं मन्यते पान्थो यत्र कोकिलकूजितैः ।।१९।।**

**अन्वयः**— मुनिव्रतैः नानारण्यमृगव्रातैः अनाबाधे, कोकिलकूजितैः यत्र पान्थः आहूतं मन्यते ।।१९।।

**अनुवाद**— मुनियों के अहिसा आदि व्रतों का पालन करने वाले वहाँ के अनेक प्रकार के पशुओं से किसी को कोई भी कष्ट नहीं होता था । वहाँ की कोकिलों की मधुर ध्वनि को सुनकर मार्ग में चलने वाले पथिकों को लगता था कि वह उपवन उनको विश्राम करने के लिए जैसे बुला रहा है ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

अनाबाधे तत्कृतबाधारहिते । मुनिव्रतैरहिंस्रैः । आत्मानमाहूतं मन्यते यत्र ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

अनाबाधे उन पशुओं द्वारा की जाने वाली बाधाओं से रहित उस उपवन में मुनिव्रतै मुनियों के अहिंसा आदिव्रतों का पालन करने वालों से पथिकों को लगता था कि वह उपवन उन्हें आहूत कर रहा है ।।१९।।

**यदृच्छयागतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् । भृत्यैर्दशभिरायान्तीमेकैकशतनायकैः ।।२०।।**

**अन्वयः**— तत्र यदृच्छयागतां एकैक शतनायकैः दशभिःभृत्यैः आयान्तीं प्रमदोत्तमाम् ददर्श ।।२०।।

**अनुवाद**— राजा पुरञ्जन ने वहाँ पर अचानक आयी हुई एक सुन्दरी को देखा जो अपने दश भृत्यों के साथ आ रही थी । उसके प्रत्येक भृत्य सैकड़ों नायिकाओं के पति थे ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र प्रमदोत्तमां विषयविवेकवतीं बुद्धिं ददर्श । यदृच्छयागतामिति तयोः संबन्धस्य दुर्निरूप्यत्वं दर्शयति । तामनुवर्णयति सार्धैश्चतुर्भिः । दशभिर्ज्ञानकर्मेन्द्रियैः । एकैकं प्रत्येकं शतमनन्ता वृत्तयस्तासां नायकैः पतिभिः सह । पाठान्तरे नायिकाः स्त्रियो येषां तैः ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

वहाँ पर सुन्दरी अर्थात् विषयों के विवेक से सम्पन्न बुद्धि रूपी सुन्दरी को राजा पुरञ्जन (जीव) ने देखा । जो वहाँ अचानक आयी थी, अतएव उन दोनों का कोई सम्बन्ध नहीं था । उस बुद्धि सुन्दरी का वर्णन साढे चार श्लोकों में करते हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ ये उसके दश भृत्य थे । एकैकशतनायकै । अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय रूपी भृत्यों के **शतम्** अर्थात् अनन्त वृत्तियाँ ही पत्नियाँ थीं । उन वृत्ति रूप नायिकाओं के वे इन्द्रिय रूपी भृत्य नायक (स्वामी) थे । जहाँ **शतनायिकैः** पाठ भेद है वहाँ पर अर्थ होगा सैकड़ों नायिका ही जिनकी पत्नियाँ थीं ।।२०।।

**पञ्चशीर्षाहिना गुप्तां प्रतीहारेण सर्वतः । अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ।।२१।।**

**अन्वयः**— पञ्चशीर्षाहिना प्रतिहारेण सर्वतः गुप्ताम् अप्रौढां कामरूपिणीम् ऋषभम् अन्वेषमाणम् ददर्शेतिशेषः ।।२१।।

**अनुवाद**— एका पाँच फनों वाले सर्प रूपी द्वार पाल के द्वारा सब ओर से वह सुरक्षित थी वह अत्यन्त सुन्दरी सोलह वर्ष की थी प्रौढा नहीं थी । वह विवाह करने के लिए अपने पति का अन्वेषण कर रही थीं ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

पञ्चशीर्षाणि वृत्तयो यस्य तेनाहिना प्राणेन प्रतीहारेण पालकेन गुप्ताम् । ऋषभं भर्तारम् । अप्रौढां षोडशवार्षिकीम्।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

प्राण अपान आदि पाञ्च वृत्तियों वाला प्राण रूपी सर्प उसका द्वारपाल था वही उसका संरक्षक था । वह अपने योग्य पति का अन्वेषण कर रही थी । उसकी अवस्था सोलह वर्ष की थी ।।२१।।

**सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् । समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियम् ।।२२।।**

**अन्वयः**— सुनासां, सुदतीं, सुकपोलां वराननाम्, समविन्यस्तकणीभ्याम् कुण्डलश्रियम् बिभ्रतीं ददर्श ।।२२।।

**अनुवाद**— उसकी नाक, दन्त पक्ति, कपोल तथा मुख सुन्दर थे । उसके एक बराबर कानों में वह कुण्डल धारण किए हुई थी ।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

गन्धज्ञानादिभिर्बुद्ध्यवयवैः सुनासत्वादि निरूप्यते । समं विन्यस्तौ रचितौ कर्णौ ताभ्यां कुण्डलशोभां दधतीम् ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

गन्ध आदि के ज्ञान आदि बुद्धि के अवयवों के द्वारा उसको सुन्दर नासिका वाली इत्यादि के रूप में निरूपण किया गया है । उसके दोनों कान एक समान थे और उन कानों में वह कुण्डल की शोभा को धारण किए हुई थी।।२२।।

**पिशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् । पद्भ्यां क्वणभ्यां चलतीं नूपुरैर्देवतामिव ।।२३।।**

**अन्वयः**— श्यामां, सुश्रोंणीम्, पिशङ्गनीवीम्, कनक मेखलाम् नूपुरैः, क्वणद्भ्यां पद्भ्यां देवतामिव चलतीम्।।२३।।

**अनुवाद**— उसका वर्ण श्याम था, कमर सुन्दर था वह पीली साड़ी पहनी थी चलते समय उसके पैरों के पायल बजा करते थे । देखने में देवता के समान सुन्दर थी ।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

'अन्नमयं हि सौम्य मनः' इति 'यत्कृष्णं तदन्नस्य' इत्यादिश्रुत्यनुसारेण श्यामामित्युक्तम् । नूपुरैः क्वणद्भ्यां । नूपुरेण पादाङ्गुलीयकानामप्युपलक्षणाद्बहुवचनम् ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

श्रुति कहती है कि अन्नमयं हि सोम्य मनः । हे सोमरसपानार्हसच्छिस्य यह मन पार्थिव है । तथा **'यत् कृष्णं तदन्नस्य'** जो काला रूप है वह पृथिवी का रूप है । शरीर भी पार्थिव है इसीलिए उसको श्याम वर्ण का कहा गया है । नूपुर के द्वारा अङ्गुलियों के भी उपलक्षित होने के कारण नूपुरैः में बहुवचन है । अर्थात् उसके पैरों के नूपुर चलते समय बजा करते है । चलते समय वह देखने में देवता के समान सुन्दर प्रतीत होती थी ।।२३।।

**स्तनौ व्यञ्जितकैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ । वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीम् ।।२४।।**

**अन्वयः**— स्तनौ व्यञ्जित कैशोरौ, समानवृत्तौ, निरन्तरौ व्रीडया वस्त्रान्तेन निगूहन्तीम् गजगामिनीम् ।।२४।।

**अनुवाद**— एक समान गोल तथा परस्पर में सटे हुए उसके दोनों स्तन उसकी किशोरावस्था को अभिव्यक्त कर रहे थे, वह लज्जा के कारण अपने आँचल से उन दोनों स्तनों को ढंके हुई थी और मन्दगति से चल रही थी।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

व्यञ्जितं कैशोरं यौवनोपक्रमो याभ्याम् । समौ च वृत्तौ च ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

व्यञ्जितकैशोरो का विग्रह है, व्यञ्जितं कैशोरं याभ्यां तौ । अर्थात् किशोरावस्था (जवानी की शुरुआत) को उसके दोनों स्तन अभिव्यक्त कर रहे थे । वे समान रूप से गोल थे ।।२४।।

**तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् । स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेन स्पृष्टः प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा ।।२५।।**

**अन्वयः**— स्निग्धेन अपाङ्गपुङ्खेन, प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा स्पृष्टः वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ललितम् आह ।।२५।।

**अनुवाद**— प्रेम के कारण ऊपर की ओर चढ़ी हुई भौओं रूप धनुष से छूटे हुए प्रेम पूर्ण कटाक्षपात रूपी बाण से विद्ध राजा पुरञ्जन ने लज्जासंवलित मुसुकान से और अधिक सुन्दर लगने वाली उस सुन्दरी से मधुर शब्दों में कहा ।।२५।।

### भावार्थ दीपिका

तामाहेति तयोः संवादोक्तिः संबन्धदार्ढ्याय । अपाङ्ग एव पुङ्खो मूलप्रान्तो यस्य कटाक्षस्य बाणस्य तेन स्पृष्टो विद्धः। प्रेम्णा उच्चैर्भ्रमन्ती भ्रूर्धनुस्थानीया यस्मिंस्तेन ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

सम्बन्ध को सुदृढ बनाने के लिए तामाह इत्यादि पद के द्वारा उन दोनों के संवाद को बतलाया गया है। कटाक्ष ही जिसका पिछला भाग था उस कटाक्ष रूपी बाण से वह राजा घायल हो गया था । कटाक्ष रूपी बाण के धनुष प्रेम के कारण ऊपर की ओर उठे हुए उसकी दोनों भौहें थीं ।।२५।।

**का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति । इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ।।२६।।**

**अन्वयः**— हे कञ्जपलाशाक्षि ! त्वं शंस, त्वं का कस्यासि ? इह कुतः ? भीरु ! इमाम् उपपुरीं किं चिकीर्षसि ।।२६।।

**अनुवाद**— हे कमलदल के समान नेत्रों वाली मुझे बतलाओ कि तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? यहाँ कहाँ से आयी हो ? हे सुन्दरि ! इस नगरी के सन्निकट में तुम क्या करना चाहती हों ? ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

कुतः स्थानादिहागताऽसि । हे सति, पुर्याः समीपस्था उपपुरी भूस्तामालक्ष्य किं कर्तुमिच्छसीत्यर्थः ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

तुम किस स्थान से यहाँ आयी हो ? इस नगरी के सन्निकट में तुम क्या करना चाहती हो ?।।२६।।

**क एतेऽनुपथा ये त एकादश महाभटाः । एता वा ललनाः सुभ्रूः कोऽयं तेऽहिः पुरःसरः ।।२७।।**

**अन्वयः**— एते अनुपथा के? ये ते एकादशमहाभटाः के सुभ्रु एताः ललनाः वा काः? अयंते पुरः सरः अहिः कः?।।२७।।

**अनुवाद**— ग्यारह महावीरों से संचालित ये तुम्हारे अनुगमन करने वाले कौन हैं ? हे सुन्दरि ! ये सुन्दरियाँ कौन हैं ? यह तुम्हारे आगे चलने वाला सर्प कौन है ?।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

ते तव येऽनुपथा अनुवर्तिन एते के । एकादशो महान्भटो बृहद्बलत्वेन वक्ष्यमाणो येषु दशसु ते । बुद्धेर्मनसः पृथगुपादानं बुद्धिपरिचारकेन्द्रियसहायतया तत्परिचारकत्वविवक्षया ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

तुम्हारे पीछे चलने वाले ये सब कौन है ? ग्यारहवाँ जो इन दशों का संचालक महान् बलवान् कौन है? बुद्धि से अलग मन को अलग ग्रहण इसलिए किया गया है कि वह बुद्धि के परिचारक इन्द्रियों का सहायक है।।२७।।

**त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथ वाग्रमा पतिं विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ।**
**त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥२८॥**

**अन्वयः**— त्वम् ह्रीर्वा, भवानीवा, अथवाक्, वा रमा ? मुनिवद् रहः वने त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं पतिं विचिन्वती असिकिम् ? कराग्रात् पद्मकोशः क्वपतितः ॥२८॥

**अनुवाद**— तुम लज्जा देवी, भवानी, सरस्वती और लक्ष्मी देवी इनमें से कौन हो ? यहाँ एकान्त में मुनिजनों के समान वन में अपने पति देव का अन्वेषण कर रही हो का । तुम्हारे हाथों का कमल पुष्प कहाँ गिर गया ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

त्वं ह्रीं किं पतिं धर्म विचिन्वती, अथवा भवानी पतिं शिवं विचिन्वती, अथवा किं वाक् सरस्वती पतिं ब्रह्माणम्, रमा पतिं विष्णुम् । मुनिरिव संयता सती । कथंभूतं पतिम् । त्वदङ्घ्रिकामेनैव त्वत्कृतया त्वदङ्घ्रिकामनयैव प्राप्ताः समस्ताः कामा येन तम् ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

तुम लज्जा देवी हो क्या ? और अपने पति देव को खोज रही हो ? अथवा अपने पतिदेव शिवजी को खोजन वाली भवानी हो ? अथवा अपने पति देव भगवान् विष्णु को खोजने वाली लक्ष्मी देवी हो ? या अपने पति देव ब्रह्माजी को खोजने वाली सरस्वती देवी हो ? यहाँ पर मुनियों के समान नियमित होकर अपने पति को खोज रही हो क्या ? यदि कहो कि कैसे पति ? तो इसका उत्तर है कि उनके चरणों को तुम प्राप्त करना चाहती इतने ही मात्र से तुम्हारे पतिदेव की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी ?॥२८॥

**नासां वरोर्वन्यतमा भुविस्पृक्पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ।**
**अर्हस्यलंकर्तुमदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥२९॥**

**अन्वयः**— हे वरोरु ! त्वं आसाम् अन्यतमान ? यतः भुवि स्पृक् । अदभ्र कर्मण वीरवरेण साकम् इमां पुरीम् परं लोकं यज्ञ पुंसा श्रीरिव अलंकर्तुम् अर्हसि ॥२९॥

**अनुवाद**— हे सुन्दरि ! हे तुम इन सबों में से कोई भी नहीं हो क्योंकि तुम अपने चरणों से पृथिवी का स्पर्श कर रही हो देवता अपने चरणों से पृथिवी का स्पर्श नहीं करते हैं । यदि तुम मानवी हो तो जिस तरह श्रीदेवी अपने पति भगवान् विष्णु के साथ वैकुण्ठ की शोभा बढाती हैं उसी तरह तुम श्रेष्ठ वीर और अत्यन्त पराक्रमी मेरे साथ इस पुरी को अलंकृत करो ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

हे वरोरु, आसां मध्ये त्वमन्यतमापि न संभवसि । यतो भुविस्पृक् । नहि देवता भुवं स्पृशन्ति । वीरवरेण मया । ननु त्वमकर्मा कथं त्वया सहालंकरोमीति चेत्तत्राह । अद्भ्रमनल्पं कर्म त्वत्सङ्गाद्यस्य मम तेन स्वतोऽकर्मत्वेन त्वत्सङ्गात्सकर्मा भवामीत्यर्थः । परं वैकुण्ठम् ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

हे सुन्दरि ! तुम इन सबों में से कोई भी नहीं हो क्योंकि तुम अपने पैरों से पृथिवी का स्पर्श करते हो। देवता पृथवी का स्पर्श नहीं करते हैं ? अतएव तुम श्रेष्ठ वीर मेरे साथ इस पुरी को उसी तरह अलङ्कृत करो जैसे लक्ष्मीजी भगवान् विष्णु के साथ वैकुण्ठ को अलङ्कृत करते हैं । **ननु० इत्यादि** यदि कहो कि तुम तो अकर्मा हो अतएव तुम्हारे साथ कैसे इस नगरी को अलङ्कृत करूँ तो इस पर कहा तुम्हारे साथ रहकर मैं अत्यधिक कर्मों को करने वाला हूँ । अर्थात् स्वतः तो मैं अकर्मा हूँ किन्तु तुम्हारी सङ्गति को प्राप्त करके मैं सकर्मा हो जाता हूँ । श्लोक के परम् शब्द से वैकुण्ठ को कहा गया है ॥२९॥

**यदेष माऽपाङ्गविखण्डितेन्द्रियं सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भुवा ।**
**त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥३०॥**

**अन्वयः**— यत् अपाङ्ग विखण्डितेन्द्रियं सव्रीडभावस्मित विभ्रमद्भ्रुवा त्वया उपसृष्टः एष भगवान् मनोभवः मा बाधते अथ शोभने अनुगृहाण ॥३०॥

**अनुवाद**— चूकि तुम्हारे कटाक्षों ने मेरी इन्द्रियों को व्याकुल बना दिया है, तुम्हारे लज्जायुक्त रतिभाव से मुझे पीड़ित कर रहा है अतएव हे सुन्दरि ! तुम मुझको अनुगृहीत करो ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यस्मात्त्वापाङ्गेन विखण्डितमिन्द्रियं मनो यस्य त्तं मां मनोभवो बाधते । अथ तस्मादनुगृहाण । सव्रीडं यद्भावेन प्रेम्णा स्मितं विभ्रमन्ती या भ्रूस्तयोपसृष्टः प्रेरितः ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि तुम्हारे कटाक्षों ने मेरी इन्द्रियों और मन को व्याकुल बना दिया है, अतएव काम मुझे पीड़ित कर रहा है अतएव तुम मुझको अनुगृहीत करो । वह कामदेव लज्जा युक्त रतिभाव से पूर्ण मुस्कान से मनोहर बनी भौहों से प्रेरित है ॥३०॥

**तदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं व्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम् ।**
**उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं यद्व्रीडया नाभिमुखं शुचिस्मिते ॥३१॥**

**अन्वयः**— हे शुचिस्मिते सुभ्रु, सुतारलोचनं व्यालम्बिनीलालक वृन्द संवृतम्, यद्व्रीडया अभिमुखेन तत् बल्गुवाचकं मुखम् उन्नीय मे दर्शय ॥३१॥

**अनुवाद**— हे पवित्र मुस्कान वाली सुन्दरि ! सुन्दर भौहों, सुन्दर नेत्रों, लटके हुए काले घुंघराले केशों से घिरे जो लज्जा के मारे मेरे सामने होता ही नहीं है अपने उस मीठी बोली से युक्त मुख को उठाकर मुझे दिखाओ तो ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्व्रीडया सन्मुखं न भवति तदाननमुन्नीय मे दर्शय । शोभने भ्रुवौ यस्मिन् । सुतारे शोभनकनीनिके लोचने यस्मिन्। व्यालम्बिनो दीर्घा ये अलकास्तेषां वृन्देन संवृतम् । वल्गूनि वाचकानि वाक्यानि यस्मिन् ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

जो लज्जा के कारण मेरे सामने नहीं होता है अपने उस मुख को उठाकर मुझे दिखाओ । जो मुख सुन्दर भौहों, सुन्दर नेत्रों, एवं सुन्दर वाक्यों से युक्त हैं तथा लटकने वाले काले घुघराले केशों से घिरा हुआ है ॥३१॥

नारद उवाच

**इत्थं पुरंजनं नारी याचमानमधीरवत् । अभ्यनन्दत तं वीरं हसन्ती वीरं मोहिता ॥३२॥**

**अन्वयः**— हे वीर ! इत्थम् अधीरवत् याचमानम् पुरञ्जनं मोहिता सा नारी तं वीरं हसन्ती अभ्यनन्दत ॥३२॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे वीर ! इस प्रकार से जब राजा पुरञ्जन उससे अधीर होकर याचना कर रहे थे उस समय मोहित उस नारी ने भी उस वीर को हँसते हुए उसका अनुमोदन किया ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

हे वीर, सापि तं दृष्ट्वा मोहिता सती तमाह ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

हे वीरवर्य राजन् ! वह नारी भी उस राजा को देखकर मोहित हो गयी और उसने हँसकर उसको कहा।।३२।।

**न विदाम वयं सम्यक्कर्तारं पुरुषर्षभ । आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ।।३३।।**

**अन्वयः**— हे पुरुषर्षभ ! वयं कर्तारम् आत्मनः परस्यापि नाम यत् कृतमृ न विदाम ।।३३।।

**अनुवाद**— हे पुरुष श्रेष्ठ ! मैं अपने कर्ता या अपने या दूसरे के नाम को रखने वाले को या अपने गोत्र को नहीं जानती हूँ ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**

यत्पृष्टं कस्यासीत्यनेन कस्य पुत्री गोत्रजेति का त्वमिति च किं नामासीति तत्राह । आत्मनो मम परस्य तवापि कर्तारं सम्यङ्न विद्मः । गोत्रं नाम च यत्कृतं भवति तं च न विद्मः ।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

आपने यह जो पूछा है कि तुम किसकी पुत्री हो तुम्हारा गोत्र क्या है ? तुम्हारा नाम क्या है ? इत्यादि मैं न तो अपना नाम जानती हूँ और न आपके कर्ता को अच्छी तरह से जानती हूँ । और गोत्र तथा नाम को भी नहीं जानता हूँ ।।३३।।

**इहाद्य सन्तमात्मानं विदाम न ततः परम् । येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ।।३४।।**

**अन्वयः**— हे वीर इह अद्य सन्तम् आत्मानं विदामः ततः परम् न, येन इयम् आत्मनः शरणम् पुरी निर्मिता तमपिन विदामः ।।३४।।

**अनुवाद**— हे वीर ! मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि हम यहाँ पर है इससे अधिक मैं नहीं जानती, हमलोगों को रहने के लिए जिसने इस पुरी को बनाया है, उसे भी मैं नहीं जानती हूँ ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

आत्मनो मम शरणमियं पुरी येन निर्मिता तं च न विद्मः ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

हमारे रहने के लिए इस पुरी का जिसने निर्माण किया है उसको भी मैं नहीं जानती हूँ ।।३४।।

**एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद । सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन्पुरीम् ।।३५।।**

**अन्वयः**— हे मानद ! एते नराः नार्यश्च में सखायः सख्यश्च मयि सुप्तायां अयं नागः पुरीं पालयन् जागर्ति ।।३५।।

**अनुवाद**— हे प्रियतम ! ये पुरुष और स्त्रियाँ मेरी मित्र और सहेलियाँ हैं । मेरे सो जाने पर यह नाग इस नगरी की रक्षा करते हुए जगता रहता है ।।३५।।

**भावार्थ दीपिका**

यत्पृष्टं क एते अनुपथा इति तत्राह-एत इति ।।३५।।

**भाव प्रकाशिका**

पुरञ्जन ने यह जो पूछा था कि ये तुम्हारे अनुवर्ती कौन हैं, उसी का उत्तर **एते० इत्यादि** श्लोक से दिया गया हैं ।।३५।।

**दिष्ट्यागतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे । उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबन्धुभिररिन्दम ॥३६॥**

**अन्वयः**— अरिन्दम् ! दिष्ट्या आगतोऽसि ते भद्रम् ग्राम्यान् कामान् अभीप्ससेतान् ते अहं स्वबन्धुभि उद्वहिष्यामि॥३६॥

**अनुवाद**— हे अपने शत्रुओं का दमन करने वाले सौभाग्य वशात् आप यहाँ पधारे हैं, आपका मङ्गल हो! आप को विषय भोगों की इच्छा अपने इन बन्धुओं के साथ मैं उसकी पूर्ति करती रहूँगी ॥३६॥

### भावार्थ दीपिका

आस्तां नामगोत्रादि, यदत्रागतोऽसि एतद्दिष्ट्या भद्रं तावत् । ग्राम्यानिन्द्रियग्रामार्हान् । उद्वहिष्यामि संपादयिष्यामि स्वबन्धुभिः सखिभिः सखीभिश्च ॥३६॥

### भाव प्रकाशिका

नाम और गोत्र आदि की बातों को छोड़िए । आप मेरे सौभाग्यवशात् यहाँ पधारे हैं, आपका मङ्गल हो। आपको मैं इन्द्रिय समूह के योग्य विषयों का सम्पादन अपने इन मित्रों और सखियों के द्वारा करती रहूँगी ॥३६॥

**इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो । मयोपनीतान्गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥३७॥**

**अन्वयः**— विभो इमां पुरीं नवमुखीं पुरीं त्वम् मयोपनीतान् कामभोगान् गृह्णानः शतं समाः अधितिष्ठस्व ॥३७॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप इस नव द्वारों वाली नगरी में मेरे द्वारा उपस्थापित अभिप्रेत भोगों को भोगते हुए सैकड़ों वर्षों तक निवास करें ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

समाः संवत्सरान् । मनुष्यदेहप्रवेशाच्छतमित्युक्तम् ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

सम शब्द संवत्सर का वाचक है । मनुष्य देह में प्रवेश करने के कारण सौ वर्ष कहा गया है ॥३७॥

**कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम् । असंपरायाभिमुखमश्वस्तनविदं पशुम् ॥३८॥**

**अन्वयः**— त्वदन्यं अरतिज्ञम्, अकोविदम्, असम्परायाभिमुखम्, अश्वस्तनविदं कं पशुम् रमये ॥३८॥

**अनुवाद**— आपको छोड़कर, रतिजन्य सुख से अनभिज्ञ, अनैष्ठिक, अनिषिद्ध सुख का भी परित्याग करने वाले, परलोक चिन्ता से रहित, कल मुझे यह करना है इस प्रकार की चिन्ता से रहित अतएव पशु के समान रहने वाले किसी दूसरे के साथ मैं कैसे रमण करूँगी ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तिस्वभावत्वान्निवृत्तिनिन्दापूर्वकं तत्सङ्गमभिनन्दति कमिति पञ्चभिः । त्वत्तोऽन्यं कं नु रमये । अरतिज्ञं नैष्ठिकम्। अकोविदमनिषिद्धसुखत्यागिनम् । संपरायो मृत्युस्तदनभिमुखं परलोकचिन्ताशून्यम् । अश्वस्तनविदं श्व इदं कर्तव्यमितीह लोकचिन्ताशून्यम् । अतएव पशुतुल्यम् ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

प्रवृत्ति स्वभाव वाली होने के कारण वह सुन्दरी निवृत्ति मार्ग की निन्दा करती हुई पुरञ्जन के सङ्गम का अभिनन्दन पाँच श्लोकों में करती है । वह कहती है कि आपको छोड़कर मैं किसी दूसरी के साथ कैसे रमण करूँगी? वह तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी होने के कारण रति जन्य सुख को जानेगा ही नहीं, वह अनिषिद्ध सुख का भी त्याग करने वाला होगा, वह परलोक के विचार से रहित होगा और कल मुझ यह काम करना है इस बात को भी ध्यान नहीं रखने वाला पुरुष तो पशु के समान है । उसके साथ मैं कैसे रमण करूँगी ?॥३८॥

**धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानन्दोऽमृतं यशः । लोका विशोका विरजा यान्न केवलिनो विदुः ॥३९॥**

**अन्वयः**— अत्र हि धर्मः अर्थकामौ, प्रजानन्दः अमृतं यशः, विशोका विरजाः लोकाः यान् केवलिनः न विदुः ॥३९॥

**अनुवाद**— इस गृहस्थाश्रम मे ही धर्म, अर्थ, काम, प्रजाजन्य सुख, मोक्ष, यश तथा दिव्य लोकों की प्राप्ति हो सकती, निवृत्तिमार्गानुयायी यतिजन उसको नहीं जानते हैं ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

अत्र गार्हस्थ्ये । प्रजानन्दः पुत्रसुखम् । अमृतं मोक्षः । केवलिनो यतयः ॥३९॥

**भाव प्रकाशिका**

इस गृहस्थाश्रम में ही पुत्र जन्य सुख मिलता हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है । यति जनों को गार्हस्थ्य में प्राप्त होने वाले सुख का पता ही नहीं होता है ॥३९॥

**पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह । क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः ॥४०॥**

**अन्वयः**— पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानाम् आत्मनः यः अस्मिन् भवे यद् गृहाश्रमः तत् क्षेम्यं शरणं वदन्ति ॥४०॥

**अनुवाद**— महापुरुषों का कहना है कि पितरों देवताओं और ऋषियों का मनुष्यों का और सभी प्राणियों का और अपना भी कल्याण गृहस्थाश्रम में ही है ॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

गृहाश्रम इति यदेतत्क्षेमार्हं शरणमाश्रयं वदन्ति ॥४०॥

**भाव प्रकाशिका**

गृहास्थाश्रम को ही कल्याण के योग्य आश्रम कहते हैं ॥४०॥

**का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् । न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम् ॥४१॥**

**अन्वयः**— हे वीर का नाम विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् प्राप्तं प्रियं पतिम् मादृशी त्वादृशं न वृणीत ॥४१॥

**अनुवाद**— हे वीर कौन मुझ जैसी नारी होगी जो विख्यात उदार, देखने में सुन्दर प्राप्त हुए तुम जैसे पति का वरण नहीं करेगी ॥४१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥४१॥

**कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ।**
**योऽनाथवर्गाधिमल घृणोद्धतस्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम् ॥४२॥**

**अन्वयः**— हे महाभुज ! ते भुवि भोगिभोगयोः भुजयो कस्याः स्त्रियः मनः न सज्जेत । यः घृणोद्धतस्मितावलोकेन अनाथवर्गाधिमलं अपोहितुम् चरति ॥४२॥

**अनुवाद**— महाबाहो ! इस पृथिवी पर आपकी सर्प जैसी गोल तथा कोमल भुजाओं में स्थान प्राप्त करने के लिए किस रमणी का मन नहीं ललचायेगा ? आप तो मुस्कान मिश्रित करुणापूर्ण दृष्टि से मुझ जैसी अनाथाओं के मानसिक संताप को दूर करने के लिए पृथिवी पर विचरा करते हैं ॥४२॥

**भावार्थ दीपिका**

भोगिभोगयोः सर्पदेहाकारयोस्तव भुजयोर्यत्र सज्जेदेवंभूतं कस्याः स्त्रिया मनः स्यान्न कस्या अपि । यो भवाननाथवर्गा दीनस्तोमास्तेषामाधिमलमत्यर्थपमोहितुं सर्वत्र चरति । केनापोहितुम् । घृणयोऽतोद्धतिशयितो यः स्मितपूर्वकोऽवलोकस्तेन।॥४२॥

**भाव प्रकाशिका**

सर्प के देह के आकार वाले भुजाओं में स्थान प्राप्त करने के लिए किस स्त्री का मन नहीं ललचायेगा ? जो आप मुस्कान निर्मित कृपापूर्ण अवलोकन के द्वारा मुझ जैसी अनाथ स्त्रियों के मानसिक संताप को दूर करने के ही लिए इस पृथिवी पर विचरण करते हैं ।।४२।।

नारद उवाच

**इति तौ दम्पती तत्र समुद्य समयं मिथः । तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ।।४३।।**

**अन्वयः**— राजन् इति द्वौ दम्पती मिथः समयं समुद्य तां पुरीं प्रविश्य शतं समाः मुमुदाते ।।४३।।

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे राजन् ! इस तरह से वे दोनों पति पत्नी परस्पर में एक दूसरे की बात का समर्थन करके उस नगरी में प्रवेश करके सौ वर्षों तक भोगों को भोगे ।।४३।।

**भावार्थ दीपिका**

समुद्य समुदीर्य । समाः संवत्सरान् ।।४३।।

**भाव प्रकाशिका**

समुद्य पद का अर्थ है कहकर और समाः का अर्थ है संवत्सरों तक ।।४३।।

**उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः । क्रीडन्परिवृतः स्त्रीभिर्हृदिनीमाविशच्छुचौ ।।४४।।**

**अन्वयः**— तत्र तत्र च गायकैः ललितं गीयमानः शुचौः स्त्रीभिः परिवृतः क्रीडन् हृदिनीम् आविशत् ।।४४।।

**अनुवाद**— गायक गण स्थान-स्थान पर उस राजा पुरञ्जन की स्तुति करते थे और ग्रीष्म ऋतु में वह स्त्रियों से घिरा हुआ सरोवर में प्रवेश करके जल क्रीडा करता था ।।४४।।

**भावार्थ दीपिका**

तत्र जाग्रदवस्थां संक्षेपेणाह–उपगीयमान इति । सुषुप्तावस्थामाह । हृदिनीं हृदयाकाशं स्वापस्थानम् । शुचौ निदाघे।।४४।।

**भाव प्रकाशिका**

उप गीयमानः इत्यादि के द्वारा जीव की जाग्रदावस्था का वर्णन किया गया है । हृदिनीम् इत्यादि के द्वारा उसकी सुषुप्तावस्था का वर्णन किया गया है । हार्दाकाश ही स्वापस्थान है । शुचौ पद का अर्थ ऋष्म काल में है ।।४४।।

**सप्तोपरिकृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः । पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ।।४५।।**

**अन्वयः**— तस्याः पुरः उपरिसप्त द्वारः कृता अधस्तु द्वे । तस्यां यः कश्चनेश्वरः तस्य पृथक् विषय गत्यर्थम् ।।४५।।

**अनुवाद**— उस पुरी के ऊपर की ओर सात द्वार बनाये गये थे और नीचे की ओर दो द्वार बनाये गये थे । उस पुरी में जो कोई राजा होता था उसके अलग-अलग देशों में जाने के लिए ये द्वारा बनाये गये थे ।।४५।।

**भावार्थ दीपिका**

इदानीं नवद्वारप्रदर्शनपूर्वकं जाग्रदवस्थां प्रपञ्चयति–सप्तेति यावदध्यायसमाप्ति । तस्याः पुरः उपरि कृता द्वारः सप्त। वृता इति पाठे संवृताः। नेत्रे नासिके श्रोत्रे मुखं चेति सप्त। अधो द्वे द्वारौ गुदलिङ्गे। यः कश्चनेति आत्मनः सम्यगविज्ञानादनियतत्वाच्च।।४५।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में नव द्वारों के निरूपण पूर्वक जीव के जाग्रदावस्था का वर्णन इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त

करते हैं। उस पुरी के ऊपर वाले भाग में सात द्वार बनाये गये हैं— कृता के स्थान में वृतापाठ होने पर अर्थ संवृता होगा। दो नेत्र, दो नाक, दो श्रोत्र और मुख ये ऊपर के सात द्वार हैं। गुदा और लिङ्ग ये दो नीचे के मार्ग हैं। आत्मा का अच्छी तरह से ज्ञान नहीं होने के कारण और अनिश्चित होने के कारण यः कश्चन कहा गया है ॥४५॥

**पञ्चद्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा। पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥४६॥**

**अन्वयः**— पञ्च द्वारः पौरस्त्याः एका दक्षिणा, तथा च उत्तरा, द्वे पश्चिमे च हे नृप एषां नामानि वर्णये ॥४६॥

**अनुवाद**— उनमें पाँच द्वार पूर्वाभिमुख थे एक दक्षिणाभिमुख और एक उत्तराभिमुख तथा दो पश्चिमाभिमुख राजन् मैं उन सबों के नामों का मैं वर्णन करता हूँ ॥४६॥

### भावार्थ दीपिका

तासु सप्तसु पञ्चद्वारः पौरस्त्याः पूर्वदिग्भवाः ॥४६॥

### भाव प्रकाशिका

उन सात द्वारों में पाञ्चद्वार पूर्वदिशा में थे ॥४६॥

**खद्योताविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते। विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥४७॥**

**अन्वयः**— खद्योताविर्मुखीच प्राग्द्वारौ एकत्र निर्मिते। ताभ्यां द्युमत्सखः विभ्राजितं जनपदं याति ॥४७॥

**अनुवाद**— खद्योता और आविर्मुखी नामक दो पूर्व के द्वारा एक ही स्थान पर निर्मित थे। उन द्वारो से पुरञ्जन अपने मित्र द्युमान् के साथ विभ्राजित नामक जनपद में जाता था ॥४७॥

### भावार्थ दीपिका

खद्योतवदल्पप्रकाशा वामनेत्ररूपा। आविः प्रकटं मुखं यस्याः सा बहुप्रकाशा दक्षिणनेत्रलक्षणा 'तस्माद्दक्षिणेर्ध आत्मनो वीर्यवत्तरः' इति श्रुतेः स्वानुभवाच्च तत्र प्रकाशाधिक्यम्। एकत्र संलग्ने। विभ्राजितं रूपम्। द्युमत्सखश्चक्षुःसहितः ॥४७॥

### भाव प्रकाशिका

जुगुनु के समान अल्प प्रकाशवान् होने के कारण वामनेत्र रूपी द्वार को खद्योता कहा गया है। अर्थात् जिसका मुख प्रकट है वह बहुत प्रकाश वाले दाहिने नेत्र को अविमुखी कहा गया है। श्रुति भी कहती है— **तस्माद् दक्षिणार्ध आत्मनो वीर्यवत्तरः** अर्थात् शरीर का दाहिना भाग अधिक बलवान् होता है। अपने प्रभाव के कारणभी दाहिने नेत्र में अधिक प्रकाश होता है। एकत्र निर्मित का अर्थ एक ही जगह संलग्न। विभ्राजितं जनपदं का अर्थ है रूप नामक विषय को, याति अर्थात् ग्रहण करता है। **द्युमत्सखः** का अर्थ है नेत्रों के साथ ॥४७॥

**नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते। अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम् ॥४८॥**

**अन्वयः**— नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारौ एकत्र निर्मिते ताभ्यां अवधूतसखः सौरभम् विषयं याति ॥४८॥

**अनुवाद**— पूर्व के नलिनी और नालिनी नामक दो द्वार एक ही स्थान पर निर्मित हैं उन दोनों से अवधूत नामक मित्र के साथ सौरभ नामक प्रदेश में जाता था ॥४८॥

### भावार्थ दीपिका

नलनालशब्दौ छिद्रवचनौ। तद्वती नलिनी नालिनी च वामदक्षिणनासिके। अत्रापि संज्ञाभेदादेव कार्ये न्यूनाधिक्यं पूर्ववज्ज्ञेयम्। अवधूतो वाय्वधिष्ठितो घ्राणः सौरभं गन्धम् ॥४८॥

### भाव प्रकाशिका

नाल शब्द और नल शब्द दोनों छिद्र के वाचक है। छिद्र से युक्त होने के कारण वायीं और दाहिनी नाक को क्रमशः नलिनी और नालिनी कहा गया है नाम के भेद के कारण इन दोनों के कार्य में भी नेत्र के ही समान न्यूनाधिक्य समझना चाहिए। वायु नामक देवता से अधिष्ठित होने के कारण घ्राण को अवधूत सख कहा गया है। उस घ्राण के मार्ग से पुरञ्जन सौरभ प्रदेश में जाता था और गन्ध को ग्रहण करता था ।।४८।।

**मुख्या नाम पुरस्ताद्वास्तयापणबहूदनौ । विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः ।।४९।।**

**अन्वयः**— मुख्या नाम पुरस्तात द्वाः तयापुरराड् रसज्ञविपणान्वितः आपण बहूदन विषयौ याति ।।४९।।

**अनुवाद**— पूर्व की ओर मुख नामक जो द्वार है उससे राजा पुरञ्जन रसज्ञ और विपण के साथ आपण और बहूदन नामक प्रदेशों में जाता था ।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

मुख्या प्रधाना आस्यम्। आपणो भाषणम्। बहूदनश्चित्रमन्नम्। बह्वोदन इत्यनुक्तिः परोक्षवादत्वाय। रसज्ञं रसनेन्द्रियः विषणो वागिन्द्रियं ताभ्यामन्वितः ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

पूर्व की ओर जो मुख नामक प्रधान द्वार है उससे वह आपण अर्थात् भाषण और बहुदन अनेक प्रकार के अन्न खाने का काम करता था। इस कार्य में रसज्ञ अर्थात् जिह्वा और विपण अर्थात् वागिन्द्रिय उसके साथ रहते थे ।।४९।।

**पितृहूर्नृप पुर्या द्वार्दक्षिणेन पुरंजनः । राष्ट्रं दक्षिणपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ।।५०।।**

**अन्वयः**— हे नृप ! पूर्याः दक्षिणेन द्वाः पितूहू पुरञ्जनः श्रुतधरान्वितः दक्षिण पाञ्चालं राष्ट्रं याति ।।५०।।

**अनुवाद**— हे राजन नगर का जो दक्षिण ओर का पितृहू नामक द्वार था उसमें से वह श्रुतधर के साथ दक्षिण पञ्चाल नामक राष्ट्र में जाता था ।।५०।।

### भावार्थ दीपिका

दक्षिणेनेति न तृतीया, किंतु दक्षिणस्यां दिशीत्यस्मिन्नर्थे तद्धितोऽयमनप्प्रत्ययोऽव्ययसंज्ञः। एवमुत्तरेणेति। अयमर्थः। पञ्चानां विषयाणामन्यतोऽनवगतानां प्रकाशायालमिति पञ्चालं शास्त्रम्। श्रवणकाले च बलाधिक्याद्दक्षिणकर्णः प्रथमं प्रवर्तते। शास्त्रे च प्रथमं श्रोतव्य कर्मकाण्डमित्येतावता साम्येन प्रवृत्तसंज्ञस्य कर्मकाण्डस्य दक्षिणकर्णेन श्रवणमिष्यते। अतस्तदर्थमनुष्ठाय पितृभिराहूतः पितृलोकप्रापकं पितृयानं प्रपद्यते तदनेन प्रकारेण पितॄणामाह्वानमनेन भवतीति पितृहूर्दक्षिणः कर्णः। एवं तद्वैपरीत्येनोत्तरः कर्णो देवहूः। तथाच व्याख्यास्यति–'पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः। प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम्। पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत्' इति ।।५०।।'

### भाव प्रकाशिका

दक्षिणेन में तृतीया विभक्ति नहीं है, अपितु दक्षिण दिशा में इस अर्थ में दक्षिण शब्द से एनप ह्द्धित प्रतयय करके यह अव्यय संज्ञक शब्द है। इसीतरह से उत्तरेण को भी एनप् प्रत्ययान्त समझना चाहिए। कहने का अभिप्राय है कि दूसरे माध्यम से जो नहीं जाने गये हैं उन पाञ्चों विषयों का प्रकाशन करने में समर्थ इस अर्थ में व्युत्पन्न पञ्चाल शब्द शास्त्र का बोधक है। श्रवण काल भी अधिक बलवान् होने के कारण दाहिना कान पहले प्रवृत्त होता है। पहले शास्त्र को सुनना चाहिए। कर्म काण्ड के साथ समता होने के कारण कर्मकाण्ड को दाहिने कान से सुनना चाहिए। अतएव कर्मकाण्ड के अर्थो का अनुष्ठान करके पितरों के लोक को प्रदान करने वाले जीव पितृयान

को प्राप्त करता है । इस तरह से पितरों का आह्वान चूकि दाहिने कान से होता है । इसको पितृहू कहते हैं । इसीतरह उसके विपरीत उत्तर कान को देवहू कहते हैं । इसीतरह से व्याख्या भी करेगे । दाहिने कान को पितृहू कहते हैं और उत्तर (वाम) कान को देवहू कहते हैं । प्रवृत्त और निवृत्त दोनों प्रकार के शास्त्र पञ्चाल संज्ञक है। श्रुतधर श्रोत्र के द्वारा जीव पितृयान और देवयान को प्राप्त करता है ।।५०।।

**देवहूर्नाम पुर्याद्वा उत्तरेण पुरंजनः । राष्ट्रमुत्तारपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ।।५१।।**

**अन्वयः**— पूर्याः उत्तरेणद्वाः देवहूः नाम पुरञ्जनः श्रुतधरान्वितः उत्तर पञ्चालं राष्टं श्रुतधरान्वितः याति ।।५१।।

**अनुवाद**— पुरी के उत्तर द्वार का नाम देवहूः था, उससे पुरञ्जन उत्तर पञ्चाल नामक राष्ट्र में जाता था ।।५१।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।५१।।

**आसुरी नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः । ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ।।५२।।**

**अन्वयः**— पश्चाद् द्वाः आसुरी नाम तया पुरञ्जनः दुर्मदेन समन्वितः ग्रामकं नाम विषयं याति ।।५२।।

**अनुवाद**— पुरी के पश्चिम द्वारा नाम आसुरी था उससे पुरञ्जन दुर्मद के साथ ग्रामक नामक राष्ट्र में जाता था।।५२।।

**भावार्थ दीपिका**

असुरा इन्द्रियारामास्तेषामियमासुरी शिश्नद्वाः । ग्रामकं ग्रामस्थजनानां कं सुखं व्यवायम् । दुर्मदेन गुह्येन्द्रियेण ।।५२।।

**भाव प्रकाशिका**

आसुरी इन्द्रियों में ही रमण करने वाले होते हैं । असुरो की इस अर्थ में आसुरी रूप बनता है । अर्थात् लिङ्ग द्वार उस द्वार से वह ग्राम में रहने वाले लोगों को प्राप्त होने वाले सुख (व्यवाय) मैथुन अपनी गुप्तेन्द्रिय द्वारा करता था ।।५२।।

**निर्ऋतिर्नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः । वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ।।५३।।**

**अन्वयः**— निऋतिः नाम पश्चात् द्वाः पुरञ्जनःतया लुब्धकेन समन्वितः वैशसं नाम विषयं याति ।।५३।।

**अनुवाद**— पश्चिम का जो दूसरे दरवाजे का नाम निऋति था उससे वह लुब्धक के साथ वैशस नामक राष्ट्र को जाता था ।।५३।।

**भावार्थ दीपिका**

निर्ऋतिर्नाम गुदो मृत्युद्वारत्वात् । वैशसं मलविसर्गम् । लुब्धकेन पायुना । तेनोऽक्रान्तस्य दुःखप्राप्तेर्लुब्धकसाम्यम्।।५३।।

**भाव प्रकाशिका**

मृत्यु के द्वारा होने के कारण गुद को निऋति कहते है । मल त्याग को वैशस कहते हैं । लुब्धक पायु को कहते हैं । इसलिए मरे हुए दुःख प्राप्ति के कारण लुवधक के समान हो जाता है ।।५३।।

**अन्धावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ । अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ।।५४।।**

**अन्वयः**— अमीषां पौराणां निवाक् पेशस्कृतौ अन्धौ, अक्षणवताम् अधिपति ताभ्यां याति करोति च ।।५४।।

**अनुवाद**— इस पुरी के सभी नागरिकों में दो व्यक्ति अन्धे थे, निर्वाक् और पेशस्कृत् । नेत्र वालों का स्वामी पुरञ्जन इन्हीं दोनों की सहायता से जहाँ कहीं भी जाता था और सभी कार्यो को करता था ।।५४।।

**भावार्थ दीपिका**

अमीषां मध्ये । निर्वाक् पादः, पेशस्कृत् हस्तः, तावुभावन्धौ, छिद्राभावात्, स्वतो ज्ञानक्रियाशक्त्यभावाच्च । अक्षण्वतामिन्द्रियवतां देहानामधिपतिः पुरंजनः । त्वगिन्द्रियस्यानुक्तिः सर्वेष्वन्तर्भावात् ।।५४।।

**भाव प्रकाशिका**

उस पुरी के सभी नागरिकों में निर्वाक् अर्थात् पैर और पेशस्कृत अर्थात् हाथ ये दोनों अन्धे थे क्योंकि इनमें कोई छिद्र नहीं था। स्वतः इनमें ज्ञान क्रिया करने, की शक्ति नहीं थी। पुरञ्जन इन्द्रियों वाले शरीरों का स्वामी या सबों में अन्तर्भाव हो जाने के कारण त्वगिन्द्रिय का वर्णन नहीं किया गया है ॥५४॥

**स यर्ह्यन्तःपुरगतो विषूचीनसमन्वितः। मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥५५॥**

**अन्वयः**— स यर्हि विषूचीनसमन्वितः अन्तःपुरगतः जायात्मजोद्भवम् मोहं प्रसादं, हर्षं वायाति ॥५५॥

**अनुवाद**— वह जब कभी अपने सेवक विषूचीन के साथ अन्तःपुर में जाता था तो उसे पत्नी और पुत्रों के कारण हर्ष प्रसन्नता और मोह आदि विकारों का अनुभव करना पड़ता था ॥५५॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्तःपुरं हृदयं गतः। विषूचीनं सर्वतोमुखं मनः। मोहप्रसादहर्षास्तमःसत्त्वरजः कार्याणि। जाया बुद्धिः आत्मजा इन्द्रियपरिणामास्तदुद्भवम् ॥५५॥

**भाव प्रकाशिका**

अन्तःपुर शब्द से हृदय को कहा गया है। विषूचीनम् अर्थात् मन को मोह तमोगुण का कार्य है, प्रसाद सत्त्व गुण का कार्य है और हर्ष रजोगुण का कार्य है। जाया शब्द से बुद्धि को और आत्मज शब्द से इन्द्रियों के परिणामों को कहा गया है ॥५५॥

**एवं कर्मसु संसक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः। महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥५६॥**

**अन्वयः**— एवं कर्मसु संसक्तः कामात्मा, वञ्चितः अबुधः महिषी यत् यत् ईहेत तत् तत् एव अन्ववर्तत ॥५६॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से उसका चित्त अनेक प्रकार के कर्मों को करने में लगा रहता था, काम परायण होने के कारण वह अज्ञानी अपनी पत्नी के द्वारा ठगा गया था ॥५६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५६॥

**क्वचित्पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः। अश्नन्त्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षति ॥५७॥**

**अन्वयः**— क्वचित् पिबन्त्यां मदबिह्वलः सः मदिरां पिबति अशनत्यां क्वचित् अश्नाति, जक्षत्यां सह जक्षति ॥५७॥

**अनुवाद**— जब कभी भी वह मदिरा पीती थी तो वह भी मदमत्त होकर मदिरा पान करता था, जब वह भोजन करती थी तो वह भी भोजन करने लग जाता था और वह जब कुछ चबाती थी तो वह भी उसके साथ उसी वस्तु को चबाने लग जाता था ॥५७॥

**भावार्थ दीपिका**

जक्षत्यां भक्षयन्त्याम् ॥५७॥

**भाव प्रकाशिका**

जक्षत्याम् पद का अर्थ है भक्षण करने पर ॥५७॥

**क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित्। क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनुजल्पति ॥५८॥**

**अन्वयः**— क्वचिद् गायन्त्याम् गायति, रुदत्या रुदति, क्वचित् हसन्त्याम् हसति जल्पन्यांच अनुजल्पति ॥५८॥

**अनुवाद**— उसके कही गाने पर गाने लगता था, रोने पर रोने लगता था हँसने पर ॥५८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५८॥

**क्वचिद्धावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यामनुतिष्ठति । अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥५९॥**

**अन्वयः**— क्वचिद् धावन्त्याम् धावति, तिष्ठन्त्याम् अनुतिष्ठति, शयानायाम् अनुशेते क्वचित् आसतीम् आस्ते ॥५९॥

**अनुवाद**— कभी उसके दौड़ने पर दौड़ने लगता था, खड़ा होने पर खड़ा होता था सोने पर उसके पीछे सो जाता था और बैठने पर बैठ जाता था ॥५९॥

**भावार्थ दीपिका**

आसतीमासीनाम् ॥५९॥

**भाव प्रकाशिका**

आसतीम् अर्थात् बैठ जाने पर ॥५९॥

**क्वचिच्छृणोति शृण्वत्यां पश्यन्त्यामनुपश्यति । क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित्॥६०॥**

**अन्वयः**— क्वचित् शृण्वन्त्यां शृणोति, पश्यन्तीम् अनुपश्यति, क्वचित् जिघ्रन्त्याम् अनु जिघ्रति क्वचित् स्पृशत्यास्पृशति ॥६०॥

**अनुवाद**— कभी उसके सुनने पर सुनने लगता था, कभी उसके देखने पर देखने लगता था, कभी सूंघने पर सूंघने लगता था और कभी उसके स्पर्श करने पर स्पर्श करने लगता था ॥६०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥६०॥

**क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् । अनुहृष्यति हृष्यन्त्यां मुदिताभनुमोदते ॥६१॥**

**अन्वयः**— क्वचित् जायां शोचतीं दीनवत् अनुशोचति हृष्यन्त्याम् अनहृष्यति, मुदिताम् अनुमोदते ॥६१॥

**अनुवाद**— जब कभी उसकी प्रिया शोकाकुल होती तो वह भी अत्यन्त दीन के समान शोक करने लगता था, जब वह प्रसन्न होती थी तो वह भी प्रसन्न हो जाता था और उसके आनन्दित होने पर वह भी आनन्दित हो जाता था ॥६१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥६१॥

**विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः । नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥६२॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

**अन्वयः**— एवं महिष्या विप्रलब्ध सर्वप्रकृति वञ्चितः अज्ञः न इच्छन् क्लैब्यात् क्रीडामृगः यथा अनुकरोति ॥६२॥

**अनुवाद**— इस तरह अपनी पत्नी से ठगे गये उस अज्ञ को सारी प्रजा ही ठगने लगी । वह अपनी नपुंसकता के कारण नहीं चाहकर भी अपनी पत्नी का अनुकरण करने के लिए क्रीडामृग के समान विवश बन गया ॥६२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पुरञ्जनोपाख्यान के पचीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।**

**भावार्थ दीपिका**

सर्वासङ्गत्वादिलक्षणा प्रकृतिः स्वभावो वञ्चितो यस्य । सर्वथा प्रकृत्या वञ्चित इति वा । नेच्छन् अनिच्छन् । क्लैब्यत् पारवश्यात् ॥६२॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।**

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह सबों से सङ्ग राहित्य रूप स्वभाव वाला वह ठगा गया। अथवा पूर्ण रूप से वह प्रकृति से वञ्चित गया। नेच्छन् अर्थात् नही चाह कर भी अपनी परवशता के कारण स्त्री का वह क्रीडा मृग बना था॥६२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराणके चतुर्थ स्कन्धकी भावार्थदीपिका नाम की टीका के पच्चीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूण हुई ।।२५।।**

# छब्बीसवाँ अध्याय

## राजा पुरञ्जन का आखेट के लिए वन में जाना और रानी का क्रुद्ध होना

नारद उवाच

**स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् । द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥१॥**
**एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम् । पञ्चप्रहरणं सप्तवरूथं पञ्चविक्रमम् ॥२॥**
**हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माऽक्षयेषुधिः । एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थमगाद्वनम् ॥३॥**

**अन्वयः—** स एकदा महेष्वासः सः आशुगम पञ्चाश्वं, द्वीषं, द्विचकम्, एकाक्ष त्रिवेणुम्, पञ्च बन्धुरम् एकरश्मि, एकदमनम् एकनीडम् द्विकूबरम्, पञ्च प्रहरणम् सप्तवरूथम् पञ्चविक्रमम, हैमोपस्करम् स्वर्ण वर्मा, अक्षयेषुधीः एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थम् वनम् अगात् ॥१-३॥

### नारदजी ने कहा

**अनुवाद—** राजन् ! एक दिन वह राजा पुरञ्जन अपने विशाल धनुष लेकर शीघ्रगामी जिसमें पाञ्च अश्व जुते थे ऐसे दो ईषा, दण्ड वाले, दो चक्को वाले, दो कूबर घोड़ों को बांधने के स्थान, तीन ध्वज दण्ड, पाँच डोरी, एक लगाम, एक सारथि, एक बैठने के स्थान, दो जूए, पाँच आयुध, सात आवरण से युक्त सुवर्णालङ्कारों से अलंकृत रथ पर चढ़कर सुवर्ण का कवच धारण किए अक्षय तुणीर (तरकस) को लेकर ग्यारहवें सेनापति के साथ पञ्चप्रस्थ वन में गया ॥१-३॥

### भावार्थ दीपिका

षड्विंशे मृगयाव्याजात्स्वप्रजागरणोक्तिः । सद्बुद्धित्यागयोगाभ्यां संसृतिः सा प्रपञ्च्यते । तदेवमात्मन उपाधिकृतां सुषुप्तावस्थां जाग्रदवस्थां चोक्त्वेदानीं स्वप्नावस्थामाह- स एकदेति दशभिः । महानिष्वासो धनुः कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यभिनिवेशो यस्य स रथमारुह्य पञ्चप्रस्थं वनगमादिति तृतीयेनान्वयः । रथं तदानीमेव विधृतं स्वप्नदेहम्, जाग्रद्देहस्य शतसंवत्सरोपभोग्यपुरत्वेनोक्तत्वात्। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाण्यश्वा यस्य । आशुगं शीघ्रगतिम् । द्वे अहंताममते ईषे दण्डिके यस्य । द्वे पुण्यपापे चक्रे यस्य । एकं प्रधानमक्षो यस्य । त्रयो गुणा वेणवो ध्वजा यस्य । पञ्च प्राणा बन्धुराणि बन्धनानि यस्य । एकं मनो रश्मिः प्रग्रहो यस्य, एका बुद्धिर्दमनः सूतो यस्य तं च तं च । एकं हृदयं नीडं रथिन उपवेशस्थानं यस्मिन् । द्वौ शोकमोहौ कूबरौ युगबन्धनस्थानं यस्य । पञ्च शब्दादयो विषयाः प्रह्रियन्ते प्रक्षिप्यन्ते यस्मिन् । अस्य व्याख्यानं भविष्यति पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेप इति । सप्त धातवो वरूथा रक्षार्थं चर्माद्यावरणानि यस्य । पञ्च कर्मेन्द्रियाणि विक्रमा गतिप्रकारा यस्य । हैमोपस्करं सौवर्णाभरणम् । स्वर्णवर्मा, वर्म कवचम्, रजोगुणावृतः । अक्षयेषुधिः, इषुधिर्निषङ्गः, अनन्तवासनाहंकारोपाधिः । एकादशो मनोरूपश्चमूनाथः सेनापतिर्यस्य । वासनामयस्य मनसः प्रग्रहत्वं संकल्पविकल्पात्मकस्य बृहद्बलत्वेन वक्ष्यमाणस्य चमूनाथत्वमिति विभागः । पञ्च शब्दादयो विषयाः प्रस्थाः सावनो यस्मिंस्तद्वनं भजनीयं देशमगात् ॥१-३॥

**भाव प्रकाशिका**

छब्बीसवें अध्याय में आखेट के व्याज से स्वाप्नावस्था और जागरावस्था का वर्णन किया गया है। सद्बुद्धि के त्याग और योग के द्वारा होने वाली सृष्टि का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस तरह से उपाधिवशात् आत्मा की होने वाली सुषुप्तावस्था और जग्रदावस्था का वर्णन करके अब स्वप्नावस्था का वर्णन **स एकदा० इत्यादि** दश श्लोकों द्वारा नारदजी करते हैं। कर्तृत्व भोक्तृत्व इत्यादि के अभिनिवेश रूपी महान् धनुष से युक्त राजा पुरञ्जन रथ पर चढ़कर पञ्चप्रस्थ वन में गया। इस तरह से तीसरे श्लोक से अन्वय है। यहाँ पर स्वाप काल में धारण किए जाने वाले देह को हीरथ कहा गया है। क्योंकि जाग्रदावस्था में रहने वाले देह को त्रो सौ वर्षों तक भोगे जोने वाले पुरी के रूप में वर्णन किया जा चुका है। स्वापकालिक शरीर रथ के पाञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ ही अश्व हैं। वह रथ शीघ्रगामी है। अहङ्कार और ममङ्कार ये ही दोनों इस रथ के ईषादण्ड हैं। पाप और पुण्य ही उस रथ के दोनों चक्के हैं। केवल प्रधान (प्रकृति) ही उसके अक्ष हैं। सत्त्वादि तीनों गुण ही उसके ध्वजा के दण्ड हैं। उस रथ के पाञ्चो प्राण ही बन्धन हैं। एक मन ही उस रथ का लगाम है। और एक बुद्धि उस रथ का सारथि है। एक ही हृदय रूपी नीड उस रथ में बैठने का स्थान है। शोक और मोह ये दोनों कूबर अर्थात् घोड़ों के बाँधने के स्थान हैं। रूप रसादि पाँचों विषय ही उसमें आयुध हैं जिनका प्रहार होता हैं। इसकी व्याख्या आगे चलकर पञ्चेन्द्रियों के विषयों का प्रक्षेप कहकर की जायेगी। शरीर में होने वाली सात प्रकार कीजो धातुएँ हैं वे ही उसकी रक्षा के लिए वर्म इत्यादि आवरण हैं। पाञ्च कर्मेन्द्रियाँ उस रथ के गति के प्रकार है। वह रथ सुवर्णालङ्कारों से अलंकृत था। राजा पुरञ्जन सुवर्ण का कवच धारण किए था। अनन्त वासनाएँ और अहङ्कार रूपी उपाधिया उसके अक्षय तुणीर था। उस राजा की सेना का सेनापति मन था। वासना मय मन को प्रग्रह लगाम कहा गया है और सङ्कल्प विकल्पात्मक मन जिसका वर्णन बृहदबल रूप से किया जाना है वही सेनापति है। जिस पञ्चप्रस्थ वन में वह गया उसके शब्दआदि पाञ्चो विषय ही शिखर हैं ॥१-३॥

**चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः । विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥४॥**

**अन्वयः**— अतदर्हाम् जायाम् विहाय मृगव्यसनलालसस दृप्तः सन् आतेषु कामुर्कः तत्र मृगयां चचार ॥४॥

**अनुवाद**— नहीं छोड़ने योग्य भी अपनी पत्नी को छोड़कर आखेट के व्यसन की लालसा से दृप्त बना हुआ पुरञ्जन उस वन में आखेट करने लगा ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्ता गृहीता इषवो रागादिरूपाः कार्मुकं च भोगाद्यभिनिवेषरूपं येन। जायां विवेकवतीं बुद्धिं विहाय। अतदर्हां त्यागानर्हाम्। त्यागे हेतुः-मृग्यन्त इति मृगा विषयास्तेषु व्यसनं भोगासक्तिस्तेन लालसाऽतिस्पृहा यस्य ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

उसने रागादि रूपी बाणों और भागादि के अभिनिवेश रूपी धनुष को धारण कर लिया था, वह पुरञ्जन अपनी विवेक युक्त बुद्धि रूपी पत्नी को छोड़ दिया था, जबकी वह त्यागने योग्य नहीं थी, त्याग का कारण यह था कि विषयों के भोग की आसक्ति रूपी मृगया के व्यसन की बहुत अधिक लालसा थी ॥४॥

**आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः । न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥५॥**

**अन्वयः**— आसुरीं वृत्तिम् आश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः वनेषु निशितैः बाणैः वनगोचरान् न्यहनत् ॥५॥

**अनुवाद**— आसुरी वृत्ति को अपनाकर वह अत्यन्त निर्दय हो गया था और वन में अपने तीक्ष्ण बाणों से वन पशुओं को मारा ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

बाणै रागादिभिः । वनेषु भजनीयदेशेषु । वनगोचरान्भजनीयविषयान् । न्यहनत् आत्मसात्कृतवान् । कथापक्षे तु स्पष्टमेव ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

रागादि रूप बाणों से जहाँ पर भजन करना चाहिए उन प्रदेशों में भजन करने योग्य विषयों को आत्मसात् कर लिया । कथा पक्ष में इसका अर्थ स्पष्ट ही है । वह है कि आसुरी वृत्ति को अपनाकर निर्दय बने हुए राजा ने तीक्ष्ण बाणों से वन के पशुओं को मारा ।।५।।

**तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान्पशून्वने । यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ।।६।।**

**अन्वयः**— यावत् अलम् लुब्धः राजा प्रतिदृष्टेषु तीर्थेषु यावदर्थम् वनेमेध्यान् पशून वने हन्यात् इति नियम्यते ।।६।।

**अनुवाद**— यदि बहुत अधिक मांस में आसक्ति हो तो विख्यात श्राद्धादि काल में ही राजा वन में जाकर आवश्यकता से अधिक नहीं मेध्य पशुओं का वध करे ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

नन्वासुरीं वृत्तिमाश्रित्येति किमिति मृगया निन्द्यते, कथापक्षे तावद्राज्ञो विहितैव सा, अध्यात्मपक्षेऽपि जीवस्य विषयभोगो विहित एवेत्याशङ्क्याह- तीर्थेष्विति त्रिभि । अयं भव- नहि मृगया विधीयते राग प्राप्त त्वात्किंतु नियम्यते प्रवृति सङ्कोच्यते। नियममेव षडिविधं दर्शयति । अद्यलमत्यर्थ लुब्धो रागी सन् हत्यात्तर्हि तीर्थेषु श्राद्धदिष्वेव । तत्रापि प्रतिदृष्टेषु प्रख्यातेषु न नित्यश्राद्धादिषु । तत्रापि राजैव मेध्यानेव वन एवं यावदुपयोगमेवेति । एवं जीवस्य विषयसेवापि यावदुपयोगं न यथेष्टमति नियम एवेत्यर्थः ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि आसुरी वृत्ति को अपनाकर यह कहकर आप आखेट की निन्दा क्यों करते है ? कथा पक्ष में तो राजाओं के लिए आखेट का विधान है ही और अध्यात्म पक्ष में भी जीव के लिए विषयों का भोग विहित ही है । इस तरह से आशङ्का करके तीन श्लोकों द्वारा कहते हैं कहने का अभिप्राय है कि आखेट राग प्राप्त है अतएव शास्त्र आखेट का विधान नहीं करता है अपितु शास्त्र आखेट की वृत्ति को नियमित (सङ्कुचित) करता है। छह प्रकार के नियमनों का प्रतिपादन किया जा रहा है यदि मास में अत्यधिक आसक्ति हो तो श्राद्ध इत्यादि के समय में ही पशुओं को मारे । उसमें भी प्रख्यात श्राद्धादि के ही समय में मारे नित्यश्राद्ध आदि के समयमें नहीं। उसमें भी राजा ही वध करे सभी लोग नहीं । उसमें भी मेध्य पशुओं का ही सभी पशुओं का नहीं, वह भी वन में ही जाकर मारे सर्वत्र नहीं । उसमें भी जितने जीवों का वध आवश्यक हो उतने का ही वध करे उससे अधिक जीवों का नहीं । इसी तरह जीव को विषयों का सेवन भी यथोचित्त मात्रा में ही करना चाहिए यथेष्ट मात्रा में नहीं।।६।।

**य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः । कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ।।७।।**

**अन्वयः**— राजेन्द्र ! यः विद्वान् एवं नियतं कर्म कुर्वीत तेन कर्मणा ज्ञानेन स न लिप्यते ।।७।।

**अनुवाद**— राजवर्य जो इस प्रकार से शास्त्र नियत कर्मों को करता है वह ज्ञान जनक उस कर्म के द्वारा कर्मों में आसक्त नहीं होता है ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

अतो नावश्यकत्वमित्याह- य इति । एवं नियतं कर्म विद्वान् । तेनेत्युपलक्षणम् । तेनान्येन वा कर्मणैवमनुष्ठितेन यज्ज्ञानं भवति तेन ज्ञानेन हेतुना सोऽनुष्ठाता न लिप्यते ।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त छह प्रकार के नियमों के कारण प्रतीत होता है कि हिंसा करना आवश्यक नहीं है। शास्त्र नियत कर्मों को करने वाला विद्वान् तेन यह उपलक्षण है। अर्थात् उस शास्त्र नियत कर्म के अथवा दूसरे कर्म को करके वह कर्मों के बन्धन में इसलिए नहीं बँधता है कि शास्त्र विहित कर्मों को करने से ज्ञान उत्पन्न होता है और उस ज्ञान के कारण वह कर्म के बन्धनों में नहीं बँधता है ॥७॥

**अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते । गुणप्रवाहपतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥८॥**

**अन्वयः**— अन्यथा कर्म कुर्वाणः मानारूढ निबध्यते गुण प्रवाहपतितः अधः पतति ॥८॥

**अनुवाद**— मनमाना कर्मों को करने वाला मनुष्य कर्तृत्वाभिमान के कारण कर्मों के बन्धन में बँध जाता है। फलतः गुण प्रवाह रूप संसार चक्र में फँसकर अधम योनियों में जन्म लेता है ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्यथा नियमोल्लङ्घनेनान्तःकरणशुद्ध्यभावात् । कर्तृत्वाभिमानमारूढः कर्मभिरनुबध्यते, ततश्च गुणप्रवाहे पतितोऽधो व्रजति ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन करने से तो अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होने के कारण मनुष्य में कर्तृत्वाभिमान सुदृढ हो जाता है, उसके फलस्वरूप वह गुण प्रवाह रूपी संसार चक्र में फँसकर पतित हो जाता है, उसका अधम योनियों में जन्म होता है ॥८॥

**तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः । विप्लवोऽभूद्दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥९॥**

**अन्वयः**— चित्रवाजैः शिलीमुखैः निर्भिन्नगात्राणां दुःखितानां विप्लवः करुणात्मनाम् दुःसहः ॥९॥

**अनुवाद**— राजा पुरञ्जन के चित्र विचित्र पंखों वाले बाणों से जिनका शरीर छिन्न भिन्न हो गया था उन दुःखी जीवों का नाश देखकर सभी दयालु पुरुष दुःखी हो गये और वे उसे नहीं सह सके ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रासङ्गिकं परिसमाप्य पुनर्मृगयामेवानुवर्णयति–तत्रेति । चित्रा वाजाः पक्ष येषां तैः । विप्लवो नाशः करुणात्मनां कृपालूनां दुःसहः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रासङ्गिक बातों को समाप्त करके पुनः आखेट का वर्णन करते हुए नारदजी ने कहा। अनेक प्रकार के पङ्खों से युक्त बाणों से विप्लव अर्थात् नाश, करुणात्मनाम्, अर्थात् कृपालु पुरुषों के लिए असह्य ॥९॥

**शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान् । मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममध्यगात्॥१०॥**

**अन्वयः**— शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान् अन्यान् विविधान् मेध्यांश्च विनिघ्नन् श्रमम् अध्यगात्॥१०॥

**अनुवाद**— इस तरह खरगोश, सूअर, भैंसे, नीलगाय, कृष्णमृग, साही, तथा दूसरे भी बहुत से मेध्य पशुओं का वध करते-करते राजा थक गया ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥१०॥

**ततः क्षुत्तृटपरिश्रान्तो निवृत्तो गृहमेयिवान् । कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥११॥**

**अन्वयः**— ततः क्षुत्तृट परिश्रान्तः निवृत्तः गृहम् एयिवान् कृत स्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥११॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् भूख प्यास के कारण थका हुआ वह वन से लौटकर घर आया, स्नान करके तथा उचित आहार लेकर उसने विश्राम किया और उसकी थकान मिट गयी ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं स्वप्नावस्था दर्शिता, इदानीं पुनरपि विवेकवत्या बुद्ध्या रममाणस्य पुत्रादिसंततिं प्रपञ्चयिष्यन् कथासौन्दर्याय तस्याः प्रणयकुपिताया अनुनयं प्रस्तावसहितमाह-तत् इत्यारभ्य यावदध्यायसमाप्ति । एयिवान् आगतः । कृतं स्नानमुचित आहारश्च येन । संविवेश शय्यामाश्रितः ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से स्वप्नावस्था का वर्णन किया गया । अब फिर विवेक सम्पन्न बुद्धि के साथ रमण करने वाले राजा पुरञ्जन की पुत्रादि की प्राप्ति विस्तार से वर्णन करने की इच्छा से कथा के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए प्रणय कुपित पुरञ्जनी के अनुनय का वर्णन प्रस्ताव पूर्वक ततः इत्यादि श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं । एयिवान् अर्थात् आया । वह स्नान और उचित आहार को करके शय्या पर सो गया ॥११॥

**आत्मानमर्हयांचक्रे धूपालेपस्त्रगादिभिः । साध्वलंकृतसर्वाङ्गो महिष्यामादधे मनः ॥१२॥**

**अन्वयः**— धूपालेपस्त्रगादिभिः आत्मानम् अर्हयाञ्चके । साध्वलङ्कृतसर्वाङ्ग महिष्याम् मन आदधे ॥१२॥

**अनुवाद**— गन्ध, चन्दन और माला आदि से सुसज्जित होकर उसने अच्छे-अच्छे आभूषणों को धारण किया इसके बाद उसे अपनी रानी की याद आयी ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१२॥

**तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः । न व्याचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥१३॥**

**अन्वयः**— तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः वरारोहां, गृहमेधिनीम् गृहिणीम् न व्याचष्ट ॥१३॥

**अनुवाद**— भोजनदि से तृप्त प्रसन्न, मदोन्मत्त तथा कामार्त बना हुआ राजा पुरञ्जन अपनी सुन्दरी तथा सात्त्विकी बुद्धि रूपी पत्नी को राजसी बुद्धि से युक्त होने के कारण नहीं देख पाया ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

गृहमेधिनीं सात्त्विकीं बुद्धिं, राजस्यां बुद्ध्यां वर्तमानो नापश्यत् ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

सात्त्विकी बुद्धि रूपी पत्नी को राजसी बुद्धि से युक्त होने के कारण नहीं देख पाया ॥१३॥

**अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् । अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ॥१४॥**

**अन्वयः**— हे वेदिषत् ! विमना इव सः अन्तःपुर स्त्रियः अपृच्छत् हे रामाः यथापुरा वः सेश्वरीणां अपिकुशलम्॥१४॥

**अनुवाद**— हे प्राचीन वर्हिष वह उदास सा होकर अन्तःपुर की स्त्रियों से पूछा सुन्दरियों पहले के ही समान अपनी स्वामिनी के साथ आपलोगों का कुशल तो है न ?॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

वेदिषत् हे प्राचीनबर्हिः । अन्तःपुरस्त्रियस्तत्सखीः । सेश्वरीणां स्वामिनीसहितानाम् । यथा पुरेत्यादि पृथग्वाक्यम्॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

हे प्राचीनबर्हि ! अन्तःपुर में रहने वाली उसकी सखियों से पूछा, अपनी स्वामिनी के साथ आपलोगों का कुशल है न । पहले के समान । पहले के समान यह अलग वाक्य है ॥१४॥

**न तथैतर्हि रोचन्ते गृहेषु गृहसंपदः। यदि न स्याद्गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ॥**
**व्यङ्गे रथ इव प्राज्ञः के नामासीत् दीनवत् ॥१५॥**

**अन्वयः**— एतर्हि, गृहेषु गृहसम्पदः तथा नरोचन्ते। यदि गृहे, माता पतिदेवता पत्नी वा न स्यात् व्यङ्गे रथे इय कोनाम प्राज्ञः दीनवत् आसीत् ॥१५॥

**अनुवाद**— इस समय घर की सम्पत्तियाँ पहले के समान नहीं सुशोभित होती हैं। घर में यदि माता अथवा पति परायण पत्नी न रहे तो वह गृह टूटे हुए रथ की समान प्रतीत होता है। कौन बुद्धिमान व्यक्ति उसमें दीन के समान रहना चाहेगा ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यङ्गे चक्रादिहीने ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

व्यङ्गे अर्थात् पहिए आदि से रहित ॥१५॥

**क्व वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसनार्णवे। या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥१६॥**

**अन्वयः**— सा लालना क्व वर्तते या व्यसनार्णवे मज्जन्तं माम् पदे-पदे प्रज्ञा दीपयन्ती उद्धरते ॥१६॥

**अनुवाद**— वह सुन्दरी कहाँ है जो दुःख सागर में डूबने पर मेरी बुद्धि को प्रकाशित कर मुझे बचा लेती हैं॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१६॥

रामा ऊचुः

**नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया यद्व्यवस्यति। भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१७॥**

**अन्वयः**— हे नरनाथ, यद् त्वत् प्रियाव्यवस्यति न जानीमः, हे शत्रुहन् निरवस्तरे भूतले शयानां पश्य ॥१७॥

**स्त्रियो ने कहा**

**अनुवाद**— महाराज! आपकी प्रिया न जाने क्या सोचती हैं, विस्तर के बिना ही भूमि पर सोयी हुई उनको आप देखें ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

निरवस्तारे आस्तरणरहिते ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

निरवस्तरे अर्थात् विस्तर से रहित ॥१७॥

नारद उवाच

**पुरंजनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि। तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥१८॥**

**अन्वयः**— पुरञ्जनः स्वमहिषी भूवि अवधूतां निरीक्ष्य, तत्सङ्गोन्मथितज्ञानं परमं वैकलब्यं ययौ ॥१८॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— पुरञ्जनी के सङ्ग से जिसका ज्ञान विनष्ट हो गया था वह पुरञ्जन अपनी पत्नी को पृथिवी पर पड़े हुए देखकर अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

अवधुतां त्यक्तदेहादराम् । तत्सङ्गेनोन्मथितं व्याकुलं ज्ञानं यस्य ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

अवधुताम् अर्थात् जिसने अपने देह का आदर छोड़ दिया था उस पुरञ्जनी के सङ्गत के कारण पुरञ्जन का ज्ञान नष्ट हो गया था ।।१८।।

**सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता । प्रेयस्याः स्नेहसंरम्भलिङ्गमात्मनि नाभ्यगात् ।।१९।।**

**अन्वयः**— विदूयता हृदयेन श्लक्ष्ण्य वाचा सान्त्वयन् प्रेयस्याः आत्मनि स्नेह संरम्भलिङ्गं नाभ्यगात् ।।१९।।

**अनुवाद**— दुःखी हृदय और कोमल वचनों से पत्नी को उसने बहुत सान्त्वना प्रदान की, किन्तु अपनी प्रिया के हृदय में अपने प्रति प्रेम का कोई भी चिह्न नहीं दिखा ।।१९।।

**भावार्थ दीपिका**

स्नेहसंरम्भः प्रणयकोपस्तस्य लिङ्गं कुटिलदृष्ट्यादि स्वस्मिन्न लब्धवान् ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

उसने अपने पत्नी में प्रणय कोप की कुटिल दृष्टि आदि कोई भी चिह्न नहीं देखा ।।१९।।

**अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः । पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्सङ्गलालिताम् ।।२०।।**

**अन्वयः**— अथ अनुनय कोविदः वीरः शनकैः अनुनिन्ये । पादयुगलं पस्पर्श उत्सङ्गलालितम् च आह ।।२०।।

**अनुवाद**— मनाने में कुशल उस राजा ने उसके बाद धीरे-धीरे उसे मनाना प्रारम्भ किया । पहले उसने उसके दोनों पैरों को छूआ । फिर उसको अपनी गोद में बैठाकर कहा ।।२०।।

**भावार्थ दीपिका**

उत्सङ्गमारोप्य लालिताम् ।।२०।।

**भाव प्रकाशिका**

गोद में बैठाकर प्रेम करते हुए कहा ।।२०।।

पुरञ्जन उवाच

**नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे । कृतागःस्वात्मसात्कृत्वा शिक्षादण्डं न युञ्जते ।।२१।।**

**अन्वयः**— शुभे ! नूनं ते भृत्याः अकृतपुण्याः येषु कृतागस्सु ईश्वरः आत्मसात् कृत्वा शिक्षादण्डंन युंजते ।।२१।।

**पुरञ्जन ने कहा**

**अनुवाद**— सुन्दरी निश्चय रूप से उन भृत्यों ने पुण्य नहीं किया जिन सबों के अपराध करने पर उनके स्वामीगण उन्हें अपनाकर उन सबों को शिक्षा दण्ड नहीं देते हैं ।।२१।।

**भावार्थ दीपिका**

कृतमागोऽपराधो यैस्तेषु । आत्मसात्कृत्वा अस्मदधीनोऽयमिति मत्त्वा शिक्षार्थं दण्डं न कुर्वन्ति ते भृत्या मन्दभाग्याः ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

जिनसबों के अपराध करने पर उनके स्वामीगण यह सोचकर कि यह मेरे अधीन है उनको शिक्षा देने के लिए दण्ड नहीं देते हैं वे भृत्य मन्दभाग्य हैं ।।२१।।

**परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणार्पितः । बालो न वेद तत्तन्वि बन्धु कृत्यममर्षणः ॥२२॥**

**अन्वयः**— हेतन्वि ! प्रभुणा भृत्येषु अर्पितः दण्डः परमः अनुग्रहः तत् बन्धुकृत्यम् अमर्षणः बालो न वेद ॥२२॥

**अनुवाद**— हे सुन्दरि ! स्वामी के द्वारा भृत्यों को दिया गया दण्ड उस पर उनका परम अनुग्रह होता है वह क्रोधी मूर्ख है जो स्वामी के द्वारा किए गये उपकार को नहीं समझ पाता है ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

यतः परमोऽनुग्रहो दण्डः, यस्तु दण्डतो विषीदति सोऽज्ञ इत्याह–बाल इति। बन्धुकृत्यं शिक्षाकरणम्। अमर्षणः क्रोधी॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

चूकि स्वामी के द्वारा दिया गया दण्ड तो उनकी बड़ी कृपा है । दण्ड के कारण जो दुःखी होता है वह मूर्ख है । बन्धुकृत्यम् अर्थात् शिक्षा देना । अमर्षण अर्थात् क्रोधी ॥२२॥

**सा त्वं सुखं सुदति सुभ्र्वनुरागभारव्रीडाविलम्बविलसद्धसितावलोकम् ।**
**नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे सुदति हे सुभ्र हे मनस्विनि सा त्वं सुभुअनुरागभार व्रीडाविलम्ब विलसद्धसितावलोकम् नीलालकालिभिरूपस्कृतमुन्नसं वल्गुवाक्यं मुखम् स्वानां नः प्रदर्शय ॥२३॥

**अनुवाद**— हे सुन्दर दाँतों वाली हे सुन्दर भौहों वाली ! हे मनस्विनि ! प्रणय तथा लज्जा के भार से झुके हुए तथा मधुर मुस्कान मयी चितवन से सुशोभित तथा भ्रमर पंक्ति के समान नीली अलकावली उठी हुई नासिका से युक्त तो मनोहर वाणी से अपने मनोमोहक मुखड़े को हमे अपने भृत्यों को दिखाओं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

हे सुदति हे सुभ्रु हे मनस्विनि, सा त्वमस्माकं स्वामिनी, अतः स्वानां मुखं प्रदर्शय । कीदृशम् । अनुरागभारेण ब्रीडया यो विलम्बो मन्थरता तेन विलसद्न्हसितावलोको यस्मिन् । नीला अलका एवालयस्तैरुपस्कृतं भूषितम् । उन्नतनासिकम् । वल्गु वाक्यं यस्मिंस्तत् ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

राजा पुरञ्जन कहते हैं हे सुन्दर दन्त पंक्ति से युक्त सुन्दर भौहों वाली मनस्विनि ! तुम हमारी स्वामिनी हो। मैं तो तुम्हारा भृत्य हूँ मुझे तुम अपना मुख दिखाओ । यदि कहो कि कैसा मुख तो इस पर कहते हैं प्रेमभरी लज्जा से झुके हुए माधुर्य पूर्ण मुस्कान से मनोहर अवलोकन से युक्त मुख को । काले घुंघराले केश रूपी भ्रमरों से सुशोभित उठी नासिका तथा मनोज्ञ वाक्य से युक्त मुख को दिखाओ ॥२३॥

**तस्मिन्दधे दममहं तव वीरपत्नि योऽन्यत्र भूसुरकुलात्कृतकिल्बिषस्तम् ।**
**पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥२४॥**

**अन्वयः**— वीरपत्नि ! भूसुर कुलाद् अन्यत्र मुररिपोः दासात् इतरत्र यः तव कृतकिल्विषः तस्मिन् अहं दण्डं दधे। तम् अहम् त्रिलोक्याम् अन्यत्र वै वीतभयम् अनुदितं न पश्ये ॥२४॥

**अनुवाद**— हे वीर पत्नि ! ब्राह्मण वंश और भगवान् के भक्तों से भिन्न यदि किसी दूसरे ने तुम्हारा अपकार किया है तो उसे तुम मुझे बतलाओ मुझे तो इन दोनों से भिन्न त्रिलोकी में अथवा त्रिलोकी के बाहर कोई भी ऐसा नहीं दिखाई देता है जो तुम्हारा अपराध करके कुशल पूर्वक रह सके ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

हे वीरपत्नि वीरस्य मम भार्ये, यस्ते कृतापराधस्तस्मिन्नहं ब्राह्मणकुलादन्यत्रान्यस्मिन्मुररिपुदासादितरत्र च दमं दधे दण्डं करोमि। किंतु तं विगतभयमुच्चैर्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै लोकत्रयाद्बहिरपि न पश्यामि। मद्भयादेवासौ मरिष्यतीत्यर्थः।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

मैं वीर हूँ और तुम मेरी पत्नी हो। ब्राह्मण वंश और तथा श्रीहरि के भक्त हो छोड़कर यदि किसी ने तुम्हारा अपराध किया है उसे बतलाओ मैं उसको दण्ड दूँगा। किन्तु ऐसे व्यक्ति को तो मैं न तो त्रिलोकी में और न त्रिलोकी से बाहर ही देखता हूँ जो तुम्हारा अपराध करके प्रसन्न रहे। वह तो मेरे भय से ही मर जायेगा।।२४।।

**वक्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं संरम्भभीममविमृष्टमपेतरागम्।**
**पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ बिम्बाधरं विगतकुङ्कुमपङ्करागम्।।२५।।**

**अन्वयः**— वितिलकं मलिनं विहर्षं संरम्भभीमम् अविमृष्टम् अपेतरागम् ते वक्त्रम् न पश्ये सुजातौ शुचोपहतौ स्तनौ अपि विगतकुङ्कुमपङ्करागम् विम्बाधरम् न पश्ये।।२५।।

**अनुवाद**— आज तक कभी तुम्हारा तिलक से रहित, उदास, मुरझाया हुआ, क्रोध के कारण भयानक, कान्ति हीन और स्नेह शून्य मुख नहीं देखा, तुम्हारे सुन्दर स्तनों को भी मैंने कभी शोकाश्रुओं से भिंगा हुआ नहीं देखा है, तथा विम्बाफल के समान तुम्हारे अधरों को भी मैंने कभी केसर की लाली से रहित नहीं देखा है।।२५।।

### भावार्थ दीपिका

ते वक्त्रमितः पूर्वं कदाचिदपि वितिलकं न पश्यामि। संरम्भेण कोपावेशेन भीमं भयङ्करम्। अविमृष्टमनुज्जवलम्। अपेतरागं स्नेहशून्यम्। तथा ते सुजातौ शोभनौ स्तनावपि शोकाश्रुभिरुपहतौ न पश्यामि। तथा बिम्बफलाकारमधरं च विगतः कुङ्कुमपङ्कतुल्यस्ताम्बूलरागो यस्मात्तादृशं न पश्यामि। इदानीं कुत एवं जातमिति शेषः। पाठान्तरे एवंभूतं मुखं स्तनौ च पश्यन् शं न विन्दामीत्यन्वयः। विगतः कुङ्कुमपङ्करागो याम्यामिति स्तनयोर्विशेषणम्।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

आज से पहले कभी मैंने तुम्हारे मुख को तिलक से रहित नहीं देखा है, क्रोध के कारण भयानक मुरझाये हुए स्नेह शून्य भी तुम्हारे मुख को मैंने कभी नहीं देखा है। साथ ही तुम्हारे सुन्दर स्तनों को भी कभी शोकाश्रु से भिंगे हुए नहीं देखा है। तथा विम्बाफल के समान तुम्हारे अधरों को भी मैंने कभी केसर के समान पान की लालिमा से रहित नहीं देखा है। इस समय यह सब कैसे हो गया है ?

जहाँ पर **पश्यं स्तनावपि शुचोपहतौ सजातौ विन्दामिशं विगत कुङ्कुमपङ्करागौ** इस प्रकार का पाठ भेद है, वहाँ पर अर्थ होगा कि इस प्रकार के तुम्हारे मुख एवं स्तनों को देखकर मुझे कष्ट हो रहा है। कुङ्कुम के पराग से रहित यह दोनों स्तनों का विशेषण होगा।।२५।।

**तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य।**
**का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेगविस्त्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्ये।।२६।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

**अन्वयः**— तत् व्यसनातुरस्य स्वैरं मृगयां गतस्य कृतकिल्वषस्य सुहृदः मे प्रसीद, कुसुमास्त्रवेगस्त्रिस्पौंस्नम् वशगतं देवरं का उशती कृत्ये न भजेत।।२६।।

**अनुवाद**— व्यसन के कारण तुमसे पूछे बिना आखेट करने के लिए गया हुआ मैं तुम्हारा अपराधी हूँ फिर

भी सुहृद होने के कारण तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ । कामदेव के बाणों के वेग के कारण जिसका धैर्य टूट गया हो ऐसे अपने पति पर कौन कामिनी होगी जो उसका उचित कार्य के लिए प्रसन्न हो जायें ?॥२६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पुरञ्जनोपाख्यान के अन्तर्गत छबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।**

**भावार्थ दीपिका**

तत्तस्मात्कृतं किल्बिषमपराधं येन तस्य । किल्बिषमेवाह । स्वैर स्वातन्त्रयेण त्वामपृष्ट्वा मृगयां गतस्य । देवो देवनं क्रीडा तां राति ददातीति देवर कान्तस्तम् । कामवेगेन विस्त्रस्तं गतं । पौस्नं पौरुषं धैर्यं यस्य तम् । उशती कामयमाना कृत्ये कर्तुं योग्येऽर्थे का न भजेत ।।२६।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।**

**भाव प्रकाशिका**

इसलिए अपराध करने वाला मैं हूँ, क्योंकि तुमसे पूछे बिना ही मैं शिकार करने चला गया । यही मेरा अपराध है । काम के वेग से जिसका धैर्य टूट गया हो उस अपने पति को कौन सी ऐसी कामिनी होगी जो उचित कृत्य के लिए स्वीकार न करे । **देवो देवनं क्रीडतां राति ददाति इति देवरः** । इस व्युत्पत्ति के अनुसार देवर शब्द पति का वाचक है ॥२६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के छब्बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२६।।**

# सताइसवाँ अध्याय

## पुरञ्जनपुरी पर चण्डवेग का आक्रमण और कालकन्या का चरित्र

नारद उवाच

**इत्थं पुरंजनं सम्यग्वशमानीय विभ्रमैः । पुरंजनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥१॥**

**अन्वयः**— हे महाराज ! इत्थम् विभ्रमैः पुरञ्जनं सम्यग् वशमानीय पुरञ्जनी पतिम् रमयती रेमे ॥१॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे महाराज ! इस तरह अपने अनेक प्रकार के विलासों से पुरञ्जन को अपने वश में करके पुरञ्जनी अपने पति को आनन्दित करती हुई उसके साथ रमण करने लगी ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

सप्तविंशे प्रियापुत्राद्यासत्तया विस्मृतात्मनः । कालकन्याद्युपाख्यानैर्जरारोगाद्युदीर्यते । तदेवं जीवस्यानुनयादि-कथासौन्दर्येणात्यन्तमुपाधिवश्यत्वमुक्त्वा तन्निमित्तां संसारपरम्परां निरूपयितुमाह-इत्थमिति । अत्र च प्रतिपदं कथंचिदध्यात्मपक्षेऽपि योजयितुं शक्यमेव । श्रीनारदेन तु जीवस्य स्त्रीपुरुषवासनादाढर्येन विचित्रा संसृतिर्भवतीत्येतावदेव कथातात्पर्यं दर्शितम् । 'क्वचित्पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः । देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः इति वदता। तत्रादौ पुंस्त्वेन संसृतिरध्यायत्रयेणोक्ता । ततश्चैकेनाध्यायेन स्त्रीत्वेन संसृतिं प्रदर्श्येश्वरप्रसादलब्धज्ञानेन मोक्ष इत्युक्तम् । ततस्तदेव यथोपयोगं व्याख्यातमिति पञ्चाध्याय्यारम्भः प्रतीयते । प्रतिपदमध्यात्मयोजना तु दुर्घटा निष्प्रयोजना चेति स्वप्रौढिख्यापनमनादृत्य यथोपयोगमेव व्याख्यास्यामः । सध्र्यक् सम्यक् । विभ्रमैर्विलासैः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

सताइसवें अध्याय में पत्नी तथा पुत्र में होने वाली आसक्ति के कारण राजा पुरञ्जन अपनी आत्मा को भी भूल गये। कालकन्या आदि के उपाख्यान के द्वारा राजा के बुढापा तथा रोग आदि का वर्णन किया जा रहा है। इस तरह जीव के अनुनय आदि कथा के सौन्दर्य के द्वारा अत्यन्त उपाधि का होना आवश्यक है इस बात को बतलाकर उसी के द्वारा संसार की परम्परा का निरूपण करने के लिए **इत्थम् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं। इस अध्याय में प्रत्येक पद को अध्यात्म पक्ष से जोड़ा ही जा सकता है। श्रीनारदजी ने स्त्री पुरुष की वासना की दृढता के द्वारा विचित्र संसार होता है इतना ही मात्र कथा का तात्पर्य बतलाया है। यह अज्ञानी जीव अपने कर्मों के अनुसार कभी पुरुष होता है कभी स्त्री होता है, कभी न स्त्री होता है न पुरुष होता अपितु नपुंसक होता। वह अपने कर्मों के ही अनुसार देवता, मनुष्य अथवा तिर्यक् योनि का जीव होता है। इस तरह से नारदजी ने कहा है। इस तरह सर्वप्रथम उन्होंने तीन अध्यायों के माध्यम से कहा है कि पुंस्त्व के ही द्वारा संसार होता है। उसके पश्चात् एक अध्याय में स्त्रीत्व के द्वारा संसार का वर्णन करके यह कहा है कि परमात्मा की कृपा से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है उसके पश्चात् उन्हीं बातों की उपयोगानुसार व्याख्या के लिए पाँच अध्यायों की रचना की गयी है, यह प्रतीत होता है। प्रत्येक पदों के साथ अध्यात्म को जोड़ना कठिन ही नहीं निष्प्रयोजन भी है, इसीलिए अपनी प्रौढिका समादर न करके उपयोगानुकूल ही व्याख्या मैं करूँगा अच्छी तरह से विभ्र मैं का अर्थ है विलासों द्वारा॥१॥

**स राजा महिषीं राजन्सुस्नातां रुचिराननाम्। कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥२॥**

**अन्वयः**— स राजा सुस्नातां कृत स्वस्त्ययनां तृप्ताम् रूचिराननाम् उपागताम् महिषीम् अभ्यनन्दत् ॥२॥

**अनुवाद**— राजा अच्छी तरह से स्नान करके तथा मङ्गलमय शृङ्गार करके भोजनादि से तृप्त होकर पास आयी हुई रानी का राजा ने अभिनन्दन किया ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

कृतं स्वस्त्ययनं मङ्गलं कुङ्कुमसिन्दूरादिभिर्यस्यास्ताम् ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

सिन्दूर तथा कुङ्कुम आदि से मङ्गलिक शृङ्गार करके आई हुई रानी का अभिनन्दन किया ॥२॥

**तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः।**
**न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥३॥**

**अन्वयः**— तया उपगूढः परिब्धकन्धरः रहः अनुमन्त्रैः अपकृष्ठचेतनः, प्रमदापरिग्रहः दिवानिशेति कालरंहः न बुबुधे॥३॥

**अनुवाद**— पुरञ्जनी के द्वारा आलिंगित राजा ने उसको गले से लगाया उसके पश्चात् एकान्त में मनोनुकूल रहस्य की बातों में जिसका ज्ञान समाप्त हो गया था और उस नारी को ही अपने हुए उसको दिन-रात के भेद से वितते हुए काल के वेग का पता ही नहीं चला ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

उपगूढः परिरब्धः। परिब्धा कन्धरा तस्या येन। रह एकान्ते। अनुमन्त्रैरनुकूलैर्गुह्यभाषणैः। अपकृष्टा चेतना विवेको यस्य। कालरंहः आयुर्व्ययम्। प्रमदैव परिग्रहो न ज्ञानसाधनं यस्य ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

उपगूढ अर्थात् अलिङ्गित। अर्थात् रानी के द्वारा आलिङ्गित राजा ने उसको गले से लगाया। एकान्त में रहस्यमय बातों में जिसका विवेक नष्ट हो गया था। उस राजा ने प्रमदा को ही अपनाया था ज्ञान के साधन को नहीं यह प्रमदा परिग्रह का अभिप्राय है ॥३॥

**शयान उन्नद्धमदो महामना महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ।**
**तामेव वीरो मनुते परं यतस्तमोभिभूतो न निजं परं च यत् ॥४॥**

**अन्वयः**— उन्नद्धमदः महामनाः महाहतल्पे महिषी भुजोपधिः शयानः वीरः यतः तामेव परं मनुते तमोऽभिभूतः निजं परं च न ॥४॥

**अनुवाद**— मदमत्त बना हुआ वह महामना महामूल्यवान् शय्या पर रानी की भुजाओं पर शिर रखकर सोया हुआ राजा अज्ञान से आवृत्त होने के कारण आत्मा और परमात्मा को भी भूल गया था ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

महार्हतल्पे उत्कृष्टशय्यायां शयानः । महिष्या भुज उपधिरुपधानमुच्छीर्षकं यस्य । अविसर्गपाठे शयनक्रियाविशेषणम्। तां महिषीमेव परं पुरुषार्थममन्यत नतु यन्निजं रूपं ब्रह्म तत् । तमसाऽज्ञानेनाभिभूतो यतः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

महामूल्यवान् शय्या पर अपनी रानी की ही भुजा को उपधान बनाये हुए सोया रहता था । विसर्ग रहित पाठ होने पर महिषी भुजोपधि शयनक्रिया का विशेषण होगा । वह राजा रानी को ही अपना सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ मानता था अपने ब्रह्म स्वरूप को नहीं; क्योंकि वह सदा अज्ञान से आवृत रहता था ॥४॥

**तयैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः । क्षणार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥५॥**

**अन्वयः**— हे राजेन्द्र ! तया एवं रममामाणस्य, कामकश्मल चेतसः, नवं वयः, क्षणार्धम् इव व्यतिकान्तम् ॥५॥

**अनुवाद**— इस तरह से उसके साथ रमण करते हुए कामातुर राजा की नई जवानी मानो आधे क्षण में ही बीत गयी ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥५॥

**तस्यामजनयत्पुत्रान्पुरंजन्यां पुरंजनः । शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥६॥**
**दुहितृर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः । शीलौदार्यगुणोपेताः पौरंजन्यः प्रजापते ॥७॥**

**अन्वयः**— प्रजापते ! विराट् पुरञ्जनः तस्याम् पुरञ्जन्याम् एकादशशतानि पुत्रान् पितृमातृयशस्करीः दशेत्तरशतं दुहितृः च अजनयत् । पौरञ्जन्यः शीलौदार्य गुणोपेताः । अथ आयुषोऽर्धम् अत्यगात् ॥६-७॥

**अनुवाद**— हे प्रजापते सम्राट् पुरञ्जन ने पुरञ्जनी के गर्भ से ग्यारह सौ पुत्रों को उत्पन्न किया और एक सौ दश पुत्रियों को भी उत्पन्न किया । वे सभी पुरञ्जन की पुत्रियाँ पिता माता के यश को बढ़ाने वाली थीं तथा शील एवं और औदार्य गुण सम्पन्न थीं । इस तरह पुरञ्जन की आधी आयु बीत गयी ॥६-७॥

### भावार्थ दीपिका

पुत्रानिन्द्रियपरिणामान् । दुहितृस्तदनन्तरं बुद्धिवृत्तीः । पुत्रसंख्या च बाहुल्यमात्रविवक्षया । दुहितृसंख्या तु पुत्रेभ्यो न्यूनत्वेन गार्हस्थ्यसौन्दर्यार्थमेव विराट् सम्राट् । आयुषोऽर्धमित्याद्यपि कथासौन्दर्यार्थमेव । पुरंजनकन्यात्वात्पौरंजन्यः । हे प्रजापते ॥६-७॥

### भाव प्रकाशिका

हे प्रजापते ! पुत्रों की संख्या इन्द्रियों की संख्या के बराबर थी । पुत्रियाँ उसके पश्चात् हुई वे बुद्धि की वृत्ति स्वरूपिणी थीं । यहाँ पर पुत्रों की संख्या की बहुलता मात्र विवक्षित है । पुत्रियों की संख्या पुत्रों की संख्या से कम गार्हस्थ्य के सौन्दर्य के लिए वर्णित है । विराट् पद का अर्थ सम्राट् है आधी आयु का भी वर्णन कथा के सौन्दर्य के लिए किया गया है । पुरञ्जन की कन्या होने के कारण उन सबों को पौरञ्जनी कहा गया है ॥६-७॥

**स पञ्चालपतिः पुत्रान्पितृवंशविवर्धनान् । दारैः संयोजयामास दुहितृः सदृशैर्वरैः ॥८॥**

**अन्वयः**— पञ्चालपतिः स पितृवंशविवर्धनान् पुत्रान् दारैः संयोज्यामास दुहितृः सदृशैः वरैः संयोजयामास ॥८॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् पञ्चालराज ने पिता के वंश को बढाने वाले पुत्रों का विवाह कर दिया । और पुत्रियों का भी उन सबों के अनुकूल पतियों से विवाह कर दिया ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

दारैः परिणामानन्तरं हिताहितचिन्ताभिः । वरैरुचितविषयभोगैः ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

पुत्रों का विवाह करने के पश्चात् हित एवं अहित की चिन्ताओं से युक्त उचित एवं श्रेष्ठ विषयभोगों के साथ विवाह कर दिया ॥८॥

**पुत्राणां चाभवन्पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् । यैर्वै पौरंजनो वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥९॥**

**अन्वयः**— पुत्राणां च एकैकस्य शतम्, शतम्, पुत्रा अभवन् यैः वै पौरञ्जनो वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥९॥

**अनुवाद**—प्रत्येक पुत्रों के सौ-सौ पुत्र हुए उनसे वृद्धि प्राप्त पुरञ्जन का वंश सम्पूर्ण पञ्चाल देश में फैल गया॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

पुत्राणां पुत्राः कर्माणि । पञ्चालेषु शब्दादिविषयेषु ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

इन्द्रिय रूपी पुत्रों के पुत्र कर्म हुए पञ्चालेषु का अर्थ है शब्दादि विषयों में ॥९॥

**तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु । निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वबध्यत ॥१०॥**

**अन्वयः**— तेषु तद्रिक्थाहारेषु गृहकोशानुजीविषु, निरूढेन ममत्वेन विषयेषु अन्वबध्यत ॥१०॥

**अनुवाद**— उन पुत्रों पौत्रों, गृहकोश तथा अनुजीवियों में ममता के बढ़ जाने के कारण वह राजा पुरञ्जन विषयों में ही बँधता गया ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

तेषु पुत्रादिषु तेषामपि ये रिक्थहाराः पुत्रास्तेषु च ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

पुत्रों तथा उनके भी पुत्रों में यह तेषु तद्रिक्थ हारेषु का अर्थ है ॥१०॥

**ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः । देवान्पितृन्भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान् ॥११॥**

**अन्वयः**— दीक्षितः पशुमारकैः घोरैः कतुभिः नानाकामः भवान् यथा देवान् पितृन् भूतपतीन् ईजे ॥११॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करके उस राजा ने जिनमें पशुओं को मारा जाता है ऐसे भयङ्कर क्रतुओं के द्वारा अनेक प्रकार की कामनाओं से युक्त होकर देवताओं पितरों और भूतपतियों की उसने आपके ही समान आराधना की ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥११॥

**युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः । आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥१२॥**

**अन्वयः—** एवं युक्तेषु प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः स वै कालः आससाद यः प्रिययोषिताम् अप्रियः ॥१२॥

**अनुवाद—** इस तरह आत्मकल्याणकारी कर्मों के विषय में आसावधान तथा परिवार में ही आसक्त चित्त रहने वाले उसके लिए भी वही काल आ गया जो स्त्रीलम्पट पुरुषों के लिए अप्रिय होता है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

युक्तेष्वात्महितेषु कर्मस्वनवहितस्य । स वै कालो जरासमयः ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

आत्मकल्याण के विषय में असावधान रहने वाले पुरञ्जन का भी वही वृद्धापा का समय आ गया जो स्त्री लम्पटों को अत्यन्त अप्रिय होता है ॥१२॥

**चण्डवेग इति ख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप । गन्धर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥१३॥**

**अन्वयः—** नृप चण्डवेग इति ख्यातः गधर्वाधिपतिः तस्य षष्ठयुत्तरशतत्रयम् बलिनः गन्धर्वाः सन्ति ॥१३॥

**अनुवाद—** चण्डवेग नामक एक गन्धर्वों का राजा है, उसके अधीन तीन सौ साठ अत्यन्त बलवान् गन्धर्व रहते हैं ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

चण्डवेगः संवत्सरेणावर्तमानेनोपलक्षितः । गन्धर्वा दिवसाः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

चण्डवेग शब्द के द्वारा हमेशा आते रहने वाले को उपलक्षित किया गया है । गन्धर्व शब्द दिनों का उपलक्षक हैं॥१३॥

**गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः । परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥१४॥**

**अन्वयः—** अस्य मैथुन्य सितासिताः गन्धर्व्यः तादृशीः सर्वकाम विनिर्मिताम् परिलुम्पन्ति ॥१४॥

**अनुवाद—** उसकी मिथुन भाव से रहने वाली श्वेत तथा कृष्ण वर्ण की गन्धर्वियाँ भी उतनी ही है, वे बारी-बारी से चक्कर लगाकर भोग विलास की सामग्रियों से परिपूर्ण उस नगरी को लूटने का काम करती थीं ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

गन्धर्व्यो रात्र्यः । तादृशीस्तादृश्यः । मैथुन्यो दिवसैर्मिथुनीभूय स्थिताः । सिताश्चासिताश्च शुक्लकृष्णपक्षीयाः परिभ्रमणेन सर्वैः कामैः सह विनिर्मितां पुरीमपहरन्ति ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

गन्धर्व्यः पद से रात्रियों को कहा गया है । तादशीः अर्थात् दिन रूपी गन्धर्वों के ही बराबर मैथुन्यः अर्थात् दिनों के साथ जोड़े रूप में रहने वाली, सिताश्चासिश्च कहकर शुक्लपक्षीय एवं कृष्णपक्षीय रात्रियों को बतलाया गया है । परिवृत्या अर्थात् बारी-बारी से सभी काम्य पदार्थों के साथ निर्मित शरीर रूपी नगरी को लूटने का काम करती थीं ॥१४॥

**ते चण्डवेगानुचराः पुरंजनपुरं यदा । हर्तुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत्प्रजागरः ॥१५॥**

**अन्वयः—** ते चण्डवेगानुचरा यदा पुरञ्जनपुरं हर्तुमारेभिरे तत्र प्रजागरः प्रत्यषेधत् ॥१५॥

**अनुवाद—** चण्डवेग के वे अनुचर जब पुरञ्जन पुरी को लूटना प्रारम्भ किए तो उस समय प्रजागर रूपी प्राण ने उन सबों को रोका ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

प्रजागरः प्राणः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

प्रजागर अर्थात् प्राण ॥१५॥

**स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतं समाः । पुरंजनपुराध्यक्षो गन्धर्वैर्युयुधे बली ॥१६॥**

**अन्वयः**— पुरञ्जन पुराध्यक्षः बली सः एकः शतं समाः सप्तभिः शतैः विंशत्याच गन्धर्वैः सह युयुधे ॥१६॥

**अनुवाद**— पुरञ्जन पुरी की देखरेख रखने वाला वह महाबलवान् प्रजागर अकेले सौ वर्षों तक सात सौ बीस गन्धर्वों के साथ युद्ध करता रहा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विंशत्या च सह ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

विंशत्या च के साथ सह पद का अध्याहार कर लेना चाहिए ॥१६॥

**क्षीयमाणे स्वसंबन्धे एकस्मिन्बहुभिर्युधा । चिन्तां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबान्धवः ॥१७॥**

**अन्वयः**— एकस्मिन् स्वसंबन्धे बहुभिः युधाक्षीयमाणे सराष्ट्रपुरबान्धवः आर्तः सन परांचिन्तां जगाम ॥१७॥

**अनुवाद**— अपने एक मात्र संबन्धी के अनेक गन्धवों के साथ युद्ध करने के कारण प्रजागर को बलहीन होते देखकर पुरञ्जन को अपने राष्ट्र तथा नगर में रहने वाले बान्धवों के साथ अत्यधिक चिन्ता हुई ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

स्वसंबन्धे स्वसंबन्धिनि प्राणे ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अपने प्राण के ॥१७॥

**स एव पुर्यां मधुभुक्पञ्चालेषु स्वपार्षदैः । उपनीतं बलिं गृह्णन्स्त्रीजितो नाविदद्भयम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— स एव पंचालेषु पुर्यां स्नपार्षदैः उपनीतं बलिं गृह्णन् मधुभुक् स्त्रीजितः भयम् न अविदत् ॥१८॥

**अनुवाद**— वह पञ्चाल देश के इस नगर में अपने पार्षदों द्वारा लाये गये कट को लेकर विषयभोगों को भोगता था । स्त्री के वशीभूत होने के कारण उसे इस भय का पता ही नहीं चला ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

स एव मधुभुक् क्षुद्रसुखभोक्ता । स्वपार्षदैरिन्द्रियैः । नाविदन्नालोचितवान् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

वह अब तक क्षुद्रविषयजन्य ही सुखों को भोगने में लगा रहा । पार्षद शब्द से इन्द्रियों को कहा गया है। नाविदत् अर्थात् विचार ही नहीं किया ॥१८॥

**कालस्य दुहिता काचित्त्रिलोकीं वरमिच्छती । पर्यटन्ती न बर्हिष्मन्प्रत्यनन्दत कश्चन ॥१९॥**

**अन्वयः**— हे बर्हिष्मन् काचित् कालस्य दुहिता वरम् इच्छन्ती त्रिलोकीम् पर्यटन्ती कश्चन न प्रत्यनन्दत् ॥१९॥

**अनुवाद**— हे बर्हिष्मन् काल की एक कन्या (जरा) थी वह अपने पति की खोज में त्रिलोकी में घूम रही थी, किन्तु किसी ने भी उसको स्वीकार नहीं किया ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

कालस्य दुहिता जरास्ति तां न प्रत्यनन्दत नैच्छत् । बर्हिष्मन् हे प्राचीनबर्हिः ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

हे प्राचीन बर्हि काल की पुत्री का नाम जरा था उसको किसी ने नहीं चाहा ॥१९॥

**दौर्भाग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा । या तुष्टा राजर्षये तु वृत्ताऽदात्पूरवे वरम् ॥२०॥**

**अन्वयः**— आत्मनो दौर्भाग्यात् लोके सा दुर्भगा इति विश्रुता या वृतातुष्टासति राजर्षये पूरवे वरम् अदात् ॥२०॥

**अनुवाद**— अपने दुर्भाग्य के कारण वह लोक में दुर्भगा के नाम से विख्यात थी । उसका एक बार राजर्षि पुरु ने स्वीकार किया तो वह प्रसन्न होकर उनको राज्य का वरदान दी ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

पूरवे ययातिपुत्राय । तेन वृता सती वरमदात् । ययातिः शुक्रशापाज्जरां प्राप्य पुत्रानुवाच इमां गृह्णीतेति, तां ज्येष्ठाश्चत्वारो न जगृहुः पूरुस्तु जगृहे, ततो ययातिस्तस्मै राज्यं ददाविति जरैवादादित्युक्तम् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

ययाति के पुत्र पुरु ने उसे स्वीकार किया तो उसने उनको राज्य का वरदान दिया । ययाति शुक्राचार्य के शाप से जरा बुढ़ापा को प्राप्त कर लिए । उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि तुमलोग मेरी इस बुढापा को स्वीकार कर लो । पुरु से बड़े ययाति के जो चार पुत्र थे वे उस जरा को नही स्वीकार किए । किन्तु पुरु ने उसको स्वीकार कर लिया । उसके कारण ययाति ने पुरु को राज्य प्रदान कर दिया । इसी को यहाँ पर कहा गया है कि जरा ने ही पुरु को राज्य प्रदान किया ॥२०॥

**कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् । वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ॥२१॥**

**अन्वयः**— कदाचित् अटमाना काममोहिता सा ब्रह्मलोकात् महीं गतम् बृहद् व्रतं जानती मां जानती तु वव्रे ॥२१॥

**अनुवाद**— एक बार घूमती हुइ वह ब्रह्मलोक से भूलोक में आये हुए मुझको देखकर मुझको नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भी उसने मेरा पति के रूप में वरण कर लिया ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

सा जरा । बृहद्व्रतं नैष्ठिकम् ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

सा शब्द से यहाँ पर जरा का परामर्श किया गया है । बृहदव्रत अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी ॥२१॥

**मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहम् । स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ॥२२॥**

**अन्वयः**— मयि संरभ्य विपुलं सुदुःसहम् शापम् अदात् मद् याच्ञा विमुखः मुने एकत्र स्थातुं न अर्हसि ॥२२॥

**अनुवाद**— मेरे द्वारा नहीं स्वीकार नहीं किए जाने पर मुझ पर क्रोध करके उसने मुझको भयङ्कर असह्य शाप दिया कि मेरी प्रार्थना को नहीं स्वीकार करने वाले मुने तुम एक स्थान पर कहीं नहीं रह पाओगें ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रत्याख्यातवति मयि संरभ्य क्रोधं कृत्वा नैकत्र स्थातुमर्हसीति शपमदात् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

मेरे द्वारा नहीं स्वीकार किए जाने पर क्रोध करके उसने मुझे शाप दे दिया कि तुम कहीं एक स्थान पर नहीं रह पाओगें ॥२२॥

**ततो विहतसंकल्पा कन्यका यवनेश्वरम् । मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— ततः विहत सङ्कल्पा कन्यका मया उपदिष्टम् यवनेश्वरम् भयम् पतिं वव्रे ॥२३॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् मुझसे निराश होकर वह कन्या मेरे द्वारा कहे जाने पर यवनराज भय को ही अपना पति बना ली ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

आधयो व्याधयश्च यवनास्तेषामीश्वरं भयनामानं वव्रे ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

आधियाँ (मानसिक कष्ट) व्याधियाँ (रोग) ये ही यवन हैं । इन सबों का स्वामी भय हैं । उसी का उसने पति के रूप में वरण कर लिया ॥२३॥

**ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिम् । सङ्कल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥२४॥**

**अन्वयः**— हे वीर ! यवनानां ऋषभं त्वां ईप्सितं पतिं वृणे त्वमपि किल भूतानां कृतः सङ्कल्पः न रिष्यति ॥२४॥

**अनुवाद**— हे वीर ! आप यवनों के राजा हैं मैं आपका अपने प्रिय पति के रूप में वरण करती हूँ । आपके विषय में जीवों द्वारा किया गया सङ्कल्प कभी विफल नहीं होगा ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

हे वीर, त्वामीप्सितं पतिं वृणे । न रिष्यति न नश्यति ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

जराने भय से कहा कि मैं तुमको अपने प्रिय पति के रूप में वरण करती हूँ । न रिष्यति का अर्थ है कभी विफल नहीं होगा ॥२४॥

**द्वाविमावनुशोचन्ति बालावसदवग्रहौ । यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥२५॥**

**अन्वयः**— यत् लोक शास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति इमौ द्वौ आसदव ग्रहौ अनुशोचन्ति ॥२५॥

**अनुवाद**— जो मनुष्य लोक अथवा शास्त्र के अनुसार देने योग्य वस्तु का दान नहीं देते हैं और जो लोग अधिकारी होकर भी उसको नहीं स्वीकार करते हैं वे दोनों प्रकार के लोग दुराग्रही है अतएव शोचनीय हैं ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

लोकतो वेदतश्च यद्देयत्वेन ग्राह्यत्वेन चोपनतं प्राप्तं तद्याच्यमानं यो न ददाति यश्च दीयमानं नेच्छति न गृह्णाति इमौ द्वौ कर्मभूतावनुशोचन्ति सन्तः ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

लोक तथा वेदानुसार देने योग्य वस्तु का दान नहीं करते हैं तथा जो लोग उसके अधिकारी भी होकर उसे नहीं स्वीकार करते हैं वे दोनों प्रकार के लोग, असदाग्रही हैं । अतएव सन्त महापुरुष उन लोगों के विषय में शोक करते हैं ॥२५॥

**अथो भजस्व मां भद्र भजतीं मे दया कुरु । एतावान्पौरुषो धर्मो यदार्तानुकम्पते ॥२६॥**

**अन्वयः**— अतः हे भद्र माम् भजस्व भजतीं मे दयां कुरु । पौरुष धर्मः एतावान् यत् आर्तान् अनुकम्पते ॥२६॥

**अनुवाद**— हे भद्र ! आप मुझे स्वीकार करें, मैं आपकी सेवा करना चाहती हूँ पुरुष को सर्वोत्कृष्ट धर्म यही है कि वे दीनों पर दया करें ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

पुरुषेण कर्तव्यो धर्मः पौरुषः ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

पुरुष के द्वारा करने योग्य धर्म को पौरुष कहते हैं ॥२६॥

**कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वरः । चिकीर्षुर्देवगुह्यं स सस्मितं तामभाषत ॥२७॥**

**अन्वयः**— यवनेश्वरः कालकन्योदित वचः निशम्य सः देवगुह्यं चिकीर्षुः सस्मितं तामभाषत ॥२७॥

**अनुवाद**— यवनेश्वर भय ने कालकन्या की वाणी को सुना और मृत्यु रूप देवगुह्य कार्य को करने की इच्छा से मुस्कुराते हुए उसने कहा ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

देवगुह्य मरणम् । तद्धि प्राणिनां वैराग्यानुदयाय देवैर्गोप्यते ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

देवगुह्यमृत्यु है लोगों को कही वैराग्य उत्पन्न न हो जाय इसीलिए देवगण उसको छिपाये रहते है ॥२७॥

**मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना । नाभिनन्दति लोकोऽयं त्वामभद्रामसंमताम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— योगसमाधिना मया तुभ्यं पतिः निरूपितः, अभद्राम्, असम्मतां त्वाम् अयं लोकः नाभिनन्दति ॥२८॥

**अनुवाद**— मैंने अपनी योग दृष्टि के द्वारा तुम्हारे लिए एक पति को निश्चय किया है । तुम सबका अनिष्ट करने वाली हो अतएव तुमको कोई भी नहीं चाहता है ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव । आत्मसमाधिना ज्ञानदृष्ट्या । याच्यमानोऽयं लोकस्त्वां नेच्छति ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

तुभ्यं का अर्थ तुम्हारे है । भय ने जरा से कहा कि मैंने अपनी ज्ञान दृष्टि से देखकर तुम्हारे लिए एक व्यक्ति को तुम्हारे पति के रूप में निश्चय किया है । तुम सबों का अनिष्ट करने वाली हो अतएव प्रार्थना करने पर भी कोई तुमको स्वीकार नहीं करता है ॥२८॥

**त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् । या हि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥२९॥**

**अन्वयः**— कर्म विनिर्मित लोकं त्वम् अव्यक्त गतिः भुंक्ष्वः यां हित्वम् मे पृतना युक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥२९॥

**अनुवाद**— यह संसार कर्म विनिर्मित है इसका भोग तुम अलक्षित गति होकर बल पूर्वक करो । तुम मेरी सेना को लेकर सम्पूर्ण प्रजाओं का विनाश करो ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

अतोऽव्यक्तगतिः कुतः प्राप्तेत्यलक्षितगतिः सती लोकमाक्रम्य भुङ्क्ष्व । एवं सर्वोऽपि लोकस्तव पतिः स्यादित्यर्थः। नचैवं त्वया शङ्कनीयं प्रतिकूलां मां लोको हनिष्यतीति । यस्मात्त्वमेव प्रजानाशं करिष्यसीत्याह- या हीति । या मदीया यवनपृतना तया युक्ता ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव तुम अव्यक्त गति हो जाओ । जिससे किसी को यह पता नहीं चल सके कि मुझको बुढ़ापा कैसे आ गयी । उस तरह संसार पर आक्रमण करके तुम उसका बल पूर्वक भोग करो इस तरह सारा संसार तुम्हारा

पति बन जायेगा। तुमको इस बात की शङ्का नहीं होनी चाहिए कि मैं तो सबों के प्रतिकूल रहने वाली हूँ, अतएव संसार मुझे मार डालेगा। क्योंकि तुम ही सारी प्रजाओं का नाश करोगी। **याहि०** कहकर यह यवनराज ने कहा कि तुम्हारे साथ मेरी सेना रहेगी। अतएव तुमको कोई भी नहीं मार सकता है ॥२९॥

**प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव। चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः॥३०॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

**अन्वयः**— अयं प्रज्वारः मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव। भीम सैनिकः अव्यक्तः अहम् उभाभ्यां लोके चरामि॥३०॥

**अनुवाद**— यह प्रज्वार मेरा भाई है तुम मेरी बहन बन जाओ। अव्यक्त रूप से मैं अपनी भयङ्कर सेना लेकर तुमदोनों के साथ संसार में सञ्चरण करूँगा ॥३०॥

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पुरञ्जनोपाख्यान के अन्तर्गत सताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२७॥**

### भावार्थ दीपिका

किंच। प्रज्वार इति। मारको वैष्णवो ज्वरः माहेश्वरस्य व्याध्यन्तः पातित्वात्। भीमा घोराः सैनिका यस्य ॥३०॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥**

### भाव प्रकाशिका

मार डालने वाला यह जो प्रज्वार नामक वैष्णव ज्वर हैं, इसने माहेश्वर ज्वर को व्याधियों में डाल दिया था, वह मेरा भाई है और तुम मेरी बहिन बन जाओ तुम दोनों को अपने साथ लेकर अलक्षितगति होकर अपने भयङ्कर सैनिकों के साथ मैं संसार में संचरण करूँगा ॥३०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपका नामक टीका के सताइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२७॥**

# अठाइसवाँ अध्याय

## पुरञ्जन को स्त्री योनि की प्राप्ति और अविज्ञान के उपदेश से उसकी मुक्ति

नारद उवाच

**सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः । प्रज्वारकालकन्यायां विचेरुरवनीमिमाम् ॥१॥**

**अन्वयः**— हे बर्हिष्मन् ! भय नाम्नः ये दिष्कारिणः सैनिकाः प्रज्वार काल कन्याभ्यां इमाम् अवनीम् विचेरुः ॥१॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे राजन् ! भय नामक यवनराज की आज्ञा का पालन करने वाले जो सैनिक थे वे प्रज्वार एवं कालकन्या के साथ इस पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

अष्टाविंशे तु वैदर्भ्याख्यानेन स्त्रीविचिन्तया । स्त्रीत्वं प्राप्तस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिरुच्यते । इदानीं तु पुरंजनस्य पुंदेहत्यागपूर्वकं स्त्रीत्वप्रकारमाह सैनिका इत्यादि राजसिंहस्य वेश्मनीत्यन्तेन। दिष्टं दैवं कुर्वन्त्यधिकुर्वन्तीति तथा। मृत्योरादेशकारिण इति वा॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

अठाइवें अध्याय में स्त्री की चिन्ता करने के कारण स्त्रीत्व योनि में गये हुए पुरञ्जन की दैववशात् वैदर्भी के आख्यान के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति का वर्णन किया गया है । इस पुरञ्जन के पुरुष शरीर त्याग पूर्वक स्त्रीत्व की प्राप्ति के प्रकार का वर्णन नारदजी ने किया है । इस पहले श्लोक से लेकर अठाइसवें श्लोक पर्यन्त स्त्रीत्व प्राप्ति का प्रकार वर्णित है । दिष्टकारिणः अर्थात् मृत्यु के आदेश का पालन करने वाले ।।१।।

**त एकदा तु रभसा पुरंजनपुरीं नृप । रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ।।२।।**

**अन्वयः**— एकदा तु ते रभसा भौमभोगाढ्यां जरतपन्नगपालिताम् पुरञ्जन पुरीं रुरुधुः ।।२।।

**अनुवाद**— एक बार वे सब अत्यन्त वेग पूर्वक संसार की समस्त सुख सामग्री से सम्पन्न तथा बूढे सर्प के द्वारा संरक्षित पुरञ्जन की नगरी को घेर लिया ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

जरत्पन्नगेन जीर्णप्राणेन पालिताम् ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

जरत् पन्नगपालिताम् अर्थात् सौ वर्ष के बूढे प्राण के द्वारा संरक्षित ।।२।।

**कालकन्यापि बुभुजे पुरं जनपुरं बलात् । ययाभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसारतामियात् ।।३।।**

**अन्वयः**— ययाभिभूतः पुरुषः सद्यः निसारतामियात् सा कालकन्यापि बलात् पुरञ्जनपुरं बुभुजे ।।३।।

**अनुवाद**— जिसके द्वारा भोगा जाता हुआ पुरुष शीघ्र ही निस्सार हो जाता है वह कालकन्या भी पुरञ्जन की नगरी का बल पूर्वक भोग कर रही थी ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।३।।

**तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतोदिशम् । द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन्सकलां पुरीम् ।।४।।**

**अन्वयः**— तया उपभुज्यमानां वै यवना सर्वतो दिशम् द्वार्भिः प्रविश्य सकलां पुरीं सुभृशं प्रमर्दयन् ।।४।।

**अनुवाद**— काल कन्या के द्वारा भोगी जाती हुई उस नगरी के सभी द्वारों से प्रवेश यवन सैनिक उस पुरी को अत्यधिक विध्वस्त करने लगे ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

द्वार्भिश्चक्षुरादिभिः रोगरूपेण प्रविश्य ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

**द्वार्भिः प्रविश्य** चक्षुरादि इन्द्रियों के रास्ते रोग रूप से प्रवेश करके ।।४।।

**तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरंजनः । अवापोरुविधांस्तापान्कुटुम्बी ममताकुलः ।।५।।**

**अन्वयः**— तस्यां प्रपीड्यमानायां अभिमानी कुटुम्बी ममताकुलः पुरञ्जनः विविधान् तापान् अवाप ।।५।।

**अनुवाद**— उस नगरी के पीड़ित होने पर उसके स्वामित्व का अभिमानी तथा ममता ग्रस्त वहुकुटम्बी राजा पुररुञ्जन को अत्यधिक कष्ट हुआ ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।५।।

**कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः । नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वयवनैर्बलात् ॥६॥**

**अन्वयः**— कन्यागूढः नष्टश्रीः विषयात्मकः कृपणः नष्टप्रज्ञः गन्धर्वयवनै वलात् हृतैश्वर्यः ॥६॥

**अनुवाद**— काल कन्या (जरा) के द्वारा आलिङ्गित होने के कारण उसकी सारी श्रीनष्ट हो गयी थी तथा अत्यन्त विषयासक्त होने के कारण वह दीन हो गया । उसकी विवेक शक्ति नष्ट हो गयी गन्धर्वों और यवनों ने उसके सम्पूर्ण ऐश्वर्य को लूट लिया ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

कन्यया जरयोपगूढः संस्तत्प्रतिक्रिया न लेभे इति तृतीयेनान्वयः । हृतैश्वर्य उत्थानादिष्वशक्तः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

जरा के द्वारा आलिङ्गित वह उसका प्रतिकार के साधन को नहीं प्राप्त कर सका इस तरह से आठवें अध्याय के साथ इस श्लोक का अन्वय है । हतैश्वर्यः अर्थात् पाने में भी असमर्थ ॥६॥

**विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् । पुत्रान्पौत्राननुगामात्यान् जायां च गतसौहृदाम् ॥७॥**
**आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालानरिदूषितान् । दुरन्तचिन्तामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥८॥**

**अन्वयः**— स्वपुरीं विशीर्णाम् पुत्रान्पौत्राननुगामात्यान् प्रतिकूलाननादृतान् जायां च गतसौहृदाम् आत्मानं कन्यया ग्रस्ताम् अरिदूषितान् पञ्चालान् वीक्ष्य दुरन्तचिन्ताम् आपन्नः तत्प्रतिक्रियाम् न लेभे ॥७-८॥

**अनुवाद**— नष्ट-भ्रष्ट हुई अपनी नगरी को, प्रतिकूल हुए पुत्रों, पौत्रों, भृत्यों तथ आमात्यों के द्वारा किए जाने वाले अनादर को सौहार्द रहित पत्नी को, काल कन्या जरा के द्वारा ग्रस्त शरीर को तथा शत्रुओं के द्वारा नष्ट भ्रष्ट किए गये पञ्चाल देश को देखकर राजा पुरञ्जन अत्यधिक चिन्ताग्रस्त हो गया ॥७-८॥

### भावार्थ दीपिका

प्रतिकूलाननपेक्षितविषयप्रापणान् अनादृतानादरमकुर्वाणान्, स्वाधीनत्वाभावात् । अनुगा इन्द्रियाणि । अमात्या इन्द्रियदेवाः। गतसौहृदामध्यवसायाभावात् । कन्यया जरया ग्रस्तम् । पञ्चालान्विषयान् । अरिभिर्व्याध्यादिभिर्दूषितान् ॥७-८॥

### भाव प्रकाशिका

प्रतिकूल अर्थात् अनपेक्षित विषयों को प्राप्त करने वाले । अनादृतान अर्थात् अनादर करने वाले, क्योंकि राजा स्वाधीन नहीं रह गया था । अनुग शब्द से इन्द्रियों, आमात्य अर्थात् इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओं को निश्चय नहीं कर सकने के कारण बुद्धिरूपी पत्नी भी सौहार्द रहित हो गयी । राजा का शरीर जरा ग्रस्त हो गया था, और व्याधि आदि शत्रुओं के द्वारा शब्दादि विषय भी दूषित हो गये थे ॥७-८॥

**कामानभिलषन्दीनो यातयामांश्च कन्यया । विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥९॥**

**अन्वयः**— कन्यया यातयामान् कामानभिलषन् दीनः विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रादारांश्च लालयन् ॥९॥

**अनुवाद**— कालकन्या के द्वारा निःसार बनाये गये भोगों की लालसा से दीन बना हुआ वह अपने परलोक की गति और बान्धवों के स्नेह से वंचित उसका मन अपनी पत्नी और पुत्रों में लगा था ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

कालकन्यया हेतुभूतया । यातयामान्निः सारानपि कामानभिलषन् । विगता आत्मनो गतिः पारलौकिकी ऐहिकः पुत्रादिस्नेहश्च यस्य सः । गतिः स्नेहादिति वा पाठः । स राजा पुरंजनो हातुं प्रचक्रमे उपक्रान्तवानिति द्वयोरन्वयः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

काल कन्या ने उसके भोगों को निस्सार बना दिया था उन्हीं भोगों को प्राप्त करने की उसे लालसा बनी थी। वह पारलौकिक गति तथा लौकिक पुत्रादि के स्नेह से वंचित था गतिः स्नेहात् भी पाठ हो सकता है। वह राजा पुरञ्जन त्याग देने का उपक्रम किया यह दशवें श्लोक के साथ अन्वय हैं ॥९॥

**गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम् । हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥१०॥**

**अन्वयः**— गन्धर्व यवनाक्रान्तां, काल कन्योपमर्दिताम् तां पुरीम् राजा अनिकामतः हातुं प्रचक्रमे ॥१०॥

**अनुवाद**— गन्धर्वों तथा यवनों के द्वारा आक्रान्त तथा काल कन्या के द्वारा मर्दित उस नगरी को नहीं चाहकर भी राजा पुरञ्जन छोड़ने के लिए विवश हो गया ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

अनिकामतोऽनिच्छयापि ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

अनिकामतः अर्थात् नहीं चाहकर भी ॥१०॥

**भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः । ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥११॥**

**अन्वयः**— भयनाम्नः अग्रजः भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः भ्रातुः प्रियचिकीर्वया तां कृस्नांपुरीं ददाह ॥११॥

**अनुवाद**— भय नामक यवन राज के बड़े भाई प्रज्वार उपस्थित होकर अपने भाई की प्रसन्नता के लिए उस सम्पूर्ण पुरी में आग लगाकर जला दिया ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ॥११॥

**तस्यां संदह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः । कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः ॥१२॥**

**अन्वयः**— तस्यां संदह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या सान्वयः उपातपत॥१२॥

**अनुवाद**— जब वह नगरी जलने लगी उस समय राजा पुरञ्जन नागरिक, सेवक वर्ग, सन्तान वर्ग तथा कुम्ब की स्वामिनी के साथ कुटुम्ब तथा पुरञ्जन को बड़ा ही कष्ट हुआ ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

सपरिच्छदो भृत्यवर्गसहितः । कुटुम्बेन दीव्यतीति कौटुम्बिकः । कुटुम्बिन्या । सन्धिर्नात्र विवक्षितः । सान्वयः पुत्रादिसहितः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

सपरिच्छदः अर्थात् भृत्य वर्ग के साथ कुटुम्ब (परिवार) के साथ क्रीडा करने वाले को कुटुम्बिक कहते हैं कुटुम्बिनी के साथ तथा अपने पुत्रादि के साथ अत्यधिक क्लेश का अनुभव किया ॥१२॥

**यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया । पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥१३॥**

**अन्वयः**— कालकन्यया पुर्यां ग्रस्तायाम् भवनोपरुद्धायतनः प्रज्वार संसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥१३॥

**अनुवाद**— नगर को काल कन्या के द्वारा ग्रस्त हो जाने पर प्रजागर बड़ा कष्ट इसलिए हुआ कि उसके निवास स्थान को यवनों ने घेर रखा था और प्रज्वर उस पर भी आक्रमण कर रहा था ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

यवनैरुपरुद्धान्यायतनानि यस्य स पुरपालः ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसके निवास स्थान को यवनों ने घेर लिया था वह प्रजागर नामक नगर का रक्षक ॥१३॥

**न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरूवेपथुः । गन्तुमैच्छत्ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥१४॥**

**अन्वयः**— सः तत्र अवितुं न शेके पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः सः सानलात् वृक्षकोटरात् इव ततो गन्तुमैच्छत् ॥१४॥

**अनुवाद**— जब वह उस वृक्ष की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ हो गया तब जिस प्रकार जलते हुए वृक्ष की कोटर में रहने वाला सर्प उससे निकल जाना चाहता है उसी तरह वह भी अत्यन्त कष्ट पूर्वक काँपते हुए उस पुरी से निकल जाना चाहा ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरु बहु कृच्छ्रं तेन उरुर्वेपथुर्यस्य । वृक्षकोटरादिव सर्पः ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

अत्यधिक कष्ट के कारण वह काँपने लगा था और जिस तरह वृक्ष में आग लग जाने पर उसके कोटर में रहने वाला सर्प उससे बाहर निकल कर भाग जाना चाहता है उसी तरह वह प्रजागर भी उस पुरी से निकलकर भाग जाना चाहा ॥१४॥

**शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः । यवनैररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे राजन् ! शिथिलावयवः गन्धर्वैर्हृत पौरुषः यवनैः यर्हि अरिभिः उपरुद्धः रुरोद ह ॥१५॥

**अनुवाद**— राजन् ! उसके सारे अङ्ग शिथिल हो गये थे गन्धर्वों ने उसकी सम्पूर्ण शक्ति को विनष्ट कर दिया था यवन सैनिकों ने जब उसके गले को बाँध दिया तो वह रोने लगा ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

कण्ठे उपरुद्धो रुरोद घुरघुरध्वनिं चकार ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

जब उस सर्प के गले को बाँध दिया वह घुरघुर ध्वनि करने लगा ॥१५॥

**दुहितॄः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् । स्वत्वावशिष्टं यत्किंचिद्गृहकोशपरिच्छदम् ॥१६॥**
**अहंममाति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही । दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते ॥१७॥**

**अन्वयः**— कुमतिः गृही गृहेषु अहं ममति स्वीकृत्य प्रमदया विप्रयोगे उपस्थिते दीनः दुहितॄः पुत्र पौत्रान् च जामि जामातृ पार्षदान् गृहकोश परिच्छदम् स्वत्वाषशिष्टम् यत् किञ्चदध्यौ ॥१६-१७॥

**अनुवाद**— गृही पुरञ्जन देह गेह में अहन्त्व ममत्व के कारण अत्यन्त बुद्धि हीन हो गया था । वह स्त्री का वियोग उपस्थित होने पर बहुत दीन हो गया और वह अपनी पुत्री, पुत्र, पौत्र, पुत्रबधू एव जामाता भृत्य वर्ग, गृह ओर कोश आदि जिनमें केवल स्वत्वमात्र अवशिष्ट था उन सबों के विषय में चिन्ता करने लगा ॥१६-१७॥

**भावार्थ दीपिका**

दुहित्रादीन्दध्यावित्युत्तरेणान्वयः । जामयोऽत्र स्नुषाः । स्वत्वमात्रेणावशिष्टम् । भोगस्तु प्रागेव क्षीणः ॥१६-१७॥

**भाव प्रकाशिका**

पुरञ्जन अपने पुत्रियों आदि के विषय में चिन्ता करने लगा इस तरह से सत्रहवें श्लोक के साथ सोलहवें श्लोक का अन्वय है । यहाँ पर जामि शब्द से पुत्र बधुओं को कहा गया है । भोग तो पहले ही नष्ट हो चुका था केवल स्वत्वमात्र अवशिष्ट था । उन सबों के विषय में चिन्ता करने लगा ।।१६-१७।।

**लोकान्तरं गतवति मय्यनाथा कुटुम्बिनी । वर्तिष्यते कथं त्वेषां बालकाननु शोचती ।।१८।।**

**अन्वयः**— मयि लोकान्तं गतवति एषा अनाथा कुटुम्बिनी बालकान् अनुशोचती कथं वर्तिष्यते ।।१८।।

**अनुवाद**— मेरी मृत्यु हो जाने पर अनाथ बनी हुई मेरी यह पत्नी अपने बालकों की चिन्ता करती हुई किस प्रकार निर्वाह करेगी ।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**

ध्यानमेवाह-लोकान्तरमिति ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में पुरञ्जन की चिन्ता का ही वर्णन किया गया है ।।१८।।

**न मय्यनाशिते भुङ्क्ते नास्नाते स्नाति मत्परा । मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात् ।।१९।।**

**अन्वयः**— मयि अनाशिते न भुङ्क्ते अस्नाते मत्परान् स्नाति । मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते भयात् यतवाक् ।।१९।।

**अनुवाद**— मेरे भोजन किए बिना भोजन नहीं करती थी । मेरी ही सेवा में लगी रहने के कारण मेरे स्नान किए बिना स्नान नहीं करती थी मेरे रुष्ट हो जाने पर यह भयभीत हो जाती थी और मेरे द्वारा डाँटे जाने पर चुप लगा जाती थी ।।१९।।

**भावार्थ दीपिका**

अनाशितेऽभोजिते । भर्त्सिते भर्त्सने कृते यतवाग्भवति ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

अनाशिते अर्थात् भोजन किए बिना, भर्तिसिते अर्थात् डाँटने पर चुप लगा जाती थी ।।१९।।

**प्रबोधयति माऽविज्ञं व्युषिते शोककर्शिता । वर्त्मैतद्गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ।।२०।।**

**अन्वयः**— अविज्ञं मा प्रबोधयति व्युषिते शोककर्शिता, वीरसूरपि एतद् गृहमेधीयं वर्त्म नेष्यति ?।।२०।।

**अनुवाद**— अविवेकी मुझको यह सचेत करती रहती थी, मेरे परदेश चले जाने में मेरे वियोगव्यथा में दूर्बल हो जाती थी यद्यपि यह वीर माता है, किन्तु मेरे नहीं रहने पर भी यह इस गृहस्थी के भार को चला सकेगी क्या ?।।२०।।

**भावार्थ दीपिका**

अविज्ञमविवेकिनं माम् । व्युषिते देशान्तरं गते । गृहमेधीयं वर्त्म गृहधर्ममपि किं नेष्यत्यनुवर्तयिष्यति । युक्तमेतत्। यतो वीरसूः पुत्रवती । किंवा मद्विरहमसहमाना मरिष्यत्येवेत्यर्थः ।।२०।।

**भाव प्रकाशिका**

अविवेकी मुझको यह सचेत करने का काम करती रहती थी । मेरे देशान्तर में चले जाने पर विरह से कृश हो जाती थी । मेरे अभाव में यह गार्हस्थ्य धर्म को चला पायेगी क्या ? अथवा मर जायेगी ?।।२०।।

**कथं नु दारका दीना दारकीर्वाऽपरायणाः । वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥२१॥**

**अन्वयः**— मयि गते दीनाः द्वारकाः परायणः दारकीः वा उदधौ भिन्ननावे कथं नु वर्तिष्यन्ते ॥२१॥

**अनुवाद**— मेरे चले जाने पर ये दीन बने हुए मेरे ही सहारे रहने वाले मेरे पुत्र पुत्रियाँ कैसे जीवित रहेंगी? बीच समुद्र में नाव के टूट जाने पर व्याकुल हुए यात्रियों के समान अत्यन्त दु:खी हो जायेंगे ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

न विद्यते परमयनमाश्रयो येषां तेऽपरायणाः पुत्राः कन्याश्च । यद्वा पराश्रयाः कन्याः । भिन्न नौर्येषाम् ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन सबों का कोई आश्रय नहीं है ऐसे मेरे पुत्र और पुत्रियाँ अथवा पराश्रित मेरे पुत्र और पुत्रियाँ जिन सबों की नाव बीच सागर में टूट गयी हो ॥२१॥

**एवं कृपणया बुद्ध्या शोचन्तमतदर्हणम् । ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाऽभ्यपद्यत ॥२२॥**

**अन्वयः**— एवं कृपणया बुद्ध्याशोचन्तम् अतदर्हणम् एनं गृहीतुं कृतधीः भयनामा अभ्यपद्यत ॥२२॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से दीन बुद्धि के कारण शोक करने वाले, यद्यपि यह शोक करने योग्य नहीं था, क्योंकि वह ब्रह्म स्वरूप ही था उसी समय उसको पकड़ने का निश्चय किए हुए वहाँ भय नामक यवनराज आ गया ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

अतदर्हणं वस्तुतस्तस्य ब्रह्मत्वात् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

वास्तविकता यही है कि वह पुरञ्जन ब्रह्म ही था अतएव वह शोक करने योग्य नहीं था । फिर भी वह शोक कर रहा था ॥२२॥

**पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम् । अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥२३॥**

**अन्वयः**— यवनैः एषः स्वकंक्षयं पशुवद् नीयमानः एषः भृशम् आतुराः शोचन्तः अनुपथाः एनम् अनुद्रवन् ॥२३॥

**अनुवाद**— जब यवन गण पुरञ्जन को पशु के समान बाँधकर अपने स्थान पर ले जा रहा थे, उस समय अत्यन्त आतुर बने हुए तथा शोक संतप्त अनुचरगण उसके पीछे चल दिए ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

एष यदा क्षयं स्थानं नीयमानस्तदा अनुपथाः प्राणा इन्द्रियाणि च । तथाच श्रुतिः 'तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति इति ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

जब यह पशु के समान बाँध कर यवनों द्वारा अपने स्थान पर ले जाया जा रहा था उस समय उसके प्राण और इन्द्रियाँ भी उसके पीछे चल दी । श्रुति भी कहती है **तमुत्कामन्तम्०** इत्यादि इस शरीर से आत्मा के उत्क्रमण करने पर उसकी सभी इन्द्रियाँ उसके पीछे शरीर से निकल कर चली जाती हैं ॥२३॥

**पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजङ्गमः । यदा तमेवानु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥२४॥**

**अन्वयः**— यदा उपरुद्ध भुजङ्गमः तमेवानु पुरीं विहाय उपगतः विशीर्णापुरी प्रकृतिं गता ॥२४॥

**अनुवाद**— यवनों द्वारा उपरुद्ध सर्प उसी के पीछे-पीछे नगरी को छोड़कर चला गया उसी समय नगरी भी शीर्ण होकर अपनी प्रकृति महाभूतों में मिल गयी ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रकृतिं महाभूतात्मताम् ।।२४।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रकृति अर्थात् महाभूत स्वरूप हो गयी ।।२४।।

**विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा । नाविन्दत्तमसाविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ।।२५।।**

**अन्वयः**— बलीयसा यवनेन प्रसभं विकृष्यमाणः तमसाविष्टः सखायं सुहृदं पुरः न अविन्दत ।।२५।।

**अनुवाद**— महाबलवान यवनराज के द्वारा बल पूर्वक खींचने पर राजा पुरञ्जन ने अपने मित्र तथ हितैषी अविज्ञात का स्मरण नहीं किया ।।२५।।

**भावार्थ दीपिका**

नाविन्दन्न सस्मार । पुरः पूर्वं सखायं सन्तमीश्वरम् ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

अपने पुराने मित्र ईश्वर का स्मरण नहीं किया ।।२५।।

**तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना । कुठारैश्छिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् ।।२६।।**

**अन्वयः**— अदयालुना अनेन ये पशवः सज्ञप्ताः क्रुद्धा ते तस्य तत् अमीवम् संस्मरन्तः ।।२६।।

**अनुवाद**— उस निर्दय राजा ने जिन यज्ञ पशुओं को यज्ञों में बलि दी थी क्रुद्ध हुए उसके द्वारा दी गयी पीड़ा का स्मरण करते हुए उसको कुल्हाड़ी से काटने लगे ।।२६।।

**भावार्थ दीपिका**

अदयालुना काम्यकर्मसु ये संज्ञप्ता हताः । अभीवं पापं क्रौर्यं वा ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

निर्दय राजा ने काम्य कर्मों में जिन पशुओं को मारा था वे उसके पाप अथवा क्रौर्य का स्मरण करते हुए, उस राजा को कुल्हाड़ी से काटने लगे ।।२६।।

**अनन्तपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः । शाश्वतीरनुभूयार्तिं प्रमदासङ्गदूषितः ।।२७।।**

**अन्वयः**— अनन्तपारे तमसि मग्नः नष्ट स्मृतिः शाश्वतीः समाः आर्तिम् अनुभूय प्रमदासङ्ग दूषितः ।।२७।।

**अनुवाद**— घोर अज्ञानान्धकार में पड़े रहने के कारण उसकी स्मृति नष्ट हो गयी थी वह वर्षो तक कष्ट का अनुभव करता रहा । उसकी यह दुर्गति नारी में आसक्ति के कारण हुई थी ।।२७।।

**भावार्थ दीपिका**

शाश्वतीः समा आर्तिमनुभूय ।।२७।।

**भाव प्रकाशिका**

अनन्त वर्षो तक कष्ट का अनुभव किया ।।२७।।

**तामेव मनसा गृह्णन्बभूव प्रमदोत्तमा । अनन्तरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ।।२८।।**

**अन्वयः**— तामेव मनसा गृह्णन् अनन्तरं राजसिंहम्य विदर्भस्य वेशमनि प्रमदोत्तमा बभूव ।।२८।।

**अनुवाद**— उस नारी का ही अन्त समय में भी स्मरण करने के कारण दूसरे जन्म में पुरञ्जन का जन्म राजाओं में श्रेष्ठ विदर्भराज की सुन्दरी पुत्री के रूप में हुआ ।।२८।।

### भावार्थ दीपिका

अन्तकाले तां भार्यामेव मनसा गृह्णन्स्मरन्ननन्तरं विदर्भस्य वेश्मनि प्रमदोत्तमा बभूव । अतःपरमस्मिन्प्रकरणे एतावदेव प्रकृतोपयोगि विवक्षितम् । स्त्रीध्यानेन स्त्रीत्वप्राप्तावपि पतिव्रताध्यानेन पूर्वादृष्टेन च धार्मिकाद्विदर्भाज्जन्माभूत् । धार्मिकसङ्गेन च विशुद्धस्य भागवतेन मलयध्वजेन सङ्गोऽभूत् । ततो विष्णुभक्तिस्ततो वैराग्यं ततस्तमेव भर्तृरूपं गुरुं पातिव्रत्यधर्मेण भजतो भगवत्प्रसादलब्धज्ञानेन मोक्ष इति । अन्यत्तु कथालङ्कारमात्रं तथापि किंचिद्वृत्तिसामान्येनेह योजयिष्यामः । विदर्भस्य विशिष्टदर्भोपलक्षितस्य कर्मठस्य राजसिंहस्य । धर्मेण हि प्रजापालनेन यज्ञादिना च क्षत्रिया राजन्ते तेषु श्रेष्ठस्य वेश्मनि ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

मृत्यु के समय भी उस पत्नी का ही स्मरण करते हुए मरने के कारण दूसरे जन्म में वह विदर्भ राज के गृह में श्रेष्ठ कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ । इसके बाद वाले प्रकरण में इतना ही प्रकृतोपयोगी रूप से विवक्षित है । स्त्री का ध्यान करने के कारण उसको स्त्रीत्व की प्राप्ति होने पर भी पतिव्रता का ध्यान करने के कारण उत्पन्न पूर्वा दृष्टावशात् धार्मिक विदर्भ राज की पुत्री के रूप में जन्म हुआ । और उसका विवाह भी धार्मिक परम भागवत मलयध्वज के साथ हुआ । उसके कारण उसमें भगवान् विष्णु की भक्ति उत्पन्न हुई, उसके कारण उसका संसार से वैरागय उत्पन्न हुआ । पतिव्रता होने के कारण वह अपने पति की ही सेवा करती हुई श्रीभगवान् की कृपा प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त की । अन्य सारी बातें तो कथा के अलङ्कार मात्र हैं । फिर भी कुछ वृत्ति की समता के कारण योजना करेगे । विदर्भ अर्थात् विशिष्ट दर्भ से उपलक्षित राजसिंह है । धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करके तथा यज्ञ आदि के द्वारा ही क्षत्रियों की शोभा होती है । ऐसे राजाओं में श्रेष्ठ विदर्भ राज के गृह में उसने कन्या रूप से जन्म लिया ।।२८।।

**उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः । युधि निर्जित्य राजन्यान्पाण्ड्यः परपुरंजयः ।।२९।।**

**अन्वयः**— युधि राजन्यान् निर्जित्य परपुरञ्जयः पाण्ड्य मलयध्वजः वीर्यपणां वैदर्भी उपयेमे ।।२९।।

**अनुवाद**— जब वह राजकुमारी विवाह के योग्य हुई तो विदर्भ राज ने घोषित किया कि इसका विवाह सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी राजा के ही साथ होगा । शत्रुओं के नगरों को जीतने वाले पाण्डय देश के राजा मलयध्वज ने युद्ध में राजाओं को परास्त करके उसके साथ विवाह किया ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

मलयोपलक्षिते दक्षिणदेशे ध्वज इव दर्शनीयः । स हि श्रीविष्णुभक्तप्रधानो देशः । तत्र मुख्यो महाभागवत इत्यर्थः। पण्डा निश्चयबुद्धिस्तामर्हतीति पाण्ड्यः स उपयेमे । पुरंजनो भागवतसङ्गं प्राप्त इत्यर्थः ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

मलयाचल से युक्त दक्षिण भारत के प्रदेश विशेष में ध्वज के समान देखने योग्य । यह मलयध्वज का विग्रह है । उस प्रदेश में विष्णु भक्तों की प्रधानता है । उन सबों में मुख्य महाभागवत थे मलयध्वज पण्डा अर्थात् निश्चय बुद्धि युक्त होने योग्य को पाण्ड्य कहते हैं । उसने उस विदर्भ राज की पुत्री से विवाह किया । अर्थात् पुरञ्जन ने भगवद् भक्त की सङ्गति प्राप्त कर ली ।।२९।।

**तस्यां स जनयांचक्रे आत्मजामसितेक्षणाम् । यवीयसः सप्त सुतान्सप्त द्रविडभूभृतः ।।३०।।**

**अन्वयः**— सः तस्यां असितेक्षणाम् आत्मजां यवीयसः सप्त सुतान् सप्त द्रविडभूभृतः जनयाञ्चक्रे ।।३०।।

**अनुवाद**— उसके गर्भ से महाराज मलय ध्वज ने एक श्यामलोचना कन्या को तथा उससे छोटे सात पुत्रों को उत्पन्न किया वे सब द्रविड देश के सात राजा हुए ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

आत्मजां श्रीकृष्णसेवारुचिम् । तत्सङ्गेन भगवद्धर्मे रुचिरभूदित्यर्थः । असितस्य श्रीकृष्णस्येक्षणं यया ताम् । यवीयसः सप्त सुतान् । 'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं' इति भक्तिप्रकारान् । सख्यात्म-निवेदनयोस्त्वंपदार्थज्ञानोत्तरकालत्वात्तस्य च भगवतैवोत्तरत्रोपदेक्ष्यमाणत्वादिदानीमनुत्पत्तेः सप्तेत्युक्तम् । भगवद्धर्मरुच्या तच्छ्रवणकीर्तनादिकं जातमित्यर्थः । द्रविडभूमिपालकान् । द्रविडभूमिर्हि श्रवणादिभक्तिभिरेव सुरक्षितास्तीति प्रसिद्धम् ।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा की रुचि ही आत्मजा है । अर्थात् उनकी सङ्गति से भगवद् धर्म में रुचि उत्पन्न हुई असित अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा कटाक्ष होता है ऐसी श्रीकृष्ण सेवा रुचि को उत्पन्न किया । श्रवणं, कीर्तनं विष्णोः स्मरणाम् पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यम् इस सूक्ति में वर्णित सात प्रकार की भक्ति ही छोटे पुत्र हैं । सख्य तथा आत्म निवेदन चूकि त्वम् पदार्थ के ज्ञान के पश्चात् ही होते हैं, त्वं पदार्थ का उपदेश आगे चलकर स्वयं श्रीभगवान् करने वाले हैं, अतएव इस समय उनकी उत्पत्ति नहीं होने के कारण सात ही भक्ति के प्रकारों को कहा गया है । कहने का अभिप्राय है कि भगवद् धर्म में रुचि होने के कारण श्रवण कीर्तन आदि भक्ति के प्रकार हो गये । **द्रविड भूभृतः** अर्थात् द्रविड देश के राजा हुए । द्रविड देश की भूमि श्रवणादि भक्ति के द्वारा ही सुरक्षित है ऐसी प्रसिद्धि है ।।३०।।

**एकैकस्याभवत्तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् । भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वन्तरं परम् ।।३१।।**

**अन्वयः**— राजन् तेषाम् एकैकस्य अर्बुदम् अर्बुदम् अभवत् यद्वंश धरैः मन्वन्तरं परं मही भोक्ष्यते ।।३१।।

**अनुवाद**— राजन् ! उन सबों में से प्रत्येक के बहुत-बहुत पुत्र हुए, उन सबों के ही वंशधर इस पृथिवी का भोग इस मन्वन्तर के अन्त तक और उसके पश्चात् भी करेंगे ।।३१।।

### भावार्थ दीपिका

अर्बुदमिति । श्रवणादीनां प्रत्येकमनेके प्रकारा अभवन्नित्यर्थः । तदुक्तम् 'भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते' इति । येषां वंशधरैर्यतः प्रवृत्तैः संप्रदायभेदैः कृत्स्ना मही मन्वन्तरं ततः परं च भोक्ष्यते । विद्याकामकर्मभ्योऽपि रक्षिष्यते।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

उन श्रवण आदि प्रत्येक भक्तियाँ के अनेक प्रकार हो गये । कहा भी गया है । भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते । भगवान् कपिल ने कहा हे माँ भक्ति के अनेक प्रकार के मार्ग हैं । उन सबों से उत्पन्न हुए भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के द्वारा यह सम्पूर्ण पृथिवी मन्वन्तर तथा उसके पश्चात् भी भोगी जायेगी अर्थात् विद्या काम कर्मों के द्वारा संरक्षित रहेगी ।।३१।।

**अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् । यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः ।।३२।।**

**अन्वयः**— प्राक् धृतव्रताम् दुहितरं अगस्त्यः उपयेमे यस्यां दृढच्युतः मुनिः इध्मवाहात्मजः जातः ।।३२।।

**अनुवाद**— मलयध्वज की पुत्री व्रत को धारण करने वाली थी । उसका विवाह अगस्त्य मुनि से हुआ उससे उनका दृढच्युत नामक पुत्र हुआ और दृढच्युत के पुत्र मुनि इध्मवाह हुए ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

अगस्त्यः अगानि निष्क्रियानि गात्राणि स्त्यायति संघातयतीत्यगस्त्यो मनः । स प्राक्प्रथमजातां दुहितरं कृष्णसेवारुचिमुपयेमे, तस्य मनः कृष्णे दृढां रतिं बबन्धेत्यर्थः । धृतानि शमदमादीनि व्रतानि यया तां रतिम् । दृढेभ्यः सत्यलोकादिभोगेभ्योऽपि च्युतस्तद्रहितः, कृष्णरताविहामुत्रभोगविरागो जात इत्यर्थः । स एवोपशमात्मकत्वान्मुनिः । कथंभूतः । इध्मवाह आत्मजो यस्य

सः । 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेसभित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धा समिद्वहनोपलक्षिता गुरूपसत्तिर्वैराग्यादभूदित्यर्थः । नह्यविरक्तस्य गुरूपसत्तिः संभवति । कथापक्षे यथाश्रुतमेव ।।३२।।

**भाव प्रकाशिका**

निष्क्रिय अङ्गों को भी संहत करने वाला मन ही अगस्त्य है । उस मन ने पहले उत्पन्न हुई श्रीकृष्ण सेवा रुचि के साथ विवाह किया । अर्थात् उसके मन से भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में प्रेम हो गया । शम दम इत्यादि रूपी व्रतों को धारण करने वाली वह रति थी । दृढव्रत अर्थात् दृढ सत्यलोक आदि भोगों से भी रहित भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेम हो जाने पर लौकिक तथा पारलौकिक विषयों से वैरागय उत्पन्न हो गया । इसी को दृढच्युत की उत्पत्ति कहा गया है । वही शान्ति स्वरूप रूप होने के कारण मुनि है । वह कैसा है ? तो इस पर कहते हैं- **इध्मवाह है इध्मवाह** शब्द के द्वारा **'तद्विज्ञानार्थ स गुरुमेवाभिगच्छेत श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'** इस श्रुति के द्वारा प्रोक्त समिधावहन के द्वारा आचार्य की शरणागति को उपलक्षित किया गया है । जो विरक्त नहीं होगा वह गुरु प्रसत्ति नहीं कर सकता है । कथा पक्ष में तो अनुवाद में कहा गया ही अर्थ हैं ।।३२।।

**विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः । आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ।।३३।।**

**अन्वयः**— राजर्षिः मलयध्वजः कृष्णं आरिराधयिषुः कर्मातनयेभ्यः विभज्य कुलाचलंजगाम ।।३३।।

**अनुवाद**— राजर्षि मलयध्वज भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने के लिए पृथिवी को अपने पुत्रों में बाँटकर कुलचल नामक पर्वत पर तपस्या करने के लिए चले गये ।।३३।।

**भावार्थ दीपिका**

क्ष्मां विभज्य तत्र श्रवणादिभक्तिभेदं व्यवस्थाप्य ।।३३।।

**भाव प्रकाशिका**

क्ष्मां विभज्य का अर्थ है श्रवण आदि भक्ति के भेदों को व्यवस्थापित करके ।।३३।।

**हित्वा गृहान्सुतान्भोगान्वैदर्भी मदिरेक्षणा । अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ।।३४।।**

**अन्वयः**— मदिरेक्षणा वैदर्भी गृहान् सुतान् भोगान् हित्वा रजनिकरम् ज्योत्स्नेव पाण्डेयशं अन्वधावत ।।३४।।

**अनुवाद**— मत्तलोचना वैदर्भी अपने गृह पुत्र और समस्त भोगों को त्यागकर जिस तरह चन्द्रिका चन्द्रमा का अनुसरण करती है, उसी तरह पाण्डय नरेश का अनुगमन की ।।३४।।

**भावार्थ दीपिका**

इदानीं पुरंजनस्य स्त्रीभावं प्राप्तस्य सर्वतो विरक्तस्य 'पतिरेव गुरुः स्त्रीणां' इति वचनात्पतिसेवया गुरुशुश्रूषाप्रकारं दर्शयितुमाह-हित्वेत्यादिना मनो दध इत्यन्तेन ग्रन्थेन । मदयतीति मदिरमीक्षणं यस्याः ।।३४।।

**भाव प्रकाशिका**

अब स्त्रीत्व को प्राप्त पुरञ्जन हर प्रकार से विरक्त हो गया था उसके **पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्'** इस सूक्ति के अनुसार पति की सेवा के ही द्वारा गुरु की सेवा के प्रकार को बतलाने के लिए **हित्वागृहान इत्यादि** श्लोक से लेकर पचासवें श्लोक मनोदधे पर्यन्त इस अर्थ का प्रतिपादन नारदजी ने किया है । उसके नेत्र मदमत्त बना देने वाले थे इसलिए उसे मदिरेक्षण कहा गया है ।।३४।।

**तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका । तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन् ॥३५॥**

**अन्वयः**— तत्र चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, बटोदका नाम तत्पुण्यसलिलैः नित्यम् उभयत्र आत्मनो मृजन् ॥३५॥

**अनुवाद**— वहाँ चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, और बटोदका नाम की तीन नदियाँ थी उनके पवित्र जल में स्नान करके वे प्रतिदिन शरीर और मन को पवित्र करते थे ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र चन्द्रवसाद्या नद्यस्तासां पुण्यैः सलिलैरुभयत्रान्तर्बहिश्चात्मनो मलं क्षालयंस्तप आस्थित इत्युत्तरेणान्वयः ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

चन्द्रवसा आदि नदियों के पवित्र जल से आभ्यन्तर एवं बाह्य दोनों प्रकार के मलों को दूर करते हुए वे तपस्या करने लगे इस तरह से आगे वाले श्लोक से अन्वय है ॥३५॥

**कन्दाष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः । वर्तमानः शनैर्गात्रकर्षणं तप आस्थितः ॥३६॥**

**अन्वयः**— कन्दाष्टिभिः मूलफलैः पुष्पपर्णै तृणोदकैः वर्तमानः शनैः गात्रकर्शनं तप आस्थितः ॥३६॥

**अनुवाद**— वहाँ पर वे कन्द, बीज, मूल, फल, पुष्प, पत्ते, तृण तथा जल को खाकर निर्वाह करते हुए कठोर तप करते रहे और उनका शरीर धीरे-धीरे सूख गया ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

अस्यते भूमौ क्षिप्यत इत्यष्टिर्बीजम् ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

अष्टि शब्द बीज का वाचक है । अस्यते भूमौ क्षिप्यते यह अष्टि शब्द की व्युत्पत्ति है ॥३६॥

**शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये । सुखदुःखे इति द्वन्द्वान्यजयत्समदर्शनः ॥३७॥**

**अन्वयः**— समदर्शनः सः शीतोष्णवातवर्षाणि, क्षुत्पिपासे, प्रियाप्रिये, सुख दुःखे इति द्वन्द्वानि अजयत् ॥३७॥

**अनुवाद**— सबों में समान दृष्टि रखने वाले महाराज मलयध्वज ने शीत जल, वायु, वर्षा, भूख, प्यास, प्रिय, अप्रिय, सुख तथा दुःख इत्यादि सभी द्वन्द्वों को जीत लिया ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३७॥

**तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः । युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥३८॥**

**अन्वयः**— तपसा, विद्यया, पक्वकषायः नियमैर्यमैः विजितानिलाशयः ब्रह्मणि आत्मानं युयुजे ॥३८॥

**अनुवाद**— तपस्या और उपासना से उनकी सारी वासनाएँ निर्मूल हो गयी थीं यम और नियम के पालन द्वारा इन्द्रिय, प्राण और चित्त इन सबों को अपने वश में करके अपनी आत्मा परब्रह्म में ही मन को लगा दिए॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

विद्ययोपासनया पक्वकषायो दग्धकामादिवासनः युयुजे आत्मनो ब्रह्मतां भावयामास । अक्षाणीन्द्रियाणि । अनिलः प्राणः । आशयश्चित्तम् । विजिता अक्षादयो येन ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

विद्यया अर्थात् उपासना के द्वारा उन्होंने काम आदि वासनों को विनष्ट कर दिया था, यह **पक्वकषायः** का अर्थ है । अक्ष अर्थात् इन्द्रियाँ, अनिल अर्थात् प्राण, आशय अर्थात् चित्त यम नियम के पालन से वे इन सबों को अपने वश में कर लिए थे ॥३८॥

**आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः । वासुदेवे भगवति नान्यद्वेदोद्वहन्नतिम् ॥३९॥**

**अन्वयः**— दिव्यं वर्षशतं स्थाणुः इव एकत्र स्थिरः आस्ते, वासुदेवे, भगवति, रतिम् उद्वहन् नान्यद् वेद ॥३९॥

**अनुवाद**— वे दिव्य सौ वर्षों तक एक ही स्थान में स्थाणु के समान एक ही स्थान पर बैठे रहे । श्रीभगवान् वासुदेव में प्रेम के कारण उन्हें अपने शरीर आदि का भी ध्यान नहीं हुआ ॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

अस्ते स्म वर्षशतमिति ज्ञानस्य दुःसाधनतां दर्शयति । अतएव हरौ भक्तिं कृतवानित्याह वासुदेवे रतिमुद्वहन्नन्यद्देहादिकं न वेद ॥३९॥

### भाव प्रकाशिका

वे सौ वर्षो तक एक ही स्थान में बने रहे इस कथन के द्वारा यह बलाया गया है कि ज्ञान की प्राप्ति बड़ी ही कठिन है । इसीलिए महाराज मलयध्वज ने श्रीहरि की भक्ति की । भगवान् वासुदेव में प्रेमतिरेक के कारण उनको अपने शरीर आदि का भी पता नहीं चला ॥३९॥

**स व्यापकतयात्मानं व्यतिरिक्ततयात्मनि । विद्वान्स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराम ह ॥४०॥**
**साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप । विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥४१॥**

**अन्वयः**— नृप साक्षात् हरिणा गुरुणा, उक्तेन विशुद्ध ज्ञानदीपेन विश्वतोमुखम् स्फुरता, आत्मानं स्वप्ने अमर्श साक्षिणेआत्मनि व्यतिरिक्ततया व्यापकतया विरराम ॥४०-४१॥

**अनुवाद**— हे राजन् ! गुरु स्वरूप साक्षात् श्रीहरि के द्वारा उपदिष्ट तथा अपने अन्तःकरण में सभी ओर से प्रकाशित होने वाले विशुद्ध ज्ञान रूपी दीपक द्वारा उन्होंने अनुभव किया कि अन्तःकरण की वृत्ति के प्रकाशक आत्मा स्वप्नावस्था के समान देह आदि सारी उपाधियों में तथा उनसे पृथक् भी है । इस तरह से अनुभव करके वे सब ओर से विरक्त हो गये ॥४०-४१॥

### भावार्थ दीपिका

स एवं वर्तमान आत्मन्यात्मानं विद्वानन्यस्मादुपरराम । कथं विद्वान् । व्यतिरिक्ततया देहादिव्यतिरिक्तत्वेन । कुतः व्यापकतया देहादिप्रकाशकत्वेन । ननु देहाद्याकारो विमर्श एतत्प्रकाशति नतु निराकार आत्माऽत आह । आमर्शस्यापि साक्षिणम्। अयं भावः- आमर्शो नामान्तःकरणवृत्तिः सा च जडत्वादात्मप्रकाश्यैवेति । यथा स्वप्ने ममेदं शिरश्छिन्नमित्यादिप्रतीतौ तद्व्यतिरिक्तमात्मानं वेत्ति तद्वत् । केन विद्वांस्तत्राह । साक्षाद्धरिरेव यो गुरुस्तेनोक्तेन सर्वतोमुखं यथा तथा स्फुरताऽनवच्छिन्नेन ज्ञानेन ॥४०-४१॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से रहने वाला अपने भी भीतर ही परमात्मा को जानने वाले वे महाराज मलयध्वज इस संसार से विरक्त हो गये है । वे शरीरादि से भिन्न ही आत्मा को जानते थे । क्योंकि आत्मा शरीर में व्यापक तथा शरीरादि का प्रकाशक है । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि विचार करने से तो यही पता चलता है कि देहादि आकार वाला ही इन सभी वस्तुओं को प्रकाशित करता है निराकार नहीं इस पर नारदजी कहते हैं **आमर्शस्यापि सक्षिणम्** वह स्वापावस्था का भी साक्षी है । कहने का अभिप्राय है कि अन्तःकरण की वृत्ति को ही आमर्श कहते हैं । वह जड़ा है अतएव आत्मा का प्रकाश्य है । जैसे स्वप्न में यह मेरा शिर कट गया है, इत्यादि रूप से होने वाली प्रतीति में जैसे जीव उससे भिन्न ही आत्मा को जानता है, उसी तरह से प्रश्न है कि वह कैसे जाना तो इस पर नारदजी कहते हैं साक्षात् श्रीहरि ही गुरु हैं उनके द्वारा उक्त सब ओर प्रकाशित होने वाले ज्ञान के द्वारा ॥४०-४१॥

**परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथात्मनि । वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥४२॥**

**अन्वयः**— परे ब्रह्मणि आत्मानं तथा आत्मनि परं ब्रह्म वीक्षमाणः ईक्षाम् विहाय अस्मात् उपरराम् ॥४२॥

**अनुवाद**— परं ब्रह्म में आत्मा को तथा आत्मा में परं ब्रह्म को देखते हुए वे इस अभेद दर्शन को भी त्याग दिए और पूर्ण रूप से शान्त हो गये ॥४२॥

**भावार्थ दीपिका**

तदेवाह-पर इति । ब्रह्मैवाहं न संसारीति ब्रह्मण्यात्मन ईक्षणे शोकादिनिवृत्तिः । अहमेव ब्रह्मेत्यात्मनि ब्रह्मण ईक्षणे ब्रह्मपारोक्ष्यनिवृत्तिः । अतो व्यतिहारेणेक्षमाणोऽस्मात्संसारादुपरराम । नन्वेवमपि जीवस्य कुतो ब्रह्मत्वापत्तिः । ईक्षणस्यैव व्यवधायकत्वादित्याशङ्क्याह । ईक्षां विहाय दग्धेन्धनानलवत्तस्याः स्वयमेवोपशान्तेरिति भावः ॥४२॥

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करते हुए कहते हैं मैं ब्रह्म ही हूँ संसारी नहीं इस तरह से ब्रह्म में ही आत्मा को देखने से शोकादि की निवृत्ति हो गयी मैं ही ब्रह्म हूँ इस प्रकार से आत्मा में ही ब्रह्म का अनुभव करने से ब्रह्म के पारोक्ष्य की निवृत्ति हो गयी । इस तरह से परस्पर में एक दूसरे को एक दूसरे में अनुभव करने के कारण वह इस संसार से उपरत हो गया । यदि कहें कि ऐसा होने पर जीव ब्रह्म कैसे हो सकता है तो इस पर कहते हैं, क्योंकि अनुभव ही उन दोनों का भेदक है तो इस पर कहते हैं कि उसने अवलोकन का ही परित्याग कर दिया । जैसे अग्नि सम्पूर्ण इन्धन को जलाकर अपने आप शान्त हो जाती है, उसी तरह से राजा ईक्षण का भी परित्याग कर शान्त हो गये ॥४२॥

**पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् । प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान्सा पतिदेवता ॥४३॥**

**अन्वयः**— पति देवता वैदर्भी भोगान् हित्वा परम धर्मज्ञं मलयध्वजम् पतिम् प्रेम्णा पर्यचरत् ॥४३॥

**अनुवाद**— पति को ही देवता मानने वाली वैदर्भी ने सभी भोगों का परित्याग करके परम धार्मिक अपने पति मलय ध्वज की प्रेम पूर्वक सेवा करती थी ॥४३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥४३॥

**चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा । बभावुपपतिं शान्ता शिखा शान्तमिवानलम् ॥४४॥**

**अन्वयः**— चीरवासा, व्रतक्षामा वेणीभूताशिरोरुहा उपपतिम् शाता शिखा, शान्तम् अनलमिव बभौ ॥४४॥

**अनुवाद**— चीर वस्त्र धारण की हुई, व्रत करने के कारण कृश शरीर वाली, उस वैदभी के केश जटा बन गये थे । वह अपने पति के पास अङ्गारावस्थावस्थित अग्नि के पास शुद्ध ज्वाला के समान सुशोभित होती थी ॥४४॥

**भावार्थ दीपिका**

उपपतिं पत्युः समीपे । यद्वा पत्युः किंचिन्मात्रं न्यूना । तत्समाना सती बभावित्यर्थः । 'उपोऽधिके च' इति कर्मप्रवचनीयस्तद्योगे च द्वितीया । शान्तमङ्गारावस्थमनलमुपशान्ता शुद्धा ज्वाला यथा भवति तद्वत् ॥४४॥

**भाव प्रकाशिका**

उपपतिम् का अर्थ है पति के सन्निकट में अथवा पति से कुछ कम पति के ही समान वह सुशोभित होती थी **'उपोधिके च'** सूत्र से कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है । अङ्गारावस्थावस्थित अग्नि जैसे शुद्ध ज्वाला होती है उसी तरह वह सुशोभित होती थी ॥४४॥

**अजानती प्रियतमं यदोपरतमङ्गना । सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरम् ॥४५॥**

**अन्वयः**— सुस्थिरमासनमासाद्य यदा उपरतम् प्रियतमम् अजानती सा यथा पूर्वम् उपाचरत् ॥४५॥

**अनुवाद**— स्थिर आसन से बैठकर शरीर त्यागे हुए राजा के विषय में जब तक उसको इस बात का ज्ञान नहीं था कि उसके प्रियतम शरीर त्याग चुके हैं, तब तक वह पहले के ही समान अपने पति की सेवा करती थी ॥४५॥

**भावार्थ दीपिका**

तदानीमपि सुस्थिरमासनं यस्य । अत एवाजानती यदा तदा यथापूर्वमसेवत ॥४५॥

**भाव प्रकाशिका**

उस समय भी सुस्थिर आसन से बैठे हुए राजा की वह पहले के ही समान सेवा करती थी ॥४५॥

**यदा नोपालभेताङ्घ्रावूष्माणं पत्युरर्चती । आसीत्संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा ॥४६॥**

**अन्वयः**— पत्युरर्चती अङ्घ्रौ उष्माणं न उपालभेत तदा सा यूथभ्रष्टा मृगी यथा संविग्न हृदया आसीत् ॥४६॥

**अनुवाद**— पति की सेवा करती हुई उनके चरणों में विल्कूल गर्मी नही देखी तो वह उसी तरह व्याकुल हो गयी जिस तरह अपने समूह से विछुड़ी हुई मृगी व्याकुल हो जाती है ॥४६॥

**भावार्थ दीपिका**

पत्युरङ्घ्रिमर्चयन्ती यदा तस्मिन्नङ्घ्रावूष्माणं नापश्यत् ॥४६॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने पति के चरणों की सेवा करती हुई गर्मी नहीं देखी तब वह व्याकुल हो गयी ॥४६॥

**आत्मानं शोचती दीनमबन्धुं विक्लवाश्रुभिः । स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥४७॥**

**अन्वयः**— विपिने दीनम् अबन्धुम आत्मानं शोचती विक्लवा सा अश्रुभिः स्तनौ आसिच्य सुस्वरं रुरोद ॥४७॥

**अनुवाद**— उस वन में अपने को पति से रहित तथा दीन जानकर शोक करती हुई तथा व्याकुल वह आंसुओं से अपने स्तनों को भिगोती हुई जोर-जोर से रोने लगी ॥४७॥

**भावार्थ दीपिका**

अबन्धुं पतिरहितम् । अश्रुभिरासिच्य ॥४७॥

**भाव प्रकाशिका**

अबन्धुम् अर्थात् पति से रहित अपने को जानकर वह आँसुओं से अपने स्तनों को भिंगोती हुई रोने लगी॥४७॥

**उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलाम् । दस्युभ्यः क्षत्रबन्धुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥४८॥**

**अन्वयः**— हे राजर्षे उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ, दस्युभ्यः क्षत्रबन्धुभ्यः विभ्यतीम् इमाम् उदधिमेखलाम् पातुमर्हसि ॥४८॥

**अनुवाद**— हे राजर्षि महाराज आप उठिये-उठिये लुटेरों और अधार्मिक राजाओं से भयभीत बनी हुई इस पृथिवी की रक्षा आप करें ॥४८॥

**भावार्थ दीपिका**

क्षत्रबन्धुभ्योऽधार्मिकक्षत्रियेभ्योऽपि ॥४८॥

**भाव प्रकाशिका**

क्षत्रबन्धुभ्यः अर्थात् अधार्मिक राजाओं से ॥४८॥

**एवं विल्पती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् । पतिता पादयोर्भर्तू रुदत्यश्रूण्यवर्तयत् ॥४९॥**

**अन्वयः**— विपिने पतिम् अनुगता बाला एवं विलपती पत्युःपादयोः पतिता रुदती अश्रूणि अवर्तयत् ॥४९॥

**अनुवाद**— वन में पति के साथ गयी हुई वह अबला इस प्रकार से विलाप करती हुई पति के चरणों पर गिर पड़ी और रोती हुई आँसू बहाने लगी ॥४९॥

**भावार्थ दीपिका**

अवर्तयत्प्रवर्तयामास ॥४९॥

**भाव प्रकाशिका**

अवर्वयत् आंसू बहा रही थी ॥४९॥

**चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् । आदीप्य चानुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥५०॥**

**अन्वयः**— विलापन्ती दारुमयीं चितिं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरं आदीप्य अनुमरणे च मनोदधे ॥५०॥

**अनुवाद**— विलाप करती हुई वह लकड़ियों की चिता बनाकर उसने उस पर पति के शव को रखा और उसमें अग्नि लगाकर स्वयं सती होने का मन बना लिया ॥५०॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्यां निधायाग्निदानेनादीप्य च ॥५०॥

**भाव प्रकाशिका**

चिता पर शव को रखकर उसमें आग लगाकर स्वयं सती होने का उसने मन बना लिया ॥५०॥

**तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान् । सान्त्वयन्वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥५१॥**

**अन्वयः**— हे प्रभो ! तत्र कश्चित् पूर्वतरः सखा आत्मवान् ब्राह्मणः रुदतीम् ताम् वल्गुना साम्नासान्त्वयन् आह ॥५१॥

**अनुवाद**— राजन् ! उस समय उसका कोई पुराना मित्र आत्मज्ञानी ब्राह्मण आकर उसे मधुर वाणी से सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा ॥५१॥

**भावार्थ दीपिका**

पूर्वतरोऽनादिरीश्वरः सखा । 'द्वा सुपर्णा', इति श्रुतेः । साम्ना प्रियवाक्येन बोधयन् ॥५१॥

**भाव प्रकाशिका**

यहाँ अनादि ईश्वर को ही पूर्वतर सखा कहा गया है । 'द्वा सुपर्णा' श्रुति भी ईश्वर को सखा बतलाती है। उस ब्राह्मण ने प्रिय वाक्यों के द्वारा उस वैदर्भी को समझाते हुए कहा ॥५१॥

ब्राह्मण उवाच

**का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि ।**
**जनासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥५२॥**

**अन्वयः**— त्वं का? कस्य असि? यस्य शोचसि अयं शयानो वा कः अग्रे येन विचचर्थ ह सखायं मां जनासि किम्॥५२॥

**ब्राह्मण ने कहा**

**अनुवाद**— तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? जिसके विषय में तुम शोचती हो यह सोया हुआ कौन है ? जिसके साथ तुम पहले विचरण किया करती थी अपने इस पुराने मित्र मुझको भी तुम जानती हो क्या ?॥५२॥

### भावार्थ दीपिका

यस्य यं शोचसि । अग्रे सृष्टेः पूर्वम् । विचचर्थ ह मयि स्थितत्वेन सख्यसुखमनुभूतवानसि ।।५२।।

### भाव प्रकाशिका

उस ब्राह्मण ने वैदर्भी से पूछा कि तुम्हे इस बात का पता है क्या कि तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो? जिसके विषय में तुम शोक करती हो यह कौन है ? सृष्टि से पूर्व तुम जिसके साथ विचरण करते हुए मैत्री के भाव का अनुभव किया था तुम्हारा पुराना मित्र मैं हूँ मुझे पहचानती हो क्या ?।।५२।।

**अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे । हित्वा मां पदमन्विच्छन्भौमभोगरतो गतः ।।५३।।**

**अन्वयः**— सखे ! अविज्ञातसखम् आत्मानम् स्मरसि? माम् हित्वा भौम भोगरतः पदम् अन्विछन् गतः स्मरसि किम्।।५३।।

**अनुवाद**— तुम अपने अविज्ञात नामक मित्र का स्मरण करते हो क्या ? मुझको छोड़कर तुम भूलोक के भोगों को भोगने के लिए अपने निवास स्थान की खोज में चले गये थे यह तुमको याद है क्या ?।।५३।।

### भावार्थ दीपिका

ननु नाहमावयोः सख्यं सहचरत्वं च जानामीति चेत्तत्राह । यद्यपि मां न जानासि तथप्यात्मानं त्वामविज्ञातसखमविज्ञातः कश्चिन्मे सखा आसीदित्येवं किं स्मरसि । सख इति पुंस्त्वनिर्देशः प्राक्तनपुंस्त्वस्मरणाय । सख्यं स्मारयन्स्ववियोगकृतमनर्थमाह- हित्वेति सार्धैः षड्भिः । पदं स्थानम् ।।५३।।

### भाव प्रकाशिका

यदि यह कहो कि मुझे हम दोनों की मित्रता और सहचारित्व का कोई स्मरण नहीं है । इस पर ब्राह्मण ने कहा यद्यपि तुम मुझको नहीं जानती हो फिर भी तुमको इस बात की यादगारी है कि मेरा कोई अविज्ञात नामक मित्र था । सखः यह पुल्लिङ्ग प्रयोग पूर्वजन्म के पुरुषत्व की यादगारी के लिए किया गया है, अपनी मित्रता का स्मरण दिलाते हुए ब्राह्मण ने अपने से होने वाले विलगाव जन्य अनर्थ को हित्वा इत्यादि साढे छह श्लोकों में कहा पदम् पद स्थान का वाचक है ।।५३।।

**हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ । अभूतामन्तरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ।।५४।।**

**अन्वयः**— आर्य अहं च त्वं च मानसायनौ सखायौ हंसौ सहस्रपारिवत्सरान् ओकः अन्तरा सखायौ अभूताम्।।५४।।

**अनुवाद**— आर्य ! मैं और तुम दोनो मानसरोवर वासी हंस थे और हजारों वर्षों तक बिना किसी निवास स्थान के मित्रभाव से एक साथ रहे ।।५४।।

### भावार्थ दीपिका

हंसा शुद्धौ मानसं हृदयमयनं ययोः । कथापक्षे मानससरसि स्थितौ पक्षिणावभूतां जातौ । ओको गृहम् । अन्तरा विनैव। वाशब्द एवार्थे । सहस्रपरिवत्सरान् महाप्रलयो यावत् ।।५४।।

### भाव प्रकाशिका

हंसौ अर्थात् शुद्ध स्वरूप वाले मानसायनौ अर्थात् हृदय रूपी मानसरोवर में रहने वाले । कथा के पक्ष में तो अर्थ होगा कि मान सरोवर में रहने वाले हम दोनों हंस पक्षी थे । ओकः शब्दगृह का वाचक है । अन्तर अथवा बिना ही वा शब्द निश्चयार्थक है सहस्रपरिवत्सरान् महाप्रलय काल पर्यन्त ।।५४।।

**स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् । विचरन्पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ।।५५।।**

**अन्वयः**— बन्धो ! स त्वं ग्राम्यमतिः सन् मां विहाय महीं गतः विचरन् कयाचित् स्त्रिया निर्मितं पद्म अद्राक्षीः ।।५५।।

**अनुवाद**— मित्र ! तुम विषय भोगों की इच्छा से मुझको छोड़कर पृथिवी पर चले आये और घूमते हुए तुमने किसी स्त्री के द्वारा निर्मित स्थान को देखा ।।५५।।

**भावार्थ दीपिका**

हे बन्धो, ग्राम्ये सुखे मतिर्यस्य । स्त्रिया मायया ।।५५।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मण ने कहा मित्र तुम्हारी विषय भोगों को प्राप्त करने की इच्छा हो गयी थी और पृथिवी पर घूमते हुए तुमने माया रचित नगरी को देखे ।।५५।।

**पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् । षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्रीधवम् ।।५६।।**

**अन्वयः**— पञ्चाराम नवद्वारम् एकपालं, त्रिकोष्ठकम् षट्कुलं, पञ्चविपणं पञ्च प्रकृति स्त्रीधवम् ।।५६।।

**अनुवाद**— उस स्थान में पाँच वगीचे, नव दरवाजे, एक द्वारपाल, तीन परकोटे, छह, व्यापारी और पाँच बाजार और उसकी स्वामिनी एक स्त्री थी ।।५६।।

**भावार्थ दीपिका**

पञ्च शब्दादय आरामा उपवनानि यस्मिन् । नव द्वाराणि प्राणच्छिद्राणि यस्मिन् । एकः प्राणः पालो यस्मिन् । त्रीणि पृथिव्यप्तेजांसि कोष्ठानि प्राकारा यस्मिन् । षट् ज्ञानेन्द्रियमनांसि कुलान्यभीष्टविषयसमर्पका वणिजो यस्मिन् । पञ्च विपणा हट्टाः कर्मेन्द्रियाणि यस्मिन् । पञ्चभूतानि प्रकृतिरुपादानकारणं यस्य । स्त्री बुद्धिरेव धव; पतिः स्वामिनी यस्मिन् ।।५६।।

**भाव प्रकाशिका**

उसमें शब्दादि पाञ्च विषय रूपी बगीचे थे, नव इन्द्रियों के द्वाराभूत दरवाजे थे । अकेला प्राण रूपी द्वारपाल था, उसके पृथिवी, जल और तेज रूपी तीन परकोटे थे, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन कुल छह अभीष्ट वस्तु को प्रदान करने वाले व्यापारी थे, पाँच कर्मेन्द्रियाँ रूपी बजार थे, पाँच महाभूत हे उसके उपादान कारण थे । तथा उस स्थान की स्वामिनी बुद्धि रूपी स्त्री थी ।।५६।।

**विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया । शत्तयधीशः पुमांस्त्वत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ।।५८।।**

**अन्वयः**— विपणस्तु क्रिया शक्तिः भूत प्रकृतिख्यया, शक्त्यधीशः अत्र प्रविष्टः पुमान् नावबुध्यते ।।५८।।

**अनुवाद**— क्रिया शक्ति रूप पाँच कर्मेन्द्रियाँ बाँच बाजार थे कभी भी क्षीण नहीं होने वाले पाँच महाभूत ही उसके उपादान कारण थे । बुद्धि शक्ति ही उसकी स्वामिनी थी । उस पुरी में प्रवेश करने वाला पुरुष ज्ञान शून्य हो जाता है उसको अपने स्वरूप का ज्ञान रही रह जाता है ।।५८।।

**भावार्थ दीपिका**

भूतान्येवाव्यया प्रकृतिरुपादानं यस्य । स्त्रीधवमित्यस्य व्याख्यानम् । शक्तिरधीशा यस्य । तद्वशः सन्नित्यर्थः ।।५८।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रकृति ही जिसका उपादान कारण है यह स्त्रीधवम् की व्याख्या है । शक्ति ही जिसका स्वामी है । उसके अधीन रहने वाला ।।५८।।

**तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः । तत्सङ्गादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ।।५९।।**

**अन्वयः**— तस्मिन् रामया स्पृष्टः त्वं रममाणः अश्रुत स्मृतिः हे प्रभो ! तत्सङ्गात् त्वम् इदृशीं पापी यसीं दशा प्राप्तः।।५९।।

**अनुवाद**— उस नगरी में उस नगरी की स्वामिनी के द्वारा अभिभूत होकर उसके साथ रमण करते हुए तुम अपने स्वरूप (ब्रह्मत्व) को भूल गये । हे प्रभो ! उसकी सङ्गति से तुम्हारी यह दुर्दशा हुई है ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

स्पृष्टोऽभिभूतः । अतो न विद्यते श्रुते ब्रह्मत्वे स्मृतिर्यस्य ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

स्पृष्टः पद का अर्थ अभिभूत होना है। अतएव तुम अपने श्रुति प्रतिपादित ब्रह्म स्वरूपता को भी भूल गये।।५९।।

**न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव । न पतिस्त्वं पुरंजन्या रुद्धो नवमुखे यया ।।६०।।**

**अन्वयः**— त्वं विदर्भ दुहिता न अयं वीरः तव सुहृत् न, यया नवमुखेरुद्धः पुरञ्जन्याः पतिः त्वं न ।।६०।।

**अनुवाद**— तुम न तो विदर्भ राज की पुत्री हो और न यह वीर तुम्हारा सुहृत् है, जिसने तुमको नवद्वार के नगर में बन्द किया था उस पुरञ्जनी के भी पति तुम नहीं हो ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

तत्त्वमुपदिशति-न त्वमिति चतुर्भिः । सुहृत्पतिः । नवद्वारे पुरे यया रुद्धोऽसि तस्याः ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

वे तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण चार श्लोकों में तत्त्वोपदेश करते हैं । सुहृत् शब्द का अर्थ पति हैं । जिसके द्वारा तुम नव द्वारों वाले नगर में रुद्ध किये गये थे, उस पुरञ्जनी के तुम पति नहीं हो ।।६०।।

**माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीम् । मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ।।६१।।**

**अन्वयः**— एषा माया मया सृष्टा यत् पुंमांसं सतीं स्त्रियं मन्यसे, नोभयम् यद्ववै हंसौ आवयोः गतिम् पश्य ।।६१।।

**अनुवाद**— इस माया की सृष्टि मैंने की है, उसी के द्वारा मोहित होकर पहले तुम अपने को पुरुष मानते थे और अब अपने को प्रज्ञ पतिव्रता स्त्री मानते हो । तुम न तो पुरुष हो न स्त्री हो, हम दोनों हंस हैं, हम राजा वास्तविक स्वरूप है उसका तुम अनुभव करो ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

पुमांसं पूर्वजन्मनि यदमन्यथा इदानीं च सतीं श्रेष्ठं स्त्रियं यन्मन्यसे एषा माया । यत उभयमपि वस्तुतो नास्ति । यस्मादावां हंसौ शुद्धौ । नौ आवयोर्वक्ष्यमाणां गतिं स्वरूपं पश्य ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

पूर्व जन्म में जो तुम अपने को पुरुष मानते थे और इस जन्म में अपने को श्रेष्ठ मानते हो यह माया है। तुम इन दोनों मे से कोई भी नहीं हों क्योंकि हम दोनों शुद्ध हंस है । हम दोनों का जो स्वरूप है, उसे तुम स्मरण करो, उसे मैं बतलाने वाला हूँ ।।६१।।

**अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भो । न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ।।६२।।**

**अन्वयः**— अहं भवान् त्वं च अन्यः न भो त्वमेव अहं विचक्ष्व, कवयः नौ जातु मनागपि छिद्रं न पश्यन्ति ।।६२।।

**अनुवाद**— मित्र जो मैं हूँ वहीं तुम हो, तुम मुझसे भिन्न नहीं हो तुम विचार पूर्वक देखो ज्ञानी पुरुष हम दोनों में थोड़ा सा भी अन्तर नहीं देखते हैं ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

तत्त्वंपदार्थयोश्चिदंशेनैक्यमाह । अहमेव भगवान् । उपचारं वारयति-न चान्य इति । व्यतिहारोपदेश उक्ताभिप्रायः छिद्रमन्तरम् ।।६२।।

### भाव प्रकाशिका

तत् पदार्थ एवं त्वं पदार्थ दोनों चिदंश होने के कारण अभिन्न है इस बात का प्रतिपादन इस श्लोक में करते हैं। दोनों में होने वाले भेदो चार का वरण इस श्लोक में किया गया है। इस श्लोक का अभिप्राय व्यतिहारोपदेश में है। अर्थात् कहीं ही जीव को कहकर उसका तत् पदार्थ से अभेद किया गया है, और कहीं तत् पदार्थ को कहकर उसका त्वं पदार्थ से अभेद बतलाया गया है। छिद्र पद का अर्थ है भेद ॥६२॥

**यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः । द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः ॥६३॥**

**अन्वयः**— यथा पुरुष एकम् आत्मानम् आदर्श चक्षुषोः द्विधाभूतम् अवेक्षेत तथैव आवयोः अन्तरम् ॥६३॥

**अनुवाद**— जैसे कोई पुरुष अपनी एक ही आत्मा को आदर्श (दर्पण) और नेत्र में देखकर भिन्न-भिन्न मानता है उसी तरह एक ही आत्मा विद्या तथा अविद्या रूपी उपाधि के कारण ईश्वर और जीव के रूप में भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है ॥६३॥

### भावार्थ दीपिका

तर्हि कथमावयोरज्ञत्वसर्वज्ञत्वादिधर्मभेदस्तत्राह-यथेति। आत्मानं देहमादर्शे निर्मलं महान्तं स्थिरं चावेक्षेत। परस्य चक्षुषि च तद्विपरीतम्। विद्याविद्योपाधिकृतो धर्मभेद इत्यर्थः ॥६३॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तो फिर हम दोनों में अज्ञत्व और सर्वज्ञत्व रूप धर्म भेद कैसे है ? तो इसके उत्तर में **यथा पुरुष इत्यादि** श्लोक कहते हैं। आत्मा शब्द यहाँ देह का बोधक है। जैसे कोई स्वच्छ दर्पण में अपने शरीर को स्वच्छ महान् और स्थिर देखता है। किन्तु वही दूसरे के नेत्र में प्रतिविम्बित होने वाले अपने शरीर उसके ठीक विपरीत देखता है। उसी तरह से विद्या रूपी उपाधि में ईश्वर रूप से प्रतिबिम्बत होता है और अविद्या में जीव रूप से प्रतिविम्बित होता है। अतएव होने वाली भेद प्रतीति का कारण उपाधियाँ हैं ॥६३॥

**एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः । स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥६४॥**

**अन्वयः**— एवं स मानसः हंसः हंसेन प्रतिबोधितः स्वस्थः तद्व्यभिचारेण नष्टाम् मतिम् पुनः आप ॥६४॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से वह मानसरोवर का हंस उस हंस के द्वारा उपदिष्ट होकर अपने स्वरूप में स्थित हो गया और ईश्वर के वियोग के कारण विषयाभिलाष के कारण नष्ट हुई अपनी बुद्धि को पुनः प्राप्त कर लिया। उसे पुनः ज्ञान हो गया कि मैं ब्रह्म हूँ ॥६४॥

### भावार्थ दीपिका

एवममुना प्रकारेण स मानसो हंसः क्षेत्रज्ञो हंसेन परमात्मना बोधितः सन्स्वस्थ आत्मनि स्थितः संश्चिरं ध्यात्वा तद्व्यभिचारेणेवरवियोगेन विषयाभिलाषबुद्ध्या नष्टां स्मृतिमहं ब्रह्मास्मीति ज्ञानं पुनः प्राप्तवान् ॥६४॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से वह मानस हंस जीव परमात्मा के द्वारा उपदिष्ट होकर अपनी आत्मा में स्थित हो गया और दीर्घ काल तक ध्यान करके परमात्मा से वियुक्त होने के कारण तथा विषय भोग की इच्छा के कारण उसकी मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार का ज्ञान जो भूल गया था उसे पुनः प्राप्त कर लिया ॥६४॥

**बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् । यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान्विश्वभावनः ॥६५॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्यानेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥

**अन्वयः**— हे बर्हिष्मन् एतदध्यात्मं परोक्ष्येण प्रदर्शितम् यत् देवः विश्वभावनः भगवान् परोक्षप्रियः ॥६५॥

**अनुवाद**— हे प्राचीन बर्हि मैंने परोक्ष रूप से आत्मज्ञान का उपदेश दिया है क्योंकि दिव्य गुण सम्पन्न जगत् कर्ता श्रीभगवान् को परोक्ष वर्णन प्रिय हैं ।।६५।।

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पुरञ्जनोपाख्यान के प्रकरण में अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६५।।**

**भावार्थ दीपिका**

कथामात्रमिति बुद्धिं वारयति–बर्हिष्मन्निति । पारोक्ष्येण राजकथामिषेण । तत्र हेतुः यद्यस्मात् हे बर्हिष्मन्प्राचीनबर्हिः एतद्राजकथामिषेणात्मकथा प्रदर्शिता । यस्मादेवः श्रीनारायणः परोक्षप्रियः । साक्षादात्मज्ञानकथनेन तव चेतसि कथा नायातीति भावः ।।६५।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।।२८।।**

**भाव प्रकाशिका**

बर्हिष्मान् इस श्लोक के द्वारा यह केवल कथा है, इस प्रकार की होने वाली बुद्धि का वारण किए हैं । परोक्ष्येण का अर्थ है कि राजा के कथा सुनाने के व्याज से । उसका कारण बतलाते हुए कहते हैं राजन् प्राचीन बर्हि इस राज कथा के बहाने मैने आत्मा की कथा कही है क्योंकि भगवान् नारायण परोक्ष प्रिय हैं । यदि साक्षात् आत्म कथा कहने पर तुम्हारे समझ में बात नहीं आ सकती थी ।।६५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भवार्थ दीपिका नामक टीका के अठाइसवें अध्याय की शिवप्राद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६५।।**

# उनतीसवाँ अध्याय

## पुरञ्जनोपाख्यान का तात्पर्य

प्राचीनबर्हिरुवाच

**भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते । कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥१॥**

**अन्वयः**— भगवन्ते वचः अस्माभिः सम्यङ्न अवगम्यते । तत् कवयः विजानन्ति, कर्ममोहिताः वयं न ॥१॥

**प्राचीनबर्हि ने कहा**

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आपकी वाणी का अभिप्राय हम पूर्ण रूप से नहीं जान पाये । उसे तो विवेकी पुरुष जान सकते हैं कर्म मोहित हमलोग उसे नहीं समझ सकते हैं ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

ऊनत्रिंशे परोक्षार्थव्याख्यानेनोपसंहृतम् । स्त्रीसङ्गतो भवस्त्वीशसङ्गान्मुक्तिरिति स्फुटम् । कवयोऽध्यात्मविदः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

उनतीसवें अध्याय में परोक्षार्थ की व्याख्या के द्वारा इस प्रकरण का उपसंहार किया गया है । इसमें बतलाया गया है कि स्त्री के सङ्ग से संसार होता है और ईश्वर के सङ्ग से मुक्ति होती है । कवयः पद का अर्थ है अध्यात्म वेत्ता ॥१॥

नारद उवाच

**पुरुषं पुरंजनं विद्याद् यद्व्यनक्त्यात्मनः पुरम् । एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥२॥**

**अन्वयः**— पुरुषं पुरञ्जनं विद्यात् यत् यवनतया आत्मनः पुरम् एकद्वित्रि चतुष्पादं बहुपादं अपादकं पुरं व्यनक्ति ॥२॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— पुरुष को ही पुरञ्जन जो अपने लिए एक पैर वाले, दो पैर वाले, तीन पैर वाले, चार पैर वाले, अनेक पैर वाले अथवा पैर से रहित शरीर रूपी नगर को बना लेता है ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

व्यनक्ति लिम्पति । चेतनीकरोतीत्यर्थः । यद्वा व्यनक्ति प्रकटयति । ततश्च स्वकर्मणा पुरं जनयतीति पुरंजनपदं व्याख्यातं भवति । एकद्यादयः पादा यस्य ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

व्यनक्ति बाँधता है । अर्थात् अचेतन शरीर को चेतन बना देता है । अथवा व्यनक्ति अर्थात् प्रकट कर देता है । अतएव अपने कर्मो के द्वारा शरीर रूपी नगर को उत्पन्न कर देता है । इस शरीर के एक, दो, तीन, चार, अनेक अथवा पैर जिसके होते हैं ऐसे शरीर को उत्पन्न कर देता है ॥२॥

**योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः । यन्न विज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥३॥**

**अन्वयः**— तस्य पुरुषस्य यः अविज्ञाता हृतः सखा ईश्वरः यत् पुम्भिः नामभिः वा क्रियागुणैः न विज्ञायते ॥३॥

**अनुवाद**— उस पुरुष का जो अविज्ञात शब्द से कहा जाने वाला सखा है वह ईश्वर है, वह जीवों के द्वारा किसी भी प्रकार के नाम गुण अथवा क्रिया के द्वारा नहीं जाना जा सकता है ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

अविज्ञातशब्देनाहृतो व्याहृत उक्तो यः स ईश्वरः । अविज्ञातनामनिरुक्तिः यद्यस्मात्पुम्भिर्नामादियोगेन न विज्ञायते ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसे अविज्ञात शब्द से पुरुष (जीव) का सखा कहा गया है । वह ईश्वर है अविज्ञात नाम की निरुक्ति यह है कि वह जीवों के द्वारा नामादि युक्त रूप से नहीं जाना जाता है ॥३॥

**यदा जिघृक्षन्पुरुषः कात्स्न्येन प्रकृतेर्गुणान् । नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साध्विति ॥४॥**

**अन्वयः**— यदा पुरुषः कात्स्न्येन प्रकृतेः गुणान् जिघृक्षन् तत्र नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि साधु इति अमनुत ॥४॥

**अनुवाद**— जीव ने जब प्रकृति के सुख दुःख आदि सभी विषयों को भोगने की इच्छा की तो वह सभी शरीरों में उसने दो हाथ तथा दो पैर वाले तथा नव द्वार वाले मनुष्य के ही शरीर को सबसे अच्छा समझा ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्र तेषु पुरेषु मध्ये ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

सभी शरीरों में यह तत्र पद का अर्थ है ॥४॥

**बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् । यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन्पुमान्भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान् ॥५॥**

**अन्वयः**— बुद्धिम् तु प्रमदां विद्यात् याम् अधिष्ठाय पुमान् अस्मिन् देहे ममाहमिति यत् कृतम् अक्षभिः गुणान् भुङ्क्ते॥५॥

**अनुवाद**— बुद्धि को ही पुरञ्जनी नामक स्त्री समझना चाहिए, इसी को आलम्बन बनाकर जीव शरीर में अहन्त्व एवं ममत्व की बुद्धि करता है तथा इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता है ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

अक्षभिरिन्द्रियैः ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

अक्षभिः अर्थात् इन्द्रियों द्वारा ।।५।।

**सखाय इन्द्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् । सख्यस्तदृत्तयः प्राणः पञ्चवृत्तिर्यथोरगः ।।६।।**

**अन्वयः**— सखायः इन्द्रियगणा यत् कृतम् ज्ञानं कर्म च तद्वृत्तयः सख्यः उरगो यथा पञ्चवृत्तिः प्राणः ।।६।।

**अनुवाद**— दस इन्द्रियाँ उसके मित्र है और इन्द्रियों की वृत्तियाँ ही सखियाँ है । इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान और कर्म होते हैं । सर्प के समान पाञ्च प्रकार की वृत्तियों वाला प्राण ही शरीर रूपी नगर का रक्षक है ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

पञ्चवृत्तित्वात्पञ्चशिराः सर्व इव प्राणः ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

प्राण अपान आदि पाञ्चवृत्तियों वाला प्राण ही पाञ्चशिरों वाले सर्प के समान है ।।६।।

**बृहद्वलं मनो विद्यादुभयेन्द्रियनायकम् । पञ्चालाः पञ्चविषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ।।७।।**

**अन्वयः**— उभयेन्द्रियनायकम् मनः बृहद्बलम् पञ्चविषयाः पञ्चालाः यन्मध्ये नवखं पुरम् ।।७।।

**अनुवाद**— ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का नियामक मन ही बृहद् बल नामक सेनापति है । शब्दादि पञ्च विषय ही पञ्चाल है जिन सबों के बीच में नव द्वारों वाला नगर बसा है ।।७।।

**भावार्थ दीपिका**

एकादशमहाभट इत्यनेन एकादशो महाभटो नायक इत्युक्तस्तं दर्शयति बृहद्वलं यस्य तन्मनः। नव खानि द्वाराणि यस्य।।७।।

**भाव प्रकाशिका**

ग्यारह इन्द्रियाँ ही बड़े वीर हैं ग्यारहवाँ मन ही इन्द्रियों का नायक है उसी को बृहद् बल कहा गया है। नव द्वारों वाला शरीर है ।।७।।

**अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति । द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिन्द्रियसंयुतः ।।८।।**

**अन्वयः**— द्वे द्वे द्वारौ अक्षिणी, नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदौ इति यः तदिन्द्रिय संयुतः बहिः याति ।।८।।

**अनुवाद**— दो-दो द्वार जो एक साथ है, वे हैं दोनों नेत्र व, दोनों नासिका के छिद्र, दोनों कान, मुख, शिश्न और गुदा इन सबों से ही होकर वह जीव बाहर के विषयों में जाता है ।।८।।

**भावार्थ दीपिका**

द्युमत्सख इत्यादेरर्थं संक्षेपेणाह । यस्तदिन्द्रियसंयुतः स आत्मा ताभिर्द्वार्भिर्वहिर्यातीति ।।८।।

**भाव प्रकाशिका**

द्युमत्सखः इत्यादि श्लोक का अर्थ इस श्लोक में संक्षेप में कहा गया है । जो पुरुष इन्द्रिय रूपी द्वारों से होकर वह तत्-तत् विषय देशों में जाता है ।।८।।

**अक्षिणी नासिके आस्यमिति पञ्च पुरः कृताः । दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥९॥**

**अन्वयः**— अक्षिणी नासिके आस्यम् इति पञ्च पुरः कृताः दक्षिणा दक्षिणः कर्णः उत्तरा च उत्तरः स्मृतः ॥९॥

**अनुवाद**— दोनों नेत्र गोलक, नाक के दोनों छिद्र और मुख ये पाँच पूर्व के द्वार हैं । दाहिना कान दक्षिण द्वार और बायाँ कान उतर का द्वार कहा गया है ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरः पूर्वभागे कृताः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

पूर्वभाग के द्वार हैं ॥९॥

**पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते । खद्योताविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ॥**
**रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥१०॥**

**अन्वयः**— पश्चिमे अद्योद्वारौ गुदं शिश्नम् इहोच्यते । खद्योतर्विमुखी च अत्र एकत्र निर्मिते नेत्रे ताभ्यां रूपं विभाजितं चक्षुषेश्वरः विचष्टे ॥१०॥

**अनुवाद**— पश्चिम दिशा के दो द्वार गुदा और लिङ्ग को कहा गया है । एक ही स्थान पर निर्मित खद्योत तथा आविर्मुखी नामक दो द्वार दोनों नेत्र गोलक हैं । उन दोनों द्वार से वह नेत्रों का स्वामी रूप विभ्राजित नामक देश में जाता था ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

नेत्रे इति रूपमिति चक्षुषेति खद्योतादीनां व्याख्यानम् । शेषोऽनुवादः । ईश्वरः पुरंजनः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

नेत्रे रूपम्, चक्षुषा ये तीनो पद खद्योत आदि आविर्मुखी इत्यादि पदों की व्याख्या है । अवशिष्ट तो अनुवाद मात्र है । ईश्वर शब्द से पुरञ्जन को कहा गया है ॥१०॥

**नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते । घ्राणोऽवधूतो मुख्यास्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥११॥**

**अन्वयः**— नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते । ध्राणः अवधूतम् मुख्यास्यं वाक् रसवित् रसः ॥११॥

**अनुवाद**— नलिनी और नालिनी ये दोनों द्वार नाक के दोनों छिद्र हैं । नासिका का विषय ही सौरभ देश है । घ्राणेन्द्रिय ही अवधूत नामक मित्र है । मुख ही मुख्य नामक द्वार है । उसमें रहने वाली वागिन्द्रिय ही विपण है और रसनेन्द्रिय रसवित् नामक मित्र हैं ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

नासे इति व्याख्या । अवधुनोतीत्यवधूतो वायुस्तदात्मकेनोच्छ्वासेन सहैकस्थानत्वात् घ्राणोऽवधूतः । आस्यमिति व्याख्या । रसज्ञविपणान्वित इत्यत्र रसज्ञशब्दनिर्दिष्टस्य रसविदित्यनुवादः रस इति व्याख्या । रसनेन्द्रियमित्यर्थः । विपणो वाग्रसविद्रस इत्येव पाठः । आर्षत्वान्न दोषः ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

नासे पद के द्वारा नलिनी और नलिनी की व्याख्या की गयी । कँपाने वाले को अवधूत कहते हैं । अर्थात् वायु । वाय्वात्मक उच्छ्वास के साथ एकत्र रहने से प्राण को अवधूत कहा गया है । मुख्य द्वार की व्याख्या है आस्यम् रसज्ञविपणान्वितः पद के रसज्ञ शब्द से निर्दिष्ट का ही व्याख्या अनुवाद रसवित् शब्द से किया गया है और रसः पद के द्वारा व्याख्या की गयी हैं ॥११॥

**आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रमन्धो बहूदनम् । पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥१२॥**

**अन्वयः**— अत्र व्यवहारः आपणः चित्रमन्धो बहूदनम् । दक्षिणः कर्ण पितृहूः उत्तरः कर्णः देवहूः स्मृतः ॥१२॥

**अनुवाद**— यहाँ पर वाणी के व्यवहार को ही बाजार कहा गया है तरह-तरह के अन्न को बहूदन कहा गया है । दाहिने कान को पितृहूः कहा गया है और बायें कान को देवहू कहा गया है ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्धोऽन्नम् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

अन्धः शब्द से अन्न को कहा गया है ॥१२॥

**प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम् । पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत् ॥१३॥**

**अन्वयः**— प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चाल संज्ञितम् । श्रुतधरात् श्रोत्रात् पितृपानं देवयानं व्रजेत् ॥१३॥

**अनुवाद**— प्रवृति शास्त्र और निवृत्ति शास्त्र को ही पञ्चाल नामक देश कहा गया है । कानों से सुनकर वह पुरञ्जन पितृहू और देवहू नामक देशों को जाता है ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥१३॥

**आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः । उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते ॥१४॥**

**अन्वयः**— मेढ्रम् आसुरी अर्वाक् द्वाः व्यवायः ग्रामियाम् रतिः उपस्थः दुर्मदः प्रोक्तः निऋतिः गुद उच्यते ॥१४॥

**अनुवाद**— लिङ्ग ही आसुरी नामक पश्चिम द्वार है स्त्री प्रसङ्ग ग्रामक नामक देश है । लिङ्ग में रहने वाला उपस्थेन्द्रिय ही दुर्मद नामक मित्र है और गुदा ही निऋति नाम का पश्चिम द्वार है ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

ग्रामकमित्यस्यानुवादो ग्रामिणां रतिरिति । तस्य व्याख्या-व्यवाय इति ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

ग्राम का ही अनुवाद ग्रामिणां रति है और उसकी व्याख्या स्त्री प्रसङ्ग है ॥१४॥

**वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौ तु मे शृणु । हस्तपादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च ॥१५॥**

**अन्वयः**— नरकं वैशसम् पायुः लुब्धकः अन्धकौ तु मे शृणु । हस्तपादौ ताभ्यां पुमान् याति करोति च ॥१५॥

**अनुवाद**— नरक ही वैशस नामक देश है । गुदा में रहने वाली पायु इति लुब्धक नामक मित्र है । अब मैं दोनों अन्धों को बतलाता हूँ हाथ और पैर ही अन्धे है । उन दोनों के ही द्वारा पुरुष जाता है और कार्यो को करता है ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**— नही है ॥१५॥

**अन्तःपुरं च हृदय विषूचिर्मन उच्यते । तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥१६॥**

**अन्वयः**— हृदयम् अन्तःपुरम् मनः विषूचिः उच्यते तत्र मोहं प्रसादं, हर्षंवा तद्गुणैः प्राप्नोति ॥१६॥

**अनुवाद**— हृदय ही अन्तःपुर है मन ही विषूचि नाम का मित्र है । मन के सत्त्वादि गुणों के ही कारण जीव मोह नामक विकार को या प्रसन्नता नामक विकार को अथवा हर्ष नामक विकार को प्राप्त करता है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

विषूचीनपदार्थानुवादो विषूचिरिति । तद्गुणैर्मनोगुणैस्तमःसत्त्वरजोभिः ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

विषूचीन पदार्थ का अनुवाद है विषूचिः । मन ही विषूचि है । मन के सत्त्वादि गुणों के कारण ही जीव मोह, प्रसन्नता अथवा हर्ष नामक विकार को प्राप्त करता है ।।१६।।

**यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा । तथा तथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ।।१७।।**

**अन्वयः**— यया यथा विक्रियते वा विकरोति तथा तथा गुणाक्तः उपद्रष्टा आत्मा तद्वृत्तीः अनुकरोति च ।।१७।।

**अनुवाद**— स्वप्नावस्था में राज महिषी बुद्धि जिस-जिस प्रकार से विकृत होती है तथा जागरावस्था में जैसे विकृत करती है, बुद्धि के उन गुणों से लिप्त होने वाला जीव उसकी वृत्तियों का वैसे ही अनुकरण करता है । यद्यपि यह जीव उन सबों का निर्विकार उपद्रष्टा (साक्षी मात्र) हैं ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

महिषी यद्यदीहेतेत्यादेरर्थं संगृह्याह । यथा यथा बुद्धिः स्वप्ने विक्रियते जाग्रति विकरोति वा इन्द्रियाणि परिणमयति । तस्या गुणैरक्तो लिप्त आत्मा तथा तथा तस्या वृत्तीर्दर्शनस्पर्शनाद्याः । केवलमुपद्रष्टैव सन्बलादनुकार्यते ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

महिषी जो चाहती है, इत्यादि का संक्षेप में वर्णन करते है । स्वांपावस्था में बुद्धि जैसे-जैसे विकृत होती है तथा जगरावस्था में जैसे-जैसे विकृत करती है अथवा इन्द्रियों को परिणत करती है ? उस बुद्धि के गुणों से लिप्त आत्मा उसी प्रकार से उसके दर्शन स्पर्श आदि कार्यों को करता है । यह यद्यपि साक्षी मात्र हैं फिर भी वह विवश होता है अनुकरण करने के लिए ।।१७।।

**देहो रथस्त्विन्द्रियाश्वः संवत्सररयोऽगतिः । द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पञ्चासुबन्धुरः ।।१८।।**

**अन्वयः**— देहः रथः, इन्द्रियश्वः संवत्सररयः अगतिः द्विकर्मचक्रः त्रिगुणध्वजः पञ्चसुबन्धरः ।।१८।।

**अनुवाद**— देह ही रथ है, इन्द्रियाँ ही घोड़े हैं, संवत्सर ही उसका वेग है, वस्तुतः वह आत्मा गति हीन है । पाप पुण्य रूप दो प्रकार के कर्म ही उस रथ के पहिए है सत्त्वादि तीन गुण ही ध्वजा है और पाँच प्रकार के प्राण ही उसकी डोरियाँ हैं ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

आशुगमित्येतद्व्याचष्टे । संवत्सरस्येवाप्रतिहतो रयो वेगः प्रतीतितो यस्य स संवत्सररयः । वस्तुतस्त्वगतिः । स्वप्नशरीरादबुद्धावेव विवृतत्वेन देशान्तरगत्यभावात् । पाठान्तरे संवत्सरश्च तत्कृतं वयश्च ताभ्यां गतिर्यस्येति । द्वीपमित्यस्य व्याख्या नारदेन न कृता । द्विचक्रमित्यस्य व्याख्या द्विकर्मचक्र इति । त्रिगुणध्वज इति त्रिवेणुपदव्याख्या ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

आशुगम् पद की व्याख्या करते हुए नारदजी कहते हैं संवत्सर के ही समान जिसका वेग प्रतीत होता है वह संवत्सर रयः शब्द वाच्य है । किन्तु वास्तविकता है कि वह गति शून्य है । स्वकालिक शरीर इत्यादि केवल बुद्धि में ही विकृत होते हैं वे किसी दूसरे स्थान पर नहीं जाते है । जहाँ **सवत्सरवयोगतिः** पाठान्तर है वहाँ पर अर्थ होगा कि संवत्सर जन्य वय (अवस्था) इन दोनों के द्वारा जिसकी गति होती है । द्वीपम् की व्याख्या नारदजी ने नहीं की है । द्विचक्रम की व्याख्या है द्विकर्मचक्रः । त्रिवेणुपद की व्याख्या त्रिगुण ध्वज ।।१८।।

**मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वन्द्वकूबरः । पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥१९॥**

**अन्वयः**— मनः रश्मिः, बुद्धिः सूतः, हृत नीडः, द्वन्द्व कूबरः, पञ्चेन्द्रिया प्रक्षेपः सप्तधातु बरूथकः ॥१९॥

**अनुवाद**— मन ही उस रथ के लगाम है बुद्धि ही सारथि है, हृदय ही बैठने का स्थान है । इन्द्रियों के पाँच शब्दादि विषय ही उसके आयुध है और सात धातुएँ ही उसके आवरण हैं ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

पञ्चप्रहरणमित्येतद्व्याचष्टे पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेप इति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

पञ्चप्रहरणम् पद की व्याख्या करते हुए कहते है कि इन्द्रियों के जो शब्दादि पाँच विषय हैं वे ही उस रथ में रखे हुए आयुध हैं ॥१९॥

**आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति । एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूनाविनोदकृत् ॥**
**संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥२०॥**

**अन्वयः**— आकूतिः बाध्यो विक्रमः मृगतृष्णां प्रधावति एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूनाविनोदकृत् ॥२०॥

**अनुवाद**— पाँच कर्मेन्द्रियाँ ही उसकी पाँच प्रकार की बाह्य गतियाँ है इस शरीर रूप रथ पर चढ़कर रथी जीवात्मा मृगतृष्णा के समान मिथ्या विषयों की ओर दौड़ता है । ग्यारह इन्द्रियाँ ही उसकी सेना हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियों के विभिन्न विषयों का अन्याय पूर्वक ग्रहण करना ही उसका आखेट करना है ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

पञ्चेन्द्रियैः सूनाविनोदमिवान्यायेन विषयसेवां करोतीति पञ्चसूनाविनोदकृत् । अनेन चचार मृगयां तत्रेत्यादि व्याख्यातम्॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा आखेट विनोद के समान विषयों का अन्याय पूर्वक सेवन करना ही पञ्चसूना विनोद कृत् है । इस श्लोक के द्वारा पिछले अध्याय के **चचार मृगयां तत्र इत्यादि** श्लोक की व्याख्या की गयी है ॥२०॥

**तस्याहानीह गन्धर्वा गन्धर्व्यो रात्रयः स्मृताः । हरन्त्यायुः परिक्रान्त्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— संवत्सरः चण्डवेगः येन काल उपलक्षितः तस्य अहानि इह गन्धर्वाः, गन्धर्व्यः रात्रयः स्मृताः षष्ठयुत्तरशतत्रयम् परिक्रान्त्या अयुः हरन्ति ॥२१॥

**अनुवाद**— संवत्सर ही चण्डवेग नामक गन्धर्व राज है उसी के द्वारा काल का ज्ञान होता है । उसके अधीन रहने वाले दिन ही गन्धर्व गण हैं, और रात्रियाँ गन्धर्वियाँ हैं । इन सबों की संख्या तीन सौ साठ तीन सौ साठ हैं । ये बारी-बारी से चक्कर लगाकर मनुष्य की आयु का हरण करने का काम करते हैं ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

परिक्रान्त्या परिभ्रमणेन ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

परिक्रान्त्या अर्थात् चक्कर लगा-लगाकर ॥२१॥

**कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति । स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥२२॥**

**अन्वयः**— साक्षात् जरा कालकन्या, लोकः ताम् न अभिनन्दति। यवनेश्वरः मृत्युः ताम् क्षयाय ताम् स्वसारम् जगृहे॥२२॥

**अनुवाद**— साक्षात् बुढापा ही काल कन्या है। उसको संसार में कोई भी पसंद नहीं करता है। यवनराज मृत्यु ने संसार का क्षय करने के लिए उसको अपना बहिन बना लिया ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

भगिनीत्वेन जगृहे। लोकानां क्षयाय ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

मृत्यु ने जरा को अपना बहिन संसार का विनाश करने के लिए बना लिया ॥२२॥

**आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः। भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो द्विविधो ज्वरः ॥२३॥**

**अन्वयः**— आधयः व्याधयः तस्य चराः यवनाः सैनिकाः, भूतोपसर्गाशुरयः ज्वारः द्विविधः ज्वरः ॥२३॥

**अनुवाद**— आधियाँ (मानसिक क्लेश) व्याधियाँ (शारीरिक रोग) उस यवनराज के पैदल चलने वाले सौनिक है। प्राणियों को पीड़ित करके शीघ्र ही मृत्यु के मुख में पहुँचाने वाले शीत एवं उष्ण दो प्रकार का ज्वर ही प्रज्वार नाम का उसका भाई है ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

चराः संचारिणः। भूतानामुपसर्गे पीडायामाशु शीघ्रो मृत्युहेतू रयो वेगो यस्य प्रज्वारस्येति प्रशब्दव्याख्या। पाठान्तरे भूतकृता अरयः। अनेन चारिभिरुपरुद्ध इत्यरिपदं व्याख्यातम्। द्विविधः शीतोष्णरूपेण प्रवेशनिर्गमभेदात् ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

चराः का अर्थ है पैदल चलने वाले, प्रज्वार शब्द के प्र शब्द की व्याख्या है कि जीवों के पीड़ित होने पर शीघ्र मृत्यु का कारण है प्रज्वार। जहाँ **भूतोपसर्गाह्यरयः** यह पाठ भेद है वहाँ अर्थ होगा कि भूत जन्य शत्रु। इसके द्वारा अरिभिः उपरुद्धः के अरि पद की व्याख्या की गयी है। प्रवेश करने और निकलने के भेद से शीत और उष्ण दो प्रकार के ज्वर वतलाये गये हैं ॥२३॥

**एवं वहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसंभवैः। क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥२४॥**

**अन्वयः**— एवं तमोवृतः देही दैवभूतात्मसंभवैः वहुविधैः दुःखैः क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे तिष्ठति ॥२४॥

**अनुवाद**— इस तरह से देहाभिमानी जीव अज्ञान से आच्छन्न होकर दैविक, भौतिक तथा आध्यात्मिक अनेक प्रकार के क्लेशों को भोगते हुए सौ वर्षों तक शरीर में पड़ा रहता है ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

एवं परोक्षत्वेनोक्तमर्थं व्याख्याय सर्वकथातात्पर्यमाह–एवमित्यादिविरमक्रमेणेत्यन्तेन। आधिदैविकादिभिर्दुःखैः क्लिश्यमानो ममाहमिति देहे शतं वर्षाणि शेते वर्तत इति द्वयोरन्वयः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से परोक्ष रूप से वर्णित अर्थ की व्याख्या करके कथा के सम्पूर्ण तात्पर्य को नारदजी **एवम् इत्यादि** श्लोक से लेकर **विरमक्रमेण० इत्यादि** श्लोक पर्यन्त कहते हैं। आधिदैविक इत्यादि दुःखों से क्लेश का अनुभव ममकार और अहङ्कार से युक्त होकर सैकड़ों वर्षों तक पड़ा रहता है ॥२४॥

**प्राणेन्द्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः। शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥२५॥**

**अन्वयः**— निर्गुणः सन् प्राणेन्द्रियमनोधर्मान् आत्मनि अध्यस्य ममाहमिति कामलवान् ध्यायन् कर्मकृत् शेते ॥२५॥

**अनुवाद**— जीव यद्यपि निगुण है किन्तु वह प्राण, इन्द्रियों और मन के धर्मों का आत्मा में अध्यास करके ममकार और अहङ्कार के कारण क्षुद्र विषयों का चिन्तन करता हुआ अनेक प्रकार के कर्मों को करता रहता है ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

अशनायापिपासादीन्प्राणधर्मान् अन्धत्वादीनिन्द्रियधर्मान् कामादीन्मनोधर्मांश्च निर्गुणोप्यात्मन्यध्यस्य कामलवान्विषय-सुखलेशान्ध्यायन्कर्मकृत् ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

भूख-प्यास आदि प्राण के धर्मों का अन्धत्व बधिरत्व आदि इन्द्रियों के धर्मों का तथा काम आदि मन के धर्मों का अपने निगुर्ण आत्मा में अध्यास करके क्षुद्र विषय सुख प्राप्त करने के लिए कर्मों को करता रहता है।।२५।।

**यदात्मानमविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुम् । पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ।।२६।।**

**अन्वयः**— स्वदृक् यदात्मानम् परं गुरुं भगवन्तम् अविज्ञाय पुरुषः तु प्रवृतेः गुणेषु विषज्जेत् ।।२६।।

**अनुवाद**— आत्मा स्वप्रकाश है, किन्तु जब तब वह सबों के परम गुरु श्रीभगवान् को नहीं जानता है तब तक वह प्रकृति के ही गुणों में फँसा रहता है ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-यदेति द्वाभ्याम् । स्वदृक् स्वप्रकाशस्वभावोऽपि ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि वह कर्मों को करता रहता है तो उससे क्या हुआ ? तो इस पर **यदा० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं— स्वदृक अर्थात् स्वप्रकाश स्वभाव वाला होकर भी ।।२६।।

**गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः । शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथाकर्माभिजायते ।।२७।।**

**अन्वयः**— गुणाभिमानी स तदा अवशः शुक्लं, कृष्णं लोहितं वा कर्माणि कुरुते यथा कर्माभिजायते ।।२७।।

**अनुवाद**— सात्त्विकादि गुणों का अभिमानी होने के कारण विवश होकर सात्त्विक, राजस और तामस कर्मों को करता रहता है और अपने कर्मों के ही अनुसार वह विभिन्न योनियों में जन्म लेता है ।

### भावार्थ दीपिका

शुक्लं सात्त्विकम् । कृष्णं तामसम् । लोहितं राजसम् । यथा कर्म तथा जायते ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

शुक्ल अर्थात् सात्त्विक कृष्णम् अर्थात् तामस लोहितम् अर्थात् राजस इन तीनों प्रकार के कर्मों को करता रहता है और अपने कर्मों के ही अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है ।।२७।।

**शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् । दुःखोदर्कान् क्रियायासांस्तमःशोकोत्कटान्क्वचित्।।२८।।**

**अन्वयः**— कर्हिचित् शुक्लात् प्रकाशभूयिष्ठान् लोकान् आप्नोति, कर्हिचित् दुःखोदर्कान् क्रियायासान् क्वचित् तमः शोकोत्कटान् लोकानाप्नोति ।।२८।।

**अनुवाद**— कभी सात्त्विक कर्मों के करने के कारण प्रकाश बहुल स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है, कभी राजसी कर्मों के कारण दुःखमय रजोगुणी लोकों में जाता है और कभी तमोगुणी कर्मों के कारण शोक बहुल तमोमयी योनियों में जाता हैं ।।२८।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह-शुक्लादिति द्वाभ्याम् । प्रकाशो भूयिष्ठो येषु । दुःखमुदर्क उत्तरफलं येषु । क्रियया आयासो येषु तान् लोहितान्। तमःशोकावुत्कटौ येषु तान् कृष्णादिति ज्ञेयम् ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

कर्मों के अनुसार फल की प्राप्ति का वर्णन **शुक्लात्० इत्यादि** दो श्लोकों से करते है। सात्त्विक कर्मों को करने के कारण प्रकाश बहुल स्वार्गादि लोकों को प्राप्त करता है। राजसी कर्म के कारण दुखमय तथा प्रयास बहुल कर्मों को करता है तथा तामसी कर्मों के कारण तमोगुण बहुल तथा शोक बहुल लोकों को प्राप्त करते हैं।।२८।।

**क्वचित्पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः । देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः ।।२९।।**

**अन्वयः**— यथा कर्मगुणं देवः मनुष्यः तिर्यग् वा अन्धधीः क्वचित् पुमान्, क्वचित् स्त्री, क्वच्चिनोभयं भवः ।।२९।।

**अनुवाद**— अपने कर्म तथा गुण के अनुसार मनुष्य, देवता, मनुष्य तथा तिर्यक् योनि में जन्म लेकर कहीं पुरुष, कहीं स्त्री तथा कहीं नपुंसक होता है ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

नोभयं नपुंसकम् । यथाकर्मगुणं कर्मगुणावनतिक्रम्य ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

नोभयम् का अर्थ नपुंसक है । अपने कर्म और गुण के अनुसार यह यथाकर्म गुणम् का अर्थ है ।।२९।।

**क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् । चरन्विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ।।३०।।**
**तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् । उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम्।।३१।।**

**अन्वयः**— यथा क्षुत्परीतः दीनः सारमेयः गृहम् गृहम् चरन् यथा दिष्टं दण्डम्ओदनं वा विन्दति तथा कर्माशयः जीवः उच्चावच्च पथा भ्रमन् उपरि अधो वा मध्येवा यथा दिष्टं प्रियाप्रियम् याति ।।३०-३१।।

**अनुवाद**— जिस तरह भूख से व्याकुल होकर दीन बना हुआ कुत्ता, धर, धर में जाता है और अपने भाग्य के अनुसार दण्डा खाता है और कहीं भात खाता है, इसी प्रकार यह जीव भी अपने चित्त में अनेक प्रकार वासनाओं के कारण ऊपर नीचे अथवा बीच के लोक में जाता है और अपने कर्मों के अनुसार तथा दुःख को प्राप्त करता है ।।३०-३१।।

### भावार्थ दीपिका

तेषु दैववशेन सुखदुःखे प्राप्नोतीति सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम् । क्षुधा परीतो व्याप्तः सारमेयः श्वा । दण्डं दण्डेन ताडनम्। कामव्याप्त आशयो यस्य ।।३०-३१।।

### भाव प्रकाशिका

उन लोकों में जीव अपने प्रारब्धानुसार सुखों तथा दुःखों को प्राप्त करता है, इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक दो श्लोकों में कहते हैं । जैसे भूख से व्याकुल कुत्ता धर-घर में जाता है और प्रारबधानुसार दण्डा अथवा भात खाता है, उसी तरह जीव भी कामनाओं अन्तःकरण में व्याप्त होने के कारण सुख और दुःख को प्राप्त करता है ।।३०-३१।।

**दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु । जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ।।३२।।**

**अन्वयः**— दैवभूतात्म हेतुषुएकतरेणापि जीवस्य व्यवच्छेदः न, स्यात् चेत् तत्-तत् प्रतिक्रिया ।।३२।।

**अनुवाद**— आधि दैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक इन तीनों दुःखों में किसी एक दुःख से भी किसी एकान्तिक मुक्ति नहीं होती है । यदि हो भी जाती है तो उसकी प्रतिक्रिया होती है ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि सुखस्य संभवाद्दुःखस्य च प्रतीकारसंभवान्नैकान्ततो हेयत्वं तत्राह–दुःखेष्विति । दुःखस्य प्रतीकारस्तावन्नास्ति। स्याच्चेतसः तस्य प्रतिक्रिया तथापि त्रिविधेषु दुःखेषु मध्ये एकतरेणापि दुःखेन व्यवच्छेदो वियोगो नास्ति ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि यहाँ भी सुख का होना सम्भव है, और उत्पन्न दुःख का प्रतिकार भी किया जा सकता है अतएव यह एकान्ततः त्याज्य ही हो ऐसी बात नहीं है । इस पर नारदजी दुःखेषु इत्यादि श्लोक कहते हैं । दुःखों का प्रतिकार किया जाना सम्भव है ही नहीं यदिकार किया भी जाय तो उसकी प्रतिक्रिया होगी । फिर भी तीन प्रकार के जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक जो दुःख हैं उनमें से एक भी दुःख को समाप्त नहीं किया जा सकता है ।।३२।।

**यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन् । तं स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः।।३३।।**

**अन्वयः**— यथा हि पुरुषः गुरुम् भारम् शिरसा उद्वहन् तं स्कन्धेन आधते तथा सर्वाः प्रतिक्रिया ।।३३।।

**अनुवाद**— जैसे कोई शिर पर भारी बोझ ढो रहा है और उसको कन्धे पर रख ले उसी तरह सारी प्रतिक्रियाएँ (दुःखों की निवृत्ति) है । यदि मनुष्य किसी प्रकार से एक प्रकार के दुःख से मुक्ति पाता है तो दूसरा दुःख आकर उसे घेर लेता है ।।३३।।

### भावार्थ दीपिका

प्रतिक्रियाणामपि दुःखरूपत्वादिति सदृष्टान्तमाह–यथा हीति ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

प्रतिक्रियाएँ भी दुःख रूप हैं इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक नारदजी ने **यथा हि० इत्यादि** श्लोक से कहा है ।।३३।।

**नैकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् । द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ।।३४।।**

**अन्वयः**— अनघ ! कर्मणाम् एकान्ततः प्रतिकारः केवलं कर्म न द्वयं हि अविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इव ।।३४।।

**अनुवाद**— शुद्ध हृदय राजन् कर्मों का सदा-सदा के लिए केवल कर्म प्रतिकार है नहीं है क्यों दोनों उसी तरह अविद्यात्मक हैं जिस तरह स्वप्न में होने वाला स्वप्न भी अविद्यात्मक ही होता है ।।३४।।

### भावार्थ दीपिका

दुःखस्य मूलभूतानि कर्माणि प्रतिक्रियादिकर्मभिर्नैव निवर्तन्त इत्याह । नैकान्ततोऽत्यन्तं सवासनम् । कवेलं ज्ञानरहितम्। अविद्ययोपसृतं प्राप्तम् । अतोऽविरोधान्न निवर्तकत्वमिति भावः । अत्र दृष्टान्तः । स्वप्ने दृष्टः स्वप्नः प्रबोधं विना यथा तं स्वप्नमत्यन्तं न प्रतिकरोतीत्यर्थः ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

दुःखों के मूल कारण कर्म हैं, उनकी निवृत्ति प्रतिक्रिया रूप कर्मों के द्वारा नहीं हो सकती है । केवलम् कर्म का अर्थ है ज्ञान रहित कर्म । अविद्योपसृतम् का अर्थ है अविद्या से प्राप्त है । अतएव वह केवल कर्म पूर्व कर्म का विरोधी नहीं है, अतएव वह पूर्व कर्म का निवर्तक नहीं है । उदाहरणार्थ स्वप्न में देखा जाने वाला स्वप्न पूर्व स्वप्न का निवर्तन नहीं है । जब तक मनुष्य जगता नहीं है तब तक वह पूर्व स्वप्न का आत्यन्तिक नाश नहीं कर सकता है ।।३४।।

**अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ।।३५।।**

**अन्वयः**— लिङ्गरूपेण मनसा स्वप्ने विचरतः यथा अविद्यमानेऽपि अर्थे संसृतिः न निवर्तते ।।३५।।

**अनुवाद**— जिस तरह स्वप्नावस्था में मनोमय लिङ्ग शरीर से विचरण करने वाले प्राणी को अविद्यमान भी विषय की प्रतीति होती ही रहती है उसी तरह जब तक अज्ञान रूपी निद्रा नहीं समाप्त होती है तब तक ये दृश्य पदार्थ नहीं होने पर भी बने रहते ही हैं ।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

ननु तर्ह्यज्ञानविलसितत्वेन संसृतिहेतोर्देहादेरप्यसत्त्वात्किं तन्निवर्तनप्रयासेन तत्राह–अर्थे हीति । लिङ्गरूपेणोपाधिभूतेन।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहो की संसार के कारण भूत देह इत्यादि भी अज्ञान जन्य होने के कारण मिथ्या हैं । उनकी निवृत्ति का प्रयास करने से कौन सा लाभ है ? इस पर नारदजी **अर्थे हि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । लिङ्गरूपेण का अर्थ है उपाधि भूत लिङ्ग शरीर के द्वारा ।।३५।।

**अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा । संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ।।३६।।**

**अन्वयः**— अथ अर्थभूतस्य आत्मनः यतः अनर्थ परम्परा संसृतिः तद् व्यवच्छेदः गुरौ परमया भक्त्या ।।३६।।

**अनुवाद**— जिस सत्य स्वरूप आत्मा की अनर्थ परम्परा अविद्या की निवृत्ति परम गुरु श्रीभगवान् में परमा भक्ति के द्वारा ही होती है ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं संसृतिप्रकारमुक्त्वा तन्निवृत्तिप्रकारमाह । अथ तस्मात्पुरुषार्थभूतस्यैवात्मनो यतोऽज्ञानान्मनसो वाऽनर्थपरम्परारूपा संसृतिर्भवति तस्य व्यवच्छेदो गुरुरूपे वासुदेव भक्त्यैव ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से अविद्या जन्य संसार प्राप्ति का वर्णन करके उसकी निवृत्ति का प्रकार बतलाते हुए नारदजी कहते हैं । पुरुषार्थ भूत आत्मा की चूकि अज्ञान से अथवा मन से अनर्थ की परम्परा रूप संसृति होती है उसका नाश गुरु स्वरूप भगवान् वासुदेव में भक्ति के द्वारा ही होती है ।।३६।।

**वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः । सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ।।३७।।**

**अन्वयः**— वासुदेवे भगवति समाहितः भक्तियोगः सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ।।३७।।

**अनुवाद**— भगवान् वासुदेव में एकाग्रमना होकर की गयी भक्ति अच्छी तरह वैराग्य और ज्ञान को उत्पन्न करता है ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

ननु संसृतिनिवृत्तिर्वैराग्यपूर्वकाज्ज्ञानादेव नतु भक्त्या 'तरति शोकमात्मवित्' इत्यादिश्रुतेस्तत्राह- वासुदेव इति । सध्रीचीनेन समीचीनेन प्रकारेण ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि संसार चक्र रूपी अनर्थ की निवृत्ति तो वैराग्य एवं ज्ञान के द्वारा होती है भक्ति से क्या लाभ है ? श्रुति भी कहती है **तरति शोकम् आत्मवित्** अर्थात् आत्मज्ञ पुरुष इस संसार चक्र को पार कर जाता है तो इस पर नारदजी वासुदेवे इत्यादि श्लोक को कहते हैं । अर्थात् एकाग्रमना होकर भगवान् वासुदेव की की गयी भक्ति से वैराग्य तथा ज्ञान अच्छी तरह से उत्पन्न होते हैं ।।३७।।

**सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः । शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥३८॥**

**अन्वयः**— राजर्षे सः अच्युतकथाश्रय शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा अधीयतः अचिरादेव स्यात् ॥३८॥

**अनुवाद**— राजर्षे ! वह भक्तियोग श्रीभगवान् की कथा के अधीन है, जो उसे नित्य ही श्रद्धा पूर्वक सुनता है अथवा अध्ययन करता है, उसे शीघ्र ही भक्तिभाव उत्पन्न हो जाता है ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

नन्वसौ महाफलो भक्तियोगः कथं स्यादत आह । स त्वच्युतस्य कथामाश्रित्य वर्तमानोऽचिरात्स्यात् । कस्य स्यात्तदाह। शृण्वतोऽधीयानस्य च ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

यह भक्तियोग महान् फलवान है, उसकी प्राप्ति कैसे सम्भव है तो इस पर नारदजी कहते हैं वह भक्तियोग तो भगवान् अच्युत की कथा के अधीन वर्तमान होने के कारण शीघ्र ही हो सकता है । प्रश्न है कि किसको प्राप्त होता है तो इसका उत्तर है कि जो श्रद्धा पूर्वक उसको सुनता है अथवा पढ़ता है, उसको होता है ॥३८॥

**यत्र भागवता राजन् साधवो विशदाशयाः । भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥३९॥**

**अन्वयः**— हे राजन् ! यत्र भगवद् गुणानुकथन श्रवण व्यग्रचेतसः विशदाशयाः साधवः ॥३९॥

**अनुवाद**— राजन् ! जहाँ पर श्रीभगवान् के गुणों को कहने और सुनने में तत्पर रहने वाले विशुद्ध चित्त भक्त जन रहा करते हैं ॥३९॥

**भावार्थ दीपिका**

कुत्र स्यात्तदाह-यत्रेति । भगवतो गुणानुकथने श्रवणे च व्यग्रं सत्वरं चेतो येषां ते ॥३९॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न होता है कि भगवद् भक्ति की प्राप्ति कहाँ पर शीघ्र प्राप्त होती है तो इसका उत्तर नारदजी **यत्र० इत्यादि** श्लोक के द्वारा देते हैं श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करने और सुनने में जिन भागवतों का मन सदैव तत्पर रहता है, वे भगवद् भक्त जन जहाँ पर रहा करते हैं ॥३९॥

**तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ।**
**ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णैस्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥४०॥**

**अन्वयः**— नृप तस्मिन् महन् मुखरिता मधुभित् चरित्र पीयूष शेष सरितः परितः स्रवन्ति ता ये अवितृषः गाढ कर्णैः पिबन्ति तान्अशनतृड्भयशोक मोहाः न स्पृशन्ति ॥४०॥

**अनुवाद**— उस समाज में महापुरुषों के मुख से निकली हुई भगवान् मधुसूदन के चरित्र रूप शुद्ध अमृत की सब ओर से अनेकों नदियाँ प्रवाहित होती रहती हैं । जो लोग अतृप्त चित्त से अपने कर्ण कुहरों द्वारा उस अमृत का पान करते हैं उनको भूख, प्यास, शोक, मोह आदि कोई भी बाधित नहीं कर सकते हैं ॥४०॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु साधुसङ्गं बिना स्वयमेव हरिकथाचिन्तनादिना भक्तिर्भवेदेवेत्याशङ्क्याह द्वाभ्याम् । तस्मिन्स्थाने महद्भिर्मुखरिताः कीर्तिताः । मधुभिदश्चरित्रमेव पीयूषः तदेव शिष्यत इति शेषो यासु । आसाराशरहितशुद्धाभृतवाहिन्य इत्यर्थः । अवितृषोऽलंकृद्विशून्याः सन्तो गाढैः सावधानैः कर्णैर्ये ताः सरितः पिबन्ति सेवन्ते । अशनशब्देन क्षुल्लक्ष्यते । अशनादयस्तान्न स्पृशान्ति । भक्तिरसिकान्न बाधन्त इत्यर्थ ॥४०॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि सन्तों की सङ्गति के बिना भी स्वयम् ही श्रीहरि की कथा का चिन्तन करने से भक्ति उत्पन्न हो ही सकती है, इस तरह की शङ्का करके दो श्लोकों द्वारा कहते हैं। सज्जनों के समाज में महापुरुषों के मुख से निकली हुई भगवान् मधुसूदन का चरित्र रूपी अमृत से परिपूर्ण वर्षा की आशा से रहित शुद्ध सरिताएँ प्रवाहित होती है। जो लोग अतृप्त चित्त से तथा सावधान कानों से उन सबों का पान करते है। उन भक्ति रसिकों को भूख, प्यास, शोक तथा मोह आदि कभी बाधित नहीं कर पाते हैं ॥४०॥

**एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः। न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम् ॥४१॥**

**अन्वयः**— एतै स्वभावजैः नित्यम् उपद्रुतोजीवलोकः नूनम् हरिकथनिधौ रतिम् न करोति ॥४१॥

**अनुवाद**— इन स्वभावतः प्राप्त भूख प्यास आदि उपद्रवों से सदैव उपद्रुत रहने वाला जीव समुदाय निश्चित रूप से श्रीहरि के कथामृत सिन्धु से प्रेम नहीं कर पाता है ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गमन्तरेण स्वयमेव कथाचिन्तनादावालस्यादिना रसावेशाभावाच्च क्षुत्पिपासाद्यभिभूतस्य भक्तिर्न संभवतीत्याहएतैरिति ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

**एतैः इत्यादि** श्लोक के द्वारा नारदजी ने बतलाया कि सत्सङ्ग के बिना स्वयम् ही कथा के चिन्तन आदि में आलस्य आदि, रसावेश के अभाव के कारण तथा भूख प्यास आदि से अभिभूत होने के कारण भक्ति नहीं हो सकती हैं ॥४१॥

**प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान्गिरिशो मनुः। दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः॥४२॥**
**मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः ॥४३॥**
**अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः। पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम्॥४४॥**

**अन्वयः**— साक्षात् प्रजापति पति, भगवान् गिरिशः मनुः दक्षादयः प्रजाध्यक्षाः, सनकादयः नैष्ठिकाः, मरीचिरङ्गिरसौ, पुलस्त्य, पुलहः क्रतुः, भृगुः वसिष्ठः इत्येते मदन्ताः ब्रह्मवादिनः वाचस्पतयः तपोविद्यासमाधिभिः पश्यन्तः आपि पश्यन्तं परमेश्वरम् अद्यापि न पश्यन्ति ॥४२-४४॥

**अनुवाद**— साक्षात् प्रजापतियों के भी पति ब्रह्माजी, भगवान् शङ्कर स्वायम्भुव मनु, दक्ष आदि प्रजापति गण, सनकादि नैष्ठिक, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और मैं ये जितने ब्रह्मवादी गण हैं, समस्त वाङ्मय के अधिपति होकर भी, तपस्या उपासना और समाधि के द्वारा ढूँढ ढूँढकर हार गये फिर भी उन सर्वज्ञ परमात्मा को आज तक नहीं जान पाये ॥४२-४४॥

### भावार्थ दीपिका

भगवदनुग्रहमन्तरेण तु न कस्यापि ज्ञानसंभव इति कैमुत्यन्यायेनाह चतुर्भि;। प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा। मदन्ताः अहं नारदोऽन्ते येषाम्। वाचां पतयोऽपि तपोविद्यासमाधिभिरुपायैः पश्यन्तो विचिन्वन्तोऽपि पश्यन्तं सर्वसाक्षिणं न पश्यन्ति ॥४२-४४॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कृपा के बिना किसी को भी ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता है इस बात को नारदजी कैमुत्य न्याय के द्वारा चार श्लोकों में कहते हैं। प्रजापति पति अर्थात् ब्रह्माजी। **मदन्तः** अर्थात् मैं (नारद) जिनके अन्त में

हूँ, ये सभी समस्त वाङ्मय के ज्ञाता होने पर भी तपस्या, उपासना और समाधि रूप उपायों के द्वारा अन्वेषण करते हुए सबों के साक्षी परमेश्वर को नहीं जान सके ।।४२-४४।।

**शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे । मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम् ।।४५।।**

**अन्वयः**— उरुविस्तरे दुष्पारे शब्द ब्रह्मणि चरन्तः मन्त्र लिङ्गैः व्यवच्छिनं भजन्तः परम न विदुः ।।४५।।

**अनुवाद**— अत्यन्त विस्तृत जिसकोपार करना अत्यन्त कठिन है, इस प्रकार के वेदों का जो सदा चिन्तन किया करते हैं । अनेक महानुभाव उन वेदों का विचार करके मन्त्रों में वर्णित वज्रहस्त त्वादि इन्द्रिादि देवताओं के रूप में विद्यमान परमेश्वर का यजन करते हैं किन्तु उनको नहीं जानते हैं ।।४५।।

**भावार्थ दीपिका**

कुत इत्यत आह । शब्दब्रह्मणि वेदे उरुर्विस्तरो यस्य । अर्थतोऽपि पारशून्ये तस्मिन्वर्तमानाः । मन्त्राणां लिङ्गैर्वज्रहस्तत्वादिगुणयुक्तविविधदेवताभिधानसामर्थ्यैः परिच्छिन्नमेवेन्द्रादिरूपं तत्तत्कर्माग्रहेण भजन्तः परं परमेश्वरं न विदुः ।।४५।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि क्यों नहीं जानते हैं ? तो इसके उत्तर में नारदजी **शब्दब्रह्मणि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। अत्यन्त विस्तृत वेदों को अर्थ को भी समझना अत्यन्त कठिन है, किन्तु उस वेद का ही चिन्तन करते रहने वाले अनेक महानुभाव, मन्त्रों के वज्रहस्तत्व आदि अनेक इन्द्रादि देवताओं के नाम के सामर्थ्य से इन्द्रादि देवताओं के नाम से परमात्मा की आराधना तो करते हैं किन्तु वे उन परमात्मा को नहीं जान पाते हैं ।।४५।।

**यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः । स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ।।४६।।**

**अन्वयः**— आत्मभावितः भगवान् यदा यमनु गृह्णाति स लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् बुद्धिं जहाति ।।४६।।

**अनुवाद**— हृदय में बार-बार चिन्तन किए जाने पर श्रीभगवान् जिस समय जिस जीव को अनुगृहीत करते है, उस समय वह मनुष्य लौकिक व्यवहार और वैदिक कर्म मार्ग में बद्धमूल आस्था का परित्याग कर देते हैं ।।४६।।

**भावार्थ दीपिका**

तर्ह्यन्यः को नाम कर्माद्याग्रहं हित्वा परमेश्वरमेव भजेदित्यत आह । यदा यमनुगृह्णाति । अनुग्रहे हेतुः-आत्मनि भावितः सन् । स तदा लोके लोकव्यवहारे वेदे च कर्ममार्गे परिनिष्ठितां मतिं त्यजति ।।४६।।

**भाव प्रकाशिका**

तो प्रश्न होता है कि कौन पुरुष कर्मों आदि के आग्रह को छोड़कर श्रीभगवान् का ही भजन करता है । तो इस पर नारदजी कहते हैं जिस समय परमात्मा जिसको अपनी कृपा का पात्र बना लेते हैं वही व्यक्ति उसी समय लोक व्यवहार और वैदिक कर्मों रूढमूल बुद्धि का परित्याग करके भगवान् का भजन ही करते है । भगवान् की कृपा का कारण उन्होंने बतलाया मन में बार-बार चिन्तन करना ।।४६।।

**तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु । मार्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ।।४७।।**

**अन्वयः**— तस्मात् हे बर्हिष्मन् अज्ञानादर्थकाशिषु कर्मसु श्रोत्रस्पर्शिषु अस्पृष्ट वस्तुषु अर्थदृष्टिं मा कृथाः ।।४७।।

**अनुवाद**— अतएव हे प्राचीनबर्हि अज्ञान के कारण परमार्थ के समान प्रतीत होने वाले सुनने में प्रिय प्रतीत होने वाले किन्तु पारमार्थ्य से रहित इन कर्मों में परमार्थ बुद्धि का परित्याग कर दो ।।४७।।

**भावार्थ दीपिका**

अर्थकाशिषु परमार्थत्वेन प्रकाशमानेषु पुरुषार्थबुद्धिं मा कृथाः । प्ररोचनाय केवलं श्रोत्रप्रियेषु । न स्पृष्टं वस्तु यैः ।।४७।।

### भाव प्रकाशिका

परमार्थ के समान प्रतीत होने वाले इन कर्मों में परमार्थ बुद्धि मत करो । ये प्रशंसा मात्र होने के कारण केवल सुनने में परमार्थ प्रतीत होते हैं, किन्तु ये परमार्थ नहीं हैं ॥४७॥

**स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः । आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥४८॥**

**अन्वयः**— धूम्रधियं वेदं सकर्मकम् आहुः किन्तु अतद्विदः ते स्वंलोकं न विदुः यत्र देवो जनार्दनः ॥४८॥

**अनुवाद**— जिन लोगों की बुद्धि मलिन है वे वेदों को कर्म परक कहते हैं । वे वेदों के तात्पर्य को नहीं जानते हैं । वे लोग अपने स्वरूपानुरूप उस लोक को नहीं जानते हैं, जहाँ पर भगवान् जनार्दन रहते हैं ॥४८॥

### भावार्थ दीपिका

ननु वेदेन स्वर्गादिसाधनत्वेनोक्तानि कर्माणीति वेदवादिनो वदन्ति कथमस्पृष्टवस्तुष्वित्युच्यते तत्राह । ये धूम्रधियो मलिनवुद्धयः सकर्मकं कर्मपरं वेदमाहुस्ते अतद्विदोऽवेदज्ञाः । यतस्ते स्वं स्वरूपभूतं लोकमात्मतत्त्वं वेदतात्पर्यगोचरं न विदुः। यत्र देवोऽस्ति ॥४८॥'

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि वेद तो कर्मों को स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति के साधन रूप से बतलाता है इस प्रकार से वैदिक पुरुष कहते हैं अतएव आप उन सबों को अपरमार्थ कैसे कहते हैं ? तो इस पर नारदजी ने कहा कि जिन लोगें की बुद्धि मलिन है वे कहते हैं कि वेद कर्म परक हैं । वे वेदों के मर्म को नहीं जानते हैं क्योंकि वे स्वरूप भूत उस आत्मतत्व को नहीं जानते जो जिसके प्रतिपादन में वेदों का तात्पर्य हैं, जहाँ पर श्रीभगवान् का निवास है॥४८॥

**आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कात्स्न्र्येन क्षितिमण्डलम् । स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ॥**
**तत्कर्म हरितोषां यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥४९॥**

**अन्वयः**— प्रागग्रैः दर्भै कात्स्न्र्येन क्षितिमण्डलम् आस्तीर्य स्तब्धः बृहद् वधान् मानी यत्परं कर्म तत्नावैर्षि तत् कर्म हरितोषं यत् सा विद्या या विमुक्तये ॥४९॥

**अनुवाद**— पूर्व की ओर अग्रभाग करके कुशों से समस्त क्षितिमण्डल को आच्छादित करके अनेक पशुओं का वध करने वाले तुम अपने को धार्मिक समझते हो अतएव अभिमान युक्त हो गये हो । कर्मों के तात्पर्य को तुम नहीं जानते हो । कर्म वही है जिससे श्रीहरि को प्रसन्न किया जा सके तथा विद्या वहीं है जिसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥४९॥

### भावार्थ दीपिका

त्वं तु महामूर्ख इत्याह-आस्तीर्येति । बृहद्वधात् बहुपशुवधात् । मानी यज्वाहमित्यहंकारी । अतः स्तब्धोऽविनीतः सन्कर्म नावैषि। परं विद्यास्वरूपं तच्च न वेत्सि । नारदः स्वयं कृपया तद्वयं निरूपयति । हरिं तोषयतीति हरितोषं यत्तदेव कर्म । यया तस्मिन्हरौ मतिर्भवति सैव विद्या । महाफलत्वात् ॥४९॥

### भाव प्रकाशिका

तुम तो महामूर्ख हो इस बात को नारदजी ने **आस्तीर्य० इत्यादि** श्लोक से कहा है । अनेक पशुओं का वध करने से तुम मानते हो कि मैं यज्ञ करने वाला हूँ यह तुमको अहङ्कार हो गया है । अतएव तुम उद्धत हो गये हो और कर्म के स्वरूप को नहीं जानते हो । और उपासना का स्वरूप क्या है ? इस बात को भी नहीं जानते हो कृपा परतन्त्र होकर नारदजी स्वयं कर्म और उपासना दोनों के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहते हैं । जिसके द्वारा श्रीहरि को प्रसन्नता होती है, वही कर्म है तथा जिसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है, वही विद्या (उपासना) है ॥४९॥

**हरिर्देहभृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः । तत्पादमूल शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥५०॥**

**अन्वयः**— हरिः देहभृताम् आत्मा स्वयं प्रकृति ईश्वरः तत्पादमूलं शरणम् यतः इह नृणाम् क्षेमः ॥५०॥

**अनुवाद**— श्रीहरि देहधारियों की आत्मा हैं, नियामक और स्वतंत्र कारण हैं। श्रीभगवान् के चरणों के तलवे ही एकमात्र शरण (रक्षक) है, उनसे ही संसारी जीवों का कल्याण होता है ॥५०॥

### भावार्थ दीपिका

कुत इत्यपेक्षायां हरेः परमफलत्वं दर्शयन्नाह द्वाभ्याम् । हरिर्देहभृतामात्मा ईश्वरश्च । तत्र हेतुः- स्वयं स्वातंत्र्येण प्रकृतिः कारणमतस्तेषां तत्पादमूलमेव शरणमाश्रयः । यतो यस्मिन् ॥५०॥

### भाव प्रकाशिका

यदि पूछें कि यह कैसे तो इस पर नारदजी श्रीहरि को महान् फलरूप से बतलाते हुए दो श्लोकों को कहते हैं— श्रीहरि सभी शरीरधारियों की आत्मा और नियामक हैं। उसका कारण यह है कि वे जगत् के स्वतंत्र कारण हैं। अतएव उन जीवों का एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् के चरणों के तलवे ही हैं। उन चरणों से ही जीवों का कल्याण सम्भव हैं ॥५०॥

**स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि । इति वेद स वै विद्वान्यो विद्वान्स गुरुर्हरिः ॥५१॥**

**अन्वयः**— यतः अण्वपि भयं न सवै प्रियतमः आत्मा इति य वेद स वै विद्वान् यः विद्वान् सगुरुः हरिः ॥५१॥

**अनुवाद**— जिससे थोड़ा सा भी भय न हो वह प्रियतम आत्मा है। इस प्रकार से जानने वाला ही विद्वान् है, जो विद्वान् है वही गुरु है तथा वही साक्षात् श्रीहरि है ॥५१॥

### भावार्थ दीपिका

नच तद्भजनेऽन्यभजन इव दुःखं भयं चेत्याह-स वा इति । इति यो वेद स एव विद्वान्स गुरुः स एव हरिश्च ॥५१॥

### भाव प्रकाशिका

उन श्रीहरि के भजन में दूसरों के भजन के समान दुःख तथा भय नहीं होता है। इस बात को नारदजी ने **सवै० इत्यादि** श्लोक से कहा है जिससे थोड़ा सा भी भय नहीं होता वही प्रियतम आत्मा है, इस प्रकार से जानने वाला ही विद्वान् है, वही गुरु तथा साक्षात् श्रीहरि है ॥५१॥

नारद उवाच

**प्रश्न एवं हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ । अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥५२॥**

**अन्वयः**— हे पुरुषर्षभ ! एवं हि तव प्रश्नः संछिन्नः अत्र सुनिश्चित तं गुह्यं वदतः निशामय ॥५२॥

### श्रीनारदजी ने कहा

**अनुवाद**— हे पुरुष श्रेष्ठ ! राजन् इस तरह से मैंने आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया, अब मैं तुम्हे एक सुनिश्चित तथा गोपनीय साधन बतला रहा हूँ उसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥५२॥

### भावार्थ दीपिका

उक्तमुपसंहरति-प्रश्न इति । एवं भवतः प्रश्नः संछिन्नः परिहृतः । तदेवमात्मनो बन्धमोक्षप्रकारे कथारूपेण कथितेऽपि नातिनिर्विण्णचित्तं पुत्रागमनं प्रतीक्षमाणं सन्तं तत्क्षणमेव महाभयकम्पितसकलगात्रं गृहान्निर्वासयितुं हरिणरूपकमाह-अत्रेति । वदतो मे वचः शृणु ॥५२॥

### भाव प्रकाशिका

अपने कथन का उपसंहार करते हुए नारदजी **प्रश्न इत्यादि** श्लोक कहते हैं इस तरह से आपके प्रश्न का उत्तर मैंने दे दिया । इस तरह से आत्मा के बन्धन और मोक्ष के प्रकार के कथा के रूप में कहने पर भी राजा का चित्त अत्यधिक विरक्त नहीं हुआ था, वे अपने पुत्रों (प्रचेताओं) के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे उसी समय राजा को भयभीत करके गृह से निकालने के लिए नारदजी ने हरिण रूपक के माध्यम से **अत्र० इत्यादि** श्लोकार्द्ध से कहा । मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे तुम सुनो ॥५२॥

**क्षुद्रंचरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ।**
**अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यान्तं पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥५३॥**

**अन्वयः**— क्षुद्रं चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसुलुब्ध कर्णम् । अग्रे असुतृपः वृकान् अविगणय्य यान्तं मृगं लुब्धक बाण भिन्नम् ॥५३॥

**अनुवाद**— पुष्प वाटिका में अपनी हरिणी के साथ विहार करने वाला एक हरिन मस्ती से घूम रहा है और छोटे-छोटे घासों के अङ्कुर की चर रहा है । उसके कान भौरों के गुञ्जार में लगे हैं । उसके सामने ही दूसरे जीवों को मारकर अपने पेट भरने वाले वृकों की परवाह किए बिना घूमने वाले और पीछे से व्याध के बाण से विधे हुए उस हिरण की दशा पर विचार तो करो ॥५३॥

### भावार्थ दीपिका

क्षुद्रमल्पं चरतीति तथा तम् । अलुक् । सुमनसां पुष्पाणां शरणे आश्रमे वाटिकायां मिथित्वा मिथः परस्परं स्त्रिया सह मिलित्वा तत्रैव रक्तमासक्तम् । षडङ्घ्रयो भ्रमरास्तेषां गणास्तेषां सामसु गीतेषु लुब्धः कर्णो यस्य तम् । परेषामसुभिर्हृतैः स्वीयानसूंस्तर्पयन्तीत्यसुतृपः तानविगणय्यागणयित्वा । लुब्धकस्य बाणेन भिन्नं मृगं मृगय अन्वेषय ॥५३॥

### भाव प्रकाशिका

छोटे-छोटे घासों को चरने वाले यह क्षुद्रंचरम् का अर्थ है । क्षुद्रं चरं मे अलुक् समास है यह सुमनसां शरणे अर्थात् पुष्प वाटिका में, मिथित्वा अर्थात् अपनी हरिणी के साथ मिलकर विहार करने वाले पुष्पों के मधुर और सुगन्धि के ही समान अत्यल्प काम्य कर्मों के परिणाम स्वरूप निह्वा और उपस्थेन्द्रियों का अल्प सुख को भोगने वाले जिसके कान भौरों के गुञ्जार को सुनने में लगे हैं । अपने सामने दूसरे जीवों को मारकर अपने पेट को भरने वाले वृकों की परवाह नहीं करने वाले तथा बहेलिए के बाण से घायल उस मृग की दशा पर विचार करों ॥५३॥

**सुमनःसमधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्पमधुगन्धवत्क्षुद्रतम् काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्व्यौपस्थ्यादिविचिन्वन्तं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडङ्घ्रिगणसामगीतवदतिमनोहरवनितादि-जनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान्काललवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽन्तःशरेण यमिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन्भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥५४॥**

**अनुवाद**— उपर्युक्त श्लोक का अभिप्राय इस प्रकार का है पुष्पों के समान देखने में सुन्दर लगने वाली का शरण (गृह) ही पुष्पवाटिका है । पुष्पों के पराग और सुगन्धि के समान अल्प काम्य कर्मों के परिणाम स्वरूप

जिह्वा और उपस्थेन्द्रिय के विषयभूत काम सुख के लेश को तुम ढूंढ रहे हो । स्त्रियों से घिरे हुए तुम्हारे मन उन सबो में ही लगा हुआ है । स्त्रियों तथा पुत्रों आदि की मधुर भौरों का मधुर गुञ्जन है और वह सामगीत के समान अत्यन्त मनोहर है उनमें ही तुम्हारा मन आसक्त हैं, सामने ही वृकों (भेड़ियों) के समूह के समान काल के अंश के समान दिन और रात तुम्हारी आयु काहरण कर रहे हैं, किन्तु तुम उन सबों की परवाह किए बिना ही अपनी गृहस्थी में लगे हुए हो । तुम्हारे पीछे लगा हुआ काल ही बहेलिया है अपने बाणों से तुम्हारे हृदय को बेंध दिया है। राजन् ! इस प्रकार की अपनी आत्मा को देखो ।।५४।।

### भावार्थ दीपिका

श्लोकं प्रस्तुते योजयन्व्याचष्टे । सुमनोभिः समानो धर्मः परिणामविरसत्वं यासां स्त्रीणाम् । मिथित्वेत्यस्य व्याख्या-मिथुनीभूय । स्त्रीभिः सहेति शेषः । रक्तमित्यस्य व्याख्या-तास्वभिनिवेशितं मनो येन । असुतृप इत्यस्य व्याख्या-आयुर्हरत इति । यान्तमित्यस्य व्याख्या-विहरन्तमिति । अन्तर्नलिकायां गूढेन शरेण पराविध्यति दूरादेव ताडयति ।।५४।।

### भाव प्रकाशिका

नारदजी उपर्युक्त श्लोक को राजा प्रचीन बर्हि के साथ अन्वित करते हुए कहते हैं । पुष्पों के समान धर्म वाली स्त्रियाँ हैं जिन सबों का परिणाम विरसत्व में होता है । मिथित्वा की व्याख्या है कि स्त्रियों के साथ रहकर। उन स्त्रियों में ही अभिनिष्ट मन वाले यह मूल के रक्तम् पद की व्याख्या है । आयु का हरण करने वाले यह असुतृप् की व्याख्या है । यान्तम् पद की व्याख्या विहार करने वाले है । तुणीर में स्थित बाण के द्वारा जो दूर से ही मारने का काम करता है काल ।।५४।।

**स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽन्तश्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ।**
**जह्यङ्गनाश्रममसत्तमयूथगाथं प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ।।५५।।**

**अन्वयः**— स त्वम् मृगचेष्टितम् विचक्ष्य आत्मनोऽन्तः चित्तं हृदि नियच्छ, कर्णधुनीं च चित्ते, असत्तमयूथगाथं जहि परमहंस शरणं प्रणीहि क्रमेण विरम् ।।५५।।

**अनुवाद**— इस प्रकार के तुम अपने को मृग की स्थिति में देखकर अपने चित्त को हृदय में निरुद्ध करो। और कर्णाधुनी अर्थात् नदी के समान विषय पर्यन्त प्रवाहित होने वाली अपनी श्रवणेन्द्रिय बाह्यवृत्ति को अपने चित्त में स्थापित करो, जहाँ कामी पुरुषों की चर्चा होती रहती है । उस गृहस्थाश्रम का परित्याग करों परम हंसों के आश्रय श्रीभगवान् को प्रसन्न करो और क्रमशः सभी विषयों से विरक्त हो जाओ ।।५५।।

### भावार्थ दीपिका

उपदेशसारमाह-स इति । विचक्ष्य विचार्य । अन्तर्हृदि चित्तं कर्णयोर्धुनीं नदीमिव बहिर्वृत्तिं चित्ते नियच्छ । एतश्च सर्वेन्द्रियोपलक्षणार्थम् । अङ्गनाश्रमं गृहाश्रमं च जहि । कीदृशम् । असत्तमानामतिकामुकानां यानि यूथानि तेषां गाथा वार्ता यस्मिन् । हंसानां जीवानां शरणमीश्वरम् । एवं क्रमेण सर्वतो विरम ।।५५।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में नारदजी अपने उपदेश का सारांश बतलाये हैं । **विचक्ष्य** अर्थात् विचार करके । चित्त को हृदय में निरुद्ध करो । कर्णयो र्धुनीम् अर्थात् बाहृय विषयों में जिसकी वृत्ति होती है उस श्रोत्र नदी को अपने चित्त में नियन्त्रित करो । श्रोत्रेन्द्रिय सभी इन्द्रियों का उपलक्षण है । गृहस्थाश्रम का परित्याग कर दो । गृहस्थाश्रम में

तो अत्यन्त कामुकों की ही चर्चा होती रहती है । **हंसशरणं प्रीणीहि** अर्थात् हंसों (जीवों) के शरण (स्वामी) ईश्वर को प्रसन्न करो । इस तरह से तुम सबों से विरम अर्थात् विरक्त हो जाओ ॥५५॥

राजोवाच

**श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत् । नैतज्ज्ञानन्त्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥५६॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मन् भगवान् यद्आभाषत, उपाध्याया एतत नहि जानन्ति, यदि विदुः किं न ब्रूयुः ॥५६॥

**राजा ने कहा**

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! आपने जो कहा है, उसे मैंने ध्यान पूर्वक सुना है और उस पर विचार भी किया है । मुझको कर्मों का उपदेश देने वाले आचार्यगण इसको नही जानते हैं यदि वे जानते तो हमको इसका उपदेश क्यों नहीं देते ॥५६॥

**भावार्थ दीपिका**

अर्थान्तरं प्रष्टुं पूर्वोक्तमर्थमनुवदति । श्रुतमन्वीक्षितं विचारितं च । ब्रह्मन् हे नारद, एतत्त्वदुक्तमात्मत्वमुपाध्याया ये मम कर्मोपदेष्टार आचार्यास्ते न जानन्ति ॥५६॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरी बात को पूछने के लिए राजा प्राचीन बर्हि पहले के अर्थ का अनुवाद करके कहते हैं । नारदजी मैंने आपके इस उपदेश को सुना है और विचार भी किया है । इस आत्मतत्त्व को मेरे जो कर्मों का उपदेश करने वाले आचार्य हैं, वे इस आत्मतत्त्व को नहीं जानते हैं यदि वे जानते तो उसका उपदेश क्यों नहीं देतें ॥५६॥

**संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान् । ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ॥५७॥**

**अन्वयः**— हे विप्र ! तत्कृतः अत्र मे महान् संशयः संछिन्नः यत्रनेन्द्रिय वृत्तयः हि ऋषयः अपि मुह्यन्ति ॥५७॥

**अनुवाद**— हे विप्रवर मेरे उपाध्यायों ने आत्मतत्त्व के विषय में महान् संशय उत्पन्न कर दिया था उस संशय को आपने पूर्ण रूप से दूर कर दिया है । इस आत्म तत्त्व के विषय में इन्द्रियों की गति नहीं होने के कारण ऋषियों को भी मोह हो जाता है ॥५७॥

**भावार्थ दीपिका**

अतस्तत्कृत उपाध्यायकृतस्तद्वाक्यविरोधेनात्मतत्त्वेऽसंभावनारूपो महान् संशयः संछिन्नस्त्वया । अत्र तु कश्चित्संशयो वर्तते, यत्रेन्द्रियवृत्तीनामप्रवृत्तेर्मुह्यन्ति ॥५७॥

**भाव प्रकाशिका**

प्राचीन वर्हि ने कहा है कि हे विप्रवर्य ! मेरे उपाध्यायों के वाक्यों के विरोध के कारण इस आत्मतत्त्व के विषय में अस भावना रूप महान् संशय को उत्पन्न कर दिया था । उसको आपने अपने इस उपदेश के द्वारा पूर्ण रूप से दूर कर दिया । इस विषय में मुझको एक संशय है इस आत्मा के विषय में इन्द्रियों की गति नहीं होने के कारण इसके विषय में ऋषियों को भी मोह हो जाता है ॥५७॥

**कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय तम् । अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥५८॥**
**इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह । कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥५९॥**

**अन्वयः**— येन देहन पुमान् इह कर्माण्यारभते तम् विहाय अमुत्र अन्येन देहेन स जुष्टानि अश्नुते इति यद् वेदविदां वादः तत्र तत्र श्रूयते प्रोक्तं कर्म यत् क्रियते परोक्षं न प्रकाशते ॥५८-५९॥

**अनुवाद**— पुरुष इस लोक में जिस शरीर से कर्मों को करता है उस स्थूल शरीर को (यहीं) छोड़कर परलोक में कर्मों से ही बने हुए दूसरे शरीर से उसका फल भोगता है, यह वेद वादियों का जो कथन सर्वत्र सुना जाता है उसका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि उन कर्मों को करने वाला जो स्थूल शरीर होता है वह यहीं नष्ट हो जाता है तथा जो कर्म किए जाते हैं वे दूसरे ही क्षण में विनष्ट हो जाते हैं, ऐसी स्थिति में वे फल देने के लिए परलोक में कैसे प्रकट हो सकते हैं ।।५८-५९।।

**भावार्थ दीपिका**

संशयमाह द्वाभ्याम् । कर्माणि येन देहेन करोति तमत्रैव विहायामुत्र लोकान्तरे कर्मोपस्थापितेनान्येन देहेन जुष्टान्युपभुक्तानि जीवोऽश्नुते प्राप्नोति । इतिवादः श्रूयते 'प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकान्' इति । 'शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः' इति । त्वया चोक्तं 'शाश्वतीरनुभूयार्तिम्' इति । एतच्च कर्तृभोक्तृदेहभेदेन कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गान्न संगच्छत इति भावः । संशयान्तरमाह। प्रोक्तं वेदोक्तं कर्म यत्क्रियते जनैस्तच्चानन्तरक्षण एव परोक्षमदृश्यं सन्न प्रकाशते । अतः कर्मणो नष्टत्वात्तद्भोगोऽपि दुर्घट इति भावः ।।५८-५९।।

**भाव प्रकाशिका**

दो श्लोकों में प्राचीन बर्हि अपने संदेह को बतलाते है । पुरुष जिस शरीर से कर्मों को करता है, उस शरीर को तो वह इस लोक में छोड़कर परलोक में चले जाने पर उन कर्मों के द्वारा उत्पन्न दूसरे शरीर से किए कर्मों के फल को भोगता है, यह वैदिकों का वाद सर्वत्र सुना जाता है । श्रुति भी कहती हैं— **प्राप्यपुण्य कृतां लोकान्** अर्थात् वह पुरुष पुण्यवानो लोंको को प्राप्त होने वाले लोकों को प्राप्त करके कर्म जन्य फलों को भोगता है । स्मृति भी कहती है शरीरजैः कर्मदोषैः याति स्थावतां नरः शरीर के द्वारा किए गये कर्म जन्य दोषों के द्वारा पुरुष स्थावरों की योनियों में चला जाता है । आपने भी कहा है कि **शाश्वतीरनुभूयार्तिम्** अर्थात् दीर्घकाल पर्यन्त पापी जीव कष्टों का अनुभव करते हैं । इससे स्पष्ट है कि करने वाला शरीर दूसरा है और फल भोगने वाला शरीर दूसरा है । इसके कारण कृतनाश और अकृताभ्यागम नामक दोष का प्रसङ्ग होगा । क्योंकि जिस शरीर ने पुण्य पाप कर्मों को किया वह तो विनष्ट हो गया और उन कर्मों का फल सुख अथवा दुःख भोगने वाला शरीर दूसरा होगा । अतएव वेदवादियों का उपर्युक्त कथन युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता है । **संशयान्तरमाह० इत्यादि** दूसरे संदेह को राजा कहते हैं कि वेदों में बतलाये गये जो कर्म किए जाते हैं वे तो दूसरे ही क्षण में अदृश्य हो जाते हैं, वे पुनः प्रकाशित नहीं होते हैं । अतएव उन कर्मों के नष्ट हो जाने के कारण उनके फल का भी भोगा जाना सम्भव नहीं है ।।५८-५९।।

नारद उवाच

**येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् । भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम् ।।६०।।**

**अन्वयः**— येन मनसा लिङ्गेन् पुमान् स्वयं कर्म आरभते तेनैव अव्यवधनेन लिङ्गेन अमुत्र भुङ्क्ते ।

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् चूकि स्थूल शरीर लिङ्ग शरीर के अधीन है अतएव कर्मों का उत्तरदायित्व लिङ्ग शरीर पर ही होता है । पुरुष जिस मनः प्रधान लिङ्ग शरीर से कर्मों को करता है वह मरने के पश्चात् भी उस जीव के साथ रहता है, अतएव वह परलोक में साक्षात् उसी शरीर के द्वारा कर्मों के फलों को भोगता है ।।६०।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रथमस्योत्तरम्-येनैवेति । अव्यवधानेन कर्तृभोक्तृदेहविच्छेदं बिना । स्थूलदेहनाशेऽपि मनःप्रधानस्य लिङ्गदेहस्या-नाशान्नोक्तदोषप्रसङ्ग इत्यर्थः ।।६०।।

### भाव प्रकाशिका

प्रथम संदेह का उत्तर देते हुए नारदजी ने **येनैव० इत्यादि** श्लोक को कहा है । अव्यवधानेन पद का अर्थ है कि जो शरीर कर्ता और भोक्ता है उसका विच्छेद हुए बिना । स्थूल शरीर का नाश हो जाने पर भी चूकि मनः प्रधान लिङ्ग शरीर के नष्ट नहीं होने के कारण उपर्युक्त अकृताभ्यागम कृत विप्रणाश दोष का प्रसङ्ग नहीं होगा ।।६०।।

**शयानमिममुत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषो यथा । कर्मात्मन्याहितं भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ।।६१।।**

**अन्वयः**— पुरुषोयथा शयानम् श्वसन्तम् इमम् उत्सृज्य तादृशेन इतरेण वा आत्मनि कर्माहितं भुङ्क्ते ।।६१।।

**अनुवाद**— स्वाप काल में मनुष्य इस जीवित शरीर का अभिमन तो त्याग देता है किन्तु इसी के समान अथवा इससे भिन्न पशुपक्षी आदि शरीर से मन में संस्कार रूप से स्थित कर्मों का फल भोगता रहता है ।।६१।।

### भावार्थ दीपिका

लिङ्गदेहविशिष्टस्य भोक्तृत्वं स्वप्नदृष्टान्तेन स्पष्टयति । शयानमिमं जाग्रदेहं श्वसन्तं जीवन्तमुत्सृज्य तदभिमानं त्यक्त्वात्मनि मनसिसस्काररूपेणाहितं कर्म यथा भुङ्क्ते तादृशेन शयानदेहसदृशेन कर्मोपस्थापितेन देहेनान्येन वा पश्वादिदेहेन तथा लोकान्तरेऽपीति भावः ।।६१।।

### भाव प्रकाशिका

लिङ्ग देह से विशिष्ट जीव कर्म फलों को भोगता है, इस बात को नारदजी स्वप्न के दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं । सोए हुए जाग्रद् देह जो जीवित है उसके अभिमान को छोड़कर मन में संस्कार रूप से आहित कर्म को जैसे भोगता है उसी तरह सोये हुए देह के समान ही देह के द्वारा जो कमों के द्वारा उपस्थपित होता है अथवा दूसरे प्रकार के पशु आदि के देह परलोक में भी जीव कर्म फलों को भोगता है ।।६१।।

**ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन् । गृह्णीयात्तत्पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ।।६२।।**

**अन्वयः**— मनसा यत् एते मम असौ अहम् इति ब्रुवन् पुमान् राद्धंकर्म गृहणीयात् येन पुनर्भवः ।।६२।।

**अनुवाद**— इस मन के द्वारा जीव जिन पुत्र इत्यादि को ये मेरे हैं और तथा जिस ब्राह्मणादि शरीर को मैं यह हूँ ऐसा कहकर मानता है, वह उनके द्वारा किए गये पाप-पुण्य आदि रूप कमों को भी अपने ऊपर ले लेता है, जिसके कारण उसका पुनर्जन्म होता है ।।६२।।

### भावार्थ दीपिका

ननु भवतु नाम लिङ्गविशिष्टस्यानेन दृष्टान्तेन भोक्तृत्वं, कर्तृत्व तु दानप्रतिग्रहादिषु स्थूलदेहविशिष्टस्यैव दृश्यते तत्राह। ममैते पुत्रादयोऽसावहं ब्राह्मण इति ब्रुवन्मनसा यद्यद्देहं गृह्णीयात्ततो देहाद्राद्धं सिद्धं कर्म पुमान् गृह्णीयात् । येन कर्मणाहङ्कारगृहीतेन पुनर्भवो भवति। अन्यथा जन्मानुपपत्तेः । अतोऽभिमन्तुर्मनोविशिष्टस्यैव कर्तृत्वमभिमानविषयस्य तु देहस्य पुत्रादिदेहवद्वारमात्रत्वमिति भावः।।६२।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि लिङ्ग शरीर विशिष्ट जीव का इस दृष्टान्त से भोक्तृत्व तो सिद्ध हो जाता है, किन्तु दान देने और दान लेने आदि में तो स्थूल देह विशिष्ट का ही कर्तृत्व देखा जाता है । इस पर नारदजी ने कहा। जीव जो यह कहता है कि ये मेरे पुत्र पत्नी इत्यादि हैं और मैं ब्राह्मण हूँ, इत्यादि कहकर जिन-जिन शरीरों को मानता हैं, उन शरीरों द्वारा किए गये पुण्य पाप इत्यादि कर्मों को भी अपने ऊपर ले लेता है । उन अहङ्कार इत्यादि के द्वारा गृहीत उस कर्म के द्वारा उसका पुनर्जन्म होता है, अन्यथा जन्म नहीं होता । अतएव अहंत्व ममत्व आदि के अभिमान से विशिष्ट ही जीव का कर्तृत्व भोक्तृत्व होता है, और जिस देह से कर्तृत्वाभिमान होता है, वह देह तो पुत्र पत्नी इत्यादि के देह के समान पुनर्जन्म का द्वार (साधन) मात्र है ।।६२।।

**यथानुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः । एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ।।६३।।**

**अन्वयः**— यथा उभयैः इन्द्रियेहितैः चितम् अनुमीयते, एवं चित्तवृत्तिभिः प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते ।।६३।।

**अनुवाद**— जिस तरह कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों दोनों प्रकार की इन्द्रियों की चेष्टाओं से उनके प्रेरक चिद का अनुमान किया जाता है, उसी तरह चित्त की भिन्न-भिन्न वृत्तियों के द्वारा पूर्वजन्म के कर्मों का अनुमान किया जाता है । अतएव कर्ता अदृष्टरूप से फल देने के लिए कालान्तर में विद्यमान रहते हैं ।।६३।।

### भावार्थ दीपिका

यदुक्तं कर्मणो नष्टत्वान्नमुत्र भोग इति तत्राह– यथेति उभयैर्ज्ञानकर्मरूपैरिन्द्रियाणामीहितैः कदाचित्कर्मप्रवृत्तिभिश्चित्तमनुमीयते। सत्यपि सर्वेन्द्रियविषय संबन्धे युगपज्ज्ञानानुत्पत्तेः । तदुक्तमक्षपादेन 'युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गं' इति । एवं चित्तवृत्तिभिरपि पूर्वदेहजं कर्म लक्ष्यते । तासामपि युगपदनुत्पत्तेः ।।६३।।

### भाव प्रकाशिका

राजा प्राचीन बर्हि ने यह जो कहा था कि कर्म तो दूसरे ही क्षण में नष्ट हो जाते है अतएव उन कर्मों का फल परलोक में प्राप्त होना कैसे सम्भव हैं ? उसके उत्तर में नारदजी ने कहा जिस तरह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की चेष्टाओं के द्वारा उनके प्रेरक चित्त का अनुमान किया जाता है । उसके अनुमान का रूप है कि सभी इन्द्रियों के विषयों के रहने पर भी एक ही समय में सभी विषयों का ज्ञान नहीं होता है, एक समय में एक ही विषय का ज्ञान होता है, इसलिए पता चलता है कि कोई-न-कोई ऐसा कारण अवश्य है जिसके द्वारा प्रेरित होकर इन्द्रियाँ विषयों का ग्रहण करती है । जिस समय में वह साधन जिस इन्द्रिय को प्रेरित करता है, वही इन्द्रिय अपने विषय को ग्रहण करती है, अन्य इन्द्रियाँ उस समय अपने विषय का ग्रहण नहीं करती है । वह जो इन्द्रियों का नियामक है वही चित्त है । महर्षि गौतम ने भी कहा है **'युगपज्ज्ञानानुपपत्ति र्मनसो लिङ्गम्'** अर्थात् चूकि एक ही समय में अनेक ज्ञानों की उत्पत्ति नहीं होती है, यही इन्द्रियों के नियामक मन के सद्भाव में प्रमाण है । इसी तरह चित्त की वृत्तियों के द्वारा भी पूर्वदेह के द्वारा किए गये कर्मों का अनुमान होता है । क्योंकि देखा जाता है कि एक समय में एक ही प्रकार की चित्त वृत्ति होती है ।।६३।।

**नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम् । कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ।।६४।।**

**अन्वयः**— अनेन देहेन अदृष्टम् अश्रुतम्, क्वच न अनुभूतम् कदाचित् यादृग् यद्रूपं आत्मनि उपलभ्यते ।।६४।।

**अनुवाद**— कभी-कभी यह भी देखा जाता हैं कि जिस वस्तु को इस शरीर से न तो देखा गया है न सुना गया और न तो कहीं अनुभव ही किया गया है, उस वस्तु का स्वप्न में वह वस्तु जैसी रहती है तथा उसका जैसा रूप होता है, वैसा ही अनुभव होता है ।।६४।।

### भावार्थ दीपिका

इतोऽपि कर्म लक्ष्यत इत्याह–नानुभूतमिति द्वाभ्याम् । अनेन वर्तमानेन देहेन क्व च कुत्रचिदपि यन्नानुभूतं अननुभूतं अनुपभुक्तमदृष्टं चाश्रुतं च यद्रूपं यदात्मकं यादृक् यत्प्रकारं च तत्कदाचित्स्वप्नमनोरथादिष्वात्मनि मनस्युपलभ्येत ।।६४।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से भी पूर्वजन्म के कर्मों के सद्भाव का अनुमान होता है । इस बात को दो श्लोकों द्वारा कहते हैं । इस शरीर से जिसका कहीं भी अनुभव नहीं किया गया है, उसको न तो कभी सुना गया है और न देखा ही गया है । कभी स्वप्न में मनोरथादि में वह वस्तु जैसी होती है तथा जैसा उसका रूप होता है, उसका अनुभव मन में होता है ।।६४।।

**तेनास्य तादृशं राजन् लिङ्गिनो देहसंभवम् । श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनःस्प्रष्टुमर्हति ॥६५॥**

**अन्वयः**— राजन् ! श्रद्धत्स्वतेन अस्य लिङ्गिनः तादृशं देह सम्भवम् अननुभूतोऽर्थः मनः स्प्रष्टुम् न अर्हति ॥६५॥

**अनुवाद**— राजन आप इस बात में विश्वास करे कि लिङ्ग देह के अभिमनी इस जीव को पूर्वजन्म में उस वस्तु का अनुभव हो चुका है जिस वस्तु का कभी भी अनुभव नहीं किया गया है, उस वस्तु की मन में वासना भी नहीं हो सकती है ॥६५॥

### भावार्थ दीपिका

तेन हेतुनास्य लिङ्गिनो वासनाश्रयस्य जीवस्य तादृशं तदनुभवादियुक्तं पूर्वदेहसंभवं श्रद्धत्स्व निश्चयेन मन्यस्व । नह्यननुभूतोऽर्थो मनःस्प्रष्टुं मनसि स्फुरितुमर्हति ॥६५॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव आप यह निश्चित रूप से जान लें कि यह जो लिङ्ग शरीर वाला जीव है वह अपने पूर्वजन्म में उस प्रकार की तथा उस रूप वाली वस्तु का अनुभव कर चुका है । जिस वस्तु का कभी अनुभव नहीं किया गया है, उस वस्तु की कभी मन में स्फूर्ति भी नहीं हो सकती है ॥६५॥

**मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति । भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव नभविष्यतः ॥६६॥**

**अन्वयः**— ते भद्रम् मनएव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि भविष्यतः च नभविष्यतः तथैव शंसति ॥६६॥

**अनुवाद**— राजन् ! आपका कल्याण हो मन ही मनुष्य के पूर्व रूपों तथा भावी शरीरादि को बतला देता है । उसी प्रकार से जिसका भावी जन्म नहीं होने वाला होता है उन तत्त्ववेताओं को विदेह मुक्ति का भी पता मन से ही चल जाता है ॥६६॥

### भावार्थ दीपिका

किंच । मनोवृत्त्यैव पराणि शुभाशुभनिमित्तानि शरीराणि ज्ञायन्त इत्याह-मन एवेति । भद्रं त इति सम्यगवधानार्थमाशिषाभिनन्दति । भविष्यत उद्भवं प्राप्स्यतो नभविष्यतो नीचत्वं प्राप्स्यतोऽपि भावीनि रूपाणि शंसति । मन एवौदार्यकार्पण्यादिवृत्तिभिः पूर्वमप्येवमेवासीत्, पश्चादप्येवमेव भविष्यतीति ज्ञापयतीत्यर्थः ॥६६॥

### भाव प्रकाशिका

किञ्च मनोवृत्ति के द्वारा ही दूसरे शुभ एवं अशुभ कर्म निमित्तक शरीरों का पता चल जाता है । इस बात को नारदजी ने **मन एव० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया है । नारदजी ने भद्रं ते कहकर राजा प्राचीनबर्हि को आशीर्वाद दिया ताकि राजा को सावधान किया है मन के ही द्वारा भविष्यत् कालिक अथवा नीच योनियों में चला जायेगा इस बात का पता चलता है । औदार्य तथा कार्पण्य वृत्तियों के द्वारा मन ही इस बात को बोधित कर देता है कि यह पहले भी ऐसा था और भविष्यत् काल में यह जीव इस प्रकार का होगा ॥६६॥

**अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते । यथा तथानुमन्तव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥६७॥**

**अन्वयः**— अत्र अदृष्टम् अश्रुतम् क्वचित् यथा दृश्यते तथा देशकाल क्रिया श्रयम् अनुमनतव्यम् ॥६७॥

**अनुवाद**— कभी-कभी स्वप्न में देश काल क्रिया सम्बन्धी ऐसी बातें देखी जाती हैं जिनको कभी न तो देखा गया है और न सुना गया ऐसी वस्तु के देखने में निद्रादोष को कारण मानना चाहिए ॥६७॥

### भावार्थ दीपिका

ननु कदाचिद्दर्शनानर्हमपि स्वप्ने प्रतीयते यथा पर्वताग्रे समुद्रो दिवा नक्षत्राणि स्वशिरश्छेद इत्यादि तत्राह-अदृष्टमिति।

अन्यदेशाश्रयं समुद्रादिकं पर्वताग्रे निशाश्रयं नक्षत्रादिकं दिवा अभ्यङ्गादिक्रियाश्रयं स्वशिरश्छेदनाश्रयम् । निद्रादिदोषेण हि तथा प्रतीयत इत्यनुमन्तव्यम् । परस्यापि तदनुपपत्तेस्तुल्यत्वादिति भावः ।।६७।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि कभी-कभी स्वप्न में ऐसी वस्तुएँ भी दिखाई देती हैं, जैसे पर्वत के ऊपर समुद्र, दिन में ही तारे, अपने शिर को कटा हुआ देखना, इत्यादि यह कैसे होता है । इसके उत्तर में नारदजी ने कहा— दूसरे स्थान में होने वाले समुद्र को पर्वत के ऊपर दिखना रात्रि में दिखने वाले तारों को दिन में दिखना, जिस शिर में तेल इत्यादि लगाया जाता है उसको कटा हुआ दिखाई देना, इन सबों का कारण निद्रा दोष ही प्रतीत होता है, क्योंकि इस तरह का अनुभव भी नहीं हो सकता है ।।६७।।

**सर्वे क्रमानुरोधेन मनसीन्द्रियगोचराः । आयान्ति वर्गशो यान्ति सर्वे समनसो जनाः ।।६८।।**

**अन्वयः**— सर्वे इन्द्रिय गोचराः मनसि वर्गशः आयान्ति यान्ति च तस्मात् सर्वे जनाः समनसाः ।।६८।।

**अनुवाद**— इन्द्रियों से जिनका अनुभव किया जा सकता है । ऐसे ही पदार्थ मन में भोग रूप में आते हैं और भोग के समाप्त हो जाने पर चले जाते हैं ऐसे कोई पदार्थ नहीं आता है जिसका इन्द्रियों से अनुभव नहीं किया जा सके । इसका कारण यही है कि सभी जीव मन से युक्त हैं ।।६८।।

### भावार्थ दीपिका

ननु दरिद्रः क्वचिदात्मानं महाराजं पश्यति, राजा च रङ्कमात्मानं पश्यति तत्कथमसंभावितं सङ्गच्छेत तत्राह-सर्व इति। आयान्ति भोग्यत्वेन प्राप्नुवन्ति । यान्ति च भोगानन्तरम् । यदि च कश्चिदमना भवेत्तर्ह्येवं न स्यान्न त्वेतदस्तीत्याह-सर्वे समनस इति । अतः सर्वेषां समनस्कत्वान्मनसि च सर्वार्थानां क्रमेण प्रवेशान्नात्यन्तादृष्टचरः कस्यापि कश्चिदर्थोऽस्तीत्यर्थः ।।६८।।

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि कभी दरिद्र भी स्वप्न में अपने को महाराज देखता है और राजा भी अपने को रङ्क (दरिद्र) देखता है, यह बिल्कुल असंभवित होता है, इसकी अन्वितता कैसे हो सकती है ? इसके उत्तर में नारदजी कहते हैं जितने भी इन्द्रियों के विषय मन में भोग्य रूप से आते जाते रहते हैं, सबों के साथ मन लगा हुआ रहता है। यदि कोई मन रहित होता तो ऐसा नहीं होता किन्तु कोई ऐसा नहीं है । फलतः सबों के एक होने के कारण सबों के मन में सभी विषयों का प्रवेश होता रहता है । कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसक किसी ने नहीं देखा हो। अतएव राजा का अपने को रङ्क रूप में देखने में कोई भी अनुपपत्ति नहीं है ।।६८।।

**सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि । तमश्चन्द्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ।।६९।।**

**अन्वयः**— सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत् पार्श्व वर्तिनि तमः चन्द्रमसि इव इदम् उपरज्य अवभासते ।।६९।।

**अनुवाद**— समान्यतः सभी विषयों का क्रमशः ही भान होता है किन्तु यदि भगवच्चिन्तन में लगा हुआ मन विशुद्ध सत्त्व में स्थित हो जाय तो उसमें संबन्ध को प्राप्त करके सम्पूर्ण विषय उसी तरह प्रकाशित होने लगता है जिस तरह नहीं दिखने वाला राहू चन्द्रमा में प्रवेश करके दिखने लगता है ।।६९।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं सर्वैरपि सर्वेऽर्थाः क्रमेण दृश्यन्त इत्युक्तम्, इदानीं युगपदपि सर्वदर्शनं कदाचिद्भवतीत्याह । सत्त्वैकनिष्ठे भगवत्पार्श्ववर्तिनि भगवद्ध्यानपरे मनसीदं विश्वमुपरज्य संयोगमिव प्राप्यावभासते । प्रतीत्यनर्हस्यापि कदाचित्प्रतीतौ दृष्टान्तः- चन्द्रमस्युपरज्य तमो राहुरिव । तदिदं शुद्ध मनसि सर्वविषयस्फुरणं योगिप्रत्यक्षमिति प्रसिद्धम् ।।६९।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहा जा चुका है कि सभी लोग सभी विषयों को क्रमशः ही देखते हैं, इस श्लोक में यह बतलाया जा रहा है कि कभी एक ही समय में सभी विषयों का साक्षात्कार कर लेते हैं। जब कभी श्रीभगवान् के ध्यान में लगा हुआ मन जब शुद्धसत्त्व सम्पन्न हो जाता है, उस समय उस मन से संयोग को प्राप्त करके सम्पूर्ण विश्व उसमें प्रकाशित होने लगता है। जिसकी प्रतीति नहीं होती है उसकी भी प्रतीति में दृष्टान्त उपन्यस्त करते हुए नारदजी ने कहा कि यद्यपि राहु का प्रत्यक्ष नहीं होता है कि फिर भी जब राहु प्रकाशमय चन्द्रमा में प्रवेश करता है तो वह दिखने लग जाता है शुद्ध मन में सभी विषयों के स्फुरण को ही योगि प्रत्यक्ष कहा जाता है ॥६९॥

**नाहंममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते । यावद्बुद्धिमनोक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥७०॥**

**अन्वयः**— यावत् बुद्धि, मनः अक्षार्थ गुणव्यूहः अनादिमान् तावत् पुरुषे अहं मम इत्ययं भावः नव्यवधीयते ॥७०॥

**अनुवाद**— जब तक बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, उनके विषयों के संघात तथा गुणों के परिणाम रूप तथा अनादि लिङ्ग शरीर बना हुआ है, तब तक जीव के भीतर इस स्थूल शरीर के प्रति अहंत्व और ममत्व का अभाव नहीं हो सकता है ॥७०॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं स्थूलदेहनाशेऽपि लिङ्गदेहस्यानाशादन्यः कर्ता भोक्तेति दोषो नास्तीत्युक्तम् । तत्रैवं शङ्कते-ननु लिङ्गदेहस्य स्थूलदेहद्वारेणैव कर्तृत्वभोक्तृत्वे न तु केवलस्य । तत्र कदाचित्स्थूलदेहाभावे जीवस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वाभावान्मुक्तिः प्रसज्येत तत्राह । अहंममेति भावः स्थूलदेहसंबन्धः पुरुषे जीवे न व्यवधीयते न विच्छिन्नो भवति । किंपर्यन्तम् । बुद्ध्यादीनां व्यूहः परिणामो लिङ्गं यावदस्ति । अनादिमान् अनादिः सन् ॥७०॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से स्थूल शरीर का नाश हो जाने पर भी चूकि लिङ्ग शरीर का भी नाश नहीं होता है। अतएव कर्ता भोक्ता दूसरे हैं इस बात को कहा जा चुका है। उसके विषय में यह शङ्का होती है कि लिङ्ग शरीर तो स्थूल देह के माध्यम से ही कर्ता भोक्ता होता है। केवल लिङ्ग शरीर कर्ता भोक्ता नहीं होता है। ऐसी स्थिति में स्थूल देह जब नहीं रहता है, उस स्थिति में उस जीव की मुक्ति होने का प्रसङ्ग होता है, इसके उत्तर में कहते हैं। जब तक बुद्धिमान इन्द्रिय और उनके विषयों का समूह अनादि लिङ्ग शरीर तथा स्थूल देह का सम्बन्ध होता है तब तक शरीर में होने वाले अहन्त्व और ममत्व का सम्बन्ध नहीं समाप्त होता है ॥७०॥

**सुप्तिमूर्च्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः । नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥७१॥**

**अन्वयः**— सुप्तिः मूर्धा, उपपत्तिषु प्राणायनविघात मृत्यु प्रज्वरयोः अपि अहमिति ज्ञानं नेङ्गते ॥७१॥

**अनुवाद**— सुषुप्ति मूर्छा इष्टवियोगादि जन्य दुःख, मृत्यु तथा ज्वर के समय यद्यपि इन्द्रियों की व्याकुलता के कारण अहन्त्व इत्यादि स्पष्ट प्रतीति नहीं होती है फिर भी उस समय भी उनका अभिमान बना ही रहता है॥७१॥

### भावार्थ दीपिका

स्वापादावहंकाराद्यभावात्तद्विच्छेदमाशङ्क्याह द्वाभ्याम् । सुप्त्यादिषु उपताप इष्टवियोगादिदुःखम् । तेष्वहमिति ज्ञानमहङ्कारो नेहते न प्रकाशते । प्राणायनानामिन्द्रियाणां विघातात् । इन्द्रियैरिदंकारास्पदवस्तुग्रहणे ह्यहंकारः स्फुरति नान्यथेत्यर्थः ॥७१॥

### भाव प्रकाशिका

स्वापादि काल में अहङ्कार आदि का अभाव होने के कारण अहंत्व आदि का अभाव हो जाना चाहिए, इस प्रकार की शङ्का करके दो श्लोकों द्वारा कहते हैं स्वापादि काल में इष्ट व्यक्ति के वियोग जन्य दुःख इत्यादि के

समय यद्यपि अहङ्कार ममकार की स्पष्ट प्रतीति नहीं होती है। इसी तरह इन्द्रियों के विनष्ट हो जाने पर भी वास्तविकता है कि जब इन्द्रियाँ अपने विषयों का ग्रहण करती हैं, उसी समय अहङ्कार को प्रतीति होती है ॥७१॥

**गर्भे बाल्येऽप्यपौष्कल्यादेकादशविधं तदा । लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥७२॥**

**अन्वयः**— कुह्वा चन्द्रमसो यथा गर्भे बाल्ये अपि तदा एकादशविधं अपौष्कल्याद् यूनः लिङ्गंन दृश्यते ॥७२॥

**अनुवाद**— जिस तरह अमावस्या के दिन यद्यपि चन्द्रमा रहते हैं फिर भी नहीं दिखते हैं उसी तरह गर्भावथा और वाल्यावस्था में एकादश इन्द्रियों की पुष्पकलता नहीं होने के कारण युवकों में स्पष्ट रूप से प्रतीत होने वाला लिङ्ग शरीर नहीं प्रतीत होता है ॥७२॥

### भावार्थ दीपिका

अपौष्कल्यादसंपूर्णत्वात्प्राणायनानामिति शेषः । यूनस्तरुणस्य यदेकादशविधमेकादशेन्द्रियैः स्फुटं लिङ्गमहंकरणं तत्र दृश्यते गर्भादाविति । सतोऽप्यनभिव्यक्तौ दृष्टान्तः-कुह्वाममावास्यायां चन्द्रमसो लिङ्ग रूपमिव ॥७२॥

### भाव प्रकाशिका

अपौकल्यात् का अर्थ है परिपूर्ण नहीं होने के कारण प्राणायनौके अर्थात् इन्द्रियों को अर्थात् युवक की ग्यारह इन्द्रियों के द्वारा उसके अहङ्कार की स्पष्ट रूप से प्रतीति होती है। किन्तु वह गर्भावस्था में अथवा बाल्यावस्था में इसलिए नहीं प्रतीत होता है कि उसकी ग्यारहों इन्द्रियाँ परिपूर्ण नहीं रहती हैं। किन्तु उस अवस्था में लिङ्ग शरीर रहता है। विद्यमान वस्तु की अभिव्यक्ति नहीं होने का दृष्टान्त यही है कि अमावस्या के दिन भी चन्द्रमा रहते हैं किन्तु उनकी अभिव्यक्ति उस दिन नहीं होती है। चन्द्रमा का लिङ्ग चन्द्रमा का रूप ही है ॥७२॥

**अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥७३॥**

**अन्वयः**— विषयान् ध्यायतः अस्य यथा स्वप्ने अनर्थागमः तथैव अर्थे अविद्यमानेऽपि संसृतिः नोनिवर्तते ॥७३॥

**अनुवाद**— जिस तरह स्वप्न में किसी वस्तु के नहीं रहने पर स्वप्न जन्य अनर्थ की तब तक निवृत्ति नहीं होती है जब तक कि स्वन द्रष्टा जग नहीं जाता है। इसी तरह यद्यपि संसारि वस्तुए असत् हैं फिर भी अविद्या के कारण मनुष्य उनका चिन्तन करता रहता है इसीलिए उसको जन्म मरण रूप संसार से छूटकारा नहीं प्राप्त होता है ॥७३॥

### भावार्थ दीपिका

तस्मादहंकारास्पदस्य स्थूलदेहस्याविच्छेदाद्वस्तुभूतार्थाभावेऽपि संसृतिनिवृत्तिर्नास्तीत्याह-अर्थे हीति ॥७३॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव अहङ्कारास्पद स्थूल शरीर की निवृत्ति नहीं होने के कारण असत् होने पर भी संसार की निवृत्ति नहीं होती है, इस अर्थ का प्रतिपादन अर्थे हि इत्यादि श्लोक में किया गया है ॥७३॥

**एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत्षोडशविस्तृतम् । एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥७४॥**

**अन्वयः**— एवं पञ्चविधं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम् लिङ्गम् एष चेतनया युक्तः जीव इत्यभिधीयते ॥७४॥

**अनुवाद**— इस तरह से पञ्च तन्मात्राओं से निर्मित तथा सोलह तत्त्वों के रूप में विकसित त्रिगुण के संघात रूप ही लिङ्ग शरीर है। यही चेतनाशक्ति से युक्त होकर जीव कहलाता है ॥७४॥

### भावार्थ दीपिका

यावल्लिङ्गं स्थूलदेहाविच्छेदात्संसारान्निवृत्तिरित्येतत्प्रपञ्चयति-एवमिति सार्धैस्त्रिभिः । पञ्चविधं पञ्चतन्मात्रात्मकम् । त्रिवृत् त्रिगुणम् । षोडशविकारात्मना विस्तृतम् ॥७४॥

**भाव प्रकाशिका**

जब तक लिङ्ग शरीर का स्थूल शरीर से विच्छेद नहीं होता है तब तक संसार की निवृत्ति नहीं होती है इसी अर्थ का विस्तार से वर्णन **एवम्० इत्यादि** साढे तीन श्लोकों से करते हैं । यह लिङ्ग शरीर पञ्चतन्मात्रात्मक है एवं त्रिगुणमय है । यह सोलह विकारों के रूप में विकसित है ।।७४।।

**अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति । हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ।।७५।।**

**अन्वयः**— पुरुषः अनेन देहान् उपादत्ते, विमुञ्चिति । हर्ष शोकं भयं दुःखं च अनेन विन्दति ।।७५।।

**अनुवाद**— इस लिङ्ग शरीर के द्वारा ही पुरुष विभिन्न शरीरों को धारण करता है और त्यागता है । इसी के ही द्वारा हर्ष, शोक, भय, दुःख और सुख का अनुभव करता है ।।७५।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।७५।।

**यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च । न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि प्राग्देहाभिमतिं जनः।।७६।।**
**यावदन्य न विन्देत व्यवधानेन कर्मणाम् । मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम्।।७७।।**

**अन्वयः**— यथा इयं तृणजलूका न अपयाति अपय याति च । तथा म्रियमाणः अपि जनः कर्मणाम् व्यवधानेन यावत् अन्यं न विन्देत् तावत् प्राग्देहाभिमतिंनं त्यजेत् । राजेन्द्र मन एवं भूतानाम् भवभावनम् ।।७६-७७।।

**अनुवाद**— जिस तरह जोंक जब तक दूसरे तृण को नहीं पकड़ लेती है तब तक पहले तृण को नहीं छोड़ती है, उसी तरह जीव भी मरण काल के उपस्थित होने पर तथा देहारम्भक कर्मों की समाप्ति हो जाने पर भी दूसरा शरीर नहीं प्राप्त कर लेता है तब तक पहले शरीर के अभिमान को नहीं त्यागता है । राजेन्द्र यह मनः प्रधान लिङ्ग शरीर ही जीव के जन्म आदि का कारण हैं ।।७६-७७।।

**भावार्थ दीपिका**

नन्वेकं देहं विसृज्य देहान्तरप्रवेशात्पूर्वं विदेहता स्यादेवेत्यत आह-यथेति । नापयाति पूर्वतृणस्यात्यागात् । अपयाति च तृणान्तरधारणात् । तथा प्राग्देहाभिमतिं न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि । अन्यं देहम् । कर्मणां प्राग्देहारम्भकाणां व्यवधानेन विच्छेदेन समाप्त्या । प्रकरणार्थमुपसंहरति मन एवेति भवभावनं संसारहेतुः ।।७६-७७।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई यह कहे कि जीव जब एक शरीर को छोड़ता है उसके पश्चात् जब तक वह दूसरे शरीर को ग्रहण नहीं कर लेता है, तब तक वह विदेह रहेगा ही ऐसी स्थिति में उसकी मुक्ति हो जानी चाहिए । इस पर नारदजी **यथा इत्यादि** श्लोक कहते हैं । जैसे जोंक अपने पहले के तृणर को तब तक नहीं त्यागती है जब तक कि वह दूसरे तृण को पकड़ न ले । उसी तरह से मरने के भी समय पूर्व देह के आरम्भक कर्मों के समाप्त हो जाने पर भी मनुष्य अपने पूर्व देह के अभिमान को नहीं त्यागता है जब तक कि वह दूसरे शरीर को प्राप्त न कर ले। इस प्रकरण का उपसंहार करते हुए नारदजी कहते हैं कि राजेन्द्र मनः प्रधान लिङ्ग शरीर ही जन्म मरण का कारण है ।।७६-७७।।

**यदाक्षैश्चरितान्ध्यायन्कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् । सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः ।।७८।।**

**अन्वयः**— यदा अक्षैः चरितान् ध्यायनअसकृत् कर्माणि आचिनुते कर्माणि अविद्यायां सत्यां अनात्मनः कर्माणि बन्धः ।।७८।।

**अनुवाद**— जब जीव इन्द्रियों के द्वारा भोगे गये कर्मों का ध्यान करता रहता है और उसी के लिए बार-बार कर्मों को करता रहता है, तो उन कर्मों के होते रहने के कारण वह जीव अविद्यावशात् देहादि के बन्धन मे पड़ जाता है ।।७८।।

### भावार्थ दीपिका

कथं सति तदाह-यदेति । चरितानुपभुक्तान् । यतः कर्मणि सति । नन्वसङ्गस्य कुतः कर्म तत्राह । अविद्यायां सत्यामनात्मनो देहादेः कर्मणि बन्धो भवति ।।७८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि कैसे होने पर ? तो इसका उत्तर **यदा० इत्यादि** श्लोक से देते हैं चरितान् का अर्थ है उपभोग किए गये । अर्थात् जब जीव अपने द्वारा भोगे गये विषयों का चिन्तन करके उसके लिए ही बार-बार कर्मों को करता है यदि कहें कि उस समय जीव सबों से अनासक्त रहता है तो फिर वह कर्मों को कैसे करेगा ? तो इस पर कहते है जब तक अविद्या रहेगी तब तक अनात्मा देहादि को बाँधेगा ही ।।७८।।

**अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् । पश्यंस्तदात्मनं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ।।७९।।**

**अन्वयः**— अतः तद् अपवादार्थं यतः उत्पत्ति स्थित्यप्ययाः तदात्मकं विश्वं पश्यन् हरिं भज ।।७९।।

**अनुवाद**— अतएव उससे छुटकारा प्राप्त करने के लिए तुम जिनसे जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय होते हैं उन श्रीहरि का तुम भगवदात्मक जगत् को देखते हुए भजन करो ।।७९।।

### भावार्थ दीपिका

विश्वस्थित्यादयो यतो हरेर्भवन्ति ।।७९।।

### भाव प्रकाशिका

जिन श्रीहरि से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति आदि होते हैं ।।७९।।

मैत्रेय उवाच

**भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम् । प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ।।८०।।**

**अन्वयः**— भागवतमुख्यः भगवान् नारदः हंसयोः गतिम् प्रदर्श्य अमुम् आमन्त्र्य सिद्धलोकम् अगमत् ।।८०।।

### मैत्रेयजी ने कहा

**अनुवाद**— उसके पश्चात् भगवद् भक्तों में प्रधान भगवान् नारदजी जीवात्मा और परमात्मा की गति का उपदेश करके तथा राजा से विदा लेकर सिद्धों के लोक में चले गये ।।८०।।

### भावार्थ दीपिका

हंसयोर्जीवेश्वरयोः ।।८०।।

### भाव प्रकाशिका

हंसयो: पद का अर्थ है, जीव तथा ईश्वर के ।।८०।।

**प्राचीनबर्ही राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे । आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ।।८१।।**

**अन्वयः**— राजर्षिः प्राचीनबर्ही प्रजासर्गरक्षणे पुत्रान् आदिश्य तपसे कपिलाश्रमम् अगमत् ।।८१।।

**अनुवाद**— राजर्षि: प्राचीन बर्ही प्रजाओं की रक्षा का भार अपने पुत्रों को सौंपकर तपस्या करने के लिए कपिलाश्रम में चले गये ।।८१।।

### भावार्थ दीपिका

पुत्रानादिश्येति पुत्राणामादेशं मन्त्रिणामग्रे कथयित्वा (कपिलाश्रमं गङ्गासागरसङ्गमम्) ।।८१।।

**भाव प्रकाशिका**

**पुत्रानादिश्य** का अर्थ है, मन्त्रियों के सामने पुत्रों को आदेश देकर, कपिलश्रम अर्थात् गङ्गासागर संगम पर चले गये ॥८१॥

**तत्रैकाग्रमना वीरो गोविन्दचरणाम्बुजम् । विमुक्तसङ्गोऽनुभजन्क्त्या तत्साम्यतामगात् ॥८२॥**

**अन्वयः**— तत्र वीरः विमुक्तसङ्ग एकाग्रमना गोविन्दचरणाम्बुजम् भक्त्या अनुभजन् तत्साम्यताम् अगात् ॥८२॥

**अनुवाद**— वहाँ पर वीरवर प्राचीन बर्ही सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके एकाग्रमन से भक्ति पूर्वक श्रीहरि के चरणों का चिन्तन करते हुए सारूप्यपद को प्राप्त किए ॥८२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥८२॥

**एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणाऽनघ । यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिङ्गेन विमुच्यते ॥८३॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! एतद् देवर्षिणा गीतं पारोक्ष्यं अध्यात्म यः श्रावयेत् यः शृणुयात् लिङ्गेन विमुच्यते ॥८३॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप विदुरजी देवर्षि नारदजी के द्वारा वर्णित हुए परोक्ष आत्मज्ञान को जो सुनेगा अथवा सुनायेगा वह लिङ्ग शरीर से मुक्त हो जायेगा ॥८३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥८३॥

**एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम् ।**
**यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥८४॥**

**अन्वयः**— देवर्षिवर्यमुखनि स्सृतम् आत्मशौचम् मुकुन्दयशसाभुवनं पुनानम् यः कीर्त्यमानम् पारमेष्ठयं पदम् आधिगच्छति मुक्तसमस्तबन्धः अस्मिन् भवे न भ्रमति ॥८४॥

**अनुवाद**— देवर्षिवर्य नारदजी के मुख से निकला हुआ यह आत्मज्ञान भगवान् मुकुन्द के यश से संबद्धहोने के कारण त्रैलोक्य को पवित्र करने वाला है तथा अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाला है । जो पुरुष इसकी कथा का श्रवण करेगा वह संसार के समस्त बन्धनों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करेगा । उसको इस संसार में नहीं भटकना पड़ेगा ॥८४॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मशौचं मनःशोधकम् । पारमेष्ठ्यं सर्वोत्कृष्टफलदम् ॥८४॥

**भाव प्रकाशिका**

**आत्मशौचम्** पद का अर्थ है मन को पवित्र बनाने वाला, **पारमेष्ठयम्** अर्थात् सर्वोत्कृष्ट फल प्रदान करने वाला ॥८४॥

**अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् । एवं स्त्रियाश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ॥८५॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे प्राचीनबर्ही नारद संवादो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

**अन्वयः**— इदम् अद्भुतम् पारोक्ष्यम् मया अधिगतम् एवम् स्त्रियाश्रमः पुंसः अमुत्र छिन्न संशयः भवतीति शेषः॥८५॥

**अनुवाद**— इस अद्भुत परोक्ष आत्मज्ञान को मैंने अपने आचार्य की कृपा से प्राप्त किया इसको सुनने वाला गृहस्थाश्रमी भी सभी संशयों के समाप्त हो जाने के कारण मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥८५॥

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के विदुर मैत्रेय संवाद के अन्तर्गत प्राचीनवर्ही नारद संवाद नामक उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।५९।।**

### भावार्थ दीपिका

स्त्री बुद्धिस्तत्सहितस्याश्रमोऽहंकारश्छिन्नो भवति। अमुत्र कर्मफलभोगः कथमिति संशयश्छिन्नः ॥८५॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥**

### भाव प्रकाशिका

**स्त्रियाश्रमः** का अर्थ है स्त्री शब्द वाच्य बुद्धि के साथ जो आश्रम अहङ्कार वह विनष्ट हो जाता है अर्थात् इसको सुनने वाले का अहङ्कार विनष्ट हो जाता है। उसका यह संशय भी विनष्ट हो जाता है कि कर्म का फल कैसा होता है ॥८५॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के उनतीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२९॥**

# तीसवाँ अध्याय

## प्रचेताओं को भगवान् विष्णु का वरदान

विदुर उवाच

**ये त्वयाभिहता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः । ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्यकाम् ॥१॥**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! त्वया ये प्राचीन वर्हिषः सुताः अभिहिताः ते रुद्रगीतेन हरिं प्रतोष्य काम् सिद्धिम् आपुः ॥१॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— ब्रह्मन् अपने जिन राजा प्राचीन वर्ही के पुत्रों का वर्णन किया है उन सबों ने रुद्रगीत के द्वारा श्रीहरि की स्तुति करके किस सिद्धि को प्राप्त किया ?॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रसङ्गात्पञ्चभिः प्रोक्तं वृत्तं प्राचीनबर्हिषः । वर्ण्यते च पुनर्द्वाभ्यां प्रस्तुतं तत्प्रचेतसाम् ॥१॥ तत्र त्रिंशे तपस्तुष्टादीशालुब्धवरास्ततः । आगत्य वार्क्षीमुद्वाह्य राज्यं चक्रुरितीर्यते ॥२॥ हरिं प्रतोष्य कां सिद्धिमापुः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रसङ्गवशात् पाञ्च अध्यायों के द्वारा मैत्रेयजी ने राजा प्राचीन वर्ही के चरित का वर्णन किया पुनः वे दो अध्यायों द्वारा प्रस्तुत प्रचेताओं के चरित का वर्णन करते हैं । उसमें भी तीसवें अध्याय में तपस्या से प्रसन्न हुए श्रीहरि से वरदान प्राप्त करके, वहाँ से आकर वृक्षों की पुत्री वार्क्षी से विवाह करके उन सबों ने राज्य किया इस बात का वर्णन है । श्रीहरि को प्रसन्न करके प्रचेताओं ने कौन सी सिद्धि प्राप्त की ॥१॥

**किं बार्हस्पत्येह परत्र वाथ कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः ।**
**आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया प्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः ॥२॥**

**अन्वयः**— हे बार्हस्पत्य ! कैवल्य नाथ प्रिय पर्श्ववर्तिनः यदृच्छया देवं गिरिशं आसाद्य अथ प्रचेतसः नूनं परं प्रापु अथ इह परत्र वा किम् प्रापुः ॥२॥

**अनुवाद**— हे बार्हस्पत्य मैत्रेयजी मोक्षाधिपति श्रीभगवान् के परं प्रिय भगवान् शङ्कर का अचानक सान्निध्य प्राप्त करके प्रचेताओं ने उसके पश्चात् निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त कर ली होगी किन्तु उन सबों ने इस लोक में अथवा परलोक में किस सिद्धि को प्राप्त किया इस बात को आप मुझे बतलायें ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

हे वार्हस्पत्य, कस्यांचिद्विद्यायां बृहस्पतेर्मैत्रेयः शिष्य इति ज्ञातव्यम् । ते यदृच्छया गिरिशं प्राप्य तस्यैव कैवल्यनाथप्रियस्य गिरिशस्य पार्श्ववर्तिनस्तदनुगृहीताः सन्तो नूनं परं मोक्षं प्रापुरेव । ततः पूर्वं त्विहथवा परत्र किं प्रापुः ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

हे बृहस्पति के शिष्य ! इस संबोधन से पता चलता है कि मैत्रेयजी देवगुरु बृहस्पति से किसी विद्या को प्राप्त करने के लिए उनकी शिष्यता स्वीकार किए होंगे । उन प्रचेताओं ने अकस्मात् भगवान् शिव से मिलकर, मोक्षाधिपति श्रीहरि के प्रिय शङ्करजी के सन्निकट रहने वाले श्रीहरि की कृपा प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त किया यह तो निश्चित है किन्तु उससे पहले इस लोक में अथवा परलोक में उन सबों ने क्या किया यह मुझे आप बतलाएँ ।।२।।

मैत्रेय उवाच

**प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः । जपयज्ञेन तपसा पुरंजनमतोषयन् ।।३।।**

**अन्वयः**— पितुरादेशकारिणः प्रचेतस अन्तरुदधौ जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनमतोषयन् ।।३।।

### मैत्रेयजी ने कहा

**अनुवाद**— अपने पिता के आदेश का पालन करने वाले प्रचेताओं ने समुद्र के भीतर खड़े रहकर जप यज्ञरूपी तपस्या के द्वारा समस्त शरीरों को उत्पन्न करने वाले श्रीहरि को प्रसन्न किया ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

रुद्रगीतजपरूपेण यज्ञेन तपसा च । पुरंजनं हरिम् ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

प्रचेताओं ने रुद्रगीत के जप यज्ञ रूपी तपस्या के द्वारा पुरञ्जन (समस्त शरीरों को उत्पन्न करने वाले) श्रीहरि को प्रसन्न किया ।।३।।

**दशवर्षसहस्रान्ते पुरुषस्तु सनातनः । तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शान्तेन शमयन् रुचा ।।४।।**

**अन्वयः**— दशवर्ष सहस्रान्ते तु सनातनः पुरुषः तेषां कृच्छ्रं शान्तेन रुचा शमयन् आविरभूत् ।।४।।

**अनुवाद**— उन सबों की तपस्या करते हुए दश हजार वर्ष बीत जाने के पश्चात् सनातन पुरुष भगवान् नारायण अपनी मनोहर कान्ति के द्वारा तपस्या जन्य क्लेश को शान्त करते हुए उन सबों के समक्ष प्रकट हो गये ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

तेषां कृच्छ्रं तपःक्लेशं रुचा कान्त्या शमयन् शान्तेन शुद्धसत्त्वेन वपुषा आविर्भूतः ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

उन सबों के तपस्या जन्य क्लेश को शुद्ध सत्त्वमय अपने दिव्य विग्रह की कान्ति के द्वारा शान्त करते हुए आविभूर्त हो गये ।।४।।

**सुपर्णस्कन्धमारूढो मेरुशृङ्गमिवाम्बुदः । पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्वितिमिरा दिशः ॥५॥**

**अन्वयः**— सुपर्णस्कन्धम् आरूढः मेरु शृङ्गमिवाम्बुदः, पीतवासा, मणिग्रीवः दिशः वितिमिराः कुर्वन् ॥५॥

**अनुवाद**— गरुड़जी के कन्धे पर बैठे हुए श्रीभगवान् ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे सुमेरु पर्वत के शिखर पर कोई श्याम वट विद्यमान हो । वे पीताम्बर धारण किए हुए थे, उनकी गले में कौस्तुभमणि सुशोभित हो रही थी । अपनी कन्ति के द्वारा वे सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

सुपर्णस्कन्धमारूढ इत्यादीनां बर्हिष्मतः सुतानाहेति तृतीयेनान्वयः ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

गरुड़जी के कन्धे पर बैठे हुए इत्यादि विशेषणों का इस श्लोक से तीसरे सातवें श्लोक के बर्हिष्मतः सुतान् आह अर्थात् प्राचीनबर्हीं के पुत्रों से कहा, इन पदों के साथ अन्वय है ॥५॥

**काशिष्णुना कनकवर्णविभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ।**
**अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रैरासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥६॥**
**पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्यास्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाद्यः ।**
**बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान्प्रपन्नान्पर्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥७॥**

**अन्वयः**— काशिष्णुना कनकवर्ण विभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनः विलसत् किरीटः अष्टायुधै रनुचरैः मुनिभिः सुरेन्द्रैः आसेवितः, गरुड किन्नर गीतकीर्तिः पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या, स्पर्धच्छ्रिया वनमालया परिवृतः सघृणावलोकः, आद्यपुरुषः, प्रपन्नान् बर्हिष्मतः पुत्रान् पर्जन्य रूतया आह ॥६-७॥

**अनुवाद**— चमकने वाले सुवर्णमय आभूषणों से युक्त श्रीभगवान् के कमनीय कपोल और मनोहर मुख मण्डल से सुशोभित हो रहे थे । उनके मस्तक पर मुकुट सुशोभित हो रहा था । श्रीभगवान् की आठ भुजाओं में आठ आयुध विद्यमान थे । देवगण, मुनिगण, पार्षदगण उनकी सेवा में उपस्थित थे तथा गरुडजी किन्नर के समान अपने पङ्खों की साममय ध्वनि से श्रीभगवान् की कीर्ति का गान कर रहे थे । उनकी लम्बी आठ भुजाओं के बीच में लक्ष्मीजी से स्पर्धा करने वाली वनमाला विराजमान थी आदि पुरुष भगवान् नारायण इस प्रकार पधार कर अपने शरणागत प्रचेताओं को दयादृष्टि से देखते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहे ॥६-७॥

### भावार्थ दीपिका

कनकमयेन वर्णवता विभूषणेन भ्राजमानं कपोलं वदनं च यस्य । अष्टभिरायुधैः । गरुड एव किन्नरस्तेन पक्षस्वनैर्गीता कीर्तिर्यस्य । पीनाश्च ते आयता अष्टौ भुजास्तेषां मण्डलं समूहस्तन्मध्ये स्थितया लक्ष्म्या स्पर्धमाना श्रीः शोभा यस्यास्तया वनमालया परिवृत आद्यः पुरुष आह । पर्जन्य नाद इव रुतं नादो यस्यास्तया वाचा । सघृणोऽवलोको यस्य ॥६-७॥

### भाव प्रकाशिका

सुवर्णमय तथा अनेक रत्नों के जटित होने के कारण अनेक वर्णों वाले आभूषणों से जिनके कपोल और मुखमण्डल सुशोभित हो रहे थे ऐसे श्रीभगवान् की आठ भुजाएँ थीं । गरुड़जी किन्नर के समान अपने साममय पङ्खों की ध्वनि से श्रीभगवान् की कीर्ति का गायन कर रहे थे । श्रीभगवान् की मांसल तथा लम्बी भुजा समूह के बीच में विद्यमान श्रीलक्ष्मीजी से स्पर्धा करने वाली लक्ष्मीजी के ही समान शोभा सम्पन्न वनमाला के द्वारा परिवृत अपनी दया दृष्टि से शरणागत प्रचेताओं को देखते हुए उन सबों से मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहे॥६-७॥

श्रीभगवानुवाच

**वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनन्दनाः । सौहार्देनापृथग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥८॥**

**अन्वयः**— हे नृपनंदना वो भद्रं सौहार्देन यूयं अपृथग् धर्माः, वः सौहृदेन अहं तुष्टः यूयं वरं वृणीध्वम् ॥८॥

**श्रीभगवान् ने कहा**

**अनुवाद**— राजपुत्रों ! आपलोगों का कल्याण हो । तुमलोगों में परस्पर में प्रेम होने के कारण तथा सौहार्द के कारण तुम लोग एक ही धर्म को अपनाये हो । इससे मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ । तुमलोग वरदान माँगो ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

यूयं मे मत्तो वृणीध्वम् । सौहार्देन हेतुनाऽपृथग्धर्मों येषां तेषां संबोधनम् । वः परस्परं सौहृदेन तुष्टोऽहम् ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

तुम लोग मुझसे वरदान माँगो । सौहार्द के कारण एक ही धर्म को तुम लोग अपनाये हों । तुमलोगों के परस्पर में प्रेम होने के कारण मैं संतुष्ट (प्रसन्न) हूँ ॥८॥

**योऽनुस्मरति संध्यायां युष्माननुदिनं नरः । तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदम् ॥९॥**

**अन्वयः**— यः नरः संध्यायां युष्मान् स्मरति तस्य भातृषुआत्मसाम्यं तथाभूतेषु सौहृदम् ॥९॥

**अनुवाद**— जो मनुष्य संध्याकाल के समय तुमलोगों का प्रतिदिन स्मरण करेगा उसका अपने भाइयों में अपने ही समान प्रेम होगा तथा समस्त जीवों के प्रति मित्रता का भाव हो जायेगा ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

भूतेषु सौहृदं च भविष्यति ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

उस मनुष्य का सभी प्राणियों के प्रति मित्रता का भाव हो जायेगा ॥९॥

**ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः । स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥१०॥**

**अन्वयः**— ये तु सायं प्रातः समाहिताः । मां रुद्रगीतेन स्तुवन्ति तान् अहं कामवरान् शोभनां प्रज्ञां च दास्ये ॥१०॥

**अनुवाद**— जो लोग सायंकाल और प्रातःकाल एकाग्रमना होकर इस रुद्रगीत के द्वारा मेरी स्तुति करेंगे मैं उन लोगों को अभीष्ट वरदान प्रदान करूँगा और उन लोगों को मैं शुद्ध बुद्धि प्रदान करूँगा ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

तेभ्यो दास्ये, किं पुनर्युष्मभ्यमिति शेषः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

उन स्तुति करने वालों को भी मैं प्रदान करूँगा फिर आपलोगों के विषय में क्या कहना हैं ॥१०॥

**यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदान्विताः । अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥११॥**

**अन्वयः**— यूयं यद पितुः आदेशम् मुदाऽन्विताः अग्रहीष्ट अथोवः उशती कीर्तिः लोकान् अनुभविष्यति ॥११॥

**अनुवाद**— तुम लोगों ने अपने पिता के आदेश के जो प्रसन्नमन से स्वीकार किया इससे तुमलोगों की कीर्ति समस्त लोकों में फैल जायेगी ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

अग्रहीष्ट गृहीतवन्तः । अथो इति हेतोः । लोकाननु लोकेषु भविष्यति । यद्वा लोकाननु भविष्यति द्रक्ष्यति व्याप्स्यतीत्यर्थः ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

**अग्रहीष्ट** का अर्थ है स्वीकार किया। अथो पद हेतु का वाचक है। अर्थात् तुमलोगों ने जो अपने पिता की आज्ञा को प्रसन्नता से स्वीकार किया उसके कारण तुमलोगों का यश लोकों को देखेगा। अर्थात् लोकों में व्याप्त हो जायेगा ॥११॥

**भविता विश्रुतः पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः। य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥१२॥**

**अन्वयः**— विश्रुतः पुत्रः गुणैः ब्रह्मणः अनवमः भविता, यः आत्मावीर्येण एताम् त्रिलोकीम् पूरयिष्यति ॥१२॥

**अनुवाद**— तुमलोगों का एक विख्यात पुत्र होगा जो ब्रह्माजी के समान गुणों वाला होगा और वह अपनी सन्तानों से इस त्रिलोकी को भर देगा ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मनो वीर्येण संतानेन ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

आत्मवीर्येण का अर्थ है अपनी सन्तान से ॥१२॥

**कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कामललोचना। तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहा नृपनन्दनाः ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे नृपनन्दनाः, कण्डोः प्रम्लोचया कमललोचना कन्या लब्धा अवविद्धां च तां भूरुहाः जगृहुः ॥१३॥

**अनुवाद**— हे राजकुमारों कण्डुमुनि के वीर्य से प्रम्लोचना नाम की अप्सरा ने एक कमल नयनी कन्या को जन्म दिया। उस परित्यक्त कन्या को वृक्षों ने ले लिया ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

पुत्रार्थमादौ भार्यां संपादयति भगवान् कण्डोरिति त्रिभिः। तपोनाशार्थमिन्द्रप्रेषितया प्रम्लोचनया कण्डुर्नाम ऋषिर्बहुकालं रेमे। सा च ततः स्वर्गं गच्छन्ती कण्डोर्जातं गर्भं वृक्षेषु त्यक्त्वा जगाम तदेतदुक्तम्। अपविद्धां त्यक्ताम् ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् पुत्र की प्राप्ति के लिए पहले प्रचेताओं की पत्नी को कण्डो इत्यादि तीन श्लोकों से बतलाते हैं। कण्डु महर्षि की तपस्या को नष्ट करने के लिए इन्द्र ने प्रम्लेचा नाम की अप्सरा को उनके पास भेजा। ऋषि ने उसके साथ बहुत समय तक रमण किया। जब वह अप्सरा स्वर्ग जाने लगी तो कण्डु महर्षि से हुए गर्भ को उसने वृक्षों पर त्याग दिया और स्वर्ग चली गयी। उसी को श्रीभगवान् ने अपविद्धाम् अर्थात् परित्यक्त शब्द से कहा है ॥१३॥

**क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम्। देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयान्वितः ॥१४॥**

**अन्वयः**— क्षुतक्षामायाः रोदमानायाः मुखे सः दयान्वितः राजा सोमः पूयूषवर्षिणी देशिनीं निदधे ॥१४॥

**अनुवाद**— भूख से व्याकुल रोती हुई उस कन्या के मुख में ओषधियों के प्रख्यात राजा सोम ने दया करके अपनी अमृत वर्षिणी तर्जनी अङ्गुलि को उसके मुख में डाल दिया ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

स प्रसिद्धो वनस्पतीनां राजा सोमोऽमृतस्त्राविणीं देशिनीं तर्जनीं रुदत्यास्तस्या मुखे निदधे। अनेनाप्सरोगर्भसंभवे वामृताहारेण च तस्या लावण्यं क्लमस्वेददौर्गन्ध्यादिराहित्यं चोक्तम् ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

वनस्पतियों के प्रख्यात राजा चन्द्रमा ने रोती हुई उस कन्या के मुख में अपनी अमृत वर्षिणी तर्जनी अङ्गुलि

को डाल दिया। इसके कारण अथवा अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण तथा अमृत आहार के कारण उसका सौन्दर्य थकान पसीना तथा दुर्गन्धि से रहित हो गया यह कहा जा चुका है ॥१४॥

**प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा मामनुवर्तता । तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत माचिरम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— माम् अनुवर्तता पित्रा प्रजाविसर्गे आदिष्टाः तत्र मा चिरम् वरारोहां तां कन्याम् उद्वहत ॥१५॥

**अनुवाद**— मेरी सेवा में लगे हुए तुमलोगों को सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी है, अतएव तुमलोग शीघ्र ही उस देवोपम सुन्दरी से विवाह कर लो ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

मामनुवर्तमानेन पित्रा नियुक्ताः सन्तस्तत्र प्रजाविसर्गे निमित्ते तामुद्वहत ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

मेरी सेवा करने वाले तुम्हारे पिता ने तुमलोगों को सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया है अतएव सन्तान उत्पन्न करने के लिए तुमलोग उस कन्या से विवाह कर लो ॥१५॥

**अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा । अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥१६॥**

**अन्वयः**— अपृथग्धर्मशीलानां वः सर्वेषां अपृथग्धर्मशीला इयं सुमध्यमा अर्पिताशया पत्नी भूयात् ॥१६॥

**अनुवाद**— तुम लोग एक ही धर्म में तत्पर हो और तुमलोगों का स्वभाव भी एक समान है अतएव तुमलोगों के ही समान धर्म और स्वभाव वाली वह सुन्दरी तुम सबों की पत्नी होगी तथा तुम सबों में उसका एक समान प्रेम होगा ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

ननु वहूनां कथमेका भार्या स्यात्तत्राह । अपृथग्धर्मः शीलं येषां तेषां वः पत्नी भूयात् । अर्पितो भवत्सु आशयो यया धर्मशीलयोरैक्यान्मद्वाक्याच्च न दृष्टादृष्टविरोध इति भावः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि अनेक पुरुषों की एक ही पत्नी कैसे हो सकती है ? इस पर श्रीभगवान् ने कहा तुम सबों का शील एक समान है, ऐसे तुमलोगों की वह पत्नी होगी। तुमलोगों के ही समान शील वाली उसका तुम सबों में एक ही समान अनुराग होगा और मेरी आज्ञा होने के कारण भी दृष्टादृष्ट का विरोध नहीं होगा ॥१६॥

**दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः । भौमान्भोक्ष्यथ भोगान्वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥१७॥**

**अन्वयः**— मम अनुग्रहात् वै अहतौजसः दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रं दिव्यान् भौमान् भोगान् भोक्ष्यथ ॥१७॥

**अनुवाद**— मेरी कृपा से तुमलोग दस लाख दिव्य वर्षो तक पूर्ण बलवान् रहकर पार्थिव और दिव्य भोगों को भोगोगे ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

अहतौजसोऽप्रतिहतवलाः सन्तः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

पूर्ण रूप से बलवान् रहकर तुमलोग दस लाख वर्षों तक दिव्य तथा भौम भोगों को भोगोगे ॥१७॥

**अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः । उपयास्यथ मद्धाम् निर्विद्य निरयादतः ॥१८॥**

**अन्वयः**— अथ मयि अनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणशयाः अतः निरयात् निर्विद्य मद्धाम उपयास्यथ ॥१८॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् मुझमें अविचल भक्ति के कारण लोक तथा परलोक के नरकतुल्य भोगों से विरक्त होकर मेरे परम धाम को तुमलोग जाओगे ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

पक्वगुणो दग्धकामादिमल आशयो येषाम् । अतो लोकद्वयभोगान्निरयप्रायान्निर्विद्य मत्स्थानं प्राप्स्यथ ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

अन्त:करण के समस्त कामादि मलों के भस्म हो जान के कारण लोक और परलोक के नरक के समान भोगों से विरक्त होकर मेरे धाम में जाओगे ॥१८॥

**गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् । मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥१९॥**

**अन्वयः**— कुशलकर्मणाम् मद्वार्तयायातयामानाम् गृहेषु आविशतां चापि पुंसा गृहाः बन्धाय न मताः ॥१९॥

**अनुवाद**— जो लोग भगवदाराधनैक वेश कर्मों को करते है तथा जिनका समय मेरी कथा सम्बन्धी वार्ता में ही बितता है, उन गृहों में रहने वाले भी लोगों के लिए गृह बन्धन कारक नहीं होता है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु गृहेषु प्रविष्टानामस्माकं तदासक्त्या बन्ध एव स्यात्कुतस्त्वद्भक्तिर्निर्वेदो वा तत्राह-गृहेष्विति । कुशलं मय्यर्पितं कर्म येषाम् । मद्वार्तया यातो यामः कालो येषाम् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि प्रचेतागण कहें कि हमलोग तो घरों में रहने वाले हैं, गृहों में आसक्ति होने के कारण हमलोगों को संसार बन्ध ही होगा । कहाँ से आपकी भक्ति और संसार से निर्वेद होगा ? इसके उत्तर में श्रीभगवान् ने गृहेषु इत्यादि श्लोक को कहा जो लोग अपने सभी कर्मों को मुझे ही समर्पित करते हैं तथा जिन लोगों का समय मेरी कथा समबन्धी वार्ता में ही वितता है, उन लोगों के लिए गृह बन्धन कारक नहीं होते हैं ॥१९॥

**नव्यवद्धृदये यज्ज्ञो ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः । न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतो गताः ॥२०॥**

**अन्वयः**— यत् ज्ञः ब्रह्म एतद् ब्रह्म वादिभिः हृत नव्यवत् अये, यतो गताः न मुहयन्ति, न हृष्यन्ति न शोचन्ति ॥२०॥

**अनुवाद**— चूकि वे नित्य प्रति मेरी कथा सुनते हैं । अतएव ब्रह्मवादी वक्ताओं के द्वारा ज्ञान स्वरूप परंब्रह्म मैं उनके हृदय में नित्य नया-नया सा प्रतीत होता हूँ । जो जीव मुझको प्राप्त कर लेते हैं उन सबों को न तो मोह होता है, न शोक होता है और न हर्ष ही होता है ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

त्वद्वार्ताश्रोतॄणां गृहैर्न बन्ध इति कुतस्तत्राह-नव्यवदिति । यद्यस्मात्कथाश्रवणात् ज्ञः सर्वज्ञोऽहमीश्वरो ब्रह्मवादिभिः प्रवक्तृभिर्निमित्तभूतैः श्रोतॄणां हृत् हृदयं नव्यवत्प्रतिपदं नूतनवत् अये प्राप्नोति । ब्रह्मसाक्षात्कारो भवतीत्यर्थः । ननु त्वत्कथाश्रवणे कथं ब्रह्मसाक्षात्कारस्तत्राह । योऽहमेतदेव ब्रह्म । तत्र हेतुः यतो एताः यं मां प्राप्ताः सन्तो मोहशोकहर्षान्न प्राप्नुवन्ति, अतो मत्कथाश्रवणेन नव्यवन्मम हृद्याविर्भावादस्यैव ब्रह्मसाक्षात्कारत्वाद्गृहेषु वसतामपि न बन्ध इत्यर्थः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि प्रचेतागण कहे कि आपकी कथा सुनने वालों के लिए घर बन्धन कारक नहीं होता है यह कैसे कहा

जा सकता है ? इस पर श्रीभगवान् कहते हैं **नव्यवत्० इत्यादि** चूकि मेरी कथा सुनने के कारण सर्वज्ञ ईश्वर मैं ब्रह्मवादी प्रवचन कर्ताओं के द्वारा कही गयी कथा सुनने वालों के हृदय में मैं नित्य ही नवीन सा प्रतीत होता हूँ। अर्थात् उन कथा श्रोताओं को ब्रह्म साक्षात्कार होता है। प्रश्न होता है कि आपकी कथा को सुनने से ब्रह्म साक्षात्कार कैसे होता है ? क्योंकि मैं ही स्वयं ब्रह्म हूँ और मुझको जो जीव प्राप्त कर लेते हैं उनको मोह शोक और हर्ष नहीं होता है। अतएव मेरी कथा सुनने के कारण हृदय में नवीन सा मेरा आविर्भाव होने के कारण और इसी के ब्रह्म साक्षात्कार होने के कारण गृहों में रहने वाले लोगों को संसारबन्ध नहीं होता है ॥२०॥

मैत्रेय उवाच

**एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः ।**
**तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला गिराऽगृणन्गद्गदया सुहृत्तमम् ॥२१॥**

**अन्वयः**— एवं ब्रुवाणं पुरुषार्था भाजनं सुहृतज्ञानम् जनार्दनं तद्दर्शन ध्वस्ततमोरजोमलाप्रचेतसः प्राञ्जलयः गद्गदयागिरा अगृणन् ॥२१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— इस प्रकार से कहने वाले सभी पुरुषार्थों के आश्रय तथा सबों के सुहृद भगवान् जनार्दन की, श्रीभगवान् के दर्शन से जिनके तमोगुण और रजोगुण रूपी मल समाप्त हो गये थे ऐसे प्रचेतागण हाथ जोड़कर अपनी गद्गदवाणी से स्तुति करने लगे ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरुषार्थं भाजयति प्रापयतीति तथा तम् ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले श्रीभगवान् को यह पुरुषार्थ भाजनं पद का अर्थ है ॥२१॥

प्रचेतस ऊचुः

**नमो नमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय ।**
**मनोवचोवेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥२२॥**

**अन्वयः**— क्लेशविनाशनाय निरूपितम् दारगुणं ह्वयाय, मनोवचो वेगपुरोजयाय, सर्वाक्षमार्गै अगताध्वने नमः॥२२॥

**प्रचेताओं ने कहा**

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप अपने भक्तों के क्लेश को दूर करने वाले है; वेद आपके उदार गुणों और नामों का निरूपण करते है। आपका वेग वाणी और मन के भी वेग से अधिक है, तथा आपका स्वरूप सभी इन्द्रियों से परे हैं। ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

वेदैः सकलश्रेयः साधनत्वेन निरूपिता उदारगुणा आह्वया नामानि च यस्य। मनोवचसोर्वेगादपि पुरोऽग्रतो जवो वेगोऽस्य। मनोवचसोरगोचरायेत्यर्थ;। अतएव सर्वेषामक्षाणां मार्गैरगतोऽनवगतोऽध्वा यस्य तस्मै ते नमः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

वेद श्रीभगवान् के उदार गुणों और नामों को समस्त कल्याणों के साधन रूप से बतलाते हैं। श्रीभगवान् का वेग मन और वाणी के भी वेग से अधिक है, तथा श्रीभगवान् का स्वरूप सभी इन्द्रियों से परे है ऐसे आप श्रीभगवान् को हम सभी नमस्कार करते हैं ॥२२॥

**शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ।**
**नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥२३॥**

**अन्वयः**— स्वनिष्ठया, शुद्धाय, शान्ताय, मनसि अपार्थविलसद्द्वयाय, जगत्स्थान लयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय नमो नमः ॥२३॥

**अनुवाद**— अपने स्वरूप में स्थित रहने के कारण नित्य शुद्ध और शान्त आपको बार-बार नमस्कार है। मन रूपी निमित्त के कारण हमें आपमें यह मिथ्याद्वैत भास रहा है, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के लिए आप माया के गुणों को अपनाकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप को धारण करते हैं ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वनिष्ठया स्वरूपस्थित्या शुद्धाय । अतः शान्ताय । मनसि निमित्ते सत्यपार्थं व्यर्थमेव विलसद्विस्फुरितं द्वयं यस्मिन्। गृहीता मायागुणैर्विग्रहा ब्रह्मादिमूर्तयो येन ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने स्वरूप में स्थित रहने के कारण शुद्ध अतएव शान्त, मन रूपी निमित्त के कारण मिथ्या हमें आपमें मिथ्या द्वैत भास रहा है, आप संसार की उत्पत्ति स्थिति और लय के लिए माया के गुणों को अपनाकर ब्रह्म, विष्णु और रुद्र का रूप धारण करते हैं ॥२३॥

**नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे । वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— विशुद्ध सत्वाय, हरये, हरिमेधसे वासुदेवाय, कृष्णाय सर्वसात्त्वताम् प्रभवे नमः ॥२४॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आप विशुद्ध सत्त्व स्वरूप है, आपका ज्ञान संसार के बन्धन को दूर कर देता है, आप ही, वासुदेव, कृष्ण है, आप समस्त भक्तों के प्रभु हैं आपको हमलोगों का नमस्कार हो ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वतस्तु विशुद्धसत्त्वरूपाय । संसारं हरति मेधा ज्ञानं यस्य तस्मै ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

आप स्वभावतः विशुद्ध सत्व स्वरूप है । आपका ज्ञान संसार के बन्धन को दूर करता है ॥२४॥

**नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने । नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥२५॥**

**अन्वयः**— कमलनाभाय नमः, कमलमालिने नमः, कमलपादाय नमः, हे कमलेक्षण ते नमः ॥२५॥

**अनुवाद**— आपकी ही नाभि से ब्रह्माण्ड स्वरूप कमल पैदा हुआ था ऐसे आपको नमस्कार है । आप अपने गले में कमल की माला धारण करते हैं ऐसे आपको नमस्कार है । आपके चरण कमल के समान कोमल हैं ऐसे आप को नमस्कार है । हे कमल के समान नेत्र वाले प्रभो आपको नमस्कार है ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२५॥

**नमः कमलकिंजल्कपिशङ्गामलवाससे । सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥२६॥**

**अन्वयः**— कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे नमः, सर्वभूतनिवासाय साक्षिणे नमः आयुङ्क्ष्महि ॥२६॥

**अनुवाद**— कमल पुष्प के केसर के समान निर्मल पीताम्बर धारण करने वाले आपको नमस्कार है, हमलोग सभी भूतों के आश्रयभूत तथा साक्षी आपको नमस्कार करते हैं ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

अयुङ्क्ष्महि कृतवन्तो वयम् ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

हमलोग नमस्कार करते हैं ।।२६।।

**रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् । आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ।।२७।।**

**अन्वयः**— भगवता तुएतदशोषक्लेश संक्षयम् रूपं अविष्कृतम् क्लिष्टनां नः अन्यद् अनुकम्पितं किम् ।।२७।।

**अनुवाद**— प्रभो ! यह आपने सम्पूर्ण क्लेशों को विनष्ट करने वाले इस रूप को आविष्कृत किया है, अविद्यादि दोषों से क्लेशित हमलोगों पर इससे बढ़कर और दूसरी कौन सी कृपा होगी ?।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

यदुक्तं वरं वृणीध्वमिति तन्मनसि निधायाहुः- रूपमिति । समस्तानां क्लेशानां संक्षयो यस्मात् । नः आविष्कृतं प्रकटितम् । अतोऽन्यत्किमनुकम्पितमनुकम्पा । इयमेवास्माकं परमानुकम्पेत्यर्थः ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा है कि तुमलोग मुझसे वरदान माँगो इसी बात को मन में रखकर प्रचेताओं ने **रूपम० इत्यादि** कहा हैं । अर्थात् जिसके द्वारा समस्त क्लेशों का नाश हो जाता है उस रूप को आपने हमलोगों के समक्ष प्रकट किया है । इससे भिन्न कौन सी अनुकम्पा हो सकती है । हमलोगों पर आपकी यही सबसे बड़ी अनुकम्पा है ।।२७।।

**एतावत्त्वं हि विभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः । यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याऽभद्ररन्धन ।।२८।।**

**अन्वयः**— हे अभद्र रन्धन ! दीनवत्सलैः हिविभुभिः एतावत्वंहि भाव्यं काले स्वबुद्धया यत् अनुस्मर्यते ।।२८।।

**अनुवाद**— हे अमङ्गल का नाश करने वाले प्रभो, दीनों पर दया करने वाले समर्थ पुरुषों को इतनी ही कृपा करनी चाहिए कि समय-समय पर उन दीन जनों को ये हमारे हैं, इस प्रकार से स्मरण कर लिया करें ।।२८।।

### भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह । हे अभद्ररन्धन अमङ्गलनाशन त्वप्रत्ययोऽत्र न विवक्षितः । एतावदेव दीनेषु वत्सलैः प्रभुभिर्भाव्यं कार्यम्। किं तत्तदाह-यदिति । अस्मदीया एत इति । बुद्धाया उचिते कालेऽनुस्मर्यत इति यत् । त्वया तु रूपमपि दर्शितमिति भावः ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

ऐसा क्यों इस पर प्रचेताओं ने कहा हे अमङ्गल का नाश करने वाले प्रभो ! **एतावत्त्वम्** में त्वप्रत्यय विवक्षित नहीं है । दोनों पर कृपा करने वाले समर्थ पुरुषों को इतनी ही कृपा करनी चाहिए । यदि कहें कि वह क्या है? तो इसका उत्तर है कि उचित समय पर ये हमारे हैं इस प्रकार की बुद्धि के द्वारा वे दीन जनों को स्मरण कर लिया करें । और आप ने तो अपने रूप का दर्शन भी करा दिया ।।२८।।

**येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् । अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः ।।२९।।**

**अन्वयः**— येन भूतानाम् उपशान्तिः भवति, क्षुल्लकानाम् अपि भूतानाम् अन्तर्हृदये भवान् अन्तर्हितः नः आशिषः कस्मात् नो वेद ।।२९।।

**अनुवाद**— इतने ही मात्र से आश्रितों का चित्त शान्त हो जाता है । आप तो क्षुद्र से क्षुद्र प्राणियों के भी हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजमान हैं, अतएव आपके उपासक हमलोगों की कामनाओं को आप क्यों नहीं जान लेंगे ?।।२९।।

**भावार्थ दीपिका**

येनानुस्मरणेन स्मृतानां तेषामुपशान्तिः सुखं भवति । किंच क्षुल्लकानामपि भूतानामन्तर्हृदयेऽन्तर्हितोऽन्तर्यामित्वेन स्थितो भवानीहतामिच्छतां त्वदुपासकानां नोऽस्माकमाशिषः कस्माद्धेतोर्न वेद । जानात्येवेत्यर्थः ।।२९।।

**भाव प्रकाशिका**

उस अनुस्मरण के ही द्वारा स्मरण किए जाने वाले उन आश्रितों का चित्त शान्त हो जाता है । आप तो क्षुद्र जीवों के भी हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं अतएव आप अपने उपासकों की कामनाओं को क्यों नहीं जान लेंगें जान ही लेंगे ।।२९।।

**असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पते । प्रसन्नो भगवान्येषामपवर्गगुरुर्गति ।।३०।।**

**अन्वयः**— हे जगतः पते ! अस्माकम् असौ एव वरः इप्सितः येषाम् अपवर्ग गुरुः जतिः भगवान् प्रसन्नः ।।३०।।

**अनुवाद**— हे जगत् के स्वामिन् ! हमलोगों को तो इतना ही वरदान अभिप्रेत है कि मोक्षमार्ग का उपदेश करने वाले तथा स्वयं पुरुषार्थ स्वरूप आप हमलोगों पर प्रसन्न हैं ।।३०।।

**भावार्थ दीपिका**

तथापि वक्तव्यं चेत्तर्हि येषामस्माकं भगवान्प्रसन्नोऽसावेव वरः । भगवत्प्रसाद एवास्माकमीप्सितो वर इत्यर्थः । अपवर्गगुरुः मोक्षमार्गप्रदर्शकः । गतिः स्वतश्च पुरुषार्थभूतः ।।३०।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि आप कहें कि फिर भी अपना इप्सित वरदान माँगो तो हे जगत् के स्वामिन् । हमलोगों पर आप प्रसन्न हैं बस हमलोग यह अभिप्रेत वरदान हैं आप तो मोक्षमार्ग के उपदेशक और स्वयं पुरुषार्थ स्वरूप है । केवल आपकी कृपा बनी रहे ।।३०।।

**वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् । नह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे ।।३१।।**

**अन्वयः**— हे नाथ ! अथापि त्वत् परतः परात् वरं वृणीमहे । त्वद्विभूतीनाम् अन्तः न सः अनन्त इति गीयसे ।।३१।।

**अनुवाद**— हे नाथ ! फिर भी हम आपसे यह वरदान माँगते हैं कि आप प्रकृति आदि से परे हैं । आपकी विभूति का कोई अन्त नहीं है, इसलिए आप अनन्त कहे जाते हैं ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**

यद्यप्येवं तथापि हे नाथ, त्वत्तो वरमेकं वृणीमहे । कथंभूतात् । परतः कारणादपि परात् । 'अक्षरात्परतः परः' इति श्रुतेः । अतो यद्यपि त्वं दातुं समर्थो न च देयानां त्वद्विभूतीनामन्तोऽस्ति यतोऽनन्तविभूतित्वादनन्त इति गीयसे ।।३१।।

**भाव प्रकाशिका**

हे नाथ ! यद्यपि ऐसी बात है फिर भी हम आपसे एक वरदान माँगते हैं । कैसे आपसे माँगते हैं ? तो इसका उत्तर है कि आप प्रकृति आदि कारणों से भी परे हैं ऐसे आप से वरदान माँगते हैं । श्रुति भी कहती है- **अक्षरात् परतः परः** अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कारण प्रकृति से परमात्मा परे (श्रेष्ठ) हैं । यद्यपि आप देने में समर्थ हैं, आप की प्रदेय विभूतियों का कोई अन्त नहीं है, इसी से आप अनन्त कहे जाते हैं ।।३१।।

**पारिजातेऽञ्जसालब्धे सारङ्गोऽन्यत्र सेवते । त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि ।।३२।।**

**अन्वयः**— अस्ञ्जसा पारिजाते लब्धे सारङ्गः अन्यत् न सेवते । साक्षात् त्वदङ्घ्रिमूलम् आसाद्य किं किं वृणीमहि।।३२।।

**अनुवाद**— जिस तरह अनायास पारिजात वृक्ष मिल जाय तो भ्रमर दूसरे वृक्ष का सेवन नहीं करता है उसी तरह साक्षात् आपके चरणों के शरण में आकर हम आप से क्या क्या माँगें ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

तथापि यथा सारङ्गो भ्रमरः पारिजाते सुखेन लब्धे सति सुलभमप्यन्यद्वृक्षान्तरं न सेवते तथा वयमपि साक्षात्त्वदङ्घ्रिमूलं प्राप्य किं किं वृणीमहि । न किंचिदित्यर्थः । यद्वा किमप्यन्यत्तुच्छं किमर्थं वृणीमहि । यद्वा यदि वृणीमहि तर्हि किं किं वृणीमहि। अनन्तत्वेन मनोरथानामनवस्थानादित्यर्थः ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

फिर भी जिस तरह अनायास पारिजात वृक्ष के मिल जाने पर भ्रमर दूसरे वृक्ष का सेवन नहीं करता है, उसी तरह हमलोग भी आपके चरणों का शरण मिल जाने पर हमलोग क्या-क्या माँगे, अन्य कोई दूसरी वस्तु नहीं । अथवा दूसरी कौन सी तुच्छ वस्तु माँगे । अथवा यदि माँगे तो क्या-क्या माँगे, मनोरथतो अनन्त और अस्थिर हैं ॥३२॥

**यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः । तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे ॥३३॥**

**अन्वयः**— यावत् ते मायया स्पृष्टाः इह कर्मभिः भ्रमामः तावत् भवत् प्रसङ्गानां नः भवे भवे सङ्गः स्यात् ॥३३॥

**अनुवाद**— हम यही माँगते हैं कि जब तक आपकी माया से मोहित होकर इस संसार में अपने कर्मों के अनुसार भ्रमण करते रहें तब तक प्रत्येक जन्म में आपके भक्तों की सङ्गति हमें प्राप्त होती रहे ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

अत एतावदेव प्रार्थयाम इत्याहुः-यावदिति । स्पृष्टा व्याप्ताः । भवति प्रकृष्टः सङ्गो येषां तेषां सङ्गोऽस्माकं स्यात्॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव हम यही माँगते हैं कि जब तक आपकी माया से व्याप्त होकर प्रत्येक जन्म में आपके भक्तों की सङ्गति हमें प्राप्त होती रहे ॥३३॥

**तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥३४॥**

**अन्वयः**— भगवत्सङ्गिसङ्गस्य लवेनापि न स्वर्गं तुलयामः न अपुनर्भवम् आशिषः किमुत ॥३४॥

**अनुवाद**— हमलोग भगवद् भक्तों की एक क्षण की भी सङ्गति से न तो स्वर्ग की तुलना करते हैं और न मोक्ष की तो फिर मानवीय भोगों की कौन सी बात हैं ?॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

ननु राज्यभोगान्स्वर्गापवर्गौ च विहाय किमिदं प्रार्थ्यते तत्राहुः- तुलयामेति । भगवत्सङ्गिनां सङ्गस्य लवेनापि ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि यह क्या माँग रहो हो ? राज्य का भोग माँगो, स्वर्ग अथवा मोक्ष की प्राप्ति माँगो, तो इस पर प्रचेताओं ने कहा भगवद् भक्तों की क्षणभर की भी सङ्गति से भी हम राज्यादि की तुलना नहीं करते ॥३४॥

**यत्रेड्यन्ते कथामृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः । निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥३५॥**

**अन्वयः**— यत्र मृष्टाः कथाः इड्यन्ते, यतः तृष्णायाः प्रशमः यत्र भूतेषु निर्वैरं, यत्र कश्चन उद्वेग न ॥३५॥

**अनुवाद**— जहाँ श्रीभगवान् की मधुर कथाएँ होती है, जहाँ भोगों की तृष्णा समाप्त हो जाती हैं, जहाँ प्राणियों में परस्पर में कोई वैर नहीं होता और न तो किसी प्रकार का उद्वेग होता है ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गस्य श्रैष्ठ्यं प्रपञ्चयति-यत्रेति त्रिभिः । यत्र येषु । यतो याभ्यः कथाभ्यः । निर्वैरं वैराभावः । उद्वेगो भयम् ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

सत्सङ्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन तीन श्लोक में प्रचेतागण करते हैं। जहाँ जिन सत्सङ्गों में श्रीभगवान् की मधुर कथाएँ होती हैं, जिन कथाओं को सुनकर किसी के प्रति वैर की भावना नहीं होती है, तथा जहाँ किसी प्रकार का उद्वेग अर्थात् भय नहीं होता है ।।३५।।

**यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः । संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ।।३६।।**

**अन्वयः**— यत्र सत्कथासु मुक्तसङ्गैः न्यासिनां गतिः साक्षात् नारायणः पुनः पुनः संस्तूयते ।।३६।।

**अनुवाद**— जिन कथाओं में अच्छी-अच्छी कथाओं के द्वारा अनासक्त पुरुष निष्काम भाव से संन्यासियों के एकमात्र साक्षात् भगवान् नारायण का गुणगान किया जाता है ।।३६।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।३६।।

**तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया । भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ।।३७।।**

**अन्वयः**— तावकानाम् तेषां तीर्थानां पावनेच्छया पद्भ्यां भूमौविचरताम् समागमः भीतस्य किंन रोचते ।।३७।।

**अनुवाद**— आपके वे भक्त तीर्थों को पवित्र करने की इच्छा से पृथिवी पर पैदल चला करते हैं। उन भक्तों का समागम जो संसार के भय से भयभीत है उसको क्यों नहीं अच्छा लगेगा ?।।३७।।

**भावार्थ दीपिका**

पद्भ्यां पावनेच्छया । संसाराद्भीतस्य ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवद् भक्त तीर्थों को भी पवित्र बनाने की इच्छा से पृथिवी पर पैदल चला करते हैं। जो मुमुक्षु पुरुष संसार के भय से भयभीत हैं, उन सबों को उन भगवद् भक्तों का सामागम अच्छा लगेगा ही ।।३७।।

**वयं तु साक्षाद्भगवन्भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन ।**
**सुदुश्चिकित्सस्य भवस्य मृत्योर्भिषक्तमं त्वाऽद्य गतिं गताः स्म ।।३८।।**

**अन्वयः**— हे भगवन् वयं तु साक्षात् तव प्रियस्य सख्युः भवस्य क्षणसङ्गमेनअद्य सुदुश्चि कित्सस्य भवस्य मृत्योः भिषकतमं त्वा गतिं गताः स्म ।।३८।।

**अनुवाद**— हे भगवन् ! हमलोग तो आपके प्रिय सखा शङ्करजी के क्षणभर के सङ्गम के कारण आज आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त किए है। जो आप इस संसार के जन्म-मरण रूप दुःसाध्य मृत्यु रोग के सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक हैं ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

सत्सङ्गफलमस्माभिरेवानुभूतमित्याहुः-वयं त्विति । तव यः प्रियः सखा तस्य भवस्य । अत्यन्तमचिकित्सस्य भवस्य जन्मनो मृत्योश्च भिषक्तमं सद्वैद्यं त्वां गतिं प्राप्ताः ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रचेताओं ने कहा भगवन् वस्तुतः हमलोगों ने ही सत्सङ्ग का फल प्राप्त किया है। आपके जो प्रिय सखा शङ्करजी है। उन शङ्करजी का क्षणभर के लिए उनका सत्सङ्ग प्राप्त किया और उसके फलस्वरूप संसार को दुःसाध्य जन्म मरण रूप रोग के सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक आपका दर्शन हमलोगों ने प्राप्त कर लिया है ।।३८।।

**यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या ।**
**आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ॥३९॥**
**यन्नः सुतप्तं तप एतदीश निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ।**
**सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय ॥४०॥**

**अन्वयः**— यत् नः स्वधीतं, सदानुवृत्त्या गुरवः विप्राश्च, बृद्धाश्च प्रसादिताः आर्या सुहृदः भ्रातरश्च अनसूयया एवं बुद्धया नताः । हे ईश ! यत् निरन्धसां नः अदभ्रम् कलम् अप्सु तपः सुतप्तं तदेतत् सर्वं भूम्नः पुरुषस्य ते परितोषणाय भवतु इति वृणीम् हे ॥३९-४०॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! हमलोगों ने समाहित चित्त होकर जो अध्ययन किया है, निरन्तर सेवा शुश्रुषा करके गुरुओं, ब्राह्मणों एवं वृद्ध पुरुषों को प्रसन्न किया है, तथा दोष बुद्धि का परित्याग करके श्रेष्ठ पुरुष, सुहृद्‌गण, बन्धुवर्ग तथा समस्त प्राणियों की बन्दना की है तथा अन्न आदि का त्याग करके जल में खड़े रहकर दीर्घकाल पर्यन्त तप किया है वह सबकुछ आपका सन्तोषकारक बने यह हमलोग दूसरा वरदान माँगते हैं ॥३९-४०॥

### भावार्थ दीपिका

वरान्तरं वृणते-यन्न इति द्वाभ्याम् । नताः नमस्कृताः । निरन्धसां निरन्नानाम् । अदभ्रं बहुकालम् । ते परितोषणाय भवत्विति वृणीमहे ॥३९-४०॥

### भाव प्रकाशिका

**यन्नः इत्यादि** दो श्लोकों से प्रचेतागण दूसरा वरदान श्रीभगवान् से माँगते हैं । नताः का अर्थ हमने जो नमस्कार किया है । निरन्धसांम् पद का अर्थ है, अन्न इत्यादि का परित्याग करके । अदभ्र कालम् का अर्थ है दीर्घकाल पर्यन्त । हमलोगों द्वारा किया गया यह सबकुछ आपका संतोष कारक बने यही हम वरदान माँगते हैं ॥३९-४०॥

**मनुः स्वयंभूर्भगवान्भवश्च येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ।**
**अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवन्त्यथो त्वात्मसमं गृणीमः ॥४१॥**

**अन्वयः**— मनुः स्वयम्भुः भगवान् भवश्च येन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः अदृष्टपाराः अपि यत् महिम्नः स्तुवन्ति अथो त्वा आत्मसमम् गणीमः वयमितिशेषः ॥४१॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! स्वायम्भुवमनु, ब्रह्माजी, स्वयम् भगवान् शङ्कर तथा तप एवं ज्ञान से शुद्ध चित्त वाले अन्य पुरुष आपकी महिमा का पार पाये बिना ही आपकी स्तुति करते रहते हैं । हमलोग भी अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

अज्ञानामप्यस्माकं त्वत्स्तुतिर्नायुक्तेत्याहुः- मनुरिति । यस्य तव महिम्नो न दृष्टं पारं यैस्तेऽपि त्वामात्मसमं स्वमत्यनुरूपं यथा स्तुवन्ति अथो अतो वयमपि गृणीमः ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रचेतागण कहते हैं कि हम अज्ञानियों का भी स्तुति करना अनुचित नहीं है । मनु, ब्रह्माजी और भगवान् शिव भी आपकी महिमा का पार नहीं पा सके, फिर भी वे आपकी स्तुति करते रहते हैं, तो हमलोग तो अज्ञानी जीव हैं, अतएव हम भी अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥४१॥

**नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च । वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥**

**अन्वयः**— समाय शुद्धाय पराय पुरुषाय च नमः सत्त्वाय, वासुदेवाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥

**अनुवाद**— आप सर्वत्र समान, शुद्ध स्वरूप और परम पुरुष हैं । आप सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव को हम नमस्कार करते हैं ॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

सत्त्वमूर्तये वासुदेवाय ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥४२॥

मैत्रेय उवाच

**इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ।**
**अनिच्छतां यानमतृप्तचक्षुषां ययौ स्वधामानपवर्गवीर्यः ॥४३॥**

**अन्वयः**— इति प्रचेतोभिः अभिष्टुतः शरण्यवत्सलः प्रीतः हरिः तथा इत्याह । अतृप्तचक्षुषां यानम् अनिच्छतां अनपवर्ग वीर्यः स्वधाम ययौ ॥४३॥

### मैत्रेय महर्षि ने कहा

**अनुवाद**— इस तरह से प्रचेताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर शरणागत वत्सल श्रीभगवान् ने प्रसन्न होकर कहा तथास्तु । अप्रतिहत प्रभाव वाले श्रीहरि के दर्शन से प्रचेताओं की आँखें तृप्त नहीं हुई थीं । वे श्रीहरि को जाने देना नहीं चाहते थे किन्तु श्रीभगवान् अपने लोक में चले गये ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

यानं स्वप्रयाणमनिच्छतामपि सतां स्वधाय ययौ भक्तहृदयं विवेश । अनपवर्गवीर्योऽकुण्ठितप्रभावः ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

प्रचेतागण श्रीभगवान् को जाने देना नहीं चाहते थे किन्तु श्रीभगवान् चले गये भक्तों के हृदय में प्रवेश कर गये । अनय वर्गवीयः पद का अर्थ है अकुण्ठित प्रभाव वाले ॥४३॥

**अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः । वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥४४॥**

**अन्वयः**— अथ उदन्वतः सलिलात् निर्याय प्रचेतसः गां रोद्धमिव उच्छ्रैतः द्रुमैः छन्नां गां वीक्ष्य अकुप्यन् ॥४४॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् समुद्र के जल से निकलकर प्रचेताओं ने देखा कि ऊँचे-ऊँचे वृक्षों ने सारी पृथिवी को ही ढक लिया है जैसे वे स्वर्ग का मार्ग रोकने के लिए इतने बढ गये हों । यह देखकर प्रचेताओं को बड़ा क्रोध हुआ ॥४४॥

### भावार्थ दीपिका

उदन्वतः सिन्धोः सलिलान्निर्याय निर्गत्य गां स्वर्गं रोद्धुमिवोच्छ्रितैर्द्रुमैर्गां महीं छन्नां वीक्ष्य द्रुमेभ्योऽकुप्यन् । तदा हि प्राचीनवर्हिषः प्रव्रजितत्वादराजके कर्षणाद्यभावादद्रुमैर्भूमिश्छन्नाभूत् ॥४४॥

### भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् वे प्रचेतागण समुद्र के जल से बाहर निकले और देखे कि मानो स्वर्ग के मार्ग को ही रोकने

के लिए वृक्ष इतने बड़े हो गये हैं। और उन वृक्षों से सारी पृथिवी ढँक गयी थी। यह देखकर प्रचेताओं ने वृक्षों पर क्रोध किया। उस समय राजा प्राचीनबर्ही संन्यास ले लिए थे। भूमि के नहीं जोते जाने के कारण वृक्षों से पृथिवी ढँक गयी थी ॥४४॥

**ततोऽग्निमारुतौ राजन्नमुञ्चन्मुखतो रूषा । महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्यये ॥४५॥**

**अन्वयः**— हे राजन् ! ततः महीं निर्विरुधं कर्तुं अत्यये संवर्तक इव रुषा मुखतः अग्निमरुतौ अमुञ्चन् ॥४५॥

**अनुवाद**— हे विदुर ! उसके पश्चात् इस पृथिवी को वृक्षों और लताओं से रहित बना देने के लिए जिस तरह प्रलयकाल में कालाग्नि रुद्र संवर्तकाग्नि को प्रकट करते हैं उसी तरह क्रोध से उन सबों ने अपने मुख से अग्नि और वायु को प्रकट किया ॥४५॥

**भावार्थ दीपिका**

निरस्ता वीरुधोऽपि यस्यास्तथाभूतां कर्तुम् । संवर्तकः कालाग्निरुद्रः । अत्यये प्रलये ॥४५॥

**भाव प्रकाशिका**

वृक्षों से रहित पृथिवी को बना देने के लिए। संवर्तक अर्थात् कालाग्निरुद्र, अत्यये अर्थात् प्रलय काल में॥४५॥

**भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान्वीक्ष्य पितामहः । आगतः शमयामास पुत्रान्बर्हिष्मतो नयैः ॥४६॥**

**अन्वयः**— तानद्रुमान् भस्मसात् क्रियमाणाम् वीक्ष्य पितामहः आगतः, बहिष्मतः पुत्रान् नयैः शमयामास ॥४६॥

**अनुवाद**— उन वृक्षों के भस्म होते देखकर ब्रह्माजी आये और प्राचीन बर्ही के पुत्रों को युक्तियों के माध्यम से शान्त किए ॥४६॥

**भावार्थ दीपिका**

नयैर्युक्तिभिः ॥४६॥

**भाव प्रकाशिका**

युक्तियों द्वारा ॥४६॥

**तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा । उज्जह्रुस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥४७॥**

**अन्वयः**— तत्र अवशिष्टा ये वृक्षाः ते तदाभीता स्वयम्भुवा उपदिष्टाः दुहितरं प्रचेतोभ्यः उज्जह्रुः ॥४७॥

**अनुवाद**— तो जो वृक्ष बच गये थे वे उस समय भयभीत हो गये थे। वे ब्रह्माजी का आदेश पाकर अपनी पुत्री मारिषा को प्रचेताओं को समर्पित कर दिए ॥४७॥

**भावार्थ दीपिका**

उज्जह्रुः समर्पयामासुः ॥४७॥

**भाव प्रकाशिका**

उज्जह्रुः पद का अर्थ है समर्पित कर दिए ॥४७॥

**ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे । यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥४८॥**

**अन्वयः**— ते च ब्रह्मण आदेशात् मारिषाम् उपयेमिरे महदवज्ञानात् अजनयोनिजः यस्यां अजनि ॥४८॥

**अनुवाद**— ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके वे मारिषा के साथ विवाह कर लिए। ब्रह्माजी के पुत्र दश महादेव जी का अपमान करने के कारण उस मारिषा के गर्भ से उत्पन्न हुए ॥४८॥

### भावार्थ दीपिका

मारिषां वार्क्षीम् । अजनयोनिर्ब्रह्मा तस्माज्जातो दक्षः महतः श्रीमहादेवस्यावज्ञानात् पूर्वमजनयोनिजो ब्रह्मपुत्रोऽपि सन् क्षत्रियजातौ यस्यामजनि जातः ।।४८।।

### भाव प्रकाशिका

वृक्षों की पुत्री थी मारिषा । दक्ष, ब्रह्माजी के पुत्र थे किन्तु महापुरुष महादेवजी का अपमान करने के कारण वे ब्रह्माजी के पुत्र होने पर मारिषा के गर्भ से क्षत्रिय योनि में जन्म लिए ।।४८।।

**चाक्षुषे त्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते । यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ।।४९।।**

**अन्वयः**— चाक्षुषेतु अन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते यः दैवचोदितः दक्षः इष्टाः प्रजाः ससर्ज ।।४९।।

**अनुवाद**— चाक्षुष मन्वन्तर के आने पर जब कालक्रम से पहले का देह नष्ट हो गया उस समय भगवान् की प्रेरणा से वे दक्ष अपनी इच्छा के अनुसार नवीन प्रजा को उत्पन्न किए ।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

प्राक्सर्गे पूर्वदेहे कालेन विद्रुते गते दैवेनेश्वरेण चोदितः सन्निष्टाः प्रजाः ससर्ज स दक्ष इति प्रसिद्धः ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

पहले के शरीर के कालक्रम से नष्ट हो जाने पर परमात्मा के द्वारा प्रेरित होकर जिसने अभिप्रेत प्रजा को उत्पन्न किया वही दक्ष के नाम से प्रसिद्ध है ।।४९।।

**यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा । स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ।।५०।।**

**अन्वयः**— यः जायमानः सर्वेषां तेजस्विनां तेजः स्वया रुचा उपादत्त, कर्मणां दक्ष्याच्चदक्षमबुवन् ।।५०।।

**अनुवाद**— जो उत्पन्न होते ही सभी तेजस्वियों के तेज को ले लिया तथा जो कर्मों को करने में निपुण था उसे लोगों ने दक्ष शब्द से अभिहित किया ।।५०।।

### भावार्थ दीपिका

स्वया रुचा प्रभया तेज उपादत्ताच्छादितवान् यं च कर्मदाक्ष्याद्दक्षमब्रुवन् ।।५०।।

### भाव प्रकाशिका

जिसने अपनी कान्ति से तेजस्वियों के तेज को आच्छादित कर दिया और कर्मों को करने में निपुण होने के कारण लोगों ने उसे दक्ष कहा ।।५०।।

**तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च । युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन् ।।५१।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ।।३०।।

**अन्वयः**— अनादिः तं अभिषिच्य प्रजासर्गरक्षायां युयोज स वै अन्यान् च सर्वप्रजापतीन् युयुजे ।।५१।।

**अनुवाद**—ब्रह्माजी ने उस दक्ष को प्रजापति के नायक पद पर अभिषिक्त करके प्रजाओं की रक्षा करने में नियुक्त किया और उसने ही दूसरे सभी प्रजापतियों की नियुक्ति किया ।।५१।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३०।।**

**भावार्थ दीपिका**

तमभिषिच्यानादिर्ब्रह्मा प्रजासर्गरक्षायां युयोज । स च दक्षोऽन्यान्मरीच्यादींस्तत्तद्व्यापारेषु नियुक्तवान् ।।५१।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायाम् त्रिंशोऽध्यायः ।।३०।।**

**भाव प्रकाशिका**

उस दक्ष को ब्रह्माजी ने प्रजापति के पद पर अभिषिक्त करके प्रजा सर्ग की रक्षा के कार्य में नियुक्त किया और उस दक्ष ने अन्य मरीचि आदि दूसरे प्रजापतियों को भिन्न-भिन्न कार्य में नियुक्त किया ।।५१।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ सकन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३०।।**

# एकतीसवाँ अध्याय

## प्रचेताओं को नारदजी का उपदेश और उनका परमपद लाभ

मैत्रेय उवाच

**तत उत्पन्नविज्ञानां आश्वधोक्षजभाषितम् । स्मरन्त आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् ॥१॥**

**अन्वयः**— ततः उत्पन्न विज्ञानाः अधोक्षज भाषितम् स्मरन्तः आत्मजे भार्यां विसृज्य आशुप्राव्रजन् गृहात् ॥१॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— दस लाख वर्ष बीत जाने पर जब प्रचेताओं को विवेक प्राप्त हुआ तब वे **उपायास्यथ मदधाम निर्विद्य निरयादतः** अर्थात् नरक के समान लौकिक एवं पारलौकिक भोगों से उदासीन होकर तुमलोग मेरे धाम में जाओगे श्रीभगवान् के इस वाक्य का स्मरण करके अपनी पत्नी का भार अपने पुत्र पर सौंप कर वे प्रचेतागण शीघ्र ही अपने गृह का परित्याग कर दिए ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

एकत्रिंशो सुते दक्षे धुरं न्यस्य वने सताम् । नारदोक्तेन मार्गेण मुक्तिरूक्ता प्रचेतसाम् । ततो दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रस्यान्ते उत्पन्नविवेकज्ञानास्त 'उपयास्यथ मद्धाम् निर्विद्य निरयादतः' इत्यधोक्षजभाषितं स्मरन्त आशु प्राव्रजन् ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

एकतीसवें अध्याय मे इस बात का वर्णन किया गया है कि अपने पुत्र दक्ष पर राज्य का भार सौंपकर विवेक प्राप्त प्रचेतोगण नारदजी के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से मुक्ति को प्राप्त कर लिए । उसके पश्चात् देवताओं के दस लाख वर्ष बीत जाने पर जिनको विवेक ज्ञान उत्पन्न हो गया था वे प्रचेतोगण श्रीभगवान् के 'उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः' इस वाक्य का स्मरण करते हुए शीघ्र ही गृह का परित्याग कर दिए ॥१॥

**दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा । प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥२॥**

**अन्वयः**— प्रतीच्यांदिशि वेलायां यत्र जाजलिः सिद्ध अभूत् तत्र सर्वभूतात्ममेधसा ब्रह्म सत्रेण दीक्षिताः ॥२॥

**अनुवाद**— वे पश्चिम दिशा में समुद्र के तट पर जहाँ जाजलि ऋषि सिद्ध हो गये थे वहाँ जिसमें सभी भूतों में एक ही आत्मतत्त्व व्याप्त है, इस प्रकार का ज्ञान होता है, उस ब्रह्म सत्र का सङ्कल्प करके वे बैठ गये॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मसत्रेणात्मविमर्शेन दीक्षिताः कृतसंकल्पा बभूवुः । सर्वेषु भूतेष्वात्मेति मेधा ज्ञानं यस्मिंस्तेन । क्व । बेलायां समुद्रतटे । जाजलिर्नाम ऋषिः ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

वे सभी आत्म विमर्श रूपी ब्रह्म सत्ता का सङ्कल्प करके 'जिस ब्रह्म सत्र में' इस बात का ज्ञान होता है कि सभी भूतों में एक ही आत्मा व्याप्त है । पश्चिम समुद्र के तट पर जहाँ जाजलि ऋषि सिद्ध हुए थे वहीं बैठ गये ।।२।।

**तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो जितासनान् शान्तसमानविग्रहान् ।**
**परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ।।३।।**

**अन्वयः**— निर्जित प्राणमनोवचो दृशः, जितासनान्, शान्तसमानविग्रहान्, परे अमले ब्रह्मणि योजितात्मनः तान् सुरासुरेड्यः नारदः ददृशे स्म ।।३।।

**अनुवाद**— प्राण, मन, वाणी तथा दृष्टि को अपने वश में किए हुए शरीर को निश्चेष्ट सीधा रखते हुए आसन को जीत कर अपने चित्त को विशुद्ध परंब्रह्म में लीन किए हुए उन प्रचेताओं को देवता तथा असुर सबों के समान रूप से बंदनीय नारदजी ने देखा ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

निर्जिताः प्राणमनोवचोदृशो यैस्तान् । शान्ता उपरताः समाना मूलाधारादारभ्य ऋजवो विग्रहा येषाम् । ब्रह्मणि योजित आत्मा यैः । सुरासुरैरीड्यो दृष्टवान् ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

जिन सबों ने प्राण, मन,वाणी और दृष्टि को अपने वश में कर लिया था, शान्त निश्चेष्ट मूलाधार चक्र से लेकर जिनका सारा शरीर सीधा था तथा जिन सबों ने अपने मन को विशुद्ध ब्रह्म में लगा दिया था, ऐसे प्रचेताओं को देवताओं तथा असुरों के समान रूप से वन्दनीय नारदजी ने देखा ।।३।।

**तमागतं त उत्थाय प्रणिपत्याभिनन्द्य च । पूजयित्वा यथादेशं सुखासीनमथाब्रुवन् ।।४।।**

**अन्वयः**— आगतं तम् ते उत्थाय प्रणिपत्य अभिनन्द्य च यथादेशं पूजयित्वा अथ सुखासीनम् अब्रुवन् ।।४।।

**अनुवाद**— आये हुए नारदजी को देखकर वे सब खड़े होकर तथा साष्टाङ्ग प्रणाम के आदर सत्कार पूर्वक देश कालानुसार उनकी पूजा करके जब नारदजी सुख पूर्वक बैठ गये तो उन सबों ने नारदजी से कहा ।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

उत्थाय प्रणिपत्य यथादेशं यथाविधि पूजयित्वा ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

खड़ा होकर तथा साष्टाङ्ग प्रणाम करके देश कालानुसार विधि पूर्वक पूजा करके नारदजी से उन सबों ने कहा।।४।।

प्रचेतस ऊचुः

**स्वागतं ते सुरर्षेऽद्य दिष्ट्या नो दर्शनं गतः । तव चंक्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ।।५।।**

**अन्वयः**— हे सुरर्षे ! ते स्वागतम् दिष्ट्या अद्यनो दर्शनं गतः ब्रह्मन् ते चंक्रमणं रवेः यथा अभयाय ।।५।।

**प्रचेताओं ने कहा**

**अनुवाद**— देवर्षे आपका स्वागत है, आज आपका दर्शन बड़े भाग्य से हुआ । सूर्य के समान आपका भ्रमण अपने ज्ञान के आलोक से जीवों का कल्याण करने के ही लिए होता है ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।५।।

**यदादिष्ट भगवता शिवेनाधोक्षजेन च । तद्गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥६॥**

**अन्वयः**— प्रभो यद् भगवता शिनेन, अधोक्षजेन आदिष्टं तत् गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितम् ॥६॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! भगवान् शिव ने तथा भगवान् विष्णु ने जो हम सबों को उपदेश दिया था वह गृहस्थी में आसक्त रहने के कारण प्रायः भूल सा गया है ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

आदिष्टमुपदिष्टं यदात्मतत्त्वम् । क्षपितं विस्मृतम् ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

शिवजी ने तथा भगवान् ने जो आत्मतत्त्व का उपदेश हम सबों को दिया वह भूल गया है ॥६॥

**तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम् । येनाञ्जसा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ॥७॥**

**अन्वयः**— तत् नः आत्मदर्शनम् अध्यात्मज्ञानं प्रद्योतय येन अञ्जसा दुस्तरं भवसागरं तरिष्यामः ॥७॥

**अनुवाद**— अतएव आप हमारे हृदय में परमार्थ तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले अध्यात्मज्ञान को पुनः प्रकाशित कर दें जिससे कि हमलोग आसानी से इस दुस्तर संसार सागर को पार कर जायँ ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥७॥

मैत्रेय उवाच

**इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः । भगवत्युत्तमश्लोक आविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान् ॥८॥**

**अन्वयः**— इति प्रचेतसां पृष्टः भगवति उत्तम श्लोके आविष्टात्मा मुनिः नारदः नृपान् अब्रवीत् ॥८॥

**मैत्रेय महर्षि ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से प्रचेताओं द्वारा पूछे जाने पर जिनका मन सदैव उत्तम श्लोक श्रीभगवान् में लगा ही रहता हैं ऐसे मुनि नारदजी उन प्रचेताओं से कहे ॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

इति प्रचेतोभिः पृष्टः ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से प्रचेताओं के द्वारा पूछे जाने पर ॥८॥

नारद उवाच

**तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः । नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥९॥**

**अन्वयः**— नृणां तत् जन्म, तानि कर्माणि, तद आयु तत् मनः वचः येन इह विश्वात्मा हरिः ईश्वरः सेव्यते ॥९॥

**नारदजी ने कहा**

**अनुवाद**— प्रचेताओं इस लोक में वही जन्म, वही कर्म, वही आयु, वही मन और वही वाणी सफल है, जिसके द्वारा जगदात्मा सर्वेश्वर श्रीहरि का सेवन किया जाता है ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

अहो गृहप्रसत्तया हरिसेवां विना सर्वं जन्मकर्मादिकं व्यर्थीकृतमिति तान् शोचन्नाह-तज्जन्मेति चतुर्भिः । यतो जन्मादेर्हरिसेवैव फलमतस्तद्विहीनं सर्वं व्यर्थमित्यर्थः ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

**तज्जन्मा० इत्यादि** चार श्लोकों के द्वारा नारदजी बतलाते हैं कि अरे गृह में आसंक्ति होने के कारण श्रीहरि की सेवा के बिना ही सम्पूर्ण जन्म कर्म इत्यादि को करने में तुमलोगों ने व्यर्थ बना दिया, यह शोक का विषय है। क्योंकि जन्म इत्यादि का फल तो श्रीहरि की सेवा है। अब फल हीन होने के कारण सबकुछ व्यर्थ ही हैं॥९॥

**किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः। कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥१०॥**

**अन्वयः**— शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः इहत्रिभिः जन्मभिः त्रयीप्रोक्तैः कर्मभिः विबुधायुषा पुंसोऽपि किम ?॥१०॥

**अनुवाद**— माता-पिता की पवित्रता से, यज्ञोपवीत संस्कार से, एवं यज्ञ की दीक्षा से प्राप्त होने वाले तीन प्रकार के जन्मों से वेदोक्त कर्मों से देवताओं के समान दीर्घ आयु से पुरुष को कौन सा लाभ हुआ ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

शुक्लसंबन्धि जन्म विशुद्धमातापितृभ्यामुत्पत्तिः। सावित्रमुपनयनेन। याज्ञिकं दीक्षया। विबुधानामिव दीर्घायुषापि॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

विशुद्ध माता-पिता से प्राप्त जन्म, यज्ञोपवीत संस्कार, यज्ञ की दीक्षा तथा देवताओं के समान दीर्घ आयु से भी पुरुष का कोई लाभ नहीं है ॥१०॥

**श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः। बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा ॥११॥**
**किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि। किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः ॥१२॥**

**अन्वयः**— श्रुतेन, तपसा वाकिं वचोभिः चित्तवृत्तिर्भिः निपुण बुद्धयाइन्द्रियराधासा बलेन वा किम्, योगेन, सांख्येन न्यास स्वाध्यायोः अपि किम् वा अन्यैः श्रेयोऽभिः किम् यत्र आत्मप्रदो हरिः न ॥११-१२॥

**अनुवाद**— शास्त्र ज्ञान से, तपस्या से, वाणी की चतुराई से, अनेक प्रकार की बातें याद रखने की क्षमता से, तीव्र बुद्धि से, बल से, इन्द्रियों की पटुता से योग से, सांख्य से संन्यास और वेदाध्ययन से तथा व्रत वैराग्यादि अन्य कल्याणकारी साधनों से पुरुष का क्या लाभ हुआ, जिनके द्वारा स्वरूप अपने स्वरूप ज्ञान कराने वाले श्रीहरि को नहीं प्राप्त किया ॥११-१२॥

**भावार्थ दीपिका**

वचोभिर्वाग्विलासैः चित्तवृत्तिभिर्नानावधानसामर्थ्यैः। इन्द्रियाणां राधसा पाटवेन। योगेन प्राणायामादिना। सांख्येन देहादिव्यतिरिक्तात्मज्ञानमात्रेण। संन्यासवेदाध्ययनाभ्यामपि। अन्यैरपि व्रतवैराग्यादिभि श्रेयः साधनैः ॥११-१२॥

**भाव प्रकाशिका**

वाणी के चातुर्य से अनेक प्रकार की बातें याद रखने की शक्ति से, इन्द्रियों की पटुता से प्राणायाम इत्यादि योग से, देहादि व्यतिरिक्त आत्म ज्ञान से, संन्यास से तथा वेदाध्ययन से भी, व्रत वैराग्य आदि दूसरे कल्याण के साधनों से क्या लाभ ? यदि उससे श्रीहरि की प्राप्ति नहीं की जाय ॥११-१२॥

**श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः। सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मात्मप्रदः प्रियः ॥१३॥**

**अन्वयः**— सर्वेषामपि श्रेयसाम् अर्थतः आत्मा हि अवधिः सर्वेषाम् अपि भूतानाम् आत्मप्रदः हरिः प्रियः ॥१३॥

**अनुवाद**— सभी कल्याणों की सीमा आत्मा ही है और आत्मज्ञान प्रदान करने वाले श्रीहरि ही सम्पूर्ण प्राणियों की प्रिय आत्मा हैं ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

नन्वेषां नानाफलसाधनानां हरिसेवाभावमात्रेण कुतो वैयर्थ्यं तत्राह। श्रेयसां फलानामात्मैवावधिः परा काष्ठा। अर्थतः

परमार्थतः आत्मार्थत्वेनैवान्येषां प्रियत्वादित्यर्थः। भवत्वात्मावधिर्हरिः किमायातं तत्राह–सर्वेषामपीति। आत्मा आत्मदश्चाविद्यानिरासेन स्वरूपाभिव्यञ्जकः। ऐश्वरेणापि रूपेण बलिप्रभृतिभ्य इवात्मप्रदः प्रियश्च। परमानन्दरूपत्वात् ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अनेक प्रकार के फलों के साधन भूत इन सभी कर्मों की केवल श्रीहरि की सेवा का अभाव होने से वैयर्थ्यता कैसे है, तो इसका उत्तर है कि सभी फलों की पराकाष्ठा आत्मा ही है, वास्तविकता यह है कि आत्म कल्याणार्थ ही इन साधनों की प्रियता है, यदि कोई यह कहे कि आत्मा ही सीमा भले ही हो, किन्तु इससेश्रीहरि के विषय में क्या हुआ ? तो इस पर कहते हैं— आत्मा अविद्या के निरास पूर्वक आत्मज्ञान प्रदान करने वाले और स्वरूप को अभिव्यक्त करने वाले श्रीहरि ही हैं। श्रीहरि अपने ऐश्वर रूप से भी बलि आदि को आत्मज्ञान प्रदान प्रिय हैं, क्योंकि वे परमानन्द स्वरूप हैं ॥१३॥

**यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।**
**प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥१४॥**

**अन्वयः**— यथा तरोः मूल निषेचनेन तत्स्कन्धभुजोप शाखाः तृप्यन्ति, प्राणोपहारात् च यथेन्द्रियाणां तथैव अच्युतेज्यया सर्वार्हणम् ॥१४॥

**अनुवाद**— जिस तरह वृक्ष की जड़ को सींचने से उसकी तना, शाखा, उपशाखा, आदि सबों का पोषण होता है, तथा जैसे भोजन द्वारा प्राणों को तृप्त करने से सभी इन्द्रियाँ पुष्ट होती है, उसी तरह श्रीभगवान् की आराधना करने से सबों की पूजा हो जाती हैं ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

किंच नानाकर्मभिस्तत्तद्देवताप्रीतिनिमित्तान्यपि फलानि हरिप्रीत्या भवन्ति केवलं तत्तद्देवताराधनेन तु न किंचिदिति सदृष्टान्तमाह–यथेति। मूलात्प्रथमविभागाः स्कन्धाः। तद्विभागा भुजाः। तेषामप्युपशाखा;। उपलक्षं पत्रपुष्पादयोऽपि तृप्यन्ति, नतु मूलसेकं विना ताः स्वस्वनिषेचनेन। प्राणस्योपहारो भोजनं तस्मादेवेन्द्रियाणां तृप्तिः, नतु तत्तदिन्द्रियेषु पृथक्पृथगन्नलेपनेन। तथाच्युताराधनमेव सर्वदेवताराधनं न पृथगित्यर्थः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

अनेक कर्मों के करने से विभिन्न देवताओं की प्रसन्नता के कारण प्राप्त होने वाले फल परमात्मा की प्रसन्नता से ही होती है, केवल देवता की आराधना से किसी भी फल की प्राप्ति नहीं होती है इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते है। जड़ से पहला विभाग स्कन्धों का होता है उसके विभाग भुजाएँ होती हैं, उन सबों की भी उप शाखाएँ विभक्त होती है। उसके द्वारा उपलक्षित पत्र-पुष्प इत्यादि वे सब भी जड़ को सिंचने से तृप्त होते हैं। जड़ कों सींचे बिना शाखाओं, आदि को सींचने से वे तृप्त नहीं होती हैं। प्राण का उपहार भोजन है उसी के द्वारा इन्द्रियों की तृप्ति होती है। भिन्न-भिन्न इन्द्रियों में अन्न इत्यादि का लेप करने से वे इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होती हैं। उसी तरह श्रीभगवान् की आराधना करने से ही सभी देवताओं की आराधना हो जाती है, उनकी पृथक्-पृथक् आराधना करने से नहीं ॥१४॥

**यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः पुनश्च तस्मिन्प्रविशन्ति काले।**
**भूतानि भूमौ स्थिरजङ्गमानि तथा हरावेव गुणप्रवाहः ॥१५॥**

**अन्वयः**— यथैव सूर्यात् वारः प्रभवन्ति पुनश्च तस्मिन् प्रविशन्ति भूमौ स्थिर जङ्गमानि भूतानि तथा हरौ एव गुण प्रवाहः ॥१५॥

**अनुवाद**— जिस तरह वर्षा काल में सूर्य के ताप से जल निकलता है और गीष्म काल में सूर्य में ही प्रवेश कर जाते हैं, उसी तरह चेतना चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् श्रीभगवान् से ही उत्पन्न होता है लयकाल में उनमें ही प्रवेश कर जाता है ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

कुतः सर्वमूलत्वादिति सदृष्टान्तन्तरमाह । यथैव वारो जलानि वर्षाकाले सूर्यादुद्भवन्ति ग्रीष्मे तस्मिन्नेव प्रविशन्ति । अस्याप्रसिद्धत्वेन दृष्टान्तान्तरमाह-यथा भूतानि भूमाविति । गुणप्रवाहश्चेतनाचेतनात्मकः प्रपञ्चः ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि श्रीभगवान् सबों के मूल कैसे हैं, तो इस पर दूसरा दृष्टान्त उपन्यस्त करते हैं । जिस तरह वर्षा काल में सूर्य के ताप से ही जल निकलता है और ग्रीष्म काल में उनमें ही प्रवेश कर जाता है । इस दृष्टान्त के अप्रसिद्ध होने के कारण दूसरा दृष्टान्त कहते हैं । उसी तरह सृष्टि काल में यह चेतना चेतनात्मक जगत् श्रीहरि से उत्पन्न होता है प्रलय काल में उन्हीं में लीन हो जाता है ॥१५॥

**एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ।**
**यथाऽसवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥१६॥**

**अन्वयः**— तदेतत् जगदात्मनः परं पदं यथा सकृद् विभातम्, यथा सवितुः प्रभा यथा जाग्रति असवः सुप्तशक्तयः द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥१६॥

**अनुवाद**— वस्तुतः यह विश्वात्मा श्रीभगवान् का वह शास्त्र प्रसिद्ध सर्वोपाधि विनिर्मुक्त स्वरूप ही है । जैसे सूर्य की प्रभा उससे भिन्न नहीं होती है, तथा कभी-कभी दिखने वाले गन्धर्व नगर के समान स्फुरित होने वाला यह जगत् भगवान् से भिन्न नहीं है । जैसे जाग्रदावस्था में इन्द्रियाँ क्रियाशील रहती हैं किन्तु सुषुप्तावस्था में उनकी शक्तियाँ लीन हो जाती है । उसी प्रकार यह जगत् सर्गकाल में भगवान् से प्रकट होता है और कल्पान्त में उन्हीं में लीन हो जाता है । स्वरूपतः तो भगवान् में द्रव्य क्रिया और ज्ञान रूपी त्रिविध अहङ्कार के कार्यों की और उनके निमित्त से होने वाले भेदभ्रम की सत्ता है ही नहीं ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

ननु हरावेव गुणप्रवाह इत्युक्ते तदाधारत्वेन सोपाधिकत्वं हरेः स्यादित्याशङ्‌क्याह एतदिति । एतद्विश्वं विष्णो स्तत्सर्वशास्त्रप्रसिद्धं पदं परं सर्वोपाधिरहितम् । तदुत्पन्नत्वान्न ततः पृथगित्यर्थः । तर्हि कथमन्यथा भाति तत्राह-सकृदिति । सकृत्कदाचिद्विभातं स्फुरितं गन्धर्वनगरवत् । यथा सवितुः प्रभा न ततो भिन्ना, यथाच जाग्रत्यसव इन्द्रियाणि स्फुरन्ति सुषुप्तौ तु सुप्तशक्तयो भवन्तीत्यर्थः । कथंभूतोऽसौ हरिः । द्रव्यादीनां त्रिविधाहंकारकार्याणां तन्निमित्तस्य भेदभ्रमस्य चात्ययो यस्मात्सः । यद्वा अजाग्रति सुषुप्तावसवः सुप्ता शक्तयो येषां ते भवन्ति द्रव्यादेरप्यत्ययो भवति । सवितुः प्रभेत्युद्गतौ दृष्टान्त इति ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

यह जो कहा गया है कि श्रीहरि में ही यह गुणों का प्रवाह होता है, इसका अर्थ तो यह हुआ कि श्रीहरि सोपाधिक हैं । इस प्रकार की शङ्का करके नारदजी कहते हैं- **एतदित्यादि** यह सम्पूर्ण जगद् भगवान् विष्णु का वह शास्त्र प्रसिद्ध परंपद है और सभी उपाधियों से रहित हैं । यह उनसे उत्पन्न होने के कारण उनसे भिन्न नहीं है । तो फिर इस जगत् की उनसे भिन्न रूप से कैसे प्रतीति होती है तो इस पर कहते हैं **सकृत् इत्यादि** अर्थात् कभी-कभी प्रतीत होने वाले गन्धर्व नगर के समान यह मिथ्या है । जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से भिन्न नहीं होती है । उसी तरह अथवा जिस तरह जाग्रतावस्था में इन्द्रियाँ क्रियाशील रहती है, और सुषुप्तिकाल में उन सबों की क्रिया शक्ति लीन हो जाती

है उसी तरह प्रश्न है कि श्रीहरि कैसे है तो इसका उत्तर है कि द्रव्य आदि जो तीनों प्रकार के अहङ्कार के कार्य तथा उनके कारण भेद प्रतीति का वहाँ अभाव है। अथवा जिस तरह सुषुप्ति में इन्द्रियाँ सुप्तशक्ति वाली होती है उस समय द्रव्य आदि का भी नाश होता है। सवितुः प्रभा यह श्रीहरि से संसार की उत्पत्ति का दृष्टानत हैं ।।१६।।

**यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा भवन्ति भूषा न भवन्त्यनुक्रमात् ।**
**एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमू रजस्तमः सत्त्वमिति प्रवाहः ।।१७।।**

**अन्वयः**— हे भूपाः यथा नसि अभ्रतमः प्रकाशाः भवन्ति अनुक्रमात् न भवन्ति, एवं परे ब्रह्मणि सत्त्व रजस्तमः अमूशक्तयः एवं प्रवाहः प्रचलति ।।१७।।

**अनुवाद**— हे प्रचेताओं जैसे आकाश से मेघ अन्धकार और प्रकाश ये क्रमशः प्रकट होते हैं और फिर उसी आकाश में लीन हो जाते है, किन्तु आकाश इन सबों से लिप्त नहीं होता है, उसी तरह ये सत्त्वरजस एवं तमस मयी शक्तिया कभी परंब्रह्म से उद्भूत होती हैं और फिर उन परंब्रह्म में ही लीन हो जाती हैं। इसी तरह इन गुणों का प्रवाह चला करता है। किन्तु आकाश के समान असङ्ग परमात्मा में कोई भी विकार नहीं होता है।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**

नन्वसङ्गे हरौ कथं प्रपञ्चोत्पत्तिलयौ तत्राह- यथेति। अभ्रतमःप्रकाशा आगमापायिनो रजस्तमःसत्त्वस्थानीयाः। हे भूपाः प्रचेतसः, अमूः शक्तय उद्भवन्ति न भवन्ति लीयन्ते इत्येवमयं जगत्प्रवाहः ।।१७।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न होता है कि श्रीहरि तो असङ्ग है, उनमें इस प्रपञ्च की उत्पत्ति और लय कैसे होते हैं ? तो इसके उत्तर में नारदजी ने **यथा शब्दादि** श्लोक कहा है। जैसे आकाश से मेघ अन्धकार और प्रकाश उत्पन्न होते हैं, ये क्रमशः रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण के स्थानी हैं। ये आकाश में उत्पन्न होकर आकाश में ही जैसे लीन हो जाते हैं। हे प्रचेताओ ! उसी प्रकार सत्त्व, रजस एवं तमोमयी शक्तियाँ श्रीहरि से उत्पन्न होती हैं और उनमें ही लीन हो जाती है, किन्तु इन सबों से आकाश के ही समान असङ्ग श्रीहरि में कोई भी विकार नहीं होता है। इसी तरह यह जगत् का प्रवाह चला करता है ।।१७।।

**तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ।**
**स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहमात्मैकभावेन भजध्वमद्धा ।।१८।।**

**अन्वयः**— अशेष देहिनाम् एकम् आत्मनम् कालं, प्रधानं, पुरुषम्, परेशम् स्व तेजसा ध्वस्त गुण प्रहवाहम् आत्मैकभावेन भजध्वम् अद्धा ।।१८।।

**अनुवाद**— अतएव तुमलोग सम्पूर्ण शरीरधारियों के एक मात्र आत्मा, जगत् के निमित्त कारण काल, उपादान कारण प्रधान, और सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र नियामक परमपुरुष अपनी तेजोमयी काल शक्ति के द्वारा गुणों के प्रवाह रूप प्रपञ्च संहार करने वाले श्रीहरि को अपने से अभिन्न मानते हुए उनका भजन करो ।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**

तेन सर्वकारणत्वेन हेतुना। कालो निमित्तम्। प्रधानमुपादानम्। पुरुषः कर्ता। एतत्रि तयात्मकत्वात्सर्वकारणं परमेश्वरमद्धा साक्षाद्भजध्वम्। कथम्। आत्मन एकभावेनाभिन्नत्वेन ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

चूकि श्रीहरि सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र कारण है। वे काल रूप से जगत् के निमित्त कारण हैं, प्रधान रूप से जगत् के उपादान कारण हैं, तथा वे सम्पूर्ण जगत् के कर्ता पुरुष है। इस तरह से त्रितयात्मक होने के कारण सम्पूर्ण जगत् के कारण परमात्मा को अपने से अभिन्न मानकर उनका भजन करो ।।१८।।

**दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येनकेन वा । सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥१९॥**

**अन्वयः**— जनार्दनः सर्वभूतेषु दयया, येन केन वा सन्तुष्ट्या, सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च आशु तुष्यति ॥१९॥

**अनुवाद**— भगवान् जनार्दन, सभी जीवों पर दया करने से, जिस किसी भी वस्तु से सन्तुष्ट रहने से और सभी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर उनको वश में करने से शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

साधनमाह । दयादिभिः शीघ्रं तुष्यति ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को शीघ्र प्रसन्न करने के साधनों को बतलाते हुए नारदजी ने कहा कि दया आदि रूपी साधनों से श्रीभगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥१९॥

**अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः ।**
**निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥२०॥**

**अन्वयः**— अपहत सकलैषणा मलात्मनि, अविरतम्, एधितभावनोपहूतः, निजजनवशगत्वम् आत्मनः अयन् न सरतिछिद्रवदक्षरः सतां हि ॥२०॥

**अनुवाद**— पुत्रैषणा वित्तैषणा आदि समस्त वासनाओं के निकल जाने के कारण जिनका अन्तःकरण शुद्ध भगवच्चित हो गया है उन सन्तों के हृदय में निरन्तर बढ़ते हुए भगवच्चिन्तन के द्वारा खिंचकर अविनाशी श्रीहरि आ जाते हैं अपनी भक्त पराधीनता के स्वभाव के चरितार्थ करते हुए हृदयाकाश की भांति वहाँ से नहीं निकलते हैं ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

ततो न कदाचित्त्यजतीत्याह । अपहता निरस्ताः सकला एषणाः कामा यस्मात्स चासावमल आत्मा मनस्तस्मिन्सतां मनिस निरन्तरं समेधितया भावनयोपहूतः सन्निधापितः सन्नक्षरो हरिश्छिद्रवत्तत्र्याकाशवत्ततो न सरति नापयाति हि । किं कुर्वन् । आत्मनो निजजनवशगत्वं स्वभक्ताधीनत्वं अयन्नवगच्छन् ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अपने भक्तों का कभी भी परित्याग नहीं करते हैं इस बात को बतलाते हुए नारदजी ने कहा सम्पूर्ण एषणाओं की वासना के निकल जाने के कारण अन्तःकरण में जब सन्तों का निरन्तर परमात्म का चिन्तन बढ़ते रहने के कारण उससे खिंचकर अविनाशी श्रीहरि उनके हृदय में आ जाते हैं, और अपनी भक्तपराधीनता को याद करते हुए वे उनके हृदय से उसी तरह नहीं निकलते हैं जिस तरह हृदय में विद्यमान आकाश वहाँ से नहीं निकलता है ॥२०॥

**न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।**
**श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिंचनेषु सत्सु ॥२१॥**

**अन्वयः**— अधनात्मधनप्रियो रसज्ञः हरिः श्रुतधनकुलकर्मणां मदैः ये अकिञ्चनेषु सत्सु पापम् विदधति कुमनीषिणां इज्यां स न भजति ॥२१॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् अपने (श्रीभगवान्) को ही सर्वस्व मानने वाले निर्धन पुरुषों से ही प्रेम करते हैं, क्योंकि वे परमरसज्ञ हैं । वे अनन्याश्रया भक्ति में कितना रस है इस बात को जानते हैं । जो लोग अपने शास्त्रज्ञान, धन, कुल एवं कर्मों के मद से मत्त होकर अकिञ्चन साधु पुरुषों का तिरस्कार करते हैं, उन दुर्बुद्धियों की पूजा को श्रीभगवान् स्वीकार नहीं करते हैं ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

सतामेव वश्योऽसावसतां तु पूजामपि न गृह्णातीत्याह–नेति । कुमनीषिणां कुत्सितमतीनाम् । अधनाश्च ते आत्मधनाश्च भगवद्धनास्ते प्रिया यस्य । रसज्ञो भक्तिसुखज्ञः । के कुमनीषिणस्तानाह । श्रुतादिनिमित्तैर्मदैः ये सत्सु पापं तिरस्कारं कुर्वन्ति।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सत्पुरुषों के ही अधीन रहते हैं असत् पुरुषों की तो पूजा को भी वे नहीं स्वीकार करते हैं । इस बात को नारदजी ने **नभजति० इत्यादि** श्लोक से कहा है । कुमनीषिणां पद का अर्थ है दुर्बुद्धियों की जो लोग निर्धन भी होकर श्रीभगवान् को ही अपना धन मानते हैं, वे ही भगवान् के प्रिय हैं । रसज्ञः का अर्थ है भक्ति जन्य सुख को जानने वाले दुर्बुद्धि कौन लोग हैं इसको बतलाते हुए नारदजी ने कहा अपने शास्त्र ज्ञान आदि के मद से मत्त बने हुए जो लोग सत्पुरुषों का तिरस्कार करते हैं वे दुर्बुद्धि शब्द वाच्य हैं ।।२१।।

**श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपदपतीन् विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः ।**
**न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः कथममुमुद्विसृजेत्पुमान्कृतज्ञः ।।२२।।**

**अन्वयः**— यत्स्वपूर्णः अनुचरतीं श्रियम् तदर्थिनश्च द्विपदपतीन् विबुधान् च न भजति, निजभृत्यवर्गतन्त्रः, कृतज्ञः पुमान् कथम् अमुम् उद्विसृजेत् ।।२२।।

**अनुवाद**— श्रीभगवान् स्वरूपानन्द से ही परिपूर्ण हैं, वे सदैव अपनी सेवा करने वाली लक्ष्मीजी राजाओं, तथा देवों की भी परवाह नहीं करते हैं वे तो अपने भक्तों के परतन्त्र रहा करते हैं । ऐसे श्रीभगवान् को कौन ऐसा कृतज्ञ पुरु होगा जो थोड़ी सी देर के लिए छोड़ दें ।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

भक्ताधीनत्वं प्रपञ्चयन्नाह । अनुवर्तमानामपश्रियं तदर्थिनः सकामान् द्विपदपतीन्नरेन्द्रान्विबुधान् देवानपि यो नानुवर्तते। यतः स्वेनैव पूर्णोऽतः स्वभृत्यवर्गानुरक्त एव । एवंभूतममुमुत् ईषदपि कथं परित्यजेत् ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के भक्तपारतन्त्र्य का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं । वे अपनी सेवा में लगी रहने वाली लक्ष्मीजी की, लक्ष्मीजी को चाहने वाले नरपतियों की तथा देवताओं की भी परवाह नहीं करते हैं । क्योंकि वे अपने आप में परिपूर्ण हैं अतएव वे अपने भक्तों में ही अनुरक्त रहते हैं । इस प्रकार के श्रीभगवान् को कोई भी कृतज्ञ कैसे थोड़ी भी देर के लिए कैसे त्याग सकता है ?।।२२।।

मैत्रेय उवाच

**इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः । श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायंभुवो मुनिः ।।२३।।**

**अन्वयः**— हे राजन् ! इति प्रचेतसः अन्याश्च भगवत् कथाः श्रावयित्वा स्वायंभुवो मुनिः ब्रह्मलोकं ययौ ।।२३।।

### मैत्रेयजी ने कहा

**अनुवाद**— हे विदुरजी ! इस प्रकार से प्रचेताओं को और भी भगवत सम्बन्धी कथाओं को सुनाकर ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी ब्रह्मलोक में चले गये ।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

प्रचेतसः कर्मभूतान् । अन्याश्च नूनं सुनीतेरित्यादिध्रुवचरिताद्याः। सत्रेऽगायत्प्रचेतसामित्युक्तत्वात् ।।२३।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रचेताओं को निश्चित रूप से सुनीति की ध्रुव चरित इत्यादि की कथाओं का श्रीनारदजी ने प्रचेताओं के सत्र में गान किया ॥२३॥

**तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् । हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायन्तस्तद्गतिं ययुः ॥२४॥**

**अन्वयः**— ते अपि तन्मुखांनर्यातं हरेः लोकमलापहम् यशो निशम्य तत्पदं ध्यायन्तः तद्‌गतिं ययुः ॥२४॥

**अनुवाद**— वे प्रचेतागण भी श्रीनारदजी के मुख से सम्पूर्ण जगत् के मल को दूर करने वाले श्रीहरि के यश को सुनकर श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान करते हुए अन्त में श्रीभगवान् के लोक में चले गये ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

तेऽपि प्रचेतसः । तद्‌गतिं विष्णुलोकम् ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

वे प्रचेतागण भी विष्णु लोक में चले गये ॥२४॥

**एतत्तेऽभिहितं क्षत्तर्यन्मा त्वं परिपृष्टवान् । प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— हे क्षत्तः यत् त्वं मां प्रचेतसां हरिकीर्तनम् नारद संवादं ते एतत् अभिहितम् ॥२५॥

**अनुवाद**— हे विदुरजी आपने जो मुझसे प्रचेताओं और श्रीहरि के यश से संबन्धित नारदजी के संवाद को पूछा था उसे मैंने आपको सुना दिया ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रचेतसां नारदस्य संवादरूपमेतदाख्यानं तेऽभिहितम् । हरेः कीर्तनं यस्मिंस्तत् ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसमें श्रीहरि का यश वर्णित है ऐसे प्रचेताओं और नारदजी के संवाद रूपी आख्यान को मैंने तुम्हें सुना दिया ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

**य एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः । वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥२६॥**

**अन्वयः**— एष मानवस्य उत्तानपदः य एषः वंशः अनुवर्णितः, नृपसत्तम प्रियव्रतस्यापि निबोध ॥२६॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजवर्य ! यहाँ तक स्वायम्भुव मनु के वंश का मैंने वर्णन किया, अब आप प्रियव्रत के भी वंश का वर्णन सुनें ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

य एष वंशः सोऽनुवर्णितः ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

उत्तानपाद को जो यह वंश है उसका मैंने वर्णन किया ॥२६॥

**यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् । भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥२७॥**

**अन्वयः**— यः नारदात् आत्मविद्याम् अधिगम्य पुनः महीं भुक्त्वा पुत्रेभ्यः विभज्य ऐश्वरं पदं समगात् ॥२७॥

**अनुवाद**— जो राजा प्रियव्रत नारदजी से आत्मज्ञान का उपदेश प्राप्त करके राज्य का भोग किए और अन्त में इस सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने पुत्रों में बाँटकर श्रीभगवान् के परमधाम को चले गये ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

यः प्रियव्रतः ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

जो राजा प्रियव्रत ॥२७॥

**इमां तु कौषारविणोपवर्णितां क्षत्ता निशम्याजितवादसत्कथाम् ।**
**प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुनेर्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥२८॥**

**अन्वयः**— कौषारविणा उपवर्णिताम् इमां अजितवाद सत्कथाम् निशम्य क्षत्ता तु प्रवृद्धभावः अश्रुकलाकुलः मुनेः मूर्ध्ना हरेः हृदा चरणं दधार ॥२८॥

**अनुवाद**— श्रीमैत्रेय जी से वर्णित श्रीभगवान् के गुणानुवाद से युक्त इस कथा को सुनकर भक्ति के भाव का उद्रेक हो जाने के कारण विदुरजी की आँखों से आँसू प्रवाहित होने लगा उन्होंने मैत्रेयजी के चरणों पर अपना शिर रख दिया और श्रीभगवान् के चरणों को हृदय में धारण किया ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२८॥

विदुर उवाच

**सोऽयमद्य महायोगिन्भवता करुणात्मना । दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिंचनगो हरिः ॥२९॥**

**अन्वयः**— हे महायोगिन् करुणात्मना भवता सोऽयम् अद्य तमसः पारो दर्शितः यत्र अकिञ्चनगः हरिः ॥२९॥

**विदुरजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे महायोगिन् करुणामय आपने आज मुझको अज्ञान के पार पहुँचा दिया जहाँ अकिञ्चनों के सर्वस्व श्रीहरि विराजते हैं ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

**इत्यानम्य तमामन्त्र्य विदुरो गजसाह्वयम् । स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥३०॥**

**अन्वयः**— इति आनम्यतम् आमन्त्र्य निर्वृताशयः विदुरः स्वानां दिदृक्षुः गजसह्वयम् प्रययौ ॥३०॥

**शुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— इस तरह से मैत्रेयजी की बातों को सुनकर विदुरजी ने मैत्रेयजी को प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर शान्त चित्त वे अपने बन्धुओं को देखने के लिए हस्तिनापुर चले गये ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वान् ज्ञातीन् दिदृक्षुः ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने बान्धवों को देखने के इच्छुक ॥३०॥

**एतद्यः श्रृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् । आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥३१॥**

इति श्रीमद्भागवत महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्राचेतसोपाख्यानं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

समाप्तोऽयं चतुर्थस्कन्धः ॥४॥

**अन्वयः**— राजन् हर्यर्पितात्मनां राज्ञां एतत् यः श्रृणुयात् आयुः धनम् गतिम् स्वस्ति ऐश्वर्यम् आप्नुयात् ॥३१॥

**अनुवाद**— राजन् ! जो पुरुष श्रीभगवान् के शरणागत इन राजाओं के इस चरित्र को सुनेगा वह आयु, धन, सद्गति तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करेगा ॥३१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण जो अठारह हजार श्लोकों वाली संहिता है । उसके चतुर्थ स्कन्ध के प्रचेतोपाख्यान के अन्तर्गत एकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३१॥**

**इस तरह चतुर्थ स्कन्ध भी सम्पूर्ण हुआ ॥४॥**

### भावार्थ दीपिका

राज्ञां चरितमिति शेषः ॥३१॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्त्र्यां वैयासिक्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥**

**समाप्तोऽयं चतुर्थः स्कन्धः ॥४॥**

### भाव प्रकाशिका

राजाओं के चरित को ॥३१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के एकतिसवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३१॥**

**यह चौथा स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ॥४॥**

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

# पाँचवाँ स्कन्ध

## प्रथम अध्याय

### प्रियव्रत चरित्र

राजोवाच

**प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने । गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ।।१।।**

**अन्वयः**— मुने भागवतः प्रियवतः आत्मारामः कथं गृहे अरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ।।१।।

**राजा परीक्षित् ने कहा**

**अनुवाद**— हे मुने ! महाराज प्रियव्रत तो भगवद् भक्त और आत्माराम थे उनकी गृहस्थाश्रम में रुचि कैसे हुई ? जो कर्मों के बन्धन का मूल और पराभव का स्थान है ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

नमः श्रीमत्परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय । अथातः पञ्चमस्कन्धव्याख्यानेकविशेषवान् । प्रियव्रतान्वयो यत्र सप्रपञ्चः प्रपञ्चयते ।।१।। षड्विंशत्याधुनाध्यायैः पञ्चमे स्थानमीर्यते। लोकद्वीपादिमर्यादापालनाख्यमनेकधा ।।२।। पृथिव्युपर्यधोलोकैर्मर्यादा त्रिविधा मता । पुनश्चैकैकशस्तेषु मर्यादा बहुधा मता।।३।। भुवि द्वीपादिमर्यादाः पाल्यन्ते राजभिः पृथक् । भूमेरुपरि देवाद्यैस्ततश्चाधोऽसुरादिभिः ।।४।। तत्राध्यायैस्तु विंशत्या प्रियव्रतपुरःसरैः। भुवि द्वीपादिमर्यादाः पालिता इति वर्ण्यते ।।५।। त्रिभिः सूर्यादिभिर्ज्योतिश्चक्रादिष्विति कीर्त्यते । अलतादिषु दैत्याद्यैः पालनं च ततस्त्रिभिः ।।६।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये ज्ञानिनो राज्यनिर्वृतिः । पुनश्च ज्ञाननिष्ठेति प्रियव्रतकथाद्भुता ।।७।। 'वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम । यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् । भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ।' इति पूर्वस्कन्धान्ते प्रियव्रतस्य प्रथममात्मविद्या, ततो गृहाश्रमः, ततः सर्वसङ्गत्यागेन मोक्ष इत्युक्तम्, तत्र विस्मितः पृच्छति । प्रियव्रतो भागवतोऽतएवात्मारामो गृहे कथमरमत । ननु रमतां को दोष इति चेदत आह । कर्मणां बन्धः पराभवश्च स्वरूपतिरस्कारो यन्मूलो भवति, यद्गृहं मूलं कारणं यस्य ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

जिनके चरण कमलों के ज्ञान मय पराग का परमहंस जन आस्वादन किया करते हैं, तथा जो अपने भक्तों के मन रूपी मानसरोवर में निवास करते हैं ऐसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है । अब यहाँ से पाञ्चवें स्कन्ध की अनेक विशेषणताओं से विशिष्ट व्याख्यान किया जा रहा है । इस स्कन्ध में महाराज प्रियव्रत के वंश का विस्तृत वर्णन है ।।१।। इस पाँचवें स्कन्ध में छब्बीस अध्यायों को स्थान दिया गया हैं । इसमें लोकों द्वीपों आदि की मर्यादा और पालन आदि का अनेक प्रकार का वर्णन है ।।२।। पृथिवी उसके ऊपर तथा पृथिवी के नीचे के लोक इस तरह से तीन प्रकार की मर्यादा की गयी है । उसके पश्चात् प्रत्येक की अनेक प्रकार की मर्यादा बतलायी गयी है।।३।।

पृथिवी पर के द्वीपों आदि की मार्यादा राजाओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से की गयी है और पृथिवी के ऊपर के लोकों की मर्यादा देवताओं द्वारा और पृथिवी के नीचे के लोकों की मर्यादा असुरों द्वारा की जाती है ।।४।। बीस अध्यायों में प्रियव्रत आदि राजाओं के द्वारा पृथिवी के द्वीपों की मर्यादा का पालन किया गया इस बात का वर्णन किया गया है ।।५।। तीन अध्यायों में सूर्य आदि ज्योतिश्चक्र आदि का वर्णन है । उसके बाद तीन अध्यायों में अतल आदि लोकों का पालन दैत्यों आदि के द्वारा किया जाता है, इस बात का वर्णन है ।।६।। उसमें से इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय में ज्ञानी राजा प्रियव्रत की राज्य से उदासीनता और उसके पश्चात् उनकी ज्ञाननिष्ठा आदि से संबन्धित अद्भुत कथा का वर्णन है ।।७।। चतुर्थ स्कन्ध के अन्तिम अध्याय के अन्त में श्रीशुकदेवजी ने कहा है कि— हे राजन् ! आप प्रियव्रत के भी वंश का वर्णन सुनें । जो प्रियव्रत देवर्षि नारदजी आत्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करके उसके पश्चात् पृथिवी का भोग प्राप्त किए और अन्त में अपने पुत्रों में पृथिवी को बाँटकर भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त किए । इस तरह से चतुर्थ स्कन्ध के अन्त में बतलाया गया है कि महाराज प्रियवत पहले आत्म विद्या को प्राप्त किए, उसके पश्चात् गृहस्थाश्रम को स्वीकार किए, उसके पश्चात् सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके मोक्ष प्राप्त किए । यह सुनकर आश्चर्य चकित राजा परीक्षित पूछते हैं कि महाराज प्रियव्रत तो भगवद् भक्त होने के कारण आत्माराम थे फिर भी वे गृहस्थाश्रम को कैसे स्वीकार किए ? यदि कोई कहे कि गृहस्थाश्रम में रमण करने में क्या दोष है ? तो इस पर राजा ने कहा ग्रहस्थाश्रम में मनुष्य कर्मों के बन्धन में बँध जाता है उसके कारण स्वरूप का तिरस्कार होता है । और इन सबों का कारण गृहस्थाश्रम ही हैं ।।१।।

**न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ । गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ।।२।।**

**अन्वयः**— हे द्विजर्षभ नूनं तादृशानां मुक्तसङ्गानाम् अयं गृहेषु अभिनिवेशः न भवितुमर्हति ।।२।।

**अनुवाद**— हे विप्रवर्य ! निश्चय ही ऐसे निःसङ्ग महापुरुषों का गृहाश्रम मे इस प्रकार से अभिनिवेश होना उचित नहीं हैं ।।२।।

**भावार्थ दीपिका**

गृहेषु रतिश्च तत्राभिनिवेशात्स्यात्, स च भागवतानामात्मारामाणां न संभवतीत्याह-न नूनमिति ।।२।।

**भाव प्रकाशिका**

गृहों में प्रेम तो गृहों में अभिनिवेश के कारण होता है । और गृहों में अभिनिवेश आत्माराम भागवतों को नहीं होता है । इसी बात को न नूनम् इत्यादि श्लोकों के द्वारा कहा गया है ।।२।।

**महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः । छायानिर्वृतचित्तानां न कुटुम्बे स्पृहामतिः ।।३।।**

**अन्वयः**— हे विप्रर्षे उत्तमश्लोक पादयोः छाया निवृत्ति चित्तानां महतां कुटुम्बे खलु स्पृहामतिः न ।।३।।

**अनुवाद**— जिन लोगों के चित्त पुण्य कीर्ति श्रीहरि के चरणों की शीतल छाया को अपनाकर शान्त हो गया है उन लोगों की बुद्धि कभी भी कुटुम्ब में नहीं लग सकती है ।।३।।

**भावार्थ दीपिका**

गृहासक्तिर्हि कुटुम्बादिस्पृहया भवति, सा च तेषां नास्तीत्याह-महतामिति । उत्तमश्लोकपादयोश्छाया कामादिसंतापहारिणी तया निर्वृतं चित्तं येषां तेषां स्पृहायुक्ता मतिर्नास्ति ।।३।।

**भाव प्रकाशिका**

महापुरुषों का गृहों में अभिनिवेश नहीं होता है । इस बात को इस **महताम्० इत्यादि** श्लोक में कहा गया है । पुण्यकीर्ति श्रीभगवान् के चरणों की छाया कामादि जन्य संताप को विनष्ट करने वाली है । उसके द्वारा जिनका चित्त शान्त हो गया है उनकी स्पृहा गृहों में नहीं हो सकती है ।।३।।

**संशयोऽयं महान्ब्रह्मन् दारागारसुतादिषु । सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥४॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मन् अयं महासंशयः यत् दारागारसुतादिषु सक्तस्य श्रीकृष्णः अच्युतामतिसिद्धि अभूत् ॥४॥

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! मुझे इस बात का बहुत बड़ा संदेह है महाराज प्रियव्रत ने स्त्री घर और पुत्रादि में आसक्त रहकर भी किस प्रकार सिद्धि प्राप्त की और उनकी भगवान् श्रीकृष्ण में कैसे अविचल भक्ति हुई ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

दाराद्यासक्तस्य तु मोक्षः श्रीकृष्णेऽखलिता मतिश्चाभूदिति यदयं च महान्संशय इत्याह-संशय इति ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

पत्नी आदि में आसक्त को मोक्ष की प्राप्ति तथा भगवान् श्रीकृष्ण में अविचल बुद्धि हो गयी यह बहुत बड़े संशय का विषय है । इस बात को ही इस श्लोक में कहा गया है ॥४॥

श्रीशुक उवाच

**बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरस आवेशितचेतसो । भागवतपरमहंसदयितकथां किंचिदन्तरायविहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥५॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् ! तुमने ठीक कहा है कि जिन लोगों का चित्त प्रवित्र कीर्ति श्रीहरि के परम मधुर चरण कमल के मकरन्द के रस में सराबोर हो जाता है, वे किसी विध्न वाधा के कारण रुकावट आ जाने पर भी भगवद् भक्त परमहंसों के प्रिय वासुदेव भगवान् की कथा श्रवण रूपी परम कल्याणमय भाग को प्रायः नहीं छोड़ते हैं ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

अङ्गीकृत्य परिहरति । बाढमभिनिवेशादिकं नास्तीति सत्यमेव । तथापि विघ्नवशेन तेषां प्रवृत्तिः पूर्वाभ्यासबलेन पुनर्निवृत्तिश्च संगच्छत इत्याह । भगवतः श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरूपो यो रसस्तस्मिन्नावेशितं चेतो यैस्तेऽपि केनचिदन्तरायेण विघ्नेन विहतामपि स्वां शिवतमां पदवीं मार्गं न हिन्वन्ति न त्यजन्ति । काम् । भागवता एव परमहंसास्तेषां दयितस्य प्रियस्य श्रीवासुदेवस्य कथाम् ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

पहले राजा परीक्षित् की बातों को स्वीकार करके पुनः उसका परिहार करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि यह ठीक है कि मुक्तसङ्ग महापुरुषों का गृहादि में अभिनिवेश नहीं होता है । फिर भी विघ्न के कारण उनकी प्रवृत्ति हो जाती है । और पहले के अभ्यास के कारण उनकी पुनः गृहादि से निवृत्ति भी हो जाती है । भगवान् के ऐश्वर्य सम्पन्न चरणारबिन्दों के मकरन्द रूप जो रस उसी में जिन लोगों ने अपने चित्त को आविष्ट कर लिया है, वे भी किसी विघ्न के द्वारा रुकावट आ जाने पर भी श्रीभगवान् की कथा श्रवण रूपी अपने परम कल्याणमय मार्ग को नहीं त्यागते हैं । प्रश्न होता है कि वे किसको नहीं छोड़ते है ? तो इसका उत्तर है भगवद् भक्त ही परम हंस हैं उनको परम प्रिय श्रीभगवान् की कथा को नहीं त्यागते हैं ॥५॥

**यर्हि वाव ह राजन्स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाञ्जसावगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतया स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनन्दद्यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥६॥**

**अनुवाद**— राजन् राजकुमार प्रियव्रत बहुत बड़े भगवद् भक्त थे, नारदजी के चरणों की सेवा करने के कारण उनको अनायास ही परमार्थ तत्त्व का बोध हो गया । वे ब्रह्मसत्र की दीक्षा (निरन्तर ब्रह्माभ्यास में जीवन बिताने का नियम) लेने वाले थे उसी समय उनके पिता स्वयम्भुव मुन उनको पृथिवी पालन के लिए शास्त्रोक्त समस्त श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण देखकर उनको राज्य का शासन करने की आज्ञा दिये, किन्तु प्रियव्रत अखण्ड समाधियोग के द्वारा अपनी समस्त इन्द्रियों और क्रियाओं को भगवान् वासुदेव में समर्पित कर चुके थे । अतएव पिता की आज्ञा अनुल्लंघनीय होने पर भी वे उसे इसलिए नहीं स्वीकार किए कि उसे स्वीकार करने पर तो मेरा आत्म स्वरूप स्त्री पुत्रादि असत् प्रपञ्च से आच्छादित हो जायेगा ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

प्रियव्रतस्य ब्रह्माज्ञैवान्तरायरूपं बभूवेति सप्रसङ्गमाह-यर्हीत्यादिना विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्वेत्यन्तेन । यर्हि वाव ह यदा हि । वावेति प्रसिद्धौ ह इति च । स स्वपित्रा मनुनाऽवनितलपरिपालनायोपामन्त्रितो नियुक्तो नैवाभ्यनन्दन्नैच्छत् । अथ ह तदैव भगवानादिदेवो ब्रह्मा स्वभवनादवततारेत्यन्वयः । उपामन्त्रणे हेतुः-आम्नाता राज्ञां शास्त्रेणोक्ता ये प्रवराः श्रेष्ठा गुणास्तेषां गणस्यैकान्तभाजनतया नियताश्रयत्वेन । अनिच्छायां हेतुः-परमार्थसतत्त्वमात्मयाथात्म्यमवगतं तद्येन स तथा । अतो ब्रह्मसत्रेणात्मध्यानेन कार्येण दीक्षिष्यमाणो नियमं ग्रहीष्यन् । प्रागपि वासुदेव एव निरन्तरसमाधियोगेन चित्तैकाग्र्येण समावेशितःसमर्पितः सकलकारकाणामिन्द्रियाणां याः क्रियास्तासां कलापो येन सः । यद्यपि तत्पित्रोक्तं न प्रत्याख्येयं तथापि तदधिकरणे राज्याधिकारेऽसतोऽपि मिथ्याभूतादपि राज्यप्रपञ्चादात्मनः पराभवमालोचयन्नाभ्यनन्दत् ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की आज्ञ ही प्रियव्रत के लिए विघ्न स्वरूपिणी हो गयी बस बात को शुकदेवजी प्रसङ्ग निर्देश पूर्वक **यर्हि से** लेकर **विमुक्त सङ्गः प्रकृतिं भजस्व** (१९ वें श्लोक तक) ब्रह्मा जी की आज्ञा है । और बवाव ये अव्यय प्रसिद्धार्थक हैं । जब राजकुमार प्रियव्रत अपने पिता मनु के द्वारा पृथिवी का परिपालन करने के लिए आदिष्ट हुए तो वे राज्य का प्रशासन करना नहीं चाहे । उसी समय आदि देव ब्रह्माजी अपने लोक से भूलोक में आये । पिता ने उनको राज्य प्रशासन का आदेश इसलिए दिया कि राजाओं के जो श्रेष्ठ गुण बतलाये गयें वे सब गुण उनमें विद्यमान थे । प्रियव्रत के राज्य करने की अनिच्छा का कारण था कि वे परमार्थ तत्त्व के ज्ञाता थे । अतएव वे ब्रह्मसत्र की दीक्षा ग्रहण करना चहते थे । उससे पहले भी वे निरन्तर समाधि योग के द्वारा भगवान् वासुदेव में ही अपनी इन्द्रियों और क्रियाओं को समर्पित कर चुके थे । यद्यपि उनके पिता की आज्ञा अनुल्लंघनीय थी फिर भी उसको स्वीकार करने पर असत् राज्य के प्रपञ्च से आत्मा के तिरस्कार का विचार करते हुए नहीं स्वीकार करना चाहे ।।६।।

**अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिल-निगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार ।।७।।**

**अनुवाद**— आदि देव भगवान् ब्रह्माजी यह चाहते है कि इस त्रिगुणात्मक प्रपञ्च की वृद्धि होती रहे । वे संसार के समस्त प्राणियों के अभिप्राय को भी जानते हैं । प्रियव्रत की इस प्रकार की प्रवृत्ति को देखकर वे मूर्तिमान चारो वेदों और मरीचि आदि पार्षदों के साथ अपने लोक से इस लोक में आये ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

गुणविसर्गस्य गुणसृष्टेः परिबृंहणं समृद्धिस्तदनुचिन्तया व्यवसितः सकलजगतामभिप्रायो येन सः । यथा राज्ञा चारैर्मण्डलेश्वराणामभिप्रायो निश्चीयते तद्वत् । अखिलैर्निगमैर्मूर्तिमद्भिर्वेदैर्निजगणैश्च मरीच्यादिभिः परिवृतः सत्यलोकादवतीर्णः।।७।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी को इस त्रिगुणात्मिक सृष्टि की समृद्धि की चिन्ता बनी रहती है । वे संसार के सभी प्राणियों के अभिप्राय को भी जानते हैं । यह ठीक उसी तरह से वे जानते है जैसे राजा अपने गुप्तचरों द्वारा मण्डलेश्वरों के अभिप्राय को जानते रहते हैं । ब्रह्माजी सम्पूर्ण मूर्तिमान वेदों तथा मरीचि आदि अपने गणों के साथ सत्यलोक से आ गये ॥७॥

**स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥८॥**

**अनुवाद**— आकाश में स्थान-स्थान पर विमानों पर विद्यमान इन्द्रादि प्रधान देवताओं ने उनका पूजन किया, मार्ग में भी समुदित सिद्ध गन्धर्व, साध्य, चारण तथा मुनियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए वे गन्धमादन पर्वत की घाटी को प्रकाशित करते हुए नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा के समान प्रियव्रत के पास आये ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

स च ब्रह्मा तत्र तत्रोडुपतिश्चन्द्र इव प्रकाशमानो गन्धमादनस्य द्रोणीं दरीमवभासयन्नुपससर्पेत्यन्वयः । अमरपरिवृढैः देवेन्द्रादिभिः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

वे ब्रह्माजी नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा के समान गन्धमादन पर्वत की घाटी को प्रकाशित सा करते हुए प्रियव्रत के पास आये । ब्रह्माजी के साथ इन्द्रादि प्रधान-प्रधान देवता भी थे ॥८॥

**तत्र ह वा एवं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहिताञ्जलिरुपतस्थे ॥९॥**

**अनुवाद**— वहाँपर देवर्षि ने हंस विमान से आये हुए अपने पिता ब्रह्माजी को देखकर अचानक स्वायम्भुव मनु और प्रियव्रत के साथ खड़े हो गये और सबों ने हाथ जोड़कर उनको प्रणाम किया ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

हंसयानेनोपलक्षणेनैनं पितरमुपलभमानो मत्पिताऽयमिति लक्षयन् पितापुत्राभ्यां मनुप्रियव्रताभ्यां सह नारदः कृताञ्जलिः सन्सहसैवाभ्युत्थायार्हणेन पूजया सहोपतस्थे तुष्टाव । प्रियव्रतं तदा मन्दरद्रोण्यां नारद उपदिशति मनुश्च तं नेतुमागतोऽस्तीति ज्ञातव्यम् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

हंस विमान रूपी उपलक्षण के द्वारा ये मेरे पिता ब्रह्माजी आये हैं इस प्रकार से जानकर मनु और प्रियव्रत के साथ नारदजी अचानक खड़ा होकर उनकी पूजा करके उनकी स्तुति किए । नारदजी मन्दराचल की घाटी में प्रियव्रत को आत्मज्ञान का उदेश देंगे यह जानकर स्वायम्भुव मनु भी प्रियव्रत को लेने के लिए आये हुए थे यह जानना चाहिए ॥९॥

**भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥१०॥**

**अनुवाद**— परीक्षित् ! नारदजी ने ब्रह्माजी की अनेक प्रकार से पूजा की तथा सुन्दर वचनों के द्वारा उनके गुणों और अवतार का वर्णन किया । उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने प्रियव्रत की ओर मन्द मुस्कान युक्त दयादृष्टि से देखते हुए कहा ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

हे भारत ! भगवानादिपुरुषो ब्रह्मापि तं प्रियव्रतमिति होवाचेत्यन्वयः । तेन नारदेनोपनीतमर्हणं यस्य सः । सूक्तवाकेन यथोचितवाक्येन । अतिशयेनोदता वर्णिता गुणगणा अवताराः सुजयाः सर्वोत्कर्षाश्च यस्य ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

इस वाक्य का अन्वय इस प्रकार है हे परीक्षित् ! भगवान् आदि पुरुष ब्रह्मजी ने प्रियव्रत को इस प्रकार से कहा । नारदजी उनकी पूजा कर ली थी और सुन्दर वचनों के द्वारा उन्होंने ब्रह्माजी के गुण समूह, अवतार और सर्वोत्कृष्टता का भी वर्णन किया ।।१०।।

श्रीभगवानुवाच

**निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि माऽसूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ।**
**वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ।।११।।**

**अन्वयः**— हे तात ! इदम् ऋतं ब्रवीमिति निबोध, अप्रमेयं देवम् असूयितम् मा अर्हसि । वयं, भव, ते तत, एष महर्षिः, सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् वहामः ।।१।।

**ब्रह्माजी ने कहा**

**अनुवाद**— हे वत्स मै तुमसे सत्य सिद्धान्त की बात कहता हूँ इसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो । तुम्हें श्रीभगवान् के प्रति किसी प्रकार की दोष दृष्टि नहीं रखनी चाहिए । मैं शङ्करजी तुम्हारे पिता मनु तथा ये तुम्हारे गुरु महर्षि नारद भी विवश होकर उन्हीं की आज्ञा का पालन करते हैं ।।११।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रवृत्तिनिष्ठं मद्वाक्यं प्रतिकूलं मत्वा मय्यसूया करिष्यतीति शङ्कमानो नाहमेवं वदामि किंतु मन्मुखेन हरिरेव त्वामाज्ञापयतीति वदन् प्रवृत्तिनिवृत्तिरहस्यमाह-निबोधेति नवभिः । ऋतं सत्यम् । अप्रमेयं देवमसूयितुं दोषारोपेण द्रष्टुं नार्हसि । ते तव ततस्तात एष त्वद्गुरुश्च महर्षिः । दिष्टमादिष्टमाज्ञां विवशा अस्वतन्त्राः सन्तो वहामः ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

मेरे वाक्य को प्रवृत्ति परक मानकर प्रियव्रत मेरे प्रति दोष दृष्टि कर सकते हैं, इस शङ्का से ब्रह्माजी ने कहा मैं ऐसी बात नहीं कह रहा हूँ अपितु मेरे मुख से श्रीहरि ही इस बात को कहवा रहे हैं इस तरह से ब्रह्माजी ने नव श्लोकों में प्रवृत्ति और निवृत्ति के रहस्य को बतलाया । ब्रह्माजी ने कहा मैं ऋत अर्थात् सत्य कह रहा हूँ। अप्रमेय, श्रीभगवान् के प्रति दोष दृष्टि नहीं करनी चाहिए । दिष्ट शब्द आज्ञा का वाचक है । तत शब्द से पिता मनु को कहा गया है । मैं ब्रह्माजी शङ्करजी तुम्हारे पिता और तुम्हारे गुरु नारदजी ये सभी विवश होकर उनकी ही आज्ञा का पालन करते हैं ।।११।।

**न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वा ।**
**नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा कृतं विहन्तु तनुभृद्विभूयात् ।।१२।।**

**अन्वयः**— तस्य कृतं कश्चित् तनुभृत तपसा, विद्यया वान योगवीर्येण, मनीषया वान अर्थधर्मैः परतः स्वतः वा विहन्तुं न विभूयात् ।।१२।।

**अनुवाद**— उनके विधान को कोई भी शरीरधारी तपस्या या विद्या के द्वारा या योग के बल से, या बुद्धि के बल से, या धन से या अर्थ से या अपने या दूसरे की सहायता से, विघटित नहीं कर सकता है ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

विवशत्वमेवाह चतुर्भिः-नेति । तस्य कृतं तेन निर्मितं तनुभृज्जीवस्तपआदिभिर्विहन्तुमन्यथाकर्तुं न विभूयात्प्रभुर्न भवेत्। मनीषया सामादिबुद्धिबलेन । परतो बलवदाश्रयात् ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

विवशता को ही चार श्लोकों में बतलाते है । श्रीहरि के द्वारा किए गये विधान को कोई भी शरीरधारी तपस्या आदि के द्वारा मनीषा साम आदि बुद्धि बल के द्वारा तथा दूसरे की सहायता से भी विघटित करने में समर्थ नहीं हो सकता है ।।१२।।

**भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय ।**
**सुखाय दुःखाय च देहयोगमव्यक्तदिष्टं जनताऽङ्ग धत्ते ।।१३।।**

**अन्वयः**— हे अङ्ग ! अव्यक्त दिष्टं जनता देहयोगम् भवाय, नाशाय शोकाय, मोहाय, भयाय सुखाय, दुखाय च कर्म कर्तुं सदा धत्ते ।।१३।।

**अनुवाद**— हे वत्स ! उसी अव्यक्त ईश्वर के दिए हुए शरीर को सभी जीव जन्म, मरण, शोक, मोह, भय और सुख दुःख का भोग करने के लिए तथा कर्मों को करने के लिए धारण करते हैं ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र देहयोगे तावत्पारतन्त्र्यं प्रसिद्धमित्याह-भवायेति । भवो जन्म । भवाद्यर्थमव्यक्तेनेश्वरेण दिष्टं दत्तं देहयोगं जनता जीवसमूहः सदा धत्ते, नत्वन्यथाकर्तुं शक्नोति । अङ्ग हे प्रियव्रत ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

सर्व प्रथम देह धारण करने में जीव की परतन्त्रता को बतलाते हैं । भव शब्द जन्म का वाचक है । हे प्रियव्रत ! उन परमेश्वर के ही द्वारा प्रदत्त शरीर को जीव समूह जन्मादि के लिए ही धारण करता है, उसको कोई अन्यथा नहीं कर सकता है ।।१३।।

**यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ।**
**सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ।।१४।।**

**अन्वयः**— वत्स नसि प्रोताः द्विपदे चतुष्पदः इव वयं सर्वे यदवाचितन्त्यां गुणकर्म सुदुस्तरैः दामभिः सुयोजिताः ईश्वराय बलिम् वहामः ।।१४।।

**अनुवाद**— हे वत्स ! जिस तरह नथा हुआ पशु मनुष्यों का बोझ ढोता है उसी तरह से हम सभी लोग ईश्वर की वेदवाणी रूपी रस्सी में सत्त्वादि गुण सात्त्विक आदि कर्म और उनके ब्राह्मणादि वाक्यों की मजबूत डोरी में जकड़े हुए है । हमलोग उन्हीं की इच्छा के अनुसार कर्मों को करते हैं और उसके द्वारा उनकी पूजा करते हैं।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

कर्मकरणेऽपि पारतन्त्र्यमाह-यद्वाचीति । यस्य वाचि वेदलक्षणायां तन्त्यां दामन्यां गुणाः सत्त्वादयस्तत्पूर्वकाणि च यानि कर्माणि तन्निबन्धनैर्दामभिर्ब्राह्मणादिशब्दैः सुदुस्तरैः सुदृढैर्हे वत्स, वयं सर्वे सुयोजिता निबद्धाः सन्तस्तस्मै ईश्वराय बलिं वाहामस्तदिच्छया कर्म कुर्मः । नसि नासिकायां प्रोता बद्धाः सन्तश्चतुष्पदो बलीवर्दा यथा द्विपदे पुरुषाय ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

कर्मों के भी करने में होने वाली परतन्त्रता को ब्रह्माजी बतलाते हैं वत्स नाक में नाथ से नथा हुआ पशु जिस तरह मनुष्यों का बोझ ढोने के लिए बाध्य है उसी तरह हम सभी लोग परमात्मा की वेदवाणी रूपी सत्त्वादि

गुण पूर्वक किए जाने वाले वास्तविक कर्मों तथा उसके ब्राह्मण वाक्यों की मजबूत डोरी में हम सभी बँधे हुए हैं और ईश्वर की इच्छा के अनुसार कर्मों को करते हुए उनकी आराधना करते हैं ॥१४॥

**ईशाभिसृष्टं ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग दुःखं सुखं वा गुणकर्मसङ्गात् ।**
**आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथश्चक्षुष्मताऽन्धा इव नीयमानाः ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे अङ्ग ! गुणकर्मसङ्गात् ईशाभिसृष्टं दुःखं सुखं वा अवरुन्ध्महे, नाथः यदयुङ्क्त तत् तत् आस्थाय चक्षुष्मतानीयमानाः अन्धा इव ॥१५॥

**अनुवाद**— हे प्रियव्रत हमारे गुणों एवं कर्मों के अनुसार परमात्मा ने हमें जिस जिस योनि के जो-जो शरीर प्रदान किया हैं हम उसी-उसी का अनुसरण करते हैं और उस शरीर से होने वाले सुखों और दुःखों को उसी तरह से स्वीकार करके सहने के लिए बाध्य हैं। जिस तरह अन्धों को ले चलने वाला जहाँ-जहाँ चाहता है वहाँ-वहाँ जाने के लिए वे अन्धे बाध्य होते हैं ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

भोगेषु पारतन्त्रयमाह । ईशा ईश्वरेणाभिसृष्टं दत्तमेवाङ्ग हे प्रियव्रत, अवरुन्ध्महे स्वीकुर्मः । यथा स्वामिना दत्तमेव कणिशादि बलीवर्दा भक्षयन्ति न स्वेच्छया तद्वत् । न चैवं वैषम्यमीश्वरस्य । यतो गुणकर्मसङ्गान्नाथो यद्यद्देवतिर्यगादिलक्षणं देहमयुङ्क्त योजितवांस्तत्तदास्थाय स्वीकृत्य । यथाऽन्धाश्चक्षुष्मता छायामातपं वा नीयमानाः सन्तस्तत्रैव गच्छन्ति तद्वत् ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

भोग के भी विषय में जीवों की परतंत्रता को बतलाते हुए ब्रह्माजी ने कहा हे प्रियव्रत ! परमात्मा के द्वारा प्रदत्त सुख दुःख आदि भोगों को सहने के लिए सभी जीव बाध्य है । जैसे स्वामी के द्वारा प्रदत्त भक्ष्य पदार्थों को ही बैल खाते हैं वे अपनी इच्छानुसार वस्तुओं को नहीं खाते हैं । इन सभी कार्यों में ईश्वर का वैषम्य भी नहीं होता है । हमारे जैसे गुण कर्म वे हैं उसी के अनुसार परमात्मा हमलोगों के देव, मनुष्य अथवा तिर्यग्योनि का शरीर प्रदान करते हैं और हम सभी जीव उसी को स्वीकार करके उनकी इच्छा का उसी तरह से अनुसरण करते हैं जिस तरह कोई नेत्रों वाला पुरुष अन्धों को जहाँ और जैसे ले जाना चाहता है, उन अन्धों को भी उस पुरुष की इच्छा के अनुसार ही जाना पड़ता है ॥१५॥

**मुक्तोऽपि तावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ।**
**यथानुभूतं प्रतियातनिद्रः किं त्वन्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते ॥१६॥**

**अन्वयः**— अभिमानशून्यः मुक्तः अपि आरबधम् अशनन् स्वदेहं विभृयात् । यथा अनिद्रः यथानुभूतं प्रतियात किन्तु अन्यदेहाय गुणान् न वृङ्क्ते ॥१६॥

**अनुवाद**— अभिमान से रहित मुक्त पुरुष भी प्रारब्ध का भोग करते हुए श्रीभगवान् की इच्छा का अनुसरण करते हुए अपने शरीर को धारण करता ही है । यह वैसे ही होता है जैसे मनुष्य निद्रा के टूट जाने पर भी स्वप्न काल में अनुभव किए हुए पदार्थों का स्मरण करता ही है । इस अवस्था में भी उसको अभिमान नहीं होता है । तथा विषय वासना के जिन संस्कारों के कारण दूसरा जन्म होता है उन सबों को भी वह स्वीकार नहीं करता है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

नन्वेतत्सर्वमविदुष एव न त्वात्मविद इत्याशङ्क्याह-मुक्तोऽपीति । यावत्प्रारब्धं कर्म तावत् । यथा स्वप्नेऽनुभूतं प्रतियातनिद्रो गतनिद्रोऽभिमानशून्य एवानुस्मरति तर्हि भोगवासनया पुनर्जन्म भवेत्तत्राह । किंतु देहान्तरारम्भकान्गुणान्कर्माणि वासनाश्च न वृङ्क्ते न संभजते ॥१६॥

## भाव प्रकाशिका

यदि यह कहे कि ये सारी बातें केवल अज्ञानी पुरुषों के लिए होती है आत्मज्ञ पुरुष के लिए ऐसी बात नहीं है तो ब्रह्माजी इस पर **मुक्तोऽपि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। जब तक प्रारब्ध कर्म बना रहता है तब तक मुक्त जीव को भी शरीर धारण किए रहना पड़ता है। जैसे जिसकी नींद टूट गयी है वह व्यक्ति स्वप्न में अनुभव किए हुए पदार्थों का स्मरण करता है, किन्तु उसका वह अभिमान नहीं करता है। यदि कहें कि तब तो भोग की वासना के कारण पुनर्जन्म भी होगा तो इस पर कहते हैं कि वह मुक्त देहान्तर को उत्पन्न करने वाले गुणों, कर्मों और वासनाओं को स्मरण नहीं करता है ॥१६॥

**भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ।**
**जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥१७॥**

**अन्वयः—** प्रमत्तस्य वनेषु अपि भयं स्यात् यतः सः सषटसपत्नः आस्ते जितेन्द्रियस्य आत्मरतस्य गृहाश्रमः किं नु अवद्यं करोति ॥१७॥

**अनुवाद—** जो पुरुष इन्द्रियों के वशीभूत है वह यदि वनों में भी विचरण करता रहे तो भी उसे जन्म-मरण का भय बना रहेगा क्योंकि बिना जिते हुए उसके मन और पाँच इन्द्रिय रूपी शत्रु उसका साथ नहीं छोड़ते है। जो बुद्धिमान् पुरुष अपनी इन्द्रियों को जीतकर अपनी आत्मा में रमण करते है उनका गृहस्थाश्रम कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है ॥१७॥

## भावार्थ दीपिका

ननु गृहे वर्तमानस्य भोगान्भुञ्जानस्य कुतोऽभिमानाभावो मोक्षो वा। अतस्तत्त्यागेन वनवास एव युक्तस्तत्राह। भयं संसारः स्यादेव। प्रमत्तस्य अजितेन्द्रियस्य। वनेष्विति सङ्गभिया वनाद्वनान्तरं गच्छतोऽपीत्यर्थः। सहैव षट् सपत्नाः शत्रवो मनोबुद्धीन्द्रियाणि च यस्य स तथाभूत एव वनेष्वपि यत आस्ते बुधत्वेन जितेन्द्रियत्वादात्मरतेरात्मारामस्यावद्यं रागादिदोषं किं नु करोति न करोत्येव ॥१७॥

## भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि जो गृहस्थाश्रम में रहकर भोगों को भोगता है। उसको अभिमान का अभाव अथवा मोक्ष कैसे हो सकता है ? अतएव गृह का त्याग करके वन में ही रहना चाहिए। इस पर ब्रह्मा जी कहते है। भय संसार को कहते हैं। जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ वश में नहीं है, उस व्यक्ति को वन में भी जाने पर संसार का भय रहता ही है। क्योंकि साथ में मन तथा पाँच इन्द्रियाँ ये छह शत्रु बने ही रहते हैं। जो ज्ञानी व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है उसका गृहस्थाश्रम कुछ भी नहीं विगाड़ सकता है ॥१७॥

**यः षट्सपत्नान्विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ।**
**अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥१८॥**

**अन्वयः—** यः षट्सपत्लान् गिजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम्। दुर्गाश्रितः ऊर्जितारीन् अत्येति। क्षीणेषु विपश्चित् कामं विचरेत् ॥१८॥

**अनुवाद—** जो पुरुष इन छहो शत्रुओं को जीतना चाहता है उसे गृहस्थाश्रम में ही रहकर उनको जीतने का प्रयास करना चाहिए। किले के भीतर रहकर लड़ने वाला राजा अपने प्रबल शत्रुओं को जीत लेता है। उसी तरह इन्द्रिय रूपी शत्रुओं के वश में हो जाने पर आत्मज्ञ पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करे ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

ननु गृहे वसतः पुरुषस्य रागादय; संभवन्ति, नतु वन इत्याशङ्क्याह य इति । यः षट् वैरिणः षडिन्द्रियाणि विजिगीषमाणः स पूर्वं गृहेषु स्थित्वा तेषामत्यन्तं निरोधमकुर्वन् जेतुं यतेत । क्षीणेष्वरिषु कामं गृहेऽन्यत्र वा विचरेत् । यतो लोके ऊर्जितारीन् दुर्गाश्रित एवात्येति जयति । पश्चाद्दुर्गे वान्यत्र वा वर्तेत । युध्येतेति पाठे प्रहरेदित्यर्थः ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि गृहस्थाश्रम में रहने वाले पुरुष की तो स्त्रियाँ होती है, वन में रहने वाले की स्त्रियाँ नहीं होती हैं । इसके उत्तर में ब्रह्माजी ने कहा जो पुरुष शत्रु रूपी छहो इन्द्रियों को वश में करना चाहता है उसे घर में ही रहकर इन्द्रियों का अत्यन्त निरोध नहीं करके उनको अपने वश में करने का प्रयास करना चाहिए । जब इन्द्रिया रूपी शत्रु क्षीण हो जायँ (वश में) हो जायँ तो वह आत्मज्ञ पुरुष घर में रहे अथवा वन में रहें लोक में भी देखा जाता है कि किले के भीतर रहकर युद्ध करने वाला राजा अपने बलवान् शत्रुओं को भी जीत लेता है । शत्रुओं को जीत लेने के बाद वह चाहे घर में रहे या वन में रहे । जहाँ **युध्येत्** पाठ हैं वह मारे यह अर्थ होगा ।।१८।।

**त्वं त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ।**
**भुङ्क्ष्वेह भोगान्पुरुषातिदिष्टान्विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ।।१९।।**

**अन्वयः**— त्वं तु अब्जनाभाङ्घ्रि सरोज कोशदुर्गाश्रितः निर्जितषट्सपत्नः पुरुषातिदिष्टान भोगान इह भुंक्ष्व विमुक्तसंगः प्रकृतिम् भजस्व ।।१९।।

**अनुवाद**— तुम यद्यपि पद्मनाभ भगवान् के चरण कमल के कोश रूपी किले में रहकर अपनी इन्द्रियों को वश में कर चुके हो फिर भी परम पुरुष के द्वारा प्रदत्त भोगों को भोगो उसके पश्चात् तुम अनासक्त होकर अपने आत्म स्वरूप में स्थित हो जाना ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

इदं च गृहदुर्गाश्रयणं प्राकृतानां, त्वं त्वब्जनाभस्याङ्घ्रिसरोजकोश एवं दुर्गं तदाश्रितोऽत एवं निर्जितषट्सपत्नश्च तथापि पुरुषेणेश्वरेणातिदिष्टान्दत्तान्भोगांस्तावद्भुंक्ष्व । पश्चाद्विमुक्तसङ्गः सन्प्रकृतिं स्वरूपं भजस्व । आत्मनिष्ठो भवेत्यर्थः ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

इस गृह रूपी दुर्ग का आश्रयण करना तो प्रकृत पुरुषों के लिए है, तुम तो श्रीभगवान् के चरण कमल के कोश रूपी किले के भीतर रहकर अपनी इन्द्रियों को वश में कर चुके हो फिर भी परमात्मा के द्वारा प्रदत्त भोगों को पहले भोगो । उसके पश्चात् अनासक्त होकर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो जाना ।।१९।।

श्रीशुक उवाच

**इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयावनतशिरोधरो बाढमिति सबहुमानमुवाह ।।२०।।**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— इस प्रकार से त्रिलोकी के गुरु श्रीब्रह्माजी के द्वारा कहे जाने पर महाभागवत प्रियव्रत स्वयं छोटे होने के कारण शिर झुकाकर कहे बहुत अच्छा, इस तरह से ब्रह्माजी के आदेश को बहुमान पूर्वक शिरोधार्य किया।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

आत्मनस्ततो लघुतयाऽल्पतया तच्छासनमङ्गीचकार । यद्वा आत्मनो यदनुशासनं तदलघुतया गौरवेण बाढं तथा करिष्यामीत्यवनतकन्धरः सन् जग्राह ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

स्वयं ब्रह्माजी से छोटे होने के कारण ब्रह्माजी की आज्ञा को स्वीकार किए अथवा आत्मा के अनुशासन के छोटा नहीं होने के कारण उसके गौरव के कारण ठीक है ऐसा ही करूँगा यह अपने कन्धे को झुकाकर कहे।।२०।।

**भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ।।२१।।**

**अनुवाद**— उस समय प्रसन्न होकर मनु ने ब्रह्माजी की पूजा की इसके पश्चात् जब प्रियव्रत और नारदजी उनको सरल भाव से देख रहे थे उसी समय ब्रह्माजी वाणी और मन के अविषय भूत सर्व व्यवहारातीत परं ब्रह्म का चिन्तन करते हुए अपने लोक में चले गये ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

मनुना संतुष्टेनोपकल्पिता पूजा यस्य । प्रियव्रतस्य योगभ्रंशान्नारदस्य च शिष्यनाशात्कुटिलमीक्षणं संभवति, तत्तु नास्तीत्याह। अविषमं यथा तथा तयोरभिसमीक्षमाणयोः सतोरात्मनः सम्यगवस्थानमवाङ्मनसं वाङ्भनसयोरविषयं क्षयं निवासं जगाम। पाठान्तरे अवाग्वाचामगोचरं कथंचिन्मनसः क्षयं विषयमतोऽव्यवहृतं व्यवहारशून्यं ब्रह्मनिवृत्तं प्रवर्तयन् । व्यवहाराद्विषण्णः सन् व्यवहारातीतं स्वरूपं चिन्तयन्नन्तर्हित इत्यर्थः ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

उस समय संतुष्ट होकर मनु ने ब्रह्माजी की पूजा की, प्रियव्रत के योगभंश होने तथा नारदजी के शिष्य नाश होने के कारण उन दोनों को ब्रह्माजी को कुटिल दृष्टि से देखना चाहिए था, किन्तु वे दोनों ऐसा न करके ब्रह्माजी को सरल दृष्टि से देख रहे थे, वे मन और वाणी के अविषय भूत अपने निवास स्थान में चले गये । जहाँ पर पाठान्तर है वहाँ पर तो अर्थ होगा कि किसी प्रकार मन के विषयभूत व्यवहारशून्य परंब्रह्म के व्यवहारातीत स्वरूप का चिन्तन करते हुए अपने लोक में चले गये ।।२१।।

**मनुरपि परेणैवं प्रतिसन्धितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशया उपरराम ।।२२।।**

**अनुवाद**— मनुजी भी ब्रह्माजी के ही द्वारा अपने मनोरथ के पूर्ण हो जाने पर नारदजी की अनुमति प्राप्त करके अपने पुत्र प्रिय व्रत को सम्पूर्ण भूमण्डल की रक्षा का भार सौप कर स्वयम् अत्यनत विषम विषय रूपी विषैले जल से भरे हुए जलाशय भोग की इच्छा से निवृत्त हो गये ।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

पुत्रं राज्येऽभिषिच्य वनं यास्यामीत्येवं यो मनोरथः स परेण ब्रह्मणैव प्रतिसन्धितः संपादितो यस्य सः । नारदस्यानुमतेन राज्ये स्थापयित्वाऽतिविषमो दुस्तरो यो विषयविषजलाशयो गृहं तस्याशा दिक् प्रवृत्तिवासना भोगेच्छा वा तस्या उपरतोऽभूत्।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

पुत्र को राज्य समर्पित करके मैं वन में चला जाऊँगा अपने इस मनोरथ की पूर्ति से ब्रह्माजी के ही द्वारा सम्पादित हुए देखकर प्रियव्रत को राज्य समर्पित करके अत्यनत विषम विषय रूपी जल से परिपूर्ण गृहस्थाश्रम के भोग की इच्छा से निवृत्त हो गये ।।२२।।

**इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनापरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ।।२३।।**

**अनुवाद**— इस तरह पृथिवी पति महाराज प्रियव्रत परमात्मा की ही इच्छा से राज्य प्रशासन के कार्य में नियुक्त हो गये और जो परमात्मा सम्पूर्ण जगत् के बन्धन से मुक्त करने में समर्थ हैं उन आदि पुरुष के ही चरण युगल का ध्यान करते रहने से महाराज प्रियव्रत के हृदय के रागादि सभी बल विनष्ट हो चुके थे । और उनका हृदय भी शुद्ध था फिर भी बड़े का मान रखने के लिए वे पृथिवी का प्रशासन करने लगे ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

यत्पृष्टं गृहे कथमरमत तत्रोक्तमुत्तरमुपसंहरति । इति ह वाव इत्थमेव हि अधिनिवेशितः प्रापितः कर्माधिकारो यस्य। अखिलस्य जगतो बन्धध्वंसनः परोऽनुभावो यस्य तस्य यदङ्घ्रियुगलं तस्यानवरतं ध्यानं तदनुभावेन परिरन्धितकषायो दग्धरागादिमल आशयो यस्य । अतोऽवदातः शुद्धोऽपि महतां ब्रह्मादीनामाज्ञापालनेन मानवर्धनः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

महाराज परीक्षित् ने यह जो पूछा था कि वे किस प्रकार गृह में रत रहे इस प्रश्न के उत्तर का उपसंहार करते हुए श्रीशुकदेवजी इस दण्डक से कहते हैं कि इस प्रकार से राज्य प्रशासन के कार्य में नियुक्त महाराज प्रियव्रत सम्पूर्ण जगत् के बन्धन के विनष्ट करने के प्रभाव वाले श्रीभगवान् के चरण युगल का निरन्तर ध्यान करते रहने से, उनके मन का रागादि विनष्ट हो गया था अतएव शुद्ध हृदय वाले वे वृद्ध ब्रह्माजी आदि की आज्ञा का पालन के द्वारा उनका सम्मान बढ़ाये ॥२३॥

**अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यामु ह वाव आत्मजानात्मसमानशील-गुणकर्मरूपवीर्योदारान्दश भावयांबभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥२४॥**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उन्होंने प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री वर्हिष्मती से विवाह किया । उससे उनके दश पुत्र हुए वे सब उन्हीं के समान शीलवान् गुणी, कर्मनिष्ठ, रूपवान और पराक्रमी थे । उन सबों से छोटी ऊर्जस्वती नाम की एक कन्या भी हुई ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

उ इति विस्मये । ह इति प्रसिद्धौ । वावेति निश्चये । आत्मनः समानैः शीलादिभिरुदारान्महतो दश पुत्रान् जनयामास॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

मूल में प्रयुक्त उ यह अव्यय विस्मयार्थक है और यह प्रसिद्धार्थक है । वाव यह निश्चियार्थक अव्यय है। उन्होंने अपने ही समान शील आदि के द्वारा उदार और महान् दश पुत्रों को उत्पन्न किया ॥२४॥

**आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामानः॥२५॥**

**अनुवाद**— उन सबों के नाम थे- आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि । उन सबों के नाम अग्नि के ही थे ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

तानाह । आग्नीध्र इध्मजिह्वो यज्ञबाहुर्महावीरो हिरण्यरेता घृतपृष्ठः सवनो मेधातिथिर्वीतिहोत्रः कविश्चेत्यग्नीनां नामानि येषां ते ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी ने उन सबों का नाम बतलाया आग्नीध्र इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेघातिथि वीतहोत्र तथा कवि । इस तरह सबों के अग्नि के ही नाम थे ॥२५॥

**एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रय आसन्नूर्ध्वरेतसस्त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥२६॥**

**अनुवाद**— इन दशों में कवि, महावीर औरसवन ये तीन नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए । ये सब बाल्यकाल से ही आत्मविद्या का अभ्यास करते हुए अन्त में संन्यासाश्रम को ही स्वीकार किये ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

अर्भभावात् बाल्यादारभ्य ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

बाल्यकाल से ही ॥२६॥

**तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीवनिकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥२७॥**

**अनुवाद**— इन निवृत्ति परायण महर्षियों ने संन्यासाश्रम में ही रहते हुए, सभी जीवों के अधिष्ठान भूत और संसार के बन्धन से भयभीत लोगों को आश्रय प्रदान करने वाले श्रीभगवान् वासुदेव के अत्यन्त मनोहर चरण कमलों का निरन्तर चिन्तन किया । उससे प्राप्त अखण्ड और श्रेष्ठ भक्तियोग से उनका अन्त:करण सर्वथा शुद्ध हो गया और उनमें श्रीभगवान् का आविर्भाव हुआ । तब देहादि उपाधि की निवृत्ति हो जाने से उनकी आत्मा की सम्पूर्ण जीवों के आत्मभूत प्रत्यगात्मा में एकीभावसे स्थिति हो गयी ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्मिन्पारमहंस्याश्रमे श्रीमच्चरणारविन्दयोरविरतस्मरणेनाविगलितोऽखण्डितो यः परमो भक्तियोगस्तस्यानुभावेन विशोधितान्तः करणे प्रतीतो यो भगवांस्तस्मिन्नात्मनस्त्वंपदार्थस्य तादात्म्यमविशेषेण विशेषो देहाद्युपाधिस्तदपोहेन प्रापुः ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

उस पारमहंस्याश्रम (संन्यासाश्रम) में ही श्रीभगवान् के अत्यन्त मनोहर चरण कमलों का निरन्तर चिन्तन करने के कारण अखण्ड भक्ति योग के प्रभाव से अन्त:करण के शुद्ध हो जाने के कारण उसमें आविर्भूत श्रीभगवान् उसमें आत्मा के तादात्म्य के सामान्यत: देहादि उपाधियों के दूर हो जाने से प्राप्त किया ॥२७॥

**अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन्नुत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥२८॥**

**अनुवाद**— महाराज प्रियव्रत की दूसरी पत्नी से उत्तम, तामस और (रैवत) ये तीन पुत्र हुए जो अपने नाम वाले मन्वन्तरों के अधिपति हुए ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२८॥

**एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादश परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसंभृतदोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥२९॥**

**अनुवाद**— इस प्रकार कवि आदि अपने तीन पुत्रों के निवृत्ति परायण हो जाने पर राजा प्रियव्रत ने ग्यारह अरब वर्षों तक पृथिवी का प्रशासन किया । जब कभी भी वे अखण्ड पुरुषार्थमयी तथा पराक्रम सम्पन्न अपनी भुजाओं

से धनुष की डोरी खींचकर टङ्कार करते थे, उस समय सभी धर्मद्रोही छिप जाते थे, प्रिय पत्नी बर्हिष्मति के अनुदिन समृद्ध होने वाले आमोद प्रमोद औरप्रसरण (अभ्युत्थान) आदि क्रीडाओं और स्त्रीजनोचित शृङ्गारानुकूल हाव-भावों लज्जा से सङ्कुचित मन्दमुस्कान युक्त चितवन और मन को लुभाने वाले विनोद आदि से महामना प्रियव्रत विवेकहीन पुरुष के समान आत्म विस्मृत होकर समस्त भोगों को भोग रहे थे ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

उपशमाश्रयेषु सत्सु । दशकोटिभिरेकमर्बुदम् । एतादृशानि वर्षाणामेकादशार्बुदानि जगतीं बुभुज इत्यन्वयः । राज्ञो धर्मपालनविषयभोगप्रभावैर्भाव्यम् । तत्रानायासेनैव धर्मपालनमाह । अव्याहता अखिलाः पुरुषकाराः पौरुषाणि यस्मात्तेन सारेण बलेन संभृतौ पूर्णौ दोर्दण्डौ तयोर्युगलं तेनापीडित आकृष्टो मौर्वीगुणस्तस्य स्तनितं टङ्कारस्तेनैव युद्धं बिना विरमिता निरस्ता धर्मप्रतिपक्ष येन । भोगातिशयमाह । बर्हिष्मत्याः स्वभार्याया अनुदिनमेधमानैः प्रमोदादिभिः परायभूयमानविवेक इवात एव विषयासक्तयात्मानमनवबुध्यमान इव बुभुजे । तत्र प्रमोद आयान्तं पतिं दृष्ट्वा हर्षस्ततः प्रसरणमभ्युत्यानादिलीला ततो यौषिण्यं योषित्स्वभावकृतशृङ्गारानुभावप्रकाशनं ततो व्रीडया प्रमुषिताः सङ्कुचिता हासावलोकास्ततो रुचिरक्ष्वेल्यादयः परिहासवाक्यादीनि तैः ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

जब महाराज प्रियव्रत के तीन पुत्र निवृत्ति परायण हो गये । उसके पश्चात् वे ग्यारह अरब वर्षों तक पृथिवी का प्रशासन किए राजा को चूकि धर्म पालन तथा विषय भोग के प्रभाव से युक्त होना चाहिए, अतएव राजा प्रियव्रत अनायास धर्म का पालन करते थे । अखण्ड पुरुषार्थ एवं पराक्रम सम्पन्न अपनी भुजाओं से पकड़कर जब वे धनुष की प्रत्यंचा खींचकर धनुष का टङ्कार करते थे तो युद्ध के बिना ही सभी धर्म विरोधी कहीं छिप जाते थे । राजा प्रियव्रत के भोगातिशय्य का वर्णन करते हुए शुकदवजी कहते है । उनकी प्रियतमा पत्नी वहीष्मिती के प्रतिदिन बढ़ने वाले आमोद प्रमोद आदि से मानो उनका विवेक अभिभूत सा हो गया था । विषयों में होने वाली आसक्ति के कारण जैसे वे आत्मतत्त्व को भूल से गये हों । आते हुए पति को देखकर होने वाले हर्ष को प्रमोद कहते हैं । पति को देखकर खड़ा हो जाने को प्रसरण (अभ्युत्थान) कहते हैं इस तरह के हाव-भाव तथा स्त्री स्वभावानुकूल श्रैङ्गारिक अनुभवों के प्रकाशन को यौषिण्य कहते हैं । मन्दमुस्कान से सङ्कुचित हंसी पुस्कृत देखने की कला तथा मनोहर परिहास वाक्यों से महाराज का आत्मज्ञान जैसे अभिभूत हो गया था ॥२९॥

**यावदवभासयति सुरगिरिमनु परिक्रमन्भगवानादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन्समजनेव रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनु पर्यक्रामाद्द्वितीय इव पतङ्गः ॥३०॥**

**अनुवाद**—एक बार उन्होंने जब यह देखा कि भगवान् सूर्य सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते हुए लोकालोक पर्वत पर्यन्त पृथिवी के जितने भाग को प्रकाशित करते हैं, उसमें से आधा ही भाग प्रकाश में रहता है और आधा भाग अन्धकार से ही आच्छन्न रहता है । उस समय श्रीभगवान् की आराधना से महाराज प्रियव्रत का अलौकिक प्रभाव अत्यधिक बढ गया था । उन्हें पृथिवी के आधे भाग को अन्धकार में रहना पसन्द नहीं हुआ । उन्होंने सोचा कि मैं रात्रि को भी दिन बना दूँगा, यह सोचकर सूर्य के ही समान वेग सम्पन्न एक ज्योतिर्मय रथ पर बैठकर दूसरे सूर्य के ही समान सूर्य के पीछे पृथिवी की सात परिक्रमा कर डाले ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रभावातिशयमाह । यावद्वसुधातलं लोकालोकपर्यन्तमवभासयति मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नादित्यस्तस्मिन्नर्धेनैवोपलक्षितं प्रतपति

प्रकाशयत्यर्धेन चावच्छादयति तमसावृणोति तदा द्वितीयः पतङ्गः सूर्य इव पर्यक्रामत् । न चेदमसंभावितम् । यतो भगवदुपासनेनोपचितोऽतिपुरुषः पुरुषानतिक्रान्तः प्रभावो यस्य ।।३०।।

**भाव प्रकाशिका**

महाराज प्रियव्रत के प्रभावातिशय का वर्णन करते हुए शुकदेवजी कहते हैं— सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते हुए भगवान् सूर्य लोकालोक पर्वत पर्यन्त जितनी पृथिवी का प्रकाशन करते हैं उसका आधा भाग ही वे प्रकाशित करते हैं और आधाभाग अन्धकार से आच्छन्न रहता है, इसलिए महाराज प्रियव्रत दूसरे सूर्य के समान वे पृथिवी की परिक्रमा किए । यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसा होना तो असंभव है, क्योंकि श्रीभगवान् की उपासना करने के कारण उनका अतिमानुष प्रभाव बहुत बढ़ गया था ।।३०।।

**ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन्यत एव कृताः सप्तभुवो द्वीपाः।।३१।।**

**अनुवाद**— उस समय उनके रथ के पहिए से जो लीक बनीं वे ही सात समुद्र बन गये और उन सबों के कारण पृथिवी में सात द्वीप हो गये ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**

ये वै उ ह अतिप्रसिद्धास्तस्य रथचक्राग्रकृताः परिखाता गर्ताः यतो यैरेव कृताः ।।३१।।

**भाव प्रकाशिका**

उस समय उनके रथ के अग्रभाग से पृथिवी पर खाई बनी वे ही अत्यन्त प्रसिद्ध सात समुद्र बन गये और उसके चलते पृथिवी पर सात द्वीप हो गये ।।३१।।

**जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथासंख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्तत उपक्लृप्ताः ।।३२।।**

**अनुवाद**— उन द्वीपों के नाम हैं— जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर । इनमें से पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर द्वीप का परिमाण दूना है ये समुद्र के बाहरी भाग में चारो ओर फैले हुए हैं ।।३२।।

**भावार्थ दीपिका**

तानाह–जम्ब्विति । तेषां परिमाणं श्रृण्विति शेषः । पूर्वस्य यद्विस्तारमानं उत्तरस्ततो द्विगुणेन विस्तारमानेनेत्येवं सिन्धुभ्यो बहिः समन्तत उपक्लृप्ता रचिताः ।।३२।।

**भाव प्रकाशिका**

जम्बू इत्यादि के द्वारा उन द्वीपों के नाम बतलाये गये है । राजन् आप उन सबों का परिणाम सुनें । पूर्व-पूर्व द्वीपों का जो परिणाम है, उत्तरोत्तर द्वीपों का उसके दो गुना पमिाण है और ये द्वीप समुद्र के बाहरी भाग में चार ओर फैले हुए हैं ।।३२।।

**क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एवैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्परित उपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान्यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिंविदधे ।।३३।।**

**अनुवाद**— सातो समुद्र क्रमशः क्षारोद (खारेजलवाला) इक्षुरसोद (ईख के रस का जल वाला) सुरोद (मदिरा के जलवाला) घृतोद (घृत का समुद्र) क्षीरोद (दुग्ध समुद्र) मण्डोद (मट्ठा का समुद्र) और शुद्धोद (शुद्ध जल का

समुद्र) ये सातो द्वीपों की खाइयों के सामन हैं । और परिमाण में अपनी भीतर वाले द्वीप के समान हैं । ये प्रत्येक समुद्र एक-एक द्वीप को बाहर से घेरकर स्थित हैं । बर्हिष्मति के प्रति महाराज प्रियव्रत अपने अनुगामी पुत्र आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेघातिथि और वीतिहोत्र को इनमें से प्रत्येक को जम्बू आदि एक-एक द्वीप का स्वामी बना दिया ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

यथा सिन्धुभ्यो बहिरेकैकशो द्वीपा एवं द्वीपानामपि बहिः सिन्धव इत्याह- क्षारोदेति । दधिमण्डो मथितं दधि । एते सप्त जलधयः सप्तद्वीपानां परिखा इवाभ्यन्तरे तैः संवेष्टिता ये द्वीपास्तैः समाना विस्तारतः । बहिर्नान्तः पृथगसंकीर्णतया॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

जैसे समुद्रों से बाहर एक-एक द्वीप और द्वीपों के बाहर समुद्र थे इस बात को **क्षारोद० इत्यादि** के द्वारा कहा गया है । दधि मण्डः अर्थात् मही गयी दही अर्थात् मट्ठा । ये सात समुद्र सातो द्वीपों की खाई के समान थे । उन समुद्रों के भीतर विद्यमान तथा उन समुद्रों से घिरे हुए जो द्वीप थे उनके ही समान विस्तार वाले हैं । वे उन सबों के बाहर हैं भीतर नहीं और सब एक दूसरे से अलग हैं ॥३३॥

**दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानी नाम काव्यसुता ॥३४॥**

**अनुवाद**— उन्होंने अपनी पुत्री ऊर्ज स्वती का विवाह शुक्राचार्य से कर दिया । उसी के गर्भ से शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का जन्म हुआ ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३४॥

**नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ।**
**चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ॥३५॥**

**अन्वयः**— उरुकमस्य तदङ्घ्रि रजसा जितषडगुणानाम् पुंसाम्, एवं विधः पुरुषकारः चित्रं न विदूर विगतः यन्नमधेयम् अधुना सकृत् आददीत सजहाति बन्धम् ॥३५॥

**अनुवाद**— राजन् ! जिन्होंने श्रीभगवान् के चरणारविन्द के रज के प्रभाव से शरीर के भूख प्यास शोक, मोह, जरा, मृत्यु इन छह गुणों को अथवा मन के साथ पाँच इन्द्रियों को जीत लिया है, उन भगवद् भक्तों का इस प्रकार का पुरुषार्थ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि वर्ण बहिष्कृत चाण्डाल आदिनीच योनि का भी पुरुष भगवान् के नाम का एक बार भी उच्चारण करके उसी समय संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

अहो आश्चर्यं राज्ञः सामर्थ्यमिति परीक्षिदभिप्रायज्ञो भगवान्वादरायणिराह–नैवमिति । जिताः षड्गुणा इन्द्रियाणि षडूर्मयो वा यैस्तेषामेवंविधः पुरुषकार इति न चित्रं नासंभावितम् । यतो विदूरविगतोऽन्त्यजोऽपि यस्योरुक्रमस्य नाम सकृदुच्चारयेद्यः सोऽधुना तत्क्षणमेव बन्धं संसारम् । तन्वमिति पाठेऽप्ययमेवार्थः । पाठान्तरे तत्त्वं चाण्डालत्वं जहाति । शुद्धो भवतीत्यर्थः॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

अरे राजा का इस प्रकार का सामर्थ्य अत्यन्त आश्चर्यमय है इस तरह से परिक्षित् के अभिप्राय को जानने वाले श्रीशुकदेवजी ने कहा **नैवम्० इत्यादि** जिन लोगों ने छइ इन्द्रियों को अथवा शरीर में होने वाला षडूर्मियों को जीत लिया हैं उन लोगों का इस प्रकार का ऐश्वर्य होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । क्योंकि वर्ण बहिष्कृत चाण्डाल भी यदि भगवान् का नाम एक बार भी ले लेता है, वह तत्क्षण ही संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है । जहाँ **तन्वम्** पाठ है वहाँ भी अर्थ होगा । जहाँ **तत्त्वं जहाति** पाठान्तर है वहाँ अर्थ चाण्डाल को त्याग देता है होगा ॥३५॥

**स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवात्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥३६॥**

**अनुवाद**— इस प्रकार अतुलनीय बल, पराक्रम से युक्त महाराज प्रियव्रत अपने को देवर्षि नारदजी के चरणों के शरण में जाकर भी पुनः दैववश प्राप्त हुए प्रपंच में फँस जाने से अशान्त के समान देखकर मन-ही-मन विरक्त होकर कहने लगे ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

तस्य पराक्रममुपसंहरन्निवृत्तिक्रममाह-स एवमिति । देवर्षिचरणयोरनुशयनमुपसत्तिस्तदनुपतितो यो गुणविसर्गो राज्यादिप्रपञ्चस्तत्संसर्गेण । आत्मनि मनसि निर्वेदो यस्य ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज प्रियव्रत के पराक्रम का उपसंहार करते हुए कहते है देवर्षि नारदजी के चरणों की शरणागति से उत्पन्न जो राज्य आदि प्रपञ्च के सम्बन्ध से राजा के मन में विराग उत्पन्न हो गया ॥३६॥

**अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयान्धकूपे तदलमलममुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिग्धिगिति गर्हयांचकार ॥३७॥**

**अनुवाद**— अरे ! मैंने बहुत बुरा किया । मेरी इन्द्रियों ने अविद्याकृत विषमय विषय के अन्धकूप में ढकेल दिया । बस-बस बहुत हो गया मैं तो इस स्त्री के द्वारा क्रीडा मृग ही बना दिया गया हूँ । धिक्कार है मुझको इस तरह से उन्होंने अपने को बहुत कोसा ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

तमाह । मयाऽसाध्वनुष्ठितम् । यद्यतोऽभिनिवेशित;, तत्ततः अलमलं विषयैः । विनोदमृगं मर्कटम् ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

वैराग्य प्राप्त राजामन ही मन कह रहे थे मैंने बहुत बुरा काम किया क्योंकि मैं इन विषयोपभोग में अभिनिविष्ट हो गया था । अतएव बहुत विषयोपभोग हो गया । इस स्त्री ने तो मुझे बन्दर ही बना दिया ॥३७॥

**परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सह महाविभूतिमपहाय स्वयं निहित निर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥३८॥**

**अनुवाद**— परम आराध्य श्रीभगवान् की कृपा से उनकी विवेक वृत्ति जागृत हो गयी । उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथिवी को अपने अनुयायी पुत्रों में बाँट दिया और अपनी पत्नी को साम्राज्य लक्ष्मी के साथ मरे हुए शरीर के समान त्याग दिया एवं हृदय में वैरागय धारण करके वे श्रीहरि की लीलाओं का चिन्तन करते हुए उसके प्रभाव से देवर्षि नारदजी द्वारा उपदिष्ट मार्ग का पुनः अनुसरण करने लगे ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

परदेवताया हरेः प्रसादेनाधिगतः प्राप्तो य आत्मप्रत्यवमर्शो विवेकस्तेन नारदस्य पदवीं तदुपदिष्टमार्गमेव पुनरनुससारेत्यन्वयः। किं कृत्वा । अनुगतेभ्यः पुत्रेभ्य इमां पृथ्वीं विभज्य । भुक्तो भोगो यस्तास्तां भार्यां महाविभूतिः साम्राज्यसंपत्तत्सहितां महिषीं मृतशरीरमिव परित्यज्य । तत्र हेतुः-हृदि निहितो निर्वेदो येन । हृदीत्यस्योत्तर'त्राप्यन्वयः । हृदि गृहीतो निश्चितो हरिविहारस्तेनानुभावस्त्यागसामर्थ्यं यस्य ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

परा देवता श्रीहरि की कृपा से प्राप्त विवेक के द्वारा महाराज प्रियव्रत नारदजी के उपदिष्ट मार्ग का ही अनुसरण किए यह इस दण्डक में कहा गया है । प्रश्न होता है कि क्या करके उन्होंने उस मार्ग का अनुसरण किया उसे बतलाते है. पुत्रों में इस पृथिवी का विभाग करके बाँटकर तथा भुक्त भोगा भार्या तथा साम्राज्य लक्ष्मी का परित्याग करके क्योंकि उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया था । किञ्च हृदय में श्रीहरि की लीलाओं का चिन्तन के प्रभाव से त्याग का सामर्थ्य उत्पन्न हो गया था ।।३८।।

**तस्य ह वा एते श्लोकाः ।**

**अनुवाद**— महाराज प्रियव्रत के विषय में ये श्लोक हैं—

**प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् । यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन्सप्तवारिधीन् ।।३९।।**

**अन्वयः**— ईश्वरं बिना प्रियव्रत कृतं कर्म कः नु कुर्यात् । यः छायां घ्नन् नेमिनिम्नैः सप्त वारिधीन् अकरोत् ।।३९।।

**अनुवाद**— ईश्वर को छोड़कर प्रियव्रत के द्वारा किए गये कर्मों को दूसरा कौन कर सकता है जिन्होंने रात्रि के अन्धकार को मिटाने का प्रयत्न करते हुए रथ की पहिया से बनी लीक के द्वारा सात समुद्रों को बना दिया।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

तस्य महिमोपनिबन्धनश्लोकाः पूर्वसिद्धाः कथ्यन्ते । यथा वेदे 'तदप्येष श्लोको भवति' इति । को नु को नाम कुर्यात्। छायां घ्नन् तमो निरस्यन् ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

महाराज प्रियव्रत की महिमा से संबद्ध ये प्राचीन श्लोक है । महाराज प्रियव्रत ने जिन कर्मों को किया उसे ईश्वर को छोड़कर दूसरा कोई नहीं कर सकता । उन्होंने रात्रि को मिटाने के प्रयास में अपने रथ की पहिया के लीक से सात समुद्रों को बना दिया ।।३९।।

**भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः । सीमा च भूतनिर्वृत्त्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ।।४०।।**

**अन्वयः**— येन भूतनिर्वृत्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः सरिद्गिरिवनादिभिः भू संस्थानं सीमा च कृता ।।४०।।

**अनुवाद**— उन्होंने प्राणियों के सौविध्य के लिए द्वीपों द्वारा पृथिवी का विभाग किया और प्रत्येक द्वीप में नदी पर्वत और वन के द्वारा उनकी सीमा भी निश्चित कर दी ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

भूसंस्थानं द्वीपैः कृतम् । सरिद्गिरिवनादिभिः सीमा च येन कृता । भूतानां निर्वृत्त्यै सुखायाविवादाय ।।४०।।

### भाव प्रकाशिका

उन्होंने द्वीपों के द्वारा पृथिवी का विभाग प्राणियों के सौविध्य इसलिए कर दिया कि लोगों में विवाद न हो ओर उन्होंने नदी, पर्वत और वन के द्वारा सीमा का भी निर्धारण कर दिया ।।४०।।

**भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् । यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ।।४१।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे प्रियव्रत विजये प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

**अन्वयः**— पुरुषानुजन यः भौमं, दिव्यं, मानुषं च त्वं कर्मयोगजम् महित्वं निरयौयम्यं चक्रे ।।४१।।

**अनुवाद**— जिनके भगवद् भक्त ही प्रिय थे उन महाराज प्रियव्रत ने पृथिवी के देवलोक के, मर्त्यलोक के, कर्म और योगजन्य भी ऐश्वर्य को नरक के तुल्य समझा ।।४१।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।**

**भावार्थ दीपिका**

भौमं पातालजं दिव्यं स्वर्गजं मानुषं मर्त्यलोकजं महित्वं वैभवं यो निरयतुल्यं मेने । पुरुषानुजना विष्णुभक्तस्त एव प्रिया यस्येति ।।४१।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।**

**भाव प्रकाशिका**

पृथिवी के पाताल के देवलोक के मर्त्यलोक के और काम तथा योगजन्यऐश्वर्य को नरक तुल्य समझा क्योंकि उनको केवल भगवद् भक्त ही प्रिय थे ।।१।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१।।**

# द्वितीय अध्याय

## आग्नीध्र चरित्र

श्रीशुक उवाच

**एवं पितरि संप्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्यगोपायत्॥१॥**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— पिता प्रियव्रत के इस तरह से तपस्या में संलग्न हो जाने पर राजा आग्नीध्र उनकी आज्ञा का पालन करते हुए जम्बूद्वीप की प्रजा का धर्मानुसार पुत्र के समान पालन करने लगे ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

द्वितीये प्रोक्तमाग्नीध्रचरित्रं स्त्रैणसंमतम् । पत्न्यां हि पूर्वचित्त्यां यो नाभिमुख्यानजीजनत् ॥१॥ अस्मिन्वंशे प्रसिद्धोऽयमाग्नीध्रः स्त्रैणपुङ्गवः । विहसन्निव तस्येदं चरितं मुनिरब्रवीत् ॥२॥ जम्बूद्वीपमोको यासां ताः प्रजाः पुत्रवत्पालयामास । धर्मावेक्षमाणः धर्ममवेक्षणो धर्मेणेत्यर्थः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में राजा आग्नीध्र का स्त्री परायण चरित्र वर्णित है । उन्होंने पूर्वचिती नामक पत्नी के गर्भ से नाभि इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया ॥१॥ इस प्रियव्रत के वंश में आग्नीध्र स्त्री परायणपुरुष के रूप में प्रख्यात है । श्रीशुकदेवजी ने इनके चरित का वर्णन उपहास करते हुए से किए ॥२॥ जम्बूद्वीप में रहने वाली प्रजाओं का राजा आग्नीध्र ने धर्मानुसार पुत्र के समान पालन किया ॥१॥

**स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्व्याराधयांबभूव ॥२॥**

**अनुवाद**— एक बार वे पितृलोक की कामना से सत्पुत्र की प्राप्ति के लिए पूजा की सारी सामग्री जुटाकर सुर सुन्दरियों के क्रीडा स्थल मन्दराचल की घाटी में गये और तपस्या में तत्पर होकर प्रजापतियों के पति ब्रह्माजी की आराधना करने लगे ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

पितृलोककामः पुत्रकामः सुरवराणां वनितास्तासामाक्रीडाचलो मन्दरस्तस्य द्रोण्याम् । आभृतानि संपादितानि परिचर्योपकरणानि पुष्पादीनि येन ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

पुत्र प्राप्ति की कामना से श्रेष्ठ सुन्दरियों के क्रीडा स्थल मन्दराचल की घाटी में पूजन की सारी सामग्री पुष्प आदि लेकर गये और ब्रह्माजी की पूजा किए ।।२।।

**तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास ।।३।।**

**अनुवाद**— आदि देव भगवान् ब्रह्माजी आग्नीध्र की अभिलाषा को जान लिए और उन्होंने अपनी सभी प्रधान गायिका पूर्वचिती को उनके पास भेज दिया ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

तदुपलभ्य ज्ञात्वा ब्रह्माऽभियापयामास संभोगार्थं प्रस्थापयामास ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

अग्नीध्र की अभिलाषा को जानकर ब्रह्माजी ने अपनी सभा की प्रधान गायिका पूर्वचिती को सम्भोग के लिए भेज दिए ।।३।।

**सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिबिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहङ्गममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशय-कमलाकरमुपबभ्राम ।।४।।**

**अनुवाद**— आग्नीध्र के आश्रम के सन्निकट एक अत्यन्त मनोहर उपवन था उसी में वह अप्सरा भ्रमण करने लगी । उस उपवन में विभिन्न प्रकार के साधन वृक्षों पर स्वर्णलता फैली हुई थीं । उन वृक्षों पर बैठे हुए अनेक प्रकार के स्थल पर विचरण करने वाले मयूर आदि पक्षियों के जोड़े मधुर बोली बोल रहे थे । उनकी सुन्दर ध्वनि सुनकर सचेत जलकुक्कुट, कारण्डव एवं कलहंस आदि जलपक्षी अनेक प्रकार से कूजन करने लगते थे। उससे वहाँ के कमलवन से सुशोभित स्वच्छ सरोवर ध्वनित होने लगता था ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

सा च तदाश्रमोपवनमुपवभ्रामेत्यन्वयः । रमणीयत्वमेवाह । विविधाश्च निविडाश्च ये विटपिनस्तेषां विटपाः शाखास्तेषां निकरास्तैः संश्लिष्टाः पुरटलताः स्वर्णवल्लयस्तास्वारूढाः स्थलविहङ्गमा मयूरादयस्तेषां मिथुनैः प्रोच्यमानाभिः श्रुतिभिरुच्चार्यमाणैः षड्जादिस्वरैः प्रतिबोध्यमाना ये सलिलकुक्कुटादयस्तैर्विचित्रं यथा तथोपकूजिता नादिता अमला जलाशयास्तेषु कमलानि तेषामाकरमुपवनम् ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

वह पूर्वचिती उस आश्रम के उपवन में भ्रमण करने लगी । उपवन की रमणीयता का वर्णन करते हुए कहते हैं अनेक प्रकार के सघन वृक्षों की शाखाओं पर छायी हुई स्वर्ण लता पर बैठे हुए स्थलचारी पक्षियों के जोड़ों की विविध बोलियों से सावधान जलकुक्कुरों की ध्वनि से ध्वनित निर्मल जलाशय का कमल वन गुंजित होने लगता था ।।४।।

**तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ।।५।।**

**अनुवाद**— पूर्वचित्ती की विलासपूर्ण मनोज्ञ गतिविधि और पादविन्यास की प्रश्न शैली से पग-पग पर उनके

पैरों के नूपुरों की झनकार होती थी । उसको सुनकर राजकुमार आग्नीध्र मे समाधि योग द्वारा मुकुलित कमल मुकुल युगल के समान दोनों नेत्रों को खोल कर देखा ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

सुललिते गमने ये पदविन्यासास्तैर्गतौ विलासो यस्या: । चकारस्तस्याश्चेत्येकवाक्यत्वाय । अनुपदं प्रतिपदम् । खणखणेति ध्वनिं कुर्वतो रुचिरस्य चरणाभरणस्य स्वनम् । आमीलिते नयने एव नलिनमुकुले तयोर्युगलमीषद्विकचय्य किंचिदुन्मील्य व्यचष्ट ददर्श ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

पूर्वचित्ती के मनोज्ञ गमन में किए जाने वाले पदविन्यास के विलास के पद-पद पर उसके चरणों के नूपुर झनकार करते थे । उसकी ध्वनि को सुनकर समाधि योग के कारण वन्द कमल कलि के समान नेत्रों को थोड़ा खोलकर देखा ॥५॥

**तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुधैर्गतिविहारव्रीडाविनयावलोक-सुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणा-मोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥६॥**

**अनुवाद**— तो आग्नीध्र को अपने पास ही वह अप्सरा दिखायी दी । वह मधुकरी के समान प्रत्येक पुष्प को जाकर उसे सूघंती थी । देवताओं और मनुष्यों के मन और नेत्रों को आह्लादित करने वाली अपनी विलासपूर्ण गति क्रीडा चपलता लज्जा एवं विनय युक्त देखने की कला, मधुर स्वर सम्पन्न वाणी एवं मनोहर अङ्गों के द्वारा पुरुषों के हृदय में कामदेव के प्रवेश के लिए द्वार सा बना देती थी । जब कभी वह हँसकर बोलती थी तो ऐसा लगता था कि उसके मुख से अमृतमय मादक मधु झर रहा है । उसके निःश्वास की गन्ध से मदमत्त बने भौंरे उसके मुखकमल को घेर लेते थे । उन भौंरों से बचने के लिए जब वह शीघ्रता से पैरों को उठाकर चलती थी तो उसके स्तन कलश वेणी और करधनीहिलने के कारण अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते थे । इस तरह की उस देवी को देखने से आग्नीध्र के हृदय में कामदेव को प्रवेश करने का अवसर प्राप्त हो गयीं । वे कामदेव के अधीन होकर जड़ के समान कहने लगे ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

तामेव देवी मकरध्वज वशमुपनीतः सन् जडवदिति ह वक्ष्यमाणान्दश श्लोकानुवाच । जाड्यानुकरणं च वैदग्ध्यन तद्वशीकारार्थम् । दिविजानां देवानां मनुजानां च यानि मनांसि नयनानि च तेषामाह्लाददुधैर्गत्यादिभिर्नृणां मनसि कामस्य विवरं प्रवेशद्वारं विदधतीम् । गतिश्च विहारश्च व्रीडा विनययुक्तोऽवलोकश्च सुस्वराण्यक्षराणि चावयवाश्च नेत्रादयस्तैः । निजमुखाद्विगलितममृतमिव स्वादु आसव इव मादकं च यत्सहासं भाषणं तस्मिन्नामोदो निःश्वासगन्धस्तेन मदान्धा ये मधुकरनिकरास्तैरुपरोध आवरणं तेन भयाद्द्रुतः शीघ्रो यः पदविन्यासस्तेन वल्गु स्पन्दनं किंचिच्चलनं स्तनकलशयोः कवरभारे रशनायां च यस्यास्ताम् । तस्या अवलोकनेन विवृतावसरस्य दत्तावकाशस्य ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

उस देवी को देखकर कामार्त बने आग्नीध्र जड़ के समान कहने लगे उनकी बातों का वर्णन दश श्लोकों में किया गया है । नैपुण्य के द्वारा उस सुन्दरी को वशमें करने के लिए जड़ के समान वे अनुकरण कर रहे थे। देवताओं और मनुष्यों के मन और नेत्रों को आह्लादित करने वाली तथा गमनादि के द्वारा मनुष्यों के मन में कामदेव

के प्रवेश द्वार को बनाने वाली उस सुन्दरी की, गति, क्रीडा, लज्जा तथा विनय युक्त देखने की कला से तथा मनोहर माधुर्य पूर्ण वचनों से नेत्र आदि अङ्गों की शोभा से, उसके मुख से निकले हुए अमृतमय स्वादिष्ट मधु के समान मादक, हास युक्त बोली के निःश्वास के गन्ध से मदान्ध बने भौंरे उसके मुख को घेर लेते थे । उन भौंरों के भय से जब वह शीघ्रता से पाद विन्यासकरती थी तो उसके स्तन कलश, कबरी और करधनी चञ्चल हो जाती थीं और वह देखने में सुन्दर लगती थीं उसको देखने से अग्नीध्र के हृदय में प्रवेश करने का अवसर कामदेव को मिल गया और आग्नीध्र जड़ के समान कहने लगे ॥६॥

**का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले मायाऽसि कापि भगवत्परदेवतायाः विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥७॥**

**अन्वयः**— त्वं का, मुनिवर्य ! शैले किं चिकीर्षसि ? भगवत्परदेवतायाः कापि मायासि किम् ? सुहृत् ! विज्ये धनुषि कि विभर्षि, आत्मनोऽर्थे ? किं वा विपिने प्रमत्तान् मृगान् मृगयसे ? ॥७॥

**अनुवाद**— तुम कौन हो ? मुनिवर्य इस पर्वत पर क्या करना चाहते हो ? तुम परम पुरुष भगवान् नारायण की कोई माया हो क्या ? (उसकी भौहों की ओर सङ्केत करके) तुम बिना प्रत्यञ्चा के दो धनुषों को क्यों धारण किए हो ? इनसे तुम्हारा कोई अपना प्रयोजन है क्या ? अथवा इस संसारारण्य में मुझ जैसे मतवाले मृग का शिकार करना चाहते हो ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

का त्वं शैले गिरावस्मिन्किं चिकीर्षसि । मुनिवर्येत्यादिपुंस्त्वेन संबोधनादि जाड्यानुकरणार्थम् । हे मुनिवर्य, नूनं भगवतः, परदेवताभूतस्य मायाऽसि । भ्रुवावालक्ष्याह । हे सुहृत् सखे, विज्ये निर्गुणे धनुषी विभर्षि किमात्मनोऽर्थे तवैव, आभ्यां किं कार्यमस्ति । किं वा प्रमत्तानजितेन्द्रियान्मृगतुल्यानस्मदादीन्मृगयसे । तान्वशीकर्तुं धनुषी धारयसीत्यर्थः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

आग्नीध्र ने कहा तुम कौन हो ? इस पर्वत पर क्या करना चाहते हो ? जड़ता का अनुकरण करने के लिए आग्नीध्र मनुवर्य इत्यादि पुल्लिङ्ग संबोधन आदि करते है । हे मुनिवर्य निश्चित रूप से तुम पर देवता भगवान् नारायण की कोई माया हो ? उस की भौहों को लक्षित करके कहते है, मित्र तुम प्रत्यञ्चा रहित इन दो धनुषों को धारण करते हो, इन धनुषों से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? अथवा जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं ऐसे मृगों के तुल्य हमलोगों को अपने वश में करने के लिए इन धनुषों को धारण करते हो ॥७॥

**बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शान्तावपुङ्खरुचिरावतितिग्मदन्तौ । कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन्न विद्मः क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥८॥**

**अन्वयः**— भगवतः इमौ बाणौ शतपत्रपत्रौ शान्तौ अपुङ्खरुचिरौ अतितिग्मदन्तौ, वने विचरन् कस्मै युयुङ्क्षसि इति न विद्मः नः जड़ धियां तव विक्रमः क्षेमाय अस्तु ॥८॥

**अनुवाद**— कटाक्षों को लक्ष्य करके हे भगवान् आपके ये दोनों बाण बहुत सुन्दर और तीक्ष्ण हैं इनके कमल दल के पङ्ख हैं, देखने में शान्त और पङ्ख हीन हैं । इस वन में विचरण करते हुए तुम किस पर इसका प्रयोग करना चाहते हो इस बात का हमें पता नहीं है । तुम्हारा यह पराक्रम मुझ जैसे जड़ बुद्धियों के लिए कल्याणकारी हो ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

कटाक्षावालक्ष्याह । बाणाविमौ शतपत्रे नेत्रकमले ते एव पत्राणि पिच्छानि ययोः । शान्तौ विभ्रमेण मन्थरौ । पुङ्खाभ्यां विनापि रुचिरौ । पत्रतया कल्पितनेत्राभ्यां परभागस्य पुङ्खस्थानीयस्याभावात् । अतितिग्मौ तीक्ष्णौ दन्तावग्रभागौ ययोस्तौ कस्मै प्रयोक्तुमिच्छसीति न विद्मः । अतो भयादेतावत्प्रार्थयामहे-तवायं विक्रमोऽस्माकं क्षेमायास्तु ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

कटाक्षों को देखकर कहते हैं— ये दोनों बाण तो अत्यन्त सुन्दर हैं, इनके कमल दल के पङ्ख हैं। ये देखने में शान्त तथा मन्थर हैं। ये पङ्खहीन होकर भी मनोज्ञ हैं। पत्र रूप रूप से कल्पित नेत्रों से परभाग पुङ्ख स्थानीय नहीं होने के कारण इनके अग्रभाग अत्यन्त तीक्ष्ण है। इन दोनों का आप किस पर प्रयोग करना चाहते हैं इस बात को हम नहीं समझ पा रहे हैं। अतएव भयभीत मैं भी प्रार्थना करता हूँ आपका यह पराक्रम हमारा कल्याणकारी होए ॥८॥

**शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति गायन्ति साम सरहस्यमजस्त्रमीशम्। युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥९॥**

**अन्वयः**— हे भगवन्! भगवतः परितः इमे शिष्याः पठन्ति सरहस्यं साम अञ्जस्त्रम्ईशाम् गायन्ति। वेदशाखाः ऋषिगणा इव युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः सर्वे भजन्ति ॥९॥

**अनुवाद**— उसके शरीर की सुगन्धि के लोलुप उसका अनुसरण करने वाले भौरों को लक्षित करके— हे भगवन्! आपके ये शिष्यगण आपके चारो ओर अध्ययन कर रहे है लगता है कि निरन्तर सामगान करते हुए ईश्वर की स्तुति कर रहे हैं। ऋषिगण जैसे वेद की शाखाओं का अनुसरण करते हैं उसी तरह से आपकी चोटी से गिरे पुष्पों का सेवन करते हैं ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

तदङ्गपरिमललोभेनानुगच्छतो भ्रमरानालक्ष्याह-शिष्या इति। अजस्त्रं सन्ततं युष्मच्छिखातो विलुलिता विगलिताः सुमनसामभितो वृष्टीगलितानि कुसुमानि भजन्तीत्यर्थः। शुद्धत्वेनोपामा-वेदशाखा इवेति ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके अङ्गों की सुगन्धि के लोभी उसका अनुसरण करने वाले भ्रमरों को देखकर शिष्य इत्यादि श्लोक के अजस्त्र का अर्थ निरन्तर आपकी चोटी से गिरे पुष्पों का ये सभी सेवन करते हैं। उन पुष्पों के शुद्ध होने के कारण उसकी उपमा वेदशाखा से दी गयी है ॥९॥

**वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां ब्रह्मन्नरूपमुखरां श्रृणवाम तुभ्यम्। लब्धा कदम्बरुचिरङ्कविटङ्कबिम्बे यस्यामलातपरिधिः क्व च बल्कलं ते ॥१०॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मन् तुभ्यम् चरण पञ्जर तित्तिरीणां वाचं मुखरां श्रृणवाम परं रूपं न पश्यामः, अङ्कविटङ्कविम्बे कदम्बरुचिः लब्धा यस्याम् अलातपरिधिः ते वल्कलं च क्व ॥१०॥

**अनुवाद**— (नूपुरों की ओर सङ्केत करके) हे ब्रह्मन्! तुम्हारे चरण रूपी पिंजड़ों में विद्यमान तितरों का शब्द तो सुनायी देता है किन्तु उनका रूप नहीं दिखायी देता। करधनी युक्त पीली साड़ी अङ्ग की कान्ति की उत्प्रेक्षा करके तुम्हारे नितम्ब पर कदम्ब कुसुमों की सी आभा कहाँ से आ गयी इनके ऊपर तो अङ्गारों का मण्डल सा भी दिख रहा है किन्तु आपका बल्कल कहाँ है ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

नूपुरस्वनमाकर्ण्याह-वाचमिति। तुभ्यं तव चरणगतपञ्जरयोर्नूपुरयोस्तित्तिरीणामन्तर्गतरत्नानां परं केवलं वाचं श्रृणुमः। कथंभूताम्। अरूपा अदृष्टवक्तृका मुखरा अतिप्रकटा च तां च तां च। पीतं परिधानवस्त्रं नितम्बकान्तित्वेन प्रकल्प्याह। कदम्बकुसुमस्य रुचिर्दीप्तिरङ्कविटङ्कबिम्बे नितम्बस्य सुन्दरमण्डले क्व लब्धा। पाठान्तरे अङ्गेति संबोधनम्। मेखलामालक्ष्याह। यस्यामलातपरिधिर्वर्तते। वस्त्रं नितम्बकान्तित्वेन प्रकल्प्य वस्त्रमदृष्टैव पृच्छति। क्व च ते बल्कलमिति ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

उसकी नूपुर की ध्वनि को सुनकर कहते हैं तुम्हारे चरण रूप पिजड़े में विद्यमान तितिरों की आवाज तो सुनायी देती है पर इनका रूप नहीं दिखता है। ये तित्तिर कैसे हैं इसे बतलाते है, इनका रूप नहीं दिखता है और आवाज सुनायी देती है। पीली साड़ी को नितम्बकी कान्ति रूप से कल्पना करके कहते हैं- तुम्हारे नितम्ब पर कदम्ब कुसुम कान्ति कहाँ से आ गयी है पाठान्तर होने पर अङ्ग यह सम्बुद्धि पद होगा। करधनी को देखकर कहते हैं— जिसके चारो ओर अङ्गार दिखता है। वस्त्र को नितम्ब की कान्ति रूप से कल्याण करके कहते हैं आपका बल्कल कहाँ है ?॥१०॥

**किं संभृतं रुचिरयोर्द्विज शृङ्गयोस्ते मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे। पङ्कोऽरूणः सुरभिरात्मविषाण ईदृग्येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥११॥**

**अन्वयः**— हे द्विज ! रुचिरयोः शृङ्गयों कि भृतम् मध्ये कृशः वहसि। यत्र मे दृशिः श्रिता। आत्मा मिषेण इदृग् सुरभिः अरुणः पङ्कः हे सुभग ! यन् मे आश्रमं सुरभी करोषि ॥११॥

**अनुवाद**— कुङ्कुम मण्डित स्तनों की ओर लक्षित करके कहते हैं— हे द्विज ! आप अपने इन मनोहर शृङ्गों में क्या भर रखे हैं, अवश्य ही इनमें रत्न भरे होंगे इसीलिए आपका मध्यभाग पतला होने पर उसका बोझ ढो रहे हैं। आप अपने इन शृङ्गों पर इस तरह का सुगन्धित लाल लेप क्या लगा रखे हैं ? जिससे आप मेरे आश्रम को सुगन्धित बना रहे हैं ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

स्तनावालक्ष्याह। शृङ्गयोः स्तनयोः किं संभृतं किं पूर्णमस्ति। मनोहरं किंचिदस्तीत्येतावत्तु जानामि। यतो मध्ये कृशोऽपि त्वं कृच्छ्रेण वहसि धारयसि। यत्र च मे दृशिर्दृष्टिः श्रिता संलग्नास्ति। अन्यथेदं द्वयं न घटत इति भावः। स्तनगतं कुङ्कुममालक्ष्याह। पङ्कोऽरुण आत्मनस्तव विषाणे शृङ्गे ईदृगत्यपूर्वः कुत इत्यत आह। येन पङ्केनाश्रमं सुरभीकरोषि सुगन्धयुक्तं करोषीति ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

स्तनों को देखकर कहते हैं आपके इन दोनों शृङ्गों में क्या भरा है ? उसमें कोई अच्छी वस्तु होगी इतना तो मैं जानता हूँ; जिसके कारण शरीर के मध्य भाग के दुर्बल होने पर भी आप उसका वहन कर रहे हैं। उसमें लगी हुई दृष्टि हटना भी नहीं चाहती है। यदि ऐसा नहीं होता तो ये दोनों बातें सम्भव नहीं होती। स्तन में लगे कुङ्कुम को देखकर कहते हैं आपके इन दोनों शृङ्गों पर अपूर्व सुगन्धित यह लाल लेप क्या लगा है ? उस लेप के द्वारा आप मेरे इस आश्रम को सुगन्धित बना रहे हैं ॥११॥

**लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थमुरसाऽवयवावपूर्वौ। अस्मद्विधस्य मनउन्नयनौ बिभर्ति बह्वद्भुतं सरसराससुधादि वक्त्रे ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे सुहृत्तम तावकं लोकं में प्रदर्शय यत्रत्य यत्रत्यइत्थम् उरसा अपूर्वौ अवयवौ, अस्मद् विधस्य मन उन्नयनौ बहुअद्भुतं सरसराजसुधादि वक्त्रे वहति ॥१२॥

**अनुवाद**— मित्रवर्य ! तुम मुझे उस अपने देश को दिखा दो जहाँ के निवासी अपने वक्ष स्थल पर ऐसे अद्भुत अवयवों को धारण करते हैं जिन्होंने हमारे जैसे प्राणियों को क्षुब्ध बना दिया है तथा मुख में विचित्र हाव भाव सरस भाषण और अधरामृत जैसे अद्भुत वस्तुओं को धारण करते हैं ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

लोकं स्थानम् । यत्रत्यो जन उरसा इत्थमपूर्वावयवौ विभर्ति । मनस उन्नयनौ क्षोभकौ । पाठान्तरे इत्थंभूतलक्षणे तृतीया। वक्रे च वह्नद्भुतं बिभर्ति । किं तदाह । रसो मधुरालापः रासो विलासस्ताभ्यां सहिता सुधा अधरामृतम् । आदिशब्दात् स्मितनर्मादि ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में अग्नीध्र कहते हैं कि हे मित्रवर तुम मुझे अपना लोक दिखा दो । लोक निवास स्थान का बोधक है । जहाँ के लोग इस तरह की अपूर्व अवयवों को अपने वक्षः स्थल पर धारण करते हैं । जो हमारे जैसे जीवों को क्षुब्ध करने वाले हैं । मनसोन्नयनौ पाठ के होने पर मनसा में **इत्थभूतलक्षणे** सूत्र से तृतीय विभक्ति मानना चाहिए और अपने-अपने मुख में मधुरालय (मधुर भाषण) और रास (विलास) इन दोनों से युक्त अधरामृत तथा स्मित नर्मादि को धारण करते हैं ।।१२।।

**का वात्मवृन्तिर दनाद्धविरङ्ग वाति विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ।**
**उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचिरासन्नभृङ्गनिकरं सरइन्मुखं ते ।।१३।।**

**अन्वयः**— हे अङ्ग ! का वा आत्मवृत्तिः अदनात् हविः वातिः विष्णोः कला असि अनिमिषोनमकरौ च कर्णौ । ते मुखं इन सरः यत्र उद्विग्न मीन युगंल द्विजपंक्तिरोचिः आसन्नभृङ्गनिकरम् च ।

**अनुवाद**— प्रियवर तुम्हारा भोजन क्या है ? जिसके खाने से हविष्य के समान सुगन्धि निकलती है । निश्चय ही तुम भगवान् विष्णु की कला हो इसीलिए तुम्हारे कानों में कभी पलक नहीं मारने वाले मकराकृति दो कुण्डल हैं। तुम्हारा मुख एक सरोवर के समान है, उसमें तुम्हारे दोनों चञ्चल नेत्र भय से काँपती हुई दो मछलियों के समान है, दन्तपंक्ति हंसों के समान और घुंघराली काली अलकें भ्रमर के समान सुशोभित होते हैं ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

का वा तव लोके आत्मनो देहस्य वृत्तिराहारः । अङ्ग हे सखे, अदनाच्चर्वणाद्धविरिति तत्संबन्धी गन्धो वात्यागच्छति। इति ताम्बूलाभिप्रायम् । अदनाद्बहिरङ्ग भातीति पाठे मम तावद्भोजनाद्बहिर्भूतैव वृत्तिर्भातीत्यर्थः । यतस्त्वं विष्णोः कलाऽसि। विष्णुश्च नाश्नाति । 'अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति' इति श्रुतेः । विष्णोः कलाऽसीत्यत्र हेतुः– तव च कर्णौ विष्णोरिवानिमिषोन्मकरौ। अनिमिषौ रत्नेत्रत्वेन निमेषशून्यावुल्लसन्तौ मकरौ तदाकारे कुण्डले ययोस्तौ । किंच तव मुखं सरइत् सर इव । तदेवाह । उद्विग्नं चञ्चलं मीनयुगलमिव नेत्रद्वयं यस्मिन् । द्विजा दन्तास्तेषां पङ्क्या शेचिः शोभा यस्मिन् । सरसि तु द्विजा राजहंसाः । आसन्नो भृङ्गनिकर इव केशस्तोमः परिमललुब्धभृङ्गस्तोमो वा यस्मिन् ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

हे प्रियवर ! तुम्हारा संसार में आहार क्या है जिसके चबाने से हविष्य के समान सुगन्धि आती हैं, यह अग्नीध्र ने ताम्बूल के अभिप्राय से कहा है । **अदनाद् बहिरङ्ग** पाठ होने पर अर्थ होगा कि मेरे भोजन से भिन्न ही वृत्ति प्रतीत होती है । चूकि तुम भगवान् विष्णु की कला हो भगवान् विष्णु भी नहीं खाते हैं । श्रुति भी कहती हैं 'अनश्ननन्योऽभिचाकशीति' तुम्हारे कानों में रत्न रूपी नेत्र वाले कभी भी पलक नहीं मारने वाले दो मकराकृति कुण्डल हैं, साथ ही तुम्हारा मुख सरोवर के समान है जिसमें भयभीत चञ्चल मछलियों के समान तुम्हारे दो नेत्र हैं, हंसों के समान दन्तपंक्ति हैं । सरोवर में तो राजहंस रूपी द्विज पक्षी रहा करते हैं । इस मुख के सन्निकट में काली घुंघराली अलकें भ्रमर के समान सुशोभित होती हैं ।।१३।।

**योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो दिक्षु भ्रमन्भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ।**
**मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥**

**अन्वयः**— योऽसौ त्वया कर हतः दिक्षु भ्रमन् पतङ्गः मे भ्रमतः अक्षिणी एजयते मुक्त ते वक्रजटाजूटं न स्मरसि? एष लम्पटः अनिलः नीविम्हरतीति कष्टः ॥१४॥

**अनुवाद**— तुम जो अपने करकमलों से मारकर इस गेंद को उछालते हो तब यह दिशाओं और विदिशाओं में जाती हुई मेरे नेत्रों को तो चञ्चल बना ही देती है । साथ ही साथ मेरे मन में भी सावधानी पैदा कर देती है। तुम्हारा यह बाँका जटाजूट खुल गया तुम इसे सम्भालते नहीं ? यह लम्पट वायु महादुष्ट है जो तुम्हारे नीवी वस्त्र को उड़ा देता है ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

पतङ्गः कन्दुको भ्रमतो भ्रमच्चित्तस्य मेऽक्षिणी एजयते चञ्चलता नयति । वक्रकेशसमूहं मुक्तबन्धनं न स्मरसि न संभावयसि किम् । कष्टो धूर्तोऽनिलो नीवीं हरत्येतन्न स्मरसि किम् ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

पतङ्ग शब्द से गेन्द को कहा गया है । इधर-उधर जाती हुई यह गेन्द मुझे चञ्चल चित्त बनाकर मेरे नेत्रों को भी चञ्चल बना देती है । तुम अपने इस घुंघराले केश समूह को याद नहीं करते हो क्या ? यह कष्ट की बात है कि यह धूर्त वायु तुम्हारे नीवी वस्त्र को उड़ा दिया करता है ॥१४॥

**रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ।**
**चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्र मह्यं किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥१५॥**

**अन्वयः**— तपोधन ! तपश्चरतां तपोघ्नं एतत् हि रूपं भवता केन तपसा लब्धम् ? मित्र ! मया सहतप चर्तुम् अर्हसि ! किञ्च वैभवभावनः ब्रह्मा मह्यं किं वा प्रसीदति ॥१५॥

**अनुवाद**— हे तपोधन ! तुमने तपस्वियों को तप से भ्रष्ट करने वाले इस रूप को किस तपस्या से प्राप्त किया है । आओ मेरे साथ ही तपस्या करो । अथवा कहीं ब्रह्माजी ने विश्व के विस्तार की इच्छा से मेरे ही ऊपर कृपा तो नहीं की हैं ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

उपलब्धं प्राप्तम् । मह्यं मम, हे मम मित्र, मया सह तपश्चर्तुमर्हसि । किंच स वै भवभावनः संसृतिविस्तारको ब्रह्मा मे प्रसीदति, त्वां भार्यां कल्पयतीत्यर्थः ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

उपलब्धम् का अर्थ है प्राप्त किया है, मह्यम् अर्थात् मेरे मित्र हे मेरे मित्र ! तुम मेरे साथ ही तपस्या करो। किञ्च विश्व का विस्तार करने वाले ब्रह्माजी तुमको मेरी ही पत्नी तो नहीं बनाये हैं ?॥१५॥

**न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन्मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ।**
**मां चारुशृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥१६॥**

**अन्वयः**— द्विजदेवदत्तं दयितं त्वां न त्यजामि, यस्मिन् विलग्नम् नो मनः दृगपि न याति । हे चारुशृङ्गि ते अनुव्रतं मां नेतुम् अर्हसि, यतः शिवाः सचिव्यः प्रतिसरन्तु ॥१६॥

**अनुवाद**— तुम तो ब्रह्मा की प्यारी देन हो अतएव मैं तुमको नहीं छोड़ सकता हूँ । तुममें तो मेरा मन

और मेरे नेत्र ऐसे लग गये हैं कि कहीं जाते ही नहीं । सुन्दर सीगों वाली ! तुम्हारा जहाँ मन हे मुझे वहीं ले चलो, मैं तो तुम्हारा अनुचर हूँ, तुम्हारी मङ्गलमयी ये सखियाँ मेरे ही साथ रहें ।।१६।।

**भावार्थ दीपिका**

द्विजदेवेन ब्रह्मणा दत्तम् । दृक् मनश्च लग्नं सन्नापयाति । हे चारुशृङ्गि, यतस्ते चित्तं तत्र मां त्वदधीनं नेतुमर्हसि । सचिव्यस्तव सख्योऽपि शिवा अनुकूलाः सत्यो मां प्रतिसरन्त्वनुवर्तन्ताम् । यद्वा एतावत्पर्यन्तं मे याः सचिव्यः सख्यः शिवाः फेरवस्ताः प्रतिसरन्तु नियन्तु, यद्वा वनवासे सहचर्यो हरिण्यः शिवाः प्रतिसरन्तु प्रदक्षिणं गच्छन्तु ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्माजी द्वारा मेरे लिए प्रदत्त तुमको मैं नहीं छोड़ सकता हूँ । तुममें लगा हुआ मेरा मन और नेत्र कही अन्यत्र जाना ही नहीं चाहते हैं । अथवा अब तक जो स्यारिनियाँ वे दूर जायँ और वनवास में सहचरी बनी हुई हरिणियाँ प्रदक्षिणा क्रम से चली जायँ ।।१६।।

श्रीशुक उवाच

**इति ललनानुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधि सभाजयामास॥१७॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् ! आग्नीध्र देवताओं के समान बुद्धिमान और स्त्रियों को प्रसन्न करने में अतिचतुर थे। उन्होंने इस प्रकार की रतिचातुर्यमयी मधुर वाणी से उस अप्सरा को प्रसन्न कर लिया ।।१७।।

**भावार्थ दीपिका**

ग्राम्येषु वैदग्ध्यं यस्यास्तया परिभाषया वाचा । सभाजयामास पूजयामास । संमुखीचकारेत्यर्थः ।।१७।।

**भाव प्रकाशिका**

रचितचातुर्यमयी वाणी के द्वारा उस अप्सरा को आग्नीध्र ने प्रसन्न कर लिया ।।१७।।

**सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः श्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान्बुभुजे ॥१८॥**

**अनुवाद**— वीरों में अग्रगण्य आग्नीध्र की बुद्धि, शील, रूप, अवस्था लक्ष्मी और औदार्य से आकर्षित होकर उन जम्बूद्वीप के स्वामी के साथ कई हजार वर्षों तक पृथिवी और स्वर्ग के भोगों को भोगती रही ।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**

बुद्ध्यादीनां द्वन्दैक्यम् ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

बुद्धिशील रूपवय:श्रियौदार्येण में द्वन्द्व समास होने के कारण एकवचनान्त प्रयोग हैं ।।१८।।

**तस्यामु ह वा आत्मजान्सराजवर आग्नीध्रो नाभिकिंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजनयत् ॥१९॥**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् राजाओं में श्रेष्ठ आग्नीध्र उसके गर्भ से नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्यमय, कुरु, भद्राश्व, और केतुमाल नामक नव पुत्रों को उत्पन्न किए ।।१९।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।१९।।

**सा सूत्वाऽथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥२०॥**

**अनुवाद**— इस प्रकार नव वर्षों में प्रतिवर्ष एक-एक पुत्र के क्रम से उत्पन्न करके वह पूर्वचीती उन्हें राज भवन में ही छोड़कर ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित हो गयी ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

सूत्वा प्रसूय । उपतस्थेऽभजत् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

**सूत्वा** अर्थात् जन्म देकर **उपतस्थे** अर्थात् सेवा में उपस्थित हो गयी ॥२०॥

**आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननबलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥२१॥**

**अनुवाद**— आग्नीध्र के पुत्र अपनी माता के ही अनुग्रह से जन्म काल से ही स्वभाव से ही सुडौल और सबल शरीर वाले थे। राजा आग्नीध्र जम्बूद्वीप का विभाग करके, उन सबों के ही समान नाम वाले नौ वर्ष (भूखण्ड) बनाये और उन्हें एक एक पुत्र को सौंप दिए। इस तरह वे सब अपने-अपने वर्ष का राज्य भोगने लगे ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

औत्पत्तिकेनैव स्वभावेन । संहननं दृढाङ्गत्वम् ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

औत्पत्तिकेन अर्थात् स्वभाव से ही, संहाननम् सुदृढ अङ्गों वाले ॥२१॥

**आग्नीध्रो राजाऽतृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो मादयन्ते ॥२२॥**

**अनुवाद**— राजा आग्नीध्रयद्यपि प्रतिदिन काम सुख का अनुभव करते रहे फिर भी उनकी उससे तृप्ति नहीं हुई, वे उस अप्सरा को ही परम पुरुषार्थ मानते रहे। अतएव उन्होंने वैदिक कर्मों के द्वारा उसी लोक को प्राप्त किया जहाँ पितृगण अपने सुकृतों के अनुसार विभिन्न प्रकार के भोगों को भोगते हुए मस्त रहते हैं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

कामानां भोगैः । अध्यधिकं मन्यमानः । श्रुतिभिर्वेदोक्तैः कर्मभिः । अवारुन्ध प्राप । मादयन्ते मोदन्ते ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

राजा आग्नीध्र प्रतिदिन काम सुख का अनुभव करते रहने पर भी उससे तृप्त नहीं हुए थे उसी को ही श्रेष्ठ पुरुषार्थ मानते रहे। और वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से वे पितरों के लोक को प्राप्त किए जहाँ पितृगण अपने पुण्य कर्मों के अनुसार विभिन्न भोगों को भोगने में मस्त रहते हैं ॥२२॥

**संपरेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमिति संज्ञा नवोदवहन् ॥२३॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे आग्नीध्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

**अनुवाद**— पिता के परलोक चले जाने पर नाभि आदि नौ भाइयों ने मेरुकी मेरु देवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति नाम की नव कन्याओं से विवाह किया ॥२३॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध के आग्नीध्र वर्णन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।**

### भावार्थ दीपिका

इत्येवंभूताः संज्ञा यासां ताः परिणीतवन्तः ।।२३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

मेरु देवी इत्यादि नाम वाली मेरु की पुत्रियों के साथ विवाह किया ।।२३।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थदीपिकाटीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२।।**

# तृतीय अध्याय

## राजा नाभि का चरित्र

श्रीशुक उचाच

**नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत ॥१॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् अग्निध्र के पुत्र नाभि की कोई सन्तान नही थीं। अतएव उन्होंने अपनी पत्नी मेरु देवी के साथ एकाग्रमना होकर पुत्री की प्राप्ति की कामना से भगवान् यज्ञ पुरुष की आराधना की ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

तृतीये चरितं नाभेः परं मङ्गलमीर्यते। यस्य यज्ञे प्रतीतः सन्पुत्रोऽभूदृषभो हरिः ॥१॥ नाभिराग्नीध्रसुतः। अपुत्रया मेरुदेव्या भार्यया सह ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

तीसरे अध्याय में नाभि के परम मङ्गलमय चरित्र कावर्णन किया जाता है। उनके यज्ञ में प्रकट होकर श्रीहरि उनके पुत्र ऋषभ के रूप में अवतीर्ण हुए। आग्नीध्र के पुत्र नाभि थे पुत्र हीन अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ उन्होंने यज्ञ पुरुष की आराधना की ॥१॥

**तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयंगमं मनोनयनानन्दनावयवाभिराममाविश्चकार ॥२॥**

**अनुवाद**— यद्यपि मनोहर अङ्गों वाले श्रीभगवान् द्रव्य, देश, काल मन्त्र, ऋत्विज, दक्षिणा और विधि इन यज्ञ के साधनों से आसानी से नहीं प्राप्त होते हैं, फिर भी वे अपने भक्तों पर कृपा करते ही हैं, अतएव जब महाराज नाभि ने विशुद्ध भाव से उनका यजन किया तो उनका चित्त अपने भक्त का अभीष्ट कार्य करने के लिए उत्सुक हो गया। यद्यपि उनका स्वरूप सर्वथा स्वतंत्र है फिर भी प्रवर्ग्य कर्म का अनुष्ठान करते समय मन और नेत्रों को आनन्दित करने वाले अङ्गों से युक्त अपने मनोहर रूप में प्रकट हो गये ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

प्रवर्ग्यसंज्ञकेषु कर्मसु क्रियमाणेषु द्रव्यादयः सप्त ये योगा उपायास्तेषामुपपत्त्या संपत्त्यादुरधिगमो दुष्प्रापोऽपि भागवतेषु कृपालुतया सुप्रतीकः शोभनावयवः सन्नात्मानमाविश्चकार। अपराजितं स्वतन्त्रम्। निजभक्तानां येऽभिप्रेतार्थास्तेषां विधित्सया गृहीतमाकृष्टं हृदयं चित्तं यस्य। हृदयंगमं सुखकरम्। यतो मनोनयनान्यानन्दयन्ति येऽवयवास्तैरभिरामं सुन्दरम् ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

द्रव्य आदि सात जो उपाय हैं उन सबों के द्वारा श्रीभगवान् दुष्प्राप्य हैं फिर भी जब प्रवर्ग्य कर्म का अनुष्ठान हो रहा था उस समय अपने भक्तों पर कृपा करने का स्वभाव होने के कारण वे अपने सुन्दर अवयवों से युक्त रूप को उन्होंने प्रकट कर दिया। वे यद्यपि स्वतंत्र हैं, फिर भी अपने भक्तों अभीष्ट कार्यों को करने की इच्छा से वे हृदयङ्गम मन तथा नेत्रों को आनन्दित करने वाले अवयवों से सुन्दर रूप में प्रकट हुए ॥२॥

**अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुण्डलकटककटि-सूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥३॥**

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के श्री अङ्ग में रेशमी पीताम्बर था, वक्षस्थल पर सुन्दर श्रीवत्स चिह्न सुशोभित था, उनकी चारो भुजाओं में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म था, गले में वनमाला और कौस्तुभमणि लटक रही थी, प्रत्येक अङ्गों की कान्ति को बढ़ाने वाले किरण समूह से मण्डित मणिमय मुकुट, कुण्डल, कङ्कण, करधनी, हार, बाजूबन्द और नूपुर आदि से समलंकृत उनका सम्पूर्ण शरीर था। इस तरह के परम तेजस्वी चतुर्भुज मूर्ति पुरुष विशेष श्रीभगवान् को प्रकट देखकर ऋत्विज सदस्य और यजमान आदि सभी लोग इस तरह से आनन्दित हुए जैसे निर्धन पुरुष अपार सम्पत्ति को प्राप्त करके हर्ष प्रकर्ष का अनुभव करता है। तदनन्तर सबों ने शिर झुकाकर श्रीभगवान् की अत्यन्त आदर पूर्वक अर्ध्य द्वारा पूजा की और ऋत्विजों ने उनकी स्तुति की ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

अथ हेत्यादिनिपातबाहुल्यं वाक्यालंकाराय। आविष्कृतं भुजानां युगलद्वयं चतुष्टयं येन। हिरण्मयं तेजोमयम्। पुरुषेषु विशिष्यत इति तथा पुरुषोत्तममित्यर्थः। अर्हणेनार्घ्येण सहोपतस्थुरभजन्नित्यन्वयः। विलसन् श्रीवत्स एव ललामं चिह्नं यस्य। दरवरः शङ्खश्रेष्ठः, वनरुहं पद्मम्, अच्छूरि चक्रम्, अमृतमणिः कौस्तुभः एवमादिभिरुपलक्षितम्। स्फुटकिरणा ये प्रवरा मणयस्तन्मयानि यानि मुकुटादीन्यङ्गानां भूषणानि तैर्विभूषितम्। बहुमाने दृष्टान्तः— अधना इवोत्तमधनं निधिम् ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

इस वाक्य में अथ ह इत्यादि निपातों का बाहुल्य वाक्यालङ्कार के रूप में प्रयुक्त है। प्रकट हुए श्रीभगवान् की चार भुजाएँ थीं। तेजोमय भगवान् पुरुषोत्तम की यजमान आदि ने अर्घ्यादि प्रदान पूर्वक पूजा की। उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न विद्यमान था। हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म विद्यमान थे। वे कौस्तुभमणि आदि से सुशोभित थे उनके मुकुट, कुण्डल, कङ्कण कटिसूत्र, हार, आदि में लगी मणियों की किरणों से सारा शरीर अलंकृत था यजमानों आदि के द्वारा किए जाने वाले बहुमान में दृष्टान्त है जैसे कोई निर्धन निधि को प्राप्त कर लिया हो ॥३॥

ऋत्विज ऊचुः

**अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नम इत्येतावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान्प्रकृतिगुण-व्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृति पुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥४॥**

### ऋत्विजों ने कहा

**अनुवाद**— हे पूज्यतम ! हमलोग आपके अनुगत भक्त हैं, आप हमारे बार-बार पूजनीय हैं । किन्तु हम आपकी पूजा करना नहीं जानते हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं । हमें महापुरुषों ने इतना ही सिखाय है। आप प्रकृति और पुरुष से परे हैं । प्राकृत गुणों के कार्यभूत इस प्रपंच में फँस जाने के कारण आपका गुणगान करने में असमर्थ हैं ऐसा कौन पुरुष है जो प्राकृत, नाम, रूप एवं आकृति के द्वारा आपके स्वरूप का निरूपण कर सके । आप साक्षात् परमेश्वर हैं ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

अर्हसीत्यादिना निगदेन स्तुवन्ति । हे अर्हत्तम, परिपूर्णोऽपि त्वमनुपथानां भृत्यानामस्माकमर्हणं मुहुः स्वयमेव स्वीकर्तुमर्हसि न तु वयं स्तोतुं शक्ता इत्याहुः । नमो नम इत्येतावदेवास्माकं सद्भिरुपशिक्षितम् । त्वद्रूपस्य दुर्ज्ञेयत्वात् । तदेवाहुः- कोऽर्हतीति। प्रकृतिगुणानां व्यतिकरः प्रपञ्चस्तस्मिन्नेव मतिर्यस्यात एवानीशः । प्रकृतिपुरुषयोः परस्यात एवेश्वरस्यार्वाक्तनाभिस्त्वामस्पृशन्तीभिः प्रपञ्चान्तर्गताभिर्नाम च रूपं चाकृतिश्चाकारस्ताभिस्तव रूपनिरूपणं कंर्तुं को नाम पुमानर्हति ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

अर्हसि इत्यादि वाक्य के द्वारा वे भगवान् की स्पष्ट रूप से स्तुति करते हैं । हे पूज्यतम यद्यपि आप परिपूर्ण हैं फिर भी आपके अनुयायी हम भृत्यों की बार-बार प्रार्थना आप स्वयं स्वीकार करें । हम आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं । हमारे महापुरुषों ने आपको केवल बार-बार नमस्कार ही करना सिखाया है, क्योंकि आपका रूप दुज्ञेय है । इसी बात को वे **कोऽर्हति इत्यादि** से कहते हैं । प्रकृति के गुणों में ही बुद्धि के लगे रहने के कारण हम असमर्थ हैं । आप प्रकृति एवं पुरुष से परे (श्रेष्ठ) हैं अतएव सर्वेश्वर हैं । अत्यन्त अर्वाचीन होने के कारण जो आपका स्पर्श नहीं कर सकते हैं ऐसे नाम, रूप एवं आकृति के द्वारा आपके स्वरूप का निरूपण कौन कर सकता है ?।।४।।

**सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ।।५।।**

**अनुवाद**— आपके परम मङ्गलमय गुण सम्पूर्ण जनता के दुःखों को दूर करने में समर्थ हैं । यदि कोई उनका वर्णन भी करना चाहेगा तो उनके एक अंश का ही वर्णन कर पायेगा ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

स ह्येतन्मात्रमेवार्हति नाधिकमित्याहुः । सकलजननिकायस्य वृजिनं निरस्यन्तीति तथा शिवतमाः प्रवराश्च ये गुणगणास्तेषामेकदेशस्तस्य कथनाद्विनाधिकं नार्हति ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

ऋत्विजगण कहते हैं— सम्पूर्ण जन समूह के कष्टों को दूर करने में आपके परम मङ्गलमय श्रेष्ठ गुणों का यदि कोई वर्णन भी करना चाहे तो वह उन गुणों के एक अंश मात्र का ही वर्णन कर पायेगा इससे अधिक कोई नहीं कर पायेगा ।।५।।

**परिजनामुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि संभृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ।।६।।**

**अनुवाद**— किन्तु प्रभो ! यदि आपके भक्त प्रेमागद्गद वाणी से स्तुति करते हुए सामान्य जल, विशुद्ध पल्लव, तुलसी, और दूर्वा के अङ्कुर से आपकी पूजा करते हैं तो भी आप हर प्रकार से संतुष्ट हो जाते हैं ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

वाङ्मनसाऽगोचरोऽपि त्वं भक्तानां सुखाराध्य एवेत्याहुः । हे परम, परिजनैरनुरागेण विरचिता ये शबलसंशब्दा गद्गदाक्षरस्तुतयः सलिलं च सितकिसलयाश्च शुद्धपल्लवाः । शिलेति पाठे शिलं कुशादिमञ्जरी । एवमादिभिः संभृतया संपादितया पूजया परितुष्यसि ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

वाणी तथा मन के अविषयभूत भी आप अपने भक्तों के द्वारा सुखपूर्वक आराधना करने योग्य हैं । हे परमात्मन आप अपने भक्तों द्वारा प्रेम पूर्वक की जाने वाली गद्गद वाणी से स्तुति जल, शुद्ध पल्लव, जहाँ शिल पाठ है तो शिल कुश आदि की मञ्जरी को कहते हैं । इन सबों से की गयी पूजा से भी आप संतुष्ट हो जाते हैं ।।६।।

**अथानयापि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ।।७।।**

**अनुवाद**— हमें तो अनुराग से भिन्न द्रव्य कलादि अनेक अङ्गों वाले यज्ञ से भी आपका कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता है ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

अथेति प्रकारान्तरे । अन्यथा त्वनयेज्यया यागेनाप्युरुभारभरयानेकाङ्गसमृद्धयापि भवतः समुचितमपेक्षितं प्रयोजनं नैव पश्यामः ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

अनुराग से रहित अनेक अङ्गों वाले इस यज्ञ से भी आपका कोई प्रयोजन नहीं है ऐसा हमें प्रतीत होता है ।।७।।

**आत्मन एवानुसवनमञ्जसाऽव्यतिरेकेण बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किंतु नाथाशिष आशासाना-नामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ।।८।।**

**अनुवाद**— आप को तो अपने आप प्रत्येक क्षण में स्वतः समस्त पुरुषार्थों के फल स्वरूप निरन्तर परमानन्द की प्राप्ति होती रहती है । आप साक्षात् आनन्द स्वरूप हैं । अतएव आपको इन यज्ञादि से कोई प्रयोजन नहीं है फिर भी अनेक प्रकार की कामनाओं की सिद्धि चाहने वाले हम लोगों के लिए मनोरथ सिद्धि का साधन यही है ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुः— आत्मनः स्वत एवानुसवनं सर्वदाऽञ्जसा साक्षादव्यतिरेकेण समन्वयेन वोभूयमाना अतिशयेन भवन्तो येऽशेषाः पुरुषार्थास्ते स्वरूपं यस्य परमानन्दस्य । नचैवं सत्यपि यागानर्थक्यमित्याहुः- किंत्विति । सकामानामस्माकमेवैतदुपपद्यते। न तवेत्यर्थः ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

उसका कारण यह है कि आपको तो अपने आप प्रत्येक क्षण स्वतः सभी पुरुषार्थों के फलरूप परमानन्द की प्राप्ति होती रहती है आप परमानन्द स्वरूप ही हैं । ऐसा होने पर भी याग व्यर्थ इसलिए नहीं हैं कि अनेक कामनाओं वाले हमलोगों की कामना की सिद्धि का साधन यही है आपका नहीं ।।८।।

**तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां परम परमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन्स्वयं नापचित एवतेतरवदिहोपलक्षितः ।।९।।**

**अनुवाद**— आप ब्रह्मा आदि देवों से भी श्रेष्ठ है । हम तो यह भी नहीं जानते हैं कि हमारा कल्याण किस में हैं, और न तो हम आपकी यथोचित पूजा ही कर पाये हैं फिर भी जिस तरह तत्त्वज्ञ पुरुष बिना बुलाये ही

केवल करुणावशात् अज्ञानी पुरुषों के पास चले जाते हैं, उसी तरह आप भी हम अपना मोक्ष संज्ञक परमपद और हमें हमारी अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करने के लिए अन्यसाधरण दर्शकों के समान यहाँ प्रकट हुए हैं ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वोपयोगमेव प्रदर्शयन्ति- तद्यथेति । परमेभ्योऽपि हे परमपुरुष, प्रकर्षयुक्तया करुणया । उपकल्पयिष्यन् संपादयिष्यन्। चकारात् कामितं च । नापचितोऽनपचितोऽपूजित एव पूजानपेक्षत्वात्स्वयपेवोपलक्षितो दृष्टोऽसि । इतरवत् सापेक्षवत् ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

ऋत्विजगण अपने उपयोग को ही प्रदर्शित करते हैं— हे श्रेष्ठातिश्रेष्ठ परमपुरुष ! अपनी श्रेष्ठ करुणा के द्वारा यद्यपि आपकी यथोचित पूजा यहाँ नहीं हुई है फिर भी पूजा की अपेक्षा किए बिना भी आप दर्शन दिए हैं। दूसरे दर्शकों के समान ॥९॥

**अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥१०॥**

**अनुवाद**— हे पूज्यतम ! आपने हमे सबसे बड़ा वरदान यही दे दिया है कि ब्रह्मादि वरदायकों में श्रेष्ठ होकर भी आप राजर्षि नाभि की यज्ञशाला में साक्षात् हमारे नेत्रों के समक्ष प्रकट हो गये ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

यद्यपि त्वं वरान्दातुमाविर्भूतोऽसि तथापि हे अर्हत्तम, राजर्षेर्बर्हिषि यज्ञे निजपुरुषाणां त्वद्भक्तानामस्माकमीक्षणविषयो भवान् । यर्हि यदा आसीत्तदा ह्ययमेव वरः संजातः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

यद्यपि आप वरों को देने के लिए प्रकट हुए हैं फिर भी हे पूज्यतम राजर्षि के यज्ञ में अपने भक्तजनों हमलोगों के नेत्रों के सामने प्रकट हुए हैं । यही आपके द्वारा प्रदत्त सबसे बड़ा वरदान है ॥१०॥

**असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगणपरम-मङ्गलायनगुणगणकथनोऽसि ॥११॥**

**अनुवाद**— प्रभो ! आपके गुणगणों का गान परम मङ्गलमय है । जिन लोगों ने वैराग्य से प्रज्वलित हुई ज्ञानाग्नि के द्वारा अपने अन्तःकरण के रागद्वेष आदि समस्त मलों को भस्म कर दिया है, जिसका स्वभाव आपके ही समान शान्त है, वे आत्माराम मुनिगण भी सदा आपके गुणों का गान ही करते रहते हैं ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

दर्शनस्य दुर्लभतामाहुः । असङ्गेन वैराग्येण निशितं यज्ज्ञानं स एवानयस्तेन विधूता अशेषा मला येषाम् । अतो भवत इव स्वभावो येषाम् । तानेवाहुः । आत्मारामाणामेवंभूतानां मुनीनामपि परममङ्गलायनं गुणगणकथनमेव नतु दर्शनं यस्य । अतस्तैरनवरतं परिगुणिता अभ्यस्ता गुणगणा यस्येति संबोधनम् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के दर्शन की दुर्लभता का वर्णन करते हैं । वैराग्य से उत्पन्न तीक्ष्ण ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा जिन लोगों ने अपने रागद्वेष आदिसमस्त मलों को भस्म कर दिया है । उनका स्वभाव आपके ही समान शान्त है । वे आत्माराम मुनिजन भी सदा आपके गुणों का ही वर्णन करते हैं, अतएव आप निरन्तर जपे जाने वाले गुणों वाले भगवान् ॥११॥

**अथ कथंचित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥१२॥**

**अनुवाद**— अतएव हम आपसे यही वरदान माँगते हैं कि गिरने, ठोकर खाने, छीकने अथवा जम्भाई लेने और सङ्कट आदि के समय ज्वर मरणादि की अवस्थाओं में भी किसी प्रकार आपके सकल कलिमल विनाशक, भक्तवत्सल आदि गुण द्योतक नामों का उच्चारण हम करें ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

दर्शनेनैव कृतार्था अपि वरमेकं प्रार्थयन्ते-अथेति । स्मरणाय विवशानां त्वां स्मर्तुमशक्तानां नः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् के दर्शन से ही कृतार्थ बने ऋत्विज गण एक वरदान माँगते हैं आपका स्मरण करने के लिए विवश होने पर आपका स्मरण करने में असमर्थ हमलोग हर अवस्थाओं में आपका स्मरण करते रहें ॥१२॥

**किं चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवन्तमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥१३॥**

**अनुवाद**— किञ्च कहने योग्य नहीं होने पर भी एक प्रार्थना और है, आप परमेश्वर हैं । स्वर्ग तथा अपवर्ग आदि कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसे आप नहीं दे सके । किन्तु जैसे कोई कङ्गाल किसी उदार और धन लुटाने वाले व्यक्ति के पास जाकर भी उसे भूसा ही मांगे उसी प्रकार हमारे यजमान ये राजर्षि नाभि सन्तान को ही परम पुरुषार्थ मानकर आपके ही समान पुत्र प्राप्त करने के लिए आपकी अराधना कर रहें हैं ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्यच्च प्रार्थनीयमस्तीत्याहुः- किं चेति । आशिषामैहिकानां स्वर्गापवर्गयोरपीश्वरं त्वामुपधावति । प्रजायामेव पुरुषार्थ इति प्रत्ययो यस्य । अधनो यथा फलीकरणं तुषकणादिकमाशासानो धनदमुपधावति ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

ऋत्विजों ने कहा अन्य भी प्रार्थना है, इस बात को किञ्च इत्यादि वाक्य से कहते हैं— यद्यपि आप स्वर्ग तथा अपवर्ग भी दे सकते हैं फिर भी लौकिक वस्तु के लिए आपकी आराधना कर रहे हैं । इनकी प्रजा (सन्तान) में ही पुरुषार्थ की भावना है । जैसे— कोई निर्धन कुबेर के पास जाकर भूसा माँगे उसी तरह इनकी यह सन्तान प्राप्ति के लिए आपकी आराधना है ॥१३॥

**को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽनावृतमतिर्विषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥१४॥**

**अनुवाद**— इस संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है जो आपकी अपराजिता माया के वश में नहीं हुआ हो । उसके मार्ग को कोई नहीं जान सकता है । इस संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जिसने महापुरुषों के चरणों की उपासना नहीं किया हो और जिसकी बुद्धि को माया आच्छन्न नहीं कर दे और विषय रूपी विष उसका वेग उसके स्वभाव को दूषित नहीं कर दे ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

इदं च नातिचित्रमित्याहुः । इह संसारे तेऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽलक्षितमार्गयाऽपराजितः को वै । न कोऽपि । अतस्तयाऽनावृतमतिः कः । अतएव विषय एवं विषं तस्य रया वेगास्तैरनावृता प्रकृतिर्यस्य स कः । यद्यनुपासितमहच्चरणः। अतस्त्वन्मायया मोहितस्यैवमाशंसा घटत इत्यर्थः ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इस संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो आपकी अपराजिता माया जिसके मार्ग को कोई भी नहीं जान सकता उसके द्वारा पराजित नहीं हुआ हो । यदि किसी ने महापुरुषों के चरणों की उपासना नहीं की हो और विषय रूपी विष के वेग से उसकी बुद्धि आवृत नहीं हुई हो । अतएव आपकी माया से मोहित व्यक्ति इस प्रकार की प्रार्थना होना उचित ही है ॥१४॥

**यदुह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्यद्देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान्प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥१५॥**

**अनुवाद**— हे देवदेव आप भक्तों के बड़े-बड़े कामों को करते हैं । हम मन्दमति हैं कि कामना वशात् आपको यहाँ तुच्छ कार्य के लिए आहुत किए हैं । यद्यपि यह आपका अनादर ही है फिर भी आप समदर्शी हैं, अतएव हम अज्ञानियों की इस घृष्टता के लिए आप क्षमा करें ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

अदभ्रकर्तः हे बहुकार्यकारिन्, अल्पीयसे कार्याय त्वं यद्यस्मादिह समाहूतोऽसि । तत्र प्रजायामर्थे धीर्येषां मन्दानां तेषां नो यद्देवहेलनमवज्ञानं तत्सर्वान्प्रति तव साम्येन हेतुना प्रतिवोढुं सोढुमर्हसि ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

हे बड़े-बड़े कायों को करने वाले प्रभो ! अत्यन्त छोटे कार्य के लिए हमलोगों ने आपको समाहूत किया हैं । हमलोग सन्तान की प्राप्ति चाहते हैं । अतएव हम मन्दबुद्धियों ने आपका अनादर किया है फिर भी आप समदर्शी होने के कारण हमारे इस अपराध के लिए आप क्षमा करें ॥१५॥

श्रीशुक उवाच

**इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह ॥१६॥**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— इस तरह से गद्यात्मक स्तुति के द्वारा स्तुति किए जाते हुए भारतवर्ष के अधिपति महाराज नाभि के द्वारा अभिवादित और अभिनन्दित श्रीचरण वाले देवताओं में अग्रगण्य श्रीभगवान् दया पूर्वक कहें ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

इति निगदेन गद्यात्मकस्तोत्रेण वर्षधरो भारतवर्षपतिर्नाभिस्तेनाभिवादिता ये ऋत्विजस्तैरभिवन्दितौ चरणौ यस्य ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह कण्ठतः गद्यात्मक स्तोत्रेण के द्वारा वर्षाधिपति महाराज नाभि से अभिवादित जो ऋत्विजों के द्वारा श्रीभगवान् के चरण कमल अभिवन्दित है ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

**अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितो तदमुष्यात्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मखं यद्द्विजदेवकुलम्॥१७॥**

### श्रीभगवान् ने कहा

**अनुवाद**— ऋषियों आपलोगों ने मेरी स्तुति की है और आप सभी सत्यवादी महात्मा है । आपलोगों ने मुझसे

अत्यन्त दुर्लभ वरदान माँगा है कि राजर्षि नाभि का पुत्र मेरे ही सदृश हो । किन्तु अपने सदृश तो मैं ही हूँ क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ । किन्तु ब्राह्मणों की वाणी मिथ्या नहीं होनी चाहिए । ब्राह्मणों का कुल तो मेरा ही मुख है ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

असुलभत्वे हेतुः- ममाहमेवाभिरूपः सदृशः । कैवल्यादद्वितीयत्वात् । द्विजेषु देवा इव ये ब्राह्मणास्तेषां कुलम् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणों द्वारा मागे गये वरदान के दुर्लभ होने का कारण है कि मेरे सदृश तो मैं ही हूँ । क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ । ब्राह्मणें में देवता के समान जो ब्राह्मण हैं, उनका वंश तो मेरा मुख ही है ॥१७॥

**तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयाऽवतरिष्याम्यात्मतुल्यमनुपलभमानः ॥१८॥**

**अनुवाद**— इसलिए आग्नीध्र के पुत्र नाभि के पुत्र के रूप में स्वयम् अपने अंश कला से अवतीर्ण होऊँगा क्योंकि मेरे सदृश दूसरा कोइ उपलब्ध नहीं है ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

आग्नीध्रीये नाभौ ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीभगवान् ने ब्राह्मणों से कहा कि चूकि मेरे सदृश दूसरा कोई उपलब्ध नहीं है, अतएव अपने अंश कला से मैं आग्नीध्र के पुत्र नाभि के पुत्र के रूप में स्वयम् अवतीर्ण होऊँगा ॥१८॥

श्रीशुक उवाच

**इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥१९॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— मेरु देवी के सुनते हुए उनके पति महाराज नाभि को इस प्रकार कहकर श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

पतिं नाभिम् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

मेरु देवी के पति महाराज नाभि को कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये ॥१९॥

**बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान्परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवाऽवततार ॥२०॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे नाभिचरित्र तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

**अनुवाद**— हे विष्णुदत्त (परीक्षित्) उस यज्ञ में महर्षियों द्वारा प्रसन्न किए जाने पर श्रीभगवान् राजर्षि नाभि का प्रिय कार्य करने के लिए, उनके रनिवास में मेरुदेवी के गर्भ से दिगम्बर संन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने के लिए शुद्ध सत्त्वमय शरीर से प्रकट हुए ॥२०॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के नाभि चरित के अन्तर्गत तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥**

## भावार्थ दीपिका

हे विष्णुदत्त, तस्यावरोधायनेऽन्तःपुरे मेरुदेव्यां शुक्लया शुद्धसत्त्वरूपया मूर्त्याऽवततार । केषां धर्मान् । वातरशनानां दिग्वाससाम् पाषण्डिव्यावृत्त्यर्थमाह । श्रमणानां तपस्विनाम् । ऋषीणां ज्ञानिनाम् । उर्ध्वमन्थिनाम् नैष्ठिकब्रह्मचारिणाम् ।।२०।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चस्न्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।**

## भाव प्रकाशिका

हे विष्णुदत्त परिक्षित् महाराज नाभि के रनिवास में मेरुदेवी के गर्भ से श्रीभगवान् शुद्धसत्त्वमय शरीर से अवतीर्ण हुए । उनके अवतार का प्रयोजन दिगम्बर तपस्वियों के पाखण्डियों का वारण करने के लिए श्रमणानाम् अर्थात् तपस्वियों को कहा गया है । ऋषियों (ज्ञानियों) तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के धर्म को प्रकट करना ।।२०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तीसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३।।**

# चौथा अध्याय

## ऋषभदेवजी का राज्य शासन

श्रीशुक उवाच

**अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभाव प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरा जगृधुः ॥१॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् ! जन्म से ही ऋषभदेव जी के अङ्ग जन्म से ही भगवान् के वज्र अङ्कुश आदि चिह्नों से युक्त थे । समता, शान्ति, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि महाविभूतियों के कारण उनका प्रभाव अनुदिन बढता जाता था । यह देखकर मन्त्री आदि प्रकृतिवर्ग, प्रजा, ब्राह्मण और देवताओं की यह अत्यधिक इच्छा थी कि ये ही पृथिवी का प्रशासन करें ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

चतुर्थादित्रिभिः प्रोक्तमृषभस्येहितं महत् । लोकार्थं येन सत्कर्म नैष्कर्म्यं च निदर्शितम् ॥१॥ चतुर्थे शतपुत्रस्य राज्यं तस्योपवर्ण्यते । यस्य राज्ये जनः सर्वः संतोषामृतनिर्वृतः ॥२॥ अभिव्यज्यमानानि भगवल्लक्षणानि पादतलादिषु वज्राङ्कुशादीनि यस्य । महाविभूतिः सर्वसंपत्तिः । साम्यादिभिः । सह वर्धमानप्रभावम् । प्रकृतयोऽमात्यादयः । जगृधुरभिकाङ्क्षन्ति स्म ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

चौथे, पाँचवें और छठे इन तीन अध्यायों में ऋषभदेव जी का चरित वर्णित है । उन्होंने संसार का कल्याण करने के लिए सत्कर्म का उपदेश दिया । चौथे अध्याय में सौ पुत्रों वाले ऋषभदेवजी के राज्य का वर्णन किया गया है । उनके पैरों के तलवों में भगवान् विष्णु के वज्र अङ्कुश आदि चिह्न विद्यमान थे । महाविभूतियों के साथ उनका प्रभाव अनुदिन बढ़ता जाता था । प्रकृति शब्द से मन्त्री आदि प्रजाओं को कहा गया है । वे उन सबों की उत्कट इच्छा थी कि ऋषभ देवजी ही राज्य का प्रशासन करें ॥१॥

**तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥२॥**

**अनुवाद**— उनके सुन्दर शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता, आदि गुणों के कारण महाराज नाभि ने उनका नाम ऋषभ (श्रेष्ठ) रखा ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

वर्ष्मणा देहेन। तस्य विशेषणद्वयम्। वरीयसा श्रेष्ठतमेन। बृहन्तः श्लोकाः पद्यानि कवीनां यस्मिंस्तेन च। ओजस्तेजः। वीर्यं प्रभावः। शौर्यमुत्साहः। एतैर्गुणैरतिश्रेष्ठत्वादृषभः श्रेष्ठ इति नाम चकार ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

वर्ष्म शब्द शरीर का वाचक है। इस तरह से ऋषभदेव के दो विशेषण हैं। श्रेष्ठतम शरीर और तथा विपुलकीर्ति ओज अर्थात् तेज, पराक्रम धैर्य अर्थात् उत्साह इन सभी गुणों के द्वारा अत्यन्त श्रेष्ठ होने के कारण पिता ने इनका नाम ऋषभ रखा ॥२॥

**तस्य हींद्रः स्पर्धमानो भगवान्वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ॥३॥**

**अनुवाद**— एक बार इन्द्र ने इनसे स्पर्धा करते हुए इनके राज्य में वर्षा नहीं की, तब इन्द्र की मूर्खता पर हँसते हुए इन्होंने अपनी योग माया के बल से अजनाभ खण्ड में खूब वर्षा की ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

तस्य वर्षे मण्डले ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

ऋषभदेव के राज्य में ॥३॥

**नाभिस्तु यथाभिलषितं सुप्रजास्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवन्तं पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन्परां निर्वृतिमुपगतः ॥४॥**

**अनुवाद**— महाराज नाभि अपनी इच्छा के अनुसार श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त करके आनन्दमग्न हो गये और अपनी इच्छानुसार मनुष्य शरीर को धारण करने वाले पुराण पुरुष श्रीहरि का सप्रेम लालन करते हुए उनकी लीला के विलास से मुग्ध होकर वत्स, तात ऐसी गद्गद वाणी से उनको अभिहित करते हुए अत्यन्त आनन्दित होते थे॥४॥

### भावार्थ दीपिका

अवरुध्य प्राप्य। स्वैरमिच्छया गृहीतो नरलोकसमानधर्मो मनुष्याकारो येन तम्। अतएव मायया स्वपुत्र इति विलसिता मतिर्यस्य ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

अवरुध्य अर्थात् अपनी इच्छानुसार मनुष्य के समान आकार को धारण करने वाले। अतएव माया के कारण उनकी अपने पुत्र में ही बुद्धि लगी रहती थीं ॥४॥

**विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥५॥**

**अनुवाद**— जब उन्होंने देखा कि मन्त्रिवर्ग, जनता नागरिक सबके सब ऋषभ देव से बहुत प्रेम करते हैं, तो उन्होंने ऋषभदेव को धर्म मर्यादा की रक्षा करने के लिए उनको राज्याभिषिवत कर दिया और स्वयं वे मेरु देवी के साथ बदरिकाश्रम में चले गये। वहाँ पर अहिंसा वृत्ति से जिससे किसी को उद्वेग नहीं इस तरह कौशल पूर्ण तपस्या से तथा समाधि योग के द्वारा भगवान् वासुदेव की मूर्ति नर नारायण की आराधना करते हुए समयानुसार काल आने पर उनमें ही लीन हो गये ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

आपौरप्रकृति पौरान्प्रकृतींश्चाभिव्याप्य। विदितोऽनुरागो यस्मिन्। कथंभूतो नाभिः। जनपदः जनाः पौरादय; पदं प्रमाणं यस्य सः। आत्मजं धर्ममर्यादारक्षणार्थमभिपिच्च। ब्राह्मणानामुत्सङ्गे निधाय। विशालायां बदरिकाश्रमे। प्रसन्नं परानुद्वेजकं निपुणं च तीव्रं तेन। उपासीनः सेवमानः कालेन तन्महिमानं जीवन्मुक्तिमवाप ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

ऋषभ देव में ही नागरिकों तथा राष्ट्र के प्रजाओं का प्रेम जानकर कैसे महाराज नाभि ? तो इसका उत्तर है नागरिक आदि ही जिनमें प्रमाण है ऐसे पुत्र को धर्म की मर्यादा की रक्षा करने के लिए उनको अभिषिक्त करके तथा ब्राह्मणों के ऊपर उनका भार छोड़कर अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ बदरिकाश्रम में अहिंसा वृत्ति से तथा दूसरों के अनुद्वेजक तप करते हुए वासुदेव भगवान् नारायण की आराधना करते हुए समयानुसार जीवन्मुक्ति को प्राप्त कर लिए ॥५॥

**यस्य ह पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति।**

**अनुवाद**— उनके विषय में लोग दो श्लोकों को उद्धृत करते हैं।

**को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान्। अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥६॥**

**अन्वयः**— राजर्षेर्नाभेः तत् कर्म को नु अन्वाचरेत् यस्य शुद्धेन् कर्मणा हरिः अपत्यताम् अगात् ॥६॥

**अनुवाद**— महाराज नाभि के उदार कर्मों का आचरण कौन पुरुष कर सकता है ? जिनके शुद्ध कर्मों से सन्तुष्ट होकर श्रीहरि उनके पुत्र बन गये ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

नाभेस्तत्प्रसिद्धं कर्म। अनु तदनन्तरं को नु पुमानाचरेत्। न कोऽपीत्यर्थः ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

महाराज नाभि के प्रसिद्ध कर्मों का उनके पश्चात् कौन मनुष्य कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥६॥

**ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मङ्गलपूजिताः। यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥७॥**

**अन्वयः**— नाभेः अन्यः ब्रह्मण्यः कुतः यस्य मङ्गलपूजिताः विप्राः यस्य बर्हिषि विप्राः ओजसा यज्ञेशं दर्शयामासुः॥७॥

**अनुवाद**— महाराज नभि से भिन्न दूसरा कौन ब्राह्मण भक्त हो सकता है ? जिनकी दक्षिणा से संतुष्ट होकर ब्राह्मणों ने उनके यज्ञ में उनको यज्ञेश भगवान् विष्णु का दर्शन करा दिया ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

मङ्गलैर्दक्षिणाभिः पूजिताः सन्तः। ओजसा मन्त्रबलेन ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

मङ्गलपूजितः अर्थात् दक्षिणा से प्रसन्न होकर ओजसा अर्थात् अपने मन्त्र के बल से ॥७॥

**अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्मसमाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥८॥**

**अनुवाद**— उसके पश्चात भगवान ऋषभदेव अजनाभ भूखण्ड को अपना कर्मक्षेत्र मानकर कुछ समय तक गुरुकुल में वास किए । गुरुदेव को उचित दक्षिणा देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए उनकी आज्ञा लिए । फिर गृहस्थों के धर्म की शिक्षा देने के लिए इन्द्र के द्वारा प्रदत्त उनकी पुत्री जयन्ती से उन्होंने विवाह किया । श्रौत एवं स्मार्त दोनों प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हुए उससे अपने ही समान गुण वाले सौ पुत्रों को उन्होंने उत्पन्न किया॥८॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्येषां ग्रहणाय प्रदर्शितो गुरुकुलवासो येन । अनुशिक्षमाणोऽनुशिक्षयन् । उभयविधं श्रुतिस्मृतिलक्षणं कर्मविधिमभियुञ्जन्ननुतिष्ठन् जयन्त्यां भार्यायामात्मजानां शतं जनयामास ॥८॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरों को शिक्षा देने के लिए गुरुकुल में निवास किए । पुनः गृहस्थाश्रम की शिक्षा देते हुए श्रौत एवं स्मार्त दोनों प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हुए अपनी पत्नी जयन्ती के गर्भ से सौ पुत्रों को उत्पन्न किए ॥८॥

**येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥९॥**

**अनुवाद**— उन पुत्रों में महायोगी भरत सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे । उन्हीं के नाम से लोग इस अजनाभ खण्ड को लोग भारत वर्ष कहने लगे ॥९॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥९॥

**तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः॥१०॥**

**अनुवाद**— उनसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक् विदर्भ और कीकट ये नव राजकुमार और नबे पुत्रों से प्रधान थे ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

तं भरतमनु कुशावर्तादयो नव पुत्रा नवतेः प्रधाना ज्येष्ठाः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

भरत से छोटे कुशावर्त इत्यादि नव पुत्र नब्बे पुत्रों से ज्येष्ठ थे ॥१०॥

**कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः । आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥११॥**

**अन्वयः**— कविः हरिः अन्तरिक्षः, प्रबुद्धः पिप्पलायन आविर्होत्रः, द्रुमिलः चमसः करभाजनश्च ॥११॥

**अनुवाद**—उनसे छोटे कवि हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल चमस और पिप्पलायन॥११॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥११॥

**इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥१२॥**

**अनुवाद**— ये नवों भागवत धर्म के ज्ञाता थे महाभागवत थे । इन सबों के सुन्दर चरित्र का वर्णन नारद

वासुदेव संवाद के प्रसङ्ग में आगे एकादश स्कन्ध में करेंगे। इन सबों का चरित्र श्रीभगवान् की महिमा से महिमामण्डित और परम शान्तिपूर्ण है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

तदनन्तरं कविप्रमुखा नव भागवतधर्मप्रदर्शका: वसुदेवनारदयो: संवादो यस्मिन्। उपरिष्टादेकादशस्कन्धे ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

उन नवों से छोटे कवि आदि हैं। ये भागवत धर्म के प्रचारक हैं। आगे ग्यारहवें स्कन्ध के वसुदेव नारद के संवाद के प्रसङ्ग में इन सबों के सुन्दर चरित्र का वर्णन किया जायेगा ॥१२॥

**यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेया: पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीला: कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवु: ॥१३॥**

**अनुवाद**— इनसे छोटे जयन्ती के इक्यासी पुत्र अपने पिता की आज्ञा का पालन करने वाले, अति विनीत महान् वेदज्ञ और निरन्तर यज्ञ करने वाले थे। वे पुण्यों का अनुष्ठान करने वाले होने के कारण ब्राह्मण हो गये॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

महाशालीना अतिविनीता: ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

अत्यन्त विनीत थे ॥१३॥

**भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्र: स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्पर: केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाण: कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशान्तो मैत्र: कारुणिको धर्मार्थयश:प्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं निशमयत् ॥१४॥**

**अनुवाद**— भगवान् ऋषभदेव यद्यपि परम स्वतन्त्र होने के कारण स्वयं सर्वदा सब प्रकार की अनर्थ परम्परा से रहित, केवल अनन्दानुभव स्वरूप, और साक्षात् ईश्वर थे, फिर अज्ञानियों के समान कर्म करते हुए उन्होंने काल के अनुसार प्राप्त धर्म का आचरण करके, उसका तत्त्व नहीं जानने वाले लोगों को उन्होंने शिक्षा दी। इसके अतिरिक्त वे सम, शान्त, सुहृत तथा कारुणिक रहकर, धर्म, अर्थ, यश, सन्तान भोग-सुख और मोक्ष का संग्रह करते हुए गृहस्थाश्रम में नियमित किए ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

केवल: शुद्ध: विपरीतवत् अनीश्वरवत्कर्माणि कुर्वन्। नियमयत् नियमितवान्। पाठान्तरे नितरामरमयत्। कर्मकरणे हेतु:-अनुगतमुत्सन्नं धर्मं स्वयमाचरणेनातद्विदामुपशिक्षयन्। कथम्। धर्मादीनामवरोधेन संग्रहेण। आनन्दो भोग:। अमृतं मोक्ष: ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

शुद्ध होते हुए भी भगवान् ऋषभदेव अज्ञानी के समान कर्म करते रहे। उन्होंने लोगों को गृहस्थाश्रम में नियमित किया। जहाँ दूसरा पाठ है, वहाँ अर्थ होगा कि उसमें रमण किए। कर्म करने का कारण था कि वे विनष्ट धर्म का स्वयम् आचरण करके लोगों को उसकी शिक्षा दिए। धर्म आदि के अवरोध (संग्रह) के द्वारा आनन्द शब्द से भोग को अमृत शब्द से मोक्ष को कहा गया है ॥१४॥

**यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥१५॥**

**अनुवाद**— महापुरुष जैसा-जैसा आचरण करते है दूसरे लोग उसी का अनुसरण करते हैं ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

शीर्षण्यः श्रेष्ठस्तेनाचरितम् । तत्तदनुवर्तते यतः ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, अन्य लोग उसी का आचरण करते हैं ॥१५॥

**यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥१६॥**

**अनुवाद**— यद्यपि वे स्वयं सभी वेदों के सार स्वरूप वेदों के स्वयं ज्ञाता थे फिर भी ब्राह्मणों के द्वारा बतायी गयी विधि से ही वे साम तथादान आदि विधि से ही प्रजाओं का पालन करते थे ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

सकलो धर्मो यस्मिंस्तद्ब्राह्मं गुह्यं वेदरहस्यं यद्यपि स्वेनैव विदितं तथापि ब्राह्मणान् पृष्ट्वैव करोतीत्यर्थः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

जिसमें सभी धर्मों का वर्णन है उस वेद के रहस्य को वे स्वयं जानते थे फिर भी वे ब्राह्मणों से पूछ कर ही साम दान आदि उपायों से प्रजाओं का पानल करने का काम किया करते थे ॥१६॥

**द्रव्यदेशकालवयः श्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितै सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥१७॥**

**अनुवाद**— द्रव्य, देश, काल, आयु, श्रद्धा तथा ऋत्विज आदि से सम्पन्न सभी प्रकार के यज्ञों को शास्त्र एवं ब्राह्मणों के उपदेशानुसार ही सौ-सौ बार किया ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

द्रव्यादिभिरुपचितैर्यज्ञैरिष्टवान् । तत्र वयो यौवनम् । 'युवैव धर्ममन्विच्छेत्' इति वचानत् । विविधोद्देशा नानादेवतोद्देशाः । यथोपदेशं यथाविधि ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् ऋषभदेव ने द्रव्य आदि से सम्पन्न यज्ञों से यजन किया । युवा अवस्था में ही धर्म करने की इच्छा करनी चाहिए 'युवैवधर्मेनिच्छेत्' इस श्रुति के अनुसार अनेक देवताओं के लिए शास्त्र और ब्राह्मणों के उपेदशानुसार उन्होंने सौ-सौ बार यज्ञ किया ॥१७॥

**भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥१८॥**

**अनुवाद**— भगवान् ऋषभदेव के प्रशासन काल में इस देश में कोई भी पुरुष अपने लिए किसी से भी अपने प्रभु के प्रेम के प्रति प्रतिदिन बढ़ने वाले प्रेम के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा भी नहीं करता था । अविद्यमान के समान कोई भी किसी भी वस्तु की ओर दृष्टिपात भी नहीं करता था ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

अन्यस्मात्सकाशादात्मनः कश्चिदपि किमपि कथंचनापि न वाञ्छति । इच्छानुदये दृष्टान्तः-अविद्यमानं खपुष्पादिकमिव। न चान्यदीयमवेक्षतेऽपीत्यर्थः । भर्तरि ऋषभदेवे प्रतिक्षणमुल्लसितस्नेहोद्रेकं विनाऽन्यन्न वाञ्छति ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् ऋषभदेव के प्रशान काल में कोई भी व्यक्ति किसी से अपने लिए किसी भी वस्तु को नहीं चाहता था। किसी वस्तु की इच्छा का उदय नहीं होने का दृष्टान्त यह है कि अविद्यमान आकाश पुष्प के समान कोई किसी की भी वस्तु की ओर देखता भी नहीं था। भगवान् ऋषभदेव में प्रतिक्षण बढ़ने वाले प्रेम की उद्रिक्तता के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु चाहता भी नहीं था ॥१८॥

**स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥१९॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

**अनुवाद**— एक बार घूमते हुए भगवान् ऋषभदेव ब्रह्मावर्त देश में पहुँच गये। वहाँ बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियों की सभा में प्रजाओं के सामने ही अपने समाहित और विनय तथा प्रेम के भार से सुसंयत् पुत्रों को शिक्षा देने के लिए उन्होंने इस प्रकार कहा ॥१९॥

**इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के ऋषभदेव चरित के प्रसङ्ग में चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥**

**भावार्थ दीपिका**

अवहितात्मनः संयतचित्तानपि प्रजानुशासनार्थमुपशिक्षयन्निति ह वक्ष्यमाणमुवाच ॥१९॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥**

**भाव प्रकाशिका**

संयत चित्त वाले भी पुत्रों को प्रजाओं का प्रशासन करने के लिए शिक्षा देते हुए अगले अध्याय में कही जाने वाली बातों को कहा ॥१९॥

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौथे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥४॥**

# पाँचवाँ अध्याय

## ऋषभदेवजी का अपने पुत्रों को उपेदश और स्वयं अवधूत वृत्ति का ग्रहण

ऋषभ उवाच

**नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये ।**
**तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ।।१।।**

**अन्वयः**— हे पुत्रका नृलोके अयं देहः देहभाजं, कष्टान्, कामान् न अर्हते ये विडभुजां दिव्यं तप अर्हते येन सत्त्व शुद्ध्येद् यस्मात् तु अनन्तं ब्रह्मसौख्यम् ।।१।।

**ऋषभदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— पुत्रों ! इस मनुष्य लोक में शरीर धारियों को यह मानव शरीर दुःखमय विषय भोगों को प्राप्त

करने के लिए नहीं है । ये विषय भोग तो सूकर कूकर आदि को भी प्राप्त होते हैं । यह शरीर दिव्य तप करने के लिए प्राप्त है । तप करने से अन्तः करण शुद्ध होता है और उसी से अनन्त सानन्द की प्राप्ति होती है ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

पञ्चमे मोक्षधर्मोपदेशैः पुत्रानुशासनम् । उक्तं पारमहंस्यं च तस्य द्वन्द्वतितिक्षया ॥१॥ विड्भुजामपि ये सन्ति तान्कष्टादुःखदान्कामान्विषयान्नार्हति तद्योग्योऽयं मनुष्यदेहो न भवति । दिव्यमुत्कृष्टम् । येन तपसा । यस्माच्छुद्धात्सत्त्वादनन्तं ब्रह्मसुखं भवति ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

पाँचवे अध्याय में धर्मोपदेश के द्वारा ऋषभदेव जी ने अपने पुत्रों को उपदेश दिया है । उन्होंने पारमहंस्य धर्म का वर्णन किया है और उसके शीत उष्ण आदि द्वन्दों को सहने के लिए कहा है । यह मानव देह कूकरों सूकरों को भी प्राप्त होने वाले कष्टमय विषयोपभोग के लिए नहीं प्राप्त हुआ है अपितु उत्कृष्ट तपस्या करने के लिए प्राप्त है जिससे अन्तःकरण शुद्ध होता है और उससे अनन्त ब्रह्म सुख की प्राप्ति होती है ॥१॥

**महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् । महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥२॥**

**अन्वयः**— महत् सेवां विमुक्ते द्वारम् आहुः योषितां सङ्गसङ्गम् तमोद्वारम् ये समचित्ताः प्रशान्ताः विमन्यवः सुहृदः साधवः तेमाहान्तः ॥२॥

**अनुवाद**— महापुरुषों की सेवा को मुक्ति का द्वार कहा गया हैं और स्त्रियों के सङ्गी (कामी) पुरुषों के सङ्ग को नरक का द्वार कहा गया है । जो लोग समान चित्त वाले, परमशान्त, क्रोध रहित, और सबके हित चिन्तक हैं ऐसे साधु पुरुष ही महान हैं ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

मोक्षबन्धयोर्निदानमाह–महत्सेवामिति । तमसः संसारस्य द्वारं योषितां ये सङ्गिनस्तेषां सङ्गम् । महतां लक्षणमाह सार्धेन महान्त इति साधवः सदाचाराः ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

मोक्ष और बन्ध दोनों का कारण बतलाते हैं **महत् सेवम्० इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा कहते हैं कि महापुरुषों की सेवा ही मुक्ति का द्वार है और स्त्रियों के सङ्ग रहने वाले जो हैं उन कामी पुरुषों का सङ्ग नरक का द्वार है। डेढ श्लोको में महत्पुरुषों का लक्षण बतलाते है । साधवः शब्द से सदाचार परायण पुरुषों को कहा गया है ॥२॥

**ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहंभरवार्तिकेषु ।**
**गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥३॥**

**अन्वयः**— येवा मयि ईशे कृतसौहृदार्थाः देहं भरवर्तिकेषु जायात्मजरातिमत्सु गृहेषु **यावदर्थाश्च** लोके न प्रीतियुक्ता साधव इति द्वितीयेनान्वयः ॥२॥

**अनुवाद**— अथवा जो लोग एक मात्र परमात्मा में प्रेम को ही पुरुषार्थ मानते हों, केवल विषयों की ही चर्चा करने वाले, लोगों में तथा स्त्री पुत्र और धन आदि सामग्रियों से सम्पन्न गृहों में जिनकी रुचि न हो, तथा संसार की सभी वस्तुओं में जिनका प्रेम नहीं है ऐसे साधुजन ही महापुरुष हैं ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

मयि ईशे कृतं सौहृदमेवार्थः पुरुषार्थो येषाम् । वाशब्देनान्यनिरपेक्षस्यैवास्य लक्षणत्वं दर्शयति । देहं बिभर्तीति देहंभरा विषयवार्तैव न धर्मविषया येषु तेषु जनेषु जायादियुक्तेषु गृहेषु च । रतिर्मित्रं धनं वा । पाठान्तरे जायादिप्रदेषु । यावदर्थाश्च यावदर्थमेवार्थो येषामिति मध्यमपदलोपी समासः । देहनिर्वाहाधिकस्पृहाशून्या इत्यर्थः ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

मुझ परमात्मा में प्रेम करने को ही जो अपना पुरुषार्थ मानते हों, वा शब्द के द्वारा अन्य निरपेक्षता को ही साधु का लक्षण बतलाया गया है । केवल विषयों की ही चर्चा करने वाले और धर्म की चर्चा नहीं करने वाले लोगों में तथा पत्नी आदि युक्त गृहों में तथा धन में तथा देह निर्वाह के लिए अपेक्षित से अधिक धन में जिसका प्रेम नहीं है ऐसे साधुजन ही महान है । जो पाठान्तरनायात्मजरातिषु पाठ है वहाँ अर्थ होगा पत्नी आदि प्रद गृहों में जिनकी रुचि नहीं है । यावदर्थाश्च में यावदर्थमेवार्थो येषां ते इस तरह से मध्यमपदलोपी समास है । अर्थात् देह निर्वाह के लिए अपेक्षित धन से अधिक धन में जिनकी स्पृहा नही है ऐसे ही लोग महापुरुष है ।।३।।

**नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।**
**न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ।।४।।**

**अन्वयः**— यत् इन्द्रिय प्रीतये आपृणोति नूनं प्रमत्तः विकर्म कुरुते । साधु न मन्ये, यज आत्मनोऽयम् असत् अपि क्लेशदः देहः आस ।।४।।

**अनुवाद**— मनुष्य जब इन्द्रियों की प्रीति के लिए कार्यों में व्यापृत होता है तो निश्चित रूप से वह प्रमादवशात् पाप कर्मों को करता है । मैं इसे अच्छा नहीं समझता हूँ, क्योंकि इसी के कारण आत्मा को यह असत् और क्लेशप्रद शरीर प्राप्त होता है ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

कामान्नार्हतीति यदुक्तं तदुपपादयति-नूनमिति । यद्यदा इन्द्रियप्रीतये आपृणोति व्याप्रियते तदा प्रमत्तः सन्विकर्म पापं नूनं कुरुते । यतो विकर्मणः प्राचीनादयं क्लेशदो देहो जातस्तस्यैव पुनः करणं साधु न मन्ये ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

प्रथम श्लोक में यह जो कहा गया है कि भोगों को भोगने के लिए यह शरीर नहीं मिला है, उसी का प्रतिपादन **नूनम्० इत्यादि** श्लोक में किया गया है । जब मनुष्य अपनी इन्द्रियों की प्रीति के लिए कर्मों को करता है तो निश्चित रूप से प्रमादवशात् यह पाप कर्मों को करता है । क्योंकि पूर्वजन्म के पाप कर्मों के ही करण आत्मा को इस क्लेशप्रद शरीर की प्राप्ति हुई है । फिर उसी पाप कर्म को करना मैं अच्छा नहीं मानता हूँ ।।४।।

**पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ।**
**यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ।।५।।**

**अन्वयः**— अबोधजातः तावत् पराभवः यावत् आत्मतत्त्वं न जिज्ञासते, यावत् क्रियाः तावत् इदं कर्मात्मकं मनः येन शरीर बन्धः ।।५।।

**अनुवाद**— अज्ञानवशात् जीव का स्वरूप तब तक छिपा रहता है जब तक कि मनुष्य आत्मज्ञान की जिज्ञासा नहीं करता है । जब तक वह लौकिक वैदिक क्रियाओं में फँसा रहता है तब तक मन में कर्म की वासनाएँ बनी ही रहती हैं और इनसे ही देह का बन्धन प्राप्त होता है ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

देहादेर्नश्वरत्वात्कियानयमनर्थ इत्याशङ्क्याह । पराभवो देहादिना स्वरूपाभिभवोऽज्ञानकृतस्तावद्भवति । तत्र हेतुः- यावत्क्रिया; स्युस्तावदिदं मनो हि कर्मस्वभावमेव स्यात् । येन कर्मात्मकेन मनसा ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

शरीर आदि के नश्वर होने के कारण यह अनर्थ कब तक होता रहता है ? इस प्रकार की शङ्का करके कहते हैं— देह आदि के द्वारा अज्ञान वशात् शरीर का अभिभव तब तक होता है । उसका कारण है कि जब तक मनुष्य लौकिक वैदिक क्रियाओं में फँसा रहता है तब तक यह मन बना रहता है । मन का स्वभाव ही है कर्म करना। वह कर्मात्मक मन जब तक बना रहता है तब तक शरीर का बन्धन होता ही रहता है ।।५।।

**एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्ययात्मन्युपधीयमाने ।**
**प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ।।६।।**

**अन्वयः**— एवं अविद्यया आत्मनि उपधीयमाने मनः कर्मवशं प्रयुंक्ते । यावन् मयि वासुदेवे न प्रीतिः तावत् देह योगेन न मुच्यते ।।६।।

**अनुवाद**— इस प्रकार से अविद्या के द्वारा आत्मा के स्वरूप के उपहित (ढँक) जाने से कर्म वासनाओं के वशीभूत हुआ मन मनुष्य को पुनः कर्म में ही लगाता है । अतएव मनुष्य को मुझ वासुदेव में प्रीति नहीं होती है तब तक वह देह के बन्धन से नहीं छूट पाता है ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

उक्तमुपसंहरति । एवं पूर्वकृतं कर्म कर्तृभूतं, मनः कर्मभूतं, वशं प्रयुङ्क्ते पुनः कर्मनिष्ठं करोतीति । जीवन्मुक्तकर्मव्यावृत्त्यर्थमाह- अविद्ययेति । अविद्यया आत्मनि उपधीयमाने आच्छाद्यमाने सति एवं मनः कर्तृ, पुरुषं कर्मवशं प्रयुङ्क्त इति वा ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त अर्थ का उपसंहार करते हुए कहते हैं । इस तरह पूर्वजन्म में किया गया कर्म ही कर्ता बन जाता है । और वह कर्म बने हुए को अपने वश में करके कर्मनिष्ठ बना देता है । जीवमुक्त से भिन्नता बतलाने के लिए **अविद्यया इत्यादि** कहते हैं । अर्थात् अविद्या के कारण आत्मा के ढँक जाने पर इस प्रकार का मन कर्ता बनकर पुरुष को कर्माधीन (कर्मनिष्ठ) बना देता है । और इसके कारण देह का बन्धन तब तक नहीं छूटता है जब तक कि मुझ वासुदेव में मनुष्य का प्रेम नहीं होता हैं ।।६।।

**यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ।**
**गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ।।७।।**

**अन्वयः**— सहसा स्वार्थे प्रमत्तः विपश्चित् यदा गुणेहां अयथा न पश्यति गतस्मृतिः विन्दत तत्र तापान् आसद्य मैथुन्यमगारम् अज्ञः ।।७।।

**अनुवाद**— स्वार्थ में पागल बना हुआ जीव जब तक विवेक दृष्टि को अपनाकर इन्द्रियों की चेष्टाओं को मिथ्या नहीं मानता है तब तक आत्मस्मृति की विस्मृति हो जाने के कारण वह अज्ञानवशात् विषय प्रधान गृही आदि में आसक्त रहता है और तरह-तरह के क्लेशों को प्राप्त करता रहता हैं ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

न केवलं देहयोगमात्रम्, अनर्थान्तरं चेत्याह । यदा गुणानामिन्द्रियाणामीहां चेष्टामयथा मिथ्या आत्मीया न भवतीति विपश्चिद्विवेकी सन्न पश्यति । नु पश्यतीति पाठे अयथा आत्मीयत्वेनेत्यर्थः । तत्र तदा सहसा गतस्मृतिः स्वरूपस्मृतिशून्यः सन्नज्ञो मूढो मैथुनसुखप्रधानं गृहं प्राप्य तापान्विन्दति ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

केवल देह बन्ध मात्र की ही बात नहीं है अपितु दूसरे अनर्थ भी होते हैं । जब तक इन्द्रियों की चेष्टाएँ मिथ्या हैं इस प्रकार की विवेक दृष्टि अपनाकर मनुष्य नहीं मानता है तब तक स्वरूप स्मृति से रहित होने के कारण वह अज्ञानी जहाँ प्रधान रूप से मैथुनजन्य सुख की प्रधानता है उस गृह को ही प्राप्त करके वह क्लेशों का अनुभव करता रहता है ॥७॥

**पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ।**
**अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहंममेति ॥८॥**

**अन्वयः**— पुंसः स्त्रिया मिथुनी भावम् एतं तयोः हृदयग्रन्थिम् आहुः । अतो गृहक्षेत्रसुताप्त वित्तैः जनस्य अयं मोहः अहंमम इति ॥८॥

**अनुवाद**— स्त्री और पुरुष दोनों का जो आपस में दाम्पत्य भाव हैं इसको ही पण्डितजन उनके हृदय की दूसरी दुर्मोच और स्थूल ग्रन्थि मानते हैं । देहाभिमान रूपी एक-एक सूक्ष्मग्रन्थि तो उनके हृदय में पहले से ही रहती है । इसी के कारण जीव को गृह, खेत, पुत्र, और वित्त आदि में अहन्त्व तथा ममत्व का मोह हो जाता है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

ननु यथोपयोगं स्त्रिया मिथुनीभूय सुखमात्रमनुभवतः कुतस्तापाः स्युस्तत्राह– पुंस इति । प्रत्येकं तयोरेकैको हृदयग्रंथिरस्त्येव। एतं मिथः परस्परं स्थूलमन्यं हृदययोर्ग्रन्थि दुर्भेदं वदन्ति । कुत इत्यत आह । अतोऽस्मान्मिथुनीभावात् । प्रत्येकं हृदयग्रन्थिना तु देहेन्द्रियमात्रेऽहंममेति मोहोऽस्मात्तु गृहादिभिर्विषयभूतैर्महान्मोहो भवेदित्यर्थः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि उपयोगानुसार स्त्री के साथ जोड़े बनकर सुरत मात्र का अनुभव करने वाले को कष्ट होना कैसे सम्भव है ? तो इसके उत्तर में कहते हैं, स्त्री पुरुष का यह दाम्पत्य भाव दोनों के हृदय में होने वाली दूसरी स्थूल और दुर्भेद ग्रन्थि पण्डित जन मनते हैं । अतएव इस दाम्पत्य भव के कारण प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में देह तथा इन्द्रिय आदि अहंत्व और ममत्व की ग्रन्थि पहले से रहती ही है । इसके द्वारा तो विषयभूत गृह आदि के साथ भी अहन्त्व ममत्व का मोह बन जाता है ॥८॥

**यदा मनोहृदयग्रन्थिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ।**
**तदा जनः संपरिवर्ततेऽस्मान्मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥९॥**

**अन्वयः**— यदा अयं कर्मानुबद्धः मनोहृदयग्रन्थिः आश्लथेत तदाजनः संपरिवर्तते आस्मात् मुक्तः हेतुम् अतिहाय परं याति ॥९॥

**अनुवाद**— जिस समय कर्मवासनाओं के कारण पड़ी हुई इसकी यह दृढ मन और हृदय की ग्रन्थि शिथिल हो जाती है, उस समय मानव दाम्पत्य भाव से निवृत्त हो जाता है और संसार के हेतुभूत अहङ्कार को त्यागकर सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है और परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

कदा तर्हि तस्य निवृत्तिरत आह । यदाऽस्य जनस्य कर्मभिरनुबद्धो दृढो मनोरूपो हृदयग्रन्थिः शिथिलो भवेत्तदाऽस्मान्मिथुनीभावान्निवर्तते । ततश्च हेतुमहङ्कारं त्यक्त्वा मुक्तः सन्परं पदं याति ॥९॥

**भाव प्रकाशिका**

अब प्रश्न होता है कि इस दाम्पत्य भाव की निवृत्ति कब होती है ? इस पर कहते हैं जब इस मनुष्य का कर्मों से संबद्ध मन रूपी हृदय ग्रन्थि शिथिल पड़ जाती है तब मनुष्य इस मिथुनी भाव (दाम्पत्य भाव) से निवृत्त हो जाता है। उसके पश्चात् संसार के कारणभूत अहङ्कार का परित्याग करके जीव परमपद को प्राप्त कर लेता है ।।९।।

**हंसे गुरौ मयि भक्त्याऽनुवृत्त्या वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च ।**
**सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या जिज्ञासया तपसेहानिवृत्त्या ।।१०।।**
**मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं मद्देवसङ्गाद्गुणकीर्तनान्मे ।**
**निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ।।११।।**
**अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राणेन्द्रियात्माभिजयेन सध्र्यक् ।**
**सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वदसंप्रमादेन यमेन वाचाम् ।।१२।।**
**सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ।**
**योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो लिङ्गं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ।।१३।।**

**अन्वयः**— हे पुत्राः ! कुशलः धृत्युत्तम युक्तः हंसे गुरौ मयि भक्त्या, अनुवृत्त्या, वितृष्णया, द्वन्दतितिक्षया, च सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या, जिज्ञासया, तपसा, इहमनिवृत्तक्त्या, मत्कर्मभिः मत्कथया च नित्यं, मद्देव सङ्गात् में गुणकीर्तनात्, निर्वैरसाम्योपशमेन, देहगेहात्मबुद्धेः जिहासया, अध्यात्मयोगेन, विविक्तसेवया प्रणेन्द्रियात्मानिजयेन सध्यक्, सच्छ्रद्धया, शश्वत् ब्रह्मचर्येण, असम्प्रमादेन, वाचांयमेन, सर्वत्रमद्भावविचक्षणेन, विज्ञान विराजितेन ज्ञानेन, योगेन अहमाख्यं लिङ्गं, व्यपोहेत् ।।१०-१३।।

**अनुवाद**— पुत्रों ! संसार सागर से पार होने में कुशल तथा धैर्य, उद्यम और एवं सत्त्वगुण विशिष्ट पुरुष को चाहिए कि सबों की आत्मा और गुरुस्वरूप मुझ भगवान् में भक्तिभाव रखने से, मेरे परायण रहने से, तृष्णा के त्याग से, सुख दुःख आदि द्वन्दों के सहने से जीव को सभी योनियों में, दुःख ही उठाना पड़ता है इस तरह के विचार से, तत्त्व विषयक जिज्ञासा से, तप से सकाम कर्म के त्याग से, मेरी प्रसन्नता के ही लिए कर्मों को करने से, मेरी कथा को प्रतिदिन सुनने से, मेरे भक्तों के साथ मेरे ही गुणों का कीर्तन करने से, वैर त्याग से, समता से, शन्ति से, शरीर तथा गृह आदि में होने वाले ममत्व के त्याग की इच्छा से, अध्यात्म शास्त्र के अनुशीलन से, एकान्त सेवन से प्राण, इन्द्रिय और मन के संयम से, शास्त्र और सत्पुरुषों के वचन में यथार्थ बुद्धि करने से, पूर्णब्रह्मचर्य से, कर्तव्याकर्तव्यों के विषय में सावधान रहने से, वाणी के संयम से, सर्वत्र मेरी ही सत्ता देखने से, अनुभव ज्ञान सहित तत्त्व विचार तथा योग साधन से, अहङ्कार रूप अपने लिङ्ग शरीर को लीन कर दें ।।१०-१३।।

**भावार्थ दीपिका**

हेतुमतिहायेत्युक्तं तत्र पञ्चविंशतिसाधनान्याह चतुर्भिः । हंसे मयि गुरौ भक्तिः सेवा । अनुवृत्तिस्तत्परता । विगततृष्णया। सर्वत्र लोकान्तरेऽपि व्यसनावगत्या दुःखानुसंधानेन । ईहानिवृत्त्या काम्यकर्मत्यागेन । मदर्थैः कर्मभिः । अहमेव देवो येषां तैः सङ्गात् । हे पुत्राः, देहगेहयोरात्मबुद्धेरहंममेति बुद्धेः । अध्यात्मयशोगेनाध्यात्मशास्त्राभ्यासेन । सध्र्यक् सम्यगिति सर्वत्र संबन्धः । असंप्रमादेन कर्तव्यस्यापरित्यागेन । सर्वत्र मद्भावो मद्भावना तत्र विचक्षणेन निपुणेन विज्ञानविराजितेनानुभवपर्यन्तेन ज्ञानेन योगेन समाधिना धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो धैर्यप्रयत्नविवेकैर्युक्तः सन्नहंकाराख्यमुपाधिं व्यपोहेन्निरस्येत् ।।१०-१३।।

**भाव प्रकाशिका**

यह कहा जा चुका है कि संसार के हेतु अहङ्कार का त्याग करके जीव परम पद को प्राप्त कर लेता है। इसके लिए चार श्लोकों में ऋषभदेव ने पच्चीस साधनों को कहा है सबों की आत्मा रूप और गुरु मेरी भक्ति

और सेवा करने से, मेरा अनुसरण और मेरे परायण होने से, तृष्णा का त्याग हो जाने से, परलोक में दुःख की प्राप्ति होती है इस प्रकार के ज्ञान से, इच्छाओं का त्याग करने से, काम्य कर्मों का परित्याग करने से, मेरे लिए कर्मों को करने से, मेरे भक्तों की सङ्गति करने से, हे पुत्रों शरीर और गृह में आत्मबुद्धि तथा ममत्त्व का परित्याग करने से, अध्यात्म योग के द्वारा अध्यात्मशास्त्र का अनुशीलन करने से, सम्यक् असंप्रामाद के द्वारा, सम्यक् कर्तव्य कर्मों का परित्याग नहीं करने से, सर्वत्र मेरी विद्यमानता की भावना करने से, निपुणता तथा वैराग्य की विराज मानता से अनुभव पर्यन्त ज्ञान से योग से तथा समाधि से, धैर्य, उद्यम और सात्त्विक भावना से युक्त पुरुष की अहङ्कार की उपाधि रूप लिङ्ग शरीर को लीन कर देना चाहिए ।।१०-१३।।

**कर्माशयं हृदयग्रन्थिबन्धमविद्ययासादितमप्रमत्तः। अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यग्व्यपोह्योपरमेत यागात्।।१४।।**

**अन्वयः**— अप्रमत्तः पुरुषः हृदयग्रन्थि बन्धम् अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यग् व्यपोहय योगात् उपरमेत ।।१४।।

**अनुवाद**— मनुष्य को चाहिए कि वह सावधान रहकर अविद्या से प्राप्त इस हृदय बन्धन रूप ग्रन्थि को शास्त्रोक्त रीति से इस साधनों के द्वारा अच्छी तरह से विनष्ट कर दे । क्योंकि यह कर्म संस्कार के रहने के स्थान हैं उसके पश्चात् साधन का भी परित्याग कर दे ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

ततः साधनादुपरमेदित्याह । कर्माण्याशेरते यस्मिन् । योगेनोपयेन । यद्यपि फले सिद्धे साधनोपरमः सिद्ध एव, तथापि यावद्देहपातं तदभ्यासशङ्कावारणायोक्तम् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि लिङ्ग शरीर को लीन करने के पश्चात् साधनों का भी परित्याग कर दे । जिसमें कर्मों का निवास होता है उस अविद्या से प्राप्त हृदय ग्रन्थि के बन्धन को इस योग के द्वारा शास्त्रोक्त विधि से विनष्ट करके इन साधनों का भी परित्याग कर दे ।।१४।।

**पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ।**
**इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ।।**
**कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ।।१५।।**

**अन्वयः**— मत् लोककामः मदनुग्रहार्थः नृपः गुरुः व पुत्रान् च शिष्यान् च इत्थम् विमन्युः अनुशिष्यात्, अतज्ज्ञान् कर्ममूढान् कर्मसु न योजयेत् योजयन् मनुजः कं कम् अर्थंलभेत ? नष्टदृशां गर्ते निपातयन्हि ।।१५।।

**अनुवाद**— जो मेरे लोक को प्राप्त करना चाहे अथवा मेरा अनुग्रह प्राप्त करना चाहे और उसी को परम पुरुषार्थ माने तो यदि वह राजा हो तो अपने अबोध पुत्रो को और यदि गुरुहो तो अपने शिष्यों को ऐसी शिक्षा दे । अज्ञान के कारण यदि वे वैसा नहीं करके चलकर कर्म को ही परम पुरुषार्थ मानते रहें तो भी उन पर क्रोध न करके उन्हें शिक्षा दे और उनको कर्मों में प्रवृत्त न होने दे । उनको विषयासक्ति युक्त काम्य कर्मों में लगाना तो वैसे ही है जैसे किसी अन्धे आदमी को गढ़े में ढकेल देना है । इससे किस पुरुषार्थ की सिद्धि हो सकती हैं ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

किंच पुत्रान्पिता शिष्यान्वा गुरुर्नृपश्च प्रजा एवमनुशिक्षयेत् । मम लोकं यः कामयते । यद्वा मदनुग्रह एवार्थो यस्य । विमन्युः शिक्षितस्याकरणेऽपि कोपशून्यः । अतज्ज्ञांस्तत्त्वमविदुषः । श्रेयोबुद्ध्या कर्मसु मूढान् । अन्यथोपदेशे प्रत्यवायमाह। मनुजः काम्यकर्मसु पुरुषं योजयन् गर्ते संसारकूपे तं पातयति स मनुजः कमर्थं पुरुषार्थं लभेत् । न कमपीत्यर्थः ।।१५।।

**भाव प्रकाशिका**

पिता अपने पुत्र को, गुरु अपने शिष्य को तथा राजा अपनी प्रजा को चाहिए कि वह अपने पुत्रों या शिष्यों या प्रजाओं को इस प्रकार की ही शिक्षा दे । यदि वह मेरे लोक को अथवा मेरे अनुग्रह को प्राप्त करना चाहता है तो शिक्षा देने में क्रोध न करे । इस तरह से शिक्षा देने पर भी यदि वे अज्ञानवशात् ऐसा न करें तत्तव का ज्ञान नहीं होने पर उनका कल्याण करने की इच्छा से उन कर्म मूढों पर कोप न करे अपितु समझाए । इसके विपरीत उन सबों को कर्मोपदेन करे, क्योंकि काम्य कर्म में उन सबों को लगाने वाला मनुष्य उन सबों को संसार कूप में ही उन सबों को ढकेलता है । ऐसा करने वाले मनुष्य को किस अर्थ की प्राप्ति होगी ? किसी भी अर्थ की नहीं ॥१५॥

**लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेत निकामकामः ।**
**अन्योन्यवैरः सुखलेशहेतोरनन्तदुःखं च न वेद मूढः ॥१६॥**

**अन्वयः**— स्वयं श्रेयसि नष्ट दृष्टिः निकाम कामः यो लोकः अर्थान् समीहेत, सुखलेश हेतोः अनन्तदुःख च मूढः न वेद ॥१६॥

**अनुवाद**— अपना वास्तविक कल्याण किससे हैं इस बात को कोई नहीं जानता है, इसी कारण वे विभिन्न प्रकार की भोग कामनाओं में फँसकर क्षणिक सुख के लिए आपस में वैर कर लेते हैं । और सदैव विषयभोग के लिए ही प्रयास करते रहते है । वे मूर्ख इस पर थोड़ा सा भी विचार नहीं करते हैं कि इस वैर विरोध के कारण नरक आदि अनन्त घोर दुःखों की प्राप्ति होगी ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

न योजयेदित्येतदुपपादयति–लोक इति त्रिभिः । नष्टदृष्टित्वे हेतुः– य इति । निकाममतिशयेन कामो यस्य ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

ऊपर कहा जा चुका है कि काम्य कर्मों में पुत्रों शिष्यों अथवा प्रजाओं को न लगाये । उसी का प्रतिपादन **लोकः इत्यादि** तीन श्लोकों से करते हैं । उनके अज्ञानी होने का कारण है कि वे निरन्तर भोगों की प्राप्ति के लिए ही प्रयासरत रहते हैं ॥१६॥

**कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिदविद्यायामन्तरे वर्तमानम् ।**
**दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेदुत्पथगं यथाऽन्धम् ॥१७॥**

**अन्वयः**— स्वयं तत् अभिज्ञाः क साध्रणः विपश्चित् अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमान कुबुद्धिं तं उत्पथगं अन्धम् यथा प्रयोजयेत् ॥१७॥

**अनुवाद**— गढे में गिरने के लिए गल्त रास्ते से जाते हुए अन्धे मनुष्य को जैसे कोई दयालु और आख वाला पुरुष उस रास्ते से नहीं जाने देता है उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य को जो अविद्या में फँसकर दुःखों की ओर जाते देखकर कौन ऐसा ज्ञानी पुरुष होगा जो जानकर भी उसे उस रास्ते पर जाने के लिए प्रेरणा देगा ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

तमीदृशं कुबुद्धिं दृष्ट्वा तत्रैव कस्तं प्रवर्तयेन्न कोपि । उत्पथेन गच्छन्तमन्धं यथा तेनैव गच्छेति को ब्रूयात् ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

अज्ञानी पुरुष को उन मार्ग से जाते देख कौन ऐसा ज्ञानी दयालु पुरुष होगा जो उसको उसी रास्ते पर जाने के लिए कहेगा कि इसी रास्ते से जाओ । यह तो उसी तरह से होगा जैसे किसी अन्धे को उल्टा रास्ते से जाता देखकर कहे कि हाँ उसी रास्ते जाओ ॥१७॥

**गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।**
**दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— यः समुपेत् मृत्युम् न मोचयेत् सः गुरुः न स्यात् । स्वजनोन स्यात् पिता न स्यात् सा जननी न स्यात्, सः पतिश्च न स्यात् ॥१८॥

**अनुवाद**— जो अपने प्रिय संबन्धी को भगवद् भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु के मुख से नहीं बचाये वह न तो गुरु हो सकता है, न अपना बान्धव हो सकता है, वह पिता भी नहीं हो सकता है और न तो ऐसी माता ही हो सकती है, वह पति भी नहीं हो सकता है ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

समुपेतः संप्राप्तो मृत्युः संसारो येन तम् । ततो भक्तिमार्गोपदेशेन यो न मोचयेत्स गुर्वादिर्न भवतीत्यर्थः । यद्वा यस्तं मोचयितुं न शक्नुयात्स तस्य गुर्वादिर्न स्यादिति निषेधः । ततश्च पिता न स्यादिति, पुत्रोत्पत्तौ यत्नो न कार्य इत्यर्थः । दैवं देवता न स्यादिति, पूजा न ग्राह्येत्यर्थः ।एवमन्यदपि द्रष्टव्यम् ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

जो मृत्यु रूपी संसार को प्राप्त मनुष्य है उसको भगवद् भक्ति का उपदेश देकर जो उससे नही बचाता है वह गुरु आदि नहीं हो सकता है । अथवा जो उसको मुक्त कराने में समर्थ नहीं हो वह गुरु आदि नहीं हो सकता है, इस तरह से उसका निषेध किया गया है । पिता भी नहीं हो सकता है अर्थात् उसको पुत्र प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए । वह देवता भी नहीं हो सकता है, अर्थात् उसको पूजा भी ग्रहण नहीं करना चाहिए, इसी तरह दूसरों को भी समझना चाहिए ॥१८॥

**इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ।**
**पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आरादतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥१९॥**

**अन्वयः**— मम इदं शरीरं दुर्विभाव्यं हि सत्त्वं में हृदयं यत्र धर्मः यत् अधर्मः मे आरात् पृष्ठे कृतः अतोहि आर्याः माम् ऋषभं आहुः ॥१९॥

**अनुवाद**— मेरा यह अवतार शरीर साधरण जनों की बुद्धि का विषय नहीं है । क्योंकि सत्त्वगुण ही मेरा हृदय है, जिसमें धर्म का निवास होता है । अधर्म को मैंने दूर पीछे ढकेल दिया है, इसलिए सत्पुरुषों ने मुझे ऋषभ कहा है ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

एवं मोक्षधर्मानुपदिश्य भ्रातृशुश्रूषणलक्षणं धर्मं स्पर्धादिनिवृत्तये तेषां जन्मकथनपूर्वकमाह द्वाभ्याम् । इदं मनुष्याकारं शरीरं मम दुर्विभाव्यमवितर्क्य मदिच्छाविलसितम् । नत्वहं प्राकृतो मनुष्य इत्यर्थः मे हृदयं तु सत्त्वम् । किं तद्धृदयम् । यत्र धर्मस्तत् शुद्धं सत्त्वमित्यर्थः । कुतः । यद्यस्मान्मयाऽत्रधर्मो दूरादेव पृष्ठे कृत उत्सारितः । अतएव मामृषभं श्रेष्ठाः प्राहुः ॥१९॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से मोक्ष धर्म का उपदेश करके ऋषभ देव भाई की सेवा रूप धर्म का निरूपण स्पर्धा की निवृत्ति के लिए उन सबों के जन्म के वर्णन पूर्वक दो श्लोकों से कहते हैं । मेरा यह मनुष्याकृति शरीर सामान्य लोगों की बुद्धि का विषय नहीं है मैंने इसे अपनी इच्छा से धारण किया है । मैं प्राकृत मनुष्य नहीं हूँ । सत्त्व गुण ही मेरा हृदय है । यदि पूछो कि सत्त्वगुण होने से क्या हुआ तो इस पर कहते हैं— सत्त्वगुण में ही धर्म का निवास होता है । अर्थात् मेरा हृदय शुद्ध सत्त्व स्वरूप है । क्योंकि मैंने अधर्म को दूर पीछ ढकेल दिया है। इसलिए सत्पुरुष मुझे ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं ॥१९॥

**तस्माद्भवन्तो हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ।**
**अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानाम् ॥२०॥**

**अन्वयः**— तस्मात् भवन्तः हृदयेन जाताः सर्वे अमुम् महीयांसम् सनाभम् अक्लिष्ट बुद्ध्या, भरतं भजध्वम् तत् शुश्रूषणं प्रजानाम् भरणं च ॥२०॥

**अनुवाद**— तुम सभी मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदय से उत्पन्न हुए हो, तुम सभी अपने बड़े भाई भरत की मत्सर का परित्याग करके सेवा करो । भरत की सेवा ही मेरी सेवा है और वही प्रजाओं का पालन है ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

भवन्तश्च हृदयेन शुद्धसत्त्वमयेन जातास्तस्मान्मत्सरं हित्वा महत्तमं सनाभं सोदरं भजध्वम् । ननु त्वत्पुत्रत्वात्त्वां वयं भजेम राजपुत्रत्वात्प्रजाश्च पालयामेति चेदत आह । तदेव मे शुश्रूषणं प्रजानां च पालनम् । भरतानुवृत्त्यैव सर्वं कृतं स्यादिति भावः ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

ऋषभदेवजी अपने पुत्रों से कहते हैं कि तुमलोग मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदय से उत्पन्न हुए हो, अतएव तुम सभी मत्सर का परित्याग करके अपने बड़े सहोदर भाई भरत की सेवा करो । यदि कहो कि हमलोग आपके पुत्र हैं अतएव आपकी सेवा करते हैं और राजा का पुत्र होने के कारण प्रजा का पालन भी करेंगे । तो यह कहना ठीक नहीं भरत की सेवा ही मेरी सेवा है और वही प्रजाओं का पालन है । भरत का अनुगमन करने से ही सबकुछ हो जायेगा ॥२०॥

**भूतेषु वीरुद्भ्यः उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ।**
**ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥२१॥**

**अन्वयः**— भूतेष वीरूद्भ्यः ये सरीसृपाः उदुत्तमाः तेषु सबोधनिष्ठाः, ततो मनुष्याः प्रमथाः ततोसि, ये विवुधानुगाः गन्धर्व सिद्धाः ॥२१॥

**अनुवाद**— अन्य जीवों की अपेक्षा वृक्ष श्रेष्ठ है, उनसे चलने वाले जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं, उनसे भी प्रमथ गण श्रेष्ठ है, और उनसे श्रेष्ठ देवताओं के अनुगामी गन्धर्व और सिद्ध श्रेष्ठ हैं ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

इदानीं ब्राह्मणाश्च सेव्या इत्याशयेन तेषां सर्वेभ्यः श्रैष्ठ्यमाह पञ्चभिः । भूतेषु चेतनाचेतनेषु । विरोहन्तीति वीरुधः स्थावरा उदुच्चैरतिशयेनोत्तमाः । तेभ्योऽपि ये सरीसृपाः सर्पन्तीति जङ्गमास्ते उदुत्तमा इति सर्वत्रानुषङ्गः । तेष्वपि सबोध निष्ठा स्थितिर्येषां पश्वादीनां ते कीटकादिभ्यः । ततस्तेष्वपि मनुष्याः । ततोऽपि प्रमथा भूतप्रेतादयः । ततोऽपि गन्धर्वाः । ततः सिद्धाः। ततोऽन्ये विबुधानुगाः किंनरादयः ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

अब ब्राह्मणों की सेवा करना चाहिए इस आशय से पाञ्च श्लाकों द्वारा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करना चाहिए । चेतन और अचेतन भूतों में बढ़ने वाले स्थावर उनसे अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । उन सबों से चलने वाले जीव श्रेष्ठ । उनसे भी ज्ञानवान पशु आदि श्रेष्ठ हैं । उन सबों में भी मनुष्य श्रेष्ठ है । उन सबों भी प्रमथगण भूत प्रेत श्रेष्ठ हैं । उन सबों से गन्धर्व श्रेष्ठ हैं उनसे सिद्ध श्रेष्ठ है और उनसे भी देवताओं के अनुयायी किन्नर आदि श्रेष्ठ हैं ॥२१॥

**देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ।**
**भवः परः सोऽथ विरिञ्चवीर्यः स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥२२॥**

**अन्वयः**—तेभ्यः असुराः असुरेभ्यः देवाः मधवत् प्रधानाः तेभ्यः दक्षादयः ब्रह्मसुताः तेषाम् तु भवः अथ सः विरिञ्चवीर्यः, स मत्परः द्विजदेव देवः अहम् ॥२२॥

**अनुवाद**— उन किन्नरादिकों से श्रेष्ठ असुर हैं, उनसे श्रेष्ठ देवगण श्रेष्ठ हैं, देवताओं में भी इन्द्र प्रधान हैं, उनसे श्रेष्ठ ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति इत्यादि श्रेष्ठ है । उनसे श्रेष्ठ शङ्करजी है । उनसे श्रेष्ठ ब्रह्माजी है और ब्रह्माजी भी मुझसे उत्पन्न हैं और मेरी उपासना करते हैं अतएव मैं उनसे प्रधान हूँ किन्तु ब्राह्मण मुझसे श्रेष्ठ है क्योंकि मैं उन्हें पूज्य मानता हूँ ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

तेभ्योऽसुराः । देवा असुरेभ्यः । संधिरार्षः । देवाश्च मघवत्प्रधानाः, देवेभ्य इन्द्रः श्रेष्ठ इत्यर्थः । ततोऽपि बह्मसुता दक्षादयः। तेषां मध्ये भवः परः श्रेष्ठः । स भवो विरिञ्चवीर्यो विरिञ्चो वीर्यशक्तिः कारणं यस्य स विरिञ्चवीर्यः, अतस्तज्जनकत्वाद्विरिञ्चस्ततः पर इत्यर्थः। स विरिञ्चो मत्परः अहं परो यस्य। द्विजदेवा ब्राह्मणा एव देवाः पूज्या यस्य सोऽहम् ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

उन किन्नरों आदि से असुर श्रेष्ठ हैं, असुरों से देवता श्रेष्ठ हैं देवासुरेभ्यः में सन्धि आर्ष है । देवता में भी इन्द्र प्रधान है । अर्थात् देवताओं से इन्द्र श्रेष्ठ हैं । इन्द्र से ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति इत्यादि प्रधान है। उन सबों में भी शङ्करजी श्रेष्ठ है वे शङ्करजी के पुत्र हैं, अतएव उनसे ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं । उन ब्रह्माजी से मैं श्रेष्ठ हूँ । ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं क्योंकि मैं ब्राह्मणों को पूज्य मानता हूँ ॥२२॥

**न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ।**
**यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाहमश्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे विप्राः ! ब्राह्मणैः अन्यत् भूतम् न तुलये अतः परं तु किम् यस्मिन् नृभिः श्रद्धया प्रहुतं अहं कामं अश्नामि तथा अग्निहोत्रे न ॥२३॥

**अनुवाद**— हे ब्राह्मणों मैं ब्राह्मणों के समान किसी भी जीव को नहीं मानता हूँ फिर ब्राह्मणों से श्रेष्ठ कैसे मान सकता हूँ ब्राह्मणों के मुख में मनुष्यों द्वारा श्रद्धा पूर्वक होम की गयी वस्तु को जितने चाव से ग्रहण करता हूँ उतना अग्निहोत्र को चाव से नहीं ग्रहण करता हूँ ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणैरन्यद्भूतं न तुलये समं न पश्यामि । अतो ब्राह्मणात्परं तु भूतं किं पश्यामि न किंचित् । विप्रा इति तत्रत्यानां ब्राह्मणानां संबोधनम् । समस्यैवाभावादधिकं कुतस्त्यमित्यर्थः तत्र हेतूनाह सार्धाभ्याम् । यस्मिन् ब्राह्मणे श्रद्धया प्रकर्षेण हुतमन्नादि कामं यथेच्छमहमश्नामि ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

विप्रों मैं ब्राह्मणों से किसी दूसरे जीव की तुलना नहीं करता हूँ अर्थात् ब्राह्मणों के समान मैं किसी दूसरे का नहीं मानता हूँ । अतएव ब्राह्मणों से श्रेष्ठ किसी को कैसे मान सकता हूँ । ब्राह्मणों को मनुष्यों द्वारा जो अन्नों का भोजन कराया जाता है, उसको, जितना प्रेम से खाता हूँ उतने प्रेम से अग्निहोत्र में हवन करने से मैं नहीं प्रसन्न होता हूँ ॥२३॥

**धृता तनूरुशती मे पुराणी येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम् ।**
**शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षानुभवश्च यत्र ॥२४॥**

**अन्वयः**— येन इह परमं पवित्रं सत्त्वं मे पुराणी उशती तनूः धृता शमः दमः तपः सत्यम् अनुग्रहः तपः तितिक्षा अनुभवः च यत्र ॥२४॥

**अनुवाद**— जिन लोगों ने अध्ययनादि के द्वारा मेरी वेद स्वरूपिणी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति को धारण किया है तथा जिनमें, शाम, दम, तपस्या, सत्य, दया, तप तितिक्षा और ज्ञान ये आठ गुण विद्यमान हैं, उन ब्राह्मणों से बढ़कर कौन हो सकता है ?॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

मे तनूर्मूर्तिर्वेदाख्या येन ब्राह्मणेनेह लोके धृता। यत्र च ब्राह्मणे सत्त्वादयोऽष्टौ गुणाः सन्ति, ततः परं किं पश्यामीत्यन्वयः॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

मेरी वेद रूपी मूर्ति को जिन ब्राह्मणों ने इस संसार में धारण किया है तथा जिन ब्राह्मणों में सत्य आदि आठ गुण विद्यमान हैं, उन ब्राह्मणों से श्रेष्ठ मैं किसको मानूं ॥२४॥

**मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किंचित् ।**
**येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिंचनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— स्वर्गापवर्गाधिपतेः मत्तः अनन्तात् परतः परस्तात् मयिभक्तिभाजाम् अकिञ्चनानां येषां किञ्चित् न तेषाम् इतरेण किमु स्यात् ॥२५॥

**अनुवाद**— स्वर्गलोक एवं मोक्ष के स्वामी अनन्त स्वरूप ब्रह्मादि देवताओं से श्रेष्ठ मुझ में भक्ति रखने वाले मेरे अकिञ्चन भक्त इतना निःस्पृह होते हैं कि वे मुझसे भी कुछ नहीं चाहते हैं तो वे दूसरे से कुछ भी क्यों चाहेंगे ?॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

निःस्पृहत्वमाह । मत्तोऽपि येषां नकिंचित्प्रार्थनीयमस्ति तेषामितरेण राज्यादिना किमु स्यान्न किमपि ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्राह्मणों की निःस्पृहता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो ब्राह्मण मुझसे भी कुछ नहीं चाहते हैं वे उनको राज्य आदि से क्या मतलब हैं ?॥२५॥

**सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ।**
**संभावितव्यानि पदे पदे वो विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हणं मे ॥२६॥**

**अन्वयः**— हे सुताः सर्वाणि चराणि भूतानि ध्रुवाणि भवद्भि मदधिष्ण्यतया पदे-पदे वः विविक्तदृग्भि; संभावितव्यानि तत् इहमे अर्हणम् ॥२६॥

**अनुवाद**— हे पुत्रों सम्पूर्ण चराचर भूतों को तुमलोग मेरा शरीर समझकर शुद्ध बुद्धि से प्रत्येक क्षण उनकी शुद्ध बुद्धि से सेवा करो, यही मेरी सच्ची सेवा हैं ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

तदेवं ब्राह्मणसंमानं विधायेदानीं सर्वभूतसंमान विधत्ते । हे सुताः, सर्वाणि जङ्गमानि स्थावराणि च भूतानि मदधिष्ठानतया वो युष्माभिः संमाननीयानि । पदे पदे क्षणे क्षणे । विविक्ता पूता मत्सरादिरहिता दृष्टिर्येषां तैः । तदेव ममार्हणम् ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार से ब्राह्मणों के सम्मान का विधान करके अब सभी जीवों के सम्मान का विधान करते हैं । हे पुत्रों ! समस्त स्थावर जङ्गम भूतों की तुम लोग मेरा शरीर के समान मानकर प्रतिक्षण मात्सर्य इत्यादि का परित्याग करके सेवा करो यही मेरी वास्तविक सेवा है ॥२६॥

**मनोवचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ।**
**विना पुमान्येन महाविमोहात्कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥२७॥**

**अन्वयः**— मनो वचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतहिपरिबर्हणं में येन बिना पुमान् महाविमोहात् कृतान्त पाशात् विमोक्तुं न ईशेत् ॥२७॥

**अनुवाद**— मन, वचन, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियों की चेष्टाओं का साक्षात् फल मेरी इस प्रकार की पूजा ही हैं । इसके विना मनुष्य अपने को महामोहमय काल पाश से नहीं छुड़ा सकता है ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वकर्मणामीश्वरार्पणं विधत्ते । मनोवचोदृशामन्येषां च करणानामीहितस्य व्यापारस्य मे परिब्रर्हणमाराधनमेव साक्षात्कृतं फलम् । येन परिवर्हणेन बिना कालपाशाद्विमोक्तुं न ईशेन्न समर्थो भवेत् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक से ऋषभदेव बतलाते हैं, अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिये । ये मन, वाणी तथा दृष्टि एवं अन्य इन्द्रियों के व्यापरों का साक्षात् फल मेरी पूजा ही हैं । उस प्रकार के पूजन के बिना मनुष्य महामोहमय काल पाश से अपने को छुड़ा नहीं पाता है ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

**एवमनुशास्यात्मजान्स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरित-शरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज॥२८॥**

**अनुवाद**— राजन्, ऋषभदेव जी के पुत्र यद्यपि स्वयं हि हर प्रकार से सुनिश्चित थे फिर भी लोगों को शिक्षा देने के लिए अत्यन्त प्रभाव सम्पन्न परमसुहृत भगवान् ऋषभदेवजी ने उन सबों को इस प्रकार से उपदेश दिया। ऋषभदेवजी के सौ पुत्रों में भरतजी सबसे बड़े थे वे श्रीभगवान् के भक्त तथा भगवदभक्त परायण थे । ऋषभदेवजी ने पृथ्वी का पालन करने के लिए उनको गद्दी पर बैठा दिया । वे स्वयं निवृत्ति परायण महामुनियों के भक्ति ज्ञान और वैरागय रूप परमहंसोचित धर्मों की शिक्षा देने के लिए विल्कुल विरक्त हो गये । उन्होंने केवल शरीर मात्र का परिग्रह रखा और सवकुछ घर ही रहते छोड़ दिया । वे वस्त्रों का भी परित्याग करके दिगम्बर हो गये विखरे हुए केश तथा उन्मत्त वेष में वे आहवनीय अग्नियों को अपने में लीन करके संन्यासी हो गये । और ब्रह्मावर्त से बाहर चले गये ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वत एव सुशिक्षितानपि लोकानुशासनार्थमनुशास्य मुनीनां पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षयिष्यन्भरतमभिषिच्य ऋषभ इत्यपदेशो नाम यस्य स भगवान् ब्रह्मावर्तात्स्वदेशात्प्रवव्राजेत्यन्वयः । उर्वरितोऽवशिष्टः शरीरमात्रपरिग्रहो यस्य ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

ऋषभदेवजी के पुत्र अपने आप सुशिक्षित थे किन्त सबों को उपदेश देने के लिए उन्होंने उन सबों को उपदेश दिया, पारमहंस्य धर्म की शिक्षा देने के लिए उन्होंने भरत को राजगद्दी प्रदान करके ऋषभ इस नामानुसार वे भगवान् अपने ब्रह्मावर्त नामक देश से बाहर चले गये । वे केवल शरीर मात्र का परिग्रह किए थे ।।२८।।

**जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव॥२९॥**

**अनुवाद**— पूर्ण रूप से मौन धारण कर लिए थे कोई बात भी करना चाहता था तो बात नहीं करते थे। जड़, अन्धे, बहरे, गूङ्गे, पिशाच एवं बहरों के समान चेष्टा करते हुए अवधूत बन कर जहाँ तहाँ विचरण करने लगें ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

अभिभाष्यमाणोऽपि जनानां मध्ये जडादिवद्वर्तमानस्तूष्णीं बभूव । अवधूतस्येव वेषा यस्य ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

लोगों के द्वारा पूछे जाने पर भी लोगों के बीच में वे जड़ आदि के समान रहकर मौन हो गये ।।२९।।

**तत्र तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वटशिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजः प्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन्देहोपलक्षणे सदुपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ।।३०।।**

**अनुवाद**— कभी-कभी नगरों, ग्रामों में चले जाते थे कभी खदानों, किसानों की बस्तियों, बागों, सेना की शिविरों, पहाड़ी गावों, गोशालाओं, अहीरों की बस्तियों, यात्रियों के रुकने के स्थानों में चले जाते थे । कभी पहाड़ों, जङ्गलों, और आश्रम आदि में विचरते थे । कभी भी वे किसी रास्ते निकलते थे तो जैसे हाथी को मखियाँ सताती हैं उसी प्रकार मूर्ख और दुष्ट लोग उनके पीछे हो लेते थे, और उनको तङ्ग करते थे । कोई उनको धमकी देता था तो कोई मारता था कोई उन पर पेशाब कर देता था, कोई थूक देता था, कोई ढेला मारता था, कोई उन पर विष्ठा फेंकता था और धूल फेंक देता था । कोई अधो वायु छोड़ता तो कोई उनको खरी खोटी सुनाता और उनका तिरस्कार करता था, किन्तु वे इन सभी किसी बात पर ध्यान नहीं देते थे । इसका कारण यह था कि भ्रम से सत्य कहे जाने वाले इस मिथ्या शरीर में उनका अहन्त्व ममत्व बिल्कुल नहीं था । वे कार्य-कारण रूप सम्पूर्ण प्रपञ्च के साक्षी होकर अपने परमात्म स्वरूप में स्थित हो गये थे । इसीलिए अखण्ड चित्तवृत्ति से अकेले ही पृथिवी पर विचरण किया करते थे ।।३०।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र तत्र पुरादिष्वनुपथं मार्गे मार्गेऽवनिचरापसदैर्दुर्जनैस्तर्जनादिभिः परिभूयमानोऽपि तदविगणयन्नेवैकचर एकाकी पृथिवीं परिबभ्रामेत्यन्वयः । तत्र पुरं पुत्तनम् । ग्रामा हट्टहीनाः । आकरः खनिः । खेटः कृषीवलग्रामः । वाटः पुष्पादिवाटिका । खर्वटः पर्वतप्रान्तग्रामः । शिविरं सेनाया वासस्थानम् । व्रजो गवां स्थानम् । घोषो गोपानां स्थानम् । सार्थो यात्रिकजनसंघातः । आश्रमा ऋषीणाम् । तर्जनं भयजननम् । ताडनं प्रहारः । अवमेहनमुपरिमूत्रणम् । ष्ठीवनं फूत्कृत्य श्लेष्मप्रक्षेपः । ग्राव्णां शकृतो रजसश्च प्रक्षेपः । पूतिवातोऽधोवायुः । दुरुक्तं शापः । एतैः अगणने दृष्टान्तः-मक्षिकाभिरिवेति । तत्र हेतुः- असति मिथ्याभूते संनिवेशे। देह इत्युपलक्षणमाकारो यस्य । सदित्यपदेशमात्रं यस्य तस्मिन्निरभिमानत्वात् । केन हेतुना । उभयोः सदसतोर्योऽनुभवस्तत्स्वरूपेणयत्स्वमहिम्नयवस्थानं तेन । अत एवाखण्डितं मनो यस्य स परिबभ्राम ।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

नगरों एवं गावों के प्रत्येक मार्गों पृथिवी पर रहने वाले नीचों और दुष्टों द्वारा तिरस्कृत किए जाने पर भी उसकी परवाह नहीं करते हुए वे अकेले पृथिवी पर घूमते रहे । पुरम् अर्थात् नगर ग्राम, गाँव, खेट अर्थात् किसानों का गाँव, बाट यानी बगीचा, खर्वट अर्थात् पर्वतों के गाँव, शिवर सेना के निवास स्थान, व्रजः गोशाला, घोषः अर्थात् अहीरों का गाँव, सार्थः यानी यात्रियों के रुकने के स्थान, आश्रम अर्थात् ऋषियों का आश्रम तर्जनम् अर्थात् धमकाना, ताडनम् यानी मारना, ष्ठीवनम् अर्थात् थूकना, पत्थर, विष्ठा, तथा धूल का फेंकना, पूतिवातः अर्थात् अपान वायु, दुरुक्तम् यानी गाली देना, इन सबों के परवाह नहीं करने का उदाहरण है जैसे हाथी को मखियाँ तङ्ग करती हैं । उसका कारण है मिथ्या भूत संनिवेश पर देह के आकार वाले जिसमें सत्यत्व का अभिमान होता है, उस शरीर में अभिमान रहित सत् एवं असत् के अनुभव स्वरूप के कारण अपनी ही महिमा में अवस्थित उनका मन अखण्ड था इसी प्रकार वे घूम रहे थे ।।३०।।

**अतिसुकुमारकरचरणोरः स्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयवविन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरतारारुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकण्ठनासोविगूढ-स्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिश-केशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ।।३१।।**

**अनुवाद**— उनके हाथ, पैर, छाती, लम्बी भुजाएँ, कन्धे, गले और मुख आदि अङ्गों की बनावट बड़ी ही सुकुमार थी । स्वभावतः सुन्दर उनका मुख स्वाभाविक मन्द मुस्कान से अत्यधिक मनोहर लगता था । उनके नेत्र नवीन कमलदल के समान मनोज्ञ बड़े-बड़े और कुछ ललिमा लिए हुए थे उनकी आँखों की पुतलियाँ शीतल और संताप हारिणी थीं । उन नेत्रों के कारण वे अत्यन्त सुन्दर लगते थे । कपोल कान और नाक छोटे बड़े न होकर समान और सुन्दर थे । उनके अस्फुट हास्य युक्त मनोज्ञ मुखारविन्द की शोभा को देखकर नगर की नारियों के चित्त में काम का संचार हो जाता था फिर भी उनके मुख के आगे जो भूरे रङ्ग लम्बे कुञ्चित केश लटके रहते थे । उनके महान् भार और अवधूत के समान धूलि धूसरित देह के कारण वे ग्रह ग्रस्त से प्रतीत होते थे ।।३१।।

### भावार्थ दीपिका

स च तदा ग्रहगृहीत इवादृश्यत । तत्र हेतुः— पराक् पुरतोऽवलम्बमानाश्च ते कुटिलाश्च ते जटिलाश्च कपिशाश्च केशास्तेषां भूरिभारो यस्य सः । अवधूतमनादृतमत एव मलिनं निजशरीरं तेन । कथंभूतोऽप्येवमदृश्यत । अतिसुकुमाराणि करचरणोरः स्थलानि तथा विपुला वाह्वादयस्त एवावयवास्तेषां विशिष्टो न्यासः संनिवेशो यस्य सः । तथा प्रकृत्यैव सुन्दरः स्वभावसिद्धो हासस्तेन शोभनं मुखं यस्य । तथा नवनलिनदलवदाचरती ये शिशिरतारे तापहारिकनीनिके अरुणे आयते नयने ताभ्यां रुचिरः । तथा सदृशा अन्यूनाधिकाः सुभगाश्च कपोलकर्णकण्ठनासिका यस्य । तथा विगूढस्मितं यद्वदनं तस्य महोत्सवेन विभ्रमेण पुराङ्गनानां मनसि काममुद्दीपयन् । एवंभूतोऽपि तथादृश्यतेत्यन्वयः ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

वे उस समय ग्रह से ग्रस्त के समान दिखायी पड़ते थे । उनके मुख के सामने घुघराले, उलझे हुए भूरे केशों का समूह लटका रहता था । अवधूत वेश में रहने के कारण उनका अनादृत शरीर मलिन हो गया था । हाथ, पैर विस्तृत छाती लम्बी भुजाओं वाले वे थे । वे स्वभावतः सुन्दर थे स्वाभाविक हँसी से उनका मुख मनोहर लगता था । नवीन कमल दल के समान शीत तथा संताप हारिणी पुतलियों से युक्त उनके अरुण वर्ण के विस्तृत नेत्र मनोहर थे । उनके नाक, कान और कपोल छोटे बड़े नहीं अपितु एक समान थे । मन्दमुसकान से

मनोहर उनके मुख को देखकर नगर की नारियों के चित्त में काम का संचार हो जाता था। इसी प्रकार के वे दिखाई पड़ते थे ॥३१॥

**यर्हि वाव स भगवाँल्लोकमिमंयोगस्याद्धा प्रतीपमिवाचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्मबीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः॥३२॥**

**अनुवाद**— जब भगवान् ऋषभदेव ने देखा कि यह जनता योग साधन में विघ्न रूप है और इससे बचने का उपाय बीभत्स रूप से रहना ही है तब उन्होंने अजगर वृत्ति धारण कर ली। वे लेटे ही लेटे खाने पीने चबाने और मल-मूत्र त्यागने लगे वे अपने त्यागे हुए मलमें लोट लोटकर शरीर को उससे सान लेते थे ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

यर्दि यदा लोकं जनं योगस्य प्रतिपक्षमाचक्षाणः पश्यन्बभूव। तस्य प्रतिक्रियाकरणं कर्म च निन्दितमित्याचक्षाणस्तदाजगरं व्रतमास्थितः सन् शयान् एवाश्नाति स्मेत्यन्वयः। आजगरं व्रतं नामैकत्रैव स्थित्वा प्रारब्धकर्मोपभोगः। अवमेहति मूत्रयति हदति पुरीषमुत्सृजति। उच्चरिते पुरीषे चेष्टमानो विलुण्ठन् तेनैवादिग्धा आलिप्ता उद्देशा देहप्रदेशा यस्य सः ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

जब उन्होंने देखा कि लोग योग में विघ्न स्वरूप है तब वे इससे बचने के लिए उन्होंने बीभत्स अजगर व्रत को अपना लिया। वे लेटे-ही-लेटे खाने-पीने लगे। एक स्थान पर ही रहकर प्रारब्ध क्रम का उपभोग करना ही अजगर व्रत है। वे लेटे-ही-लेटे मल-मूत्र भी त्याग करते थे। परित्यक्त मल में लोटते हुए मल से उनका शरीर सन जाता था ॥३२॥

**तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात्सुरभिं चकार ॥३३॥**

**अनुवाद**— उनके मल में दुर्गन्ध नहीं सुगन्धि थी। उनके मल की सुगन्धि को लेकर वायु उनके चारो ओर दश योजन तक सुगन्धित कर देती थी ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

बीभत्समिवाशङ्क्याह तस्येति। पुरीषस्य सुरभिणा गन्धेन सौगन्ध्येन सौगन्ध्यं यस्य व वायुः ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

वीभत्स की आशङ्का करके कहते हैं उनके पुरीष की सुगन्धि से सुगन्धित वायु दश योजन पर्यन्त के प्रदेश को सुगन्धित करती थी ॥३३॥

**एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काकमृगगोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म॥३४॥**

**अनुवाद**— इसी तरह गौ मृग तथा काक वृत्ति को अपना कर वे उन्हीं के समान कभी चलते हुए कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे हुए और कभी लेटे ही लेटे खाने, पीने और मलमूत्र के त्यागने लगते थे ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं गवादिचर्यया पानादिकरोति स्म्। तदेवाह-व्रजन्नित्यादिना। काकमृगगवामिवान्यदपि चरितं वृत्तिर्यस्य ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

इसी तरह गौ आदि की वृत्ति से वे खाने-पीने का काम करने लगे थे। कौआ, मृग तथा गौ आदि के समान वे वृत्ति अपना लेते थे ॥३४॥

**इति नानायोगचर्याचरणो भगवान्कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ॥३५॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

**अनुवाद**—इस प्रकार से अनेक प्रकार की योग चर्चा का आचरण करते हुए निरन्तर सर्वश्रेष्ठ महान् आनन्द का अनुभव करते रहते। उनकी दृष्टि में निरूपाधिक रूप से सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा अपने आत्म स्वरूप भगवान् वासुदेव से किसी प्रकार का भेद नहीं था। इसलिए उनके सभी पुरुषार्थ पूर्ण हो चुके थे। उनके पास गमन मनोजवित्स अन्तर्धान परकाय प्रवेश दूर की बातें सुन लेना और दूर के दृश्य को देख लेना इत्यादि सभी प्रकार की सिद्धियाँ उनके पास आयीं किन्तु उन्होंने उन सबों को नहीं स्वीकार किया ॥३२॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के ऋभभेदव चरित वर्णन के अन्तर्गत पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।**

### भावार्थ दीपिका

नानायोगचर्या आचरतीति तथा। लोकयात्रापरिहाराय योगिभिरेवं वर्तितव्यमिति प्रदर्शनाय तथा कृतवान्। वस्तुतस्तु भगवान्यतोऽविरतः परममहानुत्तरोत्तरशतगुणत्वेनोक्तो आनन्दस्तदनुभवस्वरूपः। किंच वासुदेवे आत्मनोऽव्यवधानेनाभेदेन न विद्यतेऽन्येषामिवान्तरा मध्ये उदरस्य देहोपाधेर्भावस्तेन। नित्यनिवृत्तोपाधित्वेनेत्यर्थः। स्वत एव सिद्धैः समस्तैरर्थैः फलैः परिपूर्णत्वाद्योगैश्वर्याणि नाभ्यनन्दत्। वैहायसं खेचरत्वम्। मनोजवं मनस इव देहस्य वेगम्। दूरग्रहणं दूरदर्शनम्। हे नृप। हृदयेन मनसा ॥३५॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।३५।।**

### भाव प्रकाशिका

लोक यात्रा का परित्याग करने के लिए योगियों का इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए इस बात को बतलाने के लिए उन्होंने अनेक प्रकार की योगचर्या की वस्तुतः भगवान् निरन्तर उत्तरोत्तर शतगुणित रूप से वर्णित जो आनन्द हे उससे अनुभव स्वरूप है। वे भगवान् वासुदेव से देह रूपी उपाधि को लेकर भेद नहीं मानते थे। उनकी उपाधि सदैव निवृत्त थी। स्वाभाविक रूप से सिद्ध सभी फलों से युक्त होने के कारण उन्होंने न तो योग के ऐश्वर्यों का अभिनन्दन किया आकाश मार्ग से गमन, मन के समान देह का वेग सम्पन्न हो जाना, दूर की वस्तुओं को देख लेना इत्यादि इन सभी सिद्धियों को हृदय से नहीं स्वीकारे ॥३५॥

**इस तरत श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५।।**

# छठा अध्याय

## ऋषभदेव का देहत्याग करना

राजोवाच

**न नूनं भगव आत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छयोपगतानि ॥१॥**

### राजा परीक्षित् ने कहा

**अनुवाद**— भगवान् योग रूप से प्रज्जवलित हुई । अग्नि से जिनके रागादि कर्म बीज दग्ध हो चुके हैं । आत्माराम मुनियों को दैववश यदि स्वयं ही अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाय तो वे उनके राग द्वेषादि क्लेशों का कारण तो किसी प्रकार नहीं हो सकती हैं । तो फिर भगवान् ऋषभदेव ने उन सबों को क्यों नहीं स्वीकार किया ?॥१॥

### भावार्थ दीपिका

षष्ठे लीनाभिमानस्य देहत्यागक्रमाभिध । प्रदहनतं दवाग्निं यः पश्यन्नपि न पश्यति । योगैश्वर्याणि नाभ्यनन्ददित्युक्तं तत्र पृच्छति-नेति । भगवः हे भगवन्, योगेन समीरितमुद्दीपितं यज्ज्ञानं तेनावभर्जिततानि दग्धानि कर्मबीजानि रागादीनि यैस्तेषां यदृच्छया प्राप्तानि योगैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितु नार्हन्ति । अतः किमिति नाभ्यनन्ददित्यर्थः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में जिन्होंने अपने अभिमान को लीन कर दिया था उन ऋषभदेवजी के देहत्याग का वर्णन किया गया है। उन्होंने जलती हुई दवाग्नि को देखते हुए भी नहीं देखा । पीछे के अध्याय में शुकदेवजी ने कहा है कि ऋषभदेवजी ने योग के ऐश्वर्यों को नहीं स्वीकार किया । उसके विषय में महाराज परीक्षित् पूछते हैं कि— हे भगवन् योग की महिमा से प्रज्ज्वलित जिनके कर्मों के कारणभूत राग इत्यादि विनष्ट हो गये हैं उनको अपने आप प्राप्त होने वाले योगों के एश्वर्य पुनः क्लेश नहीं दे सकते हैं, फिर उन्होंने उन ऐश्वर्यों को क्यों नहीं स्वीरकार किया ॥१॥

ऋषिरुवाच

**सत्यमुक्त किं त्विह वा एकेन मनसोऽद्धा विश्रम्भमनवस्थानस्य शठकिरात इव संगच्छन्ते ॥२॥**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— तुम ठीक कहते हो, किन्तु जैसे दुष्टकिरात (व्याध) अपने पकड़े हुए मृग का जैसे विश्वास नहीं करता है उसी तरह बुद्धिमान पुरुष इस चंञ्चल चित्त का विश्वास नहीं करते हैं ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

अङ्गीकृत्य परिहरति सत्यमिति । एके बुद्धिमन्तोऽनवस्थानस्य चञ्चलस्य मनसो विश्वासं न संगच्छन्ते न सम्यक् प्राप्नुवन्ति। शठः किरातो यथा धृतेष्वपि मृगेषु । शठे किराते यथा मृगा इति सप्तम्यन्तं वा । पाठान्तरे शठो वञ्चकः किरातो वणिग्व्यवहर्तरि यथा । तस्मिन्वा व्यवहर्ता विश्वासं न यातीत्यर्थः । पाक्षिकोपि दोषो वर्जनीय इत्युपदेष्टुं नाभ्यनन्ददिति भावः॥२॥

### भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् की बात को स्वीकार करके उसका खण्डन करते हैं— जो बुद्धिमान पुरुष होते हैं वे इस चञ्चल मन का विश्वास नहीं करते हैं । जैसे शठ किरात पकड़े हुए मृगों पर भी विश्वास नहीं करता है । अथवा **शठकिरात** पद में शठे किराते इस तरह का विग्रह करने पर अर्थ होगा कि जिस तरह शठ किरात पर मृग विश्वास

नहीं करते हैं। जहाँ दूसरा पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि प्रवञ्चक किरात जिस तरह व्यापारी पर विश्वास नहीं करते हैं। अथवा जिस तरह व्यापारी शठ किरात पर विश्वास नहीं करता है। दूसरे पक्ष में होने वाले दोष का भी वर्जन करना चाहिए इस तरह उपदेश देने के लिए उन्होंने उन सिद्धियों को नहीं स्वीकार किया ॥२॥

**तथा चोक्तम्।**

**अनुवाद**— कहा भी गया है।

**न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते। यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥३॥**

**अन्वयः**— अनवस्थिते हि मनसि कर्हिचित सख्यं न कुर्यात् यद विश्रम्भात् चिरात् चिर्णं ऐश्वरं तप चस्कन्द ॥३॥

**अनुवाद**— इस चञ्चल चित्त से कभी भी मित्रता नहीं करनी चाहिए इस पर विश्वास करने के कारण मोहिनी के रूप में फँसकर दीर्घकाल से सञ्चित तप को क्षीण कर दिया ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

यद्विश्रम्भाद्यस्य मनसो विश्वासाच्चिराच्चीर्णं बहुकालसंचितं तपश्चस्कन्द सुस्राव। ऐश्वरं विष्णोर्मोहिनीरूपदर्शनेन। यद्वा ईश्वराणां समर्थानामपि सौभरिप्रभृतीनां तपः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

उस चञ्चल पर विश्वास करने के कारण ही दीर्घ काल से सञ्चित शङ्करजी का तप परमात्मा के मोहिनी रूप को देखने से क्षीण हो गया। अथवा समर्थ भी सौभरि आदि महर्षियों का भी तप क्षीण हो गया ॥३॥

**नित्यं ददाति कामस्य छिद्रं तमनु येऽरयः। योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥४॥**

**अन्वयः**— कृत मैत्रस्य योनिः निमनः पुश्चली जाया इव नित्यं कामस्य तदनु ये अरयः तेषां छिद्रं ददाति ॥४॥

**अनुवाद**— जो योगी अपने इस चञ्चल मन पर विश्वास करते हैं उनका मन काम और इसके साथी क्रोधादि शत्रुओं को आक्रमण करने का उसी तरह से अवकाश प्रदानकर देता है जिस तरह व्यभिचारिणी स्त्री जार पुरुषों को अवकाश प्रदान करके उस पर विश्वास करने वाले पति को मरवा देती है ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः- नित्यमिति। कृतविश्वासो यो योगी तदीयं मनः कामस्य तमनु येऽरयस्तेषां च छिद्रमवकाशं ददाति। यथा कृतविश्वासस्य पत्युः पुंश्चली जाया जाराणामवकाशं दत्त्वा पतिं घातयति तथा मनोऽपि कामादिभिर्योगिनं भ्रंशयतीत्यर्थः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

मन पर विश्वास नहीं करना चाहिए इसका कारण इस श्लोक में कहा गया है कि जो योगी अपने मन पर विश्वास करता है उसका मन काम तथा उस योगी के शत्रु क्रोध आदि को अवसर प्रदान उसी तरह करता है जिस तरह व्यभिचारिणी नारी अपने जार पुरुष को अवसर प्रदान करके उस पर विश्वास करने वाले पति का बध करा देती है। उसी तरह मन भी काम इत्यादि के द्वारा योगी पुरुष को भ्रष्ट कर देने का काम करता है ॥४॥

**कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः। कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद्बुधः ॥५॥**

**अन्वयः**— कामः मन्युः, मदः, लोभः, शोकमोहभयादयः तथा कर्मबन्धः यन्मूलः स्वीकुर्यात् को न तद् बुधः ॥५॥

**अनुवाद**— काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह तथा भय आदि एवं कर्मों के बन्धन का मूल मन ही है, उस पर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति कैसे विश्वास कर सकता है ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

अरीन्कथयन्नुपसंहरति-काम इति । यन्मूलो यन्निमित्तो भवति तन्मनः को नु बुधः स्वीकुर्यात्स्वाधीनमिति मन्येत ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में योगी के शत्रुओं का वर्णन करते हुए राजा के प्रश्न के उत्तर का उपसंहार इस श्लोक के द्वारा करते हैं जिसके कारण संसार का बन्धन होता है उस मन को कोई भी योगी कैसे अपने वशवर्ती मान सकता है नहीं मान सकता ।।५।।

**अथैवमखिललोकपालललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां सांपरायविधिमनुशिक्षयन्स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ।।६।।**

**अनुवाद**— इसीलिए यद्यपि भगवान् ऋषभदेव इन्द्रादि लोकपालों के भी भूषण थे फिर भी वे जड़ पुरुषों के समान अवधूतों के जैसे विधि वेष भाषा और आचरण से अपने ऐश्वर प्रभाव को छिपाये रहते थे । अन्त में वे योगियों को देहत्याग की विधि को बतलाने के लिए अपना शरीर त्याग करना चाहे । अपने अन्तःकरण से अभिन्न रूप से स्थित परमात्मा को अभिन्न रूप से देखते हुए वासनाओं की अनुवृत्ति से रहित होकर और लिङ्ग देह के भी अभिमान से रहित होकर उपरत हो गये ।।६।।

भावार्थ दीपिका

प्रासङ्गिकं समाप्य प्रस्तुतमाह-अथेति । अखिलानां लोकपालानां ललामो मण्डनभूतोऽप्युपरता वाधितानुवृत्तिर्यस्मात्स उपरराम देहाभिमानं जहौ । विलक्षणैरनेकप्रकारैरवधूतवेषादिभिः न विलक्षितो भगवत्प्रभावो यस्मिन् । सांपरायविधिं देहत्यागप्रकारम्। आधाराधेयभावव्यावृत्त्यर्थमाह, अनर्थान्तरभावेनाभेदेन । उपासनाव्यावृत्त्यर्थमाह, असंव्यवहितम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्ग प्राप्त बात को समाप्त करके शुकदेवजी प्रस्तुत बात बतलाते हुए कहते हैं । समस्त लोकपालों के अलङ्कार स्वरूप भी होकर उनकी बाधितानुवृत्ति के समाप्त हो जाने के कारण उन्होंने अपने शरीर का परित्याग कर दिया । अनेक प्रकार के विलक्षण अनेक प्रकार के अवधूत वेषों आदि के द्वारा उनके ईश्वरीय प्रभाव प्रतीत नहीं होता था । वे योगियों को देहत्याग की विधि सिखाने के लिए अभिन्न रूप से प्रतीत होने वाले परमात्मा को देखते हुए उन्होने अपना शरीर त्याग कर दिये ।।६।।

**तस्य ह वा एंव मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रममाणः कोङ्कवेङ्ककुटकान् दक्षिणकर्नाटकान् देशान्यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीतएव विचचार ।।७।।**

**अनुवाद**— इस तरह लिङ्ग शरीर के अभिमान से रहित भगवान् ऋषभदेवजी का शरीर योगमाया की वासना से इस पृथिवी पर अभिमानाभास के आश्रय से ही विचरण करता रहा । दैववशात् वह दक्षिण भारत के कोंक बेंक कुटकतथा कर्णाटक आदि देशों में भी गये । वे मुँह में पत्थर का टुकड़ा डाले हुए दिगम्बर रूप से कुटकाचल वन में विचरण करने लगे ।।७।।

भावार्थ दीपिका

मनसा स्वयं त्यक्तेऽप्यभिमाने केनापि संस्कारेण देहः प्रचलति यथा कुलालचक्रं सोऽयमभिमानाभासस्तेन । स च

जीवन्मुक्तानामविद्यावासनया भवतीति ततो विशेषमाह-योगमायावासनयेति । कोङ्कादीन् देशान्गतः सन्कयापि वासनयास्ये कृतोऽश्मकवलो येन । असंवीतो नग्नः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

मन से अभिमान का त्याग कर देने पर भी किसी संस्कार विशेष के कारण उनका शरीर अभिमानाभास के कारण कुलाल चक्र के समान चलता रहा जीव मुक्तों को अविद्या के कारण होता है उसी को विशेष रूप से शुकदेवजी ने योगमाया की वासना कहा है । कोंक आदि देशों में पहुच कर मुख में पत्थर के टुकड़े का ग्रास डाले हुए नग्न घूम रहे थे ॥७॥

**अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनमालेलिहानः सह तेन ददाह ॥८॥**

**अनुवाद**— उसी समय वायु के द्वारा झकझोरे गये वांसों की रगड़ से प्रबल दावाग्नि धधक उठी और सम्पूर्ण वन को अपनी लपटों में लेकर ऋषभदेवजी के शरीर को उसने भस्म कर दिया ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

समीरवेगेन विधूतानां कम्पितानां वेणूनां संघर्षणेन जात उग्रो दावानलः। आलेलिहानः सर्वतो ग्रसन् ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

वायु के वेग से झकझोरे गये बाँसों की रगड़ से दावाग्नि उग्र हो गयी और उसने वन के साथ ऋषभदेवजी के शरीर को भी जला दिया ॥८॥

**यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोङ्कवेङ्ककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाषण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः संप्रवर्तयिष्यते॥९॥**

**अनुवाद**— राजन् जिस समय कलियुग में अधर्म बढ़ जायेगा उस समय कोंक बेंक ओर कुटक देश के राजा अर्हत् वहाँ के लोगों से ऋषभदेवजी के आश्रमातीत आचरण को सुनकर स्वयं उसे अपनाकर लोगों के पूर्व संचित पाप के फलस्वरूप दैववशात् भय रहित अपने धर्मपथ का परित्याग करके अपनी मन्द बुद्धि के कारण अनुचित पाखण्ड मार्ग का प्रचार करेगा ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

अवधूतवेषेण ऋषभदेवस्तत्र गत इत्येतस्य सूचकमाह । यस्य किलाश्रमातीतमनुचरितं तद्देशवासिभ्य उपाकर्ण्य अर्हन्निति नाम यस्य स राजा स्वयं तदुपशिक्ष्य शिक्षित्वा कुपथश्चासौ पाषण्डश्च तं निजमनीषया संप्रवर्तयिष्यत इत्यन्वयः । तत्र हेतुः- कलावित्यादि । भवितव्येन प्राणिपूर्वसंचितपापफलेन ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

अवधूत वेष में ऋषभदेव वहाँ गये इसके सूचक को बतलाते है, जिनके आश्रमातीत आचरण को उस देश के लोगों से सुनकर अर्हत् नाम का राजा उसको अपनाकर पाषण्ड मार्ग को अपनी बुद्धि के अनुसार प्रवर्तित करेगा। यह पापियों के पूर्व संचित पाप का फल स्वरूप होगा ॥९॥

**येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देवमायामोहिताः स्वविधिनियोगशौचचारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निजनिजेच्छया गृह्णाना असन्नानानाचमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि कलियाऽधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥१०॥**

**अनुवाद**— उसके कारण कलियुग में परमात्मा की माया से मोहित अनेक अधम मनुष्य आपने शास्त्रोक्त

शौचाचार का परित्याग कर देंगे, अधर्म प्रधान कलियुग के प्रभाव के कारण वे बुद्धि हीन मनुष्य स्नान न करना, आचमन नहीं करना, अशुद्ध रहना केश नोचवाना प्रभृति ईश्वर का तिरस्कार करने वाले पाखण्ड धर्म को मन: कल्पित रूप से अपना लेंगे । और वे प्राय: वेद, ब्राह्मण, एवं भगवान् यज्ञ पुरुष की निन्दा करने लगेंगे ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

येन प्रवर्तकेन मनुजेष्वपसदा निकृष्टा: स्वविधिना नियोगो यस्मिन् शौचचारित्रे तद्विहीना देवावज्ञारूपाण्यस्नानादीनि कुव्रतानि गृह्णाना वेदादीनां विदूषका भविष्यन्ति ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके द्वारा प्रवर्तित होने के कारण नीच मनुष्य अपने मन माने ढ़ग से पावित्र्य तथा चरित्र हीन होकर, देवताओं की अवहेलनादि रूप स्नान नहीं करना आदि निन्दित व्रतों को स्वीकार करके वेद आदि की निन्दा करने वाले हो जायेंगे ॥१०॥

**ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयान्धपरम्परयाश्वस्तास्तमस्यन्धे स्वयमेव प्रपतिष्यन्ति ॥११॥**

**अनुवाद**— वे अपनी इस नवीन का अवैदिक स्वेच्छा कृत प्रवृत्ति में अन्ध परम्परा से विश्वास करके मदमत्त रहने के कारण स्वयं ही नरक में गिरेंगे ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्फलं चान्धं तम: प्राप्स्यन्तीत्याह-ते चेति । अर्वाक्तनया अवेदमूलया । निजलोकयात्रया स्वेच्छाकृतप्रवृत्त्या आश्वस्ता: कृतविश्वासा: ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके फलस्वरूप वे धोर नरक में जायें इस बात को बतलाते हुए शुकदेवजी ने कहा अवैदिक अपने मन: कल्पित प्रवृत्ति में विश्वास रखने वाले वे लोग घोर नरक में जायेंगे ॥११॥

**अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थ: ॥१२॥**

**अनुवाद**— श्रीभगवान् का यह अवतार रजोगुण से परिपूर्ण मनुष्यों को मुक्तिमार्ग का उपदेश देने के लिए हुआ था॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु तर्ह्यनर्थकारी किमर्थोऽयमृषभावतारस्तत्राह-अयमिति । रजोव्याप्तानां जनानां मोक्षमार्गोपशिक्षणार्थ: । तस्य कैवल्योपशिक्षणस्यानुरूपान् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

तो फिर भगवान् का यह अनर्थकारी ऋषभावतार क्यों हुआ तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् का यह अवतार रजोगुणी मनुष्यों को मुक्ति का मार्ग सिखलाने के ही लिए हुआ था ॥१२॥

**तस्यानुगुणान् श्लोकान्गायन्ति ।**

**अनुवाद**— उसके गुणों का वर्णन करते हुए गायन सत्पुरुष करते हैं ।

**अहो भुव: सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।**
**गायन्ति यत्रत्यजना मुरारे: कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥१३॥**

**अन्वय:**— अहो सप्तसमुद्रवत्या: भुव: द्वीपेषु वर्षेषु एतत् अधिपुण्यम् । यत्र त्यजन: मुरारे अवतारवन्ति भद्राणिकर्माणि गायन्ति ॥१३॥

**अनुवाद**— अहो सात समुद्रों वाली पृथिवी के द्वीपों और वर्षों में यह भारत वर्ष सर्वाधिक पुण्यमय है, जहाँ के लोग श्रीभगवान् के अवतारों के मङ्गलमय चरित्रों का गायन करते हैं ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

अधि अधिकं पुण्यं यस्मिन् । एतद्भारतं वर्षम् । ऋषभाद्यवतारयुक्तानि कर्माणि ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

पृथिवी के सभी द्वीपों और वर्षों मे यह भारत वर्ष अधिक पुण्यमय है । यहाँ के लोग श्रीहरि के अवतारों के मङ्गलमयी चरित्रों का गायन करते हैं ।।१३।।

**अहो नु वंशो यशसावदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः ।**
**कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ।।१४।।**

**अन्वयः**— अहो यशसावदातः पैयव्रतो वंशः यत्र आद्यः पुराण पुरुषः कृतावतारः यद, अकर्महुतम् धर्मं चचार।।१४।।

**अनुवाद**— महाराज, प्रियव्रत का वंश बड़ा उज्ज्वल और यशोमय है, इस वंश में पुराण पुरुष आदि नारायण ने ऋषभदेव के रूप में अवतार ग्रहण किया और मोक्ष की प्राप्ति करने वाले पारमहंस्य धर्म का आचरण किया ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

प्रियव्रतस्य वंशः । अवदातः शुद्धः । यत्र वंशे । यद्यस्मात् । अकर्म मोक्षस्तस्य हेतुं धर्म चचार ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

महाराज प्रियव्रत का वंश शुद्ध है । इसी वंश में आदि पुरुष भगवान् नारायण ने अवतार लेकर मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले धर्म का आचरण किया ।।१४।।

**को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ।**
**यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ।।१५।।**

**अन्वयः**— अस्य अभवस्य काष्ठाम् कोनु अपर योगी मनोरथेनापि अनुगच्छेत् । येन उसत्तया कृतप्रयत्नाः योगमायाः निरस्ताः योगी तत्र कृतप्रयत्नः ।।१५।।

**अनुवाद**— इन भगवान् ऋषभ के मार्ग का कोई भी योगी मन से भी अनुसरण कैसे कर सकता है ? क्योंकि ये अपने आप प्राप्त जिन सिद्धियों को मिथ्या समझकर त्याग दिया उन्हीं सिद्धियों के लिए निरन्तर प्रयास करते रहते हैं ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

अपरः को नु योगी अस्य काष्ठां दिशमप्यनुगच्छेत् । यो योगी येन ऋषभेणाऽसत्तयाऽवस्तुत्वेनोदस्ता निरस्ता योगमायाः सिद्धीर्वाञ्छति । कथंभूताः । कृतः प्रयत्नत्रो यासु । तदर्थं प्रयत्नं च करोतीत्यर्थः । यद्वा कथंभूताः । उदस्ताः कृतप्रयत्नाः सेवितुमुद्यता अपीत्यर्थः ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

दूसरा कोई भी योगी भगवान् ऋषभदेव के मार्ग का मन से भी कैसे अनुसरण कर सकता है ? क्योंकि अपने आप प्राप्त जिन सिद्धियों को मिथ्या समझकर उनहोनें त्याग दिया उन्हीं सिद्धियों के लिएदूसरे योगिजन सदा प्रयासरत रहते हैं अथवा कैसी सिद्धियों की ओर से उदास हो गये ? तो इसका उत्तर है कि जो सिद्धियाँ स्वयं भगवान् ऋषभदेव का सेवन करना चाहती थी ।।१५।।

**इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणम् परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयानुशृणोत्याश्रावयति वावहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ।।१६।।**

**अनुवाद**— राजन् ! मैं सम्पूर्ण वेद, लोक, देवता, ब्राह्मण, तथा गौओं के परम गुरु भगवान् ऋषभदेव का चरित्र मैंने आपको सुनाया। यह मनुष्यों के समस्त पापों को विनष्ट कर देने वाला है। जो लोग इस अत्यन्त पवित्र तथा मङ्गलमय चरित्र को एकाग्रमना होकर श्रद्धा पूर्वक सुनते हैं अथवा सुनाते हैं उन दोनों ही प्रकार के लोगों की श्रीभगवान् में अनन्या भक्ति होती है ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

विशुद्धाचरितं यदीरितं कथितं तत्समस्तं दुश्चरितमभितो हरतीति तथा। परममहामङ्गलानामयनं च। अवहितः सन्। अनयोरपि श्रोतृश्रावयित्रोरविशेषेण भक्तिः सम्यगनुवृत्ता भवतीत्यर्थः ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् ऋषभदेव का जो शुद्ध चरित मैंने आपको सुनाया है वह समस्त पापों को विनष्ट कर देने वाला है। यह चरित महामङ्गलमय है। जो सावधान होकर इसे सुनता और सुनाता है उन दोनों श्रोता और श्रावयिताओं की समान रूप से भगवान् में अनन्या भक्ति हो जाती है ॥१६॥

**यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्त्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥१७॥**

**अनुवाद**— विभिन्न प्रकार के पापों से परिपूर्ण सांसारिक संतापों से संतप्त अपने अन्तःकरण को पण्डित जन इस भक्ति सरिता में निरन्तर स्नान करते रहते हैं। इससे उन लोगों को जो अत्यन्त शान्ति मिलती है वह इतनी आनन्दपूर्ण होती है कि वे लोग उसके सामने स्वयं प्राप्त भी मोक्ष का महत्त्व नहीं देते हैं। श्रीभगवान् का भक्त हो जाने मात्र से ही उनके समस्त पुरुषार्थों की आनयास ही प्राप्ति हो जाती हैं ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

भक्तेः परमपुरुषार्थत्वमाह। यस्यां भक्तावेव, न तु योगादिषु। अनुसवनमविरतमात्मानं स्नापयन्तः। स्वयमासादितमप्रार्थितं भगवता स्वयमेव दीयमानमपि। अनादरे हेतुः- भगवदीयत्वेनैव परितः समाप्ताः सम्यक् प्राप्ताः सर्वे पुरुषार्था यैस्ते ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

इस दण्डक में श्रीशुकदेवजी भक्ति के ही परम पुरुषार्थत्व का प्रतिपादन करते हैं। उस भक्ति सरिता में ही योगादि में नहीं निरन्तर स्नान करते रहते है। और श्रीभगवान् के द्वारा दिए जाने वाले मोक्ष नामक पुरुषार्थ का भी अनादर कर देते हैं। अनादर का कारण यह है कि भगवदीय हो जाने के ही कारण उनके सार पुरुषार्थ उन्हें प्राप्त हो जाते हैं ॥१७॥

**राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः।**
**अस्त्वेवमङ्ग भगवान्भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— राजन् ! भगवान् मुकुन्दः भवतां यदूनां पतिः गुरुः दैवं प्रियः कुलपतिः क्वच किङ्कर वः। अङ्ग भजताम् एवं अस्तु सः कर्हिचित् मुक्ति ददतिस्म भक्तियोगम् न ॥१८॥

**अनुवाद**— हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं पाण्डवों के और यदुवंशियों के रक्षक, गुरु, इष्टदेव, सुहृद् और कुलपति थे। वे कभी-कभी तो अज्ञाकारी सेवक भी बन जाते थे। इसी तरह भगवान् दूसरे भक्तों के भी अनेक कार्यों को कर सकते हैं और उन सबों को मुक्ति भी प्रदान कर सकते हैं किन्तु वे भक्तियोग को नहीं प्रदान करते हैं ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु भगवतोऽतिसुलभत्वदर्शनान्मोक्षस्य चातिदुर्लभत्वादियमतिस्तुतिरेवेत्याशङ्क्याह । हे राजन् ! भवतां पाण्डवानां यदूनां च पतिः पालकः । गुरुरुपदेष्टा । दैवमुपास्यः । प्रियः सुहृत् । कुलस्य पतिर्नियन्ता । किं बहुना । क्व च कदाचिद्दौत्यादिषु वः पाण्डवानां किंकरोऽप्याज्ञानुवर्ती। अस्तु नामैवं तथाप्यन्येषां नित्यं भजतामपि मुक्तिं ददाति, नतु कदाचिदपि सप्रेमभक्तियोगम्।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि कोई यह कहे कि श्रीभगवान् के अत्यन्त सुलभ होने के कारण तथा मोक्ष के अत्यन्त दुर्लभ होने के कारण यह अत्यन्त स्तुति ही करनी चाहिए, इस प्रकार की शङ्का करके शुकदेवजी कहते हैं— हे राजन् ! आप पाण्डव लोगों के तथा यदुवंशियों के रक्षक, गुरु, उपास्य देव, प्रिय मित्र, वंश के नियन्ता, अधिक क्या कहना है, वे कभी-कभी तो वे दैत्य आदि कार्यों को करने के लिए पाण्डवों के आज्ञाकारी सेवक भी बन जाते थे । और इसी तरह दूसरे निरन्तर भजन करने वाले लोगों के वे रक्षक आदि हो सकते है और उन भजन करने वाले लोगों को मुक्ति भी प्रदान कर सकते हैं किन्तु वे अनायास अपनी प्रेमाभक्ति को नहीं प्रदान करते हैं ।।१८।।

**नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ।**
**लोकस्य यः करुणयाऽभयमात्मलोकमाख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ।।१९।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

**अन्वयः**— नित्यानुभूत निजलाभनिवृत्ततृष्णः अतदरचनया श्रेयसि चिर सुप्त बुद्धेः यः करुणया अभयम् आत्मलोकम् अख्यात् तस्मै ऋषभाय नमः ।।१९।।

**अनुवाद**— निरन्तर विषयभोगों की अभिलाषा करने के कारण अपने वास्तविक श्रेय के विषय में जिन लोगों की बुद्धि चिरकाल से बेसुध लोगों को जिन्होंने करुणावशात् निर्भय आत्मलोक का उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव होने वाले आत्मस्वरुप की प्राप्ति के कारण हर प्रकार की तृष्णाओं से मुक्त थे उन भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार हैं ।।१९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के ऋषभदेव चरितं के अन्तर्गत छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।**

**भावार्थ दीपिका**

वर्णितमृषभावतारं नमस्करोति । नित्यमनुभूतं यन्निजं रूपं स एव लाभस्तेन निवृत्ता तृष्णा यस्य सः । अतद्रचनया देहाद्यर्थमनोरथेन श्रेयसि विषये चिरं सुप्ता बुद्धिर्यस्य तस्य जनस्य करुणया निर्भयमात्मस्वरूपं य आख्यातवांस्तस्मै नमः।।१९।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।**

**भाव प्रकाशिका**

इन अध्यायों में वर्णित ऋषभावतार को नमस्कार करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं- जो स्वयं निरन्तर अनुभव होने वाले आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति से हर प्रकार की तृष्णाओं से मुक्त थे देह आदि के विषय में भोगों की प्राप्ति की अभिलाषा से सदैव उनकी अभिलाषा करने वाले तथा वास्तविक श्रेय के विषय में बेसुध लोगों को कारुणावशात् जिन्होंने अपने निर्भय आत्मलोक का उपदेश दिया उन भगवान् ऋषभ देव को नमस्कार हैं ।।१९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६।।**

# सातवाँ अध्याय

## भरत चरित्र

श्रीशुक उवाच

**भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवताऽवनितलपरिपालनाय संचिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥१॥**

**अनुवाद**— राजन् महाराज भरत महाभागवत थे। भगवान् ऋषभदेव अपने सङ्कल्प मात्र से उनको पृथिवी की रक्षा में नियुक्त कर दिये थे। उनकी आज्ञा का पालन करते हुए महाराज भरत विश्वरूप की पुत्री पंचजनी से विवाह किये ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

अध्यायानां त्रयेणैवमृषभाख्यानमीरितम्। अष्टभिर्भरताख्यानमतः प्रस्तूयतेऽमृतम्। सप्तमे भरतो राज्ये चिरं यज्ञैर्हरिं यजन्। आरब्धकर्मनिर्वाणे हरिक्षेत्रेऽभजद्धरिम्। संचिन्तितः सङ्कल्पेनैव राज्यादौ नियुक्तः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

तीन अध्यायों में ऋषभदेव के वृत्तान्त का वर्णन किया जा चुका है। अब आठ अध्यायों में अमृत स्वरूप महाराज भरत का वृत्तान्त वर्णन किया जा रहा है। सातवें अध्याय में यह बतलाया कि महाराज भरत अपने राज्य में यज्ञों के द्वारा श्रीहरि का चिरकाल तक यजन करने के पश्चात् प्रारब्ध कर्म को समाप्त करने के लिए श्रीहरि क्षेत्र में जाकर श्रीहरि का भजन करने लगे। ऋषभ देव ने अपने सङ्कल्प मात्र से भरत को राजगद्दी पर बैठा दिया॥१॥

**तस्यामु ह वा आत्मजान्कार्त्स्न्येनानुरूपानात्मनः पञ्च जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि। सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति। अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥२-३॥**

**अनुवाद**—जिस तरह भूतादि अहङ्कार से पञ्चतन्माय की उत्पत्ति होती है, उसी तरह पञ्चजनी के गर्भ से उनके सुमति राष्ट्रभृत, सुदर्शन आवरण और धूम्रकेतु नामक पाँच पुत्र हुए। वे सब पूर्णरूप से उनके ही समान थे। पहले इस वर्ष का नाम अजनाम वर्ष था किन्तु महाराज भरत के ही समय से यह भारत वर्ष कहलाने लगा ॥२-३॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मनोऽनुरूपान्। भूतादिरहंकार इव भूतसूक्ष्माणीति संततिवृद्धौ दृष्टान्तः। भारतमिति स्वनाम्ना ख्यापकत्वेन धर्माद्यतिशयः सूचितः ॥२-३॥

### भाव प्रकाशिका

महाराज भरत के सभी पुत्र उनके ही समान थे। उन्होंने पञ्चजनी के गर्भ से उसी प्रकार से पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया जिस तरह भूतादि (तामस) अहङ्कार से पाँच तन्मात्रों की उत्पत्ति होती है यह सन्तान की वृद्धि में दृष्टान्त हैं। भारत वर्ष यह अपने नाम से विख्यात करना अत्यधिक धर्मादि को सूचित करने के लिए हैं ॥२-३॥

**स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥४॥**

**अनुवाद**— वे महाराज भरत बहुज्ञ थे। अपने-अपने धर्म का पालन करने वाली प्रजाओं का पालन अपने माता-पिता महादि के समान अत्यन्त वात्सल्य पूर्वक करते थे ॥४॥

## भावार्थ दीपिका

बहुवित्सर्वज्ञः ।।४।।

## भाव प्रकाशिका

मूल के बहुवित् शब्द का अर्थ है सबकुछ जानने वाले ।।४।।

**ईजे च भगवन्तं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ।।५।।**

**अनुवाद**— उन्होंने श्रद्धा पूर्वक होता, अध्वर्यु उद्‌गाता और ब्रह्मा द्वारा कराये जाने वाले प्रकृति और विकृति दोनों प्रकार के अग्नि होत्र, दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम इत्यादि छोटे बड़े क्रतुओं के द्वारा समयानुसार यज्ञ एवंक्रतु रूप श्रीभगवान् का यजन किया ।।५।।

## भावार्थ दीपिका

यज्ञा अयूपाः क्रतवः सयूपास्तद्रूपम् । उच्चावचैर्महद्भिरल्पैश्च क्रतुभिः कर्मभिः श्रद्धया ईजे च । तानेवाह । आहृताः स्वाधिकारेणात्मसात्कृता येऽग्निहोत्रादयस्तेषां प्रकृतिविकृतिभिः । अग्निहोत्रादयो द्विविधाः । सकलाङ्गयुक्ताः प्रकृतयः विकलाङ्गा विकृतया इति । तैर्विविधैरपीष्टवानित्यर्थः। अनुसवनमित्यन्तं वा चातुर्होत्रविधिनेत्यन्तं वा गद्यम् ।।५।।

## भाव प्रकाशिका

यज्ञ वे हैं जिनमें यूप (स्तम्भ) नहीं होते हैं और क्रतु यूप से युक्त होते हैं । उच्चावच्च का अर्थ है छोटे बड़े क्रतुओं से श्रद्धा पूर्वक उन्होंने श्रीभगवान् का भजन किया । आहृताः का अर्थ है अपने अधिकारानुसार अपनाये गये जो अग्नि होत्र आदि कर्म उनके प्रकृति यागों और विकृति यागों के द्वारा उन्होंने भजन किया । अग्निहोत्र इत्यादि दो प्रकार के होते हैं प्रकृति अर्थात् सभी अङ्गों से परिपूर्ण और विकृति जिनमें किसी अङ्ग की कमी होती है । इस तरह के अनेक यागों से भी उन्होंने भगवान् का भजन किया । यह दण्डक अनुसवनं पर्यन्त अथवा चातुर्होत्र विधिना पर्यन्त है ।।५।।

**संप्रचरत्सु नानायागेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्व यत्तत्क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिङ्गानां मन्त्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्य-मृदितकषायो हविःष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवास्तान्पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ।।६।।**

**अनुवाद**— इस तरह अङ्ग और क्रियाओं के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञानुष्ठान के समय जब अध्वर्युग अपने हाथ में हविष्य को लेते थे उस समय महाराज भरत उस यज्ञ कर्म से होने वाले अदृष्ट (यज्ञ के फल को) यज्ञ पुरुष भगवान् वासुदेव को ही अर्पित कर देते थे । वस्तुतः परंब्रह्म भगवान् वासुदेव ही सभी देवताओं के प्रकाशक तथा मन्त्रों के प्रतिपाद्य तथा देवताओं भी नियामक मुख कर्ता और परा देवता हैं । इस तरह भगवदर्पण रूप बुद्धि के नैपुण्य के द्वारा अपने हृदय में विद्यमान राग-द्वेष आदि मलों को दूर करते हुए वे सूर्य इस यज्ञ भोक्ता देवताओं श्रीभगवान् के अङ्गों के रूप में ध्यान किया करते थे ।।६।।

## भावार्थ दीपिका

किंच संप्रचरत्सु प्रवर्तमानेषु नानायागेषु विरचितानुष्ठिताङ्गक्रिया येषां तेषु यदपूर्वं तद्वासुदेव एव भावयमानश्चिन्तयन्स यजमानो यज्ञभाजो ये देवाः सूर्यादयस्तान्पुरुषस्य वासुदेवस्यावयवेषु चक्षुरादिष्वभ्यध्यायत् नतु पृथक्त्वेनेत्यन्वयः । अपूर्वे पक्षद्वयं मीमांसकानाम् । तदानीमेव सूक्ष्मत्वेनोत्पन्नं फलमेवापूर्वं कालान्तरफलोत्पादिका कर्मशक्तिर्वेति । तदुक्तम्- 'यागादेवं

फलं तद्धि शक्तिद्वारेण सिध्यति। सूक्ष्मं शत्तयात्मकं वापि फलमेवोपजायते ।।" इति । तदेवाह– क्रियाफलं धर्माख्यमिति च। ननु यद्यङ्ग देवताः कर्मप्रधानमिति मतं तर्हि कर्तृनिष्ठमपूर्वं स्यात् । तदुक्तम् 'कर्मभ्यः प्रागयोग्यस्य कर्मणः पुरुषस्य वा । योग्यता शास्त्रगम्या या परा साऽपूर्वमिष्यते ।।" इति । अथ देवताप्रधानं कर्म तु देवताराधनार्थंतदा देवताप्रसादरूपत्वादपूर्वस्य देवताश्रयत्वमेव युक्तम् । प्रोक्षणाद्यपूर्वस्येव व्रीह्याद्याश्रयत्वम् । कुतो वा वासुदेवाश्रयमपूर्वम् भावयति । उच्यते–यदि कर्तृनिष्ठमपूर्वं तर्हि वासुदेवस्यान्तर्यामिणः प्रवर्तकत्वेन मुख्यकर्तृत्वात्तदाश्रयमेवापूर्व, नतु तत्प्रयोज्ययजमानाश्रयम् । शास्त्रफलं प्रयोक्तरीति न्यायात् । अन्यथा ऋत्विजामप्यपूर्वाश्रयत्वप्रसङ्गात् । तदेवाह– साक्षात्कर्तरीति । देवताश्रयत्वेऽपि वासुदेवाश्रयत्वमेवेत्याह– परदेवतायामिति । परदेवतात्वे हेतुः– सर्वदेवतालिङ्गानां तत्तद्देवताप्रकाशकानां मन्त्राणां येऽर्था इन्द्रादिदेवतास्तेषां नियामकतया तस्यैव प्रसादनीयत्वात्फलदातृत्वाच्च युक्तमेवापूर्वाश्रयत्वमित्यर्थः । एवं भावनमेवात्मनो नैपुण्यं कौशलं तेन मृदिताः क्षीणाः कषाया रागादयो यस्य । अध्वर्युभिरिति बहुवचनं नानाकर्माभिप्रायेण ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

अङ्गों और क्रियाओं के साथ अनुष्ठान किए जाने वाले अनेक प्रकार के यागों के अनुष्ठान के द्वारा जिस अपूर्व रूप पुण्य की प्राप्ति होती है उसको महाराज भरत यज्ञ पुरुष भगवान् वासुदेव का ही चिन्तन करते हुए उनको समर्पित करते थे और यज्ञभोक्ता सूर्यादि देवताओं का वे श्रीभगवान् के नेत्र आदि के रूप में ध्यान करते थे । श्रीभगवान् से पृथक् नहीं । अपूर्व (पुण्य) के विषय में मीमांसकों का दो प्रकार का मत है— याग के समय में ही सूक्ष्म रूप से उत्पन्न होने वाला फल ही अपूर्व कहलाता है अथवा यज्ञ के पश्चात् फल को उत्पन्न करने वाली कर्म की शक्ति ही अपूर्व कहलाती है । मीमांसकों ने कहा भी है । **यागादेवम्० इत्यादि** अर्थात् इस प्रकार से याग के द्वारा प्राप्त होने वाला सूक्ष्म पुण्य ही शक्ति के द्वारा सिद्ध होता है । अथवा सूक्ष्म फल ही कालान्तर से कर्म की शक्ति रूप अपूर्व होता है । उसी के मूल में क्रिया फलं धर्माख्यम् कहा गया है । अर्थात् क्रियाफल यानी याग से सूक्ष्म रूप में उत्पन्न होने वाला ही अपूर्व है अथवा धर्माख्यम् यानी कालान्तर में फल देने वाला कर्म की शक्ति रूप अपूर्व है । प्रश्न होता है कि यदि अङ्ग देवता कर्म प्रधान माना जाय तब तो अपूर्व कर्तृनिष्ठ होगा । कहा भी गया है **कर्मभ्यः प्राग० इत्यादि** अर्थात् कर्मों से पहले आयोग्य कर्म या पुरुष का फल होता है । शास्त्र के द्वारा जानने योग्य जो परायोग्यता है वही अपूर्व शब्द वाच्य है । यदि कर्म को देवताराधन रूप कर्म है तो अपूर्व देवता की कृपा रूप होगा । अतएव उसको देवताधीन ही मानना उचित है । जैसे ब्रीहि के प्रोक्षण आदि रूप अपूर्व ब्रीहि आदि के अधीन होंगे अतएव महाराज भरत उसे वासुदेवाश्रय रूप से कैसे ध्यान करते थे ? इस पर उत्तर **उच्यते० इत्यादि** से दिया जाता । यदि अपूर्व को कर्ता के होने वाला माना जाय तब तो उसके प्रवर्तक अन्तर्यामी भगवान् वासुदेव के होने से वे ही मुख्य कर्ता होंगे फलतः अपूर्व भगवान् वासुदेवाश्रित होगा श्रीभगवान् के प्रयोज्य यजमानाश्रित नहीं होगा । कहा भी गया है **शास्त्रफलं प्रयोक्तरि** अर्थात् शास्त्र का फल प्रवर्तक को प्राप्त होता है । यदि ऐसा नहीं माना जाय तब तो याग संपादक ऋत्विजों को भी अपूर्वाश्रय मानने का प्रसङ्ग होगा । इसीलिए कहा गया कि जो साक्षात् कर्ता होता है वही अपूर्वाश्रय होता है । यदि अपूर्व को देवताश्रित माना जाय तो भी अपूर्व वासुदेवाश्रय ही होगा । इस बात को **परदेवताम्** शब्द से कहा गया । भगवान् के पर देवता होने का कारण है कि विभिन्न देवताओं के प्रकाशक मन्त्रों के अर्थभूत इन्द्रादि देवताओं के नियामक है भगवान् वासुदेव है अतएव वे ही यागादि के द्वारा प्रसादनीय हैं तथा फल प्रदाता भी हैं । अतएव उनको ही अपूर्वाश्रय रूप से ध्यान करना उचित ही है । इस तरह से भावना करना ही आत्मा की कुशलता है । उसके द्वारा उन्होंने अपने अन्तःकरण के राग एवं द्वेष आदि मन्त्रों को दूर किया । मूल का अध्वर्युभिः इस प्रकार का बहुवचनान्त प्रयोग कर्मों की अनेकता के अभिप्राय से किया गया है ।।६।।

**एवं कर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्त्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरयाऽजायत ॥७॥**

**अनुवाद**— इस तरह कर्मों की शुद्धि के कारण जब उनका अन्त:करण शुद्ध हो गया तब उनके अपने हृदयाकाश में अन्तर्यामी रूप से अभिव्यक्त होने वाले ब्रह्म स्वरूप महापुरुष के लक्षणों से उपलक्षित भगवान् वासुदेव में जो श्रीभगवान् श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभमणि वनमाला चक्र, शङ्ख तथ गदा आदि से सुशोभित अपने भक्तों के हृदय में चित्र लिखित पुरुष के समान सुशोभित होने वाले श्रीभगवान् में अनुदित बढ़ने वाली भक्ति प्राप्त हो गयी ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

एवंभूतया कर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्त्वस्य भक्तिरजायतेत्यन्वय: । क्व । अन्तर्हृदये य आकाश: स एव शरीरमभिव्यक्तिस्थानं यस्य तस्मिन्ब्रह्मणि । कीदृशे । महापुरुषरूपस्योपलक्षणमाकारो यस्य तस्मिन् । किंच श्रीवत्सादिभिरुपलक्षिते । निजपुरुषाणां नारदादीनां हृदि लिखितवन्निश्चलतयान्वितेनोक्तेन पुरुषरूपेणात्मनि स्वमनसि विरोचमाने । कीदृशी भक्ति: । अत्यन्तातिशयेनैधमानो रयो वेग: प्रकर्षो यस्या: ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

इस दण्डक का मुख्य वाक्य है इस प्रकार से किए जाने वाले कर्मों की शुद्धि के कारण उनका अन्त:करण जब शुद्ध हो गया तब उनके हृदय में भक्ति उत्पन्न हो गयी । उनके हार्दाकाश में अभिव्यक्त होने वाले तथा महापुरुष के लक्षण से उपलक्षित तथा श्रीवत्सचिह्न इत्यादि से सुशोभित तथा नारदादि अपने भक्तों के हृदय में चित्रलिखित के समान सदैव स्थित रहने वाले तथा पुरुष रूप से अपने अन्त:करण में सुशोभित होने वाले परब्रह्म भगवान् वासुदेव में अत्यधिक वेग से बढ़ने वाली भक्ति उनको प्राप्त हुई ॥७॥

**एवं वर्षायुतसहस्रपर्यन्तावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसंपन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥८॥**

**अनुवाद**— इस प्रकार एक करोड़ वर्ष बीत जाने पर वे अपना राज्यभोग का प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर अपनी भोगी हुई वंश परम्परागत सम्पत्ति का यथायोग्य अपने पुत्रों में बाँट दिया । उसके पश्चात् वे सभी प्रकार की सम्पत्तियों से सम्पन्न अपने राजमहल से निकलकर पुलहाश्रम में चले गये ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

एवमनुवृत्या वर्षाणामयुतानि तेषां सहस्रं तत्पर्यन्तकालेऽवसितो निश्चित: कर्मनिर्वाणावसरो राज्यभोगादृष्टसमाप्तिसमयो येन स: । अधिकृत्य भुज्यमानं रिक्थं धनं यथाविभागं विभज्य सकलसंपदां निकेतादाश्रयात्स्वगृहात् पुलहाश्रमं हरिक्षेत्रं प्रवव्राज ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार महाराज भरत को राज्य भोग करते एक करोड़ वर्ष के बीत जाने पर उन्होंने जान लिया कि अब राज्यभोग का प्रारब्ध समाप्त हो गया । अतएव अपने द्वारा भोगी गयी पिता पितामह परम्परा से प्राप्त सम्पत्ति को यथा योग्य विभाग करके अपने पुत्रों में उन्होंने बाँट दिया और सम्पूर्ण सम्पत्तियों से परिपूर्ण अपने राजमहल से निकलकर वे श्रीहरि के क्षेत्र पुलहाश्रम में चले गये ॥८॥

**यत्र ह वाव भगवान्हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥९॥**

**अनुवाद**— उस पुलहाश्रम में रहने वाले अपने भक्तों पर श्रीभगवान् का अत्यन्त वात्सल्य है वे आज भी उनसे इष्ट रूप से मिलते रहते हैं ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

यत्र क्षेत्रे विद्याधरकुण्डे । वात्सल्यं कर्तृ, तेन संनिहितः क्रियते । भक्तानामपेक्षितेन रूपेण संनिहितो भवतीत्यर्थः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

उस हरि क्षेत्र के विद्याधर कुण्ड पर रहने वाले भक्तों पर वात्सल्य गुण सम्पन्न श्रीभगवान् भक्तों के अपेक्षित रूप से उनके सन्निकट बने रहते हैं ॥९॥

**यत्राश्रमपदान्युभयतोनाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥१०॥**

**अनुवाद**— वहाँ पर चक्रनदी (गण्डकी) नाम से प्रख्यात नदी चक्राकृति शालग्राम शिलाओं जिनके ऊपर नीचे दोनों ओर नाभि के आकार वाले चिह्न होता है शिलाओं से ऋषियों के आश्रम को सब ओर से पवित्र करती हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

आश्रमस्थानान्युभयत उपर्यधश्च नाभिर्येषां तैर्दृषच्चक्रैः शिलामध्यगतैश्चक्रैश्चक्रनदी गण्डकी सरितां श्रेष्ठा पवित्रीकरोति॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

आश्रम स्थानों को गण्डकी नदी जिनके ऊपर नीचे नाभि के समान चिह्न दिखाई देते है ऐसी चक्राकार शिलाओं से सभी ओर से पवित्र करने का काम करती है ॥१०॥

**तस्मिन्वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥११॥**

**अनुवाद**— उस पुलहाश्रम के उपवन में एकान्त स्थान में अकेले ही रहकर वे अनेक प्रकार के जल मूल कन्द फलादि उपहारों से श्रीभगवान् की आराधना करने लगे । उसके द्वारा उनका अन्तःकरण समस्तविषयभिलाषों से निवृत्त होकर शान्त हो गया और उनको परमानन्द की प्राप्ति हुयी ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

एकल एकः आराधनं समीहमानः कुर्वाणः । विविक्तः शुद्ध अतएवोपरतो विषयाभिलाषो यस्य । उपभृतः संवृद्ध उपशमो यस्य ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

एकलः अर्थात् अकेले श्रीभगवान् की आराधना करते हुए उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया और उनकी शान्ति और बढ़ गयी ॥११॥

**तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्भमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोम-पुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविन्दानुध्यान-परिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगम्भीरहृदयह्रदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥१२॥**

**अनुवाद**— इस प्रकार निरन्तर की जाने वाली परमात्म परिचर्या के कारण उनके प्रेम का वेग बढ़ता गया उसके फल स्वरूप उनका हृदय द्रवित होकर शान्त हो गया । आनन्द के प्रबल वेग से शरीर में रोमाञ्च होने लगा। और औत्कण्ठयातिरेक के कारण नेत्रों में प्रेमाश्रु भर गये उससे उनकी दृष्टि रुक गयी । उसके पश्चात् अपने प्रियतम के लाल-लाल चरण कमल का ध्यान करने से उनमें भक्तियोग का आविर्भाव हो गया । परमानन्द से परिपूर्ण हृदय रूपी सरोवर में बुद्धि के डूब जाने के कारण वे नियम पूर्वक की जाने वाली श्रीभगवान् की आराधना को भी भूल गये ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

प्रवर्धमानानुरागस्य भरेण यद्धुतं द्रवीभूतं हृदयं तस्मिन् शैथिल्यमनुद्यमो यस्य आत्मनि देहे उद्भिद्यमानं रोमपुलककुलं रोमाञ्चवृन्दं यस्य । ककारः समासान्तः । औत्कण्ठ्यात्प्रवृत्तेन प्रणयवाष्पेण निरुद्धोऽवलोको ययोस्ते नयने यस्य सः । एवं वर्तमानस्तामपि भगवत्सपर्यां न सस्मारेत्यन्वयः । तत्र हेतुः- निजरमणस्य स्वप्रीतिदातुर्ये अरुणे चरणारविन्दे तयोरनुध्यानेन परिचितः समृद्धो भक्तियोगस्तेन परिप्लुतः सर्वतोव्याप्तः परम आह्लादः परमानन्दो यस्मिन्गाम्भीरहृदयह्रदे तस्मिन्नवगाढा निमग्ना धिषणा यस्य ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रतिदिन बढ़ने वाले प्रेम के वेग से उनका द्रवित हृदय शान्त हो गया और सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया । प्रहर्षवेगेनात्मन्युदभिद्यमानशोभापुलककुलकः में ककार समासान्त है । उत्कण्ठा के अतिरेक के वेग से उनकी आँखों में प्रेमाश्रु भर गया और उनका दृष्टि अवरुद्ध हो गयी । इस तरह की स्थिति में वर्तमान वे नियम पूर्वक की जाने वाली श्रीभगवान् की आराधना को भी भूल गये । उसका कारण यह था कि अपने प्रियतम परमात्मा के लाल-लाल चरण का ध्यान करने से उनके हृदय में भक्ति का आविर्भाव हो गया और उससे व्याप्त हृदय रूपी सरोवर में गम्भीर सरोवर में उनकी बुद्धि डूब गयी थी ।।१२।।

**इत्थं धृतभगवद्व्रत ऐणेयाजिनवाससाऽनुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवन्तं हिरणमयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच ।।१३।।**

**अनुवाद**—इस प्रकार वे भगवत् सेवा के नियम में ही सदा लगे रहते थे । वे शरीर पर काला मृगचर्म धारण करते थे । त्रिकाल स्नान के कारण भूरे धुघराले कुन्तल लट के रूप में परिणत हो गये थे । जिसके कारण वे देखने में अत्त्यन्त सुन्दर प्रतीत होते थे । वे उदित हुए सूर्य मण्डल में सूर्य विषयक ऋचाओं के द्वारा हिरण्मय परम पुरुष परमात्मा की आराधना करते हुए कहते थे ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

धृतानि भगवद्व्रतानि येन स भगवन्तं सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदुहोवाचेत्यन्वयः । कीदृशः । एण्या हरिण्या अजिनमैणेयं तदेव वासस्तेनानुसवनाभिषेकेणार्द्राः कपिशाश्च याः कुटिला जटास्तासां कलापेन च विरोचमानः । सूर्यप्रकाशिकया ऋचा हिरण्मयं 'ध्येयं सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती' इत्यादिनोक्तम् । उजिहाने उद्गच्छति सति । सकारान्तपाठे सनन्तात्पचाद्यचू । अर्थस्तु स एव ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

इस दण्डक का मुख्य वाक्य है भगवद् व्रत धारण वे सूर्य मण्डल भगवान् का उपस्थापन करते हुए यह कहते थे । भरतजी कैसे थे ? इस पर कहते है वे शरीर पर काला मृगचर्म धारण करते थे चिरकाल स्नान करने से भिंगे हुए उनके घुंघराले भूरे केश जटा बन गये थे और उससे वे और सुन्दर लगते थे । सूर्य विषयिणी 'ध्येयः

सदासवितृमण्डलमध्यवर्ती इत्यादि ऋचाओं से वे उदय कालीन सूर्यमण्डल में तेजोमय परमपुरुष भगवान् नारायण की आराधना करते थे। उज्जिहासे इस सकारान्त पाठ भेद होने पर सनन्त पचादि अच प्रत्यय हुआ है। किन्तु अर्थ वही है ॥१३॥

**परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ।**
**सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥१४॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतचरित्रे भगवत्परिचर्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

**अन्वयः**— सवितुर्जातवेदः परोरजः, देवस्य भर्गः मनसा इदं जजान पुनः आविश्य सुरेतसा अदः चष्टे, गृध्राणं हंसं नृषद्रिङ्गिराम् इमः ॥१४॥

**अनुवाद**— भगवान् सूर्य का कर्म फलप्रद तेज प्रकृति से परे हैं। उसी ने सङ्कल्प द्वारा इस जगत् की सृष्टि की है। पुनः वही अन्तर्यामी रूप से इसमें प्रवेश करके अपनी चित् शक्ति द्वारा विषय लोलुप जीव की रक्षा करता है उसी बुद्धि प्रवर्तक तेज की शरणागति करते हैं ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

परोरजः रसजः प्रकृतेः परं शुद्धसत्त्वात्मकं सवितुर्देवस्य सूर्यस्य भर्गः स्वरूपभूतं तेजः। जातं वेदो धनं कर्मफलं यस्मात्तत्कर्मफलदमित्यर्थः। अत्र हेतुः- यन्मनसैवेदं विश्वं जजान ससर्ज। पुनश्च अदः सृष्टं विश्वमन्तर्यामिरूपेण प्रविश्य गृध्राणं काङ्क्षन्तं हंसं जीवं सुरेतसा चिच्छक्त्या विचष्टे पश्यति। पालयतीत्यर्थः। नृषु सीदत्युपाधितया तिष्ठतीति नृषद्बुद्धिस्तस्यां रिङ्गिं रिङ्गणं गतिं राति ददातीति नृषद्रिङ्गिराम्। 'वा छन्दसि' इत्यमि पूर्वरूपत्वाभावः। तद्भर्गः इमः शरणं व्रजामः ॥१४॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमकन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥**

### भाव प्रकाशिका

सूर्यदेव का स्वरूपभूत तेज प्रकृति से परे अर्थात् शुद्ध सत्त्वात्मक है। वही कर्मों का फल प्रदान करने वाला है। उसका कारण है कि उसने अपने मनसे ही जगत् की सृष्टि कर दी पुनः इस सृष्ट विश्व में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके विषयोपभोग की इच्छा करने वाले जीव को अपनी चित् शक्ति के द्वारा देखता है। अर्थात् पालन करता है। मनुष्यों के भीतर उपाधि रूपसे रहने वाली बुद्धि में प्रवृत्ति पैदा करता है वह तेज उस तेज की हम शरणागति करते है। **नृषद्रिङ्गिराम्** में वा छन्दसि सूत्र से पूर्व रूप का अभाव है। नृषद्रिङ्गिराम् का विग्रह इस प्रकार है— नृषु सीदत्युपाधितया तिष्ठतीति नृषद बुद्धिः तस्यां रिङ्ग, रिङ्गणम् राति ददातीति नृषद्रिङ्गिराम् इमः अर्थात् शरणागति करते हैं ॥१४॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के सातवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥७॥**

# आठवाँ अध्याय

## भरतजी का मृग के मोह में पड़कर मृग की योनि में जन्म लेना

श्रीशुक उवाच

**एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश॥१॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— एक बार भरतजी गण्डकी नदी में स्नान करके अपने नित्य नैमितिक कृत्यों से निवृत्त होकर प्रणव का जप करते हुए तीन मुहूर्त तक नदी की धारा के पास बैठे रहे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

अष्टमे भजतो विष्णुं तस्य कर्मान्तरायतः । एणरक्षाप्रसक्तस्य जातमेणत्वमीर्यते । कृपयापि कृतः सङ्गः पतनायैव योगिनः । इति प्रदर्शयन्नाह भरतस्यैणपोषणम् । नैयमिकं नित्यनैमित्तिकविधिप्राप्तम् । आवश्यकमर्थप्राप्तं मूत्रोत्सर्गादि । कृतमभिषेकादिकं येन । ब्रह्माक्षरं प्रणवं जपन् । उदकान्ते नद्यास्तीरे ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

आठवे अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि भगवान् विष्णु का भजन करने वाले भरतजी को जन्मान्तर के कर्म रूपी विघ्न के कारण मृग की रक्षा में सलंग्न हो जाने के कारण मृगयोनि की प्राति हुई इस बात का वर्णन किया गया है । यदि योगी का दयालुता के कारण भी कही आसक्ति हो जाती है तो वह उसके पतन का कारण हो जाती है, इस अर्थ वाली भरतजी के मृग पोषण की कथा उपन्यस्त की गयी है । नैयमिकम् अर्थात् नित्य नैमित्तिक विधि तथा आवश्यक मर्थप्राप्तम् मलमूत्रादि त्याग करके भरतजी गण्डकी नदी में स्नान करके प्रणव का जप करते हुए नदी के तट पर बैठे थे ॥१॥

**तत्र तदा राजन्हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥२॥**

**अनुवाद**— राजन् उस समय वहाँ एक हरिणी प्यास से व्याकुल होकर जल पीने के लिए नदी के तट पर अकेले आयी ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

जलाशयाभ्याशं नद्याः समीपे ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

जलाशयाभ्यासम् अर्थात् नदी के समीप ॥२॥

**तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयङ्कर उदपतत् ॥३॥**

**अनुवाद**— जिस समय वह जल पी रही थी उसी समय सन्निकट में गरजते हुए सिह की लोक भयङ्कर आवाज सुनाई पड़ी ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

पेपीयमाने अत्यासक्तया पीयमाने सति। तावदेव तत्क्षणमेव। अविदूरेण सन्निधौ। मृगपतेः सिंहस्य। उन्नादो महान्नाद उद्गतः॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस समय वह अत्यन्त चाव से जल पी रही थी उसी समय सन्निकट में ही सिंह के गरजने की भयङ्कर आवाज सुनायी दी ॥३॥

**तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात्सहसैवोच्चक्राम ॥४॥**

**अनुवाद**— उस आवाज को सुनकर स्वभाव से ही डरपोक जो चौकन्ना होकर इधर-उधर देखती जाती थी अचानक सिंह की आवाज से उसका कलेजा डर के मारे काँपने लगा उस चञ्चल नेत्रों वाली की यद्यपि प्यास भी नही बुझी थी उसने भयभीत होकर नदी को पार करने के लिए छलांग लगा दी ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रकृत्या स्वभावत एव विक्लवा व्याकुला सुतरां तु हरिभयस्याभिनिवेशेन व्यग्रं व्याकुलं हृदयं यस्याः । पारिप्लवदृष्टिः परिभ्रान्तनेत्रा न गता तृषा तृट् यस्याः । उच्चक्राम नदीमुल्लङ्घितवती ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

स्वभाव से ही डरपोक उस आवाज को सुनकर सिंह के भय से जिसका हृदय काँप रहा था उस चञ्चल नेत्रों वाली हरिणी ने प्यास बुझाए बिना ही छलांग लगाकर नदी पार कर ली ॥४॥

**तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतो गर्भः स्रोतसि निपपात ॥५॥**

**अनुवाद**— वह गर्भवती थी । उछलते समय अत्यन्त भय के कारण उसका गर्भ अपने स्थान से हटकर योनिद्वार से निकलकर नदी के प्रवाह में गिर गया ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्तर्वत्न्या गर्भिण्याः । उरुभयेन स्थानाद्विचलितो योनेर्निर्गतः सन् स्रोतसि प्रवाहे निपतितः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

गर्भिणी उस हरिणी का गर्भ अत्यन्त भय के कारण अपने स्थान से हटकर योनिद्वार से निकलकर नदी के प्रवाह में गिर पड़ा ॥५॥

**तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्यांचिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपाताथ च ममार॥६॥**

**अनुवाद**— वह कृष्ण सारमृग की पत्नी अकस्मात् गर्भ के गिर जाने से तथा लम्बी छलांग लगाने एवं सिंह से भयभीत होने के कारण बहुत पीड़ित थी । वह अपने झुण्ड से भी विछुड़ गयी थी अतः वही गुफा में जाकर गिर पड़ी और मर गयी ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्प्रसवो गर्भपातः उत्सर्पणमुल्लङ्घनं भयं च एतैः खेदेनातुरा पीडिता । दर्यां गिरिगुहायाम् । हरिणवधूर्निपपात । अथानन्तरं मृता च ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

गर्भपात उछलना तथा भय इन सबों से पीड़ित वह हरिणी किसी गुफा में जाकर गिर पड़ी और मर गयी॥६॥

**तं त्वेणकुणकं कृपणं स्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बन्धुरिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥७॥**

**अनुवाद**— राजर्षि भरत उस बेचारे हरिणी के बच्चे को अपने बन्धुओं से विछुड़ कर नदी के प्रवाह में बहते हुए देखकर दयापूर्वक आत्मीय के सदृश उस मातृहीन बच्चे को अपने आश्रम में ले आये ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

एणकुणकं हरिणबालकम् । अपविद्धं बन्धुभिस्त्यक्तम् । इत्येतैः कृपणत्वादिहेतुभिर्याऽनुकम्पा तया अनयत् ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

अपने बान्धवों से परित्यक्त बेचारे उस हरिण के बच्चे को दया वश अपने आश्रम में लाये ।।७।।

**तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन्कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाःसहयमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ।।८।।**

**अनुवाद**— उस मृग शावक के प्रति भरतजी की ममता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी, प्रतिदिन उसके पोषण पालन प्रेम करने और उसको खुजलाने आदि की चिन्ता में ही लगे रहते थे । कुछ ही दिनों में उनके यम नियम और भगवदाराधन आदि आवश्यक कार्य एक-एक करके छूटने लगे और अन्त में सब छूट गये ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

कृतो निजः स्वीय इत्यभिमानो येन । पोषणं तृणादिना । पालनं वृकादिभ्यो रक्षणम् । लालनं चुम्बनादिना । प्रीणनं कण्डूयनादिना । एतैर्यदनुध्यानमासक्तिस्तेनात्मनो नियमाः स्नानादयो यमा अहिंसादयस्तत्सहिता ईश्वरपरिचर्यादयश्च प्रत्यहमेकैकशो वियुज्यमानाः सन्तः कतिपयेनाहर्गणेन सर्वे उत्सन्ना बभूवुः ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

उस मृग शावक में ही स्वीयत्वाभिमान के कारण उसको तृण आदि के द्वारा पोषण वृकों आदि से रक्षा, चुम्बनादि रूप प्रेम, उसके शरीर को खुजलाना आदि के द्वारा प्रीणन आदि के कारण उनकी उस मृग के बच्चे में आसक्ति बढ़ती गयी । उसके कारण उनके स्नानादि के नियम, अहिंसा आदि यम तथा भगवदाराधन आदि कार्य, प्रतिदिन एक-एक करके छूटते गये ओर कुछ ही दिनों में सब छूट गये ।।८।।

**अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कंचन वेद मय्यतिविस्रब्धश्चात एव मया मत्परायणस्य पोषणपालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षादोषविदुषा ।।९।।**

**अनुवाद**— अब वे सोचने लगे थे अरे इस दीन मृगशावक का कालचक्र के वेग ने अपने गणों सुहृदौ तथा बन्धुओं से अलग करके मेरी शरण में पहुँचा दिया है । यह मुझको ही अपनी माता-पिता, भाई बन्धु और यूथ का सङ्गी समझता है, मुझसे भिन्न किसी दूसरे को नहीं जानता है । मुझमें इसका अत्यधिक विश्वास भी है। अतएव मेरे परायण इसका मुझे भी पोषण, पालन, प्रीणन, लालन आदि बिना किसी दोष बुद्धि के करना चाहिए। शरणागत के परित्याग होने वाले दोष को भी मैं जानता हूँ ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

आसक्तिं प्रपञ्चयति-अहो इत्यादिना इति कृपानुषङ्ग इत्येतत्पर्यन्तेन । ईश्वररथचरणः कालचक्रं तस्य परिभ्रमणवेगेन स्वगणादिभ्यो विभ्रंशितः मा इति मां च शरणं प्रापितः मामेव मातापित्रादिबुद्ध्योपेयाय प्राप्तः । यौथिकान्यूथसंघातिनः । अनसूयुना एतन्निमित्तं मम स्वार्थो भ्रश्यतीति दोषदृष्टिमकुर्वता ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

राजर्षि भरत की उस मृग छौने में होने वाले आसक्ति का विस्तार से वर्णन कृपानुषङ्ग पर्यन्त करते हैं ।

कालचक्र के वेग से इसको अपने गण से पृथक् करके मेरी शरण में पहुँचा दिया है । और यह आकर मुझको ही अपना माता-पिता मानता है । अपने यूथ का साथी भी मुझको ही मानता है । अतएव मुझको भी दोष बुद्धि से रहित होकर इसका पालन-पोषण करना चाहिए ।।९।।

**नूनं ह्यार्याः साधव उपशमशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षन्ते ।।१०।।**

**अनुवाद**— निश्चय ही शान्त स्वभाव और दीनों की रक्षा करने वाले आर्य पुरुष इस तरह के शरणागत की रक्षा के लिए अपने बड़े-से-बड़े स्वार्थ की भी उपेक्षा कर देते हैं ।।१०।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेवाह नूनं हीति ।।१०।।

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त बात का ही प्रतिपादन नूनं हि इत्यादि दण्डक से कहा गया है ।।१०।।

**इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ।।११।।**

**अनुवाद**— इस तरह उस मृग शावक में आसक्ति बढ़ जाने के कारण सोते, बैठते, घूमते, ठहरते और भोजन करते समय भी उनका मन उस हरिण के बच्चे में ही लगा रहता था ।।११।।

**भावार्थ दीपिका**

इत्येवं कृतोऽनुषङ्ग आसक्तिर्येन । मृगजहुना मृगापत्येन सह । स्नेहेनानुबद्धं हृदयं येन ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह से भरतजी की मृग छौने में ही आसक्ति हो गयी थी स्नेह के कारण उनका हृदय उसी में लगा रहता था ।।११।।

**कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृकसालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ।।१२।।**

**अनुवाद**— जब वे कुश, पुष्प एवं समिधा लेने जाते थे उसको भेड़िये और कुत्तों से बचाने के लिए अपने साथ लेकर वन में जाते थे ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

स्नेहानुबन्धमेव प्रपञ्चयति कुशकुसुमेत्यादिना स्वधयतीत्यन्तेन । सालावृकाः श्वानः । यदा भयं शङ्कमानो भवति तदा तेन सह वनं समाविशति ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

कुश कुसुम इत्यादि से स्वधपति पर्यन्त उसमें हार्दानुराग का ही वर्णन करते हैं । सालावृक कुतों को कहते हैं । कुत्तों आदि से उसके भय की शङ्का से उसको अपने साथ लेकर वन में जाते थे ।।१२।।

**पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कन्धेनोद्वहति एवमुत्सङ्ग उरसि चाधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ।।१३।।**

**अनुवाद**— रास्ते में जब कभी भी वह रुक जाता था तो अत्यन्त प्रेम पूर्ण हृदय से कृपावशात् उसको अपने कन्धे पर रख लेते थे और कभी गोद में लेकर और छाती से उसको लगाकर उसको स्नेह करने में उनको बड़ी प्रसन्नता होती थी ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

अतिशयितः प्रणयभरो यस्य तद्धृदयं यस्य सः ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

अत्यन्त प्रेम पूर्ण हृदय से वे उसे हृदय से लगाकर स्नेह करते थे ।।१३।।

**क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेऽप्युत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद्वत्स ते सर्वत इति ।।१४।।**

**अनुवाद**— नित्य नैमित्तिक कर्मों को करते समय भी वे बीच-बीच में उठकर उसे देखते थे । भारतवर्षाधिपति जब उसको देख लेते थे तब ही उनके मन को शान्ति मिलती थी । वे शान्तमना होकर उसके लिए मङ्गल कामना करते हुए कहते थे वत्स ! तुम्हारा हर प्रकार से कल्याण हो ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

क्रियायां देवपूजादिलक्षणायाम् । वर्षपतिभरतः । प्रकृतिस्थेन स्वस्थेन । स्यात् भूयात् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

भारतवर्षाधिपति महाराज भरत देव पूजा आदि भी करते समय बीच-बीच में उठकर उसे देख लेते थे और शान्त होकर कहते थे वत्स तुम्हारा कल्याण हो ।।१४।।

**अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुणमतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसंतापस्त-मेवानुशोचन्किल कश्मलं महदभिरम्भित इति होवाच ।।१५।।**

**अनुवाद**— यदि वह कभी नहीं दिखायी देता था तो जिसका धन लुट गया हो उस दीन मनुष्य के समान उनका मन उद्विग्न हो जाता था । वे उस मृग के बच्चे के लिए व्याकुल हो जाते थे । और करुणवश अत्यन्त उत्कण्ठित और मोहाविष्ट हो जाते थे और शोक मग्न होकर कहने लगते थे ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

अन्यदाऽदर्शने सकरुणं यथा भवत्येवमनुशोचन्निति होवाचेत्यन्वयः । अतितर्षेणात्यौत्सुक्येन । हरिणकुणकविरहेण विह्वले हृदये संतापो यस्य । कश्मलं मोहं प्रापितः सन् ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

उस हरिणी के बच्चे के नही दिखायी देने पर और करुणाक्रान्त होकर शोक करने लगते थे । उत्सुकतावश उनका हृदय सन्तप्त हो जाता था और वे मोहग्रस्त हो जाते थे ।।१५।।

**अपि बत स वै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुतोऽहो ममानार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतविस्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन्सुजन इवागमिष्यति ।।१६।।**

**अनुवाद**— क्या वह मातृविहीन दीन मृग शावक दुष्ट बहेलिए के समान बुद्धि वाले मुझ पुण्यहीन अनार्य का विश्वास करके मुझे अपना मानकर मेरे किए हुए अपराधों को सत्पुरुषों के समान भूलकर फिर लौट आयेगा।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

अपीति संभावनायाम् । बतेत्यनुकम्पायाम् । अहो इति खेदे । शठकिरातयोरिव वञ्चनपरा क्रूरा च मतिर्यस्याकृतसुकृतस्य निर्भाग्यस्य मम तच्छाठ्यादिकमगणयन्नचिन्तयन्नागमिष्यति किम् । अपराधाचिन्तने हेतुः- आत्मप्रत्ययेन स्वचित्तशुद्धा कृतविश्वासः सन् सुजनो न यथा गणयति तद्वत् ।।१६।।

**भाव प्रकाशिका**

अपि संभावना के अर्थ में प्रयुक्त हैं। बत का प्रयोग अनुकम्पार्थक है। अहो यह अव्यय खेद के अर्थ में प्रयुक्त है। शठ एवं बहेलिए के समान वञ्चन परायण और क्रूर मतिवाले पुण्य हीन तथा भाग्यहीन मेरी शठता का विचार किए बिना लौट आयेगा क्या ? अपराध के न सोचने का कारण है अपने चित्त की शुद्धि के कारण विश्वास प्राप्त जैसे सज्जन के समान भूलकर आयेगा क्या ?॥१६॥

**अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥१७॥**

**अनुवाद**— क्या मैं उसे इस आश्रम के उपवन में भगवान् की कृपा से हरी-हरी घासों को चरते देखूँगा॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

शष्पाणि कोमलतृणानि ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

शष्प शब्द कोमल तृणों का वाचक हैं ॥१७॥

**अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥१८॥**

**अनुवाद**— कहीं ऐसा न हो की उसको कोई वृक या कुत्ता या समूह के साथ विचरने वाले सूकर आदि या अकेले रहने वाले व्याघ्र आदि में से कोई उसको खा लें ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

नैकचरो यूथचरः सूकरादिः । यद्वा एक एव चरति यः क्रूरस्वभावो व्याघ्रादिर्न भक्षयति किम् ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

नैकचर: अर्थात् झूण्ड में रहने वाले सूकर आदि अथवा एकचर: अकेले रहने वाले व्याघ्र आदि उसको कहीं खा न लें ॥१८॥

**निम्लोचति ह भगवान्सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माऽद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥१९॥**

**अनुवाद**— सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए उदित होने वाले भगवान् वेदत्रयी स्वरूप सूर्य अस्त होने वाले है किन्तु वह मृगी का धरोहर लौटकर नहीं आया ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

सकललोकस्य क्षेमो यस्मात्स उदयो यस्य । वेदत्रयी आत्मा स्वरूपं यस्य स सूर्यो निम्लोचत्यस्तं याति । मृगवध्वा न्यासो निक्षेपभूतः ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए उदित होन वाले तथा वेदत्रयी स्वरूप सूर्य निम्लोचति अर्थात् अस्त होने वाले हैं किन्तु अब तक मृगी का धरोहर वह मृगशावक लौटकर नहीं आया ॥१९॥

**अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसंतोषं स्वानामपनुदनम् ॥२०॥**

**अनुवाद**— क्या वह हरिणराज कुमार पुण्य हीन मेरे पास आकर विभिन्न प्रकार की मृगशावकोचित मनोज्ञ एवं अवलोकनीय क्रीडाओं से मुझे प्रसन्न करेगा ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

हरिण एव राजकुमार आगत्य मामपिस्वित्सुखयिष्यतीत्यन्वयः । किं कुर्वन् । विविधै रुचिरैर्दर्शनीयैर्निजैर्मृगदारकविनोदैः स्वीयानां खेदमपनुदन् ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

वह हरिण राजकुमार आकर मुझे भी आनन्दित करेगा क्या ? क्या करके ? तो इसका उत्तर है अनेक प्रकार के मनोहर और अवलोकनीय मृगशावकोचित क्रीडाओं से अपने लोगों को प्रसन्न करते हुए ।।२०।।

**क्ष्वेलिकायां मां मृषासमाधिनामीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ।।२१।।**

**अनुवाद**— खेल-खेल में मिथ्या समाधि के बहाने जब मैं अपनी आँखे बन्द कर लेता हूँ तो वह आश्चर्जित सा होकर मेरे पास आता है और जल की बून्द के समान अपन सींग के प्रण्य कोप से अग्रभाग से मुझे खुजलाता है ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

संभवति चैतदित्याह । क्ष्वेलिकायां क्रीडायां मृषा यः समाधिस्तेनामीलिते दृशौ येन तं मां प्रेमसंरम्भेण प्रणयकोपेन पृषज्जलबिन्दुस्तद्वदपरुषेण मृदुना विषाणाग्रेण लुठति संघट्टयति ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

ऐसा भी होता है कि खेल-खेल में जब मैं मिथ्या समाधि के बहाने आँखें बन्द कर लेता हूँ तो वह आकर प्रणय कोप से जल बून्द के समान अपनी छोटी-छोटी सींगों के अग्रभाग से मुझे खुजलाता है ।।२१।।

**आसादितहविषि बर्हिषि दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ।।२२।।**

**अनुवाद**— जब मैं कुशों पर होम सामग्री रख देता हूँ तो वह जब कभी उसे दूषित कर देता है और जब मैं से डाँट देता हूँ तो शीघ्र ही वह भयभीत होकर ऋषिकुमार के समान अपनी इन्द्रियों को रोक कर चुपचाप जाकर बैठ जाता है ।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

आसादितं हविर्यस्मिन्बर्हिषि दर्भे दन्ताकर्षणादिना चापलेन दूषिते सति । दूषित्वेति पाठे बर्हिषि विषये दूषणं कृत्वेत्यर्थः। मयाऽधिक्षिप्तः संस्तत्क्षणमेवोपरतक्रीडो निश्चल आस्ते ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

वह मेरे द्वारा कुशों पर हविष्य रख दिए जाने पर वह अपने दाँतों से खींचकर उसे दूषित कर देता है और जब मैं उसे डाँट देता हूँ तो वह शीघ्र ही ऋषिकुमार के समान चुपचाप जाकर बैठ जाता है ।।२२।।

**किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्यानया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमाखरखुरपदपङ्क्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं करोति ।।२३।।**

**अनुवाद**—(राजर्षि भरत उस मृगशावक के खुरका चिह्न देखकर कहने लगते थे ।) इस तपस्विनी धरती

ने न जाने कौन सा तप किया था कि जो उस अत्यन्त विनीत कृष्ण सारमृग के बच्चे के छोटे-छोटे सुन्दर सुखकारी और मङ्गलमय खुरों वाले पैरों के चिह्नों से मुझको जो मैं अपने मृगधनं के लुट जाने से अत्यन्त व्याकुल और दीन हो रहा हूँ उस धन की प्राप्ति का मार्ग दिखा रही है और स्वयं अपने शरीर को भी सर्वत्र उन चिह्नों से विभूषित करके स्वर्ग एवं अपवर्ग के इच्छुक द्विजों के लिए यज्ञस्थल बन रही है ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

इति बहुधा प्रलप्योत्थाय बहिर्निर्गत्य तत्खुरखातभूभागोपलम्मसंभ्रान्तहृदय आह— किं वेति । अरे अहो अनया क्षित्या किं वा तप आचरितम् । तपस्विन्या सभाग्यया । यद्यस्मादियं सविनयस्य कृष्णसारतनयस्य तनुतराः सुभगाश्च शिवतमाश्च खराश्च खुरा येषु तेषां पदानां तत्र तत्राङ्कितानां पङ्क्तिभिर्द्रविणं मृगस्तेन रहितस्यात एवातुरस्य दुःखितस्य मम द्रविणमार्गं सूचयन्ती सती स्वात्मानं च ताभिः कृतमण्डनं द्विजानां देवयजनं यज्ञभूमिं करोति । 'यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मान्निबोधत' इति स्मृतेः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से बहुत अधिक विलाप करके बाहर निकलकर उस मृग के खुर के चिह्नों से चिह्नित पृथिवी को देखकर प्रसन्न हृदय से उन्होंने कहा— इस भाग्यवती पृथिवी ने न जाने कौन सा तप किया है कि उस कृष्णसारमृग शावक छोटे-छोटे सुन्दर और मङ्गलमय तथा रुखड़े खुरों वाले चरणों के चिह्न से चिह्नित पंक्तियों से मेरे मृग धन से रहित होने के कारण दुःखी मुझको मेरे धन की प्राप्ति का मार्ग सूचित करती हुई अपने शरीर को भी उन खुर पंक्तियों में मण्डित होकर स्वर्ग और मुक्ति को चाहने वाले ब्राह्मणों के लिए यज्ञस्थल बना रहा है । स्मृति भी कहती है जिस देश में कृष्णसार मृग रहते है उसी देश में धर्मों को जानो ॥२३॥

**अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥२४॥**

**अनुवाद**— चन्द्रमा में मृग जैसे श्याम चिह्न को देखकर कहते हैं जिसकी माँ सिंह के भय से मर गयी थी आज वही मृग शावक अपने आश्रम से विछुड़ गया है । अतएव उसे अनाथ देखकर ये दीन वत्सल भगवान् चन्द्रमा दयावश उसकी रक्षा करते हैं क्या ?॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

तावदुदिते चन्द्रे मृगं दृष्ट्वा स्वमृगत्वं संभावयन्नाह-अपिस्विदिति ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

उदित हुए चन्द्रमा में विद्यमान मृग का चिह्न देखकर और उसको अपना मृग मानकर अपिस्वित् इत्यादि वाक्य को कहते हैं ॥२४॥

**किं वात्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशान्तानुरागगुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥२५॥**

**अनुवाद**—(चन्द्रमा की शीतल किरणों से आह्लादित होकर) कहते हैं- क्या अपने पुत्रों के वियोग रूप दावाग्नि की अग्नि से हृदय कमल के दग्ध हो जाने के कारण मैंने एक मृग शावक का सहारा लिया था । अब उसके चले जाने से पुनः मेरा हृदय जलने लगा है, इसीलिए ये अपनी शीतल शान्त और स्नेह पूर्ण और वदन सलिल रूप अमृतमयी किरणों से मुझे शान्त कर रहे हैं ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

चन्द्ररश्मिस्पर्शसुखं प्राप्याह । किं वेति संभावनायाम् । आत्मविश्लेषेण ज्वरस्तापः स एव दवदहनस्तस्य ज्वालाभिरुपतप्यमाना हृदयरूपा स्थलनलिनी यस्य । जलस्थं पद्मं तापं सोढुं क्षममिति स्थलग्रहणम् । उपसृतोऽनुगतो मृगीतनयो येन तं मां चन्द्रः स्वधयति शान्तिं गमयति । कैः शिशिरं च तच्छान्तं च मय्यनुरागेण गुणितं चावर्तितं पुनः पुनः स्रवद्यद्वदनसलिलं तदेवामृतमया गभस्तयस्तैः । लोके हि मन्त्रवादिनो वदनसलिलैस्तापं शमयन्तीति प्रसिद्धम् । उपसृत्य मृगीतनय इति पाठे मनोरथान्तरमेतत् । उपसृत्य मृगीतनयः किं वा मां स्वधयिष्यतीति । शेषं समानम् ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श जन्य सुख का अनुभव करके कहते हैं- किं वा यह संभवाना के अर्थ में प्रयुक्त है पुत्रों के विश्लेष जन्य संताप रूपी दावाग्नि उसी ज्वाला से संतप्त हृदय कमल वाले मुझको मृगीतनय रूपी पुत्र मिल गया था उसके मुझको चन्द्रमा शीतल अपने शीतल शान्त और बार-बार अपने मुख से चूने वाले अमृतमय किरणों से शीतल बना रहे हैं । उपसृत्य मृगीतनय इस पाठ के होने पर क्या वह मृगीपुत्र आकर मुझको शीतल बनायेगा ? उनका यह दूसरा मनोरथ हैं ।।२५।।

**एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशितः स योगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यन्तर एणकुणक आसङ्गः साक्षान्निः श्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमन्तरायविहतयोगारम्भणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषङ्गेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत।।२६।।**

**अनुवाद**— राजन् जिन मनोरथों को पूरा होना असम्भव था, इस प्रकार के विविध मनोरथों वाले भरत का चित्त व्याकुल रहने लगा । अपने मृगछौने के रूप में प्रतीत होने वाले प्रारब्ध कर्म के कारण भरतजी भगवदाराधन रूप कर्म और योगानुष्ठान से च्युत हो गये । अन्यथा जो भरतजी मोक्षमार्ग में विघ्न समझकर अपने हृदय से उत्पन्न दुस्त्यज पुत्रादिकों को भी त्याग दिये, उनकी वही विसजातीय मृगशावक में ऐसी आसक्ति कैसे हो जाती ? इस तरह विघ्नों के वशीभूत होकर राजर्षि भरत योगभ्रष्ट हो गये । उस मृग शावक के ही पालन पोषण तथा प्रेम में लगे रहकर अत्मस्वरूप को भूल गये । इसी समय दुरतिक्रम भयङ्करकाल अत्यन्त वेग पूर्वक उसी तरह उनके शिर पर आ गया जैसे चूहे के बिल में सर्प घुस जाय ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

मृगदारकवदाभासमानेन भगवदाराधनलक्षणात्कर्मणश्च विभ्रंशितः । प्रारब्धकर्मत्वे हेतुः- कथमितरथेति । साक्षात्स्वपुत्रवत्कथमासङ्गः स्यात् । पूर्वं परित्यक्ता दुस्त्यजा औरसा येन । अन्तरायेण विहतं योगारम्भणं यस्य । आत्मानमवगणयत आत्मचिन्तामकुर्वतः । तावदेव तीव्रवेगः कालो मृत्युसमयश्चापद्यत ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

भरतजी का प्रारब्ध ही मृग शावक के समान उन्हें प्रतीत होता था मृग में आसक्ति के कारण वे भगवदाराधन रूप कर्म से भी भ्रष्ट हो गये । प्रारब्ध कर्म होने में हेतु प्रदर्शित करते हुए शुकदेवजी कहते हैं— अन्यथा उनको मृगशावक में अपने पुत्र के समान आसक्ति कैसे होती ? उन्होंने पहल अपने औरस पुत्रों का भी परित्याग कर दिया था । विघ्न ने ही उनके योग मार्ग को विनष्ट कर दिया । उसके कारण वे अपने आत्मा के स्वरूप को भी भूल गये थे । उस समय तीब्र वेग वाला काल भी आ गया ।।२६।।

**तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥२७॥**

**अनुवाद**— मृत्यु की बेला में भी वह मृग शावक उनके पास बैठा हुआ पुत्र के समान शोकातुर हो रहा था और भरतजी उसको उस स्थिति में देख रहे थे और उनका चित्त उस मृग शावक में ही लगा था। इस प्रकार की आसक्ति में ही मृग के साथ उनका शरीर भी छूट गया। अन्तकाल की भावना के अनुसार अन्य साधारण पुरुषों के समान उनको मृग का ही शरीर मिला ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

लोकं देहं मृगेण सहितं विसृज्य प्राकृत इव मृगशरीरमवाप। कथंभूतः। कलेवरं मृतमनु न मृता न विनष्टा पूर्वजन्मानुस्मृतिर्यस्य।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

मृग के साथ ही उनका यह लोक और शरीर भी छूट गया शरीर तो मर गया किन्तु उनकी पूर्वजन्म की स्मृति नहीं समाप्त हुई ॥२७॥

**तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥२८॥**

**अनुवाद**— उस मृगयोनि में भी पूर्वजन्म की भगवदाराधना के प्रभाव से अपने मृग रूप होने का कारण जानकर वे अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

आह स्वे चित्ते ॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

आगे के दण्डक में कही जाने वाली बात को वे अपने मन में कहते थे ॥२८॥

**अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्तसङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसंकीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसुस्राव ॥२९॥**

**अनुवाद**— अरे यह अत्यन्त खेद का विषय है कि मैं संयमशील महानुभावों के मार्ग से पतित हो गया। सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके मैने धैर्यपूर्वक एकान्त और पवित्र वन का आश्रय लिया था। वहाँ पर मैंने सर्वात्मा भगवान् वासुदेव में अपने मन को लगा दिया था और सदैव उनके ही गुणों का श्रवण, मनन, संकीर्तन, आराधन और ध्यान करके प्रतिपल को श्रीभगवान् की ही आराधना और स्मरण आदि से सफल बनाया करता था। मुझ अज्ञानी का वही मन मृग शावक के पीछे अपने लक्ष्य से च्युत हो गया ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

अहो कष्टं धीराणां मार्गाद्भ्रष्टोऽहम्। भ्रंशमेवाह। यद्यतो विमुक्ताः समस्ताः सङ्गा येन। विविक्तं पुण्यारण्यं शरणं यस्य आत्मवतो धीरस्य मम मनः सर्वेषां भूतानामात्मनि वासुदेवे समावेशितं समाहितं च निश्चलं सदाराद्दूरादेव सुस्राव गलितं निःसृतम्। केन समावशितम्। तस्यानुश्रवणादिष्वभियोगेनाभिनिवेशेनाशून्याः सकला यामा यस्मिंस्तेन कालेन ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

अरे यह बड़े ही कष्ट की बात है कि मैं धैर्य सम्पन्न पुरुषों के मार्ग से भ्रष्ट हो गया। मैंने तो पहले सारी

आसक्ति का परित्याग कर दिया था और एकान्त पवित्र वन में अपना आश्रम बनाया था । धैर्य सम्पन्न मेरा मन सर्वात्मा भगवान् वासुदेव में आविष्ट भी हो गया था । मेरा सारा समय श्रीभगवान् के गुणों का श्रवणादि में ही लगे रहने के कारण कभी खाली नहीं रहता था वही मेरा मन मृग शावक के पीछे भगवदाराधन से च्युत हो गया॥२९॥

**इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीं मातरं पुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालञ्जरात्प्रत्याजगाम ॥३०॥**

**अनुवाद**— इस प्रकार मृग शरीर धारण किए राजर्षि भरत के हृदय में जो वैराग्य की भावना उत्पन्न हो गयी थी उसके कारण वे अपनी माता मृगी का परित्याग करके कालञ्जर पर्वत से फिर शान्त स्वभाव मुनियों के प्रियक्षेत्र शालग्राम तीर्थ में आ गये जो भगवान का प्रिय क्षेत्र है उस पुलस्त्य और पुलह ऋषि के आश्रम पर चले आये ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

निगूढोऽनाविष्कृतो निर्वेदो येन । शालवृक्षोपलक्षितं ग्रामम् । कालञ्जराद्यत्र हरिणो जातस्तस्मात्पर्वतात् ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

मृग शरीर में भी विद्यमान भरतजी अपने वैरागय को छिपाये हुए अपने जन्मस्थान कालञ्जर पर्वत से शालग्राम तीर्थ में चले आयें ॥३०॥

**तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधावर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥३१॥**

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भरत चरितेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

**अनुवाद**— वहाँ रहकर भी वे काल की प्रतीक्षा करते रहे, वे आसक्ति से अत्यन्त भयभीत थे । अकेले रहकर वे सुखे पत्ते, घास और झड़ियों द्वारा निर्वाह करते हुए मृग योनि को प्राप्त कराने वाले प्रारब्ध नाश की प्रतीक्षा करते रहे, प्रारब्ध क्षय के अन्त में वे अपने मृग शरीर का आधा भाग गण्डकी नदी में डुबाये रखकर शरीर त्याग कर दिया ॥३१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के भरतचरित के प्रसङ्ग में आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥**

**भावार्थ दीपिका**

आत्मैव सहचरो यस्य एकाकी । प्रतीक्षमाणस्यैव प्रपञ्चः मृगत्वनिमित्तेति । तीर्थोदकेन क्लिन्नमार्द्रमर्धोदकस्थमित्यर्थः॥३१॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽ्यायः ॥८॥**

**भाव प्रकाशिका**

आत्मसहचरः अकेले रहने वाले भरतजी उस शालग्राम क्षेत्र में भी मृगत्व की प्राप्ति कराने वाले प्रारब्धक्षय की प्रतीक्षा करते रहे । मृत्यु के समय उनका आधा शरीर तीर्थ के शरीर से भिंगा हुआ था ॥३१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८॥**

# नवाँ अध्याय

## भरतजी का ब्राह्मण वंश में जन्म

श्रीशुक उवाच

**अथ कस्यचिद्द्विजवरस्याङ्गिरः प्रवरस्य शमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसंतोषतितिक्षाप्रश्रय-विद्यानसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ।।१।।**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— राजन् ! आङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न शम, दम, तप, स्वाध्याय, वेदाध्ययन, त्याग, सन्तोष, तितिक्षा, विनय, विद्या, अनसूया, आत्मज्ञान, एवं आनन्द आदि समस्त गुणों से सम्पन्न एवं ब्राह्मण थे । उनकी बड़ी पत्नी से उन्हीं के समान विद्या, शील, आचार, रूप एवं औदार्य आदि गुणों से युक्त नव पुत्र हुए और छोटी स्त्री से एक ही साथ एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ ।।१।।

### भावार्थ दीपिका

नवमे जडविप्रत्वे तस्य रागाद्यभावतः । यद्रकालीपशुत्वेऽपि निर्विकारत्वमीर्यते । पितुः प्राप्तात्मविज्ञानो भरतो मृगतां गतः । प्रारब्धकर्मवेगेन तदन्ते जडविप्रताम् । आङ्गिरसगोत्रजानां प्रवरस्य श्रेष्ठस्य शमादियुक्तस्य । त्यागोऽत्रातिथ्यादिभ्योऽन्नदानादि। विद्या कर्मविद्या । आत्मज्ञानं देहादिव्यतिरिक्तभोक्रात्मज्ञानम् । आनन्दो धर्मसंपत्तिजः आत्मना सादृशाः श्रुतादयो गुणा येषां ते समानोदरा नव पुत्रा बभूवुः । यवीयस्यां कनिष्ठायां च मिथुनं स्त्रीपुरुषयुग्मम् ।।१।।

### भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में श्रीभरतजी के जड़ ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होने के कारण भद्रकाली का बलि पशु बनने पर भी वे निर्विकार बने रहे । अपने पिता ऋषभदेव से आत्मविज्ञान को प्राप्त करके भरतजी मृगयोनि को प्राप्त कर लिए। प्रारब्ध कर्म के वेग के कारण वे उसके पश्चात् जड़ ब्राह्मण हो गये । आङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न होने वाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ शमादि गुण सम्पन्न, अतिथि इत्यादि को अन्न देने के त्याग को कहा गया है, विद्या शब्द कर्म विद्या का वाचक है । आत्मज्ञान देहादि से भिन्न आत्मा ही भोक्ता है उस प्रकार का ज्ञान । धर्म जन्य आनन्द, अपने ही सदृश सहोदर नव पुत्र हुए । छोटी पत्नी के गर्भ से एक कन्या और एक पुरुष दोनों जुड़वे सन्तान थे ।।१।।

**यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः।।२।।**

**अनुवाद**— उन दोनों में जो पुरुष था वह परम भागवत राजर्षि भरत ही थे । वे मृग शरीर का परित्याग करके अपने अन्तिम शरीर से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किए इस प्रकार से महापुरुषों का कहना है ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

उत्सृष्टं मृगशरीरं येन तम् । 'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते' इति स्मृतेः ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

योगभ्रष्ट पुरुष पवित्र ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुषो के यहाँ जन्म लेता है इस स्मृति के अनुसार मृग शरीर का परित्याग करके पवित्र ब्राह्मण के वंश में जन्म लिए ।।२।।

**तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडान्ध-बधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥३॥**

**अनुवाद**— उस जन्म में भी श्रीभगवान् की कृपा से उनके अपने पूर्व जन्म परम्परा के स्मरण रहने के कारण, इस आशंका से कि फिर न कहीं कोई विघ्न उपस्थित हो जाय वे अपने स्वजनों तथा दूसरे लोगों के सङ्ग से भयभीत रहते थे। निरन्तर जिनका श्रवण, स्मरण, और गुण कीर्तन सभी प्रकार के कर्मों के बन्धन को काट देता है श्रीभगवान् के दोनों चरण कमलों को ही अपने मन से स्मरण किया करते थे और दूसरों की दृष्टि में अपने को उन्मत्त जड, अन्ध, बधिर रूप से दिखाते थे ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

तत्रापि चान्यसङ्गादात्मनो भ्रंशमाशङ्कमानश्चात्मानमुन्मत्तादि रूपेण दर्शयामासेत्यन्वयः। किं कुर्वन् कर्मबन्धविध्वंसनं श्रवणं स्मरणं गुणानां विवरणं कथनं च यस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दयुगलं मनसा विशेषेण धारयन्। प्रतिघातशङ्कायां हेतुः- अनुस्मृता स्वीयपूर्वजन्मनामावलिः परम्परा येन सः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

इस जन्म में भी दूसरों के सङ्ग से आत्मभ्रंश की आशङ्का से अपने को उन्मत्त आदि के रूप में दिखाते थे। प्रश्न होता है कि वे क्या करते थे तो इसका उत्तर है कर्मों के बन्धन को विध्वस्त कर देने वाले श्रीभगवान् के दोनों चरणों के गुणों का श्रवण, स्मरण तथा गुणों की विवरण में ही मन को विशेष रूप से लगाये रखते थे। विघ्न की आशङ्का का कारण यह था कि उनको अपने पूर्व जन्मों की परम्परा की याद बनी रहती थीं ॥३॥

**तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति॥४॥**

**अनुवाद**— उनके पिता का उनमें अपने अन्य पुत्रों के ही समान स्नेह होने के कारण अतएव उन्होंने अपने पागल पुत्र के भी शास्त्रानुसार समावर्तन संस्कार पर्यन्त विवाह से पूर्व के सभी संस्कारों को सम्पन्न करने की इच्छा से उनका उपनयन संस्कार किया ? उनके नहीं चाहने पर भी पुत्र को शिक्षा देना पिता का कर्तव्य होने के कारण शास्त्रोक्त विधि से उनको शौच आचमन आदि की शिक्षा पिता ने उनको भी दी ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

पुत्रस्नेहेऽनुबद्धं मनोयस्य। जडस्य गार्हस्थ्यानधिकारात्समावर्तनान्तान्संस्कारान्विदधानस्तमुपनीयोपनीतस्य पुनः शौचादींस्तस्यानभिप्रेतानपि शिक्षितवान्। तत्र हेतुः अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः सकाशात्पुत्रेणेति ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

पिता का पुत्र के स्नेह में मन अवद्ध था। चूकि जड़ का गार्हस्थ्य में अधिकार नहीं होता है अतएव समावर्तन संस्कार पर्यन्त संस्कारों को करने की इच्छा से उन्होंने जड़ पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार करके उनके लिए अभिप्रेत नहीं होने पर भी पावित्र्य पालन की शिक्षा दी। क्योंकि नियम है कि पिता को अपने पुत्रों को सुशिक्षित करना चाहिए ॥४॥

**स चापि तदुह पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिव स्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यसमवेत रूपं ग्राहयामास ॥५॥**

**अनुवाद**— भरतजी अपने पिता के समक्ष ही उनके विरुद्ध अनाचरण करने लगते थे। पिता उनको वर्षा

काल में वेदाध्ययन प्रारम्भ करा देना चाहते थे। किन्तु वसन्त और ग्रीष्म ऋतु के चार महीनों में भी वे व्याहृतियों सहित शिरोमन्त्र प्रणव के साथ त्रिपदा गायत्री को भी वे याद नहीं कर सके ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

सोऽपि च पितुः शिक्षानिर्बन्धनिवृत्तये असध्रीचीनमसमीचीनमिव करोति स्म उपाकरणवेदव्रताद्यनन्तरं श्रावणादिमासेषु वेदानध्यापयिष्यन्नादौ तावद्याहृतिभिः सह प्रणवशिरः सहितां त्रिपदीं चैत्रादिचतुरो मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं यथा भवत्येवं ग्राहयामास। तावतापि कालेन स्वरानुपूर्व्यादियुक्तं व्याहृत्यादि तस्य नागतमित्यर्थः ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

अपने पिता के शिक्षा रूपी बन्धन को दूर करने के लिए उनके साथ ही विरुद्ध आचरण करने लगे। उपाकर्म के पश्चात् वेद व्रत के अनन्तर श्रावण आदि मासों में वेदों को पढ़ाना प्रारम्भ कर देने की इच्छा से सर्वप्रथम व्याहृतियों और शिरोमन्त्र प्रणव पूर्वक त्रिपदा गायत्री को वसन्त और ग्रीष्म के चार महीनों में अच्छी तरह से याद नहीं कर सके ।।५।।

**एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाण-ककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त उपसंहृतः ।।६।।**

**अनुवाद**— ऐसा होने पर भी अपने इस पुत्र में पिता का आत्मा के समान अनुराग था। अतएव उनकी प्रवृत्ति नहीं होने पर भी पुत्र को अच्छी तरह से शिक्षा देनी चाहिए इस प्रकार के आग्रहवशात् पिता अपने उस पुत्र को शौच, वेदाध्ययन, व्रत, नियम एवं गुरु तथा अग्नि की सेवा आदि ब्रह्मचर्य के नियमों की शिक्षा देते रहे। ऐसा करके भी पुत्र का सुशिक्षित देखने का उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका। और स्वयं भी गृहकार्यों में व्यस्त बने रहे किन्तु सर्वदा सावधान रहने वाला काल आ गया और उनकी मृत्यु हो गयी ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

आत्मभूते स्वतनुजेऽनुरागेणावेशितं चित्तं येन। शौचादीनि यान्यौपकुर्वाणकस्य सावधिब्रह्मचर्यवतः कर्माणि तेनानभियुक्तान्य-नादृतान्यपि तं पुत्रं प्रत्यनुशास्याप्यप्राप्तपुत्रपाण्डित्यमनोरथः स्वयं कालेनोपसंहृतो मृत इत्यर्थः। अनुशासननिर्बन्धे पुनस्तमेव हेतुमाह। अनुशिष्टेन भाव्यमित्यसन्नयोग्य आग्रहो यस्य ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

आत्म स्वरूप अपने पुत्र में जिनका मन लगा रहता था वे पिता औपकारक (ब्रह्मचर्याश्रम) के लिए अपेक्षित शौच आदि कर्म जो भरतजी को अभिप्रेत नही थे उनकी भी उन्होंने शिक्षा दी फिर भी पुत्र के पाण्डित्य के मनोरथ के पूर्ण हुए बिना ही काल से आक्रान्त होकर मर गये। उनको पुत्र को शिक्षा देने का कारण यह था कि पुत्र को सुशिक्षित होना चाहिए ।।६।।

**अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ।।७।।**

**अनुवाद**— उनकी छोटी पत्नी अपने दोनों सन्तानों को अपने सौत को समर्पित करके स्वयं सती होकर पतिलोक को चली गयी ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

सपत्न्यै समर्प्य। अनुसंस्थयाऽनुमरणेन। सप्तम्यन्तपाठेऽप्ययमेवार्थः ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

छोटी पत्नी अपनी दोनों सन्तानों को सौत को समर्पित करके सती होकर पति के लोक में चली गयी। सप्तम्यन्त पाठ होने पर भी यही अर्थ होगा ।।७।।

**पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासननिर्बन्धान्न्यवृत्सन्त ॥८॥**

**अनुवाद**— पिता की मृत्यु के पश्चात् भरतजी के भाई जो कर्मकाण्ड को ही सर्वश्रेष्ठ जानते थे ब्रह्मज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ थे उन्हें भरतजी का प्रभाव ज्ञात नहीं था वे उनको मूर्ख समझते थे अतएव उनको पढ़ाने का अग्रह उन सबों ने छोड़ दिया ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

न्यवृत्सन्त निवर्तितुमैच्छन् । निवृत्ता इत्यर्थः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

व्यवृत्सन्त का अर्थ है त्याग दिया ॥८॥

**स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याच्ञया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मिष्टं कदन्नं वाऽभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तं नित्यनिवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसंभावितदेहाभिमानः ॥९॥**

**अनुवाद**— भरतजी को मानापमान का कोई परवाह न था । जब साधारण नर पशु उनको पागल, मूर्ख अथवा बहरा कहकर पुकारते थे तो वे उन सबों के समक्ष वैसा ही बोलने लगते थे । यदि कोई उनसे कोई काम कराना चाहता था तो उसकी वे उसकी इच्छा के अनुसार काम कर देते थे । वेगार के रूप में अथवा मजदूरी के रूप में माँगने पर अथवा बिना माँगे उनको जो भी थोड़ा बहुत, अच्छा अथवा बुरा अन्न मिलता था वे उसी को खा लेते थे । वे जीभ का थोड़ा सा भी स्वाद नहीं लेते थे । किसी कारण से नहीं उत्पन्न होने वाला स्वतः सिद्ध केवल ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मज्ञान उनको प्राप्त हो गया था । सुख दुःखादि में उनको देहाभिमान की स्फूर्ति नहीं होती थी ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

यदाऽभिभाष्यमाणस्तदा तदनुरूपाणि प्रभाषते । मूल्यमन्तरेण बलाद्यत्कर्म कार्यते सा विष्टिः । वेतनं मूल्यम् । विष्टयादिभिरुपसादितमन्नमभ्यवहरति उपभुङ्क्ते केवलं, न त्विन्द्रियप्रीतये । अत्र हेतुद्वयमाह । नित्यं सदा निवृत्तं निमित्तं यस्मात्स उत्पादकशून्यः स्वसिद्धोऽभिव्यञ्जकशून्यो विशुद्धः केवलो योऽनुभवः स एवानन्दरूपः स्वात्मा तस्य लाभ एवंभूतोऽहमिति ज्ञानं तस्याधिगमः प्राप्तिरस्ति यस्य । द्वन्द्वानि सन्मानावमानादीनि तद्धेतुकयोः सुखदुःखयोरकृतदेहाभिमानः । तस्मान्नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तमभ्यवहरतीत्यन्वयः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

उनको सामान्य मनुष्य जैसा कहते थे वे उसी के अनुसार बोलने लगते थे । वेगार में किए जाने वाले कर्म को विष्टि कहते है । वेतन पर किए गये कर्म के मूल्य कहते है । वे बेगार आदि से जो कुछ और जैसा भी अन्न उनको मिल जाता था उसी को वे खा लेते थे । जीभ का स्वाद वे बिल्कुल नहीं लेते थे । इसके दो कारण थे **१.** उनको उत्पादक शून्य स्वतः सिद्ध अभिव्यञ्जक शून्य आनन्द स्वरूप आत्मज्ञान प्राप्त हो गया था । **२.** मानपमान जन्य सुख दुःख के द्वारा उनको देहाभिमान की स्फूर्ति होती ही नहीं थी यही कारण था कि वे जिह्वा के स्वाद के लिए भोजन नहीं करते थे ॥९॥

**शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबन्धुरिति संज्ञयाऽतज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥१०॥**

**अनुवाद**— वे सर्दी गर्मी, आँधी और वर्षा के भी समय सांड़ के समान नङ्गे वदन पड़े रहते थे। उनके सभी अङ्ग हृष्ट पुष्ट थे। वे पृथिवी पर ही पड़े रहते थे। कभी तेल आदि नहीं लगाते थे और स्नान भी नहीं करते थे। शरीर पर मैल जम गयी थी। धूल से ढँके हुए महामूल्यवान मणि के समान उनका ब्रह्मतेज छिप गया था। वे कमर में मैला वस्त्र लपेटे रहते थे। यज्ञोपवीत भी मैला हो गया था। अतएव अज्ञानी लोग उनको कोई द्विज कहते थे तो कोई अधम ब्राह्मण। किन्तु वे इन सबों को सोचे बिना धूमते रहते थे ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

अतएव शीतोष्णादिष्वनावृताङ्गो विचचारेत्यन्वयः। कीदृशः। पीनः पुष्टः। संहननाङ्गः संहन्यन्ते निबिडीभवन्ति स्माङ्गानि यस्य। कठिनावयव इत्यर्थः। स्थण्डिलसंवेशनं भूमिशयनम्, अनुन्मर्दनं मर्दनाभावः, अमज्जनं स्नानाभावः, तैर्यद्रजस्तेनाप्रकटं ब्रह्मवर्चसं ब्राह्मं तेजो यस्य। यथा महामणिरनभिव्यक्ततेजा भवति। कुत्सितेन पटेना वृता कटिर्यस्य। उरुमषिणाऽतिमलिनेन। तत्त्वतस्तं न जानन्ति ये तैर्जनैरवमतः सन् ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

भरतजी सर्दी गर्मी में सदा खुले वदन घुमा करते थे। उनके अङ्ग हृष्ट पुष्ट और गठीले थे। वे पृथिवी पर सोते थे। वे न तो तैल आदि लगाते थे और न तो स्नान करते थे। उसके कारण उनका ब्रह्मतेज छिप गया था। वे कमर में मैला कपड़ा लपेटे रहते थे और उनका यज्ञोपवीत अत्यन्त मैला था। उनके तत्त्व को नहीं जानने वाले लोग उनका अपमान करते थे ॥१०॥

**यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किंतु न समविषमन्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति॥११॥**

**अनुवाद**— दूसरे की मजदूरी करते देखकर उनके भाइयों ने उन्हें खेत की क्यारियाँ ठीक करने में लगा दिया तो वे उस कार्य को करने लगे। उनको इस बात का ध्यान नहीं रहता था कि उन क्यारियों की भूमि समतल है कि ऊँची नीची या क्यारी छोटी है या बड़ी। उनके भाई उन्हें चावल की कनी खली भूसी, धुने उदड या बरतन में सटे हुए जले अन्न का खुरचन जो भी दे देते थे उसी को वे अमृत के समान खा लेते थे ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

यदा तु परेभ्यः कर्ममूल्येनाहारमपेक्षमाणो भवति तदा केदारकर्मणि शालिक्षेत्रे कर्दमविलोडनादावाहारप्रलोभनेन नियुक्तः सन् करोति। किंत्वत्र कर्दमस्य प्रक्षेपे क्षेत्रं समं भवेदित उद्धरणे विषमं स्यादित्यादि न वेद। भ्रातृभिर्दत्तान्कणादीनप्यमृतवद्भुङ्क्ते। कणाश्चूर्णतण्डुलाः। पिण्याकं तैलयन्त्रोद्धृतं तिलकिट्टम्। फलीकरणं तुषाः। कुल्माषाः कीटदष्टा माषाः। स्थाली पुरीषं स्थालीलग्नं दग्धान्नम् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरों की मजदूरी से उनको पेट पालते देखकर उनके भाइयों ने उनको खेत की क्यारियों को ठीक करने के काम में भोजन की लालच देकर लगा दिया। किन्तु कीचड़ के निकलने से खेत समतल होगा या विषम इस बात का पता उनको नहीं था उनके भाई उन्हें खाने के लिए कन आदि को देते और वे उसे अमृत के समान खा लेते थे। चावल के कण, खली, भूसी, घुने उड़द वर्तनों में सटकर जले हुए अन्न को भी वे खा लेते थे॥११॥

**अथ कदाचित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥१२॥**

**अनुवाद**— एक बार चोरों के सरदार ने जिसके सामन्त शूद्र जाति के थे पुत्र की कामना से भद्रकाली को मनुष्य की बलि देने का सङ्कल्प किया ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

तस्य रागादिराहित्यमलौल्यं चैवमीरितम् । अथान्यच्चरितं प्राह चित्रं मृत्यावसंभ्रमम् । वृषलपतिः शूद्रसामन्तश्चोरराजः आलभत अलब्धुं प्रवृत्तः ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से यहाँ तक उनके रागादि राहित्य एवं लालच राहित्य का वर्णन किया गया । अब उनके दूसरे चरित का वर्णन करते हैं कि वे मृत्यु के डर से भी भयभीत नहीं थे चोरों के राजा को वृषलपति कहते हैं अलभत अर्थात् बलि देने में प्रवृत्त हुआ ॥१२॥

**तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि निशीथसमये तमसावृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान् वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरः प्रवरसुतमपश्यन् ॥१३॥**

**अनुवाद**— वह जिस पुरुष को बलि देने के लिए मगाया था वह दैववशात् उसके फंदे से निकलकर भाग गया । उसको ढूँढने के लिए उसके अनुचर चारो ओर निकले किन्तु अन्धेरी रात में आधी रात में उसका किसी तरह पता नहीं चला । उसी समय उन सबों की आकस्मात् उस आङ्गिरस गोत्रीय ब्राह्मण कुमार पर नजर पड़ी जो वीरासन से बैठकर मृगों तथा वराह इत्यादि से खेतों की रक्षा कर रहे थे ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

दैवाद्बन्धनविमुक्तस्य पशोः । तमसा व्याप्तायां निशि । तत्रापि निशीथसमयेऽर्धरात्रावसरे । आकस्मिको दैवनिर्मितो विधिः प्रकारस्तेन । वीरासनेनोर्ध्वावस्थानेन ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

दैववशात् उसका नर पशु बन्धन से छूट गया, उसके उसे अँधेरी रात में आधी रात को उसको खोजने निकले किन्तु वह नहीं मिला । दैव वशात् उन सबों ने भरतजी को देखा जो वीरासन से खेत की रखवाली कर रहे थे ॥१३॥

**अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥१४॥**

**अनुवाद**— उन सबों ने इनको निर्दोष पशु जानकर उनसे ही अपने स्वामी के कार्य की पूर्ति मानते हुए उनको रस्सी में बाँधकर चण्डिका के मन्दिर में ले आये ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

अवमृश्य ज्ञात्वा ॥१४॥

### भाव प्रकाशिका

अवमृश्य अर्थात् जानकर ॥१४॥

**अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिषिच्याहतेन वाससाच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥१५॥**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उन चोरों ने अपनी विधि के अनुसार उनका अभिषेक करके कोरे वस्त्र पहनाया, अनेक प्रकार के आभूषण, चन्दन, माला और तिलक आदि से भूषित करके अच्छी तरह से भोजन कराया। फिर धूप, दीप, माला, लावा, पत्ते, अङ्कुर तथा फल आदि उपहार की सामग्री के साथ बलिदान विधि से गायन, स्तुति मृदङ्ग तथा ढोल आदि का अत्यधिक शब्द करके उस पुरुष पशु को भद्रकाली के सामने शिर नीचा करके बैठा दिया ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

पणयश्चोराः। अहतेन नूतनेन। उपस्कृतमलंकृतम्। वैशससंस्थया हिंसाविधानेन। गीतादिघोषेण सह ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

पणयः अर्थात् चोरगण, अहत अर्थात् नवीन, वैशससंस्थया हिंसा विधि से, गीत आदि के अधिक ध्वनि के साथ ॥१५॥

**अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकराल-निशितमुपाददे ॥१६॥**

**अनुवाद**— तदन्तर चोरराज के पुरोहित चोर उस नर पशु के रक्त से देवी को तृप्त करने के लिए देवी के मन्त्र से अभिमन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग को अपने हाथ में ले लिया ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

वृषलराजस्य पणिःपुरोहितत्वेन वर्तमानश्चोरः। तदभिमन्त्रितं भद्रकालीमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

**वृषल राजस्य पणिः** अर्थात् चोर राज को पुरोहित चोर, भद्रकाली के मन्त्र से अभिन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग को अपने हाथ में उठाया ॥१६॥

**इति तेषां वृषलानां रजस्तमः प्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यन नुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥१७॥**

**अनुवाद**— स्वभावतः रजोगुणी तमोगुणी प्रकृति वाले चोरों का चित्त धन के मद से मत्त हो गया था। हिंसा में उन सबों की स्वभावतः रुचि थी। इस समय वे भगवान् के अंश स्वरूप ब्राह्मण वंश का तिरस्कार करके स्वच्छन्दता पूर्वक उन्मार्ग की ओर बढ़ रहे थे। जिस हिंसा का अनुमोदन नहीं किया गया है, उसमें भी ब्राह्मण वध का सर्वथा निषेध है। भरतजी तो निर्वैर साक्षात् ब्रह्मभाव को प्राप्त सभी प्राणियों के सुहृद तथा ब्रह्मर्षि कुमार थे। उनकी वे बलि देना चाहते थे। इस भयङ्कर कुकर्म को देखकर देवी भद्रकाली के शरीर अति दुःसह ब्रह्मतेज से दाह होने लगा। अचानक वे मूर्ति को फोड़कर प्रकट हो गयीं ॥१७॥

**अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिषिच्याहतेन वाससाच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥१५॥**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् उन चोरों ने अपनी विधि के अनुसार उनका अभिषेक करके कोरे वस्त्र पहनाया, अनेक प्रकार के आभूषण, चन्दन, माला और तिलक आदि से भूषित करके अच्छी तरह से भोजन कराया। फिर धूप, दीप, माला, लावा, पत्ते, अङ्कुर तथा फल आदि उपहार की सामग्री के साथ बलिदान विधि से गायन, स्तुति मृदङ्ग तथा ढोल आदि का अत्यधिक शब्द करके उस पुरुष पशु को भद्रकाली के सामने शिर नीचा करके बैठा दिया ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

पणयश्चोराः। अहतेन नूतनेन। उपस्कृतमलंकृतम्। वैशससंस्थया हिंसाविधानेन। गीतादिघोषेण सह ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

पणयः अर्थात् चोरगण, अहत अर्थात् नवीन, वैशससंस्थ्या हिंसा विधि से, गीत आदि के अधिक ध्वनि के साथ ॥१५॥

**अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकराल-निशितमुपाददे ॥१६॥**

**अनुवाद**— तदन्तर चोरराज के पुरोहित चोर उस नर पशु के रक्त से देवी को तृप्त करने के लिए देवी के मन्त्र से अभिमन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग को अपने हाथ में ले लिया ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

वृषलराजस्य पणिःपुरोहितत्वेन वर्तमानश्चोरः। तदभिमन्त्रितं भद्रकालीमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

**वृषल राजस्य पणिः** अर्थात् चोर राज को पुरोहित चोर, भद्रकाली के मन्त्र से अभिन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग को अपने हाथ में उठाया ॥१६॥

**इति तेषां वृषलानां रजस्तमः प्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यन नुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥१७॥**

**अनुवाद**— स्वभावतः रजोगुणी तमोगुणी प्रकृति वाले चोरों का चित्त धन के मद से मत्त हो गया था। हिंसा में उन सबों की स्वभावतः रुचि थी। इस समय वे भगवान् के अंश स्वरूप ब्राह्मण वंश का तिरस्कार करके स्वच्छन्दता पूर्वक उन्मार्ग की ओर बढ़ रहे थे। जिस हिंसा का अनुमोदन नहीं किया गया है, उसमें भी ब्राह्मण वध का सर्वथा निषेध है। भरतजी तो निर्वैर साक्षात् ब्रह्मभाव को प्राप्त सभी प्राणियों के सुहृद तथा ब्रह्मर्षि कुमार थे। उनकी वे बलि देना चाहते थे। इस भयङ्कर कुकर्म को देखकर देवी भद्रकाली के शरीर अति दुःसह ब्रह्मतेज से दाह होने लगा। अचानक वे मूर्ति को फोड़कर प्रकट हो गयीं ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

धनमद एव रजस्तेनोत्सिक्तं त्यक्तमर्यादं मनो येषाम् । भगवत्कलायुक्तं वीराणां ब्राह्मणानां कुलं तुच्छीकृत्य यथेच्छं वर्तमानानां यत्कर्म तदुपलभ्य देवी उच्चचाट प्रतिमां त्यक्त्वा बहिर्निर्गता । कथंभूतमालम्भनम् । सूनायामप्यापत्कालेऽनुज्ञातायामपि हिंसायामननुज्ञातम् । भद्रकालीत्यन्तं गद्यम् ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

धन का मद ही रजोगुण है उसके कारण उन सबों का मन मर्यादाहीन हो गया था । श्रीभगवान् की कला से युक्त ब्राह्मणों के वंश का तिरस्कार करके स्वच्छन्दाचार करने वाले उन सबों के कर्म से देवी प्रतिमा को फोड़कर प्रकट हो गयीं । उस हिंसा का वर्णन सूनायाम से लेकर भद्रकाली पर्यन्त गद्य से वर्णित है ।।१७।।

**भृशममर्षरोशावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं महाट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशीर्ष्णांगलात्स्रवन्त-मसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरःकन्दुकलीलया ।।१८।।**

**अनुवाद—** अत्यन्त असहनशीलता और क्रोध के कारण उनकी भौंहें चढ़ी हुई थीं । भयङ्कर दाँतों और चढ़ी हुई लाल आँखों से उनका मुख अत्यन्त भयानक हो गया था । मारने की इच्छा के समान वे अत्यन्त जोर से अट्टहास करती हुई उछल कर उसी खड्ग से उन पापियों, दुष्टों के शिर को काटकर उन सबों के गले से गर्म-गर्म रक्त रूपी आसव को पीकर अपने गण के साथ उन्मत्त होकर नृत्य की और गीत गायी ओर उन शिरों को ही गेंद बनाकर खेलने लगीं ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

अमर्षोऽपराधासहनं रोषश्च वपुषो दाहनं तयोरावेशस्तस्य रभसेन वेगेन विलसित उत्तम्भितो भ्रुकुटिलक्षणो विटपः शाखाकुटिला दंष्ट्राश्चारुणानीक्षणानि च तेषामाटोपः संभ्रमस्तेनातिभयानकं वदनं यस्याः । इदं जगद्धन्तुमुद्यतेव । महान्तमट्टहासं सनादं हासम् । ततः स्थानादुत्पत्य विवृक्णानि छिन्नानि शीर्षाणि येषाम् । गणेन परिवारेण सह । शिरांस्येव कन्दुकानि तेषां लीलया चिक्रीड च ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

रोष और आमर्ष के आवेश के वेग से जिनकी भौंहों रूपी वृक्ष की शाखा उनके टेढे दाँत थे और नेत्रों के चढ जाने से उनका मुख भयङ्कर हो गया था । मानो वे इस जगत् का विनाश कर देना चाहती हों । जोर से अट्टहास करती हुई अपने स्थान से उछल कर उन सबों के शिर को काट दीं अपने परिवार के साथ वे उन शिरों का गेंद खेलीं । अपराध को नहीं सहने के आमर्ष कहते हैं । रोष अर्थात् क्रोध ।।१८।।

**एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कार्त्स्न्येनात्मने फलति ।।१९।।**

**अनुवाद—** सत्य है कि महापुरुषों के प्रति किया गया अत्याचार रूप अपराध उसी तरह अपने ऊपर पड़ता है ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

ननु कथं देव्याराधकानामेवं विपरीतं फलं तत्राह– एवमेवेति । महत्स्वभिचाररूपोऽतिक्रमोऽपराधः ।।१९।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न है कि देवी की आराधना करने वालों का कारण क्या है ? तो इसका उत्तर स्वयम् इत्यादि के द्वारा दिया गया है । महापुरुषों के प्रति अभिचारता अपराध ही उसका कारण है ।।१९।।

**न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवताऽनिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ।।२०।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चस्कन्धे जडभरतचरितं नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

**अनुवाद**— परिक्षित् जिनकी देहाभिमान रूपी हृदय ग्रन्थि छूट गयी है, जो समस्त प्राणियों के सुहृद और आत्मा और निर्वैर हैं, साक्षात् श्रीभगवान् के द्वारा तथा कभी नहीं चुकने वाले चक्रादि श्रेष्ठ तथा सर्वदा सावधान आयुध के द्वारा जिनकी भिन्न-भिन्न रूपों से रक्षा की जाती है, श्रीभगवान् के चरणों की आराधना करने वाले भागवत परमहंसों का किसी प्रकार का भय नहीं होता है ।।२०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवतम महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के जड़भरतचरित नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।**

**भावार्थ दीपिका**

नन्वसंभावितमिदमेवं यन्मरणेऽप्यव्याकुलत्वं मारकेषु च क्रोधाभाव इत्यादि तत्राह– न वा इति । विमुक्तो देहाद्यात्मभावलक्षणः सुहृढो हृदयग्रन्थिर्यैः सर्वसत्त्वानां सुहृद आत्मानश्च ये तेषाम् । न च तेषां देहाद्यभिमानसद्भावेऽपि मरणादिभयमस्तीत्याह । साक्षाद्भगवताऽभितो रक्ष्यमाणानाम् । केन । अनिमिषः कालः स एवाऽरिचक्रं तेन वरायुधेन तैस्तैर्भावैश्चान्तर्यामितया प्रवर्त्यमानैर्भद्रकाल्यादिरूपैः । न कुतश्चिदपि भयं यस्मिन् । भागवतानां भगवदुपासकानां परमहंसानाम् ।।२०।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।**

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न है कि यही असम्भव है कि मृत्यु के समय भी व्याकुलता का अभाव होना । मारने वालों पर क्रोध का अभाव होना इत्यादि । तो इस पर कहते हैं **नवा० इत्यादि** जिनकी देहाभिमान रूपी ग्रन्थी खुल गयी है जो सभी जीवों के सुहृद एवं आत्मा हैं ऐसे महापुरुषों को यदि देहाभिमान हो तो भी मरणादि का भय नहीं होता इस बात को बतलाते हुए कहते हैं कि उनकी रक्षा स्वयं भगवान् अपने काल रूपी श्रेष्ठ आयुध के द्वारा श्रीभगवान् अन्तर्यामी रूप से भद्रकाली आदि रूपों का प्रवर्तित करने का काम करते हैं । महाभागवत परमहंसों को कहीं से कोई भी भय नहीं होता है ।।२०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९।।**

# दसवाँ अध्याय

## जड भरत और रहूगण की भेंट

### श्रीशुक उवाच

**अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥१॥**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— राजन् एक बार सिन्धु सौ वीर देश का राजा रहूगण पालकी पर चढकर जा रहा था । जब वह इक्षुमती नदी के किनारे पहुँचा तो उसकी पालकी उठाने वाले कहारों के जमादार पालकी ढोने वाले कहार को खोज रहा था दैववशात् ये द्विज श्रेष्ठ मिल गये । उसने सोचा यह मोटा युवक और गठीले शरीर वाला हैं बैल तथा गधे के समान बोझ ढो सकता है । पहले से ही बेगार में पकड़ गयें के साथ उनको भी उसने लगा दिया। यद्यपि भरतजी किसी भी प्रकार उस कार्य के योग्य नहीं थे फिर भी वे महानुभाव पालकी ढोने लगे ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

दशमे क्षिपता राजा शिबिकां स्वां बहन्मुनिः । स्वदुर्वादानुवादेन विज्ञायाशु प्रसादितः । एवंभूताविकारित्वमज्ञसर्वज्ञयोः समम् । इति सर्वज्ञतासिद्ध्यै रहूगणकथेरणम् । रहूगणो नाम सिन्धुसौवीरदेशयो राजा तत्त्वजिज्ञासुः कपिलाश्रमं यदा गच्छति स्म तदा यद्वृतं तदाह- अथेति । इक्षुमत्या नद्यास्तीरे । तेषां शिबिकावाहानां कुलस्य नाथेन एष गौरिव खर इव च भारं वोढुं समर्थ इति धिया पूर्वं ये केचन विष्ट्या बलाद्गृहीतास्तैः सह प्रसभं बलाद्गृहीतः सन्नतदर्होऽपि स महानुभावः शिबिकामुवाहेत्यन्वयः॥१॥

### भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में राजा की पालकी ढोने वाले मुनि को जब राजा डाँटा तो उसके दुर्वाद का अनुवाद करने से उनको जानकर राजा ने जड़ भरतजी की प्रार्थना की । अज्ञानी और सर्वज्ञ दोनों के प्रति एक समान रहने वाले जड़ भरतजी ने ऐसा करने पर भी कोई विकार नहीं आया इस प्रकार की सर्वज्ञता का प्रतिपादन करने के लिए रहूगण की कथा यहाँ वर्णित है । सिन्धु तथा सौवीर इन दोनों देशों का स्वामी रहूगण नामक राजा तत्त्व की जिज्ञासा से जब कपिलाश्रम जा रहा था उस समय जो घटना हुई उसे बतलाते हैं । इक्षुमती नदी के तीर पर शिबिका वाहकों के जमादार ने भरतजी को देखकर सोचा कि यह बैल तथा गधे के समान बोझ ढो सकता है । उसने जिन सबों को बेगार में पकड़ रखा था उन सबों के साथ उसने इनको भी लगा दिया । यद्यपि ये उस कार्य के बिल्कुल अयोग्य थे वे महानुभाव शिविका ढोने लगे ॥१॥

**यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां स्वशिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह हे वोढरः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥२॥**

**अनुवाद**— कोई जीव पैरों तले दबकर मर न जाय इसलिए आगे की एक बाण पृथिवी देखकर चलने के कारण दूसरे कँहारों के साथ उनकी चाल का मेल नहीं खाता था । अतएव पालकी जब टेढ़ी सीधी होने लगी तो राजा रहूगण ने कहारों से कहा अरे कँहारों अच्छी तरह पालकी ले चलो को इस तरह उची-नीची क्यों करके चलते हों ?॥२॥

### भावार्थ दीपिका

हिंसापरिहारार्थमिषुमात्रप्रदेशावलोकस्यानु पश्चाद्या गतिस्तस्या हेतुभूतायाः पुरुषाणां गतिर्न सम्यगाहिता एकरूपा नाभूत।।२।।

### भाव प्रकाशिका

कहीं किसी जीव की हिंसा न हो जाय एतदर्थ वे बाण मात्र पृथिवी को देखकर ही चलते थे। उसके कारण उन सबों की गति मिलती नहीं थी अतएव गति एक समान नहीं होती थी ।।२।।

**अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छङ्कितमनसस्तं विज्ञापयांबभूवुः ।।३।।**

**अनुवाद**— स्वामी के इस आक्षेप युक्त वाणी को सुनकर उन सबों को लगा कि राजा हमलोगों को दण्ड न दे अतएव डरकर उन सबों ने कहा ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

सोपालम्भं साक्षेपम्। सामदानभेददण्डेषूपायेषु चतुर्थाच्छङ्कितचित्ताः ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

सोपालम्भ अर्थात् आक्षेप युक्त वाणी सुनकर कहारों को लगा कि राजा सामदान भेद तथा दण्ड चारों में से हम लोगों को दण्ड न दें ।।३।।

**न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ।।४।।**

**अनुवाद**— महाराज हमलोगों का प्रमाद नहीं है, हमलोग तो आपके नियमानुसार अच्छी तरह ही ढोने का काम करते हैं। यह नया कहार जो अभी-अभी पालकी में लगाया गया है, फिर भी जल्दी नहीं चलता है हमलोग इसके साथ पालकी नहीं ले जा सकते ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

भवन्नियमानुपथास्त्वदाज्ञानुवर्तिनः। न पारयामो न शक्नुमः ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

हमलोग आपके नियम के अनुसार चलते, इसक साथ हमलोग नहीं चल पा रहे हैं ।।४।।

**सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसावृततिराह ।।५।।**

**अनुवाद**— कहारों के इस दीन वचन को सुनकर राजा रहूगण ने सोचा संसर्ग से सम्बन्ध रखने वाला दोष यद्यपि एक ही व्यक्ति मे होता है फिर भी उससे सम्बन्ध रखने वालों में भी आ सकता है। अतएव यदि इसका प्रतिकार नही किया गया तो धीर-धीर सब अपना चाल विगाड़ लेंगे। इस तरह से सोचकर राजा रहूगण को कुछ क्रोध हो गया। यद्यपि उसने महापुरुषों का सेवन किया था फिर भी क्षत्रिय स्वभाव के कारण उसकी बुद्धि रजोगुण से व्याप्त हो गयी, और जिनका ब्रह्मतेज भस्म से ढँकी हुई अग्नि के समान नहीं था उन द्विजश्रेष्ठ से उसने कहा।।५।।

### भावार्थ दीपिका

कृपणानां वचो निशम्य सांसर्गिकः संसर्गनिमित्त एकस्यापि दोषः सर्वेषामेव भवितुमर्हतीति निश्चित्य रहूगण आहेत्यन्वयः

कथंभूतः । उपासिता वृद्धा येन सोऽपि स्वभावेन बलात्परवशः कृतः सन् । कथंभूतं प्रत्याह । न विस्पष्टं ब्रह्मतेजो यस्मिन्। भस्मना छन्नमग्निमिव स्थितम् ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

उन दीन कहरों की वाणी को सुनकर राजा रहूगण ने इस बात का निश्चय कर लिया संसर्ग जन्य दोष एक में ही रहने पर भी सभी सांसर्गिकों में हो सकता है । इस तरह से सोचकर यद्यपि राजा वृद्धों का सेवन किया था फिर भी क्षत्रिय स्वभाव के कारण जिनका ब्रह्म भस्म से ढँकी अग्नि के समान स्पष्ट नहीं था उन भरतजी से कहा ।।५।।

**अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरुपरिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान्सुचिरं नातिपीवा न संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो भवान्सखे नो एवापर एते सङ्घट्टिन इति बहुविप्रलब्धोऽप्यविद्यया विहितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरम-कलेवरेऽवस्तुनि संस्थानविशेषेऽहंममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्म भूतस्तूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह।।६।।**

**अनुवाद**— अरे भाई यह बड़े कष्ट की बात है, तुम अवश्य बहुत थक गये हो, तुम्हारे साथियों ने लगता है कि तुमको थोड़ा भी सहारा नहीं दिया है । तुम अकेले ही इतनी दूरी से पालकी ढो रहे हो, तुम्हारा शरीर न तो मोटा ताजा है और न गठीला है, मित्र ! बुढापे ने तुम्हे अलग से दबा रखा है, इस तरह से बहुत अधिक आक्षिप्त होने पर भी वे पहले के ही समान चुपचाप पालकी ढोते रहे, वे इसको बुरा नहीं माने । उनकी दृष्टि में तो पञ्चभूत इन्द्रिय और अन्तःकरण का सङ्घात यह अन्तिम शरीर अविद्या का कार्य था । उनके अङ्गों से युक्त दिखायी देने पर भी वह अस्तित्व हीन था । अतएव उनका इस शरीर में मैं मेरेपन का मिथ्या अध्यास सर्वथा निवृत्त हो गया था वे ब्रह्म स्वरूप हो गये थे ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

भ्रातरिति संबोधनमाक्षेपाभिप्रायम् । व्यक्तं निश्चितमुरु अधिकं परिश्रान्तोऽसीत्यादीनि विपरीतार्थानि षड्वाक्यानि । ऊहिवान् प्रापितवान् । तत्रापि सुचिरम् । जरसा च वृद्धत्वेन । सङ्घट्टिनः सहचराः । बहु यथा भवत्येवं विप्रलब्धोऽपि वक्रोक्त्योपहसितोऽपि तूष्णीमुवाहेत्यन्वयः । तूष्णींभावे हेतुः-अविद्यया रचिता द्रव्यादयो यस्मिंस्तस्मिन्स्वचरमकलेवरे नाध्यारोपितो मित्याप्रत्ययो येन । तत्र द्रव्याणि महाभूतानि । गुणा इन्द्रियाणि । कर्माणि पुण्यपापानि । आशयोऽन्तःकरणम् । यतो ब्रह्मभूतः।।६।।

### भाव प्रकाशिका

भ्रातः यह आक्षेप के अभिप्राय से किया गया संबोधन है । **व्यक्तम् इत्यादि** छह वाक्य विपरीतार्थक हैं । ऊहिवान् अर्थात् ढोया सुचिरम् अर्थात् बहुत देर से । जरसा अर्थात् बुढापे से **संघट्टिनः** अर्थात् सहचर । इस तरह से वक्रोक्तियों के द्वारा बहुत अधिक उपहास किए जाने पर भी, वे चुपचाप पालकी ढोते रहे । चुपचाप रहने का कारण यह था कि वे जानते थे कि अविद्या जन्य ये द्रव्य आदि इस अन्तिम शरीर में अध्यारोपित होने के कारण मिथ्या है । इस शरीर में द्रव्य महाभूत इन्द्रियां पुण्य पाप रूपी कर्म और अन्तःकरण आदि हैं । इस तरह वे ब्रह्मरूप हो गये थे ।।६।।

**अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ।।७।।**

**अनुवाद**— फिर अपनी शिविका को सीधी चलते नहीं देखकर राजा रहूगण क्रुद्ध होकर कहे अरे यह क्या हो रहा है, तुम जीवित ही मर गये हो, मेरा तिरस्कार करके अपने स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करते हो तुम

प्रमादी की मैं चिकित्सा करता हूँ । जैसे दण्पाणि यमराज जन समूह को उसके अपराधों के लिए दण्ड देते हैं उसी तरह दण्डित होने पर तुम्हारी बुद्धि ठीक हो जायेगी ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

मामनादृत्य भर्तुः स्वामिनो मम शासनमाज्ञामतिक्रामसि । चिकित्सां शास्तिम् । दण्डपाणिर्यमो यथा जनसमूहस्य शास्तिं करोति तथा । स्वां प्रकृतिमप्रमत्तताम् ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

राहूगण ने कहा मेरा अनादर करके मुझ स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करते हो । अभी मैं तुझे दण्ड देता हूँ । उसी तरह जिस तरह यमराज अपराधी जनसमूह को दण्ड देते हैं । फिर तुम ठीक हो जाओगें ।।७।।

**एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसानुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पण्डितमानिनं स भगवान्ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ।।८।।**

**अनुवाद**— बहुत सी अबद्ध (अनाप-सनाप) बातें बोलने वाले राजा रहूगण को राजा होने का अभिमन था। वे अपने को पण्डित मानते थे, इसीलिए रजोगुण एवं तमोगुण युक्त अभिमान के वशीभूत होकर वे भगवान् के प्रीतिपात्र भक्त श्रेष्ठ भरतजी का अपमान कर डाले । योगेश्वरों के आचार का उनको कुछ पता नहीं था । राजा की इस प्रकार की बुद्धि को देखकर समस्त प्राणियों के सुहृद एवं आत्मा ब्रह्म स्वरूप मुस्कुराते हुए से बिना किसी प्रकार का अभिमान किए ही कहने लगे ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

अबद्धमनन्वितम् । नरदेवोऽहमित्यभिमानो यस्य तम् । अनुविद्धेन संगुणितेन तिरस्कृतोऽशेषः संपूर्णो भगवतः प्रियो निकेत आश्रयो येन तम् । यद्वा शेषाणां भगवत्प्रियाणां निकेतः सर्वेषां भूतानां सुहृच्च आत्मा च योगेश्वराणां चर्या जडादिवदाचरणं तस्यां नात्यन्तं व्युत्पन्ना परिचिता मतिर्यस्य स तम् । स्मयमानो हसन्निवेति मुखप्रसत्तिर्द्योत्यते । विगतस्मयो गतगर्वः ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

अबद्ध अर्थात् असम्बद्ध रहूगण को राजा होने का अभिमान था उसके कारण उसमें रजोगुण और तमोगुण बढ गये थे इसके कारण उसने श्रीभगवान् के प्रिय आश्रय भरतजी का तिरस्कार कर दिया था । अथवा भगवान् के प्रिय भक्तों के आश्रय भूत सबों के सुहद और आत्मा भरतजी का उसने अपमान किया था । योगेश्वरों की जड़ के समान आचरण के विषय में उसको ज्ञान नहीं था । इस प्रकार के राजा को वे मुस्कुराते हुए से कहने लगे।।८।।

ब्राह्मण उवाच

**त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ।**
**गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ।।९।।**

**अन्वयः**— त्वयोदितं व्यक्तम् अविप्रलब्धम् वीर ! यदि भारः स्यात् स भर्तुः यदि अध्वास्यात् गतुः अधिगम्यम्, यदि पिवा इति तर्हि राशौ न मे, इति विदां प्रवादः नः ।।९।।

### ब्राह्मण भरतजी ने कहा

**अनुवाद**— राजन् ! आपने जो कुछ भी कहा है वह ठीक है, उसके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। यदि भार नामक पदार्थ होता तो वो बोझ ढोने वाले के लिए होता, यदि मार्ग होता तो वह चलने वाले के लिए

होता, यदि मोटापन होतो वह भी शरीर वाले के लिए होता मेरे लिए नहीं होता । ज्ञानी जन इस तरह की बातें नहीं करते हैं ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र वक्रोत्तया यदुक्तं त्वं न श्रान्तो न च दीर्घमध्वानमागत इति तत्रोत्तरमाह । त्वया यदुदितमुक्तं श्रमादि नास्तीति तद्यक्तं स्फुटं तत्तथैव । अविप्रलब्धं विप्रलम्भो न भवति । तदेवाह । हे वीर, यदि भारो नाम कश्चित्स्यात्स च भर्तुर्वोढुर्देहस्य यदि स्यात्स च मे यदि प्रसक्तः स्यात्तर्हीदानीं भाराभावाद्विप्रलम्भः स्यान्न त्वेतदस्ति । भारस्य बोढुश्चानिरूप्यत्वान्मम च तत्संबन्धाभावात्। तथा गन्तुरधिगम्यं प्राप्यमध्वा वा यदि स्यात् । अद्धेति पाठे साक्षात्परमार्थतः । तच्च मे यदि स्यादित्यादि योज्यम् । यत्त्वयोक्तं नातिपीवेति तत्राह । चेतनमुद्दिश्य त्वं पीवेति प्रवादो विदां विदुषां न भवति, किंतु मूर्खाणाम् । यतोऽयं प्रवादो राशौ भूतसङ्घे देहे एव, न त्वात्मनि । देह एव पीनो नाहमित्यर्थः ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

भरतजी ने कहा राजन् ! तुमने जो वक्रोक्ति के द्वारा कहा है कि तुम थके नहीं हो, न तो दूर तक रास्ता चले हो, उसका उत्तर है कि आपने जो कुछ कहा है, वह वैसा ही है, उसमें कोई भी विप्रलम्भ नहीं है । राजन् यदि भार नाम की कोई वस्तु होती तो वह ढोने वाले देह के लिए होती उसका मुझसे तो कोई संबन्ध नहीं होता भार नामक पदार्थ है ही नहीं । भार तथा वहन करने वाले दोनों का ही निरूपण नहीं किया जा सकता है । मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है । यदि मार्ग होता तो वह चलने वाले देह के लिए होता । जहाँ अद्धत पाठ हैं अर्थ होगा परमार्थ रूप से । तुमने यह जो कहा है तुम अत्यन्त मोटे नहीं हो । तो आत्मा का उदेश्य करके उसे मोटा विद्वज्जन नहीं कहते ऐसा तो कोई मूर्ख ही कह सकता है क्योंकि मोटा तो देह होता है आत्मा नहीं । देह ही मोटा है मैं नहीं ।।९।।

**स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षुत्तृड्भयं कलिरिच्छा जरा च ।**
**निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ।।१०।।**

**अन्वयः**— स्थौल्यं, कार्श्यं, व्याधयः, आधयः, क्षुत् तृट् भयम्, कलिः इच्छा, जरा, निद्रा, रतिः, मन्युः, अहं, मदः शुचः, च देहेनजास्य म न सन्ति ।।१०।।

**अनुवाद**— स्थूलता, कृशता, अधि, व्याधि, भूख, प्यास, भय, कलह, इच्छा, बुढ़ापा, निद्रा, प्रेम, क्रोध, अभिमान और शोक ये सभी देहाभिमान को लेकर उत्पन्न होने वाले जीवों में रहते हैं, मुझमें नहीं ।।१०।।

### भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-स्थौल्यमिति । कलिः कलहः । अहङ्कारेण मदश्च । देहेन सह तदभिमानेन जातस्य हि भवन्ति, मम तु निरभिमानस्य न सन्ति । यद्वा देहे जाते यो जातस्तस्येव तानि, मम तु तत्र न जातस्य न सन्ति ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही विस्तार **स्थौल्यम्० इत्यादि** से करते हैं । कलि: कलह को कहते है । मद अहङ्कार के कारण होता है । देहाभिमान के साथ उत्पन्न होने वाले जीवों में पाये जाते है । मैं तो निरभिमान हूँ । अथवा देह के उत्पन्न होने पर जो उत्पन्न होता है, उसके ये धर्म है । मैं देह के साथ उत्पन्न नहीं हूँ अतएव ये सब मुझ में नहीं हैं ।।१०।।

**जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्नाद्यन्तवद्यद्विकृतस्य दृष्टम् ।**
**स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ।।११।।**

**अन्वयः**— राजन् ! आद्यन्तवद्यद् विकृतस्य जीवन्मृतत्वं नियमेन दृष्टम्, इड्य ! यत्र यत्र स्वस्वाभीभावः ध्रुवः तर्हिअसौ विधि कृत्य योगः उच्यते ।।११।।

**अनुवाद**— आपने जो जीवित ही मरने की बात कही है, वह जितने भी विकारी पदार्थ है, उन सबों में नियमित रूप से पायी जाती है । यशस्वी राजन् ! जहाँ स्वामी सेवक भाव स्थिर हो वहीं पर आज्ञा पालन आदि का नियम लागू होता है ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं जीवन्मृतोऽसीति तत्राप्याह । जीवन्मृतत्वं न केवलं मम, किंतु विकृतस्य सर्वस्यापि परिणामिनो दृष्टम् । यद्यस्याद्विकृतं प्रतिक्षणमाद्यन्तवत् । यदुक्तं भर्तृशासनमतिचरसीति तत्राह । स्वं च स्वाम्यं च तयोर्भावः सत्ता । हे ईड्य, यत्र पक्षे ध्रुवो यदि व्यवस्थितः स्यादित्यर्थः । तर्हि विधिर्नियोगः कृत्यं कर्म तयोर्योगो ध्रुव उच्यते उचितो भवति । उच समवाये इति धातुः । यदि तु तव राज्यभ्रंशो मम च राज्यं स्यात्तदा सर्वमेतद्विपरीतं स्यादित्यर्थः ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

राजन् ! आपने यह जो कहा है कि तुम जीते ही मरे हो क्या तो इस उत्तर है कि केवल मैं ही जीवित मृत नहीं हूँ किन्तु जितने भी विकृत पदार्थ हैं उन सभी परिणामियों में देखा जाता है क्योंकि जो विकृत होता है वह प्रत्येक क्षण आदि और अन्तवान् होता है । आपने जो कहा कि अपने स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करते हो तो इस पर उन्होंने कहा जहाँ पर स्वस्वामी भाव निश्चित होता है वहीं पर विधि और निषेध होता है । कृत्य और कर्म दोनों का योग उचित होता है । उच समवाये धातु से उच्यते पद निष्पन्न है । यदि तुम्हारा राज्य भ्रंश हो जाय और मेरा राज्य हो जाय तो यह सब विपरीत हो जाय ।।११।।

**विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च पश्याम यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ।**
**क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथापि राजन्करवाम किं ते ।।१२।।**

**अन्वयः**— यत् विशेष बुद्धेः व्यवहारतः अन्यत् विवरं न पश्यामः । राजन् कः ईश्वरः किम् ईशितव्यम् तथापि ते किं करवाम् ।।१२।।

**अनुवाद**—आप राजा हैं और मैं प्रजा हूँ इस प्रकार की भेद बुद्धि के लिए मुझको व्यवहार से भिन्न तनिक भी अवकाश नहीं प्रतीत होता है, परमार्थ दृष्टि से देखने पर किसे स्वामी और किसे नियाम्य कहा जाय फिर भी कहिए मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ?।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

ननु यावत्प्रजाहं तावत्तव स्वामी भवाम्येवेति चेत्तत्राह । विशेषो राजभृत्यादिभेदस्तद्धुर्विवरमवकाशं व्यवहारादन्यन्न पश्याम् । मनाक् च ईषदपि । अथापि तवायमभिमानश्चेत्तर्हि ब्रूहि किं ते करवामेति ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि जब तक तुम प्रजा हो तब तक तुम्हारा स्वामी हूँ ही तो इसपर कहते हैं राजा और भृत्य की जो भेद बुद्धि है वह केवल व्यवहार मात्र है, उससे अतिरिक्त थोड़ा सा भी कुछ नहीं है । फिर भी यदि आपको राजा होने का अभिमान है तो बतलाइये मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ।।१२।।

**उन्मत्तमतजडवत्स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ।**
**अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ।।१३।।**

**अन्वयः**— वीर उन्मत्तमत्त जडवत् स्वसंस्थां गतस्य मे चिकित्सितेन किम् स्तब्ध प्रमत्तस्य च शिक्षितेन भवता किया न अर्थः स च पिष्टपेशः ।।१३।।

**अनुवाद**— राजन् मैं मत्त उन्नमत्त और जड़ के समान अपनी ही स्थिति में रहता हूँ । यदि मैं वस्तुतः जड तथा प्रमत्त हूँ तो मुझे शिक्षा देना पिष्ट-पेषण मात्र होगा ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

यत्तूक्तं प्रमत्तस्य ते चिकित्सां करोमि यथा स्वां प्रकृतिं भजिष्यस इति तत्राह । उन्मत्तादिवद्वर्तमानस्य वस्तुतः स्वसंस्थां ब्रह्मभावं गतस्य भवता कृतेन चिकित्सितमेन दण्डेन शिक्षितेन वा कियानर्थः । मुक्तस्यार्थानर्थयोरसंभवात् । यदि पुनरहं न मुक्तः किंतु प्रमत्तः स्तब्ध एव तथापि मम शिक्षादिकं पिष्टपेषणवद्व्यर्थमित्यर्थः । नहि जडस्वभावः शिक्षयापि पटूकर्तुं शक्यत इति ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि तुम प्रमादी हो तुम्हारी चिकित्सा करता हूँ जिससे की तुम्हारी बुद्धि ठीक हो जायेगी? इस पर कहते है— उन्मत्त के समान रहने वाला वस्तुतः ब्रह्मभाव को प्राप्त मैं आपके द्वारा दिए जाने वाले दण्ड से कौन सा लाभ होन वाला है ? मुक्त जीव का न तो कोई अर्थ होता है और न अनर्थ होता है। यदि मैं मुक्त न होकर प्रमत्त हूँ तो भी शिक्षा देना व्यर्थ ही है । शिक्षा के द्वारा जड स्वभाव वाले को चतुर नहीं बनाया जा सकता है ।।१३।।

श्रीशुक उवाच

**एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन् राजयानमपि तथोवाह ।।१४।।**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— राजन् इतना ही अनुवाद रूपी भाषण के द्वारा मुनिवर भरतजी राजा को तत्त्वोपदेश करके मौन हो गये । उनका देहात्मबुद्धि का कारणभूत अज्ञान निवृत्त हो गया था अतएव वे परम शान्त थे । उपभोग द्वारा प्रारब्ध क्षय करने के लिए पुनः राजा की पालकी ढोने लगे ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

अनुवादरूपया परिभाषया भाषणेन तं प्रत्युत्तरं दत्त्वा । उपरतमनात्म्ये देहात्मत्वे निमित्तमविद्या यस्य । आरब्धफलं कर्म क्षपयन् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

राजा के कथन के अनुवाद रूप भाषण के द्वारा राजा को उत्तर देकर वे मौन हो गये । उनका देहात्मभाव (कारण भूत अज्ञान) निवृत्त हो चुका था अतएव वे परम शान्त थे । अपने प्रारब्ध कर्म का क्षय करने के लिए पुनः राजा की पालकी ढोने लगे ।।१४।।

**स चापि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिस्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धयाधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रन्थिमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहुयोगग्रन्थसंमतं त्वरयावरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन्विगतनृपदेवस्मय उवाच ।।१५।।**

**अनुवाद**— राजन् परीक्षित् ! वह सिन्धु एवं सौवीर देश का स्वामी रहूगण अपनी उत्तम श्रद्धा के कारण तत्त्व जिज्ञासा का पूर्ण रूप से अधिकारी था । जब उसने उनके अनेक योग ग्रन्थ सम्मत और हृदय की ग्रन्थि का छेदन करने वाले वाक्यों को सुना तो वह पालकी से शीघ्र उतरकर उनके चरणों में शिर रखकर अपना अपराध क्षमा कराते हुए कहने लगा ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

हे पाण्डवेय, सम्यग्या श्रद्धा तयैव तत्त्वजिज्ञासायां प्राप्तोऽधिकारो येन । यथा दर्शपूर्णमासाधिकृतस्यैव गोदोहनेन

पशुकामस्याप: प्रणयेदिति गुणफलसंबन्धेऽप्यधिकार: एवं सात्त्विकश्रद्धायामधिकृतस्यैवास्यामधिकार इत्यर्थ: । बहुयोगग्रन्थसंमतं द्विजस्य तद्वच: श्रुत्वा विगतो नृपदेवोऽधिराज इति गर्वो यस्य ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

हे परीक्षित् ! अपनी उत्तम श्रद्धा के कारण वह राजा तत्त्वजिज्ञासा का अधिकारी था जैसे जिस का दर्शन एवं पूर्णमास याग में जिसका अधिकार होता है उसी के लिए गोदोहन के लिए पशु चाहने वाले के लिए जल का प्रणयन करे इस तरह गुण के सम्बन्ध में अधिकार होता है उसी तरह सात्त्विक श्रद्धा में अधिकृत व्यक्ति का ही तत्त्व जिज्ञासा में अधिकार होता है अनेक योग ग्रन्थ सम्मत ब्राह्मण की वाणी को सुनकर राजा होने का गर्व समाप्त हो गया ॥१५॥

**कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूत: ।**
**कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात्क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्ल: ॥१६॥**

**अन्वय:**— द्विजानां सूत्र विभर्षि क: त्वं निगूढश्चरसि ? कतम: अवधूत: ? कस्य असि ? कुत्रत्य: ? इह अपि कस्मात्? न: क्षेभाय चेत् न उत शुक्ल: असि ॥१६॥

**अनुवाद**— आप ब्राह्मणों में कौन हैं ? क्योंकि आप ब्राह्मणों के चिह्न यज्ञोपवित धारण किए हैं । इस तरह से प्रच्छन्न रूप से विचरने वाले आप कौन हैं ? क्या आप दत्तात्रेय आदि अवधूतों में से कोई हैं । आप किसके पुत्र हैं ? आपका जन्म कहाँ हुआ है ? यहाँ आपका आना कैसे हुआ ? यदि आप हमारा कल्याण करने पधारे हैं तो क्या आप साक्षात् सत्त्वमूर्ति कपिलजी तो नहीं हैं ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

द्विजानां मध्ये कतम: । य: सूत्रमुपवीतं विभर्षि । यद्वा दत्तात्रेयादीनां मध्ये कतमोऽवधूत: । इहापि कस्माद्धेतो: प्राप्त:। नोऽस्माकं क्षेमाय चेत्प्राप्तस्तर्हि शुक्ल: कपिलो मुनिर्न भवसि किम् । उतेति वितर्के ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

आप बाह्मणों में कौन है ? क्योंकि आप यज्ञोपवीत धारण किए हैं । अथवा आप दत्तात्रेय आदि में से कोई अवधूत हैं ? यहाँ पर आप कैसे पधारे हैं ? यदि आप हमारा कल्याण करने के लिए पधारे हैं तो साक्षात् सत्त्वमूर्ति कपिल जी तो आप नहीं है । उत्त यह अव्यय वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त हैं ॥१६॥

**नाहं विशङ्के सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ।**
**नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥१७॥**

**अन्वय:**— अहं सुरराजवज्रात् न विशङ्के, त्र्यक्षशूलात् न, यमस्य दण्डात् न अग्न्यर्कसोमाननिल वित्तपास्त्रात् नं, अहं ब्रह्मकुलावमानात् भृशं शङ्के ॥१७॥

**अनुवाद**— मैं देवराज इन्द्र के व्रज से नहीं डरता हूँ और न तो मैं शङ्करजी के त्रिशूल से डरता हूँ और न यम के दण्ड से डरता हूँ, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और कुबेर के अस्त्र शास्त्रों से भी मुझे भय नहीं है किन्तु मैं ब्राह्मण वंश के अपमान से बहुत डरता हूँ ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

किमनया चिन्तया शिबिकां तावद्वहामीति चेदत आह-नाहमिति । वित्तप: कुबेर: ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि इस चिन्ता से आप को क्या लाभ है मैं शिविका को ढो ही रहा हूँ तो इस पर नाहम् इत्यादि श्लोक से चिन्ता का कारण राजा बतलाते हैं । वित्तप शब्द से कुबेर को कहा गया है ॥१७॥

**तद्ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढविज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ।**
**वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमन्ते मनसापि भेत्तुम् ॥१८॥**

**अन्वयः**— तद्ब्रूहि, जडवत् निगूढः असङ्गः अपारःको विचरसि ? साधो ! योगग्रथितानि वचांसि नः मनसाअपि भेत्तुम् न क्षमन्ते ॥१८॥

**अनुवाद**— अतएव बतलाइये कि जड के समान आये ज्ञान के प्रभाव को छिपाए हुए तथा अनासक्त रहकर इस प्रकार से विचरण करने वाले आप कौन हैं ? आपकी महिमा अपार है । आपके योग सम्मत बातों की बुद्धि पूर्वक आलोचना करने पर भी हमारी शङ्का दूर नहीं होती है ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

यस्माद्भृशं शङ्के तत्तस्मात् कस्त्वमित्यादिप्रश्नानामुत्तरं ब्रूहि । निगूढं पिहितं विज्ञानरूपं वीर्यं प्रभावो येन । अपारोऽनन्तमहिमा। तत्र हेतुः- नो मनसापि भेत्तुं न क्षमं न शक्यम् । किं भेत्तुमित्यपेक्षायामाह-ते वचांसीति । यद्वा मनसा युक्ताः सूक्ष्मदृष्टयोऽपि भेत्तुं न शक्नुवन्तीत्यर्थः ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

चूकि मैं अत्यन्त भयभीत हूँ अतएव आप मेरे कस्त्वम् इत्यादि प्रश्नों का उत्तर दें । आप अपने विज्ञान रूपी प्रभाव को छिपाये हुए हैं, आपकी महिमा अपार है । उसका कारण यह है कि आपकी बातों का भेदन पूर्वक भी नहीं जाना जा सकता है । यदि कहें कि जानने की क्या आवश्यकता है ? तो इस पर राजा ने कहा **ते वचांसि** आपके वचनों को नहीं जाना जा सकता है । अथवा बुद्धिमान पुरुष भी आपकी बातों को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भी उन सबों को नहीं जान सकते हैं ॥१८॥

**अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्वविदां मुनीनां परमं गुरुं वै ।**
**प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत्साक्षाद्धरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥१९॥**

**अन्वयः**— अहं च आत्मतत्त्व विदां परमं गुरुम् वै योगेश्वरम् साक्षात् ज्ञानकलावतीर्णम् इह अरणं किम् तत् प्रष्टुं प्रवृत्तः ॥१९॥

**अनुवाद**— मैं तो आत्मज्ञानियों के परम गुरु योगेश्वर साक्षात् श्रीहरि की ज्ञान कला से अवतीर्ण भगवान् कपिलमुनि से यह पूछने के लिए जा रहा था कि इस संसार में एक मात्र शरण लेने योग्य कौन है ?॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वस्य ज्ञानार्थितां दर्शयति- अहं चेति । इह संसारे यदरणं शरणं तत्किमिति प्रष्टुं प्रवृत्तोऽस्मि । ज्ञानशक्त्यावतीर्णं कपिलम् ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

**अहं च** इस श्लोक से बतलाते हैं कि मैं ज्ञानार्थी हूँ । श्रीभगवान् की ज्ञान शक्ति से अवतीर्ण महर्षि कपिल से यह पूछने जा रहा था कि इस संसार में एक मात्र शरण कौन है ?॥१९॥

**स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थमव्यक्तलिङ्गो विचरत्यपिस्वित् ।**
**योगेश्वरणां गतिमन्धबुद्धिः कथं विचक्षीत गृहानुबन्धः ॥२०॥**

**अन्वयः**— स वै भवांल्लोक निरीक्षणार्थम् अव्यक्त लिङ्गः अपिस्वित् विचरति । अन्ध बुद्धिः गृहानुबन्धः योगेश्वराणां गतिम् कथं विचक्षीत् ॥२०॥

**अनुवाद**—क्या आप वह कपिल मुनि है ? जो लोकों की दशा देखने के लिए इस तरह से अपना रूप छिपाकर विचरण कर रहे हैं, घर में आसक्त रहने वाला विवेक हीन पुरुष योगेश्वरों की गति कैसे जान सकता है ?॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

स एव भवान्किंस्विदेवं विचरति । गृहाविष्टः कथं विचक्षीत पश्येत् ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

तो क्या आप वही कपिल मुनि है इस प्रकार से विचरण कर रहे हैं । गृह में आसक्त पुरुष योगेश्वरों की गति को कैसे जान सकता है ?॥२०॥

**दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वै भर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये ।**
**यथाऽसतोदानयनाद्यभावात्समूल इष्टो व्यवहारमार्गः ॥२१॥**

**अन्वयः**— दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वैभर्तुर्गन्तु भवतः चा नु मन्ये समूल इष्टः व्यवहारमार्गः यथा असतः उदानयनाद्यभावात् ॥२१॥

**अनुवाद**—मैने युद्धादि कर्मों के करते समय अपने को श्रान्त होते देखा है इसी से मैं अनुमान करता हूँ कि रास्ता चलने और बोझ ढोने से आपको भी श्रम अवश्य होता होगा । मैं तो व्यवहार मार्ग को भी सत्य मानता हूँ मिथ्या घड़े से जलाहरण नहीं किया जा सकता है ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

एवं तत्स्वरूपं पृष्ट्वा तदुक्तोत्तराण्याक्षिपति । तत्र यदुक्तं मम श्रमो नास्तीति तत्राह-इष्ट इति । आत्मनो मे । अनुमन्ये अनुमिमे, अनुमानं चैवम्- भवान्भारवाहनादिना श्रान्तः, कर्तृत्वात्, यः कर्ता स श्राम्यति, यथाहं युद्धादिकर्तेति । नन्विदं व्यवहारमात्रं नतु सत्यम्, यदुक्तं व्यवहारतोऽन्यन्न पश्यामीति-तत्राह-यथेति । व्यवहारमार्गः प्रपञ्चः समूलः सप्रमाणक एव इष्टः यथा यथावत् । असता घटादिनोदकानयनादेरभावात् । एवं प्रयोगः-प्रपञ्चः सत्यः, अर्थक्रियाकारित्वात्, यः पुनरसत्यः नासावर्थक्रियाकारी, यथा मिथ्या घटादिरिति ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

इस प्रकार से उनके स्वरूप को पूछकर उनके द्वारा किए गये उत्तरों के विषय में राजा आक्षेप करते हैं । यह जो कहा गया है कि मुझको श्रम नहीं है उस पर राजा कहते हैं अर्थात् मैंने कर्मों से होने वाले श्रम का अनुभव किया है इसीलिए मैं अनुमान करता हूँ कि आप भी भार वहन आदि के कारण श्रान्त हो गये होंगे क्योंकि आप भारवहन करने वाले है, जो जो भार वहन करता है अव श्रान्त होता है, जैसे युद्ध इत्यादि कर्मों को करने वाला मैं । यदि कहें कि यह तो व्यवहार मात्र है, सत्य नहीं है, इसी बात को आपने कहा है कि इसे मैं व्यवहार से भिन्न नहीं हूँ इस पर राजा कहते है समूल व्यवहार मार्ग मुझको प्रामाणिक प्रतीत होता है । जैसे असत्य घट इत्यादि के द्वारा उदकाहरणादि कार्य नहीं किया जा सकता है । यहाँ अनुमान का प्रकार इस तरह है, प्रपञ्च सत्य है, क्योंकि उससे सार्थक कियाएँ की जाती है, जो असत्य होता है उससे सार्थक क्रियाएँ नहीं की जा सकती हैं । जैसे मिथ्या घट आदि ॥२१॥

**स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः ।**
**देहेन्द्रियास्वाशयसंनिकर्षात्तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥२२॥**

**अन्वयः**— स्थाल्यग्नितापात् पयसोऽभितापः तत् तापतःतण्डुलगर्भरन्धिः देहेन्द्रियास्वाशयसन्निकर्षात् तत् संसृतिः पुरुष स्यानुरोधात् ॥२२॥

**अनुवाद**— देखा जाता है कि चूल्हे पर चढ़ी हुई बटलोई अग्नि के ताप से जब गर्म होने लगती है तो उसके भीतर का पानी भी खौलने लगता है और उस जल से चावल का भीतरी भाग भी पक जाता है उसी

प्रकार अपनी उपाधि के धर्मों का अनुवर्तन करने के कारण देह, इन्द्रिय प्राण और मन के सन्निधान आत्मा को भी उनके धर्म श्रम आदि अनुभव होता है ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

यदुक्तमुपाधिधर्माः स्थाल्यादयो मे न वस्तुतः सन्तीति तत्रौपाधिकत्वेपि सत्यत्वं किं न स्यादित्याह । स्थाल्या अग्निना तापात्तन्मध्यवर्तिनः क्षीरस्य तापः तस्य तापात्तण्डुलानां बहिर्भागस्य ततस्तद्गर्भस्य च रन्धिः पाकः । न चात्र किंचिन्मिथ्या । एवं देहादिभिः संनिकर्षात्संबन्धात्तन्निमित्ता संसृतिः पुरुषस्य भवति । असवः प्राणाः । आशयो मनः । अनुरोधादुपाधिधर्मानुवृत्तेः। तथाहि निदाघादिना देहे तप्ते इन्द्रियाणां तापस्ततः प्राणस्य ततो मनस इत्येवं यथायथमूह्यम् ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि उपाधि के धर्म स्थौल्य आदि मेरे नहीं हैं फिर भी उपाधि होने पर भी उनका सत्यत्व क्यों नहीं होगा ? अग्नि के ताप से बटलोई के गर्मी से उसमें रखा गया दूध गर्भ हो जाता है, और उस दूध की गर्मी से उसमें डाले गये चावल का पहले ऊपर का भाग फिर भीतर का भाग पक जाता है । इसमें कोई भी मिथ्या नहीं है इस तरह से देह इत्यादि के सनिकर्ष से पुरुष की संसृति (संसरण) होती है । असु शब्द से कण को, और आशय शब्द से मन को एवं अनुरोधात् पद से औपाधिक धर्म की अनुवृत्ति को कहा गया है। लोक में देखा जाता है धूप से देह के संतप्त होने पर इन्द्रियाँ संतन्तप्त हो जाती है उसके पश्चात् प्राण संतप्त हो जाते है और तदनन्तर मन संतप्त हो जाता है । इसी तरह सर्वत्र उचित ढंग से तर्क करना चाहिए ॥२२॥

**शास्ताभिगोप्ता नृपतिः प्रजानां यः किङ्करो वै न पिनष्टि पिष्टम् ।**
**स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— प्रजानां शास्ता अभिगोप्ता यः नृपतिः वै किङ्करः पिनष्टम् न पिनष्टि स्वधर्मम् अच्युतस्य आराधनम् यदीहमानः अघौघम् विजहाति ॥२३॥

**अनुवाद**— अपने जो दण्ड को व्यर्थ बतलाया है वैसा भी नही है । राजा प्रजाओं का पालन और प्रशासन करने के लिए नियुक्त उसका भृत्य है अतएव प्रमादी इत्यादि को दण्ड देना पिष्टपेषण नहीं है । वह उसका धर्म है अपने धर्म कापालन करना ही श्रीभगवान् की आराधना है । उसका पालन करने वाला व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण पापराशि को विनष्ट कर देता है ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

यदुक्तं स्वस्वाम्यभावो ध्रुव इति तत्राह–शास्तेति । अध्रुवत्वेऽपि यदा यो नृपतिः स प्रजानां शास्ता गोप्ता च । यच्चोक्तं स्तब्धादेः शिक्षा पिष्टपेष इति तत्राह– योऽच्युतस्य किङ्करः स पिष्टं न पिनष्टि निष्फलं न करोति । स्तब्धत्वाद्यनपगमेऽपि शास्तुरीश्वराज्ञासंपादनेनैव सफलत्वात्तदाह । स्वधर्मरूपमच्युतस्याराधनं कुर्वन्यस्मादघौघं विजहाति ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

स्वस्वामी भाव के निश्चित होने पर ही विधि निषेध होता है यह जो भरतजी ने कहा है उसके उत्तर में राजा ने **शास्ता० इत्यादि** श्लोक कहा है अनियत होने पर भी जब जो राजा होता है, वह प्रजा का पालक और प्रशासक होता है । यह जो भरतजी ने कहा है कि जड़ आदि को शिक्षा पिष्ट पोषण है, उस पर राजा ने कहा कि प्रशासन राजा का धर्म है । स्वधर्म पालन परमात्माराधन है । वही ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है अतएव प्रमत्तों का प्रशासन सफल है । अपने धर्म के पालन से राजा अपने पाप समूह को विनष्ट कर देता है ॥२३॥

**तन्मे भवान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य । कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबन्धो यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥२४॥**

**अन्वयः**— हे आर्तबन्धो ! नर देवाभिमानमदेन तुच्छी कृत सत्तमस्य मे तत् मैत्रीदृशं भवान् कृषीष्ट यथा सद् अवधानम् अंहःतरे ॥२४॥

**अनुवाद**—हे आर्त बन्धो प्रभो ! राजत्व के अभिमान जन्य मद के कारण मैंने आप जैसे साधु पुरुष का अपमान किया है । अब आप अपनी मैत्रीपूर्ण ऐसी दृष्टि करें कि मेरा वह पाप विनष्ट हो जाय और मैं साधु अवज्ञा रूप पाप से मुक्त हो जाऊँ ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं मम त्वदुक्तं विपरीतं प्रतिभाति तत्तस्मान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छीकृतास्तिरस्कृताः सत्तमा भवादृशा येन तस्य मे मैत्रीदृशं स्नेहयुक्तां दृष्टिं कृषीष्ट करोतु । सतामवज्ञारूपं पापं यथा तरिष्यामि ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

चूकि इस प्रकार से मुझको आप की बातें विपरीत ही प्रतीत होती हैं इसीलिए राजत्व के अभिमान से आप जैसे सत्पुरुष का अपमान किया है । इस प्रकार के मुझ पर आप मैत्री युक्त दृष्टि करें जिससे कि मैं सत्पुरुष अवज्ञा रूप पाप से मुक्त हो जाऊँ ।।२४।।

**न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ।**
**महद्विमानात्स्वकृताद्धि मादृङ्नङ्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः ।।२५।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

**अन्वयः**— विश्व सुहृत सखस्य वीताभिमत्तेः साम्येन तवापिविक्रियान महद्विमानात् स्वकृतात् हि मादृक अदूरात् शूलपाणिः अपि मादृक नक्ष्यति ।।२५।।

**अनुवाद**—आप देहाभिमान से रहित और विश्वबन्धु श्रीहरि के अनन्य भक्त हैं, अतएव सबों में समान दृष्टि होने के कारण आपमें मनापमान जन्य कोई भी विकार नहीं हो सकता है किन्तु महापुरुष का अपमान करने के कारण मेरे जैसा पुरुष यदि साक्षात् शङ्करजी के समान प्रभावशाली क्यों न हो विनष्ट हो जायगा ।।२५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।**

### भावार्थ दीपिका

ननु ममावज्ञाकृतविकाराभावात्कुतः पापं तत्राह-नेति । यद्यपि तव विक्रिया नास्ति । विश्वस्य सुहृच्चासौ सखा च तस्य। अतः सर्वत्र साम्येन स्वदेहे विगताभिमानस्य । तथापि महतामवमानान्मादृशो विनङ्क्ष्यति । अदूरात्क्षिप्रम् । शूलपाणिरिवाति-समर्थोऽपीत्यर्थः ।।२५।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।**

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अपमान के कारण मुझमें कोई भी विकार नहीं आया है अतएव कैसे पाप लगेगा उसके उत्तर में राजा ने कहा नहीं यद्यपि आप में विकार नहीं आया है । आप तो विश्व बन्धु तथा सबों के मित्र हैं । अतएवसबों में समान दृष्टि होने के कारण आपको देहाभिमान नहीं है । किन्तु महापुरुषों के अपमान करने से मेरे जैसा पापी यदि साक्षात् शङ्करजी के समान प्रभावशाली हो तो भी शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगा ।।२५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के दसवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका भी शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२५।।**

# ग्यारहवाँ अध्याय

## राजा रहूगण को भरतजी का उपदेश

ब्राह्मण उवाच

**अकोविदः कोविदवादवादान्वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ।**
**न सूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ।।१।।**

**अन्वयः**— अकोविदः कोविदवाद वारान् वदसि, अथो अतिविदां वरिष्ठः न सूरयः एनं व्यवहारं तत्त्वावमर्शेन सह न आमनन्ति ।।१।।

### भरतजी ने कहा

**अनुवाद**— राजन् तुम अज्ञानी होकर भी ज्ञानियों के समान तर्क विर्तक की बातें करते हो । अतएव तुम्हारी गणना श्रेष्ठ ज्ञानियों में नहीं हो सकती है । क्योंकि ज्ञानी पुरुष इस व्यवहार को तत्त्व विचार के समय सत्य नहीं मानते हैं ।।१।।

### भावार्थ दीपिका

एकादशे तु संपृष्टो रहूगणमहीभृता । उपादिशत्परं ज्ञानं स योगीति निगद्यते । अकोविदोऽविद्वानपि त्वं कोविदानां वादा उद्ग्रहणिकास्तत्तुल्यान्वादानेव वदसि । अथो अतः अत्यन्तं विदुषां मध्ये श्रेष्ठो न भवसि । कुतः । हि यस्मात् यं स्वामिभृत्यादिलौकिकव्यवहारं त्वं सत्यमात्थ । एनं सूरयस्तत्त्वविचारेण सह न वदन्ति किंत्वविचारसुन्दरं वदन्ति । अतो न सत्यः ।।१।।

### भाव प्रकाशिका

इस ग्यारहवें अध्याय में राजा रहूगण के द्वारा पूछे जाने पर सिद्धयोगी भरतजी ने परज्ञान का उपदेश दिया। भरतजी ने कहा राजन् ! तुम अज्ञानी होकर भी ज्ञानियो के समान (तर्किकों के समान) बातें करते हो । अतएव श्रेष्ठ विद्वानों में तुम नहीं गिने जा सकते हो । क्योंकि तुमने जिस स्वामी भृत्य आदि लौकिक व्यवहार को सत्य कहा है, इसको तत्त्वज्ञ पुरुष सत्य नहीं मानते हैं । अपितु उसको वे अविचार सुन्दर कहते हैं । अतएव व्यवहार सत्य नहीं हैं ।।१।।

**तथैव राजन्नुरुगार्हमेधवितानविद्योरुविजृम्भितेषु ।**
**न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ।।२।।**

**अन्वयः**— राजन् ! तथैव उरुगार्हमेध वितान विद्यासु उरुविजृम्भितेषु वेद वादेषु हि तत्त्ववादः नु शुद्धो न चकास्ति।।२।।

**अनुवाद**— हे राजन् ! लौकिक व्यवहार के ही समान वैदिक व्यवहार भी सत्य नहीं है क्योंकि वेद वाक्य भी अधिक गृहस्थ जनोचित यज्ञ विधि के विस्तार में ही व्यस्त है । राग द्वेष आदि दोषों से रहित विशुद्ध तत्त्वज्ञान की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति उनमें नहीं हुई है ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

वैदिकोऽपि कर्मव्यवहारो न सत्य इत्याह-तथैवेति । उरवो गार्हा गृहसंबन्धिनो मेधा यज्ञास्तेषां वितानो विस्तारस्तद्विषयासु विद्यासु उरु अधिकं विजृम्भितेषु विलसितेषु वेदवादेषु तत्त्ववादो नु निश्चितं न चकास्ति न प्रकाशते । तथाच श्रुतिः 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि । शुद्धो हिंसादिशून्यः । साधू रागादिशून्यश्च प्रायेणेतीश्वरार्पितकर्मणां परमार्थफलत्वाभिप्रायेणोक्तम् ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

वैदिक भी कर्म व्यवहार सत्य नहीं है इस बात को तथैव इत्यादि श्लोक से कहा गया है । वेदों में गार्हस्थ्य

सम्बन्धी यज्ञों का ही विस्तार से वर्णन किया गया है। उन यज्ञ विषयक विद्याओं में अधिक वर्णित वेदवादों में तत्त्व विचार निश्चित रूप से नहीं प्रकाशित होता है। श्रुति भी कहती है— **''नेह नानास्ति किञ्चन''** ब्रह्मव्यतिरिक्त प्रतीत होने वाला कोई भी भेद व्यवहार सत्य नहीं है। हिंसा आदि से रहित ही कर्म शुद्ध है और राग द्वेष आदि से रहित ही कर्म साधु है। इस तरह से प्राय: जिनका फल परमात्मा को ही समर्पित कर दिया जाता है वही कर्म शुद्ध और साधु है ॥२॥

**न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाचः समासन्।**
**स्वप्ने निरुक्तया गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥३॥**

**अन्वयः**— साक्षात् तत्त्वग्रहणाय तस्य वरीयसीः अपि वाचः न समासन् गृहमेधिसौख्यम् स्वप्ने निरुक्त्या यस्य हेयानुमितं स्वयं न स्यात् ॥३॥

**अनुवाद**— तत्त्वज्ञान का साक्षात् बोध कराने में उपनिषदों के वाक्य भी समर्थ नहीं है। उस तत्त्वज्ञान के द्वारा गृहस्थ जनोचित यज्ञादि कर्मों के फल को स्वप्न के समान मिथ्या कहा गया है। उस तत्त्वज्ञान का अनुमान भी नहीं किया जा सकता है ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

ननु श्रुतवेदान्तस्यापि पुंसः कर्मसु प्रवृत्तेः कथमसत्यता तत्राह-नेति। साक्षाद्यथावत्तत्त्वज्ञानाय वरीयस्योऽपि वेदान्तवाचस्तस्य न सम्यगासन्बभूवुः। स्वप्ने या निरुक्तिस्तस्या स्वप्नदृष्टान्तेन दृश्यत्वादिहेतुना। स्वयमेव हेयत्वेनानुमितं यस्य न स्यात् ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि जिन लोगों ने वेदान्तों का श्रवण कर लिया है, उन लोगों की भी प्रवृत्ति कर्मों में देखी जाती है, अतएव उसको असत्य कैसे कहा जा सकता है? इसके उत्तर में **न तस्य० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। तत्त्व ज्ञान का साक्षात् बोध कराने में उपनिषदों के भी वाक्य समर्थ नहीं हैं। क्योंकि यज्ञादि फलों के दृश्य होने के कारण उनको भी स्वप्न काल में प्रतीत होने वाले पदार्थों के समान मिथ्या कहा गया है। उस तत्त्वज्ञान का अनुमान भी नहीं किया जा सकता है ॥३॥

**यावन्मनो रजसा पूरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम्।**
**चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरङ्कुशं कुशलं चेतरं वा ॥४॥**

**अन्वयः**— पुरुषस्य मन; यावत्, रजसा, तमसा, सत्त्वेन वा अनुरुद्धम् तावत् चेतोभिः आकूतिभिः वा निरङ्कुशं कुशलम् इतरं च आतनोति ॥४॥

**अनुवाद**— जब तक पुरुष का मन सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुण के अधीन बना रहता है तब तक वह पुरुष की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा निरङ्कुशरूप से शुभाशुभ (पुण्य पाप) कर्मों को करवाता रहता है ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

एवं प्रपञ्चस्य सत्यत्वं तदुक्तं निराकृत्य संसारस्यापि तदुक्तां सत्यतां निराकर्तुं तस्य मनोनिमित्ततामाह-यावदित्यादिना यावत्समाप्ति। मनो यावद्रजआदिभिर्गुणैरनुरुद्धं वशीकृतं भवति तावत्तन्मनो निरङ्कुशं सत् पुरुषस्य कुशलं धर्ममितरमधर्मं वा आतनोति। कैः। चेतोभिर्ज्ञानेन्द्रियैः। आकूतिभिः कर्मेन्द्रियैश्च ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

राजा के द्वारा प्रतिपादित प्रपञ्च की सत्यता का खण्डन करके उसके द्वारा उक्त संसार की भी सत्यता का निराकरण करने के लिए उसका कारण मन को **यावत् इत्यादि** से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त बतलाते

हैं जब तक मन सत्त्वादि गुणों के अधीन रहता है तब तक वह निरङ्कुश रूप से ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से शुभाशुभ कर्मों को करवाता रहता है ॥४॥

**स वासनात्मा विषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ।**
**बिभ्रत्पृथङ्नामभि रूपभेदमन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥५॥**

**अन्वयः**— सः वासनात्मा, विषयोपरक्तः गुणप्रवाहः विकृतः षोडशात्मा विभ्रत्पृथङ्नामभिः रूपभेदम् अन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥५॥

**अनुवाद**— वह मन वासनामय, विषयासक्त, गुणों से प्रेरित, विकार युक्त और भूत इन्द्रियों रूप सोलह कलाओं से मुख्य है । यही भिन्न-भिन्न नामों से देवता तथा मनुष्य आदि रूप धारण करके, शरीर रूप उपाधियों के भेद से जीव की उत्तमता और निकृष्टता का कारण बनता है ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

ततश्च धर्माधर्मवासनायुक्तं तदेवानेकदेहादिवैचित्र्यं करोतीत्याह-स इति । पुंस्त्वमात्मशब्दविशेषणत्वेन । तन्मन इत्यर्थः। वासनायुक्त आत्मोपाधित्वादात्मा । अतो विषयैरुपरक्तोऽनुविद्धः अतो गुणप्रवाहो गुणैरितस्ततश्चाल्यमानः । अत एव विकृतः कामादिपरिणामवान् । षोडशात्मा षोडशकलासु भूतेन्द्रियरूपासु मुख्यः । पृथङ्नामभिः सह पृथग्रूपभेदं देवतिर्यगादिरूपं विभ्रत्। अन्तर्बहिष्ट्वमुत्कृष्टत्वं निकृष्टत्वं च पुरैस्तैरेव देहैर्हेतुभूतैस्तनोति । नामभिरित्यत्र रेफलोपे दीर्घाभाव आर्षः ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव धर्म एवं अधर्म की वासना से युक्त वह मन ही अनेक देह आदि की विचित्रता को उत्पन्न करता है । सः यह पुल्लिङ्ग प्रयोग आत्मा शब्द का विशेषण होने के कारण है । सः अर्थात् वह मन । वासना से युक्त और आत्मा रूपी उपाधि से युक्त होने के कारण आत्मा है । इसीलिए विषयों की आसक्ति से युक्त हैं । इसीलिए यह सत्त्वादि गुणों के द्वारा इधर-उधर चलता रहता है । इसीलिए वह विकृत अर्थात् कामादि परिणामों वाला है। यह भूतों तथा इन्द्रियों रूपी सोलह कलाओं में प्रधान है । यह भिन्न-भिन्न नामों से भिन्न-भिन्न देव मनुष्य रूपों को धारण करता है । मन ही भिन्न-भिन्न शरीरों के द्वारा जीव में उत्कृष्टता और निकृष्टता का आधान करता है। नामभिः में र का लोप होने पर दीर्घत्व का अभाव आर्ष है ॥५॥

**दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ।**
**आलिङ्ग्य मायारचितान्तरात्मा स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥६॥**

**अन्वयः**— मायारचितान्तरात्मा संसृति चक्रकूटः स्वदेहिनं आलिङ्ग्य कालोपपन्न सुखं दुःखं व्यतिरिक्तं तीव्रं च फलम् आव्यनक्ति ॥६॥

**अनुवाद**— यह माया रचित मन संसार चक्र में छलने वाला है । यह मन ही अपने देह के अभिमानी जीव से मिलकर उसे काल क्रम से प्राप्त होने वाले सुख-दुःख और इन दोनों से भिन्न तीव्र मोह रूपी फल की अभिव्यक्ति करता है ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

फलं च तदनुरूपं करोतीत्याह । दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च मोहं तीव्रं दुर्निवारं कालप्राप्तं फलं सर्वतोऽभिव्यनक्ति सृजति। ननु जडः कथं सृजति तत्राह । स्वदेहिनमालिङ्ग्य । आलिङ्गने कारणमाह । मायया रचितोऽन्तरात्मा जीवोपाधिः । उपाधितामाह। संसृतिश्चक्रे कूटयति छलयतीति तथा । यथा ग्रामकूटक इति ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

यह मन ही उसके अनुरूप फल भी प्रदान करता है । यह सुख, दु:ख इन दोनों से भिन्न मोह रूपी दुर्निवार कालक्रम से प्राप्त होने वाले फल को भी पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने का काम करता है । प्रश्न है कि जड मन सृजन करने का काम कैसे करता है ? तो इसके उत्तर में कहते है अपने शरीरी जीव से मिलकर जीव का आलिङ्गन करने के कारण बतलाते हैं । यह माया से रचित अतरात्मा जीवोपाधि है । इसकी उपाधिता को बतलाते हैं । यह संसार चक्र में छलने का काम ग्राम में रहने वाले कूटक छली पुरुष के समान छलने का काम करता है ।।६।।

**तावानयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ।**
**तस्मान्मनो लिङ्गमदो वदन्ति गुणागुणत्वस्य परावरस्य ।।७।।**

**अन्वयः**— तावान् अयं क्षेत्रज्ञ साक्ष्य स्थूल सूक्ष्म व्यवहारा सदा आविः भवति, तस्मान् मनः परावरस्य गुणागुणत्वस्य अदः लिङ्गं वदन्ति ।।७।।

**अनुवाद**— जब तक मन रहता है तब तक ही यह क्षेत्रज्ञ साक्ष्य स्थूल एवं सूक्ष्म (जगत् एवं स्वप्नावस्था का) व्यवहार सदा प्रकाशित होता रहता है । इसलिए विज्ञजन मन को ही त्रिगुणात्मक संसार का और गुणातीत परमोत्कृष्ट मोक्ष का कारण कहते हैं ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

एवमयं मनोनिबन्धनः संसारो जीवे फलतीत्याह- तावानिति । आविः प्रकाशमानः । तदा क्षेत्रज्ञस्य साक्ष्यो दृश्यो भवति। स्थूलसूक्ष्मो जाग्रत्स्वप्रस्वरूपः मनसः संसारहेतुत्वमुपसंहरन्मोक्षस्यापि तदेव कारणमित्याह–तस्मादिति । अदो मनः। लिङ्गं कारणम् । गुणत्वं गुणाभिमानित्वम्, अगुणत्वं तद्राहित्यं तदेव परमवरं च यस्य ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार मन के ही कारण यह संसार जीव को प्राप्त होता है । इस बात का **तावान्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अर्थात् यह प्रकाशमान स्थूल एवं सूक्ष्म (जाग्रत एवं स्वप्न रूप) संसार जीव को प्राप्त होता है जब तक मन रहता है । यहाँ मन के संसार हेतुत्व का उपसंहार करते हुए उसको मोक्ष का भी कारण **तस्मात्० इत्यादि** से बतलाते हैं । इसीलिए पण्डित जन इस मन को गुणाभिमानी और गुण से रहित बतलाते हुए सर्वोत्कृष्ट मोक्ष का भी कारण बतलाते हैं ।।७।।

**गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्तोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ।**
**यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ।।**
**पदं तथा गुणकर्मानुबुद्धं वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ।।८।।**

**अन्वयः**— गुणानुरक्तं मनः जन्तोः व्यसनाय, अथो नैर्गुण्यम् क्षेमाय स्यात् यथा प्रदीपः घृतवर्तिम् अश्नन् सधूमाः शिखाः भजति अन्यदा स्वंपदं भजित । तथा गुणकर्मानुबद्धं मनः वृतीः श्रयते अन्यत्र तत्त्वम् श्रयते ।।८।।

**अनुवाद**— विषयासक्त मन जीव को संसार सङ्कट में डाल देता है किन्तु जब वह विषयहीन हो जाता है तब वह जीव को शान्तिमय मोक्ष प्राप्त करा देता है । यह उसी तरह होता है जिस तरह घी से भींगी हुई बत्ती का खाने वाला दीपक धूम युक्त लौ को पैदा करता है और घी के समाप्त होने पर अपनी प्रकृति में लीन हो जाता है । इसी तरह विषय एवं कर्मों में आसक्त मन भिन्न प्रकार की वृत्तियों का आश्रय लिए रहता है और विषय एवं कर्म की आसक्ति से रहित मन अपने तत्त्व में लीन हो जाता है ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

कथमेकमेव विलक्षणयोः कारणमवस्थाभेदादित्याह-गुणेति । नैगुण्यं निर्गुणम् । अथो इति कात्स्न्र्येन दृष्टान्तेन स्फुटयति-यथेति । अन्यदा तु घृतक्षये । स्वं पदं शुक्लभास्वररूपं महाभूतात्मत्वं वा । अन्यत्रान्यदा ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि एक हीमन परस्पर में विलक्षण संसार एवं मोक्ष का कारण कैसे होता है ? तो इसका उत्तर है कि रूप भेद के कारण । नैगुण्यम् निर्गुण । मूल के अथो इत्यादि के द्वारा पूर्ण रूप से इस बात का दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया गया है । यथा प्रदीपः इत्यादि के द्वारा दृष्टान्त को उपन्यस्त किया गया है । अन्दा पद का अर्थ है जब घी समाप्त हो जाता है तो वही दीपक अपने शुक्ल भास्वर रूप तेज नामक महाभूत में जाकर मिल जाता है।।८।।

**एकादशासन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ।**
**मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति हैकादश वीर भूमीः ।।९।।**

**अन्वयः**— हे वीर मनसः वृत्तयः एकादश आसन् । पञ्च आकूतयः पञ्च धियः अभिमानः । तासां भूमीः मात्राणि कर्माणि पुरंच एकादश वदन्ति ।।९।।

**अनुवाद**— हे वीर ! मन की ग्यारह वृत्तियाँ है पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और अहङ्कार । उनके आधारभूत विषय भी ग्यारह हैं पाँच तन्मात्र, पाँच प्रकार के कर्म और एक शरीर ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

वृत्तीर्दर्शयति । एकादशवृत्तय आसन् । आकूतयः क्रियाकाराः पञ्च । धियश्च ज्ञानाकाराः पञ्च अभिमानश्चेति । हे वीर। भूमिर्विषयान् ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मन की वृत्तियों को बतलाते हुए कहते हैं कि मन की ग्यारह वृत्तिया हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ औरएक अहङ्कार । आकूतयः पद से कर्मेन्द्रियों को कहा गया है । धियः शब्द से ज्ञानकार ज्ञानेन्द्रियों को कहा गया है । अभिमान शब्द से अहङ्कार को कहा गया है । भूमि शब्द से विषयों को कहा गया है । पञ्च तन्मात्र, पाँच कर्म और एक शरीर ये वृत्तियों के ग्यारह आधरभूत विषय हैं ।।९।।

**गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ।**
**एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ।।१०।।**

**अन्वयः**— गन्धाकृतिस्पर्श रस श्रवांसि निसर्ग रत्यर्त्यभिजल्प शिल्पाः एकादशं स्वीकरणं ममेति, एके शय्याम् अहं द्वादशम् आहुः ।।१०।।

**अनुवाद**— गन्ध, स्पर्श, रूप, रस और शब्द ये ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं मलत्याग, सम्भोग, गमन, भाषण और आदन-प्रदान ये पाँच कर्मेन्द्रियों के विषय है । शरीर को 'यह मेरा है' इस प्रकार स्वीकार करना अहङ्कार का विषय है । कुछ लोग अहङ्कार को बारहवीं वृत्ति तथा उसके आश्रय शरीर को बारहवाँ विषय मानते हैं ।।१०।।

### भावार्थ दीपिका

विषयानेवाह । गन्धादयः पञ्च ज्ञानेन्द्रियद्वारा धीवृत्तीनां विषयाः । आकृतिः रूपम् । श्रवः शब्दः । विसर्गादयः पञ्च कर्मेन्द्रियद्वारा कर्माकारवृत्तीनां विषयाः । रतिः संभोगः । अर्तिर्गतिः । पुरस्याभिमानविषयत्वप्रकारमाह । एकादशं पुरम् । स्वीक्रियत इति स्वीकरणम् । अयमर्थः-शरीरमभिमानस्य न ज्ञेयतया गन्धादिवद्विषयः । नापि कार्यतया विसर्गादिवत् । किंतु ममेति भोगायतनत्वेन स्वीकार्यतया विषय इति । एके तु विवेकिनामेव पुरं ममत्वाभिमानविषयो नतु मूढानां, अतो मूढदृष्ट्या

अहमहंकारं द्वादशं वृत्त्यन्तरमाहुः । तस्य च पुरमेव शय्यासंज्ञं द्वादशं विषयमाहुः । तत्र हि जीवोऽहंकारणे सह शेते । यतः पुरि शयनात्पुरुष इत्युच्यते ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विषयों का वर्णन किया गया है । गन्ध आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञान वृत्ति के विषय है । आकृति रूप का वाचक है । श्रवः शब्द से शब्द को कहा गया है । विसर्ग आदि पाँच कर्मेन्द्रिय द्वारा कर्माकार वृत्तियों के विषय है । रति शब्द संभोग का वाचक है । अर्तिः अर्थात् गति (गमन) जिस प्रकार से शरीर अभिमान का विषय होता है उसको बतलाते हैं । ग्यारहवाँ विषय शरीर को स्वीकार किया जाता है । **अयमर्थः इत्यादि** कहने का अभिप्राय है कि शरीर गन्ध आदि के समान अभिमान (अहङ्कार) का विषय नहीं होता हैं और न तो मल त्याग आदि के समान कार्य रूप से भी अभिमान का विषय नहीं होता है । अपितु यह मेरे भोग का आश्रय है शरीर इस प्रकार से स्वीकार्य रूप से अभिमान का विषय बनता है । कुछ लोगों का कहना है कि विवेकी पुरुषों का ही शरीर मेरा है इस तरह से अभिमान का विषय बनता है अज्ञानियों का शरीर नहीं । अतएव उन लोगों ने अज्ञानी की दृष्टि से अहङ्कार ही बारहवाँ विषय है । उसके शरीर को ही शय्या संज्ञक बारहवाँ विषय विज्ञों ने कहा है । उस शरीर में जीव अहङ्कार के साथ सोता है । शरीर में सोने के कारण ही जीव को पुरुष शब्द से अभिहित किया जाता है ।।१०।।

**द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैरेकादशामी मनसो विकाराः ।**
**सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ।।११।।**

**अन्वयः**— द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैः अमी एकादश मनसः विकाराः सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतः मिथः स्वतः न स्युः ।।११।।

**अनुवाद**— मन की ये ग्यारह वृत्तियाँ द्रव्य, (विषय) स्वभाव, आशय (संस्कार) कर्म एव काल के भेद से हजारों, सैकड़ों और करोड़ों प्रकार की हो जाती हैं, किन्तु इन सबों की सत्ता क्षेत्रज्ञ (जीव) के कारण हैं परस्पर में मिलकर अथवा स्वतः नहीं है ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

तासां वृत्तीनामवान्तरभेदैरानन्त्यमाह । द्रव्याणि विषयाः, स्वभावः परिणामहेतुः आशयः संस्कारः, कर्म अदृष्टम्, कालः क्षोभकः, तैर्निमित्तभूतैः प्रथमं शतशस्ततः सहस्रश ततः कोटिशः स्युर्नतु मिथः स्युर्नच स्वतः, किंतु क्षेत्रज्ञतः परमेश्वरात्। तस्य चानन्तशक्तित्वादनन्ताः स्युरित्यर्थः । यद्वा तासां मिथ्यात्वमनेनोच्यते । कोटिशो भवन्त्यतस्ताः क्षेत्रज्ञत एव स्युस्तत्सत्तयैव सत्तां लभेरन्नतु मिथो नच स्वत इति । यद्वा क्षेत्रज्ञो जीवस्तस्मान्न स्युः, तस्याविकारित्वात् । न मिथः, इतरेतराश्रयत्वापत्तेः। न स्वतः, आत्माश्रयत्वापत्तेः । अतो मिथ्याभूता एव ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

उन वृत्तियों के आनन्त्य का प्रतिपादन आवान्तर भेद के द्वारा इस श्लोक में किया गया है । द्रव्य शब्द से विषयों को कहा गया है, परिणाम का कारण स्वभाव है । आशय अर्थात् संस्कार कर्म अर्थात् अदृष्ट क्षोभ उत्पन्न करने वाली अदृष्ट, इन सबों के कारण मन की वृत्तियों के सैकड़ों, हजारों, फिर करोड़ों भेद हो जाते हैं । ये सभी भेद स्वतः अथवा परम्परातः न होकर परमेश्वर के कारण होते हैं । क्योंकि परमेश्वर की अनन्त शक्ति है । अथवा इस तरह से वृत्तियों का मिथ्यात्व बतलाया गया है ये अनन्त परमात्मा की सत्ता से ही सत्ता सम्पन्न है परस्पर भेद के कारण नहीं। और न तो स्वतः अथवा क्षेत्रज्ञ शब्द से जीव को कहा गया है । उसके कारण नहीं हो सकती क्योंकि जीव तो निर्विकार है । परस्पर मानने पर अन्योन्याश्रय दोष का प्रसङ्ग होगा । अतएव मिथ्या ही हैं ।।११।।

**क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीर्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः ।**
**आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥१२॥**

**अन्वयः**— माया रचितस्य जीवस्य एताः अविशुद्धकर्तुः मनसः एताः नित्याः क्वापि आविर्हिताः तिरोहिताश्च विभूतिः शुद्धः क्षेत्रज्ञ विचष्टे ॥१२॥

**अनुवाद**— मन माया रचित जीव की उपाधि है । यह प्रायः संसार के बन्धन में डालने वाले अविशुद्ध कर्मों में प्रवृत्त करते रहता है । इस मन की उपर्युक्त वृत्तियाँ प्रवाह रूप से नित्य ही रहती हैं । जागत और स्वप्न के समय में वे प्रकट हो जाती है और सुषुप्ति काल में तिरोहित हो जाती हैं । इन दोनों ही अवस्थाओं में विशुद्ध चिन्मात्र क्षेत्रज्ञ मन की इन वृत्तियों को साक्षी रूप से देखता रहता है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

तदेवं श्लोकत्रयेण गुणकर्मानुबद्धं मनो वृत्तीः श्रयत इति यदुक्तं तत्प्रपञ्चितम्, अन्यदा तत्त्वं श्रयत इति यदुक्तं तदेव तत्त्वमाह–क्षेत्रज्ञ इति । जीवस्य जीवोपाधेः अविशुद्धकर्तुर्मनसः नित्याः प्रवाहरूपेणाविच्छिन्ना जाग्रत्स्वप्नयोराविर्भूताः पश्यति। क्वापि सुषुप्तौ तिरोभूताः पश्यति । अवस्थात्रयसाक्षी क्षेत्रज्ञ आत्मा तत्त्वमित्यर्थः ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकारसे तीन श्लोकों के द्वारा यह जो कहा गया है कि गुणों एवं कर्मों से युक्त मन वृत्तियों का आश्रयण करता है उसका विस्तार किया गया और जब मन गुण और कर्म से रहित होकर वृत्तियों का आश्रयण नहीं करता है तब वह तत्त्व का आश्रयण करता है, यह जो कहा गया उसी तत्त्व को **क्षेत्रज्ञ० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं। क्षेत्र साक्षी रूप से जीवोपाधि तथा संसार के बन्धन में डालने वाला कर्मों को करने वाले मन की नित्य प्रवाह रूप से निरन्तर बनी रहने वाली जाग्रत् और स्वप्नावस्थाओं में प्रकट रहने वाली वृत्तियों को देखता रहता है और सुषुप्तावस्था में तिरोहित रहने वाली वृत्तियों को देखता है । तीनों अवस्थाओं का साक्षी क्षेत्रज्ञ (परमात्मा) ही तत्त्व हैं ॥१२॥

**क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः ।**
**नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमाययात्मन्यवधीयमानः ॥१३॥**

**अन्वयः**— क्षेत्रज्ञ आत्मा, पुराणः पुरुषः, साक्षात् स्वयं ज्योतिः अजः परेशः नारायणः भगवान् वासुदेवः स्वमायया आत्मनि अवधीय मानः ॥१३॥

**अनुवाद**— यह क्षेत्रज्ञ परमात्मा, सर्व व्यापक जगत् का आदि कारण, परिपूर्ण अपरोक्ष, स्वयं प्रकाश अजन्मा, ब्रह्मा आदि का भी नियामक और अधीन रहने वाली माया के द्वारा सबों के अन्तःकरणों में रहकर जीवों को प्रेरित करने वाला समस्त भूतों का आश्रय रूप भगवान वासुदेव है ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

क्षेत्रज्ञो द्विविधः त्वंपदार्थो जीवः तत्पदार्थ ईश्वरश्च । तत्राद्यो निरूपितः । इदानीं तत्प्राप्यमीश्वरं निरूपयति । क्षेत्रज्ञ आत्मा व्यापी । पुराणो जगत्कारणभूतः । पुरुषः पूर्णः । साक्षादपरोक्षः । स च स्वयंज्योतिः । नतु ज्ञानस्य विषयत्वेनाश्रयत्वेन वा परोक्षः । अजो जन्मादिशून्यः । परेषां ब्रह्मादीनामपि ईशः । नारं जीवसमूहः सोऽयनं यस्य नियन्तुः । भगवानैश्वर्यादिषड्गुणवान्। वासुदेवः सर्वभूतानामाश्रयः स्वाधीनया माययात्मनि जीवेऽवधीयमानोऽवस्थाप्यमानः । कर्मकर्तरिप्रयोगः । तन्नियन्तृत्वेन वर्तमान इत्यर्थः ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

क्षेत्रज्ञ दो प्रकार का है त्वं पदार्थ जीव और तत्पदार्थ ईश्वर । त्वं पदार्थ जीव का निरूपण किया जा चुका है, अब जीव के प्राप्यभूत ईश्वर का निरूपण करते हैं । क्षेत्रज्ञ आत्मा (व्यापक) पुराणः (जगत् का कारणभूत)

पुरुष (पूर्ण) साक्षात् (अपरोक्ष) स्वयं ज्योतिः (स्वयं प्रकाश) है वह ज्ञान का आश्रय और विषय रूप से अपरोक्ष नहीं है। वह अज (जन्मादि रहित) परेशः (ब्रह्मा आदि का भी नियामक नारायण) भगवान् (ऐश्वर्यादि षड्गुण सम्पन्न) वासुदेव (सभी भूतों का आश्रय) तथा अपने अधीन रहने वाली माया के द्वारा जीव में अवस्थापित यह कर्म कर्ता में प्रयोग है। जीव का नियामक है ।।१३।।

**यथाऽनिलः स्थावरजङ्गमानामात्मस्वरूपेण निविष्टईशेत् ।**
**एवं परो भगवान्वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ।।१४।।**

**अन्वयः**— यथा अनिल स्थावर जङ्गमानाम् आत्म स्वरूपेण निविष्टः, एवं क्षेत्रज्ञ परो भगवान् वासुदेवः आत्मा इदम् अनु प्रविष्टः ईशेत् ।।१४।।

**अनुवाद**— जिस तरह वायु सम्पूर्ण स्थावरों एवं जङ्गमों में प्राण रूप से प्रविष्ट होकर उन सबों को प्रेरित करने का काम करती है, उसी तरह से वे परमेश्वर भगवान् वासुदेव सर्वसाक्षी आत्मा रूप से इस सम्पूर्ण प्रपञ्च में ओत-प्रोत हैं ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

एतत्सदृष्टान्तमाह-यथेति । आत्मस्वरूपेण प्राणरूपेण ईशेन्नियमयति । इदं विश्वम् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को ही दृष्टान्तो पन्यास पूर्वक कहते हैं। जिस तरह संसार के सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम प्राणियों में प्राण रूप से प्रवेश करके उन्हें प्रेरित करने का काम करती है, उसी तरह परमात्मा सम्पूर्ण जगत् में आत्म रूप से प्रवेश करके उसे प्रेरित करने का काम करते हैं ।।१४।।

**न यावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र विधूय मायां वयुनोदयेन ।**
**विमुक्तसङ्गो जितषट्सपत्नो वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ।।१५।।**

**अन्वयः**— हे नरेन्द्र ! यावत् तनुभृत् वयुनं उदयेन एतां मायां विधूय जित षट्सपत्नः विमुक्त सङ्गः आत्मतत्वं न वै तावत् इह भ्रमति ।।१५।।

**अनुवाद**— हे राजन् ! जब तक यह शरीरधारी जीव ज्ञान के उत्पन्न हो जाने से इस माया का तिरस्कार करके काम क्रोध आदि छह शत्रुओं को जीतकर तथा सभी प्रकार की आसक्तियों को छोड़कर आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान लेता है, तब तक वह इस संसार चक्र में घूमता रहता है ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवमात्मनः शुद्धत्वं संसारस्य च मिथ्यात्वं प्रदर्श्येदानीं तन्निवृत्तिमाह । तनुभृद्देही वयुनोदयेन ज्ञानोत्पत्त्या यावन्मायां विधूयात्मतत्त्वं न वेद तावदिह भ्रमति ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से आत्मा की शुद्धता और संसार के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करके इस श्लोक के द्वारा उसकी निवृत्ति को बतलाते हुए कहते हैं। जब तक यह शरीरधारी जीव ज्ञान के उत्पन्न हो जाने के कारण माया को दूर करके तथा सभी प्रकार की असक्तियों का त्याग करके आत्मत्व का ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेता है तब तक वह इस संसार चक्र में पड़कर भटकता रहता है ।।१५।।

**न यावदेतन्मन आत्मलिङ्गं संसारतापावपनं जनस्य । यच्छोकमोहामयरागलोभवैरानुबन्धं ममतां विधत्ते।।१६।।**

**अन्वयः**— आत्मलिङ्ग एतन्मनः जनस्य संसार तापावपनं न वेदतावत् भवति यच्छोक मोहामयरागलोभवैरानुबन्धं ममतां विधते ।।१६।।

**अनुवाद**— जब तक यह आत्मा के उपाधि रूप मन को संसार दुःख का क्षेत्र नहीं जान लेता है तब तक वह इस संसार चक्र में भटकता रहता है । क्योंकि यह मन उसके शोक, मोह, रोग, राग, लोभ आदि के संस्कार तथा ममता की वृद्धि करता रहता है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

यावच्च विषयानुरक्तं मन एवानर्थहेतुरिति न वेद तावन्निर्वेदाभावात्परिभ्रमत्येवेत्याह-नेति । आत्मनो लिङ्गमुपाधिभूतं मनः संसारतापानामावपनं क्षेत्रं यावन्न वेद तावद्भ्रमतीत्यनुषङ्गः। तापावपनत्वे हेतुः— यन्मनः शोकाद्यनुबन्धं ममतां च विधत्ते॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

जब तक मनुष्य यह नहीं जान लेता है कि सभी अनर्थों का कारण मन ही है, तब उसको संसार निर्वेद नहीं होता है और उसके फल स्वरूप वह इस संसार में भटकता रहता है । इस बात को **न यावदेतत्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । आत्मा की उपाधिभूत मन ही संसार संताप रूपी दुःख का क्षेत्र है इस बात को जब तक जीव नहीं जान लेता है तब तक वह इस संसार में भटकता रहता है संसार ताप कब पनत्व (क्षेत्रत्व) का कारण यह है कि मन शोक इत्यादि के द्वारा संसार में ममता को बढाते रहने का काम करता है ॥१६॥

**भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्येधितमप्रमत्तः ।**
**गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥१७॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे रहूगणसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

**अन्वयः**— तत् अदभ्रवीर्यं, उपेक्षया अध्येधितं भ्रातृव्यम् एनम् स्वं व्यलीकं आत्ममोषम् गुरोः हरेः चरणोपासनास्त्रः अप्रमत्तः जहि ॥१७॥

**अनुवाद**— अतएव अत्यन्त पराक्रमशाली यह तुम्हारा शत्रु यह मन उपेक्षा करने के कारण अत्यन्त समृद्धिशाली स्वयं मिथ्या होकर भी आत्मा को चुराने वाला है । अतएव श्रीहरि रूपी गुरु के चरण कमलों की उपासना रूपी अस्त्र के द्वारा सावधानी पूर्वक इसका वध कर दो ॥१७॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥**

### भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात् । भ्रातृव्यं शत्रुमध्येधितं संप्रवृद्धं स्वयं व्यलीकं मित्याभूतं तथाप्यात्मानं मुष्णातीति तथा तम् । गुरुरेव हरिस्तस्य चरणोपासनमेवास्त्रं यस्य तथाभूतः सन् जहि घातय ॥१७॥

**इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकाटीकायांमेकादशोऽध्यायः ॥११॥**

### भाव प्रकाशिका

अतएव अपने शत्रु इस मन को जो उपेक्षा के कारण अत्यन्त समृद्ध हो गया है तथा स्वयं मिथ्याभूत है और ऐसा होकर भी आत्म को चुराने का काम करता है, उस मन को श्रीहरि रूप गुरु के चरणों की उपासना रूप अस्त्र से उसको मार दो ॥१७॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चमस्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥११॥**

# बारहवाँ अध्याय

## राजा रहूगण का प्रश्न और भरतजी का समाधान

रहूगण उवाच

**नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ।**
**नमोऽवधूत द्विजबन्धुलिङ्गनिगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ।।१।।**

**अन्वयः**— कारण विग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय नमो नमः । हे अवधूत द्विजबन्धु लिङ्गनिगूढनित्यानुभावाय तुभ्यम् नमः ।।१।।

### राजा रहूगण ने कहा

**अनुवाद**— हे भगवन आपने जगत् का उद्धार करने के लिए यह शरीर धारण किया है । हे योगेश्वर अपने परमानन्दमय स्वरूप का अनुभव करके इस स्थूल शरीर से उदासीन हो गये हैं ऐसे आपको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं । एक जड़ ब्राह्मण के वेष से आपने नित्य ज्ञानमय स्वरूप को जन साधारण की दृष्टि से छिपाये हुए हैं ऐसा आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।।१।।

### भावार्थ दीपिका

द्वादशे पुनरापृष्टः संदेहेन महीभृता । स योगी सर्वसंदेहानपानुददितीर्यते । कारणमीश्वरस्तस्यैव लोकसंरक्षणार्थो विग्रहो देहो यस्य । स्वरूपेण परमानन्दप्रकाशेन तुच्छीकृतो विग्रहो येन । हे अवधूत योगेश्वर, द्विजबन्धोर्लिङ्गेन वेषेण निगूढो नित्यानुभवो येन तस्मै नमः ।।१।।

### भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में राजा रहूगण के द्वारा संदेह पूर्वक पूछे जाने पर योगी भरतजी ने उनके समस्त संदेहों को दूर कर दिया इस बात का वर्णन किया गया है । इस संसार की रक्षा करने के लिए आपने जगत् के कारण ईश्वर के शरीर को आपने धारण किया है, तथा अपने परमानन्द प्रकाशमय स्वरूप का अनुभव हो जाने के कारण आप अपने इस स्थूल शरीर से उदासीन हो गये हैं हे अवधूत (योगेश्वर) ! एक जड़ ब्राह्मण का वेष धारण करके आप अपने नित्यानुभव रूप स्वरूप को जन साधारण की दृष्टि से छिपा लिया है, ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।।१।।

**ज्वरामयार्तस्य यथाऽगद सन्निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः ।**
**कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं मे ।।२।।**

**अन्वयः**— हे ब्रह्मन् ! ज्वरामयार्तस्य यथा अगदं सन् निदाधदग्धस्य यथा हिभाम्भः कुदेहमानाहिविदष्ट दृष्टेः ते वचः मे अमृतौषधम् ।।२।।

**अनुवाद**— हे ब्रह्मन् ! जैसे ज्वर रूपी रोग से पीड़ित के लिए मिठी औषधि ओर धूप से संतप्त पुरुष के लिए शीतल जल अमृत के समान होता है, उसी प्रकार जिसकी विवेक बुद्धि को देहाभिमान रूप विषैले सर्प ने दंश (काट) लिया है ऐसे मेरे लिए आपके वचन अमृतमय औषधि के समान हैं ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

विशेषतः प्रष्टुं तद्वाक्यमभिनन्दति । ज्वर एवामयो रोगस्तेनार्तस्य यथा सत्स्वादु अगदमौषधम् । यथाच निदाधेन दग्धस्य संतप्तस्य हिमाम्भः शीतलमुदकं गङ्गोदकं वा । तथा हे ब्रह्मन्, कुत्सिते देहे यो मानोऽहङ्कारः स एवाहिस्तेन विशेषेण दष्टा दृष्टिर्विवेकलक्षणा यस्य तस्य ते तवेदं वचोऽमृततुल्यमौषधम् ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

विशेष प्रश्नों को पूछने के लिए राजा रहूगण पहले भरतजी के वचनों का अभिनन्दन करते हुए कहते हैं। ज्वर स्वरूप रोग से व्याकुल बने रोगी के लिए मीठी दवा अमृत तुल्य होती है, धूप से संतप्त पुरुष के लिए जैसे शीतल जल अमृत के समान होता है, उसी तरह जिसकी विवेक रूपी दृष्टि को देहाभिमान रूपी विषैले सर्प ने डँस लिया है, ऐसे मेरे लिए आपके वचन अमृतमय और औषधि के समान है ।।२।।

**तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ।**
**अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसो मे ।।३।।**

**अन्वयः**— तस्मात् भवन्तं मम संशयार्थं पश्चात् प्रक्ष्यामि, अधुना अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तम् सुबोध माख्याहि, ते चेतसः कौतूहलः ।।३।।

**अनुवाद**— भगवान् मैं आपसे अपने संशयों की निवृत्ति तो पीछे कराऊँगा, इस समय पहले आपने जो अध्यात्म योगमय उपदेश दिया है उसको सरल करके समझाइये, उसे जानने की मुझे अत्यधिक उत्कण्ठा बनी हुई है ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

मम संशयविषयमर्थं पश्चात्प्रक्ष्यामि । अधुना तावत्त्वदुक्तं वचोऽध्यात्मयोगेन ग्रथितं दुर्बोधं सुबोधं यथा भवत्येवं व्याख्याहि । कौतूहलयुक्तं चेतो यस्य तस्य मम ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

राजा रहूगण ने कहा कि मुझे जिन विषयों में संशय है उसको तो मैं बाद में पूछूगाँ इस समय आपने जिन अध्यात्मयोग विषयक वचनों को कहा है वह अत्यन्त दुर्बोध है उसे आप सरलरीति से बतलायें क्योंकि उसको जानने के लिए मेरे मन में अत्यन्त उत्कण्ठा है ।।३।।

**यदाह योगेश्वरदृश्यमानं क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ।**
**न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ।।४।।**

**अन्वयः**— हे योगेश्वर ! यदभवान् आह दृश्यमानं क्रियाफलं सद् व्यवहारमलम् हि अञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय न, अमुष्मिन् मे मनः भ्रमते ।।४।।

**अनुवाद**— हे योगेश्वर ! आपने यह जो कहा है कि भार उठाने कि क्रिया और उसके कारण होने वाला श्रम ये दोनों ही प्रत्यक्ष होने पर भी व्यवहार मूलक ही हैं, वस्तुत: ये सत्य नहीं है, क्योंकि तत्त्व विचार के समझ कुछ भी नहीं कहते हैं । इसके विषय में मेरा मन अत्यन्त भ्रमित हो रहा है अर्थात् आपके इस कथन का अभिप्राय मैं नहीं समझ पा रहा हूँ ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धमित्यादिना भारवहनादिक्रिया तत्फलं च श्रमादिप्रत्यक्षादिभिर्दृश्यमानं सदबाधितमपि व्यवहारमात्रमूलम् । यद्वा सतोऽबाधितव्यवहारस्य मूलं कारणमपि न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय क्षममिति भवान्यदाह । अमुष्मिन्नर्थे मम मनो भ्रमति ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

आपने जो **व्यक्तमविप्रलबधम्० इत्यादि** वाक्य के द्वारा यह जो कहा है कि भार उठाने की क्रिया और उसका फल श्रम ये दोनों ही यद्यपि प्रत्यक्षादि के द्वारा देखे जाते हैं, और अबाधित भी हैं फिर भी ये व्यवहार

मूलक हैं, अथवा सत् शब्द वाच्य अवाधित व्यवहार के मूल हैं अर्थात् कारण हैं किन्तु यह तत्त्व विचार के योग्य नहीं हैं । आपके इस कथन के विषय में मेरा मन भ्रमित हो रहा है ।।४।।

ब्राह्मण उवाच

**अयं जनो नाम चलन्पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ।**
**तस्यापि चाङ्घ्र्योरधिगुल्फजङ्घाजानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ।।५।।**

**अन्वयः**— पार्थिव ! यः पार्थिवः विकारः सः एव कस्य हेतोः पृथिव्यां चलन् अयं जनः नाम प्रसिद्ध। यः न चलति सपाषाणादिः । तस्यापि अङ्घ्रयोः अधिगुल्फ जङ्घाजानूरु मध्योररशिरो धरांशः ।।५।।

**अनुवाद**— पृथिवीपते ! यह शरीर पृथिवी का विकार है, इसका पाषाण आदिसे क्या भेद ? यही न कि यह चलता और पाषाण आदि नहीं चलते हैं । अन्यथा दोनों पार्थिव है । किसी कारण वश जब यह शरीर चलने लगता है तो इसका नाम भारवाही जन हो जाता है । इस शरीर के दो पैर हैं, उसके ऊपर क्रमशः गुल्फ, (टखने) पिंडली घुटने, जाँघ, कमर, छाती, गर्दन और कङ्धे आदि हैं । इन अवयवों के अतिरिक्त अवयवी शरीर नामक कोई वस्तु नहीं हैं ।।५।।

**भावार्थ दीपिका**

अबाधितत्वमसिद्धमित्याह हे पार्थिव, यः पार्थिवो विकारः स एव कस्य हेतोः कस्माञ्चित्कारणात्पृथिव्यां चलन्नयं भारवाहकादिर्जनो नाम प्रसिद्धः । यस्तु न चलति स पाषाणादिरित्येतावानेव भेदः । तस्य च जडत्वान्न भारः श्रमश्च । किंच भवेदेवं यदि श्रमस्याश्रयो निरूप्येत, न त्वेतदस्ति । अवयवव्यतिरेकेण श्रमास्पदस्यावयविनोऽनिरूपणादित्याशयेनाह । तस्यापि पृथ्वीविकारस्यापि । अङ्घ्रयोरध्युपर्युपरि गुल्फादयः । उरस; सलोप आर्षः ।।५।।

**भाव प्रकाशिका**

इस शरीर का अवाधितत्व असिद्ध है इस बात को वे इस श्लोक में कहते हैं । हे राजन् ! यह जो पार्थिव (पृथिवी का विकार भूत) शरीर है वह किसी कारणवश पृथिवी पर चलने लगता है तो यह भारवाहक आदि नाम वाला हो जाता है यह प्रसिद्ध है किन्तु इसका पाषाण आदि से क्या भेद है ? यही न कि जो चलता है वह शरीर है और जो नहीं चलता है वह पाषाणादि है । पार्थिव शरीर जड़ है । जो जड़ होता है उसको भार नही होता है यह लोक में देखा जाता है । अतएव इस जड़ शरीर को न तो भार है और न श्रम है । यह श्रम वाला तब हो सकता है यदि उसको श्रम के आश्रय रूप से निरूपण किया जा सके । किन्तु जड़ शरीर श्रम का आश्रय नहीं हो सकता । क्योंकि चरणादि अवयवों से भिन्न कोई अवयवी (शरीर) नामक पदार्थ का निरूपण नहीं किया जा सकता है । इस पृथिवी के विकार शरीर के भी चरणों के ऊपर गुल्फ इत्यादि अङ्ग हैं । उरसः के सकार का लोप आर्ष हैं ।।५।।

**अंसेऽधिदार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ।**
**यस्मिन्भवान्रूढनिजाभिमानो राजास्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ।।६।।**

**अन्वयः**— अंसे अधिदार्वी शिबिका यस्यां च सौवीरराजेत्थपदेशः आस्ते, यस्मिन् भवान् सिन्धुषु राजा अस्मि इति दुर्मदान्धः निजाभिमानः ।।६।।

**अनुवाद**— उस कन्धे के ऊपर एक लकड़ी की पालकी रखी है, उसमें भी एक पार्थिव विकार है, जो सौ वीरराज के नाम से अभिहित किया जाता है । उसी में तुम मैं सिन्धुदेश का राजा हूँ इस प्रकार देहाभिमान के मद में अन्धे बने हुए हो ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

शिबिकायामप्यवयवी नास्ति, त्वय्यपि नास्ति तदाह । सौवीरराजेत्यपदेशो नाममात्रं यस्य स पार्थिवो विकार आस्ते। राजेति सन्धिरार्षः । यस्मिन्भवाननिरूढात्माभिमानः सिन्धुषु राजास्मीति दुर्मदेनान्धः सन् ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

अब इस श्लोक में बतला रहे हैं कि शिविका में भी अवयवी नहीं है और तुम में भी वह अवयवी नहीं है । शिविका में तो जिसका सौवीरराज यह नाम मात्र हैं, वह भी पृथिवी का विकार मात्र ही है । **राजेति** में सन्धि आर्ष है । किन्तु उसी में तुम्हारा आत्माभिमान बना हुआ है । और यह मानकर तुम दुर्मदान्ध बने हुए हो कि मैं तो सिन्धु देश का राजा हूँ ।।६।।

**शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्विष्ट्या निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ।**
**जनस्य गोप्तास्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ।।७।।**

**अन्वयः**— इमान् शोच्यान् अधिकष्टदीनान विष्ट्या निगृहणन् निरनुग्रहः असि, जनस्य गोप्ता अस्मि इति विकत्थमानः धृष्टः त्वं वृद्धसमासु न शोभसे ।।७।।

**अनुवाद**— तुम इन दीन दुखियों को बेगार में पकड़कर शिविका में लगा रखे हो अतएव तुम अत्यन्त क्रूर हो अतएव यह जो कहकर अपनी आत्मश्लाघा करते हो कि मैं प्रजाओं का रक्षक हूँ वस्तुतः तुम धृष्ट हो अतएव ज्ञान वृद्धों की सभा में सुशोभित नहीं होते हो ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

शोच्यानिमान्विष्ट्या निगृह्णन्निष्कृपो वर्तसे, अतो मिथ्यैव गोप्ताऽस्मीति श्लाघमानो महतां सभासु न शोभसे। यतो धृष्टः।।७।।

### भाव प्रकाशिका

अत्यन्त इन दीन दुखियों को तुम बेगार में पकड़कर अपनी पालकी में लगा रखे हो अतएव तुम अत्यन्त क्रूर हो, अतएव यह जो तुम आत्मश्लाघा करते हो कि मैं प्रजाओं का रक्षक हूँ । वस्तुतः तुम धृष्ट हो अतएव महापुरुषों की सभा में सुशोभित नहीं होते हो ।।७।।

**यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ।**
**तन्नामतोऽन्यद्व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत्क्रिययानुमेयम् ।।८।।**

**अन्वयः**— यदा क्षितौ एव चराचरस्य निष्ठां प्रभवं च नित्यम् विदाम तत् नामतः अन्यद् व्यवहारमूलं सत्क्रियया अनुमेयम् निरूप्यताम् ।।८।।

**अनुवाद**— जब हम देखते हैं कि सम्पूर्ण चराचर भूत पृथिवी से ही उत्पन्न होते हैं और अन्त में पृथिवी में ही नष्ट होकर मिल जाते हैं अतएव उनके क्रिया भेद के ही कारण अलग-अलग नाम पड़े हैं, तो बतलाओ इसके अतिरिक्त व्यवहार का मूल और क्या हो सकता है ?।।८।।

### भावार्थ दीपिका

न चोत्तरोत्तरावयवभारः पूर्वपूर्वावयवानां भवेदिति वाच्यम्, तेषामप्यनिरूपणादित्याशयेनाह–यदेति । निष्ठां नाशं प्रभवमुत्पत्तिं विदाम विद्मस्तत्तदा क्षितेरन्यस्य विकारस्याभावान्नाममात्रादन्यद्व्यवहारस्य मूलं कारणमर्थक्रियया सदित्यनुमेयं निरूप्यताम् । तथाच श्रुतिः 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इति ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

यह भी नहीं कहा जासकता है कि ऊपर-ऊपर के अङ्गों का भार नीचे-नीचे के अवयवों पर पड़ता है, क्योंकि

उन सबों का भी निरूपण नहीं किया जा सकता है । इसी आशय से **यदा० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है। **निष्ठा** का अर्थ नाश है, प्रभव का अर्थ उत्पत्ति है । अर्थात् जब हम जानते है कि समस्त चराचर भूतों की उत्पत्ति पृथिवी से ही होती है, और नाश होकर वे पृथिवी में ही मिल जाती हैं । अतएव पृथिवी से भिन्न के विकार (कार्य) नहीं है, केवल नाम के ही कारण उनका अलग-अलग अभिधान होता है । अतएव पृथिवी से भिन्न किसी दूसरे व्यवहार के मूल कारण का तुम निरूपण करो जो अनुमेय हो श्रुति भी कहती है **वाचरम्भणं विकारोनामधेयम् मृत्तिकेत्येव सत्यम्** जितने भी घटादि कार्य हैं वे वागालम्बन मात्र होने के कारण मिथ्या है, नामों और विकारो का कारण मिट्टी ही सत्य है ।।८।।

**एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तमसन्निधानात्परमाणवो ये ।**
**अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो विशेषः ।।९।।**

**अन्वयः**— एवं निरुक्तम् क्षिति शब्दवृत्तम् असत्, निधानात्, ये परमाणवः ते अविद्यया कल्पिताः, येषां समूहेन विशेषः कृतः ।।९।।

**अनुवाद**— इस तरह पृथिवी शब्द का भी व्यवहार मिथ्या ही हैं क्योंकि उसका लय अपने उपादान कारण परमाणुओं में होता है । जिनके मिलने से पृथिवी की सिद्धि होती वे परमाणु भी अविद्यावशात् मनः कल्पित हैं। वस्तुतः उनकी भी सत्ता नहीं है ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

तर्हि क्षितेः सत्यता स्यात्तत्राह । एवं क्षितिशब्दस्यापि वृत्तं वर्तनमर्थं विनैव निरुक्तम् । यद्वा क्षितिशब्दस्य वृत्तं यस्मिंस्तदपि मिथ्यात्वेन निरुक्तमित्यर्थः । कुतः । असत्सु सूक्ष्मेषु परमाणुषु स्वकारणभूतेषु निधानाल्लयात् । अतः परमाणुव्यतिरेकेण क्षितिर्नास्तीत्यर्थः । परमाणवस्तर्हि सत्याः स्युस्तत्राह । ते मनसा कार्यानुपपत्त्या वादिभिः कल्पिताः । कल्पनाबीजमाह । येषां समूहेन विशेषः कृतस्तेषां समूहः पृथ्वीबुद्ध्यालम्बनमित्यर्थः । अवयविनो निरस्तत्वात्समूहग्रहणम् । तथापि सत्याः स्युः । न। अविद्यया प्रपञ्चस्य भगवन्मायाविलसितत्वादज्ञानेन कल्पिताः ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तब तो पृथिवी को ही सत्य मानना चाहिए तो इस पर कहते हैं, पृथिवी का भी व्यवहार बिना अर्थ के ही किए जाने के कारण वह भी मिथ्या है, क्योंकि पृथिवी भी अपने उपादान कारण परमाणु में लीन हो जाती है परमाणु से भिन्न पृथिवी नहीं है । यदि कहें कि तब तो परमाणुओं को ही सत्य मानना चाहिए, इस पर कहते हैं कि परमाणु भी अविद्यावशात् मनः कल्पित हैं । कार्यानुपपत्ति के कारण वादियों ने परमाणुओं की कल्पना की है । उनके कल्पना का कारण यह है कि परमाणुओं के समूह से ही पृथिवी आदि कार्यों की उत्पत्ति होती है । परमाणुओं के समूह को ही पृथिवी कहते हैं । चूंकि अवयवी का निरास पहले किया जा चुका है अतएव समूह का ग्रहण किया गया है । तो फिर समूह को ही सत्य मानें तो ऐसी बात नहीं हैं क्योंकि सारा प्रपञ्च श्रीभगवान् की माया रूप अविद्या से कल्पित होने के कारण मिथ्या है ।।९।।

**एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ।**
**द्रव्यस्वभावाशयकालकर्मनाम्नाऽजयाऽवेहि कृतं द्वितीयम् ।।१०।।**

**अन्वयः**— एवं अन्यत् अपि कृशं, स्थूलम्, अणुः बृहद्यद् असत् सत् जीवम् अजीवम् च द्रव्य, स्वभाव, आशय, कालकर्म नाम्ना अजया द्वितीयम् कृतम् अवेहि ।।१०।।

**अनुवाद**— इसी तरह और भी जो पतला, मोटा, सूक्ष्म, वृहत्, असत् सत्, जीव अजीव जिस द्वैत की

बुद्धि से प्रतीति होती है वे सबके सब, द्रव्य, स्वभाव, काल, और कर्म आदि नामों से अभिहित किए जाने वाली माया के ही कार्य हैं इस तरह से जानो ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

एवमन्यदपि कृशत्वादिधर्मकं बुद्ध्या प्रतीतं द्वितीयं द्वैतं द्रव्यादिनाम्नोपलक्षितयाऽजया मायया कृतमवेहि । तत्र कृशं ह्रस्वं, स्थूलं तत्प्रतियोगी । अणुबृहतोः पृथगुपादानात् । असत् कारणम् । सत् कार्यम् । जीवं चेतनम्, अजीवं जडम् ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

इसी तरह से दूसरे भी पतला-मोटा आदि धर्म युक्त वस्तु की बुद्धि से द्वैत की प्रतीति होती है वह सम्पूर्ण द्वैत द्रव्य आदि नामों से उपलक्षित किए जाने वाली माया का ही कार्य समझो । कृश शब्द से पतले को और स्थूल शब्द से उसके प्रतियोगी मोटे को कहा गया है क्योंकि अणु और बृहत् का अलग से ग्रहण किया गया है । असत् शब्द से कारण और सत् शब्द से कार्य को कहा गया है । इसी तरह जीव शब्द से चेतन ओर अजीव शब्दसे अचेतन को कहा गया है ॥१०॥

**ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।**
**प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥११॥**

**अन्वयः**— विशुद्धं परमार्थम्, एकं अनन्तरं तु अवहिः ज्ञानम् सत्यम् ब्रह्म, प्रत्यक्, प्रशान्तं, भगवच्छब्दवाच्यं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥११॥

**अनुवाद**— विशुद्ध परमार्थ स्वरूप, अद्वितीय तथा भीतर बाहर के भेद से रहित परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु है वह सर्वान्तर्वर्ती और निर्विकार है । उसी का नाम भगवान् है और उसी को पण्डित जन वासुदेव कहते है ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

तर्हि किं सत्यं तदाह । ज्ञानं सत्यम् । व्यावहारिकसत्यत्वं व्यावर्तयति । परमार्थम् । वृत्तिज्ञानव्यवच्छेदार्थानि षड्विशेषणानि। विशुद्धम्, तत्त्वाविद्यकम् । एकम्, तत्तु नानारूपम् । अनन्तरं त्वबहिर्बाह्याभ्यन्तरशून्यम्, तत्तु विपरीतम् । ब्रह्म परिपूर्णम्, तत्तु परिच्छिन्नम् । प्रत्यक्, तत्तु विषयाकारम् । प्रशान्तं निर्विकारम्, तदेवं स्वरूपज्ञानं सत्यमित्युक्तम् । कीदृशं तत् । ऐश्वर्यादिषड्गुणत्वेन भगवच्छब्दः संज्ञा यस्य । यच्च ज्ञानं वासुदेवं वदन्ति ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

तो फिर प्रश्न उठता है कि क्या सत्य है, इस पर कहते हैं कि ज्ञान ही सत्य है । उससे भिन्न है व्यवहारिक सत्यत्व । क्योंकि ज्ञान परमार्थ है । ज्ञान को वृत्ति ज्ञान से भिन्न करने के लिए ज्ञान के छह विशेषण दिए गये हैं । ज्ञान विशुद्ध है जब कि वृत्ति ज्ञान आविद्यिक है, ज्ञान एक (अद्वितीय) है । किन्तु वृत्ति ज्ञान अनेक प्रकार का होता है, ज्ञान वाह्याभ्यन्तर शून्य है किन्तु वृत्ति ज्ञान आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार का होता है । ज्ञान परिपूर्ण है किन्तु वृत्ति ज्ञान सीमित होता है, ज्ञान प्रत्यक् है किन्तु वृत्ति ज्ञान विषयाज्ञान होता है । ज्ञान निर्विकार (शान्त) है । जबकि वृत्तिज्ञान सविकार होता है । इस तरह से स्वरूप ज्ञान की सत्यता बतलाई गई है । प्रश्न होता है कि वह कैसा है ? तो इसका उत्तर है कि ऐश्वर्यादि षाडगुण्य सम्पन्न होने के कारण भगवत् शब्द वाच्य है । उसी ज्ञान को विज्ञ जन वासुदेव शब्द से अभिहित करते हैं ॥११॥

**रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ।**
**न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— हे रहूगण ! महत्पादरजोभषेकं विना तपसान, इज्यया न, निर्वपणात् गृहादवान छन्दसा जलाग्नि सूर्यैः उपासितैः नैव याति ॥१२॥

**अनुवाद**— हे रहूगण परमात्मज्ञान महापुरुषों की चरण धूलि से अपने को नहलाये बिना केवल तपस्या, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादिका दान, अतिथि सेवा दीन जनों की सेवा इत्यादि गार्हस्थ्योचित धर्मानुष्ठा वेदाध्ययन या जल, अग्नि तथा सूर्य की उपासना आदि किसी दूसरे साधन से नहीं प्राप्त होता है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

एतत्प्राप्तिस्तु महत्सेवां विना न भवतीत्याह । हे रहूगण, एतज्ज्ञानं तपसा पुरुषो न याति । इज्यया वैदिककर्मणा । निर्वपणादन्नादिसंविभागेन गृहाद्वा तन्निमित्तपरोपकारेण । छन्दसा वेदाभ्यासेन । जलाग्न्यादिभिरुपासितैः ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

इस परमात्म ज्ञान की प्राप्ति महापुरुषों के चरण धूलि से अपने को स्नान कराये बिना तपस्या, या इज्या आदि वैदिक कर्मों के द्वारा अन्नादि के दान द्वारा या गृह आदि के द्वारा परोपकार या वेदाध्यन से अथवा जल, अग्नि तथा सूर्य की उपासना से नहीं प्राप्त होता है ॥१२॥

**यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ।**
**निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥१३॥**

**अन्वयः**— यत्रोत्तम श्लोक गुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः, निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोः सतीं मतिं वासुदेवे यच्छति ॥१३॥

**अनुवाद**— इस ज्ञान की प्राप्ति का साधन यह है कि महापुरुषों के यहाँ सदा पवित्र कीति श्रीभगवान् के गुणों की ही चर्चा होती रहती है जिससे कि ग्राम्य कथाओं का विनाश हो जाता है । उस भगवत्कथा का जब प्रतिदिन सेवन किया जाता है तब मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाले) पुरुष की शुद्ध बुद्धि को वह भगवान् वासुदेव में लगा देती है ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

महत्सेवायास्तत्प्राप्त्युपायतामाह । यत्र येषु महत्सु । ग्राम्यकथानां विघातो यस्मात् ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

उस ज्ञान की प्राप्ति का साधन महापुरुषों की सेवा को बतलाते हुए कहते हैं कि उन महापुरुषों के यहा पवित्र कीर्ति भगवान् वासुदेव की ही सदा चर्चा होती रहती है और उसके कारण ग्राम्य कथाओं का विनाश हो जाता है जिससे कि मुमुक्षु पुरुष की शुद्ध बनी हुई बुद्धि भगवान् वासुदेव में लग जाती है ॥१३॥

**अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ।**
**आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥१४॥**

**अन्वयः**— अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्त दृष्टश्रुतसङ्गबन्धः भगवतः आराधनं ईहमानः मृगसङ्गात् हतार्थः मृगः अभवम् ॥१४॥

**अनुवाद**— पूर्वकाल में मैं भरत नाम का राजा था, लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के विषयों से विरक्त होकर श्रीभगवान् की आराधना में ही लगा रहता था किन्तु एक मृग में आसक्ति होने के कारण परमार्थ से भ्रष्ट होकर मुझे मृग होना पड़ा ॥१४॥

### भावार्थ दीपिका

विषयसङ्गस्तु योगभ्रंशक इति वदन् कस्त्वं निगूढश्चरसीति प्रश्नस्योत्तरमाह-अहमिति द्वाभ्याम् । विमुक्तो दृष्टश्रुताभ्यां सङ्गनिमित्तो बन्धो येन । हतोऽर्थः प्रयोजनं यस्य ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

विषयों में होने वाली आसक्ति योग भ्रष्ट बना देती है। इस बात को बतलाते हुए रहूगण के आप कौन है ? इस तरह से अपने को छिपाये सञ्चरण करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं- मैं लौकिक और वैदिक आसक्तियों से मुक्त होकर भगवदाराधन करता था, किन्तु एक मृग में आसक्ति हो जाने के मेरा परमार्थ नष्ट हो गया और मुझे मृग होना पड़ा ॥१४॥

**सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ।**
**अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥१५॥**

**अन्वयः**— हे वीर कृष्णार्चनप्रमवा स्मृतिः मां मृगदेहे अपि नो जहाति अथो अहं जनसङ्गात् विशङ्कमानः अविवृतः असङ्गः चरामि ॥१५॥

**अनुवाद**— हे वीर ! श्रीभगवान् की सेवा के कारण उत्पन्न वह यादगारी मुझे मृग शरीर में भी बनी रही इसीलिए मैं जनसंसर्ग से डरकर अप्रकट रूप से विचरण करता हूँ ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

श्रीकृष्णार्चनं भ्रष्टमप्युद्धरतीत्याह-सेति । जनसङ्गाद्विशङ्कमानः । अविवृतोऽप्रकटः ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में भरतजी बतलाते है कि भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा भ्रष्ट का भी उद्धार करती है। इसीलिए मैं जनसंसर्ग से डरकर अप्रकट रूप से विचरण करता हूँ ॥१५॥

**तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजातज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ।**
**हरिं तदीहाकथनश्रुतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ॥१६॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगणसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

**अन्वयः**— तस्मति् नरः असङ्गसुसङ्गजातज्ञानासिना इहैव विवृक्णमोहः हरिं तदीहाकथनश्रुताभ्यां लब्धस्मृतिः अध्वनः पारम् अतियाति ॥१६॥

**अनुवाद**— अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह इस लोक में ही विरक्त महापुरुषों की सत्सङ्गति से उत्पन्न ज्ञान रूपी तलवार के द्वारा अपने मोह रूपी अज्ञान के बन्धन को काट डाले, तदनंतर श्रीहरि की लीलाओं के कथन और श्रवण से भगवत्स्मृति के बने रहने से आसानी से इस संसार सागर को पार करके श्रीभगवान् को प्रापत कर लेता है ॥१७॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥**

**भावार्थ दीपिका**

असङ्गैर्महद्भिर्यः सुसङ्गस्तेन जातं ज्ञानमेवासिः खड्गस्तेन च्छिन्नमोहः सन् । अध्वनः संसारमार्गस्यातिशयितं श्रेष्ठं पारं हरिं याति । यद्वा पारमति अतिक्रम्य हरिं याति । 'अतिरतिक्रमणे च' इति कर्मप्रवचनीयत्वाद्वितीया । तस्य हरेरीहानां कथनश्रुतिभ्यां लब्धा स्मृतिर्येन सः ॥१६॥

**इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥**

**भाव प्रकाशिका**

आसक्तियों से रहित महापुरुषों की सत्सङ्गति से उत्पन्न ज्ञान रूप तलवार के द्वारा मोह को काट डाले और उसके पश्चात श्रीहरि की लीलाओं के कथन और श्रवण के द्वारा प्राप्त भगवत्स्मृति पुरुष आसानी से इस संसार मार्ग को पारकर के अत्यन्त श्रेष्ठ श्रीहरि को प्राप्त कर लेता है । अथवा संसारमार्ग के पार का अतिक्रमण करके श्रीहरि को प्राप्त कर लेता है । यह **हरिम्** से अतिरतिक्रमणें सूत्र से कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है ॥१६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवे स्कन्ध की भाव प्रकाशिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२।।**

# तेरहवाँ अध्याय

## भवाटवी का वर्णन और रहूगण का संशय नाश

ब्राह्मण उवाच

**दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजस्तमः सत्त्वविभक्तकर्मदृक् ।**
**स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥१॥**

**अन्वयः**— अर्थ परः परिभ्रमन् सार्थः (मथा) अटवीं याति (तथा) अजया दुरत्यये अध्वनि निवेशितः स एषः रजस्तमः सत्त्व विभक्त कर्मदृक अर्थपरः परिभ्रमन् भवाटवीं याति शर्म न विन्दति ॥१॥

**अनुवाद**— जिस तरह परायण व्यापारियों का समूह भटककर सभी वन में प्रवेश कर जाता है, उसी तरह माया ने इस जीव को दुस्तर प्रवृत्ति मार्ग में लगा दिया है । और यह सुख रूपी धन के लोभ में इसकी दृष्टि सात्त्विक, राजस एवं तमस कर्मों पर ही जाती है । उन कर्मों में भटकता हुआ जीव संसार रूप जङ्गल में प्रवेश कर जाता है । वहाँ इसको थोड़ी सी भी शान्ति नहीं मिलती है ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

त्रयोदशे विरक्ताय वृथा तत्त्वनिरूपणम् । इति वैराग्यदाढर्याय भवाटव्युपवर्ण्यते । अध्वनः पारमित्युक्तं तमेवाध्वानं प्रसिद्धमार्गरूपकेण वैराग्याय प्रपञ्चयति । दुरत्यये दुस्तरेऽध्वनि प्रवृत्तिमार्गे । रजस्तमःसत्त्वैर्विभक्तानि कर्माणि कार्यतया पश्यतीति तथा । स एष प्रसिद्धः सार्थो जीवसमूहोऽर्थपरः सुखार्थः सन् । यथा वणिक्सार्थोऽर्थार्जनाय गच्छन्नटवीं याति तद्वत् । अस्याध्यायस्य व्याख्यानरूप उत्तराध्यायोऽस्ति तथापि सुखप्रतिपत्तये किंचित्किंचिद्याख्यायते ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में यह संसार से विरक्त पुरुष के लिए तत्तव का निरूपण व्यर्थ है इसलिए वैराग्य को सुदृढ बनाने के लिए भवाटवी का वर्णन किया जाता है । इससे पहले के अध्याय में कहा गया है कि भगवत्कथा सुनने वाला जीव संसार मार्ग के पार पहुँच जाता है । उस संसार मार्ग का ही वर्णन इस अध्याय में प्रसिद्ध मार्ग रूपक के द्वारा वैराग्य प्राप्ति के लिए किया जा रहा है । माया ने इस जीव को दुस्तर प्रवृत्ति मार्ग में लगा रखा है । उसके कारण वह सात्त्विक, राजस और तामस कर्मों को ही कार्य रूप से देखता है । यह प्रसिद्ध जीव समूह सुख की प्राप्ति के लिए जैसे व्यापारी समूह अर्थार्जन के लिए घूमता हुआ जङ्गल में प्रवेश कर जाता है उसी तरह जीव

भी सुखार्थ भवाटवी में प्रवेश कर जाता है । यद्यपि इस अध्याय की व्याख्या अगला अध्याय है, फिर भी सुख पूर्वक ज्ञान होने के लिए मैं (श्रीधर स्वामी) इसकी थोड़ी-थोड़ी व्याख्या करता हूँ ॥१॥

**यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ।**
**गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥२॥**

**अन्वयः**— हे नरदेव ! यस्याम् इमे षट्दस्यवः कुनायं सार्थम् बलात् विलुम्पन्ति यथा प्रमत्तम् उरणं प्रविश्य वृकाः हरन्ति यत्र गोमायवः सार्थिकं हरन्ति ॥२॥

**अनुवाद**— हे राजन् ! इस संसार रूप जङ्गल (भावाटवी) में इन्द्रिय रूप छह लुटेरे हैं । जिस तरह निन्दित नायक वाले व्यापारी समूह के धन को लुटेरे लूट लेते हैं उसी तरह से इन्द्रियाँ भी उपभोग के द्वारा इस दुष्ट बुद्धि सारथि वाले जीव समूह के भगवत्समाराधनार्थ धन को उपभोग के द्वारा लूट लेते हैं । जिस तरह असावधान भेड़ समूह में घुसकर वृक उसके बच्चे को उठा ले जाते हैं, उसी तरह इस जीव समूह को पत्नी पुत्र इत्यादि रूपी गीदड़ आप मेरे पति हैं, आप मेरे पिता हैं इस तरह से कहकर परमात्मपराङ् मुख बना देते हैं ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

यस्यां भवाटव्यामिमे इन्द्रियनामानः षड् दस्यश्चोराः । कुत्सितो नायकः सारथिर्बुद्धिर्यस्य तं सार्थं विलुम्पन्ति । तस्य धर्म्यं धनमुपभोगेन मुष्णन्तीत्यर्थः । गोमायवः सृगालतुल्या दारापत्यादयस्त्वं मे भर्ता पितेत्येवं प्रविश्य प्रमत्तं सार्थिकं सार्थे स्थितं हरन्ति इतस्तत आकर्षन्ति । उरणं मेषम् ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

इस भवाटवी में ये छह इन्द्रिय रूपी डकैत है, और जिस तरह दुष्ट नायक वाले व्यापारियों के धन को लुटेरे लूट लेते हैं, उसी तरह भगवदराधनार्थ एकत्रित जीव समूह के धन को इन्द्रियाँ अपने उपभोग के द्वारा चुरा लेने का काम करती है । घर की पत्नी तथा पुत्र इत्यादि गीदड़ (सियार) के समान हैं, वे आप मेरे पति हैं आप मेरे पिता हैं इत्यादि बातों के द्वारा जीव को अपने अनुकूल बनाकर उसी तरह उसको परमात्मा पराङ्मुख बना देते हैं जिस तरह असावधान भेड़ों के समूह में घुसकर वृक् (विगवा) उनके छोटे बच्चें उठा ले जाते हैं ॥२॥

**प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ।**
**क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥३॥**

**अन्वयः**— प्रभूत वीरुत्तृण गुल्मगह्वरे कठोर दंशैर्मशकैरुपद्रुतः, क्वचित् तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वाचित् क्वचित् च आशुरयोल्मुक ग्रहम् ॥३॥

**अनुवाद**— वह जङ्गल बहुत सी लताघास और झाड़ झंखाड के कारण बहुत दुर्गम है, उसमें तीव्र दंशों और मच्छरों से उसे चैन नहीं मिलती है । वहा उसे कभी तो गन्धर्व नगर दिखता है और कभी-कभी चमचमाता हुआ उल्मुक (अगिया बेताल) दिखने लगता हैं ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

वीरुधो लतास्तृणानि च गुल्माश्च लतादिजालानि प्रभूतैरेतैर्गह्वरे दुष्प्रवशे क्षेत्रे कठोरैस्तीव्रैर्दंशैर्मक्षिकाविशेषैश्च यथा कश्चिदुपद्रुतो भवत्येवं कामकर्मादिभिर्गह्वरे गृहाश्रमे वर्तमानो दुर्जनैरुपद्रुतो भवतीत्यर्थः । गन्धर्वपुरवदघटमानमेव देहादिकं प्रकर्षेण सत्यमेवेदमिति पश्यति । क्वचित्क्वचित्क्वापि क्वाप्याशुरयोऽतिवेगो य उल्मुकाकारो ग्रहः पिशाचस्तत्तुल्यं सुवर्णमुपादेयत्वेन प्रपश्यतीत्यर्थः ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

उस अटवी में उसे दुष्ट प्रवेश क्षेत्र में वृक्ष, लता, तृण, गुल्म इत्यादि अधिक मात्रा में विद्यमान हैं जैसे उस दुष्प्रवेश जङ्गल में दंश और मच्छर चैन नहीं लेने देते हैं उसी तरह संसार रूपी जङ्गल में काम तथा कर्म इत्यादि से भयङ्कर बने गृहस्थाश्रम में मनुष्य दुर्जनों से उपद्रुत होता रहता है । वह गन्धर्व नगर के समान इस देहादि को ही अत्यधिक सत्य के समान समझने लगता है । कहीं-कहीं पर वह उल्कामुख पशिाच के समान अत्यन्त वेगवान् सुवर्ण को ही उपादेय समझने लगता है ॥३॥

**निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अटव्याम् ।**
**क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रादिशो न जानाति रजस्वलाक्षः ॥४॥**

**अन्वयः**— निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिः ततस्ततः अटव्यां धावति क्वचित् च वात्योत्थितपांसुधूम्रा रजस्वलाक्षः दिशोन जानाति ॥४॥

**अनुवाद**— वह वणिक् समुदाय इस वन में निवास स्थान जल तथा धन में आसक्त बुद्धि वाला होकर इधर-उधर भटकता रहता है । कभी तो बवण्डर से उठी धूल के कारण जब भी दिशाएँ धूल से भर जाती हैं तो आँखों में धूल के भर जाने के कारण उसे दिशाओं का ज्ञान भी नहीं रह जाता है ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

निवासादिष्वात्मा स्वभावो यस्याः सा बुद्धिर्यस्य स ततस्ततो धावतीत्युभयत्र तावानेवार्थः । वात्या चक्रवातस्तस्यामुत्थितः पांसुस्तेन धूम्रा दिशो रजस्वले रजोव्याप्ते अक्षिणी यस्य स यथा न जानाति । तथा वात्येव भ्रमयन्ती या स्त्री तस्यामुद्भूतै रागादिभिरप्रकाशमाना दिग्देवताः कर्मसाक्षिभूता न जानातीत्यर्थः ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

निवास आदि में जिसकी बुद्धि स्वाभाविक रूप से लगी रहती है वह बणिक् समुदाय इधर-उधर भटकता रहता है । यदि उस अटवी में चक्रवात उठ जाता है तो उसकी धूल से सारी दिशाएँ भर जाती हैं और धूल से आँखों के भर जाने से उसको दिशाओं का भी ज्ञान नही रह जाता है इस भवाटवी की वात्या स्त्री ही हैं । उसमें होने वाला अनुराग ही धूल है । उसके कारण उसे कर्म के साक्षी दिग्देवताओं का भी ज्ञान नहीं रह जाता है ॥४॥

**अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा ।**
**अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधार्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥५॥**

**अन्वयः**— क्वचित् अदृश्य झिल्ली स्वनकर्णशूल उल्लुक वाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा क्षुधार्दितः अपुण्यवृक्षान् श्रयते, क्वचित् मरीचितोयानि अभिधावति ॥५॥

**अनुवाद**— कभी-कभी उसे नहीं दिखाई देने वाले झिगुरों की कर्णकटु आवाज सुनाई पड़ती हैं तो उसका चित्त उल्लुओं की आवाज से व्यथित हो जाता है । जब कभी उसको भूख लगती है तो वह निन्दित वृक्षों को ही अपना सहारा बनाता है और कभी प्यास से व्याकुल होकर वह मृगतृष्णा की ओर दौड़ता है ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

अदृश्यानां झिल्लीनां भृङ्गारिकासंज्ञानां कीटविशेषाणां स्वनैः कर्णयोः शूलो व्यथा यस्य । उलूका घूकास्तेषां वाग्भिर्व्यथितोऽन्तरात्मा मनो यस्य । अत्र च परोक्षमप्रियवक्तारो झिल्लीतुल्याः । प्रत्यक्षमप्रियवक्तारो घूकतुल्याः । येषां छायापि पापहेतुस्ते अपुण्यवृक्षास्तत्तुल्यान् अधार्मिकान्सेवते । मरीचितोयानीति निष्फलत्वेन विज्ञातानपि विषयान् ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

कभी उसको नहीं दिखायी देने वाले झिगुरों की ध्वनि से कानों में व्यथा उत्पन्न हो जाती है, तो कभी उल्लुओं की आवाज से उसकी अन्तरात्मा व्यथित हो जाती है । परोक्ष में अप्रिय बोलने (शिकायत करने वाले) ही इस भवाटवी के झिङ्गुर हैं । सामने ही अप्रिय बोलने वाले उल्लू के समान हैं, जिनकी छाया भी पाप का कारण बनती है, ऐसे अधार्मिक लोग ही अपवित्र वृक्ष के समान हैं और निष्फल रूप से ज्ञातविषय ही मृग मरीचिका हैं ।।५।।

**क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चालषते निरन्धः ।**
**आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ।।६।।**

**अन्वयः**— क्वचित् वितोयाः सरितः अभियाति, निरन्धः पस्परं च आलषते, क्वचित् दावं आसाद्य अग्नितप्तः निर्विद्यते कव च यक्षैः हृतासुः भवति ।।६।।

**अनुवाद**— कभी तो वह जलहीन नदियों की ओर जाता है और कभी अन्न नहीं मिलने पर परस्परमें एक दूसरे से भोजन प्राप्ति की इच्छा करता है । कभी दावानल में घुसकर अग्नि में झुलस जाता है और कभी यक्षगण उसके प्राणों को खिंचने लगते हैं तो वह खिन्न होने लगता है ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

वितोयासु सरित्सु पतितस्य गात्रभङ्गात्सद्यो दुःखं भवति, न चोदकलाभस्तद्वदिह च परत्र च दुःखदान्पाखण्डानभियाति। आलषते दायादादिभ्योऽन्नादि वाञ्छति । उभयत्रापि स एवार्थः । दावं दावाग्नितुल्यं दुःखदं गृहं प्राप्य शोकाग्निना तप्तो निर्विद्यते विषीदति । तत्र च यक्षराक्षसतुल्यै राजभिर्हृतमसुवत्प्रेष्ठं धनं यस्य स निर्विद्यते ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

जल हीन नदियों में गिरने से अङ्ग-भङ्ग हो जाने से कष्ट होता है किन्तु जल नहीं मिलता, उसी तरह लोक और परलोक में दुःख देने वाले पाखण्ड को अपनाता है । आलषते अर्थात् अपने दायादों से अन्न प्राप्त करना चाहता है । भवाटवी और अटवी दोनों जगह एक ही अर्थ है । दावाग्नि के समान दुःख देने वाले गृह में प्रवेश करके शोकाग्नि से संतप्त होता है । और दुःखी होता है । इस भवाटवी में यक्षों एवं राक्षसों के समान राजाओं के द्वारा प्राण के समान धन के छिन लिए जाने पर दुःखी होता है ।।६।।

**शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः शोचन्विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ।**
**क्वचिच्चा गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ।।७।।**

**अन्वयः**— शूरैः हूतस्वः क्वच निर्विण्णचेताः शोचन् विमुह्यन् उपयाति कश्मलम् क्वचित् च गन्धर्व पुरं प्रविष्टः निर्वृतवत् मुहूर्तम् प्रमोदते ।।७।।

**अनुवाद**— कभी अपने से बलवान् लोग इसका धन छिन लेते हैं तो यह दुःखी होकर यह शोक एवं मोह से अचेत हो जाता हैं और कभी गन्धर्व नगर में प्रवेश करके घड़ीभर के लिए सभी दुःख को भूलकर खुशी मानने लगता है ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

अन्यैश्च शूरैर्हृतं स्वं वित्तं यस्य । निर्विण्णं विषण्णं चेतो यस्य । कश्मलं मूर्च्छाम् । गन्धर्वपुरमिव मनोरथोपगतपितृपुत्रादिसमाजं प्रविष्टः ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

दूसरे बलवान् लोग जब इसके धन को छिन लेते हैं तो यह दु:खी हो जाता है और मूर्छित हो जाता है। गन्धर्व नगर के समान अपने मनोरथ के अनुकूल पिता-पुत्र इत्यादि के समाज में प्रविष्ट होकर खुशी मनाता है।।७।।

**चलन् क्वचित्कण्टकशर्कराङ्घ्रिर्नगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते ।**
**पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनार्दितः कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ।।८।।**

**अन्वयः**— क्वचित् नगारुरुक्षु चलन् कण्टकशर्कराङ्घ्रिः विमना इवास्ते । कौटुम्बिकः आभ्यन्तर बह्निनार्दितः पदे-पदे वै जनाय क्रुध्यति ।।८।।

**अनुवाद**— कभी पर्वत पर वह चढ़ना चाहता है तो काँटों और कङ्कड़ों से उसके पैर छिल जाते हैं और वह उदास हो जाता है । परिवार के बढ़ जाने पर और उदर पूति के साधन के नहीं होने पर वह भूख की ज्वाला से सन्तप्त होकर अपने ही बान्धवों पर क्रोध करने लगता है ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

कण्टकादिविद्धाङ्घ्रिरिव विघ्नैरभिभूतः सन्नगतुल्यं महत्कर्मारोढुं कर्तुमिच्छुर्विमना इव आस्ते । पदे पदे क्षणे क्षणे । आभ्यन्तरेण वह्निना जाठरेण ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

जिसके काण्टों से पैर छेद गये हों उसके ही समान पर्वत के समान बड़े कर्मों को करने का इच्छुक वह विघ्नों से अभिभूत होकर उदास सा हो जाता है भोजन के साधन के नहीं होने पर भूख की ज्वाला से सन्तप्त हो करके लोगों पर ही बार-बार क्रोध करता है ।।८।।

**क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो नावैति किंचिद्विपिनेऽपविद्धः ।**
**दष्टः स्म शेते क्व च दन्दशूकैरन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ।।९।।**

**अन्वयः**— क्वचित् अजगराहिना निगीर्णः विपिने अपविद्धः जनः नावैति, क्वच दन्दशकैः दष्टः अन्धः अन्धकूपे पतितः अन्धतमिस्रेः शेते स्म ।।९।।

**अनुवाद**— कभी अजगर सर्प का ग्रास बनकर वन में फेंक दिए गये मूर्दे के समान पड़ा रहता है और उसको होश नहीं रहता है जब कभी उसको विषैले जीव काट लेते हैं विष के प्रभाव से क्षुब्ध होकर किसी अन्धे कुएँ में गिर पड़ता है औरउसी में पड़ा रहता है ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

अजगराहिना निद्रारूपेण गिलितो न वेत्ति । विपिने त्यक्तः शव इव दन्दशूकैर्हिस्रैर्दुर्जनैर्दष्टः पीडितोऽन्धो लुप्तविवेकोऽन्धकूपे मोहे पतितस्तमिस्रे दुःखे शेते लीयते ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

इस भवाटवी के निद्रा रूप अजगर के द्वारा निगले गये के समान कुछ भी नहीं जानता है । वन में फेंक दिए गये शव के समान दुष्टजन रूपी हिंस्र जीवों के द्वारा पीड़ित उसका विवेक नष्ट हो जाता है मोह रूपी अन्धे कुएं में गिरकर दु:ख पूर्वक पड़ा रहता है ।।९।।

**कर्हिस्मचित्क्षुद्ररसान्विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः ।**
**तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो बलाद्विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ।।१०।।**

**अन्वयः**— कर्हिस्मचित् क्षुद्ररसान् विचिन्वन् तन्मक्षिकाभिः व्यथितः विमानः, तत्राति कृछ्रात् प्रतिलब्धमानः बलाद् विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ।।१०।।

**अनुवाद**— जब कभी वह मधु खोजने लगता है तो उसको मधुमखियाँ काटकर बेचैन कर देती हैं, यदि किसी प्रकार अनेक कठिनाइयों का सामना करके वह प्राप्त भी हो गया तो उससे दूसरे लोग बल पूर्वक छिन लेते हैं ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

क्षुद्ररसान्परयोषादीन्विचिन्वन्गवेषयंस्तन्मक्षिकाभिर्योषादिस्वामिभिर्विमानोऽवज्ञातस्ताडितः सन्व्यथितो भवति । यदि कथंचित्तत्रातिक्लेशेन प्रतिलब्धमानः प्राप्तयोषादिर्भवति तदा बलादन्येऽपहरन्ति । तान्यदाभियुङ्क्ते तदा ततोऽप्यन्ये हरन्ति ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

पर स्त्री आदि ही क्षुद्र रस है उन सबों का यदि वह अन्वेषण करता है तो उन स्त्रियों के पति आदि उसको अपमानित करते हैं ओर पीटते भी हैं । यदि किसी तरह वह उसे प्राप्त भी कर लिया तो दूसरे जो बलवान् लोग हैं वे उससे छिन लेते हैं । यदि वह उन सबों को दोषी बतलाता है, तो उससे भी भिन्न लोग उसे ले लेते हैं॥१०॥

**क्वचिच्च शीतातपवातवर्षप्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते ।**
**क्वचिन्मिथो विपणन्यच्च किंचिद्विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥११॥**

**अन्वयः**— क्वचित् च शीतातप वातवर्ष प्रतिक्रियां कर्तुम् अनीशः आस्ते, क्वचित् मिथः विपणन् यच्च वित्तशाठ्यात् उत किंचित् विद्वेषभ् ऋच्छति ॥११॥

**अनुवाद**— कभी वह ठंढी, गर्मी, वायु तथा वर्षा से अपने को बचाने में असमर्थ हो जाता है, कभी वह परस्पर में व्यापार करता है तो धन के लोभ में दूसरों को धोखा देकर वैर कर लेता है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

यत्किंचिदत्यल्पमपि मिथो व्यवहरन् क्रियादिना गृह्णन् । वित्तशाठ्याद्धनवञ्चनात् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

यदि परस्पर में वह व्यापार करता है तो धन के लोभ में दूसरों के धन के लोभ में धोखा देकर वैर मोल ले लेता है ॥११॥

**क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन् शय्यासनस्थानविहारहीनः ।**
**याचन्परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥१२॥**

**अन्वयः**— क्वचित् क्वचित् क्षीण धनस्तु तस्मिन् शय्यासन स्थान विहार हीनः, याचन् परादप्रतिलब्ध कामः पारक्दृष्टिः अवमानम् लभते ॥१२॥

**अनुवाद**— जब कभी इस संसार वन में उसका धन नष्ट हो जाता है तो वह दूसरे से याचना करता है, माँगने पर भी जब अभिलषित वस्तु नहीं मिलती है तो वह परायी वस्तु पर अनुचित दृष्टि रखने के कारण उसे अपमान मिलता है ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

शय्यादिहीनः । आस्यतेऽस्मिन्नित्यासनं कम्बलादि । स्थीयतेऽत्रेति स्थानं गृहम् । विहरन्त्रेति विहारो यानादि । याचमानोऽपि यदा परस्मादप्राप्तकामस्तदा परकीये वस्तुनि दृष्टिरभिलाषो यस्य सोऽवमानं प्राप्नोति ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

शय्या आदि से रहित वह आसन शब्द से कम्बल आदि को कहा गया है, स्थान शब्दे गृह को तथा विहार

शब्द से सवारी को कहा गया है । याचना करने पर भी जब उसको दूसरी अभिलषित वस्तु नहीं मिलती है तो वह दूसरे की वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा करता है और उसके कारण उसे अपमानित होना पड़ता है ।।१२।।

**अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्धवैरानुबन्धो विवहन्मिथश्च ।**
**अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन्विपन्नः ।।१३।।**

**अन्वयः**— अन्योन्यवित्त व्यतिषङ्गवृद्धबैरानुबन्धो विवहन् मिथश्च, अमुस्मिन् अध्वनि उरुकृच्छ्रवित वाधोपसर्गैः विहरन् विपन्नः ।।१३।।

**अनुवाद**— इस तरह व्यवहारिक सम्बन्ध के भी कारण एक दूसरे से द्वेष भाव बढ़ जाने पर भी वह वर्णिक आपस में विवाहदि सम्बन्ध स्थापित करता है और इस मार्ग में विभिन्न प्रकार के कष्ट और धनयक्ष आदि सङ्कटों के कारण मृतक के समान हो जाता है ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

एवमन्योन्यं वित्तव्यतिषङ्गेन धनविनिमयेन विवृद्धो वैरानुबन्धो यस्य तथाविधोऽपि परस्परं विवहन्विवाहादिसंबन्धं कुर्वन्नुरुभिः कृच्छ्रैः श्रमैर्वित्तबाधैरूपसर्गैश्च द्वेषादिभिर्विपन्नो मृतप्रायो भवति ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

इसी प्रकार परस्पर में धन का विनिमय करने के कारण वैर के बढ़ जाने पर भी वे वणिक् परस्पर में विवाहादि सम्बन्ध कर लेते हैं । अनेक प्रकार के कष्टों से तथा धन सम्बन्धी सङ्कटों से एवं द्वेष आदि सङ्कटों को सहते-सहते वह मृतप्राय हो जाते हैं ।।१३।।

**तांस्तान्विपन्नान्स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ।**
**आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ।।१४।।**

**अन्वयः**— सहि तात तान् विपन्ना तत्र तत्र विहाय, जातं परिगृह्य सार्थः हे वीर अद्यापि कश्चित् अत्र न आवर्तते, न अध्वनः पारम् योगभ न उपैति ।।१४।।

**अनुवाद**— साथियों में से जो जो जहाँ मर जाता है, उसको वहीं छोड़कर और नवीन उत्पन्न हुओं के साथ लेकर वह आगे बढ़ता ही जाता है, उस सङ्कट पूर्ण मार्ग को पारकर कोई भी आजतक नही लौटा है और न तो योग को अपना कर परमानन्द को ही प्राप्त करता है ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

दुरत्ययत्वमध्वनो दर्शयति । तांस्तान्विपन्नान्मृतान्विहाय जातं जातं परिगृह्य विहरन्यतः प्रस्थितस्तं प्रति नावर्तते । हे वीर, अध्वनः पारं यो योगस्तं च नोपैति । अत्र सार्थे । कश्चिदतिसमर्थोऽपि ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मार्ग की दुष्पारता को बतलाते हैं । जो जहाँ मर जाता है उसको वहीं छोड़कर और नवीन उत्पन्न हुओं को साथ लेकर वह वनजारों का समूह आगे-ही-आगे बढ़ता जाता है । उस दुष्पार मार्ग को पार करके जहाँ से प्रस्थान किया था वहाँ पर आज तक कोई अत्यन्त समर्थ भी नहीं लौटा और न परमानन्दमय मार्ग को अपनाता है ।।१४।।

**मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ।**
**मृधे शयीरन्नतु तद्व्रजन्ति यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभियाति ।।१५।।**

**अन्वयः**— निर्जित दिग्गजेन्द्राः मनस्विनः मम इति भुवि बद्धवैराः मृधे शयीरन् तु तद् न व्रजन्ति यत् न्यस्त दण्डः गतवैरः अभियाति ।।१५।।

**अनुवाद**— जिनसबों ने दिक्पालों को भी जित लिया है ऐसे बड़े-बड़े मनस्वी वीर यह कहकर कि पृथिवी मेरी है, और युद्ध करके युद्ध में मर जाते हैं, फिर वे उस भगवान् विष्णु के उस लोक को नहीं प्राप्त करते है जिसको वैरहीन परमहंस जन प्राप्त करते हैं ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह । मनस्विनः शूराः निर्जिता दिग्गजेन्द्रा यैः । ममेयं भूर्ममेयमिति भुवि निमित्तभूतायां बद्धं वैरं यैः । न्यस्तदण्डः संन्यासी यद्विष्णोः पदमभियाति तत्तु न व्रजन्ति ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

उस दुष्पारमार्ग का ही वर्णन करते हैं मनस्वी शूरवीर जिन लोगों ने दिक्पालों को भी जीत लिया है, मेरी ही यह पृथिवी है इस प्रकार से कहकर वैर के कारण इस पृथिवी पर युद्ध करके मर जाते हैं । फिर भी वे भगवान् विष्णु के उस लोक को नहीं प्राप्त करते हैं जिसको बैरहीन परमहंस जन प्राप्त कर लेते हैं ।।१५।।

**प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रयस्तदाश्रयाऽव्यक्तपदद्विजस्पृहः ।**
**क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्सख्यं विधत्ते बककङ्कगृध्रैः ।।१६।।**

**अन्वयः**— क्वापि लता भुजाश्रयः प्रसज्जति, तदाश्रय व्यक्तपदाद्विजाश्रयः क्वचित् कदाचित् हरिचक्रतः त्रसन् बककङ्कगृध्रैः सख्यंविधत्ते ।।१६।।

**अनुवाद**— इस भवाटवी में भटकने वाला यह बनिजारों का समूह कभी किसी लता की डालियों का आश्रय लेता है और उस पर रहने वाले मधुर भाषी पक्षियों के मोह में पड़ जाता है । कभी वह सिंहो के समूह से भयभीत होकर बगुला कङ्क और गृधों से मित्रता करता है ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

सिंहावलोकनेन पुनर्भवाटवीमेवानुवर्णयति । प्रसज्जत्यासक्तिं करोति । कीदृशः । लतानां भुजाः शाखास्तद्वत्सुकुमारा ये स्त्रीणां भुजास्तदाश्रयः संस्तदाश्रया अव्यक्तपदा अस्फुटाक्षराः कलभाषिणो ये द्विजाः पक्षिणस्तत्तुल्येषु स्त्रीसङ्गप्रसक्तेष्वपत्येषु स्पृहा यस्य तादृशो भूत्वा हरिचक्रं सिंहसमूहस्तत्तुल्यात्कालचक्रनिमित्ताज्जन्ममरणादेस्त्रसंस्तत्परिहाराय कैश्चित्प्रलोभितो बकादिवद्वञ्चकैः क्षुद्रैः क्रूरैश्च पाखण्डैः सह सख्यं करोति तेषु प्रविशति ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

सिंहावलोकन न्याय से भरतजी पुनः भवाटवी का ही वर्णन करते है, कभी वह लताओं की डालियों से अर्थात् लता के समान सुकुमार स्त्रियों का आश्रय लेता है । और उन पर रहने वाले मधुर भाषी पक्षियों के मोह में फँस जाता हैं अर्थात् स्त्रियों के संबन्धी मधुरभाषी सन्तानों से प्रेम करता हैं । इस प्रकार का होकर वह सिंहमण्डल के समान कालचक्र के द्वारा होने वाले जन्म और मृत्यु से भयभीत होकर उससे बचने के लिए बक आदि के समान पाखण्डियों के प्रलोभन में आकर उन सबों के साथ मित्रता करके उन सबों के ही समाज में प्रवेश कर जाता है।।१६।।

**तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविशन्नरोचयन् शीलमुपैति वानरान् ।**
**तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेन्द्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ।।१७।।**

**अन्वयः**— तैर्वञ्चितः हंसकुलं समाविशन् शीलं न रोचयन्, वानरानुपैति तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेन्द्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ।।१७।।

**अनुवाद**— उन पाखण्डियों से धोखा खाने पर वह वनजारों का समूह हंसों को समूह प्रवेश करना चाहता है किन्तु उस को उन सबों का शील अच्छा नहीं लगता है, इसलिए वह वानरों में मिलकर उनकी जाति के स्वभाव

के अनुसार दाम्पत्य सुख में रत होकर विषय भोगों के द्वारा इन्द्रियों को तृप्त करता रहता है और एक दूसरे को देखते हुए अपनी आयु को भूल जाता है ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

तैर्वञ्चितस्तत्र फलाभावं ज्ञात्वा हंसानां ब्राह्मणानां कुलं पुनः प्रविशंस्तेषां शीलं प्रायश्चित्तपूर्वकं पुनरुपनयनाद्याचारमरोचयन्नप्रियं पश्यन्वानरतुल्यान् भ्रष्टाचारान् शूद्रप्रायानुपैति । तज्जातिरासेन वानरजातिक्रीडया स्त्रिया मिथुनीभूय परस्परमुखोद्वीक्षणेन विस्मृतो जीवितावधिर्मरणकालो येन ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

वह जब पाखण्डियों से धोखा खाता है अर्थात् उसमें फल का अभाव जानकर पुनः हंस रूपी ब्राह्मणों के वंश में प्रवेश करना चाहता है, किन्तु ब्राह्मणों का जो प्रायश्चित्त पूर्वक पुनः उपनयन आदि जो आचार है उसको अच्छा नहीं लगता है अतएव वह वानरों में जाकर मिल जाता है । यहाँ पर आचर भ्रष्ट शूद्र प्रायः मनुष्य ही वानर कहे गये हैं । और वानर जाति की क्रीडा जो स्त्री के साथ मैथुन करके परस्पर में एक दूसरे के मुख देखने में ही वे अपनी आयु की सीमा को भी भूल जाते हैं ॥१७॥

**द्रुमेषु रंस्यन्सुतदारवत्सलो व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने ।**
**क्वचित्प्रमादाद्गिरिकन्दरे पतन्वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥१८॥**

**अन्वयः**— द्रुमेषुरंस्यन् सुतदारवत्सलः व्यवायदीनः स्वबन्धने विवशः क्वचित् प्रमादात् गिरिकन्दरे पतन् गजभीतः बल्लीं गृहित्वा आस्थितः ॥१८॥

**अनुवाद**— वह वृक्षों पर क्रीड़ा करते हुए स्त्री और पुत्र के स्नेह पाश में बन्ध जाता है, इसमें मैथुन की वासना इतना बढ़ जाती है कि वह विभिन्न प्रकार के दुर्व्यवहारों से दीन होकर भी अपने बन्धन को तोड़ने का साहस नहीं कर पाता है । कभी असावधानी से पर्वत की कन्दरा में जब गिरने लगता है तो उसमें रहने वाले हाथी के डर से किसी लता के सहारे लटका रहता है ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

द्रुमवत्केवलदृष्टार्थेषु गृहेषु । व्यवायदीनः सुरतेच्छया कृपणः । एवं स्वस्य यद्बन्धनं प्राप्तं तस्मिन्विवशः परिहर्तुमशक्तः। पाठान्तरे तु वने संसारे चरन्नित्यर्थः । गिरिकन्दरवदतिभयानके रोगादिदुःखे पतन्कन्दर स्थगजतुल्यान्मृत्योर्भीत सन् वल्लीतुल्यं प्राचीनं कर्मावलम्ब्यावस्थितो भवति ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

वृक्ष के समान केवल लौकिक फल प्रदान करने वाले गृहों में क्रीडा करता है । वह मैथुन के कारण दीन बना हुआ अपने गार्हस्थ्य के बन्धन को तोड़ पाने में असमर्थ हो जाता है । जहाँ पाठान्तर पाठ हैं वहाँ अर्थ होगा कि संसार में विचरण करते हुए पर्वत की कन्दरा के समान भयानक रोग आदि दुःखों में पड़कर कन्दरा में रहने वाले हाथी के तुल्य मृत्यु से भयभीत होकर लता के समान प्राचीन कर्मों को ही अपना सहारा बनाता है॥१८॥

**अत कथंचित्स विमुक्त आपदः पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिन्दम ।**
**अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो भ्रमन् जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥१९॥**

**अन्वयः**— हे अरिन्दम् ! अतः कथञ्चित् स विमुक्तआपदः पुनः सः सार्थं प्रविशति, अजया अमुष्मिन् अध्वनि निवेशितः भ्रमञ्जनः कश्चन न वेद ॥१९॥

**अनुवाद**— हे शत्रुदमन ! यदि उसे किसी प्रकार उस आपत्ति से मुक्ति मिल भी जाती है तो फिर वह अपने समुदाय में मिल जाता है । माया के द्वारा प्रेरित होकर जो मनुष्य इस मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है, वह इसी में भटकता रहता है उसे अन्त तक पता नहीं चलता है ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

सार्थं प्रविशति यथापूर्वं प्रवृत्तिमार्गे रमते । न वेद परम पुरुषार्थम् ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

यदि किसी तरह अपने इस विपत्ति से युक्त भी हो जाता तो वह पुनः जाकर अपने समुदाय में मिल जाता है और पहले के ही समान वह प्रवृत्ति मार्ग में रमण करता है ।।१९।।

**रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ।**
**असज्जितात्मा हरिसेवया शितं ज्ञानासिमादाय तरति पारं ।।२०।।**

**अन्वयः**— रहूगण त्वमपि हि संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः असज्जितात्मा हरिसेवया शितं ज्ञानासिम् आदाय अस्य अध्वनः अतिपारम् तर ।।२०।।

**अनुवाद**— रहूगण तुम भी प्रजाओं को दण्ड देना त्याग कर सबों के मित्र बन जाओ और विषयों से अपने चित्त को हटाकर श्रीहरि के चरण सेवा से तीक्ष्ण वने ज्ञान रूपी खड्ग लेकर इस दुस्तर संसार मार्ग को पार कर लो।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

त्वमपि अध्वनि निवेशित इत्यनुषङ्गः । अतोऽस्याध्वनः पारमतितर । असज्जितात्मा विषयेष्वनभिनिवेशितचित्तः सन्। हरिसेवया शितं तीक्ष्णीकृतम् ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

तुम भी इस संसारमार्ग में ही माया के द्वारा लगा दिए गये हो । अतएव इस संसार मार्ग के पार चले जाओ। विषयों से अपने चित्त को हटाकर तथा श्रीहरि की सेवा से तीक्ष्ण बनी तलवार को लेकर ।।२०।।

राजोवाच

**अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ।**
**न यद्धृषीकेशयशः कृतात्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ।।२१।।**

**अन्वयः**— अहो नृजन्म अखिलजन्म शोभनं किं जन्मभिस्त्वैरप्यमुष्मिन् ? यदधृषीकेशयशः कृतात्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः न ।।२१।।

### राजा रहूगण ने कहा

**अनुवाद**— अहो मनुष्यों का जन्म सभी योनियों में होने वाले जन्मों से सुन्दर है, अन्य लोकों में होने वाले देवादि जन्मों से कौन सा लाभ है ? जहाँ भगवान् हृषीकेश के पवित्र यश से शुद्ध अन्तःकरण आप जैसे महात्माओं का अधिकाधिक समागम नहीं होता है ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

अखिलजन्मसु शोभनं नृजन्मैव । न परं श्रेष्ठं येभ्यो देवादिजन्मभ्यस्तैरपि किम्, (अमुष्मिन् स्वर्गेऽपि जन्मभिः किम्) न किंचित् । यद्येषु जन्मसु यत्र स्वर्गे वा वो महात्मनां समागमः प्रचुरो न भवति । हृषीकेशस्य यशसा कृतः शोधित आत्मा यैस्तेषाम् ।।२१।।

**भाव प्रकाशिका**

सभी जन्मों में मनुष्य का ही जन्म सुन्दर है, जिन सबों से श्रेष्ठ दूसरे जन्मों से क्या लाभ है ? जिन जन्मों में या स्वर्ग में भी श्रीहरि के यश से पवित्रित आत्मा वाले आप जैसे महात्माओं कासमागम नहीं होता है ॥२१॥

**न ह्यद्भुतं तवच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ।**
**मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥२२॥**

**अन्वयः**— नह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभिः हतांहसः अधोक्षजे अमलाभक्तिः यस्यच मौहुर्तिकात् समागमात् मे कुतर्कमूलः अविवेकः अपहतः ॥२२॥

**अनुवाद**— आपके चरणकमलों की रज का सेवन करने से जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हों उन महानुभावों की श्रीभगवान् में निर्मल भक्ति का हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आपके एक मुहूर्त के समागम से मेरा कुतर्क मूलक अविवेक विनष्ट हो गया है ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

संततमुपासितैस्त्वत्पदाब्जरेणुभिर्हतमंहो यस्य तस्याधोक्षजे निर्मला भक्तिर्भवतीति नैवाद्भुतम् । यस्य तव मुहूर्तमात्रभवत्समागममात्रादपि दुस्तर्केण बद्धमूलोऽपि ममाविवेको नष्टः ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

निरन्तर आपके चरण कमलों की धूलि का सेवन करने से जिसके पाप विनष्ट हो गये है उन महापुरुषों की श्रीभगवान् में भक्ति हो जाती है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आपके एक मुहूर्त के समागम से ही मेरा दुस्तर्क मूलक अविवेक नष्ट हो गया ॥२२॥

**नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आबटुभ्यः ।**
**ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— महद्भ्यः नमोऽस्तु, शिशुभ्यः नमः युवभ्यः नमः आबटुभ्यः नमः, ये ब्राह्मणा अवधूत लिङ्गाः गाम् चरन्ति तेभ्यः राज्ञाम् शिवमस्तु ॥२३॥

**अनुवाद**— ब्रह्मज्ञानियों में जो वयोवृद्ध हो उनको नमस्कार है । जो शिशु हों उनको नमस्कार है, जो युवा हों उनको नमस्कार है, जो क्रीडारत बालक हों उनको नमस्कार है, जो ब्राह्मण अवधूत वेष में पृथिवी पर विचरण करते हैं, उनसे हम जैसे ऐश्वर्योन्मत्त राजाओं का कल्याण हों ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

ब्रह्मविदः केन रूपेण विचरन्तीत्ययज्ञानात्सर्वान्नमस्यति- नम इति । ये बटवः क्रीडारतत्वादश्रद्धेयधौरेयास्तानप्यभिव्याप्य सर्वेभ्यो नमः इत्यर्थः । स्वदृष्टान्तेन राज्ञां महदवज्ञां संभाव्याह-राज्ञां शिवमस्त्विति ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

ब्रह्मज्ञानी किस रूप में विचरण करते हैं, इस बात का ज्ञान नहीं होने से सबों को नमस्कार राजा रहूगण नमः इत्यादि श्लोक से करते हैं जो क्रीडारत होने के कारण सर्वाधिक अश्रद्धेय ब्रह्मज्ञानी हो उन सबों से लेकर सभी ब्रह्मज्ञानियों को नमस्कार है । अपने को ही दृष्टान्त रूप से उपन्यस्त करके कहते हैं कि राजागण जो महापुरुषों की अवज्ञा (अपमान) भी कर देते हैं, उन राजाओं का भी कल्याण हो ॥२३॥

श्रीशुक उवाच

**इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षितः सिन्धुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार ॥२४॥**

**श्रीशुकदेव जी ने कहा**

**अनुवाद**— हे उत्तरानन्दन ! इस तरह उन परम प्रभाव सम्पन्न ब्रह्मर्षि पुत्र, अपना अपमान करने वाले सिन्धु देशाधिपति रहूगण को अत्यन्त करुणा करने वाले होने के कारण आत्मतत्त्व का उपदेश दिए । उस समय रहूगण ने दीन भाव से उनके चरणों की वन्दना की । उसके पश्चात् वे परिपूर्ण सागर के समान शान्तचित्त और उपरतेन्द्रिय होकर पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

उत्तरा माता यस्य हे उत्तरामातः । विगणयतो न गणयतः । अवमन्तर्यपि परमकरुणाकरत्वेन सिन्धुपतये आत्मतत्त्वमुपदिश्य। निभृताः शान्ताः करणानामूर्मयो यस्मिन्स आशयो यस्य ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

हे उत्तरानन्दन ! यह मेरा अपमान करने वाला है, इस प्रकार से सोचे बिना ही करुणावश सिन्धु देशाधिपति राजा रहूगण को आत्मतत्त्व का उपदेश देकर शान्तचित्त और जितेन्द्रिय होकर पृथ्वी पर विचरने लगे ॥२४॥

**सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज एवं हि नृप भगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥२५॥**

**अनुवाद**— भरतजी के सत्सङ्ग से परमात्म तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके सौवीरपति रहूगण भी अविद्या के द्वारा अन्तःकरण में आरोपित देहात्मबुद्धि का परित्याग कर दिये । राजन् ! जो लोग भगवदाश्रित भक्तों की शरण ले लेते हैं उनका ऐसा ही प्रभाव होता है ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

सुजनात्तस्मात्सम्यगवगतं परमात्मसतत्त्वं येन तथाभूतः संस्तदानीमेव देहे आत्ममतिं च विससर्ज । हे नृप, भगवदाश्रितो भरतस्तदाश्रितो रहूगणो यस्तस्यानुभावः सद्यो देहाहंकारत्यागः ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

सत्पुरुष श्रीभरतजी से परमात्म तत्त्व को अच्छी तरह से जानकर राजा रहूगण वैसा ही बन गये । उसी समय उन्होंने देहात्मबुद्धि का परित्याग कर दिया । राजन् भरतजी भगवदाश्रित थे और राजा रहूगण उनके आश्रित हो गये उनकी ऐसी महिमा हुई कि उन्होंने देहाहङ्कार का परित्याग कर दिया ॥२५॥

राजोवाच

**यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति॥२६॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

**राजाओं ने कहा**

**अनुवाद**— महाभागवत मुनिश्रेष्ठ आप परम विद्वान हैं । अपने परोक्ष रूप से जीवों के जिस संसार रूप

मार्ग का वर्णन किया है उसकी कल्पना विवेकी पुरुषों की ही बुद्धि ने की है, मन्द बुद्धि वाले पुरुषों के समझ में वह बात नहीं आ सकती है, अतएव आप इस दुर्बोध विषय को स्पष्ट रूप से समझाने की कृपा करें ॥२६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।**

**भावार्थ दीपिका**

परोक्षेण वणिक्सार्थरूपकेण । आर्याणां विवेकिनां मनीषयैव दस्युस्थानीयानीन्द्रियाणि गोमायुस्थानीयान्यपत्यादीनीत्येवं कल्पितविषयः । अव्युत्पन्नस्य तु लोकस्य जनस्य सम्यगधिगमो न भवति । अथ अतस्तदेतदेव भवाध्वरूपं समवेतानुकल्पेन प्रस्तुते तत्तदनुरूपार्थोपकल्पनेन ।।२६।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकांटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।**

**भाव प्रकाशिका**

परोक्ष अर्थात् बणिक् समुदाय रूपक के माध्यम से । आर्य शब्द से विवेकी पुरुषों को कहा गया है । उनकी ही बुद्धि से दस्यु स्थानीय छह इन्द्रियों को गीदड़ स्थानी पुत्रों आदि की कल्पना की गयी है । इसको अज्ञानी पुरुष तो बिल्कुल नहीं समझ सकता है । अतएव उस संसार मार्ग का आप समवेतानुकल्प (दार्ष्टान्तिक वाचक शब्द) के द्वारा वर्णित विषय को स्पष्ट रूप से बतलायें ॥२६॥

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१३।।**

# चौदहवाँ अध्याय

## भवाटवी का स्पष्टीकरण

सहोवाच

**य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरम् भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्ततापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते॥१॥**

**अनुवाद**—राजन् ! देहाभिमानी जीवों के द्वारा सत्त्वादि गुणों के भेद से शुभ, अशुभ तथा मिश्र तीन प्रकार के कर्म होते हैं । उन कर्मों के द्वारा ही निर्मित विविध शरीरों के साथ होने वाले संयोग और विप्रयोग इत्यादि रूप से अनादि संसार जीव को प्राप्त होता है । उस संसारानुभव के छह द्वार हैं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आर एक मन। उन सबों के अधीन होकर यह जीव समूह मार्ग भूलकर भयङ्कर वन में भटकने वाले धन के लोभी वणिकों के समान सम्पूर्ण जगत् के नियामक भगवान् विष्णु के अधीन रहने वाली माया के द्वारा प्रेरित होकर घोर जङ्गल में पड़कर संसार वन में पहुँच जाता है । यह शमशान के समान अत्यन्त अशुभ है । इसमें भटकने वाले जीव को अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोगना पड़ता है । यहाँ पर होने वाले अनेक विघ्नों के कारण उसके अपने व्यापार में सफलता नहीं मिलती है।

फिर भी अपने श्रम को शान्त करने वाले श्रीहरि एवं गुरु के चरणारबिन्द मकरन्द मधु के रसिक भक्त-भ्रमरों के मार्ग का अनुसरण नहीं करता है । इस संसार वन में छह इन्द्रियाँ ही कर्मों की दृष्टि से लुटेरे हैं॥१॥

## भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे भवारण्यरूपकव्याकृतिः कृता । प्रस्तुते तस्य गोमायुमशकाद्यर्थकल्पनम् ॥१॥ यः परीक्षिता पृष्टः स श्रीशुक उवाच हेति सूतोक्तिः । दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशित इति यदुक्तं तदेव निवेशनप्रकारकथनेन प्रपञ्चयति । य एष प्रसिद्धो जीवलोकोऽयं विष्णोर्मायया‍ऽसुगमेऽध्वन्यापतितो भवाटवीं गतः सन् हरिरूपस्य गुरोश्चरणारविन्दे ये मधुकराः सेवकास्तेषामनुपदवीं तैरनुष्ठितं भक्तिमार्गमद्यापि नावरुन्धे न संप्राप्नोतीत्यन्वयः । मायायाः स्वकार्यद्वारेण संसारमार्गे पातहेतुत्वमाह । देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषैर्विकल्पितानि विभक्तानि यानि कुशलाकुशलविमिश्रकर्माणि तैर्विनिर्मिताभिर्विविधदेहावलिभिर्वि-योगसंयोगादिर्योऽनादिः संसारस्तदनुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्संसाररूपे दुर्गमार्गवदसुगमेऽध्वन्यापतितो यथा वणिजां सार्थः समूहोऽर्थार्जनपरः । स्वदेहनिष्पादितानां कर्मणां फलद्वारेणानुभवो यस्य । विफलाश्च बहुप्रतियोगा वहुविघ्नाश्च ईहाश्चेष्टा यस्य सः, तस्यां संसाराटव्यां ये तापास्तेषामुपशमनीं नाशनीम् । यस्यामित्यादि व्याचष्टे । यस्यां भवाटव्याम् ॥१॥

## भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय में भवाटवी रूपक की व्याख्या की गयी है । प्रस्तुत में शृगाल तथा मच्छर इत्यादि की कल्पना की गयी है । राजा परीक्षित् के द्वारा पूछे जाने पर श्रीशुकदेवजी ने कहा यह सूतजी की उक्ति है । इससे पहले के अध्याय में यह जो कहा गया है कि दुष्पारमार्ग में माया के द्वारा जीव को प्रवेश करा दिया गया । उसको प्रवेश कराने के प्रकार का विस्तार से वर्णन करते हैं । यह प्रसिद्ध जीव लोक भगवान् विष्णु की माया के द्वारा दुर्गम मार्ग में डाल दिए जाने के कारण भवाटवी में प्रवेश कर गया । उसके कारण श्रीहरि रूप श्रीगुरु के चरणारविन्द के सेवकों द्वारा अनुष्ठित भक्ति मार्ग को आज तक नहीं प्राप्त कर पाता है । अपने कार्य के द्वारा संसारमार्ग में पड़ने का कारण माया ही है इस बात को बतलाते हैं; देहाभिमानी जीव सत्त्वादि तीन गुणों के भेद से तीन प्रकार के कर्मों को करते है, शुभ, अशुभ और मिश्र । उन कर्मों के द्वारा रचित अनेक प्रकार के देहों से होने वाले संयोग और वियोग रूप जो अनादि संसार है उसके अनुभव द्वार भूत छह इन्द्रियों के द्वारा दुर्गम मार्ग के समान संसार रूप दुष्पार मार्ग में भटकने वाले अर्थार्जन परायण व्यापारियों के समूह के समान है । अपने कर्म के द्वारा रचित देह के द्वारा कर्मों के फल का अनुभव करने वाले व्यापारियों का व्यापार अनेक विघ्नों के कारण विफल होने पर भी वे संसार के संताप को शान्त करने वाले श्रीगुरु की शरणागति नहीं करते हैं और इस भवाटवी में भटकते रहते हैं॥१॥

**तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किंचिद्धर्मौपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु सांपराय उदाहरन्ति तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसंकल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुम्पन्ति ॥२॥**

**अनुवाद**— पुरुष बहुत कष्ट उठाकर जिस धन को कामाता है उसका उपयोग धर्म में होना चाहिए । वही धन यदि साक्षात् परम पुरुष भगवान् की आराधना में उपयुक्त होता है तो उसको परलोक में निःश्रेयस् रूप बतलाया गया है । किन्तु जो मनुष्य बुद्धिरूप सारथि विवेकहीन होता है और उसका मन वश में नहीं होता है तो उसके उस धर्मोपयोगी धन को ये मन और छह इन्द्रियाँ देखने, स्पर्श करने, सुनने, स्वाद लेने, सूंघने, सङ्कल्प विकल्प करने और निश्चय करने रूप गृहस्थोचित विषयभोगों में फँसाकर उसी तरह लूट लेते हैं जिस तरह वेइमान मुखिया का अनुगमन करने वाले असावधान व्यापारियों के दल का धन चोर लूट लेते हैं ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

दस्युतुल्यं तेषां कर्म दर्शयति-तद्यथेति । धर्मौपयिकं धर्मकारणम् । तमेव स्वाभिप्रेतं धर्ममाह-साक्षादिति । तं तु सांपराये परलोकार्थमुदाहरन्ति । तद्धर्म्यं धर्मार्हं धनम् । दर्शनाद्याः पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणां वृत्तयः; सङ्कल्पव्यवसायावन्तःकरणस्य, एतैर्गृहे यो ग्राम्य उपभोगस्तेन कुनाथस्य कुबुद्धेरजितात्मनो विलुम्पन्ति यथा चोराः कुपालकस्यानवहितात्मनः सार्थस्य धनं हरन्ति तद्वत् ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

श्रीशुकदेवजी उन इन्द्रियों के कर्म को लुटेरों के कर्म के समान बतलाते हैं । धर्मौपयिकम् का अर्थ है धर्म के साधन । यदि वह धर्म परमात्माराधन रूप हुआ तो वह परलोक में निःश्रेयस का साधन होता है यह पण्डित जनों का कहना है । धर्म्यम् अर्थात् धर्म के योग्य धन । विवेकहीन बुद्धिवाले तथा जिसका मन वश में नहीं है ऐसे व्यक्ति के उस धन को ये छहो इन्द्रियाँ दर्शन आदि गृहस्थोचित विषय भोगों में व्यय करा देती है । दर्शन आदि पाँच वृत्तियाँ पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के है और सङ्कल्प तथा निश्चय अन्तःकरण की वृत्तियाँ हैं । जिस तरह दुष्ट मुखिया वाले व्यापारियों के धन को डकैत लूट लेते हैं उसी तरह विवेक हीन बुद्धि वाले मनुष्य के धन को ये इन्द्रिय रूप लुटेरे लूट लेते हैं ।।२।।

**अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरन्ति ।।३।।**

**अनुवाद**— यही नहीं उस संसार वन में रहने वाले उसके परिवार वाले भी जो कहने के लिए तो स्त्री पुत्र आदि हैं । किन्तु इन सबों के कर्म भेड़िये और गीदड़ों के समान हैं । उस अर्थ लोलुप कुटुम्बी के धन को उसकी इच्छा नहीं रहने पर भी उसके देखते-ही-देखते उसी तरह छिन लेते हैं जैसे भेड़िया भेड़ों के झुण्ड में घुसकर भेंड को उठा ले जाते हैं ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

गोमायवो यत्रेत्येतद्याचष्टे । अथ चेत्यर्थान्तरोपन्यासे । कर्मणा ते तु वृकाः सृगालाश्च । कदर्यस्यातिलुब्धस्य ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी ने पत्नी पुत्र आदि को भेड़ियों और सियार के समान बतलाया है । अथ च से अर्थान्तर को बतलाया है । उन्होंने कहा है कि स्त्री पुत्रादि का कर्म भेड़िये और सियार के समान है । गृहस्थ को कदर्य अर्थात् अर्थ लोलुप कहा है अर्थात् धन कमाने में ही लगे रहने वाला कहा है ।।३।।

**यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवत्येवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्र यस्मिन्नहि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयं कामकरण्ड एष आवसथः ।।४।।**

**अनुवाद**— जिस तरह प्रतिवर्ष किसी खेत के बीज को अग्नि से यदि नहीं जला दिया जाय तो प्रतिवर्ष जोतने पर भी बीज बोने का समय आने पर वह खेत झाड़ झंखाड़ से भर जाता है उसी तरह इह गृहस्थाश्रम कर्म क्षेत्र है । इसमें कर्मों का पूर्णतया नाश कभी नहीं होता है, क्योंकि यह घर कामनाओं की पिटारी है ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरमित्येतद्व्याचष्टे- यथा हीति । न दग्धानि बीजानि यस्मिन् । यद्यस्माद्योऽयमावसथ आश्रम एष कामानां करण्डः । यथा कर्पूरभाजने कर्पूरक्षयेऽपि परिमलो न क्षीयते एवमत्र वासनानामक्षीणत्वान्न कर्माण्युत्सीदन्तीत्यर्थः ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में **प्रभूतवीतृणगुल्मगहवरम्** पद की व्याख्या यथा इत्यादि से करते हैं यदि खेतों के बीज को प्रतिवर्ष नहीं जला दिया जाय तो वे फिर जम जाते हैं और खेत झाड़-झंखाड़ से भर जाता है। यह गृहस्थाश्रम कामनाओं की मञ्जूषा है। जिसतरह कपूर का पात्र कर्पूर से खाली हो जाने पर उसमें कपूर की गन्ध बनी रहती है, उसी तरह गृहस्थाश्रम में वासना के विनष्ट नहीं होने से कर्मों का पूर्णतया नाश नहीं होता है ॥४॥

**तत्र गतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिः प्राणः क्वचित्परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसाऽनुपपनार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥५॥**

**अनुवाद**— उस गृहस्थाश्रम में आसक्त हुए व्यक्ति के धन रूपी बाहरी प्राण को दंश और मच्छरों के समान नीच पुरुषों से तथा टिड्डी, पक्षी, चोर और चूहे आदि से क्षति होती रहती है। कभी इस मार्ग से भटकते हुए अविद्या कामना और कर्मों से कलुषित चित्त से दृष्टि दोष के कारण इस मर्त्यलोक को जो गन्धर्व नगर के समान मिथ्या है उसे सत्य समझने लगता है ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

दंशमशकतुल्यैरपसदैर्नीचैः शलभादिभिश्चोपरुध्यमानः पीड्यमानो बहिःप्राणो वित्तं यस्य तथाविधोऽप्यस्मिन्नध्वनि परिभ्रमन्नविद्यादिभिरुपरक्तेन मनसा गन्धर्वपुरतुल्यमघटमानं नरलोकं सत्यतया मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

दंश और मच्छर के समान नीच पुरुषों के द्वारा तथा टिड्डी आदि के द्वारा पीड़ित होता हुआ जिसका धन ही बाहरी प्राण है वह इस संसार मार्ग में भटकता हुआ अविद्या आदि से कलुषित मन से गन्धर्व नगर के समान असम्भव मनुष्य लोक को सत्य समझने लगता है ॥५॥

**तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान्विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥६॥**

**अनुवाद**— पुनः वह खान-पान और स्त्री प्रसङ्ग आदि व्यसनों में फँसकर मृणतृष्णा के समान मिथ्या विषयों की ओर दौड़ने लगता है ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

प्रपश्यतीति प्रशब्दसूचितमर्थान्तर दर्शयति। तत्र च गन्धर्वपुरे क्वचिदातपोदकं मृगतृष्णाजलं तत्तुल्यान्विषयानुपधावतीति॥६॥

### भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय के तीसरे श्लोकस्थ प्रपश्यति शब्द के प्रशब्द के द्वारा सूचित् अर्थान्तर को बतलाते हैं। उस गन्धर्व नगर में कहीं पर आतपोदक (मृग तृष्णा) के जल के समान विषयों को प्राप्त करना चाहता है ॥६॥

**क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥७॥**

**अनुवाद**— कभी बुद्धि के रजोगुण से प्रभावित होने पर सम्पूर्ण अनर्थों के मूल अग्नि के मल रूप सुवर्ण को ही सुख का साधन समझकर उसको प्राप्त करने के लिए लालायित होकर ऐसे प्रयास करने लगता है जैसे वन में जाड़े से ठिठुरता हुआ पुरुष अग्नि के लिए व्याकुल होकर उल्मुक पिशाच (अगिया वेताल) की ओर उसे आग समझकर दौड़ता है ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

क्वचित्क्वचिच्चशुरयोल्मुकग्रहमित्येतद्व्याचष्टे । क्वचिच्चाशेषाणां दोषाणां निषदनं स्थानं पुरीषविशेषमग्नेर्विष्ठा तस्य पुरीषस्येव लोहितो वर्णो यस्य रजोगुणस्य तेन निर्मिता तद्विषया मतिर्यस्य स सुवर्णमुपादातुमिच्छति । अग्निकामेन कातरः परवश उल्मुकसदृशं पिशाचमिव । शीतातुरो ह्यरण्येऽग्निवज्जाज्वल्यमानं ततस्ततो धावन्तमुल्मुकपिशाचमग्निबुद्ध्याऽनुधावति- नतु तं प्राप्नोति कथंचित्प्राप्तश्चेत्तर्हि तेन भक्षितः सन् म्रियते । एवं सुवर्णमनुधावन्नपीत्यर्थः ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय के **क्वचित्क्वचिदुल्मुक ग्रहम्० इत्यादि** श्लोक की व्याख्या करते हैं कभी-कभी वह सभी दोषों के आश्रय, अग्नि के मल के समान रक्तवर्ण वाले, रजोगुण से युक्त बुद्धि वाला होकर वह सुवर्ण को प्राप्त करना चाहता है । अग्नि की कामना से कातर बना हुआ वह उल्मुक (अगियावे ताल) के समान पिशाच के समान वह सर्दी से व्याकुल व्यक्ति जैसे वन में चमकने वाले इधर-उधर दौड़ता हुआ जैसे अगिया वेताल को अग्नि समझकर उसके पीछे दौड़ता रहता है उसको प्राप्त नहीं कर पाता है, यदि वह मिल भी जाय तो उसके द्वारा खाया जाकर मर जाता है । इसी तरह सुवर्ण के पीछे पागल रहने वाला व्यक्ति भी वह मर जाता है ।।७।।

**अथ कदाचिन्निवासपानी यद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति।।८।।**

**अनुवाद**— कभी वह इस शरीर को जीवित रखने वाले घर, अन्न, जल और धन आदि में अभिनिवेश करके इस संसार वन में इधर-उधर दौड़ता रहता है ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

निवासतोयद्रविणेत्येतद्व्याचष्टे-अथेति निवासादिष्वनेकेष्वात्मन उपजीव्येष्वभिनिवेशो यस्य ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

**निवासतोय० इत्यादि** श्लोक की व्याख्या करते हुए शुकदेवजी कहते हैं— आत्मा के उपजीव्य भूत निवास आदि अनेक वस्तुओं में अभिनिवेश होने के कारण वह इधर-उधर दौड़ता रहता है ।।८।।

**क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयारोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूता इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोऽपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ।।९।।**

**अनुवाद**— कभी बवण्डर के समान कोई भी स्त्री उसको अपनी गोद में बैठा लेती है । तो तत्काल वह रागान्ध सा होकर सत्पुरुषों की मर्यादा का विचार भी नहीं करता है । उस रजोगुण की धूल आँखों में भर जाने के कारण उसकी बुद्धि इतनी मलिन हो जाती है कि वह दिग्देवताओं को भी भूल जाता है ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

क्वचिच्च वात्योत्थितेत्येतद्व्याचष्टे-क्वचिच्चेति । आरोहमङ्कम् । तस्मिन्काले यद्रजो रागस्तेन स्वदृष्ट्यावरकेण रजन्यां रात्रौ भूता इव । ह्रस्वपाठे रजनीभूतस्तमोमय इवातीव रजसा छन्नमतिरत एव रजोव्याप्तचक्षुरिव दिक्षु स्थिता मर्यादातिक्रमसाक्षिभूता देवता न जानाति ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

क्वचिच्चवात्योत्थित इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हुए शुकदेवजी कहते हैं,की स्त्री ही वात्या के समान है । उसकी गोद में बैठ जाने पर उसमें जो राग उत्पन्न होता है वही उसकी दृष्टि को ढंक देता है । वह दिन में रात्रि जैसा समझने लगता है । ह्रस्वपाठ भेद होने पर अर्थ होगा । अन्धकारमय के ही समान रजोगुण से उसकी

बुद्धि ढँक जाती है । जैसे— उसके नेत्रों में धूल भर गयी हो मर्यादातिक्रमण रूप कर्म के साक्षी भूत दिग्देवताओं का भी ख्याल नहीं रखता है ।।९।।

**क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वपराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति।।१०।।**

**अनुवाद**— कभी-कभी अपने आप विषयों के मिथ्यत्व को जान लेने पर भी वह अनादि काल से रहने वाली देहात्मबुद्धि वाला वह विवेक के नष्ट हो जाने से मरुमरीचिका के समान विषयों की ओर पुनः दौड़ने लगता है ।।१०।।

### भावार्थ दीपिका

अनुपादेयमेवोपादेयतया गृह्णातीति प्रक्रमसाजात्यादुत्तरश्लोकचतुर्थपादं प्रथमं व्याचष्टे- क्वचित्सकृदिति । क्वचिदातपोदकनिभानित्यत्र मिथ्याविषयेषु लम्पटत्वमुक्तम् । निवासतोयेत्यत्र तदर्जनप्रयास उक्तः । अत्र तु बाधितेष्वपि पुनः प्रवृत्तिरुच्यत इत्यपौनरुक्त्यम् । स्वयमेव सकृदवगतं विषयाणां वैतथ्यं विफलत्वं येन । पराभिध्यानेन देहाभिनिवेशेन विभ्रंशिता स्मृतिर्यस्य । तयैव विभ्रंशितया स्मृत्या स्मृतिभ्रंशादेवेत्यर्थः ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

अनुपादेय वस्तुओं को ही वह उपादेय रूप से जानने लगता है । एक समान होने के कारण तेरहवें अध्याय के पाँचवें श्लोक के चौथे पाद की व्याख्या करते हैं । कभी मृगमरीचिका के जल के समान मिथ्या विषयों का ही प्रेम बन जाता है । निवास जल इत्यादि के द्वारा इन सबों को अर्जित करने में होने वाले प्रयास को कहा गया है । यहाँ पर बाधित विषयों में ही पुनः होने वाली प्रवृत्ति का वर्णन किए जाने के कारण पुनरुक्ति दोष नहीं है। कभी अपने आप ही विषयों की व्यर्थता का ज्ञान होने पर भी परमात्म सङ्कल्प के कारण देहाभिमान के होने से उसकी वह बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । और उसी के कारण उसकी स्मृति का भी भ्रंश हो जाता है ।।१०।।

**क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ।।११।।**

**अनुवाद**— कभी प्रत्यक्ष शब्द करने वाले उल्लुओं के समान शत्रुओं की और परोक्ष रूप से बोलने वाले झिगुरों के समान राजा के अतिकठोर हृदय को दहला देने वाली डाँट के कारण उसके कानों और हृदय में व्यथा हो जाती हैं ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

अदृश्यझिल्लीस्वनेत्येतद्याचष्टे-क्वचिदुलूकेति । अतिपरुषो रभस उत्साहस्तेनाटोपः संभ्रमो यथा भवत्येवं रिपूणां राजकुलस्य च निर्भर्त्सितेनातिव्यथितं कर्णमूलं हृदयं च यस्य ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

अदृश्य झिल्ली स्वन इत्यादि तेरहवें श्लोक की व्याख्या करते हैं- अत्यन्त परुष तथा उत्साह पूर्ण शत्रुओं और राजा की भयानक डाँट डपट की बातों को सुनकर उसके कान और हृदय व्यथित होने लगते हैं ।।११।।

**स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान् जीवन्मृतान्स्वयं जीवन्म्रियमाण उपधावति ।।१२।।**

**अनुवाद**— पूर्व जन्म के पुण्य के समाप्त हो जाने के कारण जीवित भी मूर्दे के समान हो जाता है । और वह उन कृपण पुरुषोंका आश्रयण कर लेता है जो कारस्कर और काकतुण्ड आदि विषैले फल वाले वृक्षों और ऐसी लताओं के समान है तथा उनका धन न तो लोक में काम आता है और न परलोक में काम आता है ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

अपुण्यवृक्षानित्येतद्याचष्टे-स यदेति । दुग्धमुपभुक्तं पूर्वसुकृतं येन । तदा कारस्करो विषतिन्दुस्तत्प्रमुखा येऽपुण्यद्रुमास्तथाविधा लताश्च विषोदपानाश्च विषकूपास्तत्तुल्यान् दृष्टादृष्टप्रयोजनशून्यधनान् ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

तेरहवें अध्याय के अपुण्य वृक्षान् इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं। पूर्व पुण्यों के समाप्त हो जने पर वह विपन्न हो जाता है और जो विषतिन्दुक इत्यादि अपवित्र वृक्षों तथा वैसी लताओ और कुओं के समान उन कृपणों का आश्रय ग्रहण कर लेता है जिनका धन लौकिक पारलौकिक प्रयोजनों से रहित होता है ॥१२॥

**एकदाऽसत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्त्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥१३॥**

**अनुवाद**— कभी असत् पुरुषों की सङ्गति से बुद्धि के विकृत हो जाने के कारण सूखी नदी में गिरकर दुःखी होने के समान लोक तथा परलोक में दुःख देने वाले पाखण्डों में फँस जाता है ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

क्वचिद्वितोयाः सरित इत्येतद्याचष्टे । एकदा क्वचिदसतां प्रसङ्गान्निकृता वञ्चिता मतिर्यस्य सः । निरुदकनदीगर्तपाते यथा सद्यः शिरः स्फुटति पश्चादपि तद्वेदनानुवर्तते एवमिह परत्र च दुःखदम् ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

तेरहवें अध्याय के **क्वचिद्वितोय० इत्यादि** श्लोक की व्याख्या करते है। कभी असत्पुरुषों की सङ्गति से बुद्धि के दूषित हो जाने पर सूखी नदी के गढे में गिरने पर शिर फूटने के समान दुःख देने वाले पाखण्ड में वह प्रवेश कर जाता है ॥१३॥

**यदा तु परबाधयान्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान्वा स खलु भक्षयति॥१४॥**

**अनुवाद**— दूसरों को सताने से उसे अन्न भी नहीं मिलता है तो वह पिता या पुत्रों के पास यदि एक तृण भी देखता है तो वह उन सबों को मानो खा जाना चाहता है ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

परस्परं चालषते निरन्ध इत्येतद्याचष्टे- यदा त्विति । अन्धोऽन्नं नोपनमति नोपतिष्ठति । पितृपुत्राणां बर्हिः कुशस्तद्वतः। पितुः पुत्राणां वा कुशादितृणमात्रमपि येषु पश्यति तान्भक्षयति बाधत इत्यर्थः । पितृपुत्रबर्हिष्ठानिति तु पाठः सुगमः ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

परस्परं चालषते निरन्धः इस श्लोक की व्याख्या करते हैं। जब उसको अन्न नहीं मिलता है तो वह अपने पिता या पुत्र के पास यदि तृण मात्र भी वस्तु देखता है तो मानो वह उन सबों को खा जाना चाहता है। पितृपुत्रबर्हिष्ठान् यह पाठ भेद सुगम हैं ॥१४॥

**क्वचिदासाद्य गृह दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥१५॥**

**अनुवाद**— कभी दावाग्नि के समान प्रिय विषयों से रहित एवं दुःखद परिणाम वाले घर में जाता है तो वहाँ प्रियजनों के वियोग आदिसे वह शोकाग्नि से जलने लगता है और दुःखी होकर खिन्न हो जाता है ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

असाद्य दावमित्येतद्याचष्टे-क्वचिदासाद्येति ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

आसाद्य दावम् इत्यादि श्लोक व्याख्या क्वचिदासाद्य इत्यादि से करते हैं ॥१५॥

**क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसापहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥१६॥**

**अनुवाद**— कभी काल के समान भयङ्कर राजकुल इसके प्राणप्रिय धन को छिन लेता है तो यह मरे हुए के समान हो जाता है । शूरै हृतस्वः की भी व्याख्या हो गयी ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

क्व च यक्षैर्हृतासुरित्येतद्व्याचष्टे । क्वचित्कालेन विषमितं प्रतिकूलतां नीतं यद्राजकुलं तदेव रक्षस्तेनापहृताः प्रियतमधनरूपा असबो यस्य । विगतानि जीवलक्षणानि हर्षादीनि यस्य । शूरैर्हृतस्व इत्यप्यनेनैव व्याख्यातम् ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

**क्व च यक्षैर्हृतासुः इत्यादि** श्लोक की व्याख्या करते है समय के कारण प्रतिकूल बने राजकुल रूपी राक्षस से प्राणों के समान प्रियतम धन के हरलिए जाने पर वह मरे के समान हो जाता है ॥१६॥

**कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥१७॥**

**अनुवाद**— कभी मनोरथ के पदार्थों के समान अत्यन्त असत् पिता पितामह आदि सबन्धों को सत्य समक्षकर उनके सहवास से क्षणिक सुख का अनुभव करता है ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रविष्ट इत्येतद्व्याचष्टे । कदाचिन्मनोरथप्राप्तं पित्राद्यसदेव सदिति मत्वा पूर्वं गन्धर्वपुरवदघटमान-दर्शनमुक्तमिदानीं तन्निमित्तसुखासक्तिरुच्यत इति भेदः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

क्वचिच्च गन्धर्व पुरं प्रविष्ट इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं कभी मनोरथ प्राप्त पदार्थ के समान असत् पितृपिताह सत् मानकर उसकी पहले व्याख्या की गयी है, इस समय असत् पितृपितामह की आसक्ति से सुख की प्राप्ति कही जा रही है । अतएव दोनों में अन्त हैं ॥१७॥

**क्वचिद्गृहाश्रमकर्मचोदनातिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्शितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥१८॥**

**अनुवाद**— गृहस्थाश्रम के लिए विहित कर्मों का अनुष्ठान पर्वत की चढ़ाई के समान कठिन है । लोगों को उस ओर प्रवृत देखकर स्वयं भी उसको पूरा करना चांहता है तो तब वह विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों के कारण काण्टों और कङ्कड़ों से भरी भूमि में पहुँचे हुए व्यक्ति के समान दुःखी होता है ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

चलन् क्वचिदित्येतद्व्याचष्टे । क्वचिद्गृहाश्रमे याः कर्मचोदनास्तासामतिभरोऽतिविस्तारः स एव गिरिस्तमारुरुक्षंस्तदन्तं गन्तुमिच्छन् ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

गृहाश्रम के लिए विहित विस्तृत कर्मों का पालन पर्वत की चढ़ाई के समान कठिन उसका पालन करने वाला वह कठिनाई के कारण काँटों और कङ्कड़ों से भरी भूमि में पहुँचे हुए पुरुष के समान दुःखी होता है ॥१८॥

**क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥१९॥**

**अनुवाद**— कभी भूख की असह्य ज्वाला से घबराकर कुटुम्ब के लोगों पर ही क्रोध करता है ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनेति व्याचष्टे-क्वचिच्च दुःसहेनेति ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

पदे-पदेऽभ्यन्तर बह्निना श्लोक की व्याख्या क्वचिच्च दुःसहेन इस दण्डक से करते हैं ।।१९।।

**स एव पुनर्निद्राजगरगृहीतोऽन्धे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत्किंचन वेद शव इवापविद्धः।।२०।।**

**अनुवाद**— जब वह निद्रारूपी अजगर के मुख में फँस जाता है तो वह अज्ञान रूप घोर अन्धकार में डूबकर सूने वन में फेंके गये मूर्दे के समान पड़ा रहता है । उस समय उसको किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रहता है।२०।।

### भावार्थ दीपिका

क्वचिन्निगीर्ण इत्येतद्व्याचष्टे स एवेति ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

क्वचिन्निगीर्ण इत्यादि श्लोक की व्याख्या स एव इत्यादि से किए है ।।२०।।

**कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्ध-कूपेऽन्धवत्पततिच ।।२१।।**

**अनुवाद**— कभी काटने वाले दुर्जन रूप जीव इतना तिरस्कार करते हैं कि इसका गर्व रूप दाँत, जिनसे यह दूसरों को दुःख देता था, टूट जाते हैं । तब इसको अशान्ति के कारण नींद भी नहीं आती है और मर्म वेदना के कारण प्रतिक्षण विवेक शक्ति क्षीण होने से अन्त में यह अन्धे के समान नरक रूप कुँए में गिर जाता है ।।२१।।

### भावार्थ दीपिका

दष्टः स्म शेते इति व्याचष्टे-कदाचिदिति । मानो गर्व एव दंष्ट्रा परपीडाकरत्वात्, भग्ना मानदंष्ट्रा यस्य । अतएव न लब्धो निद्रारयाः क्षणोऽपि येन ।।२१।।

### भाव प्रकाशिका

**कदाचित इत्यादि** इस दण्डक से **दष्टः स्मशेते इत्यादि** श्लोक की व्याख्या करते हैं । दूसरों को पीड़ित करने वाला गर्व रूपी दाँत उसका तब टूट जाता है जब दूर्जन उसका अत्यन्त तिरस्कार करते हैं । उसके कारण उसको रात्रि में नींद भी नहीं आती है ।।२१।।

**कर्हिस्मचित्काममधुलवान्विचिन्वन्यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ।।२२।।**

**अनुवाद**— जब वह विषय रूप मधुकणों को ढूढते हुए किसी प्रकार पर स्त्री या परधन को ले लेना चाहता है, तब वह उसके स्वामी या राजा के हाथों मारा जाता है । और जाकर निस्सीम विस्तृत नरक में गिर पड़ता है ।।२२।।

### भावार्थ दीपिका

कर्हिस्मचित्क्षुद्ररसानित्येतद्या चिष्टे— कर्हिस्मचित्काममधुलवानिति । यदा निहतो भवति तदासद्य एव निरये पतति।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

कर्हिचित्क्षुदरसान् इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं कभी काम रूप मधु के बाणों को प्राप्त करने के प्रयास में जब मारा जाता तो वह शीघ्र नरक में गिर पड़ता है ।।२२।।

**अथ च तस्मादुभयथापि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥२३॥**

**अनुवाद**— इसी से कहते हैं कि प्रवृत्ति मार्ग में रहकर किए हुए लौकिक वैदिक दोनों प्रकार के कर्म जीव को संसार की ही प्राप्ति कराते हैं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्प्रवृत्तस्य कर्मणः संसारहेतुत्वं स्फुटयति-अथ चेति । यस्मादेवं तस्मात् । अथ अनन्तरमेव । उभयथा इह च परत्र च । अस्मिन् प्रवृत्तिमार्गे । संसारस्यावपनं जन्मक्षेत्रं कर्मोदाहरन्ति ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् किए जाने वाले कर्मों के संसार हेतुत्व का वर्णन करते हुए चूकि ऐसी बात है अतएव इस प्रवृत्ति मार्ग में रहकर किए गये लौकिक एवं वैदिक दोनों प्रकार के कर्म संसार की प्राप्ति कराते हैं ॥२३॥

**मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥२४॥**

**अनुवाद**— यदि राजा आदि के बन्धन से मुक्त भी हो गये तो अन्याय पूर्वक अपहृत स्त्री आदि को देव्रदत नामक दूसरा व्यक्ति ले लेता है औरउससे विष्णु मित्र नामक तीसरा व्यक्ति लेता है । इस तरह भोग एक से दूसरे के पास जाते रहते हैं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमान इत्येतद्व्याचष्टे-मुक्त इति । यदि बन्धान्मुक्तो भवति तर्हि ततः सकाशादन्यो हरति तस्मादप्यन्यः न त्वसौ भोक्तुं लभत इत्यर्थः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

तत्राति कृच्छ्रात् प्रतिलब्धमान इत्यादि श्लोक की व्याख्या मुक्त इत्यादि से करते है । यदि राजा के बन्धन से मुक्त भी हो गये तो भी उस भोग के साधन को दूसरा ले लेता है और दूसरे तीसरा वह उसको भोग नहीं कर पाता है ॥२४॥

**क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तचिन्तया विषण्ण आस्ते ॥२५॥**

**अनुवाद**— कभी-कभी शीत तथा वायु आदि अनेक अधिभौतिक अधिदैविक अदि दुःखों का निवारण करने में असमर्थ होने के कारण चिन्तित होकर उदास हो जाता है ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

क्वचिच्च शीतातपेत्येतद्याचष्टे- क्वचिच्चेति । शीतादयोऽनेका आधिदैविकाद्या या दशा दुःखावस्थास्तासाम् ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

क्वचिच्च इत्यादि के द्वारा क्वचिच्च शीतातप इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं । कभी शीत आतप इत्यादि आदि अधिदैविक आदि दुःखों का निवारण करने में असमर्थ हो जाता है ॥२५॥

**क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किंचिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमप्यपहरन्यत्किंचिद्वा विद्वेषमेति वित्तशाठ्यात्॥२६॥**

**अनुवाद**— यदि वह परस्पर में व्यवहार करते हुए वेइमानी से दूसरे का आत्यल्प भी धन वित्तशाठ्य के कारण ले लेता है तो उससे वैर हो जाता है ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

क्वचिन्मिथ इत्येतद्व्याचष्टे । क्वचिन्मिथो यत्किंचिद्धनं व्यवहरन्काकिणिकामात्रं विंशतिकपर्दकमात्रं ततोऽपि न्यूनं वा यत्किंचिदपहरन्विद्वेषमेति ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

क्वचिन्मिथः की व्याख्या करते हुए कहते है कि परस्पर में व्यवहार करते हुए यदि बीस कौड़ी भर भी धन किसी का ले लेता है तो उसके कारण वैर हो जाता है ।।२६।।

**अध्वन्यमुष्मिन्निम उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्यावमान-क्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः ।।२७।।**

**अनुवाद**— राजन् इस मार्ग में पूर्वोक्त विघ्नों के अतिरिक्त सुख, दुःख, राग-द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, भूख, प्यास, आहित, व्याधि जन्म, जरा, मरण आदि भी अनेक विघ्न हैं ।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैरित्युक्तानुपसर्गान्प्रपञ्चयति । अध्वन्यमुष्मिन्निमे उरुकृच्छ्रवित्तबाधादयस्तथा सुखदुःखादयश्च ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में **अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्र० इत्यादि** श्लोक में वर्णित उपद्रवों का वर्णन किया गया है इस भाग में ये बहुत अधिक कष्ट हैं धन वाधा इत्यादि ।।२७।।

### विशेष भावार्थ दीपिका

व्युत्क्रमैः पुनरुक्तैश्च नानापाठैरतः परम् । दुर्गमोऽपि भवाध्वायं संप्रदायेन तीर्यते ।।१।। तत्र प्रसज्जति क्वापीत्यादिना सिंहावलोकनन्यायेनोक्तमर्थमपकृष्य क्रमेण व्याचष्टे—

### भाव प्रकाशिका

अब इसके पश्चात् उलटे क्रम से तथा पुनरुक्तों के द्वारा इसके पश्चात् अनके पाठों के द्वारा इस दुर्गम संसार मार्ग का संम्प्रदायानुसार वर्णित किया जाता है । तत्र प्रसज्जति क्वापि इत्यादि के द्वारा सिंहावलोकन न्याय से वर्णित विषय को लेकर उसकी क्रमशः व्याख्या करते हैं ।

**क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्त-सुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ।।२८।।**

**अनुवाद**— इस विघ्नों से भरे हुए संसार मार्ग में भटकने वाला जीव देवमाया रूपिणी स्त्री के बाहुपाश में पड़कर विवेकहीन हो जाता है । वह उसी के लिए विहार भवन बनवाने की चिन्ता से ग्रस्त हो जाता है । उसी के आश्रित रहने वाले पुत्र पुत्री और दूसरी स्त्रियों की मीठी बातों चितवन और चेष्टाओं में आसाक्त होकर उन्हीं में मन के आसक्त हो जाने के कारण वह इन्द्रियों का दास अपार अन्धकार नरकों में गिरता है ।।२८।।

### भावार्थ दीपिका

क्वापि देवमाययेति । प्रस्कन्नमपगतं विवेकविज्ञानं यस्य । यस्याः स्त्रिया विहारगृहं क्रीडागृहं तदारम्भे आकुलं हृदयं यस्य । अनेन प्रसज्जतीति व्याख्यातम् । तदाश्रयेत्यादि व्याचष्टे । तस्या आश्रयेऽवसक्ताः संलग्नाः सुता दुहितरश्च कलत्रं च सैव स्त्री तेषां भाषितादिभिरपहृतं हृदयं यस्य । प्रहिणोति प्रक्षिपति ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

स्त्री के चक्कर में पड़ा हुआ जीव अपना विवेक खो देता है। वह उस स्त्री के क्रीडा गृह को बनवाने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो जाता है। इसके द्वारा प्रसज्जति की व्याख्या की गयी। **तदाश्रय इत्यादि** की व्याख्या करते है। उसके आश्रय में रहने वाले पुत्र-पुत्री कलत्रतो वही स्त्री है। उन सबों की मीठी बोली में आसक्त हृदय वह जीव घोर अन्धकारमय नरक में गिर जाता है ॥२८॥

**कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः कङ्कगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः सांकेत्येनाभिधत्ते ॥२९॥**

**अनुवाद**— कालचक्र साक्षात् भगवान् विष्णु का आयुध है। वह परमाणु से लेकर द्विपरार्ध पर्यन्त क्षण घटी आदि अवयवों से युक्त हैं। वह सदा सावधान रहकर घूमता रहता है। शीघ्रता से परिवर्तित होने वाले बाल्य यौवन अवस्थाएँ उसका ही वेग है। अपने वेग के द्वारा वह ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त सभी भूतों का सदा संहार करता रहता है। उसकी गति में कोई बाधा नहीं डाल सकता है। उससे भयभीत होकर भी यह मन्दबुद्धि मानव जिनका यह काल चक्र है उन यज्ञ पुरुष की आराधना को छोड़कर पाखण्डियों के जाल में फँस जाता है उनके कङ्क, गिद्ध, बगुला तथा बटेर के समान आर्य शास्त्र बहिष्कृत देवताओं का आश्रय लेता है। उन देवताओं का वर्णन वेद बाह्य अप्रमाणिक आगमों में ही उल्लेख है ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्नित्येतद्व्याचष्टे–कदाचिदीश्वरस्येति। परमाणुरादिः द्विपरार्धोऽपवर्गोऽन्तः तदेवोपलक्षणं यस्य तस्मात्। कालोपलक्षणादिति पृथक्पदत्वेन पाठे कालस्वरूपादित्यर्थः। रंहसा शीघ्रेण परिवर्तितेन परिभ्रमणेन वयसा बाल्यादिक्रमेण। ब्रह्माणमभिव्याप्य तृणस्तम्बादीनि भूतानि हरतश्चक्रतः सकाशाद्वित्रस्तहृदयः सन्पाखण्डदेवता। आभिमुख्येन धत्त इत्यन्वयः। अनिमिषतो निमेषमकुर्वतः, अप्रमत्तादित्यर्थः।। मिषतां प्रतिकर्तुमशक्तानामित्यर्थः। कर्मणि षष्ठ्यः। कालचक्रं निजं नित्यमायुधं यस्य। सांकेत्येन मूलप्रमाणशून्येन पाखण्डागमेन ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में क्वचित् का चिद्धरिचक्रतस्त्रसन् इत्यादि की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जिसका आदि परमाणु है और अन्त द्विपरार्ध (मोक्ष) है उस काल से डरता हुआ वह जीव कालोपलक्षणात् यह अलग पद पाठ होने पर अर्थ होगा कि काल स्वरूपात् (कालस्वरूप काल चक्र से) बाल्य आदि क्रम से शीघ्रता से परिवर्तित होने वाली अवस्था द्वारा ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त सभी भूतों को काल कवलित करने वाले कालचक्र से डरकर वह पाखण्ड देवता को अपना लेता है जिसका वर्णन अप्रामाणिक पाखण्ड आगम करते हैं उस पाखण्ड देवता के शरण में चला जाता है और श्रीभगवान् के शरण में नहीं जाता है ॥२९॥

**यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरुरु वञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्याराधनमेव तदरोचयन् शूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावकुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥३०॥**

**अनुवाद**— जो पाखण्डी स्वयं धोखे में हैं उन सबों के जाल में फँसकर जब यह दुःखी होता है तब ब्राह्मणों की शरण में जाता है किन्तु ब्राह्मणों के उपनयन संस्कार के पश्चात् श्रौत एवं स्मार्त कर्मों के अनुष्ठान से यज्ञ पुरुष की आराधना करना आदि आचार उसको अच्छा नहीं लगता है। तब वह वैदिक आचार के अनुसार अपने

में शुद्धि नहीं होने के कारण वह शूद्र कुल में प्रवेश कर जाता है। जिसका आचार वानरों के समान केवल कुटुम्ब पोषण और स्त्री सेवन होता है ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

तैर्वञ्चित इत्येतद्व्याचष्टे- यदा त्विति। आत्मना वञ्चितैरुरु अधिकं वञ्चितः सन्। तेषां ब्राह्मणानां यच्छीलमुपनयनादि तदरोचयन् शूद्रवद्वर्तते। निगमोक्ताचारे अशुद्धितः स्वस्य शुद्ध्याभावात्। यस्य शूद्रस्य केवलं मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं च व्यापारो नाग्निहोत्रादिः ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

उस पाखण्डियों के द्वारा धोखा खाकर इत्यादि की व्याख्या करते हैं जो स्वयम् धोखे में हैं उन पाखण्डियों द्वारा अत्यधिक धोखा खाकर वह उन ब्राह्मणों की शरण में जाता है जिनका शील उपनयन आदि संस्कार आदि का पालन करना है किन्तु उसको ब्राह्मणों का यह आचरण अच्छा नहीं लगता है। वह अपने में वेदोक्त आचार का अभाव रूप अशुद्धि के कारण वह उन शूद्रों के वंश में प्रवेश कर जाता है जिनका आचार वानरों के समान अपने परिवार का पालन और स्त्री का सेवन है। वे अग्निहोत्रादि कर्मों को नहीं करते हैं ॥३०॥

**तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः॥३१॥**

**अनुवाद**— वहाँ स्वच्छन्द रूप से विहार करने के कारण उसकी बुद्धि असत्य दीन हो जाती है। वहाँ एक दूसरे का मुख देखना आदि विषय भोगों में फँसकर अपने मृत्यु काल को भी भूल जाता है ॥३१॥

### भावार्थ दीपिका

तज्जातिरासेनेत्यादि व्याचष्टे। तत्रापि निरवरोधः प्रतिबन्धरहितः। स्वैरेण स्वेच्छया क्रीडन्विस्मृतमृत्युकालः सन्॥३१॥

### भाव प्रकाशिका

तज्जातिरासेन इत्यादि की व्याख्या करते हैं उस शूद्रवंश में भी स्वच्छन्द विहार करता हुआ वह अपने मृत्युकाल को भी भूल जाता है ॥३१॥

**क्वचिद्द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु रंस्यन्यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥३२॥**

**अनुवाद**— वृक्षों के समान जिसका लौकिक सुख ही फल है उन गृहों में ही सुख का अनुभव करता हुआ वह वानरों के समान स्त्री पुत्रादि में आसक्त रहकर अनाचार समय मैथुनादि विषय भोगों में ही बिता देता है ॥३२॥

### भावार्थ दीपिका

द्रुमेषु रंस्यन्नित्येतद्व्याचष्टे-क्वचिद्द्रुमवदिति। व्यवायक्षणो मैथुनोत्सवो भवति ॥३२॥

### भाव प्रकाशिका

क्वचित् इत्यादि से द्रुमेषु रंस्यन् इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते है। इस शूद्रकुय में तो आजीवन मैथुनोत्सव ही होता रहता है ॥३२॥

**एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥३३॥**

**अनुवाद**— इस तरह प्रवृत्ति मार्ग में पड़कर सुख इत्यादि भोगते हुए यह जीव रोग रूप पर्वत कन्दरा में फँसकर उसमें रहने वाले हाथी के समान मृत्यु से डरता रहता है ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

क्वचित्प्रमादादित्येतद्व्याचष्टे । एवमध्वनि सुखदु:खाद्यवरुन्धानो गिरिकन्दरप्राये तमसि रोगाद्यापदि पततीति शेषः ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

**क्वचित्प्रमादात् इत्यादि** श्लोक की व्याख्या करते हैं इस तरह संसार मार्ग में सुख-दु:ख इत्यादि से युक्त वह पर्वत की कन्दरा के समान रोग आदि आपत्तियां में पड़ जाता है ।।३३।।

**क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दु:खानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते।।३४।।**

**अनुवाद**— कभी तो वह शीत, वायु आदि अनेक प्रकार के आधिदैविक तथा आधिभौतिक आदि दु:खों की निवृत्ति में जब असमर्थ हो जाता है तो उस समय वह विभिन्न विषयों की चिन्ता से खिन्न हो जाता है।।३४।।

### भावार्थ दीपिका

क्वचिच्छीतवातेत्यादिपूर्वस्मादधिकोक्तिः । रोगाद्यापदि पतितः सन् शीतादिभिः क्लिश्यन्नास्त इत्यर्थः ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

कभी वह शीत, वायु इत्यादि पहले की अपेक्षा अधिक दु:खों को बतलाया गया है । रोग आदि से रुग्ण होकर वह शीत तथा वायु आदि से कष्ट का अनुभव करता है ।।३४।।

**क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किंचिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ।।३५।।**

**अनुवाद**— कभी आपस में क्रय-विक्रय आदि व्यापार करने पर कंजूसी करने के कारण उसे थोड़ा सा धन मिल जाता है ।।३५।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं सिंहावलोकनन्यायेनोक्तमर्थं यथास्थानमपकृष्य व्याख्याय क्रमस्थमनुवर्तयितुं पूर्वोक्तमेवानुवदति-क्वचिन्मिथ इति । वित्तशाठ्येन कदाचिद्यत्किंचिद्धनमुपयाति ।।३५।।

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार सिंहावलोकन न्याय से वर्णित अर्थ को उचित स्थान पर खींचकर व्याख्या करके क्रम ठीक करने के लिए अनुवाद करते हैं । कंजूसी के कारण कुछ धन प्राप्त कर लेता है ।।३५।।

**क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादभिलभते ।।३६।।**

**अनुवाद**— कभी धन क्षीण हो जाने से जब इसके पास सोने, बैठने और खाने आदि की भी कोई सामग्री नहीं रह जाती है तब यह उन सबों को चोरी आदि गल्त उपायों से प्राप्त करने का निश्चय करता है, इसके कारण इसे यत्र-तत्र दूसरों से बहुत अपमानित भी होना पड़ता है ।।३६।।

### भावार्थ दीपिका

क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्त्विति व्याचष्टे-क्वचित्क्षीणधन इति । अप्रतिलब्धं यन्मनोरथेनोपगतं वाञ्छितं तस्यादाने स्वीकारे निश्चितमतिः सन् ।।३६।।

### भाव प्रकाशिका

इस दण्डक से क्वचित्क्वचित्क्षीण धनः इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं । मनोरथ से अप्राप्त धन को प्राप्त करने के लिए चोरी आदि से प्राप्त करने का निश्चय करता है ॥३६॥

**एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥३७॥**

**अनुवाद**— इस प्रकार धन की आसक्ति से परस्पर में वैर-भाव बढ़ जाने से भी यह पूर्व वासना के कारण आपस में विवाहादि सम्बन्ध को करता और छोड़ता रहता है ॥३७॥

### भावार्थ दीपिका

अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गेनेत्येतद्व्याचष्टे-एवं वित्तव्यतिषङ्गेति । अपवहति त्यजति ॥३७॥

### भाव प्रकाशिका

**अन्योऽन्यवित्तव्यतिषङ्गेन इत्यादि** की व्याख्या इस दण्डक से किये हैं। अपवहति का अर्थ है छोड़ता है॥३७॥

**एतस्मिन्संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन्मुह्यन्बिभ्यद्विवदन् क्रन्दन्संहृष्यन्गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति ॥३८॥**

**अनुवाद**— इस पर भी संसार मार्ग में चलने वाला जिस-जिस पर जहाँ विपत्ति आयी या कोई मर जाता है तो उसको वही छोड़कर और नए उत्पन्न हुओं को साथ लेकर आगे बढ़ जाता है । कभी तो किसी के लिए शोक करता तो किसी के लिए मूर्छित हो जाता है, किसी का वियोग होने की आशङ्का से भयभीत हो जाता है, वह किसी से झगड़ा करता है । अपने पर विपत्ति आने पर रोता है । कभी प्रसन्न होता है तो कभी गाने लग जाता है । कभी उन्हीं के लिए बँध जाता है । साधुजनों से रहित इसके पास साधुजन आते भी नहीं है । इस प्रकार आगे बढ़ता हुआ उसने जहाँ से यात्राा प्रारम्भ की थी जिसे इस मार्ग का अन्त कहते है । उस परमात्मा के पास यह नहीं लौटता है ॥३८॥

### भावार्थ दीपिका

अध्वन्यमुष्मिन्नित्यादि व्याचष्टे-एतस्मिन्निति । आपन्न आपदं प्राप्तः विपन्नो विनष्टो वा यत्र यस्तमितरस्तत्र विसृज्य । नह्यमानो बध्यमानः । साधुवर्जितः साधुव्यतिरिक्तः ॥३८॥

### भाव प्रकाशिका

**अध्वन्यमुष्मिन्** की व्याख्या करते हैं । इस संसार मार्ग में जिस पर जहाँ विपत्ति आती है अथवा जो जहाँ मर जाता है उसको वही छोड़कर आगे बढ़ जाता है **न ह्यमानः** का अर्थ है बँध जाता है । साधुवर्जितः अर्थात् साधु जनों से रहित ॥३८॥

**यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति॥३९॥**

**अनुवाद**— परमात्मा पर्यन्त योग शास्त्र की भी गति नहीं है, जिन लोगों ने दण्ड का परित्याग कर दिया है वे निवृत्ति परायण संयतात्मा मुनिजन ही परमात्मा को प्राप्त कर पाते हैं ॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

अनावृत्तौ हेतुमाह-यदिदमिति ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

मुक्ति के साधन को इस दण्डक में बतलाया गया है ।।३९।।

**यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किंतु परं मृधे शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धा यां विसृज्य स्वयमुपसंहृताः ।।४०।।**

**अनुवाद**— जो दिग्गजों को जीतने वाले और बड़े-बड़े यज्ञों को करने वाले राजर्षि हैं वे संग्राम में शत्रुओं का सामना करके केवल प्राण परित्याग करते है और यह पृथिवी मेरी है, यह कहकर जो वैर करते हैं वे अपना शरीर पृथिवी पर ही छोड़कर परलोक चले जाते हैं वे इस संसार से पार नहीं जाते हैं ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

मनस्विन इत्यादि व्याचष्टे-यदपीति । ये वै राजर्षयस्तेऽपि नावरुन्धते किंतु परं केवलं मृधे शयीरन् ।।४०।।

### भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में मनस्विनः इत्यादि की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि राजर्षिगण भी परमात्मा को नहीं प्राप्त कर पाते वे केवल युद्ध में मारे जाते हैं ।।४०।।

**कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथंचिन्नरकाद्विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरिगतोऽपि ।।४१।।**

**अनुवाद**— अपने पुण्यकर्म रूपी लता का आश्रय लेकर जीव किसी प्रकार इन आपत्तियों अथवा नरक से बच भी जाता है तो फिर इस संसार मार्ग में भटकता हुआ जन समुदाय में मिल जाता है यही दशा स्वर्ग आदि ऊपर के लोकों में जाने वालों की होती हैं ।।४१।।

### भावार्थ दीपिका

प्रसज्जतीत्यादि गिरिकन्दर इत्यन्तमपकृष्य व्याख्यातं, ग्रन्यमतिक्रम्य वल्लीं गृहीत्वेत्यादिग्रन्थं व्याचष्टे-कर्मवल्लीमिति। एवमुपरि स्वर्गं गतोऽपि नरलोकसार्थमेवोपयाति ।।४१।।

### भाव प्रकाशिका

प्रसज्जति से लेकर गिरिकन्दरे पर्यन्त जिसकी व्याख्या की गयी है उस ग्रन्थ को लांघकर बल्लीं गृहित्वा की व्याख्या इस दण्डक में की गयी है । स्वर्ग में जाने वाले भी मनुष्यों के साथ आकर मिल जाते हैं ।।४१।।

**तस्येदमुपगायन्ति ।**

**आर्षभयेह राजर्षेर्मनसापि महात्मनः । नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ।।४२।।**

**अन्वयः**— गरुत्मतः मक्षिकेव आर्षमस्य, राजर्षेः महात्मनः अन्द वर्तस इह नृपः नार्हति ।।४२।।

**अनुवाद**— राजन् ! राजर्षि भरतजी के विषय में पण्डितजन ऐसा कहते हैं । जैसे गरुड़ की होड़ कोई मक्खी नहीं कर सकती है उसी तरह राजर्षि महात्मा भरतजी के मार्ग का अनुसरण कोई राजा नहीं कर सकता है ।।४२।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवं भरतोक्तिं व्याख्याय तच्चरितसंग्रहश्लोकानाह । तस्येदं कर्मं श्लोकैरुपगायन्ति । आर्षभस्य ऋषभपुत्रस्य अन्यो नृपोऽनुवर्त्मनार्हति वर्त्मानुगन्तुं शक्नोति ।।४२।।

### भाव प्रकाशिका

इस तरह से भरतजी की उक्तियों की व्याख्या करके उनके चरित का वर्णन करते हैं राजर्षि भरत के चरित का लोग गायन करते हैं, ऋषभदेवजी के पुत्र भरतजी के मार्ग का अनुरण दूसरे राजा नहीं कर सकते हैं ।।४२।।

**यो दुस्त्यजान्दारसुतान्सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः । जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ।।४३।।**

**अन्वयः**— युवैव यः दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृद राज्यं हृदिस्पृर्शः उत्तमश्लोकलालसः मलवत् जहौ ।।४३।।

**अनुवाद**— युवावस्था में ही जिनको त्यागना कठिन है उन हृदयस्पर्शी पत्नी, पुत्र, मित्र, राज्य आदि का जिन्होंने पवित्रीकृत श्रीभगवान् को प्राप्त करने के लिए विष्ठा के समान त्याग दिया ।।४३।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुमाह-य इति । सुहृद्राज्ययोर्द्वन्द्वैक्यम् । यो दुस्त्यजान्दारादीन्विष्ठामिव जहौ तस्यार्षभस्येति संबन्धः । दुस्त्यजत्वे हेतुः-हृदिस्पृशो मनोज्ञान् त्यागे हेतुः- उत्तमश्लोके लालसा लम्पटत्वं यस्य ।।४३।।

### भाव प्रकाशिका

भरतजी के मार्ग का अनुसरण नहीं करने का कारण है कि उन्होंने दुस्त्यज पत्नी इत्यादि का उसी प्रकार त्याग कर दिया जैसे कोई मल का परित्याग कर देता है । सुहृत तथा राज्य दोनों में द्वन्द्व समास होने के कारण एकवद्भाव है । इन सबों के दुस्त्यज होने का कारण यह था कि पत्नी इत्यादि अत्यन्त मनोहर थे । त्याग का कारण है कि उनकी लालसा थी की मैं परमात्मा को प्राप्त कर लूँ ।।४३।।

**यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ।**
**नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ।।४४।।**

**अन्वयः**— यो नृपः दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान् सुरवरैः प्रार्थ्यां सदयावलोकाम् नैच्छत् तदुचितम् मधुद्विटसेवानुरक्तमनसां महतां अभवोऽपि फल्गुः ।।४४।।

**अनुवाद**— जिन्होंने अत्यन्त दुस्त्यज, पृथिवी, पुत्र, स्वजन् सम्पत्ति और स्त्री की तथा जिसके लिए बड़े-बड़े देवता भी लालायित रहते हैं किन्तु वे उनको सदादेखती रहती थी उन लक्ष्मीजी को भी त्याग दिया, यह सब उनके लिए उचित ही था क्योंकि जिन महापुरुषों का मन श्रीभगवान् की सेवा में अनुरक्त हो जाता है उनके लिए मुक्ति भी तुच्छ है ।।४४।।

### भावार्थ दीपिका

तस्यैवं विषयत्यागो न चित्रमित्याह । य एवंभूतोऽसौ नृपः स क्षित्यादीन्नैच्छदिति यत्तदुचितम् । सदयावलोकां भरतस्य दया यथा भवत्येवमवलोको यस्या इति परिजनावलोकः श्रियामुपचर्यते । यतो मधुद्विषः सेवायामनुरक्तं मनो येषां तेषां महतामभवो मोक्षोऽपि फल्गुस्तुच्छ एव ।।४४।।

### भाव प्रकाशिका

उनके द्वारा सांसारिक विषयों का त्याग कोई आश्चर्य नहीं हैं । इस बात को उस श्लोक में कहा गया है। इस प्रकार के वे राजा पृथिवी आदि को जो नहीं चाहे वह उचित ही है । लक्ष्मी चाहती थीं कि भरतजी मुझको चाहें, इस तरह से परजनों के समान लक्ष्मीजी का उपचार किया गया है । क्योंकि जिन लोगों का मन श्रीभगवान् की सेवा में लग गया है उनके लिए तो मुक्ति भी तुच्छ है ।।४४।।

**यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ।**
**नारायणाय हरये नम इत्युद्वारं हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥४५॥**

**अन्वयः**— यः मृगत्वमपि हास्यन् इति उदारं समुदाजहार यज्ञाय धर्मपतये, विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिसे, प्रकृतीश्वराय हरये नारायणाय नमः ।।४५।।

**अनुवाद**—जो भरत मृग शरीर का परित्याग करते समय जोर से कहे थे धर्म की रक्षा करने वाले, धर्मानुष्ठान में निपुण योग जन्य सांख्यप्रतिपाद्य, प्रकृति के स्वामी यज्ञमूर्ति सर्वान्तर्यामी श्रीहरि भगवान् नारायण को नमस्कार है ।।४५।।

### भावार्थ दीपिका

तस्य सेवानुरागमेवाह-यज्ञायेति । यज्ञरूपाय धर्मपतये यज्ञादिफलदात्रे । विधौ नैपुण्यं यस्य तस्मै धर्मानुष्ठात्रे । योगोऽष्टाङ्गस्तस्मै । सांख्यं ज्ञानं तच्छिरः प्रधानं फलं यस्य तस्मै । योगाय प्रकृतीश्वराय मायानियन्त्रे । अतएव नारं जीवसमूहः सोऽयनमाश्रयो यस्य सर्वजीवनियन्त्रे । एवं कर्मज्ञानदेवताकाण्डैः प्रतिपादिताय हरये नम इत्युदारमुच्चैर्यः सम्यगुच्चारितवान्। मृगत्वं मृगदेहमपि हास्यन् त्यक्ष्यन् । य एवंभूतस्तस्य तदुचितमिति वा तस्यानुवर्त्मनाऽर्हतीति वा संबन्धः ।।४५।।

### भाव प्रकाशिका

भरतजी की श्रीभगवान् की सेवा का अनुराग इस श्लोक में वर्णित है । यज्ञ स्वरूप, धर्म के स्वामी अर्थात् यज्ञ आदि के फल को प्रदान करने वाले, धर्मानुष्ठानकर्ता, अष्टाङ्गयोग स्वरूप, सांख्य प्रतिपाद्य योग स्वरूप प्रकृति का भी नियमन करने वाले (मायापति) सभी जीवों के नियामक एवं कर्मकाण्ड ज्ञान काण्ड एवं देवता काण्ड में प्रतिपादित श्रीहरि को नमस्कार है । इस तरह मृग शरीर का परित्याग करते समय जिन्होंने जोर से कहा ऐसे भरतजी का राज्यादि त्याग उचित ही था, अथवा कोई भी उनके मार्ग का अनुगमन नहीं कर सकता है ।।४५।।

**य इदं भागवत सभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वाऽनुश्रृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न कांचन परत इति॥४६॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

**अनुवाद**— राजर्षि भरत के गुणों एवं कर्मों की प्रशंसा भक्तजन भी किया करते हैं, उनका यह चरित कल्याणंकारी आयु एवं धन को बढ़ाने वालाऔर सुयश को बढ़ाने वाला है । अन्त में यह स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है । जो पुरुष इसको सुनता या सुनाता है या इसका अभिनन्दन करता है, उसकी सारी कामनाएँ अपने आप पूर्ण हो जाती हैं । उसको दूसरों से कुछ भी नहीं माँगना पड़ता है ।।४६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।**

### भावार्थ दीपिका

भरतचरितश्रवणादिफलमाह-य इदमिति । भागवतैः सभाजिता अवदाताः शुद्धा गुणाः कर्माणि च यस्य तस्य भरतस्यानुचरितं योऽनुश्रृणोति स आत्मन एवं सकाशात्सर्वा आशिष आशास्ते स्वत एव प्राप्नोति नतु कांचिदपि परस्मादपेक्षत इत्यर्थः ।।४६।।

**इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां चतर्दशोऽध्यायः ।।१४।।**

**भाव प्रकाशिका**

इस दण्डक में भरत चरित के श्रवण आदि का फल बतलाया गया है। भरत चरित भगवद् भक्तों द्वारा प्रशंसित है। शुद्ध गुण एवं कर्मों को करने वाले भरतजी के चरित जो श्रवण करता है उसकी अपने आप ही सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं वह दूसरों से कोई भी अपेक्षा नहीं करता है ॥४६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के भाव प्रकाशिका टीका के चौदहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१४।।**

# पन्द्रहवाँ अध्याय

## भरतजी के वंश का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥१॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन ! भरतजी के पुत्र का नाम सुमति था। उसने ऋषभदेव जी के मार्ग का अनुसरण किया। इसलिए कलियुग में बहुत से पाखण्डी अनार्य उसको वेद विरुद्ध कल्पना करके देवता मानने लगेंगे ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

एवमष्टभिरध्यायैर्भरतस्योक्तमीहितम्। ततः पञ्चदशे तस्य कीर्त्यन्ते वंशजा नृपाः ॥१॥ ऋषभपदवीं जीवन्मुक्तमार्गमनुवर्तमानं यं दृष्ट्वेति शेषः। यद्वा यं सुमतिमवेदसमाम्नातां देवतां कल्पयिष्यन्ति बुद्धोऽयं साक्षादवतीर्ण इति मंस्यन्त इत्यर्थः ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह आठ अध्यायों में भरतजी की उक्ति का वर्णन किया गया अब पन्द्रहवें अध्याय में भरतजी के वंशजों का वर्णन किया जाता है। सुमति को ऋषभदेव के जीवन्मुक्त मार्ग का अनुगमन करने वाला देखकर, अथवा जिस सुमति को वेद विरुद्ध देवता की कल्पना करेंगे। वे अनार्य पुरुष मानेगें कि सुमति के रूप में साक्षात् बुद्ध ही अवतीर्ण हुए हैं॥१॥

**तस्माद्वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥२॥**

**अनुवाद**— सुमति की वृद्ध सेना नामक पत्नी के गर्भ से देवताजित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२॥

**अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥३॥**

**अनुवाद**— देवताजित् के आसुरी नामक पत्नी के गर्भ से देवद्युम्न, देवद्युम्न की धेनुमति नामक पत्नी के गर्भ से परमेष्ठी और उसका सुवर्चला के गर्म से प्रतीह नामक पुत्र उत्पनन्न हुआ ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्तनयो देवताजितः पुत्रः ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

देवताजित का पुत्र देवद्युम्न था ॥३॥

**य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार ॥४॥**

**अनुवाद**— प्रतीह अन्य पुरुषों को आत्मविद्या का उपदेश करके स्वयं शुदचित्त होकर परमपुरुष श्रीभगवान् का साक्षात् अनुभव किया ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मविद्यां बहुभ्य आख्याय व्याख्यानेनैव स्वयं संशुद्धोऽनुसस्मार अपरोक्षतयानुभूतवान् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

अनेक पुरुषों को आत्म विद्या का उपदेश देकर स्वयं शुद्ध चित्त वाला वह परम पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार किया था ॥४॥

**प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम्॥५॥**

**अनुवाद**— प्रतीह की पत्नी सुवर्चला के गर्भ से, प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता नामक तीन पुत्र हुए । ये यज्ञादि कर्म में बहुत निपुण थे प्रतिहर्ता की पत्नी स्तुति थी उसके गर्भ से अज और भूमा नामक पुत्र हुए ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रतिहर्ता प्रस्तोता उद्गातेति त्रयो यज्ञनिपुणाः सूनव आसन् । अजनिषातां जातौ ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रतीत के तीन पुत्र हुए प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता । ये तीन यज्ञ कर्म में निपुण थे । अजनिषाताम् अर्थात् उत्पन्न हुए ॥५॥

**भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद्द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलात्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्ताः ॥६॥**

**अनुवाद**— भूमा की ऋषिकुल्या पत्नी से उद्गीथ उत्पन्न हुए उद्गीथ की पत्नी देवकुल्या से प्रस्ताव उत्पन्न हुए। प्रस्ताव के नियुत्सा नाम की पत्नी से विभु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । विभु की पत्नी रति के गर्भ से पृथषेण उत्पन्न हुए, पृथुषेण की पत्नी आकूति के गर्भ से नक्त उत्पन्न हुए । नक्त की पत्नी द्रुति के गर्भ से उदार कीर्ति राजर्षि प्रवर गय का जन्म हुआ । ये जगत् की रक्षा के लिए सत्त्वगुण को स्वीकार करने वाले साक्षात् भगवान् विष्णु के अंश माने जाते थे । संयम आदि अनेक गुणों के कारण इनकी महापुरुषों में गणना की जाती हैं ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

हृदयजः पुत्रः । जगतो रिरक्षिषया रक्षितुमिच्छया गृहीतं सत्त्वं येन तस्य विष्णोः कलांशः सन् ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

मूल के हृदयजः का अर्थ पुत्र है । महाराज जगत् की रक्षा करने की इच्छा से सत्त्वगुण को स्वीकार किया। उसके कारण उनको भगवान् विष्णु की कला माना जाता है ॥६॥

**स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनार्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयापादितभगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः**

**परिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिजजूगुपत् ॥७॥**

**अनुवाद**— गय प्रजा के पालन पोषण, प्रीणन, लालन तथा अनुशासन के द्वारा और यज्ञ आदि करके निष्काम भाव से केवल भगवान् की प्रसन्नता के लिए अपने धर्म का आचरण किए। इसके कारण उनके सभी कर्म परम पुरुष श्रीहरि को अर्पित होकर परमार्थ रूप बन गये। इससे तथा ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के चरणों की सेवा से उनको भक्ति योग की प्राप्ति हुई। तदनन्तर निरन्तर भगवच्चिन्तन करके इन्होंने अपने अन्तःकरण को शुद्ध किया तथा देहादि अनात्म वस्तुओं से अहन्त्व को हटाकर वे अपनी आत्मा को ब्रह्म रूप से अनुभव करने लगे। यह सब कुछ होने पर भी ये पृथिवी का पालन करते रहे ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

महापुरुषत्वमेवाह-स वै इति। धर्मस्तस्य द्विविधः-अभिषिक्तत्वात्प्रजापालनादिरेकः, गृहस्थत्वादिज्यादिश्चापरः। द्विविधोऽपि भगवति सर्वात्मनार्पितः सन् परमार्थलक्षणस्तेन परिभाविता संस्कृताऽतिशुद्धा मतिर्यस्य। अतएवोपरतमनात्म्यदेहाद्यहंभावो यस्मिंस्तस्मिन्नात्मनि चित्ते स्वयमेवोपलभ्यमाने ब्रह्मण्यात्मानुभवो यस्य तादृशोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् पालयामास।।७।।

### भाव प्रकाशिका

**स वै इत्यादि** से उनके महापुरुषत्व का वर्णन करते हैं उनको दो प्रकार के धर्म थे। राज्याभिषिक्त होने के कारण प्रजापालन और दूसरा गृहस्थ होने के कारण यज्ञादि का अनुष्ठान। इन दोनों प्रकार के कर्मों को इन्होंने परमात्मा को समर्पित कर दिया था। इस परमार्थ रूप कर्म के कारण उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी थी। इसीलिए वे अनात्मादेहादि में आत्मभाव रहित हो गये थे। ऐसी अपने आत्मा में वे ब्रह्मभाव का अनुभव करने लग गये थे। ऐसा होने पर भी निरभिमन रहकर उन्होंने पृथिवी का पालन किया ॥७॥

**तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद उपगायन्ति ॥८॥**

**अनुवाद**— परीक्षित् इतिहासूत महात्मा उनके विषय में यह गाथा गाते हैं ॥८॥

**गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभिर्यज्वाभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता।**
**समागतश्रीः सदसस्पतिः सतां सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥९॥**

**अन्वयः**— कः नृपः कर्मभिः गयं प्रतियाति। भगवत् कलाम् ऋते कः अन्यः यज्वाभिमानी, बहुवित्, धर्मगोप्ता, समागतश्रीः, सदसस्पतिः सतां सत्सेवकः ॥९॥

**अनुवाद**— कौन राजा अपने कर्मों से महाराज गय की बराबरी कर सकता है। वे भगवान् की कला थे उनको छोड़कर कौन दूसरे यज्ञों का विधिवत् अनुष्ठान करने वाला मनस्वी बहुज्ञ, धर्म रक्षक, लक्ष्मी का प्रियपात्र, साधु समाज शिरोमणि, और सत्पुरुषों का सच्चा सेवक कौन हो सकता है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

कर्मभिर्गवं कः प्रतियात्यानुकरोति न कोऽपि। अत्र हेतुः-यज्वादिरूपो भगवत्कलां गयमृतेऽन्यः क इत्यनुषङ्गः। अभिमानी सर्वतो मानास्पदं मनस्वीति वा। समागता संप्राप्ता श्रीर्येन यमिति वा। सतां सदसः सभायाः पतिः सतां सेवकः। यद्वा यज्वादिरूपोऽपि भगवत्कलामृते गयं कोऽन्यः प्रतियातीत्यन्वयः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

कौन राजा अपने कर्मों से गय का अनुसरण कर सकता है ? कोई नहीं। उसका कारण है यज्ञों का विधिवत्

अनुष्ठान करने वाला भगवान् की कला गय को छोड़कर कौन मनस्वी, लक्ष्मी का प्रियपात्र साधु शिरोमणि सज्जनों का सेवक । अथवा यज्ञाभिमानी भी भगवत् कला को छोड़कर गय का अनुसरण दूसरा कौन कर सकता है ॥९॥

**यमभ्यषिञ्चन्परया मुदा सतीः सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ।**
**यस्य प्रजानां दुदुहे धराशिषो निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥१०॥**

**अन्वयः**— यम् सत्याशिषः दक्ष कन्याः सतीः सरिद्भि परया मुदाः अभ्यषिञ्चन् निराशिषोऽपि यस्य प्रजानां धराशिषः गुणवत् सस्नुतोधाः दुदुहे ॥१०॥

**अनुवाद**— सत्य संकल्प वाली परम साध्वी श्रद्धा, मैत्री आदि दक्ष कन्या ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक गङ्गादि नदियाँ के साथ उनका अभिषेक किया था, तथा उनकी इच्छा नहीं रहने पर भी पृथिवी उनके गुणों पर प्रसन्न होकर जिस प्रकार गौ बछड़े पर स्नेह के कारण दुग्ध क्षरणकरती है उसी तरह प्रजाओं को सभी अभीष्ट पदार्थों को प्रदान की थी ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

सतीः सत्यः । सत्या आशिषो यासां ताः । दक्षकन्याः श्रद्धा मैत्री दयेत्याद्याः । निराशिषोऽपि यस्य प्रजानामाशिषः कामान् धरा दुदुहे । तस्य गुणा एव वत्सस्तेन स्नुतमूधो यस्याः पृथिव्याः । यच्छब्दानां तं गयं कः प्रतियातीति संबन्धः ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

सत्य संङ्कल्प वाली परम साध्वी दक्ष कन्याएँ दया मैत्री आदि ने जिनका परम प्रसन्नता के साथ अभिषेक किया था । नहीं चाहने पर भी जिनकी प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करती थी । महाराज गय के गुण ही वत्स स्थानी थे जिनके स्नेह के कारण पृथिवी रूपी गौ सभी अभीष्ट पदार्थों को प्रदान करती थी उन गयकी बराबरी कौन कर सकता है ॥१०॥

**छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान्दुदूहुराजह्रुरथो बलिं नृपाः ।**
**प्रतयञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥११॥**

**अन्वयः**— अकामस्य यस्य छन्दांसि कामानदुदुहुः अथो युधि प्रत्यञ्चिताः नृपाः विप्राः धर्मेण यदाशिषां परेत्य षष्ठमंशं आजह्रुः ॥११॥

**अनुवाद**— इच्छा नहीं होने पर भी वेदोक्त कर्मों ने उनको सब प्रकार के भोग प्रदान किया, युद्ध में बाणों से सत्कृत होकर राजाओं ने उनको उपहार प्रदान किया और राजा के धर्म से संतुष्ट होकर ब्राह्मणों ने परलोक में प्राप्त होने वाले अपने धर्म फल का छठा अंश प्रदान किया ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

छन्दांसि वेदास्तद्विहितकर्माणि च । दुदूहुर्दुदुहुः । युधि प्रत्यञ्चिताबाणैः प्रतिपूजिता नृपा यस्य बलिमाजह्रुरर्पयामासुः। धर्मेण पालनेन दक्षिणादिभिश्च यदा प्रत्यञ्चिता विप्रास्तदा परेत्य लोकान्तरे आशिषां धर्मफलानां षष्ठमंशमाजह्रुः । 'पुण्यषड्भागमादत्ते न्यायेन परिपालयन्' इति स्मृतेः ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

वेद और वेद विहित कर्मों ने उनके नहीं चाहने पर भी उनको सभी प्रकार के भोग प्रदान किए युद्ध में बाणों से सत्कृत राजाओं ने उनको उपहार प्रदान किया और ब्राह्मणों ने उनको परलोक में प्राप्त होने वाले अपने धर्म फल के छठे अंश को प्रदान किया स्मृति भी कहती है— **पुण्यषड्भागमादत्ते धर्मेण प्रतिपालयन्** । अर्थात् धर्म पूर्वक पालन करने वाला राज प्रजाओं के पुण्य के छठे भाग को प्राप्त करता है ॥११॥

**यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ।**
**श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोगसमर्पितेज्याफलमाजहार ॥१२॥**

**अन्वयः**— यस्य अध्वरे उरुसोमपीथे मघोनि माद्यति श्रद्धा विशुद्धाचलभक्तियोग समर्पित अध्वरात्मा भगवान् फलमाजहार॥१२॥

**अनुवाद**— जिनके यज्ञ में बहुत अधिक सोमपान करने के कारण इन्द्र उन्मत हो गये थे, तथा उनकी श्रद्धा और निश्चल विशुद्ध भक्तिभाव से समर्पित किए जाने के कारण यज्ञ के फल को यज्ञ पुरुष भगवान् साक्षात् प्रकट होकर यज्ञ के फल को ग्रहण किए ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

उरुसोमपीथे बहुसोमपानेऽध्वरे मघोनि इन्द्रे माद्यति मदं प्राप्नुवति सति श्रद्धया विशुद्धो योऽचलो भक्तियोगस्तेन समर्पितमिज्याफलमाजहार । अर्हणमिव प्रत्यक्षतः स्वीकृतवानित्यर्थः ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

बहुत सोम पान करने के कारण इन्द्र के उन्मत्त होने पर श्रद्धा के कारण विशुद्ध एवं अचल भक्तियोग से समर्पित यज्ञ के फल को यज्ञात्मा भगवान् ने साक्षात् पूजा के ही समान ग्रहण किए ॥१२॥

**यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्च्यात् ।**
**प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥१३॥**

**अन्वयः**— गयस्य बर्हिषि यत् प्रीणनात् अविरिञ्चयात् देवतिर्यक्मनु वीरत्तृणम् सद्यः प्रीयेत सह विश्वजीवः स्वयं प्रीतः प्रीतिमगात् ॥१३॥

**अनुवाद**— महाराज गय के यज्ञ में जिनके प्रसन्न हो जाने पर ब्रह्माजी से लेकर देवता मनुष्य, तिर्यक् वृक्ष तथा तृण सबके सब सद्यः प्रसन्न हो जाते हैं वे स्वयं तृप्त विश्वात्मा प्रसन्न हो गये ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

यस्य भगवतः प्रीणनात् । देवादीनां द्वन्द्वैक्यम् । तत्सद्यः प्रीयते प्रीतिं गच्छेत् । स विश्वजीवः सर्वान्तर्यामी स्वयं प्रीतरूप एव बर्हिषि यज्ञे गयस्य । ह स्फुटं प्रीतिमगात् तृप्तोऽस्मीति प्रत्यक्षं प्रीतिमाविष्कृतवानित्यर्थः ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन श्रीभगवान् के प्रसन्न होने पर देवमनुष्यादि शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, वे विश्वात्मा सर्वान्तर्यामी स्वयं प्रसन्नता रूप होने पर भी महाराज गय के रूप में स्पष्ट रूप से प्रसन्न हो गये अर्थात् मैं प्रसन्न हूँ इस तरह से अपनी प्रसन्नता प्रकट किए । देवर्ग्यिङ्मनुष्यवीरुत्तृणम् में द्वन्द्वसमास होने के कारण एक वचन का प्रयोग है ॥१३॥

**गयाद्गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥१४॥**

**अनुवाद**— महाराज गय की पत्नी गयन्ती के गर्भ से चित्ररथ, सुगत और अवरोधन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें चित्ररथ की पत्नी उर्णा से सम्राट् पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१४॥

**तत उत्कलायां मरीचिर्मरीचेर्बिन्दुमत्यां बिन्दुमानुदपद्यत तस्मात्सरघायां मधुनामाऽभवन्मधोः सुमनसि वीरव्रतस्ततो भोजायां मन्थुप्रमन्थू जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवस्ततो दूषणायां त्वष्टाऽजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायां विरजो विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥१५॥**

**अनुवाद**— सम्राट की पत्नी उल्कला से मरीचि, मरीचि की पत्नी विन्दुमती से विन्दुमान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । विन्दुमान की पत्नी सरधा से मधु, मधु की पत्नी सुमना से वीरव्रत, वीरव्रत की पत्नी भोजा से मन्थु,

और प्रमन्थु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । मन्थु की पत्नी सत्या के गर्भ से भौवन भौवन की पत्नी दूषणा के गर्भ से त्वष्टा, त्वष्टा की पत्नी विरोचना से विरज और विरज की विषूची नाम की पत्नी के गर्भ से सौ पुत्र एवं एक कन्या उत्पन्न हुई ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

सुमनसि स्त्रियाम् ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

मधु की सुमना नामक पत्नी के गर्भ से वरीव्रत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१५॥

**तत्रायं श्लोकः ।**

**प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः । अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

**अन्वयः**— विष्णुः सुरगणं यथा चरमोद्भवः विरजः इमं प्रैयव्रतं वंश कीर्त्या अत्ययं अकरोत् ॥१६॥

**अनुवाद**— विरज के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है जिस प्रकार भगवान् विष्णु देवताओं की शोभा बढ़ाते हैं, उसी तरह इस प्रियव्रत वंश को इस वंश में सबसे पीछे उत्पन्न होने वाले विरज अपने सुयश से महाराज प्रियव्रत के वंश की शोभा अत्यधिक बढाये ॥१६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के प्रियव्रत वंश वर्णन नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥**

भावार्थ दीपिका

कीर्त्या अतिशयेनालमकरोद्भूषितवान् ॥१६॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥**

**भाव प्रकाशिका**

विरज ने अपने सुयश से महाराज प्रियव्रत के वंश को अत्यधिक अलंकृत किया ॥१६॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१५॥**

# सोलहवाँ अध्याय

## भुवन कोश का वर्णन

रजोवाच

**उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते॥१॥**

**राजा परीक्षित् ने कहा**

**अनुवाद**— जहाँ तक सूर्य का प्रकाश है और जहाँ तक तारागण के साथ चन्द्रमा दीख पड़ते है वहाँ तक भूमण्डल है यह आपने कहा है ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तद्वीपसिन्ध्वादिमानचिह्नस्वरूपतः । स्पष्टं प्रवक्तुमारब्धा पञ्चाध्यायी ततः परम् ।।१।। षोडशेऽधस्तथा चोर्ध्वं परितः सन्निवेशतः । मेरोः स्थितिर्महीकञ्जकर्णिका चोपवर्ण्यते ।।२।। प्रियव्रतचरित्रोक्तौ योक्ता द्वीपादिकल्पना । तद्विशेषविजिज्ञासुः कथान्ते परिपृच्छति ।।३।। उक्त इति किंपर्यन्तमुक्तस्तदाह । यावदादित्यस्तपति, यत्र चासौ शुक्लकृष्णपक्षयोर्नक्षत्रगणैः सह चन्द्रमा वा दृश्यते तावत् ।।१।।

### भाव प्रकाशिका

द्वीप तथा समुद्र आदि महाराज प्रियव्रत के रथ के चिह्नस्वरूप हैं यह पहले कहा जा चुका है, उसको स्पष्ट रूप से कहने के लिए यह पञ्चाध्यायी प्रियव्रत के वर्णन के पश्चात् वर्णित की जाती है । सोलहवें अध्याय में सुमेरु पर्वत के नीचे, ऊपर, चारो ओर सन्निविष्ट स्थित पृथिवी रूपी कमल की कर्णिका का भी वर्णन किया जाता है। प्रियव्रत के चरित्र के वर्णन में जो द्वीपों आदि की कल्पना बतलायी गयी है, उसके विषय में विशेष रूप से जिज्ञासु राजा परीक्षित् कथा के अन्त में पूछते हैं । कहाँ तक आपने भूमण्डल को कहा है तो उसके विषय में बतलाते हैं जहाँ तक सूर्य का प्रकाश जाता है तथा जहाँ तक शुक्ल तथा कृष्ण दोनों पक्षों में ताराओं के साथ चन्द्रमा दिखायी देते हैं वहाँ तक ।।१।।

**तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव उपक्लृप्ताः यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेष-विकल्पस्त्वया भगवन्खलु सूचित एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ।।२।।**

**अनुवाद**— उसमें भी महाराज प्रियव्रत के रथ के पहियों की सात लीकों से सात समुद्र बन गये जिनके कारण इस भूमण्डल में सात द्वीपों का विभाग बन गया । हे भगवन् ! अब में इन सबों का परिमाण और लक्षण के साथ पूरा विवरण जानना चाहता हूँ ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

यतो येभ्यः सिन्धुभ्यः एतस्या भुवः । सूचितः संक्षेपतो दर्शितः ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

जिन समुद्रों से पृथिवी के सात द्वीपों की कल्पना हुई इस बात को आपने संक्षेप में सूचित किया है ।।२।।

**भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितु तदु हैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ।।३।।**

**अनुवाद**— जो मन श्रीभगवान् के गुणमय इस स्थूल शरीर में लग सकता है वही मन श्रीभगवान् के वासुदेव संज्ञक स्वयं प्रकाश निर्गुण ब्रह्म रूप सूक्ष्मतम स्वरूप में भी लग सकता है अतएव हे गुरो ! इस विषय का विशद रूप से आप वर्णन करें ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

जिज्ञासायाः फलमाह-भगवत इति ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

भगवतः इत्यादि इस दण्डक से महाराज परीक्षित् की जिज्ञासा का फल बतलाया गया है ।।३।।

ऋषिरुवाच

**न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाऽधिगन्तुमलं विबुधायुषापि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेष नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥४॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— महाराज ! श्रीभगवान् की माया के गुणों का इतना विस्तार है कि कोई भी मनुष्य देवता की भी आयु को प्राप्त कर ले तो भी मन या वाणी से उसका अन्त नहीं पा सकता है । इसलिए मैं नाम, रूप, परिणाम और लक्षणों के माध्यम से मुख्य-मुख्य बातों को ही लेकर इस भूमण्डल की विशेषताओं का वर्णन करूँगा ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

या मायागुणविभूतिस्तस्याः । काष्ठां अन्तम् । रूपं संनिवेशः । लक्षणं चिह्नम् ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

माया के गुणों की जो विभूति (ऐश्वर्य) है उसका अन्त कोई देवता की भी आयु प्राप्त करके नहीं पा सकता है । काष्ठा अर्थात् अन्त । रूप विस्तार, लक्षण अर्थात् चिह्न ॥४॥

**यो वाऽयं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम्॥५॥**

**अनुवाद**— यह जो जम्बूद्वीप है, यह भूमण्डल रूप कमल के कोश स्थानीय जो सात द्वीप हैं उनमें सबसे भीतर का है । इसका विस्तार एक लाख योजन है । यह कमल पत्र के समान गोलाकार है ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

कुवलयं भूण्डलं तदेव कमलं तस्य कोशाः सप्तद्वीपास्तेष्वभ्यन्तरकोशः प्रथमो जम्बूद्वीपो नियुतयोजनविशालो लक्षयोजनविस्तीर्णः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

भूमण्डल रूप कमल के कोश भूत जो सात द्वीप है उनमें सबसे भीतर का कोश यह पहला जम्बूद्वीप है। यह एक लाख योजन विस्तीर्ण है ॥२॥

**यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥६॥**

**अनुवाद**— इसमें नव-नव हजार योजन विस्तार वाले नव वर्ष है जो इनकी सीमा का विभाग करने वाले आठ पर्वतों से बटे हुए हैं ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

नवयोजनसहस्रमायामो येषाम् आयामोऽत्र विस्तारः । एतच्च भद्राश्वकेतुमालव्यतिरेकेण द्रष्टव्यम् । तयोश्चतुस्त्रिंशद्योजनसहस्रायामत्वात् । केचित्तु नीलनिषधयोः संलग्नाग्रयोः समुद्रप्रवेशमङ्गीकृत्य तयोरपि सङ्कुचितत्वेन नवसहस्रायामत्वं संपादयन्ति । संनिवेशश्च वायुनोक्तः । 'धनुर्वत्संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे। दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रमिलावृतम्। इति।॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन सबों का नह हजार योजन विस्तार है । यहाँ आयाम शब्द विस्तार का बोधक है । यह नव सहस्र योजन विस्तार भद्राश्व और केतुमाल इन दो वर्षों को छोड़कर जानना चाहिए, क्योकि उन दोनों वर्षों का विस्तार बीस हजार योजन है । कुछ लोगों का कहना है कि नील और निषध नामक पर्वत उन दोनों के अग्रभाग में संलग्न

हैं, जो समुद्र में प्रविष्ट हैं। अतएव उन दोनों का भी विस्तार सङ्कुचित होने के कारण नव-नव हजार योजन ही है। इन दोनों के संनिवेश को वायु पुराण में वायु ने कहा है। वहाँ कहा गया है कि धनुर्वत् संस्थिते० इत्यादि अर्थात् इन दोनों वर्षों को धनुष के समान गोलकार दक्षिणा और उत्तर में दो वर्षों को जानना चाहिए वे चार योजन विस्तृत इलवृत वर्ष है ॥६॥

**एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावताऽन्तर्भूम्यां प्रविष्टः ॥७॥**

**अनुवाद**— इनके बीचो-बीच इलावृत नामक दसवाँ वर्ष हैं उसके बीच में कुल पर्वतों का राजा मेरु पर्वत है। वह भूमण्डल रूप कमल की कर्णिका के समान है। वह ऊपर से नीचे तक सारा का सारा सुवर्णमय है। यह एक लाख योजन ऊँचा है। उसका शिखर पर विस्तार बतीस हजार और तलहठी में सोलह हजार योजन है। सोलह हजार योजन ही वह पृथिवी में घुसा हुआ है। अर्थात् भूमि के ऊपर उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है ॥७॥

### भावार्थदीपिका

नाभ्यां मध्ये। द्वीपस्यायामो लक्षयोजनप्रमाणं तावान्समुन्नाह उच्छ्रायो यस्य। मूले षोडशयोजनसहस्रं विततः। तावता षोडशयोजनसहस्रमानेन। चतुरशीतियोजनसहस्रमानेन च बहिर्दृश्यते। एवं लक्षयोजनोन्नाहः ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

इलावृत वर्ष के बीच में जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। उतनी ही ऊँचाई मेरुपर्वत की है। यह मूल में सोलह हजार योजन विस्तृत है और सोलह हजार योजन यह पृथिवी में घुसा हुआ है चौरासी हजार योजन बाहर दिखायी देता है। इस तरह उसकी ऊचाई एक लाख योजन हो गयी ॥७॥

**उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥८॥**

**अनुवाद**— इलवृत्त के उत्तर में क्रमशः तीन पर्वत हैं नील, श्वेत और शृङ्गवान जो रम्यक, हिरण्मय और कुरु नामक वर्षों की सीमा को बाँधते हैं। वे पूर्व से पश्चिम तक खारे पानी के समुद्र तक फैले हुए हैं। उनमें से प्रत्येक की चौड़ाई दो-दो हजार योजन है और पहले की अपेक्षा क्रमशः दशमांश से कुछ अधिक कम है। सबों की ऊँचाई एक समान है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

उत्तरोत्तरेणेलावृतमिलावृतस्योत्तरोत्तरतः क्रमेण नीलादयस्त्रयो मर्यादागिरयः। प्रागायताः पूर्वतो दीर्घाः। क्षारोद एवावधिर्येषाम्। द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णाः। दशांशादीषदधिको योंऽशस्तेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति न तूच्चत्वे पृथुत्वे वा। यथोक्तं विष्णुपुराणे 'लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे' इति। एतच्च स्थूलदृष्ट्यैवोक्तम्। तयोरपि यथावन्मध्यमत्वभावेन लक्षप्रमाणात्वाभावात् ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

इलावृत वर्ष के उत्तर में क्रमशः नील आदि तीन मर्यादा पर्वत हैं। ये पूर्व से लेकर पश्चिम दिशा तक

खारे जल के समुद्र तक फैले है। इन सबों का विस्तार दो हजार योजन है। पहले की अपेक्षा बादवाले की लम्बाई दशांश से कुछ अधिक कम है। किन्तु इनकी ऊँचाई और चौड़ाई एक समान है। जैसा कि विष्णु पुराण में कहा गया है **'लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीना तथा परे'** अर्थात् दो पर्वतों की चौड़ाई लाख-लाख योजन है किन्तु बीच वाले का प्रमाण दशमांश कम है। यह चौड़ाई की ही दृष्टि से कहा गया है। उन दोनों के भी बराबर मध्यमत्व का अभावलक्ष योजन प्रमाण का अभाव होने के कारण है ॥८॥

**एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासंख्यम् ॥९॥**

**अनुवाद**— इसी तरह इलावृत के दक्षिण की ओर एक के पश्चात् एक निषध, हेमकूट और हिमालय नामक तीन पर्वत हैं। ये भी नील आदि पर्वतों के समान पूर्व से पश्चिम की ओर फैले हुए हैं और दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं। इन तीनों से क्रमशः हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्ष की सीमाओं का विभाग होता है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

अयुतयोजन उत्सेध उच्छ्रायो येषाम्। अयं चोत्सेधो नीलादीनामपि द्रष्टव्यः। नीलादिपृथुत्वं चैषामपि द्रष्टव्यम्। यथासंख्यं मर्यादागिरय इति शेषः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

इन तीनों पर्वतों की ऊँचाई दस-दस हजार योजन है। नीलादि पर्वतों की भी ऊँचाई इतनी ही है। इन सबों की चौड़ाई भी नील पर्वतों के समान ही है। ये तीनों तीन वर्षों के मर्यादा पर्वत हैं ॥९॥

**तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥१०॥**

**अनुवाद**— इलावृत के पूर्व और पश्चिम की ओर उत्तर में नील पर्वत और दक्षिण में निषध पर्वत पर्यन्त फैले हुए गन्धमादन और माल्यवान् नामक दो पर्वत हैं। इन दोनों की चौड़ाई दो-दो हजार योजन है। ये भद्राश्व एवं केतुमाल नामक दो वर्षों की सीमा को निश्चत करते हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

आनीलनिषधायतौ उत्तरतो नीलपर्यन्तं दक्षिणतो निषधपर्यन्तं च दीर्घौ। पप्रथतुर्विस्तीर्णौ भवतः। तावेव केतुमालभद्राश्वयोर्वर्षयोः सीमानं कुर्वाते। नन्वेवं सति पूर्वापररेखायामिलावृतवेष्टितो मेरुर्मध्ये ततः पूर्वापरतो गिरिद्वयं वर्षद्वयं च नातः किंचिदस्ति। दक्षिणोत्तररेखायां तु तथैवेलावृतवेष्टितो मध्ये मेरुरुभयतस्त्रीणि त्रीणि वर्षाणि गिरयश्च षट् तत्कथं सर्वतो लक्षप्रमाणत्वं जम्बूद्वीपस्य। उच्यते। मेरोः षोडश सहस्राणि। सर्वतः स्थितत्वादिलावृतस्याष्टादश। अन्येषां षण्णां चतुष्पञ्चाशत्। गिरीणां षण्णां द्वादशेत्येवं दक्षिणोत्तररेखायां तावल्लक्षम्। पूर्वापररेखायामपि सुमेरोरिलावृतस्य चतुस्त्रिंशत्। गिर्योश्चत्वारि। शेषाणि द्विषष्टिसहस्राणि पूर्वापरवर्षयोरासमुद्रं दैर्घ्यं द्रष्टव्यान्यतो न विरोधः ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

नील एवं नीषध पर्वत पर्यन्त चौड़े उत्तर की ओर नील पर्यन्त और दक्षिण की ओर निषध पर्यन्त ये दोनों (गन्धमादन और माल्यवान्) पर्वत लम्बे हैं। प्रपथतुः का अर्थ है, विस्तृत। इस तरह वे दोनों केतुमाल और भद्राश्व इन दो वर्षों की सीमा निश्चित करते हैं। यदि कोई यह प्रश्न करे कि ऐसा होने पर पूर्व एवं पश्चिम रेखा पर इलावृत से धिरे हुए मेरु पर्वत बीच में हैं। उसके पूर्व और पश्चिम में दो पर्वत और दो वर्ष हैं। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। दक्षिण और उत्तर रेखा पर तो उसी प्रकार इलावृत से वेष्टित बीच में मेरु पर्वत और दोनों ओर से तीन-

तीन वर्ष हैं इस तरह छह वर्ष हैं। इस तरह जम्बूद्वीप सब ओर से एक लाख योजन कैसे कहा जा सकता है? तो इसका उत्तर है कि सुमेरु पर्वत हर ओर से सोलह हजार योजन है और इलावृत का विस्तार अठारह हजार योजन है और शेष छह वर्षों का विस्तार चौवन हजार योजन है। छह पर्वतों का बारह हजार योजन विस्तार है। इस तरह दक्षिण और उत्तर की रेखा पर एक लाख योजन हो गया। पूर्व और पश्चिम रेखा पर भी सुमेरु तथा इलावृत का विस्तार चौत्तिस हजार योजन दोनों पर्वतों का चार हजार योजन, शेष बासठ हजार योजन पूर्व एवं पश्चिम रेखाओं का समुद्र पर्यन्त विस्तार है अतएव किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है ॥१०॥

**मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इत्ययुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः॥११॥**

**अनुवाद**— इनके अतिरिक्त मन्दर, मेरु मन्दर, सुपार्श्व और कुमद ये चारो पर्वत दश हजार योजन ऊँचे और दस हजार योजन चौड़े मेरु पर्वत के आधार भूत अवष्टम्भ पर्वत के समान है ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

अयुतयोजनप्रमाणौ विस्तारोन्नाहो येषाम्। विस्तीर्णमूर्ध्नौ मेरोरवष्टम्भत्वात्पूर्वपश्चिमौ गिरी दक्षिणोत्तरविस्तारौ, दक्षिणोत्तरौ च पूर्वापरविस्तारौ द्रष्टव्यौ। सर्वतो दशयोजनसहस्रविस्ताराङ्गीकारे त्विलावृतलोपात्पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयतीत्यादिविरोधः स्यात्॥११॥

### भाव प्रकाशिका

दस हजार योजन चौड़ाई और उतनी ही ऊँचाई वाले ये मन्दर मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद चारो पर्वत हैं। ये मेरु पर्वत के अवष्टम्भ (थूम्मी) का काम करते हैं। अतएव पूर्व और पश्चिम के दो पर्वत दक्षिण और उत्तर में विस्तार वाले हैं। सुमेरु के दक्षिण और उत्तर के पर्वतों का विस्तार पूर्व और पश्चिम में होगा। हर ओर से दस योजन विस्तार मानने पर तो इलावृत वर्ष ही गायब हो जायेगा। अतएव सत्रहवें दण्डक में यह जो कहा गया है कि पूर्व दिशा से इलावृत को प्लावित करता है, इसका विरोध होगा ॥११॥

**चतुर्ष्वेतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विट-पविततयः शतयोजनपरिणाहाः ॥१२॥**

**अनुवाद**— इन चारों पर्वतों पर उनकी ध्वजाओं के समान क्रमशः आम, जामुन, कदम्ब और बड़ के चार वृक्ष है। ये प्रत्येक वृक्ष ग्यारह सौ योजन ऊँचे और इतना ही इनकी शाखाओं का विस्तार है। इन वृक्षों की मोटाई सौ-सौ योजन है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

अधिसहस्रमेकादशशतानि उन्नाहो येषाम्। तावत्प्रमाणा विटपततिर्येषाम्। शतयोजनं परिणाहो विस्तारो येषाम्॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

उन चारो वृक्षों की ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है और उतना ही उन सभी वृक्षों की शाखाओं का विस्तार है तथा वे चारो वृक्ष सौ-सौ योजन मोटे हैं ॥१२॥

**ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥१३॥**

**अनुवाद**— भरतश्रेष्ठ ! उन पर्वतों पर चार सरोवर भी हैं। वे क्रमशः दूध, मधु, ईख के रस और मीठे जल के है। इनका सेवन करने वाले यक्ष किन्नरादि उपदेवों को स्वभाव से ही योग सिद्धियाँ प्राप्त हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यदुपस्पर्शिनो यत्सेविनः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदुपस्पर्शिनः पद का अर्थ उनका सेवन करने वाले होता है ॥१३॥

**देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥१४॥**

**अनुवाद**— इन चारो पर्वतों पर चार दिव्य उपवन भी हैं इनका नाम क्रमशः नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र है ॥१४॥

**येष्वमरपरिवृढाः सहसुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥१५॥**

**अनुवाद**— उन सबों में अनेक प्रधान-प्रधान देवता सुरसुन्दरियों के नायक वनकर साथ-साथ विहार करते हैं। उस समय गन्धर्व आदि उपदेवगण उनकी महिमा का गान करते है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ललामो भूषणम्। सुरललनानां भूषणभूताः श्रेष्ठा याः स्त्रियस्तासां यूथस्य पतयः सह संभूय येषु विहरन्ति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

ललाम पद का अर्थ हे भूषण ! अर्थात् सुर सुन्दरियों के भूषण भूत जो स्त्रियाँ हैं उनके समूह के नायक बनकर उनके साथ विहार करते हैं। उस समय गन्धर्व आदि उपदेवगण उनकी महिमा का गान करते हैं ॥१५॥

**मन्दरोत्सङ्ग एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति॥१६॥**

**अनुवाद**— मन्दराचल की गोद में जो ग्यारह सौ योजन ऊँचा देवताओं का आम्रवृक्ष है उससे गिरिशिखर के समान बड़े-बड़े और अमृत के समान स्वादिष्ट फल गिरते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एकादशशतयोजनमुत्तुङ्गो यो देवचूतस्य शिरसः सकाशात्। फलप्रमाणमुक्तं वायुपुराणे 'अरत्नीनां शतान्यष्टावेकषष्ट्यधिकानि च। फलप्रमाणमाख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः। इति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

ग्यारह सौ योजन ऊँचा जो देवताओं का आम्रवृक्ष है उसके शिरोभाग से फल गिरते हैं। उन फलों का प्रमाण वायुपुराण में बतलाया गया है कि आठ सौ एकसठ हाथ बड़ा उन फलों का प्रमाण तत्त्वदर्शी ऋषियों ने कहा है ॥१६॥

**तेषां वीशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥१७॥**

**अनुवाद**— वे फल जब फटते हैं तो उनसे अत्यन्त सुगन्धित और मीठा लाल-लाल रस प्रवाहित होने लगता है। वही अरुणोदा नाम की नदी के रूप में परिणत हो जाता है। वह नदी मन्दराचल के शिखर से गिरकर इलावृत वर्ष पूर्वी भाव को पलावित करती है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अतिमधुरश्चासौ स्वतः सुरभिश्च सुगन्धिश्च। न चान्येषां गन्धैरधिवासितः बहुलश्चारुणश्च रसः स एव उदमुदकं तेन॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

उस आम का रस दूसरे गन्धों से नहीं अपितु स्वतः सुगन्धित और अत्यधिक मात्रा में लाल-लाल होता है । रस रूप जल से वह नदी इलावृत के पूर्वी भाग को प्लवित करती है ॥१७॥

**यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगन्धवातो दशयोजनं समन्तादनुवासयति ॥१८॥**

**अनुवाद**— इस जल का सेवन पार्वतीजी की अनुचरी यक्ष पत्नियाँ करती हैं । इसके कारण इन सबों के अङ्गों से ऐसी सुगन्धि निकलती है कि उनका स्पर्श करके चलने वाली वायु उनके चारो ओर दस-दस योजन तक सारे देश को सुगन्धित कर देती है ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

यदुपजोषणाद्यस्य रसस्य सेवनात् ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

यदुपजोषणात् पद का अर्थ है उस रस का सेवन करने से ॥१८॥

**एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बूनाम नदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यन्दयति ॥१९॥**

**अनुवाद**— इसी प्रकार जामुन के वृक्ष से पृथी के समान बड़े-बड़े प्रायः बिना गुठली के ही फल गिरते हैं । बहुत ऊँचे से गिरने के कारण वे फट जाते हैं । उनके रस से जम्बू नाम की नदी प्रवाहित होती है जो मेरुमन्दर पर्वत के दस हजार योजन ऊँचे शिखर से गिरकर इलावृत वर्ष के दक्षिण भूभाग को सींचती है ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

अनस्थिप्रायाणामतिसूक्ष्मबीजानाम् । यत्र निपतति ततश्चारभ्यात्मनो दक्षिणतः सर्वमिलावृतं व्याप्य वहतीत्यर्थः ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

अनस्थिप्राय का अर्थ है कि उन जामुन के फलों के बीज अत्यन्त छोटे होते हैं । वे फल जहाँ गिरते हैं वहाँ से लेकर उनका रस इलावृत वर्ष के दक्षिणी भाग पर्यन्त प्रवाहित होता है ॥१९॥

**तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदाऽमरलोकाभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्णं भवति ॥२०॥**

**अनुवाद**— उस नदी के दोनों किनारों की मिट्टी उस रस से भींगकर जब वायु और सूर्य के संयोग से पक जाती है तब वही देवलोक को विभूषित करने वाला जाम्बूनद नामक सुवर्ण बन जाती है ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

तावत्सर्वतः रोधसोस्तटयोः ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

जहाँ तक वह नदी प्रवाहित होती है, वहाँ तक के दोनों तटों की मिट्टी पूर्ण रूप से जाम्बूनद नामक सुवर्ण बन जाती है ॥२०॥

**यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥**

**अनुवाद**— इसे देवता और गन्धर्व आदि अपनी तरुणी स्त्रियों के सहित मुकुट कङ्कण और करधनी इत्यादि आभूषणों के रूप में धारण करते हैं ॥२१॥

**यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्वशिखरात्पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति ॥२२॥**

**अनुवाद**— सुपार्श्व पर्वत पर जो विशाल कदम्ब वृक्ष है, उसके पाँच कोटरों से मधु की धारा प्रवाहित होती है। इन धाराओं की मोटाई पाँच पोरसे जितनी है। ये सुपार्श्व के शिखर से गिरकर इलावृत वर्ष के पश्चिमी भाग को अपनी सुगन्ध से सुगन्धित कर देती हैं ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

आयामोऽत्र व्यामः। स च 'व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तिर्यगन्तरम्' इत्युक्तलक्षणः। पञ्च व्यामाः परिणाहः स्थौल्यं यासामित्यर्थः। केचित्तु पञ्चव्यामपरिणाहा इत्येव पठन्ति ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

यहाँ पर आयाम शब्द व्याम का बोधक। दोनों हाथों को फैलाने से जो उनका तिर्यक् विस्तार होता है उसे व्याम कहते हैं। कहीं तो पञ्चव्याम परिणाहाः यही पाठ है ॥२२॥

**या ह्युपयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥२३॥**

**अनुवाद**— उस मधु का जो लोग पान करते हैं उनके मुख से निकली हुई वायु अपने चारो ओर सौ योजन पर्यन्त सुगन्धित बना देती है ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२३॥

**एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बर-शय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥२४॥**

**अनुवाद**— इसी तरह कुमुद नामक पर्वत पर जो शतवल्श नामक वट वृक्ष है, उसकी जटाओं से नीचे की ओर प्रवाहित होने वाले अनेक नद निकलते हैं, वे सब इच्छानुसार फल देने वाले हैं। उनसे दूध, दही, मधु, घृत गुड़, अन्न, वस्त्र शय्या, आसन और आभूषण प्रभृति सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं। ये सब कुमुद पर्वत के शिखर से गिरकर इलावृत्त के उत्तरीभाग को सींचते हैं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

नीचीना अधोमुखाः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

नीचीना यानी नीचे की ओर प्रवाहित होने वाले ॥२४॥

**यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेददौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपस-र्गादयस्तापविशेषा भवन्ति यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥२५॥**

**अनुवाद**— इनके दिए हुए पदार्थों का उपभोग करने से वहाँ की प्रजाओं की त्वचा में झुरियाँ, बाल पकना, थकना (श्रान्त होना) शरीर में पसीना होना, दुर्गन्ध निकलना, जरा, रोग, मृत्यु सर्दी-गर्मी की पीड़ा, शरीर का कान्ति हीन होना, तथा अङ्गों का टूटना आदि कष्ट कभी नहीं सताते हैं। उन लोगों को आजीवन सुख ही प्राप्त होता है ॥२५॥

**कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनिषधशिनीवासकपिलशङ्खवैदूर्यजारुधिहंसर्षभनाग-कालञ्जरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः॥२६॥**

**अनुवाद**— राजन् ! जिस तरह कमल की कर्णिका के चारो ओर केसर होते हैं । उसी तरह मेरु के मूल में चारो ओर बीस पर्वत हैं । उनके नाम हैं कुरङ्ग, कुङ्कर, कुसुम्भ, वैङ्कक, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शङ्ख,वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग कलंजर और नारद आदि ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२६॥

**जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरतस्त्रिशृङ्गमकरावष्टभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥**

**अनुवाद**— इसके अतिरिक्त मेरु पर्वत के पूर्व की ओर जठर और देवकूट नामक दो पर्वत हैं । वे दोनों अठारह-अठारह हजार योजन लम्बे और दो-दो हजार योजन चौड़े और ऊँचे हैं । इसी तरह उसके पश्चिम दिशा में पवन और परियात्र पर्वत हैं, दक्षिण की ओर कैलास और करवीर पर्वत हैं और उत्तर की ओर त्रिशृङ्ग और मकर नामक दो पर्वत हैं । इन आठ पर्वतों से चारो ओर से घिरा हुआ सुवर्ण पर्वत मेरु अग्नि के समान चमकता है ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

चतुर्दिक्षु मेरुमूलाद्योजनसहस्रं त्यक्त्वाऽग्रेः परितः परिधय इव जठरदेवकूटादयस्तिष्ठन्ति । अतोऽष्टादशयोजनसहस्रं प्रमाणमत्रोक्तम् 'वैष्णवादिपुराणेषु परिमाणादि यत्पुनः। अन्यथा वर्णितं तत्तु कल्पभेदाद्यपेक्षया । द्विसहस्रं पृथु च तुङ्गौ च॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

एक हजार योजन छोड़कर मेरु पर्वत की चार दिशाओं में अग्नि के चारो ओर परिधि के समान जठर देव कूट आदि पर्वत विद्यमान हैं । इसलिए यहाँ पर अठारह हजार योजन प्रमाण यहाँ बतलाया गया है । विष्णु आदि पुराणों में जो परिमाण बतलाया गया है वह कल्प भेद आदि के कारण भिन्न प्रकार का है जठर और देवकूट दोनों पर्वत दो हजार योजन ऊँचे और चौड़े हैं ॥२७॥

**मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति॥२८॥**

**अनुवाद**— यह कहा जाता है कि मेरु पर्वत के शिखर पर ठीक बीच में ब्रह्माजी की सुवर्ण मयी नगरी हैं । वह आकार में समान चतुरस्र दस हजार योजन विस्तृत है ॥२८॥

**तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूप तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥२९॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भुवनकोश वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

**अनुवाद**— उसके पश्चात् पूर्वादि आठ दशाओं के अधिपति इन्द्र आदि आठ लोकपालों की आठ नगरियाँ हैं । वे अपने-अपने स्वामी के अनुरूप उनके ही दिशाओं में हैं उन सबों का परिमाण ब्रह्माजी की पुरी के चौथाई-चौथाई में हैं ॥२९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध के भुवनकोश वर्णन नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥**

# सत्रहवाँ अध्याय

## गङ्गाजी का विवरण और भगवान् शङ्कर कृत सङ्कर्षण देव की स्तुति

श्रीशुक उवाच

**तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिंजल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोभिधीयमानातिमहता कालेन युगसहस्रो पलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥१॥**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— जब राजा बलि की यज्ञशाला में यज्ञ मूर्ति भगवान् विष्णु ने त्रैलोक्य को नापने के लिए अपना पैर फैलाया तो उनके बाये पैर के अङ्गूठे के नख से अण्डकटाह के ऊपर का भाग फट गया और उस अण्डकटाह के छिद्र से जो जलधारा बाहर की ओर निकली वह उस चरण कमल के धोने के कारण पैर में लगे केसर के मिल जाने से लाल हो गयी। उस धाराका र्स्पश होने से इस संसार का सारा पाप विनष्ट हो गया फिर भी वह धारा निर्मल ही बनी रही। उस धारा को पहले विष्णुपदी नाम से ही कहा जाता था। वह धारा हजारों युग बीत जाने पर स्वर्ग के शिरोभाग में स्थित ध्रुवलोक में गिरी जिसे विष्णुपद भी कहते हैं ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशे गङ्गागमनं तच्चतुर्दिशम्। इलावृते च रुद्रेण सङ्कर्षणनिषेवणम्। यज्ञलिङ्गस्य बलेर्यज्ञे लिङ्गं त्रिविक्रममूर्तिर्यस्य विक्रमतो दक्षिणेन पदा भुवं क्रान्त्वा वामपदमुत्क्षिपतो वामपादाङ्गुष्ठनखेन निर्भिन्नमूर्ध्वमुपरिभागो यस्याण्डकटाहस्य तस्य विवरेणान्तः प्रविष्टा या बाह्यजलधारा सा दिवो मूर्धन्यवततारेत्यन्वयः। तस्य यच्चरणपङ्कजं तस्यावनेजनेन क्षालनेनारुणं तद्गतं कुङ्कुम तदेव किंजल्कास्तैरुपरञ्जिता अतएवाखिलस्य जगतोघमलापहमुपस्पर्शनं यस्यास्तथाप्यमला तन्मलसङ्गशून्या साक्षाद्भगवत्पदीति यदनुपलक्षितं जाह्नवी भागीरथीत्याद्युपलक्षणान्तररहितं वचो नाम तेनाभिधीयमानां तस्मिन्समये भगवत्पदी नाम पश्चान्नामान्तराणि जातानीत्यर्थः। कोऽसौ दिवो मूर्धा तमाह–यदिति ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

भुवनकोश के वर्णन के पश्चात् सत्रहवें अध्याय में गङ्गा के चारो दिशाओं में जाने का वर्णन है । और इलावर्त वर्ष में भगवान् शङ्करजी के द्वारा भगवान सङ्कर्षण की स्तुति का वर्णन है । यज्ञ मूर्ति भगवान् का बलि के यज्ञ में त्रिविक्रमशरीरधारी त्रैलोक्य के नापने के समय दाहिने पैर पृथिवी को नापकर जब वे बायें पैर को ऊपर उठाये तो ब्रह्माण्ड कटाह के ऊपर का भाग फट गया उसके छिद्र से बाह्य जलधारा भीतर प्रवेश की वह स्वर्ग लोक के शिरोभाग में गिरी । श्रीभगवान् के चरण कमल के धोने से उस चरण में लगे लाल कुङ्कुम रूप पराग से रंजित वह अपने स्पर्श मात्र से संसार के पाप का अपनोदन कर दी, किन्तु उसके मूल से संसक्त नहीं होने के कारण वह निर्मल ही बनी रही । वह जाह्नवी, भगीरथी इत्यादि नामों से भगवतपदी के नाम से अभिहित की जाती थी । उस समय उसका नाम भगवत्पदी ही था बाद में उसके दूसरे जाह्नवी इत्यादि नाम हुए । अब प्रश्न है कि स्वर्ग लोक का शिरोभाग क्या है तो उसका नाम विष्णुपद अर्थात् ध्रुवलोक है ।।१।।

**यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ।।२।।**

**अनुवाद**— हे वीरव्रत परीक्षित ! उस ध्रुवलोक में उत्तानपाद के पुत्र परम भागवत ध्रुव का निवास है । वे प्रतिदिन यह हमारे कुल देवता श्रीभगवान् का चरणोदक है, ऐसा मानकर बढ़ते हुए भक्ति भाव से आज भी उस जल को वे अपने सिर पर चढ़ाते हैं । उस समय उनका हृदय प्रेम से गद्गद हो जाता है । उत्कण्ठा के कारण उने मुंदे हुए नेत्रों से आँसू की धारा प्रवाहित होने लगती है । और उनके शरीर में रोमाञ्च हो जाता है ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

किं तद्विष्णुपदं तदाह–यत्रेति । वीरव्रतो दृढसङ्कल्पः अस्मत्कुलदेवताया हरेश्चरणारविन्दोदकमिति हेतोः परमादरेण बिभर्तीत्यन्वयः । कथंभूतः सन् । प्रतिक्षणं वर्धमानेन भगवद्भक्तियोगेन दृढमत्यन्तं क्लिद्यमानमन्तर्हृदयं यस्य । अत एवौत्कण्ठ्येन विवशमामीलितं यल्लोचनयुगलं तदेव कुड्मले ताभ्यां विगलितममलं बाष्पं तस्य कलया सहाभिव्यज्यमानं रोमपुलकानां कुलं यस्य ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वह विष्णुपद क्या है ? तो उसे इस दण्डक में बतलाते हैं । वीरव्रत अर्थात् सुदृढ सङ्कल्प वाले ध्रुवजी यह हमारे कुल देवता श्रीभगवान् का चरणोदक है, यह मानकर उसे अत्यन्त आदर के साथ अपने शिर पर धारण करते है । कैसे होकर वे यह काम करते हैं ? तो इस पर कहते है प्रतिक्षण बढ़ने वाले भक्तियोग के द्वारा अत्यन्त गद्गद हृदय वाले होकर धारण करते हैं । अतएव उनके मुंदे हुए नेत्रों से उत्कण्ठा वशात् अश्रुधारा बहने लगती है और उनके शरीर में रोमाञ्च हो जाता है ।।२।।

**ततः सप्तऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञायां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहन्ति ।।३।।**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् सप्तर्षिगण विष्णुपदी के प्रभाव को जानने के कारण, यही तपस्या की आत्यन्तिकी सिद्धि है, यह मानकर अत्यन्त आदर पूर्वक आज भी वैसे ही अपने जटा-जूट पर धारण करते हैं । ये सप्तर्षिगण निष्काम है । सर्वात्मा भगवान् वासुदेव की निश्चल भक्ति को ही अपना धन मानकर इन लोगों ने सभी कामनाओं को भी त्याग दिया है । यहाँ तक कि ये भक्तियोग के सामने आत्मज्ञान को भी महत्त्व नहीं देते हैं ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

ततः सप्तऋषयस्तस्या गङ्गायाः प्रभावाभिज्ञाः सन्तो यां जटाजूटैरुद्वहन्तीत्यन्वयः । एतावत्येव नातोऽधिकास्तीत्यभिप्रायवन्तः। तत्र हेतुः--भगवति सन्ततं भक्तियोगलाभेनैवोपेक्षिता अन्ये पुरुषार्था आत्मज्ञानं च यैः । कामिव क इव धारयन्ति । प्रत्यक्षं मुक्तिमिव तामागताम् । मुमुक्षवो जना इव ते ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् गङ्गाजी के प्रभाव को जानने वाले सप्तर्षि गण उसके अपने जटा-जूट पर धारण करते हैं। वे जानते हैं कि यही तपस्या की आत्यन्तिकी सिद्धि है । श्रीभगवान् में भक्तियोग का लाभ हो जाने के कारण ये सप्तर्षि अन्य पुरुषार्थों और आत्मज्ञान की भी उपेक्षा कर देते हैं । वे उसको साक्षात् मुक्ति के समान धारण करते हैं । मुमुक्षु पुरुषों के समान ।।३।।

**ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ।।४।।**

**अनुवाद**— उसके पश्चात् गङ्गाजी करोड़ों विमानों से घिरे हुए आकाश में उतरती हैं और चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती हुई मेरु के शिखर पर ब्रह्मपुरी में गिरती हैं ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

ततोऽनेकसहस्रकोटीनां विमानामनामनीकैः सङ्कुलेन देवयानेनाकाशमार्गेणावतरन्ती । सप्तऋषिभ्योऽर्वागेव प्रायशः कर्मिणां गतिरिति ततोऽर्वागेव सङ्कुलत्वमुक्तम् । आवार्य आप्लाव्य । मेरुमूर्धस्थ ब्रह्मसदने निपतति ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् विमान समूह से भरे आकाश मार्ग से अवतरित होती हुई सप्तर्षियों से पहले ही, कर्मियों की गति रूप उससे पहले ही चन्द्र लोक को आप्लावित कर ब्रह्माजी की पुरी में गिरती हैं ।।४।।

**तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीताऽलकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ।।५।।**

**अनुवाद**— वहाँ से ये सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा इन चार धाराओं में विभक्त होकर अलग-अलग चारो दिशाओं में प्रवाहित होती हुई नदों एवं नदियों के स्वामी समुद्र में जाकर मिल जाती हैं ।।५।।

### भावार्थ दीपिका

अभिस्पन्दन्ती अभितो गच्छन्ती ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

अभिस्पदन्ती का अर्थ चारो ओर प्रवाहित होती हुई ।।५।।

**सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वान्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ।।६।।**

**अनुवाद**— सीता नाम की धारा ब्रह्मपुरी में गिर करके सराचलों के सर्वोच्च शिखरों से होकर नीचे की ओर प्रवाहित होती हुई गन्ध मादन पर्वत के शिखरों पर गिरती है । और भद्राश्व वर्ष को पलावित करके पूर्व दिशा में जाकर खारे जल के पूर्व समुद्र में जाकर मिल जाती हैं ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

केसराचलानां मेरुसमानोच्छ्रायत्वात्प्रथमं तेषामादिशिखरेषु मुख्यशृङ्गेषु पतति ततस्तेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती सती ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

केसराचलों के मेरु पर्वत के समान ऊँचे होने के कारण पहले उन सबों के ऊँचे शिखरों पर गिरती है, उसके पश्चात् उन सबों से नीचे बहती हुई जाकर पूर्वसमुद्र में मिल जाती है ॥६॥

**एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति॥७॥**

**अनुवाद**— इसी तरह चक्षु नाम की धारा माल्यवान् पर्वत के शिखा पर गिरकर बिना किसी अवरोध के केतुमाल वर्ष में होती हुई पश्चिम समुद्र में जाकर मिल जाती है ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

माल्यवच्छिखरात्केतुमालाभिमुखं निष्पतन्ती । चक्षुःसंज्ञा ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

चक्षु नाम की धारा माल्यवान् पर्वत पर होकर केतुमाल वर्ष में होकर पश्चिम समुद्र में जाकर मिल जाती हैं ॥७॥

**भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥८॥**

**अनुवाद**— भद्रा मेरुपर्वत के शिखर से उत्तर की ओर गिरती है एक पर्वत के शिखर से दूसरे पर्वत के शिखर पर गिरती हुई शृङ्गवान शिखर से गिरकर उत्तर की ओर बहती हुई उत्तर समुद्र में जाकर मिल जाती हैं॥८॥

### भावार्थ दीपिका

गिरिशिखरादिति । कुमुदशिखरादुच्चलिता नीलशिखरं तत उच्चलिता श्वेतशिखरं तदप्यतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादधः स्रवन्ती ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

कुमुद पर्वत के शिखर से चलकर नील पर्वत के शिखर पर फिर श्वेत पर्वत के शिखर पर, उसको भी छोड़कर शृङ्गवान पर्वत से नीचे गिरकर प्रवाहित होती हुई उत्तर समुद्र में जाकर मिली जाती हैं ॥८॥

**तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठन्ती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥९॥**

**अनुवाद**— उसी तरह अलकनन्दा नाम की भी धारा ब्रह्मपुरी से दक्षिण की ओर गिरकर अनेक पर्वत शिखरों को पार करती हुई हेमकूट पर्वत पर आती है । हेमकूट पर्वत से हिमालय पर्वत के शिखरों को अत्यन्त वेग से गिरती हुई भारतवर्ष में दक्षिण दिशा के समुद्र में प्रवेश कर जाती है । इस अलकनन्दा में स्नान करने के लिए आने वाले पुरुष को पग-पग पर अश्वमेध तथा राजसूय आदि यज्ञों का फल प्राप्त होता है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

अतिरभसतररंहसा अस्खलिततीव्रतरवेगेन ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

अतिरभसतररंहसा का अर्थ है अपने अत्यन्त वेग से ॥९॥

**अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः शतशः ॥१०॥**

**अनुवाद**— दूसरे भी वर्षों में मेरु आदि से निकलने वाली सैकड़ों नदियाँ हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

बहुशो बहुविधाः । मेर्वादिगिरीणां दुहितरस्तत्प्रसूताः ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

बहुशः अर्थात् अनेक प्रकार की मेरु आदि पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ हैं ॥१०॥

**तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥११॥**

**अनुवाद**— इन सभी वर्षों में भारत वर्ष ही कर्म क्षेत्र है अन्य आठ वर्ष तो स्वर्ग वासी पुरुषों के भोग से बचे हुए पुण्यों को भोगने के स्थान है । उन वर्षों को भौम स्वर्ग पद से लोग अभिहित करते हैं ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

दिव्यभौमबिलभेदात्रिविधः स्वर्गः तत्र भौमस्वर्गस्य पदानि स्थानानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

स्वर्ग तीन प्रकार का है दिव्य, भौम और बिल । इनमें से ये भौम स्वर्ग पद से अभिहित किए जाते हैं॥११॥

**एषु पुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुतप्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ॥१२॥**

**अनुवाद**— वहाँ के देवतुल्य मनुष्यों की मानवी गणना के अनुसार दस हजार वर्षों की आयु होती है । उनमें दस हजार हाथियों का बल होता है । उनके वज्र के समान सुदृढ अङ्गों में जो शक्ति, यौवन और उल्लास होते हैं । उनके कारण वे बहुत समय तक मैथुन आदि भोगों को भोगते हैं । अन्त में भोगों के समाप्त होने पर उनकी आयु का एक वर्ष जब बचता है तब उनकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं । इस तरह वहाँसदैव त्रेतायुग के समान काल बना रहता है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

अयुतं पुरुषमानेन आयुर्वर्षाणि येषाम् । वज्रवदृढं संहननं शरीरं तस्मिन्बलवयोमोदास्तैः प्रमुदितानि यानि महासौरतानि मिथुनानि तेषां व्यवायापवर्गे संभोगावसाने एकवर्षशेषे आयुषि धृत एको गर्भो यैस्तादृशानि कलत्राणि येषाम् । त्रेतायुगसमः विषयसुखोत्कर्षात् । कृतयुगे हि सर्वे ध्याननिष्ठाः । द्वापरादौ तु दुःखबहुलाः ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

वहाँ के लोगों की आयु मनुष्यों की गणना से दस हजार वर्षों की होती है । उन लोगों के शरीर वज्र के समान सुदृढ होता है । उन शरीरों में विद्यमान बल अवस्था और उल्लास के कारण वे बहुत समय तक मैथुन आदि विषयों को भोगते हैं । उन स्वर्ग में भोगों के अन्त में जब आयु का एक वर्ष बचा रहता है तो उनकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं । वैषयिक आनन्द की उत्कृष्टता के कारण वहाँ त्रेतायुग के समान काल बना रहता है । सत्य युग में सभी मनुष्य ध्यान निष्ठ होते हैं । द्वापर आदि युग में तो लोग अधिक दुःखी रहते हैं ॥१२॥

**यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलयश्रियानम्यमान-विटपलताविटपिभिरुपशुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु बिकचविविध-नववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिलविलासहासलीलावलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥१३॥**

**अनुवाद**— वहाँ ऐसे आश्रम, भवन और वर्ष, पर्वतों की घाटियाँ हैं जिनके सुन्दर वन उपवन सभी ऋतुओं के पुष्पों के गुच्छे, फल और नवीन पल्ल्वों की शोभा के भार से झुकी हुई डालियों और लताओं वाले वृक्षों से समलंकृत हैं। वहाँ निर्मल जल से परिपूर्ण ऐसे जलाशय हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के कमल सदा विकसित रहते हैं। उन कमलों की सुगन्धि से प्रमुदित होकर राजहंस, जलमूर्ग कारण्डव सारस और चकवा आदि पक्षी विभिन्न प्रकार की बोलियाँ बोलते हैं। भिन्न-भिन्न जाति के मदमत्त भ्रमर मधुर गुञ्जन करते है। इन आश्रमों भवानों, घाटियों में तथा जलाशयों में देवेश्वर गण परम सुन्दरी देवाङ्गनाओं के साथ कामोन्मादक हास-विलास और लीला कटाक्षों से मन और नेत्रों के आकृष्ट हो जाने के कारण स्वच्छन्द विहार करते हैं और उनके मुख्य अनुचर गण विविध प्रकार की सामग्रियों से उनका समादर करते हैं ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

यत्र ह येषु हि वर्षेषु देवपतयः स्वैः स्वैः सेवकगणेषु मुख्यैः कृतमहोपचाराः सन्तः स्वैरं विहरन्तीत्यन्वयः। केषु स्थानेषु। सर्वेषु ऋतुषु कुसुमस्तबकादीनां श्रिया समृद्ध्यात्यन्तं नम्यमाना विटपास्तदाश्रिता लताश्च येषु तैर्विटपिभिरुपशुम्भमानानि शोभमानानि रुचिराणि काननानि येषु तेष्वाश्रमायतनेषु वर्षगिरिद्रोणीषु च तथा अमलेषु जलाशयेषु विकचानि विकासीनि विविधानि नवानि च यानि वनरुहाणि नीरजानि तेषामामोदेन मुदितैः राजहंसादिभिर्मधुकरनिकराणां चाकृतिभिर्जातिविशेषैरुपकूजितेषु। कामेन कलिलैः क्षुभितैर्विलासादिभिराकृष्टं मनो दृष्टिश्च येषां ते ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन वर्षों में देवेश्वरगण अपने मुख्य सेवकों द्वारा समादृत होकर अपनी इच्छा के अनुसार विहार करते हैं। यह मुख्य वाक्य है। जिन स्थानों में सभी ऋतुओं में पुष्पों के गुच्छों आदि को अत्यन्त भार से झुके हुए वृक्ष तथा उनके आश्रित रहने वाली लताएँ भी उन वृक्षों के द्वारा अत्यन्त सुशोभित होती हैं। इस प्रकार के वनों में विद्यमान आश्रम वर्ष (विख्यात पर्वत) तथा पर्वतों की धाटियों में, विद्यमान स्वच्छ जलाशयों में विकसित अनेक प्रकार के कमलों की सुगन्धि से प्रसन्न राजहंस आदि और अनेक जाति के भ्रमर भी गुंजन करते हैं काम जन्य विकारों से तथा विलास आदि से जिन सबों का मन और दृष्टि आकृष्ट रहते हैं ऐसे देवेश्वर स्वच्छन्द विहार करते हैं ॥१३॥

**नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि संनिधीयते॥१४॥**

**अनुवाद**— उन नवो वर्षों में रहने वाले पुरुषों पर कृपा करने के लिए परम पुरुष भगवान् नारायण इस समय भी अपनी मूर्तियों में विराजमान रहते हैं ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

नवस्वपि वर्षेषु ये पुरुषास्तेषां तदनुग्रहाय स चासौ वक्ष्यमाणोऽनुग्रहस्तदर्थमात्मतत्त्वव्यूहेन स्वमूर्तिसमूहेन संनिधीयते संनिहितो भवति ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

उन नवो वर्षों में रहने वाले जीवों पर कृपा करने के लिए भगवान् आज भी अपनी मूर्तियों से विराजमान रहते हैं ॥१४॥

**इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान्नह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥१५॥**

**अनुवाद**— इलावृत वर्ष में तो एक मात्र भगवान् शङ्कर ही पुरुष हैं श्रीपार्वतजी के शाप को जानने वाला कोई दूसरा पुरुष उस वर्ष में प्रवेश नहीं करता है । इस प्रसङ्ग को हम आगे (नवें स्कन्ध में) कहेंगे ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

अपरोऽर्वाचीनः । पश्चात् नवमस्कन्धे ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

अपर अर्थात् बाद में उत्पन्न होने वाला, पश्चात् अर्थात् नवें स्कन्ध में ॥१५॥

**भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण संनिधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥१६॥**

**अनुवाद**— वहाँ पार्वतीजी एवं उनकी अरबों खर्वों दासियों से सेवित भगवान् शङ्कर परम पुरुष परमात्मा श्री वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षण संज्ञक चतुर्व्यूह मूर्तियों में से अपनी कारण रूपा चौथी सङ्कर्षण नामकी तमः प्रधान मूर्ति का ध्यान मनोमयं विग्रह के रूप में चिन्तन करते हैं और इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए इस प्रकार स्तुति करते रहते हैं ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

भवानी नाथः स्वामिनी येषां तैः स्त्रीगणानामर्बुदसहस्रैरवरुध्यमानः सर्वतः सेव्यमानः । आत्मनः प्रकृतिं कारणम् । आत्मनि समाधिर्ध्यानं यस्य तेन रूपेण । एतद्वक्ष्यमाणं मन्त्रादिकमभिगृणन् जपन् ॥१६॥

**भाव प्रकाशिका**

जिन सबों की पार्वतीजी स्वामिनी हैं ऐसी अरबों खरबों स्त्री समूह से सेवित भगवान् शङ्कर अपनी करणभूता समाधिस्थित मनोमय मूर्ति सङ्कर्षण मूर्ति भगवान् की आगे कहे जाने वाले मन्त्र आदि से जप करते हुए स्तुति करते हैं ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

**ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥१७॥**

**शङ्करजी कहते हैं**

**अनुवाद**— जिनसे सभी गुणों की अभिव्यक्ति होती है उन अनन्त और अव्यक्त मूर्ति ओङ्कार स्वरूप परम पुरुष भगवान् को नमस्कार है ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वेषां गुणानां संख्यानं प्रकाशो यस्मात् । स्वयं त्वव्यक्तायाप्रमेयाय ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

जिनसे सभी गुणों की अभिव्यक्ति होती है स्वयं अप्रमेय भगवान को मेरा नमस्कार है ॥१७॥

**भजे भजन्यारणपादपङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।**
**भक्तेष्वलंभावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ।।१८।।**

**अन्वयः**— हे भजन्य अरणंपाद पङ्कज, कृत्स्नस्य भगस्य परं परायणम् भक्तेषु अलं भावितभूतभावनं भवापहं भवभावमीश्वरं त्वां भजे ।।१८।।

**अनुवाद**— हे भजनीय प्रभो ! आपके चरण कमल भक्तों का एकमात्र आश्रय हैं । आप सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के परम आश्रय है । भक्तों के सामने आप अपना भूतभाव स्वरूप प्रकट कर देते हैं तथा उनको आप संसार से मुक्त कर देते हैं। किन्तु अभक्तों को आप संसार के बन्धन में डाल देते हैं । आप सर्वेश्वर का मैं भजन करता हूँ ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

हे भजन्य भजनीय, त्वा त्वां परमेश्वरं भजे इत्यन्वयः । अरणं शरणं पादपङ्कजं यस्य । कृत्स्नस्य भगस्यैश्वर्यादिषाड्गुण्यस्य परमयनमाश्रयम् । भक्तेष्वलमत्यर्थं भावितं प्रकटितं भूतभावनं स्वरूपं येन । भवापहं संसारहरम् । भक्तेष्वित्यनुषङ्गः । भवं भावयतीति तथा तम् । अर्थादभक्तेष्विति द्रष्टव्यम् ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

हे भजनीय प्रभो ! मैं आप परमेश्वर का भजन करता हूँ । यह मुख्य वाक्य है । आपके चरण कमल भक्तों के एकमात्र आश्रय हैं । आप सम्पूर्ण षडैश्वर्यो के आश्रय हैं । भक्तों के समक्ष आप अपना भूत भावन रूप प्रकट कर देते हैं और उनको संसार बन्ध से मुक्त कर देते हैं । और अभक्तों को संसार के बन्धन में डाल देते हैं ।।१८।।

**न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।**
**ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ।।१९।।**

**अन्वयः**— यथा अजितक्रोधवेगानां नः दृष्टि रज्यते तथा मायागुण चित्तवृत्तिभिः ईशे यस्य दृष्टिः अण्वपि न अज्यते तं आत्मनः जिगीषुः कः न मन्येत ।।१९।।

**अनुवाद**— प्रभो ! हमलोग क्रोध के वेग को नहीं जीत सके हैं अतएव हमलोगों की दृष्टि पाप से लिप्त हो जाती है आप तो संसार का नियमन करने के लिए निरन्तर साक्षी रूप से उसके समस्त व्यापारों को देखते रहते हैं फिर भी हमलोगों के समान आपकी दृष्टि पर उन मायिक विषयों और चित्त की वृत्तियों का थोड़ा सा भी प्रभाव नहीं पड़ता है; ऐसी स्थिति में अपने मन को वश में करने की इच्छा वाला कौन ऐसा होगा जो आपका समादर नहीं करेगा ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

ईश्वरत्वमुपपादयंस्तामसत्वेन प्रसक्तमनादरं वारयति-न यस्येति । यस्य निरीक्षमाणस्यापि दृष्टिर्मायागुणैर्विषयैश्चित्तवृत्तिभिः करणैश्चाण्वपीषदपि नाज्यते न लिप्यते । किमर्थं निरीक्षमाणस्य । ईशे ईशनाय नियमनाय । ईशनमीट् । संपदादित्वाद्भावे क्विप्। अत्र वैधर्म्ये दृष्टान्तः । यथा अजितक्रोधवेगानां नोऽस्माकं दृष्टिरज्यते न तथेति । अत आत्मन इन्द्रियाणि जिगीषुर्जेतुमिच्छुर्मुमुक्षुस्तं को न मन्येत नाद्रियेत ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् सङ्कर्षण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन करते हुए उनके तामस होने के कारण प्रसक्त अनादर को दूर करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो ! आप संसार का नियमन करने के लिए उसको साक्षिरूप से सदा देखते हुए भी उसके मायिक गुणों और चित्त की वृत्तियों का आपकी दृष्टि पर अणुमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता है । यहाँ वैधर्म्य में दृष्टान्त उपन्यस्त करते हैं । जैसे कि क्रोध के वेग को नहीं जीत पाने वाले हमलोगों की दृष्टि पाप से युक्त

हो जाती है ईश का अर्थ नियमन करने के लिए ईशनम् इस अर्थ में संपदादिगण होने के कारण क्विप् प्रत्यय होकर और क्विप् प्रत्यय होकर इट् शब्द व्युत्पन्न होता है। उसके चतुर्थी एक वचन का रूप है ईशे। ऐसे आपका जो अपने मन को वश में करना चाहता है, वह कौन पुरुष होगा जो आपका समादर न करें ॥१९॥

**असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ।**
**न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥२०॥**

**अन्वयः**— यः मध्वासक्तताम्रलोचनः क्षीबेव मायया असदृशः प्रतिभाति यत् पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः नागबध्वः ह्रिया अर्हणे न ईशिरे ॥२०॥

**अनुवाद**— आप जिन पुरुषों को मधु आसव आदि पान करने के कारण अरुण नयन और मतवाले के समान जान पड़ते हैं वे माया के वशीभूत होकर ही आपका मिथ्या दर्शन करते हैं। आपका चरणों का स्पर्श करने से चित्त के चञ्चल हो जाने के कारण नाग पत्नियाँ लज्जावशात् आपकी पूजा करने में समर्थ नहीं हो पाती हैं ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

ननु सुरामद्याभ्यां मत्तस्य कुतो दृष्टिर्नाज्यते तत्राह। असती दृष्टिर्यस्य तस्य स्वमायया क्षीबा मत्त इव यो भयङ्करः प्रतिभाति। मध्वासवाभ्यां ताम्रलोचन इव च। नागवधूविमोहनेन तथा प्रतिभानं युक्तमित्याह- नेति। पादार्चने यस्य पादयोः स्पर्शनेन धर्षितं मोहितमिन्द्रियं मनो यासां तां ह्रिया लज्जया भुजाद्यर्हणे न ईशिरे न शेकुः। कस्तं न मन्येतेति पूर्वेणैवान्वयः॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि सुरा तथा मद्य का पान करने से मतवाले बने सङ्कर्षण की दृष्टि पाप रंजित क्यों नहीं होती है ? इसका उत्तर है कि माया के कारण उन देखने वाले पुरुषों की मिथ्या दृष्टि है उसी के कारण आप मत्त के समान भयङ्कर प्रतीत होती है। मद्य और आसवपान करने के कारण अरुणनयन के समान प्रतीत होते हैं। नाग पत्नियों के मोहित हो जाने के कारण उस तरह की प्रतीति होना तो उचित ही है। आपके चरणों का स्पर्श करने मात्र से उन सबों का मन मोहित हो जाता है और वे लज्जावशात् आपकी भुजाओं आदि की पूजा नहीं कर पाती हैं ॥२०॥

**यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।**
**न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥२१॥**

**अन्वयः**— यम् अस्य स्थिति जन्मसंयमंयम्आहुः त्रिभिः विहीनम्, आहुः, ऋषयः यम् अनन्तम् आहुः, भूमण्डलं यस्य मूर्धसहस्रधामसु सिद्धार्थमिक क्वचित् स्थितम् न वेद ॥२१॥

**अनुवाद**— वेद आपको जगत् उत्पत्ति स्थिति और संहार का कारण बतलाते हैं, किन्तु आप इन तीनों विकारों से रहित हैं, अतएव ऋषियों ने आपको अनन्त कहा है। आपके हजार हजार मस्तकों पर यह भूण्डल सरसों के दाने के समान है। आपको इसका भी पता नहीं है कि यह आपके किस शिर पर स्थित है ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

अस्य विश्वस्य स्थितिजन्मसंयमहेतुं यमाहुःअत एव त्रिभिः स्थित्यादिभिर्विहीनमनन्तं च यमाहुः। ऋषयो मन्त्राः। छन्दोनुरोधेन दीर्घपाठे ऋकारो देवमाता लक्ष्मीः सा च ऋषयश्चेत्यर्थः। अनन्तत्वं दर्शयति। मूर्धसहस्रमेव धामानि स्थानानि तेषु क्वचिदेकदेशस्थितं भूमण्डलं यो न वेद। सिद्धार्थं सर्षपमिव तस्मै नम इति चतुर्थेनान्वयः ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

जिनको वेद इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार का कारण बतलाते हैं, तथा जो इन तीनों विकारों से रहित हैं। इसलिए ऋषियों और मन्त्रों ने आपको अनन्त कहा है। ऋषि शब्द या मन्त्र का वाचक है। छन्द की दृष्टि से दीर्घ ॠ पाठ मानने पर ॠ शब्द वाच्य लक्ष्मी और ऋषिगण आपको अनन्त कहते हैं। उनके अनन्त त्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं। आपके हजार शिरों के ऊपर सरसों के दाने के सामन पृथिवी का आपको यह भी पता नहीं है कि पृथिवी कहाँ पर स्थित है ॥२१॥

**यस्याद्य आसीद्गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ।**
**यत्संभवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥२२॥**

**अन्वयः**— यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसम् इन्द्रियं सृजे, विज्ञानधिष्ण्यः भगवान् अजः यस्याद्यः महानगुण विग्रहः आसीत् किल ॥२२॥

**अनुवाद**— जिनसे उत्पन्न हुआ मैं त्रिगुणमय तेज से देवता इन्द्रिय और भूतों की रचना करता हूँ वे ज्ञिन के आश्रय भगवान् ब्रह्माजी भी आपके ही महत् तत्त्वसंज्ञक प्रथम गुणमय स्वरूप हैं ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

तत्र जन्महेतुत्वं महदादिद्वारेण प्रपञ्चयति। यस्य गुणनिमित्तो महान्नाम विग्रह आसीत्। विज्ञानं तत्त्वं धिष्ण्यमाश्रयो यस्य सः। तस्य चित्तरूपत्वेन सत्त्वप्रधानत्वात्। स एव किलाधिदैवो वासुदेवाभेदविवक्षया। भगवानजो ब्रह्मा यत्संभवो यस्माद्ब्रह्मणः संभूतोऽहं रुद्रः। त्रिवृता त्रिगुणेन स्वतेजसा स्वविभूतिरूपेणाहंकारेण वैकारिकं देवतावर्गं तामसं भूतवर्गमैन्द्रियमिन्द्रियवर्गं च सृजे सृजामि ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

महदादि द्वारा जन्म कारणत्व का प्रतिपादन करते हैं। आपका गुणनिमितक महान् नामक विग्रह था। वे ब्रह्माजी विज्ञान के आश्रय हैं। उसके चित्त रूप सत्त्व प्रधान होने के कारण, वे ही अधिदैव वासुदेव से अभिन्न है। यह बतलाने के लिए ब्रह्माजी जिनसे उत्पन्न हुए और मैं (शङ्करजी) उन ब्रह्माजी से उत्पन्न हूँ। अपने त्रिगुणात्मक तेज से मैं अपनी विभूति रूप से वैकारिक अहङ्कार से देवता वर्ग की, तामस अहङ्कार से भूत वर्ग को और इन्द्रिय वर्ग की सृष्टि करता हूँ ॥२२॥

**एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः ।**
**महानहंवैकृततामसेन्द्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥२३॥**

**अन्वयः**— यस्य महात्मनः वशे सूत्रयन्त्रिताः शकुन्ता इव स्थिताः महान् अहं, वैकृत तामसेन्द्रियाः वयं सर्वे यदनुग्रहात् सृजामः ॥२३॥

**अनुवाद**— आप श्रीभगवान् के अधीन सूत्र में बंधे हुए पक्षी के समान रहकर महान् अहङ्कार इन्द्रियाभिमानी देवता और पंच महाभूत हम सभी आपकी ही कृपा से इस जगत् की रचना करते हैं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

किंच एते वयं महदादयः सर्वे यस्यानुग्रहादिदं ब्रह्माण्डं सृजामः। कथंभूताः। यस्य महात्मनो वशे स्थिताः सन्तः। यतः सूत्रेण क्रियाशक्त्या यन्त्रिताः प्रोताः शकुन्ताः पक्षिण इव लौकिकेन सूत्रेण वयमित्युक्तं तानेवाह। महानहंकारश्च वैकृतादयः पूर्वोक्ता वर्गाश्च ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

और हम सभी महदादि मिलकर आपकी ही कृपा से इस जगत् की रचना करते है। कैसे हमलोग ? तो इसका उत्तर है आपमहापुरुष के वश में रहकर तथा आपकी क्रिया शक्ति के द्वारा नियन्त्रित होकर सूत्र में बंधे हुए पक्षी के समान महान् अहङ्कार तथा वैकृत इन्द्रियाभिमानी देवता हम सभी मिलकर इस जगत् की रचना करते हैं।।२३।।

**यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ।**
**न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ।।२४।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

**अन्वयः**— गुणसर्गमोहितः अयं जनः कर्ह्यपि यत् निर्मितां कर्म पर्वणीं मायां वेद निस्तारणयोगम् अञ्जसान वेद तस्मै विलयो दयात्मने नमस्ते ।।२४।।

**अनुवाद**— सत्त्वादि गुणों की सृष्टि से मोहित हुआ यह जीव आपकी ही रची हुई इस माया को तो कभी जान भी लेता है। किन्तु उससे मुक्त होने का उपाय उसको आसानी से ज्ञात नहीं होता है। इस जगत् की उत्पत्ति और लय भी आपके ही रूप है ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।।२४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।**

भावार्थ दीपिका

स्थितिलयहेतुत्व दर्शयन्प्रणमति। येन निर्मितामेतां मायामेवायं जनोऽञ्जसा वेद, नतु तन्निस्तारणयोगमुपायं कर्हिचिदपि वेदेति स्थितिहेतुत्वं दर्शितम्। कीदृशीम्। कर्माण्येव पर्वाणि ग्रन्थयस्तानि नयति प्रापयतीति तथा ताम्। प्रलयहेतुत्वमाह। विलीयतेऽस्मिन्निति विलयः। उदेत्यस्मादित्युदयः। विलयश्चोदयश्चात्मा स्वरूपं यस्य तस्मै नमः ।।२४।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।**

**भाव प्रकाशिका**

इस श्लोक में भगवान् सङ्कर्षण को जगत् की स्थिति और लय का कारण बतलाते हैं। जिस आपके द्वारा रचित माया को यह जीव किसी तरह जान लेता है किन्तु उस माया से मुक्त होने योग्य साधन को किसी भी प्रकार नहीं जान पाता है इस तरह स्थित का हेतु बतलाया गया है। उदेति कहकर जगत् की उत्पत्ति का कारण कहा गया है। लय और उत्पत्ति भी जिनका स्वरूप है ऐसे आपको नमस्कार है ।।२४।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के सत्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।**

# अठारहवाँ अध्याय

## भिन्न-भिन्न वर्षों का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनूं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना संनिधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥१॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् ! भद्राश्ववर्ष में धर्म के पुत्र भद्रश्रवा और उनके मुख्य-मुख्य सेवक भगवान् वासुदेव की हयग्रीव संज्ञक धर्ममयी प्रिय मूर्ति को अत्यन्त समाधिनिष्ठा द्वारा हृदय में स्थापित करके मन्त्र का जप करते हुए उनकी स्तुति करते हैं ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

अष्टादशे ततो मेरोः पूर्वादिक्रमतस्त्रिषु । त्रिषु चोत्तरवर्षेषु सेव्यसेवकवर्णनम् ॥१॥ भद्रश्रवा वर्षपतिः तस्य कुलपतयः सेवकमुख्याश्च ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

इसके पश्चात् अठारहवें अध्याय में मेरु पर्वत के पूर्वादि क्रम में तीन और तीन उत्तर वर्षों में सेव्य सेवक भाव का वर्णन है । भद्रश्रवा भद्राश्ववर्ष के स्वामी उनके (कुलपतय) मुख्य-मुख्य सेवक गण ॥१॥

भद्रश्रवस ऊचुः

**ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥२॥**

**भद्रश्रवा और उनके सेवक गण कहते है**

**अनुवाद**— चित्त को विशुद्ध करने वाले ओङ्कार स्वरूप भगवान धर्म को नमस्कार है ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

भद्रश्रवस ऊचुरिति । 'प्राणभृत उपदधाति' इतिवद्गणलक्षणया तद्योगाद्गणिषु लिङ्गसमवायन्यायेन बहुवचनम् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

भद्रश्रवसः में ''प्राणभृत उपदधाति'' इस वाक्य में जिस तरह **प्राणभृतः** में गण लक्षण के समान उस गण में रहने वालो के अर्थ ने लिङ्गसमवाय न्याय से भद्रश्रवसः में बहुवचन है । भद्रश्रवः का अर्थ है जिसमें भद्रश्रवा प्रधान है उन लोगों ने कहा अब प्रश्न होता है कि लिङ्ग समवाय न्याय क्या है तो इसका उत्तर है कि लिङ्गसमवाय (जै. न्याय. म. १/४/२८) इस सूत्र व्याख्या में प्राणभृत उपदधाति यहाँ पर प्राण लिङ्ग के मन्त्र के समीप पढे गये प्राणभृतव्यतिरिक्त मन्त्रों का भी प्राणभृत्व गौणीवृति से हो जाता है । चूकि पहले प्राण लिङ्ग के मन्त्र का पाठ है अतएव उसकी प्रधानता है यही लिङ्ग समवाय न्याय हैं ॥२॥

**अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।**
**ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥३॥**

**अन्वयः**— अहो भगवाद्विचेष्टितं विचित्रं, अयं जनः घ्नन्तं मिषन् न पश्यति । विकर्म सेवितुम् यहि असद्ध्यायन पुत्रं निर्हृत्य जिजीविषति ॥३॥

**अनुवाद**— अहो भगवान् की लीला विचित्र है, मनुष्य सम्पूर्ण लोकों का संहार करने वाले काल को देखकर भी नहीं देखता है, तुच्छ विषयों का सेवन करने के लिए पापमय विचारों को करता रहता है। अपने ही हाथों पिता और पुत्र को जलाकर भी स्वयं जीवित रहना चाहता है ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

अय जनो मिषन्नपि पश्यन्नपि घ्नन्तं हिंसन्तं न पश्यति नालोचयतीति भगवद्विचेष्टितमेव। तच्च विचित्रम्। अदर्शन लिङ्गम्। पुत्रं बालं पितरं वृद्धं मृतं निर्हत्य दग्ध्वा स्वयं तदुभयधनैर्जिजीविषति जीवितुमिच्छति। पाठान्तरे तु छन्दःसामञ्जस्यम्। किं धर्माद्यर्थम्। न। यर्हि यतोऽसत्तुच्छं विषयसुखं सेवितुं विकर्म पापमेव ध्यायन् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

यह मनुष्य सबों को मारने वाले काल को देखते हुए भी नहीं देखता है, इस तरह की भगवान् की माया विचित्र है। उसके नहीं देखने में प्रमाण यह है कि वह अपने ही हाथों मरे हुए पुत्र और पिता को जलाकर उनके ही धन से जीना चाहता है। पाठान्तर में छन्द का सामाञ्जस्य है। क्या वह धर्म के लिए जीना चाहता है ? नहीं वह तुच्छ विषयों का सेवन करने के लिए पापमय विचारों को करता रहता है ॥३॥

**वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ।**
**तथापि मुह्यन्तितवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥४॥**

**अन्वयः**— कवयः विश्वं नश्वरं वदन्तिस्म अध्यात्मविदः विपश्चितः पश्यन्ति च तथापि हे अज तव मायया मुह्यन्ति तम् सुविस्मितं कृत्यं नतः अस्मि ॥४॥

**अनुवाद**— विद्वज्जन जगत् को नश्वर बतलाते है, आत्मज्ञानी पुरुष इसको वैसा ही देखते हैं तो भी हे जन्म रहित प्रभो आपकी माया से वे मोहित हो जाते हैं। अतएव आश्चर्य जनक कार्य करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

नन्वविद्वान्न पश्यति किमत्र चित्रं तत्राह। नश्वरं वदन्ति स्म शास्त्रतः। पश्यन्ति च समाधौ। हे अज, तथापि मायया मुह्यन्ति। एतच्च तव कृत्यं चेष्टितं सुविस्मितमतिचित्रम्, अतः शास्त्रादिश्रमं विहाय तं त्वामजं नतोऽस्मि ॥४॥'

**भाव प्रकाशिका**

यदि कहें कि अज्ञानी जीव नहीं देखते हैं इसमें क्या आश्चर्य है ? इस पर कहते हैं कि विद्वज्जन जगत् को शास्त्रानुसार नश्वर कहते हैं और आत्मज्ञानी इसको वैसा ही समाधि में देखते भी हैं। हे अजन्मा प्रभो फिर भी वे आपकी माया से मोहित हो जाते हैं। आपका यह कार्य अत्यन्त आश्चर्य जनक है अतएव मैं शास्त्रादि श्रम करना छोड़कर आपको नमस्कार करता हूँ ॥४॥

**विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ।**
**युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥**

**अन्वयः**— अकर्तुः अपावृतः ते विश्वोद्भवस्थाननिरोध कर्म अङ्गीकृतम्। सर्वात्मनि कार्यकारणे त्वयि युक्तं चित्रं न। वस्तुतः च व्यतिरिक्ते ॥५॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! आप अकर्ता और माया के आवरण से रहित हैं, फिर भी जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार के कार्य आपके हैं यह वेद बतलाता है। हे सर्वात्मा आपके लिए उचित ही है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण कार्यों के कारण आप ही हैं और वस्तुतः आप कार्य कारण भाव से रहित हैं ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

इदमपरं चित्रवत्प्रतीयमानमपि त्वयि न चित्रमित्याह । विश्वोद्भवादिकर्माकर्तुरप्यपगता आवृदावरणं यस्मात्ताद् शस्यापि तेऽङ्गीकृतं वेदेन । त्वयि तत्र चित्रम् । यतो मायया सर्वात्मनि कार्यस्य कारणे स्त्रष्टरि कर्म युक्तम् । वस्तुतः सर्वव्यतिरिक्ते निरुपाधावनावृतत्वमकर्तृत्वं च युक्तम् ।।५।।

### भाव प्रकाशिका

यह दूसरे आश्चर्य के समान प्रतीत होता है पर आपके लिए यह कोई आश्चर्य नहीं हे । सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि कर्मों को करने वाले आप माया के आवरण से रहित हैं यह वेद स्वीकार करता है । वह भी आप में आश्चर्य नहीं है । आप सर्वात्मा हैं ओर माया के द्वारा सृष्ट्यादि कार्य करने वाले आपके लिए यह उचित ही है । वस्तुतः सबों से परे आप उपाधि से रहित हैं आपमें माया से रहितत्व और अकर्तृत्व उचित ही है ।।५।।

**वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः ।**
**प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ।।६।।**

**अन्वयः**— मृतुरङ्गविग्रहः युगान्तेतमसा तिरस्कृतान् वेदान् अभियाचते कवये यः रसातलात् प्रत्याददे अवितथे हिताय तस्मै ते नमः ।।६।।

**अनुवाद**— आपका शरीर मनुष्य और अश्व दोनों के शरीर से युक्त है । जब तमः प्रधान दैत्यगण प्रलय काल में वेदों को चुरा लेंगे ये उस समय ब्रह्माजी की प्रार्थना से आप रसातल से वेदों को लाकर उन्हे दिये, इस तरह अमोध कल्याणकारी कार्य करने वाले आप को मेरा नमस्कार है ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

परमेश्वरत्वेन स्तुत्वा प्रस्तुतावतारचरितमाह-वेदानिति । तमसा दैत्यरूपेण तिरस्कृतानपनीतान् । ना च तुरङ्गश्च नृतुरङ्गौ तद्रूपो विग्रहो यस्य । कवये ब्रह्मणे । तदर्थमवितथेहिताय सत्यसङ्कल्पाय ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

परमेश्वर रूप स्तुति करने के पश्चात् वर्तमान कालिक ह्वग्रीवावतार के चरित का वर्णन करते हैं प्रलय काल में तमोगुण प्रधान दैत्यगण जब वेदों को चुरा लिए तो ह्यग्रीव रूपधारी आप वेदों को रसातल से लाकर ब्रह्माजी को प्रदान किए । इस तरह सत्य सङ्कल्प करने वाले आपको नमस्कार है ।।६।।

**हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये तद्दयित रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरूपास्ते इदं चोदाहरति ।।७।।**

**अनुवाद**— हरि वर्ष में भी भगवान् नरसिंह रूप से रहते हैं । उन्होंने इस रूप को जिस कारण से धारण किया था उसको आगे सातवें स्कन्ध में कहेंगे । श्रीभगवान् के उस प्रिय रूप की उपासना महाभागवत प्रह्लादजी उस वर्ष के अन्य पुरुषों के साथ निष्काम भाव एवं अनन्य भक्तिभाव से किया करते हैं । प्रह्लादजी महापुरुष के गुणों से सम्पन्न हैं । इन्होंने अपने शील एवं आचरण से दैत्यों एव दानवों के वंश को पवित्र बना दिया । वे इस मन्त्र तथा स्तोत्र का जप एवं पाठ किया करते हैं ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

उत्तरत्र प्रह्लादचरित्रे । महापुरुषस्य गुणानां भाजन आश्रयः । दैत्यदानवकुलस्य तीर्थीकरणं शीलमाचरितं च यस्य । फलसंकल्पेन व्यवधानशून्यश्चासावनन्यश्चाव्यभिचारी यो भक्तियोगस्तेनोपास्ते सेवते ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

आगे प्रह्लाद चरित्र में कहेंगे । प्रह्लादजी महापुरुष के गुणों से सम्पन्न हैं । उन्होंने अपने शील और आचरण से दैत्यों एवं दानवों के कुल को पवित्र बना दिया फल रूपी व्यवधान से रहित अर्थात् निष्काम रूप से वे अनन्य तथा व्यभिचार रहित भक्तिभाव से भगवान् नरसिंह की उपासना करते हैं ।।७।।

**ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ।।८।।**

**अनुवाद**— ओङ्कार स्वरूप भगवान् नरसिंह को नमस्कार है । आप अग्नि आदि तेजों के भी तेज है । आपको नमस्कार है । हे व्रजनख ! हे वज्रदंष्ट्र ! आप हमारे सन्निकट प्रकट होइये, हमारी कर्म की वासनाओं को जला डालिए । हमारे अज्ञान रूप अन्धकार को विनष्ट कीजिए । ओम् स्वाहा । हमारे अन्त:करण में अभयदान देते हुए प्रकाशित होइये ओम क्ष्रौम् ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

तेजसामपि तेजसे । आविराविः अतिप्रकटो भव । वीप्सा वा । कर्माशयान्कर्मवासनाः कर्माश्रयानिति पाठे रागादीन् रन्धय निर्दह । भूयिष्ठाः भूयाः ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

तेजस्वियों के भी तेज आप प्रकट होइये । आविरवि: में वीप्सा के अर्थद्वित्व हुआ है । कर्मशयप्न् अर्थात् कर्म की वासनाओं को । कर्माश्रयान् पाठ होने पर मेरे राग इत्यादि को नष्ट करें यह अर्थ होगा । रन्धय अर्थात् भस्म कर दें । भूयिष्ठा: अर्थात् होइये ।।८।।

**स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।**
**मनश्च भद्रं भजतादधोक्षज आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ।।९।।**

**अन्वयः**— विश्वस्य स्वस्ति, खलः प्रसीदताम्, भूतानि मिथो धिया शिवं ध्यायन्तु, भवश्च भद्रं भजातात् नो अहैतुकी मतिः अधोक्षजेआवेश्यतत् ।।९।।

**अनुवाद**— विश्व का कल्याण हो, दुष्टों की बुद्धि शुद्धि हो जाय, सभी प्राणियों में परस्पर में सद्भावना हो, सभी एक-दूसरे का हित चिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्ग में प्रवृत्त हो । हम सबों की बुद्धि निष्काम भाव से श्रीहरि में लगे ।।९।।

### भावार्थ दीपिका

विश्वस्य स्वस्तिप्रार्थने खलस्यापि भवेत्, तच्च साधुपीडां बिना न स्यात्, अन्योन्यममङ्गलं ध्यायतां च भूतानामन्योन्यघातं विना न भवेदित्याशङ्क्याह । खलःप्रसीदतां प्रसीदतु क्रौर्यं त्यजतु । भूतानि च मिथः शिवमेव ध्यायन्तु । तेषां मनश्च भद्रमुपशमादिकं भजतु । नोऽस्माकमपि मतिरपिशब्दाद्भूतानां च मतिरहैतुकी निष्कामा सती ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

विश्व के कल्याण की प्रार्थना करने पर दुष्टों का भी कल्याण होगा । दुष्टों का कल्याण साधुजनों को पीड़ित किए बिना नहीं हो सकता । परस्पर में अमङ्गल का ध्यान करने वाले दुष्टों का कल्याण जीवों का परस्पर मे घात किए बिना नहीं हो सकता इस तरह की आशङ्का करके प्रह्लादजी कहते हैं दुष्ट जन अपनी क्रूरता का त्याग कर दें । सभी जीव परस्पर में एक दूसरे का कल्याण ही चाहें । उन सबों का मन शान्त हो जाय । हमलोगों की भी अहैतुकी मति श्रीभगवान् में लग जाय । **मतिरपि** के अपि शब्द के द्वारा सभी जीवों की भी बुद्धि भगवान् में लग जाय ।।९।।

**माऽगारदारात्मजवित्तबन्धुषु सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ।**
**यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥१०॥**

**अन्वयः**— नः सङ्गःआगारदारात्मजवित्तबन्धुषु मा स्यात् यदिस्यात् तर्हि भगवत्प्रियेषु यथा प्राण वृत्त्या आत्मवान् परितुष्ट अदूरात् सिद्ध्यति तथा इन्द्रिय प्रियः नः ॥१०॥

**अनुवाद**— हम लोगों की गृह, पत्नी, पुत्र, धन तथा बान्धवों में आसक्ति यदि न हो तो भगवान् के प्रेमी भक्तों में हो । जो संयमी पुरुष निर्वाह के योग्य अन्नादि से संतुष्ट रहता है, उसको जितनी शीघ्र सिद्धि प्राप्ति होती उतना शीघ्र इन्द्रिय लोलुप पुरुष को नहीं होती है ॥१०॥

**भावार्थ दीपिका**

नः सङ्गःक्वापि मा स्यात् । यदि कथंचित्स्यात्तर्ह्यगारादिषु मा स्यात्किंतु भगवत्प्रियेष्वेव । अगारादिसङ्गे दोषमाह-य इति । इन्द्रियप्रियो गृहाद्यासक्तः ॥१०॥

**भाव प्रकाशिका**

हमलोगों की आसक्ति किसी वस्तु में नहीं । यदि हो भी तो भगवान् के प्रिय भक्तों में हो । गृह आदि में आसक्ति न हो । गृहादि में होने वाली आसक्ति का दोष बतलाते हैं इन्द्रिय प्रिय अर्थात् गृहादि मे आसक्ति वालों को उतना शीघ्र सिद्धि नहीं मिलती है जितना शीघ्र संयम पूर्वक अन्नादि से संतुष्ट रहने वालों को मिलती है ॥१०॥

**यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहूः संस्पृशतां हि मानसम् ।**
**हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गज को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥११॥**

**अन्वयः**— यत्सङ्गलब्धं तीर्थं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुकुन्द विक्रमम् श्रुतिभिः मुहुः संस्पृशतां मानसं गतः अन्तः गतः अजः अङ्गजं मेलं हरति तत् को वैन सेवेत ॥११॥

**अनुवाद**— जिन भगवद् भक्तों की सङ्गति से तीर्थ के समान पवित्र श्रीभगवान् का चरित्र सुनने को मिलता है जो श्रीभगवान् की आसाधारण शक्ति एवं प्रभाव का सूचक होता है उसको बार-बार सुनने वालों के कानों के मार्ग से भगवान् हृदय में प्रवेश कर जाते हैंऔर मानसिक मलों को नष्ट कर देते हैं ऐसे भगवान् के भक्तों का सेवन कौन नहीं कर सकता है ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

भगवत्प्रियसङ्गे गुणमाह । येषां भगवत्प्रियाणां सङ्गाल्लब्धं मुकुन्दविक्रमं श्रुतिभिः श्रवणादिभिः संस्पृशतां सेवमानानां पुंसामन्तर्गतोऽजो मानसं मल हरति । कथंभूतं विक्रमम् । निजमसाधारणं वीर्यवैभवं प्रभावातिशयो यस्य । तीर्थं तु गङ्गादि मुहुः संस्पृशतामङ्गजं मलं केवलं हरति, नतु वासनाः । तान्को वै न सेवेतेत्यन्वयः ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवत् प्रिय भक्तों की सङ्गति में होने वाले गुणों को बतलाते है । भगवद् भक्तों के सङ्ग भगवान् की लीलाएँ सुनने को मिलती है जो उनकी असाधारण शक्ति और प्रभाव के सूत्रक होती हैं । भगवान् की लीलाओं को सुनने से कानों के मार्ग से भगवान् हृदय में प्रवेश करके मन के दोषों के दूर कर देते हैं ॥११॥

**यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।**
**हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥१२॥**

**अन्वयः**— यस्य भगवति अकिञ्चनभक्तिः अस्ति, तत्र सर्वैः गुणैः सुराः समासते हरौ अभक्तस्य मनोरथेन असति बहिः धावतः महद्गुणाः कुतः ?॥१२॥

**अनुवाद**— जिसकी भगवान में निष्काम भक्ति होती है उसके हृदय में सभी ज्ञानादि गुणों के साथ देवताओं का निवास होता है। जो श्रीहरि का भक्त नहीं है उसके मनोरथ के द्वारा बाह्य असत्य वस्तुओं में दौड़ने वाले महापुरुषों के गुण कहाँ से आ सकते हैं ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

मानसमलापगमफलमाह- यस्येति। अकिंचना निष्कामा। मनःशुद्धौ हरेर्भक्तिर्भवति, ततश्च तत्प्रसादे। सति सर्वे देवाः सर्वैर्गुणैर्धर्मज्ञानादिभिः सह तत्र सम्यगासते नित्यं वसन्ति। गृहाद्यासक्तस्य तु हरिभक्त्यसंभवात्कुतो महतां गुणा ज्ञानवैराग्यादयो भवन्तीति। असति विषयसुखे मनोरथेन बहिर्धावतः ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

मानसिक दोषों के दूर होने का फल बतलाते हैं। मन की शुद्धि होने पर श्रीहरि में निष्काम भक्ति होती है। परमात्मा के प्रसन्न होने पर सभी देवता अपने धर्मज्ञान आदि सभी गुणों के साथ उसके हृदय में सदा निवास करते हैं जो गृह इत्यादि में ही आसक्त है इसकी श्रीहरि में भक्ति नहीं हो सकती है अतएव उसमें महापुरुषों के ज्ञान, वैराग्य इत्यादि गुण कैसे हो सकते हैं। उसका मन तो सदा असत्य और बाह्य विषय सुख में ही लगा रहता है ।।१२।।

**हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ।**
**हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दंपतीनाम् ।।१३।।**

**अन्वयः**— झषाणाम् इप्सितं तोयम् इव शरीरिणाम् भगवान् श्रीहरिः साक्षात् आत्मा तं हित्वा यदि गृहे सज्जते तदा दम्पतीनाम् महत्वं वयसा महान् ।।१३।।

**अनुवाद**— जिस तरह मछलियों को जल अत्यन्त प्रिय होता है उसी तरह शरीरधारियों को श्रीहरि ही प्रिय आत्मा हैं, उनको छोड़कर यदि कोई महत्त्वाभिमानी पुरुष गृह में ही आसक्त रहता है उन स्त्री पुरुषों का बड़प्पन केवल आयु को ही लेकर होता है गुण के कारण नहीं ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

ननु हरिविमुखस्य गृहाद्यासक्तस्यापि लोके महत्त्वं दृश्यते, सत्यं दृश्यते, तत्तूपहासास्पदमिति सहेतुकमाह-हरिर्हीति। यथा झषाणां मीनानामीप्सितं तोयमेवात्मा, तेन विना जीवनाभावात् महानतिप्रसिद्धोऽपि गृहे यदि सज्जते तदा दम्पतीनां मिथुनानां शूद्रादिष्वपि प्रसिद्धं वयसैव केवलं यन्महत्त्वं तदेव तस्य भवति, नतु ज्ञानादिना। मिथुनेषु पूज्यमानेषु स्त्रीभ्यः पुंसां महत्त्वं बालमिथुनेभ्यश्च वृद्धमिथुनानां महत्त्वं यथेत्यर्थः ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि परमात्मा के विमुख रहने वाले तथा गृह आदि में ही आसक्त रहने वाले भी लोगों का महत्त्व संसार में देखा जाता है तो इस पर कहते हैं कि हाँ देखा तो जाता है किन्तु वह महत्त्व उपहास्पद होता है। इस बात के कारणों को उपन्यस्त करते हुए कहते हैं जैसे मछलियों को जलप्रिय आत्मा है। जल के बिना वे नहीं जी सकती हैं। अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति भी यदि गृह में आसक्त होता है तो शूद्रों आदि में प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों की अवस्था को ही लेकर महत्त्व होता है, ज्ञान इत्यादि के कारण नहीं। पूज्यमान दम्पतियों में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष का महत्त्व होता है। बालक दम्पती की अपेक्षा जैसे बृद्ध दम्पतियों का महत्त्व होता है उसी तरह ।।१३।।

**तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहायभयदैन्याधिमूलम् ।**
**हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताऽकुतोभयमिति ।।१४।।**

**अन्वयः**— तस्माद् रजोराग विषाद मत्युमान् स्पृहामयदैन्यधिमूलम्, संसृति चक्रवालं गृहं हित्वा अकुतोभयम् नृसिंहपादं भजत ।।१४।।

**अनुवाद**— अतएव हे असुरगण तुमलोग तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, अभिमान, इच्छा, भय, दीनता, और मानसिक सन्ताप के मूल तथा जन्म मरण रूप संसारचक्र का वहन करने वाले गृह आदि का त्याग करके भगवान् नृसिंह के निर्भय चरण कमलों का आश्रय लो ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं तस्माद्गृहं हित्वा अकुतोभयं नृसिंहपादं भजतेत्यसुरानुपदिशति । कीदृशं गृहम् । रजः तृष्णा, रागोऽभिनिवेशः। रजआदीनां मूलं कारणमत एव संसृतीनां जन्ममरणादीनां चक्रवालं मण्डलमविच्छेदो यस्मात् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रह्लादजी असुरों को उपदेश देते हैं । प्रश्न है कि कैसे गृह का त्याग करें तो इसका उत्तर है कि जो तृष्णा राग (अभिनिवेश) आदि का मूल कारण है ऐसे गृह को तथा जिसके कारण जन्म मरण आदि रूप संसार चक्र बना रहता है ऐसे गृह को ।।१४।।

**केतुमालेऽपि भगवान्कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितॄणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाहोरात्रपरिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ।।१५।।**

**अनुवाद**— केतुमाल वर्ष में भी लक्ष्मीजी का तथा संवत्सरनामक प्रजापति के पुत्र और पुत्रियों का प्रिय करने के लिए भगवान् कामदेव रूप से निवास करते हैं । उन रात्रि की अभिमानी देवता रूप कन्याओं और दिन के अभिमानी देवता रूप पुत्रों की संख्या मनुष्य की आयु के दिन और रात्रि के बराबर छतीस हजार है । उन कन्याओं का श्रीभगवान् के महान् अस्त्र चक्र के तेज से उसके कारण संवत्सर के अन्त में गर्भपात हो जाता है ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

केतुमालेऽपि कामदेवस्वरूपेणास्त इति शेषः । किमर्थमास्तेऽत आह-लक्ष्म्या इति । प्रजापतिः संवत्सरः । 'संवत्सरो वै प्रजापतिः' इति श्रुतेः । तस्य दुहितरो रात्र्यभिमानिन्यो देवताः पुत्रा दिवसाभिमानिनो देवास्तेषां च प्रियचिकीर्षया । पुरुषायुषा वर्षशतेन यान्यहोरात्राणि तैः परिसंख्यानं गणना येषाम् । षट्त्रिंशत्सहस्राणामित्यर्थः । यासां दुहितॄणाम् । महापुरुषस्य महास्त्रं चक्रं तस्य तेजसा ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

केतुमाल वर्ष में श्रीभगवान् कामदेव रूप से विराजते हैं । प्रश्न होता है कि वे क्यों रहते हैं ? तो इसके उत्तर में कहते हैं लक्ष्मीजी का और प्रजापति संवत्सर की रात्र्यभिमानी देवता रूप पुत्रियों तथा दिनाभिमानी देव, रूप पुत्रों का कल्याण करने के लिए । पुरुषों की सौ वर्ष की आयु के दिन के तथा रात्रियों की संख्या के बराबर उन सबों की संख्या है । अर्थात् छतीस हजार है । उन संवत्सर की कन्यायें भगवान के महान् अस्त्र चक्र के तेज को देखकर डर जाती हैं और संवत्सर के अन्त में उन सबों का गर्भपात हो जाता है । इन सबों का कल्याण करने के लिए भगवान् केतुभाल वर्ष में रहते हैं ।।१५।।

**अतीवसुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया किंचिदुत्तम्भितसुन्दरभ्रूमण्डल-सुभगवदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ।।१६।।**

**अनुवाद**— भगवन् अत्यन्त मनोहर गति विलास के द्वारा सुशोभित तथा मधुर मन्द मुस्कान से मनोहर लीला पूर्ण अवलोकन से कुछ झुके हुए सुन्दर भ्रूमण्डल की छबीली छटा से अपने वदनारविन्द की सौन्दर्य राशि से लक्ष्मीजी को अत्यन्त आनन्दित करते हैं और स्वयं भी आनन्दित होते हैं ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

रमां रमयन् स्वीयानीन्द्रियाणि रमयते । केन साधनेन रमयंस्तदाह । अतीव सुललितया गत्या यो विलासस्तेन विलसितो रुचिरो हासलेशो मन्दस्मितं तत्सहितोऽवलोक एव लीला तया किंचिदुत्तम्भितमुत्तुङ्गितं सुन्दरं यद्भ्रूमण्डलं तेन सुभगं यद्वदनारविन्दं तस्य श्रिया ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

लक्ष्मीजी को आनन्दित करते हुए भगवान् स्वयं भी आनन्दित होते हैं । किन्तु प्रश्न है कि किस साधन से आनन्दित करते हैं तो इस पर कहते हैं अत्यन्त मनोहर गति से जो विलास उससे विलसित मनोज्ञ मन्द मुस्कान उससे युक्त चितवन रूप लीला के द्वारा कुछ ऊपर उठी हुई भौहों से मनोज्ञ मुखमण्डल की शोभा से आनन्दित करते हैं ।।१६।।

**तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमादेवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताहस्सु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इदं चोदाहरति ।।१७।।**

**अनुवाद**— लक्ष्मीजी परम समाधि योग के द्वारा भगवान् के उस मायामय स्वरूप की रात्रि के समय प्रजापति संवत्सर की कन्याओं के साथ और दिन में उनके पतियों के साथ आराधना और इस मन्त्र का जप करती हुई भगवान् की स्तुति करती हैं ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

तद्भर्तृभिर्दिवसाधिष्ठातृभिरुपेता ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

रात्रि की अभिमानी कन्याओं के पतियों तथा दिन के अधिष्ठातृ देवताओं के साथ श्रीभगवान् की उपासना करती हैं ।।१७।।

**ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ओं नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ।।१८।।**

**अनुवाद**— जो इन्द्रियों के नियामक और समस्त श्रेष्ठ वस्तुओं के आकर हैं, क्रियाशक्ति, ज्ञान शक्ति और सङ्कल्प तथा अध्यवसाय आदिचित्त के धर्मों और उनके विषयों के अधीश्वर हैं, ग्यारह इन्द्रिय और पाँच विषयों के अधीश्वर तथा ग्यारह इन्द्रिय और पाँच विषयों इन सोलह कलाओं से युक्त हैं, वेदोक्त कर्मों से प्राप्त होते है, वे अन्नमय, अमृतमय और सर्वमय हैं । उन मानसिक ऐन्द्रियिक और शारीरिक बल स्वरूप परम सुन्दर भगवान् कामदेव को ओं ह्रां ह्री ह्रूं इन बीज मन्त्रों के साथ सब ओर से नमस्कार है ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

सर्वैर्गुणविशेषैः श्रेष्ठवस्तुभिर्विलक्षितो लक्षीकृत आत्मा यस्य । आकूतीनां क्रियाणाम् । चित्तीनां ज्ञानानाम् । चेतसां सङ्कल्पाध्यवसायादीनाम् । विशेषाणां तत्तद्विषयाणाम् । षोडशकला अंशा एकादशेन्द्रियपञ्चविषयलक्षणा यस्य । छन्दोमयाय वेदोक्तकर्मप्राप्याय । अन्नमयायान्नोपष्टभ्यत्वात् । अमृतमयाय परमानन्दाविष्कारत्वात् । सर्वमयाय सर्वविषयत्वात् । सहसे ओजसे बलाय तद्धेतुत्वात् ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

समस्त गुण विशेषों तथा श्रेष्ठ वस्तुओं युक्त श्रीभगवान् की तथा क्रियाओं, ज्ञानों सङ्कल्प तथा अध्यवसाय आदि सभी विषयों के स्वामी श्रीभगवान् हैं। ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच विषय रूप सोलह कलाओं से वे युक्त हैं ।वे वेदोक्त कर्मों से प्राप्त होते हैं। अन्न से उद्रिक्त होने के कारण अन्नमय, परमानन्द को अविष्कृत करने के कारण अमृतमय और एकलविषय रूप होने के कारण सर्वमय तथा मानसिक, ऐन्द्रियिक और शारीरिक बल के कारण स्वरूप श्रीभगवान् को सब ओर से नमस्कार है ।।१८।।

**स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।**
**तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ।।१९।।**

**अन्वयः**— स्त्रियः व्रतैः स्वतः हृषीकेश्वरं त्वा हि व्रतैः आराध्य लोके अन्यं पतिम् आशासते। यतः अस्वतन्त्राः ते वैत्तासां प्रियं अपत्यं धनायूंषि न परिपान्ति ।।१९।।

**अनुवाद**— हे भगवन् स्त्रियाँ अनेक प्रकार के व्रतों को करके स्वतः इन्द्रियों के स्वामी आपकी आराधना करके अन्य लौकिक पतियों की कामना किया करती हैं, किन्तु अस्वतन्त्र होने के कारण उनके प्रिय पुत्रों धनों तथा आयु की रक्षा नहीं कर पाते हैं ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

तत्कामेनैव त्वत्सेवकत्वादहं कृतार्थोऽस्मि। अन्यकामनया तु त्वामर्चन्त्यो न परिपूर्णमनोरथाः स्युरित्याह-स्त्रिय इति। स्वत एव हृषीकाणामीश्वरं पतिं सन्तं त्वामाराध्य याः स्त्रियोऽन्यं पतिं प्रार्थयन्ते। पतिकामानां हि कामाराधनं व्रतेषु प्रसिद्धम्। तासामपत्यादीनि ते पतयो न पातुं शक्ताः ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

काम की कामना मात्र से काम का सेवक होने के कारण मैं कृतार्थ हूँ। आपसे भिन्न पतियों की कामना करने वाली स्त्रियों का मनोरथ पूर्ण नहीं होता है। इस बात को **स्त्रियः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। अपने आप इन्द्रियों के स्वामी (पति) आपकी आराधना करके जो स्त्रियाँ दूसरे पति की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करती हैं। पति चाहने वाली स्त्रियों का कामाराधन व्रत प्रसिद्ध है। वे पति परतन्त्र होने के कारण उन स्त्रियों के पुत्रों आदि की रक्षा नहीं कर पाते हैं ।।१९।।

**स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।**
**स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ।।२०।।**

**अन्वयः**— यः स्वयं अकुतोभयः स वै पतिः स्यात् भयातुरं जनम् समन्ततः पाति स एक एव इतरथा मिथो भयम् आत्मलाभात् परम् अधिन मन्यते ।।२०।।

**अनुवाद**— सच्चा पति वहीं है, जो स्वयं पूर्णरूप से निर्भय हो और दूसरे भयभीत लोगों की रक्षा करे। ऐसे पति एक मात्र आप ही हैं। यदि एकसे अधिक पति (ईश्वर) माने जायँ तो उन्हें एक दूसरे से भय होने की सम्भावना होती है। इसीलिए आप अपनी प्राप्ति से बढकर किसी दूसरे लाभ को नहीं मानते हैं ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

अतस्ते पतय एव न भवन्तीत्याह-स वा इति। स चैवंभूतः पतिर्भवानेक एव नान्यो यो भवानात्मलाभात्परमन्यदधिकं न मन्यते। इतरथान्याधीनसुखस्य न स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रनानात्वे च मण्डलेश्वराणामिव मिथो भयं स्यादित्यर्थः ।।२०।।

**भाव प्रकाशिका**

अतएव वे लौकिक पतिगण पति होते ही नहीं, इस बात को **सवै० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं। इस प्रकार के पति तो आप ही हैं दूसरा कोई नहीं। आप अपनी प्राप्ति से किसी दूसरी वस्तु की प्राप्ति को अपने से बढ़कर मानते ही नहीं है, अन्यथा दूसरे के अधीन सुख वाले पति की स्वतंत्रता नहीं होती है। अनेक स्वतन्त्रों के होने पर तो अनेक मण्डलेश्वरों को जैसे एक दूसरे से भय होता है उसी तरह भय होगा ॥२०॥

**या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।**
**तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाच्ञा भगवन्प्रतप्यते ॥२१॥**

**अन्वयः**— भगवन् यातस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकाम येत् सा अखिलकाम लम्पटा ईसितः अर्पितः इप्सितं रासि। यद् भग्नयाच्ञा प्रतप्यते ॥२१॥

**अनुवाद**— हे भगवन् ! जो स्त्री आपके चरण कमलों की पूजा ही चाहती है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। जो स्त्री किसी एक कामना को लेकर अपनी पूजा करती है। उसको आप उसी वस्तु को प्रदान करते हैं और जब भोग समाप्त हो जाने पर वह वस्तु नष्ट हो जाती है तो उसको सन्तप्त होना पड़ता है ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

किंच निष्कामभजनेऽप्रार्थिता एव सर्वे कामा भवन्ति, सकामभजने तु कामितमात्रमनित्यं चेत्याह। या स्त्री तस्योक्तलक्षणस्य तव पादसरोरुहस्यार्हणं पूजामेव कामयेत्, न फलान्तरं साखिलेषु कामेषु लम्पटा सर्वान्कामान्प्राप्नोतीत्यर्थः। ईप्सितमीप्सितः फलान्तरमाप्तुमपेक्षितः सन्नर्चितश्चेत्तर्हि तदेवैकं रासि ददासि। किंच यद्यतः फलभोगानन्तरं भग्ना याच्ञा याचितोऽर्थो यस्याः सा प्रतप्यते दुःखं प्राप्नोति, तदेव रासि नतु नित्यम् ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

निष्काम होकर भगवान् की भक्ति करने से जिनकी प्रार्थना नहीं की गयी है वे सभी कामनाएँ प्राप्त हो जाती और सकाम भजन करने पर तो केवल कामित वस्तु की ही प्राप्ति होती है और वह अनित्य होती है। इस बात को **या तस्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है। जो स्त्री आपके उपर्युक्त प्रकार के आपके चरण कमलों की पूजा मात्र की ही कामना करती है, किसी दूसरे फल की कामना नहीं करती है, वह अपनी समस्त कानमाओं को प्राप्त कर लेती है यदि किसी के द्वारा कामना विशेष से आप पूजित होते हैं तो फिर उसको आप उसी कामित वस्तु को प्रदान करते है। साथ ही फलभोग के पश्चात् वह याचित वस्तु विनष्ट हो जाती है तो वह स्त्री सन्तप्त होती है, दुःख प्राप्त करती है। वह वस्तु नित्य भी नहीं होती है ॥२१॥

**मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ।**
**ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥२२॥**

**अन्वयः**— हे अजित ! मत्प्राप्तयेऽजेश सुरासुरादयः ऐन्द्रियेधियः उग्रंतप तप्यन्ते भवत्पादपरायणात् मां न विन्दति यतः अहं त्वद्हृदया ॥२२॥

**अनुवाद**— हे अजित ! मुझे प्राप्त करने के लिए इन्द्रिय सुखों के अभिलाषी ब्रह्मा, रुद्र आदि उग्रतपस्या करते रहते हैं, किन्तु मुझको आपके चरण कमलों का आश्रय लेने वाले भक्तों से भिन्न कोई प्रिय नहीं है, क्योंकि मेरा मन तो आपमें ही लगा रहता है ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

ननु ममार्हणे कुतः सर्वकामप्राप्तिस्त्वमेव कामार्थिभिः सेव्यसेऽत आह। मत्प्राप्तये ब्रह्मादयस्तपस्तप्यन्ते कुर्वन्ति।

कथंभूताः । ऐन्द्रियसुखे धीर्येषाम् । अलुक्समासः । तथापि भवत्पादपरायणादृते मां न विन्दति । मत्कटाक्षविलसिता विभूतीर्न लभन्त इत्यर्थः । यतस्त्वय्येव हृदयं यस्याः साहं त्वत्परतन्त्रत्वात्त्वदनुवर्तिनमेव विलोकयामि नान्यमित्यर्थः ।।२२।।

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरी पूजा करने पर ही सभी कामनाओं की पूर्ति होती है यह कैसे कहती हो ? सभी काम्य पदार्थों की प्राप्ति के लिए तो लोग तुम्हारी ही सेवा करते हैं, तो इस पर कहते हैं । मेरी प्राप्ति के लिए ब्रह्मा इत्यादि तप करते हैं, उन लोगों की बुद्धि ऐन्द्रियिक भोगों में ही लगी रहती है । किन्तु मेरा मन तो आपमें ही लगा रहता है। अतएव आपके परतन्त्र रहने वाली मैं आपके भक्तों को ही देखती हूँ दूसरों को नहीं देखती हूँ ।।२२।।

**स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्त्वताम् ।**
**बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः-इति ॥२३॥**

**अन्वयः**— अच्युत सत्वं यत् त्वत् वन्दितं कराम्बुजं सात्वताम् शीर्ष्णि अयपि ममापि शीर्ष्णि द्येहीति शेषः । हे वरेण्य! मां लक्ष्म विभर्षि ईश्वरस्य मायया इहितं उहितुं कः विभुः ।।२३।।

**अनुवाद**— हे अच्युत आप अपने जिस वन्दनीय करकमल को भक्तों के शिर पर रखते हैं, उसे आप मेरे भी शिर पर रख दीजिये । आप तो मुझे श्रीवत्स चिह्न के रूप में ही धारण करते हैं । आप तो सर्व समर्थ है। आप अपनी माया से जिन लीलाओं को करते हैं उनके रहस्य को जानने में कौन समर्थ हो सकता है ?।।२३।।

### भावार्थ दीपिका

इदानीं कृपां प्रार्थयते-स त्वमिति । यद्भजनं बिना न कश्चित्पुरुषार्थः स त्वम् । त्वदिति त्वया यत्कराम्बुजं सात्वतां भक्तानां शीर्ष्ण्यधायि कृपया न्यस्तं तन्ममापि शीर्ष्णि निधेहीति शेषः । कथंभूतम् । वन्दितं सर्वकामवर्षित्वेन सद्भिः स्तुतम्। नच मयि तवानादरः । यतो हे वरेण्य, मां वक्षसि लक्ष्म बिभर्षि अहो चित्रमेतत् मयि केवलमादरमात्रं भक्तेषु तु परमा कृपा अत ईश्वरस्य तव यन्मायया ईहितं तत्को वितर्कयितुं समर्थः ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा लक्ष्मीजी श्रीभगवान् से कृपा की प्रार्थना करती हैं । आपका भजन किए बिना किसी पुरुषार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकता है । आप अपने वन्दित कर कमल को भक्तों के शिर पर रखते हैं उसी कर कमल को मेरे भी शिर पर रख दें । आपका कैसा कर है ? तो इसे बतलाती हैं जो सभी कामनाओं को प्रदान करने वाला होने के कारण सत्पुरुष उसकी स्तुति करते हैं । आपका मेरे प्रति अनादर नहीं है । हे वरेण्य आप तो मुझे आदर पूर्वक अपने वक्षः स्थल में श्रीवत्स चिह्न के रूप में धारण करते है आपका मेरे प्रति समादर है, किन्तु कृपा नहीं है । अतएव भक्तों पर तो आपकी अत्यन्त कृपा होती है । अतएव आप अपनी माया से जो करना चाहते हैं उसको दूसरा कौन जान सकता है ? इस तरह से लक्ष्मीजी श्रीभगवान् की स्तुति करती हैं ।।२३।।

**रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति ॥२४॥**

**अनुवाद**— रम्यक वर्ष में भगवान् ने वहाँ के अधिपति मनुजी को पूर्वकाल में अपना परम प्रिय मत्स्य रूप दिखाया था । मनुजी इस समय भी भगवान् के उसी रूप की भक्ति भाव से उपासना इस समय करते हैं और इस मन्त्र का जप करते हुए स्तुति करते हैं ।।२४।।

**ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः इति॥२५॥**

**अनुवाद**— सत्वप्रधान मुख्यप्राण सूत्रात्मा तथ मनोबल, इन्द्रिय बल और शरीर बल ओम् पद के अर्थ, सर्वश्रेष्ठ भगवान् महामत्स्य को बार-बार नमस्कार है ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

सत्त्वाय सत्त्वप्रधानाय। मुख्यतमाय प्राणाय सूत्रात्मने ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

भगवान् मत्स्य सत्त्वगुण प्रधान मुख्यतम प्राणस्वरूप और सूत्रात्मा हैं ॥२५॥

**अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ।**
**स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनयन्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥२६॥**

**अन्वयः**— दारुमयीं स्त्रियम् यथा नरः स ईश्वर स्त्वम् इदं नाम्नावशे नयन् अखिललोक पालकैः अदृष्टः त्वं उरुस्वनः अन्तर्बहिश्च विचरसि ॥२६॥

**अनुवाद**— जिस तरह नट कठपुतलियों को डोरी से बाँध कर नचाता है उसी तरह आप ब्राह्मणादि नामों की डोरी से बाँध कर सम्पूर्ण विश्व को नचा रहे हैं। अतएव आप सबों के प्रेरक हैं। आप को ब्रह्मा आदि लोकपालगण भी नहीं देख पाते हैं फिर भी आप सभी प्राणियों के भीतर प्राण रूप से और बाहर वायु रूप से संचरण करते हैं। वेद ही आपका महान् शब्द है ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

उरुः स्वनो वेदात्मको नादो यस्य। य इदं विश्वं ब्राह्मणादिनाम्ना विधिनिषेधालम्बनभूतेन वशेऽनयन्नियमितवान्स त्वमीश्वरः। तथाच श्रुतिः 'तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि' इति ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

वेद ही जिनका महान् शब्द है। जो भगवान् इस विश्व को ब्राह्मण आदि नाम से विधि निषेध रूप आधार के द्वारा अपने वश में करके नियन्त्रित करते हैं ऐसे आप सम्पूर्ण जगत् के नियामक है। श्रुति भी कहती हैं- **तस्यवाक्तन्तिर्नामानिदामानि** । अर्थात् उनकी वाणी ही नाथ है और नाम ही रस्सी हैं ॥२६॥

**यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ।**
**पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥२७॥**

**अन्वयः**— मत्सरज्वराः लोकपालाः किल यं हित्वा पृथक् समेत्य च यतन्तोऽपि द्विपदः चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते पातुं न शेकुः ॥२७॥

**अनुवाद**— एक बार इन्द्रियाभिमानी इन्द्रादि देवताओं को प्राण स्वरूप आप से डाह हो गया। उस समय आपके अलग हो जाने पर वे अलग-अलग अथवा मिलकर भी मनुष्य, पशु स्थावर जंगम आदि जितने शरीर दिखायी देते हैं उनमें से किसी की भी बहुत प्रयत्न करने पर भी रक्षा नहीं कर सके ॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

नन्विन्द्रादयो वशं नयन्ति लोकपालत्वात्कुतोऽहं तत्राह-यमिति। मत्सर एव ज्वरो येषां ते यं हित्वा द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं जङ्गमं स्थाणुं स्थावरं च यदत्र दृश्यते तत्किंचिदपि पातुं न शक्ताः। स त्वमेव प्राणरूपेण पालक ईश्वरश्चेत्यर्थः। तथाच श्रुतिः 'ता अहिंसन्ताहमुकमस्म्यहमुकमस्मि' इत्यादि ॥२७॥

### भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि अपने वश में करने वाले इन्द्रादि देवता है मैं कैसे वश में करने वाला हूँ । इस पर कहते हैं— इन्द्रादिगण देवता एक बार मत्सर से ग्रस्त हो गये, उस समय प्राण स्वरूप परमात्मा जब अलग हो गये उस समय सभी इन्द्रादि देवता अलग-अलग तथा मिलकर भी मनुष्य, पशु, सरीसृप जङ्गम स्थावर में से किसी की भी रक्षा नहीं कर सके । ऐसे आप प्राण रूप से पालक ईश्वर ही है । श्रुति भी कहती है । वे इन्द्रादि देवताओं ने स्पर्धा किया मैं अमुक देवता हूँ ।।२७।।

**भवान्युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनी क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ।**
**मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नमःइति ॥२८॥**

**अन्वयः**— हे अज भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि ओषधि विरुधां निधिम् इमां क्षोणीम् आदाय मया सह ओजसा ऊरुक्रमते, तस्मैजगत् प्राण गणात्मने नमः ।।२८।।

**अनुवाद**— हे अजन्मा प्रभो ! आप प्रलयार्णव ये जब उत्ताल तरङ्गों से तरंगायित हो रहा था उस समय मेरे साथ इस सभी औषधि और लताओं के अश्रयभूत इस पृथिवी को लेकर बड़े ही उत्साह पूर्वक विहार किए थे ऐसे जगत् के प्राण स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है । इस तरह से मनु जी मत्स्यावतार श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं ।।२८।।

### भावार्थ दीपिका

अवतारचरितमाह । भवानिमां क्षोणीं मया मनुना सह मत्सहितां धृत्वेत्यध्याहारः । ऊर्मिमालावति प्रलयार्णवे ओजसा क्रमते विचरति । यद्वा पातुमित्यस्यानुषङ्गः । क्षोणीं पातुं क्रमते । उत्सहत इत्यर्थः । यतोऽजः । कीदृशीम् । ओषधीनां वीरुधां च निधिमाश्रयभूताम् । तस्मै नमः । जगतो यः प्राणगणस्तस्यात्मने नियन्त्रे ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

मत्स्यावतार के चरित का वर्णन करते हैं । आप इस पृथिवी को मेरे साथ धारण करके तरङ्गों से व्याप्त प्रलय कालीन समुद्र में अपने तेज के द्वारा विचरण करते रहे । अथवा मेरी रक्षा करने के लिए इस तरह से अन्वय होगा । आप पृथिवी की रक्षा करने के लिए उत्साह करते हैं, कैसी पृथिवी ? ओषधियों और लताओं के आश्रय रूप ऐसे आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण जगत् के प्राणों के नियामक आपको नमस्कार है ।।२८।।

**हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति मन्त्रमिमं चानुजपति ॥२९॥**

**अनुवाद**— हिरण्मय वर्ष में भगवान् कच्छप रूप धारण करके रहते हैं । वहीं के निवासियों के साथ पितृराज अर्यमा श्रीभगवान् की उस प्रियतम रूप की उपासना करते हैं और इस मन्त्र का जप करते हैं ।।२९।।

### भावार्थ दीपिका

तत्प्रियतमां तां प्रियतमाम् ।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

तत्पियतमाम् का अर्थ है उस प्रियतम मूर्ति की ।।२९।।

**ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥३०॥**

**अनुवाद**— जो सम्पूर्ण सत्त्व गुण से युक्त हैं, जल में विचरते रहने के कारण उनके रहने का कोई निश्चित

स्थान नहीं है तथा जो काल की मर्यादा के बाहर हैं उन ओङ्कार स्वरूप सर्वव्यापक सर्वाधार भगवान् कच्छप को मेरा नमस्कार है ।।३०।।

**भावार्थ दीपिका**

अकूपाराय कूर्माय । सर्वः संपूर्णः सत्त्वगुणो विशेषणं यस्य । न उपलक्षितं स्थानं यस्य वारिचरत्वात् । वर्ष्मणे वर्षीयसे कालानवच्छिन्नाय । भूम्ने सर्वगताय । अवस्थानायाधाराय ।।३०।।

**भाव प्रकाशिका**

अकूपाराय अर्थात् कूर्म भगवान् को जो सम्पूर्ण सत्त्वगुण से सम्पन्न हैं । सदा जल में विचरण करने के कारण उनके रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं है । वे सदा विराजमान रहने वाले तथा सर्व व्यापक तथा सर्वाधार कूर्म भगवान् को नमस्कार है ।।३०।।

**यद्रूपमेतन्निजमाययार्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ।**
**संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ।।३१।।**

**अन्वयः**— बहुरूप रूपितं यस्य संख्यानास्ति अयथोपलम्भनात् अर्थस्वरूपं निजमाययार्पितम् एतत् यद्रूपम् तस्मै अव्यपदेश रूपिणे नमः ।।३१।।

**अनुवाद**— हे भगवान् अनेक रूपों में प्रतीत होने वाला यह जगत् यद्यपि मिथ्या ही है इसलिए इसकी कोई संख्या नहीं है । फिर भी यह माया से प्रकाशित होने वाला आपका ही रूप है । इस प्रकार के अनिर्वचनीय रूप वाले आपको नमस्कार है ।।३१।।

**भावार्थ दीपिका**

निजमाययार्पितं प्रकाशितमेतदर्थस्वरूपं दृश्यं पृथिव्यादि यस्यैवंरूपं यतः पृथक् नास्ति । कथंभूतम् । बहुभी रूपै रूपितं निरूपितम् । यस्य च संख्या नास्ति । कुतः । अयथा मिथ्यैवोपलम्भनात् । नहि मरीचिजलमेतावदिति संख्यातुं शक्यते। अव्यपदेशरूपिणेऽनिरुक्तप्रपञ्चाकाराय ।।३१।।

**भाव प्रकाशिका**

आपकी अपनी माया से ही प्रकाशित होने वाला यह दृश्य पृथिवी आदि इसका जो रूप आपसे पृथक नहीं है फिर भी अनेक रूप से प्रकाशित होने वाला है और इसकी कोई संख्या नहीं है । क्योंकि इसकी मिथ्या ही प्रतीति होती है । जिस तरह मृगमरीचिका के जल को इतना जल है, यह नहीं कहा जा सकता है । उसी तरह अनिर्वचनीय स्वरूप आपको नमस्कार है ।।३१।।

**जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ।**
**द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ।।३२।।**

**अन्वयः**— एकः अभिधेयः त्वमेव जरायुजं स्वेदजम् अण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षि पितृभूतमैन्द्रियम् द्यौः खं क्षितिः, शैल सरित् समुद्र द्वीप ग्रहर्क्षेति ।।३२।।

**अनुवाद**— एकमात्र आप ही जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जङ्गम, स्थावर, देवता, ऋषि, पितृगण, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथिवी पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और तारा इत्यादि विभिन्न नामों से कहे जाते हैं।।३२।।

**भावार्थ दीपिका**

बहुरूपत्वं दर्शयंस्तस्येश्वरादव्यतिरेकमाह-जरायुजमिति । द्वीपग्रहर्क्षमित्यभिधेयैस्त्वमेवैको न त्वद्व्यातिरिक्तोऽस्ति । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादिश्रुतेरित्यर्थः ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

अनेक रूपता को बतला कर उसको परमात्मा से अभिन्न जरायुजम् इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं। द्वीप ग्रह नक्षत्र आदि नाम से केवल आप ही कहे जाते हैं। आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है। श्रुति भी कहती है सर्वं खल्विदं ब्रह्म। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म रूप ही है ॥३२॥

**यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम्।**
**संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ॥३३॥**

**अन्वयः**— यस्मिन् असंख्य विशेष नाम रूपाकृतौ कविभिः कल्पिता इयं संख्या यया तत्त्वदृशा अपनीयते तस्मै सांख्य निदर्शनाय तेनमः इति ॥३३॥

**अनुवाद**— आप असंख्य नाम, रूप और आकृतियों से युक्त, कपिल आदि विद्वानों ने आप में जो चौबीस तत्त्वों की कल्पना की है, वह जिस तत्त्व दृष्टि का उदय होने पर निवृत्त हो जाती है वह भी आप ही हैं ॥३३॥

### भावार्थ दीपिका

सप्रपञ्चतामनूद्य तन्निरासेन प्रणमति-यस्मिन्निति। असंख्येया अनन्ता विशेषा येषां तानि नामानि रूपाण्याकृतयश्च यस्य तादृशे यस्मिंस्त्वयि कविभिः कपिलादिभिरियं चतुर्विंशत्यादिसंख्या कल्पिता सती यया तत्त्वदृशा येन तत्त्वज्ञानेनापनीयते तस्मै ते सांख्यसिद्धान्तरूपाय नमः। परमार्थज्ञानरूपायेति वा ॥३३॥

### भाव प्रकाशिका

प्रपञ्च युक्तता का अनुवाद करके उसका निरास पूर्वक प्रणाम करते हैं। जिनके अनन्त भेद हैं उन नामों और रूपों तथा आकृतियों से युक्त जिस आप में कपिल आदि महर्षियों ने चौबीस तत्त्वों की कल्पना की है उसका जिस तात्त्विक दृष्टि से निरास होता है ऐसे सांख्य सिद्धान्त स्वरूप आपको नमस्कार है ॥३३॥

**उत्तरेषु च कुरुषु भगवान्यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी हैषा भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति ॥३४॥**

**अनुवाद**— उत्तर कुरुवर्ष में भगवान् यज्ञपुरुष वराह रूप धारण करके विराजमान हैं। वहाँ के निवासियों के साथ भूदेवी अविचल भक्तिभाव से उनकी उपासना करती हैं और इस परमोत्कृष्ट मन्त्र का जप करती हुई स्तुति करती हैं ॥३४॥

### भावार्थ दीपिका

एषा भूरुपधावति हेत्यन्वयः ॥३४॥

### भाव प्रकाशिका

यह भूदेवी यज्ञ वराह भगवान् की स्तुति करती हैं ॥३४॥

**ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥३५॥**

**अनुवाद**— जिनके तत्त्व को मन्त्रों से जाना जाता है, जो यज्ञ और क्रतु रूप हैं, एवं बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं उन ओङ्कार स्वरूप शुक्ल कर्ममय, त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् वराह को नमस्कार है ॥३५॥

### भावार्थ दीपिका

मन्त्रैस्तत्त्वेन लिङ्ग्यत इति तथा तस्मै। यज्ञा अयूपाः, क्रतवः सयूपास्तद्रूपाय। अतएव महान्तोऽध्वरा अवयवभूता यस्य। कर्मणा शुक्लाय शुद्धाय यज्ञानुष्ठात्रे। त्रियुगाय कृतयुगे यज्ञाभावात्। यद्वा कलियुगे छन्नत्वात् ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

जिनको मन्त्रों के द्वारा ही जाना जाता है, यज्ञ और क्रतु रूप जो हैं, बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं शुद्ध यज्ञ के अनुष्ठान स्वरूप, सत्ययुग में यज्ञ का अभाव होने के कारण त्रियुग स्वरूप अथवा कलियुग में आच्छन्न रहने के कारण त्रियुग स्वरूप यज्ञ वाराह भगवान् को नमस्कार है ॥३५॥

**यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ।**
**मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ॥३६॥**

**अन्वयः**— यस्य स्वरूपं दिदृक्षवः विपश्चितः कवयः दारुषु जातवेदसम् इव क्रियार्थै गूढम् गुणेषु मनसा मथ्ना मथ्नन्ति ईरितात्मने नमः ॥३६॥

**अनुवाद**— परिष्कृत जन कर्मासक्ति और कर्म फल की इच्छा से छिपे हुए जिस वराह भगवान् के स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिए अपने मनरूपी मथानी से इन्द्रियों आदि को उसी तरह से मथ डालते हैं जिस तरह ऋषिगण अरणि नामक काष्ठ खण्ड में छिपी हुई अग्नि को मन्थन द्वारा प्रकट करते हैं । इस तरह मन्थन करने पर अपने स्वरूप को प्रकट करने वाले वाराह भगवान् को नमस्कार है ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

कवयो विद्वांसो विपश्चितो निपुणा गुणेषु देहेन्द्रियादिषु मथ्नन्ति विचिन्वन्ति । मथ्ना विवेकसाधनेन मनसा । क्रियार्थैः कर्मभिस्तत्फलैश्च गूढं अप्रकाशमानं दिदृक्षवः एवं मथने ईरितः प्रकटित आत्मा स्वरूपं यस्य तस्मै नमः ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

निपुण विद्वज्जन देह इन्द्रिय आदि का मन्थन विवेक रूप साधन मन के द्वारा कर्म तथा उसके फलों से छिपे हुए वराह भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए मन्थन करते हैं और मन्थन करने पर अपने स्वरूप को प्रकट करने वाले वराह भगवान् को नमस्कार है ॥३६॥

**द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।**
**अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥३७॥**

**अन्वयः**— अन्वीक्षयापाङ्गातिशयात्म बुद्धिभिः द्रव्यक्रियाहेत्व यनेश कर्तृभिः मायागुणैः वस्तुनिरीक्षितात्मने निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥३७॥

**अनुवाद**— विचार तथा यम नियम आदि योगाङ्गों के साधन से जिनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी हैं वे महापुरुष द्रव्य (विषय) क्रिया (इन्द्रियों के व्यापार) हेतु (इन्द्रियाधिष्ठातृ देवता) अयन (शरीर ईश, काल तथा कर्ता अहङ्कार) आदि माया के कार्यों को देखकर जिनके वास्तविक स्वरूप का निश्चय करते हैं, ऐसे मायिक आकृतियों से रहित आपको बार-बार नमस्कार है ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

मथनमेव दर्शयन्त्याह-द्रव्येति । द्रव्यं विषयः । क्रिया इन्द्रियव्यापारः । हेतुर्देवता । अयनं देहः । ईशः कालः कर्ता अहङ्कारः । एतैर्मायाया गुणैः कार्यैरुपलक्षणैर्वस्तुत्वेन निरीक्षितो य आत्मा तस्मै । अन्वीक्षया विचारेणाङ्गैर्यमनियमादिभिरतिशयात्मा निश्चयवती बुद्धिर्येषां तैर्निरस्ता मायानिमित्ता आकृतिर्यस्मात्तस्मै ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

**दव्य इत्यादि** श्लोक में भूदेवी मंथन को ही बतलाती है । द्रव्य (विषय) क्रिया (इन्द्रियों के व्यापार) हेतु (इन्द्रिाधिष्ठातृ देवता) अयन (देह) ईश, काल, कर्ता (अहङ्कार) आदि माया के कार्यों को देखकर वस्तु रूप से

दृष्ट आत्मा को नमस्कार है । विचार, यम नियम आदि योगाङ्गो, आदि से जिनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी है वे लोग माया की आकृति से रहित आपके वास्तविक स्वरूप का निश्चय करते हैं ।।३७।।

**करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।**
**माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ।।३८।।**

**अन्वयः**— यथा अपः ग्राव्णः तदाश्रयं भ्रमते, तथा माया यस्येप्सितं विश्वस्थितिसंयमोदयं करोति ईक्षितुः गुणैः न, गुणकर्म साक्षिणे नमस्ते ।।३८।।

**अनुवाद**— जिस तरह जड़ लोहा अयस्कान्त (चुम्बक के) सन्निधान मात्र से उसी की ओर चलने लगता है, उसी तरह जडा माया सर्वसाक्षी ईश्वर की इच्छा मात्र से जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय का काम अपने लिए नहीं अपितु सभी प्राणियों के लिए करती है उन सम्पूर्ण गुणों और कर्मों के साक्षी आपको नमस्कार है ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

तदेवं निर्गुणरूपेण नत्वा परमेश्वररूपेण प्रणमति-करोतीति । यस्येक्षितुर्जीवार्थमीप्सितम् । अत्यन्तानिच्छायामीक्षणायोगात्। स्वार्थं तु नेप्सितम् । विश्वस्थित्यादिस्वगुणैर्माया करोति । तस्या जडत्वेपीश्वरसन्निधानात्प्रवृत्तिं दृष्टान्तेनाह । यथाऽयो लोहं ग्राव्णोऽयस्कान्तान्निमित्ताद्भ्रमति । तदाश्रयं तदभिमुखं सत् । अतो गुणानां कर्मणां जीवादृष्टानां च साक्षिणे तस्मै ते नमः ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

इस निर्गुण रूप से नमस्कार करके पृथिवी देवी वराह भगवान् को परमेश्वर रूप से प्रणाम करती हैं जीवों के लिए अभीप्सित अत्यन्त अनिच्छा रहने पर भी इच्छा के योग से, माया अपने लिए नहीं, सभी जीवों के लिए सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलय का कार्य करती है । यद्यपि माया जड़ा है फिर भी ईश्वर के सन्निधान मात्र से उसमें उस तरह प्रवृत्ति हो जाती है जिस तरह जड़ लोहे में चुम्बक के सन्निधान मात्र से गति हो जाती है । अतएव गुणों, कर्मों तथा जीवों के अदृष्टों के साक्षी आपको नमस्कार है ।।३८।।

**प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।**
**कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुम् इति ।।३९।।**

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भुवनकोष वर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

**अन्वयः**— मृधे प्रतिवारणं दैत्यं प्रमथ्य यः आदि सूकरः मां रसाया अग्रदंष्ट्रे कृत्वा क्रीडन् इभ इव उदन्वतः निरगात् तं प्रणता अस्मि ।।३९।।

**अनुवाद**— जो जगत् कारण भूत आदि सूकर आप युद्ध में अपने प्रतिद्वन्दी हिरण्याक्ष दैत्य का बध करके मुझ को रसातल से अपने दाँतों के अग्रभाग पर रखकर क्रीडा करने वाले हाथी के समान समुद्र से ऊपर निकले, उन अपना उद्धार करने वाले आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ।।३९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाचवें स्कन्ध के भुवनकोश वर्णन नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।**

**भावार्थ दीपिका**

अवतारचरितमाह-प्रमथ्येति । यो जगतामादिः कारणभूतः सूकरो मां पृथ्वीमग्रदंष्ट्रे दंष्ट्राग्रे कृत्वा रसातलादारभ्योदन्वतः प्रलयार्णवादिभो गज इव निरगात् । ततश्च प्रतिगजतुल्यं दैत्यं प्रमथ्य यः क्रीडन् स्थितस्तं विभुं प्रणताऽस्मीत्यन्वयः ।।३९।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।**

## भाव प्रकाशिका

प्रमथ्य इत्यादि श्लोक में वराहावतार के चरित का पृथिवी देवी वर्णन करती हैं। जो जगत् के आदि कारण स्वरूप सूकर हैं। मुझ पृथिवी को रसातल से अपने दाँतों के अग्रभाग पर रखकर प्रलय कालीन समुद्र से हाथी के समान निकले जैसे कोई गज अपने प्रतिद्वन्दी गज को मारकर क्रीडा करता है। उसी तरह स्थित रहने वाले श्रीभगवान् को मैं प्रणाम करती हूँ ।।३९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवं अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।**

# उन्नीसवाँ अध्याय

## किम्पुरुष और भारतवर्ष का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**किंपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान्सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥१॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् ! किम्पुरुष वर्ष में लक्ष्मणजी के बड़े भाई आदि पुरुष सीता हृदयाभिराम भगवान् श्रीराम के चरणों की सन्निधि में संलग्न रहने वाले परम भागवत श्रीहनुमानजी अन्य किन्नरों के साथ अविचल भक्तिभाव से उनकी उपासना करते हैं ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

ऊनविंशे किंपुरुषे भारते चोपवर्ण्यते । सेव्यसेवकभावश्च भारतश्रैष्ठ्यमेव च ॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

उन्नीसवें अध्याय में किम्पुरुष वर्ष तथा भारत वर्ष में सेव्य सेवक भाव तथा भारत वर्ष की श्रेष्ठता का वर्णन किया जाता है ॥१॥

**आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति॥२॥**

**अनुवाद**— वहाँ अन्य गन्धर्वों के साथ आर्ष्टिषेण अपने स्वामी भगवान राम की परम कल्याणमयी गाथा गाते रहते हैं और हनुमानजी उसे सुनते है । और स्वयं भी इस मन्त्र का जप करते हुए इसतरह से उनकी स्तुति करते हैं ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

भर्ता चासौ भगवांश्च तस्य कथाम् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

अपने स्वामी भगवान् श्रीराम की गाथा का गायन करते हैं ॥२॥

**ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणायनमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः इति ॥३॥**

**अनुवाद**— हम ओङ्कार स्वरूप पवित्र कीर्ति भगवान् श्रीराम को नमस्कार करते हैं। सत्पुरुषों के लक्षण, शील और आचरण से सम्पन्न भगवान् को नमस्कार है। संयत चित्त और लोकाराधन में तत्पर रहने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है। साधुत्व की परीक्षा के लिए कसौटी के समान श्रीभगवान् को नमस्कार है। ब्राह्मणों के भक्त, महापुरुष तथा महाराज भगवान् राम को मेरा बार-बार नमस्कार है ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

आर्याणि लक्षणानि शीलं व्रतं च यस्मिन्। उपशिक्षितात्मने संयतचित्ताय। उपासितोऽनुसृतो लोको येन। साधुवादः साधुत्वप्रसिद्धिस्तस्य निकषणाय निकषाश्मवन्निर्धारस्थानाय परमसीम्ना इत्यर्थः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

सबों के द्वारा शिरोधार्य लक्षण शील तथा व्रत वाले, संयत चित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुत्व परीक्षण की कसौटी की पराकाष्ठा स्वरूप भगवान् श्रीराम को मेरा बार-बार नमस्कार है ॥३॥

**यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।**
**प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥४॥**

**अन्वयः**— यत्-तत् विशुद्धानुभव मात्रमेकं, स्वतेजसा ध्वस्त गुण व्यवथाम्, प्रत्यक् प्रशान्तं सुधिगोपलम्भनं, अनामरूपं हि निरहं प्रपद्ये ॥४॥

**अनुवाद**— विशुद्ध ज्ञान स्वरूप अद्वितीय, अपने स्वरूप के प्रकाश से, जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओं का निरास करने वाले, सर्वान्तरात्मा परमशान्त, शुद्ध बुद्धि से ग्रहण किए जाने योग्य,नाम रूप से रहित, और अहङ्कार शून्य भगवान् श्रीराम की मैं शरणागति करता हूँ ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

श्रीरामं परमार्थरूपेण प्रणमति। यदेकं वेदान्तेषु प्रसिद्धं तत्त्वं तत्प्रपद्ये। तत्कथंभूतम्। विशुद्धश्चासावनुभवश्च स एव मात्रा स्वरूपं यस्य। विशुद्धत्वे हेतुः-प्रशान्तम्। तत्रापि हेतुः-स्वतेजसा स्वरूपप्रकाशेन ध्वस्ता गुणानां विविधा जाग्रदाद्यवस्था यस्मिन्। अनुभवमात्रत्वे हेतुः-प्रत्यग्दृश्यादन्यत्। तत्कुतः अनामरूपम्। ननु वस्तुत एवम्भूतस्यापि जीवस्योक्तसर्वविपर्ययो दृश्यते तत्राह। निरहम्, अहङ्काराभावान्न तथा वैपरीत्यमित्यर्थः। ननु श्रीरामस्य स्वरूपं नैवं प्रतीयते तत्राह। सुधिया पुंसा उपलभ्यत इत्युपलम्भनम्। शुद्धचित्तेन ब्रह्मत्वेनैवोपलभ्यत इत्यर्थः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् श्रीराम को परमार्थ रूप से प्रणाम करते हैं। वेदान्तों में अद्वितीय रूप से प्रसिद्ध तत्त्व स्वरूप श्रीराम की मैं शरणागति करता हूँ। वे भगवान् श्रीराम कैसे हैं तो इस पर कहते हैं। वे शुद्ध अनुभव स्वरूप हैं, क्योंकि वे सर्वात्मा है, तथा परम शान्त स्वरूप हैं। उसका कारण है कि वे अपने तेज से गुणों की जो जाग्रत इत्यादि अवस्थाएँ हैं उन सबों को निरस्त कर दिए है। वे अनुभव मात्र इसलिए हैं कि वे प्रत्यक् दृश्यव्यतिरिक्त, नाम और रूप से रहित हैं यदि कहें कि इस प्रकार के भी जीव के उक्त सभी विपर्यय देखे जाते हैं। तो इस पर कहते हैं वे अहङ्कार शून्य है। अतएव उनमें वैपरीत्य नहीं है। यदि कहें कि श्रीराम के स्वरूप की ऐसी प्रतीति नहीं होती है तो इस पर कहते हैं— शुद्ध चित्त वाले महापुरुषों को उनकी उपलब्धि ब्रह्म रूप से होती है ॥४॥

**मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।**
**कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥५॥**

**अन्वयः**— विभोः मर्त्यावतारः केवलं रक्षो वधायै वन अपितु मर्त्मशिक्षणं अन्यथा स्व आत्मनः रमतः ईश्वरस्य सीता कृतानि व्यसनानि कुतः स्यात् ॥५॥

**अनुवाद**— हे प्रभो ! आपका मनुष्यावतार केवल रावणादि राक्षसों का वध करने के लिए नहीं है अपितु मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए हुआ है । अन्यथा अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वर को श्रीसीताजी के वियोग में इतना दुःख क्यों सहना पड़ता ?॥५॥

### भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि दशरथपुत्रत्वं तत्राह । विभोर्मर्त्यावतारस्तु रक्षसो रावणस्य वधाय तस्य मनुष्यादन्यतोऽवध्यत्वात् । न केवलमेतावत्किंतु इह संसारे स्त्रीसङ्गादि कृतं दुःखं दुर्वारमिति मर्त्यानां शिक्षणं च । शिक्षार्थमपीत्यर्थः । अन्यथा स्वे स्वरूपे रममाणस्य जगदात्मनः सीताविरहकृतानि व्यसनानीति कुतः स्यात् ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि तो फिर वे दशरथजी के पुत्र कैसे हैं ? तो इस पर कहते है- प्रभु श्रीराम का मर्त्यावतार तो रावण का वध करने के लिए हुआ है, क्योंकि मनुष्य व्यतिरिक्त से उसका वध असम्भव था । किन्तु केवल इतना ही इस अवतार का प्रयोजन नहीं है, किन्तु उनका अवतार तो मनुष्यों को यह शिक्षा देने के लिए हुआ है कि स्त्री आदि की सङ्गति होने पर दुःखों की प्राप्ति निर्निवार्य है । अन्यथा अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले जगदात्मा भगवान् श्रीराम को सीता वियोगजन्य इतना कष्ट क्यों होता ?॥५॥

**न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ।**
**न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥६॥**

**अन्वयः**— स वै आत्मवताम् आत्मा, सुहृत्तमः भगवान् वासुदेवः त्रिलोक्यां सक्तः न, स्त्रीकृतं कश्मलं न अश्नुवीत, लक्ष्मणं चापि विहातुम् न अर्हति ॥६॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीराम आत्मज्ञानी पुरुषों की आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं, वे त्रिलोकी की किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं है, वे सीताजी के लिए मोह को भी नहीं प्राप्त हो सकते हैं और न तो वे लक्ष्मणजी का परित्याग ही कर सकते हैं ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

विषयासक्तप्रभावेन व्यसनानर्हत्वमुपपादयति । न वै स भगवांस्त्रिलोक्यां क्वापि सक्तः । यत आत्मवतां धीराणामात्मा सुहृत्तमश्च । अतो न स्त्रीकृतं मोहं प्राप्नुयात् । न लक्ष्मणं चेति । देवदूतेन श्रीरामं संमन्त्रयता विज्ञापितमत्रागतस्त्वया वध्य इति तदैव द्वारि स्थितं लक्ष्मणं दुर्वाससमागतं विज्ञापयितुं प्रविष्टं हन्तुमुद्यतो वसिष्ठवाक्यात्तत्याज तच्च न युज्येतेत्यर्थः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि भगवान् श्रीराम की किसी भी विषय में आसक्ति नहीं होने के कारण उनको कष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती है । वे भगवान् त्रिलोकी की किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं हैं क्योंकि वे ज्ञानी पुरुषों की आत्मा और प्रियतम हैं । अतएव उनको स्त्री वियोग जन्य कष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती है वे लक्ष्मणजी का भी परित्याग नहीं कर सकते हैं । देवताओं के दूत द्वारा मन्त्रणा करते समय देवदूत ने कहा कि हम दोनों की वार्ता के बीच में जो आ जाय उसका आप वध कर देंगे । उससमय आये हुए दुर्वासा

महर्षि के आगमन की सूचना देने के लिए द्वार पर स्थित लक्ष्मणजी को मारने के लिए जब भगवान् उद्यत हो गये तो वसिष्ठजी के कथनानुसार उन्होंने लक्ष्मणजी का परित्याग कर दिया ॥६॥

**न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।**
**तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥७॥**

**अन्वयः**— नूनं महतो जन्म न, सौभगं न, वाक् न, बुद्धिन आकृतिः यत् तैः विसृष्टान्अपि बनौकसः नः बत लक्ष्मणाग्रजः सख्ये चकार ॥७॥

**अनुवाद**— भगवान् श्रीराम की प्रसन्नता का कारण उत्तम कुल में जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुर्य, बुद्धि और श्रेष्ठ इनमें से कोई नहीं हो सकता है, क्योंकि इन सबों से हम वनवासियों को लक्ष्मणाग्रज श्रीरामजी ने अपना मित्र बनाया ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

अतः श्रीराम एव सर्वैः सेव्य इति वक्तुं न तस्य तोषहेतुः सत्कुलजन्मादि किंतु भक्तिरेवेत्याह- न जन्मेति । महतः पुरुषाज्जन्म । महतः श्रीरामस्येति वा । सौभगं सौन्दर्यम् । आकृतिर्जातिः । यद्यस्मात्तैर्जन्मादिभिर्विसृष्टांस्त्यक्तानपि नो वनचरान् बत अहो लक्ष्मणस्याग्रजोऽपि सखित्वे कृतवान् ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव सबों को भगवान् श्रीरामकी ही आराधना करनी चाहिए इस बात को बतलाने के लिए वे कहते हैं कि उनकी प्रसन्नता का साधन उत्तम कुल में जन्म आदि नहीं अपितु भक्ति ही है । महानों के वंश में जन्म, अथवा श्रीराम का महान वंश में जन्म, सौन्दर्य, जाति, आदि भगवान् श्रीराम की प्रसन्नता के साधन नहीं हैं, क्योंकि उत्तम कुल में जन्म आदि से रहित वन में रहने वाले हम वानरों को भगवान् श्रीराम ने अपना मित्र बनाया यह उनक बड़ी उदारता है ॥७॥

**सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।**
**भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोशलान्दिवम् इति ॥८॥**

**अन्वयः**— सुरः असुरः अपि अथ नरः वानरः वा सर्वात्मना उत्तमं सुकृतज्ञं मनुजाकृतिं हरिं रामं भजेत यः उत्तरान् कोसलान् दिवम् अनयत् ॥८॥

**अनुवाद**— देवता, अथवा असुर, अथवा मनुष्य या वानर सबों को हर प्रकार से सर्वोत्तम सुकृतज्ञ मानव रूप धारी श्रीहरि भगवान् श्रीराम का ही भजन करना चाहिए जो भगवान् श्रीराम परधाम गमन करते समय सभी उत्तर कोसल वासियों को अपने साथ लेते गये ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

तस्मात्सुरो वान्यो वा यः कोऽपि श्रीराममेव सर्वप्रकारेण भजेत् । सुकृतज्ञमल्पीयस्यपि भजने बहुमानिनम् । उत्तरान्कोशलानयोध्यावासिनः ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

अतएव देवता या असुर आदि कोई भी हो उसको हर प्रकार से भगवान् श्रीराम का ही भजन करना चाहिए। वे अन्य भी भजन करने का बहुत अधिक महत्त्व देते हैं । वे परधाम गमन की बेला में समस्त अयोध्या वासियों को अपने साथ लेते गये ॥८॥

**भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य आकल्पान्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमो परमात्मोपलम्भन-मनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥९॥**

**अनुवाद**— भारत वर्ष में भी दयापरतन्त्र भगवान् नारायण रूप धारण करके संयमशील पुरुषों पर कृपा करने के लिए अव्यक्त रूप से कल्प के अन्त तक तप किया करते हैं। उनकी इस तपस्या से धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शान्ति और उपरति की उत्तरोत्तर वृद्धि होकर अन्त में आत्म स्वरूप की उपलब्धि हो सकती हैं ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

उपचितैर्धर्मादिभिरात्मोपलभ्यते येन तत्तपश्चरति। तत्रोपशम इन्द्रियाणां संयमः उपरमो निरहंकारता। आत्मवतामनुग्रहाय न स्वार्थम्, ईश्वरत्वात् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

धर्मादि की वृद्धि होने के कारण जिससे आत्मा की उपलब्धि हो सके इस प्रकार का तप भगवान् नर-नारायण करते हैं। इन्द्रियों के संयम को उपशम कहते हैं। अहङ्कार राहित्य को उपरम कहते हैं। वे आत्मज्ञ पुरुषों पर कृपा करने के लिए अपने लिए नहीं क्योंकि वे तो ईश्वर हैं ॥९॥

**तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृणाति ॥१०॥**

**अनुवाद**— वहाँ भगवान् नारदजी स्वयं श्रीभगवान् के ही कहे हुए सांख्यशास्त्र एवं योगशास्त्र के साथ श्रीभगवान् की महिमा को प्रकट करने वाले पाञ्चरात्र दर्शन का सवर्णि मनु को उपदेश करने के लिए भारत वर्ष की वर्णाश्रमधर्म का पालन करने वाली प्रजा के साथ अत्यन्त भक्तिभाव से श्रीभगवान् नर-नारायण की उपासना करते हैं और इस मन्त्र का जप करते हुए उनकी स्तुति करते ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

भगवदनुभाव उपवर्ण्यते येन पञ्चरात्रेण तत्। सावर्णेर्मनोः। उपसरति सेवते ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् की महिमा को प्रकट करने वाले पञ्चरात्र शास्त्र का सावर्णि मनु को उपदेश देने के लिए श्रीभगवान् की उपासना नारदजी करते हैं ॥१०॥

**ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः- इति ॥११॥**

**अनुवाद**— ॐकारस्वरूप अहङ्कार से रहित, निर्धनों के धनस्वरूप शान्त स्वभाव ऋषियों श्रेष्ठ भगवान् नरनारायण को नमस्कार है। वे परम हंसों के गुरु और आत्मारामों के अधीश्वर हैं। उनको बार-बार नमस्कार हैं ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

उपरतानात्म्याय निरहंकाराय ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

उपरतानात्म्याय पद का अर्थ है अहङ्कार से रहित भगवान् को नमस्कार है ॥११॥

नारद उवाच

**गायति चेदम् ।**

**कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ।**
**द्रष्टुर्नदृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥१२॥**

**अन्वयः**— अस्य कर्ता यः न बध्यते, यस्य द्रष्टुः दृग् अस्यगुणैः न विदूष्यते, देहगतोऽपि यः दैहिकैः न हन्यते, तस्मै असक्त साक्षिणे नमः ॥१२॥

**नारदजी इस प्रकार से स्तुति करते हैं**

**अनुवाद**— जो इस विश्व की उत्पत्ति आदि के कर्ता होकर के भी कर्तृत्वाभिमान में नहीं बँधते हैं, शरीर में रहते हुए भी जो शरीर के धर्म भूख-प्यास आदि के वशीभूत नहीं होते हैं, तथा द्रष्टा होने पर भी जिनकी दृष्टि दृश्य के गुणों एवं दोषों से दूषित नहीं होती है, उन असंग एंव विशुद्ध साक्षी स्वरूप भगवान् नर-नारायण को नमस्कार है ॥१२॥

**भावार्थ दीपिका**

असक्तश्चासौ विविक्तश्च साक्षी न तस्मै नमः । असक्तत्वं दर्शयति । अस्य विश्वस्य सर्गादिषु कर्तापि यो न बध्यतेऽहङ्कर्तेति न मन्यते विविक्तत्वमाह । देहगतोऽपि दैहिकैः क्षुत्पिपासादिभिर्यो न हन्यते नाभिभूयते । साक्षित्वमाह । यस्य द्रष्टुरपि सतो दृष्टिगुणैर्दृश्यैर्न विदूष्यते न विक्रियते ॥१२॥

**भाव प्रकाशिका**

असक्त विशुद्ध एवं साक्षी स्वरूप श्रीभगवान् नर-नारायण को नमस्कार है । भगवान् की असक्तता का वर्णन करते हैं कि इस जगत् के कर्ता होकर भी इसके कर्तृत्वाभिमान से नहीं बंधते हैं । विशुद्धत्व को बतलाते हुए कहते हैं कि देह में रहकर भी देह को धर्म भूख प्यास के वशीभूत नहीं होते हैं । श्रीभगवान् के साक्षित्व को बतलाते हुए नारदजी ने कहा द्रष्टा होने पर भी भगवान् की दृष्टि दृश्य के दोषों और गुणों से दूषित नहीं होती हैं ॥१२॥

**इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ।**
**यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्तयादधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥१३॥**

**अन्वयः**— हे योगेश्वर ! भगवान् हिरण्यगर्भ योगनैपुणं इदं हि जगाद यत्, अन्त काले उज्झितदुष्कलेवरः निगुणे त्वयि भक्त्यामनः दधीत ॥१३॥

**अनुवाद**— हे योगेश्वर ! भगवान् हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी ने योग की यही निपुणता बतलाया है कि मनुष्य अन्तकाल में देहाभिमान का परित्याग करके भक्तिपूर्वक आपके गुण रहित स्वरूप में अपने मन को लगाये ॥१३॥

**भावार्थ दीपिका**

योगकौशलं निरूपयन्योगं प्रार्थयते–इदमिति त्रिभिः । हे योगेश्वर, हिरण्यगर्भो यद्योगनैपुणं जगाद । इदमेव तत् । किम्। जन्मप्रभृति भक्त्यान्तकाले पुमांस्त्वयि मनो धारयेदिति यत् । कथंभूतः सन् । उज्झितं दुष्कलेवरं तदभिमानो येन ॥१३॥

**भाव प्रकाशिका**

योग की निपुणता को बतलाते हुए योग की प्रार्थना तीन श्लोकों से करते हैं । हे योगेश्वर ब्रह्माजी ने जो योग की निपुणता बतलायी है वह यही है कि जन्म से लेकर भक्तिपूर्वक आपमें मन को लगाना चाहिए । प्रश्न है कि कैसा होकर मन को लगाये । इसका उत्तर है कि देहाभिमान को त्यागकर ॥१३॥

**यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।**
**शङ्केत विद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्य यन्तः श्रम एव केवलम् ।।१४।।**

**अन्वयः**— ऐहिकामुष्मिककामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् यथा विद्वान् कलेवरात्ययात् शङ्केत तस्य यत्नः केवलम् श्रमएव ।।१४।।

**अनुवाद**— लौकिक एवं पारलौकिक भोगों के लालची अज्ञानी पुरुष जैसे पुत्र, पत्नी तथा धन की चिन्ता करता हुआ जैसे मृत्यु से डरता है इसी तरह यदि विद्वान् भी मृत्यु से डरता है तो उसका ज्ञान प्राप्ति के लिए किया हुआ प्रयत्न केवल श्रममात्र ही है ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**

अन्यथा तस्य शास्त्राभ्यासादिश्रमो व्यर्थ इत्याह । यथैहिकामुष्मिककामेषु लम्पटो मूर्खः सुतादिषु योगक्षेमं चिन्तयन् कुत्सितस्य कलेवरस्यात्ययान्मृत्योः शङ्कते । तथा विद्वानपि सन् यः शङ्केत तस्य यत्नः शास्त्रश्रवणादिः श्रम एव ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

यदि विद्याप्राप्त भी मृत्यु से भयभीत होता है तो उसके द्वारा किया गया शास्त्राभ्यास व्यर्थ ही है । जिस तरह लौकिक और पारलौकिक भोगों का लालची मूर्ख मनुष्य पुत्र, पत्नी और धन की चिन्ता करता हुआ मृत्यु के भय से भयभीत होता है उसीतरह यदि विद्वान भी शरीर परित्याग रूप मृत्यु से भयभीत होता है तो उसका शास्त्र श्रवण इत्यादि के लिए किया गया प्रयास केवल श्रम मात्र ही है ।।१४।।

**तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वन्माययाऽहंममतामधोक्षज ।**
**भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावम्- इति ।।१५।।**

**अन्वयः**— तत् हे प्रभो अधोक्षज्त्वम् त्वयि स्वभावं योगं विधेहि येन वयं कुकलेवरार्पितां सुदुर्भिदां त्वन्माययार्पितां आशुभिन्द्याम् ।।१५।।

**अनुवाद**— हे अधोक्षज प्रभो ! आप हमे अपना स्वाभाविक प्रेम स्वभक्तियोग प्रदान करे जिससे कि मैं इस निन्दनीय शरीर में आपकी माया के कारण बद्धमूल तथा दुर्भेद्य अहन्त्व-ममत्व को शीघ्र ही काट डालूं ।।१५।।

**भावार्थ दीपिका**

यस्माद्विदुषोऽपीयमेव दशा तत्तस्माद्धे प्रभो अधोक्षज, त्वमेव नो योगं विधेहि । कीदृशम् । त्वयि स्वभावं सहजवासनारूपम्। येन योगेन वयं त्वन्मायया नः कुकलेवरेऽर्पितामहंममतां शीघ्रं भिन्द्याम त्यजेम । सुदुर्भिदामुपायान्तरैः सर्वथा त्यक्तुमशक्याम्।।१५।।

**भाव प्रकाशिका**

चूकि विद्वान् की भी यही दशा है अतएव हे अधोक्षज प्रभो आप ही मुझे उस भक्तिरूपी योग अपने में प्रदान करें । जिससे कि उस योग के द्वारा आपकी माया के द्वारा शरीर में बद्धमूल अहन्त्व और ममत्व को मैं शीघ्र ही त्याग दूँ । क्योंकि दूसरे किसी उपाय से उसका त्याग नहीं हो सकता है ।।१५।।

**भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसंख्याताः ।।१६।**

**अनुवाद**— इस भारत वर्ष में भी बहुत से पर्वत और नदियाँ हैं । जैसे मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट,

ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल वेङ्कट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुम, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि आदि । इसी तरह और भी सैकड़ों हजारों पर्वत है । उनके तट प्रान्त से निकले वाले नद और नदियाँ भी अनेक हैं ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

इलावृतवदस्मिन्नपि वर्षे सरितः शैलाश्च सन्ति । नितम्बप्रभवास्तटेभ्यः संभूताः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

इलावृत वर्ष के ही समान भारत वर्ष में भी बहुत से पर्वत और नदियाँ है । पर्वतों के तट प्रान्त से निकलने वाले नद और नदियाँ भी बहुत हैं ॥१६॥

**एतासामपो भारतीयः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥१७॥**

**अनुवाद**— ये नदियाँ अपने नाम से ही भरतीय प्रजा को पवित्र बनाती हैं । भारतीय प्रजा इन नदियों के जल में स्नान करती हैं ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

आत्मना च देहेनाप्युपस्पृशन्ति ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

अपने शरीर से इन नदियों का स्पर्श करती हैं ॥१७॥

**चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋ:षिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥१८॥**

**अनुवाद**— चन्द्रवशा, तामपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पंचस्वनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धुरन्धः, शोणः ये दोनों नद हैं । महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा वितएता असिक्नी, और विश्वा, ये मुख्य नदियाँ हैं ॥१८॥

**अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥१९॥**

**अनुवाद**— इस भारत वर्ष में ही जन्म लेने वाले पुरुषों को अपने किए हुए सात्विक, राजस और तामस कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार की देव, मनुष्य तथा नारकीय योनियाँ प्राप्त होती है । क्योंकि कर्मानुसार सभी जीवों को सभी योनियाँ प्राप्त होती है इसी वर्ष में अपने-अपने वर्ण के लिए विहित धर्मों का अनुष्ठान करने से मोक्ष की भी प्राप्ति होती है ॥१९॥

### भावार्थ दीपिका

लब्धं जन्म यैस्तैः पुरुषैः सात्विकादिना स्वकृतेन कर्मणा दिव्यादिगतय आत्मनो विधीयन्ते साध्यन्ते । हि यस्मात् सर्वा

एव गतयः कर्मानुसारेण सर्वेषां भवन्ति । यस्य वर्णस्य यद्विधानं मोक्षप्रकारः संन्यासवनस्थत्वादिस्तदनतिक्रमेणास्मिन्नेव वर्षे नृणामपवर्गश्च भवति । एतच्च कर्मादिबहुसाधनसंभवाभिप्रायेणोक्तं न त्वन्यत्रापवर्गाभावेन तदुपर्यपि बादरायणः संभवादिति देवानामपि मोक्षस्य सूचितत्वात् ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

इसी ही वर्ष में जन्म लेने वाले पुरुषों के द्वारा अपने सात्त्विक इत्यादि कर्मों के द्वारा देव आदि योनियाँ प्राप्त की जाती हैं । सबों को सारी गतियाँ उनक कर्मों के अनुसार ही होती हैं । जिस वर्ण के लिए शास्त्र जिस प्रकार के कर्मों का विधान करते हैं तथा संन्यास वानप्रस्थ इत्यादि के जो कर्म है उन कर्मों का पालन करने से मनुष्यों को मोक्ष की भी प्राप्ति होती है । इस बात को अनेक प्रकार के कर्मों रूप साधन से ही सम्भव है, इसी अभिप्राय से कहा गया है । ऐसा नहीं है कि मनुष्य व्यतिरिक्त को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है । **तदुपर्यपिबादरायणः संभवात्** इस सूत्र में महर्षि बादरायण ने बतलाया कि अर्थित्व और सामर्थ्य का देवताओं में भी सद्भाव होने के कारण देवताओं को भी मुक्ति की प्राप्ति सम्भव है ।।१९।।

**योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्ताविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ।।२०।।**

**अनुवाद**— राजन् सभी भूतों की आत्मा, रागादि दोषों से रहित, अनिर्वचनीय, आधर शून्य परमात्मा भगवान् वासुदेव में अनन्य एवं अहैतुक भक्तिभाव ही मोक्षप्रद है । यह भक्ति तब ही प्राप्त होती है, जब अनेक प्रकार की गतियों को प्रकट करने वाली अविद्या रूप हृदय की ग्रन्थि के कट जाने पर भगवद् भक्तों की सङ्गति प्राप्त होती है ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

अपवर्गस्वरूपमाह-योऽसाविति । अनात्म्ये आत्मनि भवमात्म्यं रागादि तद्रहिते । अनिरुक्ते वाचामगोचरे अनिलयने अनाधरे । अनन्यनिमित्तोऽहैतुको भक्तियोग एव लक्षणं स्वरूपं यस्य । कथं भवति । नानागतीनां निमित्तं योऽविद्याग्रन्थिस्तस्य रन्धनं छेदनं तद्वारेण । महापुरुषपुरुषा विष्णुभक्तास्तैः प्रकृष्टः संयोगो यदा भवति तदा ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

मोक्ष के स्वरूप को **योऽसौ० इत्यादि** श्लोक से बतलाते है रागादि दोष से रहित, वाणी के अविषय भूत अर्थात् अनिर्वचनीय, आधाररहित अनन्या अर्थात् अहैतुकीभक्ति रूप ही जिसका रूप है । अब प्रश्न उठता है कि उस भक्ति की प्राप्ति कैसे होती है इसके उत्तर में कहते हैं कि अनेक प्रकार की गतियों के कारणभूत जब अविद्या की ग्रन्थि कट जाती है, और श्रीभगवान् के भक्तों की जब सङ्गति प्राप्त होती है तब ही भक्ति की प्राप्ति होती है ।।२०।।

**एतदेव हि देवा गायन्ति ।**

**अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।**
**यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ।।२१।।**

**अन्वयः**— अहो यैः मुकुन्दसेवौपयिकं भारताजिरे नृषु जन्म लब्धं अमीषां किं शोभनम् अकारि उतस्वित् एषां स्वयं हरिः प्रसन्नः नः हि स्पृहा ।।२१।।

**अनुवाद**— देवता भी भारत वर्ष में उत्पन्न पुरुषों की इस प्रकार ही महिमा का गान करते हैं ।

अहो ! जिन लोगों ने श्रीभगवान् की सेवा करने योग्य इस भारत वर्ष में जन्म प्राप्त किया है, इन लोगों

ने कौन सा पुण्य कर्म किया है, अथवा इन लोगों पर श्रीहरि ही प्रसन्न हैं। इसके लिए तो हमलोगों की भी स्पृहा बनी रहती है ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

एतदेव मानुष्यमेव सर्वपुरुषार्थसाधनं गायन्ति। अमीषामेभिः। उतस्वित् अथवा स्वयमेव साधनं विनैव हरिरेषां प्रसन्नोऽभूत्। एवंभूतस्य पुण्यस्य दुष्करत्वात्। भारताजिरे भारताङ्गणे नः केवलं स्पृहैव। यत्र तन्मुकुन्दसेवोपयोगि नृषु जन्म यैर्लब्धम् ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

यहाँ के मनुष्य जन्म की ही प्रशंसा करते हैं। इन मनुष्यों ने कौन सा पुण्य कर्म किया है। अथवा साधन के बिना ही अपने आप इन लोगों पर श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं। भारतवर्ष में जन्म लेने की हमलोगों की इच्छा ही रहती है जन्म ही प्राप्त कर पाते। जिस भारत वर्ष में जिन लोगों ने श्रीभगवान् की सेवा के लिए उपयोगी जन्म प्राप्त किया है ॥२१॥

**किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना।**
**न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥२२॥**

**अन्वयः**— नः दुष्करैः क्रतुभिः तपोव्रतैः दानादिभिः वा फल्गुनाद्युजयेन किम् यत्र नारायण पादपङ्कजस्मृतिः न अतिशयेन्द्रियोत्सवात् स्मृतिः प्रमुष्टा ॥२२॥

**अनुवाद**— हमें अत्यन्त कठिन याग, तप, व्रत तथा दानादि के करने से क्षुद्र स्वर्ग पर अधिकार प्राप्त करने से कौन सा लाभ हुआ। यहाँ तो भगवान नारायण के चरण कमलों की याद भी नहीं आती, सदैव इन्द्रियों का प्रीणन करते रहने के कारण भगवान् की स्मृति ही विनष्ट हो गयी है ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

स्पृहामेवाहुः- किमित्यादिसप्तभिः। दुष्करैः क्रत्वादिभिर्नः फल्गुना तुच्छेन द्युजयेन स्वर्गप्राप्त्या किम्। न किंचित्फलम्। कुतः। यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिर्नास्ति। प्रत्युतातिशयितादिन्द्रियाणामुत्सवाद्भोगात्प्रमुष्टाभूत् ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

देवगण अपनी स्पृहा को ही **किम० इत्यादि** सात श्लोकों द्वारा कहते हैं कठोरयाग इत्यादि के करने से हमे जो तुच्छ स्वर्ग की प्राप्ति हुई है इससे कौन सा लाभ हुआ। कुछ भी नहीं। यहाँ तो भगवान् नारायण के चरण कमलों की याद भी नहीं आती है। अपितु अत्यधिक इन्द्रियों का भोग प्राप्त होने के कारण हमारी स्मृति ही विनष्ट हो जाती है ॥२२॥

**कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।**
**क्षणे मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥२३॥**

**अन्वयः**— कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषांभारतभूजयोवरम् क्षणेन मनर्येन कृतं मनस्विनं संन्यस्य हरेः अभयं पदं संयान्ति ॥२३॥

**अनुवाद**— जिस ब्रह्मलोक में स्थान प्राप्त करके उस एक कल्प की आयु प्राप्त करने वालों को भी पुनः जन्म लेना पड़ता है। उन लोगों की अपेक्षा तो भारत भूमि में क्षणभर का ही जन्म प्राप्त करना श्रेष्ठ है। यहाँ ज्ञानी पुरुष अपने क्षणिक मर्त्य शरीर से किए हुए कर्मों को भगवान् नारायण को समर्पित करके श्रीहरि के अभय पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

क्षणमल्पमेवायुर्येषाम् । वरत्वे हेतुः– मर्त्येनापि देहेन क्षणेनेव कालेन कृतं कर्म संन्यस्य हरेः पदं सम्यग्यान्ति ।।२३।।

### भाव प्रकाशिका

अल्प आयु वाले मनुष्यों का ही जन्म श्रेष्ठ है । उसका कारण है कि इस मानव शरीर से ही किए गये कर्मों को भगवान् नारायण को समर्पित करके श्रीहरि के लोक को प्राप्त कर लेते हैं ।।२३।।

**न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।**
**न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ।।२४।।**

**अन्वयः**— यत्र वैकुण्ठ कथासुधापगा न तदाश्रयाः भागवताः साधवः न, यत्रयज्ञेश मखाः महोत्सवाः न सवै सुरेश लोकः अपि न सेव्यताम् ।।२४।।

**अनुवाद**— जहाँ पर श्रीभगवान् की कथा रूपी अमृत की नदी प्रवाहित नहीं होती है, जहाँ भगवदाश्रित रहने वाले भगवद्भक्त साधुजन न हों, जहाँ पर यज्ञ पुरुष भगवान् नारायण के यज्ञादि महोत्सव नहीं मनाये जाते हों उस ब्रह्माजी के लोक का भी सेवन नहीं करना चाहिए ।।२४।।

### भावार्थ दीपिका

अतो यत्र वैकुण्ठकथामृतनद्यो न सन्ति । तदाश्रयाः कथापगाश्रयाः । महान्तो नृत्याद्युत्सवा येषु तादृशा यज्ञेशस्य मखाश्च पूजाः । स सुरेशस्य ब्रह्मणोऽपि लोको न सेव्यताम् ।।२४।।

### भाव प्रकाशिका

अतएव जहाँ पर भगवान् वैकुण्ठनाथ की कथामृत की नदी नहीं प्रवाहित होती हो तथा श्रीभगवान् की कथामृत की नदी का सेवन करने वाले भगवत साधुजन न हों । जहाँ पर नृत्य गीतों के साथ श्रीभगवान् की पूजा अर्चा नहीं होती हो उस ब्रह्माजी के भी लोक का सेवन नहीं करना चाहिए ।।२४।।

**प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ।**
**न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ।।२५।।**

**अन्वयः**— ये च जन्तवः इह ज्ञान क्रिया द्रव्यकलाप संभृताम् नृजातिं प्राप्ता ते वै अपुनर्भवाय न यतेरन् ते वनौका इव पुन र्बन्धनम् यान्ति ।।२५।।

**अनुवाद**— जिन जीवों ने इस भारत वर्ष में ज्ञान तदनुकूला कर्म तथा उस कर्म के लिए उपयोगी द्रव्यादि समग्री से सम्पन्न मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, वे यदि इस संसार चक्र से निकलने का प्रयास नहीं करते हैं तो फिर वे बहेलिए के जाल से निकलकर पुन उसी वृक्ष पर विहार करने वाले पक्षी के समान पुनः संसार के बन्धन में पड़ जाते हैं ।।२५।।

### भावार्थ दीपिका

अमुमुक्षून्नरान्निन्दति–प्राप्ता इति । ज्ञानं च तदर्थाः क्रियाश्च तदर्थानि द्रव्याणि च तेषां कलापेन संभृतां पूर्णाम् । अपुनर्भवाय मोक्षाय वनौका इव । वनौकसः पक्षिणो यथा लुब्धकान्मुक्ता अपि पुनर्यदि तस्मिन्नेव वृक्षे प्रमत्ता विहरन्ति तर्हि यथा बध्यन्ते तद्वत् ।।२५।।

### भाव प्रकाशिका

**प्राप्ता० इत्यादि** श्लोक के द्वारा अमुमुक्षु मनुष्यों की निन्दा करते हैं । ज्ञान, तदनुकूल कर्म उसके लिए

उपयोगी द्रव्यादि समूह से परिपूर्ण मानव जन्म प्राप्त करके भी जो लोग मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करते है वे वन के उन पक्षियों के समान हैं जो किसी तरह बहेलिए के जाल से मुक्त होकर पुनः उसी वृक्ष पर प्रमत्त होकर विहार करते हैं और पुनः बन्धन में पड़ जाते हैं ।।२५।।

**यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ।**
**एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ।।२६।।**

**अन्वयः**— यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशः हविः विधिमन्त्र वस्तुतः इष्टं हविः निरुप्तं स्वयमाशिषां एकः पूर्णः प्रभुः पृथक् नामभिः आहूतः गृह्णाति ।।२६।।

**अनुवाद**— इन भारत वासियों का कितना सौभाग्य है जब कि वे यज्ञ में भिन्न-भिन्न देवताओं के नाम से अलग-अलग भाग रखकर विधि, मन्त्र और द्रव्यादि के द्वारा श्रद्धापूर्वक उन्हें हविष्य प्रदान करते हैं तब इन्द्रादि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाने वाले स्वयं पूर्णकाम श्रीहरि ही प्रसन्न होकर उस हविष्य को ग्रहण करते हैं ।।२६।।

### भावार्थ दीपिका

अहो भारतवासिनां भाग्यमित्याहुः-यैरिति । 'अग्नये जुष्टं निर्वपामि, इन्द्राय जुष्टं निर्वपामि' इत्येवं भागशो निरुप्तं पृथक् कृतम् । कथम् । विधिना प्रकारेण मन्त्रेण च वस्तुतश्चरुपुरोडाशादिभेदेन चेष्टं देवतामुद्दिश्य त्यक्तं निरुप्तं च ममेदमिति स्वीकृत्य त्यागानन्तरमश्नतीत्यर्थः । पृथगिन्द्रादिनामभिराहुत आहूतः । आशिषां प्रभुः स्वयं पूर्णोऽपि हरिः ।।२६।।

### भाव प्रकाशिका

देवताओं ने कहा भारतवासियों का भाग्य कितना सराहनीय है— जो यज्ञ करते समय **अग्नये जुष्टं निर्वपामि इन्द्राय जुष्टं निर्वपामि** इस तरह से तत्-तत् देवताओं का अलग-अलग भाग निकलते हैं । इस कार्य को वे विधिपूर्वक और मन्त्र पूर्वक चरु तथा पुरोडाश इत्यादि रूप से इष्ट देवता का उद्देश करके जब प्रदान करते हैं। उस प्रदान करने के पश्चात् यह मेरा है इस तरह से भिन्न-भिन्न देवता के नाम से पुकारे जाने वाले स्वयं पूर्ण काम हरि उसे स्वयं ग्रहण करते हैं ।।२६।।

**सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।**
**स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ।।२७।।**

**अन्वयः**— नृणाम् अर्थितम् अर्थितः दिशति सत्यम् नैवार्थदः यतः पुनरर्थिता अनिच्छताम् भजताम् इच्छापिधानं निज पादपल्ल्वम् स्वयं विधत्ते ।।२७।।

**अनुवाद**— मनुष्य के द्वारा किसी वस्तु के लिए प्रार्थना किए जाने पर श्रीभगवान् उसे प्रदान करते हैं यह सत्य है किन्तु यह वास्तविक प्रदान नहीं क्योंकि उसके बाद भी कामना बनी रहती हैं । किन्तु निष्काम होकर आराधना करने वाले को तो श्रीभगवान् अपना चरण कमल ही प्रदान कर देते हैं जो उसकी सारी इच्छाओं को विनष्ट कर देता है ।।२७।।

### भावार्थ दीपिका

तत्रापि निष्कामाः कृतार्था इत्याहुः-सत्यमिति । प्रार्थितः सन्नर्थितं ददातीति सत्यं, तथापि परमार्थदो न भवत्येव । यद्यस्माद्यतो दत्तादनन्तरं पुनरप्यर्थिता भवति । ननु नार्थितश्चेत्किमपि न दद्यादित्याशङ्क्याहुः । अनिच्छतां निष्कामानां तु इच्छानां पिधानमाच्छादकं सर्वकामपरिपूरकं निजपादपल्लवं स्वयमेव संपादयति ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

जो लोग श्रीभगवान् की आराधना निष्काम होकर करते हैं वे कृतकृत्य हैं, इस बात को **सत्यम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । जो लोग किसी कामना विशेष से श्रीभगवान् की आराधना करते हैं उनके द्वारा प्रार्थित

वस्तु को श्रीभगवान् प्रदान करते हैं। किन्तु यह वास्तविक प्रदान नहीं हैं, क्योंकि उसके पश्चात् भी कामनाएं बनी ही रहती हैं। यदि कहें कि नहीं माँगने पर तो वे कुछ भी नहीं प्रदान करेंगे। तो इस पर कहते हैं- निष्काम आराधना करने पर तो वे उन आराधकों को अपने चरण कमल को ही प्रदान कर देते है जो उनकी सारी कामनाओं को ही पूर्ण कर देते हैं ॥२७॥

**यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ।**
**तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥२८॥**

**अन्वयः**— स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य शोभनं कृतस्य यदि अत्र नः तेन अजनाभे स्मृतिमत् नः जन्म स्यात् यत् वर्षे हरिः भजतांशं तनोति ॥२८॥

**अनुवाद**— अतएव अब तक स्वर्ग सुख भोग लेने के बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ, प्रवचन, तथा शुभ कर्मों में से यदि कुछ बचा हो तो उसके प्रभाव से हम भारत वर्ष में भगवान् की स्मृति से युक्त मनुष्य का जन्म प्राप्त करे, क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करने वाले को हर प्रकार से कल्याण करते हैं ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

स्विष्टस्य सम्यग्यजनस्य। सूक्तस्य प्रवचनस्य कृतस्यान्यस्यापि कर्मणः। स्वर्गसुखादुपभुक्तादवशेषितं यदि किंचिदस्ति तेनाजनाभे वर्षे नोऽस्माकं जन्म स्यात्। कीदृशम्। स्मृतिमत् हरिरेव सेव्य इत्यनुसंधानयुक्तम्। यतो हरिर्भजतां शं सुखं तनोति॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

स्विष्टस्य अर्थात् यज्ञ का प्रवचन का अथवा किसी दूसरे कर्म का कुछ भी बचा हो तो हमें भगवत् स्मृति से युक्त भारत वर्ष में मनुष्य का जन्म मिले। क्योंकि श्रीहरि अपनी आराधना करने वालों का कल्याण करते हैं ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

**जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥२९॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् राजा सगर के पुत्रों ने अपने यज्ञ के घोड़े को खोजते हुए इस पृथिवी को चारो ओर से खोदा था उससे जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ही आठ उपद्वीप बन गये ऐसा कुछ लोग कहते हैं ॥२९॥

**तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥३०॥**

**अनुवाद**— वे स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहारिण पाञ्चजन्य सिहल और लङ्का हैं॥३०॥

**एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥३१॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे जम्बूद्वीपवर्णनं नाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

**अनुवाद**— हे भरत श्रेष्ठ इस प्रकार जैसा मैंने गुरुमुख से सुना था ठीक वैसा ही तुम्हें यह जम्बूद्वीप के वर्षों का विभाग सुना दिया ॥३१॥

**इस तरह श्रीमद्भागवतमहापुराण के पाँचवें स्कन्ध के जम्बूद्वीपवर्णन नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥**

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां एकोनविंशतितमोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी श्रीधराचार्य कृत उन्नीसवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।

# बीसवाँ अध्याय

## जम्बूद्वीप से भिन्न छह द्वीपों का वर्णन

### श्रीशुक उवाच

**अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥१॥**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— राजन् ! अब परिमाण, लक्षण और स्थिति के अनुसार प्लक्ष आदि अन्य द्वीपों के वर्ष विभाग का वर्णन किया जाता है ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

विंशे प्लक्षादिषड्द्वीपस्थितिमाह सहार्णवैः । लोकालोकस्थितिश्चान्तर्वहिर्भागादिमानतः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

बीसवें अध्याय में प्लक्ष आदि छह द्वीपों की समुद्रों के साथ स्थिति का वर्णन तथा लोकालोक पर्वत की स्थित आभ्यन्तर और वाह्य परिमाण के अनुसार बतलाया गया है ॥१॥

**जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखाबाह्योपवनेन प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः । प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥२॥**

**अनुवाद**— जिस तरह मेरु पर्वत जम्बूद्वीप से घिरा है उसी तरह जम्बूद्वीप भी अपने ही सदृश परिमाण और विस्तार वाले खारे जल के समुद्र से घिरा है । फिर खाई जिस तरह बाहरी उपवन में घिरी होती है उसी तरह समुद्र भी अपने दूगने विस्तार वाले प्लक्षद्वीप से वेष्टित है । जम्बूद्वीप में जितना बड़ा जामुन का वृक्ष है प्लक्ष द्वीप में भी उतना ही वड़ा सुवर्णमय पाकड़ का वृक्ष है । उसी के कारण इस द्वीप का नाम प्लक्षद्वीप है । यहाँ सात जिह्वाओं वाले अग्निदेव विराजते हैं । इस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र महाराज इध्मजिह्व हैं । उन्होंने ही इस द्वीप को सात वर्षों में विभक्त किया है । उन वर्षों का इन्होंने अपने उन वर्षों के नाम वाले पुत्रों को सौंप दिया और स्वयं अध्यात्मयोग को अपना कर उपरत हो गये ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

तावता लक्षविस्तारेण परिक्षिप्तः परिवेष्टितः उपास्ते तिष्ठति । आकलय्य समर्प्य ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

उतने ही लाख योजन विस्तार वाले खारे जल के समुद्र से घिरा है आकलय्य अर्थात् समर्पित करके ॥२॥

**शिवं यवयसं सुभद्रं शान्तं क्षेममममृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥३॥**

**अनुवाद**— उन वर्षों के नाम है, शिव, यवस, सुभद्र, शान्त क्षेम, अमृत और अभय। इन वर्षों में भी सात पर्वत और सात नदियाँ प्रसिद्ध हैं ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

अभिज्ञाताः प्रसिद्धाः सप्तैव। अन्ये च पर्वता नद्यश्च सहस्रशः सन्तीत्यर्थः। मानसोत्तरस्य मण्डलाकारत्वोक्तेरेतेषु प्लक्षादिपञ्चद्वीपेषु वर्षाद्रयस्तिर्यग्रेखाकारा उभयतोऽब्धिस्पृश इति गम्यते। अन्यथा सप्तभिः सप्तवर्षविभागासंभवात्। वैष्णवे वर्षाणां पूर्वादिक्रमोक्तेश्च ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

**सप्तैवाभिज्ञाताः** अर्थात् सात ही प्रसिद्ध हैं इन सबों के अतिरिक्त हजार नदियाँ और पर्वत भी हैं। मानसरोवर के उत्तर में मण्डलाकृति रूप से वर्णित प्लक्ष आदि पाँच द्वीपों में वर्ष तथा पर्वत तिरछी रेखा के आकार वाले तथा दोनों तरफ समुद्र से सटे हुए हैं। यदि ऐसा नहीं हो तो सातों के द्वारा सात विभाग का होना असम्भव होगा किञ्च विष्णु पुराण में वर्षों को पूर्व आदि के क्रम से बतलाया गया है ॥३॥

**मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान्सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः अरुणानृम्णाङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यंभरा इति महानद्यः यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसंदर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥४॥**

**अनुवाद**— प्लक्षद्वीप में मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन ज्योतिष्मान् सुवर्ण हिरण्यष्ठीव और मेघमाला ये सात मर्यादा पर्वत हैं, एवं अरूणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यंभरा ये सात महानदियाँ हैं। वहाँ हंस, पतङ्ग, उर्ध्वायन और सत्याङ्ग नामक चार वर्ण हैं। उपर्युक्त नदियों में स्नान करने से, इनके रजोगुण और तमोगुण क्षीण होते रहते हैं। यहाँ के लोगों की आयु एक हजार वर्ष की होती है। इनके शरीर में देवताओं के समान थकान और पसीना आदि नहीं होते हैं। सन्तानोत्पत्ति भी उनके ही सदृश होती है। ये त्रयी विद्या के द्वारा तीनों वेदों (ऋग्यजुः सामवेदों) में वर्णित, स्वर्ग प्राप्ति के साधनभूत आत्म स्वरूप भगवान् सूर्य की उपासना किया करते हैं ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

जलोपस्पर्शनेन विधूतं रजस्तमश्च येषाम्। हंसादयो ब्राह्मणादिस्थानीयाः। विबुधोपमं संदर्शनं क्लमस्वेदादिरहितं रूपं प्रजननमपत्योत्पादनं च येषाम् ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

उन नदियों के जल का स्पर्श करने के कारण वहाँ के लोगों का रजोगुण और तमोगुण क्षीण होता रहता है। हंस इत्यादि ब्राह्मणादि वर्णों के समान हैं। देवताओं के समान दिखाने वाले उन लोगों के देह में थकान और पसीना से रहित होता है। उनके सन्तानें भी उन लोगों के ही समान होती हैं ॥४॥

**प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः । अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥५॥**

**अनुवाद**— वे कहते हैं— जो सत्य अर्थात् अनुष्ठान योग्य और ऋत अर्थात् प्रतीत होने वाले धर्म वे और शुभाशुभ फल के अधिष्ठाता हैं उन पुराण पुरुष विष्णु स्वरूप भगवान् सूर्य की हम शरणाति करते हैं ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

विगीता अपि द्वीपमन्त्रा व्याख्यायन्ते । प्रत्नस्य पुराणपुरुषस्य । विष्णोर्यद्रूपं तं सूर्यमीमहि शरणं व्रजेम् । कथंभूतम्। सत्यादीनामात्मानमधिष्ठातारम् । तत्र सत्यमनुष्ठीयमानो धर्मः । ऋतं प्रमीयमाणो धर्मः ब्रह्मणस्तद्बोधकस्य वेदस्य । अमृतस्य शुभफलस्य मृत्योरशुभफलस्य ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

मूल में है कि नहीं यह निश्चित नहीं है यह विगीता का अर्थ है । द्वीप के मन्त्रों की व्याख्या की जा रही है । प्रत्न अर्थात् पुरुष भगवान् विष्णु के समान जिनका रूप है उन सूर्य भगवान् की हम शरणागति करते हैं । प्रश्न है कि कैसे विष्णु तो इसका उत्तर है कि सत्य आदि आत्माओं के अधिष्ठाता वहाँ अनुष्ठान किए जाने वाला धर्म सत्य है और प्रतीत होने वाला धर्म ऋत है । ब्रह्म के बोधक वेद के अमृतस्य अर्थात् शुभ फ़ल के तथा मृत्योः अर्थात् अशुभफल के अधिष्ठाता हैं ॥५॥

**प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिर-विशेषेण वर्तते ॥६॥**

**अनुवाद**— पलक्ष आदि पाँचो द्वीपों में सभी मनुष्यों को जन्म से ही आयु, इन्द्रिय मनोबल, इन्द्रिय बल, शारीरिक बल, बुद्धि और पराक्रम समान रूप से सिद्ध होते हैं ॥६॥

**प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृङ्क्ते ॥७॥**

**अनुवाद**— प्लक्षद्वीप अपने ही समान विस्तार वाले इक्षु रस के समुद्र से आवृत है । उसके आगे उसके दो गुने परिमाण वाला शाल्मली द्वीप है । जो उतने ही विस्तार वाले मदिरा के समुद्र से घिरा है ॥७॥

**यत्र ह वै शाल्मलीप्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयनमाहुर्भगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥८॥**

**अनुवाद**— प्लक्ष द्वीप के पाकड़ के बाराबर शाल्मली (सेमर) का वृक्ष है । कहा जाता है कि यही वृक्ष अपनी आँखों से भगवान् की स्तुति करने वाले पक्षिराज भगवान् गरुड का निवास स्थान है और यही इस द्वीप के नामकरण का भी कारण है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

'सुपर्णोऽसि गरुत्मान् त्रिवृत्ते शिरः' इत्यादिश्रुतेश्छन्दोभिः स्वावयवभूतैः श्रीविष्णुं स्तौतीति छन्दःस्तुत् तस्य गरुडस्य निलयनं स्थानम् । सा शाल्मली । द्वीपस्य हूतये व्यपदेशाय ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

वह सेमर का वृक्ष अपने अवयव स्वरूप **सुपर्णोऽसि गरुत्मान त्रिवृत्ते शिरः इत्यादि** श्रुति के छन्दों से भगवान् विष्णु की स्तुति करता है । छन्द के द्वारा जिनकी स्तुति किया गया है उस गरुड के स्थान वह शल्मली (सेमर) का वृक्ष है । द्वीप के आहूत करने के लिए है ॥८॥

**तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥९॥**

**अनुवाद**— इस द्वीप के अधिपति महाराज प्रियव्रत के पुत्र यज्ञ बाहु थे। उन्होंने इस द्वीप के सात विभाग किया। उनके नाम है सुरोचन, सौमन्य, रमणक, देववर्ष, परिभद्र, आप्यायन, और अविज्ञात। उन्होंने इन्हीं नाम वाले अपने पुत्रों को सौंप दिया ॥९॥

**तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥१०॥**

**अनुवाद**— इनमें भी सात वर्ष पर्वत हैं और सात ही नदियाँ प्रसिद्ध हैं, पर्वतों के नाम स्वरस, शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ण और सहस्र श्रुति। इसी तरह नदियाँ के नाम हैं अनुमती, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका ॥१०॥

**तद्वर्षपुरुषा श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥**

**अनुवाद**— उन वर्षों में रहने वाले श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषन्धर नाम के चार वर्ण वेदमय आत्म स्वरूप भगवान् चन्द्रमा की वेद मन्त्रों से उपासना करते हैं ॥११॥

**स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः। प्रजानां सर्वासां राजाऽन्धः सोमो न आस्त्विति॥१२॥**

**अन्वयः**— यः कृष्ण शुक्लपक्ष यो स्वगोभिः, विभजन् पितृदेवेभ्यः सर्वासां प्रजानाम् अन्धः सोमः नः राजा अस्त्विति॥१२॥

**अनुवाद**— वे कहते हैं कि जो कृष्ण पक्षों में अपनी किरणों से विभाग करके पितरों, देवों तथा समस्त प्रजाओं को अन्न प्रदान करते हैं वे चन्द्र देव हमारे राजा हों ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

स्वगोभिः स्वरश्मिभिः। अन्धोऽन्नम्। सोमो नो राजा आस्तु आभिमुख्येन भवतु। ह्रस्वपाठे त्वविवक्षया संध्यभावः॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

स्वगोभिः अर्थात् किरणों से। अन्धः अर्थात् अन्न प्रदान करने वाले चन्द्रदेव हमारे राजा हों ह्रस्वपाठ होने पर विवक्षा नहीं होने से सन्धि का अभाव है ॥१२॥

**एवं सुरोदाद्बहिस्तद्द्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथा पूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन्कुशस्तम्बो देवकृतस्त द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥१३॥**

**अनुवाद**— इसी तरह सुरासमुद्र के बाहर उससे दो गुने परिमाण वाला कुशद्वीप है। पूवोक्त द्वीपों के समान यह भी अपने ही समान परिमाण वाले घृत समुद्र से घिरा हुआ है। इसमे परमात्म रचित एक कुश की झाड़ है। उसी से इस द्वीप का नाम कुशद्वीप है। वह दूसरे अग्निदेव के समान अपनी कोमल शिखाओं की कान्ति से सभी दिशाओं को प्रकाशित करता है ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

एवं सुरोदाद्वहिर्घृतोदेनावृतः कुशद्वीप इत्यन्वयः। स्वशष्पाणि स्वकोमलशिखास्तेषां रोचिषा ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

इसी तरह सुरासमुद्र के बाहर घृतसमुद्र से घिरा हुआ कुश द्वीप है, वह अनी कोमल शिखाओं की कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करता है ॥१३॥

**तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजन्हिरण्यरेतो नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः ॥१४॥**

**अनुवाद**— राजन् उस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र महाराज हिरण्यरेता थे। उन्होने इसका सात विभाग करके उनमें से एक-एक को अपने सात पुत्रों वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त, और वामदेव को दे दिया ॥१४॥

**तेषां वर्षेषु सीमा गिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुः शृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमालेति॥१५॥**

**अनुवाद**— उन सबों के भी वर्षों में सात मर्यादा पर्वत हैं और सात ही नदियाँ हैं। पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं चक्र, चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, और द्रविण नदियों के भी नाम इस तरह हैं रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता, और मन्त्रमाला ॥१५॥

**यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥१६॥**

**अनुवाद**— इन नदियों के जल में स्नान करके कुशद्वीप निवासी, कुशल, कोविद, अभियुक्त, और कुलक वर्ण के पुरुष अग्नि स्वरूप भगवान् श्रीहरि का यज्ञादि कर्म कौशल के द्वारा पूजन करते हैं ॥१६॥

**परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट्। देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यज-इति ॥१७॥**

**अन्वयः**— हे जातवेदः! साक्षात् परस्य ब्रह्मणः हव्यवाद् असि पुरुषाङ्गानां देवानां यज्ञेन पुरुषं यज इति ॥१७॥

**अनुवाद**— वे लोग अग्नि की स्तुति करते हुए कहते हैं हे अग्निदेव! आप साक्षात् परब्रह्म को हविष्य पहुँचाने वाले हैं अतएव आप परमपुरुष के अङ्गभूत देवताओं के यज्ञ के द्वारा परम पुरुष परमात्मा का ही यजन करें ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

हे जातवेदः, त्वं साक्षात्परस्य ब्रह्मणो हरेर्हव्यवाडसि। अतो देवानां यज्ञेन पुरुषं हरिमेव यज। अङ्गानां नाम्ना दत्तमङ्गिने समर्पयेत्यर्थः ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

हे अग्ने! आप साक्षात् परब्रह्म श्रीहरि को हवि पहुँचाने वाले हैं अतएव देवताओं के यज्ञसे श्रीहरि का यजन करे। अङ्गों के नाम से दिए गये हवि को अङ्गों को समर्पित करें ॥१७॥

**तथा घृतोदाद्बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥१८॥**

**अनुवाद**— उसी तरह घृत समुद्र के आगे उससे दो गुना परिमाण वाला क्रौञ्च द्वीप है। जिस तरह घृत समुद्र से कुशद्वीप घिरा है उसी तरह क्रौञ्च द्वीप भी अपने ही समान विस्तार वाले दूध के समुद्र से घिरा हुआ है। यहाँ क्रौञ्च नाम का एक बहुत बड़ा पर्वत है, उसी के कारण इस द्वीप का नाम क्रौञ्च द्वीप है ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

उपक्लृप्तो वेष्टितः। यथा कुशद्वीपो घृतोदेन वृतः ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

उपक्लृप्तः अर्थात् घिरा हुआ है जैसे कुशद्वीप घृत समुद्र से घिरा हुआ है ॥१८॥

**योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥१९॥**

**अनुवाद**— श्री कार्तिकेयजी के शस्त्र के प्रहार से इसके कटि प्रदेश और लता निकुञ्ज आदि क्षत विक्षत हो गये थे, किन्तु क्षीर सागर से सीचा जाकर और वरुण देव से सुरक्षित होकर यह पुनः निर्भय हो गया ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

गुहस्य कार्तिकेयस्य प्रहरणेनायुधेनोन्मथिता नितम्बाः कुञ्जानि च यस्य ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

कार्तिकेयजी के आयुध के प्रहार से जिसका कटि प्रदेश और कुञ्ज क्षत विक्षत् हो गये थे ॥१९॥

**तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान्वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान्भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥२०॥**

**अनुवाद**— इस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र घृतपृष्ठ थे। उन्होंने इस द्वीप को सात भागों में करके उनमें उन सबों के ही समान नाम वाले अपने सात पुत्रों को नियुक्त करके स्वयं सम्पूर्ण जीवों के अन्तरात्मा, परममङ्गलमय कीर्तिशाली भगवान् श्रीहरि के चरण कमलों की शरणागति की ॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वयं भगवान् ज्ञानी परमकल्याणं यशो यस्य ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

स्वयं भगवान् अर्थात् ज्ञानी। जिन श्रीभगवान् का यश जीवों का अत्यन्त कल्याण करने वाला है ॥२०॥

**आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्तसप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हिण नन्दो नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्र वती शुक्लेति ॥२१॥**

**अनुवाद**— महाराज घृतपृष्ठ के आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा भ्रजिष्ठ लोहितार्ण तथा वनस्पति ये सात पुत्र थे। उन सबों के वर्षों में भी सात वर्ष पर्वत और सात नदियाँ विख्यात हैं। पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं— शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपवर्हिण, नन्द, नन्दन तथा सर्वतोभद्र। नदियों के नाम है— अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और शुक्ला ॥२१॥

**यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना यजन्ते ॥२२॥**

**अनुवाद**— जिन नदियों के पवित्र जल का सेवन करने वाले वहाँ के पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक नामक चार वर्णों वाले निवासी जल से पूर्ण अञ्जलि के द्वारा जल की देवता की उपासना करते हैं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

आपोमयमम्मयम् ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

जल स्वरूप जल के देवता ॥२२॥

**आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः सुवः । ता नः पुनीतामीवध्नीः स्पृश तामात्मना भुवः इति॥२३॥**

**अन्वयः**— हे आपः पुरुषवीर्याः स्थ, भूः भुवः सुवः पुनन्तीः नः स्पृशतां भुवः पुनीत, आत्मना अमीवाध्नीः ॥२३॥

**अनुवाद**— (वे कहते हैं) हे जलाधिष्ठत्री देवते तुमलोगों को परमात्मा से सामर्थ्य प्राप्त है, तुमलोग भूः भुवः और स्वः इन तीनों लोकों को पवित्र करती हो । हम अपने शरीर से तुम्हारा स्पर्श करते हैं, तुमलोग हमारे अङ्गों को पवित्र कर दो ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

हे आपः पुरुषवीर्या ईश्वराल्लब्धसामर्थ्याः स्थ मथथ । अतएव भूर्भुवःस्वस्त्रैलोक्यं पुनन्त्यस्ता भवत्यो नोऽस्माकं स्पृशतां स्पर्शनं कुर्वतां भुवः शरीराणि पुनन्तु । यत आत्मना स्वरूपेणैवामीवध्नीः पापहन्त्र्यः ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

हे जल के अधिष्ठात्री देवते तुमको परमात्मा से ही सामर्थ्य प्राप्त है । इसीलिए तुम भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीनों लोकों को पवित्र करती हो । अतएव तुम्हारा स्पर्श करने वाले हमलोगों के शरीर को तुम पवित्र कर दो, क्योंकि तुम स्वरूपतः पापों का विनाश करने वाली हो ॥२३॥

**एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतो यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति॥२४॥**

**अनुवाद**— इसी तरह क्षीर सागर से आगे उसके चारो ओर बत्तीस लाख योजन विस्तार वाला शाक द्वीप है । वह अपने ही समान विस्तार वाले मट्ठे के समुद्र से घिरा हुआ है । उससे शाक नामक महान् वृक्ष है वही इस क्षेत्र के नाम का कारण है । उसके मनोहर सुगन्ध से सम्पूर्ण द्वीप सुगन्धित बना रहता है ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

दध्नो मण्डं रसः स एवोदकं यस्य । यस्य पर्णान्यन्तः खरस्पर्शानि बहिर्मृदुस्पर्शानि स शाको नाम वृक्षः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

उस समुद्र का जल मट्ठे का है । उस वृक्ष के पत्ते भीतर से रुक्ष स्पर्श वाले हैं ओर बाह्य उन सबों का स्पर्श कोमल है । इस प्रकार का वह शाक नामक वृक्ष है ॥२४॥

**तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान्पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान्निधाय्याधिपतीन्स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥**

**अनुवाद**— उसके भी स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि थे । वे भी अपने द्वीप को सात भागों में विभक्त किये और उनमें उन्हीं के समान नाम वाले अपने पुत्रों को समर्पित कर दिया । पुत्रों के नाम है— पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रनीक, चित्तरेफ, बहुरूप और विश्वधार । उसके पश्चात् वे स्वयं भगवान् अनन्त में दत्तचित्त होकर तपोवन में चले गये ॥२५॥

**एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघायुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥२६॥**

**अनुवाद**— इन वर्षों में भी सात अवधि पर्वत और सात विख्यात नदियाँ हैं । पर्वतों के नाम इस प्रकार

है— ईशान, उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस हैं। तथा नदियाँ आयुर्दा, उभयस्पृष्टि: अपराजिता पंचपदी, सहस्रस्तुति और निजधृति हैं ॥२६॥

**तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधुतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ते ॥२७॥**

**अनुवाद**— उस वर्ष के ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामक पुरुष प्राणायाम के द्वारा अपने रजोगुण और तमोगुण को क्षीण करके महान समाधि के द्वारा, वायुरूप श्रीहरि की आराधना करते हैं ॥२७॥

**अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः । अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥२८॥**

**अन्वयः**— यः आत्मकेतुभिः अन्तः प्रविश्य भूतानि विभर्ति, यद्वशे स्फुटम् अन्तर्यामी ईश्वरः नः साक्षात् पातु॥२८॥

**अनुवाद**— (वे उनकी इस प्रकार से स्तुति करते हैं) जो प्राणादि वृत्ति रूप अपनी ध्वजाओं के साथ प्राणियों के भीतर प्रवेश करके उनका पालन करते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनके अधीन है वे साक्षात् भगवान् वायु हम सबों की रक्षा करें ॥२८॥

**भावार्थ दीपिका**

आत्मकेतुभिः प्राणादिवृत्तिभिः ॥२८॥

**भाव प्रकाशिका**

जो प्राण आदि अपनी वृत्तियों रूप ध्वजाओं के साथ ॥२८॥

**एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥२९॥**

**अनुवाद**— इसी तरह मट्ठे के समुद्र के आगे उसके चारो ओर उससे दो गुने विस्तार वाला पुष्कर द्वीप हैं। वह चारो ओर से अपने ही समान विस्तार वाले मीठे जल के समुद्र से घिरा है। वहाँ अग्नि की शिखा के समान देदीयमान लाखों पङ्खुडियों वाला एक बहुत बड़ा पुष्कर (कमल) है। वह ब्रह्माजी का आसन माना जाता है ॥२९॥

**भावार्थ दीपिका**

ज्वलनशिखावदमलानां कनकपत्राणामयुतानामयुतानि यस्य तत् ॥२९॥

**भाव प्रकाशिका**

अग्नि के ज्वाला के समान स्वच्छ सुवर्ण की लाखों जिसकी पङ्खुड़िया है, इस प्रकार का वह कमल हैं॥२९॥

**तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात्सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥३०॥**

**अनुवाद**— उस द्वीप के ठीक बीच में एक पूर्वीय एवं पश्चिमीय विभागों की मर्यादा निश्चित करने वाला मानसोत्तर नाम का एक ही पर्वत है। वह दश हजार योजन ऊँचा और उतना ही लम्बा है। इसके ऊपर चारो दिशाओं में इन्द्रादि चार दिक्पालों की चार पुरियाँ हैं। इस पर मेरु पर्वत के चारो ओर घूमने वाला सूर्य के रथ का संवत्सर नामक चक्का है। वह देवताओं के दिन (उत्तरायण) और रात (दक्षिणायन) के क्रम से सर्वदा घुमा करता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

देवानामहोरात्राभ्यामुत्तरदक्षिणायनाभ्यामित्यर्थः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं के दिन (उत्तरायण) और रात (दक्षिणायन) के क्रम से ।।३०।।

**तद्द्वीकीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील एवास्ते ।।३१।।**

**अनुवाद**— उस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र वीतिहोत्र थे । उनके दो पुत्र थे उनके नाम हैं रमणक और धातकि । वे उन दोनों को वर्षों का स्वामी बनाकर अपने बड़े भाइयों के समान भागवत् सेवा में संलग्न हो गये।।३१।।

**तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन कर्मणाराधयन्तीदं चोदाहरन्ति ।।३२।।**

**अनुवाद**— वहाँ के निवासी ब्रह्मा रूप भगवान् श्रीहरि की ब्रह्मसालोक्यादि की प्राप्ति कराने वाले कर्मों से आराधना करते हुए इस प्रकार से स्तुति करते हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मरूपिणं कमलासनमूर्तिम् । सकर्मकेन ब्रह्मसालोक्यादिसाधनेन ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मामूर्ति ब्रह्माजी के सालोक्य प्राप्ति के साधन भूत कर्म के द्वारा आराधना करते हैं ।।३२।।

**यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् । एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः इति ।।३३।।**

**अनुवाद**— जो साक्षात् कर्मफलरूप हैं और जिनकी स्थिति एक मात्र परमेश्वर में ही है जिनकी सबलोग पूजा करते हैं ब्रह्म ज्ञान के साधन रूप उन अद्वितीय और शान्त स्वरूप ब्रह्ममूर्ति भगवान् को मेरा नमस्कार है।।३३।।

भावार्थ दीपिका

कर्ममयं कर्मफलरूपम् । ब्रह्म लिङ्ग्यते यस्मात् । एकस्मिन्नेव परमेश्वरेऽन्तो निष्ठा यस्य तदत एव वस्तुतोऽद्वैतम्।।३३।।

भाव प्रकाशिका

कर्ममयम् अर्थात् कर्मफल रूप । जिसे ब्रह्म ज्ञात होते हैं एक ही परमेश्वर में जिनकी निष्ठा है अतएव वे अद्वैत हैं ।।३३।।

ऋषिरुवाच

**ततः परस्ताल्लोकालोकनामाचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः ।।३४।।**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— इसके आगे लोकलोक पर्वत है यह पृथिवी के सब ओर सूर्य आदि के द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित प्रदेशों के बीच में उनका विभाग करने के लिए स्थित है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

ततः शुद्धोदात्परस्तात् । लोकः सूर्याद्यालोकवान्देशः अलोकस्तद्रहितस्तयोरन्तराले मध्ये । तयोर्विभागार्थमित्यर्थः।।३४।।

भाव प्रकाशिका

शुद्धोदक समुद्र के बाद । सूर्य आदि के प्रकाश से युक्त तथा प्रकाश से रहित दोनों प्रकार के देशों के बीच में उनका विभाजन करने के लिए स्थित है ।।३४।।

**यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्यादर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृतासीत् ॥३५॥**

**अनुवाद**— मेरू से लेकर मानसोत्तर पर्वत तक जितना अन्तर है उतनी ही भूमि शुद्धोक समुद्र के उस पार है। उसके आगे सुवर्णमयी भूमि है। जो दर्पण के समान स्वचछ है, इसमें गिरी हुई कोई भी वस्तु फिर नहीं मिलती है, इसीलिए वहा देवताओं को छोड़कर कोई भी प्राणी नहीं रहता है ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

ततः परस्तादित्युक्तं तदेव कियतान्तरेणेत्यपेक्षायां तदन्तर्वर्तिनी भूमिमाह। यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं सार्धसप्तलक्षोत्तर-सार्धकोटिपरिमितं तावती भूः शुद्धोदात्पराऽस्ति। तत्र च प्राणिनोऽपि सन्ति, ततः काञ्चनी भूमिरन्यास्तीत्यर्थः। सा चैकोनचत्वारिंशल्लक्षोतरकोट्यष्टकपरिमिता ज्ञेया। एवं हि सति मेरुलोकालोकयोरन्तरं सार्धद्वादशकोटिपरिमितं वक्ष्यमाणमुपपन्नं भवति। एतदेव शैवतन्त्रेषूक्तम्। 'कोटिद्वयं त्रिपञ्चाशल्लक्षाणि च ततः परम्। पञ्चाशच्च सहस्राणि सप्तद्वीपाः ससागराः। ततो हेममयी भूमिर्दशकोट्यो वरानने। देवानां क्रीडनार्थाय लोकालोकस्ततः परम्' इति। अत्र च दशकोटित्वं पूर्वोक्तभूम्या सह द्रष्टव्यम्। सर्वसत्त्वपरिहृतेति देव्यतिरेकेणेति विज्ञेयम्, देवानां क्रीडनार्थायेत्युक्तत्वात् ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

उसके आगे कहा गया है। प्रश्न है कि उसके भीतर रहने वाली भूमि कितनी है, इस प्रकार की शङ्का होने पर कहते हैं कि मानसोत्तर और मेरु पर्वत इन दोनों के बीच में जितना अन्तराल है अर्थात् एक करोड़ साढ़े सत्तावन लाख योजन परिमित भूमि शुद्धोक के बाद में है। उस भूमि में प्राणी भी है। उसके पश्चात् सुवर्णमयी दूसरी भूमि है। वह भूमि आठ करोड़ उनचालिस लाख ८३९००००० योजन परिमित है। इस तरह मेरु और लोकालोक पर्वतों के बीच का अन्तराल १२५०००००० योजन परिमित है उसको आगे कहा जायेगा। इसी को शैव तन्त्रों में कहा गया है। उसके पश्चात् दो करोड़ तिरपन लाख योजन भूमि है। द्वीपों और सागरों को मिलाकर पचास हजार योजन विस्तार है। हे सुन्दरि उसके पश्चात् सुवर्णमयी भूमि दश करोड़ योजन है। जो देवताओं को क्रीडा करने के लिए है। उसके आगे लोकालोक पर्वत है। यहाँपर पूर्वोक्त भूमि मिलाकर दश करोड़ योजन समझना चाहिए। वहाँदेवताओं को छोड़कर कोई भी प्राणी नहीं जाता है क्योंकि उसको देवताओं के क्रीडा करने के लिए बतलाया गया है ॥३५॥

**लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यान्तर्वर्तिनावस्थाप्यते ॥३६॥**

**अनुवाद**— लोकालोक पर्वत सूर्य आदि से प्रकाशित और आप्रकाशित भू भाग के बीच में स्थित है। इसीलिए इसका नाम लोकालोक है ॥३६॥

**स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रींल्लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः ॥३७॥**

**अनुवाद**— इसे परमेश्वर ने त्रिलोकी के बाहर उसके चारो ओर सीमा के रूप में स्थापित किया है। यह इतना ऊँचा और लम्बा है कि इसके एक ओर से तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाली सूर्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त समस्त ज्योतिर्मण्डल की किरणें दूसरी ओर नहीं जा पाती हैं ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

लोकत्रयस्यान्ते परितो मर्यादारूपो विहितः। यस्मात् प्रतिबन्धकात्। सूर्य आदिर्येषाम्। ध्रुवोपवर्गोऽन्तो येषाम्।

आवितन्वानाः समन्तात्प्रकाशयन्तः परतो गन्तुं न शक्नुवन्ति तावदुन्नहनमुत्सेधस्तदनुरूप आयामश्च विस्तारो यस्य । ध्रुवादप्युच्छ्रितत्वात्त्रिलोकीमर्यादाभूत इत्यर्थः ।।३७।।

**भाव प्रकाशिका**

इस लोकालोक पर्वत को त्रिलाकी के बाहर चारो ओर से मर्यादा रूप से स्थापित किया है । यस्मात् उस प्रतिबन्धक के कारण सूर्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त समस्त ज्योतिमण्डल की किरणें जो चारो ओर फैलती है किन्तु उस लोकालोक के दूसरी ओर नहीं जा सकती है । इतनी ऊँचाई और लम्बाई इस पर्वत की है । ध्रुव से भी ऊँचा होने के कारण यह त्रिलोकी का मर्यादा पर्वत है ।।३७।।

**एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षण संस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिश्च गणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ।।३८।।**

**अनुवाद**—विद्वानो ने प्रमाण, लक्षण और स्थिति के अनुसार सम्पूर्ण लोकों का इतना ही विस्तार बतलाया है । यह समस्त भूगोल पचास करोड़ योजन है । इसका चौथाई भाग अर्थात् साढे बारह करोड़ योजन विस्तार वाला लोकालोक पर्वत है ।।३८।।

**भावार्थ दीपिका**

सोऽयं तु लोकालोकाचलस्तुरीयभागश्चतुर्थोऽशः सार्धद्वादशकोट्यः । मेरोरेकत इति द्रष्टव्यम् ।।३८।।

**भाव प्रकाशिका**

यह लोकालोक पर्वत सम्पूर्ण भूमण्डल के चतुर्थांश में स्थित है अर्थात् मेरु से एक तरफ साढे बारह करोड़ योजन में स्थित है ।।३८।।

**तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाऽखिलजगद्गुरुणाधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषयः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ।।३९।।**

**अनुवाद**—इसके ऊपर चारो दिशाओं में सम्पूर्ण जगत् के गुरु स्वयम्भू श्रीब्रह्माजी ने सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के लिए ऋषभ, पुष्कर चूड, वामन और अपराजित नाम के चार गजराजों को नियुक्त किया हैं ।।३९।।

**भावार्थ दीपिका**

आशासु दिक्षु येऽधिनिवेशितास्ते आसते.।।३९।।

**भाव प्रकाशिका**

चार दिशाओं में जिन गजराजों को नियुक्त किया है वे हैं ।।३९।।

**तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान्परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैःसंधारयमाणस्तस्मिन्गिरिवरे समन्तात्सकललोकस्वस्तय आस्ते ।।४०।।**

**अनुवाद**—उन दिग्गजों और इन्द्रिादि लोकपालों की विविध शक्तियों की वृद्धि तथा समस्त लोकों के कल्याण के लिए परम ऐश्वर्य के स्वामी सर्वान्तर्यामी परम पुरुष श्रीहरि अपने विष्वक्सेन आदि पार्षदों के साथ इस पर्वत पर सब ओर से विराजते हैं । वे अपने विशुद्ध श्रीविग्रह को जो धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इत्यादि आठ महासिद्धियों से सम्पन्न धारण किए हुए हैं । उनके कर कमलों में शङ्ख, चक्र, आदि आयुध सुशोभित होते हैं ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

तेषां दिग्गजानां स्वविभूतीनां स्वांशभूतानां महेन्द्रादीनां च विविधवीर्योपबृंहणाय सकललोकस्वस्तये च भगवांस्तस्मिन्नास्ते इत्यन्वयः । किं कुर्वन् । आत्मनः स्वस्य यद्विशुद्धं सत्त्वं तत्संधारयमाण आविष्कुर्वन् । कीदृशम् । धर्मज्ञानादीन्यष्टमहासिद्धयश्चोपलक्षणं यस्य तत् । दोर्दण्डैरुपलक्षितः सनमहाविभूतेः परमैश्वर्यस्य षतित्वादेकयैव मूर्त्या समन्तादास्ते ॥४०॥

### भाव प्रकाशिका

उन दिग्गजों और अपने अंशभूत इन्द्रादि दिक्पालो के अनेक प्रकार के पराक्रम को बढ़ाने के लिए सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए ही भगवान् उस पर्वत पर विराजमान है । वे वहाँ कैसे रहते हैं ? तो इसका उत्तर है कि अपने शुद्ध श्रीविग्रह को अविष्कृत करके रहते हैं । धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य उनके उस श्रीविग्रह के उपलक्षण हैं । वे अपनी महाभुजाओं से सुशोभित हैं । वे ही केवल इन परम ऐश्वर्यो के मूर्ति है ॥४०॥

**आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीथायेत्यर्थः ॥४१॥**

**अनुवाद**— इस प्रकार अपनी योग माया से विरचित विविध लोकों की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए वे अपने इसी लीलामय रूप से कल्प के अन्त तक वहाँ सब ओर रहते हैं ॥४१॥

### भावार्थ दीपिका

नन्वन्तर्याभिणान्तःस्थेनैव सर्वं कर्तुं शक्यं किं तस्य बहिः समन्तादवस्थानेनेत्याशङ्क्य तस्यार्थं स्वयमेव व्याचष्टे । आत्मनो योगमायया विरचिता या विविधलोकयात्रा तस्या गोपीथाय रक्षणाय एष भगवानेवंभूतमाकल्पं वेषं गतो लीलया प्राप्त इति समन्तादास्त इत्यस्यार्थः ॥४१॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि भगवान् अन्तर्यामी रूप से भीतर रहकर ही सबकुछ कर सकते हैं उनके बाहर चारो रहने से कौन सा प्रयोजन है ? इस तरह से आशङ्का करके उनके प्रयोजन को स्वयं बतलाते हैं अपनी योगमाया से विरचित विविध लोकों की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए वे लीला से प्राप्त इस शरीर से चारो ओर बने रहते हैं ॥४१॥

**योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात् । ततःपरस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥४२॥**

**अनुवाद**— लोकालोक के भीतर जितना भूभाग का विस्तार है उसी से उसके दूसरी ओर के प्रकाश रहित प्रदेश के विस्तार को जान लेना चाहिए । उसके आगे तो योगेश्वरों की विशुद्ध गति होती है ऐस कहा जाता है॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

अलोकपरिमाणं च मेरोरेकतः सार्धद्वादशकोट्यः ततो लोकालोकात् । अलोकाद्वा परस्तात् । विशुद्धां द्विजपुत्रानयनेऽर्जुनस्य श्रीकृष्णेन प्रदर्शिताम् ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

यदि मेरु पर्वत से लोकालोक पर्वत पर्यन्त की एक ओर की भूमि साढे बारह करोड़ योजन है तो प्रकाश रहित दूसरी ओर की भी भूमि उतनी ही होगी । उस विशुद्ध भूमि को ब्राह्मण पुत्र के लाने के समय भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको अर्जुन को दिखलाया था ॥४२॥

**अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् । सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥**

**अन्वयः**— अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योः यदन्तरम्, सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये पञ्चविंशतिः कोट्यः स्युः ॥४३॥

**अनुवाद**— सूर्य और पृथिवी के बीच में जो ब्राह्माण्ड का केन्द्र है वही सूर्य की स्थिति है । सूर्य और ब्रह्माण्डगोलक के बीच में पचीस करोड़ का अन्तर सभी ओर से है ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

विस्तरेणोक्तं ब्रह्माण्डमानं सर्वतोऽपि निरूपयति । अण्डमध्यगतः । किं तन्मध्यं तदाह । द्यावाभूम्योः पूर्वोत्तरकपालयोर्यदन्तरं मध्यस्थानम् । सर्वतः पञ्चविंशतिकोट्यः ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

विस्तार पूर्वक कहे गये ब्रह्माण्ड के परिमाण को सब ओर से निरूपित **अण्डमध्यगतः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । उसके मध्य में क्या है तो उसे बतलाते है । द्युलोक और भूलोक इन दोनों के पूर्व और उत्तर कपालों के बीच में जो अन्तराल है वह हर ओर से पच्चीस करोड़ योजन है ॥४३॥

**मृतेऽण्ड एष एतस्मिन्यदभूत्ततो मार्तण्डइति व्यपदेशः हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः ॥४४॥**

**अनुवाद**— सूर्य इस मरे हुए (अचेतन) अण्ड में वैराज रूप से रहते है इसी से इनका नाम मार्तण्ड है। यो हिरण्यमय ब्रह्माण्ड से प्रकट हुए है । इसीलिए इनको हिरण्यगर्भ भी कहा जाता है ॥४४॥

### भावार्थ दीपिका

अण्डमध्यावस्थाने कारणं तन्नामनिर्वचनेनाह । मृतेऽचेतने एष सूर्यो वैराजरूपेण यस्मात्प्रविष्टः ॥४४॥

### भाव प्रकाशिका

सूर्य और ब्रह्माण्ड के बीच में रहने के कारण सूर्य के नाम के निर्वचन के द्वारा बतलाते हैं । चूकि अण्ड के अचेतन हो जाने पर सूर्य उसमें वैराज रूप से रहते हैं, इसीलिए उनको मार्तण्ड कहा जाता है ॥४४॥

**सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा । स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥४५॥**

**अन्वयः**— सूर्येण ही दिशः खं, द्यौः मही, स्वर्गापवर्गो, नरका, रसौकांसि च सर्वशः विभज्यन्ते ॥४५॥

**अनुवाद**— सूर्य के द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक, भूलोक, स्वर्ग और मोक्ष के प्रदेश, नरक एवं रसातल का विभाग होता है ॥४५॥

### भावार्थ दीपिका

किंच सूर्येणैव विभज्यन्ते दिशः। खमन्तरिक्षम्। भिदा अन्योऽपि विभागः। स्वर्गापवर्गौ भोगमोक्षदेशौ। रसौकांस्यतलादीनि॥४५॥

### भाव प्रकाशिका

किञ्च सूर्य के द्वारा ही दिशाएँ अन्तरिक्ष का भेद तथा दूसरे भी भेद किए जाते हैं । स्वर्ग (भोग) एवं मोक्ष प्रदेश और रसातल के अतल इत्यादि लोकों का विभाग होता है ॥४५॥

**देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपवीरुधाम् । सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपवर्षसंनिवेशपरिमाणलक्षणो नाम विंशतितमोऽध्याय:॥२०॥

**अन्वयः**— देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसविरुधाम् सर्वजीवनिकायनां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६॥

**अनुवाद**— तिर्यक् तथा मनुष्यों के, सरीसृप (रेंग कर चलने वाले सर्प आदि) तथा लतावृक्ष आदि सभी जीव समूहों की आत्मा तथा नेत्रों के अधिष्ठाता सूर्य है ।।४६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के भुवनकोश वर्णन के अन्तर्गत समुद्र, द्वीप, वर्ष, उनके सन्निवेश परिमाण तथा लक्षण वर्णन नामक बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।**

## भावार्थ दीपिका

उपासनार्थमाह । देवादीनां सूर्य आत्मा दृगीश्वरो नेत्राधिष्ठाता च ।।४६।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशतितमोऽध्यायः ।।२०।।**

## भाव प्रकाशिका

सूर्य की उपासना करने के लिए बतलाते है । सूर्य देवताओं आदिकी आत्मा और नेत्रों के अधिष्ठाता भी हैं।।४६।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२०।।**

# इक्कीसवाँ अध्याय

## सूर्य के रथ और उसकी गति का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**एतावानेव भूवलयस्य संनिवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः॥१॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् ! परिमाण और लक्षण के साथ इस भूमण्डल का कुल इतना ही विस्तार है, उसे मैंने आपको बतला दिया है ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

एवमध्यायविंशत्या भूमर्यादा निरूपिता । अतःपरं द्युमर्यादापालनं त्रिभिरुच्यते ।।१।। एकविंशे रवेः कालचक्रेण भ्रमतोऽन्वहम्। स्वगत्या राशिसंचारैर्लोकयात्रा निरूप्यते ।।२।। एतावान्विस्तारेण कोट्यः पञ्चाशत् । उत्सेधेन पञ्चविंशतिः।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

बीस अध्यायों के द्वारा पृथिवी की मर्यादा (सीमा) का निरूपण किया गया है इसके पश्चात् द्युलोक की मर्यादा और उसके पालन का वर्णन, तीन अध्यायों में किया जा रहा है । इक्कीसवें अध्याय में सूर्य के प्रतिदिन घूमने वाले कालचक्र के द्वारा उसकी अपनी गति से तथा राशियों पर होने वाले संचार के द्वारा लोक की व्यवस्था का निरूपण किया जा रहा है । इस तरह भूमण्डल का पचास करोड़ योजन विस्तार है और उसकी ऊँचाई पच्चीस करोड़ योजन है ।।१।।

**एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीना ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसंधितम्॥२॥**

**अनुवाद**— इसी के अनुसार विद्वज्जन द्युलोक का भी परिमाण बतलाते हैं। जिस तरह मटर आदि के दो दलों में से एक का स्वरूप जान लेने से दूसरे का भी स्वरूप जान लिया जाता है, उसी तरह भूलोक के भी परिमाण से द्युलोक का भी परिमाण जान लेना चाहिए। इन दोनों के बीच में अन्तरिक्ष लोक है यह इन दोनों का सन्धि स्थान है ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

द्विदलयोर्मध्ये यथैकस्य मानेनापरस्य मानमुपदिश्यते तद्वत्। ते अन्तरेण तयोर्मध्ये तदुभयंसंधितं ताभ्यामुभयतः सँल्लग्नम्॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

जिस तरह दो दलों में से एक के परिमाण से दूसरे का परिमाण बतलाया जाता है उसी तरह द्युलोक और भूलोक के बीच में विद्यमान अन्तरिक्षलोक दोनों से सटा हुआ है ॥२॥

**यन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवन-मभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥३॥**

**अनुवाद**— इसके मध्यभाग में स्थित ग्रहों एवं नक्षत्रों के स्वामी भगवान् सूर्य अपने ताप एवं प्रकाश से तीनों लोकों को संतप्त करते हैं और प्रकाशित करते हैं। ये उत्तरायण दक्षिणायन तथा विषुवत् नामक क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियों से चलते हैं तथा समयानुसार मकरादि राशियों में ऊँचे नीचे तथा समान स्थानों में जाकर दिन तथा रात को बड़ा-छोटा तथा समान किया करते हैं ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

उदगयनादिसंज्ञाभिर्मन्दक्षिप्रसमगतिभिर्यथाकालमारोहणादिस्थानेष्वारोहणाद्यभिपद्यमानो मकरादिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

उत्तरायण आदि संज्ञक, मन्द, शीघ्र तथा समान गतियों के समयानुसार ऊँचे आदि स्थानों में आरोहण आदि करके मकर आदि राशियों में दीन और रात को बड़ा, छोटा अथवा एक बाराबर करते हैं ॥३॥

**यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाऽहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥४॥**

**अनुवाद**— जब भगवान् सूर्य मेष अथवा तुला राशि पर जाते हैं तब दिन और रात बराबर होते है। जब वृष आदि पाँच राशियों पर चढ़ते हैं तो प्रत्येक मास में रात में एक-एक घटी घटता जाता है और उसी हिसाब से दिन में एक-एक घटी बढ़ता जाता है ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

तत्प्रपञ्चयति-यदेति। अत्यन्तवैषम्याभावात्समानानीत्युक्तम्। सर्वथा साम्यं त्वेकस्यैवाहोरात्रस्य। यद्यपि वृषभमिथुनयोरेवाह्नां वृद्धिः कर्कटादिषु ह्रासस्तथापि रात्र्यपेक्षयाऽधिकत्वाद्वर्धन्त इत्युक्तम्। एवं रात्रिवृद्धावपि दिनापेक्षया ह्रसतीत्युक्तम्। एकैकेति स्थूलदृष्ट्योक्तम्। वृद्धिह्रासयोः प्रतिमासवैषम्यात् ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही विस्तार से वर्णन करते है । अत्यन्त विषमता नहीं होने के कारण समान कहा गया है । पूर्णरूप से समता तो एक ही दिन और रात होते हैं । यद्यपि वृष तथा मिथुन राशियों में ही दिन बढ़ते है कर्क आदि में तो उनमें ह्रास होने लगता है फिर भी उन राशियों में रात्रि की अपेक्षा दिन के बड़े होने के कारण दिन बढ़ते हैं यह कहा गया है । इसी तरह रात्रि के बढ़ने पर भी रात-दिन की अपेक्षा छोटी होती है । एक-एक घटी स्थूल दृष्टि से कहा गया है । क्योंकि वृद्धि और ह्रास प्रत्येक मास में विषम रूप से होते हैं ॥४॥

**यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥५॥**

**अनुवाद**— जब सूर्य भगवान् वृश्चिक आदि पाँच राशियों पर रहते हैं तब दिन और रात में इसके विपरीत परिवर्तन होते हैं ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

विपर्ययाणीति । अहानि न्यूनानि रात्रयोऽधिका इत्यर्थः ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

विपर्ययाणि अर्थात् इन राशियों में दिन छोटे और रात्रि बड़ी होती है ॥५॥

**यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्र्यः ॥६॥**

**अनुवाद**— सूर्य के दक्षिणायन होने तक दिन बड़े होते हैं और उत्तरायण होने तक रात्रियाँ बड़ी होती हैं॥६॥

### भावार्थ दीपिका

तद्वृद्धिह्रासकलापमाह-यावदिति ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

दिन और रात्रि के बढ़ने और घटने के काल को यावत् इत्यादि दण्डक से कहते हैं ॥६॥

**एवं नवकोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥७॥**

**अनुवाद**— इस प्रकार पण्डित जन मानसोत्तर पर्वत पर सूर्य की परिक्रमा का मार्ग नव करोड़ एक्यावन लाख योजन बतलाते है । उस पर्वत पर मेरु के पूर्व की ओर इन्द्र की देवधानी, दक्षिण में यमराज की संयमनी पश्चिम में वरुण की निम्लोचनी और उत्तर में चन्द्रमा की विभावरी नाम की पुरियाँ हैं ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

एवं मन्दादिगतिभिः । नवकोटय इति । मेरोरुभयतो मानसोत्तरस्यान्तर्विस्तारेण पञ्चदशलक्षाधिककोटित्रयपरिमितेनेदं परिमण्डलमानमुन्नेयम् । एवं पञ्चदशभिर्घटिकाभिरित्यादिष्वपि त्रैराशिकगणितेन तत्तन्मानमुन्नेयम् । अत्रापेक्षितो विशेषः पुराणान्तरादवगन्तव्यः । तत्रारोहणादिस्थानानि वायुपुराणे दर्शितानि । 'सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि द्विजसत्तमाः । स्थानं जरद्गवं मध्यं तथैरावतमुत्तरम् । वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः' इति । तदेव मध्यमोत्तरदक्षिणमार्गत्रयं प्रत्येकं वीथीत्रयेण त्रिधा भिद्यते । त्रिभिस्त्रिभिरश्विन्यादिनक्षत्रैर्नागवीथी गजवीथी ऐरावती चेत्युत्तरमार्गे वीथीत्रयम् । आर्षभी गोवीथी जरद्गवी चेति वैषुवते मध्यममार्गे वीथीत्रयम् । अजवीथी मृगवीथी वैश्वनरी चेति दक्षिणमार्गे वीथीत्रयम् । तदप्युक्तं तत्रैव- 'अश्विनी कृत्तिका

याम्या नागवीथीति शब्दिता । रोहिण्यार्द्रामृगशिरो गजवीथ्यभिधीयते । पुष्याश्लेषा तथादित्या वीथी चैरावती स्मृता । एतास्तु वीथयस्तिस्र उत्तरो मार्ग उच्यते । तथा द्वे चापि फाल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी मता । हस्तश्चित्रा तथा स्वाती गोवीथीति तु शब्दिता। ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथी जारद्गवी मता । एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते । मूलाषाढोत्तराषाढा अजवीथ्यभिशब्दिता। श्रवणं च धनिष्ठा च मार्गी शतभिषस्तथा । वैश्वानरी भाद्रपदे रेवती चैव कीर्तिता । एतास्तु वीथयस्तिस्रो दक्षिणो मार्ग उच्यते।' इति । याम्या भरणी, आदित्या आदितिदेवताका पुनर्वसुः मार्गी मृगवीथी एवं स्थिते उत्तरायणे ध्रुवेन युगाक्षकोटिनिबद्धवा-युपाशद्वयाकर्षणे रथस्यारोहणम् । तदाभ्यन्तरमण्डलप्रवेशो गतिमान्द्यं चेति दिनवृद्धिरात्रिह्रासश्च । दक्षिणायने च पाशप्रेरणादवरोहणे बहिर्मण्डलप्रवेशो गतिशैघ्र्यं चेत्यहोरात्रयोर्विपर्यय; । वैषुवते तु पाशसाम्यात्समावस्थाने मध्यमण्डलप्रवेशो गतिसाम्यं चेत्यहोरात्रयोः साम्यमिति । तथाच पुराणान्तरम्- 'आकृष्येते यदा तौ तु ध्रुवेण समधिष्ठितौ । तदाभ्यन्तरतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु । ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेन तु । तथैव वाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि च ।।' इति । तदेतदुक्तम्, यदा मेषतुलयोरित्यादिना। उदयास्तादिकं वक्तुमाह । तस्मिन्मानसोत्तरे मेरोः पूर्वत ऐन्द्रीं पुरीमुपदिशन्तीत्यनुषङ्गः । तासु पुरीषूदयादीन्युपदिशन्ति । चतुर्दिशमित्युक्ते ये मेरोर्दक्षिणे देशे तेषामैन्द्रीमारभ्य पूर्वादयः । ये पश्चिमे तेषां याम्यामारभ्य य उत्तरे तेषां वारुणीमारभ्य । ये पूर्वे तेषां सौम्यामारभ्य ।।७।।

## भाव प्रकाशिका

एवम् अर्थात् मन्द आदि गतियों के द्वारा। नवकोटयः अर्थात् मेरू पर्वत के दो मानसोत्तर पर्वत के भीतर विस्तार के द्वारा तीन करोड़ पन्द्रह लाख योजन परिमित इस मण्डल के परिमाण को जानना चाहिए । इसी तरह पन्द्रह घटियों में भी त्रैराशिक गणित के द्वारा विभिन्न परिमाणों को जानना चाहिए । यहाँ पर अपेक्षित विशेष बातों को दूसरे पुराणों से जानना चाहिए । उसमें भी आरोहण आदि स्थानों को वायु पुराण में बतलाया गया है । वहाँ कहा गया है कि हे द्विजश्रेष्ठ ! सभी ग्रहों के तीन ही स्थान हैं । बीच का स्थान जरद्गव कहलाता है । उत्तर का स्थान ऐरावत कहलाता है तथा दक्षिण का स्थान वैश्वानर कहा गया है । इस तरह मध्यम, उत्तर और दक्षिण ये तीनों मार्ग तीन वीथियों के भेद से तीन-तीन प्रकार के कहे गये हैं । अश्विनी इत्यादि तीन-तीन नक्षत्रों के द्वारा नागवीथी गजवीथी, तथा ऐरावतवीथी ये तीन वीथियाँ उत्तर मार्ग में हैं । आर्ष भी गोवीथी तथा जरद्गवी वैषुवत् मध्यम मार्ग पर तीन बीथियाँ है । अजवीथी मृगवीथी तथा वैश्वानरीवीथी ये तीन विथियाँ दक्षिण मार्ग में हैं । उसके (विथियों के) भी विषय में कहा गया है अश्विनी, कृत्तिका और पाम्या (भरणी) इन तीनों को नागवीथी कहा गया है । रोहिणी, आर्द्रा तथा मृगशिरा इन तीनों नक्षत्रों को गजवीथी कहते हैं । पुष्य अश्लेषा तथा आदित्य देव तक नक्षत्र को ऐरावती वीथी कहा गया हैं । ये तीनों वीथियाँ उत्तर मार्ग कही जाती है । पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी एवं मघा इन तीन नक्षत्र को आर्ष वीथी कहा जाता है । हस्त, चित्रा और स्वाती इन तीनों नक्षत्रों को गोवीथी कहते हैं । ज्येष्ठा अनुराधा और विशाखा इन तीनों नक्षत्रों को जारद्गवी वीथी कहते हैं । ये तीनों बीथियाँ मध्यम मार्ग कही जाती हैं । मूल पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढ इन तीन नक्षत्रों को अजवीथी कहा गया है । श्रवण, धनिष्ठा तथ शतभिषा इन तीनों नक्षत्रों को मार्गी वीथी कहते है । पूर्वाभाद्रपद एवं उत्तराभाद्रपद तथा रेवती इन तीनों नक्षत्रों को वैश्वानरी वीथी कहा जाता है । इन तीनों वीथियों को दक्षिण मार्ग कहा जाता है । यम देवताक भरणी, अदिति देवताक आदित्या और पुनर्वसु, मार्गी अर्थात् मृगी इस तरह से रहने पर उत्तरायण में ध्रुव के द्वारा युगाक्ष करोड़ से निबद्ध वायु के दो पाशों द्वारा खींचे जाने पर रथ का अरोहण होता है। उस समय भी आभ्यन्तर मण्डल में प्रवेश होने से रथ की गति मन्द हो जाती है । उस समय दिन बड़ा होत है और रात छोटी होती है। दक्षिणायान में पाश की प्रेरण से अवरोहरण में बाह्य मार्ग में प्रवेश होता है तथा गति तीव्र हो जाती है । इस तरह दिन और रात्रि में परिवर्तन होता है । वैषुवत् में पाश की समता के कारण मध्य मण्डल में प्रवेश होता है । गति में समता आ जाती है । अतएव दिन और रात दोनों समान होते हैं । और दूसरे पुराण में भी कहा गया है जब ध्रुव के

द्वारा अधिष्ठित दोनों पाश खींचे जाते हैं उस समय सूर्य भीतरी मण्डलों में भ्रमण करते हैं। जब ध्रुव दोनों पाशों को छोड़ देते हैं। उस समय सूर्य बाहरी मण्डलों में भ्रमण करते हैं। इस बात को **यदामेषतुलयोः इत्यादि** के द्वारा कहा गया है। सूर्योदय तथा सूर्यास्त को बतलाने के लिए कहा गया है कि उस मानसोत्तर पर्वत पर मेरु के पूर्व इन्द्र की पुरी बतलायी गयी है। उन पुरियों में उदय और अस्त आदि बतलाये गये हैं। जहाँ चतुर्दिशम् कहा गया है वहाँ मेरु के दक्षिण दिशा में उन सबों के पूर्व दिशा से लेकर पूर्व आदि दिशाएँ बतलायी गयी हैं। जो पश्चिम में उन सबों के दक्षिण दिशा से लेकर। जो उत्तर दिशा में कही गयी हैं उनसबों की उत्तर दिशा से लेकर जो पूर्व में कही गयी हैं उन सबों पूर्व से लेकर कहा गया है ॥७॥

**तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गत एव सदादित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥८॥**

**अनुवाद**— जो लोग सुमेरु पर रहते हैं उन लोगों को तो सूर्य सदा मध्याह्न कालीन ही रहकर तपाते रहते हैं और अपनी गति के अनुसार सदा नक्षत्रों की ओर जाते हुए यद्यपि मेरु पर्वत को बायीं ओर रखकर चलते हैं तो भी सम्पूर्ण ज्योति मण्डल को घुमाने वाली निरन्तर दायीं ओर बहती हुई प्रवाह वायु के द्वारा घुमा दिए जाने के कारण वे उसे दायीं ओर रखकर चलते हुए से प्रतीत होते हैं ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

तत्रत्यानां मेरुस्थानाम् । सव्येनेति । नक्षत्राभिमुखतया खगत्या मेरुं वामतः कुर्वन्नपि प्रदक्षिणावर्तप्रवहाख्य-वायुभ्राम्यमाणज्योतिचक्रवशात्प्रत्यहं दक्षिणतः करोति । अतश्चक्रगतिवशादतिदूरतो भूसंलग्नस्येव दर्शनमुदयः । आकाशमारुढस्येव दर्शनं मध्याह्नः । भूमिं प्रविष्टस्येव दर्शनमस्तमयः । ततोऽतीव दूरगमने निशीथ इति । समुद्रतीरस्थदृष्ट्या च 'अद्यो वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति' इति श्रुतिव्यवहारो न वस्तुतः । तदुक्तं वैष्णवे 'उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु संमुखे । दिशास्वशेषासु तथा मैत्रेय विदिशासु च । यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः । तिरोभावं च यत्रेति तत्रैवास्तमनं रवेः । नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा स्मृतः । उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः । शक्रादीनां पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम् । विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान् द्वे पुरे तथा । इति । अतएव तत्रैवोक्तम्- 'तस्माद्दिश्युत्तरस्यां वै दिवारात्रिः सदैव हि । सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरोरुत्तरतः स्थितिः ।' इति । यतो यत्र यः पश्यति सैव तस्य प्राची । तस्य च वामतो मेरुस्तिष्ठतीति ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

तत्रत्यानाम् अर्थात् मेरु पर्वत पर रहने वालों को अपनी गति से नक्षत्रों की ओर जाते हुए यद्यपि मेरु को बायें रखकर जाते हैं फिर भी प्रदक्षिणावर्त चलने वाली प्रवह नामक वायु के द्वारा घुमाये जाने वाले ज्योतिर्मण्डल के कारण लगता है कि ये मेरु को दायें रखकर चलते हैं। अतएव चक्र गति के कारण दूर से लगता है कि इनका उदय पृथिवी से सट कर हो रहा है। मध्याह्न के समय लगता है सूर्य आकाश के बीच में आ गये हैं। सूर्यास्त के समय लगता है कि जैसे ये पृथिवी में समा गये हैं। उससे अत्यन्त दूर चले जाने पर आधी रात प्रतीत होती है। समुद्र के तट पर स्थित होकर देखने पर लगता है कि ये जल से उदित हो रहे है। इसीलिए श्रुति कहती है— **अद्भ्यो वा एष प्रातरुदेति अपः सायं प्रविशति**। अर्थात् ये सूर्यदेव प्रातः जल के भीतर से उदित होते हैं और सायंकाल जल में प्रवेश कर जाते हैं। विष्णुपुराण में कहा भी गया है। उदय और अस्त के समय सूर्य सदैव सामने रहते हैं। हे मैत्रेय ! वे इस प्रकार से सभी दिशाओं और विदिशाओं में प्रतीत होते हैं। जिन लोगों से जहाँ सूर्य दिखाई देते हैं उन लोगों के लिए वही उदयस्थान होता है। जहाँपर सूर्य तिरोहित होते है। वही उसका सुस्त होना कहा गया है। किन्तु वास्तविकता यह है कि सूर्य न तो अस्त होते हैं और न उदित होते है। सूर्य का दिखायी देना ही उदय कहलाता है और उनका नहीं दिखना ही अस्त कहलाता है। इन्द्र इत्यादि की पुरियों में रहकर ये तीनों पुरियों का स्पर्श करते हैं। दो विकर्षा है। विकर्ण में रहकर तीन कोणों को तथा

दो पुरियों का स्पर्श करते हैं । **अतएव इत्यादि** इसीलिए विष्णुपुराण में कहा गया है कि मेरु पर्वत से उत्तर दिशा में दिन और रात्रि सदैव होते हैं । सभी द्वीपों और सभी वर्षों की उत्तर दिशा में मेरुपर्वत स्थित है । इसीलिए जो जहाँ से जहाँ देखता है वही उसकी वही पूर्व दिशा होती है । और उसकी बायीं ओर मेरु पर्वत रहता है ॥८॥

**यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥९॥**

**अनुवाद**— जिस पुरी में भगवान् सूर्य उदित होते है उसके ठीक दूसरी ओर की पुरी में अस्त होते प्रतीत होते हैं । जहाँ वे लोगों को पसीना से संतप्त करते हैं वहाँसे सामने की ओर आधी रात होने के कारण वहाँ के लोगों को निद्रित किए होंगे । जिन लोगों को वे मध्याह्न के समय स्पष्ट दिखते है वे ही सूर्य जब सौम्य दिशा में पहुँच जायँ तो उनका दर्शन नहीं होगा ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

यथोक्तमुदयास्तमनाद्यनियमं दर्शयति, यत्रोदेतीत्यादिना । स्यन्देन स्वेदोद्गमेन । प्रस्वापयति निशीथं करोति । ये तं समनुपश्येरन् प्रस्वापसमानसूत्रस्थाः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त उदय एवं अस्त का कोई नियम नहीं इस बात को **यत्रोदेति० इत्यादि** के द्वारा बतलाते हैं । **स्यन्देन** अर्थात् पसीने से । प्रस्वापयति अर्थात् आधी रात के कारण सुला देते हैं । अर्थात् जहाँ के लोग सो रहे हैं उनके ठीक सामने के लोग सूर्य को नहीं देख पाते है ॥९॥

**यद्वा चैन्द्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥१०॥**

**अनुवाद**— सूर्यदेव जब इन्द्र की पुरी से यमराज की पुरी को चलते है, तब वे पन्द्रह घड़ी में सबा दो करोड़ और साढे बारह लाख योजन से पचीस हजार योजन अधिक चलते हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

साधिकानि पञ्चविंशतिसहस्राधिकानि ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

साधिकानि पद का अर्थ है पचीस हजार योजन अधिक ॥१०॥

**एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं च पुनस्तथाऽन्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यनित सह वा निम्लोचन्ति ॥११॥**

**अनुवाद**— फिर भगवान् सूर्य इसी क्रम से वरुण और चन्द्रमा की पुरियों को पार करके इन्द्र की पुरी में पहुँच जाते हैं । इस तरह चन्द्रमा आदि भी दूसरे ग्रह इस ज्योतिष् चक्र में अन्य नक्षत्रों के साथ ही उदित और अस्त होते रहते हैं ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

सहवा सहैव । यद्यपि वस्तुतः सूर्यस्यापि नक्षत्रैः सहैवोदयास्तमयौ तथापि तस्य तत्साहित्यादर्शनात्सोमादीनामेव तत्साहित्यमुक्तम् ॥११॥

**भाव प्रकाशिका**

सहवा पद का अर्थ है साथ ही । यद्यपि वास्तविकता यह है कि सूर्य का भी उदय और अस्त नक्षत्रों के साथ ही होता है फिर भी उनसबों का साहित्य देखने के कारण चन्द्रमा आदि का ही सूर्य का बतलाया गया है।।११।।

**एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु।।१२।।**

**अनुवाद**— इस तरह भगवान् सूर्य का वेदमयरथ एक मुहूर्त में चौंतिस लाख आठ सौ योजन चलता हुआ इन चारो पुरियों में घूमता रहता है ।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

त्रयीमय इत्याद्युपासनार्थम् ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

भगवन् सूर्य के रथ के त्रयीमय रूप से उपसना के लिए कहा गया है ।।१२।।

**यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेति त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ।।१३।।**

**अनुवाद**— इसका संवत्सर नामक एक चक्र (पहिया) बतलाया गया है । उसमें मास रूप बारह अर हैं ओर तीन नाभि और छह ऋतुएँ नेमियाँ हैं । चौमासा रूप तीन नाभि है । इस रथ की धुरी का एक सिरा मेरु पर्वत की चोटी पर है और दूसरा मानसोत्तर पर्वत पर । इसमें लगा हुआ यह पहिया कोल्हू के पहिए के समान घूमता है और मानसोत्तर पर्वत पर चक्कर लगाता रहता है ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

द्वादशमासा अरा यस्य । षडृतवो नेमयो यस्य । त्रीणि चातुर्मास्यानि नाभयो यस्य । कृत इतरभागो यस्य । मानसोत्तरगिरौ लक्षादुपरि वायुबद्धभूमाविति द्रष्टव्यम् । चक्रं वा तावदुच्छ्रितमिति मन्तव्यम् । अन्यथाऽयुतमात्रोच्छ्रायत्वान्मानसोत्तरस्य मेरोश्चतुरशीत्युच्छ्रायत्वादक्ष्य साम्यानुपपत्तेः ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

बारह महीनें ही सूर्य के रथ को बारह अर है । छह ऋतुएँ यही इस रथ की नेमियाँ (हाल) हैं तथा तीन चातुर्मास्य इसके तीन नाभियाँ हैं । इसका दूसरा भाग मानसोत्तर पर्वत पर रहता है । मानसोत्तर पर्वत पर आधा लाख योजन से अधिक वायुबद्ध भाग वाली भूमि पर वह रहता है । अर्थात् उतना ऊँचा पहिया है । नहीं तो दस हजार योजन ऊँचे मानसोत्तर पर्वत के तथा मेरु के चौरासी योजन ऊँचाई होने के कारण उसकी धूरी में समता नहीं हो सकती है ।।१३।।

**तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुमर्यमानेन संमितस्तैलयन्त्राक्षवद्ध्रुवे कृतोपरिभागः ।।१४।।**

**अनुवाद**— इस धूरी में जिसका मूल भाग जुड़ा है । एक ऐसी धूरी और है । वह इसकी लम्बाई चौड़ाई है । उसका ऊपरी भाग तैल यन्त्र के धूरे के समान ध्रुव लोक से लगा हुआ है ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**

तस्मिन्नक्षे चक्रप्रान्ते कृतमूलो निबद्धपूर्वभागः प्रथमाक्षो मेरुमानसोत्तरायतः सार्धसप्तलक्षाधिकसार्धकोटिप्रमाणस्तस्य तुर्यमानेन सार्धसप्तत्रिंशत्सहस्राधिकैकोनचत्वारिंशल्लक्षमानेन । ध्रुवे कृतो वायुपाशेन निबद्ध उपरिभागो यस्य ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

उस धूरी में चक्र के अन्तिम भाग से जिसका मूल भाग लगा हुआ है। पहली धूरी मेरु से लेकर मानसोत्तर तक लम्बा है और वह एक करोड़ साढे सत्तावन लाख योजन लम्बा है। इसका परिमाण पहली धुरी के चौथाई अर्थात् उनचालिस लाख साढे सैंतिस हजार योजन है। उसके ऊपर का भाग ध्रुव में वायु पाश से बँधा है ॥१४॥

**रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥१५॥**

**अनुवाद**— इस रथ में बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा और नौ लाख योजन चौड़ा है। उस रथ को खीचने वाले सात घोड़ों के नाम गायत्री इत्यादि छन्दों के नाम के है और उन सबों को अरुण नामक सारथी ने रथ में नाँध रखा है। वे ही इस रथ पर बैठे हुए सूर्य भगवान् को वहन करने का काम करते हैं ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

नीड उपवेशस्थानम्। गायत्र्यादिच्छन्दो नामानः। अरुणेन योजिताः सन्तो देवं वहन्ति ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

नीड रथ में बैठने के स्थान को कहते हैं। अरुण के द्वारा नाँधे हुए अश्वों के नाम गायत्री आदि छन्दों के नाम हैं। वे ही सूर्यदेव को वहन करते हैं ॥१५॥

**पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥१६॥**

**अनुवाद**— भगवान् सूर्य के आगे उनके ही ओर मुँह करके अरुण सारथि का काम करते हैं ॥१६॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरस्तात्स्थितोऽपि पश्चात्प्रत्यङ्मुख आस्ते। यद्वा यत्सूर्यस्य पुरस्तात्तस्य वै पश्चिमत्वात्पश्चादित्युक्तम्। अश्वस्थानं च वायुनोक्तम् "सप्ताश्वरूपच्छन्दांसि वहन्ते वामतो रविम्। चक्रपक्षनिबद्धानि चक्रे चाक्षः समाहितः ॥" इति ॥१६।

**भाव प्रकाशिका**

सामने बैठे हुए पीछे की ओर मुख करके उनकी ओर मुख किए हैं। अथवा जो सूर्य के आगे है उसके पश्चिम मुख होने के कारण पश्चिम कहा गया है अश्वों के स्थान को वायु पुराण में वायु ने कहा है सात अश्वों के रूप में वैदिक जो गायत्री, उष्णिक इत्यादि छन्द हैं वे बायें सूर्य का वहन करते हैं। वे सातो छन्दचक्र अक्ष में बँधे हैं और अक्ष चक्र में बँधा है ॥१६॥

**तथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति॥१७॥**

**अनुवाद**— भगवान् सूर्य के आगे अङ्गूठे के पर्व परिमाण वाले साठ हजार ऋषिगण स्वस्तिवाचन के लिए नियुक्त हैं। वे सूर्य भगवान् की स्तुति करते हैं ॥१७॥

**भावार्थ दीपिका**

सूक्तवाकाय सुभाषिताय ॥१७॥

**भाव प्रकाशिका**

सूक्तवाकाय पद का अर्थ है सुभाषित के लिए ॥१७॥

**तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानामानः पृथक्कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते ॥१८॥**

**अनुवाद**— इनके अतिरिक्त ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस, और देवता भी जो कुल मिलाकर चौदह किन्तु जोड़े रहने के कारण सात कहे गये हैं, प्रत्येक मास में भिन्न-भिन्न नाम वाले अपने भिन्नि-भिन्न कर्मों से प्रत्येक मास में भिन्न-भिन्न नाम धारण करके आत्म स्वरूप भगवान् सूर्य की दो-दो मिलकर उपासना करते हैं ॥१८॥

**भावार्थ दीपिका**

एकैकशश्चतुर्दशद्वन्द्वशः सप्तगणाः सन्तो मासि मास्युपासत इत्यन्वयः ।।१८।।

**भाव प्रकाशिका**

एक-एक करके चौदह और जोड़े के रूप में सात का गण प्रत्येक मास में भगवान् सूर्य की उपासना करते हैं॥१८॥

**लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते॥१९॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे ज्योतिश्चक्रसूर्यरथ मण्डल वर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

**अनुवाद**— भगवान् सूर्य भूमण्डल के नौ करोड़े एकावन लाख योजन लम्बे घेरे में से प्रत्येक क्षण में दो हजार दो योजन की दूरी पार कर लेते हैं ॥१९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के ज्योतिश्चक्र तथा सूर्यरथ मण्डल का वर्णन नामक इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।**

**भावार्थ दीपिका**

गव्यूतिः क्रोशद्वयम् । सगव्यूत्युत्तरं यथा भवति तथा ।।१९।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकविंशोऽध्यायः ।।२१।।**

**भाव प्रकाशिका**

गव्यूति दों कोश को कहते हैं । अर्थात् दो योजन परिमाण अधिक जैसे हो सके अर्थात् दो हजार दो योजन॥१९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवेंस्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत इक्कीसवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२१।।**

# बाइसवाँ अध्याय

## भिन्न-भिन्न ग्रहों की स्थिति और गति का वर्णन

राजोवाच

**यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥१॥**

**राजा ने कहा**

**अनुवाद**— भगवन् आपने जो कहा कि यद्यपि भगवान् सूर्य राशियों की ओर जाते हुए मेरु और ध्रुव को दायीं ओर रखकर चलते प्रतीत होते हैं। किन्तु वास्तविकता हैं कि उनकी गति दक्षिणावर्त हीं होती है। इस विषय को हमलोग कैसे अनुमान करें ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

द्वाविंशे सोमशुक्रादेः स्थानमाहोत्तरोत्तरम् । तत्तद्गत्यनुसारेण इष्टानिष्टे तथ नृणाम् । राशीनामभिमुखमप्रदक्षिणं चोपवर्णितं सव्येन चलन् दक्षिणेन करोतीति वदता । अमुष्य वयं कथमनुमिमीमहि एतत्कथं ज्ञास्यामो विरुद्धत्वादित्यर्थः ।।१।।

### भाव प्रकाशिका

बाइसवें अध्याय में सोम, शुक्र आदि ग्रहों का उत्तरोत्तर स्थान वर्णित है । और उन ग्रहों की भिन्न-भिन्न गतियों मनुष्यों के लिए इष्ट और अनिष्ट भी बतलाया गया है । राशियों के सम्मुख तथा वामावर्त जो बतलाया गया दक्षिणावर्त नहीं, यह जो आपने कहा है, इस बात को हम कैसे जाने क्योंकि यह बात विरुद्ध प्रतीत होती है ।।१।।

स होवाच

**यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलम्य-मानत्वादेवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ।।२।।**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— जैसे कुम्हार के चाक पर बैठकर उसके साथ घूमने वाली चींटी आदि को अपनी गति उससे भिन्न प्रतीत होती है । क्योंकि भिन्न-भिन्न कालों में उस चक्र के भिन्न स्थानों में देखी जाती है, उसी तरह नक्षत्र और राशियों से उपलक्षित काल चक्र में पड़कर ध्रुव और मेरु को बायें रखकर घूमने वाले सूर्य आदि ग्रहों की गति वस्तुत: उससे भिन्न ही होती है क्योंकि वे काल भेद से भिन्न-भिन्न राशियों और नक्षत्रों में देखे जाते हैं ।।२।।

### भावार्थ दीपिका

चक्रवशात्स्वतश्च गतिद्वयमविरुद्धमिति परिहारार्थः ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

चक्र के कारण और स्वयम् भी दो प्रकार की गतियों का विरोध नहीं है यह इस परिहार का अर्थ है ।।२।।

**स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिषु ॠतुषु यथोपजोषमृतुगुणान्विदधाति।।३।।**

**अनुवाद**— वेद और विद्वज्जन जिनकी गति को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं वे साक्षात् अदि पुरुष भगवान् नारायण के लोकों का कल्याण और कर्मों की शुद्धि अपने वेदमय विग्रह काल को बारह महीनों में विभक्त करके वसन्त आदि छह ॠतुओं में उनके यथायोग्य गुणों का विधान करते हैं ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

तत्तत्कालनियमेन कर्मणां विशुद्धेः साद्गुण्यस्य निमित्तभूतमात्मानं विभज्य । विजिज्ञास्यमानो वितर्क्यमाणः । यथोपजोषं यथाकर्मभोगम् । ॠतुगुणन् शीतोष्णादीन् ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

विभिन्न काल के नियमानुसार कर्मों की विशुद्धि और सद्‌गुण के कारण भूत अपने आत्मभूत काल को विभक्त करके । विजिज्ञास्यमान: जिसके विषय में जानने की इच्छा होती है । यथोपजोषम् अर्थात् कर्मों के भोग के अनुसार ॠतुओं के शीत और उष्ण आदि गुणों का विधान श्रीभगवान् करते हैं ।।३।।

**तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावच्चैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥४॥**

**अनुवाद**— इस लोक में वर्णाश्रम धर्म का अनुसरण करने वाले पुरुष वेदत्रयी के द्वारा प्रतिपादित छोटे बड़े कर्मों के द्वारा इन्द्रादि देवताओं के रूप में तथा योग के साधनों द्वारा अन्तर्यामी रूप में उनकी आराधना करके आसानी से परमपद प्राप्त कर सकते हैं ॥४॥

### भावार्थ दीपिका

वर्णाश्रमाचारानुवर्तिनः पुरुषास्त्रय्या आम्नातैः कर्मभिरिन्द्रादिरूपं योगवितानैश्च ध्यानादिभिरन्तर्यामिरूपं पूजयन्तः ॥४॥

### भाव प्रकाशिका

वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले पुरुष वेदत्रयी के द्वारा विहित कर्मों के द्वारा तथा योग के साधनों से इन्द्र आदि के रूप में ध्यान आदि साधनों से अन्तर्यामी रूप की पूजा करके परम पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥४॥

**अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादशमासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान्संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥५॥**

**अनुवाद**— भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकों की आत्मा हैं । वे पृथिवी और द्युलोक के मध्य में स्थित आकाश मण्डल के भीतर कालचक्र में स्थित होकर बारह महिनों का भोग करते हैं, जो संवत्सर के अवयव हैं और मेष आदि राशियों के नाम से प्रख्यात हैं । इनमें से प्रत्येक महिने चन्द्रमा के मान से शुक्ल और कृष्ण दो महिनों के होते हैं । पितरों के मान से एक रात और एक दिन का एवं सौर मान से सवादो नक्षत्रों का होता है । संवत्सर के छः अंश का भगवान् सूर्य भोगते हैं, संवत्सर के उस अवयव को ऋतु शब्द से अभिहित किया जाता है ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

स एव स्वगत्या मासादिव्यवहारकारणमित्याह । स एष लोकानामात्मा । द्यावापृथिव्योरन्तरेण मध्ये यन्नभोवलयमन्तरिक्षं तस्य मध्ये यत्कालचक्रं तद्गतः राशिभिर्मेषादिभिः संज्ञा येषाम् । चैत्रादिसंज्ञास्तु चान्द्रमासानाम् । मासमाह, पक्षद्वयं मास इति चान्द्रेण मानेन । सपादं महानक्षत्रद्वयं सौरेण, दिवानक्तं चाहोरात्रमिति पित्र्येण । षष्ठमंशं राशिद्वयम् ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

भगवान् सूर्य ही अपनी गति के द्वारा मास आदि व्यवहारों के कारण होते हैं । वे ही लोकों की आत्मा हैं । पृथिवी और द्युलोक के बीच के अन्तराल में आकाशमण्डल के रूप में विद्यमान अन्तरिक्ष उसके बीच में जो कालचक्र है उस कालचक्र में विद्यमान जो मेष आदि राशियाँ है उनकी चन्द्रमान के अनुसार चैत्र आदि नाम है। चान्द्रमान से दो पक्षों का एक मास होता है । सौर मास से सवा दो नक्षत्रों का एक मास होता है । पितरों के मानसे एक दिन और एक रात का एक मास होता है । दो राशियों का संवत्सर का छठा भाग एक ऋतु होती है ॥५॥

**अथ च यावताऽर्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयनमाचक्षते ॥६॥**

**अनुवाद**— आकाश में भगवान् सूर्य का जितना मार्ग है, उसके आधे भाग को वे जितने समय में पार कर लेते हैं उस काल को अयन करते हैं ॥६॥

**अथ च यावन्नभोमण्डलं स ह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां कार्त्स्न्येन सह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ॥७॥**

**अनुवाद**— जितने समय में भगवान् सूर्य अपनी मन्द, तीव्र तथा सम गति के द्वारा स्वर्ग और पृथिवी मण्डल के साथ पूरे आकाश का चक्कर लगा जाते हैं उतने समय को संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर कहते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मण्डलाभ्यां सह भुञ्जीत । स ह स हि सूर्यः । यदा शुक्लप्रतिपदि संक्रान्तिर्भवति तदा सौरचान्द्रयोर्मासयोर्युगपदुपक्रमो भवति स संवत्सरः । ततः सौरमानेन वर्षे षट् दिनानि वर्धन्ते चान्द्रमाने षट् ह्रसन्तीति द्वादशदिनव्यवधानादुभयोरग्रपश्चाद्भावो भवति । एवं पञ्चवर्षाणि गच्छन्ति तन्मध्ये द्वौ मलमासौ भवतः । ततः पुनः षष्ठः संवत्सरो भवति । तदेवमवान्तरभेदेन संवत्सरादिपञ्चकं समामनन्ति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी मण्डल के साथ पूरे आकाश मण्डल का भोग भगवान् सूर्य करते हैं उसे संवत्सर आदि शब्दों से अभिहित करते हैं । जब शुक्ल पक्ष की प्रतिपत् तिथि को संक्राति होती है उस समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों मासों का एक साथ प्रारम्भ होता है । वही संवत्सर कहलाता हैं सौर मान से एक वर्ष में छह दिन बढ़ते हैं और चन्द्रमान से छह दिन घटते हैं । इस तरह से बारह दिनों के व्यवधान से दोनों महिने आगे पीछे होते है । इस तरह पाञ्च वर्षों के बीतने में दो मालमास (पुरुषोत्तम मास) होते हैं । उसके पश्चात् छठा वर्ष संवत्सर होता है । इस तरह अवान्तर भेद से संवत्सर आदि पाँचों होते हैं ॥७॥

**एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्यः उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्तिं पक्षाभ्यां मासभुक्तिं सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥८॥**

**अनुवाद**— इसी तरह सूर्य की किरणों से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है । चन्द्रमा की चाल बतलाते हैं । इसी लिए वह सभी नक्षत्रों से आगे रहता है यह सूर्य के एक वर्ष के मार्ग को एक मास में एक मास के मार्ग को सवा दो दिन में औरएक पक्ष के मार्ग को एक दिन में भोग कर लेता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सोमादीनामपि स्थानं कार्यं चाह-एवं चन्द्रमा इति । अर्कगभस्तिभ्यो मण्डलरूपेभ्यः । सपादर्क्षाभ्यां सपाददिनद्वयेन॥८॥

भाव प्रकाशिका

सोम इत्यादि ग्रहों के भी स्थान कार्य को एवं चन्द्रमा इत्यादि से बतलाते हैं । मण्डल रूप सूर्य की किरणों से चन्द्रमा एक लाख योजन ऊपर है । वह सूर्य के एक मास के मार्ग का भोग सवा दो दिन में कर लेता है॥८॥

**अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितॄणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तैर्भुङ्क्ते ॥९॥**

**अनुवाद**— यह कृष्ण पक्ष में क्षीण होती हुई कलाओं से पितृगण के और शुक्ल पक्ष में बढ़ती हुई कलाओं से देवताओं के दिन-रात का विभाग करता है । चन्द्रमा तीस मुहूर्तों में एक-एक नक्षत्र को पार कर जाते हैं । अन्नमय और अमृतमय होने के कारण यह सभी जीवों का प्राण है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

सर्वेषां जीवनिवहानां प्राणः अन्नमयत्वादमृतमयत्वाच्च । अतएव जीवनहेतुत्वाज्जीवश्च ।।९।।

### भाव प्रकाशिका

चन्द्रमा सम्पूर्ण जीव समूह का अन्नमय और अमृतमय होने के कारण प्राण हैं । अतएव जीवन का कारणहोने के कारण जीव भी है ।।९।।

**य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात्सर्वमय इति वर्णयन्ति ।।१०।।**

**अनुवाद**— सोलह कलाओं से युक्त ये जो मनोमय अन्नमय अमृतमय पुरुष स्वरूप भगवान् चन्द्रमा हैं ये ही देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप, और वृक्षादि समस्त प्राणियों के प्राणों का पोषण करते हैं। इसीलिए इनको सर्वमय कहा जाता है ।।१०।।

### भावार्थ दीपिका

तदेवाह- य एष इति ।।१०।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन इस दशवें दण्डक में किया गया है ।।१०।।

**तत उपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताऽष्टाविंशतिः।।११।।**

**अनुवाद**— चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अभिजित् को मिलाकर अठाइस नक्षत्र हैं । परमात्मा ने कालचक्र में इन सबों को भी नियुक्त कर दिया । अतएव ये मेरु को दायीं ओर रखकर घूमते हैं ।।११।।

### भावार्थ दीपिका

दक्षिणेनैव नतु तेषां पृथगन्या गतिरस्तीत्यर्थः । कालायने कालचक्रे । उत्तराषाढाश्रवणसन्धावभिजिन्नक्षत्रं फलविशेषेण पृथक्कल्पितं तेन सह । तथाच श्रुतिः- 'अभिजिन्नाम नक्षत्रमुपरिष्टादाषाढानामधस्ताच्छ्रोणायाः' इति ।।११।।

### भाव प्रकाशिका

उन सबों की गति भिन्न नहीं है । कालचक्र में जब-जब उत्तराषाढा और श्रवण नक्षत्र की सन्धि होती है तो अभिजित् नक्षत्र उसके साथ फलरूप से कल्पित है । श्रुति भी कहती है अभिजित् नामक नक्षत्र उत्तराषाढा के पश्चात् और श्रवण नक्षत्र से पहले होता है ।।११।।

**तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वाऽर्कस्य शैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति लोकानां नित्यदाऽनुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते सवृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः।।१२।।**

**अनुवाद**— इन नक्षत्रों से दो लाख योजन ऊपर शुक्र दिखाई देता है । यह सूर्य को शीघ्र मन्द और समगतियों के अनुसार उन्हीं के समान कभी आगे और कभी पीछे और कभी साथ-साथ रहकर चलता है । यह वर्षा करने वाला ग्रह है । अतएव यह सदैव लोकों के अनुकूल ही रहता है । इसकी गति से अनुमान किया जाता है कि यह वर्षा को रोकने वाले ग्रहों को शान्त कर देने वाला ग्रह है ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

पुरतः सूर्येण भोक्ष्यमाणे नक्षत्रे । पश्चाद्भुक्ते । सहैव भुज्यमाने चारेण क्रमस्थनक्षत्राद्यतिक्रमेण । वृष्टेर्विष्टम्भः स्तम्भनं यस्माद्ग्रहात्तमुपशमयतीति तथा ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

आगे सूर्य के द्वारा भोगे जाने वाले नक्षत्र होने पर बाद में भोग करता है । चार के द्वारा साथ ही भोगे जाने पर क्रमस्थ नक्षत्र आदि का अतिक्रमण कर जाता है । जिस ग्रह के द्वारा वृष्टि रोकी जाती है उसको शान्त कर देता है ।।१२।।

**उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्टाद्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदार्काद्व्यतिरिच्येत तदातिवाताभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ।।१३।।**

**अनुवाद**— शुक्र की गति के साथ ही बुध की भी व्याख्या हो गयी । अर्थात् शुक्र के ही समान बुध की भी गति समझनी चाहिए । बुध, चन्द्रमा का पुत्र है और शुक्र से दो लाख योजन ऊपर है । यह प्राय: मङ्गलकारी है किन्तु जब सूर्य की गति का उल्लंघन करते चलता है तब वह बहुत अधिक आंधी, बादल और सूखे की सूचना देता है ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

बुधो व्याख्यातः पुरतः पश्चात्सहैव वा चरतीति किंचिद्विशेषं चाह-तत इत्यादिना आशंसते सूचयति ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

शुक्र से ही बुध की गति की व्याख्या हो गयी । वह शुक्र के साथ या आगे या पीछे चलता है । **ततः इत्यादि** के द्वारा कुछ विशेषता बतलाते हैं । जब बुध सूर्य का उल्लंघन करके चलता है तो वह आंधी, मेघ और सूखे की सूचना देता है ।।१३।।

**अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन् द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ।।१४।।**

**अनुवाद**— बुध के दो लाख योजन ऊपर मङ्गल ग्रह है । यदि वह वक्री न हो तो एक-एक राशि को तीन-तीन पक्ष में भोगता हुआ बारह राशियों को पार करता है । यह अशुभ ग्रह है और प्राय: अमङ्गल का सूचक है ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

अघशंसो दुःखसूचकः । यदि न वक्रेणाभिवर्तते तर्हि त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैः ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

अघशंसः अर्थात् दुःख का सूचक यदि वक्री न हो तो मङ्गल ग्रह एक राशि को तीन-तीन पक्ष में पार करता है ।।१४।।

**तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनान्तरगतो भगवान्बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ।।१५।।**

**अनुवाद**— मङ्गल के दो लाख योजन की दूरी पर भगवान् बृहस्पति हैं । यदि ये वक्र गति से न चलें तो एक-एक राशि को एक-एक वर्ष में भोगते हैं । ये ब्राह्मण वंश के लिए प्राय: अनुकूल रहते हैं ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

यदि न वक्रः स्यात्तर्हि परिवत्सरम् ।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

यदि ये वक्री न रहें तो प्रत्येक वर्ष में एक राशि को भोगते हैं ।।१५।।

**तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान्विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥१६॥**

**अनुवाद**— बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर प्रतीत होते हैं । वे एक-एक राशि पर तीन मासों तक रहा करते हैं । इनको सभी राशियों को पार करने में तीस वर्ष लग जाते हैं । ये प्राय: सबों के लिए अशान्ति कारक हैं ॥१६॥

**तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे ज्योतिश्चक्रवर्णने नाम द्वाविंशोऽध्याय: ॥२२॥

**अनुवाद**— शनैश्चर के ऊपर ग्यारह लाख योजन की दूरी पर कश्यप आदि सप्तर्षिगण दिखते हैं । ये सभी लोकों की मङ्गल कामना करते हुए भगवान् विष्णु के परम पद ध्रुवलोक की प्रदक्षिणा करते रहते हैं ॥१७॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।**

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वाविंशोऽध्याय: ।।२२।।

**भाव प्रकाशिका**

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवेंस्कन्ध की भावार्थ दीपिका का नाम टीका के बाइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका नामक व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२२।।**

# तेइसवाँ अध्याय

## शिशुमार चक्र का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥१॥**

श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— राजन् ! सप्तर्षियों से तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुव लोक है । उसी को भगवान् विष्णु का परम पद कहते हैं । यहा उत्तानपाद के पुत्र महाभागवत ध्रुवजी रहते हैं । अग्नि, इन्द्र सभी प्रजापति, कश्यप और धर्म सभी एक साथ इनकी अत्यन्त समादर पूर्वक इनकी प्रदक्षिणा किया करते हैं । इस समय भी कल्प पर्यन्त रहने वाले लोक इनके ही आधार पर स्थित हैं । इनके इस लोक का प्रभाव पीछे चौथे स्कन्ध में वर्णन किया जा चुका है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे ध्रुवस्थानं ज्योतिश्चक्राश्रयं ततः । शिशुमारस्वरूपेण हरेश्च स्थितिरुच्यते । यत्तत्प्रसिद्धं विष्णोः पदम् । यत्र ध्रुव उपास्ते तिष्ठतीत्यन्वयः । समकालमेव युज्यन्त इति तथा तैर्नक्षत्ररूपैः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तेइसवें अध्याय में ज्योतिश्चक्र के आश्रय ध्रुव स्थान का वर्णन किया गया है । शिशुमार के रूप में श्रीहरि की स्थिति भी इसी अध्याय में बतलायी गयी है ।

भगवान् विष्णु का जो वह परम पद है उसमें ध्रुवजी का निवास है । धर्म आदि एक ही साथ उन नक्षत्रों से मिल जाते हैं ।।१।।

**स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ।।२।।**

**अनुवाद**— सदा जागते रहने वाले अव्यक्त गति भगवान् काल के द्वारा जो ग्रह नक्षत्र आदि जो ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतिर्गण निरन्तर घुमाये जाते हैं श्रीभगवान् ने उनके आधार रूप से ध्रुवलोक को ही विहित किया है । इसीलिए ध्रुवलोक एक ही स्थान पर रहकर सदैव प्रकाशित होता है ।।२।।

**यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्त्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचंक्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ।।३।।**

**अनुवाद**— जैसे दँवरी के समय अनाज को बाहर करने वाले बैल रस्सियों में बँधकर क्रमशः निकट दूर और मध्य में रहकरी खम्भे के चारो ओर मण्डल बाँधकर घूमते रहते हैं उसी तरह सम्पूर्ण नक्षत्र तथा ग्रह भी भीतर और बाहर रहकर कालचक्र में नियुक्त होकर ध्रुवलोक का ही आश्रय लेकर वायु की प्रेरणा से कल्पान्त पर्यन्त घूमते रहते हैं । जिस तरह मेघ तथा बाज पक्षी आदि अपने कर्मों की सहायता से वायु के अधीन रहकर आकाश में उड़ते रहते हैं, उसी तरह ये ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुष के संयोग के द्वारा अनुगृहीत होकर अपने-अपने कर्मों को अनुसार चक्कर काटते रहते है । वे पृथिवी पर नहीं गिरते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

मेढीस्तम्भे बद्धा धान्याक्रमणपशवो बलीवर्दाः । कर्म सारथिः सहायो येषाम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जैसे दँवरी के समय डाँठ से अन्न निकालने वाले पशु मेढ़ी स्तम्भ के चारो ओर घूमते रहते हैं उसी तरह अपने कर्म के अधीन रहकर ध्रुवलोक के चारो ओर चक्कर काटते रहते हैं और पृथिवीपर नहीं गिरते हैं ।।३।।

**केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ।।४।।**

**अनुवाद**— कुछ विद्वान श्रीभगवान् की योगमाया के आधार पर स्थित इस जयोतिष चक्र का शिशुमार (सूंस) के रूप में वर्णन करते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वराधारत्वात्पतनशङ्कैव नास्तीति वक्तुं मतान्तरमाह-केचनेति। ज्योतिरनीकं ज्योतिश्चक्रम्। योगधारणायां स्थितमिति शेषः।।४।।

## भाव प्रकाशिका

ईश्वर के आधार पर स्थित होने के कारण इन सबों के गिरने की शङ्का ही नहीं है; इस बात को कहने के लिए दूसरे मत को बतलाते हैं कुछ लोगों का कहना है कि यह ज्योतिश्चक्र योगधारणा पर स्थित है ।।४।।

**यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितस्तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवन्ति पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः ।।५।।**

**अनुवाद**— यह शिशुमार कुण्डलाकृति होकर स्थित है । इसका मुख नीचे की ओरहै । इसके पूंछ के अग्रभाग में ध्रुव स्थित हैं । पूँछ के मध्य में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म स्थित हैं । पूंछ की जड़ में धाता एवं विधाता हैं । इसके कटि प्रदेश में सप्तर्षि हैं । यह शिशुमार दायीं ओर अपने शरीर को सिकोड़कर कुण्डली मारे बैठा है । अतएव अभिजित् से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त जो उत्तरायण के चौदह नक्षत्र हैं वे इस शिशुमार की दायीं ओर हैं तथा पुष्य से लेकर उत्तराषाढा पर्यन्त जो दक्षिणायन के चौदह नक्षत्र हैं वे बाँये भाग में स्थित हैं । लोक में भी देखा जाता है कि जब शिशुमार कुण्डला कृति होता है तो उसके दोनों पार्श्वों के अङ्गों की संख्या समान होती है । इसी तरह इसके दोनों पार्श्वों के नक्षत्रों की संख्या एक समान है । इसके पीठ में अजवीथी (मूल पूर्वाषाढ एवं उत्तराषाढ) तीन नक्षत्र हैं । इसके उदर में आकाश गङ्गा हैं ।।५।।

## भावार्थ दीपिका

लाङ्गूले अग्रादधोभागे । उदगयनान्यभिजिदादीनि पुनर्वस्वन्तानि चतुर्दश दक्षिणपार्श्वे । दक्षिणायनानि पुष्यादीन्युत्तराषाढान्तानि चतुर्दशं वामपार्श्वे ।।५।।

## भाव प्रकाशिका

लाङ्गूले अर्थात् आगे से नीच के भाग में । उत्तरायण के अभिजित से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त चौदह नक्षत्र दायें पार्श्व में है । तथा दक्षिणायन के पुष्य से लेकर उत्तराषाढा पर्यन्त के चौदह नक्षत्र बायें पार्श्व में हैं ।।५।।

**पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववंक्रिषु युञ्जीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववंक्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ।।६।।**

**अनुवाद**— इस शिशुमार के दाहिने और बायें कटि प्रदेशों में क्रमशः पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हैं, पीछे के दाहिने और बायें चरणों में आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं । इसके दायें और बायें नथुनों में क्रमशः अभिजित् और उत्तराषाढा हैं । इसके दायें और बायें नेत्रों में श्रवण और पूर्वाषाढा नक्षत्र हैं । दायें और बायें कानों में धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं । मघा आदि दक्षिणायन के आठ नक्षत्र इसकी बायीं पसलियों में हैं और इसके विपरीत क्रम से मृगशिरा आदि उत्तरायण के आठ नक्षत्र इसकी दायीं पसलियों में हैं । इसके दायें ओर बायें कन्धों पर क्रमशः शतभिषा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं ।।६।।

## भावार्थ दीपिका

तदेव स्थानविशेषेण विभज्य दर्शयति–पुनर्वसुपुष्यावित्यादिना । पुनर्वसुरुदगयनान्त्यं नक्षत्रम् । पुष्यो दक्षिणायनस्याद्यम् ।

आर्द्राश्लेषे तयोर्निरन्तरे अभिजिदुत्तराषाढे उत्तरदक्षिणायनयोराद्यन्तनक्षत्रे। श्रवणपूर्वाषाढे तयोरुत्तरपूर्वे। धनिष्ठामूलं च तयोरप्युत्तरपूर्वे। मघादीनि यान्यनुराधान्तानि दक्षिणायनान्यष्ट तानि वामपार्श्ववंक्रिषु वामपार्श्वास्थिषु। मृगशीर्षादीनि प्रातिलोम्येन पूर्वाभाद्रपदान्तानि यान्युदगयननक्षत्राण्यष्ट तानि दक्षिणपार्श्ववंक्रिषु शतभिषाज्येष्ठे उत्तरदक्षिणायनयोर्येऽवशिष्टे ते स्कन्धयोः ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों का स्थान विशेष विभाग करके बतलाते हैं। उत्तरायण का अन्तिम नक्षत्र पुनर्वसु है और दक्षिणायन का प्रथम नक्षत्र पुष्य है। शिशुमार के अन्तिम चरणों में क्रमशः आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं। अभिजित् तथा उत्तराषाढा उत्तरायण और दक्षिणायन के क्रमशः आदि और अन्तिम नक्षत्र हैं। श्रवण और पूर्वाषाढा उन दोनों के उत्तर और पूर्व में हैं। धनिष्ठा और मूल उन दोनों के भी उत्तर और पूर्व में है। मघा से लेकर अनुराधा पर्यन्त जो दक्षिणायन के आठ नक्षत्र है वे बायीं बगल के पसलियों के अस्थियों में हैं। मृगशिरा से लेकर उलटा पूर्वाभाद्रपद पर्यन्त उत्तरायण के जो आठ नक्षत्र हैं वे दाहिनी पसलियों में हैं। बचे हुए शतभिषा और ज्येष्ठा वे क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायन के कन्धे में हैं ॥६॥

**उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गरकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥७॥**

**अनुवाद**— इसके ऊपर के थुथुन में अगस्त्य और नीचे के ठोढी में नक्षत्र रूप यम है। मुख में मङ्गल, लिङ्ग प्रदेश में शनि, ककुद में बृहस्पति, छाती में सूर्य, हृदय में नारायण मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों में अश्विनी कुमार, प्राण तथा अपान में बुध गले में राहु सम्पूर्ण अङ्गों में केतु तथा रोमों में सम्पूर्ण तारागण हैं॥७॥

### भावार्थ दीपिका

यमो नक्षत्ररूपः। तथा नारायणोऽश्विनौ च। ककुदि गलपृष्ठशृङ्गे ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

नक्षत्र रूप यम इसकी ढोढ़ी में, नारायण और दोनों अश्विनी कुमार क्रमशः हृदय और छाती में है। कुकद डीला को कहते हैं उसमें बृहस्पति हैं ॥७॥

**एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः संध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्यातिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ॥८॥**

**अनुवाद**— यह भगवान् नारायण का सर्वदेवमय स्वरूप है। प्रतिदिन सायं काल पवित्र होकर मौन होकर दर्शन करते हुए चिन्तन करना चाहिए एवं इस मन्त्र का जप करते हुए स्तुति करनी चाहिए। सम्पूर्ण ज्योतिर्गणों के आश्रय कालचक्र स्वरूप सर्वदेवाधिपति परम पुरुष परमात्मा को हम नमस्कार पूर्वक ध्यान करते हैं ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

ज्योतिषो लोकायाश्रयाय। कालायनाय कालचक्ररूपाय। 'नमोभिधीमहि' इति मन्त्रेणोपतिष्ठेत ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

ज्योति र्लोकाय का अर्थ ज्योति समूह आश्रय भूत, कालायनाय अर्थात् कालचक्र स्वरूप भगवान् विष्णु को हम नमस्कार करते हैं। इस मन्त्र से स्तुति करनी चाहिए ॥८॥

**ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ।**
**नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ।।९।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे शिशुमारसंस्थानवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।।२३।।

**अन्वयः**— ग्रहर्क्षतारामयमाधि दैविकं त्रिकालं मन्त्रकृताम् पापापहम् त्रिकालं नमस्यतं स्मरतः वा तत्कालज पापं आशु नश्येत् ।।९।।

**अनुवाद**— ग्रह, नक्षत्र और ताराओं के रूप में श्रीभगवान् का अधिदैविक रूप प्रकाशित हो रहा है, इस तरह जो तीनों कालों में इस मन्त्र का जप करता है अथवा जो तीनों कालों में नमस्कार करता है या स्मरण करता है उसके उस समय किए हुए पापों को परमात्मा शीघ्र ही विनष्ट कर देते हैं ।।९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के शिशुमार संस्थान वर्णन नामक तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।**

भावार्थ दीपिका

मन्त्रकृतां पूर्वोक्तं मन्त्रं जपताम् ।।९।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।।२३।।**

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त मन्त्र को जपने वाले के ।।९।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२३।।**

# चौबीसवाँ अध्याय

## राहु आदि की स्थिति तथा अतल आदि नीचे के लोकों का वर्णन

श्रीशुक उवाच

**अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हः तस्य तात जन्मकर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥१॥**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् कुछ लोगों का कहना है कि राहु सूर्य से दस हजार योजन नीचे नक्षत्रों के ही समान घूमता है। इसने श्रीभगवान् की ही कृपा से देवत्व और ग्रहत्व को प्राप्त किया है। यह स्वयं सिंहिका का पुत्र होने के कारण अधम राक्षस है और यह इस पद के योग्य विल्कुल नहीं है। हम आगे चलकर राहु के जन्म और कर्म का वर्णन करेंगे ॥

भावार्थ दीपिका

एवं त्रिभिर्द्युमर्यादापालनं वर्णितं तथा। अधोभुवनमर्यादापालनं त्रिभिरुच्यते। चतुर्विंशे रवेरर्वाक् स्वर्भान्वादिस्थितिःक्रमात्। अतलादिबिलस्वर्गमर्यादाः सप्त वर्णिताः। सूर्यमारभ्य ध्रुवान्तं सन्निवेशं निरूप्येदानीं सूर्यादधस्तान्निरूपयति–अधस्तादिति। स्वर्भानू राहुः। अलभत लेभे सिंहिकायाः पुत्रः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

इस तरह तीन अध्यायों के द्वारा द्युलोक की मर्यादा औरउसके पालन का वर्णन किया जा चुका है । अब नीचे के लोकों की मर्यादा और पालन का वर्णन तीन अध्यायों के द्वारा किया जाता है । चौबीसवें अध्याय में सूर्य से पहले राहु आदि की स्थिति क्रमशः बतलायी जा रही है अतल आदि पाताल रूपी सात स्वर्गों की मर्यादा भी इस अध्याय में बतलायी जा रही है । सूर्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त की व्यवस्थाओं का वर्णन करके अब सूर्य से नीचे की स्थिति का वर्णन करते हैं । स्वर्भानु राहु का नाम है यह सिंहिका का पुत्र है ॥१॥

**यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥२॥**

**अनुवाद**— सूर्यदेव का जो अत्यन्त तपता हुआ मण्डल है उसका विस्तार दस हजार योजन बतलाया गया है । चन्द्र मण्डल का विस्तार बारह हजार योजन हैं । राहु का विस्तार तेरह हजार योजन है । अमृत पान के अवसर राहु देवता का वेष बनाकर सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आकर बैठ गया । उस समय सूर्य चन्द्रमा ने इसक भेद को बतला दिया था । उस बैर को याद करके यह आमवस्या और पूर्णिमा के दिन उन पर आक्रमण करता है ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

ग्रहणं वक्तुमाह । यददः प्रतपतस्तरणेर्मण्डलम् । अमृतपाने मध्यप्रवेशेन तयोर्व्यवधानं करोतीति तथा । अत एवैताभ्यां सूचितत्वाद्वैरमनुबध्नातीति तथा ॥२॥

### भाव प्रकाशिका

ग्रहण का वर्णन करने के लिए शुकदेवजी कहते हैं आकाश में जो सूर्य मण्डल तपता है । अमृत पान के अवसर पर सूर्य और चन्द्रमा के बीच में बैठने के कारण सूर्य और चन्द्रमा ने इसको राक्षस है यह बतला दिया इसीलिए यह सूर्य और चन्द्रमा से वैर करता है ॥२॥

**तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः॥३॥**

**अनुवाद**— इस बात को सुनकर श्रीभगवान् ने सूर्य और चन्द्रमा के पास अपने प्रिय अस्त्र सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर दिया है । वह सदैव घूमता रहता है । चक्र के असह्य तेज के कारण राहु सूर्य और चन्द्रमा के समक्ष उद्विग्न और आश्चर्यित होकर मुहूर्त मात्र टिकता है उसके पश्चात् वह लौट आता है उसके उतनी देर तक ठहरने को ही लोग ग्रहण कहते हैं ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

भागवतं चक्रं परिवर्तमानं परिभ्रमद्भि अभिमुखं मुहूर्तमवस्थितः सन् । इत्येवमन्तरा तदवस्थानमुपरागं ग्रहणं वदन्ति। तत्र च ऋजुवक्रस्थितिभ्यां सर्वग्रासासर्वग्रासौ, नतु वस्तुतो ग्रासोऽस्ति दूरान्तरत्वात् ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के घूमते हुए चक्र को देखकर वह सूर्य और चन्द्रमा के सामने एक मुहूर्त से अधिक न ठहर कर लौट आता है । इतने देर तक उसके ठहरने को लोग उपराग (ग्रहण) कहते है । राहू जब सीधे खड़ा रहता है तो उसे सर्वग्रास कहते हैं । और जब वह तिरछा रहता है तो उसे असर्व ग्रास कहते हैं । वस्तुतः वह ग्रास नहीं है क्योंकि राहू सूर्य और चन्द्रमा से चक्र के डर के मारे दूर ही रहता है ॥३॥

**ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥४॥**

**अनुवाद**— राहु से दस हजार योजन नीचे सिद्धों, चारणों और विद्याधरों का निवास स्थान हैं ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

तावन्मात्रे योजनायुते ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

तावन्मात्रे अर्थात् दस हजार योजन नीचे की ओर ॥४॥

**ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षःपिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते॥५॥**

**अनुवाद**— उन सबों से नीचे जहाँ तक वायु की गति हैं तथा मेघ दिखाई देते हैं, अन्तरिक्ष लोक है यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत तथा प्रेतों का विहार स्थान हैं ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

अन्तरिक्षं ग्रहहीनम् । तस्यावधिमाह । यावद्वायुः प्रवाति । तस्याप्यवधिमाह । यावन्मेघाः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

अन्तरिक्ष में ग्रह नहीं रहते हैं । जहाँ तक वायु गति है, वहीं तक अन्तरिक्ष है उसकी सीमा बतलाया गया है कि जहाँ तक मेघ दिखाई देते हैं ॥५॥

**ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतत्रिप्रवरा उत्पतन्तीति ॥६॥**

**अनुवाद**— उसके सौ योजन की दूरी तक यह पृथिवी है जहाँ तक हंस, गिद्ध बाज और गरुड आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं ॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

पृथिव्या उपरि भूर्लोकावधिमाह । यावद्धंसादयः पार्थिवा विकाराः ॥६॥

**भाव प्रकाशिका**

पृथिवी के ऊपर भूर्लोक की सीमा को बतलाते हैं जहाँ तक हंस आदि पार्थिव पक्षी उड़ सकते हैं ॥६॥

**उपवर्णितं भूमेर्यथासन्निवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्सप्तभूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायाम-विस्तारेणोपक्लृप्ताः अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालमिति ॥७॥**

**अनुवाद**— पृथिवी के विस्तार और स्थिति आदि का वर्णन हो चुका है इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल नामक सात भूविवर (पृथिवी के नीचे स्थित लोक) हैं । ये एक के नीचे एक दस-दस हजार योजन की दूरी पर स्थित हैं । इनमें से प्रत्येक की लम्बाई चौड़ाई भी दश-दश हजार योजन है ॥७॥

**भावार्थ दीपिका**

योजनायुतान्तरेण प्रत्येकमुच्छ्रिताः । आयामो यः कटाहस्य तावद्विस्तारेण ॥७॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रत्येक दश-दश हजार योजन ऊँचा है । इन सबों का विस्तार उतना ही है जितना अण्ड कटाह का विस्तार है ॥७॥

**एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति ॥८॥**

**अनुवाद**— ये भूमि के बिल भी स्वर्ग ही हैं। इनमें स्वर्ग से भी अधिक विषयभोग, ऐश्वर्य, आनन्द, सन्तान सुख, और धन सम्पत्ति है। यहाँ के वैभव पूर्ण भवन, उद्यान और क्रीडा स्थलों में दैत्य, दानव और नाग तरह-तरह की क्रीडा करते हुए निवास करते हैं। वे सब गार्हस्थ्यधर्म का पालन करने वाले हैं। उनके स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव और सेवक उनसे सदा प्रेम करते हैं और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। उनके भोगों में बाधा डालने की इन्द्रिादि में भी शक्ति नहीं है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

सामान्येन विवराणि वर्णयति–एतेष्वित्यादिना अथातल इत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन। एतेषु दैत्यादयो निवसन्तीत्यन्वयः। कथंभूतेषु। अधिकः कामभोगश्च ऐश्वर्यानन्दश्च विभूतिश्च संपत्तिस्तैः सुसमृद्धा भवनादयो येषु। कथंभूताः नित्यप्रमुदिता अनुरक्ताः कलत्रादयो येषाम्। न प्रतिहतः कामो येषाम्। मायया विनोदो येषाम् ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

**एतेषु इत्यादि** दण्डक के द्वारा **अक्षातलः** इससे पहले के ग्रन्थ के द्वारा इन भूविवरों का सामान्य रूप से वर्णन करते हैं। इन पातालों में दैत्य इत्यादि निवास करते हैं। प्रश्न है कि ये पाताल कैसे हैं जिनमें दैत्यों और दानवों आदि का निवास है ? तो इसका उत्तर है कि इन पातालों में स्वर्ग की अपेक्षा अधिक काम भोग, आनन्द तथा सम्पत्ति आदि हैं। इन सबों से वहाँ के भवन आदि अत्यन्त समृद्ध हैं। वे कैसे दैत्य आदि हैं ? तो इसका उत्तर हैं कि उनके पत्नी आदि सदैव उनसे प्रेम करती हैं उन सबों की कामनाएँ कभी बाधित नहीं होती। वे माया के द्वारा विनोद (मनोरञ्जन) करते हैं ॥८॥

**येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्रकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलंकृताश्चकासति ॥९॥**

**अनुवाद**— महाराज उन बिलों में मायावी मयदानव की बनायी हुई अनेक पुरियाँ शोभा से जगमगा रही हैं। जो उनके जाति के सुन्दर श्रेष्ठ मणियों से रचे हुए चित्र विचित्र भवन परकोटे नगर द्वार सभा भवन मन्दिर बड़े-बडे आँगन और गृहों से सुशोभित हैं तथा जिनकी कृत्रिम भूमियों पर नाग तथा असुरों के जोड़े एवं कबुतर तोता और मैना आदि पक्षी विचरते हैं। ऐसे पातालधिपतियों के भव्य भवन उन पुरियों की शोभा बढ़ाते हैं ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

किंच हे महाराज, येषु मयेन निर्मिताः पुरश्च चकासतीत्यः। कथंभूताः। नाना ये मणिप्रवरास्तेषां प्रवेका मुख्यास्तैर्विरचितैर्विचित्रैर्भवनादिभिस्तथा विवरेश्वराणां गृहोत्तमैश्च समलंकृताः। कीदृशैर्गृहोत्तमैः। नागाश्चासुराश्च मिथुनभूताः पारावतादयश्च तैराकीर्णाः कृत्रिमा भूमयो येषु तैः। पाठान्तरे नानास्वनत्वं मिथुनविशेषणम् ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

और हे महाराज जिन भूविरों में मय के द्वारा निर्मित पुरियाँ जगमगा रही हैं। प्रश्न है कि कैसी पुरियाँ? तो इसका उत्तर है कि अनेक प्रकार की श्रेष्ठ मणियों से निर्मित अद्भुत भवनों आदि से तथा पतालाधिपतियों के

उत्तम गृहों से वे पुरियाँ सुशोभित हैं । नागों तथा असुरों के जोड़े तथा कबुत्तरो आदि से जिन सबों की कृत्रिम भूमि भरी रहती हैं उन सबों से सुशोभित है । जहाँ पाठान्तर है वहाँ नानास्वनत्वं मिथुन का विशेष होगा ॥९॥

**उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिः कुसुमफलस्तबकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटविटपिनां लताङ्गालिङ्गितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झषकुलोल्लङ्घनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरिन्द्रयोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥१०॥**

**अनुवाद**— वहाँ के उद्यान भी अपने सौन्दर्य से देवलोक के उद्यानों की शोभा को मात करते हैं । उनमें ऐसे अनेक वृक्ष है जिनकी मनोहर डालियाँ फल-फूलों के गुच्छों और कोमल कोपलों के भार से झुकी रहती हैं तथा जिन्हे विभिन्न प्रकार की लताएँ अपने अङ्गों से आलिङ्गित की हैं । वहाँ के निर्मल जल से भरे जलाशयों में अनेक प्रकार के पक्षियों के जोड़े विलास करते हैं । इन वृक्षों और जलाशयों की सुषमा से वे उद्यान उत्यधिक सुशोभित हैं । उन जलाशयों क्रीडारत मछलियाँ उछलती हैं तो उनका जल आन्दोलित हो उठता है और उसके साथ ही उनमें विकसित कमल, कुमद, कुवलय कह्लार, नीलकमल लालकमल तथा शतदल कमल के समुदाय आदि भी हिलने लगते हैं । इन कमल बनों में रहने वालें पक्षी सतत क्रीडा कौतुक करते हुए मधुर ध्वनि करते हैं । उसे सुनकर मन और इन्द्रियाँ आह्लादित हो जाती हैं । उससे समस्त इन्द्रियाँ उत्कण्ठित हो जाती हैं ॥१०॥

## भावार्थ दीपिका

उद्यानानि चातितराममरलोकश्रियमतिशयितानि येषु चकासतीत्यन्वयः । काभिः श्रीभिः । केषाम् । कुसुमफलस्तबकाश्च सुभगकिसलयानि च तैरवनता रुचिरा विटपा येषां तेषां विटपिनाम् । लतानामङ्गैरालिङ्गितानां श्रीभिः । तथा समिथुनाश्चक्रवाकादिमिथुनसहिता ये विविधा विहङ्गास्तद्युक्तानां जलाशयानां च श्रीभिः । कीदृशानाम् । अमलैर्जलैः पूर्णानाम्। पुनरपि कैरतिशयितानि । झषकुलोल्लङ्घनेन क्षुभितं यज्जलाशयानां नीरं तस्मिन्यानि नीरजादीनि तेषां वनेषु कृतं निकेतनं यैस्तेषामर्थात्पक्षिणामेकोऽखण्डो यो विहारस्तेनाकुलाश्च ते मधुराश्च विविधाः स्वनादयस्तैर्ये इन्द्रियोत्सवास्तैश्च । यद्वा समिथुनेत्यादेरुत्तरेणैव संबन्धः । मनइन्द्रियानन्दिभिरिति स्वनादीनां विशेषणम् । तत्र नीरजं सामान्येन कमलम् । लोहितं शतपत्रं तद्विशेषः ॥१०॥

## भाव प्रकाशिका

उन भूविवरों (पातालों) के उद्यान देवद्यानों से अत्यधिक शोभा सम्पन्न होने के कारण जगमगा रहे हैं । जिन सबों की किन शोभाओं से ? तो उत्तर है कि पुष्पों, फलों गुच्छों तथा कोमल पल्लवों से झुकी हुई डालियों वाले वृक्षों की शोभा से । लताओं के अङ्गों से आलिङ्गित वृक्षों की शोभा से । चकवा चकई के जोड़ों वाले अनेक प्राकार के पक्षियों से युक्त जलाशयों की शोभा से, किस प्रकार के जलाशयों से ? तो इसका उत्तर है जो स्वच्छ जलों से भरे हुए हैं । वे किससे सुशोभित है ? तो उत्तर है कि उछलती हुई मछलियों से क्षुब्ध जो जलाशयों का जल उनमें विद्यमान कमल आदि के वनों में रहने वाले के अखण्ड विहार के कारण उस कुल तथा मधुर अनेक प्रकार की ध्वनियों से होने वाली इन्द्रियों की उत्कण्ठा उससे सुशोभित अथवा मिथुन इत्यादि विविध विहङ्गम से ही सम्बन्ध है । मन इन्द्रियानन्दिभिः स्वप्न इत्यादि के विशेषण हैं । वहाँ पर नीरज शब्द सामान्य रूप से कमल का वाचक है । लोहित (लाल) शतदल इत्यादि कमल के विशेषण हैं ॥१०॥

**यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥११॥**

**अनुवाद**— वहाँ सूर्य का प्रकाशनहीं जाने से दिन-रात आदि काल के विभाग का भी कोई भय नहीं दिखता है॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

अहोरात्रादिभिर्यद्भयं तत्रोपलक्ष्यते । सूर्याद्यभावात् ।।११।।

**भाव प्रकाशिका**

सूर्य आदि का अभाव होने के कारण वहाँ दिन तथा रात का भी जो भय नहीं दिखता है ।।११।।

**यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ।।१२।।**

**अनुवाद**— वहाँ के बड़े-बड़े सर्पों के शिरो की मणियाँ सम्पूर्ण अन्धकार को दूर कर देती हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

**न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोवस्थाश्च न भवन्ति ।।१३।।**

**अनुवाद**— इन लोकों में रहने वाले ओषधि, रस, रसायन, अन्न, पान और स्नान आदि का सेवन करते हैं । वे सभी पदार्थ दिव्य होते हैं । इन दिव्य वस्तुओं के सेवन से इनको मानसिक या शारीरिक रोग नहीं होते हैं । तथा झुरियाँ पड़ जाना, बालों का पकना, वार्द्धक्य का होना, शरीर का कान्ति हीन हो जाना, शरीर से दुर्गन्ध निकलना, पसीना निकलना, थकान अथवा शिथिलता आना तथा आयु के साथ शरीर की अवस्थाओं का बदलना, ये कोई विकार नहीं होते वे सदा सुन्दर, स्वस्थ, युवा और शक्ति सम्पन्न ही बने रहते हैं ।।१३।।

**भावार्थ दीपिका**

क्लमः श्रमः । ग्लानिरनुत्साहः ।।१३।।

**भाव प्रकाशिका**

क्लम थकान को कहते हैं और ग्लानि उत्साहहीनता को ।।१३।।

**न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ।।१४।।**

**अनुवाद**— उन पुण्य पुरुषों की भगवान् के तेजः स्वरूप चक्र के अतिरिक्त किसी दूसरे साधन से मृत्यु नही हो सकती है ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**

कल्याणानां मङ्गलरूपाणाम् ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

कल्याणानाम् अर्थात् मङ्गलस्वरूप की ।।१४।।

**यस्मिन्प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति च ।।१५।।**

**अनुवाद**—उस सुदर्शन चक्र के आते ही असुर रमणियों का भय के कारण गर्भ स्राव और गर्भपात हो जाता है।।१५।।

**भावार्थ दीपिका**

यस्मिन् भगवत्तेजसि प्रविष्टे । पुंसवनानि गर्भाः 'आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः' इति स्रावपातौ ज्ञेयौ ।।१५।।

**भाव प्रकाशिका**

जिस श्रीभगवान के तेजः स्वरूप चक्र के आते ही **पुंसवन** अर्थात् गर्भ का स्राव और पात हो जाता है।

आचतुर्थाद् भवेत् स्रावः पातः पञ्चम षष्ठयोः । इस स्मृति वाक्य के अनुसार चौथे मास तक जो गर्भपात होता है उसे गर्भस्राव कहते हैं और पाँचवें और छठे मास में होने वाले गर्भपात को गर्भपात कहते हैं ॥१५॥

**अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकेनानुरागस्मितसँल्लापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥१६॥**

**अनुवाद**— अतल लोक में मय का पुत्र बल रहता है । उसने छियानबे प्रकार की माया की रचना की है। उनमें से कोई-कोई आज भी किसी-किसी पुरुषों में पायी जाती है । उसने एक बार जम्भाई ली थी उसके मुँह से तीन प्रकार की स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली । वे उसलोक में रहने वाले पुरुषों को हाटक नामकरस पिलाकर सम्भोग करने में समर्थ बना देती हैं । उसके पश्चात् वे उन पुरुषों के साथ अपनी हाव-भाव मयी देखने की कला, प्रेमपूर्ण मुस्कान और प्रेमालाप तथा आलिङ्गनादि के द्वारा यथेष्ट रमण कराती हैं । उस हाटक रस को पीकर मनुष्य मदान्ध हो जाता है और अपने को दस हजार हाथियों के समान बलवान समझकर मैं ईश्वर हूँ, मैं सिद्ध हूँ इस तरह से मानकर बढ़-चढ़कर बाते करता है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

सवर्णे रताः स्वैरिण्यः । कामिन्यस्त्वसवर्णेऽपि । तत्राप्यतिचञ्चलाः पुंश्चल्यः । विलायनं विलायतनम् । साधयित्वा संभोगसमर्थं कृत्वा । स्वे ये असाधारणा विलासास्तत्पूर्वकोऽवलोकस्तेनानुरागयुक्तं स्मितं तेन संल्लाप उपगूहनं च तदादिभिः। यस्मिन्हाटकाख्ये रसे उपयुक्ते सेविते ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

अपने सवर्ण पुरुषों के साथ रमण करने वाली को स्वैरिणी कहते हैं । अपने वर्ण से भिन्न वर्ण वाले पुरुष के साथ रमण करने वाली स्त्री को कामिनी कहते हैं । उससे भी अत्यधिक चञ्चल स्वभाव वाली स्त्री को पुँश्चली कहते हैं । **विलायनम्** अर्थात् अतल लोक में । **साधयित्वा** अर्थात् सम्भोग करने में समर्थ बनाकर । **स्वेये० इत्यादि** अपने असाधारण हावभाव पूर्वक देखने की कला से, उसके कारण प्रेम पूर्वक मुस्कुराकर बातें करके तथा **उपगूहन** अर्थात् आलिङ्गन आदि के द्वारा । उस हाटक नामक रस का पान करने से ॥१६॥

**ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान्हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समध्यिमान ओजसा पिबति तन्निष्ठँयूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥१७॥**

**अनुवाद**— उसके नीचे बितल लोक में भगवान् हाटकेश्वर नामक महादेवजी अपने पार्षद भूतगणों के साथ रहते हैं । वे ब्रह्माजी की सृष्टि के लिए भवानी के साथ विहार करते हैं । उन दोनों के तेज से वहाँ हाटकी नाम की नदी प्रवाहित होती है । उस नदी के जल को वायु से प्रज्वलित अग्नि अत्यन्त उत्साह से पीता है और वह हाटक नामक सुवर्ण को थूकता है । उस सुवर्ण से बने आभूषणों को दैत्यराजों की स्त्रियों के साथ पुरुष भी धारण करते हैं ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

भवयोर्भवस्य भवान्याश्च । चित्रभानुरग्निः । तेन निष्ठ्यूतं फूत्कृत्य त्यक्तम् । असुरेन्द्राणामवरोधेष्वन्तःपुरेषु । पुरुषीभिः स्त्रीभिः ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

भवयोः अर्थात् शङ्करजी तथा भवानी के चित्रभानुः अर्थात् अग्नि । तेन निष्ठयूतमयानि थूका हुआ । असुराणामव रोधेषु अर्थात् असुरों के अन्तःपुर में । पुरुषीभिः यानी स्त्रियों द्वारा ।।१७।।

**ततोऽधस्तात्सुतल उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा बटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि।।१८।।**

**अनुवाद**— वितल लोक के नीचे सुतल लोक में महा यशस्वी पवित्र कीर्ति विरोचन के पुत्र बलि रहते हैं। श्रीभगवान् इन्द्र का उपकार करने के लिए अदिति के गर्भ से बटु ब्रह्मचारी के रूप में अवतीर्ण होकर उनसे तीनों लोक छिन लिए थे । उसके पश्चात् श्रीभगवान् की कृपा से ही बलि का इस सुतल लोक में प्रवेश हुआ । वहाँ बलि को ऐसी सम्पत्ति है कि वैसी सम्पत्ति इन्द्र के भी पास नही है । उन ऐश्वर्यो से युक्त बलि अपने धर्मानुसार पूज्यतम भगवान् वामन की ही आराधना करते हुए वहाँ आज भी निर्भय होकर रहते हैं ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

सुतले बलिरधुनाप्यास्त इत्यन्वयः । कथंभूतः । महेन्द्रस्य प्रियं कर्तुमिच्छता भगवता प्रथमं पराक्षिप्तमपहृतं लोकत्रयं यस्य सः । पुनर्भगवतोऽनुकम्पयैव तत्र प्रवेशितः सन् । कीदृशेन । योऽदितेः सकाशाद्भूत्वा बटुवामनरूपेण लब्धकायस्तेन।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

सुतल लोक में बलि आज भी है । कैसे बलि ? तो इसका उत्तर है कि इन्द्र का कल्याण करने के लिए श्रीभगवान् के द्वारा त्रैलोक्य छिन लिया गया । फिर श्रीभगवान् की ही कृपा से सुतल लोक में उनका प्रवेश हुआ है कि किस तरह से भगवान् के द्वारा ? तो इसका उत्तर है कि जो अदिति के गर्भ से वामन वटु के रूप में अवतीर्ण हुए थे उनके द्वारा ।।१८।।

**नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा संप्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्बिलनिलयैश्वर्यम् ।।१९।।**

**अनुवाद**— सम्पूर्ण जीव समूह के नियामक तथा आत्म स्वरूप परमात्मा भगवान् वासुदेव के समान पूज्यतम पवित्रतम पात्र के आने पर उनको परम श्रद्धा एवं आदर पूर्वक स्थिर चित्त से प्रदत्त भूमिदान का फल यह सुतल लोक का ऐश्वर्य मात्र नही है अपितु भूमिदान साक्षात् मोक्ष का द्वार है ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

केचित्तस्य सुतलराज्यं भूमिदानफलं मन्यन्ते तन्निराकरोति–नो एवैतदिति । यद्बिलनिलये विवरस्थाने ऐश्वर्यमेतद्भूमिदानस्य साक्षात्कारः फलं न भवत्येव। कुत इत्यपेक्षायामेवंभूतस्य दानस्य साक्षादपवर्गहेतुत्वादित्याह । यत्तत्प्रसिद्धं दानं तस्य । तदेवाह। भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतश्चासावात्मभूतश्च सर्वजीवनियन्ता चासावात्मारामश्चेत्यर्थः । तस्मिन्संप्रतिपादितस्य ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

कुछ लोग बलि के सुतल लोक के राज्य को भूमि दान का फल मानते हैं शुकदेवजी उन लोगों की मान्यता का खण्डन करते है । जो सुतल लोक में प्राप्त ऐश्वर्य इस भूमिदान का फल नहीं है । यदि कोई कहे क्यों ? तो इसका उत्तर है कि इस प्रकार का दान साक्षात् मोक्ष का साधन होने के कारण क्योंकि बलि का वह प्रसिद्ध दान का जो दान सम्पूर्ण जीव समूह के नियन्ता आत्मस्वरूप तथा आत्माराम श्रीभगवान् को प्रदत्त है ॥१९॥

**यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन्पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥२०॥**

**अनुवाद**— छिकने, गिरने और फिसलने के समय विवश होकर जो एक बार भी श्रीभगवान् के नाम को ले लेता है वह संसार के बन्धन को काट देता है जबकि मुमुक्षु पुरुष इस कर्म के बन्धन को भोग साधन आदि अनेक उपायों के द्वारा बड़े कष्ट से काट पाते हैं ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

किंच यस्य नाम क्षुतादिषु च विवशोऽपि सकृदपि गृणन्कर्मबन्धं विधुनोति । कथंभूतम् । यस्य प्रतिबाधनं त्विह मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते । यन्निवृत्त्यर्थं योगसांख्यादिक्लेशाननुभवन्तीत्यर्थः । तं कर्मबन्धं त्यजति ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

जिस परमात्मा का नाम छिंकने आदि के समय भी जिसके मुख से निकल जाता है तो वह प्राकृतिक बन्धन को काट देता है । उस संसार के बन्धन को तो मुमुक्षु पुरुष दूसरे ही को मानते हैं । वे संसार के बन्धन की निवृति के लिए अष्टाङ्ग योग और सांख्य के साधनो को अपनाते है । उस कर्म के बन्धन को भगवान् के नाम का उच्चारण करके ही मनुष्य त्याग देता है ॥२०॥

**तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥२१॥**

**अनुवाद**— अतएव अपने संयमी भक्त और ज्ञानियों को स्वस्वरूप प्रदान करने वाले और समस्त प्राणियों की आत्मा श्रीभगवान् को आत्मभाव से किए हुए भूमिदान का यह फल नहीं हो सकता है ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

तत्तस्मिन्भगवति भक्तानां ज्ञानिनां च यथायथमात्मन्यात्मदे ज्ञानदे चात्मतयैव समर्पितस्य भूमिदानस्य न तत्फलमिति पूर्वेणैव संबन्धः ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

जो अपने भक्तों तथा ज्ञानियों अपने स्वरूप विषय का ज्ञान प्रदान करने वाले श्रीभगवान् को आत्मा रूप से भूमि प्रदान करने का वह फल नहीं हो सकता है ॥२१॥

**न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥२२॥**

**अनुवाद**— श्रीभगवान् ने अपना सर्वस्व प्रदान कर देने वाले बलि को अपना विस्मृति करा देने वाले सुतल का भोग और ऐश्वर्य ही प्रदान किया तो यह उन्होंने बलि पर कोई कृपा नहीं किया ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

किंच नेदं भगवदनुकम्पाफलमपि किंत्वेकान्तभक्तस्य तस्यान्तरायमात्रमित्याह-नेति । भगवानमुष्य अमुं नैवानुगृहीतवान्। तत्र हेतुः-यदुतेति । आत्मन ईश्वरस्यानुस्मृतिं मुष्णातीति तथा । तदुक्तम् 'वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ।' इति ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

**नवै० इत्यादि** दण्डक के द्वारा यह कहा गया है कि अपने एकान्त भक्त तेज यह सुतल लोक का भोग और ऐश्वर्य प्रदान करना उस पर कृपा नहीं है; अपितु एकान्त भक्त बलि के लिए यह विघ्न ही है। श्रीभगवान् ने बलि को अनुगृहीत नहीं किया, उसका कारण **यदुत० इत्यादि** से बतलाते हैं अपितु वह सर्वात्मा परमात्मा की स्मृति को विनष्ट करने वाला है। महर्षि पराशर ने कहा भी है **वासुदेवे मनोयस्य० इत्यादि** जिनका मन भगवान् वासुदेव में तथा जप, होम तथा अर्चना आदि में लगा है। हे मैत्रेय ! उसके लिए इन्द्र इत्यादि का पद विघ्न स्वरूप ही है॥२२॥

**यत्तद्भगवतानधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च संप्रतिमुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥२३॥**

**अनुवाद**— जिस समय कोई और उपायन देखकर भगवान् ने याचना के बहाने उसके त्रिलोंकी राज्य को छिन लिया और उसके पास शरीर मात्र बच गया, उस समय उसको वरुण पाश में बाँधकर पर्वत की कन्दरा में डाल दिया गया उस समय उसने कहा था ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

तस्यैकान्तभक्तिं सप्रपञ्चामाह। यत्तदतिप्रसिद्धमिति वक्ष्यमाणमुवाच हेत्यन्वयः। कथंभूतः। अनधिगतोऽन्य उपायो येन तेन भगवता याञ्चाच्छलेनापहृतं स्वशरीरमात्रावशेषितं लोकत्रयं यस्य। सम्यक्प्रतिमुक्तो बद्धः। अपविद्धः प्रक्षिप्तोऽपि सन् ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

बलि की ऐकान्तिक भक्ति का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं— **यत्तत्० इत्यादि** के द्वारा अत्यन्त प्रख्यात कही जाने वाली बात को बलि ने कहा कैसे बलि ने कहा ? दूसरा कोई उपाय नहीं मिलने के कारण श्रीभगवान् ने याचना के छल से उसके सर्वस्व को ले लिया और उसका शरीर मात्र ही अवशिष्ट रह गया था अच्छी तरह से बाँधकर पर्वत की गुफा में डला दिया गया उस बलि ने कहा ॥२३॥

**नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचतात्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तरपरिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥२४॥**

**अनुवाद**— खेद है कि यह ऐश्वर्य इन्द्र विद्वान् होकर भी अपना वास्तविक स्वार्थ सिद्ध करने में कुशल नहीं है। उसने सम्मति प्राप्त करने के लिए बृहस्पतिजी को अपना मन्त्री बनाया फिर भी उनकी अवहेलना करके उसने भगवान् विष्णु से दान माँगकर उनके द्वारा मुझसे अपने लिए यह भोग को ही माँगा। ये तीनो लोक तो केवल एक मन्वन्तर तक ही रहते हैं जो अनन्त काल का एक अवयव मात्र है। श्रीभगवान् के कैंकर्य के समक्ष तुच्छ भोगों का क्या मूल्य हैं ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

बतेति खेदे। भगवान्विद्वानपि योऽसाविन्द्रो यस्यैकान्तेन बृहस्पतिः सचिवः सहायो यतो मन्त्रार्थं वृतः सोऽपि पुरुषार्थेषु नूनं न निष्णातो न निपुणः। यत्र उपेन्द्रेण द्वारभूतेन तमुपेन्द्रं विहायात्मानं मां लोकत्रयमयाचत। तं मन्त्रपदं बृहस्पतिमतिहायेति वा। तस्मिन्प्रसन्ने स एव वरणीयो न लोकत्रयं यतस्तदतितुच्छमित्याह। अतिगम्भीरमनन्तं वयो यस्य तस्य कालस्य यन्मन्वन्तरं तेन परिवृत्तं विपर्यस्तं लोकत्रयमिदं कियत् ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

बत यह अव्यय खेदार्थक है । अर्थात् खेद की बात है कि विद्वान भी इन्द्र जिसके ऐकान्तिक मन्त्र प्रदान करने वाले बृहस्पति जी है, ऐसा भी अपने पुरुषार्थ के विषय में निष्णात नहीं है । क्योंकि उसने श्रीभगवान् के द्वारा उन भगवान् को त्यागकर मुझसे त्रैलोक्य को अथवा उन बृहस्पतिजी की अवहेलना करके । श्रीभगवान् के प्रसन्न होने पर तो उनका ही वरण करना चाहिए त्रैलोक्य नहीं क्योंकि त्रैलोक्य तो अत्यन्त तुच्छ है । महान् काल के अवयव भूत मन्वन्तर पर्यन्त ही रहने वाले त्रैलोक्य का क्या महत्व है ॥२४॥

**यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे नतु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥२५॥**

**अनुवाद**— हमारे पितामह प्रह्लादजी श्रीभगवान् के हाथों अपने पिता के मारे जाने पर श्रीभगवान् की सेवा का ही वरदान माँगा था । भगवान् राज्य देना चाहते किन्तु उनसे दूर करने वाले अपने पिता के निष्कण्टक राज्य को नहीं स्वीकार किया ॥२५॥

### भावार्थ दीपिका

प्रह्लादस्त्वेक एवार्थे निष्णात इत्याह-यस्यानुदास्यमिति । स्वपितरि उपरते मृते सति स्वपित्र्यं पदं भगवता दीयमानमपि भगवतः खलु परमन्यदिति कृत्वा नतु जग्राहेत्यर्थः ॥२५॥

### भाव प्रकाशिका

बलि ने कहा कि इस विषय में तो केवल प्रहलादजी निष्णात हैं । अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् श्रीभगवान् के द्वारा दिये जाने पर भी उन्होंने अपने पिता के राज्य को इसलिए नहीं स्वीकार किया कि श्रीभगवान् से श्रेष्ठ कोई भी दूसरी वस्तु नहीं है ॥२५॥

**तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥२६॥**

**अनुवाद**— उन महानुभाव का अनुसरण कौन मुझ जैसा व्यक्ति कर सकता है ? क्योंकि मेरी न तो वासनाएँ ही शान्त हुई हैं और न मुझ पर भगवान् की कृपा ही है । अतएव उनके पास माँगने की इच्छा भी कौन कर सकता है ?॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

ननु त्वमतिवीरः कुतस्तमेव बहुमन्यसे तत्राह । तस्यानुपथमनुवर्त्म । अमृजिता अक्षीणाः कषाया रागादयो यस्य । परिहीणो भगवदनुग्रहो यस्य । स को वा उपगन्तुमिच्छतीति ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि तुम तो बहुत बड़े वीर हो अतएव प्रह्लादजी का ही बहुत समादर क्यों करते हो ? उस पर बलि ने कहा कि मेरी तो वासनाएँ ही नहीं समाप्त हुई हैं और न तो श्रीभगवान् की मुझ पर कृपा ही है । अतएव उनके मार्ग का अनुसरण मुझ जैसा व्यक्ति कैसे कर सकता है ?॥२६॥

**तस्यानुचरितमुपरिष्टाद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान्स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥**

**अनुवाद**— शुकदेवजी कहते हैं राजन् मैं बलि का चरित आठवें स्कन्ध में विस्तार से कहूँगा । श्रीभगवान् का हृदय अपने भक्तों के प्रति दया से भरा रहता है । सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् अपने हाथ में गदा लेकर

सुतल लोक में बलि के द्वारा पर सदा विराजमान रहते हैं । एक बार दिग्विजय करता हुआ घमण्डी रावण वहाँ गया तब श्रीभगवान् ने अपने पैर के अङ्गूठे से ही ठोकर मारकर उसको लाखों योजन दूर फेंक दिया था ।।२७।।

**भावार्थ दीपिका**

अथ शुकोक्तिः । नन्वेवंभूतश्चेद्बलिस्तर्हि तस्यैव चरितं विस्तरेण कथ्यतां तत्राह । तस्य बलेरनुचरितमुपरिष्टादष्टमे विस्तरिष्यते । यस्य द्वार्यवतिष्ठते निजजनेष्वनुकम्पितं कृतानुकम्प हृदयं यस्य । द्वारपालकर्म दर्शयति । येन श्रीनारायणेन बलेर्द्वारि विशन्दशकन्धर उच्चाटितः । केन पदा । तत्राप्यङ्गुष्ठेनैव ।।२७।।

**भाव प्रकाशिका**

यहाँ शुकदेवजी कहते हैं । यदि कोई कहे कि यदि बलि का चरित इस तरह का है तो उनका चरित कहिए? तो इस पर कहते हैं कि बलि का चरित आगे आठवें स्कन्ध में विस्तार से कहेंगे । भगवान का हृदय अपने भक्तों के लिए कृपा से भरा रहता है । वे बलि के द्वार पर सदा गदालेकर विराजमान रहते हैं । अर्थात् बलि के द्वारपाल का काम करते हैं । वे भगवान् बलि के द्वार में प्रवेश करने वाले रावण को अपने पैर के अङ्गूठे से फेंक दिये।।२७।।

**ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ।।२८।।**

**अनुवाद**— सुतल लोक के नीचे तलातल में त्रिपुराधिपति मय रहता है । त्रैलोक्य को शान्ति प्रदान करने के लिए पूर्वकाल में भगवान् शङ्कर ने उसकी तीनों पुरियों को भस्म कर दिया था । उसके पश्चात् उनकी ही कृपा से मय को यह स्थान प्राप्त हुआ । मय मायावियों का गुरु है और शङ्करजी के द्वारा सुरक्षित है । अतएव उसको सुदर्शन चक्र से कोई भय नहीं है ।।२८।।

**भावार्थ दीपिका**

यथा हरिणा स्वभक्तो बलिः सुतले निहितः सुखमास्ते एवं महादेवभक्तोऽपि मयस्तलातले सुखमास्त इत्याह–तत इति। लब्धं पदं स्थानं येन । महीयते पूज्यते ।।२८।।

**भाव प्रकाशिका**

जिस तरह श्रीहरि के द्वारा सुतल में स्थापित बलि सुख पूर्वक रहते हैं उसी तरह महादेव भक्त मय भी तलातल में सुख पूर्वक है । इस बात को **तत० इत्यादि** दण्डक के द्वारा कहा गया है । उसने तलातल में स्थान प्राप्त किया। महीयते अर्थात् वहाँ के निवासियों द्वारा पूजित होता है ।।२८।।

**ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पतत्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति ।।२९।।**

**अनुवाद**— उसके नीचे महातल में क्रदु से उत्पन्न अनेक शिरो वाले क्रोधवशा नामक एक सर्पो का समुदाय रहता है । उनमें कुहक, तक्षक, कालिय एवं सुषेण आदि प्रधान है । उनका शरीर विशाल है । उनके बड़े-बड़े फन हैं और वे श्रीभगवान के वाहन गरुडजी से डरते रहते हैं फिर भी कभी-कभी अपने स्त्री, पुत्र, मित्र एवं कुटुम्ब के साथ प्रमत्त होकर विहार करने लगते हैं ।।२९।।

**भावार्थ दीपिका**

नैकशिरसामनेकफणानां गणोऽस्ति । एतत्प्रपञ्चयति–कुहकेति । महाभोगवन्तो महाकायाः । पुरुषवाहात् हरेर्वाहनात्।।२९।।

### भाव प्रकाशिका

नैकशिरसाम् अर्थात् अनेक फनों वाले । गणऽस्ति अर्थात् समूह है । महाभोगवन्तः यानी विशाल शरीर वाले। पुरुषवाहात् अर्थात् श्रीहरि के वाहन गरुड़ से ॥२९॥

**ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्बिभ्यति ॥३०॥**

**अनुवाद**— उसके नीचे रसातल में पाणि नामक दैत्य और दानव रहते हैं । ये निवात कवच, कालेय और हिरण्यपुरवासी भी कहलाते हैं । इनका देवताओं से विरोध है । ये जन्म से ही महाबलवान और अत्यन्त साहसी होते हैं । किन्तु जिनका सम्पूर्ण लोकों में प्रभाव फैला है उन श्रीहरि के तेज से बलाभिमान चूर्ण हो जाने के कारण सर्पों के समान छिप कर रहते हैं । इन्द्र की दूती सरमाद्वारा कहे हुए मन्त्र वर्ण रूप वाक्य के कारण इन्द्र से सदैव डरते रहते हैं ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

विबुधप्रत्यनीका देवशत्रवः सकलेष्वपि लोकेष्वनुभावो यस्य तस्यैव तेजसा सुदर्शनेन प्रतिहतो बलावलेपो वीर्यमदो येषाम् । बिलेशयाः सर्पा इव । इन्द्रदूत्या प्रयुक्ताभिर्मन्त्ररूपाभिर्वाग्भिः । एवं हि वैदिकमाख्यानम् । पणिभिरसुरैर्निगूढां गामन्वेष्टुं सरमां देवशुनीमिन्द्रेण प्रहितां सन्धिमिच्छन्तः पणयः प्राहुः 'किमिच्छन्ती सरमा' इत्यादि । सा च संधिमनिच्छन्तीन्द्रस्तुतिपूर्वकं तान्प्रति परुषमाह । 'हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्' इत्यादि । ते च तच्छ्रुत्वा बिभ्यतीति ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

**विवुध प्रत्यनीकाः** अर्थात् देवताओं के शत्रु । सम्पूर्ण लोकों में जिनका प्रभाव फैला है ऐसे श्रीहरि के तेज से (सुदर्शन चक्र से) उन सबों का मद चूर्ण हो जाता है । विलेशयाः इव अर्थात् सर्पों के समान । इन्द्र की दूती के द्वारा प्रयुक्तं मन्त्र रूप वाणी के द्वारा । यह वैदिक आख्यायिका है पणि नामक दैत्यों ने रसातल में पृथिवी को छिपा दिया था । उसको खोजने के लिए इन्द्र की दूती सरमा गयी तो पाणियों ने उससे सन्धि करना चाहा । किन्तु सरमा ने सन्धि नहीं की उसने इन्द्र की स्तुति करते हुए पणियों से कठोर वाणी में कहा— **'हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्'** अर्थात् हे पाणियों इन्द्र के द्वारा मारे जाकर सो जाओ । वे उस वाक्य का सुनकर डरते हैं ॥३०॥

**ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्वेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूड-कम्बलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति येषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे राह्वादिस्थितिबिलस्वर्गमर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

**अनुवाद**— रसातल के नीचे पताल में शङ्ख, कुलिक, महाशङ्ख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शङ्खचूड़, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त आदि अत्यन्त क्रोधी और बड़े-बड़े फनो वाले नाग रहते हैं । इनमें वासुकि प्रधान हैं । उनमें से किसी के पाँच, किसी के सात, किसी के दस, किसी के सौ और किसी के हजार सिर हैं । उनके फनों की चमकती हुई मणियाँ अपने प्रकाश से पाताल लोक के सम्पूर्ण अन्धकार को विनष्ट कर देती हैं ॥३१॥

**इस तरह श्रीमद्भगवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के राहु आदि की स्थिति तथा बिल स्वर्ग की मर्यादा का वर्णन नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।२४।।**

### भावार्थ दीपिका

महाभोगिनो महाफणाः। महानमर्षः क्रोधो येषाम्। पञ्चादिसंख्यानि शीर्षाणि येषाम्। शीर्ष्णामिति वक्तव्ये शीर्षाणामित्यार्षः।।३१।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भवार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।**

### भाव प्रकाशिका

महाभोगिन अर्थात् बड़े-बड़े फन वाले। महामर्षाः अर्थात् अत्यन्त क्रोधी सर्प जिन सबों के पाँच आदि शिर हैं। शीर्ष्णाम् कहना चाहिए किन्तु शीर्षाणाम् यह आर्ष प्रयोग है ।।३१।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२४।।**

# पच्चीसवाँ अध्याय

## श्रीसङ्कर्षणदेव का विवरण और स्तुति

श्रीशुक उवाच

**तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्याताऽनन्त इति सात्वती या द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥१॥**

**अनुवाद**— राजन् पाताल लोक के नीचे तीस हजार योजन की दूरी पर अनन्त नाम से विख्यात श्रीभगवान् की नित्य कला है। यह अहङ्कार रूप होने के कारण द्रष्टा और दृश्य को खींचकर एक कर देती हैं। इसीलिए पाँच रात्रागम के अनुयायी भक्तजन इसे सङ्कर्षण कहते हैं ॥१॥

### भावार्थ दीपिका

पञ्चविंशे ततोऽधस्तादाह शेषस्य संस्थितिम्। संजिहीर्षोरिदं काले यत्र रुद्रसमुद्भवः। तस्य पातालस्य कोऽसावनन्तः सात्वतीयाः सात्वततन्त्रनिष्ठाश्चतुर्व्यूहोपासने यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते। तथाख्याने हेतुः-द्रष्टृदृश्योः सम्यक्कर्षणमेकीकरणं येन। तत्कुतः। अहमित्यभिमानो लक्षणं चिह्नमधिष्ठातुर्यस्य। अहङ्काराधिष्ठानेन द्रष्टृदृश्यसङ्कर्षणात्सङ्कर्षण इत्यर्थः ॥१॥

### भाव प्रकाशिका

पच्चीसवें अध्याय में पाताल के नीचे शेष की स्थिति बतलायी गयी है। इस जगत् का संहार करने की इच्छा होने पर उस समय उन शेष से ही रुद्र की उत्पत्ति होती है। उस पाताल के ये अनन्त कौन हैं? सात्वतीयाः अर्थात् पञ्चरात्रागम सिद्धान्तानुयायी चतुर्व्यूहोपासना में जिनको सङ्कर्षण कहते हैं। इनको सङ्कर्षण कहने का कारण यह है कि ये द्रष्टा और दृश्य को एक में खींचकर मिला देते हैं। जिसके अधिष्ठाता का अहङ्कार ही चिह्न है। उस अहङ्कार का अधिष्ठाता होने के कारण ये द्रष्टा और दृश्य का सङ्कर्षण करते हैं, इसीलिए इनका नाम सङ्कर्षण है ॥१॥

**यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥**

**अनुवाद**— एक हजार मस्तक वाले इन भगवान् अनन्त के मूर्ति के एक ही शिर पर रखा हुआ यह भूमण्डल सरसों के दाने के समान प्रतीत होता है ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

अनन्तत्वमाह । यस्येदमिति । यच्छब्दानां स एष भगवाननन्त इत्युत्तरेणान्वयः ।।२।।

### भाव प्रकाशिका

यस्येदमित्यादिदण्डक के द्वारा इनके अनन्तत्व को बतलाते हैं यत् षष्ठी का आगे के भगवान् अनन्त हैं पद से संबन्ध है ।।२।।

**यस्य ह वा इदं कालेनोपसंजिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण साङ्कर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ।।३।।**

**अनुवाद**— प्रलय काल के आने पर इन्हे इस विश्व का संहार करने की इच्छा होती है तब इनके क्रोधवश घूमती हुई मनोहर भ्रुकुटियों के मध्य भाग से सङ्कर्षण नामक रुद्र प्रकट होते हैं । उनकी व्यूह संख्या ग्यारह है। वे सभी तीन नेत्रों वाले होते हैं और हाथ में त्रिशूल लिए रहते हैं ।।३।।

### भावार्थ दीपिका

तामसत्वमाह । यस्येदं विश्वमुपसंहर्तुमिच्छतः । अमर्षेण विरचिते कुटिलीकृते रुचिरीकृते । भ्रमन्त्यौ भ्रुवौ तयोर्मध्ये। उत्तम्भयन् उन्नमयन् ।।३।।

### भाव प्रकाशिका

अनन्त के तामसत्व का वर्णन इस दण्डक में करते हैं— इस विश्व का संहार करने की इच्छा वाले इनके होने पर जब इनकी मनोहर भौंहे टेढी हो जाती हैं, तो घूमती हुई इनकी भौहों के बीच से सङ्कर्षण रुद्र उत्पन्न होते हैं । ये हाथ में त्रिशूल लिए रहते हैं ।।३।।

**यस्याङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषण्डमण्डलेष्वहिपतयः सह सात्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयन्ति।।४।।**

**अनुवाद**— इन भगवान् सङ्कर्षण के चरण कमलों के गोल-गोल स्वच्छ और अरुण वर्ण के नख मणियों की पंक्ति के समान देदीप्यमान है । जब दूसरे प्रधान भक्तों के साथअनेक नागराज अनन्याभक्ति से इनको प्रणाम करते हैं तब उनके उन नखमणियों में कुण्डल की कान्ति से अलंकृत मनोज्ञ रूप वाले मनोहर मुखारविन्दों की मनोमोहक झाँकी होती है औरउनका मन आनन्द से भर जाता है ।।४।।

### भावार्थ दीपिका

सुभगत्वमाह । यस्याङ्घ्रिकमलयुगलेऽरुणा विशदा नखा एव मणयस्तेषां षण्डः समूहस्तस्य मण्डलेषु । परिस्फुरतां कुण्डलानां प्रभया मण्डितानि गण्डस्थलानि येषु तानि ।।४।।

### भाव प्रकाशिका

सङ्कर्षण भगवान् की सुभगता का वर्णन करते हैं । जिनके दोनों चरण कमलों में विद्यमान स्वच्छ एवं लाल नख रूपी मणियों के समूह में चमकते हुए कुण्डलों की कान्ति से जिनके कपोल अलंकृत हो जाते हैं ।।४।।

**यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चार्वङ्गवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुज-रजतस्तम्भेष्वगुरुचन्दनकुङ्कुमपङ्कानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिर-ललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणकरुणावलोकनयनवदनारविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति।।५।।**

**अनुवाद**— अनेक नागराजों की कुमारियाँ अनेक प्रकार की कामनाओं से उनके मनोहर अङ्गमण्डल पर रजत स्तम्भ के समान सुन्दर उनकी कङ्कण से सुशोभित लम्बी-लम्बी श्वेत वर्ण की भुजाओं पर अगर, चन्दन, कुङ्कुम के पङ्क का लेप करती है उस समय उनके अङ्गों का स्पर्श करने के कारण मथित हुए उनके हृदय में काम का संचार हो जाता है। तब वे उनके मद विह्वल सकरुण अरुण नेत्रों से सुशोभित तथा अनुराग मद से मुदित, मुखारविन्द को मधुर मनोहर मुस्कान पूर्वक सलज्जभाव से देखने लगती हैं ॥५॥

### भावार्थ दीपिका

चारुण्यङ्गवलये विसिताश्च ते विशदाश्च विपुलाश्च धवलाश्च सुभगाश्च रुचिराश्च भुजा एव रजतस्तम्भास्तेष्वगुरुचन्दनकुङ्कुमानां पङ्क एवानुलेपस्तेनावलिम्पमानाः। तेषामभिमर्शनेनोन्मथिते हृदये मकरध्वजस्यावेशेन रुचिरं च ललितं च स्मितं यासां ताः। तस्यानुरागेण मदेन च मुदितं च तन्मदेन विघूर्णिते प्रचलिते च आ ईषदरुणे करुणावलोकयुक्ते नयने यस्मिंस्तद्वदनारविन्दं विलोकयन्ति ॥५॥

### भाव प्रकाशिका

मनोहर अङ्ग मण्डल पर विशाल धवल तथा मनोहर रजतस्तम्भ के सामन श्वेत वर्ण की भुजाओं पर अगुरु, चन्दन, कुङ्कुम के पङ्क का लेप लगाती हैं। लेप लगाते समय उनके अङ्गो का स्पर्श करने के कारण उन कुमारियों का कामवेश के कारण हृदय मथ जाता है। वे मनोहर तथा मधुर मुस्कान पूर्वक उनके अनुराग के कारण मदविह्वल होने के कारण चञ्चल तथा अरुण करुणावलोक युक्त नेत्रों वाले मुखारविन्द को देखने लगती हैं ॥५॥

**सएव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥६॥**

**अनुवाद**— वे अनन्त गुणों के समुद्र आदि देव भगवान् अनन्त अपने अमर्ष (असहनशीलता) और रोष के वेग को रोके हुए वहाँ से सभी लोकों का कल्याण करने के लिए वहाँ विराजमान हैं ॥६॥

### भावार्थ दीपिका

अमर्षोऽसहनम्। रोषः क्रोधः। उपसंहृतस्तयोर्वेगो येन ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

असहनशीलता को अमर्ष कहते हैं। रोष क्रोध को कहते है। उन दोनों के वेग को रोक कर वहाँ विद्यमान हैं अनन्त देव ॥६॥

**ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनी कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥७॥**

**अनुवाद**— देवता, असुर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और मुनिगण भगवान् अनन्त का ध्यान किया करते हैं। उनके नेत्र सदैव अनुराग मद से मुदित होकर चञ्चल और विह्वल, बने रहते हैं। वे अपने मधुर वचनामृतों से अपने पार्षदों औरदेवयूथपों का आप्यायित (संतुष्ट) किया करते हैं। उनके शरीर पर नीलाम्बर और एक कुण्डल सुशोभित होता है। उनका सुभग और सुन्दर हाथ हल की मूठ पर रखा रहता है। उदार लीलामय भगवान् सङ्कर्षण अपने गले में वैजयन्ती की माला धारण करते हैं जो रुद्र के ऐरावत हाथी के गले में पड़ी हुए सवुर्ण की शृङ्खला के समान प्रतीत होती है। उसकीकान्ति कभी भी फीकी नहीं होती है। इस प्रकार की नवीन तुलसी की सुगन्ध और मधुर मकरन्द से उन्मत्त बने हुए भौंरे मधुर गुञ्जन करते हुए उसकी शोभा को बढ़ाते हैं ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

उपासनार्थमाह । सुरादिभिर्ध्यायमानश्चिन्त्यमानः अनवरतं मदेन मुदितश्चासौ विकृतविह्वललोचनश्च । सुललितेन मुखरिकामृतेन वचनामृतेन स्वपार्षदान्विबुधयूथपानां पतींश्चाप्यायमानो हर्षयन् । नीले वाससी यस्य एकमेव कुण्डलं यस्य । हलस्य ककुदि पृष्ठे कृतो न्यस्तः सुभगश्च सुन्दरश्च भुजो येन । उदारा लीला यस्य सः । न परिम्लानो रागः कान्तिर्यस्यास्तस्याः नवतुलसिकाया आमोदमध्वासवेन सुरभिमधुरसेन माद्यतां मधुकराणां ये व्रातास्तेषां मधुरगीतेन श्रीर्यस्यास्तां वनमालाम् । कक्षां वरत्राम्।।७।।

### भाव प्रकाशिका

भगवान् अनन्त की उपासना के लिए कहते है— देवता आदि उन सङ्कर्षण देव का सदा ध्यान करते रहते हैं । वे सदा मदमुदित रहते हैं । उनके नेत्र विह्वल रहते हैं । वे अपने वचनामृत से अपने पार्षदों और देवाधिपों को प्रसन्न करते हैं । वे नीलम्बरधारी हैं । वे अपने एक ही कान में कुण्डल धारण करते हैं । उनका एक हाथ हल के मुट्ठे पर रहता है । उनकी भुजाएँ सुन्दर हैं । उनकी लीलाएँ औदार्यपूर्ण होती हैं । जिनकी नवीन तुलसी की कान्ति कभी मलिन नहीं होती उनकी सुगन्धित तुलसी की वनमाला जिस पर भौंरे मड़राते रहते हैं ऐसी वनमाला को वे धारण करते हैं कक्षा वरत्रा (शृङ्खला) को कहते हैं ।।७।।

**य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थिं सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान्भगवान्स्वायंभुवो नारदः सह तुम्बुरुणा सभायां ब्रह्मणः सश्लोकयामास ।।८।।**

**अनुवाद**— राजन् ! इस प्रकार माहात्म्य श्रवण ध्यान करने से भगवान् अनन्त मुमुक्षु पुरुषों के हृदय में अविर्भूत होकर उनकी अनादि कालिक कर्म वासनाओं और अविद्या रूप हृदयग्रन्थि को शीघ्र ही काट डालते हैं । एक बार ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी ने ब्रह्माजी की सभा में तुम्बुरु के साथ इस प्रकार से गान किया था ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

संश्लोकयामास वर्णयामास ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

संश्लोकयामास का अर्थ है वर्णन किया ।।८।।

**उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयासन् ।**
**यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ।।९।।**

**अन्वयः**— यदीक्षया अस्य उत्पत्ति स्थिति लयहेतवः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणः कल्पाः आसन्, यदीक्षया ध्रुवम् अकृतम् यदेकम् आत्मन् नानाधात् कथम् उ तस्य वर्त्म वेद ।।९।।

**अनुवाद**— जिनकी दृष्टि पड़ने से ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत प्रकृति के सत्त्वादिगुण अपना कार्य करने में समर्थ होते है । उनका रूप ध्रुव और अनादि है, जो एक होकर भी नानात्मक प्रपञ्च को अपने में धारण किए हुए है उन भगवान् सङ्कर्षण के तत्त्व को कोई कैसे जान सकता है ?।।९।।

### भावार्थ दीपिका

अस्य जगत उत्पत्त्यादिहेतवो गुणा यस्येक्षया कल्पाः स्वस्वकार्यसमर्था आसन् । यस्य तु रूपं ध्रुवमनन्तमकृतमनादि। तत्र हेतुः— यदेकमेव सदात्मन्नात्मनि नानाकार्यप्रपञ्चमधात् । तस्य ब्रह्मरूपस्य वर्त्म तत्त्वं जनः कथमु ह वेद । नैव वेदेत्यर्थः।।९।।

### भाव प्रकाशिका

इस जगत् की उत्पत्ति इत्यादि के कारण भूत सत्त्वादि प्रकृति के गुण जिनकी दृष्टि पड़ने से ही अपना कार्य करने में समर्थ (कल्प) होते हैं, उन ब्रह्मरूप सङ्कर्ष देव के तत्त्व को कोई भी मनुष्य कैसे जान सकता है ? अर्थात् नहीं जान सकता ॥९॥

**मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।**
**यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥१०॥**

**अन्वयः**— यत्र इदं सद्सद् विभर्ति, स्वजनमनांसि आदातुं अनवद्यां यल्लीलां उदारवीर्यः मृगपतिः आददे, नः पुरु कृपया सुंशुद्धं सत्त्वं बभार ॥१०॥

**अनुवाद**— जिनमें यह कार्य कारण जगत् आभास रहा है । जो भगवान् अपने जनों के मन को आकृष्ट करने के लिए जिनकी बीरता पूर्ण लीला को आदर्श मानकर परम पराक्रमी सिंह ने अपनाया वे भगवान् सङ्कर्षण देव हम पर अत्यधिक कृपा करने के लिए, शुद्ध सत्त्वमय स्वरूप को धारण किये हैं ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

तर्हि कथमसौ मुमुक्षुभिः सेव्यते तत्राह-मूर्तिमिति । यत्रेदं सदसद्विभाति स नोऽस्माकं भक्तानां बहुकृपया संशुद्धं सत्त्वं मूर्तिं बभार । स्वजनानां मनांस्यादातुं वशीकर्तुं कृतां यस्य लीलां मृगपतिः सिंह आददे अशिक्षत् । यतः उदाराणि वीर्याणि यस्य तस्मादन्यं मुमुक्षुः कमाश्रयेदित्युत्तरेणान्वयः । यद्वा कृपयेत्यत्र हेतुः-यद्यस्मात्स्वजनानां मनांस्यादातुं लीलामाददे । मृगपतिरिवोदारवीर्यः । यद्वा मृग्यन्त इति मृगाः कामप्रदास्तेषां पतिर्मुख्यः ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

यदि ऐसी बात है तो उनका मुमुक्षुजन कैसे सेवन करते हैं ? तो इस पर कहते हैं जिनमें यह कार्य कारण रूप प्रपञ्च भासित हो रहा है, वे हम भक्तों पर बहुत अधिक कृपा करके शुद्ध सत्त्वमयी मूर्ति को धारण किए हैं। अपने भक्तों के मन को अपने अधीन करने के लिए जिनके द्वारा की गयी लीला को परम पराक्रमी सिंह ने धारण किया । जिनके औदार्य पूर्ण लीलाएँ उन भगवान् सङ्कर्षण देव से भिन्न को मुमुक्षु पुरुष अपना आश्रय कैसे बना सकते हैं । अथवा कामनाओं को पूर्ण करने वालों में मुख्य ये मृगपतियों में मुख्य हैं ॥१०॥

**यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।**
**हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥११॥**

**अन्वयः**— यत् श्रुतंनाम यदि आर्तः पतितो वा प्रलम्भनात् वा अनुकीर्तयेत् सः सपदि नृणाम् अंहः हन्ति मुमुक्षुः भगवतः शेषात् अन्यं कं आश्रयेत् ॥११॥

**अनुवाद**— जिनके सुने हुए नाम को यदि कोई पीड़ित अथवा पतित व्यक्ति हंसी में भी उच्चारण कर लेता है तो वह दूसरों के भी सम्पूर्ण पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देता है उन शेष भगवान् को छोड़कर मुमुक्षु पुरुष किस दूसरे का आश्रय ग्रहण करें ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

किंच आस्तां तस्य कृपया वपुर्धारणं तद्भजनं वा तन्नामौदार्यमेवातिचित्रमित्याह । यस्य नाम यदि पतितो महापातक्यप्यनुकीर्तयेत्तर्हि स शुद्धेदिति किमु वक्तव्यम् । यतोऽसावेव नृणामशेषमंहः सद्यो हन्ति । कथमनुकीर्तयेत् । अन्यतः श्रुतं वाऽकस्माद्वा आर्तो वा सन्प्रलम्भनाद्वा परिहासात् । तस्माच्छेषादन्यम् ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

किञ्च छोड़िये उनके कृपा पूर्वक शरीर धारण को अथवा भजन का उनके नाम की ही उदारता अत्यन्त विचित्र है, इस बातको नारदजी ने इस श्लोक में कहा है । उनके नाम का उच्चारण यदि महापतकी पुरुष भी कर ले तो वह शुद्ध हो जाता है, यह क्या कहना है ? दूसरों से अकस्मात् सुने हुए भी यदि कोई पीड़ित व्यक्ति हँसी में भी उच्चारण कर लेता है तो वह लोगो के पापों को पूर्ण रूप से शीघ्र ही नष्ट कर देता उन शेष भगवान् से भिन्न किसका मुमुक्षु पुरुष आश्रय ग्रहण करें ।।११।।

**मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ।**
**आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ।।१२।।**

**अन्वयः**— सहस्रमूर्ध्नोः सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् भूगोलं मूर्धनि अणुवत् अर्पितम् आनन्त्यात् अतिविक्रमस्य भूम्नःवीर्याणि कः सहस्रजिह्वः अधिगणयेत् ।।१२।।

**अनुवाद**— हजारों शिर वाले शेषजी के एक शिर पर पर्वत, नदी, समुद्र आदि से युक्त रखा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल एक रजकण के समान है । वे अनन्तर हैं, उनके पराक्रम का कोई परिमाण नहीं हैं । किसके हजार जीभ भी हों तो भी वह उन व्यापक शेषजी के पराक्रम की गणना कैसे कर सकता है ।।१२।।

### भावार्थ दीपिका

गिर्यादिसहितं भूगोलम् । सत्त्वानि प्राणिनः । सहस्रजिह्वोऽपि को गणयेत् ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

पर्वत आदि से यह सम्पूर्ण भूण्डल शेषजी के शिर पर एक रज कण के समान रखा है । सत्त्व अर्थात् जीवगण को हजार जीभ वाला भी अनन्त भगवान् शेष के पराक्रम की गणना कैसे कर सकता है ।।१२।।

**एवंप्रभावो भगवाननन्तो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।**
**मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ।।१३।।**

**अन्वयः**— दुरन्तवीर्योरुगुण प्रभावः भगवान् अनन्तः एवं प्रभावः, रसायाः मूले स्थिताः । आत्मतन्त्रः यः क्ष्मां स्थितये लीलया विभति ।।१३।।

**अनुवाद**— उनके वीर्य, अतिशयगुण वाले भगवान् अनन्त का इस प्रकार का प्रभाव है वे रसातल के मूल में अपनी ही महिमा से स्थित एवं स्वतंत्र है । वे सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के लिए लीला पूर्वक पृथिवी को धारण किए हैं ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

दुरन्तं वीर्यं बलं यस्य । उरवो गुणाअनुभावश्च यस्य स च रसाया भूमेर्मूले स्थितिस्तिष्ठति । आत्मतन्त्र आत्माधारः।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

शेषजी का पराक्रम अनन्त है उनके गुण और प्रभाव अतिशय हैं । वे पृथिवी के मूल में स्थित हैं, वे स्वतन्त्र हैं ।।१३।।

**एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथाकर्म विनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान्कामयमानैः ।।१४।।**

**अनुवाद**— राजन् भोगों की कामना वाले पुरुषों की अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त होने वाली भगवान् की रची हुई ये ही गतियाँ हैं । मैंने अपने गुरु के मुख से जैसा सुना था वैसा सुना दिया ।।१४।।

**भावार्थ दीपिका**

उक्तस्य लोकविभागस्योपयोगं वदन्नुपसंहरति । एता ह्येवेह कामान्कामयमानैर्नृभिरुपगन्तव्या इत्यन्वयः ।।१४।।

**भाव प्रकाशिका**

उपरि वर्णित लोकों के विभाग का उपभोग वर्णन करते हुए उसका उपसंहार करते हैं । कामना करने वाले पुरुषों द्वारा ये गतियाँ जानने योग्य हैं ।।१४।।

**एतावतीर्हि राजन्पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम इति ।।१५।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भूविवरविध्युपवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।।२५।।

**अनुवाद**— मनुष्य को प्रवृत्ति रूप धर्म परिणाम रूप से प्राप्त होने वाली जो परस्पर में विलक्षण ऊँची नीची गतियाँ हैं, वे इतनी ही हैं । इनको तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने सुना दिया अब बताओ क्या सुनाऊँ ।।१५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवे स्कन्ध के भूविवरविध्युप वर्णन नामक पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।**

**भावार्थ दीपिका**

तस्य प्रपञ्चः एतावत्यो विपाकगतयः फलभूता गतयस्ता व्याचख्ये व्याख्यातवानस्मि ।।१५।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ।।२५।।**

**भाव प्रकाशिका**

उसका विस्तार बतलाते हुए कहते हैं इतनी ही कर्मों के फल स्वरूप गतियाँ हैं उन सबों की मैंने व्याख्या कर दी है ।।१५।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पच्चीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२५।।**

# छबीसवाँ अध्याय

## नरकों की विभिन्न गतियों का वर्णन

राजोवाच

**महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ।।१।।**

**राजा परीक्षित ने पूछा**

**अनुवाद**— महर्षे ! लोगों में जो इतनी ऊँची नीची गतियाँ होती हैं, उनमें इतनी विभिन्नता क्यों हैं ?।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

षड्विंशे तु ततोऽधस्तान्नरकस्थितिरुच्यते । पापिनो यत्र दह्यन्ते यमदूतैर्यथायथम् । पुंसो गतय उच्चावचा विसदृशा इति भोगवैचित्र्यमुक्तं तदेतत्कुत इति पृच्छति-महर्ष इति ।।१।।

### भाव प्रकाशिका

छबीसवे अध्याय में उसके भी नीचे नरकों की स्थिति बतलायी गयी है । जहाँ पर पापी जीवों को यमदूत उनके कर्मानुसार ले जाया करते हैं । पुरुषों की जो ऊँची नीची गतियाँ और भोगों की भिन्नता कही गयी है ऐसा क्यों होता है । इस बात को राजा परीक्षित् महर्षे इत्यादि दण्डक से पूछते हैं ॥१॥

### ऋषिरुवाच

**त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥२॥**

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— कर्मों को करने वाले तीन प्रकार के होते हैं सात्त्विक, राजस और तामस, उसके कारण उनकी श्रद्धओं में भी भेद होता है । इस तरह स्वभाव तथा श्रद्धा के भेद से उनके कर्मों की गतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। और ये सभी गतियाँ सभी कर्ताओं की न्यूनाधिक मात्रा में होती भी हैं ॥२॥

### भावार्थ दीपिका

कर्मणः समानत्वेऽपि श्रद्धावैचित्र्यात्फलवैचित्र्यमिति परिहरति-त्रिगुणत्वादिति । सात्त्विक्या श्रद्धया कर्तुः सुखित्वं, राजस्या सुखित्वं दुःखित्वं च, तामस्या दुःखित्वं मूढत्वं च, तत्रापि तासां श्रद्धानां तारतम्यात्सुखादितारतम्यं सर्वेषामित्यर्थः॥२॥

### भाव प्रकाशिका

कर्मों की समानता होने पर भी श्रद्धा की भिन्नता के कारण फल की भी भिन्नता होती है यह कहकर शुकदेवजी उसका परिहार करते हैं । सात्त्विकी श्रद्धा के द्वारा सुख की प्राप्ति होती है, राजासी श्रद्धा के द्वारा कर्ता दुखी होता है और तामसी बुद्धि के द्वारा दुःखित्व और अज्ञानित्व की प्राप्ति होती है । उसमें भी उन श्रद्धाओं के तारतम्य (कमीवेशी) के कारण सुख दुःख आदि में नैयून्याधिक्य सबों को प्राप्त होता है ॥२॥

**अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥३॥**

**अनुवाद**— निषिद्ध रूप कर्म करने वालों की भी उनकी श्रद्धा के अनुसार समान फल नहीं मिलता है । अतएव अनादि अविद्या के वशीभूत कामना पूर्वक किए हुए निषिद्ध कर्मों के परिणाम में जो हजारों प्रकार की नारकीय गतियाँ होती है उनका मैं विस्तार से वर्णन करूँगा ॥३॥

### भावार्थ दीपिका

प्रतिषिद्धं प्रतिषेधः स एव लक्षणं प्रमाणं यस्याधर्मस्य कर्तुः श्रद्धावैसादृश्यं तमसस्तारतम्यात् । तत्रापि कारणं दर्शयन्नाह। अनाद्यविद्याकृतानां कामानां याः सृतयो नरकास्तासां ताः । अथेदानीं ताः प्राचुर्येणानुवर्णयिष्याम इत्यन्वयः ॥३॥

### भाव प्रकाशिका

जिन पाप कर्मों में शास्त्रों के निषेध वाक्य ही प्रमाण हैं उनके कर्ताओं की विसदृशता रूप तमोगुण के तारतम्य के कारण उन सबों का कारणभूत अनादि अविद्या जन्य कामनाओं की जो नरक रूपी सृष्टियाँ हैं उन सबों का मैं विस्तार से वर्णन करूँगा ॥३॥

राजोवाच

**नरका नाम भगवन्किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ।।४।।**

**राजा परीक्षित ने कहा**

**अनुवाद**— हे भगवन् ये नरक इस पृथिवी के कोई देश विशेष हैं ? या त्रिलोकी के बाहर हैं ? त्रिलोकी के भीतर ही हैं ?।।४।।

**भावार्थ दीपिका**

किं भूमावेव देशविशेषाः, त्रिलोक्या ब्रह्माण्डाद्बहिर्वा आवरणेषु मध्येऽन्तराले वा भूमिव्यतिरिक्ते ।।४।।

**भाव प्रकाशिका**

क्या नरक भूमि पर विद्यमान देश विशेष हैं, या अथवा ब्रह्माण्ड से बाहर हैं ? या अथवा ब्रह्माण्ड के आवरणों के भीतर हैं ?।।४।।

ऋषिरुवाच

**अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति ।।५।।**

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— राजन् ! वे त्रिलोकी के भीतर ही है । तथा दक्षिण दिशा में पृथिवी से नीचे जल के ऊपर स्थित हैं । इसी दिशा में अग्निष्वात्त आदि पितृगण रहते हैं वे अत्यन्त एकाग्रता पूर्वक अपने वंश वालों की मङ्गल कामना किया करते हैं ।।५।।

**यत्र ह वाव भगवान्पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु संपरेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ।।६।।**

**अनुवाद**— उस नरक लोक में सूर्य के पुत्र पितृराज भगवान् यम अपने सेवकों के साथ रहते हैं । श्रीभगवान् की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करते हुए, अपने द्वारा वहा लाये गये मृत प्राणियों को उनके पापों के अनुसार दण्ड देते हैं ।।६।।

**भावार्थ दीपिका**

कर्मदोषमनतिक्रम्य दोषमेव दमं पापफलं दण्डं करोति न उल्लङ्घितं भगवच्छासनं येन ।।६।।

**भाव प्रकाशिका**

पुरुषों के पाप कर्म के ही अनुसार उन पापों का दण्ड प्रदान रूप फल श्रीभगवान् की आज्ञा के अनुकूल ही प्रदान करते हैं ।।६।।

**तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रोरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति किंच क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिनरका विविधयातनाभूमयः ।।७।।**

**अनुवाद**— कुछ लोग नरकों की संख्या इक्कीस बतलाते हैं। राजन् अब हम उनके नाम, रूप और लक्षण के अनुसार वर्णन करते हैं। तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमीभोजन, सन्दंश, तप्तभूमि, वज्रकण्टक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयः पान। इनके अतिरिक्त क्षारकर्दम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, आवटणनिरोधन, पर्यावर्तन, तथा सूचीमुख, इस तरह से अठाइस नरक अनेक प्रकार की यातना भूमि हैं ॥७॥

### भावार्थ दीपिका

मतान्तरेणाष्टाविंशतिमाह–किंचेति ॥७॥

### भाव प्रकाशिका

**किञ्च० इत्यादि** के द्वारा दूसरे मत के अनुसार नरकों की संख्या अट्ठाइस बतलाई गयी हैं ॥७॥

**तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपत्यते अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥८॥**

**अनुवाद**— जो दूसरों के धन, सन्तान अथवा स्त्रियों का हरण करता है उसको अत्यन्त भयानक यमदूत कालपाश में बाँधकर बल पूर्वक तामिस्र नरक में डाल देते हैं। उस अन्धकारमय नरक में उसे अन्न जल न देना, डण्डे से पीटना तथा भयभीत करना आदि अनेक प्रकार के उपायों से पीडित किया जाता है। इसके कारणदुःखी होकर वह एका-एक मूर्छित हो जाता है ॥८॥

### भावार्थ दीपिका

पापभेदेन च तत्तन्नरकयातनाभेदं प्रपञ्चयति–यत्र यस्त्वित्यादिना। यात्यमानः पीड्यमानः। एकदैव तदैव ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

पाप भेद के कारण यातना भेद का विस्तार से वर्णन करते हैं। **यात्यमानः** पीड़ित किया जाता है। एकदैव अर्थात् उसी समय ॥८॥

**एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥९॥**

**अनुवाद**— इस तरह जो किसी दूसरे को धोखा देकर उसकी स्त्री का भोग करता है वह अन्धतामिस्र नरक में डाल दिया जाता है। उस नरक की यातनाओं में पड़कर वह जड़ से कटे हुए वृक्ष के समान। वेदना के कारण बेहोश हो जाता है उसकी आँखें भी नष्ट हो जाती हैं। इसलिए इस नरक का नाम अन्ध तामिस्र है ॥९॥

### भावार्थ दीपिका

पुरुषं पतिं वञ्चयित्वा ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

पति को धोखा देकर ॥९॥

**यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥१०॥**

**अनुवाद**— जो पुरुष देह में ही आत्मबुद्धि करता है तथा स्त्री तथा धन आदि के ही ममत्व में पड़ा रहता

है। और दूसरे प्राणियों से द्रोह करता है और अपने कुटुम्ब के पालन में लगा रहता है वह अपने शरीर का त्याग करने पर स्वयं ही जाकर रौरव नरक में गिर पड़ता है ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

एतच्छरीरमहमिति इदं धनादि ममेति मत्वा स्वं च कुटुम्बमेव पुष्णाति। तेनाशुभेन ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

शरीर को ही आत्मा मानता है, धनादि में ममत्व रखता है, और अपने परिवार के ही पोषण में लगा रहता है, उसी पाप के कारण वह रौरव नरक में गिर पड़ता है ॥१०॥

**ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं त एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद्रौरवमित्याहुः रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥११॥**

**अनुवाद**— जो लोग इस लोक में जिस जीव को जिस प्रकार से कष्ट देते हैं, परलोक में वही जीव रुरु होकर उस जीव को उसी प्रकार से कष्ट देता है। इसीलिए इस नरक का नाम रौरव है सर्प से भी अधिक क्रूर स्वभाव वाले एक जीव का नाम है ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

रुरवो भूत्वेति। कर्माण्येव तथा परिणामं प्राप्येत्यर्थः। अतिक्रूरस्य भारशृङ्गाख्यस्य सत्त्वस्यापदेशः संज्ञा ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

कर्म ही रुरु बन जाते हैं। अत्यन्त क्रूर भार शृङ्ग नामक जीव का नाम रुरु हैं ॥११॥

**एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहंभरः॥१२॥**

**अनुवाद**— महारौरव नरक भी ऐसा ही है। जो व्यक्ति दूसरे की परवाह किए बिना केवल अपने ही शरीर का पालन-पोषण करता है इस नरक में वही मनुष जाता है वहाँ कच्चा मांस खाने वाले रुरु मांस के लोभ में उसको काटते हैं ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

क्रव्येण निमित्तेन मांसार्थमित्यर्थ; ॥१२॥

### भाव प्रकाशिका

क्रव्येण निमित्तेन अर्थात् मांस के लोभ में उसको काटते हैं ॥१२॥

**यस्त्विह वा उग्रः पशून्पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥१३॥**

**अनुवाद**— जो मनुष्य इस लोक में अपना पेट पालने के लिए जीवित पशु या पक्षियों का पकाता है उस हृदय हीन राक्षसों से भी गये बीते पुरुष को यमदूत ले जाकर कुम्भीपाक नामक नरक में खौलते हुए तेल में डाल देते हैं ॥१३॥

### भावार्थ दीपिका

प्राणतः सजीवान् उपरन्धयति पचति। अपकरुणं निष्कृपम् ॥१३॥

### भाव प्रकाशिका

जीवित पशुओं अथवा पक्षियों को पकाता है उस निष्कृप पुरुष को ॥१३॥

**यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक्स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिः शरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥१४॥**

**अनुवाद**— जो मनुष्य इस लोक में माता-पिता, ब्राह्मण और वेद से विरोध करता है उसे यमदूत काल सूत्र नरक में डाल देते हैं। इसका घेरा दस हजार योजन में है। इसकी भूमि ताम्बे की है। इसमें जो तपा हुआ मैदान है वह ऊपर से सूर्य और नीचे से के अग्नि दाह से जलता रहता है। वहाँ पहुंचाया हुआ पापी जीव भूख-प्यास से व्याकुल हो जाता है। उसका शरीर बाहर भीतर से जलने लग जाता है। बेचैन होकर वह कभी बैठता है कभी लेटता है कभी छटपटाता है, कभी खड़ा होता है और कभी इधर-उधर दौड़ने लगता है उस नर पशु के शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्ष तक उसकी यह दुर्गति होती है ॥१४॥

**भावार्थ दीपिका**

खले समे देशे ॥१४॥

**भाव प्रकाशिका**

खल अर्थात् समतल भूमि ॥१४॥

**यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते ॥१५॥**

**अनुवाद**— जो पुरुष बिना किसी विपत्ति के अपने वैदिक मार्ग का परित्याग करके पाखण्ड धर्म को अपना लेता है उसको यमदूत असिपत्र वन में ले जाकर कोड़ों से पीटते हैं। जब वह मार से बचने के लिए इधर-उधर भागता है तो उसके सारे अङ्ग तालवन के तलवार के समान तीक्ष्ण और दोनों ओर धार वाले पत्तों से कटने लगता है। उस समय वह वेदना के कारण मैं मर गया इस प्रकार चिल्लाता हैं। पग-पग पर मूर्छित होकर गिरता है। अपने धर्म का परित्याग करके पाखण्ड मत अपनाने के कारण उसे इस प्रकार अपने कुकर्म का फल भोगना पड़ता हैं ॥१५॥

**भावार्थ दीपिका**

स्वधर्महा धर्मत्यागी ॥१५॥

**भाव प्रकाशिका**

स्वधर्महा अर्थात् अपने धर्म का त्याग करने वाला ॥१५॥

**यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥१६॥**

**अनुवाद**— इस लोक में जो राजा या राज कर्मचारी होकर किसी निरपराध मनुष्य को दण्ड देता है अथवा किसी ब्राह्मण को शरीरिक दण्ड देता है, तब वह पापी मरकर सूकर मुख नामक नरक में गिरता है। वहाँ जब महाबली यमदूत उसके अङ्गों की कुचलते हैं उसके बाद वह कोल्हू में पेरा जाता है, ईख के समान पीड़ित होकर जिस प्रकार उसके द्वारा सताये गये निरपराध प्राणी रोते चिल्लाते हैं उसी प्रकार वह आर्त होकर चिल्लाता रोता है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

स्वनयन् रुदन्कश्मलं मोहमुपगतो भवति । अदृष्टदोषास्तेनोपरुद्धाः सन्तो यथा कश्मलमुपगतास्तद्वत् ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

वह आर्त स्वर से रोता हुआ उसी तरह से मूर्छित हो जाता है जिस तरह उसके द्वारा इस लोक में रोकर, चिल्लाकर मूर्छित हो गये रहते हैं ।।१६।।

**यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये के चाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ।।१७।।**

**अनुवाद**— जो पुरुष इस लोक में खटमल आदि जीवों को मारता है वह उनसबों से द्रोह करने के कारण अन्धकूप नरक में जाकर गिरता है । क्योंकि परमात्मा ने स्वयं ही रक्त पान उनकी वृत्ति बना दी है । उसके कारण दूसरों के होने वाले कष्ट का उनको ज्ञान भी नहीं रहता है किन्तु परमात्मा ने मनुष्य की वृत्ति विधिनिषेध पूर्वक बनाई है । उसको दूसरों को होने वाले कष्ट का ज्ञान भी है । उस नरक में वे पशु मृग, पक्षी, सर्प, आदि रेङ्गने वाले जीव बनकर तथा मच्छर खटमल आदि होकर उसको सब ओर से काटते रहते हैं । इससे उसकी निद्रा और शान्ति का भङ्ग हो जाता है । वह बेचैनी के कारण उस अन्धकार में भटकता रहता है जैसे रोगग्रस्त शरीर में जीव छटपटाता है ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

ईश्वरेणोपकल्पिता मनुष्यरक्तपानादिलक्षणा वृत्तिर्येषां मत्कुणादीनाम् । न विविक्ता विज्ञाता परव्यथा यैरविवेकिभिस्तेषाम्। पुरुषेण ब्राह्मणादिभावेन विधिनिषेधपूर्वकमुपकल्पिता वृत्तिर्यस्य । विविक्ता परव्यथा येन विवेकिना । अभिद्रुग्धा हिंसिताः। विहता निद्रारूपा निर्वृतिर्यस्य । न लब्धमवस्थानं येन । स तमसि परिक्रामति ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

खटमल आदि की मनुष्यों आदि का रक्त पीना, वृत्ति ईश्वर ने ही बनाया है । जिन अज्ञानियों को दूसरों को होने वाली पीडा का ज्ञान नहीं । परमात्मा ने मनुष्यों की विधिनिषेध रूप वृत्ति बनाया है । जिन विवेकी मनुष्यों को दूसरों को होने वाली व्यथा का ज्ञान है । अभिद्रुग्धाः अर्थात् मारे गये या पीडित किए गये उन पापी जीवों की उस अन्धकूप में निद्रा और शान्ति का भङ्ग हो जाता है । अलब्ध अवस्थानम् अर्थात् छटपटाता रहता है ।।१७।।

**यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किंचनोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदप्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ।।१८।।**

**अनुवाद**— जो मनुष्य इस लोक में जो कुछ मिले बिना पञ्च यज्ञ किए ही अथवा किसी दूसरे को दिए बिना ही खा लेता है उसको कौए के समान कहा गया है । वह परलोक में कृमि भोजन नामक निकृष्ट नरक में गिरता है । वहाँ लाख योजन लम्बा चौड़ा एक कीड़ों का कुण्ड है, उसी में उसको भी कीड़ा बनकर रहना पड़ता है जब तक अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करने वाले उस पापी के पापों का अच्छी तरह से शोधन नहीं हो जाता है तब तक वह उसी नरक में पड़े हुए कष्ट भोगता रहता है उसे कीड़े नोंचते हैं और वह कीड़ों को खाता है।।१८।।

**भावार्थ दीपिका**

यत्किंचन भक्ष्यादिकमुपनतं प्राप्तं तदसंविभज्य । न निर्मिताः पञ्चयज्ञा येन । अतएव वायसैः संस्तुतः समत्वेन वर्णितः। कृमिभोजनः कृमीनेव भुञ्जानः यावत्तत् यावन्ति योजनानि तत्कृमिकुण्डं तावन्ति वर्षाणि यावद्वा तत्पातकमित्यर्थः । अप्रत्तमसंविभक्तमप्रहुतं चात्तीति तथा सः । अनिर्वेशमकृतप्रायश्चित्तम् ॥१८॥

**भाव प्रकाशिका**

जो कुछ भी भोज्य पदार्थ मिले उसके द्वारा पञ्च महायज्ञों को किए बिना जो खा लेता है वह कौआ कहा गया है। वह जितना योजन बड़ा वह कुण्ड है उतने वर्षो तक उसी कीड़ों को खाकर रहता है । जब तक पञ्चमहायज्ञ किए तथा दूसरों को दिए बिना रूप पाप का प्रायश्चित नहीं हो जाता है तब तक उसे उस नरक कुण्ड में रहना पड़ता है ॥१८॥

**यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद्वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र राजन्यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः सन्दंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥**

**अनुवाद**— जो व्यक्ति इस लोक में चोरी करके अथवा बल पूर्वक ब्राह्मण के अथवा आपत्ति का समय नहीं होने पर भी दूसरे पुरुष के सुवर्ण या रत्नादि का हरण करता है उसको मरने पर यमदूत संदंश नामक नरक में ले जाते हैं और उस कुण्ड में उसको तपाए हुए लोहे के गोलो से दागते हैं और संडसी से उसकी खाल नोचते हैं ॥१९॥

**भावार्थ दीपिका**

निष्कुषन्ति छिन्दन्ति ॥१९॥

**भाव प्रकाशिका**

निष्कुषन्ति अर्थात् नोचते हैं ॥१९॥

**यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ॥२०॥**

**अनुवाद**— जो पुरुष किसी अगम्या स्त्री से व्यभिचार करता है अथवा कोई स्त्री अगम्य पुरुष के साथ व्यभिचार करती है, उस पुरुष अथवा स्त्री को यमदूत सूर्मि मूर्ति नामक नरक कुण्ड में ले जाकर कोड़ों से पीटते हैं और पुरुष को तपाये हुए लोहे की स्त्री मूर्ति से तथा स्त्री को तपाये हुए लोहे के पुरुष मूर्ति से आलिङ्गन कराते हैं॥२०॥

**भावार्थ दीपिका**

तिग्मया तप्तया । सूर्म्या प्रतिमया ॥२०॥

**भाव प्रकाशिका**

लोहे की जलती हुई प्रतिमा से ॥२०॥

**यस्त्विह वे सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति ॥२१॥**

**अनुवाद**— जो पुरुष इस लोक में पशु आदि सबों के साथ व्यभिचार करता है उसके मरने के पश्चात् यमदूत वज्र कण्टक शाल्मली नरक में गिराते हैं या वज्र के समान काण्टों वाले सेमर के वृक्ष पर चढाकर उसको नीचे की ओर खींचते हैं ॥२१॥

**भावार्थ दीपिका**

सर्वाभिगमः पश्वाद्युपगन्ता ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

पशुओं आदि के साथ व्यभिचार करता है ॥२१॥

**ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून्भिन्दन्ति ते संपरेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्तो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥२२॥**

**अनुवाद**— जो राजा अथवा राज पुरुष इस संसार में श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर धर्म की मर्यादा का उच्छेद करता है वह उस मर्यादातिक्रमण के कारण मृत्यु के पश्चात् वैतरणी नदी में डाल दिए जाते है । यह नदी नरकों की खाईं के समान है उसमें मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, नख, हड्डी, चर्बी, मांस और मज्जा आदि गन्दी चीजे भरी रहती है । उसमें गिरने पर उसको जल के जीव नोचते हैं । किन्तु इससे उन मनुष्यों का शरीर नहीं छूटता है । पाप के कारण प्राण उसे वहन किए रहता है ओर वे जीव अपनी करनी का फल समझकर उस दुर्गति को भोगते रहते हैं ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

अपाखण्डाः सत्कुलीनाः सन्तः । द्वितीयान्तपाठे सेतुविशेषणम् । नदीं विशिनष्टि-विण्मूत्रेति ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

अपाखण्ड सद्वंश में उत्पन्न, द्वितीयान्त पाठ होने पर सेतुका विशेषण अपाखण्डा पद को मानना होगा विण्मूत्र० इत्यादि से उस नदी की विशेषता का वर्णन किया गया है ॥२२॥

**ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलपूर्णार्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥२३॥**

**अनुवाद**— जो लोग इस संसार में शौच तथा अचार के नियमों का परित्याग करके इस लोक में शूद्राओं के साथ संबन्ध बनाकर पशुओं के समान आचरण करते हैं वे लोग भी मृत्यु के पश्चात् पीब, विष्ठा, मूत्र, कफ और मल से भरे हुए पूयोद नामक समुद्र में डाल दिए जाते हैं और उन अत्यन्त घृणित वस्तुओं को वे खाते हैं ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

पशुचर्यां स्वेच्छाचारम् ॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

पशुचर्या का अर्थ है अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करते हैं ॥२३॥

**ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि संपरेताँल्लक्ष्यभूतान्यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥२४॥**

**अनुवाद**— इस संसार में जो ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण के लोग कुत्ते और गधे पालते हैं तथा आखेट आदि में लगे रहते है तथा शास्त्र के विपरीत पशुओं का वध करते हैं वे लोग मृत्यु के पश्चात् प्राणरोधन नामक नरक में डाल दिए जाते हैं वहाँ यमदूत उनको लक्ष्य बनाकर बाणों बिंधते हैं ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

अतीर्थे विहितादन्यत्र । विध्यन्तीति प्राणनिरोधो दर्शितः ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

अतीर्थ शास्त्र विपरीत विध्यन्ति कहकर उनके प्राणों का विरोध कहा गया है ॥२४॥

**ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून्विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति ॥२५॥**

**अनुवाद**— जो पाखण्डी पाखण्ड पूर्ण यज्ञों में पशुओं का वध करते हैं उन लोगों को मरने के पश्चात् विशसन नरक में डालकर उन लोगों को वहाँ बहुत दुःख देते हैं ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

निरयपतयो यमपुरुषाः ॥२५॥

**भाव प्रकाशिका**

निरयपतयः अर्थात् यमदूत ॥२५॥

**यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः संपाययन्ति ॥२६॥**

**अनुवाद**— जो मनुष्य कामातुर होकर अपनी सवर्णा भार्या को वीर्य पान कराता है, उस पापी को मरने के बाद यमदूत वीर्य की नदी (लाला भक्ष नामक नरक) में डालकर वीर्यपान कराते हैं ॥२६॥

**भावार्थ दीपिका**

लालाभक्षमाह-यस्त्विति। रेतःपानं कारयन्ति ॥२६॥

**भाव प्रकाशिका**

लालभक्ष नामक नरक का वर्णन करते हैं वीर्य पान कराते हैं ॥२६॥

**ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान्सार्थान्वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥२७॥**

**अनुवाद**— जो कोई चोर या राजा या राजपुरुष इस लोक में किसी के घर में आग लगा देते हैं किसी को विष दे देते हैं, या गावों या व्यापारियों की टोलियों के लूट लेते हैं, उन सबों के मृत्यु के पश्चत् सारमेयादन नामक नरक में वज्र के समान दाँतों वाले सात सौ बीस यमदूत कुत्ते बनकर अत्यधिक वेग से काटने लगते हैं॥२७॥

**भावार्थ दीपिका**

यमदूता ये श्वानः । सरभसं ससंभ्रमम् ॥२७॥

**भाव प्रकाशिका**

यमदूत ही कुत्ते बनकर वेग से काटने लगते हैं ॥२७॥

**यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथंचित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपपति ॥२८॥**

**अनुवाद**— जो मनुष्य किसी की गवाही देने में, व्यापार में अथवा दान मे किसी भी तरह झूठ बोलत है वह मृत्यु के पश्चात् आधार शून्य अवीचिमान नरक में गिरता है । वहाँ उसके सौ योजन ऊँचे पर्वत से नीचे सिर करके गिराया जाता है । उस नरक की पत्थर की भूमि जल के समान प्रतीत होती है । इसीलिए उस नरक का नाम अवीचिमान है । वहाँ गिराये जाने पर भी उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, फिर भी उसके प्राण नहीं निकलते हैं इसीलिए उसको बार-बार ऊपर ले जाकर पटका जाता है ॥२८॥

### भावार्थ दीपिका

द्रव्यविनिमये क्रयविक्रयादौ । निरवकाशे निरालम्बे । अवीचिशब्दार्थमाह-यत्रेति । वीचिस्तरङ्गस्तद्रहितत्वादवीचिः॥२८॥

### भाव प्रकाशिका

द्रव्य विनिमये अर्थात् व्यापार में निरवकाशे अर्थात् अधार शून्य, अवीचि शब्द का अर्थ बतलाते हैं तरङ्ग से रहित ॥२८॥

**यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां निरयं नीतानामुरसि पदाक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥२९॥**

**अनुवाद**— जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी कोई भी व्रत काल में प्रमाद वश मद्यपान करता है, या क्षत्रिय अथवा वैश्य सोमपान करता है । मृत्यु के पश्चात् उसको यमदूत अयः पान नामक नरक में ले जाते हैं और उनकी छाती पर पैर रखकर उनके मुँह में आग से गलाये गये लोहे डालते हैं ॥२९॥

### भावार्थ दीपिका

यो विप्रस्तत्कलत्रं वा सुरां पिबत्यन्योऽपि वा व्रतस्थः सन् राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथः कृतसोमपान इत्यन्वयः । तयोः सोमस्थाने फलचमसविधानात्सोमपाननिषेधाच्च । तथा श्रुतिः- 'न्यग्रोधस्त्रिभिराहृत्य ताः संपिष्य दधन्युपमृज्य तमस्मै भक्षं संप्रयच्छेन्न सोमम्' इति ॥२९॥

### भाव प्रकाशिका

जो ब्राह्मण अथवा ब्राह्मण की पत्नी अथवा दूसरा कोई भी व्रत करके मदिरापान करता है तथ क्षत्रिय या वैश्य सोमपान करते हैं । क्योंकि क्षत्रिय या वैश्य को फलचमस का विधान है सोमपान का निषेध । श्रुति भी करती है । तीन बड़के फल को लाकर उसे पिसे और उसको दही में मिलाकर क्षत्रिय या वैश्य यजमान को पीने के लिए देना चाहिए ॥२९॥

**अथ च यस्त्विह वा आत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना ह्यश्नुते ॥३०॥**

**अनुवाद**— जो मनुष्य इस लोक में निम्न श्रेणी का भी होकर अपने को बड़ा मानने के कारण, जन्म, तप, विद्या, आचार या वर्ण, या आश्रम में अपने से बड़े लोगों का समादर नहीं करता है वह जीवित ही मरे के समान है । मरने के पश्चात् उसको क्षारकर्दम नामक नरक में नीचे करके गिराया जाता है और उसे अनन्त पीडाएँ भोगनी पड़ती हैं ॥३०॥

### भावार्थ दीपिका

स पूर्वमपि मृतक एव सन् मृत्वा ॥३०॥

### भाव प्रकाशिका

पहले से ही मृतक रहता है वह मरकर ॥३०॥

**ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून्खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनाऽवदायासृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथेहपुरुषादाः ॥३१॥**

**अनुवाद**— जो लोग इस संसार में नरमेघ के द्वारा भैरव, यक्ष, राक्षस आदि का पूजन करते हैं तथा जो

स्त्रियाँ पशुओं के समान पुरुषों को खा जाती हैं, उन सबों को वे पशुओं के समान मारे गये यमलोक में राक्षस बनकर तरह की यातना देते हैं और रक्षोगण भोजन नामक नरक में कुल्हाड़ियों से काट-काटकर उस पुरुष का रक्त पीते हैं। मांस भोजी पुरुष उसका जैसे मांस खाकर आनन्दित होते थे उसी प्रकार वे भी उनका रक्त पीते हैं और आनन्दित होकर नाचते गाते हैं ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरुषस्य मेधेन हिंसया भैरवादीन्यजन्ते। याश्च स्त्रियो नरमांसं भक्षयन्ति। कामरूपा रक्षोगणा भूत्वा यथेह ते पुरुषादाः सन्तः पूर्वमनृत्यन्त तद्वत् ॥३१॥

**भाव प्रकाशिका**

पुरुष की हिंसा करके भैरव आदि की पूजा जो लोग करते है तथा जो स्त्रियाँ मनुष्यों के मांस को खाती हैं वे मारे गये ही पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार रूप बनाने वाले राक्षस होकर पुरुषों को खाने वाले होकर मारने वाले पुरुषों ने जैसे नृत्य किया था उसी तरह उन मरने वालों को खाकर नृत्य करते हैं ॥३१॥

**ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैरुपसृतानुपविश्रम्भय्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां चाभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥३२॥**

**अनुवाद**— इस लोक में जो लोग वन या ग्रामों के निरपराध जीवों को जो जीवित रहना चाहते हैं उन सबों को विभिन्न प्रकार के उपायों से फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं और उसके पश्चात् उन सबों का काँटों से बेधकर या रस्सी से बाँधकर खिलवाड़ करते हैं तथा पीड़ाएँ देते हैं, उन्हें भी मृत्यु के पश्चात् यमयातनाओं के समय शूलप्रोत नामक नरक में शूलों से बेधा जाता है। उस समय जो भूख-प्यास लगती है और उनको कंक बटेर आदि तीखी चोचों वाले नरक के भयानक पक्षी नोचते हैं तब वे अपने किए हुए समस्त पापों को याद करते हैं ॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

वैश्रम्भवैर्विश्वासोपायैः। उपविश्रम्भय्य विश्वास्य ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

वैश्रम्भकैः अर्थात् विश्वास के साधनों द्वारा उपविश्रभ्य अर्थात् विश्वास करके ॥३२॥

**ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥३३॥**

**अनुवाद**— इस लोक में जो सर्पों के समान उग्र स्वभाव वाले पुरुष दूसरे जीवों को पीड़ित करते है, वे लोग मृत्यु के पश्चात् दन्दशूक नामक नरक में जाते हैं वहाँ पाँच मुख वाले तथा सात मुख वाले सर्प उनके समीप आकर चूहों के समान उनको निगल जाते हैं ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

बिलेशयान् मूषकान् ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

विलेशय शब्द चूहों का वाचक है ॥३३॥

**ये त्विह वा अन्धा वटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथाऽमुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥३४॥**

**अनुवाद**— जो लोग इस लोक में दूसरे लोगों को अँधेरी खत्तियों कोठों या गुफाओं में बन्द कर देते हैं उन लोगों को यमदूत वैसे ही स्थानों में बन्द करके विषैली आग के धुएँ में सताते हैं। इस नरक को अवटनिरोधन कहते हैं ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

सगरेण सविषेण ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

सगरेण अर्थात् विष से युक्त ॥३४॥

**यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान्वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चापि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति ॥३५॥**

**अनुवाद**— जो गृहस्थ अपने घर आये हुए अतिथियों का क्रोध में भरकर ऐसी कुटिल दृष्टि से देखता है जैसे वह उन्हें भस्म कर देगा वह जब नरक में जाता है जब उस पापदृष्टि के नेत्रों को गिद्ध, कङ्क, काग और बटेर आदि वज्र के समान कठोर चोंच वाले पक्षी बल पूर्वक निराकरण लेते हैं इस नरक को पर्यावर्तन कहते हैं॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

अतिथयोऽज्ञातपूर्वा अभ्यागता ज्ञातपूर्वास्तान्। पापेन वक्रीकृतेन ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

अपरचित आये पुरुष को अतिथि और परिचित आये पुरुष को अभ्यागत कहते हैं पापेन टेढी नजर से ॥३५॥

**यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहंकृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्यमाण-हृदयवदनो निर्वृतिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुष धर्म राजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥**

**अनुवाद**— इस लोक में जो व्यक्ति अपने को धनवान समझकर अभिमान वशात् सबको टेढी नरज से देखता है और सबो पर सन्देह करता है, धन के व्यय और नाश के भय से जिसकामुख सुखा रहता है, अतएव थोड़ा सा भी चैन नहीं पाकर यक्ष के समान सदा धन की ही रक्षा में लगा रहता है तथा पैसा बँचाने के लिए तरह-तरह का पाप करता है वह नराधम सूचीमुख नामक नरक में जाता है। वहाँ उस पापी पुरुष के सभी अङ्गों को यमराज के पुरुष दर्जी के समान सूई धागे से सीते हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

आढ्याभिमतिर्धनगर्वितः। अहंकृतिः श्रेष्ठोऽहमिति मानी। तिर्यक् प्रेक्षणं यस्य। सर्वतो गुर्वादेरपि धनं चोरयिष्यन्तीति विशङ्कमानः। परिशुष्यमाणं हृदयं वदनं च यस्य। अनवगतोऽप्राप्तः। तस्यार्थस्योत्पादनादिभिः शमलं गृह्णातीति तथा। परिवयन्ति सूत्रप्रोतं कुर्वन्ति ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

धन के गर्व से गर्वित तथा मैं श्रेष्ठ हूँ इस तरह से मानने वाला वह गुरुजन इत्यादि पर इस तरह से सन्देह करता है कि ये लोग धन चुरा लेंगे । धन की चिन्ता से उसका मुख सुखा रहता है । अशान्त रहने वाला उस धन को प्राप्त करने के लिए जो पाप करता है, यमदूत उसके अङ्गों को सूई डोरा से सीने का काम करते हैं॥३६॥

**एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे तु उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥**

**अनुवाद**— यमलोक में इस तरह के सैकड़ो हजारों नरक हैं, उनमें जिनका यहाँ उल्लेख किया गया है और जिनके विषय में कुछ नहीं कहा गया है, वे सभी पापी जीव उन नरकों में बारी-बारी से जाते हैं । इस तरह नरक और स्वर्ग के भोग से जब उनके अधिकांश पुण्य तथा पाप क्षीण होते हैं तब वे बचे हुए पुण्य और पाप को लेकर वे जीव पुनः इस लोक में जन्म लेने के लिए लौट आते हैं ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**

इतरत्र स्वर्गादौ । इह मर्त्यलोके पुनर्भवे पुनर्जन्मनिमित्तम् । उभयोर्धर्माधर्मयोः शेषाभ्याम् ॥३७॥

**भाव प्रकाशिका**

इतरत्र अर्थात् स्वर्ग आदि में वे जीव बचे हुए पुण्य पापरूप कर्मों के साथ इस लोक में जन्म लेने के लिए लौट आते हैं ॥३७॥

**निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवते नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति श्रृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥३८॥**

**अनुवाद**— निवृत्त रूप जो मार्ग है उसका वर्णन दूसरे ही स्कन्ध में कह दिया गया है । पुराणों में जिसका चौदह भुवन के रूप में वर्णन किया गया है वह ब्रह्माण्ड कोश इतना ही है । वह पुरुष भगवान् नारायण का अपनी माया के गुणों से युक्त अत्यन्त स्थूल रूप है । इसका वर्णन मैंने आपको सुना दिया । उपनिषदों में वर्णित परमात्मा का निर्गुण स्वरूप मन और बुद्धि का विषय नहीं बनता है तो भी जो पुरुष इस स्थूल रूप को आदर पूर्वक पढ़ता, सुनता और सुनाता है उसकी बुद्धि भक्ति एवं श्रद्धा के कारण शुद्ध हो जाती है तथा वह उस सूक्ष्म रूप का भी अनुभव करता है ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

आदावेव द्वितीयस्कन्धे 'वैश्वानरं याति' इत्यादिना उपगेयमौपनिषदं रूपम् । श्रद्धाभक्तिभ्यां विशुद्धा बुद्धिर्यस्य ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरे स्कन्ध में ही **वैश्वानरं आदि इत्यादि** के द्वारा वर्णित है श्रीभगवान् का औपनिषद रूप तो श्रद्धा और भक्ति के द्वारा जिसकी बुद्धि विशुद्ध हो गयी है, वही जान सकता है ॥३८॥

**श्रुत्वा स्थूलं यथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः । स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति॥३९॥**

**अन्वयः**— यतिः भगवतः स्थूलं सूक्ष्मं च रूपं श्रुत्वा स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥३९॥

**अनुवाद**— यति को चाहिए कि वह भगवान् के स्थूल तथा सूक्ष्म रूप का श्रवण करके पहले स्थूल रूप में अपने मन को स्थिर करे उसके पश्चात् वहाँ से चित्त को धीरे-धीरे हटाकर उसे सूक्ष्म में लगाये ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

यथायथावच्छ्रुत्वा ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

यथावत अर्थात् ठीक-ठीक सुनकर ।।३९।।

**भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ।**
**गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ।।४०।।**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः।।२६।।

**अन्वयः—** हे नृप ! भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभः समुद्र पातालदिङ्नरकभागण लोक संस्था तवमया गीता, अद्भुतम् ईश्वरस्य स्थूलं वपुः सकल जीव निकाय धाम ।।४०।।

**अनुवाद—** राजन् पृथिवी, द्वीप, वर्ष, सरित, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल दिशाएँ, नरक, ज्योतिर्गण तथा लोको की स्थिति को मैंने आपको सुनाया यह श्रीभगवान् का अद्भूत स्थूल रूप है और यह समस्त जीव समूह का आश्रय है ।।४०।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत नामक महापुराण की महर्षि व्यास रचित पारमहंस्य संहिता के अन्तर्गत पाञ्चवे स्कन्ध में नरकों का वर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।**

भावार्थ दीपिका

कथंभूता संस्था । सकलानां जीवनिकायानां धाम आश्रयभूतं वपुः ।।४०।। पञ्चमस्कन्धसंबन्धिपदभावार्थदीपनैः । प्रीयतां परमानन्दनृहरिर्बालभाषितैः ।।१।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां पञ्चमस्कन्धटीकायां षड्विंशतितमोऽध्यायः।।२६।।**

**समाप्तोऽयं पञ्चमः स्कन्धः ।।५।।**

भाव प्रकाशिका

किस प्रकार की स्थिति ? सम्पूर्ण जीव समूह के आश्रय भूत धाम (शरीर) ।।४०।। पाँचवे स्कन्ध के पदों के अर्थ प्रकाशन रूप मुझ अज्ञानी के वचनों द्वारा परमानन्द स्वरूप श्रीनृंसहभगवान् प्रसन्न होएँ ।।१।।

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के श्रीधरस्वामी द्वारा प्रणीत पञ्चम स्कन्ध के भावार्थ दीपिका टीका के छब्बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२६।।**

**इस तरह पाँचवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।।५।।**

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

# छठा स्कन्ध

## पहला अध्याय

### अजामिलोपाख्यान का प्रारम्भ

राजोवाच

**निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा । क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ।।१।।**

**अन्वयः**— भगवता आदौ यथा निवृत्ति मार्ग कथितः क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यद संसृतिः ।।१।।

**राजा परीक्षित् ने कहा**

**अनुवाद**— भगवान् आपने पहले द्वितीय स्कन्ध में निवृत्ति मार्ग का वर्णन किया है उसके द्वारा अर्चिरादि मार्ग सेगया हुआ जीव क्रमशः ब्रह्मलोक में जाता है और बाद में ब्रह्माजी के साथ ही मुक्त हो जाता है ।।१।।

**भावार्थ दीपिका**

पुण्यारण्ये नृसिंहैकनामसिंहो विराजते । यन्नादतः पलायन्ते महाकल्मषकुञ्जराः । विसर्गसंभवान् जीवान्स्वमर्यादासु संस्थितान् । विष्णुः पात्यखिलै रूपैरित्येवं पञ्चमे स्थितम् । अध्यायैकोनविंशत्या षष्ठे पोषणमुच्यते । अतिलङ्घितमर्यादभक्तरक्षणलक्षणम् । अजामिलो मनुष्येषु महापापो यथाऽवितः । विश्वरूपादिघाती च यथा देवेषु वासवः । अजामिलस्य भक्तत्वं विष्णुदूतैर्निरूपितम् । सङ्केतभगवन्नामपुत्रस्नेहानुषङ्गजम् । इन्द्रोऽपि भगवद्भक्तः सख्येनोपेन्द्रसेवकः । तदधीनसुरैश्वर्यशत्रुनिर्जयजीवितः । तत्रादौ त्रिभिरध्यायैरजामिलकथोच्यते । विश्वरूपकथा षड्भिरिन्द्रदोषोक्ते ये ततः । इन्द्रस्यैव तु दोषोक्त्यै वृत्राख्यानं ततोऽष्टभिः । द्वाभ्यां च मरुदाख्यानमेव प्रकरणक्रमः । तत्रादौ प्रथमे विष्णोर्दूतैः पातकिमोचने । तत्पापख्यापनायोक्तं याम्यैर्धर्मादिलक्षणम् । अथ षष्ठस्कन्धो व्याख्यायते । पूर्वोक्तानुवादपूर्वकं निरन्तरोक्तनरकपरिहारोपायं पृच्छति निवृत्ति मार्ग इति षड्भिः । आदौ द्वितीय स्कन्धे वैश्वानरं याती त्यादिना । भगवता । यथायथावत् । उद्येन मार्गेण। क्रमेण योगोऽर्चिरादिप्राप्तिस्तेनोपलब्धो ब्रह्मा तेन सहासंसृतिर्मोक्षो भवति । 'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् । इति वचनात् ।।१।।

**भाव प्रकाशिका**

पुण्य रूपी वन में नृसिंह नामक एक सिंह विराजते हैं । उनके सिंहनाद को सुनकर पापरूप हाथी पलायन कर जाते हैं ।।१।। अपनी मर्यादा में रहने वाले विसर्ग में उत्पन्न होने वाले जीवों को भगवान् विष्णु अपने सभी रूपों से रक्षा करते हैं, इस अर्थ का प्रतिपादन पाँचवें स्कन्ध में किया गया है । अब छठे स्कन्ध में उन्नीस अध्यायों द्वारा भक्तों कि निर्मर्यादरक्षण रूप पोषण का वर्णन किया जा रहा है । मनुष्यों में महापापी अजामिल की भगवान् ने जिस तरह से रक्षा की उसी तरह देवताओं में महापापी विश्वरूप का वध करने वाले इन्द्र की भी भगवान् ने रक्षा की । पुत्र के स्नेह से युक्त भगवान् नाम का सङ्केत करने वाले नारायण नाम के द्वारा अजामिल के भक्तत्व का निरूपण भगवान् विष्णु के दूतों ने किया है । सख्य भक्ति के द्वारा भगवान् उपेन्द्र का सेवक इन्द्र भी भगवद्

भक्त है श्रीभगवान् के द्वारा ही इन्द्र को देवताओं का ऐश्वर्य प्राप्त है तथा शुत्र पराजय एवं इन्द्र का जीवन है। सर्वप्रथम इस स्कन्ध के तीन अध्यायों में अजामिल की कथा वर्णित है। उसके पश्चात् छह अध्यायों मे इन्द्र का दोष बतलाने के लिए विश्वरूप की कथा है। इन्द्र के ही दोष को बतलाने के लए आठ अध्यायों में वृत्रासुर की कथा वर्णित है। उसके बाददो अध्यायों में मरुतो की कथा है। यही इस स्कन्ध के प्रकरणे का क्रम है। उसमें भी पहले अध्याय में विष्णु दूतों द्वारा पापी को छुड़ा लिए जाने पर अजामिल के पापों को बतलाने के लिए यमदूतों ने धर्म आदि के लक्षण का वर्णन किया है। यहाँ से छठे स्कन्ध की व्याख्या प्रारम्भ होती है। पूर्वोक्त विषयों का अनुवाद पूर्वक इससे पहले वर्णित नरकों से बचने के उपायों को **निवृत्तमार्गः इत्यादि** छह श्लोकों द्वारा राजा परीक्षित् पूछते है। आदौ अर्थात् द्वितीय स्कन्ध में **वैश्वानरं याति० इत्यादि** के द्वारा आपने ठीक-ठीक वर्णन किया है। जिस मार्ग के द्वारा क्रमशः अर्चिरादि मार्ग की प्राप्ति के द्वारा जीव को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है और ब्रह्माजी के साथ ही उस जीव की मुक्ति हो जाती है। कहा भी गया है कि महाप्रलय काल के उपस्थित होने पर ब्रह्मलोक में गये हुए सभी जीव द्वितीय परार्द्ध के अन्त में कृत-कृत्य होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं॥१॥

**प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने । येऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥२॥**

**अन्वयः**— हे मुने त्रैगुण्य विषयः प्रवृत्ति लक्षणः चैव यः असौ अलीन प्रकृतिः पुनः पुनः गुण सर्गः ॥२॥

**अनुवाद**— हे मुने ! आपने त्रिगुणात्मक स्वर्गादि की प्राप्ति होती है। उस प्रवृत्ति मार्ग का भी विस्तार से वर्णन किया है। उसमें प्रकृति के लीन नहीं होने के कारण बार-बार जन्म लेना पड़ता है ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

त्रैगुण्यं स्वर्गादिसुखं तदेव विषयः प्राप्यं यस्य। न लीना प्रकृतिर्यस्य तस्य पुंसः। पुनः पुनर्गुणसर्गो भोगार्थं देहारम्भरूपो यो मार्गः स च कथितस्तृतीये 'दक्षिणेन पथाऽर्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते' इत्यादिना ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

जिसके द्वारा स्वर्गादि सुख की प्राप्ति होती है। जिस पुरुष की प्रकृति का लय नहीं होता है उसको बार-बार जिसमें शरीर धारण करना पड़ता है। उस प्रवृत्ति मार्ग का आपने तृतीय स्कन्ध में वर्णन किया है। उसको आपने **दक्षिणेन० इत्यादि** श्लोक से बतलाया है कि दक्षिण अर्यमा के मार्ग से जाने वाले जीव पितृलोक में जाते हैं ॥२॥

**अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः । मन्वन्तरश्च व्याख्यात आद्यः स्वायंभुवो यतः ॥३॥**

**अन्वयः**— अधर्म लक्षणाः नाना नरकाः च अनुवर्णिताः यतः स्वायम्भुवः आद्यः मनवन्तरः च व्याख्यातः ॥३॥

**अनुवाद**— आपने अधर्म के फलरूप अनेक नरकों का भी वर्णन किया है। जिसके अधिपति स्वायम्भुव मनु अधिपति थे उस प्रथम मन्वन्तर का भी चौथे स्कन्ध में आपने वर्णन किया है ॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

अनुवर्णिता निरन्तराध्याये। व्याख्यातश्चतुर्थस्यादौ। यतो यस्मिन् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

इससे ठीक पहले के अध्याय में नरकों का वर्णन किया है। जिसमें स्वायम्भुव मनु अधिपति थे उस प्रथम मन्वन्तर का भी चौथे स्कन्ध में वर्णन आपने किया है ॥३॥

**प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च । द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥४॥**
**धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः । ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥५॥**

**अन्वयः**— प्रियव्रतोत्तानपदोः तत् चरितानि च द्वीप-वर्ष-समुद्रद्रि-नद्युद्यान् नस्पतीन्। ज्योतिषाम् विवराणां च यथ इदम् विभुः असृजत् तत् सर्वं भवता वर्णितमितिशेषः ॥४-५॥

**अनुवाद**— इसके अतिरिक्त अपने चतुर्थ तथा पञ्चम स्कन्धों में प्रियव्रत ओर उत्तानपाद के वंशों उनके चरित्रों, द्वीप वर्ष, समुद्र, पर्वत, नदी, उद्यान तथा विभिन्न द्वीपों के वृक्षों का भूमण्डल के संस्थान (स्थिति) उसमें विद्यमान द्वीपों उसके वर्ष आदि विभागों, उनके लक्षण और परिमाण नक्षत्रों की स्थिति, (अतल, वितल) आदि सात भूविरों (पातालों) की तथा श्रीभगवान् ने इन सबों की है जैसे सृष्टि की उन सबों का आपने विस्तार से वर्णन किया है ।।४-५।।

### भावार्थ दीपिका

द्वीपादीन् भागतो लक्षणतो मानतश्च । धरामण्डलस्य संस्थानं ज्योतिषां विवराणां चेदं संस्थानं विभुर्यथाऽसृजत्तथा व्याख्यातमित्यर्थः ।।४-५।।

### भाव प्रकाशिका

द्वीपों आदि की अनेक वर्षादि विभागों का, उनके परिमाणों को भूण्डल की स्थिति, नक्षत्रों, भूविवरों (अतल आदि सात पातालों) इस जगत् की स्थिति तथा परमात्मा ने जैसे इस जगत् की सृष्टि की है, इन सारी बातों की आपने व्याख्या की है ।।४-५।।

**अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः । नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।६।।**

**अन्वयः**— हे महाभाग ! नरः यथा, नाना उग्रयातनात् नरकान् न इयात् तत् मे अधुना इह व्याख्यातुम् अर्हसि ।।६।।

**अनुवाद**— हे महाभाग ! जिसका अनुष्ठान करने से मनुष्य भयङ्कर यातनाओं वाले नरकों में नहीं जाता है आप कृपा करके अब इस स्कन्ध में उसे बतलाइये ।।६।।

### भावार्थ दीपिका

नाना उग्रा यातना येषु तान्नरकान् यथा येनोपायेन न इयान्न गच्छेत्तन्मेऽधुना व्याख्यातुमर्हसि ।।६।।

### भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार की भयङ्कर यातनाओं को जिनमें सहना पड़ता उन अनेक प्रकार के नरकों में जिस प्रकार से मनुष्य को नहीं जाना पड़ता है इस स्कन्ध में आप उन्हीं साधनों का वर्णन करें ।।६।।

श्रीशुक उवाच

**न चेदिहैवापचितिं यथांहसः कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ।**
**ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ।।७।।**

**अन्वयः**— मनउक्तिपाणिभिः यथा कृतस्य अंहसः चेद इहैव न कुर्यात् ये मे भवतः तिग्म यातनाः कीर्तिताः तान् नरकान् स वै प्रेत्य ध्रुवं उपैति ।।७।।

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— मनुष्य मन, वाणी और शरीर से जिन पाप कर्मों को किया है उन पापों का यदि इस लोक में अच्छी तरह से प्रायश्चित नहीं किया है तो जिन भयङ्कर यातनाओं वाले नरकों को मैंने आपको सुनाया है, उन नरकों में उसको अवश्य जाना पड़ता है ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र तावन्मन्वाद्युक्तं प्रायश्चित्तं विना नरका दुर्निवारा इत्याह न चेदिति द्वाभ्याम् । मनउक्तिपाणिभिर्मनोवाक्कायैः कृतस्यांहसस्तैरेवेहैवापचितिं प्रायश्चित्तं न कुर्याच्चेत्तर्हि स पुरुषः प्रेत्य मृत्वा नरकान्ध्रुवमुपैति । मे मया ये भवतः कीर्तिताः। तिग्मा दारुणा यातना येषु तान् ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

मनु आदि के द्वारा बतलाये गये प्रायश्चित्तों को किए बिना नरकों में अवश्य जाना पड़ता है । इस बात को **न चेत० इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । मन वाणी तथा शरीर के द्वारा किए गये पापों का मनुष्य यदि इस लोक में ही प्रायश्चित नहीं कर लेता है तो फिर उस मनुष्य को मृत्यु के पश्चात् निश्चित रूप से उन नरकों में जाना पड़ता है जिन नरकों का वर्णन मैंने आपको सुनाया है ॥७॥

**तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यतात्मना ।**
**दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक्चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥**

**अन्वयः**— तस्मात् इह मृत्योः अविपद्यता आत्मनापाप निष्कृतौ दोषस्य गुरुलाघवं दृष्ट्वा आशु पतेत यथा निदानवित् भिषक् रुजा चिकित्सेत् ॥८॥

**अनुवाद**— इसलिए मृत्यु तथा रोग से पहले शरीर के स्वास्थ रहने पर ही बड़ी सावधानी पूर्वक लोक में ही पापों का प्रायश्चित करते समय पापों की गुरुता और लघुता का विचार करके शीघ्र ही प्रयास उसी प्रकार करना चाहिए जिस तरह मर्मज्ञ चिकित्सक दोष की गुरुता और लघुता का विचार करके ही उसकी चिकित्सा करता है॥८॥

### भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं तस्मात्पापस्य प्रायश्चित्ते यतेत । कदा । मृत्योः पुरैव । तत्रापि अविपद्यता अक्षीयमाणेनात्मना देहेन । यद्वा अविपत् विपत्तिरहितो यावत् । यतात्मना संयतेन मनसा । तत्राप्याशु । अन्यथा 'अतीव चिरकाले तु द्विगुणं व्रतमर्हति' इति द्वैगुण्यापत्तेः । तत्र च पापस्य महत्त्वमल्पत्वं चावेक्ष्य तदनुरूपे प्रायश्चित्ते यतेत । रुजां रोगाणां निदानवित् यथा वैद्यस्तदनुरूपं चिकित्सेत तद्वत् ॥८॥

### भाव प्रकाशिका

चूकि ऐसी बात है अतएव प्रायचित्त का प्रयास स्वस्थ शरीर के रहते ही शीघ्र ही करे अथवा विपत्ति आने से पहले ही करे । वह भी सावधानी पूर्वक करे । शीघ्र नहीं करने पर दो गुना करना पड़ता है । पाप की गुरुता और लघुता का विचार करके करे । जैसे वैद्य रोग की गुरुता और लघुता को जानकर ही चिकित्सा करता है ॥८॥

राजोवाच

**दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् । करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥९॥**

**अन्वयः**— दृष्टश्रुताभ्यां यत् पापं आत्मनः अहितम् इति जानन् अपि, विवशः भूयः करोति अथो प्रायश्चित्तम् कथम्॥९॥

### राजा परीक्षित ने कहा

**अनुवाद**— भगवन् मनुष्य राजदण्ड समन दण्ड आदि लौकिक और शास्त्रोक्त नरक गमन आदि पार लौकिक कष्टों से यह जानकर भी कि पाप उसका शत्रु है फिर भी पाप की वासनाओं से विवश होकर वह बार-बार उन्हीं कर्मों को करने लगता है अतएव उसके पापों का प्रायश्चित्त कैसे सम्भव है ?॥९॥

### भावार्थ दीपिका

अत्र चोदयति द्वाभ्याम् । दृष्टं राजदण्डादि । श्रुतं नरकपातादि । ताभ्यामात्मनः पापमहितं जानन्नपि भूयः प्रायश्चित्तानन्तरं करोति । अथो अतः कारणाद्वादशाब्दादि कथं प्रायश्चित्तम् । तेन समूलस्य दोषस्यानिवृत्तेः । निवृत्तौ वा पुनश्च पापप्ररोहयोगादिति भावः ॥९॥

### भाव प्रकाशिका

राजा दो श्लोकों से शङ्का करते हैं— लौकिक राजदण्ड और शास्त्र प्रोक्त नरक गमन अदि इन दोनों के द्वारा यह जानकर भी कि पाप आत्मा का शत्रु है किन्तु प्रायश्चित्त के पश्चात् भी पापों को करता है। अतएव बारह वर्षों आदि में किए जाने वाले प्रायश्चित्त को कैसे किया जा सकता है। अतएव दोष की समूल निवृत्ति नहीं होने से पुनः पापों का बढ़ना सम्भव है ॥९॥

**क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात्क्वचिच्चरति तत्पुनः । प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥१०॥**

**अन्वयः**— क्वचित् अभद्रात् निवर्तते क्वचित् तत्पुनः चरति, अतः प्रायश्चित्तम् कुञ्जर शौचवत् अपार्थं मन्ये ॥१०॥

**अनुवाद**— मनुष्य कभी प्रायश्चित्तों के द्वारा पापों से छुटकारा पा लेता है कभी वह उन पापों को वासनावशात् पुनः करने लगता है, अतएव जिसतरह हाथी स्नान करने के बाद पुनः अपने ऊपर धूल डाल लेता हैं उसी तरह मैं प्रायश्चित को व्यर्थ समझता हूँ ॥१०॥

### भावार्थ दीपिका

किञ्च क्वचित्कदाचिदभद्रात्पापान्निवर्तते। क्वचित्तदेव पुनराचरति। यथा कुञ्जरः स्नातोऽपि रजोभिरात्मानं मलिनीकरोति तथा पापस्य पुनर्दुर्निवारत्वेन नरकपातस्यावश्यंभावित्वात्प्रायश्चित्तं व्यर्थमिति मन्ये ॥१०॥

### भाव प्रकाशिका

कभी तो मनुष्य प्रायश्चित्तानुष्ठान के द्वारा पाप मुक्त हो जाता है, किन्तु पाप की वासना के कारण वह उन्हीं पापों को करने लगता है। अतएव प्रायश्चित्त तो उसी तरह व्यर्थ है जिस तरह हाथी स्नान करने के पश्चात् पुनः अपने ऊपर धूल डालकर अपने को मलिन बना देता है ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

**कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते । अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥**

**अन्वयः**— कर्मणा हि आत्यन्तिक कर्म निर्हारः न इष्यते, अविद्वद् अधिकारीत्वात् प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— कर्मों के द्वारा कर्मों का आत्यन्तिक विनाश सम्भव नहीं है। क्योंकि कर्मों का अधिकारी अज्ञानी होता है, अतएव वास्तविक प्रायश्चित्त तो तत्त्वज्ञान है ॥११॥

### भावार्थ दीपिका

परिहरति। कर्मणा कृच्छ्रादिप्रायश्चित्तेन कर्मणः पापस्य निर्हारो नाश आत्यन्तिकः समूलो नहीष्यते। अविद्वानधिकारी यस्मिंस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्। अतोऽविद्याया नाशाभावान्नष्टेऽपि तस्मिन्पापे तत्संस्कारेण पापान्तरस्य पुनःपुनः प्ररोहो भवत्येव। किं तर्हि मुख्यं प्रायश्चित्तं तदाह। प्रायश्चित्तं तु विमर्शनं ज्ञानम् ॥११॥

### भाव प्रकाशिका

उपयुक्त सन्देह का परिहार करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि कृच्छ्र चान्द्रायणादि के द्वारा पापों का समूल नाश एसलिए नहीं हो सकता है कि कर्मों का अधिकारी अज्ञानी होता है। अतएव अविद्या का नाश नहीं होने के कारण इस पाप के नष्ट हो जाने पर भी उसके संस्कार के द्वारा पुनः पाप का होना सम्भव ही है। अतएव पापों का मुख्य प्रायश्चित्त ज्ञान है ॥११॥

**नाश्नत्तः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि । एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ।।१२।।**

**अन्वयः**— राजन् ! पथ्यमेवान्नं अशनतः व्याधयः नहि अभिभवन्ति, एवं नियमकृत् शनैः क्षेमाय कल्पते ।।१२।।

**अनुवाद**— राजन् ! केवल पथ्य अन्न का ही सेवन करने वाले को व्याधियाँ ग्रस्त नहीं कर पाती है, उसी तरह नियम का पालन करने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे पाप की वासनाओं से मुक्त होकर तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लेता है।।१२।।

**भावार्थ दीपिका**

तत्तु नित्यमप्रमत्तः शनैर्लभते नान्य इति सदृष्टान्तमाह–नेति । पथ्यमेवान्नमश्नतः पुरुषान् यथा व्याधयो न बाधन्ते तथा नियमादिकर्ता क्षेमाय तत्त्वज्ञानाय समर्थो भवति ।।१२।।

**भाव प्रकाशिका**

सदा सावधान रहने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे ज्ञान को प्राप्त कर लेता है इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं । जैसे पथ्य अन्न का भोजन करने वाले पुरुषों को रोग बाधित नहीं करते हैं उसी तरह नियम पूर्वक रहने वाला मनुष्य धीरे-धीरे तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लेता है ।।१२।।

**तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च । त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च।।१३।।**
**देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः । क्षिपन्त्यघं महदपि वेणु गुल्ममिवानलः ।।१४।।**

**अन्वयः**— अनलः वेणु गुल्मम् इव तपसा, ब्रह्मचर्येण दमेन च शमेन च, त्यागेन, सत्यशौचाभ्याम् यमेन नियसेन च श्रद्धयान्विताः धीराः धर्मज्ञाः महदपि अधं क्षिपन्ति ।।१३-१४।।

**अनुवाद**— जिस तरह बाँसों की झुरमुट में लगी आग बांसों की झुरमुट को जला देती है, उसी तरह तपस्या, ब्रह्मचर्य, शम, दम, त्याग सत्य और बाह्यन्तर शौच यम तथा नियम के द्वारा श्रद्धा सम्पन्न ज्ञानी पुरुष बड़े-से-बड़े भी पाप को विनष्ट कर देते हैं ।।१३-१४।।

**भावार्थ दीपिका**

एतदेव विशदयति द्वाभ्याम् । तपसा ऐकाग्र्येण । 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमं तपः' इति स्मृतेः । ब्रह्मचर्येणाष्टाङ्गेन। तदुक्तम् 'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च । एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः । विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ।' इति शमो मनसो नियमनम् । दमो बाह्येन्द्रियाणाम् । त्यागो दानम् । यमोऽहिंसादिः । नियमो जपादिः ।।१३-१४।।

**भाव प्रकाशिका**

उपर्युक्त अर्थ का दो श्लाकों द्वारा विस्तार से वर्णन करते हैं । तपस्या अर्थात् एकाग्रता के द्वारा । स्मृति भी कहती है, मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता सर्वश्रेष्ठ तप है । अष्टाङ्ग ब्रह्मचर्य के द्वारा । अष्टाङ्ग ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है— **स्मरण कीर्तनम्० इत्यादि** अर्थात् स्त्रियों का स्मरण करना, उनका नाम लेना, हँसी मजाक करना, स्त्रियों को देखना, उनसे रहस्य की बातें करना, मन में स्त्रियों का सङ्कल्प करना, उनका निश्चय करना मैथुन करना, ये मैथुन के आठ अङ्ग हैं, यह मनीषी पुरुष कहते हैं । इन सबों के विपरीत इन सबों से वचना ही आठ प्रकार का ब्रह्मचर्य है । मन के नियमन को शम कहते हैं, बाह्येन्द्रियों को अपने वश में करना दम कहलाता है । दान देने को त्याग कहते हैं । अहिंसा इत्यादि का पालन यम है और जप आदि को करना ही नियम है ।।१३-१४।।

**केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः । अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ।।१५।।**

**अन्वयः**— केचित् वासुदेवपरायणाः केवलया भक्त्या नीहारम् भास्कर इव कार्त्स्न्येन अधं धुन्वन्ति ।।१५।।

**अनुवाद**— कुछ श्रीभगवान् के ही शरण में रहने वाले भक्त जन केवल भक्ति के द्वारा अपने सम्पूर्ण पापों को उसी तरह विनष्ट कर देते हैं जिस तरह भगवान् सूर्य कुहरे को विनष्ट कर देते हैं ।।१५।।

### भावार्थ दीपिका

अस्यातिदुष्करत्वान्मुख्यमेवान्यत्प्रायश्चित्तमाह । केचिदिति अनेनैवंभूता भक्तिप्रधाना विरला इति दर्शयति । केवलया तपआदिनिरपेक्षया। वासुदेवपरायणा इति नाधिकारिविशेषणमेतत् किंत्वन्येषां, श्रद्धया तत्राप्रवृत्तेरर्थात्तेष्वेव पर्यवसानादनुवादमात्रम्।।१५।।

### भाव प्रकाशिका

तस्या आदि साधनों के अत्यन्त दुष्कर दूसरे ही मुख्य प्रायश्चित बतलाते हैं । **केचित्** पद के द्वारा भक्ति प्रधान पुरुषों कै वैरल्य को बतलाया गया है । केवलया कहकर यह बतलाया गया है कि भक्ति के तप आदि साधनों की अपेक्षा नहीं होती है । वासुदेव परायणाः यह अधिकारी का विशेषण नहीं है अपितु दूसरों का श्रद्धा के द्वारा उसमें प्रवृत्ति नहीं होने के कारण, अर्थतः उन सबों को पर्यवासन होने से अनुवाद मात्र है ।।१५।।

**न तथा ह्यघवान् राजन्पूयेत तपआदिभिः । यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ।।१६।।**

**अन्वयः**— राजन् अघवान् तप आदिभिः तथा न पूयेत यथा कृष्णार्पितप्राण तत्पुरुषनिषेवया पूयेत ।।१६।।

**अनुवाद**— राजन् पापी पुरुष तपस्या आदि से उतना नहीं पवित्र होता है जितना कि श्रीभगवान् को आत्म समर्पण करने से तथा भगवद् भक्तों की सेवा करने से पापापनोदन होता है ।।१६।।

### भावार्थ दीपिका

एतच्च ज्ञानमार्गादपि श्रेष्ठमित्याह । न तथा पूयेत शुध्येत् । तत्पूरुषनिषेवया कृष्णेऽर्पिताः प्राणा येन ।।१६।।

### भाव प्रकाशिका

यह भक्ति का मार्ग ज्ञान मार्ग से भी श्रेष्ठ है इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । तपस्या आदि से पापी उतना शुद्ध नहीं हो सकता है । भगवान् के भक्तों की सेवा करने से तथा भगवान् कृष्ण को ही आत्म समर्पण करने जितना शुद्ध होता है ।।१६।।

**सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः । सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ।।१७।।**

**अन्वयः**— लोके अयं हि पन्थाः सध्रीचीनः, क्षेमः अकुतोभयः । यत्र सुशीला,नारायण परायणाः साधवः ।।१७।।

**अनुवाद**— संसार में भक्ति का ही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है, कल्याणमय और निर्भय है । इस मार्ग पर शील गुण सम्पन्न, भगवान् नारायण के भक्त ही चला करते हैं ।।१७।।

### भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः-सध्रीचीनः समीचीनः । अयं पन्था भक्तिमार्गः । यतः क्षेमः । क्षेमत्वे हेतुः-न कुतश्चिद्विघ्नादेर्भयं यस्मिन्। तदेवाह । सुशीलाः कृपालवः । साधवो निष्कामाः । यत्र यस्मिन्मार्गे धर्मनिष्ठाः । अतो न ज्ञानमार्ग इवासहायतानिमित्तं भयं नापि कर्ममार्गवन्मत्सरादियुक्तेभ्यो भयमिति भावः ।।१७।।

### भाव प्रकाशिका

ज्ञानमार्ग से भक्ति मार्ग के श्रेष्ठ होने का कारण है कि यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है । अयं पन्था से भक्ति मार्ग को कहा गया है । क्योंकि यह कल्याणमय है । उसमें किसी प्रकार से विघ्न इत्यादि का भय नहीं है । इस मार्ग पर कृपालु तथा निष्काम भक्तजन चला करते हैं इस मार्ग पर धर्मनिष्ठ पुरुष चलते हैं अतएव ज्ञान मार्ग के समान सहाय रहित होने के भय और न तो कर्म मार्ग के समान द्वेष करने वालों से भय है ।।१७।।

**प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् । न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ।।१८।।**

**अन्वयः**— हे राजेन्द्र ! सुराकुम्भम् आपगाः इव चीर्णानि प्रायश्चित्तानि, नारायणपराङ्मुखम् न निष्पुनन्ति ।।१८।।

**अनुवाद**— हे राजेन्द्र जैसे शराब के घड़े को नदियाँ पवित्र नहीं कर पाती हैं, उसी तरह परमात्म पराङ् मुख व्यक्ति को अनुष्ठित प्रायश्चित्त पवित्र नहीं कर पाते हैं ।।१८।।

### भावार्थ दीपिका

भक्तेरन्यनिरपेक्षत्वमुक्तं, कृच्छ्रादीनि तु भक्तिं विना न शोधयन्तीत्याह-प्रायश्चित्तानीति। महतामप्यशोधकत्वे दृष्टान्तमाह-सुराकुम्भमापगा नद्य इवेति ।।१८।।

### भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि भक्ति अन्य निरपेक्ष साधन है। कृछ्र चान्द्रायणादि भी भक्ति के बिना शुद्ध नहीं कर सकते है। इस बात को **प्रायश्चितानि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। महान् से महान् प्रायश्चित्त परमात्मा पराङ्मुख को शुद्ध नहीं कर सकते हैं। जैसे बड़ी नदियाँ भी मदिरा के घड़े को पवित्र नहीं कर पाती हैं ।।१८।।

**सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।**
**न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ।।१९।।**

**अन्वयः**— यैः इह कृष्ण पदारविन्दयोः तद्गुणरागिमनः सकृत् निवेशितं ते यमम् तत् पाशभृतः भटान् स्वप्ने अपि न पश्यन्ति चीर्ण निष्कृताः पश्यन्ति हि ।।१९।।

**अनुवाद**— इस संसार में जिन लोगों ने भगवद् गुणों से प्रेम करने वाले अपने मन को श्रीभगवान् के चरणों में एक बार भी लगा दिया है, स्वप्न में भी वे लोग न तो यम को और न यमपाश धारी यमदूतों को देखते हैं, किन्तु जिन लोगों ने प्रायश्चित्त कर लिया है, वे यम तथा यमदूतों को देखते हैं ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

भक्तिः स्वल्पापि पुनात्येवेत्याह-सकृदिति। तस्य गुणेषु रागमात्रमस्ति नतु ज्ञानं यस्य तन्मनः। तावतैव चीर्णं निष्कृतं प्रायश्चित्तं यैः ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

**सकृत्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाते हैं कि थोड़ी सी भी भक्ति पवित्र बना देती है। जिसके मन में परमात्मा के गुणों में प्रेम भाव है उनके गुणों का ज्ञान न हो तो भी वे प्राणश्चित्त कर लिए जिन लोगों ने पापों का प्रायश्चित कर भी लिया उनको भी यमराज का दर्शन करना ही पड़ता है ।।१९।।

**अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ।।२०।।**

**अन्वयः**— अत्र च इमम् पुरातनम् इतिहासम् उदाहरन्ति विष्णुयमदूतयोः संवादः तं मे निबोध ।।२०।।

**अनुवाद**— इस विषय में महात्मागण इस प्राचीन इतिहास को कहा करते हैं। जो भगवान् विष्णु और यमराज के दूतों का संवाद स्वरूप है। उसको मैं तुम्हे बतलाता हूँ ।।२०।।

### भावार्थ दीपिका

इममर्थमितिहासेनोपपादयति अत्र चेति। मे मत्तः ।।२०।।

### भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का प्रतिपादन इतिहास द्वारा करते हैं मै अर्थात् मुझसे ।।२०।।

**कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः । नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ।।२१।।**

**अन्वयः**— कान्यकुब्जे कश्चित् दासीपति द्विजः नाम्ना अजामिल नष्ट सदाचारः दास्या; संसर्ग दूषितः आसीत् ।।२१।।

**अनुवाद**— कान्यकुब्ज प्रदेश मे एक दासीपति ब्राह्मण था। उसका नाम अजामिल था। उसका सदाचार नष्ट हो गया था। क्योंकि वह दासी के संसर्ग से दूषित था ।।२१।।

**भावार्थ दीपिका**

कान्यकुब्जे पुरे । दास्याः पतिः नाम्ना अजामिलः ॥२१॥

**भाव प्रकाशिका**

कान्यकुब्ज प्रदेश में अजामिल नाम का ब्राह्मण था ॥२१॥

**बन्द्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः । बिभ्रत्कुटुम्बमशुचिर्यातयामास देहिनः ॥२२॥**

**अन्वयः**— बन्द्यक्षकैतवैः चौर्यैः गर्हितां वृत्तिमास्थितः कुटुम्बम् विभ्रत् अशुचिः देहिनः यातयामास ॥२२॥

**अनुवाद**— कभी बटोहियों को बन्दी बनाकर उनको लूट लेता था, कभी जूए के छल से लोगों को हरा देता था, कभी लोगों को धोखा देकर किसी का धन चुराकर निन्दित वृत्ति से अपने परिवार को पालता था । वह सदा अपवित्र रहता था और लोगों को सताता रहता था ॥२२॥

**भावार्थ दीपिका**

बन्दीग्रहेण अक्षैश्च द्यूतेन कैतवैर्वञ्चनादिभिश्च । वृत्तिं जीविकाम् । बिभ्रत् पुष्णन् । यातयामास पीडयामास ॥२२॥

**भाव प्रकाशिका**

धनिक लोगों को बन्दी बनाकर जूए से तथा धोखाधड़ी से अपनी जीविका चलाता था । यातयामास अर्थात् पीड़ित करता था ॥२२॥

**एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् । कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥२३॥**

**अन्वयः**— राजन् ! एवं तस्य निवसतः तत्सुतान् लालयानस्य महान् कालः अत्यगात् आयुषः अशीति समाः नष्टाः॥२३॥

**अनुवाद**— राजन् ! इस प्रकार रहते हुए तथा दासी के ही पुत्रों का लालन-पालन करते हुए महान् काल बीत गया । उसके जीवन के अठासी वर्ष नष्ट हो गये ॥२३॥

**भावार्थ दीपिका**

आयुषः संबन्धी महान् कालोऽत्यगात् । स कियानित्यपेक्षायामाह । अष्टाशीत्या संख्यया युक्ताः समाः संवत्सराः॥२३॥

**भाव प्रकाशिका**

जीवन का महान् काल बीत गया कितने वर्ष ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर बतलाते हैं अठासी वर्ष॥२३॥

**तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः । बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— प्रवयसः तस्य दश पुत्रा तेषां यः अवयः बालः नाम्ना नारायणः पित्रोश्च भृशं दयितः ॥२४॥

**अनुवाद**— उस बूढे अजामिल के दश पुत्र थे, उनमें जो सबसे छोटा बालक था वह अपने माता-पिता का अत्यनत प्रिय था उसका नाम नारायण था ॥२४॥

**भावार्थ दीपिका**

प्रवयसो वृद्धस्य ॥२४॥

**भाव प्रकाशिका**

प्रवयसः अर्थात् बूढे अजामिल के ॥२४॥

**स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि । निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥२५॥**

**अन्वयः**— जरठः सन कलभाषिणि तस्मिन् अर्भके बद्धहृदय तल्लीलां निरीक्षमाणः भृशम् मुमुदे ॥२५॥

**अनुवाद**— बूढा अजामिल का मधुर बोलने वाले उस बालक में ही मोह के कारण हृदय बँध गया था, वह उस बालक की क्रीडाओं को देखकर बहुत प्रसन्न होता था ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**

बद्धं हृदयं येन । जरठो बृद्धः ।।२५।।

**भाव प्रकाशिका**

जिसने अपने हृदय को बाँध दिया था । जरठः अर्थात् बूढ़ा ।।२५।।

**भुञ्जानः प्रपिबन्खादन्बालकस्नेहयन्त्रितः । भोजयन्पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम् ।।२६।।**

**अन्वयः**— बालकस्नेहयन्त्रितः भुञ्जानः भोजयन् प्रपिबन् पाययन्, खादन्, मूढः आगतम् अन्तकम् न वेद ।।२६।।

**अनुवाद**— वह अजामिल, बालक के स्नेह में बँधा हुआ जब खाता था तो उसको भी खिलाता था, पीता था तो उसको भी पिलाता था, इस तरह अज्ञानी वह अपने आये हुए काल को भी नहीं जान सका ।।२६।।

**भावार्थ दीपिका**

एतच्च तदुपलालनादि श्रीनारायणनामोच्चारमाहात्म्येन तद्भक्तिरेवाभूदिति सिद्धान्तोपयोगित्वेनापि द्रष्टव्यम् ।।२६।।

**भाव प्रकाशिका**

यह उस बालक के प्रति प्रेम आदि श्रीनारायण नामोच्चारणदि की महिमा से उसकी भक्ति ही बन गयी, यह इस सिद्धान्त के लिए उपयोगी भी समझना चाहिए ।।२६।।

**स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते । मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ।।२७।।**

**अन्वयः**— एवं वर्तमानः स अज्ञः मृत्युकाले उपस्थिते नारायणाह्वये बाले तनये मतिं चकार ।।२७।।

**अनुवाद**— वह अज्ञान अजामिल इस प्रकार अपना जीवन बिता रहा था कि उसकी मृत्यु का समय आ गया । वह अपने पुत्र नारायण के ही विषय में सोचने विचारने लगा ।।२७।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२७।।

**स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान्भृशदारुणान् । वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ।।२८।।**

**अन्वयः**— सः आत्मानं नेतुम् आगतान् ऊर्ध्वरोम्णः वक्रतुण्डान् भृशदारुणान् पाशहस्तान् आत्मानं नेतुमागतान् त्रीन् पुरुषान् दृष्ट्वा ।।२८।।

**अनुवाद**— उसने अपने को लेने के लिए आये हुए खड़े रोओं वाले, टेढे मुँह वाले अत्यन्त भयङ्कर तथा हाथ में फाँसी लिए तीन पुरुषों को देखा ।।२८।।

**भावार्थ दीपिका**

वक्राणि तुण्डानि मुखानि येषाम् । ऊर्ध्वानि रोमाणि येषां तान् ।।२८।।

**भाव प्रकाशिका**

टेढ़े मुँह वाले और खड़े रोओं वाले ।।२८।।

**दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् । प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ।।२९।।**

**अन्वयः**— दूरे क्रीडनकासक्तं नारायणाह्वयम् पुत्रं आकुलेन्द्रियःप्लावितेन स्वरेण उच्चैः आजुहाव ।।२९।।

**अनुवाद**— उस समय कुछ दूरी पर खिलौने से खेलने वाले नारायण नाम के पुत्र को घबराया हुआ अजामिल प्लुतस्वर से जोर से पुकारा नारायण ।।२९।।

**भावार्थ दीपिका**

प्लावितेन प्लुतत्वं नीतेन ।।२९।।

**भाव प्रकाशिका**

प्लुतस्वर से ।।२९।।

**निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् । भर्तुर्नाम महाराजपार्षदाः सहसाऽपतन् ॥३०॥**

**अन्वयः**— हे महाराज ! म्रियमाणस्य हरिकीर्तनम् भर्तुःनाम ब्रुवतः निशम्य सहसा पार्षदा अपतन् ॥३०॥

**अनुवाद**— हे महाराज ! मरते समय श्रीहरि के कीर्तन रूप अपने स्वामी का नाम उच्चारण करने वाले अजामिल के शब्दों को सुनकर एकाएक श्रीभगवान् के पार्षद वहाँ आ गये ॥३०॥

**भावार्थ दीपिका**

हरिकीर्तनं निशम्यापतन् । यतस्तद्भर्तुर्नाम ॥३०॥

**भाव प्रकाशिका**

श्रीहरि के नाम का उच्चारण सुनकर श्रीभगवान् के पार्षद आ गये क्योंकि वह नाम उन लोगों के स्वामी का था ॥३०॥

**विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् । यमप्रेष्यान्विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥३१॥**

**अन्वयः**— दासीपतिम् अजामिलम् अन्तर्हृदयात् विकर्षतः यमप्रेष्यान् विष्णुदूताः ओजसा वारयामासुः ॥३१॥

**अनुवाद**— दासी पति अजामिल को हृदय के भीतर से खीचने वाले यम के दूतों को भगवान् के दूतों ने बल पूर्वक रोक दिया ॥३१॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३१॥

**ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरः सराः । के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥३२॥**

**अन्वयः**— निषेधिता ते वैवस्वतपुरस्सराः तान ऊचुः धर्मराजस्य शासनम् प्रतिषेद्धारः यूयम् के ? ॥३२॥

**अनुवाद**— रोके गये वे यमराज के दूत उन विष्णु दूतों से पूछे कि यमराज की आज्ञा का निषेध करने वाले आपलोग कौन हैं ?॥३२॥

**भावार्थ दीपिका**

पुरःसरा भृत्याः ॥३२॥

**भाव प्रकाशिका**

पुरस्सरा शब्द से भृत्यों को कहा गया है ॥३२॥

**कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ । किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥३३॥**

**अन्वयः**— कस्य वा कुतः आयाताः अस्य कस्मात् निषेधथ ? यूयं किं देवाः, उपदेवाः किं वा सिद्धसत्तमाः ॥३३॥

**अनुवाद**— आपलोग किसके दूत है ? कहाँ से आये हैं ? इसको हमें ले जाने से क्यों रोक रहे हैं। आपलोग कोई देव हैं क्या ? या उपदेव हैं ? या श्रेष्ठ सिद्ध हैं ॥३३॥

**भावार्थ दीपिका**

अस्य नयनं निषेधथ ॥३३॥

**भाव प्रकाशिका**

इसको ले जाने से रोक रहे हैं ॥३३॥

**सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः । किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥३४॥**

**अन्वयः**— सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः, किरीटिनः, कुण्डलिनः लसत्पुष्कर मालिनः ॥३४॥

**अनुवाद**— आप सबों ने कमलदल के समान मनोहर पीला पीताम्बर धारण किए हुए है, किरीट कुण्डल वनमाला और कमल की माला धारण किए हुए हैं ॥३४॥

**भावार्थ दीपिका**

वयं युष्मान्न जानीम इति न कोपः कार्यो यतोऽलौकिकादभुतरूपा यूयमित्याहुः-सर्व इति सार्धाभ्याम् । लसन्त्यः पुष्करमालाः सन्ति येषाम् ॥३४॥

**भाव प्रकाशिका**

हमलोग आप लोगों को नहीं जानते हैं, इस बात को लेकर आपलोगों को कोप नहीं करना चाहिए क्योंकि आपलोगों का रूप अलौकिक है, इस बात को सर्वे इत्यादि डेढ श्लोक से कहा गया है आप सबों की कमल की माला सुशोभित हो रही है ॥३४॥

**सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः । धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥३५॥**

**अन्वयः**— सर्वेचनूत्नवयसः सर्वेचारुचतुर्भुजाः, धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुज श्रियः ॥३५॥

**अनुवाद**— आप सबों की नई अवस्था है, सबों की चार भुजाएँ हैं, सभी धनुष निषङ्ग कृपाण, गदा, शङ्ख और चक्र धारण किए है, आप सबों की शोभा कमल के समान मनोज्ञ है ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**

नूत्नं नवं वयो येषाम् । निषङ्ग इषुधिः । धनुर्निषङ्गादिभिः श्रीः शोभा येषां ते ॥३५॥

**भाव प्रकाशिका**

नवीन अवस्था आप सबों की है । निषङ्ग तरकस से कहते है । धनुष तथा तरकस आदि के द्वारा आप सबों की शोभा हो रही है ॥३५॥

**दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा । किमर्थं धर्मपालस्य किङ्करान्नो निषेधथ ॥३६॥**

**अन्वयः**— स्वेन रोचिषाः दिशः वितिमिराः कुर्वन्तः धर्मपालस्य किङ्करान् नो किमर्थं निषेधथः ॥३६॥

**अनुवाद**— आपलोग अपनी कान्ति के प्रकाश के द्वारा सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रहे हैं । धर्मराज के दूत हम सबों को क्यों रोक रहे हैं ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**

विगतं तिमिरमालोकश्चान्यस्य प्रकाशो यासु तथाभूता दिशः कुर्वन्तः । भवतामेतदनुचितमित्याहुः- किमर्थमिति ॥३६॥

**भाव प्रकाशिका**

दिशाओं के अन्धकार और दूसरों के प्रकाश भी विनष्ट हो गया है आपलोगों की कान्ति से । आपलोगों का यह कहना उचित नहीं है यह यमदूतों ने किमर्थम् इत्यादि से कहा ॥३६॥

श्रीशुक उवाच

**इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः । तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्लादया गिरा ॥३७॥**

**अन्वयः**— तैः यमदूतैः इत्युक्ते वासुदेवोक्तकारिणः प्रहस्य, मेधनिर्हादया गिरा तान् प्रति इदं प्रोचुः ॥३७॥

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— यमदूतों के इस तरह कहने पर भगवान् के दूतों ने जोर से हँसकर मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाली वाणी से उन सबों से कहा ।।३७।।

### भावार्थ दीपिका

अहो दण्ड्यादण्ड्यादिज्ञानशून्या एते चोरा एवास्मद्भिया धर्मराजस्य किङ्करा इत्यनृतं वदन्तीति विस्मयेन प्रहस्य तान्प्रत्यूचुः। मेघस्येव निर्ह्रादो ध्वनिर्यस्यास्तया ।।३७।।

### भाव प्रकाशिका

अरे दण्ड्य तथ अदण्ड्य के ज्ञान से रहित ये सभी चोर हैं हम लोगों के भय से झूठे अपने को धर्मराज का दूत बतलाते हैं इस प्रकार के आश्चर्य से जोर से हँसकर उन यमदूतों से कहा उनकी वाणी की ध्वनि मेघ के समान गम्भीर थी ।।३७।।

विष्णुदूता ऊचुः

**यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः । ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ।।३८।।**

**अन्वयः**— यूयं यदि वै धर्मराजस्य निर्देश कारिणः यत् च धर्मस्य तत्त्वं धर्मस्य लक्षणं तत् नः ब्रूहि ।।३८।।

### भगवान् विष्णु के दूतों ने कहा

**अनुवाद**— तुमलोग यदि धर्मराज की आज्ञा का पालन करने वाले हो तो हमलोगों को धर्म के तत्त्व को तथा धर्म का जो लक्षण है, उसको बतलाओ ।।३८।।

### भावार्थ दीपिका

तत्त्वं स्वरूपम् । लक्षणं प्रमाणम् ।।३८।।

### भाव प्रकाशिका

तत्त्व स्वरूप को और लक्षण प्रमाण को कहते हैं ।।३८।।

**कथंस्विद्ध्रियते दण्डः किं वाऽस्य स्थानमीप्सितम् ।**
**दण्ड्याः किंकारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ।।३९।।**

**अन्वयः**— कथंस्वित् दण्डःध्रियते, किवा अस्य इप्सितम् स्थानम् किं कारिणः दण्डयाः सर्वे आहोश्वित् नृणाम् कतिचित् ।।३९।।

**अनुवाद**— दण्ड किस प्रकार दिया जाता है ? दण्ड का पात्र कौन है ? मनुष्यों में सभी पापाचारी दण्डनीय हैं, अथवा उनमें से कुछ ही ?।।३९।।

### भावार्थ दीपिका

कथंस्वित्केन प्रकारेण । स्थानं विषयः । कारिणः कर्मिणः । नृणामिति नरा एव न पश्वादयः । तेष्वपि कतिचिदेवेत्यर्थः।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

दण्ड कैसे दिया जाता है ? दण्ड के पात्र कौन है ? सभी कर्म करने वाले मनुष्य दण्डनीय हैं क्या ? नृणाम् कहकर यह कहा गया है कि मनुष्य ही दण्डनीय हैं, पशु आदि नहीं । उन सबों में भी कुछ ही दण्नीय है ।।३९।।

यमदूता ऊचुः

**वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः । वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुम ॥४०॥**

**अन्वयः**— वेद प्राणिहितः धर्मः तद्विपर्ययः अधर्मः, वेदः साक्षात् नारायणः स्वयम्भूः इतिशुश्रुम् ।।४०।।

**यमराज के दूतों ने कहा**

**अनुवाद**— वेद जिन कर्मों का विधान करते हैं वही धर्म है और वेद जिन कर्मों का निषेध करते हैं वही अधर्म है । वेद साक्षात् नारायण स्वरूप हैं वे नित्य हैं यह हमलोगों ने सुना है ।।४०।।

**भावार्थ दीपिका**

वेदेन प्राणिहितो विहितो धर्मः, वेदप्रमाणक इत्यर्थः । अनेन यो वेदप्रमाणकः स धर्मो यो धर्मः स वेदप्रमाणक इति स्वरूपं प्रमाणं चोक्तम् । यथाह जैमिनिः 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' इति । व्याख्यातं च भट्टैः 'द्वयमेकेन सूत्रेण श्रुत्यर्थाभ्यां निरूप्यते' इति । अपृष्टस्याप्यधर्मस्य स्वरूपं लक्षणं च दण्डस्थानकथनायाहुः । तद्विपर्ययो यो वेदनिषिद्धः सोऽधर्मः । निषेधश्च तस्मिन्प्रमाणमित्यर्थः । वेदस्य प्रामाण्ये हेतुः-वेदो नारायणादुद्भूतः स एव साक्षादित्युपचारः । स्वयंभूरिति च निःश्वासमात्रेण स्वयमेव भवतीति । तथाच श्रुतिः— 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः' इति ।।४०।।

**भाव प्रकाशिका**

वेदों के द्वारा जिन कर्मों का विधान किया जाता है वही धर्म है अर्थात् जिन कर्मों में वेद प्रमाण हैं, वह धर्म है । इससे यह सिद्ध हुआ कि जो वेद प्रमाणक है वही धर्म है और जो धर्म है वही वेद प्रमाणक है । इस तरह से उन सबों ने धर्म के स्वरूप और लक्षण को बतलाया । महर्षि जैमिनि भी कहते हैं— शास्त्र जिन कर्मों को करने के लिए प्रेरित करते हैं वही धर्म है । भट्टाचार्य उसकी व्याख्या में कहते हैं- धर्म के स्वरूप और लक्षण दोनों का एक ही सूत्र **'श्रुत्यर्थाभ्याम्'** के द्वारा निरूपण किया जाता है । यद्यपि अधर्म का स्वरूप और लक्षण नहीं पूछा गया है फिर भी यमदूतों ने कहा जिससे कि धर्म के पात्र को बतला सके । वेद निषिद्ध कर्म अधर्म हैं । अधर्म में निषेध प्रमाण है । वेद की प्रमाणिकता का कारण है कि वेद नारायण से उत्पन्न है । साक्षात् नारायण ही वेद हैं यह औपचारिक प्रयोग है । स्वयम्भूः कहकर यह बतलाया कि वेद भगवान् नारायण के निःश्वास मात्र हैं । श्रुति भी कहती है— **अस्य महतोभूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदः'** अर्थात् ऋग्वेद आदि सभी वे श्रीभगवान् के निःश्वास हैं । जिस तरह हमलोग अपने निःश्वास के कर्ता नहीं हैं, उसी तरह वेद भी परमात्माकृत नहीं । इसीलिए वेदों को **अपौरुषेय** माना जाता है ।।४०।।

**येन स्वधाम्न्यमी भावा रजःसत्त्वतमोमयाः । गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ॥४१॥**

**अन्वयः**— येन स्वधाम्नि अमी रजः सत्त्व तमोमयाः भावाः गुणनामक्रियारूपैः यथातथम् विभाव्यन्ते सनारायण इति शेषः ।।४१।।

**अनुवाद**— जिनके द्वारा ये सभी रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणमय सभी भाव पदार्थ अपने गुण नाम, कर्म और रूप के साथ ही जो वस्तु जैसी है उसी तरह से अपने स्वरूप में प्रकाशित किए जाते हैं, वे ही नारायण हैं ।।४१।।

**भावार्थ दीपिका**

कोऽसौ नारायणस्तत्राहुः । येन स्वधाम्नि स्वस्वरूपे । अमी भावाः प्राणिनः । गुणाः शान्तत्वादयः । नामानि ब्राह्मण इत्यादीनि । क्रियाश्चाध्ययनाद्याः । रूपाणि वर्णाश्रमादयस्तैर्विभाव्यन्ते विविच्यन्ते । यथातथं यथावत् । स नारायणः ।।४१।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न है कि नारायण कौन है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि जिनके द्वारा अपने स्वरूप में ही ये सभी भाव

पदार्थ (प्राणी) गुण (शान्तघोर मूढ) नाम (ब्राह्मण इत्यादि) किया (अध्ययन आदि) रूप 'वर्ण तथा आश्रम आदि' पृथक्-पृथक प्रकाशित किए जाते हैं वे ही नारायण शब्द वाच्य है ॥४१॥

**सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः सन्ध्याहनी दिशः । कं कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः॥४२॥**

**अन्वयः**— सूर्यः अग्निः स्वं, मरुद्गावः, सोमः, सन्ध्याहनी, दिशः कं, कुः, कालः धर्म इति एते हि दैह्यस्य साक्षिणः॥४२॥

**अनुवाद**— सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियाँ, चन्द्रमा, सन्ध्या, रात, दिन, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल और धर्म ये सभी मनुष्य द्वारा शरीर अथवा मनोवृत्ति द्वारा किए जाने वाले कर्मों के साक्षी हैं ॥४२॥

### भावार्थ दीपिका

तथाप्यधर्मोऽनेन कृत इति कुतो ज्ञायते तत्राहुः-सूर्य इति । अहनी अहश्च रात्रिश्च । कम् उदकम् । कुः पृथ्वी । दैह्यस्य जीवस्य । यथाहुः-'आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च । अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ।' इति ॥४२॥

### भाव प्रकाशिका

फिर भी इसने अधर्म किया है इस बात को कैसे जाना जा सकता है ? इस पर यमदूतों ने सूर्य इत्यादि श्लोक कहा । अहनी अर्थात् दिन और रात, कम् जल का वाचक है, कु पृथ्वी का, और दैह्यस्य अर्थात् जीव के कर्मों के साक्षी हैं । जैसा कि कहा गया है- आदित्य चन्द्रावनिलः इत्यादि अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यम, दिन, रात दोनों सन्ध्यायें तथा धर्म मनुष्य के द्वारा किए गये कर्मों के साक्षी हैं ॥४२॥

**एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते । सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥४३॥**

**अन्वयः**— एतै अधर्मो विज्ञातः दण्डस्य स्थानं युज्यते सर्वकारिणः कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्तिः ॥४३॥

**अनुवाद**— जब इन सबों के द्वारा अधर्म का पता चल जाता है तब दण्ड के पात्र का निर्णय होता है । पाप कर्म करने वाले सभी मनुष्य अपने किए हुए कर्मों के अनुसार ही दण्ड के पात्र होते हैं ॥४३॥

### भावार्थ दीपिका

स्थानमाहुः । एतैर्निमित्तभूतैर्विज्ञातः । दण्ड्यानाहुः-सर्व इति ॥४३॥

### भाव प्रकाशिका

इन सभी साक्षियों द्वारा अधर्म को जान लेने पर ही जीव दण्ड का पात्र होता है । सर्वे इत्यादि के द्वारा दण्डनीयों को बतलाया गया है ॥४३॥

**संभवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः । कारिणां गुणसङ्गोऽस्ति देहवान्न ह्यकर्मकृत् ॥४४॥**

**अन्वयः**— हे अनघाः कारिणां गुणसङ्ग अस्ति अतः भद्राणि विपरीतानि च भवन्ति नहि देहवान् अकर्मकृत् ॥४४॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप पुरुषों जितने भी कर्म करने वाले हैं उन सबों का सत्त्वादि गुणों से सम्बन्ध होता ही है अतएव उन सबों से पुण्य तथा पाप कर्म हो जाते हैं । कोई भी शरीरधारी कर्मों को किए बिना नहीं रह सकता है ॥४४॥

### भावार्थ दीपिका

विपरीतान्यभद्राण्यपि कर्मिणां संभवन्ति । यतस्तेषां गुणसङ्गोऽस्ति । यदि कश्चिदकर्ता स्यात्तर्हि तस्याभद्राणि न स्युः। न त्वेतदस्तीत्याहुः । नहि देहवानकर्मकृदस्तीति । अतः सर्वे कर्मिणः कर्मिणां च पापस्यावश्यंभावित्वात्ते सर्वे दण्डमर्हन्तीत्यर्थः॥४४॥

### भाव प्रकाशिका

विपरीतानि अर्थात् पापकर्म भी कर्म करने वालों से हो ही जाते हैं। क्योंकि सभी कर्म करने वालों का सत्त्वादि गुणों से सम्बन्ध होता है। यदि कोई (कर्मों को) नहीं करने वाला हो तो उसके द्वारा पाप कर्म न हों, किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं है। शरीरधारी कर्मों को किए बिना नहीं रह सकता है अतएव साथ के सब कर्म करने वाले हैं। और कर्म करने वालों द्वारा पाप अवश्य होगा अतएव वे सभी दण्डनीय हैं ।।४४।।

**येन यावान्यथाऽधर्मो धर्मो वेह समीहितः । स एव तत्फलं भुङ्क्ते तथा तावदमुत्र वै ।।४५।।**

**अन्वयः**— इह येन यावान् यथा अधर्मः धर्मः वा समीहितः स एव इह अमुत्र वा तावदेव तत्फलं भुङ्क्ते ।।४५।।

**अनुवाद**— इस लोक मे जो मनुष्य जितना और जैसा धर्म अथवा अधर्म करता है वह उतना ही और उसके अनुसार ही फल को इस लोक में तथा परलोक में फल को प्राप्त करता है ।।४५।।

### भावार्थ दीपिका

कथंस्विद्धियते दण्ड इत्यस्योत्तरम्-येनेति। धर्मो वेति दृष्टान्तः। अधर्मानुसारेण दण्डो धर्मानुसारेण सुखवदित्यर्थः।।४५।।

### भाव प्रकाशिका

यदि आपलोग कहें कि तुमलोग किस प्रकार से दण्ड देते हो ? इसके उत्तर में यमदूतों ने कहा जिसके द्वारा जिनता पाप अथवा पुण्य कर्म किए जाते हैं उसी मात्रा में उसको दण्ड अथवा सुख प्राप्त होता है ।।४५।।

**यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते । भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथान्यत्रानुमीयते ।।४६।।**

**अन्वयः**— हे देवप्रवराः इह भूतेषु यथा त्रैविध्यम् गुणवैचित्र्यात् उपलभ्यते तथा अन्यत्र अनुमीयते ।।४६।।

**अनुवाद**— हे देवश्रेष्ठों इस लोक में जिस तरह सत्त्व, रजस एवं तमस् इन तीनों के कारण लोग सुखी दुःखी और सुखी दुःखी लोग पाये जाते हैं, उसी तरह से परलोक में भी उनके सात्त्विकत्व, राजस एवं तामसत्व का अनुमान होता है ।।४६।।

### भावार्थ दीपिका

न केवलं सूर्यादय एव धर्माधर्मज्ञापकाः किंत्वर्थापत्तिरपीत्याहुः-यथेति। हे देवप्रवराः, इह जन्मनि शान्तघोरमूढत्वेन वा सुखदुःखमिश्रत्वेन वा धार्मिकत्वादिना वा त्रैविध्यं भूतेषु यथोपलभ्यते तथान्यत्र जन्मान्तरेऽनुमीयते त्रैविध्यान्यथानुपपत्त्या कल्प्यते ।।४६।।

### भाव प्रकाशिका

केवल सूर्य आदि से ही नही धर्माधर्म का पता चलता है अपितु अर्थापति के द्वारा भी जीवों द्वारा किए गये धर्मकर्मों का पता चलता है। इस जन्म में शान्त, घोर अथा मूढ होने के कारण अथवा उनके सुखी, दुःखी और सुखी-दुःखी दो प्रकार के होने के कारण, अथवा धार्मिकत्व आदि के कारण, जीवों में जिस तरह त्रिविधता पायी जाती है, उसी तरह जन्मान्तर में भी उनकी त्रिविधता का अन्यथाऽनुपपत्ति के द्वारा अनुमान होता है ।।४६।।

**वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा । एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ।।४७।।**

**अन्वयः**— यथा वर्तमानः अन्ययोः कालः गुणाभिज्ञापकः एवं जन्मनि अयोः एतद् धर्माधर्मनिदर्शनम् ।।४७।।

**अनुवाद**— हमारे स्वामी भगवान् अजन्मा यमराज सबों के अन्तःकरण में अतर्यामी रूप से विराजमान हैं। अतएव अपने मन से सबों के पूर्व रूप (अतीतकालिक रूप) को जान लेते हैं। किञ्च उसी से वे उन जीवों के भावी स्वरूप का विचार कर लेते हैं ।।४७।।

### भावार्थ दीपिका

वर्तमानजन्मना पूर्वापरजन्मधर्माधर्मज्ञानं भवतीति सदृष्टान्तमाहुः । वर्तमानो वसन्तादिकालः । अन्ययोर्भूतभविष्ययोर्वसन्तयोर्ये गुणाः पुष्पफलादयस्तेषामभिज्ञापको यथा । एवमेतज्जन्म अन्ययोर्भूतभाविजन्मनोर्धर्माधर्मौ निदर्शयतीति तथा ।।४७।।

### भाव प्रकाशिका

वर्तमान के द्वारा ही अतीत एवं अनागत काल के धर्मों एवं अधर्मों का ज्ञान हो जाता है । इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक यमदूतों ने कहा । जिस तरह वर्तमान वसन्तादि काल भूत एवं भविष्यत् काल के गुणों पुष्प फल इत्यादि बोधक होते हैं उसी तरह वर्तमान जन्म भी भूत काल एवं भविष्यत् काल के धर्मा धर्म के बोधक होते हैं ।।४७।।

**मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति । अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ।।४८।।**

**अन्वयः**— देव भगवान् अजः पुरे मनसैव पूर्वरूपं विपश्यति अपूर्वं अनुमीमांसते च ।।४८।।

**अनुवाद**— हमारे स्वामी भगवान् अजन्मा यमराज सबों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से विराजमान हैं। अतएव अपने मन से सबों के पूर्वरूप (अतीत कालिक रूप) को जान लेते हैं । किञ्च उसी से वे उन जीवों के भावी स्वरूप का विचार कर लेते हैं ।।४८।।

### भावार्थ दीपिका

अयं च धर्माधर्मज्ञानप्रकारोऽन्येषां, धर्मराजस्तु मनसैव सर्वं पश्यतीत्याहुः । पुरे संयमिन्यां स्थित एव देवो यमो देहे स्थितोन्तर्यामी वा जीवस्य पूर्वरूपं धर्माधर्मादियुक्तं विशेषेण पश्यति । अन्वनन्तरमपूर्वं रूपं मीमांसते । यद्यस्यानुरूपं तद्विचारयति, यतोऽसौ भगवानजः ।।४८।।

### भाव प्रकाशिका

मनुष्यों के धर्म और अधर्म के ज्ञान का यह प्रकार दूसरों के लिए यमराज तो अपने मन से ही जीव के धर्म और अधर्म को जान लेते हैं । ये अपनी संयमनी नगरी में विद्यमान रहकर ही अन्तर्यामी रूप से सबों के देह में स्थित हैं । वे जीव के भूत कालिक धर्म और अधर्म को विशेष रूप से देखते हैं, उसी तरह वे भावी पुण्य पाप का विचार कर लेते हैं । जो जिसके अनुरूप होता है उसका वे विचार कर लेते हैं क्योंकि वे भगवान् तथा अजन्मा हैं ।।४८।।

**यथाऽज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि । न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ।।४९।।**

**अन्वयः**— अज्ञः यथा तमसायुक्तः अज्ञः व्यक्तम् एव उपास्ते नष्ट जन्म स्मृतिः तथा पूर्वम् परं न वेद ।।४९।।

**अनुवाद**— जिस तरह अज्ञानी जीव वर्तमान शरीर को जानता है अपने अतीत कालिक और अनागत कालिक शरीर को नहीं क्योंकि उसकी पूर्वा पर जन्म विषयक स्मृति उसी तरह नष्ट हो गयी रहती जिस तरह स्वप्न देखने वाले को अपने स्वप्न कालिक ही शरीर की प्रतीति होती है, सोने से पहले और सोने के बाद के शरीर की प्रतीति नहीं होती है ।।४९।।

### भावार्थ दीपिका

जीवस्त्वीश्वरेणोपस्थापितं वर्तमानं देहं पश्यति नतु पूर्वमपरं चेत्याहुः-यथेति । अज्ञोऽविद्योपाधिर्जीवस्तु व्यक्तमेव प्राचीनकर्माभिव्यक्तं वर्तमानमेव देहाद्युपास्तेऽहमिति मन्यते, पूर्वमपरं वा न वेद । अत्र हेतुः-नष्टा जन्मनां स्मृतिर्यस्य । अत्र दृष्टान्तः-तमसा निद्रया युक्तो यथा स्वप्नेऽपि व्यक्तमेव देहाद्युपास्ते न तु जाग्रद्देहादि पूर्वस्वप्नादिगतं वा तद्वदित्यर्थः ।।४९।।

### भाव प्रकाशिका

जीव परमात्मा के द्वारा प्रदत्त वर्तमान शरीर को ही जानता है, उससे पहले भूतकाल के अथवा बाद के

भविष्यत् कालिक शरीर को नहीं जानता है। इसी अर्थ को **यथा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। अज्ञानी जीव अविद्योपहित होने के कारण अपने प्राचीन कर्मों के फलस्वरूप वर्तमान शरीर को ही मैं मनुष्य हूँ इत्यादि रूप से जानता है। वह अपने पहले अथवा बाद में होने वाले शरीर के विषय में नहीं जानता है। उसका कारण हैं कि उसको अपने पूर्वजन्मों की स्मृति नष्ट हो गयी रहती है। **उदाहणार्थ**— तमोगुण के कारण निद्रा युक्त पुरुष जैसे स्वपन कालिक शरीर को ही मैं हूँ इस तरह से जानता है, स्वप्न काल में प्रतीत होने वाली शरीर से पहले और बाद के शरीर का अर्थात् जाग्रत कालिक शरीर का उसे ज्ञान नहीं रहता है ॥४९॥

**पञ्चभिः कुरुते स्वार्थान्पञ्च वेदाथ पञ्चभिः। एकस्तु षोडशेन त्रीन्स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥५०॥**

**अन्वयः**— पञ्चभिः स्वार्थान् कुरुते अथ पञ्चभिः पञ्च वेद, एकस्तु स्वयं षोडशेन सप्तदशः त्रीन् अश्नुते ॥५०॥

**अनुवाद**— जीव इस शरीर में पाञ्च कर्मेन्द्रियों द्वारा आदान, गमन आदि विविध क्रियाओं को करता है, और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का अनुभव करता है। सोलहवें मन के साथ सत्रहवा वह ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और मन इन तीनों के विषयों को भोगता है ॥५०॥

### भावार्थ दीपिका

एवंभूतस्य जीवस्य संसारं प्रपञ्चयन्ति पञ्चभिः श्लोकैः। पञ्चभिः कर्मेन्द्रियैः स्वार्थानुपादानादीन्कुरुते। पञ्च शब्दादीन्वेद पञ्चभिर्ज्ञानेन्द्रियैः। षोडशेन मनसा सह सप्तदशः षोडशोपाध्यन्तर्गतोऽपि स्वयं त्वेक एव। सर्वेन्द्रियविषयप्रतिसंधानात्। त्रीन् ज्ञानकर्मेन्द्रियमनोविषयान्प्राप्नोति ॥५०॥

### भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के जीवों के संसार का पाञ्च श्लोकों के द्वारा यमदूत विस्तार से वर्णन करते हैं जीव अपने पाञ्च कर्मेन्द्रियों के द्वारा अपने अभिप्रेत आदान-प्रदान, गमनादि क्रियाओं को करता है, और अपने पाञ्च ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध रूप विषयों का अनुभव करता है सलहवें मन के साथ मिलकर सत्रहवाँ जीव ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और मन इन तीनों के विषयों का भोग करता है ॥५०॥

**तदेतत्षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत्। धत्तेऽनुसंसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥५१॥**

**अन्वयः**— षोडशकलं शक्तित्रयं तदेतत् लिङ्ग महत् पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् अनुसंसृतिम् धत्ते ॥५१॥

**अनुवाद**— जीव का सोलह कलाओं और तीन सत्त्वादि गुणों वाला यह लिङ्ग शरीर अनादि है। यह जीव को बार-बार हर्ष, भय और शोक प्रदान करने वाले जन्म और मृत्यु के चक्र में डालता है ॥५१॥

### भावार्थ दीपिका

तदेतल्लिङ्गशरीरं शक्तित्रयं गुणत्रयकार्यं महदनादि पुंसि जीवे अन्वनुसंसृतिं धत्ते ॥५१॥

### भाव प्रकाशिका

जीव का जो यह सोलह कलाओं वाला सत्त्वादि गुण त्रय के कार्यभूत तीन शक्तियों से युक्त होकर जीव में बार-बार जन्मों को धारण करता है ॥५१॥

**देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन्कर्माणि कार्यते। कोशकार इवात्मानं कर्मणाच्छाद्य मुह्यति ॥५२॥**

**अन्वयः**— अज्ञो देही अजितषडवर्गः न इच्छन् कर्माणि कार्यते, कर्मणा कोशकार इव आत्मानम् आच्छद्य मुह्यति॥५२॥

**अनुवाद**— जो जीव अज्ञानवशात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर इन छह शत्रुओं पर विजय नहीं प्राप्त कर लेता है, उसको इच्छा नहीं रहने पर भी वासनाओं के अनुसार विभिन्न कर्मो को बाध्य होकर करना

ही पड़ता है । ऐसी स्थिति में वह रेशम के कीड़ों के समान अपने को कर्मों के जाल में जकड़ लेता है और अपने ही हाथों उसे मोह का शिकार होना पड़ता है ।।५२।।

**भावार्थ दीपिका**

नेच्छन्ननिच्छन्नप्यनेनैव कर्माणि कार्यते । कोशकारः कीटविशेषः । मुह्यति निर्गमोपायं न जानाति ।।५२।।

**भाव प्रकाशिका**

जो जीव अपने काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ एवं मत्सर इन छह शत्रुओं को नहीं जीते रहता है उसको नहीं चाहने पर भी विभिन्न प्रकार के कार्यों को करना ही पड़ता है । और कर्मों के जाल में जकड़ा हुआ वह इससे उसी तरह नहीं निकल पाता है जिस तरह रेशम का कीड़ा कोश का स्वयं निर्माण करके उससे बाहर निकल पाने का रास्ता नहीं पाता है ।।५२।।

**नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् । कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ।।५३।।**

**अन्वयः**— कश्चित् क्षणमपि, अकर्मकृत् जातु नहि तिष्ठति, स्वाभिकैः गुणैः बलात् अवशः कर्म कार्यते ।।५३।।

**अनुवाद**— कोई भी शरीरधारी जीव कभी क्षण भर कर्म किए बिना नहीं रहता है, प्रत्येक क्षण स्वाभाविक गुण उसको विवश करके उससे कर्मों को करवाते हैं ।।५३।।

**भावार्थ दीपिका**

कार्यत इत्यत्रानुभवं प्रमाणयन्ति–नहीति । गुणैर्गुणकार्यरागादिभिः । स्वाभाविकैः पूर्वकर्मसंस्कारोद्भूतैः ।।५३।।

**भाव प्रकाशिका**

**नहि० इत्यादि** श्लोक के **कार्यते** इस पद के द्वारा अनुभव को प्रामाणिक सिद्ध करते हैं । गुणैः अर्थात् गुणों के कार्य राग द्वेष आदि जो स्वाभाविक हैं तथा पूर्व जन्मों के संस्कारों से उत्पन्न होते है, वे जीव को कर्म करने के लिए बाध्य कर देते हैं और बाध्य होकर जीव को कर्मों को करना ही पड़ता है ।।५३।।

**लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत । यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ।।५४।।**

**अन्वयः**— अव्यक्तं निमित्तं लब्ध्वा यथा योनि यथा बीजं बलीयसा स्वभावेन व्यक्ता व्यक्तं भवति ।।५४।।

**अनुवाद**— जीव अपने पूर्वजन्म के पाप पुण्य रूप कर्मों से उत्पन्न अदृष्ट के अनुसार स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर वाला हो जाता है । और उसकी स्वाभाविक वासनाएँ जो अत्यन्त प्रबल होती हैं उसका रूप यथा योनि (माता के समान स्त्री रूप) और कभी यथा बीजम् (पिता के समान पुरुष) बना देने का काम करती है ।।५४।।

**भावार्थ दीपिका**

कर्मवशेन च तदनुरूपो देहो भवतीत्याहुः–लब्ध्वेति । अव्यक्तमदृष्टं निमित्तं लब्ध्वा व्यक्ताव्यक्तं तदनुरूपं स्थूलं सूक्ष्मं च शरीरं भवति । यथायोनि मातृसदृशम् । यथाबीजं पितृसदृशम् । स्वभावो वासना । शुक्रशोणितयोरेकत्वेऽपि कर्मवासनया मातापितृसदृशो देहो भवतीत्यर्थः ।।५४।।

**भाव प्रकाशिका**

जीव अपने पूर्व जन्म के कर्मों के कारण उनके अनुसार ही शरीर को प्राप्त करता है इस बात को **लब्ध्वा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । पूर्वजन्म के कर्मजन्य अदृष्ट को प्राप्त करके जीव अपने सूक्ष्म और स्थूल शरीर को प्राप्त करता है । और स्वाभाविक वासना के कारण यद्यपि शुक्र और शोणित के एक होने पर भी उसे कभी माता के समान स्त्री शरीर वाला और कभी पिता के समान पुरुष रूप वाला बना देने के काम करती है; क्योंकि वासना अत्यन्त प्रबल होती है ।।५४।।

**एष प्रकृति सङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः । आसीत्स एव नचिरादीशसङ्गाद्विलीयते ॥५५॥**

**अन्वयः**— प्रकृति सङ्गेन एषः पुरुषस्य विपर्ययः आसीत् सः ईश सङ्गेन न चिरात् विलीयते ॥५५॥

**अनुवाद**— प्रकृति का सम्बन्ध होने के कारण ही जीव अपने को अपने वास्तविक स्वरूप के विपरीत लिङ्ग शरीर मान लेता है, यह उसका विपरीत ज्ञान है । परमात्मा का भजन करने से उसका यह विपरीत ज्ञान शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥५५॥

**भावार्थ दीपिका**

संसारचक्रमुपसंहरन्तो मुक्तिप्रकारमाहुः-एष इति । ईशसङ्गात् परमेश्वरभजनात् ॥५५॥

**भाव प्रकाशिका**

संसार चक्र का उपसंहार करते हुए यमदूत मुक्ति के प्रकार को एष इत्यादि श्लोक से कहते हैं । परमात्मा का भजन करने से ॥५५॥

**अयं हि श्रुतसंपन्नः शीलवृत्तगुणालयः । धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्रविच्छुचिः ॥५६॥**

**अन्वयः**— अयं हि श्रुतसम्पन्नः शीलवृत्तगुणालयः, धृतव्रतः मृदुः दान्त सत्यवान् मन्त्रवित् शुचिः ॥५६॥

**अनुवाद**— यह अजामिल पहले शास्त्र ज्ञान सम्पन्न, शील, सदाचार और सद्गुणों का आश्रय था । यह ब्रह्मचारी, विनय सम्पन्न, जितेन्द्रिय, सत्य बोलने वाला मन्त्रज्ञ और पवित्र था ॥५६॥

**भावार्थ दीपिका**

तदेवं सामान्यतो धर्मादिनिर्णयमुक्त्वा प्रस्तुतस्याजामिलस्याधर्मं प्रपञ्चयन्तो दण्ड्यत्वमाहुः- अयं हीति यावदध्यायसमाप्ति। तत्र द्वाभ्यां तत्पूर्ववृत्तान्तानुवादोऽन्यायातिरेकप्रदर्शनार्थः । शीलं सुस्वभावः, वृत्तं सदाचारः, गुणाः क्षमादयस्तेषामालयः ॥५६॥

**भाव प्रकाशिका**

इस तरह सामान्य रूप से धर्म आदि के निर्णय को बतलाकर अजामिल के अधर्म का विस्तार से वर्णन करते हुए यमदूतों ने उसके दण्डयत्व का प्रतिपादन इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त किया है उसमें भी दो श्लोकों द्वारा अजामिल के पूर्व वृतान्त का अनुवाद उसके अत्यधिक अन्याय को बतलाने के लिए किया गया है । शील शब्द से सुख रूपता को, वृत्त शब्द से सदाचार को एव गुण शब्द से क्षमा दया आदि को बतलाकर इन सबों का आश्रय उसको बतलाया गया है ॥५६॥

**गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूषुर्निरहंकृतः । सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥५७॥**

**अन्वयः**— गुर्वग्न्यतिथि वृद्धानां शुश्रुषुः, निरहंकृतः सर्वभूतसुहृत्, साधुः मितवाक् अनसूयकः ॥५७॥

**अनुवाद**— इस आजामिल ने गुरु, अग्नि, अतिथि, और वृद्ध पुरुषों की सेवा की थी, यह अहङ्कार रहित था । यह सभी प्राणियों का कल्याणकारी था, उपकार करने वाला मितभाषी और किसी के भी गुणों में दोष नहीं ढूढ़ता था ॥५७॥

**भावार्थ दीपिका**

निरहंकृतो निरहंकारः ॥५७॥

**भाव प्रकाशिका**

निरहंकृत शब्द से अहङ्कार राहित्य को बतलाया गया है ॥५७॥

**एकदाऽसौ वनं यातः पितृसंदेशकृद्द्विजः । आदाय तत आवृतः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥५८॥**

**अन्वयः**— असौ पितृसंदेकृन् द्विजः एकदावनं यातः, ततः फलपुष्पसमित् कुशान् आदाय आवृतः ॥५८॥

**अनुवाद**— एक बार वह ब्राह्मण अपने पिता की आज्ञा से वन में गया और वहाँ से फल, पुष्प, समिधा और कुश लेकर लौटा ॥५८॥

### भावार्थ दीपिका

तत आवृत्तो वनात्परावृत्तः ॥५८॥

### भाव प्रकाशिका

तत आवृतः का अर्थ है वन से लौटा ॥५८॥

**ददर्श कामिनं कंचिच्छूद्रं सह भुजिष्यया । पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥५९॥**

**अन्वयः**— कश्चित् कामिनं शूद्रं मैरेयं मधुपीत्वा मदाधूर्णितनेत्रया भुजिष्यया सह ददर्श ॥५९॥

**अनुवाद**— उसने मार्ग में किसी कामी शूद्र को देखा जो पेष्टी मदिरा को पीकर उसके मद के कारण मत्त बनी हुई किसी दासी के साथ देखा ॥५९॥

### भावार्थ दीपिका

भुजिष्यया भोगस्त्रिया दास्या । मैरेयं मधु पैष्टीं सुरां पीत्वा । मदेनाघूर्णिते भ्रान्ते नेत्रे यस्याः ॥५९॥

### भाव प्रकाशिका

उसने एक कामी शूद्र को देखा जो पैष्टी मदिरा को पिये हुए था । वह किसी ऐसी दासी के साथ था जिसके मद के कारण नेत्र घूर्णित हो रहे थे ॥५९॥

**मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् । क्रीडन्तमनु गायन्तं हसन्तमनयाऽन्तिके ॥६०॥**

**अन्वयः**— व्यपेतं निरपत्रपं मत्तया, विश्लथनीव्या क्रीडन्तम् अनया गायन्तम्, हसन्तम् अन्तिके ददर्श इति पूर्वेणान्वयः॥६०॥

**अनुवाद**— उस आचार भ्रष्ट तथा निर्लज्ज शूद्र को जिसका नीवी बन्ध खुल गया था ऐसी मदमत्त दासी के साथ मैथुन कर रहा था, तथा उसके साथ गीत गाता था और हँसता था । इस तरह के शूद्र को इसने सन्निकट से ही देखा ॥६०॥

### भावार्थ दीपिका

विशेषेण श्लथन्ती नीवी यस्यास्तया सह । व्यपेतं स्वाचाराद्भ्रष्टम् ॥६०॥

### भाव प्रकाशिका

जिसका नीवी बन्धन विशेष रूप से ढीला हो गया था यह श्लथन्ती व्यपेतं अर्थात् अपने आचार से भ्रष्ट ॥६०॥

**दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भिताम् । जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥६१॥**

**अन्वयः**— कामलप्तेन बाहुना परिरम्भिताम् ताम् दृष्ट्वा सहसैव विमोहितः हृच्छयवशं जगाम ॥६१॥

**अनुवाद**— उस शूद्र की भुजाओं में कामोदीपक वस्तुएँ हल्दी आदि लगी थी ओर वह उन भुजाओं से उस कुलटा का आलिङ्गन कर रहा था । अजामिल उन दोनों को उस अवस्था में देखकर काम मोहित हो गया तथा कामार्त हो गया ॥६१॥

### भावार्थ दीपिका

कामेन कामोद्दीपकेन तदङ्गरागेण हरिद्रादिना लिप्तेन ।।६१।।

### भाव प्रकाशिका

**कामेन** अर्थात कामेद्दीपक इरिद्रा आदि से लिप्त भुजाओं से ।।६१।।

**स्तम्भयन्नात्मनात्मानं यावत्सत्त्वं यथाश्रुतम् । न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ।।६२।।**

**अन्वयः**— यावत् सत्त्वं यथाश्रुतम् आत्मना आत्मानं स्तम्भयन् मदनवेपितं मनः समाधातुं न शशाक ।।६२।।

**अनुवाद**— अपने धैर्य और ज्ञान के अनुसार अजामिल ने अपने मन को रोकने की भरपूर चेष्टा की किन्तु वह काम से चञ्चल बने मन को रोकने में समर्थ नहीं हुआ ।।६२।।

### भावार्थ दीपिका

सत्त्वं धैर्यम् श्रुतं ज्ञानम् । तद्बलेन स्तम्भयन्नपि मदनेन कम्पितं मनः समाधातुं नियमितुं शक्तो नाभूत् ।।६२।।

### भाव प्रकाशिका

सत्त्व धैर्य को कहते हैं और श्रुत ज्ञान को । अजामिल अपने धैर्य और ज्ञान के द्वारा काम से चञ्चल बने अपने मन को अपने वश में करने का बहुत प्रयास किया किन्तु ऐसा वह कर नहीं सका ।।६२।।

**तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः । तामेव मनसा ध्यायन्स्वधर्माद्विरराम ह ।।६३।।**

**अन्वयः**— तन्निमितस्मरव्याजग्रहग्रस्तः विचेतनः मनसा तामेव ध्यायन् स्वधर्माद् विरराम ह ।।६३।।

**अनुवाद**— उस वेश्या को ही निमित्त बनाकर काम रूपी ग्रह ने अजामिल को ग्रस लिया । उसका सदाचार और शास्त्र विषयक ज्ञान की चेतना विनष्ट हो गयी । वह मन ही मन उस वेश्या का ही चिन्तन करने लगा और अपने धर्म से विमुख हो गया ।।६३।।

### भावार्थ दीपिका

तद्दर्शनमेव निमित्तं यस्य स्मरव्याजग्रहस्य तेन ग्रस्तः । विचेतनो गतस्मृतिः ।।६३।।

### भाव प्रकाशिका

उस वेश्या के दर्शन रूपी निमित्त था काम के बहाने ग्रहग्रस्त होने में उस ग्रह से अजामिल ग्रस्त हो गया उसके सदाचार और ज्ञान की चेतना विनष्ट हो गयी ।।६३।।

**तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता । ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ।।६४।।**

**अन्वयः**— ग्राम्यैः मनोरमैः कामै यथा प्रसीदेत तथा यावता पित्र्येणार्थेन तामेव तोषयामास ।।६४।।

**अनुवाद**— अजामिल सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण आदि वस्तुओं जिससे कि वह वेश्या प्रसन्न रहे उसको लाता था यहाँ तक कि उसने अपने पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति को उसी को प्रसन्न करने में विनष्ट कर दिया ।।६४।।

### भावार्थ दीपिका

यावता समग्रेण ।।६४।।

### भाव प्रकाशिका

यावता पद का अर्थ है सम्पूर्ण सम्पत्ति के द्वारा ।।६४।।

**विप्रां स्वाभार्यामप्रौढां कुले महति लम्भिताम् । विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्यापाङ्गविद्धधीः ॥६५॥**

**अन्वयः**— स्वैरिण्यापाङ्गविद्धधीः सः पाप महति कुले लम्भितां अप्रौढ़ाम् विप्राम् स्वभार्याम् अचिरात् विससर्ज।।६५।।

**अनुवाद**— उस स्वच्छाचारिणी वेश्या के कटाक्षपातों से मोहित उस पापी ने महान् वंश की नवयुवती अपनी ब्राह्मणी भार्या का शीघ्र ही परित्याग कर दिया ।।६५।।

**भावार्थ दीपिका**

लम्भितां परिणीताम् ।।६५।।

**भाव प्रकाशिका**

लम्भिताम् विवाहिता ।।६५।।

**यत्तस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् । बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बंमन्दधीरयम् ॥६६॥**

**अन्वयः**— अयम् मन्दधी यतस्त न्यायतः अन्यायतश्च धनम् उपनिन्ये अस्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बम् बमार ।।६६।।

**अनुवाद**— यह मूर्ख जहाँ-तहाँ से न्यायपूर्वक अथवा अन्याय से धन लाता था और उस वेश्य के बड़े परिवार का ही पालन करने में सदा व्यस्त रहता था ।।६६।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं हैं ।।६६।।

**यदसौ शास्त्रमुल्लङ्घ्य स्वैरचार्यार्यगर्हितः । अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥६७॥**

**अन्वयः**— यत् असौ शास्त्रम् उल्लंघ्य स्वैराचारगर्हितः अधायुः मलात् अशुचिः चिरं कालम् अवर्तत ।।६७।।

**अनुवाद**— इस पापी ने शास्त्राज्ञा का उल्लंघन करके स्वच्छन्दाचरण किया है । यह सत्पुरुषों के द्वारा निन्दित है । इसने वेश्या के मल के समान निन्दित अन्न से अपना बहुत समय तक समय बिताया है । अतएव यह महापापी है ।।६७।।

**भावार्थ दीपिका**

अघरूपमायुर्यस्य । मलमेव तदीयमन्नादिकमत्तीति मलात् ।।६७।।

**भाव प्रकाशिका**

इसका जीव पाप स्वरूप है । उस वेश्या का अन्न मल स्वरूप है उसको खाने के कारण उस मल से दूषित है ।।६७।।

**तत एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् । नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुध्यति ॥६८॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

**अन्वयः**— ततः एवं कृतकिल्विषं दण्डपाणेः सकाशं नेष्यामः यत्र अकृतनिवेशः अयम् दण्डेन शुद्ध्यति ।।६८।।

**अनुवाद**— इसने अब तक अपने पापों का प्रायश्चित नहीं किया है अतव इसको हमलोग भगवान् यमराज के पास ले जायेंगे वहाँ पर अपने पापों का दण्ड भोग कर शुद्ध हो जायेगा ।।६८।।

**इस तरह से श्रीमद्भागवत पुराण के छठे स्कन्ध के अजामिलोपाख्यान के अन्तर्गत प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।**

**भावार्थ दीपिका**

अकृतनिर्वेशमकृतप्रायश्चित्तम् । अस्यैव च हितार्थे नेष्याम् इत्याहुः— यत्रेति ।।६८।।

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।**

**भाव प्रकाशिका**

अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करने वाले इसके ही कल्याण के लिए इसको हमलोग यमराज के पास ले जायेंगे, इस बात को **यत्र इत्यादि** के द्वारा कहा गया है ॥६८॥

**इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१॥**

# दूसरा अध्याय

## भगवान् विष्णु के दूतों के द्वारा भागवत धर्म का निरूपण और अजामिल का परम धाम गमन

श्रीशुक उवाच

**एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् । उपाधायार्थ तान् राजन्प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥१॥**

**अन्वयः**— राजन् ! नय कोविदाः ते भगवद् दूताः एवं यमदूताभिभाषितम् उपधार्य तान प्रत्याहुः ॥१॥

**श्रीशुकदेवजी ने कहा**

**अनुवाद**— नीतिज्ञ भगवद् दूतों ने इस प्रकार से यमदूतों के अभिप्राय को सुनकर उन सबों से इस प्रकार से कहा ॥१॥

**भावार्थ दीपिका**

द्वितीये वैष्णवैर्याम्यान्नाममाहात्म्यमद्भुतम् । श्रावयित्वा द्विजो विष्णोर्लोकं नीत इतीर्यते । नयकोविदा न्यायनिपुणाः॥१॥

**भाव प्रकाशिका**

दूसरे अध्याय में भगवान् के दूत श्रीभगवान् के नामों की अद्भुत महिमा को सुनाकर ब्राह्मण अजामिल को भगवान् विष्णु के लोक में ले गये इस बात को कहा गया है । **नयकोविदाः** अर्थात् नीतिनिपुण ॥१॥

**विष्णुदूता ऊचुः**

**अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् । यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो यौर्ध्रियते वृथा ॥२॥**

**अन्वयः**— अहो कष्टम् धर्मदृशाम् सभाम् अधर्मः स्पृशते यत्रयैः अदण्ड्येषु अपापेषु वृथा दण्डो ध्रियते ॥२॥

**भगवान् विष्णु के दूतों ने कहा**

**अनुवाद**— यमदूतों यह कष्ट की बात है कि धर्मज्ञों की सभा में अधर्म प्रवेश कर रहा है क्योंकि वहाँ अदण्डनीय और निष्पाप पुरुषों को व्यर्थ ही दण्ड दिया जाता है ॥२॥

**भावार्थ दीपिका**

धर्मदृशां सभामधर्मः स्पृशति । तदाहुः यत्र सभायाम् । यैर्धर्मदृग्भिः । तेषां तां सभाम् ॥२॥

**भाव प्रकाशिका**

धर्मज्ञों की सभा में अधर्म प्रवेश कर रहा है । उस समय के धर्म के अभिज्ञों द्वारा उन सबों की उस सभा में॥२॥

**प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः । यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥३॥**

**अन्वयः**— ये च प्रजानां पितरः शास्तारः साधवः समाः यदि तेषु वैषम्यं स्यात् प्रजाः कं शरणं यान्ति ॥३॥

**अनुवाद**— जो लोग प्रजाओं के रक्षक, प्रशासक परोपकारी और समदर्शी हैं वे ही यदि प्रजा के साथ विषमता का व्यवहार करने लगें तो फिर प्रजायें किसके शरण में जायेंगी ?॥३॥

**भावार्थ दीपिका**

पितरः पितृवत्पालकाः शास्तारो दण्ड्यनुशिक्षकाः । वैषम्यमदण्ड्यदण्डनम् ॥३॥

**भाव प्रकाशिका**

पितरः अर्थात् पिता के समान पालन करने वाले शास्तारः अर्थात् दण्ड देने वाले को शिक्षा देने वाले । वैषम्यम् अर्थात् अदण्डनीय को दण्डित करना ॥३॥

**यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥४॥**

**अन्वयः**— श्रेयान् यद् यद् आचरति इतरः तत्तदीहते, स यत् प्रमाणं कुरुते लोकः तदनुवर्तते ॥४॥

**अनुवाद**— सत्पुरुष जैसा आचरण करते हैं साधारण लोग भी वैसा ही करते है । वे अपने आचरण के द्वारा जिस कर्म को धर्मानुकूल प्रमाणित करते हैं लोग उसी का अनुकरण करते हैं ॥४॥

**भावार्थ दीपिका**

एतत्प्रवर्तितमधर्ममन्योऽपि करिष्यतीति महत्कष्टमभूदित्याहुः-यद्यदिति । श्रेयान् श्रेष्ठः ॥४॥

**भाव प्रकाशिका**

इसके द्वारा प्रवर्तित अधर्म को दूसरे लोग भी करने लगेंगे यह अत्यन्त कष्ट की बात है इस तरह से श्रीभगवान् के दूतों ने कहा । श्रेयान् अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष ॥४॥

**यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः । स्वयं धर्ममधर्मं वा नहि वेद यथा पशुः ॥५॥**

**अन्वयः**— यस्य अङ्के शिरम् आधाय निर्वृतः लोकः स्वपिति सः पशु यथा स्वयं धर्मम् अधर्मंवा न वेद ॥५॥

**अनुवाद**— जिसकी गोद में सिर रखकर संसार निश्चिन्त होकर सोता है वही यदि पशुओं के समान धर्म और अधर्म को नहीं जाने तो क्या होगा ॥५॥

**भावार्थ दीपिका**

विश्वस्तघातादपीत्याहुः यस्येति द्वाभ्याम् । निर्वृतो निश्चिन्तः ॥५॥

**भाव प्रकाशिका**

यस्य इत्यादि दो श्लोकों द्वारा यह बतलाया गया है कि यह तो विश्वासघात से भी बढ़कर पाप है । निर्वृतः अर्थात् निश्चिन्त ॥५॥

**स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् । विश्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥६॥**

**अन्वयः**— विश्रम्भणीयः भूतानां सघृणः सः न्यर्पितात्मानम् अचेतनम्, कृतमैत्रम् कथं द्रोग्धुम् अर्हति ॥६॥

**अनुवाद**— विश्वसनीय तथा जीवों पर दया करने वाला वह पुरुष आत्म समर्पण करने वाले अचेतन तथा मित्रता के भाव से युक्त पुरुष के प्रति विश्वासघात कैसे कर सकता है ?॥६॥

**भावार्थ दीपिका**

विश्वासेन नितरामर्पितः आत्मा येन तम् । विश्रम्भणीयो विश्वसनीयः । सघृणश्चेत् ॥६॥

### भाव प्रकाशिका

विश्वास होने के कारण जिसने पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर दिया है उसके साथ विश्वसनीय और दयालु व्यक्ति विश्वासघात कैसे कर सकता है ।।६।।

**अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि । यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ।।७।।**

**अन्वयः**— अयं हि जन्मकोट्यंहसाम् अपि कृतनिर्वेशः यत् विवशः सन् हरेः स्वस्त्यनं नाम व्याजहार ।।७।।

**अनुवाद**— इसने तो करोड़ों जन्मों के पापों का इस तरह से ही प्रायश्चित कर लिया कि मृत्यु के समय विवश होकर श्रीहरि के मङ्गलमय नाम का उच्चारण किया ।।७।।

### भावार्थ दीपिका

नन्वस्य पापिनो दण्डे किमर्थमाक्रोशः क्रियते तत्राहुः-अयं हीति । यद्यस्माद्विवशोऽपि हरेर्नाम व्याजहारोच्चारितवान्। न केवलं प्रायश्चित्तमात्रं हरेर्नाम, अपितु स्वस्त्ययनं मोक्षसाधनमपि । 'सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।' इति स्मृतेः ।।७।।

### भाव प्रकाशिका

यदि दूत यह पूछें कि इस पापी को दण्ड देने पर आपलोगों को क्रोध क्यों हो रहा है ? तो इस पर विष्णु दूतों ने कहा **अयं हि० इत्यादि** चूकि यह विवश भी होकर श्रीहरि के नाम का उच्चारण किया है । वह श्रीहरि का नाम केवल प्रायश्चित्त ही नहीं है अपितु वह मङ्गलमय होने के कारण मोक्ष का साधन भी है । स्मृति भी कहती हैं— सकृदुच्चरितम्० इत्यादि जिसने एक बार भी श्रीभगवान् के हरि इन दो अक्षरों का उच्चारण कर लिया उसने मोक्ष प्राप्ति के लिए कमर कस लिया है ।।७।।

**एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् । यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ।।८।।**

**अन्वयः**— अस्य अघोनः एतेनैव अघनिष्कृतम् कृतं स्यात् यदा नारायणाय इति चतुरक्षरम् जगाद ।।८।।

**अनुवाद**— इस पापी के सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित्त उसी समय हो गया जिस समय इसने नारायण आप (हे नारायण आओ) इस चार अक्षरों वाले श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण किया ।।८।।

### भावार्थ दीपिका

ननु कर्मसाद्गुण्यकरं हरेर्नामेति युक्तम्, 'यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ।' इत्यादिवचनात्, स्वातन्त्र्येण त्वघनिवर्तकं हरेर्नाम कथं स्यात्तत्राहुः- एतेनैवेति । अघोनः अघवतः । मघवच्छब्दवद्रूपम्। यत् आ इति च्छेदः । आ ईषदाभासमात्रं चतुरक्षरं यन्नाम जगाद एतेनैव केवलेन । चतुरक्षरमित्यनेनाधिक्यं च दर्शितम् । कथं जगाद । नारायण आय आगच्छ इत्येवं विक्रोशरूपेण पुत्राह्वानेन । अयं भावः-कर्माङ्गत्वेऽपि हरिनाम्नः खादिरत्वादिवत्संयोगपृथक्त्वेन सर्वप्रायश्चित्तार्थत्वं युक्तमेव । तथाहि 'अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः । पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ।' इत्यादिभिः पुराणे तावत्सहस्रशो नाम्नः स्वातन्त्र्यमवगम्यते । नचैतेऽर्थवादा इति शङ्कनीयम्; विधिशेषत्वाभावात् । नच विध्यश्रवणादन्यशेषता कल्पनीया । यदा 'आग्नेयोऽष्टाकपालो भवति' इत्यादिवदप्राप्तार्थत्वेन विधिकल्पनोपपत्तेः । मन्त्रेषु च मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम नमामहे । विप्रासो जातवेदसः' अस्य जानन्तोनाम चिद्विवक्तन' इत्यादिषु नाम्नस्तपोदाना-दिसर्वधर्माधिक्यमवगम्यते । उपपादितं च मन्त्रार्थवादानामपि स्वार्थे प्रामाण्यं देवताधिकरणे । तस्माच्छ्रीनारायणनामा भासमात्रेणैव सर्वाघनिष्कृतं कृतं स्यादिति ।।८।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि श्रीहरि का नाम कर्म साद्गुण्य का साधन हो यह तो उचित ही है क्योंकि कहा गया

है कि **यस्य स्मृत्या० इत्यादि** अर्थात् जिन श्रीभगवान् के नाम का स्मरण करने तथा उच्चारण करने से तपस्या तथा यज्ञ आदि कर्मों में होने वाला कर्म शीघ्र ही पूर्ण हो जाता है उन भगवान् अच्युत की मैं वन्दना करता हूँ, किन्तु श्रीहरि का नाम स्वतन्त्र रूप से पापों का विनाशक कैसे हो सकता है, तो इसके उत्तर में भगवान् के दूतों ने कहा **एतेनैव० इत्यादि** अर्थात् इस पापी के सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित्त उसी समय हो गया जब इसने नारायाण इस चार अक्षरों का उच्चारण कर लिया । अघोनः पद का अर्थ पापी का । जिस तरह मघोन रूप बनता है उसी तरह अघोनः रूप बना है । **यदा नारायणायेति** में **तद्आ नारायणाय** इस प्रकार पदच्छेद है । आ यह अल्प आभास का बोधक है । अर्थात् श्रीभगवान् के चार अक्षरों वाले नाम का उच्चारण किया । केवल इससे ही पापों का प्रायश्चित हो गया । अब प्रश्न है कि **नारायणाय** में तो पाँच अक्षर हैं चार अक्षर कैसे है ? तो इसका उत्तर है कि नारायणाय का पदच्छेद **नारायण आय** अर्थात् हे नारायण आओ । इस तरह से उसने अपने पुत्र को बुलाया। **अयं भावः इत्यादि** कहने का अभिप्राय है कि खादिरत्वादि गण के समान कर्म का अङ्ग होने पर भी श्रीहरि का नाम संयोग पृथक्त्व के कारण सभी पापों का प्रायश्चित्त रूप है इसमें कोई दोष नहीं है । कहा भी गया है **अवशेन० इत्यादि** विवश होकर भी जिन श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण करने पर पुरुष उसी तरह से सभी पापों से मुक्त हो जाता है जिस तरह सिंह को देखकर मृगगण डरकर पलायन कर जाते हैं । यदि कहें कि पुराणों में श्रीहरि के हजारों नामों को स्वतन्त्र रूप से पाप विनाशक कहा गया है यह नामों का अर्थवाद नहीं है क्योंकि यह किसी विधि का शेष नहीं है । यह भी नहीं कहा जा सकता है कि विधि पद का श्रवण नहीं किए जाने पर शेषत्व की कल्पना कर लेनी चाहिए । जब **आग्नेयोऽष्टकपालो भवति इत्यादि** के समान अश्रुत अर्थ के विधित्व की कल्पना की जाती है । मन्त्रों में भी मर्ता अमर्त्यस्य ते भूति नाम मनाम हे विप्रासे जातवेदसः अर्थात् मरण धर्मा हम ब्राह्मण गण अग्नि का नाम तपो दान आदि सभी धर्मों से अधिक मानते हैं । तथा **आस्य जानन्तो ना चिद् विवक्तन'** अर्थात् इस भगवान् विष्णु के नामों का आपलोग इनके नामों के माहात्म्य को जानते हुए अच्छी तरह से उच्चारण करें । इन सभी मन्त्रों में श्रीभगवान् के नामों का तपस्या दान इत्यादि सभी धर्मों से आधिक्य ज्ञात होता है । किञ्च देवताधिकरण में इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि अर्थवादों का भी स्वार्थ में महत्त्व होता है । अतएव श्रीनारायण इस नामाभास के ही द्वारा सभी पापों का प्रायश्चित्त हो ही सकता है ।।८।।

**स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः । स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ।।९।।**
**सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् । नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ।।१०।।**

**अन्वयः**— स्तेनः सुरापः मित्रधुक् ब्रह्महा, गुरु तल्पगः स्त्रीराजपितृगोहन्ता, ये च अपरे पातकिनः, सर्वेषाम् अघवताम् इदम् एव सुनिष्कृतम् विष्णोः नामव्याहरणम् यतः तद्विषयामतिः भवतीतिशेषः ।।९-१०।।

**अनुवाद**— चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी,ऐसे लोगों का संसर्गी , स्त्री, राजा, पिता और गौ को मारने वाला चाहे और भी बड़ा कोई पापी हो सबों के लिए इतना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है कि श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण किया जाय क्योंकि भगवान् के नामों का उच्चारण करने से मनुष्य की बुद्धि भगवान् के गुण, लीला और स्वरूप में लग जाती है और स्वयं भगवान् की उसके प्रति आत्मीय बुद्धि हो जाती है।।९-१०।।

### भावार्थ दीपिका

ननु कामकृतानां बहूनां महापातकानां सहस्रश आवर्तितानां द्वादशाब्दकोटिभिरप्यनिवर्त्यानां कथमिदमेकमेव प्रायश्चित्तं स्यात्तत्राहुः-स्तेन इति द्वाभ्याम् । सुनिष्कृतं श्रेष्ठं प्रायश्चित्तमिदमेव । तत्र हेतुः-यतो नामव्याहरणात् । तद्विषया नामोच्चारकपुरुषविषया मदीयोऽयं मया सर्वतो रक्षणीय इति विष्णोर्मतिर्भवति ।।९-१०।।

**भाव प्रकाशिका**

प्रश्न होता है कि काम वशात् किए गये अनेक महापातकों को जो हजारों बार किए जा चुके हैं जिनकी निवृत्ति बारह करोड़ वर्षों में भी नहीं हो सकती है, केवल इस भगवान् के नाम से कैसे प्रायश्चित्त हो सकता है? तो इसके उत्तर में **स्तेनः सुरापः इत्यादि** दो श्लोकों को कहा गया है। **सुनिष्कृतम्** अर्थात् श्रेष्ठ प्रायश्चित्त भगवान् के नामों का उच्चारण ही है। उसका कारण है कि श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण करने से मनुष्य की बुद्धि श्रीभगवान् की लीला, गुण तथा ऐश्वर्य विषयिणी हो जाती है और उसके कारण श्रीभगवान् की भी उसमें आत्मीयत्व की बुद्धि हो जाती है ॥९-१०॥

**न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।**
**यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥११॥**

**अन्वयः**— ब्रह्मवादिभिः उदितैः निष्कृतैः व्रतादिभिः अघवान् तथा न विशुद्ध्यति यथा हरेः नामपदैः उदाहृतैः तत् उत्तम श्लोक गुणोपलम्भकम् ॥११॥

**अनुवाद**— ब्रह्मवादी ऋषियों के द्वारा बतलाये गये प्रायश्चित्तों जो कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत स्वरूप हैं उनसे पापी पुरुष की उस प्रकार से शुद्धि नहीं होती है, जितनी शुद्धि श्रीभगवान् के नाममय पदों का उच्चारण करने से होती है, क्योंके वे नाम श्रीभगवान् के गुणों का ज्ञान कराने वाले हैं ॥११॥

**भावार्थ दीपिका**

श्रेष्ठत्वमेवोपपादयन्ति–नेति द्वाभ्याम्। ब्रह्मवादिभिर्मन्वादिभिरुक्तैर्व्रतादिभिर्निष्कृतैस्तथा न शुध्यति। उदाहृतैरुच्चारितैर्यथा। नामपदैरित्यनेन नमामीत्यादिक्रियायोगोऽपि नापेक्षित इति दर्शितम्। किंच तन्नामपदोच्चारणमुत्तमश्लोकस्य गुणानां चोपलम्भकं ज्ञापकं भवति नतु कृच्छ्रचान्द्रायणादिवत्पापनिवृत्तिमात्रोपक्षीणमित्यर्थः ॥११॥

**भावप्रकाशिका**

श्रीभगवान् के नामोच्चारण की श्रेष्ठता का ही प्रतिपादन **निष्कृतैः इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा किया गया है। पापी पुरुष के लिए ब्रह्मवादी मनु आदि ऋषियों के द्वारा वर्णित व्रत आदि प्रायश्चित्तों से उतनी शक्ति नही होती है जितनी शुद्धि श्रीभगवान् के नामोच्चारण मात्र से हो जाती है। **नाम पदैः** कहने का अभिप्राय है कि हरि नमामि विष्णु नमामि इत्यादि भी कहने की कोई अपेक्षा नहीं हैं केवल श्रीहरि, श्रीविष्णो इत्यादि नामोच्चारण करने मात्र से भी पापों का विनाश हो जाता है। किञ्च श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने मात्र से श्रीभगवान् के गुणों का ज्ञान होता है। और कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतों के करने से तो केवल पापों का ही नाश होता है। यदि हरये नमः कहें या विष्णवे नमः कहें तो बहुत अच्छा है ॥११॥

**नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।**
**तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥१२॥**

**अन्वयः**— तत् कृतेऽपि निष्कृते मनः चेत् असत् पथे धावति तद्धि एकान्तिकं, तत् कर्मनिर्हारम् अभीप्सतां हरेः गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥१२॥

**अनुवाद**— यदि प्रायश्चित्त कर लेने पर भी मन असन्मार्ग में दौड़ता है तो (पाप में लगता है तो) वह चरम सीमा का पूर्ण रूप से प्रायश्चित्त नहीं हो सकता है अतएव जो लोग ऐसा प्रायश्चित्त करना चाहें जिससे पापों की जड़ ही समाप्त हो जाय तो उनको श्रीभगवान् के गुणों का ही चिन्तन करना चाहिए, क्योंकि उससे चित्त सर्वदा के लिए शुद्ध हो जाता है ॥१२॥

### भावार्थ दीपिका

नैकान्तिकं नात्यन्तशोधकम् । तन्निष्कृतम् । यस्मिन्कृतेऽप्यसत्पथे पापमार्गे मनो धावति चेत् कर्मणां पापानां निर्हारमात्यन्तिकं नाशमिच्छतां हरेर्गुणानुवाद एव प्रायश्चित्तम् । यतोऽसौ खलु सत्त्वभावनश्चित्तशोधकः ।।१२।।

### भाव प्रकाशिका

प्रायश्चित्तों को करने से पापों की सदा-सदा के लिए पूर्ण रूप से शुद्धि नहीं होती है । उस प्रायश्चित्त के करने से भी यदि मन असन्मार्ग में जाता है तो वह पूर्ण रूप से शुद्धि नहीं होती है । अतएव जो लोगों पापों का जड़ से ही नाश करना चाहें उन लोगों को श्रीभगवान् के गुणों का गायन करना चाहिए, क्योंकि उससे अन्तःकरण की पूर्ण रूप से शुद्धि हो जाती है ।।१२।।

**अथैनं माऽपनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् । यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ।।१३।।**

**अन्वयः**— अथ कृताशेषाधनिष्कृतम् एवं मा अपनयत, यत् मियमाण असौ भगवन्नाम समग्रहीत ।।१३।।

**अनुवाद**— अतएव इसको तुम लोग मत ले जाओं इसने अपने समस्त पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है । क्योंकि मृत्यु की बेला में इसने श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण किया है ।।१३।।

### भावार्थ दीपिका

अथ तस्मादेनं मा अपमार्गेण नयत । कृतमशेषाणामघानां निष्कृतं येन । यद्यस्मात् । समग्रहीत् सम्पूर्णमुच्चारितवान्। नामैकदेशेनाप्यलमिति भावः । म्रियमाण इत्यनेन पुनः पापान्तरासंभव उक्तो नतु तत्कालत्वमेव विविक्षितम् तदानीं कृच्छ्रादिविधिवन्नामोच्चारणविधेरप्यसंभवात् । नच विधिं विना काकतालीयनामोच्चारणं पापापहमिति प्रमाणमस्ति ।।१३।।

### भाव प्रकाशिका

अतएव इसको निन्दित मार्ग से मत ले जाओ, इसने अपने समस्त पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है । क्योंकि इसने भगवान् के नारायण इस सम्पूर्ण नाम का उच्चारण किया है । भगवान् के नाम के एक अंश मात्र का भी उच्चारण पापों का विनाशक है, इसमें प्रमाण है ।।१३।।

**साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा । वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ।।१४।।**

**अन्वयः**— साङ्केत्यं वा पारिहास्यंवा स्तोभं हेलानम् एव वा, वैकुण्ठ नाम ग्रहणम् अशेषाधहरं विदुः ।।१४।।

**अनुवाद**— महापुरुष इस बात को जानते हैं कि सङ्केत में किसी दूसरे अभिप्राय से परिहास में या राग अलापने में या किसी अनादर भी करने में यदि भगवान् के नाम का उच्चारण हो जाता है तो वह जीव समस्त पापों को विनष्ट कर देता है ।।१४।।

### भावार्थ दीपिका

नन्वयं पुत्रनामाग्रहीन्न तु भगवन्नाम तत्राहुः-साङ्केत्यं पुत्रादौ सङ्केतितम् । पारिहास्यं परिहासेन कृतम् । स्तोभं गीतालापपूरणार्थं कृतम् । हेलनं किं विष्णुनेति सावज्ञमपि च वैकुण्ठनामोच्चारणम् ।।१४।।

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इसने अपने पुत्र के नाम का उच्चारण किया था श्रीभगवान् के नाम का नहीं तो इसके उत्तर अभिप्राय से भगवान् के दूतों ने कहा— **सांकेत्यम्० इत्यादि** यदि संकेत में किसी दूसरे के परिहास में, गीतों का राग अलापने में अथवा अवहेलना करने में जैसे विष्णु से क्या लाभ है ? इस तरह से कहने में भी यदि भगवान् का नाम कोई ले लेता है तो उससे उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ।।१४।।

**पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः । हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥१५॥**

**अन्वयः**— पतितः स्खलितः भग्नः, संदष्टः तप्तः आहतः हरिः इति अवशेनाह पुमान् यातनाम् नार्हति ॥१५॥

**अनुवाद**— गिरते समय, पैर फिसलने पर, अङ्ग-भङ्ग होने पर, सांप के डंसने पर, ज्वर आदि से संतप्त होने पर अथवा चोट लगने पर जो मनुष्य हरि इस नाम का उच्चारण कर लेता है तो वह यमयातना का पात्र नहीं बनता है ॥१५॥

### भावार्थ दीपिका

ननु नायं सङ्कल्पपूर्वकं वैकुण्ठनामाग्रहीत्किंतु पुत्रस्नेहपरवशः संस्तत्राहुः पतित इति । अवशेनापि यो हरिरित्याह स यातनां नार्हति । पुमानित्यनेन नात्र वर्णाश्रमादिनियम इत्युक्तम् । अवशत्वमेवाह-पतितः प्रासादादिभ्यः । स्खलितो मार्गे । भग्नो भग्नगात्रः । संदष्टः सर्पादिभिः तप्तो ज्वरादिना । आहतो दण्डादिना ॥१५॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इसने सङ्कल्प पूर्वक श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण नहीं किया है अपितु इसने तो पुत्र स्नेह के कारण उसने उसका नाम पुकारा है तो इस पर श्रीभगवान् के दूत कहते हैं पतितः इत्यादि । यदि कोई विवश होकर श्रीहरि के नाम का उच्चारण कर लेता है तो वह यम यातना का पात्र नहीं बनता है । पतितः अर्थात् छत पर से गिरते आदि के समय, रास्तें में फिसलने पर या अङ्ग भङ्ग होने पर सर्प आदि के काटने पर या ज्वर आदि से सतप्त होने पर या दण्डे आदि से मारे जाने पर भी यदि विवश होकर वह भगवन्नामोच्चारण करता है तो वह यम यातना का पात्र नहीं बनता है ॥१५॥

**गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च । प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥१६॥**

**अन्वयः**— महर्षिभिः गुरूणां लघूनां च पापानां गुरूणि लघूनि च प्रायश्चित्तनि ज्ञत्वा उक्तानि ॥१६॥

**अनुवाद**— महर्षियों ने बड़े एवं छोटे पापों के बड़े तथा छोटे प्रायश्चित्तों को जानकर ही उन सबों को बतलाया है । अर्थात् बड़े पापों के लिए बड़े प्रायश्चित्तों को और छोटे पापों के लिए छोटे प्रायश्चित्तों को बतलाया है ॥१६॥

### भावार्थ दीपिका

ननु महतः पापस्य महदेव प्रायश्चित्तं युक्तं नत्वल्पं नामग्रहणमात्रम्, पापतारतम्येन कृच्छ्रादितारतम्यवत्, तत्राहुर्द्वाभ्याम्। गुरुणां पापानां गुरूणि प्रायश्चित्तानि लघूनि लघूनां च तारतम्यं ज्ञात्वा मन्वादिभिरुक्तानि । अतस्तत्र तथैव व्यवस्था । हरिनाम्नस्तु नेयं व्यवस्थोक्ता । 'विष्णोः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः' इति वचनात् । नच सुराबिन्दुपाने महापातकत्वस्मरणवन्नाम्नस्तत्प्रायश्चित्तत्वस्मरणस्यायमतिभारः ॥१६॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहें कि बड़े पापों के लिए बड़ा ही प्रायश्चित्त होना चाहिए छोटा नाम ग्रहण इत्यादि नहीं जैसा पाप हो उसी तरह का उसका प्रायश्चित्त भी होना चाहिए । इसके उत्तर में भगवद् दूतों ने दो श्लोकों में कहा मन्वादि महर्षियों ने तो बड़े पापों के लिए बड़े प्रायश्चित्तों और छोटे पापों के लिए छोटे प्रायश्चित्तों को ही बतलाया है । अतएव वह व्यवस्था उन लोगों के ही यहाँ है । श्रीहरि के नाम के विषय में ऐसी कोई भी व्यवस्था नहीं हे । सभी पापों के श्रीहरि के नाम के स्मरण की ही व्यवस्था है । स्मृतियाँ कहती भी हैं **विष्णोः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः** भगवान् विष्णु के स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । ऐसा नहीं है कि मदिरा पान कर लेने पर उसके महापातकों में गिने जाने के कारण श्रीभगवान् के नाम स्मरण रूप उसके प्रायश्चित्त के स्मरण का अतिभार है ॥१६॥

**तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः । नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥१७॥**

**अन्वयः**— तैः तपोदान जपादिभिः तानि अघानि पूयन्ते अधर्मजं तदधृदयं न, ईशाङ्घ्रि सेवया तदपि ॥१७॥

**अनुवाद**— महर्षियों द्वारा वर्णित तपस्या दान, जप तथा व्रतों आदि से उन पापों की ही शुद्धि होती है, अधर्म करने के कारण दूषित हुए हृदय की शुद्धि नहीं होती है कि श्रीहरि के चरणों की सेवा करने से तो हृदय भी पवित्र हो जाता है ॥१७॥

### भावार्थ दीपिका

किंच तैस्तपोदानादिभिस्तान्यघान्येव पूयन्ते नश्यन्ति । अधर्माज्जातं मलिनं तु तस्य पापकर्तुर्हृदयम् । यद्वा तेषामघानां हृदयं सूक्ष्मं रूपं संस्काराख्यं न शुध्यति । तदपीशाङ्घ्रिसेवया कीर्तनादिना शुध्यतीत्यर्थः । अयं भावः- महान्त्यपि पापानि सकृदुच्चारितेनैव नामुना नश्यन्ति । सकृत्प्रवर्तितेन दीपेनेव गाढध्वान्तानि । तदावृत्त्या तु पापान्तरस्यानुत्पत्तिः । दीपधारण इव तमोऽन्तरस्य । ततश्च वासनाक्षयाद्धृदयशुद्धिः । एतदर्थमेव तत्र तत्रावृत्तिविधानम् । 'पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम्' इत्यादिषु । तदेवात्राप्युक्तम् 'गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः' । 'तदपीशाङ्घ्रिसेवया' इति । च । अतोऽस्य हरिनाम्नैव सर्वपापक्षयो वासनाक्षयस्तु महापुरुषदर्शनादिभिरिति ॥१७॥

### भाव प्रकाशिका

महर्षियों द्वारा प्रायश्चित्त रूप से उपदिष्ट तप, दान, जप आदि के द्वारा उन पापों की ही शुद्धि होती है किन्तु अधर्माचरण के कारण दूषित हुए हृदय की शुद्धि उनसे नहीं होती है । अथवा उन पापों का जो हृदय पर सूक्ष्म संस्कार हैं उनकी शुद्धि नहीं होती है । किन्तु हरिनाम कीर्तन के द्वारा तो उसकी भी शुद्धि हो जाती है । कहने का अभिप्राय है कि मुँह से भी बड़े पाप श्रीभगवान् के नाम का एक बार भी उच्चारण करने से विनष्ट हो जाते हैं । उसी तरह जिस तरह एक बार दीपक जला देने से जैसे घोर अन्धकार विनष्ट हो जाता है । श्रीभगवान् के नामों का बार-बार स्मरण करने से तो दूसरे पाप उत्पन्न ही नहीं होते है । जिस तरह से दीपक के लिए रहने से वहाँ दूसरा अन्धकार नहीं उत्पन्न होता है । बार-बार नाम लेने से तो वासना का क्षय हो जाने से हृदय की शुद्धि हो जाती है । इसीलिए स्थान-स्थान पर भगवन्नामोच्चारण का विधान किया गया है । कहा भी गया है **पापक्षयश्च० इत्यादि** दिन रात भगवान् के नाम स्मरण से पापों का नाश होता है । उसी बात को इस प्रकरण में (इस अध्याय में) कहा गया है कि **गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः** अर्थात् श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करनेसे अन्तःकरण की शुद्धि होती है । इस श्लोक में भी कहा गया है **तदपीशाङ्घ्रि सेवया** अर्थात् श्रीहरि के चरणों की सेवा से तो अन्तकरण की भी शुद्धि हो जाती है । अतएव इस अजामिल के श्रीहरि का नाम स्मरण करने से ही सारे पापों का विनाश हो गया है । वासना का नाश तो महापुरुषों के दर्शन आदि से होता है ॥१७॥

**अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् । सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः ॥१८॥**

**अन्वयः**— अज्ञानात् अथवा ज्ञानात् यत् उत्तमश्लोक नाम सङ्कीर्तितम् अनलः एधो यथा पुंसः अघं दहेत् ॥१८॥

**अनुवाद**— जानकर अथवा बिना जाने ही जो श्रीभगवान् के नाम का स्मरण किया जाता है उससे पापों का नाश उसी तरह हो जाता है जिस तरह अग्नि इन्धन को जला देती है ॥१८॥

### भावार्थ दीपिका

तथापि पापप्रायश्चित्तमिदमिति ज्ञात्वा नोच्चारितमिति चेत्तत्राहुः-अज्ञानादिति । बालके नाज्ञानादपि प्रक्षिप्तोऽग्निर्यथा काष्ठराशिं दहति तद्वत् ॥१८॥

### भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि जिसको यह ज्ञान हो कि भगवन्नाम स्मरण पापों का प्रायश्चित्त है किन्तु वह नामों स्मरण करता है तो क्या होगा ? तो इस पर कहते हैं कि जिस तरह अग्नि जलाकर इन्धन पर रखा जाय अथवा बिना जलाये भी, वह जिस तरह इन्धन को जलाकर भस्म ही कर देती है, उसी तरह भगवान् का नाम जानकर उच्चारण किया जाय अथवा बिना जाने ही उच्चारण किया जाय वह पुरुष के पापों को विनष्ट करता ही है ।।१८।।

**यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया । अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ।।१९।।**

**अन्वयः**— यथा वीर्यतमं अगदं यदृच्छया उपयुक्तं अजानतः अपि आत्मगुणं कुर्यात् एवं मन्त्रोऽप्युदाहृतः ।।१९।।

**अनुवाद**— यदि कोई उसके गुण को जाने बिना ही किसी अत्यन्त शक्ति युक्त औषधि को खाले तो भी वह औषधि अपना काम करेगी ही उसी तरह नाम का प्रभाव जाने बिना भी उसका उच्चारण कोई करता है तो वह पापों का विनाश करेगा ही ।।१९।।

### भावार्थ दीपिका

नन्विदमपि पार्षदनुपदिष्टं श्रद्धाहीनं च कथं प्रायश्चित्तं स्यात्तत्राहुः-यथेति । अगदमौषधम् । वीर्यवत्तममिति वक्तव्ये वीर्यतममित्युक्तम् यदृच्छया श्रद्धादिहीनमुपयुक्तं भक्षितं पार्षन्मुखादजानतोऽपि स्वगुणमारोग्यं कुर्यात् । मन्त्रोऽपि नामात्मकस्तथा स्वकार्यं कुर्यादेव । नहि वस्तुशक्तिः श्रद्धादिकमपेक्षते इत्यर्थः । तदुक्तं विष्णुधर्मेषु 'हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः । अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ।' इति ।।१९।।

### भाव प्रकाशिका

हे श्रीभगवान् के पार्षदों जो व्यक्ति नाम के माहात्म्य को जाने बिना भी बिना श्रद्धा के ही नामों का उच्चारण करता है तो उस दशा में नामोच्चारण पापों का प्रायश्चित कैसे बन सकता है । इस पर भगवत् पार्षदों ने **यथा०** **इत्यादि** श्लोक को कहा— अगद औषधि को कहते हैं । विर्यवत्तमम् कहना चाहिए किन्तु उसके स्थान पर **वीर्यतमम्** कहा गया है । जिसको चिकित्सक ने अत्यन्त शक्ति सम्पन्न औषधि का गुण नहीं बतलाया है फिर भी वह जाने बिना ही बिना श्रद्धा के ही उस औषधि को खा लेता है तो भी वह अपना जो गुण है निरोग बना दवा करेगी ही । इसी तरह नाम का माहात्म्य जाने बिना भी यदि कोई उसका उच्चारण करता है तो वह पापों का विनाश करेगा ही । वस्तु की शक्ति श्रद्धा इत्यादि की अपेक्षा नहीं करती है । विष्णुधर्म ग्रन्थ में कहा ही गया है **हरिर्हरति०** **इत्यादि** अर्थात् श्रीहरि का नाम यदि कोई दुष्ट व्यक्ति भी लेता है, तो वह उसके पापों का विनाश उसी तरह करता है जिस तरह बिना इच्छा के ही अग्नि का स्पर्श किया जाय तो वह जलाने का काम करेगी ही ।।१९।।

### प्रक्षिप्त श्लोक

**पतिं वः पृच्छत भटा धर्मेऽस्मिन्यदि संशयः । स वेद परमं गुह्यं धर्मस्य भगवान्यमः ।।१।।**

**अन्वयः**— हे भटाः यदि अस्मिन् धर्मे वः संशयः तदावः पतिं पृच्छत सः भगवान् यमः वेदस्य परमं गुह्यं वेद ।।१।।

**अनुवाद**— हे यमदूतों तुम लोगों को यदि इस धर्म के विषय में सन्देह हो तो जाकर अपने स्वामी यमराज से पूछ लेना भगवान यम धर्म के परम रहस्य के ज्ञाता हैं ।।१।।

### श्रीशुक उवाच

**त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप । तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ।।२०।।**

**अन्वयः**— हे नृप एवं भागवतं धर्मं सुविनिर्णीय ते तं विप्रं याम्यपाशत् निर्मुच्य मृत्योः अमूमुचन् ।।२०।।

### श्रीशुकदेवजी ने कहा

**अनुवाद**— राजन् इस प्रकार श्रीभगवान् के पार्षदों ने भागवत धर्म का अच्छी तरह से निर्णय करके अजामिल को यमदूतों के पाश से छुड़ाकर उसे मृत्यु के मुख से बचा लिया ॥२०॥

### भावार्थ दीपिका

तं विप्रममूमुचन् मोचयामासुः ॥२०॥

### भाव प्रकाशिका

उस अजामिल को मृत्यु के मुख से बचा लिया ॥२०॥

**इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके । यमराज्ञे यथासर्वमाचचक्षुररिन्दम ॥२१॥**

**अन्वयः**— हे अरिन्दम इति प्रत्युदिता याम्याः यमान्तिके यात्वा यमाराज्ञे यथा सर्वम् आचचक्षुः ॥२१॥

**अनुवाद**— हे अपने शत्रुओं का दमन करने वाले राजन् श्रीभगवान् के पार्षदों द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वे यमदूत यमराज के सन्निकट में जाकर यमराज को सारी घटना सुना दिए ॥२१॥

### भावार्थ दीपिका

प्रत्युदिता निराकृताः सन्तो यात्वा गत्वा यमराजाय यथावत्कथयामासुः ॥२१॥

### भाव प्रकाशिका

भगवत पार्षदों द्वारा इस तरह से लौटा दिए जाने पर वे यमदूत यमराज के पास जाकर सारी घटना ज्यों की त्यों सुना दिए ॥२१॥

**द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः । ववन्दे शिरसा विष्णोः किङ्करान्दर्शनोत्सवः ॥२२॥**

**अन्वयः**— पाशात् विनिर्मुक्त द्विज; गतभी प्रकृतिं गतः, दर्शनोत्सव विष्णोः किङ्करान् शिरसा व वन्दे ॥२२॥

**अनुवाद**— यमदूतों के फन्दे से मुक्त होकर अजामिल निर्भय होकर स्वस्थ हो गया और श्रीभगवान् के पार्षदों के दर्शन के कारण आनन्दित होकर उन सबों को प्रणाम किया ॥२२॥

### भावार्थ दीपिका

दर्शनेनोत्सवो यस्य ॥२२॥

### भाव प्रकाशिका

दर्शन के कारण जिसको प्रसन्नता थी ॥२२॥

**तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिङ्कराः । सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥२३॥**

**अन्वयः**— हे अनघ ! तं विवक्षुम् अभिप्रेत्य महापुरुषकिङ्करा सहसा तस्य पश्यतः तत्र अन्तर्दधिरे ॥२३॥

**अनुवाद**— हे निष्पाप परीक्षित् ! उस अजामिल को बोलने की इच्छा वाला देखकर श्रीभगवान् के पार्षद उसके सामने से अन्तर्धान हो गये ॥२३॥

### भावार्थ दीपिका

विवक्षुं वक्तुमिच्छन्तं ज्ञात्वा ॥२३॥

### भाव प्रकाशिका

अजामिल को कुछ कहने की इच्छा वाला जानकर ॥२३॥

**अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः । धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥२४॥**

**अन्वयः**— अथ अजामिलोऽपि यमकृष्णयो दूतानां शुद्धं भागवतं धर्मं गुणाश्रयत्रैविद्यं च आकर्ण्य भक्तिमानभवदिति उत्तरेण अन्वयः ॥२४॥

**अनुवाद**— अजामिल भी यमराज के दूतों के मुख से वैदिक सगुण (प्रवृत्ति मूलक) धर्म तथा भगवान् के दूतों के मुख से शुद्ध भागवत धर्मों को सुनकर भक्ति सम्पन्न हो गया इस तरह से आगे के श्लोक के साथ अन्वय है ॥२४॥

### भावार्थ दीपिका

त्रैविद्यं वेदत्रयप्रतिपाद्यं गुणाश्रयं यमदूतानां धर्मं कृष्णदूतानां च भागवतं भगवत्प्रणीतं शुद्धं निर्गुणं धर्ममाकर्ण्येति योज्यम् । भक्तिमानासीदित्युत्तरस्यानुषङ्गः ॥२४॥

### भाव प्रकाशिका

त्रैविद्यम् अर्थात् जिसका प्रतिपादन वे दत्रयी करते हैं ऐसे सगुण यमदूतों के द्वारा उक्त धर्म को तथा भगवान् के द्वारा प्रणीत शुद्ध-निर्गुण धर्म को सुनकर अजामिल भक्ति से सम्पन्न हो गया इस तरह से आगे के श्लोक से इसका सम्बन्ध है ॥२४॥

**भक्तिमान्भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः । अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥२५॥**

**अन्वयः**— हरेः माहात्म्यश्रवणात् आशु भगवति भक्तिमान् आत्मनः अशुभम् स्मरतः महान् अनुतापः आसीत् ॥२५॥

**अनुवाद**— श्रीभगवान् के माहात्म्य को सुनने के कारण अजामिल शीघ्र ही भगवान् का भक्त हो गया । अपने पापों को स्मरण करने के कारण उसके मन में अत्यधिक पश्चात्ताप हो रहा था ॥२५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥२५॥

**अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः । येन विप्लावितं ब्रहम वृषल्यां जायतात्मना ॥२६॥**

**अन्वयः**— अहो अविजितात्मनः मे परमं कष्टम् अभूत् येवृषल्यां जायतात्मना मया ब्रह्मविप्लावितम् ॥२६॥

**अनुवाद**— अहो अपने मन को वश में नहीं कर पाने के कारण मुझको अत्यन्तधिकार है । क्योंकि वेश्या के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करके मैंने अपना ब्राह्मण्य खो दिया ॥२६॥

### भावार्थ दीपिका

अनुतापं प्रपञ्चयति-अहो इति चतुर्भिः । येनात्मना मया वृषल्यां पुत्रतया जायमानेन ब्रह्म ब्राह्मणजातिर्विप्लावितं नाशितम् ॥२६॥

### भाव प्रकाशिका

**अहो० इत्यादि** चार श्लोकों द्वारा अजामिल को होने वाले पश्चात्ताप का ही विस्तार से वर्णन करते है । क्योंकि वेश्या के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करने के कारण अपने ब्राह्मत्व को नष्ट कर दिया ॥२६॥

**धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् । हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम ॥२७॥**

**अन्वयः**— सद्भिः विगर्हितं दुष्कृतं कुलकज्जलम् मां धिक् यः अहम् सतीं बालाम् हित्वा, असतीं सुरापाम् अगाम् ॥२७॥

**अनुवाद**— सत्पुरुषों द्वारा निन्दित पापी तथा कुल कलङ्क मुझको धिक्कार है, क्योंकि मैं अपनी पतिव्रता पत्नी को त्यागकर मदिरा पीने वाली पुंश्चली को अपना लिया ॥२७॥

### भावार्थ दीपिका

दुष्कृतं दोषकर्तारम् । कुलस्य कज्जलं कलङ्कम् ।।२७।।

### भाव प्रकाशिका

**दुष्कृतम्** अर्थात् अपराधी **कुलस्य कज्जलम्** अर्थात् कुल का कलङ्क ।।२७।।

**वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ । अहो मयाधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ।।२८।।**

**अन्वयः**— अहोनीचवत् अधुना अकृतज्ञेन वृद्धौ अनाथौ, नान्यवन्धू तपस्विनौ मया अधुना त्यक्तौ ।।२८।।

**अनुवाद**— इस अवस्था में कृतघ्न मैंने अपने वृद्ध, अनाथ तथा असहाय अपने माता-पिता का परित्याग कर दिया है मैं कितना नीच हूँ ।।२८।।

### भावार्थ दीपिका

नास्त्यन्यो बन्धुः पुत्रादिर्ययोः । तपस्विनौ संतप्तौ । अधुना तत्क्षणमेव ।।२८।।

### भाव प्रकाशिका

अजामिल मन-ही-मन पश्चात्ताप कर रहे थे कि मैं अत्यन्त नीच हूँ मैंने ऐसे माता-पिता का परित्याग कर दिया है जिनका कोई रक्षक नहीं था । वे अत्यन्त सन्तप्त हो रहे हैं । ऐसा पाप मैंने इस जन्म में किया है । मैं अत्यन्त कृतघ्न और नीच हूँ ।।२८।।

**सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे । धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ।।२९।।**

**अन्वयः**— सोऽहम् व्यक्तं भृशदारुणे नरके पतिष्यामि यत्र धर्मघ्नाः कामिनः यमयातनाः विन्दन्ति ।।२९।।

**अनुवाद**— इस प्रकार का मैं अब निश्चित रूपसे भयङ्कर नरक में गिरूँगा जहाँपर धर्मघाती कामी जीव यम यातना को भोगते हैं ।।२९।।

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ।।२९।।

**किमिदं स्वप्न आहोस्वित्साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम् । क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन्पाशपाणयः ।।३०।।**

**अन्वयः**— इदं स्वप्नः किम् आहोस्वित् साक्षात् अद्भुतम् दृष्टम् ये पाशपाणयः मां व्यकर्षन् ते अद्यक्व याताः ।।३०।।

**अनुवाद**— क्या मैं यह स्वप्न देख रहा था ? अथवा मैं यह साक्षात् अद्भुत बातें देख रहा था ? जो पाशधारी मुझको खिंच रहे थे वे सब कहाँ चले गये ?।।३०।।

### भावार्थ दीपिका

इदानीं तस्य विमर्शपूर्वकं मोक्षक्रममाह-किमिदमित्यष्टभिः । साक्षात्प्रत्यक्षमिह जाग्रतैव दृष्टम् ।।३०।।

### भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में अजामिल के विचार पूर्वक मोक्ष के क्रम का वर्णन **किमिदम्० इत्यादि** आठ श्लोकों से करते हैं अजामिल सोच रहे थे कि क्या मैं जागरावस्था में ही इस अद्भुत दृश्य को देख रहा था कि मैं स्वप्ना देख रहा था ?।।३०।।

**अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः । व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ।।३१।।**

**अन्वयः**— अथते चत्वार चारुदर्शनाः सिद्धाः क्व गताः ये पाशैः बद्ध्वा भुवः अधो नीयमानं मां व्यमोचयन् ।।३१।।

**अनुवाद**— जो देखने में अत्यन्त सुन्दर लगते थे वे चारो सिद्ध पुरुष कहाँ चले गये जिन लोगों ने मुझको पाश (फाँसी का फँदा) में बाँधकर पृथिवी के नीचे ले जाने वालों से मुझको छुड़ा लिया है ।।३१।।

### भावार्थ दीपिका

ये मां व्यमोचयंस्ते च क्क गताः ।।३१।।

### भाव प्रकाशिका

जिन लोगों ने मुझे पाश से मुक्त किया वे सिद्ध पुरुष कहाँ चले गये ?।।३१।।

**अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने । भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ।।३२।।**

**अन्वयः**— अथापि दुर्भगस्य में विबुधोत्तमदर्शने मङ्गलेन भाव्यम् येन मे आत्मा प्रसीदति ।।३२।।

**अनुवाद**— फिर भी यद्यपि मैं दुर्भाग्य सम्पन्न हूँ उन श्रेष्ठ देवताओं का दर्शन कर लेने के कारण मेरा मङ्गल अवश्य होगा, क्योंकि इस समय मेरा मन प्रसन्न है ।।३२।।

### भावार्थ दीपिका

यद्यप्यहमस्मिन् जन्मनि दुर्भगः पापीयानथापि जन्मान्तरे नूनं पुण्यवानित्याह-विबुधोत्तमदर्शन इति निमित्तसप्तमी । तेषां दर्शनार्थं पूर्वेण मङ्गलेन महता पुण्येन भवितव्यम् । येन दर्शनेन ।।३२।।

### भाव प्रकाशिका

यद्यपि मैं इस जन्म में अत्यन्त पापी और दुर्भाग्य वाला हूँ किन्तु यह निश्चित हैं कि मैं दूसरे जन्म का पुण्वान् हूँ । क्योंकि उन श्रेष्ठ देवताओं का दर्शन होने में मेरे पूर्व जन्म का महान् पुण्य ही कारण है । जिससे कि उन लोगों का दर्शन हो जाने से मेरा मन आनन्दमग्न हो रहा है । विबुधोत्तम दर्शने इस पद में निमित्त के अर्थ में सप्तमी विभक्ति है ।।३२।।

**अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः । वैकुण्ठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ।।३३।।**

**अन्वयः**— अन्यथा म्रियमाणस्य अशुचेः वृषलीपतेः जिह्वा वैकुण्ठनामग्रहणम् न अर्हति ।।३३।।

**अनुवाद**— यदि मेरा पूर्व जन्म का पुण्य नहीं होता तो मरने के समय मुझे अपवित्र तथा कुलटागामी की जिह्वा वैकुण्ठाधिपति श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण नहीं कर सकती थी ।।३३।।

### भावार्थ दीपिका

अन्यथा पूर्वपुण्यं बिना । कथंभूतं वैकुण्ठनाम । गृह्यते वशीक्रियते चित्तमनेनेति ग्रहणम् ।।३३।।

### भाव प्रकाशिका

यदि मेरा पूर्व जन्म का पुण्य नहीं रहता तो फिर कैसे मुझ पापी अपवित्र तथा कुलगामी की जीभ श्रीभगवान् का नामोच्चारण कैसे करती ?।।३३।।

**क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः । क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ।।३४।।**

**अन्वयः**— क्व चाहं कितवः पापः ब्रह्मघ्नः निरपत्रपः क्व च नारायण इत्येतद् भगवन्नाम मङ्गलाम् ।।३४।।

**अनुवाद**— कहाँ तो महाकपटी, पापी, निर्लज्ज तथा ब्रह्मतेज को विनष्ट करने वाला मैं और कहा श्रीभगवान् का मङ्गलमय नारायण यह नाम वस्तुतः मैं कृतकृत्य हो गया ।।३४।।

### भावार्थ दीपिका

ब्रह्मघ्नो विप्रत्वनाशकः ।।३४।।

### भाव प्रकाशिका

ब्रह्मणत्व का विनाश करने वाला ।।३४।।

**सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः । यथा न भूय आत्मानमन्धे तमसि मज्जये ॥३५॥**

**अन्वयः**— सोऽहम् यतचित्तेन्द्रियानिलः तथा यतिष्यामि यथा भूयः आत्मानम् अन्धः तमसि न पातये ॥३५॥

**अनुवाद**— इस प्रकार का मैं अपने मन और इन्द्रियों को अपने वश में करने का ऐसा प्रयास करूँगा कि अपने को घोर अन्धकार मय नरकों न डालूँ ॥३५॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३५॥

**विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् । सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥**

**अन्वयः**— अविद्या कामकर्मजम् इमम् बन्धं विमुच्य, सर्वभूत सुहृत शान्तः मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥

**अनुवाद**— अज्ञान, कामना तथा कर्मों से उत्पन्न इस शरीर के बन्धन से मुक्त होकर मैं सबों का कल्याण चाहने वाला होकर अपनी सारी वासना जन्य कामनाओं को शान्त कर दूँगा । सबों के साथ मित्रता का व्यवहार करूँगा, सबों पर दया करूगा तथा पूर्ण रूप से संयम पूर्वक जीवन व्यतीत करूँगा ॥३६॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३६॥

**मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्यात्ममायया । विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥३७॥**

**अन्वयः**— अहं योषित् मय्या आत्म मायया आत्मानं मोचये यया एव अधमः अहम् क्रीड़ा मृग इव विक्रीडितः॥३७॥

**अनुवाद**— मैं नारी रूपी परमात्मा की माया से अपनी आत्मा को मुक्त कर लूँगा जिसके साथ अधम मैं क्रीडामृग के समान क्रीडा करता रहा ॥३७॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥३७॥

**ममाहमिति देहादौ हित्वाऽमिथ्यार्थधीर्मतिम् । धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥३८॥**

**अन्वयः**— देहादौ मम अहम् इति मति हित्वा घीः तत् कीर्तनादिभिः भगवति मनो धास्ये ॥३८॥

**अनुवाद**— शरीर इन्द्रिय आदि अहन्त्व तथा ममत्व की बुद्धि का परित्याग करके सत्य वस्तु के ज्ञान से सम्पन्न मैं उन परमात्मा का ही कीर्तन आदि करते हुए श्रीभगवान् में ही अपना मन लगाऊँगा ॥३८॥

**भावार्थ दीपिका**

अमिथ्याभूतेऽर्थे धीर्यस्य तथाभूतः सन् देहादौ ममाहमिति मतिं हित्वा मनो धास्ये ॥३८॥

**भाव प्रकाशिका**

सत्य वस्तु परंब्रह्म परमात्मा के ज्ञान से सम्पन्न मैं उनके ही नाम आदि का कीर्तन करते हुए श्रीभगवान् में ही अपने शुद्ध मन को लगाऊँगा ॥३८॥

श्रीशुक उवाच

**इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु । गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥३९॥**

**अन्वयः**— इति साधुषु क्षणसङ्गेन इति जातसुनिर्वेदः मुक्त सर्वानुबन्धनः गङ्गाद्वारमुपेयाय ॥३९॥

**श्रीशुकदेवजी ने कंहा**

**अनुवाद**— इस तरह से क्षणभर के सत्पुरुष की सङ्गति के कारण जिसके मन में सुदृढ वैराग्य उत्पन्न हो गया था वे अजामिल अपने सम्पूर्ण ममताओं के बन्धन से मुक्त होकर गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में चले आये ॥३९॥

### भावार्थ दीपिका

मुक्तं सर्वमनुबन्धनं पुत्रादिस्नेहो येन सः ।।३९।।

### भाव प्रकाशिका

पुत्रों आदि से स्नेह रूप सम्पूर्ण माया के बन्धनों को तोड़कर अजामिल हरिद्वार में चले आये ।।३९।।

**स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः । प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ।।४०।।**

**अन्वयः**— स तस्मिन् देवसदने योगमाश्रितः आसीन प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामः आत्मनि मनः युयोज ।।४०।।

**अनुवाद**— वे उसी देव मन्दिर में योग को अपनाकर आसन लगाकर बैठ गये । अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को संयमित करके मन में लीन कर दिया ।।४०।।

### भावार्थ दीपिका

प्रत्याहृत इन्द्रियग्रामो येन ।।४०।।

### भाव प्रकाशिका

अजामिल ने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों से हटा लिया ।।४०।।

**ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना । युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ।।४१।।**

**अन्वयः**— ततः आत्मसमाधिना गुणेभ्यः आत्मानं वियुज्य अनुभवात्मनि भगवद्धाम्नि ब्रह्मणि मनः युयोज ।।४१।।

**अनुवाद**— उसके पश्चात् आत्म चिन्तन के द्वारा विषयों से अपने मन को हटाकर श्रीभगवान् के धाम में जो अनुभव स्वरूप है उस परंब्रह्म में अपने मन को लगा दिया ।।४१।।

### भावार्थ दीपिका

गुणेभ्यो देहेन्द्रियादिभ्य आत्मानं वियुज्य विशोध्य आत्मसमाधिना चित्तैकाग्र्येण । भगवतो धाम्नि स्वरूपे ।।४१।।

### भाव प्रकाशिका

देह इन्द्रियों आदि से अपने मन को हटाकर अजामिल अपनी चित्त की एकाग्रता के द्वारा श्रीभगवान् के स्वरूप में अपने मन को लगा दिया ।।४१।।

**यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः । उपलभ्योपलब्धान्प्राग्ववन्दे शिरसा द्विजः ।।४२।।**

**अन्वयः**— यर्हि उपरात धीः तस्मिन् तर्हि पुरः पुरुषान् उपलब्धान् उपलभ्य द्विजः शिरसा ववन्दे ।।४२।।

**अनुवाद**— जिस समय आजमिल की बुद्धि उस परमात्म स्वरूप में निश्चल हो गयी उसी समय अपने समान पुरुषों को (भगवत्पार्षदों को) देखा । पूर्व परिचित् उन पुरुषों को पहचान करके उन्होंने भगवत् पार्षदों को शिर झुकाकर प्रणाम किया ।।४२।।

### भावार्थ दीपिका

तस्मिन्भगवद्धाम्नि उपारता निश्चला धीर्यस्य सः तस्मिन्कालेऽद्राक्षीदिति वा । पुरः पुरतः । ततश्च प्रागुपलब्धानेव तानुपलभ्य प्रत्यभिज्ञाय ववन्दे ।।४२।।

### भाव प्रकाशिका

जिस समय अजामिल की बुद्धि भगवत्स्वरूप में निश्चल हो गयी, उसी समय उन्होंने अपने सामने भगवत्पार्षदों को देखा । पूर्व परिचित उन सबों को देखकर अजामिल ने अपना शिर झुकाकर प्रणाम किया ।।४२।।

**हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु । सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥**

**अन्वयः**— दर्शनाद् अनु शरीरं गङ्गायां तीर्थे हित्वा सद्यः भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् रूप जगृहे ॥४३॥

**अनुवाद**— उन पुरुषों के देखने के पश्चात् शरीर को गङ्गाजी के जल में त्यागकर शीघ्र ही परमात्मा के सन्निकटवर्ती पुरुषों का रूप अजामिल ने धारण कर लिया ॥४३॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥४३॥

**साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करैः । हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥**

**अन्वयः**— विप्रः हैमं विमानम् आरुह्य महापुरुष किङ्करैः साकं ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥

**अनुवाद**— अजामिल स्वर्णमय विमान पर बैठकर श्रीभगवान् के दूतों के साथ अर्चिरादि मार्ग से श्रीभगवान् के लोक वैकुण्ठ में चले गये ॥४४॥

**भावार्थ दीपिका**— नहीं है ॥४४॥

**एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ।**
**निपात्यमानो निरये हतव्रतः सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५॥**

**अन्वयः**— एवं सः विप्लवितसर्व धर्मा, दास्याः पतिः गहर्यकर्मणा पतितः हतव्रतः निरये निपात्यमानः भगवन् नामगृह्णन् सद्यः विमुक्तः ॥४५॥

**अनुवाद**— इस तरह से वे अजामिल का वेश्या पति होने के कारण सारा धर्म विनष्ट हो गया था निन्दित कर्म के कारण वे नरक में गिराये जा रहे थे किन्तु श्रीभगवान् का नामोच्चारण करने के कारण ही शीघ्र ही सभी पापों से मुक्त हो गये ॥४५॥

**भावार्थ दीपिका**

उपसंहरति-एवमिति द्वाभ्याम् । विप्लाविताः सर्वे धर्मा येन । हतं व्रतं स्वदारनियमादि यस्य ॥४५॥

**भाव प्रकाशिका**

इस आख्यान का उपसंहार एवम् इत्यादि श्लोकों से किया जा रहा है । जिसने अपना सारा धर्म नष्ट कर दिया था । वह स्वपत्नी ग्रहण इत्यादि के नियमों को भी विनष्ट कर दिया था ॥४५॥

**नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।**
**न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥४६॥**

**अन्वयः**— अतः मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् परं कर्मनिबन्ध कृन्तनं न, यत्पुनः कर्मसु मनः सज्जते ततोऽन्यथा रजस्तमोभ्यां कलिलम् ॥४६॥

**अनुवाद**— जो लोग संसार के बन्धन से मुक्त होना चाहते है उनके लिए भगवन्नोच्चारण से बढ़कर कर्म के बन्धन को काटने वाला कोई भी दूसरा साधन नहीं है । जो लोग दूसरे साधनों को अपनाते है उनका मन रजोगुण और तमोगुण के पचड़े में पड़ारहता है । तथा उन साधनों से सम्पूर्ण पापों का नाश भी नहीं होता है ॥४६॥

**भावार्थ दीपिका**

कर्मनिबन्धस्य पापमूलस्य कृन्तनं छेदकमतः परं नास्ति । कस्मात्परम् तीर्थपदस्यानुकीर्तनात् । तत्र हेतुः-यद्यतोऽनुकीर्तनात्। ततोऽनुकीर्तनात् । अन्यथा प्रायश्चित्तान्तरे रजस्तमोभ्यां कलिलं मलिनमेव तिष्ठति यत्तन्मनः कर्मसु पुनर्न सज्जते ॥४६॥

**भाव प्रकाशिका**

पाप मूल कर्म के बन्धन को काटने वाला अपने चरणों से तीर्थ को तीर्थ बताने वाले श्रीभगवान् के नाम सङ्कीर्तन से बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है । उसका कारण यह है कि श्रीभगवान् का नाम कीर्तन करने से मन पुनः कर्मों में आसक्त नहीं होता है जब कि दूसरे प्रायश्चित्तों के करने पर मन रजोगुण और तमोगुण रूप कीचड़ में पड़ा रहता है ॥४६॥

**य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् । शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत्॥४७॥**
**न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिङ्करैः । यद्यप्यमङ्गलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥४८॥**

**अन्वयः**— एवं परमं गुह्यम् अधापहम् इतिहासं यः श्रद्धयायुक्तः शृणुयात् यश्च भक्त्याकीर्तयेत् यद्यपि अमङ्गलः मर्त्यः सः नरकं न याति नवै यमकिङ्करैः इक्षितः स विष्णुलोके महीयते ॥४७-४८॥

**अनुवाद**— इस प्रकार से अत्यन्त गोपनीय पाप विनाशक इस इतिहास को जो श्रद्धा पूर्वक सुनता है और भक्ति पूर्वक पढ़ता है, वह यदि अमङ्गलमय पुरुष हो तो भी वह न तो नरक में जाता है और न तो उसको यमदूत देख ही पाते हैं । वह भगवान् विष्णु के लोक में पूजित होता है ॥४७-४८॥

**भावार्थ दीपिका**

न चेक्षितो भवति ॥४७-४८॥

**भाव प्रकाशिका**

उसे यमदूत भी नहीं देख पाते हैं ॥४७-४८॥

**म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् । अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥४९॥**

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

**अन्वयः**— म्रियमाणः हरेर्नाम पुत्रोपचारतः गृहणन् अजामिलोऽपि हरे धाम अगात् पुनः श्रद्धया गृणन् किम् ॥४९॥

**अनुवाद**— मरते समय अपने पुत्र के बहाने श्रीहरि के नाम का उच्चारण करने वाला महापापी अजामिल भी श्रीहरि के लोक में चला गया तो जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक श्रीहरि के नाम का उच्चारण करता है उसके विषय में क्या कहना है ॥४९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के अजामिलोपाख्यान के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।**

**भावार्थ दीपिका**

म्रियमाणोऽवशत्वेन श्रद्धारविहीनोऽपि ॥४९॥

**इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धस्य भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।**

**भाव प्रकाशिका**

मरते समय विवश होकर तथा श्रद्धा रहित भी अजामिल ॥४९॥

**इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२।।**